

शुं ठेकाणुं :
भा. प्रवे. स्थानकेवारी
शाओद्वार समिति,
कुवा रोड, श्रीन हॉल
राजकोट, (सौराष्ट्र).

Published by :
Shri Akhil Bharat S. S.
Jain Shastroddhara Samiti,
Garedia Kuva Road, RAJKOT,
(Saurashtra), W. Ry, India.



ये नाम केचिदिह नः प्रथयन्त्यवज्ञां,
जानन्ति ते किमपि तान् प्रति नैप यत्नः ।
उत्पत्स्यतेऽस्ति मम कोऽपि समानधर्मा,
कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी ॥ १ ॥



हरिगीतच्छन्दः



करते अवज्ञा जो हमारी यत्न ना उनके लिये ।
जो जानते हैं तत्त्व कुछ फिर यत्न ना उनके लिये ॥
जनमेगा मुझसा व्यक्ति कोई तत्त्व इससे पायगा ।
है काल निरवधि विपुल पृथ्वी ध्यान में यह लायगा ॥ १ ॥

भूख्यः ३. ३५=००

आवृत्ति : प्रत १२००
संवत् : २४८८
संवत् २०१८
ीसन् १९६३

: मुद्रकः :
भण्डिलाल छगनलाल शाह
नवप्रभात प्रिन्टींग प्रेस,
धी हांटा रोड, अमदावाद.

श्री भगवती सूत्र भा. चौथे की विषयानुक्रमणिका

अनुक्रमाङ्क	विषय	पृष्ठाङ्क
पंचमे शतकका पहला उद्देश		
१	पांचवेंशतक के उद्देशों की संग्रहार्थ गाथा	१-२
२	सूर्यके स्वरूपका निरूपण	३-१०
३	रात्रीदिवसके स्वरूपका निरूपण	११-५२
४	श्रुतविशेषादिके स्वरूपका निरूपण	५२-७७
५	लवणसमुद्र के स्वरूपका निरूपण	७७-९७
दूसरा उद्देशक		
६	दूसरे उद्देशका विषयों के विवरण	९८-९९
७	वायुके स्वरूपका निरूपण	१००-१२३
८	ओदनादि द्रव्य का निरूपण	१२४-१४०
९	लवणसमुद्र के विष्कम्भ का निरूपण	१४०-१४७
तीसरा उद्देश		
१०	अन्यतीर्थिकों के मिथ्याज्ञान पने का निरूपण	१४८-१६८
११	नैरयिकादिकों के आयुष्यका निरूपण	१६८-१८१
चतुर्थ उद्देशक		
१२	चौथे उद्देशके विषयोंका विवरण	१८२-१८५
१३	छद्मस्थों के शब्दश्रवण का निरूपण	२८६-२००
१४	छद्मस्थ केवली के हासादि निरूपण	२००-२१६
१५	हरिनैगमिपिदेव की शक्तिका निरूपण	२१६-२२४
१६	अतिमुक्त अनगार के स्वरूपका निरूपण	२२४-२३८
१७	महावीर स्वामीके प्रति दो देवों की शिष्यविषयक वक्तव्यता निरूपण	२३८-२६२
१८	नोसंयत के स्वरूपका निरूपण	२६२-२६८
१९	देवों की मापाका निरूपण	२६८-२७०
२०	केवली छद्मस्थ के स्वरूपका निरूपण	२७१-२७९
२१	प्रमाण के स्वरूपका निरूपण	२७९-२९०
२२	केवली के चरम कर्मका निरूपण	२९०-२९४

भगवानुं ठेकाखं :
 श्री अ. बा. श्रवे. स्थानकुवारी
 नैन शास्त्रोद्धार समिति,
 ठ. गरेडिया कुवा रोड, श्रीन हॉल
 पासे, राजकोट, (सौराष्ट्र).

Published by :
 Shri Akhil Bharat S. S.
 Jain Shastroddhara Samiti,
 Garedia Kuva Road, RAJKOT,
 (Saurashtra), W. Ry, India.



ये नाम केचिदिह नः प्रथयन्त्यवगां,
 जानन्ति ते किमपि तान् प्रति नैप यत्नः ।
 उत्पत्स्यतेऽस्ति मम कोऽपि समानधर्मा,
 कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी ॥ १ ॥



हरिगीतच्छन्दः



करते अवज्ञा जो हमारी यत्न ना उनके लिये ।
 जो जानते हैं तत्त्व कुछ फिर यत्न ना उनके लिये ॥
 जनमेगा मुझसा व्यक्ति कोई तत्त्व इससे पायगा ।
 है काल निरवधि विपुल पृथ्वी ध्यान में यह लायगा ॥ १ ॥

मूल्याः ३. ३५=००

प्रथम आवृत्ति : प्रत १२००
 वीर संवत् : २४८६
 विक्रम संवत् २०१६
 धसवीसन् १९६३

: मुद्रक :
 मण्डिवाल छगनवाल शाह
 नवप्रसात प्रिन्टींग प्रेस,
 धी कांटा रोड, अमदावाद.

श्री भगवती सूत्र भा. चौथे की विषयानुक्रमणिका

अनुक्रमाङ्क	विषय	पृष्ठाङ्क
	पाँचवे शतकका पहला उद्देश	
१	पाँचवेंशतक के उद्देशों की संग्रहार्थ गाथा	१-२
२	सूर्यके स्वरूपका निरूपण	३-१०
३	रात्रीदिवसके स्वरूपका निरूपण	११-५२
४	ऋतुविशेषादिके स्वरूपका निरूपण	५२-७७
५	लवणसमुद्र के स्वरूपका निरूपण	७७-९७
	दूसरा उद्देशक	
६	दूसरे उद्देशका विषयों के विवरण	९८-९९
७	वायुके स्वरूपका निरूपण	१००-१२३
८	ओदनादि द्रव्य का निरूपण	१२४-१४०
९	लवणसमुद्र के विष्कम्भ का निरूपण	१४०-१४७
	तीसरा उद्देश	
१०	अन्यतीर्थिकों के मिथ्याज्ञान पने का निरूपण	१४८-१६८
११	नैरयिकादिकों के आयुष्यका निरूपण	१६८-१८१
	चतुर्थ उद्देशक	
१२	चौथे उद्देशके विषयोंका विवरण	१८२-१८५
१३	छन्नस्थों के शब्दश्रवण का निरूपण	२८६-२००
१४	छन्नस्थ केवली के हासादि निरूपण	२००-२१६
१५	हरिनैगमिपिदेव की शक्तिका निरूपण	२१६-२२४
१६	अतिमुक्त अनगार के स्वरूपका निरूपण	२२४-२३८
१७	महावीर स्वामीके प्रति दो देवोंकी शिष्यविषयक वक्तव्यता निरूपण	२३८-२६२
१८	नोसंयत के स्वरूपका निरूपण	२६२-२६८
१९	देवों की भाषाका निरूपण	२६८-२७०
२०	केवली छन्नस्थ के स्वरूपका निरूपण	२७१-२७९
२१	प्रमाण के स्वरूपका निरूपण	२७९-२९०
२२	केवली के चरम-कर्मका निरूपण	२९०-२९४

भणवानुं ठेकाणुं :
 श्री अ. वा. श्वे. स्थानध्वारी
 नैन शाश्वोदार समिति,
 ठे. गरेडिया कृवा रोड, श्रीन लॉन्
 पासे, राणकेाट, (सीराष्ट्र).

Published by :
 Shri Akhil Bharat S. S.
 Jain Shastroddhara Samiti,
 Garedia Kuva Road, RAJKOT,
 (Saurashtra), W. Ry, India.



ये नाम केचिदिह नः प्रथयन्त्यवतां,
 जानन्ति ते किमपि तान् प्रति नैप यत्नः ।
 उत्पत्स्यतेऽस्ति मम कोऽपि समानधर्मा,
 कालो क्षयं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी ॥ १ ॥



हरिगीतच्छन्दः



करते अवज्ञा जो हमारी यत्न ना उनके लिये ।
 जो जानते हैं तत्त्व कुछ फिर यत्न ना उनके लिये ॥
 जनमेगा मुझसा व्यक्ति कोई तत्त्व इससे पायगा ।
 है काल निरवधि विपुल पृथ्वी ध्यान में यह लायगा ॥ १ ॥

मूल्याः ३. ३५=००

प्रथम आवृत्ति : प्रत १२००
 वीर संवत् : २४८६
 विक्रम संवत् २०१६
 धसवीसन् १९६३

: मुद्रकः
 भणिलाल छगनलाल शाह
 नवप्रभात प्रिन्टींग प्रेस,
 धी ठांटा रोड, अमदावाद.

श्री भगवती सूत्र भा. चौथे की विषयानुक्रमणिका

अनुक्रमाङ्क	विषय	पृष्ठाङ्क
	पाँचवे शतकका पहला उद्देश	
१	पाँचवेंशतक के उद्देशों की संग्रहार्थ गाथा	१-२
२	सूर्यके स्वरूपका निरूपण	३-१०
३	रात्रीदिवसके स्वरूपका निरूपण	११-५२
४	ऋतुविशेषादिके स्वरूपका निरूपण	५२-७७
५	लवणसमुद्र के स्वरूपका निरूपण	७७-९७
	दूसरा उद्देश	
६	दूसरे उद्देशका विषयों के विवरण	९८-९९
७	वायुके स्वरूपका निरूपण	१००-१२३
८	ओदनादि द्रव्य का निरूपण	१२४-१४०
९	लवणसमुद्र के विष्कम्भ का निरूपण	१४०-१४७
	तीसरा उद्देश	
१०	अन्यतीर्थिकों के मिथ्याज्ञान पने का निरूपण	१४८-१६८
११	नैरयिकादिकों के आयुष्यका निरूपण	१६८-१८१
	चतुर्थ उद्देश	
१२	चौथे उद्देशके विषयोंका विवरण	१८२-१८५
१३	छद्मस्थों के शब्दश्रवण का निरूपण	२८६-२००
१४	छद्मस्थ केवली के हासादि निरूपण	२००-२१६
१५	हरिनैगमिपिदेव की शक्तिका निरूपण	२१६-२२४
१६	अतिमुक्त अनगार के स्वरूपका निरूपण	२२४-२३८
१७	महावीर स्वामीके प्रति दो देवों की शिष्यविषयक वक्तव्यता निरूपण	२३८-२६२
१८	नोसंयत के स्वरूपका निरूपण	२६२-२६८
१९	देवों की भाषाका निरूपण	२६८-२७०
२०	केवली छद्मस्थ के स्वरूपका निरूपण	२७१-२७९
२१	प्रमाण के स्वरूपका निरूपण	२७९-२९०
२२	केवली के चरम कर्मका निरूपण	२९०-२९४

२३ केवली प्रणीत मनोयचनका निरूपण	२९५-३०४
२४ अनुत्तर देवसंघन्धी प्रश्नोत्तर	३०५-३१५
२५ केवलीके ज्ञानके स्वरूपका निरूपण	३१५-३१८
२६ केवलीके हस्तादि न्यासका निरूपण	३१८-३२४
२७ चौदह पूर्वधरकी शक्तिका निरूपण	३२५-३३०

पाँचवां उद्देशक

२८ पाचवे उद्देशके विषयोंका निरूपण	३३१-३३२
२९ छद्मस्थ के सिद्धयभाव का निरूपण	३३२-३३५
३० एवंभूत और अनेवंभूत वेदनाके विषयमें अन्यतीर्थियों के मतका निरूपण	३३५-३५०
३१ कुलकर और तीर्थकर आदि के वक्तव्यताका निरूपण	३५०-३५७

छठा उद्देशक

३२ छठे उद्देशके विषयोंका विवरण	३५८-३५९
३३ कर्म बंधके स्वरूपका निरूपण	३६०-३७३
३४ गृहपति को भाण्ड-और अग्रिकाय के स्वरूपका निरूपण	३७३-३९९
३५ पुरुषकी धनुर्विषयक क्रियाका निरूपण	३९९-४१६
३६ अन्यमतवादियों के मतका निरूपण	४१६-४२०
३७ नैरयिकों की विकृष्टता के विषयका निरूपण	४२१-४२४
३८ आधाकर्मादि आहार आदि के स्वरूपका निरूपण	४२५-४३५
३९ आचार्य और उपाध्यायका सिद्धिगमनका निरूपण	४३६-४३९
४० मृषावादि के कर्मबन्धका निरूपण	४३९-४४४

सातवां उद्देशक

४१ सातवे उद्देशक के विषयोंका विवरण	४४५-४५०
४२ परमाणु-पुद्गलके स्वरूपका निरूपण	४५०-४६२
४३ परमाणुपुद्गल आदि के विषयमें असिधरा आदिका निरूपण	४६२-४७२
४४ परमाणु-पुद्गलके विभाग का निरूपण	५७२-४८१
४५ परमाणु-पुद्गलके परस्पर में स्पर्शनाका निरूपण	४८१-५०४
४६ परमाणु-पुद्गलों आदि की स्थिति एवं अन्तरकालका निरूपण	५०४-५२८

४७	पृथ्वी के अल्प बहुत्वका निरूपण	६२८-६४४
४८	नैरयिकों के असुरकुमार आदिकों के और एकेन्द्रियादिकों के आरंभ अनारम्भ आदिका निरूपण	६४४-६५५
४९	हेतु के स्वरूपका निरूपण	६६९-६८२

आठवां उद्देशक

५०	आठवें उद्देशक के विषयका विवरण	५८३-५८४
५१	पृथ्वी के स्वरूपका निरूपण	६८५-६३६
५२	जीवोंके वृद्धिहार आदिका निरूपण	६३७-६७७

नववां उद्देशक

५३	नववें उद्देशक के विषयों का विवरण	६७८-६८०
५४	राजगृह नगरके स्वरूपका निरूपण	६८०-६८७
५५	प्रकाश और अन्धकार के स्वरूपका निरूपण	६८८-६९९
५६	नैरयिक आदि जीवोंके समयादि ज्ञानकानिरूपण	६९९-७०९
५७	पार्श्वपत्योय स्यञ्चिर और महावीर स्वामीका संवाद	७१०-७३१
५८	देवलोक के स्वरूपका निरूपण	७३१-७३५

दसवां उद्देशक

५९	चन्द्रके स्वरूपका निरूपण	७३६-७५१
----	--------------------------	---------

छठे शतकके पहला उद्देशक

६०	पहले उद्देशके विषय का संक्षिप्त विवरण	७५२-७५५
६१	उद्देशके विषय संग्राहक गाथा	७५५-७५६
६२	वेदना निर्जराके स्वरूपका निरूपण	७५७-७८२
६३	करण के स्वरूपका निरूपण	७८३-७९६
६४	वेदना और निर्जराके साहचर्यका निरूपण	७९६-८०१

दूसरा उद्देशक

६५	आहार के स्वरूपका निरूपण	८०२-८०३
----	-------------------------	---------

तीसरा उद्देशक

६६	तीसरे उद्देशके विषयोंका विवरण	८०४-८०८
६७	महाकर्म और अल्पकर्मके स्वरूपका निरूपण	८०९-८३२

६८ जीवके कर्मका निरूपण	८३२-८३९
६९ कर्म पुद्गलके उपचयका निरूपण	८४०-८६०
७० कर्मके भेद और उनकीस्थितिका निरूपण	८६१-९६२
७१ वेदक जीवके अल्प बहुत्वका कथन	९३३-९३८

चौथा उद्देशक

७२ चौथे उद्देशकके विषयों संक्षिप्त विषयविवरण	९३९-९४३
७३ जीवके समदेश और अमदेशके स्वरूपका निरूपण	९४४-१०१५
७४ प्रत्याख्यानादिके स्वरूपका निरूपण	१०१६-१०३१

पांचवां उद्देशक

७५ पांचवे उद्देशकके विषयोंका संक्षिप्त विवरण	१०३२-१०३६
७६ तमस्काय के स्वरूपका निरूपण	१०३७-१०७८
७७ कृष्णराजिके स्वरूपका निरूपण	१०७७-११०४
७८ लोकान्तिक देवके विमान आदिका निरूपण	११०५-११२८

समाप्त

ખા. પ્ર. શ્રી વિનોદમુનિનું સંક્ષિપ્ત જીવનચરિત્ર

આ પરમ વૈરાગી અને દયાના પુંજ જેવા આ પુરુષને જન્મ વિક્રમ સંવત ૧૯૯૨ પોર્ટમુહાન (આફ્રિકા) માં કે જ્યાં વીરાણી કુટુંબનો વ્યાપાર આજ દિવસ સુધી ચાલુ છે, ત્યાં થયો હતો.

શ્રી વિનોદકુમારના પુણ્યવાન પિતાશ્રીનું નામ શેઠશ્રી દુર્લભજી શામજી વીરાણી અને મહા ભાગ્યવાન માતૃશ્રીનું નામ મલ્લિજેન વીરાણી, બન્નેનું અસલ વતન રાજકોટ (સૌરાષ્ટ્ર) છે. જેન મલ્લિજેન ધાર્મિક ક્રિયામાં પહેલેથી જ રૂચિવાળા હતા, પરંતુ શ્રી વિનોદકુમાર ગર્ભમાં આવ્યા પછી વધારે દૃઢધર્મી અને પ્રિયધર્મી બન્યા હતા.

પૂર્વ ભવના સંસ્કારથી શ્રી વિનોદકુમારનું લક્ષ ધાર્મિક અભ્યાસ અને ત્યાગ ભાવ તરફ વધારે હોવા છતાં તેઓશ્રીએ નોનમેટ્રીક સુધી અભ્યાસ કરી વ્યવહારિક કેળવણી લીધેલી અને વ્યાપારની પેઢીમાં કુશળતા બતાવેલી.

તેઓશ્રીએ યુનાઇટેડ કિંગડમ, ફ્રાન્સ, બેલ્જિયમ, હોલેન્ડ, જર્મની, સ્વીઝર્લેન્ડ, તેમજ ઇટાલી, ઇજીપ્ત વગેરે દેશોમાં પ્રવાસ કરેલ. સં. ૨૦૦૬ ના વૈશાખ માસ, સને ૧૯૫૩ માં લંડનમાં રાણી એલીઝાબેથના રાજ્યારોહણ પ્રસંગે તેઓશ્રી લંડન ગયા હતા. કાશ્મિરનો પ્રવાસ પણ તેમણે કરેલ, દેશ પરદેશ ફરવા છતાં પણ તેમણે કોઈ વખતે પણ કંદમૂળનો આહાર વાપરેલ નહીં.

ઉગતી આવતી યુવાનીમાં તેઓશ્રીએ દુનિયાના રમણીય સ્થળો જેવાં કે કાશ્મિર, ઇજીપ્ત અને યુરોપનાં સુંદર સ્થળોની મુલાકાત લીધી હોવા છતાંએ તેઓને રમણીય સ્થળો કે રમણીય યુવતીઓનું આકર્ષણ થયું નહીં. એ એના પૂર્વભવના ધાર્મિક સંસ્કારોનો જ રંગ હતો અને એ રંગે જ તેમને તે બધું ન ગમ્યું અને તુરત વતન પાછા ફર્યા અને સાધુ-સાધ્વીજીવનનાં દર્શન કરવાને ઠેકઠેકાણે ગયા અને તેમના ઉપદેશનો લાભ લીધો અને વૈરાગ્યમાં જ મન લાગ્યું. હુંડા કાલ અવસર્પિણિના આ દુપમ નામના પાંચમા આરાનું વિચિત્ર વાતાવરણ જોઈ તેમને કંઈક ક્ષોભ થતો કે તુરત જ તેનો ખુલાસો મેળવી લેતા અને ત્યાગ ભાવમાં સ્થિર રહેતા. દેશ-પરદેશમાં પણ સામાયિક, પ્રતિક્રમણ, ચોવિહાર આદિ પચ્ચક્ષ્ણાણુ તેઓ ચૂક્યા નહીં. ઉચ્ચી કોટિની શૈયાનો ત્યાગ કરી તેઓ સૂવા માટે માત્ર એક શેતરંજી, એક ઓસીકું અને ઓઢવા માટે એક આદર કૃત વાપરતા અને પલંગ ઉપર નહીં પણ ભૂમિ

પર જ શયન કરતા અને પહેરવા માટે એક ખાદીનો દોગા અને અજોવા પરતા, કોઈ વખતે કળજો પહેરતા, બંદુ ઠંડી હોય તો વખતે શાદો ગરમ કોટ પહેરી લેતા અને મુકપત્તિ, પાથરાણું, રત્નેશ્વરજી અને બે ગાર પાર્મિક પુસ્તકની ઝોળી સાથે રાખતા, સંઠાસમાં નર્સી પગ જંગલમાં એકાંત જગ્યામાં ઘણે ભાગે શરીરની અશુચિ દૂર કરવા જતા, ધાતતાં ચાતતાં, સંઠાસ અને વેશાળ સંગઘીમાં છવઢયાની ઘરાળર જતના કરતા.

દેશમાં કે પરદેશમાં જ્યારે તેમને કોઈની સાથે મળવાનું થતું ત્યારે તેમની સાથે અહિંસામય નીન ધર્મનું સ્વરૂપ પ્રકટ થયા વગર રહેતા નહીં.

દીક્ષાર્થીઓને જલદી દીક્ષા લેવાની પ્રેરણા કરતા અને એમ જ કહેતા કે જીવનનો કોઈ ભરોસો નથી. “અસંલયં જીવિયં મા પનાયપ” આયુધ્ય તૂટતાં વાર લાગતી નથી, તૂટ્યું છવન સંધાતું નથી. માટે ધર્મકરણીમાં સમયમાત્રનો પ્રમાદ ન કરવો જોઈએ.

ગોંડલ સંપ્રદાયના ઘણાખરા પૂ. મુનિવરો અને પૂ મહાસતીજીઓનો તથા બોટાદ સંપ્રદાયના પૂ. આચાર્યશ્રી માણેકચંદ્ર મહારાજ અને દરિયાપુરી સંપ્રદાયના શાંત-શાસ્ત્રજ પૂ મુનિશ્રી લાયચંદ્ર મહારાજ, શ્રમણ અધના મુખ્ય આચાર્યશ્રીજી આત્મારામજી મહારાજ તપોમય જ્ઞાનનિધિ શાસ્ત્રોદ્ધારક બા. ધ્ર. પૂ આચાર્ય મહારાજ શ્રી ઘામીલાલજી મહારાજ વગેરે અનેક સાધુ-સાધ્વીઓના ઉપદેશનો તેમણે લાભ લીધેલ. મુંબઈમાં સં. ૨૦૧૧ સાલમાં શ્રી ધર્મસિંહજી મહારાજના સંપ્રદાયના પંડિતરત્ન શ્રી લાલચંદ્રજી મહારાજનો પરિચય થયો. લાલચંદ્રજી મહારાજ પે.તે, સંસારપક્ષના ત્રણ પુત્રો અને બે પુત્રીઓ એમ કુલ ૬ બલકે આખા કુટુંબે સંયમ અંગીકાર કરેલ, તે બધી તેમને અદ્ભૂત ત્યાગ ભાવના પ્રગટ થઈ કે જે કદી ક્ષય પામી નહીં.

આ પહેલાં તેઓ જ્યારે માતા-પિતાની સાથે પૂજ્ય આચાર્ય શ્રી માણેકચંદ્રજી મહારાજના દર્શને બોટાદ ગયેલા ત્યારે તેમના ઉપદેશની જે અસર થઈ તે પણ મુખ્ય અસર પહેલી હતી અને બીજી અસર તે પૂજ્ય લાલચંદ્રજી મહારાજના સહકુટુંબની દીક્ષા એ હતી. આ બેઉ પ્રસંગોએ પૂર્વ ભવની બાકી રહેલી આરાધનાને પૂરી કરવાના નિમિત્તરૂપ હોઈને વખતો વખત તેઓ માતા-પિતા પાસે દીક્ષાની આજ્ઞા માગતા હતા અને તેનો જવાબ તેમના પિતાશ્રી તરફથી એક જ હતો, ‘જે હજી વાર છે સમય પાકેવા દીક્ષા. જ્ઞાનાભ્યાસ વધારો.

સં. ૨૦૧૨ ના અપાઠ શુદ્ધી ૧૫ થી શ્રી વિનોદકુમારે ગોંડલ સંપ્રદાયના શાસ્ત્રજ્ઞ પૂ. આચાર્યશ્રી પુરુષોત્તમજી મહારાજ સાહેબ પાસે વેરાવળ ચાતુર્માસ દરમ્યાન ખાસ નિયમિત રીતે દીક્ષાની તૈયારી કરવા માટે તેમની પાસે જ્ઞાનાભ્યાસ કર્યો તેની સાથે પૂ. આચાર્ય શ્રી પુરુષોત્તમજી મહારાજના સંસાર પક્ષના કુટુંબી, દીક્ષાના ભાવિક શ્રી જસરાજભાઈ પણ જ્ઞાનાભ્યાસ કરતા હતા. તેઓએ ત્યાં એવો નિર્ણય કરેલો કે આચાર્ય શ્રી પુરુષોત્તમજી મહારાજ પાસે આપણે બન્નેએ દીક્ષા લેવી, પહેલાં વિનોદકુમારે અને પછી શ્રી જસરાજભાઈએ દીક્ષા લેવી, શ્રી જસરાજભાઈની દીક્ષા તિથિ પૂ. શ્રી પુરુષોત્તમજી મહારાજ સાહેબે સં. ૨૦૧૩ ના જેઠ શુદ્ધ ૫ ને સોમવારે માંગરોલ મુકામે નક્કી કરી. શ્રી જસરાજભાઈ વિનોદકુમારને રાજકોટ મળ્યા. શ્રી વિનોદકુમારે શ્રી જસરાજભાઈની યથાયોગ્ય સેવા બજાવી, માંગરોલ રવાના કર્યો અને પોતે નિશ્ચય પૂર્વક દીક્ષા માટે આજ્ઞા માગી પણ તેઓના પિતાશ્રીની એકને એક વાણી સાંભળીને તેમને મનમાં આઘાત થયો અને દીક્ષા માટેનો તેમણે ખીજે રસ્તો ચોધી કાઢ્યો.

પૂન્યશ્રી લાલચંદજી મહારાજ અને તેમના શિષ્યોનો પરિચય મુંબઈમાં થયેલ હતો અને ત્યારબાદ કોઈ વખત પત્રવહોવાર પણ થતો હતો. છેલ્લા પત્રથી તેમણે જાણેલ હતું, જે પૂ. શ્રી લાલચંદજી મહારાજ, ખીચન ગામે પૂ. આચાર્ય શ્રી સમર્થમલજી મહારાજ સાહેબ પાસે જ્ઞાનાભ્યાસ અર્થે ગયા છે. પોતાને પિતાશ્રીની આજ્ઞા (દીક્ષા માટે) મળે તેમ નથી અને દીક્ષા તો લેવી જ છે. આજ્ઞા વિના કોઈ સાધુ મુનિરાજ દીક્ષા આપશે નહીં અને સ્વયંમેવ દીક્ષા સૌરાષ્ટ્રમાં લઈને આચાર્ય શ્રી પુરુષોત્તમજી મહારાજ પાસે જવામાં ઘણાં વિઘ્નો થાયે, એમ ધારીને તેઓએ દૂર રાજસ્થાનમાં આવ્યા જવાનું નક્કી કર્યું.

તા. ૨૪-૫-૫૭ સં. ૨૦૧૩ ના વૈશાખ વદ ૧૦ ને શુક્રવારના રોજ સાંજના માતૃશ્રી સાથે છેલ્લું જમણુ કર્યું. લોજન કરી, માતૃશ્રી સામાયિકમાં ઊસી ગયા. તે વખતે કોઈને જાણ કર્યા વગર દીક્ષાના વિઘ્નોમાંથી બચવા માટે ઘર, કુટુંબ, સૌરાષ્ટ્ર, ભૂમિ અને ગોંડલ સંપ્રદાયનો પણ ત્યાગ કરી તેઓ ખીચન તરફ રવાના થયા.

શ્રી વિનોદમુનિના નિવેદન પરથી માલૂમ પડ્યું કે તા. ૨૪-૫-૫૭ ના રોજ રાત્રે આઠ વાગે ઘેરથી નીકળી, રાજકોટ જંકશને જોધપુરની ટિકિટ લીધી. તા. ૨૫-૫-૫૭ ના સવારે ૮ વાગ્યે મહેસાણા પહોંચ્યા. ત્યાં અઢી કલાક ગાડી પેડી રહે છે, તે દરમ્યાન ગામમાં જઈને લોચ કરવા માટેના વાળ રાખીને બાકીના કઠાવી નાખ્યા અને ગાડીમાં બેસી ગયા. મારવાડ જંકશન

પર જ શયન કરતા અને પહેરવા માટે એક ખાદીનો લેવો અને ઝરનો વાપરતાં, કોઈ વખતે કબજો પહેરતા, ણદુ ઠંડી હોય તો વખતે સાદો ગરમ કોટ પહેરી લેતા અને મુકપત્તિ, પાયરલુ, રનોડરલુ અને બે ચાર ધાર્મિક પુસ્તકની ઝોળી સાથે રાખતા, સંડાસમાં નહીં પણ જંગલમાં એકાંત જગ્યામાં ઘણે ભાગે શરીરની અશુચિ દૂર કરવા જતા, હાલતાં ચાલતાં, સંડાસ અને પેશાબ સંબંધીમાં જીવદયાની ધરાધર જતના કરતા.

દેશમાં કે પરદેશમાં જ્યારે તેમને કોઈની સાથે મળવાનું થતું ત્યારે તેમની સાથે અહિંસામય નૈન ધર્મનું સ્વરૂપ પ્રકટ કર્યો વગર રહેતા નહીં.

દીક્ષાર્થીઓને જલદી દીક્ષા લેવાની પ્રેરણા કરતા અને એમ જ કહેતા કે જીવંતો કોઈ ભરેસો નથી. “જસંસ્યં જીવિયં મા પમાય” આયુષ્ય તૂટતાં વાર લાગતી નથી, તૂટ્યું જીવન સંધાતું નથી. માટે ધર્મકરણીમાં સમયભાવનો પ્રમાદ ન કરવો જોઈએ.

ગોંડલ સંપ્રદાયના ઘણાખરા પૂ. મુનિવરો અને પૂ મહાસતીજીઓનો તથા બોટાદ સંપ્રદાયના પૂ. આચાર્યશ્રી માલુકચંદજી મહારાજ અને દરિયાપુરી સંપ્રદાયના શાંત-શાસ્ત્ર પૂ મુનિશ્રી લાયચંદજી મહારાજ, શ્રમણ સંઘના મુખ્ય આચાર્યશ્રીજી આત્મારામજી મહારાજ તપોમય જ્ઞાનનિધિ શાસ્ત્રોદારક બા. ધ્ર. પૂ આચાર્ય મહારાજ શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ વગેરે અનેક સાધુ-સાધ્વીઓના ઉપદેશનો તેમણે લાભ લીધેલ. મુંબઈમાં સં. ૨૦૧૧ સાલમાં શ્રી ધર્મસિંહજી મહારાજના સંપ્રદાયના પંડિતરત્ન શ્રી લાલચંદજી મહારાજનો પરિચય થયો. લાલચંદજી મહારાજ પે.તે, ‘સંસારપંક્તના ત્રણ પુત્રો અને બે પુત્રીઓ એમ કુલ ૬ બલકે આખા કુટુંબે સંયમ અંગીકાર કરેલ, તે બધી તેમને અદ્ભૂત ત્યાગ ભાવના પ્રગટ થઈ કે જે કદી ક્ષય પામી નહીં.

આ પહેલાં તેઓ જ્યારે માતા-પિતાની સાથે પૂજ્ય આચાર્ય શ્રી માલુકચંદજી મહારાજના દર્શને બોટાદ ગયેલા ત્યારે તેમના ઉપદેશની જે અસર થઈ તે પણ મુખ્ય અસર પહેલી હતી અને બીજી અસર તે પૂજ્ય લાલચંદજી મહારાજના સહકુટુંબની દીક્ષા એ હતી. આ બેઉ પ્રસંગોએ પૂર્વ ભવની બાકી રહેલી આરાધનાને પૂરી કરવાના નિમિત્તરૂપ હોઈને વખતો વખત તેઓ માતા-પિતા પાસે દીક્ષાની આજ્ઞા માગતા હતા અને તેના જવાબ તેમના પિતાશ્રી તરફથી એક જ હતો, ‘જે હજી વાર છે સમય પાંકવા દીઓ, જ્ઞાનાભ્યાસ વધારો,

સમય માત્રનો પ્રમાદ કરવો ઠીક ન લાગ્યો, તેથી શ્રી અરિહંત ભગવંતો તંદો શ્રી સિદ્ધ ભગવંતોની સાક્ષીએ મારા શુરુ મહારાજ સમક્ષ પ્રવચ્ચાનો પાઠ લાણીને મારા આત્માના કદયાણુ માટે મેં દીક્ષા અંગીકાર કરી છે. સમાજને જોટો ખ્યાલ ન આવે કે મારી દીક્ષા ક્ષણિક લુસ્ત્રાથી અગર ગેરસમજથી થઈ છે તેથી તથા સમાજમાં નૈનશાસનની પ્રભાવના થાય તે હેતુથી મારે મારો વૃત્તાંત પ્રગટ કરવો ઉચિત છે.

ઉત્તરાધ્યયનજી સૂત્રના ૧૯ માં અધ્યયનપરથી મને લાગ્યું કે મનુષ્ય જીવનનું ખૂં કર્તવ્ય મોક્ષકળ આપનારી દીક્ષા જ છે.

હેવટ સુધી મેં મારા જાણુજી પાસે દીક્ષા માટે આજ્ઞા માગી અને તે વખતે પણ પહેલાંની જેમ વાત ઉડાવી દીધી અને અનંત ઉપકારી એવા મારા જાણુજી સમક્ષ હું તેમને કહક ભાષામાં પણ કહી શકતો ન હતો અને ખીજી જાણુધી મને થયું કે આયુષ્ય અશાશ્વત છે અને આવા ઉત્તમ કામ માટે મારે જરાપણુ પ્રમાદ કરવો ઉચિત નથી. તેથી મેં વિચારીને આ પગલું ભયું છે અને મને પૂર્ણ વિશ્વાસ છે કે, શ્રી વીરપ્રભુ મહાવીર સ્વામીનો સકળ સંઘ મારા આ કાર્યને અનુમોદશે જ “ તથાસ્તુ ”.

રાજકોટમાં શ્રી વિનોદકુમારના ગયા પછી પાછળથી ખગર પડી કે વિનોદકુમાર કેમ દેખાતા નથી, એટલે તપાસ થવા માંડી, ગામમાં કયાંય પત્તો ન લાગ્યો એટલે બહારગામ તારો કયાં, કયાંયથી સંતોષકારક સમાચાર સાંપડ્યા નહીં, અર્થાત્ પત્તો મળ્યો જ નહીં. આમ વિમાસણના પરિણામે પિતાશ્રીને બે મહીના પહેલાંની એક વાતની યાદી આવી. તે એ હતી કે તે વખતે શ્રી વિનોદકુમારે આજ્ઞા માગેલી કે “ જાણુજી ! આપની આજ્ઞા હોય તો આ આતુમોસ ખીચન (રાજસ્થાન) જઈ, કારણુ કે ખીચનમાં પૂ. શુરુમહારાજ શ્રી સમર્થમલજી મહારાજ કે જેઓ સિદ્ધાંત વિશારદ છે અને એકાંતવાદના પૂરા જાણુકાર છે, તેઓ ત્યાં ઝિરાજમાન છે. જેઓશ્રી પાસે શાસ્ત્રાભ્યાસ કરવા માટે પૂ. શ્રી. કાલચંદજી મહારાજ આદિ કાણુ ૪ જવાના છે. તો મારી ઈચ્છા પણ ત્યાં તેમની પાસે જવાની છે. ”

આ વાતચીતનું સ્મરણુ પિતાશ્રીને આવવા સાથે તેઓએ પં. પૂર્ણચંદ્રજી-દકને પોતાની પાસે બેલાવ્યા અને વિનોદકુમાર માટેની પોતાની ચિંતા વ્યક્ત કરી. પંડિતજીનું આ વાતને સમર્થન મળ્યું, તેઓશ્રીએ જણાવ્યું કે થોડા સમય પૂર્વે વિનોદકુમારે મારી પાસે જાણુવા માગ્યું હતું કે, ખીચનમાં કેવા

તથા ભેદપુર જાંઠશન યદને તા. ૨૬-૫-૫૭ ની વહેતી ગાંધારે જાં વાગ્યે ફલોદી પહોંચ્યા ત્યાંથી પગે ચાલીને ખીચન ઉપાશપમાં પહોંચ્યા અને ઉપાશયમાં બિરાજતા મુનિવરોના દર્શન કર્યો, વંદળા નમસ્કાર કરી મુખચાતા પૂછી, બહાર નીકળ્યાં અને પોતાના સામાયિકના કપડાં પહેર્યાં અને પછી પૂજ્ય શ્રી મુનિવરોની સન્મુખ સામાયિક કરવા બેઠા, તેમાં “ જાવ નિયમા પચ્જુવાસામિ દુવિદં તિવિદેણં ” ના બદલે “ જાવ હીવ પચ્જુવાસામિ તિવિદં તિવિદેણં ” બોલ્યા તે શ્રી લાલચંદ્રજી મહારાજે સાંભળ્યું અને તેઓશ્રીએ પૂછ્યું કે “ વિનોદકુમાર ! તમે આ શું કરો છો, તેનો જવાબ આપવાને બદલે “ ભવ્વાણં વોસિરામિ ” બોલી પાડ પૂરો કર્યો અને પછી વિનયપૂર્વક બે હાથ ભેડીને બોલ્યા કે “ સાહેબ ! એ તો બની ચૂક્યું અને મેં સ્વયંભેવ દીક્ષા લઈ લીધી ઠરાબર જ છે અને તેમાં કાંઈ દેરકાર થઈ શકે તેમ નથી. આ સિવાય આપશ્રીની ખીજ કોઈ પણ પ્રકારની આજ્ઞા હોય તો ફરમાવો. ”

તે જ દિવસે બપોરના સાઅર પૂ. મુનિશ્રી સમર્થમલજી મહારાજ સાહેબે શ્રી વિનોદકુમાર મુનિને પોતાની પાસે બોલાવ્યા અને સમજાવ્યા કે “ તમે એક સારા ખાનદાન કુટુંબના વ્યક્તિ છો. તમારી આ દીક્ષા અંગીકાર કરવાની રીત ઠરાબર નથી કારણ કે તમારા માતા-પિતાને આ હકીકતથી દુઃખ થાય અને તેથી મારી સંમતિ છે કે રજોહરણની ડાંડી ઉપરથી કપડું કાઢી નાખો જેથી તમે શ્રાવક ગણાવ અને જરૂર પડે તો શ્રાવકોનો સાથ લઈ શકો, એમ ત્રણવાર પૂ. મહારાજશ્રીએ સમજાવેલા પરંતુ તેમણે ત્રણેય વખત એક જ ઉત્તર આપેલો કે “ જે થયું તે થયું, હવે મારે આગળ શું કરવું તે ફરમાવો. ”

શ્રી વિનોદમુનિના શ્રી સમર્થમલજી જેવા મહામુનિના પ્રશ્નના જવાબ પછી ખીચનનો ચતુર્વિધ સંઘ વિચારમાં પડી ગયો અને મુનિશ્રીઓ પર સંસારીઓનો કોઈ પણ પ્રકારનો આ નિષ્કારણ હુમલો ન આવે તે માટે શ્રી વિનોદમુનિને જણાવવામાં આવ્યું કે “ અમારી સલામતી માટે તમારે બહાર નિવેદન બહાર પાડવાની જરૂર છે ” ત્યારે શ્રી વિનોદમુનિએ પોતાના હસ્તાક્ષરે નિવેદન થી સંઘ સમક્ષ પ્રગટ કર્યું, તેનો સાર નીચે મુજબ છે:-

મારા માતા-પિતા મોહને વશ થઈને દીક્ષાની આજ્ઞા આપે તેમ ન હતું અને “ ભસંલ્લયં જીવિયં મા પમાંયપ ” ને આધારે એક ક્ષણ પણ દીક્ષાથી વંચિત રહી શકું તેમ નથી, એમ મને લાગ્યું. શ્રી લાલચંદ્રજી મહારાજ સાહેબ-વગેરેએ મને મારી દીક્ષા માટે વિચારી પછી કરવાનું કહેલ પરંતુ મને

દીક્ષા પછી અદી મહિનાને આંતરે ફ્લોદી ચોમાસા દરમ્યાન શ્રી વિનોદમુનિને હાજતે જ્વાની સંસાર થઈ અને તે માટે જ્વા તૈયાર થયા એટલે તેમના ગુરુએ કહ્યું કે બહુ ગરમી છે, જરાવાર થોભી જાવ એટલે શ્રી વિનોદમુનિએ રનોહરણ વગેરેની પ્રતિજ્ઞા કરી તે દરમ્યાન ન રોકી શકાય એવી હાજત લાગી તેથી ફરી આસા માગતાં, જણાવ્યું કે મને હાજત બહુ લાગી છે તેથી જાઉં છું, જલદી પાછો ફરીશ. કાળની ગહન ગતિને દુઃખદ સ્થના સ્થવી હતી. આજે જ હાજતે એકલા જ્વાનો બનાવ હતો, હંમેશાં તે બધા સાધુઓ સાથે મળીને દિશાએ જતા.

હાજતથી મોકળા થઈ પાછા ફરતા હતા, ત્યાં રેલ્વે લાઈન ઉપર બે ગાયો આવી રહી હતી. બીજી બાજુથી ટ્રેઈન પણ આવી રહી હતી, તેની ગ્લિસલ વાગવા છતાં પણ ગાયો ખસતી ન હતી. શ્રી વિનોદમુનિનું હૃદય થરથરી ઉઠ્યું અને મહા અનુકંપાએ મુનિના હૃદયમાં સ્થાન લીધું હાથમાં રનોહરણ લઈ જાનના જોખમની પરવા કર્યા વગર ગાયોને બચાવવા ગયા. ગાયોને તે બચાવી જ લીધી; પરંતુ આ ક્રિયામાં છકાય છત્રની દયાના સાધનભૂત રનોહરણ કે જે વિનોદમુનિને આત્માથી વધારે પ્યારો હતો, તે રેલ્વે લાઈન ઉપર પડી ગયો અને શ્રી વિનોદમુનિએ તે પાછો સંપાદન કરવામાં જડવાદને સિદ્ધ કરતાં રાક્ષસી એન્જિનને બપાટે આંખ્યા અને પોતાનું બલિદાન આપ્યું. અરિહંત....અરિહંત...એવા શબ્દો મુખમાંથી નીકળ્યા અને શરીર તૂટી પડ્યું. રક્ત પ્રવાહ છૂટી પડ્યો અને થોડા જ વખતમાં પ્રાણાંત થઈ ગયો. બધા લોકો કહેવા લાગ્યા કે ગૌરક્ષામાં મુનિશ્રીએ પ્રાણ આપ્યાં અતિમ સમયે મુનિશ્રીના ચહેરા પર લબ્ધ શાન્તિ જ દેખાતી હતી.

હંમેશાં તેઓ જે તરફ હાજતે જતા હતા તે તરફ ફ્લોદીથી પોકરણ તરફ જ્વાની રેલ્વે લાઈન હતી. આ લાઈન ઉપર રેલ્વે સત્તાવાળાઓએ ક્રાંતક મૂકેલ નથી અને ત્યાં રસ્તો પણ છે, એટલે પશુઓની અવરજવર હોય જ છે અને વખતો વખત ત્યાં ઠોરો રેલ્વેની હડકેટે ચડી જવાના પ્રસંગ બને છે.

ફ્લોદી સથે આ દુર્ઘટનાના ખબર રાજકોટ, ટેલીફોનથી આપ્યા. જે વખતે ટેલીફોન આંખ્યા તે વખતે વિનોદમુનિના પિતાશ્રી બહાર ગયા હતા અને માતૃશ્રી મણિબેન સામાયિક-પ્રતિક્રમણમાં બેઠાં હતાં, માત્ર એક નોકર જ ઘરમાં હતો કે જેણે ટેલીફોન ઉઠાવ્યો પણ તે કાંઈ ટેલીફોનમાં હકીકત સમજી શક્યો નહીં અને સાચા સમાચાર મોડા મળ્યા. સ્પેશ્યલ પ્લેનથી ફ્લોદી પહોંચી તે પહેલાં અગ્નિસંસ્કાર થઈ ગયો. સૂચનાને ટેલીફોન અડધી કલાક

પ્રકારની સગવડ છે ? આમ મારી સાથે પણ વાર્તાતાપ થયો હતો. બન્નેનો આ પ્રમાણે એકમત થતાં પિતાશ્રીએ ખીચન તાર કરવા શુરના કરી. તા. ૨૬-૫-૫૭ ના રોજ પૃથ્વીરાજજી માનુ ખીચન (રાજસ્થાન) ઉપર તાર કર્યો.

તા. ૨૮-૫-૫૭ ના રોજ જવાબ આગ્યો કે શ્રી વિનોદભાઈએ ખીચનમાં સ્વયમેવ દીક્ષા ગ્રહણ કરી છે. એટલે તેમના પિતાશ્રીએ રાજવદાદુરશ્રી એમ. પી. સાહેબ, શ્રી કેશવલાલભાઈ પારેખ અને પંડિતજી પૂજ્યમંદ્રજી દસ એમ ત્રણેયને શ્રી વિનોદકુમારને પાછા તેડી લાવવા માટે ખીચન મોકલ્યા. તા. ૨૮-૫-૫૭ ના રોજ રવાના થઈ તા. ૩૦-૫-૫૭ ના રોજ સવારે ફ્લોઈદી સ્ટેશને પહોંચ્યા. એલગાદીમાં તેઓ ખીચન ગયા કે ન્યાં સ્થવિર મુનિશ્રી મહારાજ પૂન્ય પંડિતરત્ન શાસ્ત્ર વિચારક શ્રી સમર્થમતજી મહારાજ આદિ ઠાણા ૮ તથા પૂન્ય તપસ્વી મહારાજ શ્રી લાલચંદજી મહારાજ આદિ ઠાણા ૪ ધિરાજતા હતા. કુદ્દે સાધુ-સાધ્વીની સંખ્યા અઠ્ઠાવીસથી ત્રીસની હતી.

પૂછપરછના જવાબમાં શ્રી વિનોદમુનિએ કેશવલાલભાઈ પારેખને કહ્યું કે “ મેં તો દીક્ષા અંગીકાર કરી લીધી છે, તેમાં કંઈ ફેરફાર થાય તેમ નથી તમે અમારા વીરાણી કુટુંબના હિતૈયી છો, અને જો સાચા હિતૈયી હો તો મારા પૂ જા અને જાપુજીને સમજાવીને મારી હવે પછીની મોટી દીક્ષાની આજ્ઞા અઠવાડીઆની અંદર અપાવી દો એટલું જ નહિ પણ “ સવિ જીવ ઠરું શાસન રસી ” ની લાવનામાં અને આજ દિવસ સુધીના મારી ઉપરના ઉપકારના બદલામાં આગમને અનુલક્ષીને મારી એ લાવના હોય જ અને છે કે, મારી દીક્ષા તેઓની દીક્ષાનું નિમિત્ત બને અને મારા માતા-પિતા સદ્-ગતિને સાથે. અર્થાત્ મારી સાથે દીક્ષા લીએ.

આવા દૃઢ જવાબના પરિણામે તે જ સમયે શ્રી વિનોદકુમારને પાછા લઈ જવાની લાવનાને નિષ્ફળતા સાંપડી અને તા. ૩૧-૫-૫૭ ની રાત્રિના રવાના થઈ, તા. ૨-૬-૫૭ ના સવારે મહા પરીપહરૂપ ક્ષેત્રનો અનુભવ કરી, શ્રી વિનોદકુમારના પિતાશ્રીને તમામ વાતથી વાકેફ કર્યા.

થોડા વખતમાં ફ્લોઈદીના શ્રી. સંઘ પૂ. શ્રી. લાલચંદજી મહારાજને ફ્લોઈદીમાં ચોમાસુ કરવાની વિનંતી કરી તેનો અસ્વીકાર થવાથી સંઘ ગમગીન બન્યો એટલે નિર્ણય ફેરવ્યો અને અષાઢ શુદ્ધ ૧૩ ના રોજ ખીચનથી વિહાર કરી ફ્લોઈદી આવ્યા.

શ્રી વિનોદમુનિના જીવનના જે પ્રશ્નો ઉપરિચિત થાય છે તેનો ખુલાસો કરવામાં આવે છે.

પ્રશ્ન ૧—તેમણે આજ્ઞા વગર સ્વયમેવ દીક્ષા કેમ લીધી ?

ઉત્તર:—પાંચમાં આરામાં ભદ્રા શેઠાણીના પુત્ર એવંતા (અતિમુક્ત) કુમારને તેની માતૃશ્રીએ દીક્ષાની આજ્ઞા આપવાની તદ્દન ના પાડી એટલે તેણે સ્વયમેવ દીક્ષા લીધી. ત્યારબાદ ભદ્રા શેઠાણીએ પોતાના કુમારને ગુરુને સોંપી દીધા. તે જ રાત્રે તેણે બારમી વીખ્ખુની પડિમા અંગીકાર કરી અને શિયાળાણીના પરિપહથી કાળ કરી નલીનગુદમ વિમાનમાં ગયા તેવી જ રીતે શ્રી વિનોદકુમાર સ્વયં દીક્ષિત થયા.

પ્રશ્ન ૨—આવા વૈરાગી જીવને આવો ભયંકર પરીપહ કેમ આવે ?

ઉત્તર—કેટલાક અરમ શરીરી જીવને મરણાંતિક ઉપસર્ગ આવેલ છે. જુઓ ગજમુકુમાર મુનિ, મેતારજ મુનિ, કોશલ મુનિ, કારણ કે તેમની સત્તામાં હલરો ભવનાં ઠમ હોવા ભેધએ, ત્યારે તેમને એકદમ મોક્ષ જવું હતું, તેા મરણાંતિક ઉપસર્ગ આવ્યા વગર એટલાં બધાં કર્મ કેવી રીતે ખપે ? બા. પ્ર. શ્રી વિનોદમુનિને આવો પરીપહ આવ્યો, જે ઉપરથી એમ અનુમાન થાય છે કે તે એકાવતારી જીવ હોય.

શ્રી વિનોદમુનિનું વિસ્તૃત જીવનચરિત્ર જુદા પુસ્તકથી ગુજરાતી ભાષા તથા હિન્દી ભાષામાં છપાયેલ છે તેમાંથી અહીં સાર રૂપે સંક્ષેપ કરેલ છે.

શેરો પહોંચ્યો. જો સંદેશો સમયસર પહોંચ્યો હોત તો માતા-પિતાને શ્રી વિનોદમુનિના સમરૂપે પણ ચહેરો જોવાનો અને અંતિમ દર્શનનો પ્રસંગ મળત. પરંતુ અંતરાય કર્મ તેમ બન્યું નહીં.

આશી પ્લેઇનનેા યોગ્ય પડતો મૂવાગાં આબ્યો અને માતા-પિતા તા. ૧૪-૮-૫૭ ના રોજ ટ્રેઇન મારફત દ્વોદી પહોંચ્યાં, શ્રી દુર્લાભશ્રીમાઇ અને મહિબેને પૂજ્ય તપસ્વીશ્રી લાલચંદ્ર મહારાજ સાહેબના દર્શન કર્યાં.

આ પ્રસંગે શ્રી લાલચંદ્ર મહારાજ સાહેબે અવગરને પિછાળીને અને ધૈર્યનું ઝોકાઝોક ઐક્ય કરીને, શ્રી વિનોદમુનિના માતા-પિતાના સાંત્વન અર્થે ઉપદેશ શરૂ કર્યો જેનો ટૂંકામાં સાર આ પ્રમાણે છે.

“ હવે તો એ રત્ન ચાલ્યું ગયું ! સમાજનેા આશાદીપક ઝોલવાઈ ગયો ! ઝટ ઊગીને આથમી ગયો ! હવે એ દીપ ફરીથી આવી શકે તેમ નથી ”

શ્રી વિનોદમુનિના સંસારપક્ષના માતૃશ્રી મહિબેનને મુનિશ્રીએ કહ્યું કે, બેન ! ભાવિ પ્રબળ છે. આ બાબતમાં મહાપુરુષોએ પણ હાથ ધોઈ નાખ્યા છે અને સૌને મરણને શરણ થવું પડે છે. તો પછી આપણા જેવા પામર પ્રણીતું શું ગણું છે ? હવે તો શોક ફર કરીને આપણે એમના મૃત્યુનેા આદર્શ જોઈને માત્ર ધીરજ ધરવાની રહી.

પૂ. શ્રી સમર્થમલ્લ મહારાજ સાહેબનેા અભિપ્રાય:—

પ્રાથમિક તેમજ અંદપકાળના પરિચયથી મને શ્રી વિનોદમુનિના વિષે અનુભવ થયો, કે તેમની ધર્મપ્રિયતા અને ધર્માભિલાષા ‘ અદ્વિમિજા વેમાણુ-રાગરત્તે ’ નો પરિચય કરાવતી હતી. પ્રાસ સાંસારિક પ્રચૂર વૈભવ તરફ તેમની રુચિ દષ્ટિગોચર થતી ન હતી. પરંતુ તેઓ વીતરાગવાણીના સંસર્ગથી વિષય-વિમુખ ધર્મકાર્યમાં સદા તત્પર અને તદ્લીન હેખાતા હતા. પ્રાસ પરિચયના અભાવે વૈરાગ્ય પણ તેમની ધારાથી તેમની ધર્માનુરાગિતા તથા જીવનચર્યોથી કદિન કાર્ય કરવામાં પણ ગભરાટના સ્થાને સુખાનુભવની વૃત્તિલક્ષમાં આવતી હતી.

श्रीवीतरागाय नमः

जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-पूज्यश्री-घासीलाल-व्रति-विरचितया

प्रियदर्शिन्याख्यया व्याख्यया समलङ्कृतं

व्याख्याप्रज्ञप्त्यपरनामकम्

श्री-भगवतीसूत्रम्

चतुर्थो भागः

पञ्चमशतकस्योद्देशकार्थसंग्रहगाथेयम्-

‘चंप-रवि-अनिल-गंठिय-सद्दे, छउमाऽऽउ एयण नियंठे,
रायगिहं चंपा-चंदिंमा य दस पंचमस्मि सये ॥

छाया—चम्पा—रविरनिलो ग्रन्थिका शब्दः, छद्मस्थाऽऽयुरेजनं निर्ग्रन्थः ।

राजशृंहं चम्पा-चन्द्रमाश्च दश पञ्चमे शतके ॥

टीका—चतुर्थशतकान्ते लेख्याया निरूपितत्वेन पञ्चमशतके प्रायशो लेख्या-
वतां निरूपणार्थं दशोद्देशकार्थसंग्रहो गायया क्रियते—“चंप-रवि-अनिल-”
इत्यादि । तत्र चम्पानगर्यां सूर्यविषयकप्रश्नस्य समाधानात्मक-निर्णयः पञ्चम-

पंचम शतक का पहिला उद्देशक प्रारंभ

चतुर्थ शतक के अन्त में लेख्याओं का निरूपण किया ग-
या है । सो अब इस पंचम शतक में प्रायःउन लेख्याओं से युक्त जो
हैं उन का निरूपण किया जाता है । इस शतक में दश उद्देशे हैं ।
चंप रवि इत्यादि गाथा द्वारा उन दश उद्देशकों में क्या २ विषय कहा
है यह बात संग्रह कर प्रकट की गई है । गाथाका अर्थ इस प्रकार है-
चंपानगरी में इन्द्रभूति गौतम ने प्रभु से सूर्य के विषय में जो प्रश्न

पांचमां शतकनो पळेला उद्देशकनो प्रारंभ

चोथा शतकमां लेख्याओनुं निरूपण करायुं छे. उवे आ पांचमां शतकमां, ज्ये
लेख्याओथी युक्त जे लये छे तेमनुं निरूपण करवामां आओयुं छे. आ शतकमां दस
उद्देशके छे. ते दसे उद्देशकेमां आवता विषयनो “चं र रवि” धत्यादि. गाथामां
संश्लेष् करवामां आओये छे-आ गाथानो अर्थ नीचे मुज्ज छे.

चेइए होत्था, वण्णओ सामीसमोसइहे, जाव-परिसा पडिगया, तेणं कालेणं, तेणं समएणं, समणस्स भगवओ महावीरस्स जेट्टे अंतेवासी इंदभूई नामं अणगारे, गोयमगोत्तेणं जाव-एवं वयासी-जंबुदीवे णं भंते ! दीवे सूरिया उदीण-पाईणमुग्गच्छ पाईण-दाहिण मागच्छंति, पाईण-दाहिण मुग्गच्छ, दाहिण पडीण माग्गच्छंति, दाहिण-पडीण मुग्गच्छ, पडीण-उइण-मागच्छंति, पडीण-उइणमुग्गच्छ, उदीचि-पाईण मागच्छंति ? हंता. गोयमा ! जंबुदीवेणं दीवे सूरिया उदीची-पाईण मुग्गच्छ जाव-उदीच-पाईण मागच्छंति ॥ सू० १ ॥

छाया—तस्मिन् काले, तस्मिन् समये खलु चम्पा नाम नगरी आसीत्-वर्णकः, तस्यां चम्पायां नगर्यां पूर्णभद्रं नाम चैत्यम् आसीत्, वर्णकः, स्वामी समवसतः, यावत्-पर्यत् प्रतिगता, तस्मिन् काले, तस्मिन् समये श्रमणस्य भगवतो

(तेणं कालेणं तेणं समएणं) इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(तेणं कालेणं तेणं समएणं) उस काल और उस समय में (चंपानामं नगरी होत्था) चंपा नाम की नगरी थी । (वण्णओ) वर्णक (तीसे णं चंपाए नयरीए पुण्णभदे णामं चेइए होत्था) उस चंपा नगरी में पूर्णभद्र नाम का चैत्यथा । (वण्णओ) वर्णक (सामी समोसइहे) वहां महावीर स्वामी पधारे (जाव परिसा पडिगया) यावत् स्वप्ना अपन्ने २ स्थान पर चापिस गई । (तेणं कालेणं तेणं समएणं) उस काल और उस समय में (समणस्स भगवओ महावीरस्स) श्रमण भगवान्

“तेणं कालेणं तेणं समएणं” इत्यादि

सूत्रार्थ—(तेणं कालेणं तेणं समएणं) ते काले अने ते समये, (चंपा नामं नगरी होत्था) चंपा नामे नगरी હતી. (વણ્ણઓ) તેનું વર્ણન કરવું. (તીસે ણં ચંપાએ નયરીએ પુણ્ણભદ્રે ણામં ચેઇએ હોત્થા) તે ચંપા નગરીમાં પૂર્ણ-ભદ્ર નામનું એક ચૈત્ય હતું. વણ્ણઓ તેનું વર્ણન કરવું. (સામીસમોસઇહે) ત્યાં મહાવીર સ્વામી પધાર્યો. (જાવ પરિણા પડિગયા) પરિણા પાતાને સ્થાને પાછી ફરી, ત્યાં સુધીનું વર્ણન કરવું. (તેણં કાલેણં તેણં સમણં) તે કાળે અને તે સમયે (સમણસ્સ ભગવઓ મહાવીરસ્સ) શ્રમણ ભગવાને મહાવીરના

શતકસ્ય પ્રથમે ઉદ્દેશકે વિહિતઃ, દ્વિતીયે વાયુવિષયકપ્રશ્નસ્ય નિર્ણયઃ કૃતઃ, તૃતીયે જાલગ્રન્થિકાજ્ઞાપનીયાર્થવિષયકો નિર્ણયઃ પ્રતિપાદિતઃ, ચતુર્થે ચન્દ્રવિષય-પ્રશ્નોત્તરયોર્નિર્ણયઃ, પચમ્હે છદ્મસ્ય વક્તવ્યતા પ્રતિપાદિતા. ષષ્ઠે આયુષો-અલ્પતા-દીર્ઘત્વાદીનાં પ્રતિપાદનં કૃતમ્, સાતમે પુદ્ગલનામાનનાપયંપતિપાદનં કૃતમ્, અષ્ટમે નિર્ગ્રન્થિપુત્રાભિધાનાનગારવિહિતઃ વાતુવિચારસારાનિર્ણયઃ, નવમે રાજગૃહ-નગરવિષયકો વિચારો વિહિતઃ, દશમે ચ ચમ્પાનગર્યાં ચન્દ્રવિષયિણી વક્તવ્યતા પ્રતિપાદિતેતિ ગાયાર્થઃ ॥

સૂર્ય વક્તવ્યતાં પ્રસ્તાવઃ—

મૂલમ્—“તેજં કાલેજં, તેજં સમણં, ચંપા નામં નયરી
હોત્થા, વણ્ણઓ, તીસે જં ચંપાણ નયરીયે પુણ્ણભદ્દે જામં

ક્રિયા છે, લસકા સમાધાન હસ પંચમ શતક કે પ્રથમ ઉદ્દેશક મેં પ્રકટ ક્રિયા ગયો છે । દ્વિતીય ઉદ્દેશક મેં વાયુ વિષયક પ્રશ્ન કા સમાધાન પ્રકટ ક્રિયા ગયા છે । તૃતીય ઉદ્દેશક મેં જાલગ્રન્થિકા કે ઉદાહરણ ડુપર સે વિવક્ષિત અર્થ વિષયક નિર્ણય કો પ્રકટ ક્રિયા છે । ચતુર્થ ઉદ્દેશક મેં શબ્દ કે ડુપર ક્રિયે ગયે પ્રશ્નો કા ઓર ઉત્તરો કા નિર્ણય પ્રકટ ક્રિયા ગયા છે । પંચમ ઉદ્દેશક મેં છદ્મસ્ય કી વક્તવ્યતા પ્રતિપાદિત હુઈ છે । છઠ્ઠે ઉદ્દેશક મેં આયુ કી અલ્પતા ઓર દીર્ઘતા આદિ કા કથન ક્રિયા ગયા છે । સાતમે ઉદ્દેશક મેં પુદ્ગલોં કે કંપન કા વિચાર ક્રિયા ગયા છે । આઠવે ઉદ્દેશક મેં નિર્ગ્રન્થ નામ કે અનગાર ને પદાર્થોં કા વિચાર ક્રિયા છે । નવમે ઉદ્દેશે મેં રાજગૃહ નગર કા વિચાર હુઆ હસ વાંતકો કહા ગયા છે । તથા દશવે ઉદ્દેશે મેં ચંપા નગરી મેં ચન્દ્રવિષયક વક્તવ્યતા પ્રતિપાદિત હુઈ છે । હસ પ્રકાર સે હસ ગાથા કા અર્થ છે ॥

ચંપાનગરીમાં ઇન્દ્રભૂતિ ગૌતમે સૂર્યના વિષયમાં બે પ્રશ્નો કર્યા છે, તેનું મહાવીર પ્રભુએ પાંચમાં શતકના પહેલા ઉદ્દેશકમાં સમાધાન કર્યું છે. બીજા ઉદ્દેશકમાં વાયુ વિષયક પ્રશ્નનું સમાધાન કરાયું છે. ત્રીજા ઉદ્દેશકમાં જાલગ્રન્થિકાના ઉદાહરણથી વિવક્ષિત અર્થ વિષયક નિર્ણય પ્રકટ કર્યો છે. ચોથા ઉદ્દેશકમાં શબ્દ વિશે પૂછાયેલાં પ્રશ્નોના ઉત્તરોનું પ્રતિપાદન કરાયું છે. પાંચમાં ઉદ્દેશકમાં છદ્મસ્યની વક્તવ્યતાનું પ્રતિપાદન કરાયું છે, છઠ્ઠા ઉદ્દેશકમાં આયુની અલ્પતા દીર્ઘતા આદિનું કથન કરાયું છે. સાતમાં ઉદ્દેશકમાં પુદ્ગલોનાં કંપનનો વિચાર કરાયો છે, આઠમાં ઉદ્દેશકમાં નિર્ગ્રન્થ નામના અણુગારે પદાર્થોનો વિચાર કર્યો છે. નવમાં ઉદ્દેશકમાં રાજગૃહ નગર વિષે અને દસમાં ઉદ્દેશકમાં ચંપા નગરીમાં પૂછાયેલાં ચન્દ્ર વિષયક પ્રશ્નોનું સમાધાન કર્યું છે. આ પ્રકારનો ગાથાનો વિસ્તૃત અર્થ થાય છે.

टीका—शास्त्रकारः—सूर्यसम्बन्धव्यक्तव्यतामाह—‘तेणं काटेणं’ इत्यादि । तस्मिन् काटे ‘तेणं समयेणं’ तस्मिन् समये खलु ‘चंपा णामं नयरी’ चम्पा नाम नगरी ‘होत्या’ आसीत्, ‘वण्णओ’ वर्णकः चम्पार्यर्णनाप्रतिपादक औपपातिकसूत्रोक्तपदसमुदायो विज्ञेयः ‘तीसे णं’ तस्याः खलु ‘चंपाए’ चम्पायाम् ‘नयरीए’ नगर्याम् ‘पुण्ण भद्दे णामं’ पूर्णभद्रं नाम ‘चेइए’ चैत्यम् व्यन्तरायतनम् ‘होत्या’ आसीत्, ‘वण्णओ’ वर्णकः, तस्य वर्णनं पूर्ववद् बोध्यम्, तत्र ‘सामी समोसड्ढे’ स्वामी महावीरः समवसृतः ‘जाव-परिसा पडिगया’ यावत्-पर्यत् प्रतिगता । यावत्करणात् प्रभोः धर्मोपदेशं श्रोतुं पर्यत्

द्वीप में सूर्य उत्तर और पूर्व दिशा के अन्तराल ईशान में उदय होकर यावत् ईशान में अस्त होते हैं ॥

टीकार्थ—शास्त्रकार ने इस सूत्र द्वारा सूर्य संबंधी वक्तव्यता का प्रतिपादन किया है । (तेणं काटेणं तेणं समएणं) उस काल और उस समय में (चंपा णामं नयरी) चंपा नामकी नगरी (होत्या) थी । (वण्णओ) इसका वर्णन औपपातिक सूत्र में किया गया है । (तीसे णं) उस (चंपाए नयरीए) चंपा नगरी में (पुण्णभद्दे णामं चेइए) पूर्णभद्र नाम का चैत्य व्यन्तरायतन (होत्या) था । (वण्णओ) इस व्यन्तरायतन का भी वर्णन औपपातिक सूत्र में किया गया है । (स्वामी समोसड्ढे) महावीर प्रभु का वहां पर समवसरण हुआ (जाव परिसा पडिगया) यावत् परिपदा अपने २ स्थान पर वापिस चली गई । (यावत्) शब्द से यहां (प्रभोः धर्मोपदेशं श्रोतुं) प्रभु के धर्मोपदेश को सुनने के लिये

उदय अने अस्त थतो रडे छे—जंणूद्वीप नामना द्वीपमां सूर्यं षं शानमा उदय पाभीने (यावत्) षं शानमां अस्त पाभे छे

टीकार्थ—सूत्रकारे आ सूत्र द्वारा सूर्यनी वक्तव्यतानुं प्रतिपादन कथुं छे (तेणं काटेणं तेणं समएणं) ते काणे अने ते समये, “चंपा णामं नयरी होत्या” यंथा नामे अेक नगरी छती. “वण्णओ” तेनुं वर्णन औपपातिक सूत्रमां कथां प्रभाण्णे समज्जुं. “तीसेणं चंपाए” ते यंथा नगरीमां “पुण्णभद्दे णामं चेइए होत्या” पूर्णभद्र नामे चैत्य (व्यन्तरायतन) छतुं (वण्णओ) ते चैत्यनुं वर्णन पणु औपपातिकसूत्रमां कथां मुज्ज्ज समज्जुं. २ “सामीसमोसड्ढे त्यां भड्ढावीरस्वामीतुं समवसरणु थयुं.” “जाव परिसा पडिगया” प्रभुने धर्मोपदेश सांलणवाने माटे परिपद नीकणी. धर्मोपदेश सांलणीने परिपद. (ज्ज समूह) विभराड गध. (जाव) पदधी उपरने

महावीरस्य ज्येष्ठोऽन्तेवासी इन्द्रभृतिर्नाम अनगारः, गीगमगोत्रो यावत्-एष्व
 अवादीत्-जम्बूद्वीपे खलु भदन्त ! द्वीपे सूर्या उदीचीन-प्राचीनम् उद्गतम्, प्राचीन
 दक्षिणम् आगच्छतः, प्राचीन-दक्षिणम् उद्गतम् दक्षिण-पत्नीनीनम् आगच्छतः,
 दक्षिण प्रतीचीनम् उद्गतम् प्रतीचीन-उदीचीनम् आगच्छतः, पत्नीनीन-उदी-
 चीनम् उद्गतम् उदीची-प्राचीनम् आगच्छतः ? हन्त, गौतम ! जम्बूद्वीपे द्वीपे
 सूर्या उदीची-प्राचीनम् उद्गतम् यावत्-उदीची-प्राचीनम् आगच्छतः ॥१०१॥

महावीर के (जेट्टे अंतवासी इन्द्रभृतिनाम अनगारे गोयमगोत्रे णं जाव ए-
 वं वयासी) ज्येष्ठ अंतवासी-दक्षिण इन्द्रभृति नाम के अनगार ने जो
 गौतम गोत्र के थे, यावत् इस प्रकार से पूछा-(जंबुद्वीपे णं भंते ! दीवे
 सूरिया उदीण-पार्श्वणमुगच्छ पार्श्वण-दाहिण-मागच्छन्ति, पार्श्वण-दाहिण
 मुगच्छ दाहिण-पडीणमागच्छन्ति) हे भदन्त ! जंबूद्वीप नाम के द्वीप
 में दो सूर्य हैं । वे ईशान दिक्कोण में उदय होकर आग्नेयदिक्कोण में अस्त
 होते हैं-अथवा अग्निदिक्कोण में उदयहोकर नैऋतदिशा में अस्त होते
 हे ? (दाहि ण-पडीणमुगच्छ पडीण उद्गणमागच्छन्ति) या नैऋत्यकोण
 में उदय होकर, वायव्य कोने में अस्त होते हैं ? (पडीण उदीण मुगच्छ
 उदीचि पाइणमागच्छन्ति) अथवा वायव्यकोण में उदय होकर ईशान
 कोण में अस्त होते हैं ? (हन्ता गोयमा ! जंबुद्वीपे णं दीवे सूरिया उदीची
 पार्श्वण मुगच्छ जाव उदीचपार्श्वणमागच्छन्ति) हां गौतम ! इसी तरह से
 सूर्यो का उदय होना और अस्त होना होता रहता है जंबूद्वीप नामके

(जेट्टे अंतवासी इन्द्रभृति नाम अनगारे गोयमगोत्रेणं जाव एवं वयासी) ज्येष्ठ अंतवासी
 (शिष्य) इन्द्रभृति नामना अणुगार होता. तेजो गौतम गोत्रना होता. 'यावत्'
 तेमणे महावीर प्रभुने आ प्रभाणे पूछ्युं-(जंबुद्वीपे णं भंते ! दीवे सूरिया उदीण
 पार्श्वणमुगच्छ पार्श्वण-दाहिणमागच्छन्ति, दाहिण-पार्श्वणमुगच्छ दाहिण-पडीणमाग
 च्छन्ति) डेलहन्त ! जंबूद्वीप नामना द्वीपमां जे सूर्यं छे. तेजो ईशानकोणमां
 उदय पाभीने अग्नीकोणमां अस्त पाभे छे ? अथवा अग्निकोणमां उदय पाभी
 नैऋत्य कोणमां अस्त पाभे छे ? (दाहिण-पडीणमुगच्छ पडीण-उद्गणमागच्छन्ति)
 अथवा नैऋत्य कोणमां उदय पाभीने वायव्यकोणमां अस्त पाभे छे ? (पडीण
 -उदीणमुगच्छ उदीचि पाइणमागच्छन्ति) अथवा वायव्यकोणमां उदय पाभीने
 ईशान कोणमां अस्त पाभे छे, (हन्ता गोयमा ! जंबुद्वीपे णं दीवेसूरिया उदीची
 पार्श्वणमुगच्छ जाव उदीचपार्श्वणमागच्छन्ति) हां, गौतम ! जे जे प्रभाणे सूर्योने

टीका—शास्त्रकारः सूर्यसम्बन्धव्यक्तव्यतामाह—‘तेणं कालेणं’ इत्यादि । तस्मिन् काले ‘तेणं समयेणं’ तस्मिन् समये खलु ‘चंपा णामं नयरी’ चम्पा नाम नगरी ‘होत्था’ आसीत्, ‘वण्णओ’ वर्णकः चम्पावर्णनाप्रतिपादक औपपातिकसूत्रोक्तपदसमुदायो विज्ञेयः ‘तीसे णं’ तस्याः खलु ‘चंपाए’ चम्पायाम् ‘नयरीए’ नगर्याम् ‘पुण्ण भदे णामं’ पूर्णभद्रं नाम ‘चेइए’ चैत्यम् व्यन्तरायतनम् ‘होत्था’ आसीत्, ‘वण्णओ’ वर्णकः, तस्य वर्णनं पूर्ववद् बोध्यम्, तत्र ‘सामी समोसड्ढे’ स्वामी महावीरः समवसृतः ‘जाव-परिसा पडिगया’ यावत्-पर्यत् प्रतिगता । यावत्करणात् प्रभोः धर्मोपदेशं श्रोतुं पर्यत्

द्वीप में सूर्य उत्तर और पूर्व दिशा के अन्तराल ईशान में उदय होकर यावत् ईशान में अस्त होते हैं ॥

टीकार्थ— शास्त्रकार ने इस सूत्र द्वारा सूर्य संबंधी चक्तव्यता का प्रतिपादन किया है । (तेणं कालेणं तेणं समएणं) उस काल और उस समय में (चंपा णामं नयरी) चंपा नामकी नगरी (होत्था) थी । (वण्णओ) इसका वर्णन औपपातिक सूत्र में किया गया है । (तीसे णं) उस (चंपाए नयरीए) चंपा नगरी में (पुण्णभदे णामं चेइए) पूर्णभद्र नाम का चैत्य व्यन्तरायतन (होत्था) था । (वण्णओ) इस व्यन्तरायतन का भी वर्णन औपपातिक सूत्र में किया गया है । (स्वामी समोसड्ढे) महावीर प्रभु का वहां पर समवसरण हुआ (जाव परिसा पडिगया) यावत् परिपदा अपने २ स्थान पर वापिस चली गई । (यावत्) शब्द से यहां (प्रभोः धर्मोपदेशं श्रोतुं) प्रभु के धर्मोपदेश को सुनने के लिये

उदय अने अस्त थतो रडे छे-ज'यूद्वीप नामना द्वीपमां सूर्यं ईशानमा उदय पागीने (यावत्) ईशानमां अस्त पागे छे

टीकार्थ—सूत्रकारे आ सूत्र द्वारा सूर्यनी वक्तव्यतानुं प्रतिपादन कथुं छे (तेणं कालेणं तेणं समएणं) ते काले अने ते समये, “ चंपा णामं नयरी होत्था ” य'पा नामे ओक नगरी छती. “ वण्णओ ” तेनुं वणुंन औपपातिक सूत्रमां कथां प्रमाणे समज्जुं. “ तीसेणं चंपाए ” ते य'पा नगरीमां “ पुण्णभदे णामं चेइए होत्था ” पूण्णभद्र नामे चैत्य (व्यन्तरायतन) छतुं (वण्णओ) ते चैत्यनुं वणुंन पणु औपपातिकसूत्रमां कथां मुज्ज समज्जुं. २ “ सामीसमोसड्ढे त्यां महावीरस्वामीनुं समवसरणु थथुं. ” “ जाव परिसा पडिगया ” प्रभुने धर्मोपदेश सांलणवाने भाटे परिषद नीकणी. धर्मोपदेश सांलणीने परिषद. (ज्ज समूह) विधराध गध. (जाव) पदथी उपरने

निर्गच्छति' इति संप्राप्तम् । ततः 'तेषां कालेण' तस्मिन् काले 'तेषां समरणं' तस्मिन् समये खलु 'समणस्त भगवतो महावीरस्त जेट्ठे अंतेवासी' श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य ज्येष्ठः सर्वप्रथमोऽन्तेवासी शिष्यः 'इंद्रभूर्इ' इन्द्रभूतिः 'णामं' नाम 'अणगारे' अनगारः 'गोयमगोत्तेणं' गौतमगोत्रः खलु 'जाव एवं वयासी-' यावत्-एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण अवादीत्, यत्तच्च्यविषयमाह- 'जम्बूद्वीपेणं भंते !' हे भदन्त ! जम्बूद्वीपे खलु 'दीवे' द्वीपे 'सूरिया' सूर्यो, जम्बूद्वीपे द्वयोरेव सूर्ययोः सद्रमावेन सूर्यो इत्युक्तम्, 'उदीण-पाईणमुगच्छ' उदीचीन-प्राचीनम् उद्गत्य, उदगेन उदीचीनम्, उत्तरदिक् प्रागेव प्राचीनम् पूर्वदिक् उद्गत्पत्यासन्नं दिगन्तरालं क्षेत्रदिगपेशया पूर्वोत्तरदिगन्तरम् ईशानकोणम् उद्गत्य तत्रोदयं प्राप्य 'पाईण-दाहिणमागच्छति' प्राचीन-दक्षिणं दिग-

(पर्यत् निर्गच्छति) जनसमूहानिकला इस पाठ का संग्रह हुआ है । (तेषां कालेण तेषां समरणं) उस काल और उस समय में (समणस्त भगवतो महावीरस्त जेट्ठे अंतेवासी) श्रमण भगवान् महावीर के ज्येष्ठ सर्व प्रथम शिष्य (इंद्रभूर्इ) इन्द्रभूति (णामं) नामके (अणगारे) अनगारने (गोयमगोत्ते णं) जो कि गौतम गोत्रीय थे (जाव एवं वयासी) यावत् इस प्रकार से पूछा- (जंबूद्वीपे णं भंते ! दीवे) हे भदन्त ! जंबूद्वीप नामके द्वीप में (सूरिया) दो सूर्य (जंबूद्वीप में दो सूर्य और दो चंद्रमा हैं ऐसा सिद्धान्त का कथन है इसीलिये यहां पर (सूरिया) ऐसा पाठ कहा गया है) (उदीण पाईण उवगच्छ) उदीचीन उत्तरदिशा और प्राचीन पूर्वदिशा इन दोनों के अन्तरालरूप क्षेत्र में ईशानकोण में उदय को प्राप्त होकर (पाईणदाहिणमागच्छति) प्राचीन पूर्वदिशा और द-

लापार्थं श्रद्धुं करायेते । " तेषां कालेण तेषां समरणं " ते दाणे अने ते समये " समणस्त भगवतो महावीरस्त जेट्ठे अंतेवासी " श्रमण भगवान् महावीरना ज्येष्ठ अंतेवासी पट्टशिष्य- " इंद्रभूर्इ णामं अणगारे " इन्द्रभूतिनामना शिष्यगार होता । " गोयमगोत्तेणं " तेस्रो गौतम गोत्रना होता । " जाव एवं वयासी " तेसु पंडणा नमस्तार करीने महावीर प्रभुने आ प्रभाषे पृथुं " जंबूद्वीपे णं भंते ! दीवे " हे भदन्त ! जंबूद्वीप नामना द्वीपमां 'सूरिया' ये सूर्यो (जंबूद्वीपमां ये सूर्यो अने ये चन्द्रमा) हे, अतु सिद्धान्तनुं कथनं छे, तेथी अही " सूरिया " पदने प्रयोग कये छे " उदीण-पाईण उवगच्छ " ईशान कोणमां उदय प्राप्तिने (उदीचीन 'उत्तर दिशा ' प्राचीन ' उत्तर पूर्व दिशा, ते अनेनी वक्ष्येता ईशान कोणमां) " पाईण-

નતરાલમ્-અગ્નિકોણમ્ આગચ્છતઃ, ક્રમેણૈવાસ્તંગચ્છતઃ ? ' પાર્શ્વેણ દાહિણમુગ્ગચ્છ ' પ્રાચીન-દક્ષિણમ્ અગ્નિકોણમ્ ઉદ્ગત્ય ત્રા ' દાહિણપટ્ટીણમાગચ્છંતિ ' દક્ષિણ-પ્રતીચીનમ્ દિગન્તરમ્ નૈઋત્યકોણમ્ આગચ્છતઃ ? અથવા ' દાહિણપટ્ટીણમુગ્ગચ્છ ' દક્ષિણ-પ્રતીચીનમ્ નૈઋત્યકોણમ્ ઉદ્ગત્ય ' પટ્ટીણમુદીણમાગચ્છંતિ ' પ્રતીચીન-ઉદીચીનં દિગન્તરં વાયવ્યકોણમ્ આગચ્છતઃ; ક્રમેણૈવાસ્તં પ્રાપ્નુતઃ ? અથવા ' પટ્ટીણ-ઉદીણમુગ્ગચ્છ ' પ્રતીચીન-ઉદીચીનં દિગન્તરમ્ વાયવ્યકોણમિતિ યાવત્ ઉદ્ગત્ય ' ઉદીચિ-પાર્શ્વેણ માગચ્છંતિ ' ઉદીચીનપ્રાચીનમ્ દિગન્તરાલમ્, ઈશાનકોણમ્ આગચ્છતઃ ? અસ્તં પ્રાપ્નુતઃ કિમ્ ! મગવાન તત્સ્ત્રીકુર્વન્ આદ- ' હંતા ગોયમા ! ' इत्यादि । हे गौतम । हन्त, सत्यं त्वत्कथनम् , यत् ' जम्बूद्वीपेणं दीवे ' जम्बूद्वीपे

ક્ષિણદિશાં કે અન્તરાલરૂપ ક્ષેત્ર મેં અગ્નિકોણ મેં ક્રમ સે અસ્ત હોતે હેં કયાં અથવા (પાર્શ્વેણ દાહિણમુગ્ગચ્છ) પ્રાચીન, દક્ષિણ કે અન્તરાલરૂપ ક્ષેત્ર અગ્નિકોણ મેં ઉદિત હોકર (દાહિણપટ્ટીણમાગચ્છંતિ) દક્ષિણદિશા ઓર પ્રતીચીનદિશા (પશ્ચિમ) કે અન્તરાલરૂપ ક્ષેત્ર નૈઋત્યકોણ મેં અસ્ત હોતે હેં કયાં ? અથવા (દાહિણપટ્ટીણમુગ્ગચ્છ) નૈઋત્યકોણ મેં ઉદિત હોકર (પટ્ટીણમુદીણમાગચ્છંતિ) વાયવ્યકોણ મેં ક્રમ સે અસ્ત હોતે હેં કયા ? અથવા (પટ્ટીણ, ઉદીણમુગ્ગચ્છ) પ્રતીચીન ઉદીચીન દિશાકે અન્તરાલરૂપ ક્ષેત્ર વાયવ્યકોણ મેં ઉદિત હોકર (ઉદીચિ પાર્શ્વેણમાગચ્છંતિ) ઉદીચીન પ્રાચીન દિશાઓં કે અન્તરાલરૂપ ક્ષેત્ર ઈશાન કોણ મેં ક્રમ સે અસ્ત હોતે હેં કયા ? ઇન પ્રશ્નોં કા સ્વીકારાત્મક ઉત્તર દેતે હુએ પ્રશ્ન ગૌતમ સે કરતે હેં કિ ' હંતા ગોયમા । ' હા, ગૌતમ । જૈસા તુંમને પ્રશ્ન િગા હૈ વહ વેસા હી હૈ અર્થાત સત્ય હૈ- જમ્બૂદ્વીપ મેં દો

દાહિણમાગચ્છંતિ " અગ્નિકોણમાં (પૂર્વ અને દક્ષિણ વચ્ચેના ખૂણામાં) શું અસ્ત પામે છે ? અથવા " પાર્શ્વેણ-દાહિણમુગ્ગચ્છ " શું અગ્નિકોણમાં ઉદય પામીને " દાહિણ પટ્ટીણમાગચ્છંતિ " નૈઋત્ય કોણમાં (દક્ષિણ અને પશ્ચિમ વચ્ચેના ખૂણામાં) અસ્ત પામે છે ? અથવા " દાહિણપટ્ટીણમુગ્ગચ્છ " નૈઋત્ય કોણમાં ઉદય પામીને " પટ્ટીણમુદીણમાગચ્છંતિ " શું વાયવ્ય કોણમાં અસ્ત પામે છે ? અથવા " પટ્ટીણ, ઉદીણમુગ્ગચ્છ " શું વાયવ્ય કોણમાં ઉદય પામીને " ઉદીચિ પાર્શ્વેણમાગચ્છંતિ " ઈશાનકોણમાં અસ્ત પામે છે ?

આ પ્રશ્નોના હકારમાં જવાબ આપતા મહાવીર પ્રભુ કહે છે કે- " હંતા, ગોયમા । " હા, ગૌતમ । એવું જ બને છે- જમ્બૂદ્વીપમાં બે સૂર્યો છે. તેઓ ઈશાનકોણમાં (પૂર્વ અને ઉત્તર દિશા વચ્ચેના ખૂણામાં) ઉદય પામીને

खलु द्वीपे 'सुरिया' सूर्या 'उदीची-पाईण मुग्गच्छ' उदीचीन-प्राचीनं दिग्-
 न्तरम् ईशानकोणम् उद्गत्य उदयं प्राप्य 'जाव-उदीच-पाईण मागच्छन्ति'
 यावत्-उदीचीन-प्राचीनम् आगच्छतः क्रमेणास्तं यातः किम्, यावत्करणम्-
 'प्राचीन-दक्षिणम् 'अग्निकोणम्' आगच्छतः प्राचीन-दक्षिणम् उद्गत्य (उदयं
 प्राप्य) दक्षिण-प्रतीचीनम् (नैऋत्यकोणम्) आगच्छतः दक्षिण-प्रतीचीनम्
 उद्गत्य (उदयं प्राप्य) प्रतीचीन-उदीचीनम् (वायव्यकोणम् आगच्छतः, प्रती-
 चीन-उदीचीनमुद्गत्य ' उदयं प्राप्य ' इति संप्राप्तम् ।

अत्रोद्गमनमस्तगमनञ्च सूर्यस्य द्रष्टृननापेक्षया घोष्यम् तथान येषां
 द्रष्टृणाम् उपर्युक्तौ सूर्यो अदृश्यो भूत्वा दृश्यो भवतः, ते द्रष्टारः तौ उद्गतौ

सूर्य हैं । वे उदीचीनप्राचीन दिशा के अन्तरालरूप ईशान कोण में उदय
 को प्राप्त होकर 'जाव' यावत् 'उदीणपाईण मागच्छन्ति' उदीचीन
 प्राचीन दिशा के अन्तराल रूप क्षेत्र ईशानकोण में क्रम से अस्त होते हैं
 यहाँ (यावत्) शब्द से (प्राचीनदक्षिणमागच्छतः, प्राचीन दक्षिण
 मुद्गत्य दक्षिणप्रतीचीनमागच्छतः दक्षिणप्रतीचीनमुद्गत्य प्रतीचीनं
 मुदीचीनं आगच्छतः, प्रतीचीनउदीचीनमुद्गत्य (इस पूर्वोक्त पाठ का
 ही संग्रह किया है । उत्तर दिशा के पास का जो प्रदेश है वह उदीचीन,
 पूर्वदिशा के पास का जो प्रदेश है वह प्राचीन, उत्तर औ पूर्वदिशा के
 बीच का जो भाग है वह ईशानकोण, पूर्व और दक्षिणदिशा के बीचका
 जो भाग है वह अग्नेयकोण, दक्षिण और पश्चिम के बीच का जो भाग
 है वह नैऋत्यकोण है तथा पश्चिम और उत्तरदिशा का जो बीच का
 भाग है वह वायव्यकोण है । अमुक समय में सूर्य उदित होता है और
 अमुक समय में वह अस्त होता है ऐसा जो सूर्य के उदय और अस्त

"जाव" यावत् "उदीणपाईणमागच्छन्ति" कभशः ईशानकोण पर्यन्तना क्षेत्र-
 मां अस्त प्राप्ते छे. अर्थात् 'जाव' (यावत् पदधी नीचेना पूर्वोक्त पाठने।
 सभावेश करायो छे. "प्राचीन दक्षिणमागच्छतः, प्राचीनदक्षिणमुद्गत्य दक्षिण प्रतीची-
 नमागच्छतः, दक्षिणप्रतीचीनमुद्गत्य प्रतीचीनमुदीचीनं आगच्छतः, प्रतीचीन उदीची-
 नमुद्गत्य" उत्तरदिशानी पासने। के प्रदेश छे तेने (उदीचीन.) अने पूर्वदिशानी
 पासने। प्रदेशने (प्राचीन) कडेवाभां आवेल छे. उत्तर अने पूर्वदिशा वर्ये
 ईशानकोण छे, पूर्व अने दक्षिण दिशा वर्ये अग्निकोण छे, दक्षिण अने
 पश्चिम वर्ये नैऋत्य कोण छे अने पश्चिम अने उत्तर दिशा वर्ये वायव्य कोण छे.

(अमुक समये सूर्य उगे छे अने अमुक समये सूर्य आथमे छे, आ
 प्रभाषे सूर्यना उदय अने अस्त विषेनुं के कथन छे, ते कथन सूर्यने हेण-

इति व्यवहरन्ति, येषां तु दृश्यो भूत्वा अदृश्यो भवतस्ते तौ अस्तं गतौ इति व्यवहरन्ति इति तयोर्द्वयास्तमयोः द्रष्टृजनसापेक्षतयाऽनियतत्वमवसेयम् ।

उक्तञ्च—“ जह जह समये समये पुरओ संचरइ भवत्सरो गयणे,
तह तह इओ वि नियमा जासइ रयणीय भावत्थो,
एवं च सया नराणं उदयत्थमणाइं होंत्तिऽनिययाइं,
सयदेस मेए कस्तइ किंची ववदिस्सइ नियमा,

होने का व्यवहार होता है वह सूर्य को देखने वाले मनुष्यों की अपेक्षा होता है ऐसा जानना चाहिये । कारण की समग्र-भूमण्डल पर सूर्य के उदय होने का और अस्त होने का समय नियत नहीं है । अच्छी तरह से विचार किया जाय तो दोनों ही सूर्य लोगों के समक्ष सदा उपस्थित ही रहते हैं, परन्तु जब कोई सूर्य-आवारक द्रव्य सूर्यों की आड़में आजा ता है तब अनूक देशके मनुष्य उन्हें देख नहीं पाते अतः उनकी दृष्टि के अनुसार सूर्य अस्त हो गया ऐसा व्यवहार होता है । और जब वह आवारकद्रव्य उनके आड़े नहीं आता है तब अमुक देश के मनुष्य सूर्य को देखते हैं तो वे कहते हैं कि सूर्य उदित हो गया । इस तरह “ उपर्युक्त सूर्य अदृश्य होकर जब दर्शक जनों उसको देखते हैं तो उनमें उदय हो गये ऐसा व्यवहार होता है और जब दृश्य होकर वे दर्शक जनों की दृष्टि से ओझल हो जाते हैं तब अस्त हो गये ऐसा उनमें व्यवहार होता है) सूर्यों के उदय अस्त का यह व्यवहार उनके दर्शक जनों की अपेक्षा वाला होने के कारण अनियत जानना चाहिये ।

નારા મનુષ્યોની અપેક્ષાએ કરવામાં આવેલ છે, એમ સમજવું. કારણ કે સમસ્ત ભૂમંડળ ઉપર સૂર્યોદય અને સૂર્યાસ્ત થવાનો કોઈ નિયત સમય નથી. જો બરાબર વિચાર કરવામાં આવે તો બંને સૂર્યો લોકોની સમક્ષ સદા ઉપસ્થિત (મોજૂદ) જ રહે છે. પરન્તુ ત્યારે કોઈ આવારક (આચ્છાદિત કરનાર) દ્રવ્ય સૂર્યોની આડે આવી જાય છે, ત્યારે અમુક દેશના લોકો તેમને દેખી શકતા નથી. તેથી તેઓની દૃષ્ટિએ (સૂર્ય અસ્ત પામી ગયો,) એવો વ્યવહાર થાય છે. પણ ત્યારે તે આવારક દ્રવ્ય ત્યાંથી દૂર થઈ જાય છે ત્યારે તે લોકો તેને દેખી શકે છે, અને કહે છે કે (સૂર્યનો ઉદય થઈ ગયો.) આ રીતે (ઉપર્યુક્ત સૂર્ય અદૃશ્ય થઈને ફરીથી ત્યારે દર્શકોની નજરે પડે છે ત્યારે તેઓ કહે છે કે (સૂર્યનો ઉદય થયો) અને પહેલાં દૃશ્ય હોય એવો સૂર્ય ત્યારે દર્શકોથી અદૃશ્ય બને ત્યારે દર્શકો કહે છે કે (સૂર્ય અસ્ત પામ્યો.) સૂર્યના ઉદય-અસ્તનો આ વ્યવહાર તેના દર્શકોની અપેક્ષાએ જ કરાયો છે એમ સમજવું. અને તેથી જ તેને અનિયત સમજવો.

સહ પેવ ય નિર્દિદ્ધો મરમુદ્ધો તમેગ મઝ્વેતિ કે.ગિ,

વીદાર્ણિ પિય વિસયપમાણે રથી જૈગિ " ઇત્યાદિ ।

છાયા—“ યથા યથા સમયે સમયે પુરતઃ સમરગિ મામ્કરો ગમને,

તથા તથા ઇતોઽપિ નિયમાદ્ ગાયને રત્તની ચ માતાર્થઃ,

પવચ્ચ સદા નરાણામુદયા-સ્તમ (ય) નાનિ મચ્ચન્તિ અનિયતાનિ,

સ્વકુદ્દેશમેદ કસ્પચિત્ કિદ્ધિદ્ વ્વપદ્ધિદ્વપત્તે નિયમાદ્,

સઠ્ઠેવ ચ નિર્દિષ્ટઃ મરમુદ્ધનઃ ક્રમેણ સર્વેણાં કેપા-

ચ્ચિદિદાનીમપિ ચ ચિપયમમાણે રવિયેવામ્ ' ઇતિ ।

પ્રતાવતા સૂત્રેણ સ્વેચ્છતછવ્યપિ દિક્ષુ ગમનં પ્રતિપાદિતં, તેન યત્તુ ' સૂર્યઃ પશ્ચિમસમુદ્રં પ્રવિશ્ય પાતાલેન ગમનં કૃત્વા સમુદ્રે ઝૈતિ' ઇત્યુક્તં તત્તવરાસ્તમ્ ॥૧॥

કહા મી હૈ—સમય ૨ પર જૈસે ૨ સૂર્ય આગે ૨ આકાશ મેં ગતિ કરતા હુઆ ચલતા હૈ, ઉસી તરહ સે ઇસ તરફ મી રાત્રિ હોતી ચલી આતી હૈ યહ યાત સત્ય હૈ । અતઃજય ઇસ પ્રકાર સે હૈ કિ સૂર્ય કી ગતિ ઉપર હી ઉસકે ઉદિત હોને કા ઓર અસ્ત હોને કા વ્યવહાર નિર્ભર હૈ, તો ફિર મનુષ્યોં કે હિસાબ સે ઉનકા ઉદિત ઓર અસ્ત હોના યે દોનોં ઘાતેં અનિયમિત હૈ । ઇત્યાદિ । સૂર્ય ચારોં દિશાઓં મેં ગમન કરતા હૈ આકાશ મેં સૂર્ય સમસ્ત દિશાઓ મેં ફિરતા હૈ—યહ યાત ઇસ મૂલ સૂત્ર દ્વારા પ્રકટ કી ગઈ હૈ, તો જો લોગ ઈસા માનતેહૈં કિ (સૂર્ય પશ્ચિમ કે સમુદ્ર મેં પ્રવિષ્ટ હોકર પાતાલ સે ગમન કરતા હુઆ પૂર્વસમુદ્ર મેં ઉદિત હોતા હૈ) ઉનકા યહ કથન યોગ્ય નહીં હૈ ક્યોં કિ સૂર્ય કી ગતિ ચારોં દિશાઓ મેં હોતી હૈ યહ ઘાત પૂર્વોક્ત સૂત્ર સે પ્રકટ કી ગઈ હૈ ॥સૂ.૦ ૧॥

કહું પછુ છે—સમય સમય પર જેમ જેમ સૂર્ય આકાશમાં આગળને આગળ ગમન કરે છે, તેમ તેમ તે તરફ પછુ રાત્રિ થતી જાય છે, એ વાત સત્ય છે આરીતે જે સૂર્યની ગતિ ઉપર જ તેના ઉદય અને અસ્ત થવાનો વ્યવહાર નિર્ભર હોય, તે મનુષ્યોની દૃષ્ટિએ તેમનો ઉદય અને અસ્ત થવાની વાતો અનિયમિત જ છે.

(સૂર્ય ચારે દિશામાં ગમન કરે છે—આકાશમાં સૂર્ય સમસ્ત દિશાઓમાં ફરે છે,) આ વાત મૂળસૂત્ર દ્વારા પ્રકટ કરી છે.

આ કથન દ્વારા લોકોની નીચેની માન્યતાઓનું ખંડન કરવામાં આવ્યું છે— (સૂર્ય પશ્ચિમ સમુદ્રમાં પ્રવેશીને પાતાલમાં ગમન કરીને પૂર્વ સમુદ્રમાં ઉદય પામે છે) આ માન્યતાનું એ સૂત્રદ્વારા ખંડન કરાયું છે, કારણ કે સૂર્યની ગતિ ચારે દિશામાં થાય છે, એવું પૂર્વોક્ત સૂત્રદ્વારા પ્રતિપાદન કરવામાં આવ્યું છે. ॥સૂ.૧॥

मूलम्—“ जया णं भंते ! उं दीवे दीवे दाहिणद्धे दिवसे
हवइ, तयाणं उत्तरद्धेऽवि दिवसे भवइ, जयाणं उत्तरद्धेऽवि
दिवसे भवइ, तयाणं जंबुदीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुर-
त्थिमपच्चत्थिमेणं राई भवई ? हंता, गोयमा ! जयाणं
जंबुदीवे दीवे दाहिणद्धे वि दिवसे जाव-राई भवइ जया णं
भंते ! जंबुदीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे णं दिवसे
भवइ, तयाणं पच्चत्थिमेण वि दिवसे भवइ, जयाणं पच्च-
त्थिमेणं दिवसे भवइ, तयाणं जंबुदीवे दीवे मंदरस्स पव्वं-
यस्स उत्तरदाहिणेणं राई भवइ ? हंता, गोयमा ! जयाणं
जंबुदीवे दीवे मंदरपुरत्थिमेणं दिवसे जाव - राई भवइ
जयाणं भंते ! जंबुदीवे दीवे दाहिणद्धे उक्कोसए अट्टारस-
मुहुत्ते दिवसे भवइ, तयाणं उत्तरद्धे वि उक्कोसए अट्टारस-
मुहुत्ते दिवसे भवइ, जयाणं उत्तरद्धे उक्कोसए अट्टारस मुहुत्ते
दिवसे भवइ, तयाणं जंबुदीवे दीवे मंदरस्स पुरत्थिम—
पच्चत्थिमेणं जहन्निया दुवालसमुहुत्ता राई भवइ ? हंता,
गोयमा ! जयाणं जंबुदीवे दीवे जाव-दुवालसमुहुत्ता राई
भवइ, जयाणं जंबुदीवे दीवे मंदरस्स पुरत्थिमे उक्कोसए
अट्टारस मुहुत्ते दिवसे भवइ, तयाणं जंबुदीवे दीवे पच्चत्थि-
मेण वि उक्कोसेणं अट्टारसमुहुत्ते दिवसे भवइ, जयाणं
पच्चत्थिमेणं उक्कोसिए अट्टारस मुहुत्ते दिवसे भवइ, तया
णं भंते ! जंबुदीवे दीवे उत्तरे दुवालसमुहुत्ता जाव-राई

भवइ ? हंता, गोयमा ! जाव-भवइ, जयाणं भंते ! जंबु-
 द्वीवे दीवे दाहिणद्वे अट्टारसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवइ,
 तयाणं उत्तरे अट्टारसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवइ, जयाणं
 उत्तरद्वे अट्टारसमुहुत्ता णंतरे दिवसे भवइ, तयाणं जंबुद्वीवे
 दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमेणं पच्चत्थिमेणं साइरेगा
 दुवालसमुहुत्ता राई भवइ ? हंता, गोयमा ! जया णं जंबु-
 द्वीवे दीवे जाव राई भवइ, जयाणं भंते ! जंबुद्वीवे दीवे
 मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमेणं अट्टारसमुहुत्ताणंतरे दिवसे
 भवइ, तयाणं पच्चत्थिमेणं अट्टारसमुहुत्ताणंतरे दिवसे
 भवइ, जयाणं पच्चत्थिमेणं अट्टारसमुहुत्ताणंतरे दिवसे
 भवइ, तयाणं जंबुद्वीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरदाहिणे
 साइरेगदुवालसमुहुत्ता राई भवइ ? हंता, गोयमा ! जाव-
 भवइ, एवं एएणं कमेण ओसारेयव्वं, सत्तरसमुहुत्ते दिवसे
 तेरसमुहुत्ता राई भवइ, सत्तरसमुहुत्ताणंतरे दिवसे साइरेगा
 तेरसमुहुत्ता राई, सोलसमुहुत्ते दिवसे चोइसमुहुत्ता राई,
 सोलसमुहुत्ताणंतरे दिवसे साइरेगचउइंसमुहुत्ता राई,
 पण्णारसमुहुत्ते दिवसे पन्नरसमुहुत्ता राई, चोइसमुहुत्ते दिवसे
 सोलसमुहुत्ता राई, चोइसमुहुत्ताणंतरे दिवसे साइरेगा सो-
 लसमुहुत्ता राई, तेरसमुहुत्ते दिवसे सत्तरसमुहुत्ता राई, तेर-
 समुहुत्ताणंतरे दिवसे साइरेगा सत्तरसमुहुत्ता राई, जयाणं
 जंबुद्वीवे दीवे दाहिणद्वे जहन्नए दुवालसमुहुत्ते दिवसे

भवइ, तयाणं उत्तरङ्गे वि, जयाणं उत्तरङ्गे तयाणं जंबुद्वीवे
 दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिम-पच्चत्थिमेणं उक्कोसिया
 अट्टारसमुहुत्ता राई भवइ? हंता, गोयमा! एवं चेव उच्चारे-
 यव्वं, जाव-राई भवइ, जयाणं भंते ? जंबुद्वीवे दीवे मंदर
 स्स पव्वयस्स पुरत्थिमेणं जहन्नए दुवालसमुहुत्ते दिवसे
 भवइ, तयाणं पच्चत्थिमेणं वि, जयाणं पच्चत्थिमेणं वि, तया
 णं जंबुद्वीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरदाहिणेणं उक्को-
 सिया अट्टारसमुहुत्ता राई भवइ ? हंता. गोयमा ?
 जाव राई भवइ ॥ सू० २ ॥

छाया-यदा खलु भदन्त ! जम्बूद्वीपे द्वीपे दक्षिणार्धे दिवसो भवति तदा खलु उत्त-
 रार्धेऽपि दिवसो भवति, यदा खलु उत्तरार्धेऽपि दिवसो भवति, तदा जम्बूद्वीपे द्वीपे
 मन्दरस्य पर्वतस्य पौरस्त्य-पश्चिमे खलु रात्रिर्भवति ? हन्त, गौतम ! यदा जम्बू-

(जयाणं भंते !) इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(जया णं भंते ! जंबुद्वीवे दीवे दाहिणङ्गे दिवसे भवइ) हे
 भदन्त ! जब जंबूद्वीप में दक्षिणार्ध में दिन होता है (तयाणं उत्तरङ्गे
 वि दिवसे भवइ) तब उत्तरार्ध में भी दिवस होता है। और (जयाणं
 उत्तरङ्गेऽपि दिवसे भवइ, तया णं जंबुद्वीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुर-
 त्थिमपच्चत्थिमे णं राई भवइ) जब उत्तरार्ध में भी दिवस होता है तब

“ जयाणं भंते ! ” इत्यादि

सूत्रार्थ—(जयाणं भंते ! जंबुद्वीवे दीवे दाहिणङ्गे दिवसे भवइ) हे भदन्त ! जम्बूद्वीपे
 दक्षिणार्धे दिवसो भवति, यदा खलु उत्तरार्धेऽपि दिवसो भवति, तदा जम्बूद्वीपे द्वीपे
 मन्दरस्य पर्वतस्य पौरस्त्य-पश्चिमे खलु रात्रिर्भवति ? हन्त, गौतम ! यदा जम्बू-

દ્વીપે દ્વીપે દક્ષિણાર્ધેऽપિ દિવસઃ, યાવત્-રાધિર્મર્ષતિ, યદા સ્વલુ મદન્ત । જમ્
દ્વીપે દ્વીપે મન્દરસ્ય પર્વતસ્ય પૌરુસ્ત્યે દિવસો મરતિ તદા પશ્ચિમર્ગે પિ દિવસો મ-
વતિ, યદા સ્વલુ પશ્ચિમે દિવસો મરતિ તદા સ્વલુ જમ્બૂદ્વીપે દ્વીપે મન્દરસ્ય પર્વતસ્ય
ઉત્તર-દક્ષિણે રાત્રિર્ભવતિ? इन्त, गौतम । यदा स्वलु जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरपौरस्त्ये

જંબૂદ્વીપ મેં સુમેરુ પર્વત કી ઉત્તરદિશા તરફ ઓર પશ્ચિમ દિશા તરફ
રાત્રિ હોતી હું ? (હંતા, ગોયમા જયા ણં જમ્બુદ્વીપે દ્વીપે દક્ષિણાર્ધે વિ દિ-
વસે જાવ રાઈ ભવઈ) હાં ગૌતમ । ઇત્તી તરહ સે હોતા હૈ-જય જંબૂદ્વીપ
નામકે દ્વીપ મેં દક્ષિણાર્ધ મેં ધી દિવસ હોતા હૈ તય યાવત્ રત્રિ હોતી
હૈ । (જયા ણં મંતે । જંબુદ્વીપે દ્વીપે મંદરસ્સ પવ્વયસ્સ પુરત્થિમે ણં દિવસે
ભવહ) હૈ મદન્ત । જિસ સમય જંબૂદ્વીપ નામકે દ્વીપ મેં મંદર પર્વત
કી પૂર્વદિશા તરફ દિવસ હોતા હૈ (તયા ણં પચ્ચત્થિમેણ વિ દિવસે
ભવહ) તય પશ્ચિમ દિશા તરફ ધી દિવસ હોતા હૈ ઓર (જયા ણં પ-
ચ્ચત્થિમેણ દિવસે ભવહ, તયા ણં જંબુદ્વીપે દ્વીપે મંદરસ્સ પવ્વયસ્સ ઉત્તર-
દક્ષિણેણ રાઈ ભવહ) જય પશ્ચિમ દિશા તરફ દિવસ હોતા હૈ, તય
જમ્બૂદ્વીપ મેં મંદર પર્વત કી ઉત્તર દક્ષિણ દિશા તરફ રાત્રિ હોતી હૈ ?
કયા ? (હંતા, ગોયમા । જયા ણં જંબુદ્વીપે દ્વીપે મંદરપુરત્થિમે ણં દિવસે
જાવ રાઈ ભવઈ) હાં, ગૌતમ । ઇત્તી તરહ સે હોતા હૈ-તય યાવત્ રત્રિ

પર્વતની ઉત્તર દિશા તરફ અને પશ્ચિમ દિશા તરફ શું રાત્રિ હોય છે
(હંતા, ગોયમા !-જયાણં જંબુદ્વીપે દ્વીપે દક્ષિણાર્ધે વિ દિવસે જાવ રાઈ ભવઈ) હા,
ગૌતમ ! એવું જ અને છે ન્યારે જંબૂદ્વીપ નામના દક્ષિણાર્ધમાં દિવસ હોય
છે ત્યારે ઉત્તરાર્ધમાં પણ દિવસ હોય છે, (યાવત્) અને ત્યારે સુમેરુ પર્વ-
તની ઉત્તર અને પશ્ચિમ દિશામાં રાત્રિ હોય છે. (જયાણં મંતે । જંબુદ્વીપે દ્વીપે
મંદરસ્સ પવ્વયસ્સ પુરત્થિમેણ દિવસે ભવહ) હૈ ભદન્ત । ન્યારે જંબૂદ્વીપના
મંદર પર્વતની પૂર્વ દિશામાં દિવસ હોય છે, (તયાણં પચ્ચત્થિમેણ વિ દિવસે ભવહ
ત્યારે પશ્ચિમ દિશામાં પણ દિવસ હોય છે અને (જયાણં પચ્ચત્થિમેણ દિવસે
ભવહ, તયાણં જંબુદ્વીપે દ્વીપે મંદરસ્સ પવ્વયસ્સ ઉત્તરદક્ષિણેણ રાઈ ભવહ ?)
ન્યારે પશ્ચિમદિશામાં દિવસ હોય છે, ત્યારે જંબૂદ્વીપના મંદર પર્વતની ઉત્તર
દક્ષિણ દિશામાં શું રાત્રિ હોય છે ? (હંતા ગોયમા) હા, ગૌતમ ! એવું
જ અને છે, “ જયાણં જંબુદ્વીપે દ્વીપે મંદરપુરત્થિમેણ દિવસે જાવ રાઈ ભવઈ ”

દિવસઃ, યાવત્-રાત્રિર્ભવતિ, યદા ચલુ મદન્ત ! જમ્બૂદ્વીપે દ્વીપે દક્ષિણાર્ધે ઉત્કૃષ્ટો ષ્ટાદશમુહૂર્તો દિવસો ભવતિ, તદા ઉત્તરાર્ધેઽપિ ઉત્કૃષ્ટોઽષ્ટાદશમુહૂર્તો દિવસો ભવતિ, યદા ઉત્તરાર્ધે ઉત્કૃષ્ટોઽષ્ટાદશમુહૂર્તો દિવસો ભવતિ તદા ચલુ જમ્બૂદ્વીપે દ્વીપે મન્દ-
રસ્ય પૌરસ્ત્ય-પશ્ચિમે જવન્વિષ્ણા દ્વાદશમુહૂર્તા રાત્રિર્ભવતિ ? હન્ત, ગૌતમ ! યદા જમ્બૂદ્વીપે દ્વીપે યાવત્-દ્વાદશમુહૂર્તા રાત્રિર્ભવતિ, યદા જમ્બૂદ્વીપે દ્વીપે મન્દરસ્ય

હોતી છે (જયા ણં મંતે ! જંબુદ્વીપે દીવે દાહિણદ્વે ઉક્ષોસણ અટ્ટારસમુ-
હુત્તે દિવસે ભવહ, તયાણં ઉત્તરદ્વે વિ ઉક્ષોસણ અટ્ટારસમુહુત્તે દિવસે ભવહ)
હે મદન્ત ! જય જંબુદ્વીપ નામ કે દ્વીપ મેં દક્ષિણાર્ધ મેં જ્યાદા ૧૮ અટ્ટારહ
મુહૂર્ત કાં દિવસ હોતા હૈ, તય ઉત્તરાર્ધ મેં મ્હી અધિક સે અધિક ૧૮ અટ્ટાર-
હ મુહૂર્ત કા દિન હોતા હૈ, ઓર (જયા ણં ઉત્તરદ્વે ઉક્ષોસણ અટ્ટારસમુહુત્તે
દિવસે ભવહ, તયા ણં જંબુદ્વીપે દીવે મંદરસ્સ પુરત્થિમ-પચ્ચત્થિમેણં જહ-
ન્નિયા દુવાલસમુહુત્તા રાઈ ભવઈ) જય ઉત્તરાર્ધ મેં સય સે ષડ્ઠા અટ્ટારહ
મુહૂર્ત કા દિન હોના હૈ તથ જંબુદ્વીપ નામકે દ્વીપ મેં મંદરપર્વત કી પૂર્વ
પશ્ચિમ દિશા તરફ સય સે કમત્તી પ્રમાણવાલી ધારહમુહૂર્ત કી રાત્રિ
હોતી હૈ કયા ? (હંતા ગોયમા ! જયા ણં જંબુદ્વીપે દીવે જાય દુવાલસમુહુત્તા
રાઈ ભવહ) હાં, ગૌતમ ! હસી તરહ સે હોતા હૈ. જંબુદ્વીપ નામકે દ્વીપમેં
યાવત્ ધારહ મુહૂર્તકી રાત્રિ હોતી હૈ. (જયા ણં જંબુદ્વીપે દીવે મંદરસ્સ પુરત્થિમે

ન્યારે જંબુદ્વીપના મંદર પર્વતની પૂર્વ દિશામાં દિવસ હોય છે, ત્યારે પશ્ચિમ
દિશામાં પણ દિવસ હોય છે (યાવત્) અને ત્યારે મંદર પર્વતની ઉત્તર
દક્ષિણ દિશામાં રાત્રિ હોય છે, (જયા ણં મંતે ! જંબુદ્વીપે દીવે દાહિણદ્વે ઉક્ષો-
સણ અટ્ટારસમુહુત્તે દિવસે ભવહ, તયાણં ઉત્તરદ્વે વિ ઉક્ષોસણ અટ્ટારસમુહુત્તે દિ-
વસે ભવહ.) હે મદન્ત ! ન્યારે જંબુદ્વીપના દક્ષિણાર્ધમાં વધારેમાં વધારે અઠાર
મુહૂર્તનો દિવસ હોય છે, ત્યારે ઉત્તરાર્ધમાં પણ શું વધારે ૧૮ અઠાર મુહૂર્તનાં
જ દિવસ હોય છે ! અને (જયા ણં ઉત્તરદ્વે ઉક્ષોસણ અટ્ટારસમુહુત્તે દિવસે ભવહ,
તયાણં જંબુદ્વીપે મંદરસ્સ પુરત્થિમપચ્ચત્થિમેણં જહન્નિયા દુવાલસમુહુત્તા રાઈ ભવઈ ?)
ન્યારે ઉત્તરાર્ધમાં સૌથી મોટો દિવસ ૧૮ અઠાર મુહૂર્તનો થાય છે, ત્યારે
શું જંબુદ્વીપના મંદર પર્વતની પૂર્વ પશ્ચિમ દિશામાં સૌથી નાની બાર મુહૂ-
ર્તની રાત્રિ થાય છે ! “ હંતા ગોયમા ! જયા ણં જંબુદ્વીપે દીવે જાય દુવાલસમુ-
હુત્તા રાઈ ભવહ) હા ગૌતમ ! ન્યારે જંબુદ્વીપના દક્ષિણાર્ધમાં મોટામાં મોટો
દિવસ ૧૮ અઠાર મુહૂર્તનો થાય છે, ત્યારે ઉત્તરાર્ધમાં પણ મોટામાં મોટો દિવસ
૧૮ અઠાર મુહૂર્તનો થાય છે, અને ત્યારે મંદર પર્વતની પૂર્વ તથા પશ્ચિમે

પૌરસ્ત્યે વરુષ્ટોઽષ્ટાદશમુહર્તો દિવસો ભવતિ. તદા જમ્બુદીપે દ્વીપે પશ્ચિમેઽપિ ઉત્કૃષ્ટોઽષ્ટાદશમુહર્તો દિવસો ભવતિ, તદા પશ્ચિમે ઉત્કૃષ્ટોઽષ્ટાદશમુહર્તો દિવસો ભવતિ, તદા સ્વલુ મદન્ત ! જમ્બુદીપે દ્વીપે ઉગરે દ્વાદશમુહર્તો યાવત્-રાષ્ટ્રિભવતિ ! હન્ત, ગૌતમ ! યાવત્-ભવતિ, તદા સ્વલુ મદન્ત ! જમ્બુદીપે દ્વીપે દક્ષિણાર્ધે અષ્ટા-

વક્રોસપ અઠ્ઠારસમુદ્દત્તે દિવસે ભવદ્, તયા ણં જંબુદીપે દ્વીપે પચ્ચ-ત્થિમેણં ચિ ઉક્કોસેણં અઠ્ઠારસમુદ્દત્તે દિવસે ભવદ્) હે મદન્ત ! જમ્બુદીપ નામકે દ્વીપ મેં મંદરપર્વત કી પૂર્વદિશા તરફ અધિક સે અધિક અઠ્ઠારહ મુહર્ત્ત કા દિન હોતા હૈ, તપ જંબુદીપ મેં પશ્ચિમ દિશા કી તરફ ઓ અધિક સે અધિક અઠ્ઠારહ મુહર્ત્ત કા દિવસ હોવા હૈ । ઓર (જયા ણં પચ્ચ-ત્થિમે ણં ઉક્કોસિપ અઠ્ઠારસમુદ્દત્તે દિવસે ભવદ્, તયા ણં મંતે ! જંબુદીપે દ્વીપે ઉત્તરે દુવાલસમુદ્દત્તા જાવ રાઈ ભવદ્) જમ્બુદીપ દિશા કી તરફ અધિક સે અધિક અઠ્ઠારહ મુહર્ત્ત કા દિન હોતા હૈ તપ હે મદન્ત ! જંબુદીપ મેં ઉત્તરાર્ધ મેં સપ સે કમ ધારહ મુહર્ત્ત કી રાત્રિ હોતી હૈ કયા ? (હંતા, ગોયમા જાવ ભવદ્) હાં, ગૌતમ ! હસી તરહ સે યાવત્ સબ સે કમ ધારહ મુહર્ત્ત કી રાત્રિ હોતી હૈ । (જયા ણં મંતે ! જંબુદીપે દ્વીપે દાહિણહ્દે અઠ્ઠારસમુદ્દત્તાણંતરે દિવસે ભવદ્.) હેમદન્ત ! જમ્બુદીપ

નાનામાં નાની રાત્રિ ૧૨ ધાર મુહૂર્તની થાય છે.

(જયાણં જંબુદીપે દ્વીપે મંદરસ પુરવિમે ઉક્કોસપ અઠ્ઠારસમુદ્દત્તે દિવસે ભવદ્ તયાણં જંબુદીપે દ્વીપે પચ્ચત્થિમેણં ચિ ઉક્કોસેણં અઠ્ઠારસમુદ્દત્તે દિવસે ભવદ્ ?) હે મદન્ત ! ત્યારે જંબુદીપ નામના દ્વીપના મંદર પર્વતની પૂર્વદિશા તરફ લાંબામાં લાંબો ૧૮ અઠાર મુહૂર્તનો દિવસ થાય છે, ત્યારે જંબુદીપમાં પશ્ચિમ દિશા તરફ પણ શું લાંબામાં લાંબો ૧૮ અઠાર મુહૂર્તનો દિવસ થાય છે ? અને (જયાણં પચ્ચત્થિમે ણં ઉક્કોસિપ અઠ્ઠારસમુદ્દત્તે દિવસે ભવદ્, તયાણં મંતે જંબુદીપે દ્વીપે ઉત્તરે દુવાલસમુદ્દત્તા જાવ રાઈ ભવદ્.) ત્યારે પશ્ચિમ દિશામાં લાંબામાં લાંબો દિવસ ૧૮ અઠાર મુહૂર્તનો હોય છે, ત્યારે શું જંબુદીપના ઉત્તરાર્ધમાં નાનામાં નાની રાત્રિ ૧૨ ધાર મુહૂર્તની હોય છે ? (હંતા, ગોયમા ! જાવમવદ્) હા, ગૌતમ ! જંબુદીપના ઉત્તરાર્ધમાં ટૂંકામાં ટૂંકી ૧૨ ધાર મુહૂર્તની રાત્રિ હોય છે, ત્યાં મુધીનું સમસ્ત કથન સત્ય છે. (જયાણં મંતે ! જંબુદીપે દ્વીપે દાહિણહ્દે અઠ્ઠારસમુદ્દત્તાણંતરે દિવસે ભવદ્, તયા ણં ઉત્તરે અઠ્ઠારસમુદ્દત્તાણંતરે દિવસે ભવદ્)

दशमुहूर्तानन्तरो दिवसो भवति, तदा उत्तरे अष्टादशमुहूर्तानन्तरो दिवसो भवति, यदा उत्तरे अष्टादशमुहूर्तानन्तरो दिवसो भवति, तदा जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पौरस्त्ये, पश्चिमे सातिरेका द्वादशमुहूर्ता रात्रिर्भवति ? हन्त, गौतम ! यदा जम्बूद्वीपे द्वीपे यावत्-रात्रिर्भवति, यदा खलु भदन्त ! जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पौरस्त्ये अष्टादशमुहूर्तानन्तरो दिवसो भवति, तदा पश्चिमे अष्टादशमुहूर्तानन्तरो दिवसो भवति, यदा पश्चिमे अष्टादशमुहूर्तानन्तरो दिवसो भवति तदा जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य उत्तर-दक्षिणे सातिरेकद्वादशमुहूर्ता रात्रिर्भवति ?

नामके द्वीप में दक्षिणार्ध में अठारह मुहूर्त से कुछ कम दिवस होता है (तयाणं उत्तरे अष्टारसमुहृत्ताणंतरे दिवसे भवह) तय उत्तरार्ध में अठारह मुहूर्त से कुछ कम दिवस होता है । और (जयाणं उत्तरद्वे अष्टारसमुहृत्ताणंतरे दिवसे भवह, तयाणं जंबुद्वीवे द्वीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमेणं पच्चत्थिमेणं साहरेगा दुवालसमुहृत्ता राई भवह) जय उत्तरार्ध में अठारह मुहूर्त से कुछ कम दिन होता है तय जम्बूद्वीप नाम के द्वीपमें मंदरपर्वत की पूर्व और पश्चिम की ओर धारह मुहूर्तसे कुछ अधिक लंबी रात होती है क्या ? (हंतागोयमा ! जया णं जंबुद्वीवे द्वीवे जाव राई भवह) हां गौतम ! इसी तरह से होता है-जम्बूद्वीप में यावत् रात्रि होती है । (जया णं भंते ! जंबुद्वीवे द्वीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे णं अष्टारसमुहृत्ताणंतरे दिवसे भवह, तया णं पच्चत्थिमेणं अष्टारसमुहृत्ताणंतरे दिवसे भवह) हे भदन्त ! जिस समय जम्बूद्वीप नामके द्वीप में मन्दर पर्वत की पूर्वदिशा तरफ अठारह मुहूर्त से कुछ कम दिवस होता

हे भदन्त ! न्यारे जंबूद्वीपना दक्षिणार्धभां १८ अठारमुहूर्तथी दूँके दिवस थाय छे, तयारे शु' उत्तरार्धभां पण्ण दिवस १८अठारमुहूर्त करतां दूँके दिवस थाय छे ? अने(जयाणं उत्तरद्वे अष्टारसमुहृत्ताणंतरे दिवसे भवह, तया णं जंबुद्वीवे द्वीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे णं पच्चत्थिमे णं साहरेगा दुवालसमुहृत्ता राई भवई) न्यारे उत्तरार्धभां १८ अठार मुहूर्त करतां दूँके दिवस थाय छे, तयारे शु' जंबूद्वीपना मंदर पर्वतनी पूर्व अने पश्चिम तरक्क आर मुहूर्त करतां पण्ण लांणी रात्रि थाय छे ? (हंता गोयमा ! जया णं जंबुद्वीवे द्वीवे जाव राई भवह) हां, गौतम ! जेवु' अने छे—न्यारे जंबूद्वीपभांथी शङ्करीने आर मुहूर्त करतां लांणी रात्रि थाय छे त्यां सुधीनुं कथन अडण्ण करवुं. (जया णं भंते ! जंबुद्वीवे द्वीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमेणं अष्टारसमुहृत्ताणंतरे दिवसे भवह, तया णं पच्चत्थिमेणं अष्टारसमुहृत्ताणंतरे दिवसे भवई) हे भदन्त ! न्यारे जंबूद्वीप नामना द्वीपना मंदर पर्वतनी पूर्वादिशा तरक्क अठार मुहूर्त करतां दूँके दिवस

હન્ત, ગૌતમ ! યાનન્-મવતિ, પવન્ પતેન ક્રમેન પ્રગારણિન્યમ્, સન્દનમુહર્તો દિવસઃ, પ્રયોદશમુહર્તો રાત્રિર્ભવતિ, માદનમુહર્તાનન્નમો દિવસઃ, સાતિરેકા પ્રયો-
દશમુહર્તો રાત્રિઃ, પોડનમુહર્તો દિવસઃ, ચતુર્દશમુહર્તો રાત્રિઃ, પોડનમુહર્તાનન્તરો
દિવસઃ, સાતિરેકા ચતુર્દશમુહર્તો રાત્રિઃ, પચ્ચદશમુહર્તો દિવસઃ, પચ્ચદશમુહર્તો

હૈ, તપ પશ્ચિમ દિશા તરફ અઠારહ મુહર્તો સે કુછ કમ દિવસ હોતા હૈ ।
ઔર (જપા ણં પચ્ચત્તિમેણં અઠારસ મુહ્ત્તાણંતરે દિવસે ભવહ, તપા
ણં જંબુદ્વીપે દીવે મંદરસ્સ પવ્વયસ્સ ઉત્તરદાહિણે સાહરેગદુવાલસમુ-
હ્ત્તા રાઈ ભવહ) જપ પશ્ચિમ દિશા તરફ અઠારહમુહર્તો સે કુછ કમ
દિવસ હોતા હૈ તપ જમ્બૂદ્વીપ નામકે દ્વીપ મેં મંદર પર્વતની ઉત્તર
દિશાતરફ ધારહ મુહર્તો સે કુછ અધિક લંબી-ચટી રાત્રિ હોતી હૈ કયા ?
(હંતા ગોયમા ! જાવ ભવહ) હાં ગૌતમ ! હસી તરહ સે યાવત્ ધારહ
મુહર્તો સે કુછ અધિક લંબી રાત્રિ હોતી હૈ । (ણં પપ્પણં કમેણ ઓસારે-
યવ્વં) હસી તરહ હસી ક્રમ સે દિવસ કા પ્રમાણ કમ કરના ચાહિયે
ઔર, રાત્રિકા પ્રમાણ ઘડાના ચાહિયે । જપ (સત્તરસમુહ્ત્તે દિવસે
તેરસમુહ્ત્તો રાઈ ભવહ) સત્તરહ મુહર્તો કા દિવસ હોગા તપ
તેરહ મુહર્તો કી રાત્રિ હોગી । (સત્તરસમુહ્ત્તાણંતરે દિવસે સાહરેગા,
તેરસમુહ્ત્તારાઈ, સોલસમુહ્ત્તે દિવસે; ચોદસ મુહ્ત્તા રાઈ, સોલસ

થાય છે, ત્યારે શું મંદર પર્વતની પશ્ચિમ દિશામાં પણ અઠાર મુહૂર્ત કરતાં
ટૂંકા દિવસ થાય છે ? અને (જયાણં પચ્ચત્તિમે ણં અઠારસમુહ્ત્તાણંતરે દિવસે
ભવહ તપા ણં જંબુદ્વીપે દીવે મંદરસ્સ પવ્વયસ્સ ઉત્તરદાહિણે સાહરેગદુવાલસ-
મુહ્ત્તા રાઈભવહ ?) ત્યારે પશ્ચિમ દિશામાં અઠાર મુહૂર્ત કરતાં ટૂંકા દિવસ
થાય છે, ત્યારે શું જંબુદ્વીપ નામના દ્વીપના મંદર પર્વતની ઉત્તર દક્ષિણ
તરફ ધાર મુહૂર્ત કરતાં લાંબી રાત્રી થાય છે ? (હંતા, ગોયમા ! જાવ ભવહ)
હા, ગૌતમ એવું અને છે. અહીં ઉપરોક્ત ધાર મુહૂર્ત કરતાં લાંબી રાત્રી થાય
છે, ત્યાં સુધીનું કથન શ્રદ્ધા કરવું. (ણં પપ્પણં કમેણ ઓસારેયવ્વં) એવી રીતે
એવી કમથી દિવસનું પ્રમાણ ઓછું કરવું એવું અને રાત્રિનું પ્રમાણ વધારવું
એવું ત્યારે (સત્તરસમુહ્ત્તે દિવસે તેરસ મુહૂર્તો રાઈ ભવહ) ત્યારે સત્તર મુહૂર્તની
દિવસ થાય ત્યારે તેર (૧૩) મુહૂર્તની રાત્રિ થાય છે. (સત્તરસ મુહ્ત્તાણંતરે
દિવસે સાહરેગા, તેરસમુહ્ત્તો રાઈ, સોલસમુહ્ત્તે દિવસે, ચોદસમુહ્ત્તો રાઈ, સોલસ

रात्रिः पञ्चदशमुहूर्तानन्तरो दिवसः सातिरेका पञ्चदशमुहूर्ता रात्रिः, चतुर्दशमुहूर्तो दिवसः षोडशमुहूर्ता रात्रिः, चतुर्दशमुहूर्तानन्तरो दिवसः, सातिरेका षोडशमुहूर्ता रात्रिः त्रयोदशमुहूर्तो दिवसः सप्तदशमुहूर्ता रात्रिः, त्रयोदशमुहूर्तानन्तरो दिवसः, सातिरेका सप्तदशमुहूर्ता रात्रिः । यदा खलु जम्बूद्वीपे द्वीपे

मुहूर्त्ताण्तरे दिवसे, साइरेगा चउद्दस मुहूर्त्ता राई) जय सत्तरह मुहूर्त्त से भी कुछ कम दिवस होता है, तय तेरह मुहूर्त्त से भी कुछ अधिक रात्रि होती है । और जय सोलह मुहूर्त्त का दिवस होता है तय १४ चौदह मुहूर्त्त की रात्रि हो जाती है । जय सोलह मुहूर्त्त से कुछ कम दिवस होता है तय रात्रि कुछ अधिक चौदह मुहूर्त्त की हो जाती है । (पण्णरस मुहूर्त्ते दिवसे, पण्णरसमुहूर्त्ता राई) जय पन्द्रह मुहूर्त्त का दिवस होता है तय पन्द्रह मुहूर्त्त की रात्रि होती है । (पण्णरस मुहूर्त्ताण्तरे दिवसे साइरेगा पण्णरसमुहूर्त्ता राई) पन्द्रह मुहूर्त्त से कुछ कम जय दिवस होता है, तय कुछ अधिक पन्द्रह मुहूर्त्त की रात्रि होती है । (चौदसमुहूर्त्ते दिवसे, सोलसमुहूर्त्ता राई) जय चौदह मुहूर्त्त का दिवस होता है तय सोलह मुहूर्त्त की रात्रि होती है । (चौदसमुहूर्त्ताण्तरे दिवसे, साइरेगा सोलहमुहूर्त्ता राई) जय चौदह मुहूर्त्त से कुछ कम का दिन होता है तय रात्रि कुछ अधिक सोलह मुहूर्त्त की होती है । (तेरसमुहूर्त्ते दिवसे, सत्तरसमुहूर्त्ता राई) जय तेरह मुहूर्त्त का दिवस होता है तय

मुहूर्त्ताण्तरे दिवसे, साइरेगा चउद्दसमुहूर्त्ता राई) न्यारे सत्तर मुहूर्त्त करतां पण्ण कंछक दूके दिवस थाय छे, त्यारे तेर (तेर) मुहूर्त्त करतां कंछक वधारे समयनी रात्रि थाय छे, न्यारे सोण मुहूर्त्त नेा दिवस थाय छे, त्यारे चौद मुहूर्त्तनी रात्रि थाय छे, न्यारे सोण मुहूर्त्त करतां पण्ण कंछक ओछा समयनेा दिवस डाय छे त्यारे चौद मुहूर्त्तथी कंछक वधारे समयनी रात्रि थाय छे. (पण्णरसमुहूर्त्ते दिवसे पण्णरसमुहूर्त्ता राई) न्यारे १५ पंहर मुहूर्त्तनेा दिवस थाय छे, त्यारे पंहर मुहूर्त्तनी रात्रि थाय छे. (पण्णरसमुहूर्त्ताण्तरे दिवसे साइरेगा पण्णरसमुहूर्त्ता राई) न्यारे पंहर मुहूर्त्तथी कंछक दूके दिवस डाय छे, त्यारे रात्रि पंहर मुहूर्त्तथी कंछक लांभी डाय छे, (चौदसमुहूर्त्ते दिवसे, सोलस मुहूर्त्ताराई) न्यारे १४चौद मुहूर्त्तनेा दिवस थाय छे, त्यारे १६सोण मुहूर्त्तनी रात्रि थाय छे. (चौदसमुहूर्त्ताण्तरे दिवसे, साइरेगा सोलस मुहूर्त्ता राई) न्यारे दिवस चौद मुहूर्त्त करतां कंछक दूके थाय छे, त्यारे रात्रि सोण मुहूर्त्त करतां

દક્ષિણાર્ધે જઘન્યકો દ્વાદશમુહૂર્તો દિવસો ભવતિ, તદા ઉત્તરાર્ધેષુપિ, તદા ઉત્ત-
 રાર્ધે તદા જમ્બૂદીપે દ્વીપે મન્દરસ્ય પર્વતસ્ય પૌરસ્ય-પશ્ચિમે ઉન્નકૃષ્ટિકા અઠાર-
 શમુહૂર્તા રાત્રિર્ભવતિ ? હન્ત, ગૌતમ ! एवं येन उच्चारणिकस्यम्, यावत्-रात्रिर्भ-
 वति, यदा भवन्त ! जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पौरस्ये जघन्यको द्वादश-

સત્તરહ મુહૂર્ત્તં ફી રાત્રિ હોતી છે । (તેરસમુહૂતાણંતરં દિવસે, સાઝરેગા
 મુહૂત્તા રાઈ) ઓર જય તેરહ મુહૂર્ત્તં સે કુછ કમ દિવસ કા પ્રમાણ
 રહતા હૈ તય રાત્રિ કા પ્રમાણ કુછ અધિક મતરહ મુહૂર્ત્તં કા હો જાતા
 હૈ । (જયા ણં જંબૂદ્વીપે દ્વીપે દાહિણ જહ્ણણ દુવાલસમુહૂત્તે દિવસે
 ભવહ, તયા ણં ઉત્તરહ્વે વિ, જયા ણં ઉત્તરહ્વે તયા ણં જંબૂદ્વીપે દ્વીપે
 મંદરસસ પવ્વયસસપુરત્થિમ પચ્ચત્થિમેણં ઉપોસિયા અઠારસમુહૂત્તા રા-
 ઈ ભવહ) હે ભદન્ત ! જય જંબૂદ્વીપ નામકે દ્વીપ મેં દક્ષિણાર્ધ મેં સય
 સે કમ પારહ મુહૂર્ત્તં કા દિવસ હોતા હૈ, તય ઉત્તરાર્ધ મેં ઓ ઈસા હી
 હોતા હૈ । ઓર જય ઉત્તરાર્ધ મેં ઈસા હોતા હૈ, તય જંબૂદ્વીપ નામકે
 દ્વીપ મેં મંદર પર્વત કો પૂર્વ પશ્ચિમ કો ઓર સય સે અધિક અઠારહ મુ-
 હૂર્ત્તં કો રાત્રિ હોતી હૈ કયા ? (હંતા, ગોયમા ! एवं येव उच्चारयेव्वं
 जाव राई भवइ) हां गौतम ! इसी प्रकार से होता है इसी तरह से
 ही सम कहना चाहिये यावत् रात्रि होती है । (जया णं भते ! जंबूद्वीपे
 द्वीपे मंदरसस पव्वयसस पुरत्थिमेणं जह्णण द्वावालसमुहूते दिवसे भवइ,

ક'ઈક લાંબી થાય છે. (તેરસમુહૂત્તે દિવસે સત્તરસમુહૂત્તા રાઈ) ન્યારે ૧૩ તેર
 મુહૂર્ત્તનો દિવસ થાય છે, ત્યારે ૧૭સત્તર મુહૂર્ત્તની રાત્રિ થાય છે. (તેરસમુહૂત્તાણંતરે
 દિવસે, સાઝરેગા -સત્તરસ મુહૂત્તા રાઈ) ન્યારે દિવસ ૧૩તેર મુહૂર્ત્ત કરતાં થોડા
 ટૂંકા હોય છે, ત્યારે રાત્રિ સત્તર મુહૂર્ત્ત કરતાં થોડી લાંબી હોય છે. (જયા ણં
 જંબૂદ્વીપે દ્વીપે દાહિણહ્વે જહ્ણણ દુવાલસમુહૂત્તે દિવસે ભવહ, તયા ણં ઉત્તરહ્વે વિ
 જયા ણં ઉત્તરહ્વે તયા ણં જંબૂદ્વીપે દ્વીપે મંદરસસ પુરત્થિમપચ્ચત્થિમેણં ઉપોસિયા અઠારસ
 મુહૂત્તા રાઈ ભવહ) હે ભદન્ત ! ન્યારે જંબૂદ્વીપ નામના દ્વીપમાં દક્ષિણાર્ધમાં ટૂંકામાં
 ટૂંકા ધાર મુહૂર્ત્તનો દિવસ થાય છે, ત્યારે ઉત્તરાર્ધમાં પણ શું એમ જ બને છે ?
 બને ન્યારે ઉત્તરાર્ધમાં એવું બને, ત્યારે શું જંબૂદ્વીપના મંદર પર્વતની પૂર્વ
 પશ્ચિમ દિશામાં લાંબામાં લાંબી ૧૮ અઠાર મુહૂર્ત્તની રાત્રિ હોય છે ? (હંતા
 ગોયમા ! एवं येव उच्चारयेव्वं जाव राई भवइ) હે ગૌતમ ! એવું જ બને
 છે. (૧૮ અઠાર મુહૂર્ત્તની રાત્રિ થાય છે) ત્યાં સુધીનું સમસ્ત કથન અહીં અહલ્લુ
 કલ્પું નોંધ્યો, (જયા ણં ભતે ! જંબૂદ્વીપે દ્વીપે મંદરસસ પવ્વયસસ પુરત્થિમેણં

મુહૂર્તો દિવસોભવતિ, તદા પશ્ચિમેડપિ, યદા પશ્ચિમેડપિ તદા જમ્બૂદ્વીપે દ્વીપે મન્દરસ્ય પર્વતસ્ય ઉત્તર-દક્ષિણે ઉત્કૃષ્ટા અષ્ટાદશમુહૂર્તા રાત્રિર્ભવતિ? હન્ત, ગૌતમ? યાવત્-રાત્રિર્ભવતિ ॥ મૂ—૨ ॥

ટીકા—અય સ્વેશ્ચતુર્દિશ્ચ પરિભ્રમણેડપિ તત્પ્રકાશસ્ય પ્રતિનિયતદિક્ષ્વાતિતયા રાત્રિદિવસવ્યવસ્થાં ક્ષેત્રભેદેન પ્રતિપાદયિતુમાદ્—' જયાણં મંતે । ' ઇત્યાદિ । ગૌતમઃપૃચ્છતિ— હે ભદન્ત ! યદા સ્વલુ ' જંબુદ્વીવે દીવે ' જમ્બૂદ્વીપે દ્વીપે મધ્યજમ્બૂદ્વીપે

તયા ણં પચ્ચત્થિમે ણં વિ, જહાર્ણં પચ્ચત્થિમેણં વિ તયા ણં જંબુદ્વીવે દીવે મંદરસ્સ પવ્વયસ્સ ઉત્તરદાહિણેણં ઉક્કોસિયા અટ્ટારસમુહુત્તા રાઈં ભવહ) હે ભદન્ત ! જય જંબૂદ્વીપ નામકે દ્વીપ મેં મંદરપર્વત કી પૂર્વદિશા કી ઓર સવ સે કમ યારહ મુહૂર્ત્તં કા દિવસ હોતા હૈ, તવ પશ્ચિમ કી ઓર ખી વૈસા હી હોતા હૈ । ઓર જય પશ્ચિમ કી ઓર ખી વૈસા હોતા હૈ, તપ જંબૂદ્વીપ નામકે દ્વીપ મેં મંદર પર્વત કી ઉત્તર દક્ષિણ દિશા તરફ અધિક અઠારહ મુહૂર્ત્તં કી રાત્રિ ખી હોતી હૈ કયા? (હંતા ગોયમા ! જાવ રાઈં ભવહ) હાં, ગૌતમ ! ઇત્તી પ્રકાર સે રાત્રિ હોતી હૈ યાવત્ અધિક સે અધિક અઠારહ મુહૂર્ત્તં કી રાત્રિ હોતી હૈ ॥

ટીકાર્થ— સૂર્ય ચારોં દિશાઓં મેં ભ્રમણ કરતા હૈ—ફિર ખી ઉસકા પ્રકાશ પ્રતિનિયત દિશાઓં મેં હી પડતા હૈ, ઇસ કારણ રાત્રિ દિવસ કી વ્યવસ્થા કો સૂત્રકાર ક્ષેત્ર ભેદ દ્વારા પ્રતિપાદન કરને કે લિયે કહતે હેં—(જયા ણં મંતે) ઇત્યાદિ ।

જહમ્પ દુવાલસમુહુત્તે દિવસે ભવહ, તયા ણં પચ્ચત્થિમે ણં વિ, જયાણં પચ્ચત્થિમેણં વિ તયાણં જંબુદ્વીવે દીવે મંદરસ પવ્વયસ્સ ઉત્તર દાહિણેણં ઉક્કોસિયા અટ્ટારસમુહુત્તા રાઈં ભવહ) હે ભદન્ત ! ત્યારે જંબુદ્વીપ નામના દ્વીપમાં મંદર પર્વતની પૂર્વ દિશા તરફ ટુંકામાં ટુંકે ૧૨ આર મુહૂર્તનો દિવસ થાય છે, ત્યારે શુ' પશ્ચિમ તરફ એવું અને છે, અને ત્યારે પશ્ચિમ તરફ એવું અને છે ત્યારે શુ' જંબુદ્વીપના મંદર પર્વતની ઉત્તર દક્ષિણ દિશા તરફ લાંબામાં લાંબી ૧૮ અઠાર મુહૂર્તની રાત્રિ હોય છે ? (હંતા ગોયમા ! જાવ રાઈં ભવહ) હા, ગૌતમ ! એવું જ અને છે—(લાંબામાં લાંબી ૧૮ અઠાર મુહૂર્તની રાત્રિ હોય છે,) ત્યાં સુધીનું સમસ્ત કથન શ્રુણુ કરવું.

ટીકાર્થ—સૂર્ય ચારે દિશાઓમાં ભ્રમણ કરે છે. પણ તેનો પ્રકાશ પ્રતિનિયત દિશાઓમાં જ પડે છે, તેથી રાત્રિ દિવસની વ્યવસ્થાનું ક્ષેત્રભેદ દ્વારા પ્રતિપાદન કરવાને માટે સૂત્રકાર કહે છે—(જયા ણં મંતે !) ઇત્યાદિ

‘દાહિણદ્વે’ દક્ષિણાર્ધે દક્ષિણદિગ્ભાગે ‘દિવસે ભવદ્’ દિવસો ભવન્તિ, ‘તયાણં’ તદા સ્વલ્લુ ‘ઉત્તરદ્વેષિ’ ઉત્તરાર્ધેષ્વપિ ઉત્તરદિગ્ભાગેષ્વપિ ‘દિવસો ભવદ્’ દિવસો ભવન્તિ ‘તયાણં’ તદા સ્વલ્લુ કિમ્ ‘જંબુદ્વીપં દીપે’ જંબુદ્વીપે દ્વીપે ‘મંદરસ્તા પ-વ્વયસ્સ’ મંદરસ્થ પર્વતસ્થ ‘પુરત્થિમ-પન્નત્થિમેણં’ પૂર્વસ્થ-પશ્ચિમેણં સ્વલ્લુ પૂર્વે પશ્ચિમભાગે ‘રાઈ ભવદ્’ રાત્રિર્ભવતિ કિમ્ ? મગયાનાદ-‘દંતર, ગોયમા !’ હે

ગૌતમ સ્વામી પ્રશ્ન સે પૂછતે હેં ફિ હેં ભદન્ત ! જય (જંબુદ્વીપે દીપે) જંબુદ્વીપ નામકે દ્વીપ મેં-મધ્યજંબુદ્વીપ મેં (દાહિણદ્વે) દક્ષિણાર્ધ મેં દક્ષિણદિગ્ભાગ મેં-(દિવસે ભવદ્) દિવસ હોના હેં, (તયાણં) તથા (ઉત્તરદ્વે વિ) ઉત્તરાર્ધ મેં-ઉત્તરદિગ્ભાગ મેં-મધ્ય (દિવસે ભવદ્) દિવસ હોના હેં તો કયા ઉસ સમય (જંબુદ્વીપે દીપે) મધ્ય જંબુદ્વીપ મેં (મંદરસ્સ પવ્વયસ્સ) મંદર પર્વત કી (પુરત્થિમેણં પન્નત્થિમેણં) પૂર્વ ઓર પશ્ચિમ દિશા મેં પૂર્વપશ્ચિમદિગ્ભાગ મેં (રાઈ ભવદ્) રાત્રિ હોતી હેં ? હસકા અભિપ્રાય એસા હેં ફિ ઊપરકે સૂત્રદ્વારા એસા કહા ગયા હેં ફિ સૂર્ય ચારોં દિશાઓં મેં ગમન કરતા હેં-તો હસસે તો યહી સમજા જા સકતા હેં ફિ ઉસકા પ્રકાશ સદા કાયમ ફેલતા રહતા હેં-જય એસી ઘાત હેં તો ફિર કહોં રાત્રિ ઓર કહોં દિવસ એસા વિભાગ કેસે ઘન સકતા હેં ? અર્થાત્ નહોં ઘન સકતા । યયોં ફિ હસ પ્રકાર યી માન્યતા સે તો સર્વત્ર દિવસ હી રહના ચાહિયે । પરન્તુ એસા તો હોતા નહોં હેં । સો હસકા કારણ કયા હેં ? હસકે સમાધાન નિમિત્ત એસા કહા ગયા હેં ફિ યદ્યપિ સૂર્ય ચારોં દિશાઓં મેં ગતિ કરતા

ગૌતમસ્વામી મહાવીરપ્રશ્નુને પૂછે છે કે-હે લક્ષ્મી ત્યારે (જંબુદ્વીપે દીપે) જંબુદ્વીપ નામના દ્વીપમાં (મધ્ય જંબુદ્વીપમાં) (દાહિણદ્વે) દક્ષિણાર્ધમાં (દક્ષિણ દિગ્ભાગમાં) પણ “દિવસે ભવદ્” દિવસ થાય છે ? “તયાણં” ત્યારે “ઉત્તરદ્વે વિ” શું ઉત્તરાર્ધમાં પણ (દિવસે ભવદ્) દિવસ થાય છે) અને ત્યારે (જંબુદ્વીપે દીપે) મધ્ય જંબુદ્વીપમાં આવેલા (મંદરસ્સ પવ્વયસ્સ) મંદર (સુમેરુ) પર્વતની (પુરત્થિમપન્નત્થિમેણં) પૂર્વ અને પશ્ચિમ દિશામાં (પૂર્વ પશ્ચિમ દિગ્ભાગમાં) શું (રાઈ ભવદ્) રાત્રિ હોય છે ? ગૌતમ સ્વામીના પ્રશ્નનું તાત્પર્ય એવું છે કે-પહેલા સૂત્રમાં એવું બતાવવામાં આવ્યું છે કે સૂર્ય ત્યારે દિશાઓમાં ભ્રમણ કરે છે. એથી તો એવું માનવાને કારણ મળે છે કે તેના પ્રકાશ સદા સર્વત્ર ફેલાતા જ રહે છે. આવું હોવા છતાં કેઈ જગ્યાએ દિવસ અને કેઈ જગ્યાએ રાત્રી થવાનું કારણ શું છે ? ખરેખર તો બંધી જગ્યાએ દિવસ જ હોવો જોઈએ. તો તેનું સમાધાન નીચે પ્રમાણે કરવામાં આવ્યું છે-સૂર્ય

ગૌતમ ! દન્ત, સત્યમ્ ' જયાણં ' યદા સ્વલુ ' જમ્બુદ્વીવે દીવે ' જમ્બુદ્વીપે દ્વીપે ' દાહિણઙ્કે ' દક્ષિણાર્ધે ' દિવસે ' દિવસઃ ' જાવ-રાઈભવઈ ' યાવત્-રાત્રિ-ભવતિ, ઇતિ, યાવત્કરણાત્ ' ભવતિ, તદા ઉત્તરાર્ધેઽપિ દિવસો ભવતિ, યદા ચ ઉત્તરાર્ધેઽપિ દિવસો ભવતિ, તદા જમ્બુદ્વીપે દ્વીપે મન્દરસ્સ પર્વતસ્ય પૌરસ્ત્યપશ્ચિમે ' ઇતિ સંપ્રાણમ્ ।

રહતા હૈ ફિર ખી ઉસકા પ્રકાશ મર્યાદિત હૈ । અર્થાત્ ઉસકા પ્રકાશ અમુક ભાગતક હી જાતા હૈ- આગે નહીં જાતા હૈ-હસલિયે રાત ઓર દિવસ કા વ્યવહાર યન જાતા હૈ । જિતની મર્યાદા તક જયનક સૂર્યકા પ્રકાશ રહતા હૈ-ઉતના ભાગ મેં તયનક દિવસ કા વ્યવહાર ઓર પ્રકાશ વર્જિત સ્થાન મેં રાત્રિ કા વ્યવહાર હોતા હૈ । હસી યાન કો ક્ષેત્ર વિભાગપૂર્વક હસ સૂત્ર દ્વારા પ્રકટ ક્રિયા ગયા હૈ, ગૌતમ પ્રશ્ન સે પ્રશ્ન કરતે હુણ પૂછતે હૈં કિ જય જમ્બુદ્વીપ મેં દક્ષિણાર્ધ મેં ઓર ઉત્તરાર્ધ મેં દિવસ હોતાહૈ-તય કયા પૂર્વ ઓર પશ્ચિમભાગ મેં રાત્રિ હોતી હૈ કયા? ભગવાન હસકા ઉત્તર દેતે હુણ ગૌતમ સે કહતે હૈં કિ (હંતા ગોયમા ! હાં ગૌતમ ! (જયાણં) જય (જંબુદ્વીવે દીવે) જમ્બુદ્વીપ નામકે મધ્ય જંબુદ્વીપ મેં (દાહિણઙ્કે વિ) દક્ષિણાર્ધ મેં ખી (દિવસે) દિવસ હોતા હૈં-તય (જાવ રાઈ ભવઈ) યાવત્ રાત્રિ હોતી હૈ । યહાં યાવત્પદ સે (ભવતિ તદા ઉત્તરાર્ધેઽપિ દિવસો ભવતિ, યદા ચ ઉત્તરાર્ધેઽપિ દિવસો ભવતિ, તદા (જમ્બુદ્વીપે દ્વીપે મન્દરસ્સ પર્વતસ્ય પૌરસ્ત્યપશ્ચિમે) હસ પાઠકા સંગ્રહ ક્રિયા

ચારે દિશામાં ગતિ કરતો રહે છે, છતાં પણ તેનો પ્રકાશ મર્યાદિત છે-એટલે કે સૂર્યનો પ્રકાશ અમુક હદ સુધી જ લાયક છે-તે હદ કરતાં આગળ જતો નથી. તે કારણે રાત્રિ અને દિવસ થાયો કરે છે. જેટલી હદમાં ત્યાં સુધી સૂર્યનો પ્રકાશ રહે છે, તેટલી હદમાં ત્યાં સુધી દિવસ રહે છે, અને પ્રકાશવિહીન સ્થાનમાં રાત્રિ હોય છે એજ વાતને ક્ષેત્ર વિભાગપૂર્વક આ સૂત્ર દ્વારા પ્રકટ કરવામાં આવેલ છે. ગૌતમસ્વામી મહાવીર પ્રશ્નને પૂછે છે કે (ત્યારે જંબુદ્વીપના દક્ષિણાર્ધ અને ઉત્તરાર્ધમાં દિવસ હોય છે, ત્યારે શું પૂર્વ અને પશ્ચિમ ભાગમાં રાત્રિ હોય છે ?)

આ પ્રશ્નનો મહાવીર પ્રશ્ન એવો ઉત્તર આપે છે કે (હંતા ગોયમા !) હા, ગૌતમ ! (જયાણં) ત્યારે (જંબુદ્વીવે દીવે) જંબુદ્વીપ નામના મધ્ય જંબુદ્વીપના (દાહિણઙ્કે વિ) દક્ષિણાર્ધમાં "દિવસે" દિવસ હોય છે, ત્યારે (જાવ રાઈ ભવઈ) યાવત્ રાત્રિ હોય છે. અહીં યાવત્ પદથી (ભવતિ તદા ઉત્તરાર્ધેઽપિ) ધ્યાદિ પાઠનો સંગ્રહ થયો છે. ઉત્તરાર્ધમાં પણ દિવસ હોય છે, ત્યારે જંબુ-

अत एव यथा गन्ध हास्तना गन्धमाघ्रायान्ये गजाः क्वापि प्रपलायन्ते तथा भगवद्
चिन्त्यातिशयप्रभाववशात्तद्विहरणसमीरणगन्धसम्बन्धगन्धतोऽपि-ईति-डमर-मरकादय
उपद्रवास्तत्र न तिष्ठन्तीति, गन्धगजाध्रितराजवद् भगवदाश्रितो भव्यगणः सर्वदा
विजयवान् भवतीति च भवत्युभयोर्युक्तं सादृश्यम् । 'लोगुत्तमेण' लोकोत्तमेन-
लोकेषु=ऊर्ध्वाधस्तिर्यग्भूषेषु उत्तमः=श्रेष्ठः, यद्वा-लोकस्य=भव्यलोकस्य कल्याण
कारित्वाद्दुत्तमस्तेन । 'लोगनाद्देणं' लोकनायेन-लोकस्य=भव्यसमूहस्य नाथः=योगक्षेम
कारित्वात्प्रभुस्तेन । 'लोगहिणं' । 'लोकहितेन-लोकस्य=पटुजीवनिकायरूपस्य हितः=
सर्वथा तद्रक्षणप्ररूपणेन स्वयं रक्षणेन हितकरस्तेन । 'लोगपईवेणं' लोकप्रदीपेन-लोकस्य
=भव्यरूपविशिष्टलोकस्य आन्तरमिथ्यात्वतिमिरनिकरनिराकरणपुरस्सरं जीवाजीवादि
पदार्थस्वरूपप्रकाशकत्वात्प्रदीपस्तेन, नहि जन्मान्धः प्रदीपे सत्यपि वस्तुं पश्यति,

गंध गजारूढ नरेश की तरह भगवदाश्रित, "भव्य गण" भी सर्वदा विजयी
होता है । "लोकोत्तम" प्रभु को इसलिये कहा गया है कि उर्ध्व
अधो एवं मध्यलोक में उन जैसा उत्तम श्रेष्ठ और कोई नहीं है-न हुआ
है-और न होगा । अथवा-लोक शब्द का अर्थ भव्यजन भी होता है-
उनका कल्याण प्रभुद्वारा ही होता है-इसलिये भी उन्हें "लोकोत्तम" कहा है ।

भव्यसमूह के ये योगक्षेमकारी होने से नाथ हैं इसलिये "लोक-
नाथ" इन्हें कहा गया है । पटुजीवनिकारूप इसलोक के रक्षण करने के
प्ररूपक होने से ये "लोकहित" इस शब्द के वाच्य हुए हैं । लोक प्रदीप-
भव्यरूप-विशिष्ट लोकों को ये, उनके आन्तर मिथ्यात्वरूप तिमिर निकर
अन्धकारसमूह के निराकरण करनेवाले होने से और साथ साथ में उन्हें
जीव अजीव आदिपदार्थों के यथार्थ स्वरूप का प्रकाश देने वाले होने से
प्रदीप जैसे कहे गये हैं ।

गंध हाथी उपर गेसनार राजनी नेम 'लोगवदाश्रित' 'लव्यगण' पणु कायमने माटे
चिन्त्यी थाय छे. प्रभुने 'लोकोत्तम' अटला माटे कडेवामां आव्या छे के उर्ध्व, अधो
अने मध्यलोकमां अमना लेयो उत्तम अने श्रेष्ठ पीले कोर छे नहि, थयो नथी
अने थशे नहि. अथवा-लोक शब्दना अर्थ लव्यजन पणु थाय छे-तेमनु' श्रेय प्रभु
पटे न थाय छे, अटला माटे पणु तेमने 'लोकोत्तम' कया छे. लव्यसमूहना ये
योगक्षेम करनार होवाधी 'नाथ' छे, अटला माटे न अमने 'लोकनाथ' कइया छे.
पटु जीवनिकायइप आव्याकना रक्षण करवाना निरूपक होवाधी अयेने 'लोकहित' आ
शब्दधी संबोधवामां आव्या छे. लोकप्रदीप-लव्यइपधी विशिष्ट लोकने ये तेमना
अन्तरना मिथ्यात्वइप तिमिर निकट (अन्धकार) समूहने हर करनार होवाधी अने
साथे साथे तेमने लव्य-अलव्य वगेरे पदार्थोना सायाइपना प्रकाश आपनार (साया
इपने गतावनार) होवाधी प्रदीपना नेम तेयेने 'प्रदीप' कडेवामां आव्या छे.

किन्तु तस्मै प्रदीपोऽप्रदीप एव, तथैव भगवानप्यभव्यायेति लोकशब्देन भव्य-
लोकग्रहणम् । 'लोकप्रज्जोयगरेणं' लोकप्रद्योतकरेण-लोकयत इति लोकः, इति व्यु-
त्पत्त्या लोकालोकरूपस्य समस्तवस्तुजातस्य भावस्याखण्डमार्त्तण्डमण्डलमिव प्रद्योतं
प्रकाशं करोतीत्येवं शीलो लोकप्रद्योतकरः, तेन । 'अभयदपणं' अभयदयेन-
अभयम्=आत्मनो विशिष्टस्वास्थ्यं दयते=इदातीत्यभयदः=विकटकर्मकोटिसङ्कट-
मोचन-निःश्रेयससाधनभूतसम्यग्दर्शनादि लक्षणपरमभृति दायक इत्यर्थः, तेन । 'चक्रमु-

यहां जो लोक पद से भव्यरूप विशिष्ट लोकका ग्रहण किया गया
है-उसका कारण यह है कि जिस प्रकार दीपक के होने पर भी जन्मान्ध
वस्तुका अवलोकन नहीं कर सकता है-उसी तरह भगवान के सद्भाव
में भी अभव्यजन यथार्थ वस्तु के स्वरूप अवलोकन से रहित ही बने
रहते हैं-उनके द्वारा उसका कुछ भी कल्याण नहीं हो सकता है-जिस
प्रकार दीपक जन्मान्ध के लिये अदीपक है-उसी प्रकार अभव्यजन भग-
वान से लाभ नहीं प्राप्त कर सकते हैं । लोकप्रद्योतकर-जो देखने में
आता है उसका नाम लोक है-इस न्युत्पत्ति के अनुसार लोक और
अलोकरूप समस्त वस्तु समूह के अण्डरूढ रविमार्त्तण्डमंडल की तरह ये
प्रकाश करने वाले हैं इसलिये लोकप्रद्योतकर हैं । अभयदय-आत्मा के
विशिष्ट स्वास्थ्य का नाम अभय है । इस अभय को जो देता है वह
अभयदय-कहलाता है । ऐसे अभयदय प्रभु ही हैं-कारण उन्होंने
भव्य जीवों को विकट कर्मों के कोटिकोटि संकटों से छुड़ाया है और उन्हें
निःश्रेयस के साधनभूत ऐसे-सम्यग्दर्शनादिरूप परम धैर्य को प्रदान किया है ।

आई ने लोक पद वटे लव्यरूप विशिष्ट लोकनुं ग्रहण करवायां आन्धुं छे. तेमनुं
अरुण आ छे के नेम दीपक होवा छतां पणु जन्मांध, वस्तुने नेध शकतो नथी,
तेम भगवानना अद्रभावमां पणु (भगवाननी भोवूहगीमां पणु) अलव्यजन यथार्थ
वस्तुना स्वरूपने नेवामां अक्षम न जनी रहे छे. नेम दीपक जन्मांध भाटे अदीपक
छे, तेम अलव्य भगवान् पासथी लाल भेगवी शकतो नथी. 'लोक-प्रद्योतकर'-ने
नेवामां आवे छे तेमनुं नाम लोक छे. आ व्युत्पत्ति मुज्ज्ज लोक अने अलोकरूप
संपूर्ण-समूहना अणुं अर्थ मंजानी नेम जे प्रकाश करनार छे, अेटला भाटे जे
लोक प्रद्योतकर छे. अलव्यदय-आत्माना विशिष्ट स्वास्थ्यनुं नाम अलव्य छे. जे अलव्यने
ने आवे छे, ते 'अलव्यदय' कहवाय छे. जेवा अलव्यदय प्रभु न छे. जेभके
तेमले लव्यदयने (पाताना) विकट (घार) कर्मोना कोटि कोटि संकटोमांथी मुक्त
कराव्या छे, अने तेमने निःश्रेयसना (इत्याखुना) साधनभूत जेवा सम्यग्दर्शन वजेरे
रूप परम धैर्य आप्नुं छे.

દર્પણ' ચક્ષુદાયેન પश्यतीति चक्षुः, हेयोपादेयवस्तुविभागकारित्वेन चक्षुरिव चक्षुः= श्रुतज्ञानं तस्य दयो दायकश्चक्षुर्दयस्तेन । 'मग्गदपर्ण' मार्गदयेन-मृग्यते=अन्विष्यते स्वाभीष्टस्थानमनेनेतिमार्गः=निश्चयव्यवहारलक्षणः शिवपुरपथस्तस्य दयेन । 'शरणदपर्ण' शरणदयेन-शरणं=संसारदुःखसन्तप्तप्राणिगणस्य रक्षास्थानं तत्रवतो निर्वाणपदं दयतइति शरणदयस्तेन, संसारकान्तारे परिभ्रमतां रागपञ्चानन-द्वेषव्याघ्र

चक्षुर्दय-"पश्यतीतिचक्षुः" इस व्युत्पत्ति के अनुसार यहाँ चक्षु शब्द का अर्थ श्रुतज्ञान है क्योंकि वही हेय और उपादेय वस्तुका विभागकारी माना गया है ।—

इस चक्षु की प्राप्ति भव्यजीवों को प्रभु से ही होती है-अतः वे चक्षुर्दय है । मग्गदय-मार्गदय-"मृग्यते स्वाभीष्टस्थानं-अनेन इति मार्गः" इस व्युत्पत्ति के अनुसार मार्ग का अर्थ-मोक्षपुर का रास्ता होता है । क्यों कि मार्ग से ही पथिक अपने अभीष्ट स्थान की खोज करते हैं । यह रास्ता निश्चय ओर व्यवहारकी अपेक्षा दो तरह का कहा हुआ है । मोक्षरूप अभीष्ट-स्थानकी प्राप्ति करानेवाले इस मार्ग की प्राप्ति मोक्षा भिलापीजनों को प्रभु के उपदेश से ही हुई है । अतः उन्हें "मार्गदय" सूत्रकारने प्रकट किया है । शरणदय- सांसारिक दुःखों से सन्तप्त हुए प्राणियों के लिये रक्षा का जो सर्वोत्तम स्थान है उसका नाम शरण है । ऐसा स्थान-केवल एक मोक्ष ही है । इस पद के प्रदाता प्रभु हैं अतः वे शरणदय है । यह संसार एक भयंकर कान्तार है । इसमें परिभ्रमण करनेवाले प्राणी रागरूपी पंचानन (सिंह)

ચક્ષુર્દય-"પચ્યતીતિચક્ષુઃ" આ વ્યુત્પત્તિ મુજબ અહીં ચક્ષુ શબ્દનો અર્થ શ્રુતજ્ઞાન છે. કેમકે તેજ હેય ઉપાદેય (અસ્વીકાર કરવા યોગ્ય અને સ્વીકાર કરવા યોગ્ય) પદાર્થને વિભક્ત કરનાર માનવામાં આવ્યો છે. ભવ્યજીવોને આ ચક્ષુની પ્રાપ્તિ પ્રભુથી જ થાય છે, એટલા માટે તેઓ ચક્ષુર્દય છે. મગ્ગદય-માર્ગદય-"મૃગ્યતે અન્વિષ્યતે સ્વાભીષ્ટસ્થાનં અનેન ઇતિ માર્ગઃ" આ વ્યુત્પત્તિ મુજબ માર્ગનો અર્થ મોક્ષપુરનો માર્ગ એ પ્રમાણે થાય છે. કેમકે માર્ગથી જ મુસાફર પોતાના ઇચ્છિત સ્થાનની શોધ કરે છે. આ માર્ગ નિશ્ચય અને વ્યવહારની અપેક્ષાએ બે ભત્તના બતાવવામાં આવ્યો છે. મોક્ષરૂપ ઇચ્છિત સ્થાનની પ્રાપ્તિ મોક્ષાભિલાષીઓને પ્રભુના ઉપદેશથી જ થઈ છે. એટલા માટે તેમને 'માર્ગદય' સૂત્રકારે કહ્યા છે.

'શરણદય' જગતના દુઃખોથી સન્તપ્ત થયેલ પ્રાણીઓને માટે રક્ષણનું જે સૌથી શ્રેષ્ઠ સ્થાન છે, તેનું નામ શરણ છે. એવું સ્થાન ક્રમતઃ એક મોક્ષ જ છે. આ (મોક્ષ) પદને આપનારા પ્રભુ જ છે, એટલા માટે તેઓ શરણદય છે. આ સંસાર એક ભયંકર 'કાન્તાર' (અટવી) છે. આમાં વિચરનારા પ્રાણીઓ રાગરૂપી પંચાનન

क्रोधदावानल-मानमहागिरि-मायापिशाची-लोभमहाजगर-विषयावलीविषवल्ली-
कुगुरुतस्करकर्म प्रकृतिवृक्षाली-मिथ्यात्वमहान्धकारचतुर्गतिदीर्घाध्वत्पणामहासरि-
दास्रवजल-कुश्रद्धाप्रवाह कुत्सितप्ररूपणा-तरङ्ग-कुशीलतट-न्द्रियगणमकर-संयोग-
वियोगकण्टक नरकनिगोद महावर्चाभिमुख वह नानात्रिधदुःखपरम्परासंक्लेशसंश्रस्ता-
नां प्राणिनां निरुपद्रवमचलमरुजमव्यावाधमपुनरावृत्तिकं सुरक्षास्थानं ददातीति भावः।

अत्र-‘अभयदयेन,-चक्षुर्दयेन,-मार्गदयेन,-शरणदयेन’ इत्येतत्पदचतुष्ट-
स्यायमभिप्रायः—

यथा कोऽपिकारुणिकः पुरुषोऽनेकविधभ्वापदादिकीर्णं महारण्ये तरवरजिक-

से, द्वेष रूपी व्याघ्र से क्रोध रूपी दावानल से मानरूपी महागिरि से,
मायारूपी महापिशाची से, लोभ रूपी महा अजगर से, विषयावली रूपी
विषवल्ली से, कुगुरु रूपी तस्कर से कर्मप्रवृत्ति रूपा वृक्ष पंक्ति से, मिथ्यात्व
रूपी महाअन्धकार से चतुर्गति रूपी विकट लम्बे मार्ग से, तृष्णा रूपी
महानदी से आस्रव रूपी जल से वस्तु कुश्रद्धा रूपी प्रवाह से कुत्सित प्ररूपणा-
तरङ्ग से कुशील रूपी तट से इन्द्रियगण रूपी मकर से संयोग वियोगरूपी
कंटकों से नरक एवं निगोद रूपी महा आवतों में परिभ्रमण जन्य अनेक
विध दुःख परम्परा के संक्लेशों से हो रहे हैं। उन्हें इस संसार कान्तार-
के दुःखों से छुड़ाकर निरुपद्रव, अचल, अरुज, अव्यावाध एवं अपुन-
रावृत्तिक सिद्धिनाम का सुरक्षित स्थान देने वाले यदि कोई हैं तो वे
एक भगवान् ही हैं इसीलिये वे “शरणदय” कहलाये हैं। अभयदय चक्षु-
र्दय मार्गदय तथा शरणदय इन चार पदों का यह अभिप्राय है कि-जिम

(अिंह)धी, द्वेषरूपी व्याघ्रधी, क्रोधरूपी दावानलधी, मानरूपी महा पर्वतधी, मायारूपी
महापिशाचीधी, लोभरूपी महा अजगरधी विषयावलीरूपी विषनी बेलधी, कुगुरु (पराण
शुः) रूपी तस्करधी, कर्मनी प्रवृत्तिरूपी अठनी पांतीधी, मिथ्यात्व (मिथ्यापण्य)रूपी
धार अन्धकारधी, चतुर्गतिरूपी विकट लांणा रस्ताधी, तृष्णारूपी महा नदीधी, आस्रव
(कर्मवुं आत्माभां दाभल थवुं ते)रूपी पाणीधी, कुश्रद्धारूपी प्रवाहधी, कुत्सित प्र परण-
रूपी भोजनश्रेणीधी, कुशीलरूपी किनाराधी, इन्द्रियोना अमूल्यरूपी अजरधी, संयोग वियोग
रूपी कंटकश्रेणी तर्क अने निगोदरूपी महा आवतों (अकरी अथवा पाणीनी कमरी)
भां परिभ्रमणधी उत्पन्न अनेकविध दुःखनी परंपराना संक्लेशोधी वस्तु अर्थ रक्षा
छे. तेमने आ अन्तार कान्तार (निर्जन जंगल)ना दुःखोधी मुक्त करवीने निरुपद्रव,
अचल, अरुज, अव्यावाध अने अपुनरावृत्तिक-सिद्धिनामनुं सुरक्षित स्थान आपनार
ने कोई छे तो ते अक भगवान् न छे. अटला माटे तेजो ‘शरणदय’ कहेनाभां आव्या छे.
अभयदय, अक्षुर्दय मार्गदय तथा शरणदय आ आर पदोना अे अर्थ छे इ-नेवी रीते अे

રાપદ્ધતસર્વસ્વં ભયસ્થાનપતિતં પટ્ટિકાદદ્ધવદ્ધચક્ષુપં પુરુપં નિરીક્ષ્ય તમભયરૂપમધુરાભા
પાદિના સંતોષ્ય પટ્ટિકાપનોદેન ચક્ષુર્દત્યા માર્ગપ્રદર્શનપૂર્વકં નિરૂપદ્રવં સ્થાનં પ્રાપયતિ,
તથૈવ ભગવાનપિ નાનાવિધવલેશસન્તાપસંકુલે વિપુલે ભવારણ્યે કર્મતસ્કરાપદ્ધતાત્મગુણ
સર્વસ્વં મોહાચ્છાદિતનેત્રં ભવ્યજનં 'મો ભવ્ય ! મા ભૈવીઃ, બુદ્ધ્યસ્ત્ર નિજાત્મ-
સ્વરૂપમ્' इति सम्बोधनपुरस्सरं सन्तोष्य ज्ञानचक्षुर्दानेन सम्यग्दर्शनादिलक्षणं
મોક્ષમાર્ગ પ્રદર્શ્ય નિર્વાણરૂપં શરણં દદાતીતિ ।

મકાર કોઈ કારુણિક (દયાળુ) પુરુષ અનેક વિધ દિસજન્તુઓં સે આત્મીર્ણ
હુપ મહારણ્ય મેં ચોરોં દ્વારા જિસકા સર્વસ્વ હરણ કર લિયા ગયા હૈ
ઔર જિસે ભયસ્થાન મેં ઢાલ દિયા ગયા હૈ-તથા દોનોં ઔલે
જિસકી દદ પટ્ટી સે વાંધ કર જકડ દી ગઈ હૈં એસે પુરુષ કો દેખકર
કરુણાભાવ સે ઉસે અભયપદ મધુર મધુર સ્નેહોત્પાદક આલાપોં સે
ધૈર્ય વંધાતા હૈ-આંલોં સે પટ્ટી ળોલકર ઉસે ચક્ષુ પ્રદાન કરતા હૈ
ઔર અન્ત મેં માર્ગ દિલાકર ઉસે નિરૂપદ્રવસ્થાન મેં પહુંચા દેતા હૈ, ઉસી
તરહ પ્રશુ મી નાનાવિધ વલેશ ઔર સન્તાપ સે સંકુલ (ધિરે) હુપ ઇસ વિસ્તૃત
ભવારણ્ય મેં કર્મ રૂપી લુટેરોં દ્વારા જિસકા આત્મગુણ સર્વસ્વરૂપ છૂટ
લિયા ગયા હૈ તથા જિસકે આન્તર જ્ઞાનરૂપ ચક્ષુઓં પર મોહરૂપી પટ્ટી
વાંધ દી ગઈ હૈ એસે ભવ્યજન કો હૈ ભવ્યો તુમ મત ઢરો, અપને આત્મ
સ્વરૂપ કો સમજો "ઇન વચનો દ્વારા સંતોષિત કર ઉસે જ્ઞાન રૂપી વક્ષુ
પ્રદાનકર સમ્યગ્દર્શનાદિપ મોક્ષમાર્ગ કો દિલા કર નિર્વાણરૂપ અભય-
સ્થાન મેં પહુંચા દેતે હૈં

કારુણિક (દયાળુ) પુરુષ અનેક જાતના દિસક પશુઓથી આકાંત મોટા જંગલમાં
ચોરોએ જેતું સર્વસ્વ હરી લીધું છે, અને જેને ભયસ્થાનમાં ફેંકવામાં આવ્યો છે,
તેમજ તેની બન્ને આંખો મજબૂત પટ્ટીથી બાંધીને કસવામાં આવી છે, એવા પુરુષને
કરુણાવાધી તેને નિર્ભય બનાવનાર મીઠા મીઠા વચનોથી ધીરજ આપે છે, આંખોની
પટ્ટી ખોલીને તેને દૃષ્ટિ અર્પે છે અને અંતે તેને રસ્તા બતાવીને નિરૂપદ્રવ સ્થાનમાં
પહોંચાડે છે, તેમજ પ્રભુ પણ અનેક જાતના કલેશ અને સન્તાપથી ઘેરાયેલા આ
વિશાલ ભવારણ્યમાં કર્મરૂપી લુટારાઓવડે જેતું સર્વસ્વરૂપ આત્મશુષુ છૂંટાઈ ગયું
છે, તેમજ જેમના આન્તરજ્ઞાનરૂપ ચક્ષુઓ ઉપર મોહ (અજ્ઞાન)રૂપી પટ્ટી બાંધવામાં
આવી છે, એવા ભવ્યજનને "હે ભવ્યો તમે મા બીશિા, પોતાના આત્મસ્વરૂપને
સમજો," આ પ્રકારના વચનો વડે અંતુષ્ટ કરીને તેમને જ્ઞાનરૂપી ચક્ષુ અર્પીને
સમ્યગ્દર્શનાદિરૂપ મોક્ષમાર્ગને બતાવીને નિર્વાણરૂપ અભયસ્થાનમાં પહોંચાડે છે.

जीवदयेन-जो वेपु दयते इति जीवदयः, यद्वा-जीवन्ति मृनयो येन स जीवः= संयमजीवितं, तं दयत इति जीवदयस्तेन । 'बोधिदणं' बोधिदयेन-बोधनं बोधि= जिनधर्मप्राप्तिः, प्रथमसंवेगनिर्वेदानुकम्पाऽऽस्तिक्यानां पश्चानुपूर्व्यां प्रादुर्भावोच्चा, तं दयते इति बोधिदयस्तेन । 'धम्मदणं' धर्मदयेन-धर्मः=श्रुतचारित्रलक्षणस्तस्य दयेन 'धम्मदेशणं' धर्मदेशकेन-धर्मः=अगारानगाररूपस्तस्य देशकः=प्ररूपकस्तेन । 'धम्मनायणेणं' धर्मनायकेण धर्मः=क्षायिकज्ञानदर्शनचारित्रात्मकस्तस्य । नायकः= स्वामी-यथावत्परिपालनेन तत्फलपरिभोगात्, यद्वा-धर्मः=श्रुतचारित्रलक्षणस्तस्य नायकः स्वशासनापेक्षया तत्प्ररूपकत्वात्, तेन । 'धम्मसारहिणा' धर्मसार-

‘जीवदय’ जीवों पर दया करने वाले होने से अथवा संयमरूप जीवन प्रदान करने वाले होने से प्रभु में जीवदय यह विशेषण सार्थक है । बोधिदय-जिनधर्म की प्राप्ति होने का नाम बोधि है-अथवा पश्चानुपूर्वी से प्रथम संवेग निर्वेद अनुकम्पा तथा अस्तिक्य इन भावों का प्रादुर्भाव होना इसका नाम भी बोधि है, यह बोधि प्रभु द्वारा ही जीवों को प्राप्त होती है। इसलिये उन्हें बोधिदय कहा गया है। श्रुतचारित्ररूप धर्म का उपदेश जीवों को प्रभु से मिलता है-इसलिये उन्हें धर्मदय, तथा अगार श्रावक और अनगारमुनि रूप धर्म की प्ररूपणा प्रभु द्वारा ही हुई है इसलिये उन्हें धर्मदेशक कहा गया है। तथा वे क्षायिक ज्ञान क्षायिक दर्शन, और क्षायिक चारित्र रूप धर्म के स्वामी हैं क्योंकि वे इनका यथावत् पालन करते हैं और उनके मुखों का परिभोग करते हैं इसलिये वे धर्मनायक हैं। अथवा श्रुतचारित्ररूप धर्म की उन्होंने प्ररूपणा अपने शासन की अपेक्षा

‘एवदय’ एवो उपर दया करना होवाथी अथवा संयमरूप एवम आपनार होवाथी प्रभु भाटे ‘एवदय’ आ विशेषण सार्थक छे. ‘बोधिदय’ जिनधर्म भेणववो तेनुं नाम बोधि छे, अथवा पश्चानुपूर्वी वटे प्रथम, संवेग, निर्वेद, अनुकम्पा अने आस्तिक्य लावोना जन्म थवो एतेनुं नाम पणु बोधि छे. आ बोधि प्रभवटे व एवोने भणे छे. ऐटला भाटे तेमने बोधिदय कहेवाभां आब्या छे. एवोने श्रुत चारित्र्यरूप धर्मना उपदेश प्रभुथी व भणे छे, ऐथी व तेवो धर्मदय नामे प्रसिद्धि पाब्या छे. तेमव अंगार श्रावक अने अनगार मुनिरूप धर्मनी प्ररूपणा प्रभवटे व थर छे, ऐथी व तेमने धर्मदेशक कहेव छे. तेमव तेवो क्षायिकज्ञान, क्षायिकदर्शन अने क्षायिक चारित्र्यरूप धर्मना स्वामी छे, केमके तेवो तेने सारी रीते पोपे छे, अने तेवोना इणोने तेवो सारी रीते भोगवे छे, ऐटला भाटे व तेवो धर्मनायक छे. अथवा पोताना शासननी अपेक्षाथी व श्रुतचारित्र्यरूप धर्मनी तेवोअे प्ररूपणा करी छे, ऐटला भाटे पणु ते तेना (धर्मना) नायक छे. ‘धर्मसारथी’ सारथीनी ऐ करव

थिना-धर्मस्य सारथिः=सञ्चालकः-धर्मसारथिस्तेन ! यथा सारथिरुन्मार्गे गच्छन्तं रथं सन्मार्गमानयति तथा भगवानपि श्रुतचारित्रधर्मस्खलितान् तद्रक्षणोपदेशेन पुनर्धर्ममार्गे स्थापयतीति । 'धर्मवरचाउरंतचक्रवर्तिणा' धर्मवरचातुरन्तचक्रवर्तिना=दानशीलतपोभावैश्चतपूणां नरकादिगतीनां चतुर्णां वा कपायाणामन्तो नाशो यस्मात् स चतुरन्तः, चतुरन्त एव चातुरन्तः, चक्रमिवचक्रम्, चातुरन्त एव चक्रम्=चातुरन्तचक्रम् जन्मजरामरणोच्छेदकत्वेन चक्रतुल्यत्वात्, वरंच तच्चातुरन्तचक्रम्=वरचातुरन्तचक्रम्, वरपदेन राजचक्रापेक्षयाऽस्य श्रेष्ठत्वं व्यज्यते लोकद्वयसाधकत्वात् धर्मएव वरचातुरन्तचक्रं=धर्मवरचातुरन्तचक्रम्, तेन वर्तितुं शीलमस्येति

की है इसलिये भी वे उसके नायक हैं। धर्मसारथी-सारथी का यह कर्तव्य होता है कि वह रथका संचालन ठीकर रूप से करें यदि वह उन्मार्ग पर जा रहा है-तो उसे सन्मार्ग पर ले आवे। अतः इस अपने कर्तव्य का पालक जैसे सारथी होता है, उसी प्रकार प्रभुने भी धर्मरूपी रथ का अच्छी तरह से संचालन किया है। यदि कोई प्राणी धर्मरूपी रथ को उन्मार्ग में ले जाता है-अर्थात् श्रुतचारित्ररूप धर्म स्खलित होता है तो प्रभु उसकी रक्षा करने के उपदेश से पुनः उस धर्म में संस्थापित कर देते हैं। धर्मवरचातुरन्तचक्रवर्ती दान शील तप एवं भावों द्वारा नरकादि चार गतियों का अथवा क्रोधादि चार कपायों का यह धर्मनाशक होता है इस लिये वह चतुरन्त है। जन्म, जरा एवं मरण का उच्छेदक होने से धर्मको चक्र के समान प्रकट किया गया है। वर शब्द का अर्थ श्रेष्ठ है इससे यह बोध होता है कि राज चक्र की अपेक्षा भी यह धर्मरूपी चक्र श्रेष्ठ है। क्यों कि इससे जीव के दोनों लोक

होय छे के ते सारी पेटे रथने डांके, जे ते उन्मार्गे (गोटे रस्ते) जते। होय तो तेने सन्मार्गे (सारा रस्ता) तरक्ष वाणे. माटे जेम आ सारथी पोतानी क्षरने पाणनार होय छे. ते प्रभाणे ज प्रभुजे पणु धर्मरूपी रथने सारी पेटे डांके छे. जे गमे ते प्राणी धर्मरूपी रथने उन्मार्गे (गोटा रस्ता) तरक्ष लक्ष जवाने; प्रयत्न करे अर्थात् श्रुतचारित्र्यरूप धर्मनु' अभिलथाये रीतनु' वर्तन करे तो प्रभु तेना रक्षक थाय, ओटले के धर्मना उपदेशधी तेने क्षरी धर्ममां संस्थापित करे छे. धर्मवरचातुरन्त चक्रवर्ती दान, शील, तप अने भावो वडे नरक वगेरे सार गतियोने अथवा क्रोध वगेरे सार कपायोने आ धर्म नाश करनारे होय छे, ओटला माटे ते 'चतुरन्त' छे. जन्म, जरा [वृद्धावस्था] अने मृत्युने नाश करनार होवाधी धर्मने अकना आकारे जताव्यो छे. वर शब्दने अर्थ श्रेष्ठ छे. ओनाधी जेम जहाय छे के 'शश्वक' करतां पणु धर्मरथक अडियातुं छे. केभडे

धर्मवरचातुरन्तचक्रवर्ती=लोकोत्तर धर्मप्रवर्तकस्तेन धर्मवरचातुरन्तचक्रवर्तिना ।
 'द्वीपो' द्वीपः संसारसमुद्रे निमज्जतां द्वीप 'तुल्यः', 'त्राणं' त्राणं=कर्मकदर्थितानां
 भव्यानां रक्षणसङ्गणः, अतएव तेषां 'सरणगई' शरणगतिः=आश्रयस्थानम्,
 'पइद्धानं' प्रतिष्ठानं=कालत्रयेऽप्यविनाशित्वेन स्थितः, तेन, अत्र तृतीयार्थे प्रथमा ।
 'अप्रतिहतवरज्ञानदर्शनधरेण' अप्रतिहतवरज्ञानदर्शनधरेण-प्रतिहत-भित्त्याद्या-
 वरणस्खलितं न प्रतिहतम्अप्रतिहतं, ज्ञानश्चदर्शनश्चेति ज्ञानदर्शने, अप्रतिहते
 वरज्ञानदर्शने अप्रतिहतवरज्ञानदर्शने, धरतीतिधरः-अप्रतिहतवरज्ञानदर्शनयोर्धरः,

सुखावह बनते हैं। धर्मरूपी श्रेष्ठ चातुरन्त चक्र से वर्तन करने का प्रभु का
 स्वभाव है अतः वे धर्मवरचातुरन्त चक्रवर्ती हैं। इस का निष्कर्षार्थ यह
 है कि प्रभुने जिस धर्म की प्ररूपणा की है वह लोकोत्तर है। ऐसे लोकोत्तर
 धर्म के प्रवर्तक प्रभु के सिवाय और दूसरा कोई नहीं हो सकता है।
 प्रभु द्वीप तुल्य इसलिये प्रकट किये गये हैं कि वे संसाररूपी समुद्र में
 डूबते हुए प्राणियों को एक द्वीप के समान सहारा प्रदान करने वाले
 हैं। "त्राणं" प्रभु कर्मों से कदर्थित हुए भव्य जीवों को रक्षण करने में
 समर्थ हैं इसलिये त्राणरूप हैं। इसलिये "शरणगतिः" उन्हें आश्रयस्थान
 हैं। कालत्रय में भी अविनाशीरूप से स्थित रहने के कारण
 प्रभु प्रतिष्ठान स्वरूप हैं अप्रतिहत वरज्ञानदर्शन धर-प्रभु के अनन्तज्ञान
 और अनन्त दर्शन त्रिकाल में भी किसी भी पदार्थ द्वारा प्रतिहत नहीं
 हो सकते हैं-इसलिये उन्हें अप्रतिहत कहा गया है। अप्रतिहतज्ञान और
 दर्शन को धारण करने वाले केवल एक प्रभु हैं इसलिये वे उस विशेष-

अनाथी एवना अन्ने लोके [छडुलोके अने परलोके] सुभी गने छे. धर्मरूपी श्रेष्ठ
 चातुरन्त चक्रवर्ते वर्तवानी प्रभुनी देव छे. अटला भाटे तेओ धर्मवर चातुरन्त
 चक्रवर्ती छे. ओनो निष्कर्षरूपे आ अर्थ छे के प्रभुओ ने धर्मनी प्ररूपणा
 करी छे, ते [धर्म] लोकोत्तर [अलौकिक अथवा असाधारण] छे. ओवा लोकोत्तर धर्मने
 प्रवर्तनार प्रभु विना अन्य जीवने कोछ पणु न अर्थ शके. प्रभुने द्वीप (गिट)ना नेवा
 अटला भाटे अतावत्रामां आव्या छे के तेओ संसाररूपी समुद्रमां डूगनाश प्रालिओने
 ओके द्वीपनी नेम सहारा आपनार छे. 'त्राणं' कर्मो वडे कदर्थित [दुःखित] थयेल
 एवोनुं रक्षण करवामां प्रभु समर्थ छे, अटला भाटे त्राणरूप छे. ओथी न 'शरण-
 गतिः' तेओनुं आश्रय आपनाइ स्थान छे. त्रहे प्राणमां पणु अविनाशीरूपे [अक-
 रूपे] स्थित रहेवाने लीधे प्रभु प्रतिष्ठान स्वरूप छे. 'अप्रतिहतवरज्ञानदर्शनधरं'
 प्रभुनुं अनन्तज्ञान अने अनन्तदर्शन त्रहे प्राणोमां पणु गमे ते पदार्थ वडे प्रतिहत
 [प्रतिषेध पावेहु] अर्थ शकतुं नथी, ओथी न तेमने अप्रतिहत छडेवामां आव्या
 छे. इकत ओके प्रभु न अप्रतिहतज्ञान अने दर्शनने धारण करनार छे. अटला भाटे तेओने आ

धिना-धर्मस्य सारधिः=सञ्चालकः-धर्मसारधिस्तेन ! यथा सारधिरुन्मार्गे गच्छन्तं
 रथं सन्मार्गमानयति तथा भगवानपि श्रुतचारित्रधर्मस्खलितान् तद्रक्षणोपदेशेन
 पुनर्धर्ममार्गे स्थापयतीति । 'धम्मवरचाउरंतचक्रवट्टिणा' धर्मवरचातुरन्तचक्रवर्ति-
 ना=दानशीलतपोभावैश्चतृपूणां नरकादिगतीनां चतुर्णां वा कषायानामन्तो नाशो
 यस्मात् स चतुरन्तः, चतुरन्त एव चातुरन्तः, चक्रमिव चक्रम्, चातुरन्त एव-
 चक्रम्=चातुरन्तचक्रम् जन्मजरामरणोच्छेदकत्वेन चक्रतुल्यत्वात्, वरंच तच्चातुरन्त-
 चक्रम्=वरचातुरन्तचक्रम्, वरपदेन राजचक्रापेक्षयाऽस्य श्रेष्ठत्वं व्यज्यते लोकद्वय-
 साधकत्वात् धर्मएव वरचातुरन्तचक्रं=धर्मवरचातुरन्तचक्रम्, तेन वर्तितुं शीलमस्येति

की है इसलिये भी वे उसके नायक हैं। धर्मसारथी-सारथी का यह
 कर्तव्य होता है कि वह रथका संचालन ठीकर रूप से करें यदि वह
 उन्मार्ग पर जा रहा है-तो उसे सन्मार्ग पर ले आवे। अतः इस अपने
 कर्तव्य का पालक जैसे सारथी होता है, उसी प्रकार प्रभुने भी धर्मरूपी
 रथ का अच्छी तरह से संचालन किया है। यदि कोई प्राणी धर्मरूपी रथ
 को उन्मार्ग में ले जाता है-अर्थात् श्रुतचारित्ररूप धर्म स्खलित होता है
 तो प्रभु उसकी रक्षा करने के उपदेश से पुनः उस धर्म में संस्थापित कर
 देते हैं। धर्मवरचातुरन्तचक्रवर्ती दान शील तप एवं भावों द्वारा नरकादि
 चार गतियों का अथवा क्रोधादि चार कषायों का यह धर्मनाशक होता
 है इस लिये वह चतुरन्त है। जन्म, जरा एवं मरण का उच्छेदक होने
 से धर्मको चक्र के समान प्रकट किया गया है। वर शब्द का
 अर्थ श्रेष्ठ है इससे यह बोध होता है कि राज चक्र की अपेक्षा
 भी यह धर्मरूपी चक्र श्रेष्ठ है। क्यों कि इससे जीव के दोनों लोक

होय छे के ते सारी पेटे रथने डांके, ने ते उन्मार्गे (भाटे रस्ते) जतो होय तो
 तेने सन्मार्गे (सारा रस्ता) तरङ्ग वाणे. भाटे जेम आ सारथी पोतानी इरजने पाणनार
 होय छे. ते प्रभाण्डे ए प्रभुअे पणु धर्मरूपी रथने सारी पेटे डांकेय्ये छे. ने गमे ते
 प्राणी धर्मरूपी रथने उन्मार्गे (भाटा रास्ता) तरङ्ग लछ जवाने प्रयत्न करे अर्थात् श्रुतचारि-
 त्ररूप धर्मरूपे स्थापन थाय अेरीततुं वर्तन करे तो प्रभु तेना रक्षक थाय, अेटले के धर्मना
 उपदेशधी तेने इरी धर्ममां संस्थापित करे छे. धर्मवरचातुरन्त चक्रवर्ती दान, शील,
 तप अने भावो वडे नरक वगेरे सार गतियोने अथवा क्रोध वगेरे सार कषायोने आ धर्म
 नाश करनारि होय छे, अेटला भाटे ते 'चतुरन्त' छे. जन्म, जरा [वृद्धावस्था] अने मृत्युने
 नाश करनार होवाधी धर्मने रक्षना आकारे पाताये छे. वर शब्दने अर्थ श्रेष्ठ छे.
 अेनाधी अेम ज्ञाय छे के 'राज्यक' करतां पणु धर्मरक्षक अडियातुं छे. केभके

प्राप्तेन । 'बोधपूर्ण' बोधकेन-बुध्यमानान् अन्यान् भव्यजीवान् प्रेरयतीति बोधकस्तेन । 'मुक्तेण' मुक्तेन-अमोचि स्वयं कर्मपञ्जरादिति मुक्तस्तेन । 'मोयोगेण' मोचकेन-मुच्यमानान्-भव्यजीवान् प्रेरयतीति मोचकस्तेन । 'सच्चणुणा' सर्वज्ञेन-सर्वसकलद्रव्यगुणपर्यायलक्षणं चस्तुजातं याथातथ्येन जानातीति सर्वज्ञः, तेन । 'सच्चदरिसिणा' सर्वदर्शिना-सर्व-समस्तं पदार्थस्वरूपं सामान्येन द्रष्टुं शीलमस्याऽसौ सर्वदर्शी तेन । 'सिवं' शिवं-निखिलोपद्रवरहितत्वात्, शिवं कल्याणमयं, 'स्थानं' इत्यस्य विशेषणमिदम्, शिवादीनां सर्वेषां द्वितीयान्तानामग्रेतनेन 'उपगतैः'-इत्यनेनाऽन्वयः । 'अचलं' अचलं-स्वामात्रिक-प्रायोगिक-चलनक्रि

जीवों को प्रभुने बोध प्राप्त करने की प्रेरणा प्रदान की इसलिये वे बोधक हैं, कर्म पंजर से प्रभु स्वयं छूटे इसलिये मुक्त, तथा अन्य भव्य जीवों को कर्म पंजर से छूटने की प्रेरणा की इसलिये मोचक हैं। समस्त द्रव्य और उनके गुण पर्यायों के यथार्थ ज्ञाता होने से प्रभु सर्वज्ञ हैं तथा समस्त पदार्थों का स्वरूप वे सामान्य रूप से जानते हैं इसलिये सर्वदर्शी हैं (सिवमयलमरुयमणंतमक्वयमन्वावाहमपुणरचित्तियं साससंठाणं उवागएणं पंचमस्त अंगस्त विवाहपण्णत्तीय अयमट्टे पण्णत्ते छट्ठस्स णं भंते अंगस्त णायाधम्मकहाणं के अट्टे पण्णत्ते) शिव अचल अरुज अणंन अक्षय, अन्धावाध एवं अपुनरावृत्तिरूप एसे शाश्वत स्थान को प्रभुने प्राप्त किया है। यह स्थान समस्त उपद्रवों से रहित होने के कारण कल्याण मय कहा गया है-इसलिये शिवरूप हैं, इसमें स्वभाविक तथा प्रायोगिक किसी भी तरह की चलन क्रिया नहीं है इसलिये अचलरूप हैं, इसमें

बोध प्राप्त करवानी प्रेरणा आपी ओटला भाटे तेओ जोधक छे. कर्मना पांजरामांथी प्रभु वते मुक्त तथा, ओटला भाटे मुक्त तेमज्जीण लव्य लोवोने कर्मना पांजरामांथी मुक्ति भेणववानी प्रेरणा आपी ओटले तेओ मोचक छे. जधा द्रव्य अने तेमना गुणपर्यायि (पदार्थना गुण अथवा धर्म)नां साथे ज्ञाता होवाधी प्रभु सर्वज्ञ छे. तेमज्जीण पदार्थोना स्वरूपने तेओ सामान्यरूपमां समज्जे छे. ओटला भाटे सर्वदर्शी छे. (सिव मलय मरुय मणंत मक्वयमन्वावाहमपुणरचित्तियं साससंठाणं उवागएणं पंचमस्त अंगस्त विवाहपण्णत्तीय अयमट्टे पण्णत्ते छट्ठस्स-णं भंते अंगस्त णायाधम्मकहाणं के अट्टे पण्णत्ते) शिव, अचल, अरुज, अणुंत, अक्षय, अन्धावाध अने अपुनरावृत्तिरूप ओवा शाश्वत स्थानने प्रभुओ भेणव्युं छे. आ स्थान जधा उपद्रवो वजर होवोने करखे कट्वाणुभय अताववामां आव्युं छे. ओटला भाटे शिवरूप छे. आमां स्वाभाविक तेमज्जी प्रायोगिक बोध पणु वतनी असवानी किया [चलित धवानी किया] नहीं, ओटला भाटे न् अचलरूप छे.

नेन आवरण रहित केवलज्ञान केवलदर्शनधारणा । 'नियदृच्छमेणं' व्यावृत्त-
 च्छन्नना-छाद्यते-आव्रियते केवलज्ञान केवलदर्शनाद्यात्मनोऽनेनेति-छन्न=वातिक
 कर्मवृन्दं ज्ञानाऽऽवरणीयादिरूपं वा कर्मजातम् व्यावृत्त-निवृत्तं-छन्न यस्मात् स
 व्यावृत्तच्छन्न, तेन व्यावृत्तच्छन्नना । जिणेणं' जिनेन-रागद्वेषादिशत्रुविजय-
 शीलेन । 'जावणं' जापकेन-रागद्वेषरिपुं जयन्तं भव्यजीवगणं प्रतिधर्मदेशना-
 दिना प्रेरकेण, 'जि जये' इतिधातोर्णिचि-'कीड्जीनां णीं' इत्यात्वे पुकि ष्वुल् ।
 'तिण्णेणं' तीर्णेन-स्वयं संसारौघाद् उत्तीर्णेन । 'तारणं' तारकेण-तारयति-
 -तरतोऽन्यान् भव्यजीवान् प्रेरयतीति तारकस्तेन । 'बुद्धेणं' बुद्धेन-स्वयंबोधं

पण से कहे गये हैं। तात्पर्य आवरण रहित केवलज्ञान और केवल
 दर्शन को प्रभु धारण करते हैं। इसलिये वे अप्रतिहत वरज्ञानदर्शन वाले
 हैं। व्यावृत्तच्छन्न-छन्न शब्द का अर्थ आवरण करना होता है-केवलज्ञान
 केवलदर्शन आदिरूप आत्मा जिन के द्वारा आव्रित की जाती है ऐसे
 ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय तथा अन्तराय रूप घातककर्म या
 आठों कर्म यहाँ छन्न शब्द से कथित हुए हैं। यह छन्न प्रभु की आत्मा
 से निवृत्त हो चुका है अतः वे व्यावृत्त छन्न हैं। रागद्वेष आदि शत्रुओं
 के विजेता होने से प्रभु जिन हैं तथा इन रागद्वेष रूपी शत्रुओं को
 जीतने की प्रेरणा भव्य जीवों को प्रभुने अपनी धर्मदेशना द्वारा प्रदान
 की अतः प्रभु जापक हैं स्वयं संसार समुद्र से प्रभु पार तिर चुके हैं
 इसलिये तीर्ण हैं, तथा अन्य जीवों को तरने की उन्होंने प्रेरणा की-अतः
 तारक हैं, स्वयंबोध को प्राप्त हो जाने के कारण प्रभु बुद्ध हैं तथा अन्य

विशेषज्ञाथी युक्तकडेवामां आख्या छे. तात्पर्यं ज्ये छे डे आवरणरहितकेवलज्ञानअने
 केवलदर्शनने प्रभु धारणा करे छे. ज्येठला भाटे तेज्यो अप्रतिहतवरज्ञानदर्शनवाणा छे.
 'व्यावृत्तच्छन्न' छन्नशब्दने अर्थ आवरण, करवुं होय छे. केवलज्ञान केवलदर्शन वगेरेइत्थ
 आत्मा जेज्यो वडे आवृत्त (आच्छादित) करवामां आवे छे, ज्येवा ज्ञानावरण, दर्शना-
 वरण, मोहनीय तेमज्ज विघ्नइत्थ घोर घातककर्म अथवा आठे कर्म अर्हुं छन्न शब्द
 वडे कडेवामां आख्यां छे. आ छन्न प्रभुना आत्माथी निवृत्त भयं गयुं छे, ज्येठला
 भाटे तेज्यो व्यावृत्त छन्न छे. रागद्वेष वगेरे शत्रुज्यो वयर विन्य भोगवतार होवाथी
 प्रभु जिन छे, तेमज्ज आ रागद्वेषइत्थी शत्रुज्योने एतयानी प्रेरणा भव्य एवोने
 पोतानी धर्म देशना वडे प्रभुज्ये न् आपी छे, ज्येठला भाटे प्रभु वपक छे. प्रभु
 पाते आ संसारसमुद्रने पार तरी गथा छे, ज्येठला भाटे तेज्यो तीर्ण छे, तेमज्ज
 पीज्ज एवोने तरयानी तेमज्जे प्रेरणा आपी ज्येठला भाटे तेज्यो तारक छे. वते
 ज्येध (ज्ञान) भोगवतार होवाने वीधि प्रभु बुद्ध छे, तेमज्ज पीज्ज एवोने प्रभुज्ये

अस्य ज्ञाताधर्मकथाङ्गस्य कोऽर्थः प्रज्ञमः ? इति प्रश्नवाक्यम् । अथ उत्तरदानाद्य शिष्यं सम्बोधयति—हे जम्बूः । इति—इत्थं प्रकारेणाऽऽमन्त्रणवाक्येनाऽऽमन्त्र्य आर्यं सुधर्मा स्थविरः—आर्यजम्बूनामानमनगारमेवमवादीत्—अकथयत्—हे जम्बूः । खलु निश्चयेन—एवम्—अमुना प्रकारेण श्रमणेन भगवता महावीरेण जावत् संपत्तेन सिद्धिगतिस्थानमुपगतेन पृच्छस्याऽङ्गस्य—ज्ञाताधर्मकथाङ्गस्य द्वौ श्रुतस्कन्धौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथाज्ञानानिच धर्मकथाश्च, एतद्रूपौ द्वौ श्रुतस्कन्धौ कथितौ इत्युत्तरम् पुनर्जम्बूनामाऽनगारः पृच्छं प्रस्ताति 'जहणं भंते' इत्यादि—हे भगवन् ! यदि श्रमणेन भगवता महावीरेण पृच्छस्याऽङ्गस्य द्वौ श्रुतस्कन्धौ प्रज्ञप्तौ—ज्ञातानि च

कहा है तो ज्ञाता धर्मकथाङ्ग नामक छठे अंग का क्या भाव कहा है ? इस तरह अपने शिष्य जंबूस्वामी के प्रश्न को सुनकर सुधर्मास्वामी इस प्रश्न का उत्तर देते हुए कहते हैं कि—(जंबूत्तितरणं अज्ज सुहम्मं येरे अज्ज जंबूणामं अणगारं एवं वयासी) हे जंबू इस प्रकार सम्बोधन वाक्य द्वारा सम्बोधितकर आर्य सुधर्मा स्वामीने आर्य जंबूनामक अनगार से इस प्रकार कहा—(एवं खलु जंबू समणेणं भगवया महावीरेण जाव संपत्तेणं छट्ठस्स अंगस्स दो सुयक्खंधा पणत्ता) हे जंबू ! श्रमण भगवान् महावीर ने जो कि पूर्वोक्त आदिकरादि विशेषणों से विशिष्ट हैं एवं शिवरूप आदि विशेषण संपन्न सिद्धिगति नामक स्थान को प्राप्त हो चुके हैं उन्होंने छठे ज्ञाताधर्मकथाङ्ग के दो श्रुतस्कंध प्ररूपित किये हैं (तं जहा णायणिय धम्मकहाओय) वे ये हैं—१ ज्ञाता और दूसरा धर्मकथा । (जहणं भंते समणेणं भगवया महावीरेण जाव संपत्तेणं छट्ठस्स

इयं पांशुमा अंगेना अर्थं क्खो छे तो ज्ञाताधर्मकथांग नामना छट्ठा अंगेना शे अर्थं क्खो छे. पीताना प्रधान शिष्यं जंबूस्वामीना आ प्रश्नने सांलणीने सुधर्मा स्वामी आ प्रश्नने जवाण आपतां कडे छे (जंबूत्ति तरणं अज्जसुहम्मं येरे अज्ज जंबूणामं अणगारं एवं वयासी) छे जंबू ! आ जतना सणोपान वचन वडे सणोपता आर्यं सुधर्मास्वामीणे आर्यं जंबू नामक अणुगारने आ प्रभाण्णे क्खुं— (एवं खलु जंबू समणेणं भगवया महावीरेण जाव संपत्तेणं छट्ठस्स अंगस्स दो सुयक्खंधा पणत्ता) छे जंबू ! श्रमणु लगवान् महावीर वडे—येओ पूर्वे क्खेल आदि—इरादि विशेषण्णीथी युक्त छे अने शिवरूप विगरे विशेषणु संपन्न सिद्धिगति नामना स्थानने प्राप्त अर्थ गया छे तेमण्णे—छट्ठा ज्ञाताधर्मकथांगना ये श्रुतस्कंध निरूपित कयां छे. (तं जहा णायणिय धम्मकहाओ य) ते आ प्रभाण्णे छे. पहिले—ज्ञाता [१] अने जीने धर्मकथा. [२] (जहणं भंते समणेणं भगवया महावीरेण जाव संपत्तेण

यारहितम् । 'अरुयं' अरुजम्-अविद्यमाना रुजा यस्य तत्, अविद्यमानशरीर-
मनस्कत्वात्, आधिग्याधिरहितमित्यर्थः । 'अणंतं' अनन्तम्-अविद्यमानोऽन्तो=
नाशो यस्य तत्, अतएव 'अवखयं' अक्षयं-नास्ति लेशतोऽपि क्षयो यस्य तत्, अवि-
नाशि-इत्यर्थः, 'अव्यावाहं' 'अव्यावाधम्'-न विद्यते व्यावाधा-पीडा द्रव्यतो
भावतश्च यत्र तत् । 'अपुनरावित्तिं' अपुनरावृत्तिकम्-अविद्यमाना पुनरावृत्तिः=
संसारे पुनरावर्तनं यस्मात् तत्, यत्र गत्या न कदाचिदप्यात्मा विनिवर्तते । इत्थ-
शुक्तिशिवत्वादि विशेषणविशिष्टं. 'सासयं' शाश्वतं-नित्यं 'ठाणं' स्थानम्-
स्थीयतेऽस्मिन्-इति स्थानं लोकाऽग्रलक्षणम्, 'उवगणं' उपगतेन-प्राप्तेन श्रमणेन
भगवता महावीरेण पञ्चमस्याङ्गस्य=व्याख्यामङ्गस्य रूपस्य अयमर्थः-अनन्त-
रोदितत्वेन बुद्ध्या सन्निधावानीतत्वात्प्रत्यक्षं प्रज्ञप्तः-कथितः, ततः पृष्टस्याङ्गस्य-

पहुँचे हुए जीवों को शरीर और मन से रहित होने के कारण आधि-
व्याधिरूप दुःखों को भोगना नहीं पड़ता इसलिये यह अरुजरूप हैं। त्रिकाल
में भी इस स्थान का नाश नहीं होता है इसलिये यह अनन्तरूप हैं
और इसलिये अविनाशी होने से अक्षयरूप है। द्रव्यपीडा तथा भावपीडा
का इसमें लेशतः भी सम्बन्ध नहीं है, इसलिये व्यावाधा-पीडा से
रहित होने के कारण यह अव्यावाध रूप है। इस स्थान पर पहुँचे हुए
जीवों का पुनः संसार में कभी भी आगमन नहीं होता है इसलिये यह अपु-
नरावृत्तिरूप है। शाश्वत होने के कारण यह स्थान नित्य है और लोक
के अग्र भाग में यह स्थित है। ऐसे स्थान को भगवान् महावीर ने प्राप्त
किया है। अतः जम्बूस्वामीने सुधर्मास्वामी से ऐसा पूछा कि ऐसे स्थान-
को प्राप्त हुए तथा आदिकर आदि विशेषणों से युक्त हुए श्रमण भग-
वान् महावीर प्रभुने व्याख्याप्रज्ञप्तिरूप पंचम अंग का अर्थ इस प्रकार

अर्थात् पहोंसेल लुवेने शरीर अने मनथी रहित होवने दीधि आधिग्याधिऽप दुःखो
लोगववानां रहतां नथी, अेटला भाटे अे अरुजऽप छे. त्रल्ले डाणोभां पल्लु आ स्थान
नो नाश थतो नथी, अेटला भाटे आ अनंतऽप छे. अने अेथी अविनाशी होवा गदल
अक्षयऽप छे, द्रव्य पीडा अने लावपीडानो अेनाथी थोरो पल्लु संगंध नथी, अेटला
भाटे व्यावाधा पीडथी रहित होवने कारल्ले आ अव्यावाध ऽप छे. आ स्थाने
पहोंसेल लुवेने इरीथी संसारभां कथारिये पल्लु पाछा इरवानुं थतुं नथी, अेटला
भाटे अे आ अपुनरावृत्तिऽप छे. शाश्वत होवने दीधि आ स्थान नित्य छे, अने
लोडना अग्रलागभां आ अवस्थित छे. अेवा स्थानने लगवान महावीरे भेजल्लु छे.
भाटे जंभूस्वामीअे सुधर्मास्वामीने अेवुं पूछल्लुं के अेवा स्थानने प्राप्त थयेल तेमज्ज
आदिकर वगेरे विशेषणोथी युक्त श्रमण लगवान महावीर प्रल्लुअे व्याख्याप्रज्ञप्ति

(१) उत्क्षिप्तज्ञातम्—मेघकुमारजीवने च हस्तिभवे दावदक्षमानशक जीवरक्षायै पाद उत्क्षिप्तः=ऊर्ध्वीकृत एवं धृत इति तदुपलक्षितमिदं प्रथममध्ययन-मुत्क्षिप्तज्ञातम् । ज्ञातमित्युदाहरण-तदेवाधीयमानत्वादध्ययनम् । एवमग्रेऽपि ।

(२) सङ्घाटकः—धन्यश्रेष्ठि—विजयतस्करयोरेकवन्धन वद्धत्वात्थाभिधायकं ज्ञातं सङ्घाटकज्ञातम् ।

१९ एगूणवीसइमे ॥

जंबू के इस प्रश्नका उत्तर देते हुए श्री सुधर्मास्वामी कहते हैं—जंबू ? भ्रमण भगवान महावीरने जो कि आदिकर आदि विशेषणों से युक्त हैं और शिव आदि रूप सिद्धिगति नामक स्थान पर विराजमान हो चुके हैं उन्होंने ज्ञाता नामक प्रथम श्रुतबंध के इस प्रकार १० अध्ययन प्ररूपित किये हैं— वे हैं—उत्क्षिप्तज्ञात १, संघाटक २, अंड ३, कूर्म ४, शैलक ५, तुंग ६, रोहिणी ७, मल्लि ८, माकंदी ९, चान्द्रिक १०, दावद्रव ११, उदकज्ञात १२, मंडूक १३, तैतलि १४, नंदिकेल १५, अपरकंका १६ आकीर्ण १७ सुंसमा १८, पुंडरीकज्ञात १९। ज्ञात शब्द का अर्थ उदाहरण है उत्क्षिप्तज्ञात में यह कहा गया है कि मेघकुमार के जीवने जब कि यह हस्ती के भव में था दावाग्नि से दक्षमान (जलता हुआ) एक शशक की रक्षा करने के लिये अपने चरण को ऊँचा किया था—सो वह उसे ऊँचा ही किये रहा।

इस उत्क्षिप्त उदाहरण से युक्त होने के कारण इस अध्ययन का नाम भी उत्क्षिप्त ज्ञात पड गया है । संघाटकज्ञात में धन्य श्रेष्ठि और विजय

एगूणवीसइमे ।

जंबूना आ प्रश्ननो ज्वाण आपतां श्री सुधर्मास्व. भीये कहां के—जंबू ! भ्रमण भगवान महावीर—के जेणे आदिकर वगेरे विशेषणोधी विशिष्ट छे, अने शिव वगेरे रूप सिद्धि गति नामना स्थाने विराजमान थया छे. तेणेणे ज्ञाता नामना प्रथमश्रुतना आ दीते जोगाणीस [१६] अध्ययनो प्ररूपित कया छे, ते आ प्रमाणे छे:—उत्क्षिप्तज्ञात १, संघाटक २, अंड ३, कूर्म ४, शैलक ५, तुंग ६, रोहिणी ७, मल्लि ८, माकंदी ९, चान्द्रिक १०, दावद्रव ११, उदकज्ञात १२, मंडूक १३, तैतलि १४, नंदिकेल १५, अपरकंका १६, आकीर्ण १७, सुंसमा १८, पुंडरीकज्ञात १९, ज्ञात शब्दना अर्थ उदाहरण छे. उत्क्षिप्तज्ञातना अर्थ अतावव मां अ वुं छे के मेघकुमारने एव ज्यारे ते जाधीना लव (स्वल्प) मां छते, त्यारे दावाग्निधी जणता असल नी रक्षा करवा भाटे पोताना पगने अदर क्यो छते, ते तेने अदर न राधता रखा.

आ उत्क्षिप्त उदाहरणधी युक्त होवाने कारणे आ अध्ययनना नाम पणु उत्क्षिप्त ज्ञात पड्युं छे. १, संघाटकज्ञातमां धन्य श्रेष्ठी अने विजय चोरने लगती कथा छे,

धर्मकथाश्च, अनयोः श्रुतस्कन्धयोर्मध्ये प्रथमस्य-ज्ञातारूपस्य खलु भगवन् ! श्रुत-
स्कन्धस्य श्रमणेन यावत्सम्प्राप्तेन=शाश्वतस्थानमुपगतेन भगवता महावीरेण
ज्ञातानां कति अध्ययनानि मङ्गलानि-कथितानि, एवं मन्त्रे कृते सुधर्मास्वामी-
उचरमाह-एवं खलु जंबूः ! खलु-निश्चयेन एवम्=एतन्नामकप्रथमाश्रुतस्कन्धस्य
एकोनविंशतिरध्ययनानि मङ्गलानि, तद्यथा तानि सार्द्धं श्लोकद्वयेन दर्शयति-‘उक्त्वा-
त्तणाए’ इत्यादि ।

अंगस्स दो सुयक्खंधा पणत्ता तंजहा णायणीय धम्मकहाओ य । पढमस्स णं-
अंते ! सुयक्खंधस्स समणेणं जाव संपत्तेणं णायणं कइ अज्झयणा पणत्ता?)
पुनः जंबू पूछते हैं भदन्त? यदि श्रमण भगवान महावीरने कि जो आदि-
करादि विशेषणोंवाले एवं शिव आदि विशेषण संपन्न सिद्धिगति नामक
स्थान पर पहुँच चुके हैं छठे अंगके ये दो श्रुतस्कन्ध प्ररूपित किये हैं-
१ ज्ञाता और दूसरा धर्मकथा-तो भदन्त! प्रथम श्रुतस्कन्ध ज्ञाता के उन
श्रमणभगवान महावीरने कि जो पूर्वोक्त विशेषण वाले हैं एवं शिव आदि
विशेषण युक्त स्थान पर विराजमान हो चुके हैं उन्होंने कितने अध्य-
यनप्ररूपित किये हैं? (एवं खलु जंबू? समणेणं जाव संपत्तेणं णायणं
एगूणवीसं अज्झयणा पणत्ता तं जहा उक्त्वात्तणाए संव्वाडे २, अंडे ३,
कुम्मे ४, सेलगे ५, तुवे ६, य रोहिणी ७ मल्ली ८ मायदी ९, चंदीमाइय १०
॥१॥ दावहवे ११, उदगणाए १२ मंडुक्के १३, तेयली १४, विय। नंदीफले
१५, अवरकंका १६, आइन्ने १७, सुसमा १८ इय। अवरं य पुंडरीय णायण

छट्ठस्स अंगस्स दो सुयक्खंधा पणत्ता तं जहा णायणीय धम्मकहाओ य । पढ-
मस्स णं अंते ! सुयक्खंधस्स समणेणं जाव संपत्तेणं णायणं कइ अज्झयणा
पणत्ता?) इरी जंबू पूछे छे के हे भदन्त? जे श्रमण भगवान महावीरि-
नेओ आदिकरादि विशेषणोधी युक्त अने शिव वगेरे विशेषणोधी संपन्न सिद्ध गति
नामना स्थाने पहुँचिओ छे-तेओओ छट्ठा अंगना आ जे श्रुतस्कंध निरूपित कथा छे-[१] ज्ञात
अने जीजे धर्मकथा तो हे भदन्त! प्रथम श्रुतस्कंध ज्ञाताना ते श्रमण भगवानं
महावीरि-नेओ पूर्व छेवामां आवेला जथा विशेषणोधी युक्त छे अने शिव वगेरे
विशेषण युक्तस्थाने विराजमान थयेल छे, तेमणुं केटला अध्ययना निरूपित कथा छे?
(एवं खलु जंबू? समणेणं जाव संपत्तेणं एगूणवीसं अज्झयणा पणत्ता तं
जहा उक्त्वात्तणाए १, संव्वाडे २, अंडे ३, कुम्मे ४, सेलगे ५, तुवे ६,
य रोहिणी ७, मल्ली ८, मायदी ९, चंदिमाइय १० ॥१॥ दावहवे ११
उदगणाए १२, मंडुक्के १३, तेयली १४, विय। नंदी फले १५, अवर-
कंका १६, आइन्ने १७ सुसमा १८, इय। अवरं य पुंडरीयणायण १९

(१) उत्क्षिप्तज्ञातम्—मेघकुमारजीवेन स्व हस्तिभवे दावदत्तमानशशक जीवरक्षायै पाद् उत्क्षिप्तः=ऊर्ध्वीकृत एवं धृत इति तदुपलक्षितमिदं प्रथममध्ययन-मुत्क्षिप्तज्ञातम् । ज्ञातमित्युदाहरम्—तदेवाधीयमानत्वादध्ययनम् । एवमग्रेऽपि ।

(२) सङ्घाटकः—धन्यश्रेष्ठि—विजयतस्करयोरेकवन्धन षट्त्वार्थाभिधायकं ज्ञातं सङ्घाटकज्ञातम् ।

१९ एगूणवीसहमे ॥

जंबू के इस प्रश्नका उत्तर देते हुए श्री सुधर्मास्वामी कहते हैं—जंबू ? भ्रमण भगवान महावीरने जो कि आदिकर आदि विशेषणों से युक्त हैं और शिव आदि रूप सिद्धिगति नामक स्थान पर विराजमान हो चुके हैं उन्होंने ज्ञाता नामक प्रथम श्रुतस्वंध के इस प्रकार १० अध्वरन प्ररूपित दिये हैं— वे घेहें—उत्क्षिप्तज्ञात१, संघाटक२, अंड३, कूर्म४, शैलक५, तुंग६, रोहिणी७, मड्डि८, माकंदी९, चान्द्रिक१०, दावद्रव११, उदकज्ञात१२, मंडूक१३, तैतलि १४, नंदिफल१५, अपरकंका१६ आकीर्ण१७ सुंसमा१८, पुंडरीकज्ञात१९। ज्ञात शब्द का अर्थ उदाहरण है उत्क्षिप्तज्ञात में यह कहा गया है कि मेघकुमार के जीवने जब कि यह हस्ती के भव में था दावाग्नि से दत्तमान (जलता हुआ) एक शशक की रक्षा करने के लिये अपने चरण को ऊंचा किया था—सो वह उसे ऊंचा ही किये रहा।

इस उत्क्षिप्त उदाहरण से युक्त होने के कारण इस अध्ययन का नाम भी उत्क्षिप्त ज्ञात पड गया है । संघाटकज्ञात में धन्य श्रेष्ठि और विजय

एगूणवीसहमे ।

जंबूना आ प्रश्ननो जवाण आपतां श्री सुधर्मास्व. भीष्मे कर्षुं के—जंबू ! भ्रमण भगवान महावीर—के जेजो आदिकर वगेरे विशेषणोधी विशिष्ट छे, अने शिव वगेरेइप सिद्धि गति नामना स्थाने विराजमान थया छे. तेजोअे ज्ञाता नामना प्रथमश्रुतना आ रीते जोगाणीस [१६] अध्ययनो प्ररूपित क्यो छे, ते आ प्रमाणे छे:—उत्क्षिप्तज्ञात १, संघाटक२, अंड ३, कूर्म ४, शैलक, ५, तुंग ६, रोहिणी ७, मड्डि ८, माकंदी ९, चान्द्रिक १०, दावद्रव ११, उदकज्ञात १२, मंडूक १३, तैतलि १४, नंदिफल १५, अपरकंका १६, आकीर्ण १७, सुंसमा १८, पुंडरीकज्ञात १९, ज्ञात शब्दनो अर्थ उदाहरण छे. उत्क्षिप्तज्ञातना अे गतावप मां अ व्युं छे के मेघकुम रनो एव न्यारे तें छाधीना लव (स्वइय) मां छते, त्यारे हवाग्निथी गणता ससल नी रक्षा करवा भाटे पेताना पगने अद्धर क्यो छते, ते तेने अद्धरज शणता रह्या.

आ उत्क्षिप्त उदाहरणथी युक्त होवाने कारणे आ अध्ययनतुं नाम पण उत्क्षिप्त ज्ञात पड्युं छे. १, संघाटकज्ञातमां धन्य श्रेष्ठी अने विजय चोरने लगती कथा छे,

ધર્મકથાશ્ચ, અનયોઃ શ્રુતસ્કન્ધયોર્મધ્યે પ્રથમસ્ય-જ્ઞાતારૂપસ્ય સ્વલુ ભગવન્ ! શ્રુત-સ્કન્ધસ્ય શ્રમણેન યાવત્સમ્પ્રાપ્તેન=શાશ્વતસ્થાનમુપગતેન ભગવતા મહાવીરેણ જ્ઞાતાનાં કતિ અધ્યયનાનિ પ્રજ્ઞપ્તાનિ-રૂઠિતાનિ, એવં પ્રથ્ને કૃતે સુધર્માસ્વામી-ઉત્તરમાહ-એવં સ્વલુ જંબૂઃ ! સ્વલુ-નિશ્ચયેન એવમ્=એતન્નામકપ્રથમાશ્રુતસ્કન્ધસ્ય એકોનવિંશતિરધ્યયનાનિ પ્રજ્ઞપ્તાનિ, તદ્વથા તાનિ સાર્દ્ધશ્લોકદ્વયેન દર્શયતિ-'ઉત્તિ-ચ્ચના' ઇત્યાદિ ।

અંગસસ દો સુયવલંબા પળ્ણત્તા તંજહા ણાયાણીય ધમ્મકહાઓ ય । પદમસસ ણં-ખંતે ! સુયવલંબસસ સમણેણં જાવ સંપત્તેણં ણાયાણં કહ્ અજ્ઞયણા પળ્ણત્તા?) પુનઃ જંબૂ પૂછતે હૈં મદન્ત ? યદિ શ્રમણ ભગવાન મહાવીરને કિ જો આદિ-કરાદિ વિશેષણીંવાલે એવં શિવ આદિ વિશેષણ સંપન્ન સિદ્ધિગતિ નામક સ્થાન પર પહુંચ ચુકે હૈં છદ્દે અગકે યે દો શ્રુતસ્કંધ પ્રરૂપિત કિયે હૈં-૧ જ્ઞાતા ઓર દૂસરા ધર્મકથા-તો મદંત! પ્રથમ શ્રુતસ્કન્ધ જ્ઞાતા કે ઉત્ત શ્રમણભગવાન મહાવીરને કિ જો પૂર્વોક્ત વિશેષણ વાલે હૈ એવં શિવ આદિ વિશેષણ યુક્ત સ્થાન પર વિરાજમાન હો ચુકે હૈ ઉન્હોને કિતને અધ્ય-યનપ્રરૂપિત કિયે હૈં? (એવં સ્વલુ જંબૂ? સમણેણં જાવ સંપત્તેણં ણાયાણં પગૂળવીસં અજ્ઞયણા પળ્ણત્તા તં જહા ઉત્તિચ્ચના' સંચ્રાહેર, અંટેર, કુમ્મેર, સેલગેર, તુવેર, યરોહિણી.૭ મલ્લીર માયંદીર, ચંદીમાહયર ૧૦ ॥૧॥ દાવહવેર, ઉદગણા'ર મંડુલકેર, તેયલીર, વિય । નંદીફલે ૧૫, અવરકંકાર, આહન્નેર, સુસમાર ૧૮ હય । અવરે ય પુંડરીય ણાયણ

છદ્દસસ અંગસસ દો સુયવલંબા પળ્ણત્તા તં જહા ણાયાણીય ધમ્મકહાઓ ય । પદ-મસસ ણં ખંતે ! સુયવલંબસસ સમણેણં જાવ સંપત્તેણં ણાયાણં કહ્ અજ્ઞયણા પળ્ણત્તા?) કરી બંબૂ પૂછે છે કે હે ભદન્ત ? જે શ્રમણ ભગવાન મહાવીર-નેઓ આદિકરાદિ વિશેષણોથી યુક્ત અને શિવ વગેરે વિશેષણોથી સંપન્ન સિદ્ધ ગતિ નામના સ્થાને પહોંચ્યા છે-તેઓએ છઠ્ઠા અંગના આ બે શ્રુતસ્કંધ નિરૂપિત કર્યા છે-[૧] જ્ઞાત અને બીજા ધર્મકથા તો હે ભદન્ત ! પ્રથમ શ્રુતસ્કંધ જ્ઞાતાના તે શ્રમણ ભગવાન મહાવીર-નેઓ પૂર્વે કહેવામાં આવેલા બધા વિશેષણોથી યુક્ત છે અને શિવ વગેરે વિશેષણ યુક્તસ્થાને વિરાજમાન થયેલ છે, તેમણે કેટલા અધ્યયનો નિરૂપિત કર્યા છે? (એવં સ્વલુ જંબૂ? સમણેણં જાવ સંપત્તેણં પગૂળવીસં અજ્ઞયણા પળ્ણત્તા તં જહા ઉત્તિચ્ચના' ૧, સંચ્રાહે ૨, અંટે ૩, કુમ્મે ૪, સેલગે ૫, તુવે ૬, યરોહિણી ૭, મલ્લી ૮, માયંદી ૯, ચંદિમાહય ૧૦ ॥૧॥ દાવહવે ૧૧, ઉદગણા' ૧૨, મંડુલકે ૧૩, તેયલી ૧૪, વિય । નંદી ફલે ૧૫, અવર-કંકા ૧૬, આહન્ને ૧૭ સુસમા ૧૮, હય । અવરે ય પુંડરીયણાયણ ૧૯.

(१२) उदकज्ञातम्-उदकं=नगरपरिखाजलं, तदुदाहरणेन पुद्गलस्वभाव प्रतिपादकत्वाद्ज्ञातम् उदकज्ञातम् ।

(१३) मण्डूकः-भेकः-नन्दिमणिकार श्रेष्ठिजीवः, तच्चरित्रोपलक्षितं मण्डूकज्ञातम्।

(१४) तेतलिः-तेतलिरिति तेतलिपुत्रः मूचामात्रत्वात्पुत्रस्य, स कनकरथराजा-
मात्यः, तदुपलक्षितं तेतलिज्ञातं तेतलिपुत्रज्ञातमित्यर्थः ।

(१५) नन्दिफलम्-नन्दिफलाभिधाना आपातभद्राः परिणामदारुणावृक्षाः,
तदुदाहरणप्रतिपादकमध्ययनं नन्दिफलज्ञातम् ।

(१६) अपरकङ्का-धातकीखण्ड-भरतक्षेत्र राजधानी, तत्र परिहृतद्रौपद्या-
नयनार्थं कृष्ण वामुदेव गमनरूपाश्रयादि प्ररूपकं ज्ञातम् अपरकङ्काज्ञातम् ।

(१७) आकीर्णः-आकीर्णाः-कालिकद्वीपवर्तिनो जात्याश्वाः, तदुदाहरणो-
पलक्षितम् आकीर्णज्ञानम् ।

(१८) सुंसुमा-सुंसुमानाम्नी धन्यश्रेष्ठिदुहिता, तच्चरित्रविषयकमध्ययनं
सुंसुमाज्ञातम् ।

(खाइं) के जल के दृष्टान्त द्वारा पुद्गल के स्वभाव का प्रतिपादन किया गया है १२, मंडूकज्ञात में नन्दिमणिकारसेठ का जीव जो मंडूक हुआ था उसका जीवनचरित्र कहा गया है १३। तेतलिज्ञात में कनकरथराजा के श्रमात्य तेतलि का जीवन चरित्र लिखा गया है १४। नन्दीफलज्ञात में नन्दिफल-जो देखने में तो बड़ा सुन्दर होता है परन्तु उसका परिणाम बड़ा ही दारुण होता है- यह-चात स्पष्ट की गई है १५। अपर कंकजात में भातकी खंडस्थ भरत क्षेत्र की राजधानी अपरकंका में परिहृत द्रौपदी को लाने के लिये गये हुए कृष्ण वामुदेव का वर्णन किया है १६। आकीर्णज्ञात में कालिक द्वीप में रहे हुए जात्यश्वों (जातिमान अश्वों) का उदाहरण प्रदर्शित किया गया है १७। सुंसुमाज्ञात में धन्य श्रेष्ठी की पुत्री का चरित्र लिखा गया

११, उदकज्ञातमां परिणा (पाठ)ना पाणीना उदाहरण वडे पुद्गलना स्वभावतुं निर-
पणु करवाभां आभ्युं छे. १२ मंडूकज्ञातमां नन्दि मणिकार शेडने एव वे मेडूक (हड्डे)।
थयो, तेना एवननी कथा डडेवाभां आवी छे १३, तेतलीजातमां कनकरथ राजना
भन्त्री तेतलीतुं एवन अरित्र लणवाभां आ-भ्युं छे १४, नन्दीक्षणज्ञातमां नन्दीक्षण वे
नेवाभां गडु व साडं डाय छे, पणु तेनुं परिणाम गडु व पराण डाय छे, आ वात
स्पष्ट करवाभां आवी छे. अपरकंकाज्ञातमां धातकी षड क्षेत्रनी राजधानी अपरकंकाभां
परिहृत द्रौपदीने लाववा भाटे गथेव कृष्ण-वामुदेवतुं वर्णन करायुं छे १६. आकीर्ण-
ज्ञातमां कालिकद्वीपमां रहेता नत्यश्वो (नतिमान अश्वो)तुं दृष्टान्त अताववाभां आभ्युं
छे १७. सुंसुमाज्ञातमां धन्य श्रेष्ठीनी पुत्रीतुं अरित्र लणायुं छे. १८. पुंडरीकज्ञातमां

(३) अण्डम्-सूचनात्सूत्रमिति न्यायादत्र-‘अण्ड’ मिति मयूराण्डम्, तद्वृ-
पलक्षितमध्ययनम्-अण्डकज्ञातम् ।

(४) कूर्मः-कूर्म इति कच्छपः, तदुदाहरणेन गुप्त्यगुप्तिगुणदोषप्रति-
पादकत्वादिदं कूर्मज्ञातम् ।

(५) शैलकः-शैलकराजपिपिक्तव्यताविषयकमध्ययनं शैलकज्ञातम् ।

(६) तुम्बम्-अलायूः, तदुदाहरणप्रतिपादकत्वेन तन्नाम्ना प्रसिद्धं तुम्बज्ञातम् ।

(७) रोहिणी-धन्यसार्थवाहपुत्रस्य धनरक्षणतत्परा भार्या, तस्याः शालि-
कणसुरक्षणवर्धनोदाहरणेन समुपलक्षितं रोहिणीज्ञातम् ।

(८) मल्लीः-एतन्नाम्नी कुम्भकराजपुत्री-एकीनविंशतितम-तीर्थकरपद-
धारिणी तदुदाहरणोपलक्षितं मल्लीज्ञातम् ।

(९) माकन्दी-अत्र माकन्दी शब्देन माकन्दीदारको गृह्यते, तन्नाम्ना
प्रसिद्धं माकन्दीज्ञातमिति माकन्दीदारकज्ञातमित्यर्थः ।

(१०) चान्द्रिकः-चन्द्रोदाहरणप्रतिपादकत्वाच्चान्द्रिकज्ञातम् ।

(११) दावद्रवः-स्वनामग्यातः समुद्रतटस्थो वृक्षविशेषः, तदुपलक्षितं
दावद्रवज्ञातम् ।

चोर के संबन्ध की कथा है २। अण्डाध्ययन में मयूराण्ड की ३। कूर्मा-
ध्ययन में कूर्म के उदाहरण को लेकर गुप्ति और अगुप्ति के गुण दोषों
का वर्णन किया गया है ४। शैलकज्ञात में शैलकराजपि के संबन्ध की
कथा है। तुम्बज्ञात में अलायू-तुम्बी-का उदाहरण प्रतिपादित किया गया है ६।
रोहिणी ज्ञात में धन्य सार्थवाह के पुत्रवह की कथा है जो धनके रक्षण
और उसके वर्धन करने में विशेष चतुर थी ७। मल्लीज्ञात में १९वें भगवान्
श्री मल्लीनाथ की कथा कही गई है। ये कुम्भकराज की पुत्री थीं ८,
माकन्दीज्ञात में माकन्दी दारक की कथा कही हुई है ९। चान्द्रिकज्ञात में
चंद्रमा का उदाहरण दिखाया गया है १०। दावद्रवज्ञात में-समुद्र तट पर
रहे हुए दावद्रव विशेष का दृष्टान्त दिया गया है ११। उदकज्ञात में परिखा

२. अण्डाध्ययनमां भयूराण्डनी ३. कूर्माध्ययनमां कूर्म (कायणे) ने दाभले लक्ष्मिने गुप्ति
अने अगुप्तिना गुण दोषानुं वर्णन क्युं छे ४. शैलकज्ञातमां शैलक राजपिना अंधा-
धनी कथा छे. ५. तुम्बज्ञातमां अलायू (तुम्बी)तुं उदाहरणु आच्युं छे ६. रोहिणी-
ज्ञातमां धन्यसार्थवाहनी पुत्रवधुओनी कथा छे. ७. धननुं रक्षणु अने तनुं वर्धन
करवामां गुरु अतुर इती ७. मल्लीज्ञातमां मल्लीनाथीनामा (१८) भगवान् श्री मल्लीनाथनी
कथा कहेवामां आवी छे ८. ये कुम्भकराजना पुत्री इत्ता. माकन्दी ज्ञातमां माकन्दी दार-
कनी कथा वर्णववामां आवी छे ९. चान्द्रिक ज्ञातमां चन्द्रनुं उदाहरणु आपवामां आच्युं छे १०.
दावद्रवज्ञातमां समुद्रना किनारे रहेले दावद्रव विशेषने दाभले आपवामां आच्ये छे

सर्वभूमियासु लङ्घयन् विद्वेषणवियारे रज्जधुरचित्त ए यात्रि होत्था,
सेणियस्स रन्नो रज्जं च रट्ठं च कोसं च कोट्टागारं वलं च वाहणं च
पुरं च अंतेउरं च समयमेव समुवेक्खमाणे समुवेक्खमाणे विहरइस्सु, ४।

टीका—‘जङ्घणं भंते !’ इत्यादि । जम्बूस्वामी भगवन्तमार्यसुधर्मस्वामिनं
पृच्छति—यदि खलु भगवन् ! श्रमणेन यावत्सम्प्राप्तेन ज्ञातानां=ज्ञाताख्य-
स्य प्रथमश्रुतस्कन्धस्यैकोनविंशतिरध्ययनानि-प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-उत्क्षिप्तज्ञातादीनि
यावत्=पुण्डरीकज्ञातानि च, एतेषु प्रथमस्य खलु भगवन् ! अध्ययनस्य=
उत्क्षिप्तज्ञाताख्यस्य कोऽर्थः प्रज्ञप्तः ? । इति प्रश्ने क्लृप्तेति-आर्यसुधर्मास्वामी प्राह-
एवम्=अमुना प्रकारेण खलु=निश्चयेन हे जम्बूः ! तस्मिन् काले तस्मिन्
समये इहैव=निवासाधारतया प्रत्यक्षाऽऽसन्ने न तु जम्बूद्वीपानामसङ्ख्यतयाऽन्य-

❁ जङ्घणं भंते ! समणेणं जाव इत्यादि ❁

जंबूस्वामी-आर्य सुधर्मास्वामी से पुनः यह पूछते हैं कि (जाव
संपत्तेणं समणेणं) आदि करआदि विशेषणों से लेकर-सिद्धिगति को प्राप्त ।
हुए विशेषणों वाले श्रमण भगवान-महावीरने (णायाणं एगूणवीसा अज्झ-
यणा पणत्ता) ज्ञाता नामक-प्रथम श्रुतस्कंध के ये १०, उन्नीस अध्ययन कहे
हैं (तं जहा) जैसे (उत्क्षिप्तज्ञाता ए जाव पुंडरीएत्तिय) उत्क्षिप्तज्ञात से लगाकर-
पुंडरीकज्ञात तक । तो इनमें (पढमस्स णं भंते । अज्झयणास्स के-अट्टे पणत्ते)
प्रथम अध्ययन जो उत्क्षिप्तज्ञात है उसका क्या अर्थ उन्होंने प्रतिपादित
किया है । इसप्रकार जंबूस्वामी का वक्तव्य सुनकर श्री सुधर्मास्वामी उत्तर
रूप में यह कहते हैं कि-(एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समणेणं इहैव

“जंबूणं भंते ! समणेणं जाव इत्यादि”

जंबूस्वामी आर्य सुधर्मास्वामीने इरी आ प्रभाषे पूछे छे के (जाव संपत्तेणं समणेणं)
आदि कर आदि विशेषणोंकी लक्षणे सिद्धिगतिने प्राप्त करेले विशेषणोंवाला श्रमण
भगवान महावीरे (णायाणं एगूणवीसा अज्झयणा पणत्ता) ज्ञाता नामना प्रथम
श्रुतस्कंधना ये ओगाणीअ (१६) अध्ययना कहां छे. (तं जहा) येभ के
(उत्क्षिप्तज्ञाता ए जावपुंडरीएत्तिय) उत्क्षिप्तज्ञातकी लक्षणे पुंडरीकज्ञात सुधी तो
येभनामां (पढमस्स णं भंते ! अज्झयणास्स के अट्टे पणत्ते) प्रथम अध्ययन के
उत्क्षिप्तज्ञात छे, तेना ये अर्थ तेओये गताओ छे ? आ रीते जंबूस्वामीना
वचनो आंलणीने श्री सुधर्मास्वामी उत्तरमां आं प्रभाषे छे छे के-(एवं खलु
जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समणेणं जंबू हीवे दीवे भारहे वासे दाहिणइहे भ. हे

अपरं च अन्यत्—एकोनविंशतितमं—

(१९) पुण्डरीकज्ञातम्—पुण्डरीकः=पुष्कलावतीविजयमध्यवर्तिपुण्डरीकिणी नगर्यामेतन्नामको राजा, तद्रक्तन्यता प्रतिवद्धत्वादिदं पुण्डरीकज्ञातम् ।

इत्थं सङ्कलनया प्रथमश्रुतस्कन्धे ज्ञातानामके एकोनविंशतिसंख्यकानि ज्ञातानि—उत्क्षिप्तादीनि सन्ति ॥मू० ३॥

मूलम्—जड़णं भंते समणेणं जाव संपत्तेणं एगूणवीसा अज्झ यणा वणत्ता तं जहो—उत्खित्तणाए जाव पुंडरीए त्ति य, पढमस्स णं भंते अज्झयणस्स के अट्टे पन्नत्ते ? एवं खलु जंवू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं इहेव जंबुदीवे दीवे भारहे वासे दाहिणद्वे भरहे राय-गिहे णामं नयरे होत्था वणणओ, गुणसिलए चेइए वन्नओ । तत्थणं रायगिहे नयरे सेणिए नामं राया होत्था, महयाहिमवंतं वणणओ । तस्स णं सेणियस्स रन्नो नंदा नामं देवी होत्था सुकुमालपाणिपाया वणणओ ।

तस्स णं सेणियस्स रन्नो पुत्ते नंदाए देवीए अत्तए अभए नामं कुमारे होत्था, अहीण जाव सुरूवे साम—दंड—भेय—उवप्पयाणणीति—सुप्पउत्तणयविहिन्नू ईहा—वूह—मग्गण—गवेसण—अत्थसत्थ—मइविसारए उप्पत्तियाए वेणइयाए कम्मियाए पारिणा-मियाए चउव्विहाए बुद्धिए उववेए सेणियस्स रण्णो बहुसु कजेसु य कुडुंवेसु य मंतेसु य गुज्जेसु य रहस्सेसु य निच्छएसु य आपु-च्छणिजे पडिपुच्छणिजे मेढीपमाणं आहारे आलंघणं चक्खू मेढी-भूए पमाणभूए आहारभूए आलंघणभूए चक्खूभूए सच्चकजेसु

है १८। पुण्डरीकज्ञात में पुष्कलावती विजय के मध्य में रही हुई पुण्डरी किणी नान की नगरी में पुण्डरीक राजा की कथा दिखलाई गई है १९ ॥३॥

पुष्कलावती विजयना मध्यमां आवेली पुंडरीकिणी नामनी नगरीमां पुंडरीक राजतनी इथा यतायवामां आवी छे १८. ॥३॥

पर्वतः क्षुल्लहिमवत्पर्वतापेक्षया—उच्चत्वायामोद्वेध (गाम्भीर्यं) विष्कम्भपरिक्षेपादिना
 रत्नमयपद्मवरचेदिका नानामणिरत्नमयकूट=रत्नतरुश्रेणिप्रभृतिना क्षेत्रमर्यादाका-
 रित्वेन च महान् तथा श्रेणिकभूपोऽपि शेषराजापेक्षया जातिकुलनीतिन्यायादिना
 विपुलधनकनकरत्नमणिमौक्तिकशङ्खशिलाप्रवाल—राज्यराष्ट्रवल्गवाहनकोशकोष्ठागा-
 रादिना जातिकुलधर्ममर्यादाकारित्वेन च महान् वरीवर्ति, तथा-सर्वजनमनोमोदक-
 तथा विस्तृतयशः कीर्तिरूपसुगन्धतया च महामलयवत्, औदार्य-धैर्य-गाम्भी-
 र्यादिगुणैर्मन्दरवत्, भूपट्टन्दे दिव्यर्द्धि-दिव्यद्युति-दिव्यप्रभावादिभिर्महेन्द्रवत्

के-जैसा श्रेष्ठ था। जैसे महा हिमवान् पर्वत अन्य छोटे २ पर्वतोंकी
 अपेक्षा उच्चता आयाम (दीर्घता) एवं उद्वेध (गाम्भीर्यं) तथा विष्कम्भ
 और परिक्षेप आदि द्वारा रत्नमय पद्म की वरचेदिकाद्वारा नानामणि मय
 एवं रत्नमय कूटों द्वारा तथा कल्पवृक्षोंकी पंक्तियोंद्वारा क्षेत्र की मर्यादा-
 कारी होने से महान् माना जाता है उसी प्रकार श्रेणिक राजा भी अन्य
 राजाओं की-अपेक्षा, जाति, कुल नीति, न्याय आदिद्वारा विपुल धन,
 कनक, रत्न, मणिमौक्तिक, शंख शिला-प्रवाल द्वारा, राज्य, राष्ट्रवल्ग,
 वाहन कोश, कोष्ठागार आदि द्वारा, जाति कुल, धर्म की मर्यादा करनेवाला
 होने से महा हिमवान् जैसा कहा गया है। समस्तजनता के मन को प्रसन्न
 करनेवाला होनेसे तथा विस्तृत यश एवं कीर्तिरूप सुगन्धवाला होनेसे
 महामलयकी तरह वह श्रेष्ठ माना गया है।—औदार्य धैर्य तथा गाम्भीर्य
 आदि गुणों से युक्त होने के कारण वह-राजामन्दर की तरह उत्तम कहा

जेवा श्रेष्ठ हुता. जेम महान् हिमवान् पर्वत जीव नाना पर्वतोंकी अपेक्षा उच्चता
 आयाम (दीर्घता) उद्वेध (गंभीरता) तेमन् विष्कंभ अने परिक्षेप वडे रत्नमय पद्मनी
 उत्तम वेदिकावडे अनेक मणिमय अने रत्नमय कूटो (शिणरे) वडे, तेमन् कल्पवृक्षनी
 छारभाण्यो वडे क्षेत्रनी मर्यादा करनार होवाथी महान् मानवामां आवे छे, तेमन्
 श्रेणिक राज पद्म जीव राज्यो करतां जति, कुण, नीति न्याय वगेरे वडे पुष्प
 धन, कनक, रत्न, मणि, मौक्तिक, शंख, शिला प्रवालवडे राज्य, राष्ट्र, णण, वाहन,
 कोश, कोष्ठागारवडे जतिकुल अने धर्मनी मर्यादा करनार होवाथी महान् हिमवान्
 जेवा कडेवामां आव्या छे. संपूर्ण जनसमाजना मनने प्रसन्न करनार होवाथी
 तेमन् विस्तृत यश अने कीर्तिरूप सुगन्धवाणा होवाथी महामलयनी जेम तेमने
 श्रेष्ठ मानवामां आव्या छे. उदारता धैर्य, तेमन् गंभीरता वगेरे गुणोथी संपन्न
 होवाने लीधे ते राजने मेरुपर्वतनी जेम उत्तम कडेवामां आव्या छे. राज्योना

स्मिन् जम्बूद्वीपे, जम्बूद्वीपनामके द्वीपे भारते=भारतनामके वर्षे=क्षेत्रे दक्षिणा-
र्द्धभरते भरतक्षेत्रस्य दक्षिणार्द्धे राजगृहं नामकं नगरमासीत्, 'वण्णओ' वर्णकः=वर्णन-
ग्रन्थोऽत्र वक्तव्यः, स च चम्पावर्णनात्मकऔपपातिकसूत्रं वर्त्तते, सोऽत्र नपुंसकलि-
ङ्गनिर्देशेन द्रष्टव्यः, व्याख्यातोऽप्यसौ तस्य पीयूषवर्षिण्यां टीकायां मयेति। गुण-
शिलकं चैत्यम् वर्णकः=औपपातिकसूत्रकृतवर्णनवदेवात्रज्ञातव्यः। तत्र खलु राजगृहे
नगरे श्रेणिको नाम राजाऽऽसीत्। स कीदृशः? इत्यत्राह—'महाहिमवंत०' इत्यनेन
'महाहिमवंतमहंतमलयमंदरमहिंदसारे' इत्येवं विज्ञेयम् महाहिमवन्महामलय-
मन्दरमहेन्द्रसारः=तत्र महाहिमवानिव=एतन्नामकवर्षधरपर्वतइव, यथा महाहिमवान्

जंबुद्वीपे दीपे-भारते वासे दाहिणर्द्धभरते रायगिहे णामं णयरे होत्था) जंबू।
तुम्हारे प्रश्न का उत्तर इस प्रकार है-उसकाल में और उस समय में इसी
जंबू द्वीप नामके द्वीप में भरत नाम का क्षेत्र है। इस भरत क्षेत्र के दक्षि-
णार्द्ध में राजगृह नामका नगर था। यहाँ जो (वण्णओ) यह पद आया है
उसका तात्पर्य यह है कि औपपातिक सूत्र में चम्पानगरी का जैसा वर्णन
किया गया है वैसा ही वर्णन इस राजगृह नगर का भी जानना चाहिये।
उस वर्णनका अनुवाद औपपातिक सूत्रकी पीयूषवर्षिणी नामकी टीका में
कर दिया है। जिज्ञासुओं को वहाँ से यह विषय समझ लेना चाहिए। (गुण
सिलए चेइए वन्नओ) उस नगर में गुण शिलक नामका-चैत्य था। इसका
वर्णन भी औपपातिक सूत्र में किया गया है वहाँ से जान लेना चाहिये।
(तत्थ णं रायगिहे नयरे सेणिए नामं राया होत्था महाया हिमवंत वण्णओ) उस
राजगृह-नाम नगर में श्रेणिक इस नाम का राजा राज्य करता था। यह महा
हिमवान पर्वत-जैसा महामलय पर्वत जैसा, मंदराचल जैसा, और महेन्द्र

रायगिहे णामं णयरे होत्था) जंबू! तमाश प्रश्नो जवाण आ प्रभाणे छे-ते
क्षेत्रे अने ते वण्णते जेण जंबूद्वीप नामना द्वीपमां भरत नामे क्षेत्रं इत्तुं. आ
क्षेत्रना दक्षिणार्द्धमां राजगृह नामे नगर इत्तुं. अर्द्धा जे (वण्णओ) आ यह आण्युं
छे. तेना अलिप्राय आ प्रभाणे छे के औपपातिक सूत्रमां चम्पानगरीत्तुं जेषुं वण्णन
करवामां आण्युं छे, तेषुं ज वण्णन आ राजगृह नगरत्तुं पणु सगज्जुं जेधंजे.

ते वण्णनना अनुवाद पीयूषवर्षिणी नामनी टीकां करवामां आण्यो छे. जिज्ञा-
सुओजे त्यांथी आ विषयने समज्जो जेधंजे. (गुणसिलए चेइए वन्नओ) ते नगरमां
गुणशिलक नामे चैत्य इत्तुं. आत्तुं वण्णन पणु औपपातिक सूत्रमां करवामां आण्युं छे.
त्यांथी जणुपुं जेधंजे. (तत्थ णं रायगिहे नयरे सेणिए नामं राया होत्था महाया
हिमवंत वण्णओ) ते राजगृह नगरमां श्रेणिक नामे राजा राज्य करता इत्ता. ते
महा हिमालय पर्वतना जेवा महामलय पर्वत जेवा, मंदराचल जेवा अने महेन्द्रना

लक्षण-त्रंजणगुणोत्प्रेष, माणुग्माणप्यनाणपडिपुण्णमुजायसव्यंगमुदरंगे, ससि-
सोमाकारे, कंते, पियदंसणे मुह्वे' इति संग्रहः। व्याख्या-अहीनप्रतिपूर्णपञ्चे-
न्द्रियशरीरः-अहीनानि=लक्षणतोऽन्यूनानि प्रतिपूर्णानि=स्वरूपतोऽखण्डितानि
पञ्चापीन्द्रियाणि यस्मिन् तत्तथाविधं शरीरं यस्य स तथोक्तः। लक्षणव्यञ्जनगुणो-
त्पेतः-लक्षणानि=स्वस्तिकचक्रयवमत्स्यादीनि, व्यञ्जनानि=मपतिलादीनि,
तेषां गुणः=प्रशस्तस्वरूपास्तैः उत्पेतः=युक्तः। अत्र-'उप' 'अप' अनयोरुप-
सर्गयोः शकन्त्वादित्वात्पररूपे 'उपपइतः' अनयोरुपे 'उपपेतः' इति सिद्धम्।
मानोन्मानप्रमाणप्रतिपूर्णमुजातसर्वाङ्गमुन्दराङ्गः-अत्र मानं=जलेन परिपूर्णं कुण्डे
यस्मिन् पुरुषे प्रविष्टे सति यज्जलं कुण्डाद्वर्दिनिस्सरति तज्जलं यदि द्रोणपरि-
माणं भवति तदा तस्य शरीरावगाहना मानमुच्यते। तुलादण्डेन सन्तुलितः
पुरुषो घटर्द्धभारपरिमाणो भवति तदा तस्य अर्धभारपरिमाणम् उन्मानमुच्यते।
स्वाङ्गुलेनाष्टोत्तरशतोन्नतता प्रमाणं कथयते ततः-मानं च उन्मानं च प्रमाणं
च मानोन्मानप्रमाणानि, तैः प्रतिपूर्णानि मुजातानि सर्वाङ्गानि, तैः
मुन्दराङ्गः-सर्वथा प्रमाणप्रतिपूर्णमुजाततया सर्वाङ्गीण सुन्दर इति भावः। 'ससि-

तथा स्वरूप से परिपूर्ण पांचो इन्द्रियों से युक्त था।' लक्षणों-स्वस्तिक-चक्र
यव एवं मत्स्य आदि के चिह्नो-से-तथा मपा तिल-आदिरूप व्यञ्जनों से
भरपूर था। 'मान' उन्मान, तथा 'प्रमाण' से शरीर का प्रत्येक अवयव

आव्ये छे डे ओमनु' शरीर लक्षणेथी अन्यून (अपूर्ण) तेमज स्वइय (शो'दर्थ)थी
परिपूर्ण पांचे इन्द्रियेथी युक्त हुतुं. लक्षणे-स्वस्तिक चक्र, यव अने मत्स्य वगेरे
चिह्नो-थी तेमज मपातिल वगेरे व्यञ्जनेथी अपूर्ण रीते लरेखुं हुतुं. मान, (१)
उन्मान, (२) तेमज प्रमाणवडे (३) शरीरने हरेके हरेके अवयव परिपूर्ण हुतो.

(१) जल से परिपूर्ण भरे हुए कुण्ड में मनुष्य को बैठाने पर उस
कुण्ड से जितना पानी बाहर-निकल आता है वह पानी नौलने पर यदि
एक द्रोण प्रमाण होता है तो वह जल उस पुरुष की शरीरावगाहना का
मान माना जाता है। (२) तराजू पर सन्तुलित होने पर पुरुष का जो अर्ध
भार होगा वह उन्मान माना जावेगा। (३) १०८ अंगुल की जो ऊँचाई होती

विशेषः-(१) पाणीथी पूर्ण लरेखुं हु'उमा भाणुअने णेसाडया पळी ते हु'उमांथी
नेटखुं पाणी णडार निडणी आवे छे, ते पाणीने जे तोलवामां आवे, अने ते ओक
द्रोण प्रमाण तोलमां उतरे तो ते पाणीने ते पुरुषनी शरीरावगाहनातुं 'मान' मान-
वामां आवे छे.

(२) तराजू वपर तोलवामां पुरुषतुं जे अधुं वजन थाय तेने 'उन्मान' मानवामां आवे छे.

(३) ओकसा आठ (१०८) आंगुलनी जे उँचाईडाय छे तेने 'प्रमाण' डहेवामां आवे छे.

सारः=श्रेष्ठः, इत्यादि। 'वृष्णओ' वर्णकः=भूपवर्णनप्रथमरणमौपपातिकमृत्राद् विज्ञेयम्, तस्य खलु श्रेणिकस्य राज्ञः नन्दानाम्नी देव्यासीत्। सा कीदृशी? इत्यत्राह—'सुकुमालपाणिपाया' सुकुमारपाणिपादा=पाणी च पादां च पाणिपादं= फरस्वरणं, सुकुमारम्=अतिकोमलं पाणिपादं यस्याः सा तथोक्ता=अतिकोमलकर-चरणवतीत्यर्थः, 'वृष्णओ' वर्णकः=राज्ञीवर्णन औपपातिकमृत्राद्वसेयम्।

तस्य खलु श्रेणिकस्य पुत्रः 'नंदाए देवीए अत्तए' नन्दाया देव्या आत्मजः= तद्गर्भज इत्यर्थः अभयनामा कुमारऽआसीत्। स कीदृशः? इत्याह—'अहीण जाव सुरूवे' अहीन यावत्सुरूपः, भवत्ययावच्छब्देन—'अहीणपडिपुष्णपंचिदियसरिरे,

गया है। राजाओं के समूह में दिव्यशक्ति, दिव्यद्युति, तथा दिव्यप्रभाव आदिद्वारा वह महेन्द्रकी तरह उत्तम प्रकट किया गया है। यहाँ पर भी जो यह "वृष्णओ" शब्द आया है वह यह प्रकट करता है कि इस राजा-के विषय में और भी अधिक वर्णन अन्य ग्रन्थों में किया गया है, सो वह वर्णन औपपातिक सूत्र से जाना जा सकता है।

(तस्स णं सेणियस्स रन्नो नंदा नामं देवी होत्था सुकुमार पाणिपाया वृष्णओ) उस श्रेणिक राजा की रानी का नाम नंदा था। इसके हाथ पाँव बहुत ही सुकुमार थे। यह कितनी-अधिक सुन्दर थी-और किस स्वभाव आदि की थी यह सब विषय का वर्णन औपपातिक सूत्र में दिया गया है। (नस्सणं सेणियस्सरत्तो पुत्ते नंदाए अत्तए अभयनामं कुमारे होत्था) उस श्रेणिक राजा के एक पुत्र था जिसका नाम अभयकुमार था। यह नंदा-देवी की कुक्षि से अवतरित हुआ था। (अहीण जाव सुरूवे) यहाँ यावत् शब्द से यह पाठ-ग्रहीत हुआ है—इसका शरीर लक्षण से अन्यून

समूहमां दिव्यशक्ति, दिव्यद्युति तेभञ्ज दिव्यप्रभाव वगेरेथी तेने भडेन्द्रनी नेभ उत्तम पाताववामां आन्था छे. अर्द्धी पणु ने 'वृष्णओ' शब्द आन्थे छे, ते आभ पातावे छे के आं राजना विषे जेना करवां पीणुं वधु वणुंन पीण शस्त्रोमां करवामां आन्थुं छे. भाटे ते वणुंन औपपातिक सूत्रवडे समल्ल शक्य छे.

तस्स णं सेणियस्स रन्नो नंदा नामं देवी होत्थासुकुमार पाणिपाया वृष्णओ) ते श्रेणिक राजनी राणीनुं नाम नंदा इतुं. तेना हाथभगणु ल सुके-भगणु इता. ते डेटवी गधी इषवती इती तेना स्वभाव वगेरे केवो इतो, आ नतना गधा विषेणुं वणुंन औपपातिक सूत्रमां आपवामां आन्थुं छे. (तस्स णं सेणिय-स्स रन्नो पुत्ते नंदाए देवीए अत्तए अभयनामं कुमारे होत्था) ते श्रेणिक राजना जेक पुत्र इता. तेनुं नाम अभयकुमार इतुं. ते नंदादेवीनी इणमांथी अप-तथो इता. (अहीण जाव सुरूवे) अर्द्धी यावत् शब्दथी जे पाठ अणु करवामां

कोपाद्यपहरणेन वा. शत्रोरनुशासनम् । भेदः=शत्रुपक्षे स्नेहापनयनपुरस्सरं स्वामि
सेवकयोश्चित्तभेदकरणं, स त्रिविधः, ।

उक्तञ्च—“परोत्परं णेहभंगो, कलहृष्पायणं तदा ।

तज्जणं सत्तुपक्खेसु, भेयणीई पक्कित्तिया ॥१” इति ।

अस्य छाया—परस्परं स्नेहभङ्गः, कलहोत्पादन तथा ।

तर्जनं शत्रुपक्षेषु, भेदनीतिः प्रकीर्त्तिता ॥१॥ इति ।

उपप्रदानम्=शुभं गृहीतवस्तुप्रतिप्रदानम्, अभिमतार्थदानं वा, एतद्रूपा चतुर्विधा
नीतिः—नीयते=स्यानुकूल्यं प्राप्यते रिपुरनयेति सा तथोक्ता तथा सामादि चतु-
र्विधया नीतया मु=मृष्टु मयुक्तं=प्रयोगो व्यापारो-यत्र स मुप्रयुक्तः, एतादृशो नयः=
न्यायस्तस्य विधिः=विधानं, तं जानातीति स तथोक्तः—यथायोग्यनीतिन्याय
कुशल इत्यर्थः। नीतिं प्रयोगो यथा—‘उत्तमं प्रणिपातेन, शूरं भेदेन योजयेत्।

‘परोत्परं णेहभंगो, कलहृष्पायणं तदा ।’

तज्जणं सत्तुपक्खेसु “भेयणीई पक्कित्तिया ॥१॥

शत्रु पक्षमें स्वामी सेवकमें स्नेह का भंग करवाना उनमें आपसमें
लड़ाई झगडा करवा देना—एवं परस्पर में तर्जन—डाट—डपट—आदि
करवाना। पूर्वमें गृहीत की हुई वस्तु का देना अथवा अभिमत
अर्थका देना इसका नाम उपप्रदान है साम, दण्ड भेद एवं उपप्रदान
इस तरह ४ चार प्रकार की नीति के प्रयोगरूप न्याय के विधानमें यह अभय-
कुमार निष्णात था—यथा योग्यनीति न्याय में कुशल था—नीति का
प्रयोग इस प्रकार कहा गया है—(उत्तमं प्रणिपातेन) उत्तम जनको यदि

स्नेहभाव होय छ, तेमां हूट पाडवी, तेमना मनमां ओवी वात कसाववी के नेथी जन्ने
ओक भीज्जने विश्वास न करे, तेतुं नाम लेह—निती छ. आ लेह नीति त्रणु प्रकारनी
पताववांमां आवी छ.

परोत्परं णेहभंगो, कलहृष्पायणं तदा ।

तज्जणं सत्तुपक्खेसु भेयणीई पक्कित्तिया ॥१॥”

शत्रुपक्षमां स्वामी सेवकना स्नेहमां हूट पाडवी, तेमनामां परस्पर कलह करववो अने
परस्पर तर्जन (तिरस्कार) हमदाटी वगेरे करववां. पूवे कौण पासेथी लीधिल पदार्थने
आपवो अथवा अलिभित (धृष्ट) अर्थने आपवो तेतुं न-म उपप्रदान छ. साम, दण्ड,
लेह अने उपप्रदान आ प्रमाणे आर प्रकारनी नीतिना प्रयोग करतां न्याय आपवांमां
अभयकुमार निष्णात हुताः नीतिना समुचित भागने अनुसरतां न्याय आपवांमां ते
कुशल हुता. नीतिना यथायोग्य व्यवहार आ रीते पताववांमां आव्यो छः—‘उत्तमं
प्रणिपातेन, शारा भाणुसने वथ करवो होय तो तेनी सामे नअ थर्थने वर्तन

सोमागारे' शशिसौम्याकारः-शशी=चन्द्रस्तद्वत् सौम्यः=रमणीयः, आकारः=स्वरूपं यस्य स तथोक्तः । 'कंते' कान्तः=कमनीयः । 'पियदंसणे' प्रियदर्शनः-प्रियं=दर्शकजनमनोह्लादकं दर्शनम्=अवलोकनं यस्य स तथोक्तः । 'सुरूवे' सुरूपः=सर्वातिशायिरूपलावण्यवान् । 'सामदंडभेदउवप्पयाणणीइसुप्पउत्तणयविहिण्णू' सामदण्डभेदोपमदाननीति सुप्रयुक्तनयविधिः-तत्र साम='वयं युष्माकं श्रूयमस्माकं को भेदोऽस्माकम्' इत्यादि मधुरवाक्यैः शत्रुपक्षवशीकरणम्, दण्डः दण्डयते-घनाद्यपहरणेन निस्सारी क्रियते जनो येन स तथोक्तः=क्लेशोत्पादेन

परिपूर्णं था । चंद्रमाके जैसा इसका सौम्य आकार था । देखने वालों को यह बहुत अधिक प्रिय लगता था । कमनीय था । रूप लावण्य इसके प्रत्येक अंग से टपकसा रहा था ।

यहाँ "अहीणजावसुरूवे" में जो यावत् पद रखा है-उस से इस पाठ का यहाँ ग्रहण किया गया है-अहीणपडिपुण-पंचेन्द्रियसरीरे लक्खणवंजणगुणोववेए, माणुम्माणप्पमाणपडिपुण-सुजायसव्वंगसुंदरंगे, ससिसोमागारे, कंते, पियदंसणे सुरूवे । (सामदंडभेदउवप्पयाणणी-तिसुप्पउत्तणयविहिण्णू ईहा-बृहमग्गण-गवेसणअत्थमत्थमइविसामए) हम आपके हैं आप हमारे हैं हम में और आप में कोई भेद नहीं है इत्यादि मधुर वचनों द्वारा शत्रुपक्ष को वश में करना यह साम उपाय है, क्लेश उत्पन्न करके अथवा काप आदि का अपहरण करके शत्रु को वश में करना-या उसे विलकुल कमजोर बना देना यह दण्डनीति है, शत्रु पक्ष के स्वामी-तथा सेवक में जो परस्पर में स्नेह होता है उसमें भेद करना-उनके चित्त में ऐसी बात जमा देना कि जिससे दोनों आपसमें एक दूसरे का विश्वास न कर सकें इसका नाम भेदनीति है । यह भेदनीति ३ तीन प्रकार की कही गई है-

चन्द्रमा के जैसा सौम्य आकार होता । जनारने ये गडुण वधारे गभतो डतो. ये कमनीय होता. रूप अने लावण्य अमना दरेके दरेके अंगमांथी नीतरत्तुं डतुं.

अही 'अहीण जाव सुरूवे' मां ने यावत् पद मुक्तगमां आबुं छे, तेनाथी आ पाहुं अही अडुए करनामां आव्ये छे-अहीणपडिपुणपंचेन्द्रियसरीरे

लक्खणवंजणगुणोववेए माणुम्माणप्पमाणपडिपुणसुजायसव्वंगसुंदरंगे ससिसोमागारे, कंते, पियदंसणे सुरूवे ।" सामदंडभेदउवप्पयाणणीतिसुप्पउत्तणयविहिण्णू ईहा बृहमग्गणगवेसणअत्थमत्थमइविसामए) अमे तमारा थीअे; तमे अमारा छे; आपणुमां डेअ पणु नतने लेह नथी, वगेरे भीहा वयनेथी शत्रुपक्षने वश करवे आ आम उपाय छे. पीडित करीने अथवा तो धन-लाभारतुं दुश्च करीने दुश्मन उपर आपु भेगववे अजरतो तेने आप निष्पण गनाववे आ दण्डनीति छे. शत्रुपक्षना स्वामी तेमज सेवकमां ने अेक पीण पक्ष

है वह प्रमाण तहीगई है ।

अपोहः—अपोहते=निवार्यते स्वाकाराद्विपरीत आकारोऽनेनेति स तथोक्तः=निजा-
कारनिर्णयज्ञानं यथा—‘स्थाणुरेवाय’ मिति मार्गणं—मार्ग्यते=अन्विष्यते वस्त्र-
नेनेति तत्तथोक्तम्=अपोहाग्रे सद्भूतार्थविशेषज्ञानाभिमुखमेव ‘तत्सत्त्वे तत्स-
त्त्वमन्वयः’ इत्यन्वयधर्मान्वेषणं, यथा वल्लीलताधारोहणं स्थाणुधर्म एवात्र घटते
इति। स्थाणुमेवाश्रित्य वल्लीलताधारोहणं भवति, अतःस्थाणु धर्मत्वेन वल्लीलता-
धारोहणं व्यपदिश्यते। गवेषणं—गवेष्यते=विशेषतो निश्चीयते वस्त्रनेनेति तत्त-

“इसी का नाम संशय है। इस संशयके होने पर यह स्थाणु होना चाहिये
अथवा पुह्य होना चाहिये इसतरह किसी एक तरफ झुकती हुई जो
बुद्धि की चेष्टा होती है यही ईहा है।

ईहा के बाद जो विशेष ज्ञान होता है उसका नाम अवाय है—
अपोह है—। अपने आकार से विपरीत आकार जहां दूर किया जाता है
वह ‘अपोह’ है ऐसी अपोह शब्द की व्युत्पत्ति है। जैसे जब यह
बोध हुआ कि यह स्थाणु होना चाहिये तब ऐसा जो बोध
होता है कि यह स्थाणु ही है इसी का नाम अपोह है मार्गण शब्द
का अर्थ होता है—अन्वेषण—यह स्थाणु ही है ऐसा जो अपोह नामक
बोध हो रहा है वह इस वान को लेकर हो रहा है कि यहाँ पर वल्ली
आरोहण आदि जो स्थाणुगत धर्म है वे ही घटित हो रहे हैं। इसी का
नाम अन्वय है ‘तत्सत्त्वे तत्सत्त्वमन्वयः’ यह अन्वय का लक्षण है। स्थाणु
को अश्रित करके ही वल्ली लता आदि का वहाँ आरोहण होता है—
इसलिये ये स्थाणु के धर्म तरी के प्रकट किये जाते हैं। मार्गणा में अन्वय
धर्म की पर्यालोचना होती है। गवेषणा में व्यतिरेक धर्म का विचार चलता

आ प्रमाणे डोह ओह तरह वणती बुद्धिनी श्रेष्ठा थाय छे, तेनुं नाम छडा छे.

छडा पछी ने विशेषज्ञान होय तेनुं नाम अवाय छे—अपोह—छे. पोटाना
आकारथी भिन्न आकारने न्यां हरकरवामां आवे तेने अपोह छडे छे. ओरीते अपोह शब्दनी
व्युत्पत्ति छे. दा. त. न्यारे ओ ज्ञान थयुं के आ स्थाणु (हुंहुं) होयुं नोहंओ. त्यारे
ओयुं निश्चयइपे ने ज्ञान थाय छे के आ स्थाणु (हुंहुं) न छे, आनुं न नाम अपोह छे.
मार्गणु शब्दने अर्थ ‘अन्वेषण’ थाय छे. आ स्थाणुं न छे, आ प्रकारनुं अपोह
नामे ने ज्ञान थरुं छे, ते आने लछने न थरुं रहुं छे के अर्ही वल्ली (वेल)
आरोहणु वगेरे ने स्थाणुमां रहनेनारा धर्मो छे, ते न घटित थरुं रह्या छे. आनुं नाम
अन्वय छे. “तत्सत्त्वे तत्सत्त्वमन्वयः” आ अन्वयनुं लक्षणु छे. ‘स्थाणु (हुंहुं) ना
आधारे न लता वगेरेनुं आरोहणु थाय छे. माटे न ओ स्थाणुं ना धर्म गताववामां
आव्या छे. मार्गणामां ‘अन्वय’ धर्मनी पर्यालोचना थाय छे. गवेषणामां के व्यतिरेक

नीचमल्पप्रदानेन, समं तुल्यपराक्रमैः ॥१॥” इति, अन्यत्र—“लुब्धमर्थेन गृह्णीयात्, साधुमञ्जलिकर्मणा । मूर्खं छन्दानुरोधेन, तत्त्वार्थेन च पण्डितम् ॥” इति । ईहाबोह मगणगवेसणधत्थसत्थमइविसारण’ ईहाऽपोहमार्गणगवेपणार्थशास्त्रमतिविशादः— तत्र ईहा=करयापिवस्तुनोऽनालं चित्तविलोकनजन्यसंशयनिराशय बुद्धिचेष्टा, यथा दूरत उच्चैस्त्वयुक्तस्य कस्यचिद्दर्शने ‘स्थाणु वा पुरुषो वा इति विवेकाय बुद्धिचेष्टनम् ।

वश में करना हाँचे तो उसके साथ नम्रता का व्यवहार रखना चाहिये । (शूरं भेदेन योजयेत्) किसी शूरवीरको यदि वश में करना है तो उसके साथ भेदनीति का प्रयोग करना चाहिये । (नीचमल्पप्रदानेन) यदि किसी नीचजनको वश में करना है, तो उसे कुछ न कुछ थोड़ा बहुत अवश्य दे देना चाहिये ।

(समं तुल्यपराक्रमैः) बराबरी वाले शत्रु को यदि वश में करना है तो उसके तो उसके साथ बराबरी का पराक्रम करना चाहिये । यही बात अन्यत्र इस प्रकार से गई है—

‘लुब्धमर्थेन गृह्णीयात् साधुमञ्जलि, कर्मणा,
‘मूर्खं छन्दानुरोधेन तत्त्वार्थेन च पण्डितम्’ ।

सामान्य रूप से वस्तु के बाद जो उसमें संशय होता है उस संशय को दूर करने की जो एक प्रकार की बुद्धि चेष्टा होती है उसका नाम ईहा है । जैसे दूर से किसी ऊँची वस्तु का जब हमें दर्शन होता है तब यह कुछ है ऐसा सामान्य बोध होता है अब इस सामान्य बोध के बाद फिर ऐसा जो विचार आता है कि यह स्थाणु है या पुरुष है

करवुं नोर्धञ्जे ‘शूरं भेदेन योजयेत्’ वीर पुरुषने वशकरवो डाय तो तेनी साथे वेदनीतिने प्रयोग करवो नोर्धञ्जे. ‘नीचमल्पप्रदानेन’ नीच भाषासने वश करवो डाय तो कंर्धकने कंर्धक-थोडुं थोडकस आपवुं नोर्धञ्जे. ‘समं तुल्यपराक्रमैः’ सरणी शक्तिवाणा दुश्मनने वश करवो डाय तो तेनी साथे गरागरीतुं शूरतन गताववुं नोर्धञ्जे अत्र वात गीने स्थाने आ रीते गताववाभां आवी छेः—

लुब्धमर्थेन गृह्णीयात् साधुमञ्जलिकर्मणा ।

मूर्खं छन्दानुरोधेन तत्त्वार्थेन च पण्डितम् ॥१॥,

सामान्य रूपमें वस्तुना बोध पछी के तेमां संशय उद्भवे छे तेने हर करवानी अक प्रकारनी बुद्धिनीचेष्टा डाय छे, तेनुं नाम ‘ईहा’ छे. दा. त. हरथी कोर्ध छिंथी वस्तुनुं न्यारे दर्शन धाय छे, त्यारे आ कंर्धक छे, अवेनुं सामान्य ज्ञान आपवुने धाय छे. आ सामान्य ज्ञान पछी करी अेभ विचार धाय के आ स्थाणुं (डुडुं) छे के पुरुष छे, आनुं नाम संशय छे. आ संशय पछी आ स्थाणुं डोवुं नोर्धञ्जे अथा पुरुष डोवो नोर्धञ्जे,

वैनयिक्या-विनयेन जाता वैनयिकी=गुर्यादिविनयप्राप्तशास्त्रार्थ संस्कारजन्या, तथा,
अत्र नैमित्तिकशिष्यद्वयोदाहरणं संक्षेपतः प्रदर्शयते—

एकस्मिन्नगरे समकक्षवयस्कौ द्वौ शिष्यौ निमित्तशास्त्रं पठितुं कस्यापि
नैमित्तिकस्य समीपे गतवन्तौ। तयोरेको विनयशीलो यद् यथा गुरुपदिशति तत्तथैव
बहुमानपुरस्सरं विनयावनतमस्तकोऽधीते, गुरुपाठितं सुदुर्मुहुर्विमृशति, शङ्कास्पदं स्थलं
गुरुसमीपमुपेत्य सविनयं निर्णयति च। अपरस्तु न तथा विनयेन पठति, न पृच्छति,
नापि विमृशति च। अधीतशास्त्राद्युभौ कालान्तरे जीविकार्थं देशान्तरं गतौ। ववचि-

है। गुरु आदि के विनय से प्राप्त हुए शास्त्री अर्थ के संस्कार से जो
बुद्धि प्राप्त होती है वह वैनयिकी बुद्धि है।

इस विषय में दो नैमित्तिक शिष्यों का उदाहरण इस प्रकार है—
किसी नगर में समान अवस्था वाले दो शिष्य किसी निमित्तज्ञ के पास
निमित्त शास्त्र को पढ़ने के लिये गये। उनमें एक शिष्य विनय शील
था। गुरुमहाराज उसे जिस प्रकार जिस बात को पढ़ाते थे वह उस
बात को बहुमान पुरस्सर बड़े भारी विनय के साथ पढ़ता था। विद्या
गुरु जिस विषय को उसे समझाया करते थे वह उस विषय को बार
बार विचार में लाया करता था। जिन विषय में उसे किसी भी तरह
का संदेह होता तो वह गुरु के पास जा कर विनय के साथ उसका
निर्णय करता। दूसरा शिष्य ऐसा कुछ अविनयी था कि वह न तो कुछ
पढ़ता न कुछ लिखता और न गुरु से कुछ पूछता और न कुछ विचार
ही करता। अब उन दोनों के लिये ऐसा अवसर आया कि उन्हें आज्ञा

शुरु वगेरेना विनयशील प्राप्त इवेव शास्त्रीय अर्थना संस्कार वदे ने बुद्धि प्राप्त थाय
छे, तैवैनाधिशील बुद्धि छे. आ विषयने लगता छे नैमित्तिक शिष्येना दृष्टान्त आ प्रमाण छे—

कोई नगरमां अरुभी उभरना छे विद्यार्थिआ कोई निमित्तज्ञनी पास निमित्त-
शास्त्रना अभ्यासाथे गथा. तेओमां ओक शिष्य विनय छतो. शुरु तेने ने वात
धीभवता ते ते वातने अहुन मानपूर्वक धरुा विनय आथे ते शीभवतो छतो. विद्या
आपनास शुरु ने विषय तेने समभवता ते ते विषय उपर बारंवार मनन करतो
छतो. ते विषयमां तेने कोई पद्य नालनी थंका छाय तो ते शुरुनी पास अर्थने
सविनय तेनुं समाधान करतो छतो. जीजे शिष्य कंछक अविनयी छतो न
तो ते कंछ वांचतो अने न ते कंछ लभतो तेमज न शुरुने ते कंछ पूछतो अने
न ते कोछपुन—रतना विचार करतो. इवे विद्याअभ्यास करी रहा पछी आ गन्नेने

थोक्तं-मार्गणादूर्ध्वं सद्भूतार्थविशेष निर्णयाभिपुत्रमेवान्यधर्मपरित्यागेन 'तदसत्त्वं तदसत्त्वं व्यतिरेकः' इति व्यतिरेक धर्माभ्यास समालोचनं यथा- 'अस्मिन् शिरः शरीर कण्डूयनादयः पुरुषधर्मा न दृश्यन्ते' इति। एतेषां समाहारे ईहापोहमार्गणगवेपणानि, 'तैरर्थशास्त्रे=अर्थोपार्जननिमित्तं शास्त्रमर्थशास्त्रं, तत्र या मतिः=मननं तथा विशारदः=निपुणः स तथोक्तः। तथा 'उत्पत्तियाए वेणइयाए कम्मयाए पारिणामियाए चउव्विहाए बुद्धीए उव्वेए' औत्पत्तिकया, वैनयिकया, कर्मनया, पारिणामिकया, चतुर्विधया बुद्ध्या उपपेतः, तत्र-औत्पत्तिकया-उत्पत्तिरेव-शास्त्राभ्यासकर्मपरिशीलनादिकं विहाय प्रयोजनं यस्या सा औत्पत्तिकी-पूर्वमदृष्टानुभूतानुभूतविषयतयाप्यकस्मादुद्भवनशीला, तथा, अत्र रोहकदृष्टान्तःप्रसिद्ध एव।

है जैसे ऐसा विचार होना-कि यह स्याणु ही है- पुरुष नहीं-कारण पुरुषगत जो शिरः कण्डूयन आदि धर्म हैं वे यहां प्रतीत नहीं हो रहे हैं। 'तदसत्त्वं तदसत्त्वम्' यह व्यतिरेक का लक्षण है। अभयकुमार जिस तरह सामआदि नीति के प्रयोग करने में विशेष पटु थे उसी प्रकार वे ईहा अपोह मार्गण, गवेपण द्वारा अर्थशास्त्र के विचार करने में भी विशेष विशारद थे। (उत्पत्तियाए वेणइयाए कम्मयाए पारिणामियाए चउव्विहाए बुद्धीए उव्वेए) औत्पत्तिकी, वैनयिकी कर्म जा तथा, परिणामिकी, इस तरह चार प्रकार की बुद्धि से वे अभयकुमार युक्त थे। जो बुद्धि स्वतः इस जीव को बिना किसी शास्त्राभ्यास आदि के उत्पन्न होती है वह औत्पत्तिकी बुद्धि है। यह बुद्धि पूर्व में अदृष्ट अश्रुत तथा अननुभूत हुए विषयों को अकस्मात् जान लेती है। इस विषय में रोहके का दृष्टान्त प्रसिद्ध ही

[अभाव] धर्म उपर विचार करवांमां आवे छे। हा. त. जेभ 'विचार' थवे छे आं स्थाणु न छे, पुरुष नथी. कारण के पुरुषगत के शिर कण्डूयन वगेरे धर्मो छे, तेजोमानी अडो प्रतीति थती, नथी. 'तदसत्त्वं तदसत्त्वम्' आ व्यतिरेकत्वं लक्षण छे. जेभ अलयकुमार, साम वगेरे नीतिने, प्रयोग करवांमां विशेष कुथण उतां, तेमन छडा, अपोह. मार्गण, गवेपण वडे अर्थशास्त्र उपर विचार करवांमां पण विशेष छेशि-यार उता. (उत्पत्तियाए वेणइयाए कम्मयाए परिणामियाए चउव्विहाए बुद्धिए उव्वेए) औत्पत्तिकी, वैनयिकी कर्मनं अने परिणामिकी आ दीते आरं प्रकारनी बुद्धिथी अलयकुमार अपेन्न उता. एवने पोतानी जेणे डोह पण जतना शास्त्राभ्यास वगर ने बुद्धि उद्भवे छे ते औत्पत्तिकी बुद्धि छे. आ बुद्धीपडैतां डोहपण वषत जेवामं नहि आवेला, आंलणवामं नडीं आवेला तेमन अनुभूतिना विषयमां नहि आवेला विषयने अनायास समल वे छे. आ जाणतमां रोहकेनुं दृष्टान्त प्रसिद्ध थवेला छे.

वैनयिक्या-विनयेन जाता वैनयिकी=गुर्वादिविनयप्राप्तशास्त्रार्थ संस्कारजन्या, तथा,
अत्र नैमित्तिकशिष्यद्वयोदाहरणं संक्षेपतः पददर्शयते—

एकस्मिन्नगरे समकसवयस्कौ द्वौ शिष्यौ निमित्तशास्त्रं पठितुं कस्यारि
नैमित्तिकस्य समीपे गतवन्तौ। तयोरेको विनयशीलो यद् यथा गुरुरूपदिशति तत्तथैव
बहुमानपुरस्सरं विनयावनतमस्तकोऽधीते, गुरुपाठितं मुहुर्मुहुर्विमृशति, शङ्कास्पदं स्थले
गुरुसमीपमुपेत्य सविनयं निर्णयति च। अपरस्तु न तथा विनयेन पठति, न पृच्छति,
नापि विमृशति च। अथीतशास्त्राद्युभौ कालान्तरे जीविकार्थं देशान्तरं गतौ। वचचि-

है। गुरु आदि के विनय से प्राप्त हुए शास्त्री अर्थ के संस्कार से जो
बुद्धि प्राप्त होती है वह वैनयिकी बुद्धि है।

इस विषय में दो नैमित्तिक शिष्यों का उदाहरण इस प्रकार है—
किसी नगर में समान अवस्था वाले दो शिष्य किसी निमित्तज्ञ के पास
निमित्त शास्त्र को पढ़ने के लिये गये। उनमें एक शिष्य विनय शील
था। गुरुमहाराज उसे जिस प्रकार जिस बात को पढ़ाते थे वह उस
बात को बहुमान पुरस्सर बड़े भारी विनय के साथ पढ़ता था। विद्या
गुरु जिस विषय को उसे समझाया करते थे वह उस विषय को बार
बार विचार में लाया करता था। जिस विषय में उसे किसी भी तरह
का संदेह होता तो वह गुरु के पास जा कर विनय के साथ उसका
निर्णय करता। दूसरा शिष्य ऐसा कुछ अविनयी था कि वह न तो कुछ
पढ़ता न कुछ लिखता और न गुरु से कुछ पूछता और न कुछ विचार
ही करता। अब उन दोनों के लिये ऐसा अवसर आया कि उन्हें आजी

गुरु वगेरेना विनयशी प्राप्त इरेल शास्त्रीय अर्थना संस्कार वरे वे बुद्धि प्राप्त थाय
छे, तेवैनायिकी बुद्धि छे. आ विषयने लगता ये नैमित्तिक शिष्योना दृष्टान्त आ प्रभाषे छे—

डोर्ध नगरमां अरुभी उमरना ये विद्यार्थिओ डोर्ध निमित्तज्ञनी पास निमित्त-
शास्त्रना अख्यासार्थे गया. तेओमां ओड शिष्य विनय हुतो. गुरु तेने वे वात
शीष्यता ते ते वातने अहुज मानपूर्वक धणा विनय साथे ते शीष्यतो हुतो. विद्या
आपनाश गुरु वे विषय तेने अभज्यता ते ते विषय उपर बारंवार मनन करते
हुतो. ते विषयमां तेने डोर्ध पणु वातनी शंका लाय तो ते गुरुनी पास न्दने
अविनय तेनुं समाधान करते हुतो. जीजे शिष्य डंठक अविनयी हुतो न
तो ते डंठ वांयतो अने न ते डंठ लपतो तेमज न गुरुने ते डंठ पूछतो अने
ते डोर्धपणु वातना विचार करते. हुवे विद्याअख्यास इरी रक्षा पधी आ अन्नेने

नगरनिकटे सरस्तीरे विश्रमत्तुः । 'एतावुमी विद्वांसो' इतिज्ञात्वा मस्तकन्यस्त-
जलभृतघटा काचिद्गृद्धा विदेशगतस्वसुतकुशलिनीं वार्तां पप्रच्छ । प्रश्नसमकालमेव
तन्मस्तकाद् घटो न्यपतत्, तद्दृष्ट्वा सोऽविगृह्यकारी रुटिति प्राह—'वृद्धे ।=पृतस्तव-
पुत्रः' इत्यादि । कर्णकठोरं प्राणापहारकं वज्रमिवाऽऽपतत् पुत्रमरणरूपं तद्वचनं
श्रुत्वा यावत्सा मूर्छा प्राप्नोति तावदपरो विमर्शशीलो नेमित्तको न्यगदन् भोभ्रात-
र्मेव ब्रूहि, अस्याः पुत्रः साम्प्रतमेव स्वगृहमागतो वर्त्तते, मातः ! गच्छ शीघ्रं गृहं
पुत्रमुखानलोकनजनितममन्दपरमानन्दमनुभवेत्यादि । तच्छ्रुत्वा प्रत्युज्जीवितेव

विका संपादन के लिये परदेश में जाना पडा। जब ये चाहर जा रहे थे तो
किसी एक नगर के पास के सरोवर के किनारे ये दोनों ठहर गये। इतने में
एक वृद्धाने कि जिसका पुत्र बहुत समय से परदेश गया हुआ था और अभी तक
वापिस नहीं आया था उन्हे देखा-वह मस्तक पर घडा रखकर वहाँ
जल भरने को आई थी। उसने विद्वान समझ कर इनसे अपने पुत्र की
कुशल वार्ता पूछी तो अविनीत शिष्यने यह देखकर कि उसके मस्तक
से प्रश्न पूछने के साथ साथ घडा गिर गया है जल्दी से ऐसा कहा
कि हे वृद्धे? तेरा पुत्र तो परदेश में ही मर गया है-तू अब किस की
कुशल वार्ता पूछ रही है। ऐसा उसका कर्णकठोर वज्र के प्रहार जैसा
तीक्ष्ण मर्मभेदक पुत्र का मरण रूप वचन सुनकर वह मूर्च्छित होने
वाली ही थी इतने में दूसरे विनयशील शिष्यने विचार कर कहा भाई
ऐसा मतकहो-इसका पुत्र तो इस समय घर पर ही आ पहुँचा है। ऐसा
कहकर फिर उसने उस वृद्धा से कहा ! तुम जल्दी से जल्दी घर जाओ।

पोतानी आलुविका अलाववा भाटे परदेशे न्वानुं थयुं. न्त्यारे तेज्यो षडार न्छरह्या
हता त्यारे भार्गभांडैर्धनगर पासे सरोवरना कठिं आ षन्ने शैकाया. ओटलाभां ओक शशीञ्जे-
के जेना पुत्र घण्टा समय पड़ेलां विदेशे गये। हतो अने हल पोताने घेर पाछे इथे
न हतो-तेज्योने जेया, ते घडा माथा उपर भूडीने पाणी करवा आवी हती. ते
शशीञ्जे तेज्योने विद्वान् समलने जेभने पोताना पुत्रं कुशल पूछयुं प्रश्न पूछतानी
साथे न वृद्धाना माथा उपरधीपाणीना घडा पडी गयेछे, -जे जेडने अविनीत शिष्ये अडपडी
कहुं के हे वृद्धे! तारे पुत्र तो विदेशभां मरषु पाभ्ये छे, तुं हरे केना
कुशलनी वात पूछे छे, आ प्रभाण्जे तेनुं वल्प्रडार जेपुं शार्फुकटु, तीक्ष्ण, अन्तःकरण्जे
वीधनाइं, पुत्रमरण इपवचन सांलणीने ते जेलान थवानी न हती तेटलाभां जीव विनयशील
शिष्ये विचारीने कहुं के भाईआपुं न जेवो जेना पुत्र तो अत्यारे घेर आवी पढोव्ये छे.
आम कहीने पडी तेण्जे ते शशीने कहुं के मा! तमे सत्वर घेर न्त्यो. तभारे पुत्र

सा गता गृहं, मिलितो लब्धलक्षणाभः पुत्रः, हर्षप्रकर्षमुपागता । तदनु सा बहुमूल्यं पारितोषिकमादाय सरस्तीरमागत्य तौ पृष्टवतीकथं ज्ञातमेतद्दृष्टमिति। अविमृश्यकारी ब्रूते-प्रश्नसमये तव मस्तकान्निपत्य कुम्भः स्फुटितस्तेन मया ज्ञातं-‘मृतस्तव पुत्रः’ इति । तत्पश्चाद् विमृश्यकारी प्रवक्ति-प्रश्नसमकालमेव तव घटाऽथो भूमौ निपतितस्तज्जलं च सरोजलेन साकं मिलितं तेन मया ज्ञातं-‘यस्य यज्जलं तत्तेन

तुम्हारा पुत्र घर पर आ गया है। उसके मुखावलोकन से तुम परम हर्ष का अनुभव करो। इस प्रकार उस विनयशील विचारक शिष्य के वचन सुनकर उसे मानो नई चेतना मी प्राप्त हो गई हो इस तरह चनकर वह अपने घर पहुँची। पहुँचते ही वहाँ उसने एक व्याघ्र रूपियों को कमाकर साथ में लाये हुए अपने पुत्र को देखा-देखते ही उसे परम आनन्द का अनुभव हुआ हर्ष प्रकर्ष से युक्त हो कर वह बहुमूल्य पारितोषिक लेकर पुनः उस तालाब के किनारे पर वह आई आते ही उन दोनों से उसने पूछा-माई बतलाओ तुमने यह सब कैसे जाना। सुनकर अविमृश्यकारी शिष्यने उससे कहा-मा! प्रश्न पूछने के साथ ही जब तुम्हारे मस्तक से घटा गिर कर फूट गया-तो मैंने विचार किया कि जिस प्रकार यह घटा अचानक गिरकर फूट गया है उसी प्रकार तुम्हारा पुत्र भी मर गया है। विमृश्यकारीने अपनी बात के समर्थन में उसे कहा-कि मातः? प्रश्न करने के समकाल में ही जब आप का घटा जमीन पर गिर पड़ा और उसमें का जल सरोवर के साथ मिल गया

घेर आयी गयो छे. तेनुं मा नोछने तमे पूण न आनन्द अनुभवो. आ शीते विनयी अने विचारक शिष्यना वचन आंलणीने तेणे नोछे के नवी चेतनान भेजवी छाय, तेम ते तस्तन पोताने घेर गछ अने घेर पडोयतां न त्यां तेणे ओक लक्षण रुपिया इभाध आवेल पोताना पुत्रने नोथो. नोतांणी साथे न तेनुं डैयुं आनन्दधी तरणोण धर्य गयुं. प्रसन्न थती ते गुरु कीमती लेट लछने ते न तणावने कडे इरी आवी आवीने तेथो अन्नेने तेणे पूछयुं ‘लाध. तमे आ गधुं डेवी शीते नोयुं?’ अे आंलणीने अविमृश्यकारी [अविचारी] शिष्ये कहुं-‘मा! प्रश्न करतांणी साथे न तमाशे माथा उपरधी घडो पडीने इरी गयो, त्यारे भने थयुं डे ने शीते आ घडो आशितो पडीने इरी गयो, ते शीते तमाशे पुत्र पणु भणु पाथ्यो दुथे. “विमृश्यकारीअे [विचारके] पोतानी वातनी अभर्थनमां कहुं डे ‘मा! प्रश्न करती वणते तमाशे घडो नमीन पर पड्यो अने तेनुं पाणी सरोवरना पाणीनी साथे भणी गयुं ते अे उपरधी में नोयुं डे ने प्रमाणे आ घडानुं पाणी आ सरोवरना पाणीनी साथे भणी गयुं छे, ते न प्रमाणे तमाशे पुत्र पणु तभने नदी भणयो नोछये. आ

मिलितमिति ततोऽस्याः पुत्रेऽप्यनया सह द्रुतमेव मिलिष्यती' त्यादि । तच्छ्रुत्वा तमविमृश्यकारिणं दुर्वचनैर्निर्भर्त्स्य विमृश्यकारिणे बहुमूल्यं पारितोषिकं समर्प्या-
शीर्वाद्दशतानि ददौ । अथासावविमृश्यकारी खेदविन्नो भूत्वा स्वचेतसि चिन्तया-
मास—'मया गुरुजन विनयाभावेन शास्त्रमभ्यस्तं तस्मान्मे विद्या न फलवती जाते'
त्यादिना मनःसंतापं संप्राप । विनयशीलो विमृश्यकारी तु गुरोरुपकारं प्रहृष्टं
रज्जुस्मरन् विद्यामचारं कुर्वन्वास्मिन् लोके जनरमृतमिव पूजितः—क्रमश आत्म-
विद्यां संप्राप्य कल्याणमार्गं साधितवान् । सहाध्ययने कृतेऽपि विनीते एव

तो इस पर से मैंने जाना कि जिस प्रकार यह जल इस जल के साथ
मिल जुल गया है—उसी प्रकार आपका पुत्र भी आपके साथ शीघ्र ही
मिल जाना चाहिये। इस प्रकार उस विमृश्यकारी के भूरि भूरि प्रशंसा
करती हुई उस वृद्धाने उस अविमृश्यकारी व्यक्ति को बुरा भला कह कर
तथा उम विचारशील व्यक्ति को बहुमूल्य पारितोषिक प्रदान कर अन्त
में सैकड़ों आशीर्वाद वचनों से बधाया। अपने साथी का इस प्रकार देव
दुर्लभ सम्मान देखकर अविमृश्यकारी बहुत अधिक खेद खिन्न हुआ।
उसने अपने चित्त में सोचा मैंने विद्यागुरुके पास विद्या का अध्ययन तो
किया है—परन्तु विनयाभाव के कारण वह मुझ में फलवती नहीं हुई
है। विनयशील विमृश्यकारीने 'विनयादि संपन्न बनकर जो भी विद्या
मैंने विद्या गुरु से पढी वह मुझ में विशेष रीति से मस्फुटित हुई है अतः
मेरे ऊपर विद्यागुरु का बड़ा भारी उपकार हुआ है—'इस प्रकार बार
बार विद्या गुरु के उपकार का स्मरण करते हुए विद्या का प्रचार अच्छी
तरह से किया इस प्रचारसे लोगो में उसकी अमृत जैसी मान्यता बढी।
क्रमशः जब वह आत्मविद्या की साधना करतेर कल्याणमार्ग का पथिक बन

प्रभाषे वातलाषी ते दोशीये अविमृश्यकारीना ज्ञाननी भूषण आठकणी काही. अने ते पढी
विचारशीलने भूषण कीमती लेट अने सेकटा आशीर्वचने आख्यां. पोताना साथीनु' आ
रीते देव दुर्लभ सम्मान लेधने अविमृश्यकारी भूषण व दुःखी थये अने तेले
पोतानां मनमां विचार कथो के 'मे' विद्यागुरु पासेथी विद्याभ्यास तो कथो छे पथु
विनय रहित होवाने लीधे विद्या सारी चेठे माराभां क्षणवती थछ नथी." विनय-
शील विमृश्यकारी शिष्ये विचार कथो के 'विनयादिथी ले विद्या गुरु पासेथी भेजवी
छे, ते माराभां सविशेष विकास पात्री छे. अरेपर मारा उपर विद्यागुरुने जलु वारे
उपकार थये छे." आ रीते वारवार विद्यागुरुना उपकारनुं स्मरणु करतां आनी चेठे
विद्याप्रचार कथो. आ प्रचारथी लोकभां अभूत लेवी तेनी भ्याती वधी. अनुकमे न्यारे
ते आत्मविद्यानी साधना करतां करतां कल्याणपथेना पथिक जन्थे त्यारे अनन्त वनम-

विद्या सकलशास्त्ररहस्यं प्रकटयति । मुचिनीतःतद्विद्या प्रभावेणास्मिन् लोके स्व रचनया शास्त्रादिरहस्यं प्रकटयन् आत्मविद्यां समवाप्य स्वपर कल्याणाय प्रभवति इतिवैनयिकी बुद्धि दृष्टान्तः । अत्रानेकशो दृष्टान्ताः सन्तीति विस्तरभयाद् विरम्यते ।

कार्मिक्या=कर्मणः=कृपिवाणिज्यादि व्यवसायात् जाता कार्मिकी=तत्तत्क-
र्माभ्यासप्रकर्षजनितेत्यर्थः तथा । अत्र तस्करकृपीवलोदाहरणम्-

कथितस्करो वाणिजग्रामे कस्यचिद्वणिजो गृहे कमलाकारं खातं खनितवान् ।
प्रभाते जना एकत्रीभूतारतखातं दृष्ट्वा भूयो भूयोः प्रशंसां कृतवन्तः-अहो ! चौरस्य

गया तो अनन्त संसार का भी अंत उसने कर दिया । इस दृष्टान्त लिखने का तात्पर्य यह है कि साथर अध्ययन करने पर भी विनीत जनमें ही विद्या फलवती बनती है तथा सकल शास्त्रों का रहस्य भी आत्मा में प्रकट होता है जो आत्मा विनीत होता है । विनीत जन ही विद्या के प्रभाव से इस लोकमें अपनी रचना द्वारा शास्त्रादि के रहस्य को प्रकट करते हैं-और आत्मविद्या को प्राप्त कर अन्त में वे स्व और पर के कल्याण करने में समर्थ बन जाते हैं। इस बुद्धि के ऊपर और भी अनेक प्रकार दृष्टान्त हैं जो यहां ग्रन्थ विस्तृत हो जाने के भय से नहीं लिखे गये हैं। कृपि वाणिज्य आदि व्यवसायरूप कर्म से जो बुद्धि उत्पन्न होती है वह कार्मिकी बुद्धि है ।

इसके ऊपर कृपिवल (किशान) और चोर का उदाहरण इस प्रकार है-

एक चोर ने वाणिज गाँव में किसी एक वणिक् के घर में रात्रि के समय कमल के आकार जैसा खात-ओँडा किया।-प्रभातकाल जब हुआ तो लोगोंने इसे देख कर चोर की बड़ी भारी प्रशंसा की। कहने

भरणेनो पणु तेष्से अंत कथीं. आ दृष्टान्त लणवानुं प्रयोजन ओ छे के ओकी साथे अल्पास इत्था छतां पणु विनीत भाणुसमां न विद्या सङ्ग थाय छे, अने जथा शास्त्रेनुं रहस्य पणु ते न आत्माभां प्रकटे छे, के ले आत्मा विनम्र होय छे. नम्र भाणुस न विद्याना प्रभावथी आ लोडभां पोतानी स्थना वटे शास्त्र वगेरेनुं रहस्य गतावे छे, अने आत्मविद्याने मेणथीने अंते स्व [पितानुं] अने पर [पारक्षानुं] कल्याण साधवामां समर्थ थाय छे. आ बुद्धि विपे जीतपणु ओनेक दृष्टान्तो छे. ले अडीं ग्रन्थ विस्तारना लथथी लथ्या नथी. कृपि, वाणिज्य वगेरे व्यवसायना कर्मोथी ले बुद्धि उत्पन्न थाय छे. ते कार्मिकी बुद्धि छे.

ओना भाटे कृपीवल [जिहूत] अने चोरनुं उदाहरणु आ प्रभाणु छे-

वाणिज गामभां डोड ओक वाणिज्याना घर रातना वपते ओक चोरि कभणना आकार लेवुं जाकेइं [भातर] पाइथु. सवारि लोडोओ ओ नेधने चोरना भहु लारि

अस्यामवसर्पिण्यां जातस्य चतुर्विंशस्य चरमतीर्थकरस्य भगवतः श्रीवर्धमान-
स्वामिनश्चरमचातुर्मास्यं पावापुर्यामासीत् । तत्र कृतपष्ठभक्तेषु नवमल्लकि-नव-
लेच्छकि-काशी-कौशलकेषु अष्टादशसु गणराजेषु समुपस्थितेषु तस्य चरमदेशना
पट्टविंशदध्ययनात्मिका उत्तराध्ययननामतः प्रसिद्धा, विंशत्यध्ययनात्मिका तु
विपाकश्रुतारव्या । तत्रोत्तराध्ययनस्य शब्दार्थस्त्वैवम्-उत्तराणि=मोक्षसाधकत्वात्
प्रधानानि अध्ययनानि यत्र तदुत्तराध्ययनम् ।

नन्विदमेव शास्त्रं प्रधानं चेत् आचाराङ्गादिद्वादशाङ्गी भगवत्पञ्जाऽपि
प्रधानतयाऽनुक्तत्वादितोऽपकृष्टतया प्रेक्षावद्भिरनुपादेया स्यादिति चेद् ? अत्रो-
भगवान् गौतम गणधर को (नत्वा) नमस्कार कर में (उत्तराध्ययने)
इस उत्तराध्ययन सूत्र के ऊपर (प्रियदर्शिनीं वृत्तिं) प्रियदर्शिनी नामक
वृत्ति की (कुर्वे) रचना करता हूँ ॥ ४ ॥

टीकार्थ-इस अवसर्पिणी काल में उत्पन्न चौबीसवें अन्तिम तीर्थकर
भगवान् श्रीवर्धमान स्वामी का अन्तिम चातुर्मास पावापुरी में हुआ ।
वहाँ पर भगवान् की सेवा में, नवमल्लकि नवलेच्छकि जो काशी एवं
कौशलदेश के अठारह गणराजा थे वे उपस्थित हुए । उन सबोंने पष्ठभक्त
किया । उस समय उन श्री भगवान् महावीर स्वामी की अन्तिम देशना
हुई, जो देशना छत्तीस अध्ययनरूप 'उत्तराध्ययन' इस नाम से प्रसिद्ध
हुई, तथा बीस अध्ययनरूप विपाकश्रुत, इस नाम से भी प्रसिद्ध हुई ।
उनमें 'उत्तराध्ययन' शब्द का अर्थ इस प्रकार है—मोक्ष साधक होने
से उत्तर-प्रधान हैं अध्ययन जिसमें वह उत्तराध्ययन है ।

गणधरने (नत्वा) नमस्कार करी हूँ (उत्तराध्ययने) उत्तराध्ययन सूत्र ऊपर
(प्रियदर्शिनीम् वृत्तिं) प्रियदर्शिनी नामनी वृत्तिनी (कुर्वे) रचना करूँ छुं ॥४॥

टीका-आ अवसर्पिणी ढाणमां उत्पन्न थयेला येवीसमा छेदला तीर्थंकर भग-
वान् श्री वर्धमान स्वामीने छेदले चातुर्मास पावापुरीमां थये। त्यां आगण
लगवाननी सेवामां नवमल्लकि नवलेच्छकि जे काशी अने कौशल देशना अठार
गणराज आयेल हुता ये गधामे पष्ठभक्त करेल। आ सभये लगवान् श्री
महावीर स्वामीनी अन्तिम देशना थध, जे देशना छत्तीस अध्ययनरूप
'उत्तराध्ययन' आ नामथी प्रसिद्ध थध, तथा बीस अध्ययनरूपमां विपाकश्रुत
नामथी पणु प्रसिद्ध थध, आमां 'उत्तराध्ययन' शब्दने अर्थ आ प्रकारे छे-
मोक्षसाधक होवाथी उत्तर-प्रधान छे अध्ययन जेमां ते उत्तराध्ययन छे।

(सगुप्तिसमितिं समां विरतिमादधानं सदा) जो पांच समिति और तीन गुप्तियों के धारक हैं, तथा सर्वदा सर्वविरति को पालने वाले हैं, (क्षमावदखिलक्षमं) पृथिवी के समान जो सर्व प्रकार के अनुकूल प्रतिकूल परीपहादिक को सहन करते हैं, (कलितमञ्जुचारित्रकम्) जो निरतिचार चारित्र अराधन में सदा तत्पर रहते हैं, तथा—(सदोर-मुखवस्त्रिकाविलसिताननेन्दुं) वायुकायादि की यतना के लिये जिनका मुखरूपी चन्द्रमण्डल सदा सदोरक मुखवस्त्रिका से सुशोभित है, तथा—(अपूर्वबोधप्रदं) जो अपूर्व समकितरूपी बोध-बीज के दाता हैं और (भववारिधिप्लवम्) इस संसारसमुद्र से भव्य जीवों के पार होने के लिये नौका समान हैं, ऐसे (गुरुं) निर्ग्रन्थ गुरु महाराज को (प्रणौमि) मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ३ ॥

अब टीकाकार भगवानकी वाणी आदिको नमस्कार करके अपनी व्यक्तव्यता प्रकट करते हैं—‘जैनों’ इत्यादि ।

(जैनों सरस्वतीं) जिनेन्द्र के मुखकमल से निर्गत द्वादशाङ्गीरूप सरस्वती देवी को, एवं (गणनायकं गौतमं) गणनायक-गच्छ के नायक

(सगुप्तिसमितिं समां विरतिमादधानं सदा)—जे पांच समिति અને ત્રણ ગુપ્તિયોના ધારક છે, તથા સર્વદા સર્વવિરતિને પાળવાવાળા છે, (ક્ષમાવદખિલક્ષમં) પૃથ્વીના સમાન જે સર્વ પ્રકારના અનુકૂળ પ્રતિકૂળ પરિપહોને સહન કરે છે, (કલિતમંજુચારિત્રકમ્)—જે નિરતિચાર ચારિત્રના આરાધનમાં સદા તત્પર રહે છે. તથા (સદોરમુખવસ્ત્રિકાવિલસિતાનેન્દું) વાયુકાય આદિની યતનાને માટે જેમનું મુખરૂપી ચન્દ્રમંડળ સદા દોરાસહિતની મુંડપત્તીથી સુશોભિત છે, તથા (અપૂર્વબોધપ્રદં) અપૂર્વ સમકિતરૂપી બોધ-બીજના દાતા છે અને (ભવવારિધિપ્લવમ્) આ સંસારસમુદ્રથી ભવ્ય જીવોને પાર કરવામાં નૌકાસમાન છે, એવા (ગુરું) નિર્ગ્રન્થ ગુરુ મહારાજને (પ્રણૌમિ) હું નમસ્કાર કરું છું.

હવે ટીકાકાર જીન ભગવાનની વાણી આદિને નમસ્કાર કરી સ્વવક્તવ્યતા પ્રકટ કરે છે—‘જૈનો’ ઇત્યાદિ.

(જૈનો સરસ્વતીં) જિનેન્દ્રના મુખકમળથી નિર્ગત દ્વાદશાંગીરૂપ સરસ્વતી દેવીને, અને (ગણનાયકમ્ ગૌતમં) ગણનાયક-ગચ્છના નાયક ભગવાન ગૌતમ

तत्र पट्टत्रिंशदध्ययनानां नामानि प्रदर्शयन्ते—

१-विनयश्रुतम्, २-परीपहः, ३-चतुरङ्गीयम्, ४-असंस्कृतम्, ५-अकामसकाममरणीयम्, ६-क्षुल्लकनिर्ग्रन्थीयं, ७-एलकीयम् (उरुभीयम्), ८-कापिलकम्, ९-नमिप्रव्रज्या, १०-द्रुमपत्रकम्, ११-बहुश्रुतम्, १२-हरिकेशीयम्, १३-चित्तसंभूतीयम्, १४-इषुकारीयम्, १५-सभिक्षु, १६-ब्रह्मचर्यसमाधिः, १७-पापश्रमणीयम्, १८-संयतीयम्, १९-मृगापुत्रीयम्, २०-महानिर्ग्रन्थीयम्, २१-समुद्रपालीयम्, २२-रथनेमीयम्, २३-केशिगौतमीयम्, २४-समितीयम्, २५-यज्ञीयम्, २६-सामाचारी, २७-खलुंकीयम्, २८-मोक्षमार्गगतिः, २९-सम्यक्त्वपराक्रमः, ३०-तपोमार्गः, ३१-चरणविधिः, ३२-प्रमादस्थानम्, ३३-कर्म-

जगह-जगह वर्णित हुआ है, अतः प्रसिद्धिवश इसे प्रधान कहना कोई अनुचित नहीं है। इसलिए इस मूलसूत्र का नाम उत्तराध्ययन कहा गया है। उत्तराध्ययन के ३६ अध्ययन ये हैं—

(१) विनयश्रुत, (२) परीपह, (३) चतुरङ्गीय, (४) असंस्कृत, (५) अकामसकाममरण, (६) क्षुल्लकनिर्ग्रन्थीय, (७) एलकीय, (८) कापिलक, (९) नमिप्रव्रज्या, (१०) द्रुमपत्रक, (११) बहुश्रुत, (१२) हरिकेशीय, (१३) चित्तसंभूतीय, (१४) इषुकारीय, (१५) सभिक्षु, (१६) ब्रह्मचर्यसमाधि, (१७) पापश्रमणीय, (१८) संयतीय, (१९) मृगापुत्रीय, (२०) महानिर्ग्रन्थीय, (२१) समुद्रपालीय, (२२) रथनेमीय, (२३) केशिगौतमीय, (२४) समितीय, (२५) यज्ञीय, (२६) सामाचारी, (२७) खलुंकीय, (२८) मोक्षमार्गगति, (२९) सम्यक्त्वपराक्रम, (३०) तपोमार्ग,

येटले प्रसिद्धिवश आने प्रधान कडेवामां कांछ अनुचित जेवुं नथी. आ भाटे आ मुलसूत्रनुं नाम उत्तराध्ययन कडेवायेल छे. उत्तराध्ययनना छत्रीस अध्ययन आ प्रकारे छे—

(१) विनयश्रुत, (२) परिपह, (३) चतुरङ्गीय, (४) असंस्कृत, (५) अकामसकाममरण, (६) क्षुल्लकनिर्ग्रन्थीय, (७) एलकीय, (८) कापिलक, (९) नमिप्रव्रज्या, (१०) द्रुमपत्रक, (११) बहुश्रुत, (१२) हरिकेशीय, (१३) चित्तसंभूतीय, (१४) इषुकारीय, (१५) सभिक्षु, (१६) ब्रह्मचर्यसमाधि, (१७) पापश्रमणीय, (१८) संयतीय, (१९) मृगापुत्रीय, (२०) महानिर्ग्रन्थीय, (२१) समुद्रपालीय, (२२) रथनेमीय, (२३) केशिगौतमीय, (२४) समितीय, (२५) यज्ञीय, (२६) सामाचारी, (२७) खलुंकीय, (२८) मोक्ष मार्गगति, (२९) सम्यक्त्वपराक्रम,

ચયતે—યદ્યપિ સર્વે પ્રવચનં પ્રધાનમેવ, તથાપ્યેતાનિ વિનયશ્રુતાદીનિ પટ્ટ્ત્રિંશદ-
ધ્યયનાનિ રુદ્ધિવશાત્ પ્રધાનાનિ । ભગવચ્ચરમદેશનાસ્વરૂપતયાઽસ્મિન્ શાસ્ત્રે દ્વાદશાક્ત્રી
પ્રતિપાદિતાર્થમુપસંહરતા ભગવતા પ્રાધાન્યં રુદ્ધ્યા પ્રદર્શિતમ્, સચિસ્તરં તુ તત્ત્વં તત્ર
તત્ર સૂત્રે વર્ણિતમિતિ ન કાઽપ્યનુપપત્તિઃ ।

પ્રશ્ન—યદિ છત્રીસ અધ્યયનાત્મક યદ્ શાસ્ત્ર હી પ્રધાન માના
જાવેગા તો આચારાંગ આદિ દ્વાદશાંગ કિ જિનકા પ્રરૂપણ ખી સ્વયં
ભગવાન્ ને હી કિયા હૈ, પ્રધાનરૂપ સે નહીં કહે જાને કે કારણ ઇસકી
અપેક્ષા અપકૃષ્ટ-અપ્રધાન હો જાયેંગે, ઓર ઇસ કારણ વે પ્રેક્ષાવાન્-
બુદ્ધિમાનો-કી દૃષ્ટિ મેં ઉપાદેય નહીં રહ સકેંગે, સો ઇસ પ્રકાર યદિ
કોઈ પ્રશ્ન કરે તો ઁસકા સમાધાન ઇસ પ્રકાર હૈ—

ભગવત્પ્રતિપાદિત હોને કે કારણ યદ્યપિ સખી દ્વાદશાંગાત્મક
પ્રવચનપ્રધાન હૈ ફિર ખી યહાંજો ઇન વિનયશ્રુતાદિક છત્રીસ અધ્યયનોં
મેં પ્રધાનતા પ્રદર્શિત કી ગઈ હૈ વહ કેવલ પ્રસિદ્ધિ કે વશ સમજના
ચાહિયે । ભગવાન કી અન્તિમદેશનાસ્વરૂપ હોને સે ઇસ શાસ્ત્ર મેં
દ્વાદશાંગપ્રતિપાદિત અર્થ કા સંક્ષેપ સે સમાવેશ કિયા ગયા હૈ, અતઃ
સૂત્રકાર ને પ્રસિદ્ધિ સે હી ઇસમેં પ્રધાનતા પ્રકટ કી હૈ । દ્વાદશાંગ કા
વિસ્તારસહિત વાસ્તવિક તત્ત્વ, આચારાંગ, સૂત્રકૃતાંગ આદિ આગમોંમેં

પ્રશ્ન—જે છત્રીસ અધ્યયનાત્મક આ શાસ્ત્ર જ પ્રધાન મનાશે તો આચારા-
રાંગ વગેરે દ્વાદશાંગ કે જેનું પ્રરૂપણ પણ સ્વયં લગવાને જ કરેલ છે, તે
પ્રધાનરૂપનાં ન કહેવાવાને કારણે આની અપેક્ષા અપકૃષ્ટ-અપ્રધાન બની જશે,
અને આ કારણથી તે પ્રેક્ષાવાન્-બુદ્ધિમાનો-ની દૃષ્ટિએ ઉપાદેય નહીં રહે. જે
આ પ્રકારનો કદાચ કોઈ પ્રશ્ન કરે તો એનું સમાધાન આ પ્રકારથી છે—

સ્વયં લગવાનથી પ્રતિપાદિત હોવાના કારણે જેકે બંધાં દ્વાદશાંગાત્મક
પ્રવચન પ્રધાન છે છતાં પણ અહિં આ વિનયશ્રુતાદિક છત્રીસ અધ્યયનોમાં
પ્રધાનતા પ્રદર્શિત કરાયેલ છે, તે કેવળ પ્રસિદ્ધિને વશ હોવાનું સમજવું
જોઈએ. લગવાનની છેલ્લીદેશનાસ્વરૂપ હોવાથી આ શાસ્ત્રમાં દ્વાદશાંગપ્રતિ-
પાદિત અર્થનો સંક્ષેપમાં સમાવેશ કરવામાં આવેલ છે, એટલે સૂત્રકારે
પ્રસિદ્ધિથી જ આમાં પ્રધાનતા પ્રકટ કરી છે. દ્વાદશાંગનું વિસ્તારસહિત
વાસ્તવિક તત્ત્વ, આચારાંગ, સૂત્રકૃતાંગ વગેરે આગમોમાં ઠેકઠેકાણે વર્ણન થયેલ

सह सम्बन्धः । भावसंयोगः—अशुभभावैः सहात्मनः सम्बन्धः, तस्मात् सर्वविध-
संयोगाद् विप्रमुक्तस्य=विप्रयुक्तस्य, अनित्याशरणादिद्वादशभावनाभिः संयोगस्य
फलं संसारपरिभ्रमणादिरूपं विज्ञाय संयोगं परित्यक्तवत् इत्यर्थः । संयोगो हि मृग-
वृष्णावद् भ्रमोत्पादकः, कुगतिसाधकः, विवेकतरुन्मूलने मत्तगजराजोपमः, अम-
न्दात्मानन्दरसशोपणे प्रचण्डमार्तण्डसमः, श्रुतचारित्रधर्मारामदावानलः, सद्ब्रह्मान-
वारिदिविक्षेपणे शैलशिखरानिलः । संयोगस्य प्रियवियोगजनकत्वेन दारुणदुःखोत्पाद-
कतयाऽपि परिहार्यता,

क्तस्य) सर्वथा रहित (अणगारस्स-अनगारस्य) अनगार (भिक्खुणो
-भिक्षोः)-साधु के (विणयं-विनयं) विनय को मैं (आणुपुण्वि-आ-
नुपूर्वी) शास्त्रोक्तपद्धति के अनुसार (पाउकरिस्सामि-प्रादुष्करिण्यामि)
प्रकट-क गा । अतः हे जम्भू ! तुम सब उसे (मे-मत्ताः) मुझ से
(सुणेह-शृणुत) सुनो ॥ १ ॥

भावार्थ—संयोग शब्द का अर्थ संबंध है । द्रव्यसंयोग और
भावसंयोग के भेद से यह संयोग दो प्रकार का है । पूर्वसंयोग और
पश्चात्संयोग के भेद से द्रव्यसंयोग भी दो तरह का बतलाया गया है ।
माता पिता आदि के साथ जो जन्म से संबंध है वह पूर्वसंयोग है ।
श्वशुर अदि के साथ पीछे से हुआ संबंध पश्चात्संयोग है । अशुभ
भावों के साथ आत्मा का संबंध रहता है वह भावसंयोग है । इस
संयोग का सर्वथा परित्याग वही आत्मा कर सकता है जो अनित्य

रहित (अणगारस्स-अनगारस्य) अणुगार (भिक्खुणो-भिक्षोः) साधुना (विणयं-
विनयं) विनयने हुं (आणुपुण्वि-आनुपूर्वी) शास्त्रोक्त पद्धति अनुसार (पाउक-
रिस्सामि-प्रादुष्करिण्यामि) प्रकट करीश. ज्येठले हे जम्भू ! तमे जधा ज्येने
(मे-मत्ताः) भारी पारिथी (सुणेह-शृणुत) सांभणो.

भावार्थ—संयोग शब्दको अर्थ संबंध छे. द्रव्यसंयोग अने भावसंयोगना
लेद्विती आ संयोग जे प्रकारे छे. पूर्वसंयोग अने पश्चात्संयोगना लेद्विती द्रव्य
संयोग पणु जे रीतने बतावेले छे. माता पिता वगेरेनी साथेने जे जन्मने
संबंध छे, ते पूर्वसंयोग छे. श्वशुर वगेरेनी साथे पछीथी थयेले संबंध
जे पश्चात्संयोग छे. अशुभ भावोनी साथे आत्मानो जे संबंध रहे छे जे
भावसंयोग छे. आ संयोगने सर्वथा परित्याग जे आत्मा करी शके छे.

प्रकृतिः, ३४-लेश्या, ३५-अनगार मार्गगतिः, ३६-जीवाजीव-विभक्तिः, इति ।
तत्र-श्रीसुधर्मा स्वामी जम्बूस्वामिनमन्यानपि शिष्यानुत्तराध्ययनसूत्रार्थं प्रतिबोध-
यितुं प्रवृत्तः सन् धर्मस्य विनयमूलकत्वात्प्रथमं विनयश्रुताख्यमध्ययनं प्रस्तुयंस्त-
स्याद्यं सूत्रमाह—

मूलम्—

संजोगा विप्पमुक्कस्स, अणगारस्स भिक्खुणो ।

विणयं पाउंकरिस्सामि, आणुपुंविं सुणेहं मे ॥ १ ॥

छाया—

संयोगाद् विप्रमुक्तस्य, अनगारस्य भिक्षोः ।

विनयं प्रादुष्करिष्यामि, आनुपूर्वीं गृणुत मे ॥ १ ॥

टीका—

‘संजोगा.’ इत्यादि । संयोगादिति, संयोगः=सम्बन्धः, स द्विविधः—
द्रव्यसंयोगः भावसंयोगश्च । तत्र द्रव्यसंयोगो द्विविधः—पूर्वसंयोगः पश्चात्संयोगश्च ।
तत्र पूर्वसंयोगो मातापित्रादिभिः सार्धं सम्बन्धः । पश्चात्संयोगस्तु श्वशुरादिभिः
(३१) चरणविधि, (३२) प्रमादस्थान, (३३) कर्मप्रकृति, (३४) लेश्या,
(३५) अनगारमार्गगति, (३६) जीवाजीवविभक्ति ।

इन में श्री सुधर्मास्वामीने सर्व प्रथम जंबूस्वामी एवं और भी
दूसरे शिष्योंको इस उत्तराध्ययन सूत्र के अर्थको समझाने के लिये
“विनय है मूल कारण जिसका ऐसा धर्म है” ऐसा समझकर पहले
इस विनयश्रुत नाम अध्ययनका प्ररूपण करते हुए प्रथम सूत्र कहते
हैं—‘संजोगा’ इत्यादि ।

अन्वयार्थ—(संजोगा-संयोगात्) संयोग से (विप्पमुक्कस्स-विप्रमु-

(३०) तपोभार्ग, (३१) चरणविधि, (३२) प्रमादस्थान, (३३) कर्मप्रकृति,
(३४) लेश्या, (३५) अनगारमार्गगति, (३६) लवालवविलक्षित.

आमां श्री सुधर्मा स्वामीने सर्व प्रथम जंबूस्वामी अने णीण धण्डा
शिष्योने आ उत्तराध्ययन सूत्रने अर्थ समझववा भाटे “विनय छे भूण
कारण नेनुं ओवो धर्म छे” ओवुं समल पडेलां आ विनयश्रुत नामना
अध्ययननुं प्ररूपण करतां प्रथम सूत्र कडे छे—‘संजोगा विप्पमुक्कस्स’ इत्यादि.

अ-वयार्थः—(संजोगा-संयोगात्) संयोगी (विप्पमुक्कस्स-विप्रमुक्तस्य) सर्वथा

સહ સમ્બન્ધઃ । ભાવસંયોગઃ—અશુભભાવૈઃ સદ્ગત્મનઃ સમ્બન્ધઃ, તસ્માત્ સર્વવિધ-
સંયોગાદ્ વિપ્રમુક્તસ્ય=વિપ્રયુક્તસ્ય, અનિત્યાશરણાદિદ્વાદશભાવનામિઃ સંયોગસ્ય
ફલં સંસારપરિશ્રમણાદિરૂપં વિજ્ઞાય સંયોગં પરિત્યક્તવત્ इत्यर्थः । સંયોગો हि मृग-
तृष्णावद् भ्रमोत्पादकः, कुगतिसाधकः, विवेकतरुन्मूलने मत्तगजराजोपमः, अम-
न्दात्मानन्दरसशोषणे प्रचण्डमार्तण्डसमः, श्रुतचारित्रधर्मारामदावानलः, सद्ग्रथान-
वारिदिविक्षेपणे शैलशिखरानिलः । સંયોગસ્ય પ્રિયવિયોગજનકત્વેન દારુણદુઃખોત્પાદ-
કતયાઽપિ પરિહાર્યતા,

ક્તસ્ય) સર્વથા રહિત (અળગારસ્સ—અનગારસ્ય) અનગાર (મિક્સ્વુળો
—મિક્ષોઃ)—સાધુ કે (વિણયં—વિનયં) વિનય કો મૈં (આણુપુર્વિવ—આ-
નુપૂર્વી) શાસ્ત્રોક્તપદ્ધતિ કે અનુસાર (પાઝકરિસ્સામિ—પ્રાદુષ્કરિપ્યામિ)
પ્રકટ—ક ગા । અતઃ હે જમ્બૂ ! તુમ સવ ઉસે (મે—મત્તઃ) મુજ્જ સે
(સુણેહ—શુણત) સુનો ॥ ૧ ॥

ભાવાર્થ—સંયોગ શબ્દ કા અર્થ સંબંધ હૈ । દ્રવ્યસંયોગ ઓર
ભાવસંયોગ કે ભેદ સે યહ સંયોગ દો પ્રકાર કા હૈ । પૂર્વસંયોગ ઓર
પશ્ચાત્સંયોગ કે ભેદ સે દ્રવ્યસંયોગ બી દો તરહ કા વતલાયા ગયા હૈ ।
માતા પિતા આદિ કે સાથ જો જન્મ સે સંબંધ હૈ વહ પૂર્વસંયોગ હૈ ।
શ્વશુર અદિ કે સાથ પીછે સે હુઆ સંબંધ પશ્ચાત્સંયોગ હૈ । અશુભ
ભાવોં કે સાથ આત્મા કા સંબંધ રહતા હૈ વહ ભાવસંયોગ હૈ । ઇસ
સંયોગ કા સર્વથા પરિત્યાગ વહી આત્મા કર સકતા હૈ જો અનિત્ય

રહિત (અળગારસ્સ—અનગારસ્ય) અળગાર (મિક્સ્વુળો—મિક્ષોઃ) સાધુના (વિણયં—
વિનયં) વિનયને હું (આણુપુર્વિવ—આનુપૂર્વી) શાસ્ત્રોક્ત પદ્ધતિ અનુસાર (પાઝક-
રિસ્સા મિ—પ્રાદુષ્કરિપ્યામિ) પ્રકટ કરીશ. એટલે હું જમ્બૂ ! તમે બધા એને
(મે—મત્તઃ) મારી પાસેથી (સુણેહ—શુણત) સાંભળો.

ભાવાર્થ—સંયોગ શબ્દનો અર્થ સંબંધ છે. દ્રવ્યસંયોગ અને ભાવસંયોગના
લેહથી આ સંયોગ બે પ્રકારે છે. પૂર્વસંયોગ અને પશ્ચાત્સંયોગના લેહથી દ્રવ્ય
સંયોગ પણ બે રીતનો બતાવેલ છે. માતા પિતા વગેરેની સાથેનો જે જન્મનો
સંબંધ છે, તે પૂર્વસંયોગ છે. શ્વશુર વગેરેની સાથે પછીથી થયેલ સંબંધ
એ પશ્ચાત્સંયોગ છે. અશુભ ભાવોની સાથે આત્માનો જે સંબંધ રહે છે એ
ભાવસંયોગ છે. આ સંયોગનો સર્વથા પરિત્યાગ એજ આત્મા કરી શકે છે,

અન્યચ— ન ચ્લુ ઘિઘટિતાઃ પુનર્ઘટન્તે,
 ન ચ ઘટિતાઃ સ્થિરસંગતં શ્રયન્તે ।
 પિપતિપુમવશં રુજન્તિ વશ્યા,—
 સ્તટતરુમાપ ઙ્વાપગાગણસ્ય ॥ ૩ ॥
 અત્ર ઘિપયે દષ્ટાતં કથયતિ—

કથિદ્ વણિક્પુત્રઃ સંયોગસ્ય કદુકફલં વિજ્ઞાય વિરજ્ય સંયોગં પરિત્યક્ત-
 વાન્ । તથાદિ—મથુરાનગર્યાં સુભગ-મુનન્દનામાનો દ્વૌ વણિજૌ સ્તઃ, સુભગસ્ત્રવ

ઔર ધી-ન ચ્લુ ઘિઘટિતા પુનર્ઘટન્તે, નચ ઘટિતાઃ સ્થિરસંગતં શ્રયન્તે ।

પિપતિપુમવશં રુજન્તિ વશ્યાસ્તટતરુમાપ ઙ્વાપગાગણસ્ય ॥ ૩ ॥

જો મિલકર ફિર અલગ હો જાતે હૈં ડનકા ડસી પર્યાય મેં ડસી રૂપ સે ફિર મિલના હોગા, યહ સર્વથા અસમ્ભવ હૈં । જો મિલે હૈં વે હમારે સાથ સદા સ્થિર હી રહેગેં-યહ ધી કોઈ નહીં કહ સકતા । ડિસ પ્રકાર નદિયોં કા પાની અપને તટ પર રહે હુઃ વૃક્ષોંકો હુઃલ્લ દેતા હૈં, ડસી પ્રકાર વશ્ય-પ્રિય સ્ત્રીપુત્રાદિ મરતે સમય મનુષ્ય કો હુઃસ્ત્રી કરતે હૈં, અર્થાત્ યે સ્ત્રી પુત્રાદિક ડસ ડીવ કો અનેક પ્રકાર સે વ્યથિત કરતે રહતે હૈં । ડસ લિયે માતા પિતા આદિ કા સંયોગ સર્વથા ત્યાગને યોગ્ય હૈં ।

ડસ પર સુઘન નામક વણિક્પુત્ર કા દષ્ટાન્ત ડસ પ્રકાર હૈં—

સુઘન નામક ઁક વણિક્પુત્ર ને કિસ તરહ ડસ સંયોગ કા ફલ કદુક જાના ઔર કિસ તરહ વિરક્ત હોકર ડસકા પરિત્યાગ કિયા? યહ

વર્ણી પશુ....ન ચ્લુ ઘિઘટિતાઃ પુનર્ઘટન્તે, ન ચ ઘટિતાઃ સ્થિરસંગતં શ્રયન્તે ।

પિપતિપુમવશં રુજન્તિ વશ્યાસ્તટતરુમાપ ઙ્વાપગાગણસ્ય ॥ ૩ ॥

વે મળીને ડરી ભુદા થઇ બય છે. ઁમનું ઁવ પર્યાયમાં ઁવ રૂપમાં ડરી મળવાનું થાશે; ઁ સર્વથા અસંભવ છે. વે મળ્યા છે તે અમારી સાથે સદા સ્થિર વ રહેશે-આ પશુ કોઇ કહી શકતું નથી. વે રીતે નદિયોંનું પાણી પોતાના તટ ઉપરનાં વૃક્ષોને હુઃખ આપે છે, ઁવ પ્રકારે વશ્ય-પ્રિય સ્ત્રી પુત્રાદિ મરતી સમયે મનુષ્યને હુઃખી કરે છે, અર્થાત્ ઁ સ્ત્રીપુત્રાદિક આ ભવને અનેક પ્રકારથી હુઃખી કરતાં રહે છે. આ માટે માતાપિતા આદિનેા સંયોગ સર્વથા ત્યાગવા યોગ્ય છે.

આ અંગે સુઘન નામના વણિક્પુત્રનું દષ્ટાંત આ પ્રકારનું છે—

સુઘન નામના ઁક વણિક્પુત્રને ડેવી રીતે આ સંયોગનું ડળ કડવું માહુમ પડયું? અને ડેવી રીતે વિરક્ત બનીને તેનેા પરિત્યાગ કર્યો? ઁ વાત

दक्षिणतः, सुनन्दश्चोत्तरतो निवसन्नासीत् । तत्रैकोऽपरस्य गृहे प्राघुणिकोऽभवत्, तदोभौ मिथश्चिन्तितवन्तौ—आवयोः प्रीतिर्दृढतरा कथं भविष्यति ?, यथावयोर्मध्ये एकस्य पुत्रः स्यादेकस्य च पुत्री, तदा तयोर्वैवाहिकसम्बन्धेनावयोः संयोगस्तज्जनिता प्रीतिश्च स्थिरतरा भविष्यति । अथैकदा दक्षिणदिग्वर्तिनः श्रेष्ठिनः सुधननामकः पुत्रो जातः, उत्तरदिग्वासिनः श्रेष्ठिनश्च पुत्री, कुसुमवती—नाम्नी समजनि । तयोः परस्परं वाग्दानं संजातम् । तदनन्तरं दक्षिणदिग्वासी वणिग् गृहः । तस्मिन् मृते—सति तत्पुत्रः सुधनः पितृधनाधिकारी संजातः । प्रचुरं पितृधनं प्राप्य स प्रमुदितो—

वात उसीके आख्यान द्वारा प्रकटित की जाती है—मथुरा नगरीमें सुभग और सुनन्द नाम के दो वणिक् निवास करते थे । सुभग का घर दक्षिण दिशा में था और सुनन्द का घर उत्तर दिशा में । एक दिनकी बात है कि इन दोनों में से एक दूसरे के घर मेहमान हुआ था, वहाँ इन दोनों ने परस्पर यह विचार किया कि-अपने दोनों का यह स्नेह सर्वदा इसी तरह से बना रहे, इस हेतु अपनेदोनों में से यदि एक को पुत्र हो और दूसरे को पुत्री हो तो दोनों का विवाह कर दें । भाग्यवशात् ऐसा ही हुआ कि-सुभग के यहाँ पुत्र का जन्म हुआ । लडकेका नाम सुधन रखा गया । उत्तरदिशा में निवास करनेवाले उस सुनन्दके यहाँ एक पुत्री हुई । उसका नाम कुसुमवती रखा गया, पूर्वनिश्चित के अनुसार इनकी सगाई-वाग्दान पक्की कर दी गई । सगाई पक्की करके सुभग का तो देहांत हो गया । पिता के धनका अधिकारी पुत्र होता है, इस नियम

तेना आख्यायन द्वारा प्रकट करवाभां आवे छे—मथुरा नगरीभां सुभग अने सुनंद नामना जे वणिक् निवास करता उता. सुभगनुं घर दक्षिण दिशाभां उतुं अने सुनंदनुं घर उत्तर दिशाभां. ओक द्विपसनी वात छे के जे अन्नेभांथी ओक जीजने घर मेहमान जनेल, त्यां आ अन्नेजे परस्पर विचार कर्यो के—आपणा अन्नेना आ स्नेह कायम टकी रहे ते हेतुथी आपणा अन्नेभांथी कदाय ओकने पुत्र होय अने जीजने पुत्री होय तो अन्नेना विवाह करी देवा. भाग्यवशात् जेवुं जे अन्नुं के, सुभगने त्यां पुत्रने जन्म थयो, छोकरानुं नाम सुधन राखवाभां आव्युं उत्तर दिशाभां निवास करवावाणा ते सुनंदने त्यां पुत्री अवतरी, तेनुं नाम कुसुमवती राखवाभां आव्युं. अगाउना निश्चय अनुसार तेमनी सगाई करवाभां आवी. सगाई पाकी कर्या पछी सुभगनुं मृत्यु थयुं. पिताना धनने अधिकारी पुत्र होय छे, आ नियम अनुसार पिताना पिताना धनने सुधन अधिकारी जन्थे. कोथ ओक समये सुधने स्नान

ऽभवत् । अथैकदा तेन स्नानार्थं पार्श्वतः पृष्ठतः पुरतश्चतुर्दिक्षु चत्वारः स्वर्ण-कलशा-
श्चत्वारो रौप्यकलशाश्चत्वारस्ताम्रकलशाश्चत्वारो मृन्मयकलशा जलपूर्णाः स्थापिताः,
अन्यान्यपि स्नानोपकरणानि तत्रोपस्थापितानि । अत्रान्तरे तत्पूर्वभवमित्रदेवस्तं
प्रतिबोधयितुं समागतः । स वणिक्पुत्रः सुधनः स्नानार्थं स्वर्णकलशमुत्थापयति,
स स्वर्णकलशस्तदानीमेव मित्रदेवमभावात्पणष्टः, एवं चतुर्दिक्षु सर्वे कलशाः
प्रणष्टाः । ततोऽसौ स्नानपीठादुत्तिष्ठति । तस्मिन्नुत्थिते सति स्नानपीठमपि नष्टम् ।
ततस्तस्य धृतिर्नष्टा । यावद् गृहं प्रविष्टः, भृत्यैर्भोजनविधिरुपस्थापितः, स्वर्णरौप्य-

के अनुसार सुधन अपने पिताके धनका अधिकारी बना । किसी एक
समय सुधनने स्नान के अवसर पर भृत्योंसे चार सोने के कलश, चार
चांदी के कलश, चार ताँबेके कलश और चार हीमिट्टी के कलश पानी
से भरवाकर अपनी चारों ओर आजू वाजू और समक्ष एवं पीछे की
ओर, इस प्रकार चारों दिशाओं में रखवा लिये । इसके बाद इसका
पूर्वभवका मित्र जो देवपर्याय में था इसकी इस तरह संयोगी पदार्थों के
सेवन में अधिक लालसा का निरीक्षण कर उसको प्रतिबोध देने के लिये
वहाँ आया । वणिक्पुत्र उस सुधन ने ज्योंही नहाने के लिये सुवर्ण के
कलश को ऊपर उठाया कि उसी समय वह कलश उस अदृश्य हुए देव
के प्रभाव से शीघ्र ही अदृश्य हो गया । इसी तरह अवशिष्ट तीन
कलशों की भी यही हालत हुई । वह एकदम स्नान पीठसे उठ कर खडा
हो गया और ज्यों ही उससे नीचे उतरा तो वह स्नान पीठ भी इसकी
नजरों के समक्ष ही नष्ट-अदृश्य हो गया । उसने आश्चर्यचकित होकर
इधर उधर देखा पर कुछ समझ में नहीं आया । यह क्या बात है इससे

करवाना समझे नोकरेथी चार सोनाना कणश, चार चाँदीना कणश, चार ताँबाना
कणश, अने चार माटीना कणश पाणीथी लरावीने पोतानी चारे तरङ्ग-आबु-
आबु चारे दिशाओमां रखाव्या. आ पछी ओना पूर्व भवनेा मित्र ने देव
पर्यायमां छतो तेले आ रीते संयोगी पदार्थना सेवनमां अधिक लालसानुं
निरीक्षण करी तेने प्रतिबोध आपवा माटे त्यां आब्ये. वणिक्पुत्र सुधने नडावा
माटे न्यां सुवर्ण कणशने उपाउच्ये त्यां अदृश्य रहेला देवना प्रलावथी
ते कणश तुरत न अदृश्य थछ गया. आन रीते पीछे त्रणु कणशोनी
पणु ओन डालत थछ. वणिक्पुत्र स्नाननी नग्याओथी ओडहम उलो थछ
गयो अने पाटला उपर पोते गेठो छतो तेनाथी नीचे उतरथी त्यां ओ पाटला
पणु अदृश्य थछ गयो. ओले आश्चर्यचकित गनी चारे तरङ्ग बोवा मांड्यु

मयभोजनपात्राणि समानीतानि, तत्रैकैकभाजनं क्रमेण नष्टमभवत् । यदाऽसौ स्वर्णमयस्थालमग्रतो धावमानं व्योम्नि पश्यति, तदा तत् स्थालं हस्तेन गृह्णाति, गृहीते सति तदग्रभागतः खण्डमेकं तस्य करतललग्नमासीत्, अपरभागतः स्वर्णमय-स्थालं सर्वं प्रणष्टम् । ततः चुटितस्थालैकखण्डहस्तः सुधनः सर्वं नश्यद् विलोकयन् मूलधनं द्रष्टुमागच्छति, तावत् सर्वं मूलधनमपि नष्टम् । एवं सर्वाऽपि तस्य श्री विनष्टा । अथ निर्धि द्रष्टुमागच्छति तदा सर्वं निधानमपि नष्टम् । एवं दासीवर्गः, परिवारवर्गोऽपि तस्य नष्टः ।

इसका घैर्य नष्ट हो गया । घर में जाकर यह ज्यों ही भोजन करने के लिये भोजनालय में गया तो रसोईयने पहिलेसे सजाकर रखे हुए सुवर्ण एवं चांदी के भोजनपात्रों में इसके बैठने पर भोजन परोस दिया परन्तु इसके समक्ष ही वे सब के सब भोजनपात्र क्रम २ से नष्ट हो गये-पता नहीं पडा कहां चले गये। जब एक सुवर्णका थाल जो इसके समक्ष ही आगे से उठकर आकाश में उडने लगा तो इसने उसे धाम कर पकड लिया । पकडते ही उस थाल की किनार टूटकर इसके हाथ में रह गयी। बांकी का थाल नष्ट हो गया । यह फिर उस टुकडे को हाथ में लिये हुए ही अपने मूल धन को देखने के लिये वहां से दूसरी तरफ चला तो क्या देखता है कि इसका मूल धन भी सब नष्ट हो चुका है । इस तरह समक्ष ही देखते २ इसकी समस्त लक्ष्मी नष्ट हो गई । निधान नष्ट हो गया । दासी-दास आदि और परिवार वर्ग भी नष्ट हो गये । अब यह उस

परंतु कांछ समज्जवामां न आव्युः, येनामां पिरञ्ज न रही. आथी अकजाध नावानुं छोडी दध धरमां गथे, अने लोञ्जन करवा लोञ्जनालयमां पडोअथे, ज्यां रसोअथाये सोना यांदिना वासल्लोमां येना जेडा पछी लोञ्जन पीरस्थुं, लोञ्जन पिरसाया पछी तेनी नञ्जर सामे जेत जेतामां कभ कभथी लोञ्जनपात्रे अदस्थ थवा लाग्यां, जणर न पडी कथां यादथां गथां. अेक सुवर्ण थाण जे तेनी सामेथी उडवा मांडेले तेने डाथथी पकडतां अे थाणनी किनार तुटीने तेना डाथमां रही गध. अने जाडीनेा थाण अदस्थ जनी गथे. थाणना तुटेला टुकडाने डाथमां राभीने पोताना मुण धनने जेवा माटे त्यांथी भील्ल तरङ्ग गथे. त्यां जतां शुं हेजे छे के पोतानुं मुण धन पथु अदस्थ जनी गथुं हुतुं आ रीते पोतानी नञ्जर सामे तेनी सधजी लक्ष्मी अदस्थ जनी गध, निधान नष्ट थध गथे. दासी दास वगेरे परिवार पथु

अथासौ स्वर्णमयस्थालैकखण्डहस्तः सन्नितस्ततो भ्राम्यन्नकस्मादुत्तरभाग-
वासिनः पितृमित्रस्य सुनन्दनामकस्य वणिजो गृहं जगाम । तं दृष्ट्वा सुनन्दस्तं
सादरं भोजयामास । भोजनसमये सुधनस्तानि तानि रत्नानि, तांश्च स्वर्णकलशान्,
तानि स्वर्णमयस्थालानि सर्वाणि स्वकीयानि वस्तूनि तत्र ददर्श । तत्तद् वस्तुजातं
भेक्षमाणं वणिकूपुत्रं सुधनं सुनन्दो वणिकू पृच्छति—किं मम पुत्रीं पश्यसि ?
सुधनेनोक्तम्—नाहं तव पुत्रीं पश्यामि, किं तु त्वद्गृहस्थितान्येतानि रत्नमयानि
वस्तूनि मदीयानि सन्तीति विलोकयामि । सुनन्देन वणिजा प्रोक्तम्—किमत्र

सोने के थाल के टुकड़े को हाथ में लिये हुए इधर-उधर घूमने फिरने
लगा । फिरते २ इसकी दृष्टि उस उत्तर दिशा में रहने वाले सुनन्द के
मकान ऊपर पड़ी, जो इसके पिता का मित्र था । यह उसके घर पर
गया । सुनन्द ने उसको आदर के साथ भोजन करने के लिये बैठाया ।
वहां पर सुधन ने अपनी समस्त नष्ट हुई वस्तुएँ देखीं—वे ही सोने के
थाल, वे ही सुवर्णादि के कलश और वे ही रत्न आदि । जब उसकी दृष्टि
उन अपनी चीजोंके निरीक्षण करने में आसक्त हो रही थी, तब अचा-
नक ही बीचमें टोकते हुए सुनन्द ने कहा—सुधन ! यह क्या करते हो ?
तुम्हारी दृष्टि इस समय कहाँ है, क्या हमारी पुत्री को देख रहे हो ?
सुनन्द के वचन सुन कर सुधन ने कहा—महाशय ! मैं आपकी पुत्री को
नहीं देख रहा हूँ, किन्तु यह विचार कर रहा हूँ कि “ तुम्हारे यहां रही
हुई ये सबही रत्नादिक वस्तुएँ मेरी हैं, यहां ये कैसे आ गईं ” इस बात
का विचार कर रहा हूँ । सुनन्द ने कहा—तुम्हारी होने का क्या प्रमाण है ?

नष्ट थप गया, आ पछी सोनाना थालना टुकडाने ढाधमां राणीने ते आडिं
तडिं धुमवा लाग्यो. इरतां इरतां तेनी दृष्टि उत्तर दिशाभां रडेवावाणा सुनंदना
मकान उपर पडी, जे तेना पितानो मित्र डतो. ते जेना घर गये. सुनंदे
तेने आवडारी प्रेमपूर्वक बेज्जन करवा भेसाडयो. त्यां सुधने चोतानी नष्ट
थजेडी सधणी वस्तुजो जेथ-तेज सोनानो थाण, जेज सोनाना कणश जने
जेज रत्न आदि. न्यारे तेनी दृष्टि जे चोतानी चीजेनुं निरीक्षण करवाभां
आसक्त थप रही डती, त्यारे अजानक ज तेने टोकतां सुनंदे कहुं—सुधन !
आ शुं करे छे ? तभारी दृष्टि आ समये कथां छे, शुं भारी पुत्रीने जेथ
रहा छे ? सुनंदना वचन सांभलीने सुधने कहुं—महाशय ! हुं आपनी
पुत्री तरक जेतो नथी, परंतु जे विचार कउं छुं के “ तभारे त्यां रडेली आ
सधणी रत्नादिक वस्तुजो भारी छे, आडिं जे कथं रीते आवी ” आ वातनो
विचार करी रह्यो छुं. सुनंदे कहुं—तभारी डोवानुं शुं प्रमाण छे. हा. प्रमाण छे.

प्रमाणम् ? । सुधनः प्रत्याह—त्वद्गृहावस्थितस्यैतस्य त्रुटितस्वर्णमयस्थालस्य खण्ड-
मेकं मम हस्ते विद्यते, पश्य संयोजयामीत्युक्त्वा संयोजयति, संयोजिते सति तत्
खण्डं तत्र सम्यक् संलग्नम् । अथ सुनन्दः पृच्छति—कस्त्वम्, सुनन्देन पृष्टोऽसौ
वणिकपुत्रः सुधनः स्वपितुर्नाम कथयित्वा परिचयं दत्तवान् । तस्मिन् वणिक-
पुत्रे परिचिते सति सुनन्दः पुनराह—त्वं तु मम जामाताऽसि, इति । इत्थं सर्वं

हां, प्रमाण है तभी तो ऐसा कह रहा हूँ, नम्रता से सुधन ने
जवाब दिया । साबित करनेकी चेष्टा करते हुए सुधन ने वह एक
सोने के थाल की किनार जो उसके हाथ में पहिलेसे थी उसको
दिखलाया, और यह भी बतलाया कि देखो यह सुवर्ण का थाल
जो भग्न अवस्था में आप के यहां है उसी की यह किनार है ।
मैं आप के ही समक्ष उसे इसमें जोड़ता हूँ, यदि यह उस थाल में
जुट जाये तो आपको मेरी बात सत्य माननी पड़ेगी । सुनंद ने
यह सब स्वीकार कर लिया । सुधन ने सुनंद के समक्ष ही उस किनार
को उस थाल में ज्यों ही योजित किया तो वह उस में अच्छी तरह जुट
गया । यह देखकर सुनंद ने कहा—ठीक है । अब तुम यह तो बतलाओ
कि तुम हो कौन ? इस प्रकार सुनंद के पूछ ने पर सुधन ने उसे अपना
परिचय दे दिया । परिचय पाकर सुनंद बहुत हर्षित हुआ और कहने
लगा कि धन्य है आज का दिन जो आपके दर्शन हुए । आपके पिताने
मेरी पुत्री के साथ आप का पहिले से वाग्दान निश्चित कर दिया था,
अतः आप मेरे संबंध में जामाता हैं । अब आप योग्य हो चुके हैं, इस

त्यारे तो अबुं कही रह्यो छुं तेयो नम्रताथी न्वाण सुधने आप्यो. सापीत
इश्वानी चेष्टा इस्तां पोताना हाथमां रडेली सोनाना थाणनी किनार तेने
गतावी, अने ओ पणु न्वाण्युं के वुओ सोनाने थाण ने तुटेवी अवस्थां
तभारे त्यां छे तेनी आ किनार छे. आपनी समक्ष न्हुं तेने आ साथे नेडुं
छुं, कदाय ते आ थाण साथे नेडाथ नय तो आपने भारी वात सत्य मानवी
पडथे. सुनंदे ओ वातने स्वीकार कर्यो. सुधने सुनंदनी साथे न् ओ किनार
तुटेवा थाण साथे नेडतां तेनी साथे गराणर भणी गथ. आ नेथ सुनंदे
कहुं—ठीक छे, हुवे तमे ओ तो गतायो के तमे छे डोणु ? आ प्रकारे सुनंदना
पूछवाथी सुधने तेने पोताना परिचय आप्यो. परिचय सांभणतां न् पूण न्
धर्म पाभ्यो अने कडेवा लाग्यो के धन्य छे आनो दिवस, के आपनां दर्शन
थयां. तभारा पिताने भारी पुत्री साथे तभाइं वेविशाण अगाठ नकी करेहुं
ओटवे तमे मारा न्भाथ छे, अने तमे योग्य उभरना थया छे, ओ माटे भारी

पूर्ववृत्तं वर्णयित्वा सुनन्दो वणिक् पुनरवोचत्-गृहाण मम पुत्रीं, मदीयं सर्वस्वं च । एतद्वचनं श्रुत्वा सुधनोऽब्रवीत्-पुरुषः पूर्वं कामभोगान् परित्यजति, कामभोगा वा पुरुषम्, मां तु कामभोगा एव पूर्वं परित्यक्तवन्तस्तेनाहं तान् परित्यजामि, नास्ति मे किञ्चित् प्रयोजनं तव पुत्र्या सर्वस्वेन चेति । एवं संवेगसंवलितं सुधन-वचनं श्रुत्वा सुनन्दो वणिक् संवेगं प्राप्तवान् ।

अथ वणिक्पुत्रस्य सुधनस्य वैराग्यं दृष्ट्वा तत्पूर्वभ्रममित्रदेवः प्रत्यक्षीभूय तमब्रवीत्-त्वां प्रतिबोधयितुं मया सर्वमेतत् समाचरितम्, इत्युक्त्वा तस्मै सदोरक-मुखवस्त्रिकारजोहरणपात्रादीनि साधूपकरणानि समर्पितानि । तदा सुधनः सुनन्देन सह प्रव्रजित इति ।

लिये मेरी पुत्री को और मेरे सर्वस्व को अपनाकर मुझे कृतार्थ करें । सुनन्द के वचनोंको सुनकर सुधन ने कहा-संसार की विचित्रता को देखो । प्रायः पुरुष ही पहिले काम-भोगोंका परित्याग किया करता है परन्तु आश्चर्य है कि जब काम-भोगों ने ही मुझे पहिले से छोड़ दिया है, तब अब सुन्दर मार्ग यही है कि मैं भी अब इन्हें सर्वथा छोड़ दूँ, अतः मुझे अब न आपकी पुत्री से मतलब है और न आपके सर्वस्व से । इस प्रकार वैराग्य से युक्त सुधन के वचनको सुनकर सुनन्द भी वैराग्य को प्राप्त हुआ । वणिक्पुत्र सुधनके वैराग्यको देखकर उसका पूर्वभवीय वह मित्र जो देव था प्रत्यक्ष होकर उससे कहने लगा-मित्र सुधन ! तुम्हें प्रतिबोधित करने के लिये ही मैंने यह सब खेल रचा है, अच्छा हुआ तुम प्रतिबोधित हो गये । इस प्रकार कहते हुए उसने उसके लिये

पुत्रीने अने मारा सर्वस्वने पोतापुंभानी मने कृतार्थ करे। सुनन्दनां वचनो सांलणी सुधने कहुं-संसारनी विचित्रताने लुब्धो, जरी रीते पुत्र्य न काम लोभोने परित्याग करतो आवेल छे, परंतु आश्चर्य छे के न्यारे काम-लोभोने न पडेलेथी मने छोडी दीधेल छे, त्यारे साराभां सारे भागं ओ छे के दुं पणु आने सर्वथा छोडी दई, ओटले मने डवे नथी आपनी पुत्रीधीं मतलब के न आपना सर्वस्वथी. आ प्रकारनां वैराग्यधीं युक्त ओवां सुधननां वचनो सांलणीने सुनंदने पणु वैराग्य प्राप्त थयो. डवे वणिक्पुत्र सुधनना वैराग्यने लेई तेना पूर्वभवने मित्र के ने देव छे ते प्रत्यक्ष णनी तेने कडेवा लाग्यो- मित्र सुधन ! तने प्रतिबोधित करवा माटे न में आ भ्रमणे ओल खेल छे. दीक थयुं के तने प्रतिबोध पाग्या. आ प्रकारे कहेतां तेणे तेना माटे

अनगारस्व=न विद्यतेऽगारं = गृहं यस्य सोऽनगारः=द्रव्यभावगृह-
रहितः, तत्र द्रव्यागारं-नियतवासस्थानम्, भावागारं कपायमोहनीयं कर्म, तस्य
स्थित्यादिभूयस्त्वे नास्ति विरतिसंभवस्तस्मादल्पकपायमोहनीयो भावतोऽनगार-
स्तस्य भिक्षोः=हननघातनादिनवकोटिपरिरुद्धभिक्षाग्राहिणः विनयम्=विशिष्टो

साधु के उपकरणरूप सदोरक मुखवस्त्रिका रजोहरण एवं पात्र आदि
समर्पित किये । इस प्रकार संयोग का कटुक फलजानकर सुधनके साथ
सुनन्द भी प्रव्रजित हो गया ।

अब 'अणगारस्त भिक्षुणो' का अर्थ कहते हैं-अनगार शब्द
का अर्थ घर का परित्याग करना है । द्रव्य और भावके भेदसे अगार
के दो भेद हैं । नियत जो निवास का स्थान है-वह द्रव्य-अगार है ।
कपाय-मोहनीय कर्म भाव-अगार है । इसकी उत्कृष्ट स्थिति आदि में
जीव को विरतिका लाभ नहीं होता है । विरति का लाभ होने के लिये
इसकी स्थिति आदि अल्प अपेक्षित होती है, इसलिये अल्पकपाय-
मोहनीयवाला भावानगाररूप से विवक्षित हुआ है । अब 'भिक्षु'
शब्द का अर्थ कहते हैं-भिक्षु वही हो सकता है जो हनन घातन आदि
क्रियाओं का नवकोटि से परित्यागी होता है, अर्थात् हनना, हनवाना,
उसका अनुमोदन करना, पकाना, पकवाना, उसका अनुमोदन करना,
खरीदना, खरीदवाना, उसका अनुमोदन करना, इन नवकोटि दोषोंसे

साधुनां उपकरणरूप द्वारासाधेभुषणवस्त्रिका, रजोहरणु अने पात्रो आदि
समर्पित कर्था. आ प्रकारे संयोगनां कठवां इणने लक्ष्मीने सुधननी साधोसाध
सुनदे पणु प्रव्रज्या अंगीकार करी.

इसे "अणगारस्त भिक्षुणो" का अर्थ कहे छे-अनगार शब्दने
अर्थ घरने परित्याग करवे. ते द्रव्य अने भावना लेदधी अगारना ये लेद छे.
नियत ने निवासनुं स्थान छे ते द्रव्य-अगार छे. कपाय मोहनीय
कर्म भाव-अगार छे. तेनी उत्कृष्ट स्थिति आदिमां एवने विरतिने लाभ थतो
नथी. विरतिने लाभ थवा माटे अनी स्थिति आदि अल्प अपेक्षित थाय
छे, आ माटे अल्पकपायमोहनीयवाणा भावानगाररूपथी विवक्षित थयेल छे.
इसे "भिक्षु" शब्दने अर्थ कहे छे-भिक्षु अर्थ थध शके छे ने हनन घातन
आदि क्रियाओने नवकोटीथी परित्याग करे छे. अर्थात् डलवुं, डलवावुं अने तेनुं
अनुमोदन करवुं. पकावुं, पकावुं तैयार करावुं, तेनुं अनुमोदन करवुं,
परीदवुं, परीदावुं, अने तेनुं अनुमोदन करवुं, आ नवकोटी दोषोथी रहित

नयो नीतिर्विनयः=साधुसमादृतः समाचारस्तम्, यद्वा-विनयति=नाशयति सकल-
क्लेशजनकमष्टविधं कर्म स विनयस्तम्, गुरुं प्रति नीचैर्वृत्तिलक्षणा नम्रता द्रव्यतो
विनयः, साध्वाचारं प्रति पवणत्वं भावतो विनयस्तमित्यर्थः, प्रादुष्करिष्यामि=
प्रकटयिष्यामि । केन प्रकारेण प्रादुष्करिष्यामीत्याकाङ्क्षायामाह—‘आणुषुञ्चि’
इति । आनुपूर्वीमिति, अत्र-सौत्रत्वात् तृतीयार्थे द्वितीया, आनुपूर्व्यां=क्रमेण
शास्त्रोक्तपरिपाटयेत्यर्थः, हे शिष्याः ! मे=मम मत्सकाशादित्यर्थः, यद्वा—‘मे’ इति
विभक्त्यन्तप्रतिरूपकमव्ययम् मे=मत्तः, शृणुत=यूयमाकर्णयत श्रवणं प्रति सावधाना
भवतेत्यर्थः । स्वशिष्यामिमुखीकरणार्थमिदम् ॥ १ ॥

‘विनयं प्रादुष्करिष्यामी’त्युक्तं, तत्र विनीतलक्षणे विज्ञाते सति विनय-
स्वरूपं विदितं स्यादिति विनीतलक्षणमाह—

रहित भिक्षा का ग्रहण करनेवाला भिक्षु कहा गया है । विनय का अर्थ
है—विशिष्ट नय, इसलिये यहाँ ‘विनय’ शब्द से साधुओंका आचार
समझना चाहिये । अथवा—जो अष्टविध कर्मोंका नाश करे सो ‘विनय’
है । वह विनय द्रव्य-विनय और भाव-विनय के भेद से दो प्रकार का
है । गुरु के प्रति, तथा पर्यायज्येष्ठोंके प्रति नम्र होना, तथा उनकी सेवा
करना यह द्रव्य-विनय है । साध्वाचार में तत्पर रहना यह भाव-विनय
है । उस विनय को मैं शास्त्रोक्त पद्धति के अनुसार प्रकट करूँगा,
अतः हे जंबू ! तुम सब मुझ से इस बात को अच्छीतरह सुनो ॥ १ ॥

विनीत के लक्षण का जबतक ज्ञान न हो जाय तब तक विनय का
स्वरूप जाना नहीं जा सकता है, इसलिये सूत्रकार विनीत का लक्षण
कहते हैं—‘आणाणिदेसकरे’ इत्यादि ।

भिक्षाने अलक्ष्य करवावणा ‘भिक्षु’ कहेवाय छे. विनयनेो अर्थ छे—विशिष्ट नय,
आ माटे अडिं ‘विनय’ शब्दथी साधुओनेो आचार समज्जेो जेधजे. अथवा—
जे अष्टविध कर्मोनेो नाश करे ते ‘विनय’ छे. ते विनय द्रव्य-विनय अने भाव-
विनयना जेदथी जे प्रकार छे. शुद्धना प्रति तथा पर्यायथी जडाओ प्रति नम्र
थनुं, तथा तेनी सेवा करथी ते द्रव्य विनय छे. साधुना आचारमां तत्पर रहेकुं
जे भाव-विनय छे. ते विनयने हुं शास्त्रोक्त पद्धति अनुसार प्रकट करीथ,
माटे छे जम्भू ! तमे भासथी आ सधणी वातने सारी नीते सांजणे (१).

विनीतना लक्षणुतुं न्यां सुधी ज्ञान न थाय त्यां सुधी विनयतुं स्वइपण्णथी
शकानुं नथी. आ माटे सूत्रकार विनीतनां लक्षणु कडे छे.—‘आणाणिदेसकरे’. धृत्यदि.

मूलम्—आणाणिद्देशकरे, गुरुणमुववायकारण ।

इंगियागारसंपण्णे, से विणीए त्तं वुच्चई ॥ २ ॥

छाया—

आज्ञानिर्देशकरः गुरुणामुपपातकारकः ।

इङ्गिताकारसम्पन्नः स विनीत इत्युच्यते ॥ २ ॥

टीका—

‘आणाणिद्देशकरे’ इत्यादि । आज्ञानिर्देशकरः=आज्ञा=विधिरूपं प्रतिषेधरूपं वा गुरुवचनं, यथा—‘इदं कुरु’ ‘इदं मा कुरु’ इति, तस्या निर्देशः—भवद्बचनानुसारेण करिष्यामीति कथनं, तस्य करः=कर्ता, यद्वा—आज्ञायाः=तीर्थ-करवाण्या निर्देशः=उत्सर्गापवादकथनं, तस्य कारकः, तथा-गुरुणाम्=आचार्यादीनाम्, उपपातकारकः=उपपातः=समीपेऽवस्थानं, तस्य कारकः, आचार्यादिसंनिहितस्थान-वर्ती, न तु तन्नियोगवचनभयाद् दूरावस्थायीत्यर्थः, तथा—इङ्गिताकारसम्पन्नः, इङ्गितं=निपुणमतिगम्यं स्वाभिप्रायमूचकमीपद्भ्रूचालनादिकम्, आकारः=स्थूल-मतिगम्यः प्रस्थानादिमूचको दिग्बलोकनादिः, ताभ्यां संपन्नः=युक्तः, गुरुमनो-वृत्तिज्ञानवानित्यर्थः, एवंभूतो यः शिष्यः सः विनीतः=विनयवान्, इत्युच्यते तीर्थकरगणधरादिभिरिति शेषः ।

अन्वयार्थ—(गुरुणं—गुरुणां) आचार्य आदिकी (आणाणिद्देशकरे—आज्ञानिर्देशकरः) आज्ञा को मानने वाला (उववायकारण—उपपातकारकः) उनके निकट सदा रहने वाला (इंगियागारसंपण्णे—इंगिताकारसंपन्नः) इंगित—सूक्ष्म बुद्धि वालों से जानने योग्य गुरु आदि की भ्रूचालन आदि चेष्टा । आकार—स्थूल बुद्धि वालों से भी समझने योग्य गुरु आदि की गमनादिसूचक दिशाका अवलोकनादि चेष्टा । गुरु आदि की इन दोनों चेष्टाओं को अच्छी तरह जानने वाला जो शिष्य होता है (से विणीए

अन्वयार्थ—(गुरुणं—गुरुणां) आचार्य वगैरेनी (आणाणिद्देशकरे—आज्ञा-निर्देशकरः) आज्ञाने मानवावाणा (उववायकारण—उपपातकारकः) भेभनी पासे सदा रहेवावाणा (इंगियागारसंपण्णे—इंगिताकारसंपन्नः) धंगित—सूक्ष्म बुद्धिवाणाथी बलुवा योग्य शुद्धनी भ्रूचालन—(आंणने धशारे) आदिनी चेष्टा, आकार-स्थूल बुद्धिवाणाथी पणुसभनवा योग्य शुद्ध आदिनी गमनादिसूचक दिशानुं अवलोकन आदि चेष्टा, शुद्ध आदिनी आ भन्ने चेष्टाभेने सारी रीते बलुवावाणा

ત્તિ વુચ્છ-સઃ વિનીત ઇતિ ઉચ્યતે) વહ તીર્થકર ગણધર આદિ કે દ્વારા વિનીત કહા ગયા હૈ ॥ ૨ ॥

ભાવાર્થ—“આજ્ઞાનિર્દેશકરઃ” “યહ કરો, યહ ન કરો” ઇસ પ્રકાર વિધિરૂપ ઓર નિષેધરૂપ જો ગુરુ કે વચન હૈં વે ‘આજ્ઞા’ શબ્દ સે ગ્રહણ કિયે ગયે હૈં । “આપ કે વચન કે અનુસાર હી પ્રવૃત્તિ કરને કા ભાવ હૈ, અન્યથા નહીં,” ઇસ પ્રકાર શિષ્ય કા કથન નિર્દેશ હૈ । ઇસ નિર્દેશ કા અચ્છી તરહ સે પાલન કરને વાલા આજ્ઞાનિર્દેશકર હૈ । અથવા—આજ્ઞા-તીર્થકર પ્રભુ કી વાણી કે દ્વારા જો ઉત્સર્ગ ંવં અપવાદ માર્ગ કા નિર્દેશ અર્થાત્ વિધાન કિયા ગયા હૈ ઉસકે અનુસાર કરને વાલા આજ્ઞાનિર્દેશકર કહા જાતા હૈ । ઉપપાત શબ્દ કા અર્થ હૈ—સમીપ વૈઠના । શિષ્ય કા કર્તવ્ય હૈ કિ વહ સદા અપને ગુરુ કે સમીપ વૈઠે । ડનકી આજ્ઞા કે પાલન કરને કે ભય સે ડનસે દૂર ન વૈઠે । ગુરુ કા અભિપ્રાય પરખના યહ સાધારણ વાત નહીં હૈ । યહ વાત તવ હી સીખી જા સકતી હૈ કિ જવ શિષ્ય ડન કે પાસ મેં વૈઠે, અન્યથા નહીં । વિનીત શિષ્ય ગુરુ કી સેવા કરને સે આત્મકલ્યાણ કરતા હૈ, ।

વે શિષ્ય હોય છે, (સે વિનીત-ત્તિ વુચ્છ-સઃ વિનીત ઇતિ ઉચ્યતે) તે તીર્થકર ગણધર આદિ દ્વારા વિનીત કહેવાયેલ છે (૨).

ભાવાર્થ—“આજ્ઞાનિર્દેશકરઃ” “આ કરો અને આ ન કરો.” આ પ્રકારે વિધિરૂપ અને નિષેધરૂપ વે ગુરુનાં વચન છે તે ‘આજ્ઞા’ શબ્દથી બ્રહ્મણ કરવામાં આવેલ છે. “આપના વચન અનુસાર જ પ્રવૃત્તિ કરવાના ભાવ છે બીજા નથી” આ પ્રકારનું શિષ્યનું કથન નિર્દેશ છે. નિર્દેશનું સારી રીતે પાલન કરવાવાળા આજ્ઞાનિર્દેશકર છે. અથવા—આજ્ઞા-તીર્થકર પ્રભુની વાણીદ્વારા વે ઉત્સર્ગ અને અપવાદ માર્ગને નિર્દેશ અર્થાત્ વિધાન કરવામાં આવેલ છે તે અનુસાર કરવાવાળા આજ્ઞાનિર્દેશકર કહેવાય છે. ઉપપાત શબ્દનો અર્થ છે. સમીપ બેસવું. શિષ્યનું કર્તવ્ય છે કે તે સદા પોતાના ગુરુની સમીપ બેસે. ગુરુની આજ્ઞાનું પાલન કરવાના ભયથી તેનાથી દૂર ન બેસે. ગુરુને અભિપ્રાય બ્રહ્મણો તે સાધારણ વાત નથી. એ વાત ત્યારે જ શીખી શકાય કે બ્યારે શિષ્ય તેની પાસે બેસે, એ શિષ્ય નહીં. વિનીત શિષ્ય ગુરુની સેવા કરવાથી આત્મકલ્યાણ કરે છે.

अत्र गुणनिधिभ्रमणस्य दृष्टान्तः—

तथाहि—धर्मसिंहाचार्यस्य गुणनिधिनामकः सुधीः शिष्यः प्रकृतिभद्रः प्रकृतिविनीतः प्रतिदिवसं गुरुनिकटवासी गुरुवचनानुकूलकार्यकारी गुरुमनोवृत्त्यनुसारी गुरुविचारश्रेणिसरणिसंचरणशीलः प्रकृतिसरलः सुशील आसीत् । यदा गुरुरागच्छति तदाऽऽसनादुत्थाय तस्मै सविनयमासनं प्रयच्छति, यदा गच्छति तदाऽऽसनमुपादाय तदुपवेशनस्थाने विस्तारयति, गुरोराज्ञा कदा कीदृशी भविष्यतीत्येवं प्रतिक्षणं प्रतीक्षमाणस्तिष्ठति । यस्मिन् यस्मिन् ऋतौ यद् यद् गुरुप्रकृत्यनुकूलमशनादिकं, तत्तत् समानीय गुरवे समर्पयति । गुरुहिं जननीजनकाभ्यामप्यधिकः, तत्र कारणं-जन्मदाता जन्मनि जन्मनि भवति, मुक्तिदाता गुरुस्तु दुर्लभः,

इस पर गुणनिधिभ्रमण का दृष्टान्त कहते हैं—

धर्मसिंह आचार्य का गुणनिधि नामका एक शिष्य था। यह सुबुद्धि एवं प्रकृतिभद्र था। विनीत था। गुरु महाराज के पास बैठना उनके वचन के अनुसार चलना, उनकी मनोवृत्ति के अनुकूल काम करना, इत्यादि समस्त सद्गुणों से युक्त था। बड़ा ही सुशील था। जब गुरु महाराज पधारते तब आसन से उठ कर वह उनके लिये विनयपूर्वक आसन देता, तथा जब गुरु महाराज वहाँ से उठ कर जाते तब वह आसन लेकर उनके पीछे २ चलता और जहाँ गुरु महाराज बैठना चाहते वहाँ आसन बिछा देता। गुरु महाराज की आज्ञा कब कैसी होगी, इसकी प्रतिक्षण प्रतीक्षा करता था। जिस २ ऋतु में जो जो आहार पानी आदि गुरुमहाराज के प्रकृति के अनुकूल होता उस उस ऋतु में वही वही पदार्थ लाकर गुरु महाराज को अर्पण करता। गुरु ने जो कुछ कहा वही

आ अंगे शुष्मनिधि भ्रमणं दृष्टान्तं कथं च—

धर्मसिंह आचार्यने शुष्मनिधि नामने अक शिष्य हुतो. ते सुबुद्धि-वाणे। अने प्रकृतिभद्र हुतो. विनीत हुतो. गुरु महाराज पास जेसवुं, तेमना वचन अनुसार आसवुं, तेमनी मनोवृत्ति अनुकूल काम करवुं इत्यादि समस्त सद्गुणोधी युक्त हुतो. धरो सुशील हुतो. न्यारे गुरुमहाराज पधारे त्यारे आसनथी उठीने ते तेमने भाटे विनयपूर्वक आसन आपतो, तथा न्यारे गुरु महाराज त्यांथी उठीने जता त्यारे ते आसन लधने तेमनी पाछण पाछण जतो अने न्यां गुरु महाराज जेसवा धरछे त्यां आसन शीछावी (पाधरी) हेतो. गुरु महाराजनी आज्ञा क्यारे केवी हरो, तेनी प्रतिक्षण प्रतीक्षा करतो हुतो. जे जे इतुमां जे जे आहार पाणी आदि गुरु महाराजनी प्रकृतिने अनुकूल होयते ते इतुमांते ते पदार्थ लावीने गुरु महाराजने

गुरुं विना कालत्रयेऽपि ज्ञानं दुर्लभम्, यथा सिद्धाञ्जनं विना भूतलान्तर्गतं निधानं नयनपथं नावतरति, तथैव गुरुमन्तरेणात्मस्वरूपं न पश्यति । यथा दुग्धान्नवनीतं तद्विलोडनं विना न प्राप्यते, एवं गुरुसेवनं विना रत्नत्रयं नोपलभ्यते । स गुण-

करना, यह समझ कर कि गुरु महाराज कभी भी अन्यथा प्रवृत्ति नहीं करा सकते हैं, अहित में प्रवर्तन कराने का अभिप्राय इनके अन्तःकरण में कभी भी जाग्रत नहीं हो सकता है, क्योंकि कि ये मेरे हितकारी हैं, इस अभिप्राय से—इस दृढ़ आस्था से—बढ़ सदा गुरु की आज्ञा का आराधन किया करता था । साथ में उसका यह पक्का विश्वास था कि गुरुमहाराज माता पिता से भी अधिक उपकारी होते हैं, क्योंकि जन्म दाता तो इस जीव को प्रत्येक भव में प्राप्त होते रहते हैं, परन्तु मुक्तिदाता गुरु तो बड़े भाग्य से ही मिलते हैं, निर्धन को निधिके समान आत्मा को इनका समागम बहुत दुर्लभ है । आत्मज्ञानकी प्राप्ति इनसे ही हुआ करती है । गुरु के विना तो कालत्रय में भी सम्यग्ज्ञान का लाभ नहीं हो सकता है. ये तो सिद्ध-अंजन समान हैं—जिस प्रकार सिद्ध-अंजन आंखों में आंजने के प्रभाव से जीवों की भूमिगत निधान को लक्षित करनेवाली दृष्टि खुल जाती है उसी प्रकार गुरु की कृपा से आत्मज्ञान का अनुभव जीवको होने लगता है । दुग्ध के विलोडन किये विना जैसे मक्खन का

अर्पण करतो. गुरुं नो कंच कर्तुं शक्यं करतुं, येषु समञ्जने के गुरु मङ्गलान् कही पणु अन्यथा प्रवृत्ति न न करावे. अहितमां प्रवर्तन करावधानो अभिप्राय तेमना अंतःकरणमां कोष्ठ वणत पणु नभत थाय न नहीं, केमके तेज्या मारा हितकारी छे. आ अभिप्रायशी—आची द्रढ आस्ताशी—ते सदा गुरुनी आज्ञानुं आराधन कर्या करतो. साथेसाथ तेने ये पाके विश्वास हुतो के गुरु मङ्गलान् माता पिताशी पणु अधिक उपकारी होय छे. केमके जन्मदाता तो आ लवने प्रत्येक लवमां प्राप्त थता न रहे छे. परन्तु मुक्तिदाता गुरु तो सारा सहलाभ्यशी न भजे छे. निर्धनने निधि समान तेनी रीते आत्माने गुरुनो समागम धर्या न दुर्लभ छे. आत्मज्ञाननी प्राप्ति तेमनाशी न थाय छे. गुरु विना तो कालत्रयमां पणु सम्यग्ज्ञाननो लाभ थथ शकतो नथी. जेज्या तो सिद्ध-अंजन समान छे. ने प्रकारे सिद्ध-अंजन आंजोमां आंज-वाना प्रभावशी लवोनी भूमिगत निधानने लक्षित करावधानी दृष्टि खुली नय छे जेवी रीते गुरुनी कृपाशी आत्मज्ञाननो अनुभव लवने थवा लागे छे. दुधने वदोल्या शीवाय जेम भाणणुनुं भणवुं असंभव छे तेम

निधिर्गुरुस्तुतिं करोति—हे गुरो ! भवान् वारिद इव करुणारसवृष्ट्यामामकीनं चित्त-
चातकं प्रमोदयति, शमदमादिगुणोद्यानं हरितीकरोति । हे करुणासागर ! भव-
त्करुणां विना सम्यक्त्वप्राप्तिर्न भवति, सम्यक्तवं विना तत्त्वातत्त्वविवेकरूपाऽमृत-
भावना न जायते, अमृतभावनां विना विशुद्धध्यानं न भवति । विशुद्धध्यानं विना
क्षपकश्रेणिर्न प्रादुर्भवति । क्षपकश्रेणिं विना शुक्लध्यानस्य द्वितीयपादः प्राप्तो न
भवति । शुक्लध्यानस्य द्वितीयपादं विना केवलज्ञानं न संभवति । केवलज्ञान-

मिलना असंभव है उसी प्रकार गुरु की सेवा किये विना भी रत्नत्रयकी
प्राप्ति होना महादुर्लभ है, धन्य है, गुरुमहाराज !। गुणनिधिने इस प्रकार
मन में विचार कर गुरु महाराज की स्तुति की, जो इस प्रकार है—
हेगुरुमहाराज ! आप मेघ की तरह मेरे चित्तरूपी चातक को करुणारस
के वर्षण से प्रमुदित करनेवाले हैं । शम दम आदि गुणस्वरूप उद्यान
को हरा भरा बनाने वाले हैं । हे करुणासागर ! जबतक आपकी करुणा-
रसाद्रं दृष्टि जीवों पर नहीं पडती, तबतक उन्हें सम्यक्त्व का लाभ नहीं
होता है । सम्यक्त्व प्राप्त किये विना जीव कभी भी तत्त्वातत्त्वविवेकरूप
अमृत से भरी हुई भावना को अपने में नहीं भर सकता । अमृतभा-
वना भरे विना विशुद्ध ध्यान कभी भी नहीं जग सकता । विशुद्ध
ध्यान की जागृति विना जीव को क्षपकश्रेणिकी प्राप्ति नहीं हो सकती,
क्षपकश्रेणि की प्राप्ति हुए विना शुक्लध्यान का द्वितीयपाद (दूसरा

शुद्धी सेवा कर्था त्रिवाय रत्नत्रयनी प्राप्ति थयी महादुर्लभ छे. धन्य छे
शुद्ध महाराज !. गुणनिधिसे आ प्रकारने मनमां विचार करी शुद्धमहाराजनी
स्तुति करी, जे आ प्रकारनी छे.—हे शुद्धमहाराज आप मेघनी माक्षक
भारा चित्तशुधी चातकने कर्णारसना वर्षणुधी प्रमुदित करवावाणा छे. शम
दम आदि गुणस्वरूप उद्यानने झलतो झूलतो जनाववावाणा छे, हे कर्णुसागर !
त्यां सुधी आपनी कर्णु रसाद्रं (द्वयाधी लीनी) दृष्टि लये पर नधी पडती
त्यां सुधी तेने सम्यक्त्वने लाल थतो नधी. सम्यक्त्व प्राप्त कर्था वगर
लप क्यारेय पणु तत्त्वातत्त्वविवेकरूप अमृतधी लरेली लावनाने पोतानामां
लरी शकतो नधी. अमृत लावना लर्था वगर विशुद्ध ध्यान कही पणु ब्रहत
थनुं नधी. विशुद्धध्याननी जगति विना लवने क्षपकश्रेणीनी प्राप्ति थती
नधी. क्षपकश्रेणीनी प्राप्ति थया विना शुक्लध्यानने जीजे पाये प्राप्ति थतो

प्राप्तिं विना शैलेश्यवस्था न जायते । तां विना सकलकर्मक्षयो न भवति । सकल-
कर्मक्षयं विना मुक्तिर्न संभवति । मुक्तिप्राप्तिं विनाऽयमात्माऽमरपदं न लभते ।
अमरपदप्राप्तिं विनाऽऽत्मनः सिद्धावस्था न जायते, अतो भवानेव सकलकल्याण-
कारणमिति प्रतिक्षणं भवचरणसमाराधनमेव मम संयमाराधनम् । एवं गुरुमारा-
धयन् गुणनिधिः संयमयात्रां निर्वहन् स्वात्मकल्याणमचिरेण साधितवान् । एव
मन्येनापि शिष्येण विनयपरेण भवितव्यम् ॥ २ ॥

अविनीतत्ववर्जनेन विनीतो भवतीत्यतो विनीतविपरीतमविनीत-
स्वरूपमाह—

पाया) प्राप्त नहीं हो सकता । शुद्धध्यान के दूसरे पाये की प्राप्ति विना
केवलज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती । केवलज्ञान की प्राप्ति विना शैलेशी
अवस्था प्राप्त नहीं हो सकती है । शैलेशी अवस्था की प्राप्ति विना सकल
कर्मोंका क्षय नहीं हो सकता है और सकल कर्मोंके क्षय विना मुक्ति
की प्राप्ति नहीं हो सकती, और मुक्तिकी प्राप्ति विना अमरपद नहीं
मिल सकता । अमर पद पाये विना आत्मा सिद्धावस्थासम्पन्न नहीं
बन सकता । इस लिये हे नाथ ! आप ही सकल कल्याण के कारण
हैं, अतः प्रतिक्षण आपके चरणोंका आराधन ही मेरा संयमाराधन है ।
इस प्रकार अपने गुरुकी आराधना करते हुए गुणनिधि ने तप संयम
की आराधना की, और थोड़े ही काल में आत्मकल्याण किया । इसी
तरह अन्य शिष्यों को भी अपने गुरुके प्रति विनयशील रहना चाहिये ॥ २ ॥

नथी. शुद्धध्यानना जीव पायानी प्राप्ति विना केवलज्ञाननी प्राप्ति थती
नथी. केवलज्ञाननी प्राप्ति विना शैलेशी अवस्था प्राप्त थती नथी. शैलेशी
अवस्थानी प्राप्ति विना सकल कर्मोंना क्षय थतो नथी अने सकल कर्मोंना
क्षय विना मुक्तिनी प्राप्ति थती नथी. अने मुक्तिनी प्राप्ति विना अमरपद
मणी शक्तुं नथी. अमरपद मेणव्या वगर आत्मा सिद्धअवस्थासंपन्न
णी शक्तो नथी माटे हे नाथ ! आपण सकल कल्याणना कारण छे. अटले
प्रतिक्षण आपना चरणोंनुं आराधनण भाङ् संयम आराधन छे. आ प्रकारथी
पोताना गुडनी आराधना करतां करतां गुणनिधिअे तप संयमनी आराधना
करी अने थोडाण काणमां आत्मकल्याण कथुं. आवी रीते अन्य शिष्येअे
पण पोताना गुड प्रत्ये विनयशील रहेवुं जेधअे. ॥२॥

आणाऽणिद्देशकरे, गुरुणमणुववायकारण ।

पडिणीए असंबुद्धे, अविणीए—त्तिं बुच्चइ ॥ ३ ॥

छाया—

आज्ञाऽनिर्देशकरो गुरुणामनुपपातकारकः ।

प्रत्यनीकोऽसंबुद्धः अविनीत इत्युच्यते ॥ ३ ॥

टीका—

‘आणाऽणिद्देशकरे’ इत्यादि । आज्ञाऽनिर्देशकरः=आज्ञाया गुरुवचन-
स्यानिर्देशकरः—अनादरकारकः, तथा गुरुणाम्=आचार्यादीनाम्, अनुपपातकारकः=
समीपानवस्थायी, गुरुणां संनिधौ तिष्ठामि चेद् गुरवो मां स्वकार्यार्थमाज्ञापयिष्य-
न्तीति त्रिज्ञाय दूरे तिष्ठतीत्यर्थः । तथा—प्रत्यनीकः=प्रतिकूलः, गुरुदोषान्वेषणपर
इत्यर्थः । तथा—असंबुद्धः जीवाजीवादितत्त्वानभिज्ञः, एवंभूतो यः शिष्यः स
सत्त्वविनीत इत्युच्यते ।

शिष्य में विनीतता, अविनीतता के परित्याग से ही आती है
इसलिये विनीत से विपरीत अविनीत का स्वरूप सूत्रकार कहते हैं—
‘आणाऽणिद्देशकरे०’ इत्यादि ।

अन्वयार्थ—(गुरुण आणाऽणिद्देशकरे—गुरुणां आज्ञाऽनिर्देशकरः) गुरु
की आज्ञा का अनादर करने वाला, (अणुववायकारण) उनके समीप
नहीं बैठने वाला (पडिणीए) उनसे सदा प्रतिकूल चर्चा करनेवाला
(असंबुद्धे) जीव एवं अजीव आदि के स्वरूप को नहीं जाननेवाला ऐसा
शिष्य (अविणीए बुच्चइ—अविनीतः—उच्यते) अविनीत कहा जाता है ।

भावार्थ—इस गाथा द्वारा सूत्रकार ने विनीत से विपरीत अविनीत
का स्वरूप प्रदर्शित किया है । यद्यपि यह बात अर्थापत्ति से स्वयं सिद्ध

शिष्यमां विनीतता अविनीतताना परित्यागधी न आवे छे. आ भाटे
विनीतधी विपरीत अविनीतनुं स्वउप सूत्रकार उडे छे—‘आणाऽणिद्देशकरे.’ इत्यादि
अन्वयार्थ—(गुरुण आणाऽणिद्देशकरे—गुरुणां आज्ञाऽनिर्देशकरः) गुरुनी आज्ञानो
अनादर करवावाणा (अणुववायकारण) ओमनी सामे न भेसवावाणा (पडिणीए)
ओमनाथी सदा प्रतिकूल चर्चा करवावाणा (असंबुद्धे) एव अने अणुव आदिना
स्वउपने नहीं बलवावाणा ओवा शिष्य (अविणीए—बुच्चइ—अविनीतः उच्यते)
अविनीत उडेवाय छे.

भावार्थ—आ गाथाद्वारा सूत्रकारे विनीतधी विपरीत अविनीतनुं स्वउप
प्रदर्शित करेल छे. ओडे आ बात अर्थापत्तिधी स्वयंसिद्ध थध नती हुती

प्राप्तिं विना शैलेश्यवस्था न जायते । तां विना सकलकर्मक्षयो न भवति । सकल-
कर्मक्षयं विना मुक्तिर्न संभवति । मुक्तिप्राप्तिं विनाऽयमात्माऽमरपदं न लभते ।
अमरपदप्राप्तिं विनाऽऽत्मनः सिद्धावस्था न जायते, अतो भवानेव सकलकल्याण-
कारणमिति प्रतिक्षणं भवचरणसमाराधनमेव मम संयमाराधनम् । एवं गुरुमारा-
धयन् गुणनिधिः संयमयात्रां निर्वहन् स्वात्मकल्याणमचिरेण साधितवान् । एव
मन्येनापि शिष्येण विनयपरेण भवितव्यम् ॥ २ ॥

अविनीतत्ववर्जनेन विनीतो भवतीत्यतो विनीतविपरीतमविनीत-
स्वरूपमाह—

पाया) प्राप्त नहीं हो सकता । शुद्धध्यान के दूसरे पाये की प्राप्ति विना
केवलज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती । केवलज्ञान की प्राप्ति विना शैलेशी
अवस्था प्राप्त नहीं हो सकती है । शैलेशी अवस्था की प्राप्ति विना सकल
कर्मोंका क्षय नहीं हो सकता है और सकल कर्मोंके क्षय विना मुक्ति
की प्राप्ति नहीं हो सकती, और मुक्तिकी प्राप्ति विना अमरपद नहीं
मिल सकता । अमर पद पाये विना आत्मा सिद्धावस्थासम्पन्न नहीं
यन सकता । इस लिये हे नाथ ! आप ही सकल कल्याण के कारण
हैं, अतः प्रतिक्षण आपके चरणोंका आराधन ही मेरा संयमाराधन है ।
इस प्रकार अपने गुरुकी आराधना करते हुए गुणनिधि ने तप संयम
की आराधना की, और थोड़े ही काल में आत्मकल्याण किया । इसी
तरह अन्य शिष्योंको भी अपने गुरुके प्रति विनयशील रहना चाहिये ॥ २ ॥

नथी. शुद्धध्यानना जीव पायानी प्राप्ति विना केवलज्ञाननी प्राप्ति थती
नथी. केवलज्ञाननी प्राप्ति विना शैलेशी अवस्था प्राप्त थती नथी. शैलेशी
अवस्थानी प्राप्ति विना सकल कर्मोंना क्षय थतो नथी अने सकल कर्मोंना
क्षय विना मुक्तिनी प्राप्ति थती नथी. अने मुक्तिनी प्राप्ति विना अमरपद
मणी शकतुं नथी. अमरपद मेणव्या वगर आत्मा सिद्धअवस्थासंपन्न
थनी शकतो नथी भाटे छे नाथ ! आपण सकल कल्याणना कारण छे. ओटले
प्रतिक्षण आपना चरणोतुं आराधनण भाडुं संयम आराधन छे. आ प्रकारथी
पोताना शुद्धी आराधना करतां करतां शुद्धिनिधिअे तप संयमनी आराधना
करी अने थोडाण काणमां आत्मकल्याण कथुं. आवी रीते अन्य शिष्योअे
पण पोताना शुद्धि प्रत्ये विनयशील रहवुं जेधअे. ॥२॥

आणाऽणिद्देशकरे, गुरुणमणुववायकारण ।

पडिणीए असंबुद्धे, अविणीए-त्तिं बुच्चइ ॥ ३ ॥

छाया—

आज्ञाऽनिर्देशकरो गुरुणामनुपपातकारकः ।

प्रत्यनीकोऽसंबुद्धः अविनीत इत्युच्यते ॥ ३ ॥

टीका—

‘आणाऽणिद्देशकरे’ इत्यादि । आज्ञाऽनिर्देशकरः=आज्ञाया गुरुवचन-
स्यानिर्देशकरः=अनादरकारकः, तथा गुरुणाम्=आचार्यादीनाम्, अनुपपातकारकः=
समीपानवस्थायी, गुरुणां संनिधौ तिष्ठामि चेद् गुरवो मां स्वकार्यार्थमाज्ञापयिष्य-
न्तीति विज्ञाय दूरे तिष्ठतीत्यर्थः । तथा—प्रत्यनीकः=प्रतिकूलः, गुरुदोषान्वेषणपर
इत्यर्थः । तथा—असंबुद्धः जीवाजीवादितत्त्वानभिज्ञः, एवंभूतो यः शिष्यः स
खल्वचिनीत इत्युच्यते ।

शिष्य में विनीतता, अविनीतता के परित्याग से ही आती है
इसलिये विनीत से विपरीत अविनीत का स्वरूप सूत्रकार कहते हैं—
‘आणाऽणिद्देशकरे’ इत्यादि ।

अन्वयार्थ—(गुरुण आणाऽणिद्देशकरे—गुरुणां आज्ञाऽनिर्देशकरः) गुरु
की आज्ञा का अनादर करने वाला, (अणुववायकारण) उनके समीप
नहीं बैठने वाला (पडिणीए) उनसे सदा प्रतिकूल वर्ताव करनेवाला
(असंबुद्धे) जीव एवं अजीव आदि के स्वरूप को नहीं जाननेवाला ऐसा
शिष्य (अविणीए बुच्चइ—अविनीतः—उच्यते) अविनीत कहा जाता है ।

भावार्थ—इस गाथा द्वारा सूत्रकार ने विनीत से विपरीत अविनीत
का स्वरूप प्रदर्शित किया है । यद्यपि यह बात अर्थापत्ति से स्वयं सिद्ध

शिष्यमां विनीतता अविनीतताना परित्यागधी न आवे छे. आ भाटे
विनीतधी विपरीत अविनीतनुं स्वइप सूत्रकार कहे छे—‘आणाऽणिद्देशकरे.’ इत्यादि

अन्वयार्थ—(गुरुण आणाऽणिद्देशकरे—गुरुणां आज्ञाऽनिर्देशकरः) गुरुनी आज्ञानो
अनादर करवावाणा (अणुववायकारण) ओभनी सामे न भेसवावाणा (पडिणीए)
ओभनाधी सदा प्रतिकूल वर्ताव करवावाणा (असंबुद्धे) एव अने अणुव आदिना
स्वइपने नही लक्षणवावाणा ओवा शिष्य (अविणीए—बुच्चइ—अविनीतः उच्यते)
अविनीत कहेवाय छे.

भावार्थ—आ गाथाद्वारा सूत्रकारे विनीतधी विपरीत अविनीतनुं स्वइप
प्रदर्शित करेल छे. नेके आ बात अर्थापत्तिधी स्वयंसिद्ध थध नती हुती

प्राप्तिं विना शैलेश्यवस्था न जायते । तां विना सकलकर्मक्षयो न भवति । सकल-
कर्मक्षयं विना मुक्तिर्न संभवति । मुक्तिप्राप्तिं विनाऽयमात्माऽमरपदं न लभते ।
अमरपदप्राप्तिं विनाऽऽत्मनः सिद्धावस्था न जायते, अतो भवानेव सकलकल्याण-
कारणमिति प्रतिक्षणं भवचरणसमाराधनमेव मम संयमाराधनम् । एवं गुरुमारा-
धयन् गुणनिधिः संयमयात्रां निर्वहन् स्वात्मकल्याणमचिरेण साधितवान् । एव
मन्येनापि शिष्येण विनयपरेण भवितव्यम् ॥ २ ॥

अविनीतत्ववर्जनेन विनीतो भवतीत्यतो विनीतविपरीतमविनीत-
स्वरूपमाह—

पाया) प्राप्त नहीं हो सकता । शुद्धध्यान के दूसरे पाये की प्राप्ति विना
केवलज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती । केवलज्ञान की प्राप्ति विना शैलेशी
अवस्था प्राप्त नहीं हो सकती है । शैलेशी अवस्था की प्राप्ति विना सकल
कर्मोंका क्षय नहीं हो सकता है और सकल कर्मोंके क्षय विना मुक्ति
की प्राप्ति नहीं हो सकती, और मुक्तिकी प्राप्ति विना अमरपद नहीं
मिल सकता । अमर पद पाये विना आत्मा सिद्धावस्थासम्पन्न नहीं
बन सकता । इस लिये हे नाथ ! आप ही सकल कल्याण के कारण
हैं, अतः प्रतिक्षण आपके चरणोंका आराधन ही मेरा संयमाराधन है ।
इस प्रकार अपने गुरुकी आराधना करते हुए गुणनिधि ने तप संयम
की आराधना की, और थोड़े ही काल में आत्मकल्याण किया । इसी
तरह अन्य शिष्यों को भी अपने गुरुके प्रति विनयशील रहना चाहिये ॥ २ ॥

नथी. शुद्धध्यानना पीज पायानी प्राप्ति विना केवलज्ञाननी प्राप्ति थती
नथी. केवलज्ञाननी प्राप्ति विना शैलेशी अवस्था प्राप्त थती नथी. शैलेशी
अवस्थानी प्राप्ति विना सकल कर्मोंना क्षय थतो नथी अने सकल कर्मोंना
क्षय विना मुक्तिनी प्राप्ति थती नथी. अने मुक्तिनी प्राप्ति विना अमरपद
भणी शकतुं नथी. अमरपद भेजल्या वगर आत्मा सिद्धअवस्थासंपन्न
अनी शकतो नथी भाटे छे नाथ ! आपज सकल कल्याणना कारण छे. अतले
प्रतिक्षण आपना चरणोंना आराधनज भाइ संयम आराधन छे. आ प्रकार्थी
पोताना शुद्धी आराधना करतां करतां शुद्धनिधिअे तप संयमनी आराधना
करी अने थोडाज काणमां आत्मकल्याण कथुं. आवी रीते अन्य शिष्येअे
पण पोताना शुद्ध प्रत्ये विनयशील रहेंतुं जेधअे. ॥२॥

अत्र क्षुद्रबुद्धिशिष्यस्य दृष्टान्तः—

यथा एकस्य भद्रबुद्धिनामकाचार्यस्याऽविनीतः क्षुद्रबुद्धिनामकः शिष्य आसीत् । यदा गुरुः शिक्षार्थं प्रेरयति, तदा शिक्षा वह्निज्वालेव तस्य प्रतिभाति, व्रतं विपवत्, तपस्या खड्गधारेव, स्वाध्यायः कर्णमूचीव, संयमो यम इव । अयमाहारे विहारे व्यवहारे च सर्वदाऽऽचार्यं पीडयति । सरसं भद्रकं सुस्वादमाहारं स्वयमश्नाति विवर्णं विरसमभद्रकं रुक्षमाचार्याय प्रयच्छति । अथ कदाचिदसौ श्रावकश्राविकाणां पुरतो ब्रूते—अद्य मम गुरोरुपवासः,

पास वह इसलिये नहीं रहना चाहता है कि वह प्रत्यनीक—अर्थात्—गुरु-द्वेषी—गुरु के छिद्रान्वेषण में तत्पर है, गुरुद्वेषी वह इसलिये है कि वह असम्बुद्ध अर्थात् हिताहित के विचारों से रहित है ।

अविनीत शिष्य कैसा होता है इस बात को क्षुद्रबुद्धि शिष्य के दृष्टान्त से स्पष्ट किया जाता है—

भद्रबुद्धि नामके एक आचार्य थे । उनका क्षुद्रबुद्धि नामक शिष्य था जो बड़ा अविनीत था । यह यथानाम तथागुण था । गुरु महाराज जब इसे शिक्षा देने बैठते तब उसका मन उदास हो जाता था । शिक्षा उसे ऐसी मालूम होती थी कि जैसे अग्नि की ज्वाला है । विपतुल्य इसे व्रत ज्ञात होने लगते । तलवार की धार के समान यह तपस्या को मानता, कर्ण को भेदनेवाली शलाई के तुल्य यह स्वाध्याय को समझता । अधिक क्या कहा जाय—संयम को तो यह यमके समान निहारता । आहार में विहार में एवं व्यवहार में यह सदा गुरु—महाराज को दुःखित ही किया

नथी, तेमनी पासे रहतेो नथी, पासे रहवानुं ते ओटला भाटे नथी आडतेो के ते प्रत्यनीक—अर्थात् गुडद्वेषी—गुडनां छीद्रां जेवामां तत्पर छे. गुडद्वेषी ते ओ भाटे छे के ते छिताछितना विचारैथी रहित छे.

अविनीत शिष्य डेवो डेय छे आ वातने क्षुद्रबुद्धि शिष्यना दृष्टांतथी स्पष्ट करवामां आवे छे—

क्षुद्रबुद्धि नामना ओक आचार्य हुता. तेमने क्षुद्रबुद्धि नामनो ओक शिष्य हुतो जे अविनीत हुतो, तेनामां नाम प्रभाळे शुष्ण हुता. गुड भंडारण न्यारे तेने शिक्षा आपवा भेसता त्यारे तेनुं मन उदास धर्ध नतुं. शिक्षा जेने अग्निनी न्याणा जेवी लागती हुती. व्रत तेने अडेर जेवां कडवां लागतां, तपस्थाने ते तरवारनी धार समान गणुतो, स्वाध्यायने ते डानने विधनारा सोया भाइक न्णुतो हुतो. वधु शुं कडेवामां आवे. संयमने तो ते यमनी भाइक न्णुतो, आहारमां, विहारमां, ने वडेवारमां ओ गुडभंडारणने

હો જાતી થીં કિ જો વિનીત કે કથિત સ્વરૂપસે રહિત હૈં વહ અવિનીત હૈં ફિર ખી જો યહાં સૂત્રકાર ને ઉસે સ્પષ્ટ શબ્દોં દ્વારા અલગ ઉલ્લેખ કિયા હૈં ઉસકા કારણ વિશેષરીતિ સે વિવેચન કરના હૈં, તાકિ મંદ-બુદ્ધિ જન ખી ઇસ વાત કો અચ્છી તરહ સમજ સકેં। ગુરુ કે સમીપ વહ અવિનીત શિષ્ય ઇસલિયે નહીં રહના ચાહતા હૈં કિ વહ વિચારતા હૈં કિ યદિ ગુરુ કે પાસ વૈઠૂંગા તો ઉનકા પ્રત્યેક કાર્ય મુજે કરના પડેગા ઇસલિયે અચ્છા હૈં કિ મૈં ઉનસે દૂર હીં વૈઠૂં। ઁસા કરને ચાલા શિષ્ય સ્વેચ્છાચારી હો જાતા હૈં। ગુરુ કે પાસ વૈઠને કા મુખ્ય યહીં ઉદ્દેશ્ય હોતા હૈં કિ શિષ્યજન વિનય આદિ ગુણોં કો પ્રાપ્ત કરતે હુણ તપ સંયમ કી આરાધના સુખ સે કર સકેં। મુજ સે ગુરુ કુછ ખી કહ ન સકેં, ગુરુ પર ખી મેરા રૌવ રહે, ઇસ ઘ્યાલ સે વહ અપને પૂજ્ય ગુરુજનોં મેં ખી દોષોં કો ઢૂંઢને મેં લગા રહતા હૈં। યહ કામ ઉસી શિષ્ય સે હો સકતા હૈં જો અસંબુદ્ધ-અર્થાત્ હિતાહિત કે વિચારોં સે રહિત હૈં। અભિજ્ઞ શિષ્ય ઁસા નહીં હોતા। ગાથા મેં યે સવ વિશેષણ હેતુહેતુમદ્ભાવ વાલે હૈં, જિનકા અભિપ્રાય ઇસ પ્રકાર હૈં-વહ ગુરુ કી આજ્ઞા કા પાલક ઇસલિયે નહીં હૈં કિ વહ ઉનકે પાસ નહીં વૈઠતા હૈં-ઉનકે પાસ નહીં રહતા હૈં,

કે જે વિનીતના કથિત સ્વરૂપથી રહિત છે, તે અવિનીત છે, તેા પણ અહિં સૂત્રકારે એનો સ્પષ્ટ શબ્દો દ્વારા અલગ ઉલ્લેખ કરેલ છે, તેનું કારણ વિશેષ રીતિથી વિવેચન કરવું એજ છે, કારણ કે મંદબુદ્ધિવાળો માણસ પણ આ વાતને સારી રીતે સમજી શકે. ગુરુની સમીપ તે અવિનીત શિષ્ય એટલા માટે રહેવા નથી ચાહતો કે તે વિચારે છે કે કદાચ ગુરુની પાસે બેસું તો તેનું પ્રત્યેક કાર્ય મારે કરવું પડશે. આ માટે આજ્ઞા એ છે કે હું તેમનાથી દૂર બેસું. આવું કરનાર શિષ્ય સ્વેચ્છાચારી બને છે. ગુરુની પાસે બેસવાનો ખાસ ઉદ્દેશ તો એ છે કે શિષ્યજન વિનય આદિ ગુણોને પ્રાપ્ત કરતાં કરતાં તપ સંયમની આરાધના સુખથી કરી શકે. ગુરુ મને કાંઈ પણ કહી ન શકે, ગુરુ ઉપર મારો દાબ રહે, આ ખ્યાલથી તે પોતાના પૂજ્ય ગુરુજનોમાં પણ દોષોને શોધવા લાગી રહે છે. આ કામ તેવા શિષ્ય કરે છે કે જે અસંબુદ્ધ અર્થાત્ હિતાહિતના વિચારથી રહિત છે, અભિજ્ઞ શિષ્ય આવા નથી હોતા. ગાથામાં આ બધાં વિશેષણ હેતુહેતુમદ્ભાવવાળાં છે, જેનો અભિપ્રાય આ પ્રકારે છે. તે ગુરુની આજ્ઞાનો પાલક એ ખાતર નથી કે તે ગુરુની પાસે બેસતો

करोति, यदि कमपि दानादिकं विषयमवलम्ब्य गुरुर्मन्यानुपदिशति, तदा तत्स-
भायागेव गुरोरनभिज्ञतां वदन् तं विषयं स्वयमुपदिशन् गुरुमपमानयति । कदाचिद्
वदति—‘अद्य मम गुरुमौनव्रतमनुतिष्ठन्नास्ते’ इत्युक्त्वा स्वयमेव व्याख्यानं करोति।
एवं क्षुद्रबुद्धिचरितं त्रिलोक्य वृद्धाचार्यः स्वचेतसि चिन्तयति—अयमभीक्ष्णं ‘सनि-
मित्त-मनिमित्तंवा क्रोधकारकः, कलहप्रियः, अभिमानी, अज्ञानी, मर्ममृपावादी च,
तदिदं ममैव कर्मणः फलमिति मन्यानो वृद्धाचार्यः सर्वं सहमान आसीत् । कदा-

से चिह्नित हो गया । गुरुजी वृद्ध थे, इस लिये विहारकाल में चलते
समय उन्हें बड़ा कष्ट होने लगा, परन्तु क्या किया जाय फिर भी
शिष्य की प्रेरणा से उन्हें अनिच्छा होने पर भी विहार करना ही पड़ता
था । शिष्य का यह हाल था कि वह साधुसामाचारी को भी विपरीत
करते हुए नहीं लजाता था । गुरु-महाराज जब कभी किसी दानादिक
विषय को लेकर प्रवचन परिपद के भीतर बैठकर करते तब यह उनके
प्रवचन को अन्यथा रूप में जाहिर करने के लिये, अथवा उस विषय में
उनकी अनभिज्ञता प्रकट करने के लिये बीच ही में बोल उठता और
कहता कि यह ऐसे नहीं ऐसे है, गुरुजी वृद्ध होने के कारण भूल गये
हैं । जब कभी इसे बोलना होता तो लोगोंसे कहने लगता कि आज
गुरुजी को मौनव्रत है, वे व्याख्यान नहीं देंगे, मैं ही व्याख्यान दूँगा, इस
प्रकार कह कर व्याख्यान देने लग जाता । क्षुद्रबुद्धि का इस प्रकार
स्वच्छंदाचरण देख कर गुरु-महाराज स्वयं इसमें अपने कर्मोंका फल

गनी गयुं. शुद्ध वृद्ध होता अथवा विहारमां आसती वपते तेमने धलुं कष्ट
थवा लागुं परंतु शुं थर् शके ? शिष्यनी प्रेरणाथी तेमणे धच्छि न
डोवा छतां पणु विहार करवा पडतो. शिष्य साधुसामाचारीथी विपरीत
आसवामां पणु लगतो नडतो. शुद्ध महाराज न्यारे कोर्ष दानादिके विषयने
लधने तेना उपर प्रवचन परिपदमां करता त्यारे ते शिष्य तेमना प्रवचनने
अन्यथा रूपमां लडेर करवा माटे अथवा अे विषयमां तेमनी अनभिज्ञता
पताववा माटे वयमां न जोली उठतो अने डडेतो के आ आम नथी पणु
आम छे, शुद्ध वृद्ध होवाथी लूली गया छे. न्यारे तेने जोलवातुं मन थतुं
त्यारे ते लोडोने डडेतो के आने शुद्धने मौनव्रत छे. ते व्याख्यान आपसे
नडीं, हुं न लापणु करीश. आ रीते कडीने लापणु करवा लागतो. क्षुद्रबुद्धितुं
आतुं स्वच्छंद आचरण लधने शुद्ध महाराज पोताना कर्मोतुं क्षण

इति, ततोऽसौ स्वयमश्नाति, गुरुश्च क्षुधार्तः सन् दिवसं यापयति। कदाचिद् वदति-
अथ मम गुरुणा पष्ठभक्तं कृतम्, कदाचिच्च वदति-अथ मम गुरुणाऽप्टभक्तमनु-
ष्ठितमिति, एवं क्रमेण गुरुः क्षुधया विवर्णः कृशः शक्तिरहितः संजातः। विहार-
काले दृढत्वेन शीघ्रगमनसामर्थ्यवर्जितोऽपि गुरुः शिष्यप्रेरणया सकलेशं
विहरति। साधुसामाचार्या क्षुद्रबुद्धिर्विपरीतमाचरति, प्रतिलेखनादिकं सम्यग् न

करता था। आहार के समय सरस सुस्वादु एवं रुचिकारक आहार यह स्वयं पहिले खाता और जो रुक्ष विरस एवं अंत प्रान्त आहार होता वह गुरु-महाराज को देता। जब इसे गुरु-महाराज को आहार देनेकी इच्छा नहीं होती तो श्रावक और श्राविकाओं के समक्ष कहने लगता कि आज तो मेरे गुरु-महाराज ने उपवास किया है, इस प्रकार यह गुरु महाराज को भूखा रखकर स्वयं खूब खाने पीनेकी मजामौज उड़ाता रहता। विचारे गुरुजी क्षुधा को शांतिभाव से सहन करते हुए शमभाव में समय को व्यतीत करते। कभी २ कहता है कि आज हमारे गुरु महाराज ने पष्ठभक्त किया है, आज अष्टभक्त किया है। इस प्रकार गुरु को अत्यन्त कष्ट पहुंचाता। गुरु जी भी सम-ताभाव से क्षुधा की वेदना इसे अविनीत समझ कर सहन करने लगे, परन्तु आखिर औदारिक शरीर ही तो ठहरा वह विना आहार के कहाँ तक टिके। अन्त में वह शरीर विवर्ण-म्लान, कृश-कमजोर, और शक्ति

સદા દુઃખીત જ કર્યા કરતો, આહારના સમયે સરસ સ્વાદવાળા એટલે રૂચી-
કારક આહાર તે પોતે પહેલાં ખાઈ લેતો અને જે રૂક્ષ, વિરસ એવો અન્ત-
પ્રાન્ત આહાર હોય તે ગુરૂ મહારાજને આપતો. જ્યારે તેની ગુરૂમહારાજને
આહાર દેવાની ઈચ્છા ન થતી ત્યારે શ્રાવક અને શ્રાવિકાઓની સમક્ષ કહેવા
લાગતો કે આજ તો મારા ગુરૂમહારાજે ઉપવાસ કરેલ છે. આ પ્રકારે તે
ગુરૂ મહારાજને ભૂખ્યા રાખીને પોતે ખૂબ ખાવાપીવાની મોજમબલડ ઉડાવતો
રહેતો, ધીરારા ગુરૂજી ક્ષુધાને શાન્ત લાવથી સહન કરીને સમભાવમાં સમયને
વ્યતીત કરતા. કોઈ કોઈ વખત કહેતો કે આજે અમારા ગુરૂ મહારાજે છટુ કરેલ
છે. આજે અક્રમ કરેલી છે. આવી રીતે ગુરૂને અત્યંત કષ્ટ પહોંચાડતો. ગુરૂ
પણ સમતાલાવથી ક્ષુધાની વેદના તેને અવિનીત સમજી સહન કરવા લાગ્યા.
પરંતુ આખરે ઔદારિક શરીર તો છે જ તે આહાર વિના ક્યાં સુધી ટકી
શકે? અંતમાં તો શરીર વિવર્ણ મ્લાન, કૃશ-કમજોર, અને શક્તિ વગરનું

जराजर्जरिते कृशे निःसत्त्वे सत्यपि शरीरे कातरजनदुष्करं कठिनतरं तीव्र-
मनशनं स्वीकृतम् । एवं चतुर्विधसंघवचनं श्रुत्वा गुरुणा चिन्तितम्—यदि स्वगतां
बुधुक्षां प्रकाशयामि शिष्यप्रपञ्चं चावेदयामि, तर्हि जिनशासनस्य हीलना
निन्दना लघुता भवतीति । तदन्तरं वृद्धाचार्येण चिन्तितम्—मम साहजिकः सकल-
कर्मक्षयसमयः समायात इति । एवमसौ मनसि धारयन् समाधिभावमुपगत्य पवृद्ध-
परिणामेन क्षपकत्रेणि प्राप्य सकलकर्म क्षपयित्वा केवली भूत्वा सिद्धिगतिं प्राप्तवान् ।

को सुनकर समस्त चतुर्विध संघ उसी समय आचार्य के समीप आया
और कहने लगा हे महात्मा ! आपको अनेकशः धन्यवाद है, आप वास्तव
में बड़े भाग्यशाली हैं, आप जैसे जिनशासन को प्रकाशित करनेवाले
सूर्य से धर्मकी प्रभावना होती है । करुणासागर ! हम आपका गुणगान
कहाँ तक गावें, हम सबको तो यह सुनकर अपार हर्ष हो रहा है कि
आपने जरा से जर्जरित, कृश एवं निःसत्त्व शरीर के होने पर भी
कायर जनों द्वारा दुष्कर एवं कठिनतर तीव्र अनशन को जो स्वीकृत
किया है । इस प्रकार चतुर्विध संघ के वचन सुनकर गुरुमहाराज ने
चित्त में विचार किया कि यदि मैं अपनी भूख प्रकट करता हूँ और 'यह
सब कुछ शिष्यका प्रपञ्च है' ऐसा जो कहता हूँ तो जिनशासन की अव-
हेलना होती है, निन्दा होती है लघुता जाहिर होती है अतः अब श्रेय
इसी में है कि अनशन व्रत अंगीकार कर लूँ, यह सहज ही कर्मक्षय-
का समय उपस्थित हुआ है, इसे छोड़ना बुद्धिमानी की बात नहीं

नोने सांलणी समस्त चतुर्विध संघ ते समये आचार्यनी पासो आवी अने
विनंती करी डडेवा लाग्या डे डे महात्मा ! आपने अनेकानेक धन्यवाद छे,
आप वास्तवमां महान भाग्यशाली छे. आप जेवा उनशासनने प्रकाशित
करवावाणा सूर्यधी धर्मनी प्रभावना थाय छे. डेइसासागर अमे आपना
शुष्णने कथां सुधी वरुणी शकीये. अमने णधाने तो अे वरुणीने जेवो डरु
थयो छे डे आपे वृद्धावस्थाधी लुर्षु कृश अने निःसत्त्व शरीर डोवा छतां
पणु कायरजनो द्वारा दुष्कर जेवा आ कठिनतर तीव्र अनशननो अंगीकार
करेल छे. चतुर्विध संघना आ प्रकारनां वचन सांलणीने शुइ महाराजे चित्तमां
विचार कर्यो डे जे हुं भारी लुण प्रगट डइं अने 'आ संघणो शिष्यनो
प्रपञ्च छे' जेम जे डहुं तो उनशासननी अवहेलना थाय छे, निन्दा थाय
छे, लघुता वरुणर थाय छे, भाटे डवे तो श्रेय जेमां छे डे अनशन व्रत
अंगीकार करी लडं. कर्मक्षयनो आ सडेजे समय प्राप्त थयो छे. जेने
छेडवे अे बुद्धिवाणी वात नथी. आ प्रकारे विचार करी शुइ महाराजे

चिदतिक्षुधया पीडितो गुरुश्चिन्तयति आहारानयनार्थं क्षुद्रबुद्धिं प्रेषयामीति,
 तावदसौ क्षुद्रबुद्धिः स्वगुरोः प्राणव्यपरोपणार्थं चतुर्विधसंघसमक्षमयादीत्-गुरुणा
 शरीरमतिकृशं शक्तिरहितं विलोक्य यावज्जीवमनशनं स्वीकृतम्, क्षुद्रबुद्धिवाक्यं
 श्रुत्वा चतुर्विधसंघस्तदैवाचार्यस्य समीपमागत्याब्रवीत्-धन्योऽसि कृतपुण्योऽसि
 महात्मन् ! भवान् जिनशासनभास्करः करुणासागरः, यत् खलु भवता

विचारते थे और मनही मन कहते थे-देखो तो सही इसकी किननी
 बड़ी भारी अज्ञानता है जो बिना निमित्त के ही क्रोध किया करता है,
 चाहे जिससे झगड़ा करता है, समझाने पर भी नहीं मानता है, अभि-
 मान का पुतला बना हुआ है, मर्मच्छेदी मृपावचन बोलने में इसे
 संकोच तक नहीं होता, अब इसका इलाज क्या किया जावे, कुछ भी
 उपाय नहीं, अनुपायवस्तु में सहनशीलता धारण करना ही उचित है।
 इस प्रकार के विचार से गुरुमहाराज शान्त होकर उस के द्वारा प्रदत्त
 कष्टोंको सहते रहते। एक समय की बात है जब कि गुरु-महाराज
 क्षुधा से पीड़ित होकर आहार लाने के लिये क्षुद्रबुद्धिको भेजनेका विचार
 कर रहे थे कि इतने में क्षुद्रबुद्धि ने गुरुमहाराज को मारने के अभिप्राय
 से चतुर्विध संघ के समक्ष ऐसा प्रकट कर दिया कि वृद्धावस्था के
 कारण गुरुमहाराजने शरीर की स्थिति कमजोर जानकर यावज्जीव अन-
 शनव्रत-संधारा धारण कर लिया है। क्षुद्रबुद्धि के इस प्रकार वचनों

होवानुं पोते विचारता अने मनभांज कहेता के बुझ्यो तो भरा आनी
 डेटली अधी अज्ञानता छे के के बिना निमित्त क्रोध कर्था करे छे, चाहे
 तेनाथी अगडे छे, समझववा छतां पणु मानतो नथी, अभिमाननुं पुतणुं
 णनी गयो छे. मर्मवेधक मृपा वचन बोलवामां. तेने संकोच थतो नथी,
 हुवे ऐनो छलाज शुं थछ शके, कोछ उपाय नथी. अनुपाय वस्तुमां सडन-
 शीलता धारणु करवी तेज उचित छे. ऐवा प्रकारना विचारथी शुर्महाराज
 शान्त णनीने तेनाथी अपाता कष्टोने सह्या करता. ओक समयनी वात छे
 न्यारे शुर्महाराज बुभथी पीडित णनीने आहार लाववाने क्षुद्रबुद्धिने
 भेकलवानो विचार करता हुता ओटलाभां क्षुद्रबुद्धिअे शुर्महाराजने भारवाना
 अभिप्रायथी चतुर्विध संघनी समक्ष ऐवुं प्रगट कथुं के वृद्धावस्थाने कारणु
 शुर्महाराजना शरीरनी स्थिति सारी रहेती न होवाथी तेभणु न्यां सुधी
 लवे त्यां सुधी अनशन व्रत धारणु करेले छे. क्षुद्रबुद्धिना आ प्रकारना वच-

तरां दशविधक्षेत्रवेदनामनुभूय स गर्भाद् गर्भं, जन्मतो जन्म, मरणाद् मरणं, दुःखाद् दुःखं, पुनः पुनश्चतुर्गतिदुःखं प्राप्नुवन् दुर्लभबोधितां दीर्घसंसारितां च प्राप्तवान् ॥३॥

अविनीतस्य सदृष्टान्तमवस्थामाह—

मूलम्—जहा सुणी पूइकण्णी, निक्कसिज्जइ सर्वसो ।

एवं दुस्सील पडिणीए, मुहंरी निक्कसिज्जइ ॥ ४ ॥

छाया—

यथा शुनी पृथिकर्णी निष्कास्यते सर्वतः ।

एवं दुःशीलः प्रत्यनीकः मुखारिर्निष्कास्यते ॥ ४ ॥

‘जहा०’ इत्यादि—यथा—पृथिकर्णी=पृथी=दुर्गन्तवन्तो कर्णो यस्याः सा

तयोक्ता, कर्णगतानेकविपमत्रणपरिपाकजनितदुस्सहदुर्गन्धपूयविकृतरक्तस्रावस्थि-
तकृमिमक्षिकानिकरदंशनोद्भूततीव्रतरवेदनाव्याकुलतया प्रतिक्षणमितस्ततो भ्रम-
न्तीत्यर्थः, शुनी=कुक्कुरी, सर्वशः=सर्वप्रकरणे प्रतिस्थानात् निष्कास्यते=निःसार्यते,

और घोर नरक में जाकर नारकी की पर्याय से उत्पन्न हुआ । वहां उसने दश प्रकार की तीव्रतर क्षेत्रसंबंधी वेदना को पाया । वहां की स्थिति को समाप्त कर जब वह वहां से निकला तो भी इस के दुःखों का अन्त नहीं आया । एक गर्भ से दूसरे गर्भ में पहुंचना और वहां के कष्टों को भोगना, फिर वहां से मर कर पुनः जन्म धारण करना और कष्टों को भोगना, इस प्रकार अनंतसंसारी बने हुए इस क्षुद्रबुद्धि की आत्मा को बोधिका लाभ दुर्लभ हो गया ॥ ३ ॥

अविनीत की अवस्था को दृष्टान्त द्वारा सूत्रकार प्रदर्शित करते हैं—

‘जहा सुणी०’ इत्यादि ।

इस प्रकारनी तीव्रतर क्षेत्र संबंधी वेदनाओं सहित पडी. ये स्थिति लोगवी
ये न्यारे त्यांथी निकर्ये छतां पणु तेना दुःखेनो अंत न आव्ये. अेक
गर्भभांथी षीन्न गर्भभां वुं अने त्यांनां कष्ट लोगववां. अेक स्थणेथी भरी
षीने स्थणे इरी जन्म धारणु करवे अने कष्टे लोगववां. आ प्रकारे अनन्त
संसारि अनेस ते क्षुद्रबुद्धिना आत्माने बोधिनो लाल दुर्लभ अनी गये।

अविनीतनी अवस्थाने दृष्टान्त द्वारा सूत्रकार प्रदर्शित करे छे—‘जहा सुणी’ इत्यादि.

तदा गगनमण्डले देवैर्दुन्दुभिर्वा दयद्भिर्जयजयध्वनिः कृतः । क्षुद्रबुद्धिकृतं सर्वमत्याचारं च ते देवा विदितवन्तः । ततस्ते तदवृत्तमुद्धोषितवन्तः । तच्छ्रुत्वा चतुर्विधसंग्रस्तं संघान्निष्कासितवान् । तस्मिन्नेव समये आचार्यांशातनाजनितपापेन क्षुद्रबुद्धेर्वपुषि षोडश रोगाः समुत्पन्नाः । गच्छान्निष्कासितः, तीव्रवेदनां सर्वजनतिरस्कारं च प्राप्नुवन् स क्षुद्रबुद्धिर्मृतः । तदतन्तरं स नरके निपतितः । तत्र तीव्र-

होगी । इस प्रकार विचार कर गुरु-महाराज ने समाधिभाव को धारण कर लिया, और परिणामों की अतिशय विशुद्धि एवं वृद्धि से क्षपक श्रेणि पर आरूढ़ होकर घातिया कर्मों के नाश से केवली-अवस्था प्राप्त करली, पश्चात् अघातिया कर्मोंके नाश से सिद्धिगति के अधिपति बन गये । देवों ने भद्रबुद्धि आचार्य के केवलज्ञानप्राप्तिका उत्सव मनाया । आकाशमें जयघोषपूर्वक दुंदुभियां बजायीं । उन देवों ने साथ २ यह भी जान लिया कि इन आचार्य के साथ इस क्षुद्रबुद्धि ने अच्छा व्यवहार नहीं किया, उन्हें इसने अधिक से अधिक दुःख दिये और खूब मनमाना उनके साथ अविनीतता का व्यवहार किया है । देवताओं ने इस बात को संघ में जाहिर की । संघ ने क्षुद्रबुद्धि को संघबाहर किया, क्षुद्रबुद्धि भी कुछ समय बाद गुरुद्वेषी होने के कारण अर्जित पापकर्म के उदय से बहुत दुःखी हुआ, उसके शरीर में १६ प्रकार के रोगों ने अपना प्रभाव जमाया । संघ से बहिष्कृत वह इस प्रकार तीव्र वेदना एवं तिरस्कारजन्य दुःखों का अनुभव करता हुआ मर गया,

समाधिभाव धारणु कर्था अने परिणामोनी अतिशय विशुद्धि अने वृद्धिथी क्षपकश्रेणी पर आरूढ गनी घातिया कर्मोना नाशथी सिद्धगतिना अधिपति गनी गया. देवोअे लक्ष्मि बुद्धि आचार्यने प्राप्त थयेल डेवगज्ञाननो उत्सव मनाव्यो. आकाशमां जयजयकार साथे हुड्डलियो वगाडवामां आवी, अने देवोअे साथोसाथ अे पणु लखी लीधुं डे आ आचार्यनी साथे क्षुद्रबुद्धिअे सारे वडेवार करेल नथी, तेणु अेभने वधुमां वधु दुःख आपेल छे, अने मनमान्यो अविनीतनो वडेवार अेभनी साथे खलाव्यो छे. देवताओअे आ वातने संघमां लडेर करी संघे क्षुद्रबुद्धिने संघे लडार कर्था. क्षुद्रबुद्धि गुरुद्वेषी होवाना कारणु थोडा समय बाद अर्जित पापकर्मना उदयथी धणु दुःभीत थयो, तेना शरीरमां सोण १६ प्रकारना रोगोअे चोतानो प्रलाव जभाव्यो. संघथी बहिष्कृत अेवा अे शिष्ये आ प्रकारनी तीव्र वेदना अने तिरस्कारजन्य दुःखोना अनुभव कर्था, अने छवटे तेनो डेडांत थयो. भरलुआड तेने

समालोचयति, मुखं हि आसेवना क्रियते, दुःखं चेत्यमालोचयितुम्, तस्मादयं शास्त्रहीनः शुद्ध इति । एवं तं गुरुणा प्रशस्यमानं दृष्ट्वाऽन्येऽपि अगीतार्थश्रमणाः प्रशंसन्ति चिन्तयन्ति च—दोषासेवनायामसकृदापतितायामपि न कश्चिदोषः, आलोचनयैव सकलदोषपरिहारसंभवात् । अथान्यदा तत्र संविग्नगीतार्थः कश्चिदाचार्यः शिष्यगणपरिवृतः समायातः । स च प्रतिदिनं तमेव व्यतिकरं विलोक्या-चार्यमब्रवीत्—हे महाभाग! शासनप्रभावक! भव्यभास्कर ! अयमविनीतः खलुशिष्यो

करता है। जो मुनि इस प्रकार से अपने अतिचारों की आलोचना करता है उसी की आलोचना करना ठीक है। ऐसी आलोचना से ही दुःखों का विनाश होता है। इस प्रकार अन्य शिष्यों ने जब गच्छाचार्य को उसकी प्रशंसा करने में रत देखा तो अगीतार्थ शिष्य भी उसकी प्रशंसा करने लगे। तथा साथ २ में यह भी धारणा उनके चित्त में जम गई कि वार २ दोषों की आसेवना करने पर भी हरकत नहीं है, क्योंकि दोष करने पर भी उन दोषों की शुद्धि आलोचना से हो जाती है, नहीं तो इस मुनिकी प्रशंसा हमारे आचार्य क्यों करते, और क्यों यह दोषों का आसेवन करता हुआ भी उनकी आलोचना करता है। एक दिन की बात है कि वहां संविग्न गीतार्थ—(क्रियापात्र) कोई आचार्य महाराज अपनी शिष्यमंडलीसहित आये। उन्होंने ने जब वहां इस अविनीत शिष्य के इस प्रकार के प्रतिदिन के व्यवहार को देखा तो वे आश्चर्य पाये और गच्छाचार्य से कहने लगे कि—हे महाभाग ! शासनप्रभावक।

दागेवा अतिचारेनी शुद्ध आलोचना करे छे. ने मुनि आ रीते पोताना अतिचारेनी आलोचना करे छे. तेवी आलोचना करवी हीक छे. आवी आलो-चनाधीन दुःखोनो विनाश धाय छे. आ प्रकारे अन्य शिष्येअे न्यारे शुद्ध महाशरने तेनी प्रशंसा करवामां रत जेया त्यारे धीन शिष्ये। पणु तेनी प्रशंसा करवा लाग्या. अने साथेसाथ जेवी धारणा जेमना चित्तमां ठसी गध के वारंवार दोषानुं सेवन करवामां पणु हरकत नथी डेभके दोष करवा छतां पणु तेवा दोषोनी शुद्धि आलोचनाधी थध जय छे. नही तो आ मुनिनी प्रशंसा अमारा आचार्य क्या करणु करत. तेम आवा दोषानुं आसेवन करवा छतां पणु ते तेनी आलोचना करे छे. जेक दिवसनी वात छे के त्यां केध अन्य आचार्य महाशरने पोतानी शिष्यमंडली साथे आग्या. तेजेअे न्यारे त्यां ते अविनीत शिष्यना आ प्रकारना दररोजना वडेवारने जेयो तो तेमने आश्चर्य थयुं अने आचार्य महाशरने कडेवा लाग्या के

અત્ર દૃષ્ટાન્તસ્તથાહિ—

કસ્મિંશ્ચિદ્ ગચ્છે એકઃ શ્રમણગુણમુક્તઃ સર્વથા ભાવધિનયર્ચિતઃ
સાધ્વાભાસઃ શિષ્ય આસીત્ । સ ચ પ્રતિદિનં પુરઃકર્માદિદોષદૂષિતમનેપણીયં
મક્તાદિકં ગૃહીત્વા મહતા સંવેગેન પ્રતિક્રમણકાલે આલોચયતિ । તસ્ય ગચ્છાચાર્યઃ
પ્રાયશ્ચિતં પ્રયચ્છન્ વદતિ—અહો પશ્યત કથમસૌ ભાવમગોપયન્ શાઠ્યહીનઃ સર્વં

इस अविनीततारूपी घाव के होने पर शिष्यजनों में स्वाभाविक
चञ्चलता आजाती है, परन्तु जब उस घाव में गुरुओं से भी प्रत्यनीक
होनेरूप सड़ा आने लगता है तब उसकी दुर्गंध को गुरुजन भी सहन
नहीं कर सकते हैं, अतः वह संघ से अथवा गच्छ से बाहर कर दिया
जाता है । यदि इस प्रकार की परिस्थितिवाले शिष्य को संघ से बाहर न
करे तो कुल गण एवं संघ में महान् अनर्थ होता है । इसी विषय को
एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जाता है—

કિસી ગચ્છ મેં સાધુઓં કે ખીતરી આચાર વિચાર સે રહિત પરન્તુ
ઉપર સે સાધુ જૈસા જ્ઞાત હોને વાલા એક સાધ્વાભાસ શિષ્ય રહતા થા ।
વહ પ્રતિદિન પુરઃકર્માદિદોષોં સે દૂષિત અનેપણીય—આહારાદિક ગ્રહણ
કરતા ઓર ડપર સે દિલાવટી સંવેગભાવ સે વડે જોર-શોર સે પ્રતિ-
ક્રમણ કે સમય આલોચના કિયા કરતા થા । ગચ્છાચાર્ય પ્રાયશ્ચિત દેતે
સમય કહા કરતે કિ દેલો યહ કિતના મદ્રપરિણામી જીવ હૈ જો અપને
હાર્દિક ભાવોં કો નહીં છુપાકર લગે હુવે અતિચારોં કી શુદ્ધ આલોચના

કારણે અવિનીતતારૂપ ઘા ને લઈ તેના મનમાં ભારે અંચળતા આવી જાય છે
પરંતુ ગુરુ—આજ્ઞાના અનાદરરૂપી સડો એના હિલમાં લાગી જાય છે ત્યારે એની
દુર્ગંધીને ગુરુજન પણ સહન કરી શકતા નથી એટલે એને સંઘથી અથવા
ગચ્છથી બાહર કરી દેવામાં આવે છે. જો આ પ્રકારની પરિસ્થિતિવાળા શિષ્યને
સંઘથી બહાર કરવામાં ન આવે તો કુલ ગણ અને સંઘમાં મહાન અનર્થ
બને છે. આ વિષયને એક ઉદાહરણ દ્વારા સ્પષ્ટ કરવામાં આવે છે:—

કોઈ ગચ્છમાં સાધુએના અંદરના આચાર વિચારથી રહિત પરંતુ
ઉપરથી સાધુ જેવો દેખાવ રાખતો એક સાધ્વાભાસ શિષ્ય રહેતો હતો. તે દિન
દહાડે આધા કર્મોદિ દોષોથી દૂષિત અનેપણીય આહારાદિક ગ્રહણ કરતો. અને
ઉપરના દેખાવમાં સવેગભાવથી ઘણા ભેરશોરથી પ્રતિક્રમણના સમયે આલો-
ચના કર્યા કરતો. ગુરુ મહારાજ એને પ્રાયશ્ચિત્ત દેતી વખતે કહેતા કે ભુલ્યો
આ કેટલો ભદ્રપરિણામી જીવ છે જે પોતાના હાર્દિક ભાવોને નહીં છુપાવતાં

आगतेनाचार्येण कथितम्—

गिरिनगरनिवासी कश्चिदग्निभक्तो वणिक् पद्मरागरत्नैर्भवनं पूरयित्वा प्रतिवर्षं वह्निना प्रदीपयति । तत्रत्यमन्दबुद्धिद्विपतिसभायां स वणिक् प्रशंसितः—अहो धन्योऽयं वणिक् यदनेन वह्निदेवः पद्मरागरत्नैः संतर्प्यते । तदनन्तरमेकदा प्रबलपवनपटलपेरितस्तत्प्रदीपितदहनः सराजभासादं समस्तमपि तन्नगरं दहतिस्म । ततोऽसौ वणिक् राज्ञा दण्डितो नगरान्निष्कासितः, तदेवं राज्ञा को बांधने में भिन्न के जैसा सिद्धहस्त होता है । धर्मरूपी उद्यान को नष्ट करने के लिये यह तरुकोटरान्तर्गत वह्निकी ज्वाला के समान दारुण और विनाशकारी माना गया है । आप जैसे गच्छाधिपति को इस अविनीत की प्रशंसा करते हुए देख कर मुझे उस राजा की कथा याद आती है—

गिरिनगरनामक एक शहर में अग्निभक्त कोई एक बनिया रहता था, जो प्रतिवर्ष अपने भवन को पद्मराग मणियों से भर कर जला दिया करता था । उसके इस कार्यकी प्रशंसा वहाँ के मन्दबुद्धि नामक राजा तथा प्रजा सभी मुक्तकंठ से करते थे । वे कहते थे—धन्य है यह अग्निभक्त जो अग्नि की प्रतिवर्ष इस प्रकार से पूजा किया करता है । एक दिन की बात है कि उस वणिक् ने ज्यों ही अपना मकान जलाया कि इतने में बड़ी भारी आंधी का एक प्रबल वेग आया, और उससे प्रज्वलित हो उस अग्निज्वाला ने उस नगर को भस्म कर दिया ।

भाषा लव्य लवङ्गी भृगोने गांधवामां बिलनी भाङ्क सिद्धहस्त होय छे. धर्मङ्गी भागनो नाश करवा भाटे आ तङ्कोटरान्तर्गत अग्निनी नवाला समान दाङ्गु अने विनाशकारी मानवामां आवेल छे. आप नेवा गच्छाधिपतिने आया अविनीतनी प्रशंसा करता जेध मने ओक राजनी बात याद आवे छे—

गिरिनगर नामना ओक शहरमां अग्निभक्त जेवा ओक वणिक् रहतेो हुतो जे दर परसे पोताना मकानने पद्मराग मण्णियोधी लरी भाणी नापतो. तेना आ कार्यनी प्रशंसा रात अने प्रबल गंधा मुक्तकंठे करता हुता अने कहेता हुता के—धन्य छे आ अग्निभक्तने के जे दरपरसे अग्निनी आ प्रकारधी पूजा कर्या करे छे. ओक दिवसनी बात छेके जे वणिक्के पोतानुं मकान सजगाओयुं जे समये लारे जेशोरधी पवननी आंधी बढी आवी वेगवाणी पवननी आंधीने लध अग्नि जेशेखेर प्रज्वलित जन्यो अने तेना अंगारा शहरलरमां दूरी वणतां आयुं शहर अने राजना भडेलमां पणु अग्निशाप्याओ दूरी वणी अने साङ्गे शहर तथा राजभडेल पणु नाश पाभ्यो. रातजे आधी असंतुष्ट जनी जे वणिक्ने

जन्मजरामरणगर्तपातनाय पञ्चविधास्रवरूपः, क्षान्त्यादिगुणकमलनिकरनाशनाय भयंकरतुपारनिकरस्वरूपः, चारित्रविध्वंसने धूमकेतुः, सकलास्रवहेतुः, मुनिमण्डलाखण्डशशिमण्डले राहुरिव, मायाजालेन भव्यमृगवन्धने भिद्य इव, धर्मोद्यानदहने तरुकोटरवह्निरिव गच्छे वर्तते । भवानित्थमस्य प्रशंसां कुर्वन् क्षितीश इव लक्ष्यते । आचार्येणोक्तम्—कोऽसौ क्षितीशः ? कीदृशी तस्य वार्ता ?

आप भव्य जीवोंके विकसित करने में यद्यपि सूर्य के तुल्य हैं तो भी आपकी छत्रच्छाया में रहकर भी जो कुमुद ही बना रहे, अर्थात्-आचार विचार से सदा शिथिल रहे उस मन्दभागी के लिये क्या कहा जाय । आप के इस गच्छ में एक अविनीत शिष्य है, जो इस गच्छ का कलंक स्वरूप है, क्यों कि अविनीत शिष्य जन्म जरा एवं मरणरूपी खड्डे में पाड़ने के लिये पंचविध आस्रवरूप माना गया है, जिस प्रकार तुपार-हिम का पुंज कमलों के वन को विध्वस्त करने में कसर नहीं रखता है उसी प्रकार अविनीत शिष्य भी क्षान्त्यादि गुणों को नष्ट भ्रष्ट करने में जरा भी आगे पीछे का विचार नहीं करता है । अविनीत शिष्य चारित्र के विनाश करने के लिये धूमकेतु के जैसा माना गया है । सम्पूर्ण आस्रवों का यह कारण बतलाया गया है । मुनिमंडलरूप अखंड चन्द्रमण्डल को ग्रसन करने के लिये विद्वानों ने इस को राहु के जैसा कहा है । यह अपनी माया-जालसे अन्य विचारे भोले भाले भव्यजीवरूपी मृगों

के शासन प्रभावक ! आ लव्य लुपेने विकसित करवामां ले के सूर्यना तुव्य छे तो पणु आपनी छत्रछायामां रङ्गीने पणु ले कुमुद न गनी रहे-अर्थात् आचार विचारथी सदा शिथिल रहे तेवा मंदभांगी माटे शुं कडेवामां आवे. आपना आ गच्छमां अेक अविनीत शिष्य छे-ले आ गच्छमां कलंकस्वरूप छे केभके अविनीतजन जन्म, जरा, अने मरणरूपी पाडांमां पाडवावाणा पंचविध आस्रवरूप मानवामां आवेल छे. ले प्रकारे तुपार, अर्थात् (गरक) डीमनो पुंज कमणना वननो नाश करवामां कसर राभते। नथी तेम अविनीत शिष्य पणु क्षान्त्यादि गुणोने नष्ट भ्रष्ट करवामां आगण पाछणनो विचार करतो नथी. अविनीत शिष्य चारित्रनो विनाश करवा माटे धूमकेतु लेवे। मानवामां आवेल छे. सम्पूर्ण आस्रवतुं अे कारणु अताववामां आणुं छे. मुनिमंडलरूप अण्डयद्रमंडलने अडणु करनारा राहु लेवे। विद्वानोअे कडेवं छे ते पातानी आ अविनीतता रूथी नणथी अन्य जीयारा लेणा-

ननु दुःशीलं सकलानर्थमूलं चेत् अविनीतेन कथं तर्हि तत्रानुरज्यते ?
इत्याकाङ्क्षायां दुःशीलरतिकारणं सदृष्टान्तं प्रतिबोधयितुमाह—

मूलम्—कणकुण्डगं चङ्क्तां णं; विष्टं भुञ्जईं सूयरो ।

एवं सीलं चङ्क्तां णं, दुस्सीले रमईं मिष्ट ॥ ५ ॥

छाया—

कणकुण्डकं त्यक्त्वा खलु, विष्टं भुङ्क्ते सूकरः ।

एवं शीलं त्यक्त्वा खलु, दुःशीले रमत मृगः ॥ ५ ॥

टीका—

‘कणकुण्डगं’ इत्यादि । सूकरः खलु कणकुण्डकम्—तण्डुलपूर्णभाजनम्—
इदमुपलक्षणम्—रुचिरं मधुरं सुस्वादं सुगन्धयुक्तं त्वइमांसादिपुष्टिकरं द्रितकरं
यत् तण्डुलादिकं, तेन पूर्णं यद्भाजनमुपस्थितं तदिति भावः, त्यक्त्वा विष्टं
भुङ्क्ते, अत्र विष्टमित्यनेन अपवित्रां घृणोत्पादिकां रुजाकरां हेयां दुर्गन्धां कृमिमक्षि-
कादिपरिपूर्णामित्यर्थो ध्वनितः । एवम्=अमुना प्रकारेण मृगः=मृग इव मृगः अज्ञः—
हिताहितविवेकवर्जित इत्यर्थः, शीलं=मूलोत्तरगुणलक्षणं साध्याचारं, यद्वा—विनय-
समाधिलक्षणं त्यक्त्वा दुःशीले=दुराचारे अविनयलक्षणे रमते=आसज्यते । अयं
भावः—यथा सूकरः पशस्तमाहारं विहाय नितान्तमशुचिं सादरं भुङ्क्ते, अज्ञत्वात्,

यदि दुःशील सकल अनर्थों की जड़ है तो फिर क्यों अविनीत उसमें
अनुरक्त होता है? इस प्रकार की शंका के समाधान निमित्त दुःशील में
रतिका कारण दृष्टान्त देकर सूत्रकार समझाते हैं—कणकुण्डगं. इत्यादि ।

अन्वयार्थ—जैसे—(सूयरो—सूकरः) सूकर (कणकुण्डगं—कणकुण्डकं)
तण्डुल—आदि उत्तम भोजनीय पदार्थों से भरे हुए भाजन को (चङ्क्ता)
परित्याग कर (णं—खलु) निश्चय से आनंद के साथ (विष्टं—विष्टां)
विष्टा—अशुचिको (भुञ्जईं—भुञ्जते) खाता है (एवं) इसी तरह (मिष्ट—

ले दुःशील सकल अनर्थोंनी जड़ छे तो पशु अविनीत अंभां डेभ
अनुरक्त थाय छे. आ प्रकारनी शंकातुं समाधान करवा निमित्त दुःशीलमां
रतितुं दृष्टांत आपी सूत्रकार समजाये छे—‘कणकुण्डगं’ इत्यादि.

अन्वयार्थ—जैसे (सूयरो—सूकरः) सूकर (कणकुण्डगं—कणकुण्डकं)
आणा पजेरे उत्तम लोअनना पदार्थोंथी लरेला लोअन पात्रने (चङ्क्ता) त्याग करी
(णं—खलु) निश्चयथी आनंद साथे (विष्टं—विष्टां) विष्टा—अशुचिने (भुञ्जईं—

તસ્ય પ્રશંસાં કુર્વતા આત્મા નગરં લોકથ નાશિતઃ । તથા મવાનપિ અસ્યાવિધિ-
પ્રવૃત્તસ્ય પ્રશંસાં કુર્વન્ આત્માનં સમસ્તગચ્છં ચોચ્છેદયતિ । તતસ્તદ્વચનં શ્રુત્વા સ
આચાર્યઃ સાધ્વાભાસમવિનીતં શિષ્યં સ્વગચ્છતો નિષ્કાસિતવાન્ । તસ્માદ્ દુઃશી-
લસ્ય નિષ્કાસનં શ્રેયસ્કરમ્ ॥ ૪ ॥

દેખતે ૨ વહ સમસ્ત નગર ઉસ રાજા કે મહલસહિત એકદમ જલ કર
નબ્દ હો ગયા । રાજાને ઇસસે અસંતુષ્ટ હો ઉસ વણિક્ કો ઢ્વિંડિત
કરકે અપને નગર સે વાહર નિકાલ દિયા । રાજા જો પહિલે સે ઉસ
વણિક્ કે ઇસ કાર્ય કી પ્રશંસા ન કરતા તો ઉસકા હોસલા આગે મી
ઇસ કાર્ય કો કરને કે લિયે નહીં વઢતા । સમસ્ત નગર એવં રાજમહલ
જો નામશેપ હુવે ઉસકા પ્રધાન કારણ ઉસ રાજા કી હી નાસમક્ષી હૈ ।
ઇસી તરહ સાધુ કે અકલ્પનીય કાર્ય મેં પ્રવૃત્ત ઇસ અવિનીત શિષ્ય કી
જો આપ પ્રશંસા કરતે હૈં ઉસસે ઇસકા હોસલા વઢતા હૈ, આગે મી
અકલ્પનીય કાર્ય કરને મેં સોત્સાહ વનતા હૈ । જિસકા અન્તિમ ફલ
હોગા ગચ્છકા ઉચ્છેદ, ઓર ઇસ ઉચ્છેદજન્ય દોષોં કે ભાગી હોના
પડેગા આપ કો, અતઃ આપકા અપની ઓર ગચ્છકી રક્ષાનિમિત્ત ઇસ
અવિનીત કો ગચ્છ સે વાહર કર દેને મેં હી શ્રેય હૈ । ઇસ પ્રકાર આવે
હુવે આચાર્ય મહારાજ કે કથન પર અચ્છી તરહ ધ્યાન દેકર ગચ્છા-
ચાર્યજીને ઉસ અવિનીત શિષ્ય કો અપને ગચ્છ સે વાહર કર દિયા ।
ક્યોં કિ દુઃશીલ શિષ્ય કા ગચ્છ સે સંવંધવિચ્છેદ કરના શ્રેયસ્કર હી
માના ગયા હૈ ॥ ૪ ॥

સારી રીતે ઠંડ કરવા ઉપરાંત તેને પોતાના શહેરમાંથી કાઢી મૂક્યો. રાજા
ને વણીકના એ કાર્યની પ્રશંસા ન કરત તો એ વણીકની તાકાત નહોતી
કે દર વરસે આ પ્રમાણે અગ્નિવાલા પ્રગટાવી શકે. સમસ્ત શહેર અને
રાજમહેલ બળી ગયાં તેનું પ્રધાન કારણ એ રાજાની બીનસમજદારી જ છે.
એ રીતે સાધુના અકલ્પનીય કાર્યમાં પ્રથમ આ અવિનીત શિષ્યની આપ
પ્રશંસા કરો છો, એથી એ પોતાના મનમાં કુલાઈને આગળ ઉપર આથી
પણ વિશેષ અકલ્પનીય કાર્યમાં આગળ વધશે. જેનું અંતિમ ફળ ગચ્છના
ઉચ્છેદમાં આવવાનું અને એ ઉચ્છેદજન્ય દોષોના ભાગી આપને બનવું પડશે.
આથી આપની અને ગચ્છની રક્ષા માટે આ અવિનીતને ગચ્છમાંથી બહાર
કરી દેવામાં શ્રેય છે. આ પ્રકારે આવેલા આચાર્ય મહારાજના કહેવા ઉપર
સારી રીતે ધ્યાન દઈ ગચ્છાચાર્યજીએ એ અવિનીત શિષ્યને પોતાના ગચ્છથી
બહાર કરી દીધો. કેમકે દુઃશીલ શિષ્યનો ગચ્છથી વિચ્છેદ કરવો એ શ્રેયસ્કર
માનવામાં આવેલ છે (૪).

ज्ञानावरणीयादिकर्मरजःसमुत्पादकं क्षान्त्यादिगुणघातकं मूलोत्तरगुणकल्पपाद-
पोन्मूलकं शुभभावनाऽम्भोजनिकरनीठारपटलं सकलानर्थमूलं धर्ममर्यादाविध्वंसन-
शीलं दुःशीलं सेवते । अज्ञानं हि सर्वानर्थकरं विवेकहरं कष्टकण्टकानुविद्धं सकल-
दुर्गुणसमिद्धं तपःसंयमविनाशकं प्रमादजनकं स्वर्गापवर्गमुत्तहारकम् ।

देने वाले ऐसे शील-अर्थात् मुनि के आचार का परित्याग कर देता है । यह शील सकल गुणों में प्रधान माना गया है । जीव के साथ अनादि-
काल से लगे हुए अष्टविध ज्ञानावरणीय आदि कर्मों के बंध का उच्छेद
करने वाला बतलाया गया है । मिथ्यात्वरूपी प्रबलग्रन्थि-(गांठ) का यह
भेद करने वाला है । सम्यग्ज्ञानरूपी अमृत की वृष्टि करना इसका
स्वभाव है । ऐसे प्रशस्त उपकारक इस शील का वह अविनीत शिष्य
परित्याग करके दुःशीलका सेवन किया करता है । यह दुःशील शिष्य
ज्ञानावरणीयादिक कर्मरूपी धूलीको अपनी आत्मा में चिपकाने वाला है ।
क्षान्ति आदि सद्गुणों का ध्वंसक है । मूलगुण एवं उत्तरगुणरूप
कल्पवृक्ष का उन्मूलक है । शुभभावनारूपी कमलों को नष्ट-भ्रष्ट करने
के लिये तुषारपात-अर्थात्-हिमवर्षा जैसा है । सकल अनर्थों का यह
मूल है । ऐसे धार्मिक मर्यादा को उखाड़ने के स्वभाववाले इस दुःशील
का वह अविनीतशिष्य सेवनकर हिताहित को नहीं समझता है । यह
कितने आश्चर्य की बात है कि जिस विनयमूल धर्म से अपनी आत्मा
का उद्धार होता है उसका वह अविनीत त्याग कर अपकारक दुःशील

आचारनो परित्याग करी दे छे. आ शील सकल गुणोभां प्रधान मनायेल छे.
एवनी साथे अनादिकाणधी लागेला आठ प्रकारना ज्ञानावरणीय आदि कर्मना
बंधनो उच्छेद करवा वाणा गतायेल छे. मिथ्यात्वरूपी प्रणय अर्थीनो आ
लेद करवावाणे छे, सम्यग्ज्ञानरूपी अमृतनी वृष्टि करवी तेनो स्वभाव छे,
जेवा प्रशस्त उपकारक आ शीलनो ते अविनीत शिष्य परित्याग करीने दुःशीलनु
सेवन करे छे. आवो दुःशील शिष्य ज्ञानावरणीयादिक कर्मरूप धूजने पोताना
आत्माभां थोटाउनार छे. क्षान्ति आदि सद्गुणोना नाश करनार छे. मूलगुण
उत्तरगुणरूप कल्पवृक्षनो उन्मूलक-नाश करनार छे. शुभ भावनारूपी कमलोंने
नष्ट भ्रष्ट करवा माटे तुषारपात-अर्थात् हिमवर्षा जेवा छे. सकल अनर्थोनु
जे मुण छे. जेवा धार्मिक मर्यादाने उणाउवानी वृत्तिवाणा आवा दुःशीलनु
ते अविनीतजन सेवन करी हिताहितने समजता नथी. आ जेवा आश्चर्यनी
बात छे के जे विनय मुण धर्मधी पोताना आत्मानो उद्धार थाय छे. तेनो

यथा वा हिताहितविवेकरहितत्वान्मृगः स्वापायमपश्यन् गानतानश्रवणमोहितः
सन् व्याधमभिसरति, एवम्-अज्ञानतिमिरसंवृतात्मा खलु संसारवारिधिप्रहातरणिं
शिवपदसरलसरणिं सिद्धिपददायकं सकलगुणनायकम्, अनादिभवसंचिताष्टविध-
कर्मबन्धनोच्छेदकं मिथ्यात्वग्रंथिभेदकं सम्यग्ज्ञानमुभावर्षणशीलं शीलं प्रविहाय
मृगः) विवेक रहित होने के कारण मृग जैसा यह अविनीत शिष्य भी
(सीलं-शीलं) मूलोत्तरगुणरूप अथवा विनयसमाधिरूप साधुसंबंधी
आचार को (चइत्ता-त्यक्त्वा) परित्याग कर (णं-खलु) निश्चय से
(दुस्सीले-दुःशीले) अविनयरूप दुराचार का (रमइ-रमते) सेवन
करता है ॥ ५ ॥

भावार्थ—बोधविकल होने के कारण जैसे सूकर प्रशस्त आहार
का परित्याग कर नितान्त अशुचि पदार्थका बड़े आनंदके साथ सेवन
करता है, तथा हिताहित विवेक से रहित होनेकी वजह से जैसे
मृग भविष्य में होने वाली आपत्ति को नहीं जानता हुआ गान के
सुनने में एकतान होकर अपने आप व्याध की जाल में फस जाता है,
उसी तरह अज्ञानरूपी अंधकार से आच्छादित हुआ अविनीत शिष्य भी
संसाररूपी समुद्र से पार लगाने के लिये बड़े सुरक्षित जहाज जैसे, तथा
शिवपद में लेजाने के लिये सुन्दर सीधे मार्ग जैसे, एवं सिद्धिपद को

मुंके) पाय छे (एवं) आ प्रभाण्णे (मिण-मृगः) विवेकरहित थवाने कारण्णे मृग
जेवा आ अविनीत शिष्य पण्णु (सीलं-शीलं) मूलोत्तर गुणरूप अथवा विनय-
समाधिर्रूप साधुसंबंधी आचारनो (चइत्ता-त्यक्त्वा) परित्याग करी (णं-खलु)
निश्चयथी (दुस्सीले-दुःशीले) अविनयरूप दुराचारनु (रमइ-रमते) सेवन करे छे.

भावार्थ—बोधविकल होवाने कारण्णे जेम सूकर (मूंड) प्रशस्त
आहारनो परित्याग करी नितान्त अशुचि पदार्थनुं लारे आनंदथी सेवन करे
छे. अने हिताहित विवेकथी रहित होवाना कारण्णे जेम मृग भविष्यमां
आपनारी आपत्तिने लण्णुतो नथी, कारण्णुके संगीतना सुरोमां एकतान जनीने
पोते पोताना हाथे शीकरनीनी लण्णुमां इसाधं नथे छे. जेवी रीते अज्ञानरूपी
अंधकारथी आच्छादित जनेला अविनीतशिष्य पण्णु संसाररूपी समुद्रथी पार
करवावाणा मोटांमां मोटा सुरक्षित जहाज जेवा तथा शिवपदमां लधं जवावाणा
सुंदर सीधा मार्ग जेवा अने सिद्धिपदने आपनार जेवा शील-अर्थात् सुनिना

दासी सूकरीसंनिधौ गत्वा तदीयशिशुं समानीय राजपुत्र्यै समर्पयामास । सा च राजपुत्री वात्सल्येन सूकरशिशुं पालयन्ती कदाचित्तमङ्गे स्थापयति, स्नापयति, तदङ्गं करेण प्रोच्छयति, कदाचित् तदङ्गसंलग्नां धूलिमपसारयितुं मार्जयति, विविधं मिष्टान्नं भोजयति, मृदुलशय्यायां स्वसमीपे स्थापयति । सा राजपुत्री तस्य सूकरशिशोर्गले चरणेषु च सकिङ्किणीकं स्वर्णाभरणं रचयति, पृष्ठोपरि बहुमूल्यकं विविधवर्णरञ्जितं 'ञ्ज' इति प्रसिद्धं स्वर्णजटितयस्त्रं च वितरति । एवं सा राजपुत्री पुत्रवत् सूकरशिशुं लालयतिस्म ।

एक दिनकी बात है कि जब यह अपने महलके झरोखे में बैठी हुई बाहर की ओर निहार रही थी कि सहसा इसकी दृष्टि एक सूकरी पर पड़ी, जो अपने बच्चोंको संगमें लिये हुए चर्हीं पर इधर-उधर फिर रही थी । उसे देखकर उसने मन में विचार किया कि यह सूकरी मेरी अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ है, जो कम से कम अपने बच्चों के साथ घूमा करती है । इस अवस्था में इसे जो आनंद मिलता है वह यही जान सकती है । एक में अभागिनी हूं जो राजमहल में रहती हुई भी इस प्रकार के सुख से वंचित बनी हुई हूं । इस प्रकार का विचार कर उसने अपनी एक दासी को बुलाया और कहा कि जाओ और इन सूकरी के बच्चों में से एक बच्चे को ले आओ । आज्ञा पाते ही दासी सूकरी के पास पहुँची और वहाँ से एक बच्चे को उसने उस राजपुत्री के लिये लाकर दे दिया । राजपुत्री ने भी बड़े आनंद के साथ उसका पालन पोषण करना प्रारंभ कर दिया । इस सिलसिले में कभी वह उसे अपनी गोद में बैठा लेती,

न्याये अथ पोताना भडेलना अश्रुभां जेडी जेडी जडार जेध रही छती, डे सहसा तेनी दृष्टी अथ लुंउषु उपर पडी. जे पोताना अश्रुभांने साथभां लधने आभतेम धुमी रही छती तेने जेधने राजकन्याअने मनभां विचार कथी डे आ सूकरी मारा करतां धखी सुभी छे, जे पोताना अश्रुभांने साथे लधने करे छे, आ अवस्थाभां अने जे आनंद भगतो छथे ते अने नक्षुती छथे. अथ हुं न अथी अलागणी छुं डे राजभडेलभां रहेवा छतां पथ आ प्रकारना सुभधी वंचित जनेल छुं. आ प्रकारनो विचार करी तेछे पोतानी अथ दासीने जोलावी अने कहुं डे नथो अने अथ सूकरीना अश्रुभांथी अथ अश्रुं लध आवे. आज्ञा भगतो न दासी सूकरीनी पाने पडोन्धी अने त्याथी अथ अश्रुं लध राजपुत्री पासि आवी तेने सुभद कथुं. राजपुत्रीअने तेनुं सारी रीते पालन पोषण करवानुं शरु कथुं. आ उत्साहभां ते कोध वथत सूकरीना अश्रुभांने प्रेमथी पोताना जोलाभां जेसारी हेती, कथारेक तेने नवडावती

अस्मिन्नर्थे सूकरदृष्टान्तः प्रदर्श्यते—

वङ्गदेशेक्षितिप्रतिष्ठितनगरेऽरिमर्दननामा नृपो बभूव । तस्य सप्त कन्यका आसन् । स भूपतिस्तासां कन्यकानां यौवने वयसि प्राप्ते ता एकैकक्रमेण विवाहिताः । तत्रैका कन्यका कर्मयोगतो विवाहानन्तरमचिरैरेव कालेन पतिहीना जाता । एकदा सा गवाक्षे स्थिता कुतश्चिद् समागतां समुतां सूकरां दृष्ट्वा चिन्तयामास—अहो ! धन्यमस्या जन्म, यदियं बहुभिरपत्यैः सार्धं विचरन्ती मुखमनुभवति । इति विचिन्त्य सा स्वदासीमवधीत्—अत्रैकं सूकरशिशुं समानय । तदाज्ञया

को सेवता है । अज्ञान की महिमा अपार है । समस्त अनर्थों की जड़ एक अज्ञान ही तो है । अज्ञान आते ही पहिले वह विवेक पर ही कुठारा घात करता है । जिस आत्मा से विवेक का लोप हो जाता है उस आत्मा में विविध कष्टरूपी कांटे खड़े हो जाते हैं । यह अज्ञान अनेक प्रकार के दुर्युगों को उत्पन्न करता है । तथा तप और संयम का विनाशक है, यह प्रमाद को उत्पन्न करनेवाला है, तथा स्वर्ग और मोक्ष के सुखोंका विधातक है ॥ इस पर सूकर का दृष्टान्त इस प्रकार है—

वंगदेश में क्षितिप्रतिष्ठित नामका एक सुन्दर नगर था । अरिमर्दन नामका राजा उसका शासक था । इसके सात कन्याएँ थीं । राजा ने इनका क्रमशः जब वे तरुण अवस्थावाली हो चुकीं विवाह कर दिया । कर्मकी विचित्रतावश एक लड़की विवाह के बाद ही विधवा हो गई ।

ते अविनीत त्याग करी अपकारक दुःशीलने सेवे छे. अज्ञाननी महिमा अपार छे. समस्त अनर्थोनी जड अज्ञान ज छे. अज्ञान आवतांनी साथे ज ते सहु प्रथम विवेक उपर ज घा करे छे. जे आत्माभांथी विवेकनो दोष थर्ध न्य छे जे आत्माभां नाना प्रकारना कष्टरूपी कांटाओ पीछावाध न्य छे. जे अज्ञान अनेक प्रकारना दुर्गुणोने उत्पन्न करे छे. तथा तपअने संयमनो विनाश करे छे. जे प्रमादने उत्पन्न करनार छे तथा स्वर्ग अने मोक्षना सुषोनी नाश करनार छे.

आ उपर सूकरनुं दृष्टान्त आ प्रकारे छे.

वंगदेशमां क्षिति प्रतिष्ठित नामनुं जेक सुंदर नगर હતું. અરિમર્દન નામના રાજાનું શાસન હતું, તેને સાત કન્યાઓ હતી અને તેના કેમ પ્રમાણે ૧ જેમ જેમ ઉંમર લાયક થતી ગઈ તેમ તેમ તેના વિવાહ કરી આપ્યા. કર્મની વિચિત્રતાવશ જેક પુત્રી વિવાહ પછી વિધવા બની. જેક દિવસની વાત છે કે

सह भुक्तवत्यः । सा दुर्भगाऽपि सूकरशिशुना सह भोक्तुं प्रवृत्ता स्वर्णस्थाले रत्न-
कटोरकेषु च स्थापितं प्रशस्तं पथ्यं रुचिकरं वातपित्तकफहरं विविधमशनं पानं
खाद्यं स्वाद्यं च चतुर्विधमाहारमभ्यवहरन्ती प्रेम्णा प्रथमग्रासं सूकरशिशुमुखे दत्त्वा
तदनु सानन्दं स्वयमश्नाति, तदाऽकस्मादेकस्या भगिन्याः शिशुना आसन्नप्रदेशे
पुरीपोत्सर्गः कृतः, तमालोक्य तेन सूकरशिशुना प्रशस्तमशनं परित्यज्य पुरीप-
भक्षणं कृतम् । पुरीपमशनन्तं सूकरशिशुं विलोक्य सर्वा भगिन्यः सपरिहासमन्वुवन्-

विधवा राजपुत्रीने कहा कि यदि आप सब जनों मेरे इस सूकर शिशु के
साथ जो भोजन करने के लिये तैयार हों तो ही मैं आपके साथ भोजन
करने में सम्मिलित हो सकती हूँ अन्यथा नहीं। उसकी इस बात को
सुनकर उसकी अन्य बहिनोंने मंजूर नहीं किया। अतः उन सबने
अपने-अपने बच्चोंके साथ पृथक्-पृथक् रूप में ही भोजन करना प्रारंभ
किया। और पति विना की राजपुत्री भी अपने सूकर शिशु के साथ
भोजन करने में प्रवृत्त हुई। खाने के पहिले उसने जो भोजन सुवर्णके
थालों में परोसा हुआ था और सुवर्णकी कटोरियों में अलग-अलग
रूपमें रखा गया था और जो प्रशस्त, पथ्य, रुचिप्रद तथा वात पित्त
एवं कफ हारक था ऐसे उस विविध भाँति के अशन-हलुआ पुरी आदि,
पान-दुध शरबत आदि, खाद्य-द्राक्षा आदि, खाद्य-चूरण आदि, एवं
चार प्रकार के भोजन में से एक-एक ग्रास अपने प्रिय उस सूकर
शिशु के मुखमें देती हुई आनंद के साथ भोजन करने लगी। जब यह
भोजन करने में प्रवृत्त थी कि इतने में ही एक अपनी बहिन के बच्चे

भारा सूकरना गन्ध्यानी साथे लोअन करवा तैयार हो, तो न हुं आपनी
साथे लोअन करवाभां सामील थई शकुं ओ सिवाय नहीं। तेनी आ वातने
भीलु उडेनाओ भंअुर न करी अेटले ते गंधीथेओ पोतपोताना भाणके
साथे लुद्री लुद्री रीते लोअन करवानो आरंभ कर्यो। अने विधवा राजपुत्री
पथु पोताना सूकर गन्ध्यानी साथे लोअन करवा लागी। भावा भेसतां पडेवां
ओले ने लोअन सोनाना थाणभां पीरसेल हुतुं, ने नानी वाटडीओभां अलग
अलग रीते गोडववाभां आवेल हुतुं ने लोअन प्रशस्त, पथ्य, रूचीप्रद तथा
वातपित्त अने कइ डरनार हुतुं ओवा विविध प्रकारना लोअनभां डलवा
पुरी आदि, पान-दुध शरबत विगेरे भाद्य-द्राक्ष वगेरे, स्वाद्य-चूर्ण वगेरे
आवा चार प्रकारना लोअनभांथी अडेक डोणीथे पोताना प्रिय सूकरना गन्ध्याना
भाढाभां देती देती विधवा राजपुत्री भुरी साथे लोअन करवा लागी। न्यारे
ओ लोअन करवाभां प्रवृत्त हुती त्यारे तेनी ओक उडेनना भाणके थोडे छेडे

एकदाऽरिर्मर्दनस्य भवने कंचिदुत्सवं निमित्तीकृत्य सर्वाः कन्यकाः समायाताः । प्रेम्णा परस्परं ता ऊचुः—अद्यास्माभिः सर्वाभिः सहैव भोजनं कर्तव्यम्, तदाऽसौ दुर्भगा राजपुत्री जगाद—यद्यनेन मम प्रियशिशुना सह यूयं भोजनं कुरुत, तर्हि युष्माभिः साकं मया भोक्तव्यं नान्यथा, ततोऽन्याभिस्तस्याः सर्वभगिनीभिस्तद्वचनं नाङ्गीकृतम् । तदा पृथक् पृथगेव सर्वाः स्व-स्व-शिशुभिः

कभी उसको स्नान कराती । और स्नान कराकर फिर उसका शरीर भी पोंछती । कभी कभी यह उसके शरीर पर लगी हुई धूलीका मार्जन करती । विविध मिष्टान्न खिलाती । नरम-मृदुल-शय्या पर उसे अपने ही पास सुलाती । इतने मात्र से ही वह राजपुत्री संतुष्ट नहीं रहती किन्तु वह उस बच्चे के गले में और पैरों में सुवर्ण रचित बहुमूल्य आभरणों को भी पहिराती । जिनमें छोटी-छोटी वज्रती हुई घंटियां लगी रहती थीं । उसकी पीठ पर वह झूल भी ओढाती जो बहुत कीमती होती तथा अनेक प्रकार के रंगविरंगे रंगों से रंजित रहा करती । और जिस झुलमें सुनहरी काम बना रहता । इस प्रकार वह राजपुत्री उस सूकर के बच्चे का लालन पालन करने में तत्पर रहने लगी । एक समय की बात है कि राजा अरिर्मर्दनने अपनी समस्त कन्याओं को किसी उत्सव के समय आमंत्रित किया और कन्यायें आयीं, बहुत समय के बाद उन सबको परस्पर मिलने से बहुत ही आनंद हुआ । सबने विचार किया कि आज हम सब मिलकर एक ही साथ भोजन करें । यह सुनकर उस

अने नवडायी तेना शरीरने साङ् करती, क्यारिक क्यारिक तेना शरीर उपर उडेली धुजने साङ् करती, विविध मिष्टान्न भवडावती अने सुवाणी ज्येथी शैया उपर पोतानी पासे सुवाडती. आटलाथी न राजपुत्रीने संतोष न थतो परंतु ते भय्याना गणाभां अने पजेभां सोनाना भडु मुट्य अलंकारे पणु पडेरावती जेभां नानी नानी टोकरीज्यो-धुधरीज्यो लगाडवाभां आवती ज्येनी पीठ उपर जुल पणु जोडाडती जे धुधरी किमती हुती तेमज अनेक प्रकारना रंगभेरंगी रंगोवाणी हुती. जेभां सोनेरी तारनी कसण कणा पणु करवाभां आवेल हुती. आ प्रकारे राजपुत्री जे सूकरना भय्यानुं लालन पालन करवाभां तत्पर रहेती. जेक समये राज अरिर्मर्दने पोतानी समस्त कन्याज्योने केठ उत्सवना प्रसंगे आमंत्रणु आपी जोलावी, कन्याज्यो आवी. धणु समय पछी जेक भीलज्योने परस्पर भणतां धणु न आनंद थयो. भधी भडेनो जे भणी विचार कर्यो के आने भधी भडेनो साथे जेसीने लोळन करीजे. आ सांभणी जे विधवा राजपुत्रीजे कछुं के जे-तमे भधी भडेनो

उक्तार्थमुपसंहरन् कर्त्तव्यमुपदिशति—

मूलम्—सुणियाँऽभावं साणस्स सूयरस्स नरस्स यं ।

विण्णं ठविज्जं अप्पाणं इच्छंतो हिंयमप्पणो ॥६॥

छाया—

श्रुत्वाऽभावं शून्याः सूकरस्य नरस्य च ।

विनये स्थापयति आत्मानम् इच्छन् हितमात्मनः ॥ ६ ॥

टीका—

‘सुणिया.’ इत्यादि—शून्याः=पूतिकर्णशून्याः सूकरस्य च एतदुभय-
दृष्टान्तस्य, तथा च=पुनः नरस्य=पुरुषस्य-दार्ष्टान्तिकतया कथितस्य दुःशीलशिष्य-
अग्नि जलाकर उसकों अग्नि में भून दिया । इस कुमौत से उसको
मारा । इस लिये सूत्रकार कहते हैं कि-दुःशील का त्यागकर शील
सदाचार का सेवन करना चाहिये ॥ ५ ॥

इसी कथित अर्थका उपसंहार करते हुए सूत्रकार कर्त्तव्य का उप-
देश अगली गाथा द्वारा करते हैं—‘सुणिया. इत्यादि’

अन्वयार्थ—(साणस्स-शून्याः) पूतकर्णी कुची के (सूयरस्स
नरस्स य-सूकरस्य नरस्य च) सूकर के और दार्ष्टान्तिक रूप में प्रदर्शित
किये गये दुःशील शिष्य के (अभाव-अनादर) अर्थात् दुर्दशारूप
अवस्था को (सुणिया-श्रुत्वा) सुनकर (अप्पणो हिंयं इच्छंतो-आत्मनः
हितम् इच्छन्) आत्मा के हित के अभिलाषी शिष्य (अप्पाणं-
आत्मानं) अपनी आत्माको (विण्णं ठविज्जं-विनये स्थापयेत्) विनय

संगगाथो अने तेमां तेने भूँछ नाप्पुं. आ रीते कम्मोत्थी तेने मारुं.
आ भाटे सूत्रकार कडे छे के दुःशीलनेो त्याग करी शील-सदाचारतुं सेवन
करुं लेधये. (५)

आ कडेवायेला अर्थनेो उपसंहार करीने सूत्रकार कर्त्तव्यनेो उपदेश
आ गाथा द्वारा करे छे.—‘सुणिया भावं.’ इत्यादि.

अन्वयार्थ—(साणस्स-शून्याः) पूतकर्णी कुतरीना (सूयरस्स नरस्स य-
सूकरस्य नरस्य च) सूकरना अने दार्ष्टान्तिक रूपमां प्रदर्शित करायेल दुःशील शिष्यना
(अभाव-अनादर) अर्थात् दुर्दशाद्य अवस्थाने (सुणिया-श्रुत्वा) सांलणीने
(अप्पणो हिंयं इच्छंतो-आत्मनः हितम् इच्छन्) आत्माना हितना अभिलाषी
शिष्य (अप्पाणं-आत्मानं) पोताना आत्माने (विण्णं ठविज्जं-विनये स्थापयेत्)

भगिनि ! पश्य तवायं शिशुः किं करोति ! विष्टां भक्षयति । अनेनैव साकमस्मान् भोजयितुं समीहसे, एवं सर्वभगिनीनां वचनं श्रुत्वा लज्जिता सा राजपुत्री सूकर-शिशुं तत्याज । तदनन्तरमितस्ततो भ्रमन्तं हृष्टपुष्टाङ्गं तं सूकरशिशुं विलोक्य चाण्डालः स्वगृहं नीत्वा चरणेषु वदध्या वह्नीं पक्षिप्य कुत्सित मृत्युना हतवान् । तस्मात् दुःशीलं परित्यज्य शीलमासेवनीयम् । ॥ ५ ॥

ने थोड़ी दूर पर जाकर अशुचि कर दी । यह देखकर उस सूकर शिशु ने उस प्रशस्त मधुर सुस्वादु सुगन्धि पथ्य भोजन का परित्याग करके कन्या के मना करते भी शीघ्र ही दौड़कर अशुचि के पास जाकर उसका भक्षण करने लगा । सूकर शिशु को अशुचि खाते देखकर वे सभी बहिनें मजाक करती हुई अपने बहिन से बोलीं कि हे बहिन ! देखो तो सही आपका यह प्यारा पुत्र क्या कर रहा है । कितने आनंदसे अशुचि खाने में मग्न हो रहा है । इसी के साथ आप हम सबको भोजन करने के लिये प्रेरित करती हैं ? इस प्रकार बहिन को उन सब बहिनों ने उलाहना दिया । उलाहनेके वचन सुनकर वह उनके समक्ष अधिक लज्जित हुई और उस सूकर शिशु को घर से बाहिर निकाल दिया । घरसे बाहिर होजाने पर यह इधर उधर फिरने लगा । इतने में चांडाल ने इसे पकड़ लिया और घर ले जाकर चारों पैर बांधकर जमीन पर डाल दिया और उस पर घांस डालकर फिर अग्नि जलाई और

ज्जने अशुचि करी, आ जेठ ते सूकर अन्ध्याये प्रशस्त, मधु, सुस्वादु, सुगन्धी लोअननेा परित्याग करीने विधवा शब्दकन्याना शकवा छतां न शकतां अडपथी होडी ज्ज अशुचि पासे पडोन्थी तेनुं लक्षणु करुनुं शइ कथुं. सूकर अन्ध्याने अशुचि पातुं जेठ अधी अडेनेा भस्करी करतां पैली विधवा अडे-नने कडेवा लागी के डे अडेन ! बुअो तो अरां तमारो अे प्यारो पुत्र शुं करी शडेल छे. डेटला आनंइथी अशुचि आवामां मग्न अनी गयेल छे. आनी साथे तमे अमेने लोअन करवानुं कडेतां डतां. आ प्रकारे पैली अधी अडेनेाअे तेने भडेणुं हेतां भडेणानुं वचन सांलणीने ते अेमनी समक्ष पुअ शरभार्थ गध अने अे सूकर अन्ध्याने धरमांथी अडार डाढी भूकथुं. धरथी अडार धर्ष जतां ते न्यां त्यां लटकवा लाग्युं अेटलाभां अंटाणने डध ते पडी गथुं जेने पकडी ते पोताने घेर लध गये अने त्यां लध ज्ज अारे पग आंधी ज्जनीन उपर पछाड्युं, अने तेना उपर घास नाथीने .पधी अग्नि

उक्तार्थमुपसंहरन् कर्तव्यमुपदिशति—

मूलम्—सुणियाऽभावं साणस्स सूयरस्स नरस्स यं ।

विणंए ठविज्ज अप्पाणं इच्छंतो हियंमप्पणो ॥६॥

छाया—

श्रुत्वाऽभावं शून्याः सूकरस्य नरस्य च ।

विनये स्थापयति आत्मानम् इच्छन् हितमात्मनः ॥ ६ ॥

टीका—

‘सुणिया.’ इत्यादि—शून्याः=पूतकर्णशून्याः सूकरस्य च एतदुभय-
दृष्टान्तस्य, तथा च=पुनः नरस्य=पुरुषस्य-दाष्टान्तिकतया कथितस्य दुःशीलशिष्य-
अग्नि जलाकर उसको अग्नि में भून दिया। इस कुमौत से उसको
मारा। इस लिये सूत्रकार कहते हैं कि-दुःशील का त्यागकर शील
सदाचार का सेवन करना चाहिये ॥ ५ ॥

इसी कथित अर्थका उपसंहार करते हुए सूत्रकार कर्तव्य का उप-
देश अगली गाथा द्वारा करते हैं—‘सुणिया. इत्यादि’

अन्वयार्थ—(साणस्स-शून्याः) पूतकर्णी कुत्ती के (सूयरस्स
नरस्स य-सूकरस्य नरस्य च) सूकर के और दाष्टान्तिक रूप में प्रदर्शित
किये गये दुःशील शिष्य के (अभाव-अनादर) अर्थात् दुर्दशारूप
अवस्था को (सुणिया-श्रुत्वा) सुनकर (अप्पणो हियं इच्छंतो-आत्मनः
हितम् इच्छन्) आत्मा के हित के अभिलाषी शिष्य (अप्पाणं-
आत्मानं) अपनी आत्माको (विणए ठविज्ज-विनये स्थापयेत्) विनय

सजगाव्ये। अने तेमां तेने भूँल नाभ्युं. आ रीते क्कमोतथी तेने भायुं.
आ माटे सूत्रकार कडे छे के दुःशीलने। त्याग करी शील-सदाचारकुं सेवन
करयुं नेधये. (५)

आ कडेवायेला अर्थने। उपसंहार करीने सूत्रकार कर्तव्यने। उपदेश
आ गाथा द्वारा करे छे.—‘सुणिया भावं.’ इत्यादि.

अन्वयार्थ—(साणस्स-शून्याः) पूतकर्णी कुत्तीना (सूयरस्स नरस्स य-
सूकरस्य नरस्य च) सूकरना अने दाष्टान्तिक रूपमां प्रदर्शित करायेल दुःशील शिष्यना
(अभाव-अनादर) अर्थात् दुर्दशावस्था अवस्थाने (सुणिया-श्रुत्वा) सांलणीने
(अप्पणो हियं इच्छंतो-आत्मनः हितम् इच्छन्) आत्माना हितना अभिलाषी
शिष्य (अप्पाणं-आत्मानं) पेताना आत्माने (विणए ठविज्ज-विनये स्थापयेत्)

स्येत्यर्थः, अभाव—कुत्सितो भावः अभावः दुर्दशालक्षणः, स चेह भवे सर्वतो
निष्कासनादिरूपः, परभवे गुरोराज्ञातनया अवोधिः, अवोधेस्तपःसंयमासंभवः,
संयमभावेन मोक्षमार्गानाराधनम्, तेनानन्तसंसारपरिभ्रमणम् तं तथाविधमभावं
तपः श्रुत्वा=गुरुसंनिधौ निश्चय आत्मनः=स्वस्य, हितं=कल्याणम् इच्छन् आत्मानं
धर्म में स्थापित करता है। अथवा—भाव यह है कि कुत्सी सूकर और
अविनीत शिष्यका स्वरूप स्मरणकर आत्महितैपी विनय शील बनें।

भावार्थ—इस गाथा द्वारा सूत्रकार यह उपदेश दे रहे हैं कि जो
शिष्य आत्मकल्याण का अभिलाषी है उसका कर्तव्य है कि वह इस
विनयधर्मके आचरण करने में थोड़ा भी प्रमाद न करे। कारण कि
अविनीत शिष्य की वह दुर्दशा होती है जो पूतिकर्णी शुनी की तथा
सूकर शिशु की हुई है। अविनीत के ऊपर किसी का भी विश्वास नहीं
रहता वह इस भवमें गुरु की अकृपाका भाजन बनता हुआ जगह-
जगह अपमान आदि दुःस्थिति को सहन करता है—और गच्छ से
बाहर भी कर दिया जाता है तथा परभव में गुरु की आज्ञातना से
बोध के लाभ से भी वंचित रहता है बोधिलाभ के बिना कभी
भी श्रेयस्कर मुक्ति का मार्ग उसे प्राप्त नहीं हो सकता है। क्यों कि
बोध के अभाव में सम्यक् तप और संयम नहीं होता है। सम्यक् तप
संयम के अभाव से मोक्षमार्ग की आराधना नहीं होती है और मोक्ष-

विनय धर्ममां स्थापित करे छे. अथवा लावार्थ अे छे के—कुत्सी, सूकर
अने अविनीत शिष्यनुं स्वइष सांलणी आत्महितैपी विनयशील बने.

भावार्थ—आ गाथा द्वारा सूत्रकार अेवो उपदेश आवे छे के के शिष्य
आत्म कल्याणुनो अलिलापी छे, अेनुं कर्तव्य छे के ते आ विनय धर्मनुं
आचरण करवामां थोडा पणु प्रमाद न करे. कारण के अविनीत शिष्यनी
आवी दुर्दशा थाय छे के पूतिकर्णी शुनीनी तथा सूकर (भूङ्गुना अन्धानी)
आणकनी थछ छे, अविनीतनो केछ पणु विश्वास करतुं नथी. ते आ लवमां
शुङ्गी अकृपानो लाजन बनी हरेक स्थणे अपमान आदि दुस्थितिने सहन
करे छे. अने गच्छथी अहार करी देवामां आवे छे अने परलवमां शुङ्गी
आज्ञातनाथी बोधिना लालथी पणु वंचित रखा करे छे. बोधि लाल बिना
कही पणु श्रेयस्कर मुक्तिनो मार्ग अेने प्राप्त थछ शकतो नथी. केभके
बोधिना अलावमां सम्यक् तप अने संयम डोटुं नथी. सम्यक् तप संयमना
अलावथी मोक्ष मार्गनी आराधना बनी शकती नथी. अने मोक्षमार्गनी

विनये=अभ्युत्थानादिगुरुशुश्रूषालक्षणे स्थापयति । उक्तं च—

विणया होइ य णाणं, णाणाओ दंसणं तओ चरणं ।

चरणार्हितो मोक्खो मोक्खे, सोक्खं निरावाहं ॥ १ ॥

छाया—

विनयाद् भवति च ज्ञानं, ज्ञानाद् दर्शनं तत्तत्करणम् ।

चरणाद् मोक्षो, मोक्षे सौख्यं निरावाधम् ॥ १ ॥ इति ॥ ६ ॥

अथोपसंहरन्नाह—

मूलम्—तम्हां विणयमेसिज्जा सीलं पडिलभेज्जओ ।

बुद्धपुत्ते नियागंढी नं निक्कसिज्जंइ कणहुइं ॥ ७ ॥

छाया—

तस्माद् विनयमेपयेत् शीलं प्रतिलभेत यतः ।

बुद्धपुत्रो नियागार्थी न निष्कास्यते कुतश्चित् ॥ ७ ॥

टीका—

‘तम्हा. इत्यादि ।—तस्मात्=दुःशीलस्य सर्वतो निष्कासनादिरूपा दुर्गति भवतीत्युक्तत्वात् कारणात् साधुर्विनयम् एपयेत्=कुर्यात् धातूनामनेकार्थत्वात् ।

मार्ग के आराधना के अभाव में अनंत संसार परिभ्रमण करना पड़ता है, इसलिये शिष्य को अपने परमोपकारी गुरु महाराज का विनय सदा करना चाहिये । वे जब कहीं से अपने स्थान पर आवें तो शिष्य का कर्तव्य है कि वह उनके समक्ष जावें—उन्हें देखकर अपने आसनसे उठ खड़ा होवे । उनकी शुश्रूषा आदि करता रहे । इससे विनय धर्मकी आराधना होती है । कहा भी है—विनय से ज्ञान होता है । ज्ञान से दर्शन और दर्शन से चारित्र्यका लाभ होता है चारित्र्य से मोक्ष और मुक्ति होने से इस जीव को अव्यावाध सुख की प्राप्ति होती है ॥ ६ ॥

आराधनाना अलावधी अनंत संसार परिभ्रमणु करयुं पडे छे. आ माटे शिष्ये पोताना परोपकारी बुद् महाराजने सदा विनय करवे लेधये. तेओ न्यारे कयांथी पोताना स्थान उपर आवे त्यारे शिष्यनुं ओ कर्तव्य छे के ते तेमनी सामे नथ—ओमने लेध पोताना आसन उपरथी ठडी ठला रहे अने ओमनी सेवा करवाभां लागी नथ, आधी विनय धर्मनी आराधना थाय छे. विनयथी ज्ञान थाय छे, ज्ञानथी दर्शन अने दर्शनथी आश्रितने लाल थाय छे. आश्रितथी मोक्ष अने मुक्ति थवाथी आ लवने अव्यावाध सुखनी प्राप्ति थाय छे. ॥६॥

સ્યેત્યર્થઃ, અભાવં-કુત્સિતો ભાવઃ અભાવઃ દુર્દશાલક્ષણઃ, સ ચેહ ભવે સર્વતો નિષ્કાસનાદિરૂપઃ, પરભવે ગુરોરાશાતનયા અવોધિઃ, અવોધેસ્તપઃસંયમાસંભવઃ, સંયમભાવેન મોક્ષમાર્ગનારાધનમ્, તેનાનન્તસંસારપરિભ્રમણમ્ તં તથાવિયમભાવં તપઃ શ્રુત્વા=ગુરુસંનિધૌ નિશમ્ય આત્મનઃ=સ્વસ્ય, હિતં=કલ્યાણમ્ ઇચ્છન્ આત્માનં ધર્મ મેં સ્થાપિત કરતા હૈં । અથવા-ભાવ યહ હૈં કિ કુત્તી સૂકર ઔર અવિનીત શિષ્યકા સ્વરૂપ સૂનકર આત્મહિતૈપી વિનય શીલ યેં ।

ભાવાર્થ—હસ ગાથા દ્વારા સૂત્રકાર યહ ઉપદેશ દે રહે હેં કિ જો શિષ્ય આત્મકલ્યાણ કા અભિલાપી હૈં ઉસકા કર્તવ્ય હૈં કિ વહ હસ વિનયધર્મકે આચરણ કરને મેં ધોડા મી પ્રમાદ ન કરે । કારણ કિ અવિનીત શિષ્ય કી વહ દુર્દશા હોતી હૈં જો પૂતિકર્ણી શુની કી તથા સૂકર શિશુ કી હુઈ હૈં । અવિનીત કે ડપર કિસી કા મી વિશ્વાસ નહીં રહતા વહ હસ ભવમેં ગુરુ કી અકૂપાકા ભાજન વનતા હુઆ જગહ-જગહ અપમાન આદિ દુઃસ્થિતિ કો સહન કરતા હૈં—ઔર ગચ્છ સે બાહર મી કર દિયા જાતા હૈં તથા પરભવ મેં ગુરુ કી આશાતના સે વોધિ કે લાભ સે મી વંચિત રહતા હૈં વોધિલાભ કે વિના કમી મી શ્રેયસ્કર મુક્તિ કા માર્ગ ઉસે પ્રાપ્ત નહીં હો સકતા હૈં । ક્યોં કિ વોધિ કે અભાવ મેં સમ્યક્ તપ ઔર સંયમ નહીં હોતા હૈં । સમ્યક્ તપ સંયમ કે અભાવ સે મોક્ષમાર્ગ કી આરાધના નહીં હોતી હૈં ઔર મોક્ષ-

વિનય ધર્મમાં સ્થાપિત કરે છે. અથવા ભાવાર્થ એ છે કે—કુતરી, સૂકર અને અવિનીત શિષ્યનું સ્વરૂપ સાંભળી આત્મહિતૈષી વિનયશીલ અને.

ભાવાર્થ—આ ગાથા દ્વારા સૂત્રકાર એવો ઉપદેશ આપે છે કે જે શિષ્ય આત્મ કલ્યાણનો અભિલાષી છે, એનું કર્તવ્ય છે કે તે આ વિનય ધર્મનું આચરણ કરવામાં થોડો પણ પ્રમાદ ન કરે. કારણ કે અવિનીત શિષ્યની આવી દુર્દશા થાય છે જે પૂતકર્ણી શુનીની તથા સૂકર (ભૂંડણના ખચ્ચાની) ખાળકની થઈ છે, અવિનીતનો કોઈ પણ વિશ્વાસ કરતું નથી. તે આ ભવમાં શુરૂની અકૂપાનો ભાજન બની દરેક સ્થળે અપમાન આદિ દુસ્થિતિને સહન કરે છે. અને ગચ્છથી બહાર કરી દેવામાં આવે છે અને પરલવમાં શુરૂની આશાતનાથી બોધિના લાભથી પણ વંચિત રહ્યા કરે છે. બોધિ લાભ વિના કદી પણ શ્રેયસ્કર મુક્તિનો માર્ગ એને પ્રાપ્ત થઈ શકતો નથી. કેમકે બોધિના અભાવમાં સમ્યક્ તપ અને સંયમ હોતું નથી. સમ્યક્ તપ સંયમના અભાવથી મોક્ષ માર્ગની આરાધના બની શકતી નથી. અને મોક્ષમાર્ગની

मालम्बनम् । यथा श्रीखण्डचन्दनतरुः समस्तमलयाचलकाननगतान् वृक्षान् सुर-
भयति, यथा वा अमृतमयशीतलचन्द्रकिरणसंसर्गतो विकसत् कुमुदवनं मनोज्ञमुगन्ध
शीतलपवनमनोहरचन्द्रिकाभिर्जनमनःप्रसादकं भवति, यथा वा क्षीरसागरनिर्झरी
स्वासन्नवर्तिनो वृक्षगुच्छगुल्मलतावल्लीप्रभृतीन् नानाविधान् वनस्पतीन् रसप्रदानेन
वर्धयन्ती मोदयति, एवं विनयविभूषितः खलु शीलेन कुलगणगच्छान् मोदयन्
लोके चिन्तामणिरिव संमन्यते, कल्पतरुरिव सेव्यते, निधिरिव समाद्रियते, सुधेव
परिपूज्यते ॥ ७ ॥

कर लेती है कि मुझे अपना कल्याण करना है—अतः वह नियागार्थी—
मोक्षाभिलाषी बन जाता है । और इस स्थिति में उसकी प्रत्येक क्रिया
एँ मोक्षप्राप्ति की ओर ही उसे ले जाने वाली होती रहती हैं, अतः वह
किसी भी कुल, गणएवं-गच्छ से नहीं निकाला जाता है ।

भावार्थ—जिस प्रकार श्रीखण्डचंदन का वृक्ष समस्त मलयाचल
के जंगल में रहे हुए वृक्षों को अपनी अपार सुगंधि से सुरभित करता
रहता है । अथवा जिस प्रकार अमृतमय शीतलचन्द्र की किरणों के
संसर्ग से विकसित कुमुदवन, मनोज्ञ, शीतल एवं सुगंधित वायु एवं
मनोहर चांदनी के द्वारा प्रत्येक जन के मन को आल्हादित करता है ।
अथवा—जिस प्रकार क्षीर सागर की निर्झरी अपने निकट रहे हुए वृक्षों
को उनके गुच्छों को गुल्मों एवं लतावल्ली आदि को रसप्रदान से वृद्धि-
गत अर्थात् बढ़ाती हुई उन्हें विकसित करती है इसी तरह विनय से

भारे पोतानुं कल्याण करुं छे—आधी ते नियागार्थी—मोक्ष अभिलाषी जनी
जय छे. अने जे स्थितिमां जेनी प्रत्येक क्रियाओ मोक्ष प्राप्तिनी तरङ्ग
जेने लछे जवावाणी यती रहे छे. ओटले ते कोछपण कुण, गुण अने गच्छधी
हर करवामां आवता नथी. मतलब आने जे छे के जे प्रकारे श्रीखंड
चंदननुं वृक्ष समस्त मलयाचलना जंगलमां रहेलां अधां वृक्षाने पोतानी
अपार सुगंधीथी सुरभित करतुं रहे छे. अथवा जे प्रकारे अमृतमय शीतल
किरणाना संसर्गधी विकसित कुमुदवन, मनोज्ञ, शीतल अने सुगंधित वायु
जेवी मनोहर चान्दनी द्वारा प्रत्येक जनना मनने आल्हादित करे छे. अथवा—
जे प्रकारे क्षीर सागरनी निर्झरी (अरण्यां) पोतानी निकट रहेला वृक्षाने
जेनी जाणे विगेरेने तथा कुलङ्गादि, पांडां वगेरेने रसप्रदानधी वृद्धिगत
अर्थात् वधारे छे. अने विकसीत करे छे. आ रीते विनयधी विभूषित अने ल

વિનયસ્ય ફલમાહ—શીલમિત્યાદિ । યતઃ વિનયાત્, શીલં=મૂલોત્તરગુણલક્ષણ પ્રતિલભેત=પ્રાપ્નુયાત્ । અનેન વિનયસ્ય ફલં શીલપ્રાપ્તિરિત્યુક્તમ્ । શીલસ્યાપિ ફલં પ્રદર્શયન્નાહ—‘બુદ્ધપુત્રે.’ ઇત્યાદિ । બુદ્ધપુત્રઃ—બુદ્ધસ્ય=આચાર્યસ્ય પુત્ર ઇવ પુત્રઃ—શીલધારી શિષ્યઃ, પુત્રશિષ્યયોઃશિક્ષણીયતયા સામ્યાત્ ; અતएव नियागार्थी—નિયાગો=મોક્ષસ્તમર્થયતીતિ નિયાગાર્થી—મોક્ષાભિલાપી કુતચિત્=કુલગણગચ્છતઃ ન નિષ્કાસ્યતે=ન વહિષ્ક્રિયતે । અયં ભાવઃ—વિનીતઃ કુલગણગચ્છાનાં સર્વેષા-

અવ ઉપસંહાર કરતે હૈં—‘તમ્હા.’ ઇત્યાદિ ।

અન્વયાર્થ—અતઃ (તમ્હા-તસ્માત્) અવિનીત શિષ્ય કી સર્વં જગહ્ દુર્દશા હોતી હૈ સાધુ કા કર્તવ્ય હૈ કિ વહ (વિણયં-વિનયમ્) વિનયરૂપ ધર્મકા (એસિજ્ઞા-એપયેત્) પાલન કરે । ઇસ વિનય ધર્મ કે પાલન કરનેકા ક્યા ફલ હૈ—ઇસ વાતકો (શીલં પઢિલભેજ્જઓ-શીલં પ્રતિ લભેત યતઃ) ઇસ પદ દ્વારા સૂત્રકાર પ્રકટ કરતે હુણ્ કહતે હૈં કિ યહ વિનયધર્મ, આચરિત હોને સે આચરણ કરને વાલે સાધુ કે લિયે મૂલગુણ ઓર ઉત્તરગુણોંકી પ્રાપ્તિ કરાતા હૈ । શીલ કી પ્રાપ્તિ હોને સે વહ શીલધારી શિષ્ય (બુદ્ધપુત્રે નિયાગદ્વી-બુદ્ધપુત્રઃ નિયાગાર્થી) ગુરુજનોં કી દ્રષ્ટિ મેં અપના પુત્ર જૈસા હો જાતા હૈ । ક્યોં. કિ પુત્ર શિક્ષણીય હોતા હૈ ઓર વૈસે શિષ્ય મી શિક્ષણીય હોતા હૈ । ઇસી વિચાર સે શિષ્ય કો યહાં પુત્ર જૈસા વતલાયા ગયા હૈ જવ વહ ગુરુ કૃપા કા પાત્ર હર તરહ સે હો જાતા હૈ તવ યહ વાત મી સ્વતઃ ઉસકે હૃદય મેં સ્થાન

હવે ઉપસંહાર કરે છે—‘તમ્હા.’ ઇત્યાદિ.

અન્વયાર્થ—એટલા માટે (તમ્હા-તસ્માત્) અવિનીત શિષ્યની સર્વ સ્થળે દુર્દશા થાય છે. સાધુનું કર્તવ્ય છે કે તે (વિણયં-વિનયમ્) વિનયરૂપ ધર્મનું (એસિજ્ઞા-એપયેત્) પાલન કરે. આ વિનય ધર્મનું પાલન કરવાનું શું ક્ષણ છે. આ વાતને (શીલં પઢિલભેજ્જઓ-શીલં પ્રતિ લભેત યતઃ). આ પદ દ્વારા સૂત્રકાર પ્રકટ કરતાં કહે છે કે આ વિનય ધર્મ આચરિત હોવાથી આચરણ કરવાવાળા સાધુને માટે મુળશુષ્ટ અને ઉત્તર શુષ્ટોની પ્રાપ્તિ કરાવે છે. શીલની પ્રાપ્તિ થવાથી એ શીલધારી શિષ્ય (બુદ્ધપુત્રે નિયાગદ્વી-બુદ્ધપુત્રઃ નિયાગાર્થી) ગુરુજનોની દ્રષ્ટીમાં પોતાના પુત્ર જેવો બની જાય છે. કેમકે પુત્ર શિક્ષણીય હોય છે અને આવા શિષ્ય પણ શિક્ષણીય હોય છે. આ વિચારથી શિષ્યને આહિં પુત્ર જેવો બતાવવામાં આવેલ છે. જ્યારે તે ગુરુકૃપાને પાત્ર દરેક રીતે બને છે ત્યારે આ વાત પણ સ્વતઃ એના દિલમાં સ્થાન કરી જાય છે કે

युक्तानि-अर्ध्यते=प्राध्यते मुमुक्षुभिर्यःसोऽर्थः अव्यावाधसुखरूपो मोक्षस्तेन युक्तानि तत्प्रतिबोधकानि । यद्वा-अर्थो=हेयोपादेयस्वरूपस्तेन युक्तानि-तत्प्रतिपादकानि वीतरागशास्त्राणि शिक्षेत=अभ्यस्येत् । अयं भावः-मोक्षमार्गप्रदर्शकानि शास्त्राण्येव उपादेयानि पारमार्थिकस्वरूपप्रतिपादकत्वात्, यथा सिन्धुस्तरङ्गैर्विलसति तथा स्याद्वादैर्विलसितानि रागद्वेषदोषपरिचर्जितानि अव्यावाधसुखजनकानि उत्पादव्ययध्रौव्यस्वरूपनिरूपकाणि भगवद्वचनानि, तस्मात् तान्येवाभ्यसेदिति ।

के समीप (सया-सदा) सदा-काल (अद्वजुत्तानि-अर्थयुक्तानि) मोक्ष-प्रतिबोधक-अथवा हेयोपादेय तत्त्व प्रतिपादक-ऐसे वीतरागो-पदिष्ट शास्त्रोंका (सिक्खिज्जा-शिक्षेत) अभ्यास करे । तथा (निरट्टाणि उ वज्जए-निरर्थानि तु वर्जयेत्) इनसे विपरीत अन्य शास्त्रोंका वर्जन करें ।

भावार्थ—वस्तुका पारमार्थिक स्वरूप प्रतिपादन करने वाले होने से मोक्षमार्गके प्रदर्शक शास्त्र ही उपादेय हैं । जिस प्रकार समुद्र अपनी तरङ्गमालाओंसे शांभित होता है उसी तरह प्रभु के वचन स्वरूप आगमशास्त्र भी स्याद्वाद-शैली से सुशोभित होते हैं । इनमें राग एवं द्वेषको बढ़ाने वाली-कथाएँ विलकुल नहीं हैं । उनसे ये सदा वर्जित हैं । अव्यावाध सुख के ये जनक हैं । उत्पाद व्यय एवं ध्रौव्य के यथार्थ स्वरूप का ये निरूपक हैं । इसलिये मोक्षाभिलाषिओ को वीतराग प्रणीत शास्त्रका ही अभ्यास करना चाहिये । जिन में इस प्रकार की बातें नहीं हैं जो सर्वथा एकान्तवाद के पोषक असर्वज्ञोपदिष्ट शास्त्र हैं

(अद्वजुत्तानि-अर्थयुक्तानि) मोक्ष प्रतिबोधक-अथवा हेयोपादेय तत्त्व प्रतिपादक जेवां वितरागोपदिष्ट शास्त्रोने (सिक्खिज्जा-शिक्षेत्) अभ्यास करे. तथा (निरट्टाणि उ वज्जए-निरर्थानि तु वर्जयेत्) जेनाथी विपरीत अन्य शास्त्रोने त्याग करे.

भावार्थ—वस्तुतः पारमार्थिक स्वरूप प्रतिपादन करवावाणा डोवाथी मोक्षमार्गना प्रदर्शक शास्त्र न उपादेय छे. जे प्रकार समुद्र पोतानी तरंग-मालाज्येथी शोभित होवाय छे जे न रीते प्रभुना वचन स्वरूप आगम-शास्त्र पणु स्याद्वादशैलीथी सुशोभित होय छे. तेमां राग अने द्वेषने वधा-रनारी कथाज्ये वीलकुल होती नथी. जेनाथी जे सदा वर्जित छे. अव्यावाध सुभना जे जनक छे. उत्पाद व्यय, अने ध्रौव्यना यथार्थ स्वरूपना जे निरूपक छे. आ माटे मोक्षाभिलाषिज्येथे वितराग प्रणीत शास्त्रो न अभ्यास करवा जेथजे. जेमां आ प्रकारनी वातो नथी, जे सर्वथा जेकान्तपादने पोषनार

विनयः कथमेपणीय इत्याह—

मूलम्—निसंते सियाऽमुहरी बुद्धाणं अंतिणं सयां ।

अट्टजुत्ताणि सिक्खिज्जा, निरट्टाणि उं वज्जणं ॥८॥

छाया—

निशान्तः स्यात् अमुखारिः बुद्धानाम् अन्तिके सदा ।

अर्थयुक्तानि शिक्षेत निरर्थानि तु वर्जयेत् ॥ ८ ॥

टीका—

‘निसंते इत्यादि’—निशान्तः=नितरां शान्तः—उपशमयुक्तः—अन्तः क्रोध-

परिवर्जनेन बहिष् सौम्याकारेण प्रशान्तः स्याद्=भवेत्, अमुखारिः=अविरुद्धभापी

प्रियभापी सन् बुद्धानाम्=आचार्याणाम्, अन्तिके=समीपे, सदा=सर्वकालम् अर्थ-

विभूषित बना शिष्य भी शील से कुल, गण एवं गच्छ को प्रमुदित

करता हुआ लोक में चिन्तामणि रत्न के समान माना जाता है कल्प-

वृक्षके समान सेवित किया जाता है, निधिके समान आदरीणय होता

रहता है और सुधा (अमृत) के समान पूजा जाता है ॥ ७ ॥

विनय पालन कैसे करना चाहिये इसे सूत्रकार इस निम्नलि-

खित गाथा से स्पष्ट करते हैं—‘निसंते.’ इत्यादि ।

अन्वयार्थ—(निसंते-निशान्तः) जो उपशम भाव से युक्त है-

भीतर में जिसके क्रोध का उद्रेक नहीं होता है—तथा बाहिर से जिसका

सदा सौम्य आकार बना रहता है ऐसा शिष्य (अमुखारि) अविरुद्ध-

भापी-प्रियभापी-होता हुआ (बुद्धाणं अंतिणं-बुद्धानां अन्तिके) आचार्यों

शिष्य पशु शीलधी कुण, गणु ओटले गच्छने प्रमुदित करीने लोकमां चिन्ता-

मणी रत्न समान मानवामां आवे छे. कल्पवृक्षना समान सेवित करवामां

आवे छे. निधिनी भाइक आडत थंता रहे छे. अने सुधानी (अमृत)

भाइक पूजथ छे. ॥७॥

विनय पालन केवी रीते करवुं ओछओ तेने सूत्रकार आ निथे अतावेव

गाथाधी स्पष्ट करे छे. निसंते. इत्यादि.

अन्वयार्थ—(निसंते-निशान्तः) जे उपशम लावथी युक्त छे-जेने

अंदर क्रोधने उपद्रव थतो नथी. तथा बाहुरथी जेने सदा सौम्य आकार

अन्थे रहे छे ओवा शिष्य (अमुखारी) अविरुद्धभापी-प्रियभापी अनीने

(बुद्धाणं अंतिणं-बुद्धानां अन्तिके) आचार्योंनी समिथ (सया-सदा) उंभेशां

प्रशमसरःशोपणे प्रचण्डमार्तण्डकिरणरूपाणि, भ्रमोत्पादने मृगतृष्णास्वरूपाणि,

श्रद्धा जाग्रत हुए बिना जीवको आत्म कल्याण का मार्ग दिखलाई नहीं देता है। अतः वह पतित होकर अनंत संसारी हो जाता है। इसीलिये लौकिक शास्त्रोंका अध्ययन वर्जनीय बतलाया गया है यदि इस भावना से उनका अध्ययन किया जाय कि देखुं कि वीतराग प्ररूपित शास्त्रों में और इनके उपदेश में कितना भेद है तो इस स्थिति में ज्ञानी को अनेकान्त शासन पर और अधिक दृढ श्रद्धा बढ़ जाती है। क्यों कि सच्चे मणिकी कीमत तो झूठे मणि के देखने से ही होती है। सच्चे मणिका परिचायक झूठामणि ही हुआ करता है। इसीलिये टीकाकार ने इन्हें महाव्रत रूप पर्वत के भेदन करने में वज्रकी उपमा दी है। दावानल जिस प्रकार वन को भस्म करने में ढील नहीं करता उसी प्रकार निरर्थक शास्त्रों का अध्ययन भी मोक्षाभिलाषियों के तप और संयमरूप उद्यान को नाश करता है। जिस प्रकार ग्रीष्मकाल का प्रखर आतप-धूप सरोवर को शोषण करता है उसी प्रकार ये मोक्षमार्ग के उपदेश से विहीन शास्त्र भी मोक्षाभिलाषी के प्रशमभावको शुष्क करने में जरा सी भी कसर नहीं रखते हैं। मृगानृष्णा जिस प्रकार मृगों को

बिना छुवने आत्मकल्याणको मार्ग भगता नथी, अतएव ते पतित भनी अनंत संसारी यद्य नय छे आ भाटे लौकिक शास्त्रोनु अध्ययन वर्जनीय बतलवामां आवेल छे, जे जे भावनाथी तेनु अध्ययन करवामां आवे छे जेउ वीतराग प्ररूपित शास्त्रोभां अने अभिना उपदेशमां डेटवो लेह छे तो आ स्थितिमां ज्ञानीने अनेकान्त शासन पर वधु द्रढ श्रद्धा जेसी नय छे डेमके साचा भण्णिनी किंमत तो लुका भण्णिने जेवाथी न थाय छे साचा भण्णिने ओणभावनार जोटे भण्णि न डोय छे, आ भाटे टीकाकारे तेने महाव्रतरूप पर्वतनुं लेहन करनारा वर्जनी उपमा आपी छे, दावानल जे रीते वनने लस्म करवामां ढील करतो नथी, तेवी न रीते निरर्थक शास्त्रोनु अध्ययन पणु मोक्षाभिलाषिओना तप अने संयमरूप उद्याननो नाश करे छे, जे प्रकार ग्रीष्मकालनो प्रखर आताप सरोवरनुं सोशणु करे छे, तेवा प्रकारे मोक्षमार्गनां उपदेशथी विद्धिन शास्त्र पणु मोक्ष अभिलाषिना प्रशमभावने शुष्क करवामां कसर राभतो नथी, मृगवर्णन जेवा प्रकारे मृगाने

निरर्थकानि मोक्षार्थवर्जितानि, यद्वा-हेयोपादेयरूपार्थानभिधायकानि वैशेषिकादीनि वात्स्यायनप्रणीतकामशास्त्राणि तु वर्जयेत्=परिहरेत् । अयं भावः-लौकिकशास्त्राणि तु-महाव्रतपर्वतभेदने वन्नोपमानि, तपःसंयमकाननयिनाशने दायानलसमानि, वे निरर्थक शास्त्र हैं । उनका अभ्यास नहीं करना चाहिये । क्यों कि वे अपने अभ्यासियोंके लिये मोक्षमार्ग के यथार्थ स्वरूप से वंचित एवं अपरिचित हैं । अथवा-निरर्थक वे शास्त्र हैं कि जिनके अध्ययन करने से जीवोंको हेय और उपादेय रूप अर्थका भान न हो सके, जो इस प्रकार के मोक्ष अर्थ के अभिधायक नहीं हैं ऐसे वैशेषिक आदि-आदि द्वारा प्रणीत शास्त्र तथा वात्स्यायनद्वारा प्रणीत काम शास्त्रों का अध्ययन कभी भी मोक्षामिलापियों को नहीं करना चाहिये । लौकिक-असर्वज्ञ-द्वारा उपदिष्ट लौकिक शास्त्र संसार बढ़ाने वाली ही शिक्षाओं से परिपूर्ण हैं । इनसे साधुओं को अपने महाव्रतों को पालन करनेकी शिक्षा यथार्थतया प्राप्त नहीं होती है । अतः उनका अध्येता अर्थात्-अध्ययन करने वाला भद्रपरिणामी साधुजन अपने व्रतों से भी च्युत हो जाता है । इसलिये ऐसे शास्त्रों का अध्ययन महाव्रतरूप पर्वत को नष्ट करने के लिये वज्रका काम करता है । सम्यग्दर्शन की पुष्टि जबतक जीव की नहीं होती हैं-तबतक उसे समस्त द्रव्यों से भिन्न आत्मद्रव्य में दृढ श्रद्धा जाग्रत नहीं होती है । इस प्रकार के

असर्वज्ञोपदिष्ट शास्त्र छे ते निरर्थक शास्त्र छे, तेना अभ्यास नहीं करवे। जेधजे. केमके ते आपणा अभ्यासियो माटे मोक्षमार्गना यथार्थ स्वरूपथी वंचित अने अपरिचित छे. अथवा-निरर्थक ते शास्त्र छे के जेनुं अध्ययन करवाथी जेवने डेय अने उपादेयरूप अर्थनुं भान यथ शकतुं नथी. जे आ प्रकारना मोक्ष अर्थना अभिधायक नथी जेवा वैशेषिक आदि आदि द्वारा प्रणीत शास्त्र तथा वात्स्यायन द्वारा प्रणीत कामशास्त्रोनुं अध्ययन करी पणु मोक्षना अलिवापिथीजे करवुं न जेधजे. लौकिक-असर्वज्ञ-द्वारा उपदिष्ट लौकिक शास्त्र संसार वधारनारी शिक्षाज्योथी परिपूर्णुं डोय छे. तेनाथी साधुज्योने पोतानां महाव्रतोनुं पालन करवानी शिक्षा यथार्थ तथा प्राप्त थती नथी, जेटके जेनुं अध्ययन करवावाणा लद्रपरिणामी साधुजन पोताना व्रतोथी पणु च्युत जनी जय छे. आ माटे जेवा शास्त्रोनुं अध्ययन महाव्रतरूप पर्वतने नष्ट करनार वज्रनुं काम करे छे. सम्यग्दर्शननी पुष्टि ज्यो सुधी जेवने थती नथी, त्यां सुधी तेने समस्त द्रव्योथी भिन्न आत्मद्रव्यमां दृढ श्रद्धा जग्रत थती नथी. आ प्रकारनी श्रद्धा जग्रत थया

गुरु परुपवचनानि ग्रीष्मर्तुसहस्रकिरणकिरणावलीसमानि तथापि स्वल्पेनैव समयेन सजला जलदावलीसमुत्थितसमीरसहचारिनीरकणिका इव परिणमन्तीति गुह्यां परुपवचनानि अनन्तद्वितविधायकानि मोक्षपथप्रदर्शकानि सावधकर्म-निवर्तकानि अमृतमयानि आसेयनाग्रहण शिक्षारूपाणि भवन्तीति मन्यमानः सन् सहेत । उक्तं च—

शास्त्र किस तरह से सीखे सो बतलाते हैं—‘अणुसासिओ.’

इत्यादि ।

अन्वयार्थ—शिष्यजन यदि कदाचित् गुरुओं द्वारा कठोर वचनों से भी (अणुसासिओ-अनुशासितः) अनुशासित-शिक्षापाते हों तो भी उन्हें चाहिये कि वे (न कुप्पिज्जा-न कुप्येत्) अपने शिक्षाप्रदाता गुरुजन पर कभी भी क्रुपित न हों । प्रत्युत ऐसी अवस्था में सत् और असत् के विवेक करने में (पण्डिण-पण्डितः) कुशलमति वह शिष्य (खंति सेविज्ज क्षान्ति सेवेत्) परुपभाषण को सहन करने रूप शांतिभाव का ही सेवन करे । तथा (खुड्डेहिं सह संसगं हासं क्रीडं च वज्जण-क्षुद्रैः सह संसगं हासं क्रीडं च वर्जयेत्) क्षुद्रजनों-वाल अथवा पार्श्वस्थ अवसन्न-कुशील संसक्त-स्वेच्छाचारी साधुओं का संग वर्जन करें । तथा-हास्य फ्रीडा का भी वर्जन करें ।

भावार्थ—यद्यपि गुरु महाराजके वचन उस समय शिष्य को ग्रीष्मऋतुके प्रखर सूर्यकी किरणों के समान मालूम पडते हैं परन्तु

शास्त्र कथ रीते शीभवां ते णतावे छे.—अणुसासिओ. इत्यादि.

अन्वयार्थ—शिष्यजन जो कदाचि गुरुओं द्वारा कठोर वचनोधी पणु (अणुसासिओ-अनुशासितः) अनुशासित-शिक्षा भेणवता होय तो पणु तेमणु विचारुं नेधं ओ डे ते (न कुप्पिज्जा-न कुप्येत्) पेताना शिक्षा प्रदाता गुरुजन उपर कही पणु क्रोध न करे. परंतु ऐसी अवस्थाभां सत् अने असत्नो विवेक करवाभां (पण्डिण-पण्डितः) कुशलमति ते शिष्य (खंति सेविज्ज-क्षान्ति सेवेत्) (कठोर) परुप भाषणने सहन करवाइय शांतिभावणुं न सेवन करे. तथा (खुड्डेहिं सह संसगं हासं क्रीडं च वज्जण-क्षुद्रैः सह संसगं हासं क्रीडां च वर्जयेत्) क्षुद्रजनों, १ भाण अथवा २ पार्श्वस्थ, ३ अवसन्न, ४ कुशील, ५ संसक्त-स्वेच्छाचारी साधुओंनो संग वर्जन करे. तथा हास्य डिडानुं पणु वर्जन करे.

मतलब तेनो ओ छे डे कदाचि गुरु महाराजणुं वचन, ते सभये शिष्यने उनाणाना प्रणर सूर्यना किरणो समान मालुम पडे छे. परंतु परिष्ठाभमां

સકલાપત્તિદાયકવિપયવિલાસમવર્તકાનિદીર્ઘાશ્વચતુર્ગતિકસંસારપરિભ્રમણકારણાનિ
સન્તિ, તસ્માદ્ વિપમવિપધરમુજઙ્ગવત્ તાનિ દૂરતઃ પરિવર્જનીયાનિ ॥૮॥

અર્થયુક્તાનિ કથં શિક્ષેત ? इत्याह—

मूलम्—अणुसांसिओ न कुप्पिज्जां, खंतिं सेविज्जं पण्डिणं ।

खुँडेहिं सह संसर्गं, हांसं क्रीडं' च वज्जए ॥ ९ ॥

છાયા—

अनुशासितः न कुप्येत्, क्षान्तिं सेवेत पण्डितः ।

धुद्रैः सह संसर्गं, हांसं क्रीडां च वर्जयेत् ॥ ९ ॥

ટીકા—

‘अणुसांसिओ.’ इत्यादि—अनुशासितः—गुरुभिः कठोरवचनैस्तर्जि-
तोऽपि न कुप्येत्=कोपं न कुर्यात् । किं तर्हि ? इत्याह—‘खंतिं.’ इत्यादि । पण्डितः=
सदसद्विवेकवान् सन् क्षान्तिं=परुपभाषणसहनरूपां सेवेत । अयं भावः—यद्यपि

जलका भ्रम उत्पन्न करती है उसी तरह मिथ्या शास्त्र भी मोक्षाभिला-
षिओंके लिये यथार्थस्वरूप का ज्ञान न कराकर केवल वस्तु के स्वरूप
में भ्रमोत्पादक होते हैं । समस्त आपत्ति—एवं विपतियों को देने वाले
विषय कपायोंकी ही इनसे केवल वृद्धि होती रहती है अतः इनसे
संसार का अन्त न आकर जीवों के अनन्त संसार के मार्ग की ही पुष्टि
होती है और इसी वजह से यह जीव इस चतुर्गति स्वरूप संसार में
इतस्ततः परिभ्रमण किया करता है । इस लिये जिस प्रकार जहरीले
सर्पका दूर से ही परिहार कर दिया जाता है उसी प्रकार मोक्षाभिला-
षिओं को इन निरर्थक शास्त्रोंका परिहार कर देना चाहिये ॥ ८ ॥

જળનો ભ્રમ ઉત્પન્ન કરે છે, તેવી રીતે મિથ્યાશાસ્ત્ર પણ મોક્ષ અભિલાષીઓ
માટે યથાર્થ સ્વરૂપનું જ્ઞાન ન કરાવતાં કેવળ વસ્તુના સ્વરૂપમાં ભ્રમોત્પાદક
બને છે. સમસ્ત આપત્તિ અને વિપત્તિને દેવાવાળાં વિષય કપાયોની જ તેનાથી
ફક્ત વૃદ્ધિ થતી રહે છે. જેથી તે વડે સંસારનો અંત ન આવતાં જીવોને
અનંત સંસારનો માર્ગમાં લઇ બંધ છે, અને એ કારણે આ જીવ આ ચતુ-
ર્ગતિરૂપ સંસારમાં અહિં તહિં ભટકતો રહે છે. આ માટે જે પ્રકારે જહેરીલા
સાપનો દુરથી જ ત્યાગ કરવામાં આવે છે, તેવી રીતે મોક્ષના અભિલાષીઓએ
આવા નિરર્થક શાસ્ત્રનો ત્યાગ કરવો જોઇએ. ॥૮॥

ननु बालपार्श्वस्थादिसंसर्गे सत्यपि साधोः का हानिः? दृश्यते हि वैदूर्यमणिः काचसहयोगेऽपि काचधर्मं नाप्नोति, एवमात्मार्थिनो मुनेर्बालपार्श्वस्थादिसंसर्गे सत्यपि स्वाचारपरिवर्तनं न स्यात्? अत्रोच्यते—जीवो हि संसर्गदोषानुभावतो बालपार्श्वस्थाद्याचरितप्रमादादिभावनाभावितत्वात् द्रुतमेव तद्भावं प्राप्नोति, यथा—निम्बोदकवासितायां भूमौ कचिदाम्रवृक्षः समुत्पन्नः, पुनस्तत्राम्रस्य निम्बस्य च द्वयोरपि मूले मिलिते, ततश्च संसर्गदोषादात्रो निम्बत्वं प्राप्य

कठोर अक्षरों से युक्त गुरुजनों के वचनों से तिरस्कृत हुए शिष्यजन महत्त्व को प्राप्त करते हैं। जबतक मणी शाण पर नहीं चढ़ाया जाता है तबतक वह अपने उत्कर्ष को प्राप्त नहीं कर सकता है और न राजाओं के मुकुटों में भी जड़ा जाता है। साधु यदि बाल एवं पार्श्वस्थ आदि की संगति करे तो उसकी इससे क्या हानि है। क्यों कि देखा जाता है कि वैदूर्यमणि काचमणि के साथ रहते हुए भी उसके धर्मको अर्थात् काच के गुण को ग्रहण नहीं करता है इसी प्रकार पार्श्वस्थ आदि की संगति में रहा हुआ आत्मार्थी साधु भी अपने आचार विचार से परिचलित नहीं हो सकता? प्रश्न ठीक है—परन्तु यह ध्यान रखना चाहिये कि भद्रपरिणामी आत्मा निमित्ताधीन होता है। निमित्त मिलने पर निमित्त के अनुसार शीघ्र ही उसका परिणामन हो जाता है। जिस प्रकार जिस भूमि में नीमके वृक्ष लगे हुए होते हैं और उसी भूमिमें यदि आम का भी वृक्ष लगा दिया जावे तो वह नीमके मूल के

कठोर अक्षरार्थी भरेला शुद्धनोना वचनोर्था तिरस्कृत थयेल शिष्यजन महत्त्वने पाये छे. ज्यां सुधी मणीने सराषु उपर चडाववामां आवतो नथी त्यां सुधी ते पोताना उत्कर्षने प्राप्त करी शकतो नथी. अने न तो ये सबब्योना मुगटोमां जडाय छे. साधु ने पाव अने पार्श्वस्थ आदिनी संगति करे तो अर्थी अने कंठे नुक्शान थतुं नथी. केभके नेछे शकय छे के वैदूर्यमणी काय मणीनी साथे रहेवा छतां पषु ये कायना शुषु ब्रह्मणु करतो नथी. आ रीते पार्श्वस्थ आदिनी संगतिमां रहेला आत्मार्थी साधु पषु पोताना आचार विचारथी परिचलित थता नथी? प्रश्न ठीक छे—परंतु ये ध्यानमां राखतुं नेछेये के भद्रपरिणामी आत्मा निमित्त आधिनि अने छे. निमित्त भणवाथी निमित्तना अनुसार जल्दीथी तेतुं परिणामन थथ जय छे. ने प्रकारे ने भूमिमां लीमडानां वृक्षो लागेलां डाय छे. अने ये न भूमिमां ने आंभानुं वृक्ष वाववामां आवे तो लीमडाना भूण साथे तेना भूण भणवाथी

गीर्भिर्गुरूणां परुपासराभिः-

स्तिरस्कृता यान्ति नरा महत्त्वम् ।

अलब्धशणोत्कपणा नृपाणां,

न जातु मौलौ मणयो व्रसन्ति ॥ १ ॥

च=पुनः क्षुद्रैः=वालैः, अथवा पार्श्वस्थावसन्नकुशीलसंसक्तयथाच्छन्दैः

सह संसर्ग=सङ्गं वर्जयेत् ।

परिणाम में वे जल से भरे हुए मेघ के समय उत्पन्न वायु के साथ जल कणिका के समान हितविधायक होते हैं। जिस प्रकार वर्षाकाल में जब आकाश में घटाएँ घिर आती हैं तो उससमय वायु का भी संचार होने लगता है—आंधी उठने लगती है और उसके उठते ही वे घटाएँ वरसने लगती हैं। इससे आतपतप्त—गरमीसे पीड़ित आत्माओं को शीतलता का अनुभव होने लगता है। इसी प्रकार उस समय गुरुजनों के वचन कठोर प्रतीत होते हैं परन्तु भविष्य में वे शिष्यों के लिये आत्मकल्याण के साधक होने से अनंत शीतलताप्रदान करने वाले हो जाते हैं। शिष्यजन को गुरु के वचन अनंतहित विधायक, मोक्षपथप्रदर्शक, सावद्यकर्मनिवर्तक अमृतस्वरूप जानकर सहते रहना चाहिये। क्यों कि इनसे शिष्योंको आसेवनशिक्षा एवं ग्रहण शिक्षा प्राप्त होती है व्रतों को ग्रहण करना एवं उनका सम्यग्ग्रीति से पालन करना यह शिक्षा गुरु के वचनोंसे ही शिष्यों को मिलती है। कहा भी है—गीर्भिर्गुरूणां० इत्यादि—

તે જળથી ભરેલા મેઘના સમયે ઉત્પન્ન થતા વાયુની સાથે જળકણિકાના જેવાં હિત વિધાયક હોય છે. જે પ્રકારે વર્ષાકાળમાં જ્યારે આકાશમાં ઘટાઓ ઘેરાય છે. એ સમયે વાયુનો પણ સંચાર થાય છે. અને આંધી ઉઠવા લાગે છે. અને આંધીના આગમનથી તે ઘટાઓ વરસવા લાગે છે. એનાથી (તડકાથી તપેલ) આતપતપ્ત આત્માઓને શીતળતાનો અનુભવ થવા લાગે છે. આ પ્રકારે એ સમયે ગુરૂજને.નું વચન કઠોર જણાય છે. પરંતુ ભવિષ્યમાં તે શિષ્યોને માટે આત્મ કલ્યાણનું સાધક હોવાથી અનંત શિતળતા આપનાર બને છે. શિષ્યજને ગુરૂનાં વચન અનંત હિત વિધાયક, મોક્ષપથ પ્રદર્શક, સાવધ કર્મ નિવર્તક અમૃત સ્વરૂપ બાણીને સહી લેવાં જોઈએ. કેમકે તેનાથી શિષ્યોને આસેવન શિક્ષા અને ગ્રહણશિક્ષા પ્રાપ્ત થાય છે. વ્રતોનું ગ્રહણ કરવું અને તેને સમ્યગ્ગ્રીતિથી પાલન કરવું આ શિક્ષા ગુરૂના વચનોથી જ શિષ્યોને મળે છે. કહ્યું પણ છે—ગીર્ભિર્ગુરૂનાં. ઇત્યાદિ—

तथा-हासं=हसनं, क्रीडां=कन्दुकादिकां च वजयेत्, ज्ञानावरणीयाद्यष्टविध-
कर्मवन्धजनकत्वादिति भावः ।

उक्तं च—“जीवे णं भंते ! हसमाणे वा उस्सुयमाणे वा कइ कम्मपगडीओ
बंधइ ? गोयमा ! सत्तविहबंधए वा अट्टविहबंधए वा ”

छाया-जीवः खलु भदन्त ! हसन् वा उत्सुकन् वा कति कर्मप्रकृतीर्वि-
ध्नाति, गौतम ! सप्तविधवन्धको वा अष्टविधवन्धको वा इत्यादि । क्रीडाविषये-
ऽप्येवमेवागमोऽनुसन्धेयः ॥ ९ ॥

के महत्व को भी चिन्त कर देता है एवं दशविध धर्मको ध्वस्त कर देता
है । इसलिये क्षुद्रों का तथा बालकों का संसर्ग सदा परिहार्य बतलाया
गया है । तथा बालआदिजनोंकी संगति से निंदा होती है एवं पापकार्यों
में अनुमति देने की भी आदत पड़ जाती है । इसी तरह ज्ञानावरणीय
आदि अष्टविध कर्मोंके बंध के जनक होने से साधुजन को बालोंके साथ
हँसी करना, फ्रीड़ा करना आदि अकर्तव्योंका भी परिहास कर देना
चाहिये । प्रभुका स्वयं भी ऐसा ही उपदेश है—“जीवे णं भंते ! हसमाणे
उस्सुयमाणे वा कइ कम्मपगडीओ बंधइ ? गोयमा ! सत्तविहबंधए वा
अट्टविहबंधए वा ” इत्यादि—प्रभु से गौतमने प्रश्न किया हे भदन्त !
यह जीव जब हँसी करता है अथवा उत्सुक होता है तब कितने कर्मकी
प्रकृतियों का बंध करता है ? तब प्रभु ने उत्तर दिया कि हे गौतम ! इस
अवस्था में यह जीव सात प्रकार के या आठ प्रकार के कर्मोंका बंध करता

संयमना भङ्गवने पणु नाश करी नाणे छे. जेभ ७ दशविध धर्मने
पणु ध्वस्त करी नाणे छे. आ भाटे क्षुद्रोने तथा बालकोने संसर्ग सदा
परिहार्य बतलाववामां आवेल छे. तथा पाण आदि ७नोनी संगतिथी निंदा
थाय छे. तेभ ७ पापकार्योभां अनुमति देवानी पणु आदत पडी नाय छे.
आ रीते ज्ञानावरणीय आदि आठ कर्मनां अंधनोना ७नक डोवाथी साधु७नोजे
डांसी करवी, डिडा करवी आदि अकर्तव्योने परिहार करी देवे जेधजे.
प्रभुने स्वयं आवे ७ उपदेश छे. “जिवेणं भंते ! हसमाणे वा उस्सुयमाणे वा
कइ कम्मपगडीओ बंधइ ? गोयमा ! सत्तविह बंधए वा अट्टविह बंधए वा०”
इत्यादि—प्रभुथी गौतमे प्रश्न कर्यो छे लदन्त ! आ एव न्यारे डसे छे
त्यारे डेटला कर्मनी प्रकृतियोनो अंध करे छे ? प्रभुजे उत्तर आयेो डे छे
गौतम ! आ अवस्थाभां आ एव सात प्रकारना अथवा आठ प्रकारना कर्मोने

कटुकफलो भवति । अपरं च बालपाश्वस्थादिसंसर्गो लोके गद्दी जनयति, सर्व एवैते साधव एवंभूता इति, तथा पापेऽनुमतिमुत्पादयति । अयं भावः—यथा—रजःपुञ्जो मणिगणं मलिनयति, राहुश्चन्द्रमण्डलप्रभामपकर्षयति, लोभः सर्वगुणगणं विनाशयति, हेमन्तः कमलवनं प्रलीनयति, तथा—क्षुद्रसंसर्गः शान्त्यादिगुणगणं मलिनयति, लब्ध्यादिप्रभाप्रमपकर्षयति, तपःसंयमजनितमहत्त्वं विनाशयति, दशविधधर्मं प्रलीनयति, तस्मात् क्षुद्रसंसर्गः परिवर्जनीय इति ।

साथ अपने मूल से मिला रहने पर कटुकफल देने लगता है । यह बात प्रसिद्ध है । इसलिये संसर्ग के दोष से जैसे आम्र निम्बभाव को प्राप्त होकर कड़वे फल देने लगता है उसी प्रकार आत्मार्थी साधुजन भी बाल पार्श्वस्थादि के संगति से स्वाचार भ्रष्ट हो जाते हैं । आम्र पर नीमका ही प्रभाव पड़ता है—नीम पर आम का नहीं—कारण कि बुरी वस्तु का ही अधिक प्रभाव पड़ा करता है और वही वस्तु दूसरों को जल्दी अपने अनुरूप परिणाम लेती है—यह एक स्वाभाविक बात है । यह तो आंखोंदेखी बातें हैं कि धूलि का पुंज मणिगणको भी मलिन बना देता है । राहुचन्द्रमंडल की प्रभा का अपकर्षक होता है, लोभ समस्त सद्गुणोंका लोपक होता है । हेमन्त ऋतु कमलवन को दग्ध कर देता है । इसी तरह यह भी मानने में कोई आपत्ति नहीं है कि क्षुद्रजनों का संसर्ग भी साधुजनों के शांति आदि गुणगणों को मलिन बना देता है । उनके प्राप्त-प्रभाव को कम कर देता है । तप एवं संयम

कडवां क्षण आपवा लागे छे. आ वात प्रसिद्ध छे. आ भाटे संसर्गना
दोषधी जेम आंणे लीमडाना लावने पानी कडवां क्षण आपनार भने छे
अे न रीते आत्मार्थी साधुजन पणु भाण पार्श्वस्थादिना संगथी स्वाचारभ्रष्ट
अनी नय छे. आंणा उपर लीमडाने न प्रभाव पडे छे, लीमडा उपर
आंणाने नहीं कारण के अशय वस्तुने अधिक प्रभाव पडे छे. अने वस्तु
भीलअाने जल्दी चोताना जेवी अनावे छे. आ अेक स्वाभाविक वात छे आ
तो आंणे जेयेदी वात छे के धुणने वंढेण भणीअाने पणु मलीन अनावी
हे छे. राहु अंद्र मंडण तेजने ढांडी हे छे. लोभ समस्त सद्गुणाने लोपनार
छाय छे. हेमन्त कमण वनने भाणी नाणे छे. आ रीते अे मानवामां कौध
अयुक्ति नथी के क्षुद्रजनाने संसर्ग पणु साधुजनाना शान्ती आदि गुणाने
मलीन अनावी हे छे. अेना प्राप्त प्रभावने अोछे करे छे, तप अने

क्रोध के आवेश से मृपाभाषण मत करो । (बहुयं माय आलवे-बहुकं माच आलपेत्) व्यर्थ आलजालरूप वचनोंका उच्चारण मत करो-अनर्थ प्रलाप मत करो-अधिक मत बोलो । (कालेण य अहिज्जित्ता-कालेन चाधीत्य) प्रथम पौरुपी में स्वाध्याय करके (तओ एगओ झाइज्ज-ततः एकाकी ध्यायेत्) द्वितीय पौरुपी में एकाकी होकर सूत्रार्थका चिन्तवन करो । उपलक्षण से तृतीय पौरुपी में भिक्षाचयी, एवं चतुर्थी पौरुपी में भण्डोपकारण की प्रतिलेखना के बाद पुनः स्वाध्याय करो । यह बात स्वयं सूत्रकार छाईस वें अध्ययन में कहेंगे ।

भावार्थ—इस सूत्र द्वारा प्रकारान्तर से विनय धर्मका शिष्य-जनों को उपदेश देते हुए सूत्रकार कहते हैं कि हे शिष्यों यदि तुम इस विनय धर्मको पालन करने के अभिलाषी हो तो तुम्हारा यह कर्तव्य है कि तुम क्रोध के आवेशमें आकर कभी भी मृपाभाषण मत करो। क्यों कि इस प्रकार करनेसे विनयधर्मकी पालना नहीं होती है मृपाभाषण के निषेध से उसके साथ-साथ मान, माया, लोभ, एवं हास्यादि कों का भी विनयवान को त्याग कर देना चाहिये। मृपावादादि को त्याग करने का कारण यह है कि इस प्रकार की प्रवृत्ति करने वाला

मृपालापणु न करे (बहुयं माय आलवे-बहुकं माच आलपेत्) आणपंथाण ३प वचनानुं व्यर्थ उच्चाराणु न करे-अनर्थ प्रलाप न करे-वधारे न भोले। (कालेण य अहिज्जित्ता-कालेन चाधीत्य) प्रथम पौरुपीमां स्वाध्याय करी (तओ एगओ झाइज्ज-ततः एकाकी ध्यायेत्) भीण पौरुपीमां अेकाकी थधने सूत्रार्थनुं चितवन करे। उपलक्षणुथी त्रीण पौरुपीमां भिक्षा अर्या अने योथा पौरुपीमां भण्डोपकरणुनी प्रतिलेखना पछी इरी स्वाध्याय करे। आ वात सूत्रकार पोते २६ भा अध्ययनमां कडेसे।

भावार्थ—आ सूत्र द्वारा प्रकारान्तरथी विनय धर्मने शिष्यजनने उपदेश आपतां सूत्रकार कडे छे के छे शिष्ये। ने तमे आ विनयधर्मनुं पालन करवाना अभिलाषी हो तो तमाइं अे कर्तव्य छे के तमे क्रोधना आवेशमां आवी कही पणु मृपालापणु करे नहीं। केभके आ प्रकारे करवाथी विनय धर्मनी पालना थती नथी। मृपालापणुना निषेधथी अेनी साथे मान, माया, लोभ अने हास्यादिकने पणु विनयवाने त्याग करी देवे नेधअे। मृपावादादिकने त्याग करवानुं कारणु आ छे के आ प्रकारनी प्रवृत्ति करवा-

पुनरपि प्रकारान्तरेण विनयमुपदिशन्नाह—

मूलम्—मां यं चंडालियं कांसी, बहुयं मां यं आलवे ।

कालेणं यं अहिर्जिता, तंओ झाइजं एगंओ ॥ १० ॥

छाया—

मा च चण्डालीकं कार्पीद्, बहुकं मा च आलपेत् ।

कालेन चापीत्य, ततो ध्यायेत् एककः ॥ १० ॥

टीका—

‘मा य’ इत्यादि—च शब्दः समुच्चयार्थकः । चण्डालीकं—चण्डः=क्रोध-
स्तद्वशादलीकं=मृपाभाषणं मा कार्पीत्=मा कुर्यात्, इदमुपलक्षणं मानमायालोभ-
भयहास्यादीनाम् । उक्तंच—

मुसावाओ उ लोगम्मि, सन्वसाहूहि गरिहो ।

अविस्सासो य भूयाणं, तम्हा मोसं विवज्जए ॥ (दशवै. ६ अ. १३ गा.)

छाया—

मृपावादस्तु लोके, सर्वसाधुभिर्गर्हितः ।

अविश्वासश्च भूतानां, तस्माद्मृपा विवर्जयेत् ॥

च=पुनः बहुकं-वद्वेव बहुकम्-अतिशयम् आलजालरूपं मा आलपेत्=मा
वदेत् । बहुभाषणे वहवो दोषा भवन्ति । उक्तं च—

है । इसी तरह क्रीडाके विषय में भी समझ लेना चाहिये ॥ ९ ॥

दूसरे प्रकार से भी इसी विनयधर्मका सूत्रकार उपदेश करते
हैं—‘ माय. ’ इत्यादि ।

अन्वयार्थ—शिष्यजनों को संबोधित करते हुए सूत्रकार कहते
हैं कि हे शिष्यो ! तुम (चण्डालियं माम कासी-चंडालीकं मा चकार्पीत्

अंध करे छे. आ रीते क्रीडाओना विषयमां पणु समलु लेवुं न्नेधये. ॥ ६ ॥

धीन प्रकारथी पणु आ विनय धर्मना सूत्रकार उपदेश करे छे—
माय० धत्यादि.

अन्वयार्थ—शिष्यजनोने संबोधन करतां सूत्रकार कहे छे के छे
शिष्यो ! तमे चंडालियं माम कासी-चंडालीकं मा चकार्पीत्) क्रीडना आवेशथी

पालने का आदेश है। बहुभाषण में अथवा विना विचार किये भाषण में न तो साधु के मूलगुणरूप इस समिति का ही पालन होता है और न गुप्ति का ही। इसीलिये बहुभाषण में “बहुत दोष है” अन्यत्र भी ऐसा ही कहा है—

बहुभाषणमुन्मादं स्वाध्यायध्यानभंजनं कुरुते ।

अहितमनर्थकरं तत्, भवति च पीडाकरं नितराम् ॥ १ ॥

बहुभाषणात् द्वितीयं नश्यति, तावन्महाव्रतं तस्मात् ।

स्यादेव कर्मबंधस्तस्माद् दीर्घाध्वसंसारः ॥ २ ॥

बहुत आलजालरूप बकवाद करने वालोंके उन्माद रोग हो जाता है। साधु के स्वाध्याय एवं ध्यान में विघ्न पड़ता है—स्वाध्याय ध्यान नष्ट हो जाते हैं। बहुभाषण से अनेक अनर्थ होते हैं। ज्यादा इस विषय में और क्या कहा जाय साधु का इस हालत में द्वितीय सत्य-महाव्रत भी खंडित हो जाता है अतः बहुभाषीके कर्म बहुत बन्धते हैं और वह दीर्घ संसारी होकर संसार में परिभ्रमण करता है।

“कालेण” इस पद से सूत्रकार साधु का क्या कर्तव्य है यह बात दिखलाते हैं। वे कहते हैं कि साधु को प्रथम पौरुषी में स्वाध्याय

समिति अने पचनशुद्धि पाणवानो आदेशे छे. षडु भाषणुमां अथवा विचार कर्था वगरना भाषणुमां न तो साधुना मुणशुण्ड इप अ समितिनुं पालन धाय छे अने न शुद्धितुं पणु आ माटे षडु भाषणुमां “धणुा दोष छे” भीजनां पणु तेभज कहुं छे.

बहुभाषणमुन्मादं स्वाध्यायध्यानभंजनं कुरुते ।

अहितमनर्थकरं तत् भवति च पीडाकरं नितराम् ॥१॥

बहुभाषणात् द्वितीयं नश्यति तावन्महाव्रतं तस्मात् ।

स्यादेव कर्मबंधस्तस्मात् दीर्घाध्वसंसारः ॥२॥

आल जलरूप वधु षडुवाद करवावाणाने उन्माद रोग थध आवे छे. साधुना स्वाध्याय अने ध्यानमां विघ्न पडे छे—स्वाध्याय ध्यान नष्ट थध नय छे. षडु भाषणुधी अनेक अनर्थ धाय छे. आ विषयमां वधु शुं कडेवाय. साधुनुं आ डालतमां भीनुं सत्य महाव्रत पणु अंडित थध नय छे. अटले षडुभाषीनां कर्म वधु अंधाय छे. अने ते दीर्घ संसारी जनी संसारमां परिभ्रमणु करे छे.

“कालेण” आ पदधी सूत्रकार साधुनुं शुं कर्तव्य छे आ बात अतावे छे, तेओ कडे छे के साधुने प्रथम पौरुषीमां स्वाध्याय करवा जेधअ. पधी

વહુભાષણમુન્માદં, સ્વાધ્યાયધ્યાનમહ્નનં કુરુતે ।

અહિતમનર્થકરં તદ્, ભયતિ ચ પીડાકરં નિતરમ્ ॥૧॥

વહુભાષણાદ્ દ્વિતીયં, નશ્યતિ તાન્મહાત્રતં તસ્માત્ ।

સ્વાદેવ કર્મવન્ધ, -સ્તસ્માદ્ દીર્ઘાંશ્વસંસારઃ ॥ ૨ ॥

તર્હિં કિં કુર્યાત્ ? इत्याह—‘कालेण.’ इत्यादि । ‘कालेण’—इत्यत्र सप्तम्यर्थे

તૃતીયા; કાલે=પ્રથમપૌરુષ્યાં તુ, ચકારસ્ત્વર્થવાચકઃ, અત્રીત્ય=સ્વાધ્યાયં કૃત્વા
તતઃ=તદનુ દ્વિતીયપૌરુષ્યામ્ એકકઃ—એકાકી સન્ ભાવતો રાગાદિરહિતઃ, દ્રવ્યતો
વિધિક્તશયનાસનાદિસંસ્થઃ ધ્યાયેત્—સૂત્રાર્યં ચિન્તયેત્ । ઉપલક્ષણમેતત્ તૃતીયચતુર્થ-
પૌરુષ્યોરપિ, તથા ચ—તૃતીયપૌરુષ્યાં ભિક્ષાચર્યં ચતુર્થ્યાં પુનઃ સ્વાધ્યાયં કુર્યા-
દિત્યર્થઃ । વક્ષ્યતિ પઢ્વિશોઽધ્યયને—

साधु साधु नहीं है वह साध्वाभास है । कहा भी है कि—

मुसावाओ उलोगम्मि सव्वासाह्हिं गरिहिओ ।

अविस्सासो य भूयाणं तम्हा मोसं विवज्जए । (दशवै० ६ अ. १३ गाथा)

यह मृपावाद सर्व—साधुओं अर्थात् तीर्थंकर आदि महापुरुषों
द्वारा गर्हित—निन्दित है, दूसरे मृपावादी पर जगत का कोई भी प्राणी
विश्वास नहीं करता है, अर्थात् वह सब के लिये अविश्वास्य होता है ।
इसी प्रकार बहुत बोलने से भी विनय धर्म यथावत् पालित नहीं हो
सकता है । क्यों कि इस अवस्था में ऐसे भी कई शब्द निकल जाते हैं
जो व्यर्थ होते हैं एवं सुनने वाले के लिये भी कष्टप्रद होते हैं । जो मन
में आया सो बोल देना—यह प्रवृत्ति साधु मार्ग की नहीं है । इसमें तो
बड़ी सावधानी रखनी पड़ती है । इसी लिये भापासमिति एवं वचनगुप्ति

વાળા સાધુ સાધુ નથી તે સાધ્વાભાસ છે. કહ્યું પણ છે કે—

मुसावओ उ लोगम्मि सव्वासाह्हिं गरिहिओ ।

अविस्सासो य भूयाणं तम्हा भासं विवज्जए । दशवै० ६ अ. १३ गाथा.

આ મૃપાવાદ સર્વ સાધુઓ અર્થાત્ તીર્થંકર આદિ મહાપુરુષોદ્વારા
બ્રહ્મિત છે. ખીલ મૃપાવાદી ઉપર જગતના કોઇપણ પ્રાણી વિશ્વાસ કરતા
નથી તે બધાને માટે અવિશ્વાસ હોય છે. આ પ્રકારે બહુ બોલવાથી પણ
વિનયધર્મ યથાવત્ પાલિત નથી થઇ શકતો. કેમકે એ અવસ્થામાં એવા પણ
કોઇ શબ્દ નિકળી બાધ છે, જે વ્યર્થ હોય છે, અને સાંભળવાવાળાને માટે
પણ દુઃખદાયક હોય છે. જે મનમાં આવ્યું તે બોલી નાખ્યું—આ કામ
સાધુનું નથી. એણે તો ખૂબજ સાવધાની રાખવી પડે છે. આ માટે ભાષા

च-पुनः, अकृतम्=अनाचरितं चण्डालीकादिकं, नो कृतमिति=मृषाभाषणं मया न कृतमित्येव भाषेत । अयं भावः-गुरुशुभ्रपाकारिणोऽपि शिष्यस्य कथंचिदतीचार-संभवे गुरुसंनिधौ तदालोचना करणीया । आलोचना हि-मोक्षमार्गविघातकानाम-नन्तसंसारवर्धकानां माया-निदान-मिव्यादर्शनशल्यानां निष्कर्षणी, ज्ञानावरणीया-घट्टविधकर्ममलापकर्षणी, शुद्धात्मस्वरूपदर्शनी, तच्चातचचित्रमर्शनी, अव्यावाध-मुखवर्षिणीति ॥ ११ ॥

(आहूच-कदाचित्) यदि अकस्मात् (चंडालियं कट्टु-चंडालीकं कृत्वा । क्रोध के आवेश से अकस्मात् झूठ बोला गया हो तो भी उसे (कयाचि न निन्दुविज्ज-कदापि न निहनुवीत) कभी भी किसी भी परिस्थिति में छिपाना नहीं चाहिये । (कडं कडेत्ति भासेज्जा-कृतं कृतमिति भाषेत) ऐसा नहीं कहना चाहिये कि मैंने क्रोधादिक के आवेश से असत्य भाषण नहीं किया है-किन्तु ऐसा ही कहना चाहिये कि मेरे द्वारा क्रोधादिक के आवेश से असत्यभाषण अवश्य-अवश्य हुआ है, (अकडं नो कडेत्ति य-अकृतं नो कृतमिति च) और जो क्रोधावेशसे असत्य नहीं बोला गया हो तो ऐसा भी नहीं कहना चाहिये कि मैंने असत्य भाषण किया है ।

भावार्थ-यदि क्रोधादिक कपायों के आवेश से सहसा असत्य भाषण हो भी जाय तो उसे यह नहीं कहना चाहिये कि मैंने असत्य भाषण नहीं किया है । जैसे रक्त से दूषित वस्त्र रक्तसे धोने

आहूच-कदाचित्-कदाच यदि-अकस्मात् चंडालियं कट्टु-चंडालीकं कृत्वा क्रोधना आवेशधी अकस्मात् वुडुं बोली जवायुं डोय तो पण तेने कयाचि न निन्दु-विज्ज-कदापि न निहनुवीत कटी पण डोय पण परिस्थितिमां छुपावुं नहीं लेधये. कडं कडेत्ति भासेज्जा-कृतं कृतमिति भाषेत येभ न डडेवुं लेधये डे मे' क्रोधा-दिदना आवेशमां असत्य-लापणु करेल नथी-परंतु येवुं डडेवुं लेधये डे भासधी क्रोधना आवेशमां असत्य लापणु जइराजइर थयुं छे. अकडं नो कडे-त्ति य-अकृतं नो कृतमिति च अने ले क्रोधावेशना लीधे असत्य न बोलायुं डोय तो येवुं पणु न डडेवुं लेधये डे मे' असत्य लापणु कथुं छे.

मतक्षण आने ये छे डे ले क्रोधादिक कपायेना आवेशधी सहसा असत्य-लापणु थधं नथ तो येवुं न डडेवुं लेधये डे मे' असत्य-लापणु नथी कथुं. ले रीते बोलीधी परडायेवुं इपित वस्त्र बोलीधी धोवाधी शुद्ध थतुं

“ પદમં પોરિસિ સજ્ઞાયં વીયં જ્ઞાણં જ્ઞિયાયઈ ।

તડ્યાણ મિક્લાયરિયં પુણો ચડત્થીઈ સજ્ઞાયં ” ઇતિ ॥ સૂ. ૧૦ ॥

યદિ કથન્નિદસત્યભાષણં ભવેત્તદા તન્ન ગોપયેદિત્યાહ—‘આહચ્ચ.’ ઇત્યાદિ ।

મૂલ્મ—આહચ્ચં ચંડાલિયં કદ્દુ, નં નિન્નુવિજ્ઞ કયોઙ્ગિવિ’ ।

કંડં કંડેત્તિ’ ભાસેજ્ઞાં, અકંડે નો કંડેત્તિ’ યં ॥૧૧॥

છાયા—

કદાચિત્ ચળ્ડાલીકં કૃત્વા, ન નિન્નુવીત કદાચિદપિ ।

કૃતં કૃતમિતિ ભાષેત, અકૃતં નોકૃતમિતિ ચ ॥ ૧૧ ॥

ટીકા—

‘ આહચ્ચ ’ ઇત્યાદિ—કદાચિત્=અકસ્માદ્ ચળ્ડાલીકં=ક્રોધાદિવશાદ-
વૃત્તભાષણં કૃત્વા કદાચિદપિ—યદા પરેણ જ્ઞાતં નોજ્ઞાતં વા તદાપિ ન નિન્નુવીત=ન
ગોપયેત્-અવૃત્તભાષણં મયા ન કૃતમિત્યપલાપં ન કુર્યાત્ । કિં તર્હિ ? ઇત્યાહ-કૃતં
ચળ્ડાલીકાદિ, કૃતમિતિ=ક્રોધાદિવશાદવૃત્તભાષણં મયા કૃતમિત્યેવ ભાષેત, તયા

કરના ચાહિયે । પશ્ચાત્ દ્વિતીય પૌરુષી મેં રાગાદિક ભાવોં સે રહિત્ત
હોકર સૂત્રાર્થકા ચિન્તવન કરના ચાહિયે । ઉપલક્ષણ સે તૃતીય ‘ એવં
ચતુર્થ પૌરુષી કા ગ્રહણ હુઆ હૈ જિસકા ભાવ ઇસ પ્રકાર હૈ કિ તૃતીય
પૌરુષી મેં વહ મિક્ષાચર્યા કરે ઓર ચતુર્થ પૌરુષી મેં પુનઃ સ્વાધ્યાય કરે
ઇસી વાત કો ઇસી સૂત્ર કે છાઈસ ૨૬ વેં અધ્યયન મેં ભગવાને કહા હૈ—

પદમં પોરિસિ સજ્ઞાયં વીયં જ્ઞાણં જ્ઞિયાયઈ ।

તડ્યાણમિક્લાયરિય પુણો ચડત્થીઈ સજ્ઞાયં ॥ ઇતિ ॥ સૂ. ૧૦ ॥

અગર કિસી કારણ વશ અસત્ય ઘોલાજાય તો ઉસે છિપાવે
નહીં, ઇસી વાતકો કહતે હૈં—‘ આહચ્ચ. ’ ઇત્યાદિ ।

બીજા પૌરુષીમાં રાગાદિક ભાવોથી રહિત બની સૂત્રાર્થનું ચિંતવન કરવું
જોઈએ. ઉપલક્ષથી ત્રીજા અને ચોથા પૌરુષીનું ગ્રહણ થયેલ છે. જેનો ભાવ
આ પ્રકારે છે કે ત્રીજા પૌરુષીમાં તે ભિક્ષા ચર્યા કરે અને ચોથા પૌરુષીમાં
દ્વિતી સ્વાધ્યાય કરે. આ વાત આજ સૂત્રના ૨૬મા અધ્યયનમાં ભગવાને કહી છે—

પદમં પોરિસિ સજ્ઞાયં વીયં જ્ઞાણં જ્ઞિયાયઈ ।

તડ્યાણ મિક્લાયરિય પુણો ચડત્થીય સજ્ઞાયં ઇતિ ॥ સૂ. ૧૦ ॥

આ વાતને આ સૂત્રના ૨૬ મા અધ્યયનમાં ભગવાને કહ્યું છે.

જો કોઈ કારણવશ અસત્ય ઘોલાઈ જાય તો એને છૂપાવવું નહિં એજ
વાત ને કહે છે. આહચ્ચં ઇત્યાદિ.

वाले अष्टविध कर्मोंका इस आलोचना के प्रभाव से विनाश होता है। आत्मिक शुद्ध स्वरूप के दर्शन करानेवाली यह आलोचना है और तत्त्व एवं अतत्त्व के विवेक को जाग्रत करती हुई अव्यावाध सुख को प्रदान करनेवाली यही आलोचना है ॥ ११ ॥

शिष्यको सभी काम गुरुमहाराजके अभिप्रायसे ही करना चाहिये, सो दिखलाते हैं—‘ मा गलियस्सेव०’ इत्यादि ।

अन्वयार्थ—(गलियस्सेव कसं-गलिताश्व इव कशां) जिस प्रकार अविनीत घोड़ा वारंवार कशा (चायुक) के प्रहार की इच्छा करता है, उसी प्रकार (पुणो पुणो मा वयणमिच्छे-पुनः पुनः मा वचनं इच्छेत्) पुनः पुनः प्रवृत्तिनिवृत्तिरूप गुरुके आज्ञा की शिष्य को वांछा नहीं करनी चाहिये, अर्थात्-उपदिष्ट अर्थको ही वारंवार कहलवाने के लिये गुरु महाराज को कष्ट नहीं देना चाहिये । किन्तु (आइन्ने कसं व दट्ठुं-आकीर्णः कशाम् इव दृष्ट्वा) जिस प्रकार आकीर्ण अर्थात् जाति-मान् सुशिक्षित विनीत घोड़ा चायुक को देखकर अपनी अविनीतता का परिहार कर देता है, उसी तरह विनीत शिष्य भी (पावगं परिवज्जए-पापकं प्रतिवर्जयेत्) गुरु के इंगित आकार को जानकर पापमय अनुष्ठान का परित्याग करे ।

इस श्लोकका भावार्थ शत्रुमर्दन राजा के दृष्टान्त से कहते हैं— वह इस प्रकार है—

स्वइपनुं दर्शनं करणवार आ आलोचना छे. अने तत्त्व तेमन् अतत्त्वना विवेकने नतत करीने अव्यावाध सुख आपनारी आ न आलोचना छे. ॥११॥

शिष्ये षधां काम गुरुमहाराजना अलिप्रायधी न करवां नेधये, ते गताववाभां आवे छे. ‘ मा गलियस्सेव०’ इत्यादि.

गलियस्सेव कसं-गलिताश्व इव कशां के प्रकारे घोड़ों वारंवार चायुकना प्रहारनी इच्छा करे छे ओ प्रकारे पुणो पुणो मा वयणमिच्छे-पुनः पुनः मा वचनं-इच्छेत् करी करी प्रवृत्तिनिवृत्तिरूप गुरुनी आज्ञानी शिष्ये इच्छा न करवी नेधये-अर्थात् उपदिष्ट अर्थने वारंवार कहेवडाववा भाटे गुरुमहाराजने कष्ट न आपवुं नेधये. परंतु आइन्ने कसं व दट्ठुं-आकीर्णः कशाम् इव दृष्ट्वा के प्रकारे आकीर्ण अर्थात् नतवान डेणवाथेल घोड़ा चायुकने नेध पोतानी अविनीत-तानो त्याग करे छे अने रीते विनीत शिष्य पणु पावगं परिवज्जए-पापकं प्रतिवर्जयेत् गुरुना इंगित-आकारने नएणी पापमय अनुष्ठाननो परित्याग करे.

आ श्लोकनो भावार्थ शत्रुमर्दनना दृष्टान्तधी समनववाभां आवे छे, ने आ प्रकारे छे.

गुरोरभिप्रायेणैव सर्वं कर्तव्यमित्याह-

मूलम्—मां गलियस्सेव कंसं, वंयणमिच्छे पुणो पुणो ।

कंसं वं दंत्तुमाइन्ने”, पावंगं परिवेज्जए ॥१॥

छाया—

मा गलिताश्व इव कशां, वचनम् इच्छेत् पुनः पुनः ।

कशाम् इव दृष्ट्वा आकीर्णः, पापकं परिवर्जयेत् ॥ १२ ॥

टीका—

‘मा गलियस्सेव.’ इत्यादि—इव=यथा, गलिताश्वः=अविनीततुरङ्गः,
पुनः पुनः कशां=कशाप्रहारं वाञ्छति, तथा पुनः पुनः वचनं=प्रवृत्तिनिवृत्तिपरं
गुरोरुपदेशं मा इच्छेत् । उपदिष्टार्थमेव पुनः पुनर्वक्तुं गुरवे परिश्रमो न देय
इति भावः ।

पर शुद्ध नहीं होता, उसी प्रकार झूठ की शुद्धि पुनः झूठ बोलने से
नहीं होती है यह विश्वास रखना चाहिये । फलितार्थ यह है कि वास्त-
विक स्थिति को साधु के लिये छुपाना नहीं चाहिये, और अवास्तविक
स्थिति को कल्पना के तूलिका से सजाकर प्रकट नहीं करना चाहिये ।
शिष्य चाहे गुरुजन की शुश्रूषा करनेवाला भी क्यों न हो तो भी उसे
कथंचित् अतीचार लगने पर गुरु के समीप आलोचना अवश्य करनी
चाहिये । कारण कि आलोचना से आत्मा की शुद्धि होती है एवं मोक्ष-
मार्ग के विघातक तथा अनंत संसार के वर्धक ऐसे माया, मिथ्या एवं-
निदान इन तीन शक्तियों का अभाव होता है । आत्मा को मलिन करने-

नथी अेव रीते लुठनी शुद्धि इरी लुठं जालवाथी थती नथी, आ विश्वास
राभवो जेधं अे. आनो अर्थ अे छे के वास्तविक स्थितिने साधुअे कदी पणु
छुपाववी न जेधंअे, अने अवास्तविक स्थितिने कल्पनाथी सजनीने प्रगट न
करवी जेधंअे. शिष्य गुरुजननी शुश्रूषा करवावाणो पणु केम न डोय तो
पणु तेने कथंचित् अतीचार लागवाथी शुद्धि पासे तेणु आलोचना नइर
करवी जेधंअे. डारणु के आलोचनाथी आत्मानी शुद्धि थाय छे अने मोक्ष-
मार्गना विघातक तथा अनंत सागरने वधारनार अेवां माया, मिथ्या अने
निदान आ त्रणु शक्त्योना अलाव डोय छे. आत्माने मलिन करवावाणा अष्ट-
विध कर्मेना आ आलोचनाना प्रलावथी विनाश थाय छे. आत्मिक

स च तुरङ्गमः कशया पुनः पुनस्ताडितोऽपि नेच्छति शत्रुमभिगन्तुम् । अत्रान्तरे शत्रु-
सैनिका अस्य सवलानपि सैनिकान् अनाथानिव अशरणानिव मन्वाना अचिरेणैव
विभित्य निमग्नान् वादयामासुः, शत्रुमर्दनः स्ववाहनेन गलिताश्वेन पराजितः श्री-
हतो यावत्पलायितुं वाञ्छति, तावत् “गृह्यतां गृह्यताम्”-इति वदन्तः शत्रुसैनिकास्तं
निग्रहीतुं पश्चाद्भावमानाः शत्रुमर्दनं निगृह्य लौहपिञ्जरे स्थापितवन्तः । एवं गलिता-
श्वसदृशः शिष्यो महतेऽनर्थाय भवति । किं तर्हि कुर्यादित्याह-कशां-‘चावूक’
इति भाषाप्रसिद्धां दृष्ट्वा, अकीर्णः=जात्याश्वः, विनीताश्व इव शिष्यो गुरोरिङ्गि-
तमाकारं दृष्ट्वा पापकं=पापानुष्ठानम्-अविनीततामित्यर्थः, परियर्जयेत्=सर्वथा परि-
हरेत् । अयं भावः-यथा जात्याश्वः कशां दृष्ट्वाश्वास्त्वस्याशयं विनाशय कशाताडनं

घोड़े को चावुकसे ताड़ना करता था वह घोड़ा त्यों त्यों पीछे हटता
जाता था और शत्रु के सन्मुख जाने में अचकचाताथा। इसके बाद शत्रु
सैनिकों ने इस राजा के सैनिकोंको अशरण एवं अनाथ जैसा मानकर
बहुत जल्दी पराजित कर दिया। और अपनी विजयकी दुंदुंभी बजा दी।
शत्रुमर्दन नरेश ज्यों ही अपने को उस अड़ियल घोड़े की बजह से
पराजित समझकर एवं श्रीविहीन होकर युद्धभूमि से पलायन करने को
तैयार हुआ कि इतने में ही “ इसको पकड़ लो पकड़ लो ” इस प्रकार
बोलते हुए शत्रुसैनिकों ने उसका पीछा किया और उसको पकड़कर
उन्होंने लौहनिर्मित एक पींजर के अन्दर बन्द कर दिया।

इस कथा से यह सारांश निकलता है कि गलिताश्व-अड़ियल
घोड़े की तरह अविनीत शिष्य भी महान् अनर्थकारी होता है। तथा
जिस प्रकार विनीत घोड़ा अपने स्वामी के अभिप्रायानुसार चलता

वार तेने इटकारवानुं शत्रुं कथुं. परंतु गमे तेटला चायुक्क पडवा छतां पणु
घोडो पाछणज्ज उठतो गयो, शत्रुनी सामे ज्जवामां ते अय्जकतो उठतो. आ
परिस्थितिने लाल लथ शत्रु सेनाअये शत्रुमर्दनं राजन्ना सैन्यमां डाडाडार वतावी
दीधो अने शत्रुओअये एत भेणवी पोताना विजयनां वान्तं वगाडयां. शत्रुमर्दनं
राज्जअये, आ पोताना अडीयल घोडाने डारण्णे पराजित थवुं पडयुं छे ते न्णणी
युद्धभूमिथी पलायन करवानी तैयारी करी अेटलामां “आने पकडी ल्यो, पकडी
ल्यो ” आ प्रकारे बोलता शत्रुसैनिको तेनी पासे आवी पडोअ्या. अने तेने
पकडी बोडाना मज्जुत सणीयावाणा पांजरामां पुरी दीधो.

आ वार्ताथी अये सारांश निकले छे डे गलिताश्व-अड़ियल घोडानी
भाइक अविनीत शिष्य पणु महान् अनर्थकारी होय छे. जे प्रकारे विनीत

अत्र शत्रुमर्दनदृष्टान्तः, तथाहि—

आसीदङ्गदेशे चम्पापुरी नाम नगरी, तत्र नरवीरः समर्थीरः शूरः शत्रु-
मर्दनो नाम वृषतिर्वभूव । स कैदा युद्धमसङ्गेन तुरङ्गमारुह्य हस्त्यश्वरथपदातिभिः
परिवृतः संग्रामभूमौ गतः । तत्प्रतिपक्षनृपसैनिका दुर्बला अपि ससैन्यं शत्रुमर्दनं
शस्त्रास्त्रवर्षणैः पीडयन्ति । अथ शत्रुमर्दनः सोत्साहं शत्रुसैनिकान् मर्दयितुं स्वगाहनं
त्रैरिसेनायां प्रवेशयन् प्रेरयति स्म । तेन तुरङ्गमेन विलोमतः पश्चात् गमनं समार-
ब्धम् । ततः शत्रुमर्दनः कशया स्वगाहनं ताडयन् पुनः पुनश्चै धावयितुमिच्छति,

अंगदेश में चंपापुरी नामकी एक नगरी थी । उसका शासक
शत्रुमर्दन नामका एक राजा था । वह मनुष्यों में श्रेष्ठ, युद्धकला में
निपुण एवं शूरों में वीर था । एक दिन की बात है कि वह नरेश युद्ध
के प्रसंग से घोड़े पर सवार होकर हस्ति, अश्व, रथ एवं पदातियों से
परिवृत होकर संग्राम भूमि में गया । उसके प्रतिपक्षभूत राजा की
सेनाने जो कि एक प्रकार से दुर्बल थी तो भी ससैन्य उस शत्रुमर्दन
नरेश को शस्त्र एवं अस्त्रों के प्रहारों से जर्जरित कर दिया । शत्रुमर्दन
ने जब इस प्रकार की अपनी स्थिति देखी तो उसने उत्साहित होकर
शत्रु के सैनिकों को मर्दन करने के लिये अपने घोड़े को शत्रुकी सेनाके
भीतर प्रविष्ट होने के लिये आगे प्रेरित किया । परन्तु वह घोड़ा उस
सेना के भीतर न घुसकर उल्टा पीछे ही हटने लगा । तब शत्रुमर्दन ने
कोड़े से बारंबार अपने उस घोड़े की ताड़ना करना प्रारंभ की जिससे
कि उस घोड़े द्वारा वह शत्रुसेना हट सके । परन्तु ज्यों-ज्यों नरेश उस

अंगदेशमां चंपापुरी नामनी ऐक नगरी छती. त्यां शत्रुमर्दन नामना
राज्य राज्य करता छता. ते मनुष्यमां श्रेष्ठ, युद्धकलामां निपुण्य अने शूरवीर
छता. ऐक द्विवसनी वात छे डे राज्य शत्रुमर्दन युद्धना प्रसंगे घोडा उपर
स्वार थछ छथी, घोडा, रथ अने सैनिकेना समुदाय साथे संग्राम भूमि
उपर गया. जेना प्रतिपक्षी राज्यनी सेना ऐक प्रकारथी धरुषी ओधी छती,
छतां पणु शत्रुमर्दन राज्यना सैन्यने तथा युद्ध शत्रुमर्दनने पणु शस्त्र अस्त्रना
प्रहारोथी विह्वल भनावी छीधा. शत्रुमर्दनने पोतानी आ प्रकारनी स्थिति
जेध त्यारे ऐक साथे वीर पुरुषने शोले जे रीते शत्रुसैन्यने शिकस्त
आपवा अने पोताना सैन्यने निकलतो क्य्यरधाणु भचापवा पोताना घोडाने
शत्रुसैन्यनी वञ्चोपव्य लक्ष जवा प्रयत्नशील भन्था, परंतु ते घोडा शत्रु-
सेनानी वञ्चे न जतां पाछे छडवा लाग्ये. त्यारे शत्रुमर्दनने डारडथी वार-

भो ! मन्त्रिणः ! किमधुना करणीयं, प्रवलवैरिणश्चतुर्गिणी सेना चतुर्षु खलु भागेषु नगरी-मावेष्ट्य तिष्ठति। मन्त्रिण ऊचुः-प्रभो ! अलमनया चिन्तया, वयमल्पसंख्यका अपि भवदीयतेजः समुपलभ्य शात्रववलविजये प्रखरतरशक्तिशालिनो भवामः । भवत्प्रतापादेव सर्वं रिपुवलं प्रणष्टं भविष्यति । देव ! जात्याश्वमारुह्य भवान् सन्नद्धः सन्नग्रतः शत्रुमभिसरतु, वयमपि सन्नद्धाः सन्तो भवन्तमनुगच्छामः । एवं विचार्य स्वकीयसेनापरिवृतः स मणिनाथो योद्धुं निःसृतः । अल्पवलं मणिनाथ-मवलोक्य शत्रुसैनिकाः केचिदसिचर्महस्ताः केचिद्गुल्लहस्ताः केचिदनुर्वाणधराः

साथ विचार किया, बोला-हे मंत्री महाशयो ! कहो अब क्या करना चाहिये । देखो, प्रवलशत्रुकी चतुरंगिणी सेना नगरी को चारों ओर से घेर कर पड़ी हुई है । सुनकर मंत्रियोंने कहा प्रभो ! चिन्ता मत करो । हम सब लोग आपके प्रवल तेज से उद्दीप्त होकर शत्रुसेना को पराजय करने में प्रखर शक्तिशाली होंगे । आपके प्रताप से ही समस्त रिपुदल प्रणष्ट होगा । स्वामिन् ! सजधज कर आप जात्याश्व पर सवार होकर पहिले से ही शत्रु के सन्मुख जाडये । हम लोग भी सन्नद्ध होकर आपके पीछे-पीछे आते हैं । इस प्रकार विचार कर मणिनाथ नरेश सेना से परिवृत होकर युद्ध करने के लिये निकल पडे । अल्पवलवाले नरेश को देखकर शत्रु के सैनिकोंने उसे घेर लिया । सैनिकों में किन्हीं-किन्हीं के हाथों में तलवारें थीं । किन्हीं-किन्हीं के हाथों में भाले थे । किन्हीं-किन्हीं के हाथों में धनुष एवं बाण थे । किन्हीं-किन्हीं के हाथों में

आ नक्षी मंत्रीओ साथे विचार कर्यो, मंत्रीओने उदेशीने तेहि कहुं-हे मन्त्रि-महाशयो ! कडो डवे शुं करयुं न्नेधओ. प्रणण शत्रुनी चतुरंगिणी सेना नगरने आरे तरक्षी घेरे घालीने पडेल छे. आ प्रकारनुं राननुं कडयुं सांलणी मन्त्रियोओ कहुं, प्रलो ! चिंता न करे. अओे गधा आपना प्रणण तेनथी उदीप्त थध शत्रु सेनाने परान्य करवाभां प्रपर शक्तिशाली थधशुं. आपना प्रतापथी शत्रुनुं सैन्य डारी नथे. स्वामिन् ! आप तैयार थध न्त्याश्व पर सवार थध पहिलांन शत्रुओानी सन्मुख पडोथि, अओे पणु तैयार थध आपनी पाछण पाछण आवीओे छीथे. आ प्रकारे विचार करी मणिनाथ रान सेनाथी परिवृत थध युद्ध करवा भाटे निकणी पडथा. थोडा पणवाणा रानने न्नेध शत्रुसेनाओे तेभने घेरी लीधा. सैनिकोभां डोध डोधना डायभां तरवार डती, डोधना डायभां लाळां डतां. डोधनी पासे धनुष्यणायु डतां. डोधनी

विनेत्र तदभिप्रायानुसारं चेष्टते, तथा मुशिप्योऽपि गुरोरिन्द्रिताकारं दृष्ट्वा तदाशयं विज्ञाय "गुरोर्वचनायासो माभूदिति"—वचनेनापेरित एव तदभिप्रायानुसारं कुर्यात् ।

अत्र मणिनाथदृष्टान्तः—तथाहि—

आसीदजितनाथजिनशासने वङ्गदेशे रङ्गपुरं नाम नगरम् । तत्र प्रजापालनतत्परः स्वजनपदहितकरः प्रशान्तमानसः सुजनहंसमानसः समाश्रितनीति-सरणिः सकलसद्गुणसरोजरणिर्मणिनाथनामको नृपतिः । स चैकदा दुरात्मभिः प्रचलरिपुभिः परितो वेष्टितां स्वनगरीमालोक्य मन्त्रिभिः सह विचारितवान्—भो है उसी प्रकार सुशिव्य भी गुरु के इंगित आकार को समझ कर उनकी आज्ञा के अनुसार चलता रहता है ।

इस विषय में मणिनाथ राजा का दृष्टान्त है और वह इस प्रकार है—

द्वितीय तीर्थकर श्री अजितनाथ स्वामी के समय में बंगाल देश के अन्दर रंगपुर नामका एक नगर था । वहाँ के नरेश का नाम मणिनाथ था । यह प्रजापालन करने में सदा तत्पर रहा करता था । इससे देश भर में आनन्द मंगल छा रहा था । राज्यकार्य से इसका मन कभी भी कायर नहीं बनता था । सुजनरूपी हंसों को रमने के लिये यह मानसरोवर जैसा माना जाता था । राजनीति के पालन करने में यह सर्वदा दत्तचित्त रहा करता था । सद्गुणरूपी कमलों को विकसित करने के लिये यह सूर्य जैसा था । एक दिन की बात है कि इसकी नगरी को इसके प्रचल शत्रु ने आकर घेर लिया । राजाने यह देखकर मंत्रियोंके

घोडा पोताना मादीकना कडेवा मुज्ज्ज आले छे, ओ न रीते सुशिव्य पण्ण गुरुना धी गित आकारने समल्ल ओमनी आज्ञा प्रभाण्णे आलतो रहे छे.

आ अंगे मणिनाथ राजन्तुं दष्टांत छे ने आ प्रकारन्तुं छे.

धीन तीर्थकर श्री अजितनाथ स्वामीना समयमां बंगाल देशमां रंगपुर नामना ओक नगरमां मणिनाथ नामना राज्ज्ज राज्ज्ज करता हुता. ने प्रज्ज पालन करवामां सदा तत्पर रहेनार हुता. आथी देशभरमां आनन्द मंगल परताधि रहेल्ल हुतो. राज्जकार्यथी ओन्तुं मन कही पण्ण कायर भन्तुं नही. मुज्जनरूपी हंसोने रमवा भाटे ते मानसरोवर नेवा गण्णता हुता. राज्जनीतिन्तुं पालन करवामां ते सर्वदो दत्तचित्त रहेता हुता, सद्गुणरूपी कमलाने विकसित करवा भाटे ते सूर्य नेवा हुता. ओक द्विपसनी बात छे के ओना नगरने ओना प्रभण शत्रुओ, सैन्यसाथे आवी घेरी दीधुं. राज्ज्ज

टीका—

‘अणासवा’ इत्यादि—अनाश्रवाः=अनाज्ञाकारिणः, उच्छृङ्खलत्वात्, स्थूलवचसः=अविचारितभाषिणः, अभिमानीत्वात्, कुशीलाः=कुत्सिताचारवन्तः दुष्टस्वभावा उभयलोकभयरहितत्वादित्यर्थः । शिष्याः मृदुमपि=कोमलहृदयमपि गुरुं, चण्डं=सकोपं प्रकुर्वन्ति । पूर्वार्धनाविनीतशिष्याचरणं प्रदर्शितम् ।

का आराधन करता हुआ स्व और पर का कल्याण करनेवाला होता है ॥ १२ ॥

फिर भी सूत्रकार अविनीत एवं विनीत के स्वरूप को कहते हैं—
‘अणासवा०’ इत्यादि ।

अन्वयार्थ—(अणासवा-अनाश्रवाः) अविनीत होने से आज्ञानुसार नहीं चलने वाले (स्थूलवया-स्थूलवचसः) अभिमानी होने से बिना विचार बोलनेवाले, (कुशीला-कुशीलाः) इहलोक एवं परलोक के भय से रहित होने के कारण दुष्ट स्वभाववाले ऐसे (सीसा-शिष्याः) शिष्य (मिउंपि-मृदुमपि) कोमल हृदयवाले गुरु को भी (चंडं पकरंति-चंडं प्रकुर्वन्ति) कोपयुक्त करते हैं । एवं जो शिष्य (चित्ताणुया-चित्ताणुगा) आचार्य महाराजकी आराधना तप एवं संयम की हेतु होती है ऐसा जानकर आचार्य महाराज की मनोवृत्तिका अनुसरण करनेवाले होते हैं अर्थात् उनके आज्ञा के आराधक होते हैं, तथा (दक्षखोववेया-दक्ष्योपपेताः) गुरु महाराज की सुख शांता के अभिलाषी होने से

इन्द्रावी आ प्रकारे सुशिष्य पणु गुरु महाराजनी आज्ञानु आराधन करतां पौतानु अने धीजनु कल्याणु करवावाणा डोय छे. ॥१२॥

सूत्रकार बहुमां अविनीत अने विनीतना स्वरूपने कडे छे. अणासवा० इत्यादि अन्वयार्थ—अणासवा-अनाश्रवाः अविनीत जनवाथी आज्ञानुसार नयाल-वावाणा स्थूलवया-स्थूलवचसः अभिमानी डोवाथी वगर विचार्युं ओलवावाणा कुशीला-कुशीलाः आलोड अने परलोडना लयथी रहित डोवाना डारणे दुष्ट स्वभाववाणा ओवा शिष्य डोभण इहयवाणा गुरुने पणु डोप युक्त करे छे. अथवा वे सीसा-शिष्याः शिष्य मिउंपि-मृदुमपि डोभण इहयवाणा गुरुने पणु चंडं पकरंति-चंडं प्रकुर्वन्ति डोप युक्त करे छे. आचार्य महाराजनी आराधना तप अने संयमना हेतुथी डोय छे ओवुं जाली आचार्य महाराजनी मनोवृत्तिनु अनुसरणु करवावाणा डोय छे, अर्थात् ओभनी आज्ञाना आराधक डोय छे तथा दक्षखोववेया-दक्ष्योपपेताः गुरु महाराजनी सुखशांताना अभिलाषी

केचिद् यष्टिधारिणः केचित्तोमरकरा अनेकानेकशस्त्रास्त्रधारिणः परितो मणिनाथं वेष्टितवन्तः । एवं विविधसंकटेषु समुपस्थितेषु स मणिनाथस्तेन जात्याश्रयादनेन शत्रुसैनिकरचितविविधव्यूहेषु मृगेषु सिंह इव निःशङ्कः प्रविश्य सर्वानुचरैः सहाग्रतो धावमानः शत्रुसैनिकेषु विजयं प्राप्तवान् । एवं मुशिष्यः स्वगुरुमाराधयन् स्वपर-कल्याणाय भवति ॥ १२ ॥

पुनरविनीतविनीतयोराचरणमाह—

मूलम्—अणासंवा थूलवया कुसीला, मिउंपि चंडं पकरंति सीसा ।

चित्ताणुया लंहु दकंखोववेया, पसारंए ते' हुं दुरासंयंपि ॥१३॥

छाया—

अनाश्रवाः स्थूलवचसः कुशीलाः, मृदुमपि चण्डं प्रकुर्वन्ति शिष्याः ।

चित्तानुगा लघु दाक्ष्योपपेताः, प्रसादयन्ति ते हु दुराशयमपि ॥ १३ ॥

लकडियां थीं । किन्हीं—किन्हीं के हाथों में तोमरजाति के शस्त्र थे । इस प्रकार अस्त्र एवं शस्त्रों से सुसज्जित उस शत्रुसेना ने चारों ओर से मुझे घेर लिया है, यह देखकर नरेश ने अपने उस घोड़ेको उस सेना के रचित विविध प्रकार के व्यूह में आगे बढ़ाया । जिस प्रकार मृगों के टोले में निःशंक होकर सिंह घुस जाता है उसी प्रकार मणिनाथनरेश भी उस घोड़े पर बैठे हुए उस शत्रु की सेना में घुस पड़े और अपनी एवं अपने अनुचरों की उनसे रक्षा करते हुए आगे बढ़ते गये । शत्रुसेना भी इनसे ज्यों—ज्यों घे आगे बढ़ते जाते थे परास्त होती जाती थी । इस प्रकार शत्रुसेना को पराजित कर मणिनाथ ने अपनी विजयपताका वहाँ फहराई । इसी प्रकार मुशिष्य भी गुरु महाराज की आज्ञा

हाथमां लाकडीयाे डती, डोएना हाथमां तोमर नामनां शस्त्र डतां. आ प्रकारना शस्त्र—अस्त्रथी सुसज्ज ओवी शत्रुसेनाओ मने घेरी लीधेल छे, ओवुं नेध मण्डीनाथ राजओ पोताना घोडाने ओ सेनाओ रवेला व्यूहनी वच्चे आगण वधार्यो. ने रीते मृगोना टोणाभां निःशंक गनी सिंह धूमतो होय, आ रीते शत्रुसेनानी वच्चे घुसी नध पोतानुं अने पोताना सैनिकानुं रक्षणु करतां करतां आगण वधवा मांडयुं. आथी शत्रुसेनाभां लंगाणु पडयुं. आ प्रकारे शत्रुसेनाने पराजित करी राज मण्डीनाथे पोतानी विजयपताका

चण्डनामकः शिष्यो मिलितः । अथैकदा भिक्षाचर्या गच्छतस्तस्याचार्यस्य मार्ग-
कस्मादज्ञानतो मृतमण्डूकलेवरोपरि चरणतलं संलग्नम् । तदनुगतोऽसौ चण्डस्तदानीं-
गुरुमब्रवीत्-अहह ! भवता चरणाघातेन मण्डूको मारितः, तदा गुरुः शिष्यवचनं श्रुत्वा
दुःशीलोऽयमिति मत्वा समतामवलम्ब्य मौनमास्थाय स्वस्थानमागत्य स्वाध्याय-
ध्यानसंलग्नो जातः । तदानीं चण्डेन मनसि विचारितम्-मामयं प्रतिदिनं प्रतिक्षणं
ग्रहणासेवनाशिक्षायां प्रेरयति-मा प्रमाद्यताम्, मा प्रमाद्यताम् । इति कार्यभारं

छिट्टीका अन्वेषण करना ही एक उसका काम था । इसी से गुरुमहाराज
जैसे परमोपकारी के साथ भी यह सदा अपनी छेप भरी दृष्टि रखा
करता था । एक दिन की बात है कि जब गुरु महाराज स्वयं गोचरी के
लिये जा रहे थे-तब मार्ग में इनका पैर एक मृतक मण्डूक के कलेवर
के ऊपर अनजान से पड़ गया । साथ में यह क्रोधी शिष्य भी था ।
जो गुरुमहाराज के पीछे-पीछे चल रहा था । उसने ज्यों ही यह देखा,
सहसा बोल उठा कि गुरु महाराज आप के पैर के आघात से मण्डूक की
विराधना हुई है । इस प्रकार शिष्य का वचन सुनकर और यह दुःशील
है ऐसा जानकर समता का अवलंबन करके चुपचाप गुरु महाराज अपने
स्थान पर वापिस लौट आये और वहाँ आकर स्वाध्याय एवं ध्यान में
लीन हो गये । ऐसा देखकर उस समय चण्ड-(क्रोधी शिष्य) ने मनमें
विचार किया-देखो गुरु महाराज तो मुझे प्रतिदिन एवं-प्रतिक्षण
“प्रमाद मत करो, प्रमाद मत करो” इस प्रकार से ग्रहण शिक्षा और

महाराजना छिट्टीका अन्वेषण करुं ऐ न ऐतुं काम इतुं । ऐधी गुरु
महाराज नेवा परमोपकारीना साथे पणु सदा पोतानी द्वेशलरी । दृष्टी राभ्या
करोता इतो । ऐक द्विवसनी वात छे के, न्यारे गुरुमहाराज पोते गोचरी-
भाटे नर्ध रखा इता, त्यारे मार्गमां तेमने पग ऐक भरेला देडकाना
कलेवर उपर अन्वेषुथी पडी गयो । ते क्रोधी शिष्य पणु साथे इतो ने गुरु
महाराजनी पाछण पाछण आवतो इतो न्यारे तेणु आ न्नेयुं तो तुर्तन
पोली उठयो के गुरु महाराज आपना पगना आघातथी देडकानुं मृत्यु थयुं
छे । आ प्रकारनां शिष्यनां वचन सांलणीने अने ते दुःशील छे, तेवुं नालीने ।
समतानुं अवलंबन करीने गुरु महाराज चुपचाप पोताना स्थान उपर पाछा
करी गया । अने त्यां आवीने स्वाध्याय तेमन ध्यानमां लीनणी गया । आवुं
नेध अन्डे (ते क्रोधी शिष्ये) मनमां विचार कर्ये । न्नुयो गुरु महाराज तो
मने प्रतिदिन तेमन प्रतिक्षणु “प्रमाद न करे, प्रमाद न करे” आ प्रका-

अत्र चण्डशिष्यदृष्टान्तः, तथाहि—

एकः सरलहृदयः सदयस्तपस्वी तेजस्वी रत्नत्रयसम्पन्नः कोमलान्तःकरणः सुभद्रनामको वृद्धाचार्य आसीत् । तस्यातिविद्वेपी गुरुच्छिद्रान्वेषी प्रचण्ड-चतुरार्ह से युक्त होते हैं वे शिष्य (दुरासयंपि-दुराशयं अपि) कुपित भी अपने गुरुमहाराज को (हु) निश्चय से (लहु-लघु) शीघ्र ही (पसायण-प्रसीदयन्ति) प्रसन्न करते हैं ।

अविनीत शिष्य का आचरण चण्ड अर्थात् क्रोधी शिष्य के दृष्टान्त से वर्णन किया जाता है—

एक वृद्ध आचार्य थे । जिनका नाम सुभद्र था । हृदय इनका कषाय निर्मुक्त होने से बहुत ही सरल था । और दयालु थे । वे बहुत ही अधिक तपस्या किया करते थे, अतः “तपस्वी” इस नाम से प्रसिद्ध थे । जैसे ये तपस्वी थे वैसे ही ये तेजस्वी भी थे । इसी से रत्नत्रय से सुशोभित इनका अन्तःकरण बना हुआ था । आर्जव (सरलता) धर्मकी प्राप्ति हो जाने से जो मनमें एक प्रकार की नरमाई आजाती है उसका नाम कोमलता है । यह कोमलता इनके अन्तःकरण में पूर्णतया भरी हुई थी । इनका एक शिष्य था । इसका नाम चण्डथा । यह यथा नाम तथा गुणवाला था । जितने गुरु महाराज कोमल परिणामी थे उतना ही अधिक यह कठोर था । अपने गुरु महाराज के

डोवाथी चतुरार्हथी युक्त डोय छे ते शिष्य दुरासयंपि-दुराशयंअपि डोधायमान थयेला पोताना गुरु महाराजने हु निश्चयथी लहु-लघु न्हदी पसायण-प्रसीदयन्ति प्रसन्न करे छे.

अविनीत शिष्यत्वं आचरणं चण्डं अर्थात् क्रोधी शिष्यना दृष्टान्तथी वर्णनं करवामां आवे छे.

એક વૃદ્ધ આચાર્ય હતા, જેમનું નામ સુભદ્ર હતું. એમનું હૃદય કષાય નિર્મુક્ત હોવાથી ખૂબ સરળ હતું અને દયાળુ હતા. તેઓ ખુબ અધિક તપસ્થા કર્યા કરતા હતા. જેથી તપસ્વી નામથી પ્રસિદ્ધ હતા. જેવા એ તપસ્વી હતા એવા એ તેજસ્વી પણ હતા. તેજસ્વીપણાને લીધે રત્ન-ત્રયથી સુશોભિત એમનું અંતઃકરણ હતું. આર્જવ (સરલતા) ધર્મની પ્રાપ્તિ થઈ જવાથી જે મનમાં એક પ્રકારની નરમાઈ આવી બન્ય છે, એનું નામ કોમળતા છે. આ કોમળતા એમના અંતઃકરણમાં પૂર્ણતયા ભરી હતી. એમને એક શિષ્ય હતો જેનું નામ ચણ્ડ હતું. તે યથા નામ તથા ગુણવાળો હતો. જેટલા ગુરુ મહારાજ કોમળ પરિણામી હતા એટલા જ એ કઠોર હતા. પોતાના ગુરુ

वशगतोऽसौ वृद्धाचार्यः शरीरं त्यक्त्वा सर्पदेहं प्राप्तवान् । स च विपमविपधरो नाम्ना चण्डकौशिकः सर्पो जातः । एवं चण्डशिष्यवदविनीतशिष्या मृदुमपि गुरुं प्रकोपयन्ति, दुर्गतिमपि प्रापयन्ति ।

अथ विनीतशिष्याचरणं प्रदर्शयति—‘चित्ताणुया’. इत्यादि । चित्ताणुगाः= आचार्यमनोवृत्त्यनुसरणशीलाः, आचार्यांराधनस्य तपःसंयमहेतुत्वात्, दाक्ष्योपेताः—दाक्ष्यं=चातुर्यं तेनोपेताः=युक्ताः, गुरुशाताभिलाषित्वात्, ते शिष्याः हु= निश्चयेन, दुराशयमपि=सकोपमपि गुरुं, लघु=शीघ्रं प्रसादयन्ति=प्रसन्नं कुर्वन्ति । अथ चण्डरुद्राचार्यशिष्योदाहरणम्—तथाहि—

कदाचिदुज्जयिनीनगर्यां शिष्यपरिवारसहितः स्वभावतश्चण्डश्चण्डरुद्रनामक आचार्यः समवसृतः । स च साधूनां ग्रहणासेवनाशिक्षायां न्यूनातिरिक्तादिदोष-

जो अन्धकार होने की वजह से दिखलाई नहीं पड़ रहा था । उससे उनका माथा टकराया और फूट गया विशिष्ट आघात होने से उनके चित्त में आर्त्तध्यान उत्पन्न हुआ । इससे वे वृद्ध आचार्य आर्त्तध्यान में भरकर विपम-विपधर चण्डकौशिक सर्पकी पर्याय में उत्पन्न हुए । इस प्रकार चण्डशिष्यकी तरह अविनीत शिष्य कोमल हृदयवाले भी अपने गुरु महाराज को कुपित करते हैं और दुर्गति तक पहुँचाते हैं—

विनीत शिष्यका आचरण कैसा होता है, यह बात चण्डरुद्राचार्यके शिष्य के उदाहरण से स्पष्ट की जाती है—

किसी समय उज्जयिनी नगरी में शिष्य परिवार सहित चण्डरुद्र नामक एक आचार्य जो स्वभावतः क्रोधी थे आये । वे एकान्त स्थान में बैठकर स्वाध्याय एवं ध्यान इस अभिप्राय से किया करते थे कि कहीं

तेमनुं माथुं टकरायुं अने कुटी गयुं. विशिष्ट आघात होवाधी तेमना चित्तमां आर्त्तध्यान उत्पन्न थयुं, लेनाधी ते वृद्ध आचार्य आर्त्तध्यानमां भरीने विपम विपधर चण्डकौशिक सर्पनी पर्यायमां उत्पन्न थया. आ प्रकारे चण्ड शिष्यनी माङ्क अविनीत शिष्य कोमल हृदयवाणा पोताना गुरुने पणु क्रोधीत अनावे छे, अने दुर्गतिमां पहुँचाडे छे.

विनीत शिष्यनुं आचरणुं केषुं होय छे ते वात चण्डरुद्राचार्यना शिष्यना उदाहरणधी स्पष्ट करवामां आवे छे.

कैथं अेक समय उज्जयिनी नगरीमां शिष्य परिवार सहित चण्डरुद्र नामना अेक आचार्य ले स्वभावे क्रोधी हुता ते पधार्यां ते अेकान्त स्थानमां भेरीने स्वाध्याय तेमन् ध्यान अेवा अलिप्रायधी करता हुता के उधारैक

दत्त्वाऽनेन विश्रामाय मह्यं समयो न प्रदीयते, अद्य तु स्वयमेव प्रमादवशं गतः । प्रतिक्रमणसमये सायंकाले सर्ववैरनिर्यातनं करिष्यामि । तदनु सायंकाले दैवसिक-प्रतिक्रमणे कृते सति स चण्डो वन्दन समये श्रावकसंघसमक्षे ब्रवीति-गुरो ! मण्डूकविराधनायाः प्रायश्चित्तं कथं न गृह्यते, एवं पुनः पुनः शिष्येणोक्तः सन् गुरुः क्रोधवशेन तं शिष्यं ताडयितुं सवेगमुत्थितो यावत् तदभिमुखं गच्छति ताव-दुपाश्रये तमसि पापणमयस्तम्भे संघट्टितं तस्य शिरः स्फुटितम् । तदाऽऽर्तध्यान

आसेवन शिक्षा देते रहते हैं । तथा मेरे ऊपर इतना अधिक कार्यभार रख दिया है कि जिससे मुझे विश्राम करने का भी समय नहीं मिलता है । और आप स्वयं प्रमाद का सेवन करते हैं । आज सायंकाल के समय प्रतिक्रमण करने के अवसर पर मैं उनसे समस्त वैर भाव का बदला लूंगा । इस प्रकार विचार कर उसने सायंकाल के समय प्रतिक्रमण कर चुकने पर वन्दना के समय श्रावकसंघ के समक्ष गुरुमहाराज से कहा कि हे गुरो ! आज आपने मण्डूक की विराधना का प्रायश्चित्त क्यों नहीं लिया । शिष्य की इस बात को गुरु महाराज ने लक्ष्य में नहीं दिया । अतः शिष्य को बुरा मालूम दिया और ईर्ष्यावश उसने फिर से वही बात वारंवार कही । गुरुमहाराज को सुनकर क्रोध का आवेश हो आया । इससे वे उस शिष्य को मारने के लिये खड़े हुए और उसकी तरफ आगे बढ़े । बीच में उस उपाश्रय में एक पापाण का स्तम्भ था

रथी अडलु शिक्षा अने आसेवन शिक्षा आपे छे अने भारा उपर अटले। अधिक कार्यभार राख्ये छे के जेथी भने विश्राम करवानेो समय भणतो नथी, अने पोते प्रमादनुं सेवन करे छे. आज सांजना वणते प्रतिक्रमण करवाना अवसर उपर हुं तेभनाथी समस्त वेरलावनेो भइलेो लक्षि. आ प्रकारे विचार करी तेछे सायंकाणनुं प्रतिक्रमण करी लीधा पछी वंदनाना समये श्रावक संघनी समक्ष गुरु महाराजने कहुं के छे गुरु ! आज आपे देउकानी विराधनानुं प्रायश्चित केम न लीधुं ? शिष्यनी आ वातने गुरु महाराजे लक्षमां लीधी नही आथी शिष्यने पराण लाग्युं अने धर्षावश कुरीथी तेने ते वात वारंवार कही. गुरु महाराजे सांजणीने तेभना मनमां कोधनेो आवेश आवी गयेो जेथी ते पोताना शिष्यने मारवा उला थया अने तेनी तरफ आगण वध्या, वयमां ते उपाश्रयमां अेक पत्थरनेो स्तंभ छुतेो जे अंधकार होवाना कारेणु देणवामां आवतो न छुतेो ते स्तंभ साथे

निर्विण्णोऽयं गृह्वासेन, भार्ययाऽप्ययं परित्यक्तः अतः प्रसीदत, संसारदुत्तारयत, साधुभिरुक्तम्—अत्रास्माकं गुरुस्ति स प्रत्राजयिष्यति, वयमनधिकारिणोदीक्षा—दानस्य, तस्मात् तत्समीपं गच्छत, तदनु मित्रवर्गस्तमिभ्यपुत्रं चण्डरुद्राचार्यस्य समीपं नीत्वा तं प्रणम्य सपरिहासमुक्तवान्—भदन्त ! दीयतामस्मै दीक्षा । ततस्तत्परिहासवचनं श्रुत्वा संजातकोपेन चण्डरुद्राचार्येण कथितम्—भस्मानयेति, तदानीमेकेन मित्रेण हास्यादेव भस्मानीतं, ततश्चण्डरुद्राचार्यो भस्म गृहीत्वा बलादेव तत्केशलुञ्चनं चकार, तदा तद्रयस्याः सर्वे प्रत्रज्याभयात्पलायिता ।

उन्होंने हँसी में कहा कि महाराज ! इस नव परिणीत श्रेष्ठ पुत्र को आप दीक्षा दीजिये । क्यों कि यह गृहस्थावाससे उदासीन हो रहा है । इस की धर्मपत्नी ने भी इसका परित्याग कर दिया है । अतः प्रसन्न होकर इसे संसार से पार उतारिये । मुनिराजों ने सुनकर उनसे कहा कि यहां हमारे गुरुमहाराज विराजमान हैं—वे ही दीक्षा देंगे—हम लोग उनके समक्ष दीक्षा देने के अधिकारी नहीं हैं । इसलिये आप लोग इन्हें उनके ही पास ले जाइये । साधुओंके इस प्रकार के कहे गये वचनों को सुनकर वे लोग अपने उस मित्र को चंडरुद्र आचार्य के समीप ले गये । आचार्य महाराज को वन्दना कर वे उनसे भी परिहासपूर्वक यही कहने लगे कि हे भदन्त ! इसको आप दीक्षा दीजिये । उनकी हँसी के वचन सुनकर कुपित होते हुए चंडरुद्र आचार्य बोले—ठीक है—भस्म लाओ मैं इसे दीक्षा देता हूँ । इतना सुनते ही किसी एक मित्र ने हंसी—हंसी में शीघ्र ही भस्म लाकर वहां उपस्थित कर दी । चंडरुद्राचार्य ने उस भस्म

तेमझे कछुं के भडारान् ! आ नवपरिणीत श्रेष्ठ पुत्रने आप दीक्षा आपो केभके ओ गृहस्थावासधी उदासीन भनी रहेल छे. आनी धर्मपत्निओ पणु तेनो त्याग कर्यो छे. आधी प्रसन्न थधने आने संसार सागरधी पार उतारे. मुनिराजोओ ओ सांभणीने तेमने कछुं के अडिं अमारा गुरु भडारान् गिराओ छे ते दीक्षा आपरो. अमे तेमनी सामे दीक्षा आपवाना अधिकारी नथी. भाटे आप लोग तेने गुरु भडारान् पासे लई नव. साधुओना आ प्रकारे कडेवाभां आवेल वचनोधी तेओ तेमना मित्रने अंउड्र आचार्य पासे लई गया. आचार्य भडारान्ने वंदना करी तेओ तेमने पणु परिहासपूर्वक ओवुं न कडेवा लाग्या के छे भदन्त ! आने आप दीक्षा आपो. तेमनां हांसीनां वचन सांभणीने कधीत थतां अंउड्र आचार्य जोड्या ठीक छे—भस्म लाओ, हुं तेने दीक्षा आपुं छुं आ सांभणतां कोध ओक मित्रे डसतां डसतां तुरतन भस्म लावीने डान् करी. अंउड्राचार्ये ओ भस्मने डथभां

दर्शनात् कौपोत्पत्तिर्माभूदिति मनसि कृत्वा रहसि स्वाध्यायध्यानं कुर्वन्नन्यसाधुन्यः पृथगवतिष्ठते । अत्रान्तरे उज्जयिनीयास्तव्य इभ्यपुत्रः कोऽपि नवपरिणीतः सुहृत्परिवृतः कृतकुङ्कुमरागः प्रवरनेपथ्यः साधूनां चन्दनार्थं तत्रागतः, साधूनां सविधि चन्दनं कृत्वा तत्र स्थितः । अथ तन्मित्रैः कैश्चित् सोपहासमुक्तम्-भो साधवः ! धर्मं व्रूत । ते साधवस्तेषामुपहासवचनं विदित्वा किमपि नोक्तवन्तः, किंतु स्वाध्यायं कुर्वन्त आसन् । पुनस्तैः सपरिहासमुक्तम्-हे भगवन्तः ! दीयतामस्मै दीसा,

साधुओं की ग्रहण शिक्षा एवं आसेवन शिक्षा में न्यूनातिरिक्त दोषों के देखने से उनके प्रति मेरे चित्त में क्रोध की उत्पत्ति न हो जाय, अतः वे साधुओं से सदा अलहदा ही एकान्त में रहा करते थे । और वहाँ स्वाध्याय एवं ध्यान करते-करते अपना समय व्यतीत करते । एक समय की बात है कि उसी उज्जयिनी नगरी का रहने वाला कोई एक सेठ का पुत्र कि जिसका उसी समय विवाह हुआ था अपनी मित्रमंडली सहित सजधज के साधुओंको वन्दना करनेके लिये आया ! उसके पैरों का माहुर अभी ढीला भी नहीं पड़ा था और हाथोंकी मेंहदी भी अभी पूरी तरह से सुखी नहीं थी । वह सविधिवन्दना कर एक ओर बैठ गया । इतने में उसके मित्रों ने मुनिराज से उपहास करके कहा कि हे महाराज ! आप लोग धर्मका उपदेश दीजिये । साधुओंने उनके हास्य मिश्रित वचन सुनकर उन्हें धर्मका उपदेश नहीं दिया और न कुछ कहा भी किन्तु अपने स्वाध्याय करने में ही तल्लीन रहे । पश्चात् फिर भी

साधुओंकी प्रहृष्ट शिक्षा अने आसेवन शिक्षामां न्यूनातिरिक्त दोषोंने जेवाथी तेमना प्रति मारा चित्तमां डोषनी उत्पत्ति न थई जाय, आथी तेजो साधु-ओंथी सदा अलायदा ओका-न्तमां न रह्या करता इत्ता, अने त्यां स्वाध्याय अने ध्यान करतां करतां पोतानो समय व्यतित करता, ओक समयनी, बात छे डे, ओ उज्जयिनी नगरीमां रहेतार ओक शैठनी पुत्र डे जेने तुरतमां न विवाड थये इतो, ते पोताना मित्र मंडल साधे जनी इनीने, साधुओंने वंदना करवा आये, ओना पगनुं माहुर (मडावर) पगना तणीसानो बाड रंग) इणु ढीळुं थयेड न इतुं तेम हाथमांनी मेंही पणु सुकाई न इती, ते सविधि वंदना करी ओक पालु गेठो, ओ वपते तेना मित्रोये मुनिराजने उपहास करी कहुं डे महाराज ! आप धर्मने उपदेश, आपो, साधुओंये तेमनुं हास्य मिश्रीत वचन सांलणीने उपदेश न आये, अने न कांई पणु कहुं, पोतानो स्वाध्याय करवामां न तल्लीन रह्या, इरीयो, इसतां, इसतां

वान्धवा उपद्रवं करिष्यन्ति । गुरुनोक्तम्—अहो शिष्य ! संप्रति रात्रिर्जाता, अहं रात्रौ न पश्यामि । ततस्तेन शिष्येण स्वकीयस्कन्धे गुरुरारोपितः, मार्गं उच्च-नीचप्रदेशे वहनेन गुरुचेतसि खेदः समुत्पन्नः, तेन चण्डरुद्राचार्येण शिष्यशिरसि रजोहरणदण्डप्रहारो दत्तः, असौ शिष्यो मनस्येयं विचारयति—अहो! ममाराधनीयो गुरुं मयैदृशीमवस्थां प्रापितः इति । एवं सम्यग्भावनायाः तस्य शिष्यस्य केवल-

बन्धुजन यहाँ आकर उपद्रव करेंगे। शिष्यकी यह बात सुनकर आचार्य महाराज ने कहा—ठीक है परन्तु इस समय तो अब रात्रि हो चुकी है तथा मुझे रात्रि में दिखता भी नहीं है—अतः जाना ठीक नहीं है। आचार्य महाराज की बात सुनकर शिष्य ने कहा कि आप इसकी चिन्ता नहीं करें। मैं आप को अपने कंधे पर बैठा लूंगा। ऐसा कह कर उस शिष्य ने गुरु महाराज को अपने कंधे पर बैठा लिये और उस स्थानसे दूसरे स्थान पर पहुँचने के लिये प्रयाण प्रारंभ कर दिया। मार्ग सम विषम था। अतः गुरु महाराज को अचानक हिलने डुलने की वजह से कष्ट हुआ और इससे उनके चित्तमें अशांति उत्पन्न हो गई। उन्होंने बैठे-बैठे ही अपना रजोहरण दंड उसके मस्तक पर देभारा। चोट लगते ही शिष्य ने चित्त में चिन्तन किया कि हे मन जिनकी मुझे सेवा करनी चाहिये उन गुरु महाराज को इस समय मेरे द्वारा कितना कष्ट पहुँच रहा है। गुरुमहाराज की इस कष्टावस्था का कारण मैं ही बन रहा हूँ। इस प्रकार की भक्तिरूप हार्दिकभावना के प्रभाव से क्षपक श्रेणी

बन आड़ियां आवीने उपद्रव करे। शिष्यनी आ वात सांलणीने आचार्य महाराजने कहुं, ठीक छे. परंतु आ समये रात्रीनुं आगमन थयं युक्त्युं छे तेम मने रात्रीमां सुनतुं पय नथी, आधी नवुं ठीक नथी. आचार्य महाराजनी वात सांलणी शिष्ये कहुं, आप जेनी चिंता न करे हुं आपने मारा भला उपर जेसाडी लथि जेवुं कही ते शिष्ये गुरु महाराजने पोताना भला उपर जेसाडी लीधा जने जे स्थानथी पीन स्थान तरुं प्रयाण करवाने प्रारंभ कर्यो. मार्ग सम विषम डेतो. आधी गुरु महाराजने अचानक डलवा डोलवाने कारणे कष्ट थयुं जने तेथी जेमना चित्तमां अशांती उत्पन्न थयं तेजोजे जेठा जेठा न पोतानो रजोहरण दंड जेना माथा उपर भार्यो, चोट लागतांन शिष्ये मनमां विचार्युं के छे मन! जेनी मारे सेवा करपी जेधजे जे गुरु महाराजने आ समय मारा तरुंथी डेटवुं कष्ट थयं रह्युं छे. गुरु महाराजनी कष्ट अवस्थानुं कारणे हुं न जनी रहल छुं. आ प्रकारनी भक्तिरूप हार्दिक भावनाना प्रभावथी क्षपक श्रेणी प्राप्त करी घातक जेमोना

ततः स इभ्यपुत्रो भाग्यवशेन लघुकर्मणा च भावश्रमणो जातः, तदानीं तस्येभ्यपुत्रस्य लोचे कृते सति "मम प्रव्रज्यैवास्तु" इति परिणामः सम्पन्नः, ततो रजोहरणसदोरकमुखवस्त्रिकादिभिः साधुवेपं धृत्या द्रव्यभावतः संपतो जातः । ततोऽसौ गृहीतप्रव्रज्यः शिष्यो गुरुमव्रवीत्—भदन्त ! अन्यत्र व्रजामः, अत्र मम

को हाथ में लेकर जवर्दस्ती उसके केशों का लुंचन कर दिया । मित्रों ने यह देखकर समझा कि कहीं हमारी भी यही हालत न हो जाय—हमें भी जवर्दस्ती से दीक्षित न बना दिया जाय—इस डरसे वे सब वहां से शीघ्र भाग गये ।

उस समय वह श्रेष्ठिपुत्र भाग्य के उदय से एवं लघुकर्म के प्रभाव से भावश्रमण बन गया था । क्यों कि जिस समय आचार्य-महाराजने उसके केशोंका लुंचन किया था उस समय उसके चित्त में यही परिणाम हो गया था कि मेरी दीक्षा ही हो जाय तो सर्व सुन्दर है ।" इस परिणाम विशिष्ट-भाव श्रमण अवस्था संपन्न—उस इभ्यपुत्र के लिये आचार्य महाराज ने केशलुंचन करने के बाद ही रजोहरण एवं सदोरक मुखवस्त्रिका प्रदान करदी—इससे वह यथार्थ में द्रव्यरूप से भी साधु वेपसे सुशोभित होने लगा । इस प्रकार द्रव्य एवं भाव से संयत अवस्था को धारण किये हुए—उस नवीन शिष्य ने गुरुमहाराज से कहा कि हे भदन्त ! चलो अब यहां से दूसरी जगह चलें । नहीं तो मेरे

लघुने ज्वरज्वस्तीथी तेना वाणनेा दोच कुर्ये। मित्रे आनेछने अणुं सभन्था के अमारी पणु आवी डालत न थछ नथ अमने पणु ज्वरज्वस्तीथी दीक्षीत न भनावाय आवा डरथी तेअो सधणा त्यांथी तुरतज् लागी गया.

ते समय श्रेष्ठी पुत्र भाग्यना उदयथी तेमज् लघु कर्मना प्रभावथी भावश्रमणुं भनी गथे। डते केमके जे समय आचार्य महाराजने तेना वाणनेा दोच कुर्ये त्तारे ते समथे तेना चित्तमां अज् परिष्णाम थछ गथुं डतुं के भने दीक्षा अपाय तो ते सर्व सुन्दर छे. आ परिष्णाम विशिष्ट-भावश्रमणुं अवस्था संपन्न-ते ध्विय पुत्र माटे आचार्य महाराजने केशनेा दोच कुर्यां पछी रजोहरणुं अने दोरा साधेनी मुखवस्त्रिका आपी. आथी यथार्थमां द्रव्य रूपथी पणु साधु वेशथी सुशोभित भनी रह्यो. आ प्रकारे द्रव्य अने भावथी संयत अवस्थाने धारणुं करीने अे नवीन शिष्ये गुरुमहाराजने कथुं के डे भदन्त ! आलो डवे अडिथी जीज् स्थणे जधअे. नहीं तो मारा पंधु-

वान्यत्रा उपद्रवं करिष्यन्ति । गुरुगोक्तम्—अहो शिष्य ! संप्रति रात्रिर्जाता, अहं रात्रौ न पश्यामि । ततस्तेन शिष्येण स्वकीयस्कन्धे गुरुरारोपितः, मार्गं उच्च-नीचप्रदेशे वहनेन गुरुचेतसि खेदः समुत्पन्नः, तेन चण्डरुद्राचार्येण शिष्यशिरसि रजोहरणदण्डप्रहारो दत्तः, असीं शिष्यो मनस्येवं विचारयति—अहो! ममाराधनीयो गुरुं मयैवदशीमवस्थां प्रापितः इति । एवं सम्यग्भावनायां तस्य शिष्यस्य केवल-

बन्धुजन यहाँ आकर उपद्रव करेंगे। शिष्यकी यह बात सुनकर आचार्य महाराज ने कहा—ठीक है परन्तु इस समय तो अब रात्रि हो चुकी है तथा मुझे रात्रि में दिखता भी नहीं है—अतः जाना ठीक नहीं है। आचार्य महाराज की बात सुनकर शिष्य ने कहा कि आप इसकी चिन्ता नहीं करें। मैं आप को अपने कंधे पर बैठा लूंगा। ऐसा कह कर उस शिष्य ने गुरु महाराज को अपने कंधे पर बैठा लिये और उस स्थानसे दूसरे स्थान पर पहुँचने के लिये प्रयाण प्रारंभ कर दिया। मार्ग सम विषम था। अतः गुरु महाराज को अचानक हिलने डुलने की वजह से कष्ट हुआ और इससे उनके चित्तमें अशांति उत्पन्न हो गई। उन्होंने थैटे-थैटे ही अपना रजोहरण दंड उसके मस्तक पर देभारा। चोट लगते ही शिष्य ने चित्त में चिन्तवन किया कि हे मन जिनकी मुझे सेवा करनी चाहिये उन गुरु महाराज को इस समय मेरे द्वारा कितना कष्ट पहुँच रहा है। गुरु महाराज की इस कष्टावस्था का कारण मैं ही बन रहा हूँ। इस प्रकार की भक्तिरूप हार्दिकभावना के प्रभाव से क्षपक श्रेणी

जन अङ्घ्रियां आवीने उपद्रव करशे. शिष्यनी आ वात सांलणीने आचार्य महाराज्णे कहुं, ठीक छे. परंतु आ समये रात्रीतुं आगमन थध युक्तुं छे तेम मने रात्रीमां सुजतुं पणु नथी, आधी नवुं ठीक नथी. आचार्य महाराज्णी वात सांलणी शिष्ये कहुं, आप जेनी चिंता न करे हुं आपने मारा भला उपर जेसाडी लथि जेवुं कडी ते शिष्ये गुरु महाराज्णे पोताना भला उपर जेसाडी लीधा जने जे स्थानथी जीज स्थान तरक्ष प्रयाण करवाने प्रारंभ कर्यो. मार्ग सम विषम हुतो. आधी गुरु महाराज्णे अचानक डलवा डालवाने कारण कष्ट थयुं जने तेथी जेमना चित्तमां अशांती उत्पन्न थध तेज्याजे जेहा जेहा न पोताने रजेडणु दंड जेना माथा उपर भार्यो, चोट लागतां शिष्ये मनमां विचार्युं डे डे मन! जेनी मारे सेवा करवी जेधजे जे गुरु महाराज्णे आ समय मारा तरक्षथी डेटवुं कष्ट थध रह्युं छे. गुरु महाराज्णी कष्ट अवस्थानुं कारण हुं न जनी रडेव छुं. आ प्रकारनी लक्षितइप हार्दिक लावनाता प्रभावथी क्षपक श्रेणी प्राप्त करी घातक कर्मोना

ततः स इभ्यपुत्रो भाग्यवशेन लघुकर्मणा च भावश्रमणो जातः, तदानीं तस्येभ्यपुत्रस्य लोके कृते सति "मम प्रव्रज्यैवास्तु" इति परिणामः सम्पन्नः, ततो रजोहरणसदोरकमुखवस्त्रिकादिभिः साधुवेपं धृत्या द्रव्यभावतः संयतो जातः । ततोऽसौ गृहीतप्रव्रज्यः शिष्यो गुरुमव्रवीत्-भदन्त ! अन्यत्र व्रजामः, अत्र मम

को हाथ में लेकर जवर्दस्ती उसके केशों का लुंचन कर दिया । मित्रों ने यह देखकर समझा कि कहीं हमारी भी यही हालत न हो जाय-हमें भी जवर्दस्ती से दीक्षित न बना दिया जाय-इस डरसे वे सब के सब वहां से शीघ्र भाग गये ।

उस समय वह श्रेष्ठिपुत्र भाग्य के उदय से एवं लघुकर्म के प्रभाव से भावश्रमण बन गया था । क्यों कि जिस समय आचार्य-महाराजने उसके केशोंका लुंचन किया था उस समय उसके चित्त में यही परिणाम हो गया था कि मेरी दीक्षा ही हो जाय तो सर्व सुन्दर है । " इस परिणाम विशिष्ट-भाव श्रमण अवस्था संपन्न-उस इभ्यपुत्र के लिये आचार्य महाराज ने केशलुंचन करने के बाद ही रजोहरण एवं सदोरक मुखवस्त्रिका प्रदान करदी-इससे वह यथार्थ में द्रव्यरूप से भी साधु वेपसे सुशोभित होने लगा । इस प्रकार द्रव्य एवं भाव से संयत अवस्था को धारण किये हुए-उस नवीन शिष्य ने गुरुमहाराज से कहा कि हे भदन्त ! चलो अब यहां से दूसरी जगह चलें । नहीं तो मेरे

लडने नजरनस्तीथी तेना वाणने लोच कर्यो. मित्रो आ नेछने ओवुं समन्या के अमारी पणु आवी डालत न थछ नय अमने पणु नजरनस्तीथी दीक्षीत न अनावाय आवा उरथी तेओ सधणा त्यांथी तुरतन लागी गया.

ते समय श्रेष्ठी पुत्र लाग्यना उदयथी तेमन लघु कर्मना प्रलावथी लावश्रमणु अनी गयो डतो केमके ने समय आचार्य महाराजे तेना वाणने लोच कर्यो त्यारे ते समये तेना चित्तमां ओन परिणाम थछ गयुं डतुं के मने दीक्षा अपाय तो ते सर्व सुन्दर छे. आ परिणाम विशिष्ट-लावश्रमणु अवस्था संपन्न-ते धव्य पुत्र भाटे आचार्य महाराजे केशने लोच कर्यो पछी रजोहरणु अने दोरा साधेनी मुखवस्त्रिका आपी. आथी यथार्थमां द्रव्य रूपथी पणु साधु वेशथी सुशोभित अनी रह्यो. आ प्रकारे द्रव्य अने लावथी संयत अवस्थाने धारणु करीने ओ नवीन शिष्ये गुरुमहाराजने कहुं के डे लदन्त ! चलो डवे अडिंथी अीन स्थणे नछओ. नहीं तो मारा अंधु-

પુનસ્તત્સામણં કુર્વન્ સોઽપિ કેવલજ્ઞાનં પ્રાપ્તવાન્ । એવં વિનીતશિષ્યૈર્ભવિતવ્યમ્ ॥૧૩॥
કયં ગુરુચિત્તાનુગામી ભવેદિત્યાહ—

મૂલમ્—નાપુટ્ટો વાગરે કિંચિ, પુટ્ટો વાં નાલિયં વણં ।

કોહં અસર્ચ્ચં કુવિવિજ્ઞા, ધારિજ્ઞો પિયમપિયં^૩ ॥૧૪॥

છાયા—

નાપુટ્ટો કુર્યાત્ કિંચિત્ , પુટ્ટોવા નાલીકંવદેત્ ।

ક્રોધમ્ અસત્યં કુર્યાત્ , ધારયેત્ પ્રિયમપ્રિયમ્ ॥ ૧૪ ॥

ટીકા—‘નાપુટ્ટો’. ઇત્યાદિ—

અપુટ્ટઃ=ગુરુનાઽનુક્તઃ કિંચિત્ ન વ્યાકુર્યાત્=ન વદેત્ પુટ્ટો વા=ગુરુગા કાસ્મિ-
થિદ્ વિપયે પુટ્ટઃ સન્ અલીકમ્=અનૃતં ન વદેત્, ક્રોધં=કેનાપિ કારણેન સમુત્પન્નં
કોપમ્ અસત્યં=નિષ્ફલં કુર્યાત્ ।

કર વાર વાર અતિશય પશ્ચાન્તાપ કરને લગે । પશ્ચાત્ ઉનસે અપને દોષ
સ્વમાને લગે । ઇસ પ્રકાર પશ્ચાન્તાપ કરતે કરતે વિશુદ્ધ ભાવના સે ગુરુ
ને ભી કેવલજ્ઞાન પ્રાપ્ત ક્રિયા । ઇસ દૃષ્ટાન્ત કા સાર યહી હૈ કિ વિનીત
શિષ્ય અપની વિશુદ્ધિ કે સાથ-સાથ ગુરુ મહારાજ કી ભી વિશુદ્ધિ કા
કારણ બનતા હૈ । અતઃ શિષ્ય કો ઇસી તરહ વિનીત હોના ચાહિયે ॥૧૩॥

ગુરુ-ચિત્તાનુગામીશિષ્ય કે ચિન્હોં કો ઇસ ગાથા દ્વારા સૂત્રકાર
વતલાતે હૈ—‘ નાપુટ્ટો. ’ ઇત્યાદિ ।

અન્વયાર્થ—(અપુટ્ટો કિંચિ ન વાગરે-અપુટ્ટઃ કિંચિત્ ન વ્યા-
કુર્યાત્) ગુરુમહારાજ જય તક કોઈ વાત નહીં પૂછે તવ તક શિષ્ય કા
કર્તવ્ય હૈ કિ વહ કિસી ભી વિપય મેં કુછ ન કહે । (પુટ્ટો વા

અતિશય પશ્ચાન્તાપ કરવા લાગ્યા. પછી તેનાથી પોતાનો દોષ ખમાવવા લાગ્યા.
આ પ્રકારે પશ્ચાન્તાપ કરતાં કરતાં વિશુદ્ધ ભાવનાથી શુરુને પણ કેવલી જ્ઞાન
પ્રાપ્ત થયું.

આ દષ્ટાંતનો સાર એ છે કે વિનીત શિષ્ય પોતાની વિશુદ્ધિની સાથે
સાથે ગુરુ મહારાજની પણ વિશુદ્ધિનું કારણ બને છે. એટલે શિષ્યોએ આ
રીતે વિનીત થવું જોઈએ. ॥૧૩॥

ગુરુ-ચિત્તાનુગામી શિષ્યના ચિન્હોને આ ગાથા દ્વારા સૂત્રકાર બતાવે
છે. નાપુટ્ટો. ઇત્યાદિ,

અન્વયાર્થ—અપુટ્ટો કિંચિ ન વાગરે-અપુટ્ટઃ કિંચિત્ ન વ્યાકુર્યાત્ ગુરુ
મહારાજ ત્યાં સુધી કોઈ વાત ન પૂછે ત્યાં સુધી શિષ્યનું કર્તવ્ય છે કે તે
કોઈ પણ વિપયમાં કોઈ ન કહે. પુટ્ટો વા નાલિયં વણ-પુટ્ટોવા અલીકંવદેત્

જ્ઞાનમુત્પન્નમ્, તતઃ કેવલજ્ઞાનપ્રભાવાદસૌ સમપ્રદેશ इव वहन् गुरुणा प्रोक्तः—
 मार एव सारः, अधुना कीदृशः समप्रदेशे इव वहन्नसि ? शिष्येणोक्तं—युष्मत्प्र-
 सादान्मम वहनं संमं भवति । पुनर्गुरुणोक्तम्—किं रे ! ज्ञानं समुत्पन्नं तव । शिष्ये-
 णोक्तम्—एवम् । पुनर्गुरुणा प्रोक्तम्—प्रतिपाति, अप्रतिपाति वा ज्ञानमुत्पन्नम् ? ।
 तेनोक्तम्—अप्रतिपाति । ततो गुरुः पश्चात्तापं कुर्वन् वदति—हा ! मया केवली आशा-
 तितः—इत्युक्त्वा शिष्यशिरसि रजोहरणदण्डप्रहारजनितं रुधिर प्रवाहं पश्यन् पुनः

પ્રાસકર ઘાતક કર્મોકા નાશકર ઉસ શિષ્ય ને કેવલજ્ઞાન કો પ્રાસ
 ક્રિયા । કેવલ જ્ઞાન કે પ્રભાવ સે યહ ગુરુકો ડસ પ્રકાર અવ લેજાને લગા
 કિ માનો સમ પ્રદેશમેં હી વહ ચલ રહા હો । ગુરુજીને કહા કિ માર હી
 સાર હૈ, ઇતના માર ને પર અવ તૂ સીધા ચલને લગા હૈ । શિષ્યને કહા
 મહારાજ આપકે પ્રભાવ સે હી યહ સવ કુચ્છ હો રહા હૈ—અર્થાત્ પહિલે ચલતે
 સમય ઉંચી નીચી જગહ મેં મેરા પૈર પડતા થા સો આપકો કષ્ટ હોતા થા ।
 પર અવ નહીં પડતા હૈ અતઃ સમભૂમિ મેં ચલને કી તરહ મેં ચલ રહા
 હું । ગુરુ મહારાજ ને કહા તો કયા તુજ્ઞે જ્ઞાન ઉત્પન્ન હો ગયા હૈ ? શિષ્યને
 કહા હાં ! પુનઃ ગુરુ મહારાજ ને કહા વહ જ્ઞાન પ્રતિપાતિ ઉત્પન્ન હુઆ હૈ
 યા અપ્રતિપાતિ ઉત્પન્ન હુઆ હૈ । શિષ્યને ઉત્તર દિયા મહારાજ ! અપ્રતિ-
 પાતિ જ્ઞાન ઉત્પન્ન હુઆ હૈ । વાદ ગુરુ ને કહા ! હાય ! મેં ને કેવલી કી
 ડસ સમય આશાતના કી હૈ । ડસ પ્રકાર કહ કર ગુરુ જી શિષ્ય કે
 શિર પર રજોહરણ કે દણ્ડ કે પ્રહાર સે વહતે હુએ રુધિર કો દેવ-દેવ

નાશ કરી તે શિષ્યે કેવલ જ્ઞાનને પ્રાપ્ત કર્યું. કેવલજ્ઞાનના પ્રભાવથી તે
 ગુરુને એવા પ્રકારે લઈ જવા લાગ્યો કે બહુ તે સમપ્રદેશમાં ચાલી રહ્યા
 હોય. ગુરુએ કહ્યું કે “ માર જ સાર છે. ” આટલું મારવાથી હવે તું
 સીધો ચાલવા લાગ્યો છે, શિષ્યે કહ્યું મહારાજ ! આપના પ્રભાવથી જ આ
 સઘળું બની રહ્યું છે. અર્થાત્ પહેલાં ચાલતી વખતે ઉંચી નીચી જગ્યામાં
 મારા પગ પડતા હતા જેનાથી આપને કષ્ટ થતું હતું પણ હવે પડતા નથી.
 એટલે સમભૂમિમાં ચાલવાની માફક હું ચાલું છું. ગુરુ મહારાજે કહ્યું કે
 શું તને જ્ઞાન ઉત્પન્ન થઈ ગયું છે ? શિષ્યે કહ્યું હા ! ફરી ગુરુ મહારાજે
 કહ્યું, તે જ્ઞાન પ્રતિપાતિ ઉત્પન્ન થયું છે કે અપ્રતિપાતિ શિષ્યે કહ્યું.
 મહારાજ ! અપ્રતિપાતિ જ્ઞાન ઉત્પન્ન થયું છે. આથી ગુરુએ કહ્યું, અહાહા !
 મેં કેવલીની આ સમયે આશાતના કરી છે. આ પ્રકારે કહીને ગુરુએ
 શિષ્યના શીર ઉપર રજોહરણના ઢંડના પ્રહારથી વહેતા રુધીરને બેઈ વારંવાર

उक्तंच—लोभी पश्येद्धनप्राप्तिं, कामिनीं कामुकस्तथा ।

भ्रान्तं पश्येदधोन्मत्तो न किञ्चिच्च क्रुधाकुलः ॥१॥

अन्वच्च—अपकारिणि चेत् क्रोधः क्रोधे क्रोधः कथं न ते ।

धर्मार्थकाममोक्षाणां चतुर्णां परिपन्थिनि ॥ २ ॥

क्रोधस्यासत्यकरणे उदाहरणम् । यथा—कस्यचित् कुलपुत्रस्य भ्राता वैरिणा हतः ।

“लोभी आत्मा धनकी प्राप्ति की चिन्ता में ही मस्त बना रहता है । कामुक कामिनी में मस्त है । उन्मत्त सर्वत्र भ्रान्ति युक्त बना रहता है । परन्तु क्रोध से आकुल हुआ आत्मा देवता हुआ भी अन्धा बना रहता है ॥१॥”

इस क्रोध को निवारण करना हो तो इस प्रकार की भावना माननी चाहिये जैसे—

“हे आत्मन् ! तू अपने अपकार करनेवाले पर जिस प्रकार क्रोध करता है उसी प्रकार इस अपकार करने वाले क्रोध पर क्रोध क्यों नहीं करता । क्यों कि यह तेरा बड़ा भारी अपकारी है । कारण कि इसके सद्भाव में धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष का सर्वथा विनाश हो जाता है । अतः चतुर्वर्गका विनाश करने वाला होने से यह तेरा सब से अधिक अपकारी है । क्रोध पर क्रोध करना इसका मतलब है कि क्रोध कभी नहीं करना चाहिये ॥ २ ॥”

क्रोध को असत्य करने में दवा देने में—दृष्टान्त इस प्रकार है—

किसी कुलपुत्र के भाई को उसके वैरी ने मार डाला । वह कुल-

लोभी आत्मा धनकी प्राप्ति की चिन्ता में ही मस्त बनी रहने से, कामुक कामिनी में मस्त है, उन्मत्त सर्वत्र भ्रान्ति युक्त बनी रहने से, परन्तु क्रोधशील व्याकुल होने से आत्मा जेवा छतां पशु आंधणो बनी रहने से ॥१॥

आ क्रोधनुं निवारणु करणुं होयते आ प्रकाशनी लावना करवी जेधये डे डे आत्मा ! तुं तारा उपर अपकार करवावाणा उपर जे प्रकाशे क्रोध करे छे जे प्रकाशे ते अपकार करवावाणा क्रोध उपर क्रोध डेम नथी करतो. डेमके जे तारे पुण मोठो अपकारी छे. करणु डे तेना सहलावमां धर्म, अर्थ, काम अने मोक्षनो सर्वथा विनाश थाय छे. जेथी चतुर्वर्गनो विनाश करवावाणो होवार्थी जे तारे अधार्थी पशु अपकारी छे. क्रोध पर क्रोध करवो जेनो मतलब छे डे क्रोध कही न करवो जेधये.

क्रोधने देवावी देवामां दृष्टांत आ प्रकाशे छे—

डेध कुलपुत्रना लाधने तेना वैरीजे भारी नाभये. ते कुलपुत्र भरणु

અર્થ ભાવઃ—ગુરુગા નિર્ભર્ત્સને કૃતે સતિ કદાચિત્ ક્રોધોત્પત્તો સત્યાં તસ્ય કદુકવિપાકમનુચિન્ત્ય ક્ષમયા તં પરિહરેત્, ક્રોધો હિ સર્વાનર્થકરઃ સકલશુભહરઃ તપઃ સંયમોદ્યાનદાઞ્જ્વલનઃ સમભાવજલદપટલીવિકિરણપ્રચંડપવનઃ શાન્તિમુખાકરતમઃ સકલસદ્ગુણસરોજવનહિમઃ ચિત્તોદ્વેજકઃ શત્રુતાવર્થકઃ સકલવિપદામાસ્યદં જનપદં વિપ્લવયતિ ।

૧—તમઃ=રાહુઃ ।

નાલિયંચપ-પૃષ્ઠો વા અલીકં ન વદેત્) યદિ પ્રસંગ વશ કિસી વિપય મેં ગુરુ મહારાજ પૂછેં મી તો ઉસ મેં શૂઠ નહીં વોલના ચાહિયે । (કોહં અસચ્ચં કુવ્વિજ્ઞા-કોપં અસત્યં કુર્યાત્) કિસી નિમિત્ત સે ઉત્પન્ન હુણ ક્રોધ કો શીઘ્ર હી દવા દેના ચાહિયે ।

ભાવાર્થ—કિસી કારણ વશ યદિ કદાચિત્ ગુરુ મહારાજ શિષ્ય કો કઠિન વચન સે શિક્ષા દેં તો ઉસ સમય ક્રોધ કા કદુઆ ફલ સમજ્જકર ઉત્પન્ન હુવે ક્રોધ કો ક્ષમા સે દવા દેવે । કારણ કિ ક્રોધ સમસ્ત અનર્થોં કી ણક મજઘૂત જડ હૈ । સકલ કલ્યાણોં કા વિનાશક હૈ । સંયમરૂપી ઉદ્યાન કો ભસ્મ કરને કે લિયે યહ દાવાનલ કી જ્વાલા જૈસા ભયંકર હૈ । સમતારૂપી મેઘઘટાઓં કો વિક્ષિપ્ત કરને કે લિયે યહ ક્રોધ પ્રચંડ પવન કે જૈસા હૈ । શાન્તિરૂપી ચન્દ્રમંડલ કે ગ્રસને કે લિયે રાહુ જૈસા, સકલ સદ્ગુણરૂપી કમલવન કો દગ્ધ કરને કે લિયે હિમપાત જૈસા કહા હૈ । ક્રોધ સે ચિત્ત મેં ઉદ્વેગ ઉત્પન્ન હોતા હૈ ઓર ક્રોધ સે હી શત્રુતા કી વૃદ્ધિ હોતી હૈ । જિસ જનપદ (દેશ) મેં ઇસ ક્રોધ કા આવાસ હો જાતા હૈ વહ સકલ વિપત્તિયોં કા સ્થાન વનકર દેશ આદિ કો નષ્ટ કર દેતા હૈ । કહા મી હૈ—

ને પ્રસંગવશ કોઈ વિપયમાં ગુરુ મહારાજ પૂછે તો પણ એમાં ભૂલું નહીં બોલવું એઈએ. કોહં અસચ્ચંકુવિજ્ઞા-કોપં અસત્યં કુર્યાત્ કોઈ નિમિત્તથી ઉત્પન્ન થયેલા ક્રોધને જલદીથી દબાવી દેવો એઈએ.

ભાવાર્થ—કોઈ કારણવશ ને કદાચ ગુરુ મહારાજ શિષ્યને કઠીન વચનથી શિક્ષા આપે તો તે સમયે ક્રોધનું કડવું ફળ સમજી ઉત્પન્ન થયેલ ક્રોધને ક્ષમાથી દબાવી દે. કારણ કે ક્રોધ સમસ્ત અનર્થોની એક મજબૂત જડ છે. બધા કલ્યાણોનો વિનાશક છે. સંયમરૂપી ઉદ્યાનને ભસ્મ કરવા માટે દાવાનળની જ્વાળા જેવો ભયંકર છે. સમતારૂપી મેઘ ઘટાઓને વેરવિખેર કરવા માટે આ ક્રોધ પ્રચંડ પવન જેવો છે. શાંતિરૂપી ચન્દ્રમંડળને ગ્રસવા માટે રાહુ જેવા સકળ સદ્ગુણરૂપી કમળવનને દગ્ધ કરવા માટે હિમપાત જેવો કહેલ છે. ક્રોધથી ચિત્તમાં ઉદ્વેગ ઉત્પન્ન થાય છે અને ક્રોધથીજ શત્રુતાની વૃદ્ધિ થાય છે. ને જનપદ (દેશમાં) આ ક્રોધનો આવાસ થાય છે તે સકલ વિપત્તિઓનું સ્થાન બની દેશ આદિનો નાશ કરે છે. કહું પણ છે—

ततस्तेन कुलपुत्रेण कथितम्—तर्हि कथं स्वरोपं सफलीकरोमि ? जनन्या प्रोक्तम्—वत्स ! सर्वत्र न रोपः सफलीक्रियते । मातृवाक्यात् कुलमित्रेण स वन्धुघातको मुक्तः । ततोऽसौ तयोश्चरणेषु निपत्य स्वापराधं क्षामयित्वा गतः । एवं कुलपुत्रवत् क्रोधमसत्यं कुर्यात् ।

तथा—अप्रियं=शिक्षार्थं गुरोः कदुवचनं, प्रियं=प्रियमिव-द्वितमित्यर्थः, धारयेत्=

माता के इस प्रकार वचन सुनकर कुलपुत्र ने कहा—टीक है यह अवध्य है परन्तु हे जननि ! यह रोप जो मुझे उत्पन्न हुआ है उसे कैसे अब सफल करूँ ? माता बोली प्रिय पुत्र ! उत्पन्न रोप सर्वत्र सफल ही किया जाय ऐसा कोई नियम नहीं है । माता के इन वचनोंसे सन्तुष्ट होकर कुलपुत्र ने रोप को शांत करते हुए उस अपने वन्धु के घात करने वाले वैरी को बिना किसी तकलीफ दिये छोड़ दिया । उस वैरी ने भी उन दोनोंके चरणों में गिरकर अपने अपराध की क्षमा मांगी और खुश होते हुए अन्त में वह अपने घर चला गया । प्रत्येक मुनि का कर्तव्य है कि वह कुलपुत्र की तरह अपने उत्पन्न हुए क्रोध को विफल बनाने में सचेष्ट रहे ।

(अप्रियं प्रियं धारिज्जा—अप्रियं प्रियं धारयेत्) शिष्य का यह कर्तव्य है कि वह गुरु महाराज के द्वारा कहे गये अप्रिय वचनों को भी प्रियवचन ही मानकर हृदय में धारण करे । गुरु महाराज के वचन

श्रेयसा उपर भडापुत्रप प्रडार करता नथी, परंतु तेनी रक्षा करे छे.

मातानां आ प्रकारनां वचन सांलणीने कुणपुत्रे कहुं ठीक छे. आ अवध्य छे. परंतु छे माता ! आ शैष ने भाराभां उत्पन्न थये छे तेने दुं कछ रीते शान्त कइ ?

माताये कहुं प्रिय पुत्र ! उत्पन्न थयेल शैष भधी रीते सक्षण करवाभां आवे श्रेयो कोष नियम नथी, मातानां आवां वचनोधी संतुष्ट भनी कुणपुत्रे शैषने शान्त करीने तेखे पोताना अंधुने घात करनार वैरीने कोष तकलीक्ष आप्या वगर छोडी दीयो. भारनार वैरीये पखु भन्नेना चरखोभां पडीने पोताना अपराधनी क्षमा मागी अने शुश थतो ते पोताना धर तरक्ष खावी गयो. प्रत्येक मुनिनुं कर्तव्य छे के कुणपुत्रनी भाक्ष पोतानाभां उत्पन्न थयेल कोधने दयाववाभां सचेष्ट रहे.

(अप्रियं प्रियं धारिज्जा—अप्रियं प्रियं धारयेत्) शिष्यनुं कर्तव्य छे के ते गुरु महाराज द्वारा कहेवाभां आवेल अप्रिय वचनोने पखु प्रिय वचन भानी हृदयभां धारण करे. गुरु महाराजना वचन परिष्ठाभभां संतापने

पुत्रमरणार्त्तध्यानयुक्तां जननीं विलोक्य स कुलपुत्रस्तं वैरिणं गृहीत्वा मातुः
समिपमानीयाव्रवीत्-अरे ! बन्धुघातक ! अनेनासिना त्वां कुत्र हन्याम्, तेनातिभी-
तेन कथितम् यत्र शरणागता न हन्यन्ते तत्र । एतद्वचनं श्रुत्वा कुलपुत्रेण जननीमुखं
विलोकितम् । जनन्या च मध्यस्थभायमवलम्ब्य संजात-करुणया निगदितम्-हे
पुत्र ! शरणागता न हन्यन्ते । यतः—

सरणागया य वीस,—त्या पणया वसणपत्ता य ।

रोगी अजंगमा य, सप्पुरिसा णेव पहरंति ॥

छाया—शरणागतांश्च विश्वस्तान् प्रणतान् व्यसनमाप्तांश्च ।

रोगिणः अजङ्गमांश्च सत्पुरुषा नैव प्रहरन्ति ॥

पुत्र पुत्रमरण जनित दुःख से आर्त्तध्यान करती हुई माता को देखकर
शीघ्र ही अपने भाई के उस घातक को पकड़ कर माता के सन्मुख
उपस्थित कर कहा अरे बन्धु घातक ! बोल तुझे इस तलवार के द्वारा
कहाँ पर मारूँ। उसने डरते हुए कहा-जहाँ शरण में आये हुए प्राणी
नहीं मारे जाते हैं वहीं पर आप मुझे मारें। बन्धु घातक के इस प्रकार
वचन सुनकर कुलपुत्र ने माता के मुखकी ओर देखा। माता ने धैर्य
धारण कर दयायुक्त होते हुए कहा कि हे वेदा ! शरण में आये हुए को
वीर पुरुष मारा नहीं करते हैं। क्यों कि इतने प्राणी अवध्य होते हैं—

सरणागया य वीस,—त्या पणया वसण पत्ताय ॥

रोगी अजंगमा य, सप्पुरिसा णेव पहरंति ॥ १ ॥

गाथार्थ—शरणागत, विश्वासपात्र, कष्ट में पड़ा हुआ, रोगी
और अपंग, इनके ऊपर महा पुरुष प्रहार नहीं करते हैं अर्थात् इनकी
रक्षा करते हैं ॥

जननीत दुःखी आर्त्तध्यान करती माताने जेष्ठ तुरतज पोताना लाधना अे
घातकने पकडीने मातानी सन्मुख उलो राणी कहुं, अरे अंधु घातक !
बोल तने आ तलवार कये स्थणे भाइं. तेले डरीने कहुं-न्यां शरणुमां
आवेलां प्राणीने मारवाभां नथी आवतां अे स्थणे आप भने मारो. अंधुने
मारनारनां आ प्रकारनां वचनने सांभणी कुणपुत्रे माताना सुभनी सामे
जेथुं. माताअे धैर्य धारणु करी दयायुक्त अनी कहुं के हे वेदा ! शरणुमां
आवेलाने वीरपुत्रो कही मारता नथी केभके आटला प्राणी अवध्य होय छे.

सरणागया य वीस,—त्या पणया वसणपत्ता य ।

रोगी अजंगमा य, सप्पुरिसा णेव पहरति ॥ १ ॥

गाथार्थ—शरणागत, विश्वासपात्र, कष्टमां पडेला, रोगी अने अपंग,

इदमत्र बोध्यम्—यथा गुरोराज्ञया भिक्षाचर्या गतः शिष्यः श्रावकगृहं
प्रविष्टः, तत्र भद्रभावसंपन्नो धार्मिको धर्मानुगो धर्मसेवी धर्मिष्ठो धर्मख्यातिधर्मा-
नुरागी धर्मप्रलोकी धर्मजीवी धर्मप्ररञ्जनो धर्मशीलः श्रावको मुनिं दृष्ट्वा सत्ताप्यपदानि
तदभिमुखमागच्छन् हृष्टस्तुष्टः प्रसन्नचित्तः प्रीतमनाः परमसौमनस्ययुक्तो मुनिद-
र्शनजनितहर्षवशत्रिसर्पन्मानसस्तं वन्दित्वा नमस्कृत्य पुनः पुनः स्तुवन् वदति—

लाभ में, अलाभ में, सुख में, दुःख में, जीने में मरण में, ज्ञान
में, अपमान में तथा निंदा और प्रशंसा में एक साधु ही ऐसा है जो
समान रहता है। यहाँ इस प्रकार समझना चाहिये—गुरु की आज्ञा प्राप्त
कर ही तो शिष्य भिक्षाचर्या के लिये गृहस्थों के घर जाता है। गृहस्थ
भी अपने घर पर पधारे हुए साधु के दर्शन कर अपने आपको बहुत
ही पुण्यशाली मानता है। क्यों कि ऐसे गृहस्थजन प्रकृति से भद्रपरि-
णामी एवं धर्मानुग-धर्मका अनुसरण करने वाले होते हैं। धर्म सेवी
होते हैं और धर्मिष्ठ होते हैं। धर्मख्याति-धर्मका उपदेश देनेवाले एवं
धर्मानुरागी-धर्म में अनुराग रखने वाले होते हैं। धर्मप्रलोभी और
धर्मजीवी होते हैं। धर्मप्ररञ्जन और धर्मशील होते हैं। ये मुनि को
घर पर आते हुए देखकर सर्व प्रथम उनका विनय करने के निमित्त
सात आठ पग उनके समक्ष जाते हैं। हर्ष से संतुष्ट चित्त होकर ऐसे
फूल जाते हैं कि मानों कोई अपूर्व निधि का ही इन्हें लाभ हुआ है।

लाभमां, अलाभमां, सुखमां, दुःखमां, जीवामां, मरणमां, ज्ञानमां,
अपमानमां, तथा निंदा अने प्रशंसांमां एक साधुञ् जेवा छे जे समान
रहे छे. अर्द्धिं जे प्रकारे समञ्जसुं जेधंजे-गुरुनी आज्ञा भेजनीने पछीञ्
शिष्य भिक्षाचर्या भाटे अहस्थीने घेर नथ छे. अहस्थ पक्षु पोताना घेर
पधारेला साधुनां दर्शन करी पोताने अहुञ् पुण्यशाली माने छे. जेभडे
जेवा गृहस्थजन प्रकृतिथी लद्र परिणामी तेमञ् धर्मानुं अनुसरणु करवावाणा
डोय छे, धर्म सेवी डोय छे अने धर्मिष्ठ डोय छे. धर्मख्याति-धर्मने उपदेश
देवावाला जेठवे धर्मानुरागी-धर्ममां अनुराग राखवावाणा डोय छे. धर्मप्रलोकी
अने धर्मजीवी डोय छे. धर्म प्ररञ्जन अने धर्मशील डोय छे. मुनिने घेर
आवता जेधने सर्व प्रथम तेना विनय करवा निमित्त सात आठ पगलां जेभनी
सामे नथ छे. इधंथी संतुष्ट चित्त जनीने जेवा कुवाता डोय छे के नखे
डेधं अपूर्व निधिना जेभने लाभ थयो डोय, अर्द्धेरो प्रसन्न थधं नथ छे, मनमां

मनसा भावयेत् । गुरोर्वचनं हि परिणामे तापोपशमकं रत्नत्रयपरिशोधकं शान्तिमुष्ण-
संभृतं परमहितम्, आम्रफलमिवादी कटुकं, मध्येऽम्लरसयुतम्, अन्ते चापूर्वास्वाद-
जनकं भवतीति मत्वा प्रियमेव मन्येतेति भावः ।

यद्वा-प्रियं=प्रीतिजनकं स्तुत्यादि, अप्रियम्=अप्रीतिकारकं निन्दादि, धारयेत्=
समं जानीयात् । भिक्षाचर्यादी प्रियमप्रियं वा वचनं श्रुत्वा समभावनया तत् तितिक्षेत,
तत्र रागं द्वेषं वा न कुर्यादित्यर्थः । उक्तं च भगवता—

लाभालाभे सुहे दुक्खे, जीविण मरणे तथा ।

समो निंदापसंसासु, तद्वा माणावमाणओ ॥ (उत्त० १९अ.)

परिणाम में संताप को मिटाने वाले रत्नत्रय को परि शुद्ध करने वाले,
शान्तिरूपी अमृत के समुद्र परम हितकारी तथा आम्रफल के समान
आदि में कटुक, मध्य में आम्लरसयुक्त एवं अन्त में अपूर्व रस का
आस्वाद कराने वाले होते हैं । इसलिये गुरु महाराज के वचन को प्रिय
मानकर ही उनका सेवन करते रहना चाहिये यही विनीत शिष्य का
कर्तव्य है । अथवा—“ धारिज्जा पियमप्पियं ” इसका अभिप्राय यह भी
है कि साधु जब भिक्षाचर्या आदि के लिये जावे तब उस समय यदि
कोई खोटे मीठे वचन भी कहे—निंदा एवं स्तुति भी करे तो भी उसमें
इसे पक्षपाती नहीं होना चाहिये—दोनों पर साधु का समान भाव ही
होना चाहिये । उस पर राग एवं द्वेष करना साधुका कर्तव्य नहीं है ।

लाभालाभे सुहे दुक्खे । जीविण मरणे तथा ॥

समो निंदा पसंसासु । तद्वा माणा व माणओ ॥ (उ. १९अ.)

भटाडवावाणा रत्नभयने परिशुद्ध करवावाणा शान्तिरूपी अमृतना समुद्र परम
हितकारी तथा आम्रफल जेवा. शङ्खातमां तुरा, मध्यमां आम्लरस युक्त
तथा अंतमां अपूर्व रसनो आस्वाद करवावाणा होय छे. आ माटे गुरु
महाराजनां वचनने प्रिय मानीने तेनुं सेवन करता रहेवुं नोछंजे. ते विनीत
शिष्यनुं कर्तव्य छे. अथवा—“ धारिज्जा पियमप्पियं ” आनी अलिप्राय जेवो
पणु छे ते साधु न्याहे शिक्षा चर्या वगेरे माटे नय त्याहे ते समये कोण
कोण साङ् नरसुं वचन कहे—निंदा अगर स्तुति पणु करे तो पणु जेमां
तेभजे पक्षपाति न बनवुं नोछंजे. जेने पर साधुनो समानभाव होवो नोछंजे.
जेना पर राग अगर देश करवो जे साधुनुं कर्तव्य नथी.

लाभालाभे सुहे दुक्खे, जीविण मरणे तथा ।

समो निंदापसंसासु, तद्वा माणावमाणओ ॥ (उत्त० १९ अ.)

तथा—केचिदधार्मिका अनार्या म्लेच्छा अधर्मजीविनोऽधर्मानुरागिणोऽधर्म-
शीला विवेकविकलाः साधुं दृष्ट्वा निन्दन्ति हीलन्ति खिसन्ति—‘अयं वराको
निःसत्त्वः कातरो दाम्भिको भिक्षामात्रोपजीवी कुक्षिभरिर्धूमिभारस्वरूपो गृहे गृहे
गृहपाल इव भ्रमति’ इत्यादि वचनं श्रुत्वा मुनिः स्वात्मानं नापकर्षयेत् ।

अत्रोदाहरणम्—कश्चिद् बृद्धो महात्मा भिक्षार्थमेकस्मिन् गृहे गत्वा तद्गृहस्वा-
मिनीं प्रति किं सच्चिजलादिस्पर्शरहिताऽसि न वेत्याशयेन पृष्टवान्—भगिनि !

तथा कितनेक ऐसे भी अधार्मिक, म्लेच्छ, अनार्यजन हैं कि
जिनका जीवन सत्य धर्म की वासना से विलकुल विहीन बना हुआ
है, अधर्म में ही जिन्हें बड़ा भारी अनुराग है, प्रकृति भी जिनकी
अधर्मशील हैं, विवेक से जो सर्वथा पराङ्मुख हैं वे साधुजन को देखते
ही अपनी नाक भौंहें सिकोड़ने लगते हैं और जो मन में आता है वही
बकने लग जाते हैं—निन्दा करते हैं, हीलना करते हैं—खिसाते हैं—कहते
हैं कि देखो तो सही यह विचारा कितना अपने आपको भूलता है तथा
कितना कायर बना हुआ फिर रहा है कैसे—कैसे दंभ रच रहा है जो
यह वहां से भिक्षा मांगकर अपना निर्वाह करता है। अपना ही पेट
भरना इसने सीखा है। ऐसे जनों से संसार की क्या भलाई हो सकती
है। ये तो केवल इस पृथिवी के भारभूत हैं जो कुत्तेकी तरह घर घर में
प्रतिदिन भ्रमण करते रहते हैं। इस प्रकार के वचन सुनकर साधु को
चाहिये कि वह अपनी आत्मा को हल्की न समझे। इसी विषय को
एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जाता है—

तथा डेटलाड येवा पण् अधार्मिक. म्लेच्छ, अनार्यजन छे डे नेभनुं
एवन सत्य धर्मनी वासनाथी भीलकुल विहीन अनेल डोय छे. अधर्माभां न
नेने लारे अनुराग छे, प्रकृति पण् नेनी अधर्मशील छे, विवेकथी ने सर्वथा
पराङ्मुख छे. ते साधुजनने नेधने पोतानां नाक तथा भेडाने अगाडे छे
अने मनमां आवे तेवुं अकवा लागी नथ छे. निंदा करे छे, हीलना करे छे-
भिसाय छे, कडे छे डे बुज्यो तो भरा आ भीयारे डेटलेो पोतानी नतने
बुझे छे तथा डेवो कायर अनीने डरी रखा छे, डेवा डेवा दंभ रयी रडेल छे,
ने अडिं तडिंथी भिक्षा मागीने पोतानो निर्वाड करे छे. पोतानुं न पेट
भरवानुं ये शीणेल छे. आवा साधुथी संसारनी शुं ललाध थर्ष शकवानी
छे. आ तो डेवण आ पृथ्वी उपर लार नेवा छे. ने कुतरानी माक्क घेर
घेर दररोज लभता रडे छे. आ प्रकारनां वचन सांभणी साधुये पोताना
आत्माने डलको मानता न अतवुं नेधये. आ विषयने अेक उदाहरण् द्वारा
स्पष्ट करवाभां आवे छे—

‘ધન્યોઽસ્મિ, કૃતપુણ્યોઽસ્મિ, કૃતલક્ષણોઽસ્મિ ભવદર્શનેન, ભવદાગમનં દરિદ્રસ્ય ગૃહે સ્વર્ણઘૃષ્ટિરિવ કામધેનુરિવ મમ સર્વસૌભાગ્યજનકમ્’” ઇત્યુક્ત્વા સ્વગૃહં સાદર-
માનીય વિપુલમશનં પાનં શ્વાદ્યં સ્વાદ્યં દદાતિ, દત્ત્વા ચ પુનઃ પુનઃ સ્તૌતિ, તત્ર
મુનિઃ સ્વાત્માનં નોત્કર્પયેત્ ।

ચેહરા પ્રસન્ન હો જાતા હૈ । મન મેં એક પ્રકાર કા વિલક્ષણ સંતોષ આ
જાતા હૈ, ઉસ સમય ઉસે વઢા ભારી આનન્દ આતા હૈ । ઉસ આનન્દ મેં
તહ્લીન હોતા હુઆ વહ શ્રાવક ઉસ સમય એક પ્રકાર સે અપને આપકો
ભી ભૂલ સા જાતા હૈ ઓર વન્દના એવં નમસ્કાર કર ભક્તિ કે આવેશ
સે સ્વયં અપને ગુરુ મહારાજ કી સ્તુતિ કરતા હુઆ કહતા હૈ હે નાથ !
આજ મેં ધન્ય હુઆ હૂં કૃતપુણ્ય હુઆ હૂં ઓર મેરી યહ પર્યાય સફલ
હુઈ હૈ જો આપકે દર્શન પાપે । દરિદ્ર કે ઘર મેં સુવર્ણ કી વર્ષા કે સમાન
એવં કામધેનુ કે સમાન આપ કા મેરે ઘર પધારના મેરે પરમ સૌભાગ્ય
કા ઉત્પન્ન કરને વાલા એવં વૃદ્ધિ કરનેવાલા હૈ । ઇસલિયે પધારિયે ઓર
ઘર કો પાવન કીજિયે—ઇસ પ્રકાર કહ કર વહ મહાત્મા કો અપને ઘર
લાતા હૈ ઓર સાદર ઉન્હેં વિપુલ અશન, પાન, શ્વાદ્ય એવં સ્વાદ્ય ચાર
પ્રકાર કા આહાર દેતા હૈ । ફિર વારમ્યાર ઉનકી સ્તુતિ કરતા હૈ । એસી
પ્રશંસા સુનકર ગૃહસ્થકી એસી વિનય ભક્તિ દેલકર સાધુ કો ફૂલ નહીં
જાના ચાહિયે ।

એક પ્રકારનો વિલક્ષણ સંતોષ આવી જાય છે. એ સમયે એને ઘણોજ આનંદ
થાય છે. એ આનંદમાં તહ્લીન થતાં થતાં તે શ્રાવક એ સમયે એક પ્રકારથી
પોતે પોતાને પણ ભુલી જાય છે. અને વંદના એવં નમસ્કાર કરી ભક્તિના
આવેશથી સ્વયં પોતાના ગુરુ મહારાજની સ્તુતિ કરતાં કહે છે કે હે નાથ !
આજ હું ધન્ય બન્યો છું, કૃત પુણ્ય બન્યો છું, અને મારી આ પર્યાય સફળ
બની છે જે આપનાં દર્શન થયાં. દરિદ્રના ઘરમાં સોનાના વરસાદ સમાન તેમ
કામ ધેનુ સમાન આપનું મારે ઘર પધારવું મારા પરમ સૌભાગ્યને ઉત્પન્ન
કરવાવાળું અને વૃદ્ધિ કરનાર છે. આ માટે પધારો અને ઘરને પાવન કરો. આ
પ્રકારે કહી તે મહાત્માને પોતાને ઘર લાવે છે અને આદર માનથી તેમને
વિપુલ અશન, પાન, શ્વાદ્ય અને સ્વાદ્ય એમ ચાર પ્રકારનો આહાર આપે છે.
પછી વારંવાર તેની સ્તુતિ કરે છે. એવી પ્રશંસા સાંભળી, ગૃહસ્થની એવી
વિનય ભક્તિ જોઇ, સાધુએ કુલાઇ જવું ન જોઇએ.

यति-स्थूलस्य हृष्टपुष्टाङ्गस्य तत्र कथमल्पेनोदरं भरिष्यति ? इत्यादि परिभववचनं श्रुत्वाऽपि स महात्मा समभावं समालम्ब्य स्वात्मानं हीनं न मन्यते स्म, तदा स उचितभिक्षां गृहीत्वा प्रतिनिवृत्तः । एवं सर्वैर्मुनिभिर्भाव्यम् ॥ १४ ॥

आत्मनो दमने सत्येव क्रोधवैफल्यं कर्तुं शक्यते तस्मात् तदुपदेशं तत्फलं चाह-
मूलम्—अर्प्तां चैवं दमेयं ववो अर्प्तां हुं खलु दुर्दमो ।

अर्प्तां दंतो सुही होई अंसि लोए परतंथ यं ॥१५॥

छाया—आत्मा एव दमितव्यः आत्मा हु खलु दुर्दमः ।

आत्मानं दाम्यन् सुखी भवति, अस्मिन् लोके पत्र च ॥१५॥

स्वामिनि ने कहा—चाह खूब कहा इतने संडसुसंड तो हो रहे हो फिर भी थोड़ा आहार देने के लिये कह रहे हो थोड़े से दिये गये आहार से भला इस हृष्टपुष्ट शरीर की तृप्ति कैसे हो सकेगी । इत्यादि उसके अपमान जनक वचन सुनकर भी वे महात्मा समभावशाली ही बने रहे और उन्होंने उसके वचन से अपने आपको हीन नहीं समझा । वहां से उचित भिक्षा लेकर फिर वे अपने स्थान पर वापिस आगये । इसी प्रकार कहने का मतलब यह है कि समस्त मुनिजनोंको अपने आपको प्रतिकूल संयोग में हीन नहीं मानना चाहिये ॥ १४ ॥

जो आत्मा का दमन करता है वही क्रोध को निष्फल कर सकता है इस लिये सूत्रकार आत्मा-अर्थात्-मन को दमन करने का उपदेश देते हैं एवं उसका फल भी कहते हैं—‘अर्प्ताचेव०’ इत्यादि ।

वाड भूम कहुं, आटला अदमस्त जेवा तो भनी रडेव छे छतां पधु थोडा आहार देवानु कडी रह्या छे. थोडा आहारथी लत्रा आ अदमस्त शरीरनी तृप्ति कर्छ रीते थर्छ थकथे. इत्यादि अनेनां अपमान जनक वचन सांभलीने पधु ते महात्मा समभावशाणी व भनी रह्या अने तेनां तेवां वचनोथी पोतानी नतने डीन नडिं समन्या. त्यांथी उचित भिक्षा लधने पछी ते पोताना स्थान उपर आवी गया. आ अंकार कडेवानो मतलब अे छे के समस्त मुनि जेनांये पोत पोताने प्रतिकूल संयोगमां पधु डिन मानवुं न जेधं अे. ॥१४॥

जे आत्मानुं दमन करे छे ते क्रोधने निष्फल करी शके छे आ माटे सूत्रकार आत्मा-अर्थात्-मनने दमन करवानो उपदेश आपे छे. अने तेहुं कण पधु कडे छे—अर्प्ताचेव० इत्यादि .

स्वस्थाऽसि, तथा कथितम्-त्वमेवासि रोगी, अहं तु स्वस्थैवारिम भिक्षादानार्थं महात्मना प्रोक्ता सा गृहस्वामिनी वदति-किमत्र तव पित्रोपार्जनं कृत्वा स्थापितं, तद् ग्रहीतुमत्रागतोऽसि, एतद् वचनं श्रुत्वा स महात्मा परावृत्तः । ततो गृहस्वामिनी वदति-अहो ! भिक्षार्थिनोऽपि तवैतावान् मदः, एहि, एहि, ददामि भिक्षाम्, एवं तथाऽभिहितः सन् स महात्मा पुनस्तद्गृहे भिक्षां ग्रहीतुमागतः । स्थूलाः स्थूलाश्च-तप्तो रोदिकास्तया समानीताः, महात्मना प्राक्तम्-स्तोकं देहि, गृहस्वामिनी कथ-

कोई एक वृद्ध महात्मा भिक्षा के लिये किसी एक घर पर पहुँचे। वहाँ जाकर गृहस्वामिनि से “ सन्चित्त जलादिक के स्पर्श से रहित हो कि नहीं ” इस अभिप्राय से पूछा कि वह न! स्वस्थ तो हो? महात्मा जी की बात सुनकर गृहस्वामिनी कहने लगी कि मैं तो स्वस्थ ही हूँ-रोगी तो तुम ही हो। महात्माजी ने फिर उससे भिक्षा देने के लिये कहा तो वह बोली कि यहाँ क्या तुम्हारा बाप कमाकर रख गया है जो लेने के लिये दौड़े आये हो? इन वचनोंको सुनकर महात्माजी वहाँ से पीछे लौटे। महात्माजी को पीछा लौटा हुआ देखकर गृहस्वामिनि बड़बडाती हुई कहने लगी-ओहो ! भिक्षार्थी होकर के भी इतना अभिमान। अच्छा आओ आओ और भिक्षा ले जाओ। मैं भिक्षा देती हूँ। इस प्रकार जब उस गृहस्वामिनि ने कहा तो महात्मा उसके घर भिक्षा लेने के लिये पीछे आये। वह जब उन्हें मोटी-मोटी चार रोटी देने लगी तो महात्मा-जीने पुनः कहा वहिन थोड़ा आहार दो-यह तो अधिक है। तब गृह

कोई एक वृद्ध महात्मा भिक्षा माटे कोई एक घर पहुँचा तब गृहस्वामिनी ने “ सन्चित्त जलादिकना स्पर्शथी रहित हो के नहीं ” आ अभिप्रायथी पूछयुं के, अहो न! स्वस्थ हो ने? महात्माजीने वात सांखणीने गृहस्वामिनी श्री कहेवा लागी के हुं तो स्वस्थ न छुं-रोगी तो तमेन हो. महात्माजीने पछी तेने भिक्षा आपवा कहुं तो ओ बोली के, अहो कथां तमारो बाप कमाधने राणी गयेल छे, ओ देवा माटे होडी आव्या छे? आ वचनेने सांखणीने महात्माजी त्यांथी पाछा कथां, महात्माजीने पाछा कहेवा नेछ गृहस्वामिनी श्री अउभडाट करतां कहेवा लागी, ओहो! भिक्षार्थी होवा छतां पछु आटहुं अभिमान! आपो भिक्षा लई गव. हुं भिक्षा आपुं छुं. आ प्रकारे ओ गृहस्वामिनी श्रीने कहुं तो महात्मा जीने घर भिक्षा देवा पाछा गया ते न्यारे तेने मोटी मोटी चार रोटी देवा लागी तो महात्माजीने कहुं अहो थोड़ा आहार आपो-आ तो धरुं छे. तयारे गृहस्वामिनी श्रीने :-

ઉક્તંચ—જઓ જઓ સંચરઈ, મળો ચંચલમત્થિરં ॥

તઓ તઓ નિયમિય, કુજ્જા અપ્પંમિ તં થિરં ॥૧॥

છાયા—યતો યતઃ સંચરતિ મનઃ ચંચલમસ્થિરમ્ ।

તતસ્તતો નિયમ્ય કુર્યાત્ આત્મનિ તત્ સ્થિરમ્ ।

સુર્યોદયે સત્તિ શીતવેદના નિવૃત્તવન્મનોવિજયે સત્તિ સકલદુઃખાનામાત્યન્તિક

નિવૃત્તિર્ભવતિ । અવિજિતં મનસ્તત્ત્વજ્ઞાનં વિનાશયતિ તપઃ સંયમશિખરાદાત્માનં

જાગ્રત્ હો સકતી હૈ । આત્મા શબ્દ કા અર્થ યહાં પર મન હૈ । ક્યોં કિ
इसीका दमन किया जाता है । जीव आत्मा इसका दमन करने वाला
है । दमन करने से आत्मा को सब से बड़ा भारी लाभ यह होता है कि
जिस प्रकार सूर्यके उदय होने पर शीतवेदना की निवृत्ति हो जाती है
उसी प्रकार मनको जीत लेने पर आत्मा से सकल दुःखों की आत्यन्तिक
निवृत्ति हो जाती है । इसीलिये शास्त्रकारों का यह उपदेश है कि
“जओ जओ संचरई मणो चंचलमत्थिरं । तओ-तओ नियमिय कुज्जा
अपपंमि तं थिरं ॥ यह अस्थिर चंचल मन जिन-जिन पदार्थोंकी ओर
झुके-उनमें चले-उसे वहां से खेंचकर मोक्षाभिलाषी का कर्तव्य है कि
वह उसे अपनी आत्मा में संलग्न करे । जवतक मन स्थिर नहीं होगा
उसका निग्रह नहीं होगा-तव तक तत्त्वज्ञान आत्मा में उत्पन्न नहीं हो
सकता है । तत्त्वज्ञान की जागृति हुए बिना आत्मा को हेय एवं उपादेय
पदार्थोंका वास्तविक भान नहीं हो सकता । मनकी ही तो यह चंचलता

જ આત્મામાં શાંતી ભગી શકે છે. આત્મા શબ્દનો અર્થ અહીં મન છે. કેમ કે
આત્માતું જ દમન કરવામાં આવે છે. જીવ આત્મા એનું દમન કરવાવાળા છે.
દમન કરવાથી આત્માને મોટામાં મોટો લાભ તો એ થાય છે કે જે પ્રકારે
સૂર્યનો ઉદય થવાથી ઠંડીની વેદાનાની નિવૃત્તિ થાય છે. એજ રીતે મનને જીતી
લેવાથી આત્માના સકળ દુઃખોની નિવૃત્તિ થઈ જાય છે. આ માટે શાસ્ત્રકારોનો
આ ઉપદેશ છે કે:-

“જઓ જઓ સંચરઈ, મળો ચંચલમત્થિરં ।

તઓ તઓ નિયમિય, કુજ્જા અપ્પંમિ તં થિરં ॥”

આ અસ્થિર ચંચલ મન જે જે પદાર્થોની તરફ ઢળે-એમાં ચાલે-એને
ત્યાંથી ખેંચીને મોક્ષાભિલાષીએ પોતાના આત્મામાં સંલગ્ન કરી દેવું જોઈએ.
જ્યાં સુધી મન સ્થિર નહી હોય-ત્યાં સુધી એનો નિગ્રહ થનાર નથી-ત્યાં
સુધી તત્ત્વજ્ઞાન આત્મામાં ઉત્પન્ન થઈ શકતું નથી. તત્ત્વજ્ઞાનની ભગૃતિ થયા
બગર આત્માને હેય અને ઉપાદેય પદાર્થોતું વાસ્તવિક ભાન થઈ શકતું નથી.

ટીકા—‘અપ્પા ચેવ૦’ ઇત્યાદિ—

આત્મૈવ=મન એવ, દમિતવ્યઃ—વશી કર્તવ્યો જેતવ્ય ઇત્યર્થઃ, ઇહાત્મશબ્દેન મનો ગૃહ્યતે તસ્યૈવ દમનીયત્વાત્ । આત્મા તુ દમકો વોધ્યઃ । શબ્દાદિ વિષયેષુ પ્રવર્તમાનં મનસ્તતઃ પ્રત્યાહત્ય સ્વાત્મનિ સ્થાપનીયમિતિ ભાવઃ ।

અન્વયાર્થ—(અપ્પાચેવ દમેયવ્વો—આત્મા એવ દમિતવ્યઃ) મન હી દમન કરને યોગ્ય હૈ । (અપ્પા હુ સ્વલ્લુ દુદ્દમો—આત્મા હુ સ્વલ્લુ દુર્દમઃ) ક્યોં કિ મન હી દુર્દમ હૈ । (અપ્પા દંતો અસ્સિ લોણ પરત્થ ય સુહી હોઈ—આત્માનં દામ્પ્યન્ ઇહલોકે પરત્ર ચ સુહી ભવતિ) મનકો દમન કરને ચાલા જીવ નિયમ સૈ ઇસ લોક મેં તથા પરલોક મેં સુહી હોતા હૈ ।

ભાવાર્થ—સૂત્રકાર ઇસ ગાથા દ્વારા ઇન્દ્રિયોં કે વિષયોં મેં પ્રવર્તમાન મન કે નિગ્રહ કરનેકા ઉપદેશ દે રહે હૈં । વે કહતે હૈં કિ ઇસલોક એવં પરલોક મેં યદિ સુહી હોના ચાહતે હો—તો મનકા નિગ્રહ કરો ઉસે અપને વશ મેં કરો । જવ તક ઇસકો વશ મેં નહોં કિયા જાયગા તવ તક ઇસકા અધીન બના હુઆ આત્મા કમી મી કિસી મી ભવ મેં સુખ શાંતિ નહોં પાયેગા । આત્મા હી મન કા દમન કર સકતા હૈ । દમન કરનેકા મતલબ યહ હૈ કિ જો મન ઇન્દ્રિયોંકે વિષયોં મેં ગૃહ્ય બના હુઆ હૈ ઉસકો ઉનમેં ગૃહ્ય નહોં બનને દેતા । યહી મનકા દમન કરના હૈ । મનકો વિષયોંસે હટાકર આત્મામેં સ્થાપિત કરના ચાહિયે । તમી આત્મા મેં શાંતિ

અન્વયાર્થઃ—અપ્પા ચેવ દમેયવ્વો—આત્મા એવ દમિતવ્યઃ—

મનજ્ઞ દમન કરવા યોગ્ય છે.

અપ્પા હુ સ્વલ્લુ દુદ્દમો—આત્મા હુ સ્વલ્લુ દુર્દમઃ—

કેમકે મનજ્ઞ દુર્દમ છે.

અપ્પા દંતો અસ્સિ લોણ પરત્થ ય સુહો હોઈ ।

આત્માનં દામ્પ્યન્ ઇહ લોકે પરત્ર ચ સુહી ભવતિ ।

મનનું દમન કરનાર જીવ આલોક અને પરલોકમાં સુખી થાય છે.

ભાવાર્થ—સૂત્રકાર આ ગાથા દ્વારા ઇન્દ્રિયોના વિષયોમાં પ્રવર્તમાન મનને નિગ્રહ કરવાનો ઉપદેશ આપી રહ્યા છે. તેઓ કહે છે કે, આ લોક અને પરલોકમાં જો સુખી થવાં ચાહતા હો તો—મનને નિગ્રહ કરો, અને પોતાના વશમાં રાખો. જ્યાં સુખી મનને વશ કરવામાં ન આવે ત્યાં સુખી એના આધીન બનેલો આત્મા ક્યારેય પણ—કોઈ પણ ભવમાં સુખ શાંતિથી રહી શકવાનો નથી. આત્મા જ મનનું દમન કરી શકે છે. દમન કરવાનો હેતુ એ છે કે મન ઇન્દ્રિયોના વિષયમાં વ્યાપ્ત બન્યું છે. એને એમાંથી દુર કરવું એજ મનનું દમન કરવું છે. મનને વિષયોથી હટાડી આત્મામાં સ્થાપિત કરવું જોઈ એ. ત્યારે

वृक्षतले उपविष्ट आसीत् तदा तेन महात्मना ध्यानावस्थायामेकं थापदसंकुलं व्यालाकुलं विशालं महारण्यं दृष्टम् । तत्रैको पुरुषस्तेन दृष्टः, स च सहस्रभुजो विसृतकायः सहस्रहस्तधृतैः सहस्रमुशलैः स्वदेहं ताडयन् भीतमीत इव चीत्कारं कुर्वन्नितस्ततः पलायमानः शतयोजनानि धावमानः श्रमेण शिथिलावयवः परवशः सन् पातालवद्गम्भीरे गाढान्धकारे महान्धकूपे निपतितः । पुनरसौ तस्मादन्धकूपाद् वहिर्निःसृतः पूर्ववत् सहस्रमुशलैः स्वदेहं ताडयति तदनु महत्यामग्निज्वालायां शलभ इवासौ प्रविष्टः । पुनरसौ ततोऽपि वहिर्निःसृत्यकण्टकाकीर्णे महारण्ये इतस्ततो धावति, तदनु पुनः स्वदेहोपरि पूर्ववत्सहस्रमुशलप्रहारं कुर्वन् स दृष्टः ।

बैठे हुए थे । मुख पर सदोरक मुग्नवस्त्रिका बँधी हुई थीं, उन्हें उस ध्यान में एक विशाल जंगल दिखालाई पड़ा । जो थापदोंहिंसक प्राणीयों से संकीर्ण एवं व्याप्त था । उस में उन्होंने एक महाकाय व्यक्ति जिसके हजार हाथ थे देखा । उसके सब ही हाथों में मुसल थे । वह इधर उधर भागता हुआ मुसलको शरीर पर मारता हुआ भयंकर चीत्कार शब्द करता था । वह भगता भी इतना अधिक कि सौ योजन तक निकल जाता । जब वह थक जाता और उसका शरीर जब ढीला हो जाता तब वह पाताल के समान गंभीर एक महान्धकूप में कि जिसमें गाढ अंधकार ही अंधकार था उसमें गिर जाता था । पीछे वहाँसे निकलना और इसी तरह अपने शरीर को हजारों मुसलोंसे पीटता, वाद में शलभ-(पतंग) की तरह एक महती अग्निज्वाला में प्रविष्ट हो जाता । पश्चात् वहाँ से भी निकल कर वह एक कण्टकाकीर्ण अरण्य में घुस जाता और वहाँ इधर उधर दौड़ता हुआ अपने शरीर को सहस्र मुसलों से पूर्वकी तरह

पेडा होता. मोटा उपर दोरासाथे मुग्नवस्त्रिका बांधेल होती. ऐमने ऐ ध्यानमां ऐक विशाल जंगल देखायुं, जे अनेक प्रकारना हिंसक प्राणीयोधी लरेतुं हुतुं, तेमां ऐमले ऐक महाकाय व्यक्ति जेने हलर हाथ छे तेवी नेध, ऐना पधा हाथोमां मुशण हुतां, ते अहिंथी तडीं होउता होउता मुसलोने पोताना शरीर पर मारतो हुते अने लयंकर चित्कार शब्द करतो हुते, ऐ ऐटला नेरथी होउतो हुते के सो येजन मुधी निकणी जते. थाक लागतो अने शरीर न्यारे ढीलुं थरुं जतुं त्यारे ते पुणज उडा अने गाढ अंधकारथी छवायेल कुषामां कुडी पडतो, पाछे त्यांथी निकणतो अने ऐज रीते हलरे। मुसलोधी पोताना शरीरने पीपतो. गाढमां शलभ (पतंग)नी माइक ऐक महती अग्नि-न्याणामां पडतो अने त्यांथी पणु नीकणीने ते महान कांटांओवाणा जंगलमां घुसी जते। त्यां पणु आभ तेम होउते अने पडेलांणी नेम पोताना

पातयति उन्मार्गं प्रापयति चतुर्गतिकसंसारचक्रे भ्रामयति नरकनिगोदाद्यनन्तदुःख-
गते निपातयति रत्नत्रयं लुण्ठयति आत्मगुणान् पातयति ज्ञानावरणीयाघट्टविधं
कर्मोपार्जयति । तस्मान्मनो निग्रहं कुर्यात् ।

अत्रोदाहरणम्—

तथाहि—एको लब्धिसंपन्नो महात्मा वदत्सदोरकमुखवस्त्रिकः ध्याननिष्ठः सन्

है जो अच्छे-अच्छे ज्ञानीजन भी संयमरूपी शिखर से इकदम पतित
हो जाते हैं और नहीं सेवन करने योग्य मार्ग में भी प्रवृत्त हो जाते हैं।
इससे उनकी चतुर्गतिरूप संसार में परिभ्रमणरूप दुर्दशा ही होती रहती
है। नरक एवं निगोद के अनंत दुःखों को वे भोगते हैं। इन समस्त
दुःखों से आत्मा का संरक्षण करनेवाला जो रत्नत्रय धर्म है—वह उनका
लुटा जाता है। वे बिलकुल निर्धन बन जाते हैं। इन निर्धनता में और
भी अनेक जो आत्मा के सद्गुण हैं उनका विकास नहीं होते पाता है
इस स्थिति में इस आत्मा की इतनी दयनीय स्थिति हो जाती है, कि
ज्ञानावरणादिक अष्ट प्रकार के कर्म इस पर रात दिन अपना प्रहार
करते रहते हैं। इसको उस समय बचानेवाला कोई नहीं होता है। इस
लिये मोक्षाभिलाषी का कर्तव्य है कि वह मन का निग्रह करे।

इस विषय को एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जाता है—

कोई एक महात्मा जो लब्धिसंपन्न थे, एक वृक्ष के नीचे ध्यानमें

मन એવું અંચળ છે કે ભલભલા જ્ઞાનીજનને પણ સંયમરૂપી શિખર ઉપરથી
એકદમ નીચે ગળડાવી મુકે છે, અને સેવન ન કરવા યોગ્ય માર્ગમાં પ્રવૃત્ત
બનાવી દે છે. આથી તેમની ચતુર્ગતિરૂપ સંસારમાં પરિભ્રમણ રૂપ દુર્દશા બ
થતી રહે છે. નરક અને નિગોદના અનંત દુઃખો તે ભોગવે છે. આ સમસ્ત
દુઃખોથી આત્માનું રક્ષણ કરનાર જે રત્નત્રય ધર્મ છે—તે એની પાસેથી
લુટાઈ બંધ છે, આથી બિલકુલ નિર્ધન બની બંધ છે. આ નિર્ધનતામાં
આત્માના જે ખીબ સદ્ગુણ હોય છે એનો પણ વિકાસ થતો નથી. આ
પરિસ્થિતિમાં આત્માની એટલી દયામય હાલત થઈ બંધ છે, કે જ્ઞાનાવરણાદિક
આઠ પ્રકારનાં કર્મ રાત અને દિવસ એના પર પ્રહાર કરતાં રહે છે. આ સમયે
એને આમાંથી કોઈ બચાવનાર હોતું નથી આ માટે મોક્ષાભિલાષીનું કર્તવ્ય
છે કે, તે મનને નિગ્રહ કરે.

આ વિષયને એક ઉદાહરણ દ્વારા સ્પષ્ટ કરવામાં આવે છે—

કોઈ એક મહાત્મા જે લ્બિસંપન્ન હતા, એક વૃક્ષની નીચે ધ્યાનમાં

अहमन्यो नास्मि किं तु मनोनाम्ना प्रसिद्धोऽस्मि इष्टानिष्टशब्दादिविषये प्रवर्तमानोऽहं तृष्णारज्ज्वा प्राणिनं बध्नामि, ततस्तमारम्भपरिग्रहाऽऽसक्तं संसारचक्रे भ्रामयन् कदाचिद्देवजातो कदाचिन्नरजातो कदाचित्तिर्यग्जातो कदाचित् पृथिव्यादिस्थावरयोनिषु द्वीन्द्रियादि-त्रसयोनिषु अनन्तदुःखं प्रापयामि। यदा तु भवादृशेन महात्मना निगृहीतो भवामि तदा रत्नत्रयाराधनं कारयामि, मोक्षमार्गं स्थापयामि, क्षपकश्रेणिमारोहयामि। शनैः शनैर्निग्रहाभ्यासप्रकर्षे सति शास्त्रसंदर्शि-

नहीं हूँ-मेरा नाम मन है। इष्ट अनिष्ट शब्दादिक विषयों में प्रवृत्ति करना और तृष्णारूपी रस्सी से प्राणियों को जकड़ना यही मुझे प्रिय है। मुझे आनंद भी इसी में आता है कि जब प्राणी आरंभ परिग्रह में आसक्त होकर संसार चक्रमें घूमता है। मैं ही तो उनकी इस स्थिति का मूल कारण बनता हूँ। कभी मैं जीवों को देवजाति में, कभी मनुष्य योनि में कभी तिर्यग्जाति में, कभी पृथ्व्यादिक स्थावर योनि में, कभी द्वीन्द्रियादिक त्रस पर्यायों में घुमाता रहता हूँ और वहाँके अनंत कष्टों का उन्हें पात्र बनाता हुआ बड़ा खुशी होता रहता हूँ। आप जैसे महात्माओं पर दुःख है कि मेरा बश नहीं चलता। कारण कि आपके सामर्थ्य के आगे मेरी शक्ति सर्वथा संकुचित हो जाती है। वह इस दिशा में न वह कर दूसरी दिशा तरफ वहने लग जाती है। इसलिये मैं निगृहीत होकर आप जैसा से रत्नत्रय की आराधना करवाता हूँ। मुक्ति के मार्ग में लगा देता हूँ तथा क्षपकश्रेणि पर भी चढ़ा देता हूँ। जब साधुजनों का मुझे निग्रह करने

हुं पीले कोई नहीं-माइं नाम मन छे। इष्ट अनिष्ट शब्दादिक विषयोमां प्रवृत्ति करवी अने तृष्णारुपी रस्सीधी प्राणीओने पांधवा अे भने पसंद छे। भने आनंद पक्ष अे वातमां आवे छे के न्यारे प्राणी आरंभ परिग्रहमां आशक्त अनी संसार चक्रमां घूमे छे। हुं पोतेज तेनी आ स्थितिनुं भूण कारख अनुं छुं, कोई वषत हुं लवोने देव जातीमां, क्यारेक मनुष्य योनीमां, क्यारेक तिर्यग गतिमां, क्यारेक पृथ्वी आदि स्थावर योनीमां, क्यारेक अे धन्द्रियवाजा त्रस पर्यायोमां घूमते रहुं छुं, अने त्यांना अनेक कष्टोने पात्र अनावी हुं पुशी थते रहुं छुं। आप जेवा महात्माओ उपर माइे प्रभाव पडी शकते नथी अे वातनुं भने दुःख छे। कारख के आ आपना सामर्थ्य आगण भारी शक्ति सर्वथा संकुचित अनी नथ छे। ते आ दिशामां न वडैतां पीछ दिशा तरफ वडैती डाय छे। आ माटे हुं निगृहीत अनीने आप जेवाओथी रत्नत्रयनी आराधना करारुं छुं मुक्तिना मार्गमां लगाडी दठुं छुं, अने क्षपक

अथासौ दूरं गत्वाऽष्टाहासं कुर्वन् धावमानश्चन्द्रकिरणशीतलं कदलीवनं प्रविष्टः । क्षणादेव ततोऽपि वह्निनिःसृत्य पुनः स्वदेहोपरि सहस्रमुशलैः महारं कुर्वन् धावमान इतस्ततो भ्राम्यति । पुनः श्रमेण शिथिलावयवः सन् महान्यकूपे निपतितः । तत्-
 थिरेण निःसृत्य पुनः कदलीवनं प्रविष्टः, ततोऽपि निर्गत्य लतावनं गतः, लता-
 वनाद् वह्निभूत्वाऽन्धकूपे पतितः, तदनु कूपाग्निःसृत्य कुसुमवनं गतस्तत्रैतस्ततो
 धावमानः स्वदेहोपरि मुशलैः महारं करोति ततोऽपि निःसृत्य फलवनं प्रविष्टः,
 तत्रापि धावमानः स्वदेहोपरि पूर्ववत् सहस्रमुशलैः महारं करोति । एवंविधं पुरुषं
 स महात्मा ज्ञान दृष्ट्या विलोक्य स्वलब्धि वलेन तस्य प्रतिरोधं कृत्वा पृष्टवान्-
 कस्त्वम् ? किमर्थमेवं क्रियते ? तव किं प्रियमस्ति ? एवं पृष्टोऽसौ पुरुषोऽब्रवीत्-

ही प्रहारित करता । फिर दूर जाकर बड़े जोर से हँसता और चंद्रकिरण के समान शीतल कदलीवन में प्रवेश कर वहाँ विश्राम करने लगता । क्षण एक विश्रामित होकर वहाँसे बाहर आते ही फिर वही अपनी चाल शुरू करता, जब वह इस चाल से थक जाता था तो गाढ़ अंधकार वाले कूप में गिर जाता था, वहाँ से निकल कर फिर कदली वनमें जाता, वहाँ से बाहर होते ही लतावन में वहाँसे फिर अंधकूपमें वहाँ से कुसुमित वन में, वहाँ से फल वाले वन में इस प्रकार भ्रमण करता-करता वह अपने शरीर को मूसलों के प्रहारोंसे कूटता रहता । महात्मा ने जब इस प्रकार की इसकी स्थिति देखी तो उन्हें बड़ा ही अचरज हुआ । उसकी इस स्थिति को उन्होंने अपने लब्धिवलसे स्थंभित कर दिया और उससे पूछा-तुँ कौन है और क्यों इस प्रकार की चेष्टाएँ करता है ? तुझे क्या प्रिय है ? महात्माकी इस बात को सुनकर उसने कहा कि मैं और कोई

शरीर उपर मुशलोना इटका लागवतो पछी थोडा आगण वधी नेर नेरथी
 हुसतो अने चंद्रकिरण समान शीतल डेजोना वनमां प्रवेश करी त्यां आराम
 करवा लागतो. थोडा समय विश्रान्ति लध-श्रम रहित भनी त्यांथी अडार
 नीकणी पूर्ववत् होडा होड अने शरीर उपर मुशलना प्रहारनी प्रवृत्ति, अंध-
 कारवाणा कुवामां पडवुं, करी पाछो डेजोना वनमां प्रवेश, त्यांथी लता वनमां,
 त्यांथी करी कुवामां, त्यांथी नीकणी करी डेजोना वनमां, आ प्रकारे भ्रमण करतो
 अने पोताना शरीरने मुसलोथी भारतो. आ स्थिति न्यारे महात्माथे नेध
 त्यारे तेमने बारे अचरज थध, अनी अ स्थितिने पोताना लब्धिवलथी स्थंभित
 भनावी दध महात्माथे तेने पूछथुं-तुं कोणु छे अने आ प्रकारनी चेष्टाथी
 शा भाटे करे छे ? तने थुं प्रिय छे ? महात्माणी बात सांभणी तेछे क डे

यद्वा—आत्मा=वाह्येन्द्रियं दमितव्य एव वाह्येन्द्रिय पञ्चविधं श्रोत्रचक्षुष्म्राण रसनस्पर्शनभेदात् । वाह्येन्द्रियाणां दमनाकरणे आत्मनो विनाशः स्यात् । उक्तंच—

जिस प्रकार सूर्य के उदय होने के पहिले उसका आलोक-प्रकाश प्रसृत हो जाता है उसी प्रकार समस्त रूपादिक पदार्थोंको विषय करने वाला यह प्रतिभज्ञान, केवलज्ञानरूप सूर्य के उदित होने के पहिले उसकी प्रभा सरीखा प्रकट हो जाता है । जिससे यह बात निश्चित हो जाती है कि अब इस आत्मा में केवलज्ञान का उदय होनेवाला है । जब मनो-निग्रह का अभ्यास सर्वोत्कृष्ट अवस्था संपन्न हो जाता है तब उस समय आत्मा में केवलज्ञान की उद्भूति हो जाती है । इसके समस्त पदार्थोंका स्पष्ट प्रतिभास होने लग जाता है । कोई भी रूपी अथवा अरूपी पदार्थ ऐसा नहीं बचता जो केवलज्ञान का विषय नहीं बनता हो । यह ज्ञान अनुपम है—ऐसा कोई और ज्ञान नहीं है—कि जिससे इसे उपमित किया जा सके । इसके द्वारा प्रकाशित पदार्थों में किसी भी प्रकार से बाधा नहीं आती है । इस प्रकार महात्मासे कहकर वह मन नामका पुरूप अन्तर्हित हो गया ॥

आत्मा शब्द का अर्थ बाह्य इन्द्रियां भी हैं । वे स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और कर्ण के भेद से ५ प्रकार की हैं । मोक्षाभिलाषी आत्मा

ज्ञाननी अपेक्षा रखती नहीं. जेभ सूर्यनो उदय थया पडेलो तेनो आववानो प्रकाश प्रसार पावे छे, जास प्रस्तुत भवे छे ते प्रकारे समस्त रूपादिक पदार्थनो विषय करवावाणा आ प्रातिभा ज्ञान केवल ज्ञानरूप सूर्यनो उदय थलां पडेलो तेनी प्रभाइये प्रकट थाय छे. जेथी जे वात निश्चय भवे छे के डवे आ आत्माभां केवलज्ञाननो उदय थवानो छे. न्यारे मनोनिग्रहनो अभ्यास सर्वोत्कृष्ट अवस्था संपन्न भनी नय छे, त्यारे ते समय आत्माभां केवलज्ञाननी उद्भूति थई नय छे. आथी समस्त पदार्थनो स्पष्ट प्रतिभास थवा लागी नय छे. कोई पक्षु रूपी अथवा अरूपी पदार्थ जेवो नहीं नयतो जे केवलज्ञाननो विषय न बनतो होय, आ ज्ञान अनुपम छे जेवुं जीवुं कोई ज्ञान नहीं के जेनाथी आने उपमित करी शके. तेना द्वारा प्रकाशित पदार्थोभां कोई पक्षु प्रकारनी बाधा आवती नहीं. आ प्रकारे महात्माने कहीने ते मन नामनो पुरूप अंतर्धान थई गयो.

आत्मा शब्दने अर्थ बाह्य इन्द्रियो पक्षु छे, जे स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, अने कानना सेइथी पांच प्रकारनी छे. मोक्षाभिलाषी आत्मा जेवुं मन

તોપાયાઃ વચનગોચરાતીતાઃ, નિગ્રહાભ્યાસપર્કપરિહિતમાણિગણસંવેદનયાગ્ન્યાઃ
 સિદ્ધિપદસંપજ્જનકાઃ સૂક્ષ્મસૂક્ષ્મતરાર્થવિપયા મનાઃ સમૃદ્ધસત્સ્ફુટપ્રતિભાસા
 જ્ઞાનવિશેષા ઉત્પદ્યન્તે। તતઃ કિંચિદ્નાત્યન્તપ્રકર્ષે નિરપેક્ષમત્યાદિજ્ઞાનં પ્રકર્ષપર્યન્તો-
 ચરકાલભાવિકેચલજ્ઞાનાદર્વાક્તનં સવિતુરુદયાત્ પ્રાઃ તદાલોકકલ્પમ્ અગ્રેષુ-
 રૂપાદિવસ્તુવિશેષં પ્રાતિભં જ્ઞાનમુદયતે, પશ્ચાત્ સર્વોત્કૃષ્ટપ્રકર્ષે સતિ મુસ્પષ્ટપ્રતિ-
 ભાસંસકલલોકાલોકવિપયમનુપમમવાધ્યં કચલજ્ઞાનમુત્પદ્યતે। એવમુક્ત્વાઽસૌ તિરો-
 હિતો જાતઃ। તસ્માદાત્મૈવ દમનીયઃ।

કા અભ્યાસ ધીરે-ધીરે પ્રકર્ષ અવસ્થા કો પ્રાપ્ત હો જાતા હૈ તવ ઇસ
 અભ્યાસ કી પ્રકર્ષતા કી કૃપા સે ઝનું જ્ઞાનવિશેષોંકી પ્રાપ્તિ હો જાતી
 હૈ। ઇનસે વે શાસ્ત્ર પ્રતિપાદિત ઉપાયોં કા નિરીક્ષણ કિયા કરતે હૈં।
 ઝન જ્ઞાનવિશેષોં કા કથન ઁસા તો નહીં હૈ જો આપકે સમક્ષ વચનો
 દ્વારા કથિત હો સકે। યદ્ વાત તો વે હી જાન સકતે હૈં જો ઇસ અવ-
 સ્થા પર પહુંચ ચુકે હોતે હૈં। જિનકી આત્મા ઇસ નિગ્રહ કે અભ્યાસ કે
 પ્રકર્ષ સે વિહીન હૈં ભલા વે ઇનકે સ્વાદ કો ક્યા જાનૈં। યે જ્ઞાન વિશેષ
 સિદ્ધિપદરૂપી સંપત્તિ કે જનક હોતે હૈં। સૂક્ષ્મ, સૂક્ષ્મતર મી પદાર્થોંકે યે
 નિર્ણાયક હોતે હૈં। ઇનસે જીવોંકા કુચ્છ-કુચ્છ પદાર્થોંકા સ્પષ્ટ પ્રતિભાસ
 હોને લગ જાતા હૈં। જય મનોનિગ્રહ કરનેકા અભ્યાસ કિશ્ચિત્ ન્યૂન
 અત્યંત પ્રકર્ષ અવસ્થા તક પહુંચ જાતા હૈ તવ ઝસ સમય આત્મા મૈં
 પ્રાતિભ નામકા ઁક જ્ઞાનવિશેષ ઉત્પન્ન હોતા હૈં। યદ્ જ્ઞાન કેવલજ્ઞાનસે
 પહિલે હોતા હૈં। ઇસમૈં મત્યાદિક પરોક્ષ જ્ઞાનકી અપેક્ષા નહીં રહતી હૈં।

શ્રેણી પર પણ ચડાવી દઉં છું. ત્યારે સાધુજનનો નિગ્રહ કરવાનો મને અભ્યાસ
 ધીરે ધીરે પ્રકર્ષ અવસ્થા પ્રાપ્ત થાય છે, ત્યારે આ અભ્યાસની પ્રકર્ષતાની
 કૃપાથી તેને જ્ઞાન વિશેષોની પ્રાપ્તિ થઈ જાય છે, તેનાથી તે શાસ્ત્ર પ્રતિપાદિત
 ઉપાયોનું નિરીક્ષણ કર્યા કરે છે. એ જ્ઞાન વિશેષોનું કથન એવું તો નથી જે
 આપની સામે વચનથી કહી શકાય, તે વાત તો તેજ જાણી શકે છે જે આ અવ-
 સ્થાને પહોંચેલ છે. જેની આત્મા આ નિગ્રહના અભ્યાસના પ્રકર્ષથી વિહિન
 છે. આવા જીવ એ સ્વાદને કયાંથી જાણે. આ જ્ઞાન વિશેષ સિદ્ધિ પદરૂપી
 સંપત્તિના જનક હોય છે. સૂક્ષ્મથી સૂક્ષ્મ પદાર્થોના પણ એ જાણકાર હોય છે.
 એમનાથી જીવોને કોઈ કોઈ પદાર્થોનો સ્પષ્ટ પ્રતિભાસ થવા લાગે છે.
 મનો નિગ્રહ કરવાનો અભ્યાસ ત્યારે થોડા અંશે અત્યંત પ્રકર્ષ અવસ્થા સુધી
 પહોંચી જાય છે ત્યારે એ સમયે આત્મામાં પ્રાતિભ નામનું એક જ્ઞાનવિશેષ
 ઉત્પન્ન થાય છે. આ જ્ઞાન કેવલ જ્ઞાનથી પહેલાં થાય છે. તેમાં મત્યાદિક

अयं भावः—मनोनिग्रहेण बाह्येन्द्रियनिग्रहेण चात्मा उपशमभावे नेतव्य इति भावः ।

हु=निश्चयेन, खलु-यतः आत्मा दुर्दमः=दुर्जयः ।

अत्रोदाहरणम्—

‘अप्पा हु खलु दुद्दमो’ इति भगवद्वचनं भद्राचार्यसन्निधौ श्रुत्वाऽऽत्मकल्याणसाधक उग्रवंशोत्पन्न उग्रनामा नृपः प्रव्रज्यां गृहीतवान् । स्वकल्याणार्थं मनोनिग्रहीतुं प्रवृत्तः । किन्तु मनः पारदवत् परमचञ्चलम्, तेन तत्स्वायत्तं न जातम्, असौ मुनिव्रतधारी नृपश्चिन्तयति—अहो ! एकेनापि कोपकटाक्षमात्रेण सर्वे जना ममाज्ञां शिरसि धृत्वा ममायत्ताः सन्तो मम चरणं शरणीकृत्य तिष्ठन्ति स्म । परन्तु विषयों की ओर अर्थात् असंयम मार्ग में प्रवृत्ति करते हैं । संयमरूपी लगाम से संयमित करे जिससे उनकी असंयम में प्रवृत्ति रुक जाय । कहने का भाव यही है कि पांच इन्द्रिय एवं मन इन छह को निगृहीत करने से आत्मा अपने उपशम भावमें स्थित होता है । अतः इनके निग्रह करनेका प्रयत्न प्रत्येक मोक्षाभिलाषीः आत्मा को करना चाहिये । “अप्पा हु खलु दुद्दमो ” इस प्रभु कथित वचन को भद्राचार्य के पास सुनकर उग्रवंशीय उग्र नामका राजा दीक्षित हुए । उन्होंने हर तरह से अपने मन को निग्रह करने का खूब प्रयत्न किया, परन्तु पारे एवं पवनके समान अति चंचल होने से उसका वह निग्रह नहीं कर सके । उसी मुनिव्रतधारी राजा ने विचार किया—बड़े आश्चर्यकी बात है कि एक कोपकुटिल भ्रुकुटीमात्र से भी समस्त मेरे प्रजाजन मेरी आज्ञाको शिर पर धारण कर लिया करते थे और चरण की शरण में आ जाते थे—परन्तु—यह

भाग्यमां प्रवृत्ति करे छे. जेने संयमरूपी लगामथी संयमित जनावे जेनाथी तेनी असंयमनी प्रवृत्ति रोकथे जय. मतलब कडेवाने जे छे के, पांच इन्द्रिय जेने मन, आ छ ने निगृहीत करवाथी आत्मा पोताना उपशम भावमां स्थित थाय छे. आथी जेने निग्रह करवाने प्रयत्न इरेक मोक्षाभिलाषी आत्माजे करवे जोधे जे. “अप्पाहु खलु दुद्दमो” आ प्रभुजे कडेला वचनने भद्राचार्यनी पासेथी सांभजीने उग्रवंशीय उग्र नामना राजा दीक्षित थया. तेजोजे इरेक प्रकारे पोताना मनने निग्रह करवाने पुण प्रयत्न कर्यो, परंतु पवनना समान अति चंचल होवाथी तेनाथी निग्रह करी सकथे नही. जे मुनिव्रतधारी राजाजे विचार कर्यो—धरु आश्चर्यनी बात छे के, जेक कोप कुटिल भ्रुकुटी मात्रथी मारा समस्त प्रजाजने मारी आज्ञाने भाथा उपर धारण करता हुता जेने शरणना शरणमां आवी जाता हुता. परंतु आ मन केटहुं जणवाहुं छे जे मारा वशमां

कुरङ्गमातङ्गपतङ्गभृङ्ग,—

मीना इताः पञ्चभिरेव पञ्च ।

एकः प्रमादीस न हन्यते किं,

यः सेवते पञ्चभिरेव पञ्च ॥ १ ॥

अन्यच्च—इन्द्रियाणां हि चरतां, विषयेष्वपहारिषु ।

संयमे यत्नमातिष्ठेद्, विद्वान् यन्तेव वाजिनाम् ॥ १ ॥

अयमर्थः—विद्वान्=तत्त्वज्ञः अपहारिषु=भारुर्पकेषु=तत्तदिन्द्रियविषयेषु चरतां=गच्छताम् इन्द्रियाणां संयमे=संयमने यत्नम् आतिष्ठेत्=कुर्यात्, क इव ? इत्याह-वाजिनाम्=अश्वानां यन्तेव=सारथिरिवेति ।

यदि इनका दमन नहीं करता है तो वह मुक्तिमार्ग में प्रवृत्त नहीं हो सकता है और न साधक ही बन सकता है । इन्द्रियों का यदि दमन न किया जाय तो शास्त्रकारों ने यहां तक कह दिया है कि आत्मा का भी विनाश हो जाता है । कहा भी है—देखो—जब क्रमशः एक एक इन्द्रिय के विषय में लोलुप होने से कुरंग-हिरण, मातंग-हस्ती, पतंग, भ्रमर एवं मीन-मछली, ये प्राणी अपने प्राणों से रहित होते हैं तब जो मनुष्य पांचों इन्द्रियोंके विषय में लोलुप बनेगा क्या वह विनष्ट नहीं होगा ? परंतु अवश्य विनष्ट होगा—दुर्गति को प्राप्त करेगा । अतः जिस प्रकार यन्ता-अश्वरोही-घुड़सवार-इच्छित मार्ग पर चलाने के लिये घोड़े को लगाम द्वारा अपने आधीन बना लेता है उसी प्रकार आत्महितैषी का कर्तव्य है कि वह भी इन इन्द्रियरूपी घोड़ों को कि जो अपने-अपने

न करे तो ते मुक्ति मार्गमां प्रवर्तं अनी शकतो नथी, तेमञ्ज साधक पञ्च अनी शकतो नथी, धन्द्रियेणुं जे दमन न करवामां आवे तो शास्त्रकारोअे त्यां सुधी कडेहुं छे के, आत्मानो पञ्च विनाश थर्ध जाय कहुं पञ्च छे-जुअो-अ्यारे क्रमधी अेक अेक धन्द्रियना विषयमां लोलुप होवाधी कुरंग-हिरण्ण, मातंग-हाथी, पतंग, भ्रमर, तेमञ्ज माछली, आ प्राणी पोताना प्राणोधी रद्धित अने छे, तो पछी माणुस अ्यारे पांचिय धन्द्रियेना विषयमां लोलुप अनी रडे तो तेनो नाश न थाय ? अरेअर नाश थवानो-दुर्गतिने प्राप्त करथे, अेधी जे रीते घोडेवार धच्छित मार्ग उपर अलाववा माटे घोडाने लगाम द्वारा पोताना आधीन अनावी ले छे, अेअ प्रकारे आत्महितैषीनुं कर्तव्य छे के, ते पञ्च आ धन्द्रियरूपी घोडाअेने के जे पोत पोताना विषयेनी तरक् अर्थात् असंयम

नियमयति, ततोऽपि निःसृतं पुनरुपशमभावे समारोहयति, ततोऽपि निःसृतं द्यूतं स चिन्तयति—अहो ! मनो हि दुर्दमम् तदपि ज्ञानक्रियाभ्यां वशीकरिष्यामि, इति विचिन्त्य क्षपकश्रेण्यामारुह्य मनो निगृह्य शुक्लध्यानद्वितीयपादं संप्राप्य केवलज्ञानं प्राप्तवान् । आत्मानं दाम्यन् अस्मिन् लोके परत्र च सुखी भवति ।

अत्रोदाहरणम्—

एको धर्मघोपनामाऽऽचार्यः शिष्यसहितो ग्रामानुग्रामं विहरन् विस्मृतमार्गः पञ्चशतचौराधिष्ठितायां चौरपल्लयां गतः । मार्गविस्मरणादेव चातुर्मास्यकरणाथं

जय यह वहां भी नहीं ठहरा तो सूत्रार्थचिन्तनरूप ध्यान में लगा दिया । तब यह वहां सूत्रार्थ के चिन्तन करने में लग गया । परंतु यह बहुत काल तक स्थित नहीं रह सका । तो फिर उसको उपशम भाव में लगाया । जिससे उसको शांति मिले, फिर भी यह स्थिर नहीं रहा और निकला तो मुनि विचारने लगे अहो ! मन बड़ा ही दुर्दम है उसको ज्ञान एवं क्रिया में लगा दिया । ज्ञान क्रिया से इसको वश में करूंगा ऐसा निश्चित विचारकर क्षपक श्रेणी का आश्रयण किया, फिर मन स्थिर हो गया, और शुक्ल ध्यान के द्वितीय पाद के अवलम्बन से केवलज्ञान को प्राप्त कर लिया और सिद्धिपद पाये, तात्पर्य कहनेका यह है कि आत्मा को दमन करने वाला साधु इस लोक एवं परलोक में सुखी होता है ।

धर्मघोष नाम के कोई एक आचार्य थे । वे शिष्यों सहित विहार करते हुए किसी दूसरे ग्राम को पधार रहे थे । चलते-चलते वे मार्ग

तडिं नवानो प्रथम कथो के, राज्ञिष्ये तुरतञ्च स्वाध्यायमां निरत करी दीधुं । न्यारे ते त्यां पषु न टक्युं त्यारे सूत्रार्थं चिंतनरूप ध्यानमां लगावी दीधुं । अने ते सूत्रार्थना चिंतनमां त्यां लागी गया, परंतु त्यां पषु ते लागी समय स्थिर न रही शक्या. आ पछी उपशम लावमां लगाववामां आवतां जेमांथी शांति भणे. छतां पषु अे स्थिर न रह्युं. त्यारे मुनि वीचारवा लाग्या के, मन भहुञ्च यंत्रण छे. तेने ज्ञान वगेरेनी क्रियामां लगाववामां आव्युं, ज्ञानक्रियाथी तेने वश करीश जेवो निश्चित विचार करी क्षपक श्रेणीना आश्रय लीधो, पछी मन स्थिर थयुं अने शुक्ल ध्यानना भीज पटना अवलम्बनथी केवलज्ञानने प्राप्त क्युं. अने सिद्धी पद पाभ्या. तात्पर्य कडेवानुं अे छे के, आत्माने दमन करवावाणा साधु आ लोक अने परलोकमां सुधी थाय छे. आने उदाहरण द्वारा समर्थन करवामां आवे छे—

धर्मघोष नामना कोठिं ओक आचार्य हुता, ते शिष्यो सहित विहार करीने कोठिं गांमे जई रह्या हुता, आलतां आलतां ते मार्ग जुली गया अने

इदमेकमेव मनः शतधा मां नर्तयति, अहं जातिसम्पन्नः कुलसम्पन्न उग्रवंशीयः क्षत्रियोऽस्मि, येन केनापि प्रकारेणातिचञ्चलमिदं मनः स्वायत्तीकरिष्यामि तपसा संयमेन वा स्वाध्यायध्यानादिना वा यथातथा मनः सुस्थिरं करिष्यामि, इति मनसि निश्चित्य समितिषु मनः संयोजयति, ततो निःसरति तदनु गुप्तिषु नियोजयति ततोऽपि निःसृतं स्वाध्याये, ततोऽपि निःसृतं मूर्धार्थचिन्तनलक्षणे ध्याने

मन कितना चलिष्ठ है जो मेरे वशमें नहीं आता है—उल्टा मुझे ही अनेक तरह से नचाता है। मैं जाति संपन्न हूँ, कुल संपन्न हूँ और उग्रवंशीय क्षत्रिय हूँ, अतः मेरा कर्तव्य है कि इसका विजय करने के लिये मैं अपनी शक्ति का परिचय दूँ। मैं कोई ऐसा वैसा व्यक्ति तो हूँ नहीं जो इसके वश में पड़ जाऊँ। अतः जैसे भी हो सकेगा हर एक उपाय से चाहे यह कितना भी चंचल क्यों न हो इसे अपने अधीन बनाकर ही रहूँगा। यदि यह तप से वश में होना चाहेगा—तो तप करूँगा—संयम से वश में होना चाहेगा—तो संयम मार्ग अराधुँगा, यदि स्वाध्याय एवं ध्यान से वश में होना चाहेगा—तो स्वाध्याय, ध्यान करूँगा, परंतु इसे अब छोड़ूँगा नहीं। इस प्रकार दृढ प्रतिज्ञा होकर सर्वप्रथम उसने पांच समितियों के पालन करने में मनको नियुक्त किया, परन्तु यह तो बड़ा ही चंचल था, इसलिये ज्यों ही वहां से निकला की गुप्तियों में नियुक्त किया, फिर भी यह वहां कुछ ही देर ठहर कर जब इसने इधर उधर जानेका प्रयत्न किया कि राजकृपि ने शीघ्र ही स्वाध्याय में निरत कर दिया।

आवतुं नथी. उलटुं मनेन अनेक रीते नचावे छे. हुं जति संपन्न छुं, कुल संपन्न छुं, अने उग्र वंशिय क्षत्रिय छुं. आधी भाइं कर्तव्य छे के, अना उपर विनय करवा भाटे हुं भारी शक्तिने परिचय करावुं. हुं कोठि अवेो नभणा मननेा भाषुस नथी के अना वशमां पडी जठं. आधी नेम भने तेम दरेक उपायथी आडे ते केटहुं पषु यंचल केम न डोय तेने भासा आधिन अनावीने न नपीश. जे ते तपथी वश अनशे तो हुं तप करीश-संयमथी वश थशे तो संयम भागनुं आराधन करीश, जे स्वाध्याय अने ध्यानथी वशमां आवशे तो स्वाध्याय, ध्यान करीश. परंतु आने हुं छोडनार नथी, आ प्रकारनी दृढ प्रतिज्ञा लठि सर्व प्रथम तेबे पांच समितिओनुं पालन करवामां मन पशेओयुं परंतु मन तो बारि यंचल हुंतुं आ कारणे नेम-त्याथी निकरुयुं के गुप्तिओमां नियुक्त थयुं. छतां पषु ते त्यां थोडीवार रडी न्यारे तेबे. अडिं

मेधां पिपीलिका हंति, यूका कुर्याज्जलोदरम् ॥
 कुरुते मक्षिका वान्ति, कुष्ठरोगं च कोलिकः ॥ १ ॥
 कण्टको दारुखण्डं च, वितनोति गलव्यथाम् ।
 व्यञ्जनान्तर्निपतित, -स्तालु विध्यति वृश्चिकः ॥ २ ॥
 विलग्नस्तु गले वालः, स्वरभंगाय जायते ।
 इत्यादयो दृष्टदोषाः, सर्वेषां निशिभोजने ॥ ३ ॥
 तथैव परलोकेऽपि, दुर्गतिर्जायते ध्रुवम् ।
 तस्मात् रात्रौ न भुञ्जीत प्रोक्तं भगवता सदा ॥ ४ ॥

लिये उनके पीछे २ गये । वहां आचार्य ने उन्हें रात्रिभोजन न करने का उपदेश दिया । उस समय में उन्होंने ने बतलाया कि रात्रिभोजन में अनेक दोष हैं, क्यों कि सूर्यास्त हो जाने से उस समय अनेक सूक्ष्म जीवों का प्रचार और उत्पत्ति होती है तथा यदि भोजन में पिपीलिका-कीड़ी खाने में आ जावे तो खाने वाले की बुद्धि नष्ट हो जाती है । जूं यदि भोजनमें खाने में आ जावे तो जलोदर नामका रोग हो जाता है । भोजनमें मक्षिका आ जानेसे चमन होता है, भोजनमें कौलिक करोळिया के खाने से कुष्ठरोग होता है, कांटा तथा लकड़ी की फांस से गले में घोर दुःख होता है, विछु खाने में आ जाय तो तालु का भेदन होता है, केश-खाने में आ जावे तो स्वर का भंग होता है इत्यादि अनेक दोष रात्रिभोजन में हैं । तथा परलोक में रात्रिभोजन करने वाले को दुर्गति की प्राप्ति होती है । इसलिये किसी को रात्रिभोजन नहीं करना चाहिये ।

महाराजने पछोंआउवा तेमनी पाछण पाछण गया. त्यां आचार्ये तेमने रात्री लोअन न करवाने उपदेश आये, ते वअते तेमणे जख्खाव्युं के रात्री लोअनमां अनेक दोष छे केमके, सूर्यास्त थर्ध जवाथी अनेक सूक्ष्म लुवेने प्रचार अने उत्पत्ति थाय छे. अने लोअनमां ले पीपीलीका-कीड़ी भावामां आवी लय तो बुद्धिने नाश थाय छे. लुं वगेरे ले भावामां आवी लय तो जलोदर नामने रोग थाय छे, मापी आवी जवाथी उलटी थाय छे, ले करौणीये भावामां आवी लय तो कौळ थाय छे, कांटा तेमज लाकडांणी फांस जेवुं भावामां आवी लय तो गणामां अटकाई लय छे अने तालु दुःख थाय छे, पिछी ले भावामां आवी लय तो तालुवुं तोडी नाये छे, मोवाणे भावामां आवी लय तो स्वरने भंग थाय छे. इत्यादि अनेक दोष रात्री लोअनमां छे अने रात्री लोअन करानेने दुर्गतिनी प्राप्ति थाय छे. आ भाटे केईये रात्री लोअन न करवुं.

निश्चितस्थानं गन्तुमक्षमो भूत्वा चौरपल्लयामेव चातुर्मास्येऽवस्थातुं चौर-
पल्लीनायकमुपाश्रयं याचितवान् चौरपल्लीनायकेन प्रोक्तम्—अत्र भवता देशना न
कर्तव्या, सर्वे वयं तस्करवृत्तिजीविनः । मुनिना तद्वचनं स्वीकृत्य स्वाध्यायध्याना-
दिना चातुर्मास्यं यापितम् । चातुर्मास्यावसाने विहारसमये सर्वं तस्कराः किञ्चिद्दूरं
मुनिमनुगताः तदा मुनिना तेषु रात्रिमोजनमतिपेथरूपा देशना दत्ता। तथा चोक्तम्—

भूल गये और चौरोंकी पल्ली में जा पहुँचे । वहाँ ५०० चौर रहते थे,
चौमासे का समय बिलकुल नजदीक आ पहुँचा था । इतना समय था
नहीं कि किसी और दूसरे स्थान पर वहाँ से चलकर चौमासे में रहने
का निश्चय किया जा सके । अतः आचार्यने वहाँ पर चतुर्मास व्यतीत
करने के अभिप्राय से चौरों के नायकसे चतुर्मास में ठहरने के लिये
उपाश्रयकी याचना की । आचार्यकी बात सुनकर पल्लीपति ने उनसे कहा
कि आप यहाँ ठहरें—हमें इसमें कुछ हरकत नहीं है परंतु आप यहाँ
धार्मिक उपदेश देने का कष्ट न करें । कारण कि हम सब यहाँ के
निवासी चोरी करके अपना निर्वाह करते हैं कहीं ऐसा न हो कि
आपकी देशना से हमारा व्यापार धंदाबंद हो जाय । आचार्य ने उसकी
बात मान ली और स्वाध्याय एवं ध्यान से वहाँ पर रहते हुए अपना
चौमासे का समय व्यतीत किया । जब विहार करने का समय आया
तो उस वक़्त सब चौर मिलकर आचार्य को पहुँचाने के लिए इकट्ठे
हुए और कुछ दूर तक सब के सब आचार्य महाराज को पहुँचाने के

शेराना नैसदाभां ऋषिपडोंग्या. त्यां ५०० चौर रहते। डता, योभासाने समय
नशुक आवी रहो डतो, अेटवो समय न डतो डे त्यांथी थीन स्थाने पडोंग्याने
त्यां योभासाभां रहेवाने निश्चय करी शकय. आधी आचार्ये अे स्थान उपर
यतुर्मास व्यतित करवाना अलिप्रायथी शेराना नायकथी यतुर्मास रोकावा भाटे
आश्रय स्थाननी याचना करी. आचार्यनी बात सांभणी शेराना नायके कछुं डे
बले आप अडिं रहे। अमने अेभां कांई वांधा नथी. परंतु आप अडिं
धामींक उपदेश आपवाने विचार न राअथो. कारण डे अमे सधणा अडिंना
निवासी चोरी करीने पोताने निर्वाड करीअे छीये. कदाय अेवुं न अने डे
आपना उपदेशथी अमारो धंधे अंध थई नथ, आचार्ये तेनी बात भानी
वीधी अने स्वाध्याय अने ध्यानथी त्यां रहीने पोताने योभासाने समय व्यतित
कथो. न्यारे विहार करवाने समय आंव्ये ते वअते अथा शेराने भणी आचा-
र्यने पडोंग्याडवा भाटे अेकठा थया अने थोडे दूर सुधी आ अथा

निर्विपा । पाकप्रवृत्ता अपि एवमेव विचार्य स्वभोजनार्थमर्थं मांसं पृथक् निधाय
अर्थं मांसं विपमिश्रितं कृतवन्तः । सर्वे भोजनार्थमुपस्थिताः पल्लीनायकं प्रोक्तवन्तः।
पल्लीपतिनोक्तम्—इदानीं रात्रिः संजाता, मया रात्रिभोजनस्य प्रत्याख्यानं कृतम्,
सर्वैर्भुज्यताम्, ततः पल्लीनायकाज्ञया सर्वे चौरा भोक्तुमुपविष्टाः । तत्र सार्धद्वय-
संख्यकाश्चोराः सविपमदिरापानेन मृताः, अन्ये सार्धद्वयसंख्यकाः सविप-
मांसमक्षणेन मृताः । एतत् सर्वं दृष्ट्वा पल्लीनायकेन मनसि चिन्तितम्—

से आधी मदिरा में विप मिला दिया जाय । ऐसा विचार कर उन्होंने
आधी मदिरा में विप मिला दिया और आधी मदिरा अपने लिये विना
विप की अलग रख ली । उधर जो मांस आदि पकाने में लगे हुए थे
उन्होंने भी यही विचार किया और जैसा काम इन लोगोंने किया वैसा
ही उन्होंने ने किया—अर्थात् उन लोगों ने भी आधे भोजन में विप मिला
दिया और आधा भोजन अपने लिये विना विप का अलग रख लिया ।
जब सब भोजन के लिये बैठने लगे तब सब ने पल्लीपति को भोजन
करने के लिये बुलाया । परंतु पल्लीपति ने उस समय भोजन करने से
यह कह कर मना कर दिया कि देखो भाईयों इस समय रात्रि हो चुकी है—
मैं ने रात्रिभोजन का त्याग किया है, अतः आप लोग ही इस समय
भोजन करें ! पल्लीपति की इस प्रकार आज्ञा प्राप्त कर वे सब के सब
भोजन करने के लिये बैठ गये । उनमें आधे तो विप मिश्रित मदिरा
के पान करने से मर गये और आधे विपमिश्रित मांस के खाने से
मर गये । इस प्रकार सर्व विनाश देखकर पल्लीपति ने मन में विचार

आवे, એવો વિચાર કરી તેઓએ અરધા ઠાડમાં વિપ મેળવી દીધું અને અરધો
ઠાડ પોતાના માટે અલગ રાખ્યો. અહિં પછુ જે માંસ વગેરે પકાવવામાં
લાગેલ હતા તેમણે પછુ એવો વિચાર કર્યો જેવું કામ આ લોકોએ કર્યું.
અર્થાત્ એ લોકોએ પછુ અરધા ભોજનમાં વિપ મેળવી દીધું અને અરધું પોતાના
માટે અલગ રાખી લીધું. જ્યારે બધા જમવા માટે બેસવા માંડ્યા ત્યારે બધાએ
તેના આગેવાનને જમવા માટે બોલાવ્યા. પરંતુ આગેવાને એમ કહી ના કહી
કે બુચો ભાઈએ આ સમયે રાત્રીના સમય થઈ ચુક્યો છે મેં રાત્રી ભોજ-
નને ત્યાગ કરેલ છે આથી આપ લોકોજ જમી લ્યો. આગેવાનની આ પ્રકારે
આજ્ઞા મળતાં તે બધા જમવા માટે બેસી ગયા, અને અરધા તે વિપ મેળવેલ
ઠાડું પાન કરવાથી મરી ગયા અને અરધા વિપ મિશ્રીત માંસના ખાવાથી
મરી ગયા. આ પ્રકારે સર્વ વિનાશ જોઈને આગેવાને મનમાં વિચાર કર્યો કે

देशनां श्रुत्वा तेषु केवलमेकेन पल्लीपतिना रात्रिभोजनप्रत्याख्यानं कृतम् । एकदा पञ्चशतसंख्यकैर्यौरैः सह पल्लीपतिः स्तंभं कृतुं गतः । एकस्यां नगर्यां बहुतरं धनं चौर्येण प्राप्तं, तदुपादाय ते सर्वे महारण्ये समागत्य तत्र सर्वं संस्थिताः । तत्र तन्नायकेन कथितम्—अत्र भुज्यतां सर्वं, तदा सार्धद्वयसंख्यकाः पाककरणार्थं प्रवृत्ताः, सार्धद्वयसंख्यकाश्च सुरादिकमानेतुं समीपस्थं ग्रामं गताः । मदिरादिकमानेतुं प्रवृत्तैस्तेश्चिन्तितम्—चौर्येणोपार्जितं सर्वं धनमस्माकं भविष्यति, यद्यर्धमदिरा विपमिश्रिता नीयते । एवं चिन्तित्यार्धमदिरा विपमिश्रिता तैरानीता, अर्धा तु स्वार्थं

आचार्य महाराज की इस प्रकार की धर्मदेशना सुनकर उनमें से केवल एक पल्लीपति ने रात्रिभोजन का त्याग कर दिया । एक समय की बात है कि यह पल्लीपति उन पांचसौ चोरों के साथ चोरी करने के लिये बाहर गया । किसी एक नगर में चोरी करने से उन्हें बहुत सा द्रव्य मिला । उसे लेकर वे सब के सब वहाँ से चल दिये और किसी एक जंगल में आकर ठहर गये । पल्लीपति ने सब से कहा कि अब सब लोग भोजन की तैयारी करो । पल्लीपति के इस आदेश को पाकर उनमें से आधे अर्थात् अढाईसौ चौर तो भोजन करने की तैयारी में लग गये और अढाईसौ चौर सुरा मदिरा आदि को लेने के लिये पास के गावों में गये । मदिरादिक लानेके लिये गये हुए इन व्यक्तियों ने मनमें विचार किया कि चोरी में जितना भी द्रव्य हाथ लगा है वह सब का सब हम सब लोगों को ही मिल जावे तो बहुत ही उत्तम बात है, इसलिये ऐसा प्रयत्न करना चाहिये कि जो लोग भोजन बना रहे हैं वे सब के सब मर जायें—अतः उन्हें मारने की तरकीब एक यही है कि इस मदिरा में

आचार्य महाराजनी आ प्रकारनी धर्म देशना सांख्यीने तेमांथी इक्षत अेक चोरना आगेवाने रात्री लोअनने त्याग कर्यो. अेक वअते ते चोरने आगेवान अे पांचसे चोरानी साथे चोरी करवा भाटे अडार गये, कोअ अेक नगरमां चोरी करवाथी तेने धलुं द्रव्य मलयुं अेने लध ते अधा त्यांथी आलता थया अने, कोअ अेक जंगलमां पडोअी त्यां रोकाया. चोरना आगेवाने अधाने लोअननी तैयारी करवानुं कहुं तेना आदेशने सांख्यी अरध नेटला चोर तो लोअननी तैयारीमां लागी गथा अने अरधा दाइ विगेरे देवा भाटे पासेना गाममां गथा, दाइ विगेरे देवा गथेला अे चोरोअे मनमां विचार कर्यो के, चोरीमां मणेअुं सधुं द्रव्य अधु अमने मणी नय तो धलुं साइं थाय आ भाटे अेवो प्रयत्न करवो नेअुं के के देाके लोअन अनावे छे ते अधा मरी नय. तेमने मारवानी तरकीब केवण अेक अे छे के आ दाइमांना अरधा दाइमां विष लेणव

लक्षणेन सप्तदशविधेन, तपसा अनशनादिद्वादशविधेन च दान्तः=वशीकृतः स्यात्
 तर्हि वरं=श्रेयः शोभनं भवेदित्यर्थः, संयमो हि आस्रवनिरोधं जनयति, क्षपकश्रेणि
 समारोहयति, कर्म निर्जरयति केवलज्ञानमुत्पादयति, शैलेश्यवस्थां प्रापयति सिद्धा-
 वस्थां प्रकटयति । तपश्च रागद्वेषादिदोषमलिनात्मसंशोधकं, तेजोलेश्यादिवि-
 धलब्धिजनकं पूर्वसंचितसकलकर्मदाहकं नवकर्मानुत्पादकम् । पुनर्मनस्येवं चिन्त-
 येत्-अहं परैः=अन्यैः बन्धनैः शृङ्खलादिभिः, वधैः=लगुडचपेटादिभिः, दमितः=
 निगृहीतः-वद्ध्वा ताडयित्वा च स्वाधीनीकृत इत्यर्थः, मा भवेयम् ।

अयं भावः-यदाऽन्ये मम बन्धन ताडनैर्दमनं करिष्यन्ति तदा मम श्रेयो नास्ति,
 परवशत्वात्, तथाहि-वधबन्धनैः परवशस्य मम चित्तसमाधिर्न सम्भवति तदभावे
 कर्मनिर्जराभावः, तदभावे दीर्घाध्वसंसारपरिभ्रमणं भविष्यतीति ।

एवं मन का दमन कहूँ यह सर्वोत्तम है । अगर ऐसा नहीं कहूँ तो
 कदाचित् मुझे (बंधणेहिं वहेहिं परेहिं दम्नं तो अहं मा वरं-बंधनैः
 वधैः परैः दमितः अहं मा वरं) बधनों-शृंखला आदि के द्वारा बांधना-
 रूप क्रियाओं से तथा वध-चपेटा आदि प्रहारों से जो मैं दूसरों के
 द्वारा दमित होऊँ । अथवा यदि मैं इन्द्रियो एवं मनका जो तप तथा संयम
 द्वारा दमन कर लूंगा तो यह इसलिये उत्तम है कि मैं भविष्य में अन्य
 व्यक्तियों द्वारा बंधन एवं वध से निगृहीत नहीं हो सकूंगा । कहने का
 तात्पर्य यह है कि जब मुझे अन्यजन बंधन एवं ताडन आदि द्वारा
 निगृहीत करेंगे तो इसमें मेरी कोई भी भलाई नहीं है कारण कि यह
 अवस्थाएँ अनिच्छापूर्वक वश होने की वजह से सहन करनी पड़ती हैं ।
 इसमें चित्त की समाधि तो होती नहीं है । चित्त में समता भावरूप

बंधन अने तप द्वारा जो हूँ आत्मानो-इन्द्रियो अने मननुं दमन करूं जो
 सर्वोत्तम छे. जो तेम न करूं तो कदाचित् मने बंधणेहिं वहेहिं परेहिं दम्नं तो
 अहं मा वरं-बंधनैः वधैः परैः दमितः अहं मा वरं बंधनो श्रंखला आदि द्वारा
 बांधनाइय क्रियाओथी तथा वध-चपेटा आदि प्रहारोथी जो हूँ जीनओथी
 दमित अनुं अथवा-जो हूँ इन्द्रियो अने मननुं तप तथा संयम द्वारा दमन
 करी लवूं तो ते जो भाटे उत्तम छे के हूँ भविष्यमां अन्य व्यक्तियो द्वारा
 बंधन अने वधो निगृहीत नहीं थरं शकुं. कडेवानो मतलब जो छे के न्यारे
 मने जीन भावुसो बंधन अथवा ताडन आदि द्वारा निगृहीत करे तो आमां
 भारी कोर्ष पणु ललाठ नथी. कारण के, आ अवस्थाओ अनिच्छाओ परवश
 थवाने कारणे सहन करवी पडे छे. तेमां चित्तगी समाधी थती नथी. चित्तमां

रात्रिभोजनपत्याख्यानेन रसनेन्द्रियमात्रदमनस्य फलमेतद् यन्मया जीवनं लब्धम्, यदि पुनः सर्वयाऽऽत्मदमनं कुर्यां तर्हि कथं न ध्रुवं नित्यमचलमव्यापारं शिवसौख्यं लभेयम् । एवं विचिन्त्य चौरपल्लीनायकेन मुनिसमीपे गत्वा प्रव्रज्यां गृहीत्वा स्वात्मकल्याणं साधितम् ॥ १५ ॥

आत्मदमनार्थमेवं चिन्तयेदित्याह—

मूलम्—वरं मे' अप्पा दंतो. संजमेण तवेण यं ।

माऽहं परेहिं दम्भंतो, वंधणेहिं वेहेहि यं ॥ १६ ॥

छाया—वरं मे आत्मा दान्तः संयमेन तपसा च ।

माऽहं परेदमितः बन्धनैर्वधैश्च ॥ १६ ॥

टीका—'वरं मे०' इत्यादि ।

मे=मया, आत्मा=मनोरूपः पञ्चेन्द्रियरूपश्च संयमेन=सावधानुष्ठानविरति-

किया कि रात्रिभोजन त्याग करने का, जिसमें एक मात्र रसनेन्द्रिय का दमन किया जाता है, यह फल है जो मैं अकेला जीवित बच सका हूँ । यदि सर्व प्रकार से मैं आत्मा-इन्द्रियों एवं मन का दमन करूँ तो क्यों नहीं ध्रुव, नित्य, अचल और अय्यावाध मुक्ति सुख का अधिकारी बनूँ । इस प्रकार विचार कर उस पल्लीपति ने उसी समय मुनिकी पास जा कर दीक्षा धारण कर आत्मकल्याण के मार्ग का साधन करना प्रारंभ कर दिया ॥१५॥

आत्मा को दमन करने के लिये मोक्षाभिलाषी को इस प्रकार विचार करना चाहिये—'वरंमे०' इत्यादि ।

अन्वयार्थ—(मे अप्पा संजमेण तवेण य दंतो वरं-संयमेन तपसा मया दान्तः वरं) संयम एवं तप के द्वारा जो मैं आत्मा का-इन्द्रियों

रात्री खोजन त्याग करवाथी मात्र ऐक रसनेन्द्रियतुं दमन करवाभां आवे छे तेतुं आ कृण छे. जे हुं ऐकवो लवतो रही शकथो. जे हुं सर्व प्रकारथी आत्मा-इन्द्रियो अने मनतुं दमन कइं तो ध्रुव, नित्य, अचल अने अय्यावाध मुक्ति सुखने अधिकार केम न बनूं ? आ प्रकारने विचार करी ते चारना आगेवाने ऐव वपते मुनि पासे जधने दीक्षा धारण करी आत्म कल्याणना मार्गतुं साधन करवाने प्रारंभ करी हीथो ॥ १५ ॥

मोक्षना अखिलाधीये आ प्रकारे आत्मातुं दमन करवाने विचार करवे जेधये—वरंमे० इत्यादि.

अन्वयार्थ—मे अप्पा संजमेण तवेण य दंतो वरं-संयमेन तपसा मया दान्तः वरं

चिन्तयति, यदा कथमपि मे बालको भविष्यति तदाऽनेन हनिष्यते । ततः सा हस्तिनी यूथादपसरति, क्रमेण प्रहरं प्रहरद्वयमन्तरिवं कृत्वा यूथमध्ये मिलति, क्रमशः सा द्वितीये दिवसे यूथमध्ये गत्वा मिलति एवं कुर्वत्या तथा प्रसवसमये समागते सति तापसाश्रमो दृष्टः, सा तत्राऽऽलीना गुप्तस्थाने प्रमृता, बालकः संजातः। स बालकस्तत्र यथा तापसकुमारा घटादिभिरुद्यानगतान् वृक्षान् सिञ्चन्ति, तथा जलाशयं गत्वा स्वशुण्डायां जलं भृत्वा वृक्षान् सिञ्चति । ततस्तापसैस्तस्य

निवास करता था । वहाँ जितने भी नवीन बच्चे पैदा होते थे सब को मार डालता था । एक समय की बात है कि एक हस्तिनी गर्भवती हुई । गर्भावस्था में हस्तिनी ने विचार किया कि जब मेरी कुक्षि से बच्चा पैदा होगा तो यह निश्चय है कि यह दुरात्मा गज उसे बिना मारे नहीं रहेगा, अतः अच्छी अव यही है कि मैं इस यूथ से अलग ही होकर रहूँ । ऐसा विचार कर यूथ से अलग रहने लगी—परन्तु यह अलग रहने का भेद प्रकट न हो जाय इस ख्याल से पहिले तो वह यूथ में एक २ दो २ प्रहर के बाद आती जाती रही, फिर १-१-२-२ दिन के बाद मिलती रही । इस प्रकार करते २ जब उसके प्रसव का समय नजदीक आ गया तो वह किसी तापस के आश्रम में जा पहुँची । वहाँ पर गुप्तस्थान में प्रच्छन्न होकर उसने बच्चे को जन्म दिया । बच्चा क्रमशः बढने लगा । वहाँ पर जिस तरह तापस कुमार घड़ों में पानी भरकर उद्यान के वृक्षों को सींचा करते थे उसी प्रकार यह हाथी का बच्चा भी जलाशय से अपनी झुंड में पानी भर कर उद्यान के वृक्षों

(हाथी) निवास करते होते । त्यां जेटलां नवां अन्थां जन्मतां हुतां ते अधाने ते भारी नापता । अेक समयनी वात छे अेक हाथणी गलवती थर्ध, गलावस्थाभां हाथणीअे विचार कर्यो के न्यारे मने अन्थु अवतरशे त्यारे अे वात निश्चित छे के आ इरात्मा हाथी तेने भारी नाप्या वगर रडेशे नडीं । आथी साइं तो अे छे के, आ लुथथी लुहा पडीने रहुं । आवो विचार करी ते लुथथी लुही रडेवा लागी । परंतु अलग रडेवानो लेह प्रगट न थर्ध जाय अे भाटे ते लुथभां अवार नवार आवती जती अने धीरे धीरे अेकेके दिवस अने अण्णे दिवसना अंतरे आवती जती । आ प्रकारे करतां करतां न्यारे तेने प्रसव समय नलुक आव्यो त्यारे ते डोर्ध तपस्वीना आश्रमभां जर्ध पडोथी अने त्यां शुभ स्थानभां प्रच्छन्न-छुपाईने अन्थाने जन्म आथ्यो । अन्थुं मोटुं थवा भांड्युं, त्यां जे रीते तापस कुमार घडाभां पाणी भरिने उद्यानना वृक्षाने पाता हुता ते रीते आ हाथीनुं अन्थुं पणु जलाशयथी पातानी सुंढभां पाणी भरिने

अत्र दृष्टान्तः सेचनकहस्ती यथा—

एकस्यामटव्यां बहुतरुहस्तिनीभिः सह महागजो निवसन्नासीत् । स च जातं जातं करिशावकं विनाशयति । एकदा तत्रैका हस्तिनी सगर्भा जाता, सा चैवं समाधि की प्राप्ति नहीं होगी—यह भी निश्चित है कि कर्म की निर्जरा नहीं होगी । कर्म की निर्जरा के अभाव में इस अनन्तसंसार का परिभ्रमण भी नहीं रुक सकता है । १७ प्रकार के संयम से एवं १२ प्रकार के अनशन आदि तप से जो मैं आत्मा का दमन कर लूंगा उससे मेरा एकान्त हित होगा । कारण कि संयम से ही आश्रव का निरोध होता है । इसकी सहायता से ही आत्मा क्षपकश्रेणी पर आरूढ़ होता है । अनन्तगुणी कर्मों की निर्जरा इसके ही सद्भाव से होती है । केवलज्ञान की प्राप्ति जीव को इसी के बल पर होती है । शैलेशी अवस्था का लाभ एवं सिद्धावस्था की प्रकटता इसी तप संयम से मिलती है । रागद्वेष आदि से मलिन आत्मा का शोधन तप से होता है । तेजोलेख्या आदि विविध लब्धियों का जनक तथा पूर्व में संचित समस्त कर्मों का नाशक एवं नवीन कर्मों का आगमन का निरोधक तप होता है । अतः इस अवस्था में एकान्ततः आत्मा का हित भरा हुआ है ।

अब सेचनकहस्ती के दृष्टान्त से इस विषय को स्पष्ट करते हैं—

किमी एक अटवीमें अनेक हस्तिनीके साथ एक मदोन्मत्त महागज

समतालावृक्ष समाधीनी प्राप्ति यथे नही। आ पक्षु निश्चित छे के, कर्मनी निर्जरा पक्षु यथे नही। कर्मनी निर्जराणा अभावमां आ अनंत संसारतुं परिभ्रमक्षु पक्षु रोकै शकावानुं नथी। १७ प्रकारना संयमथी अने १२ प्रकारना अनशन आदि तपथी लेहुं आत्मानुं दमन करी लठं तो तेनाथी भाइं एकान्त हित यथे। कारण के, संयमथी न आश्रवना निरोध थाय छे, तेनी सहायताथी न आत्मां क्षपक श्रेणीये पछेयि छे। अनंतगुणी कर्मोनी निर्जरा अनाज सद्भावथी थाय छे। केवलज्ञाननी प्राप्ति छवने अना न भगथी भये छे। शैलेशी अवस्थाना लाभ तेमज सिद्धावस्थानी प्रकटता अज तप संयमथी भये छे। रागद्वेष आदिथी मलीन आत्मानुं शोधन तपथी थाय छे। तेजे लेख्या आदि विविध लब्धिअना जनक तथा पूर्वनां संचित समस्त कर्मोना नाश करनार अने नवीन कर्मोना राकनार तप छाय छे। आथी आ अवस्थामां एकान्ततः आत्मानुं हित समायेलुं छे।

(सेचनक हाथीना दृष्टान्तथी सूत्रकार आ विषयने स्पष्ट करे छे)

कोई एक वनमां अनेक हाथीयोनी साथे एक मदोन्मत्त

आलानस्तम्भे लौहशृङ्खलाभिः स निबद्धः । तापसास्तत्रागत्य सेचनकं भर्त्सयन्ति-
अरे गजराज ! अधुना क्व ते पराक्रमः, अविनयस्य फलमिदानीं लब्धम् । एतद्वचनं
श्रुत्वा सेचनकः क्रुद्धः स्तम्भं भङ्क्त्वा पुनर्वनं प्रविष्टस्तेषामावासभूमौ वृक्षान् विध्वं-
सितवान् । पुनः श्रेणिकः सेचनकं गजं निगृहीतुं तद्वनं गतः । अत्रान्तरे पूर्वभव
मित्रदेवेन सेचनकसमीपमागत्य प्रोक्तम्—हे वत्स ! परेभ्यो दमनात् स्वयं दमनं
वर्म्, ततस्तद्वचः श्रुत्वाऽसौ स्वयमागत्यालानस्तम्भनिकटे स्थितः ।

रहा है । हमारे आश्रम का समस्त वन उसने नष्ट भ्रष्ट कर दिया है ।
तापसों की इस प्रकार बात सुनकर श्रेणिक ने बड़ी सेना के साथ वन
में जाकर उस सेचनक हाथी को पकड़ लिया । और उसे लाकर आलान-
स्तम्भ में लौहे की सांकलों से बांध दिया । तापस आकर अब उसे
भर्त्सित करने लगे । कहने लगे—अरे ! सेचनक गजराज ! कह अब वह
तेरा पराक्रम कहां चला गया, देख तेरी कैसी दुर्दशा हुई है । समझा
यह अविनय करने का फल है, जिसे तू भोग रहा है । तापसों के
इस प्रकार भर्त्सना भरे वचनों को सुनकर सेचनक को बहुत ही क्रोध
आया और उस आवेश में आलानस्तम्भ को तोड़ मरोड़ कर वह सीधा
वन में जा पहुँचा । वहां पहुँचकर उसने पहिले की तरह ही उनकी
आवासभूमि के वृक्षों का विध्वंस करना प्रारंभ कर दिया । राजा श्रेणिक
पुनः उसे पकड़ने के लिये वन में आये । इतने में पूर्वभव के मित्र देवने
आकर सेचनक से कहा—जो तुम वार २ दूसरों के द्वारा दमित किये
जाते हो—उसकी अपेक्षा तो यही अच्छा है कि तुम अपने आपको

आश्रमनां सधर्षां वृक्षानो अहे नाश करी नाभ्यो छे. तापसोनी वात सांखणी
श्रेणिक राण्ये लारे सेना साथे वनमां ज्छे अ सेचनक डाथीने पकडी दीधो
अने तेने राजधानीमां लावी अेक पूज मज्जुत स्तंभ साथे लोढानी सांकणोथी
पांधी दीधो. तापसोअे आ समये तेनी साथे ज्छे तेनी भशकरी शइ करी अने
कडेवा लाग्या—अडो ! सेचनक गजराज कडेा डवे तमाइं पराक्रम कथां यादथुं
गथु ? अे तारी डेवी दुईशा थथ ? अविनयतुं आ इण छे, जे तुं लोगवी रडेल छे.
तापसोतुं आ कडेवानुं सांखणी सेचनकने पूज ज क्रोध आब्यो अने ते
जपरजस्त अेवा स्तंभने तोडी नाभी लोढानी सांकणोने इगावी इध वनमां
ज्छे पडेांअ्यो. त्यां पडेांअ्यीने थारे भालुथी वननां वृक्षोनेो विच्छेद करवानुं
शइ करी दीधुं. राण अश्रेणिक इरी तेने पकडवा भाटे वनमां पडेांअ्या. आ समये
सेचनकना पूर्णवना मित्र देवे आवी सेचनकने कहुं—तमे जीव द्वारा घडी
घडी डेरान थाव छे—आथी साइं तो अे छे डे तमे तमारी अने पोतातुं दमन करे.

‘सेचनक’ इति नाम कृतम् । स सेचनकस्तापसवालकानां वयस्यो जातः । कदाचिद् भ्रमन्तं यूथाधिपतिं दृष्ट्वा सेचनकस्तं मारितवान् । स्वयं यूथाधिपतिर्जातः । स च तापसाश्रमे वृक्षाणां विध्वंसनं कृतवान् , काऽप्यन्या मन्मानेव प्रच्छन्ना मा तिष्ठतु इति विचारित्वांश्च । ततस्ते तापसा रुष्टाः पुष्पफलपूर्णदस्ताः श्रेणिकनृपस्य समीपं गत्वा तमश्रुयन्-एकः सेचनकनामाइस्ती वने तिष्ठति, स चास्माकं वासस्थाने वनं विनाशयति । ततः श्रेणिकेन महत्या सेनया सह वनं गत्वा सेचनकं निगृह्य

को सिंचने का काम करने लगा। सिंचनरूप कार्य को करने से तापसों ने इसका नाम “सेचनक” रख दिया। तापस वालक इस पर घड़े प्रसन्न रहा करते, अतः उन सबके साथ यह खूब हिलमिल कर रहने लगा, यहाँ तक कि उनके साथ इसकी पूर्ण मित्रता हो गई। जब यह खूब बलिष्ठ हो चुका-तो एक समय की बात है कि उसने अवसर पाकर यूथाधिपति हाथी को घूमते समय जान से मार दिया और स्वयं यूथ का अधिपति हो गया। इसने ऐसा विचार किया कि मेरी माता के समान कोई भी हथिनी छुप कर न बच्चा उत्पन्न करे और न छुप कर ही रहे, इस अभिप्राय से इसने आश्रम के समस्त वृक्ष उखाड़ डाले। इसके इस प्रकार के कार्य से तापस लोग रुष्ट हो गये। वे सब के सब पुष्प फलादिकरूप भेट लेकर राजा श्रेणिक के पास पहुँचे। वहाँ पहुँचकर उन्होंने राजा को अपनी सारी कथा सुनाई। कहा महाराज ! एक सेचनक नामक हस्ती वनमें रहता है वह बहुत ही उपद्रव कर

उद्यानना वृक्षाने पाष्ठी पावानुं काम करवा लग्युं, तापसोऽप्ये आ प्रकारानुं काम करवाथी ते ङाथी भाणकतुं नाम ‘सेचनक’ राभ्युं, तापस भाणकतेना पर भूष-प्रसन्न रक्षा करता, ऐथी ते ऐभनी साथे भूष ङणी भणीने रडेवा लाग्युं, ते त्यां सुधी के ऐभनी साथे तेनी पूर्युं मित्रता थर्ध गर्ध न्यारे ते ङाथी भन्युं भूष भणवान भन्युं त्यारे ऐक समये ते सशक्त अने भणवान भनेवा ङाथी भाणे मडाभणवान अने धातक ऐवा ङाथी जुंउपतिने अवसर भणवी लुपथी भारी नाभ्यो. अने पोते जुंउपति भन्यो. तेले विचार कथो के भारी भातानी भाङ्क कोर्ध पणु ङाथणी छुपाधने भन्योने न्म न आये अने न तो छुपाधने रडे. आ अलिप्रायथी तेले आश्रमनां भधां वृक्षोने न्उमुणथी उजेडी नाभ्यां. ङाथीना आ प्रकारना कार्यथी तपस्वीओना हिलमां लारे दुःख थयुं अने तेओ पुष्प ङण वगेरे लेट लर्ध राज्ञ श्रेणिकनी पासे पडोऽन्या अने त्यां न्धे राजने भधी वात कही संभणावी अने कहुं, मडाराज ! सेचनक नामने। ऐक ङाथी वनमां रडे छे ते भूष उपद्रव करे छे, अमारा

समागताः प्रजा संमिलन्ति । तस्य प्राज्यं राज्यसुखं, प्रतिदिवसं नवं नवमिव यौवनम्, नवनीतमिव शिरीषकुसुममिव सुकुमारं शरीरम्, नयनलोभकरं रूपलावण्यम्, सर्वत्राव्याहतगतिकं यानम्, दिङ्मण्डलविजयिनी चतुरङ्गिणी सेना, शीतलसुगन्धमन्दमास्तमनोविनोदनं, नन्दनवनमिव सर्वर्तुमुखदं रमणीयमुद्यानम्, चन्द्रमण्डलावधिरणगगनस्पर्शिधवलप्रासादाः, सर्वे कामभोगा अनुकूला आसन् । असी दौण्डुकदेव इव सर्वं सुखमनुभवन्नास्ते । तत्रैकदा धर्मचन्द्रनामक आचार्यः शिष्यगणपरि-

राज्य का उसे अधिक से अधिक सुख था । यौवन भी इसका प्रतिदिन नवीन नवीन रूप में खिलता रहता था । शरीर इसका नवनीत एवं शिरीष पुष्प से भी अधिक सुकुमार था । रूप लावण्य नयनों को लुभावे ऐसे थे इसे कहीं पर भी चले जाने में कोई रुकावट नहीं होती थी । इसकी चतुरंगिणी सेना दिङ्मण्डल को विजय करने वाली थी । इसके एक रमणीय उद्यान था जो नन्दनवन के समान समस्त ऋतुओं में सुखदायक था । जिसमें शीतल, मंद एवं सुगन्धित पवन बहा करता था उससे मन का अच्छा विनोद होता था । जिस महल में राजा का निवास था वह चंद्रमण्डल से भी रमणीय था तथा इतना ऊँचा था कि आकाश को जैसे स्पर्श करता हो । समस्त कामभोग इसके अनुकूल थे । दौण्डुक देव की तरह यह समस्त प्रकार के सुखों को भोगता हुआ अपना समय निश्चितरूप से व्यतीत करते थे । इतने में एक दिन की बात है ग्रामानुग्राम विचरते हुए धर्मचन्द्र नामके आचार्य

द्विशाओभांधी लोको होडीने आवता इता. राज्यतुं ऐभने साइं ऐयुं सुभ इतुं, यौवन पषु ऐभतुं प्रतिदिन अपनवीन रीते भीवतुं रडेतुं इतुं, शरीर ऐभतुं नवनीत (भाभषु) अने शिरीष पुष्पथी पषु अधिक सुकुमार इतुं, रूप लावण्य नयनाने लोभावे तेषुं इतुं, डेअ पषु स्थणे न्वाभां ऐने डेअ इकापट न इती, ऐभनी यतुरंगिणी सेना दिङ्मण्डलेन विजय करनार इती, ऐभतुं ऐक सुंदर ऐयुं उद्यान इतुं ने नन्दनवन समान इरेक इतुमां सुभ आपनार इतुं. नेभां शीतल, मंद, अने सुगन्धित पवन वहा करतो इतो, नेथी मनने सारे आनंद भणतो. ने मडेवभां राजने निवास इतो ते चंद्रमण्डली पषु रमणिय इतो अने ते ऐतलो उंचो इतो के ने आकाशने अडीने लोको डोय ऐभ लागतुं. अथा कामभोग ऐने अनुकूल इता. दौण्डुक देवनी माइक ऐ समस्त प्रकारनां सुभाने लोगततां पोतानो समय निश्चित रीते व्यतित करता इता. आभां ऐक दिवसनी बात छे के ग्रामानुग्राम विचरता धर्मचंद्र

स्वयमागतं स्तम्भसमीपे त्रिचरणेनावस्थितं सेचनकं दृष्ट्वा श्रेणिकनृपस्तं
मिष्टाहारैः स्वर्णभूषणैः करस्पर्शादिभिश्च नितरां लालयति स्म । एवं सेचनकह-
स्तिवत् स्वयमात्मनो दमनेन लोके सर्वत्रादरं लभमानः सुखी भवति । तथैव
परलोकेऽपि सुखी भवति' तत्रोदाहरणम्—

अष्टमतीर्थकरस्य श्रीचन्द्रप्रभस्य शासने चन्द्रपुरीनगर्यां तदंशपरंपरायां सुद-
र्शनो नाम नरपतिरासीत् । स चैवं पूर्वोपार्जितपुण्यराशिरासीत्—येन तस्य दर्शनात्
प्रजानामिष्टलाभो भवति, अतस्तद्दर्शनार्थमनुदिवसं तत्र चतसृभ्यो दिग्भ्यः

दमन करो । देव के इस प्रकार वचन सुनकर सेचनक आलानस्तम्भ के
पास स्वयं आ कर खड़ा हो गया । राजा सेचनकको आलानस्तम्भके
पास खड़ा देखकर बड़ा प्रसन्न हुआ । उसने मिष्ट आहार से तथा स्वर्ण
के आभूषणों से उसका खूब सत्कार किया । चारोंवार उसके ऊपर हाथ
फेरा और पुचकारा । मतलब कहने का यही है कि जो व्यक्ति सेचनक
हाथी की तरह अपना स्वयं दमन करता है वह सर्वत्र आदरणीय बन
कर इस लोक में खूब सुखी हो जाता है । तथा परलोक में आनंदका
भोक्ता बनता है, इस विषय में उदाहरण इस प्रकार है—

अष्टमतीर्थकर श्री चंद्रप्रभु स्वामी के शासन में चंद्रपुरी नाम की
नगरी में सुदर्शन नामका एक राजा थे । यह चंद्रप्रभुस्वामी की वंशपरं-
परा में ही उत्पन्न हुए थे । उसकी पूर्वोपार्जितपुण्यराशि इतनी प्रबल थी कि
जो कोई प्रजाजन इसका दर्शन करते थे उसे अवश्य ही इष्ट का लाभ
होता था । इसी से उसके दर्शन के लिये हरएक दिशा से दौड़ २ आते थे ।

देवनां आ प्रकारनां वचन सांख्यी सेचनक पोतानी जते न राजधानीमां
पडोन्धे अने प्रथम ने स्थणे तेने पांषवामां आवेत्त इतो ते स्थणे न्ध उलो
रही गयो. सेचनकने आ रीते पाछे आवेत्ते न्धे राज श्रेष्ठिक पुशी यथा
अने तेने साङ्गं अ्धे बुं भीष्ट लोञ्ज आपी सोनाना अलंकारे पडेरपी तेना
शरीर उपर प्रेमथी हाथ डेरववा लाग्या, कडेवानो मतलब अे छे के ने व्यक्ति
सेचनक हाथीनी माङ्क स्वयं पोतानुं दमन करे छे ते सर्वत्र आदरने पात्र
जनी आ लोकमां पूज सुभी थर्ध परलोकमां पबु आनंदना लोगवतार जने छे.

आ विषयमां उदाहरणु आ प्रकारनुं छे—

आठमा तीर्थकर श्री चंद्रप्रभुस्वामीना शासनमां चंद्रपुरी नामना नग-
रमां सुदर्शन नामना राजा इता. ते चंद्रप्रभु स्वामीना वंशना न इता. जेनी
पूर्वोपार्जित पुण्यराशि अटली प्रजण इती के ने कौध प्रजणन अेमनां दर्शन
करते तेने छिटने लाल अवश्य भणी जते, आथी अेमना दर्शन साठे इरेक

अनशनवमौदरिकाभ्यां तपोभ्यां रूपलावण्य संपन्नं मुकुमारं शरीरं कृशयति, तथाहि—चतुर्भक्तं कृत्वा तत्पारणायामन्तप्रान्तंरुक्षं, तदपिसाभिग्रहं, तदपि स्वल्पं, तदप्यवमौदरिकानुकूलं गृह्णाति । तदनन्तरं पष्ठभक्तमष्टमभक्तं दशमभक्तं द्वादशभक्तं पावन्मासक्षणं तपः कृत्वा सर्वपारणासु अवमौदरिकं तपः कुर्वन्नेव शरीरं कृशतरं कृतवान् । एवं तीव्रतरतपश्चरणाद् धन्यनामानगारवत् शुष्कमांसशोणितः सन् परिचिन्तयति—आचार्यदेशनानुसारेण मया सर्वथाऽऽत्मा दमितः, धर्मध्यानेनात्मबलं प्राप्य पुष्टोऽस्मि, अतः परं शुकुध्यानाय सर्वथा यतिष्ये, एवं सोत्साहं विशुद्धभाव-नया क्षपकश्रेणिं समारुहान्तर्मुहूर्तमात्रेण केवलज्ञानं प्राप्तवान्, एवं वर्षकमात्रेण तीव्र-तपसा स्वात्मानं दमयन् सिद्धो जातः । तस्मात् स्वयमेव स्वात्मा दमनीय इति ॥१६॥

होकर दीक्षित हो गये । उन्होंने ने अपने रूपलावण्ययुक्त सुन्दर मुकुमार शरीर को अनशन एवं अवमौदरिक तप द्वारा कृश करना प्रारंभ कर दिया । कभी वह चतुर्भक्त उपवास करते और पारणा के समय अन्त, प्रान्त एवं रुक्ष आहार लेते, उसमें भी अभिग्रह, अभिग्रह में भी स्वल्प, उसमें भी अवमौदरिकानुकूल लेते । बाद में पष्ठ भक्त, अष्टमभक्त, द्वादशभक्त, से लेकर एक मासक्षण तक भी तपश्चर्या करते । और इन सब तपस्याओं के पारणा के दिन वह अवमौदरिक तप करते । इससे इनका शरीर अतिशय दुर्बल हो गया । इस प्रकार तीव्र तपश्चर्या के करने से इनका शरीर धन्य नामक अनगार के शरीर की तरह शुष्क मांस शोणित वाला होकर केवल अस्थिपंजर मात्र अवशिष्ट रहा । उस समय उन्होंने विचार किया—कि मैं ने आचार्य महाराज की देशना अनुसार सर्व प्रकार से अपनी आत्मा का दमन किया तथा इस अवस्था

मुकुमार शरीरने अनशन अने अवमौदरिक तपधी कृश करवाने प्रारंभ करी दीये। क्यारिक तेजे अतुर्भक्त उपवास करता अने पारणाना समये अन्त, प्रान्त अने रुक्ष आहार लेता हुता। जेभां पष्ठ अलिग्रह, अलिग्रहभां पष्ठ स्वल्प, जेभां पष्ठ उमौदरिक तप करता आदभां पष्ठभक्त, अष्टमभक्त, दश-मभक्त, द्वादशभक्त, थी लर्ध जेक मासक्षणपष्ठ सुधीनी पष्ठ तपश्चर्या करता अने जे अधी तपश्चर्याना पारणाना दिवसे उल्लोदरिक तप करता। आधी जेमनुं शरीर अतिशय दुर्बल अनी गयुं, आ प्रकारनी तीव्र तपश्चर्या करवाधी तेमनुं शरीर धन्य नामना अनगारना शरीरनी मादक लोडी मांस वगरनुं धर्ध गयुं, अने इकल डाडकाने भाजणे न आडी रह्यो। जे समये तेमणे विचार क्यो क्रे-जे आचार्य महाराजनी देशना अनुसार सर्व प्रकारधी मारा आत्मानुं दमन क्युं

दृतो ग्रामानुग्रामं विहरन् चन्द्रपुरीनगर्या बहिरुद्याने सहस्राऽऽम्रवने समवष्टतः ।
 तद्वन्दनार्थं सुदर्शनो नृपः सपरिवारः समायातः । आचार्येण सुदर्शननृपस्य नामा-
 नुरूपं रूपलावण्यादिकं विलोच्य धर्मदेशनादत्ता-सुदर्शननृपो निश्चय्य मुनिदेशनां
 मनसि चिन्तयति-अहो ! यः स्वात्मानं स्वयं न दमयति, स परे बंधवन्धनादिभि
 र्दमितः सन् स्वात्मनः कर्म निर्जरयितुं न प्रभवति अपितु ज्ञानावरणीयाद्यष्टविध-
 कर्मरजोभिः स्वात्मानं गुरुतरीकृत्य चतुर्गतिकसंसारगर्ते निपतति जन्मजराम-
 रणाद्यनन्तदुःखं प्राप्नोति । इति चिन्तयन् सर्वेभ्यः कामभोगेभ्यो विरज्य प्रव्रजितः ।

महाराज अपने शिष्यगण सहित उस चंद्रपुरी नगरी के बाहिर बगीचे
 में सहस्राम्रवन में पधारे । उनको वन्दन करने के लिये वे सुदर्शननरेश
 परिवारसहिक वहां गये । आचार्य महाराज ने नाम के अनुरूप उनके
 रूपलावण्य को देखकर धर्म देशना प्रारंभ की । सुनकर नरेश बहुत
 ही आनंदित हुए और विचारने लगे-जो व्यक्ति अपना आत्मा को स्वयं
 दमन नहीं करता है वह दूसरों द्वारा बंध वंधनादिक से दमित होकर
 अपने कर्मों की निर्जरा करने में शक्ति शाली नहीं होता है किन्तु दुर्ध्यान
 होने से उस समय वह आत्मा चतुर्गतिक संसाररूप गर्त में निपातन
 हेतु जो ज्ञानावरणीयादिक अष्टविध कर्म का बंध है उसे दृढ़ करता है ।
 उस कर्मरूपी रज से मलिन बना वह आत्मा इतना भारी हो जाता है
 कि उसका पतन संसाररूपी गर्त में अवश्यंभावी होता है । और वहां
 पड़ा हुआ वह जन्ममरण आदिके अनंत दुःखों को भोगता रहता है ।
 इस प्रकार विचार कर वह नरेश समस्त कामभोगों से विरक्त

नामना आचार्य पौताना शिष्यगण सहित ये चंद्रपुरी नगरना भंडारना भगी-
 याभां पधायीं, राज सुदर्शन तेमने वंदन करवा परिवार साथे त्यां गया, आचार्य
 भंडाराने नामना लेवाज तेना रूप लावण्यने लेध धर्म देशना प्रारंभ करी,
 सांभली राज भूषण भुशी थया अने मनभां विचारवा लाग्या के ले व्यक्ति
 पौताना आत्मातुं स्वयं दमन नथी करतो ते भीन द्वारा बंध वंधनादिकथी
 दमित थध पौताना कर्मोनी निर्जरा करवाभां शक्तिशाली अनी शकतो नथी,
 परंतु दुर्ध्यान होवाथी ये समय ते आत्मा चतुर्गतिक संसाररूप भाडाभां
 अवश्य पडे छे, अने येभां ल पडथी रही ते जन्म भरलु आदिना अनंत
 दुःखो भोगवतो रहे छे, आ प्रकारने विचार करी राज सुदर्शन समस्त काम-
 भोगोथी विरक्त अनी दीक्षित थध गया, तेमले पौताना रूपलावण्य युक्त सुंदर

कर्मयोग्यानाम् आचार्यादीनामित्यर्थः, पक्षतः=पार्श्वतः, न उपविशेदिति शेषः । पार्श्वभागोपवेशने गुर्वादिपंक्तौ समावेशात् तत्साम्यं स्यात्, किंच शिष्यं प्रति वक्रावलोकने गुरोः स्कन्धादिवाधासम्भवः तथा चाविनयः प्रसज्येत, तस्मादाचार्यादिवाहुना सह वाहुं कृत्वा शिष्यो नोपविशेदिति भावः । पुरतो न=गुर्वादीनामग्रतोऽपि नोपविशेत्, तथोपवेशने वन्दनार्थमागतानां जनानां गुर्वादिमुखावलोकनेऽन्तरायः स्यात्, पृष्ठतोऽपि नैवोपविशेत्, गुरुशिष्ययोरुभयोरपि मुखादर्शने वाचनादीनामानन्दो न स्यादिति भावः । ऊरुणा=जङ्घया ऊरुं=जङ्घां न युञ्ज्यात्=न संघट्टयेत्, अत्यासन्नोपवेशनादिभिः शिष्यः स्वकीयेनोरुणा गुरोरुरुं न स्पृशेदित्यर्थः । तथाकरणे सति गुर्वादीनामविनयः स्यात् । तथा-शयने=शय्यायां शयित आसीनो वा न प्रतिशृणुयात् । अयं भावः-शय्यागतः शिष्यो यदि गुरुणाऽऽहृतः

आसन विनय को सूत्रकार कहते हैं—' न पक्खओ० ' इत्यादि ॥

अन्वयार्थ (किञ्चाणं पक्खओ-कृत्यानां पक्षतः " न उपविशेत् " कृतिकर्म-अर्थात् वन्दनादि के योग्य-आचार्य तथा अपने से बड़े के पास में संघटा करते हुए बराबर नहीं बैठे । (पुरओ न पिट्ठओ न-पुरतः न पृष्ठतः न) गुरु महाराज के आगे नहीं बैठे । पीछे संघटा करता हुआ नहीं बैठे । (ऊरुणा ऊरुं न जुंजे-ऊरुणा ऊरुं न युञ्ज्यात्) उनके ऊरु-घुटना से घुटना लगाकर नहीं बैठे । (सयणे नो पडिस्सुणे) तथा जिस समय आचार्य आदि किसी काम करने के लिये बुलावें अथवा कहें उस समय अपने आसन पर बैठें ही बैठे उत्तर नहीं दे ।

कृतिकर्म का अर्थ वन्दन विशेष है । इसका वर्णन मेरे द्वारा रचित आवश्यक सूत्र की टीका में किया गया है । अतः यह विषय वहां से जान लेना चाहिये । इस कृतिकर्म के योग्य आचार्य आदि होते हैं ।

आसन-विनय विषे सूत्रकार कहे छे—न पक्खओ० इत्यादि.

अन्वयार्थ—किञ्चाणं पक्खओ-कृत्यानां पक्षतः " न उपविशेत् " कृतिकर्म अर्थात् वन्दनादिने योग्य आचार्य तथा पीतानाथी भोटाओनी पासे तेमनी अडोअड थर्धने भेसवुं नई, पुरओ न पिट्ठओ न-पुरतः न पृष्ठतः न गुरु भडाराजनी आगण भेसवुं नडि, पाछण अडोअड थर्ध न भेसे ऊरुणा ऊरुं न जुंजे-ऊरुणा ऊरुं न युञ्ज्यात् तेमना घुंठणुथी घुंठणु लगाडीने न भेसे सयणे नो पडिस्सुणे तथा जे समये आचार्य आदि कौं काम करवा भाटे भोलावे अथवा कहे ते समये पीताना आसन उपर भेकां भेकां जवाम न आपु.

भावार्थ—कृति कर्मने अर्थ वंदन विशेष छे । जेनुं वषुंन माराथी शयित आवश्यक सूत्रनी टीकायां करवायां आवेल छे, आधी आ विषय त्वांथी

આસનવિનયમાહ—

મૂલમ્—નૈ પૈવલ્લઓ નૈ પુરંઓ, નૈવ કિચ્ચાણ પિટ્ટંઓ ।

નં જુંજે” ઝરુણા ઝરું, સયંણે નો” પડિસ્સુણે ॥૧૮॥

છાયા—ન પક્ષતો ન પુરતો, નૈવ કૃત્યાનાં ગૃહ્ણતઃ ।

ન યુઙ્ઘ્યાદ્ ઝરુણા ઝરું, શયને નો પ્રતિગૃણ્યાત્ ॥ ૧૮ ॥

ટીકા—‘ ન પૈવલ્લઓ ’ ઇત્યાદિ ।

કૃત્યાનામ્=કૃતિયોગ્યાઃ કૃત્યાઃ, અત્ર કૃતિશબ્દેન કૃતિકર્મ ગૃહ્યતે, કૃતિકર્મ-વન્દનવિશેષઃ, તદ્વર્ણનમાવશ્યકસૂત્રસ્ય મત્કૃતમુનિતોપિનીટીકાયાં દ્રષ્ટવ્યમ્, કૃતિ-

સુન્દર લતા કો પ્રત્યનીકભાવ નષ્ટ કર દેતા હૈ । ઇસલિયે મોક્ષાભિલાષી વિનયવાન શિષ્ય કા કર્તવ્ય હૈ કિ વહ સ્વપ્ન મેં ભી અપને ગુરુ મહારાજ કા પ્રત્યનીક ન્ વનેં ।

શ્લોક મેં “ વાચા કર્મણા ” જો પદ દિયે ગયે હેં ઉસકા મતલબ યહ હૈ કિ ગુરુ કે પ્રતિ શિષ્ય એસા ન કહે કિ “ આપ ભી ક્યા કુછ જાનતે હેં ” । ઇસ પ્રકાર કા વ્યવહાર વાચનિક પ્રતિકૂલ આચરણ મેં ગર્ભિત હોતા હૈ । ઇસી તરહ વે જિસ સંસ્તારક પર બેઠતે હોં ઉસકા કમી ભી શિષ્ય કો ઉલ્લંઘન નહીં કરના ચાહિયે । ઉસસે પૈર કા સંઘર્ષણ યા સંઘટ્ટન ન હો ઇસકી સદા સાવધાની રખની ચાહિયે । તથા આચાર્ય મહારાજ કે સમક્ષ કમી ભી શિષ્ય કો ઉચ્ચ આસન પર નહીં બેઠના ચાહિયે ઓર ઉનકે આને પર અપને આસન સે ઉઠકર ગુરુ મહારાજ કો વંદન આદિ કરના ઉચિત હૈ ॥ ૧૭ ॥

લતાનેા પ્રત્યનિકભાવ નાશ કરી નાખે છે. આ માટે મોક્ષાભિલાષી વિનયવાન શિષ્યનું કર્તવ્ય છે કે તે સ્વપ્નામાં પણ પોતાના ગુરુ મહારાજનેા પ્રત્યનિક ન બને.

શ્લોકમાં (વાચા કર્મણા) જે પદ આવવામાં આવેલ છે તેનેા મતલબ એ છે કે ગુરુના પ્રતિ શિષ્ય એવું ન કહે કે “ તમે પણ શું કાંઈ બલો છો ” આ પ્રકારનેા વહેવાર વાચનિક પ્રતિકૂલ આચરણમાં ગર્ભિત થાય છે. આ રીતે તે જે આસન ઉપર બેસતા હોય તેનું શિષ્યે કદિ પણ ઉલ્લંઘન કરવું ન જોઈએ, એ આસનને તેના પગ ન લાગે તેની તેણે સાવચેતી રાખવી જોઈએ તથા આચાર્ય મહારાજની સામે કદી પણ શિષ્યે ઉંચા આસન પર બેસવું ન જોઈએ અને તેમના આવવાથી પોતાના આસન ઉપરથી ઉભા થઈ ગુરુ મહારાજને વંદન વગેરે કરવું ઉચિત છે ॥ ૧૭ ॥

मूलम्—नेव पल्हत्थियं कुज्जा, पक्खंपिंडं च संजए ।

पाएँ पँसारिए वाविं नँ चिट्ठे' गुरुणंतिएँ ॥ १९ ॥

छाया—नैव पर्यस्तिकां कुर्यात्, पक्षपिण्डं च संयतः ।

पादौ प्रसार्य वापि, न तिष्ठेद् गुरुणामन्तिके ॥ १९ ॥

टीका—'नेव पल्हत्थियं' इत्यादि ।

संयतः—मुनिः, पर्यस्तिकाम्—द्वे जानुनी उत्थाप्य वस्त्रेण पृष्ठतः समारभ्य पार्श्वद्वयं जानुद्वयं च संवेष्ट्योपवेशनं पर्यस्तिका, यद्वा—जङ्घाद्वयं वस्त्रेण संवेष्ट्यो-

उन्हें प्राप्त नहीं हो सकेगा । तथा गुरु महाराज की जंघा से जंघा अड़ाकर भी शिष्य को इसलिये नहीं बैठना चाहिये कि इस प्रकार की क्रिया से गुरु महाराज का अविनय होता है । गुरु महाराज जब किसी कार्य करने के लिये शिष्य को बुलावे तो उस समय उसका कर्तव्य है कि वह 'तहेत्ति-तहेत्ति' कहकर आसनसे उर्सी वस्त्र संभ्रान्तचित्त होकर आसन का परित्यागकर देवे और बड़ी भक्तिसे विनयके साथ गुरुके समक्ष जाकर हाथ जोड़ घन्दना करके पूछे कि हे भदंत ! आज्ञा दीजिये—किस कार्य के लिये आपने मुझे याद किया है । इस प्रकार का व्यवहार भी विनयधर्म में परिगृहीत हुआ है ॥ १८ ॥

'नेव पल्हत्थियं' इत्यादि ।

अन्वयार्थ—(संजए संयतः) मुनि शिष्य को (गुरुणंतिए—गुरुणामन्तिके) अपने गुरुजनों के समक्ष (पल्हत्थियं नेव कुज्जा—पर्यास्तिकां नैव कुर्यात्) पैरों पर पैर रखकर—पालरथी मारकर—पद्मासन माड़कर—कभी नहीं बैठना चाहिये । इस प्रकार बैठने से आशातना दोष लगता है ।

अने प्राप्ति शकते नथी. तेम गुरु महाराजना गोडषुथी गोडषु लीडावीने शिष्ये अेटला भाटे न भेसवुं भेई अे, कारुषु के आ प्रकारनी क्रियाथी गुरु महाराजने अविनय थाय छे, गुरु महाराज कौंर काम भाटे शिष्यने भोलावे तो ते सभये अेनुं कर्तव्य छे के चोताना आसन उपरथी अेव वपते स्वस्थ चित्त अनी गुरु भोलावे त्यारे तडेत कही आसनने त्याग करी लक्ष्मिपूर्वक विनय साथे गुरुनी सामे नथ डाय भेडी वंढना करी पूछे के हे भदन्त ! आज्ञा आपो कया काम भाटे आपे भने याद करेल छे. आ प्रकारने वडेवार पणु विनय धर्मभं अडषु करवामां आवेल छे ॥ १८ ॥

नेव पल्हत्थियं इत्यादि,

अन्वयार्थ—संजए—संयतः मुनि शिष्ये गुरुणंतिए—गुरुणामन्तिके चोताना गुरुजनोंनी सामे पल्हत्थियं नेवकुज्जा—पर्यास्तिका नैव कुर्यात् पण उपर पण राभी—पडोडी लगावी—पद्मासन लगाडी, कडि पणु भेसवुं न भेई अे. आ

किंचित्कार्यकरणाय प्रोक्तो वा स्यात्, तदा शिष्येण शय्यायां स्थितेनैव न श्रोतव्यम्, किं तु गुरुवचनश्रवणसमनन्तरमेव संध्रान्तवेताः सविनयः कृताञ्जलिः सन् गुरोः समीपमागत्य चरणारविन्दं वन्दमानः 'अनुगृहीतोऽहम्' इति मनसि मन्यमानो वदेत्—'भदन्त ! आज्ञापयतु किं विधेयं मया' इति ॥ १८ ॥

मोक्षाभिलाषी शिष्य का कर्तव्य है कि वह आचार्यादिक को दायें बायें न बैठे । कारण कि इस प्रकार बैठने से गुर्वादिक की पंक्ति में उसका समावेश होता है । दर्शनार्थी लोग शिष्य को समझेंगे कि यही गुरु महाराज है । तथा शिष्य के प्रति जय गुरु को देखने की इच्छा होगी तो वे अपनी गर्दन को मोड़कर उसको देखेंगे, इससे उनकी गर्दन में तथा स्कन्ध आदि फिराने में तकलीफ होगी, तथा गुरु महाराज का संघटा आदि होने से शिष्य को आशातना आदि दोष लगने का संभव है । इसलिये गुरु महाराज की बराबरी में नहीं बैठना चाहिये । गुरु महाराज के आगे भी इसी तरह से नहीं बैठना चाहिये । कारण कि इस प्रकार से बैठने में गुरु महाराज को वन्दना निमित्त आने वालों को उनके दर्शनों में अन्तराय होती है । इसी प्रकार गुरु के पीछे भी शिष्य को नहीं बैठना चाहिये—क्यों कि इस प्रकार से बैठने पर गुरु को शिष्य का मुख नहीं दीख सकेगा और शिष्य को गुरु का मुख नहीं दीख सकेगा, इससे वाचना पृच्छना आदि में अन्तराय होने से उनका आनन्द

लक्ष्मी देवे। जेधये, आ कृतिकर्मना योग्य आचार्य आदि डाय छे. मोक्षा-
भिलाषी शिष्यनु कर्तव्य छे के ते आचार्य आदिथी डाय-जमलु न जेसे
कारण के, आ प्रकारे जेसवाथी गुरु आदिनी पंडितमां तेना समावेश थाय छे.
दर्शनार्थी लोक शिष्यने ज गुरु महाराज मानी वे. शिष्य तरक्ष न्यारे गुरु
महाराजने जेवानी धिच्छा थाय त्यारे ते पोतानी गरदन भरडीने तेना तरक्ष
जेशे आथी जेमनी गरदनमां तथा भला वगेरे जेस्ववामां तकलीक्ष
थरे तथा गुरु महाराजनु संघट्टु आदि थवाथी शिष्यने अशातना
आदि दोष लागवाने संभव छे. आ माटे गुरु महाराजनी परोरपरीमां
जेसवुं न जेधये तेम गुरु महाराजनी आगण पणु आ रीते
जेसवुं न जेधये. कारण के आ प्रकारना जेसवाथी गुरु महाराजनी वंदना माटे
आवनारने तेमना दर्शनमां अंतराय थाय छे. आ प्रकारे गुरुनी पाछण पणु
शिष्ये जेसवुं न जेधये केम के आ रीते जेसवाथी गुरु शिष्यनुं सुभ जेध
शकता नथी अने शिष्य, गुरुनुं सुभ जेध शकता नथी अने गुरु शिष्यनुं सुभ
जेध शके नर्डी आथी वाचना पृच्छना आदिमां अंतराय थवाथी जेने। ६

प्रेक्षितुं शीलमस्येति तथा, असौ गुरुणां प्रसादः—यदन्येषां शिष्याणां सद्भावेऽपि गुरुो मामाज्ञापयन्तीति विचारशील इत्यर्थः । यद्वा—केन विधिना गुरुः प्रसन्नो भवेदिति भावनाभावितः, गुरुप्रसादलाभार्थी इति यावत् । उक्तञ्च—

जो नत्थि भग्गसाली, नो सो गुरुदेसणं इहं लभए ।

धारामियस्स निवडइ, अंगेणो पुन्नहीणाणं ॥ १ ॥

छाया—यो नास्ति भाग्यशाली, नासौ गुरुदेशनामिहालभते ।

धाराऽमृतस्य निपतति, अङ्गे नो पुण्यहीनानाम् ॥ १ ॥

तथा नियागार्थी=मोक्षार्थी शिष्यः गुरुं=धर्माचार्यादिकं, सदा उपतिष्ठेत्= 'मत्पण वंदामि' इत्यादि वदन् सविनयं गुरुसमीपे तिष्ठेदित्यर्थः ॥१०॥

जावे, अथवा किसी कार्य करने के लिये कहा जावे—तब वह (कयाइविं-कदाचिदपि) कभी भी (तूसणीओ न-तूष्णीकः न भवेत्) उत्तर दिये बिना नहीं रहे चाहे बीमार भी होवे तौ भी चुपचाप न रहे । (पसाय-पेही-प्रसादप्रेक्षी) यह समझे कि मेरा बड़ा भारी सौभाग्य का उदय है, जो अन्य शिष्यों के होने पर भी गुरु महाराज मुझे ही आज्ञाप्रदान कर रहे हैं । अथवा—यह विचार करे कि गुरु महाराज जिस उपाय से मेरे पर प्रसन्न हों वही उपाय मुझे करते रहना चाहिये । इस प्रकार की भावना से भावित होकर गुरु के प्रसाद का लाभार्थी बने । क्यों कि कहा भी है—जिस प्रकार हीन पुण्यवालों के शरीर ऊपर अमृत रस की धारा नहीं पड़ती है—उसी प्रकार जो शिष्य भाग्यशाली नहीं होता है वह गुरु की देशना का पात्र नहीं होता है । इसी तरह (नियागट्टी) मोक्षामिलापी शिष्य का कर्तव्य है कि वह (सया गुरुं उवचिद्धे—सदा गुरुं

न्यारे तेने जेलाववामां आवे अथवा डेअं काम भाटे कडेवामां आवे त्यारे कयाइविं-कदाचिदपि ते कदि पणु तुसणीओ न-तुष्णीकः न भवेत् उत्तर आप्या वगर न रहे. चाडे ते भीमार डाय तो पणु चुपचाप न रहे. पसायपेही-प्रसादप्रेक्षी ते अेवुं समजे के, भारा सौभाग्यने। मोटे। उदय छे के, भील शिष्ये। डेवा छतां पणु गुरु भडाराज भने न आसा आपे छे. अथवा अेवे। विचार करे के गुरु भडाराज ने उपायथी भारा उपर प्रसन्न रहे तेवे न उपाय भारे करता रहेवुं लेधअे. आ प्रकारनी भावनाथी लाविकं अनिने शुरुना प्रसादने। लाभार्थी भने. केभके, कहुं छे के—ने प्रकारे दुर्भागीना शरीर उपर अमृतरसनी धार पठती नथी, अे प्रकारथी ने शिष्य लाग्यशाणी नथी डोते। ते शुरुनी देशनाने पात्र अनते। नथी. आ रीते नियागट्टी-मोक्षामिलापी शिष्यनुं कर्तव्य छे के ते सया गुरुं उवचिद्धे—सदा गुरुं उपतिष्ठेत् उभेशां

પવેશનં, પર્યસ્તિકા, તામ્, પક્ષપિણ્ડં—વાહુદ્વયેન કાયવેદનં ચ નૈવ કુર્યાત્ । અપિ
વા=અપિ ચ ગુરુણામ્ અન્તિકે=સંનિધૌ પાદૌ=ચરણૌ પ્રસારિતૌ કૃત્વા ન તિષ્ઠેત્ ।
ઇદમુપલક્ષણમ્—એકજહ્નોપરિ અપરચરણં નિધાયાપિ ન તિષ્ઠેત્ । તથાસત્યવિનયઃ
સ્વાદિતિ ભાવઃ ॥ ૧૯ ॥

મૂલમ્—આચરિણિં વાહિત્તો, તુસિંળીઓ નં કયાઈ ત્રિ ।

પસાયપેહી નિયાગટ્ટી, ઉંવચિટ્ટે ગુરું સયા ॥૨૦॥

છાયા—આચાર્યવ્યાહતઃ તૂષ્ણીકો, ન કદાચિદપિ ।

પ્રસાદપ્રેક્ષી નિયાગાર્થી, ઉપતિષ્ઠેત્ ગુરું સદા ॥ ૨૦ ॥

ટીકા—‘આચરિણિં’ ઇત્યાદિ ।

આચાર્યઃ=ગુરુભિઃ, વ્યાહતઃ—આહૂતઃ, યદ્વા—ઉક્તઃ સન્ તૂષ્ણીકઃ=મૌનાવલમ્બી,
કદાચિદપિ=ગ્લાનાઘવસ્થાયામપિ ન ભવેદિતિ શેષઃ । કિંતુ પ્રસાદપ્રેક્ષી=પ્રસાદં

(પક્ષપિણ્ડં ચ નૈવ કુઞ્જા-પક્ષપિણ્ડં ચ નૈવ કુર્યાત્) ઇસી પ્રકાર દોનોં
હાથોં સે ઘુટને વાંધકર તથા પીઠ ભાગ સે ઢેકર દોનોં ઘુટનોં કો વસ્ત્ર
વાંધકર મી વૈઠના ગુરુ મહારાજ કી આશાતના હૈ । (પાણ પસારિણ વાવિ
ન ચિટ્ટે-પાદૌ પ્રસાર્ય વાપિ ન તિષ્ઠેત્) અર્થાત્ ગુરુ મહારાજ કે સામને
પૈરોં કો પસાર કર મી શિષ્ય કો વૈઠના ઉચિત નહીં હૈ । ઇસી તરહ
અર્ધ પદ્માસન કે રૂપ મેં મો અનેકે સમક્ષ નહીં વૈઠના ચાહિયે । એસા
કરને સે અવિનય દોષ લગતા હૈ ॥ ૧૯ ॥

‘આચરિણિં’ ઇત્યાદિ ।

અન્વયાર્થ—શિષ્ય કો ચાહિયે કિ વહ (આચરિણિં વાહિત્તો-
આચાર્યઃ વ્યાહતઃ સન્) આચાર્ય તથા અપને સે વહોં દ્વારા જવ ઘુલાયા

પ્રકારે ઝેસવાથી અશાતનાનો દોષ લાગે છે. પક્ષપિણ્ડં ચ નૈવ કુઞ્જા-પક્ષપિણ્ડં
ચ નૈવ કુર્યાત્ આ પ્રકારે બન્ને હાથોને ગોઠણ ઉપર લગાવી. તથા
વાંસાના ભાગથી લઈ બન્ને ઘુટણને વસ્ત્રથી બાંધી ઝેસવાથી પણ શુરુ
મહારાજની અશાતના થાય છે. પાણ પસારિણ વાવિ ન ચિટ્ટે-પાદૌ પ્રસાર્યવાપિ ન
તિષ્ઠેત્ અર્થાત્ શુરુ મહારાજની સામે પગ લાંબા કરીને પણ શિષ્યે ઝેસવું
ઉચિત નથી. આ રીતે અર્ધ પદ્માસનના રૂપથી પણ એમની સામે ઝેસવું ન
બેઠાં એ એમ કરવાથી અવિનય દોષ લાગે છે ॥ ૧૯ ॥

‘આચરિણિં’ ઇત્યાદિ.

અન્વયાર્થ—વિવેકી શિષ્ય માટે એ જરૂરી છે કે તે આચરિણિં વાહિત્તો-
આચાર્યઃ વ્યાહતઃ સન્ આચાર્ય તથા પોતાનાથી મોટા ?

आसनावस्थितं शिष्यं वदति, तदा शिष्यो व्याख्यानादिकालेपि पदाद्यासने नोप-
विष्टः स्याद्, किंतु आसनं त्यक्त्वा धीरः=बुद्धिमान्, शिष्यः यतः=यत्नवान् एका-
ग्रचित्तः सन् यत्=यत् कार्यं, गुरुणोक्तं सुकरं दुष्करं वा, तत्तत् प्रतिशृणुयात्,
'अवश्यकरणभावोऽस्ति' इत्युक्त्वा स्वीकुर्यात् । अत्र-धीर इति विशेषणं व्याख्या-
नादिकाले, तथा स्वशरीरादिकार्यवशाद् व्यग्रस्यापि शिष्यस्य गुरुत्रिनयाराधनार्थं
क्षमत्वं सावधानत्वं च सूचयति । 'यतः' इति विशेषणेन समितिगुप्तिसमाराधन-
पूर्वकं गुरोः सकलकार्यसंपादनाभिरुचिः सूचिता । प्रतिशृणुयादिति पदेन गुरुव-
चनश्रवणसमनन्तरमविलम्बेन तत्कार्यसंपादनार्थं स्वीकृतिवचनमुक्त्वाऽन्यत् सर्वं
स्वकीयकार्यं विहाय प्रथमं सर्वथा गुरुकार्यसाधने सादरा प्रवृत्तिः सूचिता ॥२१॥

बैठा हो तो भी उस समय शीघ्र उठकर उसे गुरु महाराज की आज्ञा
का पालन करना चाहिये । ऐसा नहीं करना चाहिये कि गुरु महाराज
की बात सुनकर भी पुनः आसन पर बैठ जावे । अर्थात् उस समय
व्याख्यान आदि का समय हो तो भी गुरु महाराज की आज्ञा का
आराधन करना चाहिये । इसी बात को उत्तरार्ध में सूत्रकार ने स्पष्ट
किया है—(चङ्गण आसनं धीरो जओ जत्तं पडिस्सुणे—त्यक्त्वा आसनं
धीरः यत्तत् प्रतिशृणुयात्) चाहे वह कार्य सरल हो चाहे कठिन हो तो
भी सर्वप्रकार के संकल्प विकल्प से रहित होकर गुरु महाराज कथित
कार्य को “ अवश्य करने का भाव है ” ऐसा कहकर शिष्य को स्वीकार
करना चाहिये । सूत्र में जो धीर विशेषण दिया गया है उससे सूत्रकार
का यह अभिप्राय सूचित होता है कि जिस समय गुरु महाराज कार्य
करने के लिये शिष्य से कहें उस समय वह शिष्य चाहे व्याख्यान देने

आसन उपर भेसेल डोय तो पण त्यांथी तुरत न उठिने तेणु गुरु महाराजनी
आज्ञानुं पालन करवुं जेधजे. जेवुं नही करवुं जेधजे के, गुरु महाराजनी
वात सांभलीने पण आसन उपर पाछो जेसी जय अर्थात् जे वणते व्याख्यान
आदिने। समय डोय तो पण गुरु महाराजनी आज्ञानुं आराधन करवुं
जेधजे. आ वातने उत्तरार्धेथी सूत्रकारे स्पष्ट करेल छे.

चङ्गण आसनं धीरो जओ जत्तं पडिस्सुणे—त्यक्त्वा आसनं धीरः यतो यत्तत् प्रति-
शृणुयात् आडे ते काम सरण डोय, आडे कठिन डोय तो पण सर्व प्रकारना
संकल्प विकल्पथी रहित धर्मे गुरु महाराजे कडेला कामने “ अवश्य करवुं
जेधजे तेवो भाव छे ” जेवुं कहीने शिष्ये तेना स्वीकार करवो जेधजे.
सूत्रमां जे धीर विशेषण अपायेद छे तेनाथी सूत्रकारने जे अभिप्राय ज्ञाय
छे के, जे समये गुरु महाराज काम करवा माटे शिष्यने कडे ते समये शिष्य

आसनस्थितस्य शिष्यस्य विनयमाह—

मूलम्—आलंबंते लंबंते वा, न निसिञ्जं कयाइवि ।

चइर्जण आसणं धीरो, जंओ जंतं पडिंसुणे ॥२१॥

उाया—आलपति लपति वा, न निपीदेत् कदाचिदपि ।

त्यक्त्वा आसनं धीरो, यतो यत्तु प्रतिगृणुयात् ॥ २१ ॥

टीका—‘आलंबंते’ इत्यादि ।

गुरौ आलपति=सकृद् वदति सति, कार्यस्य लघुत्वात्सकृत्कथनमिति भावः, यथा-आसनमानीयताम्, पारणं क्रियताम्, इत्यादि, वा=अथवा गुरौ लपति=पुनः पुनः कथयति सति ग्रहणासेवनाशिक्षायां स्वपरवैयाच्यकार्ये च, कार्यस्य बृहत्त्वात्त्यावश्यकत्वाच्च पुनः पुनः कथनमिति भावः, शिष्यः कदाचिदपि न निपीदेत्=आसनाऽऽसीनो न भवेत् । अयं भावः—यदि गुरुः किञ्चित् कार्यं सकृद् वा, पुनः पुनर्वा,

उपतिष्ठेत्) “ मत्थे णं वंदामि ” इस प्रकार विनयश्लोक शब्द का व्यवहार करता हुआ सदा अपने गुरु के समक्ष उपस्थित होवे ।

भावार्थ—गुरुमहाराज जिस तरह अपने ऊपर प्रसन्न हो उत्तम शिष्य का कर्तव्य है कि वह उस प्रकार प्रयत्नशील रहे ॥ २० ॥

‘आलंबंते०’ इत्यादि ।

अन्वयार्थ—(आलंबंते लंबंते वा कयाइ वि न निसिञ्जा-आलपति लपति वा कदाचिदपि न निपीदेत्) उत्तमशिष्य-विनयशीलशिष्य का कर्तव्य है कि जब गुरु महाराज किसी कार्य को करने के लिये एक ही बार में कहें या बार २ भी कहें तौ उस समय उसे कभी उस कार्य को करने के लिये आना कानी नहीं करनी चाहिये । अर्थात्—उस समय वह शिष्य चाहे अपने आसन पर भी

घोताना गुरुनी समक्ष जती वण्ठते मत्थे णं वंदामि आ प्रकारेना विनय श्लोक शण्डेना वडेवार करेता रडे.

भावार्थ—गुरुदेव ने शीते घोताना उपर प्रसन्न थाय जेवा प्रयत्न करवानुं उत्तम शिष्यनुं कर्तव्य छे, अने जे प्रकारे ते प्रयत्नशील रडे ॥ २० ॥

आलंबंते० इत्यादि.

अन्वयार्थ—आलंबंते लंबंते वा कयावि न निसिञ्जा-आलपति लपति वा कदाचिदपि न निपीदेत् उत्तम शिष्य-विनयशील शिष्यनुं कर्तव्य छे के ज्यारे गुरु महाराज कोछ काम करवा भाटे जेक ज वण्ठते कडी हे अथवा बारवार कडे ते समथे तेहे कडि पणु जे कार्यने करवा भाटे आनाकानी करवी न जेछजे. अर्थात्—जे वण्ठते जे शिष्य जेवे घोताना

कृत्वा स्थितः सन् प्राञ्जलिपुटः=हृताञ्जलिः, सूत्रादिकं पृच्छेत् । यद्वा-कदाचिदपि
=बहुश्रुतत्वेऽपि आसनगतः शय्यागतो वा न पृच्छेत् सूत्रादिकमित्यर्थः ।

‘ आसनगओ ’ इत्यादि ।

अन्वयार्थ—उत्तम शिष्यं को चाहिये कि वह (आसनगओ
-आसनगतः) आसन पर बैठे २ अथवा (सेज्जागओ-शय्यागतः)
संस्तारक पर बैठे २ या सोये २ (रोगादिक अवस्था को छोड़-
कर) (कयाइवि-कदाचिदपि) कभी भी (न पुच्छिज्जा-न पृच्छेत्)
गुरु महाराज से सूत्र का अर्थ अथवा उनकी कुशलता न पूछे । किन्तु
(आगम्मुक्कुडुओ संतो पंजली उडो पुच्छिज्जा-आगम्य उत्कुडुकः सन्
प्राञ्जलिपुटः पृच्छेत्) उनके समीप आकर और उत्कुडुकासन-उकडु
आसनसे बैठकर दोनों हाथजोड़ फिर उनसे सूत्र आदि का अर्थ पूछे ।
शिष्य कितना ही बहुश्रुती क्यों न हो तो भी अपने गुरु से
सूत्रार्थ की प्रच्छना अथवा सुख शाता की पृच्छना आसन पर
बैठे २ या विस्तर पर लेटे २ नहीं करनी चाहिये । यद्यपि सूत्रार्थ की
पृच्छना संशय होने पर ही की जाती है । बहुश्रुत होने पर भी संशय
हो सकता है । अब ऐसी स्थिति में शिष्य का धर्म है कि उस संशय की

आसनगओ इत्यादि.

अन्वयार्थ—उत्तम शिष्यनी ओ इरज्ज छे के ते आसनगओ-आसनतः
आसन उपर भेकां भेकां अथवा सेज्जागओ-शय्यागतः शय्याभां भेकां भेकां
के सुतां सुतां (रोगादिक अवस्थाने छोडीने) कयाइवि-कदाचिदपि कही पछु
गुरु महाराजथी सूत्रने अर्थ अथवा ओमनी कुशलता न पुच्छिज्जा-न पृच्छेत्
न पुछे. परंतु आगम्मुक्कुडुओ संतो पंजलि उडो पुच्छिज्जा-आगम्य
उत्कुडुकः सन् प्राञ्जलिपुटः पृच्छेत् तेमनि सामे आवी अने उत्कुटासनथी
भेसी अने हाथ नेडी त्पारपछी ओमने सूत्र आदिना अर्थ पुछे अने सुभ-
शाताना समाचार पुछे शिष्य गमे तेवे भहुश्रुत केम न डोय तो पछु पोताना
गुरुथी सूत्रार्थना अर्थ अथवा सुभशाताना समाचार आसन पर भेकां भेकां
अथवा तो पधारी पर सुतां सुतां न पुछवा नेछे. ने के सूत्रार्थ आदिना
अर्थ संशय थवाथी न पुछाय छे. भहुश्रुत डोवा छतां पछु संशय
थाय छे. आवी आवी स्थितिभां शिष्यने धर्म छे के, ओ संशयनी निवृत्ति
भाटे ते गुरुनी समक्ष नय अने सुभ विनयनी साथे ओ संशयनी निवृत्ति

मूलम्—आसणगओ न पुच्छिज्जा, नेव सेज्जागओ कयाइ वि ।

आगम्मुक्कुडुओ संतो, पुच्छिज्जा पंजंलीउडो ॥२२॥

छाया—आसनगतो न पृच्छेत्, नैव शय्यागतः कदाचिदपि ।

आगम्योत्कुडुकः सन्, पृच्छेत् प्राञ्जलिपुटः ॥ २२ ॥

टीका—‘आसणगओ’ इत्यादि । आसनगतः=आसनीपविष्टः सन् न पृच्छेत् सूत्रार्थं कुशळादिकं वा किमपि न पृच्छेदित्यर्थः । तथा—कदाचिदपि कस्मिन्नपि काले शय्यागतः-संस्तारकरिथतः नैव पृच्छेत्-रोगाघवस्थां विना शयानः सन् किमपि नैव पृच्छेदित्यर्थः । किंतु आगम्य=गुरोः समीपे आगत्य, उत्कुडुकः=उत्कुडुकासनं

के लिये भी तैयार रहा हो—वह काल उसके व्याख्यान करने का भी हो अथवा अपने शारीरिक कार्य के वश से वह शिष्य व्यग्रचित्त वाला भी हो तौ भी विनय धर्म की आराधना निमित्त उसे गुरु महाराज कथित कार्य करने की क्षमता एवं उस कार्य करने में विशेष सावधानी रखनी चाहिये । “जओ-यतः” यह पद यह प्रकट करता है कि शिष्य को समिति गुप्ति के आराधनपूर्वक ही गुरु महाराज के समस्त कार्यों के सम्पादन में रुचि शील होना चाहिये । “प्रतिश्रृणुयात्” यह क्रिया-पद इस विशेषता का सूचक है कि गुरु वचन के श्रवण के अनन्तर ही विना किसी विलंब के उनके कार्य को करने के लिये प्रतिज्ञा वचन कहकर और अपने निज कार्य को भी छोड़कर शिष्य का कर्तव्य है कि वह सर्व प्रकार से उनके कार्य के साधन करने में सादर प्रवृत्ति करे ॥२१॥

जबे व्याख्यान आपवा भाटेनी तैयारीमां डोय-ते समय तेने व्याख्यान करवाने। डोय, अथवा पोताना शारीरिक कार्यना वशथी ते शिष्य व्यग्र चित्त-वाणो डोय तो पछु विनय धर्मनी आराधना निमित्त तेनामां गुरु महाराजे कडेला कामने करवानी क्षमता अने ओ काम करववामां विशेष सावधानी राखवी जेई ओ. जओ-यतः ओ पद ओवुं प्रकट करे छे के, शिष्ये समिति गुप्तिना आराधन पूर्वक ओ गुरु महाराजना हरेक कामेनुं संपादन करवामां रुचि डेणववी जेई ओ. प्रतिश्रृणुयात् ओ क्रियापद ओ विशेषतानुं सूचक छे के गुरुवचनने सांभणतां ओ जेई प्रकारना विलंब विना ओमना कामने करवा भाटे प्रतिज्ञा वचन कडीने अने पोतानुं काम डोय तेने छोडीने शिष्यनुं कर्तव्य छे के, ते सर्व प्रकारथी गुरु महाराजना कामने पूई करवामां पोतानी सादर प्रवृत्ति करे. ॥ २१ ॥

कृत्वा स्थितः सन् प्राञ्जलिपुटः=हताञ्जलिः, सूत्रादिकं पृच्छेत् । यद्वा-कदाचिदपि
=बहुश्रुतत्वेऽपि आसनगतः शय्यागतो वा न पृच्छेत् सूत्रादिकमित्यर्थः ।

‘ आसनगओ ’ इत्यादि ।

अन्वयार्थ—उत्तम शिष्यं को, चाहिये कि वह (आसनगओ
-आसनगतः) आसन पर बैठे २ अथवा (सेज्जागओ-शय्यागतः)
संस्तारक पर बैठे २ या सोये २ (रोगादिक अवस्था को छोड़-
कर) (कयाइवि-कदाचिदपि) कभी भी (न पुच्छिज्जा-न पृच्छेत्)
गुरु महाराज से सूत्र का अर्थ अथवा उनकी कुशलता न पूछे । किन्तु
(आगन्मुक्कुडुओ संतो पंजली उडो पुच्छिज्जा-आगम्य उत्कुटुकः सन्
प्राञ्जलिपुटः पृच्छेत्) उनके समीप आकर और उत्कुटुकासन-उकडु
आसनसे बैठकर दोनों हाथजोड़ फिर उनसे सूत्र आदि का अर्थ पूछे ।
शिष्य कितना ही बहुश्रुती क्यों न हो तौ भी अपने गुरु से
सूत्रार्थ की प्रच्छना अथवा सुख शाता की पृच्छना आसन पर
बैठे २ या विस्तर पर लेटे २ नहीं करनी चाहिये । यद्यपि सूत्रार्थ की
पृच्छना संशय होने पर ही की जाती है । बहुश्रुत होने पर भी संशय
हो सकता है । अब ऐसी स्थिति में शिष्य का धर्म है कि उस संशय की

आसनगओ इत्यादि.

अन्वयार्थ—उत्तम शिष्यनी ओ इरुव छे के ते आसनगओ-आसनगतः
आसन उपर भेडां भेडां अथवा सेज्जागओ-शय्यागतः शय्याभां भेडां भेडां
के सुतां सुतां (रोगादिक अवस्थाने छोडीने) कयाइवि-कदाचिदपि कही पञ्च
शुरु महाराजथी सूत्रनो अर्थ अथवा ऐमनी कुशलता न पुच्छिज्जा-न पृच्छेत्
न पुछे. परंतु आगन्मुक्कुडुओ संतो पंजलि उडो पुच्छिज्जा-आगम्य
उत्कुटुकः सन् प्राञ्जलिपुटः पृच्छेत् तेमनि सामे आपी अने उत्कुटासनथी
भेसी अने हाथ नेडी त्थारपछी ऐमने सूत्र आदिना अर्थ पुछे अने सुण-
शाताना समाचार पुछे शिष्य अने तेवी बहुश्रुत केम न डोय तो पञ्च पोताना
शुरुथी सूत्रार्थना अर्थ अथवा सुणशाताना समाचार आसन पर भेडां भेडां
अथवा तो पथारी पर सुतां सुतां न पुछवा नेछये. ने के सूत्रार्थ आदिना
अर्थ संशय थवाथी न पुछाय छे. बहुश्रुत डोवा छतां पञ्च संशय
थाय छे. आथी आपी स्थितिभां शिष्यनो धर्म छे के, ओ संशयनी निवृत्ति
भाटे ते शुरुनी समझ नय अने सुण विनयनी साथे ओ संशयनी निवृत्ति

અર્થ ભાવ:-વહુશ્રુતોઽપિ શિષ્યઃ સંશયે સતિ ગુરું પૃચ્છતિ સૂત્રાર્થમ્, તત્ર વિનયપૂર્વિકૈવ
પચ્છના કરણીયા યથા ગુરોરાશાતના ન ભવેદિતિ । ઉત્કુટુક ઇતિ વિશેષણેન-
ઇન્દ્રિયદમનશીલત્વં વિનીતત્વં ચ સૂચિતમ્, પ્રાક્કલિપુટ ઇત્યનેન સર્વવિધવિનયવત્ત્વં
જાતિકુલસમ્પન્નત્વં ચ સૂચિતમ્ ॥ ૨૨ ॥

મૂલમ્—એવં વિણયજુત્તસ્સ, સુત્તં અર્થં ચં તદુભયં ।

પુચ્છમાણસ્સ સીસસ્સ, વાગેરિજ્જ જહાસુયં ॥૨૩॥

છાયા—એવં વિનયયુક્તસ્ય, સૂત્રમ્ અર્થં ચ તદુભયમ્ ।

પૃચ્છતઃ શિષ્યસ્ય, વ્યાકુર્યાદ્ યથાશ્રુતમ્ ॥ ૨૩ ॥

ટીકા—‘ એવં વિણયજુત્તસ્સ ’ ઇત્યાદિ । એવં=ઉક્તપ્રકારેણ વિનયયુક્તસ્ય-
વિનયવતઃ, સૂત્રમ્-કાલિકોત્કાલિકાદિ, અર્થં-તદ્વોધ્યં, સૂત્રાભિપ્રાયમિત્યર્થઃ ।

નિવૃત્તિકે લિયે ગુરુકે સન્મુલ્ખ જાવેઔર વહે વિનયકે સાથ ઉસ સંશય
કી નિવૃત્તિ કરે । ગુરુ મહારાજ કા વિનય ભક્તિ મેં યદિ જરા સી બી
ટુટિ હો જાયગી તો શિષ્ય આશાતના દોષ કા ભાગી હોગા । “ઉત્કુટુક”
હસ વિશેષણ સે સૂત્રકાર યહ સૂચિત કરતે હું કિ જો હસ આસન સે
વેઠતા હૈ વહ સાધુ ઇન્દ્રિય દમન શીલ તથા વિનીત હોતા હૈ । “પ્રાક્ક-
લિપુટ” હસ વિશેષણ સે શિષ્ય મેં સબી પ્રકાર કે વિનયગુણ તથા
જાતિસમ્પન્નતા એવં કુલ સમ્પન્નતા સૂચિત હોતી હૈ ॥ગા.૨૨॥

‘ એવં ’ ઇત્યાદિ ।

અન્વયાર્થ—(એવં-એવં) પૂર્વોક્ત પ્રકાર સે (વિણયજુત્તસ્સ-
વિનયયુક્તસ્ય) વિનયધર્મ સે યુક્ત હોકર (સુત્તં અર્થં ચ તદુ-
ભયં પુચ્છમાણસ્સ-સૂત્રં અર્થં તદુભયં પૃચ્છતઃ) સૂત્ર-અર્થ ઔર સૂત્ર
અર્થ દોનોં કો પૂછને વાલે (સીસસ્સ-શિષ્યસ્ય) શિષ્ય કો (જહાસુયં

કરી લ્યે. શુરુ મહારાજની વિનય ભક્તિમાં જરા પણ ભૂલ થાય તો શિષ્ય
આસાતના દોષનો ભાગી બને છે. “ઉત્કુટુક” આ વિશેષણથી સૂત્રકાર એ
એ સૂચિત કરે છે કે, જે આ આસનથી બેસે છે તે સાધુ ઇન્દ્રિયનું દમન
કરનાર તથા વિનિત હોય છે. “પ્રાક્કલિપુટ” આ વિશેષણથી શિષ્યમાં સર્વ
પ્રકારના વિનયશુષ્ણ તથા જાતિસંપન્નતા અને કુળસંપન્નતા દેખાઈ આવે છે. ॥૨૨॥
એવં ઇત્યાદિ.

અન્વયાર્થ—એવં-એવં પૂર્વોક્ત પ્રકારથી વિણયજુત્તસ્સ - વિનયયુક્તસ્ય
વિનય ધર્મથી યુક્ત બની સુત્તં અર્થં ચ તદુભયં પુચ્છમાણસ્સ-સૂત્રં અર્થં
તદુભયં પૃચ્છતઃ સૂત્ર-અર્થ અને સૂત્ર અર્થ બન્નેને પૂછવાવાળા

उक्तञ्च—

जो सुत्ताभिप्पाओ, सो अत्थो अज्जए य जम्हा । (स्था. २ ठा. १ उ०)

छाया—यः सूत्राभिप्रायः सोऽर्थः, अर्थते च यस्मात् ।

व्याख्या—यः सूत्रस्य अभिप्रायः स एव अर्थः । यस्मात्=यतः करणादसा-
वर्थः सूत्रात् अर्थते गम्यते । तदुभयं=सूत्रार्थद्वयं च पृच्छतः=पृच्छां कुर्वतः शिष्यस्य
गुरुः यथाश्रुतं—गुरुपरंपरातो यथा ज्ञातं तथा सूत्रम्, अर्थं तदुभयं च व्याकुर्यात्
=कथयेत्, न तु स्वयुद्धया कल्पितं कृत्वा बोधयेदिति भावः । इह तावत् सूत्रज्ञा-
नाय सूत्रस्य शब्दार्थं तल्लक्षणं तद्भेदं तद्वाचनादिकं च निर्दिशामः, तथाहि—

वागरिज्जा—यथाश्रुतं व्याकुर्यात्) गुरु महाराज उन सब का शास्त्रविहित
विधि के अनुसार प्रतिपादन करे ।

कालिक उत्कालिक आदि सूत्र है । सूत्र का जो अभिप्राय है वही
अर्थ है । कहा भी है—जो सुत्ताभिप्पाओ सो अत्थो अज्जए य जम्हा—
सूत्र के अभिप्राय को अर्थ कहा गया है । क्यों कि यह अर्थ सूत्र से ही
निश्चित किया जाता है । इस तरह केवल सूत्र को अथवा उसके अर्थ
को एवं इन दोनों को जब शिष्य अपने आचार्य महाराज से पूछे तो
आचार्य महाराज को चाहिये कि वे उसको गुरु परंपरा से यथाज्ञात
सूत्र-अर्थ एवं दोनों को अच्छी तरह समझावें । ऐसा न करें कि अपनी
निजी कल्पना से मिश्रित कर उन्हें समझावें । सूत्रज्ञान के लिये उपयोगी
समझकर सूत्र का शब्दार्थ, उसका लक्षण, उसके भेद, एवं उसकी
वाचना आदि के विषय में कुछ स्पष्टीकरण किया जाता है ।—

शिष्येने जहासुयं वागरिज्जा—यथाश्रुतं व्याकुर्यात् गुरु महाराज ये अधानो शास्त्र
विहित विधि अनुसार प्रतिपादन करे.

कालिक उत्कालिक आदि सूत्र छे, सूत्रेनो जे अभिप्राय छे तेन अर्थ
छे. कहुं पक्ष छे,—जो सुत्ताभिप्पाओ सो अत्थो अज्जए य जम्हा—सूत्रना अभिप्रायने
अर्थ कडेवामां आवेल छे. केम के, आ अर्थ सूत्रधी निश्चित करवामां आवे
छे. आ रीते केवण सूत्रने अथवा तेना अर्थने अथवा जे भन्नेने न्यारे
शिष्य पोताना आचार्य महाराजने पूछे तो आचार्य महाराजने तेने गुरु
परंपराधी यथाज्ञात सूत्र-अर्थ अने भन्नेने सारी रीते समजवे जेवुं न
करे के पोतानी जे कल्पनाधी मिश्रित करी तेने समजवे. सूत्र ज्ञानने माटे
उपयोगी समजने सूत्रेनो शब्दार्थ, तेनुं लक्षण, तेनो भेद, अने तेनी वाचना
आदिना विषयमां कांछक स्पष्टिकरण करवामां आवे छे—सूचयतीति सूत्रम्—

અર્થ ભાવઃ—વહુશ્રુતોઽપિ શિષ્યઃ સંશયે સતિ ગુરું પૃચ્છતિ સૂત્રાર્થમ્, તત્ર વિનયપૂર્વિકૈત્ર
પ્રચ્છના કરણીયા યથા ગુરોરાશાતના ન ભવેદિતિ । ઉત્કુટુક ઇતિ વિશેષણેન—
ઇન્દ્રિયદમનશીલત્વં વિનીતત્વં ચ સૂચિતમ્, પ્રાક્કલિપુટ ઇત્યનેન સર્વવિધવિનયવત્ત્વં
જાતિકુલસમ્પન્નત્વં ચ સૂચિતમ્ ॥ ૨૨ ॥

મૂલમ્—એવં વિણયજુત્તસ્સ, સુત્તં અર્થં ચ તદુભયં ।

પુચ્છમાણસ્સ સીસસ્સ, વાગંરિજ્જ જહાસુયં ॥૨૩॥

છાયા—એવં વિનયયુક્તસ્ય, સૂત્રમ્ અર્થં ચ તદુભયમ્ ।

પૃચ્છતઃ શિષ્યસ્ય, વ્યાકુર્યાદ્ યથાશ્રુતમ્ ॥ ૨૩ ॥

ટીકા—‘ એવં વિણયજુત્તસ્સ ’ ઇત્યાદિ । એવં=ઉક્તપ્રકારેણ વિનયયુક્તસ્ય-
વિનયવતઃ, સૂત્રમ્-કાલિકોત્કાલિકાદિ, અર્થં-તદ્વોદ્યં, સૂત્રાભિપ્રાયમિત્યર્થઃ ।

નિવૃત્તિકે લિયે ગુરુકે સન્મુખ જાવેઔર વહે વિનયકે સાથ ઉસ સંશય
કી નિવૃત્તિ કરે । ગુરુ મહારાજ કા વિનય ભક્તિ મેં યદિ જરા સી મી
ત્રુટિ હો જાયગી તો શિષ્ય આશાતના દોષ કા ભાગી હોગા । “ઉત્કુટુક”
ઇસ વિશેષણ સે સૂત્રકાર યહ સૂચિત કરતે હેં કિ જો ઇસ આસન સે
બેઠતા હૈ વહ સાધુ ઇન્દ્રિય દમન શીલ તથા વિનીત હોતા હૈ । “પ્રાક્ક-
લિપુટ” ઇસ વિશેષણ સે શિષ્ય મેં સમી પ્રકાર કે વિનયગુણ તથા
જાતિસમ્પન્નતા એવં કુલ સમ્પન્નતા સૂચિત હોતી હૈ ॥ગા.૨૨॥

‘ એવં ’ ઇત્યાદિ ।

અન્વયાર્થ—(એવં-એવં) પૂર્વોક્ત પ્રકાર સે (વિણયજુત્તસ્સ-
વિનયયુક્તસ્ય) વિનયધર્મ સે યુક્ત હોકર (સુત્તં અર્થં ચ તદુ-
ભયં પુચ્છમાણસ્સ-સૂત્રં અર્થં તદુભયં પૃચ્છતઃ) સૂત્ર-અર્થ ઔર સૂત્ર
અર્થ દોનોં કો પૂછને વાલે (સીસસ્સ-શિષ્યસ્ય) શિષ્ય કો (જહાસુયં

કરી લ્યે. શુરુ મહારાજની વિનય ભક્તિમાં જરા પણ ભૂલ થાય તો શિષ્ય
આસાતના દોષનો ભાગી બને છે. “ઉત્કુટુક” આ વિશેષણથી સૂત્રકાર એ
એ સૂચિત કરે છે કે, જે આ આસનથી બેસે છે તે સાધુ ઇન્દ્રિયતું દમન
કરનાર તથા વિનિત હોય છે. “પ્રાક્કલિપુટ” આ વિશેષણથી શિષ્યમાં સર્વ
પ્રકારના વિનયશુભ તથા જાતિસંપન્નતા અને કુળસંપન્નતા દેખાઈ આવે છે. ॥૨૨॥
એવં ઇત્યાદિ.

અન્વયાર્થ—એવં-એવં પૂર્વોક્ત પ્રકારથી વિણયજુત્તસ્સ - વિનયયુક્તસ્ય
વિનય ધર્મથી યુક્ત બની સુત્તં અર્થં ચ તદુભયં પુચ્છમાણસ્સ-સૂત્રં અર્થં
તદુભયં પૃચ્છતઃ સૂત્ર-અર્થ અને સૂત્ર અર્થ બન્નેને પુછવાવાળા

उक्तञ्च—

जो सुत्ताभिप्पाओ, सो अत्थो अज्जए य जम्हा । (स्था. २ ठा. १ उ०)

छाया—यः सूत्राभिप्रायः सोऽर्थः, अर्थे च यस्मात् ।

व्याख्या—यः सूत्रस्य अभिप्रायः स एव अर्थः । यस्मात्=यतः करणादसा-
वर्थः सूत्रात् अर्थे गम्यते । तदुभयं=सूत्रार्थद्वयं च पृच्छतः=पृच्छां कुर्वतः शिष्यस्य
गुरुः यथाश्रुतं-गुरुपरंपरातो यथा ज्ञातं तथा सूत्रम्, अर्थं तदुभयं च व्याकुर्यात्
=कथयेत्, न तु स्वसुद्धया कल्पितं कृत्वा बोधयेदिति भावः । इह तावत् सूत्रज्ञा-
नाय सूत्रस्य शब्दार्थं तल्लक्षणं तद्भेदं तद्वाचनादिकं च निर्दिशामः, तथाहि—

वागरिज्जा-यथाश्रुतं व्याकुर्यात्) गुरु महाराज उन सब का शास्त्रविहित
विधि के अनुसार प्रतिपादन करे ।

कालिक उत्कालिक आदि सूत्र है । सूत्र का जो अभिप्राय है वही
अर्थ है । कहा भी है—जो सुत्ताभिप्पाओ सो अत्थो अज्जए य जम्हा—
सूत्र के अभिप्राय को अर्थ कहा गया है । क्यों कि यह अर्थ सूत्र से ही
निश्चित किया जाता है । इस तरह केवल सूत्र को अथवा उसके अर्थ
को एवं इन दोनों को जब शिष्य अपने आचार्य महाराज से पूछे तो
आचार्य महाराज को चाहिये कि वे उसको गुरु परंपरा से यथाज्ञात
सूत्र-अर्थ एवं दोनों को अच्छी तरह समझावें । ऐसा न करें कि अपनी
निजी कल्पना से मिश्रित कर उन्हें समझावें । सूत्रज्ञान के लिये उपयोगी
समझकर सूत्र का शब्दार्थ, उसका लक्षण, उसके भेद, एवं उसकी
वाचना आदि के विषय में कुछ स्पष्टीकरण किया जाता है ।—

शिष्यने जहासुयं वागरिज्जा-यथाश्रुतं व्याकुर्यात् गुरु महाराज्जे अे अधाने शास्त्र
विहित विधि अनुसार प्रतिपादन करे.

कालिक उत्कालिक आदि सूत्र छे, सूत्रने अे अलिप्राय छे ते अर्थ
छे. कहुं पणु छे,—जो सुत्ताभिप्पाओ सो अत्थो अज्जए य जम्हा—सूत्रना अलिप्रायने
अर्थ कडेवामां आवेल छे. केम के, आ अर्थ सूत्रधी निश्चीत करवामां आवे
छे. आ रीते केवण सूत्रने अथवा तेना अर्थने अथवा अे अन्नेने न्यारे
शिष्य पोताना आचार्य महाराज्जे पूछे तो आचार्य महाराज्जे तेने गुरु
परंपराधी यथाज्ञात सूत्र-अर्थ अने अन्नेने सारी रीते समज्जे अेषुं न
करे के पोतानी अे कल्पनाधी मिश्रित करी तेने समज्जे. सूत्र जानने भाटे
उपयोगी समज्जेने सूत्रने शब्दार्थ, तेनुं लक्षण, तेना भेद, अने तेनी वाचना
आदिना विषयमां कांछक स्पष्टिकरण करवामां आवे छे—सूत्रयतीति सूत्रम्—

અયં ભાત્રઃ—વહુશ્રુતોઽપિ શિષ્યઃ સંશયે સતિ ગુરું પૃચ્છતિ સૂત્રાર્થમ્, તત્ર વિનયપૂર્વિકૈવ પ્રચ્છના કરણીયા યથા ગુરોરાશાતના ન ભવેદિતિ । ઉત્કુટુક ઇતિ વિશેષણેન—
 ઇન્દ્રિયદમનશીલત્વં વિનીતત્વં ચ સૂચિતમ્, પ્રાઙ્ગલિપુટ ઇત્યનેન સર્વવિધવિનયવત્ત્વં
 જાતિકુલસમ્પન્નત્વં ચ સૂચિતમ્ ॥ ૨૨ ॥

મૂલમ્—એવં વિણયજુત્તસ્સ, સુત્તં અર્થં ચ તદુભયં ।

પુચ્છમાણસ્સ સીસસ્સ, વાગંરિજ્જ જહાસુયં ॥૨૩॥

છાયા—એવં વિનયયુક્તસ્ય, સૂત્રમ્ અર્થં ચ તદુભયમ્ ।

પૃચ્છતઃ શિષ્યસ્ય, વ્યાકુર્યાદ્ યથાશ્રુતમ્ ॥ ૨૩ ॥

ટીકા—‘ એવં વિણયજુત્તસ્સ ’ ઇત્યાદિ । એવં=ઉક્તપ્રકારેણ વિનયયુક્તસ્ય-
 વિનયવતઃ, સૂત્રમ્-કાલિકોત્કાલિકાદિ, અર્થં-તદ્વોધ્યં, સૂત્રાભિપ્રાયમિત્યર્થઃ ।

નિવૃત્તિકે લિયે ગુરુકે સન્મુખ જાવેઔર વહે વિનયકે સાથ ઉસં સંશય
 કી નિવૃત્તિ કરે । ગુરુ મહારાજ કા વિનય ભક્તિ મેં યદિ જરા સી મી
 ત્રુટિ હો જાયગી તો શિષ્ય આશાતના દોષ કા ભાગી હોગા । “ ઉત્કુટુક ”
 ઇસ વિશેષણ સે સૂત્રકાર યહ સૂચિત કરતે હેં કિ જો ઇસ આસન સે
 વૈઠતા હૈ વહ સાધુ ઇન્દ્રિય દમન શીલ તથા વિનીત હોતા હૈ । “ પ્રાઙ્-
 લિપુટ ” ઇસ વિશેષણ સે શિષ્ય મેં સમી પ્રકાર કે વિનયગુણ તથા
 જાતિસમ્પન્નતા એવં કુલ સમ્પન્નતા સૂચિત હોતી હૈ ॥ગા.૨૨॥

‘ એવં ’ ઇત્યાદિ ।

અન્વયાર્થ—(એવં-એવં) પૂર્વોક્ત પ્રકાર સે (વિણયજુત્તસ્સ-
 વિનયયુક્તસ્ય) વિનયધર્મ સે યુક્ત હોકર (સુત્તં અર્થં ચ તદુ-
 ભયં પુચ્છમાણસ્સ-સૂત્રં અર્થં તદુભયં પૃચ્છતઃ) સૂત્ર-અર્થ ઔર સૂત્ર
 અર્થ દોનો કો પૂછને વાલે (સીસસ્સ-શિષ્યસ્ય) શિષ્ય કો (જહાસુયં

કરી લ્યે. શુરુ મહારાજની વિનય ભક્તિમાં જરા પણ ભૂલ થાય તો શિષ્ય
 આશાતના દોષનો ભાગી બને છે. “ ઉત્કુટુક ” આ વિશેષણથી સૂત્રકાર એ
 એ સૂચિત કરે છે કે, જે આ આસનથી બેસે છે તે સાધુ ઇન્દ્રિયનું દમન
 કરનાર તથા વિનિત હોય છે. “ પ્રાઙ્ગલિપુટ ” આ વિશેષણથી શિષ્યમાં સર્વ
 પ્રકારના વિનયગુણ તથા જાતિસંપન્નતા અને કુણસંપન્નતા દેખાઈ આવે છે. ॥૨૨॥
 એવં ઇત્યાદિ.

અન્વયાર્થ—એવં-એવં પૂર્વોક્ત પ્રકારથી વિણયજુત્તસ્સ - વિનયયુક્તસ્ય
 વિનય ધર્મથી યુક્ત બની સુત્તં અર્થં ચ તદુભયં પુચ્છમાણસ્સ-સૂત્રં અર્થં
 તદુભયં પૃચ્છતઃ સૂત્ર-અર્થં અને સૂત્ર અર્થ બંનેને પુછવાવાળા સીસસ્સ-

सूत्रपदनिक्षेपनामकं द्वितीयं द्वारम्—

अथ—सूत्रपदनिक्षेपः । द्रव्यसूत्रं—कार्पासादिकम् । भावसूत्रं तु—अस्मिन् ज्ञानाधिकारे सूचकं ज्ञानं श्रुतज्ञानम्, तस्यैव स्वपरार्थसूचकत्वात्, श्रूयते यत् तत् श्रुतं ज्ञायतेऽनेनेति ज्ञानं, श्रुतं च तद् ज्ञानं श्रुतज्ञानम् । तच्च—एकादशाङ्गानि, प्रकीर्णकानि, दृष्टिवादश्च । तदुक्तम्—

“ एकारसमंगाहं, पद्मगं दिद्विवाओ य ” इति । (उ. २८ अ. २३ गा.)

॥ इति द्वितीयं सूत्रपदनिक्षेपद्वारम् ॥

अथ तृतीयं सूत्रलक्षणद्वारम्—

यत् सूत्रं सूत्रलक्षणोपेतं तदेवोच्चारणीयम्, लक्षणरहितं हि सूत्रं विवक्षितमर्थं न साधयति, तस्माल्लक्षणयुक्तमेव सूत्रमिष्यते, अतः सूत्रलक्षणं वाच्यम् । तद् यथा—

अप्यकखरं महत्त्वं, वत्तीसदोसविरहियं जं च ।

लखणजुत्तं मुत्तं, अद्दहि य गुणेहि उववेयं ॥

जिसके सेवन से—उपासना करने से—उसके द्वारा प्रतिपादित मार्ग का अनुसरण करने से—अष्टविध कर्मों का आत्मा से निर्गमन हो जाय उसका नाम सूत्र है । १ ।

सूत्र पद निक्षेप नामक दूसरा द्वार कहते हैं—

सूत्र के दो भेद हैं—१ द्रव्यसूत्र, २ भावसूत्र । कपास आदि से बना हुआ द्रव्यसूत्र है । भावश्रुत का नाम भावसूत्र है । इससे ही स्वरूप और परस्वरूप का सूचन—अर्थात् बोध होता है । जो सुना जाय वह श्रुत एवं जिसके द्वारा जाना जाय वह ज्ञान है । श्रुतरूप जो ज्ञान है उस का नाम श्रुतज्ञान है । ११ अंग प्रकीर्णक (पद्मना) एवं दृष्टिवाद ये सब श्रुतज्ञान स्वरूप हैं । कहा भी है—“एकारसमंगाहं पद्मगं दिद्विवाओय” । ३ ।

करवाथी तेना द्वारा प्रतिपादित मार्गानुं अनुसरण करवाथी आठ प्रकारना कर्मेतुं आत्माथी निर्गमन थध जय तेतुं नाम सूत्र छे. ॥ १ ॥

सूत्रपद निक्षेप नामतुं पीणुं द्वार कडे छे—

सूत्रना जे लेद छे—१ द्रव्यसूत्र, २ भावसूत्र कपास वगेरथी अनेल द्रव्यसूत्र छे, भावश्रुतनुं नाम भावसूत्र छे. आनाथी ज स्व स्वरूप अने पर-स्वरूपनुं सूचन—अर्थात् बोध थाय छे. जे सांभणी शकय ते श्रुत अने जेनाथी लखी शकय ते ज्ञान छे. श्रुतत्रुप जे ज्ञान छे. अनेतुं नाम श्रुतज्ञान छे. ११ अंग प्रकीर्णक (पद्मना) अने दृष्टिवाद अे अथा श्रुतज्ञान स्वरूप छे. कहुं पद्य छे डे—एकारसमंगाहं पद्मगं दिद्विवाओ य

નનુ કઃ સૂત્રશબ્દાર્થઃ ?-ઉચ્યતે-સૂચયતીતિ સૂત્રમ્, યથા સૂચી સૂત્રેણ સૂચ્યતે, સૂચીસંલગ્નં યત્ સૂત્રં તદેવ સૂચ્યાઃ સૂચકં પ્રબોધકં ભવતિ, તથાસ્યસંવદ્દં સૂત્રં, વાચ્યવાચકભાવસમ્બન્ધેન યાવાનર્થઃ સૂત્રે વિદ્યમાનસ્તસ્ય તસ્યાર્થસ્ય સૂચકં સૂત્રમ્। એવમર્થસ્ય સૂચનાત્ સૂત્રમ્ ॥ ૧ ॥ અથવા-સીવ્યતીતિ સૂત્રમ્। યથા-સૂત્રં-તન્તુઃ અઙ્ગરક્ષિકાદીનિ સીવ્યતિ, એવમર્થે ચ પદં સીવ્યતિ=યોજયતિ-એવં ચ સીવનાત્ સૂત્રમિતિ ॥ ૨ ॥ અથવા-સ્રવતીતિ સૂત્રમ્ યથા-ચન્દ્રકાન્તમણિઃ ચન્દ્રકિરણસંનિધાનાજ્જલં સ્રવતિ-પ્રાદુર્ભાવયતિ। એવં સૂત્રમપ્યાચાર્યસંનિધાનાદર્થં પ્રસ્રવતિ તથા ચ સ્રવણાત્ સૂત્રમિતિ ॥ ૩ ॥ અથવા-સરતીતિ સૂત્રમ્, અષ્ટવિધં કર્મ સરતિ-નિર્ગચ્છતિ યેન તત્ સૂત્રમ્ ॥ ૪ ॥

॥ ઇતિ પ્રથમં સૂત્રશબ્દાર્થદ્વારમ્ ॥ ૧ ॥

સૂચયતીતિ સૂત્રમ્—

સૂત્ર શબ્દ કા અર્થ-જિસ પ્રકાર સૂઈ સંલગ્ન સૂત્ર સૂઈ કા પ્રબોધક હોતા હૈ ડસી તરહ અર્થ સંવદ્ધ સૂત્ર વાચ્ય વાચકભાવ સંવંધ સે જિતના ૨ અર્થ અપને મેં વિદ્યમાન હોતા હૈ ડતને ૨ અર્થ કા સૂચક હોતા હૈ, ડસ તરહ “સૂચયતીતિ સૂત્રમ્” અર્થ કા સૂચક હોને સે સૂત્ર કહા ગયા હૈ। યહ વ્યુત્પત્તિલભ્ય અર્થ હૈ। અથવા-“સીવ્યતીતિ સૂત્રમ્”-જિસ પ્રકાર ડોરા અંગરક્ષિકા-કુર્તા-આદિ વસ્ત્રોં કો સીતા હૈ પરસ્પર મેં જોડે દેતા હૈ-ડસી તરહ સૂત્ર મી અર્થ કો યોજિત કર દેના હૈ। અથવા-“સ્રવતીતિ સૂત્રમ્”-જિસ પ્રકાર ચંદ્રકાન્તમણિ ચંદ્ર કિરણોં કે સંપર્ક સે દ્રવિત હો જાતા હૈ-પાની છોડતા હૈ-ડસી પ્રકાર સૂત્ર મી આચાર્ય કે સંનિધાન સે અર્થ કો અપનેમેં પ્રકટ કર દેતા હૈ। અથવા-“સરતીતિ સૂત્રમ્”-

સૂત્ર શબ્દનો અર્થ-જે રીતે સોય સંલગ્ન સૂત્ર સોયનો પ્રબોધક બને છે તેવી રીતે અર્થ સંબંધ સૂત્ર વાચ્ય વાચક ભાવ સંબંધથી બેટલા બેટલા અર્થ તેનામાં વિદ્યમાન હોય છે, એટલા એટલા અર્થનો સૂચક હોય છે. “સૂચયતીતિ સૂત્રમ્” અર્થનો સૂચક હોવાથી જ સૂત્ર કહેવામાં આવેલ છે. આ વ્યુત્પત્તિલભ્ય અર્થ છે. અથવા-સીવ્યતીતિ સૂત્રમ્ જે રીતે ડોરા અંગુરું રક્ષણ કરનાર કુર્તા આદિ વસ્ત્રોને સીવે છે, પરસ્પરથી બેડી દે છે. એવી જ રીતે સૂત્ર પણ અર્થને યોજનાર હોય છે. અથવા સ્રવતીતિસૂત્રમ્ જે રીતે ચંદ્રકાન્ત મણી ચંદ્રકિરણોના સંપર્કથી દ્રવિત બને છે. પાણી છોડે છે-તે પ્રકારે સૂત્ર પણ આચાર્યના સંનિધાનથી અર્થને કે જે પોતાનામાં સમાયેલ છે તે પ્રકટ કરી દે છે અથવા સરતીતિ સૂત્રમ્ નેના ૨

‘महाक्षरं महार्थं’ यथा-दृष्टिवादः ॥ ४ ॥ यच्च द्वात्रिंशदोषविरहितं-
अलीकादिभिर्द्वात्रिंशदोषैर्वर्जितं तथाऽष्टभिर्गुणैरुपेतं सूत्रं तल्लक्षणयुक्तं सूत्रं भवति
तत् सूत्रं पठनीयमित्यर्थः ।

अथ-सूत्रदोषाः—

अथ सूत्राणां द्वात्रिंशदोषा उच्यन्ते—

अलियमुवघायजणयं, णिरत्थगमवत्थयं छलं दुहिलं ।
निस्सारमहियमूणं, पुणरुत्तं वाहयमजुत्तं ॥ १ ॥

क्रमभिन्न-वयणभिन्ने, विभक्तिभिन्नं च लिगभिन्नं च ।
अणमिहियमपयमेव य, सभावहीणं ववहियं च ॥ २ ॥

काल-जति-च्छवि-दोसो, समयविरुद्धं च वयणमित्तं च ।
अत्थावत्ती दोसो, हवइ य असमासदोसो य ॥ ३ ॥

उत्तमा रूवगदोसो, निद्देसपयत्थसंधिदोसो य ।
एए य सुत्तदोसा, वत्तीसं हुंति नायव्या ॥ ४ ॥

छाया—अलीकम् १, उपघातजनकं २, निरर्थकं ३, अपार्थकं ४, छलं ५,
दुहिलम् ६, निःसारम् ७, अधिकम् ८, ऊनम् ९, पुनरुत्तं १०, व्याहृतं ११,
अयुक्तम् १२, ॥ १ ॥

क्रमभिन्न १३, वचनभिन्ने १४, विभक्तिभिन्नं च १५, लिङ्गभिन्नं च १६,
अनभिहितं १७, अपदमेव च १८, स्वभावहीनं १९, व्यवहितं च २० ॥ २ ॥

तथा बृहत्कल्पादि सूत्र २ । महा अक्षर वाला हो पर अर्थ अल्प हो जैसे-
ज्ञाताध्ययन आदि ३ । महाक्षर वाला हो और अर्थ भी जिसका महान
हो जैसे दृष्टिवाद ४ । ३२ वत्तीस दोष सूत्र के थे हैं—

३२ दोष सूत्र के—अलीक १, उपघातजनक २, निरर्थक ३, अपार्थक ४,
छल ५, दुहिल ६, निःसार ७, अधिक ८, ऊन ९, पुनरुक्त १०,
व्याहृत ११, अयुक्त १२, क्रमभिन्न १३, वचनभिन्न १४, विभक्तिभिन्न १५,
लिङ्गभिन्न १६, अनभिहित १७, अपद १८, स्वभावहीन १९, व्यवहित

दोषादि सूत्र २. पशु अक्षरवाणा डोय पशु अर्थ नानो डोय जेवां ज्ञाताध्ययन
आदि ३. पशु अक्षरवाणा डोय अने अर्थ पशु जेना महान डोय जेवां
दधीवाह ४. सूत्रना अत्रीस दोष आ छे.....

अलीक १, उपघातजनक २, निरर्थक ३, अपार्थक ४, छल ५,
दुहिल ६, निःसार ७, अधिक ८, ऊन ९, पुनरुक्त १०, व्याहृत ११, अयुक्त
१२, क्रमभिन्न १३, वचनभिन्न १४, विभक्तिभिन्न १५, लिङ्गभिन्न १६, अन-
भिहित १७, अपद १८, स्वभावहीन १९, व्यवहित २०, कालदोष २१, यति-

યદ્ અલ્પાક્ષરં, તથા-મહાર્થં ચ ભવતિ, અત્ર “અલ્પાક્ષરં મહાર્થમ્” ઇતિ વિશેષણદ્વયે ચત્વારો ભક્ત્તા ભવન્તિ, યથા—અલ્પાક્ષરમલ્પાર્થમ્’ યથા કાર્પાસાદિકમ્ ॥ ૧ ॥ ‘અલ્પાક્ષરં-મહાર્થમ્’ યથા—સામાયિકં વૃહત્કલ્પાદિ ચ ॥ ૨ ॥ ‘મહાક્ષરમલ્પાર્થમ્’ । યથા—જ્ઞાતાધ્યયનાનિ, અન્યચ યદ્દસ્યાં કોટીં વ્યવસ્થિતમ્ ।

અવ સૂત્રલક્ષણ નામ કા તીસરા દ્વાર કહતે હૈ—જો સૂત્ર સૂત્રલક્ષણ સે યુક્ત હૈ વહી ઉચ્ચારણ કરને કે યોગ્ય હોતા હૈ । ઓર ઉસીસે અપને વાસ્તવિક અર્થ કા ઘોધ હોતા હૈ । ઇસસે વિપરીત સૂત્ર દ્વારા વિવક્ષિત અર્થ કી પ્રતિપત્તિ-જ્ઞાન નહીં હો સક્તી હૈ ક્યોં કિ ઉસસે યથાર્થ અર્થ કા પ્રકાશન નહીં હોતા હૈ । ઇસ લિયે “સૂત્ર કા કયા લક્ષણ હૈ” ઇસ પ્રકાર કે પ્રશ્ન કે સમાધાન નિમિત્ત ઉસકા લક્ષણ કહા જાતા હૈ ।

“અપ્પક્ષરં મહત્વં, વત્તીસદોસ, વિરહિયં જં ચ ।

લક્ષણજુત્તં સુત્તં, અદ્દહિય ગુણેહિ ઉવવેયં” ॥ ૧ ॥

જિસમેં અલ્પ અક્ષર હોતે હૈં ઓર મહાન્ જિસકા અર્થ હોતા હૈં એવં વત્તીસ દોષોં સે જો રહિત હોતા હૈ તથા આઠગુણોં સે જો યુક્ત હોતા હૈં વહ સૂત્ર હૈ “અલ્પ અક્ષર વાલા હો એવં અર્થ જિસકા મહાન્ હો” ઇસ પ્રકાર કે સૂત્ર કે વિશેષણ સે યે ૪ ભંગ હોતે હૈં—અલ્પ અક્ષર વાલા હો એવં અલ્પ અર્થ વાલા હો જૈસે કપાસ આદિ કા ઘના હુઆ સૂત ૧ । અલ્પ અક્ષર વાલા હો, પર જિસકા મહાન્ અર્થ હો જૈસે સામાયિક સૂત્ર,

હવે સૂત્ર લક્ષણ નામનું ત્રીલ્લું દ્વાર કહે છે—

જે સૂત્ર સૂત્રલક્ષણથી યુક્ત છે તે જ ઉચ્ચારણ કરવા માટે યોગ્ય છે, અને એનાથી પોતાના વાસ્તવિક અર્થને ઘોધ થાય છે. એનાથી વિપરીત સૂત્રથી વિવક્ષિત અર્થની પ્રતિપત્તિ-જ્ઞાન થઈ શકતું નથી, કારણ કે, એનાથી યથાર્થ અર્થનું પ્રકાશન થતું નથી.

અપ્પક્ષરં મહત્વં વત્તીસ દોસવિરહિયં જં ચ ।

લક્ષણજુત્તં સુત્તં અદ્દહિયથેણેહિ ઉવવેયં જેમાં અક્ષર ઓછા હોય છે અને અર્થ મહાન હોય છે જે બત્તીસ દોષોથી રહિત હોય છે તથા આઠ ગુણોથી જે યુક્ત હોય છે તે સૂત્ર છે. “થોડા અક્ષરવાળા હોય અને અર્થ જેનો મહાન હોય”

આ પ્રકારના સૂત્રના વિશેષણથી આ ચાર ભંગ થાય છે. થોડા અક્ષર-વાળા હોય અથવા અલ્પ અર્થવાળા હોય. જેમ કે કપાસ આદિથી બનેલ સુતર ૧. થોડા અક્ષરવાળા હોય પણ જેનો અર્થ મહાન હોય, જેવાં સામાયિક

यथा- 'अ, आ, इ, ई,' इत्यादि । डित्यादिवद्वा ॥ ३ ॥ अपार्यकम्-असंबद्धा-
र्थकम्, यथा-“ दश दाडिमानि पडपूपाः, सप्त गर्दभपुच्छाः, इत्यादि ॥ ४ ॥

छलं—यत्रानिष्टस्यार्थान्तरस्य संभवाद् विवक्षितार्थोपघातः कर्तुं शक्यते
तच्छलम्, यथा—‘नवकम्बलो देवदत्तः’ इत्यादि, अत्र-नूतनकम्बलस्य विव-
क्षितार्थस्य नवसंख्यककम्बलविषयकबोधसंभवादुपघातः कर्तुं शक्यते ॥ ५ ॥

दुहिलं—जन्तुनामहितोपदेशकत्वेन पापव्यापारपोषकम्, यथा—

अनुष्टुप्छन्दः—एतावानेव लोकोऽयं, यावानिन्द्रियगोचरः ।

भद्रे ! वृकपदं पश्य, यद् वदन्त्यवहुश्रुताः ॥ १ ॥

वियोगिनी छन्दः—पिव खाद च चारुलोचने, यदतीतं वरगात्रि ! तन्न ते ।

नहि भीरु ! गतं निवर्तते, समुदयमानमिदं कलेवरम् ॥ २ ॥

नहीं पड़ता; जैसे-अ आ इ ई इत्यादि ॥ ३ ॥ असंबद्ध अर्थ जिस सूत्र
द्वारा कहा जाता है वह अपार्यक दोष वाला सूत्र माना जाता है—जैसे
दशदाडिम, छह मालपुष्ट, सात गधे की पूंछे इत्यादि ॥ ४ ॥ ये सब सूत्र
असंबद्ध अर्थ के प्रतिपादक हैं । जहां अनिष्ट अर्थान्तर की संभावना से
विवक्षित अर्थ का अपलाप किया जा सकता है वह छलदोष है जैसे किसी
ने कहा कि “नव कम्बलोऽयं देवदत्तः” देवदत्त नवकम्बल वाला है—यहां
नव शब्द का अर्थ नूतन है, और इसी अर्थ में नव शब्द विवक्षित हुआ
है, परंतु इस अर्थ को उपघात करने वाला यह कह देता है कि ९ संख्या
युक्त कम्बल इसके पास कहां है एक ही कम्बल तो है । इस प्रकार के
अर्थ की संभावना नव शब्द से हुई है । अतः विवक्षित अर्थ का उपघात
जिस शब्द से युक्त सूत्र का होना, उपघात दोषावशिष्ट माना जाता है.

न मणतो नधी, नेम अ आ उ ँ ऌ इत्यादि (३) असंबद्ध अर्थ ने सूत्र द्वारा
कहेवासां आवे छे ते अपार्यक दोषवाणा सूत्र मानवामां आवे छे. नेम दस
दाडिम, छ पुष्पा, सात गधेडानी पूछे इत्यादि. (४) आ णघा सूत्र असंबद्ध
अर्थनां प्रतिपादक छे. नयां अनिष्ट अर्थान्तरनी संभावनाथी विवक्षित अर्थना
अपलाप करवामां आवे छे ते छलदोष छे. नेम कोऽर्थे कछुं के, “नव
कम्बलोऽयं देवदत्तः” आ देवदत्त नव कम्बलवाणा छे—अहि नव शब्दने अर्थ
नूतन छे. अने आन अर्थमां नव शब्द विवक्षित थयेल छे. परंतु आ अर्थने
उपघात करवावाणा जेवुं कही हे छे के, नव संख्या युक्त कम्बल जेमनी पास
क्यां छे. जेक न कम्बल छे. आ प्रकारे अर्थनी संभावना नव शब्दथी थर्छे.
विवक्षित अर्थने उपघात ने सूत्रमां थाय छे जे शब्दथी युक्त सूत्रवुं होवुं
उपघात दोषावशिष्ट मानवामां आवे छे. (५)

કાલ-યતિ-છવિદોષ: (કાલદોષ: ૨૧, યતિદોષ: ૨૨, છવિદોષ: ૨૩)
સમયચિરુદ્ધં ચ ૨૪, વચનમાત્રં ચ ૨૫, । અર્થાપત્તિર્દોષો ૨૬, ભવતિ ચ અસમાસ
દોષશ્ચ ૨૭ ॥ ૩ ॥

ઉપમા ૨૮, -રૂપકદોષો ૨૯, નિર્દેશ ૩૦, -પદાર્થ ૩૧, -સંધિદોષશ્ચ ૩૨, एते
तु सूत्रदोषा द्वात्रिंशद् भवन्ति ज्ञातव्याः ॥ ૪ ॥

વ્યાख्या—અલીકમ્—અવૃતમ્ તચ દ્વિધા—અભૂતોદ્ભાવનં ભૂતનિહ્વથ । યથા—
'ઈશ્વરકર્તૃકં જગત્' ઇત્યાદિ—અભૂતોદ્ભાવનમ્ । 'નાસ્તિ આત્મા' ઇત્યાદિકસ્તુ
ભૂતનિહ્વ: ॥ ૧ ॥ ઉપઘાત:—સત્ત્વઘાતાદિઃ, તજ્જનકં યથા—'વેદવિહિતા હિંસા-
ધર્માય' ઇત્યાદિ ॥ ૨ ॥ નિરર્થકં—યત્ર વર્ણાનાં ક્રમનિર્દેશમાત્રગુપલમ્બ્યતે ન ત્વર્થો

૨૦, કાલદોષ ૨૧, યતિદોષ ૨૨, છવિદોષ ૨૩, સમયચિરુદ્ધ ૨૪,
વચનમાત્ર ૨૫, અર્થાપત્તિ ૨૬, અસમાસદોષ ૨૭, ઉપમા ૨૮, રૂપક ૨૯,
નિર્દેશ ૩૦, પદાર્થ ૩૧, એવં સંધિદોષ ૩૨ । કહા મી હૈ—

'અલિય મુવઘાયજળયં' ઇત્યાદિ—

इन ૩૨ દોષોં કા સ્વરૂપ ઇસ પ્રકાર હૈ—અલીક નામ અસત્ય કા
હૈ યહ દો પ્રકાર કા હોતા હૈ—અભૂતોદ્ભાવન ૧ । ભૂતનિહ્વ હૈ ૨ ।
જૈસે—“ઈશ્વર કર્તૃક જગત્ ઇત્યાદિ” જગત્ કો ઈશ્વર ને વનાયા હૈ—ઇસ
પ્રકાર કા પ્રતિપાદક સૂત્ર અભૂતોદ્ભાવક હૈ નાસ્તિ આત્મા—આત્મા નહીં
ઇસ પ્રકાર જમાલી દ્વારા કથિત સૂત્ર ભૂતનિહ્વ સ્વરૂપ હૈ ॥૧॥ ઉપઘાત શબ્દ
કા અર્થ હૈ પ્રાણિયોં કી હિંસા આદિકા પ્રરૂપણ કરના । ઇસ વાત કે
પ્રરૂપક સૂત્ર ઉપઘાત દોષવાલે માને જાતે હૈ—જૈસે કહના કિ વેદવિહિતા
હિંસા ધર્માય ” વેદવિહિત હિંસા ધર્મ કે લિયે હૈ ” ॥ ૨ ॥ જિસમેં સિર્ફ
વર્ણોં કા ક્રમ હી નિર્દિષ્ટ હો વહ નિરર્થક દોષ હૈ—ઇસમેં અર્થ કા પતા

દોષ ૨૨, છવિદોષ ૨૩, સમયચિરુદ્ધ ૨૪, વચનમાત્ર ૨૫, અર્થાપત્તિ ૨૬, અસમાસ
દોષ ૨૭, ઉપમા ૨૮, રૂપક ૨૯, નિર્દેશ ૩૦, પદાર્થ ૩૧. અને સંધિદોષ ૩૨,
તદુક્તં—“અલિયમુવઘાય જળયં” ઇત્યાદિ ।

આ બન્નેસ દોષોનું સ્વરૂપ આ પ્રકારે છે—અલીક નામ અસત્યનું છે.
આ બે પ્રકારે છે, ૧ અભૂતોદ્ભાવન, ૨ ભૂતનિહ્વ, જેમ—'ઈશ્વર કર્તૃક જગત
ઇત્યાદિ" જગતને ઈશ્વરે બનાવ્યું છે—આ પ્રકારે પ્રતિપાદિત સૂત્ર અભૂતોદ્
ભાવક છે, નાસ્તિ આત્મ—આત્મા નથી, આ પ્રકારના જમાલી દ્વારા કહેવાયેલ
સૂત્ર ભૂતનિહ્વ સ્વરૂપ છે. ઉપઘાત શબ્દનો અર્થ છે. પ્રાણીયોની હિંસા આદિનું
પ્રરૂપણ કરવું, આ વાતને પ્રરૂપક સૂત્ર ઉપઘાત દોષવાળા માનવામાં આવે છે—
જેમ કહેવું કે, વેદવિહિતા હિંસા ધર્માય (૨) ” વેદ વિહિત હિંસા ધર્મના માટે
છે ” જેમાં ક્ષત વર્ણોના ક્રમનોજ નિર્દેષ હોય તે નિરર્થક દોષ છે,—આમાં અર્થ

ऊनम्—अक्षरपदादिभिर्हीनम् । अथवा—हेतुदृष्टान्ताभ्यामेव हीनम् ऊनम् ।
यथा—अनित्यः शब्दो घटवदिति । अत्र हेतुर्नास्ति, यथा वा ‘अनित्यः शब्दः
कृतकत्वाद्’ इत्यादि, अत्र—घटादिरूपो दृष्टान्तो नास्ति ॥ ९ ॥

पुनरुक्तं त्रिधा—शब्दतोऽर्थतश्च । तथा—अर्थादापन्नस्य पुनर्वचनं—पुनरुक्तं । तत्र
शब्दतः पुनरुक्तं यथा—घटः, घटः, इत्यादि । अर्थतः पुनरुक्तं यथा—घटः, कुटः,
कुम्भ इत्यादि । अर्थादापन्नस्य पुनर्वचनं यथा—पीनोऽयं देवदत्तो, दिवा न भुङ्क्ते
इत्युक्ते अर्थादापन्नं—‘रात्रौ भुङ्क्ते’ इति, तत्रार्थादापन्नमपि ‘रात्रौ भुङ्क्ते’
इति यो ब्रूयात् तस्य पुनरुक्तता ॥ १० ॥

व्याहृतं—यत्र पूर्वेण परं विहन्यते । यथा—

“कर्म चास्ति फलं चास्ति कर्ता न त्वस्ति कर्मणाम्” इत्यादि ।

अक्षर एवं पद आदि से हीन होता है वहां ऊन नामक दोष माना जाता
है । अथवा हेतु एवं दृष्टान्त से जो हीन होता है वहां भी यह दोष माना
जाता है । जैसे “अनित्यः शब्दः घटवत्” यह वाक्य हेतु से हीन है ॥९॥
पुनरुक्त दोष शब्द, अर्थ एवं प्रसंगादि से प्राप्त अर्थ के पुनः कथन से
होता है । घट घट यहां शब्द की अपेक्षा, घट कुंभ कुट यहां अर्थ की
अपेक्षा तथा “पीनोऽयं देवदत्तः दिवा न भुङ्क्ते” यहां अर्थात् प्रसक्त अर्थ
रात्रि में भोजन करना है फिर भी “रात्रौ भुङ्क्ते” रात्रि में खाता है यह
कहना पुनरुक्ति दोष से दूषित माना जाता है ॥ १० ॥ पूर्व से पर जहां
विरोध होता है, वहां व्याहृत दोष माना जाता है—जैसे—किसी ने कहा कि
कर्म हैं फल हैं परन्तु कर्मों का कर्ता कोई नहीं है । यह वाक्य पूर्वापर में

अने जे दृष्टांत नही. (८) जे अक्षर अने पद आदिही हीन होय छे. त्यां
ऊन नामने दोष मानवामां आवे छे. अथवा हेतु अने दृष्टांतही जे हीन होय
छे, त्यां पणु अे दोष मानवामां आवे छे. जेवी रीते अनित्यः शब्दः घटवत्
आ वाक्य हेतुथी हीन छे. अनित्यः शब्दः कृतकत्वात् अडिं दृष्टांतथी विहितता
छे. (९) पुनरुक्त दोष शब्द, अर्थ अने प्रसंग आदिथी प्राप्त अर्थना पुनः
कथनथी थाय छे. घट घट अडिं शब्दनी अपेक्षा घट कुंभ कुट अडिं अर्थनी
अपेक्षा तथा “पीनोऽयं देवदत्तः दिवा न भुङ्क्ते” अडिं अर्थात् प्रसक्त अर्थ
रात्रीमां भोजन करवुं अे छे. छतां पणु अे कडेवुं छे के रात्रौ भुङ्क्ते अे
रात्रीमां थाय छे, आम कडेवुं पुनरुक्ति दोषथी दुषित मानवामां आवे छे. (१०)
पूर्वथी परने न्यां विरोध छे, त्यां व्याहृत दोष मानवामां आवे छे, जेम के,
कौं अे कहुं के, कर्म छे, क्षण छे, परंतु कर्मोने कर्ता कौं नथी. आ वाक्य

इत्यादि ॥ ६ ॥

निःसारं=तथाविधयुक्तिरहितं परिफल्गु, यथा-सौगतादिशास्त्रम् ॥ ७ ॥

अधिकम्-अक्षरपदादिभिरतिमात्रम् । अथवा हेतुदृष्टान्तस्य चाऽऽधिक्ये सति अधिकं, यथा-अनित्यः शब्दः, कृतकत्व प्रयत्नानन्तरीयकत्वाभ्यां घटपटवदित्यादि। एकस्मिन् साध्ये एक एव हेतुदृष्टान्तश्च वक्तव्यः । अत्र च प्रत्येकं द्वयाभिधानादाधिक्यमिति भावः ॥ ८ ॥

॥ ५ ॥ जन्तुओं को अहित का उपदेशक होने से जो पापव्यापार का पोषक सूत्र होता है वह द्रुहिल दोषवाला सूत्र माना जाता है । जैसे-चार्वाक का यह कहना कि-यह लोक जितना प्रत्यक्ष से दिखता है उतना ही है इससे आगे नहीं । पुण्य पाप एवं स्वर्ग नरक यह भी नहीं है । इस लिये खाओ पीओ मस्त रहो और आनंद से अपने समय को निकालो ॥ ६ ॥ युक्ति रहित जो सूत्र होता है वह निस्सार दोष वाला माना जाता है, जैसे सौगत आदि का शास्त्र ॥ ७ ॥ जिसमें अक्षर पद आदि आवश्यकता से अधिक होते हैं वह सूत्र अधिक दोष संयुक्त जानना चाहिये, अथवा-जिसमें एक हेतु और दृष्टान्त के अतिरिक्त हेतु और दृष्टान्त हों वह भी अधिक दोषवाला सूत्र मानना चाहिये-जैसे-“ अनित्यः शब्दः कृतकत्वप्रयत्नानन्तरीयकत्वात् घटपटवदिति ” शब्द अनित्य है क्यों कि वह कृतक है एवं प्रयत्नपूर्वक होता है जैसे घट और पट ॥ ७ ॥ इस अनुमान में एक हेतु और १ दृष्टान्त अधिक है । एक साध्य में १ ही हेतु और १ ही दृष्टान्त होता है । दो हेतु और दो दृष्टान्त नहीं ॥ ८ ॥ जो.

જન્તુઓના અહિતના ઉપદેશક હોવાથી જે પાપ વ્યાપારને પોષક સૂત્ર હોય છે, તે દ્રુહિલ દોષવાળા સૂત્ર માનવામાં આવે છે. જેમ ચાર્વાક કહે છે કે:- આ લોક જે રીતે પ્રત્યક્ષથી દેખાય છે એટલું જ છે એનાથી આગળ નથી, પુણ્ય, પાપ અને સ્વર્ગ નરક એ પણ નથી, આ માટે ખાઓ પીઓ અને મસ્ત રહો તથા આનંદથી સમયને પસાર કરો, (૬) યુક્તિ રહિત જે સૂત્ર હોય છે તે નિસ્સાર દોષવાળા મનાય છે. જેમ સૌગત આદિ શાસ્ત્ર, (૭) જેમાં અક્ષર પદ આદિ આવશ્યકતાથી અધિક હોય છે તે સૂત્ર અધિક દોષ સંયુક્ત બાણુવું બોધવું. અથવા જેમાં એક હેતુ અને દૃષ્ટાંતના અતિરિક્ત હેતુ અને દૃષ્ટાંત હોય તેને પણ અધિક દોષવાળા સૂત્ર માનવા બોધવું. જેમ-“ અનિત્યઃ શબ્દઃ કૃતકત્વપ્રયત્નનન્તરીયકત્વાત્ ઘટપટવદિતિ ” શબ્દ અનિત્ય છે, કેમ કે, તે કૃતક છે. અને પ્રયત્નપૂર્વક થાય છે, જેમ ઘટ અને પટ. આ અનુમાનમાં એક હેતુ અને એક દૃષ્ટાંત અધિક છે. એક સાધ્યમાં એક જ હેતુ અને એક જ દૃષ્ટાંત હોય છે. બે ;

शब्दरूपगन्धरसस्पर्शा इति वक्तव्ये रूपगन्धशब्दस्पर्शरसा इति ब्रूयाद्' इत्यादि ॥१३॥

वचनभिन्नं—यत्र वचनव्यत्ययः, यथा—' वृक्षा ऋतौ पुष्पितः ' इत्यादि ॥१४॥

विभक्तिभिन्नं—यत्र विभक्तिव्यत्ययः, यथा—' वृक्षं पश्य ' इति वक्तव्ये

' वृक्षः पश्य ' इति ब्रूयात् ' इत्यादि ॥ १५ ॥

लिङ्गभिन्नं—यत्र लिङ्गव्यत्ययः, यथा—' इयं स्त्री ' इति वक्तव्ये ' अयं स्त्री ' इति ब्रूयात्, इत्यादि ॥ १६ ॥

अनभिहितं—स्वसिद्धान्तोपदिष्टाधिककथनम् । यथा—राशिद्वयमिति वक्तव्ये राशित्रयकथनम्, इत्यादि ॥ १७ ॥

का दोष आता है । क्यों कि सूत्र में जिस क्रम से इन्द्रियों का वर्णन किया गया है उसी क्रम से उनके विषय का भी वर्णन करना चाहिये ॥ १३ ॥ जहां वचन का व्यत्यय होता है वहां वचनभिन्न नामका दोष होता है जैसे " वृक्षाः ऋतौ पुष्पितः " यहां वचन व्यत्यय है । क्यों कि " पुष्पितः " की जगह " पुष्पिताः " ऐसा बहुवचन होना चाहिये ॥१४॥ जहां विभक्ति का व्यत्यय होता है वहां विभक्तिभिन्न दोष माना जाता है जैसे " वृक्षः पश्य " यहां पर विभक्ति भिन्न दोष है यहाँ, ' वृक्षः ' की जगह ' वृक्षं ' ऐसा होना चाहिये ॥ १५ ॥ जहां स्त्रीलिङ्ग आदि का व्यत्यय होता है वह लिङ्गभिन्न दोष है जैसे; " अयं स्त्री " यहां हुआ है । ' अयं ' की जगह ' इयं ' होनी चाहिये सो ' इयं ' की जगह ' अयं ' कर दिया यह लिङ्गव्यत्यय है ॥ १६ ॥ जो वात सिद्धान्त में प्रतिपादित नहीं है उसे भी मानना अर्थात् सिद्धान्तकथित वात से भी

भिन्न नामने दोष आवे छे. केम के, सूत्रमां ने कभथी धन्द्रियोनुं वरुण करवाभां आत्युं छे अे न कभथी अेना विषयनुं पषु वरुण करवुं लेधअे. (१३) न्यां पचनने उवट-मुवट व्यत्यय थाय छे. त्यां पचनभिन्न नामने दोष लागे छे. नेम वृक्षाः ऋतौ पुष्पितः-अधीं पचनव्यत्यय छे, केमके पुष्पितः नी नञ्याअे " पुष्पिताः " अेम अहुपचन डोपुं लेधअे. (१४) न्यां विभक्तिने व्यत्यय डोय छे. ते विभक्ति भिन्न दोष मानवाभां आवे छे. नेम " वृक्षः पश्य " अडिं पड छे " वृक्षं पश्य " अे डीक छे. वृक्षं नीनञ्याअे वृक्षः आ विभक्तिने व्यत्यय छे. (१५) न्यां स्त्रीविंग आदिने व्यत्यय अने छे ते विंग भिन्न दोष छे, नेम अयं स्त्री अधीं अयं नी नञ्याअे इयं डोपुं लेधअे. ते इयं नी नञ्याअे अयं करी दीधुं अे विंगव्यत्यय छे, (१६) ने वात सिद्धांतमां प्रतिपादित नथी तेने मानची, अर्थात् सिद्धांत कथित वातथी पषु अधिक ने युक्ति

पूर्व-‘ कर्म चास्ति ’ इत्युक्तम्, तेन-कर्मणां कर्तानास्तीत्यस्य विघातो भवति।
यथा वा—अयं बालको बन्ध्याप्रसूतः, इत्यादि ॥ ११ ॥

अयुक्तम्—बुद्ध्या चिन्त्यमानम्—अनुपपत्तिक्षमम् । यथा—

“ तेषां कटवटभ्रष्टैः—र्गजानां मदविन्दुभिः ।

प्रावर्तत नदी घोरा, हस्त्यश्वरथवाहिनी ॥ १ ॥

यथा वा—श्रावकस्य मुनिदर्शनदर्पाश्रुभिरुपाश्रयः संभृतः ॥ १२ ॥

क्रमभिन्नं—यत्र क्रमो नाराध्यते। यथा—‘ श्रोत्रचक्षुर्ग्राणरसनस्पर्शनानां विषयाः

विरोधी है कारण कि जब कर्म है तों कोई न कोई इनका कर्त्ता भी हैं—फिर यह कहना कि इनका कोई कर्त्ता नहीं है यह व्याहत दोष है। इसी तरह “अयं बालको बन्ध्याप्रसूतः” अर्थात् यह बालक बन्ध्यापुत्र है यह भी समझना चाहिये ॥ ११ ॥ जो युक्ति सह नहीं होता है वहां अयुक्त दोष आता है जैसे—हाथियों का वर्णन करते समय ऐसा कहा जाय कि उनके हाथियो के गण्डस्थल से च्युत मदजल का इतना अधिक प्रवाह वहा कि वहां एक घोर नदी हो गई जिसमें हाथी, अश्व एवं रथ सब के सब वह गये। यह बुद्धिकल्पित चीज युक्ति सह नहीं है। इस लिये ये अयुक्त नामका दोष है। इसी तरह यह कथन भी “ कि मुनियों के दर्शन से श्रावकों की आंखों से इतने आनंदाश्रु निकले कि उपाश्रय भर गया ” ॥ १२ ॥ जहां क्रम वर्णन पर ध्यान नहीं रखा जाता है वहां क्रमभिन्न नामका दोष है—जैसे—श्रोत्रचक्षुर्ग्राणरसनस्पर्शनानां विषयाः रूपगंधशब्दस्पर्शरसाः, ऐसा कोई सूत्र बनावे तो उसमें क्रमभिन्न नाम

पूर्वापरमां विरोधी छे कारणु के, ब्यारे कर्म छे तो केधने केधतेना कर्ता पणु डोवे जेधजे. पछी जे कडेवुं के जेने केधकर्ता नथी जे ‘व्याहत’ दोष छे. आ रीते “अयं बालको बन्ध्याप्रसूतः” अर्थात् “आ पाणक बन्ध्या पुत्र छे” जेम कडेवुं ते पणु समजुं जेधजे. (११) जे युक्ति पुरःसर नथी त्यां अयुक्त दोष आवे छे. जेम ‘हाथियोतुं’ वर्णन करती वभते जेम कडेवाभां आवे के ते हाथियोना गंडस्थलथी च्युत मदजलने जेटवो वधु प्रवाह निकल्यो के, त्यां जेक घोर नदी थध गध जेमां हाथी, अश्व जेने रथ आ जधां तज्जुध गथां, आ बुद्धि कल्पित चिज युक्ति सह नथी. आ भाटे अयुक्त नामने दोष छे. जेवी रीते “मुनियाना दर्शनथी श्रावकेनी आंजोभांथी जेटवां आंसु वहा के तेनाथी उपाश्रय भरध गयो. आ कथन पणु अयुक्त दोषवाणु छे (१२) जथां कभवर्णन उपर ध्यान नथी रभातुं त्यां कभविन्न नामने दोष छे—जेम श्रोत्रचक्षुर्ग्राणरसनस्पर्शनानां विषयाः—रूप—गंध—शब्द—स्पर्श—रसाः जेवुं केध सूत्र बनावे तो जेमां कभव-

कालदोषो यत्रातीतादिकालव्यत्ययः, यथा ' रामो वनं प्रविवेश ' इति वक्तव्ये ' रामो वनं प्रविशति ' इत्यादि ॥ २१ ॥

यतिदोषोऽस्थानविरतिः, सर्वथाऽविरतिर्वा । यथा—' धम्मो मंगलमुक्किट्ठं ' इत्यादौ ' धम्मो ' इत्यत्र विरामः । यद्वा—गाथायां अन्ते विरामकरणम् ॥ २२ ॥

छविः—अलंकारः, तेन शून्यं छविदोषः । यथा—'वालो धावति' इत्यादि ॥ २३ ॥

समयविरुद्धं—स्वसिद्धान्तविरुद्धं, यथा—स्याद्वादसिद्धान्ते तद्विरुद्धकथनम् ॥ २४ ॥

में सुवन्त तिङन्तात्मक पद का स्वरूप विस्तार से विवेचित करके अथवा अर्थशास्त्र का कथन करके पुनः हेतु का कथन करने लग जाना । इसी तरह दया के वर्णन करते समय शील का विस्तृत वर्णन करना और पुनः दया का वर्णन करना । इस प्रकार का वर्णन इस दोष वाला जानना चाहिये ॥ २० ॥ जहां अतीतादिकाल का व्यत्यय होता है वहां काल-दोष माना जाता है—जैसे—राम वन में प्रविष्ट हुए की जगह ऐसा कहना कि राम वन में प्रवेश करते हैं ॥ २१ ॥ अस्थान में विरति—' अर्थात्-विराम-रुकना ' होना अथवा सर्वथा अविरति—' नही रुकना ' होना उसका नाम यति दोष है । जैसे—धम्मोमंगल मुक्किट्ठं " इत्यादि में धम्मो यहां विराम करना अथवा गाथा का अन्तमें विराम करना ॥ २२ ॥ अलंकार शून्यता में छविदोष होता है—जैसे—" वालो धावति " इत्यादि ॥ २३ ॥ जहां स्वसिद्धान्त से विरुद्ध कहा जाता है वहाँ समय विरुद्ध दोष लगता है—जैसे—स्याद्वादसिद्धान्त में उसके विरुद्ध प्रतिपादन करना

सुष्ठान्त तिङन्तात्मक पदनुं स्वर्ध्व विस्तारथी विवेचित करीने अथवा अर्थ-शास्त्रनुं कथन करीने पुनः हेतुनुं कथन करवा लागी ज्युं. आ रीते द्यानुं पणुंन करती पणते शिलनुं विस्तृत पणुंन करवुं अने करीथी द्यानुं पणुंन करवुं. आ प्रकारनुं पणुंन व्यवहित होपवाणुं लणुपुं नेधये. (२०) न्यां अतीतादि काणनेो व्यत्यय थाय छे त्यां काण दोष भनाय छे—नेम राम वनमां प्रविष्ट थयानी ज्य्याये ज्येपुं कडेपुं के, राम वनमां प्रवेश करे छे. (२१) अस्थानमां विरति—अर्थात्—विराम—रोकावुं, थवुं अथवा सर्वथा अविरति—' न रोकावुं " थवुं, तेनुं नाम यतिदोष छे. नेम—' धम्मो मंगलमुक्किट्ठं " धत्यादिमां धम्मो ज्ये ज्य्याये विराम करवो अथवा गाथाना अंतमां विराम करवो. (२२) अलंकार शून्यतामां छवि दोष थाय छे. नेम " वालो धावति " छेकरो होडे छे. (२३) धत्यादि. न्यां स्वसिद्धांतथी विरुद्ध कडेवामां आवे छे त्यां समयविरुद्ध होप लागे छे. नेम स्याद्वाद सिद्धांतमां तेनी विरुद्ध प्रतिपादन करवुं. (२४) युक्तिशून्य कथन करवामां पथन मात्र नामनुं दुपणु आवे छे.

અપદં—નિર્વિભક્તિકશબ્દોચારણરૂપમ્ । યથા—મુનિર્વિહરતીતિ વક્તવ્યે મુનિ
નિહરતીતિ કથનમ્ ॥ ૧૮ ॥

સ્વભાવહીનં—યત્ર વસ્તુસ્વભાવોઽન્યથા સ્થિતોઽન્યથાઽભિધીયતે તત્ । યથા
'શીતો વહ્નિઃ' 'રૂપવદાકાશમ્' ઇત્યાદિ ॥ ૧૯ ॥

વ્યવહિતં—યત્ર પ્રકૃતમુત્તવાઽપ્રકૃતં વિસ્તરતોઽભિધાય પુનઃ પ્રકૃતમુચ્યતે તદ્ ।
યથા—હેતુકથામધિકૃત્ય મુત્તિદ્વન્તપદલક્ષણપ્રપન્નમર્થશાસ્ત્રં વા અભિધાય પુનર્હેતુવચ-
નમ્ । યથા વા—દયાં પ્રસ્તુત્ય શીલસ્ય વિસ્તરવર્ણનં યિધાય પુનર્દયાવર્ણનમ્ ॥૨૦॥

અધિક જો યુક્તિયુક્ત નહીં છે—ઉસ કો માનના જૈસે—જીવરાશિ અજીવ-
રાશિ યે દા હી રાશિયાં હૈં । પર એસા કહના કિ “નો જીવ નો અજીવ”
ઇસ પ્રકાર તૈસરા રાશિ કા વર્ણન કરના અનભિહિત દોષ હૈ ॥ ૧૭ ॥
વિભક્તિ રહિત શબ્દ ચાલા સૂત્ર અપદ દોષ ચાલા માના જાતા હૈ જૈસે
“મુનિવિહરતિ” યહાં હુઆ હૈ । ક્યોં કિ સુવન્ત એવં તિહન્ત કી પદ
સંજ્ઞા હોતી હૈ । નિર્વિભક્તિક શબ્દ પદ સંજ્ઞક નહીં હોતા । અતઃ ઇસ
પ્રકાર કા શબ્દ ચાલા સૂત્ર ઇસ દોષ સે વિશિષ્ટ માના જાતા હૈ ।
“મુનિર્વિહરતિ” યહ શુદ્ધ હૈ ॥ ૧૮ ॥ જિસ સૂત્ર દ્વારા વસ્તુ કા યથા-
વસ્તિ સ્વરૂપ નિરૂપિત ન હોકર અન્યથારૂપ મેં નિરૂપિત કિયા જાતા
હૈ વહાં સ્વભાવહીન દોષ હોતા હૈ । જૈસે—અગ્નિ કો શીત એવં આકાશ
કો રૂપી કહના ॥ ૧૯ ॥ જહાં પ્રકૃત અર્થ કો છોડકર અપ્રકૃત કા
વિસ્તાર સે વર્ણન કરકે પુનઃ પ્રકૃત અર્થ કા વર્ણન કિયા જાતા હૈ વહાં
વ્યવહિત નામ કા દોષ હોતા હૈ—જૈસે—હેતુ કે લક્ષણ કે કથન અવસર

યુક્ત નથી તેને માનવી જેમ-જીવરાશી અજીવરાશી એ જે રાશી છે, પણ
એમ કહેવું કે નો જીવ-નો અજીવ આ પ્રકારે ત્રીજી રાશીનું વર્ણન કરવું
અનભિહિત દોષ છે. (૧૭) વિભક્તિરહિત શબ્દવાળા સૂત્ર અપદ દોષવાળા
મનાય છે જેમ “મુનિવિહરતિ” અહિં થયેલ છે. કેમકે, સુવન્ત અને તિહન્તની
પદ સંજ્ઞા થાય છે. નિર્વિભક્તિક શબ્દ પદ સંજ્ઞક થતો નથી એટલે આ
પ્રકારના શબ્દવાળા સૂત્ર આ દોષથી વિશિષ્ટ માનવામાં આવે છે. “મુનિર્વિહરતિ”
આ શુદ્ધ છે. (૧૮) જે સૂત્રથી વસ્તુનું યથાવસ્થિત સ્વરૂપ નિરૂપિત ન થતાં
બીજા રૂપમાં નિરૂપિત કરવામાં આવે છે ત્યાં સ્વભાવહિન દોષ હોય છે. જેમ
અગ્નિને શીત અને આકાશને રૂપી કહેવું. (૧૯) ત્યાં પ્રકૃત અર્થને છોડીને
અપ્રકૃતનું વિસ્તારથી વર્ણન કરીને પુનઃ પ્રકૃત અર્થનું વર્ણન કરવામાં આવે છે
ત્યાં વ્યવહિત નામનો દોષ લાગે છે—જેમ હેતુ લક્ષણના કથન અવસર

મિયદાંશની ટોકા ગા. ૨૩ સૂત્રદોષા: ૩૨

રૂપકદોષ:—અવયવિન્યારોપયિતવ્યેઽવયવારોપણમ્ । યથા-પર્વતાદૌ રૂપયિ-
તવ્યે શિખરાદીંસ્તદવયવાન્ રૂપયતિ । ગજં પ્રતિ ઉચ્ચત્વાદિ ધર્મં નિરીક્ષ્ય પર્વતા-
ભેદમારોપ્ય પર્વતોઽયમિતિ વક્તવ્યે શિખરોઽયમિતિ કથનમ્ ॥ ૨૯ ॥

નિર્દેશદોષસ્ત્ર, યત્ર નિર્દિષ્ટપદાનામેકવાક્યતા ન ક્રિયતે, યથા-ઈહ શ્રાવક
ઉપાશ્રયે પ્રતિક્રામતીત્યભિધાતવ્યે પ્રતિક્રામતિ શબ્દં નાભિધત્તે ॥ ૩૦ ॥
પદાર્થદોષ:—યત્ર વસ્તુનિ પર્યાયોઽપિ સન્ પદાર્થાન્તરત્વેન કલ્પ્યતે, યથા-
'સતો ભાવઃ સત્તા' ઇતિ કૃત્વા વસ્તુપર્યાય એવ સત્તા, સા ચ વૈશેષિકૈઃ પદ્મ
પદાર્થેષુ મધ્યે પદાર્થાનન્તરત્વેન સ્વીકૃતા, તચ્ચાયુક્તમ્-વસ્તુનામનન્તપર્યાયત્વેન
પદાર્થાનન્ત્ય-પ્રસંગાદિતિ ॥ ૩૧ ॥

ઉપમા કરને મેં આતી હૈ વહાં ઉપમા દોષ માના જાતા હૈ જૈસે કહના કિ મેરુ
સર્પ કે સમાન હૈ અથવા સર્પ મેરુકે સમાન હૈ ॥૨૮॥ અવયવી કા જહાં
આરોપણ કરના ચાહિયે વહાં અવયવ કા આરોપણ કરના, જૈસે-પર્વતકે
નિરૂપયિતવ્ય હોને પર ઉસ કે અવયવમૂત શિખરાદિકોં કા નિરૂપણ
કરના । ગજ મેં ઉચ્ચત્વ આદિ ધર્મ કા નિરીક્ષણ કર કે ઉસ મેં પર્વત કા
રૂપક વાંચકર ફિર એસા કહના કિ યહ શિખર હૈ ॥ ૨૯ ॥ જહાં નિર્દિષ્ટ
પદો મેં એક વાક્યતા નહીં કી જાતી હૈ વહાં નિર્દિષ્ટ દોષ માના જાતા
હૈ । જૈસે-ઇસ ઉપાશ્રય મેં શ્રાવક પ્રતિક્રમણ કરતા હૈ એસે કહને કી
જગહ સિર્ફ ઇતના હી કહના । " ઇહ ઉપાશ્રયે શ્રાવકઃ " અર્થાત્ એક
વાક્યતા પ્રદર્શક ક્રિયાપદ કા પ્રયોગ નહીં કરના ॥ ૩૦ ॥ જિસ વસ્તુમેં
પર્યાય બી દૂસરે પદાર્થરૂપ મેં કલ્પિત કી જાવે વહાં પદાર્થદોષ માના
જાતા હૈ । જૈસે-સત્ કા ભાવ હી સત્તા હૈ ઓર યહ સત્તા વસ્તુ કી હી

ત્યાં ઉપમાદોષ માનવામાં આવે છે. જેમ કહેવું કે, મેરુ સર્પવના જેવો છે
અથવા સર્પવ મેરુના સમાન છે. (૨૮) અવયવીનું બ્યાં આરોપણ કરવું
નેહએ ત્યાં અવયવનું આરોપણ કરવું, જેમ પર્વતના નિરૂપયિતવ્ય કથન
કરવું નેહએ ત્યાં એમના શિખરાદિકોં નિરૂપણ કરવું; ગજમાં ઉચ્ચત્વ
આદિ ધર્મનું નિરીક્ષણ કરી એમાં પર્વતનું રૂપક વાંધીને પછી એવું કહેવું કે
એ શિખર છે. (૨૯) બ્યાં નિર્દિષ્ટ પદોમાં એકવાક્યતા કરવામાં નથી આવતી
ત્યાં નિર્દિષ્ટ દોષ માનવામાં આવે છે. જેમ આ ઉપાશ્રયમાં શ્રાવક પ્રતિક્રમણ
કરે છે એમ કહેવાને બદલે ફક્ત એટલું જ કહેવું કે, " ઇહ ઉપાશ્રયે શ્રાવકઃ "
અર્થાત્ એક વાક્યતા પ્રદર્શક ક્રિયાપદનો પ્રયોગ કરવો નહીં. (૩૦) જે વસ્તુમાં
પર્યાય પણ પીળ પદાર્થરૂપમાં કલ્પિત કરવામાં આવે ત્યાં પદાર્થ દોષ મનાય
છે, જેમ સત્નો ભાવ જ સત્તા છે અને એ સત્તા વસ્તુની જ એક પર્યાય છે-

વચનમાત્ર-નિર્હેતુકં કેવલવચનમ્, યથા કથિદ્ યથેચ્છયા કંચિત્ પ્રદેશં લોક-
મધ્યતયા જનેભ્યઃ પ્રરૂપયતિ ॥ ૨૫ ॥

અર્થાપત્તિદોષઃ—યત્રાર્થાપત્ત્યાનિષ્ટમાપતતિ તત્ર, યથા—ગ્રામકુક્કુટો ન
હન્તવ્યઃ, ઇત્યુક્તેઽર્થાપત્ત્યા શેષઘાતોઽદુષ્ટ ઇત્યાપતતિ ॥ ૨૬ ॥

અસમાસદોષઃ—યત્ર સમાસવિધિમાત્તી સમાસં ન કરોતિ, વ્યત્યયેન વા
કરોતિ તત્ર । યથા—ભગવતો નામનિર્દેશે ‘મહાવીરઃ’ ઇતિ વક્તવ્યે ‘મહાન્ વીરઃ’
ઇતિ કથનમ્ । યદ્વા—સમાનાધિકરણ્યેન સમાસે કર્તવ્યે વ્યધિકરણેન તત્કરણમ્ ।
યથા—મહતો વીરો મહદ્વીર ઇતિ ॥ ૨૭ ॥

ઉપમાદોષો યત્ર હીનોપમા ક્રિયતે । યથા—મેરુઃ સર્પપોપમઃ । અધિકોપમા વા
ક્રિયતે, યથા—સર્પપો મેરુસંનિમઃ । અનુપમા વા યથા મેરુઃ સમુદ્રોપમઃ, ઇત્યાદિ ॥૨૮॥

॥ ૨૪ ॥ યુક્તિ શૂન્ય કથન કરને મેં વચનમાત્ર નામકા દૂષણ આતા હૈ ।
જૈસે—અપની ઇચ્છા સે કલ્પના કરકે કહના કિ અમુક પ્રદેશ લોક કે
મધ્ય મેં હૈ ॥ ૨૫ ॥ જહાં પર અર્થાપત્તિ સે અનિષ્ટ કી પ્રસક્તિ હોતી,
વહાં અર્થાપત્તિદોષ માના જાતા હૈ । જૈસે—કિસી ને કહા કિ ગ્રામ કા
કુક્કુટ (મુર્ગા) નહીં મારના ચાહિયે, તો ઇસસે ઇસ અનિષ્ટ કા આપા-
દન હોતા હૈ કિ શેષ જીવોં કા ઘાત કરના દોષાવહ નહીં હૈ ॥ ૨૬ ॥
જહાં સમાસવિધિ પ્રાપ્ત હો ભી તૌ ભી વહાં સમાસ નહીં કરના, ઇસમેં
અસમાસદોષ માના જાતા હૈ અથવા વ્યત્યય સે સમાસ કરના ઇસમેં
ભી સમાસદોષ માના જાતા હૈ । જૈસે કિસી ને પૂછા કિ અન્તિમ તીર્થંકર
કા નામ ક્યા હૈ ? વહાં મહાવીર ન કહ કર મહાન્ વીર એસા કહ દેના ।
અથવા—સમાનાધિકરણ્ય સે સમાસ કર્તવ્ય હોને પર વ્યધિકરણ સે સમાસ
કરના—જૈસે—મહતો વીરઃ મહદ્વીરઃ ॥૨૭॥ જહાં હીન ઉપમા અથવા અધિક

જેમ પોતાની ઇચ્છાથી કલ્પના કરીને કહેવું કે, અમુક પ્રદેશ લોકના મધ્યમાં
છે. (૨૫) ત્યાં અર્થાપત્તિથી અનિષ્ટની પ્રસક્તિ થાય છે ત્યાં અર્થાપત્તિ દોષ
માનવામાં આવે છે. જેમ કેઈએ કહ્યું કે, ગામનો કુકડો મારવો ન જોઈએ,
તો આથી એ અનિષ્ટનું કથન આપાદન થાય છે કે, શેષ જીવોનો ઘાત કરવો
તે દોષાવહ નથી. (૨૬) ત્યાં સમાસવિધિ પ્રાપ્ત થાય તો પણ ત્યાં સમાસ ન
કરવો એમાં અસમાસ દોષ માનવામાં આવે છે, અથવા વ્યત્યયથી સમાસ કરવો એમાં
પણ સમાસ દોષ માનવામાં આવે છે, જેમ કેઈએ પૂછ્યું કે અંતિમ તીર્થંકરનું
નામ શું છે ? ત્યાં મહાવીર ન કહેતા મહાન્ વીર એમ કહી દેવું અથવા સામા-
નાધિકરણથી સમાસ કર્તવ્ય હોવા છતાં વ્યધિકરણથી સમાસ કરવો, જેમ
‘મહતોવીરઃ મહાવીરઃ’ (૨૭) ત્યાં હીન ઉપમા અથવા અધિક ઉપમા કરવામાં આવે છે

વ્યાખ્યા—નિર્દોષમ્—અલીકાદિદોષવર્જિતમ્ ॥ ૧ ॥ સારવત્—ભૂમિશબ્દવદ્
 વહુપર્યાયયુક્તમ્ ॥ ૨ ॥ હેતુયુક્તમ્—હેતવઃ—અન્વયવ્યતિરેકલક્ષણાસ્તૈર્યુક્તમ્ ॥ ૩ ॥
 અલંકૃતમ્—ઉપમોત્પ્રેક્ષાઘલંકારૈર્યુક્તમ્ ॥ ૪ ॥ ઉપનીતમ્—ઉપનયોપસંહૃતમ્ ॥ ૫ ॥
 સોપચારમ્—ગ્રામ્યભણિતિરહિતમ્ ॥ ૬ ॥ મિતમ્—વર્ણાદિનિયતપરિમાણમ્ ॥ ૭ ॥
 મધુરમ્—શ્રવણમનોહરમ્ ॥ ૮ ॥

અવ સૂત્રકે ૮ ગુણ કૌન ૨ સે હેં સો કહતે હેં—નિર્દોષ ૧, સારવત ૨, હેતુયુક્ત ૩, અલંકૃત ૪, ઉપનીત ૫, સોપચાર ૬, મિત ૭, એવં મધુર ૮, કહા મી હેં—

“નિદોષં સારવંતં ચ, હેઝજુત્ત મલંકિયં ।

ઉવળીયં સોવાયારં ચ, મિયં મહુરમેવ ચ ॥૧॥

જો સૂત્ર અલીકાદિ દોષોં સે વર્જિત હોતા હેં વહાં નિર્દોષ યહ ગુણ માના જાતા હેં ॥ ૧ ॥ જિસ પ્રકાર ભૂમિ શબ્દ કે અનેક પર્યાયવાચી શબ્દ હેં, ડસી પ્રકાર અનેક પર્યાયોં સે યુક્ત જો સૂત્ર હોતા હેં વહ “સારવત્” ઇસ ગુણ સે વિશિષ્ટ માના જાતા હેં ॥ ૨ ॥ અન્વય વ્યતિરેક લક્ષણ હેતુ સે યુક્ત હો વહ હેતુયુક્ત નામક તીસરા ગુણ હેં ॥ ૩ ॥ ઉપમા ઉત્પ્રેક્ષા આદિ અલંકારોં સે સંપન્ન સૂત્ર કો અલંકૃત ગુણ વાલા કહા ગયા હેં ॥ ૪ ॥ ઉપનય પૂર્વક સે ઉપસંહૃત—સમાસિ જો સૂત્ર હોતા હેં વહ ઉપવીતગુણવાલા કહા ગયા હેં ॥ ૫ ॥ ગ્રામ્યભણિતિ સે રહિત જો સૂત્ર હોતા હેં અર્થાત્ જિસ સૂત્ર કી ભાષા સાધારણજનોં કી ભાષા જૈસી નહીં હોતી હેં વહ સૂત્ર સોપચારગુણ સે વિશિષ્ટ માના ગયા હેં.

હવે સૂત્રના આઠ ગુણ કયા કયા છે તે કહે છે—નિર્દોષ, સારવત, હેતુયુક્ત, અલંકૃત, ઉપનીત, સોપચાર, મિત, અને મધુર કહ્યું પણ છે—

નિદોષં સારવંતં ચ, હેઝજુત્ત મલંકિયં ।

ઉવળીયં સોવાયારં ચ, મિયં મહુરમેવ ॥ ૧ ॥

જે સૂત્ર અસત્ય અલીકાદિ દોષોથી વર્જિત હોય છે ત્યાં નિર્દોષ આ ગુણ માનવામાં આવે છે. (૧) જે પ્રકારે ભૂમિ શબ્દ જે અનેક પર્યાયવાચી શબ્દ છે એ જે રીતે અનેક પર્યાયોથી યુક્ત જે સૂત્ર હોય છે તે “સારવત્” આ ગુણથી વિશિષ્ટ માનવામાં આવે છે. (૨) અન્વય વ્યતિરેક લક્ષણ હેતુથી યુક્ત હોય તે હેતુયુક્ત નામનો ગુણ છે. (૩) ઉપમા ઉત્પ્રેક્ષા આદિ અલંકારોથી સંપન્ન સૂત્રને અલંકૃત ગુણવાળા કહેવામાં આવે છે. (૪) ઉપનય પૂર્વકથી ઉપસંહૃત સમાસિ જે સૂત્ર હોય છે તે ઉપવિત ગુણવાળા કહેવાયે છે. (૫) ગ્રામ્યભણિતિથી રહિત જે સૂત્ર હોય છે અર્થાત્ જે સૂત્રની ભાષા સાધારણ જનોની ભાષા જેવી હોતી નથી તે સૂત્ર સોપચાર ગુણથી વિશિષ્ટ માનવામાં આવે છે. (૬)

સન્ધિદોષ:—યત્ર સન્ધિમાતૃં તં ન કરોતિ, દુષ્ટં વા કરોતિ તત્ર, યથા
—“ સંયમારાધનમ્ ” ઇતિ વક્તવ્યે ‘ સંયમ, આરાધનમ્ ’ ઇતિ કથનમ્ । યથા વા
‘ મુનિ ઇતૌ ’ ઇતિ વક્તવ્યે ‘ મુન્યેતૌ ’ ઇતિ કથનમ્ ॥૩૨॥ ઇતે દ્વાત્રિંશત્ સૂત્રદોષાઃ ।

અથ સૂત્રગુણાઃ—

સૂત્રાણામષ્ટૌ ગુણાસ્ત્વેવમ્—

નિદોસં સારવંતં ચ, હેતુજ્જ્ઞ મલંકિયં ।

ઉવળીયં સોવયારં ચ, મિર્યં મહુરમેવ ય ॥ ૧ ॥

એક પર્યાય હૈ—ફિર મ્મી વૈશેપિક સિદ્ધાન્તકાર હસે દ્રવ્યગુણ આદિ-પદાર્થ
સે ભિન્ન પદાર્થરૂપ સે સ્વીકાર કરતે હૈં । અતઃ ઉનકે સૂત્રોં મેં યહ દોષ
આતા હૈ । કારણ કિ હસ પ્રકાર સે પર્યાય કો યદિ ભિન્ન પદાર્થ તરીકે
માના ઝાયગા તો પ્રત્યેક પદાર્થ કી અનંત પર્યાયે હૈં ઉન સયમેં અનંત
પદાર્થતા કી પ્રસક્તિ માનની પડેગી, હસ પ્રકાર છહ હી ભાવાત્મક પદાર્થ
હૈ, યહ કથનવિરુદ્ધ માનના પડેગા ॥ ૩૧ ॥ ઝહાં સંધિ કી પ્રાપ્તિ હોને પર
મ્મી સંધિ નહીં કી ઝાય ઝહાં સન્ધિદોષ હોતા હૈ ઝૈસે—“ યહ સંયમ કા
આરાધન કરતા હૈ ” હસ સ્થાનમેં સંયમારાધનં ન કહ કર “ સંયમ
આરાધનં ” ઇસા કહના । હસી પ્રકાર “ મુનિ ઇતૌ ” હસ ઝગહ
“ મુન્યેતૌ ” કહના । “ મુનો ઇતૌ ” યહાં વ્યાકરણ સિદ્ધાન્ત કે અનુસાર
દ્વિવચનાન્ત ઈદન્ત શબ્દકી પ્રગૃહ્ય સંઝા હોતી હૈ ઓર ઉસસે સન્ધિકાર્ય
કા અભાવ હો ઝાતા હૈ ॥૩૨॥ હસ પ્રકાર સૂત્રકે યે વક્તીસ (૩૨) દોષ હૈં ।

વૈશેપિક સિદ્ધાન્તકાર તેનો દ્રવ્યશુષ્ક આદિ પદાર્થથી ભિન્ન પદાર્થ રૂપથી સ્વીકાર
કરે છે. આથી તેમના સૂત્રોમાં એ દોષ આવે છે. કારણ કે, આ પ્રકારથી પર્યાયને
કદિ ભિન્ન પદાર્થ તરીકે માનવામાં આવે તો પ્રત્યેક પદાર્થની અનંત પર્યાયો છે
એ બધામાં અનંત પદાર્થતાની પ્રસક્તિ માનવી નેહ શે. આ પ્રકારે છ ભાવાત્મક
પદાર્થ છે, એ કહેવું વિરુદ્ધ માનવું પડશે. (૩૧) બધાં સંધિની પ્રાપ્તિ હોવા છતાં
પણ સંધી ન કરવામાં આવે તો સંધી દોષ બને છે. જેમ—“ આ સંયમનું
આરાધન કરે છે ” આ સ્થાનમાં સંયમારાધન ન કહીને “ સંયમ આરાધન ”
એમ કહેવું. આ પ્રકારે “ મુનિ ઇતૌ ” આ સ્થળે મુન્યેતૌ કહેવું. વ્યાકરણ
સિદ્ધાન્ત અનુસાર દ્વિવચનાન્ત ઈદન્ત શબ્દની પ્રગૃહ્ય સંઝા થાય છે. અને એથી
સંધી કાર્યનો અભાવ થઈ બંધ છે. (૩૨) આ પ્રકારે સૂત્રના ૨૦ દોષ છે.

चत्वारोऽप्यनुयोगा व्याख्यायन्ते ॥४॥ 'अस्तोभकम्, -स्तोभकाः-निरर्थकतया प्रयुक्ताः, चकार-वा-शब्दादयो निपाताः, तैर्वियुक्तम् ॥५॥ 'अनवद्यं'-कामादिपापव्यापारा-प्ररूपकम् ॥६॥ एवंभूतं सूत्रं सर्वज्ञभाषितम् । इमे पद्म गुणाः पूर्वोक्तेष्वष्टसु गुणेष्वन्तर्भूताः सन्ति, तथाहि-अल्पाक्षरस्य विश्वतोमुखस्य च मिते समावेशः, असन्दिग्धानवद्यास्तोभानां च निर्दोषेऽन्तर्भावः ।

एवं सूत्रानुगमे समस्तदोषवर्जिते लक्षणयुक्ते सूत्रे उच्चारिते सति स्वसमयगत-जीवाद्यर्थप्रतिपादकस्य स्वसमयपदस्य ज्ञानं भवति तथा परसमयगत-प्रकृतीश्वराद्यर्थप्रतिपादकस्य परसमयपदस्य ज्ञानं भवति । अनयोरेव मध्ये परसमयपदं जैसे "धम्मोमंगलमुक्किट्ठं" यह सूत्र है । इस सूत्र में चारों ही अनुयोग का व्याख्यान है ॥ ४ ॥ जिस सूत्र में चकार, वकार आदि निरर्थक शब्दों का प्रयोग नहीं किया जाता है वह सूत्र "अस्तोभ" गुण वाला माना गया है ॥ ५ ॥ जिस सूत्र द्वारा कामादिक व्यापारों की प्ररूपणा नहीं की जाती है वह सूत्र "अनवद्य" गुण संपन्न है ॥६॥ सूत्र इसी प्रकार का होना चाहिये, इससे विपरीत नहीं, ऐसा प्रभु का आदेश है । ये छह गुण पूर्वोक्त अष्टगुणों में अन्तर्भूत समझना चाहिये । अल्पाक्षर एवं विश्वतोमुख, इन दो गुणों का अन्तर्भाव "मित" इस गुण में तथा असन्दिग्ध, अनवद्य एवं अस्तोभ इन गुणों का अन्तर्भाव "निर्दोष" इस गुण में हुआ है ।

इस प्रकार समस्तदोषवर्जित, एवं लक्षणयुक्त सूत्र के उच्चारित होने पर जीवादिक अर्थ के प्रतिपादक स्वसमय-पद का ज्ञान तथा पर समयानुसार प्रकृति ईश्वर आदिक अर्थ के प्रतिपादक परसमय-पद का

लेभ-“धम्मो मंगलमुक्किट्ठं” आ सूत्र छे आमां थारे अनुयोग ने व्याख्यान छे. थकार, वकार आदि व्याख्यान छे आदि निरर्थक शब्दने प्रयोग नथी करवामां आव्थे ते सूत्र अस्तोभ शुष्वाणा भनाथेल छे. (५) ने सूत्रद्वारा कामादिक व्यापारोनी प्ररूपणा करवामां नथी आवती ते सूत्र अनवद्य शुष्संपन्न छे. (६) सूत्र आवा प्रकारनुं छेवुं जेधं जेनाथी विपरीत नहीं जेवे प्रभुने आदेश छे. आ छ शुष् पूर्वोक्त आठ शुष्मां अन्तर्भूत समज्वा जेधं जे. अल्पाक्षर तेमज् विश्वतोमुख आ जे शुष्वाणे अन्तर्भाव “मित” आ शुष्मां तथा असन्दिग्ध, अनवद्य अने अस्तोभ शुष्वाणे अन्तर्भाव “निर्दोष” आ शुष्मां थथेल छे.

आ प्रकार समस्त दोष वर्जित, अने लक्षणयुक्त सूत्रना उच्चारित होवाथी जीवादिक अर्थना प्रतिपादक स्वसमय पदनुं ज्ञान तथा पर समयानुसार प्रकृति, ईश्वर आदिक अर्थना प्रतिपादक परसमयपदनुं ज्ञान थाय छे.

કેચિતુ સૂત્રસ્ય પદ ગુણાન્ વદન્તિ । તદ્ યથા—

અપ્પવલ્લરમસંદિઘં, સારવં વિસ્સમ્બોમુહં ।

અત્થોમમળવજ્જં ચ, સુત્તં સવ્વણ્ણમાસિયં ॥ ૧ ॥

છાયા—અલ્પાક્ષરમસંદિઘં, સારવદ્ વિશ્વતોમુલ્લમ્ ।

અસ્તોમમનવદં ચ, સૂત્રં સર્વેભાપિતમ્ ॥ ૧ ॥

વ્યાખ્યા—‘અલ્પાક્ષરમ્’ મિત્તાક્ષરં, યથા સામાયિકસૂત્રમ્ ॥ ૧ ॥

અસંદિઘમ્—સૈન્ધવશબ્દવદ્ યલ્લવળ-વસન-તુરગાદ્યનેકાર્થસંશયકારિ ન ભવતિ, યથા—અહિંસા ॥૨॥ સારવત્ત્વં ચ પૂર્વવત્ ॥૩॥ ‘વિશ્વતોમુલ્લ’ પ્રતિસૂત્રં ચરણાનુયોગા-દ્યનુયોગચતુષ્ટયવ્યાખ્યાક્ષમમ્, યથા—‘ધમ્મોમંગલ મુકિટ્ટં’ इत्यादि શ્લોકે

॥ ૬ ॥ વર્ણાદિક કા જિસમેં નિયત પરિમાણ હોતા હૈ વહ મિત ગુણ હૈ ॥ ૭ ॥ એવં કર્ણમનોહર જો હોતા હૈ વહ મધુર ગુણ સંયુક્ત સૂત્ર માના જાતા હૈ ॥ ૮ ॥ કિન્હીં ૨ કે મતાનુસાર સૂત્ર કે ૬ ગુણ ખી માને ગયે હૈ—વે યે હૈ—

અલ્પાક્ષર ૧, અસંદિઘ ૨, સારયુક્ત ૩, વિશ્વતોમુલ્લ ૪, અસ્તોમ ૫, અનવચ ૬ । इनमें मित अक्षर जिसमें हो वह अल्पाक्षर गुण है, यह “अल्पाक्षर” प्रथम गुण है । जैसे सामायिक सूत्र ॥ १ ॥ सैन्धव शब्द की तरह जो लवण, वसन, तुरग आदि अनेक अर्थों के बोध का संशय-जनक नहीं हो वह “असंदिग्ध” गुण है । जैसे अहिंसा शब्द ॥ २ ॥ भूमि शब्द के समान अनेक पर्यायों से युक्त जो सूत्र वह “सारवत्” तीसरा गुण वाला है ॥ ३ ॥ प्रत्येक सूत्र चरणानुयोगादिक अनुयोग-चतुष्टय से युक्त है वह “विश्वतोमुख” गुणवाला सूत्र माना जाता है ।

વર્ણાદિકતુ જેમાં નિયત પરિમાણ હોય છે તે મિતગુણ છે. (૭) જે કણ્ મનોહર હોય છે તે મધુરગુણ સંયુક્ત સૂત્ર માનવામાં આવે છે. (૮) કોઈ કોઈના મત અનુસાર સૂત્રના છ ગુણ પણ માનવામાં આવ્યા છે તે પ્રમાણે છે—

અલ્પાક્ષર ૧ અસંદિઘ ૨ સારયુક્ત ૩
વિશ્વતોમુલ્લ ૪ અસ્તોમ ૫ અનવચ ૬

આમાં મિત અક્ષર જેમાં હોય તે અલ્પાક્ષર ગુણ છે, આ “અલ્પાક્ષર” પ્રથમ ગુણ છે, જેમ સામાયિક સૂત્ર (૧) સૈન્ધવ શબ્દની માફક લવણ, વસન, તુરગ આદિ અનેક અર્થોના બોધ જેમાં સંશયજનક ન હોય તે “અસંદિઘ” ગુણ છે. જેમ અહિંસા શબ્દ (૨) ભૂમિ શબ્દની માફક અનેક પર્યાયોથી યુક્ત જે સૂત્ર હોય તે “સારવત્” ત્રીજા ગુણવાળા છે. (૩) પ્રત્યેક સૂત્ર ચરણાનુયોગાદિક અનુયોગ ચતુષ્ટયથી યુક્ત છે તે “વિશ્વતોમુલ્લ” ગુણવાળા સૂત્ર માનવામાં છે.

“सुयणाणे दुविहे पणत्ते, तं जहा-अंगपविट्टे चैव, अंगवाहिरे चैव” ।
स्या० २ ठा० १

अङ्गप्रविष्टं द्वादशभेदम्-आचारादिभेदात्, तत्र दृष्टिवादवर्जं सर्वं कालिकम्, दृष्टिवादसूत्रं तूत्कालिकम् । तत्र यद् दिवसस्य प्रथमपश्चिमपौरुपीद्वये रात्रेश्च प्रथमपश्चिमपौरुपीद्वय एव पठ्यते, तत् कालिकम् । यत्तु कालवेलावर्जं पठ्यते तदुत्कालिकम् । अङ्गवाह्यं द्विविधम्, आवश्यकं, तद् व्यतिरिक्तं च । तत्रावश्यकं मुत्कालिकं, तच्च-पद्द्विविधम्-सामायिकं १, चतुर्विंशतिस्तवः २, वन्दनकं ३, प्रतिक्रमणं ४, कायोत्सर्गः ५, प्रत्याख्यानं ६ च ।

अयं सूत्र भेदनाम के पांचवा द्वार कहते हैं—

यह कहा ही जा चुका है कि सूत्र का दूसरा नाम श्रुतज्ञान भी है, अतः यह मूलभेद की अपेक्षा से दो भेदवाला है-१ अङ्गप्रविष्ट २ अंगवाह्य । कहा भी है-“सुयणाणे दुविहे पणत्ते तं जहा-अंगपविट्टे चैव अंगवाहिरे चैव” इनमें अङ्गप्रविष्ट श्रुतज्ञान के १२ भेद हैं-आचारांग से लेकर दृष्टिवाद तक । उनमें दृष्टिवाद को छोड़कर बाकी सब कालिक हैं । दृष्टिवाद उत्कालिक है । जो सूत्र दिवस के प्रथम पश्चिम पौरुपीद्वय में तथा रात्रि के प्रथम पश्चिम पौरुपीद्वय में ही पढ़ा जाता है वह सूत्र कालिक जानना चाहिये । जो सूत्र अकाल के समय को छोड़ कर पढ़ा जाता है वह उत्कालिक है । अंगवाह्य श्रुतज्ञान भी आवश्यक एवं तद् व्यतिरिक्त के भेद से दो प्रकार का है । इनमें आवश्यक सूत्र उत्कालिक है, और वह ६ प्रकार का है जैसे-सामायिक १, चतुर्विंशतिस्तव २, वन्दनक ३, प्रतिक्रमण ४, कायोत्सर्ग ५, एवं प्रत्याख्यान ६ । कालिक, उत्कालिक के भेद

७वे सूत्रभेद नामनु पांयमुं द्वार डहे छेः—

ये डहेवाधं गयुं छे डे, सूत्रनुं षीणुं नाम श्रुतज्ञान पणुं छे. आधी ते मूण लेहनी अपेक्षाये ते लेहवाणुं छे अंग प्रविष्ट ने १ अंगवाह्य २. डहुं पणुं छे डे सुयणाणे दुविहे पणत्ते तं जहा-अंगपविट्टे चैव अंगवाहिरे चैव तेमां अंग प्रविष्ट श्रुतज्ञानना १२ लेह छे. आचारांगधी लधने दृष्टिवाद सुधी. ऐमां दृष्टिवाहने छोडीने षाडी षधा डालीक छे. दृष्टिवाद उत्कालिक छे, ने सूत्र दिवसना प्रथम अने पश्चिम ये पौर्षीमां तथा रात्रीना प्रथम अने पश्चिम ये पौर्षीमां वांयी शक्य छे, ते सूत्रने डालीक नलषुवां लेधं. ने सूत्रने अडालना समयने छोडी वांयी शक्य छे ते उत्कालिक छे. अंगवाह्य श्रुतज्ञान पणुं आवश्यक अने तद् व्यतिरिक्तना लेहथी ये प्रकारे छे. ऐमां आवश्यक सूत्र उत्कालिक छे, अने ते छ प्रकारनुं छे, नेम सामायिक १, चतुर्विंशतिस्तव २, वन्दनक ३, प्रतिक्रमण ४,

कुवासनाजनकत्वाद् बन्धपदम्, स्वसमयपदं तु-सद्बोधकारणत्वान्मोक्षपद-
मिति बोध्यम् ।

इति तृतीयं द्वारम् ।

अथ सूत्रपर्यायनामकं चतुर्थं द्वारम् :—

सुयसुत्तगंधसिद्धं-त, सासणे आण वयण उवएसो ।

पणवणां मा गमइय, एगद्वा पज्जवा सुत्ते ॥ १ ॥

श्रुतम्, सूत्रम्, ग्रन्थः, सिद्धान्तः, शासनम्, आज्ञा, वचनम्, उपदेशः,
प्रज्ञापना, आगमः, इति दश पर्यायाः एकार्याः ।

॥ इति चतुर्थं द्वारम् ॥

अथ सूत्र भेद नामकं पञ्चमं द्वारम्—

सूत्रं नाम श्रुतज्ञानमित्युक्तम्, तत् खलु मूलभेदापेक्षया द्विभेदम् ; अङ्गप्रवि-
ष्टम्, अङ्गवाहं च । तथा चोक्तम्—

ज्ञान होता है । कुवासना का जनक होने से परसमयपद बन्धपद है
एवं सद्बोध का कारण होने से स्वसमय-पद मोक्षपद है ॥

॥ इस प्रकार तीसरा द्वार सम्पूर्ण हुआ ॥ ३ ॥

अब चौथा द्वार कहते हैं—

श्रुत, सूत्र, ग्रन्थ, सिद्धान्त, शासन, आज्ञा, वचन, उपदेश, प्रज्ञापना
आगम, ये सब सूत्र के पर्यायवाची शब्द-नामान्तर हैं—

कहा भी है—“सुयसुत्तगंधसिद्धं त सासणे आण वयण उवएसो ।

पणवणा-मागम इय, एगद्वा पज्जवा सुत्ते ॥ १ ॥

॥ चौथा द्वार सम्पूर्ण ॥ ४ ॥

कुवासनाना जनक होवाथी परसमयपद बन्ध पद छे अने सद्बोधना कारण-
इय होवाथी स्वसमयपद मोक्षपद छे ।

आ प्रकारथी त्रीणुं द्वार संपूर्ण थयुं ।

छे सूत्रभेद नामनुं योथुं द्वार कहे छे:—

श्रुत, सूत्र, ग्रन्थ, सिद्धान्त, शासन, आज्ञा, वचन, उपदेश, प्रज्ञापना,
आगम, आ अथा सूत्रना पर्यायवाची शब्द-नामान्तर छे, कहुं पथु छे—

सुयसुत्तगंधसिद्धं, सासणे आण वयण उवएसो ।

पणवणा-मागम इय एगद्वा पज्जवा सुत्ते ॥ १ ॥

॥ योथुं द्वार संपूर्ण ॥

किंचिदर्थविशेषं जानाति, यदा तु गुरुणाऽर्थेन सह सूत्रं प्रबोधितं भवति, तदा शिष्यस्तदन्तर्गतानां सर्वेषां भावानां ज्ञाता भवति, यथा स एव कलाऽभिज्ञः पुरुषः प्रबोधितः सन् सर्वासां कलानां ज्ञाता भवति, अतः सूत्रं गुरुसंनिधानं विना प्रसुप्तसमं भवति, तस्मात् सूत्रं गुरुसंनिधौ श्रुत्वा पठनीयम् ।

किंच-गुरुसंनिधानाभावे सूत्रोच्चारणं स्वलितादिदोषदुष्टं स्यात् । तथा सति प्रायश्चित्तम्, अज्ञानं, मिथ्यात्वं, आत्मविराधना, संयमविराधनादयो दोषा भवन्ति तस्माद् गुरुसंनिधौ सूत्रमुच्चारणीयम् ।

सूत्र का अर्थ यदि ज्ञात न हो तो पढ़ने वाला व्यक्ति उसके महत्त्व को नहीं जान सकता है । जिस समय शिष्य गुरु महाराज के पास अर्थ-सहित सूत्र का अध्ययन करता है, अथवा गुरु महाराज शिष्य को अर्थ-सहित सूत्र पढ़ा देते हैं उस समय शिष्य उसके अन्तर्गत समस्त भावों का ज्ञाता हो जाता है । जिस प्रकार ७२ कला के जानने वाला पुरुष जगने पर समस्त कलाओं का ज्ञाता होता है । इसलिये सूत्र गुरु महाराज के समीप सुनकर ही पढ़ना चाहिये, क्यों कि विना गुरु महाराज के पठित सूत्र कलानिपुण सोया हुआ पुरुष जैसा माना जाता है, पढ़ने वाले को उससे अर्थविशेष की प्राप्ति नहीं हो सकती है ।

किञ्च-गुरुमुखसे यदि सूत्र का अध्ययन न किया जाय तो सूत्र के यथावत् उच्चारण करने में स्वलना आदि दोषों का सङ्भाव हो सकता है । इससे अध्ययन करने वालों को लाभ के स्थान में प्रायश्चित्त का भागी होना पड़ता है । अज्ञान, मिथ्यात्व, आत्मविराधना एवं संयम की विराधना आदि दोषों का भाजन भी बनना पड़ता है । इसलिये गुरु महाराज के

व्यक्ति तेना महत्त्वने ज्ञाती शकता नथी. जे समये शिष्य गुरुमहाराजनी प्राप्ते अर्थ सहित सूत्रतुं अध्ययन करे छे अथवा गुरु महाराज शिष्यने अर्थ सहित सूत्र लक्ष्णी दे छे, ते समये शिष्य तेना अंतर्गत समस्त भावोने ज्ञाता भनी जय छे. जे प्रकारे ७२ कलाने ज्ञातवावाणा पुरुष जगवाथी समस्त कलाओना ज्ञाता भने छे. आ भाटे सूत्र गुरु महाराजनी समीप सांलक्ष्णीने लक्षुं जेईअ. केम के गुरु महाराज वगर लक्षुवामां आवेव सूत्र कला निपुर्ण सुतेवा पुश्य जेवुं मानवामां आवे छे. लक्षुवावाणाने ज्ञेनाथी अर्थ विशेषनी प्राप्ति थती नथी.

किञ्च इरी-गुरु मुखी सूत्रतुं अध्ययन कदाय न करवामां आवे तो, सूत्रतुं यथावत् उच्चारण करवामां स्वलना आदि दोषोने सङ्भाव भने छे. जेथी अध्ययन करवावाणजे लालना स्थानमां प्रायश्चित्तना लागी भनबुं पडे छे, अज्ञान, मिथ्यात्व, आत्मविराधना अने संयमनी विराधना आदि दोषोना लालन

आवश्यकव्यतिरिक्तं द्विविधम्—कालिकम्, उत्कालिकं च । तत्र—जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति-
चन्द्रप्रज्ञप्तिनिरयावलिकादीनि च पञ्च सूत्राणीति सप्तोपाङ्गानि, व्यवहारादीनि चत्वारि
छेदसूत्राणि, मूलसूत्रेषु—उत्तराध्ययनं, समुत्थानसूत्रं च । एतत् सर्वं कालिकम् ।
उत्कालिकं तु दशवैकालिकसूत्रं नन्दीसूत्रम्, अनुयोगद्वारसूत्रं च—एतत्त्रयं मूलसूत्रम्,
औपपातिकं राजप्रश्नीयं जीवाभिगमः प्रज्ञापना सूर्यप्रज्ञप्तिरिति पञ्चोपाङ्गानि च ।

॥ इति पञ्चमद्वारम् ॥

अथ सूत्रोच्चारणविधिनामकं पष्ठं द्वारम्—

सुविनीतेन शिष्येण सूत्रं गुरुसंनिधौ ग्रहीतव्यम् । यथा—द्वासप्ततिकलापण्डितो
मनुष्यः प्रसुप्तः सन् तासां कलानां न किञ्चित् जानाति, एवमर्थेनावोधिते सूत्रे न
से तद्व्यतिरिक्त दो प्रकार का है । जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, चन्द्रप्रज्ञप्ति और निर-
यावलिका आदि पाँच सूत्र—ये सातों उपांग, व्यवहार आदिक चार छेद
सूत्र, मूलसूत्रों में उत्तराध्ययन, और समुत्थानसूत्र, ये सब कालिक हैं ।
दशवैकालिक, नन्दीसूत्र और अनुयोगद्वार ये तीनों मूलसूत्र, तथा—
औपपातिक, राजप्रश्नीय, जीवाभिगम, प्रज्ञापना और सूर्यप्रज्ञप्ति ये
पाँचों उपांग उत्कालिक हैं ।

॥ पांचवा द्वार संपूर्ण ॥

अब छठे द्वार में सूत्र के उच्चारण की विधि कहते हैं—

सुविनीत शिष्य को सूत्र का अध्ययन गुरु महाराज के समीप
करना चाहिये । जिस प्रकार ७२ कलाओं का ज्ञाता मनुष्य प्रसुप्त
अवस्था में उन कलाओं के अर्थविशेष को नहीं जानता है, उसी प्रकार

कायेत्सर्ग ५, अने प्रत्याख्यान ६. कालिक, उत्कालिकना वेदधी तद्द्व्यतिरिक्त ये
प्रकारे छे. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, चन्द्रप्रज्ञप्ति अने निरयावलिका आदि पांच तथा
व्यवहारआदिक चार सूत्र—ये साते उपांग, व्यवहार आदिक चार छेद सूत्र,
मूलसूत्रेभां उत्तराध्ययन अने समुत्थान सूत्र ये गधां कालिक छे. दशवैकालिक,
नन्दीसूत्र अने अनुयोगद्वार आ त्रले मूलसूत्र तथा—औपपातिक, राजप्रश्नीय,
जीवाभिगम, प्रज्ञापना अने सूर्यप्रज्ञप्ति आ पांचे उपांग उत्कालिक छे.

॥ पांचवें द्वार संपूर्ण ॥

इसे छठे द्वार में सूत्रना उच्चारण की विधि कहे छे—

सुविनीत शिष्ये सूत्रं गुरुसंनिधौ ग्रहीतव्यम् । यथा—द्वासप्ततिकलापण्डितो
मनुष्यः प्रसुप्तः सन् तासां कलानां न किञ्चित् जानाति, एवमर्थेनावोधिते सूत्रे न
से तद्व्यतिरिक्त दो प्रकार का है । जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, चन्द्रप्रज्ञप्ति और निर-
यावलिका आदि पाँच सूत्र—ये सातों उपांग, व्यवहार आदिक चार छेद
सूत्र, मूलसूत्रों में उत्तराध्ययन, और समुत्थानसूत्र, ये सब कालिक हैं ।
दशवैकालिक, नन्दीसूत्र और अनुयोगद्वार ये तीनों मूलसूत्र, तथा—
औपपातिक, राजप्रश्नीय, जीवाभिगम, प्रज्ञापना और सूर्यप्रज्ञप्ति ये
पाँचों उपांग उत्कालिक हैं ।

अत्र न ज्ञायते सकलसाधारणश्रोतृभिः, यदिदं कालिकमुत्कालिकं वा । यथा वा-सामायिकपदे दशवैकालिकोत्तराध्ययनप्रभृतीनामनेकानि पदानि मीलयति ।

३ व्याविद्धाक्षरम्—व्याविद्धाक्षरं, विपर्यस्तरत्नमालागतरत्नानीव विद्धानि विपर्यस्तान्यक्षराणि यत्र तत् । यथा—‘धम्मो मंगल’ इत्यत्र ‘लगमम्मोघ’ इत्युच्चारणम् ।

४ हीनाक्षरम्-अक्षरैर्हीनम् । यथा—‘नमो अरिहंताणं’ इत्यत्र ‘नमो अरिहंता’ इत्युच्चारणम् ।

५ अधिकाक्षरं—स्वबुद्ध्याऽधिकाक्षरयोजनं यत्र तत् । यथा—‘धम्मो मंगल मुक्किट्टं’ अत्र—‘धम्मो मंगलमुक्किट्टं नरगं’ इत्युच्चारणम् । हीनाक्षरे अधिकाक्षरे वा

सर्वसाधारण श्रोताजन यह नहीं समझ सकते कि यह कालिक है अथवा उत्कालिक है । अथवा—जो उच्चारण सामायिक पद में दशवैकालिक उत्तराध्ययन आदिके अनेक पदों को मिला देता है वहां पर भी यह दोष होता है ॥ २ ॥ व्याविद्धाक्षरम्—जिस उच्चारण में उल्टे उल्टे कर अक्षर बोले जावें वहां व्याविद्धाक्षर नामका दोष होता है—जैसे—धम्मो मंगलं ऐसा न बोलकर “लगमम्मोघ” ऐसा उच्चारण करना ॥३॥ हीनाक्षरम्—जैसा सूत्र हो वैसा उच्चारण न करना—हीनाक्षर दोष है । जैसे—“णमो अरिहंताणं” की जगह “णमो अरिहंता” ऐसा बोलना ॥४॥ अधिकाक्षर—जिस उच्चारण में अधिक अक्षर उच्चरित हों वहां अधिकाक्षर नामका दोष जानना चाहिये, जैसे—धम्मो मंगलमुक्किट्टं ” बोलते समय धम्मो मंगलमुक्किट्टं नरगं ” ऐसा अधिक “नरगं” अक्षर का उच्चारण करना । हीनाक्षर एवं अधिकाक्षर, ये दोनों दोष उच्चारण के

सर्व साधारण श्रोताजन से नहीं समझ सकता है, आ कालिक छे के उत्कालिक छे. जे उच्चारण सामायिक पदमां इस वैकालिक उत्तराध्ययन आदिना अनेक पदोने मेलणी दे छे त्यां पणु आ दोष थाय छे. (२)

(२) व्याविद्धाक्षरम्—जे उच्चारणमां उल्टावी उल्टावीने अक्षर मेलवामां आवे त्यां ‘व्याविद्धाक्षर’ नामना दोष अने छे. जेभ धम्मोमंगलं जेपुं न मेलीने लगमम्मोघ जेपुं उच्चारण करपुं.

(३) हीनाक्षरम्—जेवां सूत्र छेय ते प्रमाणे उच्चारण न करपुं. अर्थात् ओछा अक्षरार्थी उच्चारण करपुं—‘हीनाक्षर’ दोष छे, जेभ—“णमो अरिहंताणं” नी जयाजे “णमो अरिहंता” जेपुं मेलपुं.

(४) अधिकाक्षरम्—जे उच्चारणमां वधु अक्षर उच्चारवामां आवे त्यां अधिकाक्षर नामना दोष जाणुवो लेछे जे. जेभ “धम्मो मंगल मुक्किट्टं” मेलती वणते “धम्मो मंगल मुक्किट्टं नरगं” जेभ “नरगं” आ वधाराना अक्षरपुं उच्चारण करपुं. हीनाक्षर अने अधिकाक्षर आ अंने दोष उच्चारणमां

અયોચ્ચારણદોષાઃ સ્વલિતાદયો દશ મોચ્યન્તે-સ્વલિતમ્ ૧, મિલિતમ્ ૨, વ્યાવિદ્વાક્ષરમ્ ૩, હીનાક્ષરમ્ ૪, અધિકાક્ષરમ્ ૫, વ્યત્યાગ્રેઙિતમ્ ૬, અપરિપૂર્ણમ્ ૭, અપરિપૂર્ણઘોપમ્ ૮, અકળ્ઠોષ્ટવિપ્રમુક્તમ્ ૯, અગુરુવાચનોપગતમ્ ૧૦, ઇતિ । તન્ન-

૧ સ્વલિતમ્-યદ્ અન્તરાઽન્તરા આલાપકાન્ મુચ્ચતિ, યથા-“ અહિંસા ” “ દેવા વિ તં નમંસંતિ ” ।

૨ મિલિતમ્-યદ્ અન્યસ્થાન્યસ્યોદ્દેશકસ્યાધ્યયનસ્ય વા આલાપકાન્ એકત્ર મીલયતિ ‘ સર્વે જિનવચનમ્ ’ ઇતિ કૃત્વા, યથા-“ સન્વે પાણા પિયાડયા ” (સર્વે પ્રાણાઃ પ્રિયાયુષ્કાઃ) (આચા. ૧ શ્રુ. ૨ અ. ૩ ડ.) “ સન્વે જીવા વિ ઇચ્છંતિ જીવિંડં ન મરિજ્જિંડં ” (સર્વે જીવા અપિ ઇચ્છન્તિ જીવિતું ન મર્તુમ્) દશ. વૈ. ૬ અ. ।

સમીપ હી સૂત્ર કા અધ્યયન યા ઉસકા ઉચ્ચારણ કરના સીખના ચાહિયે । ઉચ્ચારણ કે કિતને દોષ હૈં યહ અવ પ્રકટ કિયા જાતા હૈં-સ્વલિત ૧, મિલિત ૨, વ્યાવિદ્વાક્ષર ૩, હીનાક્ષર ૪, અધિકાક્ષર ૫, વ્યત્યાગ્રેઙિત ૬, અપરિપૂર્ણ ૭, અપરિપૂર્ણઘોપ ૮, અકળ્ઠોષ્ટવિપ્રમુક્ત ૯, એવં અગુરુવાચનોપગત ૧૦, યે ૧૦ દોષ ઉચ્ચારણ સંબંધી હૈં । સ્વલિત-વીચ ૨ મેં રુક ૨ કર સૂત્ર કા બોલના યહ સ્વલિત દોષ હૈ, જૈસે-અ હિં સા, દેવા વિ તં નમંસંતિ ઇત્યાદિ ॥૧॥ મિલિત-જહાં અન્ય ૨ ઉદ્દેશક અથવા અધ્યયન કે આલાપકોં કો એકત્ર મિલા દિયા જાતા હૈ વહાં મિલિત દોષ હોતા હૈ; જૈસે-“ સર્વે જિનવચનં ” એસા ઠ્યાલકર “ સન્વે પાણા પિયાડયા ” “ સન્વે જીવા વિ ઇચ્છંતિ જીવિંડં ન મરિજ્જિંડં ” ઇન સવ કો એક સાથ હી બોલ દેના । ઇન સવ કે એક સાથ બોલને મેં મિલિત દોષ ઇસલિયે આતા હૈ કિ

પણુ બનવું પડે છે. માટે શુરુ મહારાજ સમીપજ સૂત્રનું અધ્યયન અગર તેનું ઉચ્ચારણ કરવું-સીખવું જોઈએ ઉચ્ચારના કેટલા દોષ છે તે હવે પ્રગટ કરવામાં આવે છે. (૧) સ્પલિત, (૨) મિલિત, (૩) વ્યાવિદ્વાક્ષર, (૪) હીનાક્ષર, (૫) અધિકાક્ષર, (૬) વ્યત્યાગ્રેઙિત, (૭) અપરિપૂર્ણ, (૮) અપરિપૂર્ણઘોપ, (૯) અકળ્ઠોષ્ટવિપ્રમુક્ત, અને (૧૦) અગુરુવાચનોપગત આ દસ દોષો ઉચ્ચારણ સંબંધી છે.

સ્પલિત-વચમાં વચમાં રોકાઈને સૂત્રનું બોલવું તે સ્પલિત દોષ છે. જેમ--અહિંસા દેવા વિ તં નમંસંતિ ઇત્યાદિ ! (૧) મિલિત-જ્યાં અન્ય અન્ય ઉદ્દેશક અથવા અધ્યયનના આલાપને એકત્ર મેળવી અપાય છે ત્યાં મિલિત દોષ થાય છે જેમ “ સર્વે જિનવચનં ” એવો ખ્યાલ કરી “ સન્વે પાણા પિયાડયા સન્વે જીવા વિ ઇચ્છંતિ જીવિંડં ન મરિજ્જિંડં ” આ બધાને એક સાથે જ બોલવું. આ બધાને એક સાથે બોલવામાં મિલિત દોષ એ માટે આવે છે કે,

द्रव्यभावतो व्यत्यात्रेडितं सूत्रे कुर्वतोऽर्थस्य विसंवादः इत्यादि विवक्षा प्राग्वि, यया दीक्षा निरर्थिका ।

७ अपरिपूर्णं-मात्राभिः, पदैश्चरणैर्विन्दुभिर्वर्णैश्च । मात्राभिरपरिपूर्णं 'धम्म मंगलमुक्किट्ठं' । पदैरपरिपूर्णं-यथा-"धम्मं उक्किट्ठं" । चरणैरपरिपूर्णं-यथा-'धम्मो मंगलमुक्किट्ठं' इत्यादि गाथायां कमपि चरणं परित्यज्य पठनम् । विन्दुभिरपरिपूर्णं-यथा 'धम्मो मंगलमुक्किट्ठं' इति । वर्णैरपरिपूर्णं यथा-'धम्मो ल उक्किट्ठं' इत्यादि । मात्राभिः पदैश्चरणैर्विन्दुभिर्वर्णैरपरिपूर्णं उच्चारिते तदेव प्रायश्चित्तं त एव दोषाश्च भवन्ति ।

में व्यत्यात्रेडित कर देता है तब उसके अर्थ में स्वभावतः विसंवाद होने लगता है और इससे जो हानि होती है यह अधिकाक्षर तथा हीनाक्षर के दोष के स्वरूपनिरूपण में यथा चुके हैं ॥ ६ ॥ अपरिपूर्णं-जहां मात्राओं से, पदों से, चरणों से, विन्दुओं से, वर्णों से अपरिपूर्णता होती है वहां अपरिपूर्ण दोष माना जाता है, जैसे "धम्मो मंगलमुक्किट्ठं" की जगह "धम्ममंगलमुक्किट्ठं" इस प्रकार "ओकार" की मात्रा हीन कर पढ़ना । "धम्मं उक्किट्ठं" ऐसा मंगलपद हीन कर पढ़ना । किसी चरण को-पाद को-हीन कर पढ़ना, किसी विन्दु को हीन कर पढ़ना, किसी वर्ण को हीन कर पढ़ना सो क्रमशः मात्रा आदिकों से अपरिपूर्ण दोष माना गया है । इस प्रकार के उच्चारण करने पर एकतो आगम की आशातना होने से प्रायश्चित्त का भागी होना पड़ता है दूसरे विसंवादादि अनेक अनर्थ उत्पन्न हो जाते हैं । इससे जीव को मुक्ति का लाभ नहीं हो सकता है । तथा दीक्षा में निरर्थकता की प्रसक्ति का प्रसंग प्राप्त होता है ॥ ७ ॥

विसंवाद यथा लागे छे अने अर्थी ने डानी थाय छे ते अधिकाक्षर तथा हीनाक्षरता दोषना निरूपणमां यथावयवमां आवेल छे ।

(६) अपरिपूर्णं न्यां मात्रायाथी पदोथी, चरणोथी, विन्दुयाथी, वर्णोथी, अपरिपूर्णता होय छे त्यां 'अपरिपूर्णं' दोष मानवामां आवे छे । "धम्मो मंगल मुक्किट्ठं" नी न्याये धम्ममंगलमुक्किट्ठं आ रीते, ओकार"नी मात्रा हीन करी वांचवुं, "धम्मं उक्किट्ठं" अथ मंगल पद हीन करी वांचवुं, कौं वरुंने हीन करी वांचवुं ते क्रमशः मात्रा आदिथी अपरिपूर्णं दोष मानवामां आवेल छे । आ प्रकारतुं उच्चारण करवाथी अथ तो आगमनी आशातना यथाथी प्रायश्चित्तना लागी थवुं पडे छे अथुं विसंवादादि धरुं अनर्थ उत्पन्न थाय छे, आथी एवने मुक्तिने लाल भणी शकते नथी । आथी दीक्षामां निरर्थकतानी प्रसक्तिने प्रसंग प्राप्त थाय छे ।

ઉચ્ચારિતે સતિ-અર્થસ્ય વિસંવાદઃ, અર્થસ્ય વિસંવાદે ચરણસ્ય વિસંવાદઃ, ચરણ-વિસંવાદાન્ન મોક્ષઃ, મોક્ષાભાવે સર્વા દીક્ષા નિરર્થિકા ।

૬ વ્યત્યાગ્રેહિતં—નામ અન્યાન્યશાસ્ત્રપલ્લવત્રિમિશ્રણં, યથા—‘ સવ્વભૂયષ્પ-ભૂયસ્સ સમ્મં ભૂયાઈં પાસઓ । પિહિયાસવસ્સ દંતસ્સ, પાવકમ્મં ન વંધઈ ॥ ’

અત્રેદમપિ-ઘટતે ઇતિ કૃત્વા ક્ષિપતિ—અન્યશાસ્ત્રવચનમ્—

શ્રૂયતાં ધર્મસર્વસ્વં, શ્રુત્વા ચૈવાવધાર્યતામ્ ।

આત્મનઃ પ્રતિકૂલાનિ, પરેપાં ન સમાચરેત્ ॥

હસલિયે માને જાતે હૈં કિ સૂત્ર મેં હીનાક્ષર અથવા અધિકાક્ષર ઉચ્ચરિત હોને પર ઉસકે અર્થ મેં વિસંવાદ (વિપરીતતા) હોતા હૈં । અર્થ મેં વિસંવાદ જહાં હુઆ કિ ચરણ-આચાર-ચારિત્ર મેં બી વિસંવાદ હોને લગતા હૈં । હસસે મોક્ષ કા લાભ નહીં હો સકતા । મોક્ષ કે અભાવ મેં સમસ્ત દીક્ષા નિરર્થક હો જાતી હૈં ॥ ૬ ॥ વ્યત્યાગ્રેહિત-ભિન્ન ૨ શાસ્ત્રોં કે પલ્લવ (અંશ) કા જિસ ઉચ્ચારણ મેં મિશ્રણ હોતા હૈં વહાં વ્યત્યાગ્રેહિત દોષ માના જાતા હૈં । જૈસે—“ સવ્વભૂયષ્પભૂયસ્સ સમ્મં ભૂયાઈં પાસઓ । પિહિયાસવસ્સ દંતસ્સ પાવકમ્મં ન વંધઈ ”—યહાં યહ બી ઘટિત હોતા હૈં એસા સમજ્જકર અન્ય શાસ્ત્ર કા વચન મિલાના, જૈસે—

“ શ્રૂયતાં ધર્મસર્વસ્વં, શ્રુત્વા ચૈવાવધાર્યતામ્ ॥

આત્મનઃ પ્રતિકૂલાનિ, પરેપાં ન સમાચરેત્ ॥૧॥ ”

મહાભારત કે હસ વાક્ય કો મિશ્રિત કરના । યહ વ્યત્યાગ્રેહિત દોષ હસ લિયે માના ગયા હૈં કિ ઉચ્ચારણ કરને વાલા દ્રવ્ય એવં ભાવ સે જવ સૂત્ર

એ માટે માનવામાં આવેલ છે કે સૂત્રમાં હીનાક્ષર અથવા અધિકાક્ષર ઉચ્ચારવાથી એના અર્થમાં વિસંવાદ થાય છે. વિપરીત અર્થમાં વિસંવાદ ન્યાં થયો કે, ચરણ-આચાર ચારિત્રમાં પણ વિસંવાદ થવા લાગે છે એથી મોક્ષના લાભ થઈ શકતો નથી. મોક્ષના અભાવથી સમસ્ત દીક્ષા નિરર્થક થઈ જાય છે.

(૫) વ્યત્યાગ્રેહિત બુદ્ધા બુદ્ધા શાસ્ત્રોના પલ્લવવંતું જે ઉચ્ચારણમાં મિશ્રણ થાય છે ત્યાં “ વ્યત્યાગ્રેહિત ” દોષ માનવામાં આવે છે. જેમ સવ્વભૂયષ્પભૂયસ્સ સમ્મં ભૂયાઈં પાસઓ ” “ પિહિયાસવસ્સ દંતસ્સ પાવકમ્મં ન વંધઈ ” અહિં એ પણ ઘટિત થાય છે એમ સમજી ખીજા શાસ્ત્રનું વચન મેળવવું જેમ—

“ શ્રૂયતાં ધર્મસર્વસ્વં શ્રુત્વા ચૈવાવધાર્યતામ્ ॥

આત્મનઃ પ્રતિ કૂલાનિ પરેપાં ન સમાચરેત્ ॥૧॥

મહાભારતના આ વાક્યને મેળવવું, આ “ વ્યત્યાગ્રેહિત ” દોષ એ માટે માનવામાં આવેલ છે કે, ઉચ્ચારણ કરવાવાળા દ્રવ્ય અને ભાવથી ન્યારે સૂત્રમાં વ્યત્યાગ્રેહિત થવાથી એના અર્થમાં સ્વભાવતઃ

अथ वाचनानामकं सप्तमं द्वारम्—

अथ वाचनाविधिरुच्यते—तत्रैवं वाचनाशब्दार्थः—वाचयतीति वाचना—पाठना, शिष्याय सूत्रादिदानं । ननु वाचनायाः किं फलम् ? वाचनया जीवो निर्जरां जनयति श्रुतस्य चानाशातनायां प्रवर्तते, तत्र च प्रवर्तमानो जीवः श्रुतप्रदानरूपं तीर्थधर्ममवलम्बते, एवं तीर्थधर्ममाश्रयन् कृत्स्नकर्मक्षपणेन महानिर्जरावान् भवति । ततो मुक्तिप्राप्त्या तस्य सर्वथा भवपर्यवसानं भवति । वाचनादानग्रहणविधिस्त्वेवम्—

उवचितइ उवज्ज्ञाओ, सीसा विअरंति वंदणं तस्स ।

सो तेसि सब्बसमयं, वायइ सामइयप्पमुहं ॥ १ ॥

वाचना से जो चिहीन होता है, अर्थात्—गुरुप्रदत्त वाचना से जो प्राप्त नहीं होता है वह अगुरुवाचनोपगत दोष है ॥ १० ॥

॥ यह छट्टा द्वार हुआ ॥ ६ ॥

सातवां वाचनाद्वार कहते हैं—

अथ वाचना की विधि बतलाते हैं—शिष्य को सूत्रादिक का देना-पढाना यह वाचना है । सूत्र की वाचना से कर्मों की निर्जरा होती है तथा उसकी अनाशातना में प्रवृत्ति होती है । उस वाचना में लगा हुआ जीव श्रुतप्रदानरूप तीर्थधर्म का आधार होता है । तीर्थधर्म का आधार होने से वह जीव समस्त कर्मों के क्षपण से महानिर्जरावाला होता है । महानिर्जरावाला होने से मुक्ति की प्राप्ति द्वारा उसके सर्वथा भव का क्षय हो जाता है । वाचना के देने की एवं उसके ग्रहण करने की विधि इस प्रकार है—

नाथी ने विद्धि न डोय छे, अर्थात्—गुरुप्रदत्त वाचनाथी ने प्राप्त थयेल नथी छोतु. ते अशुइ वाचनोपगत दोष छे. (१०)

आ छट्टुं द्वार थयुं

सातमुं वाचनाद्वार कडेवाभां आवे छे.—

डवे वाचनानी विधि अताववाभां आवे छे—शिष्यने सूत्रादिक लघ्वाववा-समलववां अे वाचना छे. सूत्रनी वाचनाथी कभोनी निर्जरा थाय छे, तथा तेना अनाशातनानी प्रवृत्ति थाय छे. अे वाचनाभां लागेल अुव श्रुतप्रदानरूप तीर्थ धर्मना आधार अने छे, तीर्थ धर्मना आधार थवाथी ते अुव समस्त कभोना क्षपणथी महानिर्जरावाणा थाय छे. महानिर्जरावाणा थवाथी भूक्तिनी प्राप्ति द्वारा अेने अुवन भरथुना इेराने लय भरी लय छे.

૮ અપરિપૂર્ણઘોષમ્—ઘોષૈરેવાપરિપૂર્ણં નાક્ષરાદિભિઃ, ઘોષા-ઉદાત્તાદયઃ । તત્ર-ઉચ્ચૈરુદાત્તઃ, નીચૈરુદાત્તઃ, સમાહારઃ સ્વરિતઃ । ઉચ્ચૈઃશબ્દેન યથા—“ઉપ્પન્નેહ વા વિગમેહ વા, ધુવેહ વા ” ઇત્યાદિ । નીચૈઃશબ્દેન યથા—“જે ભિક્ષૂ વા ભિક્ષુણી વા ” ઇત્યાદિ । અત્ર ઘોષૈરયુક્તમુચ્ચારણં કુર્વતસ્તદેવ પ્રાયશ્ચિત્તં ત एव च दोषाः ।

૯ અકળ્ઠૌષ્ટવિપ્રમુક્તમ્—કળ્ઠૌષ્ટેન વિપ્રમુક્તં-વ્યવતં-સુસ્પષ્ટં યત્ર ભવતિ, વાલમૂકભાપિતવદવ્યક્તમિત્યર્થઃ ।

૧૦ અગુરુવાચનોપગતમ્, ગુરુપદત્તયા વાચનયા યત્ર પ્રાપ્તં તત્ ॥

॥ ઇતિ પઠ્યં દ્વારમ્ ॥

અપરિપૂર્ણઘોષ-ઘોષોં સે અર્થાત્-ઉદાત્તાદિક સ્વરોં સે-જો અપરિપૂર્ણ હોતા હૈ વહાં અપરિપૂર્ણઘોષ નામ કા દોષ આતા હૈ । જો ડુંચે સ્વર સે ઘોલા જાય ઉસકા નામ ઉદાત્ત, નીચે સ્વર સે જો ઘોલા જાય ઉસકા નામ અનુદાત્ત, તથા જો ન અધિક ડુંચે સ્વર ઓર ન અધિક નીચે સ્વર સે કિન્તુ મધ્યમ સ્વર સે ઘોલા જાય ઉસકા નામ સ્વરિત હૈ । જૈસે—“ઉપ્પન્નેહ વા, વિગમેહ વા, ધુવેહ વા, ” ઇત્યાદિ ડુંચે સ્વર સે ઘોલે જાતે હૈ । નીચે સ્વર સે જૈસે—“જે ભિક્ષૂ વા ભિક્ષુણી વા ” ઇત્યાદિ સૂત્ર નીચે સ્વર સે ઘોલા જાતા હૈ । ઇસ કો દોષ ઇસલિયે માના હૈ કિ ઘોષોં સે અયુક્ત ઉચ્ચારણ કરને વાલે કો આગમ કી આશાતનાજન્ય દોષ કા ભાગી હોને સે પ્રાયશ્ચિત્ત કા ભાગી હોના પડતા હૈ ॥ ૮ ॥ અકળ્ઠૌષ્ટવિપ્રમુક્ત-વાલમૂકાદિક કે ઘોલને કી તરહ જો ઉચ્ચારણ વ્યક્ત-સ્પષ્ટ નહીં હોતા હૈ વહ અકળ્ઠૌષ્ટવિપ્રમુક્ત દોષ હૈ ॥ ૯ ॥ અગુરુવાચનોપગતદોષ-ગુરુપદત્ત

(૭) અપરિપૂર્ણઘોષ—ઘોષોથી-અર્થાત્ ઉદાત્તાદિક સ્વરોથી-જે અપરિ-પૂર્ણ ઘોષ છે, ત્યાં ‘અપરિપૂર્ણઘોષ’ નામનો દોષ લાગે છે, જે ઉંચા સ્વરથી ઘોલાય તેનું નામ ઉદાત્ત, નીચા સ્વરથી ઘોલાય એનું નામ અનુદાત્ત તથા જે ન તો ઘણા ઉંચા સ્વરથી કે ન તો ઘણા નીચા સ્વરથી પરંતુ મધ્યમ સ્વરથી ઘોલાય એનું નામ સ્વરિત છે. જેમ—“ઉપ્પન્નેહ વા, વિગમેહ વા, ધુવેહ વા, ” ઇત્યાદિ ઉંચા સ્વરથી ઘોલાય છે. નીચા શબ્દથી જેમ—“જેભિક્ષૂ વા ભિક્ષુણી વા ” ઇત્યાદિ સૂત્ર નીચા સ્વરથી ઘોલાય છે. આનો દોષ એ માટે માનવામાં આવેલ છે કે, ઘોષોથી અયુક્ત ઉચ્ચારણ કરવાવાળાએ આગમની આશાતના જન્ય દોષના લાગી બનવાથી પ્રાયશ્ચિત્તના લાગી બનવું પડે છે. (૮) અકળ્ઠૌષ્ટવિપ્રમુક્ત—વાલ મૂકાદિકના ઘોલવાની રીતે જે ઉચ્ચારણ સ્પષ્ટ વ્યક્ત થતું નથી તે અકળ્ઠૌષ્ટવિપ્રમુક્ત દોષ છે. (૯) અગુરુ વાચનોપગત દોષ—ગુરુ પ્રદત્ત વાચ-

निद्रारूपे प्रमादे, अप्रतिलेखने दुष्प्रतिलेखनादौ च सकृत् स्वलितस्य स्माराणा कर्तव्या भवति । यथा—“ भो आयुष्मन् ! प्रमादो वर्जनीयः ” इति पूर्वमेवास्माभिः कथितम्, अतः प्रमादं मा कुरु तपःसंयमं च समाराधय, इत्येषा स्मारणा ।

अथ प्रतिस्मारणा—

पुनः पुनः सामाचार्यो प्रमादं कुर्वन् शिष्यः पुनर्गुण्णा बोधनीयः—“ वत्स ! मा प्रमाद्यताम्, तपःसंयमाराधनं क्रियताम् ” । इत्येषा प्रतिस्मारणा ।

इत्यमुक्तोऽपि यदि प्रमाद्यति, तदा दण्डना-लघुप्रायश्चित्तरूपा कर्तव्या ।

प्रतिलेखना नहीं करे अथवा दुष्प्रतिलेखना आदि करता है उस समय उसे स्मारणा वाचना देनी चाहिये, इसमें उसे यह समझाना चाहिये कि है आयुष्मन् ! तुम्हें यह पहिले बतला दिया गया है कि प्रमाद वर्जनीय है । इसलिये इस बात का ख्याल करो, और प्रमाद का आसेवन मत करो. तथा तप एवं संयम की अच्छी तरह आराधना करो, इसका नाम स्मारणा है । प्रतिस्मरणा वाचना शिष्य को उस समय दी जाती है जब शिष्य अपनी समाचारी में बार २ प्रमाद करता है । उस समय उसे यही समझाया जाता है कि हे वत्स ! देखो यह प्रमाद ठीक नहीं है, इससे तप एवं संयम की आराधना ठीक २ नहीं होती है । तुम्हें बार बार यह समझा दिया गया है अतः इसका परित्याग कर तप एवं संयम की आराधना करो । इसी में आत्मा की भलाई है, इसका नाम प्रतिस्मारणा है । अब दण्डना कहते हैं—इस प्रकार उपदेश, स्मारणा,

उपदेश छे. निद्रारूप प्रमादमां पडेल शिष्य जे प्रतिवेधना न करे अथवा दुष्प्रतिलेखना आदि करतो होयतो जे समये जेने स्मारणा वाचना आपवी जेधजे जेमां जेने जे समजववुं जेधजे के आयुष्मन् ! तमने जे पडेलुं भताववामां आवेल छे के, प्रमाद छोडवा योग्य छे, जेथीं जे वातनो भ्याल करे ने प्रमादनो भ्याल न करे, तथा तप जेने संयमनी सारी रीते आराधना करे. आनुं नाम स्मारणा छे. प्रतिस्मारणा वाचना शिष्यने ते समये आपवामां आवेल छे ज्यारे शिष्य पोतानी सामाचारीमां वारंवार प्रमाद करे छे. ते समये तेने जेवुं समजवाय छे के डे वत्स ज्युज्यो आ प्रमाद करवे। डीक नथी तेनाथी तप जेने संयमनी आराधना सारी रीते धती नथी तमने वधतो वधत जे समजववामां आवेल छे, भाटे तेने परित्याग करी संयम जेने तपनी आराधना करे. तेमां आत्मानी भलाई छे, तेनुं नाम प्रति स्मारणा छे. डेवे वं डना कडे छे—आ प्रकारने उपदेश स्मारणा, प्रतिस्मारणा इप तथु प्रका-

छाया—उपविशति उपाध्यायः, शिष्या पितरन्ति वन्दनं तस्मै ।

स तेभ्यः सर्वसमयं, वाचयति सामायिकप्रमुखम् ॥ १ ॥

वाचना—त्रिविधा भवति—उपदेशः, स्मरणा, प्रतिस्मरणा च । ये खलु गृहीत-सामाचारीकाः शिष्यास्तेभ्य सूत्रार्थवाचना दातव्या । तेषां सामाचारीकरणे प्रमादं कुर्वतां क्रमेण उपदेशः, स्मरणा, प्रतिस्मरणा च करणीया । तत्र गुरुस्तान् प्रति वदति—“ मुनीनामेषा सामाचारी यन्निद्राविकथादयः प्रमादाः परिहर्तव्याः ” एष उपदेशः ।

“उपविसद् उपज्जाओ, सीसा विपरन्ति वंदणं तस्स ।

सो तेसिं सब्वसमयं, वायद् सामाह्यप्पमुहं ॥ वाचना देने वाला उपाध्याय अपने आसन पर विराजमान जब हो जाय तब वाचना लेने वाला शिष्य सर्वप्रथम उन्हें वंदना करे । फिर बाद में उनसे सामायिक आदि सर्व सूत्रों की वाचना लेवे । उपदेश १, स्मरणा २ एवं प्रतिस्मरणा ३ के भेद से वाचना ३ प्रकार की है । जिन शिष्यों ने सामाचारी को ग्रहण कर लिया है उन शिष्यों को सूत्रार्थ की वाचना देना चाहिये । वे यदि सामाचारी के आचरण करने में प्रमाद करें तो गुरु का कर्तव्य है कि वे उन्हें क्रम से उपदेश, स्मरणा एवं प्रतिस्मरणा रूप वाचना दें । उसमें वे उसे यह समझावे कि देखो यही मुनियों की सामाचारी-आचार है कि वे सर्वप्रथम निद्रा विकथा आदि प्रमादों को दूर करें । यह उपदेश है । निद्रारूप प्रमाद में पड़ा हुआ शिष्य यदि

वाचना देवानी अने तेने अहणु करवानी विधि आ प्रकारे छे—

उपविसद् उपज्जाओ, सीसा विपरन्ति वंदणं तस्स ।

सो तेसिं सब्वसमयं वायद् सामाह्यप्पमुहं ॥

वाचना आपवावाणा उपाध्याय न्यारे पोताना आसन उपर भिराजमान अर्ध नय ल्यारे वाचना देवावाणा शिष्य सर्व प्रथम अने वंदना करे अने पछी तेमनी पासेथी सामायिक आदि सर्व सूत्रोनी वाचना ले. उपदेश, स्मारणा अने प्रति स्मारणा ना त्रणे लेदथी वाचना त्रणु प्रकारनी छे. जे शिष्योअे समाचारीने अहणु करी लीधेल छेय ते शिष्योने सूत्रार्थनी वाचना देवी लेथिअे. ते कही सामाचारीनुं आचरण करवामां प्रमाद करे तो अइनुं कर्तव्य छे के ते अने कुभर्था उपदेश, स्मारणा, अने प्रति स्मारणा इप वाचना आपे. अेमां तेअो शिष्यने अे समनवे के, लुअो आअ मुनियोनी समाचारी आचार छे के जे सर्व प्रथम निद्रा, विकथा आदि प्रमादोने दूर करे आ

निद्रारूपे प्रमादे, अप्रतिलेखने दुष्प्रतिलेखनादौ च सकृत् स्वच्छित्तस्य स्मरणा कर्तव्या भवति । यथा—“ भो आयुष्मन् ! प्रमादो वर्जनीयः ” इति पूर्वमेवास्माभिः कथितम्, अतः प्रमादं मा कुरु तपःसंयमं च समाराधय, इत्येषा स्मरणा ।

अथ प्रतिस्मरणा—

पुनः पुनः सामाचार्यो प्रमादं कुर्वन् शिष्यः पुनर्गुरुणा बोधनीयः—“ वत्स ! मा प्रमाद्यताम्, तपःसंयमाराधनं क्रियताम् ” । इत्येषा प्रतिस्मरणा ।

इत्यमुक्तोऽपि यदि प्रमाद्यति, तदा दण्डना—लघुप्रायश्चित्तरूपा कर्तव्या ।

प्रतिलेखना नहीं करे अथवा दुष्प्रतिलेखना आदि करता है उस समय उसे स्मरणा वाचना देनी चाहिये, इसमें उसे यह समझाना चाहिये कि है आयुष्मन् ! तुम्हें यह पहिले बतला दिया गया है कि प्रमाद वर्जनीय है । इसलिये इस बात का ख्याल करो, और प्रमाद का आसेवन मत करो. तथा तप एवं संयम की अच्छी तरह आराधना करो, इसका नाम स्मरणा है । प्रतिस्मरणा वाचना शिष्य को उस समय दी जाती है जब शिष्य अपनी समाचारी में बार २ प्रमाद करता है । उस समय उसे यही समझाया जाता है कि हे वत्स ! देखो यह प्रमाद ठीक नहीं है, इससे तप एवं संयम की आराधना ठीक २ नहीं होती है । तुम्हें बार बार यह समझा दिया गया है अतः इसका परित्याग कर तप एवं संयम की आराधना करो । इसी में आत्मा की भलाई है, इसका नाम प्रतिस्मरणा है । अब दण्डना कहते हैं—इस प्रकार उपदेश, स्मरणा,

उपदेश छे. निद्रारूप प्रमादमां पडेल शिष्य जे प्रतिलेखना न करे अथवा दुष्प्रतिलेखना आदि करतो होयतो जे समये जेने स्मारणा वाचना आपवी जेधजे जेमां जेने जे समजववुं जेधजे के आयुष्मन् ! तमने जे पडेवुं भताववामां आवेल छे के, प्रमाद छोडवा योग्य छे, जेथी जे वातनेा ख्याल करे ने प्रमादनेा ख्याल न करे, तथा तप जेने संयमनी सारी रीते आराधना करे. आनुं नाम स्मारणा छे. प्रतिस्मारणा वाचना शिष्यने ते समये आपवामां आवेल छे ज्यारे शिष्य पोतानी सामाचारीमां वारवार प्रमाद करे छे. ते समये तेने जेवुं समजवाय छे के हे वत्स ज्यजे आ प्रमाद करवेा ठीक नथी तेनाथी तप जेने संयमनी आराधना सारी रीते थती नथी तमने वधतो वधत जे समजववामां आवेल छे, माटे तेनेा परित्याग करी संयम जेने तपनी आराधना करे. तेमां आत्मानी ललाध छे, तेनुं नाम प्रति स्मारणा छे. इवे वडना कडे छे—आ प्रकारनेा उपदेश स्मारणा, प्रतिस्मारणा इप त्रष्टु प्रका-

ततोऽपि यदि प्रमाद्यति तर्हि मासलघुप्रायश्चित्तरूपा दण्डना कर्तव्या । इत्थं दण्डितोऽपि यदि प्रमादान्न विरमते तदा कुक्कुमदृष्टान्तो वक्तव्यः । यथा—अतीव पिष्टं कुक्कुमं 'केसर' इति भापाप्रसिद्धं पापाणमिव कठोरं न भवति, भवान् महता प्रयासेन प्रतिनोद्यमानः कथं प्रमत्तः संवृत्तः । अत्र मासलघु दीयते ।

वारत्रयादूर्ध्वं यदि प्रमादतो न निवर्तते तदा निष्कासना कर्तव्या । अथासौ स्वयं परेण वा प्रज्ञापितः सन् पुनरागत्य प्रमादात् प्रतिनिवृत्तो वदति—भगवन् ! क्षमस्व मदीयमपराधनिकुरम्वम्, न पुनरेवं करिष्यामीति । तदा गुरुरेवं वदेत्—यथा

प्रतिस्मारणारूप तीन प्रकार की वाचना के देने पर भी यदि शिष्य प्रमादपतित होता है, तो उसे एक मास का लघु प्रायश्चित्त देना चाहिये । उस समय उससे यह कहना चाहिये कि देखो केशर जब बार २ रगड़ कर पीसी जाती है तो वह भी पापाण जैसी कठोर नहीं रहती है किन्तु इकदम नरम पड़ जाती है परन्तु बड़े आश्चर्य की बात है कि तुम्हें बार २ समझाया जाता है फिर भी तुम प्रमाद को नहीं छोड़ते हो । क्या बात है पता नहीं पड़ता कि तुम प्रमादी क्यों बन रहे हो ॥

आचार्य तथा अन्य मुनि द्वारा तीन वार समझाने पर भी यदि शिष्य प्रमाद से पीछे नहीं हटता है, उस समय उसे संघ से बाहर करने रूप दण्ड देना चाहिये । उस समय यदि दूसरों के द्वारा समझाये जाने पर अथवा अपनी गल्ती अपने आप स्वीकार करने पर यह ऐसा गुरु महाराज के समक्ष कहे कि हे गुरु महाराज ! मेरे अभीतक के समस्त अपराध आप क्षमा करें, अब आगे ऐसा नहीं करने का भाव

रनी वाचना देवा छतां पणु जे शिष्य प्रमाद वश अने, तो तेने ओक मासनुं लघु प्रायश्चित्त देवुं जेछे अे. ते समय तेने अेवुं कडेवुं जेछे अे के, केशर ने वारंवार धुंटाछे धुटाछेने पीसवामां आवे छे, तो पणु पत्थरनी भाइक कठोर नहिं अनतां वधु ने वधु नरम अने छे. धणु जे आश्चर्यनी वात छे के, तमने वारंवार समजववा छतां पणु तमे प्रमादने छोडता नथी. कथुं कारणु छे ते समजतुं नथी के तमे तमाशे प्रमाद छोडता नथी. आचार्य तथा अन्य मुनिद्वारा त्रणुवार समजववा छतां पणु जे शिष्य प्रमादधी पाछे न हुटे तो तेने ते समये संघनी अडार करवाइय दंड देवे जेछे अे. ते समय कदाय जीजज्ये द्वारा समजववाथी अथवा पोतानी जूल पोते जे स्वीकारीने ते गुरु महाराज समक्ष अेवुं कडे के, हे गुरु महाराज ! मास आज सुधीना अथा अपराध आप भाइ करे, हुवे आगण हुं आवुं नहिं कइं. ते समये

ताम्बूलपत्रं कुथितं न परित्यज्यते चेत्, तर्हि शेषाप्यपि पत्राणि तत् कोथयति । एवं त्वमपि स्वयं विनष्टो मम अन्यानपि साधून् विनाशयिष्यसीति कृत्वा निष्कासितोऽस्माभिः । संप्रति पुनरप्रमत्तेन भवितव्यम्, मासगुरु च ते प्रायश्चित्तम् ।

अत्र राजदृष्टान्तो वर्णनीयः ।

कस्यचिद् राज्ञोऽक्षिरोगः संजातः । तत्रत्यवैद्यास्तच्चिकित्सां कर्तुमशक्ता अभूवन् । अन्यथ कश्चिदागन्तुको वैद्यस्तत्रागत्याह—ममाक्षिगुटिकास्तु अक्षिरोगप्रशमन्यः । ताभिरञ्जितेषु अक्षिषु तीव्रतरा दुःसहा वेदना भवति । सा तु मुहूर्तमात्रम् ।

है, उस समय गुरु महाराज उससे ऐसा कहें कि देखो, पान सड़ जाने पर यदि बाहर निकाल कर न फेंक दिया जाय तो वह जैसे अन्य पानों को सड़ा कर बिगाड़ देता है, उसी प्रकार तुम भी स्वयं विनष्ट होकर मेरे संघ के अन्य साधुओं को विनष्ट कर दोगे इस ख्याल से हम तुम्हें संघ से बाहर कर रहे हैं । यदि आगे ऐसा नहीं करोगे तो संघ में रख लिये जाते हैं । इसलिये जाओ १ मास का यह तुम्हें गुरु प्रायश्चित्त दिया जाता है । इस विषय में एक राजा का दृष्टान्त इस प्रकार है—

किसी एक राजा को आंखों में रोग हो गया । नगर भर में जितने वैद्य थे उन सब ने खूब यत्नपूर्वक इलाज किया, परंतु उनके इलाज से राजा की आंखों का रोग शमित नहीं हुआ । एक समय वहां बाहर गांव का एक वैद्य आया । उसने नरेश के पास जाकर कहा कि महाराज ! हमारे पास ऐसी गोलियां हैं जो आंखों में आंजने पर विलकुल रोग को नष्ट कर देती हैं । परन्तु उनके आंजने पर १ मुहूर्त तक बड़ी दुःसह

गुरुभट्टारान् तेने अेषुं कडे के लुओ पान सडी ज्वाथी भडार काडी इंडी देवाभां न आवे तो ते जेभ भील पानने सडावी भगाडी हे छे. ते ज् रीते तमे पषु स्वयं विनिष्ट भनी भारा संघना भील साधुओने पषु विनिष्ट भनावी देखो. आ ज्यालथी तमने संघथी भडार करवाभां आवे छे. कदाच आगण अेषुं नडीं करे तो संघभां राभवामां आवशे. आ माटे तमने अेक भडिनातुं शुर् प्रायश्चित्त आपवाभां आवे छे.

आ विषयमां अेक रान्तेना हाभलो आ प्रकारे छे.—

डोर्ध अेक रान्तेनी आंभमां रोग थयो, शडेरमां जेटला वैद्य उता ते सघजाथी भूभ प्रयत्न पुर्वक धलाज करवाभां आव्ये परंतु तेओना धलाजथी रान्तेनी आंभेना रोग भटयो नडीं. अेक समये त्यां भडार गाभने अेक वैद्य आव्ये तेले रान्तेनी पासे पडोंथी कहुं के, भडारान् ! भारी पासे अेवी गोणीओ छे, जे आंभेमां आंज्वाथी रोगने भीषकुल भटाडे छे परंतु तेने आंज्वाथी

यदि वेदनायां सत्यां मां प्राणदण्डं कर्तुं कर्मचारिभ्य आज्ञां न ददासि, तर्हि त्वा-
क्षिणी अज्ञयामि । राज्ञा कथितम्—नाहं तव प्राणदण्डं कर्तुमाज्ञापयिष्यामि । तदा
राज्ञोऽक्षोरञ्जनं वैद्यः कृतवान् । अञ्जितयोरक्ष्णोस्तीव्रतरा वेदना जाता । तदा
राज्ञा निगदितम्—‘अनेनाक्षिणी मम पीडिते, अत एनं मारय ’ इत्याज्ञां स्वकर्म-
चारिणः प्रति दत्तवान् । तैः कर्मचारिभिस्तस्य राज्ञो हितकरं विज्ञाय वैद्यः प्रच्छन्नः
स्थापितः । गृहूर्तान्तरेण राज्ञो वेदना उपशान्ताः, अक्षिणी रोगरहिते दिव्ये दिव्य-
ज्योतिष्मती संजाते । तदा राज्ञा वैद्यः स्मृतः । राजकर्मचारिभिरानीय समर्पितो
वैद्यः सत्कारितः संमानितश्च । यथा तस्य राज्ञस्तत्कालदुःसहमपि गुटिकाञ्जनं क्रमेण
चक्षुषो नैरुज्यकरणात् परिणामसुन्दरं समजनि, एवं भवतामपि स्मारणादिकं खर-

पीडा होती है । यदि आप वेदना होने पर अपने कर्मचारियों को मुझे
प्राणदण्ड देने की आज्ञा न करे तो मैं आपकी आंखों में उन गोलियों
को आंज सकता हूँ । राजाने वैद्य की बात सुन कर उसे अभय करने
का वचन दे दिया । वैद्य ने भी गोलियों को घिस कर राजा की आंखों
में आंज दिया । आंजते ही राजा की आंखों में तीव्रतर दुःसह वेदना
होने लगी । उस वेदना से पीडित होकर राजा ने उसे मारने की
आज्ञा दे दी । कर्म चारियों ने उसे राजा का हितकारी मान कर एक
जगह छिपा दिया और मारा नहीं । कुछ समय के बाद वेदना शांत हो
गई और आंखें रोग रहित हो गईं । राजा ने प्रसन्न होकर उस वैद्य
को याद किया तब कर्मचारियों ने उस वैद्य को लाकर हाजर किया ।
राजा ने उसको खूब आदर सत्कार करके विसर्जित किया । मतलब
इस दृष्टान्त का यह है कि जिस प्रकार उस राजा के लिये दुःसह भी

એક ઘડી સુધી ઘણી જ અસહ્ય વેદના થાય છે. વેદના થવાથી આપ આપના
કર્મચારીઓ દ્વારા મને પ્રાણદંડ દેવાની આજ્ઞા ન કરે તો હું આપની આંખોમાં
એ ગોળીઓ આંજવા ઇચ્છું છું. રાજાએ વેદની વાત સાંભળીને તેને અભય
કરવાનું વચન આપ્યું. વૈદ્યે પણ ગોળીઓને ઘસીને રાજાની આંખમાં આંજ
દીધી આંજતાં જ રાજાની આંખોમાં તીવ્રતર દુઃસહ વેદના થવા લાગી, આ
વેદનાથી વ્યાકુળ બની રાજાએ તેને મારવાની આજ્ઞા આપી. કર્મચારીઓએ
તેને રાજાને હિતકારી માની એક જગ્યાએ છુપાવી દીધો અને માયે નહીં.
થોડા સમય પછી વેદના શાન્ત થઇ અને આંખો રોગ રહિત બની. રાજાએ
પ્રસન્ન થઇને તે વૈદ્યને યાદ કર્યો ત્યારે કર્મચારીઓએ તે વૈદ્યને લાવીને હાજર
કર્યો. રાજાએ તેને ખૂબ આદરસત્કાર કરીને વિદાય આપી. આ દૃષ્ટાંતનો સાર એ
છેકે, રાજા માટે દુઃસહ એવી આંખોની પીડાનું ગુટિકાના આંજનથી શમન થયું.

પરુપત્વાત્ યદ્યપ્યાપાતમાત્રદુઃસ્વજનકં તથાપિ પરિણામસુન્દરમેવ દ્રષ્ટવ્યમ્, ઇહ પરત્ર ચ સકલકલ્યાણપરંપરાકારણત્વાદિતિ ।

॥ ઇતિ સપ્તમં વાચનાદ્વારમ્ ॥

સૂત્રાર્થયોઃ પૌર્વાપર્યનિરૂપણનામકમણ્મદ્વારમ્—

અથ પૂર્વે સૂત્રમ્ અર્થો વા ? ઇતિ નિરૂપ્યતે—ઉત્પાદવ્યયધ્રૌવ્યલક્ષણોર્ઘ્સ્તીર્થ-
કૈઃ પૂર્વમુક્તઃ, પથ્વાત્ તમેત્રાર્થં હૃદયે નિધાય ગણધરાઃ સૂત્રં રચયન્તિ, તસ્માદર્થતઃ
પથ્વાદ્ધાવિ સૂત્રમ્, ઇતિ સિદ્ધાન્તઃ । અત એવ સૂત્રમ્ અણુ-લઘુ ભવતિ, અર્થસ્તુ મહાન્,
ગુટિકાંજન આંખો કી પીડા કા શમક હુઆ-પીડાજનક હોને પર મી
પરિણામ મેં હિતવિધાયક હુઆ, ડસી પ્રકાર શિષ્યોં કો મી ગુરુ
મહારાજ દ્વારા પ્રદત્ત સ્મારણાદિક તીવ્ર કઠોર હોને પર મી આયતિ-
(ઉત્તરકાલ) સુખ કારક હોને સે એકાન્ત હિતવિધાયક હી હોતે હેં ।
ક્યોં કિ હનસે હસ લોક મેં તથા પરલોક મેં આત્મા કા હિત હી હોતા
હે અહિત નહીં ।

॥ સાતવાં દ્વાર સમાપ્ત હુઆ ॥ ૭ ॥

અવ આઠવાં દ્વાર કહતે હેં—

સૂત્ર એવં અર્થ કૈ પૌર્વાપર્ય દ્વાર કા નિરૂપણ કરતે હેં—

અવ યહાં યહ વતલાયા જાતા હૈ કિ પહિલે સૂત્ર હોતા હૈ કિ અર્થ
હોતા હૈ । ઉત્પાદ, વ્યય, એવં ધ્રૌવ્ય હસ લક્ષણ સે યુક્ત અર્થ-પદાર્થ
હોતા હૈ । અર્થ કા યહ લક્ષણ તીર્થકર પ્રમુને કહા હૈ । હસી અર્થ
કો હૃદય મેં અવઘૃત કર ગણધર દેવોં ને સૂત્રોં કી રચના કી હૈ । હસ-

પીડા આપનાર હોવા છતાં પણ પરિણામમાં હિતકારક પરિણામ આનુ.
આ પ્રકાર શિષ્યોએ પણ ગુરુમહારાજ દ્વારા પ્રદત્ત સ્મારણાદિક તીવ્ર-કઠોર હોવા
છતાં પણ અતે ગુણ કરનાર સુખકારક હોવાથી એકાન્ત હિતવિધાયક જ હોય
છે કેમકે એનાથી આલોક તથા પરલોકમાં આત્માનું હિત થાય છે, અહિત નહીં

॥ સાતમું દ્વાર સમાપ્ત થયું ॥૭॥

હવે આઠમું દ્વાર કહેવામાં આવે છે—

સૂત્ર તથા અર્થના પૌર્વાપર્યદ્વારનું નિરૂપણ કરવામાં આવે છે.—

હવે અહિં એ બતાવવામાં આવે છે કે, પહેલાં સૂત્ર હોય છે કે અર્થ
હોય છે. ઉત્પાદ, વ્યય, અને ધ્રૌવ્ય આ લક્ષણથી યુક્ત અર્થ પદાર્થ બને છે.
અર્થનું એ લક્ષણ તીર્થકર પ્રમુએ કહેલ છે તે અર્થને હૃદયમાં ધારણ કરીને
ગણધર દેવોએ સૂત્રની રચના કરી છે, માટે અર્થની પાછળ સૂત્ર છે, એ સિદ્ધાંત

यदि वेदनायां सत्यां मां प्राणदण्डं कर्तुं कर्मचारिभ्य आज्ञां न ददासि, तर्हि त्वा-
क्षिणी अन्नयामि । राज्ञा कथितम्—नाहं तव प्राणदण्डं कर्तुमाज्ञापयिष्यामि । तदा
राज्ञोऽक्ष्णोरञ्जनं वैद्यः कृतवान् । अञ्जितयोरक्ष्णोस्तीव्रतरा वेदना जाता । तदा
राज्ञा निगदितम्—‘अनेनाक्षिणी मम पीडिते, अत एनं मारय ’ इत्याज्ञां स्वकर्म-
चारिणः प्रति दत्तवान् । तैः कर्मचारिभिस्तस्य राज्ञो हितकरं विज्ञाय वैद्यः प्रच्छन्नः
स्थापितः । मुहूर्तान्तरेण राज्ञो वेदना उपशान्ताः, अक्षिणी रोगरहिते दिव्ये दिव्य-
ज्योतिष्मती संजाते । तदा राज्ञा वैद्यः स्मृतः । राजकर्मचारिभिरानीय समर्पितो
वैद्यः सत्कारितः संमानितश्च । यथा तस्य राज्ञस्तत्कालदुःसहमपि गुटिकाञ्जनं क्रमेण
चक्षुषो नैरुज्यकरणात् परिणामसुन्दरं समजनि, एवं भवतामपि स्मारणादिकं स्व-

पीडा होती है । यदि आप वेदना होने पर अपने कर्मचारियों को मुझे
प्राणदण्ड देने की आज्ञा न करे तो मैं आपकी आंखों में उन गोलियों
को आंज सकता हूँ । राजाने वैद्य की बात सुन कर उसे अभय करने
का वचन दे दिया । वैद्य ने भी गोलियों को घिस कर राजा की आंखों
में आंज दिया । आंजते ही राजा की आंखों में तीव्रतर दुःसह वेदना
होने लगी । उस वेदना से पीडित होकर राजा ने उसे मारने की
आज्ञा दे दी । कर्म चारियों ने उसे राजा का हितकारी मान कर एक
जगह छिपा दिया और मारा नहीं । कुछ समय के बाद वेदना शांत हो
गई और आंखें रोग रहित हो गईं । राजा ने प्रसन्न होकर उस वैद्य
को याद किया तब कर्मचारियों ने उस वैद्य को लाकर हाजर किया ।
राजा ने उसको खूब आदर सत्कार करके विसर्जित किया । मतलब
इस दृष्टान्त का यह है कि जिस प्रकार उस राजा के लिये दुःसह भी

એક ઘડી સુધી ઘણી જ અસહ્ય વેદના થાય છે. વેદના થવાથી આપ આપના
કર્મચારીઓ દ્વારા મને પ્રાણદંડ દેવાની આજ્ઞા ન કરો તે હું આપની આંખોમાં
એ ગોળીઓ આંજવા ઇચ્છું છું. રાજાએ વેદની વાત સાંભળીને તેને અભય
કરવાનું વચન આપ્યું. વૈદ્યે પણ ગોળીઓને ઘસીને રાજાની આંખમાં આંજ
દીધી આંજતાં જ રાજાની આંખોમાં તીવ્રતર દુઃસહ વેદના થવા લાગી, આ
વેદનાથી વ્યાકુળ બની રાજાએ તેને મારવાની આજ્ઞા આપી. કર્મચારીઓએ
તેને રાજાને હિતકારી માની એક જગ્યાએ છુપાવી દીધો અને માથે નહીં.
થોડા સમય પછી વેદના શાન્ત થઇ અને આંખો રોગ રહિત બની. રાજાએ
પ્રસન્ન થઇને તે વૈદ્યને યાદ કર્યો ત્યારે કર્મચારીઓએ તે વૈદ્યને લાવીને હાજર
કર્યો. રાજાએ તેને ખૂબ આદરસત્કાર કરીને વિદાય આપી. આ દૃષ્ટાંતનો સાર એ
છેકે, રાજા માટે દુઃસહ એવી આંખોની પીડાનું શુટિકાના અંજનથી શમન થયું.

तत्र मान्ति स्म । एवं पेटिकास्थानीये सूत्रे बहून्यर्थपदानि वर्तन्ते, तत्र सूत्रमेव वादरं भवितुमर्हति नार्थ इति । किंचार्थस्य महत्त्वमेकान्ततो नास्ति, प्रथमे उत्क्षिप्तज्ञाते हि 'अनुकम्पा कर्तव्या' इत्यर्थो बहुभिः सूत्रैर्वर्णितः । तथा—अष्टादशे सुंसुमादारिकाज्ञाते वर्णरूपबलादिवृद्धयर्थं नाहारयितव्यम्, इत्यर्थो बहुभिः सूत्रैर्वर्णितः, तस्मादर्थो न महान् किन्तु सूत्रमेव महदिति चेत्—?

अत्रोच्यते—पूर्वं सूत्रं पञ्चादर्थः, इति न संभवति । अर्थस्य हि सूत्रतः पञ्चाद्भावित्वं न युज्यते, अर्थं विना सूत्रं निधारहितं सत् कीदृशं स्यात् ? असंबद्धं

में अनेक वस्त्र रख दिये जाते हैं एतावता पेटी में ही वादरता आती है वस्त्रों में नहीं । क्यों कि उसके आधार से ही बहुत वस्त्र उसमें समा जाते हैं । इसी तरह पेटी के स्थानीय सूत्र में भी बहुत से अर्थपद रहा करते हैं इसलिये सूत्र को ही वादर होने का प्रसंग प्राप्त होता है अर्थ को नहीं । तथा—अर्थ में महत्ता भी एकान्त से स्थापित नहीं होती है ।

“प्रथमे उत्क्षिप्तज्ञाते” ज्ञातासूत्र के प्रथम उत्क्षिप्तज्ञात नामक अध्ययन में भगवान ने फरमाया है कि अनुकम्पा करनी चाहिये इस प्रकार का अर्थ बहुत सूत्र से वर्णित किया है । तथा “अष्टादशे सुंसुमादारिकाज्ञाते” अर्थात् इसी ज्ञाता सूत्र के अठारवें सुंसुमादारिकानामक अध्ययन में वर्ण, रूप, बल आदि की वृद्धि निमित्त मुनियों को आहार नहीं करना चाहिये यह अर्थ बहुत सूत्रों से वर्णित किया है । इसलिये अर्थ महान् नहीं है किन्तु सूत्र ही महान् है यही बात ज्ञात होती है ।

उत्तर—पहिले सूत्र होता है पञ्चात् अर्थ यह कथन युक्तियुक्त नहीं है,

आवे छे, वस्त्रोंमां नदीं, केम के पेटीना आधारथी न घण्टां वस्त्रो तेमां समाध शके, जेवी रीते स्थानीय सूत्रमां पणु घण्टा अर्थ पद रह्या करे छे भाटे न सूत्रने आहर होवानो प्रसंग प्राप्त थाय छे, अर्थने नदी. तेम अर्थमां महत्ता पणु अेकान्तथी स्थापित थती नथी, ज्ञाता सूत्रना प्रथम उत्क्षिप्तज्ञात नामना अध्ययनमां लगवाने क्रमाव्युं छे के, अनुकम्पा करवी लोर्धजे. आ प्रकारनो अर्थ घण्टा सूत्रेथी वणुं ववामां आवेल छे तथा “अष्टादशे सुंसुमादारिका ज्ञाते” अर्थात् आ ज्ञाता सूत्रना अठारमा “सुंसुमादारिका” नामना अध्ययनमां वणुं, रूप, अण वगेरेनी वृद्धि निमित्त मुनियोजे आहार न करयो लोर्धजे आ अर्थ घण्टा सूत्रेमां वणुं ववामां आवेल छे. आ भाटे अर्थ महान नथी पणु सूत्र न महान छे आ वात ज्ञात थाय छे.

उत्तर—पडेलों सूत्र होय छे पछी अर्थ आ कडेवुं युक्ति युक्त नथी, कारण

एकैकस्य सूत्रस्यार्योऽनन्तः । स्तोकत्वात् पश्चादभिहितत्वाच्च सूत्रम् 'अणु' इत्युच्यते, तेन चाणुना सूत्रेण सहार्थस्य यः सम्बन्धो योगः स चाणुयोग इत्युच्यते ।

ननु पूर्वमर्थः पश्चात् सूत्रमिति कथनमयुक्तम्, पूर्वं हि सूत्रं पश्चादर्थः, सूत्राभावे तु अर्थः कस्य स्यात् । लौकिका अप्येवमेव वदन्ति-आधारे सत्येवाधेयं तिष्ठतीति ।

यच्च सूत्रमणु, अर्थस्तु विस्वृत इति, तदप्ययुक्तम् ? एकस्यां हि पेटिकायां बहूनि वस्त्राणि सन्ति, तत्र पेटिकाया एव वादरत्वं युज्यते, तद्वशाद् बहूनि वस्त्राणि

लिये अर्थ के पश्चाद् सूत्र है यह सिद्धान्त निर्धारित हो जाता है । सूत्र अणु-लघु होता है । तथा-अर्थ सूत्र की अपेक्षा महान् होता है । एक सूत्र के अनन्त अर्थ होते हैं । सूत्र को अणु इसी अभिप्राय से कहा गया है कि एक तो वह अर्थ के पश्चाद् भावी है और दूसरे वह स्तोक अर्थात् छोटा होता है । उस अणु सूत्र के साथ अर्थ का जो योग है-संबंध है उसी का नाम अनुयोग है ।

प्रश्न-पहिले अर्थ होता है बाद में उसके सूत्र होता है यह कथन अयुक्त है । कारण कि सूत्र के बिना अर्थ नहीं हो सकता है । इसलिये ऐसा मानना चाहिये कि पहिले सूत्र होता है और बाद में अर्थ होता है । लौकिक जन भी यही कहते हुए पाये जाते हैं । सूत्र आधार है और अर्थ आधेय है । सूत्र में अर्थ रहता है अर्थ में सूत्र नहीं । आधार के होने पर ही आधेय रह सकता है अन्यथा नहीं । दूसरे-अर्थ की अपेक्षा जो सूत्र को अणु कहा गया है वह भी ठीक नहीं मालूम पड़ता । कारण कि देखा जाता है कि एक ही सन्दूक

निर्धारित गनी जाय छे. सूत्र अणु-लघु डोय छे. तथा अर्थ सूत्रनी अपेक्षाथी महान डोय छे, अेक अेक सूत्रना अनन्त अर्थ थाय छे. सूत्रने अणु अे अलि-प्रायथी कडेवाभां आवेव छे के, अेक तो ते अर्थना पश्चाद्भावि छे, (पाछण थनाइ) अने भीणुं ते लघु डोय छे, अे अणु सूत्रनी साथे अर्थना ने योग छे-संबंध छे तेनुं नाम अनुयोग छे.

प्रश्न-पडेवा अर्थ थाय छे अने अे पछी सूत्र थाय छे, ते कडेवुं अयुक्त छे. कारणु के सूत्र वगर अर्थ धरि शके नही. आ भाटे समजवुं नेछे अे के पडेवां सूत्र डोय छे अने पछी अर्थ थाय छे. सूत्र आधार छे अने अर्थ आधेय छे. सूत्रभां अर्थ रहे छे अर्थभां सूत्र नही. आधारना डोवाथी न आधेय रही शके छे तेना वगर नही. भीणुं अर्थनी अपेक्षा ने सूत्रने अणु कडेवाभां आवेव छे ते पणु हीक नथी. कारणु के, नेवाभां आवे छे के, अेक न पेटिभां वस्त्रां वस्त्र राणवाभां आवे छे आथी ते पेटिभां वादरता

રચ્યન્તે । एवं वल्लस्थानीयस्यार्थस्य इत्थम्, पेटिकास्थानीयस्य तु सूत्रस्याणु-
त्वमेव । यदप्युक्तम्-अर्थो महानित्यस्यैकान्तता नास्तीति तदप्यविचारितभाषितम्
-उत्क्षिप्तज्ञातादिषु सत्त्वानुकम्पादिकोऽर्थस्तत्तदध्ययनमात्रस्य, अशेषस्य तु सूत्रस्य
तदतिरिक्ता अपि बहवोऽर्थाः सन्ति ।

॥ इति अष्टमं द्वारम् ॥

अर्थ के विना सूत्र निश्चारहित होता हुआ दशदाडिम आदि वाक्य
की तरह केवल असंबद्ध और निरर्थक ही माना जाता है । २ । जो यह
कहा है कि पेट्टी की तरह सूत्र चादर होता है तथा वल्लादिक की तरह
अर्थ अणु होता है सो यह कहना भी ठीक नहीं है । क्यों कि जिस
प्रकार उसी पेट्टी के किसी एक वल्ल द्वारा उसी पेट्टी जैसी अनेक पेट्टियाँ
लपेट्टी जा सकती हैं उसी प्रकार एक अर्थ से अनेक सूत्र रचे जा सकते हैं ।
इस तरह वल्लस्थानीय अर्थ में महत्व आता है और पेट्टी स्थानीय
सूत्र में अणुत्व हो । एकान्तसे अर्थ में महत्व नहीं है क्यों कि उत्क्षिप्त
आदि अध्ययनों में जो कहा गया है वह सत्त्वानुकंपादिक रूप अर्थ
उस अध्ययनमात्र का ही है, अर्थात् उनमें अनुकंपादि अर्थों की ही
प्रधानता है । और अनुकंपादि अर्थों को ही सिद्ध किया है । न कि
अवशिष्ट समस्त सूत्र का । उसके तो उससे अतिरिक्त और भी
अनेक अर्थ हैं ।

॥ यह आठवाँ द्वार संपूर्ण हुआ ॥ ८ ॥

દશદાડીમ આદિ વાક્યની માફક કેવળ અસંબદ્ધિત અને નિરર્થક જ માનવામાં
આવે છે. એમ કહેવામાં આવે કે પેટ્ટીની માફક સૂત્ર બાદર હોય છે, તથા
વલ્લાદિકની માફક અર્થ અણુ હોય છે તો તે કહેવું પણ ઠીક નથી. કેમ કે, એ
પેટ્ટીના કોઈ એક વલ્લમાં આવી અનેક પેટ્ટીઓ બાંધી શકાય છે. એજ રીતે
એક અર્થથી અનેક સૂત્ર રચી શકાય છે. આ રીતે વલ્લનું સ્થાનીય અર્થમાં
મહત્વ આવે છે. અને પેટ્ટી સ્થાનીય સૂત્રમાં અણુત્વ જ એકાન્તથી અર્થમાં મહત્વ
નથી એવું જે કહેવામાં આવેલ છે તે પણ ઠીક નથી. કેમકે, ઉત્ક્ષિપ્ત વગેરે
અધ્યયનમાં જે કહેવાયેલ છે તે સત્વાનુકંપાદિક રૂપ અર્થ તે તે અધ્યયન
માત્રાના જ છે. અર્થાત્ તેમાં અનુકંપાદિ અર્થોની જ પ્રધાનતા છે. અને અનુ
કંપાદિ અર્થોને જ સિદ્ધ કરેલ છે. ન કે અવશિષ્ટ બધા સૂત્રોને. એના તો એનાથી
બીજા ઘણા અર્થો છે.

॥ આ આઠમું દ્વાર સંપૂર્ણ થયું. ॥ ૮ ॥

निरर्थकं स्यात्, यथा नव पूषा दशदाडिमान्तिपादिवाक्यं सम्बन्धरहितं निरर्थकं भवति। अपि च-लौकिका अपि शास्त्रारः प्रथमतोऽर्थं दृष्ट्वा सूत्रं कुर्वन्ति, अर्थमन्तरेण सूत्रस्यानिष्पत्तेः। तथा चोक्तम्--

“अत्यं भासइ अरिहा, तमेव सुत्तीकरेंति गणधारी।
अत्यं विणा च सुत्तं, अणिस्सियं केरिसं होइ” ॥ १ ॥

छाया--अर्थं भापतेऽर्थं, तमेव सुत्तीकुर्वन्ति गणधारिणः।

अर्थं विना च सूत्रम्, अनिश्रितं कीदृशं स्यात् ॥ १ ॥

किञ्च--“अत्यं भासइ अरिहा, सुत्तं गुंफंति गणहरा निउणा।”

अपरञ्च--सासणस्स हियद्वाए, ततो सुत्तं पवत्तई ॥

यदप्युक्तं--पेटिकावद् वादरं सूत्रम्, अर्थस्तु अणुरिति तदप्यसत्, यतस्तस्या

पेटिकाया एकं वस्त्रमादाय तेनानेकाः पेटिका बध्यन्ते, तथैकेनार्थेन बहूनि सूत्राणि

कारण कि अर्थ के विना निश्चारहित सूत्र हो ही नहीं सकता है। यदि वह होता है तो “नवपूषा दशदाडिमा” आदि वाक्य की तरह निरर्थक और असंयद्ध ही होगा। लौकिक शास्त्र के जानने वाले भी तो प्रथम अर्थ को देखकर ही सूत्र की रचना किया करते हैं। क्यों कि अर्थ के विना सूत्र की निष्पत्ति नहीं होती है। कहा भी है--

अत्यं भासइ अरिहा, तमेव सुत्ती करेंति गणधारी।

अत्यं विणा च सुत्तं, अणिस्सियं केरिसं होइ ॥ १ ॥

अत्यं भासइ अरिहा, सुत्तं गुंफंति गणहरा निउणा।

सासणस्स हियद्वाए, ततो सुत्तं पवत्तई ॥ २ ॥

तीर्थंकर भगवान पहिले अर्थ की प्ररूपणा करते हैं और उसी अर्थ को गणधर भगवान सूत्ररूप में गुंथते हैं। १।

के अर्थना विना निश्चा रहित सूत्र थर्धे शकतु नथी. कदाच ते डोय छे, तो “नवपूषा दशदाडिमा” आदि वाक्यनी भाइक निरर्थक अने संबंध वगरतुं डोय लौकिक शास्त्रना लक्षणवाणा पणु प्रथम अर्थने लेधने सूत्रनी रचना कर्या करे छे. केम के अर्थना वगर सूत्रनी उत्पत्ति थती नथी. कहुं पणु छे के--

अत्यं भासइ अरिहा, तमेव सुत्तीकरेंति गणधारी।

अत्यं विणा च सुत्तं, अणिस्सियं केरिसं होइ ॥ १ ॥

अत्यं भासइ अरिहा, सुत्तं गुंफंति गणहरा निउणा।

समणस्स हियद्वाए, ततो सुत्तं पवत्तई ॥ २ ॥

तीर्थंकर भगवान पडेलो अर्थनी प्ररूपणा करे छे, अने अने अर्थने गणधर भगवान सूत्रना रूपमां गुंथे छे. अर्थना वगर सूत्र निश्चारि नीने

પ્રિયદર્શિની ટીકાં. અં ૧ ગાં ૨૩ં સ્ ત્યંતદુભયેપુ યંથોત્તરં પ્રાવલ્યમ્ । ૧૭૬

રચ્યન્તે । एवं वस्त्रस्थानीयस्यार्थस्य महत्त्वम्, पेटिकास्थानीयस्य तु सूत्रस्याणु-
त्वमेव । यदप्युक्तम्—अर्थो महानित्यस्यैकान्तता नास्तीति तदप्यविचारितभाषितम्
—उत्क्षिप्तज्ञातादिषु सत्त्वानुकम्पादिकोऽस्तत्तदध्ययनमात्रस्य, अशेषस्य तु सूत्रस्य
तदतिरिक्ता अपि बहवोऽर्थाः सन्ति ।

॥ इति अष्टमं द्वारम् ॥

अर्थ के बिना सूत्र निश्चारहित होता हुआ दशदाडिम आदि वाक्य
की तरह केवल असंबद्ध और निरर्थक ही माना जाता है । २ । जो यह
कहा है कि पेट्टी की तरह सूत्र चादर होता है तथा वस्त्रादिक की तरह
अर्थ अणु होता है सो यह कहना भी ठीक नहीं है । क्यों कि जिस
प्रकार उसी पेट्टी के किसी एक वस्त्र द्वारा उसी पेट्टी जैसी अनेक पेट्टियाँ
लपेट्टी जा सकती हैं उसी प्रकार एक अर्थ से अनेक सूत्र रचे जा सकते हैं ।
इस तरह वस्त्रस्थानीय अर्थ में महत्व आता है और पेट्टी स्थानीय
सूत्र में अणुत्व हो । एकान्तसे अर्थ में महत्व नहीं है क्यों कि उत्क्षिप्त
आदि अध्ययनों में जो कहा गया है वह सत्त्वानुकंपादिक रूप अर्थ
उस अध्ययनमात्र का ही है, अर्थात् उनमें अनुकंपादि अर्थों की ही
प्रधानता है । और अनुकंपादि अर्थों को ही सिद्ध किया है । न कि
अवशिष्ट समस्त सूत्र का । उसके तो उससे अतिरिक्त और भी
अनेक अर्थ हैं ।

॥ यह आठवाँ द्वार संपूर्ण हुआ ॥ ८ ॥

દશદાડીમ આદિ વાક્યની માફક કેવળ અસંબંધિત અને નિરર્થક જ માનવામાં
આવે છે. એમ કહેવામાં આવે કે પેટ્ટીની માફક સૂત્ર બાહર હોય છે, તથા
વસ્ત્રાદિકની માફક અર્થ અણુ હોય છે તે તે કહેવું પણ ઠીક નથી. કેમ કે, એ
પેટ્ટીના કોઈ એક વસ્ત્રમાં આવી અનેક પેટ્ટીઓ બાંધી શકાય છે. એજ રીતે
એક અર્થથી અનેક સૂત્ર રચી શકાય છે. આ રીતે વસ્ત્રનું સ્થાનીય અર્થમાં
મહત્ત્વ આવે છે. અને પેટ્ટી સ્થાનીય સૂત્રમાં અણુત્ત્વ જ એકાન્તથી અર્થમાં મહત્ત્વ
નથી એવું જે કહેવામાં આવેલ છે તે પણ ઠીક નથી. કેમકે, ઉત્ક્ષિપ્ત વગેરે
અધ્યયનમાં જે કહેવાયેલ છે તે સત્ત્વાનુકંપાદિક રૂપ અર્થ તે તે અધ્યયન
માત્રાના જ છે. અર્થાત્ તેમાં અનુકંપાદિ અર્થોની જ પ્રધાનતા છે. અને અનુ
કંપાદિ અર્થોને જ સિદ્ધ કરેલ છે. ન કે અવશિષ્ટ બધા સૂત્રોને. એના તો એનાથી
બીજા ઘણા અર્થો છે.

॥ આ આઠમું દ્વાર સંપૂર્ણ થયું. ॥ ૮ ॥

અથ નવમં દ્વારમ્—સૂત્રાર્થતદ્ભયેષુ યથોત્તરં પ્રવલ્યમ્—

દ્વાદશાંગમધીયાનાનાં વૈયાવૃત્ત્યે ક્રિયમાણે તેપાં વૈયાવૃત્ત્યકારાણાં મહતી નિર્જરા ભવતિ તદાવરણીયસ્ય કર્મણઃ ક્ષયકરણાત્, તેપાં મહાપર્યવસાનં ચ ભવતિ—પુનરન્ય નવકર્મવન્ધાભાવાત્ । નનુ કસ્ય કીદૃશી નિર્જરા ભવતિ ?

અત્રોચ્યતે—સૂત્રેઽર્થં ચ યથોત્તરં વલવતી નિર્જરા । આવશ્યકાદિયાવચ્ચતુર્દશ પૂર્વાણિ સૂત્રં, તદ્દ્વારા યથોત્તરં મહતી મહત્તરા નિર્જરા ભવતિ । ઇયમત્ર ભાવના—એક આવશ્યકસૂત્રધરસ્ય વૈયાવૃત્ત્યં કરોતિ, અપરો દશવૈકાલિકસૂત્રધરસ્ય વૈયાવૃત્ત્યક-

સૂત્ર, અર્થ એવં સૂત્રાર્થ મેં યથોત્તર પ્રવલતા કા કથન નવમેં દ્વાર મેં કરતે હેં—

દ્વારશાંગ કો પઢતે હેં ઓર વે વૈયાવૃત્ત્ય કરતે હેં (અર્થાત્ આચાર્ય ઉપાધ્યાય કી સેવા કરતે હેં) ડનકો શ્રુતજ્ઞાનાવરણીય કર્મોં કી મહા-નિર્જરા હોતી હૈ તથા અન્ય નવીન કર્મ કા વન્ધ ખી નહીં હોતા હૈ । કિસકે કૈસી નિર્જરા હોતી હૈ ? ઇસ વાત કો સ્પષ્ટ ક્રિયા જાતા હૈ—સૂત્ર એવં અર્થ કો પઢને વાલોં કી યથોત્તર મહાનિર્જરા હોતી હૈ । આવશ્યક સૂત્ર સે લેકર ૧૪ પૂર્વતક કે આગમ સૂત્ર હેં । ડનકે દ્વારા ઉત્તરોત્તર મહાનિર્જરા હોતી હૈ મો તાત્પર્ય ઇસકા ઇસ પ્રકાર હૈ કિ કોઈ મુનિ આવશ્યક સૂત્ર કો જાનને વાલે કી વૈયાવૃત્તિ (સેવા) કરતા હૈ ઓર કોઈ ડૂસરા દશવૈકાલિક સૂત્ર કો જાનને વાલે કી વૈયાવૃત્તિ (સેવા) કરતા હૈ । તો ડનમેં આવશ્યક સૂત્ર કો જાનને વાલે કી વૈયાવૃત્તિ કરને વાલે કી નિર્જરા કી અપેક્ષા જો દશવૈકાલિક કો પઢાને વાલે કી વૈયા-

સૂત્ર, અર્થ એવં સૂત્રાર્થમાં યથોત્તર પ્રવલતાનું કથન નવમાં દ્વારમાં કરે છે.—

દ્વાદશાંગ ભણે છે અને જે વૈયાવૃત્ત્ય કરે છે. (આચાર્ય—ઉપાધ્યયની સેવા કરે છે) એને શ્રુતજ્ઞાનાવરણીય કર્મોની મહાનિર્જરા થાય છે. તથા નવા ખીબ કર્મોના અંધ પણ થતો નથી. કોને કેવી નિર્જરા થાય છે ? આ વાતને સ્પષ્ટ કરવામાં આવે છે.—

સૂત્ર અને અર્થને ભણવાવાળાને યથોત્તર મહાનિર્જરા થાય છે. આવશ્યક સૂત્રથી લઈ ૧૪ પૂર્વ સુધીનાં આગમ સૂત્ર છે, એના દ્વારા ઉત્તરોત્તર મહાનિર્જરા થાય છે. મતલબ કોઈ મુનિ આવશ્યક સૂત્રને ભણવાવાળાની વૈયાવૃત્તિ (સેવા) કરે છે અને કોઈ ખીબ દશવૈકાલિક સૂત્રને ભણવાવાળાની વૈયાવૃત્તિ (સેવા) કરે છે. તો એમાં આવશ્યકસૂત્રને ભણવાવાળાની વૈયાવૃત્તિ કરવાવાળાની નિર્જરાને બદલે જે દશવૈકાલિકના ભણવાવાળાની વૈયાવૃત્તિ કરવાવાળા છે,

रस्तस्यावश्यकसूत्रधरवैयावृत्त्यकरापेक्षया महती निर्जरा, आवश्यकसूत्रधरस्यैव दश-
वैकालिकाध्ययनेऽधिकारात् । एवम् अथस्तनाधस्तनतरश्रुतधरवैयावृत्त्यकरापेक्षया
उपर्युपरितनश्रुतधरवैयावृत्त्यकरो यद्योत्तरं महानिर्जरावान् भवति । एवं त्रयोदश-
पूर्वधरवैयावृत्त्यकरापेक्षया चतुर्दशपूर्वधरवैयावृत्त्यकरो महानिर्जराकारी भवति ।
एवमर्थेऽपि भावनीयम् । आवश्यकार्थधरस्य यो वैयावृत्त्यं करोति, तदपेक्षया दश-
वैकालिकाध्ययधरस्य यो वैयावृत्त्यकरस्तस्य महती निर्जरा भवति, एवं पूर्ववद्व्योध्यम्
यथा सूत्रे यद्योत्तरं बलिष्ठता एवमर्थेऽपि भावनीया । तत्र विशेषस्तु-अर्थधरवैया-

वृत्ति करने वाला है उसके महानिर्जरा होती है । क्यों कि आवश्यक
सूत्र को पढ़ चुकने वाले का ही अधिकार दशवैकालिक सूत्र के अध्ययन
में होता है । इस प्रकार नीचे २ श्रुत को धारण करने वालों की वैया-
वृत्ति करने वालों की निर्जरा की अपेक्षा जो ऊपर २ के श्रुत को धारण
करने वाले हैं उनकी वैयावृत्ति करने वालों की निर्जरा यद्योत्तर अधिक
अधिकतर होती है । इसी तरह जो तेरहपूर्व के धारी हैं उनकी जो वैयावृत्त
करने वाला है उसके जितनी निर्जरा होगी उसकी अपेक्षा जो १४ पूर्व
के पाठियों की वैयावृत्ति करने वाला होगा उसकी महानिर्जरा होगी ।
इसी तरह इनके अर्थ विषय में भी समझ लेना चाहिये । जैसे-जो आव-
श्यक सूत्र के अर्थ का पाठी है उसका जो वैयावृत्त्य करने वाला है उसके
जितनी निर्जरा होगी उसकी अपेक्षा जो दशवैकालिक सूत्र के अर्थ का
पाठी है उनकी वैयावृत्ति करने वाले की निर्जरा अधिकतर होगी । इस
तरह पहिले की तरह अर्थ के विषय में लगा लेना चाहिये । जिस तरह

એને મહાનિર્જરા થાય છે. કેમકે, આવશ્યક સૂત્ર પુરી રીતે શીખી લેનારનો જ
અધિકાર દશવૈકાલિકસૂત્રના અધ્યયનનો હોય છે. આ રીતે નીચે નીચેનાં શ્રુતને
ધારણ કરવાવાળાની વैयाવૃત્તિ કરનારને નિર્જરાની અપેક્ષા જે ઉપર ઉપરનાં
શ્રુતને ધારણ કરવાવાળા છે એની વैयाવૃત્તિ કરનારની નિર્જરા યદ્યોત્તર અધિક
અધિકતર થાય છે. આ રીતે જે તેરપૂર્વના ધારક છે એમની જે વैयाવૃત્તિ કરે
છે, એને જેટલી નિર્જરા થાય એની અપેક્ષા જે ચૌદપૂર્વના ધારક છે એની વैयाવૃત્તિ
કરવાવાળાને મહાનિર્જરા થાય છે આવી જ રીતે અર્થમાં પણ સમજવું જોઈ એ.
જે આવશ્યક સૂત્રના અર્થના પાઠી છે, એનો વैयाવૃત્તિ કરનારની જેટલી નિર્જરા
થાય એની અપેક્ષા જે દશવૈકાલિક સૂત્રના અર્થના પાઠી છે એમની વैयाવૃત્તિ
કરવાવાળાની નિર્જરા અધિકતર થાય છે. એજ રીતે પહેલાની માફક અર્થના વિષ-
યમાં સમજી લેવું જોઈ એ. જે રીતે સૂત્રમાં ઉત્તરોત્તર મહાનિર્જરા કહી છે એજ

દ્રવ્યકરેણ નિશીથ-ગૃહસ્કલ્પ-વ્યવહારાર્થધરાણાં વૈયાઘૃત્પકરો મહાનિર્જરાવાન્
ભવતિ । તથા દ્વાદશાઙ્ગીધરસ્ય વૈયાઘૃત્પકરઃ । શેપાર્થેભ્યસ્છેદ સૂત્રાર્થસ્ય વલવત્ત્વે
કિં કારણમિતિ ચેત્-ઉચ્યતે-સ્વલિતચારિત્રસ્ય છેદસૂત્રાર્થેન શોધિર્ભવતિ, તસ્માત્
શેપાત્ સર્વસ્માદપ્યર્થાત્ છેદસૂત્રાર્થો વલવાન્ ।

સૂત્રેઽર્થે તથા યુગપત્ તદુભયસ્મિથિન્ત્યમાને યથોત્તરં નિર્જરા વલવતી ભવતિ ।
સૂત્રાપેક્ષયાઽર્થો મહદ્વિકઃ, અર્થાપેક્ષયા તદુભયો મહદ્વિકઃ, તત્ર કિં કારણમિતિ
ચેત્ ? અત્રોચ્યતે-ગૃહનિષ્પત્તૌ યત્ સાધનં-કાષ્ટ પાપાણાદિ, તત્સંગ્રહે કૃતે સત્યેવ

સૂત્ર મેં ઉત્તરોત્તર મહાનિર્જરા કહી હેં ડસી તરહ્ અર્થ મેં ઉત્તરોત્તર
મહાનિર્જરા સમજ્ઞની ચાહિયે । અર્થધરોં કી વૈયાઘૃત્તિ કરને વાલોં મેં
નિશીથ, સૂત્ર, ગૃહસ્કલ્પસૂત્ર, ંવં વ્યવહાર સૂત્ર કે અર્થધરોં કી વૈયાઘૃત્તિ
કરને વાલોં કે મહાનિર્જરા હોતો હૈ તથા-દ્વાદશાંગી કે પાઠી કી વૈયા-
ઘૃત્તિ કરનેવાલા મહાનિર્જરા કરતા હૈ । શેપ અર્થ કી અપેક્ષા છેદ સૂત્રોં
કે અર્થોં મેં અધિકતા ક્યો કહી ગઈ હેં, ડસકા સમાધાન ડસ પ્રકાર
હૈ । યદિ કોઈ સાધુ અપને ગૃહોત ચારિત્ર સે સ્વલિત હો જાતા હૈ તો
ડસકી શુદ્ધિ છેદશ્રુત કે અર્થ સે હોતી હૈ । ડસલિયે અવશિષ્ટ-સમસ્ત
અર્થોં કી અપેક્ષા છેદશ્રુતોં કા અર્થ અધિક કહા ગયા હૈ ।

સૂત્ર કા, અર્થ કા તથા યુગપત્ સૂત્રાર્થ કા અધ્યયન કરને પર યથો-
ત્તર અધિક ૨ નિર્જરા હોતી હેં । સૂત્ર કી અપેક્ષા અર્થ મહાન્ હોતા હૈ
ઔર અર્થ કી અપેક્ષા તદુભય-સૂત્ર ંવં અર્થ-યે ડોનોં મહાન્ હોતે હેં ।
ડસમેં કારણ યહ હૈ કિ જિસ પ્રકાર ઘર બનાને મેં જો કાષ્ટપાપાણ
આદિ સાધન હેં જવ ડનકા સંગ્રહ હો જાતા હૈ તય ઘર બનતા હૈ । ડસી

રીતે અર્થમાં ઉત્તરોત્તર મહાનિર્જરા સમજવી જોઈએ. અર્થધરોની વૈયાઘૃત્તિ
કરવાવાળામાં નિશીથસૂત્ર, બૃહસ્કલ્પસૂત્ર અને વ્યવહારસૂત્રના અર્થધરોની
વૈયાઘૃત્તિ કરવાવાળાને મહાનિર્જરા થાય છે. તથા દ્વાદશાંગીના પાઠીની વૈયાઘૃત્તિ
કરનાર મહાનિર્જરા કરે છે. શેપ અર્થની અપેક્ષા છેદ સૂત્રોના અર્થોમાં અધિ-
કતા કેમ કહેવામાં આવી છે, એનું સમાધાન આ પ્રકારનું છે.—જે કોઈ સાધુ
પોતે ગ્રહણ કરેલા ચારિત્રથી સ્વલિત થઈ જાય છે. તો એની શુદ્ધિ છેદશ્રુતના
અર્થથી થાય છે. આ માટે અવશિષ્ટ-સમસ્ત અર્થોની અપેક્ષા છેદશ્રુતોનો અર્થ
અધિક કહેવાયેલ છે.

સૂત્રનું, અર્થનું તથા યુગપત્ સૂત્રાર્થનું અધ્યયન કરવાથી યથોત્તર અધિક
અધિક નિર્જરા થાય છે. સૂત્રની અપેક્ષા અર્થ મહાન હોય છે. આમાં એ કારણ
છે કે, જે રીતે ઘર બનાવવામાં પાણી લાકડાં વગેરે સાધન છે, અને તેનો સંગ્રહ

गृहं निष्पद्यते, तथाऽर्धानुसन्धाने सत्येव सूत्रं निष्पद्यते, अतः सूत्रापेक्षयाऽर्थस्य प्राधान्यं भवति । किं च—सूत्रगणधर प्रोक्तम्, अर्थस्तु भगवद्बोधितस्तस्मात् सूत्रापेक्षयाऽर्थस्य प्राधान्यं भवति । तथाचोक्तम्—

तित्थगरद्वानो खलु, अत्यो सुत्तं तु गणहरद्वानं ।

अत्थेण य वंजिज्जइ सुत्तं, तम्हा उ सो वल्लवं ॥ १ ॥

छाया—तीर्थंकरस्थानः खलु अर्थः, सूत्रं तु गणधरस्थानम् ।

अर्थेन च व्यज्यते सूत्रं, तस्मात्तु स बलवान् ॥ १ ॥

व्याख्या—अर्थः खलु तीर्थंकरस्थानः, तस्य तेनाभिहितत्वात् । सूत्रं तु गणधरस्थानं तस्य तीर्थंथितत्वात् । अर्थेन च यस्मात् सूत्रं व्यज्यते=प्रकटीक्रियते, तस्मात् सोऽर्थः सूत्राद् बलवान् ॥ १ ॥

सूत्रापेक्षयाऽर्थापेक्षया च सूत्रार्थोभयस्य प्राबल्ये दृष्टान्तः प्रदर्श्यते । यथा जातमात्रं दधि मधुरं, तदपेक्षया शर्करा मधुरतरा, एकत्र संमिलिते दधिशर्करे श्रीख-

तरह अर्थ का अनुसंधान जब होता है तभी गणधर भगवान् सूत्रों की रचना करते हैं । अतः सूत्र की अपेक्षा अर्थ में प्रधानता आती है । तथा—सूत्र गणधरों ने कहे हैं और अर्थ प्रभु द्वारा प्ररूपित हुआ है इसलिये भी सूत्रकी अपेक्षा अर्थ में प्रधानता आजाती है । कहा भी है—अर्थ तीर्थंकर के स्थानापन्न है क्योंकि तीर्थंकर ही अर्थ की प्ररूपणा करते हैं । सूत्र गणधर के स्थानापन्न है क्योंकि वह उनके द्वारा ग्रथित होता है । अर्थ से ही सूत्र उत्पन्न होता है अतः अर्थ ही प्रधान है । सूत्र की अपेक्षा एवं अर्थ की अपेक्षा सूत्रार्थ किस प्रकार प्रधान होता है यह बात दृष्टान्त द्वारा स्पष्ट की जाती हैं—जैसे—ताजा दही मीठा होता है । दही की अपेक्षा शर्करा मीठी होती है । जब इन दोनों का परस्पर

करवामां आवे छे त्यारे न धर बने छे जे न रीते अर्थनुं अनुसंधान थाय छे, त्यारे गणधर भगवान् सूत्रानी रचना करे छे. आधी सूत्रनी अपेक्षाजे अर्थमां प्रधानता आवे छे. तथा—सूत्र गणधरोंजे कहेले छे, अने अर्थ प्रभु द्वारा प्ररूपित थयेले छे. आ कारखे पबु अर्थमां प्रधानता आवे छे. कलुं पबु छे.—अर्थ तीर्थंकर प्रभुना स्थानापन्न छे केमके, तीर्थंकर न अर्थनी प्ररूपणा करे छे. सूत्र गणधरनां स्थानापन्न छे केमके, ते जेभना द्वारा ग्रथित थाय छे. अर्थधी न सूत्र उत्पन्न थाय छे आधी अर्थ न प्रधान छे. सूत्रनी अपेक्षा अने अर्थनी अपेक्षा सूत्रार्थ कथं रीते प्रधान होय छे, ते बात दृष्टान्त द्वारा स्पष्ट करवामां आवे छे.—जेम—ताजुं दहीं मीठुं होय छे, अने दहींधी साकर मीठी होय छे, त्यारे जे बने ने जेक पील साधे मेजववामां आवे छे त्यारे

ખંડનામકં દ્રવ્યં ભવતિ, તત્ સ્વરુપં ઉભાભ્યાં પૃથગસ્થિતાભ્યાં દેધિર્કરાભ્યામધિકં
વિશિષ્ટાસ્વાદજનકં યથા ભવતિ, તથા તુભાર્યોભયસ્ય સર્વમાવાધિગમકારણત્વેન
વિશિષ્ટભાવશુદ્ધિજનકતાત્ સર્વતઃ પ્રાધાન્યમ્ । અતસ્તદુભયધરસ્ય મહતી નિર્જરા
ભવતિ ॥ ૨૩ ॥

॥ इति नवमं द्वारम् ॥

પુનઃ શિષ્યસ્ય વાગ્વિનયમાહ—

મૂલમ્-મુંસં પરિહરે ભિક્ષું, ન ચં ઓહારણિં વણ ।

ભાસાંદોસં પરિહરે, મીયં ચં વર્જેણ સર્યા ॥ ૨૪ ॥

મેં સંમિશ્રણ હો જાતા હૈ તો ઉસસે શ્રીખંડનામ કા એક અપૂર્વ મધુર
પદાર્થ બનતા હૈં । ઉસકા સ્વાદ ન દહી જૈસા હોતા હૈ ઓર ન શકર
જૈસા હોતા હૈ । કિન્તુ ઇન દોનોં સે વિલક્ષણ સ્વાદ હોતા હૈ । ઇસી
તરહ સૂત્ર અર્થ યે દોનોં જવ સમ્મિલિત હોતે હૈં તવ ઇનસે સમસ્ત ભાવોં
કા-પદાર્યોં કે સ્વરૂપ કા જ્ઞાન હોને લગતા હૈ જો ન કેવલ સૂત્ર સે સાધ્ય
હૈ ઓર ન કેવલ અર્થ સે । ઇસસે વિશિષ્ટ ભાવોંકી અર્થાત્-અધ્યવસાયોં
કી વિશિષ્ટ શુદ્ધિ હોતી હૈ । ઇસલિયે સૂત્ર ઓર અર્થ ઇન દોનોં કી
અપેક્ષા તદુભય પ્રધાન કહા ગયા હૈ ઓર ઇસીલિયે કેવલ સૂત્રધારી
અથવા કેવલ અર્થધારી કી અપેક્ષા તદુભયધારી કી સેવા કરને વાલે
કે મહાનિર્જરા હોતી હૈ । ઇસ તરહ તેવીસવીં ગાથા કા અર્થ સંક્ષેપ સે
સંપૂર્ણ હુઆ વિસ્તાર સે અર્થ અન્ય શાસ્ત્રોં સે સમજના ચાહિયે ॥ ૨૩ ॥

નવમા દ્વાર સમ્પૂર્ણ

એનાથી શ્રીખંડ નામનો એક અપૂર્વ મધુર પદાર્થ બને છે, જેનો સ્વાદ ન દહીં
જેવો હોય છે અને ન તો શકર જેવો. પરંતુ આ બંનેથી બુદ્ધિ જ બાતનો
સ્વાદ હોય છે. આવી જ રીતે સૂત્ર અને અર્થ એ બંને જ્યારે સમ્મિલિત હોય
છે, ત્યારે એનાથી 'સમસ્ત ભાવોનું'—પદાર્યોના સ્વરૂપનું જ્ઞાન થવા લાગે છે. જે
ન કેવળ સૂત્રથી સાધ્ય છે અને ન કેવળ અર્થથી. એનાથી વિશિષ્ટ ભાવોની
અર્થાત્-અધ્યવસાયોની વિશિષ્ટ શુદ્ધિ થાય છે. આ માટે સૂત્ર અને અર્થ આ
બંનેની અપેક્ષા તદુભય પ્રધાન કહેવામાં આવેલ છે. અને એ જ માટે કેવળ સૂત્ર
ધારી અથવા કેવળ અર્થધારીની અપેક્ષા તદુભયધારીની સેવા કરવાવાળાની મહા-
નિર્જરા થાય છે. આ રીતે તેવીસવીં ગાથાનો અર્થ સંક્ષેપથી સંપૂર્ણ થયો.
વિસ્તારથી અર્થ અન્ય શાસ્ત્રોથી સમજવો જોઈ એ. ॥ ૨૩ ॥

નવમું દ્વાર સંપૂર્ણ

छाया—मृषा परिहरेद् भिक्षुः, न चावधारणीं वदेत् ।

भाषादोषं परिहरेत्, मायां च वर्जयेत् सदा ॥ २४ ॥

टीका—‘मुसं परिहरे’ इत्यादि ।

भिक्षुः=साधुः, मृषा=मृषावादम्-असत्यवचनं परिहरेत्=वर्जयेत् । मृषावादः संक्षेपेण द्विविधः-लौकिको लोकोत्तरश्च । तत्र प्रत्येकं द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव-भेदा-च्चतुर्धा । द्रव्यतो लौकिकमृषावादः-विपरीतद्रव्यकथनम्, यथा-गाम् अश्वं कथयति । क्षेत्रतः-यथा-अन्यदीयक्षेत्रं प्रति मदीयमिदं क्षेत्रम्, इति कथनम् । एवमेव कालेऽपि भूत भविष्यद् वर्तमानविषये विपरीतकथनम्, यथा-पूर्वाह्णं प्रति-मध्याह्नकालोऽपिमिति कथनम् इत्यादि ।

भावतो लौकिकमृषावादः-क्रोधादिकपायनिमित्तकः, तत्र क्रोधतो यथा-रुष्टः पुत्रो वदति नैप मम पिता, रुष्टः पिता वा वदति-नैप मम पुत्र इति । मानतो

शिष्य के वचनविनय के विषय में सूत्रकार समझाते हुए कहते हैं कि—‘मुसं०’ इत्यादि ।

अन्वयार्थ—(भिक्षु मुसं परिहरे-भिक्षुःमृषा परिहरेत्) भिक्षु-साधु का कर्तव्य है कि वह मृषावाद का परित्याग कर देवे । मृषावाद संक्षेप से दो प्रकार का है-एक लौकिक और दूसरा लोकोत्तर । ये दोनों द्रव्य, क्षेत्र, काल, एवं भाव से चार २ प्रकार के हैं । विपरीत द्रव्य का कहना यह द्रव्य से लौकिक मृषावाद है जैसे गाय को घोड़ा कहना ॥ १ ॥ दूसरे के क्षेत्रको अपना क्षेत्र बनाना यह क्षेत्र की अपेक्षा मृषावाद है ॥ २ ॥ पूर्वाह्न को मध्याह्नकाल बतलाना यह काल की अपेक्षा मृषावाद है ॥ ३ ॥ जो क्रोधादि कपाय निमित्तक होता है वह भाव की अपेक्षा मृषावाद कहलाता है ४ ॥ वह भी चार प्रकार का है-जैसे क्रोध के आवेश में

शिष्यता वचनविनयना विषयभां सूत्रकार समन्वयतां कडे छे डे—मुसं० इत्यादि

अन्वयार्थ—भिक्षुमुसं परिहरे-भिक्षुः मृषापरिहरेत् भिक्षु-साधुनुं कर्तव्य छे डे ते मृषावादनो परित्याग करी हे. मृषावाद संक्षेपथी जे प्रकारे छे. जेक लौकिक अने भीजे लोकोत्तर आ भन्ने द्रव्य, क्षेत्र, काल अने भावथी चार प्रकारना छे. विपरीत द्रव्यनुं कडेवुं जे द्रव्यथी लौकिक मृषावाद छे, जेभ गायने घोडा कडेवो, ॥१॥ भीजनो क्षेत्रने पोतानुं क्षेत्र बनाववुं ते क्षेत्रनी अपेक्षा मृषावाद छे. ॥२॥ सवारने मध्यान काल कडेवो जे कालनी अपेक्षा मृषावाद छे. ॥३॥ जे क्रोधादिक कपाय निमित्त जने छे, ते भावनी अपेक्षा मृषावाद कडेवाय छे. ॥४॥ ते पद्य चार प्रकारथी छे. जेभ क्रोधना आवेशभां आवीने पुत्र कडे छे डे आ भारो पिता नथी अथवा जे समय

પડનામકં દ્રવ્યં ભવતિ, તત્ સ્વરૂપં ઉભાભ્યાં પૃથગાસ્થિતાભ્યાં દધિશર્કરાભ્યામધિકં
વિશિષ્ટાસ્વાદજનકં યથા ભવતિ, તથા મૂલ્યાર્થોભયસ્ય સર્વભાવાધિગમકારણત્વેન
વિશિષ્ટભાવશુદ્ધિજનકત્વાત્ સર્વતઃ પ્રાધાન્યમ્ । અતસ્તદ્મયધરસ્ય મહતી નિર્જરા
ભવતિ ॥ ૨૩ ॥

॥ इति नवमं द्वारम् ॥

પુનઃ શિષ્યસ્ય વાગ્વિનયમાહ—

મૂલમ્-મુસં પરિહરે ભિક્ષુ, ન ચ ઓહારણિ વણ ।

ભાસાદોસં પરિહરે, મીયં ચં વજ્રેણ સય્યાં ॥ ૨૪ ॥

મેં સંમિશ્રણ હો જાતા હૈ તો ઉસસે શ્રીગ્વંડનામ કા એક અપૂર્વ મધુર
પદાર્થ વનતા હૈં । ઉસકા સ્વાદ ન દહી જૈસા હોતા હૈ ઓર ન શકર
જૈસા હોતા હૈ । કિન્તુ ઇન દોનોં સે વિલક્ષણ સ્વાદ હોતા હૈ । ઇસી
તરહ સૂત્ર અર્થ યે દોનોં જવ સમ્મિલિત હોતે હૈં તવ ઇનસે સમસ્ત ભાવો
કા-પદાર્થોં કે સ્વરૂપ કા જ્ઞાન હોને લગતા હૈ જો ન કેવલ સૂત્ર સે સાધ્ય
હૈ ઓર ન કેવલ અર્થ સે । ઇસસે વિશિષ્ટ ભાવોં કી અર્થાત્-અધ્યવસાયોં
કી વિશિષ્ટ શુદ્ધિ હોતી હૈ । ઇસલિયે સૂત્ર ઓર અર્થ ઇન દોનોં કી
અપેક્ષા તદુભય પ્રધાન કહા ગયા હૈ ઓર ઇસીલિયે કેવલ સૂત્રધારી
અથવા કેવલ અર્થધારી કો અપેક્ષા તદુભયધારી કી સેવા કરને વાલે
કે મહાનિર્જરા હોતી હૈ । ઇસ તરહ તેવીસવીં ગાથા કા અર્થ સંક્ષેપ સે
સંપૂર્ણ હુઆ વિસ્તાર સે અર્થ અન્ય શાસ્ત્રોં સે સમજના ચાહિયે ॥ ૨૩ ॥

નવમા દ્વાર સમ્પૂર્ણ

એનાથી શ્રીગ્વંડ નામનો એક અપૂર્વ મધુર પદાર્થ બને છે, જેનો સ્વાદ ન દહી
જેવો હોય છે અને ન તો શકર જેવો. પરંતુ આ બંનેથી બુદ્ધિ જ બાતનો
સ્વાદ હોય છે. આવી જ રીતે સૂત્ર અને અર્થ એ બંને બ્યારે સમ્મિલિત હોય
છે, ત્યારે એનાથી સમસ્ત ભાવોતું-પદાર્થોના સ્વરૂપતું જ્ઞાન થવા લાગે છે. જે
ન કેવળ સૂત્રથી સાધ્ય છે અને ન કેવળ અર્થથી. એનાથી વિશિષ્ટ ભાવોની
અર્થાત્-અધ્યવસાયોની વિશિષ્ટ શુદ્ધિ થાય છે. આ માટે સૂત્ર અને અર્થ આ
બંનેની અપેક્ષા તદુભય પ્રધાન કહેવામાં આવેલ છે. અને એ જ માટે કેવળ સૂત્ર
ધારી અથવા કેવળ અર્થધારીની અપેક્ષા તદુભયધારીની સેવા કરવાવાળાની મહા-
નિર્જરા થાય છે. આ રીતે તેવીસમી ગાથાનો અર્થ સંક્ષેપથી સંપૂર્ણ થયો.
વિસ્તારથી અર્થ અન્ય શાસ્ત્રોથી સમજવો જોઈ એ. ॥ ૨૩ ॥

નવમું દ્વાર સંપૂર્ણ

छाया—मृषा परिहरेद् भिक्षुः, न चावधारणीं वदेत् ।

भाषादोषं परिहरेत्, मायां च वर्जयेत् सदा ॥ २४ ॥

टीका—‘मुसं परिहरे’ इत्यादि ।

भिक्षुः=साधुः, मृषा=मृषावादम्-असत्यवचनं परिहरेत्=वर्जयेत् । मृषावादः संक्षेपेण द्विविधः—लौकिको लोकोत्तरश्च । तत्र प्रत्येकं द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव-भेदा-च्चतुर्धा । द्रव्यतो लौकिकमृषावादः—विपरीतद्रव्यकथनम्, यथा—गाम् अश्वं कथयति । क्षेत्रतः—यथा—अन्यदीयक्षेत्रं प्रति मदीयमिदं क्षेत्रम्, इति कथनम् । एवमेव कालेऽपि भूत भविष्यद् वर्तमानविषये विपरीतकथनम्, यथा—पूर्वाह्नं प्रति—मध्याह्नकालोऽपिमिति कथनम् इत्यादि ।

भावतो लौकिकमृषावादः—क्रोधादिकषायनिमित्तकः, तत्र क्रोधतो यथा—रुष्टः पुत्रो वदति नैप मम पिता, रुष्टः पिता वा वदति—नैप मम पुत्र इति । मानतो

शिष्य के वचनविनय के विषय में सूत्रकार समझाते हुए कहते हैं कि—‘मुसं०’ इत्यादि ।

अन्वयार्थ—(भिक्षु मुसं परिहरे-भिक्षुःमृषा परिहरेत्) भिक्षु-साधु का कर्तव्य है कि वह मृषावाद का परित्याग कर देवे । मृषावाद संक्षेप से दो प्रकार का है—एक लौकिक और दूसरा लोकोत्तर । ये दोनों द्रव्य, क्षेत्र, काल, एवं भाव से चार २ प्रकार के हैं । विपरीत द्रव्य का कहना यह द्रव्य से लौकिक मृषावाद है जैसे गाय को घोड़ा कहना ॥ १ ॥ दूसरे के क्षेत्रको अपना क्षेत्र बनाना यह क्षेत्र की अपेक्षा मृषावाद है ॥ २ ॥ पूर्वाह्न को मध्याह्नकाल बतलाना यह काल की अपेक्षा मृषावाद है ॥ ३ ॥ जो क्रोधादि कषाय निमित्तक होता है वह भाव की अपेक्षा मृषावाद कहलाता है ४ ॥ वह भी चार प्रकार का है—जैसे क्रोध के आवेश में

शिष्यना वचनविनयना विषयभां सूत्रकार समज्जवतां कडे छे डे—मुसं० इत्यादि

अन्वयार्थ—भिक्षुमुसं परिहरे-भिक्षुःमृषापरिहरेत् भिक्षु-साधुनुं कर्तव्य छे डे ते मृषावादनो परित्याग करी हे. मृषावाद संक्षेपथी जे प्रकारे छे. ओक लौकिक अने जीजे लोकोत्तर आ अन्ने द्रव्य, क्षेत्र, काल अने भावथी चार प्रकारना छे. विपरीत द्रव्यनुं कडेबुं ओ द्रव्यथी लौकिक मृषावाद छे, जेभ आथने घोडा कडेवे, ॥१॥ जीजना क्षेत्रने पोतानुं क्षेत्र बनाववुं ते क्षेत्रनी अपेक्षा मृषावाद छे ॥२॥ सवारने मध्यान काल कडेवे ओ कालनी अपेक्षा मृषावाद छे. ॥३॥ जे क्रोधादि कषाय निमित्त अने छे, ते भावनी अपेक्षा मृषावाद कडेवाय छे. ॥४॥ ते पक्ष चार प्रकारथी छे. जेभ क्रोधनां आवेशभां आवीने पुत्र कडे छे डे आ भासे पिता नथी अथवा जे समय

यथा-अस्य कुटुम्बस्य भरणपोषणादिकार्यं कर्तुं को मां विहाय समर्थः ? । मायातो
 यथा-राजकरग्राहकः कंचिद् व्यापारिणं विक्रयवस्तु समादाय स्वस्थानमागतं प्रति
 पृच्छति-‘ कस्येदं वस्तुजातम् ’ इति, एवं गृह्योऽसौ व्यापारी मायया कथयति-
 ‘ नास्ति ममेदं वस्तुजातम्, अन्यदीयमेतत् सर्वम् ’ इति ।

लोभतो यथा-व्यापारी लोभवशाद् वदति ग्राहकं प्रति ‘ यावता मूल्येन मया
 क्रीतं, तावतैव तव हस्ते विक्रीणामि किञ्चिदप्यधिकं मूल्यं न गृह्णामी-’ ति ।

लोकोत्तरमृषावादः प्रदर्श्यते-तत्र द्रव्यतो यथा-जीवम् अजीवं वदति, अजीवं

आकर पुत्र कहता कि यह मेरा पिता नहीं है । अथवा जिस समय
 पिता रुष्ट होता है, उस समय वह कहता है कि यह मेरा पुत्र नहीं है,
 यह सब कथन क्रोध रूप भाव की अपेक्षा मृषावाद है (१) मन कषाय
 के वशवर्ती होकर ऐसा कहना कि यदि मैं न होऊँ तो इस कुटुम्ब का
 भरण पोषण कौन करे (२) माया के वश में होकर जो ऐसा कहता
 है कि यह वस्तु मेरी नहीं है यह तो दूसरों की है, तात्पर्य इसका
 यह है जब कोई व्यापारी किसी राजा का कर लेने वाले के पूछने पर
 कि यह विक्रय वस्तु किसकी है तब यह माया वश कहता है कि यह
 तो दूसरो की है मेरी नहीं है (३) लोभ के वश होकर जो झूठ वचन
 बोला जाता है वह लोभ कषाय की अपेक्षा मृषावाद है-जैसे व्यापारी
 लोग ग्राहकों को ऐसा कहते हैं कि भाई हमने जितने मूल्य में यह
 चीज खरीदी है उतने ही मूल्य में हम तुम्हें यह दे रहे हैं । कुछ भी
 अधिक नहीं ले रहे हैं ॥ ४ ॥ यह सब लौकिक मृषावाद है । चार प्रकार
 का लोकोत्तर मृषावाद इस प्रकार है-जीव को अजीव कहना, अजीव

पिता को धेत भने છે તે વખતે તે કહે છે કે, આ મારો પુત્ર નથી, આ સઘળાં
 કથન ભાવની અપેક્ષા મૃષાવાદ છે (૧) મન કષાયના વશવર્તિ બનીને એવું કહેવું
 કે બેહું નહોઉં તે આ કુટુંબનું ભરણ પોષણ કેણુ કરે. (૨) માયાના વશમાં
 આવીને જે એમ કહે છે કે આ વસ્તુ મારી નથી પણ બીજાની છે. મતલબ આંની
 એ છે કે, જ્યારે કોઈ રાજાને કર્મચારી, કર વસુલ માટે આવે અને તેના પુછ-
 વાથી કોઈ વેપારી પોતાની વસ્તુ હોવા છતાં માયા વશ બની પોતાની ન હોવાનું
 કહી બીજાની હોવાનું બતાવે (૩) લોભના વશ બનીને જે જીવન બોલવામાં
 આવે છે તે લોભ કષાયની અપેક્ષા મૃષાવાદ છે. જેમ-વેપારી લોક આહકોને
 એમ કહે છે કે, ભાઈ જેટલી કિંમતે આ વસ્તુ મારા ઘરમાં પડેલ છે તેજ
 કિંમતે હું તમોને આપું છું, કાંઈ પણ નફો લેતો નથી. (૪) આ બધા
 લૌકિક મૃષાવાદ છે. ચાર પ્રકારના લોકોત્તર મૃષાવાદ આ પ્રકારે છે વને

वा जीवम्, इत्यादि । क्षेत्रतो यथा—भरतक्षेत्रम् ऐरवतक्षेत्रम् वदति, ऐरवतं वा भरतमिति । कालतो यथा—उत्सर्पिणीम् अवसर्पिणीं वदति, तथा—अवसर्पिणीम् उत्सर्पिणीं वदति । भावतो लोकोत्तरमृपावादः क्रोधादिकपायजनितः, तत्र क्रोधतो यथा—सत्यपि गुरुशिष्यसम्बन्धे रुष्टो गुरुर्वदति—न त्वमिति मम शिष्यः, क्रोधाविष्टः शिष्योऽपि वदति—‘नायं मम गुरुः’ इत्यादि । मानतो यथा—अहमेव गच्छधुराधारणे समर्थोऽस्मि, यद्वा—अहमेव साधुनिर्वाहकोऽस्मि । मायातो यथा—कृतातिचारं शिष्यं प्रति गुरुः पृच्छति—त्वयाऽतिचारः कृतः किम् ? तदा शिष्यो मायया वदति न मयातिचारः कृतः’ इत्यादि ।

को जीव कहना । यह द्रव्य की अपेक्षा मृपावाद है १ । भरतक्षेत्र को ऐरावत क्षेत्र कहना अथवा ऐरावत क्षेत्र को भरत क्षेत्र कहना यह क्षेत्र की अपेक्षा लोकोत्तर मृपावाद है २ । उत्सर्पिणी काल को अवसर्पिणी काल कहना अथवा अवसर्पिणी काल को उत्सर्पिणी काल कहना यह काल की अपेक्षा लोकोत्तर मृपावाद है ३ । भाव से लोकोत्तर मृपावाद क्रोधादिक कपाय को लेकर चार प्रकार का है । गुरु शिष्य संबंध होने पर भी जिस समय गुरु किसी निमित्त को लेकर जब शिष्य के प्रति रुष्ट हो जाते हैं तब वे कहने लगते हैं कि तुम मेरे शिष्य नहीं हो । शिष्य भी जब क्रोध के आवेश में आ जाता है तो वह भी इस तरह से गुरु के प्रति कहने लगता है कि आप हमारे गुरु नहीं हैं । यह क्रोध की अपेक्षा लोकोत्तर भाव मृपावाद है (१) । मैं ही गच्छ की धुरा धारण करने में समर्थ हूँ अथवा मैं ही साधुओं का निर्वाहक हूँ इस प्रकार कहना यह मान कपाय की अपेक्षा लोकोत्तर भाव मृपावाद है (२) ।

अथ च कडेपुं, अथ चने एव कडेपे, ये द्रव्यनी अपेक्षा मृपावाद छे. (१) भरत क्षेत्रने औरवतक्षेत्र कडेपुं अने औरवत क्षेत्रने भरतक्षेत्र कडेपुं ते क्षेत्रनी अपेक्षा लोकोत्तर मृपावाद छे. (२) उत्सर्पिणी कालने अवसर्पिणी काल कडेपे अथवा अवसर्पिणी कालने उत्सर्पिणी काल कडेपे अथवा कालनी अपेक्षा लोकोत्तर मृपावाद छे. (३) भावथी लोकोत्तर मृपावाद क्रोधादिक कपायने लक्ष आर प्रकारना छे. गुरु केष निमित्ते न्यारे शिष्य प्रत्ये क्रोधित अने छे त्यारे ते कडेपे लागे छे के तुं मारे शिष्य नथी, शिष्य पक्ष क्रोधना आवेशमां आनी नथ छे, त्यारे ते पक्ष पौताना गुरुने कडेपे लागे छे के आप मारा गुरु नथी. आ क्रोधनी अपेक्षा लोकोत्तर भाव मृपावाद छे. (१) हुं न गच्छती धुरा धारण करणमां समर्थ छुं अथवा हुं न साधुओंनो निर्वाहक छुं. आ प्रकारे कडेपुं अथ मान कपायनी अपेक्षा लोकोत्तर भाव मृपावाद छे. (२) ने समय शिष्य न्यारे

लोभतो यथा—अकल्पयेऽपि वस्त्रपात्रादौ, 'ममेदं वस्त्रं कल्पते' इत्यादि कथनम् ।
 यद्वा—मृपावादश्चतुर्विधः—सद्भावप्रतिषेधः १, असद्भावोद्भावनम् २, अर्था-
 नन्तरम् ३, गर्हा च ४, । तत्र सद्भावप्रतिषेधो यथा—नास्त्यात्मा, नास्ति पुण्यं,
 नास्ति पापम्, इत्यादि । असद्भावोद्भावनं यथा—अस्त्यात्मा सर्वगतः, आत्मा स्यामाक-
 तण्डुलमात्रः, इत्यादि । अर्थान्तरं यथा—गोविषये—'अथोऽयम्' इति । गर्हा तु
 त्रिधा—एका सावद्यव्यापारप्रवर्तनी, यथा 'क्षेत्रं कृष' इत्यादि । द्वितीया—अप्रिया,

जिस समय शिष्य जब कोई अतिचार लगा लेता है तो गुरु महाराज
 उससे पूछते हैं कि क्या तुमने अतिचार लगाया है तब शिष्य माया
 कपाय का अवलम्बन कर कहता है कि मैंने कोई अतिचार नहीं लगाया,
 इस प्रकार शिष्य का यह कथन माया कपाय की अपेक्षा लोकोत्तर
 भावमृपावाद है (३) । जो वस्त्र पात्रादिक अकल्पनीय हैं उनमें ये मेरे लिये
 कल्पनीय हैं इस प्रकार कहना यह लोभकपाय की अपेक्षा लोकोत्तर
 मृपावाद है । अथवा—मृपावाद इन अन्य प्रकारों से भी चार भेद वाला
 है—१ सद्भाव का प्रतिषेध, २ असद्भाव का उद्भावन, ३ अर्थान्तर, ४ गर्हा ।
 आत्मा नहीं है पुण्य और पाप नहीं हैं इस प्रकार सत् अर्थ का अपला-
 पक वचन सद्भाव प्रतिषेध मृपावाद है १ । आत्मा सर्वव्यापक है अथवा
 श्यामाक तन्दुल के समान आत्मा है इस प्रकार असत् अर्थ का उद्भावक
 वचन असद्भाव का उद्भावनरूप द्वितीय मृपावाद है २ । गो के विषय
 में ऐसा कहना कि यह अश्व है इस प्रकार अर्थान्तर का कथक वचन
 तृतीय अर्थान्तर नामक मृपावाद है ३ । गर्हा तीन प्रकार की है सावद्य

कोई अतिचार लगायी ले छे तो गुरु महाराज जेने पूछे छे के, शुं तने अति-
 चार लागेल छे, त्वादे शिष्य माया कपायतुं अवलंभन करी कहे छे के में
 कोई अतिचार लगाउल नथी. आ प्रकारतुं जे शिष्यतुं कथन माया कपायनी
 अपेक्षा दोकोत्तर भाव मृपावाद. (३) जे वस्त्र पात्रादिक अकल्पनीय छे जेभां
 जे मारा माटे कल्पनीय छे जेभ कहेवुं ते लोक कपायनी अपेक्षा दोकोत्तर मृपा-
 वाद छे. अथवा—मृपावाद जे अन्य प्रकारेथी पञ्च चार लेह वाणा छे. १ सद्-
 भावने प्रतिषेध, २ असद्भावतुं उद्भावन, ३ अर्थान्तर, ४ गर्हा. आत्मा नथी,
 पुण्य जेने पाप नथी, आ प्रकारतुं साया अर्थतुं अपलापक वचन सद्भाव
 प्रतिषेध मृपावाद छे. १. आत्मा सर्व व्यापक छे, अथवा स्यामाक योमाना जेवो
 आत्मा छे, आ प्रकारतुं असत् अर्थतुं उद्भावक वचन असद्भावतुं उद्भाव-
 न रूप भीजुं मृपावाद छे. २. गायना विषयभां जेवुं कहेवुं के ते घोडा छे.
 आ प्रकारे अर्थान्तरतुं कथन वचन त्रीजे अर्थान्तर नामने मृपावाद छे. ३. गर्हा

યથા-કાણં પ્રતિ-‘અયં કાણ’ ઇત્યાદિ । તૃતીયા-આક્રોશરૂપા યથા-‘અરે વાન્ધકિનેય દાસીપુત્ર: ? ’ ઇત્યાદિ । પુનરયં ક્રોધાદિભાવોપલક્ષિતશ્ચતુર્વિધઃ । અત્રેદં વોઘ્યમ્-મૃપાત્વાદઃ ક્રોધમાનમાયાલોભહાસ્યભયત્રીઢાક્રીડારત્યરતિદાક્ષિણ્યમાત્સર્યવિપાદાદિભિઃ સંભવતિ । પીઢાઝનકઃઃ સત્યવાદોઽપિ મૃપાત્વાદ ઇતિ । મૃપામાવળે દોષા ડકાઃ—

ધર્મહાનિરવિશ્વાસો, દેહાર્થવ્યસનં તથા ।

અસત્યમાવિળાં નિન્દા, દુર્ગતિશ્ચોપજાયતે ॥ ૧ ॥ ઇતિ ।

વ્યાપાર પ્રવર્તિની, અપ્રિયા, ઔર આક્રોશરૂપા । ક્ષેત્ર કો જોતો ઇત્યાદિક સાવચવ્યાપાર મેં પ્રવર્તન કરાને વાલા વચન ગર્હાં કા પ્રથમ ભેદ હૈ । કાને કો કાના કહના યહ ગર્હાં કા દ્વિતીય પ્રકાર હૈ । ‘અરે કુલટા કે પુત્ર’ ઇત્યાદિ વચન ગર્હાં કા તૃતીય પ્રકાર હૈ । ક્રોધ, માન, માયા, લોભ, હાસ્ય, ભય, ત્રીઢા-(લજ્જા) ક્રીઢા, રતિ, અરતિ, દાક્ષિણ્ય, માત્સર્ય ંવં વિપાદ આદિ નિમિત્તો કો લેકર મૃપાવાદ મેં મનુષ્યોં કી પ્રવૃત્તિ હોતી હૈ । જિસ સત્યવચન સે દૂસરોં કી પીઢા ઉપજે ંસા સત્યવચન ભી મૃપાવાદ મેં અન્તર્હિત જાનના ચાહિયે । મૃપાવાદ મેં અનેક દોષ હેં-જૈસે કહા હૈ—

“ ધર્મહાનિરવિશ્વાસો, દેહાર્થવ્યસનં તથા ॥

અસત્યમાવિળાં નિન્દા, દુર્ગતિશ્ચોપજાયતે ॥ ૧ ॥ ”

મૃપાવાદ સે ધર્મ કી ક્ષતિ હોતી હૈ લોગોં મેં વિશ્વાસ ડઠ જાતા હૈ દેહ ઔર ધન કા નાશ હોતા હૈ । જો અસત્યમાવી હોતે હેં ડનકી અનેક

ત્રણ પ્રકારની છે. સાવચ વ્યાપાર પ્રવર્તિની, અપ્રિયા અને આક્રોશ રૂપા ક્ષેત્રને નેઈને ઇત્યાદિક સાવચ વ્યાપારમાં પ્રવર્તન કરાવનાર વચન ગર્હાંનો પ્રથમ ભેદ છે. કાણુને કાણુ કહેવો એ ગર્હાંનો બીજો પ્રકાર છે ‘અરે કુલટાના પુત્ર’ ઇત્યાદિ વચન ગર્હાંનો ત્રીજો પ્રકાર છે. ક્રોધ, માન, માયા; લોભ, હાસ્ય, ભય, લજ્જા ક્રીડા, રતિ, અરતિ, દાક્ષિણ્ય, માત્સર્ય અને વિપાદ આદિ નિમિત્તોને મૃપાવાદમાં મનુષ્યોની પ્રવૃત્તિ થાય છે. જે સત્ય વચનમાં બીજાઓને પીઢા ઉપજે એવું સત્ય વચન પણ મૃપાવાદમાં અંતર્હિત નાણુવું નેઈ એ મૃપાવાદમાં એનેક દોષ છે. જેવી રીતે કહું છે કે—

“ ધર્મહાનિરવિશ્વાસો દેહાર્થવ્યસનં તથા ।

અસત્યમાવિળાં નિન્દા દુર્ગતિશ્ચોપજાયતે ॥ ૧ ॥ ”

મૃપાવાદથી ધર્મની ક્ષતિ થાય છે, લોકોનો વિશ્વાસ ઊડી નય છે, દેહ અને ધનનો નાશ થાય છે, જે અસત્ય ભાવી હોય છે તેની અનેક પ્રકારથી

ચ-પુનઃ, અવધારણીમ્-નિશ્ચયાત્મિકાં ભાષાં ન વદેત્-‘ગમિષ્યામ્યેવ’
‘કરિષ્યામ્યેવ’ इत्यादिकां भाषां न व्रूयादित्यर्थः । यतः—

“अन्नह परिचितिज्जइ, कज्जं परिणमइ अन्नहा चेव ।

विहिवसयाण जियाणं, मुहुत्तमेत्तं पि बहुविग्गं ॥ १ ॥

છાયા-અન્યથા પરિચિન્ત્યતે, કાર્થ પરિણમત્યન્યથા ચૈવ ।

विधिवशमानां जीवानां मुहूर्तमात्रमपि बहुविघ्नम् ॥ १ ॥

यद्वा—अवधारयते ज्ञायतेऽर्थोऽनयेत्यवधारणी अवबोधजनिका भाषा, सा
चतुर्विधा-सत्या, मृषा, सत्यामृषा, असत्यामृषा च ।

प्रकार से इस लोक में निन्दा होनी है और परलोक में उन्हें दुर्गति की प्राप्ति होनी है । अवधारणात्मक (निश्चयकारी) भाषा को बोलना यह भी एक असत्य का प्रकार है—जैसे—‘जाऊंगा ही,’ ‘करूंगा ही’ । अथवा—‘जाऊंगा’ ‘करूंगा’ इस प्रकार की भाषा गृह्यात् में इसलिये सम्मिलित हो जाती है कि—

“अन्नह परिचितिज्जइ, कज्जं परिणमइ अन्नहा चेव ।

विहिवसाण जियाणं मुहुत्तमेत्तं पि बहुविग्गं” ॥१॥

बोलने वाला विचारता कुछ है और होता कुछ है । मन में अवधारित बात की पूर्ति नहीं होती है । क्यों कि कर्म वशावर्ती जीवों के एक मुहूर्त में भी अनेक विघ्न उत्पन्न हो जाते हैं । अथवा—“अवधारण” शब्द का अर्थ अवबोध जनक भी है । यह अवबोधजनक भाषा सत्या १, मृषा २, सत्यामृषा ३, एवं असत्यामृषा ४, के भेद से

આ લોકમાં નિન્દા થાય છે, અને પરલોકમાં તેને દુર્ગતિની પ્રાપ્તિ થાય છે. અવધારણાત્મક નિશ્ચયકારી ભાષા બોલવી એ પણ એક અસત્યનો પ્રકાર છે. જેમ—‘જઈશજ, કરીશજ’ અથવા—‘જઈશ-કરીશ’ આ પ્રકારની ભાષા મૃષાવાદમાં એ માટે સમાય બંધ છે,—

अन्नह परिचितिज्जई कज्जं परिणामइ अन्नहा चेव ।

विहिवसयाण जीयाणं मुहुत्तमेत्तं बहुविग्गं ॥ १ ॥

બોલવાવાળો વિચારે છે કાંઈ અને બને છે કાંઈ, મનમાં અવધારીત વાતની પૂર્તિ થતી નથી કેમકે, કર્મવશ વર્તી જીવોને એક ઘડીમાં પણ અनेક વિघ्न ઉત્પન્ન થાય છે. અથવા—“અવધારણ” શબ્દનો અર્થ અવ બોધજનક પણ છે. અવ બોધજનક ભાષા ૧ સત્યા, ૨ મૃષા, ૩ સત્યામૃષા અને ૪ અસત્યા-મૃષાના લેહથી ચાર પ્રકારની છે. દેશકાલાદિકની અપેક્ષા જેમાં કાંઈ પ્રકારનો

तत्राराधनी सत्या । आराध्यते मोक्षमार्गोऽनयेत्याराधनी यथावस्थितवस्त्वभिधायिनी-या सर्वज्ञमतानुसारेण भाष्यते, यथा-अस्त्यात्मा सदसन्नित्यानित्याद्यनेकधर्मयुक्त इत्यादि ।

या तु विराधनी विपरीतवस्त्वभिधायिनी सा मृषा । विराध्यते मोक्षमार्गोऽनयेति विराधनी, सर्वज्ञमतप्रातिकूल्येन भाष्यते, यथा-‘नास्त्यात्मा’ यथा वा-‘एकान्तनित्य आत्मा’ यथा वा-अचौरैः ‘अयं चौरः’ इत्यादि । तथा-सत्याऽपि परपीडोत्पादिका, सा परपीडाजनकत्वाद् मुक्तिविराधनाद् वा विराधनी, विराधनोत्पाद्य मृषा । यथा चौरं प्रति-‘अयं चौरः’ इति ।

चार प्रकार की है । देशकालादिक की अपेक्षा जिसमें किसी भी प्रकार का विसंवाद न आसके एवं वस्तुका जो स्वरूप है उसे उसी प्रकार से कहने वाली भाषा सत्य भाषा है । इस भाषा से मोक्षाभिलाषी मोक्षमार्ग की आराधना करते हैं । जैसे-आत्मा है और वह न सर्वथा नित्य है और न सर्वथा अनित्य है किन्तु कथांचित् नित्यानित्यात्मक है (१) इस प्रकार अनेक धर्मविशिष्ट वस्तु का कथन करने वाली भाषा इस कोटि में परिगणित होती है ? जो भाषा विराधिनी है-वस्तु के विपरीत स्वरूप को प्रतिपादन करने वाली है-वह मृषा भाषा है । इसको बोलने वाला प्राणी कभी भी मुक्तिमार्ग का आराधक नहीं हो सकता है । इस प्रकार की भाषा में सदा सर्वज्ञ मत से प्रतिकूलता रहा करता है । जैसे-आत्मा नहीं है । अथवा है भी तो वह सर्वथा नित्य है या सर्वथा अनित्य है । अथवा जो चोर नहीं है उसको ‘यह चोर है’ ऐसा कहना । जो भाषा सत्य भी हो-परन्तु यदि उससे दूसरों को पीड़ा होती हो तो वह भी इसी मृषावाद में सम्मिलित जाननी चाहिये २ ।

विसंवाद न आयी शक्ये अने वस्तुतुं के स्वरूप के तेने तेवा प्रकारथी कडेवा-वाणी भाषा सत्य भाषा के आ भाषाथी मोक्षाभिलाषी मोक्ष मार्गनी आराधना करे के. जेभ आत्मा के अने ते सर्वथा नित्य नथी तेभ सर्वथा अनित्य पण नथी. परंतु कथंचिन नित्यानित्यात्मक के. आ रीते अनेक धर्म विशिष्ट वस्तुतुं कथन करवावाणी भाषा आ कोटिमां परिगणित थाय के (१) के भाषा विराधिनी के वस्तुना विपरीत स्वरूपने प्रतिपादन करवावाणी के. ते मृषा भाषा के. अने गोलनार प्राणी कही पण मुक्ति मार्गने आराधक णनी शकते नथी. आ प्रकारनी भाषामां सदा सर्वज्ञ मतथी प्रतिकूलता रह्या करे के. जेभ-आत्मा नथी, अथवा के तो पण ते सर्वथा नित्य के या सर्वथा अनित्य के, अथवा के चोर नथी अने ‘आ चोर के’ जेभ कडेपुं, जे भाषा सत्य पण डोय-परंतु जे अनेथी अनेने पीडा थती डोय तो ते पण आ मृषावादमां सम्मिलित

યા તુ આરાધનવિરાધની સા સત્યમૃપા-આરાધની ચાસૌ વિરાધની ચ આરાધનવિરાધની, કર્મધારયત્વાત્ પુંઙ્ગાયઃ । યથાચસ્થિતવસ્તુતત્ત્વાભિધાયિની વિપરીતવસ્તુભિધાયિની ચેત્યુભયસ્વભાવા સત્યામૃપા । યથા-ઠર્મિન્નગરે પશ્ચલુ દારકેષુ જાતેષુ ઇવમભિધીયતે ' અસ્મિન્નગરેઽઘ દશ દારકા જાતાઃ ' ઇતિ સા આરાધનવિરાધની । ઇયં ઠિ પશ્ચાનાં દારકાણાં યજ્જન્મ, તાવતાંશેન સંવાદન-સંભવાદારાધની, દશ ન પૂર્યન્તે ઇત્યેતાવતાંઽશેન વિસંવાદસંભવાઽધિરાધની ભવતિ । યદ્વા-શ્વસ્તે શતં દાસ્યામીત્યભિધાય પશ્ચાશત્સ્વપિ દત્તેષુ લોકે મૃપાત્વાદર્શનાત્, અદત્તેષ્વેવ ચ મૃપાત્વસિદ્ધેઃ, સર્વથા પ્રદાનક્રિયાઽભાવેન સર્વથાવ્યત્યયાત્ ।

જો ભાષા આરાધની ખી હો ઓર વિરાધિની હો વહ સત્યમૃપા ભાષા હૈ । સત્યભાષા કા નામ આરાધિની હૈ ઓર મૃપાભાષા કા નામ વિરાધિની હૈ । ઇન દોનોં સ્વરૂપવાલી જો ભાષા હૈ વહ સત્યામૃપા ભાષા હૈ જૈસે યહ કહના કિ આજ ઇસ ગાંવ મેં દશ ચાલક ઉત્પન્ન હુઁ હેં । ઁસ ગાંવ મેં પાંચ હી ચાલક ઉત્પન્ન હુઁ થે । તવ ઁસા કહના સત્યામૃપા સ્વરૂપ ઇસલિયે હૈ, કિ દશ કે કહને મેં પાંચ કા અન્તર્ભાવ તો હો હી જાતા હૈ અતઃ ઇતને અંશકી અપેક્ષા યહ વચન સત્ય હૈ પરન્તુ દશ ચાલક હુઁ નહીં હેં ઇતને અંશ મેં વહ મૃપા હૈ । અથવા ઁસા કહના કિ " શ્વસ્તે શતં દાસ્યામિ " મેં કલ તુમ્હે સો (૧૦૦) રૂપયે ડૂંગા । ઇસમેં સો રૂપયે ન દેકર વહ યદિ પચાસ રૂપયે હો દે દેતા હૈ તો ઇસપ્રકાર કે વ્યવહાર કો લોક મેં અસત્ય મેં પરિગણિત નહીં ક્રિયા જાતા હૈ । જિતના ભાગ નહીં દિયા ગયા હૈ ઁસી મેં અસત્યતા આતી હૈ । હાં યદિ વહ ચિલકુલ ન દેતા તો યહ ભાષા

બાણુવી બેઈ ઁ. (૨) જે ભાષા આરાધની પણ હોય અને વિરાધની પણ હોય તે સત્યામૃપા ભાષા છે. સત્યભાષાતું નામ આરાધિની છે અને મૃપા ભાષાતું નામ વિરાધિની છે. આ બન્ને સ્વરૂપવાળી જે ભાષા છે તે સત્યામૃપા ભાષા છે. જેમ ઁવું કહેવું કે, આજ આ ગામમાં ૧૦ બાળક જન્મ્યાં છે. કોઈ ગામમાં પાંચ જ બાળક જન્મ્યાં હતાં. ત્યારે ઁવું કહેવું સત્યામૃપા સ્વરૂપ આ માટે છે કે, દશના કહેવામાં પાંચનો અંતર્ભાવ તો થઈ જાય છે. આથી આટલા અંશની અપેક્ષા આ વચન સત્ય છે પરંતુ દસ બાળક જન્મ્યાં નથી એટલા અંશે ઁ મૃપા છે. અથવા ઁમ કહેવું કે હું " કાલે તમને સો રૂપીયા આપીશ, " આમાં સો ન આપતાં બે ૫૦ રૂપીયા પણ આવે તો આ પ્રકારના વ્યવહારમાં લોકોમાં અસત્ય બોલનાર તરીકેની ગણના નથી થતી, જેટલા ભાગ આપવામાં ન આવે એટલા પુરતી ઁમાં અસત્યતા આવે છે, પણ

યા તુ નૈવાસત્યા નાપિ સત્યા સા અસત્યામૃપા નામ ચતુર્થીભાષાવ્યવહારરૂપા ।
તત્ર પ્રથમા ચતુર્થી ચ ભાષા ભાષનીયા । ચતુર્થી-અસત્યામૃપા ભાષા-આમન્વ-
પ્યાદિભેદયુક્તા । તત્ર કોઽસાવામન્વપ્યાદિભેદઃ ? ઉચ્યતે-અયમર્થો ભગવત્યામુક્તઃ ।
યથા-“ અહં ભંતે ! આસઙ્સામો સઙ્સામો ચિદ્વિસ્સામો નિસીઙ્સામો તુયદ્વિસ્સામો ।
આમંતણિ આણવણી, જાયણિ તહ પુચ્છણી ય પ્પણવણી ।
પચ્ચક્વાણી ભાસા, ભાસા ઇચ્છાણુલોમા ય ॥ ૧ ॥
અણભિગ્ગહિયા ભાસા, ભાસા ય અભિગ્ગહમ્મિ વોદ્ધવ્વા ।
સંસયકરણી ભાસા, વોયડમવ્વોયડા ચેવ ॥ ૨ ॥
પન્નવણી ણં એસા, ન એસા ભાસા મોસા ? ।

મૃપા મેં હી અન્તર્ભૂત હો જાતી (૩) । જો ન સત્ય છે, ઓર ન અસત્ય
હૈ એસી ભાષા કા નામ અસત્યામૃપા-અર્થાત્ વ્યવહાર ભાષા હૈ ૪ ।
इनमें प्रथम एवं चतुर्थ भाषा बोलने योग्य है । चौथी जो असत्यामृपा
भाषा है वह आमन्त्रणी आदि भेदों से अनेक प्रकार की कही गई है ।
इसी विषय को भगवान ने भगवतीसूत्रमें कहा है-

अहं भंते ! आसङ्गसामो सङ्गसामो चिद्विस्सामो निसीङ्गसामो
तुयद्विस्सामो ।

આમંતણિ આણવણી, જાયણિ તહ પુચ્છણી ય પ્પણવણી ।
પચ્ચક્વાણી ભાસા, ભાસા ઇચ્છાણુલોમા ય ॥ ૧ ॥
અણભિગ્ગહિયા ભાસા, ભાસા ય અભિગ્ગહમ્મિ વોદ્ધવ્વા ।
સંસયકરણી ભાસા, વોયડમવ્વોયડા ચેવ ॥ ૨ ॥
પન્નવણી ણં એસા, ન એસા ભાસા મોસા ? ।

ન દેત તેા એ ભાષા મૃપામાં જ અંતર્ભૂત બની જાત. (૩) જે ન સત્ય છે અને
ન અસત્ય છે એવી ભાષાનું નામ અસત્યામૃપા-અર્થાત્ વ્યવહાર ભાષા છે. (૪)
આમાં પ્રથમ અને ચોથી ભાષા બોલવા યોગ્ય છે. ચોથી જે અસત્યામૃપા ભાષા
છે, તેને આમંત્રણી આદિ લેદેદેથી અનેક પ્રકારની કહેવામાં આવે છે. આ વિષયને
ભગવાને ભગવતી સૂત્રમાં કહેલ છે-

अहं भंते आसङ्गसामो सङ्गसामो चिद्विस्सामो निसीङ्गसामो तुयद्विस्सामो ।

આમંતણિ આણવણી, જાયણિ તહ પુચ્છણી ય પ્પણવણી ।

પચ્ચક્વાણી ભાસા, ભાસા ઇચ્છાણુ લોમાય ॥ ૧ ॥

અણભિગ્ગહિયા ભાસા, ભાસા ય અભિગ્ગહમ્મિ વોદ્ધવ્વા ।

સંસયકરણી ભાસા, વોયડમવ્વોયડા ચેવ ॥ ૨ ॥

પન્નવણી ણં એસા, ન એસા ભાસા મોસા ? ।

हंता ! गोयमा ! आसइस्सामो तं चेव० जाव न एसा भासा मोसा ।
(भ० १० श० ३ उ० ४०३ सू०)

छाया—अथ भदन्त ! आशयिष्यामहे शयिष्यामहे स्थास्यामः निपत्स्यामः
त्वग्वर्तयिष्यामः ।

आमन्त्रणी आज्ञापनी याचनी तथा प्रच्छनी च प्रज्ञापनी ।
प्रत्याख्यानी भाषा, भाषा इच्छानुलोमा च ॥ १ ॥

अनभिगृहीता भाषा, भाषा चाभिग्रहे चोद्भव्या ।
संशयकरणी भाषा, व्याकृता अव्याकृता चैव ॥ २ ॥
प्रज्ञापनी खलु एषा, नैषा भाषा मृषा ? ।

हंत ! गौतम ! आशयिष्यामहे तदेव यावत् नैषा भाषा मृषा ।

व्याख्या—‘अथ’ इति प्रश्नार्थकः । भदन्त ! हे भगवन् इत्येवं श्री महावीरं गौतमः
पृच्छति—आशयिष्यामहे=आश्रयणीयं वस्तु स्वीकरिष्यामः, शयिष्यामहे=विशेषतः
शयनं करिष्यामहे, स्थास्यामः—ऊर्ध्वस्थानेन स्थास्यामः, निपत्स्यामः=उपवेक्ष्यामः।
त्वक्परिवर्तयिष्यामः—संस्तारके पार्श्वपरिवर्तनं करिष्यामः, यद्वा—आश्रयिष्यामः=
आश्रयणीयं स्थानादिकं स्वीकरिष्यामः । इत्यादिका भाषा किं प्रज्ञापनी ? इत्यन्वयः
इदमुपलक्षणम् । एवंजातीया भाषाविशेषाः किं प्रज्ञापनीरूपाः ? इति भावः ।

हंता ! गोयमा ! आसइस्सामो तं चेव० जाव न एसा भासा मोसा
(भ० १० श० ३ उ० ४०३ सूत्र)

भगवान् महावीर से गौतम पूछते हैं कि—हे भगवन् ! हम आश्रय-
योग्य वस्तु का आश्रय लेंगे, शयन करेंगे, खड़े रहेंगे, बैठेंगे, करवट बदलेंगे
इत्यादिक भाषा, तथा आमंत्रणी आदि भाषा क्या प्रज्ञापनी भाषा है ? यह
भाषा मृषा नहीं है ? । आमन्त्रणी आदि भाषाओं के नाम ये हैं—१ आमन्त्रणी,
२ आज्ञापनी, ३ याचनी, ४ प्रच्छनी, ५ प्रज्ञापनी, ६ प्रत्याख्यानी, ७ इच्छा-
नुलोमा, ८ अनभिगृहीता, ९ अभिगृहाता, १० संशयकरणी, ११ व्याकृता,
१२ अव्याकृता । इस प्रकार गौतम स्वामी के पूछने पर भगवान् उत्तर

हंता गोयमा ! आसइस्सामो तं चेव० जाव न एसा भासा मोसा (भ० १० श० ३ उ० ४०३ सूत्र)

भगवान् महावीरने गौतम पूछे छे के छे भगवान् ! अमे सुधंशुं, वधुं
सुधंशुं, उला रडिशुं, जेसंशुं, करवट बदलंशुं, धत्यादिक भाषा तथा आमंत्रणी
आदि भाषा शुं प्रज्ञापनी भाषा छे ? आ भाषा मृषा नथी ?

आमंत्रणी आदि भाषाओंनां नाम आ छे—१ आमन्त्रणी २ आज्ञापनी
३ याचनी ४ प्रच्छनी ५ प्रज्ञापनी ६ प्रत्याख्यानी ७ इच्छानुलोमा ८ अनभिगृहीता
९ अभिगृहीता, १० संशयकरणी, ११ व्याकृता, १२ अव्याकृता. आ गौतम

तत्र-आमन्त्रणी-यथा 'हे साधो !' इत्यादि । एषा च किञ्च वस्तुनोऽविधायकत्वादननिषेधकत्वाच्च सत्यादिभाषात्रयलक्षणत्रियोगतश्चाऽसत्यामृषा व्यवहाररूपा । १ ।

आज्ञापनी-कार्ये परस्य प्रवर्तनी यथा " इदं कुरु " " इदं मा कुरु " इत्यादि । एषा च निर्दिष्टकार्यप्रवर्तकत्वाददुष्टविवक्षासद्भावाच्चाऽसत्यामृषा । एवमन्यत्रापि भावनीयम् ॥ २ ॥

याचनी-अनिर्दिष्टवस्तुविशेषस्य देहीत्येवं याचनरूपा । यथा- " भिक्षां देहि " ॥ ३ ॥

प्रच्छनी-अविज्ञातस्य संदिग्धस्य वाऽर्थस्य ज्ञानार्थं प्रच्छनम् । यथा- " कथमेतत् " ? ॥ ४ ॥

देते हैं कि हे गौतम ! पूर्वोक्त प्रकार को भाषा प्रज्ञापनी भाषा है, किन्तु यह भाषा मृषा नहीं है । आमन्त्रणी आदि भाषाओं का अर्थ कहते हैं-

आमन्त्रणी-' हे साधो ! ' इत्यादि । यह किसी वस्तु की अविधायक एवं अनिषेधक होने से, तथा सत्यादि तीन भाषा के लक्षण से रहित होने से असत्यामृषास्वरूप व्यवहार भाषा है ? । आज्ञापनी-दूसरे को कार्य में प्रवृत्त कराने वाली भाषा आज्ञापनी भाषा है । जैसे- ' यह करो, यह मत करो ' इत्यादि । यह भाषा निर्दिष्टकार्य में प्रवर्तक होने से तथा निर्दोष विवक्षा के सद्भाव से असत्यामृषा-स्वरूप है २ । याचनी-" भिक्षा दो " इस प्रकार की याचनस्वरूप भाषा याचनी भाषा है ३ । प्रच्छनी-अविज्ञात-अर्थात्-विना जाने हुए विषय को, अथवा संदिग्ध अर्थात्-संदेहयुक्त विषय को जानने के लिये जो पूछना वह प्रच्छनी भाषा है ४ ।

स्वामीना पुछवाथी लगवान उत्तर दे छे डे डे गौतम पूर्वोक्त प्रकारनी लाया प्रज्ञापनीलाया छे परंतु आ लाया मृषा नथी. आमन्त्रणी वगैरे भाषाओना अर्थ डे छे. आमन्त्रणी-हे साधो ! इत्यादि ! आ डे छे वस्तुनी अविधायक अने अनिषेधक होवाथी, तथा सत्यादि लायात्रयना लक्षणथी रहित होवाथी असत्यामृषा स्वरूप व्यवहार लाया छे. १ आज्ञापनी-पीलने कार्यमां प्रवृत्त करवावाणी लाया आज्ञापनी लाया छे. जेम-आ करो, आ न करो, इत्यादि ! आ लाया निर्दिष्टकार्यमां प्रवर्तक होवाथी तथा निर्दोष विवक्षाना सद्भावथी असत्यामृषा स्वरूप छे. २ याचनी-" भिक्षादो " आ प्रकारनी याचना स्वरूप लाया याचनीलाया छे. ३ प्रच्छनी-अविज्ञात, अर्थात् जणया वगरना विषयनी अथवा-संदिग्ध अर्थात्-संदेहयुक्त विषयने जणवा भाटे जे पूछुं ते पुछनि लाया छे. ४ प्रज्ञापनी-शिष्यने उप-

प्रज्ञापनी-चिनयस्योपदेशदानरूपा, अर्थबोधिका भाषा, यथा-हिंसाप्रवृत्तो-
ऽनन्तदुःखभागी भवति ” इत्यादि । यथा या-प्राणिवधान्निवृत्ताः प्राणिनो भवे
भवे दीर्घायुषो नीरोगाश्च भवन्ति । उक्तञ्च--

पाणिवहाउ नियत्ता, ह्वन्ति दीहाउ या अरोगा य ।

एस मई पन्नत्ता, पन्नवणी वीयरगेहिं ॥ १ ॥ ५ ॥

छाया-प्राणिवधाद् निवृत्ता, भवन्ति दीर्घायुषः अरोगाश्च ।

एषा मतिः प्रज्ञप्ता, प्रज्ञापनी वीतरागेः ॥ १ ॥

प्रत्याख्यानी-भाषा-याचमानस्य प्रतिषेध वचनम् । यथा-मर्यादातिरिक्तं वस्त्रं
पात्रं वा याचमानं शिष्यं प्रति गुरुर्ददति--“अधिकं वस्त्रं पात्रं वा न दीयते” इति ॥६॥

प्रज्ञापनी-शिष्य को उपदेश देने स्वरूप जो भाषा होती है कि जिससे
उसे अर्थ का अवबोध होता है उसका नाम प्रज्ञापनी भाषा है । जैसे--“ जो
हिंसा में प्रवृत्त होता है वह अनन्त दुःख का भागी होता है ” अथवा
जो प्राणिवध से दूर रहते हैं वे भव भव में दीर्घ आयु पाते हैं तथा
निरोग शरीर होते हैं ५ । उक्तञ्च--

“ पाणिवहाउ नियत्ता, ह्वन्ति दीहाउया अरोगा य ।

एस मई पन्नत्ता, पन्नवणी वीयरगेहिं ॥ ”

प्रत्याख्यानी-गुरु महाराज के पास याचना करते हुए शिष्य के
लिये जो निषेधात्मक भाषा का प्रयोग होता है वह प्रत्याख्यानी भाषा है,
जैसे-मर्यादा से अतिरिक्त वस्त्र एवं पात्र को याचने वाले शिष्य को
गुरु महाराज कहते हैं कि-मर्यादा से अधिक वस्त्र व पात्र नहीं दिया
जाता है ” इत्यादि ६ । इच्छानुलोमा-प्रतिपादन करने वाले की अर्थात्

द्वेष आपणा स्वरूप के भाषा होय छे ते केनाथी तेने अर्थने अवबोध थाय छे.
अेतुं नाम प्रज्ञापनीभाषा छे केम--“ के हिंसाभां प्रवृत्त भने छे ते अनन्त
दुःखने भागी थाय छे ” अथवा के प्राणी वधथी दूर रहे छे ते लवोलवभां
दीर्घायु लोगवे छे तथा शरीरे निरोगी रहे छे. ५ कलुं छे के--

“ पाणिवहाउ नियत्ता, ह्वन्ति दीहाउ या अरोगा य ।

एस मई पन्नत्ता, पन्नवणी वीयरगेहिं ॥ ”

प्रत्याख्यानी-गुरु महाराजनी पास याचना करनार शिष्यने माटे के
निषेधात्मक भाषाने प्रयोग होय छे ते प्रत्याख्यानी भाषा छे. केम-मर्यादाथी
अतिरिक्त वस्त्र अने पात्रनी याचना करनार शिष्यने गुरु महाराज कडे छे के.
मर्यादाथी वध वस्त्र अने पात्र देवामां आवतुं नथी. (६) इत्यादि ! इच्छानुलोमा-

इच्छानुलोमा-प्रतिपादयितुयां इच्छा तदनुलोमा-तदनुकूला । यथा शुभकार्ये प्रेरितस्य “ एवमस्तु ममाप्यभिप्रेतमेतत् ” एवं रूपा, यथा वा कश्चित् किञ्चित् शुभकार्यमारभमाणः कंचन पृच्छति, स प्राह-‘ भवान् करोतु ममाप्येतदभिप्रेतम् ’ इति । यथा वा-कैनचित् कश्चिदुक्तः-“साधुसकारं गच्छामः” स वदति-एवमस्तु इति॥७॥

अनभिगृहीता-अर्थमनभिगृह्य योच्यते ‘ डित्थादिवत् ’ । अथवा-अनभियहा यत्र न प्रतिनियतार्थावधारणम् । यथा-बहुपुकार्येष्ववस्थितेषु कश्चित् कचन पृच्छति-किमिदानीं करोमि ?, स प्राह-‘ यत् रोचते तत् कुरु ’ इति ॥ ८ ॥

अभिगृहीता-अर्थमभिगृह्य योच्यते-इदं वस्त्रपात्रादिकं धर्मोपकरणम्, अथवा

પ્રેરક કી ઇચ્છા કે અનુકૂલ જો ભાષા વોલી જાતી હૈ વહ ‘ઇચ્છાનુલોમા’ ભાષા હૈ-જૈસે કોઈ કિસી કો કિસી શુભ કાર્ય મેં પ્રેરણા કરે તવ વહ કહે કિ ‘ ટીક હૈ વહ મુજે બી અભિલપિત હૈ ’ । અથવા કોઈ કિસી શુભ કાર્ય કા પ્રારંભ કરતે હુવ કિસી કો પૂછે તો વહ કહે કિ-કરો વહ મુજે બી પસંદ હૈ । અથવા-કોઈ ઈસા કહે-‘ મેં સાધુ કે પાસ જા રહા હું ’ તો સુનને વાલા કહતા હૈ કિ અચ્છા જાઓ ૭ । અનભિગૃહીતા-અર્થશુન્ય-ડિત્થડવિત્થાદિ શબ્દો કા વોલના । અથવા જિસમેં કિસી ઈક અર્થ કા નિશ્ચય ન હો જૈસે-વહુનસે કાર્યોં કે ઉપસ્થિત હોને પર કોઈ કિસો સે જવ વહ પૂછતા હૈ કિ-‘ કહો મેં ઈસ સમય કૌનસા કામ કરું ? ’ તો વહ કહતા હૈ કિ-જો તુમ્હેં રુચે સો કરો ’ । ઈસ પ્રકાર કી ભાષાકા નામ અનભિગૃહીતા ભાષા હૈ ૮ । અભિગૃહીતા-અર્થ કો લક્ષ્ય કરકે જિસ ભાષાકા પ્રયોગ કિયા જાતા હૈ વહ અભિગૃહીતા ભાષા હૈ-જૈસે ‘ યે વસ્ત્ર પાત્રાદિક ધર્મ કે ઉપકરણ હૈં ’ । અથવા ‘ ઈસ

પ્રતિપાદન કરવાવાળાની અર્થાત-પ્રેરકની ઈચ્છાને અનુકૂળ ને લાયા બોલાય છે તે ‘ઇચ્છાનુલોમા’ લાયા છે. જેમ-કોઈ કોઈને કોઈ શુભ કાર્યમાં પ્રેરણા કરે ત્યારે કહે કે ઠીક છે. એ મારી પણ અભિલાષા છે અથવા-કોઈ શુભ કાર્યનો પ્રારંભ કરતાં કોઈને પૂછે તો તે કહે કે-કરો. એ મને પણ પસંદ છે. અથવા કોઈ એમ કહે કે હું સાધુની પાસે જઈ રહ્યો છું તો સાંભળનાર કહે કે, સારું બવ. ૭ અનભિગૃહીતા-અર્થશુન્ય-“ ડિત્થ ડવિત્થાદિ ” શબ્દ બોલવો અથવા જેમાં કોઈ એક અર્થનો નિશ્ચય ન હોય, જેમ-ઘણાં કામે ઉપસ્થિત થતાં કોઈ બીજાને ન્યારે એ પૂછે છે કે, કહો હું આ વખતે કયું કામ કરું, તો તે કહે છે કે, જે તમને રૂચે તે કરો. આ પ્રકારની લાયાતું નામ અનભિગૃહીતા લાયા છે. ૮ અભિગૃહીતા-અર્થનું લક્ષ્ય કરીને ને લાયાનો પ્રયોગ કરવામાં આવે છે તે ‘અભિગૃહીતા’ લાયા છે. જેમ-“ આ વસ્ત્ર પાત્રાદિક ધર્મનાં ઉપકરણ છે ” અથવા ‘ આ સમયે

પ્રજ્ઞાપની-વિનયસ્પોષદંશદાનરૂપા, અર્થવોધિકા ભાષા, યથા-હિંસાપ્રવૃત્તો-
 ઽન્નતદુઃસ્વભાગી ભવતિ ” ઇત્યાદિ । યથા યા-પ્રાણિવધાન્નિવૃત્તાઃ પ્રાણિનો મથે
 મથે દીર્ઘાયુષો નીરોગાથ મવન્તિ । ઉક્તચ--

પ્રાણિવહાઽ નિયત્તા, હવંતિ દીહાઽ યા અરોગા ય ।

एस मई पन्नत्ता, पन्नवणी वीयरामेहिं ॥ १ ॥ ५ ॥

છાયા-પ્રાણિવધાદ્ નિવૃત્તા, મવન્તિ દીર્ઘાયુષઃ અરોગાથ ।

एषा मतिः प्रज्ञप्ता, प्रज्ञापनी वीतरामैः ॥ १ ॥

પ્રત્યાખ્યાનીભાષા-યાચમાનસ્ય પ્રતિષેધ વચનમ્ । યથા-મર્યાદાતિરિક્તં વસ્ત્રં
 પાત્રં વા યાચમાનં શિષ્યં પ્રતિ ગુરુર્વદતિ-“અધિકં વસ્ત્રં પાત્રં વા ન દીયતે” ઇતિ ॥૬॥

પ્રજ્ઞાપનો-શિષ્ય કો ઉપદેશ દેને સ્વરૂપ જો ભાષા હોતી છે કિ જિસસે
 ઉસે અર્થ કા અવવોધ હોતા છે ઉમકા નામ પ્રજ્ઞાપની ભાષા છે । જૈસે-“ જો
 હિંસા મેં પ્રવૃત્ત હોતા છે વહ અનંત દુઃસ્વ કા ભાગી હોતા છે ” અથવા
 જો પ્રાણિવધ સે દૂર રહતે હૈં વે મથ મથ મેં દીર્ઘ આયુ પાતે હૈં તથા
 નિરોગ શરીર હોતે હૈં ૫ । ઉક્તચ-

“પ્રાણિવહાઽ નિયત્તા, હવંતિ દીહાઽયા અરોગા ય ।

एस मई पन्नत्ता, पन्नवणी वीयरामेहिं ॥ ”

પ્રત્યાખ્યાની-ગુરુ મહારાજ કે પાસ યાચના કરતે હુણ શિષ્ય કે
 લિયે જો નિષેધાત્મક ભાષા કા પ્રયોગ હોતા છે વહ પ્રત્યાખ્યાની ભાષા છે,
 જૈસે-મર્યાદા સે અતિરિક્ત વસ્ત્ર એવં પાત્ર કો યાચને વાલે શિષ્ય કો
 ગુરુ મહારાજ કહતે હૈં કિ-મર્યાદા સે અધિક વસ્ત્ર વ પાત્ર નહીં દિયા
 જાતા છે ” ઇત્યાદિ ૬ । ઇચ્છાનુલોમા-પ્રતિપાદન કરને વાલે કી અર્થાત્

દેશ આપવા સ્વરૂપ જે ભાષા હોય છે તે જેનાથી તેને અર્થનો અવબોધ થાય છે.
 એવું નામ પ્રજ્ઞાપનીભાષા છે જેમ-“ જે હિંસામાં પ્રવૃત્ત બને છે તે અનંત
 દુઃખનો ભાગી થાય છે ” અથવા જે પ્રાણી વધથી દૂર રહે છે તે ભવોભવમાં
 દીર્ઘાયુ ભોગવે છે તથા શરીર નિરોગી રહે છે. ૫ કહ્યું છે કે-

“પ્રાણિવહાઽ નિયત્તા, હવંતિ દીહાઽ યા અરોગા ય ।

एस मई पन्नत्ता, पन्नवणी वीयरामेहिं ॥ ”

પ્રત્યાખ્યાની-ગુરુ મહારાજની પાસે યાચના કરનાર શિષ્યને માટે જે
 નિષેધાત્મક ભાષાનો પ્રયોગ હોય છે તે પ્રત્યાખ્યાની ભાષા છે. જેમ-મર્યાદાથી
 અતિરિક્ત વસ્ત્ર અને પાત્રની યાચના કરનાર શિષ્યને ગુરુ મહારાજ કહે છે કે.
 મર્યાદાથી વધુ વસ્ત્ર અને પાત્ર દેવામાં આવતું નથી. (૬) ઇત્યાદિ । ઇચ્છાનુલોમા-

इच्छानुलोमा—प्रतिपादयितुर्था इच्छा तदनुलोमा—तदनुकूल। यथा शुभकार्ये प्रेरितस्य “ एवमस्तु ममाप्यभिप्रेतमेतत् ” एवं रूपा, यथा वा कश्चित् किञ्चित् शुभकार्यमारभमाणः कंचन पृच्छति, स प्राह—‘ भवान् करोतु ममाप्येतदभिप्रेतम् ’ इति। यथा वा-केनचित् कश्चिदुक्तः—“ साधुसकाशं गच्छामः ” स वदति—एवमस्तु इति॥७॥

अनभिगृहीता—अर्थमनभिगृह्य योच्यते ‘ इत्थादिवत् ’। अथवा—अनभिगृह्य यत्र न प्रतिनियतार्थावधारणम्। यथा—बहुपुकार्येष्ववस्थितेषु कश्चित् कचन पृच्छति—किमिदानीं करोमि ?, स प्राह—‘ यत् रोचते तत् कुरु ’ इति ॥ ८ ॥

अभिगृहीता—अर्थमभिगृह्य योच्यते—इदं वस्त्रपात्रादिकं धर्मोपकरणम्, अथवा

प्रेरक की इच्छा के अनुकूल जो भाषा बोली जाती है वह ‘इच्छानुलोमा’ भाषा है—जैसे कोई किसी को किसी शुभ कार्य में प्रेरणा करे तब वह कहे कि ‘ ठीक है यह मुझे भी अभिलषित है ’। अथवा कोई किसी शुभ कार्य का प्रारंभ करते हुए किसी को पूछे तो वह कहे कि—करो यह मुझे भी पसंद है। अथवा—कोई ऐसा कहे—‘ मैं साधु के पास जा रहा हूँ ’ तो सुनने वाला कहता है कि अच्छा जाओ ७। अनभिगृहीता—अर्थशून्य—इत्थदिवत्थादि शब्दों का बोलना। अथवा जिसमें किसी एक अर्थ का निश्चय न हो जैसे—यह तुमसे कार्यों के उपस्थित होने पर कोई किसी से जब यह पूछता है कि—‘ कहो मैं इस समय कौनसा काम करूँ ? ’ तो वह कहता है कि—जो तुम्हें रुचे सो करो’। इस प्रकार की भाषाका नाम अनभिगृहीता भाषा है ८। अभिगृहीता—अर्थ को लक्ष्य करके जिस भाषाका प्रयोग किया जाता है वह अभिगृहीता भाषा है—जैसे ‘ ये वस्त्र पात्रादिक धर्म के उपकरण हैं ’। अथवा ‘ इस

प्रतिपादन करवावाणानी अर्थात्—प्रेरकनी इच्छाने अनुकूल ने लाया जोलाय छे ते ‘इच्छानुलोमा’ लाया छे. नेम—कोई कोई ने कोई शुभ कार्यंभां प्रेरणा करे त्यारे कडे के ठीक छे. ओ मारी पक्ष अलिवाया छे अथवा—कोई शुभ कार्यंभां प्रारंभ करतां कोईने पूछे तो ते कडे के—करे ओ मने पक्ष पसंद छे. अथवा कोई ओम कडे के हुं साधुनी पास न्छे रह्यो छुं तो सांलगनार कडे के, साइं नव. ७ अनभिगृहीता—अर्थशून्य—“ इत्थदिवत्थादि ” शब्द जोलवो अथवा नेभां कोई ओक अर्थने निश्चय न होय, नेम—घण्टां कामे उपस्थित यतां कोई भीजने न्यारे ओ पूछे छे के, कडो हुं आ वषते क्युं काम करूं, तो ते कडे छे के, ने तमने इत्थे ते करे. आ प्रकारनी लापानुं नाम अनभिगृहीता लाया छे. ८ अभिगृहीता—अर्थनुं लक्ष करीने ने लापानो प्रयोग करवाभां आवे छे ते ‘अभिगृहीता’ लाया छे. नेम—“ आ वस्त्र पात्रादिक धर्मंतां उपकरण छे ” अथवा ‘ आ समये

પ્રજ્ઞાપની-ચિનયસ્યોપદેશદાનરૂપા, અર્થવોધિકા ભાષા, યથા-હિંસાપ્રવૃત્તો-
 ઽનન્તદુઃખભાગી ભવતિ ” ઇત્યાદિ । યથા યા-પ્રાણિવધાન્નિટ્ટાઃ પ્રાણિનો મન્વે
 મન્વે દીર્ઘાયુષો નીરોગાશ્ચ ભવન્તિ । ઉક્તશ્ચ--

પાણિવહાઽ નિયત્તા, હવંતિ દીઘાઽ યા અરોગા ય ।

એસ મર્દ પન્નત્તા, પન્નવળી વીયરાગેહિં ॥ ૧ ॥ ૫ ॥

છાયા-પ્રાણિવધાદ્ નિટ્ટા, મવન્તિ દીર્ઘાયુષઃ અરોગાશ્ચ ।

એપા મત્તિઃ પ્રજ્ઞા, પ્રજ્ઞાપની વીતરાગૈઃ ॥ ૧ ॥

પ્રત્યાખ્યાની-ભાષા-યાચમાનસ્ય પ્રતિપેધ વચનમ્ । યથા-મર્યાદાતિરિક્તં વસ્ત્રં
 પાત્રં વા યાચમાનં શિષ્યં પ્રતિ ગુરુર્વદત્તિ-“અધિકં વસ્ત્રં પાત્રં વા ન દીયતે” ઇતિ ॥૬॥

પ્રજ્ઞાપનો-શિષ્ય કો ઉપદેશ દેને સ્વરૂપ જો ભાષા હોતી છે કિ જિસસે
 ઉસે અર્થ કા અવબોધ હોતા છે ઉન્કા નામ પ્રજ્ઞાપની ભાષા છે । જૈસે-“ જો
 હિંસા મેં પ્રવૃત્ત હોતા છે વહ અનન્ત દુઃખ કા ભાગી હોતા છે ” અથવા
 જો પ્રાણિવધ સે દૂર રહતે હૈં વે મન્વ મન્વ મેં દીર્ઘ આયુ પાતે હૈં તથા
 નિરોગ શરીર હોતે હૈં ૫ । ઉક્તશ્ચ--

“ પાણિવહાઽ નિયત્તા, હવંતિ દીઘાઽ યા અરોગા ય ।

એસ મર્દ પન્નત્તા, પન્નવળી વીયરાગેહિં ॥ ”

પ્રત્યાખ્યાની-ગુરુ મહારાજ કે પાસ યાચના કરતે હુણ શિષ્ય કે
 લિયે જો નિપેધાત્મક ભાષા કા પ્રયોગ હોતા છે વહ પ્રત્યાખ્યાની ભાષા છે,
 જૈસે-મર્યાદા સે અતિરિક્ત વસ્ત્ર એવં પાત્ર કો યાચને વાલે શિષ્ય કો
 ગુરુ મહારાજ કહતે હૈં કિ-મર્યાદા સે અધિક વસ્ત્ર વ પાત્ર નહીં દિયા
 જાતા છે ” ઇત્યાદિ ૬ । ઇચ્છાનુલોમા-પ્રતિપાદન કરને વાલે કી અર્થાત્

દેશ આપવા સ્વરૂપ જે ભાષા હોય છે તે જેનાથી તેને અર્થનો અવબોધ થાય છે.
 એનું નામ પ્રજ્ઞાપનીભાષા છે જેમ-“ જે હિંસામાં પ્રવૃત્ત અને છે તે અનન્ત
 દુઃખનો ભાગી થાય છે ” અથવા જે પ્રાણી વધથી દૂર રહે છે તે લવોલવમાં
 દીર્ઘાયુ લોગવે છે તથા શરીરે નિરોગી રહે છે. ૫ કહ્યું છે કે--

“ પાણિવહાઽ નિયત્તા, હવંતિ દીઘાઽ યા અરોગા ય ।

એસ મર્દ પન્નત્તા, પન્નવળી વીયરાગેહિં ॥ ”

પ્રત્યાખ્યાની-ગુરુ મહારાજની પાસે યાચના કરનાર શિષ્યને માટે જે
 નિપેધાત્મક ભાષાનો પ્રયોગ હોય છે તે પ્રત્યાખ્યાની ભાષા છે. જેમ-મર્યાદાથી
 અતિરિક્ત વસ્ત્ર અને પાત્રની યાચના કરનાર શિષ્યને ગુરુ મહારાજ કહે છે કે,
 મર્યાદાથી વધુ વસ્ત્ર અને પાત્ર દેવામાં આવતું નથી. (૬) ઇત્યાદિ ! ઇચ્છાનુલોમા-

इच्छानुलोमा-प्रतिपादपितुर्या इच्छा तदनुलोमा=तदनुकूला । यथा शुभकार्ये प्रेरितस्य “ एवमस्तु ममाप्यभिप्रेतमेतत् ” एवं रूपा, यथा वा कश्चित् किञ्चित् शुभ-कार्यमारभमाणः कंचन पृच्छति, स प्राह-‘ भवान् करोतु ममाप्येतदभिप्रेतम् ’ इति । यथा वा-केनचित् कश्चिदुक्तः-“ साधुसकाशं गच्छामः ” स वदति-एवमस्तु इति॥७॥

अनभिगृहीता-अर्थमनभिगृह्य योच्यते ‘ इत्थ्यादिवत् ’ । अथवा-अन-भिगृह्या यत्र न प्रतिनियतार्थावधारणम् । यथा-बहुपुकार्येष्ववस्थितेषु कश्चित् कचन पृच्छति-किमिदानीं करोमि ?, स प्राह-‘ यत् रोचते तत् कुरु ’ इति ॥ ८ ॥

अभिगृहीता-अर्थमभिगृह्य योच्यते-इदं वस्त्रपात्रादिक धर्मोपकरणम्, अथवा

પ્રેરક કી ઇચ્છા કે અનુકૂલ જો ભાષા વોલી જાતી હૈ વહ ‘ઇચ્છાનુલોમા’ ભાષા હૈ-જૈસે કોઈ કિસી કો કિમી શુભ કાર્ય મેં પ્રેરણા કરે તવ વહ કહે કિ ‘ ટીક હૈ યહ મુજે ભી અભિલપિત હૈ ’ । અથવા કોઈ કિસી શુભ કાર્ય કા પ્રારંભ કરતે હુઃ કિસી કો પૂછે તો વહ કહે કિ-કરો યહ મુજે ભી પસંદ હૈ । અથવા-કોઈ એસા કહે-‘ મેં સાધુ કે પાસ જા રહા હું ’ તો સુનને વાલા કહતા હૈ કિ અચ્છા જાઓ ૭ । અનભિગૃહીતા-અર્થશુન્ય-હિત્યહિત્યાદિ શબ્દો કા વોલના । અથવા જિસમેં કિસી એક અર્થ કા નિશ્ચય ન હો જૈસે-વહુતસે કાર્યો કે ઉપસ્થિત હોને પર કોઈ કિસો સે જવ યહ પૂછતા હૈ કિ-‘ કહો મેં ઇસ સમય કૌનસા કામ કરૂં ? ’ તો વહ કહતા હૈ કિ-જો તુમ્હેં રુચે સો કરો ’ । ઇસ પ્રકાર કી ભાષાકા નામ અનભિગૃહીતા ભાષા હૈ ૮ । અભિગૃહીતા-અર્થ કો લક્ષ્ય કરકે જિસ ભાષાકા પ્રયોગ કિયા જાતા હૈ વહ અભિગૃહીતા ભાષા હૈ-જૈસે ‘ યે વસ્ત્ર પાત્રાદિક ધર્મ કે ઉપકરણ હું ’ । અથવા ‘ ઇસ

પ્રતિપાદન કરવાવાળાની અર્થાત્-પ્રેરકની ઈચ્છાને અનુકૂળ જે ભાષા બોલાય છે તે ‘ઇચ્છાનુલોમા’ ભાષા છે. જેમ-કોઈ કોઈને કોઈ શુભ કાર્યમાં પ્રેરણા કરે ત્યારે કહે કે ઠીક છે. એ મારી પણ અલિલાયા છે અથવા-કોઈ શુભ કાર્યનો પ્રારંભ કરતાં કોઈને પૂછે તો તે કહે કે-કરો એ મને પણ પસંદ છે. અથવા કોઈ એમ કહે કે હું સાધુની પાસે જઈ રહ્યો છું તો સાંભળનાર કહે કે, સાડું બંધ. ૭ અનભિગૃહીતા-અર્થશુન્ય-“ હિત્ય હિત્યાદિ ” શબ્દ બોલવો અથવા જેમાં કોઈ એક અર્થનો નિશ્ચય ન હોય, જેમ-બધાં કામે ઉપસ્થિત થતાં કોઈ બીજાને ત્યારે એ પૂછે છે કે, કહો હું આ વખતે કયું કામ કરું, તો તે કહે છે કે, જે તમને રૂચે તે કરો. આ પ્રકારની ભાષાનું નામ અનભિગૃહીતા ભાષા છે. ૮ અભિગૃહીતા-અર્થનું લક્ષ્ય કરીને જે ભાષાનો પ્રયોગ કરવામાં આવે છે તે ‘અભિગૃહીતા’ ભાષા છે. જેમ-“ આ વસ્ત્ર પાત્રાદિક ધર્મનાં ઉપકરણ છે ” અથવા ‘ આ સમયે

પ્રજ્ઞાપની-ત્રિનયસ્યોપદેશદાનરૂપા, અર્થવૌધિકા ભાષા, યથા-હિંસાપ્રવૃત્તો-
ડનન્તદુઃખભાગી ભવતિ ” ઇત્યાદિ । યથા ત્રા-પ્રાણિવધાન્નિવૃત્તાઃ પ્રાણિનો મરે
મરે દીર્ઘાયુષો નીરોગાશ્ચ ભવન્તિ । ઉક્તશ્ચ--

પાણિવહાઽ નિયત્તા, હવંતિ દીહાઽ યા અરોગા ય ।

એસ મરૂં પન્નત્તા, પન્નવણી વીયરાગેહિં ॥ ૧ ॥ ૫ ॥

છાયા-પ્રાણિવધાઽ નિવૃત્તા, ભવન્તિ દીર્ઘાયુષઃ અરોગાશ્ચ ।

એપા મતિઃ પ્રજ્ઞા, પ્રજ્ઞાપની વીતરાગૈઃ ॥ ૧ ॥

પ્રત્યાખ્યાનીભાષા-યાચમાનસ્ય પ્રતિપેધ વચનમ્ । યથા-મર્યાદાતિરિક્તં વલ્લં
પાત્રં ત્રા યાચમાનં શિષ્યં પ્રતિ ગુરુર્વદત્તિ-“અધિકં વલ્લં પાત્રં ત્રા ન દીયતે” ઇતિ ॥૬॥

પ્રજ્ઞાપનો-શિષ્ય કો ઉપદેશ દેને સ્વરૂપ જો ભાષા હોતી છે કિ જિસસે
ઉસે અર્થ કા અવચોધ હોતા છે ઉત્તકા નામ પ્રજ્ઞાપની ભાષા છે । જૈસે-“ જો
હિંસા મેં પ્રવૃત્ત હોતા છે વહ અનંત દુઃખ કા ભાગી હોતા છે ” અથવા
જો પ્રાણિવધ સે દૂર રહતે છે વે ભવ ભવ મેં દીર્ઘ આયુ પાતે છે તથા
નિરોગ શરીર હોતે છે ૫ । ઉક્તશ્ચ--

“ પાણિવહાઽ નિયત્તા, હવંતિ દીહાઽ યા અરોગા ય ।

એસ મરૂં પન્નત્તા, પન્નવણી વીયરાગેહિં ॥ ”

પ્રત્યાખ્યાની-ગુરુ મહારાજ કે પાસ યાચના કરતે હુણ શિષ્ય કે
લિયે જો નિપેધાત્મક ભાષા કા પ્રયોગ હોતા છે વહ પ્રત્યાખ્યાની ભાષા છે,
જૈસે-મર્યાદા સે અતિરિક્ત વલ્લ એવં પાત્ર કો યાચને વાલે શિષ્ય કો
ગુરુ મહારાજ કહતે છે કિ-મર્યાદા સે અધિક વલ્લ વ પાત્ર નહીં દિયા
જાતા છે ” ઇત્યાદિ ૬ । ઇચ્છાનુલોમા-પ્રતિપાદન કરને વાલે કી અર્થાત્

દેશ આપવા સ્વરૂપ જે ભાષા હોય છે તે જેનાથી તેને અર્થને અવબોધ થાય છે.
એનું નામ પ્રજ્ઞાપનીભાષા છે જેમ-“ જે હિંસામાં પ્રવૃત્ત બને છે તે અનંત
દુઃખને ભાગી થાય છે ” અથવા જે પ્રાણી વધથી દૂર રહે છે તે ભવોભવમાં
દીર્ઘાયુ ભોગવે છે તથા શરીરે નિરોગી રહે છે. ૫ કહ્યું છે કે--

“ પાણિવહાઽ નિયત્તા, હવંતિ દીહાઽ યા અરોગા ય ।

એસ મરૂં પન્નત્તા, પન્નવણી વીયરાગેહિં ॥ ”

પ્રત્યાખ્યાની-ગુરુ મહારાજની પાસે યાચના કરનાર શિષ્યને માટે જે
નિપેધાત્મક ભાષાનો પ્રયોગ હોય છે તે પ્રત્યાખ્યાની ભાષા છે. જેમ-મર્યાદાથી
અતિરિક્ત વલ્લ અને પાત્રની યાચના કરનાર શિષ્યને ગુરુ મહારાજ કહે છે કે.
મર્યાદાથી વધુ વલ્લ અને પાત્ર દેવામાં આવતું નથી. (૨) ઇત્યાદિ । ઇચ્છા મા-

इच्छानुलोमा—प्रतिपादयितुयां इच्छा तदनुलोमा=तदनुकूला । यथा शुभकार्ये प्रेरितस्य “ एवमस्तु ममाप्यभिप्रेतमेतत् ” एवं रूपा, यथा वा कश्चित् किञ्चित् शुभ-कार्यमारभमाणः कंचन पृच्छति, स प्राह—‘ भवान् करोतु ममाप्येतदभिप्रेतम् ’ इति । यथा वा-केनचित् कश्चिदुक्तः—“ साधुसकाशं गच्छामः ” स वदति—एवमस्तु इति ॥ ७ ॥

अनभिगृहीता—अर्थमनभिगृह्य योच्यते ‘ वित्थादिवत् ’ । अथवा—अन-भिग्रहा यत्र न प्रतिनियतार्थावधारणम् । यथा—बहुपुकार्येष्ववस्थितेषु कश्चित् कचन पृच्छति—किमिदानीं करोमि ?, स प्राह—‘ यत् रोचते तत् कुरु ’ इति ॥ ८ ॥

अभिगृहीता—अर्थमभिगृह्य योच्यते—इदं वस्त्रपात्रादिकं धर्मोपकरणम्, अथवा

પ્રેરક કી ઇચ્છા કે અનુકૂલ જો ભાષા વોલી જાતી હૈ વહ ‘ઇચ્છાનુલોમા’ ભાષા હૈ—જૈસે કોઈ કિમી કો કિમી શુભ કાર્ય મેં પ્રેરણા કરે તવ વહ કહે કિ ‘ ટીક હૈ યહ સુદ્ધે મી અભિલપિત હૈ ’ । અથવા કોઈ કિસી શુભ કાર્ય કા પ્રારંભ કરતે દુઃખ કિસી કો પૂછે તો વહ કહે કિ—કરો યહ સુદ્ધે મી પસંદ હૈ । અથવા—કોઈ એસા કહે—‘ મેં સાધુ કે પાસ જા રહા હું ’ તો સુનને વાલા કહતા હૈ કિ અચ્છા જાઓ ૭ । અનભિગૃહીતા—અર્થશૂન્ય—વિત્થલવિત્થાદિ શબ્દો કા વોલના । અથવા જિસમેં કિસી એક અર્થ કા નિશ્ચય ન હો જૈસે—બહુતસે કાર્યો કે ઉપસ્થિત હોને પર કોઈ કિસો સે જવ યહ પૂછતા હૈ કિ—‘ કહો મેં ઇસ સમય કૌનસા કામ કરું ? ’ તો વહ કહતા હૈ કિ—જો તુમ્હેં રુચે સો કરો ’ । ઇસ પ્રકાર કી ભાષાકા નામ અનભિગૃહીતા ભાષા હૈ ૮ । અભિગૃહીતા—અર્થ કો લક્ષ્ય કરકે જિસ ભાષાકા પ્રયોગ કિયા જાતા હૈ વહ અભિગૃહીતા ભાષા હૈ—જૈસે ‘ યે વસ્ત્ર પાત્રાદિક ધર્મ કે ઉપકરણ હૈ ’ । અથવા ‘ ઇસ

પ્રતિપાદન કરવાવાળાની અર્થાત્-પ્રેરકની ઇચ્છાને અનુકૂળ જે ભાષા બોલાય છે તે ‘ઇચ્છાનુલોમા’ ભાષા છે. જેમ-કોઈ કોઈને કોઈ શુભ કાર્યમાં પ્રેરણા કરે ત્યારે કહે કે ઠીક છે. એ મારી પણ અભિલાષા છે અથવા-કોઈ શુભ કાર્યનો પ્રારંભ કરતાં કોઈને પૂછે તો તે કહે કે-કરો. એ મને પણ પસંદ છે. અથવા કોઈ એમ કહે કે હું સાધુની પાસે જઈ રહ્યો છું તો સાંભળનાર કહે કે, સારું જાવ. ૭ અનભિગૃહીતા-અર્થશૂન્ય-“ વિત્થલવિત્થાદિ ” શબ્દ બોલવો અથવા જેમાં કોઈ એક અર્થનો નિશ્ચય ન હોય, જેમ-બધાં કામે ઉપસ્થિત થતાં કોઈ વીળને બ્યારે એ પૂછે છે કે, કહો હું આ વખતે કયું કામ કરું, તો તે કહે છે કે, જે તમને રૂચે તે કરો. આ પ્રકારની ભાષાનું નામ અનભિગૃહીતા ભાષા છે. ૮ અભિગૃહીતા-અર્થનું લક્ષ્ય કરીને જે ભાષાનો પ્રયોગ કરવામાં આવે છે તે ‘અભિગૃહીતા’ ભાષા છે. જેમ-“ આ વસ્ત્ર પાત્રાદિક ધર્મનાં ઉપકરણ છે ” અથવા ‘ આ સમયે

—પ્રતિનિયતાર્થવિધારણમ્ । યથા—ઇદમિદાનીં કર્તવ્યમ્, ઇદં ન કર્તવ્યમિતિ ॥૧॥

સંશયકરણી—યાડનેકાર્થપ્રતિપત્તિકરી સા । યા ભાષા અનેકાર્યાભિધાયિ તયા પરસ્ય સંશયમુત્પાદયતિ, યથા—સૈન્ધવમાનયેત્યત્ર સૈન્ધવશબ્દો નરજ્ઞવળ- વાજિવાચકત્વેન સંશયોત્પાદકઃ ॥ ૧૦ ॥

વ્યાકૃતા—યા પ્રકટાર્થા । યથા—અહિંસા—સર્વકલ્યાણકારિણી ॥ ૧૧ ॥

અવ્યાકૃતા—અતિગંભીરશબ્દાર્થા, અવ્યક્તાક્ષરપયુક્તા વા, યથા— “સંયત-સ્ય મહત્પાપં પ્રતિક્રમણકર્મણા” । ઇત્યાદિ, યથા વા મમ્મગાદિ વાલભાષા ॥ ૧૨ ॥ ઇપા=આમન્ત્રણ્યાદિકા ભાષા પ્રજ્ઞાપની સ્વલુ-પ્રજ્ઞાપ્યતે પ્રકટી ક્રિયતેડર્થોડનયેતિ પ્રજ્ઞાપની અર્થકથની, સા ભાષણીયા ઇત્યર્થઃ । નૈપા ભાષા મૃષા

સમય ગ્રહ કરના ચાહિયે, ગ્રહ નહીં કરના ચાહિયે ’ ૦ । સંશયકરણી- જિસ ભારા સે સુનને ચાલેકો અનેક અર્થોં કી પ્રતિપત્તિ હોને લગે ઉસ ભાષા કા નામ સંશયકરણી ભાષા હૈ, જૈસે-કિસી ને કહા કિ-‘સૈન્ધવ લાઓ’ ગ્રહ સૈન્ધવ શબ્દ પુરુપ, લવળ ઓર ઘોડે રુપ અર્થોં કા પ્રતિપાદક હૈ, અતઃ સુનને વાલે કો સંશય જનક હો જાતા હૈ ૧૦ । વ્યાકૃતા- જિસકા અર્થ સ્પષ્ટ હોતા હૈ વહ વ્યાકૃતા ભાષા હૈ જૈસે-“અહિંસા સર્વ પ્રકાર સે કલ્યાણ કરને વાલી હૈ” ૧૧ । અવ્યાકૃતા-અતિગંભીર શબ્દાર્થવાલી ભાષા અવ્યાકૃતા ભાષા હૈ । અથવા-જો અવ્યક્ત અક્ષર સે યુક્ત હોતી હૈ વહ ભાષા અવ્યાકૃતા ભાષા હૈ જૈસે-“સંયત-સ્ય મહત્પાપં પ્રતિક્રમણકર્મણા” પ્રતિક્રમણ કર્મ સે સંયત કો વડા ભારી પાપ લગતા હૈ । યહાં પર જવ “સ્ય” કો ક્રિયાપદ માન લિયા જાતા હૈ તવ ઇસકા

આ કરવું જોઈએ, આ ન કરવું જોઈએ.” ૯ સંશયકરણી-જે ભાષાર્થી સાંભળનારને અનેક અર્થોના આભાસ થવા લાગે તે ભાષાનું નામ સંશયકરણી ભાષા છે. જેમ કોઈએ કહ્યું કે—“સૈન્ધવ લાઓ” આ સૈન્ધવ શબ્દ પુરુષ મીઠું અને ઘોડાડૂપ અર્થોના પ્રતિપાદક છે. આથી સાંભળવાવાળાને પ્રકરણુદિના આભાવમાં સંશયજનક બને છે. એ માટે પ્રકરણુ સમજીને આ ભાષા બોલવામાં દોષ નથી કેમકે, તે વ્યવહારુ ભાષા છે. ૧૦ વ્યાકૃતા-જેનો અર્થ સ્પષ્ટ થાય છે તે વ્યાકૃત ભાષા છે. જેમ—“અહિંસા” સર્વ પ્રકારથી કલ્યાણુ કરવાવાળી છે.” ૧૧ અવ્યાકૃતા અતિ ગંભીર શબ્દાર્થવાળી ભાષા અવ્યાકૃતા ભાષા છે. અથવા-જે અવ્યક્ત અક્ષરથી યુક્ત હોય છે તે ભાષા અવ્યાકૃતા ભાષા છે. જેમ—

સંયત-સ્ય મહત્પાપં પ્રતિક્રમણા કર્મણા—

પ્રતિક્રમણુ કર્મથી સંયતને મોઠું ભારે પાપ લાગે છે, અહિં જ્યારે “સ્ય” ને ક્રિયાપદ માનવામાં આવે ત્યારે એનો અર્થ એવો થાય છે કે, હે

-एषा भाषा मृषा अवक्तव्या नेत्यर्थः । पञ्चकर्तुरयमभिप्रायः-‘ आशयिष्यामहे ’ इत्यादिका भाषा भविष्यत्कालविषया, साचान्तरायसंभवेन कदाचिदर्थभिधायिनी न स्यात् । तथा एकार्थविषयाऽपि बहुवचनान्ततयाऽभिहिता तस्मादयथार्था । तथा-आमन्त्रणीप्रभृतिका, सत्यभाषावदर्थे नियता नास्ति विधिप्रतिषेधबोधकत्वाभावात्, अतः किमियं वक्तव्या स्यात्, उत न ? इति ।

अर्थ ऐसा होता है कि हे संयत ? प्रतिक्रमण कर्म से तुम अपने पापोंका क्षय करो । यह बोध शीघ्र नहीं हो सकता है, अतः इसे अव्याकृत भाषा कहा है । अथवा-बालककी भाषाको अव्याकृत भाषा कहते हैं १२ । ये सब भाषायें प्रज्ञापनी हैं, यह प्रज्ञापनी भाषा मृषास्वरूप नहीं है । पञ्च करने वालेका कहने का हेतु यह है-जब यह कहा जाता है कि हम ‘शयनकरेंगे’ इत्यादि, तब यह भाषा भविष्यत् काल को विषय करने वाली होने से अर्थकी पूर्ति में असमर्थ जान पड़ती है, कारण कि अन्तराय कर्म के उदय की संभावना होने से उस विवक्षित अर्थकी कदाचित् पूर्ति न भी हो सके तो फिर जिस प्रकार मृषाभाषा अर्थको कहनेवाली नहीं मानी जाती है उसी प्रकार यह भाषा भी अनर्थाभिधायिनी मान लेना चाहिये तथा “हम शयनकरेंगे” इस कथनमें “मैं शयनकरूंगा” इस एक वचन के ही प्रयोग में बहुवचन का प्रयोग किया गया है । जैसे एक को अनेक कहनेवाली भाषा अयथार्थ मानी जाती है । उसी प्रकार यह भी अयथार्थ मानी जानी चाहिये । इसी तरह आमन्त्रणी भाषा भी सत्य भाषाकी तरह अर्थ में नियत नहीं है, क्योंकि इनमें विधि एवं प्रतिषेध की बोधकता का अभाव है, इसलिये यह संदेह होता है कि यह बोलने के योग्य है अथवा नहीं है । इस प्रकारकी आशंका का यह उत्तर है कि

संयत ! प्रतिक्रमण कर्मधी तमे तमारं पापानो क्षय करो. आ बोध जवही धर्ष शकतो नथी आधी आने अव्याकृता भाषा कडेवाभां आवे छे. अथवा-णाणकनी भाषाने अव्याकृत भाषा कडेवाभां आवे छे. १२ आ अधी भाषा प्रज्ञापनी छे. आ प्रज्ञापनी भाषा मृषा स्वप्ननी नथी. पञ्च करनारना कडेवानो मतलब ओ छे के, न्यारे ओम कडेवाभां आवे छे के, “अमे सुध ओ छीओ” आ कथनभां “हुं सुठं हुं” आ ओक वचनना प्रयोगभां बहु वचनना प्रयोग करवाभां आवेल छे. जेभ ओकने अनेक कडेवावाणी भाषा अयथार्थ मानवाभां आवे छे ओ रीते पण अयथार्थ मानवी जेध ओ आ रीते आमन्त्रणी भाषाओ पण सत्य भाषानी जेभ अर्थभां नियत नथी केमके, अनाभां विधि आने प्रतिषेधनी बोधकतानो अभाव छे. आ भाटे ओ संदेह थाय छे, ओ बोलवाने योग्य छे,

અત્રોત્તરમાહ—હંતા । इत्यादि । ‘ हन्त ’ इति स्वीकारार्थकः, अयं भावः—
 ‘ आशयिष्यामहे ’ ‘ शयिष्यामहे ’ इत्यादिका भाषा निश्चयात्मकशब्दप्रयोग-
 भावान्नास्ति निश्चयात्मिका, या तु—‘ आशयिष्यामहे एव ’ ‘ शयिष्यामहे एव ’
 इत्यादिका निश्चयात्मिका सैवान्तरायसंभवाद् भविष्यत्कालविषया भाषा मृषा-
 भवितुमर्हति । ‘ आशयिष्यामहे ’ इत्यादौ तु—शयनादिक्रियायां वक्तुरभिप्रायः
 “शयनादिक्रियाकरणस्य भावो मम वर्तते” इत्यादि रूपः सत्य एवास्तीति भवति
 प्रज्ञापनी । एकार्थत्रिपये बहुवचनाभिधानमपि आत्मनि गुरौ च शास्त्रानुमतं,
 तस्माद् बहुवचनान्ततया प्रयुक्ताऽपि प्रज्ञापन्येव भवति । एवमामन्त्रण्यादिकाऽपि ।

“ आश्रयिष्यामहे ” इत्यादिक भाષાણે નિશ્ચયાત્મક શબ્દ કે પ્રયોગ કે અભાવ સે નિશ્ચયાત્મક નહીં હૈં । યે નિશ્ચયાત્મક જવ હી માની જાતી હૈં કિ જવ इनके साथ निश्चयात्मक शब्दका प्रयोग किया हुआ होता है । जैसे—आश्रयिष्यामहे एव, शयिष्यामहे एव” इस प्रकारकी निश्चया-
 त्मक भाषा में जो कि भविष्यत् कालको विषय करनेवाली हो अन्तराय
 कर्म के उदय से अपने अर्थकी पूर्ति की निश्चितता संदिग्ध रहती है अतः
 वही भाषा मृषावाद रूप मानी जाती है । “ आश्रयिष्यामहे ” इत्यादि
 भाषा में तो शयनरूप क्रिया करने का भाव ही केवल वक्ता का रहा
 हुआ है अतः उस अपेक्षा वह सत्य ही है । इसी अर्थ को मन में रख
 कर मुनिराज भविष्यत्काल के अर्थ में भाव शब्द का प्रयोग करते हैं,
 जैसे—‘ कल स्वाध्याय करने का भाव है ’ अथवा—‘ तपस्या करने का
 भाव है ’ इत्यादि । एकवचन में भी व्याकरणसिद्धान्त के अनुसार

અથવા નથી એ પ્રકારની આશંકાને આ ઉત્તર છે કે, “ આશયિષ્યામહે ” ઈત્યાદિક
 ભાષાઓ નિશ્ચયાત્મક નથી. અને નિશ્ચયાત્મક ત્યારે જ માનવામાં આવે
 કે ત્યારે એની સાથે નિશ્ચયાત્મક શબ્દનો પ્રયોગ કરવામાં આવેલ હોય
 જેમ આશયિષ્યામહે એવ શયિષ્યામહે એવ—આ પ્રકારની નિશ્ચયાત્મક ભાષામાં
 કે જે ભવિષ્યત્ કાળનો વિષય કરવાવાળી હોય અંતરાય કર્મના ઉદયથી
 તેના અર્થની પૂર્તિની નિશ્ચિતતા સંદિગ્ધ રહે છે. આથી તે ભાષા મૃષા-
 વા: રૂપ માનવામાં આવે છે. “ આશયિષ્યામહે ” ઈત્યાદિ ભાષામાં તો કહેનારનો
 સુવાની ક્રિયા કરવાનો ભાવ જ ક્ષત રહેલ છે. આથી એ અપેક્ષાથી તે સત્ય
 જ છે. આ જ અર્થને મનમાં રાખી મુનિરાજ ભવિષ્યકાળના અર્થમાં ભાવ શબ્દનો
 પ્રયોગ કરે છે. જેમ—‘ કાલે સ્વાધ્યાય કરવાનો ભાવ છે ’ અથવા “ તપસ્યા
 કરવાનો ભાવ છે ” ઈત્યાદિ ! એક વચનમાં પણ વ્યાકરણ સિદ્ધાંતની

યા નિરવધપુરુષાર્થસાધની સા પ્રજ્ઞાપન્યેવ । યથા “ હે સાધો ! ” “ ઇદં કુરુ ” “ ઇદં મા કુરુ ” ઇત્યાદિકા । સા તુ ભાષણીયૈવેતિ ।

ભાષાદોષ=સાવધ્યાનુમોદનાદિકં, મૃષા-કર્કશાઽસમ્યક્શબ્દોચ્ચારણાદિકં ચ, પરિહરેત્ । ચ-પુનઃ, માયાં સદા=સર્વકાલં પરિવર્જયેત્ ।

અત્ર માયામિત્યુપલક્ષણમ્, ક્રોધમાનલોભાનાં કપાયાણામ્ । સર્વાન્ કપાયાન્ પરિવર્જયેદિત્યર્થઃ । કપાયાણાં મૃષાભાષણહેતુત્વાત્, કપાયવર્જને સતિ મૃષાભાષણપરિહારઃ સુતરાં સ્યાદિતિ ભાવઃ ॥ ૨૪ ॥

વહુવચન કા પ્રયોગ હો જાતા હૈ । વહાં કહાગયા હ કિ અપને મેં एवं ગુરુ મેં વહુવચન કા પ્રયોગ કરના નિર્દોષ હૈ, ઇસલિયે એક મેં મી વહુવચનનત્તરૂપ સે પ્રયુક્ત ભાષા પ્રજ્ઞાપની હી ભાષા હૈ । ઇસી તરહ આમન્ત્રણી આદિ ભાષાએ મી જો નિરવધ પુરુષાર્થ કી સાધક હોતી હૈં વે પ્રજ્ઞાપની હી હૈં । જેસે-“ હે સાધો । ” “ યહ કરો યહ મત કરો ” ઇત્યાદિ ।

સાવધ કર્મ કી અનુમોદના આદિ કરના યહ ભાષા દોષ હૈ । ઇસી પ્રકાર કર્કશ एवं કઠોર શબ્દ કા ઉચ્ચારણ કરના આદિ મી મૃષા ભાષા મેં હી અન્તર્હિત હૈ । માયા શબ્દ ઉપલક્ષણ હૈ । ઇસલિયે ક્રોધાદિક કપાય કે વિષય મેં મી સમજ્ઞ લેના ચાહિયે, ક્યોં કિ કપાય કે આવેશ સે હી મૃષાભાષણ હોતા હૈ । ઇનકે પરિવર્જન સે મૃષાભાષાકા પરિવર્જન હો જાતા હૈ । અતઃ ભાષાદોષ एवं માયા કા સદા કાલ પરિત્યાગ કર દેના ચાહિયે ॥ ૨૪ ॥

બહુ વચનને પ્રયોગ થઈ જાય છે, આથી એ બતાવાયું છે કે, પોતાનામાં અને ગુરુ મહારાજમાં બહુ વચનને પ્રયોગ કરવો નિર્દોષ છે. આ માટે એકમાં પણ બહુવચનનતરૂપથી પ્રયુક્ત ભાષા પ્રજ્ઞાપની ભાષા જ છે આ રીતે આમન્ત્રણી આદિ ભાષાએ પણ જે નિરવધ પુરુષાર્થની સાધક હોય છે તે પ્રજ્ઞાપની જ છે. જેમ-“ હે સાધો ! ” “ આ કરો, આ ન કરો, ” ઇત્યાદિ !

સાવધ-કર્મની અનુમોદના આદિ કરવી એ ભાષા દોષ છે. આ પ્રકારે કર્કશ અને કઠોર શબ્દનું ઉચ્ચારણ કરવું આદિ પણ મૃષાભાષામાં જ અન્તર્હિત છે. માયા શબ્દ ઉપલક્ષણ છે આ માટે ક્રોધાદિક કપાયના વિષયમાં પણ સમજવું જોઈએ. કેમકે, કપાયના આવેશથી જ મૃષાભાષણ થાય છે. તેના ત્યાગથી મૃષા ભાષાને ત્યાગ થાય છે. આથી ભાષાદોષ અને માયાને સદાકાળ પરિત્યાગ કરી દેવો જોઈએ. (૨૪)

मूलम्—ने लवेज्जं पुट्टो सावज्जं, न निरट्टं न मम्मयं ।

अप्यणट्टा परंट्टा वो, उभयस्संतरेणो वो ॥ २५ ॥

छाया—न लपेत् पृष्टः सावद्यं, न निरर्थं न मर्मगम् ।

आत्मार्थं परार्थं वा, उभयस्य अन्तरेण वा ॥ २५ ॥

टीका—‘न लवेज्जं’ इत्यादि । पृष्टः=केनचित्, सावद्यं—अवद्येन—पापेन सह वर्तते इति सावद्यं—सदोषं वचनं न लपेत्=न वदेत्, सावद्यवचनं हि रागद्वेषादिदुर्गुणनिधानं सकलास्त्रनिदानम्, आत्मसमाधिप्रियुषिधुंतुदस्वरूपं, गुणवृक्षसमूलोन्मूलने प्रचण्डझंझावातरूपं, कृपायत्रिपवल्लीवर्धकं, पद्मजीविकायापमर्दकम् ।

न लवेज्जं इत्यादि—

अन्वयार्थ—(पुट्टो सावज्जं न लवेज्जं-पृष्टः सावद्यं न लपेत्) किसी के द्वारा पूछे जाने पर सावद्य-पापयुक्त वचन नहीं बोलना चाहिये । (न निरट्टं न मम्मयं—न निरर्थकं न मर्मगं) निरर्थक वचन नहीं बोलना चाहिये । मर्म उद्घाटक वचन नहीं बोलना चाहिये । (अप्यणट्टा परंट्टा वा उभयस्संतरेण वा सावज्जं न लवेज्जं-आत्मार्थं परार्थं वा उभयस्यान्तरेण वा सावद्यं न लपेत्) अपने निमित्त अथवा पर के निमित्त तथा उभय-स्व पर के निमित्त और बिना प्रयोजन के (व्यर्थ) भी सावद्य वचन नहीं बोलना चाहिये । क्यों कि—सावद्य वचन राग द्वेष आदि दुर्गुणों का निधान है, समस्त आस्त्रों का निदान-कारण है, आत्मसमाधिरूप चन्द्रमा को ग्रसन करने में राहुसमान है, गुणरूप वृक्षों को जड़ से उखाड़ने में प्रचण्ड झंझावात समान है, तथा कषाय-

न लवेज्जं इत्यादि—

अन्वयार्थ—पुट्टो सावज्जं न लवेज्जं-पृष्टः सावद्यं न लपेत्—कोईना पुछवाधी पापयुक्त सावद्य वचन बोलवुं नोर्धये नडीं. न निरट्टं न मम्मयं—न निरर्थकं न मर्मगं निरर्थक वचन बोलवुं न नोर्धये न भर्तुद्धारक वचन बोलवुं न नोर्धये.

अप्यणट्टा परंट्टा वा उभयस्संतरेण वासावज्जं न लवेज्जं—

आत्मार्थं परार्थं वा उभयस्यान्तरेण वा सावद्यं न लपेत्—

योताना निमित्त अथवा भीलना निमित्त तथा अरसपरसना निमित्त अने वगर प्रयोजन (व्यर्थ) सावद्य वचन न बोलवां नोर्धये.

डेभके, सावद्य वचन राग द्वेष आदि दुर्गुणानुं निधान छे, समस्त आश्रवोतुं कारण छे, आत्मसमाधि रूप चन्द्रमानुं अडवु असित करवाभां राहुं समान छे, शुषुक्ष्ण वृक्षने लडथी उभेडवाभां प्रखंड अंजावात समान छे. तथा

सावद्यवचनभाषणदृष्टान्तः—

निरवद्यभाषानभिज्ञः कश्चिदश्वपतिर्लक्ष्मूल्यकमर्थं विक्रेतुं कस्मिंश्चिन्नगरे-
जगाम । तत्राकस्मादश्वपतिदस्तादश्वो निर्मुक्तः सन् धावति । धावन्तमश्वं परिग्रहीतुं
तत्पृष्ठतोऽश्वपतिरपि धावति । तं परिग्रहीतुमशक्तोऽसौ धावनात् परिश्रान्तः कोपा-
वेशेन तदानीं स्वाभिमुखमागच्छन्तं कंचिद् भाषादोषानभिज्ञं दण्डहस्तं पुरुषम-
ब्रवीत्-भो ! अश्वोऽयं धावति, एनं मारय मारय, एवमुक्तोऽसौ दण्डेन तमश्वं
मर्मस्थाने ताडितवान् । तदाऽसौ दण्डाघातेन मृतः । अथाश्वपतिस्तं तुरगघातकं
रूप विपलताओं को बढाने में मेघसमान है, एवं पडजीवनिकार्यों का
उपमर्दन करने वाला है ।

सावद्य वचन के बोलने में जीव को क्या हानी उटानी पडती है,
इसे दृष्टान्त द्वारा स्पष्ट किया जाता है.

एक अश्वपति था जो निरवद्य भाषा बोलने का अनभिज्ञ था । वह
एक लाख रुपया की कीमत वाले अपने घोड़े को बेचने के लिये किसी
नगर में आया । वहां आते ही उसके हाथ से वह घोड़ा छूटकर भाग
निकला । भागते हुए उस घोड़े का पीछा करने पर भी वह पकड नहीं
सका । जब यह दौडते र थक गया तो क्रोधके आवेश में आकर इस्ने
एक पुरुष से जो हाथ में दंडा लिये हुए इसकी ही ओर आ रहा था ।
तथा भाषा के दोष से अनभिज्ञ था कहा कि हे भाई देखो यह घोड़ा
जो भाग रहा है इसे मारो मारो । इम प्रकार अश्वपति के कहने पर
उस व्यक्ति ने एक दंडा ऐसा मारा जो उस घोड़े के मर्मस्थान में लगा ।

કપાયરૂપ વિષ લક્ષ્મણને વધારનાર છે, પરંતુ છવ્વીઠાકાયેનું ઉપમર્દન કરનાર છે.

સાવધ વચન બોલવાથી શું અનર્થ થાય છે, તે આ દ્રષ્ટાંત દ્વારા સ્પષ્ટ
કરવામાં આવે છે—

એક અશ્વપતિ હતો, જે નિરવધ ભાષા બોલવામાં અનભિજ્ઞ હતો. તે
એક લાખ રૂપિયાની કિંમતના પોતાના ઘોડાને વેચવા માટે કોઈ એક નગરમાં
ગયો ત્યાં પહોંચતાં જ તેના હાથમાંથી તે ઘોડો છુટીને ભાગી ગયો, ભાગી
રહેલા તે ઘોડા પાછળ તેને હાથ કરવા તે ખૂબ દોડ્યો છતાં પકડી શકાયો
નહીં. બન્યારે તે દોડતાં દોડતાં થાકી ગયો ત્યારે ક્રોધના આવેશમાં આવી એણે એક
પુરુષ, કે જે હાથમાં દંડો લઈને તેની સામે આવી રહ્યો હતો અને તે ભાષાના
દોષથી અનભિજ્ઞ હતો, તેને કહ્યું કે હે ભાઈ ! આ ઘોડો જે ભાગી રહ્યો છે તેને મારો.
આ પ્રકારે એ અશ્વપતિના કહેવાથી પેલા માણસે એક દંડો ઘોડાને એવો માર્યો
કે જે મર્મસ્થાનમાં લાગવાથી તેના પ્રહારના કારણે ઘોડો એજ વખતે મરી ગયો.

गृहीत्वा न्यायालयं गतः । तत्र स न्यायाध्यक्षसंनिधौ वदति—अनेन मम लक्ष्म-
 ल्यकस्तुरगो दण्डाघातेन मारितः। तदा न्यायाध्यक्षेण कथितम्—‘कथय कस्ते साक्षी’
 इति । अश्वपतिर्वृत्ते—अस्यैव पुत्रो मम साक्षी । न्यायाध्यक्षेण पृष्टस्तत्पुत्रोऽवदत्—
 अनेनाश्वपतिना मम पिता निगदितः—“ भो ! तुरगोऽयं धावति, एनं मारय मारय ”
 इति । तदा मम पित्रा दण्डेनास्य तुरगो मारितः । एवं साक्षिभाषणं श्रुत्वा न्याया-
 धीशो मनसि विचारयति—अहो ! सावधभापादोषानभिज्ञतयाऽनेनाश्वपतिना ‘ मारय
 मारय ’ इत्युक्तम् दण्डताडनभयं प्रदर्श्य तुरगं निवर्तयेत्वाशयेनानेन प्रोक्तमेतत् ।

घोडा दंडा के प्रहार से शीघ्र मर गया । जब अश्वपति ने अपने घोडेको
 मरा हुआ देखा तो वह उस मारने वाले को पकडकर न्यायालय ले
 गया । न्यायधीश के समक्ष उसके ऊपर अभियोग (आरोप) लगा ने के
 अभिप्राय से इसने कहा कि इसने मेरा एक लाख रुपये की कीमत का
 घोडा दंडे के प्रहार से मार दिया है । यह सुनकर न्यायधीश ने कहा
 ठीक है । परंतु इसका साक्षी कौन है कहो ! अश्वपतिने कहा कि साहेब !
 इसका पुत्र ही मेरे इस विषय में साक्षी है । न्यायधीश ने उसके पुत्र
 से पूछा—तब पुत्र ने कहा कि स्वयं इस अश्वपति ने ही मेरे पिता से
 घोडे को मारने के लिये कहा था । अतः मेरे पिता ने दंडे के प्रहार से
 इस के घोडे को मारा है । इस प्रकार साक्षी के भाषण को सुनकर
 न्यायधीश ने मन में विचार किया मालूम पडता है कि घोडे का यह
 स्वामी भापा दोष से अनभिज्ञ है । इसलिये इसने “ मारो मारो ”
 ऐसा कहा है । इसके कहने का अभिप्राय केवल उस समय इतना ही
 था की यह दण्डे का भय दिखलाकर उस घोडे को लौटा देवे । इस

न्याये अश्वपतिञ्चै पोताना घोडाने मरथु पाभेदो ज्ञेयो त्पारे ते मार-
 नारने पकडी न्यायालयमां लब्धं गथे, न्यायाध्यक्षिणीं सामे तेना उपर आदेशप
 लगाववाना लावथी तेणुं कहुं के, आ माणुसे मारा अेक लाण इधीयानी डिभ-
 तना घोडाने दंडाना प्रहारथी मारी नापेल छे. आ सांलणीने न्यायाधीशे कहुं
 ठीक छे, परंतु आने साक्षी कोणु छे ते कडे। अश्वपतिञ्चै कहुं के, साडेण !
 तेना पुत्र ज मारा आ विषयमां साक्षी छे. न्यायाधीशे तेना पुत्रने पूछ्युं त्पारे
 पुत्रे कहुं के, आ अश्वपतिञ्चै पोते ज मारा पिताने घोडाने मारवानुं कहुं उतुं.
 आथी मारा पिताने दंडाना प्रहारथी तेना घोडाने मारेव छे. आ प्रकारे साक्षीतुं
 भाषणु सांलणी न्यायाधीशे मनमां विचार करीं के घोडाने आ स्वामी लापा
 दोषथी अनभिज्ञ छे तेपुं ज्ञाय छे, आ माटे तेणुं मारे, मारे ! अेभ
 कडेव छे. आभ कडेवानो अभिप्राय केवण ते समय अेटवो ज उतो के, दंडाने।

इत्थं मनसि विमृश्य न्यायाधीशः सावद्यभाषाभाषिणमन्वपतिं प्राह—त्वया सावद्य-
भाषा प्रोक्ता, तत्कलमेतत् प्राप्तम् । पुनरेवं कदापि कथमपि सावद्यभाषा न
वाच्या ॥ इति । तथा निरर्थम्=अर्थरहितं न लपेत्, यथा—

एष वन्ध्यासुतो याति, खपुष्पकृतशेखरः ।

मृगतृष्णाम्भसि स्नातः, शशश्रृंगधनुर्धरः ॥ १ ॥

પ્રકાર વિચાર કર સાવચ્છ ભાષા ભાષી ઉસ અશ્વસ્વામી સે ન્યાયધીશને
કહા કિ ઇસકા કયા અપરાધ છે ! અપરાધ તો તેરા હી છે । જો તૂને
મારો ૨ ઇસ પ્રકારકી સાવચ્છ ભાષા દ્વારા ઇસે માર ને કે લિયે ઉત્સાહિત
કિયા, ડસીકા યહ ફલ છે । અવ આગે ઇસ વાત કા ધ્યાન રલ્લો કિ
ઇસ પ્રકારકી સાવચ્છ ભાષા ન ચોલી જાય ।

इसी प्रकार निरर्थक भाषा भी नहीं बोलनी चाहिये । जिस भाषा
का कोई अर्थ नहीं होता हो ऐसी भाषा का प्रयोग करना भी वर्जित
बतलाया गया है—जैसे—

एष वन्ध्या सुतो याति । खपुष्पकृतशेखरः ।

मृगतृष्णाम्भसि स्नातः । शशश्रृंग धनुर्धरः ॥ १ ॥

યહ વન્ધ્યા પુત્ર જા રહા છે । ઇસ કે શિર પર આકાશ કે પુષ્પોં કો
માલા છે, તથા યહ મૃગ તૃષ્ણા કે જલ મેં સ્નાન કિયા હુવા છે, ઇસ કે
હાથ મેં શશલે કે સીંગ કા ધનુષ છે । ઇસ પ્રકાર કે વચન નિરર્થક
હોતે હેં । કયોં કિ ન તો વંધ્યા કા કોઈ પુત્ર હોતા છે, ન આકાશ કા

ભય દેખાડી તે ઘોડાને પાછો ફેરવી દે. આ પ્રકારનો વિચાર કરી સાવચ્છ ભાષા-
ભાષી તે અશ્વસ્વામીને ન્યાયાધીશે કહ્યું આનો શું અપરાધ છે, અપરાધ તો તારોજ
છે, જે તેં મારો, મારો ! આ પ્રકારની સાવચ્છ ભાષા દ્વારા તને મારવા માટે
ઉત્સાહિત બનાવ્યો તેનું આ ક્ષણ છે, હવે પછી એ વાત ધ્યાનમાં રાખો કે આ
પ્રકારની સાવચ્છ ભાષા બોલવામાં ન આવે.

આજપ્રકારે—નિરર્થક ભાષા પણ ન બોલવી જોઈ એ. જે ભાષાને કોઈ
અર્થ ન થતો હોય એવી ભાષાને પ્રયોગ કરવો એ નિરર્થક બતાવવામાં
આવેલ છે જેમ—

“ एष वन्ध्या सुतो याति ख पुष्प कृत शेखरः ।

मृगतृष्णाम्भसि स्नातः शशश्रृंग धनुर्धरः ॥ ”

આ વંધ્યાપુત્ર જઈ રહ્યો છે, તેના માથા ઉપર આકાશના પુષ્પોની માળા છે,
તથા એણે મૃગતૃષ્ણાના જળમાં સ્નાન કરેલ છે, એના હાથમાં સસલાના
શીંગળું ધનુષ્ય છે, આ પ્રકારનાં વચન નિરર્થક હોય છે, કેમકે, ન તો વંધ્યા

पृथीत्या न्यायालयं गतः । तत्र स न्यायाध्यक्षसंनिधौ वदति—अनेन मम लक्ष्म-
 ल्यकस्तुरगो दण्डाघातेन मारितः। तदा न्यायाध्यक्षेण कथितम्—‘कथय कस्ते साक्षी’
 इति । अश्वपतिव्रूते—अस्यैव पुत्रो मम साक्षी । न्यायाध्यक्षेण पृष्टस्तत्पुत्रोऽवदत्—
 अनेनाश्वपतिना मम पिता निगदितः—“ भो ! तुरगोऽयं धावति, एनं मारय मारय ”
 इति । तदा मम पित्रा दण्डेनास्य तुरगो मारितः । एवं साक्षिभाषणं श्रुत्वा न्याया-
 धीशो मनसि विचारयति—अहो ! सावद्यभाषादोषानभिज्ञतयाऽनेनाश्वपतिना ‘मारय
 मारय’ इत्युक्तम् दण्डताडनभयं प्रदर्श्य तुरगं निर्वर्तयेत्वाशयेनानेन प्रोक्तमेतत् ।
 घोडा दंडा के प्रहार से शीघ्र मर गया । जब अश्वपति ने अपने घोडेको
 मरा हुआ देखा तो वह उस मारने वाले को पकडकर न्यायालय ले
 गया । न्यायधीश के समक्ष उसके ऊपर अभिप्राय (आरोप) लगा ने के
 अभिप्राय से इसने कहा कि इसने मेरा एक लाख रुपये की कीमत का
 घोडा दंडे के प्रहार से मार दिया है । यह सुनकर न्यायधीश ने कहा
 ठीक है । परंतु इसका साक्षी कौन है कहो ! अश्वपतिने कहा कि साहेब !
 इसका पुत्र ही मेरे इस विषय में साक्षी है । न्यायधीश ने उसके पुत्र
 से पूछा—तब पुत्र ने कहा कि स्वयं इस अश्वपति ने ही मेरे पिता से
 घोडे को मारने के लिये कहा था । अतः मेरे पिता ने दंडे के प्रहार से
 इस के घोडे को मारा है । इस प्रकार साक्षी के भाषण को सुनकर
 न्यायधीश ने मन में विचार किया मालूम पडता है कि घोडे का यह
 स्वामी भाषा दोष से अनभिज्ञ है । इसलिये इसने “मारो मारो”
 ऐसा कहा है । इसके कहने का अभिप्राय केवल उस समय इतना ही
 था की यह दण्डे का भय दिखलाकर उस घोडे को लौटा देवे । इस

न्याये अश्वपतिञ्चे पोताना घोडाने मरषु पायेदो ज्ञेयो त्यारे ते मार-
 नारने पकडी न्यायालमां लर्ष गयो, न्यायाधधीशनी सामे तेना उपर आदेशप
 लगाववाना लावधी तेखे कळुं के, आ माणुसे मारा जेक लागु इधीयानी किंभ-
 तना घोडाने दंडाना प्रहारथी मारी नाजेल छे. आ सांलणीने न्यायाधीशे कळुं
 डीक छे, परंतु आने साक्षी कोणु छे ते कडो. अश्वपतिञ्चे कळुं के, साडेण !
 तेना पुत्र न मारा आ विषयमां साक्षी छे. न्यायाधीशे तेना पुत्रने पूछ्युं त्यारे
 पुत्रे कळुं के, आ अश्वपतिञ्चे पोते न मारा पिताने घोडाने मारवानुं कळुं छंतुं.
 आथी मारा पिताने दंडाना प्रहारथी तेना घोडाने मारेल छे. आ प्रकारे साक्षीपुं
 लापणु सांभणी न्यायाधीशे मनमां विचार कथीं के घोडाने आ स्वामी लापा
 दोषधी अनभिज्ञ छे तेपुं न्याय छे, आ माटे तेखे मारो, मारो ! जेम
 कडेल छे. आम कडेवानी अभिप्राय देवण ते समय जेटेदो न छतो के, दंडाने

મૂર્ખો, એકસ્તુ ભાણ્ડનિર્માણકલામિજ્ઞોઽપિ નૈવ નિર્માતિ । યસ્તુ નાસ્તિ ભાણ્ડનિ-
ર્માતા, તેન ત્રીણિ ભાણ્ડાનિ નિર્મિતાનિ । તત્ર દ્વે સ્ફુટિતે, એકં ન યુજ્યતે । અયો-
જિતે ભાણ્ડે ત્રયસ્તણ્ડુલા રન્ધિતાઃ, તત્રોમ્ભૌ તણ્ડુલાવામરૂપૌ, એકો ન સિધ્યતિ । તેન
ત્રયો વ્રાહ્મણા મોજિતાઃ તત્રોમ્ભૌ વુમુક્ષિતૌ, એકો ન મુઙ્ગ્યતે, એવમેકઃ કથિદાસીદ્
ભૂષતિર્ય આસીદાસીન્નચાસીત્ ।

તથા-મર્મગં=મર્મવાચકં વચનં ન લપેત્ । રહસ્યોદ્ઘાટકં વચનં ન વ્રૂયાદિત્યર્થઃ ।
મર્મગં વચનં હિ હૃદયે શરાઘાતવેદનામિવ વેદનાં જનયતિ, વત્રાઘાત ઇવ મૂર્છયતિ,

નિવાસ ક્વા હી અભાવ યા । જો ગાંઘ જનોં કે નિવાસ સે વિહીન યા
ઉસમેં તીન કુંભાર થે । ઇન મેં દો મૂર્ખ યે ઓર એક વર્તન વનાને કી
કલા મેં નિપુણ યા । પરંતુ યહ વર્તન નહીં વનાતા યા । જો વર્તન વનાને
વાલા નહીં યા-ઉસને તીન વર્તન વનાયે । દો ફૂટે ઓર એક એસા જો
જુહતા નહીં યા । અર્થાત્ કપાલ માલા જિસકી જુદી ૨ થી । ઇસ મેં તીન
ચાવલ પકાયે ગયે । ઇન મેં દો ચાવલ કચ્ચે રહે ઓર એક ચાવલ સીઝા
નહીં । ઉસસે તીન વ્રાહ્મણો કો મોજન કરાયા ગયા । દો વ્રાહ્મણ તો
મૂઁ રહે ઓર એક ને સ્વાયા નહીં । ઇસ પ્રકાર ઇસ કથા મેં કેવલ
નિરર્થક શબ્દોં કા હી પ્રયોગ હુઆ હૈ । ઇસ પ્રકાર કે નિરર્થક વચન
નહીં ચોલના ચાહિયે ।

જિનસે દૂસરોં કે મર્મ કા ઉદ્ઘાટન હોના તો એસે વચન મી નહીં
ચોલના ચાહિયે । જો મર્મોદ્ઘાટક વચન હોતે હૈં વે જિસ પ્રકાર ઘાણ
હૃદય મેં આઘાત પહુંચાતા હૈં, ઉસી તરહ આઘાત પહુંચાતે હૈં । વજ્ર કે

વિહીન હતુ તેમાં ત્રણ કુંભાર રહેતા હતા, જેમાં જે મૂર્ખ હતા અને
એક વાસણ બનાવવાની કળામાં નિપુણ હતો, પરંતુ તે વાસણ બનાવતો ન
હતો. જે વાસણ બનાવનાર ન હતો, તેણે ત્રણ વાસણ બનાવ્યાં. જે કુટ્ટેલાં
અને એક એવું કે જે બેડાતું ન હતું. અર્થાત્ કપાલમાળા જેની જુદી જુદી
હતી, એમાં ત્રણ ચોખા પકવવામાં આવ્યા, જેમાં જે ચોખા કાચા રહ્યા અને
એક ચોખો ચડયો નહીં—એનાથી ત્રણ પ્રાન્કણોને લોજન કરાવવામાં આવ્યું.
જે પ્રાહ્મણ તો ભુખ્યા રહ્યા અને એકે ખાધું નહીં. આ રીતે આ કથામાં કેવળ
નિરર્થક શબ્દોનો જ પ્રયોગ થયો છે. આ પ્રકારનાં નિરર્થક વચન
ન ચોલવાં બેઈએ.

જેનાથી જીવનના મર્મતું ઉદ્ઘાટન થાય એવાં વચન પણ ન ચોલવાં
બેઈએ. જે મર્મોદ્ઘાટક વચન હોય છે, તે જેમ બાણ હૃદયમાં આઘાત
પહોંચાડે છે એજ રીતે આઘાત પહોંચાડે છે. વજ્રના આઘાતથી જે રીતે મૂર્ખો

निरर्थकं वचनं हि वह्निवत् सकलगुणभस्मकारकं, सद्भूतार्यापलापकं, मिथ्या-
र्थप्रतिबोधकं, भवाटवीभ्रामकं, विकल्पनालजनकं, वैराग्यलताविनाशकं, विवेक-
चन्द्रमच्छादकम् ।

अत्र दृष्टान्तः प्रदर्श्यते यथा—

आसीत् कश्चिदेको वसतिनिर्मापको नृपतिः, स आसीदासीन्न चासीत् ।
असद्भावं प्राप्तेन तेन भूपतिना त्रयो ग्रामा निर्मापिताः । तत्र वसतिनिवासिनां
जनानां निर्वासनाद् द्वौ ग्रामौ निर्वासितौ, एकश्च जननिवासाभावादेव वसति-
र्नाभूत् । अथ यत्र जनानां वासो नाभूत् तत्र त्रयः कुम्भकारा आसन् । तेषु द्वौ
कोई पुष्प होता है, न मृगतृष्णा रूपजल कोई भावात्मक पदार्थ है, और
न शशश्रृंग कोई वस्तु है । निरर्थक वचन अग्नि की तरह सकलगुणों
को भस्म करने वाले सद्भूत अर्थ के अपलापक एवं मिथ्या अर्थ के
प्रतिबोधक होते हैं । इनके प्रयोग से प्रयोक्ता भवाटवों में ही भ्रमण
करता रहता है । अनेक प्रकार के विकल्पों का तांता इन निरर्थक वचनों
से आत्मा में उद्भूत होता रहता है । वैराग्यरूपी लता के ये विनाशक
तथा विवेक रूपी चंद्रमा के आच्छादक ये माने गये हैं । इस विषय में
दृष्टांत इस प्रकार है—

कोई एक राजा था जो वस्ति का निर्माण किया करता था । वह
होकर भी नहीं था । उसने अपनी गैर मौजूदगी अवस्था में तीन ग्रामों
की रचना की । दो गाँवों को उसने वहाँ के निवासियों को निकाल कर
बिलकुल उजड़ कर दिये । एक इसलिये उजड़ था कि उसमें जनों के

स्त्रिणे पुत्र डोय छे, न आकाशनुं डोय पुष्प डोय छे, मृगतृष्णुत्प न तौ
डोय भावात्मक पदार्थ छे, अने न तौ ससदाना शिंंग डोय वस्तु छे. निरर्थक वचन
अग्नि भाइक सधगा शुष्णाने लस्म करवावागा सद्भूत अर्थने अपलापक अने
मिथ्या अर्थ करवावागा डोय छे. आवा प्रयोगधी प्रयोक्ता भवाटवीभां न
भ्रमण करता रहे छे. अनेक प्रकारना विकल्पाना तांता आवा निरर्थक वचनेधी
आत्माभां उद्भवता रहे छे, वैराग्यरूपी लताना ओ विनाशक तथा विवेकरूपी
चंद्रमानुं आच्छादन करनार मान्या गया छे.

आ विषयभां आ प्रकारे द्रष्टांत छे.—

डोय ओक राजा डतो, ओ वस्तीनुं निर्माणु कयां करतो डतो, ते डोवा
छतां न डतो, तेषु पोतानी गैरमौजूदगी अवस्थाभां त्रयु गाँवानी रचना करी छे
गाँवने त्यांता रहेवासीयाने त्यांथी काढी सुडी उन्नत बनानी दीधां. ओक ओ
भाटे उन्नत डतुं के त्यां डोय वस्ती न डती. ओ गाँव डोडोना निवासधी.

શ્વશુરગ્રામસમીપસ્ય કૂપસ્ય તટે વિશ્રામાર્થમુપવિષ્ટઃ । તત્ર તદ્ધાર્યયા ચિન્તિતમ્-વિદેશે
 નાનાધિષ્ઠં કૃષ્ટં મયા કયં સોઢવ્યમ્ ? ઇતિ વિમૃશ્ય સા પતિમવ્રવીત્-ગ્રાણનાથ ! માં
 પિપાસા વાધતે । તતોઽર્સૌ શ્રેષ્ઠી માર્યાવચનં નિશમ્ય તત્ર કૂપાદુદકમુદ્રત્તું કૂપા-
 મિમુક્ષં શિરોઽવનતીકરોતિ યાત્રત્, તાવદેવ માર્યયા પૃષ્ઠે હસ્તાઘાતેન કૂપે નિપા-
 તિતઃ । તદનન્તરં સા પિતુર્ગંઢં ગત્વા પિતરમવ્રવીત્-તવ જામાતા ગૃહાત્ વચ્ચિન્નિ-
 ગતસ્તસ્ય નાસ્તિ વાર્તા, અતસ્તવ સમીપે સમાગતાઽસ્મિ ।

उसे अपने श्वशुर का ग्राम मिला । वह वहां गाम के बाहर कुए के पास विश्राम करने के लिये एक तरफ ठहर गया । इतने में उसकी पत्नी ने विचार किया कि-‘ये विदेश जा रहे हैं और मैं भी इनके साथ जा रही हूँ । विदेश में अनेक प्रकार के कष्ट प्राणियों को सहन करने पड़ते हैं मैं उन कष्टों को कैसे सहन करूँगी’ ऐसा विचार कर उसने अपने पति धनगुप्त से कहा कि हे प्राणनाथ ! मुझे इस समय बड़े जोरकी प्यास लग रही है, पति पानी लेने को ज्यों ही कुए पर पहुँचा और पानी भरने लगा कि इतने में पीछे से उस पत्नी ने आकर उसे धक्का मारकर कुए में पटक दिया । बाद में फिर वह अपने पिता के घर जाकर कहने लगी कि हे पिता ! तुम्हारे जमाई न मालूम घर से कहां निकल कर चले गये हैं । मैं ने बहुत तपास कराई परन्तु अभीतक उनकी कोई खबर नहीं मिली है, सो मैं तुम्हारे पास आई हूँ ।

જવા નીકળ્યા ચાલતાં ચાલતાં માર્ગમાં તેના સસરાતું ગામ આવ્યું. તે ત્યાં ગામ બહાર એક કુવા પાસે આરામ કરવા રોકાયા. એ સમયે તેની સ્ત્રીએ વિચાર કર્યો કે, “શેઠ પરદેશ બધ છે અને હું પણ તેમની સાથે બહાં છું પરદેશમાં અનેક પ્રકારના દુઃખો પ્રાણીયોએ સહન કરવાં પડે છે, હું એ દુઃખોને કેમ કરીને સહન કરી શકીશ ” એવો વિચાર કરી તેણે પોતાના પતિ ધનગુપ્તને કહ્યું કે, હે પ્રાણનાથ ! મને અત્યારે ખૂબ જ તરસ લાગી છે, પતિ પાણી લેવા માટે જ્યાં કુવા પર પહોંચ્યા, અને પાણી ભરવા લાગ્યા કે એટલામાં તેની સ્ત્રીએ પાછળથી આવીને તેને ધક્કો મારી કુવામાં હડસેલી દીધો. આ પછી તે પોતાના પિયર પહોંચી અને ત્યાં જઈ કહેવા લાગી કે, હે પિતા ! તમારા જમાઈ કહ્યા વગર કોણ બહુ કેમ ઘેરથી ચાલ્યા ગયા છે, મેં ઘણી તપાસ કરાવી છતાં હજી સુધી તેની કોઈ ભાણ મળી નથી, માટે હું તમારી પાસે આવી છું.

દ્વેપાગ્નિ પ્રજ્વલયતિ, શોકમુત્પાદયતિ, ચારિત્રં ધ્વંસયતિ, ગુણગણં સંહારયતિ, નરકનિગોદાદિદુઃસ્વર્ગતે નિપાતયતિ, નિશિતકૃપાણધારાવન્મર્માણિ કર્તવ્યતિ ।

મર્મગવચનભાષણસ્ય દૃષ્ટાન્તસ્ત્વેવમ્—

આસીદ્ ધનગુપ્તનામા કથિદેકઃ શ્રેષ્ઠી । સ ચૈકદા માર્યામિત્રવીત્-પ્રિયે ! ધનાર્જનાય વિદેશં વ્રજામિ । તયા પ્રોક્તમ્-નાથ ! મયાન્ મામપિ તત્ર નયતુ । સ શ્રેષ્ઠી સહગમનાર્થમનુમતિ પત્ન્યૈ પ્રદત્તવાન્ । ત્તોડસી પત્ન્યા સહ ગચ્છન્ માર્ગે

આઘાત સે જિસ પ્રકાર મૂર્છા આજાતી હૈ ડસી પ્રકાર ઇન વચનો સે ખી પ્રાણી મૂર્ચ્છિત હો જાતા હૈ । યે વચન સદા દ્વેપ રુપી અગ્નિ કો પ્રજ્વલિત કરતે રહતે હૈં ઓર શોક પરમ્પરા કે સંવર્દક હોતે હૈં । ઇન કે સદ્ગાવ મેં ચરિત્ર કા સર્વથા વિનાશ હોતા રહતા હૈ । ગુણગણ કા સંહાર કરકે વે વચન પ્રાણી કો નરક ઇવં નિગોદાદિક કે દુઃસ્વ રુપી સ્વહે મેં ગિરાતે હૈં । જૈસે તીક્ષ્ણ ધાર વાલી તલવાર હર ઇક વસ્તુ કો છેદનભેદન કરતી હૈ ડસી પ્રકાર મર્મગ વચન ખી પ્રાણી કે મર્મસ્થાનોં કોં છેદનભેદન કરતે હૈં ।

હસ વિષય મેં દૃષ્ટાંત હસ પ્રકાર હૈ—

કોઈ ઇક ધનગુપ્ત નામ કા સેઠ થા । ડસને ઇક દિન અપની પત્ની સે કહા કિ હૈ પ્રિયે ! મેં ધન કમાને કે લિયે પરદેશ જાના ચાહના હૂં । સુનકર ડસને કહા કિ હૈ નાથ ! આગ મુજેં ખી સાથ લે તે ચલિયે । પત્ની કી વાત સુનકર ધનગુપ્ત ને ડસે અપને સાથ ચલને કી અનુમતિ દે દી । ધનગુપ્ત પત્ની કો સાથ લેકર પરદેશ નિકલા । ચલતેર માર્ગ મેં

આવી બાથ છે, એ જ રીતે આવા વચનોથી પણ પ્રાણી મૂર્ચ્છિત થઈ બાથ છે. આવાં વચનો હંમેશાં દ્વેશરૂપી અગ્નિને પ્રગટ કરતાં રહે છે અને શોક પરંપરાને ઉત્તેજન કરનાર નિવડે છે. આના સદ્ભાવમાં ચારિત્રનો સર્વથા વિનાશ થતો રહે છે. શુભ સમૂહનો સંહાર કરીને એ વચનો પ્રાણીને નરક અને નિગોદાદિકના દુઃખરૂપી ખાડામાં પાડે છે. જેમ તીક્ષ્ણ ધારવાળી તરવાર હરએક વસ્તુનું છેદન ભેદન કરે છે એજ રીતે માર્મિક વચન પણ પ્રાણીના મર્મસ્થાનોનું છેદન ભેદન કરે છે.

આ વિષયમાં આ પ્રકારનું દૃષ્ટાંત છે.—

કેઈ એક ધનગુપ્ત નામે શેઠ હતા, એણે એક દિવસ પોતાની સ્ત્રીને કહ્યું કે, હે પ્રિયે ! હું ધન કમાવા માટે પરદેશ જવા ઇચ્છું છું. સાંભળીને તેણે કહ્યું, કે હે નાથ ! આપ મને પણ સાથે લેતા બાવ, સ્ત્રીની વાત સાંભળી ધનગુપ્ત શેઠે તેને પોતાની સાથે ચાલવાની અનુમતિ આપી. ધનગુપ્ત સ્ત્રીને સાથે લઈ

व्यजनवीजनं कुर्वती पुरोऽवतिष्ठते । अकस्माद् भास्करकिरणास्तद्भवनजालान्त-
र्गताः श्रेष्ठिमुखोपरि निपतन्तस्तया दृष्टाः । पत्युर्मुखे भास्कर कः स्पर्शजनितस्तापो
सा भूदिति भावनया सा सत्वरं निजकरद्वयं भास्कर किरणसंमुखेकृत्वा श्रेष्ठिमुखो-
परि मूर्यकिरणान् निवारयति ।

अकस्मात्तदैव पत्नीकृतं पूर्ववृत्तं श्रेष्ठिना स्मृतम् । श्रेष्ठी मनसि चिन्तयति-
“अहो ययाहं रूपे निपातितः सैवेयमधुना मम सूर्यररस्पर्शजनितं तापं निवारयति”
इत्येवं विचारयतस्तस्य श्रेष्ठिनो मुखे हास्यं समजनि । तदा तत्पुत्रवधूर्हसन्तं श्रेष्ठी-
नमकस्मादपश्यत् । सा पत्युः समीपमागत्य वदति-नाथ ! भवतः पिता श्वश्रूसमक्षं

कि धनगुप्त अपने रंगभवन में बैठा हुआ भोजन कर रहा था । और पत्नी उस के ऊपर पंखा कर रही थी । धनगुप्त के चहरे पर अकस्मात् सूर्य की किरणों मकान की छत के छिद्रों में से आकर पडने लगी, पत्नी ने ज्यों ही यह देखा कि शीघ्र ही उसने ‘पति को ताप न लगे’ इस ख्याल से अपनी दो नों हथेलियों को सूर्य के साम्हने कर दिया । इससे धनगुप्त के मुख पर पडती हुई वे किरणें थम गईं-मुख पर हथेलियों की छाया हो गई । पत्नी द्वारा इस प्रकार की गई सेवा का अवलोकन कर धनगुप्त को पहले का वह कुएँ में डालने का वृत्तान्त याद आ गया । धनगुप्त ने विचार किया, देखो-जिसने मुझे पहिले कुएँ में पटका वही अब मुझे ‘सूर्यजनित संताप न हो’ इस ख्याल से उस संताप का निवारण कर रही है । ऐसा ख्याल कर धनगुप्त को कुछ हँसी आगई । धनगुप्त को अकस्मात् हँसता हुआ उस समय उसकी पुत्रवधु ने देख-लिया था, इसलिये वह अपने पति के पास आकर कहने लगी कि नाथ,

अने तेनी श्री पंभाथी तेने डवा नाणी रही હતી એ વખતે ધનગુપ્તના ચહેરા ઉપર મકાનના છતના કાણામાંથી સૂર્યના કિરણો અકસ્માત પડવા લાગ્યાં તેની સ્ત્રીએ જોયું આ જોયું કે તુરત જ એણે “પતિને તાપ ન લાગે” એવા ખ્યાલથી પોતાના બન્ને હાથની હથેળીઓને સૂર્યના એ કિરણોની આઠે ધરી દીધી. આથી ધનગુપ્તના ચહેરા ઉપર પડતા કિરણોનો તાપ અટકી ગયો, મુખ ઉપર હથેળીઓની છાયા થઈ ગઈ, સ્ત્રી તરફથી આ રીતે કરવામાં આવેલી સેવા જોઈને ધનગુપ્તને પહેલાંનો કુવાવાળો પ્રસંગ યાદ આવી ગયો, ધનગુપ્તે વિચાર કર્યો, જુઓ ! જો મને પહેલાં કુવામાં નાખી દીધો હતો તે હવે મને સૂર્યના કિરણોનો તાપ ન લાગે એવા ખ્યાલથી એ સંતાપનું નિવારણ કરી રહી છે. આ વિચારથી ધનગુપ્તને જરા હસવું આવ્યું. ધનગુપ્તને અકસ્માત હસતાં તેની પુત્ર વધુએ જોઈ લીધેલ, આથી એ પોતાના પતિ પાસે જઈ કહેવા લાગી કે-

इतथासौ श्रेष्ठी कूपे पतन् भाग्यवशात् कूपभित्तिगतं पापाणं प्राप्य तमवल-
म्ब्य स्थितः । तदनु तत्रागतैर्जलार्थिनैरनुकम्पयाऽसौ कूपान्निःसारितः । ततोऽसौ
विदेशं गत्वा पुण्यप्रभावात् प्रचुरं धनं समुपाज्यं श्वशुरगृहे समायातः । तदा तस्य
पत्नी प्रसन्ना जाता, तथा सह श्रेष्ठी स्वगृहं गतः । अथैकदा श्रेष्ठिनः पुत्रो जातः
तस्य यौवने वयसि प्राप्ते श्रेष्ठिना विवाहः कारितः । पुत्रयधूरागता । किञ्चिदि-
वसेषु व्यतीतेषु सत्सु श्वश्रूवधोर्मध्ये कलहः प्रवृत्तः । यथूर्नित्यं श्वश्रूच्छिद्रान्वेषण-
परा जाता । एकदाऽसौ श्रेष्ठी रङ्गभवने भोजनं कुर्वन्नासीत्, तत्पत्नी तदानीं बाल-

धनगुप्तज्यो ही कुए में गिरा कि भाग्यवश से उसे कुए की भित्ति
में पास ही एक पत्थर का टुकड़ा लगा हुआ दिखलाई पड़ा । यह भित्ति से
कुछ अधिक बाहर की ओर निकला था । पड़ते ही धनगुप्त ने उसको पकड़
लिया । जब पानी भरने वाले वहाँ पानी भरने के लिये आये तब
उन्होंने धनगुप्त को कुए से बाहर निकाला । स्वस्थ होकर यह बिना कुछ
कहे परदेश की ओर चल दिया । वहाँ पहुँच कर उसने पुण्यकर्म के
उदय से खूब धन कमाया । कमाकर यह वहाँ से अपने घर वापिस
हुआ । रस्ते में इस के श्वसुर का गाम आया और यह श्वशुर के घर
पहुँचा । पत्नी ने पति को देखकर बहुत आनंद मनाया । वहाँसे अपनी
पत्नी को साथ लेकर घर आ गया । कालान्तर में धनगुप्त के एक पुत्र
हुआ । समय पर उसका विवाह कर दिया गया, बहु घरमें आई । रहते २
सास और बहु में झगडा होने लगा । बहु ने सास को दवाने के लिये
उस के छिद्रों का अन्वेषण करना प्रारंभ कर दिया । एक दिनकी बात है,

धनगुप्त कुवामां पडयो के, भाज्यवश कुवानी लीतमां तेनी पासे ज् अेक
पत्थर थोटाडोडो नजरे पडयो जे लीतथी थोडा अडार बिकणेडो डतो. कुवामां
पडतांनी साथे ज् धनगुप्ते ते पत्थर पकडी लीधो ज्यारे पाणी भरवावाणा कुवा उपर
पाणी भरवा आव्यां त्यारे तेमझे धनगुप्तने कुवामांथी अडार काढयो. स्वस्थ जनी
कांछ पञ्च षोड्या सिवाय ते परदेश ज्वा गाली निकल्यो त्यां पडोन्थी ते पूण्य
कर्मना उदयथी भूष धन कमायो. भूष धन कमाई ते पोताने घेर आववा निकल्यो,
रस्तामां सासरानुं गाम आव्युं त्यारे ते सासराने घेर पडोन्थो, पतिने जेई
जेई आनंद मनाव्यो. त्यांथी जे पोतानी खीने लधने पोताने गाम पोताने घेर
पडोन्थो. समय जतां जे धनगुप्तने त्यां जेक पुत्र थयो, समय उपर तेनां लग्न
कर्यां, बहु घेर आधी, रडोतां रडोतां सासु जने बहु वर्ये विषवाड थवा लाग्यो,
बहुजे सासुने दगाववा भाटे तेनां गुप्त छिद्रोनां अन्वेषण करवाने प्रारंभ करी
दीधो. जेक दिवस धनगुप्त पोताना रंगलवनमां जेसी लोअन करी रडेल डतो.

पुनरेकदा श्रेष्ठिपत्न्याः पुत्रवध्वा सह कलहो जातः, तस्मिन्नवसरे पुत्रवधू-
वदत्-जानामि तव चरित्रम्, पतिं कूपे निपात्य, संपति पतिव्रता भवितुमुद्यताऽसि।
एतन्मार्मिकं वचनं निशम्य श्वश्रूः परमदुःखिता जाता, बहुशो हरोद, रुदित्वा च
मनसि चिन्तयति स्म-अधुना मम जीवनं धूलिखि निरर्थकम्. अय ममेयं वार्ता
लोके प्रसारिष्यति, मां लोकः किं वदिष्यति। इत्येवं विचिन्त्य सा भवनस्य द्वितीय-
भूमिकामारोह। तत्र गत्वा गले पाशं संयोज्य रज्ज्वां लम्बिता प्राणान्
परित्यक्तवती ।

हँसी का जो कुछ कारण था वह अपने पुत्र को कह दिया। माँका पाकर
श्रेष्ठि पुत्र ने भी जो कुछ जैसी बात थी वह अपनी पत्नी से कह दी।

एक समय सास बहू में परस्पर जब कलह हुआ तो पूत्रवधू ने
सास से कहा कि "आप ज्यादा मत बोलो मैं जानती हूँ कि आप वही
हैं जिन्होंने अपने पति को कूप में डाल दिया था, अब पतिव्रता
बनती हैं।" इस प्रकार बहू के मार्मिक वचनों को सुनकर सास के
हृदय में अपार दुःख हुआ, वह बारं बार रोने लगी, विचार किया कि
अब मेरा जीना बिलकुल निरर्थक है। बहू ने मेरी सब शान धूलि में
मिला दी है। यदि मेरी यह बात लोक में फैल गई तो लोग क्या कहेंगे?
इस प्रकार सोचकर वह अपने मकान के दूसरे मंजिल पर गई, और
वहाँ उसने गले में फाँसी डालकर आत्मघात कर लिया।

पाशा शेठे हांसीनुं ने कांथ डारखु इतुं ते सधणुं पोताना पुत्रने कही दीधुं.
अवसर भेगवीने शेठ पुत्रे पखु ने कांथ वात इती ते पोतानी पत्नीने
कही दीधी.

सासु बहुमां परस्पर न्यारे क'क'अ थये त्यारे पुत्रवधुये सासुने कहुं
डे, "तमे वधु न जोबो, हुं लखुं छुं डे, तमे ये न छे डे नेबे पोताना
पतिने कुवामां धकेलो दीधेअ, इवे प्रतिव्रता बनो छे." आ प्रकारनां बहुनां
भार्मीक वचनेने सांलणी सासुना हृदयमां अपार दुःख उपन्युं अने ते बोधार
आंसुये उडवा लागी, तेबे मनमाने मनमां जेवो निश्चय कयो डे, इवे माडुं
एवधुं नीलधुल नीरर्थक छे, वहुंये मारी जधी शान धुणमां भेगवी दीधी छे. जे
मारी आ वात बोकेमां श्लार्थ नथ तो बोके शुं कडेथे ? आ इते विचर
करी ते पोताना भडानना नील भाणा उपर पडोथी अने त्यां ज'क' गणामां
क्षेत्रे नाथी आत्मघात कयो.

हसन् मया दृष्टः, किं तत्र हासस्य कारणमभूदित्याचंचताम् । श्रेष्ठिपुत्रः प्राह-
पतिपत्न्योर्वृत्तमवेद्यं भवति । पत्नी वदति-भवता यावदेतद्दृष्टं नानेष्यते, न वा
वृत्तानयनवचनं दास्यते, तावन्मयाऽन्नपानं परित्याज्यम् । प्रेमपरचशेन विस्मृतविवे-
केन श्रेष्ठिपुत्रेण 'हास्यकारणं कथयिष्यामी' ति वचन प्रदानेन पत्नी परितोषिता ।

एकदा श्रेष्ठिपुत्रः पितुश्चरणसंसादनं कुर्यान् पृच्छतिस्म आर्य ! तस्मिन् दिवसे
केनकारणेन भवता हसितम्, इत्येवं पृष्टोऽसौ सरलहृदयः श्रेष्ठो सर्वं पूर्ववृत्तं
पुत्राय कथितवान् । श्रेष्ठिपुत्रः सर्वं पूर्ववृत्तं विज्ञाय पत्न्यै कथयामास ।

आज मैं ने आप के पिता को सामुजी के समक्ष हँसते हुए देखा है
अतः हे नाथ ! आप मुझे बतलाईं ये कि इस अकारण हँसी का क्या
कारण है । सेठ के पुत्र ने अपनी पत्नी को समझाया कि पति और पत्नी
का वृत्त अवेद्य हुआ करता है । अतः इस विषय को जानने की चेष्टा
करना व्यर्थ है । पत्नी ने पति के मुख से यह बात सुनकर कहा हे नाथ !
जब तक आप मुझे इसका कारण नहीं बतलावेंगे, तबतक मैं अन्नजल
ग्रहण नहीं करूंगी । पत्नी का इस प्रकार वृत्त को जानने का अधिक
आग्रह देखकर पति ने उसके प्रेम से पागल जैसे बनकर उसे इस
बात का आश्वासन दिया कि वह कुछ समय बाद इसका वास्तविक
कारण उसे बतला देगा । इस प्रकार रुष्ट हुई पत्नी संतुष्ट हो गई । एक
समय की बात है कि श्रेष्ठि पुत्र ने पिता के चरणों को दावते हुए उनसे
पूछा कि हे तात ! आप एक दिन भोजन करते समय किस कारण से
हँसे थे ? पुत्र की इस बात को सुनकर सरल हृदय वाले सेठ ने समस्त

हे नाथ ! आज मैं तमारा पिताने सामुञ्ज सामे हसता जेया. तो आप जे
भतावे तो तेमना अकारण हसवानुं शुं कारण छे ? सेठ पुत्रे पोतानी अने
समज्ज्युं के, पति पत्नीने संबंध अवेद्य होय छे. आ विषयने ज्ञानवानी
जेन्टा करवी व्यर्थ छे. पत्नीजे पतिना मुण्डी आवी वात सांजणीने कहुं के,
हे नाथ ! जयां सुधी तमे भने तेनुं कारण नहीं भतावे त्यां सुधी हुं अन्न
जल ग्रहण करीश नहीं. पत्नीने आ प्रकारे वृत्तान्त ज्ञानवानी अधिक आग्रह
जानीने पतिजे तेना प्रेममा पागल जेम जनीने तेने आ वातनुं आश्वासन
आप्युं के, थोडा समयमां पोते तेनुं वास्तविक कारण भतावशे. आर्थे इष्ट
जनेल पत्नीने संतोष थयो. जेक समयनी वात छे के, सेठ पुत्रे पोताना पिताना
पम हावता हावतां जेमने पूछ्युं के, हे तात ! आप जेक दिवस लोअन
करतां करतां शा भाटे हस्या हता ? पुत्रनी आ वातने सांजणीने सरण इथ-

तदाऽसौ पुत्रोऽपि मातापित्रोर्वियोगेन शोकात्तः सन् भविष्यदनिष्टं चिन्तयन् मृतं पितरं पाशबन्धनाद् विमुच्य स्वगले तं पार्श्वं वद्ध्वा मृतः ।

तदनन्तरं पुत्रवधूः ' इमे त्रयः खलु मिलित्वा ममैव दुर्दशां भावयन्ति ' इति विचिन्त्य क्रोधावेशेन धमधमायमाना उपरि गता । तत्र सा पश्यति—श्वश्रूः श्वशुर-श्रोभौ मृतौ निपतितौ, पतिरपि गले वद्धपाशो मृतः पाशरज्ज्वां लम्बित इति । तदा विनिवृत्तकोपा नितान्तदुःखार्ता सा चिन्तयति स्म—अतः परं कीदृशी दशा मम भविष्यति, लोकाः किं वदिष्यन्ति, कः स्यान्मम शरणम्, इत्यादि । तदनन्तर-मसौ सगर्भा पुत्रवधूः पत्युर्गले संलग्नं पाशबन्धनं विमुच्य स्वगले संयोज्य लम्बिता प्राणान् त्यक्तवती ।

गले में फांसी लगाकर मरे हुए लटक रहे हैं । इस परिस्थिति से उसे बहुत ही दुःख हुआ । माता पिता के वियोग ने उसे पागल बना दिया, अन्त में उस विचारे ने भी अपने पिता के गले से फांसी उतार कर अपने गले में लगा ली । जब पुत्रवधू ने यह विचारा कि " देखो ये तिनों के तिनों मिलकर मेरी दुर्दशा करने की भावना कर रहे हैं । अतः ऊपर जाकर देखूं, कि इन सबकी क्या राय हो रही है ' इस प्रकार क्रोध के आवेश से धम धम करती हुई वह ऊपर गई । जाते ही उसने देखा कि सास श्वशुर मरे पड़े हुए हैं पति भी गले में फांसी लगाकर मरे हुए लटक रहे हैं । उस दुर्घटना को देखकर उसके शरीर में सन्नटा छा गया, कोप जाता रहा । अत्यंत शोक से वह विह्वल हो गई । विचारा कि अब संसार में मेरा कौन है, कि जिस के लिये इन प्राणों की रक्षा करूं । लोग सुनेंगे तो क्या कहेंगे । इस प्रकार विचार कर वह भी अन्त में

गणामां क्षुंसे लगाडी भरेली डालतमां लटकी रह्या छे. आ परिस्थिति नेध तेने भूअ दुःख थयुं, माता पिताना वियोगे तेने पागल बनावी छीधो. अंते अे विचारये पणु पोताना पिताना गणामांथी क्षुंसे काडी पोताना गणामां लगावी आत्मघात करी न्यारे पुत्रवधुअे अे विचारुं के, " आ त्हे न्णु मणी मारी दुर्दशा करवानी येज्जना घडी रह्यां डसे. आथी उपर न्णु नेठं तो भरी के पधा केवे विचार करी रह्या छे " आ रीते कोधना आवेशथी धम धम करती वहु उपर पडोंथी ने नुअे छे तो सासु असरा भरेल पड्या छे. अने पति पणु गणामां क्षुंसे लगावी भरेल लटकी रहेल छे. आ दुर्घटनाने नेध अेना शरीरमां कंपारी वधुटी, कोध जतो रह्यो अने शोकथी विह्वल भनी गध. विचारुं के हुवे संसारमां मारुं केणु छे के नेना माटे आ प्राणुनी रक्षा करे लोके न्णुशे तो शुं कडेशे ? आ विचार करी तेणे पोताना

अथ श्रेष्ठी गृहमागतः, पत्नीमनवलोच्य पुत्रवधुं पृष्टवान्-आयुष्मति! तव भ्रश्रूः क्वास्ति?, पुत्रवधुः करवेष्टयाऽऽवेदयति-भानोपरिभागे गता इति। श्रेष्ठी गृहोपरिभागभूमिकां गत्वा श्रेष्ठिनां गच्छे पाशवद्भां मृतां पश्यति। तदाऽसौ श्रेष्ठी विपादमुपगतः सन् विचिन्तयति-अनया विना मम कीदृशी दशा भविष्यति, इत्यादि। तदनु स श्रेष्ठो पत्नीगलगतं पाशं विमुच्य स्वगले संयोज्य प्राणांभ्यक्तवान्। पुत्रोऽपि गृहमागतः, स पितरमदृष्ट्वा पत्नीं पृष्टवान्-‘क्वास्ति मम तातः’। पत्नी प्राह-उभौ ममानिष्टं कर्तुमुपरि वर्तते। पुत्रः पत्नीवचनमाकर्ण्य तत्र गत्वा पश्यति-माता मृता निपतिताऽस्ति, पिताऽपि पाशवद्धो मृतः मलम्बितो वर्तते, इति।

धनगुप्त जब घर आया तो उसने सेठानी को न देखकर वह से पूछा आयुष्यमती! तुम्हारी सास कहां है? उसने हाथ के इशारों से कहा कि वे मकान के दूसरे मंजिल पर हैं। धनगुप्त वहां पहुँचा और देखा कि वह गले में फाँसी लगा कर मर गई है। धनगुप्त ने यह दशा देखकर बहुत ही शोच विचार किया और अन्त में यह निर्णय कर कि सेठानी के बिना मेरी क्या दशा होगी, पत्नी को फाँसी से उतार कर वह स्वयं फाँसी लटक गया। पुत्र ने पिता को घर पर आकर जब नहीं देखा तो पत्नी से पूछा कि पिताजी कहां पर हैं। उसने घात को बनाकर कहा कि माता-पिता दोनों ही दूसरे मंजिल पर मेरा अनिष्ट करने की विचारणा करने के लिये गये हुए हैं। पत्नी की बात सुनकर वह मकान के ऊपर गया। देखा कि माता मरी पड़ी है और पिताजी

धनगुप्त न्यारे घेर आये तो तेझे पोतानी स्त्रीने न जेतां वहुने पूछयुं, आयुष्मती! तमारी सासु कयां छे? तेझे हाथना इशाराथी कहुं के, भीम भाण उपर (मेडी उपर) छे. धनगुप्त त्यां पडोअये अने लुअे छे तो गणाभां क्षेसा नाथी ते मरी गयेल छे. आ रीते पोतानी पत्निनी दशा जेध धनगुप्ते भ्रूअअ भनोभंथन साथे विचार कये. अने अंते अे निर्णय कये के, पत्निना ज्वा पछी हुवे मारी शुं दशा थये? क्षंसाथी लटकती पत्निने नीचे उतारी अे दोरडाने क्षंसे पोताना गणाभां नाथी लध पोते पछु अत्तभात कये.

अेक तरक्ष पतिपत्नि अेक ज दोरडाना क्षंसाथी आत्महत्या करी लवमुक्त अन्यां अे समये पुत्रे घेर आवतां पोताना पिताने न जेवाथी पत्निने पूछयुं, पिताल कयां गया? स्त्रीअे वातने जनापीने कहुं के, माता-पिता अनने ज्वा माइं अनिष्ट करवानी विचारण्वा करवा मेडी उपर गयेल छे. पत्निनी वात सांलणी ते मेडी उपर गये. जेथुं तो भा नीचे मरेली पडी छे, अने पिताल

लक्षणं सर्वेषां स्थानानाम्, कुत्रापि स्त्रिया सहावस्थानं संभाषणं च न कुर्यादित्यर्थः,
एकग्रहणमप्युपलक्षणम् तेनानेकस्त्रीभिरपि सहावस्थानं संभाषणं च वर्जनोप्यम्, यत्र
पुरुषः साक्षी नास्ति तत्र स्त्रिया सहावस्थानं संभाषणं च परिहरेदिति सूत्राशयः।

उक्तं च श्रीदशवैकालिक सूत्रे—

जहा कुक्कुडपोयस्स, निच्च कुललो भयं ।

एवं खु वंभयारिस्स, इत्थीविग्गहओ भयं ॥ (अ. ८ गा. ५४)

छाया—यथा कुक्कुटपोतस्य, नित्यं कुललाद् भयम् ॥

एवमेव ब्रह्मचारिणः, स्त्रीविग्रहाद् भयम् ॥

स्वगत दोष का निरूपण कर के अब अन्य के संसर्ग से होने वाले दोषोंका चर्चन करते हैं—‘समरेसु-इत्यादि।

अन्वयार्थ—(समरेसु-समरेपु) लुहारकी शाला में (अगारेसु-अगारेपु) घरों में, (संधीसु-संधिपु) दो घरों के अंतराल में तथा (महापहेसु-महापथेपु), राजमार्ग में (एगित्थिएसद्धि-एकस्त्रियासाध्वं) अकेली स्त्री के साथ (नेवचित्ठे न संलवे-नैवतिण्ठेत् नैव संलपेत्) न खडा होवे और न उससे बातचीत करे।

इस श्लोक में समरादिक चार पद उपलक्षण हैं, इससे समझना चाहिये कि किसी भी जगह में जब तक पुरुष साक्षीभूत न हो तब तक अकेली स्त्री से अथवा अनेक स्त्रियों से ब्रह्मचारी का कर्तव्य है कि वह न बोले और न वहाँ खडा रहे। दशवैकालिक सूत्र में भगवाने कहा है

आ प्रकारे पोतानामां रडेल होपोतुं वणुं न करी डवे भीलना संसर्गथी थयेल होपोतुं वणुं न करे छे. समरेसु इत्यादि.

अन्वयार्थ—समरेसु-समरेपु लुहारनी केडमां, अगारेसु-अगारेपु धरेमां, संघेसु-संघेपु जे धरेना अंतराजमां तथा महापहेसु-महापथेपु राजमार्गमां, एगित्थिएसद्धि-एकस्त्रिया साध्वं अकेली स्त्रीनी साथे, नेव चित्ठे न संलवे-नैव तिण्ठेत् नैव संलपेत् जेभा न रडेवुं अने जेनाथी बातचीत करवी नहीं.

आ श्लोकमां समरादिक चार उपलक्षण छे, जेथी जे समजवुं जेधजे के, केड पणु स्थजे न्यां सुधी भीजे पुरुष साक्षीभूत न होय त्यां अकेली स्त्रीथी अथवा अनेक स्त्रीयो साथे ब्रह्मचारीजे जेधवुं न जेधजे, अने त्यां जेधवुं पणु न जेधजे. दशवैकालिक सूत्रमां भगवाने कह्युं छे के, जे रीते कुकडाना जन्थाने जिलाडीने जय रडे छे, जे रीते स्त्रीना शरीरने ब्रह्मचारीने पणु जय रह्या करे छे.

अस्मिन् दृष्टान्ते-सकृदुक्तादपि मर्मवचनात् पण्णां जीवानां प्राणव्यपरोपणं जातम्, यतः पुत्रवधूगमं द्वयमपत्यमासीत् । तस्मान्मार्मिकं वचनं न मापणीयम् ।

सावद्य-निरर्थक-मर्मग-वचनभाषणस्य सर्वथा प्रतिषेधं बोधयितुमुत्तरार्धमाह-
'अप्पणद्धा' इत्यादि । आत्मार्यं=स्वार्थं, परार्थं वा, तथा उभयस्य आत्मनः परस्य च अर्थे, वा-अथवा, अन्तरेण=अनुभवार्थं स्वार्थप्रयोजनाभावेऽपि सावद्यं न लपेत्= न निरर्थकं लपेत्, न मर्मगं लपेत्, इति सम्बन्धः ॥ २५ ॥

अथान्यसंसर्गकृतदोषपरिहारमाह—

मूलम्—समरेषु अगारेषु, संधीषु यं महापथे ।

एगो एगित्थिए सद्धिं, नेव चिद्धे' ने संल्ले ॥२६॥

छाया—समरेषु अगारेषु, संधिषु च महापथे ।

एकः एकस्त्रिया सार्धं, नैव तिष्ठेत् न संलपेत् ॥२६॥

टोका—'समरेषु' इत्यादि—

समरेषु=चौहकारशालासु तथा-अगारेषु=गृहेषु, तथा संधिषु=गृहद्वयान्तरालेषु तथा-महापथे=राजमार्गे, एकः=एकाकी, एकस्त्रिया=एकाकिन्या स्त्रिया, सार्धं=सह, नैव तिष्ठेत्=ऊर्ध्वस्थानावस्थितो नैव भवेत् । न संलपेत्-तया=सह समरादिषु स्थानेषु क्वाऽपि संभाषणं न कुर्यादित्यर्थः । अत्र समरादिचतुष्टयस्थानेषु

पति के गले से फांसी निकाल कर अपने गले में फांसी डालकर मर गई वह उस समय गर्भवती थी । उस के गर्भ में दो बालक थे ।

इस दृष्टान्त से यह बात स्पष्ट होती है कि देखो एक बार भी कहे गये मार्मिक वचन से छह प्राणियों का दारुण आपघात हुआ । इसलिये मार्मिक वचन नहीं कहना चाहिये । अपने अथवा पर के निमित्त तथा दोनों के निमित्त एवं जहां स्व और पर का कुछ भी प्रयोजन न हो वहां पर भी व्यर्थ ही मनुष्य को सावद्य, निरर्थक एवं मर्मग वचन नहीं बोलना चाहिये ॥ २५ ॥

पतिना गणाभांही क्षंसे काढी पोताना गणाभां नाणी मरी गध. ते ये समये गर्भवती हुती, येना गर्भमां ये षण्णक हुतां.

आ दृष्टान्तथी ये वात स्पष्ट थाय छे के, येक वधत पणु कडेवाभां आवेला मार्मिक वचनथी छ प्राणीयेना कइलु आपघात थयो, आ माटे मार्मिक वचन न षण्णवां नेछये. पोताना अथवा षीजनना निमित्त तथा अन्नेना निमित्त अने न्यां पोतानुं के षीजननुं केछ पणु प्रयोजन न होथ त्यां पर पणु मनुष्यने सावद्य, निरर्थक अने मार्मिक वचन षण्णवां न नेछये. (२५)

रणम्, लाभः—अप्राप्तस्य सम्पद्दर्शन—सम्पद्गूज्ञान—सम्पद्क्चारित्रलक्षणरत्नत्रयस्य प्राप्तिस्तस्य कारणमस्ति, इतिप्रेक्षया=इतिपर्यालोचनात्मिकया बुद्ध्या प्रयतः=प्रकर्षेण यतनावान् सहनशीलः सन् शिष्यः तत्=भनुशासनं गुरोः शिक्षावचनं प्रति-
शृणुयात्=कर्तव्यतयाऽङ्गीकुर्यात्।

अयं भावः—

यथा—वर्षाकाले सूर्यकिरणाः प्रचण्डतरा भवन्ति, परंतु परिणामे द्वित्रदिव-
साभ्यन्तर एव ते जलदावलोसमागमनशीतलपवनजलधारासंपातजनितशीतस्पर्श-
सुखंमादुर्भावयन्ति। “यथा वा—नालिकेरं वहिः कर्कशं भवति. तथापि तदीयं
शीतलमधुरनीरगर्भितमाभ्यन्तरिकभागमुपलभ्य लोकस्तदास्वादानेन तुष्टिं पुष्टिं

इससे अप्राप्त सम्पद्दर्शन, सम्पद्गज्ञान एवं सम्पद्क् चारित्र की मुझे
प्राप्ति होती है। (त्ति पेहाए—इति प्रेक्ष्य) इस प्रकार पर्यालोचनात्मक बुद्धि
से विचार कर (पयओ तं पंडिस्सुणे—प्रयतःतं प्रतिश्रृणुयात्) सहनशील
बना हुआ शिष्य गुरु के शिक्षात्मक वचनों को कर्तव्य समझकर
अंगीकार करे।

तात्पर्य—जिस प्रकार वर्षाकाल में सूर्यकी किरणें प्रचण्डतर हो जाती
हैं और इस से वे प्राणियों को असहनीय बनती हैं परन्तु परिणाम में
दो तीन दिन के भीतर ही वे वरसात के समागमन से पवन को शीतल
बना देती हैं उस से जलवृष्टि खूब होकर शीतस्पर्श के सुख का उन्हें
अनुभव कराती हैं। अथवा जैसे—नारियल ऊपर से कठोर होता है
परन्तु उसका भीतर का भाग शीतल, मीठे जल से भरा रहता है, उसको

अधुं भारे भारे लालकारक छे. केम के, ज्येताथी अप्राप्त सम्पद्गू दर्शन सम्पद्गूज्ञान,
अने साम्पद्क् चारित्रनी भने प्राप्ति थाय छे. त्तिपेहाए—इतिप्रेक्ष्य आ प्रकारे पर्या-
लोचनात्मक बुद्धिथी विचार करी, पयओ तं पंडिस्सुणे—प्रयतः तत् प्रतिश्रृणुयात्
सहनशील अनेल शिष्य गुरुना शिक्षात्मक वचनेने कर्तव्य समञ्ज अंगिकार करे.

आतुं तात्पर्यं ज्ये छे के, ज्येथी रीते वर्षाकालमां सूर्यनां किरणो
प्रचण्डतर थर्ध जाय छे, अने तेथी ते प्राणीज्यो भारे असहनीय जनी जाय छे.
परंतु परिणामे ज्ये त्रयु दिवसनी अंदर ते वरसादना सभागमथी पवनने
शीतल जनाथी हे छे, ज्येथी जलवृष्टि पूज थाय छे अने ठंडीने स्पर्श सुजनेने
अनुभव करावे छे. अथवा ज्येम नाजियेर उपरथी कठोर होय छे परंतु ज्येनी
अंदरने भाग शीतल मीठा जलथी भरवे होय छे. ज्येने ज्येथी बोके तुष्टि—संतोष

उक्तं चान्यत्र-सता सुपा नुसा माया, एयाहिं वि न संलवे ।

एगंते नेव चिट्ठेज्जा, अप्पट्ठी संजए सया ॥ १ ॥

छाया—स्वसा सुता स्नुपा माता, एतामिरपि न संलपेत् ।

एकान्ते नेव तिष्ठेत्, आत्मार्थी संयतः सदा ॥ १ ॥ इति ॥ २६ ॥

अथ विनीतशिष्यकर्तव्यमाह—

मूलम्—जं मे' बुद्धाऽणुसांसंति, सीएण फरुसेण वा ।

मम लाभो त्ति' पेहाए, पेयओ तं' पडिस्सुणे ॥ २७ ॥

छाया—यन्मां बुद्धा अनुशासंति, शीतेन परुषेण वा ।

मम लाभ इति प्रेक्षया, प्रयतस्तत् प्रतिशृणुयात् ॥ २७ ॥

टीका—'जं मे' इत्यादि ।

बुद्धाः=आचार्याः, यन्माम् शीतेन=शीतलवचनेन मृदुवचनेनेत्यर्थः, वा=अथवा परुषेण=कठोरवचनेन अनुशासति शिक्षयन्ति, इदमनुशासनं मम लाभः=जामका-

-કિ-જિસં પ્રકાર મુર્ગે કે ઘચ્ચેકો કુલલ-વિલાડી સે ભય યના રહતા હૈ ઉસી તરહ બ્રહ્મચારી કો ભી સ્ત્રી કે શરીર સે સદા ભય રહા કરતા હૈ । ઇસલિયે યાહે અપની સાંસારિક યહિન ભી હો, યાહે પુત્રી હો, વહૂ હો, માતા ભી હો, તો ભી ઇકાન્તમેં બ્રહ્મચારી કો ઇનકે સાથ ઉઠના બેઠના નહીં યાહિયે ઓર ન ઘાતચીત હી કરની યાહિયે ॥ ૨૬ ॥

अथ विनीत शिष्य का कर्तव्य कहते हैं—'जंमे' इत्यादि ।

अन्वयार्थ—विनीत शिष्य को इस प्रकार विचार करना चाहिये कि (जंमे बुद्धा-यन्मां बुद्धा) जो मुझे आचार्य महाराज (सीएण-शीतेन) मीठे वचनों से, वा अथवा (फरुसेण-परुषेण) कठोर वचनों से (अणुसासंति-अनुशासति) अनुशासित करते हैं अर्थात् शिक्षा देते हैं सो (मम लाभो-मम लाभः) यह मेरे लिये एक बड़ा भारी लाभ है, क्योंकि

આ માટે ભલે પોતાની સંસારીક બહેન હોય, યાહે પુત્રી હોય, વહુ હોય, અથવા માતા હોય તો પણ એકાંતમાં એમની સાથે એસવું ઉઠવું કે ઘાતચિત પણ બ્રહ્મચારીએ કરવી ન જોઈએ. ॥૨૬॥

હવે વિનીત શિષ્યનું કર્તવ્ય કહે છે—જંમે ઇત્યાદિ.

વિનીત શિષ્યે આ પ્રકારનો વિચાર કરવો જોઈએ કે,

અ-વચાર્થ—જંમેબુદ્ધા-યન્માંબુદ્ધા મને આચાર્ય મહારાજ, સીએણ-શીતેન મીઠા વચનોથી, વા અથવા ફરુસેણ-પરુષેણ કઠોર વચનોથી, અનુસાસંતિ-અનુ-શાસંતિ અનુશાસિત કરે છે, અર્થાત શિક્ષા આપે છે. મમલાભો

રણમ્, લાભઃ—અપ્રાપ્તસ્ય સમ્યક્દર્શન—સમ્યગ્જ્ઞાન—સમ્યક્ચારિત્રલક્ષણતત્રયસ્ય પ્રાપ્તિશ્વતસ્ય કારણમસ્તિ, इतिप्रेक्षया=इतिपर्यालोचनात्मिकया बुद्ध्या प्रयतः=प्रकर्षेण यतनावान् सहनशीलः सन् शिष्यः तत्=अनुशासनं गुरोः शिक्षावचनं प्रतिशृणुयात्=कर्तव्यतयाऽङ्गीकुर्यात्।

अयं भावः—

यथा—वर्षाकाले सूर्यकिरणाः प्रचण्डतरा भवन्ति, परंतु परिणामे द्वित्रदिव-साभ्यन्तर एव ते जलदात्रलीसमागमनशीतलपवनजलधारासंपातजनितशीतस्पर्श-सुखंप्रादुर्भावयन्ति। “यथा वा—नालिकेरं वहिः कर्कशं भवति. तथापि तदीयं शीतलमधुरनीरगर्भितमाभ्यन्तरिकभागमुपलभ्य लोकस्तदास्वादनेन तृष्टिं पुष्टिं

इससे अप्राप्त सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान एवं सम्यक् चारित्र की मुझे प्राप्ति होती है। (त्ति पेहाए—इति प्रेक्ष्य) इस प्रकार पर्यालोचनात्मक बुद्धि से विचार कर (पयओ तं पंडिस्सुणे—प्रयतःतं प्रतिशृणुयात्) सहनशील बना हुआ शिष्य गुरु के शिक्षात्मक वचनों को कर्तव्य समझकर अंगीकार करे।

तात्पर्य—जिस प्रकार वर्षाकाल में सूर्यकी किरणें प्रचण्डतर हो जाती हैं और इस से वे प्राणियों को असहनीय बनती हैं परन्तु परिणाम में दो तीन दिन के भीतर ही वे धरसात के समागमन से पवन को शीतल बना देती हैं उस से जलवृष्टि खूब होकर शीतस्पर्श के सुख का उन्हें अनुभव कराती हैं। अथवा जैसे—नारियल ऊपर से कठोर होता है परन्तु उसका भीतर का भाग शीतल, मीठे जल से भरा रहता है, उसको

બધું મારે માટે લાભકારક છે. કેમ કે, એનાથી અપ્રાપ્ત સમ્યક્ દર્શન સમ્યગ્જ્ઞાન, અને સામ્યક્ ચારિત્રની મને પ્રાપ્તિ થાય છે. ત્તિપેહાએ—इतिप्रेक्ष આ પ્રકારે પર્યા-લોચનાત્મક બુદ્ધિથી વિચાર કરી, પયઓ તં પંડિસ્સુણે—प्रयतः तत् प्रतिशृणुयात् સહનશીલ અનેલ શિષ્ય ગુરુના શિક્ષાત્મક વચનોને કર્તવ્ય સમજી અંગિકાર કરે.

આતું તાત્પર્ય એ છે કે, જેવી રીતે વર્ષાકાળમાં સૂર્યનાં કિરણો પ્રચંડતર થઈ જાય છે, અને તેથી તે પ્રાણીઓ માટે અસહનીય બની જાય છે. પરંતુ પરિણામે એ ત્રણ દિવસની અંદર તે ધરસાદના સમાગમથી પવનને શીતળ બનાવી દે છે, જેથી જળવૃષ્ટિ ખૂબ થાય છે અને ઠંડીનો સ્પર્શ સુખનો અનુભવ કરાવે છે. અથવા જેમ નાજિયેર ઉપરથી કઠોર હોય છે પરંતુ એની અંદરનો ભાગ શીતળ મીઠા જળથી ભરેલો હોય છે. જેને મેળવી લોકો તુષ્ટિ—સંતોષ

उक्तं चान्यत्र-सप्ता मुया नुक्ता माया, एयाहिं वि न संलये ।

एगंते नेव चिदृठेज्जा, अप्पट्टी संजए सया ॥ १ ॥

छाया—स्वप्ता मुता स्नुपा माता, एताभिरपि न संलपेत् ।

एकान्ते नेव तिष्ठेत्, आत्मार्थी संयतः सदा ॥ १ ॥ इति ॥ २६ ॥

अथ विनीतशिष्यकर्तव्यमाह—

मूलम्—जं मे^३ बुद्धेऽणुसांसति, सीएण फरुसेण वा ।

मम लाभो त्ति^३ पेहाए, पेयओ तं^३ पडिस्सुणे ॥ २७ ॥

छाया—यन्मां बुद्धा अनुशासंति, शीतेन परुपेण वा ।

मम लाभ इति प्रेक्षया, प्रयતस्तत् प्रतिगृणुयात् ॥ २७ ॥

टीका—‘जं मे’ इत्यादि ।

बुद्धाः=आचार्याः, यन्माम् शीतेन=शीतलवचनेन मृदुवचनेनेत्यर्थः, वा=अथवा परुपेण=कठोरवचनेन अनुशासति शिक्षयन्ति, इदमनुशासनं मम लाभः=ममका-

-कि-जिस प्रकार મુર્ગે કે ઘચ્ચેકો કુલલ-વિલાડી સે ભય વના રહતા હૈ उसी तरह ब्रह्मचारी को भी स्त्री के शरीर से सदा भय रहा करता है । इसलिये चाहे अपनी सांसारिक बहिन भी हो, चाहे पुत्री हो, बहू हो, माता भी हो, तो भी एकान्तमें ब्रह्मचारी को इनके साथ उठना बैठना नहीं चाहिये और न बातचीत ही करनी चाहिये ॥ २६ ॥

अथ विनीत शिष्य का कर्तव्य कहते हैं—‘जंमे’ इत्यादि ।

अन्वयार्थ—विनीत शिष्य को इस प्रकार विचार करना चाहिये कि (जंमे बुद्धा-यन्मां बुद्धा) जो मुझे आचार्य महाराज (सीएण-शीतेन) मीठे वचनों से, वा अथवा (फरुसेण-परुपेण) कठोर वचनों से (अणुसासंति-अनुशासति) अनुशासित करते हैं अर्थात् शिक्षा देते हैं सो (मम लाभो-मम लाभः) यह मेरे लिये एक बड़ा भारी लाभ है, क्योंकि कि

આ માટે ભલે પોતાની સંસારીક બહેન હોય, ચાહે પુત્રી હોય, વહુ હોય, અથવા માતા હોય તો પણ એકાંતમાં એમની સાથે બેસવું ઉઠવું કે વાતચિત પણ બ્રહ્મચારીએ કરવી ન ભેઈએ. ॥ ૨૬ ॥

હવે વિનીત શિષ્યનું કર્તવ્ય કહે છે—જંમે ઇત્યાદિ.

વિનીત શિષ્યે આ પ્રકારનો વિચાર કરવો ભેઈએ કે,

અ-વયાર્થ—જંમેબુદ્ધા-યન્માંબુદ્ધા મને આચાર્ય મહારાજ, સીએણ-શીતેન મીઠા વચનોથી, વા અથવા ફરુસેણ-પરુપેણ કઠોર વચનોથી, અણુસાસંતિ-અણુશાસંતિ અનુશાસિત કરે છે, અર્થાત્ શિક્ષા આપે છે. મમલાભો એ

रणम्, लाभः—अप्राप्तस्य सम्यग्दर्शन—सम्यग्ज्ञान—सम्यक्चारित्र्यलक्षणरत्नत्रयस्य प्राप्तिस्तस्य कारणमस्ति, इतिप्रेक्षया=इतिपर्यालोचनात्मिकया बुद्ध्या प्रयतः=प्रकर्षेण यतनावान् सहनशीलः सन् शिष्यः तत्=अनुशासनं गुरोः शिक्षावचनं प्रतिश्रुत्यात्=कर्तव्यतयाऽङ्गीकृष्यात्।

अयं भावः—

यथा—वर्षाकाले सूर्यकिरणाः प्रचण्डतरा भवन्ति, परन्तु परिणामे द्वित्रदिवसाभ्यन्तर एव ते जलदावलीसमागमनशोतल्पवनजलधापासंपातजनितशीतस्पर्शसुखं प्राप्नुवन्ति। “यथा वा—नालिकेरं वह्निः कर्कशं भवति. तथापि तदीयं शीतलमधुरनीरगर्भितमाभ्यन्तरिकभागमुपलभ्य लोकस्तदास्वादनेन तुष्टिं पुष्टिं

इससे अप्राप्त सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान एवं सम्यक् चारित्र्य की मुझे प्राप्ति होती है। (त्ति पेहाए—इति प्रेक्ष्य) इस प्रकार पर्यालोचनात्मक बुद्धि से विचार कर (पयओ तं पंडिस्सुणे—प्रयतःतं प्रतिश्रुणुयात्) सहनशील बना हुआ शिष्य गुरु के शिक्षात्मक वचनों को कर्तव्य समझकर अंगीकार करे।

तात्पर्य—जिस प्रकार वर्षाकाल में सूर्यकी किरणें प्रचण्डतर हो जाती हैं और इस से वे प्राणियों को असहनीय बनती हैं परन्तु परिणाम में दो तीन दिन के भीतर ही वे वरसात के समागमन से पवन को शीतल बना देती हैं उस से जलवृष्टि खूब होकर शीतस्पर्श के सुख का उन्हें अनुभव कराती हैं। अथवा जैसे—नारियल ऊपर से कठोर होता है परन्तु उसका भीतर का भाग शीतल, मीठे जल से भरा रहता है, उसको

अधुं भारे माटे लालकारक छे. डेभ डे, ज्येताथी अप्राप्त सम्यग् दर्शन सम्यग्ज्ञान, अने साम्यक् चारित्रनी भने प्राप्ति थाय छे. तिपेहाए—इतिप्रेक्ष आ प्रकारे पर्यालोचनात्मक बुद्धिथी विचार करी, पयओ तं पंडिस्सुणे—प्रयतः तत् प्रतिश्रुणुयात् सहनशील अनेल शिष्य गुरुना शिक्षात्मक वचनेने कर्तव्य समग्र अंगिकार करे.

आतुं तात्पर्यं ज्ये छे डे, जेवी रीते वर्षाकालमां सूर्यनां किरणो प्रचण्डतर थर्ध जाय छे, अने तेथी ते प्राणीज्यो भारे असहनीय जनी जाय छे. परंतु परिणामे जे त्रणु दिवसनी अंदर ते वरसादना समागमथी पवनने शीतल जनावी हे छे, जेथी जलवृष्टि भूष थाय छे अने ठंडीने स्पर्श सुअने अनुभव करावे छे. अथवा जेभ नारियेर ऊपरथी कठोर होय छे परंतु जेनी अंदरने भाग शीतल भीडा जलथी भरद्वै होय छे. जेने जेजवी होके तुष्टि—संतोष

ઉક્તં ચાન્યત્ર-સસા સુયા સુસા માયા, ય્યાર્હિં વિ ન સંલયે ।

एगंते नैव चिदृठेज्जा, अप्पट्ठी संजए सया ॥ १ ॥

छाया—स्वसा सुता स्नुषा माता, एताभिरपि न संलपेत् ।

एकान्ते नैव तिष्ठेत्, आत्मार्यां संयतः सदा ॥ १ ॥ इति ॥ २६ ॥

अथ विनीतशिष्यकर्तव्यमाह—

मूलम्—जं मे^३ बुद्ध्याऽणुसांसति, सीएण फरुसेण वा ।

मम लाभो त्ति^३ पेहाए, पेयओ तं^३ पडिस्सुणे ॥ २७ ॥

छाया—यन्मां बुद्धा अनुशासंति, शीतेन परुपेण वा ।

मम लाभ इति प्रेक्षया, प्रयतस्तत् प्रतिगृणुयात् ॥ २७ ॥

टीका—‘जं मे’ इत्यादि ।

बुद्धाः=आचार्याः, यन्माम् शीतेन=शीतलवचनेन मृदुवचनेनेत्यर्थः, वा=अथवा परुपेण=कठोरवचनेन अनुशासति शिक्षयन्ति, इदमनुशासनं मम लाभः=श्रामका-

-કિ-જિસં પ્રકાર મુર્ગે કે ઘચ્ચેકો કુલલ-ચિલાડી સે ભય બના રહતા હૈ
उसी तरह ब्रह्मचारी को भी स्त्री के शरीर से सदा भय रहा करता है ।
इसलिये चाहे अपनी सांसारिक बहिन भी हो, चाहे पुत्री हो, बहू हो,
माता भी हो, तो भी एकान्तमें ब्रह्मचारी को इनके साथ उठना बैठना
नहीं चाहिये और न यातचीत ही करनी चाहिये ॥ २६ ॥

अथ विनीत शिष्य का कर्तव्य कहते हैं—‘जंमे’ इत्यादि ।

अन्वयार्थ—विनीत शिष्य को इस प्रकार विचार करना चाहिये
कि (जंमे बुद्धा-यन्मां बुद्धा) जो मुझे आचार्य महाराज (सीएण-शीतेन)
मीठे वचनों से, वा अथवा (फरुसेण-परुपेण) कठोर वचनों से (अणुसा-
संति-अनुशासति) अनुशासित करते हैं अर्थात् शिक्षा देते हैं सो
(मम लाभो-मम लाभः) यह मेरे लिये एक बड़ा भारी लाभ है, क्योंकि कि

આ માટે ભલે પોતાની સંસારીક બહેન હોય, આડે પુત્રી હોય, વહુ
હોય, અથવા માતા હોય તો પણ એકાંતમાં એમની સાથે એસવું ઉઠવું કે
વાતચિત પણ બ્રહ્મચારીએ કરવી ન ભેઈએ. ॥ ૨૬ ॥

હવે વિનીત શિષ્યનું કર્તવ્ય કહે છે—જંમે ઇત્યાદિ.

વિનીત શિષ્યે આ પ્રકારનો વિચાર કરવો ભેઈએ કે,

અન્વયાર્થ—જંમેબુદ્ધા-યન્માંબુદ્ધા મને આચાર્ય મહારાજ, સીએણ-શીતેન
મીઠા વચનેથી, વા અથવા ફરુસેણ-પરુપેણ કઠોર વચનેથી, અનુસાસંતિ-અનુ-
શાસંતિ અનુશાસિત કરે છે, અર્થાત્ શિક્ષા આપે છે. મમલાભો એ

રણમ્, લાભ:-અપ્રાપ્તસ્ય સમ્યક્દર્શન-સમ્યગ્જ્ઞાન-સમ્યક્ચારિત્રલક્ષણરત્નત્રયસ્ય પ્રાપ્તિસ્તસ્ય કારણમસ્તિ, इतिप्रेक्षया=इतिपर्यालोचनात्मिकया बुद्ध्या प्रयतः=प्रकर्षेण यतनावान् सहनशीलः सन् शिष्यः तत्=प्रशुशासनं गुरोः शिक्षावचनं प्रतिशृणुयात्=कर्तव्यतयाऽङ्गीकुर्यात् ।

અર્થ ભાવ:-

यथा—वर्षाकाले सूर्यकिरणाः प्रचण्डतरा भवन्ति, परंतु परिणामे द्वित्रदिव-साभ्यन्तर एव ते जलदावलीसमागमनशीतवृषणजलधारासंपानजनितशीतस्पर्श-सुखंप्रादुर्भावयन्ति। “यथा वा-नालिकेरं वहिः कर्कशं भवति. तथापि तदीयं शीतलमधुरनीरगर्भितमाभ्यन्तरिकभागमुपलभ्य लोकस्तदास्वादनेन तुष्टिं पुष्टिं

इससे अप्राप्त सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान एवं सम्यक् चारित्र की मुझे प्राप्ति होती है। (त्ति पेहाए-इति प्रेक्ष्य) इस प्रकार पर्यालोचनात्मक बुद्धि से विचार कर (पयओ तं पंडिस्सुणे-प्रयतःतं प्रतिशृणुयात्) सहनशील बना हुआ शिष्य गुरु के शिक्षात्मक वचनों को कर्तव्य समझकर अंगोकार करे ।

તાત્પર્ય-જિસ પ્રકાર વર્ષાકાલ મેં સૂર્યકી કિરણે પ્રચણ્ડતર હો જાતી હેં ઓર હસ સે વે પ્રાણિયોં કો અસહનીય બનતી હેં પરન્તુ પરિણામ મેં દો તીન દિન કે ખીતર હી વે વરસાત કે સમાગમન સે પવન કો શીતલ બના દેતી હેં ઉસ સે જલવૃષ્ટિ ખૂબ હોકર શીતસ્પર્શ કે સુખ કા ઉન્હેં અનુભવ કરાતી હેં । અથવા જૈસે-નારિયલ ઉપર સે કઠોર હોતા હૈ પરન્તુ ઉસકા ખીતર કા ભાગ શીતલ, મીઠે જલ સે ભરા રહતા હૈ, ઉસકો

ખધું માટે માટે લાભકારક છે. કેમ કે, એનાથી અપ્રાપ્ત સમ્યક્ દર્શન સમ્યગ્જ્ઞાન, અને સામ્યક્ ચારિત્રની મને પ્રાપ્તિ થાય છે. ત્તિપેહાए-इतिप्रेक्ष આ પ્રકારે પર્ષા-લોચનાત્મક બુદ્ધિથી વિચાર કરી, પયઓ તં પંડિસ્સુणे-પ્રયતઃ તત્ પ્રતિશ્રુણુયાત્ સહનશીલ બનેલ શિષ્ય ગુરુના શિક્ષાત્મક વચનોને કર્તવ્ય સમજી અંગિકાર કરે.

આનું તાત્પર્ય એ છે કે, જેવી રીતે વર્ષાકાળમાં સૂર્યનાં કિરણો પ્રચંડતર થઈ જાય છે, અને તેથી તે પ્રાણીઓ માટે અસહનીય બની જાય છે. પરંતુ પરિણામે એ ત્રણ દિવસની અંદર તે વરસાદના સમાગમથી પવનને શીતળ બનાવી દે છે, જેથી જળવૃષ્ટિ ખૂબ થાય છે અને ઠંડીનો સ્પર્શ સુખનો અનુભવ કરાવે છે. અથવા જેમ નાજિયેર ઉપરથી કઠોર હોય છે પરંતુ એની અંદરનો ભાગ શીતળ મીઠા જળથી ભરેલો હોય છે. જેને એળવી લોકો તુષ્ટિ-સંતોષ

उक्तं चान्यत्र-सता सुता सुता माया, एयाहिं वि न संलये ।

एगंते नेव चिट्ठेज्जा, अप्पट्ठी संत्रए सया ॥ १ ॥

छाया—स्वसा सुता सुता माता, एताभिरपि न संलपेत् ।

एकान्ते नेव तिष्ठेत्, आत्मार्थी संयतः सदा ॥ १ ॥ इति ॥ २६ ॥

अथ विनीतशिष्यकर्तव्यमाह—

मूलम्—जं मे बुद्धाऽणुसांसति, सीएण फरुसेण वा ।

मम लाभो त्ति पेहाए, पेयओ तं पडिस्सुणे ॥ २७ ॥

छाया—यन्मां बुद्धा अनुशासति, शीतेन परुपेण वा ।

मम लाभ इति प्रेक्षया, प्रयतस्तत् प्रतिशृणुयात् ॥ २७ ॥

टीका—‘जं मे’ इत्यादि ।

बुद्धाः=आचार्याः, यन्माम् शीतेन=शीतलवचनेन मृदुवचनेनेत्यर्थः, वा=अथवा परुपेण=कठोरवचनेन अनुशासति शिक्षयन्ति, इदमनुशासनं मम लाभः=ममलाभः-

-कि-जिस प्रकार मुर्गे के बच्चेको कुलल-बिलाडी से भय बना रहता है उसी तरह ब्रह्मचारी को भी स्त्री के शरीर से सदा भय रहा करता है। इसलिये चाहे अपनी सांसारिक वहिन भी हो, चाहे पुत्री हो, वहू हो, माता भी हो, तो भी एकान्तमें ब्रह्मचारी को इनके साथ उठना बैठना नहीं चाहिये और न बातचीत ही करनी चाहिये ॥ २६ ॥

अथ विनीत शिष्य का कर्तव्य कहते हैं—‘जंमे’ इत्यादि ।

अन्वयार्थ—विनीत शिष्य को इस प्रकार विचार करना चाहिये कि (जंमे बुद्धा-यन्मां बुद्धा) जो मुझे आचार्य महाराज (सीएण-शीतेन) मीठे वचनों से, वा अथवा (फरुसेण-परुपेण) कठोर वचनों से (अणुसांसति-अनुशासति) अनुशासित करते हैं अर्थात् शिक्षा देते हैं सो (ममलाभो-ममलाभः) यह मेरे लिये एक बड़ा भारी लाभ है, क्योंकि

आ माटे लडे पोतानी संसारीक षडेन डोय, याडे पुत्री डोय, वडु डोय, अथवा माता डोय तो पणु अेकांतमां अेभनी साथे जेसबुं उडुं के वातचित पणु ब्रह्मचारीअे करथी न जेठ अे ॥ २६ ॥

डुवे विनीत शिष्यनुं कर्तव्य डडे अे—जंमे अेत्यादि ।

विनीत शिष्ये आ प्रकारने विचार करेवा जेठ अे के,

अन्वयार्थ—जंमेबुद्धा-यन्मांबुद्धा भने आचार्य महाराज, सीएण-शीतेन भीडा वचनेथी, वा अथवा फरुसेण-परुपेण डडोर वचनेथी, अनुसांसति-अनुशासति अनुशासित करे अे, अर्थात् शिक्षा आपे अे. ममलाभो-ममलाभ अे

છાયા—અનુશાસનમૌપાયં, દુષ્કૃતસ્ય ચ નોદનમ્ ।

હિતં તત્ મન્યતે પ્રાજ્ઞઃ, દ્વેષ્યં ભવતિ અસાધોઃ ॥ ૨૮ ॥

ટીકા—‘અણુસાસણ’ ઇત્યાદિ—

પ્રાજ્ઞઃ=પ્રજ્ઞાવાન મેધાવી શિષ્યઃ, ઔપાયમ્-ઉપાયં=શીતપરુપભાષણરૂપે ભવમ્, મૃદુકઠોરભાષણસમન્વિતમ્ અનુશાસનં=ગુરોઃ શિક્ષાવાચ્યં, ચ-પુનઃ દુષ્કૃતસ્ય=અતિ-
ચારસ્ય નિવારણાર્થં નોદનં=પ્રેરણં, ‘હા કિમિદમકલ્પ્યં ત્વયા કૃતમ્’ ઇત્યાદિરૂપમ્
તદ્ વચનં હિતં-લોકકલ્યાણકારકં, મન્યતે । અસાધોઃ=અવિનીતશિષ્યસ્ય તદેવ
વચનં દ્વેષ્યં=દ્વેષજનકં ભવતિ ।

યથા—શ્કુક્ષેત્રે દત્તં જલં મધુરરસરૂપેણ પરિણતં ભવતિ, નિમ્બતરુમૂલે તુ તદેવ

સકલ કલ્યાણ કરનેવાલી મી ગુરુશિક્ષા કિસ કો કિસ રૂપ મેં
પરિણન હોની હૈ સો કહતે હૈ—‘અણુસાસણ’-ઇત્યાદિ ।

અન્વયાર્થ—(પન્નો-પ્રજ્ઞઃ) વુદ્ધિમાન મેધાવી શિષ્ય (ઓવાયં-ઔપાયં)
મૃદુ एवं કઠોર ભાષણ સે મુક્ત (અનુસાસણં-અનુશાસનં) ગુરુ કે શિક્ષા
સ્વરૂપ વચનોં કો કિ જો (દુષ્કૃદસ્ય ચ ચોયણં-દુષ્કૃતસ્ય ચ નોદનમ્)
અતિચાર કે નિવારણ કે લિપે પ્રયુક્ત કિયે ગયે હૈ—‘યહ તુમને નહીં
કરને યોગ્ય કામ કયોં કર દિયા હૈ’ ઇત્યાદિરૂપ સે જો કહે ગયે હૈ
(તં હિયં મન્નપ-તત્ હિતં મન્યતે) ડસકો અપના હિતકારક માનતા હૈ ।
(અસાહુણો-અસાધોઃ) પરન્તુ જો અવિનીત શિષ્ય હોના હૈ વહ ડન્હીં
શિક્ષાવચનોં કો (વેસંહવહ-દ્વેષ્યં ભવતિ) અહિતકારી માનતા હૈ । મેધાવી
શિષ્ય ગુરુ કે મૃદુકઠોરરૂપ વચનોં કો અપના હિતકારક, एवं અસાધુ
અર્થાત્ અવિનીત શિષ્ય ડન્હીં વચનોં કો દુઃસ્વદાયક માનતા હૈ ।

સકલ કલ્યાણ કરવાણી ગુરુ શિક્ષા કેને કયા રૂપમાં પરિણત થાય છે
તે કહેવામાં આવે છે. અણુસાસણં ઇત્યાદિ.

અન્વયાર્થ—પન્નો-પ્રજ્ઞઃ વુદ્ધિમાન મેધાવી શિષ્ય ઓવાયં-ઔપાયં કેમળ
અથવા કઠોર ભાષણથી યુક્ત અણુસાસણં-અનુશાસનં ગુરુનાં શિક્ષા સ્વરૂપ
વચનોને કે જે દુષ્કૃદસ્ય ચ ચોયણં-દુષ્કૃતસ્ય ચ નોદનમ્ અતિચારના નિવારણ માટે
પ્રયુક્ત કરવામાં આવેલ છે. આ ન કરવા યોગ્ય કામ તમે શા માટે કયું ?”
ઇત્યાદિ રૂપથી જે કહેવાય છે તેહિયં મન્નપ-તત્ હિતં મન્યતે એને પોતાનાં હિતકર
માને છે અસાહુણો-અસાધોઃ પરંતુ જે અવિનીત શિષ્ય હોય છે તે એ શિક્ષા
વચનોને દ્વેષ્યં ભવતિ અહિતકારી માને છે.

च लभते । एवमाचार्याणां शीतं परुषं चेत्युभयविधं शिक्षावचनं परिणामे सुखजनकमेव । आचार्यवचनं हि-परिणामतस्तपःसंयमाराधनप्रवर्तकं, मिथ्यात्वादियन्त्रविधास्रवनिवर्तकं, ज्ञानावरणीयादिकर्मरजःपटलापसाएणपरममीपणसमीरणात्मकं, नानाविधकन्धिसाधकं, निखिलभावस्वभाववायभासककेवलालो रुमदर्शकं, शाश्वतिकसुखसमर्पकं च भवति" इत्येव पर्यालोच्य गुरोः शिक्षावचनमङ्गीकुर्यादिति ॥ २७ ॥

सकलकल्याणकारिण्यपि गुरुशिक्षा कस्यै कीदृशी परिणमतीत्याह—

मूलम्—अणुसासनमोवायं, दुक्कडंसस य चोर्यणं ।

हियं तं मन्नणं पेत्तो, वेसेसं होईं असाहुणो ॥२८॥

प्राप्त कर लोक तुष्टि एवं पुष्टि को प्राप्त करते हैं । इसी तरह आचार्य महाराज के कोमल एवं कठोर, दोनों प्रकार के शिक्षाप्रद वचन शिष्य को परिणाम में सुखजनक होते हैं । शिष्य को आचार्य महाराज के वचन ही अन्त में तप एवं संयम की आराधना करने में प्रवृत्त कराने वाले होते हैं । मिथ्यात्वादि पांच प्रकार के आस्रव के वे निरोधक होते हैं । ज्ञानावरणीय आदि कर्मरज के पटल को हटाने में वे प्रचण्ड पवन के वेगतुल्य होते हैं । शिष्यजनोंमें अनेक प्रकार की लब्धियों की जागृति कराने वाले होते हैं । समस्त पदार्थों के स्वभाव का जिस में अवभासन होता है ऐसे केवलज्ञानरूप प्रकाश के प्रदर्शक एवं शाश्वतिक सुख के देनेवाले होते हैं । इस प्रकार गुरु महाराज के शिक्षा वचनों को हितकारक जानकर शिष्यका कर्तव्य है कि वह उन्हें अंगीकार करे ॥२७॥

अने पुष्टि प्राप्त करे छे. आ रीते आचार्य महाराजनां कोमल अथवा कठोर अन्ने प्रकारनां शिक्षाप्रद वचन शिष्यने परिष्ठाभमां सुखजनक अने छे. आचार्य महाराजनां वचनअ अंतमां शिष्यने तप तथा संयमनी आराधना करवामां प्रवृत्त करावनार होय छे. मिथ्यात्वादि पांच प्रकारना आस्रवना अे निरोधक होय छे. ज्ञानावरणीय आदि कर्मरजना आवरणने हर करवामां ते प्रचंड पवनना वेग जेवां होय छे. शिष्यजनेनामां अनेक प्रकारनी लब्धियेनी जागृति करावनार होय छे, समस्त पदार्थेना स्वभावनुं जेनामां अवभासन होय छे अेवा केवण ज्ञान रूप प्रकाशना प्रदर्शक अने शाश्वतिक सुखने देवावाणा होय छे. आ प्रकारे गुरु महाराजना शिक्षा वचनेने हितकारक जेणीने शिष्यनुं अे कर्तव्य छे के ते अेना अंगिकार करे. ॥ २७ ॥

टीका—‘ हियं ’ इत्यादि—

विगतभयाः=भयरहिताः, भयं सप्तविधम्—इहलोकभयम् १, परलोकभयम् २, आदानभयम् ३, अकस्माद्भयम् ४, आजीविकाभयम् ५, मरणभयम् ६, अश्लोकभयं च ७, एतैर्वियर्जिताः, बुद्धाः=ज्ञाततत्त्वा मेधाविन इत्यर्थः, एवंभूताः शिष्याः परुषमपि=कठोरमपि, अनुशासनम्=गुरुणां शिक्षावचनम् हितं=पथ्यं मन्यन्ते इति शेषः । किंतु क्षान्तिशोधिकरं-क्षान्तिः=क्षमा, शोधिः=शुद्धिः आत्मशुद्धिः, तयोः करम्=उत्पत्तिजनकं, यथा-वर्षाऋतुनिमित्तं प्राप्य जलधरा गर्जन्ति, वसन्तं प्राप्य वृक्षा नूतनपल्लवकुसुमत्रियोपेता भवन्ति, चन्द्रं प्राप्य चन्द्रकान्तमणयः प्रस्रवन्ति, सूर्यं प्राप्य कमलानि विकसन्ति, तथा क्षमां प्राप्य निर्दोषतादिगुणाः प्रादुर्भवन्ति । शोधि-श्च दुःखमेघनाशने पवनरूपा, सुखोत्पादने कल्पतरूरूपा भवसिन्धुपारकरणे नौका-रूपा, अज्ञानान्धकारनाशने प्रभारूपा । एवंभूतयोः क्षान्तिशोधोर्जनकम्, इदमुप-लक्षणम् तेन आज्ञादिकरमपि, पदं=ज्ञानादि गुणानां स्थानम् । तत्=अनुशासनं, मूढानां=कुशिष्याणां द्वेष्यं=द्वेषजनकं भवति । उक्तं च—

पुनरप्याह—‘ हियं ’ इत्यादि ।

अन्वयार्थ—(विगतभया-विगतभयाः) इहलोकभय, परलोकभय, आदानभय, अकस्मात्भय, आजीविकाभय, मरणभय, एवं अश्लोकभय, ये सात भयं हैं । इनसे जो रहित हैं तथा (बुद्धा-बुद्धा) तत्त्वों के जो जानकार हैं—मेधावी हैं वे शिष्य (फरुसंपि-परुषमपि) कठोर भी (अणुसासनं-अनुशासनं) गुरु महाराज के शिक्षात्मक वचनों को (हियं-हितं) पथ्य-हितविधायक मानते हैं । किन्तु (खंति सोहिकरं -क्षान्तिशोधिकरं) क्षमा और शुद्धि के विधायक तथा (पयं-पदम्) ज्ञानादिक गुणों के स्थानभूत (तत्) गुरु के वे ही अणुशासनरूप

पुनरप्याह हियं:-इत्यादि.

अन्वयार्थ—विगतभया-विगतभयाः आ डोकनो लय, परडोकनो लय, आदान लय, अकस्मात् लय, आजीविका लय, मरण लय अने अश्लोक लय आ सात लय छे अनाथी ले रहित छे तथा (बुद्धा-बुद्धा) तत्त्वोने ले ज्ञाकार छे, मेधावी छे, ते शिष्य फरुसंपि-परुषमपि कठोर पणु अणुसासनं-अनुशासनं गुरु महाराजनां शिक्षात्मक वचनोने हियं-हितं पथ्य हित विधायक माने छे, खंतिसोहिकरं-शान्तिशोधिकरं क्षमा अने शुद्धिना विधायक, पयं-पदम् ज्ञानादिक

કઠુકરસરૂપેણ, યથા ચા સિતોપલં—‘મિસરી’ ઇતિ ભાષામસિદ્ધં સર્વેષાં મધુરા-
સ્વાદજનકં ભવતિ તદેવ પિત્તદૂષિતરસનસ્ય નિમ્બાદિત્ કઠુકં, ગર્દભાણાં તુ વિષ-
મેવ ભવતિ, યથા ચા શુદ્ધં ઘૃતં સર્વેષાં પુષ્ટિકરં ભવતિ, તદેવ જ્વરાક્રાન્તાનાં જનાનાં
રોગવર્ધકમ્ । एवं ગુરુવચનં સચિનયસ્ય દ્વિતાપ જાપતે, વિનયરહિતસ્ય શિષ્યસ્ય તુ
દ્વેષાય ઇતિ ભાવઃ ॥ ૨૮ ॥

ઉક્તમર્થં વિશદયન્નાહ—

મૂલમ્—હિયં ત્રિગયંભયા વુદ્ધા, ફરુસં પિ અણુસાસણં ।

વેસંસં તં હોઁ મૂઢાણં, ચંતિસોહિકરં પયં ॥૨૯॥

છાયા—હિતં ત્રિગતમયા વુદ્ધાઃ, પરુપમપિ અનુશાસનમ્ ।

દેપ્યં તત્ ભવતિ મૂઢાનાં, ક્ષાન્તિશોધિકરં પદમ્ ॥ ૨૯ ॥

તાત્પર્યં इसका इस प्रकार का है कि जिस प्रकार इक्षु के खेन में दिया गया पानी मधुर रसरूपसे परिणत होता है और वही पानी जब निम्बवृक्ष के मूलमें दिया जाता है तो कडुवे रूपमें परिणत हो जाता है, अथवा जैसे मिश्री सब के लिये मधुर आस्वाद देती है परन्तु जिस की जीभ पित्त से दूषित हो रही है उसके लिये वह मिश्री कडुवी नीम जैसी मालूम होती है, तथा गर्धों को तो वह विष जैसी ही मालूम होती है । अथवा जैसे शुद्ध घृत समस्तजनों को पुष्टि करने वाला होना है परन्तु वही घृत ज्वरवाले के लिए रोगवर्द्धक होता है, इसी प्रकार जो विनयी शिष्य हैं उनके लिये गुरु महाराज के वचन हितकारक होते हैं और वे ही वचन अविनीत शिष्य के लिये द्वेषकारक होते हैं ॥ २८ ॥

તેનું તાત્પર્યં આ પ્રકારનું છે, કે જે પ્રકારે દ્રાક્ષના ખેતરમાં આપવામાં આવેલ પાણી મધુરરસરૂપમાં પરિણીત અને છે અને તેજ પાણી જ્યારે લિમડાના વૃક્ષના મૂળમાં આપવામાં આવે છે તો કઠુરસ રૂપમાં પરિણમે છે. જેમ-સાકર બધા માટે મધુર આસ્વાદ આપે છે પરંતુ જેની જીભ પિત્તથી દુષિત થયેલ હોય છે, તેને માટે સાકર કડવા લિમડા જેવી માલુમ પડે છે. અને ગર્ધેડાને તો તે અકર જેવી અને છે. અથવા જેમ ચોખ્ખું ઘી સઘળા માટે પુષ્ટી કરવાવાળું હોય છે પરંતુ તે ઘી તાવવાળા માટે રોગને વધારનાર અને છે. એ જ રીતે જે વિનયી શિષ્ય છે તેને માટે ગુરુ મહારાજનું વચન હિતકારક હોય છે. અને તે જ વચન અવિનીત શિષ્ય માટે દ્વેષકારક હોય છે. ॥ ૨૮ ॥

टीका—' हियं ' इत्यादि—

विगतभयाः=भयरहिताः, भयं सप्तविधम्—इहलोकभयम् १, परलोकभयम् २, आदानभयम् ३, अकस्माद्भयम् ४, आजीविकाभयम् ५, मरणभयम् ६, अश्लोकभयं च ७, एतैर्विजिताः, बुद्धाः=ज्ञाततत्त्वा मेधाविन इत्यर्थः, एवंभूताः शिष्याः परुषमपि=कठोरमपि, अनुशासनम्=गुरुणां शिक्षावचनम् हितं=पथ्यं मन्यन्ते इति शेषः । किन्तु क्षान्तिशोधिकरं=क्षान्तिः=क्षमा, शोधिः=शुद्धिः आत्मशुद्धिः, तयोः करम्=उत्पत्तिजनकं, यथा-वर्षाऋतुनिमित्तं प्राप्य जलधरा गर्जन्ति, वसन्तं प्राप्य वृक्षा नूतनपल्लवकुसुमत्रियोपेता भवन्ति, चन्द्रं प्राप्य चन्द्रकान्तमणयः प्रस्रवन्ति, सूर्यं प्राप्य कमलानि विकसन्ति, तथा क्षमां प्राप्य निर्लोभतादिगुणाः प्रादुर्भवन्ति । शोधि-श्च दुःखमेघनाशने पवनरूपा, सुखोत्पादने कल्पतरुरूपा भवसिन्धुपारकरणे नौकारूपा, अज्ञानान्धकारनाशने प्रभारूपा । एवंभूतयोः क्षान्तिशोधोर्जनकम्, इदमुपलक्षणम् तेन अर्जवादिकरमपि, पदं=ज्ञानादि गुणानां स्थानम् । तत्=अनुशासनं, मूढानां=कुशिष्याणां द्वेष्यं=द्वेषजनकं भवति । उक्तं च—

पुनरप्याह—' हियं ' इत्यादि ।

अन्वयार्थ—(विगतभया-विगतभयाः) इहलोकभय, परलोकभय, आदानभय, अकस्मात्भय, आजीविकाभय, मरणभय, एवं अश्लोकभय, ये सात भय हैं । इनसे जो रहित हैं तथा (बुद्धा-बुद्धा) तत्त्वों के जो जानकार हैं—मेधावी हैं वे शिष्य (परुषमपि-परुषमपि) कठोर भी (अणुसासनं-अनुशासनं) गुरु महाराज के शिक्षात्मक वचनों को (हियं-हितं) पथ्य-हितविधायक मानते हैं । किन्तु (खंति सोहिकरं-क्षान्तिशोधिकरं) क्षमा और शुद्धि के विधायक तथा (पयं-पदम्) ज्ञानादिक गुणों के स्थानभूत (तत्) गुरु के वे ही अणुशासनरूप

पुनरप्याह हियं:-इत्यादि.

अ-वयार्थ—विगतभया-विगतभयाः आ डोडनेो भय, परडोडनेो भय, आदान भय, अकस्मात् भय, आजीविका भय, मरण भय अने अश्लोक भय आ सात भय छे येनाथी ने रडित छे तथा (बुद्धा-बुद्धा) तत्त्वोनेो ने लखुडार छे, मेधावी छे, ते शिष्य परुषमपि-परुषमपि डोडार पथु अणुसासनं-अनुशासनं गुरु मडाराननां शिक्षात्मक वचनोने हियं-हितं पथ्य डित विधायक माने छे, खंतिसोहिकरं-शान्तिशोधिकरं क्षमा अने शुद्धिना विधायक, पयं-पदम् ज्ञानादिक

કડુકરસરૂપેણ, યથા ત્રા સિતોપલં—'મિસરી' ઇતિ ભાષામસિદ્ધં સર્વેષાં મધુરા-
સ્વાદજનકં ભવતિ તદેવ પિત્તદૂષિતરસનસ્ય નિમ્બાદિત્ કડુકં, ગર્દભાણાં તુ વિષ-
મેવ ભવતિ, યથા ત્રા શુદ્ધં ઘૃતં સર્વેષાં પુષ્ટિકરં ભવતિ, તદેવ જ્વરાક્રાન્તાનાં જનાનાં
રોગવર્ધકમ્ । एवं ગુરુવચનં સવિનયસ્ય દિતાય જ્ઞાયતે, વિનયરહિતસ્ય શિષ્યસ્ય તુ
દ્વેષાય ઇતિ ભાવઃ ॥ ૨૮ ॥

ઉક્તમર્થં વિશદયન્નાહ—

મૂલમ્—હિયં વિગયેભયા બુદ્ધા, ફરુસં પિ અણુસાસનં ।

વેસંસં તં હોઠે મૂઢાણં, સંતિસોહિકરં પયં ॥૨૯॥

છાયા—હિતં વિગતભયા બુદ્ધાઃ, પરુપમપિ અનુશસનમ્ ।

દ્વેષ્યં તત્ ભવતિ મૂઢાનાં, ક્ષાન્તિશોધિકરં પદમ્ ॥ ૨૯ ॥

તાત્પર્યં ઇસકા ઇસ પ્રકાર કા હૈ કિ જિસ પ્રકાર ઇક્ષુ કે સેન મેં દિયા
ગયા પાની મધુર રસરૂપસે પરિણત હોતા હૈ ઓર વહી પાની જય નિમ્બવૃક્ષ કે
મૂલમેં દિયા જાતા હૈ તો કડુવે રૂપમેં પરિણત હો જાતા હૈ, અથવા જૈસે મિશ્રી
સવ કે લિયે મધુર આસ્વાદ દેતી હૈ પરન્તુ જિસ કી જીભ પિત્ત સે દૂષિત
હો રહી હૈ ઉસકે લિયે વહ મિશ્રી કડુવી નીમ જૈસી માલૂમ હોતી હૈ,
તથા ગર્દો કો તો વહ વિષ જૈસી હી માલૂમ હોતી હૈ । અથવા જૈસે શુદ્ધ
ઘૃત સમસ્તજનોં કો પુષ્ટિ કરને વાલા હોના હૈ પરન્તુ વહી ઘૃત જ્વરવાલે
કે લિયે રોગવર્ધક હોતા હૈ, ઇસી પ્રકાર જો વિનયી શિષ્ય હૈં ઉનકે
લિયે ગુરુ મહારાજ કે વચન હિતકારક હોતે હૈં ઓર વે હી વચન અવિ-
નીત શિષ્ય કે લિયે દ્વેષકારક હોતે હૈં ॥ ૨૮ ॥

તેનું તાત્પર્ય આ પ્રકારનું છે, કે જે પ્રકારે દ્રાક્ષના ખેતરમાં આપવામાં
આવેલ પાણી મધુરરૂપમાં પરિણીત બને છે અને તેજ પાણી જ્યારે લિમડાના
વૃક્ષના મૂળમાં આપવામાં આવે છે તો કડુરસ રૂપમાં પરિણમે છે. જેમ-સાકર
બધા માટે મધુર આસ્વાદ આપે છે પરંતુ જેની જીભ પિત્તથી દુષિત થયેલ
હોય છે, તેને માટે સાકર કડવા લિમડા જેવી માલુમ પડે છે. અને ગર્દેકાને
તો તે ઝંડેર જેવી બને છે. અથવા જેમ ચોખ્ખું ઘી સઘળા માટે પુષ્ટી
કરવાવાળું હોય છે પરંતુ તે ઘી તાવવાળા માટે રોગને વધારનાર બને છે.
એ જ રીતે જે વિનયી શિષ્ય છે તેને માટે ગુરુ મહારાજનું વચન હિતકારક
હોય છે. અને તે જ વચન અવિનીત શિષ્ય માટે દ્વેષકારક હોય છે. ॥ ૨૮ ॥

मूलम्—आसणे उवचिद्विजा, अणुञ्चे अकुए थिरे^३ ।

अंपुट्टाई निरुट्टाई, निसीएजप्पकुर्वकुए ॥३०॥

छाया—आसने उपतिष्ठेत्, अनुच्चे अकुचे स्थिरे ।

अल्पोत्थायी निरुत्थायी, निपीदेत् अल्पकौकुच्यः ॥ ३० ॥

टीका—‘आसणे’ इत्यादि—

अनुच्चे—द्रव्यतो गुर्वासनानीचे, भावतः स्वल्पमूल्यके, अकुचे अकम्पमाने, यद्वा चटकारादिशब्दरहिते, स्थिरे=समपादवत्त्वेन निश्चले, आसने उपतिष्ठेत् पीठादौ वर्षासु उपतिष्ठेत्=उपविशेत् । ईदृशोऽप्यासने साधुः किमवस्थः संस्तिष्ठे-दित्याह—‘अंपुट्टाई’ इति अल्पोत्थायी—कार्ये सत्यपि ईपदुत्तिष्ठतीत्येवंशीलः, एककार्येणोत्थितः सन् बहुकार्यसंपादक इत्यर्थः । अत-एव-कीदृशः सन्नित्याह—

अथ शिष्य के लिये आसन की विधि कहते हैं—‘आसणे’—इत्यादि ।

अन्वयार्थ—शिष्य (अणुच्चे-अनुच्चे) द्रव्यकी अपेक्षा गुरुमहाराज के आसनसे नीचा भावकी अपेक्षा अल्पमूल्यवाला (अकुए-अकुचे) तथा चटचट इत्यादि शब्द से रहित, अथवा हिलनेवाला नहीं ऐसा जो (थिरे-स्थिरे) स्थिर-चारों पाये जिसके समान हों ऐसे (आसणे-आसने) आसन - पीठ फलक पाट पाटले आदि, उन पर वर्षाकाल में (उवचिद्विजा-उपतिष्ठेत्) बैठे । शिष्य जिस आसन पर बैठे वह गुरु के आसन की अपेक्षा नीचा होना चाहिये । तथा अल्प मूल्यवाला एवं हिलने डुलने वाला नहीं होना चाहिये । शिष्य अपने आसन पर जम कर बैठे, कारण बिना न उठे, यही घात (अंपुट्टाई-अल्पोत्थायी) इस पद द्वारा प्रदर्शित की गई है । उठने का काम यदि

हुवे शिष्य भाटे आसननी विधि कडे छे, आसणे-धत्यादि.

अन्वयार्थ—शिष्य अणुच्चे-अनुच्चे द्रव्यकी अपेक्षा गुरुमहाराजना आसनथी नीचा, लावनी अपेक्षा अल्पमूल्यवाला, अकुए-अकुचे तथा चटचट धत्यादि शब्दथी रहित अथवा डुलवावाणा नहीं अथवा जे थिरे-स्थिरे स्थिर-चारे पाया जेना अेक सरभा डोय तेवा, आसणे-आसने आसन-पीठ इलक पाट पाटला आदि जेना उपर वर्षाकालमां उवचिद्विजा-उपतिष्ठेत् जेसे. शिष्य जे आसन उपर जेसे ते गुरुना आसनथी नीचुं डोवुं जेधजे, तथा हुवे जेवे नडीं तेवुं डोवुं जेधजे. शिष्य पोताना आसन उपर स्थिर थधने जेसे, कारणु वगर न उठे, अंपुट्टाई-अल्पोत्थाई आ वात आ पद द्वारा प्रदर्शित करवामां

सद्बोधं विदधाति हन्ति कुमति मिथ्यादृशं वाधते,
धत्ते धर्ममतिं तनोति परमे संवेगनिर्वेदने।

रागादीन् विनिहन्ति नीतिममलां पुष्पाति हन्त्युत्पथं,
यद्वा किं न करोति सद्गुरुमुखाद्भ्युद्गता भारती ॥१॥ इति ॥ २९ ॥

वचन (मूढाणं वेस्सं होइ-मूढानां द्वेष्यं भवति) मूर्ख-अविनीन शिष्यो
के लिये द्वेषजनक होते हैं। कहा भी है—

“सद्बोधं विदधाति हन्ति कुमति मिथ्यादृशं वाधते,
धत्ते धर्ममतिं तनोति परमे संवेगनिर्वेदने।

रागादीन् विनिहन्ति नीतिममलां पुष्पाति हन्त्युत्पथं,
यद्वा किं न करोति सद्गुरुमुखाद्भ्युद्गता भारती” ॥ १ ॥

सद्गुरु के मुखसे निकली हुई वाणी प्रशस्त बोधकी-सम्पन्नान की
जनक होती है, कुमति की विदारक होनी है, मिथ्यात्वरूपी दृष्टि की
विध्वंसक होनी है, धर्म में मति उत्पन्न करने वाली होती है, संवेग,
एवं निर्वेद गुण की उत्कर्षक होनी है, रागादिकों की विनाशक होती है,
निर्मल नीति की पोषक होती है, कुमार्ग की विद्रावक होती है। ऐसे
और जौन से सद्गुण चंचते हैं जो गुरुदेव की वाणी से जीवों को प्राप्त
न होते हों ॥ २९ ॥

शुषोना स्थानभूत, तत् ते गुरु के श्रेयोनां अनुशासना इय वचन मूढाणं
वेस्सं होइ-मूढानां द्वेष्यं भवति अविनीत शिष्य भाटे द्वेष जनक अने छे.
धृष्टुं पणु छे के—

सद्बोधं विदधाति हन्तिकुमति, मिथ्यादृशं वाधते।
धत्ते धर्ममतिं तनोति परमे संवेगनिर्वेदने ॥

रागादिन् विनिहन्ति नीतिममलां पुष्पाति हन्त्युत्पथं।
यद्वा किं न करोति सद्गुरुमुखाद्भ्युद्गता भारती ॥१॥

सद्गुरुना सुप्रथी नीकजेली वाणी प्रशस्त बोधनी साम्यगुणाननी जनक
डोय छे, कुमतिनी विदारक डोय छे, मिथ्यात्वरूपी दृष्टिनी विध्वंसक डोय छे,
धर्ममां मति उत्पन्न करवावाणी डोय छे, संवेग अने निर्वेग-शुषुने उत्कर्षक
करवावाणी डोय छे, रागादिदो विनाश करनारी डोय छे, निर्मल-नीतिनी
पोषक डोय छे, कुमार्गनी विद्रावक डोय छे, जेवा अने भील कथा सद्गुरु
भाकी रहे छे के जे गुरुदेवनी वाणीधी श्रवने प्राप्त न यता डोय

मूलम्—आसणे उवचिद्विजा, अणुच्चे अकुए थिरे ।

अप्पुट्टाई निरुट्टाई, निसीएजप्पकुर्वकुए ॥३०॥

छाया—आसने उपतिष्ठेत्, अनुच्चे अकुचे स्थिरे ।

अल्पोत्थायी निरुत्थायी, निपीदेत् अल्पकौकुच्यः ॥ ३० ॥

टीका—'आसणे' इत्यादि—

अनुच्चे—द्रव्यतो गुर्वासनात्रीचे, भावतः स्वल्पमूल्यके, अकुचे अकम्पमाने, यद्वा चटत्कारादिशब्दरहिते, स्थिरे=समपादवच्चेन निथले, आसने उपतिष्ठेत् पीठादौ वर्षासु उपतिष्ठेत्=उपविशेत् । ईदृशेऽप्यासने साधुः किमवस्थः संस्तिष्ठे-दित्याह—'अप्पुट्टाई' इति अल्पोत्थायी-कार्ये सत्यपि ईपदुत्तिष्ठतीत्येवंशीलः, एककार्येणोत्थितः सन् बहुकार्यसंपादक इत्यर्थः । अत-एव-कीदृशः सन्नित्याह—

अब शिष्य के लिये आसन की विधि कहते हैं—'आसणे'—इत्यादि ।

अन्वयार्थ—शिष्य (अणुच्चे-अनुच्चे) द्रव्यकी अपेक्षा गुरुमहाराज के आसनसे नीचा भावकी अपेक्षा अल्पमूल्यवाला (अकुए-अकुचे) तथा चटचट इत्यादि शब्द से रहित, अथवा हिलनेवाला नहीं ऐसा जो (थिरे-स्थिरे) स्थिर-चारों पाये जिसके समान हों ऐसे (आसणे-आसने) आसन - पीठ फलक पाट पाटले आदि, उन पर वर्षाकाल में (उवचिद्विजा-उपतिष्ठेत्) बैठे । शिष्य जिस आसन पर बैठे वह गुरु के आसन की अपेक्षा नीचा होना चाहिये । तथा अल्प मूल्यवाला एवं हिलने डुलने वाला नहीं होना चाहिये । शिष्य अपने आसन पर जम कर बैठे, कारण विना न उठे, यही बात (अप्पुट्टाई-अल्पोत्थायी) इस पद द्वारा प्रदर्शित की गई है । उठने का काम यदि

हुवे शिष्य भाटे आसननी विधि कडे छे, आसणे-धत्यादि.

अन्वयार्थ—शिष्य अणुच्चे-अनुच्चे द्रव्यकी अपेक्षा गुरुमहाराजना आसनथी नीचा, लावनी अपेक्षा अल्पमुल्यवाणा, अकुए-अकुचे तथा चटचट धत्यादि शब्दथी रहित अथवा डुलवावाणा नहीं अथवा जे थिरे-स्थिरे स्थिर-थारे पाया जेना अेक सरभा डोय तेवा, आसणे-आसने आसन-पीठ इलक पाट पाटला आदि जेना उपर वर्षाकालमां उवचिद्विजा-उपतिष्ठेत् जेसे. शिष्य जे आसन उपर जेसे ते गुरुना आसनथी नीचुं डोवुं जेधजे, तथा हुवे जेवे नहीं तेहुं डोवुं जेधजे. शिष्य पोताना आसन उपर स्थिर थधने जेसे, कारण वगर न उठे, अप्पुट्टाई-अल्पोत्थाई आ बात आ पद द्वारा प्रदर्शित करवाभां

સદ્બોધં વિદધાતિ હન્તિ કુમતિ મિથ્યાદ્રશં વ્રાધતે,
 ધત્તે ધર્મમતિં તનોતિ પરમે સંવેગનિવેદને ।
 રાગાદોન્ વિનિહન્તિ નીતિમમલાં પુણ્નાતિ હન્ત્યુત્પથં,
 યદ્વા કિં ન કરોતિ સદ્ગુરુમુલાદમ્યુદ્ગતા ભારતી ॥૧॥ ઇતિ ॥ ૨૯ ॥

વચન (મૂઢાણં વેસ્સં હોઈ-મૂઢાનાં દ્વેષ્યં ભવતિ) મૂર્લ-અવિનીન શિષ્યોં
 કે લિયે દ્વેષજનક હોતે હેં । કહાં ખી હે—

“સદ્બોધં વિદધાતિ હન્તિ કુમતિં મિથ્યાદ્રશં વ્રાધતે,
 ધત્તે ધર્મમતિં તનોતિ પરમે સંવેગનિવેદને ।
 રાગાદોન્ વિનિહન્તિ નીતિમમલાં પુણ્નાતિ હન્ત્યુત્પથં,
 યદ્વા કિં ન કરોતિ સદ્ગુરુમુલાદમ્યુદ્ગતા ભારતી ” ॥ ૧ ॥

સદ્ગુરુ કે મુગ્ધસે નિકલો હુઈ વાળી પ્રશસ્ત વોધકી-સમ્યગ્જ્ઞાન કી
 જનક હોતી હૈ, કુમતિ કી વિદારક હોની હૈ, મિથ્યાત્વરૂપી દ્રષ્ટિ કી
 વિધ્વંસક હોતી હૈ, ધર્મ મેં મતિ ઉત્પન્ન કરને વાલી હોતી હૈ, સંવેગ,
 ઇવં નિવેદ ગુણ કી ઉત્કર્ષક હોની હૈ, રાગાદિકોં કી વિનાશક હોતી હૈ,
 નિર્મલ નીતિ કી વોષક હોતી હૈ, કુમાર્ગ કી વિદ્રાવક હોતી હૈ । ઇસે
 ઓર કોન સે સદ્ગુણ વચતે હેં જો ગુરુદેવ કી વાળી સે જીવોં કો પ્રાપ્ત
 ન હોતે હોં ॥ ૨૯ ॥

શુભાના સ્થાનભૂત, તત્ તે ગુરુ કે જ્ઞેઓનાં અનુશાસના રૂપ વચન મૂઢાણં
 વેસ્સં હોઈ-મૂઢાનાં દ્વેષ્યં ભવતિ અવિનીત શિષ્ય માટે દ્વેષ જનક બને છે.

કહ્યું પણ છે કે—

સદ્બોધં વિદધાતિ હન્તિકુમતિં, મિથ્યાદ્રશં વ્રાધતે ।
 ધત્તે ધર્મમતિં તનોતિ પરમે સંવેગનિવેદને ॥
 રાગાદિન્ વિનિહન્તિ નીતિમમલાં પુણ્નાતિ હન્ત્યુત્પથં ।
 યદ્વા કિં ન કરોતિ સદ્ગુરુમુલાદમ્યુદ્ગતા ભારતી ॥૧॥

સદ્ગુરુના મુખથી નીકળેલી વાણી પ્રશસ્ત વોધની સામ્યગ્જ્ઞાનની જનક
 હોય છે, કુમતિની વિદારક હોય છે, મિથ્યાત્વરૂપી દ્રષ્ટિની વિધ્વંસક હોય છે,
 ધર્મમાં મતિ ઉત્પન્ન કરવાવાળી હોય છે, સંવેગ અને નિવેદન શુભને ઉત્કર્ષક
 કરવાવાળી હોય છે, રાગાદિકોના વિનાશ કરનારી હોય છે, નિર્મળ નિતીની
 વોષક હોય છે. કુમાર્ગની વિદ્રાવક હોય છે, જ્યેવા અને ધીજ્ઞ કયા સદ્ગુણ
 ધાકી રહે છે કે જે ગુરુદેવની વાણીથી શુભને પ્રાપ્ત ન થતા ॥

मूलम्—आसणे उवचिट्टिजा, अणुञ्चे अकुए थिरे^३ ।

अप्पुट्टाई निरुट्टाई, निसीएज्जप्पकुर्वकुए ॥३०॥

छाया—आसने उपतिष्ठेत्, अनुच्चे अकुचे स्थिरे ।

अल्पोत्थायी निरुत्थायी, निपीदेत् अल्पकौकुच्यः ॥ ३० ॥

टीका—‘आसणे’ इत्यादि—

अनुच्चे—द्रव्यतो गुर्वासनानीचे, भावतः स्वल्पमूल्यके, अकुचे अकम्पमाने, यद्वा चटकारादिशब्दरहिते, स्थिरे=समपादवत्त्वेन निश्चले, आसने उपतिष्ठेत् पीठादौ वर्षासु उपतिष्ठेत्=उपविशेत् । ईदृशेऽप्यासने साधुः किमवस्थः संस्तिष्ठे-दित्याह—‘अप्पुट्टाई’ इति अल्पोत्थायी-कार्ये सत्यपि ईपदुत्तिष्ठतीत्येवंशीलः, एककार्येणोत्थितः सन् बहुकार्यसंपादक इत्यर्थः । अत-एव-कीदृशः सन्नित्याह-

अथ शिष्य के लिये आसन की विधि कहते हैं—‘आसणे’—इत्यादि ।

अन्वयार्थ—शिष्य (अणुच्चे-अनुच्चे) द्रव्यकी अपेक्षा गुरुमहाराज के आसनसे नीचा भावकी अपेक्षा अल्पमूल्यवाला (अकुए-अकुचे) तथा चटचट इत्यादि शब्द से रहित, अथवा हिलनेवाला नहीं ऐसा जो (थिरे-स्थिरे) स्थिर-चारों पाये जिसके समान हों ऐसे (आसणे-आसने) आसन - पीठ फलक पाट पाटले आदि, उन पर वर्षाकाल में (उवचिट्टिजा-उपतिष्ठेत्) बैठे । शिष्य जिस आसन पर बैठे वह गुरु के आसन की अपेक्षा नीचा होना चाहिये । तथा अल्प मूल्यवाला एवं हिलने डुलने वाला नहीं होना चाहिये । शिष्य अपने आसन पर जम कर बैठे, कारण बिना न उठे, यही बात (अप्पुट्टाई-अल्पोत्थायी) इस पद द्वारा प्रदर्शित की गई है । उठने का काम यदि

हुवे शिष्य भाटे आसननी विधि कडे छे, आसणे-धत्त्यादि ।

अन्वयार्थ—शिष्य अणुच्चे-अनुच्चे द्रव्यकी अपेक्षा गुरुमहाराजना आसनथी नीचा, लापनी अपेक्षा अल्पमूल्यवाला, अकुए-अकुचे तथा चटचट धत्त्यादि शब्दथी रहित अथवा डुलवावाला नहीं ऐसा जो थिरे-स्थिरे स्थिर-चारों पाया जेना ओके सरणा डोय तेवा, आसणे-आसने आसन-पीठ इलक पाट पाटला आदि जेना उपर वर्षाकाणमां उवचिट्टिजा-उपतिष्ठेत् जेसे. शिष्य जे आसन उपर जेसे ते गुरुना आसनथी नीचुं डोयुं जेधजे, तथा हुवे यजे नहीं तेहुं डोयुं जेधजे. शिष्य पोताना आसन उपर स्थिर यधने जेसे, कारण उपर न उठे, अप्पुट्टाई-अल्पोत्थाई आ बात आ पद द्वारा प्रदर्शित करवाभां

‘નિરુઠ્ઠાઈ’ ઇતિ નિરુત્થાયો-પ્રયોજનેઽપિ ન પુનઃ પુનરુત્થાનશીલઃ પુનઃ કીદ્ધઃ સન્નિત્યાહ-‘અપ્પકુક્કુણ’ ઇતિ અલ્પકૌકુચ્યઃ-અલ્પં કૌકુચ્યં યસ્ય સ તથા-અત્રાલ્પશબ્દો નર્જર્યે વર્તતે તથાચ-ફરચરણભ્રૂભ્રમણાદ્યશિષ્ટચેષ્ટારહિત ઇત્યર્થઃ નિપીદેત્-ઉપવિશેત્ ।

‘અનુચ્ચે’ ઇતિ વિશેષણેન વિનયઃ પ્રદર્શિતઃ ।

‘અકુચે’ ઇત્યનેન દ્વીન્દ્રિયાદિત્રસજીવયતના સૂચિતા ।

‘સ્થિરે’ ઇત્યનેન વાયુકાયયતના સૂચિતા ।

‘અલ્પોત્થાયી’ ઇત્યનેન નિષદ્યાપરિપહવિજયઃ સૂચિતઃ ।

‘નિરુત્થાયી’ ઇત્યનેન આખ્યન્તરિકવ્યુત્સર્ગતપસઃ સમારાધનાઽઽવેદિતા ।

પહે ભી તૌ ભી જવ ઉઠે તવ જિસ કામ કે લિયે ઉઠા હો ઉસ સમય ઔર ભી જો કામ કરના હો વે ભી કર લેવે । તથા (અપ્પકુક્કુણ-અલ્પ કૌકુચ્યઃ) હાથ તથા પૈર ંવં ભ્રૂ આદિ કા અશિષ્ટ સંચાલન ન કરે, તાત્પર્યં યહ કિ યદિ યહ પાટ આદિ આસનપર જમકર વૈઠે તો ભી ંસી હાલત મેં જિસ પ્રકાર સંસારી જન વૈઠે ૨ હી હાથ પૈર આદિ હિલાયા ડુલાયા કરતે હૈં વૈસી અશુભ ચેષ્ટાં નહીં કરની ચાહિયે । સૂત્રકાર ને ‘અનુચ્ચે’ ંસ પદ દ્વારા વિનયગુણ પ્રદર્શન કિયા હૈં । ‘અકુચે’ ંસ વિશેષણ દ્વારા દ્વીન્દ્રિયાદિ જીવોં કી યાતના કા સૂચન કિયા હૈં । ‘સ્થિરે’ ંસ શબ્દ દ્વારા વાયુકાય કી યાતના કા ‘અલ્પોત્થાયી’ ંસ પદ દ્વારા નિષદ્યાપરીપહ કે વિજય કા ‘નિરુત્થાયી’ ંસ દ્વારા આખ્યન્તર

આવેલ છે. ઉઠવાનું કામ બે પડે તો પંજુ બ્યારે ઉઠે ત્યારે બે કામ માટે ઉઠેલ હોય તેની સાથે ખીબું પજુ બે કામ કરવાનું હોય તે કરી લે. તથા અલ્પકુક્કુણ-અલ્પકૌકુચ્યઃ તથા હાથ અને પગ તથા ભ્રૂ વગેરેનું અશિષ્ટ સંચાલન ન કરે. તાત્પર્યં એ છે કે, બે તે પાટ આદિ આસન ઉપર સ્થિર બેસે તો પજુ એવી હાલતમાં બે પ્રકારથી સંસારી જન બેઠાં બેઠાં બે હાથ પગ વગેરે હલાવ્યા-ડોલાવ્યા કરે છે તે રીતે અશુભ ચેષ્ટાઓ કરવી ન બેઈ એ. સૂત્રકારે “અનુચ્ચે” આ પદ દ્વારા વિનયગુણ પ્રદર્શન કરેલ છે. અકુચે આ વિશેષણ દ્વારા દ્વિ ંન્દ્રિયાદિ જીવોની યતનાનું સૂચન કરેલ છે. સ્થિરે આ પદ દ્વારા વાયુકાયની યતનાનું સૂચન કરેલ છે. “અલ્પોત્થાયી” એ પદ દ્વારા નિષદ્યા પરિપહના વિનયનું સૂચન કરેલ છે. નિરુત્થાયી એ પદ દ્વારા આખ્યન્તર વ્યુત્સર્ગ

‘अल्पकौकुच्यः’ इति विशेषणेन संयमलज्जा सूचिता ॥ ३० ॥

संप्रति एषणासमितिचिपयं विनयमाह—

मूलम्—कालेण निक्खमे भिक्खू, कालेण यं पडिक्कमे ।

अकालं च विवञ्जिता, काले कालं समाचरे ॥३१॥

छाया—कालेन निष्क्रामेद् भिक्षुः, कालेन च प्रतिक्रामेत् ।

अकालं च विवर्ज्य, काले कालं समाचरेत् ॥ ३१ ॥

टीका—‘कालेण’ इत्यादि—

कालेन—काले—देशकालानुसारेण भिक्षायोग्यसमये एव भिक्षुः=साधुनिष्क्रामेत्=भिक्षार्थं निर्गच्छेत्—अकाले भिक्षार्थं निर्गमने संनिवेशनिन्दास्वात्मक्लेशादि दोषसंभवात् । च—पुनः कालेन=काले उचित समय एव प्रतिक्रामेत्=भिक्षाटनात् प्रति-निवर्तत, अल्पलाभे अलाभे वा लाभाशया कालमतिक्रम्य न चिरकालमटेदिति भावः ।

व्युत्सर्ग तपका तथा ‘अल्पकौकुच्यः’ इस पद द्वारा संयम की लज्जा के निर्वाह का सूचन किया है ॥ ३० ॥

अब एषणासमितिचिपयक विनयधर्मका सूत्रकार कथन करते हैं—‘कालेण’ इत्यादि.

अन्वयार्थ—(कालेण—कालेन) देश काल के अनुसार भिक्षायोग्य समय में ही (भिक्खू—भिक्खु) साधु को (निक्खमे—निष्क्रामेत्) भिक्षा के लिये अपने स्थान से जाना चाहिये । अकाल में भिक्षा के लिये निकलने में संनिवेश—गाँव की तथा साधु की निन्दा होती है, इस से आत्मा को क्लेशादिक दोषों की संभावना रहती है । तथा (कालेण य पडिक्कमे—कालेन च प्रतिक्रामेत्) उचित समय में ही वह वापिस भिक्षाटन से लौट आवे, ऐसा नहीं करना चाहिये कि भिक्षा का अल्पलाभ हो अथवा

अल्पकौकुच्यः अे पढ द्वारा संयमनी लज्जाना निर्वाहनुं सूचन करेव छे. ॥३०॥

इवे अेषणासमितिचिपयक विनयधर्मनुं सूत्रकार कथन करे छे. कालेण० इत्यादि.

अन्वयार्थ—कालेण—कालेन देशकाल अनुसार भिक्षाना योग्य समयेन, भिक्खु—भिक्खु साधुअे निक्खमे—निष्क्रामेत् भिक्षा भाटे पोताना स्थानथी ननुं जेधअे. अकालमां भिक्षा भाटे निकणवाभां गाभनी तथा साधुनी निंदा थाय छे. अथी आत्माने क्लेशादिक दोषोनी संभवना रहे छे, तथा कालेण य पडिक्कमे—कालेन च प्रतिक्रामेत् उचित समयमां न ते भिक्षाटनथी पाछा करे. अेवुं न करवुं जेधअे के भिक्षाने अल्प लाभ होय अथवा अलाभ होय तो ते लाभनी

उक्तं च—अलाभो त्ति न सोइज्जा, तवोत्ति अहियासए ॥

छाया—अलाभ इति न शोचेत्, तप इत्यध्यासीत् ॥

च—पुनः अकालं—प्रतिक्रमण—प्रतिलेखनाऽऽपृच्छना—स्वाध्याय—भिक्षाचरीप्रभृति-
कार्याणामयोग्य समयं च विवर्ज्य=परित्यज्य, काले—यस्य कार्यस्य यः कालस्त-
स्मिन्नेव, कालं-तत्कालोचितं प्रतिक्रमण-प्रतिलेखनादिकं कार्यं समाचरेत्=कुर्यात् ।

अयं भावः—यो यस्य अङ्गप्रविष्टादेः श्रुतस्य काल उक्तस्तस्य श्रुतस्य तस्मि-
न्नेव काले स्वाध्यायः कार्यः, नान्यदा, विघ्नसंभवात्, तीर्थकराज्ञाविरोधाच्च ।

अलाभ हो तो वहीं लाभ की आशा से समय को उल्लंघन कर बहुत
समय तक घूमता ही रहे। भगवान ने कहा भी है—

“अलाभो त्ति न सोइज्जा, तवोत्ति अहिया सए”

साधु को जब अपने समयानुसार भिक्षा का लाभ न हो तो उस
समय उसे शोच नहीं करना चाहिये किन्तु ऐसा समझना चाहिये कि
यह एक बड़े भारी तप का लाभ हुआ है। प्रतिक्रमण, प्रतिलेखना,
अपृच्छना, स्वाध्याय तथा भिक्षाचर्या का जो समय नियत है उस
समय के अतिरिक्त (अकालं च विवर्जिता-अकालं च विवर्ज्य) शेष
उनका अकाल का समय है अतः उसे छोड़कर (कालं) जोर, कार्य
जिसर समय में किये जाने चाहिये उन्हें (काले) उसी समय में (समायरे
-समाचरेत्) करे।

भावार्थ—जिस अंगप्रविष्ट आचारांग आदि सूत्रों के स्वाध्याय
करने का जो समय नियत है उस समय में उसी श्रुत की स्वाध्याय

आशाधी समयनु उलंघन करीने धृष्टा समय सुधी करता रहे. लगवाने कहुं छे के
अलाभोत्ति न सोइज्जा तवो त्ति अहियासए साधुने न्यारे पोताना समय अनुसार
भिक्षाने लाभ न थाय तो ते समये तेहू साथ न करये नोर्धये परंतु
अभ समयनु नोर्धये के, आ अेक लारे तपने लाभ भये, प्रतिक्रमण,
प्रतिलेखना. आस्पृच्छना. स्वाध्याय. तथा भिक्षाचर्याने ने समय नियत छे अे
समय सिवाय, अकालं च विवर्जिता-अकालं च विवर्ज्य शेष तेने अकालने
समय छे, आधी अेने छोडी, कालं ने ने कार्यं ने ने समयमां करी देवां
नोर्धये अेने अे न काले समयमां समायरे-समाचरेत् करे.

भावार्थ—अंग प्रविष्ट आचारांग आदि सूत्रोने स्वाध्याय करवाने ने
समय नियत छे अे समयमां अेन श्रुतने स्वाध्याय करवे नोर्धये. ॥

દૃશ્યતે ચ લોકેऽપિ કાલ એવ કૃવ્યાદિકરણે ધાન્યાદિનિષ્પત્તિરૂપં ફલં ભવતિ, વિપર્યયે તુ વિપર્યયઃ । યથા કાલ એવ વનસ્પતીનામઙ્કુરાઃ પ્રાદુર્ભવન્તિ, કાલ એવ વૃક્ષાઃ કુસુમિતા ભવન્તિ, ફલવન્તશ્ચ, કાલ એવ પદ્મ ઋતવઃ સમાયાન્તિ, કાલ એવ તીર્થકરાશ્ચક્રિણો વલદેવા વાસુદેવા જાયન્તે, કાલ એવ શુક્તિકાર્યાં મુક્તા ઉત્પદન્તે, કાલે આવશ્યકકારિણસ્તીર્થકરગોત્રં કર્મોપાર્જયન્તિ ।

યતઃ—કાલમ્મિ કીરમાણં, કિસિકમ્મં વહુફલં જહા હોઠ્ઠી ।

ઇય સવ્વચ્ચિય કિરિયા, નિય-નિય-કાલમ્મિ વિન્નેયા ॥ ૧ ॥

છાયા—કાલે ક્રિયમાણં, કૃપિકર્મ વહુફલં યથા ભવતિ ।

ઇતિ સર્વેવ ક્રિયા, નિજ-નિજ-કાલે વિજ્ઞેયા ॥ ૧ ॥

કરની ચાહિયે, મિન્ન સમય મેં નહીં, કારણ કિ અકાલ મેં વિઘ્નેૉ કે આને કી સંભવના રહતી હૈ । તથા તીર્થકર પ્રશુકી એસી આજ્ઞા નહીં હૈ, અતઃ ઉનકી આજ્ઞા કે વિરુદ્ધ પ્રવૃત્તિ કરને સે સ્વચ્છંદતા કા દોષ લગતા હૈ । લોકમેં મી યહી વાત દેખી જાતી હૈ—ખેતી આદિ કરને કા જો કાલ નિયત હૈ ઉસો મેં ઉસ કે કરને સે ધાન્યાદિક ફલ કી નિષ્પત્તિ હોતી હૈ, અન્ય સમય મેં નહીં । સમયાનુસાર હી વૃક્ષોં મેં પત્ર પુષ્પ ફલાદિક આયા કરતે હૈ । તથા વનસ્પતિઓ અંકુરોં કો ઉત્પન્ન કરતી હૈ । અપને અપને સમય મેં છહ ઋતુએ આતી હૈ । તીર્થકર, ચક્રવર્તી, વલદેવ, વાસુદેવ, યે સવ અપને ૨ સમય પર હી હોતે હૈ । સીપ મેં મોતી, સમયાનુસાર હી હોતે હૈ । આવશ્યક ક્રિયાઓં કો કરને વાલે જીવ સમય પર હી તીર્થકર ગોત્ર કા ઉપાર્જન ક્રિયા કરતે હૈ । કહા મી હૈ—

સમયમાં નહીં. કારણ કે અકાલમાં વિઘ્ને આવવાની સંભાવના રહે છે. તથા તીર્થકર પ્રશુકી એવી આજ્ઞા નથી. માટે એમની આજ્ઞાની વિરુદ્ધ પ્રવૃત્તિ કરવાથી સ્વચ્છંદતાનો દોષ લાગે છે. લોકોમાં પણ આવી વાત દેખાય છે—ખેતી વગેરે કરવાનો જે કાળ નિયત છે એ સમયે જ કરવાથી ધાન્યાદિક ફળની ઉત્પત્તિ થાય છે. અન્ય સમયમાં નહીં. સમયાનુસારજ વૃક્ષોમાં પત્ર પુષ્પ ફળાદિક આવ્યા કરે છે. તથા વનસ્પતિઓ અંકુરોને ઉત્પન્ન કરે છે. પોતાના સમયમાં જ ઋતુઓ આવે છે તીર્થકર, ચક્રવર્તી, વલદેવ, વાસુદેવ. એ બધા પોત પોતાના સમય ઉપર થાય છે. સીપમાં મોતી સમયાનુસાર જ થાય છે. આવશ્યક ક્રિયાઓને કરવાવાળા જીવ સમય પર જ તીર્થકર પ્રકૃતિનો અર્થ કર્યા કરે છે. કહ્યું પણ છે કે—

तस्मात् साधुभिः कालेय सर्वां प्रतिक्रमणप्रतिलेखनादिक्रिया कर्तव्येति ।
सूत्रे 'कालेण' इत्यत्र तृतीया सप्तम्यर्थे ॥ ३१ ॥

मूलम्—परिवाडीए न चिट्टेज्जा, भिक्खू दत्तेसणं चरे ।

पंडिरूवेण एसित्ता, मियं कांलेण भक्खेए ॥३२॥

छाया—परिपाट्यां न तिष्ठेत्, भिक्षुः दत्तैषणां चरेत् ।

प्रतिरूपेण एपित्वा, मितं कालेन भक्षयेत् ॥ ३२ ॥

टोका—'परिवाडीए' इत्यादि—

भिक्षुः=साधुः, परिपाट्यां—गृहस्थगृहे भुञ्जानानां जनानां पङ्क्तौ न तिष्ठेत् ।
किं च—दत्तैषणां=दत्तं—दानं तस्मिन् गृहस्थेन दीयमाने, एषणा—तद्गतशङ्कित-

“कालम्भि कीरमाणं, किसिकम्मं बहुफलं जहा होइ ।

इय सव्वच्चिय किरिया, निय-निय-कालम्भि विन्नेया ॥ १ ॥

छाया—काले क्रियमाणं, कृपिकर्म बहुफलं यथा भवति ।

इति सर्वां चैव क्रिया निज-निज-काले विज्ञेया ॥ १ ॥

इस लिये साधुओं को चाहिये कि वे समस्त अपनी प्रतिक्रमण
प्रतिलेखनादिक क्रियाओं को नियत समय पर ही करते रहें ॥ ३१ ॥

'परिवाडीए' इत्यादि.

अन्वयार्थ—(भिक्खू-भिक्षुः) साधु (परिवाडीए न चिट्टेज्जा-
परिपाट्यां न तिष्ठेत्) गृहस्थ के घर में भोजन करती हुई जीमणवार
की जनपंक्ति में न खडा रहे । (दत्तेसणं चरे-दत्तैषणां चरेत्)

“कालम्भि कीरमाणं, किसिकम्मं बहुफलं जहा होई ।

इय सव्वच्चिय किरिया, निय-निय-कालम्भि विन्नेया ॥ १ ॥

छाया—काले क्रियमाणं, कृपिकर्म बहुफलं यथा भवति ।

इतिसर्वैवक्रिया, निज-निज-काले विज्ञेया ॥१॥

आ भाटे साधुतुं कर्तव्य छे के तेबु पोतानी समस्त क्रियाओ प्रतिक्रमण
प्रतिलेखनादिक नियत समय उपर करवी लेईये ॥ ३१ ॥

परिवाडिए—इत्यादि.

अन्वयार्थ—भिक्खु-भिक्षुः साधु, परिवाडीए न चिट्टेज्जा-परिपाट्यां न तिष्ठेत्
गृहस्थनाधरमां भोजन करती भक्षुवारनी जनपंक्तिमां उभा न रहे. दत्तेसणं चरे—
दत्तैषणां चरेत् गृहस्थ दाश प्रदत्त दानमां शक्ति, भक्षिक आदिदोषोनी अवेपणा इय

अक्षितादिदोषान्वेषणात्मिका दत्तपणा तां, चरेत्=आसेवेत् । अनेन ग्रहणैपणा सूचिता ।
किं कृत्वा दत्तैपणां चरेदित्याह—‘पडिरूवेण’ इत्यादि । प्रतिरूपेण=मुनिवेषेण,
चद्वसदोरकमुखवस्त्रिकत्वं, रजोहरणपात्रधारकत्वं, श्वेतवस्त्रपरिधायकत्वं च मुनि-
वेषस्तेन, एषित्वा=गवेपयित्वा, अनेन उद्गमोत्पादनाविषया गवेपणैपणा प्रोक्ता ।
मितं=परिमितं कालेन—काले—आगमोक्तसमये देशकालानुसारेण भक्षयेत्—भुञ्जीत् ।
अनेनाभ्यवहरणविषया ग्रासैपणाऽऽवेदिता ।

अत्र ‘परिवाडीए न चिद्वेज्जा’ इत्यनेन अप्रीतिः, रसलोलुपतावर्जनं
च सूचितम् । ‘दत्तैसणं’ इत्यनेनादत्तादाननिवृत्तिः सूचिता । ‘पडिरूवेण’
इत्यनेन निष्कपटता प्रदर्शिता । ‘मियं’ इत्यनेनाधिकभोजननिवृत्तिरावेदिता ॥ ३२ ॥

गहस्थद्वारा प्रदत्त दान में शङ्कित, अक्षित आदि दोषों की गवेपणा रूप
दत्तैपणा अर्थात् ग्रहणैपणा का ध्यान रखे । (पडिरूवेण—प्रतिरूपेण)
प्रतिरूपसे—मुनि के वेप से—मुख पर दोरासहित मुंहपत्ति बांधना,
रजोहरण एवं पात्रों का धारण करना, यह मुनिवेष हैं इस वेप से
(एषित्वा—एषित्वा) गवेपणा कर (कालेण—कालेन) आगमन में कथित
समयमें देश काल के अनुसार समय पर मिले हुए अन्न आदिका (मियं—
मितं) परिमितं (भक्खए—भक्षेत्) आहार करे । ‘एषित्वा—एषित्वा’ इस पद
से उद्गम, उत्पादन आदि दोषों से वर्जित गवेपणैपणा, तथा ‘भुञ्जीत्’ इस
क्रियापद द्वारा ग्रासैपणा प्रकट की गई है । ‘परिवाडीए न चिद्वेज्जा’ इस
पद द्वारा अप्रीति एवं रस में लोलुपताका परिहार सूचित हुआ है ।
‘दत्तैसणं’ से अदत्तादान से निवृत्ति, ‘पडिरूवेण’ से निष्कपटता, ‘मियं’
इस से अधिक भोजनकी निवृत्ति सूचित की गई है ॥ ३२ ॥

इतियेषु अर्थात् अक्षितैपणानुं ध्यान राणे. पडिरूवेण—प्रतिरूपेण प्रति३पथां—मुनिना
वेशथी मोढा उपर दोरासहित मुहपत्ति बांधनी, रजोहरण तथा पात्रोनुं धारण
करनुं तथा शुक्ल वस्त्रोने धारण करवां ये मुनिवेश छे. आ वेशने, एषित्वा—
एषित्वा धारण करी, कालेण—कालेन आगमना कडेला समयमां देशकाल समय अनु-
सार समय उपर भणेला अन्न आदिने मियं—मितं परिमित भक्खए—भक्षयेत् आहार
करे. एषित्वा—एषित्वा ये पदथी उद्गम, उत्पादन आदि दोषोथी वर्जित गवेपणैपणु
तथा “भुञ्जीत्” आ क्रिया पद द्वारा ग्रासैपणु प्रकट करवामां आवेल छे.
परिवाडी ए न चिद्वेज्जा आ पद द्वारा अप्रीति एवं रसमां लोलुपतामे
परिहार सूचित थयेल छे. दत्तैसणं आ पदथी अदत्तादाननी निवृत्ति, सूचित
करवामां आवेल छे. पडिरूवेण आ पदथी निष्कपटता सूचित करे छे. मियं
ये पदथी अधिक भोजननी निवृत्ति सुखववामां आवेल छे. (३२)

। મિક્ષાચર્યાં કુર્વતા સાધુના ગૃહસ્થગૃહે પૂર્વસમાગતમિશ્વસન્નાથે યત્
કર્તવ્યં તદાહ—

મૂલમ્—નાહૈદૂરમણાસન્ને, નન્નેસિં ચર્કલુપાસઓ ।

एंगो चिद्वेज्ज भर्त्तुं, लंघित्ता तं नाइर्कमे ॥३३॥

छाया—नातिदूरं अनासन्ने, नान्येषां चक्षुःस्पर्शतः ।

एकस्तिष्ठेद् भक्तायम्, लङ्घयित्वा तं नातिक्रामेत् ॥ ३३ ॥

टीका—‘नाइदूर०’ इत्यादि—

अतिदूरम्=अतिदूरे न तिष्ठेत्, मिक्षाचर्यां कुर्यन् साधु गृहस्थगृहे पूर्वसमागतं
मिक्षुकं दृष्ट्वा ततोऽति दूरे न तिष्ठेत्, अतिदूरावस्थाने मिक्षुनिर्गमनं ज्ञातुमशक्यं
स्यात्, एषणा शुद्ध्यसंभवश्चेति भावः । तथा आसन्ने=अतिनिकटेऽपि न तिष्ठेत्,

जिस समय साधु मिक्षाचर्या कर रहा हो उस समय यदि गृहस्थ
के घर में कोई दूसरा मिक्षु मिक्षाचर्या के लिये आया हुआ हो तो
साधु का क्या कर्तव्य है ? इस विषय को इस गाथाद्वारा स्पष्ट किया
जाता है—‘नाइदूर०’ इत्यादि.

अन्वयार्थ—मिक्षा करता हुआ साधु (नाइदूरमणासन्ने-नातिदूरं
अनासन्ने) जब यह देखे कि गृहस्थ के घर पर पहिले से कोई दूसरा
मिक्षु आदि मिक्षानिमित्त आया हुआ है, या मिक्षा ग्रहण कर रहा है
तो वह उस समय बहुत दूर जाकर खड़ा न होवे और न अति समीप
खड़ा होवे । क्यों कि अतिदूर खड़े होने पर मिक्षु का निर्गमन उसे
ज्ञात नहीं हो सकता है, तथा अति समीप खड़े रहने पर उससे पूर्वगत

ने समय साधु मिक्षा चर्या करता હોય એ સમયે ગૃહસ્થને ઘર કેઈ
બીજા મિક્ષુ મિક્ષાચર્યા માટે આવેલ હોય તો સાધુનું શું કર્તવ્ય છે. આ
વિષયને આ સૂત્રદ્વારા સ્પષ્ટ કરવામાં આવે છે—નાહૈદૂર—ઈત્યાદિ.

અન્વયાર્થ—મિક્ષા માટે નિકળેલ સાધુ, નાહૈદૂરમણાસન્ને-નાતિદૂરં અનાસન્ને
એ બુએ કે જે ગૃહસ્થને ત્યાં પોતે જઈ રહેલ છે, ત્યાં તેની પહેલાં કેઈ બીજા
મિક્ષુ મિક્ષા નિમિત્ત ગયેલ છે, અથવા મિક્ષા ગ્રહણ કરી રહેલ છે, તો તે
એ સમયે ઘણે આઘે જઈ ઊભા ન રહે તેમ અતિ સમીપમાં પણ ઊભા ન
રહે કેમ કે, અતિ દૂર ઊભા રહેવાથી મિક્ષાથે ગયેલા મિક્ષુનું નિર્ગ-
મન બહુ શકાતું નથી તથા અતિ સમીપ રહેવાથી પહેલાં માટે

तत्र स्थिते सति पूर्वागतभिक्षुकस्य द्वेषः स्यादिति भावः । अन्येषां=भिक्षुकापेक्षया=येऽन्ये सन्ति गृहस्थास्तेषां, चक्षुःस्पर्शतः=चक्षुःस्पर्शे दृष्टिगोचरे न तिष्ठेत्, 'अयं भिक्षुः पूर्वागतभिक्षुनिष्क्रमणं प्रतिक्षते इति यथा गृहस्था न जानन्ति तथा तिष्ठेदिति भावः । एकः=रागद्वेष रहितः सन्, भक्तार्थम्-आहारार्थं तिष्ठेत् । तम्=पूर्वागतभिक्षुकं, लङ्घयित्वा=अनादृत्य, नातिक्रामेत्= न गृहमध्ये गच्छेत्, पूर्वागतभिक्षुकस्य सद्भावे गृहस्थस्यगृहे.गमने तदप्रीतिशासनलघुतादिदोषाणां संभव इति भावः ॥ ३३ ॥

सम्पत्ति ग्रहणैपणाविधिं सूत्रकारः प्रदर्शयति—

मूलम्—नांङुञ्चे न नीए वा, नांसणणे नांङुदूरओ ।

फासुचं परकडं पिडं, पडिगांहिज्ज संजए ॥३४॥

छाया—नात्युच्चे न नीचे वा नासन्ने नातिदूरतः ।

प्रासुकं परकृतं पिण्डं, प्रतिगृह्णीयात् संयतः ॥ ३४ ॥

भिक्षु को द्वेष हो सकता है । इसी प्रकार (नन्नेसिं चक्खुफासओ चिट्ठेज्ज-नान्येषां चक्षुःस्पर्शतः तिष्ठेत्) गृहस्थ के नजर में आवे ऐसा भी खडा न होवे (एगो-एकः) एक तथा राग-द्वेष रहित होकर (भक्तद्वं-भक्तार्थम्) आहार के लिये (चिट्ठेज्ज) खडा रहे और (लंघित्ता तं नाइक्कमे-लङ्घयित्वा तं नातिक्रामेत्) पहले वाला भिक्षु जब तक बाहर न निकले तब तक मुनि को उस गृहस्थ के घर में आहार निमित्त प्रविष्ट नहीं होना चाहिये । पहले आये हुए भिक्षु के सद्भाव में गृहस्थ के घर जाने पर गृहस्थ को उस के प्रति अप्रीति हो सकती है एवं शासन की लघुता आदि दोषों की संभावना हो सकती है ॥ ३३ ॥

गथेला भिक्षुकना मनमां द्वेष लागवा नेवुं अने छे. तेम नन्नेसिं चक्खु-फासओ चिट्ठेज्ज-नान्येषां चक्षुः स्पर्शतः तिष्ठेत् गृहस्थनी दृष्टि पडे अे रीते पधु ळिला न रडे. एगो-एकः अेक तथा राग द्वेष रहित अनीने भक्तद्वं-भक्तार्थम् भिक्षा माटे चिट्ठेज्ज ळिला रडे अने लंघित्ता तं नाइक्कमे-लंघयित्वा तं नातिक्रामेत् पडेला भिक्षा माटे गथेद भिक्षु न्यां सुधी अडार न नीकणे त्यां सुधी मुनिअे ते गृहस्थना घरमां आडार निमित्त प्रवेश न करवे अेधअे. पडेलां गथेलां साधुना सइलावमां गृहस्थने त्यां नवाथी गृहस्थने तेना तरइ अप्रीति थाय अने शासननी लघुता आदि दोषोनी संभावना थाय छे. ॥ ३३ ॥

टीका—‘नाइउच्चे’ इत्यादि—

संयतः=साधुः, प्रामुकं=पनकादिजंतुरहितं, निर्दोषं=नवकोटिविशुद्धं, परकृतं=परेण गृहस्थेन स्वार्थं कृतं न तु साध्यर्थम्, पिण्डम्=चतुर्विधमाहारम्, अत्युच्चे-गृहोपरिभूमिकादौ वंशकाष्ठनिर्मितचर निश्रेणिकारोहणं कृत्वा, न प्रतिगृहीयात् प्रतिगृहीयादित्यस्य नीचादावपि सम्बन्धः। नीचे=अतिनीचे-भूमिगृहादौ वा न प्रतिगृहीयात् तथा-आसन्ने=अत्यासन्ने, अतिसमीपे स्थितः सन् न प्रतिगृहीयात्, अतिदूरतः-अतिदूरे स्थितः सन् न प्रतिगृहीयात्।

अत्र-‘अत्युच्चे’ इति-आरोहणेऽवरोहणे च स्वपरविराधनासंभवं सूचयति।

अव ग्रहणैपणा की विधि कहते हैं—‘नाइउच्चे’ इत्यादि.

अन्वयार्थ—(संजए-संयतः) साधु (फासुयं-प्रामुकं) पनक-नीलन-फूलन-आदि जीवों से रहित-निर्दोष-नवकोटि से विशुद्ध तथा (परकडं-परकृतं) गृहस्थ द्वारा अपने निमित्त बनाये गये-न कि साधु के निमित्त बनाये गये, ऐसे (पिंडं-पिण्डं) चतुर्विध आहार को (अइउच्चे न पडिगाहिज्ज-अत्युच्चे न प्रतिगृहीयात्) घर के ऊपर की भूमिकादि पर वाँस अथवा काष्ठ की निसरणी से चढकर न लेवे. इसी तरह जो आहार (नीए-नीचे) अत्यंत नीचे तलघर आदि में हो उसको (न) नहीं लेवे। तथा (नासण्णे नाइदूरओ-नासन्ने नातिदूरतः) न अति नजदीक से लेवे और न अतिदूर से ही लेवे।

‘अत्युच्चे’ इस पद द्वारा सूत्रकार यही सूचित करते हैं कि ऊँचे स्थान पर चढने एवं उतरने में स्व और पर को विराधना होने की

छे गृहणैपणा की विधि कहेवाभां आवे छे. नाइउच्चे-इत्यादि.

अन्वयार्थ—संजए-संयतः साधु, फासुयं-प्रामुकं पनक, नीलन, फूलन, आदि जीवोत्थी रहित निर्दोष-नव कोटीथी विशुद्ध तथा पडकडं-परकृतं गृहस्थेन त्यां पोताना निमित्त अनाववाभां आवेल न के साधुना निमित्त अनावेल अवा पिंडं-पिण्डं चतुर्विध आहारने आइउच्चे न पडिगाहिज्ज-अत्युच्चे न प्रतिगृहीयात् घरनी उपरनी भूमि उपर वांस के लाड्डानी निसरणी उपर अडीने न वे आ रीते वे आडार नीए-नीचे अत्यंत नीचे तणघर आदिभां होय तेने पणु न वे तथा नासण्णे नाइदूरओ-नासन्ने नातिदूरतः अती नउकथी न वे तेभज अति दूरथी पणु न वे.

अत्युच्चे आ पद द्वारा सूत्रकार अतुं सूचित करे छे के, उँचा स्थाने अडवा अजर उतरवाभां स्व अने परनी विराधना थवानी संभवं सूचयति

‘નીચે’ इति तत्रोत्क्षेपनिक्षेपनिरीक्षणसंभवः स्वपरविराधनासंभवश्चेति द्योतयति ।

‘आसन्ने’ इति पश्चात्कर्मादिसंभवं ज्ञापयति ।

‘अतिदूरे’ इति एषणाशुद्धिसंभवं बोधयति ॥ ૩૪ ॥

अथ ग्रासैपणाविधिमाह—

मूलम्—अप्पपाणेऽप्पवीयम्मि, पडिच्छन्नम्मि संवुडे ।

समयं संजए भुंजे, जयं अपरिसाडियं ॥૩૫॥

छाया—अल्पप्राणेऽल्पबीजे, प्रतिच्छन्ने संवृते ।

समकं संयतो भुञ्जीत, यतमानोऽपरिशाटितम् ॥ ૩૫ ॥

टीका—‘अप्पपाणे’ इत्यादि—

अल्पप्राणे=अवस्थितागन्तुकद्वीन्द्रियादिजीवरहिते, अल्पबीजे=शाल्यादि-
बीजरहिते, इदमुपलक्षणम्-पृथ्व्याद्येकेन्द्रियजीवरहिते इत्यर्थः, प्रतिच्छन्ने=संपा-
तिमजीवा यथा न पतन्ति तथोपरिकृतप्रावरणयुक्ते, संवृते=पार्श्वतः कटकुड्या-

संभावना रहती है । ‘नीचे’ इस पद से भी यही बात उनकी लक्षित होती है । ‘आसन्ने’ पद से पश्चात्कर्मादिक की संभावना रहती है, तथा ‘अतिदूरे’ पद से एषणाशुद्धि की ठीक तरह पालना नहीं होती है वह बात प्रदर्शित की गई है ॥ ૩૪ ॥

अथ ग्रासैपणा का विधि कहते हैं—‘अप्पपाण’ इत्यादि.

अन्वयार्थ—(अप्पपाणे अप्पवीयम्मि पडिच्छन्नम्मि संवुडे-अल्प-
प्राणे अल्पबीजे प्रतिच्छन्ने संवृते) अवस्थित एवं आगन्तुक द्वीन्द्रि-
यादिक जीवों से रहित तथा शाली आदि बीजों से रहित, इसी तरह
पृथ्वी आदि एकेन्द्रिय जीवों से वर्जित और संपातिम जीव न पड़ सके
इस ख्याल से ऊपर से तथा चारों तरफ से छाये हुए ऐसे उपाश्रय

“नीचे” आ पदથી પણ એ જ વાત એને લક્ષિત છે. “આસન્ને” આ પદથી પશ્ચાત્કર્માદિકની સંભવના રહે છે. તથા “અતિદૂરે” આ પદથી એપણા શુદ્ધિની ઠીક ઠીક પાલના થતી નથી એ વાત પ્રદર્શિત કરવામાં આવી છે. ॥ ૩૪ ॥

હવે ગ્રાસૈપણાની વિધી કહેવામાં આવે છે. અપ્પપાણે-ઈત્યાદિ.

અન્વયાર્થ—અપ્પપાણે અપ્પવીયમ્મિ પડિચ્છન્નમ્મિ સંવુડે—અલ્પપ્રાણે અલ્પવીજે પ્રતિચ્છન્ને સંવૃત્તે અવસ્થિત અને આગતુક દ્વીન્દ્રિયાદિક જીવોથી રહિત તથા શાલી આદિ બીજોથી રહિત, એજ રીતે પૃથ્વી આદિ એકેન્દ્રિય જીવોથી વર્જિત અને સંપત્તિમય જીવ ન પડી શકે આ ખ્યાલથી ઉપરથી તથા ચારે બાજુથી

दिना समाधृते उपाश्रयादावित्यर्थः, संयतः=साधुः, यतमानः-चप्पड चप्पडादि शब्दमकृष्वन् सन् अपरिशाटित=परिशाटरहितं । सिक्थपातनेन रहितं यथा स्यात्, यथा एकोऽप्यन्नरुणः करान्मुखतो वाऽधः पतितो न भवेत्तयेत्यर्थः, समरुम्-संभोगि साधुभिः सह न त्वेकावयेव आहारं भुञ्जीत ॥ ३५ ॥

संप्रति वाग्यतनामाह—

मूलम्—सुकडेत्ति सुपंकेत्ति, सुच्छिन्ने सुहडे मडे ।

सुनिट्टिए सुलट्टेत्ति सावज्जं वज्जेण मुणी ॥३६॥

छाया—सुकृतमिति सुपकमिति, सुच्छिन्नं सुहृतं मृतम् ।

सुनिष्ठितं सुलष्टमिति, सावद्यं वर्जयेन्मुनिः ॥ ३६ ॥

टीका—‘सुकडेत्ति’ इत्यादि—

मुनिः=साधुः, सावद्यं=सपापं वचनं वर्जयेत्=न वदेत् । कीदृशं तत्सावद्यमित्याह

आदि में (संजए-संयतः) साधु (जयं-यतमानः) चप्पड चप्पड आदि शब्द के तथा चिना (अपरिसाडियं-अपरिशाटितम्) हाथ से या मुंह से एक भी सीध-अन्न का कण-नीचे न गीरे, इस रूप से (समयं-समकं) संभोगी साधुओं के साथ (मुंजे-भुञ्जीत) आहार करे ॥३५॥

अब वचन की यातना कहते हैं—‘सुकडेत्ति’ इत्यादि.

अन्वयार्थ—(मुणी सावज्जं वज्जेण-मुनिः सावद्यं (वचनं) वर्जयेत् मुनि का कर्तव्य है कि वह इस प्रकार के सावद्य-सपाप वचन के बोलने का परित्याग करे । वे वचन ये हैं—(सुकडेत्ति सुपक्केत्ति, सुच्छिन्ने, सुहडे मडे सुनिट्टिए, सुलट्टेत्ति,—सुकृतमिति, सुपक्वमिति सुच्छिन्नं सुहृतं मृतम् (सुमृतम्) सुनिष्ठितं सुलष्टमिति, ‘सुकडे’

छवायेल येवा उपाश्रय आदिमां संजये-संयतः साधु जयं-यतमानः चप्पड चप्पड आदि शब्द वगर अपरिसाडियं-अपरिशाटितम् तथा हाथी तथा मोठाथी अक पद्य सीध अन्नो कण नीचे न पडे ये रीते समयं-समकं संभोगी साधुओंनी साथे मुंजे-भुञ्जीत आहार करे. ॥ ३५ ॥

हुवे वचनणी यतना कडेवाभां आवे छे. सुकडेत्ति०-इत्यादि.

अन्वयार्थ—मुणीसावज्जं वज्जेण-मुनि सावद्यं वचनं वर्जयेत् मुनिर्दु कर्तव्य छे के ते आ प्रकारना सावद्य-सपाप वचनने बोलवानेो परित्याग करे ते वचन आ छे. सुकडेत्ति सुपक्केत्ति सुच्छिन्ने सुहडे मडे सुनिट्टिए सुलट्टेत्ति-सुकृतमिति, सुपक्वमिति, सुच्छिन्नं सुहृतं मृतम् (सुमृतम्) सुनिष्ठितम् सुलष्टमिति

—‘मुकुडेति’ इत्यादि । मुकुटमिति—इदं मूपमिष्टान्नादिकं हिङ्गुजीरकादिव्या-
घारैः सुष्ठु संस्कृतमिति, तथा—मुपञ्चमिति—इदं घृतपूरादिकं घृतादिना मुपक-
मस्तीत्यादिकं, तथा—सुच्छिन्नमिति—इदं शाकपत्रादि दान्नासिपुत्रादिशस्त्रैः सुष्ठु छेदित-
मस्तीत्यादिकं, तथा—सुहृत्तं=‘कारवेष्टादिशाकस्थं कडुकत्वं सुष्ठु हृतं=निवारितं
तदुत्कालनेन’ इत्यादिकम्, तथा—‘मडे’ इत्यनेन पूर्वापर—साहचर्यात् ‘मुमडे’
इति बोध्यते, मृतं=मुमृतम्—पारदादिधातुजातम्, इत्यादिकं, तथा—‘सुनिष्टिण’
सुनिष्ठितम्—‘इदमन्नादिकं सम्यग् निष्ठां रसप्रकर्षात्मिकां प्राप्तं, सुष्ठु रसचक्रत-
मस्ति’ इत्यादिकं, तथा—‘सुलट्टेति’ सुलट्टं—सुष्ठु कमनीयम् ‘इदमन्नादिकं
मनोहरमस्ति’ इत्यादिकं सावद्यं वर्जयेदिति संबन्धः ।

यह दाल वगैरह हींग जीरे आदि के वद्यार से बहुत अच्छी बनी हुई है,
तथा ‘सुपके’ यह कचौरी खाजा मालपुआ घेवर आदि घी में बहुत
अच्छी तरह से पकाये गये हैं, तथा—‘सुच्छिन्ने’ यह शाक आदि चाकू
छूरि आदि से बहुत ही उत्तम रीत से काटा गया है, तथा ‘सुहडे’ यह
करेला का शाक देखो तो सही कितना स्वादिष्ट बना है कि इन का
कडुआपन सर्वथा हरलिया है अर्थात् इन में जरा भी कडुआपन नहीं
रहा है, । तथा—‘मडे’ यह पारदादिक धातुएँ कितनी अच्छी तरह से
भार कर दवा के उपयोग लायक बना दी गई हैं । तथा—‘सुनिष्टिण’ यह
आहार बहुत ही स्वादिष्ट बनाया गया है । ‘सुलट्टे’ यह भोजन जब
देखने में ही मनोहर लग रहा है तो फिर इस के खाने में कितना आनंद
आवेगा ? इत्यादि, ये समस्त सावद्य वचन हैं, इस लिये साधु को इस
प्रकार के सावद्य वचन नहीं बोलना चाहिये ।

आ हाण वगेरे हिङ्गु जीरे वगेरेना वद्यारथी घण्टी सारी बनी छे, तथा सुपके
आ कचौरी, भाज, मालपुवा, घेवर वगेरे घीमां घण्टी सारी रीते पकवामां
आवेळ छे, तथा सुच्छिन्ने आ शाक वगेरे आका छरीथी घण्टी उत्तम रीते
सुधारवामां आवेळ छे, तथा सुहडे आ कारेलांनुं शाक लुओ तो जरा डेवुं
स्वादिष्ट जायुं छे डे ओनुं कडवापणुं पणु हूर थयेळ छे. अर्थात् ओमां जरा पणु
कडवापणुं रडेळ नथी. मडे आ पारदादिक धातुओ डेवी सारी रीते भारीने
दवाना उपयोग लायक बनाववामां आवी छे. तथा सुनिष्टिण आ आहार
घण्टो ज स्वादिष्ट बनाववामां आवेळ छे. सुलट्टे आ लोअन न्यारे लोवाथी ज
मनोहर लागे छे तो पछी ओने आपामां डेटलो आनंद आवथे ? इत्यादि.
आ सधणां सावद्य वचन छे. साधुओ आ प्रकारनां वचन न बोलवा जेधओ.

યદ્વા-સુકૃતં-‘સુપ્તુકૃતં યદનેન શત્રુ પ્રતિ પ્રતિક્રિયા કૃતા’ इति, સુપક્વમ્, इदમપૂपादिकं घृताघतिसयेन पाचितमिति, सुच्छिन्नोऽयं दृक्षो वटपिपलादिरिति, सुहृतं-कृपणस्य धनं तस्करैरिति, मृतः-सुप्लु मृतोऽयं दुष्ट इति । मुनिष्ठितः-‘सुप्लु नष्टोऽयं मासादः, कूपो वा’ इति, यद्वा-‘सुप्लु निर्मितोऽयं मासादः, कूपो वा’ इति, यद्वा-‘सुप्लु नष्टमस्पदुष्टस्य द्रविणादिक’ मिति । मुलष्टः-‘सुप्लुष्टोऽयं गजस्तुरङ्गमो वा’ इति, यद्वा-‘मुलष्टा रुचिरावयवेयं राजकन्ये’-ति सावद्यं वर्जयेत् ।

અથવા-इस प्रकार साधु को कभी नहीं करना चाहिये, कि जो -‘सुकडे’-इसने शत्रु को मार भगा दिया है, यह बहुत अच्छा काम किया । ‘सुपके’ ये अपूपादिक अधिक घृत में खूब अच्छे पकाये गये हैं इस लिये सुपक हैं खाने में बहुत अच्छे लगते हैं । ‘सुच्छिन्ने’ इस वृक्ष को आसानी से खूब अच्छा काटा है । ‘सुहडे’ अच्छा हुआ जो इस कंजूस का द्रव्य चोरों ने चुरा लिया । ‘मडे’ यह बड़ा दुष्ट था मरा सो अच्छा ही हुवा । ‘मुनिष्ठिए’ यह मकान अथवा कुंआ गिर गया वह अच्छा हुआ, अथवा-यह मकान या कुंआ बहुत ही सुन्दर बनाया गया है, या ऐसा कहना कि भला हुवा इस दुष्ट की संपत्ति जो लूट गई । ‘मुलष्टे’ यह हाथी अथवा घोडा बहुत अच्छा पुष्ट हुआ है । यह राजकन्या बड़ी सुन्दर है । ये सब वचन सावद्य हैं, अतः साधु के कहने योग्य नहीं हैं ।

અથવા—આ પ્રકારનાં વચનો પણ સાધુએ કદી ઉચ્ચારવાં ન ભેદીએ. કે જે સુકડે આવે શત્રુને મારી ભગાડી દીધો છે, એ કામ ઘણું સાડું કયું. સુપકે આ મિઠાઈઓ, અપૂપ-માલપુડા વગેરે સારા ધીમાં ઘણી જ સારીરીતે પકાવવામાં આવેલ છે તેથી એ સુપકવ છે, ખાવામાં બહુ લીભ્યત આવે છે. સુચ્છિન્ને આ વૃક્ષને ઓછી મહેનતે સારીરીતે કાપવામાં આવ્યું છે. સુહડે સાડું થયું કે, આ કંબુસનું ધન ચોર ઉપાડી ગયા મડે એ ઘણો દુષ્ટ હતો. મર્યો તે સાડું થયું, મુનિષ્ટિય આ મકાન અગર કુવો પાડી અથવા ધુરી નાખવામાં આવતાં સાડું થયું અથવા આ મકાન અગર કુવો ખૂબ સુંદર બનાવવામાં આવેલ છે. તથા આ દુષ્ટની સંપત્તિ લુંટાઈ ગઈ તે સાડું થયું મુલષ્ટે આ હાથી અથવા ઘોડો ખૂબ સારીરીતે પુષ્ટ બનેલ છે, આ રાજકન્યા ખૂબ સુંદર છે, આ બધાં વચનો સાવધ વચન છે આથી તે સાધુએ બોલવા યોગ્ય નથી.

‘સુકૃતમ્’ ઇત્યનેન સૂપનિઘાનાદિસંપાદને લવણલક્ષણપૃથિવીકાયાદિજલ-
તેજોવાયુવનસ્પતિદ્વીન્દ્રિયાદિત્રસજીવપર્યન્ત હિંસાનુમોદનં સૂચિતમ્ । एवं सुप
कमित्यत्रापि हिंसानुमोदनं बोध्यम् ।

સુચ્છિન્નમિત્યનેન-વનસ્પતિદ્વીન્દ્રિયાદિહિંસાનુમોદનં સૂચિતમ્ । સુહૃતમિત્ય-
નેન કારવેહ્યાદિપક્ષે વનસ્પત્યાદિહિંસાનુમોદનમ્, ધનહરણપક્ષેઽદત્તાદાનપરપીડોત્પા-
દનાઘનુમોદનં સૂચિતમ્ । મૃતમિત્યનેન પારદાદિધાતુપક્ષે પૃથિવીકાયાદિ હિંસાનુ-

‘સુકૃતમ્’ इस पद से सूत्रकार यह प्रकट करते हैं कि जब साधु
ऐसा कहता है कि यह दाल आदि बहुत ही अच्छी बनी हैं तब उसे
लवणरूप पृथिवीकाय तथा जलकाय, तेजस्काय, वायुकाय, वनस्पति-
काय एवं द्विन्द्रियादिक त्रस काय, इन सबकी हिंसा की अनुमोदना
करने का दोष लगता है । इसी प्रकार सुपक कहने में भी यही दोष
लगते हैं ।

‘सुच्छिन्नम्’ इस पद से सूत्रकार यह बात सूचित करते हैं कि
यदि मुनि ‘ये शाकपत्रादि चाकू आदि से अच्छी तरह काटे गये हैं’
ऐसा कहता है तो उसे वनस्पति काय की एवं द्विन्द्रियादिक त्रसकाय
की हिंसा की अनुमोदना करने का दोष लगता है । ‘सुहृतम्’ यदि
यही बात धन हरण आदि के पक्ष में जब बोलने में आती है तो उस
समय उसे अदत्तादान की अनुमोदना करने का तथा पर को पीड़ा
उत्पन्न करने आदि की अनुमोदना का दोष लगता है । ‘मृतम्’ इस

“सुकृतम्” આ પદથી સૂત્રકાર એ પ્રકટ કરે છે કે, સાધુ જ્યારે એમ
કહે છે કે, આ દાળ વગેરે ખૂબ સ્વાદિષ્ટ બનેલ છે. ત્યારે તેને લવણ રૂપી
પૃથ્વીકાય, જળકાય, તેજસ્કાય, વાયુકાય, વનસ્પતિકાય અને દ્વિન્દ્રિયાદિક
ત્રસકાય આ બધાની હિંસામાં અનુમોદના કરવાનો દોષ લાગે છે. આ રીતે
સુપકમ્ કહેવાથી પણ આ દોષ લાગે છે.

सुनिच्छन्नम् આ પદથી સૂત્રકાર આ વાત સૂચિત કરે છે કે, મુનિ જો શાક
પત્રાદિક આકૃ વગેરેથી ત્રસ રીતે કાપવામાં આવેલ છે. એવું કહે તો તેને
વનસ્પતિ કાય અને દ્વિન્દ્રિયાદિક ત્રસકાયની હિંસા કરવામાં અનુ-
મોદન કરવાનો દોષ લાગે છે. સુહૃતમ્ આવી જ રીતે ધન હરણ વગેરેની
બાબતમાં બોલવામાં આવે ત્યારે તેને અદત્તા દાનની અનુમોદન કરવાનો તથા
બીજાને પીડા ઉત્પન્ન કરવી વગેરેની અનુમોદનનો દોષ લાગે છે મૃતમ્ એ પદથી

મોદનં સૂચિતમ્, દુષ્ટપક્ષે તુ પ્રાણઘાતાનુમોદનં ચોધ્યમ્ । સુનિષ્ઠિતમિત્યનેન પટ્કાય
હિંસાનુમોદનં સૂચિતમ્ । મુલ્લષ્ટમિત્યત્રાપિ તથૈવ ચોધ્યમ્ ।

‘સાવચં વર્જયેત્’ इत्यनेन उक्तमेव भाषणं निरवद्यं चेत् तत्र न प्रतिषेध
इति ध्वन्यते, तथा च पक्षद्वयमनया गाथया गम्यते । तत्र सावद्यपक्षो व्याख्यातः,

પદ સે સૂત્રકાર કા યહ અભિપ્રાય હૈ કિ જય સાધુ ‘સુમૃતં’ ઇસ પદ કા
ખુશ હોકર પ્રયોગ કરતા હૈ ઓર વહ પ્રયોગ યદિ ઉસકા પારદાદિક
ઘાતુઓં કે મારણ કરને કે પક્ષ મેં હોતા હૈ તો ઉસ સમય ઉસે પૃથિવી
કાયાદિક એકેન્દ્રિય જીવ કી હિંસા કરને કી અનુમોદના કા સમર્થક
માના જાતા હૈ । જવ પહી પ્રયોગ સાધુ કી ઓર સે કિસી દુષ્ટ કે પક્ષ
મેં કિયા ગયા હોતા હૈ તો વહ પ્રાણઘાત કા અનુમોદક માના જાતા હૈ ।
‘સુનિષ્ઠિતમ્’ ઇસ પદ સે સૂત્રકાર યહ સૂચિત કરતે હૈં કિ જવ સાધુ
‘યહ અન્નાદિક સામગ્રી સરસ તૈયાર હુઈ હૈં’ ઇસ પ્રકાર કા પ્રયોગ કરતા
હૈ તો ઉસે અન્નાદિક સામગ્રી કી તૈયારી મેં જો પટ્કાય કે જીવોં કી
વિરાધના હુઈ હૈં ઉસકી અનુમોદના કરને કા દોષ લગતા હૈ । ઇસી
તરહ ‘સુલ્લષ્ટમ્’ ઇસ પદ કે ઉચ્ચારણ કરને મેં ઓ ઇસી દોષ કા ભાગી
હોના પડતા હૈ ।

‘સાવચં વર્જયેત્’ ઇસ પ્રકાર કે કથન કા યહ અભિપ્રાય હૈ કિ
યદિ યહ સુકૃત આદિ ભાષણ નિરવચ્ય હોતા હૈ તો ઉસ સમય સાધુ કો

સૂત્રકારનો એ અભિપ્રાય છે કે, જ્યારે સાધુ “ સુમૃતં ” આ પદનો ખુશ થઈ
પ્રયોગ કરે છે અને તે પ્રયોગ પારદાદિક ધાતુઓનું મારણ કરવાના પક્ષમાં
હોય છે તો એ સમયે એને પૃથવીકાયાદિક એકેન્દ્રિય જીવની હિંસા કરવાની
અનુમોદનાના સમર્થક માનવામાં આવે છે. જ્યારે એજ પ્રયોગ સાધુ તરફથી
કોઈ દુષ્ટના પક્ષમાં કરવામાં આવ્યો હોય તો તે પ્રાણઘાતનો અનુમોદક માન-
વામાં આવે છે.

સુનિષ્ઠિતમ્ આ પદથી સૂત્રકાર એ સૂચિત કરે છે કે, જ્યારે સાધુ “ આ
અન્નાદિ સામગ્રી સરસ તૈયાર કરવામાં આવી છે ” આ પ્રકારનો પ્રયોગ કરે
છે તો તેને અન્નાદિક સામગ્રીની તૈયારીમાં જે પટ્કાય જીવોની વિરાધના
થઈ છે એની અનુમોદના કરવાનો દોષ લાગે છે. આ રીતે “ સુલ્લષ્ટમ્ ” એ
અંગેના પદનું ઉચ્ચારણ કરવામાં પણ એ દોષના ભાગી બનવું પડે છે.

“ સાવચં વર્જયેત્ ” આ પ્રકારના કથન અંગે એ અભિપ્રાય છે કે, જો
એ સુકૃત આદિ ભાષણ નિરવચ્ય હોય છે તો એ સમયે સાધુને કોઈ દોષ

નિરવધપક્ષો વ્યાખ્યાયતે—યથા—‘ સુકૃતમિતિ ’ સુષ્ટુ કૃતમનેન વૈયાટ્યમભયદાનં
 સુપાત્રદાનાદિકં વેતિ, ‘ સુપક્વમિતિ ’ સુષ્ટુ પક્વમસ્ય વ્રહ્મચર્યાદિકમિતિ,
 ‘ સુચ્છિન્નં ’ સુષ્ટુ છિન્નમનેન સ્નેહવન્ધનમિતિ, ‘ સુહતં ’ સુષ્ટુ હૃતં=સ્વાયત્તીકૃતં
 જ્ઞાનાદિરત્નત્રયમિતિ, ‘ સુનિષ્ટિતમ્ ’ સુષ્ટુ નષ્ટમસ્યાપ્રમત્તસાધોઃ કર્મજાલમ્,
 સુમૃતઃ=સુષ્ટુ મૃતોયં પण्डितमरणेन इति । सुलष्टा=सुष्टु मनोज्ञा क्रियाऽस्य साधोः,
 यद्वा-सुलष्टा=दीक्षायोग्या कन्येति वदेत् ॥ ૩૬ ॥

કોઈ દોષ નહીં લગતા, ઇસ પ્રકાર યહ સાવધ પક્ષ કા વર્ણન હુવા હૈ ।
 અવ નિરવધ પક્ષકા અર્થ કહતે હૈ—નિરવધ પક્ષ મેં જવ સાધુ ‘સુકૃતં’
 ‘ઇસ ને વૈયાટ્ય; અભયદાન એવં સુપાત્ર દાન આદિ સત્કર્મ જો કિયે
 હૈં વે વહુત અચ્છે કિયે હૈં’ ઇસ પ્રકાર વોલ ને મેં કોઈ દોષ નહીં હૈ ।
 ઇસી પ્રકાર આગે સવ જગહ સમજલેના ચાહિયે,—જૈસે ‘સુષ્ટુ પક્વમસ્ય
 વ્રહ્મચર્યાદિકં’ ઇસ કે વ્રહ્મચર્ય આદિ સદ્ગુણ અચ્છી તરહ સે પરિપક્વ
 હો ચુકે હૈં, ઇતિ ‘સુષ્ટુ છિન્નં અનેન સ્નેહવન્ધનમ્’ ઇતિ, ઇસ ને સ્નેહ
 કા વંધન અચ્છી તરહ સે કાટ દિયા હૈ, ‘સુષ્ટુ હૃતં સ્વાયત્તીકૃતં અનેન
 જ્ઞાનાદિરત્નત્રયં’ ઇતિ, ઇસ ને જ્ઞાનાદિક રત્નત્રય કો અચ્છી તરહ સે
 સ્વાધીન કર લિયા હૈ, ‘સુષ્ટુ નષ્ટમસ્યાઽપ્રમત્તસાધોઃ કર્મજાલમ્’
 ઇતિ, ઇસ અપ્રમત્ત સાધુ કા કર્મજાલ અચ્છી તરહ સે નષ્ટ હો ચુકા હૈ;
 ‘સુષ્ટુ મૃતોઽયં પण्डितमरणेन’ ઇતિ, પંડિત મરણ સે ઇસકી મૃત્યુ હુઈ
 યહ વહુત હી સુંદર વાત હુઈ, ‘સુષ્ટુ મનોજ્ઞા અસ્ય સાધોઃ ક્રિયા’ ઇતિ,

લાગતો નથી. આ પ્રકારે આ સાવધ પક્ષનું વર્ણન થયું હવે નિરવધ પક્ષનું
 વર્ણન કરવામાં આવે છે.—

નિરવધ પક્ષમાં ન્યારે સાધુ “સુકૃતં” આણે વૈયાટ્ય, અભયદાન, અને
 સુપાત્રદાન આદિ જે સત્કર્મ કર્યાં છે તે ઘણું સારાં કર્યાં છે” આ પ્રકારે
 બોલવામાં કોઈ દોષ નથી. આ પ્રકારે આગળ દરેક જગ્યાએ સમજી લેવું
 બેધ એ. બેમ—“સુષ્ટુ પક્વમસ્ય વ્રહ્મચર્યાદિકં” એને બ્રહ્મચર્ય આદિ સદ્ગુણ
 સારી રીતે પરિપક્વ થયેલ છે, ઇતિ, “સુષ્ટુ છિન્નં અનેન સ્નેહવન્ધનમ્” ઇતિ,
 એણે સ્નેહનું બંધન સારી રીતે કાપી નાખેલ છે “સ્વાયત્તીકૃતં અનેન જ્ઞાનાદિરત્નત્રયં”
 ઇતિ, એણે જ્ઞાનાદિક રત્નત્રયને સારી રીતે સ્વાધીન કરી લીધેલ છે. ‘સુષ્ટુ નષ્ટમસ્યા-
 પ્રમત્ત સાધોઃ કર્મજાલમ્” આ અપ્રમત્ત સાધુની કર્મબળ સારી રીતે નષ્ટ થઈ
 ચુકેલ છે, “સુષ્ટુ મૃતોઽયં પण्डितमरणेन” ઇતિ, પંડિત મરણથી એનું મૃત્યુ
 થયું એ ઘણું જ સારું થયું, “સુષ્ટુ મનોજ્ઞા અસ્ય સાધોઃ ક્રિયા” ઇતિ યદ્વા—

विनीताविनीतरूपदेशदाने यत् फलं गुरोर्भवति तदाह—
मूलम्—रमए पंडिँए सांसं, ह्यं भंइ वं वाहँए ।

वालं सम्मँइ सांसंतो, गलियँस्सं वँ वाहँए ॥३७॥

छाया—रमते पण्डितान् शास्त्र, ह्यं भद्रमिव वाहकः ।

वालं श्राम्यति शास्त्र, गलिताश्चमिव वाहकः ॥ ३७ ॥

टीका—‘ रमए ’ इत्यादि—

अत्र गुरुरिति कर्तृपदं प्रकरणवशाद्विज्ञेयम् । पण्डितान्=विनीतशिष्यान्, शास्त्रं=शिक्षयन् गुरुः, रमते=सफलप्रयत्नतया प्रसन्नो भवतीत्यर्थः । क इव ? भद्रं=जात्यं विनीतं, ह्यम्=अश्वं वाहयन्, वाहकः=अश्ववाह इव, यथा जात्याश्वं वाहयन्नश्ववाहः

यद्वा- ‘सुलष्टा दीक्षायोग्या कन्येति’ इसी साधु की क्रिया मनोज्ञ है अथवा यह कन्या दिक्षा योग्य है ।

भावार्थ—सुकृत आदि शब्दों को प्रयोग यदि साधु सांसारिक कार्यों को लक्ष्य में रख कर करता है तो वह दोष का भागी होता है और इन्हीं शब्दों का प्रयोग यदि वह धार्मिक कार्यों को लक्ष्य में रखकर करता है तो उसको कोई दोष नहीं लगता है ॥३६॥

विनीत और अविनीत शिष्य को उपदेश देने में गुरु महाराज को जो फल प्राप्त होता है उसे इस गाथाद्वारा सूत्रकार कहते हैं—‘रमए’ इत्यादि.

अन्वयार्थ—गुरु महाराज (पंडिँए-पंडितान्) विनीत शिष्यों को (सांसं-शास्त्र) शिक्षा देते हुए (रमए-रमते) सफल प्रयत्नवाला होने से प्रसन्न होते हैं । जैसे—(भंइ ह्यं व वाहँए-भद्रं ह्यं इव वाहकः)

सुलष्टा दीक्षायोग्या कन्येति” आ साधुनी क्रिया मनोज्ञ छे. अथवा आ कन्या दिक्षा योग्य छे.

भावार्थ—सुकृत आदि शब्दोंको प्रयोग के साधु सांसारिक कार्योंके लक्ष्यमें राखीने करे छे तो ते दोषको भागी बने छे अने अे न शब्दोंको प्रयोग के ते धार्मिक कार्योंके लक्ष्यमें राखीने करे छे तो तेने कुछ दोष लागतो नथी. ॥३६॥

विनीत अने अविनीत शिष्यके उपदेश देबामें गुरु महाराजके के फल प्राप्त थाय छे अने आ गाथा द्वारा सूत्रकार कहे छे.—रमए० इत्यादि.

अन्वयार्थ—गुरु महाराज पंडिँए-पंडितान् विनीत शिष्योंके सांसं-शास्त्र शिक्षा आपतां रमए-रमते सकृण प्रयत्न वाणा छे। वाथी तेना उपर प्रसन्न थ

પ્રસીદતિ તદ્વદિત્યર્થઃ। વાલં=વિનયરહિતં શિષ્યં, શાસત્=શિક્ષયન્ ગુરુઃ શ્રામ્યતિ=
 સ્વિઘતે, ક ઇવ? ગલિતાશ્વં=દુર્વિનીતમશ્વં વહુશઃ કશયા તાડનેઽપિ વિપરીતગત્યા
 પશ્ચાદ્ભાગમનાદિકારિણમશ્વં વાહયન્, વાહક ઇવ। યથા દુર્વિનીતમશ્વં વાહયન્
 વાહકઃ સ્વલુ નિપ્ફલપ્રયત્નતયા સ્વેદં પ્રાપ્નોતિ તદ્વદિત્યર્થઃ ॥ ૩૭ ॥

વિનીત ઘોડે કો ઇચ્છિત માર્ગ પર ચલાને રૂપ શિક્ષા સે ઘુડસવાર પ્રસન્ન
 હોતા હૈ। (વાલં-વાલં) વિનયરહિતશિષ્યકો (સાસંતો-શાસત્) શિક્ષા
 દેતે હુણ ગુરુ મહારાજ (સમ્મદ-શ્રામ્યતિ) સ્વેદસ્વિન્ન હોતે હૈં। જૈસે-
 (ગલિયસ્સં વ વાહણ-ગલિતાશ્વં ઇવ વાહકઃ) દુર્વિનીત અશ્વકો વાર ૨
 કશા સે તાડિત કરને પર સવાર દુઃસ્વિત હોતા હૈ, ક્યોં કિ દુર્વિનીત
 અશ્વ કો જ્યોં ૨ ચાલુક લગાતે હૈં ત્યોં ૨ વહ પીછે ઊલટા હટતા હૈ। ઇસસે
 સવાર કા પ્રયત્ન નિપ્ફલ હોતા હૈ।

ભાવાર્થ-વિનીત શિષ્ય કો દી ગઈ શિક્ષા સફલતા કા સાધક
 હોને સે ગુરુ કી પ્રસન્નતા કા કારણ હોતી હૈ। અવિનીત શિષ્ય કો દી
 ગઈ વહી શિક્ષા અસફલ હોતી હૈ। અતઃ ઊસ સે ઊલટા ગુરુ મહારાજ કો
 સ્વેદસ્વિન્ન હી હોના પડતા હૈ। જૈસે-વિનીત અશ્વ ઇચ્છિત માર્ગ પર ચલ
 કર અપને માલિક કો પ્રસન્ન કરતા હૈ ઓર અવિનીત અશ્વ કશાદ્વારા
 તાડિત હોને પર ઘી વિપરીત હી માર્ગ પર ચલતા હૈ, ઇસ સે સવાર કો
 ઊલટા કષ્ટ ઊઠાના પડતા હૈ ॥ ૩૭ ॥

જેમ મહં હયં વવાહણ-મદ્રંહયં ઇવ વાહકઃ-વિનીત ઘોડાને ઇચ્છિત માર્ગે ઉપર ચલાવવા
 રૂપ શિક્ષાથી ઘોડેસ્વાર પ્રસન્ન થાય છે. વાલં-વાલં વિનય રહિત શિષ્યને સાસંતો-
 શાસત્ શિક્ષા આપતાં ગુરુ મહારાજ સમ્મદ-શ્રામ્યતિ ખેદ પિન્ન બને છે,
 જેમ ગલિયસ્સેવ વાહણ-ગલિતાશ્વં ઇવ વાહકઃ અવિનીત ઘોડાને ઘડી ઘડી
 આખખાથી મારવાની આખતમાં સ્વારનું મન દુઃખીત બને છે. કેમ કે. અવિનીત
 ઘોડાને જેમ જેમ આબુક મારવામાં આવે છે તેમ તેમ તે પાછો પડે છે
 આથી સવારનો પ્રયત્ન નિષ્ફળ બને છે.

ભાવાર્થ:-વિનીત શિષ્ય ને આપવામાં આવેલ શિક્ષા સફળતાની સાધક
 બનવાથી ગુરુ મહારાજની પ્રસન્નતાનું કારણ બને છે, અવિનીત શિષ્યને આપ-
 વામાં આવતી એ જ શિક્ષા અસફળ બને છે, આથી ગુરુ મહારાજે ખેદ પિન્ન
 બનવું પડે છે. જેમ-વિનીત ઘોડો ઇચ્છિત માર્ગે ચાલી પોતાના માલીકને
 પ્રસન્ન કરે છે, અને અવિનીત ઘોડો આબુકથી પીટવામાં આવવા છતાં પણ વિપરીત
 માર્ગે પર જ ચાલે છે જેનાથી સવારને ઉલટાનું કષ્ટ જ લોગવવું પડે છે. ॥૩૭॥

विनीताविनीतयोरुपदेशदाने यत् फलं गुरोर्भवति तदाह—

मूलम्—रमए पंडिँए सांसं, ह्यं भइं व वाहँए ।

वालं सम्मँइ सांसंतो, गलिँयेस्सं वँ वाहँए ॥३७॥

छाया—रमते पण्डितान् शास्त्र, ह्यं भद्रमिव वाहकः ।

वालं श्राम्यति शास्त्र, गलिताश्चमिव वाहकः ॥ ३७ ॥

टीका—‘रमए’ इत्यादि—

अत्र गुरुरिति कर्तृपदं प्रकरणवशाद्विज्ञेयम् । पण्डितान्=विनीतशिष्यान्, शास्त्र=शिक्षयन् गुरुः, रमते=सफलप्रयत्नतया प्रसन्नो भवतीत्यर्थः । क इव ? भद्रं=जात्यं विनीतं, ह्यम्=अथं वाहयन्, वाहकः=अश्ववाह इव, यथा जात्याश्वं वाहयन्नश्ववाहः

यद्वा- ‘सुलष्टा दीक्षायोग्या कन्येति’ इसी साधु की क्रिया मनोज्ञ है अथवा यह कन्या दिक्षा योग्य है ।

भावार्थ—सुकृत आदि शब्दों का प्रयोग यदि साधु सांसारिक कार्यों को लक्ष्य में रख कर करता है तो वह दोष का भागी होता है और इन्हीं शब्दों का प्रयोग यदि वह धार्मिक कार्यों को लक्ष्य में रखकर करता है तो उसको कोई दोष नहीं लगता है ॥३६॥

विनीत और अविनीत शिष्य को उपदेश देने में गुरु महाराज को जो फल प्राप्त होता है उसे इस गाथाद्वारा सूत्रकार कहते हैं—‘रमए’ इत्यादि.

अन्वयार्थ—गुरु महाराज (पंडिँए-पंडितान्) विनीत शिष्यों को (सांसं-शास्त्र) शिक्षा देते हुए (रमए-रमते) सफल प्रयत्नवाला होने से प्रसन्न होते हैं । जैसे—(भइं ह्यं व वाहँए-भद्रं ह्यं इव वाहकः)

सुलष्टा दीक्षायोग्या कन्येति” आ साधुनी क्रिया भनोस्ये छे. अथवा आ कन्या दिक्षा योग्य छे.

भावार्थ—सुकृत आदि शब्दोंने प्रयोग के साधु सांसारिक कार्योंने लक्षमां राभीने करे छे तो ते दोषने भागी बने छे अने अे व शब्दोंने प्रयोग के ते धार्मिक कार्योंने लक्षमां राभीने करे छे तो तेने दोष दोष लागते नथी. ॥३६॥

विनीत अने अविनीत शिष्यने उपदेश देनामां गुरु महाराजने के इण प्राप्त थाय छे अने आ गाथा द्वारा सूत्रकार कहे छे.—रमए० इत्यादि.

अन्वयार्थ—गुरु महाराज पंडिँए-पंडितान् विनीत शिष्यने सांसं-शास्त्र शिक्षा आपतां रमए-रमते सक्षण प्रयत्न वाणा डोवाथी तेना उपर प्रसन्न थः छे.

अयं भावः—दुर्विनीतशिष्यः खल्वेवं चिन्तयति-अयं गुरुर्मां केवलं खड्गुकादिभिः
पीडयति न तु किमपि ममहितं चिन्तयतीति ॥ ३८ ॥

सविनयशिष्यस्य भावनामाह—

मूलम्—पुत्रो मे भायं णांइत्ति, साहू कल्लणं मन्नइ ।

पावंदिट्ठी उं अप्पाणं, सांसं दासेत्ति' मन्नइ ॥ ३९ ॥

छाया—पुत्रो मे भ्राता ज्ञातिरिति, साधुः कल्याणं मन्यते ।

पापदृष्टिस्तु आत्मानं, शास्यमानं दास इति मन्यते ॥ ३९ ॥

टोका—'पुत्रो मे' इत्यादि—

अयं शिष्यः, मे=मम, पुत्रतुल्य इति, भ्राता=भ्रातृतुल्य इति, ज्ञातिः=ज्ञाति-

भावार्थ—उभयलोकसंबंधी हितकारक उपदेश देने पर भी अविनीत शिष्यकी दृष्टिमें वह गुरु महाराज के शिक्षावचन हितकारक प्रतीत न होकर केवल कष्टप्रद चपेटा आदिरूप ही प्रतीत होते हैं। वह ऐसा मानता है कि ये मुझे इस वहाने केवल पीड़ित ही करना चाहते हैं। क्यों कि इन्होंने ने कभी भी मेरे हित का विचार ही नहीं किया है तो फिर ये मेरे हित की बुद्धि से अच्छी बात कहेंगे भी कैसे ॥ ३८ ॥

विनीत शिष्य की भावना कैसी होती है ! इसको इस गाथाद्वारा सूत्रकार प्रकट करते हैं—'पुत्रो मे' इत्यादि ।

अन्वयार्थ—जब गुरुमहाराज शिष्यों को शिक्षा देते हैं तब उनमें जो (साहू-साधुः) विनीत शिष्य होता है वह इस प्रकार विचार करता

भावार्थः—उभयलोक संबंधी हितकारक उपदेश देवा छतां पणु अविनीत शिष्यनी दृष्टीमां गुरु मडाराजनुं ते शिक्षा वयन हितकारक न गणुतां केवण इःअदायक तेमज सुणवनार आदिरूप व लागे छे ते अेवुं माने छे के, आ अडाना तणे तेअो केवण पिडवाज भागे छे. केमके, तेमखे कही पणु मारा हितनेा विचार कथो नथी. तो तेअो मारा हितनी भावनाथी सारी वात केवी रीते कडे. ॥ ३८ ॥

विनीत शिष्यनी भावना केवी डोय छे-अेने आ गाथा द्वारा सूत्रकार प्रकट करे छे. पुत्रो मे इत्यादि.

अन्वयार्थ—अ्यारे गुरु मडाराज शिष्यने शिक्षा आपे छे, त्यारे अेनामां ने साहू-साधुः विनीत शिष्य डोय छे ते अे प्रकारनेा विचार करे छे के, आ गुरु

ગુરોઃ શિક્ષાયચને કુશિષ્યસ્ય દુર્ભાવનામાહ—

મૂલમ્—‘સ્વહૃદુયા મે’ ચવેડા મે, અક્રોસા યં વર્હા યં મે’ ।

કલ્હાણમણુસાસંતો, પાવદિટ્ટિત્તિ મન્નંઈ ॥ ૩૮ ॥

છાયા—સ્વહૃદુકા મે ચપેટા મે, આક્રોશાશ્ચ વધાશ્ચ મે ।

કલ્યાણમનુશાસંતુ, પાપદટ્ટિરિતિ મન્યતે ॥ ૩૮ ॥

ટીકા—‘સ્વહૃદુયા’ ઇત્યાદિ—

કલ્યાણં=લોકદ્વયહિતમ્, અનુશાસત્ = શિક્ષયન્ ગુરુઃ કુશિષ્યેણ પાપદટ્ટિઃ= પાપા=પાપમયી દટ્ટિર્યસ્ય સ તથા, ઇતિ મન્યતે—અયં ગુરુર્મમ હિંસક્રોડસ્તીતિ મન્યતે । યતોડનેન-મે=મમ, સ્વહૃદુકાઃ=ટફરા આઘાતા દીયન્તેડનેનેતિ શેષઃ । તથા મે=મમ, ચપેટાઃ=કરતલાઘાતા દીયન્તે । ચ-પુનઃ, આક્રોશાઃ=પરુપભાવણાનિ, ચ-પુનઃ, મે=મમ, વધાઃ=દષ્ટાદિઘાતાઃ ક્રિયન્તે ।

જો કુશિષ્ય હોતા હૈં ઉસે જવ ગુરુ મહારાજ શિક્ષા દેતે હૈં તથ ઉસકો કયા ભાવના હોતી હૈં યહ વાત ઇસ ગાથા દ્વારા પ્રકટ કી જાતી હૈં—
‘સ્વહૃદુયા’ ઇત્યાદિ.

અન્વયાર્થ—અવિનીત શિષ્ય (કલ્હાણમણુસાસંતો-કલ્યાણં અનુશાસત્) ઉભયલોકસંબંધી હિત શિક્ષા દેને વાલે ગુરુ મહારાજ કો (પાવદિટ્ટી-પાપદટ્ટિઃ) યહ પાપદટ્ટિ વાલે મેરે ઘાતક હૈં (ત્તિ-ઇતિ) ઇસ પ્રકાર સમજતા હૈં । ક્યોં કિ વહ ગુરુ મહારાજ કી શિક્ષા સમ્બન્ધી વાતોં કો ઇસ પ્રકાર માનતા હૈં કિ (સ્વહૃદુયા મે ચવેડા મે અક્રોસા ય વર્હા ય મે-સ્વહૃદુકા મે ચપેટા મે આક્રોશાશ્ચ વધાશ્ચ મે) યે મેરે લિયે આઘાતસ્વરૂપ હૈં થપ્પડસ્વરૂપ હૈં, પરુપભાવણ-ગાલી-સ્વરૂપ હૈં, પ્રહારસ્વરૂપ હૈં ।

જે કુશિષ્ય હોય છે એને ગુરુ મહારાજ શિક્ષા આપે છે, ત્યારે તેની કેવી ભાવના હોય છે તે વાત આ ગાથા દ્વારા પ્રગટ કરવામાં આવે છે. સ્વહૃદુયાન્ધૈત્યાદિ.

અન્વયાર્થ—અવિનીત શિષ્ય કલ્હાણમણુસાસંતો-કલ્યાણં અનુશાસત્ ઉભય લોક સંબંધી હિતશિક્ષા દેવાવાળા ગુરુ મહારાજને પાવદિટ્ટી-પાપદટ્ટિઃ એ પાપ દટ્ટીવાળા મારા ઘાતક છે ત્તિ-ઇતિ એ પ્રકારના સમજે છે. કેમ કે, ગુરુ મહારાજની શિક્ષા સંબંધી વાતોને એ પ્રકારે માને છે કે, સ્વહૃદુયા મે ચવેડા મે અક્રોસા ય વર્હા ય મે-સ્વહૃદુકા મે ચપેટા મે આક્રોશાશ્ચ વધાશ્ચ મે આ મારા માટે આઘાત સ્વરૂપ છે, થપ્પડ સ્વરૂપ છે, પ્રહાર સ્વરૂપ છે.

अथ विनयसर्वस्वमुपदिशति—

मूलम्—ने कोवए आयेरिय, अप्पाणं पि न कोवए ।

बुद्धोवघाई न सियां, न सियां तोत्तंगवेसए ॥४०॥

छाया—न कोपयेत् आचार्यम्, आत्मानमपि न कोपयेत् ।

बुद्धोपघाती न स्यात्, न स्यात् तोत्रगवेपकः ॥ ४० ॥

टीका—‘न कोवए’ इत्यादि—

आचार्यं न कोपयेत्=क्रोधाविष्टं न कुर्यात्, आचार्यमित्युपलक्षणं तेन विनया-
हृद्युपाध्यायादिक्रमपि न कोपयेदित्यर्थः । आत्मानमपि न कोपयेत्—आचार्येण पर्यु-
भाषणादिभिः शिक्ष्यमाणमात्मानमपि कोपयुक्तं न कुर्यात् । अपिनाऽन्यस्यापि संग्रहः
अन्यं क्रमपि न कोपयेदित्यर्थः ॥

यतः—मासोपवासनिरतोऽस्तु तनोतु सत्यं,

ध्यानं करोतु विदधातु वहिर्निवासम् ।

ब्रह्मव्रतं धरतु भैक्षरतोऽस्तु नित्यं,

रोपं करोति यदि सर्वमनर्थकं तत् ॥ १ ॥

कथंचित् कोपावेशेऽपि बुद्धोपघाती न स्यात्—आचार्योपघातको न भवेत् ।

अथ विनय का सारांश कहते हैं—‘न कोवए’ इत्यादि.

अन्वयार्थ—(आयरियं न कोवए—आचार्यं न कोपयेत्) विनीत
शिष्य का कर्तव्य है कि वह आचार्य को कभी भी क्रुपित न करे ।
(अप्पाणं पि न कोवए—आत्मानमपि न कोपयेत्) आचार्य महाराज जब
कोई शिक्षा देवें उस समय अपनी आत्मा को भी क्रुपित न करे । यदि
कदाचित् कोप का आवेश आ भी जावे तो उस समय (बुद्धोवघाई न
सिया—बुद्धोपघाती न स्यात्) अपने आचार्य महाराज का उपघातक नहीं

हवे विनयने। सारांश कहे छे.—न कोवए इत्यादि.

अन्वयार्थ—आयरियं न कोवए—आचार्यान् न कोपयेत् विनीत शिष्यन्तुं ये
कर्तव्य छे के, ते आचार्यने कही पछु डोपित न करे. अप्पाणं पि न कोवए—
आत्मानमपि न कोपयेत् आचार्य महाराज न्यारे डोथ शिक्षा आपे त्यारे पोताना
आत्माने पछु डोपित न करे. कदाचित् न्ये डोपने आवेश आवी पछु नथ तो ते
सभये बुद्धोवघाई न सिया—बुद्धोपघाती न स्यात् पोताना आचार्य महाराजन्तुं

તુલ્ય ઇતિ ગુરુર્જાનાતિ, ઇત્યેવં સાધુઃ=વિનયવાન્ શિષ્યઃ કલ્યાણં=શુભં મન્યતે-
 'અયં ગુરુઃ પુત્રાદિભાવેન મામનુશાસ્તિ' ઇતિ શુભભાવનાં કરોતીત્યર્થઃ। કૃત્રિષ્યઃ
 પુનઃકિં મન્યતે ? ઇત્યાહ-' પાવદિદ્વીઝ ' ઇત્યાદિ। પાપદષ્ટિઃ=વિનયરહિતઃ શિષ્યસ્તુ
 શાસ્યમાનમ્ આત્માનં=માં દાસ ઇતિ ગુરુર્જાનાતિ, ઇત્યેવં મન્યતે। 'અયં ગુરુર્નીવ-
 દષ્ટયાઽવમાનયન્માં દાસમિવ તર્જયતિ' ઇત્યશુભભાવનાં કરોતીત્યર્થઃ।

અન્યે તુ સુવૃવિભક્તિવ્યત્યયાત્ 'પુત્તો' ઇત્યસ્ય 'પુત્રમિવ' 'ભાય'
 ઇત્યસ્ય-'ભ્રાતરમિવ' 'જ્ઞાઈ' ઇત્યસ્ય 'જ્ઞાતિમિવ' ઇતિ દ્વીતીયાન્તાર્થં કલ્પયન્તિ
 'મે' ઇતિ દ્વિતીયાન્તાર્થકં ચ કલ્પયન્તિ તત્સર્વમનુચિતમ્-આગમોક્તપાઠેઽર્થસંગતૌ
 સત્યાં તદ્વિપરીતાર્થકલ્પનાયાં ભગવદ્વચનવિરાધનાઽપ્તેઃ ॥ ૩૧ ॥

હૈં કિં યે ગુરુ મહારાજ મુજ્જે (પુત્તો મે-પુત્રઃ મે) યહ શિષ્ય મેરે પુત્રતુલ્ય
 હૈં (ભાય-ભ્રાતા) ભાઈ કે સમાન હૈં (જ્ઞાય-જ્ઞાતિઃ) જ્ઞાતિજનતુલ્ય હૈં,
 એસા સમજ્જકર શિક્ષા દેતે હૈં, (ત્તિ-ઈતિ) હસ પ્રકાર વિનીત શિષ્ય
 (કલ્લાણ-કલ્યાણં) શુભ (મન્નઈ-મન્યતે) માનતા હૈં, અર્થાત્ વિનીત
 શિષ્ય ગુરુ મહારાજ કે પ્રતિ કલ્યાણ ભાવના કરતા હૈં। ઓર (પાવદિદ્વી
 ય-પાપદષ્ટિસ્તુ) જો અવિનીત શિષ્ય હોતા હૈં વહ ઇસ પ્રકાર વિચારતા
 હૈં કિં યે ગુરુમહારાજ (સાસં અપ્પાણં-શાસ્યમાનમાત્માનમ્) શિક્ષાપાતે
 હુણ મુજ્જકો (દાસે-દાસઃ) યહ દાસ હૈં, ઇસ પ્રકાર સમજ્જકર શિક્ષા દેતે
 હૈં (ત્તિ-ઈતિ) ઇસ પ્રકાર (મન્નઈ-મન્યતે) અશુભ માનતા હૈં, અર્થાત્
 અવિનીત શિષ્ય ગુરુ મહારાજ કે પ્રતિ અશુભ ભાવના કરતા હૈં। ઇસ
 ગાથા મેં વિનીત ઓર અવિનીત શિષ્ય કી ભાવના પ્રદર્શિત કી હૈં॥૩૧॥

મહારાજ મને પુત્તો મે-પુત્રઃ મે આ શિષ્ય મારા પુત્ર તુલ્ય છે ભાય-ભ્રાતા ભાઈની
 તુલ્ય છે જાય-જ્ઞાતિ જ્ઞાતિ તુલ્ય છે. એવું સમજીને શિક્ષા આપે છે. ત્તિ-ઈતિ આ
 પ્રકારે વિનીત શિષ્ય કલ્લાણ મન્નઈ-કલ્યાણં-મન્યતે કલ્યાણકારક અને શુભકારક
 માને છે. અર્થાત્ વિનીત શિષ્ય ગુરુ મહારાજ તરફ ખૂબ ઉંચી ભાવના રાખે છે અને
 પાવદિદ્વીય-પાપદષ્ટિસ્તુ જે અવિનીત શિષ્ય હોય છે તે એવા પ્રકારનું વિચારે છે કે,
 ગુરુ મહારાજ સાસં અપ્પાણં-શાસ્યમાનમાત્માનં શિક્ષા આપતી વખતે મને દાસે-દાસઃ
 આ દાસ છે, એવી રીતે સમજીને શિક્ષા આપે છે. ત્તિ ઇતિ આ પ્રકારે મન્નઈ-મન્યતે
 અશુભ માને છે. અર્થાત્ કૃશિષ્ય, ગુરુ મહારાજ તરફ અશુભ ભાવના ભાવે છે.
 આ ગાથામાં શિષ્યની વિનીત અને અવિનીત ભાવના પ્રદર્શિત કરેલ છે. ॥૩૧॥

बुद्धोपघाती न स्यादिति यदुक्तं तत्र दृष्टान्तो वर्ण्यते—

अङ्गदेशे चम्पापुरीनगर्यां गणिगुणसमन्वितः प्रक्षीणप्रायकर्मा क्षीणजङ्घाबलः
कृतैकशिष्यप्रतिज्ञः कश्चिद् वीर्योल्लासनामक आचार्यः क्षुद्रमतिनाम्नैकेनैव शिष्येण

जो विनय के योग्य हैं उन्हें भी कुपित नहीं करना चाहिये, क्यों कि
कोप अनेक अनर्थों की जड़ एवं समस्त उत्तम क्रियाओं का विनाशक
माना गया है, कहा भी है—

“मासोपवासनिरतोऽस्तु तनोतु सत्यं,
ध्यानं करोतु विदधातु वह्निर्निवासम् ।
ब्रह्मव्रतं धरतु भैक्षरतोऽस्तु नित्यं,
रोपं करोति यदि सर्वमनर्थकं तत्” ॥ १ ॥

कोई भी व्यक्ति यदि मास मास खमण भी पारणा करता हो, सदा
सत्य बोलता हो, ध्यान करता हो, वन में भी निवास करता हो, ब्रह्म-
चर्यव्रत का पालन करता हो, भिक्षावृत्ति करता हो परन्तु यदि रोप
-कोप करता है तो उसकी ये समस्त क्रियाएँ व्यर्थ हैं ॥ १ ॥

‘बुद्धोपघाती नहीं होना चाहिये’ ऐसा जो कहा है उसको
दृष्टान्त से स्पष्ट करते हैं—

अंगदेश में चंपा नामकी नगरी थी। उसमें गणिगुणों से युक्त

करवा जेठ जे. केमडे, कोप अनेक अनर्थोनी ७४ तेमज समस्त उत्तम
क्रियाओने नाश करनार मनायेव छे. कहुं पणु छे.—

मासोपवास निरतोऽस्तु तनोतु सत्यं,
ध्यानं करोतु विदधातु वह्निर्निवासम् ।
ब्रह्मव्रतं धरतु भैक्षरतोऽस्तु नित्यं,
रोपं करोति यदि सर्वमनर्थकं तत् ॥ १ ॥

कोई पणु व्यक्ति कदाच ते भडिना भडिनाना अपवास करे, सदा सायुं
बोलतो होय, ध्यान करतो होय, वनमां पणु रहितो होय, ब्रह्मचर्यव्रतनुं
पालन करतो होय, भिक्षावृत्ति करतो होय, परंतु ते जे कोप करतो होय तो
तेनी जे सधणी क्रियाओ व्यर्थ छे.

बुद्धोपघाति न थपुं जेठ जे, जेपुं जे कडेवामां आवे छे जेने दृष्टां-
तथी स्पष्ट करवामां आवे छे.—

अंग देशमां चंपापुरी नामनी नगरी डती, तेमां गणेशुण्णोथी युक्ता

तथा तोत्रगवेषको न स्यात्-तोत्रं=तोदनं तत्सदृशस्य पीडोत्पादकस्य परुषभाषणा-
ऽऽदेर्गवेषकः=अन्वेषको न भवेदित्यर्थः । अयं भावः-यथा-दुष्टस्तुरङ्गमो विपरीत-
गत्या प्रचलन् तोदनमन्वेषयति तद्वत् शिष्यः आचार्यस्य प्रेरणात्क्षगवचनस्य
गवेषको न भवेदिति ।

होना चाहिये । तथा-(तोत्रगवेषण न सिया-तोत्रगवेषकः न स्यात्)
तोत्रगवेषक भी नहीं होना चाहिये-अर्थात् गुरु महाराज को वार २
प्रेरणा करने की आवश्यकता नहीं होने दे । तात्पर्य इसका यह है
कि शिष्य को यह चाहिये कि जिस समय आचार्य महाराज अपने
लिये परुष भाषण आदि रूप में भी यदि शिक्षात्मक वचन कहें तो
उस समय वह उनके प्रति ऐसा व्यवहार न करे कि जिससे वे कुपित
हो जावें, तथा स्वयं भी अपनी आत्मा को उनके व्यवहार से अप्र-
सन्न न रखे । तथा ऐसी चेष्टा भी उसको नहीं करना चाहिये कि जिसमें
आचार्य महाराज का उपघात हो । जिस प्रकार दुष्ट धोडा विपरीत चाल
से चलता हुआ अपने मालिक को पद २ पर दुःखित किया करता है
उसी प्रकार उनकी इच्छा के विरुद्ध चलकर शिष्यको उन्हें कभी भी
दुःखित नहीं करना चाहिये । सूत्र में जो अपि-शब्द आया है वह इस
घात का सूचक है कि शिष्य को अपने आचार्य महाराज से अतिरिक्त
और भी किसी को व्यथित नहीं करना चाहिये । तथा उपाध्याय आदि

अपमान करना न थवे जोध अे. तथा तोत्रगवेषण न सिया-तोत्रगवेषकः न स्यात्
तोत्रगवेषक पशु न भनवुं जोधअे. अथवा-गुरु मडाराने वारवार प्रेरणा करवी
पडे तेधुं न थवा हे. ने समथे आचार्य मडाराने पोताना माटे प३ष लाषषु
आदि इपथी पशु कदाय शिक्षात्मक वचन कडे तो ते वभते ते तेमना प्रत्ये
अेवा वडेवार न करे के, नेथी गुरु मडाराने कोधित भनवुं पडे. तथा तेमना
वडेवारथी पोतानी नतने पशु अप्रसन्न न राणे. तथा अेवी चेष्टा पशु तेणे
न करवी जोधअे के नेमां आचार्य मडारानुं अपमान होय, ने प्रकार डुष्ट
धोडा विपरीत यादथी यादीने पोताना मालीकने पगले पगले दुःखित कयां करे
छे तेवी रीने, तेमनी धञ्छानी विरुद्ध यादीने शिष्ये तेमने कही पशु दुःभी
न करवा जोधअे. सूत्रमां ने 'अपि' शब्द आवेत्त छे ते आ वात सूचन करे
छे के शिष्ये पोताना गुरु मडाराने के भीन कोधने पशु दुःभ न पडेयाउवुं
जोधअे. तथा उपाध्याय आदि ने विनयने योग्य छे तेमने पशु पित. न

पथं चतुर्विधमशनादिकं श्रावकजनैरुदारभावैरनुदिनं दीयमानमुपादाय तस्मै नार्पयति स्वयमेव तदश्नाति ।

अन्तं ग्रान्तं रूक्षं शुष्कं कुपथ्यमशनादिकमानीय गुरवे प्रपच्छति । वदति च-
किमिह कुर्मो वयम् । ईदृशीं दशामुपगतानां भवतां योग्यमशनादिकं विद्यमानमपि
नामी विवेकविकलाः श्रावका दातुमिच्छन्ति । श्रावकान् कथयति च-ममाचार्याः
खलु परमनिःस्पृहतया स्वशरीरयात्रामप्यचिन्तयन्तः प्रणीतं भक्तपानं ग्रहीतुं नेच्छन्ति

और दूसरी जगह भी चल फिर सकें। इस प्रकार विचार कर उसने
ऐसा काम करना प्रारंभ किया कि-श्रावकों से जो आचार्य की अवस्था
अनुरूप स्निग्ध, मधुर, मनोज्ञ, सरस चतुर्विध आहार इसे भिक्षा में
मिलता वह स्वयं खा जाता और गुरु महाराज को अन्तप्रान्त, रूक्ष
शुष्क एवं कुपथ्यरूप आहार लाकर देता। जब गुरु महाराज पूछते तो
कहने लगता कि महाराज हम इस में क्या करें। यहां के श्रावक आप-
की ऐसी अवस्था को देखकर असंतुष्ट हो गये हैं, इसी लिये वे अपने
घर में होते हुए भी योग्य अशनादिक को देना नहीं चाहते। जब
श्रावक उससे पूछते तो कहता कि हमारे ये आचार्य महाराज अब
विलकुल शिथिलशरीर हो रहे हैं इसलिये उन्हें अपने शरीरमें अब
कोई ममत्वपरिणति नहीं रही है। उन्हें तो जैसा भी आहार मिलजाता
है वे उसे ले लेते हैं। वे नहीं चाहते कि हमारा यह शरीर अब और

रही नथी के अेक स्थण उपरथी जील स्थणे जरा पणु ढाली आली शके.
आ प्रकारने विचार करी तेणे अेवा कामने प्रारंभ करी के, श्रावकाथी
आचार्यनी अवस्था अनुरूप जे स्निग्ध, मधुर, मनोज्ञ, सरस आर प्रकारने
आहार तेने भिक्षामां भणतो ते स्वयं भाई जतो अने गुरु महाराजने
अन्त, प्रान्त, रूक्ष, शुष्क अने कुपथ्यरूप आहार लावी आपतो. गुरु महा-
राजना पूछवाथी ते कडेतो के, महाराज हुं अेमां शुं कइं अडींना श्रावके
आपनी आची अवस्था जेधने असंतुष्ट अनी गया छे. आ भाटे तेअो पोताना
घरमां ढोवा छतां पणु योग्य आहार आपवा धिच्छता नथी. न्यारे श्रावक
तेने पूछता तो कडेतो के, मारा आचार्य महाराज ढवे जीलकुल शिथिल
शरीरना अनी गया छे आ भाटे तेमने ढवे पोताना शरीरमां काई ममत्व
परिच्छुती रही नथी. तेमने जेवो आहार भणी जय छे तेवो ते ल्ये छे. ते
नथी आहता के भाई आ शरीर ढवे वधु वधत टकथुं रहे. आ भाटे प्रच्छीत

સહ કૃતસ્થિરવાસ આસીત્ । તન્નાસૌ શિષ્યઃ પ્રતિદિવસં સંસારસાગરોત્તારકં જન્મમર-
ણોચ્છેદકં સકલકર્મવિધ્વંસકં તીર્થંકરગોત્રોપાર્જકં ગુરુવૈયાવૃત્ત્યં કુર્વાણો ગુરુકર્મ-
ક્ત્વાદ્ દુર્લભયોધિત્વાચ્ચૈકદા મનસિ ચિન્તયતિ-‘પ્રક્ષીણવલઃ સ્યવિરોડ્યમસ્માભિઃ
કિયત્કાલમનુપાલનીયઃ’ इत्येवं विमृश्यासौ तद्वयोऽनुरूपं स्निग्धं मधुरं मनोज्ञं सुरसं

वीर्योल्लास नाम के आचार्य अपने प्रिय क्षुद्रमति नामक शिष्य के साथ
स्थिरवास रहते थे । विशेष वृद्ध होने के कारण हलन-चलन आदि
क्रियाएँ इनकी क्षीणप्राय हो चुकी थी । जंचा चल भी कम हो गया था ।
“मैं एक ही शिष्य करूँगा ” ऐसी उनकी प्रतिज्ञा थी । उस के अनुसार
उन्होंने क्षुद्रमति नामक एक ही शिष्य किया था, और उसी के साथ वे
वहाँ रहा करते थे । शिष्य भी अपने गुरु महाराज की ठीक २ रीत से
वैयावृत्य किया करता था । वैयावृत्य करना यह एक तप है इसके प्रभाव
से प्राणी संसार समुद्र से पार हो जाता है । जन्म, मरण और जरा से
विमुक्त हो जाता है । अष्ट कर्मों का विनाश भी इस वैयावृत्य के बल
पर प्राणी कर देता है । इससे तीर्थकरनामगोत्र का उपार्जन भी करता है ।
शिष्य गुरु कर्मा था । इस लिये वैयावृत्य करने पर भी इसे बोध
का लाभ दुर्लभ हो रहा था । एक दिन शिष्य ने विचार किया कि हम
इनकी अब कयतक वैयावृत्य करते रहेंगे । यह तो बिलकुल स्थविर हो
चुके हैं । इन में तो अब इतनी भी शक्ति नहीं रही है जो ये यहाँ से

એક વિર્યોલ્લાસ નામના આચાર્ય પોતાના ક્ષુદ્રમતિ નામના શિષ્ય સાથે સ્થિર
વાસ રહેતા હતા. ખૂબ વૃદ્ધ થઈ જવાના કારણે હલન ચલન આદિ ક્રિયાઓ
તેઓ કરી શકતા નહીં. શરીરનું તેમજ બાંજોતું બળ પણ ક્ષિણ થઈ ગયું
હતું. “ હું એકજ શિષ્ય કરીશ ” એવી તેમની પ્રતિજ્ઞા હતી એ અનુસાર તેમણે
એક જ શિષ્ય કરેલ હતો. જેનું નામ ક્ષુદ્રમતિ હતું તે શિષ્યની સાથે તે
અંપાપુરીમાં રહેતા હતા. શિષ્ય પણ પોતાના ગુરુમહારાજની યોગ્ય રીતે આકરી
બરદાસ કરતો હતો. વૈયાવૃત્ય કરવું એ એક તપ છે. તેના પ્રભાવથી પ્રાણી
સંસાર સમુદ્રથી પાર થાય છે. જન્મ મરણ અને જરાથી વિમુક્ત થઈ બચ છે.
આઠ ક્રમોને વિનાશ પણ આ વૈયાવૃત્યના બળ ઉપર પ્રાણી પુરી દે છે. તેનાથી
તીર્થંકર નામ ગોત્રનું ઉપાર્જન પણ કરે છે. શિષ્ય ગુરુ કર્મી હતો. આ માટે
વૈયાવૃત્ય કરવા છતાં પણ એને બોધને લાભ દુર્લભ થતો હતો. એક દિવસ
શિષ્યે વિચાર કર્યો કે, હું કયાં સુધી આમની સેવા આકરી કરતો રહીશ.
આ તો બીલકુલ સ્થવિર બની ગયા છે. એમનામાં એટલી પણ શક્તિ હવે

રસ્માભિર્ભવન્તઃ શિષ્યથ પીડનોયાઃ ? इति निवेद्य भक्तं प्रत्याख्याय स प्राणरहितो जातः । एवं क्षुद्रमतिशिष्यवत् साधुर्युद्धोपघाती न भवेत् ॥ ૪૦ ॥

આચાર્યે કુપિતે શિષ્યકર્તવ્યમાહ—

મૂલમ્—આચાર્યિયં કુવિયં નચ્ચા, પત્તિર્ણ પસાયૈણ ।

विज्ञं विज्ञं पंजलीउडो, वएँज नं पुंणुत्ति र्थ ॥ ૪૧ ॥

છાયા—આચાર્ય કુપિતં જ્ઞાત્વા, પ્રીતિકેન પ્રસાદયેત્ ।

विध्यापयेत् प्राञ्जलिपुटः, वदेत् न पुनरिति च ॥ ૪૧ ॥

ટીકા—‘ આચાર્યિયં ’ इत्यादि ।

શિષ્યઃ કેનચિત્ સ્વાપરાધેન આચાર્ય કુપિતમ્=અપરિતુષ્ટં જ્ઞાત્વા પ્રીતિકેન= પ્રીતિરેવ પ્રીતિકં તેન-પ્રીતિજનકેન વિનયભાવેન યદ્વા-‘પ્રતીતિકેન’ इतिच्छाया; પ્રતીતિકેન-વિશ્વાસજનકેન વાક્યેન તં પ્રસાદયેત્=પ્રસન્નં કુર્યાત્ । ‘ પ્રીતિકેન ’

कहाँ तक कष्ट दिया जाय, अतः यही सर्वसुंदर मार्ग है कि संलेखना धारण करली जाय । ऐसा कह कर उन्होंने भक्तप्रत्याख्यान कर दिया और कुछ समय के बाद वे समाधिमरण को प्राप्त कर अपना कल्याण किया । इस कथा से शिष्य को यह शिक्षा लेनी चाहिये कि क्षुद्रमति शिष्य की तरह वह गुरु महाराज का प्राणप्रहारी न बने ॥ ૪૦ ॥

આચાર્ય મહારાજ કે કુપિત હોને પર શિષ્ય કા કયા કર્તવ્ય હૈ સો કહતે હૈ—‘ આચાર્યિયં ’ इत्यादि.

अन्वयार्थ—शिष्य (कुवियं आचरियं नच्चा-कुपितं आचार्यं ज्ञात्वा । जब यह समझे कि आचार्य महाराज कुपित हैं उस समय वह (पत्ति-एण पसायए-प्रीतिकेन प्रसादयेत्) प्रीतिजनक-विनयभाव से अथवा

સર્વ સુંદર માર્ગ છે કે, સંલેખણા ધારણ કરી દઉં એવું કહીને તેઓએ ભક્ત-પ્રત્યાખ્યાન કરી લીધું અને થોડા સમય બાદ સમાધી મરણને પ્રાપ્ત કરી. પોતાનું કલ્યાણ કર્યું. આ કથાથી શિષ્યે એ શિક્ષા લેવી જોઈએ કે, ક્ષુદ્રમતિ શિષ્યની માફક તે પોતાના ગુરુ મહારાજના પ્રાણ હરનાર ન બને. ॥ ૪૦ ॥

આચાર્ય મહારાજના ક્રોધિત થવાથી શિષ્યનું શું કર્તવ્ય છે. તે કહેવામાં આવે છે.—આચાર્યિયં—ઈત્યાદિ.

अन्वयार्थ—शिष्य कुवियं आचरियं नच्चा-कुपितं आचार्यं ज्ञात्वा न्यारे એવું સમજે કે આચાર્ય મહારાજ કુપિત છે તે સમય તે પત્તિર્ણ પસાયૈણ-પ્રીતિકેન પ્રસાદયેત્ પ્રીતિજનક-વિનય ભાવથી અથવા વિશ્વાસ જનક વાક્યથી તેને પ્રસન્ન

किंतु संलेखनामेव कर्तुं व्यवस्यन्ति । ततः शिष्यवचनं निश्चय्य शोकार्त्तवेत्तसः
 श्रावकास्तमुपशृत्य सगद्गदं वदन्ति-भगवन् ! कथमत्र भवद्भिरकाल एव संलेखना-
 विधिरास्यः ? न च ययं निर्वेदहेतवः, इति मन्तव्यम् यतः शिरःस्थिता अपि
 भवन्तो न भारमस्माकं कुर्वन्ति । इत्थं श्रावकाणां वचनं श्रुत्वाऽऽचार्येण विचारि-
 तम्—सर्वमेतच्छिष्यदुश्चरितम्—भलमस्य शिष्यस्यापीतिकरेण मम प्राणधारणेन,
 इति मनसि विचिन्त्य तेन श्रावकाणां शिष्यस्य च पुरस्तादुक्तम्—क्रियच्चिरमजह्रमै

अधिक समय तक टिका रहे । इस लिये प्रणीत रस वाले भक्त पान को
 लेने की वे अव चाहना ही नहीं करते है, किन्तु संलेखना धारण
 करने के लिये उद्यत हो रहे है, श्रावक जनों ने जब शिष्य के इन वचनों
 को सुना तो वे बहुत शोकार्त्त चित्त हो चिन्तित हुए और गुरु महाराज
 के समीप पहुँच कर गद्गद वाणी से कहने लगे कि—महाराज ! अकाल
 में आप संलेखना क्यों धारण कर रहे हैं ? हम लोग तो आपके लिये
 निर्वेद के कारण हैं नहीं—हमारे तो आप माये पर भी बैठें तो भी आपका
 हमें कोई भार नहीं लग सकता है । आचार्य ने जब श्रावकों के इन
 वचनों को सुना तो वे बड़े विचार में पड गये और मन में कहने लगे
 कि यह सब करतूत हमारे शिष्य की है, मालूम पड़ता है इस को मैं
 बहुत भारी हो रहा हूँ । इस प्रकार सोच समझकर आचार्य ने शिष्य
 एवं श्रावकों के समक्ष कहा कि महानुभाव ! अब हम से चलना फिरना
 बनता नहीं है, अतः ऐसी स्थिति में आप सब को एवं शिष्य को

रसवाणा लडत पानने देवानी खाडना डवे तेओ करता नथी. परंतु संलेखना
 धारण करवाभां प्रयत्नशील भनी रह्या छे. शिष्यतुं आ कडेपुं सांलणी श्रावक-
 जने भूष शोकातुर भन्या अने गुरु महाराज पासे जडने गद्गद वाणीथी
 कडेवा लाग्या के, महाराज ! अकालभां आप संलेखना केम धारण करी रह्या
 छे ? अने दोकै तो आपना माटे निर्वेदना केध कारण नथी ? आप अमारा
 माथा उपर भेसो तो पण अमने आपना केध भार लागतो नथी. आचार्ये
 श्रावकेतुं न्यारे आ प्रकारतुं कडेपुं सांलण्युं तो ते विचारभां पडी गया अने
 मनभां कडेवा लाग्या के, आ अधुं करतूत मारा शिष्यतुं छे, अने हुं भूष भार
 डूप भनी रह्यो छुं. आ प्रकारतुं समल विचारिने आचार्ये शिष्य तेमज
 श्रावकेानी समक्ष कहुं के, माराथी डालीयाली शकतुं नथी, आथी आवी
 स्थितीभां आप अधाने तथा शिष्यने कथां सुधी कष्ट आप्यां कइं. आथी ओज

रस्माभिर्भवन्तः शिष्यश्च पीडनीयाः ? इति निवेद्य भक्तं प्रत्याख्याय स प्राणरहितो जातः । एवं क्षुद्रमतिशिष्यवत् साधुर्युद्धोपघाती न भवेत् ॥ ४० ॥

आचार्यं कुपिते शिष्यकर्तव्यमाह—

मूलम्—आयरियं कुवियं नच्चा, पत्तिएण पसायए ।

विज्झविज्ज पंजलीउडो, वएज्ज नं पुण्णत्ति य ॥४१॥

छाया—आचार्यं कुपितं ज्ञात्वा, प्रीतिकेन प्रसादयेत् ।

विध्यापयेत् प्राञ्जलिपुटः, वदेत् न पुनरिति च ॥ ४१ ॥

टीका—‘आयरियं इत्यादि ।

शिष्यः केनचित् स्वापराधेन आचार्यं कुपितम्=अपरितुष्टं ज्ञात्वा प्रीतिकेन=प्रीतिरेव प्रीतिकं तेन-प्रीतिजनकेन विनयभावेन यद्वा-‘प्रीतिकेन’ इतिच्छाया; प्रतीतिकेन-विश्वासजनकेन वाक्येन तं प्रसादयेत्=प्रसन्नं कुर्यात् । ‘प्रीतिकेन’

कहाँ तक कष्ट दिया जाय, अतः यही सर्वसुंदर मार्ग है कि संलेखना धारण करलो जाय । ऐसा कह कर उन्होंने भक्तप्रत्याख्यान कर दिया और कुछ समय के बाद वे समाधिमरण को प्राप्त कर अपना कल्याण किया । इस कथा से शिष्य को यह शिक्षा लेनी चाहिये कि क्षुद्रमति शिष्य की तरह वह गुरु महाराज का प्राणप्रहारी न बने ॥४०॥

आचार्य महाराज के कुपित होने पर शिष्य का क्या कर्तव्य है सो कहते हैं—‘आयरियं’ इत्यादि.

अन्वयार्थ—शिष्य (कुवियं आयरियं नच्चा-कुपितं आचार्यं ज्ञात्वा । जब यह समझे कि आचार्य महाराज कुपित हैं उस समय वह (पत्ति-एण पसायए-प्रीतिकेन प्रसादयेत्) प्रीतिजनक-विनयभाव से अथवा

सर्व सुंदर मार्ग छे के, संलेखना धारण करी उठे ऐवुं कडीने तेज्जेजे लक्ष-प्रत्याख्यान करी लीधुं अने थोडा समय जाद समाधी मरणुने प्राप्त करी. पोतानुं कल्याणुं थुं. आ कथाथी शिष्ये जे शिक्षा लेवी जेधे जे के, क्षुद्रमति शिष्यनी भाइके ते पोताना गुरु महाराजना प्राणु उरनार न अने. ॥ ४० ॥

आचार्य महाराजना कोषित थवाथी शिष्यनुं शु कर्तव्य छे. ते कडेवाभां आवे छे.—आयरियं-इत्यादि.

अन्वयार्थ—शिष्य कुवियं आयरियं नच्चा-कुपितं आचार्यं ज्ञात्वा न्यारे ऐवुं समझे के आचार्य महाराज कुपित छे ते समय ते पत्तिएण पसायए-प्रीतिकेन प्रसादयेत् प्रीतिजनक-विनय भावथी अथवा विश्वास जनक वाक्यथी तेने प्रसन्न

इत्यत्र रूढ्या नपुंसकत्वम् । प्राञ्जलिपुटः=कृताञ्जलिः सन् विध्यापयेत्=कथंचिदुत्थित-
कोपवर्द्धिं प्रशमयेत् । च=पुनः 'न पुनरेवं करिष्यामि' 'क्षन्तव्योऽयमपराधः' इति
वदेत् । मानसिक-कायिक वाचिकोपायै गुरुः प्रसादनीय इति भावः ॥४१॥

अथ येन गुरोः कोप एव नोत्पद्येत तमुपायमाह—

मूलम्—धम्मज्जियं चं ववंहारं, बुद्धेहायंरियं सय्या ।

तंमांयरंतो ववंहारं, गरंहं नोभिगेच्छइ ॥४२॥

छाया—धर्माजितश्च व्यवहारः बुद्धेः आचरितः सदा ।

तमाचरन् व्यवहारं, गर्हां नाभिगच्छति ॥४२॥

टीका—'धम्मज्जियं' इत्यादि—

यत्तदोर्नित्यसम्यन्धाद् यः धर्माजितः=धर्मेण क्षान्त्यादिना अर्जितः=उपा-
जितः, च=पुनः सदा=सर्वकालं बुद्धेः=तत्त्वविद्भिः आचरितः=सेवितः, व्यवहारः=
-विश्वासजनक वाक्य से उन्हें प्रसन्न करे । और (पंजलीउड्डो विज्जविज्ज
-प्राञ्जलिपुटः विध्यापयेत्) दोनों हाथ जोड़कर उनकी कथंचित् उत्थित
कोपाग्नि को बुझावे । उस समय वह ऐसा (वएज्ज-वदेत्) कहे कि (न
पुणुत्ति य-न पुनरिति च) हे गुरु महाराज अब ऐसा व्यवहार नहीं करने
का भाव है अतः अब यह मेरा अपराध आप क्षमा करें । मन से वचन से
एवं काया से जैसे भी वने उस प्रकार के उपायों से गुरु महाराज को
प्रसन्न कर लेना चाहिये ॥ ४१ ॥

अब सूत्रकार 'गुरु महाराज को कोप ही न उत्पन्न हो सके ऐसा
उपाय बतलाते हैं—'धम्मज्जियं इत्यादि.

अन्वयार्थ—जो (धम्मज्जियं-धर्माजितः) उत्तम क्षमा आदि धर्मों

करे. पंजलिउड्डो विज्ज विज्ज-प्राञ्जलिपुटः विध्यापयेत् अने अपने हाथ जोड़ने
तेमनी कथंचित् उत्थित कोपाग्निने बुझावे. ये समय ते अपुं वएज्ज-वदेत् कहे के,
न पुणुत्ति य-न पुनरिति च हे गुरु महाराज अब हे बुद्धे को नही करूं आधी
हुवे आप आ भारो अपराध क्षमा करो. मन वचन अने कायाथी नेवुं पणु
अने ये प्रकारना उपायोथी गुरु महाराजने प्रसन्न करी देवा जेथे ये. ॥ ४१ ॥

हुवे सूत्रकार 'गुरु महाराजने कोप न उत्पन्न थाय' अपेवा उपाय
अतावे छे.—धम्मज्जियं इत्यादि.

अन्वयार्थ—जे धम्मज्जियं-धर्माजितम् उत्तम क्षमा आदि धर्मोथी अर्थ-कर-

मोक्षार्थी कर्तव्यः प्रतिलेखनादिरूपः, अस्ति, तं व्यवहारम्—आचरन् साधुः, गर्हां-
निन्दाम्—‘अविनीतोऽयम्’ इत्यादिरूपां नाभिगच्छति=न प्राप्नोति। एवं कृते गुरोः
कोपोत्पत्तिर्न भवतीति भावः।

‘धम्मज्जियं’ इत्यादी प्रथमार्थे द्वितीया आर्पत्वात्। ‘धम्मज्जियं’ इति
विशेषणं प्रतिलेखनादिव्यवहारस्य शास्त्रानुकूलतां दंभसंमानाद्यर्थं कृतव्यवहारस्य
परिहार्यतां च बोधयति। ‘बुद्धेहायरियं’ इति विशेषणं व्यवहारस्य शासनसंप्रदा-
यानुगतत्वं सूचयति ॥ ४२ ॥

मूलम्—मंगोगयं ववैकगयं, जाणित्तारियस्स उ।

‘तं परिगिञ्ज वायाए, कम्मुणा उववायए ॥४३॥

के द्वारा अर्जित किया है, तथा (सया-सदा) सर्व काल (बुद्धेहायरियं-
बुद्धेः आचरितः) तीर्थंकर गणधारों के द्वारा आचरित-सेवित हुआ है
ऐसा यह (ववहारं-व्यवहारः) प्रतिलेखनादिरूप कर्तव्य है। (तं ववहारं
आयरंतो-तं व्यवहारम् आचरन्) उस व्यवहार को अपने आचरण में
लाने वाला साधु (गरहं-गर्हां) ‘यह अविनीत है’ इत्यादिरूप निन्दा को
(नाभिगच्छइ-नाभिगच्छति) प्राप्त नहीं करता है। “धम्मज्जियं” यह पद
यह सूचित करता है कि प्रतिलेखनादिकरूप जो व्यवहार है वह शास्त्रानु-
कूल है, तथा दंभ एवं सम्मान आदि के निमित्त जो व्यवहार किया
जाता है वह परिहार्य है। “बुद्धेहायरियं” यह पद ‘यह व्यवहार तीर्थ-
कर एवं गणधारों की परंपरा से चला आ रहा है अतः प्रामाणिक हैं’
यह सूचित करता है ॥ ४२ ॥

વામાં આવેલ છે તથા સયા-સદા સર્વ કાળ બુદ્ધેહાયરિયં-બુદ્ધઃ આચરિતઃ તીર્થંકર
ગણધરોથી સેવિત થયેલ છે એવાં આ વવહારં-વ્યવહારઃ પ્રતિલેખનાદિરૂપ કર્તવ્ય
છે. આ વ્યવહારને પોતાના આચરણમાં લાવનાર સાધુ ગરહં-ગર્હાં ‘આઅવિનીત
છે’ ઇત્યાદિ રૂપ નિંદાને નાભિગચ્છઈ-નાભિગચ્છતિ પ્રાપ્ત કરતા નથી. ધમ્મજ્જિયં
આ પદથી એ સૂચિત થાય છે કે પ્રતિલેખનાદિક રૂપ જે વ્યવહાર છે તે શાસ્ત્ર-
અનુકૂળ છે. તથા દંભ અને સમ્માન આદિ નિમિત્ત જે વ્યવહાર કરવામાં આવે
છે તે પરિહાર્ય છે “બુદ્ધેહાયરિયં” આ પદથી આ વ્યવહાર તીર્થંકર તેમજ
ગણધરોની પરંપરાથી આવ્યો આવે છે આથી તે પ્રમાણીક છે એવું સૂચિત
કરવામાં આવે છે. ॥ ૪૨ ॥

छाया—मनोगतं वाक्यगतं, ज्ञात्वा आर्चायस्य तु ।
तत् परिगृह्य वाचा, कर्मणा उपपादयेत् ॥४३॥

टीका—‘मणोगयं’ इत्यादि—

आचार्यस्य मनोगतं=मनसि वर्तमानं, तथा वाक्यगतं=वचसि स्थितं तु शब्दात्
वाक्यगतमपि कार्यं पूर्वं ज्ञात्वा, पश्चात् तत्=कार्यं वाचा परिगृह्य=अङ्गीकृत्य, ‘अह-
मेतत् कार्यं करोमि’ इत्युक्त्वा शिष्यः कर्मणा=कापिवया क्रियया, उपपादयेत्=
संपन्नं कुर्यात् । यत् कार्यं गुरोर्मनसि विद्यमानं, ‘कार्यमिदं क्रियताम्’ इत्यादिना
वचसा वाऽभिहितं, गुरुणा क्रियमाणं वा यत् कार्यं तद् गुरुहस्तादुपादाय त्वरितमेव
सुशिष्येण संपादनीयमिति भावः ॥४३॥

‘मणोगयं’ इत्यादि.

अन्वयार्थ—(आयरियस्स मणोगयं वक्त्रगयं—आचार्यस्य मनोगतं
वाक्यगतं) आचार्य महाराज के मनोगत एवं वाक्यगत “तु” शब्द से
कायगत कार्य को (जाणित्ता—ज्ञात्वा) पहिले जानकर पश्चात् (तं—तत्)
उस कार्य को (वाचाए—वाचा) वाणी से (परिगिज्ज—परिगृह्य) अंगीकार
कर के शिष्य (कम्मुणा—कर्मणा) कायसंबंधी क्रिया द्वारा (उववायए—
उपपादयेत्) उस कार्य को कर देवे। जो कार्य गुरु के मन में स्थित
हो—गुरु ने जिस कार्य को करने का विचार किया हो ‘इदं कार्यम्
क्रियताम्’ यह काम करो’ इस प्रकार जिस कार्य को करने के लिये उन्होंने
कहा हो, अथवा गुरु महाराज जिस कार्य को स्वयं अपने हाथ से कर
रहे हों तो विनयी शिष्य का कर्तव्य है कि वह उस कार्य को शीघ्र ही
स्वयं संपादित करे। और गुरु महाराज करते हों तो उनके हाथ से लेकर
स्वयं करने लग जाय ॥ ४३ ॥

मणोगयं—इत्यादि.

अन्वयार्थ—आयरियस्स मनोगयं वक्त्रगयं—आचार्यस्य मनोगतं वाक्यगतं
आचार्य महाराजना मनोगतं अने वाक्यगत “तु” शब्दधी कायगत कार्यने
जाणित्ता—ज्ञात्वा पडेलं जाणीने पधीधी तं—तत् ते कार्यने वाचाए—वाचा
वाणीधी परिगिज्ज—परिगृह्य अंगिकार करीने शिष्य कम्मुणा—कर्मणा काय
संबंधी क्रिया द्वारा उववायए—उपपादयेत् अे कार्य करी दे. ने कार्य गुरुना मनमां
स्थित होय, गुरुअे ने कार्य करवाने विचार कर्यो होय, “आ काम करे.”
आ प्रकार ने कार्यने करवा भाटे पोते पोताना हाथधी करी रखा होय तो
विनयी शिष्यनुं कर्तव्य छे के अे ते कार्यने तुरत न पोते उपाडी दे अने गुरु
महाराज करवा होय तो तेमना हाथमांथी लधिने पोते करवा लग्गी जाय. ॥ ४३ ॥

मूलम्—वित्ते' अचोइए निच्चं, खिप्पं हवइ सुचोइए ।

जहोवइट्टं सुकयं, किच्चाइं कुव्वई सयां ॥४४॥

छाया—वित्तः अनोदितः नित्यं, क्षिप्रं भवति सुनोदितः ।

यथोपदिष्टं सुकृतं, कृत्यानि करोति सदा ॥ ४४ ॥

टीका—' वित्ते ' इत्यादि—

वित्तः=विनयादिगुणेन प्रसिद्धः शिष्यः, अनोदितः=अप्रेरित एव गुरुकार्येषु नित्यं=सर्वदा, प्रवर्तते। कदाचित् स्वयमेव कार्यं कुर्वाणः सुनोदितः=गुरुणा सुष्ठु प्रेरितश्चेत् स विनयवान् शिष्यः क्षिप्रं=क्षिप्रकृद् शीघ्रमेव-कार्यकारी भवति। अयं भावः-कार्यं कुर्वन् आचार्येण प्रेरितश्चेद् एवं न ब्रूते-' अहं तु कार्यं करोम्येव, किं

' वित्ते ' इत्यादि ।

अन्वयार्थ—(वित्ते-वित्तः) विनय आदि गुणों से प्रसिद्ध शिष्य (अचोइए-अनोदितः) विना कहे ही-प्रेरणाकिये विना ही-अपने गुरु महाराज के कार्यों में (निच्चं-नित्यं) सर्वदा प्रवृत्ति शील रहा करता है। (सुचोइए-सुनोदितः) गुरु महाराज अपने कार्य को करने की प्रेरणा करें तो विनयवान् शिष्य का कर्तव्य है कि वह (खिप्पं हवइ-क्षिप्रं भवति) गुरु महाराज का कार्य यतनापूर्वक शीघ्र करे। ऐसा शिष्य गुरु महाराज जब कार्य करने के लिये कहते हैं तब ऐसा नहीं कहता है कि 'मैं तो कार्य कर ही रहा हूं आप क्यों कहते हैं'। वह तो (सया-सदा) सर्वदा जो कुछ भी करने को कहा जाता है उसे ही कहने के अनुसार (सुकयं-सुकृतं) जैसे वह अच्छी रीति से हो सकता है उसी

वित्ते इत्यादि—

अन्वयार्थ—वित्त-वित्तः विनय आदि गुणों से प्रसिद्ध शिष्य अचोइए-अनोदितः कहे विना कहे ही-प्रेरणा किये विना ही-अपने गुरु महाराज के कार्यों में (निच्चं-नित्यं) सर्वदा प्रवृत्तिशील रहा करे छे। सुचोइए-सुनोदितः गुरु महाराज आपोतानु कार्य करवा भाटे प्रेरणा करे तो विनयवान् शिष्यनुं कर्तव्य छे के ते खिप्पं हवइ-क्षिप्रं भवति गुरु महाराजना ते कार्यने यतनापूर्वक तुरत न करवा भाडे। विनयी शिष्य गुरु महाराजना तरक्षी काम भाटेनुं सूचन यतां जेपुं कही पणु कडेते नथी के, हुं काम तो करी रह्यो छुं, आप शा भाटे कडे छे। ते तो सया-सदा सर्वदा जेने जे कांछ कडेवाभां आवे ते काम ते कडेवा अनु-सार सुकयं-सुकृतं जेम ते सारी रीते थर् शके जे रीते किच्चाइं कुव्वइ-कृत्यानि

भवद्भिः प्रलप्यते?' इति। यद्योपदिष्टम्=उपदिष्टमनतिक्रम्य सर्वमुपदिष्टं कार्यं, सुकृतं =सुकृतं कृतं, यथा स्यात्, तथा कार्याणि=सर्वाणि गुरुकार्याणि, सदा=सर्वकालं, करोति=संपादयति। गुरुकार्येष्वालस्यं न विधेयं प्रसन्नभावेन तदेव कार्यं सत्वरं करणीयमिति भावः ॥ ४४ ॥

अध्ययनार्थमुपसंहरन्नाह—

मूलम्—नच्चा नमइ मेहावी, लोए किंती से जायए ।

हवइ किर्च्चाण संरणं, भूयाणं जगइ जहा ॥४५॥

छाया—ज्ञात्वा नमति मेधावी, लोके कीर्तिस्तस्य जायते ।

भवति कृत्यानां शरणं, भूतानां जगती यथा ॥ ४५ ॥

टीका—'नच्चा' इत्यादि—

मेधावी=मर्यादावर्ती शिष्यः, ज्ञात्वा=अनन्तरोक्तं सर्वमध्ययनार्थमवगम्य, नमति=नम्रीभवति विनयवान् भवतीत्यर्थः, स्वकर्तव्यकरणं प्रति सादरमुद्यतो भवतीति यावत् । विनयस्य फलमाह—'लोए' इत्यादि । लोके तस्य कीर्तिः—

रीति के माफिक (किर्च्चाइ कुञ्चइ—कृत्यानि करोति) उन सब कार्यों को सुसंपादित करता है । गुरु महाराज के कार्यों में कभी भी आलस्य नहीं करना चाहिये प्रत्युत प्रसन्नचित्त से जो कुछ भी करने को कहा जाय वह शीघ्र ही कर देना चाहिये ॥ ४४ ॥

अब अध्ययन के अर्थ का उपसंहार करते हुए सूत्रकार कहते हैं—
'नच्चा' इत्यादि ।

अन्वयार्थ—(मेहावी—मेधावी) मर्यादावर्ती शिष्य (नच्चा—ज्ञात्वा) अनन्तरोक्त इस समस्त अध्ययन के अर्थ को जानकर (नमइ—नमति) अवश्य विनयी होता है । अर्थात् अपने कर्तव्य को निभाने के लिये सादर उद्यत हो जाता है । (से लोए किंती जायए—तस्य लोके कीर्तिः

करोति ते अर्थात् कामे सादरीरीते करते रहे छे. गुरु महाराजना कामेमां कही पद्य आणस शिष्ये न करवी लोएअ. से कर्ण करवानुं कडेवामां आवे ते प्रसन्न चित्ते शीघ्र करी देतुं लोएअ. ॥ ४४ ॥

इये अध्ययनना अर्थने उपसंहार करता सूत्रकार कहे छे—नच्चा इत्यादि—
अन्वयार्थ—मेहावी—मेधावीमर्यादावर्ती शिष्य नच्चा—ज्ञात्वा अनन्तरोक्त आ

समस्त अध्ययनना अर्थने लक्ष्मीने नमइ—नमति अवश्य विनयी अने छे. अर्थात् पोताना कर्तव्यने निष्ठाववा भाटे सादर उद्यत रहे छे. से लोए किंति

‘અનેન સફલીકૃતં જન્મ, છિન્નં ચ દુશ્ચેયં કર્મવન્ધનં નિસ્તીર્ણથ દુસ્તરઃ સંસાર-સાગરઃ’ ઇત્યાદિરૂપા, જાયતે=પ્રાદુર્ભવતિ, અપિ ચ-સ કૃત્યાનાં=આચાર્યાણાં શરણમ્=આશ્રયો ભવતિ, યથા જગતી=પૃથિવી, ભૂતાનાં=પ્રાણિનાં શરણમ્=આધારો-ઽસ્તિ તદ્વત્ ॥ ૪૫ ॥

મૂલમ્—પુજ્ઞાં જસ્સં પસીયંતિ, સંવુદ્ધા પુવ્વંસંથુયા ।

પસન્નાં લાભઈસ્સંતિ, વિઁલં અટ્ટિયં સુયમ્ ॥૪૬॥

છાયા—પૂજ્યા યસ્ય પ્રસીદન્તિ, સંવુદ્ધાઃ પૂર્વસંસ્તુતાઃ ।

પસન્ના લાભયિપ્યન્તિ, વિપુલમ્ આર્થિકં શ્રુતમ્ ॥ ૪૬ ॥

ટીકા—‘પુજ્ઞા’ ઇત્યાદિ—

સંવુદ્ધાઃ=સમ્યગ્જ્ઞાનવન્તઃ, પૂર્વસંસ્તુતાઃ=પૂર્વ સમ્યક્ પ્રકારેણ સ્તુતાઃ, શ્રુતદા-

જાયતે) જો સાધુ અપને કર્તવ્ય કો નિભાતા હૈં ઉસકા ઉસે યહ ફલ મિલતા હૈં કિ ઉસકી કીર્તિ ઇસ લોક મેં ફેલ જાતી હૈં । લોગ કહને લગ જાતે હૈં કિ ઇસને અપને જન્મ કો સફલ ઘના લિયા હૈં । દુશ્ચેય કર્મવન્ધન ઇસને હેદ ઢાલા હૈં । દુસ્તર સંસાર સાગર ઇસને પાર કર લિયા હૈં । (જહા-યથા) જૈસે-(જગઈ-જગતી) પૃથિવી (ભૂયાણં સરણં હવઈ-ભૂતાનાં શરણં ભવતિ) પ્રાણિયોં કે લિયે આધારભૂત હોતી હૈં, ઇસી તરહ વહ શિષ્ય મ્હી (કિચ્ચાણ સરણં હવઈ-કૃત્યાનાં શરણં ભવતિ) અપને આચાર્ય મહારાજ કા આધાર ઘન જાતા હૈં ॥ ૪૫ ॥

‘પુજ્ઞા’ ઇત્યાદિ ।

અન્વયાર્થ—(સંવુદ્ધા-સંવુદ્ધાઃ) પહિલે-શ્રુતદાન કે પહિલે હી વિનય-

લોકે કોર્તિઃ જાયતે જે સાધુ પોતાના કર્તવ્યને નિભાવે છે એને તેણે એ ક્ષણ મળે છે કે, તેમની કિર્તિ આ લોકમાં ફેલાઈ જાય છે, લોકો કહેવા લાગે છે કે, આણે પોતાના જન્મને સફળ બનાવી લીધો છે. કર્મના બંધનને એણે તોડી નાખ્યાં છે, દુસ્તર સંસાર સાગર એણે પાર કરી લીધો છે. જહા-યથા જેમ-જગઈ-જગતી પૃથ્વી ભૂયાણં સરણં હવઈ-ભૂતાનાં શરણં ભવતિ પ્રાણીઓને માટે આધારભૂત હોય છે, એજ રીતે તે શિષ્ય પણ પોતાના આચાર્ય મહારાજને આશ્રય બની જાય છે. ॥ ૪૫ ॥

પુજ્ઞા-ઇત્યાદિ—

અન્વયાર્થ—સંવુદ્ધા-સંવુદ્ધાઃ પહેલાં શ્રુતદાનના પહેલાં-વિનયશુભુથી

भवद्भिः प्रलप्सते?' इति। यथोपदिष्टम्=उपदिष्टमनतिक्रम्य सर्वमुपदिष्टं कार्यं, मुकृतं =सुष्ठु कृतं, यथा स्यात्, तथा कार्याणि=सर्वाणि गुरुकार्याणि, सदा=सर्वकालं, करोति=संपादयति। गुरुकार्येष्वालस्यं न विधेयं प्रसन्नभावेन तदेव कार्यं सत्त्वं करणीयमिति भावः ॥ ४४ ॥

अध्ययनार्थमुपसंहरन्नाह—

मूलम्—नच्चा नमइ मेहावी, लोए किंती से जायए ।

हवइ किर्च्चाण संरणं, भूयाणं जगइ जहा ॥४५॥

छाया—ज्ञात्वा नमति मेधावी, लोके कीर्तिस्तस्य जायते ।

भवति कृत्यानां शरणं, भूतानां जगती यथा ॥ ४५ ॥

टीका—'नच्चा' इत्यादि—

मेधावी=मर्यादावर्ती शिष्यः, ज्ञात्वा=अनन्तरोक्तं सर्वमध्ययनार्थमवगम्य, नमति=नम्रीभवति विनयवान् भवतीत्यर्थः, स्वकर्तव्यकरणं प्रति सादरमुद्यतो भवतीति यावत् । विनयस्य फलमाह—'लोए' इत्यादि । लोके तस्य कीर्तिः—

रीति के माफिक (किच्चाइं कुव्वइ-कृत्यानि करोति) उन सब कार्यो को सुसंपादित करता है । गुरु महाराज के कार्यो में कभी भी आलस्य नहीं करना चाहिये प्रत्युत प्रसन्नचित्त से जो कुछ भी करने को कहा जाय वह शीघ्र ही कर देना चाहिये ॥ ४४ ॥

अब अध्ययन के अर्थ का उपसंहार करते हुए सूत्रकार कहते हैं—'नच्चा' इत्यादि ।

अन्वयार्थ—(मेहावी-मेधावी) मर्यादावर्ती शिष्य (नच्चा-ज्ञात्वा) अनन्तरोक्त इस समस्त अध्ययन के अर्थ को जानकर (नमइ-नमति) अवश्य विनयी होता है । अर्थात् अपने कर्तव्य को निभाने के लिये सादर उद्यत हो जाता है । (से लोए किंती जायए-तस्य लोके कीर्तिः

करोति ते ष्ठां कामे सारीरीते करतो रडे छे. गुरु महाराजना कामेमां कही पणु आणस शिष्ये न करवी नेछंछे. ने कांछं करवानुं कडेवामां आवे ते प्रसन्न चित्ते शीघ्र करी देवुं नेछंछे. ॥ ४४ ॥

हुवे अध्ययनना अर्थने उपसंहार करता सूत्रकार कहे छे—नच्चा इत्यादि-अन्वयार्थ—मेहावी-मेधावीमर्यादावर्ती शिष्य नच्चा-ज्ञात्वा अनन्तरोक्त आ समस्त अध्ययनना अर्थने लक्ष्मीने नमइ-नमति अवश्य विनयी भने छे. अर्थात् पोताना कर्तव्यने निभाववा भाटे सादर उद्यत रडे छे. से लोए किंति जायए-तस्य

‘अनेन सफलीकृतं जन्म, छिन्नं च दुःखेद्यं कर्मवन्धनं निस्तीर्णञ्च दुस्तरः संसार-सागरः’ इत्यादिरूपा, जायते=पादुर्भवति, अपि च-स कृत्यानां=आचार्याणां शरणम्=आश्रयो भवति, यथा जगती=पृथिवी, भूतानां=प्राणिनां शरणम्=आधारोऽस्ति तद्वत् ॥ ४५ ॥

मूलम्—पुञ्जां जस्स पंसीयन्ति, संबुद्धा पुव्वंसंथुया ।

पसन्नां लाभइंस्सन्ति, विउलं अट्टियं सुयंम् ॥४६॥

छाया—पुञ्जा यस्य प्रसीदन्ति, संबुद्धाः पूर्वसंस्तुताः ।

पसन्ना लाभयिष्यन्ति, विपुलम् आर्थिकं श्रुतम् ॥ ४६ ॥

टीका—‘पुञ्जा’ इत्यादि—

संबुद्धाः=सम्यग्ज्ञानवन्तः, पूर्वसंस्तुताः=पूर्वं सम्यक् प्रकारेण स्तुताः, श्रुतदा-

जायते) जो साधु अपने कर्तव्य को निभाता है उसका उसे यह फल मिलता है कि उसकी कीर्ति इस लोक में फैल जाती है। लोग कहने लग जाते हैं कि इसने अपने जन्म को सफल बना लिया है। दुःखेद्य कर्मवन्धन इसने छेद डाला है। दुस्तर संसार सागर इसने पार कर लिया है। (जहा-यथा) जैसे-(जगई-जगती) पृथिवी (भूयाणं सरणं हवइ-भूतानां शरणं भवति) प्राणियों के लिये आधारभूत होती है, इसी तरह वह शिष्य भी (किच्चाण सरणं हवइ-कृत्यानां शरणं भवति) अपने आचार्य महाराज का आधार बन जाता है ॥ ४५ ॥

‘पुञ्जा’ इत्यादि ।

अन्वयार्थ—(संबुद्धा-संबुद्धाः) पहिले-श्रुतदान के पहिले ही विनय-

लोके कीर्तिः जायते जे साधु पोताना कर्तव्यने निभावे छे अने तेनुं अे इण भणे छे के, तेमनी क्तितीं आ बोडमां इलाध नथ छे, बोडो कडेवा लागे छे के, आबे पोताना जन्मने सक्षण बनारपी लीधो छे. कर्मना अंधनने अबे तोडी नाथ्यां छे, दुस्तर संसार सागर अबे पार करी लीधो छे. जहा-यथा जेभ-जगई-जगती पृथ्वी भूयाणं सरणं हवइ-भूतामां शरणं भवति प्राणीअेने माटे आधारभूत होय छे, अेज रीते ते शिष्य पणु पोताना आचार्य महाराजने आश्रय अनी नथ छे. ॥ ४५ ॥

पुञ्जा-इत्यादि—

अन्वयार्थ—संबुद्धा-संबुद्धाः पडेवां श्रुतदानना .पडेवां-विनयशुषुधी

कार्ये रुचिरिच्छा यस्य स मनोरुचिः—गुरुमनोऽनुवर्ती न तु स्वेच्छाचारी तिष्ठति=
 आस्ते तथा-तपःसमाचारीसमाधिसंवृतः—तपसोऽनशनदेर्द्वादशविधस्य समाचारी च
 समाधिश्च तपःसमाचारीसमाधी, ताभ्यां संवृतः=निरुद्धास्रवः, पञ्च व्रतानि=प्राणा-
 तिपातविरमणादीनि पञ्चमहाव्रतानि पालयित्वा=निरतिचारं समाराध्य महाद्युतिः
 =महती द्युति र्यस्य स महाद्युतिः=तपस्तेजःसमन्वितः, तेजोलेख्यापुलाकलब्ध्यादि
 सहितो भवतीत्यर्थः ॥ ४७ ॥

कार्य को संपादन करने की जिसकी इच्छा यनी रहती है—गुरु महा-
 राज की इच्छानुसार चलने वाला, स्वेच्छाचारी नहीं। एवं (तवोसमा-
 यारिसमाहिसंवुडे—तपःसमाचारीसमाधिसंवृतः) अनशन आदि बारह
 प्रकार के तप के अनुष्ठान से, तथा चित्तकी शुद्धिरूप समाधि से जिसने
 आस्रव के द्वारको निरुद्ध कर दिया है (पंचवयाइं पालिया—पंचव्रतानि
 पालयित्वा) पांच प्राणातिपातविरमण आदि महाव्रतों का निरतिचार
 पालन करके (महज्जुई चिट्ठइ—महाद्युतिः तिष्ठति) तपस्तेज से समन्वित
 होता हुआ तेजोलेख्या एवंपुलाकलब्धि आदि से सहित होता है।

भावार्थ—गुरु महाराज के प्रसाद से जिसने श्रुतज्ञान प्राप्त कर
 लिया है ऐसा शिष्य शास्त्रसंमत अर्थ में विगतसंशयहोकर जनता द्वारा
 प्रसंशनीयज्ञानवाला माना जाता है। उसके वचन को जनता निस्संदेह
 अंगीकार कर लेनेमें निस्संकोचित हो जाती है। उसकी विनयादि

પોતાનો ગુરુ મહારાજના મનોનુકૂળ કાર્ય સંપાદન કરવાની ઇચ્છા બેની બની
 રહે છે. એવા ગુરુ મહારાજની ઇચ્છાનુસાર ચાલવાવાળા સ્વેચ્છાચારી નહિં એવા
 શિષ્ય કે જેણે તવોસમાયારિસમાહિસંવુડે—તપઃ સમાચારીસમાધિસંવૃતઃ અનશન
 આદિ બાર પ્રકારનાતપના અનુષ્ઠાનથી તથા ચિત્તની શુદ્ધિરૂપ સમાધીથી જેણે
 આસ્રવના દ્વારને નિરૂદ્ધ કરી લીધાં છે, પંચવયાઈં પાલિયા—પંચવ્રતાનિ પાલયિત્વા પંચ
 પ્રણાતિપાત વિરમણ આદિ મહાવ્રતોને નિરતિચાર પાલન કરી મહજ્જુઈ ચિટ્ઠઈ—
 મહાદ્યુતિઃ તિષ્ઠતિ તપસ્તેજથી સમન્વિત થઈ તેને લેખ્યા એવં પુલાકલબ્ધિ
 આદિથી સહિત બને છે.

ભાવાર્થ—ગુરુ મહારાજના પ્રસાદથી શ્રુતજ્ઞાન જેણે પ્રાપ્ત કરી લીધું છે
 એવા શિષ્ય શાસ્ત્રીય સંમત અર્થમાં વિગતસંશય બનીને જનતા દ્વારા પ્રસં-
 સનીય જ્ઞાનવાળા માનવામાં આવે છે. એવા વચનને જનતા નિઃસંદેહ અંગીકાર
 કરવામાં સંકોચરહિત બની જાય છે. એની ક્રિયા—સંપત્તિથી ગુરુ મહારાજ

મૂલમ્—સ દેવગંધર્વમણુસ્સપૂઙ્ણ, ચઈત્તુ દેહં મલપંકપૂઙ્ણયં ।
સિદ્ધે વા હર્વઙ્ણ સાસણ, દેવે^૧ વાં અપ્પરંણ મહિદ્ધિદ્ધે-ત્તિ^૨ વેમિ^૩ ॥૪૮॥

[સ સિદ્ધણ વા હર્વણ ય સાસણ, મુરેય વા અપ્પરણ મહિદ્ધિ ણ-ત્તિવેમિ]

॥ ઉત્તરજ્ઞયણસ્સ પઢમજ્ઞયણં સમત્તં ॥

છાયા—સ દેવ ગન્ધર્વમણુપ્યપૂજિતઃ, ત્યક્ત્વા દેહં મલપદ્મપૂતિકમ્ ।

સિદ્ધો વા ભવતિ શાશ્વતઃ, દેવો વા અલ્પરજા મહદ્ધિક્કિં ઇતિ વ્રવીમિ ॥૪૮॥

[સ સિદ્ધો વા ભવતિ ચ શાશ્વતઃ, મુરથ વા અલ્પરજા મહદ્ધિક્કિઃ—ઈતિ વ્રવીમિ]

ટીકા—‘ સ દેવગંધર્વ૦ ’ ઇત્યાદિ—

સઃ=પૂર્વોક્તલક્ષણવિશિષ્ટો વિનયવાન્ શિષ્યઃ, ઇહ લોકે દેવગન્ધર્વમણુપ્ય-
પૂજિતઃ=દેવૈઃ=વૈમાનિક જ્યોતિષ્કૈઃ, ગન્ધર્વૈઃ—ગન્ધર્વનિકાયો—પલક્ષિતૈર્વ્યન્તર-
ભવનપતિભિઃ, મણુપ્યૈઃ=ચક્રવર્ત્યાદિભિઃ પૂજિતઃ સંમાનિતો ભવતિ । યથા મલપદ્મપૂ-
તિકં=મલં=વિષ્ણુત્રાદિકં, તદેવ પદ્મઃકર્દમસ્તેન પૂતિકં=દુર્ગન્ધિયુક્તદેહમ્=ઔદારિકં

ક્રિયાસંપત્તિ સે ગુરુ મહારાજ ઉસ પર સદા પ્રસન્ન રહા કરતે હૈં । દ્વાદશ
પ્રકાર કી તપસ્યા સે વહ કર્મોં કૈ આસ્રવ કો રોકને વાલા હો જાતા હૈ ।
પાંચ મહાવ્રતોં કી આરાધના સે ઉસકા આત્મિક વલ વિશિષ્ટ હોકર
ઉસકો તપસ્તેજ કી લબ્ધિ સે સંપન્ન વના દેતા હૈ ॥ ૪૭ ॥

‘ સદેવ ’ ઇત્યાદિ ।

અન્વયાર્થ—(સ-સઃ) પૂર્વોક્ત લક્ષણોં સે વિશિષ્ટ વિનયશાલી શિષ્ય
(દેવગંધર્વમણુસ્સપૂઙ્ણ-દેવગંધર્વમણુપ્ય પૂજિતઃ) દેવ વૈમાનિક જ્યોતિષ્ક
દેવોં સે ગંધર્વ-ગંધર્વનિકાય સે ઉપલક્ષિત વ્યન્તર દેવોં સે, એવં ભવનપતિ-
દેવોં સે, તથા મણુપ્યોં-ચક્રવર્તી આદિ સે પૂજિત હોતા હૈ । તથા (મલપં-

એના પર સદા પ્રસન્ન રહ્યા કરે છે આર પ્રકારની તપસ્યાથી તે કર્મના
આશ્રવને રોકનાર બની બચ છે. અને પાંચ મહાવ્રતોની આરાધનાથી એનું
આત્મિક બલ વિશિષ્ટ બને છે. અને આથી તેને તપસ્તેજની લબ્ધિ સંપન્ન
બનાવે છે. ॥ ૪૭ ॥

“ સ દેવ ઇત્યાદિ—

અન્વયાર્થ—સ-સઃ પૂર્વોક્ત લક્ષણની વિશિષ્ટ વિનયશાળી શિષ્ય દેવ ગંધર્વ-
મણુસ્સપૂઙ્ણ-દેવ ગંધર્વ મણુપ્ય પૂજિતઃ દેવ-વૈમાનિક જ્યોતિષ્ક દેવો, ગંધર્વ-ગંધર્વ
નિકાયથી ઉપલક્ષિત વ્યન્તર દેવ અતે ભવનપતિ દેવો તથા મણુપ્યો-ચક્રવર્તી
આદિથી પૂજીત બને છે. તથા મલપંક પૂઙ્ણ દેહં ચઈત્તુ-મલપંકપૂતિકં દેહં ત્યક્ત્વા

મનુષ્યશરીરં, ત્યક્ત્વા, શાશ્વતઃ=સર્વકાલાવસ્થાયી જન્મમરણરહિતઃ સિદ્ધો ભવતિ ।
 વા=અથવા, સાવશેપકર્મા તુ અલ્પરજાઃ=અલ્પકર્મા મહદ્વિક્રઃ=મહતી=દિવ્યા ઋદ્ધિઃ=
 વિમાનાદિસમ્પત્ત, ઉપલક્ષણેન દિવ્યાનિ યુતિયશોર્ણવલવીર્યાંદીનિ ચ યસ્ય સ
 મહદ્વિક્રઃ, તત્ર=યુતિઃ-શરીરાભરણકાન્તિઃ, યશઃ=કીર્તિઃ, વર્ણઃ=શુભ્રાદિઃ, વલં=
 શારીરિકપરાક્રમઃ, વીર્યમ્=આત્મવલમ્, આદિપદેન-ઇતોઽન્યદપિ સંગ્રાહમ્, ણ્મિઃ
 સંપન્નઃ, દેવો ભવતિ ।

કપૂઙ્યં દેહં ચૈત્તુ-મલપંકપૂતિકં દેહં ત્યક્ત્વા) શુક્રશોણિત સે જન્ય હસ
 ઔદારિક શરીર કા પરિત્યાગ કર (સાસણ સિદ્ધે હવઙ્-શાશ્વતઃ સિદ્ધો
 વા ભવતિ) અનંત કાલ તક સદા સિદ્ધિ સ્થાન મેં રહને ચાલા સિદ્ધ
 પરમાત્મા હો જાતા હૈ । (વા) અથવા યદિ વહ સિદ્ધ નહોં વને તો
 (અપ્પરણમહિદ્વિદ્વણ દેવે વા હવઙ્-અલ્પરજાઃ મહદ્વિક્રઃ દેવો વા ભવતિ)
 અલ્પકર્મા મહદ્વિક્ર દેવ હો જાતા હૈ ।

ભાવાર્થ — પૂર્વોક્તલક્ષણવિશિષ્ટ વિનીત શિષ્ય દેવાદિક દ્વારા
 પૂજ્ય હોતા હૈ, એવં હસ અપવિત્ર ઔદારિક શરીર કા પરિત્યાગ કર
 સિદ્ધ હો જાતા હૈ । યદિ કર્મ શેપ રહ જાય તો વહ મહાઋદ્ધિશાળી દેવ
 હોતા હૈ । યહાં ઋદ્ધિસે યુતિ, યશ, વર્ણ, વલ, વીર્ય હન સવક્રા
 ગ્રહણ હુવા હૈ । વિમાન આદિ સંપત્તિ કા નામ ઋદ્ધિ હૈ । શરીર એવં
 આભરણ કી કાન્તિ કા નામ યુતિ હૈ । કીર્તિ કા નામ યશ હૈ । શરીર
 કા જો શુકલ આદિ વર્ણ હૈ - ઉસકા નામ વર્ણ હૈ । શારીરિક
 પરાક્રમ કા નામ વલ એવં આત્મજન્ય શક્તિ કા નામ વીર્ય હૈ ।

શુક શોણિત જન્ય આ ઔદારિક શરીરનો પરિત્યાગ કરી સાસણ સિદ્ધે હવઙ્-
 શાશ્વતઃ સિદ્ધો ભવતિ અનન્તકાળ સુધી સદા સિદ્ધિ સ્થાનમાં રહેવાવાળા સિદ્ધ
 પરમાત્મા બની બાય છે. વા અથવા જો તે સિદ્ધ ન બને તો, અલ્પકર્મા મહ-
 દ્વિક્ર દેવ બની બાય છે.

ભાવાર્થ—પૂર્વોક્ત લક્ષણવિશિષ્ટ વિનીત શિષ્ય દેવાદિક દ્વારા પૂજ્ય બને
 છે. અને આ અપવિત્ર ઔદારિક શરીરનો પરિત્યાગ કરી કાં તો સિદ્ધ બની
 બાય છે. જો કર્મ શેષ રહી બાય તો તે મહાઋદ્ધિ શાળી દેવ બને છે. ઋદ્ધિથી
 યુતિ, યશ, વર્ણ, બળ, વીર્ય, આ બધાનું ગાથામાં ગ્રહણ કરેલ છે, વિમાન
 આદિ સંપત્તિનું નામ ઋદ્ધિ છે. શરીર અને આભરણની કાન્તિનું નામ
 યુતિ છે, કીર્તિનું નામ યશ છે. શરીરનો જે શુકલ આદિ વર્ણ છે-દ્રવ્ય લેશ્યા
 છે-એનું નામ વર્ણ છે. શારીરિક પરાક્રમનું નામ બળ છે. અને

इति शब्दः समाप्तिबोधकः, अथवा 'इति' एवम्-अमुना प्रकारेण एतद्
विनयश्रुताख्यमध्ययनं ब्रवीमि यथा भगवता कथितं तथा कथयामि न तु स्वबुद्ध्या
परिकल्प्य किंचिद् ब्रवीमीत्यर्थः ॥ ४८ ॥

इति श्रीविश्वविख्यात-जगद्गुरु-प्रसिद्धवाचक-पञ्चदशभाषा-
कलितकलितकलापालापक-प्रवि-शुद्धगद्यपद्यनैकग्रन्थनिर्माय-
कवादिमानमर्दक-श्रीशाहूछत्रपति-कोल्हापुरराजप्रदत्त-
" जैनशास्त्राचार्य " -पद्भूषित-कोल्हापुर-राजगुरु-
बालब्रह्मचारि-जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-पूज्य-
श्रीधासीलालब्रतिविरचितायां श्रीमदुत्तराध्ययन-
सूत्रस्य प्रियदर्शिन्याख्यायां व्याख्यायां
विनयसमाधिनामकं प्रथममध्ययनं
संपूर्णम् ॥ १ ॥



(' त्तिवेमि ' -इति ब्रवीमि) यह पद अध्ययनकी समाप्ति का सूचक है,
इसका यह अर्थ है कि-श्री सुधर्मास्वामी जम्बूस्वामी से कहते हैं कि
हे जम्बू! यह विनयश्रुत नाम का अध्ययन जैसा भगवान से सुना है
उसी तरह का मैंने कहा है। इस में अपनी बुद्धि से कल्पित कुछ
नहीं कहा गया है ॥ ४८ ॥

विनयश्रुतनामक प्रथम अध्ययन सम्पूर्ण ॥ १ ॥



शक्तिनुं नाम वीथं छे. " त्तिवेमि " ' इति ब्रवीमि ' आ पद अध्ययननी
समाप्तिनुं सूत्रक छे तेना अर्थ आ छे डे-श्री सुधर्मास्वामी जम्बूस्वामीने
कहे छे डे डे जम्बू! आ विनयश्रुत नामनुं अध्ययन लेवुं भगवानथी सांभळुं
छे तेज प्रकारे मे' कहुं छे. आमां पोतानी बुद्धिथी कल्पित कांछं नथी कहुं. ॥ ४८ ॥
॥ आ विनयश्रुत नामनुं प्रथम अध्ययन संपूर्ण ॥ १ ॥



द्वितीयाध्ययनम् ।

विनयश्रुताख्यं प्रथममध्ययनं वर्णितम्, इदानीं द्वितीयमध्ययनं प्रारभ्यते । अस्य चायमभिसम्बन्धः—इहानन्तराध्ययने विनयः सविस्तरं वर्णितः, स चानुकूलप्रतिकूलपरीपहजनशीलैरेव कर्तुं शक्यते इति द्वितीयं परीपहाख्यमध्ययनं प्रारभ्यते—
यद्वा—विनयाराधकाः प्रायः परीपहभाजो भवन्त्येवेति द्वितीयं परीपहाख्यमध्ययनं प्रारभ्यते, तस्येदमाद्यं सूत्रम्—

मूलम्—सुयं मे आउसं ! तेणं भगवया एवमक्खायं—इह खलु वावीसं परीसहा समणेणं भगवया महावीरेणं कासवेणं पवेइया, जे भिक्खू सोच्चा नच्चा जिच्चा अभिभूय भिक्खायरियाए परिव्वयंतो पुट्ठो नो विनिहन्नेज्जा ॥१॥

छाया—श्रुतं मे आयुष्मन् ! तेन भगवता एवमाख्यातम्—इह खलु द्वाविंशतिः परीपहाः श्रमणेन भगवता महावीरेण काश्यपेन प्रवेदिताः, यान् भिक्षुः श्रुत्वा ज्ञात्वा जित्वा अभिभूय भिक्षाचर्यायां परिव्रजन् स्पृष्टो नो विनिहन्येत ॥१॥

द्वितीय अध्ययन ।

विनयश्रुत नाम के प्रथम अध्ययन का वर्णन हुआ, अब सूत्रकार द्वितीय अध्ययन का वर्णन करते हैं । प्रथम अध्ययन के साथ इसका संबंध इस प्रकार है—प्रथम अध्ययन में विस्तारपूर्वक विनयधर्म का वर्णन करने में आया है । उस विनयधर्म की आराधना परीषहों को जीतने वाला ही कर सकता है, और विनयशील को प्रायः परीषह उत्पन्न होते ही हैं इसलिए अब परीपहाध्ययन कहते हैं जिसका यह प्रथमसूत्र है—“सुयंमे” इत्यादि ।

पीठुं अध्ययन

विनय श्रुत नामना प्रथम अध्ययनतुं वर्णुं पुं थुं डवे सूत्रकार पीठुं अध्ययनतुं वर्णुं करे छे. प्रथम अध्ययननी साथे ज्येना संणं ध आ प्रकारेना छे. प्रथम अध्ययनमां विस्तार पूर्वक विनय धर्मतुं वर्णुं करवाभां आवेल छे. ते विनय धर्मनी आराधना परिषड्ढे लतवावाणा न करी शके छे अने विनयशीलने परिषड् धड्डे लागे उत्पन्न थाय न छे, आ भाटे डवे “परिपहाध्ययन” कडेवाभां आवे छे नेतुं आ प्रथम सूत्र छे मयंमे ।

टीका—श्रीसुधर्मा स्वामी श्रीजम्बूस्वामिनं प्रति कथयति—‘सुयं मे आउसं!’ इत्यादि । हे आयुष्मन् ! भगवता=ज्ञानादियुक्तेन, तेन=तीर्थकरणे, एवम्=वक्ष्यमाणप्रकारेण, यत् आख्यातं=सकलजीवभाषापरिणामिन्या भाषया कथितम्, उक्तञ्च-

देवा दैवीं नरा नारीं, श्वराश्चापि श्वरीम् ।

तिर्यञ्चोऽपि हि तैरथीं, मेनिरे भगवद्विरम् ॥ १ ॥

वत्, मे=मया, श्रुतम् । भगवत्कथितमेवार्थं तवाग्रे वर्णयामीति भावः । अस्य सविस्तरं व्याख्यानं जिज्ञासुभिराचाराङ्गसूत्रस्य मत्कृताचारचिन्तामणिटीकायां द्रष्टव्यम् । यद्वा—‘आउसंतेणं’ इत्येकं पदं, ‘मया’ इत्यस्य विशेषणम् ।

श्री सुधर्मा स्वामी श्री जम्बूस्वामी से कहते हैं—(आउसं-आयुष्मन्) कि हे आयुष्मन् ! जम्बू ! (तेणं भगवया एवमक्खायं-तेन भगवता एवं आख्यातम्) ज्ञानादि गुणों से युक्त उन तीर्थकर भगवान् श्री महावीर स्वामी ने वक्ष्यमाण प्रकार से कहा है वह (मे सुयं-मया श्रुतम्) मैंने सुना है वही मैं कहता हूँ । प्रभु की भाषा सर्वभाषामय होती है, कहा भी है—“ देवा दैवीं ” इत्यादि ।

प्रभु की वाणी को देव, मनुष्य, आर्य, अनार्य, तिर्यञ्च, सभी अपनी अपनी भाषा में समझते हैं ।

इस सूत्र का विस्तृत विवेचन आचारांग सूत्र की आचारचिन्तामणि टीका में किया गया है, इसलिए जिज्ञासु को वहां से देख लेना चाहिये । “ आउसं तेणं ” इस पद की संस्कृत छाया “ आयुष्मन् तेन ” ऐसी न

श्री सुधर्मास्वामी, श्री जम्बूस्वामीने कहे છે કે આઉસં-આયુષ્મન્ ‘હે આયુષ્મન્ જમ્બૂ! તેણં ભગવયા એવમક્ખાયં-તેન ભગવતા એવં આખ્યાતમ્ જ્ઞાનાદિ શુભોર્થી યુક્ત એવા તીર્થકર ભગવાન શ્રી મહાવીર સ્વામીએ વક્ષ્યમાણ પ્રકારથી કહ્યું છે મે સુયં-મયા શ્રુતમ્-તે મે સાંભળ્યું છે એ હું કહું છું. પ્રભુની ભાષા સર્વભાષામય હોય છે. કહ્યું પણ છે—દેવા દૈવી ઇત્યાદિ.

પ્રભુની વાણીને દેવ, મનુષ્ય, આર્ય, અનાર્ય, તિર્યંચ, સઘળા પોત પોતાની ભાષામાં સમજે છે.

આ સૂત્રનું વિસ્તૃત વિવેચન આચારાંગસૂત્રની આચારચિન્તામણી ટીકામાં કરેલ છે. માટે જિજ્ઞાસુએ ત્યાંથી જોઈ લેવું જોઈએ. “ આઉસં તેણં ” એ પદની સંસ્કૃત છાયા “ આયુષ્મન્ તેન ” એવી ન થતાં આઉસંતેણં ” “ આવસતા ”

मनुष्यशरीरं, त्यक्त्वा, शाश्वतः=सर्वकालावस्थायी जन्ममरणरहितः सिद्धो भवति । वा=अथवा, सावशेषकर्मा तु अल्परजाः=अल्पकर्मा महर्द्धिकः=महती=दिव्या ऋद्धिः=विमानादिसम्पत्, उपलक्षणेन दिव्यानि द्युतियशोवर्णवलवीर्यादीनि च यस्य स महर्द्धिकः, तत्र=द्युतिः=शरीराभरणकान्तिः, यशः=कीर्तिः, वर्णः=शुक्लादिः, बलं=शारीरिकपराक्रमः, वीर्यम्=आत्मबलम्, आदिपदेन=इतोऽन्यदपि संग्राह्यम्, एभिः संपन्नः, देवो भवति ।

कपूड्यं देहं चइत्तु-मलपंकपूतिकं देहं त्यक्त्वा) शुक्लशोणित से जन्य इस औदारिक शरीर का परित्याग कर (सासण सिद्धे ह्वइ-शाश्वतः सिद्धो वा भवति) अनंत काल तक सदा सिद्धि स्थान में रहने वाला सिद्ध परमात्मा हो जाता है। (वा) अथवा यदि वह सिद्ध नहीं बने तो (अप्परणमहिद्धिइए देवे वा ह्वइ-अल्परजाः महर्द्धिकः देवो वा भवति) अल्पकर्मा महर्द्धिक देव हो जाता है।

भावार्थ — पूर्वोक्तलक्षणविशिष्ट विनीत शिष्य देवादिक द्वारा पूज्य होता है, एवं इस अपवित्र औदारिक शरीर का परित्याग कर सिद्ध हो जाना है। यदि कर्म शेष रह जाय तो वह महाऋद्धिशाली देव होता है। यहां ऋद्धिसे द्युति, यश, वर्ण, बल, वीर्य इन सबका ग्रहण हुवा है। विमान आदि संपत्ति का नाम ऋद्धि है। शरीर एवं आभरण की कान्ति का नाम द्युति है। कीर्ति का नाम यश है। शरीर का जो शुक्ल आदि वर्ण है - उसका नाम वर्ण है। शारीरिक पराक्रम का नाम बल एवं आत्मजन्य शक्ति का नाम वीर्य है।

शुक्ल शोणित जन्य आ औदारिक शरीरने परित्याग करी सासण सिद्धे ह्वइ-शाश्वतः सिद्धो भवति अनन्तकाल सुधी सदा सिद्धि स्थानमां रहेवावाणा सिद्ध परमात्मा भनी जय छे. वा अथवा जे ते सिद्ध न बने तो, अल्पकर्मा महर्द्धिक देव भनी जय छे.

भावार्थ—पूर्वोक्त लक्षणविशिष्ट विनीत शिष्य देवादिक द्वारा पूज्य बने छे. अने आ अपवित्र औदारिक शरीरने परित्याग करी कां तो सिद्ध भनी जय छे. जे कर्म शेष रही जय तो ते महाऋद्धि शाली देव बने छे. ऋद्धिथी द्युति, यश, वर्ण, बल, वीर्य, आ अधातुं गाथाभां अलक्ष्य करेल छे, विमान आदि संपत्तिनुं नाम ऋद्धि छे. शरीर अने आभरणनी कान्तिनुं नाम द्युति छे, कीर्तिनुं नाम यश छे. शरीरने जे शुक्ल आदि वर्ण छे-द्रव्य वेश्या छे-अधुं नाम वर्ण छे. शारीरिक पराक्रमनुं नाम बल छे.

टीका—श्रीसुधर्मा स्वामी श्रीजम्बूस्वामिनं प्रति कथयति—‘सुधं मे आउसं’ इत्यादि । हे आयुष्मन् ! भगवता=ज्ञानादियुक्तेन, तेन=तीर्थकरणे, एवम्=वक्ष्यमाणप्रकारेण, यत् आख्यातं=सकलजीवभाषापरिणामिन्या भाषया कथितम्, उक्तञ्च—

देवा दैवीं नरा नारीं, शवराश्चापि शवरीम् ।

तिर्यञ्चोऽपि हि तैश्चो, मेनिरे भगवद्विरम् ॥ १ ॥

तत्, मे=मया, श्रुतम् । भगवत्कथितमेवार्थं तवाग्रे वर्णयामीति भावः । अस्य सविस्तरं व्याख्यानं जिज्ञासुभिराचाराङ्गसूत्रस्य मत्कृताचारचिन्तामणिटीकायां द्रष्टव्यम् । यद्वा—‘आउसंतेणं’ इत्येकं पदं, ‘मया’ इत्यस्य विशेषणम् ।

श्री सुधर्मा स्वामी श्री जंबूस्वामी से कहते हैं—(आउसं-आयुष्मन्) कि हे आयुष्मन् ! जम्बू ! (तेणं भगवया एवमक्खायं-तेन भगवता एवं आख्यातम्) ज्ञानादि गुणों से युक्त उन तीर्थकर भगवान् श्री महावीर स्वामी ने वक्ष्यमाण प्रकार से कहा है वह (मे सुधं-मया श्रुतम्) मैंने सुना है वही मैं कहता हूँ । प्रभु की भाषा सर्वभाषामय होती है, कहा भी है—“देवा दैवीं” इत्यादि ।

प्रभु की वाणी को देव, मनुष्य, आर्य, अनार्य, तिर्यञ्च, सभी अपनी अपनी भाषा में समझते हैं ।

इस सूत्र का विस्तृत विवेचन आचारांग सूत्र की आचारचिन्तामणि टीका में किया गया है, इसलिए जिज्ञासु को वहाँ से देख लेना चाहिये । “आउसं तेणं” इस पद की संस्कृत छाया “आयुष्मन् तेन” ऐसी न

श्री सुधर्मास्वामी, श्री जम्बूस्वामीने कहे છે કે આઉસં-આયુષ્મન્ ‘હે આયુષ્મન્ જમ્બૂ! તેણં ભગવયા એવમક્ખાયં-તેન ભગવતા એવં આખ્યાતમ્ જ્ઞાનાદિ શુભોર્થી યુક્ત એવા તીર્થકર ભગવાન શ્રી મહાવીર સ્વામીએ વક્ષ્યમાણ પ્રકારથી કહ્યું છે મે સુધં-મયા શ્રુતમ્-તે મે સાંભળ્યું છે એ હું કહું છું. પ્રભુની ભાષા સર્વભાષામય હોય છે. કહ્યું પણ છે—દેવા દૈવી ઇત્યાદિ.

પ્રભુની વાણીને દેવ, મનુષ્ય, આર્ય, અનાર્ય, તિર્યંચ, સઘળા પોત પોતાની ભાષામાં સમજે છે.

આ સૂત્રનું વિસ્તૃત વિવેચન આચારાંગસૂત્રની આચારચિન્તામણી ટીકામાં કરેલ છે. માટે જિજ્ઞાસુએ ત્યાંથી જોઈ લેવું જોઈએ. “આઉસં તેણં” એ પદની સંસ્કૃત છાયા “આયુષ્મન્ તેન” એવી ન થતાં આઉસંતેણં” “આવસતા”

द्वितीयाध्ययनम् ।

विनयश्रुताख्यं प्रथममध्ययनं वर्णितम्, इदानीं द्वितीयमध्ययनं प्रारभ्यते । अस्य चायमभिसम्बन्धः—इहानन्तराध्ययने विनयः सत्रिस्तरं वर्णितः, स चानुकूलम-
तिकूलपरीषद्व्ययनशीलैरेव कर्तुं शक्यते इति द्वितीयं परीषदाख्यमध्ययनं प्रारभ्यते—
यद्वा—विनयाराधकाः प्रायः परीषद्भाजो भवन्त्येवेति द्वितीयं परीषदाख्य-
मध्ययनं प्रारभ्यते, तस्येदमाद्यं सूत्रम्—

मूलम्—सुयं मे आउसं ! तेणं भगवया एवमक्खायं—इह
खलु वावीसं परीसहा समणेणं भगवया महावीरेणं कासवेणं
पवेइया, जे भिक्खू सोच्चा नच्चा जिच्चा अभिभूय भिक्खा-
यरियाए परिव्वयंतो पुट्ठो नो विनिहन्नेज्जा ॥१॥

छाया—श्रुतं मे आयुष्मन् ! तेन भगवता एवमाख्यातम्—इह खलु द्वाविंशतिः
परीषदाः श्रमणेन भगवता महावीरेण काश्यपेन प्रवेदिताः, यान् भिक्षुः श्रुत्वा
ज्ञात्वा जित्वा अभिभूय भिक्षाचर्यायां परिव्रजन् स्पृष्टो नो विनिहन्येत ॥१॥

द्वितीय अध्ययन ।

विनयश्रुत नाम के प्रथम अध्ययन का वर्णन हुआ, अब सूत्रकार
द्वितीय अध्ययन का वर्णन करते हैं । प्रथम अध्ययन के साथ इसका
संबंध इस प्रकार है—प्रथम अध्ययन में विस्तारपूर्वक विनयधर्म का
वर्णन करने में आया है । उस विनयधर्म की आराधना परीषदों को
जीतने वाला ही कर सकता है, और विनयशील को प्रायः परीषद
उत्पन्न होते ही हैं इसलिए अब परीषदाध्ययन कहते हैं जिसका यह
प्रथमसूत्र है—“सुयंमे” इत्यादि ।

पीणुं अध्ययन

विनय श्रुत नामना प्रथम अध्ययननुं वर्णन पुर्णं थयुं डवे सूत्रकार
पीणुं अध्ययननुं वर्णन करे छे. प्रथम अध्ययननी साथे ओनेा संभंध आ
प्रकारनेा छे. प्रथम अध्ययनमां विस्तार पूर्वक विनय धर्मनुं वर्णन करवामां
आवेळ छे. ते विनय धर्मनी आराधना परिषदने उत्तवावाणा न करी शके छे
अने विनयशीलने परिषद धळे भागे उत्पन्न थाय न छे, आ माटे डवे “परि-
षदाध्ययन” उळेवामां आवे छे नेत्रं आ प्रथम सूत्र छे सुयंमे ध

एवं श्रीसुधर्मस्वामिना प्रोक्ते सति श्री जम्बूस्वामी पृच्छति—

मूलम्—कयरे ते खलु वावीसं परीसहा समणेणं भगवया महावीरेणं कासवेणं पवेइया जे भिक्खू सोच्चा नच्चा जिच्चा अभिभूय भिक्खायरियाए परिब्बयंतो पुट्ठो नो विनिहन्नेज्जा? ॥२॥

छाया—कतरे ते खलु द्वाविंशतिः परीपहाः श्रमणेन भगवता महावीरेण काश्यपेन प्रवेदिताः । यान् भिक्षुः श्रुत्वा ज्ञात्वा जित्वा अभिभूय भिक्षाचर्यायां परिव्रजन् स्पृष्टो न विनिहन्येत ? ॥२॥

टीका—‘ कयरे ते ’ इत्यादि ।

कतरे=किं नाम कास्ते=अनन्तरसूत्रोक्ताः खलु द्वाविंशतिः परीपहाः, अत्र खलु शब्दो वाक्यालंकारे, शेषपदानां व्याख्या पूर्ववत् ॥

तदा श्रीसुधर्मा स्वामी श्रीजम्बूस्वामिनं प्रति प्राह—

मूलम्—इमे ते खलु वावीसं परीसहा समणेणं भगवया

इस तरह श्री सुधर्मास्वामिका कहने पर श्री जम्बू स्वामी पूछने लगे—‘ कयरे ’ इत्यादि ।

(कासवेणं) काश्यपगोत्री (समणेणं भगवया महावीरेणं) श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने जिन २२ परिपहों का (पवेइया-प्रवेदिता) वर्णन किया है और जिनके सुनने आदि से भिक्षाचर्या में घूमता हुआ मुनि उन परिपहों से स्पृष्ट होने पर भी संयममार्ग से चलित नहीं होता है उन परिपहों के नाम क्या २ हैं ? ।

सुधर्मास्वामी जंबूस्वामी के २२ परिपहों के नामों को जानने विषयक प्रश्न का उत्तर देने के लिये कह रहे हैं कि हे जंबू! सुनो—

आ प्रभाषे श्री सुधर्मास्वामीये कहुं त्थारे जम्बूस्वामी इरी पूछवा लाग्या कयरे इत्यादि.

कासवेणं काश्यपगोत्री “समणेणं भगवया महावीरेणं” श्रमण भगवान् महावीर स्वामीये जे २२ परिपहोनुं पवेइया-प्रवेदिता वरुणं करेद छे. अने जेना सांभणवा आदिथी भिक्षाचर्यामां इरी रडेद मुनि जे परिपहोथी स्पृष्ट थया पछी पणु संयम मार्गथी चलित जनता नथी. जे परिपहोनां नाम कथां कथां छे ?

सुधर्मास्वामी जम्बूस्वामीने २२ परिपहोना नामने जणुवा अगेना भ्रमणेना उत्तर आपतां कडे छे के, के जम्बू! सांभणे। “इमे” इत्यादि !

કદાચિત્ સ્પૃષ્ટઃ=પરીપહેરાક્રાન્તઃ સન્, ન વિનિહન્યેત=મોક્ષમાર્ગાત્ પ્રચ્યુતો ન ભવેદિત્યર્થઃ । ' ભિક્ષ્વાયરિયાણ ' ઇત્યનેન ભિક્ષાટને. પ્રાયઃ પરીપહાઃ પ્રાદુર્ભવન્તિ, ઇતિ સૂચિતમ્ ॥

નહીં હોવે । " ભિક્ષ્વાયરિયાણ " ઇસસે યહ પ્રકટ હોતા હૈ કિ ભિક્ષુ કો ભિક્ષાટન કરતે સમય પ્રાયઃ પરીપહ ઉત્પન્ન હોતે હૈં ।

ભાવાર્થ—ઇસ સૂત્ર દ્વારા સુધર્માસ્વામી જમ્બૂસ્વામી કો સમજાતે હુણ્ણ યહ કહ રહે હૈં કિ હે જમ્બૂ ! મેં ઇસ અધ્યયન મેં ૨૨પરીપહોં કે સંબંધ મેં જો કુછ ભી વિવેચન કરૂંગા વહ સવ જૈસા મેંને પ્રભુ વર્ધમાનસ્વામી કે મુખ સે સુના હૈં વૈસા હી કરૂંગા । ભગવાન્ ને વાઈસ પરીપહ ફરમાયે હૈં—જો ભિક્ષુ ઇન પરીપહોં સે સ્વયં પરાજિત ન હોકર ઇનકો જીતતા રહતા હૈં વહ મોક્ષમાર્ગ સે કમ્બી ભી વિચલિત નહીં હોતા હૈં । ભિક્ષાચર્યા કરતે સમય પરીપહોં કે આને કો અર્થાત્ ઉત્પન્ન હોને કી પ્રાયઃ અધિક સંભાવના રહતી હૈં, અતઃ સાધુ કો ડનસે વિચલિત નહીં હોના ચાહિયે । પરીપહ સાધુ કી કસૌટી હૈં । ઇનકે દ્વારા કસા જાને પર જો સાધુ મોક્ષમાર્ગ સે ચલાયમાન નહીં હોતા હૈં, એવં વીર્યોહ્યાસ પ્રકટ કર ઇનકા સામ્હના કરતા હૈં વહ કર્મોં કી નિર્જરા કરતા હુઆ અપના કલ્યાણ કરતા હૈં ॥

પદ્ધી પ્રગટ થાય છે કે, ભિક્ષુને ભિક્ષાટન કરતી વખતે પ્રાયઃ પરિપહ ઉત્પન્ન થાય છે.

ભાવાર્થ—આ સૂત્ર દ્વારા સુધર્માસ્વામી જમ્બૂસ્વામીને એ સમજાવીને કહે છે કે, હે જમ્બૂ ! હું આ અધ્યયનમાં ૨૨ પરિપહનાં સંબંધમાં જે કાંઈ પણ વિવેચન કરીશ. તે મેં પ્રભુ વર્ધમાનસ્વામીથી જે રીતે સાંભળ્યું છે તે કરીશ. ભગવાને ખાવીસ ૨૨ પરિપહ ફરમાવ્યા છે. જે ભિક્ષુ આ પરિપહોથી સ્વયં પરાજિત ન બની તેને જીતે છે તે મોક્ષ માર્ગથી કદી પણ વિચલિત થતો નથી. ભિક્ષાચર્યા કરતી વખતે પરિપહોના આવવાની અર્થાત્ ઉત્પન્ન થવાની પ્રાયઃ અધિક સંભાવના રહે છે. આથી સાધુએ તેનાથી વિચલિત ન બનવું જોઈએ. પરિપહ સાધુની કસૌટી છે તેના દ્વારા કસાયા પછી સાધુ મોક્ષમાર્ગથી ચલાયમાન નથી થતા તેમજ વિર્યોહ્યાસ પ્રગટ કરી એનો સામનો કરે છે તે કમોની નિર્જરા કરીને પોતાનું કલ્યાણ કરે છે.

टीका--तद् यथा-क्षुधापरीपहः दिग्गिच्छाशब्दो देशीयः क्षुधार्थे वर्तते
 सैव परीपहः परिपद्यते इति परीपहः, ॥ १ ॥ पिपासापरीपहः-पिपासा
 =तृषा, सैव परीपहः, एवं सर्वत्र परीपहार्थेन समानाधिकारण्यं बोध्यम् ॥२॥ शीत-
 परीपहः-शीतं=हेमन्तशिशिरयोर्जातः शीतस्पर्शः, तदेव परीपहः शीतपरीपहः
 ॥३॥ उष्णपरीपहः-उष्णं-ग्रीष्मवर्षासु जातस्तापरूप उष्णस्पर्शः, तदेव परीपहः ॥४॥
 दंशमशकपरीपहः-दंशमशकाः प्रसिद्धाः, त एव परीपहः दंशमशकपरी-
 पहः, दंशमशकाः परीपहत्ववन्त इत्यर्थः, तत्र परीपहत्वगतैकत्वविवक्षया परीपह
 इत्येकवचनम् ॥ ५ ॥ अचैलं=चैलाभावः जिनकल्पिकविशेषणाम् । स्थविरक-
 ल्पिकानां तु जीर्णं खण्डितमल्पमूल्यं प्रमाणोपेतं च चैलं सदल्पचैलमेव । तदेव

“इमे”-इत्यादि। श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने जिन २२ परीपहों को
 सहन करने के लिए भिक्षुको आदेश दिया है वे २२ परीपह ये हैं—

दिग्गिच्छाशब्द देशीय शब्द है, इसका अर्थ क्षुधा है। दिग्गिच्छारूप
 परीपह का नाम दिग्गिच्छापरीपह है ॥१॥ पिपासा-शब्द का अर्थ तृषा है।
 इसरूप जो परीपह है वह पिपासापरीपह है ॥२॥ हेमन्त एवं शिशिर
 ऋतु में उत्पन्न शीतस्पर्श का नाम शीत है। इसरूप जो परीपह है
 उसका नाम शीतपरीपह है ॥३॥ ग्रीष्म ऋतु एवं वर्षा ऋतु में उत्पन्न हुए
 ताप का नाम उष्णस्पर्श है। इसरूप परीपह का नाम उष्णपरीपह है ॥४॥
 डांस, मच्छर, विच्छ्र, चिउंटी आदि का नाम दंशमशक है। इनके
 काटने की वेदनारूप जो परीपह है वह दंशमशकपरीपह है ॥५॥ वस्त्रका
 सर्वथा अभाव अचैल है, यह जिनकल्पियों को होता है। स्थविरकल्पियों
 के जीर्ण, खण्डित, अल्पमूल्यवाले एवं प्रमाणोपेत वस्त्र होते हैं तौ भी उनको

श्रमण भगवान् महावीर स्वामीने ने २२ परीपहोने सहन करवाने भिक्षुने
 आदेश आपेल छे ते २२ परिपह आ छे.

दिग्गिच्छाशब्द परिपहनुं नाम दिग्गिच्छापरीपह छे (१) “दिग्गिच्छा”
 अत्रेवे भूष. पिपासा शब्दने अर्थ तृषा छे, आ इप ने परीपह छे ते पिपासा-
 परीपह छे (२) हेमन्त अने शिशिर ऋतुमां उत्पन्न यतां ठंडा स्पर्शनुं नाम शीत-
 परीपह छे (३) ग्रीष्म तथा वर्षा ऋतुमां उत्पन्न यता ताप इप उष्ण स्पर्शनुं नाम
 उष्णपरीपह छे (४) डांस, मच्छर, वींछी, माकड, आदिनुं नाम दंशमशक छे. तेना
 करडवानी वेदना इप परीपह ते दंशमशकपरीपह छे. (५) वस्त्रने सदा अभाव तेअचैल
 छे अे अनकल्पिओने थाय छे. स्थविरकल्पिओना लुण्, षंडित अल्प मूल्यवाणां
 ओवां प्रमाणोपेत वस्त्र होय छे तो पण तेने अचैलन मानवा लेछेअे. अेवे।
 उ० ३५.

महावीरेणं कासवेणं पवेइया, जे भिक्खू सोच्चा नच्चा जिच्चा
अभिभूय भिक्खायरियाए परिव्वयंतो पुट्ठो नो विनिहन्नेज्जा ॥३॥

छाया—इमे ते खलु द्वाविंशतिः परीपहाः श्रमणेन भगवता महावीरेण
काश्यपेन प्रवेदिताः, यान् भिक्षुः श्रुत्वा ज्ञात्वा जित्वा अभिभूय भिक्षाचर्यायां
परिव्रजन् स्पृष्टो नो विनिहन्येत ॥३॥

‘इमे ते’ इत्यादि ।

ये द्वाविंशतिः परीपहाः श्रमणेन भगवता महावीरेण काश्यपेन प्रवेदितास्ते
खलु इमे—अग्रे वक्ष्यमाणाः सन्ति, अनन्तरमेव वक्ष्यमाणत्वात् हृदि वर्तमानाः परी-
पहाः ‘इदं’ शब्देन निर्दिष्टाः। यान् भिक्षुः श्रुत्वा ज्ञात्वेत्यादि पदानां व्याख्या पूर्ववत्॥
अथ तानेव नामनिर्देशपूर्वकं दर्शयति—

मूलम्—तं जहा—दिग्गिछापरीसहे १, पिवासापरिसहे २, सी-
यपरीसहे ३, उसिणपरीसहे ४, दंसमसयपरीसहे ५; अचेल-
परीसहे ६, अरुइपरीसहे ७, इत्थीपरीसहे ८, चरियापरीसहे ९,
निसीहियापरीसहे १०, सेज्जापरीसहे ११, अक्रोसपरीसहे १२,
वहपरीसहे १३, जायणापरीसहे १४, अलाभपरीसहे १५,
रोगपरीसहे १६, तणफासपरीसहे १७, जल्लपरीसहे १८,
सक्कारपुरक्कारपरीसहे १९, पन्नापरीसहे २०, अन्नाणपरीसहे २१,
दंसणपरीसहे २२ ॥४॥

छाया—तद् यथा—क्षुधापरीपहः १, पिपासापरीपहः २, शीतपरीपहः ३,
उष्णपरीपहः ४, दंसमशकपरीपहः ५, अचैलपरीपहः ६, अरतिपरीपहः ७, स्त्री-
परीपहः ८, चर्यापरीपहः ९, नैपेधिकीपरीपहः १०, शय्यापरीपहः ११, आक्रोश-
परीपहः १२, वधपरीपहः १३, याचनापरीपहः १४, अलाभपरीपहः १५,
रोगपरीपहः १६, वृणस्पर्शपरीपहः १७, जल्लपरीपहः १८, सत्कारपुरस्कारपरीपहः १९,
पन्नापरीपहः २०, अज्ञानपरीपहः २१, दर्शनपरीपहः २२ ॥ ४ ॥

॥ १५ ॥ रोगः=वातपित्तश्लेष्मणां वैपम्येण समुत्पन्नः कुष्ठादिः, स एव परीपहो रोगपरीपहः ॥ १६ ॥ तृणस्पर्शः-दर्भादिस्पर्शः, स एव परीपहः तृणस्पर्शपरीपहः ॥ १७ ॥ जल्ल=मलः, स एव परीपहः जल्लपरीपहः ॥ १८ ॥ सत्कारो वस्त्रपात्रादिदानेन संमाननम्, पुरस्कारोऽभ्युत्थानासनप्रदानवन्दनाद-संपादनम्, तावेव परीपहः सत्कारपुरस्कारपरीपहः ॥ १९ ॥ प्रज्ञा=स्वयंविमर्श-पूर्वको वस्तुपरिच्छेदः, सैव परीपहः प्रज्ञापरीपहः ॥ २० ॥ अज्ञानपरीपहः-ज्ञान-मत्यादि, तदभावस्तु अज्ञानम् तदेव परीपहः ॥ २१ ॥ दर्शनपरीपहः-दर्शनं=सम्यग्दर्शनं, तदेव क्रियादिवादिनां नानाविधमतश्रवणेऽपि निश्चलतया ध्रिय-माणत्वात् सम्यक् परिपहमाणं सत् परिपहो भवति ॥ २२ ॥ ४ ॥

एवं श्रीसुधर्मा स्वामी परीपहणां नामान्यभिधाय तेषां स्वरूपं वक्तुकामः प्राह-

मूलम्-परीसहाणं पविभेत्ती, कासवेणं पवेईया ।

तं भे उदारहरिस्सामि, आणुपुविं सुणेहं मे ॥१॥

कफ की विषमता से समुत्पन्न कुष्ठादिरूप परीपह रोगपरीपह है ॥१६॥ दर्भ आदि का स्पर्शरूप परीपह तृणस्पर्शपरीपह है ॥१७॥ मेल आदिरूप परीपह जल्लपरीपह है ॥१८॥ अन्यद्वारा वस्त्र, पात्र आदि के देने रूप सत्कार, एवं अभ्युत्थान, आसनप्रदान तथा वंदना आदि करने रूप पुरस्कार, इन दोनोंरूप परीपह सत्कारपुरस्कार परीपह है ॥१९॥ स्वयं विमर्शपूर्वक वस्तु के परिच्छेद करनेरूप परीपह प्रज्ञापरीपह है ॥२०॥ मत्यादिज्ञान के अभावरूप अज्ञानपरीपह है ॥२१॥ क्रियावादी आदि के अनेकविध सिद्धान्तों के श्रवण करने पर भी सम्यग्दर्शन को निश्चल-रूप से धार रखने के परिपह का नाम दर्शनपरीपह है ॥२२॥

उत्पन्न थयेल कुष्ठादिइय परीपह रोगपरीपह छे. (१६) दर्भा आदिना स्पर्शइय परीपह तृणस्पर्शपरीपह छे. (१७) मेल आदिइय परीपह जल्लपरीपह छे. (१८) अन्यद्वारा वस्त्र, पात्र आदिना देवाइय सत्कार, अने अभ्युत्थान, आसनप्रदान तथा वंदना आदि करवाइय पुरस्कार आ अने इय परीपह सत्कार-पुरस्कारपरीपह छे. (१९) स्वयं विमर्शपूर्वक वस्तुने निर्णय-परिच्छेद करवाइय परीपह प्रज्ञापरीपह छे. (२०) मत्यादि ज्ञानना अभावइय परीपह अज्ञानपरीपह छे. (२१) क्रियावादी आदिना अनेकविध सिद्धान्ताने श्रवण करवाथी पणु सम्यग् दर्शनने निश्चय इयथी धारी राभवाना परीपहत्वं नाम दर्शनपरीपह छे. ॥२२॥

परीषदः अचेलपरीषदः ॥ ६ ॥ अरतिपरीषदः-रतिः=संयमविषयिका प्रीतिः ।
 तद्विपरीता त्वरतिः, सैव परीषदः, अरतिपरीषदः ॥७॥ स्त्री=नारी सैव कथंचिद्
 दृष्टा सती तद्गतरागपूर्वकगतिविलासहासचेष्टाचक्षुर्विकाराद्यवलोकनेऽपि तदभिल-
 लाषनिवर्तनेन परिपक्षमाणत्वात् परीषदः स्त्रीपरीषदः ॥ ८ ॥ चर्या-ग्रामानुग्राम
 विहाररूपा, सैव परीषदः चर्यापरीषदः ॥ ९ ॥ नैपेधिकी-स्वाध्यायभूमिः, सैव
 परीषदः-नैपेधिकीपरीषदः ॥ १० ॥ शय्या=वसतिः, सैव परीषदः शय्यापरी-
 षदः ॥११॥ आक्रोशः=असभ्यभाषणरूपः, स एव परीषदः आक्रोशपरीषदः ॥१२॥
 वधः-ताडनं, स एव परीषदः वधपरीषदः ॥१३॥ याचनेव परीषदः याचनापरी-
 षदः ॥१४॥ अलाभः-अभिलषितवस्तुनोऽप्राप्तिः, स एव परीषदः, अलाभपरीषदः

अचेल ही जानना चाहिये । इस रूप परीषद ही अचेल परीषद है । ६।
 संयमविषयक अप्रीति का नाम अरति है इस अप्रीतिरूप ही अरति
 परीषद है । ७। स्त्री के रागपूर्वक गमन, विलास, हास्य, चेष्टा, तथा चक्षु
 के विकार कटाक्ष-आदि के अवलोकित होने पर भी उस विषय की कोई
 भी अभिलाषा नहीं करना-वह स्त्री परीषद है । ८। एक ग्राम से दूसरे ग्राम
 में विहार करना इसका नाम चर्या है इसरूप परीषद चर्यापरीषद है । ९।
 स्वाध्याय करने के स्थान का नाम नैपेधिकी है । इसरूप जो परीषद है
 वह नैपेधिकी परीषद है । १०। वसति रूप परीषद शय्यापरीषद है । ११।
 असभ्यभाषणरूप परीषद आक्रोशपरीषद है । १२। ताडनरूप परीषद
 वधपरीषद है । १३। याचनारूप परीषद याचनापरीषद है । १४। अभि-
 लषित वस्तु की अप्राप्तिरूप परीषद अलाभपरीषद है । १५। वात पित्त

परीषद अचेलपरीषद छे. (६) संयमविषयक अप्रीतिरु' नाम अरति छे, ओ
 अप्रीतिरुप परीषद अरतिपरीषद छे (७) स्त्री तरङ्गना रागपूर्वक गमन, विलास,
 हास्य, चेष्टा तथा चक्षुनो विकार-कटाक्ष आदिना अवलोकन जेठने पक्ष
 ओ विषयनी केठि अभिलाषा न करवी तेवो परीषद ते स्त्रीपरीषद छे. (८)
 ओक गामथी भील गामे विहार करवो ओतु' नाम चर्या छे, आ इप ले परीषद ते
 चर्यापरीषद छे. (९) स्वाध्याय करवाना स्थानतु' नाम नैपेधिकी छे तेवा इपने
 ले परीषद ते नैपेधिकीपरीषद छे. (१०) वसतिरुप परीषद शय्यापरीषद छे.
 (११) असभ्यभाषण सडन करवुं ते आक्रोशपरीषद छे. (१२) ताडनरुप परीषद
 वधपरीषद छे. (१३) याचनारुप परीषद ते याचनापरीषद छे. (१४) अभिलषित
 वस्तुनी अप्राप्तिरुप परीषद ते अलाभपरीषद छे. (१५) वात, पित्त, कङ्कनी विषमताथी

तस्मादादौ द्वाभ्यां गाथाभ्यां क्षुधापरीपद्दजयं ग्राह—

मूलम्—दिगिञ्छापरिगए देहे, तवस्ती भिक्खू थाम्वं ।

नं छिंदे नं छिंदावए, नं पए नं पर्यावए ॥ २ ॥

छाया—क्षुधापरिगते देहे, तपस्वी मिशुः स्यामवान् ।

न छिन्द्यात् न छेदयेत्, न पचेत् न पाचयेत् ॥ २ ॥

टीका—‘दिगिञ्छापरिगए०’ इत्यादि ।

तपस्वी=पष्ठाष्टमभक्तादितपोऽनुष्ठानवान् स्यामवान्=मनोबल समन्वितः, मिशुः=साधुः, देहे=शरीरे, क्षुधापरिगते=बुभुक्षया व्याप्ते सति, न छिन्द्यात्=फलादिकं स्वयं न चोटयेत्, न छेदयेत्=नाप्यन्यैः फलादीनां छेदनं कारयेदित्यर्थः, न पचेत्=स्वयं पाकं न कुर्यात्, न च पाचयेत्=अन्यैः पाकं न कारयेत् । इदमुपलक्षणम्—

पंथसमा नत्थि जरा, दारिद्र समो य परिभवो नत्थि ।

मरणसमं नत्थि भयं, खुहासमा वेयणा नत्थि ॥ १ ॥

मार्ग के समान जरा कोई नहीं है अर्थात्—निरन्तर चलनेवाला मार्ग गामी जराजनित दुःखों का अनुभव करता है । तथा दारिद्र्य के समान अन्य कोई भी परिभव—अर्थात् अनादर नहीं है, तात्पर्य यह है—अन्य गुण के रहने पर भी दारिद्र्य के अस्तित्व में मनुष्य अनादर पाता है । तथा—मरण के समान भय नहीं है और न क्षुधा से बढ़कर कोई वेदना है, अर्थात् मनुष्य मरण के भयसे जितना डरता है उतना अन्य से नहीं । तथा—क्षुधाजनित वेदना जितनी दुःखदायी होती है उतनी अन्य वेदना नहीं ॥ १ ॥

पंथसमा नत्थि जरा, दारिद्र्यसमो य परिभवो नत्थि ।

मरणसमं नत्थि भयं, खुहासमा वेयणा नत्थि ॥ १ ॥

मार्गना समान जरा कोई नहीं, अर्थात् निरन्तर आलवावाणा मार्गगामी जराजनित दुःखोको अनुभव डरे छे. तथा दारिद्र्यना जेवुं अन्य कोई पधु परिभव—अर्थात् अनादर नहीं. तात्पर्य ये छे के, अन्य शुशुना डोवा छतां दारिद्र्यना अस्तित्वमां भाषुस अनादर पाये छे. तथा मरणना समान लय नहीं. अने क्षुधाथी पधु कोई वेदना नहीं. अर्थात् मनुष्य मरणना लयथी जेटवो डरे छे, जेटवो पीनथी नहीं डरतो, तथा—क्षुधाजनक वेदना जेटवी असद्ध डोय छे, तेवी पीलु डोय वेदना नहीं. ॥ १ ॥

छाया—परीपहाणां प्रविभक्तिः, काश्यपेन प्रवेदिता ।

तां युष्माकम् उदाहरिष्यामि, आनुपूर्व्यां शृणुत मे ॥ १ ॥

टीका—‘परीसहाणं’ इत्यादि ।

हे शिष्याः ! परीपहाणां प्रविभक्तिः=पृथक् पृथक् विभागः, काश्यपेन=काश्यपेन=गोत्रोत्पन्नेन, श्रीमहावीरवर्धमानस्वामिना प्रवेदिता, प्रकर्षण बोधिता द्वादशपरिपदि, तां=परीपहाणां प्रविभक्तिम्, आनुपूर्व्यां=अनुक्रमेण, यथानिर्दिष्टक्रमेण युष्माकम् उदाहरिष्यामि=कथयिष्यामि, मे=मत्, मम सकाशात्, शृणुत=सावधानतया श्रवणगोचरी कुरुत । ‘सुणेह’—अत्र बहुवचनमादरार्थम् ॥ गा. १ ॥

इह सर्वेषु परीपहेषु क्षुधापरीपद् एव दुस्सहः । उक्तञ्च—

पंधसमा नत्थि जरा, दारिद्रसमो य परिभवो नत्थि ।

मरणसमं नत्थि भयं, खुदासमा वेयणा नत्थि ॥ १ ॥

छाया—पथिसमा नास्ति जरा, दारिद्र्यसमश्च परिभवो नास्ति ।

मरणसमं नास्ति भयं, क्षुधासमा वेदना नास्ति ॥ १ ॥ इति

इस प्रकार सुधर्मा स्वामी परीपहों के नामोंका कथन करके अब उनका प्रत्येक का स्वरूप प्रकट करते हैं—परीसहाणं—इत्यादि.

हे शिष्य ! (परीसहाणं पविभक्ती—परीपहाणां प्रविभक्तिः) परीपहों का यह पृथक् २ विभाग (कासवेणं—काश्यपेन) काश्यगोत्रोत्पन्न श्री वर्धमान स्वामीने (पवेइया—प्रवेदिता) समवसरण में प्रकट किया है । मैं (तं मे उदाहरिस्सामि—तां युष्माकं उदाहरिष्यामि) उस परीपहों के पृथक् २ विभाग को तुम को कहूंगा (मे आणुपूर्व्वि सुणेह—मे आनुपूर्व्व्यां शृणुत) अतः मेरे से उस को यथा क्रम तुम सुनो । इन समस्त परीपहों में क्षुधापरीपह ही दुस्सह है । कहा भी है—

आ प्रकारे सुधर्मा स्वामी परीपहोना नामोनुं कथन करीने हुवे ते इरेकतुं स्वरूप प्रकट करे छे—परीसहाणं इत्यादि.

हे शिष्य ! ‘परिसहाणं पविभक्ती’—परीपहाणां प्रविभक्तिः परिपहोना प्रथक् प्रथक् विभाग कासवेणं पवेइया—काश्यपेन प्रवेदिता काश्यपगोत्रोत्पन्न श्री महावीर वर्धमान स्वामीने समवसरणमां प्रकट करेले छे. तं मे उदाहरिस्सामि—तां युष्माकं उदाहरिष्यामि हुं अरे परीपहोना प्रथक् प्रथक् विभाग तमोने कहीश. मे आणुपूर्व्वि सुणेह—मे आनुपूर्व्व्यां शृणुत आथी यथाक्रम तेने सांलणो. भारथी आ समस्त परिपहोमां क्षुधा परिपह इच्छर छे. कहुं छे के—

किञ्च —

मूलम्—कालीपव्वंगसंकासे, किंसे धमणिसंतए ।

मायन्ने असणपाणस्स, अदीणमणसो चरे ॥३॥

छाया—कालीपर्वसंकाशाङ्गः, कृशः धमनिसंततः ।

मात्रज्ञः अशनपानस्य, अदीनमनाश्चरेत् ॥ ३ ॥

टीका—‘ कालीपव्वंग० ’ इत्यादि ।

कालीपर्वसंकाशाङ्गः—काली=काकजङ्घा वनस्पति, तस्याः पर्वाणि मध्ये तन्नूनि, अन्त्ये स्थूलानि भवन्ति तत्संकाशानि=तत्सदृशानि बाहुजङ्घादीन्यङ्गानि यस्य स तथा, यस्य साधोस्तपश्चर्याया जानुकूर्परादयोऽवयवाः काकजङ्घावत् प्रतलाः सन्ति स इत्यर्थः । अत एव कृशः=कृशशरीरः, धमनिसंततः=धमनिभिः नाडीभिः संततः=व्याप्तः शोणितमांसादीनां शुष्कतया दृश्यमाननाडीयुक्त इत्यर्थः । तथा—अशनपानस्य=अशनम्=ओदनरोटिकादि, पानं=दुग्धादि, तयोः समाहारः अशनपानं, तस्य, मात्रज्ञः=परिमाणज्ञानसम्पन्नः । यावताऽऽहारेण स्वकीयोदरपूरणं भवेत् तावत्प्रमाणमेवाहारं गृह्णाति, न तु रसास्वादादिभोभादधिकं गृह्णातीति भावः । तथा—अदीनमनाः

तात्पर्यं यह है कि साधु को भूखसे पीडित होने पर भी नवकोटि से विशुद्ध आहार ग्रहण करना चाहिये ॥ २ ॥

फिर भी—‘ कालीपव्वंग० ’—इत्यादि ।

(कालीपव्वंगसंकासे—कालीपर्वांगसंकाशः) काली—काकजंघा (वनस्पति विशेष)के पर्व जैसे अंगवाला अत एव (किसे—कृशः) कृशशरीरयुक्त, (धमणिसंतए—धमनिसन्ततः) नसाजाल से व्याप्त, एवं (असणपाणस्स मायन्ने—अशनपानस्य मात्रज्ञः) अशन पान की मात्रा का ज्ञाता साधु

तात्पर्यं आ छे के, साधुअे भूखथी पिडित होवा छतां पणु नवप्रकारना विशुद्ध आहारने न अहणु करवे नेधअे. ॥ गा. २ ॥

इरी पणु कडे छे. कालिपव्वंग० इत्यादि.

कालिपव्वंगसंकासे—कालीपर्वाङ्ग संकाशः काली—काकजंघाना पर्व लेवा अंगवाणा अतअेव किसे—कृशः कृश शरीरयुक्त, धमणिसंतए—धमनिसंततः नशाजालथी व्याप्त अने असणपाणस्स मायन्ने—अशनपानस्य मात्रज्ञः अशन पाननी मात्राना ज्ञाता साधु अदीणमणसो—अदीनमनाः अदीन मन अनी संयमना भागभां

अन्यं छिन्दन्तं पचन्तं वा नानुमोदयेत् । उपलक्षणत्वादेव-न स्वयं क्रीणीयात्, नाप्यन्यैः क्रापयेत्, न चान्यं क्रीणन्तमनुमोदयेत् । न स्वयं हन्यात्, न चान्यैर्घातयेत्, न चान्यं घनन्तमनुमोदयेत् । बुभुक्षया पीडितोऽपि नवकोटिशुद्धमेवाहारं शृङ्गीयादिति भावः ॥ गा. २ ॥

क्षुधा से अधिक कोई वेदना नहीं है इस लिये सब से पहिले सूत्रकार प्रथम क्षुधापरिपह का जय कहते हैं—'दिगिच्छापरिगण'-इत्यादि.

(तवस्सी-तपस्वी) पष्ठाष्टमभक्तादि तपोका अनुष्ठान करने वाला एवं (धामवं-स्थामवान्) मनोबल से समन्वित (भिक्षू-भिक्षुः) -साधु (देहे) शरीर (दिगिच्छापरिगण-क्षुधापरिगते) क्षुधा से व्याप्त होने पर भी (न छिंदे-न छिन्यात्) फलादिक को स्वयं छेदे नहीं-तोडे नहीं (न छिंदावए-न छेदयेत्) न दूसरों से तुडवावे (न पए न पयावए-नपचेत् न पाचयेत्) न स्वयं पकावे और न दूसरों से पकावे । उपलक्षण से (अन्यं छिन्दन्तं पचन्तं वा नानुमोदयेत्, न स्वयं क्रीणीयात् नाप्यन्यैः क्रापयेत् न चान्यं क्रीणन्तमनुमोदयेत्, न स्वयं हन्यात् न चान्यैर्घातयेत् न चान्यं घनन्तं अनुमोदयेत्) इन पदों का भी यहाँ संग्रह करलेना चाहिये, अर्थात् छेदन करने वाले तथा पकाने वाले व्यक्ति की अनुमोदना न करे, न स्वयं खरीदे न दूसरों से खरीदवावे और न खरीदने वाले की अनुमोदना करे, न स्वयं हणे न दूसरों से हणावे और न हणते हुए की अनुमोदना करे ।

क्षुधाथी अधिक डोई वेदना नहीं, झेटला भाटे सूत्रकार सोथी पडेला क्षुधा परीपडने वा करवा डडे छे. दिगिच्छापरिगण-इत्यादि.

तवस्सी-तपस्वी छूट अकुम लकतादि तपोनुं अनुष्ठान करवावाणी तथा धामवं-स्थामवान् अने मनोबलथी समन्वीत भिक्षू-भिक्षुः भिक्षु-साधु दिगिच्छा परिगण-क्षुधापरिगते शरीरे भूषथी व्याकुण डोवा छतां पक्षु न छिंदे-न छिन्यात् क्षुण क्षुणादिकने स्वयं छेदुं नडि, तोडवुं नडि, न छिंदावए-न छेदयेत् भीनथी तोडावपुं नडि. नपए न पयावए-नपचेत् न पाचयेत् न स्वयं पकावे, अने न भीनथी पकावे. उपलक्षणथी अन्यं छिन्दन्तं पचन्तं वा नानुमोदयेत् छेदन करवावाणी तथा पकववावाणी व्यक्तिनी अनुमोदना न करे न स्वयं क्रीणीयात् नान्यैः क्रापयेत् न चान्यं क्रीणन्तमनुमोदयेत् न स्वयं खरीदे न भीनथी खरीदावे डे न तेनी अनुमोदना करे. न स्वयं हन्यात् न चान्यैर्घातयेत् न चान्यं घनन्तमनुमोदयेत् न स्वयं डडे, न डोईथी डड्यावे डे न तेनी अनुमोदना करे.

अत्र क्षुधापरीपहचिजये दृष्टान्तः प्रदर्शयते—

आसीदुज्जयिन्यां गजमित्रनामा श्रेष्ठी । तस्य दृढवीर्यनामकः पुत्रोऽभवत् । एकदा गजमित्रश्रेष्ठिनो भार्या मृता । ततः संसारासारतां विज्ञाय संजातवैराग्यो-
ऽसौ दृढवीर्यपुत्रेण सह प्रव्रजितः । स च गजमित्रमुनिः स्व शिष्येण दृढवीर्येण सह ग्रामानुग्रामं विचरंस्तत्र तत्र धर्मदेशनां कुर्वन् संयमेन तपसाऽऽत्मानं भावयन् विहरति । स चैकदा विहारं कुर्वन् विस्मृतमार्गः सन् महारण्यं प्रविष्टः ।

तत्र क्वचिन्मृगाणां यूथा इतस्ततो धावन्ति । क्वचिज्जम्बूकाः स्वपरिवारैः सह शब्दायन्ते । क्वचिद् व्याघ्राउत्प्लवन्ति । क्वचित् सिंहा गर्जन्ति, येषां नादानुपश्रुत्य

क्षुधापरीपह के विजय करने में दृष्टान्त इस प्रकार है—उज्जैनी नगरी में गजमित्र नामका एक सेठ रहता था। उसका एक पुत्र था जिसका नाम दृढवीर्य था। एक समय की बात है कि सेठ की पत्नी का देहान्त हो गया। इससे सेठ को संसार, शरीर एवं भोगों से विरक्ति आगई और अपने पुत्र के साथ उन्होंने दीक्षा धारण करली। साधुचर्या की विधि के अनुसार सशिष्य वे विहार करने लगे। वे जनता को धर्म के उपदेश से वासित करते और संयम एवं तप से अपनी आत्मा को भावित करते हुए ग्रामानुग्राम विचरते थे। एक समय की बात है कि ये विहार में मार्ग भूल गये और भयंकर किसी अटवी में जा पहुँचे। वहाँ पहुँच कर ये देखते क्या हैं कि कहीं पर इधर उधर मृगों का झुण्ड दौड़ रहा है, कहीं पर श्रृंगाल फिक्कार कर रहे हैं

क्षुधा परिपहने लतवानी उपर दृष्टान्त आ प्रकारे छे—

उज्जैनी नगरीमां गजमित्र नामने आेक शेठ रहेतेो हतेो। तेने आेक पुत्र हतेो तेनुं नाम दृढवीर्यं हतुं। आेक समयनी बात छे के, शेठनी पत्नीना देहान्त थर्छ गयेो तेथी शेठने संसार शरीर अने लोकोथी विरक्ति आवी गध अने पोताना पुत्रनी साथे तेहे दीक्षा अडणु करी लीथी। साधु चर्यानी विधी अनुसार सशिष्य तेओ विहार करवा लाग्या। तेओ जनताने धर्मने उपदेश आपतां आपतां संयम अने तपथी पोताना आत्माने भावित करता आमनु आम विचरवा लाग्या। आेक समयनी बात छे के विहारमां आे मुनिराज मार्ग भूली गया अने लयंकर जंगलमां जर्छ पडोन्थ्या। त्यां पडोन्थतां तेमहे आेवुं जेथुं के, न्यां न्यां मृगोनां टोणां द्रोडी रद्यां छे, कथांक शियाणयां लाणी करी रद्यां छे, पाध धुभी रद्या छे, सिंह गलं रद्या छे, कथांक सिंहगज्जनना लयथी

=अव्याकुलचित्तः, अशनादेरमाप्ती दैन्यं विपादं च न कुर्वन्नित्यर्थः, चरेत्=संयममार्गं विचरेत् । प्राकृतत्वात्-‘संकास’ इति विशेषणस्य परनिपातः ।

(अदीणमणसो-अदीनमनाः) आदीनमन होकर संयम के मार्ग में (चरे-चरेत्) विचरण करे।

भावार्थ-विशिष्ट तपस्याओं के अनुष्ठान करते २ जिसके शारीरिक अवयव काक की जंघा के पर्व समान बीच में पतले तथा अन्त में स्थूल हो गये हैं, और इससे जिसका शरीर अत्यंत कृश हो गया है, तथा शरीर में कृशता होने की वजह से ही जिसके शरीर के नसाजाल स्पष्ट दिखलाई दे रहा है ऐसा साधु इतना ही आहार ग्रहण करे की जिन से संयमयात्राका निर्वाह हो सके! रसास्वाद के लोभ से अधिक आहार न लेवे। तथा जिस समय तपस्या का पारणा करने का अवसर आवे उस समय यदि आहार प्राप्त न हो तो भी चित्त में किसी भी प्रकार का विपाद न करे और संयममार्ग में सदा सावधान बने रहने की चेष्टा करता रहे। काक की जंघा के पर्व बीच में पतले एवं अन्त में स्थूल होते हैं, तपस्या करते २ साधु के भी जंघा आदि अंग इसी तरह हो जाते हैं।

चरे-चरेत् विचरन्नु करे.

भावार्थ-विशिष्ट तपस्याओं अनुष्ठान करतां करतां जेनां शारीरिक अवयव काकनी जंघाना पर्व समान वयमां पातेण तथा अंतमां स्थूल यथ गथेल डोय अने तेनाथी जेतुं शरीर अत्यंत कृश यथ गथेल डोय तथा शरीरमां कृपता आवी ज्वाना कारखे जेना शरीरनी नाडीओ स्पष्ट दृष्याथ आवे छे, जेवा साधु जेटवो ज आहार ग्रहणु करे के, जेनाथी संयम मार्गना निर्वाह यथ शके. रस स्वादना लोभथी अधिक आहार न ले. तथा जे समय तपस्यानुं पारणुं करवानो समय आवे ते वधते कदाच आहार न मणी शके तो यथ चित्तमां डोय यथ प्रकारना विपाद न करे अने संयम मार्गमां सदा सावधान जनी रहेवानी चेष्टा करता रहे. काकनी जंघानुं पर्व वयमां पातणुं अने छेडे स्थूल डोय छे, तपस्या करतां करतां साधुनी जंघा आदि अंग आ प्रकारनां यथ जय छे.

तत्र वने गच्छतस्तस्य गजमित्रमुनेश्वरणतलं विपमविपभरेण कष्टकाग्रेण विदं-
मभवत् । ततो गन्तुमसमर्थोऽसौ निजायुरल्पमवगम्य चतुर्विधाहारस्य प्रत्याख्यानं
कर्तुमुद्यतः सन् शिष्यमवदत्-इतोऽन्यत्र गम्यताम् , अत्र दुःसहः खलु क्षुधापरीपह-
स्तत्र सोढव्यः स्यात् । शिष्योऽवदत्-भदन्त ! यथा छाया शरीरं विहाय नापस-
रति, तथाऽहमपि भवदीयचरणयुगलं परित्यज्य नैव गमिष्यामि । इत्युक्त्वाऽसौ

उधर फैले हुए हैं, लताप्रतानों द्वारा ग्रथित होकर एक जैसे वन गये हैं ।
इस प्रकार यह अटवी अनेक हिंसक जीवों से परिपूर्ण होती हुई जनों
के लिये सर्वथा दुर्गम थी । कुश काश आदि घास से भरे हुए रहने के
कारण यहां के मार्ग बड़े ही विकट वने हुए थे । यहां की भूमि ऊंची नीची
और कांटों से व्याप्त थी ।

इस अटवीमें चलते हुए गजमित्र मुनिराज के पैरों में विपम
वेदना कारक विपैले कांटे चुमने लगे तथा उनके पैरों के तलिये
कांटों से विंध गये, इससे ये आगे विहार नहीं कर सके । इन्होंने उस
समय अपनी अवशिष्ट आयु बहुत अल्प जानकर चतुर्विध आहार के
परित्याग करने के अभिप्राय से अपने शिष्य से कहा—तुम यहां से
किसी दूसरी जगह चलेजाओ नहीं तो यहां पर मेरे साथ रहने से
तीव्र क्षुधापरीपह तुम्हें सहन करना पड़ेगा । गुरु की इस बात को सुनकर
शिष्य ने कहा, भदन्त ! जिस प्रकार छाया वृक्ष को नहीं छोड़ती है उसी
तरह मैं भी आप के चरणकमलों को छोड़कर अन्यत्र नहीं जा सकता ।

आथी आ गधां वृक्षा ऐक्यं गनी गथां देभाय छे, आ प्रकारे ते नंगल
अनेक डिंसक एवोथी परिपूषुः डतुं, भाषुसे भाटे दरेक रीते लयकारक डतुं,
नमीन उपर उगेलां घास वगेरेने कारखे कोर सरण भाग देभातो नथी, भूनि
उंचीनीथी अने कांटाथी लरेली हती.

आ नंगलमां आलतां आलतां गजमित्र मुनिराजना पगोमां धषी
वेदना उपलवे तेवा कांटा लागवा लाग्या आथी तेना पगोनां तणीयां कांटाथी
विंधाथ गथां नेथी ते आगण विहार करी शक्यां नडीं तेमखे ते समय पोतानी
पाडीं रडेल आयु धषी दुंकी नषीने आर प्रकारना आहारना त्याग करवाना
लावथी पोताना शिष्यने कहुं, तमे अडिंथी कोर अन्य स्थणे विहार करे, आ
स्थणे भारी साथे रडेवाथी तमारो भूषने तीव्र परिपड सहन करवो पडथे,
शुचनी आ वातने सांलणीने शिष्ये कहुं-भदन्त ! ने प्रकारे छाया वृक्षने छोडती
नथी तेवी रीते डुं पषु आपना अरखु कमलने छोडीने अन्यत्र नरिं शकतो नथी.

ક્યચિદ્વ્યમ્બીતાશ્ચક્રિતા હસ્તિનઃ પલાયન્તે । ક્યચિચ્ચ . વિપમવિપધરા મયંક્રગઃ
 ફાગિનઃ સ્વકીયવિસ્તૃતફગાટોપમુત્થાપ્ય સમૃત્તિષ્ઠન્તિ । તથા વૃદ્ધવિપાણધારિણઃ
 સ્થૂલકાપાઃ શ્યામવર્ગા મહિષાઃ ક્યચિત્ સજલપદ્ધિલે ગતેં શરીરપરિવર્તનેન પદ્ધલિત-
 વેદ્દાઃ સન્તિ । ક્યચિત્ તથૈવ સૂકરાણાં યૂથાઃ પરિભ્રમન્તિ । ક્યચિદ્વાનરાઃ ક્યચિદ્
 વૃક્ષા અત્યુત્પ્લવન્તિ । લતાવહ્નીસમાવૃતા નિવિઙ્છાયા વિટપિનઃ પરિતઃ સમુલ્લ-
 સન્તિ । ક્યચિન્નાનાધિધાનિ નિકૃષ્ણાનિ ભવનાનોવ વિલમન્તિ । ક્યચિત્ કળ્પક્રિનો
 વૃક્ષાઃ પરિતઃ પરસ્પરં લતાવિતાનૈરુદ્ગ્રથિતાઃ સન્તિ, યેષાં કળ્પકા ઇતસ્તતો વિ-
 કીર્ણાઃ સન્તિ । એવં વહુર્ઘિસંકુલા કુશકાશાદિવૃળપરિપૂર્ણા નિમ્નોન્નતા કળ્પ-
 ક્રિતા જનાનાં દુર્ગમા વનસ્થલી વર્તતે ।

કહીં પર વ્યાગ્ર ઘૂમ રહે હેં, કહીં પર સિંહ ગર્જ રહે હેં, કહીં
 પર સિંહ કી ગર્જના કો સુનકર ભય સે વ્રસ્ત ગજરાજ ચિંધાર
 કરતે હુએ ઇધર ઉધર ભાગે ફિર રહે હેં, કહીં પર વિપમ વિપધર
 સર્પ અપને ફળોં કો ઝપર ઉઠાકર વૈઠે હુએ હેં, કહીં પર જંગલી
 મૈસે કિ જિનકા શરીર વિલકુલ કાલા હૈ, તથા સીંગ મી જિનકે વડે ૨
 હેં ઓર જો શરીર મેં વિશેષ સ્થૂલ હેં, સજલગર્તે મેં કિ જિસમેં કાદવ
 હો રહા હૈ અપને શરીર કો ઇધર સે ઉધર કરતે હુએ કીચડ સે લિત બને
 હુએ હેં । ઇસી તરહ કહીં ૨ શૂકરોં કા યૂથ મી ઇધર ઉધર ભાગ રહા
 હૈ । કહીં ૨ પર વાનર ઓર કહીં પર વૃક્ષ-રીંછ-ઉછલકૂદ કર રહે હેં ।
 ઇસ વન મેં ચારોં ઓર લતાઓં સે વેષ્ટિત વહુત ગહરી છાયા વાલે વૃક્ષોં
 કે ઝુંડ હેં । કહીં ૨ પર વૃક્ષોં કા ઝુંડ એસે માલૂમ પડતે હેં જૈસે માનો
 મકાન હી ખડે હુએ હેં । કહીં ૨ પર કાંટેદાર વૃક્ષ કિ જિનકે કાંટે ઇધર

ત્રાસીને હાથી ચિત્કાર કરતાં અહિં તહિં નાસભાગ કરી રહ્યા છે, ક્યાંક
 વિષમ વિપધરા પોતાની ક્ષુભાને ઉંચી કરીને બેઠા છે, ક્યાંક જંગલી ભૈસા કે
 બેનાં શરીર એકદમ ઠાળાં છે અને બેનાં શીંગ લાંબાં છે અને શરીર બેનાં
 અલમસ્ત છે તે જળથી ભરેલા ખાડાઓમાં બેમાં કાદવ ભરેલ છે તેમાં આળોટી
 પોતાના શરીરને કીચડથી ખરડાવી રહેલ છે, આવી રીતે ડુકરોનાં જુથો પણ
 અહિં તહિં ભાગતાં નજરે પડે છે, ક્યાંક ક્યાંક વાનર અને રીંછ કુદાકુદ
 કરતાં દેખાય છે. એ જંગલ ચારે તરફથી મોટાં વૃક્ષો અને તેની ડાળીયો
 તથા અન્ય વેલા પાનથી છવાઈ રહેલ છે, કોઈ વૃક્ષનાં ઝુંડ એવાં અરસપરસ
 મળી ગયાં દેખાય છે કે બહુ તેની નીચે મઝાન બેવું બની ગયેલ છે, કોઈ
 સ્થળે કાંટાવાળાં વૃક્ષોથી તેના કાંટા જમીન ઉપર ન્યાં ત્યાં પડ્યા વેલા-

या सा रूपविनाशिनी स्मृतिहरी पञ्चेन्द्रियाकर्षिणी,
चक्षुःश्रोत्रललाटदीनकरणी संक्लेशसंपादिनी ।
बन्धूनां त्यजनी विदेशगमनी धैर्यस्य विघ्नसिनी,
सेयं तिष्ठति सर्वभूतदमनी प्राणापहारिक्षुधा ॥ १ ॥

अपरं च—

विवेको ह्रीर्दया धर्मो, विद्या स्नेहश्च सौम्यता ।

सत्त्वं च जायते नैव, क्षुधार्तस्य शरीरिणः ॥ २ ॥ इति ॥

तथापि स दृढवीर्यशिष्यः कस्मिन्नपि निजात्मप्रदेशे कातरतां नाश्रयति किं

जो आत्माके प्रतिप्रदेशमें व्यास होकर अपना प्रबल प्रताप दिखलाती है,
जैसे कहा भी है—

यह क्षुधा रूप को विनष्ट कर देती है, स्मृति को घुस्त कर
देती है, पांचों इन्द्रियों की शक्ति का हास कर देती है, चक्षु में
श्रोत्र में एवं ललाट में दिनता के निशानें बना देती हैं संक्लेश
परिणामों को जागृत करती रहती है, बन्धुओं का वियोग करा देती है,
विदेश में वास करा देती है, धैर्य को जडमूल से उखाड देती है,
अधिक क्या कहा जाय यह क्षुधा प्राणियों के प्राण का भी हरण करने
वाली है ॥ १ ॥

और भी कहा है—क्षुधार्त्त प्राणी के विवेक, लज्जा, दया, धर्म, विद्या
स्नेह, सौम्यता, बल आदि सभी सद्गुण नष्ट हो जाते हैं ॥ २ ॥

मुनि दृढवीर्य शिष्य की आत्मा के प्रतिप्रदेश में यद्यपि क्षुधा की
तीव्र वेदना जागृत हो रही थी तौ भी वह कभी भी कायर नहीं बना ।

अंदरना लागमां प्रवेश करीने पोतानो प्रणज प्रभाव अतावे छे. कहुं पणु छे—

आ भूष ३पनो नाश करे छे, स्मृतिनो ध्वंस करे छे, पांच
इन्द्रियनी शक्तिओने क्षिणु अनावी हे छे, आंभ, डान अने कपाणमां दिनतानी
निशानी जगाडे छे. क्लेशना परिष्णामोने लश्रत करे छे, बंधुओनो वियोग करावे
छे, विदेशमां वास करावे छे, धैर्यने जडमुणथी उणेडी नाणे छे, छेल्हे छेल्हे
आ भूष प्राणीओना प्राणोतुं पणु डरणु करे छे. ॥ १ ॥

इरी पणु कहुं छे भूषथी पीडाता प्राणीमां विवेक, लज्जा, दया, धर्म
विद्या, स्नेह, सौम्यता, अण, आदि सधजा सद्गुणो नाश पावे छे. ॥ २ ॥

मुनि दृढवीर्य शिष्यना आत्माना उंडाणुमां ले के, भूषनी तीव्र
वेदना थर्छ डती. तो पणु कोर्छ वअत कायर न अन्थो. पोताना

तत्रैव निवसति स्म । गुरुश्च चतुर्विधाहारस्य प्रत्याख्यानं कृतवान् । स च शिष्यः स्वगुरुं परितस्तद्गुरुरक्षणार्थं परिभ्रमंस्तिष्ठति, तत्र विविधेषु मनोद्वेषु रुचिरेषु फलेषु सत्स्वपि न तानि श्रोतवितुमिच्छति, वृक्षाधस्तले पतितान्यपि फलानि सचिन्तया केनाप्यदत्तया च नैव गृह्णाति । आहारार्थं किञ्चिद्गुरुं गत्वा गत्वा प्रतिनिवर्तते । वसतेरभावात् क्वचिदाहारो न लभ्यते । मार्गस्य दुर्गमतया कश्चित् पथिकोऽपि नायाति, यस्मादशनं गृह्णीयात् । पुनरुज्ज्वलभावेन गुरोर्ययावृत्त्यं करोति । यद्यपि तदा क्षुधाया बलं वर्धमानमात्मनः प्रतिप्रदेशं व्याप्तुं प्रवर्तते । यतः—

शिष्य की इस प्रकार बात को सुनकर गुरु महाराज ने चारों प्रकार के आहार का परित्याग कर दिया । शिष्य ने इस परिस्थिति में अपने गुरु महाराज की सेवा करना प्रारंभ कर दिया । उस अटवी में यद्यपि अनेक प्रकार के मनोज्ञ सरस फल थे तौ भी उन्हें तोड़ने का शिष्य ने स्वप्न में भी विचार नहीं किया । वृक्षों के नीचे टूटे हुए फल पड़े रहते थे उनको भी सचित्त होने की वजह से ग्रहण नहीं किया । तथा किसी २ फल के अचित्त होने पर भी दाता के अभाव से वे अदत्त होने से नहीं लिये । शिष्य आहार के लिये जाता है और कुछ दूर जा जाकर पीछे वापिस लौट आता है, क्यों कि एक तो वहाँ वसति नहीं थी, इस लिये वहाँ आहार का कोई जोग नहीं मिलता था । दूसरे—मार्ग अत्यंत दुर्गम होने से उस रास्ते कोई भी पथिक प्रायः नहीं आता जाता था । परन्तु शिष्य अनन्य भाव से गुरु की सेवा करता था । क्षुधा एक ऐसी वस्तु है कि

शिष्यनी आ प्रकारनी वात सांलणीने गुरु भडाराने चार प्रकारना आहारना त्याग करी हीधी। शिष्ये आ परिस्थितिमां पोताना गुरु भडाराननी सेवा करवाने प्रारंभ कर्ये। ते जंगलमां जे के, अनेक प्रकारनां सुंदर अने स्वाद्विष्ट जेवां इणो छतां तो पथु तेने तोडवाने शिष्ये स्वप्नामां पथु विचार न कर्ये। वृक्षोनी नीचे तूटीने पडेवां जे इण देखातां तेने पथु सचित्त भानीने ग्रहणु कर्यां नडीं तथा केध केध इण अचित्त होवा छतां आपनारना अभावथी ते अदत्त होवाथी लीधां नडीं। शिष्य आहार भाटे जतो अने थोडे दूर जध त्यांथी पाछे इरी आवतो केमके, जेक तो त्यां वस्ती छती नडीं। भाटे त्यां आहारने केध जोग भणतो न छतो, भीष्म मार्ग अत्यंत दुर्गम होवाथी ते रस्ते केध पथु वटेभार्थु आवतो जतो न छतो। परंतु शिष्य अनन्य भावथी गुरुनी सेवा करतो छतो। जूथ जेक जेवी वस्तु छे के जे आत्मानी

या सा रूपविनाशिनी स्मृतिहरी पञ्चेन्द्रियाकर्षिणी,
चक्षुःश्रोत्रललाटदीनकरणी संक्लेशसंपादिनी ।
बन्धूनां त्यजनी विदेशगमनी धैर्यस्य विघ्नंसिनी,
सेयं तिष्ठति सर्वभूतदमनी प्राणापहारिक्षुधा ॥ १ ॥

अपरं च—

विवेको ह्रीर्दया धर्मो, विद्या स्नेहश्च सौम्यता ।

सत्त्वं च जायते नैव, क्षुधार्तस्य शरीरिणः ॥ २ ॥ इति ॥

तथापि स दृढवीर्यशिष्यः कस्मिन्नपि निजात्मप्रदेशे कातरतां नाश्रयति किं

जो आत्माके प्रतिप्रदेशमें व्याप्त होकर अपना प्रबल प्रताप दिखलाती है, जैसे कहा भी है—

यह क्षुधा रूप को विनष्ट कर देती है, स्मृति को ध्वस्त कर देती है, पांचों इन्द्रियों की शक्ति का हास कर देती है, चक्षु में श्रोत्र में एवं ललाट में दिनता के निशानें बना देती हैं संक्लेश परिणामों को जागृत करती रहती है, बन्धुओं का वियोग करा देती है, विदेश में वास करा देती है, धैर्य को जडमूल से उखाड देती है, अधिक क्या कहा जाय यह क्षुधा प्राणियों के प्राण का भी हरण करने वाली है ॥ १ ॥

और भी कहा है—क्षुधार्त्त प्राणी के विवेक, लज्जा, दया, धर्म, विद्या स्नेह, सौम्यता, बल आदि सभी सद्गुण नष्ट हो जाते हैं ॥ २ ॥

मुनि दृढवीर्य शिष्य की आत्मा के प्रतिप्रदेश में यद्यपि क्षुधा की तीव्र वेदना जागृत हो रही थी तौ भी वह कभी भी कायर नहीं बना ।

अंदरना लागमां प्रवेद्य करीने पोताने प्रभण प्रलाप भतावे छे. कहुं पखु छे—

आ भूप रूपने नाश करे छे, स्मृतिने ध्वंस करे छे, पांच इन्द्रियनी शक्तिओने क्षिण्य भनावी दे छे, आंभ, डान अने कपाणमां दिनतानी निशानी जगाडे छे. क्लेशना परिष्ठाओने लभत करे छे, बंधुओने वियोग करावे छे, विदेशमां वास करावे छे, धैर्यने जडमुण्ठी उणेडी नाये छे, छेद्वे छेद्वे आ भूप प्राणीओना प्राणोत्तं पखु डरखु करे छे. ॥ १ ॥

इरी पखु कहुं छे भूपथी पीडाता प्राणीमां विवेक, लज्जा, दया, धर्म विद्या, स्नेह, सौम्यता, भण, आदि सधणा सद्गुणो नाश पाये छे. ॥ २ ॥

मुनि दृढवीर्य शिष्यना आत्माना उंटाणुमां ले के, भूपनी तीव्र वेदना थछुं डती तो पखु कोछुं वपत कायर न भयो. पोताना

તુ કર્મનિર્જરાર્થં ક્ષુધાપરીપહં વિજિત્ય ગુરુસેવાપરાયણ ય્યાસીત્ । તતો ગજમિત્ર-
મુનિઃ કણ્ઠક્રજનિતામસદ્ભવેદનાં સદ્માનઃ સમાધિભાવેન નિજાયુઃ સમાપ્ય પ્રથમ-
કલ્પે વૈમાનિકદેવત્વં પ્રાપ્તઃ । અથાસી દેવઃ સ્વક્રીયપૂર્વભયમવધિના વિજ્ઞાય,
સ્વદિવ્યશક્ત્યા શિષ્યરક્ષાર્થં તત્સમીપપ્રદેશે વસતિં નિર્માય સ્વયં મનુષ્યરૂપઃ સન્
દૃઢવીર્યશિષ્યં પ્રાહ—મુને ! ઇતઃ સમીપે વસતિર્દૃશ્યતે, અશનપાનમાનીયતામ્ ।
શિષ્યો વદતિ—અયમસ્તિ કથિદેવપપન્નઃ, ઇહ દિ નાસીત્ પુરા કાપિ વસતિઃ, भूमि-

अपने वीर्योल्लास से उसने इस परीपह को खूब सहन किया ।
और गुरु महाराज की सेवा भक्ति को, क्यों कि शिष्य को यह पूर्ण-
श्रद्धा थी कि कर्मनिर्जरा के लिये क्षुधापरीपह को सहन करना ही
चाहिये । पैर में लगे हुए कांटे की असह्य वेदना प्रतिक्षण बढ़ने लगी,
अपनी आयु के अन्त समयमें समाधिभाव से कालधर्म को प्राप्त होकर
प्रथमकल्प में वैमानिक देव हुए । इन्होंने देव की पर्याय में अपने पूर्वभव
को अवधिज्ञान से जानकर अपने शिष्य की प्राणरक्षा निमित्त दिव्यशक्ति
से उसके समीप प्रदेश में एक वसति का निर्माण किया और स्वयं
मनुष्य के रूप में प्रकट होकर शिष्य से कहने लगे कि यहां से नजदीक
ही एक वसति दिखाइ देती है अतः वहां से आप आहार पानी ले आइये ।
देव की इस प्रकार बात को सुनकर शिष्य ने चित्त में विचार किया—यह
कोई देव छलना करता है । मैं पहिले यहां कई चार आया हूं परन्तु
मुझे तो कोई वसति नजर नहीं आई, इसलिये यहां से आहार पानी

વિર્યોલ્લાસથી તેણે આ પરીપહને ખૂબ સહન કર્યો અને ગુરુ મહારાજની
સેવા ભક્તિ કરી. કેમકે, શિષ્યને એ પૂર્ણ શ્રદ્ધા હતી કે, કર્મનિર્જરા
માટે ક્ષુધા પરિપહ સહન કરવો જોઈએ. પગમાં લાગેલા કાંટાઓની વેદના
રોજ બરોજ વધવા લાગી, પોતાના આયુના અંતસમયમાં સમાધીભાવથી ગુરુજી
કાળ ધર્મને પામી પ્રથમ કલ્પમાં વૈમાનિક દેવ બન્યા. તેઓએ દેવની પર્યા-
યમાં પોતાના પુર્વભવને અવધિજ્ઞાનથી જાણીને પોતાના શિષ્યની પ્રાણરક્ષા
નિમિત્ત દિવ્ય શક્તિથી તેના સમીપપ્રદેશમાં એક વસ્તિતું નિર્માણ કર્યું અને
પોતે મનુષ્યના રૂપમાં પ્રગટ બનીને શિષ્યને કહેવા લાગ્યા કે, અહિંથી નજીક
જ એક વસ્તિ દેખાય છે માટે ત્યાંથી તમે આહાર પાણી લઈ આવો, દેવની
આ પ્રકારની વાતને સાંભળીને શિષ્યે ચિત્તમાં વિચાર કર્યો કે, આ કોઈ દેવ
મારી છલના કરે છે. હું પહેલાં કેટલીએ વખત ગયો છું પરંતુ મને કોઈ
વસ્તી દેખાઈ નથી, માટે ત્યાંથી આહાર પાણી લાવવો ઉચિત નથી. શિષ્યની આ

स्वत्या प्रागेव दृष्टाऽस्माभिः, अतोऽत्राशनपानं न ग्रहीष्यामि । ततोऽसौ प्रसन्नमनसा साक्षाद्देवरूपं धृत्वा दृढवीर्यमुनिं प्रशंसति—धन्योऽसि दृढव्रतोऽसि ' इत्यादि । पुनरसौ दृढवीर्यमुनिर्दुःसहं क्षुधापरीपहं सहमानः क्षपकश्रेणीमारूढ प्रशस्तध्यानेन शुभाध्यवसायेन केवलज्ञानं प्राप्य मोक्षं प्राप्तवान् । स च देवस्तस्य केवलोत्सवं निर्वाणोत्सवं च कृत्वा स्वस्थानं गतः । एवं सर्वैर्मुनिभिरपि दृढवीर्यमुनिवत् क्षुधापरीपहः सोढव्यः ॥ ३ ॥

क्षुधां सहमानस्यैपणीयाहारार्थं भिक्षाचर्यां पर्यटतो मुनेर्यदि श्रमादिजनिता पिपासा स्यात्तर्हि साऽपि सोढव्येत्याशयेन पिपासापरीपहजयं प्राह—

मूलम्—ततो पुष्टो पिपासां ए, दोर्गुच्छी लज्जसंजए ।

सीओदगं न सेविजा, वियंडस्सेसणं चैरे ॥ ४ ॥

ग्रहण करना उचित नहीं है। शिष्य की इस प्रकार दृढ विचारधारा को देखकर वह देव बहुत ही प्रसन्न हुआ और साक्षात् रूप में प्रकट होकर शिष्य की बहुत प्रशंसा करने लगा, बोला—आप धन्य हैं व्रत के पालन करने में अतीव दृढप्रतिज्ञ हैं। शिष्य ने दुःसह क्षुधापरीपह को सहन करने से क्षपकश्रेणी पर आरूढ होकर प्रशस्त—ध्यान एवं शुभाध्यवसाय के बल पर केवलज्ञान का लाभ कर मोक्ष को प्राप्त किया। इनके गुरु महाराज का जीव जो देव था उसने अपने पूर्वपर्याय के शिष्य को प्राप्त हुए केवलज्ञान के एवं निर्वाण के उत्सव को मनाकर अपने स्थान गया। इसी तरह प्रत्येक मुनिका कर्तव्य है कि वह दृढवीर्यमुनि की तरह क्षुधापरीपह को सहन करे ॥ ३ ॥

प्रकारनी दृढ धारणा जेधने ते देवने एव भूषण प्रसन्न थयो. अने प्रगट थधने शिष्यनी भूष प्रसंशा करवा लाग्या. तेमळे कहुं—आपने धन्यवाद छे, व्रतनुं पालन करवाभां दृढ प्रतिज्ञ छे. शिष्ये दुःसह भूषणे परिषद सहन करवाथी क्षपकश्रेणी उपर आरूढ अनी प्रशस्त ध्यान अने शुभ अध्यवसायना भण उपर केवणज्ञानने लाभ करी मोक्षने प्राप्त कर्यो. देव के ने तेना गुरु महाराजने एव इतो तेळे पोताना पूर्व पर्यायना शिष्यने प्राप्त थयेल केवणज्ञानना अने निर्वाणना उत्सवने मनावीने पोताने स्थाने गया. आवी रीते प्रत्येक मुनिनुं कर्तव्य छे के, ते दृढवीर्य मुनिनी भाक्षक क्षुधा परिषदने सहन करे. ॥ ३ ॥

छाया—ततः स्पृष्टः पिपासया, जुगुप्सी लज्जासंयतः ।

शीतोदकं न सेवेत विकृतस्य एषणां चरेत् ॥ ४ ॥

टीका—‘ तओ पुट्टो ’ इत्यादि ।

ततः=क्षुधापरीषहानन्तरं, पिपासया=वृषया, स्पृष्टः=व्याप्तः सन्, जुगुप्सी =जुगुप्सकः अनाचारविरत इत्यर्थं तथा—लज्जासंयतः—लज्जायां=संयमे सम्पृग् यत्नानित्यर्थः । साधुः शीतोदकं=सचित्तं जलं ‘ न सेवेत ’ न व्यापृणयात् किं तु विकृतस्य=यवतण्डुलद्राक्षादिधावनोत्कालनादिना वर्णगन्धरसस्पर्शैरन्यथाभावं प्राप्तस्य प्रासुकस्य जलस्य, प्रासुकजलं त्वेकविंशतिविधं भवतीत्याचाराद्भ्रूवे द्वितीयश्रुतस्कन्धे नवमाध्ययने निगदितम्—

क्षुधापरीषह को सहन करने वाला मुनि को आहार की गवेषणा करते हुए पिपासा लगे, तथा अहार करने के बाद पिपासा लगे तो उसको सहन करना चाहिये, इस आशय से अब सूत्रकार पिपासापरीषह को कहते हैं—“ तओ पुट्टो ” इत्यादि ।

(तओ-ततः) क्षुधापरीषह के अनन्तर (पिपासाए पुट्टो-पिपासया-स्पृष्टः) पिपासा से व्याप्त होने पर भी (दोगुच्छी-जुगुप्सी) अनाचार-विरत तथा (लज्जसंजए-लज्जासंयतः) संयम की रक्षा करने में प्रयत्न-शील साधु (शीओदकं न सेवेत-शीतोदकं न सेवेत) सचित्त जल का सेवन नहीं करे । किन्तु (वियडसेसणं चरे-विकृतस्य एषणां चरेत्) विकृत-यव, तण्डुल, एवं द्राक्षा आदि के घोने से अथवा उनके उकालने से जिनके वर्ण, गंध, रस तथा स्पर्श का परिवर्तन हो चुका है ऐसे प्रासुक जल की गवेषणा करे । तात्पर्य यह है कि पिपासा से पीडित होने

क्षुधा परिषह सहन करनेवाले मुनिने आहार किया पछी तरस लागे तेने सहन करवी जेठे अथवा आशयधी सूत्रकार पिपासा परिषह कहे छे. तओ पुट्टो-इत्यादि.

तओ-ततः क्षुधा परिषहना अनन्तर पिपासाए पुट्टो-पिपासयास्पृष्टः तरसधी व्यापृत होवा छतां अनाचार विरत तथा दोगुच्छी-जुगुप्सी अनाचार विरत तथा लज्जासंजए-लज्जासंयतः संयमनी रक्षा करवाभां प्रयत्नशील साधु शीओदकं न सेवेत-शीतोदकं न सेवेत सचित्त जलनुं सेवन न करे. किंतु वियडसेसणं चरे-विकृतस्य एषणां चरेत् विकृत (अचित्त)-यव, योभा, द्राक्ष वगेरेना धोवाधी अथवा जेने उकाणवाधी तेना वर्ण, गंध, रस तथा स्पर्शनुं परिवर्तन धई चुकथुं छे जेवा प्रासुक जलनी गवेषणा करे. तात्पर्य अथवा छे के, तरसधी पीडाता होवा छतां पछ साधुअे सचित्त ५ ५

- (१) उस्सेइमं-उत्स्वेदिमं-पिष्टोत्स्वेदनार्थमुदकम् । रोटिकायां कृतायां येनोदकेन पिष्टस्थाल्यादिधावनं क्रियते तदित्यर्थः ।
- (२) संसेइमं-संसेकिमं-उत्कालितानां पत्रशाकादीनामनपगतवित्कादिरसापसारणार्थं शैत्यार्थं वा येनोदकेन धावनं क्रियते, तदित्यर्थः ।
- (३) चाउलोदगं-तण्डुलोदकं-तण्डुलधावनोदकम् ।
- (४) तिलोदगं-तिलोदकं-तिलधावनोदकम् ।
- (५) तुसोदगं-तुपोदकं-तुपधावनोदकम् ।
- (६) जवोदगं-यवोदकं-यवधावनोदकम्, अत्र 'यव' इत्युपलक्षणं तेन व्रीह्यादिधावनोदकस्यापि ग्रहणम् ।

पर भी साधु को चाहिये कि वह कभी भी सचित्त अनेपणीय जल का उपयोग न करे। प्रासुक जल इक्कीस २१ प्रकार का होता है यह बात आचारांगसूत्र में द्वितीय श्रुतस्कन्ध के नवम अध्ययन में कही गई है-

१ उस्सेइमं-भोजन वन चुकने के बाद आटे की थाली आदिका धोवन।

२ संसेइमं-शाकपत्रादिकों के उचालने पर उनका कड़ुआपन आदि निकालने के लिये अथवा उन्हें ठंडे करने के लिये जो जल ऊपर से डाला जाता है वह।

३ चाउलोदकं-चावलों का धोवन।

४ तिलोदगं-तिलों का धोवन।

५ तुसोदगं-तुपों को धोने से निकला हुआ जल।

६ जवोदगं-जौ आदिका धोया हुआ जल।

ननने। उपयोग कही पक्ष न करवे। नैर्धये। प्रासुक नन ऐकवीस प्रकारतुं डोय छे आ वात आचारांगसूत्रमां भीन श्रुतस्कंधना नवमां अध्ययनमां कडेवामां आवेल छे.

उस्सेइमं- १ लोन्नन भनी चुकया पछी आटानी थाणी विगेरेनुं धोवषु.
संसेइमं- २ शाक पत्रादिकने उकाणवाथी तेना कडवा पक्षु वगेरेने डाढवा भाटे अथवा तेने ठंडा करवावा भाटे ने पाष्ठी उपरथी नाभ-वामां आवे छे ते.

चाउलोदगं- ३ चोभातुं धोवषु.

तिलोदगं- ४ तलतुं धोवषु.

तुसोदगं- ५ तुपोने धोवाथी निकजेल पाष्ठी.

जवोदगं- ६ नव आदिने धोतां निकजेल पाष्ठी.

छाया—ततः स्पृष्टः पिपासया, जुगुप्सी लज्जासंयतः ।

शीतोदकं न सेवेत विकृतस्य एषणां चरेत् ॥ ४ ॥

टीका—' तओ पुट्टो ' इत्यादि ।

ततः=क्षुधापरीपहानन्तरं, पिपासया=वृषया, स्पृष्टः=व्याप्तः सन्, जुगुप्सी=जुगुप्सकः अनाचारविरत इत्यर्थं तथा-लज्जासंयतः-लज्जायां=संयमे सम्यग् यत्नवानित्यर्थः । साधुः शीतोदकं=सचित्तं जलं ' न सेवेत ' न व्यापृणुयात् किं तु विकृतस्य=यवतण्डुलद्राक्षादिधावनोत्कालनादिना वर्णगन्धरसस्पर्शैरन्यथाभावं प्राप्तस्य प्रासुकस्य जलस्य, प्रासुकजलं त्वेकविंशतिविधं भवतीत्याचाराङ्गमूत्रे द्वितीयश्रुतस्कन्धे नवमाध्ययने निगदितम्—

क्षुधापरीपह को सहन करने वाला मुनि को आहार की गवेषणा करते हुए पिपासा लगे, तथा अहार करने के बाद पिपासा लगे तो उसको सहन करना चाहिये, इस आशय से अब सूत्रकार पिपासापरीपह को कहते हैं—“ तओ पुट्टो ” इत्यादि ।

(तओ-ततः) क्षुधापरीपह के अनन्तर (पिपासाए पुट्टो-पिपासया-स्पृष्टः) पिपासा से व्याप्त होने पर भी (दोगुच्छी-जुगुप्सी) अनाचार-विरत तथा (लज्जसंजए-लज्जासंयतः) संयम की रक्षा करने में प्रयत्न-शील साधु (शीतोदकं न सेवेज्जा-शीतोदकं न सेवेत) सचित्त जल का सेवन नहीं करे । किन्तु (वियडस्सेसणं चरे-विकृतस्य एषणां चरेत्) विकृत-यव, तण्डुल, एवं द्राक्षा आदि के घोने से अथवा उनके उकालने से जिनके वर्ण, गंध, रस तथा स्पर्श का परिवर्तन हो चुका है ऐसे प्रासुक जल की गवेषणा करे । तात्पर्य यह है कि पिपासा से पीडित होने

क्षुधा परिषद सहन करने वाला मुनिने आहार किया पछी तरस लागे तेने सहन करवी जेधे अ. आ आशयथी सूत्रकार पिपासा परिषद कडे छे. तओ पुट्टो-इत्यादि.

तओ-ततः क्षुधा परिषदना अनन्तर पिपासाए पुट्टो-पिपासयास्पृष्टः तरसथी व्यापृत होवा छतां अनाचार विरत तथा दोगुच्छि-जुगुप्सी अनाचार विरत तथा लज्जसंजए-लज्जासंयतः संयमनी रक्षा करवामां प्रयत्नशील साधु शीतोदकं न सेवेज्ज-शीतोदकं न सेवेत सचित्त जलतुं सेवन न करे. किंतु वियडस्सेसणं चरे-विकृतस्य एषणां चरेत् विकृत (अचित्त)-यव, योषा, द्राक्ष वगेरेना धावाथी अथवा जेने उकाणवाथी तेना वषु, गंध, रस तथा स्पर्शतुं परिवर्तन थधं युक्तुं छे जेवा प्रासुक जलनी गवेषणा करे. तात्पर्य जे छे के, तरसथी पीडाता होवा छतां पक्ष साधुजे सचित्त ५

- (१) उस्सेइमं-उत्स्वेदिमं-पिष्टोत्स्वेदनार्थमुदकम् । रोटिकायां कृतायां, येनो-
दकेन पिष्टस्थाल्यादिधावनं क्रियते तदित्यर्थः ।
- (२) संसेइमं-संसेकिमं-उत्कालितानां पत्रशाकादीनामनपगतवित्कादिरसाप-
सारणार्थं शैत्यार्थं वा येनोदकेन धावनं क्रियते, तदित्यर्थः ।
- (३) चाउलोदगं-तण्डुलोदकं-तण्डुलधावनोदकम् ।
- (४) तिलोदगं-तिलोदकं-तिलधावनोदकम् ।
- (५) तुसोदगं-तुपोदकं-तुपधावनोदकम् ।
- (६) जवोदगं-यवोदकं-यवधावनोदकम्, अत्र 'यव' इत्युपलक्षणं तेन व्रीह्या-
दिधावनोदकस्यापि ग्रहणम् ।

पर भी साधु को चाहिये कि वह कभी भी सचिन्त अनेपणीय जल का उपयोग न करे। प्रासुक जल इक्कीस २१ प्रकार का होता है यह बात आचारांगसूत्र में द्वितीय श्रुतस्कन्ध के नवम अध्यायन में कही गई है-

- १ उस्सेइमं-भोजन वन चुकने के बाद आटे की थाली आदिका धोवन ।
- २ संसेइमं-शाकपत्रादिकों के उवालने पर उनका कड़ुआपन आदि निकालने के लिये अथवा उन्हें ठंडे करने के लिये जो जल ऊपर से डाला जाता है वह ।
- ३ चाउलोदकं-चावलों का धोवन ।
- ४ तिलोदगं-तिलों का धोवन ।
- ५ तुसोदगं-तुपों को धोने से निकला हुआ जल ।
- ६ जवोदगं-जौ आदि का धोया हुआ जल ।

ज्जने। उपयोग कही पक्षु न करे। जेधं अ. प्रासुक ज्ज अेकवीस प्रकारनुं होय छे आ वात आचारांगसूत्रमां भीज्ज श्रुतस्कंधना नवमां अध्यायनमां कडेवामां आवेल छे.

- | | |
|-----------|--|
| उस्सेइमं- | १ लोअन अनी चुक्या पछी आटानी थाणी विगेरेनुं धोवणु. |
| संसेइमं- | २ शाक पत्रादिकेने उकाणवाथी तेना कडेवा पक्षु वगेरेने काढवा भाटे अथवा तेने ठंडा कराववा भाटे जे पाष्ठी उपरथी नाप-
वामां आवे छे ते. |
| चाउलोदगं- | ३ चाआनुं धोवणु. |
| तिलोदगं- | ४ तिलनुं धोवणु. |
| तुसोदगं- | ५ तुपोने धोवाथी निकणेल पाष्ठी. |
| जवोदगं- | ६ जव आदिने धोतां निकणेल पाष्ठी. |

अथ ग्रामनगरादिभ्यो वहिः क्वचिदटव्यादिमार्गे विहरन् मुनिर्यदि पिपासया पीडितः स्यात् तदाऽपि तत्परीपहः सोढव्य इत्याह—

मूलम्—छिन्नावाएसु पंथेसु, आउरे सुपिवासिए ।

परिसुक्कमुहादीणे, तं तितिक्वे परीसंहं ॥५॥

छाया—छिन्नापातेषु पथिषु आतुरः सुपिपासितः ।

परिशुष्कमुखादीनः तं तितिक्षेव परीपहम् ॥ ५ ॥

टीका—‘छिन्नावाएसु’ इत्यादि ।

छिन्नापातेषु=छिन्नः=अपगतः, आपातः—जनानां गमनागमनरूपः संचारो यत्र तेषु, पथिषु=मार्गेषु गच्छन्निति शेषः, आतुरः तृपया व्याप्तकायः, अत एव सुपिपासितः=अतिशयेन तृपितः, अत एव परिशुष्कमुखादीनः=परीशुष्कमुखः गत-निष्ठीवनतया शुष्कतालुरसनोष्ठः, स चासावदीनश्च परिशुष्कमुखादीनः, परिशुष्क-

ग्राम नगर आदि से बाहर किसी अटवी आदि के मार्ग में विचरते हुए साधु को यदि पिपासा से आकुलता उत्पन्न हो जावे तौ भी उसे उस द्वितीय क्षुधापरीपह को सहन करना चाहिये यह बात इस नीचे की गाथा द्वारा सूत्रकार प्रकट करते हैं—‘छिन्नावाएसु’ इत्यादि ।

अन्वयार्थ—(छिन्नावाएसु-छिन्नापातेषु) जिन मार्गों में जनों का आवागमनरूप संचार छिन्न हो गया है अर्थात्—नहीं होता है ऐसे (पंथेसु-पथिषु) मार्गों में संचरण अर्थात्—विचरण करता हुआ साधु (सुपिवासिए आउरे-सुपिपासितः आतुरः) यदि पिपासा से व्याप्त होकर आतुर-अत्यंत पीडित हो जाता है और इसीसे (परिसुक्कमुहादीणे-परिशुष्कमुखादीनः) जिसके मुख का थूंक तक भी सूखचुका है और ऐसी

ग्राम, नगर वगैरेशी अडारना रस्ता उपर विचरता साधुने मार्गमां तरसनी आकुलता उत्पन्न थाय तो पक्ष तेषु अे भीन क्षुधापरीपहने सहन करवे नोछंअे. आ पात नीचेनी गाथा द्वारा सूत्रकार प्रकट करे छे. छिन्नावाएसु-इत्यादि.

अन्वयार्थ—छिन्नावाएसु-छिन्नापातेषु जे मार्गमां माथुसोने आवागमनरूप संचार अंध थछं गथे छेय. अर्थात् नथी थते अेवा पंथेसु-पथिषु मार्गमां संचारअु अर्थात् विचारअु करनार साधु सुपिवासिए आउरे-सुपिपासितः आतुरः पाष्ठीनी तरसथी व्याकुल अनी अत्यंत पीडित थछं नथ छे अने अेथी परिसुक्कमुहादीणे-परिशुष्कमुखादीनः जेना मोढामांतुं थुंक पक्ष सुकाछं नथ छे अेवी मां,

मुखोऽपि सन्नदीन इत्यर्थः । तं=तृपापरीपहं, तितिक्षेत=सहेत । अयं भावः-निर्जन-
स्थानस्थितोऽपि तृपाव्याकुलितोऽपि सन् सचित्तमनेपणीयं जलं न पिबेदिति ।

‘छिन्नावाएसु पंथेसु’ इत्यनेन मुनीनां चरणविहारः सूचितः ।

‘आउरे’ इत्यनेन-परीपहावस्थायामपि समाधिभावेन वर्तितव्यमिति
बोधितम् ।

‘सुपिवासिए’ इत्यनेन पिपासाधिक्येऽपि सचित्तमनेपणीयमुदकं न ग्रहीत-
व्यमिति सूचितम् ।

‘परिसुक्कमुहादीणे’ इत्यनेन कष्टावस्थायामपि परीपहो जेतव्य एवेति-
सूचितम् ।

‘तितिक्षे’ इत्यनेन परीपहोपस्थितौ सहिष्णुता समाश्रयणीया, इति
बोधितम् ।

हालत में तालु, रसना एवं ओष्ठ भी विलकुल शुष्क हो चुका है फिर
भी अदान बना हुआ मुनि (तं परीसहं तितिक्षे-तं परीपहं तितिक्षेत)
इस तृपापरीपह को जीते । तात्पर्य इसका यह है कि निर्जनस्थान में
रहने पर भी यदि साधु तृपा से पीड़ित होता है तो भी उसे सचित्त
अनेपणीय जल का पान नहीं करना चाहिये ।

गाथा में रहे हुए “ छिन्नावाएसु पंथेसु ” इस विशेषणगर्भित पद
द्वारा मुनियों का चरण विहार सूचित किया है । “ आउरे ” इस
पद द्वारा परीपह अवस्था में मुनियों को समाधिभावपूर्वक रहना
बतलाया गया है । “ सुपिवासिए ” पद द्वारा पिपासा की तीव्र
अवस्था में भी सचित्त अनेपणीय उदक नहीं लेना चाहिये, यह प्रकट

तालु रसना अने डोऽ पक्षु तदन सुका अनी लय छे, अेवी परिस्थितिमां
सुकावा छतां पक्षु अदीन अनेल मुनि तं परिसहं तितिक्षे-तं परिपहं तितिक्षेत
अे तृपा परीपहने छते. अेतुं तात्पर्य अे छे के, निर्जन स्थानमां रडेवा
छतां पक्षु साधु तरसथी पीडित डोय तो तेछे सचित्त अनेपणीय अणनुं
पान न करवुं जेछअे.

गाथामां रडेवा “ छिन्नावाएसु पंथेसु ” विशेषण गर्भित पद द्वारा मुनि-
थेनो अरखु विहार सुखवामां आवेल छे. आउरे-आपहथी परीपह अवस्थामां
मुनिथेअे समाधि भाव पूर्वक रडेवानुं अतावेल छे. सुपिवासिए आ पदथी
तरसनी तीव्र अवस्थामां पक्षु सचित्त अनेपणीय पाणी न देवुं जेछअे.

अत्र दृष्टान्तः—

आसीदुज्जयिन्यां धनमित्रनामकः श्रेष्ठी, स धनप्रियनाम्नाऽष्टवर्षवयस्केन स्वपुत्रेण सह मित्रगुप्ताचार्यसमीपे भ्रजितः । स धनप्रियशिष्यः सपरिवारेणाचार्येण सह कदाचिन्मार्गे विहरन् पिपासार्तोऽभवत् । अन्यैः साधुभिः सहाचार्यमग्रे गतं दृष्ट्वा धनमित्रमुनिना नदीमालोक्य पुत्रानुरागेण कथितम्, वत्स! जलं पिव, पश्चादालोचनया शुद्धिर्भविष्यति । इत्युक्तोऽपि शिष्यो जलपानं कर्तुं न वाञ्छति । ततो

किया गया है। “परिसुकमुहादीणे” इस पद से सूत्रकार यह प्रदर्शित कर रहे हैं कि कष्ट की अवस्था में भी परीपहों को जीतना ही चाहिये। “तितिक्वे” पद से यह ज्ञात होता है कि परीपह की उपस्थिति में घबड़ाना नहीं चाहिये किन्तु सहिष्णुता धारण करनी चाहिये।

इस विषय को अब दृष्टान्तद्वारा स्पष्ट किया जाता है—

उज्जैनी नगरी में धनमित्र नाम का एक सेठ रहता था। वैराग्य पाकर उसने अपने आठवर्ष के धनप्रिय नामक पुत्र के साथ मित्रगुप्तआचार्य के पास मुनिदीक्षा धारण करली। एक समयकी बात है कि वे धनप्रिय मुनि सपरिवार आचार्य के साथ जब विहार कर रहे थे तब मार्ग में उन को प्यास की वेदना जागृत हुई। अन्य साधुओं के साथ आचार्य को आगे गये हुए जान कर धनमित्र मुनि ने नदी को देखते ही पुत्रानुराग के वशवर्ती बन धनप्रिय से कहा कि वत्स! जल पीलो, पीछे आलोचना से इसकी शुद्धि कर लेना। इस प्रकार धनमित्र मुनि के वचन

એવું પ્રગટ કરેલ છે. પરિસુકમુહાદીણે આપદથી કષ્ટની અવસ્થામાં પણ પરિપહોને છૂતવા ભેદ્યે. એવું સૂત્રકાર પ્રદર્શિત કરે છે. “તિતિક્વે” આપદથી પરિપહનાં આવવાથી ગભરાવું ન ભેદ્યે પરંતુ સહિષ્ણુતા ધારણ કરવી ભેદ્યે.

આ વિષય ઉપર એક દૃષ્ટાંત કહેવામાં આવે છે.—

ઉજ્જૈની નગરીમાં ધનમિત્ર નામે એક શેઠ રહેતો હતો. વૈરાગ્ય પામીને તેણે પોતાના આઠ વર્ષના ધનપ્રિય નામના પુત્ર સાથે મિત્રગુપ્ત નામના આચાર્ય પાસે મુનિ દીક્ષા ધારણ કરી. એક સમયની વાત છે કે, ધનપ્રિય મુનિ સપરિવાર આચાર્યની સાથે જ્યારે વિહાર કરી રહેલ હતો, ત્યારે માર્ગમાં તેને તરસ લાગી. બીજા સાધુઓ સાથે આચાર્યને આગળ ગયેલા બહુને ધનમિત્ર મુનિએ નદીને ભેદને પુત્રપ્રેમને વશ બની ધનપ્રિયને કહ્યું, વત્સ પાણી પીઈ લો. પછી આલોચનાથી એની શુદ્ધિ કરી લેજો. આ પ્રકારનાં ધનમિત્ર

धनमित्रमुनिश्चिन्तयति—मम समक्षे नायं जलं पिवतीति, एवं विचिन्त्य शुष्कमार्गेण सत्वरं नदीमुत्तीर्याग्रे गतः, तदनन्तरं धनप्रियमुनिर्जलपानार्थं नद्यां प्रविश्याञ्जलीं जलं धृत्वा सद्यः संजातकारुण्यश्चिन्तयति—कथमहं जलं पिवामि । यतः—

एगंमि उदगविंदुम्मि, जे जीवा जिणवरेहि पन्नत्ता ।

ते सरिसवपरिमित्ता, जम्बुद्वीवे न मायंति ॥ १ ॥

छाया—एकस्मिन्नुदकचिन्दौ, ये जीवा जिनवरैः प्रज्ञप्ताः ।

ते सर्पपपरिमात्राः जम्बूद्वीपे न मायेयुः ॥ १ ॥

व्याख्या—एकस्मिन् जलचिन्दौ ये जीवाः सन्ति, ते यदि सर्पपप्रमाणं शरीरं धृत्वा वर्तेयुस्तर्हि जम्बूद्वीपे न मायेयुरित्यर्थः ॥ १ ॥

मुनकर धनप्रिय ने पानी पीने की जरा भी इच्छा नहीं की। इस परिस्थिति को देखकर धनमित्र मुनि ने विचार किया कि यह मेरे साम्हने जल नहीं पीवेगा अतः यहां से चल देना चाहिये, सो वे शुष्कमार्ग से नदी को पार कर आगे चले गये। इसके बाद धनप्रियमुनि जलपान करने के लिये नदी में प्रविष्ट हुए और अंजलि में पानी भर कर दया भाव से विचारने लगे कि इस अकल्पनीय सचित्त जल को मैं कैसे पीऊँ ? क्यों कि—

“ एगंमि उदगविंदुम्मि, जे जीवा जिणवरेहि पन्नत्ता ।

ते सरिसवपरिमित्ता, जंबुद्वीवे न मायंति ॥ १ ॥ ”

एक जल के चिन्दु में जितने जीव जिनेन्द्र भगवान ने वतलाये हैं वे यदि सरसों के आकार को धारण करलें तो इस जंबूद्वीप में नहीं समा सकते हैं ॥१॥

मुनिनां वचन सांभलीने धनप्रियमुनिचे पाणी पीवानी जरा पणु धिच्छा न करी आ परिस्थितिने जेध धनमित्रमुनिचे विचार कर्यो के, आ भारी सामे पाणी पीये नही भाटे अहीथी आलवुं जेधे जेथी तेज्या सुका भाजेथी नहीने पार करीने आगण आल्या. आ पधी धनप्रियमुनिचे जणपान करवा भाटे नहीभां प्रवेश कर्यो अने हाथभां पाणी लथ दया लावथी विचारवा लाव्या के, आ अकल्पनीय सचित्त पाणी हुं केथी रीते पीठं केभके कहुं छे के—

एगंमि उदगविंदुम्मि, जे जीवा जिणवरेहि पन्नत्ता ।

ते सरिसव परिमित्ता, जम्बुद्वीवे न मायन्ति ॥ १ ॥

जणना जेक टीपाभां जेटला एव एनेन्द्र भगवाने जताव्या छे ते कदाय सरसवना आकारने धारण करीत्ये तो आ जम्बूद्वीपभां समाध न शके. ॥१॥

जत्थ जलं तत्थ वणं, जत्थ वणं तत्थ णिच्छियो तेऊ ।

तेऊ वाउसहगओ, तसा य पच्चक्खया चेव ॥ २ ॥

छाया—यत्र जलं तत्र वनं, यत्र वनं तत्र निश्चितं तेजः ।

तेजो वायुसहगतं त्रसाश्च प्रत्यक्षका एव ॥ २ ॥

व्याख्या—यत्र जलं तत्र वनं=वनस्पतिः, यत्र वनस्पतिस्तत्र निश्चयेन तेजो=वह्निः, यत्र तेजस्तत्र वायुः सहयोगित्वात्, त्रसास्तु प्रत्यक्षा एव सन्ति ॥२॥

हंतूण परप्पाणे, अप्पाणं जो करेइ सप्पाणं ।

अप्पाणं दिवसाणं, कए य नासेइ सप्पाणं ॥ ३ ॥

छाया—इत्वा परमाणान्, आत्मानं यः करोति सप्राणम् ।

अल्पानां दिवसानां, कृते नाशयति स्वात्मानम् ॥ ३ ॥

व्याख्या—तस्मात् परमाणान् इत्वा यः आत्मानं सप्राणं=सबलं करोति, स अल्पानां दिवसानां कृते स्वात्मानं नाशयति ॥३॥

“जत्थ जलं तत्थ वणं, जत्थ वणं तत्थ णिच्छओ तेऊ ।

तेऊवाउ सहगओ, तसा य पच्चक्खया चेव ॥ २ ॥”

जहां जल है वहां निश्चित वनस्पति है । जहां वनस्पति है वहां निश्चित तेज-अग्नि है । जहां तेज है वहां निश्चित वायु है । त्रसकाय तो प्रत्यक्ष ही है ॥२॥

“हंतूण परप्पाणे, अप्पाणं जो करेइ सप्पाणं ।

अप्पाणं दिवसाणं, कए य नासेइ सप्पाणं ॥ ३ ॥”

जो दूसरे जीवों के प्राणों का हनन कर कुछ ही दिनों के लिये अपने आपको सबल बनाने की चेष्टा करता है वह अपने आपका विनाश करता है ॥३॥

जत्थजलं तत्थ वणं, जत्थ वणं तत्थ णिच्छओ तेऊ ।

तेऊ वाउसहगओ, तसाय पच्चक्खया चेव ॥ २ ॥

ज्यां जण छे त्यां वनस्पतिनुं छोपुं निश्चित छे, ज्यां वनस्पति छे त्यां तेज अग्नि निश्चित छे. ज्यां तेज छे. त्यां वायुं निश्चित छे. त्रसकाय तो प्रत्यक्ष छे ॥२॥

हंतूण परप्पाणे, अप्पाणं जो करेइ सप्पाणं ।

अप्पाणं दिवसाणं, कए य नासेइ सप्पाणं ॥ ३ ॥

जो जीव श्रवणा प्राज्ञेनी विराधना करीने थोडा दिवसो भाटे पोते पोतानी जतने सज्ज अनाववानी थोडा करेछे ते पोते पोतानी जतने विनाश करेछे ॥३॥

अहो! दुर्लभा संयमप्राप्तिः, ततोऽपि संयमरक्षणं दुर्लभतरं, तच्चापूकायविराधनया पटूकायविराधनायां सत्यां न भवितुं शक्यते, संयमरक्षणाभावे सर्वेषां महाव्रतानां भङ्गः स्यात्, ततश्च चतुर्गतिकसंसारपरिभ्रमणं भविष्यति। यस्मान्नेदं जलं पास्यामीति निश्चित्यासीं मुनि रञ्जलितो जलं नद्यामेव यतनया मुमोच। स लघुवृषस्कोऽपि महीनयैर्यः शुष्कमार्गेण तां नदीमुत्तीर्य तत्तीर एव पिपासया गन्तुमक्षमः सन् भूमौ निपतितः।

इस प्रकार विचार कर धनप्रियनामक लघुमुनिने यह भी विचार किया कि इस संसार में जीवों को एक तो संयम की प्राप्ति होना दुर्लभ है, और उसकी अपेक्षा संयम की रक्षा महान् दुर्लभ है। मैं कच्चा पानी पीऊँ तो अपूकाय की विराधना होती है अपूकाय की विराधना में पटूकाय की विराधना अवश्य होती है, पटूकाय की विराधना से संयम की रक्षा नहीं हो सकती। जहाँ संयम की रक्षा नहीं है वहाँ समस्त महाव्रतों का भंग है। इनके भंग से संसारपरिभ्रमण अवश्य होता है, अतः मैं तो इस जलको नहीं पीऊँगा। इस प्रकार निश्चय कर लघुमुनि ने बड़ी ही यतना से अंजलि में लिये हुए जल को उसी नदी में छोड़ दिया। उस समय उनकी आयु कोई अधिक नहीं थी परंतु धैर्य की मात्रा हृदय में बढी हुई थी इस लिये यथा कथंचित् वे शुष्कमार्ग से होकर नदी को पार करके दूसरे तीर पर आगये। परन्तु प्यास ने इतनी प्रवलता धारण की कि वे आगे मार्ग पर नहीं चलसके और

आ प्रकारने विचार करी धनप्रिय नामना नाना मुनिये अये। विचार करीं के, आ संसारमां लयेने अेक तो संयमनी प्राप्ति थवी दुर्लभ अे अने तेनी अपेक्षा संयमनी रक्षा मडान दुर्लभ अे। हुं कायुं पाष्ठी पीठं तो अपूकायनी विराधना थाय अे, अपूकायनी विराधनामां पटूकायनी विराधना अवश्य अने अे। पटूकायनी विराधनाथी संयमनी रक्षा थती नथी। न्यां संयमनी रक्षा नथी त्यां समस्त मडानतोने लंग अे। तेना लंगथी संसार परिभ्रमण अवश्य थाय अे। माटे हुं तो आ नजने पीथथ नडीं। आ प्रकारने निश्चय करी लघु मुनिये पूषण यतनाथी जोषामां लीधेव पाष्ठीने ते नदीमां छोडी डीधुं। आ समये तेनी ठंमर कांठं मोटी न डती परंतु धैर्यनी मात्रा हृदयमां वधेवी डती। आ कारले आगण डडेवामां आन्या प्रमाले सुका मार्गथी नदीने पार करी सामा कांठं पडोथी गयां, परंतु तरस अेटला नेरथी लागी डती के आने

अथ पिपासाविवशोऽपि धर्मे निश्चलमतिरसौ पञ्चनमस्कारस्मरणपूर्वकं समाधिभावेन देहं विहाय प्रथमकल्पे वैमानिकदेवत्वेन समुत्पन्नः । ततोऽवधिज्ञानेन स्वपूर्वभवं चिन्ताय तेन धनप्रियेण देवेन सर्वेषां मुनीनामनुग्रहार्थं वैक्रियशक्त्या पथि गोकुलं निर्मितम् । अथ सपरिवारो मित्रगुप्ताचार्यः पुरतो गोकुलं दृष्ट्वा तत्र शुद्धतक्रादि गृहीत्वा पिपासां निवार्य चलितः । अथ तेन देवेन स्वपरिचयार्थमेकस्य साधोरासनं विस्मारितम् । येन मुनिनाऽऽसनं विस्मृतम् , स च स्वासनान्वेषणार्थं पुनर्गोकुलस्थानमागत्य गोकुलमपश्यन् प्रत्यावृत्तः सर्वान् मुनीनब्रवीत्-नास्ति तत्र वहीं पर गिर पडे । पिपासा से विवश होने पर भी इनकी मति धर्म में निश्चल बनी रही, पंचनमस्कार मंत्र का स्मरण करते हुए इन्होंने समाधिभाव से काल को प्राप्त किया । पिपासापरीपह को सहन करने के प्रभाव से ये प्रथमकल्प में वैमानिक देव हुए । अवधिज्ञान से अपने पूर्व भव को जानकर उस लघुमुनि के जीव देव ने समस्त मुनियों की रक्षा के लिये अपनी वैक्रियिक शक्ति से मार्ग में गोकुल की रचना कर दी । सपरिवार मित्रगुप्ताचार्य ने आगे गोकुल देखा ।

वहां से शुद्ध तक्र आदि को लेकर अपनी पिपासा को शांत किया, एवं आगे विहार करना प्रारंभ कर दिया । किसी ने भी यह नहीं जाना कि यह सब देवकृत माया है, अतः देव ने अपने परिचय के निमित्त एक साधु को अपना आसन विस्मृति करा दिया । जो मुनि वहां पर आसन भूल गया था वह उस आसन को लेने के लिये पीछे उस स्थान पर आया तो क्या देखता है कि यहां पर तो कोई

लघु ते आगण भागे' आली शक्या नहीं' अने त्यां न पडी गया. तरसथी विवश बनवा छतां पद्यु तेनी मति धर्ममां निश्चल बनी रही. पंचनमस्कार मंत्रनुं स्मरण करीने तेमछे समाधी लावथी काणधर्म प्राप्त कथी. तरसना परीपडने सहन करवाना प्रलावथी ते प्रथम कल्पमां वैमानिक देव थया. अवधिज्ञानथी पोताना पूर्वभवने लक्ष्मीने ते लघुमुनिना एव देवे समस्त मुनियोना अनुग्रह भाटे पोतानी वैक्रियिक शक्तिथी भागेमां गोकुलनी रचना करी. सपरिवार मित्रगुप्ताचार्ये आगण गोकुल जेयुं अने त्यांथी शुद्ध छाश आदि लघने पोतानी तरसने छिपावी. अने आगण विहार करवा लाग्या. कोछे अने न लक्ष्युं के आ अधी देवकृत माया हती. आथी देवे पोताना परिचय निमित्त एक साधुने तेनुं आसन बुलावी दीधुं. ने मुनि आसन बुली गया हता ते मुनि त्यां आसन देवा भाटे पाछा आव्या तो शुं देजे छे के त्यां को गोकुल

पूर्वदृष्टं गोकुलम् । तदा तद्वचनेन सर्वैरपि साधुभिर्ज्ञातगोकुलाभावैस्तत्र काचिदेव शक्तिर्विदिता । सर्वैस्तत्पिण्डभोजनस्य प्रायश्चित्तं कृतम् । ततस्तत्रागत्य तेन देवेन संसारावस्थायां तातं स्वगुरुं मुक्त्वा सर्वे साधवो वन्दिताः । किं कारणं त्वया नायं वन्दितः ? एवमाचार्येण पृष्टोऽसौ सर्वं स्ववृत्तान्तं सचित्तजलपानार्थं पितुः प्रेरणं च सर्वेषां साधूनां पुरस्ताद् कथयित्वा देवलोकं गतः । एवमन्यैरपि मुनिभिस्तृपापरीपहः सोढव्यः ॥ ५ ॥

शुधापिपासापरीपहसहनेन कृशशरीरस्य साधोः शीतकाळे शीतमपि बहु वा-
धते, इति शीतपरीपहजयं प्राह—

गोकुल नहीं है । वह शीघ्र ही पीछे वहां से वापिस लौटा और अपने आचार्य के पास आकर इस बात को कहा कि अब तो वहां पर कोई गोकुल नहीं है । साधुओं ने जब यह बात सुनी तो उन्होंने ने यह निश्चित किया कि अवश्य इसमें कोई देव की माया थी। सब ने मिलकर इसका प्रायश्चित्त लिया, क्यों, कि इन सब ने वहां से पहिले तक्रादि को ग्रहण किया था। बाद में देव ने आकर अपने संसार अवस्था के पिता-धन-मित्र मुनि को छोड़कर वाकी के समस्त साधुओं को वंदना की। आचार्य ने पूछा धनमित्र मुनि को वंदन क्यों नहीं किया? तब उस देव ने समस्त पहिले का वृत्तान्त जो धनमित्र मुनि ने सचित्त जल को पीने के लिये अपने शिष्य धनप्रिय को मुनि की अवस्था में कहा था आचार्य के समक्ष कह दिया। कह कर फिर यह स्वर्ग को वापिस चला गया। इसी प्रकार अन्य मुनियों को भी तृपापरीपह का विजय करना चाहिये ॥ ५ ॥

नथी. ते ज्येष्ठ वपते पाछा इर्यां अने पोताना आचार्यनी पासे आवीने कहुं
के, त्यां तो केडि गोडुण नथी. साधुज्येष्ठे न्यारे आ वात सांभणी तो तेज्येष्ठे
ज्येष्ठुं नळी कथुं के, अवश्य आमां केडि देवनी माया હતી, સહુજ્યે મળીને
તેણું પ્રાયશ્ચિત્ત લીધું. કારણ કે, તે સહુજ્યે ત્યાંથી છાસ આદિ વસ્તુ ગ્રહણ કરેલ
હતી. બાદમાં દેવે આવીને પોતાના સંસાર અવસ્થાના પિતા ધનમિત્ર મુનીને
છોડીને બાકીના સમસ્ત સાધુજ્યેને વંદના કરી, આચાર્યે પૂછ્યું કે, ધનમિત્ર
મુનીને વંદના કેમ ન કરી? ત્યારે તે દેવે પહેલાનો સમસ્ત વૃત્તાંત જે ધન-
મિત્ર:મુનિજ્યે સચિત્ત પાણી પીવા માટે પોતાના શિષ્યને મુનિ અવસ્થામાં કહ્યું હતું
તે આચાર્યે સમક્ષ કહી દીધું. આ કહીને તે પોતાના મુળધામ સ્વર્ગમાં ચાલ્યા
ગયા. આ પ્રકારે આ યમુનિજ્યે પણ તૃપાપરીપહનો વિજય કરવો જોઈએ. ॥૫॥

મૂલમ્—‘ચરંતં વિરંયં લૂહં, સીયં ફુસઈ ઇગંયા ।

નાઈ વેલં” મુળી ગંચ્છે, સોઘા ણં જિણંસાસણં ॥૬॥

છાયા—ચરન્તં ચિરંતં રૂઢં, શીતં સ્પૃશતિ એકદા ।

નાતિવેલં મુનિર્ગચ્છેત્ શ્રુત્વા લલ્લ જિનશાસનમ્ ॥ ૬ ॥

ટીકા—‘ચરંતં’ ઇત્યાદિ ।

ચરન્તં=મોક્ષમાર્ગે, ગ્રામાનુગ્રામં વા વિહરન્તં, ચિરંતં=સાવધયોગતો નિવૃત્તમ્-
અગ્નિમજ્વાલનાદિભ્યો નિવૃત્તમિત્યર્થઃ, રૂઢં=સ્નિગ્ધાહારતૈલામ્બ્યદ્ગપરિહારેણ ધૂસરાન્નં
મુનિમ્, એકદા=શીતકાલે, શીતં સ્પૃશતિ=પીડયતિ ।

શીતકાલે હિ વનસ્પતયો હિમનિપાતેન પરિતઃ પરિશુષ્કા ભવન્તિ, પથિકાઃ
સંકોચિતપાણયઃ પદૈકમપિ ગન્તુમસમર્થાઃ પદ્મુવત્ તત્ર તત્રૈવ તિષ્ઠન્તિ, કેચિત્
ક્ષવણદન્તવીણિકાઃ કમ્પમાનગાત્રાઃ કૃશાનુસેવનાય તદભિમુલ્લં શલભા ઇવાપતન્તિ ।

ક્રુધા એવં પિપાસા પરીપહ કે સહન કરને સે મુનિ કા શરીર કૃશ
હો જાતા હૈ ઇસસે શીતકાલ મેં શીત કી પીડા વહુત હોતી હૈ ઇસલિયે
તીસરે શીતપરીપહ કો જીતના ચાહિયે; યહી વાત ઇસ નીચે કી ગાથા
સે સૂત્રકાર પ્રકટ કરતે હૈ—

‘ચરંતં વિરંયં’ ઇત્યાદિ.

અન્વયાર્થ—(ચરંતં વિરંયં—ચરન્તં ચિરંતં) મોક્ષ માર્ગ મેં અથવા એક
ગ્રામ સે દૂસરે ગ્રામ મેં વિહાર કરને વાલે તથા સાવધયોગ સે વિરક્ત એવં
(લૂહં-રૂક્ષમ્) સ્નિગ્ધાહાર તૈલમર્દન આદિકે ત્યાગ સે ધૂસર શરીર વાલે
એસે મુનિ કો (ઇગયા-એકદા) શીતકાલ મેં (સીયં ફુસઈ-શીતં સ્પૃ-
શતિ) શીત પીડિત કરતા હૈ । ઉસ સમય વહ મુનિ (ણં-લલ્લ) નિશ્ચ-

ભૂખ અને તરસ સહન કરનારા મુનિનું શરીર ડુર્બળ બની જાય છે, અને
ડુર્બળ શરીરવાળાને ઠંડિથી બહુ પીડા થાય છે. આથી ત્રીજો ઠંડિના પરિપહને
મુનિએ શ્રુતવો જોઈ એ. એવી વાત સૂત્રકાર નીચેની ગાથાથી પ્રગટ કરે છે.

ચરંતં વિરંયં ઇત્યાદિ.

અન્વયાર્થ—ચરંતં વિરંયં—ચરંતં ચિરંતં મોક્ષમાર્ગ અથવા એક ગામથી બીજા
ગામે વિહાર કરવાવાળા તથા સાવધ યોગથી વિરક્ત અને લૂહં-રૂક્ષમ્ સ્નિગ્ધાહાર
તૈલમર્દન આદિના ત્યાગથી ધૂસર શરીરવાળા એવા મુનિને ઇગયા-એકદા શીતકાળમાં
સીયં ફુસઈ-શીતં સ્પૃશતિ શીતકાળ પીડિત કરે છે. તે સમયે તે મુનિ ણં-લલ્લ

वायवश्च तुपारासारसंगादतिशय शिशिराः प्राणिनां शरीराणि परितः सात्तिशयं पीडयन्ति । अनन्तरशीतपातजनितव्यथावारणाय बालकाः काष्ठखण्डादीनि समाहृत्यैकत्र वह्निं प्रज्वाल्य प्रसारितपाणयस्तापमासेवन्ते । यत्र प्रतिक्षणं प्राणिनां प्राणाः प्रखर शीतवेदनाभिरुद्विग्ना भवन्ति ।

तदा स मुनिः खलु=निश्चयेन, जिनशासनं जिनवचनरहस्यं श्रुत्वा 'अनेन ममात्मना नरकनिगोदादौ तीव्रतरा अनन्तवेदना अनन्तवारमनुभूता' इति विभाव्य, अतिवेलं=वेलाऽतिक्रमणं न गच्छेत्=न प्राप्नुयात्-प्रतिलेखनादे र्यः कालस्तं शीतभयादुल्लङ्घयाऽन्यस्मिन् काले प्रतिलेखनादिकं न कुर्यादित्यर्थः । यद्वा-शीतभयात् पूर्वोपविष्टस्थानं विहाय स्थानान्तरं न व्रजेदिति ।

'चरंतं' इत्यनेन कारणं विना एकत्रावस्थानं न करणीयमिति सूचितम् ।

'विरयं' इत्यनेन यतनावच्छं सूचितम् ।

यसे (जिनशासनं सोच्चा-जिनशासनं श्रुत्वा) जिन शासक को- 'इस मेरी आत्मा ने नरक निगोद आदि स्थानों में तीव्रतर अनन्त वेदनाएँ अनन्तवार भोगी हूँ उस वेदना के सामने यह शीतवेदना क्या अधिक है ?' इस बात को सुनकर-समझकर (अइवेलं-अतिवेलम्) समय को उल्लंघन करके-प्रतिलेखना आदि के समय को टालन करके (न गच्छे-न गच्छेत्) प्रतिलेखना आदि का जो समय है उसके सिवाय अन्य समय में प्रतिलेखनादिक क्रियाओं को न करे । तथा शीत के भय से पूर्वाधिष्ठित स्थान का परित्याग कर दूसरे स्थान में भी न जावे ।

गाथा में रहे हुए "चरंतं" इस पदद्वारा सूत्रकार यह प्रदर्शित करते हैं कि मुनि को कारणविशेष विना एक जगह स्थिररूप से नहीं

निश्चयथी जिनशासनं सोच्चा-जिनशासनं श्रुत्वा एन शासनने आ भारा आत्माओ नरक निगोद आदि स्थानोभां तीव्रतावाणी अनन्त वेदनाओ धरुी वपत लोगवी छे ते वेदनाओ सामे आ शीत वेदना क्या डिसाभभां छे ? आ वातने सांलणी सभए अइवेलं-अतिवेलं समयनुं उल्लंघन करी प्रतिलेखना आदिना समयने टाणीने न गच्छे-न गच्छेत् प्रतिलेखना आदिने ओ समय छे तेना सिवाय भीज सभयभां प्रतिलेखनादिक क्रियाओने न करे. तथा ठंडीना लयथी पूर्वाधिष्ठित स्थानने त्याग करीने भीज स्थानभां न जाय.

गाथाभां रहेवा "चरंतं" ओ पदद्वारा सूत्रकार ओ प्रदर्शित करेछे के, मुनिये कारण विशेष विना ओके जगह स्थिर रूपथी रोकवुं न जेछेओ.

‘लूहं’ इत्यनेन तपश्चरणशीलत्वं प्रवेदितम् ॥ ६ ॥

‘मुणी’ इत्यनेन सावद्यकार्यं मौनस्यमिति बोधितम् ।

मूलम्—‘न मे’ निवारणं अस्ति, छवित्ताणं न विज्जए ।

अहं तु अग्निं सेवामि, इइ भिक्खू नं चिंतए ॥७॥

छाया—न मे निवारणम् अस्ति, छवित्राणं न विद्यते ।

अहं तु अग्निं सेवे, इति भिक्षुर्न चिन्तयेत् ॥ ७ ॥

टीका—‘न मे’ इत्यादि ।

मे=मम, निवारणं=शीतनिवारकं स्थानं नास्ति, तथा—छवित्राणं=शरीराच्छा-
दनकं वस्त्रकम्बलादिकं न विद्यते । तु=पुनः, अग्निं सेवे=अग्निं प्रज्वालय तत्तापमा-
श्रयेय, इति=एवं, भिक्षुर्न चिन्तयेत्=मनसापि न प्रार्थयेत् । चिन्ताप्रतिषेधेन
तत्सेवनं तु दूरत एव निराकृतम् ।

ठहरना चाहिये। “विरयं” इससे मुनिको यतनावान् होना चाहिये यह
सूचित किया गया है। “लूहं” पद से तपश्चरण शीलता एवं “मुणी”
इस पद से सावद्यकार्य में मौन रखना यह सूचित किया गया है ॥ ६ ॥

‘न मे निवारणं’ इत्यादि.

अन्वयार्थ—(मे-मम) मेरे पास (निवारणं-निवारणम्) शीत को दूर करने
वाला स्थान (न अस्ति-नास्ति) नहीं है (छवित्ताणं न विज्जए-छवित्राणं
न विद्यते) शरीर को आच्छादान करने वाला वस्त्र एवं कम्बल आदि भी
नहीं है अतः (अहं तु अग्निं सेवामि-अहंतु अग्निं सेवे) मैं अग्नि का
'सेवन करूँ (इइ-इति) इस प्रकार (भिक्खू-भिक्खुः) साधु (न चिंतए-न
'चिन्तयेत्) मन से भी विचार न करे, उसके सेवन की बात तो दूर रही।

“विरयं” अनाथी मुनिये यतनावान् अनपुं लोठं ओ. अपुं सूचित करवाभां
आवुं छे “लूहं” पदथी तपश्चरण शीलता अने “मुणी” आ पदथी सावद्य
कार्यं भां मौन राअपुं ओ सूचित करवाभां आवेल छे.

नमे निवारणं इत्यादि.

अन्वयार्थ—मे-मम भारी पासे निवारणं-निवारणम् ङंठीथी अथावी शक्रे तेडुं
स्थान न अस्ति-नास्ति नथी, छवित्ताणं न विज्जए-छवित्राणं न विद्यते शरीर उपर ओ।७वा
भाटे वस्त्र ताथा कम्बल वगेरे पथु नथी. आथी अहंतु अग्निं सेवामि-अग्निं सेवे
अग्निपुं सेवन करे इइ-इति आ प्रकारने। मनथी पथु भिक्खू-भिक्खु मुनि न
चिंतए-न चिन्तयेत् विचार न करे. तेना सेवननी बात तो दूर रही.

अयं भावः—शीते महत्यपि पतति सति जीर्णवसनः परित्राणवर्जितो नाकल्प्यानि वसनानि गृह्णीयात् शीतत्राणाय । आगमविहितेन विधिना एषणीयमेव यथाकल्पं गवेपयेत् परिशुञ्जीत वा । नापि शीतार्तोऽग्निं ज्वालयेत्, अन्यज्वालितं वा नासेवेत । एवमनुतिष्ठता शीतपरीपहजयः कृतो भवतीति ।

अत्र ' भिक्खू ' इत्यनेन निरवद्यभिक्षाग्रहणशीलत्वं सूचितम् ।

अत्र दृष्टान्तः—

चतुर्यारके-राजगृहे नगरे चत्वारः कुवेरदत्तश्रेष्ठिपुत्राः कुवेरसेन-कुवेरमित्र-कुवेरवल्लभ-कुवेरप्रियनामानो भद्रगुप्ताचार्यसमीपे जिनोक्तं धर्मं श्रुत्वा प्रव्रजिताः ।

इस का भाव यह है कि जब शीतकाल में शीत पड़ता है उस समय जीर्णवस्त्र वाला एवं शीत की रक्षा के साधनों से रहित साधु अकल्पनीय वस्त्रों को शीत की रक्षा निमित्त ग्रहण नहीं करे। आगम में विहित विधिके अनुसार जो एषणीय हों तथा साधु के लिये कल्पनीय हों उन्हें ही ग्रहण करें। ठंड से पीड़ित होने पर भी अग्नि को न जलावे तथा दूसरों द्वारा जलाई गई अग्नि का भी सेवन नहीं करें। ऐसा करने से ही साधु शीतपरिपहविजयी माना जाता है। गाथा में रहे हुए-भिक्खूपद से सूत्रकार ' भिक्षु को निरवद्य भिक्षा ही ग्रहण करना चाहिये ' यह सूचित करते हैं ।

इस विषय पर यहां दृष्टान्त दिया जाता है—राजगृह नगरमें कुवेरदत्त नामक एक सेठके कुवेरसेन, कुवेरमित्र, कुवेरवल्लभ, कुवेरप्रिय

आने लोव ओ छे के, न्यारे शीतकालमां ठंडी पडे छे ओ समये लुण्णं वस्त्र-वाणा अने ठंडीनी रक्षाना साधनेथी रहित साधु अकल्पनीय वस्त्रोने ठंडीनी रक्षा निमित्ते अडलु न करे. आगममां कडेवायेक विधि अनुसार ने ओषणीय डोय तथा साधु माटे कल्पनिय डोय तेने न अडलु करे. ठंडीथी पिडीत डोवा छतां पलु अजिने प्रगटावे नडीं तथा पीनओ द्वारा प्रगटाववामां आवेक अजिनुं पलु सेवन न करे. आ शीतनुं वर्तन राधनार साधु शीतपरीपहविजयी मानवामां आवे छे. गाथामां रहेक " भिक्खू " पदथी सूत्रकार ओम सूचित करे छे के, ' भिक्षुओ निरवद्य भिक्षा न अडलु करवी नोछओ. '

आ विषय उपर अडीं दृष्टांत कडेवामां आवे छे.

योथा आरामां-राजअड नगरमां कुवेरदत्त नामने ओक सेठ छतो. नेने कुवेरसेन, कुवेरमित्र, कुवेरवल्लभ अने कुवेरप्रिय नामे आर पुत्र छता. आ

તે શ્રુતમધીત્યાન્યદા કદાચિદેકાકિત્વવિહારાલ્યપ્રતિમાં સ્વીકૃતવન્તઃ । તદનન્તર-
મેકાકિત્વપ્રતિમયા વિહરન્તસ્તે પુનરપિ રાજગૃહનગરસમીપવર્તિનિ વૈભારગિરિપદેશે
વસતેર્યથાકલ્પમવગ્રહમવગૃહ્ય સંયમેન તપસાઽત્માને ભાવયન્તો વિહરન્તિ સ્મ । તદા
હેમન્તર્તુસ્તુપારાસારૈર્જનાન્ પીડયન્ , વનસ્પતીન્ પરિમ્લાનયન્ , પશુપક્ષ્યાદીન્ કા-
ષ્ટવજ્જડતાં પ્રાપયન્ , સર્વપ્રાણિપ્રાણાનુદ્વેજયન્નાસીત્ । તસ્મિન્ સમયે તે ચત્વારો
મુનયસ્તૃતીયયામે ભિક્ષાચર્યાથં રાજગૃહનગરં પ્રવિષ્ટાઃ, તથ ભિક્ષાં ગૃહીત્વા કૃતા-
નામકે ચાર પુત્ર થે । ઉન ચારો પુત્રો ને ભદ્રગુપ્ત આચાર્ય કે સમીપ ધર્મ
કા શ્રવણ કર મુનિદીક્ષા ધારણ કી । શાસ્ત્રોં કા અચ્છી તરહ સે
અધ્યયન કિયા ।

એક સમય કી વાત હૈ ઉન્હોં ને એકાકિત્વવિહાર નામ કી ભિક્ષુ
પ્રતિમા સ્વોકાર કી ઇસસે વે એકાકી હોકર વિહાર કરને લગે । વિહાર
કરતેર વે કિસી સમય પુનઃ રાજગૃહ નગર કે સમીપવર્તી વૈભારગિરિ
કી તલહટી મેં વસી હુઈ એક વસ્તી મેં આયે ઓર વહાં યથાકલ્પ અવ-
ગ્રહ-આજ્ઞા લેકર ઉતરે ઓર સંયમ એવં તપ સે આત્મા કો ભાતે હુએ
વિચરને લગે । યહ સમય હેમન્તઋતુ કા થા । તુપાર-હિમ કે છોટે ર
કળોં સે ઇસ સમય મનુષ્યોં કો અધિક કષ્ટ હોતા હૈ । વનસ્પતિયોં હિમ-
કળોં કે નિપાત સે દગ્ધ હો જાતી હેં । પશુ પક્ષી કાષ્ટ જૈસે જડ હો
જાતે હેં । તાત્પર્ય યહ કિ ઇસ ઋતુ મેં ઠંડ કી અધિકતા સે હરએક
પ્રાણી કો અધિક કષ્ટ કા અનુભવ હોતા હૈ । એસે સમય મેં વે ચારોં હી

ચારે પુત્રોએ ભદ્રગુપ્ત આચાર્ય પાસેથી ધર્મનું શ્રવણ કરી મુનિદીક્ષા ધારણ
કરી. શાસ્ત્રોનું સારી રીતે અધ્યયન કર્યું. એક સમયની વાત છે, તેઓએ
એકાકિત્વ વિહાર નામની ભિક્ષુ પ્રતિમા સ્વીકારી. આથી તેઓ ચારે એકાકી
બનીને વિહાર કરવા લાગ્યા. વિહાર કરતાં કરતાં કોઈ સમયે રાજગૃહ નગર
સમીપ રહેલી વૈભારગિરીની તળેટીમાં વસેલી એક વસ્તીમાં ગયા અને ત્યાં
યથાકલ્પ અવગ્રહ આજ્ઞા લઈને ઉતર્યા સંયમ અને તપથી આત્માને ભાવતા
વિચરવા લાગ્યા. આ સમયે હેમન્ત ઋતુ હતી. તુપાર હિમનાં નાનાં નાનાં
કણોથી આ સમયે મનુષ્યો અધિક કષ્ટ પામે છે. વનસ્પતિઓ હિમ કણોના
પડવાથી બળી બળે છે, પશુ પક્ષીઓ લાકડાં જેવા જડ થઈ બળે છે. મતલબ
એ કે, આ ઋતુમાં ઠંડીની અધિકતાથી દરેક પ્રાણીને વધુ કષ્ટનો અનુભવ
થાય છે. એવા સમયમાં એ ચારેય મુનિ દિવસના ત્રીજા ભાગમાં ।

हारास्ते सर्वे स्ववसतिं गन्तुं पृथक् पृथगेव प्रतिनिवृत्ताः तेषामेकस्य कुवेरसेनमुने-
 वैभारगिरिकन्दरान्तिकमुपगतस्य रात्रिः संजाता, अतस्तत्रैव सोऽतिष्ठत् । द्वितीयस्य
 कुवेरमित्रमुनेरुद्याने रात्रिः समजनि, अतस्तत्रैव सोऽतिष्ठत् । तृतीयस्य कुवेरवल्ल-
 भमुनेरुद्यानसमीपे, चतुर्थस्य कुवेरप्रियमुनेस्तु नगरसमीपे । तत्र वैभारगिरिकन्दरा-
 द्वारसमीपावस्थितस्य मुनेर्निपतत्तुपारसंपर्कशीतलैः शैलमारूढैः प्रकम्पितशरीरस्यापि
 मनो मेरुरिवनिष्कम्प मासीत् । यथा यथा शीतं प्रवर्धते, तथा तथा ऽऽत्मिकवलं
 प्रकाशयन् मनः सुस्थिरं कुर्वन् रणे वीर इव शत्रुं शीतं विजेतुं प्रोत्साहसंपन्नः सुधीरः
 शीतवेदनां सहमानोऽसौ मुनिः समाधिभावेन रात्रेः प्रथमयाम एव कालं गतः ।

मुनि दिवस के तृतीय प्रहर में भिक्षाचर्या के लिये राजगृहनगर में
 आये। वहां पर मिले हुए एषणीय आहार करके वे सब फिर वहां से
 एक पीछे एक वैभारगिरि के समीप जहां उतरे हुए थे वहां पहुँचने के
 लिए चले। इनमें कुवेरसेन मुनि को मार्ग में ही जब वे वैभारगिरि का
 कन्दरा के पास पहुँचे तो रात्रि हो गई, इसलिये वह वहीं पर ठहर गये।
 दूसरे कुवेरमित्रमुनि रात्रि हो जाने से वगीचे में ठहरे। वैसे ही तीसरे
 कुवेरवल्लभमुनि वगीचे के पास ठहरे। चौथे कुवेरप्रियमुनि रात्रि होने
 से राजगृह नगर के पास ही ठहर गये। वैभारगिरि की कन्दरा-गुफा के
 द्वार पर ठहरे हुए मुनिराज ने पड़ते हुए शीत के संपर्क से अत्यंत
 शीतल पर्वतीय वायु के वेग से कम्पितशरीर होने पर भी अपने मनको
 मेरु के समान निष्कम्प बनाते हुए उस शीत को प्रबलता का सामना
 किया। जैसे २ शीतकी अधिकता होती जाती थी, उस उस रूप से

भाटे राजगृह नगरमां आव्यां। त्यांथी भजेल शेषणीय आहार करीने ते सधणा
 इरी पाछा श्रेक पछी श्रेक वैभारगिरीनी समीप न्यां तेओ उतथां हता त्यां
 पडोचवा भाटे आली नीकल्या। तेमांथी कुवेरसेन मुनिने मार्गमां रात्रि पडी
 नवाथी वैभारगिरीनी कंदरानी पासै शैकार्थ गया। थीन कुवेरमित्र मुनि रात्रि
 थवाथी गगीथामां शैकार्थ गया, शेवी न रीते त्रीन कुवेरवल्लभ मुनि गगी-
 थानी पासै शैकार्थ गया, थोथा कुवेरप्रियमुनि रात्रि थर्थ नवाथी राजगृह
 नगरनी पासै न शैकार्थ गया वैभारगिरि कंदराना मुप द्वार पासै शैकार्थ
 गयेला, मुनिराजे इंडीना संपर्कथी अत्यंत शीतल पर्वतीय वायुना वेगथी कंपीत
 शरीर डोवा छतां पछ पोताना मनने भेइ समान अउग रापी इंडीनी प्रणणताने
 सामने कथे। नेभ नेभ इंडीनी अधिकता वधनी गर्ध ते ते इथी तेमनु आत्म।

उद्यानस्य तु नीचप्रदेशवर्तित्वाद् द्वितीययामे प्रयत्नतरं शीतं बाधते स्म, तदा सोऽपि पूर्वोक्तमुनिवन्निश्चलेन मनसा शीतवेदनां सहमानः समाधिभावेन द्वितीययामे कालगतोऽभवत् । एवमुद्यानसमीपसंस्थितस्तु तृतीययामे, एवं नगरासन्नस्तु-

उनका आत्मिककवल भी अधिकर विकसित होता जाता था। जिस प्रकार कोई उत्तम वीर रणाङ्गण में वैरी का सामना करता है, उसी प्रकार ये भी उस शीत का डटकर सामना कर रहे थे। सद्भावना में जरा सी भी शिथिलता इन्होंने ने नहीं आने दी। साम्हना करते २ ही वे मुनि समाधिभाव से कालधर्म को पाये १ ।

जो मुनिराज उद्यान में ठहरे हुए थे उन्हें शीत की वेदना ने द्वितीयप्रहर में सताया। जिस प्रकार प्रथम मुनिराज ने शीत की वेदना सहन करने में निश्चलता धारण की, उसी प्रकार इन्होंने भी उसके सहन करने में निश्चलता धारण की। अन्त में समाधिभाव से ये भी कालधर्म पा गये २ ।

जो मुनिराज उद्यान के समीप ठहरे हुए थे, उन्हें शीत की वेदना रात्रि के तृतीय प्रहर में सताने लगी, और नगर के पास ठहरे हुए मुनिराज को शीत वेदना ने रात्रि के चतुर्थ प्रहर में सताना शुरू किया। इस प्रकार ये दोनों मुनिराज भी शीतपरीपह को जीतते २ ही समाधिभाव से अन्त में कालधर्म को प्राप्त हुए ४ । ये चारों के चारों ही अनुत्तर

अण पञ्च अधिक इपथी विकसतुं अतुं इतुं. वे रीते कोष्ठ उत्तम वीर रञ्जुंगणुमां वैरीना सामने करे छे तेवा प्रकारे मुनि पञ्च इंडीना अवी अ रीते सामने करी रक्षा इता. सद्भावनामां जरा पञ्च शिथिलता तेमण्णे आववा न दीधी. सामने करतां करतां ते मुनि समाधि भावथी काण धर्म पाभ्या.

वे मुनि अगीच्यामां रक्षा इता. तेमने इंडीनी वेदना अनी प्रहरमां थर्. वे प्रकारे प्रथम मुनिराजे इंडीनी वेदना सहन करवामां अडगता धारण करी तेवी अ रीते आभण्णे पञ्च अडगता दाअवी अने छेवटे समाधिभावथी काणधर्म पाभ्या.

वे मुनिराज अगीच्यानी अंडार रोक्याया इता तेमने इंडीनी वेदना रात्रीना अनी पडोरमां थवा लागी अने नगरनी पासे रोक्येला मुनिराजने इंडीनी वेदना थोथा पडोरे सताववा लागी. आ प्रकारे आ अने मुनिराज पञ्च इंडीना परीपडने अततां अततां समाधि भावथी अते काणधर्मने पाभ्या. आ रीते

ચતુર્થયામે । સર્વેऽપ્યેતે વિજિતશીતપરીપદ્ધાઃ કાલં કૃત્વાऽનુત્તરવિમાનેષુ એકમવા-
વતારિત્વેન સમુત્પન્નાઃ । એવમન્યૈરપિ મુનિભિઃ શીતપરીપદ્ધઃ સોઢન્યઃ ॥ ૭ ॥

શીતકાલાનન્તરં ગ્રીષ્માગમો ભવતીત્યતઃ શીતપરીપદ્ધાનન્તરમુષ્ણપરીપદ્ધ
જયં પ્રાહ—

મૂલમ્—ઉસિણપરિયાવેણં, પરિદાહેણ તૈજિણ ।

ધિંસુ વાં પરિયાવેણં, સાયં નો પરિદેવણ ॥ ૮ ॥

છાયા—ઉષ્ણપરિતાપેન, પરિદાહેન તર્જિતઃ ।

ગ્રીષ્મે વા પરિતાપેન, સાતં નો પરિદેવણ ॥ ૮ ॥

ટીકા—‘ઉસિણ૦’ ઇત્યાદિ ।

ગ્રીષ્મે=ઉષ્ણકાલે, યત્ર હિ-ભાસ્કરઃ કિરણનિકરૈર્દેહનં કિરન્નિવ ધરાતલેઽન્ગાર-
મકરમાસ્તૃણન્નિવ જીવજાતં પરિતાપયતિ, તરુગં પરિશોપયતિ, શુષ્કયતિ ચ ।

વિમાનોં મેં એકમવાવતારી રૂપ સે ઉત્પન્ન હુણ । ઇસી પ્રકાર અન્ય મુનિયો
કો ભી શીતવેદના કે સહન કરને મેં અપના પરાક્રમ ફોડના ચાહિયે ॥૭॥

શીતકાલ કે વાદ હી ગ્રીષ્મઋતુ કા આગમન હોતા હૈ અતઃ શીત-
પરીપદ્ધ કો સહન કરને કે વાદ ચૌથા ઉષ્ણપરીપદ્ધ ભી મુનિરાજ કો
સહન કરના ચાહિયે, યહ વાત ઇસ નીચે કી ગાથા દ્વારા સૂત્રકાર પ્રદ-
ર્શિત કરતે હૈ—‘ઉસિણ૦’ ઇત્યાદિ ।

અન્વયાર્થ—(ધિંસુ-ગ્રીષ્મે) ગ્રીષ્મકાલ મેં કિ જિસમેં સૂર્ય અપની પ્રચર
કિરણોં કે નિકર સે ઇસ સમસ્ત ભૂમણ્ડલ પર પ્રવલ તાપ કી વર્ષા કિયા
કરતા હૈ, સમસ્ત જીવ જિસમેં માનોં અગ્નિ તાપસે જલતે હોં, વૃક્ષસમૂહ
જિસ મેં શુષ્ક જૈસા હો જાતા હૈ। વિચારે પ્યાસે મોલે મૃગોં કે જુણ્ડ કે

એ ચારે મુનિરાજ અનુત્તર વિમાનમાં એકલવ અવતારી રૂપથી ઉત્પન્ન થયા. આ
પ્રકારે અન્ય મુનિઓએ પણ શીતવેદના સહન કરવામાં પોતાનું પરાક્રમ
બતાવવું જોઈએ. ॥૭॥

ઠંડીના વખત પછી ઉનાળાનો વખત આવે છે અહીં શીતપરીપદ્ધને
સહન કર્યો પછી ચોથો ગરમીના પરીપદ્ધને પણ મુનિરાજે સહન કરવો જોઈએ.
એ વાત નીચેની ગાથાથી સૂત્રકાર પ્રગટ કરે છે.—‘ઉસિણ૦’ ઇત્યાદિ.

અન્વયાર્થ—ધિંસુ-ગ્રીષ્મે ગ્રીષ્મ કાળમાં કે ન્યારે સૂર્ય પોતાનાં પ્રખર કિરણોથી
સમસ્ત ભૂમંડળ ઉપર પ્રબળ તાપની વર્ષા વરસાવે છે. સમસ્ત જીવ જોમાં
અગ્નિના તાપની માફક બળતા હોય છે, વૃક્ષ સમૂહ શુષ્ક બની બચ છે.

મૃગતૃષ્ણાભિરારચિતજલતરંગમાલાભિરિવ પ્રચલજ્જલધારા વિભ્રમમુપગતા મુઘમુગ-
યુયાઃ પિપાસયા પરિતઃ પ્રધાવન્તિ । મનુષ્યાઃ સ્વલુ પ્રાયશઃ પ્રચળડમાર્તઙ્કરનિક્ક-
રસંપર્કપ્રવરરજઃકળોપેતવાત્યાપરિઘટ્ટિતાઃ પ્રતપ્તભૂતલનિપતિતાઃ પિપાસયાSSસ-
ન્નમૃત્યવ ઇવ ભવન્તિ । યત્ર સ્વલુ વનસ્થલી પિપાસાવશવિભ્રમદ્વિર્વિવિષ્યપશુપક્ષ્યા-
દિભિઃ પરિશુષ્કતાહુરસનકળૈઃ સમાકુલા, નમસ્તલં ચ નાનાવિધ પત્રકાષ્ઠતૃણકચ-
વરોદ્ધૂલનકરપ્રતિકૂલમારુતધ્વનિસમાકુલં ભવતિ । તસ્મિન્નુષ્ણકાલે, વા શ્વદેન-
શરદિ વર્ષાસુ વા, ઉષ્ણપરિતાપેન=ઉષ્ણમ્-સૂર્યકિરણસંયોગાત્તપ્તં-ભૂમિધૂલિપાપાણા-

ક્રુષ્ણડ જિસમેં “યહ જલધારા વહ રહી હૈ” હસ પ્રકાર ભ્રમોત્પાદક
મૃગતૃષ્ણા સે પાગલ જૈસે વને હુણ્ ઇધર ઉધર દૌડને લગતે હૈં । જિસ
ઋતુમેં સૂર્ય કી પ્રચળડ કિરણોં સે ધૂપ સ્વૂવ પડતી હૈ જિસસે રેતી તપ
જાતી હૈ ઓર લૂ ચલને લગતી હૈ । સંતપ્ત રજકળ સે મિશ્રિત ઉસ લૂકે
વેગ સે વ્યાકુલ હોકર મનુષ્ય બી ઉસ તપી હુઈ ભૂમિ પર ગિર ગિર કર
પ્યાસ કે મારે મૂઝિત હો આસન્નમૃત્યુ જૈસે દિખાઈ દેને લગતે હૈં । જિસ
ગ્રીષ્મ કાલ મેં પિપાસા કે વશ જિનકે તાલૂ ઓષ્ઠ ઇવં કંઠ સૂચ રહે હૈં
ગર્મીં કે મારે મુંહ જિન કે ફટે હુણ્ હૈં ઓર જીભ લટક રહી હૈં ઇસે
પશુ પક્ષિયોં સે અટવી વ્યાપ્ત હો જાતી હૈ । તથા જિસમેં આકાશ
નાનાવિધપત્ર, કાષ્ઠ, તૃણ, કૂડા-કચરા આદિ કો ઉડાને વાલી પ્રતિકૂલ
વાયુ કી સનસનાહટ ધ્વનિ સે વ્યાપ્ત હો જાતા હૈ ઇસે ઉષ્ણકાલ મેં ।
(ઉસિળપરિઘાવેણં-ઉષ્ણપરિતાપેન) ઉષ્ણપરિતાપ સે-સૂર્ય કિરણોં કે

તરસથી ખીચારા લોણાં હરણુનાં ટોણાં “આ જળધાર વહી રહી છે” આ
પ્રકારના ભ્રમથી પાગલની માફક મૃગજળ રૂપી જળના આલાસ તરફ
દોડતાં રહે છે. જે ઋતુમાં સૂર્યના પ્રચંડ કિરણોથી ખૂબ તાપ પડે છે તેનાથી
રેતી તપે છે, અને લૂ ચાલવા લાગે છે, સંતપ્ત રજકળથી મિશ્રીત તે લૂના
વેગથી વ્યાકુળ બની મનુષ્ય પણ તે તપેલી ભૂમિ ઉપર તરસના માથાં પડી
જઈ મૂઝિંત થઈ આસન્ન મૃત્યુ જેવા દેખાય છે. જે ગ્રીષ્મકાળમાં અટવીમાં પીપા-
સાને વશ જેનું તાળવું, હોઠ અને કંઠ સુકાઈ જાય છે, ગરમીના માથાં મોઢું જેવું
ફાટી રહે છે અને જીભ લટકી જાય છે એવા પશુ પક્ષિઓથી વ્યાપ્ત થઈ જાય છે.
તથા જેમાં આકાશ જુદી જુદી ભતનાં પાંદડાં, લાકડું, ઘાસ, કચરા, પુંજ વગેરેને
ઉડાવવાવાળા પ્રતિકૂળ વાયુના સુસવોટા કરતા ધ્વનિથી વ્યાપ્ત થઈ જાય છે. એવા
ઉષ્ણકાળમાં “ઉસિળ પરિઘાવેણં-ઉષ્ણપરિતાપેન” ઉષ્ણ પરિતાપથી

दिकं, तेन परितापः—उष्णपरितापस्तेन तर्जितः, अत्यंत पीडितःसन्, तथा—
परिदाहेन=सूर्यकिरणसंतप्तवायुना 'लू' इति भाषाप्रसिद्धेन, दाहज्वरादिकृता-
न्तरिकतापेन वा, तर्जितः, तथा परितापेन=सूर्यकिरणादिजनिततापेन-तर्जितः,
सातं=सुखं प्रति न परिदेवयेत्=हा ! कदा मम चन्द्रचन्दनशीतलानिलादिभिः
सह संयोगो भविष्यति येन मम शान्तिः स्यादिति ॥ ८ ॥

उपदेशान्तरमाह—

मूढम्—उपहाहिततो मेहावी, सिंहाणं नो त्रि^३ पर्थेण ।

गायं नो परिस्त्रिचेज्जा, न वीएज्जा यं अप्पेयं ॥९॥

छाया—उष्णाभितप्तः मेधावी, स्नानं नो अपि प्रार्थयेत् ।

गात्रं नो परिपिञ्चेत्, न वीजयेच्च आत्मानम् ॥९॥

संयोग से तप्त ऐसे जो भूमि, धूलि, एवं पापाण आदि हैं उनके द्वारा जो परिताप-कष्ट होता है उससे, तथा (परिदाहेण) सूर्य की किरणों द्वारा गर्म हुई वायु से-लूसे, अथवा दाहज्वर आदि से होने वाले आन्तरिक ताप से (परियावेणं-परितापेन) एवं सूर्य की किरणों से उत्पन्न हुई अत्यंत गर्मी से (तज्जिण-तर्जितः) अतिशय पीडित साधु (सायं नो परिदेवण-शातं नो परिदेवयेत्) सुख की वाच्छा न करे-हा ! किस समय मुझे चन्द्र अथवा चंदन के समान शीतल पवनादि का संयोग मिलेगा कि जिस से मुझे शांति मिले । अर्थात्-साधु का कर्तव्य है कि वह हर एक अवस्था में उष्णपरीपह को जीते किन्तु इस से घबरावे नहीं ॥ ८ ॥

संयोगथी तपेल जेवी जे भूमि धूण अने पापाणुवाणी छे. तेना द्वारा जे कष्ट थाय छे, जेनाथी तथा “परिदाहेण” सूर्यना किरणो द्वारा गरम थयेला वायुथी लूथी, अथवा दाहज्वर आदिथी थनार आंतरिक तापथी परियावेणं-परितापेन अने सूर्यना किरणोथी उद्भवेन अत्यंत गरमीथी तज्जिण-तर्जितः अतिशय पीडित साधु “सायंनो परिदेवण-शातं नो परिदेवयेत्” सुभनी वांछना न करे-भने कया समये यं च अथवा चंदननी जेवी शीतल पवन आदिना संयोग भणे के जेथी भने शान्ती थाय. अर्थात्-साधुनु कर्तव्य छे के ते दरेक अवस्थाभां उष्ण परीपहने छते, परंतु तेनाथी गभराय नही. (८)

टीका—‘उष्हाहित्तो’ इत्यादि ।

मेधावी=आगमोक्तमर्यादानुवर्ती मुनिः, उष्णामित्तः=उष्णोत्त-उष्णस्पर्शन, अभित्तः-तापाकुलः सन् स्नानं नो प्रार्थयेत्=नैवाभिलषेत् । अपि च गात्रं-शरीरं, नो परिपिञ्चेत्-न जलैराद्रीकुर्यात् । च=पुनः आत्मानं-स्वदेहं न वीजयेत्=व्यजनादिना शरीरे वायुं नोदीरयेत् ।

अयं भावः-उष्णतप्तोऽपि मुनिर्जलावगाहनस्नानव्यजनवातादि वर्जयेत्, न च जलैर्गात्रं सिञ्चेत् । आतपवारणाय स्वदेहोपरि रजोहरणादिना छायां न कुर्यात् । न चापि छत्रादिकं धारयेत् । मनसाऽपि न प्रार्थयेत् किं तु उष्णपरीपहं सम्यक् सहेतेति ।

‘उष्हाहि०’ इत्यादि ।

अन्वयार्थ- (मेधावी-मेधावी) आगमोक्त मर्यादा का अनुसरण करने वाला मुनि (उष्हाहित्तो-उष्णामित्तः) उष्णस्पर्श से संतप्त होता हुआ भी (सिसाणं नो विपत्थए-स्नानं नोऽपि प्रार्थयेत्) स्नान की अभिलाषा न करे । तथा (गायं नो परिसिञ्चेज्जा-गात्रं नो परिपिञ्चेत्) अपने शरीर ऊपर पानी न छींटे तथा उसको गोला भी न करे और न गीले कपड़े से ही पोंछे । तथा (अप्पयं न वीएज्जा-आत्मानं न वीजयेत्) शरीर पर वीजना आदि से हवा भी न करे ।

इसका भाव यह है-उष्ण से संतप्त भी मुनि अचित्त जल का भी अवगाहन करना-उससे स्नान करना, वीजनादि से-पंखा आदि से हवा करना इन समस्त शीतलोपचारकारक क्रियाओं का परित्याग कर देवे । अपने शरीर पर गर्मी की वेदना को शमन करने के लिए शीतल जल के

“उष्हाहि” इत्यादि.

अन्वयार्थ-मेधावी-मेधावी आगमभां कडेल मर्यादानु अनुसरण करवावाणा मुनि उष्हाहित्तो-उष्णामित्तः उष्ण स्पर्शे संतप्त तथा छायां पक्षु सिसाणं नो विपत्थए-स्नानंनोऽपि प्रार्थयेत् स्नानंनो अभिलाषा न करे गायं नो परिसिञ्चेज्जा-गात्रं नो परिपिञ्चेत् पोताना शरीर उपर पाष्णी न छांटे तेम येने लीनुं पक्षु न करे के न तो लीना कपडाथी छुछे, तथा “अप्पयं न वीएज्जा”-आत्मानं न वीजयेत् शरीर उपर वीजणा वजेरेथी डवा पक्षु न नाजे.

आनो भाव ये छे-उष्णताथी संतप्त भनेल मुनिअ पाष्णीने आशरीर देवे, येनाथी स्नान करवुं, पंखा आदिथी डवा भावी आ समस्त शीतण उपचार करके क्रियाअनो परित्याग करवे। पोताना शरीर उपर गरमीनी वेदनानु शमन करवा भाटे शीतण वणने छांटे पक्षु न देवे, आतपनुं वारण

अत्र दृष्टान्तः—

आसीत् तगरानगर्यां दत्तनामकः श्रेष्ठी । तस्य भद्राभार्यायामरहन्नक नामकः पुत्रो जातः । एकदाऽसौ दत्तश्रेष्ठी भार्यापुत्राभ्यां सहार्हन्मित्राचार्यसंनिधौ धर्मदेशनां निश्चयं विरक्तः सन् प्रव्रज्यां गृहीतवान् । स दत्तमुनिः स्नेहवशादरहन्नकं कदाचिदपि भिक्षार्थं न प्रेषयति, स्वयमेव भिक्षामानीय तं पोषयति, न च तेन किमपि कार्यं कारयति, अतोऽसौ सुकुमारो जातः । अन्यदा कदाचित् तस्य पिता

छींटे भी न दे, तथा आतप को वारण करने के लिये रजोहरणादिक से शरीर पर छाया भी न करे। छत्र-छाता-आदि को भी धारण न करे और न इस प्रकार की क्रियाओं को करने की भावना ही रखे। जैसे भी बने उष्णपरीपह को सहन करे ।

दृष्टान्त—तगरा नाम की नगरीमें दत्त नाम का एक सेठ रहता था। उसकी धर्मपत्नी का नाम भद्रा था। भद्रा से एक पुत्र हुआ, जिस का नाम अरहन्नक था। एक समय सेठ ने अपने स्त्री पुत्र के साथ जाकर अर्हन्मित्र नामके किसी आचार्य के पास धर्म का उपदेश सुना। सुनकर वे संसार से विरक्त हो गये और स्त्रीपुत्रसहित उसने दीक्षा अंगीकार करली, पुत्र से प्रेम होने के कारण वे कभी भी अपने पुत्र को भिक्षा लाने के लिये नहीं भेजते थे, किन्तु स्वयं जाकर भिक्षा लाते और पुत्र को भी आहार कराते। पुत्र से कुछ भी कार्य नहीं कराते। इस तरह दत्तमुनि का वह पुत्ररूप शिष्य बहुत ही सुकुमार प्रकृति के

करवा भाटे रणेडरणादिकथी शरीर उपर छाया पणु न करवी, छत्र-छत्री वगेरे पणु धारणु न करवां. अने आ प्रकारनि क्रियाओ करवानी लावना पणु न राखवी. जेम जने तेम उष्णपरीपहने सहन करवां.

दृष्टान्त—तगरा नामनी नगरीमां दत्त नामना ओक शेठ रहेता हुता, तेनी धर्मपत्तिनुं नाम लद्रा हुतुं. लद्राथी ओक पुत्र थये जेतुं नाम अरहन्नक हुतुं ओक समय शेठे पोताना स्त्री पुत्रनी साथे अर्हन्मित्र नामना ओक आचार्यं पासे धर्मना उपदेश सांलये। ओ उपदेशथी संसारथी विरक्तभाव जाग्ये। अने स्त्री पुत्र साथे तेजे दीक्षा अंगिकार करी लीधी. पुत्रथी प्रेम होवाने अरहे कही पणु पोताना पुत्रने भिक्षा लाववा भाटे मोठवता न हुता परंतु पोते न जे न भिक्षा लावता अने पुत्रने पणु आहार करावता. पुत्रथी कांछ पणु कार्यं करावता नही. आ रीते दत्त मुनिना ओ पुत्ररूप शिष्य धर्षी न सुकुमार प्रकृतिवाजा

दत्तमुनिर्मृतः तदनन्तरं साधुभिः प्रेरितः सन्नरहन्नको ग्रीष्मकाले भिक्षार्थं गतः ।
स पूर्वमकृतश्रमोऽतीवसुकुमाराङ्गः सूर्यकिरणोत्तमरेणुनिकरण चरणतले, तपर्नाशुभि-
र्मस्तके च तापाभिभूतसृपाशुष्कण्डोऽरहन्नकः कस्यचित् श्रेष्ठिनः प्रोक्तुं भवनस्य-
च्छायामाश्रित्य तिष्ठति ।

तदा तं सुकुमारं रूपसौन्दर्यं लावण्यगुणैर्मन्मयावतारं मुनिमरहन्नककुमारं दृष्ट्वा
काचित् प्रोपितभर्तृका वणिग्भार्या दास्या तं समाहूय गृहमानयति । ततः सा तं
पृच्छति—भवान् किं याचते ? अरहन्नकः प्राह—भिक्षां याचे । ततः सा कामवशंगता
वन गये । कालान्तरं तं दत्तमुनि का स्वर्गवास हो गया । अब क्या धा-
साधुओं से प्रेरित होकर वह एक समय भिक्षा लाने के लिये ग्रीष्म
काल में गये । सुकुमार प्रकृति के तो थे ही, पिता के समय पहिछे
इन्होंने ने कुछ परिश्रम भी नहीं किया था, अतः उस ग्रीष्मकाल में
सूर्य की प्रचण्ड किरणों से संतप्त भूमि पर चलने से उनके पैरों में छाले
पड़ गये । माथा गरम हो गया । कंठ गर्मी के मारे सूख गया गर्मी की
इनको अधिक वेदना हुई । पास में किसी एक सेठकी बहुत ऊँची हवेली
थी सो वे गर्मी के मारे उसकी छाया में आकर ठहर गये । ठहरे हुए इन
मुनि को एक प्रोपितभर्तृका—विरहिणी—स्त्री ने देखा । यह शारीरिक रूप,
लावण्य एवं सौन्दर्य से ऐसे मालूम पड़ते थे कि जैसे मानो साक्षात् देव
ही हो । देखते ही सुकुमार इस अरहन्नक मुनि को उस विरहिणी वणि-
ग्भार्या ने अपनी दासी द्वारा मकान ऊपर बुलवाया । मकान ऊपर पहुँचते

भनी गया. कालान्तरे दत्तमुनिने स्वर्गवास धये. आ पछी साधुओंनी प्रेरणाथी
प्रेरित भनी ते सुकुमारमुनि ग्रीष्मकालमां भिक्षा लेवा माटे गया. सुकुमार
प्रकृति तो હતી જ, પિતાની હાજરીમાં તેણે જરા જેટલો પણ પરિશ્રમ કરેલ ન
હતો. આથી ગ્રીष्મકાળમાં સૂર્યનાં પ્રચંડ કિરણોથી સંતપ્ત બનેલ ભૂમિ ઉપર
ચાલવાથી એના પગમાં છાલા પડી ગયાં, માથું ગરમ થઈ ગયું, ગળું ગર-
મીના કારણે સુકાઈ ગયું, ગરમીની એને અધિક વેદના થઈ, પાસે જ કોઈ એક
શેઠની ઘણી જ ઉંચી હવેલી હતી—આથી તે એ હવેલીની છાયામાં જઈને
ઊભા રહ્યા. ઊભેલા મુનિને એઈ એક વિરહણી સ્ત્રીનું એ તરફ લક્ષ્ય ખેંચાયું જે
શારીરિક રૂપ, લાવણ્ય અને સૌંદર્યથી તેની દ્રષ્ટિએ દેવ તુલ્ય દેખાયા. આ
અરહન્નક સુકુમાર મુનિને એઈને તે વિરહિણી વધિક સ્ત્રીએ પોતાની ઠાસી માર-
ફત મકાન ઉપર બોલાવ્યા. મકાન ઉપર પહોંચતાં જ મુનિ અરહન્નકને તેણે

तं प्रलोभ्य स्वभवने स्थापितवती । अथ तन्माता भद्रासाध्वी मुनीनां निवासस्थाने
वन्दनार्थमागता । सा तत्र तमपश्यन्ती अर्हन्मित्राचार्यमपृच्छत्-भदन्त ! अरहन्न-
कमुनिः क्व वर्तते ? अर्हन्मित्राचार्यः प्राह-अरहन्नको भिक्षार्थं गतः, किं तु न पुनः
परावृत्तः, अतस्तमन्वेपयन्ति मुनयः, इति तदनुपलब्धिवचनं वज्राघातमिवकठोरं
श्रुत्वा व्याकुला सती भद्रा साध्वी पुत्रमोहेन अरे अरहन्नक ! अरे अरहन्नक !
इत्युच्चैर्विलपन्ती नयननिःस्रवदश्रुधारां पातयन्ती मोहेन पदे पदे प्रस्खलन्ती प्रति-

ही मुनि अरहन्नक से उसने पूछा आप क्या चाहते हैं ? अरहन्नक ने कहा
भिक्षा चाहता हूँ । काम के वशंगत हुई उस स्त्री ने भिक्षा का लोभ देकर
अरहन्नक मुनि को अपने घर पर ठहरा लिया । उधर अरहन्नक मुनि की
माता भद्रा साध्वी मुनियों को वन्दना करने के लिये आई । अरहन्नक
मुनि को ज्यों ही वहाँ साध्वी ने नहीं देखा त्यों ही वह अर्हन्मित्रा-
चार्य को पूछने लगी कि भदन्त ! अरहन्नक मुनि कहां हैं । आचार्य
महाराज ने कहा कि वे भिक्षा लेने के लिये बाहर गये थे, परन्तु अभी-
तक वापिस नहीं आये हैं अतः अन्यमुनिजन उनकी तलाश कर रहे
हैं । माता भद्रा साध्वी ने ज्यों ही यह बात सुनी त्यों ही उसके हृदय
में वज्र के आघात जैसा एक कठोर आघात हुआ और उसी समय
उसका चित्त विक्षिप्त-हो गया । वह पुत्र के मोह से बहुत ही आकुल-
व्याकुल होने लगी, और अपने आप बड़-बड़ाने लगी-अरे अरहन्नक !
तू इस समय कहां है, कह तो सही । इस प्रकार ऊँचे स्वर से विलाप
करती और आंखों से आंसुओं की धारा बहाती हुई वह स्थान स्थान पर

पूछ्युं. आप शुं भन्ते छे ? अरहन्नक कहुं के, हुं भिक्षा आहुं छुं. कामने
वश भनेल ते स्त्रीये भिक्षाने दोल आपीने अरहन्नक मुनिने पेताने घेर शोडी
लीधा. अर्हन्मित्राचार्य मुनिनी माता भद्रा साध्वी मुनियेने पंढर्या करवा आपी.
अरहन्नक मुनिने न्यारे ते साध्वीये त्यां न जेया त्यारे आचार्यने पूछ्युं के, 'डे
भदन्त ! अरहन्नक मुनि कथां छे ? आचार्य महाराजे कहुं के, भिक्षा देवा भाटे तेयो
भडार गया छे, परंतु उब्बु सुधी पाछा करेल नथी. जेथी अन्य मुनिजन तेनी
तपास करी रहेल छे. माता भद्रा साध्वीये न्यारे आ वात सांभणी त्यारे तेना हुं-
यमां वज्रना धा जेवे जेक आघात थये अने जे वभते जेतुं चित्त व्याकुण भनी
ग्युं. ते पुत्रना मोहथी घणुं आकुण व्याकुण थवा लाग्यां, अने पेताना मनमांज
भउभउवा लाग्यां के, अरे अरहन्नक ! तू आ समये कथां छे, कडे तो भरे
आ प्रकारे उँचा स्वरथी विलाप करतां अने आंभोधी अश्रुधारा वहावतां, ते

स्यलं भ्राम्यति, सा यत्र यत्र गच्छति तत्र तत्र पुनः पुनर्लोकान् पृच्छति-मम
 प्राणवल्लभः पुत्रोऽरहन्नकः क्वापि दृष्टो भवद्भिः? । इत्येवं पृच्छन्ती रुदती यं कमपि
 दृष्टवती, तं प्रति-अयमरहन्नक इति मत्वा हर्षमुद्बहन्ती, पुनस्तमनालोक्य स्वती
 विलपन्ती एकदा यत्रारहन्नक आसीत् तद्भवनसमीपे समागता । तदा गवाक्षवर्तिनाऽर-
 हन्नकेन तादृशावस्थापन्ना माता दृष्टा, संजातात्पन्तसंवेगः स गवाक्षादुत्तीर्य चर-
 णयोः पतित्वा मातरमेवमाह-हे मातः ! सोऽहमरहन्नकः । इति तद्वचनं श्रुत्वा माता
 स्वस्थमानसा जाता, तदनु सा पुत्रं प्राह-वत्स ! भव्यकुलोत्पन्नस्य तव कथमीदृशी-

गिरती पडती इधर उधर घूमने लगी । जहाँ जहाँ वह जाती वहाँ २ पूछती
 कि हे महानुभावो ! कहो तो सही तुम लोगों ने मेरे पुत्र अरहन्नक को
 कहीं देखा भी है ? । इस प्रकार पूछती, विलाप करती, रोती हुई वह भद्रा
 सांध्वी जिस किसी को भी देखती हर्ष के भावावेश में आकर कहने
 लगती 'यह रहा मेरा अरहन्नक' । परन्तु जब उसमें उसे अरहन्नक दिखाई
 नहीं पड़ता तो पुनः रोने लगती । इस प्रकार अत्यंत विह्वल बनी हुई एक
 दिन वह वहाँ पहुँची जिस मकान में स्वयं अरहन्नक थे । जब यह वहाँ
 पहुँची थी उस समय अरहन्नक उस मकान की खीड़की में बैठे हुए थे ।
 उसने रोती हुई अपनी माता को ज्यों ही देखा त्यों ही उसे संवेग के
 भाव अतिशय रीति से जागृत हो उठे । वह इकदम झरोखे से नीचे उतर
 कर माता के दोनों चरणों में पड़ गये और बोला कि हे मातः मैं अर-
 हन्नक हूँ । इस प्रकार उनके वचन को सुनकर माता का चित्त शान्त हो
 गया और बोली-वत्स ! तुम तो कुलवान् हो जातिमान हो फिर तुम्हारी

स्थणे स्थणे अधस्तात् अडिं तडिं इरवा लाज्यां । ने ते स्थणे ते नर्ध पूछतां
 के डे भडानुभावो । कडे तो भरा तभोअे भारा पुत्र अरहन्नकने कथांथ देअेअे
 छे ? आ प्रकारे पूछतां अने विलाप करतां अने शतां ते लद्रा सांध्वी न्यारे
 डेअेने नुअे तो डधना लावावेभमां आवीने कडेवा लागतां के आ रह्यो भारे
 अरहन्नक ! परंतु न्यारे तेने अरहन्नक न देभातो त्यारे ते इरीथी शवा लागतां
 आ प्रकारे अत्यंत विह्वण भनी अेक द्विसे ते अे भडान उपर पडोअ्यां के
 न्यां अरहन्नक डतो । न्यारे ते त्यां पडोअ्यां ते वभते अरहन्नक ते भडाननी
 अेकं धारीमां भेठेव डतो । तेअे पातानी माताने शती न्धे त्यारे तेनामां
 संवेगने लाप अतिशय न्गृत थयो । ते अेकदम अेअेथी नीचे डतरिने माताना
 अरह्योमां पडी गयो अने बोअेथे के डे माता ! हुं अरहन्नक धुं । आ प्रकारनां
 तेनां वचन सांभणीने मातानुं चित्त शान्त भनी गथुं अने बोली, वत्स !

दशा ? सोऽवदत्—हे मातश्चारित्रं पालयितुमसमर्थोऽस्मि । सा प्राह—तर्हि अनशनं कुरु । यतः—

वरं पवेसो जल्लिए हुयासणे,
न यावि भग्गं चिरसंचियं वयं ।

वरं हि मच्चू सुविसुद्धकम्मओ,
न यावि सीलक्खलियस्स जीवणं ॥ १ ॥

छाया—वरं प्रवेशो ज्वलिते हुताशने,
न चापि भग्नं चिरसंचितं व्रतम् ।

वरं हि मृत्युः सुविशुद्धकर्मतो,
न चापि शीलस्खलितस्य जीवनम् ॥ १ ॥

सुविशुद्धकर्मतः—निस्वद्यक्रियाऽऽचरणतः, मृत्युः=मरणं, वरं=श्रेयः, न तु शीलस्खलितस्य=चरित्रपतितस्य जीवनम् । अन्यत् सुगमम् ।

ऐसी दशा क्यों हुई ? अरहन्नक बोले—मातः ! इस दशा के होने का कारण चारित्र्य को पालन करने की असमर्थता है । माता बोली—यदि तुम चरित्र पार करने के लिये असमर्थ हो तो अनशन करो । जैसे कहा है—

“ वरं पवेसो जल्लिए हुयासणे,
न यावि भग्गं चिरसंचियं वयं ।

वरं हि मच्चू सुविसुद्धकम्मओ,
न यावि सीलक्खलियस्स जीवणं ॥ १ ॥ ”

धधकती हुई अग्नि में प्रवेश करना तो ठीक है परन्तु चिरसंचित व्रत का भंग करना ठीक नहीं है । सुविशुद्ध कर्म—शील आराधन करते

तमे तो कुणवान् छे, जल्लिवान् छे, छतां तभारी आवी दशा केम थर्छ ? अरहन्नके कळुं, माता ! आ दशा थवातुं करणु चारित्र पालन करवानी अस-
मर्थता छे. माताअे कळुं, जे तमे चारित्र पालन करवा भाटे असमर्थ छे
तो अनशन करे. जेम कळुं छे—

“ वरं पवेसो जल्लिए हुयासणे,
न यावि भग्गं चिरसंचियं वयं ।

वरं हि मच्चू सुविसुद्धकम्मओ,
नयावि सीलक्खलियस्स जीवणं ॥ १ ॥ ”

ललकती अेवी अग्निभां प्रवेश करवेा ठीक छे, परंतु चिरसंचित व्रतने
भंग करवेा ठीक नथी. सुविशुद्ध कर्मशील आराधना करतां करतां मृत्यु थवुं ठीक छे,

एवं मातृवचः श्रुत्वा स संजातवैराग्यः सर्वसावद्ययोगं प्रत्याख्याय पुनः संयमं गृहीतवान् । तत उत्कृष्टाचारेण ग्रामानुग्रामं विहरन् उष्णपरीपहं सहमानः क्वचित् पापाणमयप्रदेशं प्राप्य चिन्तयति—‘प्रदेशोऽयं प्रचण्डमार्त्तण्डकिरणसंयोगाद् बह्वि-
वत्प्रतप्तः, उष्णतरश्च वायुः प्रवहति, अत्र पदमपि गन्तुमसमर्थोऽस्मि,’ एवं विचिन्त्य परितः प्रतप्तभूमीतलं विलोक्य परीपहोऽयं मया सोढव्य इत्यवधार्य तप्तशिलोपरि

करते मृत्यु होना ठीक है, परन्तु शील से स्वलित व्यक्ति का जीवन ठीक नहीं है। निरवय क्रिया का नाम सुविशुद्धकर्म एवं चारित्र्य से पतित होने का नाम शील से स्वलित होना है।

इस प्रकार जननी के वचन मुनकर उसका मुत्त वैराग्य जग उठा, पश्चात् उसने सर्वसावद्य योग का प्रत्याख्यान कर पुनः संयम लिया। माता के वचन से उद्योधित होकर उसने फिर उत्कृष्ट चरित्र का आराधन किया और चारित्र्य की आराधनापूर्वक ही ग्रामानुग्राम विहार करते हुए उष्णपरीपह को सहन किया। एक समय की बात है कि ये विहार करते २ ऐसे प्रदेश में पहुँचे कि जहाँ पत्थरों की बहुलता थी। वहाँ पहुँच कर उन्होंने विचार किया कि यह प्रदेश सूर्य की किरणों से अधिक संतप्त बना हुआ है। यह तो ऐसा तप रहा है कि जैसे मारो अग्नि ही जल रही हो। वायु भी इतनी गर्म चल रही है कि जिससे एक पैर भी सुखपूर्वक चला नहीं जा सकता है। इस प्रकार विचार करते हुए अरहन्नक मुनि ने अपने आसपास की समस्त भूमि को

परन्तु शीलधी स्खलित थयेल व्यक्तिनु लवन डीक नथी. निरवध क्रियानुं नाम सुविशुद्ध कर्म, चारित्र्यधी पतित थवानुं नाम शीलधी स्खलित जननुं ते.

आ प्रकारनां मातानां वचन सांभजीने तेना सुतेवे। वैराग्य जगी उठये अने तेले सव सावद्य योगनुं प्रत्याख्यान करी पुनः संयमने धारण कथी. माताना वचनथी उद्योधित जनी तेले पछी उत्कृष्ट चारित्र्यनुं आराधन कथुं अने चारित्र्यनी आराधना पूर्वक ज आमनुआम विहार करीने उष्ण परीपहने सहन कथी. ओक समये ओ विहार करतां करतां ओवा प्रदेशमां पडोन्थी गया के, ज्यां पत्थराओ मोटा प्रमाणुमां हुता. त्यां पडोन्थीने तेओओ विचार कथी के, आ प्रदेश सूर्यना किरणोधी अधिक संतप्त जनेवे। छे. आ तो ओवा तपी रहा छे के जेले अग्नि ज सजगी रडी छे. वायु पछु ओटली ज रीते गरम कुंकाई रडेले छे आथी ओक उगनुं पछु सुखपूर्वक आली शकतुं नथा. आ प्रकारना विचार करतां करतां अरहन्नक मुनिये पोतानी आसपासनी

समुपविशति । तत्र—प्रत्याख्याताष्टादशपापः कृतदुष्कृतगर्हः क्षामितसकलसत्त्वः
स्वीकृतचतुर्विधशरणः, परित्यक्तसर्वसंगः पुनः पुनः कृतपंचनमस्कारोऽनशनं कृत्वा
समाधिभावसम्पन्नः पादपोपगमनेन मुहूर्तमात्रेण सुकुमारशरीरो नयनीतपिण्डइवोष्णेन
विलीनः सौधर्मं मुरलोकं गतः, एवं मुनिमिरुष्णपरीपहः सोढव्यः ॥९॥

ग्रीष्मकालान्तरं वर्षाकाले दंशमशक्रादिकृतपीडां प्राप्तेन साधुना तत्परीपहः
सोढव्यः इत्याह—

मूलम्—पुंडो यं दंसंमसएहिं, संम रेवं मर्हामुणी ।

नागो संगामसीसे वां, सूरुो अभिहणे परं ॥१०॥

छाया—स्पृष्टश्च दंशमशक्रैः सम एव महामुनिः ।

नागः संग्रामशीर्षे वा, शूरोऽभिहन्यात् परम् ॥ १० ॥

अत्यंत उष्ण देखा और पुनः विचार करने लगे कि यह उष्णपरीपह
मुझे साधु के नाते अवश्य सहन करना चाहिये, ऐसा निश्चित कर वह
एक तप्त शिला के ऊपर बैठ गये। वहाँ उन्होंने १८ पापस्थानों का
प्रत्याख्यान किया, अपने दुष्कृतों की गर्हों की, समस्त जीवों से खमत
खामणा किया। चार प्रकार के शरणों को स्वीकार किया, समस्त ममता
का त्याग किया, एवं पंचपरमेष्ठी को वार वार नमस्कार किया। पश्चात्
अनशन धारण कर समाधिभाव से युक्त अरहन्नक मुनि ने पादपोपगमन
संधारा किया। एक मुहूर्तमात्र में ही उनका सुकुमार शरीर मक्खन के
पिंड की तरह गर्मी से विलीन हो गया और वे मर कर सुधर्मदेवलोक
में देव हुए। इसी तरह अन्य मुनि जनों को भी उष्णपरीपह सहन
करना चाहिये ॥ ९ ॥

समस्त भूमीने अत्यंत उष्ण जेठ अने पाछा विचार करवा लाग्या डे उष्ण
परीपह भादे साधुना धर्मधी अवश्य सहन करवा जेठजे. जेवा निश्चय करी
जेक तपेदी शिला उपर जेसी गया त्यां तेजेजे १८ पापस्थानानुं प्रत्याख्यान
क्युं, पोताना दुष्कृत्योनी भाङ्गी भागी, समस्त लोवेधी भमत भाभणुा लीधां,
चार प्रकारना शरणुनो स्वीकार क्यो अने समस्त ममतानो त्याग क्यो तेमज
पंचपरमेष्ठीने वारंवार नमस्कार करवा लाग्या. पछी अनशन धारणु करी समाधि-
भावधी युक्त अरहन्नक मुनिजे पादपोपगमन संधारो क्यो. जेक मुहूर्त मात्रमां जे
तेमनुं सुकुमार शरीर भाभणुना पीडनी भाङ्क गरभीधी ज्योगणी ग्युं. अने ते मरीने
सुधर्म देवलोकमां देव थया. आ रीते अन्य मुनिजनेजे पणु उष्णपरीपह सहन
करवा जेठजे. ॥ ९ ॥

एवं मातृवचः श्रुत्वा स संजातवैराग्यः सर्वसावद्ययोगं प्रत्याख्याय पुनः संयमं गृहीतवान् । तत उत्कृष्टाचारेण ग्रामानुग्रामं विहरन् उष्णपरीपहं सहमानः क्वचित् पापाणमयप्रदेशं प्राप्य चिन्तयति—'प्रदेशोऽयं प्रचण्डमार्त्तण्डकिरणसंयोगाद् बहि-
वत्प्रतप्तः, उष्णतरश्च वायुः प्रवहति, अत्र पदमपि गन्तुमसमर्थोऽस्मि,' एवं विचिन्त्य परितः प्रतप्तभूमितलं विलोक्य परीपहोऽयं मया सोढव्य इत्यवधार्य तप्तशिलोपरि करते मृत्यु होना ठीक है, परन्तु शील से स्वलित व्यक्ति का जीवन ठीक नहीं है। निरवद्य क्रिया का नाम सुविशुद्धकर्म एवं चारित्र्य से पतित होने का नाम शील से स्वलित होना है।

इस प्रकार जननी के वचन सुनकर उसका मुस वैराग्य जग उठा, पश्चात् उसने सर्वसावद्य योग का प्रत्याख्यान कर पुनः संयम लिया। माता के वचन से उद्बोधित होकर उसने फिर उत्कृष्ट चरित्र का आराधन किया और चारित्र्य की आराधनापूर्वक ही ग्रामानुग्राम विहार करते हुए उष्णपरीपह को सहन किया। एक समय की बात है कि ये विहार करते २ ऐसे प्रदेश में पहुँचे कि जहाँ पत्थरों की बहुलता थी। वहाँ पहुँच कर उन्होंने विचार किया कि यह प्रदेश सूर्य की किरणों से अधिक संतप्त बना हुआ है। यह तो ऐसा तप रहा है कि जैसे मानों अग्नि ही जल रही हो। वायु भी इतनी गर्म चल रही है कि जिससे एक पैर भी सुखपूर्वक चला नहीं जा सकता है। इस प्रकार विचार करते हुए अरहन्नक मुनि ने अपने आसपास की संमस्त भूमि को

परन्तु शीलही स्थलित थयेल व्यक्तिनु एवन ठीक नथी. निरवद्य क्रियानुं नाम सुविशुद्ध कर्म, चारित्र्यही पतित थवानुं नाम शीलही स्थलित जननुं ते.

आ प्रकारनां मातानां वचन सांभजीने तेना सुतेवे। वैराग्य जगी उठये। अने तेखे सर्व सावद्य योगनुं प्रत्याख्यान करी पुनः संयमने धारणु कथे। माताना वचनथी उद्बोधित अनि तेखे पथी उत्कृष्ट चारित्र्यनुं आराधन कथुं अने चारित्र्यनी आराधना पूर्वक न ग्रामानुग्राम विहार करीने उष्ण परीपहने सहन कथे। एक समये ये विहार करतां करतां जेवा प्रदेशमां पहुँची गया के, जथां पत्थराजो मोटा प्रमाणमां हुता. त्यां पहुँचीने तेजो जे विचार कथे के, आ प्रदेश सूर्यना किरणोथी अधिक संतप्त जनेवे। छे. आ तो जेवा तपी रक्षा छे के जेणे अग्नि न सजगी रही छे. वायु पणु जेटवी न रीते गरम कुंकाई रहैल छे आथी एक उगलुं पणु सुखपूर्वक चाली थकनुं नथी. आ प्रकारने विचार करतां करतां अरहन्नक मुनिये पातानी आसपासनी

समुपविशति । तत्र—प्रत्याख्याताष्टादशपापः कृतदुष्कृतगर्हः क्षामितसफलसत्त्वः
स्वीकृतचतुर्विधशरणः, परित्यक्तसर्वसंगः पुनः पुनः कृतपंचनमस्कारोऽनशनं कृत्वा
समाधिभावसम्पन्नः पादपोपगमनेन मुहूर्तमात्रेण सुकुमारशरीरो नवनीतपिण्डइवोष्णेन
विलीनः सौधर्मं सुरलोकं गतः, एवं मुनिभिरुष्णपरीपहः सोढव्यः ॥९॥

ग्रीष्मकालान्तरं वर्षाकाले दंशमशकादिकृतपीडां प्राप्तेन साधुना तत्परीपहः
सोढव्यः इत्याह—

मूलम्—पुंष्टो ये दंसंमसएहिं, संम रेवं महामुणी ।

नागो संगामसीसे वां, सूरौ अभिहणे परं ॥१०॥

छाया—स्पृष्टश्च दंशमशकैः सम एव महामुनिः ।

नागः संग्रामशीर्षे वा, शूरोऽभिहन्यात् परम् ॥ १० ॥

अत्यंत उष्ण देखा और पुनः विचार करने लगे कि यह उष्णपरीपह
मुझे साधु के नाते अवश्य सहन करना चाहिये, ऐसा निश्चित कर वह
एक तप्त शिला के ऊपर बैठ गये। वहां उन्होंने १८ पापस्थानों का
प्रत्याख्यान किया, अपने दुष्कृतों की गर्हों की, समस्त जीवों से खमत
खामणा किया। चार प्रकार के शरणों को स्वीकार किया, समस्त ममता
का त्याग किया, एवं पंचपरमेष्ठी को बार बार नमस्कार किया। पश्चात्
अनशन धारण कर समाधिभाव से युक्त अरहन्नक मुनि ने पादपोपगमन
संधारा किया। एक मुहूर्तमात्र में ही उनका सुकुमार शरीर मक्खन के
पिंड की तरह गर्मी से विलीन हो गया और वे मर कर सुधर्मदेवलोक
में देव हुए। इसी तरह अन्य मुनि जनों को भी उष्णपरीपह सहन
करना चाहिये ॥ ९ ॥

समस्त भूमिने अत्यंत उष्ण जेष्ठ अने पाछा विचार करवा लाग्या के उष्ण
परीपह भारे साधुना धर्मधी अवश्य सहन करवा जेष्ठये. जेवो निश्चय करी
जेक तपेवी शीला उपर जेसी गया न्यां तेजेजे १८ पापस्थानानुं प्रत्याख्यान
कर्युं, पोताना दुष्कृत्येानी भाई भागी, समस्त लोधी भमत आभयु लीधां,
चार प्रकारना शरणुने स्वीकार कर्यो अने समस्त भमताने त्याग कर्यो तेमज
पंचपरमेष्ठीने वार वार नमस्कार करवा लाग्या. पछी अनशन धारण करी समाधि-
भावधी युक्त अरहन्नक मुनिजे पादपोपगमन संधारे कर्यो.. जेक मुहूर्त मात्रमांज
तेमनुं सुकुमार शरीर भाभयुना पीडनी भाईक गरभीधी आगणी गयुं. अने ते भरुने
सुधर्म देवलोकां देव थया. आ रीते अन्य मुनिजनेजे पण उष्णपरीपह सहन
करवा जेष्ठये. ॥ ९ ॥

एवं मातृवचः श्रुत्वा स संजातवैराग्यः सर्वसावद्ययोगं प्रत्याख्याय पुनः संयमं गृहीतवान् । तत उत्कृष्टाचारेण ग्रामानुग्रामं विहरन् उष्णपरीपहं सहमानः क्वचित् पापाणमयप्रदेशं प्राप्य चिन्तयति—'प्रदेशोऽयं मचण्डमार्त्तण्डकिरणसंयोगाद् बह्वि-
वत्प्रतप्तः, उष्णतरश्च वायुः प्रवहति, अत्र पदमपि गन्तुमसमर्थोऽस्मि,' एवं विचिन्त्य परितः प्रतप्तभूमीतलं विलोक्य परीपहोऽयं मया सोढव्य इत्यवधार्य तप्तशिलोपरि

करते मृत्यु होना ठीक है, परन्तु शील से स्वलित व्यक्ति का जीवन ठीक नहीं है। निरवद्य क्रिया का नाम सुविशुद्धकर्म एवं चारित्र्य से पतित होने का नाम शील से स्वलित होना है।

इस प्रकार जननी के वचन सुनकर उसका मुक्त वैराग्य जग उठा, पश्चात् उसने सर्वसावद्य योग का प्रत्याख्यान कर पुनः संयम लिया। माता के वचन से उद्बोधित होकर उसने फिर उत्कृष्ट चरित्र का आराधन किया और चारित्र्य की आराधनापूर्वक ही ग्रामानुग्राम विहार करते हुए उष्णपरीपह को सहन किया। एक समय की बात है कि ये विहार करते २ ऐसे प्रदेश में पहुँचे कि जहाँ पत्थरों की बहुलता थी। वहाँ पहुँच कर उन्होंने विचार किया कि यह प्रदेश सूर्य की किरणों से अधिक संतप्त बना हुआ है। यह तो ऐसा तप रहा है कि जैसे मानों अग्नि ही जल रही हो। वायु भी इतनी गर्म चल रही है कि जिससे एक पैर भी सुखपूर्वक चला नहीं जा सकता है। इस प्रकार विचार करते हुए अरहन्नक मुनि ने अपने आसपास की संमस्त भूमि को

परन्तु शीलधी र्भ्रलित थथेव अक्षितनु एवन ठीक नथी. निरवद्य क्रियानु' नाम सुविशुद्ध कर्म', चारित्र्यधी पतित थवानु' नाम शीलधी र्भ्रलित अनवुं ते.

आ प्रकारनां मातानां वचन सांभजीने तेने सुतेवे। वैराग्य जग उठ्यो अने तेले सव सावद्य योगनुं प्रत्याख्यान करी पुनः संयमने धारण कथीं. माताना वचनधी उद्बोधित जनी तेले पथी उत्कृष्ट चारित्र्य आराधन कथुं अने चारित्र्यनी आराधना पूर्वक ज ग्रामानुग्राम विहार करीने उष्ण परीपहने सहन कथीं. एक समये जे विहार करतां करतां जेवा प्रदेशमां पहुँची गया के, नयां पत्थराज्यो मोटा प्रमाणुमां हुता. त्यां पहुँचीने तेज्यो जे विचार कथीं के, आ प्रदेश सूर्यना किरणोधी अधिक संतप्त जनेवे। जे. आ तो जेवा तपी रह्या जे के जेले अग्नि ज सजगी रडी जे. वायु पणु जेटली ज रीते गरम कुंकाठ रडेले जे आधी जेक उगतुं पणु सुखपूर्वक चाली थकारुं नथी. आ प्रकारने विचार करतां करतां अरहन्नक मुनिये चेतानी आसपासनी

समुपविशति । तत्र-प्रत्याख्याताष्टादशपापः कृतदुष्कृतगर्हः क्षामितसकलसत्त्वः
स्वीकृतचतुर्विंशशरणः, परित्यक्तसर्वसंगः पुनः पुनः कृतपंचनमस्कारोऽनशनं कृत्वा
समाधिभावसम्पन्नः पादपोपगमनेन मुहूर्तमात्रेण सुकुमारशरीरो नवनीतपिण्डइवोप्येन
विलीनः सौधर्म सुरलोकं गतः, एवं मुनिमिरुष्णपरीपहः सोढव्यः ॥९॥

ग्रीष्मकालान्तरं वर्षाकाले दंशमशकादिकृतपीडां प्राप्तेन साधुना तत्परीपहः
सोढव्यः इत्याह—

मूलम्—पुंढो ये दंसंससएहिं, संम रेवं मर्हामुणी ।

नागो संगामसीसे वां, सूरुो अभिहैणे परं ॥१०॥

छाया—सृष्टृष्ट दंशमशकैः सम एव महासुनिः ।

नागः संग्रामशीर्षे वा, शूरोऽभिहन्यात् परम् ॥ १० ॥

अत्यंत उष्ण देखा और पुनः विचार करने लगे कि यह उष्णपरीपह
मुझे साधु के नाते अवश्य सहन करना चाहिये, ऐसा निश्चित कर वह
एक तप्त शिला के ऊपर बैठ गये। वहाँ उन्होंने १८ पापस्थानों का
प्रत्याख्यान किया, अपने दुष्कृतों की गर्हा की, समस्त जीवों से खमत्
खामणा किया। चार प्रकार के शरणों को स्वीकार किया, समस्त ममता
का त्याग किया, एवं पंचपरमेष्ठी की चार बार नमस्कार किया। पश्चात्
अनशन धारण कर समाधिभाव से युक्त अरहन्नक मुनि ने पादपोपगमन
संधारा किया। एक मुहूर्तमात्र में ही उनका सुकुमार शरीर मक्खन के
पिंड की तरह गर्मी से विलीन हो गया और वे मर कर सुधर्मदेवलोक
में देव हुए। इसी तरह अन्य मुनि जनों को भी उष्णपरीपह सहन
करना चाहिये ॥ ९ ॥

समस्त भूमिने अत्यंत उष्ण जेष्ठ अने पाछा विचार करवा लाग्या के उष्ण
परीपह भारे साधुना धर्मथी अवश्य सहन करवो जेष्ठ अे. जेवो निश्चय करी
जेक तपेली शिला उपर जेसी गया ज्यां तेजेजे १८ पापस्थानोतुं प्रत्याख्यान
कर्युं, पोताना दुष्कृत्यानी भाक्षी भागी, समस्त ज्योथी जमत जामज्या लीधां,
चार प्रकारना शरणुने स्वीकार कर्यो अने समस्त ममतानो त्याग कर्यो तेमज
पंचपरमेष्ठीने वारवार नमस्कार करवा लाग्या. पछी अनशन धारण करी समाधि-
भावथी युक्त अरहन्नक मुनिजे पादपोपगमन संधारे कर्यो.. जेक मुहूर्त मात्रमांज
तेमनुं सुकुमार शरीर भाज्यज्या पीडनी भाक्षक गरभीथी ज्योगणी गर्युं. अने ते मरीने
सुधर्म देवलोकमां देव थया. आ रीते अन्य मुनिजनेजे पणु उष्णपरीपह सहन
करवो जेष्ठ अे. ॥ ९ ॥

ટીકા—‘ પુટ્ટો ય ’ ઇત્યાદિ ।

ચ=અપરં ચ સમ એવ=ઉપકાર્યપકારિણુ તુલ્યભાવધારકઃ, મહામુનિઃ=ઉગ્ર-
તપશ્ચરણશીલઃ દંશમશકૈઃ, હ્રદમુપલક્ષણમ્, તેન મત્કુળયૂકાદિભિરપિ સ્પૃષ્ટઃ—પીડિતઃ
સન્, સંગ્રામશિરસિ=રણમસ્તકે, શૂરઃ=પરાક્રમી, નાગો વા=હસ્તીવ પરં=શત્રુ-
રાગદ્વેપલક્ષણં ભાવશત્રુમ્, અભિહન્યાત્=પરાજયેત્ । ‘ સમરેવ ’ ઇત્યત્રાર્પત્વાદ્રેકઃ ।

અયં ભાવઃ—યથા—શૂરઃ=કરી શરાઘાતૈર્વ્યથિતોઽપિ રણે શત્રું જયતિ, તદ્વત્
સાધુરપિ દંશમશકાદિભિઃ પીડ્યમાનોઽપિ કપાય શત્રું જયેદિતિ ॥ ૧૦ ॥

ગ્રીષ્મ કાલ કે વાદ વર્ષા કાલ આતા હૈ, ઉસમેં દંશમશક આદિ કા
પરીપહ ઉત્પન્ન હોતા હૈ । સાધુ કા કર્તવ્ય હૈ કિ વહ ઇસ દંશમશકરૂપ
પાંચવે પરીપહ કો સહન કરે, ઇસ વાત કો સૂત્રકાર આગે કી ગાથા
દ્વારા વતલાતે હૈ—‘ પુટ્ટો ય ’ ઇત્યાદિ ।

અન્વયાર્થ—(સમરેવ-સમણવ) ઉપકારી ઓર અપકારી મેં તુલ્ય ભાવ
ધારણ કરને વાલા (મહામુની-મહામુનિઃ) ઉગ્રતપશ્ચરણશીલ મહામુનિ
(દંસમસર્ણહિં-દંશમશકૈઃ) દંશમશકોં કે દ્વારા, ઉપલક્ષણ સે મત્કુળ-
લ્લટમલ, યૂકા-જૂં આદિ દ્વારા મી (પુટ્ટો-સ્પૃષ્ટઃ) પીડિત હોને પર (સંગ્રામ-
સીસે-સંગ્રામ શીર્ષે) યુદ્ધ કે વીચ મેં (શૂરો-શૂરઃ) પરાક્રમી (નાગો વા-
નાગ ઇવ) હસ્તી કી તરહ (પરં અભિહણે-પરં અભિહન્યાત્) શત્રુ કો-
રાગદ્વેપરૂપ ભાવશત્રુ કો પરાસ્ત કરે ।

ગરમઋતુ પછી ચોમાસાનો સમય આવે છે આમાં દંશમશક વગેરે પરી-
પહની ઉત્પત્તિ થાય છે, સાધુનું એ કર્તવ્ય છે કે દંશમશકરૂપી પાંચમો પરીપહ
સહન કરે. આ વાતને સૂત્રકાર આગળની ગાથાથી બતાવે છે.

“ પુટ્ટો ય ” ઇત્યાદિ.

અન્વયાર્થ—(સમરેવ-સમણવ) ઉપકારી અને અપકારીમાં સમભાવ ધારણ
કરવાવાળા મહામુની-મહામુનિઃ ઉગ્ર તપસ્થા કરનાર શીલવાન મહામુનિ દંસમસર્ણહિ-
દંશમશકૈઃ ડાંસ, મચ્છર દ્વારા ઉપલક્ષણથી માકડ, જૂ, આદિ દ્વારા પણ પુટ્ટો-સ્પૃષ્ટઃ
પીડિત હોવા છતાં “સંગ્રામસીસે-સંગ્રામશીર્ષે” યુદ્ધની વચમાં (શૂરો-શૂરઃ) પરાક્રમી
(નાગો વા-નાગઇવ) હાથીની માકડ (પરં અભિહણે-પરં અભિહન્યાત્) શત્રુને-રાગ દ્વેષ
રૂપ ભાવશત્રુને પરાસ્ત કરે. એનો ભાવ આ છે. જેમ પરાક્રમી હાથી બાણોના
આઘાતથી વ્યથિત હોવા છતાં પણ રણમાં શત્રુઓને હરાવે છે તેવી રીતે સાધુ પણ
ડાંસ, મચ્છર આદિ દ્વારા પીડિત હોવા છતાં પણ કષાયરૂપી શત્રુને પરાસ્ત કરે.

केन प्रकारेण भावशत्रुं जयेदित्याह—

मूलम्—न संतसे न वारेज्जा, मणंपि न पओसए ।

उवेहे न हण्णे पाण्णे, भुंजन्ते मंसंसोणियं ॥ ११ ॥

छाया—न संत्रसेत् न वारयेत्, मनोऽपि न प्रदूषयेत् ।

उपेक्षेत न हन्यात् प्राणान्, भुञ्जानान् मांसं शोणितम् ॥ ११ ॥

टीका—‘ न संतसे ’ इत्यादि ।

महाभुनिर्दंशमशकैरुपद्रुतः सन् न संत्रसेत्=नोद्विजेत्—दंशमशकादिभिर्दंडपमानोऽपि न ततः स्थानादपगच्छेदित्यर्थः । न वारयेत्, हस्तवस्त्रादिना नापसारयेत्—मनोऽपि न प्रदूषयेत्=न क्लृपितं कुर्यात् अपि—शब्दाद्वचनादिकमपि न प्रदुष्टं

इसका भाव यह है—जैसे पराक्रमी हस्ती वाणों के आघात से व्यथित होने पर भी रण में शत्रु को परास्त कर देता है, उसी तरह साधु भी दंशमशक आदि द्वारा पीडित होने पर भी कपायरूपी शत्रु को परास्त करे ॥ १० ॥

भावशत्रु को किस तरह परास्त करना चाहिये इसको इस गाथा द्वारा स्पष्ट किया जाता है—न संतसे इत्यादि

अन्वयार्थ—महाभुनि दंशमशक आदि से पीडित होने पर भी (न संतसे—न संत्रसेत्) कभी भी चित्त में उद्विग्न न होवे—दंशमशक आदि से पीडित होने पर भी भुनि एक स्थान से दूसरे स्थान पर नहीं जावे (न वारेज्जा—न वारयेत्) दंशमशक को अपने शरीर पर बैठ जाने पर हस्तअथवा वस्त्र आदि से नहीं हटावे । (मणं पि न पओसए—

आने। लाव अे छे के—नेम पराकभी हाथी आहोना आघातथी पीडित होवा छतां पणु रणुमां शत्रुने पराएत करे छे, तेवी न रीते साधु पणु दंशमशक आदि द्वारा पीडित होवा छतां पणु कपायरूपी शत्रुने पराएथ करे ॥ १० ॥

भावशत्रुने केवी रीते एतवा नेध अे, अे डडीकत आ गाथा द्वारा प्रगट करवामां आवे छे. नसंतसे—इत्यादि.

अन्वयार्थ—उंस अने मन्धरथी पीडित अनवा छतां पणु न संतसे—न संत्रसेत् महाभुनि चित्तमां उद्वेग न लावे,—उंस मन्धरना करडवाथी भुनिअे अेक स्थानथी पीडित स्थाने न एवुं, न वारेज्जा—न वारयेत् उंस मन्धरने पोताना शरीर पर अेठेव नेधने हाथ अने वस्त्र आदिथी तेने डटावे नहीं, मणंपि न पओसए—

ટીકા—‘ પુટ્ટો ય ’ ઇત્યાદિ ।

ચ=અપરં ચ સમ ઇવ=વપકાર્યપકારિણુ તુલ્યભાવધારકઃ, મહામુનિઃ=ઊગ્ર-
તપશ્ચરણશીલઃ દંશમશકૈઃ, હ્રદમુપલક્ષણમ્, તેન મત્કુળપૂકાદિમિરપિ સ્પૃષ્ટઃ-પીડિતઃ
સન્, સંગ્રામશિરસિ=રણમસ્તકે, શૂરઃ=પરાક્રમી, નાગો વા=હસ્તીવ પરં=શત્રુ-
રાગદ્વેપલક્ષણં ભાવશત્રુમ્, અભિહન્યાત્=પરાજયેત્ । ‘ સમરેવ ’ ઇત્યત્રાર્પત્વાદ્રેફઃ ।

અર્થ ભાવઃ-યથા-શૂરઃ=કરી શરાઘર્તિર્વ્યથિતોઽપિ રણે શત્રું જયતિ, તદ્વત્
સાધુરપિ દંશમશકાદિભિઃ પીડ્યમાનોઽપિ કપાય શત્રું જયેદિતિ ॥ ૧૦ ॥

ગ્રીષ્મ કાલ કે વાદ વર્ષા કાલ આતા હૈ, ઉસમેં દંશમશક આદિ કા
પરીપહ ઉત્પન્ન હોતા હૈ । સાધુ કા કર્તવ્ય હૈ કિ વહ ઇસ દંશમશકરૂપ
પાંચવે પરીપહ કો સહન કરે, ઇસ વાત કો સૂત્રકાર આગે કી ગાથા
દ્વારા વતલાતે હૈ—‘ પુટ્ટો ય ’ ઇત્યાદિ ।

અન્વયાર્થ—(સમરેવ-સમઇવ) ઉપકારી ઓર અપકારી મેં તુલ્ય ભાવ
ધારણ કરને વાલા (મહામુની-મહામુનિઃ) ઊગ્રતપશ્ચરણશીલ મહામુનિ
(દંસમસર્ણિ-દંશમશકૈઃ) દંશમશકોં કે દ્વારા, ઉપલક્ષણ સે મત્કુળ-
લ્લટમલ, યૂકા-જૂં આદિ દ્વારા મી (પુટ્ટો-સ્પૃષ્ટઃ) પીડિત હોને પર (સંગ્રામ-
સીસે-સંગ્રામ શીર્ષે) યુદ્ધ કે વીચ મેં (સૂરો-શૂરઃ) પરાક્રમી (નાગો વા-
નાગ ઇવ) હસ્તી કી તરહ (પરં અભિહણે-પરં અભિહન્યાત્) શત્રુ કો-
રાગદ્વેપરૂપ ભાવશત્રુ કો પરાસ્ત કરે ।

ગરમશત્રુ પછી ચોમાસાનો સમય આવે છે આમાં દંશમશક વગેરે પરી-
પ્રહની ઉત્પત્તિ થાય છે, સાધુનું એ કર્તવ્ય છે કે દંશમશકરૂપી પાંચમે પરીપહ
સહન કરે. આ વાતને સૂત્રકાર આગળની ગાથાથી બતાવે છે.

“ પુટ્ટો ય ” ઇત્યાદિ.

અન્વયાર્થ—(સમરેવ-સમઇવ) ઉપકારી અને અપકારીમાં સમભાવ ધારણ
કરવાવાળા મહામુની-મહામુનિઃ ઉગ્ર તપસ્થા કરનાર શીલવાન મહામુનિ દંસમસર્ણિ-
દંશમશકૈઃ ડાંસ, મન્થર દ્વારા ઉપલક્ષણથી માકડ, જૂ, આદિ દ્વારા પણ પુટ્ટો-સ્પૃષ્ટઃ
પીડિત હોવા છતાં “ સંગ્રામસીસે-સંગ્રામશીર્ષે ” યુદ્ધની વચમાં (સૂરો-શૂરઃ) પરાક્રમી
(નાગો વા-નાગઇવ) હાથીની માકડ (પરં અભિહણે-પરં અભિહન્યાત્) શત્રુને-રાગ દ્વેષ
રૂપ ભાવશત્રુને પરાસ્ત કરે. એનો ભાવ આ છે. જેમ પરાક્રમી હાથી બાણોના
આઘાતથી વ્યથિત હોવા છતાં પણ રણમાં શત્રુઓને હરાવે છે તેવી રીતે સાધુ પણ
ડાંસ, મન્થર આદિ દ્વારા પીડિત હોવા છતાં પણ કપાયરૂપી શત્રુને પરાસ્ત કરે.

कृत्वा समुत्तस्यौ । तत्र प्रथमयामे लघुकाया मूच्यग्रतीक्ष्णमुखाः दंशमशकाः सहस्रशः परितः समागत्य मुनेः शरीरं दंशन्ति । तदनु-द्वितीययामे तदपेक्षया स्थूलाकारा दंशमशकाः घनघनध्वनिं कुर्वन्तः परितस्तद्रुपुस्तीक्ष्णतरं दंशन्ति, तदनु तृतीयचतुर्थयामयोस्तदपेक्षयापि स्थूलतराः स्थूलतीक्ष्णमुखा विविधजातीया दंशमशकास्तं सातिशयं दंशन्ति । ततः सूर्योदये सति पञ्चमप्रहरे अकस्मात् तत्रैवोद्गीयमाना मधुमक्षिकाः सहस्रशस्तद्रुपुःसंलग्नास्तं मुनिं दंशन्ति । मधुमक्षिकाभिराच्छादितं सकलं तद्रुपुः श्यामवर्णं संजातम् । तस्य मुखोपरि सदोरकमुखवह्निकाऽपि

एक समय की बात है कि इन्होंने एक अटवी में रात्रि के समय पांच प्रहरका कायोत्सर्ग धारण किया । उस अटवी में कायोत्सर्ग में रहे हुए इन सुदर्शन मुनि के शरीर को प्रथम प्रहर में लघुकायवाले हजारों दंशमशकों ने सूची के अग्रभाग के समान अपने २ तीक्ष्ण मुखों से चारों ओर से आ आकर खूब डसा । फिर द्वितीय प्रहर में इनकी अपेक्षा स्थूलाकार वाले दंशमशकों ने घन घन शब्द करते हुए सब तरफ से आकर बहुत बुरी तरह उनके शरीर को डसना प्रारंभ किया । बाद में तृतीय चतुर्थ प्रहर में द्वितीय याम में आये हुए दंशमशकों की अपेक्षा बलिष्ठ एवं स्थूलतर विविध जाति के दंशमशकों ने काटना शरु किया । इस प्रकार जब रात्रि के चार प्रहर समाप्त हो चुके और सूर्योदय हुआ तब पंचमप्रहर में—अर्थात् दिवस के प्रथमप्रहर में—अकस्मात् उड़ी हुई हजारों मधुमक्षिकाओं ने उन मुनि के शरीर में चिपट कर उन्हें काटना प्रारंभ

तेज्येज्ये ज्येष्ठ जंगलमां रात्रिना समये पांच प्रहरना कायोत्सर्ग कथ्ये । ते जंगलमां कायोत्सर्गमां रडेला आ सुदर्शन मुनिना शरीरने प्रथम प्रहरमां नाना शरीरवाणा हुल्लरो डांस, मच्छरोज्ये सोयनी अण्णी जेवा पोत पोताना तीक्ष्ण मुणोधी यारे आनुधी आवीने पूष उंभ भार्या. पाछा पील प्रहरमां तेनी अपेक्षा स्थूल आकारवाणा डांस, मच्छरोज्ये गणु गणु शण्ड करीने यारे तरक्षधी आवीने धण्णी भराण रीते तेमना शरीरने उंभ भारवा लाग्या. त्पार पछी त्रील अने ज्येथा प्रहरमां आवेला डांस मच्छरोनी अपेक्षा नाना मोटा विविध लतना डांस मच्छरोज्ये उंभ भारवा शङ् कथ्ये. आ प्रकारे ज्यारे रात्रीना यार प्रहर पुरा थया. अने सूर्योदय थये त्यारे पांचमा प्रहरमां अर्थात् दिवसना प्रथम प्रहरमां अकस्मात् उडेटी हुल्लरो मधमाभीज्ये ते मुनिना शरीर उपर बांटी पडीने करउबुं शङ् कथुं. मधमाभीज्येधी आच्छा-

कुर्यादित्यर्थः । किं तु उपेक्षेत-मध्यस्थभावमाश्रयेत् । अत एव-मांसशोणितं भुञ्जानान् प्राणान्=प्राणिनः, न हन्यात्=न मारयेत् ।

अत्र सुदर्शनमुनेर्दृष्टान्तः—

चम्पानगयां रिपुमर्दननामको भूपतिरासीत् । तस्य पुत्रः सुदर्शननामकः संजातः । स धर्मघोषाचार्यसमीपे धर्मदेशनां निश्चय्य कामभोगेभ्यो विरक्तः प्रव्रजितः । स सुदर्शनो मुनिर्गुरुप्रसादात् श्रुतज्ञानसम्पन्नो दृढसच्चतया एकाकित्व-विहाराल्पप्रतिमया विहरन् कदाचित् महादृष्ट्यां निशि पञ्चप्रहरात्मकं कायोत्सर्गं मनोऽपि न प्रदूषयेत् । अपने मन में उनके काटने पर अपने मन में कलुषित विचार नहीं करे । अथवा उनके काटने पर मन को कलुषित नहीं करना चाहिये । अपि शब्द से वचन आदिक को भी प्रदुष्ट नहीं करे । किन्तु उस समय (उवेहे-उपेक्षेत) मध्यस्थभाव का ही आश्रय करे । अतः साधु का कर्तव्य है कि वह (मांस सोणियं भुञ्जंते पाणे न हणे-मांस शोणितं भुञ्जानान् प्राणिनः न हन्यात्) मांस खाते एवं शोणित को पीते हुए प्राणियों को कभी भी न मारे ।

दृष्टान्तः—चंपानगरी में रिपुमर्दन नामक एक राजा था । उसका एक पुत्र था, जिसका नाम सुदर्शन था । उसने धर्मघोष आचार्य के पास धर्म-देशना सुनकर काम भोगों से विरक्त बन मुनिदीक्षा धारण की । इन सुदर्शन मुनि ने अपने गुरु महाराज के प्रसाद से श्रुतज्ञान की प्राप्ति कर दृढ पराक्रमशाली होने की वजह से एका की विहार करने रूप प्रतिमा को धारण किया । अब ये उस प्रतिमा से विचरने लगे ।

मनोऽपि न प्रदूषयेत् तेना करडवाथी पोताना मनभां कलुषित विचार पणु न करे, अथवा तेना करडवाथी मनने कलुषित न करे. अरे शब्दही वचन आदिकने पणु प्रदुष्ट न करे, परंतु ते सभये उवेहे-उपेक्षेत मध्यस्थ भावने आश्रय करे आथी साधुनं कर्तव्य छे के ते मांससोणियं भुञ्जंतेपाणे न हणे-मांसशोणितं भुञ्जानान् प्राणिनः न हन्यात् मांस भाता अने छोड़ी पीता प्राणीओने कही पणु न मारे.

दृष्टान्तः—चंपा नगरीमां रिपुमर्दन नामना ओक राजा छता. तेमने ओक पुत्र छतो; ओतुं नाम सुदर्शन छतुं. तेणु धर्मघोष आचार्यनी पास धर्मदेशना सांख्यी कामभोगथी विरक्त अनी मुनिदीक्षा धारण करी. आ सुदर्शन मुनिओ पोताना गुरुमहाराजना प्रसादथी श्रुतज्ञाननी प्राप्ति करी, दृढ पराक्रम-शाली थवाना करणुथी ओकाकी विहार करवा रूप प्रतिमाने धारण करी. अने तेओ ओ प्रतिमाथी विचरवा लाग्या. ओक सभयनी वात् . के,

વેદના જાયતે તતોऽપ્યનન્તગુણા વેદના નરકેऽનન્તવારં મયા સોઢા, एवं निगो-
 देऽपि, यत्र सूच्यग्रपरिमितकन्दादौ असंख्याताः श्रेणयः सन्ति, एकैकश्रेण्या
 मसंख्यातानि प्रतराणि, एकैकप्रतरे असंख्याता गोलाः, एकैकगोले असंख्यातानि
 निगोदशरीराणि, एकैकशरीरे अनन्ता जीवाः, एकैकनिगोदजीवः प्रत्येकश्वासो-
 च्छ्वासे सार्धसप्तदश जन्ममरणानि करोति, एवंविधनिगोदेऽपि अनन्तजन्ममर-
 णानां दारुणदुःखानि अनन्तवारं परवશેन मया सोढानि । किं पुनरेतत्, यतस्त-
 तदुःखसागरैकविन्दुमात्रमपि नैतत्, एवं दंशमशकपरीपहं प्रकृष्टपरिणामेन सहमानः

હસસે भी અનંતગુણી વેદના નરક મેં અનંતવાર તૂને ભોગી હૈ। इसी तरह
 निगोद में भी सही हैं। सूची-मुई-के अग्रभाग प्रमाण कन्द आदि में
 असंख्यात श्रेणियां होती हैं एक एक श्रेणी में असंख्यात प्रतर होते हैं।
 एक एक प्रतर में असंख्यात गोले होते हैं। एक एक गोले में असंख्यात
 निगोद शरीर हुआ करते हैं। एक एक निगोद शरीर में अनन्त जीव रहा
 करते हैं। एक एक निगोदराशि का जीव एक २ श्वासोच्छ्वास में १७।
 साढासत्रह वार जन्मता है और १७। साढा सत्रह वार ही मरता है। इस
 प्रकार के स्वरूप वाले निगोद में भी हे आत्मन्! तूने अनन्तवार अनंत
 जन्म और मरण के दुःखों को परवश होकर सहन किया है। उन दुःखों
 के सामने यह दंशमशक आदि से होने वाला दुःख कितना सा है। उन
 दुखों के सामने तो यह एक लेश मात्र भी नहीं है। इस प्रकार दंशमशक
 परीपह को प्रकृष्ट शुभाध्यवसाय से सहन करते हुए सुदर्शन मुनिराज

અગ્નિથી બાળવાથી જેવી વેદના જીવોને થાય છે, તેથી અનંતગણી વેદના નરકમાં
 અનંતવાર તેં ભોગવી છે. આ રીતે નિગોદમાં પણ સહન કરેલ છે. સોયના અગ્રભાગ
 પ્રમાણનાં કન્દ આદિમાં અસંખ્યાત શ્રેણિયો હોય છે. એકેક શ્રેણીમાં અસંખ્ય
 પ્રતર હોય છે. અને એકેક પ્રતરમાં અસંખ્ય ગોળા હોય છે. અને એકેક ગોળામાં
 અસંખ્યાત નિગોદ શરીર હોય છે. એકેક નિગોદ શરીરમાં અનંત જીવ રહ્યા કરે છે.
 એકેક નિગોદ રાશીને જીવ એક શ્વાસોચ્છ્વાસમાં સાડાસત્તરવાર જન્મે છે. અને
 સાડાસત્તરવાર મરે છે. આ પ્રકારના સ્વરૂપવાળા નિગોદમાં પણ હે આત્મન્! તેં
 અનંતવાર અનંત જન્મ અને મરણના દુઃખોને પરવશ બની સહન કર્યાં છે
 એ દુઃખોની સામે આ ડાંસ મચ્છરોથી થતું દુઃખ કેવડું છે? તે દુઃખોની
 સામે તો આ દુઃખ લેશ માત્ર પણ નથી. આ પ્રકારે ડાંસ મચ્છરોના પરી-
 પહને પ્રકૃષ્ટ શુભાધ્યવસાયથી સહન કરતાં સુદર્શન મુનિરાજે પ્રશસ્ત

मक्षिकाभिराच्छादितत्वान्नलक्ष्यते । एवं दंशमशकमक्षिकाकृतवेदनां प्राप्यापि स सुदर्शनमुनिर्दंशादीन् न निवारयति चिन्तयति च—दुःखमेतत् कियत्, इत्याऽनन्तगुण-वेदनाऽनन्तवारं नरकेषु मया प्राप्ता, असिपत्रेण धुरपत्रेण कदम्बचीरिकापत्रेण छिद्यमाने शक्यपत्रेण कुन्तापत्रेण शरापत्रेण सूत्रापत्रेण छुरिकापत्रेण, सूचीकलापात्रेण, कपिकच्छुना, वृश्चिककण्टकेन भिद्यमाने, अद्भारेण, मज्जलज्ज्वालया दह्यमाने च यादृशी

कर दिया। मधुमक्षिकाओं से आच्छादित सुदर्शन मुनि का गौर शरीर उस समय श्यामवर्णवाला मालूम देने लगा। उनके मुख के ऊपर डोरे से जो मुखवस्त्रिका बंधी हुई थी वह भी मक्षिकाओं से आच्छादित होने की वजह से दिखलाई नहीं पड़ती थी। इस प्रकार दंशमशकों द्वारा तीव्र वेदना को पाकर भी सुदर्शन मुनि ने उन दंशमशकों का अपने हाथ आदि से निवारण नहीं किया। प्रच्युत उस समय यही विचार किया कि हे आत्मन् ! यह जो वर्तमान में दुःख मिल रहा है वह तेरे द्वारा पहिले भोगे हुए नरक एवं निगोद के दुःखों के समक्ष कितना सा है। अरे ! तूने पहिले भवों में इस वेदना से भी अनन्तगुणी वेदनाएँ अनन्तवार नरक में भोगी हैं। असिपत्र, धुरपत्र एवं कदम्बचीरिका पत्र से छेदे जाने पर, शक्ति के अग्रभाग से कुन्त-भाला के अग्रभाग से, बाणके अग्रभाग से, छुरिका के अग्रभाग से, सूचिकलाप के अग्रभाग से, कपिकच्छु कोंचकीफली से और विच्छु के डंक से भेदे जाने पर, तथा जलती हुई अग्नि से जलाये जाने पर जैसी वेदना जीवों को होती है

द्वित अनेक सुदर्शन मुनिदुं गौर शरीर ते सभये श्याम वर्णवाणुं देभावा लाण्युं, तेमना सुभ उपर दोराथी ने सुभपत्ति अंधायेव डती ते पक्ष भाभीओथी आच्छादित होवाना कारणे नेवामां आवती न डती. आ प्रकारे डांस, मच्छरैथी तीव्र वेदना पाभीने पक्ष सुदर्शन मुनिओ ओ डांस, मच्छर, वगरेने पोताना डाय आदिथी इर न कथीं. परंतु ओ वभते ओवोव विचार कथीं डे डे आत्मन् ! वर्तमानमां ने प्रकारतुं आ दुःख मणी रह्युं छे ते ताराथी पडेलां लोगववामां आवेव नरक अने निगोदना दुःखो पासे थुं हिसाभमां छे, अरे ! ते पडेलांना लवोमां आ वेदनाथी पक्ष अनंतगणी वेदनाओ अनंतवार नरकमां लोगवी छे. असिपत्र, धुरपत्र, अने कदंबचीरिना पत्रथी छेदाथ लवाथी, शक्तिना अग्रभागथी कुंत लालाना अग्रभागथी, बाणना अग्रभागथी, छुरीना अग्रभागथी, सूचि कलापना अग्रभागथी, कपि कच्छु-कोंचनी क्षणीथी, अने वींछीना डंभथी, वेदाथ लवाथी तथा अणती

रुक्मः=नूतनवस्त्रवान् भविष्यामि, इति भिक्षुर्न चिन्तयेत्, अयं भावः—जीर्णवस्त्र-
साधुवस्त्राभावसंभावनया स्वात्मनि विपादं न कुर्याद्, नापि च नूतनवस्त्र-
संभावनया हर्षं कुर्यादिति ॥१२॥

उक्तार्थमेव दृढीकर्तुमाह—

रुक्म—एगया अचेलए होइ, संचेले याँवि एगयाँ ।

एयं धम्मांहियं नच्चा, नाणी नो परिदेवए ॥१३॥

छाया—एकदा अचेलको भवति, सचेलथापि एकदा ।

एतद् धर्महितं ज्ञात्वा, ज्ञानी नो परिदेवयेत् ॥१३॥

टीका—‘एगया’ इत्यादि ।

एकदा=कदाचित्, कल्पनीयजीर्णखण्डितमलिनाल्पवस्त्रस्य सद्भावे मुनिः,

न्यभाव न करे । (अदुवा-अथवा) अथवा (सचेलए होक्खं-सचेलको भविष्यामि) नवीन वस्त्रों से “उनकी अधिक स्थिति होने से” सचेलक-वस्त्र सहित हो जाऊँगा (इति) इस प्रकार (भिक्षु) साधु (न चिंतए-न चिन्तयेत्) विचार न करे ।

इस का भाव केवल यही है कि साधु जिस समय जीर्ण वस्त्रों का परिधान करे उस समय मुनि “ये फटे पुराने वस्त्र कितने दिन तक चलेंगे इनके फट जाने पर मैं निर्वस्त्र हो जाऊँगा” इस प्रकार कभी भी अपनी आत्मा में विपाद न करे । “ये नवीन वस्त्र हैं अधिक दिन तक चलते रहेंगे अतः मैं सवस्त्र ही रहूँगा” इस प्रकार कभी हर्ष भाव को प्राप्त न हो । अथवा ‘अब नूतन वस्त्रों की मुझे प्राप्ति होगी, इस बात की संभावना से भी साधु कभी भी हर्षित न होवे ॥ १२ ॥

सचेलए होक्खं-सचेलको भविष्यामि नवीन वस्त्रोत्थी “ते वधु प्रमाणुमां डोवाथी” सचेलक वस्त्र सहित थर्ष जर्षश आ प्रकारने पणु “भिक्षु” साधु नचितए-न चिन्तयेत् विचार न करे.

आनेो लाव डेवण अे ज छे डे, साधु जे समये लणु वस्त्रो परिधान करे अे समये आ श्टयां तूटयां वस्त्रो डेटला द्विपस आलशे, आना श्टी जवा पधी हुं वस्त्र वगरनेो जनी जर्षश. आ प्रकारनेो विपाद कही पणु पोताना आत्मांमां न करे. आ नवां वस्त्र छे, धणुा समय सुधी आलतां रडेशे, अने आथी हुं सवस्त्र रडीश. आ प्रकारनेो डुर्पलाव पणु कही न लावे. अथवा डवे भने नवां वस्त्रनी प्राप्ति थशे आ वातनी संभापनाथी पणु साधु कही हर्षित न थाथ (१२)

प्रशस्तध्यानेन शुभाध्यवसायेन प्राप्तकेवलज्ञान-केवलदर्शनः सुदर्शनः साधनन्तम-
व्यावाधं शाश्वतं शिवपदं लब्धवान् । एवमन्यैरपि मुनिभिर्मध्यस्थभावेन दंशमश-
कपरीपहः सोढव्यः ॥ ११ ॥

अपाचेलपरीपहजयं प्राह—

मूलम्—परिजुन्नेहिं वंत्येहिं, होक्खामि त्ति अचेलए ।

अदुवा सचेलए, होक्खं, इति भिक्खू नं चित्तए ॥१२॥

छाया—परिजीणैर्वस्त्रैः, भविष्यामि इति अचेलकः ।

अथवा सचेलको भविष्यामि, इति भिक्षुर्न चिन्तयेत् ॥१२॥

टीका—‘परिजुन्नेहिं’ इत्यादि ।

परिजीणैः=पुरातनैः, वस्त्रैः, अचेलकः=वस्त्ररहितः, भविष्यामि, तेषां स्वल्प-
कालस्थायित्वात्, इति=एतद्रूपं दैन्यं, भिक्षुर्न चिन्तयेत्=न कुर्यात् । अथवा

ने प्रशस्तध्यान से और शुभ परिणामों को धारा से केवलज्ञान और
केवलदर्शन प्राप्त कर लिया । पश्चात् आयु के अंत में सादि अनंत,
अव्यावाध एवं शाश्वत पद जो मुक्तिपद है उस को प्राप्त कर लिया ।
सुदर्शन मुनि की तरह अन्यमुनिजनों को भी मध्यस्थभाव से दंशमशक
परीपह सहन करना चाहिये ॥ ११ ॥

अब सूत्रकार छठे अचेल परीपह को जीतने का उपदेश करते हैं—
परिजुन्नेहिं—इत्यादि.

अन्वयार्थ—(परिजुन्नेहीं—परिजीणैः) पुराने (वंत्येहिं—वस्त्रैः) वस्त्रोंसे
(अचेलए होक्खामि—अचेलकः भविष्यामि) मैं उनकी अल्पकाल
स्थिति होने से अचेल वस्त्र रहित हो जाऊंगा । (त्ति—इति) इस प्रकार का

ध्यानशील अने शुभ परिष्कारोन्नी धाराशी केवलज्ञान अने केवलदर्शन प्राप्त
क्युं. पछी आयुना अंतमां आदि अनंत, अव्यावाध अने शाश्वत पद जे
मुक्तिपद छे तेने प्राप्त क्युं. सुदर्शन मुनिनी भाक्के अन्य मुनिजनेअने
पण्य मध्यस्थ भावशी अंस अने मच्छरोना परीपहने सहन करवा जेधअ ॥११॥

इसे सूत्रकार छठे अचेल परीपहने उतवाने उपदेश करे छे. परिजुन्नेहिं इत्यादि.

अन्वयार्थ—परिजुन्नेहिं—परिजीणैः श्रुतां “ वंत्येहिं—वस्त्रैः ” पत्रोधी अचेलए
होक्खामि—अचेलकः भविष्यामि हुं तेनी अल्पकाल स्थिति होवाधी अचेल वस्त्र
रहितथर्ध जेधे त्ति—इति आ प्रकारने दैन्यभाव न करे अदुवा—अथवा अथवा

नवीनवस्त्रसद्भावे तन्निमित्तकं हर्षं न कुर्यात्, तथा एषणीयप्रमाणोपेतवस्त्राणा-
ममहामूल्यकृत्वादल्पत्वादशोभनत्वाच्च विपादं न कुर्यात् शीतस्पर्शादिना वाधितोऽपि
प्रमाणाधिकवस्त्राकाङ्क्षां च न कुर्यादित्यर्थः । तथाचोक्तमाचाराङ्गसूत्रे—

“जे भिक्खू तिहिं वत्थेहिं परिवुसिए पायचउत्थेहिं, तस्स णं णो एवं भवइ,
चउत्थं वत्थं जाइस्सामि ।” (आचा. १ श्रु. ८ अ. ४ उ.)

छाया—यो भिक्षुस्त्रिभिर्वस्त्रैः पर्युषितः पात्रचतुर्थैः, तस्य खलु नो एवं भवति
चतुर्थं वस्त्रं याचिष्ये । पर्युषितः=व्यवस्थितः । अनेन स्थविरकल्पिकस्य चतुर्थवस्त्र
प्रतिषेधोऽवगम्यते । अपरं च—तत्रैवोक्तम्—

“जस्स णं भिक्खुस्स एवं भवइ—पुट्ठो खलु अहमंसि नालमहमंसि सीयफासं

भाव नहीं करना चाहिये—और ये नवीन वस्त्र हैं इनसे शीत आदिक
की रक्षा बहुत अच्छी तरह हो जायगी” इस प्रकार कभी हर्षित भी
नहीं होना चाहिये । शीतस्पर्शादिक से पीडित होने पर प्रमाण से
अधिक वस्त्रों की आकाङ्क्षा करना साधुमार्ग में निषिद्ध है । आचारांग-
सूत्र (१ श्रु. ८ अ. ४ उ.) में यही बात बतलाई गई है “जे भिक्खू
तिहिं वत्थेहिं परिवुसिए पायचउत्थेहिं तस्स णं णो एवं भवइ चउत्थं
वत्थं जाइस्सामि” जो भिक्षु तीन वस्त्रों से एवं चौथे पात्र से व्यवस्थित
रहता है उसे चतुर्थ वस्त्र के याचन की आवश्यकता नहीं होती है उस
के चित्त में यह बात नहीं आती है कि मैं चतुर्थ वस्त्र की याचना करूँ ।
इस कथन से स्थविरकल्पी साधु को चतुर्थवस्त्र का प्रतिषेध सिद्ध होता है ।
और भी आचारांग सूत्र (१ श्रु. ८ अ. ४ उ.) में कहा है “जस्स णं
भिक्खुस्स एवं भवइ—पुट्ठो खलु अहमंसि नालमहमंसि सीयफासं

नवीन वस्त्र छे, तेनाथी ढंडी वगेरेनी रक्षा सारी रीते धरो, आ प्रकारे कही
हुषित पणु न थवुं नेछंओ. ढंडीना स्पर्शथी पीडित थवाथी अधिक वस्त्रोनी
आकाङ्क्षा करवी ते साधु मार्गमां निषेध छे. आचारांगसूत्र (१ श्रु. ८. अ. ४ उ)
मां ओवी वात अताववामां आवेल छे डे, जे भिक्खू तिहिं वत्थेहिं परिवुसिए पाय
चउत्थेहिं तस्स णं णो एवं भवइ चउत्थं वत्थं जाइस्सामि ने भिक्षु पणु वस्त्र अने
योथा पात्रथी व्यवस्थित रहे छे. तेने योथा वस्त्रनी याचना करवानी आवश्यकता
थती नथी. ओना चित्तमां ओ वात आवती नथी डे हुं योथा वस्त्रनी याचना
कइं. आ कथनथी स्थविरकल्पी साधुने योथा वस्त्रने प्रतिषेध सिद्ध थाय छे.

भीलुं पणु आचारांग सूत्र (१. श्रु. ८. अ. ४. उ.) मां कलुं छे—

जस्स णं भिक्खुस्स एवं भवइ—पुट्ठो खलु अहमंसि नालमहमंसि सीयफासं

અચેલકઃ=વહ્નરહિત इव, भवति-तथाविधवह्नस्य तनुत्रायकत्वाभावात् । एकदा=कदाचित्-नूतनवह्नसद्भावे, सचेलकोऽपि=नवीनवह्नवानाप भवति । एतद्=अचेल-कत्वं सचेलकत्वं चेति द्वयं, धर्महितं=धर्माय हितं-श्रुतचारित्रधर्मोपकारकं, ज्ञात्वा ज्ञानी=मेधावी, नो परिदेवयेत्=जीर्णवह्नसद्भावे विपादं न कुर्यात्,

‘एगया अचेलए’ इत्यादि.

અન્વયાર્થ—(एगया-एकदा) कभी किसी समय कल्पनीय जीर्ण खंडित मलिन एवं अल्प वह्नों के सद्भाव में मुनि (अचेलए होई-अचेलको भवति) वह्न रहित जैसा ही होता है । क्यों कि जो जीर्णादिवह्न उसके होते हैं उनसे यथावत् शरीर की रक्षा नहीं होती है । (एगया) कभी किसी समय-नूतन वह्नों के सद्भाव में (सचेलै यावि होइ-सचेलकोऽपि भवति) सचेल भी-नवीन वह्न वाला भी होता है । (एवं-एतत्) ये दोनों ही अवस्थाएँ साधु की उसके (धम्महियं-धर्महितम्) श्रुतचारित्र रूप धर्म की उपकारक हैं । ऐसा (नच्चा-ज्ञात्वा) जानकर (नाणी नो परिदेवए-ज्ञानी नो परि देवयेत्) ज्ञानी मुनि किसी भी अपनी अवस्था में चाहे वह्न सहित अवस्था हो चाहे वह्न रहित अवस्था हो उसमें हर्णविपाद न करे ।

ભાવાર્થ—સાધુ કો “ યે વહ્ન જો મેરે પાસ હું વે વહુત હી જીર્ણ શીર્ણ હું, તથા હલકે પોતકે હું, યે વહુત થોડે હું, સુન્દર ભી નહીં હું હનસે શીત આદિક કી રક્ષા કૈસે હોગી ” હસ પ્રકાર કમી વિપાદ

‘एगया अचेलए’ इत्यादि.

અન્વયાર્થ—एगया-एकदा કેઈ વખત કલ્પનીય જીર્ણ ખંડિત મલિન અને અદ્યવહ્નોના સદ્ભાવમાં મુનિ અચેલએ હોઈ-અચેલકો ભવતિ વહ્ન રહિત જેવો જ હોય છે, કેમ કે, જે જીર્ણ એવાં વહ્ન તેની પાસે હોય છે તેનાથી યથાવત શરીરની રક્ષા થતી નથી એગયા કેઈવખત નવા વહ્નોના સદ્ભાવમાં સચેલે યાવિ હોઈ-સચેલકોઽપિ ભવતિ સચેલ પણ-નવીન વહ્નવાળા પણ હોય છે. એવં-એતત્ આવી બંને અવસ્થાઓ સાધુની ધમ્મહિયં-ધર્મહિતં શ્રુતચારિત્ર રૂપ ધર્મમાં ઉપકારક છે એવું નચ્ચા-જ્ઞાત્વા બાણીને નાણી નો પરિદેવએ-જ્ઞાની નો પરિદેવયેત્ જ્ઞાની કેઈ પણ અવસ્થામાં ચાહે વહ્નસહિત અવસ્થા હોય, ચાહે વહ્નરહિત અવસ્થા હોય તેમાં હર્ણ-વિપાદ ન કરે.

ભાવાર્થ:—સાધુએ “ આ વહ્ન જે મારી પાસે છે તે ઘણાં જીર્ણશીર્ણ છે, તથા હલકા પોતનાં છે અને ખૂબ થોડાં છે, સુંદર પણ નથી, એનાથી ઠંડી વગેરેથી રક્ષા કેમ થશે ” આ પ્રકારનો વિપાદભાવ કદી ન કરવો જોઈએ. આ

नवीनवस्त्रसद्भावे तन्निमित्तकं हर्षं न कुर्यात्, तथा एषणीयप्रमाणोपेतवस्त्राणाममहामूल्यकत्वादल्पत्वादशोभनत्वाच्च विपादं न कुर्यात् शीतस्पर्शादिना वाधितोऽपि प्रमाणाधिकवस्त्राकाङ्क्षां च न कुर्यादित्यर्थः । तथाचोक्तमाचाराङ्गसूत्रे—

“जे भिक्खू तिहिं वत्थेहिं परिवुसिए पायचउत्थेहिं, तस्स णं णो एवं भवइ, चउत्थं वत्थं जाइस्सामि ।” (आचा. १ शु. ८ अ. ४३.)

छाया—यो भिक्षुस्त्रिभिर्वस्त्रैः पर्युषितः पात्रचतुर्थैः, तस्य खलु नो एवं भवति चतुर्थं वस्त्रं याचिष्ये । पर्युषितः=व्यवस्थितः । अनेन स्थविरकल्पकस्य चतुर्थवस्त्र प्रतिषेधोऽवगम्यते । अपरं च—तत्रैवोक्तम्—

“जस्स णं भिक्खुस्स एवं भवइ—पुट्ठो खलु अहमंसि नालमहमंसि सीयफासं

भाव नहीं करना चाहिये—और ये नवीन वस्त्र हैं इनसे शीत आदिक की रक्षा बहुत अच्छी तरह हो जायगी” इस प्रकार कभी हर्षित भी नहीं होना चाहिये । शीतस्पर्शादिक से पीडित होने पर प्रमाण से अधिक वस्त्रों की आकाङ्क्षा करना साधुमार्ग में निषिद्ध है । आचारांगसूत्र (१ शु. ८ अ. ४ उ.) में यही बात बतलाई गई है “जे भिक्खू तिहिं वत्थेहिं परिवुसिए पायचउत्थेहिं तस्स णं णो एवं भवइ चउत्थं वत्थं जाइस्सामि ” जो भिक्षु तीन वस्त्रों से एवं चौथे पात्र से व्यवस्थित रहता है उसे चतुर्थ वस्त्र के याचन की आवश्यकता नहीं होती है उस के चित्त में यह बात नहीं आती है कि मैं चतुर्थ वस्त्र की याचना करूँ । इस कथन से स्थविरकल्पी साधु को चतुर्थवस्त्र का प्रतिषेध सिद्ध होता है । और भी आचारांग सूत्र (१ शु. ८ अ. ४ उ.) में कहा है “जस्स णं भिक्खुस्स एवं भवइ—पुट्ठो खलु अहमंसि नालमहमंसि सीयफासं

नवीन वस्त्र छे, तेनाथी ङंडी वगेरेनी रक्षा सारी रीते थशे, आ प्रकारे कही दुर्षित पणु न थपुं जेधंअे. ङंडीना स्पर्शथी पीडित थवाथी अधिक वस्त्रोनी आकांक्षा करवी ते साधु मार्गमां निषेध छे. आचारांगसूत्र (१ शु. ८. अ. ४ उ) मां अेवी वात अताववामां आवेल छे के, जे भिक्खू तिहिं वत्थेहिं परिवुसिए पाय चउत्थेहिं तस्स णं णो एवं भवइ चउत्थं वत्थं जाइस्सामि जे भिक्षु त्रय वस्त्र अने थोथा पात्रथी व्यवस्थित रहे छे. तेने थोथा वस्त्रनी याचना करवानी आवश्यकता थती नथी. अेना चित्तमां अे वात आवती नथी के दुं थोथा वस्त्रनी याचना कइं. आ कथनथी स्थविरकल्पी साधुने थोथा वस्त्रनो प्रतिषेध सिद्ध थाय छे.

णीनुं पणु आचारांग सूत्र (१. शु. ८. अ. ४. उ.) मां कहुं छे—
जस्स णं भिक्खुस्स एवं भवइ—पुट्ठो खलु अहमंसि नालमहमंसि सीयफासं

अहियासित्तए, से वसुमं सव्वसमन्नागयपन्नाणेणं अप्पाणेणं केइ अकरणयाए आउट्टे, तवस्सिणो हु ते सेयं जं एगे विहमाइए । तत्थवि तस्स कालपरियाए । से वि तत्थ विअंतिकारए । इच्चेयं विमोहायतणं हियं सुहं खमं णिस्सेयसं अणुगामियं । (आचा. १ श्रु. ८ अ. ४ उ.)

छाया—यस्य खलु भिक्षोः एवं भवति—स्पृष्टः खलु अहमस्मि, नालमहमस्मि शीतस्पर्शम् अध्यासितुम्, स वसुमान् सर्वसमन्वागतप्रज्ञानेन आत्मना कोऽपि अकरणतया आहतः तपस्विनः खलु तच्छ्रेयः यदेकं वैहायसादिकम् । तत्रापि तस्य कालपर्यायः । सोऽपि तत्र व्यन्तकारकः । इत्येतत् विमोहायतनं हितं सुखं क्षमं निःश्रेयसम् आनुगामिकम् ।

व्याख्या—यस्य भिक्षोः खलु एवम्=ईदृशी विचारणा भवति—अहं खलु परीपहैः स्पृष्टः=वाधितोऽस्मि, अहं शीतस्पर्शम् अध्यासितुं=सोढुम्, अलं=पर्याप्तः, नास्मि । सः—ईदृशभावनाभावितः, कोऽपि वसुमान्=संयमी, सर्वसमन्वागतप्रज्ञानेन=पूर्णापयोगयुक्तेन, आत्मना=अन्तःकरणेन अकरणतया=उपसर्गप्रतीकारस्या-

अहियासित्तए, से वसुमं सव्वसमन्नागयपन्नाणेणं अप्पाणेणं केइ अकरणयाए आउट्टे, तवस्सिणो हु ते सेयं जं एगे विहमाइ ए । तत्थ वि तस्स कालपरियाए । से वि तत्थ विअंतिकारए । इच्चेतं विमोहायतणं हियं सुहं खमं णिस्सेयसं अणुगामियं ॥ ”

जिस भिक्षु के हृदय में ऐसी विचारणा होती है कि मैं परीपहों से पीडित हूँ अतः शीतपरीपह को सहन करने के लिये समर्थ नहीं हूँ ” । इस प्रकार के विचार से युक्त होकर वह संयमी मुनि प्रमाणाधिक वस्तुओं को ग्रहण करने रूप, तथा अग्नि को जलाने रूप सावध्य व्यापारों को कभी भी न करे । किन्तु वैहायस (फ्रांसी)

अहियासित्तए से वसुमं सव्वसमन्नागयपन्नाणेणं अप्पाणेणं केइ अकरणयाए आउट्टे तवस्सिणो हु ते सेयं जं एगे विहमाइए । तत्थ वि तस्स कालपरियाए । से वि तत्थ विअंतिकारए । इच्चेतं विमोहायतणं हियं सुहं खमं णिस्सेयसं अणुगामियं ॥

वे भिक्षुना हृदयमां येवी विचारणा थाय छे के, “ हुं परीपहोथी पीडित छुं आथी ठंडीना दुःखेने सहन करवामां समर्थ नथी ” आ प्रकारना विचारथी युक्त अनी ते संयमी मुनि प्रमाणाधिक वस्तुने ग्रहण करवां इय, तथा अग्निने जलाववा इय सावध्यव्यापारेने कही पणु न करे. पणु ते वैहायस

करणभावनया आद्यतः=व्यवस्थितस्तिष्ठेत् । तपस्विनः खलु तच्छ्रेयः=तदेव श्रेयस्करं भवति, यत्-एकं वैहायसादिकं-वैहायसत्रिपभक्षणं पापातादिमरणेषु किमप्येकं मरणम् । तत्रापि=वैहायसादिषु तस्य कालपर्यायः=भक्तपरित्यादिवत् कालमृत्युरेव नत्व-कालमृत्युः, अत एव सोऽपि तत्र=चतुर्थवस्त्रानाकाङ्क्षाविषये, व्यन्तकारकः=पर्यवसान मृत्युकारकः, संसारान्तकारक इत्यर्थः । इत्येतत्-इति=अतः-अस्मात् कारणात्, एतन्मरणं विमोहायतनम्-विमोहानां=परीपहसादिष्णुनाम्, आयतनं=स्थानं-मोक्षपददायकमितिभावः, हितम्=उपकारकम्, सुखं=सुखकरं, क्षमं=योग्यं, निःश्रेयसं=निश्चितं-निश्चलं, श्रेयः-शुभम्, आनुगामिकम्=गच्छन्तं पुरुषम् आ=समन्तात्, अनुगच्छतीत्येवं शीलं आनुगामि, तदेव-आनुगामिकम्, मोक्षपदपर्यन्तानुगमन-शीलमित्यर्थः ।

अयं भावः-एषणीयवस्त्रत्रयधारणे शीतस्पर्शवेदनामसहिष्णुश्चतुर्थवस्त्राकाङ्क्षाया अकरणेन त्रिवस्त्रकत्वरूपमचेलं परीपहं सहमानो मुनिर्वैहायसादिष्वेकं किमपि मरणमुपगतश्चेत्तर्हि तादृशमरणजन्यः प्रकृष्टधर्मस्तस्य मुनेस्तस्मिन्नेव भवे संसारान्तं करोति, मोक्षपदं च प्रापयति ।

इहाचेलकत्वं प्रवचनोक्तरीत्या ग्राह्यम् । तीर्थकरोपदिष्टाचारसेविनो मुनयः प्रवचनानुसारेण कल्पनीयाल्पजीर्णखण्डितमलिनवस्त्रपरिधानाः प्रमाणोपेतवस्त्रधारिण-श्चाप्यचेलका एव । यथा-परिहितकौपीना अपि तापसा लोके नग्ना उच्यन्ते,

आदि मरणों में से किसी एक मरण को धारण कर अपने प्राणों का व्युत्सर्ग कर देवे । इस प्रकार के मरण से होने वाला जो प्रकृष्ट धर्म है वह उस मुनि को उसी भव में संसार का अन्त करता हुआ मोक्ष का प्रदायक होता है ।

प्रवचन में कथित रीति के अनुसार यहाँ अचेलकता का ग्रहण किया गया है । तीर्थकरो द्वारा उपदिष्ट आचार का सेवन करने वाले मुनि प्रवचन के अनुसार कल्पनीय, अल्प, जीर्ण, एवं

शंसी वगेरे भरल्लोभांधी केछ ओक भरल्लुने धारल्लु करी चोताना प्राल्लुनेा त्याग करी हे. आ प्रकारना भरल्लुधी धनार ले प्रकृष्ट धर्म छे ते ओ मुनिनें ओ लवभां संसारनेा अंत करानार मोक्षदायी भने छे.

प्रवचनमां कडेल रीत अनुसार अहिं अचेलकतानुं अल्लु करवाभां आवेल छे. तीर्थकरो द्वारा उपदिष्ट आचारनुं सेवन करवावाणा मुनि प्रवचन अनुसार कल्पनीय, अल्प, लुर्ण भने अंरित मलिन वस्त्रने, प्रमाणोपेत वस्त्रने, धारल्लु करेल होवा छतां

યથા વા યસ્યાદ્ગ્નરક્ષિકા જીર્ણા સંજાતા, સ પરિષ્ટતાદ્ગ્નરક્ષિકોઽપિ સૌચિક્રાન્તિકં ગત્વા વદતિ—અનાઘૃતોઽસ્મિ, અદ્ગ્નરક્ષિકાં દેહીતિ, યથા વા કાચિન્નારી પરિહિત-પરિજીર્ણશાટિકાઽપિ વસ્ત્રકારં તન્તુવાયં વદતિ—‘ નગ્નાઽ હમસ્મિ, દેહિ મે શાટિકામ્’ ઇત્યાદિ, એવં સાધવોઽપ્યમહાલ્પમૂલ્યાનિ સ્વણ્ડિતાનિ જીર્ણાનિ પ્રમાણોપેતાનિ પ્રમાણતો ન્યૂનાનિ વા વસ્ત્રાણિ શ્રુતોપદેશાદ્ ધર્મવુદ્ધયા ધારયન્તોઽવેલકા ઇવ । અવેલકસદૃશા અપ્યવેલકા ઉચ્યન્તે ।

खंडित मलिन वस्त्र को प्रमाणोपेत वस्त्रों को धारण करते हुए भी अचेलक ही माने जाते हैं । जिस प्रकार लोक में लंगोटीमात्र को धारण करने पर भी तापस लोग “ ये नग्न हैं ” इस प्रकार कहे जाते हैं । अथवा जैसे किसी पुरुष का अंगरखा जीर्ण हो जाय और वह उसे पहिर कर भी जब दर्जी के पास दूसरे अंगरखे को सिलाने के लिये जाता है तो कहता है कि भाई देखो जल्दी इसे सीकर दे देना मैं उघाडा फिरता हूं, मेरे पहिरने को अंगरखा नहीं है । अथवा—जैसे कोई स्त्री कि जिसकी शाटिका—साडी परिजीर्ण हो चुकी है जब तन्तु-वाय—कपडे वुननेवाले के पास जाती हैं तो कहती हैं कि मुझे साडी दे में विना साडी फिर रही हूं । इसी तरह साधु भी प्रमाणोपेत खंडित जीर्ण एवं अत्यंत अल्पमूल्यवाले वस्त्रों को श्रुतोपदेश के अनुसार धर्म-वुद्धि से धारण करते हुए भी अचेलक ही हैं, ऐसा समझना चाहिये । जो अचेलक के तुल्य होते हैं वे भी अचेलक ही माने जाते हैं ।

પણ અચેલક જ માનવામાં આવે છે. જે પ્રકારે લોકમાં તાપસ લોકો લંગોટી ધારણ કરે છે. પણ “આ નગ્ન છે” આ પ્રકારથી કહેવામાં આવે છે. અથવા જેમ-કેઈ પુરૂષનું અંગરખું જીર્ણ થઈ બંધ અને તે તેને પહેરીને પણ બન્યારે દરજીની પાસે ખીલું અંગરખું શીવડાવવા માટે બંધ છે તે કહે છે ભાઈ બુચ્ચો અને જલ્દીથી શીવી આપજો હું ઉઘાડો કરું છું. મારે પહેરવાને અંગરખું નથી અથવા જેમ-કેઈ સ્ત્રી કે જેની સાડી પરિજીર્ણ થતાં તે કપડાં બનાવનાર પાસે બંધ છે અને કહે છે કે મને સાડી આપ હું સાડી વગરની કરી રહી છું. આ રીતે સાધુ પણ પ્રમાણોપેત ખંડિત જીર્ણ અને અત્યંત અલ્પમૂલ્યવાળાં વસ્ત્રોને શ્રુત ઉપદેશ અનુસાર ધર્મ વુદ્ધિથી ધારણ કરતા હોવા છતાં અચેલક જ છે એવું સમજવું જોઈએ. જે અચેલક તુલ્ય હોય છે તે પણ અચેલક જ માન્યા બંધ છે.

आगमे हि द्विविधः कल्पः—स्थविरकल्पः जिनकल्पश्च । तत्र गच्छप्रतिबद्धानां मुनीनामाचारः स्थविरकल्पः ।

ननु कस्तावत् स्थविरकल्पक्रमः ? उच्यते—प्रथमं श्रुतचारित्रलक्षणधर्मश्रवणम्, ततः सम्यक्त्वलाभः, तदनुआलोचनापूर्विका प्रव्रज्याप्रतिपत्तिः, ततः शिक्षाधिकारो भवति शिक्षा च द्विविधा—ग्रहणशिक्षा, आसेवनाशिक्षा च । तत्र ग्रहणशिक्षा—सूत्राध्ययनरूपा, आसेवनाशिक्षा—प्रतिलेखनादिरूपा । ततः सूत्राणामर्थग्रहणम् । तत्पश्चादनियतवासः । स च तादृशयोग्यतासंपन्नस्य मुनेः साधुसहायस्य ग्राम-नगरसंनिवेशादिषु देशान्तरे वा गुरोराज्ञया पर्यटनम् ।

आगम में स्थविरकल्प और जिनकल्प के भेद से दो कल्प भगवान् ने कहे हैं । उनमें गच्छप्रतिबद्ध मुनियों का जो आचार है वह स्थविरकल्प है । स्थविरकल्प का क्रम इस प्रकार है—प्रथम श्रुतचारित्ररूप धर्म का श्रवण, उससे सम्यक्त्व का लाभ, बाद में आलोचनापूर्वक प्रव्रज्या की प्रतिपत्ति, उससे ग्रहणशिक्षा एवं आसेवनशिक्षा के अधिकार का लाभ । सूत्र के अध्ययन करने रूप ग्रहणशिक्षा एवं प्रतिलेखनादिकरूप आसेवनशिक्षा है । इसके बाद सूत्रों का अर्थ ग्रहण करना, पश्चात् अनियत वास । अनियतवास का तात्पर्य है गुरु की आज्ञा से ग्राम, नगर एवं सन्निवेश आदिकों में अथवा देशान्तर में विचरण करना । यह विचरण, विचरण करने की योग्यता संपन्न जो साधु होता है उसी का होता है । फिर भी यह एकाकी विहार नहीं कर सकता किन्तु अन्य साधुओं के साथ ही विहार करता है ।

आगममां स्थविरकल्पे अने लुनकल्पना लेहोथी जे कल्प लगवाने कहां छे. जेमां गच्छप्रतिबद्ध मुनियोना आचार छे, ते स्थविरकल्प छे. स्थविर कल्पने कर्म आ प्रकारने छे.—प्रथम श्रुतचारित्ररूप धर्मनुं श्रवण, जेनाथी सम्यक्त्वने लाल, पछी आलोचना पूर्वक प्रव्रज्यानी प्राप्ति जेथी अहणु-शिक्षा अथवा आसेवनशिक्षाने लाल, सूत्रनुं अध्ययन करवा रूप अहणु-शिक्षा अने प्रतिलेखनादिक रूप आसेवनशिक्षा छे. जे पछी सूत्रेना अर्थ समन्था पछी अनियतवास, अनियतवासनुं तात्पर्य जे छे के, गुरुनी आज्ञाथी ग्राम-नगर अने सन्निवेश वगेरेमां अथवा देशान्तरमां विचरण करवुं. आ विचरण करवानी योग्यता संपन्न जे साधु होय छे, तेने जे गुरु भडाराज जेवी आज्ञा आपे छे. आमां ते जेकाडी विहार करी शकता नथी परंतु अन्य साधुजोनी साथे जे विहार करे छे.

નનુ કિં પ્રયોજનં દેશાન્તરપર્યટનસ્ય ? ઉચ્યતે—નાનાસ્થાનેષુ વહુશ્રુતાનાચાર્યાદીન્ પશ્યતસ્તસ્ય સૂત્રાર્થેષુ સમાચાર્યાં ચ વિશેષપ્રતિપત્તિર્ભવતિ, નાનાદેશભાષાજ્ઞાનં ચ । તેનાસૌં તત્તદ્દેશીયભાષયા તત્ર તત્ર ધર્મદેશનાં દદાતિ પ્રવ્રજ્યાં ગ્રાહ્યતિ ચ । ગચ્છાન્તરીયા અન્યદેશીયાઃ સાધવઃ ‘ અયમસ્મદ્ભાષાજ્ઞાનવાન્ ’ ઇતિ મત્વા તદન્તિકમાગત્ય શાસ્ત્રાભ્યસનરૂપાં તદુપસંપદં પ્રતિપદ્યન્તે, તેપાં પ્રીતિશ્ચ તદુપરિજાયતે । એવમનિયતવાસેન પર્યટવસ્તસ્ય નિષ્પત્તિર્ભવતિ । નિષ્પત્તિર્નામ સદ્ગુણવચ્ચેન પ્રભૂતશિષ્યાણાં તદન્તિકે સંસિદ્ધિઃ ।

દેશાન્તર મેં ભ્રમણ કરને કા પ્રયોજન યહ હૈ કિ જય સાધુ દેશાન્તર મેં ભ્રમણ કરતે હૈ, તવ ડનકા અન્યદેશ કે અનેક વહુશ્રુત આચાર્ય આદિકોં કે સાથ સંપર્ક વંદતા હૈ । ડસસે ડનકો સૂત્રમેં અર્થ મેં એવં સાધુ સમાચારી મેં વિશેષ પ્રતિપત્તિ—જાનકારી હોતી હૈ । તથા નાના દેશકી ભાષાઓં કા જ્ઞાન ઓં જાતા હૈ । ડસસે સાધુ કો ધર્મપ્રચાર કરને મેં વડી ઓરી સહાયતા મિલતી હૈ । ક્યોં કિ વહ ડસ ૨ દેશમેં ડસ ૨ દેશ કી ભાષા સે ડપદેશ દેકર વહાં કી જનતા કો ધાર્મિક વાસના સે વાસિત કરતે હૈ । એવં લોગોં કો દીક્ષા ગ્રહણ કરને કી ઓવના જાગૃત કરતે હૈ । લોગ ડનસે પ્રતિવોધ પાકર દીક્ષા ધારણ કરતે હૈ । ડસરે ગચ્છ કે અથવા અન્ય દેશ કે સાધુ “ યે હમારી ભાષા ભાષી હૈ ” યહ સમજ્જકર ડનકે પાસ આતે જાતે હૈ ઓર ડનસે શાસ્ત્રોં કા અભ્યાસ કરતે હૈ । ડસસે ડસરે ગચ્છ કે મુનિરાજોં કી ડન પર અધિક પ્રાતિ ઓં હો જાતી હૈ । શિષ્યપરંપરા કી ઓ વૃદ્ધિ હોતી હૈ । ક્યોં કિ લોગ જબ

દેશાન્તરમાં ભ્રમણ કરવાનું પ્રયોજન એ છે કે, બ્યારે સાધુ દેશાન્તરમાં ભ્રમણ કરે છે ત્યારે તેને ઓળ દેશોના અહુશ્રુત આચાર્ય વગેરે સાથે સંપર્ક થાય છે આથી તેને સૂત્રમાં અર્થમાં અને સાધુ સમાચારીમાં વધુ જાણવાનું મળે છે. અને જુદા જુદા દેશની ભાષાઓનું પણ જ્ઞાન થાય છે. આથી સાધુને ધર્મ પ્રચાર કરવામાં સારી ઓવી સહાયતા મળી રહે છે. કેમ કે, તે જે તે દેશમાં જે તે દેશની ભાષાથી ત્યાંની જનતાને ધાર્મિક ભાવનાથી ભાવનાયુક્ત બનાવી શકે છે, અને લોકોમાં દીક્ષા ગ્રહણ કરવાની ભાવના જાગૃત કરે છે. ઓળ ગચ્છના અથવા ઓળ દેશના સાધુ “ આ અમારા ભાષાભાષી છે. ” ઓમ સમજ્જ ઓની પાસે આવે છે. સંપર્ક વધારે છે. અને ઓની પાસેથી શાસ્ત્રોના અભ્યાસ કરે છે. આથી ઓળ ગચ્છના મુનિરાજોની પણ તેના પર પ્રીતિ થવા લાગે છે આથી શિષ્ય પરંપરાની વૃદ્ધિ થાય છે, કેમ કે

एवं शिष्यप्राप्त्यनन्तरं स्व परोपकारकरणेन गच्छकार्ये संपादिते दीर्घे पर्याये च प्रतिपालिते सति अभ्युद्यतमरणं स्वीकरणीयम् । अभ्युद्यतमरणं त्रिविधम्-पादपोषगमनं, इङ्गितम्, भक्तप्रत्याख्यानं च ।

अभ्युद्यतमरणे संलेखनादिरूपा समाचारी प्रदर्शयते-संलेखना आगमोक्तेन विधिना शरीरादेः कृशोकरणम्, सा त्रिविधा-उत्कृष्टा, मध्यमा, जघन्या च । तत्रो-

उनको गुणगणशाली समझने लगते हैं तो उनके अधिक परिचय में आने से लोगों पर उनके ज्ञानादिक गुणों का प्रभाव पडता है । इससे प्रभावित होकर वे उनको अपना हितकारक जान उनके समीप दीक्षित भी हो जाते हैं । इससे शिष्यपरंपरा बढती है । इस प्रकार अनियत वास से पर्यटन करने वाले साधु को ये अनेक लाभ होते हैं ।

शिष्यप्राप्ति के अनन्तर स्व एवं पर का उपकार करने से गच्छ का कार्य संपादित होने पर तथा साधु अवस्था की पर्याय दीर्घकालतक पालीजाने पर उन साधुओंको अभ्युद्यतमरण स्वीकार करना चाहिये । यह अभ्युद्यतमरण ३ तीन प्रकार का है १ पादपोषगमन, २ इङ्गित, ३ भक्तप्रत्याख्यान ।

इस अभ्युद्यतमरण में अब संलेखनादि रूप समाचारी दिखलाई जाती है - आगमोक्तविधि के अनुसार शरीर आदि का कृश करना इस का नाम संलेखना है । यह उत्कृष्ट, मध्यम एवं जघन्य के

दोहो न्यारे तेने शुषुशाणी समजता थाय छे त्यारे तेना अधिक परिचयमां आवे छे. आधी दोहो उपर अेना ज्ञानादिक शुषुाने प्रभाव पडे छे. अेधी प्रभावित थई तेने पोताना छितकारी नणी तेनी समीप दीक्षित पणु थई नथ छे. आधी शिष्यपरंपरा वधे छे. आधी आ प्रकारने अनियतवास अने पर्यटन करवावाजा साधुने अनेक लाभ थाय छे.

शिष्य प्राप्ति उपरांत स्व अने परना उपकारक जनवाधी गच्छतुं कार्य संपादित थवाधी. तथा साधु अवस्थानी पर्याय लांभा समय सुधी पाणवामां आववाधी अे साधुआअे अभ्युद्यतमरण स्वीकारतुं नेई अे. आ अभ्युद्यतमरण त्रधु प्रकारनां छे. (१) पादपोषगमन (२) इङ्गित (३) लक्ष्मप्रत्याख्यान.

आ अभ्युद्यतमरणमां डवे संलेखनादि रूप समाचारी जताववामां आवे छे. आगममां जतावेव विधि अनुसार शरीर वगेरेने कृश करतुं, अेतुं नाम संलेखना छे. अे उत्कृष्ट, मध्यम अने जघन्यना वेदधी त्रधु प्रकारनी

त्कृष्टा द्वादशवर्षप्रमाणा, मध्यमा-संवत्सरप्रमाणा, जघन्या-पाण्मासिकी । तत्रो-
त्कृष्टा तावदेयम्-प्रथमं चत्वारि वर्षाणि विचित्रं तपः कृत्वा पारणके विकृतिपरि-
त्यागं करोति । ततः परं चत्वारि वर्षाणि विचित्रतपांसि करोति । ननु किं नाम
विचित्रं तपः ? उच्यते-कदाचिच्चतुर्थम् कदाचित् षष्ठम्, कदाचिदष्टमम्, एवं दशम
द्वादशादीन्यपि करोति, पारणं च सर्वकामगुणितेन उद्गमादि शुद्धेनाहारेण विधत्ते ।
ततः परं द्वे च वर्षे एकान्तरितमाचाम्लं करोति । एकान्तरं चतुर्थं कृत्वा आचाम्लेन
पारणं करोतीत्यर्थः । एवं दशवर्षाणि व्यतीत्यैकादशवर्षे आधात् षण्मासान् चतुर्थं

भेद से तीन प्रकार की होती है । उत्कृष्टसंलेखना चारह १२ वर्ष की,
मध्यम संलेखना एक १ वर्ष की एवं जघन्य संलेखना छह ६ मास की
होती है । उत्कृष्टसंलेखना की विधि इस प्रकार है-सब से पहिले जो
उत्कृष्टसंलेखना धारण करता है वह प्रथम के चार वर्ष लगातार
विचित्र तप करके पारणा में विकृति-विगय का त्याग करे । दूसरे चार
वर्षों में विचित्र तप अर्थात् कभी वह चतुर्थ करता है कभी छठ करता
है कभी अष्टम करता है कभी दशम करता है और कभी द्वादश आदि
करता है । पारणा सर्वकामगुणित सब इन्द्रियों के अनुकूल तथा उद्गम
आदि दोषों से विशुद्ध ऐसे आहार से करता है । इसके बाद फिर वह
दो वर्षों में अर्थात् नवमें दशमें वर्षों में एकान्तरित आचाम्ल (आयंबिल)
व्रत की आराधना करता है । यह आराधना उसकी दो २ वर्ष तक
चलती रहती है । अर्थात्-दो वर्ष एकान्तर चतुर्थ करके आचाम्ल
(आयंबिल) से पारणा करता है । इस प्रकार करते २ उसके दस १०

होय छे. उत्कृष्टसंलेखना बारवर्षानी, मध्यम संलेखना ऐकवर्षानी, अने
जघन्यसंलेखना छ भडिनानी होय छे. उत्कृष्ट संलेखनानी विधि आ प्रकारनी
छे, सहुधी पडेलों जे उत्कृष्ट संलेखना धारणु करे छे, तेहे प्रथमना बार
वर्ष सुधी विचित्र तप करी पारणामां विकृति विगयनेा त्याग करे, पील
बार वर्षोंमां ते विचित्र तप अर्थात् कही चोथ करे छे. कहीक छठ
करे छे. कहीक अष्टम करे छे. अने कयारेक द्वादश वगेरे करे छे. पारणुं सर्व-
काम शुशीत भधी इन्द्रियेने अनुकूल तथा उद्गम आदि दोषोधी रडित
आहारथी करे छे. आ पछी ते जे वर्षमां अर्थात् नवमा दशमा वर्षमां
ऐकान्तरित आयंबील व्रतनी आराधना करे छे. आ आराधना जे वर्ष सुधी चाले
छे. अर्थात् जे वर्ष ऐकान्तर चोथ करी आयंबीलथी पारणुं करे छे, आ रीते
करतां करतां जेना दश वर्ष व्यतित थरि जाय छे. ज्यारे अगीथारमां वर्षनी

पष्ठं वा तपः करणीयं नाष्टमादिकम् । ततः परमन्यान् पण्मासान् अष्टमदशम-
द्वादशादिकमुत्कृष्टं तपः करोति । अस्मिन्नेकादशे वर्षे पारणके तु परिमितं-स्वल्प-
संख्यकमाचाम्लं करोति । कदाचित् करोति कदाचिन्नकरोतीति भावः । द्वादशे
तु वर्षे कोटिसहितं निरन्तरमाचाम्लं करोति । अत्र कोटिसहितमित्यस्यायमर्थः-
कोटिभ्यां सहितम्-विवक्षितदिने आचाम्लं कृत्वा पुनर्द्वितीयेऽह्नि आचाम्लमेव
प्रत्याख्याति, ततः प्रथमस्य पर्यन्तकोटिः, द्वितीयस्य प्रारम्भकोटिः, इमे द्वे मिलिते
भवतस्तत्कोटिसहितं भवति, इदमाचाम्लं निरन्तरं भवतीत्यर्थः । तत्रापि मासार्द्धेन
मासिकेन वाऽऽहारत्यागेन तपश्चरणीयम् । अनशनं करणीयमित्यर्थः । अनेन क्रमेण
द्वादशवर्षिकीमुत्कृष्टां संलेखनां कृत्वा गिरिगह्वरं वा पट्कायोपमर्दरहितं निर्जनं

वर्षं व्यतीत हो जाते हैं और जब ग्यारह ११वां वर्ष प्रारंभ होता है तो
उसमें आदि के छह ६ मास तक वह चतुर्थ, पष्ठ, तपस्या की आराधना
करता है, अष्टम आदि की नहीं । बाकी ऊपर के छह ६ महिनो में
अष्टम, दशम एवं द्वादश आदि उत्कृष्ट तप करता है । इस वर्ष में
पारणा के दिन परिमित आयंबिल करता है । अर्थात् कभी आयंबिल
करता है कभी नहीं करता । बारह १२वे वर्ष में कोटिसहित-निरन्तर
आयंबिल करता है । जहां पहिले आयंबिल का अन्त हो और दूसरे
आयंबिल का प्रारंभ, इसका नाम कोटि है । इन दोनों कोटियों से
सहित जो आयंबिल होता है उसका नाम कोटिसहित आयंबिल है ।
ये आयंबिल निरन्तर होता हैं, अन्त में मासार्ध-एक पक्ष और
मासिक-एक मास का अनशन करता है । इस क्रम से बारह १२
द्वादश वर्ष की उत्कृष्ट संलेखना होती है । इस उत्कृष्ट संलेखना को

शुद्ध्यात् ङोय छे. छ मास सुधी ते योय, छठु तपस्यानी आराधना करे छे.
अष्टम वगेरनी नहीं ये पछीना छ महिनामां अष्टम, दशम, अने द्वादश
आदि उत्कृष्ट तप करे छे. आ वर्षमां पारणाना दिवसे परिमित आयंबिल
करे छे. अर्थात् कोठि वषत आयंबिल करे छे. कोठि वषत करता नही.
पारमा वर्षमां कोटि सहित निरंतर आयंबिल करे छे. न्यां पडेलं आयं-
बिलने अंत आवे अने भील आयंबिलने प्रारंभ थाय अेतुं नाम कोटि
छे. आ अने कोटियो सहित ने आयंबिल ङोय छे अेतुं नाम कोटि
साहित आयंबिल छे. आ आयंबिल शल थाय छे. अंतमां मासार्द्ध-अेक
पक्ष अने मासिक-अेक मासनुं अनशन करे छे. आ कभथी पार (द्वादश)
वर्षानी उत्कृष्ट संलेखना थाय छे. आ उत्कृष्ट संलेखना करीने साधु कां ते

स्थानं वा गत्वा पादपोषगमनम्, इङ्गितं भक्तप्रत्याख्यानं वा मरणं यथाशक्ति प्रपद्यते ।

मध्यमा तु संलेखना पूर्वोक्तप्रकारेण द्वादशभिर्मासिर्भवति । तत्र वर्षस्थाने मासा स्थापनीयाः ।

जघन्या तु द्वादशभिः पक्षैः पूर्वोक्तप्रकारेण भवति । पक्षानेव वर्षस्थानीयान् कृत्वा तपश्चरणं कर्तव्यं भवति । गिरिकन्दरादिगमनं मध्यमजघन्ययोरपि ।

करके साधु या तो किसी पर्वत की गुफा में चला जाता है, या पट्टकाय के उपमर्दन से रहित निर्जीव किसी निर्जनस्थान में चला जाता है। वहां पहुँच कर पादपोषगमन, इंगित, भक्तप्रत्याख्यान इन तीनों में से किसी एक को जैसी शक्ति होती है उसके अनुसार स्वीकार कर लेता है।

मध्यमा संलेखना एक १ वर्ष की होती है। जो विधि बारह १२ वर्ष की संलेखना में प्रदर्शित करने में आई है वह विधि इसकी भी है वहां जहां वर्ष का प्रमाण ग्रहण किया गया है इसमें उस जगह मास रूप प्रमाण समझाना चाहिये। जैसे वहां ४ वर्ष आदि कहा है इसमें ४ मास समझना चाहिये।

जघन्य संलेखना १२ पक्षों-६ मास-के प्रमाण वाली होती है। इसकी भी विधि वही है जो उत्कृष्ट संलेखना की है। वर्ष के स्थान में यहां पक्षों को ग्रहण किया जाता है। मध्यम संलेखना एवं जघन्य संलेखना इन दोनों में भी गिरिकन्दरा आदि में जाना आवश्यकिय है।

कोई पर्वतनी शूद्रांमां आद्या न्य छे. अथवा पट्टकायना, उपमर्दनधी रक्षित निर्जीव अथवा निर्जन स्थानमां आद्या न्य छे. त्यां पडोंची पादपोषगमन इंगित, लक्षतप्रत्याख्यान आ त्रधुमांथी पोतानी शक्ति प्रमाणे कोई अेक भरणुना स्वीकार करी दे छे,

मध्यमा संलेखना अेक १ वर्षनी डोय छे. जे विधि बार १२ वर्षनी संलेखनामां प्रदर्शित करवामां आवी छे ते विधि आनी पषु छे. न्यांवर्षनुं प्रमाणु अडषु करवामां आव्यु छे त्यां मडिनानुं प्रमाणु मध्यमा संलेखना माटे समजनुं लेधये. जेम त्यां बार वर्ष आदि कडेल छे. त्यां आमां बार मडिना समजवा लेधये.

जघन्य संलेखना १२ पक्ष-छ मास ना प्रमाणुवाणी डोय छे. आनी विधि पषु अे न छे. जे उत्कृष्ट संलेखनानी छे. मध्यम संलेखना अने जघन्य संलेखना आ पनेमां पषु गिरिकन्दरा आदिमां नुं

संलेखनायामसमर्थेन मुनिना संलेखनां विनाऽपि यथाशक्ति संस्तारकं कृत्वाऽभ्युद्यतमरणं स्वीकरणीयम् ।

अभ्युद्यतमरणाङ्गीकरणात् प्रांगिदं चिन्तनीयम्-मया विशुद्धचारित्रानुष्ठानेन स्वपरहितं संपादितम्, शिष्याद्युपकारतः परहितं च, निष्पन्नाश्च सम्प्रति मम गच्छपरिपालनक्षमाः शिष्याः, अथ विशेषेण ममात्महितमनुष्ठेयमिति विचिन्त्य स्वपरिज्ञाने सति स्वकीयमायुः शेषं स्वयमेव पर्यालोचयति, तदभावेऽन्यं विशिष्टमाचार्यादिकं पृच्छति । स्वायुषिस्तोक्तया ज्ञाते भक्तप्रत्याख्यानानादि मरणं यथाशक्ति प्रतिपद्यते । यदि स्वायुर्दीर्घतया ज्ञातं जङ्घावलमात्रं परिक्षीणं तदा स्थिरवासं

जो साधु संलेखना करने में असमर्थ है उसे संलेखना के विना भी यथाशक्ति संधाराकर अभ्युद्यतमरण स्वीकार करना चाहिये । इस अभ्युद्यतमरण को अंगीकार करने के पहिले साधु को इस प्रकार विचार करना चाहिये कि मैंने विशुद्ध चारित्र के अनुष्ठान से स्वहित संपादित कर लिया है । शिष्यादिकों के उपकार से पर का उपकार भी कर दिया है । इस समय गच्छ का परिपालन करने में समर्थ मेरी शिष्यादि संपत्ति भी सर्व प्रकार से शक्तिशाली हो चुकी है । अब मुझे निश्चिन्त होकर विशेष रीति से अपनी आत्मा का कल्याण करना चाहिये “मेरी अवशिष्ट आयु कितनी है ” इस प्रकार स्वयं जान कर अथवा यदि स्वयं नहीं जान सके तो अन्य विशिष्ट आचार्य आदि से पूछकर निश्चित करले । यदि आयु अल्प ज्ञात होवे तो यथाशक्ति उसे भक्तप्रत्याख्यानादि मरण स्वीकार कर लेना चाहिये । यदि आयु दीर्घ ज्ञात होवे और

७ साधु संलेखना करवाभां असमर्थं छे, ओखे संलेखना वगर पणु यथाशक्ति संधारो करी अभ्युद्यत मरणुने स्वीकार करवो नोछंओ. आ अभ्युद्यत मरणुने अंगिडार करतां पडेलं साधुओ ओ प्रकारने विचार करवो नोछंओ के, मे' विशुद्ध चारित्रना अनुष्ठानथी स्वहित संपादित करी लीधुं छे, शिष्यादिकेना उपकारनी साधोसाध भीन उपर पणु उपकार कर्यो छे. आ समर्थ गच्छनुं परिपालन करवाभां समर्थ ओवी भारी शिष्यादिसंपत्ति पणु सर्व प्रकारथी शक्तिशाली बनी चुकी छे. हवे मारे निश्चित बनीने विशेष रीतथी मारा आत्मानुं कल्याणु करवुं नोछंओ. “ भारी अवशिष्ट आयु डेटली छे ” आ वात पोते नोछीने अथवा ने पोते न नोछी शके तो भीन गुणसंपन्न आचार्य आदिथी पूछीने नक्की करी वे. ने आयुष्य अल्प होथ तो; यथाशक्ति तेखे भक्तप्रत्याख्यान आदि मरणुने स्वीकार करवो नोछंओ. ने आयु लांभी

स्वीकरोति तत्रैव क्षेत्रे वसन्नपि वसतिदोपैलपधिदोपैथ रहितो भवति । शक्तौ पुष्ट्या
तु अस्मिन् पञ्चमारके जिनकल्पप्रतिपत्तिविधानाभावात् स्थविरकल्पेनैव स्व-
रोपकारकरणेन दीर्घपर्यायः प्रतिपालनीयः ।

॥ इति स्थविरकल्पिकसामाचारी ॥

चतुर्धाराकापेक्षया जिनकल्पादिप्रतिपत्तिरूपे अभ्युद्यतविहारे मर्यादा प्रदर्श्यते
-तत्र जिनकल्पादि प्रतिपित्सुना प्रथममेव ' मया विशुद्धचारित्रानुष्ठानेन स्वपर-
हितं ' इत्यादि विचिन्त्य, तपः सत्त्वादि भावनाभिजात्मा भावनीयः ।

साथ में जंघावल क्षीण हुआ मालूम पड़े तो उसे स्थिरवास अंगीकार
करलेना चाहिये । और इसी स्थिरवास से उसी क्षेत्र में रहते हुए भी
वह वसति के दोषों से एवं उपाधि के दोषों से रहित हो जाता है । यदि
शक्ति पुष्ट होवे तो भी इस पञ्चम आरे में जिनकल्प की प्रतिपत्ति के
विधान का अभाव होने से स्थविरकल्प की हालत में ही रहते हुए स्व
पर का उपकार करते २ दीर्घपर्याय को पालते रहना चाहिये ।

॥ यह स्थविर कल्प की समाचारी है ॥

अब-चौथे आरे की अपेक्षा से जिनकल्प आदि की प्रतिपत्ति स्वी-
कृति रूप अभ्युद्यत विहार में कैसी क्या मर्यादा होती है यह बात प्रकट
की जाती है-जो साधु जिनकल्प आदि को प्राप्त करने का अभिलाषी है
उसे चाहिये की वह सर्व प्रथम ऐसा विचार करे कि मैंने विशुद्ध चरित्र
के अनुष्ठान से अपना और पर का हित तो साधित किया । अब हम को
तप एवं सत्त्वादि पांच भावनाओं से आत्मा को भावित करना चाहिये ।

डोय अने साथे जंघावण क्षीण ज्ञाय तो तेले स्थिरवास अंगिकार करी
लेवा जेधजे. आ स्थिरवासथी ते क्षेत्रमां रडेवा छतां ते वस्तीना द्योपोथी
अने उपाधीना द्योपोथी रहित अने छे. कदाय शक्ति सारी डोय तो पण आ
पांचमा आरामां अनकल्पनी प्रतिपत्तिना विधानने अभाव डोवाथी स्थविर-
कल्पनी डालतमां रडीने स्व अने परने उपाकार करतां करतां दीर्घ पर्यायतुं
पालन करता रडेवुं जेधजे.

॥ आ स्थविरकल्पनी समाचारी छे ॥

हुवे योथा आरानी अपेक्षाथी अनकल्प आदिनी प्रतिपत्ति स्वीकृतिरूप
अभ्युद्यत विहारमां डेवी अने डेटली मयोदा डोय छे आ वात प्रकट करवामां
आवे छे-जे साधु अनकल्प आदिने प्राप्त करवाने अभिलाषी छे तेले नववुं
जेधजे के, मे विशुद्ध चरित्रना अनुष्ठानथी पोतानुं अने परनुं छिततो साधु.
हुवे भारे तप अने सत्त्वादिपांच भावनाओथी आत्माने भावित करवा जेधजे

तथाचोक्तम्—

तवो सत्तं च सुत्तं च, एगत्तं बलमप्पणो ।

पढमं पंच भावित्ता, जिणकप्पं पवज्जइ ॥ १ ॥

छाया—तपः सत्त्वं च सूत्रं च, एकत्वं बलमात्मनः ।

प्रथमं पञ्च भावयित्वा, जिनकल्पं प्रपद्यते ॥ १ ॥

अयं भावः—जिनकल्पप्रतिपित्सुस्तपोभावनयात्मानं भावयन् देवादिकृतोपस-
र्गादिनाऽनेपणादिकारणतो वा यदि पण्मासपर्यन्तमाहारं न लभते तथापि न
वाध्यते ॥ १ ॥ सत्त्वभावनया भयं पराजयते ॥ २ ॥ सूत्रभावनया सूत्रं स्वना-
मवत् पहिचितं करोति ॥ ३ ॥ एकत्व भावनया चात्मानं भावयन् साधर्मिक
साध्यादिना सह मिथः कथादिव्यतिकरान् सर्वानपि परिवर्जयति । ततो बाह्य-
कहा भी है ।

तवो सत्तं च सुत्तं च, एगत्तं बलमप्पणो ।

पढमं पंच भावित्ता, जिणकप्पं पवज्जइ ॥ १ ॥

इसका भाव यह है कि—जिनकल्प को धारण करने का इच्छुक साधु
तप भावना से आत्मा को भावित करता हुआ यदि देव मनुष्य आदि
द्वारा होने वाले उपसर्ग से अथवा अनेपणादि रूप कारण से छह मास
तक आहार प्राप्त न कर सके तौ भी बाधित नहीं होता है । सत्व
भावना से वह भय पर विजय प्राप्त करता है । एकत्वभावना से अपनी
आत्मा को भावित करता हुआ साधर्मिक साधु आदिकों के साथ पर-
स्पर में कथा वार्ता आदि समस्त बातों का परित्याग कर देता है । जब

कहुं पखु छे—

तवो सत्तं च सुत्तं च, एगत्तं बलमप्पणो ।

पढमं पंच भावित्ता, जिणकप्पं पवज्जइ ॥ १ ॥

आनो लाव अे छे डे—एनकल्पने धारणु करवानी धिछावाणा साधु तप
लावनाथी आत्माने लावित करीने देव मनुष्य आदि द्वारा थनार उपसर्गथी
अथवा अनेपणादिइरूप कारणथी छ भडिना सुधी आहार भेणवी न शके तो पखु
पीडा पाभतो नथी. सत्वलावनाथी ते लय उपर विनय प्राप्त करे छे. सूत्र-
लावनाथी पोताना नामनी माइक सूत्रने परिचय प्राप्त करे छे, अेकत्व लाव-
नाथी पोताना आत्माने लावित करीने साधर्मिक साधु आदिनी साथे परस्परमां
कथावार्ता आदि समस्त बातोने परित्याग करी दे छे. न्यारे बाह्यमां तेनुं भमत्व

મમત્વે મૂલત ઇયોચ્છેદિતે પશ્ચાદ્ દેહાદિભ્યોઽપિ ભિન્નમાત્માનં પશ્યન્ સર્વથા તેષ્ણ-
નાસક્તો ભવતિ ॥ ૪ ॥ વલભાવનાયાં વલં દ્વિવિધં-શરીરં, માનસં ચ । તત્ત શરી-
રમપિ વલં જિનકલ્પપ્રતિપત્તિયોગ્યસ્ય શેષજનાતિશાયિકં સ્યાત્, તપઃ પ્રભૃતિભિઃ
શુષ્યમાણસ્ય યદ્યપિ શારીરં વલં તાદૃશં ન ભવતિ તથાપિ સ્વાત્મા ધૃતિવલેન તથા
ભાવયિતવ્યો યથા મદ્દ્વિરપિ પરીપહોપસર્ગેર્નવાધ્યતે ।

આમિઃ પશ્ચભિર્ભાવનાભિર્માવિતાત્મા જિનકલ્પાદિ પ્રતિપિત્સુર્ગચ્છે પ્રતિ-
વસન્નાહારાદિપરિકર્મ પ્રથમમેવ કરોતિ । આહારાદાવન્યસાધ્વપેક્ષયાઽન્તપ્રાન્તાદિ-

વાહ્ય મેં મમત્વ મૂલતઃ ઉસકા ઉચ્છેદિત હો જાતા હૈ તય અન્ય દેહાદિ
પદાર્થો સે ભિન્ન સ્વ આત્મા કો જાનતા હુઆ વહ્ ઉન મેં સર્વથા અના-
સક્ત હી રહતા હૈ । ઉનમેં આસક્ત નહીં હોતા । વલભાવના મેં વલ દો
પ્રકાર હૈ ઇક શરીર સંબંધી ઓર દુસરા મનસંબંધી । જો સાધુ જિન-
કલ્પ કી પ્રતિપત્તિ કે યોગ્ય હોતા હૈ ઉસકા શારીરિક વલ ભી યદ્યપિ
સાધારણજન કી અપેક્ષા અતિશય વિશિષ્ટ હોતા હૈ પરન્તુ તપશ્ચર્યા
આદિ કે કારણ ઉનકા શરીર જવ કૃશ હો જાતા હૈ તવ વહ વૈસા નહીં
રહતા હૈ તૌ ભી ઉનકી આત્મા ધૃતિવલ દ્વારા ઇતની અધિક ભાવિત
રંહતી હૈ કિ જિસકી વજહ સે વે અધિક સે અધિક પરીપહ ઓર ઉપ-
સર્ગો સે આક્રાન્ત હોને પર ભી અપને કર્તવ્યમાર્ગ સે જરા ભી
વિચલિત નહીં હોતે ।

ઇન પાંચ ભાવનાઓં સે ભાવિતાત્મા જિનકલ્પાદિક કો ગ્રહણ
કરને કી ઇચ્છા સે ગચ્છ મેં રહતા હુઆ આહારાદિ પરિકર્મ કો સ્વ

મુલતઃ નાશ પામે છે ત્યારે ખીન્ન દેહાદિ પદાર્થોથી ભિન્ન પોતાના આત્માને
બાણીને તેમાં સર્વથા અનાસક્ત જ રહે છે. એમાં આસક્ત બનતા નથી.
બળભાવનામાં બળ બે પ્રકારનાં છે. એક શરીર સંબંધી અને બીજું મન
સંબંધી. જે સાધુ જનકલ્પની પ્રતિપત્તિને યોગ્ય હોય છે તેનું શારીરિક બળ
પણ બે કે, સાધારણ જનની અપેક્ષા અતિશય બલવાન હોય છે. પરંતુ તપ-
શ્ચર્યા આદિના કારણથી તેનું શરીર બ્યારે કૃષ અને છે ત્યારે તે તેવા રહેતા
નથી. તે પણ તેની આત્મા ધૃતિબળ દ્વારા એટલી અધિક ભાવિત રહે છે કે,
જેનાથી તે અધિકથી અધિક પરીપહ અને ઉપસર્ગોથી આક્રાન્ત થતા હોવા છતાં
પણ પોતાના કર્તવ્યમાર્ગથી જરા પણ ચલિત થતા નથી.

આ પાંચ ભાવનાઓથી ભાવિતાત્મા જનકલ્પાદિકને ગ્રહણ કરવાની ઇચ્છાથી
ગચ્છમાં રહીને આહારાદિ પરિકર્મને બધાથી પહેલાં કરી લે છે, આહારાદિમાં

ग्रहणादुत्कृष्टतासम्पादनम्-परिकर्म । यथा-तृतीयपौरुष्यामवगाढायां वल्ल-चण-
कादिकमन्तं प्रान्तं रक्षं च गृह्णाति ।

“ संसट्टमसंसट्टा, उद्धड तह होइ अप्पलेवा य ।

उग्गहिया पग्गहिया, उज्झियधम्मा य सत्तमिया ॥ १ ॥ ”

आसां सप्तविधानां पिण्डैपणानां मध्ये आद्यद्वयं विहाय पञ्चानां मध्यादन्य-
तैरेपणाद्वयाभिग्रहेणाऽऽहारं गृह्णाति एक्यैषणया भक्तं, द्वितीयया तु पानकम् ।
एवमागमोक्तविधिनाऽऽत्मानं भावयित्वा गच्छप्रतिबद्ध एव जिनकल्पं प्रतिपित्सु-
श्चतुर्विधसंघं संमेलयति, तदभावे स्वर्गणं ततस्तीर्थकरस्य समीपे, तदभावे गण-

से पहिले ही कर लेता है आहार आदि में अन्य साधु की अपेक्षा
अंतप्रान्त आदि ग्रहण से उत्कृष्टता का संपादन करना परिकर्म है ।
जैसे तृतीय पौरुषी में वल्ल; चना आदि का आहार करना एवं अन्त-
प्रान्त रक्ष आहार करना ।

संसट्टमसंसट्टा, उद्धड तह होइ अप्पलेवा य ।

उग्गहिया पग्गहिया, उज्झियधम्मा य सत्तमिया ॥१॥

इन सात प्रकार की पिण्डैपणाओं के मध्य में आदि की दो एप-
णाओं को छोड़कर बाकी बची पांच एपणाओं में से अन्यतर एपणा दो
के अभिग्रह से वह आहार को ग्रहण करता है । एक एपणा से भक्त
को और द्वितीय एपणा से पान को । इस प्रकार आगमोक्त विधि के
अनुसार आत्मा को भावित करके गच्छ में रहता हुआ ही जिनकल्प
को अंगीकार करने का अभिलाषी साधु चतुर्विध संघ को एकत्रित

अन्य साधुनी अपेक्षा अंतप्रान्त आदि अडण्ठी उत्कृष्टतानुं संपादन करवुं
परिकर्म छे. जेम-त्रील पौइधीमां वल, अण्णु आदिने आहार करवे अने
अन्तप्रान्त रक्ष आहार करवे.

संसट्टमसंसट्टा, उद्धड तह होइ अप्पलेवा य ।

उग्गहिया पग्गहिया, उज्झियधम्मा य सत्तमिया ॥ १ ॥

ये सात प्रकारनी पिण्डैपण्णाने मध्यमां पडेवानी ये अपेण्णुअने
छेडीने भाकी अयेव पांच अपेण्णुअेमांधी अन्यतर अपेण्णु अेना अलिअड्ठधी
ते आहार अडण्णु करे छे, अेक अपेण्णुाधी लकतने अने णीए अपेण्णुाधी पानने
आ प्रकारे आगममां डडेव विधि अनुसार आत्माने लावित करीने गच्छमां
रडीने अ लनकल्पने अंगिकार करवाना अभिलाषी साधु चतुर्विध संघने अेक-

ધરસ્ય, તદભાવે ચતુર્દશપૂર્વધરસ્ય, તદભાવે દશપૂર્વધરસ્ય, તદભાવે વટાશ્વત્યાશ્લોક-
વૃક્ષાણાં સંનિધૌ સિદ્ધસાક્ષિકં જિનકલ્પં સ્વીકરોતિ । તદા સવાલવૃદ્ધં ગચ્છ
ક્ષામયતિ । તતો નિઃશલ્યો નિષ્ક્રપાયોઽસૌ સ્વગણસાધ્વાદીનનુશાસ્તિ । એવમેવ
યુષ્માભિરપ્યાચરણીયમ્ નાત્ર પ્રમાદઃ કાર્યઃ । ગણમર્યાદા નોહ્યહુનીયા । ઇત્યાદિ
શિક્ષાં દત્વા ગચ્છાદ્ વિનિર્ગતો ભવતિ । તસ્મિન્ ચધુર્વિપયાતિક્રાન્તે સતિ સાષ્વઃ
પ્રતિનિવર્તન્તે ।

કરતા હૈ । ઇસકે અભાવ મેં અપને ગણ કો, એકત્રિત કરતા હૈ યાદ મેં
તીર્થકર કે સમીપ મેં, ઇનકે અભાવ મેં ગણધર કે સમીપ મેં, ઇનકે
અભાવ મેં ચૌદહપૂર્વધારી કે સમીપ મેં, ઇનકે અભાવ મેં દશપૂર્વધારી કે
સમીપ મેં, ઇનકે ઘી અભાવ મેં વટવૃક્ષ, અશ્વત્ય-પીપલ વૃક્ષ, અથવા
અશોક વૃક્ષ કે સમીપ સિદ્ધ પરમાત્મા કો સાક્ષી કરકે જિનકલ્પ કો
સ્વીકાર કરતા હૈ । ડસ સમય યહ અપને ગચ્છ મેં રહને વાલે ચાલવૃદ્ધ
સાધુઓં સે ક્ષમત ક્ષામણા કરતે હૈં । પશ્ચાત્ નિઃશલ્ય એવં નિષ્ક્રપાય
હોકર અપને ગચ્છ કે સાધુ આદિકોં કો યહ શિક્ષા દેતા હૈ કિ આપ-
લોગ ઘી ઇસી તરહ સે 'કરે' ઇસમેં પ્રમાદ કરના ઠીક નહીં હૈ । ગણ કી
જો મર્યાદા હૈ ડસકા ડલ્લંઘન નહીં કરના । ઇત્યાદિ શિક્ષા દેકર ફિર
વહ ગચ્છ નિર્ગત હો જાતા હૈ । સાધુ વર્ગ જવ તક વહ દિખતા રહતા
હૈ તવતક ડસકે પીછે ૨ ચલતા રહતા હૈ ઓર જવ વહ દિખલાઈ નહીં
પડતા તવ સવ પીછે વાપિસ લૌટ આતે હૈ ।

ત્રીત કરે છે. એના અભાવમાં પોતાના ગણને એકત્રીત કરે છે. બાદમાં તીર્થ-
કરની સમીપમાં, એના અભાવમાં ગણધરની સમીપમાં, તેના અભાવમાં ચૌદ
પૂર્વધારીની સમીપમાં, તેના અભાવમાં દશપૂર્વધારીની સમીપમાં, તેના પશુ
અભાવમાં વટવૃક્ષ, આશોપાલવ, પીપળો અથવા અશોકવૃક્ષના સમીપ સિદ્ધ
પરમાત્માને સાક્ષી રાખીને જનકલ્પને સ્વીકાર કરે છે. આ સમયે તે પોતાના
ગચ્છમાં રહેલા બાળ-વૃદ્ધ સાધુઓથી ખમત ખામણા કરે છે પછી નિઃશલ્ય અને
નિષ્ક્રપાય થઈને પોતાના ગચ્છના સાધુ આદિને એવી શિખામણુ આપે છે કે,
આપ લોકોએ પણ આજ રીતે કરવું. તેમાં પ્રમાદ કરવો ઠીક નથી. ગણની જે
મર્યાદા છે તેવું ઉલ્લંઘન કરવું નહીં. ઇત્યાદિ શિખામણુ આપીને પછી તે ગચ્છ
નિર્ગત થઈ જાય છે. ન્યાં સુધી તે દેખાય છે ત્યાં સાધુવર્ગ તેની પાછળ પાછળ
ચાલતા રહે છે અને ન્યારે તે દેખાતા બંધ થાય છે ત્યારે સઘળા પાછા ફરે છે.

अथ जिनकल्पिकमर्यादा—

अनया मर्यादया जिनकल्पं स्वीकृत्यासौ यत्र ग्रामे मासकल्पः करिष्यमाणस्तत्र पश्च भागान् कल्पयति, ततश्च यस्मिन् भागे एकस्मिन् दिने भिक्षाचर्या-कृता, तत्र पुनरपि सप्तम एव दिने पर्यटति । भिक्षाचर्यां ग्रामान्तरगमनं च तृतीय-पौरुष्यामेव करोति । यत्र चतुर्थपौरुषी प्राप्ता भवेत्, तत्रैवावतिष्ठते, नान्यत्र गच्छति । भक्तं पानकं च पूर्वोक्तैपणाद्व्याभिग्रहेणालेपकृदेव गृह्णाति । एपणादिविषयमन्तरेण न केनापि सार्धं भापते । एकस्यां च वसतौ यद्यपि उक्तप्रतः सप्त जिनकल्पिकाः प्रतिव्रसन्ति तथापि ते परस्परं संभाषणं न कुर्वन्ति । समापन्नान् उपसर्गपरीपठान् सर्वान् सहत एव । रोगेषु चिकित्सां न कारयत्येव तद्वेदानां तु

अथ जिनकल्पी की मर्यादा कहते हैं—

इस मर्यादा से जिनकल्प को स्वीकार कर यह जिस ग्राम में मास-कल्प करता है वहां छह भागों की कल्पना करता है । जिस भाग में एक दिन में भिक्षाचर्या करली गई हो वहां फिर यह सातवे दिन ही भिक्षाचर्या करता है । भिक्षाचर्या करना अथवा एक ग्राम से दूसरे ग्राम में जाना यह तृतीय पौरुषी में ही करता है । जहां चतुर्थ पौरुषी आ जाती है वह वहीं पर ठहर जाता है । अन्यत्र नहीं जाता है । पूर्वोक्त दो एपणाओं के अभिग्रह से अलेपकृत-लेपरहित जिसका लेप न लगे ऐसे भक्त पान को ग्रहण करता है । एपणादि विषय-के बिना किसी के भी साथ वातचीत नहीं करता है । एक वस्ती में यद्यपि अधिक से अधिक सात जिनकल्पी साधु रह सकते हैं तौ भी वे परस्पर संभाषण नहीं करते हैं । जो भी उपसर्ग या परीपह आपडे तो उसे सहते ही हैं । रोग

हुवे अनकल्पनी मर्यादा कडेवाभां आवे छे—

आ मर्यादाथी अनकल्पनी स्वीकार करी ते साधु जे गामभां मास कल्प करे छे त्यां छे लागोनी कल्पना करे छे. जे लागभां अेक दिवसभां भिक्षाचर्या करी लेवाभां आवी होय त्यां ते करी सातमा दिवसे जे भिक्षाचर्या करे छे. भिक्षाचर्या करवी अथवा अेक गामथी जीन गामे जवुं अे त्रीन पौरुषीभां जे करे छे त्यां अेथी पौरुषी आवे त्यां ते शेकार्छे नय छे आगण वधता नथी. पूर्वोक्त जे अेषणाना अलिग्रहथी (अलेपकृत) जेना लेप न लागे अेवा लक्ष्म पानने अक्षु करे छे. अेषणानि विषय वगर केअनी साथे वातचित्त करता नथी, अेक वस्तीभां जे के, वधुभां वधु सात अनकल्पनी साधु रही शके छे तो पक्षु तेअे परस्पर संभाषण करता नथी. जे पक्षु उपसर्ग अने परीपह आवी पडे

સમ્યગેવ સહતે । આપાતસંલોકાદિદોષરહિતે સ્થણ્ડિલે ઉચ્ચારાદીન્ કરોતિ, નત્વસ્થણ્ડિલે । પરિકર્મરહિતાયાં વસતૌ તિષ્ઠતિ । યદ્યુપવિશતિ તદા નિયમાદુત્કુટુક એવ, ન તુ નિપઘાયામ્, ઔપગ્રાહિકોપરુરુણસ્યૈનાભાવાત્ । મત્તમાતન્કર્સિંહવ્યાગ્રાદિકે સમુખે સમાપતતિ સતિ ઝ્ઞમાર્ગગમનાદિના ઈર્યાસમિતિ ન મિનત્તિ ।

જિનકલ્પિકોઽપવાદં નાસેવતે, જઙ્ઞાવલ્લપરિક્ષીણસ્તુ અચિહરમાગોઽપ્યારાધકઃ લોચં ચ કરોત્યેવ, દશવિધસામાચાર્યાં પઞ્ચ સમાચાર્યોં જિનકલ્પિકાનાં, આપ્રચ્છના,

મેં યે કિસીં મી પ્રકાર ચિકિત્સા નહીં કરાતે હું કિન્તુ જૈસે મી યનતા હૈ ઉસ રોગ કો સહન હી કરતે હું । જહાં મનુષ્યોં કા આવાગમન નહીં હોતા હૈ એસે સ્થણ્ડિલ મેં હી યે ઉચ્ચાર આદિ કે લિયે જાતે હું । અસ્થણ્ડિલ મેં નહીં । પરિકર્મ રહિત-ઘઠારી મઠારી વિના કી વસ્તી મેં યે રહતે હું જવ વૈઠતે હું તો નિયમ સે ઉત્કુટુક આસન સે હી વૈઠતે હું । નિપઘા સે નહીં ક્યોં કિ ઔપગ્રહિક ઉપકરણ આસન આદિ કા હી ઇનકે પાસ અભાવ હૈ । મત્તમાતંગ, સિંહ, એવં વ્યાગ્ર આદિ ઇન્હેં માર્ગ મેં ચલતે હુએ સામ્હને મિલ જાય તો મી યે ઉસીમાર્ગ સે ચલકર અપની ઈર્યા સમિતિ કો લંઙિત નહીં કરતે હું ।

યે જિનકલ્પી સાધુ અપવાદ માર્ગ કા સેવન નહીં કરતે હું । ઇનકા જંઘાવલ યદિ પરિક્ષીણ મી હો જાવે ઔર ઉસકી વજહ સે યે વિહાર ન મી કરે તૌ મી આરાધક હી માને ગયે હું । યે કેશોં કા લોચ કરતે હું । દશ પ્રકાર કી સમાચારી મેં સે પાંચ પ્રકાર કી સમાચારી ઇન જિનકલ્પિયોં

તેને તેઓ સહન કરે છે. રાગમાં કોઈ પણ પ્રકારની ચિકિત્સા તેઓ કરાવતા નથી પણ જેમ અને તેમ તે રાગને સહન કરે છે. જ્યાં મનુષ્યોનું આવાગમન હોતુ નથી એવા ઉજ્જડ સ્થાનોમાં જ તેઓ શૌચાદિક કર્મ મટે ભય છે. અવરજવરના સ્થાને નહીં. પરિકર્મ રહિત-ઘઠારી મઠારી વગરની-વસ્તીમાં રહે છે. જ્યારે ખેસે છે તો નિયમથી ઉત્કુટુક (ઉલાળક પગે ખેસવું) આસનથી ખેસે છે, નિપઘાથી નહીં. કેમકે, ઔપગ્રહિક ઉપકરણ આસન આદિના તેની પાસે અભાવ છે. મત્ત માતંગ, સિંહ, અને વાઘ આદિ તેને માર્ગમાં ચાલતાં સામા મળે તો પણ તે તે માર્ગથી ચલીને પોતાની ઈર્યાસમિતિને ખંડિત કરતા નથી.

એ જનકલ્પી સાધુ અપવાદ માર્ગે જતા નથી, તેમનું જંઘાબળ જો ક્ષિણુ પણ થઈ ભય અને એ કારણે તે પોતાની જગ્યાએથી વિહાર ન પણ કરે તો પણ આરાધક જ માનવામાં આવે છે. તે કેશોના લોચ કરે છે દશ પ્રકારની સમાચારીમાંથી પાંચ પ્રકારની સમાચારી જનકલ્પીયોની છે. તે આ પ્રકારે છે. ૧ આપ્ર-

મિથ્યાકાર, આવશ્યકી, નૈપેધિકી, ગૃહસ્થોપસંપદ, ઇતિ । આવશ્યકીપ્રમૃતયસ્તિસ્રો
વા સામાચાર્યસ્તેપામ્ । તેપાં શ્રુતજ્ઞાનં જઘન્યતો નવમસ્ય પૂર્વસ્ય તૃતીયમાચારવસ્તુ,
ઉત્કર્પતસ્તુ દશપૂર્વાણિ ભિન્નાનિ, ન તુ સમ્પૂર્ણાનિ । સંહનનં ચ શારીરં-વજ્રર્પમના-
રાચાખ્યં, માનસં વજ્રકુહ્યસમાના ધૃતિઃ ચ ।

સ્થિતિરપિ તેપાં ક્ષેત્રાદિકા અનેકવિધા । ક્ષેત્રતસ્તાવજ્જન્મના સદ્ભાવેન ચ
પશ્ચદશસ્યપિ કર્મભૂમિપુ, સંહરણતઃ કદાચિત્ કર્મભૂમૌ, અકર્મભૂમૌ વા સદ્ભાવાપે-
કી હૈ । વહ્ ઇસ પ્રકાર હૈ-૧ આપ્રચ્છના, ૨ મિથ્યાકાર, ૩ આવશ્યકી,
૪ નૈપેધિકી, ૫ ગૃહસ્થોપસંપદા ગૃહસ્થ કી આજ્ઞા લેકર ઉતરના, વૈઠના ।
અથવા આવશ્યકી, નૈપેધિકી, ગૃહસ્થોપસંપત્, યહ તીન પ્રકાર કી સામા-
ચારી ઇન જિનકલ્પિયોં કૈ હોતી હૈ । ઇનકા શ્રુતજ્ઞાન જઘન્ય કી અપેક્ષા
નવમપૂર્વ કી તૃતીય આચાર વસ્તુતક, ઉત્કૃષ્ટ કી અપેક્ષા ભિન્ન દશપૂર્વ-
તક હી સીમિત રહ્યા કરતા હૈ સંપૂર્ણ નહીં । ઇનકા શારીરિક સંહનન
વજ્ર ઋપમ નારાચ નામક હૈ ઓર માનસિક સંહનન વજ્રકુહ્ય-વજ્રકી
ભીત કૈ તુલ્ય ધૈર્ય હૈ અર્થાત્ ઇનકા ધૈર્ય વજ્રભિત્તિ કૈ સમાન અભેદ્ય
હોતા હૈ ઓર વહી ઇનકા માનસિક વલ હૈ ।

ક્ષેત્ર આદિ કી અપેક્ષા ઇનકી સ્થિતિ અનેક પ્રકાર કી હૈ । ઇનકા ૧૫
કર્મભૂમિયોં મૈ હી જન્મ હોતા હૈ ઇસ અપેક્ષા ૧૫ કર્મભૂમિયોં મૈ ઇનકી
સ્થિતિ જન્મ ઓર સદ્ભાવ કી અપેક્ષા માની જાતી હૈ । સંહરણ કી અપેક્ષા
કદાચિત્ કર્મભૂમિમૈ કદાચિત્ અકર્મભૂમિમૈ ભી ઇનકી સ્થિતિ હો સકતી હૈ ।

અહના, ૨ મિથ્યાકાર, ૩ આવશ્યકી, ૪ નૈપેધિકી, ૫ ગૃહસ્થોપસંપદ ગૃહસ્થની
આજ્ઞા લઈને ઉતરવું, ખેસવું અથવા આવશ્યકી, નૈપેધિકી, ગૃહસ્થોપસંપત્, આ
ત્રણ પ્રકારની સમાચારી તે જનકલ્પિયોને હોય છે. તેમનું શ્રુતજ્ઞાન જઘન્યની
અપેક્ષા નવમા પૂર્વના ત્રીજા આચાર વસ્તુતક, ઉત્કૃષ્ટની અપેક્ષા ભિન્ન દશપૂર્વ
સુધી જ સીમિત રહ્યા કરે છે, સંપૂર્ણ નહીં. તેનું શારીરિક સંહનન વજ્ર ઋપમ
નારાચ નામનું છે. અને માનસિક સંહનન વજ્ર કુહ્ય-વજ્રની ભીંત જેવું ધૈર્ય
છે. અર્થાત્ તેનું ધૈર્ય વજ્રભીંત સમાન અભેદ્ય હોય છે. તે તેનું માનસિક બળ છે.

ક્ષેત્ર આદિની અપેક્ષા એમની સ્થિતિ અનેક પ્રકારની છે, એમને ૧૫
કર્મભૂમિયોમાં જ જન્મ થાય છે. આ અપેક્ષા ૧૫ કર્મભૂમિયોમાં તેની સ્થિતિ
જન્મ અને સદ્ભાવની અપેક્ષા માનવામાં આવે છે. સંહરણની અપેક્ષા કદાચિત
કર્મ ભૂમિમાં, કદાચિત્ અકર્મભૂમિમાં પણ એની સ્થિતિ હોઈ શકે છે. આ

ક્ષયા સ્થિતિઃ। કાલતઃ ઉત્સર્પિણ્યાં, વ્રતાપેક્ષયા તૃતીયચતુર્થારકયોરેવ, જન્મમાત્રેણ તુ દ્વિતીયારકેડપિ । અવસર્પિણ્યાં તુ જન્મના તૃતીયચતુર્થારકયોરેવ । પૂર્વપ્રતિપન્નવ્રતાપેક્ષયા તુ પશ્ચમારકેડપિ । સંહરણતસ્તુ મહાવિદેહક્ષેત્રાપેક્ષયા સર્વસ્મિન્નપિ કાલે પ્રાપ્યતે। ચારિત્રતઃ—પ્રતિપદમાનાનાં સામાયિકે, છેદોપસ્થાપનોયે ચ ચારિત્રે સ્થિતિઃ । મધ્યમતીર્થકર-વિદેહવીર્થકરતીર્થવર્ત્યપેક્ષયાઽત્ર સામાયિકં, પ્રથમચરમતીર્થકરતીર્થવર્ત્યપેક્ષયા તુ છેદોપસ્થાપનીયચારિત્રમ્ । પ્રતિપન્નાનાં તુ મૂક્ષમસંપરાયે,

યહ સદ્ભાવ કી અપેક્ષા કથન હૈ । કાલ કી અપેક્ષા-ઉત્સર્પિણી કાલ કે તૃતીય ઓર ચતુર્થ આરે મેં ડનકી સ્થિતિ માની ગઈ હૈ । સો યહ વ્રત કી અપેક્ષા જાનના ચાહિયે । વૈસે તો જન્મમાત્ર કી અપેક્ષા સે દ્વિતીય આરે મેં ભી ડનકી સ્થિતિ હૈં । અવસર્પિણીકાલ મેં જન્મ કી અપેક્ષા તૃતીય ઓર ચૌથે આરે મેં હી, તથા પૂર્વપ્રતિપન્ન વ્રત કી અપેક્ષા અર્થાત્ -ચૌથે આરે કે વ્રત કો લેકર પંચમ આરે મેં ભી ડનકી સ્થિતિ જાનના ચાહિયે । યદિ કોઈ દેવ ડન્હેં હરણ કર મહાવિદેહ ક્ષેત્ર સે અન્યત્ર પહુંચા દેવે તો ડસ અપેક્ષા ડનકી સ્થિતિ સવ કાલ જાનની ચાહિયે । ચારિત્ર કી અપેક્ષા જો પ્રતિપદમાનચારિત્રી હૈં ડનકો સામાયિક ંવં છેદોપસ્થાપનીય ચારિત્ર મેં સ્થિત માનના ચાહિયે, ક્યોં કિ જો મધ્યમતીર્થકર ંવં વિદેહ ક્ષેત્ર મેં રહે હુએ તીર્થકર કે તીર્થ મેં રહેને વાલે હૈં વે સામાયિકચારિત્ર મેં, ંવં જો પ્રથમ ંવં, ચરમતીર્થકર કે તીર્થવર્તી હૈં વે છેદોપસ્થાપનીય ચારિત્ર મેં સ્થિત રહેતે હૈં । જો

સદ્ભાવથી અપેક્ષનું કથન છે. કાળની અપેક્ષા-ઉત્સર્પિણી કાળના ત્રીજા ચોથા આરામાં સ્થિતિ માનવામાં આવેલ છે. આને વ્રતની અપેક્ષાથી બાબુબું બોધ્યે. એમ તો જન્મ માત્રની અપેક્ષાથી બીજા આરામાં પણ તેની સ્થિતિ છે. અવસર્પિણી કાળમાં જન્મની અપેક્ષા ત્રીજા અને ચોથા આરામાં, તથા પૂર્વપ્રતિપન્ન વ્રતની અપેક્ષા અર્થાત્ ચોથા આરાના વ્રતને લઈ પાંચમા આરામાં પણ એની સ્થિતિ બાબુવી બોધ્યે. કઠાચ કોઈ દેવ આદિ એનું હરણ કરી મહાવિદેહ ક્ષેત્રથી બીજે પહોંચાડી દે તો એ અપેક્ષા એની સ્થિતિ બધા કાળમાં બાબુવી બોધ્યે. ચારિત્રની અપેક્ષા જે પ્રતિપદમાન ચારિત્રી છે તે સામાયિક અને છેદોપસ્થાપનીય ચારિત્રમાં સ્થિત માનવા બોધ્યે કેમકે, જે મધ્યમ તીર્થકર અને વિદેહ ક્ષેત્રમાં રહેતા તીર્થકરના તીર્થમાં રહેવાવાળા છે તે સામાયિક ચારિત્રમાં, અને જે પ્રથમ ંવં ચરમતીર્થકરના તીર્થવર્તી છે તે છેદોપસ્થાપનીય ચારિત્રમાં સ્થિત રહે છે. જે પ્રતિપન્ન ચારિત્રી છે તેની

यथाख्याते च चारित्रे उपशमश्रेण्याम् । तीर्थतस्तु जिनकल्पिकानां स्थितिर्नियमत-
स्तीर्थ एव भवति न तु तीर्थे व्यवच्छिन्ने । पर्यायागमवेदाख्याः स्थितिभेदा
अप्यवगन्तव्याः ।

स्थविरकल्पिकानां जिनकल्पिकानां च कल्पो दशविधः—आचैलक्यम् १, औद्दे-
शिकं २, शय्यातरपिण्डत्यागः ३, राजपिण्डत्यागः ४, कृतिकर्म ५, महाव्रतम् ६,
पुरुषज्येष्ठत्वम् ७, प्रतिक्रमणम् ८, मासकल्पः ९, पर्युपणकल्प १० (वर्षाकल्प)
श्चेति । तेषु मध्यमतीर्थकरतीर्थवर्तिनां साधूनां चत्वारः कल्पाः अवस्थिताः नियमेन
पालनीयाः—शय्यातरपिण्डत्यागः १, कृतिकर्म २, महाव्रतम् ३, पुरुषज्येष्ठत्वं ४ चेति ।
इतरे षट् कल्पास्तु तेषामनवस्थिताः ।

प्रतिपन्नचारित्री हैं उनकी स्थिति उपशमश्रेणी में सूक्ष्मसांपराय, एवं
यथाख्यातचारित्र में होती है । तीर्थ की अपेक्षा जिनकल्पियों की स्थिति
नियम से तीर्थ में ही होती है, तीर्थके व्यवच्छिन्न होने पर नहीं । पर्याय
आगम एवं वेद, ये भी स्थिति के भेद हैं ।

स्थविरकल्पियों का एवं जिन कल्पियों का कल्प दश प्रकार का है—

१ आचैलक्य, २ औद्देशिक, ३ शय्यातरपिण्डत्याग ४ राजपिण्ड-
त्याग, ५ कृतिकर्म, ६ महाव्रत, ७ पुरुषज्येष्ठता ८ प्रतिक्रमण ९ मास-
कल्प १० पर्युपणकल्प (वर्षाकल्प) इन कल्पों में मध्यमतीर्थकर के
तीर्थवर्ती साधुओं के चार कल्प अवस्थित होते हैं—नियम से पालनीय
होते हैं । वे चार ये हैं—शय्यातरपिण्डत्याग, कृतिकर्म, महाव्रत, पुरुष-
ज्येष्ठता । बाकी के ६ कल्प उनके लिये अनवस्थित हैं ।

स्थिति उपशम श्रेणीमां सूक्ष्मसांपराय, जेवा यथाख्यात चारित्रिमां थाय छे.
तीर्थनी अपेक्षा अनकल्पियेनी स्थिति नियमथी तीर्थमां ज थाय छे, तीर्थना
व्यवच्छिन्न थवाथी नही. पर्याय, आगम अने वेद आ पणु स्थितिना वेद छे.
स्थविरकल्पियेना अने अनकल्पियेना कल्प दश प्रकारना छे.—

१ आचैलक्य, २ औद्देशिक, ३ शय्यातरपिण्डत्याग, ४ राजपिण्डत्याग,
५ कृतिकर्म, ६ महाव्रत, ७ पुरुषज्येष्ठता, ८ प्रतिक्रमण ९ मासकल्प, १०
पर्युपणकल्प (वर्षाकल्प) आ कल्पेमां मध्यमतीर्थकरना तीर्थवर्ती साधुयेना
चार कल्प अवस्थित छे—नियमथी पालवाना छे। ते चार आ छे—
शय्यातरपिण्डत्याग, कृतिकर्म, महाव्रत, पुरुष ज्येष्ठता. बाकीना छ कल्प जेभने
भाटे अनवस्थित छे.

આદ્યચરમતીર્થકરતીર્થવર્તિનાં સાધુનામેષ દશવિધઃ કલ્પોઽવસ્થિત एव । તત્રા-
 ચૈલક્યં દ્વિવિધમ્-મુખ્યમ્, ઔપચારિકં ચ । અવિગમાનચૈલકત્વરૂપં મુખ્યમાચૈ-
 લક્યં પ્રાયશો જિનકલ્પિકવિશેષાણામ્ । ઔપચારિકમાચૈલક્યં સ્થવિરકલ્પિકા-
 નામ્, સ્થવિરકલ્પિકા દ્વિ-કલ્પનીયમેષણીયં જીર્ણં સ્ખંડિતં મલિનં તથૈવ નૂતન-
 મપિ સ્વલ્પમૂલ્યકં વદ્ધં ગૃહ્ણન્તિ, લોકરૂઢપ્રકારાદન્યપ્રકારેણ ચ તદાસેવન્તે ।
 અતરતે ચેલસદ્ભાવેઽપ્યુપચારતોઽચેલકા વ્યપદિશ્યન્તે ।

પ્રથમતીર્થકર एवं અન્તિમતીર્થકર કે તીર્થ મેં રહનેવાલે જો સાધુ
 હેં અનેકે લિયે તો યહ ૧૦ પ્રકાર કા કલ્પ અવસ્થિત હી હેં-અવશ્ય
 પાલને યોગ્ય હી હેં । આચૈલક્ય જો પ્રથમ કલ્પ હેં વહ દો પ્રકાર કા હેં ।

૧ મુખ્ય ૨ ઔપચારિક, કટિબન્ધન-રજોહરણ-ઔર સદોરકમુખવ-
 સ્ત્રિકા કે સિવાય અન્ય વસ્ત્ર કા પરિત્યાગ કરના યહ મુખ્ય આચૈલક્ય
 હેં । યહ જિનકલ્પિક વિશેષોં કે હોતા હેં । ઔપચારિક જો આચૈલક્ય
 હેં વહ સ્થવિરકલ્પિકોં કે હોતા હેં । ક્યોં કિ જો સ્થવિરકલ્પી સાધુ
 હોતે હેં વે કલ્પનીય, ઇષ્ણીય, જીર્ણ સ્ખંડિત एवं મલિન વસ્ત્ર રક્ષતે
 હેં । જો નવીન વસ્ત્ર મી હેં તો વહ મી અલ્પમૂલ્ય વાલા હી લેતે હેં ।
 લૌકિકજન જિસ પદ્ધતિ સે વસ્ત્રોં કા પરિધાન કરતે હેં વે ઉસ પદ્ધતિ
 સે વસ્ત્રોં કા પરિધાન નહોં કરતે હેં, કિન્તુ અન્ય પ્રકાર સે હી ઉન્હેં
 પહિનતે હેં । ઇસ લિયે ચેલ કે સદ્ભાવ મેં મી વે અચેલક હી કહે જાતે હેં ।

પ્રથમ તીર્થકર અને અંતિમ તીર્થકરના તીર્થમાં રહેવાવાળા જે સાધુ છે,
 તેમને માટે તો આ દશ પ્રકારના કલ્પ અવસ્થિત જ છે.-અવશ્ય પાળવા
 યોગ્ય જ છે. આચૈલક્ય જે પ્રથમ કલ્પ છે તે બે પ્રકારના છે.

૧ મુખ્ય, ૨ ઔપચારિક, કટીબંધન રજોહરણ અને સદોરકમુખવસ્ત્ર-
 કાના સિવાય અન્ય વસ્ત્રનેા પરિત્યાગ કરવો આ મુખ્ય આચૈલક્ય છે, આ
 જિનકલ્પિક વિશેષોમાં હોય છે. ઔપચારિક જે આચૈલક્ય છે તે સ્થવિરકલ્પ-
 યાને હોય છે. કેમકે, સ્થવિરકલ્પી સાધુ હોય છે તે કલ્પનીય, ઐષ્ણીય,
 છૂર્ણ, ખંડિત અને મલીન, વસ્ત્ર રાખે છે. જે નવીન વસ્ત્ર મળે તે પણ
 ઓછા મૂલ્યનું હોય તે જ લે છે. લૌકિકજન જે પદ્ધતિથી વસ્ત્રોનું પરિધાન કરે
 છે એ પદ્ધતિથી તેઓ વસ્ત્ર પરિધાન કરતા નથી. પરંતુ અન્ય પ્રકારથી જ એને
 પહેરે છે આ માટે ચેલના સદ્ભાવમાં પણ તે અચેલક જ કહેવાય છે.

ननु—जीर्णखण्डितादिवस्त्रसद्भावे मुनीनामचेलकत्वे दरिद्रा अपि—अचेलकाः कथं न कथ्यन्ते ? उच्यते—नवव्यूतसदशकमहामूल्यकादीनां वस्त्राणामन्नाभे दरिद्राः परिजीर्णादीनि वासांसि धारयन्ति न तु धर्मबुद्ध्या । अतो भावतस्तद्विषयकमूर्च्छा-परिणामस्यानिवृत्तत्वात् परिजीर्णवस्त्रसद्भावे दरिद्राणामचेलकत्वव्यपदेशो न भवति । मुनयस्तु—केनचिद्दीयमानान्यपिमहामूल्यकानि प्रमाणवह्निर्भूतानि वस्त्राणि

शंका—जीर्ण, खण्डित आदि वस्त्रों के सद्भाव में यदि मुनियोंको अचेलक माना जाय तो जो दरिद्री जन हैं, जिनके पास जीर्ण खण्डित आदि वस्त्र हैं वे भी अचेलक कहे जाने चाहिए ? परन्तु वे तों अचेलक नहीं कहे जाते हैं ?

उत्तर—दरिद्री जो जीर्ण शीर्ण आदि वस्त्र धारण करते हैं वे धर्म-बुद्धि से नहीं करते हैं किन्तु उन्हें नवीन महामूल्यवाले वस्त्र मिलते नहीं हैं—उनका उनके पास अभाव है—अतः उनके अभाव में उन्हें वे पहिनने पड़ते हैं परन्तु पहिनना नहीं चाहते, इसलिये वे अचेलक नहीं कहे जाते हैं। क्यों कि उनके भाव से तद्विषयक मूर्च्छापरिणाम को अनि-वृत्ति है, इसलिये परिजीर्ण वस्त्र के सद्भाव में दरिद्रियों में अचेलकत्व का व्यवहार नहीं होता है। मुनियो को तद्विषयक मूर्च्छा नहीं है, क्यों कि यदि कोई दाता उन्हें बहुमूल्यवस्त्र प्रदान करता है और वस्त्र यदि प्रमाणोपेत नहीं है—प्रमाण से वहिर्भूत है तो वे उस को ग्रहण नहीं करते हैं, किन्तु जीर्ण खंडित ही वस्त्र ग्रहण करते हैं। यदि कोई नवीन

शंका अर्थात् अर्थात्, आदि वस्त्रोना सद्भावमां जे मुनियोने अचेलक मानवामां आवे तो जे दरिद्री जन छे, जेनी पासे अर्थात् अर्थात् आदि वस्त्र छे. तेने पद्य अचेलक कडेवा जेई अ ? परंतु तेने तो अचेलक नथी कडेवामां आवता ?

उत्तर—दरिद्री जे अर्थात् शीर्ण वस्त्र धारण करे छे, ते धर्म बुद्धिथी नथी, परंतु तेने नवीन सारा मूल्यवाणा वस्त्रो भणतां नथी,—जेना जेनी पासे अलाव छे तेथी जेना अलावमां तेछे .ते पड़ेरवां पडे छे, परंतु पड़ेरवां आइता नथी. आ माटे ते अचेलक कडेवातां नथी. केम के तेने लावथी तद्विषयक मूर्च्छा परिष्ठाभनी अनिवृत्ति छे. माटे परिअर्थात् वस्त्रोना सद्भावथी दरिद्रीयोमां अचेलकत्वनो व्यवहार थतो नथी. मुनियोने तद्विषयक भमता-मूर्च्छा नथी. केम के, केई दाता तेमने बहुमूल्य वस्त्रप्रदान करे छे. अने ते वस्त्र जे प्रमाणोपेत नथी डोतुं—प्रमाणथी अर्थात् डोय छे तो ते तेने अर्थात् करता नथी. परंतु अर्थात् अर्थात् वस्त्र जे अर्थात् करे छे. जे केई

પરિવર્જયન્તિ, જીર્ણસ્વણિડતાનિ નૂતનાન્યપ્યમહામૂલ્યકાનિ વસનાનિ પ્રમાણોપે-
તાન્યેવ ધારયન્તિ । તાન્યપિ શ્રુતચારિત્રધર્મોપકરણબુદ્ધ્યેવ, ન તુ તત્ર મુનીનાં
મૂર્છાંપરિણામો ભવતિ । અતસ્તેપામચેલકત્વેન વ્યપદેશઃ સમ્યગેવ ।

મધ્યમતીર્થકરતીર્થવર્તિનાં મુનીનામાચેલક્યમનવસ્થિતમ્ અતસ્તેપાં રક્તપીતાદિ
રાગરક્તિતમહામૂલ્યકાદિવધ્વર્જનનિયમો નાસ્તિ, મમત્વરહિતતત્વાત્ તેષામ્ ।
પ્રથમચરમતીર્થકરતીર્થવર્તિનાં મુનીનાં તુ ધર્મબુદ્ધ્યા સ્વલ્પમૂલ્યકપ્રમાણોપેત-
શ્વેતવસ્ત્રાણામેવ ધારકત્વાદાચેલક્યં ભવતિ ।

વસ્ત્ર દેતા મીં હો તો વહ યદિ અલ્પમૂલ્ય વાલા ઇવં પ્રમાણોપેત હૈ તો હી
લેતે હૈં । ઉસકા લેના મીં વે હસીલિયે આવશ્યક સમજતે હૈં કિ વહ
उनके श्रुतचारित्ररूप धर्म का उपकरण है । मूर्च्छापरिणाम से उसका वे
ग्रहण नहीं करते हैं, क्योंकि उनके तद्विषयक मूर्च्छा का अभाव है ।
इसलिये मुनियों में अचेलकत्व का व्यवहार वास्तविक ही है ।

જો મધ્યમ તીર્થકરોં કે તીર્થવર્તી સાધુ હૈં ઉનમૈં અચેલકત્વ અનવ-
સ્થિત હૈ । હસલિયે ઉનહૈં લાલપીલે આદિ રંગ સે રંગે હુણ, તથા મહામૂ-
લ્યવાલે વસ્ત્રોંકે પરિવર્જન કા કોઈ નિયમ નહીં હૈ, ક્યોં કિ યે મમતા
સે રહિત હોતે હૈં । પ્રથમ ચરમ તીર્થકર કે તીર્થવર્તી મુનિયોં કે તો પ્રમા-
ણોપેત તથા સ્વલ્પમૂલ્યવાલે શ્વેતવસ્ત્રોંકે પરિધાન કરને કા હી નિયમ
હૈ, સો મીં ઉન કા ગ્રહણ કેવલ ધર્મબુદ્ધિ સે હો હૈ । મૂર્છાંપરિણામ સે
નહીં, અતઃ વસ્ત્રોંકે સજ્ઞાવ મૈં મીં હનમૈં અચેલકના હી હૈ ।

નવીન વસ્ત્ર આપે છે તો તે અલ્પમૂલ્યવાળું અને પ્રમાણોપેત હોય તો જ લે
છે. એ લેવાનું પણ તેઓ એ ખાતર આવશ્યક માને છે કે, એના શ્રુત
ચરિત્ર રૂપ ધર્મનું ઉપકરણ છે. મૂર્છાં પરિણામથી તેને એ ગ્રહણ કરતા નથી.
કેમ કે એનામાં એના માટેની ભાવનાનો અભાવ છે આ માટે મુનિઓમાં
અચેલકત્વનો વ્યવહાર વાસ્તવિક જ છે.

જે મધ્યમ તીર્થકરના તીર્થવર્તી સાધુ છે. એમનામાં અચેલકત્વ અન-
વસ્થિત છે. આ માટે તેને લાલ, પીળા આદિ રંગથી રંગેલાં તથા બહુમૂલ્ય
વસ્ત્રોના પરિવર્જનનો કોઈ નિયમ નથી. કેમ કે એ મમતાથી રહિત હોય છે.
પ્રથમ ચરમ તીર્થકરના તીર્થવર્તી મુનિ છે. એને તો પ્રણોપેત તથા સ્વલ્પ
મૂલ્યવાળાં શ્વેત વસ્ત્રો પરિધાન કરવાનો જ નિયમ છે અને તે ગ્રહણ કરવાનો
નિયમ કેવળ ધર્મ બુદ્ધિથી જ છે. મૂર્છાં પરિણામથી નહીં. આથી વસ્ત્રોના
સજ્ઞાવમાં પણ એમનામાં અચેલકતા છે જ.

સ્થવિરકલ્પિકાનાં વસ્ત્રધારણમાચારાઙ્ગવૃહત્કલ્પાદ્યાગમેષુ વ્યવસ્થિતમ્ (આચારાઙ્ગસૂત્રે દ્વિતીયશ્રુતસ્કન્ધે ચતુર્દશાધ્યયને) (વૃહત્કલ્પસૂત્રે તૃતીયોદ્દેશકે) ।

સ્થાનાઙ્ગસૂત્રે ભગવતાઽચેલકસ્ય પચ્ચમિઃ સ્થાનૈઃ પ્રશસ્તત્વં પ્રતિવોધિતમ્, તથાહિ—

પંચર્હિ ઠાણેર્હિ અચેલૅ પસત્યે ભવઙ્ । તં જહા—“ અપ્પા પહિલેહા, લાઘવિૅ પસત્યે, રુવે વેસાસિૅ, તવે અણુણ્ણાૅ, વિઝલે ઈંદિયનિગ્ગહે । ”

પચ્ચમિઃ સ્થાનૈઃ=કારણૈઃ, અચેલકઃ પ્રશસ્તઃ—તીર્થંકરાદિમિઃ પ્રશંસિત ઇત્યર્થઃ । સ ચ જિનકલ્પિકવિશેષઃ, સ્થવિરકલ્પિકથ્ । તત્ર વસ્ત્રાભાવાદેવ જિનકલ્પિકવિ-

સ્થવિરકલ્પિયોં કે લિયે વસ્ત્રોં કો ધારણ કરને કી વ્યવસ્થા કા ઉલ્લેખ આચારાંગસૂત્ર ંવં વૃહત્કલ્પસૂત્ર આદિ આગમોં મેં પાયા જાતા હૈ । ઇસકે લિયે આચારાંગસૂત્ર દ્વિતીય શ્રુતસ્કન્ધ કા ૧૪ વાં અધ્યયન દેખના ચાહિયે । તથા વૃહત્કલ્પસૂત્ર કા તૃતીય ઉદ્દેશ દેખના ચાહિયે ।

સ્થાનાઙ્ગસૂત્રમેં ભગવાન્ ને પાંચ કારણોં કો લેકર અચેલકતા કો પ્રશસ્ત પ્રતિવોધિત કી હૈ, જૈસે—

“ પંચર્હિ ઠાણેર્હિ અચેલૅ પસત્યે ભવઙ્ । તં જહા—અપ્પા પહિલેહા ૧, લાઘવિૅ પસત્યે ૨, રુવે વેસાસિૅ ૩, તવે અણુણ્ણાૅ ૪, વિઝલે ઈંદિયનિગ્ગહે ૫ ॥ ”

પાંચ કારણોં સે ભગવાન્ ને અચેલકતા કી પ્રશંસા કી હૈ । જિનકલ્પિકવિશેષોં મેં જો અચેલકતા કહી ગઈ હૈ વહ વસ્ત્ર કે અભાવ સે

સ્થવિરકલ્પિયોને માટે વસ્ત્રોને ધારણ કરવાની વ્યવસ્થાનો ઉલ્લેખ આચારાંગસૂત્ર એને વૃહત્કલ્પસૂત્ર આદિ આગમોમાં નહી શકાય છે. આને માટે આચારાંગસૂત્ર ખીન શ્રુતસ્કન્ધના ૧૪ મા અધ્યયનને નોંધ લેવું નોંધએ. તથા વૃહત્કલ્પસૂત્રના ત્રીજા ઉદ્દેશને નોંધ લેવો નોંધએ.

સ્થાનાંગસૂત્રમાં લગવાને પાંચ કારણોને લઈ અચેલકતાને પ્રશસ્ત પ્રતિવોધિત કરેલ છે.

પંચર્હિ ઠાણેર્હિ અચેલૅ પસત્યે ભવઙ્ । તં જહા અપ્પા પહિલેહા, ૧ લાઘવિૅ પસત્યે ૨ રુવે વેસાસિૅ ૩ તવે અણુણ્ણાૅ ૪ વિઝલે ઈંદિયનિગ્ગહે ૫ ॥

પાંચ કારણોથી લગવાને અચેલકતાની પ્રશંસા કરેલ છે. જનકલ્પિકવિશેષોમાં જે અચેલકતા કહેવામાં આવી છે. તે વસ્ત્રના અભાવથી જ

શેષોઽચેલકઃ, સ્થવિરકલ્પિરુસ્તુ અલ્પમૂલ્યસપમાણઝીર્ણમલિનવસનત્વાદિતિ વિશેષઃ।
તાનિ સ્થાનાનિ પ્રદર્શયતિ—

‘તં જહા’ ઇત્યાદિ। ‘અપ્પા પડિલેહા’ અલ્પા મત્યુપેક્ષા પ્રતિલેખનીયસ્ય
વસ્ત્રસ્યાલ્પત્વાત, અલ્પપ્રતિલેખનયા સ્વાધ્યાયાદેરન્તરાયો ન ભવતીતિ ભાવઃ।
તથા ‘લાઘવિણ્ પસત્યે’ લાઘવિકં પ્રશસ્તમ્—લઘોર્ભાવો લાઘવં તદેવ લાઘવિકમ્,
યદ્ વસ્ત્રસ્ય પરિમાણતો મૂલ્યતઃ સંખ્યયા ચાલ્પતરત્વાલ્લઘુત્વં, તદેવ દ્રવ્યતો
લાઘવમ્, ભવતોઽપિ તત્ર રાગાઘભાવાદિત્યચેલકસ્ય લાઘવિકં પ્રશસ્તમ્—અનવ-
ઘમ્। ‘રુચે વૈસાસિણ્’ રૂપં વૈશ્વાસિકમ્—તત્ર રૂપં—વેપઃ, તત્ત્વ સાધૂનાં મુલ્કવદ્ધશ્વેત
હી કહી ગઈ છે। તથા સ્થવિરકલ્પિયોં મેં જો અચેલકતા કહી ગઈ છે
વહ કેવલ અલ્પમૂલ્યવાલે પ્રમાણોપેત ઝીર્ણ, મલિન વસ્ત્રોં કે ગ્રહણ
કરને કી અપેક્ષા સે કહી ગઈ છે। યહ વાત તીર્થકરોં કી પરમ્પરા સે
પ્રશંસિત હોતી હુઈ ચલી આ રહી છે। કલ્પિત નહોં છે। વે પાંચ સ્થાન-
કારણ યે હેં—અલ્પપ્રતિલેખના—પ્રતિલેખનીય વસ્ત્રોં કી અલ્પતા સે પ્રતિ-
લેખના મી અલ્પ હી હોગી—અલ્પસમયસાઘ્ય હોગી, ઇસ સે સ્વાધ્યાય
આદિ મેં અન્તરાય નહોં આ સકતી છે। ઇસ અપેક્ષાં અચેલકતા પ્રશસ્ત
કહી ગઈ છે। ૧। ઇસી તરહ લાઘવ કી અપેક્ષા મી અચેલકતા પ્રશસ્ત
કહી ગઈ છે, ક્યોં કિ વસ્ત્રોં મેં જો લઘુતા છે વહ પરિમાણ, મૂલ્ય ઇવં
સંખ્યા કી અપેક્ષા સે છે। યહ દ્રવ્ય કી અપેક્ષા લઘુતા છે। ભાવ કી
અપેક્ષા લઘુતા ડનમેં સાધુ કે રાગાદિક કા અભાવ છે। ૨। વૈશ્વાસિક
રૂપકી અપેક્ષા અચેલકતા ઇસલિયે પ્રશંસિત હુઈ છે કિ જવ કોઈ ઇસા

કહેવામાં આવી છે. તથા સ્થવિરકલ્પિયોમાં જે અચેલકતા કહેવામાં આવી
છે તે કેવળ અલ્પમુલ્યવાળા પ્રમાણોપેત જીર્ણ, મલિન વસ્ત્રોને ગ્રહણ
કરવાની અપેક્ષાથી કહેવામાં આવેલ છે. આ વાત તીર્થકરોની પરંપરાથી
પ્રશંસિત થતી આવી આવેલ છે કલ્પિત નથી. આ પાંચ સ્થાન—કારણ આ
છે. અલ્પપ્રતિલેખના પ્રતિલેખનીય વસ્ત્રોની અલ્પતાથી પ્રતિલેખના પણ અલ્પ
જ થશે. અલ્પ સમય સાધ્ય થશે. આથી સ્વાધ્યાય આદિમાં અંતરાય
આવી શકતો નથી. આ અપેક્ષાથી અચેલકતા પ્રશસ્ત કહેવામાં આવેલ છે.
(૧) આ રીતે લાઘવની અપેક્ષા પણ અચેલકતા પ્રશસ્ત રહી છે. કેમ કે,
વસ્ત્રોમાં જે લઘુતા છે તે પરિણામ મૂલ્ય અને સંખ્યાની અપેક્ષાથી છે. આ
દ્રવ્યની અપેક્ષા લઘુતા છે. લાવની અપેક્ષા આ લઘુતામાં સાધુના રાગાદિકને
અભાવ છે. (૨) વૈશ્વાસિક રૂપની અપેક્ષા આ અચેલકતા એ માટે પ્રશંસનીય થઈ

સદોરકમુખવચ્ચિકં પરિહિતશ્વેતચોલપટ્ટકં પરિધૃતશ્વેતવસ્ત્રમાવરણં પરિગૃહીતપ્ર-
માર્જિકારજોહરણં, મિક્ષાધાનીસમાવૃતપાત્રહસ્તમ્, અનાવૃતમસ્તકમ્, પાદત્રાગ-
રહિતચરણમ્, ઈર્યાદિપશ્ચસમિતિસમિતં ગુપ્તિત્રયગુપ્તમ્, જિનકલ્પિકાનાં તુ-મુખ-
વદ્શ્વેતસદોરકમુખવચ્ચિકં પરિગૃહીતરજોહરણં, વદ્કટિવન્ધનવસ્ત્રં ચ । एतादृशं
સાધુનાં સ્વં વૈશ્વાસિકં=જનાનાં વિશ્વાસજનકં ભવતિ નિઃસ્પૃહતાસૂચકત્વાત્ । તથા
'તવે અણુણાણ' તપઃ અનુજ્ઞાતં=તપઃ સકલેન્દ્રિયસંગોપનરૂપમ્ અનુજ્ઞાતં=જિના-

વેપ દેખતા હૈ કિ "મુખ પર સફેદદોરાસહિત મુખવચ્ચિકા વંધી હુઈ હૈ, સફેદ ચોલપટ્ટા પહિરા હુઆ હૈ, સફેદ ચાદર ઓઢી હુઈ હૈ, રજોહ-
રણ ધારણ કિયા હુઆ હૈ, મિક્ષાધાની-શ્લોલી-સે ઢંકે હુણ પાત્ર હાથ મેં
હૈ, મસ્તક ખુલા હુઆ હૈ, પેરોં મેં પગરખી મોજા આદિ નહીં હૈ, ઈર્યા-
સમિતિ આદિ પાંચ સમિતિયોં સે યુક્ત હૈ, ત્રીન ગુપ્તિયોં સે ગુપ્ત હૈ "

યહી સાધુ કા વેપ હૈ ઓર ઇસ વેપ વાલા "યહ સાધુ હૈ" એસા શીઘ્ર હી
સમજાજાતા હૈ, તથા જિનકલ્પિયોં કા યહ વેપ હૈ કિ વે અપને મુખ પર
દોરે સે સફેદ મુખવચ્ચિકા વાંધે રહતે હૈ, રજોહરણ લિયે રહતે હૈ ઓર
કટિવન્ધન વસ્ત્ર રખતે હૈ । જય કોઈ ઇસ વેપ કો દેખતા હૈ દેખ-
કર વહ યહ સમજા જાતા હૈ કિ યહ જિનકલ્પિ સાધુ હૈ । ઇસ પ્રકાર કા
યહ સાધુ કા વેપ લોગોં મેં વિશ્વાસજનક હોતા હૈ ઓર વહ ઇસલિયે
હોતા હૈ કિ યહ વેપ નિઃસ્પૃહતા કા સૂચક હોતા હૈ । ૩। તપ કી અપેક્ષા
યહ અચેલકતા ઇસલિયે પ્રશંસિત હુઈ હૈ કિ ઇસમેં સકલ ઇન્દ્રિયોં કા

છે કે, બ્યારે કોઈ એવો વેશ બુએ છે "મુખ ઉપર દોરા સાથેની મુખ-
વચ્ચિકા વાંધેલ છે. સફેદ ચોલપટ્ટો પહેરેલ છે. સફેદ ચાદર ઓઢેલ છે, રજો
હરણ ધારણ કરેલ છે. મિક્ષા માટેના પાત્ર ઝોળીમાં ઢંકાયેલ હાથમાં છે.
મસ્તક ખુલ્લું છે. પગમાં પગરખાં, મોજા આદિ નથી, ઈર્યા સમિતિ આદિ
પાંચ સમિતિઓથી યુક્ત છે. ત્રણ ગુપ્તિઓથી ગુપ્ત છે." સાધુનો આજ વેશ
છે. અને આવા વેશવાળા આ સાધુ છે, એવું તુરત જ સમજાઈ બય છે.
તથા જનકલ્પિઓનો એ વેપ છે કે તે પોતાના મોઢા ઉપર દોરાથી સફેદ
મુખવચ્ચિકા વાંધે છે. રજોહરણ રાખે છે, અને કટિવન્ધન વસ્ત્ર રાખે છે.
એને જોતાંની સાથે જ જોનાર સમજી બય છે કે એ જનકલ્પિ સાધુ છે, આ
પ્રકારનો સાધુનો વેપ લોકોમાં વિશ્વાસ જનક હોય છે. અને તે એ માટે
કે, આ વેપ નિસ્પૃહતાનો સૂચક હોય છે. (૩) તપની અપેક્ષા આ આચે-
લકતા એ માટે પ્રશંસનીય બની છે કે જેમાં સકલ ઇન્દ્રિયોના સંગોપન

नुमतं भवति । तथा—' चिउळे इंदियनिग्गहे ' विपुलः=महान्, इन्द्रियनिग्रहो भवति, उपकरणं विना स्पर्शनमतिकूलशीतवातातपादिसहनात् ।

अत्र दृष्टान्तः प्रदर्शयते—

आसीदशपुरनाम्निनगरे सोमदेवनामा ब्राह्मणः । तस्य जिनाशाराधिका रुद्र-सोमानाम्नी भार्याऽभवत् । तस्यां भार्यायां सोमदेवस्य द्वौ पुत्रौ जातौ । तत्र ज्येष्ठ आर्यरक्षितनामकः, द्वितीयः फल्गुरक्षितनामकः । आर्यरक्षितः पितुः संनिधौ शस्त्र-मधीत्याधिकविद्याभार्यं पाटलिपुत्रनगरं गतः । तत्र तेन साक्षीपात्राश्वत्वारो वेदा अधीताः, चतुर्दशविद्यास्थानानि गृहीतानि । ततोऽसौ दशपुरं नगरं समायातः।

संगोपनरूप तप जिनेन्द्र भगवान् का अनुज्ञात है। तथा इसमें महान् इन्द्रिय नियग्रह होता है, क्यों कि उपकरण के विना स्पर्शन इन्द्रिय के प्रतिकूल शीत वात आतप आदि का सहन होता है। इससे इन्द्रियां कावू में रहती हैं।

दृष्टान्त—दशपुर नामके नगर में एक सोमदेव नाम का ब्राह्मण था। उसकी पत्नी का नाम रुद्रसोमा था। यह जिनेन्द्र भगवान् की आज्ञा की आराधिका थी। सोमदेव के दो पुत्र थे। जेठे पुत्र का नाम आर्यरक्षित था और छोटे पुत्र का नाम फल्गुरक्षित। आर्यरक्षित पिता के पास शास्त्रों का अध्ययन करके अधिक विद्या की प्राप्ति की अभिलाषा से दशपुर से पाटलिपुत्र नगर को रवाना हुआ। वहाँ पहुँचकर इसने सांगोपांग चारों वेदों का एवं १४ चौदह विद्याओं का खूब अध्ययन किया। जब यह षट्ठ वन चुका तब वहाँ से वापिस दशपुर नगर की

इय तप जनेन्द्र भगवान् की अनुज्ञात छे. (४) तथा तेमां महान् इन्द्रिय निग्रह थाय छे. केम के उपकरण वगर स्पर्शन इन्द्रियने प्रतिकूल शीतवात, आतप, आदि सहेवां पडे छे, आनाथी इन्द्रियो कानुमां रहे छे.

दृष्टान्त—दशपुर नामना नगरमां एक सोमदेव नामना ब्राह्मण हुते, तेनी श्रीतुं नाम इद्रसोमा हुतुं. ते जनेन्द्र भगवान् की आज्ञानी आराधिका हुती. सोमदेवने जे पुत्रो हुता. मोटा पुत्रतुं नाम आर्यरक्षित अते नाना पुत्रतुं नाम फल्गुरक्षित हुतुं. आर्यरक्षित पितानी पासे शास्त्रोतुं अध्ययन करीने अधिक विद्याप्राप्तिनी अभिलाषाथी दशपुरथी पाटलीपुत्र रवाना थयो, त्यां पडोन्थीने तेजे सांगोपांग चारे वेदोतुं अने चौद विधातुं खूब अध्ययन कथुं. न्यारे ते पारंगत भनी चकथे ल्यारे ते पाटलीपुत्रथी पेताने

तन्नगरनरेशस्तं नगरसमीपे समागतं विज्ञाय तदभिमुखं गत्वा गजोपरि तमुपवेश्य बहुसंमानपुरस्सरं नगरे प्रावेश्य तस्य रूप्यस्वर्णमणि प्रभृतिभिः प्राभृतैः संमानं कृतवान् । एवं तन्नगरनिवासिभिः प्रवेशोत्सवं कृत्वा संमानितः स्वगृहमागतः पितरौ प्रणतवान् । प्राप्तविद्यं लोकसंमानितमार्यरक्षितं विलोक्य पिताऽजीव हृष्टो जातः, किंतु माता हर्षं न दर्शितवती । आर्यरक्षितस्तदा मातरमजातहर्षां दृष्ट्वा प्राह—हे मातः ! किमिदानीं मदवलोकनेन हृष्टा न भवसि ? सा प्राह—किमनेन

ओर प्रस्थान किया । दशपुर के राजा को जब इसके आने का समाचार मिला तो उसने इसके स्वागत की खूब तैयारी की । जब आर्यरक्षित आते २ नगर के समीप पहुँचा तो राजा इन्हें नगर में प्रवेश कराने के लिये इसके संमुख गया । हाथी पर बैठा कर बहुत सन्मानपूर्वक राजा ने इसको नगर में प्रवेश कराया । रूप्य, सुवर्ण और मणि आदि के नजराने से राजा ने इसका खूब सत्कार किया । इसी तरह नगरनिवासियों ने भी राजा का साथ दिया । सब से अच्छी तरह संमानित होकर आर्यरक्षित अपने घर पर आया । मातापिता को नमस्कार किया । विद्या की प्राप्ति से राजा तथा अन्य नगर निवासियों द्वारा संमानित अपने पुत्र को देखकर पिता तो चित्त में बहुत ही हर्षित हुआ, परन्तु माता ने इस विषय में अपना हर्ष नहीं प्रकट किया । जब आर्यरक्षितने अपनी माता की इस प्रकार परिस्थिति देखी तो वह बोला हे माता ! क्या बात है तुम्हें क्यों नहीं इस समय मेरी इस परिस्थिति के अवलोकन से हर्ष

गाम पाछे आब्यो. दशपुरना राजने न्यारे तेना आववाना सभाथार भन्या अेटवे तेणे तेना स्वागतनी भूष तैयारी करी. आर्यरक्षित न्यारे नगरनी समीप पडोअ्यो, ते समये राज तेने नगरभां प्रवेश कराववा तेनी साभे गया. हाथी उपर जेसाडीने धणुअ सन्मान पूर्वक राजअे तेना नगरभां प्रवेश कराव्यो. इपुं, सोतुं विगेरेना नगराणुथी राजअे तेना भूष सत्कार क्यो. आ रीते नगर निवासीअेअे पणु राजने साथ आप्यो. सारी रीते आदर सत्कार भेजवीने आर्यरक्षित पोताने घेर पडोअ्यो. माता पिताने नमस्कार क्यो. विद्यानी प्राप्तिथी राज तथा अन्य नगरवासीअेअे सन्मानित पोताना पुत्रने जेध पिता तेना दिलभां भूष अे हर्षित भन्या, माताअे आ विषयभां पोताने हर्ष प्रकट क्यो नहीं न्यारे आर्यरक्षिते मातानी आ प्रकारनी स्थिति जेध ते ते पाव्यो के, हे माता ! शुं कारण छे के तमे आ

जीवघातादिहेतुकेन बहुशास्त्राध्ययनेन ? किं त्वया दृष्टिवादः पठितः ? येन मम हर्षः स्यात् । मातुरेतद् वचनं श्रुत्वाऽऽर्यरक्षितः पृच्छति—क्वास्ति दृष्टिवादः ? जनन्या निगदितम्—इक्षुवाटकनामके ग्रामे विद्यमानस्य तोसलिपुत्राचार्यस्य समीपेऽस्ति, तदासेवनया तदाशापरिपालनया तत्सन्निधौ दृष्टिवादोऽभ्यसनीयः । आर्यरक्षितेनोक्तम्—हे मातः ! श्वस्तत्राहं गमिष्यामि दृष्टिवादपठनार्थम् । रात्रौ सुप्तो-

हो रहा है। पुत्र के वचन सुनकर माताने कहा कि वेटा ! मुझे जो हर्ष नहीं उमड़ रहा है उसका कारण यह है कि तुम्हें जीवघात की हेतुमूल अनेक वेदादि शास्त्रों की इस पढ़ाई से क्या लाभ ? वेटा ! तुम हमें यह बतलाओ कि क्या तुमने दृष्टिवाद का भी अध्ययन किया है ? मुझे तो तभी हर्ष हो सकता है कि जब तुम दृष्टिवाद का ज्ञाता हो जाओ। जननी के इस प्रकार के वचन सुनकर आर्यरक्षित ने माता से पूछा मातः ! जिसके लिये तुम मुझे पढ़ने के लिये कह रही हों वह दृष्टिवाद शास्त्र कहाँ है। माता ने कहा—सुनो ! इक्षुवाटक नाम का एक ग्राम है। उस में तोसलिपुत्र नामके एक आचार्य ठहरे हुए हैं, उनके पास यह शास्त्र है सो तुम वहाँ जाओ और उनकी खूब सेवा करो तथा उनकी आज्ञानुसार रहो तो वे तुम्हें इस शास्त्र का अध्ययन करा देंगे। आर्यरक्षित ने माता के ये सीखभरे वचन सुनकर कहा—मातः ! मैं कल उनके समीप इस शास्त्र का अध्ययन करने के लिये जाऊँगा। रात्रि में

समये भारी आ प्रकारनी स्थितिथी इषित यतां नथी ? पुत्रतुं वचन सांलणीने माताये कछुं, के डे पुत्र ! मने डर्षं यतो नथी तेतुं कारणु ये छे के, एवनघातना डेतुभूत अनेक वेदादि शास्त्रे लक्षुवाधी तने शुं लाभ थये ? वेटा ! तुं मने ये तो अताव के ते दृष्टिवादतुं पणु अध्ययन कथुं छे ? मने ल्यारे न डर्षं थाय के ल्यारे तुं दृष्टिवादनो ज्ञाता मने. मातातुं आ प्रभाणुतुं वचन सांलणीने अर्थरक्षिते माताने पूछथुं, माता ! तुं मने ने लक्षुवानुं कडे छे ते दृष्टिवाद शास्त्र कथां छे ? माताये कछुं, सांलण ! अेक इक्षुवाटक नामतुं गाम छे, तेमां तोसली पुत्र नामना अेक आचार्य विचरे छे तेमनी पासे आ शास्त्र छे, जेथी तुं त्यां न अने तेनी पूष सेवा कर तथा अेनी आज्ञानुसार रहे तो तेअो तने आ शास्त्रतुं अध्ययन करावी हेथे. आर्यरक्षिते मातातुं आपुं इतवाणुं वचन सांलणीने कछुं, मा ! हुं आवती काले आ शास्त्रतुं अध्ययन करवा माटे तेमनी पासे लक्षि, रात्रे ल्यारे अर्थरक्षित सुवा

स्थितेन तेन मनस्येवं चिन्तितम्—दृष्टियादनाम्नैव तस्य शास्त्रस्य तत्त्वज्ञानबोधकत्वं ज्ञायते । ततोऽसौ प्रभाते प्रस्थितः । मार्गे दशपुरनगरनिकटवर्तिग्रामनिवासी पितृमुहूर्द् ब्राह्मणः सार्धनवेशुदण्डान् गृहीत्वा समागच्छन् मिलितः । स आर्यरक्षितं दृष्ट्वा परस्परं कुशलप्रदानं कृत्वाऽवदत्—एते मया सार्धनवसंख्यका इक्ष्वो भवदर्धमा-नीताः, गृह्णातु भवान् । आर्यरक्षितो वदति—इदमिक्षुरूपं प्राभृतं मम मातुर्हस्ते भवताऽर्पयित्वा कथनीयम्—एते इक्ष्वो मयाऽऽर्यरक्षिताय समानीताः, तेन तुभ्यं प्रेषिताः, इति । कथितं च—अहमेव मार्गं प्रथमं मिलितः, इत्यपि तदग्रे कथनीय-

आर्यरक्षित सोने के लिये अपने स्थान पर गया और शांति से सो गया । जब वह उठा तो उसने विचार किया—माता ने जो कुछ कहा है वह बिलकुल ठीक है, कारण कि वह शास्त्र तत्त्वज्ञान का बोधक है यह बात तो उसके नाम से ही ज्ञात होती है । प्रातःकाल होते ही वह घर से इक्षुवाटक ग्रामकी ओर चल दिया । मार्ग में इस को दशपुर नगर के पास के ग्राम में रहने वाला एक ब्राह्मण जो इनके पिता का मित्र था मिला । वह ९॥ साढे नौ इक्षु दण्डों को लेकर आ रहा था । कुशल प्रश्न के बाद उसने आर्यरक्षित से कहा कि भाई ! ये ९॥ साढे नौ इक्षुदंड मैं आप के लिये ही लाया हूँ—अतः आप इन्हें लीजिये । आर्य-रक्षित ने कहा ठीक है आप इस भेंद को मेरी माता के हाथ में देकर कहना कि ये ९॥ साढे नौ इक्षुदंड मैं आर्यरक्षित के लिये लाया था । वे मुझे मार्ग में मिल गये हैं । उन्होंने ने ही ये तुम्हारे पास भेजे हैं । और

भाटे पोताना स्थान उपर गये अने शांतिथी सुध गये। न्यारे ते उठये त्यारे तेबे विचार क्यो के, माताये ने कांथ कहुं छे ते अक्षरशः सत्य छे। कारणु के ते शास्त्र तत्वज्ञानने बोध आपनार छे, ये उदिकत तेना नाम उपरथी न् जणुअवे छे। सवार थतां ते धरथी अडार नीकणी धक्षुवाटक गाभनी तरक्ष आलते थये। मार्गमां तेने दशपुरनगरनी पासैना गाभमां रडेवा पाणे अने पोताना पिताने मित्र अेक ब्राह्मणु भणी गये। ते ब्राह्मणु हाथमां ला धक्षुदंड लधने आवते। इते कुशल समाचार पूछया भाद तेबे आर्यरक्षितने कहुं के, भाई! आ ला धक्षुदंड तारा भाटे न् लाये। धुं। भाटे तुं तेने स्वीकार कर. आर्यरक्षिते कहुं, ठीक छे. आप आ दंड भारी माताना हाथमां आपीने कडेले के, हुं आ ला धक्षुदंड आर्यरक्षित भाटे लाये। इते, ते अने मार्गमां भये। इते अने तेबे आ दंड तमने आप-

મિતિ । અથાસી તદ્વચનાત્તથૈવ કૃતવાન્ । તતો માતાડતીવ દ્વષ્ટા તુષ્ટા સંજાતા,
ચિન્તયતિ ચ । માર્ગે સાર્ધનવસંલ્પ્યકા રક્ષયો મિલિતા અતોડસી સાર્ધનવપૂર્વાપિ
અધ્યેપ્યતે । આર્યરક્ષિતોડપિ શુભં શકુનં મત્વેશ્ચુવાટકં ગતઃ । ઉપાશ્રયે પ્રવિશ્ય
તોસલિપુત્રાચાર્યસ્ય વન્દનં કૃત્વા તત્રોપવિષ્ટઃ । તોસલિપુત્રાચાર્યેણ પૃષ્ટમ્-તવ કિં
નામ?, કિં ચ પ્રયોજનમ્ ? । આર્યરક્ષિતેન સ્વનામ કથયિત્વા પ્રયોજનં કથિતમ્-
દ્વષ્ટિવાદમધ્યેતુમહમત્રાગતોડસ્મિ, મામધ્યાપયન્તુ દ્વષ્ટિવાદં ભવન્તઃ । આચાર્યઃ

યહ્ ભી કહના કિ માર્ગ મેં ડનકો પહલે પહલ મેં હી મિલા ધા । આર્ય-
રક્ષિત કે વચનાનુસાર ડસ ત્રાહ્મણ ને વૈસા હી કિયા । માતા ને ૧॥ સાઢે
નો ઇક્ષુદંડ પ્રાસકર ઇસ શકુનસે ઁસા અનુમાન લગાવા કિ ઇસે જો યે
૧॥ સાઢે નૌ ઇક્ષુદંડ માર્ગ મેં ચલતે સમય મિલે હેં ડસસે ઁસા હી જ્ઞાત
હોતા હે કિ યહ્ ૧॥ સાઢે નૌ પૂર્વો કા અધ્યયન કર સકેગા । આર્યરક્ષિત
ને ભી “ ઇનકી પ્રાપ્તિ શુભ શકુન સ્વરૂપ હે ” ઁસા જાનકર વઢે આનંદ
કે સાથ ઇક્ષુવાટક કો ઓર અધિક તેજી સે ચલને લગા । વહો પહુચતે
હી વહ્ ઉપાશ્રય મેં ગયા । તોસલિપુત્ર આચાર્ય કો વંદન કર ફિર વહો
વૈઠ ગયા । આચાર્યશ્રી ને પૂછા તુમ્હારા કયા નામ હે ? યહાં કિસ પ્રયો-
જન સે આયે હો । ? આર્યરક્ષિત ને અપના નામ કહ કર પ્રયોજન ભી
સ્પષ્ટ કર ડિયા । આચાર્યશ્રી ને જવ યહ્ જાના કિ “ યહ્ દ્વષ્ટિવાદ કે
અધ્યયન કે લિયે યહાં આયા હે ” તવ આચાર્યશ્રી ને ડસસે કહા કિ

વાતુ' કહ્યું છે. અને એ પણ કહેજો કે માર્ગમાં અને પહેલવહેલો હું જ
મળ્યો હતો. આર્યરક્ષિતના વચનાનુસાર તે પ્રાહ્મણે તેવું જ કયું. માતાએ
હા ઇક્ષુદંડ પ્રાપ્ત કરી એ શુકનશ્રી એવું અનુમાન લગાવ્યું કે, તેને જે આ
હા ઇક્ષુદંડ રસ્તામાં ચાલવા સમયે મળેલ છે એથી એવું જ્ઞાત થાય છે કે,
સાડાનવ પૂર્વનું અધ્યયન કરી શકશે. આર્યરક્ષિતે પણ આની પ્રાપ્તિ શુભ શુકન
સ્વરૂપ છે તેવું જાણીને ઘણા આનંદની સાથે ઇક્ષુવાટકની તરફ ઝડપથી ચાલવા
માંડ્યું. ત્યાં પહોંચતાં જ તે ઉપાશ્રયમાં ગયો તોસલિપુત્ર આચાર્યને વંદન કરી
ત્યાં બેસી ગયો. આચાર્યશ્રીએ તેને પૂછ્યું, તમારું નામ શું છે ? શું કારણથી
અહિં આભ્યા છો ? આર્યરક્ષિતે પોતાનું નામ આપીને આવવાનું પ્રયોજન
જણાવી દીધું. આચાર્યશ્રીએ ત્યારે એવું જાણ્યું કે, “ આ દ્વષ્ટિવાદના અધ્યયન
માટે અહિં આવેલ છે. ત્યારે આચાર્યશ્રીએ તેને કહ્યું કે, દ્વષ્ટિવાદનું અધ્યયન ત્યારે

प्राह-यदि ममान्तिके प्रव्रज्यां गृह्णासि, तर्हि त्वां दृष्टिवादमध्यापयामः । आर्यरक्षितेन प्रव्रज्याग्रहणं स्वीकृतम्, तदनन्तरमसौ श्रावकेण दत्तं साधुवेपयोग्यं सदो-
रकमुखवस्त्रिका-रजोहरणवस्त्रपात्रादिकं लब्ध्वा साधुवेपेण मातुरनुमत्या च प्रव्रजितः
सन्नाचार्यस्य समीपे एकादशाङ्गानि सोपाङ्गानि पठित्वा दृष्टिवादस्य प्रथमं परिक-
र्माख्यं द्वितीयं सूत्राख्यमध्ययनमधीतवान् । अथातः परं दृष्टिवादं पठितुं तोसलि-
पुत्राचार्याज्ञया स वज्रस्वामिसमीपं गन्तुकामः पथि गच्छन्नवन्त्यां भद्रगुप्ताचार्य-
स्यान्त्यक्रियारूपां निर्यापनां कृतवान् । तेन चान्त्यसमये प्रोक्तम्-त्वया रात्रौ

दृष्टिवाद का अध्ययन हम तुम को तब ही करावेंगे कि जब तुम मेरे पास
दीक्षा धारण करोगे । आर्यरक्षित ने दीक्षाग्रहण करना मंजूर कर लिया ।
माताने उन्हें दीक्षा लेने की अनुमति पहले दे दी थी । आर्यरक्षितने मुनिदीक्षा
धारण कर ली । श्रावकों ने मिलकर उनके लिये मुनिवेप के योग्य सदो-
रक मुखवस्त्रिका एवं रजोहरण तथा वस्त्रपात्रादिक प्रदान किये । आचार्य
के पास रह कर आर्यरक्षित ने उपाङ्गसहित ग्यारह अंगों का अध्ययन
कर दृष्टिवाद का प्रथम परिकर्म नाम का अध्ययन तथा द्वितीय सूत्र
नाम का अध्ययन पढ़ लिया । अचशिष्ट दृष्टिवाद को पढ़ने के लिये
फिर वे वहां से तोसलिपुत्राचार्य की अनुमति से वज्रस्वामी के समीप
जाने को इच्छुक हुए । जब ये उनके पास जा रहे थे तो मार्ग में इन्हें
उज्जैनो नगरी आई । वहां उस समय भद्रगुप्ताचार्य की उन्होंने अन्त्य-
क्रिया रूप निर्यापना की । आचार्यने अंत समय में इनसे यह कहा कि

तमे भारी पासे दीक्षा धारण करेशे । त्वां ७ कराववामां आवशे । आर्यरक्षिते दीक्षा
ग्रहण करवानु स्वीकार्युं, माताये पथु तेने दीक्षा लेवानी अनुमति पढेवांथी आवी,
हुती । आर्यरक्षिते मुनिदीक्षा धारण करी । श्रावकेअे भणाने तेने माटे मुनिवेपने योग्य
सदो-रकमुखवस्त्रिका, रजोहरण तथा वस्त्रपात्रादिक प्रदान कर्थां । आचार्यनी पासे रहने
आर्यरक्षिते उपांग सहित अग्यार अंगेनुं अध्ययन करी दृष्टिवादनुं प्रथम परिकर्म
नामनुं अध्ययन तथा द्वितीय सूत्र नामनुं अध्ययन शीघ्री लीधुं । आशीना दृष्टिवा-
दने शीघ्रवा माटे पछी ते त्यांथी तोसलीपुत्राचार्यनी अनुमतिथी वज्रस्वामी समीप
जवा माटे धब्धा करी । त्वांरे ते तेनी पासे ७४ रहो हुतो । त्वांरे पथमां
मार्गमां उज्जैनि नगरी आवी । त्यां अे समये भद्रगुप्ताचार्यनी अंत्यक्रिया
रूप निर्यापना करी । आचार्ये अंत समये तेने अे कहुं के, तमे रात्रीमां वज्र-

वज्रस्वामिना सह न स्यात्तव्यम् यतस्तेन सह रात्रौ संवसन् प्रियते । एतद्वचनं इति निधाय स ततो निर्गत्यावन्तीनगर्या अदूर एव ग्रामाद् बहिरुद्याने रात्रौ स्थितः । वज्रस्वामिना रात्रिशेषे स्वप्नो-दृष्टः केनचिदागन्तुकेन शिष्येण मत्पात्रस्थं साव शेषं पयः पीतमिति । आचार्यरक्षितः प्रभाते क्वचिदन्यस्मिन्नुपाश्रये वर्तति कृत्वा वन्दनार्थं वज्रस्वामिनोऽन्तिकं गतः । तदानीं स वज्रस्वामी रात्रिशेषदृष्टं स्वप्नं चिन्तयन्नासीत् । वज्रस्वामिना कुशलप्रश्नानन्तरं रात्रावन्यत्रावस्थानस्य कारणं पृष्ट्य आर्यरक्षितः प्राह-भद्रगुप्ताचार्यस्यानुशासनादहमन्यस्मिन्नुपाश्रये निवसामि, वज्रस्वामी तु तदा पूर्वं निजोपयोगं दत्त्वा आर्यरक्षितकृतस्य रजन्यामन्यत्रोपाश्रयेऽ

तुम रात्रि में वज्रस्वामी के साथ नहीं रहना, क्यों कि रात्रि में उनके साथ रहने वाले की मृत्यु हो जानी है । आचार्य के इन वचनों को हृदय में रखकर वे वहां से निकले और जाकर पास के किसी ग्राम के बाहिर उद्यान में रात्रि में ठहर गये । उधर वज्रस्वामीने रात्रिके शेषभाग में एक ऐसा स्वप्न देखा, कि किसी आनेवाले शिष्य ने मेरे पात्र का सावशिष्ट (कुछ बाकी रखकर) क्षीरको पी लिया है । उधर आर्यरक्षित प्रभात काल में किसी अन्य उपाश्रयमें अपने उपकरण रखकर एवं स्थान निश्चित कर वंदना निमित्त वज्रस्वामी के पास पहुँचे । उस समय वज्रस्वामी रात्रि के शेष-भाग में दृष्ट स्वप्न का विचार करने में मग्न हो रहे थे । वज्रस्वामी ने कुशलप्रश्न के बाद रात्रि में अन्यत्र ठहरने का कारण आर्यरक्षित से पूछा, आर्यरक्षित ने कहा कि मैं भद्रगुप्ताचार्य के अनुशासन से अन्य उपाश्रय में ठहर गया हूँ । उस समय वज्रस्वामी ने अपने उपयोग के बलसे

स्वामीनी साथे रहेशो नहीं. कारण के, रात्रे तेनी साथे रहेवावाणानुं मृत्यु थाय छे. आचार्यना आ वचनने हृदयमां रात्रीने त्यांथी नीकणी पासेना केधं गामे अहार अगीत्यामां रात्री रोकाथे. आ तरक्ष वज्रस्वामीअे रात्रीना छेला प्रहरे अेक अेवुं स्वप्न देणुं के, केधं आवी रहेला शिष्ये मारा पात्रमांथी सावशिष्ट(कधके अडी रात्रीने) भीर पीछं लीधेल छे. आ तरक्ष आर्यरक्षित प्रभातकालमां केधं भील उपाश्रयमां पोतानुं उपकरण रात्रीने अने स्थान निश्चित करीने वंदना.निमित्त वज्रस्वामी पासे पहुँच्ये. अे समये वज्रस्वामी रात्रीना छेला प्रहरे जेथेला स्वप्नने विचार करवामां मग्न हुता. वज्रस्वामीअे कुशल प्रश्न आठ रात्रीमां भील स्थणे रोकावानुं कारण आर्यरक्षितने पूछ्युं. आर्यरक्षिते कहुं के हुं भद्रगुप्ताचार्यना अनुशासनाधी भील उपाश्रयमां रोकाथे छुं. ते समये वज्रस्वामीअे पोताना उपयोगना अणथी “ आर्यरक्षितनुं भील उपाश्रयमं

वस्थानस्य कारणं ज्ञात्वाऽत्रवीत्-युक्तमेतदुक्तं भद्रगुप्ताचार्येणेति । अथार्यरक्षितेन वज्रस्वामिसंनिधौ नव पूर्वाणि पठितानि, दशमपूर्वस्य कतिचिदधिकारास्तेन यावत् पठितास्तावद् दशपुरात् फल्गुरक्षितो भ्राता चिरविरहार्तमात्रादिभिः प्रेरितस्तस्या-कारणाय तत्रागतः । आर्यरक्षितस्तं प्रतिबोध्य तत्रैव प्रव्रज्यां ग्राहयति स्म ।

एकदाऽऽर्यरक्षितो वज्रस्वामिनं पृच्छति-भगवन् ! मम पठनार्थं दृष्टिवादे दशमं पूर्वं कियदवशिष्टमस्ति ? वज्रस्वामी प्राह-वत्स ! त्वया दशमपूर्वस्य विन्दुमात्रं पठितं समुद्रोपमं दशमं पूर्वमस्ति । ततोऽसौ श्रान्तमनाः प्राह-नाहमतः परं पूर्वापाठं कर्तुं

‘आर्यरक्षित का अन्य उपाश्रय में रात्रि में ठहरने का क्या कारण है’ यह बात अच्छी तरह जानकर आर्यरक्षित से कहा भद्रगुप्ताचार्य ने जो कहा वह युक्त ही कहा है । वाद में आर्यरक्षित ने वज्रस्वामी से नव पूर्व का अध्ययन आनन्द से कर लिया । परन्तु दशम पूर्व के कितनेक अधिकार जब ये पढ़ रहे थे कि इतने में इनका छोटा भाई फल्गुरक्षित दशपुर से चिरविरहार्त माता आदि द्वारा प्रेरित होकर इन्हें बुलाने के लिये वहां आपहुँचा । आर्यरक्षित ने उसे समझाकर-प्रतिबोधितकर-वहीं दीक्षा दिलवा दी । एक दिन की बात है कि आर्यरक्षित ने वज्रस्वामी से पूछा कि भगवन् ! दृष्टिवाद में दशमपूर्व, पढ़ने के लिये अब मेरा कितना बाकी रहा है । यह सुनकर वज्रस्वामी ने कहा कि वत्स ! दशम पूर्व तो समुद्र के समान है तुमने तो अभीतक उसको विन्दुमात्र ही पढ़ा है । वज्रस्वामी की यह बात सुनकर इनका मन कुछ श्रान्त सा

रोकवानुं शुं कारणं छे ” आ वात सारी रीते जलणीने आर्यरक्षितने कहुं, लक्ष्-
शुभाचार्ये ने कहुं छे, ते युक्त ज कहुं छे. भादमां आर्यरक्षिते वज्रस्वामीथी
नव पूर्वनुं अध्ययन आनंदथी शीभी लीधुं. परंतु दशमा पूर्वना डेटलाक
अधिकार न्यारे ते शीभी रक्षो डते। त्यारे ते अरसाभां तेना नानोलाध इत्यु-
रक्षित दशपुरथी पुत्रेना विरड अनुभवती भाता द्वारा प्रेरित जनी तेने जाला-
ववा भाटे त्यां आवी पडोन्थे. आर्यरक्षिते तेने समजवीने प्रतिबोधित करी
त्यां दीक्षित जनाये. अक द्विवसनी वात छे डे, आर्यरक्षिते वज्रस्वामीने
पूछ्युं डे लहतं दृष्टीवादमां दसमुं पूर्वं पुरं थवा भाटे डवे डेटवे। समय
भाकी छे? आ सांजणीने वज्रस्वामीअे कहुं डे, वत्स ! दशमुं पूर्वं तो समुद्र
समान छे, आमांथी तें तो मात्र डणु भींडु नेटलुं ज शीजेल छे. वज्र-
स्वामीनी आ वात सांजणीने तेनुं मन कांछिके पिन्न थधं गयुं अने कडेवा

शक्रोमि । वज्रस्वामी तु दशमपूर्वस्य स्वस्मिन्नेवावस्थानं ज्ञात्वा मौनमवलम्ब्य स्थितः । आर्यरक्षितो वज्रस्वामिगुरोरनुशया फल्गुरक्षितेन सह दशपुरनगरं समागतः । वज्रस्वामिना स्वायुख्यं ज्ञात्वा तस्मै सुशिक्ष्याचार्यरक्षिताय विहारसमये आचार्यपदं प्रदत्तम् । अचार्यरक्षिताचार्यः स्यमातृभगिनीप्रमुखसांसारिकवर्गं प्रतिबोध्य प्रव्रज्यां ग्राहयामास । सोमदेवस्तु प्रतिबोधितोऽपि साधुवेपं नैव गृह्णाति, आर्यरक्षिताचार्यस्तं दीक्षाग्रहणार्थं बहुशः कथयति । ततस्तस्य पिता सोमदेवः प्रावृत्त्युगमं, यज्ञोपवीतं, कमण्डलुं, छत्रं, पादुकां चापरित्यज्यैव मया दीक्षा ग्राह्या ।

हो गया और कहने लगे—भदन्त ! अब मैं इससे आगे पढ़ने के लिये समर्थ नहीं हूँ । वज्रस्वामी दशमपूर्व "मेरे हृदय में ही अवस्थित रहेगा" ऐसा जानकर पश्चान् चुप हो गये । आर्यरक्षित वज्रस्वामी गुरु की आज्ञा से फल्गुरक्षित के साथ विहार करके दशपुर नगर को आये । वज्रस्वामी ने अपनी आयु अल्प जानकर उन सुशिक्ष्य आर्यरक्षित के लिये विहार के समय में आचार्य पद दे दिया था । आचार्य आर्यरक्षित ने अपनी माता वहिन आदि सांसारिक जनों को प्रतिबोधित कर उन्हें दीक्षा से दीक्षित कर दिये । अपने संसारी पिता सोमदेव को भी समझाया पर उन्होंने प्रतिबोधित होने पर भी दीक्षा धारण नहीं की । आचार्य आर्यरक्षित ने उनको अनेक बार बहुत २ भी कहा कि 'आप दीक्षा स्वीकार करलो' परन्तु उन्होंने ने साधुवेप अंगीकार नहीं किया । कहने लगे कि वृत्त्युगम, यज्ञोपवीत, कमण्डलु, छत्र एवं पादुका नहीं छोड़कर ही मैं दीक्षा ग्रहण

लाग्यो, भदन्त ! डवे डुं आनाथी आंगण शीभी शकुं तेभ नथी. वज्रस्वामी दशमं पूर्वं पोताना हृदयमां न अवस्थित रडेशे तेषुं नष्ठीने युप रद्या. आर्यरक्षित वज्रस्वामी शुरुनी आसाथी इत्युरक्षितनी साथे विहार करी दशपुर नगरमां आव्या. वज्रस्वामीजे पोतानी आयु अल्प नष्ठीने विहार करवाना समये सुशिक्ष्य आर्यरक्षितने आचार्य पद अपी दीधु. आचार्य आर्यरक्षिते पोतानी माता, भडेन, वगेरे संसारी संभधीओने प्रतिबोधित करीने तेओने दीक्षा आपी दीक्षित कथो. पोताना संसारिक पिता सोमदेवने पधु समनव्या पधु तेओने प्रतिबोध करवा छतां पधु तेभजे दीक्षा अडलु न करी. आचार्य आर्यरक्षिते तेभने अनेकवार धलुं धलुं कहुं के, तमे दीक्षा लधुं हो. परंतु तेओजे साधुवेश अंगिकार न कर्यो. कडेवा लाग्या के, वज्रनी नेडी, यज्ञोपवीत, ...

आर्यरक्षिताचार्येण स्वपितुर्वृद्धावस्थायां तारणबुद्ध्या पूर्वज्ञाने उपयोगं दत्त्वा तथैवासौ प्रत्राजितः ।

अन्यदा कदाचिद् गृहस्थबालकाः साधूनां वन्दनार्थं तत्र मंडल्यां समागताः, आचार्यः कचिदन्यत्र तदानीं गतश्चासीत्, तत्र साधुभिरिद्वितेन प्रतिबोधितास्ते बालका वदन्ति—इमं छत्रधरं मुक्त्वाऽन्यान् सर्वान् साधून् वन्दामहे । इत्युक्त्वा ते बालका एकं छत्रधरं तं विहाय सर्वान् साधून् वन्दन्ते । ततः सोमदेवमुनिः प्राह—एते मम पुत्रनप्त्रादयः सर्वे युष्माभिर्वन्दिताः, अहं कस्मान्न वन्दितः? किं मया दीक्षान

करूंगा । अपने पिता सोमदेव की यह बात सुनकर आर्यरक्षित आचार्य ने उन्हें वृद्धावस्था में तारण की भावना से पूर्वज्ञान में उपयोग देकर अपने आगमविहारी होनेसे उसीरूप से दीक्षित कर लिया ।

किसी एक समय की बात है कि गृहस्थों के बालक साधुओं को वंदना निमित्त वहां मंडली में आये । आचार्य आर्यरक्षित कहीं दूसरी जगह उस समय गये हुए थे । साधुओंके इशारे से प्रतिबोधित किये गये वे सब बालक कहने लगे कि—हम लोग इस छत्रधारी साधुको छोड़कर बाकी समस्त साधुओं को वंदना करते हैं । इस प्रकार कह कर वे सबके सब एक छत्रधारी मुनिको छोड़कर सबको वंदना करनेलगे । सोमदेव मुनिने जब यह बालकों का व्यवहार देखा तो बोले—क्यों बालको !—तुमने हमारे इन पुत्रों एवं नातियों को तो वंदना की पर मुझे वंदना क्यों नहीं की ? क्या मैंने

छत्र, अने पाहुका छोड्या शिवायज हुं दीक्षा अहल्य करीश. पोताना पिता सोमदेवनी आ वात सांलणीने आर्यरक्षित आचार्ये तेमनी वृद्धावस्थायां तारवानी भावनाथी पूर्वज्ञानने उपयोग आपी पोताना आगम विहारी होवाथी तेवा इथी दीक्षित अनाव्या.

कोई अेक समयनी बात छे डे गृहस्थानां आणको साधुआनी वंदना निमित्ते साथे मणीने आव्या. आचार्य अे समये कोई भीछ नग्याअे गया हुता. साधुआअे इशाराथी दरेकने वंदना करवा भाटे ते आणकोने कलुं. ते ते सधणा आणको कडेवा लाग्या डे, अमे अधा आ छत्रधारी मुनिने छोडीने आकी समस्त साधुआने वंदना करीअे छीये अेम कहीने ते सधणा आणको छत्रधारी महाराजने छोडीने भीज अधाने वंदना करवा लाग्या. सोमदेव मुनिअे आणकोने न्यारे आ प्रकारने वडेवार जेथे तो जोदथा डे छे आणको ! तमे भारा आ पुत्रे तेमज संअधीआने वंदना करी तो मने केम वंदना करी

गृहीता ?, बालका ऊचुः-किं दीक्षिताच्छ्रधारिणः स्युः । एवमुक्त्वा गतेषु बाणकेषु
 आर्यरक्षिताचार्यस्त्वत्र समायातः । तदाऽसी सोमदेवमुनिस्तस्मिन्पमागत्य बद्धि-
 पुत्र ! बालका अपि मां हसन्ति, अलमनेन छत्रेण, इत्युक्त्वा तेन छत्रं परित्यक्तम् ।
 एवमेकैकं क्रमेण परित्यजता तेन धौतिकवस्त्रमन्तरेण सर्वं यज्ञोपवीतादिकं परित्य-
 क्तम्, बहुशस्तथा वन्दनाकरणैरुपहासादि प्रयोगैश्चापि स धौतिकं न मुञ्चति ।

मुनिदीक्षा धारण नहीं की है ? । बालकों ने उनकी इस यात को सुनकर
 शीघ्र ही निस्संकोच से उत्तर दिया कि जो मुनिदीक्षा से दीक्षित हुआ
 करते हैं क्या वे छत्रधारी होते हैं ? । बालक ऐसा कह कर चले गये इतने
 में ही वहां बाहर से आर्यरक्षित आचार्य आ पहुँचे । आचार्य को आये
 देखकर सोमदेव मुनि ने उनके पास जाकर कहा पुत्र ! देखो तो सही-
 बालक भी मेरी हँसी मजाक करते हैं-कहते हैं कि मुनि कहीं छत्रधारी
 भी होते हैं । अतः इस छत्र की मुझे अब जरूरत नहीं है । ऐसा कहकर
 सोमदेव ने छत्रका परित्याग कर दिया । इसी तरह क्रमशः और भी
 गृहीत वस्तुओंसे अपनी मुनिअवस्था में हँसी होती हुई जानकर उन्होंने
 धोतीजोड़े के सिवाय अन्य समस्त जनेऊ आदि वस्तुओं का परित्याग
 कर दिया । यद्यपि धोती के रखने से लोग उनका उपहास भी करते थे
 तौ भी वे उसे नहीं छोड़ सके ।

नहीं ? शुं मे मुनिदीक्षा धारण नथी करी ? 'बाणके'तेनी आ वात
 सांभलीने तरत न निःसंकोचथी न्वाण हीधो के, ने मुनिदीक्षा वे छे तेओ
 छत्रधारी डोय छे भरा ? बाणके आ प्रभाळे कहीने आदथां गयां ओवा समथे
 गडार गयेला आर्यरक्षित आचार्य आवी पडोन्थ्या. आचार्यने आवेला जेधने
 सोमदेव मुनिओ तेमनी पासे न्धने कछुं. पुत्र न्थ्यो तो भरा ! बाणके
 पणु भारी डांसी मजक करे छे. कडे छे के, मुनि कथांय छत्रधारी डोय छे
 भरा ! आथी आ छत्रनी डवे मने न्दरत नथी ओम कहीने सोमदेवे ते छत्रनो
 परित्याग करी हीधो. आ प्रभाळे कमे कमे तेमळे अडणु करेला वस्तुओथी
 पोतानी मुनि अवस्थाभां डांसी थती न्णणीने तेमळे धोतीनेटा सिवाय
 भील समस्त न्नोर्ध आदि वस्तुओने परित्याग करी हीधो. ओम छतां पणु
 धोतीना राभवाथी बोडे तेमनो उपहास करता डता. छतां पणु तेओ तेने
 छोडी शक्या नही.

अन्यदा कदाचिदेकः साधुरनशनतपश्चरणेन स्वर्गं गतः । तत आर्यरक्षिताचार्येण तस्य सोमदेवमुनेर्धौतिकपरित्याजनार्थं साधवोऽभिहिताः—य एनं साधुमृतकं स्कन्धेन वहति तस्य महती निर्जरा भवति । तदनन्तरं स सोमदेवमुनिर्ब्रूवति—पुत्र ! अत्र निर्जरा भवति किम् । आर्यरक्षिताचार्य आह—सत्यम्, ततः स वदति—अहं ब्रह्मि । आचार्यः प्राह—अत्रोपसर्गा ब्रह्मो जायन्ते, कतिचिद् बालकास्तस्य संलग्ना भवन्ति, तत्र तूष्णीभावा आश्रयणीयः, कोपो न करणीयः, स्वीकृतकार्यं सर्वथा संपादनीयम्, यदि सकला उपसर्गाः शक्यन्ते सोढुम्, तदा श्रेयः, अन्यथाऽस्माकम-

कोई एक दिन की बात है कि एक साधु अनशन से कालधर्म पाये । आर्यरक्षित आचार्य ने सोमदेव मुनि की धोती छुड़ाने के अभिप्राय से साधुओं से कहा कि जो इस मृतक साधु को अपने कंधे पर आरोपित कर ले जायगा उसके लिये महान् निर्जरा होगी । यह बात सुनकर सोमदेव मुनिने कहा कि पुत्र ! क्या इस कार्य के करने में निर्जरा होती है ? आचार्य ने कहा—हां होती है । सोमदेव ने कहा तो इसे कंधे पर रखकर मैं ले जाऊंगा । आचार्य ने कहा कि देखो—ऐसा करने में बहुत विघ्न आते हैं—कितनेक बालक देखते ही उसके पीछे लग जाते हैं, हँसी उड़ाते हैं सो उसमें शांतिभाव रखना पड़ता है । क्रोध नहीं करना पड़ता है । तथा जिस कार्य को करने का आरंभ किया जाता है उसे अन्ततक निभाना पड़ता है । यदि इन सब विघ्नों को सहन करने के लिये अपने को शक्तिशाली समझते हो तो ही इसमें श्रेय है अन्यथा हमसब लोगों का

એક વખતે એક સાધુ અનશનથી કાળધર્મ પામ્યા, આર્યરક્ષિત આચાર્યે સોમદેવ મુનિને ધોતી છોડાવવાના ભાવથી સાધુઓને કહ્યું કે, જે કોઈ આ મૃત્યુ પામેલા સાધુને પોતાની કાંધ ઉપર લઈને જશે તેમના માટે મહાન નિર્જરા થશે. આ વાત સાંભળીને સોમદેવ મુનિએ કહ્યું કે હું પુત્ર ! શું આ કાર્ય કરવામાં નિર્જરા થાય છે ? આચાર્યે કહ્યું કે, હા ! થાય છે. સોમદેવે કહ્યું કે, તો હું એને કાંધ ઉપર ઉપાડીને લઈ જઈશ. આચાર્યે કહ્યું કે, જુઓ ! આમ કરવામાં બહુ વિઘ્ન આવે છે. કેટલાક બાળકો દેખતાં જ તેમની પાછળ પડે છે, હસી ઉડાવે છે, તો આમાં શાન્તી ભાવ રાખવો પડે છે. ક્રોધ આવવો ન જોઈએ તથા જે કાર્ય કરવાનો આરંભ કર્યો છે તેને અન્ત સુધી નભાવવું પડે છે. જે આ બધા વિઘ્નોને સહન કરવા માટે આપ આપને શક્તિશાળી માનતા હો તો જ તેમાં શ્રેય છે. નહિતર અમારા સઘળા લોકોનું તેમાં અનિષ્ટ

शुभं भविष्यति। एवं प्रवर्तितोऽसौ मृतकं साधुं स्कन्धे समारोप्य साधुभिः सह
 वहति। मार्गं मृतकं वहतस्तस्य शीतिकं बालकैराचार्यसंकेति तैराकर्णितम्। स लज्जा-
 वशात्तं मृतकं स्कन्धादवतारयति तावदन्यैः साधुभिरुक्तम्—मा मुञ्च, मा मुञ्च,
 तदा तस्य कट्यां केनचित्साधुना स्वसार्धमानीतभोलपट्टको वद्धः, स तु लज्जया तं
 शयं वहन् निर्जने वने प्रासुकस्थण्डिले तं व्युत्सृज्याचार्यसमीपमागतो ब्रूते—हे

इसमें अनिष्ट हो जायगा। इस प्रकार समझाने पर जब सोमदेव
 संभल गये तो उन्होंने ने उस शय को उठाकर अपने कंधे पर रख लिया
 और साधुओं के साथ चले। मार्ग में मृतकसाधु को वहन किये हुए
 सोमदेव को देखकर बालकों ने उनकी आचार्यआर्यरक्षिन के संकेत
 करने पर धोती खींच ली। अपनी धोती उतारी हुई देखकर उन्हें नग्न
 होने की वजह से बड़ी लज्जा का अनुभव होने लगा। उन्होंने ने चाहा कि
 इस मृतकसाधु के शय को कंधे से नीचे उतार कर बालकों से अपनी
 धोती छुडा ली जाय। ज्यों ही वे ऐसा करने को उद्यत हुए कि इतने
 में ही साधुओं ने कहना प्रारंभ कर दिया कि इसे नीचे मत उतारो
 मत उतारो। और इसी के भीतर ही किसी साधु ने जो चोलपट्टा उनके
 पहिराने के लिये पहिले से साथ ले आया था उन्हें पहिरा दिया। लज्जा
 से उस साधु के शय को वहन करते हुए सोमदेव ने निर्जन वन में
 उस शय को प्रासुक भूमि पर उतार दिया, और आचार्य महाराज के

थर्ध ज्ये. आ प्रभाषे समन्वयवाधी न्यारे सोमदेव समलु गया त्वादे तेभल्ले
 ते शयने उठावी पोतानी कांध उपर राभी वीधुं अने साधुओनी साथे
 थाव्या. मार्गमां भरेला साधुने उधाडी जता सोमदेवने लेधने भाजकेअये
 आचार्य आर्यरक्षितना धिसाराथी तेमनी धोती ज्येथी वीधी. पोतानी धोती
 नीकणी गयेली नल्लुनि तेमने नग्न थवाना कारणे धणी लज्जाने अनुभव थवा
 लाज्ये. तेओअये धिच्छयुं के, आ भरेला साधुना शयने कांधथी नीचे उतारी
 भाजके पासेथी मारी धोती छोडावी लठे न्यां तेओ अेवुं करवाने उद्यत
 जन्या अेटलाभां ज साधुओअये कडेवाने प्रारंभ कर्ये के, तेने नीचे न उतारे।
 अेक तरक्षथी आम कडेवायुं अेज वणते अे साधुओभांधी अेक साधुअे
 चोलपट्टो तेने पहरेवावा भाटे अगाउथी ज साथे रापेल ते पहरेवावी वीधे।
 लज्जथी अे साधुना शयने वहन करतां सोमदेवे निर्जन वनमां अे शयने
 प्रासुक भूमि उपर उतारी वीधुं अने आचार्य महाराजनी समीप आवीने

पुत्र ! अद्य महानुपसर्गो जातः, तथापि सर्वं कार्यं भवत्कथनानुसारेण मया सम्पादितम् । आचार्योऽन्यं मुनिं प्रति प्राह—धौतिकमानीयास्मै दीयताम् तदा स वृद्धोऽवदत्—इदानींमर्लं धौतिकवस्त्रेण, यद् द्रष्टव्यं तद् दृष्टमेव, अतः परमयं चोल्पट्टक एव मम देहे तिष्ठतु । अद्यप्रभृति नवीनवसनं नैव परिधास्यामि, अन्यसाधुव्यापृतमेव वस्त्रं ग्रहीष्याम, एकेनैव प्रावरणेन, एके नैव चोल्पट्टकेन संयमयात्रा निर्वाहं करिष्यामि । एवमेवासौ विहरन्नवीनवस्त्रानाकाङ्क्षया द्वितीयप्रावरणचोल्पट्टानाकाङ्क्षया च जीर्णशीर्णवस्त्रहेतुकदैन्याद्यकरणेन चाचैलपरीपहं सहते स्म । एकदा-

समीप आकर कहने लगे—हे पुत्र ! आज बड़ा भारी उपसर्ग उपस्थित तो हुआ था, परन्तु आपके कथनानुसार मैंने सब कार्य यथावस्थित संपादित कर दिया है । आचार्य ने उसी समय एक मुनि से कहा कि—घोती लाकर इन्हें दे दो । आचार्य महाराज की बात सुनकर सोमदेव ने कहा कि अब घोती से बस करो । इसकी अब आवश्यकता नहीं रही है । जो कुछ देखना था वह देख लिया है, इस लिये यह चोल्पट्टा ही अब मेरे शरीर पर रहे यही भावना है, तथा मैं आज से नवीन वस्त्र नहीं पहिँरूँगा, तथा अन्य साधुओं द्वारा उपभुक्त वस्त्र ही ग्रहण करूँगा, एक ही प्रावरण से एक ही चोल्पट्टक से संयम यात्रा का निर्वाह करूँगा । इस प्रकार सोमदेव मुनि विहार करते हुए नवीन वस्त्र की अनाकांक्षा से तथा द्वितीय प्रावरण (चादर) एवं द्वितीय चोल्पट्टक की अनिच्छा से जीर्णशीर्णवस्त्र हेतुक दीनता के नहीं करने से अचैलपरीपह को सहते

कहेवा लाग्या डे पुत्र ! आज धरुा भारे उपसर्ग उपस्थित थये। डते, परंतु तभारा कथन अनुसार मे' सधशुं कार्यं यथावस्थित संपूरुं करेल छे. आचार्ये अेज वभते अेक मुनिने कछुं के, घोती लावने आभने आपी हो. आचार्य महाराजनी वात सांलणीने सोमदेवे कछुं के, डवे घोतीथी बस करे. भारे डवे तेनी आवशकयता नथी. जे कांठ जेपुं डतुं ते जेठ वीधुं छे. जेथी आ चोल्पट्टेज भारा शरीर उपर रहे अेज लावना छे. तथा हुं आजथी नवीन वस्त्र पहरेवानो नथी. अने भील साधुओ द्वारा वपरयेला वस्त्रोने हुं अंगिकार करीश. अेक ज प्रावरणथी, अेकज चोल्पट्टाथी संयम यात्रानो निर्वाह करीश. आ प्रकारे सोमदेव मुनि विहार करता करता नवा वस्त्रोनी आकांक्षा वगर तथा भील प्रावरणु यादर अने भील चोल्पट्टानी अनिच्छाथी अुषुं शीषुं वस्त्रथी दिनता न अतावता अचैलपरीपह सहन करता रहा. अेक

ऽतिशयितं हिमं समापतितम् तथाप्येकमात्रं प्रावरणमतौ दधाति न तु द्वितीयवत्
 गृह्णाति, तस्मिन्नेव जीर्णशीर्णे प्रावरणे प्रोत्साहसम्पन्नेन मनसाऽचेलपरीपहं
 सहमानः समाधिभावेन कालधर्मं प्राप्य देवलोकं गतः। एवं तेन यथा-अचेलपरीपहः
 सोढस्तथैवान्यैरपि साधुभिः सर्वदाऽचेलपरीपहः सोढव्य एव ॥१३॥

अचेलकस्य शीतादिभिः स्पृष्टस्यारतिः स्यात्, अतस्तत्परीपहत्रयं प्राह—
 मूलम्—गामाणुगामं रीयंतं, अर्णगारं अकिञ्चणं ।

अरंई अणुपंपवेसेज्जा, तं तितिकंखे परीसहं ॥१४॥

छाया—ग्रामानुग्रामं रीयमाणम्, अनगारम् अकिञ्चनम् ।

अरतिः अनुप्रविशेत्, तं वितिक्षेत् परीपहम् ॥ १४ ॥

टीका—‘गामाणुगामं’ इत्यादि ।

ग्रामानुग्रामम्—ग्रामम् अनु, ग्रामात् पश्चात्, ग्रामानन्तरवर्ती यो ग्रामः स

रहे। एक दिन की बात है कि शीतकाल में अत्यन्त हिम गिरा तो भी
 इन्होंने द्वितीय प्रावरण धारण करने की स्वप्न में भी इच्छा नहीं की
 किन्तु एक ही प्रावरण से उस हिम का सामना किया। जीर्ण शीर्ण
 उस प्रावरण में ही प्रोत्साहसंपन्न चित्त से अचेलपरीपह को सहन
 करते हुए उन सोमदेव महात्माने समाधिभाव से कालधर्म पाकर देव-
 लोक को प्राप्त किया।

इस कथा के कहने का केवल एक यही प्रयोजन है कि देखो
 सोमदेव मुनिराज ने पहिले अचेलपरीपह नहीं सहा, पश्चात् प्रतिबोधित
 होने पर उस परीपहको अधिक प्रोत्साह के साथ सहन किया। इस तरह
 अन्य साधुओं को भी अचेलपरीपह सहन करना चाहिये ॥ १३ ॥

द्विपसनी वात छे के, ङंडीना समये अत्यंत हिम पड्युं तो पणु तेओओओओओ
 प्रावरणु करवानी स्वप्नमां पणु छंछा न करी. परंतु ओक न प्रावरणुमां न उत्साह
 संपन्न चित्तथी अचेल परीपहने सहन करीने ते सोमदेव महात्माओ समाधि
 भावथी कालधर्मं पाभी देवलोक ने प्राप्त कर्यो।

आ कथा कडेवानुं देवण ओक न प्रयोजन छे के, लुओओ, सोमदेव मुनिओ
 पहिलां अचेलपरीपह न सहो पाछणथी प्रतिबोध पाभतां तेमणु ओ परीपहने
 अधिक उत्साहथी सहन कर्यो. अन्य साधुओओ पणु ओमनी भाइक
 अचेलपरीपह सहन करवो जेधंओ (१३)

ग्रामानुग्रामस्तम् । नगराद्युपलक्षणमेतत्, नगरादिकं चेत्यर्थः । रीयमाणं=विहर-
माणम्, अकिञ्चनं=निष्परिग्रहम्, अनगारं=मुनिम् अरतिः=संयमविपयिकाऽधृतिः
मोहनीयकर्मोदयजनिता संयमारुचिरूपाऽऽत्मपरिणतिः अनुप्रविशेत्=प्रविष्टा भवेत्-
मुनेर्मनसि प्राप्ता भवेत्, तम्=अरतिरूपं परीपहं तितिक्षेत=अरतिरूपस्य मनः
परिणामस्य कटुकफलं चिकणकर्मबन्धनं चतुर्गतिकसंसारपरिभ्रमणं च विज्ञाय
मनसस्तन्निराकरणेन सहेत ॥

अचेलक के शीत आदि द्वारा सताये जाने पर अरति भी हो सकती
है इसलिये सातवें अरतिपरीपह को सहने के लिये सूत्रकार कहते हैं ।

‘ गामाणुगामं ’ इत्यादि

अन्वयार्थ—(गामाणुगामं रीयतं-ग्रामानुग्रामं रीयमाणम्) एक गाँव से
दूसरे गाँव तथा उपलक्षण से एक नगर से दूसरे नगर विहार करते हुए
तथा (अकिञ्चनं-अकिञ्चनम्) अकिञ्चन-परिग्रहरहित ऐसे (अणगारं-
अनगारम्) मुनि को (अरई अणुप्पवेसेज्जा-अरतिः अनुप्रविशेत्) यदि
अरति-संयम में अरुचि अर्थात् मोहनीय कर्म के उदय से होनेवाली जो
संयमअरुचिरूप आत्मपरिणति, तथा संयम में अधृति जाग्रत हो जावे
तो मुनि का कर्तव्य है कि वह (तं परीपहं तितिक्षे-तं परीपहं तिति-
क्षेत) उस परीपह को शांति के साथ सहन करे । “ अरतिरूप इस मान-
सिक परिणति का फल चिकणकर्मबन्धरूप है और उससे जीव का

अचेलकमुनीने शीतआदि सतावे त्तारे अरति पणु थवाने संभव छे
तेथी उभा अरतिपरीपहने सहन करवा भाटे सूत्रकार कहे छे.

‘ गामाणुगामं ’ इत्यादि.

अन्वयार्थ—गामाणुगामं रीयतं-ग्रामानुग्रामं रीयमाणम् अेक गामथी भीन गाम
तथा उपलक्षणथी अेक नगरथी भीननगर विहार करता अकिञ्चनं-अकिञ्चनम् तथा
अकिञ्चन-परिग्रह रहित अेवा अणगारं-अनगारम् मुनिने कहाय अरई
अणुप्पवेसेज्जा-अरति अनुप्रविशेत् अरति-संयमभां अइथि अर्थात् मोहनीय कर्मना
उदयथी थनारी जे संयम अइथि इय आत्मपरिणति-तथा संयमभां अधृति, नगृति
थई नय तो मुनिनुं कर्तव्य छे के, ते मुनी तं परिसहं तितिक्षे-तं परीपहं तितिक्षेत
अे परिपहने शान्तीनी साथे सहन करे “ अरति इय आ मानसिक परिणतिनुं
इण थिकणु कर्मबन्ध इय छे. अने तेनाथी एवणुं चतुर्गतिइये संसारभां

‘ગામાનુગામં રીયંતં’ इत्यनेन रागादिनिवृत्तिः सूचिता ।

‘અર્કિચળં’ इत्यनेन ममत्वरहितत्वं प्रवेदितम् ।

‘અરઈઅણુપ્પવેસેજ્જા’ इत्यनेन शब्दादिविषयाणां प्रबलता प्रदर्शिता ।

‘તિતિક્ખે’ इत्यनेनानागरस्य परीषहसहिष्णुता सूचिता ॥ १४ ॥

ઉક્તમર્થ દ્રઢ્યન્નાહ—

મૂલમ્—અરંઙં પિટ્ટઔ કિંચા, વિરઔ આયરંક્ષિણ ।

ધર્મમારામે નિરારંભે, ઉવંસંતે, મુંળી ઘેરે ॥ ૧૫ ॥

છાયા—અરતિ પૃષ્ઠતઃ કૃત્વા, વિરતઃ આત્મરક્ષિતઃ ।

ધર્મારામે નિરારમ્ભઃ, ઉપશાન્તઃ મુનિશ્વરેત્ ॥ ૧૫ ॥

ટીકા—‘અરંઙં’ इत्यादि ।

વિરતઃ=હિંસાદિમ્યો નિવૃત્તઃ, આત્મરક્ષિતઃ—આત્મા રક્ષિતઃ નરકનિગોદાદિ-

ચતુર્ગતિક સંસાર મેં પરિભ્રમણ હોતા હૈ” यह समझकर इस संयम विषयक अरति को साधु मनसे भी हटाते रहे ।

સૂત્રકાર ને “ગામાનુગામં” इस पद से रागादिक की निवृत्ति सूचित की है । “अर्किचणं” इस पद से मुनि को ममत्वरहित प्रदर्शित किया है ॥ “अरई अणुप्पवेसेज्जा” इस पद से शब्दादिक विषयों की प्रबलता प्रकट की है । “तितिक्खे” इससे ‘अणगर को परीषह सहिष्णु होना चाहिये’ यह कहा है ॥ १४ ॥

इसी अर्थ को दृढ करते हुए सूत्रकार कहते हैं—‘अरंङ्गं पिट्टां’ इत्यादि ।

अन्वयार्थ—(विराओ-विरतः) हिंसादिक पापोंसे विरक्त तथा (आयर-क्षिण—आत्मरक्षितः) नरकनिगोदादिकके दुःखोंके जनकअशुभ ध्यानसे

परिभ्रमण થાય છે. એવું સમજીને આ સંયમ વિષયક અરતિને સાધુએ મનથી પણ હટાવવી જોઈ એ.

સૂત્રકારે પ્રામાનુગામં આ પદથી રાગાદિકની નિવૃત્તિ સૂચિત કરેલ છે. અર્કિચળં—આ પદથી મુનિને મમત્વ રહિત પ્રદર્શિત કરેલ છે. અરઈઅણુપ્પવેસેજ્જા આ પદથી શબ્દાદિક વિષયોની પ્રબળતા પ્રકટ કરેલ છે. “તિતિક્ખે” આથી અણુગારે પરીષહ સહિષ્ણુ બનવું જોઈ એ તેમ કહ્યું છે. ॥૧૪॥

આ અર્થને દ્રઢ કરતા સૂત્રકાર કહે છે. અરંઙં પિટ્ટઔ ઇત્યાદિ.

અન્વયાર્થ—વિરઔ-વિરતઃ હિંસાદિક પાપોથી વિરક્ત તથા આયરક્ષિણ—આત્મરક્ષિતઃ નરક નિગોદાદિકના દુઃખના જનક એવા અશુભ ધ્યાનથી યોતાના આત્માની રક્ષા

दुःखजनकादशुभघ्यानाद् येन स तथा, यद्वा-आयरक्षित इतिच्छाया, आयः-
रत्नत्रयस्य लाभः, रक्षितो येन स तथेत्यर्थः । निरारम्भः=सावद्यक्रियावर्जितः, तथा
उपशान्तः=क्रोधादिकपायोपशमाद् मनोवाक्कायविकारवर्जितः मुनिः, अरतिं पृष्ठतः
कृत्वा=इयं धर्मविराधिकेति मत्वा परित्यज्य धर्मारामे चरेत्, इत्यग्रेण सम्बन्धः ।

अरतिर्हि धूलिर्वात्मानं मलिनयति, जलदपटलावलीसंकुला गाढतिमिरपरि-
व्याप्ता रजनीव विवेकं संहरति, अविवेकं वर्धयति, वज्रमिव ज्ञानादिगुणानुपघात-
यति, अविवेकिजनमनःकानननिवासिनी कृष्णसर्पिणीव छिद्रान्वेषणपरा मुनीनां

अपनी आत्मा की रक्षा करने वाला अथवा “आयरक्षितः” रत्नत्रय-
लाभरूप आय-आवक की रक्षा करने वाला-संभाल रखनेवाला, तथा
(निरारंभे-निरारंभः) सावद्य क्रिया के सेवन से वर्जित, तथा (उवसंते
-उपशान्तः) क्रोधादिक कपाय के उपशम से मन वचन एवं काय
संबंधी विकारों से रहित (मुणी-मुनिः) साधु (अरइं पिठुओ किच्चा-
अरतिं पृष्ठतः कृत्वा) अरति का परित्याग कर (धम्मारामे-धर्मारामे)
धर्मरूपी उद्यान में (चरे-चरेत्) सदा लवलीन रहे-उस में सर्वदा
विचरता रहे ।

यह अरतिभाव धूली की तरह आत्मा को मलिन करता है ।
घादलों के समूह से संकुल एवं गाढ अन्धकार से व्याप्त रात्री के
समान यह विवेकरूपी सूर्य को आच्छादित करदेता है, एवं अविवेक-
रूपी अन्धकार की वृद्धि करता है । वज्र की तरह ज्ञानादिक गुणरूप
पर्वत का भेदन करता है । यह अरतिभाव अविवेकी जन के मनरूप

करवावाणा अथवा “आयरक्षितः” रत्नत्रय लाभरूप आय-आवकनी रक्षा करवा-
वाणा-संभालाण राभवावाणा निरारंभे-निरारंभः तथा सावद्य क्रियाना सेवनधी
वर्जित उवसंते-उपशान्तः क्रोधादिक कपायना उपशमधी मन वचन अने काय
संबंधी विकारधी रहित मुणी-मुनिः साधु अरइं पिठुओ किच्चा-अरतिं पृष्ठतः
कृत्वा अरतिना त्याग करी धम्मारामे-धर्मारामेधर्मरूपी उद्यानमां चरे-चरेत्
अेमां सदा विचरता रहे.

आ अरतिभाव धुणनी भाइठ आत्माने मलीन करे छे. वादणोना समूहधी
छवायेल अने गाढ अंधकारधी व्याप्त रात्रिना समान अे विवेकरूपी सूर्यने
आच्छादित करे छे, अने अविवेकरूपी अंधकारनी वृद्धि करे छे. वज्रनी भाइठ
ज्ञानादिक गुणरूप पर्वतनुं भेदन करे छे. आ अरतिभाव अविवेकी भाणुसना

સંયમપ્રાણાનપહરતિ, કુઠાર ઇવ શ્રુતચારિત્રધર્મતરૂન્ સમુચ્છેદ્યતિ, કુપધ્યારાર જ્ઞ
કર્મવ્યાધિ વર્ધયતિ । एवं विचिन्त्य धर्मारामे=धर्म एव निरन्तरानन्दहेतुतया
પ્રતિપાલ્યતયા ચારામઃ ધર્મારામઃ, યદ્વા-ધર્મ આરામ ઇવ કર્મસંતાપોપત્તાનાં
જન્નુનાં નિર્ઘૃતિહેતુતયા સ્વામિલપિતફલપ્રદાનતથેતિ ધર્મારામઃ, યત્ર સમ્યક્ત્વં ભૂમિઃ,

વન મેં વિહાર કરને ચાલા હૈ, કૃષ્ણસર્પ કી તરહ છિદ્રાન્વેષણ મેં તત્પર
રહતા હૈ, एवं मुनियों के संयमरूपी प्राणों का हरण करने वाला है ।
કુઠાર કી તરહ શ્રુતચારિત્રરૂપી વૃક્ષ કો યહ મૂલસે ઉચ્છેદન કરતા હૈ ।
કુપધ્ય આહાર કી તરહ કર્મવન્ધરૂપી વ્યાધિકો યદાને ચાલા હૈ । ઇસ
પ્રકાર વિચાર કરકે સાધુ કો ઇસ ધર્મરૂપી ઉદ્યાન મેં વિચરણ
કરતે રહના ચાહિયે । ઉદ્યાન જિસ પ્રકાર અપને મેં વિચરણ કરને
ચાલોં કો આનંદ કા હેતુ હોતા હૈ, ડસી પ્રકાર યહ ધર્મ ઢી અપને
આરાધકોં કો આનંદ કા કારણ હોતા હૈ, તથા ઉદ્યાન જિસ પ્રકાર
પ્રતિપાલ્ય-રક્ષણ કરને કે યોગ્ય હોતા હૈ ડસી પ્રકાર જીવન કો સુન્દર
વનાને ચાલા હોને સે ધર્મ ઢી પ્રતિપાલ્ય-કરને યોગ્ય હોતા હૈ । અથવા
ધૂપ સે સંતસ પ્રાણિયોં કે લિયે ઉદ્યાન જિસ પ્રકાર શીતલતા પ્રદાન
કરતા હૈ ડસી પ્રકાર કર્મરૂપી આતાપ કે સંતાપ સે સંતસ પ્રાણિયોં કો
શાંતિ કા હેતુ હોને સે एवं अभिलपित फल का देनेवाला होने से धर्म
ઢી ઇક ઉત્તમ ઉદ્યાન કે સમાન યહાં પ્રકટ કિયા ગયા હૈ । ઇસ ઉદ્યાન

મનરૂપી વનમાં વિહાર કરનાર છે. કાળા સાપની માફક ડંશ દેવામાં તત્પર
રહે છે, અને મુનિયોના સંયમરૂપી પ્રાણોનું હરણ કરનાર છે. કુહાડાડરૂપે શ્રુત
ચારિત્રરૂપી વૃક્ષનું એ મૂળસાથે ઉચ્છેદન કરે છે, કુપધ્ય આહારની માફક કર્મ
બંધરૂપી વ્યાધિને વધારનાર છે. આ પ્રમાણે વિચાર કરીને સાધુએ ધર્મરૂપી
ઉદ્યાનમાં વિચરણ કરતા રહેવું જોઈએ.

ઉદ્યાન જેમ તેની અંદર ફરનારાઓને આનંદ આપવાવાળું છે તેજ પ્રમાણે
ધર્મ પણ પોતાના આધારરૂપ સાધુ માટે આનંદનું કારણ હોય છે. તથા ઉદ્યાન
જેમ પ્રતિપાલ્ય-રક્ષણ કરવાને યોગ્ય છે તેજ પ્રમાણે જીવનને સુંદર બનાવવાળા
ધર્મને પણ પ્રતિપાલ્ય-પાલન કરવાને યોગ્ય છે. અથવા ધૂપથી સંતપ્ત બનેલા
પ્રાણીયોને ઉદ્યાન જેમ શીતળતા આપે છે તેજ પ્રમાણે કર્મરૂપી આ તાપથી
સંતપ્ત થયેલા પ્રાણીઓને માટે શાંતિનો હેતુ હોવાથી અમિલપિત ફળને દેનાર
ધર્મને એક ઉદ્યાન રૂપથી અહિં બતાવવામાં આવેલ છે. આ ઉદ્યાનમાં સમ્યક્ત્વ

गुप्तिरालवालः, समितिः पाली, क्षान्त्यादयो धर्मा एव वृक्षाः, विनयस्तेपां मूलम्, भावना सलिलम्, श्रुतमेव स्कन्धः धर्मशुक्लध्यानरूपाः शाखाः, ध्यानभेदाः प्रशाखाः, योगसंग्रहाः पत्राणि, ज्ञानादिगुणाः पुष्पाणि, स्वर्गापवर्गप्राप्तिः फलम्, तद्रतं सुखं रसः, तस्मिन् धर्मरामे चरेत्=विचरेत्, अरतिं निराकृत्य स्वाध्यायध्यानेषु परायणो भवेदित्यर्थः ॥

‘अरइं पिट्टओ किच्च’ इत्यनेन मुनेरात्मवलसंपन्नत्वं सूचितम् ।

‘विरए’ इत्यनेन मुनेवैराग्यदशा प्रदर्शिता ।

में सम्यक्त्व तो भूमि है, गुप्तियां क्यारियां हैं, समितियां ही पालियां हैं, क्षान्त्यादिक धर्म वृक्ष है, एवं उन वृक्षों का मूल विनय है। भावना-रूपी जल से वे सदा हरे-भरे रहते हैं। श्रुतज्ञान उनका विस्तृत स्कंध है। धर्मध्यान एवं शुक्लध्यान उनकी शाखाएँ हैं, ध्यान के भेद उनकी प्रशाखाएँ हैं। बत्तीस योगसंग्रह उनके पत्र, ज्ञानादिकगुण उनके पुष्प, स्वर्ग एवं मोक्ष की प्राप्ति उनके फल, स्वर्गमोक्षसंबंधी सुख ही उनका रस है। इतने मनोहर इस धर्मरूपी उद्यान में साधु का कर्तव्य है कि वह अरति को दूर कर विचरण करता रहे। स्वाध्याय एवं शुभध्यान में सदा आत्मपरिणति को लगाता रहे।

‘अरइं पिट्टओ किच्चा’ इस पद से यह सूचित किया गया है कि मुनि को आत्मवल से युक्त होना चाहिये। “विरए” इस पद से यह ज्ञात होता है, कि मुनि में इस प्रकार के वल की जागृति विना वैराग्य दशा के नहीं हो सकती है, अतः वैराग्यदशा दृढ बनानी चाहिये।

तो भूमि छे, गुप्तियो क्यारा छे, समितियो पाणा छे, क्षान्त्यादिक धर्मवृक्ष छे, अने ओ वृक्षोनुं मूल विनय छे, भावनाइप लणथी ते सदाय ह्यर्थां रडे छे, श्रुतज्ञान ओने विशाल स्कंध छे, धर्मध्यान तेमज्ज शुक्लध्यान ओनी शाखाओ छे, ध्यानने लेद ओनी प्रशाखाओ छे, उर योग संग्रह तेना पान, ज्ञानादिक शुष्प तेनां पुष्प, स्वर्ग अने मोक्षनी प्राप्ति ओनां ङ्ग स्वर्ग मोक्ष संबन्धि सुष्प ते ओने रस छे, आवा मनोहर धर्मरूपी आगमां साधुनुं ओ कर्तव्य छे के तेओ अरतिने दूर करी विचरण करता रडे, स्वाध्याय अने शुभ ध्यानमां पोताना आत्मापरिणती ने लगावता रडे.

अरइं पिट्टओ किच्च—आ पदथी ओ सूचित करवामां आवे छे के, मुनियो आत्मभणथी युक्त रडेनुं जेछेओ “विरए” आ पदथी मुनिमां अणनी जागृती विना वैराग्यदशा आवी शकती नथी, आथी वैराग्यदशा दृढ अनाववी जेछेओ.

- ‘आयरक्खिए’ इत्यनेन मुनेरास्त्रवनिरोधः प्रदर्शितः ।
 ‘निरारंभे’ इत्यनेन मुनेरतिपरीपहविजययोग्यता सूचिता ।
 ‘उवसंते’ इत्यनेन कपायनिग्रहित्वं सूचितम् ।
 ‘मुणी’ इत्यनेन प्रवचनरहस्यमननशीलत्वं प्रतियोधितम् ।
 ‘धम्मरामे’ इत्यनेन संयमस्य रमणस्थानत्वं सूचितम् ।
 ‘चरे’ इत्यनेन मुनेः संयमविषये प्रमादवर्जितत्वं प्रवेदितम् ।

“आयरक्खिए” इससे यह सूचित किया है कि मुनि को आस्त्र का निरोध करते रहना चाहिये। “निरारंभे” पद से यह ज्ञात होता है कि अरतिपरीपह को जीतने की योग्यता विना मुनिअवस्था आती नहीं है, क्यों कि उसी अवस्था में निरारंभता रहती है। “उवसंते” पद से यह सूचित होता है कि विना कपाय के निग्रह हुए आत्मा में मुनिव्रत पालने की योग्यता नहीं आती है, अतः कपाय का निग्रह अवश्य करना चाहिये। ‘मुणी’ पद से कपाय का निग्रह करने वाला तभी हो सकता है कि जब वह प्रवचन के रहस्य का मनन करने वाला होता है। विना ऐसा किये आत्मा कपायों का निग्रह नहीं कर सकता है। “धम्मरामे” इससे यह सूचित किया गया है कि कपायों का निग्रह करने का वही आत्मा परिणामशाली होगा—जो संयम में रमण करने की भावना रखता होगा, इसके विना नहीं। इसी लिये संयम को रमण का स्थान बतलाया गया है। “चरे” इस क्रियापद से मुनि को संयम के विषय में प्रमादरहित होना चाहिये यह बतलाया गया है।

आयरक्खिए आ पदधी ओम सूचित करवाभां आब्धुं छे के, आस्त्रवनी निरोध करीने रडेडुं लेध ओ निरारंभे आ पदधी अरति परीपडने छलवानी योग्यता प्रःम कर्था सिवाय मुनिअवस्था आवती नथी. कारणु के, आ अवस्थाभां निरारंभता रडे छे. उवसंते आ पदधी सूचित थाय छे के, कपायने निग्रह कर्था सिवाय आत्माभां मुनिव्रत पाणवानी योग्यता आवती नथी लेधी कपायने निग्रह अवश्य करवे. लेध ओ. “मुणी” पदधी कपायने निग्रह करवावाणा ल्यारे न् अनी शके छे के, ल्यारे प्रवचननुं रहस्य मनन करनार अनी रडे. ओम कर्था सिवाय आत्मा कपायने निग्रह करी शकते नथी. धम्मरामे आ पदधी सूचित करवाभां आवेल छे के—कपायने निग्रह तेज आत्मा करवाने परिष्काम शाणी अने छे ले संयमभां रमण करवानी भावना राअता डोय, तेना वजर नही. आधी संयमने रमणनुं स्थान अतावेळ छे. चरे आ पदधी मुनिओ संयमना विषयभां प्रमाद रडित अनधुं लेध ओ ओम अतावेळ छे.

अत्र दृष्टान्तः प्रदर्श्यते—

अचलपुरे जितशत्रुनाम्नो राज्ञः पुत्रोऽपराजितनामा रोहाचार्यस्य समीपे दीक्षितोऽभवत् । एकदा रोहाचार्यः स्वशिष्यपरिवारैः सह ग्रामानुग्रामं विहरन् तगरानगरीं समवस्रतः । तदानीं रोहाचार्यस्य स्वाध्यायशिष्य आर्यरोहनामाऽऽचार्य उज्जयिन्यामासीत्, तस्य ज्येष्ठः शिष्यः श्रुतकीर्तिनामको मुनिः शिष्यपरिवारैः सह ग्रामानुग्रामं विहरमाणस्तगरानगरीं समागतः । रोहाचार्यः शिष्टाचारानन्तरं श्रुतकीर्तिमुनिं पृच्छति—उज्जयिन्यां साधवो निरुपसर्गं तिष्ठन्ति किम्, ? श्रुतकीर्तिमुनिः प्राह—भदन्त ! सर्वे तत्र कुशलम्, किन्तु राजपुत्रः पुरोहितपुत्रश्च

दृष्टान्त—अचलपुर में जितशत्रु राजा का अपराजित नामका पुत्र था । वह धर्मश्रवण कर रोहाचार्य के समीप दीक्षित हो गया । एक समय की बात है कि रोहाचार्य अपनी शिष्यमंडली सहित ग्रामानुग्राम विहार करते हुए तगरानगरी पधारे । उस समय इन रोहाचार्य के स्वाध्याय शिष्य आर्यरोह नामके आचार्य उज्जयिनी नगरी में विराजमान थे । उन आर्यरोह आचार्य के मुख्य शिष्य श्रुतकीर्ति भी अपने शिष्यपरिवार के साथ ग्रामानुग्राम विचरते हुए इसी तगरा नगरी में रोहाचार्य के पास पधारे । रोहाचार्य ने शिष्टाचार के अनन्तर श्रुतकीर्ति मुनि से पूछा—कहो उज्जयिनी नगरी में साधु मंडल तो सुखशाता में विराजमान है न ? सुनकर श्रुतकीर्ति मुनि ने उत्तर में कहा—भदन्त ! सब सुखशाता में विराजमान तो हैं, परन्तु वहां के राजा का एवं पुरोहित का पुत्र

दृष्टान्त—अचलपुरमें जितशत्रु राजने अपराजित नामको पुत्र हुतो. तेछे धर्मश्रुं श्रवण करीने रोहाचार्य पासे दीक्षा लीधी. ओक समयनी बात छे, डे रोहाचार्य पोतानी शिष्य मंडली साथे विहार करता करता तगरानगरीमां पधायो. आ समये रोहाचार्यना स्वाध्याय शिष्य आर्यरोह नामना आचार्य उज्जयिनी नगरीमां विराजमान हुता. आ आर्यरोह आचार्यना मुख्य शिष्य श्रुतकीर्ति पछु पोताना शिष्य परिवार सहित ओक गामथी भीजे गाम विचरता आ तगरा नगरीमां रोहाचार्यनी पासे पधायो. रोहाचार्ये शिष्टाचार पछी श्रुतकीर्ति मुनिने पूछयुं, कडो ! उज्जयिनी नगरीमां साधु मंडल तो सुख शातामां विराजमान छे ने ? आ सांलणी श्रुतकीर्ति मुनिजे जवाबमां कछुं, भदन्त ! दरेक सुख शातामां विराजमानतो छे, परंतु त्यांना राजने आने पुरोहितने पुत्र

मुनीमुद्वेजयतः । श्रुतकीर्तरेतद्वचनं श्रुत्वा रोहाचार्योऽपराजितमुनिं कथयति-तत्र
सांसारिकभातृपुत्रोऽसौ राजकुमारः साधुजनमुद्वेजयति, तं प्रतिबोधयितुमुज्जयिन्यां
त्वया गन्तव्यम् । आचार्यनिदेशेन शिष्यपरिवारेण सहापराजितमुनिरुज्जयिन्यां
गतः । तत्रार्यरोहाचार्यं प्रणम्यापराजितमुनिर्मितावेलायां राजकुलं प्रविष्टः ।
तत्रापराजितमुनिं राजपुत्र-पुरोहितपुत्रौ सोपहासं वन्दनं कुरुतः । मुनिवरे गते सति
तस्मिन्नेव समये मुनेरुपहासाज्जठरे वेदना समुत्पन्ना, उच्चैः स्वरेण ती रोदनं

मुनियों को दुःखित किया करते हैं । श्रुतीकर्ति के वचनों को सुनकर
रोहाचार्य ने अपने शिष्य अपराजित मुनि से कहा कि उज्जयिनी
नगरी का जो कुमार है वह तुम्हारे सांसारिक भाई का पुत्र है । इस
समय वह साधुओं को उज्जयिनीनगरी में कष्ट पहुँचा रहा है अतः
तुम उसको समझाने के लिये वहाँ जाओ । आचार्य के आदेश से
अपराजित मुनि तगरानगरी से शिष्यमंडली सहित विहार कर उज्ज-
यिनी नगरी में आर्यरोह आचार्य के पास पहुँचे, और उनको वंदन
नमस्कार किये । वाद भिक्षा के समय आचार्य के निदेश से वे अपरा-
जित मुनि राजमहल में प्रविष्ट हुए । वहाँ उन अपराजित मुनि के
सांसारिक भाई का पुत्र राजकुमार एवं पुरोहित पुत्र ने उन मुनि को
उपहासपूर्वक वंदना कि । अपराजित मुनि के वहाँ से चले जाने पर
मुनि के उपहास से उन दोनों के पेट में बड़े जोर से पीड़ा होने लगी ।

मुनियेने दुःखित कर्था करे छे. श्रुतकीर्तिनुं वचन सांख्यीने रोहाचार्ये चोताना
शिष्य अपराजित मुनिने कहुं के, उज्जयिनी नगरीना जे राजकुमार छे ते तभार
सांसारिक भाईना पुत्र छे. आ समये तेज्जे उज्जयिनी नगरीमां साधुज्जेने कष्ट
पहोन्वाडी रह्या छे जेथी तभे तेने सभजववा भाटे त्यां जव. आचार्यना
आदेशथी अपराजित मुनि तगरानगरीमांथी शिष्य मंडली साथे विहार करी
उज्जयिनी नगरीमां आर्यरोहाचार्यनी पासे आवी पहोन्वा अने तेभने वंदन
नमस्कार कर्था भाद भिक्षाना समये आचार्यना आदेशथी अपराजित मुनिये
राजमहलमां प्रवेश कर्था. त्यां ते अपराजित मुनिना सांसारिक भाईना पुत्र
राजकुमार तेभज पुरोहितपुत्रे ते मुनिने उपहासपूर्वक वंदना करी. अपरा-
जित मुनिना त्यांथी जवा भाद मुनिने उपहास करवाथी आ भन्नेना पेटमां
जेकहम पीडा उत्पन्न थई. भन्ने जषा भूज जेर जेरथी शोडा पाडवा अ्या,

कृतवन्तौ । राजा पुरोहितश्च पुत्रयोर्दुरवस्थां परिवारवचनाद् विज्ञाय आर्यरोहा-
चार्यस्य समीपं गतवन्तौ । तत्रार्यरोहाचार्यं प्रणम्य तौ सरोदनं प्रार्थितवन्तौ,
भदन्त ! प्रसीदतु भवान्, अस्मद्बालकौ रक्षणीयौ, इत्यादि । आर्यरोहाचार्य आह-
राजन् ! अस्मिन् विषये न किञ्चिज्जानामि, इमं प्राघुणकं महामुनिं प्रसादय ।
ततस्तद्वचनाद्राजा पुरोहितेन सहापराजितमुनेः पार्श्वं गत्वा तं प्रणम्य ब्रवीति-
हे भदन्त ! स्वभ्रातृपुत्रं जीवितं कुरु, मुनिः प्राह—साधुपीडकस्य पुत्रस्यापि
शिक्षां दातुं न शक्नोषि?, नीतिमार्गानुसारिणा राज्ञाऽन्यस्यापि कस्यचिदपराधे
कृते तु पुत्रो निग्रहणीयः किं पुनर्यः साधुवाधकः ? नृपेणोक्तम्—भदन्त ! ममापराधं-

दोनों जने खूब जोर २ से चिल्लाने लगे । राजा एवं पुरोहित दोनों ही
परिवार जनों के कहने से अपने २ पुत्रों की दुरवस्था जानकर साथ २
आर्यरोहाचार्य के पास आये । आचार्य महाराज को वंदन कर वे दोनों
के दोनों उनके समक्ष रोते २ प्रार्थना करने लगे, कि भदन्त ! आप हमारे
ऊपर प्रसन्न होइये—कृपा कीजिये—हमारे बालकों की रक्षा कीजिये इत्यादि।
आर्यरोहाचार्य ने कहा कि राजन् ! मैं इस विषय में कुछ नहीं जानता हूँ ।
यह जो महेश्वररूप में महामुनि आये हुए हैं उनके पास जाओ और उनसे
कहो । राजा आर्यरोह के वचन से पुरोहित को साथ लेकर अपराजित
मुनि के पास गया और उनको वंदन कर कहने लगा कि—हे भदन्त !
अपने भाई के पुत्र को जीवित करो । मुनि ने कहा कि—हे राजन् राजनीति
इस प्रकार की है कि जब अपना पुत्र साधारण जनता का भी अपराध करे
तो उसके लिये शिक्षा है तो फिर जो मुनिजनों को पीड़ा पहुंचावे

राज्य अने पुरोहित अने पोताना परिवार जनाना कडेवाथी पोताना पुत्रोनी
दुःखद अवस्था लक्ष्मीने आर्यरोहाचार्यनी पास आव्या. आचार्य महाराजने
वंदना करीने अने तेमनी समक्ष देतां देतां प्रार्थना करवा लाग्या के, हे
भदन्त ! अमारा उपर प्रसन्न थाओ, कृपा करे, अमारां भाण्डोनी रक्षा करे,
विगेरे. आर्यरोहाचार्ये कहुं, हे राजन् ! आ विषयमां दुं कांर्ध लक्ष्मीते नथी. भडेमा-
नरूपमां महामुनि पधायी छे तेमनी पास आव्या अने तेमने कडे. आर्यरोहनां
वचन सांलणी राज पुरोहितने साथे लधने अपराजित मुनिनी पास गथा. अने
तेमने वंदना करीने कडेवा लाग्या के, हे भदन्त ! तमारा लाधना पुत्रने लवतदान
आपो. मुनिअे कहुं के, हे राजन् ! राजनीति अेवा प्रकारनी छे के, अ्यारे आपने
पुत्र साधारण जनताने पणु अपराध करे तो तेने माटे शिक्षा छे तो मुनिराजने

समस्व, बालकौ महाकृष्टं प्राप्तौ, अनुकम्पस्य भगवन् । स्वस्थावस्थासम्पन्नौ - ही
 मुनिदेशनया प्रव्रज्यां स्वीकृतवन्तौ । तत्र राजपुत्रः शुद्धभावेन चारित्रपालनं
 यान्, पुरोहितपुत्रस्तु जातिमदं कृत्वा पूर्वपीडास्मरणेन गुरुं प्रति सामर्थ्यं जातः।
 द्रावपि चारित्रं पालयन्तौ मृत्वाज्जन्ते देवलोकं गतौ ।

इतश्च कौशाम्बीनगरी तापसनामकः कोऽपि धनिक आसीत् । स स्वष्टे
 मृत्वा लोभावेशेन सूकरो जातः, स स्वभवनादिकं दृष्ट्वा जातिस्मरणं प्राप्तवान् ।

उसके लिए राजा को चाहिये कि जरूर ध्यान रखे । अपराजित मुनि
 की बात सुनकर राजाने समझकर कहा कि महाराज ! आजपीछे ऐसा
 नहीं हागा, आप मेरे इस अपराध को क्षमा करे । तथा राजकुमार
 और पुरोहित पुत्र ने भी अपराजित मुनि से क्षमा मांगी । फिर उपदेश
 सुमकर वे दोनों प्रव्रजित हो गये । प्रव्रज्या ले ने पर राजपुत्र ने तो
 शुद्ध भाव से चारित्र का पालन किया परन्तु जो पुरोहित का पुत्र था,
 वह जाति मद से संयम का आराधन पूरा नहीं करता था और अपने
 पेट की पीड़ा को याद करता हुआ अपने गुरु अपराजित मुनि पर रुष्ट
 भाव रखता था । अन्त में ये दोनों ही चारित्र की पालना करते हुए
 काल धर्म को पाकर देव लोक में देव हुए ।

इधर-कौशाम्बी नामकी एक नगरी थी । उसमें तापस नामका एक
 हिंसक धनिक व्यक्ति रहता था । वह लोभ के वश होकर मरा तो
 अपने ही घर पर सूअर की योनि में उत्पन्न हुआ । अपने पूर्व के भवना-

पिडा पहोन्वाडनाराओ भाटे राब्ज्ये न्दर ध्यान राणवुं नोर्धये. अपराजित
 मुनिनी वात सांलजीने राब्ज्ये समल्ल न्दने कहुंके, मडाराज ! डवेथी ओवुं
 नडीं भने. आप मारा आ अपराधने क्षमा करे. राजकुमार अने पुरोहित
 तना पुत्रे पणु अपराजित मुनिनी क्षमा मांगी, त्पार आड उपदेश सांलजीने
 ते अने प्रव्रजित अन्या. प्रव्रज्या लीधा पछी राजपुत्रे शुद्ध भावथी चारित्रनुं पालन
 कथुं. परंतु जे पुरोहितने पुत्र हुतो ते नतीना भदना डारखे संयमनुं आरा-
 धन पूणुं रीते करतो न हुतो अने. पोताना पेटनी पीडाने याद करतां करतां
 अपराजित मुनि उपर क्रोधभाव राणतो हुतो. अंतमां जे अने चारित्रनुं पालन
 करतां. करतां काणधर्मे पामीने देवलोकां देव थया.

आ तरङ्ग कौशाम्बी नामनी एक नगरी हुती. जेमां तापस नामने
 एक हिंसक धनवान् आणुस रहतेो हुतो. ते दोलवशे करीने. पोताना
 धरमां सूअर (भूड) इये जन्थे. पोताना पूर्वना भकान आदि नोर्धने

एकदा तत्पूर्वभवपुत्रास्तं तस्यैव श्राद्धदिने इतवन्तः, ततः स्वगृह एवासी सर्पो जातः, तस्मिन्नपि भवे तस्य जातिस्मरणं संजातम् । पुनस्तः एव पूर्वभवपुत्रास्तं सर्पं गृहान्तर्भ्रमन्तं दृष्ट्वा जघ्नुः । तदनन्तरमसौ स्रपुत्रस्य पुत्रोऽभवत्, पित्रा तस्य 'अशोकदत्त' इति नाम कृतम् । स तत्रापि जन्मनि जातिस्मरणं प्राप्य मूकत्वमङ्गीचकार । पूर्वभवीया पुत्रवधूरिदानीं माता जाता, कथमेनां मातेति ब्रवीमि । पुत्रोऽपि पिताभवत् कथमेनं 'तातः' इति संवोधयामि, इत्येवं मनसि विचार्य समूकोऽभवत् । मातापितृभ्यां तन्मूकत्वापनयनार्थं बहवः प्रयत्नाः कृतास्तथापि तस्य मूकत्वं नापगतम्, अतो लोकास्तं मूकनाम्नाऽऽह्वयन्ति ।

दिकको देखकर उस सूअर के बच्चे को जातिस्मरण ज्ञान हो गया । एक दिन की बात है कि पुत्रोने अपने बाप के श्राद्ध के निमित्त उस सूअर को मार डाला । यह मर कर अपने ही घर में सर्प हुआ । इस भव में भी इसे जातिस्मरण ज्ञान हो गया । पुत्रों ने अपने घर में इधर उधर घूमते हुए सर्प को जब देखा तो उसको मार डाला । मर कर यह तृतीय भव में अपने पुत्र का पुत्र हुआ । पिताने इसका नाम अशोकदत्त रक्खा । इस अवस्था में भी इसे जातिस्मरण ज्ञान हो गया, अतः इसने मूकपना अंगीकार कर लिया । जो पूर्वभव में मेरी पुत्रवधू थी वह इस भव में माता हो गई है अतः कैसे तो इसे माता कह कर पुकारूँ तथा जो पुत्र था वह भी अब मेरा बाप बन गया है इसलिये अब इसे पिता कैसे कहूँ, ऐसा मन में विचार कर उसने अपना

आ सूअरना भन्नामां नति स्मरषु ज्ञान थयुं. ओक द्विसनी वात छे. पुत्रोअे पोताना आपना श्राद्ध निमित्ते आ सूअरने भारी नाभ्युं. त्यांथी भरीने इरीथी पोताना ओव धरमां सर्प थयो. आ लवमां पषु तेने नति स्मरषु ज्ञान थयुं. पुत्रोअे पोताना धरमां आभ तेभ धुमता सर्पने न्यारे ज्येथे त्यारे तेने भारी नाभ्ये. भरीने त्रीजलवमां पोताना पुत्रना पुत्र (पौत्र) तरीके न्भ्ये. पिताअे तेनुं नाम अशोकदत्त राभ्युं. आ अवस्थामां पषु तेने नतिस्मरषु ज्ञान थयुं. आथी तेबुे भौनप्रत धारषु करी लीधुं. पडेल्ला लवमां ने भारी पुत्रवधू डती ते आ लवमां भारी माता थर्छ छे तो केवी रीते हुं. माता कडीने जेलाधुं. ने भारे पुत्र डतो ते अत्यारे भारे आप थर्छ ज्येळ छे तेथी डवे तेने पिता तरीके केभ संभाधन कई ? जेभ मनमां विचार

एकदा चतुर्गानधराः स्थविराः स्वज्ञानोपयोगेन मूकं विज्ञाय तं प्रति-
बोधयितुं तत्र शिष्यपरिवारैः सह समवष्टातः, तत्र मूकगृहे द्वौ श्रमणौ प्रेषितौ
तत्रैकेन मूकस्य पुरतः स्थविरशिक्षिता गाथा पठिता ।

“ तावस ! किमिणा ? मूअव्वयेण पडिचज्ज जाणिउं धम्मं ।
मरिऊण सूअरोग, जाओ पुत्तस्स पुत्तोत्ति ॥ १ ॥ ”

मूकभाव (गुंगापन) रखना ही अच्छा समझा । माता पिता ने अपने
बच्चे की जब ऐसी स्थिति देखी तो उसकी मूकता दूर करने के लिये
उन्होंने अनेक प्रयत्न किये, परन्तु उसकी मूकता दूर नहीं हुई, इसलिये
लोगों ने उसका नाम “ मूक ” रख दिया, और इसी नाम से उसे
बुलाने लगे ।

एक समय कि बात है कि चार ज्ञान के धारी स्थविर मुनि अपने
ज्ञानोपयोगसे उस मूक की परिस्थितिको जानकर उसे प्रतिबोधित करनेके
लिये वहां शिष्यमंडलीसहित आये । :उन्होंने उस मूकके घर पर दो
मुनियों को भेजा । उनमेंसे एक मुनिने उस मूक के आगे स्थविरशिक्षा
से युक्त एक गाथा पढ़ी । वह गाथा इस प्रकार है—

तावस ! किमिणा ? मूअव्वयेण पडिचज्ज जाणिउं धम्मं ।
मरिऊण सूअरोग, जाओ पुत्तस्स पुत्तोत्ति ॥ १ ॥

करीने ते भाणके भूंगापणुं राभवानुं योग्घ भान्युं. माता पिताअे न्यादे भाणकनी
आ स्थिति नेधं त्यादे तेनुं भूंगापणुं इर करवा भाटे अनेक प्रयत्तो कर्या परंतु
तेनुं भूंगापणुं इर न थयुं. आधी दोडोअे तेनुं नाम “भूगो” राण्युं. अने
अेअ नामधी तेने बोलाववा लाग्या.

अेक वधत चार ज्ञानना धारी स्थविरे पोताना ज्ञानना उपयोगधी
आ भूंगानी परिस्थिति लणीने तेने प्रतिबोधित करवा भाटे शिष्य
मंडली साथे त्यां पधार्या. तेअेअे आ भूंगाना घेर अे मुनिअेने भोक्त्या.
आभांथी अेक मुनिअे आ भूंगानी आगण स्थविरनी शीअेवेली अेक गाथा गाध.
ते गाथा आ प्रकारनी छे.

तावस ? किमिणा ? मूअव्वयेण, पडिचज्ज जाणिउं धम्मं ।
मरिऊण सूअरोग, जाओ पुत्तस्स पुत्तोत्ति ॥ १ ॥

छाया—तापस ! किमनेन मूकव्रतेन प्रतिपद्यस्व ज्ञात्वा धर्मम् ।

मृत्वा सूकर उरगो जातः पुत्रस्य पुत्र इति ॥ १ ॥”

मूकस्तां गाथां श्रुत्वाऽऽश्चर्यं गतस्तौ प्रणम्य पृच्छति - भवद्भिरेतत् कथं ज्ञातम् ? तौ ब्रूतः—इहोद्यानेऽस्मद्गुरवः समवसृतास्ते खलु जानन्ति । ततोऽसौ मूकस्ताभ्यां श्रमणाभ्यां सह गत्वा नगरोद्याने स्थविराणां वन्दनं कृत्वा तद्देशनां श्रुत्वा श्रावको भूत्वा मूकत्वं परित्यक्तवान् ।

इतश्च कृतजातिमदः पुरोहितपुत्रजीवदेवः कृताञ्जलिः सन् महाविदेहे तीर्थकर-समीपे पृच्छति—भगवन् ! किमहं सुलभवोधिस्तदितरो वा ? भगवता प्रोक्तम्—त्वं दुर्लभवोधिकोऽसि । देवः पुनरपृच्छत्—इतश्च्युतः सन् कुत्राहमुत्पन्नो भविष्यामि ?

इस गाथा को सुनकर मूक को बड़ा भारी आश्चर्य हुआ। उसने उन दोनों को नमस्कार कर पूछा—आपने हमारी सूअर की पर्याय से लेकर यहां तक की समस्त परिस्थिति कैसे जानली ? उन्होंने कहा—कि इस नगर के उद्यान में हमारे गुरु महाराज पधारें हुए हैं वे तुम्हारी इस समस्त स्थितिको जानते हैं। मूकने जब यह सुना तो वह उनदोनों मुनियों के साथ उद्यान में आया। उसने सब मुनियों को नमस्कार एवं वंदन किया। पश्चात् उनसे धर्मका उपदेश सुनकर श्रावक हो गया और मूकता का परित्याग कर दिया।

जातिमद करने वाला जो पुरोहितपुत्र का जीव था कि जो मरकर देव की पर्याय से उत्पन्न हुआ था उसने हाथ जोड़ कर महा-विदेह क्षेत्र में तीर्थकर श्री सीमंधर स्वामी के पास ऐसा प्रश्न किया

आ गाथा सांख्यीने ते भूंगाने लारे आश्चर्यं यथुं, तेष्ते आ णन्ने स्थविराने नमस्कार करीने पूछथुं, “तमेवमे मारी सूवरनी स्थितिथी मांडीने आण सुधीनी समस्त परिस्थिति केम लणी ?” तेष्तेऽपि कथुं के, “आ नगरना णगीयामां अमारा गुरु महाराज पधार्यां छे अने तेष्ते तमारी सधणी णीना लल्ले छे.” भूंगाऽपि न्यारे आ लण्णुं त्यारे ते णन्ने मुनिष्सेऽपि साथे णगीयामां आण्ये, अने तेष्ते षधा मुनिष्सेऽपि नमस्कार अने वंदना करी. त्यार पछी तेमनी पासैथी धर्मने उपदेश सांख्यीने ते श्रावक णनी गये अने भूंगाऽपिने छोडी दीधुं.

जातिमद करवावाणा पुरोहित पुत्रने अथ ने मरीने देवनी पर्यायमां उत्पन्न थये हुते तेष्ते हाथ लेडीने महाविदेह क्षेत्रमां तीर्थं कर श्रीमंधर स्वामी नी समक्ष एवेऽपि प्रश्न कथे के, “हे भगवन्त ! हुं सुलभयोधि छुं के दुर्लभ-योधि छुं ?” भगवाने नवाणमां कथुं के; तमे दुर्लभयोधि छे. देवे इरी प्रश्न

भगवता कथितम्-कौशाम्बीनगर्यां मूकभ्राता भविष्यति । धर्मप्राप्तिश्च मूकादेव तव भविष्यति । इत्येवं भगवद्वचनं श्रुत्याऽसौ देवस्तं प्रणम्य कौशाम्बीनगर्यां मूकोपान्तिकमागत्य तस्मै बहुद्रव्यं दत्त्वा प्रोक्तवान्-स्वर्गात् प्रच्युतस्य मम जन्म त्वन्मातुर्गर्भे भविष्यति, तदा तस्या अकालेऽप्याम्रदोहदो भविष्यति । तदर्थं सर्वतु फलवानाम्रवृक्षः कौशाम्ब्याः समीप एव पर्वतस्य निर्जनप्रदेशे मया रोपितः । यदा सा तदोहदाकुलाऽऽम्रं याचते तदा तस्याः पुरस्त्वया वाच्यम् । यदि जनिष्यमाणं बालकं मया ददासि, तदाऽऽम्रफलमानीय तुभ्यं ददामि ।

किं हे भगवान् ! मैं सुलभयोधि हूँ किं दुर्लभयोधि हूँ ? भगवान ने इसके उत्तर में कहा कि तुम दुर्लभयोधि हो । देव ने पुनः प्रश्न किया कि मैं यहाँ से च्यवकर कहाँ उत्पन्न होऊँगा ? भगवान ने कहा कि कौशाम्बी नगर में मूक के भाई होंगे । वहाँ तुम्हें धर्म की प्राप्ति मूक से ही होगी । इस प्रकार भगवान् की वाणी सुनकर वह देव उन्हें नमन कर के कौशाम्बी नगरी में मूक के पास आया और उसे बहुत सा द्रव्य देकर कहने लगा कि मैं स्वर्ग से च्यवकर तुम्हारी माता की कुक्षि में जन्म धारण करूँगा । उस समय उसे अकाल में आम खाने का दोहला उत्पन्न होगा । उस दोहले की पूर्ति के लिये सर्वऋतुओं में फल देने वाला आम का वृक्ष मैंने पहिले से ही कौशाम्बी नगरी के समीप के पर्वत के निर्जन प्रदेश में आरोपित कर दिया है । जिस समय वह दोहद से आकुलित होकर आम की याचना करे तो तुम उससे ऐसा कहना कि जो बालक उत्पन्न होगा उसे यदि तुम मुझे देना अंगीकार करो तो मैं तुम्हें लाकर आम देता हूँ ।

कथं, हे अहिंशी व्यथिने कथां उत्पन्न थर्षि ? भगवाने कहुं के, कौशांभी नगरीमां भूंगानो लार्थ थर्षि. त्यां तमने धर्मनी प्राप्ति भूंगार्थी थशे. आ प्रकाशनी भगवाननी वाणी सांलणीने ते देव नमस्कार करीने. कौशांभी नगरीमां ते भूंगानी पासे आव्या अने तेने भूष द्रव्य दधने कडेवा लाग्या के हुं. स्वर्गार्थी व्यथिने तमारी मातानी कुंजे जन्म धारणु करीश. अे वपते तेने अकाणे केरी भावानो लाव (दोहद) उत्पन्न थशे. आ दोहदनी सङ्गता माटे सर्व, इतुओमां, इण, देनार आणाना वृक्षने पडेवेथी जे कौशांभी नगरीनी पासे आवेला. पर्वतना निर्जन प्रदेशमां मे वावी हीधेल छे. न्यारे ते दोहदथी व्याकुण थर्षिने केरीनी मागणी करे ल्यारे तारे तेने, अे प्रभावे कडेपुं के, जे आणक जन्मे तेने अने सांपवानुं. स्वीकारे तो, हुं तमने केरी. लापी. आपुं.

एवमुक्त्वा तव माता यदि गर्भस्थपुत्रदानं स्वीकुर्यात् तर्हि तस्यै त्वया मदर्शि-
ताऽऽन्नफलं दातव्यम् । जातस्य मम यथा जैनधर्मप्राप्तिर्भवेत् तथा प्रयत्नस्त्वया
कर्तव्यः । एवमुक्त्वा स पुरोहितपुत्रजीवदेवो गतः ।

अन्यदा कदाचिदसौ देवो देवलोकाच्च्युतस्तस्या गर्भे समुत्पन्नः, तदा तस्या
आम्रदोहदः समुत्पन्नः । मूकेन पूर्वोक्तव्यवस्थां कारयित्वाऽऽन्नदोहदः पूरितः ।
पुत्रो जातः । तस्यार्हद्दत्त इति नाम मातापितृभ्यां कृतम् । तदनन्तरमसौ मूक
स्तं वालसोदरं कालयन् साधूनां समीपं तद्वन्दनार्थं नयति, परन्त्वसौ दुर्लभबोधि-

तुम्हारी माता जब तुम्हारे इस कथन को मंजूर कर ले अर्थात्-
गर्भस्थ पुत्र का तुम्हें देना स्वीकार कर ले-तो तुम उसके लिये मेरे
द्वारा बताये हुए आम के वृक्ष से आम लाकर दे देना । तथा तुम इस
प्रकार का प्रयत्न भी करते रहना कि जिस से मुझे जैनधर्म की प्राप्ति हो ।
इस प्रकार कह कर वह पुरोहित के पुत्र का जीव देव तिरोहित हो गया ।

किसी समय अपनी आयु के समाप्त होने पर यह स्वर्गलोक से
व्यवकर मूक की माता के गर्भ में अवतरित हो गया । उस की माता
को आम खाने का दोहला उत्पन्न हुआ । मूक ने पूर्वोक्त व्यवस्था करवा
कर उस के आम के दोहले की पूर्ति की । पुत्र का जन्म हुआ । उसका
नाम अर्हद्दत्त रक्खा गया । अर्हद्दत्त को जो कि अपना वालसोदर था
मूक ने बड़े चाव से लाड़ प्यार से रखा । कभी २ यह उसे साधुओं के
समीप भी वंदना कराने के लिये ले जाता था, परन्तु यह ता दुर्लभ-

तमारी माता न्यारे तमारी आ भागणीने भंजुर करे अर्थात्
गर्भमां रडेला पुत्रने तमने सोंधी देवाने स्वीकार करे त्यारे तमारे मे तमने
पतावेला आंभाना वृक्ष उपरथी डेरी लावीने तेने आपवी. तथा तमारे जेवा
प्रकारना प्रयत्न करता रडेवुं के जेनाथी मने जैनधर्मणी प्राप्ति थाय.
आ प्रमाझे कहीने ते पुरोहित पुत्रने एव-देव अलोप थर्ध गयो. डेटलाक
समय आह पोताना आयुष्यनी समाप्ति थवाथी ते देव स्वर्गवोडथी व्यवीने
भूंगानी माताना गर्भमां उत्पन्न थया. तेनी माताने डेरी भावानुं भन थयुं. भूंगाय्जे
पडेवेथी ज व्यवस्था करीने तेनी डेरी भावानी धिंजाने पूषुं करी. समय जतां
पुत्रने जन्म थयो. तेनुं अर्हद्दत्त नाम राणवामां आंयुं. अर्हद्दत्त के जे पोताने
नाने लाध थतो हतो तेने भूंगाय्जे पूष लाड प्यारथी राणयो. डेध-डेध. पार
ते तेने साधुज्योनी पासे वंदना करवा माटे लध जतो हतो. परंतु आ तो

त्वेन साधुन् दृष्ट्वा रोदिति । एवमावालं प्रतिबोधितोऽप्यसौ न बोधि लभते ।
ततस्तद्भ्राता मूकः प्रव्रजितो भूत्वा संयमं परिपाल्य देवलोकं गतः ।

अथ तेन मूकजीवदेवेनासौ दुर्लभबोधिवर्षिकः प्रतिबोधार्थं जलोदरव्याधि-
युक्तः कृतः, स्वयं च वैद्यरूपं कृत्वा तत्समीपमागत्याह—अहं सर्वरोगोपशमनं करोमि ।
जलोदरी यदति—मम जलोदरव्याधिं प्रशमय । वैद्यनोक्तम्—असाध्योऽयं तव रोगः,
तथापि तत्प्रतीकारं करोमि, यदि ममीपथकोत्थलकं स्कन्धे समारोप्य मामनुगच्छसि ।
जलोदरिणोक्तम्—एवमस्तु । ततो वैद्येन स जलोदरी निर्व्याधिः कृतः ।

बोधि था, इसलिये साधुओं को देखते ही रोने लग जाता । इस प्रकार
पाल्य अवस्था से प्रतिबोधित करने पर भी यह बोधि को प्राप्त नहीं
कर सका । इसके बाद उसके बड़े भाई मूकने दीक्षा धारण कर ली और
संयम का पालन कर अन्तमें वह देवलोक में जा कर उत्पन्न हो गया ।

अपने सहोदर को प्रतिबोधित करने के लिये मूक के जीव देव ने
उसके शरीर में जलोदर की व्याधि उत्पन्न कर दी । यह उसने इस लिये
की कि देखें यह दुर्लभबोधि कैसे है । तथा स्वयं वैद्य का रूप ले कर
उसके पास आ कर कहने लगा कि मैं समस्त रोगों को दूर करने का
इलाज करता हूँ । उस जलोदरी बालक ने कहा कि ठीक है आप मेरे
इस रोग का इलाज करें । वैद्य ने प्रत्युत्तर में कहा कि यद्यपि तुम्हारा
यह रोग असाध्य है तौ भी इस शर्त पर प्रयत्न करता हूँ कि यदि तुम
मेरे इस कोथले को कि जिस में औषधियाँ भरी हैं अपने कंधे पर

दुर्लभ बोधी डतो अटवे साधुओंने जेधने शिवा लागी जतो आ प्रभाषे
आल्यावरथाधी ज तेने प्रतिबोधित करवा छतां पक्षु ते बोधने प्राप्त करी शक्या
नहीं. आ आह तेना मोटालाध भूंगाअे दीक्षा धारण करीने, संयमनुं पालन
करीने, अंतमां देव लोकमां उत्पन्न थये. पोताना सहोदरने प्रतिबोधित करवा
माटे भूंगाना एव देवे तेना शरीरमां जलोदरनी व्याधि उत्पन्न करी. ते व्याधि
अटला माटे उत्पन्न करी के, जेठं तो भरे के ते दुर्लभ बोधी केवे छे? पछी
पोते वैद्यनुं रूप लधने तेनी पास आवीने कडेवा लाग्या के, समस्त रोगोने
निवारवाने धिवाज मारी पास छे. ते जलोदरवांणा भाणके कछुं के, आप
भारा आ रोगोने धिवाज करे. वैदे प्रत्युत्तरमां कछुं के जे के तभारे आ
रोग असाध्य छे. तो पक्षु अेवी शरत उपर प्रयत्न करे के, तमे भारा आ
कोथणाने जेमां औषधीओ लरी छे तेने तभारा कंधे उपर राभीने मारी पाछण

अथ तेन वैद्येनौपधकोत्थलकस्तस्मै वाहनार्थं समर्पितः । स चार्हद्दत्तः कोत्थलकमुत्थाप्य स्कन्धोपरि वहन् वैद्यपृष्ठतश्चलति । तथा स कोत्थलको देवमा- ययास्तीवभारकारकः संजातः, तेनातिभारेण स श्रान्तोऽपि तद्युत्सृज्य गन्तुं न शक्नोति, चिन्तयति च-अहं वचनवद्भोऽस्मि, कथमिमं भारं परित्यजामि, कोत्थलकं वहतो ममैतत्पृष्ठतो गमनेन पुनर्जलोदरव्याधिर्न स्यादतो वज्रसार तुल्यमिव भारं वहन् यदहं खञ्जो भवामि तन्मे योग्यं भवतीत्येवं विचिन्त्य स कोत्थलकं वहन् वैद्यमनुगच्छति ।

रख कर मेरे पीछे चलो तो । जलोदरी ने कहा इस में कौन सी बड़ी बात है । ' यह मेरा कोथला उठायेगा ' ऐसा जानकर वैद्य ने इलाज के द्वारा उसको व्याधिमुक्त कर दिया । वैद्यने अपना औषधि का कोथल उठा कर चलने के लिये दे दिया । अर्हद्दत्त उस कोथले को कन्धे पर रख कर वैद्य के पीछे चलने लगा । कोथला देव की माया से ले जाते छे जाते मार्ग में बहुत वजनदार बन गया । उससे वह बहुत थक गया । परन्तु फिर भी उसकी हिम्मत उसे छोड़कर आगे जाने की नहीं हुई । विचारने लगा कि मैं वचन यद्द हो चुका हूं अतः अब इस भार को कैसे छोड़सकता हूं । तथा यदि कोथले को लाद कर इस वैद्य के पीछे जो न चलूं तो फिर जलोदर हो जानेकी आशंका है, अतः जैसे भी बनें वज्र-समान भारी इस कोथले को लेकर ही चलने में श्रेय है, चाहे मेरे शिर के बाल भी क्यों न घिस जायें । इस प्रकार विचार कर वह कोथले को सिर पर लिए हुए वैद्य के पीछे चलता रहा ।

पाछण आलो. जलोदर वाज्याये कहुं के, तेभां कर्ष भोटी वात छे. ' आ भोरी कथयो उठावशे ' जेवुं जण्णी ने वेढे धलाज द्वारा तेने व्याधिमुक्त करी हीधे वेढे पोतानी औषधीने कथयो उठावीने आलवा भाटे तेने आये. अर्हद्दत्त ते कथयाने कंधे उपर राभीने वेढनी पाछण पाछण आलवा लाग्ये. कथयो देवनी मायाधी आलतां आलतां मार्गभां धल्लो वजनदार जनी गये, आधी ते धल्लो ज थाकी गये अने आगण आलवानी तेनाभां डिंभत न रही छतां पञ्च ते विचारवा लाग्ये के हुं वचनधी अंधायेल छुं भाटे हवे आ भारने हुं केवी रीते छोडी शकुं ? अने जे कथयाने उपाडीने हुं आ वेधनी पाछण पाछण न आहुं तो कुरी पाछो जलोदरने उपद्रव धर्ष जवा संभव छे. जेभ अने तेभ वज्र समान भारे आ कथयाने उपाडीने आलवाभां ज श्रेय छे. भारा माथाना वाण धसाधं नय तो पञ्च भारे कथयाने उपाडीने आलवुं जेधये. आं प्रकारने विचार करी भाथा उपर कथयो लधे ते वेधनी पाछण पाछण आलतो रह्यो.

एकदा स मायिको वैद्यस्तं मुनिसंनिधौ नीत्वा वदति यदि त्वं दीक्षां वृक्षसि, तर्हि त्वां मुञ्चामि । स भाराक्रान्तो वदति प्रक्षीप्याम्येव दीक्षाम् । ततोऽसौ मायिक-
वैद्यस्तस्मै दीक्षां प्रदाप्य स्वयं देवलोकं गतः । देवे स्वस्थानं गते स दुर्लभबोधि-
त्वादरतिपरीपहेणाभिभूतः सन् संयमं त्यक्तुं समुद्यतः । ततो देवेनावधिना श्लाघा
पुनरपि तथैव जलोदरं कृत्वा वैद्यरूपेणागत्य पुनरसौ मतिवोधितः । पुनर्गते च देवे
परीपहाभिभूतेन तेन दीक्षात्पागो मनसि भृतः । तदाऽसौ वैद्यरूपे देवस्वर्गीय-
वारं मतिबोध्य व्रते स्थिरीकरणार्थमर्हत्तसमीप एव तिष्ठति ।

अब वह मायिक वैद्य उस जलोदरी को मुनि के पास ले गया और कहने लगा कि यदि तुम दीक्षा धारण करलो तो मैं तुम्हें छोड़ दूँ । भार से हेरान होकर उसने विचार किया कि— अच्छा है दीक्षा लेने से इस वजन को उठाने के दुःख से तो बच जाऊँगा ! और बोला दीक्षा ही ले लूँगा । वैद्य उसको संयम दिला कर अपने स्थान देवलोक को चला गया । देव को अपने स्थान पर गया हुआ जानकर वह दीक्षा का परित्याग करने को उद्यत हुआ । देवने पुनः उसे जलोदर रोग से पीडित किया और वैद्य के रूप से आकर प्रतिबोधित किया । फिर भी वह अरतिपरीपह से उद्विग्न होकर संयम छोड़ने की इच्छा करने लगा । फिर भी देव आकर उसको प्रतिबोधित किया और “यह संयम में स्थिर बना रहे” इस खयाल से वह देव स्वयं इसके पास रहने लगा ।

ये मायाधारी वैद्य ये जलोदरवाजाने मुनिनी पास ले गया अने कहेवा लाग्या के जे तमे दीक्षा धारण करी ह्यो तो हुं तमने छोडी हउं । भारथी हेरान अनेला तेणे विचार करी के,—“दीक्ष छे दीक्षा देवाथी आ वजनने उठाव-
पाना दुःअथी ते अथी अर्धश” आभ विचारी तेणे कंहुं के लवे । हुं दीक्षां लधय ते पछी तेने दीक्षा अपावी वैद्य पाताना स्थाने देवदोकरमां आल्या गया. देवने पातानां स्थान उपर गयेला लक्ष्मीने ते दीक्षाने परित्याग करवा तैयार थयो. देवे इरीथी तेणे जलोदरना रोगथी पीडित अनाये। अने वैद्यता स्वइपथी आवीने प्रति-
बोधित करी। इरीथी ते अरतिपरीपहथी उद्वेग पाभीने संयम छोडवानी इच्छा करवा लाग्यो. इरी पाछा देवे आवीने तेने प्रतिबोधित करी. अने “आ संयममां स्थिर अनी रहे” अवा अभ्यावथी ते देव पाते तेनी पास रहेवा लाग्या.

एकदा स देवो मनुष्यवेपेण तृणभारं गृहीत्वा कस्मिंश्चित् प्रज्वलति ग्रामे प्रविशति, तदा संयमारति कुर्वन्नर्हद्दत्तमुनिः प्राह-ज्वलति ग्रामे तृणभारं नयन् कथं प्रविशसि ? किं मूढोऽसि ? देवेनोक्तम्-त्वं तु महामूढोऽसि, यतः सकलकल्याणकारणं संयमं विहाय क्रोधमानमायालोभवह्निप्रज्वलिते सकलानर्थकरे गृहवासे पुनः पुनर्वार्यमाणोऽपि प्रवेष्टुमिच्छसि ? । स एतद्वचनं श्रुत्वाऽप्यरति सर्वथा न मुञ्चति ।

एक दिन की बात है कि वह देव मनुष्य का वेप धारण कर घास का गट्टा लेकर एक गांव में कि जिसमें आग लगी हुई थी जाने लगा । उस समय अरतिभाव को धारण करने वाले उस अर्हद्दत्त मुनि ने उस से कहा कि तुम कितने मूर्ख हो जो आग से जल रहे इस ग्राम में घास का भारा लेकर जा रहे हो । इस स्थिति में तो कोई मूर्ख भी इस गांव में घास का भारा लेकर जाने को तैयार नहीं हो सकता है, अतः तुम्हारे जैसे समझदार व्यक्ति को ऐसा काम करना इस समय सर्वथा अनुचित है । अर्हद्दत्त मुनि की इस बात को सुनकर देव ने कहा कि -परोपदेश में पांडित्य प्रदर्शन करने वाले दुनिया में अनेक मनुष्य हैं तुम भी उन्हीं में से एक हो । मैं तो समझता हूँ कि मेरी अपेक्षा अधिक मूर्ख तुम हो जो कल्याण के कारणभूत इस ग्रहण किये हुए संयम में अरतिभाव धारण करते हुए क्रोध, मान, माया एवं लोभ-रूपी अग्नि से प्रज्वलित एवं सकल अनर्थों के उत्पादक ऐसे गृहस्थाश्रम में जाने के लिये वारर मना करने पर भी संयम छोड़ने की इच्छा करते हो ।

એક સમય તે દેવે મનુષ્યનો વેશ ધારણ કરીને ઘાસની ગાંસડી લઈ એક ગામમાં કે ત્યાં આગ લાગી હતી ત્યાં જવા લાગ્યા તે સમયે અરતી ભાવના ધારણ કરવાવાળા તે અર્હદત્ત મુનિએ તેમને કહ્યું, કે, તમે કેવા મૂર્ખ છો કે, આગથી બળી રહેલા ગામમાં ઘાસનો ભારો લઈને જાવ છો ? આ સ્થિતિમાં તો કોઈ મૂર્ખ પણ તે ગામમાં ઘાસનો ભારો લઈને જવાની તૈયારી ન કરે. માટે તમારા જેવી સમજદાર વ્યક્તિએ એવું કામ કરવું આ સમયે સર્વથા અનુચિત છે. અર્હદત્ત મુનિની આ વાતને સાંભળીને દેવે કહ્યું કે, પારકાને ઉપદેશ આપવામાં પંડિતાઈનું પ્રદર્શન કરવાવાળા દુનિયામાં અનેક મનુષ્યો છે. તેમાંના તમે એક છો. હું તો સમજું છું કે મારી અપેક્ષાએ તમે અધિક મૂર્ખ છો. જે કલ્યાણના કારણભૂત એવા લીધેલા સંયમમાં અરતી ભાવ ધારણ કરીને, ક્રોધ, માન, માયા, લોભ રૂપી અગ્નિથી પ્રજ્વલિત એવા સકલ અનર્થોના ઉત્પાદક એવા ગૃહસ્થાશ્રમમાં જવા માટે વારંવાર મના કરવા છતાં પણ સંયમ છોડવાની ઈચ્છા કરે છે. આ પ્રમાણે તે દેવના

अन्यदा कदाचित् तेन सह पुरः पुरभ्रलभसौ देवः पन्थानं विहाय कण्टकाकीर्णेनोत्पयेनाटवीं गच्छति । ततोऽसौ दुर्लभबोधिरर्हदत्तः साग्रहं वदति मन्थानं हित्वा कथमुत्पथेन गच्छसि ? देवेनोक्तम्—त्वमपि विशुद्धं मोक्षमार्गं परित्यज्याऽपि व्याधिरूपे कण्टकाकीर्णे संसारमार्गे कस्माद् व्रजसि ? एवमुक्तोऽप्यर्हदत्तो बोधिमलब्ध्वा वदति—कस्त्वम् । ततो देवः स्वपूर्वभवसम्बन्धिनं मूकरूपं दर्शयित्वा माह—हे भ्रातः ! शृणु, भवता पूर्वजन्मनि देवभवं प्राप्य ममं निगदितम्—यदा स्वर्गा-

इस प्रकार उस देव के वचन सुनकर अर्हदत्त मुनि अरतिपरीषद् को सर्वथा नहीं त्याग सका । देवने और भी उपाय उसे समझाने के लिये किये जैसे—कोई एक दिन जब अर्हदत्त बाहर जा रहे थे तब देव भी इनके आगे २ चलने लगा और रास्ता छोड़कर कुरास्ते जाने लगा । वह मार्ग कण्टकाकीर्ण था एवं अटवी की ओर जानेवाला था । उसकी इस प्रकार चाल देखकर अर्हदत्त मुनि ने कहा कि—तुम कैसे आदमी हो जो मार्ग का परित्याग कर कुमार्ग से जा रहे हो । तब देव ने भी अर्हदत्त से कहा कि तुम भी कैसे आदमी हो जो विशुद्ध मोक्षमार्ग का परित्याग कर आधिव्याधिरूप कंटकों से आकीर्ण संसारमार्ग में जाने को तैयार हो रहे हो । इस प्रकार जब देव ने कहा तो वह अर्हदत्त कहने लगा कि—सच तो कहो तुम कौन हो । देवने अर्हदत्त की इस प्रकार बात सुनकर अपना पूर्वभवसंबंधी मूक रूप दिखा कर कहा—हे मित्र ! सुनो आपने पूर्वभव में देवभव प्राप्त कर मुझ से कहा था कि यदि मैं

वचन सांभलीने पशु अर्हदत्त मुनिअे अरतिपरीषदने त्याग सर्वथा न कर्यो. देवे भील पशु उपाय तेने समभववा भाटे क्यो. जेभ डेअ ओक द्विपस अर्हदत्त भडार जर्ध रखा डता त्यारे देव पशु तेनी आगण आगण आलवा लाग्या अने रस्ते छोडीने कुरस्ते जवा लाग्या. ते मार्ग कंटाधी भरेल डतो. अने घोर जंगल तरङ्ग जतो डतो. तेनी आ प्रकारनी आल जेधने अर्हदत्त मुनिअे कछुं तमे केवा माषुस छो के मार्गने त्याग करी कुमार्गे जर्ध रखा छे. त्यारे देवे पशु अर्हदत्तने कछुं के, तमे पशु केवा आदमी छे के, विशुद्ध मोक्ष मार्गने परित्याग करी आधि व्याधि रुप कंटाओधी भरेला संसारमार्गमां जवाने तैयार थर्ध रखा छे. आ प्रकारे देवे कछुं ओटवे अर्हदत्त कडेवा लाग्या के, सायुं कडे तमे डेषु छे ? देवे अर्हदत्तनी आ बात सांभलीने पोताना पूर्वभव संबधी भूंगातुं स्वरुप देखाडीने कछुं के, हे मित्र ! सांभलो. आचे पूर्वभवमां देव भव प्राप्त करी भने डर्ध के,

त्प्रच्युतः स्याम्, तदा तव सहोदरभ्राता भविष्यामि, ततस्त्वया सुरालयगते-
नाऽप्यहं जैनधर्मं प्रतिबोधनीयः, इति त्वद्वचनं मया स्वीकृतम्, अतस्त्वां प्रतिबो-
धयितुमहमत्रागतोऽस्मि, तस्माद् धर्मं स्वीकृत्य मुहुर्मुहुररतिं मा सेवस्व, इत्येवं
मूकदेववचनं निशम्यार्हद्दत्तोऽब्रवीत्-पूर्वभवेऽहं देव आसमित्यत्र किं प्रमाणम् ? ततो
मूकदेवस्तद्विश्वासाय देवभवे तेन रोपितमात्रवृक्षं प्रदर्श्य सर्वं पूर्ववृत्तमवदत् । ततस्त-
स्य जातिस्मरणमभूत् । तेनाऽस्य चारित्रदृढता जाता । अस्य पूर्वमरतिः, पश्चात्संय-
मे रतिः समुत्पन्ना । एवमन्यैरपि मुनिभिररतिपरीपहस्तन्निराकरणेन सोढव्यः ॥१५॥

देवभव से च्युत हुआ तो तुम्हारा सहोदर होऊंगा, इसलिये तुम देवलोग
में देव होते हुए भी मुझे जैनधर्म का प्रतिबोध देना । तुम्हारे इस कथन
को उस समय मैंने स्वीकार कर लिया था । इसलिये मेरी प्रतिज्ञा के
अनुसार मैं तुम्हें प्रतिबोधित करने के लिये यहां आया हुआ हूं; अतः
संयमको अंगीकार कर फिर उसमें वार वार अरति का सेवन नहीं करना
चाहिये । इस प्रकार मूक देव के वचन सुनकर अर्हद्दत्त ने कहा कि
इसमें क्या प्रमाण है कि मैं पूर्वभव में देव था । मूकदेव ने अर्हद्दत्तकी
बात सुनकर उसके विश्वास के लिये देवभव में आरोपित आम्रवृक्ष को
दिखलाकर समस्त पूर्व का वृत्तान्त कह दिया । इस सब को सुनकर
उसे जातिस्मरण हो गया । इससे इसके चारित्र में दृढता आ गई ।
इस का सारांश यही है कि देखो अर्हद्दत्त को पहिले चारित्र में अरति
थी पश्चात् प्रतिबोधित होने पर उसे चारित्र में रति आ गई इस बात को

जे हूं देव भवथी च्युत थथश तो तभारे सडोडर जनीश. आ भाटे
देव बोडभां रडेवा छतां पथु तभे भने जैनधर्मने प्रतिबोध आपता
तभारा जे कथनने भे जे समये स्वीकार करी लीथे डतो जेथी भारी
प्रतिज्ञा अनुसार हूं तभाने प्रतिबोधित करवा भाटे अर्हद्दत्त आये छुं.
आधी संयमने आंगिकार करी तेभा वारवार अरतिनुं सेवन न करवुं
जेथजे. आ प्रकारे ते भूंगा देवनां वचन सांभजीने अर्हद्दत्ते कथुं के,
आभां कथुं प्रमाण छे के, हूं पूर्वभवभां देव डतो. भूंगा देवे अर्हद्दत्तनी
वात सांभजीने तेना विश्वास भाटे देव भवभां उगाडेछुं आम्रवृक्ष डेपाडीने
अगाडनुं सधुं वृत्तांत कडी सांभणाव्युं. आ पधुं जेथ जण्णीने तेने जाति-
स्मरण थयुं. आने सारांश जे छे के, अर्हद्दत्तने पडेलां चरित्रभां अरति
डती. पछी प्रतिबोधित थवाथी तेना चरित्रभां रति आवी. आ वातने जण्णीने

अरतिसद्भावे स्त्रीप्रभिलापः स्यादतः स्त्रीपरीपहजयं प्राह—

मूलम्—संगो एस मणुस्साणं, जाओ लोगंमि इत्थिओ ।

जस्स एया परिणयाया, सुकेंडं तस्स सामण्णं ॥१६॥

छाया—संग एण मनुष्याणां, याः लोकं स्त्रियः ।

यस्य एताः परिज्ञाताः, मुकृतं तस्य श्रामण्यम् ॥ १६ ॥

टीका—‘संगो’ इत्यादि ।

लोके=अस्मिन् संसारे याः स्त्रियः सन्ति, एण मनुष्याणां-पुरुषाणां संगः=संगच्छते=वशीभवति जीवो यस्मात् स संगो=वन्धनम्-यथा मृगाणां वन्धनं वागुरादि, यथा या मक्षिकाणां श्लेष्मसंगो वन्धनं तथा पुरुषाणां स्त्रियो वन्धनमित्यर्थः। स्त्रियो हि हावभावादिभिः पुरुषाणां विषयासक्तिलक्षणं रागमुत्पादयन्ति, रागो जातकरः सव मुनियो को चाहिये कि वे आते हुए अरतिपरीपह को निवारण कर संयम में रति रखें ॥ १५ ॥

अरति के सद्भाव में मुनि को स्त्रीपरीपह उत्पन्न होने का संभव है इस लिये अब सूत्रकार आठवें स्त्रीपरीपहजय को कहते हैं—

‘संगो एस’-इत्यादि

अन्वयार्थ—(लोगंमि-लोकेः) इस संसार में (जाओ इत्थिओ-याः स्त्रियः) जो स्त्रियां हैं (एस मणुस्साणं संगो-एणः मनुष्याणां संगः) यह मनुष्यों का वन्धन है। जिस प्रकार मृगों का वन्धन वागुरा-जाल-आदि; मक्षिका का वन्धन श्लेष्म आदि हैं उसी प्रकार स्त्रियां भी पुरुषों का वन्धनरूप हैं, क्योंकि ये स्त्रियां हाव, भाव आदि से पुरुषों में विषयासक्तिरूप राग उत्पन्न करती हैं। तद्विषयक राग की उत्पत्ति होने पर

सधना मुनिओओ न्णुत्तु न्नेध्णे के, आवेल अरतिपरीपहने निवारी संयमं रति राभे, ॥ १५ ॥

अरतिना सद्भावमां मुनिने स्त्रीपरीपहः उत्पन्न भवानो संलव छे तेथी सूत्रकार आठमो स्त्रीपरीपह उत्तवानुं कडे छे संगोएस—इत्यादिः

अन्वयार्थ—लोगंमि-लोकेः आ संसारमां जाओ-इत्थिओ-याः स्त्रियः न्ने स्त्रियो छे, एस मणुस्साणं संगो-एणः मनुष्याणां संगः ते मनुष्योनुं वन्धन छे न्नेम मृगोनुं वन्धन न्णुत्तु आदि माभीओनुं वन्धन गण्णु आदि छे, ते प्रकार स्त्रियो पणु पुद्दोने वन्धनरूप छे केम के, स्त्रियो हावभाव आदिथी पुद्दोमां विषयासक्ति रूप राग उत्पन्न करे छे, ते विषयराग उत्पत्ति भवाथी पुद्दु तेने वशीभूत भनी न्णयं छे

त्पत्तौ च तदशीभूतानां पुरुषाणां नरकनिगोदादिदुर्गतिकसंसारपातः, तस्मात्
स्त्रियः पुरुषाणां बन्धनमिति व्यपदेशः ।

अतः किं कर्तव्यमित्याकाङ्क्षायामाह— 'जस्स' इत्यादि ।

यस्य—अत्र सम्वन्धसामान्ये षष्ठी, येन मुनिनेत्यर्थः, एताः स्त्रियः परिज्ञाताः
परि—सर्वथा ज्ञाताः ज्ञ—परिज्ञयाऽस्मिन् भवे परभवे चानन्तदुःखकारणतया विज्ञाताः
प्रत्याख्यानपरिज्ञया च परिवर्जिताः, तस्य मुनेः श्रामण्यं=चारित्र्यम्, अत्र श्राम-
ण्येन सह परिपाल्यपरिपालकभावसम्वन्धे षष्ठी । सुकृतं=सुष्ठु आचरितं भवति, सफलं
भवतीत्यर्थः ॥ १६ ॥

पुरुषः उनके वशीभूत हो जाता है । उनके वश में हो जाने से उसका
नरक निगोद आदि दुर्गतिरूप संसार में पतन अवश्यभावी है । इस
लिये ये स्त्रियां पुरुषों का बंधन है । इसलिये (जस्स-यस्य) जिस मुनि
द्वारा (एया परिणगाया-एताः परिज्ञाताः) ये सर्वथा ज्ञ-परिज्ञा से इस
भव में तथा परभव में अनंत दुःखों के कारणरूप जानकर प्रत्याख्यान-
परिज्ञा से परिवर्जित कर दी जाती हैं (तस्स सामण्यं सुकृतं-तस्य
श्रामण्यं सुकृतम्) उस मुनि का साधुपना सफल है ।

भावार्थ—जिस प्रकार मृगादि पशुओं को पकड़ कर रखने के
लिये बाँसुरा (जाल) आदि बन्धन प्रसिद्ध हैं क्यों कि इन द्वारा पर-
तन्त्र किये वे स्वतन्त्र विहार से रहित हो जाते हैं, और अनेक प्रकार की
यातनाएँ सहन करते हैं इसी प्रकार पुरुषों का बंधन ये स्त्रियां हैं ।
इनके वश में पड़ा हुआ प्राणी परतन्त्र होकर अपनी स्वतन्त्रता-चारित्र्य

तेना वश थवाथी तेनुं नरक निगोद आदि दुर्गति रूप संसारमां पतन
अवश्यभावि छे भाटे स्त्रियो पुंशेनुं अंधन छे, आ भाटे जस्स-यस्य
ये मुनिद्वारा एयापरिणगाया-एताः परिज्ञाताः ये सर्वथा ज्ञ-परिज्ञाथी आ लंघ
तथा परभवमां अनंत दुःखेना कारणे रूप बाणीने प्रत्याख्यान परिज्ञाथी
परिवर्जित करी देवामां आवे छे, तस्स सामण्यं सुकृतं-तस्य श्रामण्यं सुकृतम्
येवा मुनिनुं साधुं पणुं संक्षणं छे.

भावार्थ—ये प्रकार मृग आदि पशुओंने पकड़ी राखवा भाटे लंघ
आदि अंधन प्रसिद्ध छे केम के, तेना द्वारा परतन्त्र कथोथी ते स्वतन्त्र
विहारथी रहित भनी लय छे अने अनेक प्रकारनी यातनाओ सहन करे छे,
आ रीते पुंशेनुं अंधन ओओ छे तेना वशमां पडेवा प्राणी परतन्त्र भनीने

अयं भावः—धर्ममर्यादानुवर्ती मुनिः—स्त्रीणामङ्गप्रत्यङ्गसंस्थानहस्तिविभ्रमा-
द्याधित्तविक्षेपकारिणीदृष्टाः कदाचिदपि न चिन्तयेत्, नापि कामबुद्ध्या मोक्ष-
मार्गकर्मकल्पासु तामु चक्षुरपि निक्षिपेत् किंत्वात्मानमेव पर्यालोचयेत्। एवं स्त्री
परीपहजयः स्यादिति ।

अत्र दृष्टान्तः प्रदर्शयते—

द्वादशतीर्थकरस्यामुपूज्यशासने चम्पानगरीं तदंशीयो रूपलावण्यसम्पन्नः,
सुजातसर्वाङ्गसुन्दरः, शशिसौम्याकारः, इष्टः, इष्टरूपः, कान्तः, कान्तरूपः, प्रियः,

इस का भाव यह है—धर्म मर्यादा अनुवर्तन करने वाला मुनि चित्त
को विक्षिप्त करने वाली स्त्रियों के अंग, प्रत्यंग की आकृति का, तथा
उनकी हांसी आदि क्रियाओं का एवं हाव विभाव आदि विलासों का
कभी भी विचार तक न करे, और न मोक्षमार्ग में कर्मस्वरूप
इनको विकारदृष्टि से देखे। जहाँ तक हो मुनिका यही कर्तव्य है कि
वह अपनी आत्मा का जिस तरह से कल्याण होता रहे, तथा जिन
विचारधाराओं से वह अहर्निश अपने गृहीत पथ पर अग्रगामी बना
रहे, इस प्रकार का ही प्रयत्न साधु को करते रहना चाहिये। यही
अपनी पर्यालोचना है ॥

दृष्टान्त—बाहर के तीर्थकर श्री वासुपूज्य स्वामी के शासन काल में
चम्पानगरी में इन्हीं का वंशज लावण्यपूर नामका एक राजा रहता था।

वह सुजातसर्वाङ्गसुन्दर—अर्थात् आकार से सर्वाङ्ग सुन्दर था,

आने लावाथं ऐ छे के—धर्म मर्यादानु अनुवर्तन करवावाणा मुनि चित्तने
विक्षिप्त करवावाणी स्त्रियोना अंग प्रत्यंगनी आकृतिनु तथा तेनी हांसी आदि
क्रियाओनु, अने लावण्य आदि विलासोने कही विचार सुद्धां पणु न करे.
मोक्षमार्गमां कर्मस्वरूप ओवी आ लावनाने विकार दृष्टिथी न जुओ. ओनुं
कर्तव्य छे के, ज्यां सुधी अनी शके त्यां सुधी पोताना आत्मानुं कल्याणु थतुं
रहे अने जे विचारधाराओथी ते डरडंभेश पोते अडणु करेल मार्ग उपर
अग्रगामी अनी रहे. आ प्रकारने जे विचार प्रयत्न साधुओ करवो जेधंओ
ओ जे तेमनी पर्यालोचना छे.

दृष्टान्त—बाहरेमा तीर्थकर श्री वासुपूज्य स्वामीना शासनकालमां यंथान-
नगरीमां तेमना जे वंशना लावण्यपूर नामना ओक राजा रान्य करता डता.
ते सुजातसर्वाङ्गसुन्दर अर्थात् आकारथी सर्वांग सुन्दर डता, ते सकलसमाजना
मनोरथ पूरुं करवावाणा लावाथी अधाने इष्ट डता, तेमनी आकृति मनोहर

प्रियरूपः, मनोज्ञः, मनोज्ञरूपः, सौम्यः, सुभगः, प्रियदर्शनः, सुरूपोः लावण्यपूर-
नामको नृप आसीत् । असीं नृपः सुभूमनामकस्य वासुपूज्यतीर्थकृतप्रथमगणधरस्य
समीपे धर्मदेशनां श्रुत्वा दीक्षितो जातः ।

स चैकदा भिक्षाचर्यां पर्यटन् श्रावकगृहं मत्वा वेश्यागृहं प्रविष्टः, तत्र सा काम-

वह सकल समाज का मनोरथ पूर्ण करनेवाला होने से सब को इष्ट था,
इसकी आकृति मनोहर होने से इष्टरूप था, तथा वह सबका सहायक
होने से कान्त अभिलषणीय था । वह कान्तरूप रूप से भी कान्त कम-
कमनीय था । वह सब जनों के उपकार करने में परायण होने से सबके
लिये प्रिय था । वह रूप से भी प्रिय होने से प्रियरूप था । सब के हित-
कारी होने से वह मनोज्ञ था । इसके देखने वाले के लिये यह चित्ता-
कर्षक होने से मनोज्ञ रूप था । दुःखियों का दुःख दूर करने वाला होने
से मनोऽम सबके मन में बसने वाला था । सकल जनमन के अनुकूल
आकृति वाला होने से मनोऽमरूप था, इसलिये वह सौम्य-भद्र
स्वभाव होने से समस्त जन का आह्लादक था । तथा कल्याण
मार्ग पर चलने वाला होने से सुभग था । वह प्रियदर्शन था अर्थात्
जो व्यक्ति इसे एकवार भी देख लेता तो पुनः उसे देखनेकी लालसा
उस के बनी रहती थी । वह सुरूप-लावण्य की राशि से भरपूर था ।
राजा ने सुभूम नाम के गणधर के पास जो वासुपूज्यतीर्थकर के प्रथम
गणधर ये धर्मदेशना सुनकर दीक्षा धारण करली ।

डोवाधी इष्टरूप होता. तथा तेजो अधाने सहायकरवावाणा डोवाधी कान्त अभि-
लषणीय होता. ते कान्तरूप रूपथी पञ्च कान्त-कमनीय होता. तेजो दरेक मनुष्य
पर उपकार करवाभां परायण्य डोवाधी दरेकने प्रिय होता. ते रूपथी पञ्च प्रिय
डोवाधी प्रियरूप होता. दरेकना हितचिंतक डोवाधी ते मनोज्ञ होता. तेमने
जेनारने तेजो चित्ताकर्षक डोवाधी मनोज्ञरूप होता, दुःखीजोना दुःख दूर
करवावाणा डोवाधी मनोऽम अर्थात् दरेकना मनभां वास करवावाणा होता. सकल
जनमननी अनुकूल आकृतिवाणा डोवाधी मनोऽमरूप होता, जे भाटे तेजो
सौम्य भद्रस्वभाव डोवाधी समस्तजनना आह्लादक होता. तथा कल्याण
मार्ग पर चलवावाणा डोवाधी सुभग होता तेजो प्रियदर्शनीय होता, अर्थात् जे को
तेने एकवार ज्ये तो इरीथी तेने जेवानी लालसा उत्पन्न थया करती. ते सुरूप-
रूपलावण्यथी भरपूर होता. राजज्ये सुभूम नामना गणधरनी पास के जे वासुपूज्य
तीर्थकरना प्रथम गणधर होता तेमनी धर्मदेशना सांभनीने दीक्षा धारण करी लीधी.

मञ्जरीनाम्नी वेद्या छावण्यपूरमुनेर्भनोहरं ययोरुपलावण्यसंस्थानादिकं विलोच्य
मोहिता जाता । अथ सा लावण्यपूरमुनिं प्रणम्य श्रुतिं द्वारदेशमागत्य सर्वाणि
निर्गमद्वाराणि पिधाय पुनस्तस्य समीपमागत्य सानुरागं पश्यन्ती सस्मितं वदति-
महात्मन् ! स्वल्पमेव कालं भवानत्र तिष्ठतु, यावन्निधामानयामि । तद्विनयवचनं
निशम्य लावण्यपूरमुनिस्तत्रैव तिष्ठति । सा च गृहाम्बन्तरगता मुनिसंगमाभिलाषिणी
भिसोपयोगिवस्तुग्रहणव्याजेन नृत्यन्तीव भवने चलन्ती, बाहुविक्षेपैः

एक समय की बात है कि जब ये भिक्षाचरी के लिये निकले तो वे श्रावक का घर जानकर वेद्या के घर में आहार पानी के लिये पहुंच गये । वहां वेद्या ने जब इन्हें आया हुआ देखा तो वह इन पर इनके सुन्दरातिमुन्दररूप को देखकर मोहित हो गई । वेद्या का नाम काममञ्जरी था । अब क्या था रूप का निधान जब घर के भीतर स्वयं आ गया है तो उसने विचार किया कि यह वापिस न हो जाय इस ख्याल से उठ कर उसने शीघ्र ही बाहिर निकलने के जितने भी द्वार थे वे सब द्वार बंद कर दिये । पश्चात् वह उन मुनिराज के पास आई और सानुराग उनकी ओर निहार कर मुस्कराती मुस्कराती कहने लगी कि-हे महात्मन् ! आप कुछ देर तक यहां ठहरिये-जब तक मैं भिक्षा लेकर आती हूं । मुनिराज उसके विनीत वचन सुनकर वे वहीं पर ठहरे रहे और वह मुनि के साथ संगम की अभिलाषा से घर के भीतर रही हुई आहार पानी लाने के वहाने से मकान में ऐसी चलने लगी कि जैसे मानो नाचती हो । कामराग के प्रकट

एक समय की बात है, न्यारे ते भिक्षाचर्या भाटे अहार नीकल्या
त्यारे श्रावकनुं घर जाणीने एक वेद्याना घरमां आहार पाणी भाटे अथ
अथथा. न्यारे वेद्याये मुनिने आवेला जेया त्यारे ते तेना इपलावण्यने जेध
तेना उपर मोहित अनि गर्ध. वेद्यानुं नाम काममञ्जरी इतुं. इधनुं निधान
न्यारे घरनी अंदर आवेल इतुं पछी आधी रहे थुं ? जेणे विचार कर्यो के,
मुनि पाछा न इरी जय जे वातना ज्यालधी उडीने तेणे तरत ज अहार
नीकणवाना जेटला रस्ता इता ते अथा अंध करी दीधा. पछी ते मुनिराजनी
पासे आवी अने विवेकपूर्वक डसती डसती सामे आवी अने मुनिराजनी
सामे जेध कडेवा लागी के, हे महात्मन् ! आप थोडीवार शेकाई नव त्यां हुं
भिक्षा लधने आवुं छुं. मुनिराज तेनां विनीत वचन सांभणीने इरवाज पासे
उला रहा अने ते वेद्या मुनिराजनी साथे संगमनी अभिलाषायी घरनी
अंदर आवी गर्ध. आहारपाणी लाववानां अहाने ते मकानमां जे रीते आवेवा

प्रावरणवसनापगमव्यक्तीकृताङ्गप्रत्यङ्गाच्छादनपरा कामरागं प्रदर्शयति । भोगाभिलापप्रकाशक मदनधनुःकल्पभ्रुकुटिविलाससहकृतशिथिलारुणनयननिपातैर्लावण्यपूरमुनेर्मनो हरन्तीव, रूपयौवनसौन्दर्यसम्पन्नसुकुमाराङ्गलीलाप्रदर्शनपरा कोकिलारावमधुरस्वरेण गायति । तदनु तनुनूतनविधिवर्णचित्रितरुचिरवसनाञ्चलस्फालनं प्रकुर्वती भूपणध्वनिमनोहरैश्वरणप्रचारणैर्मुनेः समीपमागत्य सा भृङ्गावलि-समाश्लिष्टकमलायमानलावण्यभरविद्योतितसुषुष्टरागोपगतकपोलपाली समालम्बितालकावलिबिभ्रूपितसमुज्ज्वलभ्रमाणवदना भुजादिनिजगात्राणि मोटयन्ती स्मरमदोन्मादेनापहतकृत्याकृत्यविवेकविज्ञाना गद्गदस्वरेण मुनिमभ्यर्थयति काम-

करने के अभिप्राय से अपने अंग एवं प्रत्यङ्ग को साड़ी के गिर जाने के छल से प्रकट कर फिर उन्हें वारं वार ढकने लगी । मानों मुनि के मन को हरती हो इस प्रकार वह उनके ऊपर, भोगाभिलाप सूचक एवं काम के धनुष जैसी भ्रुकुटी के विलास के साथ वर कुछर झुके हुए अरुण नयनों के विक्षेपों से प्रहार करने लगी । रूप, यौवन, एवं सौन्दर्य से संपन्न अपने सुकुमार अंगोंकी लीला के प्रदर्शन में तत्पर बनी हुई उसने फिर कोकिल के शब्दसमान मीठे स्वर से गाना गाना भी प्रारंभ कर दिया । पश्चात् शरीर पर पहिरे हुए नवीन बहुमूल्य रंग विरंगे वस्त्र के अंचल को हिलाती एवं भूपणों की ध्वनि से मनोहर पैरों को ठुमक ठुमक कर रखती हुई वह मुनि के समीप आकर गद्गद स्वर से कहने लगी । कहते हुए उसे जरा भी संकोच जो नहीं हुआ उसका कारण इसके ऊपर चढा हुआ काम का उन्माद था, इससे कृत्य और अकृत्य का विवेक विलस हो चुका था । भौरों से युक्त कमल जिस

लागी डे, लखे ते नाचती होय. कामराग प्रगट करवानी ध्विधाथी पोताना दरेक अंग प्रत्यंगने साडीना पडी लवाना अछानाथी प्रगट करी करीथी ते शरीरने वारंवार ढांकवा लागी लखे मुनिना मनने हरती होय ! आ प्रकारे ते मुनि उपर, भोगविलासनां सूचक ओवां कामना धनुष जेवी भ्रुकुटिना विलासनी साथे साथे नयनानां आषु डेकवा लागी. रूप, यौवन अने सौंदर्यथी संपन्न पोताना सुकुमार अंगोनी लीलाना प्रदर्शनमां तत्पर बनेली ते वेश्याजे डोडिलकंठ जेवा भीडा स्वरथी गायन गावानी शब्दात् करी. पछी शरीर उपर पडेरैला नवीन रंगवेरंगी वस्त्रोना छेडाने छेडावती तेमज धरेलुआओनी ध्वनीथी मनोहर पगोथी ठुमक ठुमक नाचती ते मुनिनी सामे आपीने ते गद्गद स्वर कडेवा लागी, कडेती वभते तेने जरा पणु सडैथ न थये तेनुं कारखु तेना उपर कामना उन्मादनी छाया डेलाछ गधं छती. आथी कृताकृत्यता लानने विवेक ते सुधी

મોગાય—“ મહાત્મન્ ! કામજ્વરભરેણ સંતપ્તમિદં મદન્નમધુના, દયસ્વ મમ ત્વ
શાન્ત્યૈ ” ઇત્યાદિવિવિધપ્રાર્થનાવચનૈર્વિવિધકામચેષ્ટાભિથ સા મુનિં ચારિત્રાન્ચા-
લ્ચયિતું પ્રવૃત્તા । તદા મુનિચિન્તયતિ—

ગણિકાસ્ત્રિયો દિ સ્વલુ નામ્નાઽવલા:૧, કાર્યેણ સવલા:૨, પ્રકૃતિવિપમા: ૩,
કપટપ્રેમગિરિનઘ: ૪, અપરાધસહસ્રગૃહા: ૫, પ્રભવ: (ઉત્પત્તિસ્થાનં) શોકસ્ય ૬,

પ્રકાર સુંદર માલૂમ પડતા હૈં ઉસકા મુગ્ધકમલ ખી કેશપંક્તિ સે
વિરાજિત હોંને સે ટીક ઁસા હી સુંદર માલૂમ પડતા થા । મુલ્ક કી
કપોલપાલી લાવણ્ય કે પ્રકર્ષ સે ચમક રહી થી । લલાઈ કો લિયે હુલ્ક
થી । કામ કે આવેશ સે યહ ક્ષણ૨ મેં જંભાઈ લેતી ઔર ક્ષણ૨ મેં
આલસ્ય મોડતી હુઈ ચોલી-મહાત્મન્ ! મેરા યહ શરીર ઇસ સમય
કામજ્વર સે સંતપ્ત હો રહા હૈં । અતઃ દયા કરો ઔર ઇસ કમજ્વર કો
શાન્ત કરો । ઇત્યાદિ વિવિધ પ્રાર્થના કે વચનોં ઁવં અનેકવિધ કામ
કી ચેષ્ટાઓં સે ઉસને મુનિ કો ઉનકે પવિત્ર ચારિત્ર સે ચલાયમાન
કરને કે લિયે કોશિશ કી, પરન્તુ મુનિરાજ ને ઉસ સમય ખી યહી
વિચાર કિયા કિ—

યે વેદ્યા સ્ત્રિયાં કેવલ નામ સે હી અવલા હૈં કાર્યસે નહીં ૧ । કાર્ય મેં
તો યે વડી ભારી સવલ હૈં ૨ । પ્રકૃતિ સે યે વિપમ હોતી હૈં ૩ । કપટ પ્રેમ
કી યે પહાડી નદિયાં હૈં જો શીઘ્ર હી શુષ્ક હો જાતો હૈં ૪ । હજારોં
અપરાધોં કી યે સ્થાન હૈં ૫ । શોક કી ઉત્પત્તિ કા યે સ્થાનમૂત હૈં ૬ ।

ગઈ હતી. લમરાથી શુભતું કમળ જે રીતે સુંદર દેખાય છે તેવી રીતે એવું
મુખ કમળ પણ કેશ પંક્તિથી વિરાલત હોવાથી એવું જ સુંદર દેખાતું
હતું. તેના મોઢા ઉપરની લાલીમા લાવણ્યથી ચમકી રહેલ હતી. કામના
આવેશથી એ ક્ષણ ક્ષણમાં અટકતી અને આગસ મરડતી યોલી. મહાત્મન્!
હું આ સમયે કામજ્વરથી પીડાઈ રહી છું આથી દયા કરી આ કામજ્વરને
શાંત કરો. ઇત્યાદિ વિવિધ પ્રાર્થના વચનોથી તેમજ અનેકવિધ કામચેષ્ટાથી
તેણે મુનિને તેના પવિત્ર ચારિત્રથી ચલાયમાન કરવાની કૌશિષ કરી. આ સમયે
મુનિરાજે એ વિચાર કર્યો કે,—

આ વેશ્યા સ્ત્રીઓ કેવળ નામથી જ અખળા છે, કાર્યથી નહીં ૧. કાર્યમાં
તો એ ઘણી ભારે સખળ છે ૨. પ્રકૃતિથી એ વિપમ હોય છે ૩. કપટ પ્રેમની એ
પહાડની નદીઓ જેવી છે, જે વહેલી સુકાઈ જાય છે ૪. હબરો અપરાધો
એ સ્થાન છે ૫. શોકની ઉત્પત્તિને જગાવનાર છે ૬. ખળનો વિનાશ કરનાર

विनाशो बलस्य, (बलहारकत्वात्) ७, मृना (वधस्थानं) पुरुषाणाम् ८, नाशो लज्जायाः—(लज्जारहितत्वात्, अस्याः संगे पुरुषस्य लज्जानाशाच्च) ९, मूलमविनयस्य १०, गृहं मायानाम् ११, खनिर्वैरस्य १२, भेदो मर्यादानाम्, (संयममर्यादाया विनाशहेतुत्वात्) १३, आश्रयो रागस्य, (आश्रयः स्थानं) १४, गृहं दुश्चरित्राणाम् १५, स्वलनाः ज्ञानस्य १६, विध्वंसनं ब्रह्मचर्यस्य १७, विघ्नो-धर्मस्य १८, अरिः साधूनाम् (मोक्षमार्गसाधकानां चारित्र्यप्राणविनाशकत्वात्) १९, दूषणं ब्रह्मचारिणाम् २०, कारणं कर्मरजसः २१, अर्गला मोक्षमार्गस्य २२, भवनं दुर्गुणस्य २३, मत्तगजवन्दनपरवशाः २४, व्याघ्रीवद् दुष्टहृदयाः २५ तृणच्छन्न-कूपवद् अप्रकाशान्तःकरणाः २६, कारीपाग्निवदन्तर्दहनशीलाः २७, अन्तर्दुष्टत्र-

बल को विनाश करने वाली हैं ७। पुरुषों के मन की हत्या करने के लिये ये वधस्थान हैं ८। लज्जा की विनाशक हैं ९। अविनय की ये मूल कारण हैं १०। माया का तो यहां खजाना ही भरा रहता है ११। वैर विरोध आदि जितने भी अनर्थ दुनियां में होते हैं उन सब में ये प्रधान रहा करती हैं अतः ये उनकी खान हैं १२। संयममर्यादा का भंग करने वाली हैं १३। राग का ये स्थान हैं १४। दुश्चरित्रों की तो ये पेटी हैं १५। ज्ञान की स्वलना करनेवाली हैं १६। ब्रह्मचर्य की आंखें कैसे फोड़ी जाती हैं इस बात में ये बड़ी होशियार होती हैं १७। धर्म की विघ्नभूत है १८। साधुओं के लिये शत्रुसमान हैं १९। ब्रह्मचारियों के लिये दूषणरूप है २०। कर्मरज की कारण २१, एवं मुक्तिमार्ग की ये आर्गला हैं २२। ये दुर्गुणों के भवन हैं २३। मत्तगजराज के समान हैं २४। व्याघ्री के समान दुर्हृदयवाली हैं २५। तृण से ढके हुए कूप के समान हैं २६। करीपाग्नि के समान अन्तर्दहन-

छे ७. पुत्र्योना मननी हत्या करनार अे वधस्थान छे ८. लज्जानो नाश करनार छे ९, अविनयतुं अे भूण छे १०. मायानो तो अे भवनो छे ११. वैर विरोध आदि नेटला अनर्थ दुनियांमां छे ते सधणा अनर्थोनुं उद्गम स्थान छे १२. आथी ते अे अनर्थोनी भाषु छे, संयममर्यादानो भंग करनार छे १३. रागतुं अे स्थान छे १४. दुश्चरित्रोनी तो अे पेटी छे १५. ज्ञानो नाश करनार छे १६. ब्रह्मचर्यनी आंखे शत्रुसमानी छे १७. अे महा यपण डोय छे, धर्ममां विघ्न करानारी छे. १८. साधुओ माटे शत्रु समान छे १९. ब्रह्मचारियो माटे कलंक छे २०. कर्मरजतुं कारण छे २१. मुक्ति मार्गमां अर्गला छे २२. दुर्गुणोनी भाषु छे २३. मत्त गजराज समान छे २४. वाघनेवी दया वगरनी छे २५. घासथी ढंकायेला कुवा नेवी छे २६. क्षुपा-

भोगाय—“ महात्मन् । कामज्वरभरेण संतप्तमिदं मदङ्गमधुना, दयस्व मम ताप शान्त्यै ” इत्यादिविधप्रार्थनावचनेर्विनिधकामचेष्टाभिध सा मुनिं चारित्रान्वा-
च्छयितुं प्रवृत्ता । तदा मुनिश्चिन्तयति—

गणिकास्त्रियो हि खलु नाम्नाऽवलाः १, कार्येण सवलाः २, प्रकृतिविपमाः ३,
कपटप्रेमगिरिनद्यः ४, अपराधसहस्रगृहाः ५, प्रभवः (उत्पत्तिस्थानं) शोकस्य ६,

प्रकार सुन्दर मातूम पढ़ता है उसका मुखकमल भी केशपंक्ति से
विराजित होने से ठीक ऐसा ही सुन्दर मातूम पढ़ता था । मुख की
कपोलपाली लावण्य के प्रकर्ष से चमक रही थी । ललाई को लिये हुए
थी । काम के आवेश से यह क्षणर में जंभाई लेती और क्षणर में
आलस्य मोड़ती हुई बोली—महात्मन् ! मेरा यह शरीर इस समय
कामज्वर से संतप्त हो रहा है । अतः दया करो और इस कामज्वर को
शान्त करो । इत्यादि विविध प्रार्थना के वचनों एवं अनेकविध काम
की चेष्टाओं से उसने मुनि को उनके पवित्र चारित्र से चलायमान
करने के लिये कोशिश की, परन्तु मुनिराज ने उस समय भी यही
विचार किया कि—

ये वेदया स्त्रियां केवल नाम से ही अबला हैं कार्यसे नहीं १ । कार्य में
तो ये बड़ी भारी सवला हैं २ । प्रकृति से ये विपम होती हैं ३ । कपट प्रेम
की ये पहाड़ी नदियां हैं जो शीघ्र ही शुष्क हो जाती हैं ४ । हजारों
अपराधों की ये स्थान हैं ५ । शोक की उत्पत्ति का ये स्थानभूत हैं ६ ।

गर्भ छती. लभराथी शुंजतुं कभण ने रीते सुंदर देभाय छे तेवी रीते अंबुं
मुण कभण पणु केश पंडितथी विरालत होवाथी अंबुं व सुंदर देभातुं
छतुं. तेना मोढा उपरनी लालीमा लावण्यथी चमकी रडेल छती. कामना
आवेशथी अे क्षण क्षणमां अटकती अने आणस भरउती जोली. महात्मन्!
हुं आ समये कामज्वरथी पीकाई रही छुं आथी दया करी आ कामज्वरने
शांत करे. इत्यादि विविध प्रार्थना वचनेथी तेमज्व अनेकविध कामचेष्टाथी
तेछे मुनिने तेना पवित्र चारित्रथी चलायमान करवानी केशिप करी. आ समये
मुनिराजे अे विचार कथे के,—

आ वेस्था स्त्रीयो केवण नामथी ज अणजा छे, कार्यथी नहीं १. कार्यमां
तो अे धणी लारे सभण छे २. प्रकृतिथी अे विपम होय छे ३. कपट प्रेमनी अे
पहाडनी नदीयो नेवी छे, ने वडेली सुकाई नथ छे ४. उन्वारे अपराधीतुं
अे स्थान छे ५. शोकनी उत्पत्तिने जगावनार छे ६. अणने विनाश करनार

४७, परदोषप्रकाशिकाः ४८, अरज्जुकाः पाशाः (रज्जुकं विना बन्धनरूपाः)
 ४९, कृतपापपश्चात्तापवर्जिताः ५०, अकार्यप्रवृत्तिशीलाः ५१, अनामका व्याधयः
 ५२, अरूपा उपसर्गाः (अनुकूलोपसर्गभूताः) ५३, चित्तविक्षेपकारिकाः ५४,
 अनभ्रका विद्युतः ५४, समुद्रवेगाः, (केनापि निरोद्धमशक्यत्वात् ५६ । उक्तञ्च—

न तथाऽस्य भवेन्मोहो बन्धश्चान्यप्रसङ्गतः ।

योपित्संगाद् यथा पुंसो यथा स्त्रीसंगिसंगतः ॥ १ ॥

पदाऽपि युवतीं भिक्षुर्न स्पृशेद्दारवीमपि ।

स्पृशन् करीव बध्येत करिण्या अङ्गसंगतः ॥ २ ॥

के दोषों को प्रकाशित करने वाली हैं ४८ । ये विना दोरी के पाशातुल्य हैं ५९ । किये हुए पापों के पश्चात्ताप से वर्जित ५०, एवं अकार्य में प्रवृत्ति करने वाली होती हैं ५१ । विना नाम की ये व्याधियां हैं ५२ । विना आकृति के उपसर्ग समान हैं ५३ । चित्तको विक्षेप करने वाली हैं ५४ । विना वादलों की ये विद्युत् हैं ५५ । किसी से भी इनका वेग रोका नहीं जा सकता, इसलिये ये समुद्र के वेग जैसी हैं ५६ । कहा भी है—

न तथाऽस्य भवेन्मोहो बन्धश्चान्यप्रसंगतः ।

योपित्संगाद् तथा पुंसो, यथा स्त्रीसंगिसंगतः ॥ १ ॥

पदाऽपि युवतीं भिक्षुर्न स्पृशेद्दारवीमपि ।

स्पृशन् करीव बध्येत, करिण्या अंगसंगतः ॥ २ ॥

अर्थात्—पुरुष को स्त्री के संग से तथा विषयविलासी के संग से जिस प्रकार का मोह और बन्ध होता है उस प्रकार का मोह और

स्वप्नमां तेमञ्च भिन्नामां छेद छेद कशवनारी छे ४७, भीजना दोषोने प्रका-
 शित करवावाणी छे ४८, दोरी वगरना झंसला जेवी छे ४९, करेला पापोना
 पश्चात्तापथी दूर रहेनारी छे ५०, अकार्यमां प्रवृत्ति करनार डोय छे ५१, नाम
 वगरनेो जे शैग छे ५२, आकृति वगरनेो उपसर्ग छे ५३, चित्तने व्यञ्ज अना-
 वनार छे ५४, वादण वगरनी विजणी जेवी छे, कौधथी तेनेो वेग शैकी
 शकतेो नथी आ कारणे ते समुद्रना वेग जेवी छे, कहुं छे ६—

न तथाऽस्य भवेन्मोहो बन्धश्चान्य प्रसंगतः ।

योपित्संगाद् तथा पुंसो, यथा स्त्री संगिसंगतः ॥ १ ॥

पदाऽपि युवतीं भिक्षुर्न स्पृशेद्दारवी मपि ।

स्पृशन् करीव बध्येत, करिण्या अंग संगतः ॥ २ ॥

पुश्यने चिना संगथी तेमञ्च विषय विलासीना संगथी जे प्रकारनेो मोह
 अने अंध थाय छे, ते प्रकारनेो मोह अने अंध भीजथी थतेो नथी, आ

ળવત્ક્રુથિતહૃદયા:૨૮, સન્ધ્યાપ્રરાગચન્દ્રાહૃતરાગા:૨૯, સમુદ્રવીચિવચલસ્વભાવા:૩૦, કૃષ્ણસર્પવનિરજુકમ્પા: ૩૧, સલિલવન્નિમ્નગામિન્ય: ૩૨, કૃષ્ણવદુષ્ણાન-
હસ્તા: ૩૩, નરકયત્ ત્રાસોત્પાદિકા: ૩૪, દુષ્ટાશ્વયદ્ દુર્દમા: ૩૫, બાલવત્ સ્ત્ર
રુષ્ટતુષ્ટા: ૩૬, અન્ધકારવદ્ દુષ્પ્રવેશા: ૩૭, વિપવહ્લીવદ્ અનાશ્રયણીયા: ૩૮,
કિંપાકફલતુલ્યમુલમધુરા: ૩૯, રાક્ષસીવદ્ અકાલચારિણ્ય: ૪૦, દુરુપચારા:૪૧,
અગમ્ભીરા: ૪૨, અવિશ્વસનીયા: ૪૩, અરતિકરા: ૪૪, રૂપસૌભાગ્યમદ-
મત્તા:-(રૂપં-સુન્દરાકૃતિ:, સૌભાગ્યં-સ્વકીર્તિશ્રવણાદિરૂપં, મદો-મનમયજગર્ભ:,
તૈર્મત્તા:) ૪૫, યુજગગતિવત્ કુટિલહૃદયા: ૪૬, કુલસ્વજનમિત્રભેદનકારિકા:

શીલ છે ૨૭ । ખીતર કે ઘાવ કી તરહ ક્રુથિત હૃદયવાલી છે ૨૮ । સંધ્યારાગસમાન છે ૨૯ । સમુદ્ર કી તરહ કે સમાન ચંચલ સ્વભાવ વાલી છે ૩૦ । કૃષ્ણસર્પ કે સમાન ભયંકર છે ૩૧ । જલ કે સમાન નીચે કી ઓર જાને વાલી છે ૩૨ । કૃષ્ણ કી તરહ ઉત્તાન હાથોવાલી અર્થાત્ હર સમય 'લાવ-લાવ' કરને વાલી છે ૩૩ । નરક કે તુલ્ય કષ્ટ દેનેવાલી છે ૩૪ । દુષ્ટ ઘોડે કી તરહ દુર્દમ છે ૩૫ । બાલક કે સમાન ક્ષણર મેં રુષ્ટ એવં તુષ્ટ હોનેવાલી છે ૩૬ । અન્ધકાર કી તરહ દુષ્પ્રવિશ્ય છે ૩૭ । વિપવહ્લી કી તરહ આશ્રય લેને યોગ્ય નહીં છે ૩૮ । કિંપાક ફલ કી તરહ આદિ મેં મધુર છે ૩૯ । રાક્ષસી કી તરહ અકાલ મેં ચલને વાલી છે ૪૦ । દુરુપચાર ૪૧, અગમ્ભીર ૪૨, અવિશ્વસનીય ૪૩, ઓર અરતિકર છે ૪૪ । રૂપ, સૌભાગ્ય તથા મદ સે સદા ઉન્મત્ત છે ૪૫ । સર્પ કી ગતિ કે સમાન કુટિલ મનવાલી છે ૪૬ । કુલ મેં, સ્વજન મેં, એવં મિત્રો મેં છેદ-ભેદ કરને વાલી છે ૪૭ । દૂસરો

યેવા છાણુના અગ્નિ માફક બાળવાવાળી છે ૨૭. અંદરના ઘાના જેવી દુર્ગંધીમાં ક્રુથિત જેવા હૃદયવાળી છે ૨૮. સંધ્યાના રંગ જેવી છે ૨૯. સમુદ્રના તરંગોની માફક ચંચલ સ્વભાવવાળી છે ૩૦. કાળા સર્પ જેવી ભયંકર છે ૩૧. જળની માફક નીચે જનારી છે ૩૨. કૃષ્ણની માફક ઉત્તાન હાથવાળી અર્થાત્ હર સમય લાવ લાવ કરવાવાળી છે ૩૩. નરકના જેવાં દુ:ખો દેનારી છે ૩૪. દુષ્ટ ઘોડાના જેવી દુર્દમ છે ૩૫. બાળકની માફક ઘડીમાં રીસાનાર અને ઘડીમાં હસનાર છે ૩૬. અંધકારના જેવી બીહામણી છે ૩૭. વિપવેલના જેવી આશ્રય લેવાય તેવી નથી ૩૮. કિંપાક ફળની માફક શરૂમાં મધુર છે ૩૯. રાક્ષસીની માફક અકાળમાં ચાલવાવાળી છે ૪૦. દુરુપચાર છે ૪૧, અગમ્ભીર છે ૪૨, અવિશ્વસનીય છે ૪૩, અરતિકર છે ૪૪, રૂપ, સૌભાગ્ય તથા મદથી સદા ઉન્મત્ત છે ૪૫, સર્પની ગતી સમાન કુટિલ મનવાળી છે ૪૬.

भ्रमरि ! इदमब्रह्मचर्यं महापुरुषैरनाचरितं, जन्मजरामरणदायकं कातरपुरुषसेवितं प्रमादबहुलं तपःसंयमविघ्नभूतमधर्मद्वारम्, पङ्कपनकपाशजालतुल्यम् । अस्य खलु अब्रह्मचर्यस्य फलविपाकोनरकनिगोदाद्यनन्तदुखरूपो महादारुणः, पल्योपमसागरोपमकालेनाप्यमुच्यमानाऽशातवेदनारूपः, तस्माद् विरम्यतामस्मात्पापाचरणात्,

फिर अपनी अमृततुल्य वाणी से समझाना प्रारंभ किया । कहा-हे देवानुप्रिये ! तुम क्या करने के लिये उद्यत हो रही हो । तुम्हें क्या मालूम नहीं है कि कुशीलसेवन का मार्ग महापुरुषों से अनाचरित है । इस में ऐसा कोई भी लाभ नहीं है जो आत्मा को हितकारक हो । इस से जन्म जरा एवं मरण व कष्टों को भोगने के सिवाय कुछ नहीं मिलता है । ब्रह्मचर्य में जो कायर हैं वे ही इसमें आनंद मानते हैं । ये विषयभोग प्रमादबहुल एवं तप तथा संयम के पालन में प्रयत्न अन्तरायस्वरूप हैं । अधर्म के प्रधान मार्ग हैं । यह कुशीलसेवन पंक - कीचड़, पनक-काई तथा जाल के समान है । अर्थात् इसमें मनुष्य गड़ जाता है, फिसल जाता है, और बंध जाता है । इस अब्रह्मचर्य सेवन का फल जीवों को नरक निगोद के अनंत दारुण दुःखों के भोगने के रूप में प्राप्त होता है ।

इसके सेवन के फलस्वरूप अशातवेदनाएँ पल्योपम सागरोपम तक भोगनी पडती हैं, इस लिये इस पापाचरण से विरक्त होने में ही

आरंभ कर्यो, अने कहूँ ! हे देवानुप्रिये ! तुं शुं करवा भाटे प्रवृत्त भनी छे ? तने शुं भणर नथी छे, कुशील सेवनने भागं भडापुइये आचरवा योज्य नथी । तेमां केछि अवेदा लाल नथी के आत्माने छितकारक छेय, अनेथी जन्म, जरा अने मरखुनां दुःखो लोगववा सीवाय भीलुं कंछि भणतुं नथी । अब्रह्मचर्यमां के कायर छेय छे तेज आमां आनंद माने छे । आ विषयभोग प्रमाद तप तथा संयमना पालनमां प्रणण अंतराय स्वरूप छे । अधर्मने प्रधान भागं छे, आ कुशील सेवन क्रियड, भाछि, तथा लण समान छे । अर्थात्-मनुष्य तेमां गणडी लय छे, इसाछि लय छे, भंघाछि लय छे । आ अब्रह्मचर्य सेवनतुं इण लुवोने नरक निगोदना अनंत दारुण दुःखोने लोगववाना रूपमां प्राप्त थाय छे । आना सेवनना इण स्वरूप आशातवेदनायो पल्योपम सागरोपम सुधी लोगववी पडे छे । भाटे आ पापाचरणथी विरक्त थवामां ज

તથૈવ પુરુપસંગઃ સાધ્વીનામપિ । ઉક્તञ્ચ—

ઘૃતકુમ્ભસમા નારી તપ્તાદ્ગારસમઃ પુમાન્ ।

તસ્માદ્ ઘૃતં ચ વહ્નિં ચ, નૈકત્ર સ્થાપયેદ્ બુધઃ ॥ ૧ ॥

હત્યેવં વિચિન્ત્યાસી મુખાધારાસારયા પ્રવચનસારયા ગિરા તાં પ્રતિબોધવતિ ।

યન્ધ દૂસરે સે નહીં હોતા હૈ ॥ ૧ ॥ ફસલિયે મુનિ કો ચાહિયે કો વહ ફાષ્ટ કી પુતલી કો 'મી પૈર સે 'મી સ્પર્શ ન કરે, અગર સ્પર્શ કરે તો જિસ પ્રકાર હથની કે અંગસ્પર્શ સે હાથી યન્ધ જાતા હૈ ઉસી પ્રકાર મુનિ મી કામરાગ મેં ઘંધ જાતા હૈ ॥ ૨ ॥

ફસી પ્રકાર સાધ્વિયોં કે લિયે 'મી પુરુપોં કા સંગ વર્જનીય હૈ । ક્યોં કિ—પુરુપ કા સંગ સાધ્વી કે વ્રહ્મચર્ય કે નાશ મેં અસાધારણ હેતુ હૈ । કહા મી હૈ—

“ ઘૃતકુમ્ભસમા નારી, તપ્તાદ્ગારસમઃ પુમાન્ ॥

તસ્માદ્ ઘૃતં ચ વહ્નિં ચ, નૈકત્ર સ્થાપયેદ્ બુધઃ ॥ ૧ ॥

અર્થાત્—સ્ત્રી ઘી કે 'મરે હુણ ઘડે કે સમાન હૈ ઓર પુરુપ પ્રજ્વલિત અદ્ગાર કે સમાન હૈ । ફસલિયે વિદ્વાન્ કો ચાહિયે કિ ઘૃત ઓર અગ્નિ કો ઈક જગહ નહીં રક્લે ।

ફસ પ્રકાર ઉન લાવણ્યપૂર મુનિરાજ ને વિચાર કિયા । વિચાર કરને કે પશ્ચાત્ કામ સે અતિ વિહલ વની હુઈ ઉસ વેદ્યા કો ઉન્હોં ને

માટે મુનિઓએ લાકડાની પુતળીનો પગથી પણ સ્પર્શ ન કરવો જોઈએ. કારણ કે, સ્પર્શ કરવાથી જેમ હાથી હાથણીના અંગસ્પર્શથી બંધાઈ બચ છે, એવ રીતે મુનિ પણ કામ રાગમાં બંધાઈ બચ છે.

કહ્યું છે કે—આ પ્રકારે સાધ્વિઓને માટે પણ પુરુષોનો સંગ તજવા યોગ્ય છે, કારણ કે પુરુષનો સંગ સાધ્વિને બ્રહ્મચર્યના નાશમાં અસાધારણ હેતુ છે કહ્યું પણ છે—

ઘૃતકુમ્ભસમા નારી, તપ્તાદ્ગારસમઃ પુમાન્ ।

તસ્માદ્ ઘૃતં ચ વહ્નિં ચ, નૈકત્ર સ્થાપયેદ્ બુધઃ ॥ ૧ ॥

સ્ત્રી ઘીના ભરેલા ઘડા સમાન છે અને પુરુષ પ્રજ્વલિત અગ્નિ સમાન છે, માટે વિદ્વાને બાણવું જોઈએ કે ઘી અને અગ્નિને એક સ્થળે ન રાખે.

આ પ્રકારે તે લાવણ્યપૂર મુનિરાજે વિચાર કર્યો વિચાર કરીને પછીથી કામવિહાણ બનેલી તે વેશ્યાને પોતાની અમૃતતુલ્ય વાણીથી સમબલવાનો

टीका—‘एग’ इत्यादि ।

लाढः=अयं देशीयः शब्दः, लाढः=प्रासुकैपणीयाहारेणात्मनिर्वाहको मुनिः
 परीपहान्=धुत्पिपासादीन् अभिभूय=विजित्य, ग्रामे=अल्पजननिवासस्थाने, वा=
 अथवा नगरे=प्राकारवेष्टितेऽपि, वा=अथवा निगमे=त्रिणिगजनस्थाने, वा=अथवा
 राजधान्याम्=राजस्थाने, उपलक्षणमेतत् तेन मडम्बादिषु वा, एषु ग्रामादिषु यत्र
 कुत्रापि स्थाने, एकः=रागद्वेपरहितः, यद्वा-योग्यसहायस्योलाभे एकः=एकाकी,
 चरेदेव=अप्रतिबद्धविहारेण चर्यां कुर्यादेव ।

मुनि का एक जगह रहतेर अरति आदि प्रसंग प्राप्त हो सकता है इसलिये उसे ग्रामानुग्रामविहाररूप चर्या करनी चाहिये । इस प्रकार चर्याके करने से ही नौवें चर्यापरीपह पर विजय पाई जाती है, इसी बात को इस गाथा द्वारा सूत्रकार प्रदर्शित करते हैं—‘एग एव चरे’-इत्यादि ।

अन्वयार्थ—(लाढे-लाढः) ‘लाढ’ यह देशीय शब्द है । ‘प्रासुक एपणीय आहार से अपना निर्वाह करने वाला मुनि’ ऐसा इसका अर्थ है, अतः ऐसा मुनि (परीसहे-परीपहान्) धुत्पिपासा आदि परीपहों को (अभिभूय-अभिभूय) जीतकर (ग्रामे वा नगरे वाचि निगमे वा राय-हाणिए-ग्रामे वा नगरे वाऽपि निगमे वा राजधान्याम्) थोड़े जनों का जिसमें निवास है ऐसे ग्राम में, अथवा प्राकार से जो वेष्टित है ऐसे नगर में, अथवा व्यापारी जनोंके स्थानभूत ऐसे निगम में, अथवा राजा का जहां रहना हो रहा है ऐसी राजधानी में, उपलक्षण से मडंब आदि

मुनिने એક જગ્યાએ રહેવાથી અરતિ વગેરેના પ્રસંગ પ્રાપ્ત થઈ શકે છે તેથી તેણે એક ગામથી બીજા ગામ વિહાર રૂપી ચર્યા કરવી જોઈ એ આ પ્રકારની ચર્યાને કરવાથી જ નવમા ચર્યાપરીપહ ઉપર વિજય પ્રાપ્ત થાય છે આ વાતને સૂત્રકાર આ ગાથા દ્વારા પ્રદર્શિત કરે છે—એગ એવ ચરે—ઇત્યાદિ.

અન્વયાર્થ—લાઢે-લાઢઃ “લાઢ” એ દેશીય શબ્દ છે. ‘પ્રાસુક એપણીય આહારથી પોતાનો નિર્વાહ કરવાવાળા મુનિ’ એવો આનો અર્થ છે, એટલે આવા મુનિ પરીસહે-પરીપહાન્ ધુત્પિપાસા આદિ પરીપહોને અભિભૂય-અભિભૂય છતીને ગામે વા નગરે વાચિ નિગમેવા રાયહાણિએ-ગ્રામે વા નગરે વાઽપિ નિગમે વા રાજધાન્યામ્ થોડા માણસો જેમાં રહેતા હોય તેવા ગામમાં, અથવા કોટથી ઘેરાયેલ હોય તેવા નગરમાં, અથવા વેપારી જનોનો જેમાં વાસ હોય તેવા નિગમમાં, અથવા રાજા ન્યાં રહેતો હોય તેવી રાજધાનીમાં, ઉપલક્ષણથી મડંબ આદિ સ્થાનોમાં આવા

एवं मुनिवचनं श्रुत्वा सा वेश्या हतमनोरथा जाता, तदनन्तरमसौ कोप-
वेशेन यष्टिमुष्ट्यादिभिर्मर्मणि गाढमहारं कृतवती । तदाऽसौ मुनिर्निर्गमनोपायमन-
वलोक्य ब्रह्मचर्यं परिरक्षयन् तामुज्ज्वलवेदनां शुभाध्यवसायेन सहमानः क्षप-
कश्रेणिमाल्शोऽन्तर्मुहूर्तेनैव प्राप्तकेवलज्ञानः कालं कृत्वा मोक्षं प्राप्तवान् । एवमन्यैरपि
मुनिभिः स्त्रीपरीपहः सोढव्यः ॥ १७ ॥

एकत्र स्थितस्य मुनेररत्यादिप्रसङ्गः स्यात्, अतो ग्रामानुग्रामविहारस्या
चर्या कार्येति चर्याकरणेनैव चर्यापरीपहः सोढव्य इत्याह—

मूढम्—एंग एंव चरे लाढे, अभिभूय परीसंहे ।

गाँमे वा नंगरे वावि, निगमे वां रायहोणिण ॥१८॥

छाया—एक एव चरेत् लाढः, अभिभूय परीपहान् ।

ग्रामे वा नगरे वाऽपि, निगमे वा राजधान्याम् ॥ १८ ॥

तेरा कल्याण है । इस प्रकार मुनि के वचनों को सुनकर वेश्या बड़ी
लज्जित हुई । कोप के आवेश में आकर वह मुनिराज पर घोर उपसर्ग
करने लगी । उन मुनि को यष्टि एवं मुष्टि आदि के प्रहारों से मर्म स्थलों में
आघात पहुँचाया । मुनि महाराज ने वहाँ से निकलना चाहा परन्तु
निकलने के जितने भी दरवाजे थे वे सब पहिले से ही बंद किये जा
चुके थे, अतः वहाँ से निकलने का जय उन्हें कोई उपाय नहीं सूझा तो
अपने ब्रह्मचर्य की रक्षा में शुभाध्यवसाय से जीवन को समर्पित करते हुए
उन्होंने ने क्षपकश्रेणिपर आरोहण किया और अन्तर्मुहूर्त में केवल ज्ञान
की प्राप्ति कर मुक्ति का लाभ कर लिया । इसी प्रकार अन्यमुनिजनों
को भी इस स्त्रीपरीपह को जीतना चाहिये ॥ १७ ॥

तां कल्याण छे. आ प्रकारनां मुनिनां वचनाने सांलणी वेश्या भूय लज्जार्ध
गर्ध अने कोपना आवेशमां आवीने ते मुनिराज ने घोर उपसर्ग आपवा लागी.
मुनिना भर्मस्थानोमां मुठीओथी अने पगनी लातोथी आघात पडोआउथे.
मुनिराजे त्यांथी नीकणवा आधुं परंतु नीकणवाना नेटला रस्ता हुता ते पडे-
वेथी न भंघ करी हेवामां आओया हुता. आथी ज्ये स्थणेथी नीकणवानो केध
पथु भागं न सुज्ये त्यारे पोताना प्रह्वचर्यनी रक्षा माटे तेमछे शुभ अध्व
वसायथी एवनतुं समर्पण करीने क्षपकश्रेणी पर आरोहण कथुं अने अंत
मुहूर्तमां केवणज्ञाननी प्राप्ति करी मुक्तिने लाभ लीधा. आ रीते अन्य मुनि-
जनोअे पथु स्त्री परीपहने एतवे नेध अे. ॥ १७ ॥

टीका—‘एग’ इत्यादि ।

लाढः=अयं देशीयः शब्दः, लाढः=प्रासुकैपणीयाहारेणात्मनिर्वाहको मुनिः
परीपहान्=क्षुत्पिपासादीन् अभिभूय=विजित्य, ग्रामे=अल्पजननिवासस्थाने, वा=
अथवा नगरे=प्राकारवेष्टितेऽपि, वा=अथवा निगमे=त्रिणिगजनस्थाने, वा=अथवा
राजधान्याम्=राजस्थाने, उपलक्षणमेतत् तेन मडम्बादिषु वा, एषु ग्रामादिषु यत्र
कुत्रापि स्थाने, एकः=रागद्वेपरहितः, यद्वा-योग्यसहायस्योलाभे एकः=एकाकी,
चरेदेव=अप्रतिवद्धविहारेण चर्यां कुर्यादेव ।

मुनि का एक जगह रहतेर अरति आदि प्रसंग प्राप्त हो सकता है
इसलिये उसे ग्रामानुग्रामविहाररूप चर्या करनी चाहिये । इस प्रकार
चर्याके करने से ही नौवें चर्यापरीपह पर विजय पाई जाती है, इसी बात
को इस गाथा द्वारा सूत्रकार प्रदर्शित करते हैं—‘एग एव चरे’—इत्यादि ।

अन्वयार्थ—(लाढे—लाढः) ‘लाढ’ यह देशीय शब्द है । ‘प्रासुक एपणीय
आहार से अपना निर्वाह करने वाला मुनि’ ऐसा इसका अर्थ है,
अतः ऐसा मुनि (परीसहे—परीपहान्) क्षुत्पिपासा आदि परीपहों को
(अभिभूय—अभिभूय) जीतकर (ग्रामे वा नगरे वाचि निगमे वा राय-
हाणिए—ग्रामे वा नगरे वाऽपि निगमे वा राजधान्याम्) थोड़े जनों का
जिसमें निवास है ऐसे ग्राम में, अथवा प्राकार से जो वेष्टित है ऐसे
नगर में, अथवा व्यापारी जनोंके स्थानभूत ऐसे निगम में, अथवा राजा
का जहां रहना हो रहा है ऐसी राजधानी में, उपलक्षण से मडंब आदि

मुनिने એક જગ્યાએ રહેવાથી અરતિ વગેરેના પ્રસંગ પ્રાપ્ત થઈ શકે છે
તેથી તેણે એક ગામથી ખીલત ગામ વિહાર રૂપી ચર્યા કરવી જોઈ એ આ
પ્રકારની ચર્યાને કરવાથી જ નવમા ચર્યાપરીપહ ઉપર વિજય પ્રાપ્ત થાય છે
આ વાતને સૂત્રકાર આ ગાથા દ્વારા પ્રદર્શિત કરે છે—एग एव चरे—इत्यादि.

अन्वयार्थ—लाढे—लाढः “लाढ” એ દેશીય શબ્દ છે. ‘પ્રાસુક એપણીય
આહારથી પોતાનો નિર્વાહ કરવાવાળા મુનિ’ એવો આનો અર્થ છે, એટલે આવા મુનિ
પરીસહે—પરીપહાન ક્ષુત્પિપાસા આદિ પરીપહોને અભિભૂય—અભિભૂય છતીને
ગામે વા નગરે વાચિ નિગમેવા રાયહાણિય—ગામે વા નગરે વાઽપિ નિગમે વા રાજધાન્યામ્
થોડા માણસો જેમાં રહેતા હોય તેવા ગામમાં, અથવા કોટથી ઘેરાયેલા હોય
તેવા નગરમાં, અથવા વેપારી જનોનો જેમાં વાસ હોય તેવા નિગમમાં, અથવા રાજ
ન્યાં રહેતો હોય તેવી રાજધાનીમાં, ઉપલક્ષણથી મડંબ આદિ સ્થાનોમાં આવા

तथा चाग्रे वक्ष्यति—

न वा लभिज्जा निउणं सहायं, गुणाहियं वा गुणओ समं वा ।

एगो वि पावाइँ विवज्जयंतो, विहरेज्ज कामेसु असज्जमाणो ॥ १ ॥

(उक्त. ३२ अ. ५ गा.)

छाया—न वा लभेत् निपुणं सहायं, गुणाधिकं वा गुणतः समं वा ।

एकोऽपि पापानि विवर्जयन्, विहरेत् कामेषु असज्ज ॥

उक्तमन्यत्रापि—

ग्रामाद्यनियतस्थायी, स्थानबन्धविवर्जितः ।

चर्यामेकोऽपि कुर्वीत, विविधाभिग्रहैर्युतः ॥ १ ॥ इति ।

स्थानों में जहां कहां भी वह (एग एव चरे—एकाकी एव चरेत्) राग द्वेष से रहित होकर समुदाय के साथ अथवा योग्य सहाय के अभाव में अप्रतिबंध विहार से अकेला ही विचरे । कहा भी है—

न वा लभिज्जा निउणं सहायं, गुणाहियं वा गुणओ समं वा ।

एगो वि पावाइँ विवज्जयंतो, विहरेज्ज कामेसु असज्जमाणो ॥

(उक्त० ३२ अ. ५ गा.)

तात्पर्य इसका यह है कि सोधु को जंव योग्य सहायक (शिष्य आदि) की प्राप्ति न हो तो वह निष्पाप होकर, तथा इच्छाओं को जीतता हुआ अकेला भी विहार करे । अन्यत्र भी यही बात कही है—

ग्रामाद्यनियतस्थायी, स्थानबन्धविवर्जितः ।

चर्यामेकोऽपि कुर्वीत, विविधाभिग्रहैर्युतः ॥ १ ॥

कैथं पणु स्थणे ते एग एव चरे—एकाकी एव चरेत् राग द्वेषधी रहित अनी समुदायनी साथे अथवा योग्य सहायना अलावमां अप्रतिबंध विहारधी अकेला अविचरे कहुं छे—

न वा लभिज्जा निउणं सहायं, गुणाहियं वा गुणओ समं वा ।

एगो वि पावाइँ विवज्जयंतो, विहरेज्ज कामेसु असज्जमाणो ॥ उ. ३२. अ. ५.

आतुं तात्पर्यं अे छे के, साधुने न्यारे योग्य सहायक शिष्य आदिनी प्राप्ति न होय तो ते निष्पाप अनीने इच्छाओंने छतीने अकेला पणु विहार करे. अन्यत्र पणु आज वात कहेल छे—

ग्रामाद्यनियतस्थायी, स्थानबन्धविवर्जितः ।

चर्यामेकोऽपि कुर्वीत, विविधाभिग्रहैर्युतः ॥ ॥

अयं भावः—यथाकल्पं ग्रामनगरादावनियतवासं कुर्वता मुनिनाऽऽलस्यपरिवर्जनेन तत्र तत्रानासक्त्या च ग्रामानुग्रामविहरणात्मकचर्याकरणादेव चर्यापरीपहः सोढो भवति । यस्तु परिक्षीणजङ्घावलस्तेन स्थिरवासे कृते भिक्षाचर्यायां कथंचित् स्वयं प्रवृत्त्याऽपि स परीपहः सोढो भवतीति ।

ननु—चर्यापरीपहो न भवत्यागन्तुकः, कथं तर्हि स्वयमुदीरितायाश्चर्यायाः परीपहत्वमिति चेत्, उच्यते—कल्पस्यापि कस्यचित् कष्टकारित्वेन सह्यमानत्वात्

यथाकल्प ग्राम नगर आदि में अनियतवास करने वाला अप्रतिबन्ध विहारी मुनि नाना प्रकार के अभिग्रहों से युक्त होकर अकेला अर्थात्—सम्प्रदाय में रहते हुए भी रागद्वेष रहित विचरे ॥१॥

प्रमाद का परिहार करते हुए ग्रामनगरादि में आसक्ति रहित होकर ग्रामानुग्राम विचरणरूप चर्या के करने से ही यह चर्यापरीपह जीता जाता है । जिसका जंघावल क्षीण हो चुका है उस साधु को भी स्थिरवास करने पर भिक्षाचर्या में कथंचित् स्वयं प्रवृत्ति से यह परीपह सहन किया जाता है । आये हुए कष्ट का नाम परीपह है । चर्या तो आनेवाली नहीं है यह तो स्वयं उदीरित की जाती है अतः चर्या को परीपहरूप कैसे माना जा सकता है ? इसका समाधान इस प्रकार है—यद्यपि चर्या साधु का कल्प है तो भी किसी२ कल्प को कष्टकारी होने से वह सहन करना ही पड़ता है । चर्या भी इसी प्रकार है । अतः भगवानने इसको परीपहरूप फरमाया है । अपने कल्प का प्रमाद से

यथाकल्प ग्राम नगर आदिमां अनियतवास करवावाणा अप्रतिबन्ध-विहारी मुनि विविध प्रकारना अलिग्रहोधी युक्त भनी ज्येष्ठला, अर्थात्—संप्रदायमां रहैवा छतां पक्ष रागद्वेष रहित विचरे. प्रमादने त्याग करीने ग्राम नगर आदिमां आसक्ति रहित भनीने ग्रामानुग्राम विचरणात्प अर्थां करवाधी न आ अर्थां परीपह छताय छे. तेनुं न'घाणण क्षीण भनी जयेल छे ज्येवा साधुजे पक्ष स्थिरवास करवाधी भिक्षाचर्यामां कडेवामां आवेल स्वयं प्रवृत्तिधी आ परीपह सहन करवामां आवे छे. आवेला दुःषेने सहन करवां तेनुं नाम परीपह छे. अर्थां आवती नधी परंतु स्वयं उषी करवामां आवे छे. आधी अर्थांने परीपहत्प केअ मानवामां आवे छे ? तेनुं समाधान आ प्रकारधी छे—कदाच अर्थां साधुने कल्प छे तो पक्ष डोळ डोळ कल्प कष्टकारी होवाधी ते सहन करवाज पडे छे. अर्थांने पक्ष आज प्रकार छे. भाटे भगवाने तेने परी-पहत्प करमावेल छे. पोताना कल्पनुं प्रमादधी आचरषु न करवुं ते परीपह

तथा चाग्रे वक्ष्यति—

न वा लभिज्जा निउणं सहायं, गुणाहियं वा गुणभो समं वा ।

एको वि पावाइँ विवज्जयंतो, विहरेज्ज कामेसु असज्जमाणो ॥ १ ॥

(उक्त. ३२ अ. ५ गा.)

छाया—न वा लभेत् निपुणं सहायं, गुणाधिकं वा गुणतः समं वा ।

एकोऽपि पापानि विवर्जयन्, विहरेत् कामेषु असज्जन् ॥

उक्तमन्यत्रापि—

ग्रामाद्यनियतस्थायी, स्थानबन्धविवर्जितः ।

चर्यामेकोऽपि कुर्वीत, विविधाभिग्रहैर्युतः ॥ १ ॥ इति ।

स्थानों में जहाँ कहीं भी वह (एग एव चरे—एकाकी एव चरेत्) राग द्वेष से रहित होकर समुदाय के साथ अथवा योग्य सहाय के अभाव में अप्रतिबंध विहार से अकेला ही विचरे । कहा भी है—

न वा लभिज्जा निउणं सहायं, गुणाहियं वा गुणओ समं वा ।

एगो वि पावाइँ विवज्जयंतो, विहरेज्ज कामेसु असज्जमाणो ॥

(उक्त० ३२ अ. ५ गा.)

तात्पर्य इसका यह है कि साधु को जब योग्य सहायक (शिष्य आदि) की प्राप्ति न हो तो वह निष्पाप होकर, तथा इच्छाओं को जीतता हुआ अकेला भी विहार करे । अन्यत्र भी यही बात कही है—

ग्रामाद्यनियतस्थायी, स्थानबन्धविवर्जितः ।

चर्यामेकोऽपि कुर्वीत, विविधाभिग्रहैर्युतः ॥ १ ॥

कै० पञ्च स्थणे ते एग एव चरे—एकाकी एव चरेत् राग द्वेषधी रहित अपनी समुदायनी साथे अथवा योग्य सहायना अलावभां अप्रतिबंध विहारधी अकेला एव विचरे कहुं छे—

न वा लभिज्जा निउणं सहायं, गुणाहियं वा गुणओ समं वा ।

एगो वि पावाइँ विवज्जयंतो, विहरेज्ज कामेसु असज्जमाणो ॥ उ. ३२. अ. ५.

आतुं तात्पर्यं अे छे के, साधुने न्यारे योग्य सहायक शिष्य आदिनी प्राप्ति न होय तो ते निष्पाप अपनीने इच्छाओंने छतीने अकेला पञ्च विहार करे. अन्यत्र पञ्च आञ् वात कहेल छे—

ग्रामाद्यनियतस्थायी, स्थानबन्धविवर्जितः ।

चर्यामेकोऽपि कुर्वीत, विविधाभिग्रहैर्युतः ॥ १ ॥

छाया—असमानश्चरेद् भिक्षुः, नैव कुर्यात् परिग्रहम् ।

असंसक्तो गृहस्थैः, अनिकेतः परिव्रजेत् ॥ १९ ॥

टीका—‘असमाणो’ इत्यादि ।

भिक्षुः=मुनिः, असमानः=गृहस्थैरन्यतीर्थिकैश्चासदृशः, तत्राश्रयमूर्छारहितत्वेन गृहस्थैरसदृशः, अनियतविहारादिनाऽन्यतीर्थिकैरसदृश इति भावः । यद्वा-मानस-हितः समानः, न तथेत्यसमानः, अभिमानवर्जित इत्यर्थः, यद्वा-‘असमाणे’ इत्यस्य ‘असन्निति’ छाया, असन्नित्वा-असन्, यत्र विद्यते तत्राप्यविद्यमान इव, अल्पतरकालस्थायित्वेन तत्र तत्र तत्सत्ताया अनियतत्वात्, तत्र तत्र विद्यमानत्वेऽपि तत्तद्ग्रामोपाश्रयादिषु ममत्वाभिमानाभावाच्च । इममेवार्थं प्रकटयन्नाह-‘नैव कुञ्जा’ इत्यादि । परिग्रहम्=तत्तद्ग्रामोपाश्रयादिषु स्थानेषु द्रव्यभावपरिग्रहं नैव कुर्यात्= न धारयेत् । उक्तञ्च—

“गामे कुले वा नयरे य देसे, ममंति भावं न कर्हिचि कुञ्जा” ॥ इति ॥

‘असमाणे’-इत्यादि ।

अन्वयार्थ- (असमाणे-असमानः) गृहस्थरूपआधार की मूर्च्छा से रहित होने के कारण गृहस्थों के समान नहीं, तथा अनियत विहार आदि द्वारा अन्यतीर्थिकों के समान नहीं, अथवा-असमान-मान से वर्जित, या “असमाणे-असन्”-अल्पतर काल तक ग्राम नगरादिमें रहने वाला होने की वजह से वहां नहीं जैसा ऐसा (भिक्षू-भिक्षुः) मुनि (परिग्रहं-नैव कुञ्जा-परिग्रहं नैव कुर्यात्) उन २ ग्राम एवं उपाश्रयादिकों में द्रव्य एवं भावरूप परिग्रह से नहीं बंधे-उनमें ममत्व भाव न करे। कहा भी है—

“गामे कुले वा नयरे य देसे, ममंति भावं न कर्हिचि कुञ्जा ॥”

असमाणे इत्यादि.

अन्वयार्थ-असमाणे-असमानः गृहस्थरूप आधारणी मूर्च्छाधी रहित होवाने कारणे गृहस्थाना समान नही, तथा अनियतविहार आदि द्वारा अन्य तीर्थि-ओना समान नही, अथवा-असमान-मानधी वर्जित, या असमाणे-असन् अल्पतर काल सुधी ग्राम नगर आदिमां रहेवावाणा होवाना कारणे त्यां नही जेवा जेवा भिक्षू-भिक्षुः मुनि परिग्रहं नैवकुञ्जा-परिग्रहं नैव कुर्यात् जे जे गामे अने उपाश्रय आदिमां द्रव्य अने लावइप परिग्रहधी न अंधाय-तेमां ममत्वभाव न राणे. कहु छे के—

“गामे कुले वा नयरे य देसे, ममंति भावं न कर्हिचि कुञ्जा ॥”

परीपहरूपत्वं भवति, तत्र प्रमादेन स्वकल्पानाचरणमेव परीपहकृतः पराजयः, तस्मात् प्रमादवर्जितेन यथाकल्पचर्यापराधनेनैव चर्यापरीपहः सोढो भवतीति ॥१८॥

उक्तमर्थं दृढीकुर्वन्नाह—

मूलम्—असंमाणे चरे भिक्खू, नेव कुञ्जा परिग्गहं ।

असंसत्तो गिहत्थेहिं, अणिएओ परिव्वए ॥ १९ ॥

आचरण नहीं करना ही परीपहजनित पराजय है। इसलिये प्रमाद वर्जित होकर यथाकल्प चर्या के आराधन से ही चर्यापरीपह सहन किया जाता है। तभी चर्यापरीपहजयी साधु कहलाता है।

भावार्थ—चतुर्मास कल्प को छोड़कर मुनि के लिये एकत्र स्थिर रहना जैनशासन की आज्ञा से बाहिर है। कोई खास कारण हो तो मुनि एकत्र वास कर सकता है, अन्यथा नहीं। अतः आत्मकल्याण की भावना से अथवा 'जनता में धर्म का प्रचार होता रहे' इस शुभ अध्यवसाय से मुनि को नगर ग्राम आदि स्थानों में विचरते रहना चाहिये। एक स्थान पर रहने वाले साधु को स्थानजन्य मोह सता देता है, अतः वह चाहे एकाकी रूप में विहार करे चाहे योग्य सहायकों के साथ विहार करे, परन्तु विहार अवश्य करे। विहार में सदा अपने संयम की पूरी दृढता रक्खे। क्षुत्पिपासा आदि परीपह सतावें तो भी उनकी परवाह न करे। इसका नाम चर्यापरीपहजय है ॥ १८ ॥

जनित पराजय छे भाटे प्रमादधी इर रहीने यथाकल्प चर्याना आराधनाधी न चर्यापरीपह सहन करी शक्य छे. जे चर्यापरीपह छतेल साधु कडेवाय छे.

भावार्थः—चतुर्मास कल्पने छोडीने मुनि भाटे जेक स्थणे स्थिर रहेवुं जैनशासननी आज्ञाधी अडार छे. 'केछ भास कारण छेय तो मुनि जेक स्थणे वास करी शके छे, ते सीवाय नडी'. आधी आत्मकल्याणनी भावनाधी अथवा 'जनतामां धर्मना प्रचार थतो रहे जेवा शुभ आशयधी मुनिजे नगर ग्राम आदि स्थानोमां विचरता रहेवुं जेछ जे. जेक स्थान उपर रहेवावाणा साधुने स्थानजन्य मोह सतावे छे. आधी लखे ते जेकाडी रूपमां विहार करे अगर योग्य सहायकोनी साथे विहार करे, परंतु विहार अवश्य करे. विहारमां पेताना संयमनी सदा पूरी द्रढता राखे, क्षुत्पिपासा आदि परीपह सतावे तो पण तेनी परवा न करे. आनु नाम चर्यापरीपहने विजय छे. ॥

छाया—असमानश्चेद् भिक्षुः, नैव कुर्यात् परिग्रहम् ।

असंसक्तो गृहस्थैः, अनिकेतः परिव्रजेत् ॥ १९ ॥

टीका—‘असमाणो’ इत्यादि ।

भिक्षुः=मुनिः, असमानः=गृहस्थैरन्यतीर्थिकैश्चासदृशः, तत्राश्रयमूर्च्छारहितत्वेन गृहस्थैरसदृशः, अनियतविहारादिनाऽन्यतीर्थिकैरसदृश इति भावः । यद्वा—मानस-हितः समानः, न तथेत्यसमानः, अभिमानवर्जित इत्यर्थः, यद्वा—‘असमाणे’ इत्यस्य ‘असन्निति’ छाया, असन्नित्व-असन्, यत्र विद्यते तत्राप्यविद्यमान इव, अल्पतरकालस्थायित्वेन तत्र तत्र तत्सत्ताया अनियतत्वात्, तत्र तत्र विद्यमानत्वेऽपि तत्तद्ग्रामोपाश्रयादिषु ममत्वाभिमानाभावाच्च । इममेवार्थं प्रकटयन्नाह—‘नैव कुञ्जा’ इत्यादि । परिग्रहम्=तत्तद्ग्रामोपाश्रयादिषु स्थानेषु द्रव्यभावपरिग्रहं नैव कुर्यात्= न धारयेत् । उक्तञ्च—

“गामे कुले वा नयरे य देसे, ममंति भावं न कर्हिचि कुञ्जा” ॥ इति ॥

‘असमाणे’—इत्यादि ।

अन्वयार्थ—(असमाणे-असमानः) गृहस्थरूपआधार की मूर्च्छा से रहित होने के कारण गृहस्थों के समान नहीं, तथा अनियत-विहार आदि द्वारा अन्यतीर्थिकों के समान नहीं, अथवा-असमान-मान से वर्जित, या “असमाणे-असन्”—अल्पतर काल तक ग्राम नगरादिमें रहने वाला होने की वजह से वहां नहीं जैसा ऐसा (भिक्षु-भिक्षुः) मुनि (परिग्रहं-नैव कुञ्जा-परिग्रहं नैव कुर्यात्) उन २ ग्राम एवं उपाश्रयादिकों में द्रव्य एवं भावरूप परिग्रह से नहीं बंधे-उनमें ममत्व भाव न करे। कहा भी है—

“गामे कुले वा नयरे य देसे, ममंति भावं न कर्हिचि कुञ्जा ॥”

असमाणे इत्यादि.

अन्वयार्थ—असमाणे-असमानः गृहस्थरूप आधारणी मूर्च्छाधी रहित होवाने कारणे गृहस्थाना समान नहीं, तथा अनियतविहार आदि द्वारा अन्य तीर्थिकाना समान नहीं, अथवा-असमान-मानधी वर्जित, या असमाणे-असन् अल्पतर काल सुधी ग्राम नगर आदिमां रहेवावाणा होवाना कारणे त्यां नहीं लेवा जेवा भिक्षु-भिक्षुः मुनि परिग्रहं नैव कुञ्जा-परिग्रहं नैव कुर्यात् जे जे ग्राम अने उपाश्रय आदिमां द्रव्य अने भावरूप परिग्रहधी नः अंधाय-तेमां ममत्वभाव न राजे. कहुं छे के—

“गामे कुले वा नयरे य देसे, ममंति भावं न कर्हिचि कुञ्जा ॥”

ममत्वाभावः कथं स्यादित्याह—गृहस्थैः=श्रावकैः, असंसक्तः=रागसंसर्गवर्जित इत्यर्थः, अनिकेतः=गृहवर्जितः नैकत्र प्रतिबद्धस्थितिक इत्यर्थः, परिव्रजेत्=सर्वतो विहरेत् न तु नियतदेशादावेव । अयं भावः—गृहस्थैः सह रागसंसर्गकरणे, एकत्र प्रतिबद्धास्पदत्वे, नियतदेशग्रामनगरादिविहारितायां वा ममत्वबुद्धिः स्यात् । तस्मादालस्यं निरस्य ग्रामनगरकुलादिष्वनियतवसतिनिर्ममत्वः सन् यथाकल्पमासक्तिरहितश्चर्यामाचरेदिति ।

अर्थात्—ग्रामादि में कहीं भी ममत्व नहीं करे । तथा (गृहस्थेहि असंसक्तो—गृहस्थैः असंसक्तः) गृहस्थों के साथ राग के संसर्ग से वर्जित उनमें मोहरूप परिणाम से रहित होकर वह (अणिएओ—अनिकेतः) स्थानादि की ममतारहित होता हुआ (परिव्वए—परिव्रजेत्) ग्राम नगरादि में विहार करता रहे । इसका भाव यह है कि गृहस्थों से रागात्मक परिणति करने पर साधु को एक ही जगह प्रतिबद्ध होकर रहने का प्रसंग प्राप्त हो सकता है, इस परिस्थिति में नियत देश, ग्राम आदि में ही उसका विहार होगा, अतः उसमें ममत्वबुद्धि का सद्भाव हो जायगा । इसलिये प्रमाद का परित्याग कर ग्राम नगर आदि में अनियतरूप से विचरने वळे मुनि में निर्ममत्वभाव रहता है । इसलिये साधु को चाहिये की वह गृहस्थों से असंसक्त होकर यथाकल्प अनियतविहाररूप चर्या करता रहे ।

भावार्थ—इस गाथा द्वारा सूत्रकार १८वीं गाथा में कहे हुए ही

अर्थात्—ग्रामादिमां कथांय पद्यु भमत्व न करे तथा गृहस्थेहि असंसक्तो—गृहस्थैः—असंसक्तः गृहस्थनी साथे रागना संसर्गधी रहित—तेमां मोडइप परिष्ठाभधी रहित णनीने ते अणिएओ—अनिकेतः स्थानादिकनी भमता रहित थर्धने, परिव्वए—परिव्रजेत् ग्राम नगर आदिमां विहार करता रहे. तेना भावार्थं अे छे के, गृहस्थे साथे रागात्मक परिष्णुती करवाधी साधुने भाटे अेक ज्य्याअे प्रतिबद्ध थर्धने रहेवाने प्रसंग प्राप्त थाय छे. आ परिस्थितिमां नियत ग्रामनगर आदिमांज ते विचरथे, आधी अेनामां भमत्वनी भावना उत्पन्नः थथे. भाटे प्रमादने परित्याग करी ग्रामनगर आदिमां अनियत रूपधी विचरनार मुनिमां निर्ममत्वभाव रहे छे. आटला भाटे ज साधु भाटे ते गृहस्थेधी असंसक्त णनी यथाकल्प अनियत विहारस्वरूपी चर्या करता रहे ते जइरी छे.

भावार्थ—आ गाथा द्वारा सूत्रकार १८ वीं गाथा में कहे

६

अत्र दृष्टान्तः—

कोल्लाकसंनिवेशे बहुश्रुतः शान्तो दान्तः परीषहोपसर्गसहने सुधीरः क्षमा-
दिगुणगम्भीरः कर्मधूलिनिवारणे समीरः, श्रुतचारित्रधर्माधनपरः क्षीणजङ्घा-
वलो निःसङ्गनामक आचार्य आसीत् । एकदा तत्र दुर्भिक्षे जातेऽसौ स्वशिष्यं

अर्थ की पुष्टि कर रहे हैं । जब गृहस्थ जनों का सामान्य भी परिचय मनुष्य को उनमें ममत्वबुद्धि से जकड़ देता है तो फिर साधु की आत्मा को वह भाव वहाँ जकड़ न देगा यह कैसे हो सकता है । इसी-
लिये साधु को अनियत विहार कहा गया है । इसमें गृहस्थों के संसर्ग से साधु बचा रहता है । संसक्तिभाव उसका उनमें नहीं हो पाता है । सामान्य परिचय में संसक्ति नहीं आती है । अधिक परिचय से यह दोष पैदा होता है । मूर्च्छापरिणति का नाम ही परिग्रह है । यह परि-
ग्रह द्रव्य एवं भाव के भेद से दो प्रकार का होता है । साधु इन दोनों प्रकार के परिग्रहों से रहित होता है । रागादिकभाव भावपरिग्रह, एवं क्षेत्र वस्तु आदि द्रव्य-परिग्रह है । अनियत विहार करने वाले साधुमें यह दोष नहीं हो सकता है । इसीलिये उसको सदा यथाकल्प अनियत विहार करना भगवान ने कहा है ।

दृष्टान्त—कोल्लाक नाम के सन्निवेश में बहुश्रुत, शान्त, दान्त परीषह एवं उपसर्ग के सहन करने में धीर वीर क्षमादि गुणों से गंभीर, कर्म धूलि के निवारण करने में पवनतुल्य निःसंग नाम के एक आचार्य थे ।

करे थे. ज्यारे गृहस्थ जेना साथे सामान्य परिचय पछु मनुष्यने तेनी साथे ममत्व-
बुद्धिधी जकडी हे छे तो पछी साधुना आत्माने ते भाव त्यां न जकडे ते केम
पनी शके. आटला भाटेज साधुने अनियत विहार सुखवायेल छे. आमां गृहस्थना
पधु पडता संसर्गथी साधु अथी जय छे, संसकितभाव तेना तेमां आवतो नथी,
सामान्य परिचयथी संसकितभाव उत्पन्न थतां नथी. अधिक परिचयथी आ द्वाये
पेदाथाय छे. मूर्च्छापरिष्कृतीनुं नाम ज परिग्रह छे. आ परिग्रहना द्रव्य अने भाव
अम जे प्रकारना लेह छे. साधु आ अन्ने प्रकारना परिग्रहोथी पर छेय छे.
रागादिकभाव भावपरिग्रह अने क्षेत्र वस्तु आदि द्रव्य परिग्रह छे. अनियत
विहार करनार साधुमां आ द्वाय आवतो नथी आटला भाटे साधुने सहाय
यथाकल्प अनियत विहार करवानुं लगवाने उछुं छे.

दृष्टान्त—कोल्लाक नामना सन्निवेशमां बहुश्रुत, शान्त, दान्त, परीषह
अने उपसर्ग सहन करवानां धीरवीर, क्षमादि गुणोथी गंभीर, कर्मरजुं

विक्रमाचार्यं गच्छसहितं दूरदेशे प्रेषितवात् । स्वयं तु एकेन शिष्येण सह वसन्
 तत्रैव नगरे नव भागान् कल्पयित्वा यथाकल्पमज्ञातकुले रूक्षशुष्कमन्तमान्तमभा-
 दिकं शृद्धीत्वा विहरति स्म । जराक्रान्तोऽपि चर्यापरीपहं सोढुकामः कृताभिमिदत्वात्
 स्वयंभिक्षार्थमटति स्म । एवं चर्यापरीपहं सद्मानस्तमभिग्रहं यावज्जीवं निर्वा-
 ह्यालोचितमतिक्रान्तः कालमासे कालं कृत्वा स्वकल्याणं साधितवान् ।

श्रुतचारित्ररूप धर्म की आराधना करने में ही इनका जीवन का
 अधिक से अधिक समय निकलता था । अवस्थाप्राप्त होने से इनका
 जंघाबल क्षीण हो गया था । एक समय की बात है कि वहाँ पर भयं-
 कर दुर्भिक्ष पड़ गया । आचार्य ने परिस्थिति का अवलोकन कर अपने
 विक्रमाचार्य शिष्य को गच्छसहित दूर देश में विहार करा दिया और
 स्वयं एक शिष्य के साथ उसी नगरी में रहे । वहाँ नौ भागों की
 कल्पना कर वे यथाकल्प अज्ञातकुल में रूक्ष, शुष्क, अन्त प्रान्त आहारा-
 दिक ग्रहण कर वहाँ विचरण करते रहे । यद्यपि इनकी वृद्धावस्था थी
 चलने में पूरी शक्ति नहीं थी तो भी चर्यापरीपह को सहन करने की
 अभिलाषा से वे विविध अभिग्रह ग्रहण करते और स्वयं भिक्षा के लिये
 जाते । इस प्रकार चर्यापरीपह को सहन करते-उन्होंने अपने अभि-
 ग्रहों का अच्छी तरह से निर्वाह किया । अन्त में अपने कर्तव्यों की
 आलोचना कर उनके प्रति निवृत्त होकर आत्मकल्याण कर लिया ।

निवारण्य करवाभां पवनतुल्य ज्येवा, ज्येक निःसंग नामना आचार्यं इता. श्रुतचारित्र
 रूप धर्मनी आराधना करवाभां न तेमना लवनने मोटे। लाग तेजो गणता
 इता. अवस्था यवाधी तेमतुं न्वाणण क्षीण्य गनी गयुं इतुं. ज्येक समयनी
 वात छे के, त्यां लयंकर ज्येवा दुकाण पउथो, आचार्ये परिस्थितितुं अवलोकन
 करी पोताना विक्रमाचार्यं नामना शिष्यने गच्छ साथे दूर देशमां विहार
 करावराज्यो अने पोते ज्येक शिष्यनी साथे ते नगरमां रक्षा. त्यां नव भागोनी
 कल्पना करी तेजो यथाकल्प अज्ञात कुर्णमांथी रूक्ष, शुष्क अन्तप्रान्त आहार आदि
 ग्रहण करी त्यां विचरता रक्षा. म्ने के तेमनी वृद्धावस्थाने कारण्ये तेमनामांशालवानी
 पूरी शक्ति न इती तो पण्य चर्यापरीपहने सहन करवानी अभिलाषाथी तेजो
 विविध अभिग्रह करता अने स्वयं भिक्षा माटे जाता. आ प्रकारे चर्यापरी-
 पहने सहन करता करतां पोताना अभिग्रहोना सारी रीते निर्वाह करी. अंत
 समय उपर पोतानां कर्तव्योनी आलोचना करी तेनाथी निवृत्त धर्म
 आत्मकल्याण्य प्राप्त कयुं.

अत्रान्योऽपि दृष्टान्तः—

उज्जयिन्यां वैश्रवणनामक आचार्यः समवसृतः । स स्वशिष्यपरिवारैः सह चर्यापरीपहं सहमानो ग्रामानुग्रामं विहरन् कदाचिदटव्यां प्रविष्टः । आचार्य इव शिष्या अपि चर्यापरीपहसहिष्णव आसन् । तत्र सर्वे मुनिभिरकस्माद् मार्गो विस्मृतः । तत्रैव शर्कराप्रभपृथिवीवद् विकीर्णतीक्ष्णकण्टकिते निम्नोन्नतशिलाखण्डदुर्गमे भयङ्करे विपिने गच्छता तेन दिवसो यापितः, रात्रौ च वृक्षाधस्तले निवासः कृतः, एवं शिष्यपरिवारैः सहासौ भ्रमन्नटव्या अन्तं न प्राप, नापि कश्चिद् ग्रामो दृष्टि-

द्वितीय दृष्टान्त—

उज्जैनी नगरी में वैश्रवण नाम के आचार्य पधारे । वे अपने शिष्यपरिवार के साथ चर्यापरीपह को सहन करते हुए ग्रामानुग्राम विहार करते-कदाचित् मार्ग भूल जाने से एक अटवी में जा पहुँचे । इनके समान ही चर्यापरीपह सहन करने में समर्थ इनके शिष्य भी थे । अकस्मात् वे सब के सब ही मार्ग भूल गये । समस्त दिवस उन सबका शर्करा पृथ्वी के समान, इधर उधर फैले हुए तीक्ष्ण कांटों वाले तथा नीचे ऊँचे शिलाखंडों से दुर्गम उस भयंकर अटवी में ही समाप्त हो गया । रात्रि का समय आ गया । दूसरा कोई उपाय नहीं होने से सभी ने वहीं एक वृक्ष के नीचे ठहर कर रात्रि व्यतीत की । प्रातः काल हुआ । सूर्य की किरणें निकली । मार्ग की तलाश करने लगे परन्तु मार्ग का पता नहीं चला । अटवी कितनी बड़ी थी इसका कुछ अन्त ही नहीं ज्ञात हो सका, और न “यहां से ग्राम कितनी दूर है”

दृष्टान्तं धीश्रुं—उज्जैनी नगरीमां वैश्रवणु नामना आचार्यं पधार्यां तेभ्यो पोताना शिष्य परिवारनी साथे चर्यापरीपहं सहन करता करता ग्रामानुग्राम विहार करता करता मार्ग भूलवाथी अग्रानक ओक जंगलमां जध गडया. चर्यापरीपहं सहन करवामां तेमना समानं समर्थं तेमना शिष्यो पषु इता. जोगानुजोग तेभ्यो पधा मार्ग भूली गया. शर्कराप्रभ पृथ्वीनी समान, आंड़ी तांडी योमेर तीक्ष्ण कांटाभ्योथी पथराभ्येही तथा उथी नीथी शिलाभ्योथी दुर्गम भ्येवी लयानक अटवी—जंगलमां आभोभ्ये दिवस वीती गये। रात्रीने समय आवी पडोअंथां धीजे डोई पषु उपाय न होवाथी सधणाभ्ये ओक जाड नीथे रहीने रात वितावी. सवार पडयुं, सूर्यनां किरणो देभायां, मार्गनी तपास करी परंतु अहार नीकणवानो मार्ग न जडयो. जंगल भोटुं इतुं तेना अंतनी पषु जणर पडती न इती अने गाभ आ स्थणेथी डेटकुं इर छे ते पषु लक्षी शकतुं न

पथे समायातः । स च तस्मिन्नेव विपमकण्टकितपर्वतीयमार्गे चलन्नपि चर्यापरीपहैः पराजितो नाभूत् । आचार्यो वदति—अस्मिन् वने चलतामस्माकं त्रयो दिवसा अतीताः, क्वचिदाहारो न लब्धो नापि पानीयम् ।

एतदभ्यन्तरे केनचिद्देवेन वैक्रियशक्त्या तत्र शोभनो राजमार्गो निर्मितः । तत्र कस्यचिन्नृपस्य चतुरङ्गिणी सेना गच्छति, बह्वधः शिविका नरैर्वाक्ष्यमाना

इस बात का पता ही चल सका । आचार्य महाराज शिष्यमंडली सहित उसी जंगल में घूमते रहे । कभी २ चलते २ विपम एवं कंटकित पर्वत के मार्ग पर पहुँच जाते तो भी इनके चित्त में खेदखिन्नता नहीं आती । 'चर्यापरीपह सहन करना यह साधु की कर्तव्य कोटि में है' इस ख्याल से वे उसको शांति के साथ सहन करते रहे । चलते २ जब ठीक तीन दिन व्यतीत हो चुके तब आचार्य महाराज ने शिष्यों से कहा कि देखो—इस वन में लगातार अपने लोग तीन दिन से चल रहे हैं फिर भी मार्ग नहीं मिल रहा है । आहार पानी का भी ठिकाना नहीं पड़ा, अतः समस्या विकट बन रही है ।

आचार्य महाराज जब इस प्रकार अपने शिष्यों से कह रहे थे कि इतने में ही किसी देवने अपनी वैक्रियिक शक्ति के द्वारा उस अटवी में एक सुन्दर राजमार्ग बना दिया, और इस प्रकार का दृश्य दिखलाया कि उस पर होकर किसी राजा की चतुरङ्गिणी सेना जा रही है ।

हुतुं. आचार्य महाराज शिष्य मंडली साथे जे जंगलमां भ्रम लटक्या. बालतां बालतां केध वेजा स्थणे विषम जेवा कंटाणा टेकरावाणा रस्ते थडी जता तो पथु तेमना चित्तमां जेद-भित्तता आवती नडीं. "चर्यापरीपह सहन करवे जे साधुनी कर्तव्य कोटीमां छे आ भ्यालथी तेजे आवता परीपहोने शान्ती साथे सहन करता रह्या. बालतां बालतां न्यारे त्रथु त्रथु दिवसो वीती गया त्यारे आचार्य महाराजे शिष्योने कहुं के, तुजो आ वनमां आपणे त्रथु त्रथु दिवसोथी लटकीजे छीजे छतां पथु जहार नीकजवानो केध मार्ग देभातो नथी. आहार पाणीतुं पथु ठेकाणुं पडतुं नथी जेटले आपणी समक्ष विकट समस्या उबीं थर्छे.

आचार्य महाराज आवुं न्यारे चोताना शिष्योने कही रह्या हुता जे वपते केध देवे चोतानी वैक्रियिक शक्ति द्वारा ते जंगलमां जेक सुंदर राजमार्ग बनावी दीधो जने जे प्रकारनुं ध्य उलुं करी दीधुं के ते मार्ग उपरथी जेधे केध राजनी चतुरङ्गिणी सेना जर्छ रही छे तेमां जनेक पालभी

आसन् । तत्र सेनापतिः कानने भ्राम्यमाणमाचार्यं ब्रवीति-भगवन् ! सन्त्यत्र
 वह्नि शिविकादीनि यानानि, यदत्र रोचते भवद्गृहस्तत्रारुह्य गम्यताम् । आचार्येणो-
 क्तम्-यानेन गमनं नास्माकं कल्पते, इत्युक्त्वा तेन ' सर्वोऽयं देवप्रपञ्च ' इति विज्ञा-
 तम् । राजसैनिके गते सति स आचार्यः शिष्यान् पृच्छति-किमिदानीं कर्तव्यम्, ।
 शिष्या आहुः-आर्येण यदनुष्ठेयं, तदेवास्माभिरपि कर्तव्यम्, आचार्यः पादपो-
 पगमनार्थं प्रतिज्ञातवान्, तदनु तदीयशिष्या अपि पादपोपगमनार्थं संस्तरकं
 कृतवन्तः । सर्वैः समाधिभावेन कालं कृत्वाऽऽत्मनः कल्याणं साधितम् । एवमन्यै-
 रपि मृनिभिश्चर्यापरीपहः सोढव्यः ॥ १९ ॥

उस में अनेक पालकियां को वहन करते हुए मनुष्य चले जा रहे हैं ।
 यह सब दृश्य आचार्य महाराज के देखने में आ रहा था । इसी समय
 एक सेनापति ने अटवी में भ्रमण करते हुए आचार्य महाराज से कहा
 हे भदन्त ! यहां बहुत से पालकियां आदि वाहन हैं आप जिन्हें पसंद करें
 उनपर चढ़कर चलें । आचार्यश्रीने सेनापति की बात सुनकर कहा कि-
 यान पर चढ़कर चलना यह हमारे कल्प से बाहर है । तथा साथ २ में
 आचार्यमहाराज ने यह भी जान लिया कि यह सब दैवी माया है । सेनापति
 के चले जाने पर फिर आचार्य महाराज ने शिष्यों से पूछा कि कहो इस
 समय क्या करना चाहिये । शिष्यों ने कहा जो आपको करना रुचे
 वही हमें मंजूर है । शिष्यों की बात सुनकर आचार्य महाराजने पाद-
 पोपगमन धारण करने की विचारणा करली । शिष्यों ने भी ऐसा ही
 किया । सबने वहां समाधिभाव से संपन्न होकर पण्डितभरण किया,

उपाडीने मनुष्यो आली रह्या छे आ सधणुं द्य आचार्य महाराजना जेवाभां
 आवी रह्युं हुतुं. जेवाभां जेक सेनापतिजे जंगलभां विचरी रहैला
 आचार्य महाराजने कहुं, लदंत ! अडिं धरुी पालभीजे विगेरे वाहन
 छे, आप जेने पसंद करे। तेभां जेसीने आवे। आचार्ये सेनापतिनी
 वात सांलणीने कहुं के, पालभीभां जेसीने विचरवुं ते अमारा
 कल्पनी जडार छे. साथे साथ आचार्य महाराजे जे पखुं नरुी लीधुं के आ
 सधणी हैवी माया छे. सेनापतिना आली गया पछी आचार्य महाराजे शिष्योने
 पूछ्युं के, कडो ! आवे वभते डवे शुं करवुं जेधजे ? शिष्योजे कहुं के, आपने
 जे करवुं रुचे ते अमने मंजुर छे. शिष्योनी वात सांलणीने आचार्य महाराजे
 पादपोपगमन करवानी प्रतिज्ञा धारण करी लीधी. शिष्यो जे पखुं जेमज कहुं.
 परिष्ठाजे सधणा त्यां समाधी लावथी संपन्न जनी पंडित भरखु पाभ्या अने

अथ नैपेधिकीपरीपहजयं प्राह—

मूलम्—सुसाणे सुन्नगारे वा, रुक्खमूले वं एगओ ।

अकुक्कुओ निसीएज्जा, नं थं वित्तासए परं ॥ २० ॥

छाया—श्मशाने शून्यागारे वा, वृक्षमूले वा एककः ।

अकौकुच्यः निपीदेत् न च वित्रासयेत् परम् ॥ २० ॥

टीका—‘सुसाणे’ इत्यादि ।

श्मशाने—शवस्थाने, वा=अथवा, शून्यागारे=निर्जनगृहे, वा=अथवा, वृक्ष-
मूले=वृक्षाधस्तले, मुनिः एककः=द्रव्यतः एकाकी प्रतिमाऽपेक्षया, भावतो—मुनि
गणस्थितोऽपि रागद्वेषरहितः, अकौकुच्यः=अशिष्टचेष्टारहितः—विषयचेष्टावर्जितः
सन्नित्यर्थः, निपीदेत्=भयरहितं यतनापूर्वकमुपविशेदित्यर्थः। च—पुनः मुनिस्तत्रोपवि-
ष्टः सन्, परम्—अन्यं जीवं द्वीन्द्रियादिकं, न वित्रासयेत्=तत्रस्थं जीवं स्थानत्रयादिकं

और आत्मकल्याण की सिद्धि की। इसी तरह समस्त साधुओं को चर्यापरीपह पर विजय पाने में प्रयत्नशील रहना चाहिये ॥१९॥

अब दसवें नैपेधिकीपरीपह को जीतने के लिये सूत्रकार कहते हैं—‘सुसाणे’—इत्यादि ।

अन्वयार्थ—मुनि को (सुसाणे—श्मशाने) श्मशानमें (वा) अथवा (सु-
न्नगारे—शून्यागारे) शून्य घर में (वा) या (रुक्खमूले—वृक्षमूले) वृक्ष के नीचे
(एगओ—एककः) एकाकी द्रव्य—से प्रतिमा की अपेक्षा अकेले, तथा भाव
की अपेक्षा मुनि समुदाय में रहते हुए भी रागद्वेषरहित एवं (अकु-
कुओ—अकौकुच्यः) अशिष्ट चेष्टा से रहित होते हुए (निसीएज्जा-
निपीदेत्) भयशून्य होकर यतनापूर्वक रहे। (च—च) तथा वहाँ पर

आत्मकल्याणकी सिद्धि भेगवी. आ प्रभाहे सर्व साधुओओ चर्यापरीपहं उपर
विजय भेगववा पयत्नशील रहेवुं लेधओ. ॥१९॥

इवे सूत्रकार दशमा नैपेधिकीपरीपहने एतवा भाटे कहे छे—‘सुसाणे’ इत्यादि.

अन्वयार्थ—मुनिओ सुसाणे—श्मशाने श्मशानमां “वा” अथवा सुन्नगारे—शून्यागारे
सूना ओवा धरमां “वा” अथवा रुक्खमूले—वृक्षमूले वृक्षनी नीचे एगओ—एककः
ओकाओ द्रव्यथी प्रतिमानी अपेक्षाओ ओकला तथा भावनी अपेक्षाओ मुनि समुदायमां
रहेतां छतां पणु रागद्वेष रहित अने अकुक्कुओ—अकौकुच्यः अशिष्ट चेष्टाथी
रहित अननीने निसिएज्जा—निपीदेत् अथ रहित थर्थ यतनापूर्वक यच

न कुर्यादित्यर्थः । इदमत्र-बोधयम्-आदावस्मिन्नध्ययने 'निसीहियापरीसहे' इति यदुक्तं तस्य छाया 'नैपेधिकीपरीपहः' इति । निपेधः=प्राणातिपातादि निवृत्तिः, स प्रयोजनमस्या इति नैपेधिकी । यद्वा निपेधः=पापकर्मणां गमनादिक्रियायाश्च निवृत्तिः, स प्रयोजनमस्या इति नैपेधिकी, निपद्या=उपवेशनस्थानम् कायोत्सर्ग-भूमिः । स्वाध्यायभूमिश्चेत्यर्थः । सैव च परिपहो नैपेधिकीपरीपहः उपवेशनस्थान परीपहः, तत्र श्मशानादिषु स्थानेषु स्थितेन मुनिना भयंकरोपसर्गसमापत्तने सति न भेदव्यम्, नापि स्वरविकारादिभिरन्येषां भयमुत्पादनीयमिति ॥ २० ॥

रहे हुए उस मुनि को चाहिये की वह (परं न वित्तासए-परं न वित्रासयेत्) वहां पर पहिले से रहने वाले द्वीन्द्रियादीक जीवों को स्थान-भ्रष्ट न करे, यहां यह समझना चाहिये कि पहिले इस अध्ययन में "निसीहिया परीसहे" ऐसा कहा गया है उसकी संस्कृत छाया नैपेधिकीपरीपहः" ऐसी की गई है । उसका अर्थ इस प्रकार है- "प्राणातिपातादिक क्रियाओं से निवृत्ति करने का जिसका प्रयोजन हो वह नैपेधिकी है, अथवा पापकर्मों की एवं गमनादिक्रिया की निवृत्तिरूप निपेध जिसका प्रयोजन हो वह नैपेधिकी है, अथवा निपद्या उपवेशन स्थान का नाम है, वह या तो कायोत्सर्ग की भूमिस्वरूप होगा या स्वाध्याय की भूमिस्वरूप । उस निपद्यारूप जो परीपह उसका नाम नैपेधिकीपरीपह है । इसका फलितार्थ उपवेशनस्थान सम्बन्धी परीपह नैपेधिकीपरीपह है । श्मशान आदिक स्थानों में रहे हुए मुनि को भयंकर उपसर्ग के

तथा त्यां रडेता ये मुनिनुं कर्तव्य छे के ते परं न वित्तासए-परं न वित्रासयेत् त्यां-पडेलाथी रडेवावाणा द्विन्द्रियादिके एवोने स्थानभ्रष्ट न करे, अर्हीं ये समजनुं जेधये के, पडेलां आ अध्ययनमां निसीहिया परीसहे येनुं कडेवायुं छे के जेनी संस्कृत छाया "नैपेधिकी परीपहः" जेम करवाभां आवेल छे. जेनेो अर्थ आ प्रकारने छे- "प्राणातिपातादिक क्रियाज्योथी निवृत्ति करववानुं जेनुं प्रयोजन होय ते नैपे-धिकी छे, अथवा पापकर्मोनी अने गमनादि क्रियाज्योनी निवृत्तिरूप निपेध जेनुं प्रयोजन होय ते नैपेधिकी छे, अथवा निपद्या उपवेशन स्थाननुं नाम छे. ते यातो कायोत्सर्गनी भूमि स्वरूप होय या स्वाध्यायनी भूमिस्वरूप. ये निप-द्यारूप जे परीपह तेनुं नाम नैपेधिकीपरीपह आनेो तो इलीतार्थ उपवेशन स्थान सम्बन्धी परीपह नैपेधिकीपरीपह छे, श्मशान आदि स्थानोभां रडेनारा मुनिजे भयंकर उपसर्गोना आववा छतां पद्यु भयभीत न बनवुं जेधये,

उक्तमर्थं विशदीकृष्वन्नाह—

मूलम्—तत्थ से चिदृमाणस्स, उवसंग्गा भिधारण ।

संकाभीओ नं गच्छेज्जी, उट्टित्ता अन्नमासेणं ॥ २१ ॥

छाया—तत्र तस्य तिष्ठतः, उपसर्गा अभिधारयेत् ।

शङ्कामीतः न गच्छेत्; उत्थापान्यदासनम् ॥ २१ ॥

टीका—‘तत्थ’ इत्यादि ।

तत्र=श्मशानादौ, तिष्ठतः=उपविष्टस्य तस्य मुनेः उपसर्गाः—देवमनुष्यतिर्य-
कृता उपद्रवाः, यदि भवेयुस्तर्हि स मुनिस्तानुपसर्गान् अभिधारयेत्—‘ममावल
चेतसः किमेते करिष्यन्तीति चिन्तयन् सहेत । परन्तु शङ्कामीतः=उपसर्गकृतोपद्रव-
संशयादुद्वेगवान् सन्, उत्थाप—ततः स्थानादपमृत्य, अन्यत्=परम्, आसनम्=
आस्पते—उपविश्यतेऽस्मिन्नित्यासनं=स्थानम्, न गच्छेत् ।

आने पर भी भयभीत नहीं होना चाहिये और न अपने अंगों को विकृत
करके दूसरों को भयभीत करना चाहिये ॥ २० ॥

इसी अर्थ को विशद करते हुए सूत्रकार समझाते हैं—
‘तत्थ से’—इत्यादि ।

अन्वयार्थ—(तत्थ—तत्र) श्मशान आदि स्थान में (चिदृमाणस्स से-
तिष्ठतस्तस्य) स्थित उस साधुके ऊपर (उवसंग्गा-उपसर्गाः). देव, मनुष्य,
तिर्यञ्च सम्बन्धी उपसर्ग यदि आवे तो उस मुनि का कर्तव्य है कि वह
उन उपसर्गों को (अभिधारण—अभिधारयेत्) “ये उपसर्ग मेरा क्या
कर सकते हैं” निश्चलचित्त से ऐसा विचार कर सहन करे। परन्तु
(शंकाभीओ—शंकाभीतः) उपसर्गकृत उपद्रव के सन्देह से उद्वेगवान्

अथवा तो पोताना अंगोने विकृत बनावी पीलने लयलीत करवा न लेधये ॥२०॥

आज् अर्थविशे सूत्रकार विषदरूपथी समलवे छे. ‘तत्थ से’ धत्यादि.

अन्वयार्थ—(तत्थ—तत्र) श्मशान आदि स्थानमां चिदृमाणस्स से—तिष्ठतः तस्य रहैला
ये साधुनी उपर उपसंग्गा—उपसर्गाः देव, मनुष्य, तिर्यञ्च सम्बन्धी उपसर्ग आवे
त्यारे ये मुनिजुं कर्तव्य छे के ते ये उपसर्गोने अभिधारण—अभिधारयेत् आ
उपसर्ग भाङ्ं शुं करी शकवाना छे “निश्चल” चित्ते येवे विचार करी सहन करे.
परंतु शंकाभीओ—शंकाभीतः उपसर्गकृत उपद्रवना संदेहथी अर्थ

स्वाध्यायकरणार्थं कायोत्सर्गकरणार्थं वा स्त्रीपशुपण्डकविवर्जिते स्थाने निपण्णेन मुनिना अनुकूलप्रतिकूलोपसर्गसंपातेऽनुद्वेगकरणेन निपद्याऽपरनामको नैपेधिकीपरीपहः सोढव्य इति भावः ।

अत्र दृष्टान्तः प्रदर्श्यते—

हस्तिनापुरे कुरुदत्तनामा भ्रेष्टिपुत्रः प्रव्रजितो भूत्वैकाकिविहारप्रतिमया प्रामानुग्रामं विहरन्नयोध्यानगर्षा ईपद्दूरप्रदेशे कायोत्सर्गम् कृत्वा स्थितः । तत्र

होकर (उद्विक्ता-उत्थाय) उठकर (अन्नमासणं-अन्यद् आसनं) दूसरे किसी स्थान पर (न गच्छेज्जा-न गच्छेत्) नहीं जावे ।

तात्पर्य इसका यह है कि स्वाध्याय करने के लिये अथवा कायोत्सर्ग करने के लिये स्त्री पशु पंडक से वर्जित स्थान में बैठे हुए मुनि को चाहिये कि वह अनुकूल प्रतिकूल उपसर्ग के आने पर अनुद्विग्न चित्त होकर निपद्यापरीपह कि जिसका दूसरा नाम नैपेधिकीपरीपह है उसको सहन करे । अर्थात्-श्मशान आदि स्थान में बैठने पर उपसर्ग आदि का आना स्वाभाविक है । अतः ऐसी स्थिति में मुनि का कर्तव्य है कि वह तिर्यञ्चादिकृत उन उपसर्गों को अविचलितचित्त होकर सहन करे । भयभीत न होवे, और न एक स्थान से दूसरे स्थान पर अपनी रक्षा के अभिप्राय से जावे ।

दृष्टान्त-हस्तिनापुर में कुरुदत्त नाम का एक सेठ का पुत्र रहता था । उसने धर्म का उपदेश सुनकर दीक्षा धारण करली । जय वे श्रुतचा-

उद्विक्ता-उत्थाय त्यांथी उठीने अन्नमासणं-अन्यत् आसनं भीज्जा केाँ स्थान उपर न गच्छेज्जा-न गच्छेत् न लय.

आने भाव से छे के, स्वाध्याय करवा भाटे अथवा ता कायोत्सर्ग करवा भाटे स्त्री, पशु, पंडकथी वल्लंत सेवा स्थानमां भेडेला मुनिसे गमे तेवा अनुकूल प्रतिकूल उपसर्ग आववाथी उद्विग्न चित्त न जनतां विषद्यापरीपह के नेनुं भीज्जुं नाम नैपेधिकीपरीपह छे सेने सहन करे. अर्थात्-श्मशान आदि स्थानमां भेसवाथी उपसर्ग वगेरेनुं आववुं स्वाभाविक छे. आथी सेवी स्थितिमां मुनिनुं कर्तव्य छे के, तिर्यञ्च आदि द्वारा यता से उपसर्गनि अविचलीत चित्त अनी सहन करे अने लयलीत न थाय. पोताना रक्षयुना अभिप्रायथी सेक स्थानथी भीज्जा स्थान उपर न लय.

दृष्टान्त-हस्तिनापुरमां कुरुदत्त नामे सेक शेठने पुत्र रडेतेो हतेां सेवे धर्मनेो उपदेश सांलणी दीक्षा धारय करी लीथी. नयारे ते श्रुतचारित्र इप

रात्रेश्चतुर्थपौरुष्यां कुतश्चिद् ग्रामाद् गोपनापहारं कृत्वा चौराः कुरुदत्तमुनेः पार्श्व-
स्थेन मार्गेण सवेगं गताः । पथाद् गोस्वामिनस्तदन्वेपकास्तत्रायाताः द्वौ मार्गौ
तत्र दृष्ट्वा ते कुरुदत्तमुनिं पृच्छति-भदन्त ! ब्रूहि चौराः केन पथा गताः । तद्वचनं
श्रुत्वाऽपि स मुनिर्न किञ्चिदुक्तवान् ततस्ते गोस्वामिनः क्रोपावेशेन मुनेः शिरसि
आर्द्रमृत्तिकालेपेन पालीं कृत्वाऽङ्गाराः क्षिप्ताः मुनिस्तु तदुपसर्गकृतवेदनां सहमानो

रित्ररूप धर्म के पालन करने में पूर्ण निष्णात हों गये तो उन्होंने ने
एकाकीविहारप्रतिमा लेकर ग्रामानुग्राम विचरण करने लगे विहार
करते २ वे अयोध्यानगरी के समीप कुछ दूर प्रदेश में कायोत्सर्ग
धारण कर रहे । रात्रि के चतुर्थ प्रहर में किसी ग्राम से गायों को बुरा-
कर चौर कुरुदत्त मुनि के पास के मार्ग से जल्दी २ बड़े वेग के साथ
निकले । इनके निकल जाने के बाद ही गायों के स्वामी उनकी तपास
करते हुए वहाँ पर आ पहुँचे । वहाँ से दो रास्ते जाते थे । उन्हें देख-
कर उन लोगों ने कुरुदत्त मुनि से पूछा कि भदन्त ! यहाँ से चौर किस
रास्ते होकर गये हैं । मुनि ने उनकी बात सुनकर कुछ भी उत्तर नहीं
दिया । वे सवके सब मुनि के ऊपर रुष्ट हुए । क्रोध के आवेशमें
आकर उन लोगों ने मुनिराज के माथे ऊपर मिट्टी की क्यारी बनाकर
उसमें जलते हुए अंगार रख दिये । मुनि ने उनके द्वारा किये गये इस

धर्मंतुं पालन करवाभां पूर्णं पक्षे निष्णात भनी गया त्यारे अभले ऐकाकी
विहार प्रतिमा लक्ष ग्रामानुग्राम विचरण करवा मांडयुं. विहार करतां करतां ते
अयोध्या नगरीनी पासै थोडा इरना प्रदेशमां कायोत्सर्ग धारण करी रह्या.
रात्रीना चोथा प्रहरना समये कोर्ध गामथी गाये चोरीने चोर कुर्दत्त मुनिनी
पासेना मार्ग उपरथी उतावणथी निकणी गया. गाये चोरीने लागेला ऐ चोरनी
पाछण ऐना नीकणी जवा पछी थोडीवारे गांये जेनी चोरथेदी ते ऐनी
तपासमां नीकण्या. अने कुर्दत्त मुनि जे स्थाने गेठेला हुता त्यां पडोन्था. आ
स्थानेथी लुट्टी लुट्टी पालु जता जे रस्ता कुटता होवाथी गायेना भावीकोऐ
मुनिने गेठेला जेर्ध तेनी पासै आवी पूछयुं के, भदंत ! अहिंथी चोरो कर्ध
पालुऐ गया ? मुनिऐ आनो कोर्ध प्रत्युत्तर न आपतां ते बोको मुनि उपर
भीक्या अने कोधना आवेशमां आवी जर्ध ते बोकोऐ मुनिराजना भाथा उपर
भाटीनी क्यारी भनावी तेमां भण भणता अंगारा भूकी दीधा. ऐ बोको द्वारा
करायेला उपसर्गथी मुनिने पूष वेदना थर्ध परंतु तेने पूषण शांत चित्त

निरुद्वेगः सन् तत्र स्थित एव समाधिभावेन कालं कृत्वा सिद्धिं प्राप्तवान् । एव-
मन्यैरपि मुनिभिर्नपेधिकीपरीपहः सोढव्यः ॥ २१ ॥

अथ शय्यापरीपहजयं प्राह—

मूलम्—उच्चावयाहिं सेज्जाहिं तवस्सी भिक्खु थामवं ।

नाइवेलं विहन्नेज्जा, पार्वदिट्ठी विहन्नई ॥ २२ ॥

छाया—उच्चावचाभिः शय्याभिः, तपस्वी भिक्षुः स्थामवान् ।

नातिवेलं विह्न्यात्, पापदृष्टिर्विह्न्यते ॥ २३ ॥

टीका—‘उच्चावयाहिं’ इत्यादि ।

स्थामवान्=स्थाम=बलं तद्वान्, शीतोष्णादिसहनशक्तिभानित्यर्थः, तपस्वी=
अनशनदिविधतपश्चरणशीलः, भिक्षुः=मुनिः, उच्चावचाभिः=उत्कृष्टापकृष्टाभिः

उपसर्ग की वेदना को बड़े ही शान्त परिणामों से सहन किया । चित्त
में जरा भी उद्वेग नहीं आने दिया । ध्यान में ही वे समाधिभाव से
स्थिर रहे । अन्त में कालधर्म को प्राप्तकर कुरुदत्तमुनिने सिद्धि प्राप्त की ।
इसी प्रकार अन्य मुनियों को भी इस कथासे यही शिक्षा लेनी चाहिये
कि निपद्यापरीपह में यदि इस प्रकार के विघ्न आवे तो उन्हें सहन
करना चाहिये ॥ २१ ॥

अथ ग्याहरवें शय्यापरीपहजय के विषय में सूत्रकार कहते हैं—

‘उच्चावयाहिं’ इत्यादि ।

अन्वयार्थ—(थामवं—स्थामवान्) शीत उष्ण आदि परीपहों को सहन
करनेकी शक्तिवाला, तथा (तवस्सी—तपस्वी) अनशन आदि विविध तपों
का अनुष्ठान करने वाला (भिक्खु—भिक्षुः) साधु (उच्चावयाहिं
सेज्जाहिं—उच्चावचाभिः शय्याभिः) अनुकूल जैसे हेमन्त शिशिर

सहन करी. चित्तमां जरा पणु उद्वेग आववा न दीधो अने ध्यानमां ज समाधी
भावमां स्थिर रह्या. अन्ते काण धर्मने पाभी ओमले सिद्धि प्राप्त करी. आ
प्रकारे अन्य मुनियोओ पणु आ कथाथी ओवी शिक्षा लेवी नेधं ओ के, निपद्या-
परीपहमां कदाथ आ प्रकारनां विघ्न आवे तो ओने सहन करवां नेधंओ. ॥२१॥

इवे सूत्रकार शय्यापरीपह लतवाने कडे छे. ‘उच्चावयाहिं’ इत्यादि.

अन्वयार्थ—थामवं—स्थामवान् ठंडीना अने गरमीना परीपहोने सहन करवानी
शक्तिवाला तथा तवस्वी—तपस्वी अनशन आदि विविध तपानुं अनुष्ठान करवावाला
भिक्खु—भिक्षुः साधु उच्चावयाहिं सेज्जाहिं—उच्चावचाभिः शय्याभिः अनुकूल—ओवी के,

उच्चाः=उत्कृष्टाः, अनुकूलाः-हेमन्तशिशिरयोः शैत्यरहिताः उष्णस्पर्शत्रयो वा, ग्रीष्मवर्षासु उष्णस्पर्शवर्जिताः, शीतस्पर्शत्रयो वा, द्रव्यतः उच्चप्रदेशस्थिता वा उच्चाः, सुधाभिः-‘चूना, सिमेन्ट’ इत्यादिभाषाप्रसिद्धाभिः, उपलक्षणतलादीनामुपलक्षणं चैतत् । अवचाः=अपकृष्टाः प्रतिकूलाः-हेमन्तशिशिरयोः शीतस्पर्शयुक्ताः, ग्रीष्मवर्षासु उष्णस्पर्शवत्यः, द्रव्यतः अधोभागस्थिता वा अवचाः, उच्चाश्च अवचाश्चेति, उच्चावचास्ताभिः, शय्याभिः शेरते यासु साधवस्ताः शय्याः=वसतयः उपाश्रयाः, पट्टकादिरूपाः संस्तारकाश्च उच्यन्ते, ताभिर्हेतुभिः, अतिवेळम्-वेला-मतिक्रम्य, स्वाध्यायादिकं न विहन्यात्=न परित्यजेत् । यद्वा-अतिवेलाम्-इति छाया । वेलाशब्दो मर्यादावाचकः, अतिशयिता वेला अतिवेला, अन्यमर्यादास्पेक्षयाऽतिशयिनीं मर्यादां समतारूपां न विहन्यात्=रागद्वेषजनिताभ्यां हर्षविषादाभ्यां

ऋतु में शैत्यरहित, अथवा-उष्णस्पर्शसहित, ग्रीष्म वर्षाऋतु में उष्णस्पर्शरहित, अथवा शीतस्पर्शसहित, अथवा द्रव्य की अपेक्षा उच्च-प्रदेश में स्थित, उपलक्षण से चूना सिमेंट आदि की बनाई गई ऐसी उच्चशय्या-उपाश्रय अथवा पाटला संस्तारकको लेकर, अथवा अवच-उच्च से प्रतिकूल-हेमन्त शिशिर में शीतस्पर्शयुक्त, ग्रीष्मवर्षा में उष्णस्पर्शयुक्त तथा द्रव्य की अपेक्षा अधोभाग में स्थित ऐसी शय्या को-उपाश्रय, पाटला, संस्तारक को-लेकर (अइवेलं न विहन्ने-ज्जा-अतिवेलं न विहन्यात्) वेला का उल्लंघन करके स्वाध्याय आदि को न छोड़े, अर्थात् कालोकाल प्रतिलेखनादि करे । अथवा रागद्वेष-जनित हर्षविषादरूप परिणामों के द्वारा अन्यमर्यादा की अपेक्षा अति-शय्यविशिष्ट समतारूप मर्यादा का उल्लंघन न करे । उच्चशय्या-

हेमन्त शिशिर ऋतुमां शैत्य रहित, अथवा उष्णस्पर्शवाणी ग्रीष्म, वर्षा ऋतुमां उष्णस्पर्श रहित अथवा शीतस्पर्श सहित अथवा द्रव्यनी अपेक्षाधी उच्च प्रदेशमां रहित । उपलक्षणयुक्ती चूना, सीमेन्ट आदिथी जनाववामां आवेल उच्च शैया, उपाश्रय, अथवा पाटला संस्तारकने लध अथवा अवच उच्चथी प्रतिकूल हेमन्त शिशिरमां ठंडीवाणी, ग्रीष्म वर्षामां उष्ण स्पर्शवाणी तथा द्रव्यनी अपेक्षा अधोभागमां स्थित येवी अवचशय्याने-उपाश्रय, पाटला, संस्तारकने लध अइवेलं न विहन्नेज्जा-अतिवेलं न विहन्यात् वेलातुं उलंघन करी स्वाध्याय आदिने न छोडे, अर्थात् कालोकाण प्रतिलेखनादि करे. अथवा-रागद्वेष जनित हर्ष विषादरूप परिष्णामो द्वारा अन्य मर्यादानी अपेक्षा अतिशय विशिष्ट समतारूप मर्यादानुं उलंघन न करे. उच्च शय्या-अनुकूल वस्तिना लाल भणतां येवी विचार

ન લહ્યેત્ । ઉચ્ચશય્યાં પ્રાપ્ય 'અહો ! ભાગ્યવાનઽહં યન્મમ સર્વકાલસુખદા વસતિ-
મિલિતે'તિ ઠ્ઠાઃ, અવચશય્યાં પ્રાપ્ય તુ ' અહો ! કીદૃશી મમ મન્દભાગ્યતા, યતઃ
શય્યાઽપિ શીતાદિનિવારિકા ન લભ્યતે ' ઇતિ વિપાદઃ । એવંભૂતાભ્યાં હર્ષવિપા-
દાભ્યાં મધ્યસ્થભાવરૂપાં મર્યાદાં નોહ્યદ્વનીયેત્યર્થઃ । યસ્તુ મુનિઃ પાપદષ્ટિઃ=પૂર્વોક્ત
મર્યાદોદ્દેશકઃ સ ચિનિહન્યતે, પરીપદ્ઃ પરાજિતોઽત એવ સાધુમર્યાદાસ્વલિતો
મુનિઃ સંયમાત્પતિતો ભવતીત્યર્થઃ । તસ્માદુપાશ્રયાદી રાગદ્વેષપરિવર્જનેન શય્યા-
પરીપદ્ઃ સોદ્ભવ્ય ઇતિ ભાવઃ ॥ ૨૨ ॥

અનુકૂલ વસ્તિ કો પાકર એસા વિચાર ન કરે કિ "અહો ! મં વદ્ધા હી
'ભાગ્યશાલી હું જો મુદ્ધે સર્વકાલ મેં સુખ દેનેવાલી વસતિ મિલી હૈ"
તથા અવચશય્યા પ્રતિકૂલ વસ્તિ કો પાકર એસા વિચાર ન કરે
કિ-અહો ! મં કૈસા મન્દભાગી હું જો મુદ્ધે શીતાદિ નિવારણ કરને
વાલી વસ્તિ મો નહીં મિલી । હસ પ્રકાર અનુકૂલ પ્રતિકૂલ
વસતિ કી પ્રાપ્તિ કો લેકર મુનિ કો હર્ષવિપાદાત્મક પરિણામોં દ્વારા
મધ્યસ્થભાવરૂપ મર્યાદા કા ઉલ્લંઘન નહીં કરના ચાહિયે । જો
મુનિ (પાવદિટ્ટી વિહન્નર્દ-પાપદષ્ટિઃ વિહન્યતે) અનુકૂલ પ્રતિકૂલ
વસતિ મેં રાગદ્વેષ કરતા હૈ વહ પાપદષ્ટિ મુનિ હસ સમતાભાવરૂપ
મર્યાદા કા નાશ કરતા હુવા સંયમ સે પતિત હો જાતા હૈ । હસલિયે
મુનિકા કર્તવ્ય હૈ કિ વહ ઉપાશ્રય આદિ મેં રાગદ્વેષ કે પરિવર્જન સે
શય્યાપરીપદ્ સહન કરે ॥ ૨૨ ॥

ન કરે કે, " અહો ! હું ખૂબ જ લાગ્યશાળી છું. જે મને સર્વકાળ સુખ દેવાવાળી
વસ્તિ મળી છે " તથા "અવચ" શય્યા પ્રતિકૂળ વસ્તિથી એવો વિચાર ન કરે કે, હું
કેવો મંદભાગી છું જે મને કંડી આદિનું નિવારણ કરવાવાળી વસ્તિ ન મળી, આ
પ્રકારે અનુકૂળ પ્રતિકૂળ વસ્તિની પ્રાપ્તિને લઈ મુનિએ હર્ષ વિપાદાત્મક પરિણામો
દ્વારા મધ્યસ્થ ભાવરૂપ મર્યાદાનું ઉલ્લંઘન કરવું ન જોઈએ. જે મુનિ પાવદિટ્ટી
વિહન્નર્દ-પાપદષ્ટિઃ વિહન્યતે અનુકૂળ પ્રતિકૂળ વસ્તિમાં રાગદ્વેષ કરે છે. તે
પાપદષ્ટિ મુનિ આ સમતા ભાવ રૂપ મર્યાદાને નાશ કરી સંયમથી પતિત
થઈ જાય છે. આ માટે મુનિનું કર્તવ્ય છે કે તે, ઉપાશ્રય આદિમાં રાગદ્વેશના
પરિવર્જનથી શય્યા પરીપદ્ સહન કરે ॥ ૨૨ ॥

शय्यापरीपहः कया रीत्या सोढव्यः ? इति प्रदर्शयति—

मूलम्—पइरिक्कमुवँस्सयं लद्धं, कल्लाणं अदुव पावंगं ।

किमेगरायं करिस्सइ, एवं तत्थऽहियासए ॥ २३ ॥

छाया—प्रतिरिक्तमुपाश्रयं लब्धा, कल्याणम् अथवा पापकम् ।

किमेकरात्रं करिष्यति एवं तत्राध्यासीत् ॥ २३ ॥

‘पइरिक्क’ इत्यादि ।

साधुः, कल्याणम्=शातरूपं सुखदायकम्, अथवा पापकं-पापरूपं दुःखजनकम्, प्रतिरिक्तं=स्त्रीपशुपण्डकादिवर्जितम् - उपाश्रयं=वसति, लब्धा=प्राप्य, एकरात्रम्-एकस्यां रात्रौ अयमुपाश्रयः किं सुखं दुःखं वा करिष्यति न किञ्चित् करिष्यति’ एवम्-ईदृशेन विचारेण तत्र=उपाश्रये अध्यासीत्=अधिवसेत्-रात्रं द्वेषं वा न कुर्यादित्यर्थः । अयं भावः-कचिन्-समभूमिकं सुशोभनं सर्वतुमुत्तमं,

शय्यापरीपह किस तरह सहना चाहिये। इस बातको सूत्रकार प्रदर्शित करते हैं—‘पइरिक्क०’-इत्यादि।

अन्वयार्थ-साधु (कल्लाणं-कल्याणम्) शातरूप-सुखदायक (अदुव-अथवा) या (पावंगं-पापकम्) अशातरूप-दुःखजनक ऐसे (उवस्सयं-उपाश्रयं) उपाश्रय-वसति को जो (पइरिक्कं-प्रतिरिक्तम्) स्त्री पशु एवं पण्डक आदि से रहित है (लद्धं-लब्धा) प्राप्त कर ऐसा विचार करे कि (एगरायं-एकरात्रं) यह उपाश्रय एकरातभर ठहरने वाले मेरे लिये क्या तो सुख दे सकता है और क्या दुःख दे सकता है (एवं तत्थऽहियासए-एवं तत्राध्यासीत्) इस प्रकार विचार कर के वहाँ रहे - उपाश्रय के विषय में वह रागद्वेष न करे । तात्पर्य यह कि साधु के लिये कहीं पर समभूमि-

शय्यापरीपह कुछ रीतधी सड़न करवे ? आ बातने सूत्रकार प्रदर्शित करे छे ‘पइरिक्क’ इत्यादि।

अन्वयार्थ-साधु कल्लाणं-कल्याणम् शातरूप-सुखदायक अदुव-अथवा या पावंगं-पापकम् अशातरूप-दुःखजनक अथवा उवस्सयं-उपाश्रयं उपाश्रय-वसति के जे पइरिक्कं-प्रतिरिक्तम् स्त्री पशु अने पण्डक आदिधी रहित छे, जेवी वसति लब्धुं-लब्धा प्राप्त करी विचार करे के, एगरायं-एकरात्रं आ उपाश्रय अेक रात रोकवावाणा भारा भाटे शुं सुख आपनार छे के शुं दुःख आपनार छे. एवं तत्थऽहियासए-एवं तत्राध्यासीत् आ प्रकारने विचार करी त्यां रहि. उपाश्रयना विषयभां ते रागद्वेष न करे. तात्पर्य अे छे के, साधुने भाटे केई स्थणे समभूमिवाणे ५

क्वचिद्विषमभूमिकं पांसुप्रचुरं शर्कराशकलसंकुलं शीतकालेऽतिशीतं ग्रीष्मे बहुघर्मकं दुःखदं सुखदं वा स्यादिरहितमुपाश्रयं, मृदुकठिनादिभेदेनोच्चावचं पट्टकादिरूपं संस्तारकं च प्राप्य, तत्र तत्र रागद्वेषाकरणेनानुद्विग्नो भवेत् । एवं शय्यापरीपहः साधुना विजितो भवतीति ।

बाला उपाश्रय मिले या विषम भूमिवाला, चाहे तो वह ऋतु के अनुकूल हो चाहे प्रतिकूल हो, चाहे वह कंकर पत्थर से युक्त भूमिवाला हो चाहे सिमेंट आदि से यनी हुई भूमिवाला हो—कैसा भी क्यों न हो परन्तु स्त्री पशु आदि से यदि वह रहित है तो साधु को उस में किसी भी प्रकार का हर्षविषाद नहीं करना चाहिये । इसी तरह संस्तारक भी चाहे मृदुगुणयुक्त हो चाहे कठिन हो कैसा भी हो उसको प्राप्तकर साधु को उस विषय में भी रागद्वेषपरिणति नहीं करनी चाहिये । इस तरह करने से साधु के द्वारा शय्यापरीपह जीता जाता है ।

भावाथ—शय्यापरीपह पर यदि साधु को विजय पाना है तो उसकी विचारधारा ऐसी कभी नहीं होनी चाहिये कि यह शय्या, उपाश्रय अथवा पाट-पाटला आदि सुन्दर हैं या असुन्दर है? ऋतु के अनुकूल हैं या प्रतिकूल हैं । साधु के लिये क्या तो अनुकूल और क्या प्रतिकूल? सबके ऊपर उसकी समान दृष्टि होनी चाहिये । यह तो दृष्टि की विषमता है जो साधुके लिये उसकी समाचारी से उचित नहीं मानी जाती है। संयम का निर्विघ्नरूप से निर्वाह जैसे भी हो सके उस रूप से

भजे अथवा विषमभूमिवाणे, ते ऋतुने अनुकूल होय अथवा प्रतिकूल होय, याडे ते कंकरा पत्थरनी भूमिवाणे होय के, याडे सीमेंट आदिनीभूमिवाणे गमे तेवे होय. परंतु स्त्री पशु आदिथी जे ते रहित होय तो साधुजे तेमां केध प्रकारने दुर्ष विषाद नहीं करवे. जेधजे. जे जे रीते संस्तारक पद्य याडे तेवुं सुंवाणुं होय अथवा तो कठण्य होय गमे तेवुं होय तेने प्राप्त करी साधुजे ते विषयमां पद्य रागद्वेष परिधृति रागवी न जेधजे आवी रीते करवाथी साधु शय्यापरीपह लती नय छे.

भावाथ—शय्यापरीपहने कदाय साधुजे लतवे होय तो तेनी विचार धारा जेवी कही न होय के, आ शय्या उपाश्रय-पाटला आदि सुंदर छे के असुंदर, ऋतुने अनुकूल छे के प्रतिकूल साधु माटे क्युं अनुकूल अने क्युं प्रतिकूल पधा उपर तेनी समान दृष्टि होवी जेधजे. जे तो दृष्टिनी विषमता छे जे साधु माटे तेनी समाचारीथी उचित मानवामां आवती नथी. संयमने निर्विघ्न

अत्र दृष्टान्तः प्रदर्शयते—

एकदा भावितात्मा शुभचन्द्रनामाचार्यः सुविनीतशिष्यपरिवारैः सह ग्रामानुग्रामं विहरन् श्रावस्तीनगर्यां बहिरशोकनामके नन्दनवनतुल्ये उद्याने समकृतः। तस्य बहुमध्यदेशभागे केलिप्रियभूपस्य प्रासाद आसीत्। स च प्रासादः प्रासादीयः प्रदर्शनीयोऽभिरूपः प्रतिरूपो मणिकुट्टिमतलः समरमणीयभूमिभाग आदर्शतलोपमः कोमलस्पर्शः सर्ववसुखदः सर्वथाऽनुकूलो रुचिरपीठफलकसंस्तारकयुक्त आसीत्। तत्रासौ तपःसंयमाराधको मुनिर्निवसन् विशुद्धभावेन तमनुकूलशय्यापरीपहं मण्यस्थभावेन सहमानधिन्यति-अत्रैकरात्रमात्रं ममावस्थानं, किमनेन शय्यासुखेन।

करते रहना चाहिये इसी में साधु की शोभा है।

दृष्टान्त-एक समय की बात है-शुभचंद्र नाम के आचार्य सुविनीत अपने शिष्यपरिवार के साथ ग्रामानुग्राम विहार करते हुए श्रावस्ती नगरी के बाहिर रहे हुए नंदनवनतुल्य अशोकनामक उद्यान में पधारे। उस उद्यान के ठीक मध्यभाग में केलिप्रियभूप का प्रासाद था। यह प्रासाद बहुत ही सुन्दर था। इसका कुट्टिमतल मणिमय था। इसका भूमिभाग सम एवं रमणीय था। वह ऐसा चलकता था कि मानो दर्पण का तल हो। स्पर्श उसका सुकुमाल था। यह महल सब ऋतुओं के अनुकूल था। रुचिर पीठ फलक संस्तारकों से युक्त था। तथा प्रासादिय दर्शनीय अभिरूप और प्रतिरूप था। तप और संयम के आराधक ये आचार्य महाराज उस प्रासाद में एक तरफ ठहर गये। उस में इन्हे सब बात की सुविधा थी। परन्तु फिर भी आचार्य ने उस विषय में अनुकूलता के विचार से हर्षभाव धारण नहीं किया।

इथी निर्वाह नेम धर्ष शके तेवा इथे करतुं रडेवु नेधंये तेमां साधुनी शोभा छे.

दृष्टान्त—एक समये शुभचंद्र नामना आचार्य सुविनीत पोताना शिष्य परिवार साथे ग्रामानुग्राम विहार करता करता श्रावस्ती नगरीनी भंडार रडेला नंदनवन तुल्य अशोक नामना उद्यानमां पधायो. ते उद्यानना मध्य भागमां केलिप्रिय राजनुं निवास स्थान इतुं, ते महालय भूषण सुंदर इतो, अतुं आंगणुं मणिजडित इतुं. भूमिभाग सम अने रमणीय इतो. ते अयो यण-काट भारते इतो के लखे अरिसो डोय। अनेो स्पर्श भूषण सुवाणो लागतो. आ मडेल सधणी ऋतुओमां अनुकूल इतो. इथी उपलवे तेवा पीठ, इलक, शय्या, संस्तारक आदि युक्त इतो. तप अने संयमना आराधक शुभचंद्र आचार्य ते मडेलनी एक भागु उतयो अेमां तेमने दरेक प्रकारनी सगवडता इती छतां. प्रभु आचार्ये ते अनुकूलताना विचारथी. हर्षभाव धार न कर्यो.

ईदृशसुखावहशय्यानुरागः किमात्मकल्याणाय मम भविष्यति ?; कदापि नैव । एवं विचिन्त्य शुभपरिणामेन प्रशस्ताध्यवसायेन शिष्यसहितः शुभचन्द्राचार्यस्तदाऽवधिज्ञानं प्राप्तवान् । स च द्वितीयदिवसे शिष्यपरिवारैः सह विहारं कृत्वा क्वचिद् लघुग्रामे वसतीं निवसति स्म ।

सा च वसतिरुन्दरुकृतानेकविलयुक्तभित्तिका, भूतभुजंगमादिभयोत्पादिका प्रचुरपांसुशर्करासंकुला विषमभूमिका जीर्णशीर्णा पीठफलकादिरहिता चासीत् । तत्र प्रमार्जनं कृत्वा संयमेन तपसाऽऽत्मानं भावयन्नसौ विहरति स्म । तत्र रात्रौ

किन्तु विशुद्ध भाव से युक्त होकर उस अनुकूल शय्यापरीपह को मध्यस्थ भाव से सहन किया । विचार किया कि-यहां एक रात्रि भर के लिये तो मेरी स्थिरता है । इस शय्या के सुख से मुझे क्या लाभ । इस शय्या का सुख मेरे आत्मकल्याण का कोई साधक नहीं है कि जिससे इस में मेरी उपादेय बुद्धि हो । पर द्रव्य के शुभाशुभ परिणामन से मैं अपने में शुभाशुभरूप परिणामन क्यों होने दूं । इसका परिणामन इसके साथ है और मेरा परिणामन मेरे साथ । इस प्रकार विचार कर शुभ परिणाम एवं प्रशस्त अध्यवसाय के प्रभाव से शिष्य सहित उनको अवधिज्ञान उत्पन्न हो गया ।

दूसरे दिन उन्होंने ने वहां से विहार कर दिया । विहार कर वे एक छोटे से ग्राम में आये । जहां ये ठहरे वहां का स्थान बड़ा ही भयानक था । उस में अनेक चूहों के विल थे । भूत, भुजंगम आदि का वहां उपद्रव भी था । धूलि एवं कंकर से वहां की भूमि सम विषम थी ।

पक्षु विशुद्ध लावथी युक्त गनी तेमण्णे अनुकूल शय्यापरीपहने सडन कथी. विचारुं' के अर्द्धिं अेक रात्रि माटे भारी स्थिरता छे. आ शय्याना सुषथी भने शे लाल ? शय्यानुं आ सुष भारा आत्मकल्याणुं' केाँ साधक नथी के नेताथी तेमां भारी उपादेय बुद्धि थाय. परद्रव्यना शुभाशुभ परिणामनथी हुं पोतानामां शुभाशुभ रूप परिणामन शा माटे थवा हँ. तेनुं परिणामन तेनी साथे अने माडुं परिणामन भारी साथे. आ प्रकारनेा विचार करी शुभ परिणाम अने प्रशस्त अध्यवसायना प्रलावथी शिष्य सहित तेमने अवधिज्ञान उत्पन्न थयुं.

भीजे द्विवसे तेआये त्यांथी विहार कथी. विहार करीने तेआ अेक नाना गामडाभां आव्या. न्यां तेआे देाकाया हता ते स्थान धणुं न लया- नक हतुं. तेमां अनेक उँहरनां बोणु हतां, भूत, भुजंगम वगेरेनाे उपद्रव त्यां हतो. धूण अने कांकराथी त्यांनी भूमि उँथी निथी हती, लणुं शीधुं

स्वाध्यायं ध्यानं च कृत्वा शुभचन्द्राचार्यस्तदाज्ञया सर्वे मुनयश्च स्वस्वसंस्तारको-
परि शयनार्थमुद्यताः । तदा तत्रैको भुजङ्गमः स्वाहारमन्वेपयन् समागतः । तमवलोक्य
सर्वे मुनयोऽनुद्विग्ना एव तस्थुः । स च भुजङ्गमः कंचिन्मूपकमनुभावमानस्तस्मिन्
दृष्टिपथातिक्रान्ते मुनीन् पश्यति । तस्य दृष्टौ विपमासीत् अतस्तेन दृष्टमात्रा एव
सन्तस्ते मुनयो विपाक्रान्ता जाताः अथ शुभचन्द्राचार्यस्तदीयशिष्याश्च सर्वे मुनयः
समाधिभावमवलम्ब्य क्षपकश्रेणिं समारुह्य शुक्लध्यानानलेन सकलं कर्म भस्मसात्
कृत्वा केवली भूत्वाऽन्तर्मुहूर्तमात्रेण शिवपदं प्राप्तवन्तः । एवं सर्वैर्मुनिभिः श्रुत्या-
परीपहः सोढव्यः ॥ २३ ॥

जीर्ण शीर्ण संस्तारक तक भी इसमें कोई नहीं था । उस भूमि का
प्रमार्जन कर आचार्य महाराज ने वहां पर अपनी साधुमंडलीसहित
निवास किया । तप एवं संयम से आत्मा को भावित करते हुए उन
आचार्य महाराज ने रात्रि में स्वाध्याय और ध्यान करने के पश्चात्
समस्त अपने शिष्यों को अपने२ संस्तारकों पर शयन करने की
आज्ञा दी । आज्ञा पाते ही सब के सब अपने२ संस्तारक पर सोने
लगे । इतने में वहां एक सर्प अपने आहार की खोज में आया । देखकर
समस्त मुनिमंडली अनुद्विग्न ही रही । वह सर्प एक चूहेके पीछे पड़ा हुआ
था । जब वह चूहा उसे दिखा नहीं तो उसने मुनिमंडली की तरफ अपनी
दृष्टि लगाई । उसकी दृष्टि में ही विप था, इसलिये उसके द्वारा देखे
गये वे आचार्यसहित मुनिराज विप से आक्रान्त हो गये । सब ने
मिलकर समाधिभाव का आलम्बन किया, और उसके प्रभाव से वे
सब के सब क्षपकश्रेणी पर आरूढ होकर शुक्लध्यान की प्राप्ति से सम-

संस्तारक पशु न इतुं. आ भूमिने साक्ष करीने आचार्य महाराजने ते स्थये
पोताना शिष्यो साथे निवास कथ्यो. तप अने संयमथी आत्माने भावित
करीने ते आचार्य महाराजने रात्रिमां स्वाध्याय अने ध्यान कथ्या पछी पोताना
पथा शिष्योने पोतपोताना संस्तारक उपर शयन करवानी आज्ञा आयी.
आज्ञा भणतां व सधणा पोतपोताना संस्तारक उपर सुवा लाग्या. अटलाभां
अेक सर्प पोताना आहारनी शोधमां नीकल्यो, अेने जेठ सभस्त साधु
गण अनुद्विग्न रह्युं. ते सर्प अेक उंदरनी पाछण पडेल इतो. न्यारे ते उंदर
तेना जेवामां न आव्यो तो तेछे आ मुनि गण तरक अेनी दृष्टि हेरवी.
अेनी दृष्टिमां व अेर इतुं, अेटवे अेनी दृष्टिअे पडेला आचार्य सहित
मुनिराजने विपथी आकुणव्याकुण जनी गथा. सधणाअे भण्णीने समाधि भावतुं
आलंबन कथ्युं. अने तेना प्रभावथी तेअे सधणां क्षपकश्रेणी पर आरूढ

अथाऽऽक्रोशपरीपहजयं प्राह—

मूलम्—अक्रोसिज्जं परो भिक्खुं, न तंसि पडिसंजले ।

सरिसो होइं वालाणं, तम्हां भिक्खू न संजले ॥२४॥

छाया—आक्रोशेत् परो भिक्षुं, न तस्मिन् प्रतिसंज्वलेत् ।

सदृशो भवति बालानां, तस्माद् भिक्षुर्न संज्वलेत् ॥ २४ ॥

टीका—‘अक्रोसिज्ज’ इत्यादि ।

परः=अन्यः, यदि भिक्षुं=मुनिम् आक्रोशेत्=दुर्वचनेन तर्जयेत्, तर्हि मुनि-
स्तस्मिन् न प्रतिसंज्वलेत्=न प्रतिकुप्येत् । अवाच्यभाषयाऽऽकृष्टः सन् कोपावे-

स्त कर्मो को नाशकर केवली हो गये, तथा अन्तर्मुहूर्त में शिवपद को
प्राप्तकर सिद्ध हो गये । इस कथा से यही शिक्षा मिलती है कि
शय्यापरीपह पर विजय पानेवाला मुनि आत्मकल्याण कर मुक्त हो
जाता है, अतः शय्यापरीपह पर विजय प्राप्त करना चाहिये ॥ २३ ॥

अब सूत्रकार बारहवें आक्रोशपरीपह का जय कहते हैं—

‘अक्रोसिज्ज’—इत्यादि.

अन्वयार्थ—यदि (परो-परः) कोई अज्ञानी मनुष्य (भिक्खुं-भिक्षुम्)
साधुको (अक्रोसिज्ज-आक्रोशेत्) दुर्वचन से तर्जित करे तब वह साधु
(तंसि-तस्मिन्) उसके उपर (न पडिसंजले-न प्रतिसंज्वलेत्)
क्रोधित न हो—अर्थात् जब कोई अशिष्ट भाषा से साधु के साथ
असभ्य व्यवहार करे—गाली आदि दुर्वचन कहे तो साधु को उसके
प्रत्युत्तररूप में क्रोध के आवेश से उसके प्रति गाली वगैरह अशिष्ट

अनी शुक्लध्याननी प्राप्तिथी समस्त कर्मभणना नाश करी डेवणीपदने प्राप्त कर्युं.

तथा अंतर सुदुर्तमां शिवपदने प्राप्त करी सिद्ध अनी गया. आ कथाथी अे शिक्षा
प्राप्त थाय छे के, शय्यापरीपह पर विजय भेणवनार मुनि आत्मकल्याण करी
सुक्रिताने पावे छे, भाटे शय्यापरीपहने विजय प्राप्त करवे लेछअे. ॥ २३ ॥

इवे सूत्रकार आरमा आक्रोश परीपहना न्य ने कडे छे. ‘अक्रोसिज्ज’—इत्यादि,

अन्वयार्थ—यदि परो-परः ले डोई अज्ञानी मनुष्य भिक्खुं-भिक्षुं साधुने अक्रो-
सिज्ज-आक्रोशेत् भराथ वचनथी अपमानित करे तो पछु ते साधु तंसि-तस्मिन्
तेना उपर न पडिसंजले-न प्रतिसंज्वलेत् क्रोधित न थाय अर्थात् ले डोई अशिष्ट
भाषाथी साधुनी साथे असभ्य वडेवार करे, गाण आदि दुर्वचन कडे तो साधुअे
तेना प्रत्युत्तर इये क्रोध आवेशथी तेना प्रति गाण विगेरे अशिष्ट भाषाने प्रयोग

શેન પ્રત્યાક્રોશરૂપં ગાલીદુર્વચનાદિકં ન વદેદિત્યર્થઃ । નનુ પ્રતિસંજ્વલને કા હા-
નિરિત્યાશદ્વયાહ—‘ સરિસો હોઝ ચાલાણં ’ ઇતિ । પ્રતિસંજ્વલન્ ચાલાનામ્-
અજ્ઞાનિનાં સદૃશો ભવતિ, તસ્માદ્ ભિક્ષુઃ=મુનિઃ ન સંજ્વલેત્=આક્રુષ્ટોઽપિ ક્રોધં
ન કુર્યાદિત્યર્થઃ ।

इदमत्र बोध्यम्—मिथ्यादर्शनोद्भूतमुखनिर्गतानि कोपानलोदीपनानि दुर्वचनानि
श्रुत्वा तत्प्रतीकारं कर्तुं समर्थोऽपि मुनिः—“ दुरन्तः क्रोधकषायोदयनिमित्तपापकर्म-
विपाकः ” इति चिन्तयन् स्वहृदये क्रोधायानवकाशदानेनाक्रोशपरीषहं सहेत ।

उक्तञ्च—

भाषा का प्रयोग नहीं करना चाहिये, क्यों कि गाली देने वाले को
गाली देनेवाला साधु—जैसे के साथ वैसा बनने वाला मुनि—(बालाणं
सरिसो होइ—चालाणां सदृशो भवति) अज्ञानियों के सदृश ही माना
जाता है । (तम्हा—तस्मात्) इसलिये (भिक्षू न संजले—भिक्षुः न
संज्वलेत्) भिक्षु क्रोध न करे ।

तात्पर्य इसका यह है कि—अज्ञान से मन्दोन्मत्त हुए व्यक्तियों के
मुख से निकले हुए दुर्वचनों को जो कि कोपरूप अग्नि के उद्दीपक होते
हैं, सुनकर उनके प्रतिकार करने में समर्थ भी मुनि “ क्रोध कषाय के
उदय के निमित्त से पापकर्म का विपाक दुरन्त होता है ” ऐसा विचार
कर अपने हृदय में क्रोध को स्थान न दे । इससे मुनि आक्रोशपरीषह
पर विजय पाता है । कहा भी है—

ન કરવેા બોધ એ. કેમ કે, ગાળેા દેનારને સામી ગાળ દેનાર સાધુ-જેવાની
સાથે તેવા થનાર-મુનિ ચાલાણં સરિસો હોઝ-ચાલાનાં સદૃશો ભવતિ અજ્ઞાની-
ઓની માફક જ માનવામાં આવે છે. તુમ્હા-તસ્માત્, આ માટે ભિક્ષુ ન સંજલે-
ભિક્ષુઃ ન સંજ્વલેત્ ભિક્ષુ ક્રોધ ન કરે.

તાત્પર્ય આનું એ છે કે, અજ્ઞાનથી મદોન્મત્ત બનેલ વ્યક્તિઓના
મોઢામાંથી નિકળેલા દુર્વચનો કે જે ક્રોધ રૂપી અગ્નિ ઉત્પન્ન કરનાર
હોય છે, તે સાંભળી તેનો પ્રતિકાર કરવામાં સમર્થ હોય પણ મુનિ “ ક્રોધ
કષાયના ઉદય નિમિત્તથી પાપકર્મનો વિપાક દુરન્ત હોય છે. ” એવો વિચાર
કરી પોતાના હૃદયમાં ક્રોધને સ્થાન ન આપે. આથી તેવા મુનિ આક્રોશ
પરીષદ પર વિજય પ્રાપ્ત કરે છે. કહ્યું પણ છે—

नाकृष्टो मुनिराक्रोशेत्, सम्यग्ज्ञानाद्यवर्जकः ।

अपेक्षेतोपकारित्वं, न तु द्वेषं कदाचन ॥ १ ॥

अन्यच्च—

चाण्डालः किमयं द्विजातिरथवा शूद्रोऽथवा तापसः,

किं वा तत्त्वनिवेशपेशलमतिर्योगीश्वरः कोऽपि वा ।

इत्यस्वल्पविकल्पजालमुखरैः संभाष्यमाणो जनै-

र्नो रुष्टो नहि चैव हृष्टहृदयो योगीश्वरो गच्छति ॥ २ ॥

इति विचार्य समत्वेन तिष्ठेत् ॥ २४ ॥

नाकृष्टो मुनिराक्रोशेत्, सम्यग्ज्ञानाद्यवर्जकः ।

अपेक्षेतोपकारित्वं, न तु द्वेषं कदाचन ॥ १ ॥

सम्यग्ज्ञानादिक का परिहार नहीं करनेवाला, अर्थात् सम्यग्ज्ञानादिक गुणोंके उपार्जन करने में कुशलमति भिक्षु अपमानित होने पर भी कभी भी अपमान करने वाले के प्रति अशिष्ट भाषा का प्रयोग न करे । प्रत्युत अपने प्रति इस प्रकार का व्यवहार करने वाले व्यक्ति को अपना उपकारी ही माने, किन्तु इसके प्रति द्वेषभाव कभी न रखे । और भी—

चाण्डालः किमयं द्विजातिरथवा शूद्रोऽथवा तापसः,

किं वा तत्त्वनिवेशपेशलमतिर्योगीश्वरः कोऽपि वा ।

इत्यस्वल्पविकल्पजालमुखरैः संभाष्यमाणो जनै,

र्नो रुष्टो नहि चैव हृष्टहृदयो योगीश्वरो गच्छति ॥ २ ॥

नाकृष्टो मुनिराक्रोशेत्, सम्यग्ज्ञानाद्यवर्जकः ।

अपेक्षेतोपकारित्वं, न तु द्वेषं कदाचन ॥ १ ॥

सम्यग्ज्ञानादिकने परिहार न करवावाणा—अर्थात् सम्यग्ज्ञानादिक गुणोंके उपार्जन करवाभा कुशलमति भिक्षु अपमानित था छतां पक्षु कही पक्षु अपमान करवावाणा तरक्ष अशिष्ट भाषाने प्रयोग न करे. पोताना तरक्ष आ प्रकारने वडेवार करवावाणी व्यक्तिने पोताने उपकारी न माने. तेम तेना तरक्ष द्वेष भाव कही पक्षु न राणे. भीक्षुं पक्षु—

चाण्डालः किमयं द्विजातिरथवा शूद्रोऽथवा तापसः,

किं वा तत्त्वनिवेशपेशलमतिर्योगीश्वरः कोऽपि वा ।

इत्यस्वल्प विकल्पजालमुखरैः संभाष्यमाणो जनै,

र्नो रुष्टो नहि चैव हृष्टहृदयो योगीश्वरो गच्छति ॥ २ ॥

મુનિકો દેશ કર કોઈ ઉનકો ઘાણડાલ કહે, કોઈ બ્રાહ્મણ કહે, કોઈ શૂદ્ર કહે, કોઈ તપસ્વી કહે, કોઈ વિશિષ્ટ જ્ઞાની તો કોઈ યોગીશ્વર કહે, ઇસ પ્રકાર કહને વાલે વ્યક્તિયોં કે મુલ્ક સે નિકલતે હુપ લણુતા ઘ શ્રેષ્ઠતાસૂચક વચનોં કો સુનકર મુનિ ન તો રુષ્ટ હોતા હૈ ન તુષ્ટ હોતા હૈ કિન્તુ સમભાવ સે ચલા જાતા હૈ ।

ભાવાર્થ—અશિષ્ટ ભાષા કા પ્રયોગ સાધુ જૈસે સન્ત પુરુષોં કે પ્રતિ ઘે હી વ્યક્તિ કરતે હૈં જો મિથ્યાત્વ કે કીચઢ સે લિસ હોતે હૈં । અતઃ ઉનકે દ્વારા અપમાનિત હોને પર ભી સાધુ કો ઉનકે પ્રતિ રુષ્ટ ન હોકર પ્રત્યુત દયાવાનુ હી હોતે રહના ચાહિયે । યહ ઉસ સમય વિચાર કરના ચાહિયે કિ દેલો યે કિતને અજ્ઞાની હૈં જો ઘોડી સ્ત્રી વસ્તુ કે યથાર્થ ઘોષ સે વિકલ હો રહે હૈં । યે જો કુછ કહતે હૈં ઉનમેં ઇનકા અપરાધ નહીં હૈ, યહ તો મિથ્યાદર્શન કા હી પ્રભાવ હૈ, અતઃ ઇનકી આત્મા સમ્યગ્જ્ઞાન સે વાસિત ઘનેં ઓર યે ઉત્તમ માર્ગ પર આરૂઢ હો જાયે, ઇસી ભાવના સાધુકો રલ્લની ચાહિયે । તથા ઇસ સમય યદિ મેં ઇનકે સાથ અસમ્ય વ્યવહાર ઇન્હીં જૈસા કરને લગૂં તો ઇનમેં ઓર મુદ્દા મેં વ્યા અન્તર હો સકતા હૈ । જ્ઞાની ઓર અજ્ઞાની કી ઘેષ્ટા મેં આસમાન પાતાલ જૈસા અન્તર જો ઘતલાયા ગયાં હૈ વહ યહાં લુપ્ત હો

મુનિને ભેઠ કોઈ ઝેને ચંડાલ કહે, કોઈ બ્રાહ્મણ કહે, કોઈ શૂદ્ર કહે, કોઈ તપસ્વી કહે, કોઈ વિશિષ્ટ જ્ઞાની તો કોઈ યોગીશ્વર કહે, આ રીતે કહેવા-વાળી વ્યક્તિઓના મુખથી નિકળતા ભુગતા અને શ્રેષ્ઠતા સૂચક વચનોને સાંભળી મુનિ ન તો ક્રોધિત અને કે ન તો તુષ્ટમાન થાય છે. પરંતુ સમભાવથી વિચરે છે.

ભાવાર્થ—અશિષ્ટ ભાષાનો પ્રયોગ સાધુ જેવા સંત પુરૂષ તરફ એજ વ્યક્તિ કરે છે કે જે મિથ્યાત્વના ક્રિયક્રમાં લપટાયેલા હોય છે, આથી એમના દ્વારા અપમાનિત થવા છતાં પણ સાધુએ તેના તરફ ન રૂઠતાં પ્રત્યુત્તરમાં દયાવાન જ રહેવું ભેઠએ. એ સમયે એવો વિચાર કરવો ભેઠએ કે, ભુઓ ! આ કેટલા અજ્ઞાની છે. જે ઝોટી ખરી વસ્તુના યથાર્થ ઘોષથી વિકળ બની રહેલ છે. એ જે કાંઈ કહે છે એમાં એનો અપરાધ નથી, મિથ્યાદર્શનનો જ આ પ્રભાવ છે. આથી એનો આત્મા સમ્યગ્જ્ઞાનથી વકસિત બની ઉત્તમ માર્ગ ઉપર આરૂઢ થઈ જાય એવી ભાવના સાધુએ રાખવી ભેઠએ. આ સમયે ભે ઠું એના જેવોજ અસભ્ય વ્યવહાર કરવા લાગું તો એનામાં અને મારામાં શું અંતર રહ્યું ? જ્ઞાની અને અજ્ઞાનીની ઘેષ્ટામાં આકાશ પાતાળ જેટલું અંતર ખતાવવામાં આવ્યું છે તે આથી હુપ્ત થઈ જાય છે. આના આ ૦ રને માટે

उक्तार्थमेव विशदीकुर्वन् प्राह—

मूलम्—सोच्चाणं फरुसा भासा, दारुणा गामकंटगा ।

तुसिणीओ उवेहेज्जा, न ताओ मणंसी करे ॥२५॥

छाया—श्रुत्वा खलु परुषा भापाः, दारुणा ग्रामकण्टकाः ।

तूष्णीकः उपेक्षेत, न ता मनसि कुर्यात् ॥ २५ ॥

टीका—'सोच्चाणं' इत्यादि ।

दारुणाः—दारयन्ति=विदारयन्ति संयमधैर्यमिति दारुणाः=दुःसहाः, मनसि वज्रा-
घातकारिका इत्यर्थः, ग्रामकण्टकाः=ग्रामः=इन्द्रियाणां समूहस्तस्य कण्टका इव कण्टकाः
=दुःखोत्पादकत्वेन प्रतिकूलाः परुषा=रुक्षाः कठोराः, भापाः=वचनानि, श्रुत्वा खलु
तूष्णीकः=मौनयलम्बी सन्, उपेक्षेत=ता भाषा अवधीरयेत्-नाद्रियेत । 'उवेहेज्जा'

ज्ञाता है । इनके इस व्यवहार को मुझे समताभाव से सहन करना
चाहिये, क्यों कि इससे मेरे अधिक कर्मों की निर्जरा होगी, इस निर्जरा
में यह मेरा उपकारी है । अतः इस उपकारी के प्रति मैं द्वेष करूँगा
यह मेरी कितनी अज्ञानता होगी । ऐसा विचार कर साधु आक्रोश-
परीपह पर विजय प्राप्त करे ॥ २४ ॥

उपरोक्त अर्थ को स्पष्ट करते हुए कहते हैं—'सोच्चाणं'—इत्यादि-

अन्वयार्थ—(दारुणा-दारुणाः) संयमरूपी धैर्यको विदारणकरने वाली
मन में वज्र के तुल्य दुस्सह आघात पहुँचाने वाली तथा (गामकंटगा-
ग्रामकंटकाः) इन्द्रियों को कंटकतुल्य दुःख की उत्पादक होने से प्रतिकूल
(फरुसा-परुषाः) रुक्ष-कठोर ऐसी (भासा-भापाः) लोगों की-असभ्य
व्यक्तियोंकी भाषाओं-वचनोंको (सोच्चाणं-श्रुत्वा खलु) सुनकर मुनि
(तुसिणीओ उवेहेज्जा-तूष्णीकः उपेक्षेत) चुपचाप रहा हुआ-मौन धारण

समताभावधी सहन करवे जेई जे. केभके जेधी भने अधिक कर्मोनी निर्जरा
धरो. जेवे विचार करी साधु आक्रोश परीपह उपर विजय प्राप्त करे. ॥२४॥
उपरोक्तअर्थने स्पष्ट करतां कडे छे—'सोच्चा णं' इत्यादि.

अन्वयार्थ—दारुणा-दारुणाः संयमरूपी धैर्यने विदारण करवावाणी दुःसह-मनमां
पुत्र तुल्य आघात पहुँचावावाणी गामकंटगा-ग्रामकंटकाः तथा इन्द्रियोने
कंटक समान दुःखने उत्पादन करनार होवाधी प्रतिकूल फरुसाः-परुषाः रुक्ष कठोर
जेधी भासा-भापाः असभ्य लोकैना पचनेने सोच्चाणं-श्रुत्वा खलु सांभुणीने
मुनि तुसिणीओ उवेहेज्जा-तूष्णीकः उपेक्षेत चुपचाप रही, मौन धारण करी ते

इत्यस्यैवार्थं विशदीकुर्वन् प्राह—‘न ताओ मणसी करे’ इति । ताः भाषा मनसि न कुर्यात्—न स्थापयेत् । ‘अज्ञानवशादनेन संयमधैर्यापहारिण्यो भाषा उक्ता अभ्र नास्त्यस्य दोषः किं तु ममैव पूर्वार्जितकर्मणः फलमेतत्’ इति विचार्य तादृशभाषाया अनादरणेन तद्भाषिणि द्वेषं न कुर्यादिति भावः ।

अत्र दृष्टान्तः प्रदर्शयते—

एकदा क्षमाधरनामकः कश्चिदुत्थरतपश्चर्यापरायणो मुनिरासीत् । तद्गुणानु-
रागेण कश्चिद्देवः प्रीत्या तमभिवन्द्याव्रवीत्—मम योग्यं कार्यमावेदनीयं भवद्भिः ।

अन्यदा कदाचिन्मार्गे गच्छन् मुनिः स्वामिमुखागतेन केनचिन्चाण्डालेन सो-
पहासमुक्तः—अहो ! अकर्मण्य ! भिक्षुक ! क्व गच्छसि ? । एतद् दुर्वचनं निश्चय्य

करता हुआ—उस तरफ उपेक्षाभाव धारण करे, किन्तु (ताओ मणसी
न करे—ताः मनसि न कुर्यात्) उन वचनों को अपने मन में स्थान न
देवे । “अज्ञानवशासे ही इसने संयम धैर्य को अपहरण करने वाली
भाषा का प्रयोग किया है सो इस में इसका दोष नहीं है किन्तु मेरे
ही पूर्वोपार्जित पापकर्मों का यह फल है ” । यह समझकर उस पुरुष
भाषा बोलने वाले पर द्वेषबुद्धि न करे ।

दृष्टान्त—दुत्थरतपश्चर्या करने में लीन क्षमाधर नामक एक मुनि थे ।
उनके गुणों में अनुरागी होने से कोई एक देव वंदनाकर उनसे बोला कि
यदि मेरे योग्य कोई कार्य हो तो आप मुझ से अवश्य कहें, यह मैं
आप से हाथ जोड़ कर प्रार्थना करता हूँ ।

एक समय की बात है कि वे मुनि कहीं जा रहे थे । रास्ते में
सन्मुख आता हुआ उन्हें एक चाण्डाल मिला । उसने मुनिराज को

तरश् उपेक्षाभाव धारण करे परंतु ताओ मणसी न करे—ताः मनसि न कुर्यात्
तेना वचनेने पोताना मनमां स्थान न आये. अज्ञानवशाताथी तेष्ु संयम
धैर्यनुं अपमान करनार भाषानो उपयोग कथीं छे तो तेमां अने दोष नथी.
परंतु मारा पूर्वोपार्जित पाप कर्मोनुं न अं इण छे. आपुं समलने अं
असभ्य भाषा बोलवावाणा उपर देशबुद्धि न करे.

दृष्टान्त—क्षमाधर नामका दुष्कर तपश्चर्या करवाभां लीन अंवा अंके मुनि
हता. तेमना शुष्ोना अनुरागी अंवा कोर् अंके देवे वंदना करीने अंमने
कहुं के, मारा थोअ्य कोर् कार्य होय तो आप मने अवश्य कडो अंम हुं
आपने हाथ नेडी प्रार्थना करी कहुं छुं- अंके वपत ते मुनि कथांके न्ठ
रहं. हता. रस्तामां साभेधी आपतो अंके अंडाल मज्थो. तेष्ु मुनिराजने

जातकोपः सन् मुनिरब्रवीत्—उन्मत्तस्त्वमसि किम् ? । ततस्तेन प्रचण्डकोपावेशेन चाण्डालेन कथितम्—अरे भिक्षुक ! किं प्रलपसि ? कोऽन्यस्त्वत्समी मलिनदेहः क्षुब्ध-पिपासादिवेदनाग्रस्तो लुञ्चितशिरा गृहे गृहे गृहपाल इवाहारमन्वेपयन् भ्रमसि ? अरे ! अकर्मण्य ! पूर्वकृतकर्मणो विपाकमनुभवन्नपि न लज्जसे । कृपिवाणि-ज्यादिकर्म कर्तुमसमर्था एव मुखोपरिवद्धमुखत्रयिकाः पात्रहस्ताः बहवो भिक्षु-कास्त्वादृशा उदरपूरणकामा ग्रामानुग्रामं पर्यटन्ति । अरे दुर्भग ! पुत्रदारादिभिः

देखते ही हँसी करते हुए कहा कि—हे अकर्मण्य भिक्षुक ! तू कहां जा रहा है । मुनि ने ज्यों ही इस प्रकार के उसके दुर्वचन सुने तो मुनि को क्रोध आ गया, और कहने लगा—क्या तू इस समय उन्मत्त हो रहा है । मुनि के वचन सुनकर चांडाल के भी कोप का ठिकाना न रहा । उसने चिढ़कर मुनिको कहा—“अरे भिक्षुक ! क्या वकता है ? तेरे जैसा मलिन देह वाला और कौन होगा ? खाते कमाते नहीं बना सो मूंड मूंडाकर मुनि बन गया और घर घर में कुत्ते की तरह भीख मागने के लिये फिरने लगा है । शरम नहीं आती, करते धरते कुछ नहीं बनता सो निकल गये साधु बनने को । पूर्व में दान नहीं दिया सो तो उसका यह फल भोगना पड़ रहा है कि दर दर के भिखारी बन रहा है, फिर भी अकड़ से ऐंठता है ? जरा शर्म कर, तुम्हारे जैसे बहुत से कार्य करने में असमर्थ होकर मुंह बांध कर पेट भरने के लिये गांव गांव भटकते हैं । ऐसा कह कर जब वह चला गया तो कोप

नेधने हांसी करतां कहुं के, हे अकर्मण्य भिक्षुक ! तू क्या बंध रह्यो छे. मुनिअे न्यारे तेनां आवा दुर्वचन सांलज्यां त्यारे तेने क्रोध आवी गयो अने कडेवा लाग्या के, शुं तुं आ समये उन्मत्त भनी रह्यो छे ? मुनितुं वचन सांलणीने सांलवना क्रोधतुं ठेकाहुं न रह्युं अने तेछे चिडाधने मुनिने कहुं अरे भिक्षुक ! तुं शुं अके छे ? तारा नेवा मलीन देहवाणो भीजे केखु छे ? भातां कमातां न आवड्युं अेटवे मुंडो मुंडावीने मुनि भनी गया, अने घर घरमां कुतरानी माकेक बीभ भागवा लाग्यो छे, शरम नथी आवती ? कांथ काम करतां आवडतुं नथी अेटवे साधु भनवा निकणी पड्यो. पूर्वभवमां दान नहीं दीधुं होय अेटवे तो अेतुं आ कृण भोगवतुं पडे छे. अने घरघरने भिपारी भनी रह्यो छे. छातां पखु अछड थधने इरे छे. जरा लाज ! तारा नेवा अनेक कार्य करवामां असमर्थ होधने मां भांधीने पेट भरवा माटे गाम गाम लटके छे. आम कही न्यारे ते आह्यो गयो त्यारे क्रोधना

परित्यक्ता निर्गतिकाः सन्तः प्रव्रज्यामभ्युपगताः । इत्युक्त्वा तस्मिन् गतवति सति
कोपावेशादन्तर्दह्यमान इव मुनिः स्वस्थानं गतः । क्रमेण कोपप्रशमे सति मुनिना
पश्चात्तापः कृतः ।

तदनन्तरमसौ देवस्तस्य मुनेः समीपे समागत्य तमभिवन्द्य तत्पुरोज्वलितो
वदति—भवतः संयमयात्रा सुखेन निर्वहति किम् ? शान्तात्मना मुनिना सस्मितं
प्रोक्तम्—यदा संयमयात्रा चाण्डालेन वाधिता, तदा क्व गतस्त्वमासीः ? देवेन
कथितम्—यदा युवयोः कलहो जातस्तदाऽहमलक्षितः कौतुकं द्रण्डुकामस्तत्रैवात्सम् ।
किं तु तदा मया विशेषः कोऽपि नोपलब्धः, यथाऽसौ चाण्डालस्तथैव भवान् ।

के आवेश से वे मुनि भी भीतर ही भीतर जलते हुए अपने स्थान पर आ
गये। जब कोप शांत हुआ तो उनको इस विषय का बड़ा ही पश्चात्ताप हुआ।

इस के बाद वह देव मुनि के पास आकर नमस्कार करके बैठ
गया और बोला—आपकी संयमयात्रा तो सुखपूर्वक है ? शान्तात्मा मुनिने
मुस्कराते हुए प्रत्युत्तर में कहा कि जिस समय इस संयमयात्रा में
चाण्डाल ने चिघ्न डाला था उस समय तुम कहाँ गये थे। देवने जबाब
दिया—जब आप दोनों का कलह हो रहा था उस समय मैं अदृश्य होकर वहीं
पर था। मुनिने कहा फिर आपने उस परिस्थिति में मेरी सहायता क्यों
नहीं की ? इस प्रकार मुनि के कहने पर प्रत्युत्तर में देवने कहा कि—मुझे उस
समय सहायता करने लायक कोई विशेषता आप में लक्षित नहीं हुई।
उस समय जैसा वह चाण्डाल मुझे प्रतीत हुआ वैसे ही आप भी मुझे
प्रतीत हो रहे थे फिर सहायता किसकी करना। देव के इस उत्तर से

आवेशથી ते मुनि अंदरने अंदर भणता भणता पोताना स्थान उपर गया.

क्यारे तेमने कोप शांत थयो त्यारे तेमने आ विषयमां भारे पश्चात्ताप थयो.

आ पछी चेला देव मुनिनी पास आवीने नमस्कार करीने जेडां अने

कहुं, आपनी संयमयात्रा तो सुखपूर्वक छे ने ? शांत आत्मा मुनिजे

अंदरथी हसतां हसतां प्रत्युत्तरमां कहुं के, जे समये आ संयमयात्रामां

अंडावे चिघ्न नाभ्युं ते समये तेमे क्यां गया हुता ? देवे जबाब आपथी

क्यारे आप अनेने के लह आली रह्यो छतो त्यारे हुं अदृश्य रुपे त्यां

छतो. तो पछी जे परिस्थितिमां तमे भारी सहायता के न करी ? आ प्रकारे

मुनिना कहेवाथी प्रत्युत्तरमां देवे कहुं, मने ते समये सहायता करवा लायके

कोई विशेषता आपनामां न हेमांछि. जे वपते जेवा ते आंडावे मने हेमाथी तेवा

आप भारी दृष्टिमां हेमांता छता. पछी सहायता कोनी करवी ? देवना

मुनिनोक्तम्—तेन मम तुल्यता कथं ज्ञाता? । देवेनोक्तम्—एकेन कोपेनैव, अत-
स्तस्य शिक्षा न कृता, इदानीमाज्ञापयतु कीदृशी शिक्षा तस्मै कर्तव्या । मुनिः प्राह—
नासौ दण्डनीयः, किंतु—सर्वधोपेक्षणीयः, यतः साधूनामयं धर्मः—आक्रोशपरीपहः
सोढव्य इति । एवमुक्तोऽसौ देवस्तस्य मुनेः सेवायां सानुरागं तस्थौ । एवमन्यै-
रपि मुनिभिराक्रोशपरीपहः सोढव्यः ॥ २५ ॥

मुनि को बड़ा ही विस्मय हुआ और कहने लगे कि मुझ में और चांडालमें
समानता का अनुभव कैसे किया ? । देव ने कहा—एक क्रोध से आपके
अन्दर उस समय क्रोधरूप चांडाल प्रविष्ट होया हुआ था, और वह तो
चांडाल था ही, अतः सहायता करने जैसी बात उस समय मुझे
उचित प्रतीत नहीं हुई इसलिये सहायता नहीं की, और न उसे भी
कुछ दण्डादिरूप शिक्षा ही दी, हां ! अब कहिये उसे कैसी शिक्षा दी
जाय । मुनिराज ने कहा कि अब क्या आवश्यकता है जो अज्ञानी होते
हैं वे उपेक्षा के ही पात्र हैं इसलिये उसको दण्डादिरूप शिक्षा प्रदान
करने की कोई जरूरत नहीं है । मुनियों का तो यह आचार ही है कि
वे आक्रोशपरीपह को सहन करे । मुनि की इस बात को सुनकर देव
बड़ा ही अनुरागी होकर उनकी सेवा में रहने लगा । इस कथा से मुनि-
यों को यही शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये कि आक्रोशपरीपह सहन
करना यह मुनिराजों का कर्तव्य है ॥ २५ ॥

मुनिने माधुं आश्रयं ययुं अने कडेवा लाग्या. भारामां अने चंडालमां समा-
नतानो अनुभव तमोने केवी रीते थयो ? देवे कळुं अेक क्रोधथी—आपनी अंदर
ते सभये क्रोध रूपी चंडाल प्रविष्ट थयो इतो. अने ते तो चंडाल इतो न.
आथी सहायता करवा जेवी बात मने ते सभये उचित न लागी. जे माटे
सहायता न करी, अने तेने पळुं इंड आदि रूपां शिक्षा न करी. हा ।
कडे जेने कथ रीते शिक्षा करवामां आवे ! मुनि भडाराने कळुं के, डवे शुं
आवश्यकता छे. जे अज्ञानी होय छे ते उपेक्षाने पात्र न छे. आ माटे तेने
इंडादिकरूप शिक्षा आपवानी कथ न इरत नथी. मुनिजोने ते आचार न छे
के, तेजो आक्रोशपरीपहने सहन करे. मुनिनी आ वात सांखणीने देव
पळुं अनुरागी अनी तेनी सेवामां रहेवा लाग्या. आ कथाधी मुनिजोने
जे न शिक्षा ग्रहण करवी जेथजे के, आक्रोशपरीपह सहन करवो ते
मुनिराजेनुं कर्तव्य छे. ॥ २५ ॥

કશ્ચિદાક્રોશમાત્રેણાસ્તુષ્ટો દુષ્ટઃ સંયતસ્ય વધમપિ કુર્યાદતો વધપરીપહમાહ-
મૂલમ્—હૌઓ નં સંજલે ભિક્ષૂ, મળંપિ નં પઓસણ્ ।

તિતિક્ષ્ણં પરમં નેચ્ચા, ભિક્ષુધમ્મં વિચિંતેણ ॥૨૬॥

છાયા—હતો ન સંજ્વલેત્ ભિક્ષુઃ મનોઽપિ ન પ્રદ્વેપયેત્ ।

તિતિક્ષ્ણાં પરમાં જ્ઞાત્વા, ભિક્ષુધમ્મં વિચિન્તયેત્ ॥ ૨૬ ॥

ટીકા—‘ હૌઓ ’ ઇત્યાદિ ।

ભિક્ષુઃ=મુનિઃ, હતઃ=કેનાપિ દુષ્ટેન ગુણિયષ્ટ્યાદિના તાહિતઃ સન્, ન સંજ્વલેત્=ન ક્રુધ્યેત્, તથા મનોઽપિ ન પ્રદ્વેપયેત્=દ્વેપયુક્તં ન કુર્યાત્, તિતિક્ષ્ણાં=જ્ઞાન્તિ,

કોઈ દુષ્ટ પુરુષ આક્રોશમાત્ર સે સંતુષ્ટ નહીં હોકર મુનિ કા વધ બી કરને લગતા હૈ હસલિયે અવ તેરહવે વધપરીપહ કો કહતે હૈ—‘ હૌઓ ન સંજલે ’—ઈત્યાદિ.

અન્વયાર્થ—(ભિક્ષુ-ભિક્ષુઃ) મુનિ (હૌઓ-હતઃ) કિસી બી દુષ્ટકે દ્વારા યષ્ટિ ગુણિ આદિ સે તાહિત હો જાય તો બી (ન સંજલે-ન સંજ્વલેત્) ક્રોધ સે તપાયમાન નહીં હોવે । તથા (મળંપિ ન પઓસણ-મનોઽપિ ન પ્રદ્વેપયેત્) મન કો બી દૂષિત નહીં કરે, કિન્તુ (તિતિક્ષ્ણં-તિતિક્ષ્ણામ્) ઉત્તમ ક્ષમા કો (પરમં-પરમામ્) દશવિધ ધર્મો મેં સર્વોત્કૃષ્ટ (નચ્ચા-જ્ઞાત્વા) જાનકર (ભિક્ષુ-ભિક્ષુઃ) વહ સાધુ (ધમ્મં વિચિંતેણ-ધર્મ વિચિન્તયેત્) ઉત્તમ ક્ષમાદિરૂપ સાધુ કે કર્તવ્ય કા, અથવા અપને આત્મસ્વરૂપ કા વિચાર કરે કિ-ક્ષમામૂલક હી ધર્મ હૈ । યહ જો મુજે નિમિત્ત બના કર કે કર્મો કા ઉપચય કર રહા હૈ ઉસ મેં મેરા હી

કેઈ દુષ્ટ માણસ આક્રોશ માત્રથી સંતોષ ન પામવાથી મુનિને વધ પણ કરમા લાગે છે. એ માટે હવે તેરમા વધપરીપહને કહે છે. ‘ હૌઓ ન સંજલે ’—ઈત્યાદિ.

અન્વયાર્થ—ભિક્ષુ-ભિક્ષુઃ મુનિ હૌઓ-હતઃ કેઈ પણ દુષ્ટ દ્વારા લાકડી ગડડાપાટુથી તાહિત થઈ બાધ તો પણ ન સંજલે-ન સંજ્વલેત્ ક્રોધથી તપી ન બાધ મળંપિ ન પઓસણ-મનોઽપિ ન પ્રદ્વેપયેત્ મનને પણ દૂષિત ન કરે પણ તિતિક્ષ્ણં-તિતિક્ષ્ણાં ઉત્તમ ક્ષમાને પરમં-પરમાં દશવિધ ધર્મોમાં સર્વોત્કૃષ્ટ નચ્ચા-જ્ઞાત્વા બહીને ભિક્ષુ-ભિક્ષુઃ તે સાધુ ધમ્મં વિચિંતેણ-ધર્મ વિચિન્તયેત્ ઉત્તમ ક્ષમાદિરૂપ સાધુના કર્તવ્યને તથા પોતાના આત્મસ્વરૂપને વિચાર કરે કે, ક્ષમા એ જ ધર્મ છે. આજે મને નિમિત્ત બનાવીને કર્મોના ઉપચય કરી

परमां=दशविधेषु धर्मेषु प्राधान्यात् प्रकृष्टां, ज्ञात्वा मुनिः, भिक्षुधर्म=क्षान्त्यादिकं
स्वात्मस्वरूपं वा विचिन्तयेत्, यथा-क्षमामूल एव धर्मः, यच्च मां निमित्तीकृत्यायं
कर्मोपचिनोति, तत्र ममैव पूर्वकर्म कारणमिति ममैव दोषः, तस्मादेनं प्रति कोपो
नोचित इति ॥ २६ ॥

पूर्वोपार्जित कर्म कारण है अतः इसमें मेरा ही दोष है इसलिये इसके
प्रति कोप करना मुझे उचित नहीं है ।

भावार्थ—मुनि जनों की यह विचारधारा कितनी सुन्दर है ।
वज्रहृदय वाला शत्रु भी इस विचार के सामने नतमस्तक होकर
अपनी क्रूरता का परित्याग कर देता है । एक तरफ ताड़ना मारणा
आदि क्रियाएँ हो रही हैं तो दूसरी ओर उस पर प्रतीकार न करते
हुए अपने पूर्वोपार्जित कर्म को ही बलवान माना जा रहा है कि—पूर्वो-
पार्जित कर्मों का यह फल मुझे मिल रहा है, इस बेचारे का क्या दोष है।
अफसोस केवल उंस मुनि आत्मा में इसी घातका हो रहा है कि जो
यह प्राणी मेरा निमित्त लेकर नवीन कर्मों का बंधक बन रहा है ।
इस प्रकार मन तक में भी जहाँ प्रतिकार करने की भावना का उदय
निषिद्ध घतलाया गया है वहाँ और अन्य प्रतिकारों के करने की तो
घात ही क्या हो सकती है । महात्मा का यहाँ कितना अच्छा उपदेश
है कि वह ताड़ित होने पर भी अपनी उत्तम क्षमाको न छोड़े । कुल्हाड़ा

रखेले छे. तेमां मारां न पूर्वोपार्जित कर्म कारुण्य छे. आथी तेमां मारेन
दोष छे भाटे तेना प्रति दोष करवे मने उचित नथी,

भावार्थ—मुनिजनों की आ विचारधारा डेटली सुन्दर छे वज्र हृदयवालो
शत्रु पक्ष आ विचार सामे नतमस्तक जनी पोतानी कुरताने त्यागी हे छे.
એક તરફ ધાકધમકી અને માર મારવાની હદ સુધીની ક્રિયાઓ થાય છે,
ત્યારે બીજી તરફ આનો પ્રતિકાર ન કરતાં પોતાના પૂર્વોપાર્જિત કર્મોને જ
બળવાન માનવામાં આવે છે. “પૂર્વોપાર્જિત કર્મોનું” ફળ મને મળી રહ્યું છે.
એ બિચારાનો કોઈજ દોષ નથી” મુનિના આત્મામાં અફસોસ ફક્ત એ વાતનો
થાય છે કે, આ પ્રાણી મને નિમિત્ત બનાવીને નવા કર્મોનો બંધ બાંધી રહેલ
છે. આ પ્રમાણે મનમાં પણ પ્રતિકાર કરવાની ભાવનાના ઉદયનો નિષેધ બતા-
વવામાં આવેલ છે, ત્યાં અન્ય પ્રતિકાર કરવાની તો વાત જ ક્યાં રહી ?
મહાત્માનો આ કેવો સુંદર ઉપદેશ છે કે તેને ધાકધમકી કોઈના તરફથી
અપાય અથવા માર મારવામાં આવે તો પણ પોતાની ઉત્તમ ક્ષમાને ન

ઉક્તમેવાર્થ પ્રકારાન્તરેણાહ—

મૂલમ—સમણં સંજયં દંતં, હણેજાં કોઈ કત્થઈ ।

નંતિ જીવસ્સ નાંસોત્તિ”, ઇંવં પેહેજે સંજય ॥૨૭॥

છાયા—શ્રમણં સંયતં દાન્તં, હન્યાત્ કોઽપિ કુત્રાપિ ।

નાસ્તિ જીવસ્ય નાશ ઇતિ, ઇવં પ્રેક્ષેત સંયતઃ ॥ ૨૭ ॥

ટીકા—‘સમણં’ ઇત્યાદિ

કોઽપિ=કથિન્મનુષ્યઃ, કુત્રાપિ—ગ્રામાદૌ, સંયતં=પદ્કાયયતનાવન્તં, દાન્તમ્

ચંદન વૃક્ષ કો કાટ મી ઢાલે પર ચંદનવૃક્ષ કા જો ઉસકે મુલ્ક કો મી સુવાસિત કરને કા કામ હૈ વહ ઉસે નહીં છોડતા । નહીં તો વહ ચંદન હી જરહીં । મહાત્મા મી અપને શત્રુ કે પ્રતિ ઇસી કર્તવ્ય કા નિર્વાહ કરતે હૈં નહીં તો વે મહાત્મા હી નહીં હૈં । ધન્ય હૈ મહાત્મા ! તેરે ઇસ શુભાધ્યવસાય કો । ન્યોછાવર હૈં ત્રૈલોક્ય કા રાજ્ય ઇંસ પવિત્ર ભાવના પર । કયા હી સુન્દર વિચાર ધારા હૈ । ઇસી વિચારધારા કે બલ પર મહાવીર પ્રમુ કે શાસન મેં સર્વોત્કૃષ્ટતા રહી હુઈ હૈ । પ્રત્યેક મોક્ષાભિલાષી કો યહ અભિનંદનીય વંદનીય વિચારધારા અપનાને યોગ્ય હૈ ॥૨૬॥ વધપરીપહકો કિસ ભાવના સે સહન કરે સો કહતે હૈં—‘સમણં’—ઇત્યાદિ અન્વયાર્થ—(કોઈ—કોઽપિ) કોઈ અજ્ઞાની (કત્થઈ—કુત્રાપિ) કહીં પર મી (સંજયં—સંયતમ્) પદ્કાય કે જીવોં કી જતના કરનેવાલે (દંતં—દાન્તમ્)

છોડે. કુહાડો ચંદન વૃક્ષને કાપી નાખે છતાં ચંદન વૃક્ષમાં જે સુવાસિતતાને ઉત્તમ શુભ છે તે પોતાને કાપનાર કુહાડાને પણ આપે છે. જે એમ ન કરે તો તે ચંદન શેનું ? મહાત્મા પણ પોતાના શત્રુ તરફ આવું જ વર્તન રાખે છે. નહીં તો એ મહાત્મા શાના ? ધન્ય છે મહાત્મા ! તમારા આ શુભ વ્યવસાયને ! આ પવિત્ર ભાવના પર ત્રણ લોકનું રાજ્ય પણ ન્યોછાવર છે, કેવી સુન્દર વિચારધારા છે ! આ વિચાર ધારાના બળ ઉપર શ્રી મહાવીર પ્રમુના શાસનમાં સર્વોત્કૃષ્ટતા રહેલ છે. પ્રત્યેક મોક્ષાભિલાષીએ આ અભિનંદનીય વંદનીય વિચારધારાને અપનાવવી જોઈએ ॥ ૨૬ ॥

કેવા ભાવથી વધપરીપહને સહન કરવાને કહે છે—સમણં ઇત્યાદિ.

અન્વયાર્થ—કોઈ—કોઽપિ કોઈ અજ્ઞાની કત્થઈ—કુત્રાપિ કોઈ જગ્યાએ પણ સંજયં—સંયતમ્ પદ્કાય છત્રોનું જતન કરનારા દંતં—દાન્તમ્ પાંચ ઇન્દ્રિય અ નમક

=इन्द्रियनोइन्द्रिय दमनशीलम्, श्रमणं=तपस्विनं मुनिं हन्यात्=मुष्टियष्ट्यादिना
 वाडयेत्, तदा संयतः=मुनिः, जीवस्य=आत्मनज्ञानरूपस्य नाशः नास्ति=न
 भवति शरीरस्यैव नाशात्, इत्येवं प्रेक्षेत=चिन्तयेत् ॥

पांच इन्द्रिय एवं मन को निग्रह करने वाले (समण-श्रमणम्) श्रमण-तपस्वी मुनि को (हणेज्जा-हन्यात्) यष्टि मुष्टि आदि द्वारा मारे। उस समय (संजय-संयतः) वह मुनि (जीवस्स नासो नत्थि-जीवस्य नाशः नास्ति) "ज्ञानस्वरूप आत्मा का नाश नहीं होता है किन्तु उसका पर्यायान्तर होता है अतः शरीरका ही नाश होता है" (एवं पेहेज्ज-एवं प्रेक्षेत) ऐसा विचार करे।

भावार्थ—आत्मा को क्रोधी तब होना चाहिये कि जब उसकी निज वस्तु का विनाश हो। जैसे संसारी लोग अपनी वस्तु के विनाश होने पर क्रोधी या दुःखी हुआ करते हैं, दूसरों की वस्तुओं के विनाश में नहीं। इसी प्रकार महात्मा को भी किसीके द्वारा ताड़ित होने पर या मारे जाने पर यह विचार करना चाहिये कि यह शरीर पुद्गल का है अतः यह मेरी निजवस्तु नहीं है परवस्तु है। इसके विनष्ट होनेपर मैं क्यों क्रोधी या दुःखी बनूं? मेरी निज की वस्तु जो ज्ञानादिक गुण हैं वे तो इस के आघात से नष्ट नहीं होते हैं, वे तो सदा अक्षय ही रहते हैं इस लिये क्रोधी या दुःखी होने की मुझे किञ्चित् मात्र भी आवश्यकता नहीं है।

हरनाश समणं-श्रमणम् श्रमणु तपस्वी मुनिने हणेज्जा-हन्यात् ठंसा पाटु वणे-
 रेथी मारे अे सभये संजये-संयतः ते मुनि जीवस्स नासो नत्थि-जीवस्य नाशः नास्ति
 ज्ञान स्वरूप आत्मानो नाश यतो नथी परंतु अे पर्यायान्तरित होय अे, आथी
 शरीरनो अे नाश थाय अे एवं पेहेज्ज-एवं प्रेक्षेत अेवो विचार करे,

भावार्थ—आत्माअे क्रोधित तो त्पारे थवुं लोअे अे के, अ्यारे तेनी
 पोतानी वस्तुनो विनाश थतो होय. अेम संसारी होके पोतानी वस्तुअेनो
 विनाश थतां क्रोधित अने दुःभी थया करे अे, थीज्जनी वस्तुअेना विनाशमां
 नही. आ प्रकारे महात्माने पणु केअे तरअ्थी मार मारवामां आवे के धाअ
 धमअी आपवामां आवे त्पारे तेअे विचार करवो लोअेअे के, आ शरीर पुअ
 शवनुं अे, आ करअे ते मारी पोतानी वस्तु नथी, पारअी वस्तु अे. अेनो
 विनाश थवाथी हुं शा माटे क्रोधी अथवा दुःभी अनुं? मारी पोतानी अे वस्तु
 ज्ञानादिक गुणु अे ते अेना आघातथी नाश पामती नथी. अे तो सदाय अक्षय अे
 रहे अे. आथी क्रोधी अथवा दुःभी थवानी मारे देश मात्र पणु आवश्यकता नथी.

अत्र दृष्टान्तः प्रदर्शयते—

श्रावस्तीनगर्या रिपुमर्दननाम्नो राज्ञः पुत्रो धारिणीदेव्या अङ्गजातः स्कन्दक-
नामकः कुमार आसीत् । अस्य भगिनी पुरन्दरयशा नाम्नी । सा कुम्भकारकटक-
नामके पुरे दण्डकिनाम्ने नृपतये पित्रा प्रदत्ता । तस्य दण्डकिभूपस्य पुरोहितः
पालकनामा ब्राह्मणो मिथ्यादृष्टिरासीत् ।

एकदा मुनिसुव्रतस्वामी विंशतितमस्तीर्थकरः श्रावस्तीनगर्या समवसृतः, तस्य
देशनां श्रुत्वा स्कन्दककुमारः श्रावको जातः । एकदा कदाचिदसौ पालकपुरोहितः
श्रावस्तीनगर्यामागतः । स राजसभायामार्हतसिद्धान्तं खण्डयितुं प्रवृत्तः तदा

दृष्टान्त—श्रावस्ती नगरी में रिपुमर्दन नाम का एक राजा राज्य
करता था । उसकी धर्मपत्नी का नाम धारिणी था । धारिणीदेवी से राजा
के एक कुमार का जन्म हुआ, जिसका नाम स्कन्दक था । स्कन्दक के एक
वहिन भी थी । उसका नाम पुरन्दरयशा था । कुम्भकारकटक नाम के
पुर में दण्डकी नामक राजा के साथ उसका विवाह हुआ था । दण्डकी
राजा का एक ब्राह्मण पुरोहित था । इसका नाम पालक था । यह
मिथ्यादृष्टि था ।

एक समय की बात है कि वे बीसवें तीर्थङ्कर श्री मुनिसुव्रतस्वामी
श्रावस्ती नगरी में पधारे । उनकी देशना को सुनकर स्कन्दककुमार
ने श्रावकधर्म अंगीकार किया । किसी समय पालक पुरोहित श्रावस्ती
नगरी में आया । राजसभा में बैठकर उसने जैनसिद्धान्त को खण्डन
करने वाली बात प्रारंभ की । जब वह बोल चुका तब उसकी बात को

दृष्टान्त—श्रावस्ती नगरीमें रीपुमर्दन नामने एक राजा राज्य करते।
उतो. तेने धारिणी नामनी एक राणी उती. धारिणीदेवीथी राजनेने एक कुमा-
रने जन्म थयो, जेतुं नाम स्कंदक उतुं, स्कंदकने एक भडेन पण उती. तेतुं
नाम पुरंदरयशा उतुं. कुम्भकारकटक नामना नगरना इंडकी नामना राजनी साथे
तेने विवाह करवाभां आवेल उतो. इंडकी राजनेने एक प्राज्ञपु पुरोहित उतो.
तेतुं नाम पालक उतुं. ते मिथ्यादृष्टी उतो..

आ एक समयनी बात छे के न्यारे बीसभा तीर्थंकर श्री मुनिसुव्रत
स्वामी श्रावस्ती नगरीमें पधर्या. तेमनी देशना सांभजीने, स्कंदककुमारै
श्रावकधर्म अंगिकार कर्यो. केउलेक वपते पालकपुरोहित श्रावस्ती नगरीमें
आव्या. राजसभांमें जेसीने जैन सिद्धांततुं भंडन करवावणी बातनी शङ्-
कात करी. न्यारे तेजे बात पुरी करी त्यारे ते बात सांभजीने त्यां जेडेबा

श्रावकव्रतधारी स्कन्दककुमारं आईतसिद्धान्तं समर्थयन् तं निरुत्तरं कृतवान् । तेन कारणेन पालकपुरोहितस्य स्कन्दककुमारं प्रति महान् विद्वेषो जातः ।

एकदाऽसौ स्कन्दककुमारः पञ्चभिः शतैः कुमारैः सह भगवतो मुनिसुव्रतस्वामिनः समीपे देशानां श्रुत्वा दीक्षां गृहीतवान् । भगवता ते पञ्चशतकुमारकास्तस्य शिष्यत्वेन निश्चिताः कृताः । ततोऽसौ स्कन्दकाचार्योऽन्यदा भगवन्तं पृच्छति— भगवन् ! कुम्भकारकटकपुराभिमुखं विहर्तुमिच्छामि, भगवानाह—वरं तत्र गम्यताम्, किंतु तत्रोपसर्गो मरणान्तिकः । पुनस्तेनोक्तम्—भगवन् ! वयमाराधकाः, किं वा विराधकाः ? । भगवता कथितम्—एकं तां विना सव आराधकाः सन्ति ।

सुनकर वहाँ पर बैठे हुए श्रावकव्रतधारी स्कन्दककुमार ने जैनसिद्धान्त का समर्थन करते हुए उसको निरुत्तर कर दिया, इससे पालक स्कन्दककुमार का महान् विद्वेषी बन गया ।

कुछ काल के बाद स्कन्दककुमार ने पांचसौ कुमारों के साथ भगवान् मुनिसुव्रतस्वामी के समीप धार्मिकदेशना सुनकर दीक्षा ली । उन पांचसौ कुमारोंको भगवानने उनकीनेश्राय(अधीनता) में कर दिया । अब वे स्कन्दक मुनि स्कन्दकाचार्य हो गये । स्कन्दकाचार्य ने एक दिन भगवान से पूछा कि भगवन् ! मैं यहाँ से कुम्भकारकटक पुर की तरफ विहार करना चाहता हूँ यदि आपकी आज्ञा हो तो । भगवान ने कहा जैसा तुम्हें सुख हो वैसा करो परन्तु तुम को वहाँ मरणान्तिक उपसर्ग का साम्हना करना पडेगा । फिर इस बात को सुनकर स्कन्दक ने प्रभु से पूछा कि प्रभो ! हम सब आराधक हैं या विराधक ? भगवान ने कहा तुम्हारे सिवाय सब ही आराधक हैं । भगवान के मुख से इस

श्रावकव्रतधारी स्कन्दककुमार ने जैनसिद्धान्तने समर्थन करतां तेने निरुत्तर बनावी दीधो. आधी पालक स्कन्दककुमारने महान विरोधी बनी गयो।

केटलाक समय पछी स्कन्दककुमारने पांचसो कुमारोनी साथे भगवान् मुनिसुव्रतस्वामी पासोधी धार्मिक देशना सांभणीने दीक्षा अंगीकार करी, ओ पांचसो कुमारोने भगवाने स्कन्दककुमारनी हेभरेभ नीचे राख्या, आधी ते स्कन्दकमुनि स्कन्दकाचार्य बनी गया, स्कन्दकाचार्ये ओक दिवस भगवानने पूछ्युं के, हे भगवन्त ! हुं अडिंधी आपनी आज्ञा डोय तो कुम्भकारकटकपुर तरफ विहार करवानी छ्न्छा राखुं छुं. भगवाने कछुं, जे रीते तमने सुभ थाय जे रीते करे. परंतु तमारै त्यां मरणांतिक उपसर्गो ने सामने करवो पडसे. ते बात सांभणीने स्कन्दके प्रभुने पूछ्युं, के हे प्रभो ! अमे अंधा आराधक छीजे के विराधक ? भगवाने कछुं, के तमार शीवाय अंधा आराधक छे. भगवानने

एवं भगवता कथितोऽपि स्कन्दकाचार्यो भाविवशात् पञ्चशतशिष्यपरिवारसहितः कुम्भकारकटकपुरं प्रति विहारं कृतवान् । पालकत्राह्मणेन तद् विहारवार्ता श्रुता-
 “अत्रागच्छति स्कन्दकाचार्यः” इति । ततोऽसौ पूर्ववैरमनुस्मृत्य तन्निर्यातनार्थं यत्रोद्याने स्कन्दकाचार्य आगन्तुकस्तत्परितो विविधशस्त्रास्त्राणि प्रच्छन्नरीत्या भूमौ निखन्य रात्रः समीपमागत्य ब्रूते—स्वामिन् ! स्कन्दकाचार्यः पञ्चशतशिष्यपरिवारैः सह साधुवेषेण इह समायाति, स भवदीयराज्यं हर्तुमिच्छति, यतोऽसौ भवदीयोद्यानस्य चतुर्दिक्षु रात्रौ प्रच्छन्नो भूत्वाऽस्त्रशस्त्राणि भूम्यन्तर्निहितानि, तद्दृष्टं कथञ्चिन्मया ज्ञातम्, तत्र गत्वा पश्यन्तु भवन्तः । पुरोहितवचनं श्रुत्वा राजा तत्र गत्वा

भविष्यत् को सुनकर भी स्कन्दकाचार्य ने भाविवशात् पांचसौ शिष्यों के साथ कुम्भकारकटकपुर की ओर विहार कर दिया । पालक पुरोहितने उनके विहार की वार्ता सुनी तो उसको ज्ञात हो गया कि स्कन्दकाचार्य विहार कर यहां आ रहे हैं । उसने उनके साथ अपना पूर्व वैर याद कर “बदला लेने का अवसर आ गया है” इस अभिप्राय से उसने जिस उद्यान में स्कन्दकाचार्य आकर उतरे थे उस में जमीन खुदवाकर नीचे विविध शस्त्र एवं अस्त्र गुप्तरीति से गढ़वा दिये । पश्चात् राजा के पास आकर फिर वह कहने लगा कि हे स्वामिन् ! यहां पांच सौ शिष्यों के परिवार से स्कन्दकाचार्य साधु के वेश में आये हुए हैं । वे आप के राज्य को हरण करना चाहते हैं । इस लिये उन्होंने ने गुप्तरीति से उद्यान में चारों ओर अस्त्र शस्त्र भूमि में गढ़वा दिये हैं । यह बात रात्रि में मैंने छुपकर देखी है । आप को जो विश्वास न हो तो

मोहाथी आ लविष्यवाणी सांलणीने पक्षु स्कंदकाचार्ये भाविवशात् ५०० शिष्योनी साथे कुम्भकारकटकपुरनी तरक्ष विहार करी दीयो. पालकपुरोहिते तेमना विहारनी वात सांलणीने जपुथु स्कंदकाचार्ये विहार करता करता आ तरक्ष आंवी रक्षा छे. तेथे पोतांनु अंगाउनु तेमनी साथेनु वैर याद करीने “अहवै देवानो अवसर आवी चुक्यो छे” आंवा अभिप्रायथी जे अगीथाभां स्कंदकाचार्ये आंवीने उतर्या हुता तेनी अहरनी जमीन मोहावीने तेनी नीचे गुदी गुदी जतनां शस्त्र अस्त्र दाटी दीधां. पछी राजनी पासे आंवीने ते कडेवा लाग्यो के, पांचसो शिष्योना परिवारे साथे स्कंदकाचार्ये साधुना वेशभां अडि आंब्या छे. ते आपनु राज्य लंछ देवा छ्छे छे. केभके, तेमथे गुप्त रीते अगीथाभां चारे आंनु शस्त्र अस्त्र दटावी रांभ्यां छे. आ वात मे रात्रिना वंभते छुपी रीते जेठे दीधी छे. आपने जे विश्वास न होय तो आप पुढ

भूम्यन्तर्गतानि तानि शस्त्रास्त्राणि विलोकितानि । ततोऽसौ नृपः कोपावेशेन पुरो-
हितमब्रवीत्—हे पालक ! सर्वानेतान् साधून्हं तवाधीनान् करोमि, यथेच्छसि
तथा कुरु । एवमुक्तोऽसौ दुष्टभावसमन्वितः पुरोहितः सर्वान् मुनीन् परितः समा-
क्रम्य एकैकं मुनिं तिलादिपीडनयन्त्रे संस्थाप्य पीडयितुं प्रवृत्तः । ते स्वात्मक-
ल्यागार्थिनो मुनयस्तं वधपरीपहं सम्यक् परिपह्यान्तसमये केवलज्ञानं प्राप्य मोक्षं
गताः । तत्र ४९८ चतुःशताष्टनवतिसंख्यका मुनयः पीडनयन्त्रे पीडितास्त-
थापि स्कन्दकाचार्येण समभावं समालम्ब्य तत्र स्थितम् । तदा स्वस्मादन्य एक एव
मुनिस्वशिष्टः, तमपि पीडनयन्त्रे स्थापयितुमुद्यतस्तदा स्कन्दकाचार्येणोक्तम्—

स्वयं चलकर देख सकते हैं । पुरोहित की बात सुनकर राजा उद्यान में
आया और वहाँ उसने भूमि के भीतर गढ़े हुए अनेक अस्त्र शस्त्र देखे ।
इस स्थिति से राजा को बड़ा ही कोप बढ़ा और उसने कोप के ही
आवेश में तन्मय होकर पुरोहित से कहा, पालक ! इन सब साधुओं
को मैं तुम्हारे आधीन करता हूँ । तुम जैसा भी समझो इनके साथ
वैसा करो । राजा ने जब ऐसा कहा तब पुरोहित के आनंद का पार
न रहा । उसने शीघ्र ही चारों ओर से सब मुनियों को घिरवा दिया और
एक एक मुनि को कोल्हू (घाणों) में पीलने लगा । चारसौअठानवे(४९८)
मुनियोंने समभाव से वधपरीपहको सहन करके अंत समयमें केवलज्ञान
प्राप्तकर मुक्ति को प्राप्त किया । स्कन्दकाचार्य और एक बालमुनि पीलनेके
लिये अवशिष्ट रहे । जब पालक ने उस मुनि को पीलने के लिये कोल्हू
में रखने को उद्यत हुवा तो इतने में स्कन्दकाचार्य ने उससे कहा कि

ब्रह्मने जेठ शके छे. पुरोहितनी बात सांभलीने राज बगीचाभां गया अने
त्यां जमीनगी अंदर दाटेलां अनेक शस्त्र अस्त्र जेथां. आधी राजने भूष कोष
अउथे अने कोधना आवेशभां आवीने तेणे पुरोहितने कहुं, पालक ! आ
जधा साधुओने हुं तभारे डवाडे कइं छुं. तभाने हीक लागे तेभ तेने ईंसवा तभे
करो. राजने ब्यारे आ प्रभाणे कहुं त्यारे पुरोहितना आनंदने पार न रह्यो. तेणे
तरत ज्यारे तरइथी ते मुनिओने घेरी लई पकडीने ओक पछी ओक मुनिने
घाण्णीभां पीलवानुं शइ कथुं. ४९८ मुनिओओ समभावधी वधपरीपहने सहन
करीने अंत समये केवलज्ञानने प्राप्त करीने मुक्तिने पाव्या. स्कंदकाचार्य अने
ओक मुनि पीलवा माटे आकी रह्या. ब्यारे पालके ते मुनिने पीलवा माटे
घाण्णीभां नापवा प्रवृत्त थया त्यारे स्कंदकाचार्ये तेने कहुं. के, आ तो कोभण-

अयमस्ति कोमलकायो बालकः, तस्मादयं त्वया न हन्तव्यः मम समक्षे पीडनयन्त्रेऽस्य स्थापने पीडा मम जायते, मुञ्चैनम् । स्कन्दकाचार्यवचनं श्रुत्वाऽसौ राजपुरोहितः पालकब्राह्मणो वदति-राजसभायां त्वया पराजितोऽहम्, अतो यावदधिक्यादप्यधिकं दुःखं तव स्यात् तदेव कार्यं मम कर्तव्यम् । इत्युक्त्वाऽसौ तं बालमनगारं स्कन्दकाचार्यस्य समक्षमेव पीडनयन्त्रे संस्थाप्य तत्पीडनं कृतवान् । स बालोऽप्यनगारस्तत्र वधपरीपहं सम्पक्व परिपक्व केवलज्ञानं प्राप्य मोक्षं गतः ।

तदा स्कन्दकाचार्यो रोषावेशेन निदानं कृतवान्-“यदि मम तपःसंयमस्य फलं भवेत्, तदा एतेषां सर्वेषां दुःखदायको भवेयम्” इति । अथाऽसौ स्कन्दका-

यह इस समय कोमलकाय बालक है अतः तुम इसे छोड़ दो । इसे कोल्हू में रखते हुए देखकर मुझे पीड़ा होती है, अतः यह मारने योग्य नहीं है । स्कन्दकाचार्य के इस प्रकार वचन सुनकर पालक उनसे कहने लगा-सुनो-तुमने मुझे पहिले राजसभा में परास्त किया था, अतः उसके उपलक्ष में अधिक से अधिक जो कष्ट हो सकता है वह मैं तुमको दूँ ऐसा ही मेरा निर्णय है । इस में जरा भी इधर उधर नहीं करना चाहता हूँ । इस प्रकार कह कर उसने उस बालक मुनि को भी स्कन्दकाचार्य के सामने ही कोल्हू में रखकर पील दिया । उस बालक अनगार ने भी खुशी खुशी से वधपरीपह सहन करके अंत में केवलज्ञान प्राप्त कर मुक्ति को प्राप्त कर लिया । उस समय स्कन्दकाचार्य ने रोष के आवेश में आकर यह निदान किया कि “यदि मेरे तप एवं संयम का फल होता हो तो मैं इन सब को दुःख देने वाला हूँ ।”

काय पाण्डु छे, माटे अने छोडी हो. अने धाणीमां राषेद्र जेठने मने पीडा थाय छे माटे ते मारवाने योग्य नथी. स्कंदकाचार्यतुं आ प्रभाषेत् वचन सांभजीने पाण्डु पुरोहित कडेवा लाग्ये के, सांभयो । तमें मने अगाडि राजसभामां पराजित करेल हुते जेथी तेना उपलक्षमां दुः अधिकमां अधिक कष्ट जे होय ते दुः तमने आपीश अवे मारां निर्णय छे. तेमां जरा पण्य दुः ईश्वर करवा ध्येछतो नथी. आ प्रभाषे कडीने तेणे ते पाण्डु मुनिने स्कंदकाचार्यनी सामे ज धाणीमां नापीने पीली नाज्ये. आ पाण्डु अनगार पण्य पुशीथी वधपरीपह सहन करीने अंतमां केवलज्ञान प्राप्त करीने मुक्ति प्राप्ति. आ समये स्कंदकाचार्य रोषना आवेशमां आवीने आ प्रभाषे निदान क्युं के, जे मारा तप अने संयमनुं कृण थतु होय तो दुः आ अधाने दुःख देवावायो जतुं. पालके छेवटे स्कंदकाचार्यने पण्य पीलीने

चार्यं तत्र यन्त्रे निपीड्य हतवान् । स स्कन्दकाचार्यो मृत्वाऽग्निकुमारदेवत्वेन-
समुत्पन्नो भूत्याऽवधिज्ञानेन स्वपूर्वभववृत्तं ज्ञात्वा कोपावेशेन नृपपुरोहितामात्यादि-
सहितं कुम्भकारकटकपुरं सदेशं भस्मसात् कृतवान् । दण्डकिभूपस्य स देशो दण्ड-
कारण्यनाम्ना पश्चात् प्रसिद्धो जातः । एवमन्यैरपि मुनिभिर्वधपरीपहः सोढव्य एव,
न तु स्कन्दकाचार्यवत् कोपाविष्टैर्भवेदित्यम् ॥ २७ ॥

अथ याचनापरीपहजयं प्राह—

मूलम्—दुष्करं खलु भो ! निच्चं, अणंगारस्स भिक्खुणो ।

संठ्वं सें जाइयं होइं, नत्थि किंचि' अजाइयं ॥२८॥

छाया—दुष्करं खलु भो ! नित्यम्, अनंगारस्य भिक्षोः ।

सर्वं तस्य याचितं भवति, नास्ति किंचिद् अयाचितम् ॥ २८ ॥

टीका—‘दुष्करं’ इत्यादि ।

खलु=निश्चयेन भो ! इति सम्बोधनम्, हे जम्बू ! अनंगारस्य=गृहरहितस्य

पालक ने अन्त में स्कन्दकाचार्य को भी कोल्हू में पील कर नष्ट कर दिया । स्कन्दकाचार्य मर कर निदान के प्रभाव से अग्निकुमार जाति के देव हुए । देवपर्याय में अवधिज्ञान द्वारा अपने पूर्वभव का वृत्तान्त जानकर उस देवने क्रोध के आवेश में आकरके नृप पुरोहित एवं अमात्य आदि सहित समस्त कुम्भकारकटकपुर को भस्मसात् कर दिया । दण्डकीभूप का वह देश दण्डकारण्य नाम से प्रसिद्ध हुआ । इस कथा से मुनियों को यही शिक्षा लेना चाहिये कि वे वधपरीपह को समभाव से सहन करे । जिस प्रकार उनमुनियों ने वधपरीपहको सहा उसी प्रकार अन्य मुनियोंको भी वधपरीपह सहन करना चाहिये । स्कन्दकाचार्य की तरह कोपाविष्ट नहीं होना चाहिये ॥ २७ ॥

तेनाभांश कथो। स्कंदकाचार्यं मरीने निदानना प्रभावथी अग्निकुमार देव जातीमां
उत्पन्नं थयां देवपर्यायमां चोताना अवधीज्ञानथी चोताना पूर्वभवतुं वृत्तांत लणीने
ते देव कोधना आवेशमां आवीने राण पुरोहित अने आमात्य सहित समस्त
कुम्भकारकटकपुरने लक्ष्मीभूत बनावी दीधुं। इंडकी राणने ते देश पधीथी
इंडकारण्य तरीके प्रसिद्ध थयो। आ कथाथी मुनिओओ शिक्षा अलुष करवी लोछोओ
के, वधपरीपहने समभावथी सहन करे। ओ प्रकारे मुनिओओ वधपरीपहने सहन
कथो ओ प्रकारे सहन करे स्कंदकाचार्यनी भांशक कोपायमान थवु न लोछोओ ॥२७॥

भिक्षोः=मुनेः नित्यं=सर्वदा-यावज्जीवमित्यर्थः, दुष्करं=दुःखेन क्रियमाणं कठिनं भवति । किं दुष्करं भवति ? इत्याह—'सर्वं' इत्यादि, तत् सर्वम्=आहारोप-
कणादिकं वस्तु तस्य याचितं=याचितमेव भवति, किञ्चिदपि दन्तशोधनादिकमपि
अयाचितं नास्ति-न गृह्यते तस्मात् कष्टं मुनिजीवनमिति ॥ २८ ॥

उक्तार्थमेव सविशदं वर्णयति—

मूलम्—गोचरग्रप्रविष्टस्य, पाणि नो सुप्तसार्यः ।

सेओ अगारवासोत्ति, ईइ भिक्षु न चिंतेए ॥ २९ ॥

छाया—गोचराग्रप्रविष्टस्य, पाणिः नो सुप्तसार्यः ।

श्रेयान् अगारवासः इति, इति भिक्षुर्न चिन्तयेत् ॥ २९ ॥

टीका—'गोचरग्र०' इत्यादि ।

गोचराग्रप्रविष्टस्य=गोचरः गोरिव चरणं गोचरः भिक्षाचर्या, यथा-ज्ञाताज्ञात-
विशेषमपहायैव गौः प्रवर्तते, तथा साधुरपि ज्ञाताज्ञातकुलेषु भिक्षार्थम् । तस्याग्रं
=प्रधानं, यतोऽसौ एषणायुक्तो गृह्णाति, न तु गौरिव यथा कथंचित्, तस्मिन् गो-
चराग्रे प्रविष्टस्य, मुनेः पाणिः=हस्तः नो सुप्तसार्यः=नैव सुखेन प्रसारयितुं

अथ सूत्रकार चौदह वें याचनापरीपह को सहन करने का उपदेश करते हैं—'दुष्करं खलु'—इत्यादि ।

अन्वयार्थ—(खलु) निश्चय से (भो=भोः) हे जंबू! (अणुकारस्य भिक्षुणो-अनगरस्य भिक्षोः) गृहरहित भिक्षुको (सर्वं जाइयं होइ-सर्वं याचितं भवति) समस्त वस्तुएँ याचित ही होती हैं। (किञ्चि अजाइयं नत्थि-किञ्चित् अयाचितं नास्ति) कोई भी वस्तु अयाचित नहीं होती है। इसलिये मुनिजीवन (दुष्करं-दुष्करम्) बड़ा ही दुष्कर है। बिना दिये तो वह दन्तशोधनादिक भी तृण तक भी नहीं ले सकते हैं ॥ २८ ॥

इवे चौदहो याचनापरीपह सहन करवाने उपदेश सूत्रकार उड़े छे—

'दुष्करं खलु' इत्यादि.

अन्वयार्थ—खलुनिश्चयथी भो-भोः हे जंबू! अणुकारस्य भिक्षुणो-अनगरस्य भिक्षोः गृहं रहित भिक्षुनी सर्वं जाइयं होइ-सर्वं याचितं भवति समस्त वस्तुओ याचित न होय छे. किञ्चि अजाइयं नत्थि-किञ्चित् अयाचितं नास्ति केअ पखु वस्तु अयाचित नथी, माटे मुनिजीवन दु रं-दुष्करम् धलुं न दुष्कर छे. केअता आभ्या वजर ते इतने झाइ करवा माटे तखुअहुं पखु लध शकता नथी.

शक्यः, नहि मुनिः कस्यापि गृहस्थस्य सम्बन्धीति भावः। इति=अतो हेतोः, अगारवासः=गार्हस्थ्यम्, श्रेयान्=श्रेष्ठः, इति=एतद्, भिक्षुः=मुनिर्न चिन्तयेत्, किंतु गृहवासो हि बहुसावद्ययुक्तस्तथा ज्ञानावरणीयाद्यष्टविधकर्मदन्धस्य कारणम्, स कथमपि श्रेयस्करो न भवतीति विचारयेत्।

फिर सूत्रकार पूर्वोक्त अर्थको ही विशद करते हैं—‘गोचरगग’—इत्यादि।

अन्वयार्थ—(गोचरगगपविट्टस्स-गोचराग्रप्रविट्टस्य) ज्ञात अज्ञातकुलों में गोचरी के लिये प्रविट्ट हुए साधु का (पाणी-पाणिः) हाथ (नो सुप्प-सारए-नो सुप्रसार्थः) सुप्रसार्थ नहीं है, क्योंकि मुनि किसी गृहस्थ का संबंधी नहीं है, इसलिये (अगारवासो सेओ-अगारवासः श्रेयान्) इसकी अपेक्षा गृहस्थ जीवन श्रेष्ठ है, ऐसा (भिक्षू न चिंतए-भिक्षुः न चिन्तयेत्) भिक्षुको नहीं विचारना चाहिये, क्योंकि गृहवास बहुसावद्ययुक्त तथा ज्ञानावरणीय आदि अष्टविध कर्मों के बंध का कारण है अतः वह किसी प्रकार श्रेयस्कर नहीं माना जा सकता है।

भावार्थ—गोचरी के लिये ज्ञात अज्ञात कुलों में गये हुए साधु को ऐसा नहीं विचार करना चाहिये कि यहां मैं किसके सामने हाथ फैलाऊँ—कोई मेरा संबंधी तो है नहीं। संबंधी से मागने में कोई शर्म की बात नहीं है। इससे तो अच्छा गृहवास ही है कि जिसमें हर एक से हर एक चीज मांगने में कोई संकोच नहीं होता है। साधु का ऐसा

सूत्रकार पूर्वोक्त अर्थने न शरी समझे छे—‘गोचरगग’ इत्यादि.

अन्वयार्थ—गोचरगगपविट्टस्स-गोचराग्रप्रविट्टस्य णत्थेला :अगर अणत्थया कुणोभां गोचरी भाटे जनारा साधुने पाणी-पाणिः हाथ नोसुप्पसारए-नो सुप्रसार्थः सुप्रसार्थ नहीं. केभके, मुनि केछ गृहस्थना संबंधी नथी तेथी अगारवासो सेओ-अगारवासः श्रेयान् ते अपेक्षाये गृहस्थ एवन श्रेष्ठ छे जेवे। लाव भिक्षू न चिंतए-भिक्षुः न चिन्तयेत् भिक्षुजे लाववे न जेधजे. केभके, गृहवास बहु सावद्य-युक्त तथा ज्ञानावरणीय आदि आठ कर्मोना बंधनुं कारण छे. आथी ते केछ प्रकारे श्रेयस्कर मानवामां आवेद नथी.

लावार्थ—गोचरी भाटे णत्थीता के अणत्थया कुणभां जता साधुजे जेवे विचार न करवे जेधजे के, हुं त्यां केनी सामे हाथ लांजे कइं ? केछ भारे संबंधी तो नथी. संबंधी पासे मागवामां केछ शरमनी बात नथी. आथी तो गृहस्थाश्रम सारे के जेभां जेक भीनथी थीन भागवामां संदेव्य थतो नथी.

अत्र दृष्टान्तः प्रदर्शयते—

दशमतीर्थकरश्रीशीतलनाथस्वामिशासने तदंशीयो वज्रप्रियनामा भूपति-
र्वभूव । स दीक्षां गृहीत्वा मासमासक्षणस्य पारणं करोति स्म । स प्रथममास-
क्षणपारणे भिक्षाचर्यायां प्रविष्टश्चिन्तयति—कथमद्य याचयामि, वज्रप्रियनाम-
धारकोऽहमिक्षाकुवंशोद्भवेऽपि अग्रसरस्तथा जातिकुलसंपन्नोऽस्मि, पुनरुच्चनी-
चमध्यमकुलेषु हस्तमसारणं ममासिधारावत् कठिनम् । यस्य चरणे राज्ञां मुकुटको-
टयः परिलसन्ति स्म, यस्याङ्गां मन्दारकुमुममालामिव जनाः सादरं धारयन्ति स्म,

विचार इसलिये प्रशस्य नहीं है कि गृहस्थाश्रम बहुसावद्य कर्मों से
युक्त होता है तथा उससे ज्ञानावरणीयादिक अष्टविध कर्मों का बंध
होता है ।

दृष्टान्त—दशवें तीर्थकर श्रीशीतलनाथस्वामी के शासनकाल में
इनका ही वंशज एक वज्रप्रिय नामका राजा था । उसने धार्मिक उपदेश
श्रवणकर दीक्षा धारण कर ली थी । मुनि बनकर उन्होंने खूब तपश्चर्या की।
मास खमण की तपस्या करने लगे । एक समय की बात है कि जब
उनके प्रथम मासक्षण का पारणा था तो स्वयं भिक्षाचर्या के लिये
गये । उस समय उन्होंने विचार किया कि मैं आज कैसे याचना करूँगा?
मेरा वंश तो ऐसा नहीं है कि जिसमें किसीने याचना की हो । मैं तो
इक्ष्वाकुवंशजों में अग्रसर हूँ । मैं जातिकुलसंपन्न हूँ । उच्च नीच एवं
मध्यम कुलों में हाथ फैलाना मेरे लिये तो असिधारा के समान कठिन
प्रतीत होता है । जिन मेरे चरणों में राजाओं के मुकुट नमते रहे थे,

साधुनो आवो विचार अटवा भाटे ठीक नहीं के, गृहस्थाश्रम धरु सावद्य
कर्मोथी लरेव छे. तथा अनाथी ज्ञानावरणीय आदि आठ कर्मोना बंध थाय छे.

दृष्टान्त—दशमा तीर्थकर श्री शीतलनाथ स्वामीना शासन कालमां तेमना
ए वंशने अेक वज्रप्रिय नामने राज् उते। तेले धार्मिक उपदेश सांभजीने
दीक्षा अडषु करी. मुनि जनीने तेले भूण तपश्चर्या करी. मास मास भमभुनी
तपश्चर्या करवा लाया. अेक समयनी बात छे, न्यारे तेमनुं पडेला मास
भमभुनुं पारणुं उतुं अेटवे ते अंजे पोते भिक्षाचर्या भाटे गया. ते समये तेमले
विचार कर्यो के, हुं आव् डेनी पासे याचना करीश ? भारे वंश तो अेवे
नथी के ने याचना करे. हुं तो इक्ष्वाकुवंशने अग्रसर छुं. नतिकुल संपन्न
छुं. उच्च नीच मध्यम कुलोमां हाथ फैलाववे अे भारा भाटे तरवारनी धार
भाक्क कठिन छे. भारा चरणोमां ने राजाओना मुकुट नमता उता नेनी

यस्य दर्शनेन च स्वजन्म सफलं मन्यन्ते स्म, येन मया राज्ञां पुरतः कदापि हस्तो न प्रसारितः, सोऽहमिदानीं तेषां कुले तथा हीनदीनकुलेषु च कथं करं प्रसारयामि । यदि गृहवासमङ्गीकरोमि, तदा तु खलु मम वीरप्रतिज्ञैव नष्टा भवति । ज्ञानदर्शनचारित्र्येभ्यश्च पतितो भवामि, ततश्चानन्तसंसारवृद्धिः स्यात्, तत्रापि नरकनिगोदेष्वनन्तदुःखभोगानन्तरमपि रत्नत्रयं दुर्लभं स्यात् । तत्र रत्नत्रये-दर्शनेन विना ज्ञानं नास्ति, ज्ञानेन विना चारित्रं न भवति, चारित्र्येण विना मोक्षो न लभ्यः, तस्माद् याचनापरीपहः सर्वथा मया सोढव्यः, इति विचिन्त्य ग्रासुकैपणीयमिक्षा-

जिसकी आज्ञा कल्पवृक्ष के फूलोंकी माला के समान मनुष्य सादर मस्तक पर धारण किया करते थे, जिसके देखने से लोग अपने को सफल जन्मवाला मानते थे-आज वही मैं उन लोगों के घरों में जाकर कैसे मांगने के लिये हाथ फैलाऊंगा । मैंने आजतक तो किसी राजा के भी सामने हाथ नहीं फैलाया । फिर संघर्षके विषय में विचारने लगे कि-यदि इस संकोच से मैं गृहवास को स्वीकार कर लेता हूँ तो मेरी सावधत्यागरूप वीरप्रतिज्ञा नष्ट होती है । ज्ञान दर्शन एवं चारित्र्य-से भी पतित हो जाता हूँ । इसका फल यह होगा कि मेरा अनन्त संसार बढ़ेगा । अनन्तसंसारी होने पर नरक निगोद के अनन्तदुःखों को भोगने के बाद भी ज्ञान, दर्शन, चारित्र्यरूप रत्नत्रय की प्राप्ति मुझे दुर्लभ ही रहेगा, क्यों कि दर्शन के विना ज्ञान नहीं और ज्ञान के विना चारित्र्य नहीं, तथा चारित्र्यके अभाव में मुक्ति की प्राप्ति नहीं होती है । इसलिये याचनापरीपह मुझे सर्वथा सहन करना ही चाहिये । इस प्रकार विचार

आज्ञा कल्पवृक्षोना कुलोनी भाणा समान मनुष्ये आदर साथे भाथा उपर धारण करता होता, जेने जेधने बोके पोताने सङ्ग जन्मवाणा मानता होता. आज तेज हूँ जे बोकेना घरोमां जे लीक्षा भागवा भाटे देवी रीते हाथ लांभे कइ ? मेँ आज सुधी कोठ राज सामे पणु हाथ लांभे कथी नथी. पछी संघर्षना विषयमां विचार करवा लाग्या के-जे आ संकोचथी हूँ गृहवासने स्वीकारी लठ तो भारी सावध त्यागरूप वीरप्रतिज्ञा नाश पावे छे. तदुं सङ्ग जे आवशे के, भारी अनन्त संसार बधथे. अनन्त संसारी जनावथी नरक निगोदनां अनन्त दुःखोने लोगव्या पछी पणु ज्ञान, दर्शन चारित्र्यरूप रत्नत्रयनी प्राप्ति मने दुर्लभ रहथे. केभके, दर्शन वीना ज्ञान नही, अने ज्ञान वगर चारित्र्य नही, अने चारित्र्यना अभावमां मुक्तिनी प्राप्ति नही. भाटे याचनापरीपह भारी सर्वथा सहन करवे जे जेधजे. आ प्रकारना विचार

मुपादाय संयमयात्रां निर्वहन् कालमासे कालं कृत्वा स्वकल्याणं साधितवान् ।
एवमन्यैरपि मुनिभिर्याचनापरीपहः सोढव्यः ॥ २९ ॥

याचनायां प्रवृत्तस्य मुनेः कदाचिद्विद्यमानन्तरायोदयात् भिक्षाया अलाभः
स्यात्, इत्यलाभपरीपहजयं प्राह—

मूलम्—परेसुं घासमेसेज्जा, भोयणे परिनिष्ठिए ।

लद्धे पिण्डे अलद्धे वा, नानुत्प्येज्जं पण्डिए ॥३०॥

छाया—परेषु ग्रासम् एपयेत्, भोजने परिनिष्ठिते ।

लब्धे पिण्डे अलब्धे वा, नानुत्प्येत पण्डितः ॥ ३० ॥

टीका—‘परेसु’ इत्यादि ।

पण्डितः=भिक्षुधर्ममर्मज्ञः संयतः, भोजने=ओदनादी, परिनिष्ठिते=निष्पन्न
सत्येव परेषु=गृहस्थेषु ग्रासं=पिण्डम् एपयेत्=गवेपयेत्। ततश्च पिण्डे=आहारेऽ-

कर उसने प्राप्त एक एपणीय आहार की याचना की। याचना में प्राप्त आहार
को लेकर अपनी संयमयात्राका निर्विघ्न रीतिसे निर्वाह करते-अन्तमें वे
आयुके समाप्त होनेपर कालधर्मको प्राप्तकर आत्माका कल्याण किया॥२९॥

याचना में प्रवृत्त मुनि को कदाचित् लाभान्तराय के उदय से
भिक्षा का लाभ न हो सके तो उसे पन्द्रहवें अलाभपरीपह को जीतना
चाहीये अथ यह बात सूत्रकार प्रदर्शित करते हैं—‘परेसु’ इत्यादि ।

अन्वयार्थ—(पण्डिए-पण्डितः) भिक्षुधर्म के मर्म का ज्ञाता संयमी
साधु (भोयणे-भोजने) ओदनादिक भोजन (परिनिष्ठिए-परिनिष्ठिते)
निष्पन्न होने पर ही (परेसु-परेषु) गृहस्थों के घर विषे (घासं-ग्रासम्)
पिण्डकी (एसेज्जा-एपयेत्) गवेपणा करे (पिण्डे लद्धे अलद्धे वा-

करीने तेमणे प्राप्तुं ऐषण्णीय आहारनी याचना करी. अने याचनाथी प्राप्त
थयेला आहारने लधने पोतानी संयमयात्रानुं निर्विघ्ने निर्वाह करतां करतां अंतमां
तेमणे आयुनी समाप्ति थतां, काणधर्मं पामी आत्मापुं कल्याणुं कथुं. ॥२९॥

याचनामां प्रवृत्त मुनिने कदाचित् लाभान्तराया उदयथी लिक्षाने लाभ
भणी शकते न होय तो तेथी लवे पंद्रमा अलाभपरीपहने अतवे लधणे
अ वात लवे सूत्रकार प्रदर्शित करे छे.—‘परेसु’ इत्यादि. .

अन्वयार्थ—पण्डिए-पण्डितः भिक्षुधर्मना भर्मना ज्ञाता संयमी साधु भोयणे-
भोजने ओदनादिक भोजन परिनिष्ठिए-परिनिष्ठिते निष्पन्न होवाथी अ परेषु-परेषु
गृहस्थाना घरे लधं घासं-ग्रासं पिण्डनी एसेज्जा-एपयेत् गवेपणा करे पिण्डे लद्धे

निष्टे स्वल्पे वा लब्धे सति, अलब्धे वा नानुत्प्येत= 'भाग्यहीनोऽस्मि, भिक्षाऽपि न लभ्यते' इत्यादिरूपं संतापं न कुर्यादित्यर्थः । 'परिनिद्रिष्ट' इति विशेषणेन भोजनकाल एव गच्छेदिति सूचितम् । 'घासं' इत्यनेन भ्रमरवृत्त्या ग्राह्यमिति बोधितम् ॥ ३० ॥

तर्हि किं कुर्यादित्याह—

मूलम्—अज्ञेवाहं न लब्धमामि, अत्रि लाभो सुंए सिंया ।

जों एवं पडिसंचिक्खे, अल्लामो तं न तर्ज्जेण ॥३१॥

छाया—अज्ञेवाहं न लभे, अपि लाभः श्वः स्यात् ।

य एवं प्रतिसमीक्षते, अलामस्तं न तर्जयेत् ॥ ३१ ॥

पिण्डे लब्धे अलब्धे वा) उस समय यदि थोड़ा आहार मिले अथवा विलकुल भी न मिले तो भी वह (नानुत्प्येज्ज-नानुत्प्येत) "मैं भाग्यहीन हूँ मुझे भिक्षा भी नहीं मिली" इत्यादिरूप संताप न करे । "परिनिद्रिष्ट" इस विशेषणद्वारा सूत्रकार की साधु के लिये यह सूचना है कि वे गोचरी के लिये भोजनकाल में ही निकले । "घासं" इस पद से गृहस्थों के यहां से जो भी आहार ग्रहण किया जाय वह भ्रमरवृत्ति से किया जाय, यह सूचित किया है ।

भावार्थ—साधु को गोचरी के लिये भोजनकाल में ही निकलना चाहिये, उस समय यदि भोजन अल्प मिले या विलकुल भी न मिले तो इस विषय में किसी भी प्रकार का उसे मन में संताप नहीं करना चाहिये ॥ ३० ॥

अलब्धे वा-पिण्डे लब्धे अलब्धे वा अथे समये तेने थोडुं लोअन भणे अथवा पीअकुल न भणे पणु ते नानुत्प्येज्ज-नानुत्प्येत हुं भाग्यहीन हुं, भने भिक्षा न भणी "अवी रीते संताप न करे परिनिद्रिष्ट अथे विशेषणद्वारा सूत्रकार साधु भाटे अेषुं सूअन करे छे के, ते गोचरी भाटे लोअन समये अ निकणे घासं आ पदथी गृहस्थोने त्यांथी अे कंठं आडार अडणु करवाभां आवे ते भ्रमरवृत्तिथी स्वीकार करवे ल्हेअे. आ सूअना आपवाभां आवे छे.

भावार्थ—साधुअे गोचरी भाटे लोअन कणभां अ निकणवुं ल्हेअे ते समये ल् थोडुं भणे अगर न भणे तो पणु आ विषयभां तेना मनभां क्हाअे प्रकारने संताप थवे न ल्हेअे. ॥ ३० ॥

ટીકા—‘ અજ્જેવાહં ’ इत्यादि ।

अहम्, अद्यैव=अस्मिन्नेव दिने न लभे=न प्राप्नोमि अपि=सम्भावयामि
श्वः=आगामिदिने, इदमुपलक्षणम् तेन अन्यस्मिन् कस्मिश्चिदागामिनि दिने इत्यर्थः,
लाभः स्यात्=आहारादिप्राप्तिर्भविष्यति, एवम्=अनेनोक्तप्रकारेण, यः साधुः प्र-
तिसमीक्षते=चिन्तयति-अत्राभे सत्यनुद्दिग्मः सन् संयमयात्रां निर्वाहतीत्यर्थः । तं
मुनिम्-अलाभः=अलाभपरीपहः, न तर्जयेत्=कथमपि पराजयं कर्तुं न शक्नुया-

‘ अज्जેવાહં ’-इत्यादि ।

अन्वयार्थ—(अहं-अहम्) मुझे (अज्जेव न लभामि-अद्यैव न लभे)
आज यदि आहार का लाभ नहीं हुआ है:(अवि-अपि) तो (सुए-श्वः)
आगामी दिन में उपलक्षण से और भी किसी अन्य दिवस में (लाभो
सिया-लाभः स्यात्) उसका लाभ हो जायगा । (एवं-एवम्) इस
प्रकारसे (जो-यः) साधु (पडिसंचिकखे प्रतिसमीक्षते) विचार लेता है,
(तं-तम्) उसके लिये (अलाभो - अलाभः) अलाभपरीपह (न
तज्जए-न तर्जयेत्) कभी भी संतापित नहीं कर सकता है । इसका
तात्पर्य यह है-याचना करने पर भी यदि गृहस्थ-दाता की इच्छा होगी
तां ही देगा, नहीं होगी तो नहीं देगा । यदि वह नहीं देता है तो इसमें
साधु के लिये अपरितुष्ट होने की बात ही कौन सी है । जो साधु इस
प्रकार की विचारधारा से युक्त होता है वह भिक्षा का लाभ न होने
पर भी समचित्त बना रहता है, उसके मन में विकृति नहीं आती है ।
इसी से वह अलाभपरीपह का विजेता बन जाता है ।

‘ अज्जેવાહં ’ इत्यादि.

अन्वयार्थ—अहं-अहम् भने અજ્જેવ ન લભામિ-અદ્યૈવ ન લભે આજ ને લોજનને
લાભ થયે નથી અવિ-અપિ તો સુએ-શ્વઃ આગામી દિવસમાં ઉપલક્ષથી ખીજ પછુ
કોઈ દિવસે લાભો સિયા-લાભઃ સ્યાત્ એને લાભ મળશે. એવં-એવમ્ આ પ્રકારે
જો-યઃ સાધુ પડિસંચિક્ખે-પ્રતિસમીક્ષતે વિચારી લે છે તં-તમ્ તેને માટે અલાભો-
અલાભઃ અલાભપરીપહ કદી પણ સંતાપ આપનાર મનતો નથી. આનું તાત્પર્ય એ છે
કે, યાચના કરવા છતાં પણ ને ગૃહસ્થ દાતાની ઈચ્છા હશે તો આપશે. નહીં
હોય તો નહીં આપે. ને તે આપે નહિ. તો સાધુ માટે તેમાં અસંતાપ લાવવાની
વાત જ ક્યાં છે, ને સાધુ આ પ્રકારની વિચારધારાથી યુક્ત છે તે ભિક્ષાને
લાભ ન થવાથી પણ સમચિત્ત બની રહે છે. તેના મનમાં વિકૃતી આવતી નથી.
તેનાથી તે અલાભપરીપહને વિજેતા બની રહે છે.

दित्यर्थः । अयं भावः—याचितं सति गृहस्थः स्वेच्छया दद्यात् न वा दद्यात्, तत्र कोऽस्त्यसंतोषो न यच्छति सति । एवं भावनया लाभभावेऽपि मुनिना समचेतसैव अत्रिकृतस्यान्ते नैव भवितव्यमित्यलाभपरीपहो धिजितो भवतीति ।

भावार्थ—अलाभपरीपह पर विजय पाने के लिये साधु की विचारधारा कैसी होनी चाहिये यह बात इस गाथा द्वारा सूत्रकार ने प्रदर्शित की है । वे कह रहे हैं कि साधु जब गोचरी के लिये किसी सदगृहस्थ के यहां जाता है और आहारादिककी याचना करता है तो उसकी इच्छा की पूर्ति होना न होना यह साधु के हाथ की बात नहीं है । गृहस्थ की भावना होगी तो वह देगा—नहीं होगी तो नहीं देगा । साधु की कोई इस में जयर्दस्ती तो है नहीं, अतः ऐसी परिस्थिति में जब कि साधु को आहार का लाभ न हो तो उसका कर्तव्य है कि वह अपनी आत्मा को व्यर्थ में क्लेशित न करे, और न उस पर रुष्ट परिणति ही धारण करे । विचार यह करे कि—आज नहीं मिला तो कल मिल जायगा, कल भी न मिला तो परसों मिल जायगा, इसमें सोच फिकर करने की बात ही कौन सी है । दाता का भाव होगा तो देगा, नहीं होगा तो नहीं देगा । इस तरह जो साधु वर्तता रहना है वह वीर मुनि अलाभ परीपह को अवश्य जीत लेता है ।

भावार्थ—अलाभपरीपह उपर विजय भेगववा भाटे साधुनी विचारधारा केवी डोवो जेधं जे जे वात आ गाथा द्वारा सूत्रकारे प्रदर्शित करेले छे, तेज्यो कडे छे के, साधु न्यारे गोचरी भाटे केधं गृहस्थने घेर जय अने आहारादिककी याचना करे तो तेनी ध्येखानी पूतीं थवी के न थवी ते साधुना हाथनी वात नथी. गृहस्थनी भावना डोय तो आपे, नडीं डोय तो आपवाना नथी. साधुनी केधं जयरजस्ती केधं शके नडिं. आथी आवी परिस्थितिमां केधं साधुने आहारने लाभ न थाय तो तेनुं कर्तव्य छे के ते चेताना आत्माने नकामे क्लुपित न करे. अने न तो तेनां उपर गुस्से करे. विचार जे करे के, आज न भयुं तो काले भणथे. काले नडीं भजे तो परम दिवस भणथे. आमां डिंकर चिंता करवानी डोय न नडिं. हाताने भाव डुशे तो आपथे, नडीं डोय तो नडीं आपे. आ प्रकारे जे साधु वर्तता रहे छे ते वीर मुनि अलाभपरीपहने अवश्य छती ले छे.

अत्र दृष्टान्तः प्रदर्शयते—

विन्ध्याचलप्रदेशे हुण्डनामके ग्रामे निर्धनः कृशशरीरः कुटुम्बबहुलः सौवीर नामा कृषीचल आसीत् । तत्र विन्ध्याचलवर्तिना गिरिसेननृपतिना पञ्चाशत्संख्यकानि हलानि वाहयितुं वारकेण पञ्चाशत्संख्यका हलवाहका नियोजिताः । तत्रैकदा सौवीरकृषीचलस्य वारकः समायातः । तस्मिन् दिने क्षेत्रे दृष्यमान्निवा हलेषु योजयित्वा क्षेत्रं कर्षितवान् । दृष्यमानाः श्रान्ताः अतिस्थग्नाः क्षुत्पिपासाव्याकुला ग्रीष्मातपसंतप्ता हलमुक्तावस्थां प्रतीक्षमाणाः स्वाहारमभिलषन्ति, पश्यन्ति च पुनः

दृष्टान्त—विन्ध्याचल प्रदेश में एक हुण्ड नाम का ग्राम था । उस में एक निर्धन सौवीर नाम का किसान रहता था । कुटुम्ब बहुत होने की वजह से उसे सदा इसके लालन पालन की चिन्ता घेरे रहती थी इसलिये चिन्ता के मारे इसका शरीर कृश हो गया था । विन्ध्याचलवर्ती गिरिसेन राजाने वारीर से पांचसौ हलों को जोतने के लिये पांचसौ हलवाहक-हाली-नियुक्त कर रखे थे । सौवीर कृषीचल (किसान) की भी एक दिन वारी आई । उस दिन उसने खेत में बैल ले जाकर और उन्हें हल में नियुक्त कर उस खेत को जोतना प्रारंभ कर दिया । खेत जोतते-बैल थक गये वे बीच-बीच में खड़े भी होने लगे । ग्रीष्मकाल के ताप से अतिशय संतप्त होकर वे क्षुत्पिपासा से अत्यंत व्याकुल हो गए और इस बात की प्रतीक्षा करने लगे कि कब हम हल से मुक्तहोवें और कब घास आदि खाकर अपनी क्षुधा को शांत करें । इसी अभिप्राय से वे वेचारे वार-वार अपने हाली सौवीर के मुखकी ओर भी

दृष्टान्त—विन्ध्याचल प्रदेशमें एक हुंड नामनुं ग्राम हुं। तेमां एक निर्धन सौवीर नामने जेहुत रडेते हुं। कुटुंभ भोटुं डोवाना कारणे तेने सदा तेना पालन पोषणनी चिंता रह्या करती हुती, आ चिंतानां पोषणना कारणे तेनुं शरीर घसाध गयुं हुं। विन्ध्याचल प्रदेशना गिरिसेन राजाके वारा पाडीने पांचसो हुं। जेडवा भाटे पांचसो जेहुतेने नियुक्त करी राख्या हुता, सौवीर जेहुतेने पणुं एक वषत वारे आव्यो, जे दिवसे तेहे जेतरेमां जणह लध जधने हुण तैयार करी जेडवानुं शर् कथुं, जेतरे जेडतां जेडतां जणह थाकी गया अने वयमां वयमां उभा रडेवा लाग्या, उनाजाना सभ्त तापथी अतिशय संतप्त थधने जूष तरसथी ते घष्या व्याकुण जनी गया, अने जे वातनी प्रतीक्षा करवा लाग्या के, क्यारे अमने हुणथी मुक्त करवामां आवे अने क्यारे घास वजेरे भाधे जूजने शांत करीजे, आवा भावथी ते जीवारा वारंवार पोताना माझीक सौवीरना भोडा तरडे जेता हुता, आ

पुनः सौवीरमुखम् । परंतु सौवीरस्तान् न मुञ्चति । तेन भक्तपानवेलायामेकश्चासो-
ऽधिकः कर्पितस्तेन दृषभाणां भक्तपानान्तरायो जातः, ततश्चान्तरायकर्म सौ-
वीरेण बद्धम् । अथाऽसौ मृत्वा बहुकालं संसारे परिभ्रम्य, कदाचिद् गोपालदारक-
भवे बने गाथारयन् कस्मिंश्चित्तरुतले बद्धसदोरकमुखवस्त्रिकं पट्कायपालकं मुनि
दृष्टवान् । तत्र तद्देशनां निश्चय्य स सौवीरस्तस्मिन् गोपालदारकभवे प्रव्रजितः ।
तदनन्तरं कालमासे कालं कृत्वा सौधर्मकल्पे देवत्वेन समुत्पन्नः । ततश्च्युतोऽसौ द्वार-

देखने लगते थे, परन्तु सौवीर ने उनकी इस परिस्थिति पर जरा भी
ध्यान नहीं दिया और न उन्हें छोड़ा ही । प्रत्युत उनके खाने पीने के
समय में उसने एक चास (हलरेखा) और अधिक जोता । इससे
सौवीर को प्रबल अंतराय कर्म का बंध हुआ । कुछ काल के बाद मर
कर उस पर्याय से पर्यायान्तरित हुआ । बहुत काल तक इसने संसार
परिभ्रमण किया । संसारपरिभ्रमण करते-करते किसी समय यह गवाल
के घर में जन्मा । बड़ा होने पर गायों को चराता था । एक दिन जंगल
में इसकी दृष्टि वृक्ष के नीचे बैठे हुए एक मुनिराज पर जो पट्काय के
जीवोंकी यतना करने में तत्पर थे, तथा मुख पर जिनके दोरासहित
मुखवस्त्रिका बंधी हुई थी उन पर पड़ी । उनके पास पहुँचकर इसने
उनसे धर्मदेशना सुनी । उसका प्रभाव इसकी आत्मा पर इतना पड़ा
कि यह उसी समय दीक्षित हो गया । साधुचर्या का ठीकर तरह
निर्वाह करते हुए वह मृत्यु के अवसर में कालधर्म पाकर सौधर्म देव-

परिस्थिति उपर सौवीर ने तो जरा पण ध्यान आभ्युं के नते। तेमने धुंसरीथी छोडया।
वधाराभां तेमने भावा पीवाना समयने वधते अेक चास वधारे जेडाये। आथी
सौवीरने प्रणण अंतरायकर्मने अंध थयो। थोडा समय पछी सौवीर जेडूत मरीने
पर्यायथी पर्यायान्तरित थयो। धण्डा काण सुधी तेले संसारभां परिभ्रमणु कथुं।
संसारपरिभ्रमणु करतां करतां काणांतरे ते अेक गोवाणने त्यां जनभ्यो।
भोटो थतां ते गायेने चरावतो हुतो। अेक द्विस जंगलभां तेनी दृष्टी आडनी नीचे
जेडेला अेक मुनिराज उपर पडी, जे पटकायना लुवोनी रक्षा करवाभां तत्पर
हुता। तेमना भोडा उपर होरा साथे अेक मुणवस्त्रिका बांधेली। हुती। तेनी
पासे पडोच्यीने तेमनी पासेथी धर्मदेशना सांभणी। अेने प्रभाव तेना आत्मा
पर अेवो पडयो के ते अेज समये दीक्षित भनी गयो। साधुचर्याने ठीक ठीक
निर्वाह करतां करतां ते मृत्युना अवसरे काणधर्म पाभ्यो अने ते सौधर्म देव-

कायां श्रीकृष्णवासुदेवगृहे पुत्रत्वेन सगुत्पन्नः । त च दंडणनाम्ना प्रसिद्धो जातः ।

अथैकदा स दंडणकुमारः श्रीनेमिनाथ तीर्थंकरस्य समीपे प्रव्रजितः । भिक्षा-
चर्यायां प्रवृत्तोऽसौ श्रीकृष्णस्य पुत्रोऽपि त्रिजगद्गुरोस्तीर्थंकरस्य शिष्योऽपि स्वर्ग-
लक्ष्मीजित्वरसंपत्समन्वितायां विशालायां द्वारकायां नगर्यां महेश्यानां भवनेष्वपि
पर्यटन् लाभान्तरायवशात् किंचिदपि प्राप्तुकैपणीयं न लभते । ततोऽसौ श्लुघा-
पिपासया शुष्कशरीरः श्रीनेमिनाथस्वामिनं तदलाभकारणं पृष्ठवान् श्रीनेमिनाथ
स्वामिना कथितम्-वत्स ! अस्माद् पूर्वं नवनवतिलक्ष-नवनवतिसहस्र-नवशत-नवनवति
९९,९९,९९९ तमे भवे त्वं विन्ध्याचलप्रदेशे हुण्डकग्रामे सौवीरनामा कृपीवल्

लोक में देवपने से उत्पन्न हुआ । वहाँ की स्थिति समाप्त होने पर यह
वहाँ से च्यवकर द्वारिकानगरी में श्रीकृष्ण वासुदेव के घर पुत्ररूप
से उत्पन्न हुआ और वहाँ इसका नाम दंडणकुमार रक्खा गया ।

इस दंडणकुमार ने श्रीनेमिनाथतीर्थंकर के समीप धर्मदेशना सुन-
कर दीक्षा अंगीकार की । भिक्षाचर्या करने को वे स्वयं जाते थे ।
श्रीकृष्ण के पुत्र एवं त्रिजगद्गुरु तीर्थंकर नेमिनाथ प्रभु के शिष्य होने
पर भी उस विशाल द्वारिका नगरी में इनको बड़े सेठ साहूकारोंके घरों
में जाने पर भी लाभान्तराय कर्म के उदय से थोड़े से भी प्राप्तुक
एपणीय आहार का लाभ नहीं होता, अतः ये दिन प्रतिदिन शुष्क
शरीर होने लगे । भगवान् नेमिनाथ के पास जाकर एकदिन इन्होंने
आहार के अलाभ का कारण पूछा तो भगवान् ने कहा कि वत्स ! तू
इस भव से पहिले निन्यानवे लाख निन्यानवे हजार नौ सो निन्यानवे
९९,९९,९९९ भव में विन्ध्याचल प्रदेश में हुण्डक ग्राम में सौवीर नाम

लोकमें देवपण्डे उत्पन्न थयो. त्यांनी स्थिति समाप्त थतां ते त्यांची अर्पिने
द्वारिका नगरीमां श्री कृष्ण वासुदेवने घेर पुत्र रूपे उत्पन्न थयो अने त्यां
तेमनुं नाम दंडण राभवामां आण्युं.

आ दंडणकुमारे श्रीनेमिनाथ तीर्थंकर पास धर्मदेशना सांभली दीक्षा ग्रहण
करी. भिक्षाचर्या करवा भाटे ते स्वयं जाता होता. श्रीकृष्णना पुत्र तेमनु श्रीजगद्गुरु
तीर्थंकर नेमिनाथ प्रभुना शिष्य होवा छतां पण ते विशाल द्वारिका नगरीमां तेने
भोटा भोटा शेठ साहूकाराना घरेमां जावा छतां पण लाभान्तराय कर्मना उदयथी
थोडा पण प्राप्तुक आहारना लाभ भगतो न होता. आथी ये दिनप्रतिदिन शुष्क
शरीरवाणा बनवा लाज्या. भगवान् नेमिनाथ पास जाछने एकदिवस तेमण्णे आहा-
रना अलाभनुं कारण पूछ्युं, भगवाने कळुं के, छे वत्स ! तू आ भवथी पडेल
नवाण्ण लाभ नवाण्ण उबर नवसे नवाण्णना ९९,९९,९९९ भवमां विन्ध्या प्रदेशे

आसीः। तत्र भवे हलयोजितवृषभाणां भोजनपानान्तरायस्त्वया कृतः। तदन्तरायकर्मा-
 ऽस्मिन् भवे इदानीमुदितम्, अतोऽयमलाभपरीपहस्त्वया सोढव्यः। तदनु ढंढणकु-
 मारेण स्वपूर्वभववृत्तान्तं श्रुत्वा तदन्तरायकर्म क्षपयितुं गाढसंवेगेन सोत्साहमभिग्र-
 हो गृहीतः—अद्यमभृति मया परलाभो न ग्राह्य इति। तदनन्तरमभिग्रहमुपादाय स
 प्रतिदिनं भिक्षार्थमटति, परंतु—लाभान्तरायोदयान्न किञ्चित् प्राप्नोति, तथापि नो
 द्विग्नो भवति, नापि चान्यं निन्दति किन्तु, नित्यमदीनमानसः सन् स्वकर्मैवाचिन्तयत्।

के एक किसान की पर्याय में था। उस समय तूने हल में जुते हुए
 बैलों के भोजन पान में अन्तराय डाला था। वह अंतराय कर्म इस
 भव में तुम्हारे इस समय में उदय में आया है इसलिये इस अलाभ
 परीपह को तुझे सहन करना चाहिये। भगवान् द्वारा इस प्रकार कहे
 गये अपने पूर्वभव के वृत्तान्त को सुनकर ढंढणकुमार मुनिने उस बद्ध
 अन्तराय को नष्ट करने के निमित्त बड़े ही उत्साह के साथ गाढ
 वैराग्य से युक्त अन्तःकरण होकर ऐसा अभिग्रह ग्रहण किया कि
 “आज से लेकर मैं परलाभ को ग्रहण नहीं करूँगा” अर्थात् दूसरे
 के निमित्त से मिला हुआ आहार पानी नहीं ग्रहण करूँगा। इस प्रकार
 अभिग्रह ग्रहण कर वे प्रतिदिन भिक्षाचर्या को जाते परन्तु लाभान्त-
 राय कर्म के उदय से उनको किञ्चित् भी आहार का लाभ नहीं होता,
 परन्तु फिर भी इस परिस्थिति में भी उनके चेहरे पर उद्विग्नता के
 चिह्न जरा भी दिखलाई नहीं पड़ते—वे उद्विग्नचित्त नहीं होते और न

शभां हुङ्क गामभां सौवीर नामथी अेक जेडुतना पर्यायभां डतो. ते समये
 ते हुङ्गभां जेडेला भण्डने भोजन पानभां अंतराय नाम्थो डतो. ते अंतराय
 कर्म आ भवभां तभारा भाटे आ समये उदयभां आवेल छे. भाटे आ अलाभ-
 परीपहने तभारे सहन करवे जेठ अे, भगवान तरक्ष्ठी डडेवाभां आवेल
 आ प्रकारना पोताना पूर्वभवना वृत्तांतने जण्णी ढंढणकुमार मुनिअे आ अस
 भद्ध अंतरायनो नाश करवा भाटे भूण ज उत्साहथी गाढ वैराग्ययुक्त अंतः-
 करणवाणा भनी अेवो अलिग्रह धारण करी डे, “आजथी हुं परलाभने अडण
 नडीं करूं.” अर्थात् भीतना निमित्तथी भण्डे आहार पाणी अडण नडीं
 करूं. आ प्रकारनो अलिग्रह अडण करी ते प्रतिदिन भिक्षाचर्या भाटे जता
 परंतु लाभान्तराय कर्मना उदयथी तेभने थोडे पण आहारनो लाभ भणतो नडीं.

અથાન્યદા શ્રીકૃષ્ણવાસુદેવઃ શ્રીનેમિનાથસ્વામિનં પૃષ્ટવાન્-ભગવન્! અષ્ટા-
દશસહસ્રેષુ શ્રમણેષુ કોઽસ્તિ દુષ્કરકારકઃ?, શ્રીનેમિનાથસ્વામિના પ્રોક્તમ્-સર્વે
શ્રમણદુષ્કરકારકાઃ, ઢંઢળમુનિસ્તુ અતિદુષ્કરકારકઃ। શ્રીકૃષ્ણેનોક્તમ્—કથમ્?,
શ્રીનેમિનાથસ્વામી પ્રાહ—અલાભપરીપહસ્ય સમ્યક્ સહનેન । તતો ભક્તિભરેણ
સંજાતરોમાન્નઃ શ્રીકૃષ્ણોઽવદત્—પ્રભો ! મહાત્મા ઢંઢળમુનિઃ ક્વ વિદ્યતે ?। શ્રી
ભગવાનાહ—ભિક્ષાથં દ્વારકાપુરીં ગતઃ, નગર્યાં પ્રાવિશન્નેવ તં દ્રક્ષ્યસિ। તદ્વચનં
શ્રુત્વા શ્રીકૃષ્ણઃ શ્રીનેમિજિનં પ્રણમ્ય ચલિતઃ। તતઃ પુરદ્વારે પ્રવિશન્ શ્રીકૃષ્ણઃ

કિસી દૂસરે કી નિન્દા હી કરતે । નિન્દા કરતે મી તો અદીનમન
હોકર અપને અશુભ કર્મ કી ।

एक दिन की बात है कि श्रीकृष्ण वासुदेव ने श्रीनेमिनाथप्रभु से
पूछा कि भगवन्! इन अठाहर हजार मुनियों में इस समय दुष्कर-
कारक कौन है। प्रभु ने कहा सब ही श्रमण दुष्करकारक हैं परन्तु
ढंढणमुनि विशेष रीति से दुष्करकारक है। वासुदेव ने कहा यह क्यों?
प्रभुने कहा अलाभपरीपह के सम्यक् सहन करने से। यह सुनते ही
श्रीकृष्ण का समस्त शरीर भक्ति के आवेश से रोमांचित हो गया।
श्रीकृष्ण ने कहा—प्रभो! महात्मा ढंढणमुनि इस समय कहाँ विराजमान
हैं?। प्रभु ने उत्तर में कहा कि वे इस समय भिक्षा के लिये द्वारिका
में गये हैं। तुम्हें वहाँ जाते ही वे मिल जावेंगे। भगवान् की बात सुनकर
वासुदेव श्रीकृष्ण नेमिनाथ भगवान् को वंदना करके वहाँसे चलेगये।

આ પરિસ્થિતિમાં પણ તેમના ચહેરા ઉપર ઉદ્દીગ્નતાતું ચિહ્ન દેખાતું નહીં.
એ ઉદ્દીગ્નચિત્ત ન બનતા, અને ખીલ કોઈની નિંદા પણ કરતા નહીં. નિંદા
કરતા તો તે ફક્ત પોતાના અશુભ કર્મની.

એક દિવસની વાત છે કે, શ્રી કૃષ્ણ વાસુદેવે શ્રી નેમીનાથ પ્રભુને પૂછ્યું
કે, ભગવન્! આ અઠારહજાર મુનિઓમાં આ સમયે દુષ્કર સ્થિતિ કોણ
લોગવે છે? પ્રભુએ કહ્યું કે, બધા શ્રમણ દુષ્કર કષ્ટ લોગવે છે છતાં ઢંઢળ-
મુનિ આ બધાથી વધુ દુષ્કર સ્થિતિમાં છે. વાસુદેવે કહ્યું એમ કેમ? પ્રભુએ કહ્યું કે,
અલાભપરીપહને સમ્યક્ સહન કરવાથી. આ સાંભળતાં જ શ્રી કૃષ્ણતું શરીર
લકિતના આવેશથી રોમાંચિત બની ગયું અને કહ્યું, પ્રભુ! મહાત્મા ઢંઢળ મુનિ
આ સમયે ક્યાં બિશાળે છે? પ્રભુએ ઉત્તરમાં કહ્યું કે, તે આ સમયે દ્વારિકામાં
ભિક્ષા માટે ગયા છે, તમને ત્યાં જતાં જ લોટો થઈ જશે. ભગવાનની આ વાત
સાંભળી વાસુદેવ શ્રીકૃષ્ણ નેમીનાથ ભગવાનને વંદના કરી ત્યાંથી ચાલી નીકળ્યા.

कृशशरीरं शान्तचेतसं ढंढणमुनिं दृष्टवान् । ततस्तद्गुणाकृष्टोऽतिगुदितः श्रीकृष्णो
 हस्तिस्कन्धादवतीर्य महीतलमिलनमौलिस्तं वन्दे । तदा तेन वन्द्यमानोऽसौ ढंढणमुनिः
 केनचिद्भिन्नेन दृष्टः । तदा तेनेभ्येन चिन्तितम्—अहो ! एष महात्मा श्रीकृष्णेन
 वन्द्यते । एवं चिन्तयत एव तस्येभ्यस्य गृहे ढंढणमुनिः प्रविष्टः । तेनोत्कृष्टभावेन
 मोदकैः प्रतिलम्बितः ।

ततोऽसौ ढंढणमुनिः श्रीनेमिनाथस्वामिनः समीपं गत्वा भिक्षां प्रदर्श्य पृच्छति-
 भगवन् ! मम लाभान्तरायः क्षीणः किम् ? , श्रीनेमिनाथस्वामिना प्रोक्तम्—न तव-

उस समय उन्होंने ने कृशशरीर एवं शान्तचित्त ढंढणमुनि को
 पुरद्वार में प्रवेश करते हुए देखा । देखते ही वे अपने गजराज से नीचे
 उतरे और झुककर उनको वंदना करने लगे । कृष्णवासुदेव को वंदना
 करते हुए उस समय किसी सेठ ने देख लिया । देखते ही उसने
 विचार किया कि जिस महात्मा को वंदना ये वासुदेव कर रहे हैं वह
 कोई साधारण साधु नहीं हैं, ऐसा विचार कर ही रहा था कि ढंढणमुनि
 इतने में उसी सेठ के घर में प्रविष्ट हुए । उसने बड़े ही उत्कृष्टभावों
 से सम्पन्न होकर ढंढणमुनि को मोदकों की भिक्षा दी । भिक्षा लेकर वे
 वापिस अपने स्थान पर आ गये और जो कुछ भिक्षा में उनको मिला
 था वह उन्होंने ने श्रीनेमिनाथ भगवान् को दिखलाया । दिखलाकर फिर
 भगवान् से उन्होंने ने पूछा कि हे भगवान् ! मेरा लाभान्तराय कर्म क्षीण
 हो चुका है क्या ? । भगवान् ने कहा अभी नहीं, भिक्षा में जो ये

એ સમયે તેમણે કૃશશરીરવાળા અને શાંતચિત્ત ઢંઢણ મુનિને દ્વારિકાપુરીના
 દ્વારમાં પ્રવેશ કરતી વખતે જોયા. જોતાં જ પોતાના હાથી ઉપરથી નીચે
 ઉતરી ઢંઢણમુનિ પાસે જઈ પહોંચ્યા અને નીચા નમી વંદના કરી. કૃષ્ણ વાસુદે-
 વને વંદના કરતા કોઇ શેઠ જોઈ ગયા અને મનમાં વિચાર કર્યો કે, જે મહાત્માને
 વાસુદેવ વંદના કરી રહ્યા છે તે કોઇ સાધારણ સાધુ ન હોવા જોઈએ. ત્યાં શેઠ એવો
 વિચાર કરી રહ્યા હતા ત્યાં ઢંઢણમુનિ એજ શેઠને ઘર ભિક્ષા માટે જઈ પહોંચ્યા.
 એણે ખૂબ જ આદર ભાવથી ઢંઢણમુનિને લાડુની ભિક્ષા આપી. ભિક્ષા લઈ
 તે પોતાના સ્થાન ઉપર પહોંચ્યા અને પોતાને જે કાંઈ ભિક્ષામાં મળ્યું હતું તે
 તેમણે ભગવાન શ્રી નેમીનાથને બતાવ્યું. ભગવાનને બતાવીને પછી તેમણે
 પૂછ્યું કે, ભગવન્ ! માંડે લાભાન્તરાય કર્મ ક્ષીણ થઈ ગયું કે કેમ ? ભગવાને કહ્યું,

અથાન્યદા શ્રીકૃષ્ણવાસુદેવઃ શ્રીનેમિનાથસ્વામિનં પૃષ્ટવાન્-ભગવન્! અપ્તા-
દશસહસ્રેષુ શ્રમણેષુ કોઽસ્તિ દુષ્કરકારકઃ?, શ્રીનેમિનાથસ્વામિના પ્રોક્તમ્-સર્વં
શ્રમણદુષ્કરકારકાઃ, ઢંઢળમુનિસ્તુ અતિદુષ્કરકારકઃ। શ્રીકૃષ્ણેનોક્તમ્—કથમ્?,
શ્રીનેમિનાથસ્વામી પ્રાહ—અલાભપરીપહસ્ય સમ્યક્ સહનેન । તતો ભક્તિભરેણ
સંજાતરોમાન્નઃ શ્રીકૃષ્ણોઽવદત્—પ્રભો ! મહાત્મા ઢંઢળમુનિઃ ક્વ વિદ્યતે ?। શ્રી
ભગવાનાહ—મિક્ષાર્થં દ્વારકાપુરીં ગતઃ, નગર્યાં પ્રાવિશન્નેવ તં દ્રક્ષ્યસિ। તદ્વચનં
શ્રુત્વા શ્રીકૃષ્ણઃ શ્રીનેમિજિનં પ્રણમ્ય ચલિતઃ। તતઃ પુરદ્વારે પ્રવિશન્ શ્રીકૃષ્ણઃ

કિસી દૂસરે કી નિન્દા હી કરતે। નિન્દા કરતે ભી તો અદીનમન
હોકર અપને અશુભ કર્મ કી।

एक दिन की बात है कि श्रीकृष्ण वासुदेव ने श्रीनेमिनाथप्रभु से
पूछा कि भगवन्! इन अठाहर हजार मुनियों में इस समय दुष्कर-
कारक कौन है। प्रभु ने कहा सब ही श्रमण दुष्करकारक हैं परन्तु
ढंढणमुनि विशेष रीति से दुष्करकारक है। वासुदेव ने कहा यह क्यों?
प्रभुने कहा अलाभपरीपह के सम्यक् सहन करने से। यह सुनते ही
श्रीकृष्ण का समस्त शरीर भक्ति के आवेश से रोमांचित हो गया।
श्रीकृष्ण ने कहा—प्रभो! महात्मा ढंढणमुनि इस समय कहां विराजमान
हैं?। प्रभु ने उत्तर में कहा कि वे इस समय भिक्षा के लिये द्वारिका
में गये हैं। तुम्हें वहां जाते ही वे मिल जावेंगे। भगवान् की बात सुनकर
वासुदेव श्रीकृष्ण नेमिनाथ भगवान् को वंदना करके वहांसे चलेगये।

આ પરિસ્થિતિમાં પણ તેમના ચહેરા ઉપર ઉદ્દીગ્નતાનું ચિહ્ન દેખાતું નહીં.
એ ઉદ્દીગ્નચિત્ત ન બનતા. અને ધીબ્ધ કોઈની નિંદા પણ કરતા નહીં. નિંદા
કરતા તો તે શ્કત પોતાના અશુભ કર્મની.

એક દિવસની વાત છે કે, શ્રી કૃષ્ણ વાસુદેવે શ્રી નેમીનાથ પ્રભુને પૂછ્યું
કે, ભગવન્! આ અઠારહજાર મુનિઓમાં આ સમયે હુકર સ્થિતિ કોણ
લોગવે છે? પ્રભુએ કહ્યું કે, બધા શ્રમણ હુકર કબ્ત લોગવે છે છતાં ઢંઢળ-
મુનિ આ બધાથી વધુ હુકર સ્થિતિમાં છે. વાસુદેવે કહ્યું એમ કેમ? પ્રભુએ કહ્યું કે,
અલાભપરીપહને સમ્યક્ સહન કરવાથી. આ સાંભળતાં જ શ્રી કૃષ્ણનું શરીર
ભકિતના આવેશથી રોમાંચિત બની ગયું અને કહ્યું, પ્રભુ! મહાત્મા ઢંઢળ મુનિ
આ સમયે ક્યાં બિરાજે છે? પ્રભુએ ઉત્તરમાં કહ્યું કે, તે આ સમયે દ્વારિકામાં
ભિક્ષા માટે ગયા છે, તમને ત્યાં જતાં જ લોટો થઈ જશે. ભગવાનની આ વાત
સાંભળી વાસુદેવ શ્રીકૃષ્ણ નેમીનાથ ભગવાનને વંદના કરી ત્યાંથી ચાલી નીકળ્યા.

छाया—ज्ञात्वा उत्पतितं दुःखं, वेदनया दुःखार्तितः ।

अदीनः स्थापयेत् प्रज्ञां, स्पृष्टस्तत्र अधिसहेत ॥ ३२ ॥

टीका—“ नच्चा ” इत्यादि ।

वेदनया=वेदनीयकर्मणा दुःखं=श्वासकासादिषोडशविधरोगसम्बन्धिकं फटम् उत्पतितम्=उत्पन्नं भवतीति ज्ञात्वा दुःखार्तितः = भाविदुःखशङ्कयाऽऽर्त्तभावं गतः अदीनः = दैन्यभावरहितः सन् प्रज्ञां=बुद्धिं स्थापयेत्=भाविदुःखशङ्कया चलन्तीं बुद्धिं स्थिरीकुर्यात् । तथा यदि साधुः स्पृष्टः=श्वास-कास-ज्वर-दाह-कुक्षिशूल-भगन्दरा-शौऽर्जीर्ण-दृष्टिरोग-मूर्धशूल-रुच्य-क्षिशूल-कर्णशूल-कण्ठ-

आहार के अलाभ से अथवा अन्तप्रान्त आहार के लाभ से शरीर में रोग उत्पन्न हो जाता है इसलिये सोलहवां रोगपरीपह साधु को जीतना चाहिये, यह बात सूत्रकार कहते हैं—‘नच्चा’ इत्यादि ।

अन्वयार्थ—(वेयणाए-वेदनया) वेदनीय कर्म के उदय से (दुःखं-दुःखं) श्वास कास आदि सोलह प्रकार के रोग संबन्धी दुःख (उत्पद्यं-उत्पतितम्) उत्पन्न होता है ऐसा (नच्चा-ज्ञात्वा) जानकर (दुहृष्टिए-दुःखार्तितः) भावी दुःख की आशङ्का से आर्त्त भाव को प्राप्त हुआ मुनि (अदीणो-अदीनः) दैन्यभाव से रहित होकर (पन्नं ठावए-प्रज्ञां स्थापयेत्) भावी दुःख की आशङ्का से चलित होनी हुई अपनी बुद्धि को स्थिर करे । यदि साधु (पुट्टो-स्पृष्टः) श्वास, कास, ज्वर, दाह, कुक्षिशूल, भगन्दर, अर्श, अर्जीर्ण, दृष्टिरोग मूर्धशूल, अरुचि, नेत्रशूल

आहारना अलाभथी अथवा अहितकर्ता (अपथ्य) आहारथी शरीरमां रोग थवा संभव छे तेथी सोणमे। रोगपरीपह साधुमे एतवे जेधमे जे वात सूत्रकार कडे छे—‘नच्चा’ इत्यादि।

अन्वयार्थ—वेयणाए-वेदनया वेदनीय कर्मणा उदयथी दुःखं-दुःखम् श्वास कास आदि सोण प्रकारना रोग संबन्धी दुःख उत्पद्यं-उत्पतितम् उत्पन्न थाय छे जेपुं नच्चा-ज्ञात्वा ज्ञानीने दुहृष्टिए-दुःखार्तितः भावी दुःखनी आशङ्काथी आर्त्तभा-पने प्राप्त करतार मुनि अदीणो-अदीनः दैन्य भावथी रहित जनी पन्नं ठावए-प्रज्ञां स्थापयेत् भावी दुःखनी आशङ्काथी चलित थती पोतानी बुद्धिने स्थिर करे। अगर जे साधु पुट्टो-स्पृष्टः १ श्वास, २ कास, ३ ज्वर, ४ दाह, ५ भदगांड, ६ भगन्दर, ७ डरस, ८ अशुचि, ९ दृष्टिरोग, १० मूर्धशूल, ११ अरुचि,

કર્મ ક્ષીણમ્, અયં તુ વાસુદેવસ્ય લાભઃ, યતઃ શ્રીકૃષ્ણસ્ત્વાં વન્દિતવાન્, અતસ્તે મોદકાન્
 શ્રેષ્ઠી દત્તવાન્ । તદ્વચનં શ્રુત્વા ઢંઢણમુનિઃ ‘ પરલામો ન કલ્પતે ’ ઇત્યુત્ત્વા રાગદ્વેપ-
 વર્જિતો મૂર્છારહિતઃ સન્ નગરાદ્ વહિર્ગત્વા પ્રામુકસ્થણિલે મોદકાન્ યત્નવા
 પરિષ્ઠાપ્ય, તાપદૈન્યાદ્યકરણેન લાભાન્તરાયકર્મ ક્ષપયન્ ક્ષપકશ્રેણિમાલ્લ્ય કેવલી
 જાતઃ । એવમન્યૈરપિ મુનિભિરલાભપરીપઠઃ સોઢવ્યઃ ॥ ૩૧ ॥

અલાભાદન્તપ્રાન્તાઘાહારલાભાદ્ વા શરીરે રોગા ઉત્પદ્યન્તે, અતઃ પાઢયં
 રોગપરીપઢજયં પ્રાઢ—

મૂલમ્—નચ્ચાં ઉપ્પદ્વૈયં દુઃકલ્પં, વેયળાણ દુહટ્ટિણં ।

અંદીળો ઠાવણ પંઢનં, પુંટો તેંત્થહિયાસેણ ॥ ૩૨ ॥

મોદકોં કા લાભ તુમ્હે હુઆ હૈ વહ લાભ તુમ્હારા નહીં હૈ કિન્તુ યહ
 લાભ વાસુદેવ કા હૈ, કારણ કિ તુમ કો કૃષ્ણ ને વંદના કી હસલિયે
 સેઠ ને તુમકો યે મોદક વહરાયે, અતઃ તુમ્હારે હસ લાભ મેં નિમિત્ત
 કૃષ્ણ હૈં । ઢંઢણમુનિ ને ભગવાન્ કે હન વચનોં કો સુનકર “ પરલામ
 મુક્ષે કલ્પતા નહીં હૈ ” એસા કહકર રાગદ્વેપ સે એવં મૂચ્છાં સે વર્જિત
 હોતે હુણ નગર કે બાહર જાકર કિસી પ્રાસુક ભૂમિ મેં ડન મોદકોં કો
 યતનાપૂર્વક પરિઠવદિયા । તાપ એવં દીનતા કે નહીં કરને સે લાભાન્ત-
 રાયકર્મ કો નષ્ટ કરતે હુણ ડન ઢંઢણમુનિને ક્ષપકશ્રેણી પર આરોહણ કર
 કેવલજ્ઞાન પ્રાપ્ત કર લિયા । હસી તરહ અન્યમુનિયોં કો ઢી અલાભ પરિ-
 પઢ કો સહન કરના ડાહિયે ॥ ૩૧ ॥

હજી સમય યાકી છે. લિક્ષામાં લાડવાને લાલ તમને થયો છે તે લાલ તમારો નથી
 પરંતુ એ લાલ વાસુદેવનો છે. કારણ કે કૃષ્ણે તમારી વંદના કરી આ ભેદને
 શેઠે તમને લાડવા વહોરાવ્યા છે. આથી તમારા આ લાલમાં નિમિત્ત કૃષ્ણ બન્યા છે.
 ઢંઢણમુનિએ ભગવાનનાં આ વચન સાંભળી “ ખીબનો લાલ મને કલ્પતો
 નથી ” એમ કહી રાગદ્વેષ અને મૂચ્છાથી વળાંત રહી નગરની બહાર જઈ કોઈ
 પ્રાસુક ભૂમિમાં એ લાડવાને યતનાપૂર્વક છોડી દીધા. તપ અને લિક્ષામાં દીનતા ન
 કરવાથી લાભાન્તરાય કર્મને નષ્ટ કરતાં એ ઢંઢણમુનિએ ક્ષપકશ્રેણી પર આરો-
 હણ કરી કેવળજ્ઞાન પ્રાપ્ત કર્યું. આ રીતે અન્ય મુનિઓએ પણ અલાભ
 પરીપઢને સહન કરતા રહેવું ભેદ એ. ॥ ૩૧ ॥

छाया—ज्ञात्वा उत्पत्तितं दुःखं, वेदनया दुःखार्तितः ।

अदीनः स्थापयेत् प्रज्ञां, स्पृष्टस्तत्र अधिसहेत ॥ ३२ ॥

टीका—“ नच्चा ” इत्यादि ।

वेदनया=वेदनीयकर्मणा दुःखं=श्वासकासादिषोडशविधरोगसम्बन्धिकं कष्टम्

उत्पत्तितम्=उत्पन्नं भवतीति ज्ञात्वा दुःखार्तितः = भाविदुःखशङ्कयाऽऽर्त्तभावं

गतः अदीनः = दैन्यभावरहितः सन् प्रज्ञां=बुद्धिं स्थापयेत्=भाविदुःखशङ्कया

चलन्तीं बुद्धिं स्थिरीकुर्यात् । तथा यदि साधुः स्पृष्टः=श्वास-कास-ज्वर-दाह-

कुक्षिशूल-भगन्दरा-शौर्ज्जीर्ण-दृष्टिरोग-मूर्धशूल-रुच्य-क्षिशूल-कर्णशूल-कण्डू-

आहार के अलाभ से अथवा अन्तप्रान्त आहार के लाभ से शरीर में रोग उत्पन्न हो जाता है इसलिये सोलहवां रोगपरीपह साधु को जीतना चाहिये, यह बात सूत्रकार कहते हैं—‘नच्चा’ इत्यादि ।

अन्वयार्थ—(वेद्यणाए-वेदनया) वेदनीय कर्म के उदय से (दुःखं-दुःखं) श्वास कास आदि सोलह प्रकार के रोग संबंधी दुःख (उत्पद्यं-उत्पत्तितम्) उत्पन्न होता है ऐसा (नच्चा-ज्ञात्वा) जानकर (दुहृष्टि-दुःखार्तितः) भावी दुःख की आशङ्का से आर्त्त भाव को प्राप्त हुआ मुनि (अदीनो-अदीनः) दैन्यभाव से रहित होकर (पन्नं ठावए-प्रज्ञां स्थापयेत्) भावी दुःख की आशङ्का से चलित होती हुई अपनी बुद्धि को स्थिर करे । यदि साधु (पुट्टो-स्पृष्टः) श्वास, कास, ज्वर, दाह, कुक्षिशूल, भगन्दर, अर्श, अर्जीर्ण, दृष्टिरोग मूर्धशूल, अरुचि, नेत्रशूल

आहारना अलाभथी अथवा अहितकर्ता (अपथ्य) आहारथी शरीरमां रोग तथा संभव छे तेथी सोणभो रोगपरीपह साधुअे अतये अर्थअे अे वात सूत्रकार कडे छे—‘नच्चा’ इत्यादि.

अन्वयार्थ—वेद्यणाए-वेदनया वेदनीय कर्मना उदयथी दुःखं-दुःखम् श्वास कास आदि सोण प्रकारना रोग संबंधी दुःख उत्पद्यं-उत्पत्तितम् उत्पन्न थाय छे अेषुं नच्चा-ज्ञात्वा अेषीने दुहृष्टि-दुःखार्तितः भावी दुःखनी आशंकाथी आर्त्तभा-वने प्राप्त करनार मुनि अदीनो-अदीनः दैन्य भावथी रहित अनी पन्नं ठावए-प्रज्ञां स्थापयेत् भावी दुःखनी आशंकाथी चलित थती पेतानी बुद्धिने स्थिर करे. अगर अे साधु पुट्टो-स्पृष्टः १ श्वास, २ कास, ३ ज्वर, ४ दाह, ५ अहगांड, ६ भगन्दर, ७ अरुचि, ८ दृष्टिरोग, ९ मूर्धशूल, १० अक्षि,

કર્મ ક્ષીણમ્, અયં તુ વાસુદેવસ્ય લાભઃ, યતઃ શ્રીકૃષ્ણસ્ત્વાં વન્દિતવાન્, અતસ્તે મોદકાન્
 શ્રેષ્ઠી દત્તવાન્ । તદ્વચનં શ્રુત્વા ઢંઢણમુનિઃ ‘ પરલાભો ન કલ્પતે ’ ઇત્યુક્ત્વા રાગદ્રેષ-
 વર્જિતો મૂર્છારહિતઃ સન્ નગરાદ્ વહિર્ગત્વા પ્રાસુકસ્થણ્ડિલે મોદકાન્ યત્નવાં
 પરિષ્વાપ્ય, તાપદૈન્યાયકરણેન લાભાન્તરાયકર્મ ક્ષપયન્ ક્ષપકશ્રેણિમાલ્લ્ય કેવલી
 જાતઃ । એવમન્યૈરપિ મુનિભિરલાભપરીપદઃ સોઢવ્યઃ ॥ ૩૧ ॥

અલાભાદન્તપ્રાન્તાઘાહારલાભાદ્ વા શરીરે રોગા વ્ત્પદ્યન્તે, અતઃ પાઢશ્ચ
 રોગપરીપદજયં પ્રાહ—

મૂલમ્—નર્ચ્વા ઉપ્પદ્વૈયં દુઃખં, વેયળાઁ દુહટ્ટિયં ।

અંદીળો ઠાવણ પંત્રં, પુંટો તેંત્યઽહિયાસંણ ॥ ૩૨ ॥

મોદકોં કા લાભ તુમ્હેં હુઆ હૈ વહ લાભ તુમ્હારા નહીં હૈ કિન્તુ યહ
 લાભ વાસુદેવ કા હૈ, કારણ કિ તુમ કો કૃષ્ણ ને વંદના કી ઇસલિયે
 સેઠ ને તુમકો યે મોદક વહરાયે, અતઃ તુમ્હારે ઇસ લાભ મેં નિમિત્ત
 કૃષ્ણ હૈં । ઢંઢણમુનિ ને ભગવાન્ કે ઇન વચનોં કો સુનકર “ પરલાભ
 મુક્ષે કલ્પતા નહીં હૈ ” એસા કહકર રાગદ્રેષ સે એવં મૂર્ચ્છા સે વર્જિત
 હોતે હુએ નગર કે વાહર જાકર કિસી પ્રાસુક ભૂમિ મેં ડન મોદકોં કો
 યતનાપૂર્વક પરિઠવદિયા । તાપ એવં દીનતા કે નહીં કરને સે લાભાન્ત-
 રાયકર્મ કો નષ્ટ કરતે હુએ ડન ઢંઢણમુનિને ક્ષપકશ્રેણી પર આરોહણ કર
 કેવલજ્ઞાન પ્રાપ્ત કર લિયા । ઇસી તરહ અન્યમુનિયોં કો ડી અલાભ પરિ-
 પદ કો સહન કરના વાહિયે ॥ ૩૧ ॥

હજી સમય યાકી છે. લિક્ષામાં લાડવાનો લાભ તમને થયો છે તે લાભ તમારો નથી
 પરંતુ એ લાભ વાસુદેવનો છે. કારણ કે કૃષ્ણે તમારી વંદના કરી આ ભેદને
 શેઠે તમને લાડવા વહોરાવ્યા છે. આથી તમારા આ લાભમાં નિમિત્ત કૃષ્ણ બન્યા છે.
 ઢંઢણમુનિએ ભગવાનનાં આ વચન સાંભળી “ ખીજનો લાભ મને કલ્પતો
 નથી ” એમ કહી રાગદ્રેષ અને મૂર્ચ્છાથી વણત રહી નગરની બહાર જઈ કોઈ
 પ્રાસુક ભૂમિમાં એ લાડવાને યતનાપૂર્વક છોડી દીધા. તાપ અને લિક્ષામાં દીનતા ન
 કરવાથી લાભાન્તરાય કર્મને નષ્ટ કરતાં એ ઢંઢણમુનિએ ક્ષપકશ્રેણી પર આરો-
 હણ કરી કેવળજ્ઞાન પ્રાપ્ત કર્યું. આ રીતે અન્ય મુનિઓએ પણ અલાભ
 પરીપદને સહન કરતા રહેવું ભેદ્યું છે. ॥ ૩૧ ॥

छाया—ज्ञात्वा उत्पतितं दुःखं, वेदनया दुःखार्तितः ।

अदीनः स्थापयेत् प्रज्ञां, स्पृष्टस्तत्र अधिसहेत ॥ ३२ ॥

टीका—“ नच्चा ” इत्यादि ।

वेदनया=वेदनीयकर्मणा दुःखं=श्वासकासादिषोडशविधरोगसम्बन्धिकं कष्टम्
उत्पतितम्=उत्पन्नं भवतीति ज्ञात्वा दुःखार्तितः = भाविदुःखशङ्कयाऽऽर्त्तभावं
गतः अदीनः = दैन्यभावरहितः सन् प्रज्ञां=बुद्धिं स्थापयेत्=भाविदुःखशङ्कया
चलन्तीं बुद्धिं स्थिरीकुर्यात् । तथा यदि साधुः स्पृष्टः=श्वास-कास-ज्वर-दाह-
कुक्षिशूल-भगन्दरा-शौर्ज्जीर्ण-दृष्टिरोग-मूर्धशूल-रुच्य-क्षिशूल-कर्णशूल-कण्ठ-

आहार के अलाभ से अथवा अन्तप्रान्त आहार के लाभ से शरीर में रोग उत्पन्न हो जाता है इसलिये सोलहवां रोगपरीपह साधु को जीतना चाहिये, यह बात सूत्रकार कहते हैं—‘नच्चा’ इत्यादि ।

अन्वयार्थ—(वेद्यणाए-वेदनया) वेदनीय कर्म के उदय से (दुःखं-दुःखं) श्वास कास आदि सोलह प्रकार के रोग संबंधी दुःख (उत्पन्न-उत्पतितम्) उत्पन्न होता है ऐसा (नच्चा-ज्ञात्वा) जानकर (दुःखार्तितः) भावी दुःख की आशङ्का से आर्त्त भाव को प्राप्त हुआ मुनि (अदीणो-अदीनः) दैन्यभाव से रहित होकर (पन्नं ठावए-प्रज्ञां स्थापयेत्) भावी दुःख की आशङ्का से चलित होती हुई अपनी बुद्धि को स्थिर करे । यदि साधु (पुट्रो-स्पृष्टः) श्वास, कास, ज्वर, दाह, कुक्षिशूल, भगन्दर, अशौ, अर्जीर्ण, दृष्टिरोग मूर्धशूल, अरुचि, नेत्रशूल

आहारना अलाभधी अथवा अहितकर्ता (अपथ्य) आहारधी शरीरमां रोग धवा संभव छे तेशी शोणभो रोगपरीपह साधुये छतये ज्ञेधये ये पात सूत्रकार कडे छे—‘नच्चा’ इत्यादि.

अन्वयार्थ—वेद्यणाए-वेदनया वेदनीय कर्मणा उदयधी दुःखं-दुःखम् श्वास कास आदि शोण प्रकारना रोग संबंधी दुःख उत्पन्न-उत्पतितम् उत्पन्न शाय छे येपुं नच्चा-ज्ञात्वा ज्ञानीने दुःखार्तितः-दुःखार्तितः भावी दुःखनी आशङ्काधी आर्त्तभा-पने प्राप्त करनार मुनि अदीणो-अदीनः दैन्य भावधी रहित अपनी पन्नं ठावए-प्रज्ञां स्थापयेत् भावी दुःखनी आशङ्काधी अक्षित यती पीतानी बुद्धिने स्थिर करे. अगर जे साधु पुट्रो-स्पृष्टः १ श्वास, २ कास, ३ ज्वर, ४ दाह, ५ अदंगांड, ६ भगन्दर, ७ कुरस, ८ अशुर्ष, ९ दृष्टिरोग, १० मुर्धशूल, ११ अरुचि,

કર્મ ક્ષીણમ્, અયં તુ વાસુદેવસ્ય લાભઃ, યતઃ શ્રીકૃષ્ણસ્ત્વાં વન્દિતવાન્, અતસ્તે મોદકાન્ શ્રેષ્ઠી દત્તવાન્ । તદ્વચનં શ્રુત્વા ઢંઢણમુનિઃ ‘ પરલાભો ન કલ્પતે ’ ઇત્યુત્ત્વા રાગદ્રેષ-વર્જિતો મૂર્છારહિતઃ સન્ નગરાદ્ વહિર્ગત્વા પ્રાસુકસ્થણ્ડિલે મોદકાન્ યતનાં પરિષ્ઠાપ્ય, તાપદૈન્યાદ્યકરણેન લાભાન્તરાયકર્મ ક્ષપયન્ ક્ષપકશ્રેણિમાસ્થ્ય કેવલી જાતઃ । એવમન્યૈરપિ મુનિભિરલાભપરીપઢઃ સોઢવ્યઃ ॥ ૩૧ ॥

અલાભાદન્તપ્રાન્તાઘાહારલાભાદ્ વા શરીરે રોગા વ્ત્પદ્યન્તે, અતઃ ષાઢ્ઢં રોગપરીપઢજયં પ્રાહ—

મૂલમ્—નચ્ચાં ઉપ્પૈયં દુઃખં, વ્રેયળાઘ દુહટ્ટિઘ્ ।

અંદીળો ઠાવઘ પંઢ્રં, પુંઢો તેંત્થઢહિયાસંઘ ॥ ૩૨ ॥

મોદકોં કા લાભ તુઢ્હેં હુઆ હૈ વહ લાભ તુઢ્હારા નહીં હૈ કિન્તુ યહ લાભ વાસુદેવ કા હૈ, કારણ કિ તુમ કો કૃષ્ણ ને વંદના કી હસલિયે સેઠ ને તુમકો યે મોદક વહરાયે, અતઃ તુઢ્હારે હસ લાભ મેં નિમિત્ત કૃષ્ણ હૈં । ઢંઢણમુનિ ને ભગવાન્ કે ઇન વચનોં કો સુનકર “ પરલાભ મુક્ષે કલ્પતા નહીં હૈ ” ઇસા કહકર રાગદ્રેષ સે ઇવં મૂચ્છાં સે વર્જિત હોતે હુઘ નગર કે વાહર જાકર કિસી પ્રાસુક ભૂમિ મેં ડન મોદકોં કો યતનાપૂર્વક પરિઠવદિયા । તાપ ઇવં દીનતા કે નહીં કરને સે લાભાન્તરાયકર્મ કો નષ્ટ કરતે હુઘ ડન ઢંઢણમુનિને ક્ષપકશ્રેણી પર આરોહણ કર કેવલજ્ઞાન પ્રાપ્ત કર લિયા । હસી તરહ અન્યમુનિયોં કો ઢી અલાભ પરિપહ કો સહન કરના ચાહિયે ॥ ૩૧ ॥

હુણુ સમય ઝાઢી છે. લિક્ષામાં લાઢવાને લાલ તમને થયો છે તે લાલ તમારો નથી પરંતુ ઐ લાલ વાસુદેવનો છે. કારણ કે કૃષ્ણે તમારી વંદના કરી આ જોઈને શેઠે તમને લાઢવા વહોરાવ્યા છે. આથી તમારા આ લાલમાં નિમિત્ત કૃષ્ણ બન્યાછે. ઢંઢણમુનિએ ભગવાનનાં આ વચન સાંભળી “ બીજને લાલ મને કલ્પતા નથી ” એમ કહી રાગદ્રેષ અને મૂચ્છાથી વળત રહી નગરની બહાર જઈ કોઈ પ્રાસુક ભૂમિમાં ઐ લાઢવાને યતનાપૂર્વક છોડી દીધા. તપ અને લિક્ષામાં દીનતા ન કરવાથી લાભાન્તરાય કર્મને નષ્ટ કરતાં ઐ ઢંઢણમુનિએ ક્ષપકશ્રેણી પર આરોહણ કરી કેવળજ્ઞાન પ્રાપ્ત કર્યું. આ રીતે અન્ય મુનિઓએ પણ અલાભ પરીપઢને સહન કરતા રહેવું જોઈ ઐ. ॥ ૩૧ ॥

रोगाक्रान्तस्य मुनेः कर्तव्यमाह—

मूलम्—तेगिच्छं नाभिनंदिजा, संचिक्खत्तगवेसए ।

एयं खुं तस्सं सामन्नं, जं नं कुज्जेजा नं कारेण ॥३३॥

छाया—चिकित्सां नाभिनन्देत्, संतिष्ठेत् आत्मगवेषकः ।

एतत् 'खु' तस्य श्रामण्यं, यन्न कुर्यात् न कारयेत् ॥३३॥

टीका—'तेगिच्छं' इत्यादि ।

मुनिः, चिकित्सां=रोगप्रतीकारं, नाभिनन्देत्=नानुमोदेत् । अनुमतिनिषेधा-
चिकित्सायाः करणं कारणं तु दूरत एव प्रतिषिद्धम् । किं तु आत्मगवेषकः=आत्मा-
नम्-आत्मकल्याणं गवेषयति-संयमरक्षणेनेति आत्मगवेषकः स्वात्मकल्याणार्थं चारि-
त्रपालकः सन् संतिष्ठेत्=समाधिना तिष्ठेत् । 'खु'=यस्मात्, एतत् तस्य=श्रम-

कुछ मुझे रोगादिक हो रहे हैं वे सब मेरे ही अशुभ कर्मोंके फल हैं" ॥३२॥

रोगाक्रान्त मुनि के कर्तव्य को सूत्रकार इस गाथाद्वारा कहते हैं—

'तेगिच्छं' इत्यादि ।

अन्वयार्थ—मुनि (तेगिच्छं-चिकित्साम्) रोग के प्रतीकार की (नाभि-
नंदिजा-न अभिनन्देत्) अनुमोदना नहीं करे । मुनि जब चिकित्सा तक
की अनुमोदना नहीं करता है तो उसकी चिकित्सा करना और कराना तो
बहुत दूरकी बात है । किन्तु (अत्तागवेसए-आत्मगवेषकः) जो संयम
की रक्षा से आत्मकल्याण का गवेषक है उसका कर्तव्य है कि वह
(संचिक्खे-संतिष्ठेत्) रोगादिक अवस्था में भी समाधि भाव से रहे ।
(खु-यस्मात्) क्यों कि (तस्स-तस्य) उस मुनि का (एयं-एतत्) यही

"आ जे कांई भने रोग आदि यथेल छे ते जधां भारा अशुल कर्मोतुं
क्षण छे." ॥ ३२ ॥

रोगाक्रान्त मुनिनुं कर्तव्य शुं छे ते सूत्रकार आ गाथा द्वारा कहे छे.
'तेगिच्छं' इत्यादि.

अ-वयार्थ—मुनि तेगिच्छं-चिकित्साम् रोगना प्रतिकारनी नाभिनंदिजा-
न अभिनन्देत् अनुमोदना न करे. मुनि ज्यारे चिकित्सा सुधीनी अनुमोदना नथी
करता त्यारे तेनी चिकित्सा करवी अथवा करवावी घण्टी दुस्नी बात छे अत्तागवेसए
-आत्मगवेषकः जे संयमनी रक्षाद्वारा आत्मकल्याणुना गवेषक होय छे तेनुं कर्तव्य
छे के, संचिक्खे-संतिष्ठेत् रोगादिक अवस्थाभां समाधिभावथी रहे खु-यस्मात्
केम के, तस्स-तस्य जे मुनिनुं एयं-एतत् जे श्रामण्यं-श्रामण्यम् श्रमण्यपणुं छे

दररोग^{११}—कुण्ठ^{१२}—ति पोटशयिधरोगात्कृराक्रान्तो भवेत्, तर्हि तत्र=तस्मिन् समये स साधुः तान् रोगात्कृान् अधिसहेत्—“यदधुनाऽहं व्याधिना बाध्यमानोऽस्मि तदेतन्मम स्वस्यैव पूर्वकृतकर्मणः फलम्” इति समभावमवलम्ब्य रोगपरीषह-सहनं कुर्यादित्यर्थः ॥ ३२ ॥

कण्ठ^{१३}, कण्ठू-खजुहट, उदररोग, और कुण्ठ, इन सोलह प्रकार के रोगों से आक्रान्त हो, तो (तत्थ-तत्र) उस समय वह साधु (अहियासए-अधिसहेत) उन रोगों को शान्तिपूर्वक सहन करे अर्थात्—‘मैं जो इस समय व्याधि से आक्रान्त हूँ यह मेरे पूर्वभव में किये हुए कर्मों का फल है’ ऐसा विचार कर मुनि रोगपरीषहको समभाव से सहन करे ॥ ३२ ॥

भावार्थ—इस गाथा के द्वारा सूत्रकार साधु को रोगपरीषह सहन करने का उपदेश दे रहे हैं। वे कहते हैं कि-संसारी एवं मुनियों में रोगों को सहन करने की विचारधारा में बड़ा अन्तर रहता है। संसारी तो प्रायः रोगों के उत्पन्न होते ही अधीर हो जाते हैं तब संयमी जन उनका साम्हना बड़े ही धैर्य से करते हैं। रोगों से पीडित होने पर भी साधु को अपनी बुद्धि अस्थिर बनानी नहीं चाहिये-प्रत्युत अस्थिर होने पर उसे मानसिक बल द्वारा स्थिर कर धर्मध्यान में लीन बनाये रखना चाहिये। तथा विचार भी ऐसा करना चाहिये—“ये जो

१२ नेत्रशूल, १३ कर्णशूल, १४ णस भुज्जली, १५ उदररोग, अने १६ कोठ-आ सोण प्रकारना रोगथी व्याकुण्ठता थाय तो तत्थ-तत्र अे सभये ते साधु अहियासए-अधिसहेत अे रोगने शांतिपूर्वक सहन करे. अर्थात्—‘हूँ आ सभय अे व्याधिथी पीडित थई रह्यो छुं’ अे भास पूर्वभवनां करेवां कर्मना अहत्वा छे” अेये विचार करी मुनि रोगने सभलावथी सहन करे. ॥ ३२ ॥

भावार्थ—आ गाथा द्वारा सूत्रकार साधुने रोगपरीषह सहन करवाने उपदेश आपे छे, तेयो कडे छे के,—संसारीअे अने मुनिअेने रोगाभां तेने सहन करवानी विचारधाराभां लारे अंतर डोय छे. संसारी तो रोगने उत्पन्न थतां अ अधिसा थई नय छे त्तारे संयमी जन तेने अत्यंत धैर्यथी सामने करे छे. रोगथी पीडित होवा छतां पण साधुअे पोतानी बुद्धिने अस्थिर नडीं थवा देवी न्नेछअे. परंतु अस्थिर थाय त्तारे तेने मानसिक बलद्वारा स्थिर करीने लीन बनावी राखवी न्नेछअे. अने विचार पण अेवे. न्नेछअे

कृतम् । तस्य कालवैशिकस्य ज्येष्ठा भगिनी जितशत्रुभूपतिना मुद्गशैलनामकनगराधिपाय हतशत्रुनाम्ने नृपाय प्रदत्ता ।

अन्यदा कदाचित् स कालवैशिककुमारो निशि शृगालशब्दं श्रुत्वा स्वसेवकान् पृच्छति—कस्यायं शब्दः श्रूयते ?, सेवका अत्रुवन्—शृगालस्य, ततः कुमारो ब्रूते तं बद्ध्वा मत्समीपे समानयत, तेः शृगाल आनीतः । क्रीडनप्रियोऽसौ कुमारस्तं यष्टया पुनः पुनस्ताडयति । कालवैशिककुमारेण ताड्यमानोऽसौ शृगालः 'खि-खी' शब्दं कुर्वन्नुच्चैराक्रन्दति । तं शब्दं श्रुत्वाऽसौ सहपं हसति । एवं ताडितः शृगालः कालं कृत्वा अकामनिर्जराया व्यन्तरदेवो जातः ।

जाय कालवैशिक की एक बड़ी बहिन थी जिसका व्याह राजा ने मुद्गशैल नामक नगर के अधिपति हतशत्रु के साथ किया था ।

एक दिन की वान है कि कालवैशिककुमार ने रात्रि में शृगाल का शब्द सुनकर अपने सेवकों से पूछा कि यह शब्द किसका सुनाई दे रहा है ? नौकरों ने कहा कि यह शब्द शृगाल का सुनाई पड़ रहा है । कुमार ने कहा उसको बांधकर मेरे पास ले आओ । तब वे शृगाल को बांधकर ले आये और कालवैशिककुमार को सौंप दिया । कुमार खेलने का शोकिन था इसलिये वह शृगाल को बार-बार लकड़ी का घोदा मारता था । जैसे-कुमार उसको लकड़ी का घोदा मारता था तैसे-वह दुःखित होकर "खी खी" शब्द करता हुआ जोर से चिल्लाता था । उसके शब्द को सुनकर कुमार बड़ा हर्षित होता था और वह खूब हँसता था । इस प्रकार कुमारसे ताडित वह शृगाल मर कर अकाम निर्जरा से व्यन्तरदेव हो गया ।

अनी बोकोने लक्ष थाय. कालवैशिकने एक मोटी गड्डेन હતી. જેનો વિવાહ રાજાએ મુદ્ગશૈલ નગરના અધિપતિ હતશત્રુ રાજા બેઠે કર્યો હતો.

એક સમયની વાત છે કે કાલવૈશિક કુમારે રાત્રિના વખતે શીયાળનો શબ્દ સાંભળી પોતાના સેવકોને પૂછ્યું કે, આ શબ્દ શેનો સંભળાઈ રહ્યો છે ? સેવકોએ કહ્યું કે, આ શબ્દ શીયાળનો સંભળાય છે. કુમારે કહ્યું કે તેને બાંધીને મારી પાસે લઈ આવો. સેવકે તેને બાંધીને કુમાર પાસે લઈ આવ્યા. અને કાલવૈશિક ને સોંપી દીધું. કુમાર ખેલવાનો ભારે શોખીન હતો. એટલે તે શીયાળને વારંવાર લાકડીના ગોદા મારવા લાગ્યો. જેમ જેમ કુમાર તેને લાકડીના ગોદા મારવા લાગ્યો તેમ તેમ તે દુઃખી થઈને ખી....ખી....શબ્દ કરીને બેરથી ચીડાવા લાગ્યું. તેના શબ્દો સાંભળીને કુમાર ધણું ખુશી થતો હતો અને બેરથી હસતો હતો. આ પ્રમાણે કુમારથી મારવામાં આવેલ તે શૃગાલ મરીને અકામ નિર્જ-રાથી વ્યંતરદેવ થઈ ગયું.

णस्य, श्रामण्यं=श्रमणधर्मः, यत्-चिकित्सां स्वयं न कुर्यात्, अन्येन वा न कारयेत्, उपलक्षणत्वात् कुर्वन्तमन्यं नानुमोदेत, इत्यपि बोध्यम् । इदं जिनकल्पिकापेक्षयाऽभिहितम् । स्थविरकल्पापेक्षया तु सावद्यचिकित्सा वर्जिता, निरवद्यचिकित्साया अपि ऐच्छिकं वर्जनम् ।

अत्र दृष्टान्तः प्रदर्शयते—

मथुरानगरीयां शत्रुचित्रासी जितशत्रुनामा भूपतिरासीत् । तेन सर्वाङ्गसुन्दरी कालानाम्नी वेद्या स्थान्तःपुरे स्थापिता । तस्यां राज्ञः पुत्रो जातः । तेन जितशत्रु भूपतिना कालावेद्याया अङ्गजातोऽयमिति हेतोस्तस्य “कालवैशिक” इति नाम

तो (सामण्यं-श्रामण्यम्) श्रमणपना है (जं न कुञ्जा न कारण-यत् न कुर्यात् न कारयेत्) जो वह स्वयं भी चिकित्सा न करे और न दूसरों से करावे । तथा उपलक्षण से करने वाले दूसरे की अनुमोदना न करे । यह जो इस प्रकार कहा गया है वह जिनकल्पी साधुओं की अपेक्षासे कहा गया है । स्थविरकल्पियों की अपेक्षा तो सावद्य चिकित्सा ही वर्जित है । निरवद्यचिकित्सा चाहे तो वे करावे न चाहें नहीं करावे यह उनकी इच्छा पर निर्भर है ।

दृष्टान्त—मथुरा नगरी में शत्रु को घास पहुँचाने वाला जितशत्रु नाम का एक राजा था । उसने काल नाम की एक सर्वाङ्ग सुन्दरी वेद्या को अपने अन्तःपुर में रखी थी । उस वेद्या के एक पुत्र उत्पन्न हुआ । राजाने इस पुत्र का नाम इस ख्याल से कालवैशिक रखा कि लोगों में इसकी प्रसिद्धि “यह कालवेद्या से पैदा हुआ है” इस रूप से हो

जे ते जं नकुञ्जा न कारण-यत् न कुर्यात् न कारयेत् स्वयं चिकित्सा न करे अगर् भीलओ पासे न करावे, तथा उपलक्षण्यथी भील करवावाणाओनी अनुमोदना न करे. ओण प्रभाणे कडेवाभां आवेल छे ते अनकल्पी साधुओनी अपेक्षाथी कडेवाभां आवेल छे. स्थविरकल्पिओनी अपेक्षाओ तो सावद्य चिकित्सा न चलत छे. निरवद्य चिकित्सा चाहे तो ते करावे अने न चाहे तो न करावे. ते तेनी इच्छा पर निर्भर छे.

दृष्टान्त—मथुरा नगरीमां शत्रुओने घास पहुँचाववाणा एतशत्रु नामना ओक राजा हुता. तेणे काल नामनी ओक सर्वाङ्ग सुन्दर वेद्याने घेताना अन्तःपुरमां राखेल हुती. ते वेद्याथी तेने ओक पुत्र उत्पन्न थयो. राजाओ ओ पुत्रु नाम ओ ख्यालथी कालवैशिक राज्युं के ओ काल-वेद्याथी पैदा थयेलछे.

भिन्नार्थं चन्द्रं दृश्यन्वृत्त्य भवनं प्रविष्टः । उत्र तत्र काञ्चैस्त्रिभुवनहादने
 स्त्रीरोगं तत्रान्तरिन्द्रियनिं द्रत्वाऽऽज्ञोऽहोऽपनिधां निधां पश्यै । तेन
 चाज्ञानता ना निजा गृहीता । आहारसमये कृताऽऽहारेण तेन जडत्वैर्यत्नौऽप्ये शला
 चाग्राहयानेन चिन्दित्रम् 'अज्ञे ! अज्ञानता मयाऽनुचितमेतद्कृत्स्वु रन्ध्रिःस्त्रिभुवनि-
 च्छवा नया औषधनिध्या निजा गृहीता भुक्त्वा च । ईदृशाहातर्हिनां सुयोगं स्वयं
 अनिग्रहस्य नद्वेगविद्वत्तस्य ग्रहणं च स्वात् तस्माद्यमभूति आहारस्यैर परित्य-
 ज्ञानि " इति विचिन्त्य मुद्गशैलनगरतो निर्गत्य गिरिमाह्वयत्नवसतस्परलो मुनिः
 पादपोषगमनं क्तुं व्यवसितः ।

वात है कि जय वे भिक्षा के लिये पर्यटन करते-इतनाचु राजा के
 महल में जा चहुँचे तो उनकी संसारी पहिन ने उनके पधासीर रोग
 उत्पन्न हुआ जानकर औषधमिश्रित उनको भिक्षा दी कि जिससे पधा-
 सीर का रोग मिट जाय । अनजानपनमें इन्होंने ने यह भिक्षा लेली ।
 आहार करते समय इनको मालूम हुआ कि यह आहार औषधमिश्रित
 है । मुनि को इस बात का बड़ा पश्चात्ताप हुआ । विचार करने लगे कि
 यह काम अच्छा नहीं हुआ, जो मैंने चिकित्सातक करवाने की भावना
 से रहित होकर भी औषधमिश्रित आहार लिया और खा भी लिया ।
 इस प्रकार के आहार से मुनियोंके अभिग्रह का भंग अवश्य होता है,
 अतः आज से मैं अब आहार ही नहीं लूंगा । इस प्रकार विचार कर ये
 मुनिराज मुद्गशैल नगरसे निकल कर किसी पर्यत पर चले गये और वहाँ
 आत्मचलसंपन्न होकर पादपोषगमन संथारा करने की तैयारी करने लगे ।

એક દિવસની વાત છે કે, જ્યારે ભિક્ષાને માટે પર્યટન કરતાં કરતાં તત્કાલ રાજાના
 મહેલમાં જઈ પહોંચ્યા ત્યાં તેની સંસારી બહેને તેને હરસાની ધીમારી થયેલ
 છે એમ બાણીને ઔષધથી મિશ્રીત એવી ભિક્ષા આપી કે જેથી તેના હરસાનો
 રોગ મટી જાય. અબણ પછે તેમણે એ ભિક્ષા લઈ લીધી. આહાર કરતાં વખતે
 તેમને ખબર પડી કે, આ આહાર તો ઔષધી મિશ્રીત છે. મુનિને આ જાણ-
 તનો ઘણો પશ્ચાત્તાપ થયો. વિચાર કરવા લાગ્યા, આ કામ ઠીક નથી થયું.
 જે હું ચિકિત્સા કરાવવાની ભાવનાથી રહિત હોવા છતાં ઔષધમિશ્રીત આહાર
 મેં લીધો અને ખાઈ પણ લીધો. આ પ્રકારના આહારથી મુનિજોના અભિગ્રહનો
 અવરથ ભંગ થાય છે. આથી હું આજથી આહાર જ નહીં લઉં, આ પ્રમાણે
 વિચાર કરીને તે મુનિરાજ મુદ્ગશૈલ નગરથી નીકળી કોઈ પહાડપર ગયા અને ત્યાં
 આત્મજળથી સંપન્ન થઈને પાદપોષગમન સંથારા કરવાની તૈયારી કરવા લાગ્યા.

क्रमेण यौवने वयसि प्राप्ते स कालौशिककुमारः कदाचित् प्रभासनामकाचार्यस्य समीपे धर्मं श्रुत्वा जातवैराग्यः मन्त्रज्यां गृहीतवान् । स चेकदा एकाकिविहारप्रतिमां प्रतिपन्नो ग्रामानुग्रामं विहरन् मुद्गशैलारूपं नगरं गतः । तदा तस्य महामुनेरशौरोगः समुत्पन्नः । स तेन व्याधिना पीड्यमानोऽपि धीरमानसो मनसाऽपि चिकित्सां नेच्छति । चिकित्सायाः करणं कारणं तु तेन दूरत एव निराकृतम् । 'व्याधिः कदा निवर्तिष्यते' इत्यपि न चिन्तितम्, किंतु 'स्वकृत-कर्मणः फलमेत'दिति भावयन्नसौ रोगजनितवेदनां सहते स्म । एकस्मिन् दिने

जय कुमार यौवन अवस्था में आया तो उसने प्रभास नामक आचार्य के पास धार्मिक उपदेश सुनकर विषयों से विरक्त हो दीक्षा धारण करली । श्रुतज्ञानका खूब अभ्यास किया । जय वे मुनि आगमिक ज्ञान से विशिष्ट ज्ञानी बन चुके तो उन्होंने ने एकाकिविहार की प्रतिमा को अंगीकार कर ग्रामानुग्राम विहार करना प्रारंभ किया । विहार करते-ते ये एक दिन मुद्गशैल नामक नगरी में आये । वहाँ इन्हें घवासीर की बीमारी उत्पन्न हो गई इससे इन्हें अधिकाधिक कष्ट हुआ तो भी उस व्याधि की चिकित्सा के लिये इनका मन भी नहीं हुआ । 'इस व्याधि की निवृत्ति कब होगी' इतना तक भी संकल्प उनके दिल में नहीं उठा, पर यह विचार अवश्य हुआ कि यह स्वकृत-अपने किये हुये कर्म का फल है । इस प्रकार के दृढ अध्यवसाय से उन्होंने ने रोगजनित वेदना को बड़ी ही शूरीरता से सहन किया । एक दिन की

कुमार व्यादे यौवन अवस्थाभां आभ्यो त्यादे प्रभास नामना आचार्यनी पासधी धार्मिक उपदेशे सांलणीने विषयोधी विरक्त थर्धने दीक्षा धारण करी श्रुतज्ञानने भूष अभ्यास कर्यो. व्यादे ते मुनि आगमिकज्ञानधी विशिष्ट ज्ञानी णनी युक्त्या त्यादे तेमण्णे अेकाकी विहारनी प्रतिमाने अंगीकार करी अेक ग्रामधी णीले ग्राम विहार करवाने प्रारंभ कर्यो. विहार करतां करतां अेक दिवस मुद्गशैलनगरभां आभ्या. त्यां तेमने उरसनी पीमारी उत्पन्न थर्ध तेनाधी तेमने अत्यंत कष्ट थयुं. परंतु आ व्याधिनी चिकित्सा करवावानी छंत्था पण्ण तेमने थर्ध नह्यी. आ व्याधि क्यारे-भट्ठे, अेयो संकटप पण्ण तेना दिवसां उठयो नह्यी. परंतु अे विचार तेमना मनभां अवश्य थयो के, पोताना करेला कर्मंतुं आ क्षण छे. आ प्रभाण्णे दृढ अध्यवसायधी तेअो रोगधी उत्पन्न थयेली वेदनाने भूष शूरीरताधी सहन करतां हता.

मुनेर्घोरसुपसर्गं कर्तुं कर्णकठोरं नीरसं शब्दमहर्निशं निरन्तरं करोति । स च व्यन्तर-
देवस्तं मुनिं शृगालवधरूपं पापं स्मारयति । तदा स तां शृगालीकृतां तथाऽर्शोरोग-
कृतां च घोरां दुःसहामुज्ज्वलां वेदनां धैर्येण समभावेन च सहमान आसीत् ।
एवं पञ्चदश दिनानि घोरपरीपहोपसर्गं परिपह्य स कालवैशिकमुनिः शुक्लध्यानेन
केवली भूत्वा कर्मक्षयं कृत्वा मोक्षपदं प्राप । एवमन्यैरपि मुनिभिः समभावेन रोग-
परीपहः सहनीयः ॥ ३३ ॥

अथ सप्तदशं तृणस्पर्शपरीपहजयं प्राह—

मूलम्—अचेलगस्स लूहस्स, संजयस्सं तव्वस्सिणो ।

तणेसु सयमाणस्स, होज्जा गांयविराहणा ॥३४॥

छाया—अचेलकस्य रुक्षस्य, संयतस्य तपस्विनः ।

तृणेषु शयानस्य, भवति गात्रविराधना ॥ ३४ ॥

तीक्ष्ण दांतों द्वारा काटने लगी, तथा काट खाने के बाद फिर वह
उनके चारों ओर घूमर कर कर्णकटुक विरस शब्द करने लगी । इस
प्रकार वह तब तक करती रही कि जय तक उनका मृत्यु न हुआ । उस
व्यन्तरदेव ने भी मुनि के लिये शृगाल को वध करने रूप पाप का
स्मरण करा कर दुःखित करने की भी खूबर चेष्टा की । इस प्रकार
उन मुनिराज ने उस शृगाली की की हुई, व्यन्तरदेव की की हुई, तथा
बवालीर की घोर दुःसह वेदना को धैर्यपूर्वक समभाव से सहते हुए
पन्द्रह दिन व्यतीत कर दिये । पश्चात् शुक्लध्यान के प्रभाव से केवली हो
कर सर्व कर्मक्षय कर के मुक्ति को प्राप्त किया । इसी तरह अन्य मुनिजनों
को भी समभाव से रोगपरीपह को सहन करना चाहिये ॥ ३३ ॥

तेनी आरे आब्बुअे धुमीने डानने अप्रिय अेवा कर्कश शब्दों ओलवा लाग्युं. आ
प्रकारे ते त्यां सुधी करतुं रहुं डे, ज्यां सुधी तेनुं मृत्यु न थयुं, अे व्यन्तर-
देवे पण्ण मुनि भाटे शृगालना वध करवाइए पापतुं स्मरण करी, करानीने
दुःभीत करवानी पूष अेया करी, आ प्रकारे ते मुनिराजे शृगालीनी मारइत
थयेली अने व्यन्तरदेवे करेली अने हरसनी घोर दुःसह वेदनाने धैर्यपूर्वक
समभावथी सडेतां १५ दिवस व्यतीत कर्या पछी शुक्लध्यानना प्रभावथी
केवली अनी सर्व कर्म क्षय करी मुक्ति पाग्था. आवी रीते अन्य मुनिज-
नोअे समभावथी रोगपरीपह सहन करये अेधअे. ॥ ३३ ॥

अथ यः शृगालजीवो कालवैशिकेन संसारावस्थायां इतः, तस्य व्यन्तरदेवमर्षं प्राप्तस्य तदानीं विमाने गच्छतस्तत्र पादपोपगमनाय संस्थितस्य मुनेरुपरि गगने विमानगतिः प्रतिरुद्धा, तदा स व्यन्तरदेवोऽवधिना पूर्वभववृत्तं ज्ञात्वा वैरनिर्यातनेच्छया तत्र कालवैशिकमुनेः समीपे विकुर्वणशक्तया स शिशुका शृगाली विकुर्विता । सा शृगाली 'खि-खि' इति शब्दं कुर्वती तस्य महामुनेर्गात्रं दन्तैर्दशति । तस्य

इतने में एकव्यन्तरदेव - जो पूर्वभवमें शृगाल था, जिसका इन मुनि ने अपनी कुमारावस्था में ताड़न तर्जन आदि किया था, और जो इनके ताड़न तर्जन आदि के कारण अकामनिर्जरा से मर कर व्यन्तर हो गया था, वह व्यन्तरदेव-विमानमें बैठ कर कहीं दूसरी जगह जा रहा था उसका विमान वहां आ पहुँचा, जहां ये मुनिराज पादपोपगमन संधारा धारण किये हुए थे । उनके ऊपर से होकर जाने में उस विमान की गति रुक गई । विमान को जाते रुका हुआ देखकर व्यन्तरदेव को बड़ा आश्चर्य हुआ । उसने अवधिज्ञान से विमान की गति के रुकने में कारण मुनिराज का वह समस्त पूर्व भव का वृत्तान्त जान लिया । उससे मुनि के ऊपर बहुत क्रोध उसका बढ़ने लगा । अपने पूर्वभव में मृत्यु के कारण मुनि को जानकर उस व्यन्तरदेव ने बदला लेने के अभिप्राय से उन मुनिराज के समीप अपनी वैक्रिय शक्तिके द्वारा एक बच्चे सहित शृगाली बनाकर खड़ी कर दी । उस शृगालीने 'खी-खी' शब्द करते हुए उन मुनिराज के समस्त शरीरको अपने

अटलाभां व्यन्तरदेव के जे पूर्वभवमां शृगाल इतो, जेतुं आ मुनिराजे पोतानी कुमार अवस्थाभां ताउन तर्जन करेल अने जे ताउन तर्जनना परिष्ठाभे अश्रमनिर्जराथी भरीने व्यन्तर थयेल ते विमानमां जेसीने कोध जीजे स्थणे जई रहेल इता. जेतुं विमान त्यां आवी पडोव्युं के ज्यां मुनिराजे पादपोपगमन संधारे धारण करेल इतो. त्यांथी पसार थता-ते विमाननी गती अटकी गर्ध. विमानने जेकदम अटकेलुं जेधने व्यन्तरदेवने पूण आश्चर्य थयुं. तेजे अवधीज्ञानथी विमाननी गती रोकावाना कारणरूप मुनिराजने पूर्वभवने समस्त वृत्तांत जण्ये. जेनाथी मुनि उपर तेने कोध जेकदम वधवा लाग्ये. पोताना पूर्वभवना मृत्युना कारणरूप मुनिराज जे तेम जण्येने ते व्यन्तरदेवे जइले देवानी धर्याथी ते मुनिराजनी पासे पोतानी वैक्रियशक्ति द्वारा जेक जन्मावाणी प्रभण शियाजने उत्पन्न थयुं. जे शियाज "भी भी" थोड करीने पोताना तीक्ष्ण हांतेथी मुनिराजना शरीरने कापवा लाग्युं. करडया प करीथी

तृणस्पर्शपीडायां मुनिना यत् कर्तव्यं तद् बोधयितुमाह—

मूलम्—आयवस्स निवाणं, अउला हवैइ वेयणा ।

एवं नच्चा नं सेवन्ति”, तंतुजं तर्णतज्जिया ॥३५॥

छाया—आतपस्य निपातेन, अतुला भवति वेदना ।

एवं ज्ञात्वा न सेवन्ते, तन्तुजं तृणतर्जिताः ॥ ३५ ॥

टीका—‘ आयवस्स ’ इत्यादि ।

भावार्थ—अचेलक पद से यहां स्थविरकल्पिक को भी जो अचेलक कहा है वह इसी अभिप्राय से कि वे शास्त्रमर्यादा के अनुसार ही वस्त्र रखते हैं, उससे अधिक नहीं आगम में स्थविरकल्पिक के लिये अल्पमूल्य वाले प्रमाणोपेत वस्त्रों का रखना मर्यादित है उनको ही ये धारण करते हैं। अतः इस अवस्था में भी ये अचेलक ही माने जाते हैं, इस विषय का विशेषरूप से खुलासा छोटे अचेलक परीपह के प्रकरण में किया जा चुका है। मुनि को तैलादिक की मालिश करना वर्जित है। तथा ये तपश्चर्या करते रहते हैं, इसलिये इनका शरीर रूक्ष हो जाता है। रूक्ष शरीर में खून अल्प होने से तृणस्पर्श आदि की वेदना अधिक होती है, अतः ऐसी अवस्था में साधु का कर्तव्य है कि वह उस वेदना को समभाव से सहन करे ॥ ३४ ॥

जब तृणस्पर्श से पीडा हो तब मुनि को क्या करना चाहिये सो कहते हैं—‘ आयवस्स ’ इत्यादि ।

भावार्थ—अचेलक पदार्थ आदि स्थविरकल्पिकने जे अचेलक कहे छे. ते जेवा अलिप्रायथी छे ते, शास्त्र मर्यादानी अनुसार वस्त्र राखे छे. तेनाथी अधिक नहीं. आगममां स्थविरकल्पिक भाटे अल्पमूल्यवाणां प्रमाणोपेत वस्त्रोने राखवां मर्यादित छे, जेने जे तेजो धारण करे छे. आथी आ अवस्थां पण ते अचेलक जे मानवांमां आवे छे. आ विषयने विशेषरूपथी खुलासा पड़ेलां छोड़ अचेलकपरीपहना प्रकरणमां आपवांमां आवी गयेल छे. मुनिजे तेव आदिनुं मालिश करवुं वर्जित छे. तथा तपस्या करता रहे छे. आथी तेमनुं शरीर रूक्ष यर्ध नय छे. रूक्ष शरीरमां बोधी पूष ओछुं डोवाथी तृणस्पर्शनी वेदना अधिक थाय छे. आथी जेवी अवस्थांमां साधुनुं कर्तव्य छे के, ते वेदाने समभावथी सहन करे. ॥ ३४ ॥

त्यारे तृणस्पर्शथी पीडा थाय त्यारे मुनिजे शुं करवुं जेधजे ते सूत्रकार कहे छे—‘ आयवस्स ’—इत्यादि.

ટીકા—‘અચેલગસ્સ’-ઇત્યાદિ ।

અચેલકસ્ય=સર્વથા વહ્નરહિતસ્ય જિનકલ્પિકસ્ય, તથા શાસ્ત્રમર્યાદાતિરિક્તવહ્નરહિતસ્ય સ્થવિરકલ્પિકસ્ય ચેત્યર્થઃ । આગમે હિ અરુપમૂલ્યકાલ્પવહ્નસ્ય મર્યાદિતસ્યૈવ ધારણાત્ સ્થવિરકલ્પિકોઽપ્યચેલકઃ. એવાસ્તીતિ પ્રાગચેલકપરીપહપ્રકરણે નિર્ણીતમ્ । તથા ઉભવવિધસ્ય મુનેસ્તૃણસ્પર્શપરીપહેઽપ્યાન્પિ કારણાનિ સન્તીતિ પ્રદર્શયિતુમાદ—‘લૂહસ્સ’-ઇત્યાદિ । રૂક્ષસ્ય=તૈલામ્યજ્ઞાદિવર્જનાદ્ અસ્તિગ્ધ-શરીરસ્યેત્યર્થઃ, સંયતસ્ય=નિરતિચારસંયમાઽઽરાધનતત્પરસ્ય, તપસ્વિનઃ=તપશ્ચરણશીલસ્ય, અનશનાદિતપઃસમાચરણાત્ કૃશશરીરસ્યેત્યર્થઃ મુનેઃ, તૃણેષુ-દર્ભાદિષુ તદુપરિશયાનસ્ય ઉપલક્ષણત્વાદાસીનસ્ય ચેત્યર્થઃ ગાત્રવિરાધના=શરીરે તૃણસ્પર્શજન્યા પીડા ભવતિ ॥ ૩૪ ॥

અવ સૂત્રકાર સતરહવાં તૃણસ્પર્શપરીપહંજય કા વિવેચન કરતે હૈ—
‘અચેલગસ્સ’ ઇત્યાદિ ।

અન્વયાર્થ—(અચેલગસ્સ-અચેલકસ્ય) સર્વથા વહ્નરહિત જિનકલ્પિક, તથા શાસ્ત્રની મર્યાદા કે અતિરિક્ત વહ્ન નહીં રાખે તે સ્થવિરકલ્પિક મુનિ કે (લૂહસ્સ-રૂક્ષસ્ય) કિ જિન કા તેલ આદિની માલિશ કરના વર્જિત હોને સે શરીર ચિલકુલ રૂક્ષ હો રહા હૈ, એવં (સંજયસ્સ-સંયતસ્ય) જો નિરતિચાર સંયમની આરાધના કરને મેં તત્પર રહતે હૈ, તથા (તવસ્સિણો-તપસ્વિનઃ) અનશન આદિ તપોં કે કરનેવાલે હોને સે કૃશ શરીર થાલે હૈ, ઓર જો (તણેસુ સયમાણસ્સ-તૃણેષુ શયાનસ્ય) દર્ભાદિક તૃણોં કે ઉપર સોતે હૈ ઉપલક્ષણ સે ઉપર બેઠતે હૈ ઉનકે (ગાયવિરાહના-ગાત્રવિરાધના) શરીર મેં તૃણસ્પર્શજન્ય પીડા હોતી હૈ ।

હવે સૂત્રકાર સત્તરમાં તૃણસ્પર્શપરીપહંજય એવાનું વર્ણન કરે છે.
‘અચેલગસ્સ’-ઇત્યાદિ.

અન્વયાર્થ—અચેલગસ્સ-અચેલકસ્ય સર્વથા વહ્ન રહિત અનકલ્પિક, તથા શાસ્ત્રની મર્યાદાથી અતિરિક્ત વહ્ન ન રાખવાવાળા સ્થવિરકલ્પિક મુનિ લૂહસ્સ-રૂક્ષસ્ય જેને તેલ આદિની માલિશ કરવાનું વર્જિત હોવાથી શરીર બીલકુલ રૂક્ષ બની ગયેલ છે. સંજયસ્સ-સંયતસ્ય અને જે નિરતિચાર સંયમની આરાધના કરવામાં તપ્પર રહે છે તવસ્સિણો-તપસ્વિનઃ તથા અનશન આદિ તપ કરનાર હોવાથી કૃશ શરીરવાળા છે. અને જે તણેસુ સયમાણસ્સ-તૃણેષુ શયાનસ્ય દર્ભાદિક તૃણોની ઉપર સુવે છે, ઉપલક્ષણથી ઉપર બેસે છે, તેમના ગાયવિરાહના-ગાત્રવિરાધના શરીરમાં તૃણસ્પર્શજન્ય પીડા થાય છે.

તૃણસ્પર્શપીડાયાં મુનિના યત્ કર્તવ્યં તદ્ વોધયિતુમાહ—

મૂલમ્—આયવસ્સ નિર્વાણં, અર્ઝલા હૃવૈઙ્ વેયંણા ।

एवं नच्चा 'नं सेवन्ति', तंतुंजं तर्णतज्जिया ॥३५॥

છાયા—આતપસ્ય નિપાતેન, અતુલા ભવતિ વેદના ।

एवं ज्ञात्वा न सेवन्ते, तन्तुंजं तर्णतर्जिताः ॥ ३५ ॥

ટીકા—‘ આયવસ્સ ’ ઇત્યાદિ ।

ભાવાર્થ—અચેલક પદ સે યદ્દાં સ્થવિરકલ્પિક કો મી જો અચેલક કહા હૈ વહ ઇસી અભિપ્રાય સે કિ વે શાસ્ત્રમર્યાદા કે અનુસાર હી વસ્ત્ર રખતે હૈ, ઉસસે અધિક નહીં આગમ મેં સ્થવિરકલ્પિક કે લિયે અલ્પમૂલ્ય વાલે પ્રમાણોપેત વસ્ત્રોં કા રખના મર્યાદિત હૈ ઉનકો હી યે ધારણ કરતે હૈં । અતઃ ઇસ અવસ્થા મેં મી યે અચેલક હી માને જાતે હૈં, ઇસ વિષય કા વિશેષરૂપ સે યુલાસા છટે અચેલક પરીપહ કે પ્રકરણ મેં કિયા જા ચુકા હૈ । મુનિ કો તૈલાદિક કી માલિશ કરના વર્જિત હૈ । તથા યે તપશ્ચર્યા કરતે રહતે હૈં, ઇસલિયે ઇનકા શરીર રૂક્ષ હો જાતા હૈ । રૂક્ષ શરીર મેં યૂન અલ્પ હોને સે તૃણસ્પર્શ આદિ કી વેદના અધિક હોતી હૈ, અતઃ ઈસી અવસ્થા મેં સાધુ કા કર્તવ્ય હૈ કિ વહ ઉસ વેદના કો સમભાવ સે સહન કરે ॥ ૩૪ ॥

જવ તૃણસ્પર્શ સે પીડા હો તવ મુનિ કો કયા કરના ચાહિયે સો કહતે હૈ—‘ આયવસ્સ ’ ઇત્યાદિ ।

ભાવાર્થ—અચેલક પદથી અહિં સ્થવિરકલ્પિકને જે અચેલક કહ્યા છે. તે એવા અભિપ્રાયથી કે તે, શાસ્ત્ર મર્યાદાની અનુસારજ વસ્ત્ર રાખે છે. તેનાથી અધિક નહીં. આગમમાં સ્થવિરકલ્પિક માટે અલ્પમુલ્યવાળાં પ્રમાણોપેત વસ્ત્રોને રાખવાં મર્યાદિત છે, એને જે તેઓ ધારણ કરે છે. આથી આ અવસ્થામાં પણ તે અચેલક જે માનવામાં આવે છે. આ વિષયનો વિશેષરૂપથી યુલાસો પહેલાં છઠ્ઠા અચેલકપરીપહના પ્રકરણમાં આપવામાં આવી ગયેલ છે. મુનિએ તેલ આદિનું માલિશ કરવું વર્જિત છે. તથા તપસ્થા કરતા રહે છે. આથી તેમનું શરીર રૂક્ષ થઈ જાય છે. રૂક્ષ શરીરમાં લોહી ખૂબ ઓછું હોવાથી તૃણસ્પર્શની વેદના અધિક થાય છે. આથી એવી અવસ્થામાં સાધુનું કર્તવ્ય છે કે, તે વેદનાને સમભાવથી સહન કરે. ॥ ૩૪ ॥

બ્યારે તૃણસ્પર્શથી પીડા થાય ત્યારે મુનિએ શું કરવું જોઈએ તે સૂત્રકર કહે છે—‘ આયવસ્સ ’—ઈત્યાદિ.

ટીકા—‘અચેલગસ્સ’-ઇત્યાદિ ।

અચેલકસ્ય=સર્વથા વહ્નરહિતસ્ય જિનકલ્પિકસ્ય, તથા શાસ્ત્રમર્યાદાતિરિક્તવહ્નરહિતસ્ય સ્થવિરકલ્પિકસ્ય ચેત્યર્થઃ । આગમે હિ અન્નમૂલ્યકાલ્પવસ્તુસ્ય મર્યાદિતસ્યૈવ ધારણાત્ સ્થવિરકલ્પિકોઽપ્યચેલકઃ । એવાસ્તોતિ પ્રાગ્ચેલકપરીપહમકરણે નિર્ણાતમ્ । તથા ઉભયવિધસ્ય મુનેસ્તૃણસ્પર્શપરીપહેઽન્યાન્યપિ કારણાનિ સન્તોતિ પ્રદર્શયિતુમાહ—‘લૂહસ્સ’-ઇત્યાદિ । રૂક્ષસ્ય=તૈલામ્યદ્વાદિવર્જનાદ્ અસ્તિગ્ધ-શરીરસ્યેત્યર્થઃ, સંયતસ્ય=નિરતિચારસંયમાઽઽરાધનતત્પરસ્ય, તપસ્વિનઃ=તપશ્ચ-રણશીલસ્ય, અનશનાદિતપઃસમાચરણાત્ કૃશશરીરસ્યેત્યર્થઃ મુનેઃ, તૃણેષુ-દર્ભાદિષુ તદુપશિયાનસ્ય ઉપલક્ષણત્વાદાસીનસ્ય ચેત્યર્થઃ ગાત્રવિરાધના=શરીરે તૃણ-સ્પર્શજન્યા પીડા ભવતિ ॥ ૩૪ ॥

અવ સૂત્રકાર સત્તરહવાં તૃણસ્પર્શપરીપહજય કા વિવેચન કરતે હૈ-
‘અચેલગસ્સ’ ઇત્યાદિ ।

અન્વયાર્થ—(અચેલગસ્સ-અચેલકસ્ય) સર્વથા વહ્નરહિત જિન-કલ્પિક, તથા શાસ્ત્ર કી મર્યાદા કે અતિરિક્ત વહ્ન નહીં રાખને વાલે સ્થવિરકલ્પિક મુનિ કે (લૂહસ્સ-રૂક્ષસ્ય) કિ જિન કા તૈલ આદિ કી માલિશ કરના વર્જિત હોને સે શરીર ચિલકુલ રૂક્ષ હો રહા હૈ, એવં (સંજ-યસ્સ-સંયતસ્ય) જો નિરતિચાર સંયમકી આરાધના કરને મેં તત્પર રહતે હૈ, તથા (તવસ્સિણો-તપસ્વિનઃ) અનશન આદિ તપોં કે કરનેવાલે હોને સે કૃશ શરીર ચાલે હૈ, ઓર જો (તણેસુ સયમાણસ્સ-તૃણેષુ શયાનસ્ય) દર્ભાદિક તૃણોં કે ઉપર સોતે હૈં ઉપલક્ષણ સે ઉપર બૈઠતે હૈં ઉનકે (ગાયવિરાહણા-ગાત્રવિરાધના) શરીર મેં તૃણસ્પર્શજન્ય પીડા હોતી હૈ ।

હવે સૂત્રકાર સત્તરમાં તૃણસ્પર્શપરીપહ ઉતવાનું વર્ણન કરે છે.
‘અચેલગસ્સ’-ઇત્યાદિ.

અન્વયાર્થ—અચેલગસ્સ-અચેલકસ્ય સર્વથા વહ્ન રહિત અનકલ્પિક, તથા શાસ્ત્રની મર્યાદાથી અતિરિક્ત વહ્ન ન રાખવાવાળા સ્થવિરકલ્પિક મુનિ લૂહસ્સ-રૂક્ષસ્ય જેને તેલ આદિની માલીશ કરવાનું વહીંત હોવાથી શરીર ખીંટકુલ રૂક્ષ બની ગયેલ છે. સંજયસ્સ-સંયતસ્ય અને જે નિરતિચાર સંયમની અરાધના કરવામાં તપ્પર રહે છે તવસ્સિણો-તપસ્વિનઃ તથા અનશન આદિ તપ કરનાર હોવાથી કૃશ શરીરવાળા છે. અને જે તણેસુ સયમાણસ્સ-તૃણેષુ શયાનસ્ય દર્ભાદિક તૃણોની ઉપર સુવે છે, ઉપલક્ષણથી ઉપર બેસે છે, તેમના ગાયવિહારણા-ગાત્ર-વિરાધના શરીરમાં તૃણસ્પર્શજન્ય પીડા થાય છે.

क्रिया सर्वदा सोपयोगाऽल्पा च भवतीत्यागन्तुकद्वीन्द्रियादिजीवानां विराधना न संभवत्यतस्ते वस्त्रं न सेवन्ते । स्थविरकल्पिकास्तु सापेक्षसंयमिनो भवन्त्यतस्ते तानि दर्भादीनि तृणानि भूमावास्तीर्य तत्रागन्तुककन्थुपिपीलिकादिजन्तुविराधना निवारणाय प्रान्तभागेषु वेष्टनं यथा स्यात्तथा तदुपरि संस्तारकं निधाय शेते, आसते च । एवं यः कठोरकुशदर्भादितृणसंस्पर्शं सम्पक् सहते तेन मुनिना तृणस्पर्शपरीपहो विजितो भवति ।

अत्र दृष्टान्तः प्रदर्श्यते—

श्रावस्तीनगर्यां जितशत्रुपस्य भद्रनामकः पुत्र आसीत् । स चैकदा पद्मनामकाचार्यस्य समीपे धर्मं श्रुत्वा प्रव्रजितः । क्रमाद् बहुश्रुतो भूत्वाऽन्यदा कदाचि-

उनके शरीर की हलनचलन आदि क्रिया उपयोगपूर्वक तथा अल्प होती है इससे उनके आगन्तुक द्वीन्द्रियादिक जीवों की विराधना का प्रायः संभव नहीं है इसलिये वे वस्त्र का सेवन नहीं करते हैं । स्थविरकल्पिकमुनि प्रायः ऐसे न होने से दर्भादिक तृणों को भूमि पर बिछा कर उसमें आगन्तुक कुन्थु पिपीलिका आदि जन्तुओं की विराधना निवारण करने के लिये प्रान्त भागों में वेष्टन जिस प्रकार हो जाय इस रूप से उस के ऊपर संस्तारक बिछाकर सोते हैं और बैठते हैं । इस प्रकार जो कठोर कुशदर्भादिक तृणस्पर्श को अच्छी तरह सहन करता है वह मुनि तृणस्पर्शपरीपह का विजेता कहलाता है ।

दृष्टान्त—श्रावस्ती नगरी में जितशत्रु नाम के राजा का भद्र नाम का एक पुत्र था । पद्मनामक आचार्य के पास उसने एक समय धर्म का उपदेश सुनकर दीक्षा धारण करली । क्रम से आगमों का

अलन आदि क्रिया उपयोग पुरती अने अल्प होय छे. तेनाथी आपनार द्विन्द्रियादिक लुवेनी विराधना थवानो संभव नथी. आ भाटे ते वस्त्रुं सेवन करता नथी. स्थविरकल्पिक मुनि जेवा न होवाथी दर्भादिक तृणाने भूमि उपर पीछावी तेमां आपवावाणा कथवा, पीपीलीका, आदि जन्तुजोनी विराधनातुं निवारणु करवा भाटे प्रान्त भागोमां टापा न पडे ते भाटे तेना उपर वस्त्र पिछावीने सुवे छे अने जेसे छे. आ प्रकारे जे कठोर कुश-दर्भादिक तृणस्पर्शने सारी रीते सहन करे छे ते मुनि तृणस्पर्शपरीपहना विजेता कहेवाय छे.

दृष्टान्त—श्रावस्ती नगरीमां जितशत्रु नामना राजने भद्र नामना पुत्र हुतो. पद्म नामना आचार्यनी पासे तेहे जेक समय धर्मना उपदेश सांभली दीक्षा धारणु करी लीधी. क्रमथी आगमोना अभ्यास करी ज्यारे ते बहुश्रुत

आतपस्य=धर्मस्य निपातेन=संपातेन, अतुला=महती दुःसहा वेदना भवति, आतपोत्पन्नस्वेदक्लेदयशात्. तृणक्षते धारसेचनेन समुत्पन्ना वेदनेव वेदना भवतीति भावः। एवम्=अनेन प्रकारेण ज्ञात्वाऽपि तृणतर्जिताः=दर्भादितृणक्षता मुनयः तन्तुजं-सूत्रनिर्मितं कार्पासिकम्, ऊर्णातन्तुनिर्मितं कम्बलादिकं वा वस्त्रम्=आच्छादनवस्त्रं न सेवन्ते ।

अयं भावः-शयने आसने च शुषिरवर्जिततृणस्य दर्भादिः परिभोगोऽनुज्ञातो जिनकल्पिकानां स्थविरकल्पिकानां च । तत्र जिनकल्पिकानां मुनीनां दृढसंहनन-पूर्वगतज्ञान - तीक्ष्णोपयोगनिद्राल्पत्वाद्यनेकप्रखरगुणसम्पन्नत्वेन स्पन्दनचलनादि

अन्वयार्थ—(आयवस्स - आतपस्य) घाम-धूप के (निवाएणं-निपातेन) पड़ने से जो शरीर में पसीना आता है, वह पसीना तृण-क्षत अर्थात् शरीर में तृण के चुभने से उत्पन्न हुए घाव में लगता है, तब (अउला वेयणा हवई-अतुला वेदना भवति) महावेदना होती है। (एवं नच्चा-एवं ज्ञात्वा) ऐसी वेदना का अनुभव करके भी (तणतज्जिया-तृणतर्जिताः) दर्भादिजन्य घाव वाले मुनि (तंतुजं-तन्तुजम्) ऊर्णादिक तन्तुओं से निर्मित कम्बलादिक तथा कपास से निर्मित वस्त्रादिकरूप आच्छादन वस्त्र का सेवन नहीं करते हैं।

इसका भाव यह है—शयन और आसन में निश्चिद्र दर्भादिक तृणों का परिभोग जिनकल्पिक तथा स्थविरकल्पिक दोनों के लिये अनुज्ञात है। जिस में जिनकल्पी मुनि दृढसंहनन, पूर्वो का ज्ञान, तीक्ष्ण उपयोग तथा अल्पनिद्रा आदि अनेक प्रखर गुणवाले होने से

अन्वयार्थ—आयवस्स-आतपस्य घाम तड्डकाना निवाएणं-निपातेन पडवाथी शरीरमां ने परसेवे। आवे छे ते परसेवे। तृणक्षत अर्थात् शरीरमां तृणाना स्पर्शथी उत्पन्न थयेला घावमां लागे छे त्यारे अउला वेयणा हवई-अतुला वेदना भवति बारि वेदना थाय छे एवं नच्चा-एवं ज्ञात्वा येवी वेदनाते। अनुभव करीने पधु तणतज्जिया-तृण-तर्जिताः दर्भादिजन्य घाव वाणा मुनिअे तंतुजं-तन्तुजम् उनना तांतव्याओथी अना-वेल कम्बल आदि तथा कपासथी अनावेल वस्त्रादिकेनुं आच्छादन न करवुं जेधये। अनेना लाव आ प्रमाखे छे, शयन अने आसनमां छिद्रो वगरना दर्भ आदि पडने। परिभोग अनकल्पिक तथा स्थविरकल्पिक अन्नेने भाटे अनु-ज्ञात छे; जेमां अनकल्पि मुनि तेने दढताथी सडन करीने, पूर्वो ज्ञान, तीक्ष्ण उपयोग, तथा अल्पनिद्रा आदि प्रखर शुष्वाणा होवाथी तेना शरीरनुं कवन

शरीरे प्रत्येकावयवस्य मांसे विदीर्यमाणेऽपि क्षोभवर्जितः शान्तरसनिमग्नो महामुनिः
क्षमानिधिः कलुषध्यानमकुर्वाणः समाधिभावेन प्रवलामुज्ज्वलां दुःसहां घोराति-
घोरवेदानां सहते स्म । इत्थं तृणस्पर्शपरीपहं विजित्य क्षपकश्रणिमारुह्य केवली-
भूत्वा शिवपदं प्राप । एवमन्यैरपि मुनिभिस्तृणस्पर्शपरीपहः सोढव्यः ॥ ३५ ॥

अथाष्टादशं जल्लपरीपहजयं प्राह—

मूलम्—किलिण्णगाए मेहावी, पंकेण वं रएण वा ।

धिसु वा परितावेणं, सांयं नो परिदेवए ॥३६॥

छाया—क्लिन्नगात्रः मेधावी, पङ्केन वा रजसा वा ।

ग्रीष्मे वा परितापेन, सातं नो परिदेवयेत् ॥ ३६ ॥

टीका—‘ किलिण्णगाए ’ इत्यादि ।

मेधावी=स्नानपरित्यागमर्यादावर्ती मुनिः, ग्रीष्मे, वा शब्दात्-शरदि,

मांस क्षारजल से विदीर्ण होने पर भी क्षोभ से वर्जित एवं शांत
रस में निमग्न, ऐसे उन क्षमा के निधि मुनिराज ने कलुषध्यान नहीं
करते हुए समाधिभाव से उस घोरातिघोर प्रवल दुःसह वेदना को
सहन किया । इस प्रकार उन्होंने ने तृणस्पर्शपरीपह को जीतकर अन्त में
क्षपकश्रेणी पर आरोहण करके केवलज्ञान की प्राप्ति से शिवपद
प्राप्त कर लिया । इसी तरह अन्य मुनियों को भी तृणस्पर्शपरीपह
सहन करना चाहिये ॥ ३५ ॥

अब अठारवें जल्लपरीपह को जीतने के लिये सूत्रकार कहते हैं—

‘ किलिण्णगाए ’ इत्यादि ।

अन्वयार्थ—(मेहावी - मेधावी) स्नानपरित्यागरूप मर्यादा में
रहने वाला मुनि (धिसु-ग्रीष्मे) ग्रीष्मकाल में (वा-वा) तथा शरत्काल

पारा पाणीथी विहीर्षु थवाथी, क्षोभथी वल्लत अने शांत रसमां निमग्न अवेवा
ते क्षमानिधि मुनिराजे कलुषभाव न राभतां समाधीभावथी अे घोर अति घोर
दुःसह वेदानाने सहन करी. आ प्रकारे तेअोअे तृणस्पर्शपरीपहने अतीने
अंतमां क्षपकश्रेणी पर अडीने केवलज्ञाननी प्राप्तिथी शिवपद प्राप्त करी
वीधुं. आ रीते अन्य मुनिराजेअे तृणस्पर्शपरीपह सहन करवो लेध अे ॥३५॥
हवे अठारवो जल्लपरीपह अतवा भाटे सूत्रकार कडे छे—

‘ किलिण्णगाए ’ इत्यादि.

अन्वयार्थ—मेहावी-मेधावी स्नान परित्यागरूप मर्यादां रडेवावाणा मुनि धिसु-

देकाकिविहारप्रतिमां प्रतिपन्नः सन्नप्रतिवद्धविहारं विहरति स्म । स चेकदा विह-
रन् क्वापि राज्यान्तरे गतः । राजपुरुषाः “ हेरिकोऽय ”-मिति ज्ञात्वा तं गृहीत्वा
पमच्छुः-ब्रूहि कस्त्वं ? केन गुप्तचारत्वाय प्रहितोऽसि ? । स भद्रमुनिः प्रतिमा-
धारित्वात् किमपि नोत्तरं ददौ । ततस्ते कुपितास्तं भद्रमुनिं क्षुरेण तक्षयित्वा न-
सिधारातुल्यैः क्षुरधारातुल्यैः कुन्ताग्रतुल्यैस्तीक्ष्णधारैर्दंभर्गाढमावेष्ट्य क्षारवर्तितं
कृत्वा, गर्ते निपात्य स्वस्थानं गतवन्तः । अतितीक्ष्णाग्रैः कुशैर्विध्यमाने क्षारजलैश्च

अभ्यास कर जब वह बहुश्रुत हो गया तब उसने एकाकिविहार
प्रतिमा अंगीकार कर अप्रतिवद्ध विहार करना प्रारंभ कर दिया । एक
दिन की बात है कि ये मुनिराज विहार करते-दूसरे किसी राज्य में
जा पहुँचे । राजपुरुषों ने उन्हें “ यह कहीं का गुप्तचर है ” ऐसा समझ-
कर पकड़ लिया, और पूछने लगे-कहो कौन हो ? किसने तुम्हें खुफिया
पुलिस के बतौर यहां भेजा है । राजपुरुषों की यह बात सुनकर प्रतिमा-
धारी होने से मुनिराज ने कुछ भी उत्तर नहीं दिया । मुनिराज की इस
मौन परिस्थितिका अवलोकन कर वे सब के सब उन पर बहुत अधिक
कुपित हुए । उन्होंने ने प्रकृतिभद्र उन मुनिराज को प्रथम क्षुरा से
घायल कर पश्चात् तलवार की धार के समान, क्षुरा की धार के समान,
एवं भाले की नोक के समान तीक्ष्ण अनीवाले दमों से गाढ़ वेष्टित
करके और ऊपर से नमक मिला हुआ जल छिड़ककरके एक खड्डे में
उनको डाल दिया, और वे सब के सब अपने-र स्थान पर चले गये ।
अति तीक्ष्ण अनीवाले कुशों से वींधे गये शरीर का प्रत्येक अवयवगत

गनी गया तब तो तेमले ऐकाकी विहार प्रतिमा अंगिकार करी, अप्रतिवद्ध
विहार करवाने प्रारंभ कर्यो. ऐक द्विपसनी बात छे के, आ मुनिराज विहार
करता करता भील कोर शक्यमां जे पडोय्या राजपुरुषोअे तेने “ आ कोर
शक्यमां गुप्तचर छे ” ऐभ समजने पकडी लीधा अने अने पुछवा बाय्या कडो
तमे कोर छे ? कोर तमने गुप्त बातभीहार तरीके अडिं मोकडेल छे ? राज-
पुरुषोनी अे बात सांलणी प्रतिमा धारी होवाथी मुनिराजे कांरि पञ्च उत्तर न
आथ्यो. मुनिराजनी आ मौन परिस्थिति जेठ सघणा तेना उपर पूण ज
कोधित अन्या. तेअेअे प्रकृतिभद्र ते मुनिराजने प्रथम छराथी घायल करी
पछी तरवारनी धार जेवा, छरानी धार जेवा, अने लालानी अण्णी जेवा तीक्ष्ण
अण्णीवाणा हलोथी गाढ व्यथित करीने उपरथी भीडानुं पाणी छांटी ऐक भाडाभां
नाभी दीधा अने अधा राजपुरुषो पात पाताने स्थाने आदया गया. अति
तीक्ष्ण अण्णीवाणा हलोना पानथी वींधायेला शरीरना प्रत्येक अवयवभांथी भांस,

मूलम्—वेणुज्ज निज्जरापेही, आरियं धम्मं णुत्तरं ।

जाव सरीरभेओत्तिं, जंल्लं काण्ण धारये ॥३७॥

छाया—वेदयेत् निर्जरापेक्षी, आर्यं धर्मम् अनुत्तरम् ।

यावत् शरीरभेदः, इति जल्लं कायेन धारयेत् ।

टीका—‘ वेणुज्ज ’ इत्यादि ।

निर्जरापेक्षी=आत्यन्तिककर्मक्षयाभिलाषी मुनिः, आर्यं=हेयोपादेयस्वरूपनिरूपकम्, अनुत्तरं=न विद्यते उत्तरम्—उत्कृष्टं यस्मात्सोऽनुत्तरस्तं सर्वोत्तममित्यर्थः। धर्मं=श्रुतचारित्ररूपं प्राप्तः इति शेषः । वेदयेत्—प्रक्रमात् जल्लजनिंतं दुःखं सहेत । इममर्थं विशदीकुर्वन् प्राह—‘ जाव सरीरभेओ ’ इत्यादि । इति=अतो हेतोः—यावत्—यावताकालेन शरीरभेदः=देहपातः स्यात्, तावत्कालपर्यन्तं, जल्लं=मलं, कायेन=शरीरेण धारयेत् ।

करे कि—“ हा ! इस मेल के निवारण से मुझे साता अर्थात् सुख का अनुभव कय और कैसे होगा ? ” इस प्रकार विलाप न करे ॥ ३६ ॥

‘ वेणुज्ज ’ इत्यादि ।

अन्वयार्थ—(निज्जरापेही—निर्जरापेक्षी) आत्यन्तिक रूप से कर्मों के क्षयका अभिलाषी मुनि (आरियं—आर्यम्) हेय एवं उपादेय के स्वरूपा का निरूपक (अणुत्तरं—अनुत्तरम्) सर्वोत्कृष्ट—जिससे श्रेष्ठ और कोई दूसरा नहीं है—सर्वोत्तम ऐसे (धम्मं—धर्मम्) श्रुतचरित्ररूप धर्म को प्राप्त कर (वेणुज्ज—वेदयेत्) मेल के दुःख को सहन करे । उसका कर्तव्य है कि (जाव शरीरभेओत्ति—यावत् शरीरभेद इति) जब तक शरीर का भेद नहीं होता है—मृत्यु द्वारा शरीर का वियोग नहीं

परीपहजय छे. साधु स्वप्नामां पशु सुभने अनुभव क्यारे अने केम थरो. आ प्रकारने विलाप न करे ॥ ३६ ॥

‘ वेणुज्ज ’—इत्यादि.

अन्वयार्थ—निज्जरापेही—निर्जरापेक्षी आत्यन्तिक रूपकी क्रमोने क्षय करवाना अभिलाषी मुनि आरियं—आर्यम् उच्ये अने उपादेयता स्वप्नना निरूपक अणुत्तरं—अनुत्तरम् सर्वोत्कृष्ट नेनाथी श्रेष्ठ णीने कोष नथी. सर्वोत्तम जेवा धम्मं—धर्मं श्रुतचारित्ररूप धर्मने प्राप्त करी वेणुज्ज—वेदयेत् भलना दुःभने सहन करे. तेनुं, कर्तव्य छे के जाव शरीरभेओत्ति—यावत् शरीरभेदः इति न्यां सुधी शरीरने लेह नथी. यतो—मृत्यु द्वारा शरीरने वियोग यतो नथी त्यां सुधी

वर्षासु वा, परितापेन=उष्णस्पर्शेन, हेत्वर्थे तृतीया । पङ्केन वा=प्रस्वेदादात्रीभूतेन मलेन वा, रजसा वा=परिशुष्य काठिन्यं प्राप्तेन मलेन वा, यद्वा-रजसा=धूल्या, क्लिन्नगात्रः=व्याप्तदेहः, सन् सातं=सुखं समाश्रित्य न परिदेवयेत्—“ हा ! मम-मलापगमः कथं कदा वा भविष्यती ” - ति कृत्वा न विलापेत्, विलापं न कुर्यादिति भावः ॥ ३६ ॥

में और वर्षाकाल में (परितापेण-परितापेन) उष्णस्पर्श द्वारा आये हुए (पङ्केण व-पङ्केन वा) प्रस्वेद द्वारा गीले हुए मैल से (रण वा-रजसा वा) या पसीने में संसक्त धूलि से (क्लिण्णगात्र-क्लिन्नगात्रः) व्याप्त शरीर होने पर भी (सायं नो परिदेवय-सातं नो परिदेवयेत्) “ हा मेरे इस मैल का निवारण कैसे और कब होगा ” ऐसा विचार कर विलाप नहीं करे । किन्तु उस हालत में उस परीपह को अच्छी तरह सहन करे, इसका नाम जल्लपरीपह जय है ।

भावार्थ—ग्रीष्मकाल में या वर्षाकाल में अधिक गर्मी पड़ने से शरीर में अधिक पसीना आया करता है । उससे शारीरिक मैल ढीला पड़ जाता है । रगड़ने से वह चिपका हुआ मैल शरीर से अलग हो जाता है । पुनः उसी स्थान पर उड़ी हुई रज आकर लग जाती है । उससे शरीर में आकुलता होती रहती है । इस आकुलता से न घबरा कर जो मुनि उस मैल से संसक्त होने का परीपह सहन करते हैं उसीका नाम जल्लपरीपहजय है । साधु स्वप्न में भी यह विचार न

ग्रीष्मे उनाणानी ऋतुमां तथा वा-वा शरदःकाले अने वर्षाकालमां परितापेण-परितापेन उष्णस्पर्शे द्वारा आवेला पङ्केण व-पङ्केन वा परसेवा द्वारा पलणेला मैलधी रण वा-रजसा वा अगर परसेवामां लणेला धूलधी क्लिण्णगात्र-क्लिन्नगात्रः व्याप्त शरीर अनवा छतां पञ्च सायं नो परिदेवय-सातं नो परिदेवयेत् भारा आ मैलनुं निवारये-केम अने क्यारे थये ” अवे विचार करी विलाप न करे, परंतु तेवीं हालतमां ते परीपहने सारी रीते सहन करे तेनुं नाम जल्लमदल परिपह जय छे ।

भावार्थ—ग्रीष्मकालमां या वर्षाकालमां अधिक गर्मी पडवाधी शरीरमां अधिक परसेवा वणे छे तेनाधी शरीर उपरनेां मैल-ढीला पडे छे योणवाधी ते चोटेल मैल शरीरधी छुटेां पडे छे, करी अज स्थणे उडती रज आवीने चांटे छे तेनाधी शरीरमां आकुणता यती रडे छे; आधी अ आकुणताधी न गलसतां-जे मुनि-ते मैलनेां संसक्तपरीपह सहन करे छे अने नाम जल्लमदल

અન્યચ—અત્યન્તમલિનો દેહો, દેહી ચાત્યન્તનિર્મલઃ ।

ઉભયોરન્તરં જ્ઞાત્વા, કસ્ય શૌચં વિધીયતે ॥ ૨ ॥ ઇતિ ।

અત્યન્તમલિનો દેહો, દેહી ચાત્યન્તનિર્મલઃ ।

ઉભયોરન્તરં જ્ઞાત્વા, કસ્ય શૌચં વિધીયતે ॥ ૨ ॥

ક્યોં કિ માતાપિતા કે રજવીર્ય સે યહ શરીર અપવિત્ર હી સ્વભાવતઃ ઉત્પન્ન હુઆ હૈ । જવ કારણ સ્વયં અશુચિસ્વરૂપ હૈ તો ઉસકા કાર્યરૂપ યહ શરીર શુચિ કૈસે હો સકતા હૈ । પ્યાજ કો યા લહસુન કો ક્ષીરસમુદ્ર કે જલ સે પ્રક્ષાલિત કરને પર ખી જૈસે ઉસમેં નિર્ગન્ધતા નહીં આ સકતી હૈ ઉસી પ્રકાર હજારોં વાર સ્નાન કરને પર ખી ઇસ અપવિત્ર શરીર મેં ખી નિર્મલતા-શુચિતા નહીં આ સકતી હૈ, ક્યોં કિ યહ નિરન્તર નૌ દ્વારોં સે મલ કો વહાતા હી રહતા હૈ । દેહ કા જવ સ્વભાવ ઇસા હૈ તો ફિર ઇસકી શુચિવિધાયક સાધન હી યહાં કૌન સે ઇકત્રિત કિયે જા સકતે હૈં । જો મેં હૂં વહ તો પવિત્ર હૂં અત્યંત નિર્મલ હૂં । જિસ પ્રકાર વસ્તુસ્થિતિ સે વિચાર કરને પર શૌચાલય મેં રહા હુઆ આકાશ અપવિત્ર ન હો સકતા હૈ ઉસી પ્રકાર ઇસ અપવિત્ર દેહ મેં નિવાસ કરને વાલા યહ આત્મા ખી અપવિત્ર નહીં હોતા હૈ, વહ તો સદા અત્યંત નિર્મલ હૈ । ઇસ પ્રકાર શરીર ઔર આત્મામેં અન્તર જાનકર જ્ઞાની સદા ઇસા વિચાર કરતા રહે કી મેં અવ

અત્યંતમલિનો દેહો, દેહી ચાત્યન્તનિર્મલઃ ।

ઉભયોરન્તરં જ્ઞાત્વા, કસ્ય શૌચં વિધીયતે ॥ ૨ ॥

કેમકે, માતા પિતાના રજવિર્યથી આ શરીર અપવિત્ર જ સ્વભાવતઃ ઉત્પન્ન થયેલ છે. ન્યારે કારણ સ્વયં અશુચિ સ્વરૂપ છે તેના કાર્ય રૂપ આ શરીર શુચિરૂપ કઈ રીતે ગણાય, ડુંગળીને અથવા લસણને સમુદ્રના પાણીથી ધોવાથી પણ તેમાં નિર્ગંધતા આવી શકતી નથી તેવી રીતે હજારો વાર સ્નાન કરવા છતાં પણ આ અપવિત્ર શરીરમાં નિર્મળતા-શુચિતા આવતી નથી. કેમકે, આ શરીર નિરંતર નવ દ્વારોથી મળને બહાર કાઢ્યા જ કરે છે. દેહને ન્યારે સ્વભાવ એવો છે તે પછી એના શુચિ વિધાયક સાધન જ ક્યાંથી મેળવી શકાય. જે હું છું તે તો સદા પવિત્ર જ છું, અત્યંત નિર્મળ છું, જે પ્રકારથી વસ્તુ સ્થિતિનો વિચાર કરવા છતાં, શૌચાલયમાં રહેલું આકાશ અપવિત્ર બની શકતું નથી તેવી જ રીતે દેહમાં નિવાસ કરવાવાળો આ આત્મા પણ અપવિત્ર હો તો નથી. તે તો સદા નિર્મળ જ છે. આ પ્રકારે શરીર અને આત્મામાં અંતર બાણી જ્ઞાની એવો સદા

दृश्यन्ते हि केचिद् दावानलदग्धस्थाणुवत् कालवर्णाः शीतवातादिभिरुपहता धूलिव्याप्ता मलिनदेहा मनुष्याः। तेषामकामनिर्जरया नास्ति कश्चिद् गुणः, मम ह्य मलधारणेन महान् गुणः, इति मत्वा मन्त्रापनयनाय स्नानाद्यभिलाषमपि न कदाचित् कुर्यादित्यर्थः । उक्तञ्च—

न शक्यं निर्मलीकर्तुं गात्रं स्नानशतैरपि ।

अश्रान्तमिव स्रोतोभिः, नैवभिर्मलमुद्गिरत् ॥ १ ॥

होता है तब तक वह (काएण-कायेन) शरीर से (जल्लं धारण-जल्लं धारयेत्) मेल को धारे । उसे यह विचार करते रहना चाहिये कि इस संसार में ऐसे अनेक प्राणी-मनुष्य देखे जाते हैं । जो दावानल से दग्ध स्थाणु की तरह बिलकुल कृष्णवर्ण होते हैं । उनका शरीर शीतवात आदि से सदा पीड़ित होता रहता है । धूलि से व्याप्त होने के कारण अत्यन्त मलिन होता है । परन्तु फिर भी इनको इसकी चिन्ता नहीं होती है । अकाम निर्जरा से इनको इतना सब कुछ सहन करने पर भी कोई लाभ नहीं । मेरे लिये तो इस मेल धारण करने से महान् लाभ है, अतः इसके दूर करने के लिये मुझे स्नान आदि सावधकियाओं की अभिलाषा स्वप्न तक में भी नहीं करनी चाहिये । कहा भी है—

न शक्यं निर्मलीकर्तुं, गात्रं स्नानशतैरपि ।

अश्रान्तमिव स्रोतोभिः, नैवभिर्मलमुद्गिरत् ॥ १ ॥

काएण-कायेन ते शरीरथी जल्लं धारण-जल्लं धारयेत् भेदने राजे. तेष्ते अ-
विचार करता रहेवुं जेधजे के, आ संसारमां जेवां अनेक प्राणी, मनुष्य
दृश्यन्तेमां आवे छे जे दावानलथी दग्ध स्थाणुनी जेवा तदन काणा स्वप्नना
होय छे. तेतुं शरीर शीत, वात आदिथी सदा पीडित रहे छे. धूलिथी भरवुं
होवाने कारणे अत्यन्त मदीन होय छे, छतां पषु जेभने जेनी चिन्ता होती
नथी. अकामनिर्जराथी जेभने जेटवुं जधुं सहन करवा छतां पषु काई
लाभ नथी. मारा भाटे तो आ भेदने परीषद सहन करवाथी महान लाभ
छे, आथी तेने दूर करवा भाटे भारे स्नान आदि सावधकियाजोनी अभि-
लाषा स्वप्ने पषु न करवी जेधजे. कहुं पषु छे.—

न शक्यं निर्मलीकर्तुं, गात्रं स्नानशतैरपि ।

अश्रान्तमिव स्रोतोभिः, नैवभिर्मलमुद्गिरत् ॥ १ ॥

मुनिनिन्दया दुष्कर्म बद्धवान् । कालमासे कालं कृत्वा श्रावकत्वात् सौधर्मे कल्पे
देवत्वं प्राप्तवान् । ततश्च्युतथासौ कौशाम्बीनगरे इभ्यस्य वसुचन्द्रश्रेष्ठिनः पुत्रोऽभवत् ।
स श्रेष्ठिपुत्रो विशुद्धमतिनाम्ना प्रसिद्धो जातः ।

स चैकदा विशाखाचार्यसमीपे धर्मं श्रुत्वा प्रव्रजितः । अन्यदा कदाचित् तस्य
विशुद्धमतिमुनेः पूर्वभवकृतमलिनमुनिनिन्दोपाजितकर्मोदयाद् देहेऽतिदुर्गन्धः समु-
त्पन्नः । शठितसर्पादिमृतकगन्धादप्यधिकं विशुद्धमतिमुनिदेहभवं दुर्गन्धं कोऽपि सोढुं
नाशकत् । सर्वो लोकस्तद्वपुःस्पृष्ट्वायुनाऽपि व्याकुलीकृतः सन्नितस्ततः पलायते ।

कारण मैल से भरा रहता है । फिर भी ये लोग अपने को बहुत ऊँचा
समझते रहते हैं और इधर से उधर भटकते रहते हैं । इस प्रकार
मुनि की निंदा से उसने गाढ़ दुष्कर्म का बंध कर लिया, और श्रावक
होने की वजह से वह मर कर सौधर्म देवलोक में देवपर्याय से
उत्पन्न हुआ । वहाँ से च्यवकर यह कौशाम्बी नगरी में वसुचंद्र नामक
इभ्य-शेठ का पुत्र हुआ । उसका नाम विशुद्धमति रक्खा गया ।

एक दिनकी बात है कि विशुद्धमति ने विशाखाचार्य के पास धर्म
श्रवणकर दीक्षा ले ली । कालान्तरमें विशुद्धमति मुनिके शरीरमें सुनंद
वणिकूके भवमें की गई मुनिनिन्दासे उपाजित पापकर्म के उदय से अति
दुर्गन्ध आने लगी । सड़े हुए साँप आदिकी जैसी दुर्गन्ध होती है
उससे भी अधिक दुर्गन्ध इनके शरीर की थी, अतः उस दुर्गन्ध को
सहन करने के लिये कोई भी समर्थ नहीं हुआ । उसके शरीर को
स्पर्शकर जो वायु आता था लोग उस वायु से भी घबरा जाते थे ।

पणु आ बोडे। पोताने भूषण उँचा समने छे अने अही तही लटकता
रहे छे. आ प्रकारनी मुनिनी निंदाथी तेणे गाढ दुष्कर्मना बंध करी लीथी
अने श्रावक होवाना कारणे ते मरीने सौधर्म देवलोकां देव पर्यायथी उत्पन्न
थयो. त्यांथी चवीने ते कौशाम्बी नगरीना वसुचंद्र नामना इभ्य-शेठना पुत्र
थयो. तेनु नाम विशुद्धमति राखवामां आयुं.

એક દિવસની વાત છે કે, વિશુદ્ધમતિએ વિશાખાચાર્યની પાસે ધર્મ શ્રવણ
કરી દીક્ષા લઈ લીધી કાળાન્તરમાં વિશુદ્ધમતિ મુનિના શરીરમાં સુનંદ વણી-
કના ભવમાં કરાયેલ મુનિ નિંદાથી ઉપાજન કરેલ પાપકર્મના ઉદયથી અતિ
દુર્ગંધ આવવા લાગી. સડેલા સર્પ વગેરેની જે દુર્ગંધ આવે છે તેનાથી પણ
અધિક દુર્ગંધ તેના શરીરની હતી. આથી એ દુર્ગંધને સહન કરવા કોઈ સમર્થ
ન બન્યું, તેના શરીરને સ્પર્શ કરીને જે પવન આવતો તે પવનથી પણ લોકો

અત્ર દૃષ્ટાન્તઃ પ્રદર્શયતે—

ચમ્પાનગર્યાં સુનન્દનામા ધનાઢ્યો વણિક શ્રાવક આસીત્ । સ બહુવિધપણ્યૈ-
ર્વ્યવહારકરણેન જાતાભિમાનો વિવેકરહિતઃ કદાચિદેકદા સાધુ દૃષ્ટ્વા નિન્દતિ
સ્મ—અહો ! શરીરસંસ્કારવર્જિતાઃ અભદ્રવેપા ધૂલિધૂસરા ધર્માદિસમુત્પન્નમલા-
નપનયનેન મલિનશરીરાઃ પુનરપિ સ્વવેપં ભવ્યમેવ મન્યમાના વિહરન્તિ । સ ચૈવં

સ્નાનાદિક સે કિસકી શુચિ કહું ? જિસ શરીરકી શુચિ હન સ્નાનાદિ
ક્રિયાઓં સે કરના ચાહતા હું વહ તો સ્વભાવ સે હી અપવિત્ર હૈ, તથા
આત્મા પવિત્ર હોને સે उसकी શુચિ કરને का प्रयास व्यर्थ है । ऐसा
समझकर साधु जलपरीपह को सहन करे ।

દૃષ્ટાન્ત—ચંપાનગરી મેં સુનંદ નામકા એક ધનાઢ્ય વૈશ્ય શ્રાવક
રહતા થા । ઇસકા વ્યાપાર ખૂબ ચલતા થા । અનેક ચીજોં કા રોજગાર
યહ કિયા કરતા થા । ઇસસે દુકાનદારી મેં ઇસકો અધિક લાભ હોતા
થા, ઇસલિયે ઇસે અપની દુકાનદારી કા યહુત કુછ અભિમાન થા ।
વિવેક સે રહિત હોને કે કારણ એક દિન કી યાત હૈ કિ ઇસને કિસી
એક સાધુ કો દેખકર उसकी भारी निंदा की । कहने लगा—देखो तो
सही ये शरीर के संस्कार से बिलकुल वर्जित रहते हैं, इनका वेष भी
भद्रपुरुषों जैसा नहीं होता है, शरीर पर तो इनके धूल चढ़ी रहती है ।
ये नहाते धोते नहीं हैं । रात दिन पसीना आते रहनेसे कपड़े भी इनके
बुरी तरह से दुर्गन्ध देने लगते हैं । शरीर भी पसीने से तर हो जाने के

વિચાર કરતો રહે કે, હું હવે સ્નાન આદિથી કેની શુદ્ધિ કરું ? જેની શુદ્ધિ
આવી સ્નાનાદિક ક્રિયાઓથી કરવા ચાહું છું તે તો સ્વભાવથી જ અપવિત્ર
છે. તથા આત્મા પવિત્ર હોવાથી એની શુદ્ધિ કરવાનો પ્રયાસ વ્યર્થ છે એવું સમજીને
સાધુ જળપરીપહને સહન કરે.

દૃષ્ટાન્ત—ચંપાનગરીમાં સુનંદ નામનો એક ધનાઢ્ય વૈશ્ય-શ્રાવક રહેતો
હતો. તેનો વેપાર ખૂબ ચાલતો હતો. અનેક ચીજોનો રોજગાર તે કરતો હતો.
તેનાથી દુકાનદારીમાં તેને અધિક લાભ થતો હતો. તેને પોતાની દુકાનદારીનું
ધણું અભિમાન હતું. વિવેકથી રહિત હોવાના કારણે એક દિવસની યાત છે કે,
તેણે કોઈ એક સાધુને જોઈને તેની ખૂબ નિંદા કરી, કહેવા લાગ્યો કે, જુઓ
તો ખરા ! આ શરીરના સંસ્કારથી તદ્દન વર્જિત રહે છે. તેનો વેષ પણ ભદ્ર
પુરુષો જેવો નથી. શરીર ઉપર તો ધૂળ ચોટેલી રહે છે, એ નાતા યોતા નથી,
રાત દિવસ પરસેવો આવતો હોવાથી તેમનાં કપડાં પણ દુર્ગંધ માસતાં હોય
છે અને શરીર પણ પરસેવાથી તર હોવાને કારણે એકથી ભરેલું રહે છે. તે

अथैकोनविंशतितमं सत्कारपुरस्कारपरीपहजयं प्राह—

मूलम्—अभिवायमवभुट्टाणं, सामी कुज्जा निमंतणं ।

जे ताइं पडिसेवन्ति, ने तेसिं पीहए मुंणी ॥३८॥

छाया—अभिवादम् अभ्युत्थानं, स्वामी कुर्यात् निमन्त्रणम् ।

ये तानि प्रतिसेवन्ते, न तेभ्यः स्पृहयेत् मुनिः ॥ ३८ ॥

टीका—‘अभिवाय०’ इत्यादि ।

स्वामी=राजादिकः, अभिवादम्—अभिवादनम्—‘शिरोनमनचरणस्पर्शनादिपूर्व-
कमभिवादये प्रणमामी’त्यादिवचनरूपं पुरस्कारं, तथा—अभ्युत्थानम्=अभिमुख-
त्थानम्—ससंभ्रममासनं परित्यज्योत्थानरूपं पुरस्कारं च, तथा—निमन्त्रणम्—
आहारदिग्रहणाय प्रार्थनम्, ‘अद्य मद्ग्रहे भिक्षा ग्रहीतव्या’ इत्यादिवचनरूपं

जन्ममरण से सदा के लिये विमुक्त हो गये। इसी तरह अन्य मुनियों
को भी जल्लपरीपह सहन करना चाहिये ॥ ३७ ॥

अब उन्नीसवां सत्कारपुरस्कारपरीपहजय को सूत्रकार कहते हैं—
‘अभिवायं’—इत्यादि ।

अन्वयार्थ—यदि (सामी—स्वामी) राजा आदि (अभिवायं अबभु-
ट्टाणं निमंतणं—अभिवादनं अभ्युत्थानम् निमन्त्रणं) अभिवादन—अपने
मस्तक को झुकाकर चरणस्पर्श करते हुए नमस्कार करें, तथा अभ्यु-
त्थान—मुनि को आते देखकर बड़े आदरभाव से अपने आसन का
परित्याग कर वे उठ खड़े हों और मुनि के सन्मुख जावें, तथा—निमं-
त्रण—आहार आदि के ग्रहण करने के लिये प्रार्थना करें कि महाराज!
आज आप मेरे घर पर भिक्षा लें, इस प्रकार अभिवादन, अभ्युत्थान

कल्याण साधीने नमभरषुथी सहाने भाटे विमुक्ता ण्णी गया. आ रीते अन्य
मुनिओअे पषु नणपरीपडने सडुन करवा जेधअे. ॥ ३७ ॥

हुवे ओगषीसओ सत्कारपुरस्कारपरीपड लतवाने सूत्रकार कडे छे.

‘अभिवायं’ इत्यादि.

अन्वयार्थ—यदि सामी—स्वामी राजा वगैरे अभिवायं अबभुट्टाणं निमंतणं—अभिवादनं
अभ्युत्थानम् निमन्त्रणम् पीताना मस्तकने झुकावी अर्षुस्पर्श करी नमस्कार करे,
तथा अभ्युत्थान—मुनिने आवता जेधने धणा आदरभावथी पीताना आसनने
परित्याग करी ते उडीने उभा रडे अने मुनिनी सामे लयं, तथा निमंत्रण—
आहार आदि ग्रहण करवा भाटे प्रार्थना करे के, महाराज! आज आप मेरा
घरे भिक्षा लीये. आ प्रकारे अभिवादन, अभ्युत्थान तथा निमंत्रण कुज्जा—कुर्यात्

यत्र यत्रासौ भिक्षाार्थं याति तत्र तत्र लोकस्तद्वन्धेन विमना भवति । मुनिश्च
तिरस्कारं प्राप्नोति तथाप्यसौ जल्लपरीपहं सहते ।

तदनन्तरं विशाखाचार्यस्तमत्रवीत्-वत्स ! त्वद्देहदौर्गन्ध्याद् भृशमुद्देगो जनानां
जायते, तस्मादुपाश्रय एव त्वया स्थातव्यं, न तु बहिर्गृहस्थसंनिधौ गन्तव्यम् ।
इत्थं तद्वचनं निशम्य विशुद्धमतिमुनिस्तस्मिन्नेवोपाश्रये स्थितः । अन्तप्रान्ताहारेण
दुर्बलशरीरोऽसौ विशुद्धमतिमुनिः स्वगुरुं प्रार्थ्य तदाज्ञामादाय पादपोषगमनं कृत्वा
स्वकल्याणं साधयामास । एवमन्यैर्मुनिभिर्जल्लपरीपहः सोढव्यः ॥ ३७ ॥

जहां जहां ये भिक्षा के लिये जाते वहां लोग उनके शरीर की दुर्गन्ध
से व्याकुल हो उठते । इस दुर्गन्ध के कारण मुनिराज का भी तिरस्कार
होने लगा । फिर भी उन्होंने इस तर्क ध्यान नहीं दिया और जल्ल-
परीपह को जीतने में ही वे अपनी सारी शक्ति लगाते रहे ।

विशाखाचार्य ने एक दिन इनसे कहा वत्स ! तुम्हारे शरीर की
दुर्गन्ध से लोगों में बड़ा असन्तोष फैल रहा है वे बड़े उद्विग्न होते
हैं, इसलिये तुम अब कहीं न जाकर सिर्फ उपाश्रय में ही रहा करो ।
इस प्रकार गुरु महाराज के वचन सुनकर विशुद्धमति मुनिराज अब
उपाश्रय में ही रहने लगे-बाहर गृहस्थों के यहां आना जाना बंद कर
दिया । अन्त प्रान्त आहार से इनका शरीर भी दुर्बल हो गया था,
अतः अपने गुरु महाराज से प्रार्थना कर इन्होंने उनकी आज्ञानुसार
पादपोषगमन संधारा धारण कर लिया और अपना कल्याण साध कर

गमनार्थं जाता जाता. न्यां न्यां ऐ भिक्षा लेवा जाता त्यां त्यां लोको ऐना
शरीरनी दुर्गंधी व्याकुलानी जाती. अने आ दुर्गंधना कारणे न्यां त्यां
मुनिशब्देना पणु तिरस्कार थवा लाग्यो. तो पणु तेमणे ऐ तरक ध्यान न आय्युं.
अने जल्लपरीपहं एतवामां न पोतानी अधी शक्ति लगाडी रहा.

विशाखाचार्ये तेने ऐक द्विवस कहुं, हे वत्स ! तमारा शरीरनी दुर्गंधी
लोकोमां धणो असतोप इलाई रह्यो छे. आधी धणु उद्विग्न अने छे, माटे तमे
हवे कथांय न जातां इकत उपाश्रयमां न रहा करो. आ प्रकारनुं शुरुमडारा-
जनुं वचन सांभगिने-विशुद्धमति मुनिराज हवे उपाश्रयमां न रहेवा लाग्या.
अडार गृहस्थीने त्यां जवा आववानुं अंध करी दीधुं. अन्त प्रान्त आडारधी
तेमनुं शरीर पणु दुर्बल थई गयुं, अते पोताना शुरुमडाराजने प्रार्थना
करी तेमनी आज्ञा अनुसार पहपोषगमन संधारा धारणु कर्यो. आ

छाया—अनुत्कशायी अल्पेच्छः, अज्ञातैपी अलोलुपः ।

रसेषु नानुगृध्येत्, नानुवप्येत प्रज्ञावान् ॥ ३९ ॥

टीका—‘अणुकसाई’ इत्यादि ।

अनुत्कशायी=अनुत्कः-अनुत्कण्ठितः शेते, धातूनामनेकार्थत्वाद् वर्तते इत्येवं शीलः सत्कारादिवाञ्छारहित इत्यर्थः, यद्वा-माकृतत्वाद्-‘अणुकपायी’ इति-च्छाया । अल्पकपायी-कपायरहित इत्यर्थः-वन्दनादिकमकुर्वते न कुध्यति, वन्दनादौ कृते वा न मानं कुरुते न वा तदर्थं शीतोष्णाऽऽतापनादिभिर्मायां करोति, न चापि तत्र लोभं करोतीति भावः । अत एव-‘अल्पेच्छः’=धर्मोपकरणमात्र-भिलापी, न तु सत्कारपुरस्काराभिलापीत्यर्थः । अत एव-अज्ञातैपी-अज्ञातः=जाति-श्रुतादिभिरपरिचितो भूत्वा एपयति-गवेपयति पिण्डादिकं, यः स तथा, यद्वा-अज्ञाते=अज्ञातकुले एपयति=गवेपयति पिण्डादिकं यः स तथा, तत्र हेतुं प्रदर्शयति

अथ सूत्रकार इसी अर्थ को विशद करते हैं—‘अणुकसाई’ इत्यादि ।

अन्वयार्थ—(अणुकसाई-अनुत्कशायी) सत्कार आदि की अभिलाषा रहित अथवा अल्पकपाय वाला-सत्कारादि विषयक कपायभाव रहित, अर्थात्-वन्दना आदि नहीं करने वाले के प्रति क्रोध नहीं करने वाला, तथा वन्दनादि करने पर अभिमान नहीं करने वाला, तथा मान सन्मान आदि के निमित्त शीत, उष्ण, आतापना आदि द्वारा मायाचार नहीं करने वाला. तथा उस विषय में लोभ-कपाय भी नहीं करने वाला, (अल्पेच्छे-अल्पेच्छः) तथा अल्पइच्छावाला धर्मोपकरणमात्र की अभिलाषा वाला सत्कारपुरस्कार आदि की अभिलाषा वाला नहीं, तथा (अन्नाएसी-अज्ञातैपी) जाति एवं श्रुत आदि से अपरिचित होकर शुद्ध पिंडादिक की गवेपणा करने वाला, अथवा-अज्ञातकुल में

हुवे सूत्रकार आ अर्थने स्पष्ट करे छे—‘अणुकसाई’ इत्यादि.

अन्वयार्थ—अणुकसाई-अनुत्कशायी सत्कार आदिनी अभिलाषाथी रहित अथवा अल्प कपायवाणा-सत्कारादि विषयक कपायभाव रहित, अर्थात्-वन्दना आदि न करना तदर्थ क्रोध नहीं करवावाणा तथा वन्दनादि करवायी अभिमान नहीं करवावाणा तथा मान सन्मान आदि निमित्त शीत, उष्ण, आतापना आदि द्वारा मायाचार नहीं करवावाणा तथा ये विषयमां लोभ कपाय पणु नहीं करवावाणा अल्पेच्छे-अल्पेच्छः तथा-अल्प इच्छावाणा-धर्मोपकरण मात्रनी अभिलाषावाणा-सत्कार पुरस्कार आदिनी अभिलाषावाणा नहीं तथा अन्नाएसी-अज्ञातैपी जाति अजर श्रुत आदिथी अपरिचित जनीने शुद्ध पिंडादिकनी गवेपणु

सत्कारं कुर्यात्, तानि=अभिवादादीनि ये स्वयूधवर्तिनः अवसन्नपार्श्वस्थादयः, परतीर्थिका दण्डशाक्यादयो वा द्रव्यलिङ्गिनः प्रतिसेवन्ते=आगमनिषिद्धान्यपि स्वीकुर्वन्ति, तेभ्यः=ऋद्धिरससातगृद्धियुक्तेभ्यः, मुनिः=अनगारः न स्पृहयेत्, राजादिकृतसत्कारपुरस्कारौ प्रतिसेवमानान् द्रव्यलिङ्गिनः साधून् विलोक्य—“अहो! पुण्यशालिनोऽमी पार्श्वस्थादयः शाक्यादयश्च यदेतादृशं वन्दनाभ्युत्थानादिसत्कारं प्राप्नुवन्ति, अतोऽहमप्येतादृशो भवामी”-ति मुनिस्तत्साम्यं न वाञ्छेदित्यर्थः ॥३८॥

अमुमेवार्थं विशदयति—

मूलम्-अणुर्हसाई अपिच्छे, अत्रापसी अलोलुए ।

रसेसु नाणुगिज्जिजा, नाणुतपिज्ज पण्णवं ॥३९॥

तथा निमंत्रण (कुञ्जा-कुर्यात्) करे और (ताई-तानि) उनको (जे-ये) जो स्वयूधवर्ती अवसन्न पासत्य आदि, अथवा परतीर्थिक दण्डशाक्यादिक द्रव्यलिङ्गी साधु (पडिसेवन्ति-प्रतिसेवन्ते) सेवन करते हैं उनको स्वीकार करते हैं तो (मुणी तेसिं न पीहए-मुनिः तेभ्यः न स्पृहयेत्) मुनि उन ऋद्धिरससातगृद्धियुक्तों की स्पृहा न करे राजा आदि द्वारा किये गये सत्कार पुरस्कार को प्रतिसेवन करने वाले अवसन्नपार्श्वस्थादि द्रव्यलिङ्गी साधुओं को देखकर “अहो! ये अवसन्न पार्श्वस्थादिक तथा शाक्यादिक बड़े ही पुण्यशाली हैं जिससे ये इस प्रकार के वन्दन अभ्युत्थान आदि सत्कार को पाते हैं अतः मैं भी इनके जैसा होऊं तो अच्छा हो” इस प्रकार अणगार-मुनि उनकी समानता की अर्थात् उनके जैसा होने की वाञ्छा नहीं करे ॥ ३८ ॥

करे अने ताई-तानि अेभने जे-ये जे स्वयूधवर्ती अवसन्न पासत्य आदि अथवा परतीर्थिक दंडी, शाक्यादिक द्रव्यलिङ्गी साधु पडिसेवन्ति-प्रतिसेवन्ते सेवन करे छे-अेभने स्वीकार करे छे मुणी तेसिं न पीहए-मुनिः तेभ्यः न स्पृहयेत् तो मुनि अे ऋद्धिरस सात गृद्धियुक्तोनी स्पृहा न करे. राजा आदि द्वारा करायेला सत्कार पुरस्कारनुं प्रतिसेवन करवावाणा अवसन्न पार्श्वस्थादि द्रव्यलिङ्गी साधुअेभने अेधने “अहो” अे अवसन्न पार्श्वस्थादिक तथा शाक्यादिक धष्ठा ज पुण्यशाली छे, जेथी ते आ प्रकारनां वंदन अभ्युत्थान आदि संस्कार पाभे छे. अेथी हुं पणु अेभना जेवो थाठं तो साइं थाय. आ प्रकारे अणुगार मुनि तेभनी समानतानी अर्थात् तेभना जेवा थवानी वाञ्छना न करे. ॥ ३८ ॥

छाया—अनुत्कशायी अल्पेच्छः, अज्ञातैषी अलोलुपः ।

रसेषु नानुगृध्येत्, नानुत्प्येत प्रज्ञावान् ॥ ३९ ॥

टीका—‘अणुकसाई’ इत्यादि ।

अनुत्कशायी=अनुत्कः-अनुत्कण्ठितः शेते, धातूनामनेकार्थत्वाद् वर्तते इत्येवं शीलः सत्कारादिवाञ्छारहित इत्यर्थः, यद्वा-प्राकृतत्वाद्-‘अणुकपायी’ इति-च्छाया । अल्पकपायी-कपायरहित इत्यर्थः-वन्दनादिकमकुर्वते न कुड्यति, वन्दनादौ कृते वा न मानं कुरुते न वा तदर्थं शीतोष्णाऽऽतापनादिभिर्मायां करोति, न चापि तत्र लोभं करोतीति भावः । अत एव-‘अल्पेच्छः’=धर्मोपकरणमात्राभिलाषी, न तु सत्कारपुरस्काराभिलाषीत्यर्थः । अत एव-अज्ञातैषी-अज्ञातः=जातिश्रुतादिभिरपरिचितो भूत्वा एपयति-गवेपयति पिण्डादिकं, यः स तथा, यद्वा-अज्ञाते=अज्ञातकुले एपयति=गवेपयति पिण्डादिकं यः स तथा, तत्र हेतुं प्रदर्शयति

अथ सूत्रकार इसी अर्थ को विशद करते हैं-‘अणुकसाई’ इत्यादि ।

अन्वयार्थ—(अणुकसाई-अनुत्कशायी) सत्कार आदि की अभिलाषा रहित अथवा अल्पकपाय वाला-सत्कारादि विषयक कपायभाव रहित, अर्थात्-वन्दना आदि नहीं करने वाले के प्रति क्रोध नहीं करने वाला, तथा वन्दनादि करने पर अभिमान नहीं करने वाला, तथा मान सन्मान आदि के निमित्त शीत, उष्ण, आनापना आदि द्वारा मायाचार नहीं करने वाला, तथा उस विषय में लोभ-कपाय भी नहीं करने वाला, (अपिच्छे-अल्पेच्छः) तथा अल्पइच्छावाला धर्मोपकरणमात्र की अभिलाषा वाला सत्कारपुरस्कार आदि की अभिलाषा वाला नहीं, तथा (अज्ञाएसी-अज्ञातैषी) जाति एवं श्रुत आदि से अपरिचित होकर शुद्ध पिंडादिक की गवेपणा करने वाला, अथवा-अज्ञातकुल में

इसे सूत्रकार आ अर्थने स्पष्ट करे छे—‘अणुकसाई’ इत्यादि.

अन्वयार्थ—अणुकसाई-अनुत्कशायी सत्कार आदिनी अभिलाषाधी रहित अथवा अल्प कपायवाणा-सत्कारादि विषयक कपायभाव रहित, अर्थात्-वन्दना आदि न करना तरइ क्रोध नहीं करवावाणा तथा वन्दनादि करवाधी अभिमान नहीं करवावाणा तथा मान सन्मान आदि निमित्त शीत, उष्ण, आतापना आदि द्वारा मायाचार नहीं करवावाणा तथा ये विषयमां लोभ कपाय पक्षु नहीं करवावाणा अपिच्छे-अल्पेच्छः तथा-अल्प इच्छावाणा-धर्मोपकरण मात्रनी अभिलाषावाणा-सत्कार पुरस्कार आदिनी अभिलाषावाणा नहीं तथा अज्ञाएसी-अज्ञातैषी जाति अगर श्रुत आदिधी अपरिचितनीने शुद्ध पिंडादिकनी गवेपणु

—‘अलोलुप’ इति । अलोलुपः=सरसाहारादिषु रसनेन्द्रियादिलोलुपतावर्जितः, तथा—प्रज्ञावान्=हेयोपादेयविवेचननिपुणबुद्धिमान्, रसेषु=रसादिषु, नानुगृध्येत्=मनोज्ञरसादिभिः सत्कारे पुरस्कारे च कृते तत्र मूर्च्छा न कुर्यात् । नानुगृध्येत्=सत्कारपुरस्कारयोरभावे विषादं न कुर्यात् ।

अयं भावः—भक्तपानवस्त्रपात्रादीनां लाभः सत्कारः, गुणोत्कीर्तनं वन्दनाभ्युत्थानासनप्रदानादिव्यवहारश्च पुरस्कारः । तत्र—सत्कारपुरस्कारप्राप्तीं सत्यां गृद्धि न कुर्यात्, तयोरभावे द्वेषं न कुर्यात्, नापि च मनस्तापेनात्मानं दूषयेत्, किं तु दैन्यवर्जनेन तदनाकाङ्क्षया च सत्कारपुरस्कारपरीपहः सोढव्यः, इत्येवं सद्भावसद्भावभेदेन द्विविधोऽयं परीपहः सोढव्य इति । उक्तञ्च

गवेपणा करने चाला, तथा (अलोलुप—अलोलुपः) सरस आहारादिक में रसना—इन्द्रिय की लोलुपता से रहित ऐसा (पण्णवं—प्रज्ञावान्) हेय और उपादेय के विवेचन करने में निपुण बुद्धिवाला मुनि (रसेषु नाणुगिज्झज्जा—रसेषु नानुगृध्येत्) मनोज्ञ रसादि के द्वारा सत्कारपुरस्कार होने पर रसादि में मूर्च्छा—गृद्धि भाव नहीं करे, तथा मनोज्ञ रसादि के नहीं मिलने पर विषाद नहीं करे ।

भावार्थ—इसका सारांश यह है कि—भक्त, पान, वस्त्र एवं पात्रादिकका लाभ सत्कार है, तथा गुणों का कथनरूप तथा वन्दना अभ्युत्थान एवं आसनप्रदानरूप जो व्यवहार है वह पुरस्कार है । साधु को सत्कारपुरस्कार की प्राप्ति होने पर गृद्धि और इनके अभाव में द्वेष नहीं करना चाहिये, और न मनके संताप से अपने आपको दूषित ही

करवावाणा अथवा अज्ञात कुण्ठमां आहारनी गवेपणा करवावाणा तथा अलोलुप—अलोलुपः सरस आहारादिकमां रसनाइन्द्रियनी लोलुपताथी रहित अथी पण्णवं—प्रज्ञावान् हेय अने उपादेयनुं विवेचन करवामां निपुण बुद्धिवाणा मुनि, रसेषु नाणुगिज्झज्जा—रसेषु नानुगृध्येत् मनोज्ञ रसादि द्वारा सत्कारपुरस्कार होवा छतां रसादिमां मूर्च्छा—गृद्धिभाव न करे. तथा मनोज्ञ रसादि नहीं मणवाथी विषाद न करे.

आने सारांश अे छे के—लकत, पान, वस्त्र, अने पात्रादिकने लाभ सत्कार छे, तथा बुद्धिना कथनरूप, तथा वन्दना अभ्युत्थान अने आसनप्रदान रूप अे षडेवार छे, ते पुरस्कार छे. साधुने सत्कारपुरस्कारनी प्राप्ति होवाथी गृद्धि अने तेना अभावमां द्वेष न करवेो जेछे. तेभ मनना संता पोते

उत्थाने वन्दने दाने, न भवेदभिलाषुकः ।

असत्कारे न दीनः स्यात्, सत्कारे स्यान्न हर्षवान् ॥ १ ॥ इति ।

अत्र दृष्टान्तः प्रदर्शयते—

अरुणाचार्यः शिष्यपरिवारेण सह मथुरानगर्यां समवसतः । तत्रारिर्मर्दनो नाम भूपतिरासीत्, इन्द्रदत्तनामकस्तस्य पुरोहितस्तत्र निवसति । स जिनशासनविरो-

करणा चाहिये, किन्तु दीनता के परिहार से एवं सत्कारपुरस्कार की अनाकांक्षा से सत्कारपुरस्कार इन दोनों को सहन करते रहना चाहिये । इस प्रकार सद्भाव और असद्भाव के भेद से दो प्रकारका यह परीपह साधु को सहन करने योग्य बतलाया गया है । कहा भी है—

उत्थाने वन्दने दाने, न भवेदभिलाषुकः ।

असत्कारे न दीनः स्यात्, सत्कारे स्यान्न हर्षवान् ॥ १ ॥

भावार्थ—वस्त्र पात्रादिक का लाभ हो चाहे न हो, कोई वंदनादिक करे या न करे, इस तर्फ लक्ष्य न देना और न इस विषयक हर्ष विषाद करना । चाहे कोई सत्कार करे चाहे न करे सब में समभाव रहना सो सत्कारपुरस्कारपरीपहजय है ।

दृष्टान्त—एक समय अरुणाचार्य अपने शिष्यपरिवार के साथ मथुरा नगरी में आये हुए थे । उस समय वहां अरिर्मर्दन राजा का राज्य था । राजा के पुरोहित का नाम इन्द्रदत्त था । यह उसी नगरी

पोताने द्रुपित न करे, परंतु दीनताना परिहारथी अने सत्कारपुरस्कारनी अनाकांक्षाथी सत्कारपुरस्कार आ भन्ने ने सहन करता रहेवुं जेधये. आ प्रकारे सद्भाव अने असद्भावना जेदथी जे प्रकारेनो आ परीपह साधुजे सहन करवा योग्य भतावेव छे. कहुं छे के—

उत्थाने वंदने दाने, न भवेदभिलाषुकः ।

असत्कारे न दीनः स्यात्, सत्कारे स्यान्न हर्षवान् ॥ १ ॥

भावार्थ—वस्त्र पात्रादिकने लाभ होय अगरे न होय, कोइ वंदना आदि करे के न करे, जे तरफ लक्ष न आपवुं. अथवा न आ विषयमां हर्ष विषाद करवो. आडे कोइ सत्कार करे, आडे न करे सधनामां समभाव रहेवो ते सत्कारपुरस्कार परीपह जय छे.

दृष्टान्त—जेक समये अरुणाचार्य पोताना शिष्य परिवार साथे मथुरा नगरीमां नियरता छता. जे वधते त्यां अरिर्मर्दन राजतुं राजन्य छतुं. राजना पुरोहिततुं नाम इन्द्रदत्त छतुं. ते जेन नगरीमां रहेता छता. जिनशासन प्रत्ये

धित्वात् स्वगवाक्षस्थः सन्नयो व्रजन्तमरुणाचार्यस्य शिष्यं सुधर्मशीलनामकं मुनिं दृष्ट्वा धर्मद्वेषादचिन्तयत्—'अस्य मुनेः शिरसि पादं निक्षिपामि' इति एवं विचिन्त्य, स तन्मस्तकोपरि स्वपादमवलम्बितं कृतवान् ।

यदा यदा भिक्षार्थं स्थण्डिलभूमौ वा मुनिस्तद्भवनाऽऽसन्नमार्गेण गच्छति, तदा तदाऽसौ पुरोहितः स्वगवाक्षे उपविश्य मुनिमस्तकोपरि पादधारणमुदया स्वपादौ तत्रावलम्बितौ कृत्वा दृष्टो भवति । एवं निरन्तरं कुर्वाणं दृष्ट्वाऽपि शान्तरससमुद्रोऽसौ मुनिर्मनसाऽपि नाकुप्यत् । एकदा मुनिमस्तकोपरि पादं निक्षिपन् स

में रहता था । जिन शासन के प्रति इसका विरोध सदा से चला आता था । एक दिन की बात है कि जब यह अपने मकान के झरोखे में बैठा हुआ था उसी समय इसने अरुणाचार्य के एक शिष्य को कि जिनका नाम सुधर्मशील मुनि था दृष्टि को झुकाकर जाते हुए देखा । देखकर धर्म के प्रति द्वेष होने की वजह से इसने उसी वस्तु विचार किया कि आज मैं इस मुनि के मस्तक पर पैर रखुं । ऐसा विचार कर झरोखे के पास से निकलते हुए मुनि के सिर के ऊपर अपने पैर लटका दिये ।

एक दिन उस नगर के सेठ ने कि जिसका नाम सुभद्र था इस पुरोहित को मुनि के मस्तक के ऊपर पैर रखते हुए देख लिया । मुनि के मस्तक ऊपर पुरोहित पैर इस तरह रखता था कि मुनि जब भिक्षा के लिये या शौच के लिये उसके मकान की खिड़की के पास के मार्गसे हो कर निकलते तब यह पुरोहित अपने मकानकी उस खिड़की में बैठ जाता और चलते हुए मुनि के मस्तक ऊपर अपने दोनों पैर

तेना विरोध सदा आहत्ये आपतो इतो. एक दिवसनी वात छे के, न्यारे ते पोताना भकानना अश्रुभां गेठेल इतो ते सभये तेछे अश्रुभाथार्थना एक शिष्यने के जेनुं नाम सुधर्मशील मुनि इतुं तेने नीचे माथुं राभी जता तेछे जेथा. जेधने धर्मना तरक्ष द्वेष डोवाना धारछे तेछे ते वभते विचार करी के, आज हुं आ मुनिना मस्तक ऊपर पग राधुं. जेवा विचार करी अश्रुभांनी पासेधी निकणता मुनिना माथा ऊपर पोताना पग लटकाव्या.

एक दिवस जे नगरना ज सुभद्र नामना शेठे आ पुरोहितने मुनिना माथा ऊपर पग राधता जेध वीधा. मुनिना माथा ऊपर पुरोहित पग जेवी रीते राधता के, मुनि न्यारे न्यारे भिक्षा भाटे अगर शौच भाटे तेना भकाननी अडकीनी पासेना मार्गेधी नीडणे त्यारे त्यारे ते पुरोहित पोताना भकाननी अडकीभां जेसी रहते, जने आलता मुनिना माथा ऊपर पोताना पग राधता.

पुरोहितस्तन्नगरत्रेष्टिना सुभद्रनामकेन श्रावकेण दृष्टः। स सुभद्रश्रावको गुरोरपमानम-
सहमानोऽरुणाचार्यसमीपं गत्वा वदति-भदन्त ! पुरोहितकृतो भवदपमानो मया न
सह्यते, यतो भवदीपशिष्यस्य मस्तकोपरि इन्द्रदत्तपुरोहितेन पादो निक्षिप्तः,
तस्मादस्य ययोचितशासनं कर्तुमिच्छामि । आचार्येणोक्तम्-देवानुप्रिय ! यथा
नृपादिकृते सत्कारे पुरस्कारे च न प्रमोदः क्रियतेऽस्माभिः, तथा तदभावे द्वेष-
दैन्यादिकमपि न क्रियते, जैनधर्मद्वेषादसौ तथा करोति । अस्माभिस्त्वेव परीपद्दः
सोढव्य एव ।

रखने की इच्छा से पसार देता इससे वे मुनि के माथे ऊपर हो जाते
थे । इस कार्य से पुरोहित को बड़ा मजा आता । पुरोहित की इस प्रवृत्ति
को देखकर भी मुनिके चित्त में जरा भी विकृति नहीं आती, क्यों कि
वे शान्तरस के समुद्र थे । किन्तु सुभद्र श्रावक को पुरोहित की यह बात
सहन नहीं हुई । गुरु का अपमान देखकर उसका मन तिलमिला उठा ।
वह शीघ्र ही अरुणाचार्य के पास पहुँचकर कहने लगा-भदन्त ! पुरो-
हित द्वारा होता हुआ आपका अपमान मुझसे सहन नहीं किया
जाता है, क्यों कि वह आप के शिष्य के मस्तक पर कई दिन से पैर
जो रख रहा है, इसलिये मैं उसे इसका उचित उत्तर देना चाहता हूँ ।
सुभद्र सेठ की बात सुनकर आचार्यमहाराज ने कहा कि देवानुप्रिय !
हम लोग जिस प्रकार नृपादिकद्वारा क्रियमाण सत्कारपुरस्कार में
प्रसन्न नहीं होते हैं उसी प्रकार उसके अभाव में द्वेष एवं दैन्यादिक भी

आ दिया जैसी रीते करते थे, पग लांभा करी पसारतो के जैसी ते मुनिना
माथा उपर आवे. आ कार्यमां पुरोहितने पूज्य भज आवती. पुरोहितनी आ
प्रकारनी प्रवृत्तिने जेठने मुनिना मनमां जरा पथु विकृति आवती न હતી.
कारण के, तेजो शान्तरसना समुद्र हुता. परंतु सुभद्रश्रावकथी पुरोहितनुं आ
वर्तन सहन न थयुं गुरुतुं अपमान जेठने जेतुं मन पूज्य व्यग्र थर्धगयुं.
ते तरत ज अज्ञायाथीनी पासे पडेथीने कडेवा लाग्या, डे लदन्त ! पुरोहितथी
थतुं आपतुं अपमान भाराथी सहन थतुं नथी केभके, ते आपना शिष्यना
मस्तक पर डेटलाक द्विसथी पग राभी असातना करे छे. हुं तेने आने उचित
उत्तर आपवा थाहुं छु. सुभद्रशेठनी बात सांलणीने आचार्य भडाराजे कहुं के,
देवानुप्रिय ! अमे दोडे जे प्रकारे नृपादिक द्वारा करायेला सत्कारपुरस्कारमां
प्रसन्न नथी थता, तेवी रीते तेना अभावमां द्वेष अने दैन्य आदिक पथु

एकदा गुरोः समीपमागत्य सुभद्रश्रावको वदति-भदन्त ! पुरोहितेन नूतनं भवनं निर्मापितं, तत्राऽसौ राजानं भोजयितुं निमन्त्रयति । तदा स आचार्यः पूर्वं उपयोगं दत्त्वा कथयति-देवानुप्रिय ! यदा राजा भवने प्रवेशं करिष्यति तदैव त्वया करं धृत्वा राजा भवनाद् बहिर्निःसारणीयः, तद्भवनं कुमुहूर्ते निर्मापितं, येन राज्ञः प्रवेशसमये निश्चयेन तत् पतिष्यति । एतच्छ्रुत्वा सुभद्रश्रावकस्तस्मिन् भवने

नहीं करते हैं। यह पुरोहित जो कुछ करता है वह जैनधर्म के प्रति अपने द्वेष से करता है। हमारा तो यही आचार है कि हमें यह परीपह सहन करना ही चाहिये। आचार्य महाराज की बात सुनकर सेठ अपने घर चला गया। पुनः एक समय आकर सुभद्र श्रावक ने आचार्य महाराज को यह खबर सुनाई कि पुरोहित ने एक नूतन भवन बनवाया है सो आज उसके प्रवेश के उत्सव में उस ने राजा को भोजन के लिये आमंत्रित किया है। मैं चाहता हूँ कि पुरोहित का यह व्यवहार जो उसने मुनिराज के साथ किया है वहाँ जाकर चुपके र राजा को सुनाया जाय। आचार्य महाराज ने सेठ की इस बात पर ध्यान न देकर उसे इस बात से सचेत किया कि-देखो जब राजा पुरोहित के नूतन भवन में प्रवेश करने लगे तो तुम उसी समय उनका हाथ पकड़ कर मकान से बाहर निकाल लेना, क्योंकि वह भवन कुमुहूर्त में बना है, और ज्यों ही राजा उसमें प्रविष्ट होगा त्यों ही वह उस समय गिर पड़ेगा। मरते को बचाना अपना काम है, आचार्य महाराज की बात

करता नहीं. आ पुरोहित ने कांई करे छे ते जैनधर्म तरइना तेना द्वेषने लईने करे छे. अमारो तो अे आचार छे न के, अमारो आ परीपह सहन करवो न लेईअे. आचार्य महाराजनी वात सांलणीने शेठ पोताने बेर आल्या गया. इरीथी अेक वणते आवीने सुभद्रश्रावके आचार्य महाराजने अेवी अणर आपी के, पुरोहिते अेक नवुं मकान बनाव्युं छे. अने आन तेना वास्तु सुहूर्तमां तेछे रानने लोअन भाटे आमंत्रणु आपेल छे. हुं आहुं छुं के, पुरोहितने आ वडेवार अे तेछे मुनिराजनी साथे कथी छे, ते त्या नईने रानने सुपकीदीथी कडेवामां आवे. आ प्रकारनी शेठनी वात उपर ध्यान न आपतां आचार्य महाराजने लेईने कहुं के अे मकान अेवा कुसुहूर्तमां तैयार करवामां आव्युं छे. के ते सुहूर्तने दिवसे न पडी नवानुं छे. भाटे रानने अे समये अेमां हाअल थवा नय ते समये तमे तेमने हाथ पकडीने अडार अेथी लेजे. मरताने अयाववा ते आपछो धर्म छे. आचार्य महाराजनी आ वात सांलणी श्रावक सुभद्र शेठ त्यांथी निकणी पुरोहितना नवा

राज्ञः प्रवेशसमये तद्रक्षार्थं गतः। तत्र भवने राजा यदैव प्रविशति, तदैव स करं धृत्वा वेगेन राजानमाकृष्य भवनाद्भवहिर्निःसारयति, नृपे निःसारिते सत्येव तद्भवनं समूलं निपतितम्। नृपेणोक्तम्—कथमेतद्भवता विदितम्। श्रावकः माह—मम गुरु-देवेन केनचित् कथाप्रसङ्गेन बोधितम्—कुमुहूर्तनिर्मापितं भवनं नृपस्य प्रवेशकाले पतितं भविष्यतीति। इत्युक्त्वा श्रावको नृपतिं निवेदयति—राजन् ! अयं पुरोहितः

सुनकर श्रावक सुभद्र सेठ प्रवेश होने के समय राजा की रक्षा करने के अभिप्राय से उस मकान पर गया। ज्यों ही राजा ने आकर उस भवन के भीतर प्रवेश करना चाहा कि सुभद्र सेठ ने उनका हाथ पकड़ वहाँ से शीघ्र ही राजा को बाहिर की ओर खेंच लिया। राजा के बाहर होते ही वह मकान पूरा का पूरा गिरपड़ा। राजा ने जब परिस्थिति देखी तो उसे बड़ा ही आश्चर्य हुआ। राजा ने हाथ पकड़ कर बाहिर निकालने का कारण पूछा तो सुभद्रसेठ ने सब बात उन्हें स्पष्ट कह सुनाई। राजाने प्रसन्न होकर सुभद्र सेठ से पूछा सुभद्र ! तुम्हें इस बात का पता कैसे पड़ा ? सुभद्र सेठ ने कहा महाराज ! किसी प्रसङ्ग पर आज मेरे गुरु-महाराज ने मुझ से यह बात कही कि कुमुहूर्त में निर्मापित यह भवन नृप के प्रवेश करते समय गिर जायगा। राजा को इस पर बड़ा सन्तोष हुआ। उन्होंने आचार्य महाराज के अतिशय ज्ञान की बहुत प्रशंसा की और वहीं से उन्हें परोक्ष वंदन किया। इतने में ही सुअवसर देख

। मकाने पडोन्त्या अने राजाना आववानी प्रतिक्षा करवा लाग्या. राज्ञे आषी अने मकानमां प्रवेश करवा शङ् कथे अटले राजने पथावीदेवाना अलिप्रा-यथी तेनी प्रतिक्षा करी रडेल सुभद्र शेठे राजने हाथ पकडी आगण वधता अटकावी दीधा अने थोडा पाछा जेथी लीधा. राजाना भडार जेथार्थ जवानी साथेसाथ ज अने आपुंजे मकान कडडुस करतुं जमीनदोस्त जन्थुं. राजने आ परिस्थिति जेध भूज्ज आश्चर्य थयुं. तेहे सुभद्रशेठने तेतुं कारण पूछ्युं त्यारे तेहे सधणी वात राजने कडी संलणावी. राज्ञे प्रसन्न थतां कहुं के, आ वातनी जल्लु कथं रीते थथं ? सुभद्रशेठे जल्लुण्युं के, आज मारा शुरुदेव साथे पतयितमां आ प्रसंगनी वात उपस्थित थतां तेजोश्रीजे कहुं के, पुरोहितना जे मकानने पाथे जेवा सुद्धतमां नाभवामां आव्ये छे के राजने प्रवेश थतांज जे आपुंजे मकान जमीनदोस्त थवातुं. राजने आ वातथी धल्लेज संतोष थथे. जेहे आचार्यमहाराजना अगाध जेवा ज्ञाननी भूज्ज प्रसंशा करी अने त्यांथी ज जेभने परोक्ष वंदन कथुं. आ वधते सुअवसर जेध सुभद्र शेठे

કુમુદ્વર્તે ભવનં નિર્માપ્ય મોજનાર્થં ભવન્તમામન્વિતવાન્, મમ ગુરુદેવં ચાનેન પયા
ગચ્છન્તં દૃષ્ટ્વા ગવાક્ષદેશાવસ્થિતોઽયં પ્રત્યહં તન્મસ્તકોપરિ ધર્મદ્વેષાત્ પાદં નિસ્તિ-
પતિ । एतद्वचनं श्रुत्वा नृपस्तस्य दुष्टभावसंपन्नस्य पुरोहितस्य पादच्छेदरूपं दण्डं
કર્તું સ્વમૃત્યાનાજ્ઞાપયત્ । इयं राजाज्ञानगरे तत्कालमेव प्रमृता, अरुणाचार्येणापि
શ્રુતા । ततः करुणार्द्रचित्तः स मुनिः स्वशिष्येण नृपतिं प्रबोध्य तं पुरोहितमरक्षयत् ।
एवमन्यैरपि मुनिभिः सुधर्मशीलमुनिवत् सत्कारपुरस्कारपरीपहः सोढव्य इति ॥३९॥

કર સુભદ્ર સેઠ ને રાજા કો મુનિ કે પ્રતિ હુણ પુરોહિત કા વ્યવહાર મી
આયોપાન્ત સવ સ્પષ્ટ કર કે સુના દિયા, કહા કિ-હે રાજન્! આપકે
ઇન પુરોહિત ને હસ ભવન કા નિર્માણ કુમુદ્વર્ત મેં કરાયા હૈ ઓર ઉસમેં
પ્રવેશ કે ઉત્સવ પર આપકો મોજન કે લિયે આમંત્રિત કિયા હૈ । મેરે
ગુરુ મહારાજ ઇસ ભવન કી ઘરોલે કે પાસ સે જવ ૨ હોકર નિકલતે
હૈં તવ ૨ યહ ધર્મ કે દ્વેષ સે ઘરોલે મેં ચૈઠ કર “મુનિકે માથે ડપર દોનો
પૈર, મેરે રહે” ઇસ ભાવના સે પૈર પસાર દિયા કરતા હૈ । સુભદ્ર શ્રાવક
કી ઇસ વાત કો સુનકર રાજાને “યહ પુરોહિત દુષ્ટભાવ સંપન્ન હૈ”
યહ જાન લિયા ઓર અપને નૌકરોં કો યહ આદેશ દિયા કિ ઇસકે દોનો
પૈર કાટ ઢાલો । યહ રાજાજ્ઞા નગર મેં વાયુવેગ સે ફૈલ ગયી । અરુણા-
ચાર્ય કો મી યહ વાત માલુમ હુઈ તો ડન્હોં ને અપને શિષ્ય દ્વારા રાજા
કો સમજા વુઝા કર પુરોહિત કો વચા લિયા । ઇસ કથા સે યહી શિક્ષા

પુરોહિતદ્વારા મુનિપ્રત્યે કરાતા અપમાનીત વ્યવહારની વાત વિગતથી રાજા
સમક્ષ રબ્ધ કરી અને કહ્યું કે, હે રાજન્! આપના આ પુરોહિતે આ મકા-
નનું નિર્માણ કુમુદ્વર્તમાં કર્યું અને તેમાં પ્રવેશના ઉત્સવ ઉપર આપને લોબન
માટે આમંત્રણ આપેલ છે. મારા ગુરુમહારાજ આ મકાનના અરૂણાપાસેથી
બ્યારે બ્યારે નિકળે છે ત્યારે ત્યારે પુરોહિત ધર્મના દ્વેષથી અરૂણામાં એસી
એમના માથા ઉપર “મારા બંને પગ રહે” આ ભાવનાથી પગ લાંબા કરી
દે છે. સુભદ્ર શેઠની વાત સાંભળી રાજાએ “આ પુરોહિત દુષ્ટ ભાવનાથી
ભરેલ છે” આ વાત બહુ લીધી, અને પોતાના નોકરોને હુકમ કર્યો કે,
પુરોહિતના બંને પગ કાપી નાખો. આ પ્રમાણેની રાજાની આજ્ઞા વાયુવેગથી
નગરમાં ફેલાઈ ગઈ અને તે અરૂણાચાર્ય મુનિના બહુવામાં આવતા તેઓએ પોતાના
શિષ્ય મારકૃત રાજાને સમજાવી પુરોહિતને બચાવી લીધા. આ કથાથી એ બહુ

अथ विंशतितमं प्रज्ञापरीपहमाह—

मूलम्—से' य नूनं मए पुंवं, कर्माऽणाणफला कंडा ।

जेणोहं नाभिजाणोमि, पुट्टो केणइं कणहुइ ॥ ४० ॥

अहं पच्छा उइज्जंति, कर्माऽणाणफला कडो ।

एवमासांसि अप्पाणं, नच्चा कम्मविवागयं ॥ ४१ ॥

छाया—अथ नूनं मया पूर्वं, कर्माणि अज्ञानफलानि कृतानि ।

येनाहं नाभिजानामि, पृष्टः केनचित् कस्मिंश्चित् ॥ ४० ॥

अथ पश्चाद् उदीयन्ते, कर्माणि अज्ञानफलानि कृतानि ।

एवम् आश्वासय आत्मानं, ज्ञात्वा कर्मविपाककम् ॥ ४१ ॥

टीका—'से य नूनं' इत्यादि, 'अहपच्छा' इत्यादि ।

अथ च नूनं=निश्चयेन, मया पूर्वं=पूर्वकाले—पूर्वभवे इत्यर्थः, अज्ञानफलानि=अज्ञानोत्पादकानि, कर्माणि=ज्ञानावरणीयकर्माणि, कृतानि=धर्माचार्यगुरुश्रुतज्ञान-निन्दाध्ययनवाधादिभिरुपार्जितानि । उक्तञ्च—

मिलती है कि सुधर्मशील मुनि की तरह प्रत्येक मुनि को सत्कारपुरस्कार परीपह सहन करते रहना चाहिये ॥ ३९ ॥

अथ वीसवां प्रज्ञापरीपहको सूत्रकार बतलाते हैं—

'से य नूनं' इत्यादि । 'अह पच्छा' इत्यादि ।

अन्वयार्थ—प्रज्ञापरीपहको जीतनेके लिये साधु विचार करे कि (नूनं-नूनम्) निश्चयसे (मए-मया) मैंने (पुंवं-पूर्वम्) पूर्वभवमें (अणाणफला कम्मा कडा-अज्ञानफलानि कर्माणि कृतानि) धर्माचार्य गुरु महाराज और श्रुतज्ञान की निंदा करने से तथा किस के ध्यान अध्ययन में विघ्न डालनेसे अज्ञानोत्पादक ज्ञानावरणीय आदि कर्मों का उपार्जन किया है ।

शक्य छे के, सुधर्मशील मुनिनी जेभ प्रत्येक मुनिजे सत्कारपुरस्कारपरीपह सहन करता रहेवुं जेधये. ॥ ३९ ॥

इवे वीसवा प्रज्ञापरीपहने सूत्रकार बतावे छे—

'से य नूनं' इत्यादि. 'अह पच्छा' इत्यादि.

अन्वयार्थ—प्रज्ञापरीपहने सुतवा भाटे साधु विचार करे के, नूनं-नूनं निश्चयथी मए-मया में पुंवं-पूर्वं पूर्वभवमां अणाणफला कम्मा कडा-अज्ञान-फलानि-कर्माणि कृतानि धर्माचार्य गुरुमहाराज अने श्रुतज्ञाननी निंदा करवामां तथा डैधनी ध्यान अध्ययनमां विघ्न नाभवानुं, आज्ञानोत्पादक ज्ञानावरणीय

નાણસ્સ નાણિણં ચિય, નિંદા પદ્દોસમચ્છરેહિં ય ।

ઉવધાયણવિગ્ધેહિં, નાણગ્ધં વજ્જણે કમ્મં ॥ ૧ ॥ ”

છાયા-જ્ઞાનસ્ય જ્ઞાનિનાં ચૈવ, નિન્દાપદ્દેપમત્સરૈશ્ચ ।

ઉપધાતનવિઘ્નૈઃ, જ્ઞાનઘ્નં વધ્યતે કમ ॥ ૧ ॥

યેન=યસ્માત્ કારણાત્, કેનચિત્=જિજ્ઞાસુના, કાસ્મિશ્ચિત્=જીવાદિતસ્વ-
વિષયે, પૃષ્ટોઽહં નાભિજાનામિ=અજ્ઞાનવશાત્ પ્રશ્નસ્યોત્તરં કર્તુ ન શક્નોમીત્યર્થઃ ।
પૂર્વોપાર્જિત-જ્ઞાનાવરણીય-કર્મોદયાત્ મયા જ્ઞાનં ન લભ્યતે, અતઃ પ્રશ્નોત્તરં કર્તુ-
મસમર્થો ભવામીતિ ભાવઃ । ઉક્તશ્ચ—

(જેણ-યેન) જિસકે કારણ સે (કેણહ-કેનચિત્) કિસી જિજ્ઞાસુ
કે દ્વારા (કણહુહ-કસ્મિશ્ચિત્) કિસી ખી જીવાદિક તત્ત્વ કે વિષય મેં
(પુટ્ટો-પૃષ્ટઃ) પૂછે જાને પર (અહં) મેં (નાભિજાણામિ-નાભિજાનામિ)
કુછ ખી નહીં જાન સકતા હું, અર્થાત્ અજ્ઞાનવશ ઉસકે પ્રશ્ન કા કુછ
ખી ઉત્તર નહીં દે સકતા હું । કહા ખી હૈ—

“નાણસ્સ નાણિણં ચિય, નિંદા પદ્દોસમચ્છરેહિં ય ।

ઉવધાયણ વિગ્ધેહિં, નાણગ્ધં વજ્જણે કમ્મં ॥ ૧ ॥ ”

જ્ઞાન એવં જ્ઞાનિયોંકી નિંદા કરને સે, ઉનમેં દ્વેષબુદ્ધિ રલ્લને સે, ઉનકે
સાથ મત્સરભાવ રલ્લને સે, ઉનકા ઉપધાત કરને સે અથવા જ્ઞાન કે
સાધનોં મેં અથવા જ્ઞાનિયોં કે જ્ઞાનોપાર્જન મેં વિઘ્ન કરને સે જીવ
જ્ઞાનનાશક કર્મ કા બંધ કરતા હૈ ।

આદિ કર્મોનું ઉપાર્જન કરેલ છે જેણ-યેન એના કારણથી કેણહ-કેનચિત્ કોઈ
જિજ્ઞાસુ દ્વારા કણહુહ-કસ્મિશ્ચિત્ કોઈ પણ જીવાદિક તત્ત્વના વિષયમાં પુટ્ટો-પૃષ્ટઃ
પુછવામાં આવવાથી અહં હું નાભિજાણામિ-નાભિજાનામિ કાંઈ પણ બહુતો નથી
અર્થાત્ અજ્ઞાનવશ એમના પ્રશ્નો કાંઈ પણ ઉત્તર આપી શકતો નથી.
કહું પણ છે કે—

“નાણસ્સ નાણિણં ચિય, નિંદા પદ્દોસમચ્છરેહિં ય ।

ઉવધાયણ વિગ્ધેહિં, નાણગ્ધં વજ્જણે કમ્મં ॥ ”

જ્ઞાન અને જ્ઞાનીયોંની નિંદા કરવાથી, એમનામાં દ્વેષબુદ્ધિ રાખવાથી,
એની સાથે મત્સરભાવ રાખવાથી, એનો ઉપધાત કરવાથી અથવા જ્ઞાનના સાધ-
નોમાં અથવા જ્ઞાનીયોંના જ્ઞાનોપાર્જનમાં વિઘ્ન કરવાથી એવ જ્ઞાનનાશક કર્મોના
બંધ કરે છે.

“सुहासुहाणि कम्माणि, सयं कुव्वंति देहिणो ।
सयमेवोवभुंजन्ति, दुहाणि य सुहाणि य ॥ १ ॥”

छाया—शुभाशुभानि कर्माणि, स्वयं कुर्वन्ति देहिनः ।
स्वयमेवोपभुञ्जते, दुःखानि च सुखानि च ॥ १ ॥ ४० ॥

भावार्थ—साधु के ऊपर सब ही का विश्वास होता है। प्रत्येक व्यक्ति उनसे अपनी र जिज्ञासाका समाधान जानने का अभिलाषी तथा उत्सुक रहता है, इस परिस्थिति में यदि कोई जिज्ञासु पुरुष मुनि के पास आकर जीवादितत्त्वविषयक अपनी शंका की निवृत्ति करना चाहे और वह साधु से इस विषय में प्रश्न करे, और मुनि उसका उत्तर नहीं दे सके तो उस मुनि को चाहिये कि अपनी आत्मा में संक्लिष्ट परिणाम न करे, किन्तु समभाव से इस प्रकार सोचे कि मेरे ज्ञानावरणीयादिक कर्मों का कितना तीव्र उदय है जो ज्ञान के साधन होने पर भी मुझे ज्ञान की प्राप्ति नहीं हुई है। बुद्धि में इस प्रकार की मंदता का कारण मेरे-पूर्व में गुणादिक की निंदा आदि से उपाजित ज्ञानावरणीयादिक कर्म ही हैं। इस में किसी का दोष नहीं है। जैसे कहा भी है—

“सुहासुहाणि कम्माणि, सयं कुव्वंति देहिणो ॥
सयमेवोवभुंजन्ति, दुहाणि य सुहाणि य ॥ १ ॥”

देही—आत्मा—शुभ और अशुभ कर्मों को स्वयं उपाजित करता है और उनके फल सुख दुःखादिक को स्वयं ही भोगता है ॥ ४० ॥

भावार्थ—साधुना उपर दरेकनो विश्वास होय छे, प्रत्येक व्यक्ति पोत-पोतानी लज्ञासातुं समाधान ओमनी पासेथी भेणववना अबिलाषी तथा उत्सुक रहे छे. आ परिस्थितिमां ने कोध लज्ञासु पुरुष मुनिनी पासे आवीं लवादितत्व विषयक पोतानी शंकांनु निवारणु करवा धन्धि अने ते साधुने आ विषयमां प्रश्न करे अने मुनि अने उत्तर न आपी शके तो अ मुनि पोताना आत्मांमां शंकाशिल वृत्ति न लगवा दे परंतु समभावथी अबुं विश्वासे के, भारा ज्ञानावरणीयादिक कर्मोने केटवो तीव्र उदय छे के ने ज्ञानना साधन होवा छतां पणु अने ज्ञाननी प्राप्ति थछ शकी नथी. बुद्धिमां आ प्रकारनी मंदतातुं कारण मे-पूर्वत्वमां शुरु आदिनी निंदा वजेरथी उपाल्त करैल ज्ञानावरणीयादिक कर्मो छे. अमां कोधोने होय नथी. नेम कहुं पणु छे—

“सुहासुहाणि कम्माणि, सयं कुव्वंति देहिणो ।
सयमेवोवभुंजन्ति, दुहाणि य सुहाणि य ॥ १ ॥”

आत्मा शुभ अने अशुभ कर्मोने स्वयं उपाल्त करे छे, अने अने स्वयं सुख दुःखादिकने स्वयं लोगवे छे. ॥ ४० ॥

‘अहं पच्छा’ इति ।

अथ अज्ञानफलानि=अज्ञानोत्पादकानि कर्माणि कृतानि तानि पश्चात्-अवा-
धोत्तरकालम्, ‘उदीयन्ते’=अज्ञानरूपेण अलर्क-मूपिकविषविकारवद् उदितानि
भवन्ति, एवम्=अमुना प्रकारेण कर्मविपाककं=कर्मणः फलं, ज्ञात्वा हे शिष्य ! आ-
त्मानम् आश्वासय=स्वस्थीकुरु, ‘स्वयं कृतानामेव ज्ञानावरणीयकर्मणां कृत्स्नं
फलमेतत्, यदहं न जानामि-प्रश्नोत्तरमिति विज्ञाय स्वस्थो भव, न तु तन्निमि-
त्तकं विपादं कुरु इत्यर्थः । ‘कम्मा’ इति बहुवचनं कर्मवन्धहेतूनां बहुत्वात् ।

अन्वयार्थ- (कडाऽनाणफला कम्मा-कृतानि अज्ञानफलानि कर्माणि)
गुर्वादिकोंकी निंदा आदिसे पूर्व भवमें उपार्जित तथा ज्ञानमें अंतराय डालने
वाले-ज्ञान के निरोधक-ऐसे ज्ञानावरणीयादिक कर्म अपने अबाधाकाल
के बाद (उद्द्वज्जति-उदीयन्ते) पागल कुत्ते अथवा पागल चूहेके विष के
विकार की तरह अज्ञानरूप से उदय में आते हैं । (एवं कम्मविवागयं-
एवं कर्मविपाककम्) इस प्रकार कर्म के फल को (नच्चा-ज्ञात्वा)
जानकर हे शिष्य ! (अप्पाणं आसासि-आत्मानं आश्वासय) तुम
अपनी आत्मा को कुछ नहीं आने पर-दूसरों के प्रश्नों का उत्तर नहीं
दे सकने पर धैर्य बधाओ-इस निमित्त को लेकर विपाद मत करो ।

भावार्थ-प्रज्ञापरीषह को जीतने के लिये सूत्रकार साधुओं के
लिये शिक्षा देते हैं कि जो जैसा करता है उसे फल भी वैसा ही
मिलता है । बबूल का झाड़ बोलने पर कोई उससे आम्रफल प्राप्ति की
आशा करे तो व्यर्थ है । इसी प्रकार पूर्वभव में जिस जीव ने जिन २

अन्वयार्थ-कडाऽनाणफला कम्मा-कृतानि अज्ञानफलानि कर्माणि . पूर्वभवमां
शुरुआदिनी निंदाथी उपात्त तथा ज्ञानमां अंतराय नाभवात्प-ज्ञानना निरोधक-
अथवा ज्ञानावरणीयादिक कर्म पोताना वितेला काण पथी उद्द्वज्जति-उदीयन्ते उडकाया
कुतराना अथवा पकरेला उंदरना विषना विकारनी भाइक अज्ञान रूपथी उदयमां
आवे छे. एवं कम्मविवागयं-एवं कर्मविपाककम् आ प्रकारे कर्मना इणने नच्चा-ज्ञात्वा
नाथी छे शिष्य ! अप्पाणं आसासि-आत्मानं आश्वासय तमे पोताना आत्मांमां
कई न आववाथी थीजाना प्रश्नोने उत्तर आपी शकता नथी अे. नाथीने आ
अधाना निमित्तने लई विपादन करे.

भावार्थ-प्रज्ञापरीषहने उतवा माटे सूत्रकार साधुओ माटे शिक्षा
रूपथी कडे छे के, ने नेवुं करे छे, तेने तेवुं इण भजे छे. कइ
भावणवुं आउ वावीने तेमांथी आंभाना इणनी आशा राखे तो ते व्यर्थ छे.

इदं गाथायुग्मं प्रज्ञाया अपकर्षमाश्रित्य व्याख्यातम् । इदमुपलक्षणं - यदि ज्ञानावरणीयकर्मणां क्षयोपशमात् प्रज्ञाया उत्कर्षः स्यात् तदा तन्निमित्तकं मदं न कुर्यादित्यपि बोध्यमिति । उक्तं हि ।

कारणों द्वारा जिन २ कर्मों का बन्ध किया है वे वे कर्म अवाधाकाल के बाद उस जीव के उदय आते रहते हैं । जब हे आत्मन् ! गुर्वादिक की निंदा करने से, शास्त्रों का अवर्णवाद बोलने से, उपघात से अर्थात् ज्ञानादिक के साधनों का नाश करने से, ज्ञान की अन्तराय देने से तूने तीव्र ज्ञानावरणीयादिक कर्मों का बंध किया है, तो उनका फल भी तुझे वैसा ही भोगना पड़ेगा । इसमें कोई के हाथ की बात नहीं है । जिन ज्ञानावरणीयादिक कर्मों का तूने बंध किया है वे उन उन रूप में ही उदय आवेंगे । अतः यदि तेरे से कोई जीवादिक तत्त्वों के विषय में कुछ पूछता है और तुझे उस विषय का कोई उत्तर ज्ञान में नहीं झलकता है इससे तू आत्मा में हीनता की भावना मत कर, और न खेद ही कर, किन्तु अपने आत्मा को धैर्य बंधा और इस प्रकार समझा कि यह तेरे ही किये हुए कर्म हैं अतः तुझे ही भोगना पड़ेगा । फिर इसमें हर्षविषाद करने की जरूरत क्या है ? । इस प्रकार इस परिणति से आत्मा प्रज्ञापरीपह को बहुत अच्छी तरह सहन कर सकता है ।

आ प्रकारे पूर्वभवमां न्ने लवे न्ने न्ने कारणेन द्वारा न्ने न्ने कर्मोना अंध कथो
 डोय ते ते कर्म अवाधाकाणनी आह ते ते लवने उदयमां आवे छे. आथी
 छे आत्मन् ! शुरु आदिनी निंदा करवाथी, शास्त्रोना अवर्णुवाह भोलवाथी, उप-
 घातथी अर्थात् ज्ञानादिकनां साधनेना नाश करवाथी ज्ञानमां अंतराय नाभवथी,
 ते तीव्र ज्ञानावरणीयादिक कर्मोना अंध कथो छे तो तेनुं क्षण पञ्च तारे तेवुं
 लोगववुं पडशे. तेमां डोयना हाथनी बात नथी. न्ने ज्ञानावरणीय कर्मोना ते
 अंध कथो छे, ते तेवा तेवा रूपमां उदयमां आवशे. आथी न्ने तने डोय लवा-
 दिक तत्वोना विषयमां डोय पुछे छे तो तने न्ने विषयना डोय ज्ञानलयो उत्तर
 नडतो नथी तो तेनाथी तुं पोताना आत्मां हीनतानी भावना अने भेद
 करीश नही. परंतु पोताना आत्मां धैर्य राभ अने न्ने प्रकारे समभव छे,
 आ तारां करेवां कर्म छे. अथी न्ने तारे न्ने लोगववां पडशे. पछी आमां
 डोय विषाद करवानी जरूर न्ने शुं छे ? आ प्रकारे आ परिशुतीथी आत्मा प्रज्ञा
 परीपहने भूषण सारी रीते सहन करी शके छे. गाथां “कम्मा” न्ने अंहु-

पूर्वपुरुषसिंहानां, विज्ञानातिशयसागरानन्त्यम् ।

श्रुत्वा साम्प्रतपुरुषाः, कथं स्वबुद्ध्या मदं यान्ति ॥ १ ॥

यद्वा-इह तन्त्रेणार्थद्वयसंभवः अनेकार्थबोधनेच्छातः सकृदुच्चारणं तन्त्रम् ।
अथ च-तन्त्रन्यायेनार्थद्वयस्य युगपत्संभवः-तन्त्रं च वैर्घ्यप्रसारितास्तन्त्रवः, ततो
यथा-दैर्घ्यप्रसारितमेकं सूत्रमनेकस्य तिरश्चीनस्य तन्तोः-संग्राहि, तथा-यदेकया

गाथा में “ कम्मा ” यह जो ब्रह्मवचनान्त शब्द का प्रयोग किया गया है वह कर्मों के बंध के हेतु अनेक हैं, इस आशय को प्रगट करने के लिये किया है । चालीस और इकतालीसवी गाथा का जो इस प्रकार विवेचन किया गया है वह बुद्धि की मन्दता को लक्ष्य में लेकर किया है । यदि ज्ञानावरणीय कर्मों के क्षयोपशम से प्रज्ञा का उत्कर्ष आत्मा में हो तो उस समय साधु को इस प्रज्ञानिमित्तक मद-अहंकार नहीं करना चाहिये । यह बात भी उपलक्षण से समझ लेनी चाहिये । कहा भी है-

पूर्वपुरुषसिंहानां, विज्ञानातिशयसागरानन्त्यम् ।

श्रुत्वा साम्प्रतपुरुषाः, कथं स्वबुद्ध्या मदं यान्ति ॥ १ ॥

पहिले के श्रेष्ठ पुरुषों के असाधारण विज्ञान की बातों को सुनकर
ऐसा कौन पुरुष होगा जो अपने ज्ञान का मद-अहंकार करेगा । इस-
लिये बुद्धि की प्रकर्षता का भी मद नहीं करना चाहिये । तन्त्र न्याय
से प्रज्ञा के उत्कर्ष अपकर्षरूप दोनों अर्थ भी युगपत् विवक्षित हो
सकते हैं । जैसे एक लंबा फैला हुआ डोरा तिरछे फैले हुए अनेक

પરચનાત્મક શબ્દનો પ્રયોગ કરેલ છે તે કર્મોના બંધના હેતુ અનેક છે તેવો આશય
ખતાવવા માટે જ કરેલ છે. ચાલીસ અને એકતાલીસમી ગાથામાં જે આ પ્રકારે
વિવેચન કરેલ છે તે બુદ્ધિની મંદતાને લક્ષમાં લઈને કરેલ છે. જે કદી જ્ઞાના-
વરણીય કર્મોના ક્ષયોપશમથી પ્રજ્ઞાનો ઉત્કર્ષ આત્મામાં હોય તો તે સમયે સાધુએ
આ પ્રજ્ઞા નિમિત્તક મદ અહંકાર ન કરવો જોઈએ. આ વાત પણ ઉપલ-
ક્ષણથી સમજાવેલી જોઈએ. કહ્યું પણ છે—

पूर्वपुरुषसिंहानां, विज्ञानातिशयसागरानन्त्यम् ।

श्रुत्वा साम्प्रतपुरुषाः, कथं स्वबुद्ध्या मदं यान्ति ॥ १ ॥

પહેલાં શ્રેષ્ઠ પુરુષોની અસાધારણ વિજ્ઞાનની વાતો સાંભળીને એવો કયો
પુરુષ હશે કે જે પોતાના જ્ઞાનનો મદ અહંકાર કરશે ? આથી બુદ્ધિની પ્રકર્ષ-
તાનો પણ મદ ન કરવો જોઈએ.

તંત્ર ન્યાયથી પ્રજ્ઞાનો ઉત્કર્ષ અપકર્ષરૂપ બનને અર્થ પણ યુગપત્ વિવ-
ક્ષિત બની શકે છે. જેમ એક લાંબો ફેલાએલો ઢોરો આડા બવળા

गाथया अनेकार्थस्याभिधानं स तन्त्रन्यायः, तद्विवक्षया प्रज्ञाया उत्कर्षमाश्रित्यापि भगवता गाथाद्वयं कथितम्। उपलक्षणत्वे तु तात्पर्यग्राहकतया प्रमाणान्तरं श्रुतमपेक्षणीयं स्यात्, अतस्तन्त्राश्रयणादिह व्याख्याद्वयं क्रियते। तत्र प्रज्ञाया उत्कर्षपक्षे एवं गाथाद्वयं व्याख्यायते—

प्रज्ञोत्कर्षवता एवं चिन्तनीयम्—अथ नूनं मया पूर्वं कर्माणि=ज्ञानप्रशंसा-ज्ञानिवैयावृत्त्यादिरूपाण्यनुष्ठानानि, ज्ञानफलानि = ज्ञानमिह विमर्शपूर्वको बोधस्तत्फलकानि, कृतानि, येन हेतुना-केनापि=अविवक्षितविशेषेण सर्वेणापीत्यर्थः, कस्मिंश्चित्=यत्र कुत्रापि वस्तुनि विषये पृष्टः अहं, ना=मनुष्यः, विशिष्टमनुष्यत्वमनुभवन् अभिजानामि।

तन्तुओं का चस्त्रादिक में संग्राहक होता है उसी प्रकार एक गाथा द्वारा युगपत् अनेक अर्थों का भी संग्रह होता है, यही तन्त्र न्याय है। इस विवक्षा से इन दोनों गाथाओं द्वारा प्रज्ञा का उत्कर्ष लेकर भी प्रज्ञापरीपह का कथन हो सकता है। इसी अभिप्राय से सूत्रकार ने ये दोनों गाथाएँ कही हैं। बुद्धि की प्रकर्षता को लेकर व्याख्यानइस प्रकार है—

मैंने पूर्वभव में ज्ञानप्रशंसा, ज्ञानियों की वैयावृत्त्य आदिरूप शुभ कर्म किये हैं इसलिये इनका फल मुझे विमर्शपूर्वक बोधरूप में मिला है। इसलिये इस के प्रभाव से मैं जब कोई मुझ से किसी भी विषय की अपनी जिज्ञासा समाधान करने के रूप में उपस्थित करता है उसकी उस जिज्ञासा का यथोचित समाधान कर देता हूँ, इससे उस पूछने वाले को सन्तोष हो जाता है। इसलिये सूत्रकार इकतालीसवीं गाथा द्वारा ऐसे श्रुतशाली-साधु को यह समझाते हैं कि हे साधो!

अनेक ताष्ठावाष्ठांने वस्त्ररूपमां इरेवनार अने छे, ते प्रकारे अेक गाथा द्वारा युगपत् अनेक अर्थोना पष्ण संग्रह थाय छे आ तंत्र न्याय छे आ विवक्षायी आ अने गाथाओ द्वारा प्रज्ञाने उत्कर्ष लधने पष्ण प्रज्ञापरीपहंतुं कथन अनी शके छे, आ अलिप्रायथी लगवान सूत्रकारे आ अने गाथाओ कही छे. बुद्धिनी प्रकर्षता अतावनार व्याख्यान आ प्रकारतुं छे.

में पूर्वलवमां ज्ञान प्रशंसा, ज्ञानियोंनी वैयावृत्ति आदि रूप शुभ कर्म करेले छे. अेतुं इण मने विमर्शपूर्वक बोधरूपमां भजेले छे. आ कश्चे अेना प्रलावथी न्यारे केअं भारी पासे केअं पष्ण विषयनी पोतानी अज्ञासा समाधान करवाना रूपमां उपस्थित करे छे त्यारे हुं अे अज्ञासातुं यथोचित समाधान करी हईं छुं. आथी अे पूछवावाणाने सन्तोष थाय छे, आ माटे सूत्रकार अेकतालीसमी गाथाद्वारा अेवा श्रुतशाली-साधुने अेम समजवे छे के, हे साधो!

तत्र-श्रुतमदो न कर्तव्य इति बोधयितुमाह-‘अहं पच्छा’ इत्यादि । अयं= उत्कर्षभावनानन्तरम्, एवं विभावनीयम्-मया पूर्वभवे कृतानि ज्ञानफलानि कर्माणि पश्चात्=अवाधोत्तरकालम्, इदानीम्, उदीयन्ते-उदितानि भवन्ति, एवं कर्म-विपाककं ज्ञात्वाऽऽत्मानम् आश्वासय-आत्मनि शान्तिं स्थापय, न तु तन्निमित्तकं मदं कुरु । अयं भावः-श्रुतमदो हि ज्ञानावरणीयकर्मणः कारणम्, तच्चावश्यवेधम्, तदुदये च कुतो ज्ञानम्, तस्माच्छ्रुतमदो न कर्तव्यः ।

यतः--“नाणं मयदप्पहरं, मज्जइ जो तेण तस्स को वेज्जो ।

अमियं जस्स विसायइ, तस्स तिगिच्छा कहं किज्जइ” ॥ १ ॥

छाया--ज्ञानं मददर्पहरं, माद्यति यस्तेन तस्य को वैधः ।

अमृतं यस्य विपायते, तस्य चिकित्सा कथं क्रियते ॥ १ ॥

इत्येवं चिन्तनेन शान्तिं प्राप्नुहोति ।

वस्तुतस्तु-गाथाद्वयमिदं युग्मकम् । ‘से’ अथ नूनं=निश्चयेन मया पूर्व=पूर्व भवे-अज्ञानफलानि कर्माणि कृतानि येन कारणेनाहं केनापि जिज्ञासुना कस्मिंश्चित् जीवाजीवादिस्वरूपविषये पृष्ठः सन् नाभिजानामि=मन्दबुद्धित्वाज्जी-

तुमने यदि पूर्वभव में ज्ञान के साधनों का अनुष्ठान करके यदि इस भव में दूसरों की अपेक्षा कुछ विशिष्ट ज्ञान प्राप्त कर लिया है, तो तुम इस ज्ञानरूप श्रुत का मद मत करो, किन्तु अपनी आत्मा में शान्ति-भाव से रहो-आत्मा को समझाते रहो कि कहीं ऐसा न हो जाय कि मद करने से आत्मा ज्ञानावरणीय आदि कर्म का बन्ध करले । इस कर्म के बंध में जब इसका उदय अपनी अवाधाकाल के बाद में आता है तो जीव यथार्थ ज्ञान से रहित हो जाता है, इसलिये हे शिष्य त्वं श्रुत का मद मतकर । तात्पर्य इन दोनों गाथाओं का यह है कि जिस समय आत्मा में प्रज्ञा की हीनता हो तो मुनि को ऐसा

तमे क्वाय पूर्वभवमां ज्ञानना साधनानुं अनुष्ठान करी जे आ भावमां धीननी अपेक्षाये कांठ विशिष्ट ज्ञान प्राप्त करेव छे तो तमे जे ज्ञानरूप श्रुतनो मद न करे। पणु तभारा आत्माभां शान्तिभावथी रहे। आत्माने समभवता रहे। के कथांय जेधुं न धनी नय के, मद करवाथी आत्मा ज्ञानावरणीय आदि कर्मोतुं बंधन करी वे। जे कर्मना बंधमां न्यारे जेनो उदय पोतानी अवाधाकाणनी पछी आवे छे त्यारे एव यथार्थ ज्ञानथी रहित थर्ध नय छे। आ माटे छे शिष्य ! तुं श्रुतनो मद न कर। आ धनने गाथानुं तात्पर्य जे छे के, जे समये आत्माभां प्रज्ञानी हिनता होय त्यारे मुनिजे जेवो विचार न करे जेधे जे

वादिस्वरूपं निलपयितुं न समर्थोऽस्मि । एवम्=अमुना प्रकारेण कर्मविपाकं-पूर्वो-
पार्जित-ज्ञानावरणीयकर्मफलं ज्ञात्वा आत्मानम् आश्वासयेत्युत्तरगाथया सम्बन्धः
अयमर्थः-हे शिष्य ! बुद्धिमान्धविषये विपादमकृत्वा, तपः संयमाराधने प्रवृत्तो भव ।
तपःसंयमाराधनेन हि केवलज्ञानप्राप्तिरपि भवितुमर्हतीति सोत्साहं तत्समाराधने
तत्परो भवेति भावः ।

अथ-प्रज्ञापकर्षे पश्चात्-ऋदाचित्तथाविधज्ञानावरणीयक्षयोपशमानन्तरं ' कम्मा-
णाणफला ' इत्यस्य कर्माणि ज्ञानफलानि इति च्छाया तत्र - ज्ञानफलानि-
जीवाजीवादिस्वरूपनिर्णयजनकानि कर्माणि कृतानि=पूर्वभवोपार्जितानि उदीयन्ते
तदा एवम्=अमुना प्रकारेण कर्मविपाकं ज्ञानावरणीयक्षयोपशमजन्यं प्रज्ञापकर्षरूपं
कर्मफलं ज्ञात्वा हे शिष्य ! आत्मानम् आश्वासय=ज्ञानमदं परित्यज्य स्वस्थीकुरु ।
पूर्वकृतशुभकर्मणा मम ज्ञानावरणीयकर्मणः क्षयोपशमो जातस्तेन सूक्ष्म-सूक्ष्मतर-
सूक्ष्मतममपि जीवादिस्वरूपं सम्यग् जानामि, तथा केनापि पृष्टः सन् तस्मै
सम्यगवबोधयितुं समर्थोऽस्मीति विचारणया प्रज्ञामदं परिहरेत्यर्थः ।

विचार नहीं करना चाहिये कि मैं कुछ नहीं जानता हूँ-मूर्ख हूँ जहाँ
तहाँ मेरा पराभव होता है । इस विचार से आत्मा में परिताप होता
है, इस प्रकार विचार नहीं करना यह प्रज्ञापरीपह है । अथवा
श्रुतज्ञान की विशिष्टता आत्मा में होने पर उस समय उस मुनि को
उसका मद नहीं करना चाहिये कि-मैं विशिष्टज्ञानसंपन्न हूँ, प्रत्येक
व्यक्ति मेरे पास अपनी २ जिज्ञासा का समाधान करने के लिये आते
हैं । प्रत्येक आत्मा को मुझ से कितना लाभ होता रहता है । इस
प्रकार का मद नहीं करना चाहिये । प्रज्ञा का मद करना इस लिये
निषिद्ध है कि यह जो ज्ञान प्राप्त हुआ है वह ज्ञानावरणीयकर्म के
क्षयोपशम से प्राप्त हुआ है । इसका मैं क्यों मद करूँ । इस प्रकार

के, हुं काँई लक्षुतो नथी, मूर्ख हूँ, न्यां त्यां भारो परालव थाय छे. आ
विचारथी आत्माभां परिताप थाय छे भाटे आ प्रकारनो विचार न करवे ते
प्रज्ञापरीपह छे. अथवा श्रुतज्ञाननी विशिष्टता आत्माभां थवाथी ते समये ते
मुनिअे तेना मद न करवे लेधअे के हुं, विशिष्ट ज्ञान संपन्न हूँ. प्रत्येक
व्यक्ति भारी पासे पोतपोतानी जिज्ञासानुं समाधान करवा आवे छे. प्रत्येक
आत्माने भाराथी केटवे लाल थाय छे? आ प्रकारनो मद न करवे लेधअे.
प्रज्ञानो मद करवानो आ भाटे निषेध छे के, जे ज्ञान प्राप्त थयुं छे ते ज्ञाना-
वरणीय कर्मना क्षयोपशमथी प्राप्त थयेल छे. आनो हुं कँई रीते मद करी

अस्य गाथाद्वयस्यायं निष्कर्षः—प्रज्ञाया अपकर्षे 'नाहं किञ्चिज्ज्ञानमि, मूर्खोऽस्मि, यत्र तत्र पराजितो भवामि' इत्येवं परितापो न कर्तव्यः उत्कर्षे भुक्त-मदो न कर्तव्यः । किन्तु कर्मविपाकोऽयमिति ज्ञात्वाऽऽत्मनः स्थिरीकरणेन द्विवि-धोऽपि प्रज्ञापरीपहः सोढव्यः ।

अत्र प्रज्ञापकर्षे दृष्टान्तः प्रदर्शयते—

पुष्पदन्ताचार्यः शिष्यपरिवारेण सह चम्पानगरीं समवसृतः । तेषु शिष्येषु भद्रमतिनामकः शिष्योऽतीवमन्दमतिरासीत् । स आवश्यकसमाप्त्यनन्तरं दश-वैकालिकसूत्राभ्यासार्थं प्रवृत्तः, परन्तु तदा तस्य प्रबलज्ञानावरणीयान्तरायकर्मो-दयो जातस्तेनैकमप्यक्षरं न स्मरति, ततोऽसौ चिन्तयति—अहमस्मि पूर्वधराचार्यस्य शिष्यः, आचार्यो वात्सल्येन मामध्यापयति, अन्ये मुनयश्चापि प्रेम्णा मामस्मरं

आत्मा को अपने स्वभाव में स्थिर करते हुए प्रज्ञा के प्रकर्ष को सहन करना यह भी प्रज्ञापरीपह है । इस तरह प्रज्ञा के उत्कर्ष और अप-कर्ष के भेद से यह परीपह दो प्रकार का हो जाता है । यह दोनों प्रकार का परीपह सहन करना मुनि के लिये आवश्यक है ।

प्रज्ञा के अपकर्ष में दृष्टान्त—किसी समय पुष्पदन्ताचार्य शिष्य-परिवार के साथ चम्पानगरी में आये । इनकी इस शिष्यमंडली में भद्रमति नाम का एक शिष्य अतीव मंदमति था । एक दिन की बात है कि उसने आवश्यक की समाप्ति के बाद दशवैकालिकसूत्र का अभ्यास करना प्रारंभ किया । परन्तु उस समय उसके प्रबल ज्ञाना-वरणीयकर्म का उदय होने से एक भी अक्षर उसको याद नहीं होता । इसने विचार किया कि पूर्वधर आचार्य का मैं शिष्य हूँ वात्सल्यभाव

शुद्ध ? या प्रकारे आत्माने पोताना स्वभावमां स्थिर करीने प्रज्ञाने प्रकर्ष सहन करवे ते पणु प्रज्ञापरीपह छे, आवी रीते प्रज्ञाने उत्कर्ष अने अप-कर्षना लेदधी या परीपह छे प्रकारेने अने छे. या अने प्रकारेने परीपह सहन करवा मुनिने भाटे आवश्यक छे. प्रज्ञाने अपकर्षतुं दृष्टान्त—

कोई एक समये पुष्पदन्ताचार्य शिष्यपरिवार साथे चम्पानगरीमां आया. या शिष्य मंडलीमां भद्रमति नामने एक शिष्य धरुा भद्रमती हुतो. एक द्विषनी वात छे के, तेरु आवश्यकनी समाप्ति याद दशवैकालिक सूत्रने अभ्यास करवे शर्द्ध करी. परंतु ते समये तेने प्रणज ज्ञानावरणीय कर्मने उदय थवाधी एक पणु अक्षर याद रहेतो नहीं. तेरु विचार करी के, हुं पूर्वधर आचा-र्यने शिष्य छुं, वात्सल्यभावधी तेरु अने शास्त्राध्ययन करावे छे. थी निष्पे

बोधयति, तथापि मम तत् स्मृतिपथं नायाति, अत्र कश्चित् मुनिः सकृदेव श्रुत्वा धारयति, कश्चिद् द्विवारं, कश्चित् त्रिवारम् ।

केनचित्-शतं शतं गाथा प्रत्यहमभ्यस्ताः, केनचित् द्वे द्वे शते । कश्चिदेक-पूर्वधरः, कश्चिद् द्विपूर्वधरो यावच्चतुर्दशपूर्वधरः संजातः, परन्तु महानिष्ठुरोऽतीव निर्बुद्धिरहमस्मि, शतशोऽभ्यासे कृतेऽपि धारणा न भवति । मम पूर्वजन्मोपाजितं ज्ञानावरणीयं कर्म, तथा ज्ञानान्तरायरूपं कर्म तीव्रतया संप्रत्युदयावस्थां प्राप्तम्,

से वे मुझे पढ़ाते हैं, अन्य मुनि भी मुझ पर विशेष अनुग्रह रखते हैं, वे भी समय २ पर मुझे बचवाते हैं-तो भी मुझ को याद नहीं होता । हमारे में कोई तो मुनिराज ऐसे हैं जो एक बार भी सुनकर याद कर लेते हैं, कोई २ ऐसे हैं जिन्हें दो बार कहने से याद हो जाता है । कोई २ ऐसे हैं जो तीन बार सुनकर विषय को अच्छी तरह याद कर लेते हैं । कितने ऐसे हैं जो एक ही दिन में सौ-सौ १००-१०० गाथाएँ याद कर लेते हैं । कोई २ ऐसे हैं जो दो सौ २००-दो सौ २०० गाथाएँ तक कंठस्थ कर लेते हैं । कोई एक पूर्वधर हैं । कोई दो पूर्वधर है । कोई तीन, कोई चार, कोई पांच, कोई छह, कोई सात और कोई आठ आदि से लेकर चौदह पूर्वतक के पाठी हैं, किन्तु इन सब में एक में ही ऐसा मन्दबुद्धि हूँ जिसको कुछ नहीं आता है । बुद्धिहीन यज्ञा हूँ । सौ बार याद करने पर भी धारणा होती ही नहीं है । क्या करूँ पूर्वोपाजित ज्ञानावरणीयकर्म का ही इस समय तीव्र उदय

पृष्ठ आरा उपर विशेष लाव राजे छे अपने समय समय उपर तेयो मने भताये छे, तो पृष्ठ मने याद रहैतु नथी. आभाराभां डेटलाक मुनिराज भेवा छे के, तेयो अेकवार सांभणीने तेने कंठस्थ करी ले छे, कोर्ष कोर्ष भेवा छे के, तेमने जे वभत डडेवाथी याद थर्ष नय छे, कोर्ष कोर्ष त्रषु वार सांभ-ज्याथी विषयने साश्री रीते याद करी ले छे. डेटलाक भेवा पृष्ठ छे के जे अेक जे द्विवसभां १००-१०० (सौ-सौ) गाथाभ्यो याद करी ले छे. कोर्ष कोर्ष २००-२०० (भसो-भसो) गाथाभ्यो कंठस्थ करी ले छे. कोर्ष कोर्ष पूर्वधर छे, कोर्ष जे पूर्वधर छे, कोर्ष त्रषु, कोर्ष चार, कोर्ष पांच, कोर्ष छ, कोर्ष सात, कोर्ष आठ आदिथी लधने चौद पूर्व सुधीना पाठी छे आ भधा वर्ये हुँ अेकज् अेवा मंढबुद्धिने छु के मने कोर्ष पृष्ठ आवडतु नथी. हुँ बुद्धिदिने भनेवे छु सो वभत याद करवा छताये अहषु करी शकतो नथी. शुं करे ? पूर्वोपाजित ज्ञाना-वरणीय कर्म आ समये तीव्र उदयभां आवेले छे. अेना ज आ प्रताप छे.

अस्य गाथाद्वयस्यायं निष्कर्षः—प्रज्ञाया अपकर्षं 'नाहं किञ्चिज्ज्ञानामि, मूर्खोऽस्मि, यत्र तत्र पराजितो भवामि' इत्येवं परितापो न कर्तव्यः उत्कर्षे भुक्तमदो न कर्तव्यः । किन्तु कर्मविपाकोऽयमिति ज्ञात्वाऽऽत्मनः स्थिरीकरणेन द्विविधोऽपि प्रज्ञापरीपहः सोढव्यः ।

अत्र प्रज्ञापकर्षे दृष्टान्तः प्रदर्शयते—

पुष्पदन्ताचार्यः शिष्यपरिवारेण सह चम्पानगर्यां समवसतः । तेषु शिष्येषु भद्रमतिनामकः शिष्योऽतीवमन्दमतिरासीत् । स आवश्यकतमाप्यनन्तरं दशवैकालिकसूत्राभ्यासार्थं प्रवृत्तः, परन्तु तदा तस्य प्रबलज्ञानावरणीयान्तरायकर्मोदयो जातस्तेनैकमप्यक्षरं न स्मरति, ततोऽसौ चिन्तयति—अहमस्मि पूर्वधराचार्यस्य शिष्यः, आचार्यो वात्सल्येन मामध्यापयति, अन्ये मुनयश्चापि प्रेम्णा मामस्मरं

आत्मा को अपने स्वभाव में स्थिर करते हुए प्रज्ञा के प्रकर्ष को सहन करना यह भी प्रज्ञापरीपह है । इस तरह प्रज्ञा के उत्कर्ष और अपकर्ष के भेद से यह परीपह दो प्रकार का हो जाता है । यह दोनों प्रकार का परीपह सहन करना मुनि के लिये आवश्यक है ।

प्रज्ञा के अपकर्ष में दृष्टान्त—किसी समय पुष्पदन्ताचार्य शिष्यपरिवार के साथ चंपानगरी में आये । इनकी इस शिष्यमंडली में भद्रमति नाम का एक शिष्य अतीव मंदमति था । एक दिन की बात है कि उसने आवश्यक की समाप्ति के बाद दशवैकालिकसूत्र का अभ्यास करना प्रारंभ किया । परन्तु उस समय उसके प्रबल ज्ञानावरणीयकर्म का उदय होने से एक भी अक्षर उसको याद नहीं होता । इसने विचार किया कि पूर्वधर आचार्य का मैं शिष्य हूँ वात्सल्यभाष

शकुं ? या प्रकारे आत्माने पोताना स्वभावमां स्थिर करीने प्रज्ञाने प्रकर्षं सहन करवा ते पणु प्रज्ञापरीपह छे, आवी रीते प्रज्ञाने उत्कर्षं अने अपकर्षना लेदथी या परीपह के प्रकारने अने छे. या अने प्रकारना परीपह सहन करवा मुनिने माटे आवश्यक छे. प्रज्ञाना अपकर्षं तुं दष्टान्त—

कोण ओक सभये पुष्पदन्ताचार्य शिष्यपरिवार साथे चंपानगरीमां आव्यां. या शिष्य मंडलीमां भद्रमति नामने ओक शिष्य धरो मंदमती हुंते. ओक द्विंसनी वात छे के, तेणे आवश्यकनी समाप्ति याद दशवैकालिक सूत्रने अभ्यास करवा शकुं कथी. परंतु ते सभये तेने प्रथम ज्ञानावरणीय कर्मने उदय थवाथी ओक पणु अक्षर याद रहेतो नही. तेणे विचार कथी के, हुं पूर्वधर आचार्यने शिष्य छुं, वात्सल्यभावथी; तेणे अने शास्त्राध्ययन करावे छे. पीण मुनिने

प्रज्ञाप्रकर्षे दृष्टान्तः प्रदर्शयते—

एकदा—कालकाचार्यः प्रमादवतः स्वशिष्यानुज्जयिन्यां विहाय धारावासनगरे स्वशिष्यस्य सागरचन्द्रमुनेः समीपे समागतः । सागरचन्द्रस्तं सामान्यसाधुबुद्ध्या जानाति कालकाचार्योऽपि न किञ्चित् परिचयं ददाति ।

अथाऽन्यदा सागरचन्द्रमुनिनाऽऽगमनिर्णीततत्त्वस्वरूपव्याख्यानं कृते सति लोकास्तं प्रशंसन्ति, तदा सागरचन्द्रमुनिः कालकाचार्यं प्रति प्राह—मद्व्याख्यानं

सकेगा, इस गाथा को तो याद करके ही छोड़ने का भाव है । इस प्रकार निश्चय करके प्रज्ञाप्रकर्षकरूप परीपह को सहन करते हुए उस भद्रमुनि ने शुभाध्यवसायजन्य प्रशस्त ध्यान से क्षपकश्रेणी को अरोहण कर केवलज्ञान को प्राप्त किया ।

प्रज्ञा के प्रकर्ष में दृष्टान्त इस प्रकार है—एक समय कालकाचार्य प्रमादशील अपने शिष्योंको उज्जयिनी नगरीमें छोड़कर धारावासनगर में स्वशिष्य सागरचंद्रमुनि के पास आ गये । सागरचंद्रशिष्यने उनके साथ सामान्य साधुके जैसा ही व्यवहार किया, गुरु जैसा नहीं । कालकाचार्यने भी इस बात पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया और अपना परिचय भी नहीं दिया । एक दिन की बात है कि जब सागरचंद्रमुनि ने आगमनिर्णीत तत्त्वों के स्वरूप को समझाते हुए व्याख्यान दिया तो सुनकर लोगों को अपार आनंद आया,—सबने प्रवचन की मुक्तकंठ से प्रशंसा की । सागरचंद्रमुनि ने अपरिचित गुरु के समीप आकर कहा—आपने

याद किये व छुटके, तेवा भनोलाव छे. आ प्रकारने निश्चय करीने प्रज्ञाप्रकर्षपरीपहने सहन करतां करतां ते भद्रमुनिछे शुभ अध्यवसाय अन्य प्रशस्त ध्यानधी क्षपकश्रेणी उपर यही केवणज्ञान प्राप्त कथुं.

प्रज्ञाना प्रदर्शनां दृष्टान्त आ प्रकारनुं छे—

एक समय कालकाचार्य प्रमादशील पोताना शिष्येने उज्जयिनी नगरीमां भूकीने धारावास नगरमां स्वशिष्य सागरचंद्र मुनिनी पास आल्या. सागरचंद्र शिष्ये तेमनी साथे सामान्य साधु जेवो वडेवार कथी, गुरु शिष्य जेवो नडी. कालकाचार्ये आ वात उपर कांठ ध्यान न आभ्युं, अने पोतानो परिचय पधु न आये. एक दिवसनी वात छे के, न्यारे सागरचंद्र मुनिछे आगम निर्णीत तत्त्वाना स्वरूपने समभववानुं व्याख्यान आभ्युं ते सांभलीने बोडोने अपार आनंद थयो. सधनाछे प्रवचननी मुक्तकंठे प्रशंसा करी. सागरचंद्र मुनिछे अपरिचित गुरुनी समीप आवीने कथुं. आये आज भाई तात्विक प्रवचन

तस्मान्मया प्रज्ञाया असद्भावरूपोऽयं परीपहः सोढव्यः, न तु कस्मिंश्चित् ईर्ष्या द्वेषो वा करणीयः, एवं विचिन्त्य प्रत्यहं पठति, पुनः पुनरभ्यस्यति च, परं तु धारणा न भवति, 'धम्मो मंगलमुक्किट्ठ' इति गाथा द्वादशवर्षाणि अभ्यस्ता, परं तु तस्या एकस्या अपि गाथायाः स्मृतिस्त्वस्य नाभूत्, अभ्यासकाले धारितेव सा तस्य भवति, परं त्वल्पकाल एव पुनस्तां विस्मरति । तदाऽसौ पुनरध्यवस्यति-पुनरपि द्वादशवर्षाणि कालमभ्यासार्थं यापयिष्यामि, येन केनापि प्रकारेण गाथामेतां कण्ठस्थीकरिष्याम्येव । इत्येवं निश्चित्य प्रज्ञाऽपकर्षपरिपहं सहमानः भुमाध्यवसायेन प्रशस्तध्यानेन क्षपकश्रेणिमारुह्य स भद्रमुनिः केवलज्ञानं प्राप्तवान् ।

हो रहा है, उन्हीं का यह काम है, अतः प्रज्ञा का असद्भावरूप यह परीपह मुझे शांति के साथ सहन करना चाहिये, इसी में मेरा कल्याण है, किसी के साथ ईर्ष्या या द्वेष करने से कोई लाभ नहीं । इस प्रकार भद्रमति मुनि बार २ विचार करता और अपने पूर्वोपाजितकर्मों की निन्दा करता था, परन्तु उसने अपना पढ़ना और याद करना बंद नहीं किया । अकेले "धम्मो मंगलमुक्किट्ठ" इस गाथा को ही उसने लगातार चारह वर्षतक याद किया-रटा, पर तौ भी उस को यह गाथा याद नहीं हुई । जिस समय यह याद करने बैठता उस समय तो यह याद हो जाती पर ज्यों ही यह याद करना बंद कर देता अथवा किया करने में उपयोग लगाता तो शीघ्र ही उस गाथा को भूल जाता था । यह फिर भी उसको याद करना और पढ़ना नहीं छोड़ता और विचार करता कि यदि यह गाथा इन चारह १२ वर्षों में कंठस्थ नहीं हुई तो अब आगे के १२ वर्षों में कंठस्थ हो जायेगी, क्या चिंता जैसे भी हो

आधी प्रज्ञानो आ असद्भावरूप परीपह भारे शांतिथी सहन करवे ओछ ओ. तेमां न भारे कल्याण छे. कोछनी सामे धर्षा अथवा द्वेष करवाथी कोछ लाभ नथी. आ प्रकारे भद्रमति मुनि बारवार विचार करता अने पोताना पूर्वोपाजित कर्मोनी निन्दा करता. पण पोताना पडन-पाठन आदिने तेणु अंध न करी. "धम्मो मङ्गलमुक्किट्ठ" ओ ओक गाथाने ओकलां तेणु बार वर्ष सुधी याद करी गोण्युं छतां पणु तेने ओ गाथा याद न थध. ओ समय ते याद करवा भेसता तो ते वधते याद रही नती पणु ओ पछी याद करवानुं अंध करी कियां सुधातां ते गाथा भूलाछ नती. छतां पणु ते ओने याद करवानुं छोडता नही. अने विचार करता के, आ बारवर्षमां याद न थध तो आवता बारवर्षमां न्दर याद थध न्दरे. चिंता शा भारे करवी न्दछओ. ओ रीते अनशे ते रीते प आथाने

सहितः कालकाचार्य आगच्छति इति बुद्ध्या सागरचन्द्रमुनिस्त्रिंशत्वांगच्छतां कालका-
 चार्यशिष्याणां समुखे समागतः । स तत्र परितो विलोक्याचार्यमदृष्ट्वा; तान्
 समागतान् मुनीन् पृच्छति—भो मुनयः ! क्व वर्तन्ते पूज्यचरणाः, सागरचन्द्रमुने-
 रेतद्वचनं निशम्य हताशाः सर्वे मुनयः साश्रुनेत्राः सगद्गदं प्रोक्तवन्तः—हतभाग्या-
 नस्मान् परित्यज्य गुरुचरणाः क्व गता इति वयं न विद्मः, भवता ज्ञायते किम् ? ।
 सागरचन्द्रमुनिनोक्तम्—तं न विद्मो वयम्, किं तु एकः कोऽपि बृद्धः संप्रति वर्तते
 उपाश्रये । ततः सर्वे गुरुभक्त्युद्रेकात् तद्विरहखिन्ना उपाश्रये आगताः । सागरमुनि-
 नाऽङ्कुल्या निर्देशेन प्रदर्श्य कथितम्—अयमागन्तुको महानुभावः । शिष्यास्तदैव

घल दिये । सागरचंद्रमुनि को जब पता चला कि सशिष्य गुरु महा-
 राज कालकाचार्य विहार करते हुए यहां आरहे हैं तो वे उनका
 स्वागत करने के लिये सामने गये । वहां उन मुनियों में गुरु महाराज
 को नहीं देखा तब उसने उन अपने गुरुभाईओं से पूछा कि—पूज्य
 गुरु महाराज तो दिखते नहीं हैं कहां वे इस समय कहां हैं । तब
 मुनियों ने सागरचंद्रमुनि के वचन सुनकर हताशा एवं आंसू डालते
 हुए गद्गद कंठ से बोले हतभाग्य हमलोगों को छोड़कर गुरु महाराज
 कहां चले गये हैं यह हम नहीं जानते हैं । कहां आप को मालूम है
 क्या ? सागरचंद्रमुनि ने कहा उन्हें तो हम जानते नहीं हैं किन्तु एक
 कोई बृद्ध महात्मा इस समय उपाश्रय में अवश्य ठहरे हुए हैं ।
 सागरचंद्रमुनि की इस बात को सुनकर समस्त शिष्य जो गुरु महा-
 राज के विरह से खेदखिन्न बने हुए थे गुरुभक्ति के उद्रेक से प्रेरित
 होकर उपाश्रय में पहुँचे । सागरचंद्रमुनि ने अंगुली के इशारे से

करवा लाया. सागरचंद्र मुनिने जो अंगर भज्या के, गुरुमहाराज कालकाचार्य
 शिष्यो साथे विहार करता करता अडी पधारे छे त्यारे ते तेभनु स्वागत
 करवा साथे गया. त्यां जे मुनिजोमां गुरुमहाराजने न जेथो त्यारे तेणे पोतीना
 जे गुरुभाईजोने पूछ्युं के पूज्य गुरुमहाराज तो देभाता नथी कडे, ते ज्यो
 समेथे कथां छे ? सागरचंद्र मुनिनां ज्यो वचन सांखणीतां ते शिष्यो इतांश
 भनी गया अने आंसुसरी आपे गइगइ कंठथी भोल्या, इतभागी जेभो
 अधाने छोडीने गुरुमहाराज कथां यात्या गया छे जे जेभे नखुता नथी. कडे
 कडे आपने अंगर छे ? सागरचंद्र मुनिजे कहुं, जेभेने हुं आणभतो नथी
 परंतु जेक बृद्ध महात्मा ज्यो वधते उपाश्रयमां रोकायेला छे. सागरचंद्रनी
 ज्यो वाते सांखणी सधणा शिष्यो जे गुरुमहाराजना विरहथी जेदभिन्न जेभेदे
 डता; ते सधणा गुरुभक्तिना लोवथी प्रेरित भनी उपाश्रयमां पडेज्या. सागर-

श्रुतं भवद्भिः, कीदृशं तत्, ? तेनोक्तम्-शोभनम्; कालकाचार्येण सह तस्य तर्क-
माश्रित्य वादः प्रवृत्तः । सागरचन्द्रमुनिस्तस्य तुल्यतया प्रत्युत्तरं कर्तुमसमर्थो जात-
स्ततोऽतीव चमत्कारं स प्राप्तवान् ।

इतश्च कालकाचार्यस्य शिष्याः स्वगुरुपरित्यक्ताश्चतुर्विधसंघेस्तिरस्कारं प्राप्य;
लज्जिताः सन्तः स्वगुरुं गवेषयन्ति । ते ग्रामानुग्रामं विहरन्तः कालकाचार्यवार्ता
प्रतिग्रामं प्रतिनगरं प्रतिस्थलं पृच्छन्तः क्रमेण धारावासनगरं समागताः । शिष्य-

आज मेरा तात्त्विक प्रवचन तो सुना है ? वह कैसा हुआ । कालका-
चार्य ने कहा अच्छा हुआ, बातचीत के सिलसिले में ही गुरु शिष्य का
तर्कशास्त्र पर परस्पर में वादविवाद छिड़ गया । सागरचन्द्रमुनि को
यह पता नहीं था कि ये मेरे गुरु महाराज कालकाचार्य हैं । सागरचन्द्र
मुनि कालकाचार्य को तर्कणाओं का प्रत्युत्तर नहीं दे सका अतः वह
कालकाचार्य के अगाध ज्ञान से विशेष प्रभावित हुआ ।

उधर से जब अपने शिष्यों को उज्जयिनी में छोड़कर कालकाचार्य
आगये तो उन शिष्यों का वहाँ के चतुर्विधसंघने बड़ा ही तिरस्कार
किया । वे सबके सब लज्जित होने लगे । सबने विचार किया कि
गुरु महाराज का पता लगाना चाहिये कि वे कहाँ पधारें हैं । विचार
निश्चित कर सबने वहाँ से गुरु महाराज की गवेषणा करने के लिये
विहार कर दिया । ग्रामानुग्राम विचरते हुए उन्होंने प्रत्येक जगह में,
प्रत्येक ग्राम में, प्रत्येक शहर में कालकाचार्य का पता लगाया तथा
उनकी खबर भी पूछी । पूछते-ये सब के सब धारावास नगर की ओर

सांख्यिक ? ते केम इतु ? कालकाचार्ये कथुं; साङ्ग इतुः वातचीतनी अर्थानां
अं गुरु शिष्येने तर्कशास्त्रे उपर परस्परमां वादविवादं यथैः सागरचन्द्रमुनिने
अे ज्याल न इतो के आ भारी गुरुभंडारान् कालकाचार्ये छे. सागरचन्द्र मुनि
कालकाचार्यनी तर्क धाराआना प्रत्युत्तर आपी शंका नही; आधी ते कालका-
चार्यना अगाध ज्ञानधी भूष प्रभावित भनी गया.

आ तरङ्ग उज्जयिनीमां रहेला ते शिष्येना त्यांना चतुर्विध संघे धल्लु
तिरस्कार कथे. ते सधणा आधी भूषण शरमाया. अने पधाअे भणी अे विचार
कथे के, गुरुभंडारान्ने पत्तो भेजववे लेछेअे के तेअे कथां विचरे छे; विचार
नछी करी अे शिष्येअे गुरुभंडारान्नी तथास माटे विचार कथे. आभा-
नुग्राम विचरखु करतां तेभल्ले प्रत्येक जग्याअे, प्रत्येक ग्राममां, प्रत्येक
शहरमां, कालकाचार्ये भंडारान्नी पृच्छा करी; अने तेभनी खबर पूछी.
पूछतां पूछतां पभर भणी जतां ते सधणा धारावास नगर विहार

‘निरद्वगं’ इत्यादि ।

निरर्थकम्=व्यर्थम् मि=अहं मैथुनात्=कामसुखाद् विरतः=निवृत्तः। प्राणातिपा-
तादिविरमणं विहाय यन्मैथुनमात्रोपादानं तत्तस्य दुस्त्यजत्वबोधनार्थम्। दुस्त्यज-
मैथुनात् प्रतिनिवर्तनेनाहं दुष्करं कार्यं व्यर्थमेव कृतवानिति भावः। तथा-निरर्थकं
सुसंवृतः = इन्द्रियनोइन्द्रियव्यापारनिरोधेन सुष्ठुसंवरयुक्तः । योऽहं कल्याणं=
शुभं, पापकम्=अशुभं, धर्मं=वस्तुस्वभावं साक्षात्=परिस्फुटं यथा स्यात् तथा, ना-
भिजानामि=अवध्यादिज्ञानाभावेन प्रत्यक्षतया सर्वथा न जानामीत्यर्थः। इति
भिक्षुर्न चिन्तयेत् । ‘इह भिक्षू न चिंतए’ इत्युत्तरगाथा(४४)स्थेन सह सम्बन्धः ।

मतिश्रुतरूप परोक्षज्ञान को आश्रित कर प्रज्ञापरीपह का सूत्रकारने
यह वर्णन किया है। अब अवधि आदि रूप जो प्रत्यक्ष ज्ञान हैं
उनके अभावरूप इक्कीसवां अज्ञानपरीपह का वर्णन किया जाता है—

‘निरद्वगंमि’ इत्यादि ।

अन्वयार्थ—(निरद्वगंमि मेहुणाओ विरओ-निरर्थकमहं मैथुनात्
विरतः) व्यर्थ ही मैं कामसुख से विरक्त हुआ हूँ। (सुसंवृतो-सुसं-
वृतः) व्यर्थ ही मैंने इन्द्रियों एवं मन को अपने अभिलषित विषयों से
हटाकर सुसंवृत किया है। (जो-यः) जो मैं अभी तक भी (कल्याणं पावगं
धम्मं सक्खं नाभिजाणामि-कल्याणं पापकं धम्मं साक्षात् नाभिजानामि)
शुभ तथा अशुभ वस्तुस्वभावरूप धर्म को अवधि आदि प्रत्यक्ष
ज्ञानों के अभाव में साक्षात्-स्पष्टरूप से नहीं जानता हूँ। इस प्रकार
भिक्षु विचार न करे। “इह भिक्षू न चिंतए” यह आगे गाथा
चौवालीस ४४वीं में कहा गया वाक्य यहाँ योजित कर लेना चाहिये ।

मतिश्रुत रूप परोक्षज्ञानने आश्रित करी प्रज्ञापरीपहनुं सूत्रकारे आ
वर्णन करेले छे. हुये अवधि आदि रूप जे प्रत्यक्षज्ञान छे तेना अभाव रूप
ओकवीसमा अज्ञानपरीपहनुं वर्णन करवामां आवे छे—‘निरद्वगंमि’ इत्यादि.

अन्वयार्थ—निरद्वगंमि मेहुणाओ विरओ-निरर्थकमहं मैथुनात् विरतः कामसुखने
छोडीने हुं न कामे विरक्त भन्थे छुं सुसंवृतो-सुसंवृतः इन्द्रियो अने मनने तेना
अभिलषित विषयोधी हुटावीने मे व्यर्थ सुसंवृत करेले छे, जे आज सुधी पछु
हुं कल्याणं पावगं धम्मं सक्खं नाभिजाणामि-कल्याणं पापकं धम्मं साक्षात् नाभि-
जानामि शुभ तथा अशुभ वस्तु स्वभाव रूप धर्मने अवधि आदि प्रत्यक्ष ज्ञानना
अभावधी साक्षात्-स्पष्ट रूपधी ज्ञाछुतो नथी. आ प्रकारने विचार भिक्षु न
करे इह भिक्षू न चिंतए आ आगण अताववामां आवेले ४४ भी गाथांनुं

દ્વષ્ટતુષ્ટાઃ સસંભ્રમં હર્ષવશવિસર્પજ્વદયાઃ, ' હમેણ્યમમ ગુરવઃ ' ઇતિ વન્દિતવન્તઃ । સાગરચન્દ્રમુનિસ્તદા કાલકાચાર્યે પરિચિતે પથ્થાત્તાપં કુર્વન્ વદતિ-ભગવન્ ! મયા શ્રુતનિધીનાં તન્નભવતાં ભવતામાશાતના કૃતા, ક્ષમસ્વ ।

કાલકાચાર્યેણોક્તમ્—હે વત્સ ! શ્રુતમદો ન કર્તવ્યઃ । એવમન્યૈરપિ કાલકા-
ચાર્યવત્ પ્રજ્ઞાપ્રકર્ષે મદાકરણેન પ્રજ્ઞાપરીપહઃ સોઢ્યવ્યઃ ॥૪૧॥

મતિશ્રુતરૂપપરોક્ષજ્ઞાનમાશ્રિત્ય પ્રજ્ઞાપરીપહો વર્ગિતઃ । અધેદાનીમવચ્યાદિરૂપં
પ્રત્યક્ષજ્ઞાનમાશ્રિત્ય તદભાવરૂપ એકવિંશતિતમોઽજ્ઞાનપરીપહઃ પ્રોચ્યતે—

મૂલમ્—નિરંદ્રગં મિં વિરંઓ, મેહુળાંઓ સુસંવુંડો ।

જો સર્વંસ્વં નૌભિજાણોમિ, ધર્મં કલ્હાણ પાવગં ॥૪૨॥

છાયા—નિરર્થકમ્ અહં ચિરતઃ, મૈથુનાત્ સુસંવૃતઃ ।

યઃ સાક્ષાત્ નાભિજાનામિ, ધર્મ કલ્યાણં પાપકમ્ ॥ ૪૨ ॥

ચતલાકર કહા કિ દેસ્વો યે હૈં વે આગન્તુક મહાનુભાવ । વે શિષ્ય
સવ કે સવ ડસી સમય અપાર હર્ષ સે ઉત્ફુલ્લહૃદય હોકર દ્વષ્ટ તુષ્ટ
હોતે હુણ વડે હી આદર સે “ યહી હૈં હમારે ગુરુ મહારાજ ” કહ કર
ડનકે ચરણોં મેં ગિર કર વંદના કરને લગે । સાગરચંદ્રમુનિ ડસ
સમય કાલકાચાર્ય કે પરિચિત હોને પર પથ્થાત્તાપ કરતા હુઆ ડનસે
વોલા ભગવન્ ! શ્રુતનિધિ પૂજ્ય આપકી મેરે દ્વારા આશાતના હુઈ હૈં,
અતઃ મેં ડસકી ક્ષમા ચાહતા હૂં, આપ ક્ષમા કરેં । કાલકાચાર્ય ને કહાં
વત્સ ! શ્રુતજ્ઞાન કા મદ નહીં કરના ચાહિયે । ડસ કથા સે યહી શિક્ષા
મિલતી હૈં કિ કાલકાચાર્ય કી તરહ પ્રજ્ઞા કે પ્રકર્ષ મેં મદ નહીં કરને
સે પ્રજ્ઞાપરીપહ કા જય હોતા હૈં ॥ ૪૧ ॥

ચંદ્ર મુનિએ આંગળીના ઈસારાથી બતાવીને કહ્યું કે, બુચ્ચો આ છે તે આવેલા
મહાનુભાવ! આથી તે સઘળા શિષ્યો તે સમયે અપાર હર્ષથી પ્રકુંલિત બની
ખુશી થતાં થતાં ખૂબજ આદરથી “ આ જ છે અમારા ગુરુમહારાજ ” કહીને
તેમના ચરણમાં પડીને વંદન કરવા લાગ્યા. સાગરચંદ્રમુનિએ સમયે કાલકા-
ચાર્યના પરિચયથી પથ્થાત્તાપ કરતાં કરતાં તેમને કહેવા લાગ્યા, ભગવંત !
શ્રુતનિધિ પૂજ્ય મારાથી આપની અશાતના થઈ છે. આથી હું તેની ક્ષમા
ચાહું છું. આપ મને ક્ષમા કરો. કાલકાચાર્યે કહ્યું, વત્સ ! શ્રુતજ્ઞાનનો મદ ન
કરવો જોઈએ. આ કથાથી એ બંધુવાનું મને છે કે, કાલકાચાર્યની મોકક
પ્રજ્ઞાના પ્રકર્ષમાં મદ નહીં કરવાથી પ્રજ્ઞાપરીપહનો જય થયે.

टीका--'तवोवहाणमादाय' इत्यादि ।

तपः=यवमध्यचन्द्रप्रतिमा-वज्रमध्यचन्द्रप्रतिमादिकम्, उपधानं=साभिग्रहं तपः
आदाय=स्वीकृत्य चरित्वेत्यर्थः, अभिग्रहविशेषरूपां मासिक्यादिकां, प्रतिपद्यमानस्य=प्रतिपद्यमानस्य अङ्गीकृतवतः, एवमपि=विशिष्टचर्यायाऽपि, विहरतः=निष्प्रतिबन्धं विचरतः, मे=मम, छद्म=छादयतीति छद्म-ज्ञानावरणीयादिकं कर्म, न निवर्तते=नापगच्छति, इति भिक्षुर्न चिन्तयेत्, इत्युत्तरगाथास्थेन सह सम्बन्धः ।

अयं भावः-अहं यवमध्यचन्द्रप्रतिमादिकं तपः करामि, तथा साभिग्रहं तपः

किंच-'तवोवहाणमादाय' इत्यादि ।

अन्वयार्थ- (तवोवहाणमादाय-तपउपधाम् आदाय) यवमध्यचन्द्रप्रतिमा, वज्रमध्यचन्द्रप्रतिमा आदिक तप को तथा साभिग्रह तप रूप उपधान को स्वीकार कर के, तथा उनका आचरण करके (पडिमं-पडिवज्जओ-प्रतिमां प्रतिपद्यमानस्य) अभिग्रहविशेषरूप मासिक्यादिक प्रतिमा को अंगीकार करने वाले (मे-मम) मेरा जो कि (एवंपि विहरओ-एवमपि विहरतः) इस प्रकार की विशिष्टचर्या से मुक्ति के मार्ग में विचरण कर रहा हूँ (छउमं-छद्म) ज्ञानावरणीयादिक कर्मों का आवरण तौ भी (न नियट्टइ-न निघर्तते) निवर्तित नहीं होता है । इस प्रकार भिक्षु विचार नहीं करे ।

ये दो ४२-४३ गाथाएँ अवधि आदि प्रत्यक्ष ज्ञान की प्राप्ति के विषय में कही गई हैं ।

तात्पर्य यह है कि मैं यवमध्यचन्द्रप्रतिमा आदिक तप करता हूँ

किंच-'तवोवहाणमादाय' इत्यादि.

अन्वयार्थ- 'तवोवहाणमादाय'-तपउपधानं आदाय यवमध्यचन्द्रप्रतिमा-वज्रमध्यचन्द्र प्रतिमा आदिक तपने तथा साभिग्रह तप रूप उपधानने स्वीकार करी तथा तेन आचरण करी पडिमं पडिवज्जओ-प्रतिमां प्रतिपद्यमानस्य अभिग्रह विशेषरूप मासिक्यादि प्रतिमाने अंगीकार करवावाणा मे-मम हुंके ये-एवंपि विहरओ-एवमपि विहरतः आ प्रकारनी विशिष्ट चर्याथी मुक्तिना मार्गमां विचरण करी रह्यो छुं छउमं-छद्म छतां ज्ञानावरणीयादिक कर्मोनुं आवरण न नियट्टइ-न निघर्तते इर थतुं नथी. आ प्रकारना विचार भिक्षु न करे.

येतालीस अने तेतालीस आ जे गाथाओ अवधि आदि प्रत्यक्ष ज्ञाननी अप्राप्तिना विषयमां कडेवामां आवेल छे.

तात्पर्य आ छे के,- हुं यवमध्य चन्द्रप्रतिमा आदिक तप करूं छुं तथा

अयं भावः — मया वृथा मैथुनविरमणं कृतम्, वृथैव चेन्द्रियाणि विजितानि
यदहं शुभमशुभं वा वस्तुस्वभावं प्रत्यक्षरूपेण नामिजानामीत्येवं चिन्तनेन मुनिर्वि-
पादं न कुर्यात् । 'मि' इत्यर्पत्वात् प्रथमार्थं द्वितीया ॥ ४२ ॥

किञ्च—

मूलम्—तेवोवहाणंमादाय, पडिंमं पडिवज्जंओ ।

एवं पिं विहरंओ मे, छउंमं ने निसंइइ ॥ ४३ ॥

छाया—तपउमधानमादाय, प्रतिमां प्रतिपघमाजस्य ।

एवमपि विहरतो मे, छउं न निवर्तते ॥ ४३ ॥

इस ग्राथा में एक मैथुन मात्र का ही ग्रहण इसलिये किया है कि अहिंसा
आदि सब की अपेक्षा यह दुस्मयज्ञ होता है इसलिये मुनि विचारता
है कि ऐसे दुष्कर त्याग करने पर भी मुझे कुछ लाभ नहीं हुआ ।

भावार्थ—इसका भाव यह है कि अवधि आदि प्रत्यक्ष ज्ञानों की
प्राप्ति के अभाव में भिक्षु को अपनी आत्मा के लिये इस प्रकार के
विचार से विप्रादित नहीं करना चाहिये कि—मुझे ब्रह्मचर्य का पावन
तथा तपश्चर्या करते २ बहुत काल हो चुका है अभी तक भी मुझे
वस्तु का वास्तविक शुभाशुभ स्वभाव स्पष्ट रीति से खतलाजे वाले
प्रत्यक्ष ज्ञानों में से एक भी किसी ज्ञान की प्राप्ति नहीं हुई है । यह
दीक्षा ब्रह्मचर्यव्रत और तपश्चर्या आदि मैंने व्यर्थ धारण किये । इसकी
अपेक्षा तो संसारदशा में ही आनन्द था ॥ ४२ ॥

वाक्य अहिंसे शोचत करी वेवु जेधं मे. मे गाथाभां जेक मैथुन भावनुं
येदवा माटे थडुण करवाभां आवेल छे के, अहिंसा आदि अध्यायी अपेक्षा
मे दुस्मय डोय छे. आ माटे मुनि विचारता डोय छे के, आवे दुष्कर त्यज
करना छतां पण मने कांई लाभ थये, नही.

भावार्थ—अपनी भाव मे छे के, अवधि आदि प्रत्यक्ष ज्ञानोनी प्राप्तिना अभावभां
भिक्षुमे सोताना आत्मा माटे आ प्रकारने विचार करी कही विप्रादित मतउं
न जेधं मे—के, मने ब्रह्मचर्यनुं पावत अने तपश्चर्या करतां करतां क्खो समेय
थये तेम छतां पण वस्तुने वास्तविक शुभाशुभ स्वभाव स्पष्ट रीते अताप-
नार प्रत्यक्ष ज्ञानोभांथी केाई जेक पण ज्ञानोनी प्राप्ति थवा प्राप्ती नथी. आ
दीक्षा, ब्रह्मचर्यव्रत अने तपश्चर्या वगेरे मे नकाभां धारण कर्थां छे. आनी
अपेक्षा तो संसार दशाभां जे आनंद छतो ॥ ४२ ॥

मया नोपलब्धम् । तदनुपलब्धौ च दुस्त्यजमैथुनात् प्रतिनिवर्तनं मम व्यर्थम् ।
 तथा निरर्थकं सुसंभृतः = इन्द्रियनोइन्द्रियव्यापारनिरोधेन सुष्ठुसंवरयुक्तोऽभवम्,
 योऽहं कल्याणं पापकं वा धर्म=वस्तुस्वभावं, साक्षात्=परिस्फुटं, नाभिजानामि=अभि-
 -सर्वथा निरवशेषविशेषपूर्वकं न जानामि । अयं भावः—“ जे एगं जाणह, से
 सव्वं जाणह, जे सव्वं जाणह, से एगं जाणह ” इत्यागमवचनाच्छ्रद्धस्थोऽहं
 किमप्येकमपि वस्तुस्वरूपं न तत्त्वतो जानामि, यदि साक्षात् समस्तभावस्वभावाव-
 भासकं केवलालोकं न लब्धवान्, तर्हि किमनेनाल्पेन मुकुलितवस्तुस्वरूपज्ञानेन,
 इत्येवं विपादं न कुर्यादिति ।

तथा-तपउपधानादिभिर्निर्जराहेतुभिरपि छद्मस्थावस्था न निवर्तते=निरवशेषं
 न क्षीयते, किं तर्हि ममानेन क्रियाकलापेन? इति विचिन्त्य मुनिर्विपादं न कुर्यात् ।

तथा इन्द्रिय नोइन्द्रिय का निग्रह भी किया है वे सब निरर्थक हैं ।
 क्यों कि अभीतक मुझे शुभाशुभ वस्तु का संपूर्णरूप से ज्ञान कराने
 वाला केवलज्ञान तो प्राप्त हुआ ही नहीं है । उसके न होने पर इस
 द्रव्य क्षेत्र काल एवं भाव की मर्यादा को लेकर वस्तु के स्वरूप को
 प्रकट कराने वाले इन अवधिमतःपर्ययज्ञान से क्या लाभ है । इस
 प्रकार विचार कर साधु अपनी आत्मा को दुःखित नहीं करे ।

तथा-निर्जरा के कारण इन तप एवं उपधान आदि के आचरण
 करने से मुझे लाभ ही क्या हुआ, क्यों कि अभीतक मेरी छद्मस्था-
 वस्था तो दूर नहीं हुई है । समस्त ज्ञानावरणीयकर्म नष्ट होकर जब
 तक केवलज्ञान प्राप्त नहीं होता तबतक छद्मस्थावस्था रहती है । अतः
 केवलज्ञान की प्राप्ति का अभावस्वरूप अज्ञानपरीपह साधु को जीतना
 चाहिये । तथा तप एवं उपधान आदि जो निर्जरा के हेतु हैं उनसे मेरे

निश्चय पण्य कथीं छे. ते णधुं निरर्थकं छे. केभके, डल सुधी मने शुभाशुभ
 वस्तुसुं संपूर्णरूपथी ज्ञान करानेनार केवणज्ञान तो प्राप्त थयुं नथी. तेना न
 होवाथी आ द्रव्य क्षेत्र काल अने लावनी मर्यादाने लधने वस्तुना स्वरूपने
 प्रगट करानेनार आ अवधिमतःपर्ययज्ञानथी शुं लाल छे? आ प्रकारनेो विचार
 करी साधु पोताना आत्माने दुःखी न करे.

तथा-निर्जरातुं कारण्य आ तप अने उपधान आदिनुं आचरण्य करवाथी
 मने लाभ शुं थयो? केभके, डल सुधी भारी छद्म अवस्था द्वर यध नथी. न्यां
 सुधी ज्ञानावरणीय कर्मनेो नाश यध केवणज्ञान प्राप्त न थाय त्यां सुधी छद्मस्थ
 अवस्था रहे छे. आधी केवणज्ञाननी प्राप्तिना अलाव स्वरूप अज्ञानपरीपह
 साधुअे लतवेो जेधअे. तथा तप अने उपधान आदि ने निर्जरांना डेतु छे

કરોમિ, પ્રતિમાં સમાચરામિ, एवं मोक्षमार्गे विचरामि, तथापि-अवधि-मनः पर्य-
यरूप-प्रत्यक्षज्ञानवान् न भवामि' इति न चिन्तयेत् । इत्येवमज्ञानस्य सद्भावे
विषादाकरणेनाज्ञानपरीपहः सोढव्य इति ।

यद्वा-इहापि तन्नन्यायेन गाथायुग्मस्यार्थद्वयं बोध्यम् । तत्र-अज्ञानसद्भाव-
पक्षमाश्रित्य व्याख्याऽभिहिता । अथ ज्ञानसद्भावपक्षमाश्रित्य व्याख्या प्रदर्श्यते-
ज्ञानसद्भावे-अवधिमनःपर्ययज्ञानसद्भावेऽपि केवलज्ञानाप्राप्तीं भिक्षुरेवं न
चिन्तयेत्-यदहं व्यर्थमेव मैथुनाद् विरतः=निवृत्तः । परमलक्ष्यकेवलज्ञानमद्यापि

तथा अभिग्रह भी करता हूँ एवं भिक्षुप्रतिमा का पालन भी करता हूँ
इस प्रकार मैं मोक्षमार्ग में ही विचरण कर रहा हूँ तो भी मुझे अभीतक
अवधिमनःपर्ययरूप प्रत्यक्ष ज्ञानकी प्राप्ति नहीं हुई है इस प्रकारसे साधुको
विचार नहीं करना चाहिये । इस तरह अवधिमनःपर्ययरूप ज्ञानकी प्राप्ति
के अभाव में विषाद नहीं करना इसी का नाम अज्ञानपरीपहका जीतना है ।

अथवा तन्नन्याय से भी इन दोनों गाथाओं का अर्थ जानना
चाहिये । उस में अज्ञान के सद्भाव पक्ष को लेकर पहले व्याख्या की
गई है अब ज्ञान के सद्भाव पक्ष को लेकर व्याख्या की जाती है, वह
इस प्रकार है—

अवधिमनःपर्ययज्ञान के सद्भाव में केवलज्ञान की प्राप्ति न होने
पर साधु इस प्रकार विचार नहीं करे कि-मैंने जो मैथुन जैसे दुष्कर
कार्यों का परित्याग किया है प्राणातिपातादिक का विरमण किया है

અભિગ્રહ પણ કઈ છું. આ પ્રકારથી હું મોક્ષમાર્ગમાં જ વિચરણ કરી રહ્યો
છું તો પણ મને હજી સુધી અવધિમનઃપર્યયરૂપ જ્ઞાનની પ્રાપ્તિ થઈ નથી. આ
પ્રકારનો સાધુએ વિચાર ન કરવો જોઈએ. આ રીતે અવધિમનઃપર્યયરૂપ
જ્ઞાનની પ્રાપ્તિના અભાવમાં વિષાદ ન કરવો જોઈએ. આતું જ નામ અજ્ઞાન
પરીપહને જીતવો એ છે.

અથવા-તંત્ર ન્યાયથી પણ આ બંને ગાથાઓના અર્થ જાણવા જોઈએ.
એમાં અજ્ઞાનના સદ્ભાવપક્ષને લઈ પહેલાં વ્યાખ્યા કરવામાં આવી છે હવે
જ્ઞાનના સદ્ભાવ પક્ષને લઈ વ્યાખ્યા કરવામાં આવે છે, તે આ પ્રકારે છે.

અવધિમનઃપર્યયજ્ઞાનના સદ્ભાવમાં કેવળજ્ઞાનની પ્રાપ્તિ ન થવાથી સાધુ
આ પ્રકારનો વિચાર ન કરે કે-મેં મૈથુન જેવા દુષ્કર કાર્યોનો પરિત્યાગ કર્યો
છે, પ્રાણાતિપાતાદિકતું વિરમણ કર્યું છે, તથા ધન્દ્રિય નો (મન) ધન્દ્રિયનો

मया नोपलब्धम् । तदनुपलब्धो च दुस्त्यजमैथुनात् प्रतिनिवर्तनं मम व्यर्थम् ।
 तथा निरर्थकं सुसंवृतः = इन्द्रियनोइन्द्रियव्यापारनिरोधेन सुषुप्तसंवरयुक्तोऽभवम् ।
 योऽहं कल्याणं पापकं वा धर्म=वस्तुस्वभावं, साक्षात्=परिस्फुटं, नाभिजानामि=अभि-
 -सर्वया निरवशेषविशेषपूर्वकं न जानामि । अयं भावः—“ जे एगं जाणइ, से
 सव्वं जाणइ, जे सव्वं जाणइ, से एगं जाणइ ” इत्यागमवचनाच्छब्दस्योऽहं
 किमप्येकमपि वस्तुस्वरूपं न तत्त्वतो जानामि, यदि साक्षात् समस्तभावस्वभावाव-
 भासकं केवलालोकं न लब्धवान्, तर्हि किमनेनाल्पेन मुकुलितवस्तुस्वरूपज्ञानेन,
 इत्येवं विपादं न कुर्यादिति ।

तथा-तपउपधानादिभिर्निर्जराहेतुभिरपि छद्मस्थावस्था न निवर्तते=निरवशेषं
 न क्षीयते, किं तर्हि ममानेन क्रियाकलापेन? इति विचिन्त्य मुनिर्विपादं न कुर्यात् ।

तथा इन्द्रिय नोइन्द्रिय का नियग्रह भी किया है वे सब निरर्थक हैं ।
 क्यों कि अभीतक मुझे शुभाशुभ वस्तु का संपूर्णरूप से ज्ञान कराने
 वाला केवलज्ञान तो प्राप्त हुआ ही नहीं है । उसके न होने पर इस
 द्रव्य क्षेत्र काल एवं भाव की मर्यादा को लेकर वस्तु के स्वरूप को
 प्रकट कराने वाले इन अवधिमनःपर्ययज्ञान से क्या लाभ है । इस
 प्रकार विचार कर साधु अपनी आत्मा को दुःखित नहीं करे ।

तथा-निर्जरा के कारण इन तप एवं उपधान आदि के आचरण
 करने से मुझे लाभ ही क्या हुआ, क्यों कि अभीतक मेरी छद्मस्था-
 वस्था तो दूर नहीं हुई है । समस्त ज्ञानावरणीयकर्म नष्ट होकर जब
 तक केवलज्ञान प्राप्त नहीं होता तबतक छद्मस्थावस्था रहती है । अतः
 केवलज्ञान की प्राप्ति का अभावस्वरूप अज्ञानपरीपह साधु को जीतना
 चाहिये । तथा तप एवं उपधान आदि जो निर्जरा के हेतु हैं उनसे मेरे

निग्रह पण्डु कथीं छे. ते अणुं निरर्थकं छे. डेमके, डल सुधी भने शुभाशुभ
 वस्तुतुं संपूर्णरूपेण ज्ञान करवानार केवलज्ञान तो प्राप्त थयुं नथी. तेना न
 डोवाथी आ द्रव्य क्षेत्र ढाण अने भावनी मर्यादाने लडने वस्तुना स्वरूपने
 प्रकट करवानार आ अवधिमनःपर्ययज्ञानथी शुं लाभ छे? आ प्रकारने विचार
 करी साधु पोताना आत्माने दुःखी न करे.

तथा-निर्जरातुं कारणु आ तप अने उपधान आदिनुं आचरणु करवाथी
 भने लाभ शुं थयो? डेमके, डल सुधी मारी छद्म अवस्था डूर थरुं नथी. न्यां
 सुधी ज्ञानावरणीय कर्मने नाश थरुं केवलज्ञान प्राप्त न थाय त्यां सुधी छद्मस्थ
 अवस्था रहे छे. आथी केवलज्ञाननी प्राप्तिना अभाव स्वरूप अज्ञानपरीपह
 साधुने लतवे लैछे. तथा तप अने उपधान आदि ने निर्जरा हेतु छे

अत्राज्ञानसद्भावपक्षे दृष्टान्तः प्रदर्शयते—

एकदा चतुर्ज्ञानसम्पन्नो भद्रगुप्ताचार्यः शिष्यपरिवारेण सह ग्रामानुग्रामं विह-
रन् श्रावस्तीनगरीं तिन्दुकोद्याने समवसृतः । तत्र वसुमित्रनामकः श्रेष्ठी तस्य
समीपे धर्मं श्रुत्वा प्रव्रजितः । ततः स एकादशाङ्गान्यधीतवान् । स चानिच्छन्नं
तपश्चरति, उग्रं विहारं करोति, उत्कृष्टाचारं पालयति, यतनया चरति, यतनया
तिष्ठति, यतनया उपविशति यतनया शेते, यतनया भुङ्क्ते, यतनया भाषते ।

तत्र सुवीरनामको नृपतिर्भद्रगुप्ताचार्यस्य संनिधावागत्य तं वन्दित्वा पर्युपास्ते ।

ज्ञानावरणीयादिक कर्म सर्वथा नष्ट नहीं हुवे हैं तो इस क्रियाकलाप
से मुझे क्या लाभ हुआ ? ऐसा विचार कर साधु विपाद नहीं करे ।

अज्ञान के सद्भाव पक्ष में दृष्टान्त—एक समय चतुर्ज्ञानसंपन्न
भद्रगुप्त आचार्य शिष्यपरिवार के साथ ग्रामानुग्राम विचरते हुए
श्रावस्ता नगरी में तिन्दुक उद्यान में आये । वहाँ वसुमित्र नाम के एक
सेठ ने उनसे धर्मकथा सुनकर दीक्षा धारण की । ग्यारह अंगों को
पढ़कर उन्होंने ने अच्छी तरह ज्ञान प्राप्त किया । सदा उग्र तपस्या करना,
उग्र विहार करना, उत्कृष्ट आचार का पालन करना, यतना से उठना,
यतनासे बैठना, यतनासे सोना, यतना से आहार करना और यतना से
बोलना, चलना, इस तरह प्रत्येक क्रिया, इनकी यतना से होने लगी ।

श्रावस्ती नगरी का राजा कि जिनुका नाम सुवीर था प्रतिदिन
भद्रगुप्त आचार्य के पास वंदना एवं पर्युपासना करने के लिये आते थे ।

तेनाथी मारां ज्ञानावरणीयादिक कर्म सर्वथा नाश पावेल नथी. तो आ क्रिया
करवाथी भने शुं लाभ थयो ? अवेो विचार करी साधु विपाद न करे.

अज्ञानना सद्भाव पक्षमां दृष्टांत—

एक समय चतुर्ज्ञानसंपन्न भद्रगुप्त आचार्य शिष्य परिवारनी साथे
ग्रामानुग्राम विचरता श्रावस्ती नगरीनां तिन्दुक उद्यानमां आव्या. त्यां वसुमित्र
नामना एक शेठ तेमनेो धर्म उपदेशे सांभणी दीक्षा धारण करी. अगीआर अंगोने
बाष्णीने तेमणे सारी रीते ज्ञान प्राप्त क्युं. सदा उग्र तपस्या करवी, उग्रविहार
करवो, उत्कृष्ट आचारनुं पालन करवुं, यतनाथी उठवुं, यतनाथी बोलवुं, यतनाथी
आहार करवो, यतनाथी बोलवुं, यतनाथी बोलवुं, आ रीते तेमनी प्रत्येक
क्रियाओ यतनापूर्वक थवा लागी.

श्रावस्ती नगरीनेो राजा के जेनुं नाम सुवीर हुतुं ते दररोज भद्रगुप्त
आचार्यनी पासे वंदना अने पर्युपासना करवा भाटे आवता हुता. आचार्य

तदा भद्रगुप्तार्यस्तमत्रवीत्-राजन् ! बन्धमोक्षस्वरूपं ग्रह्यं समागतोऽसि किम् ? । राज्ञा प्रोक्तम्-भदन्त ! सत्यं भवदीयवचनम् । ततोऽसौ भद्रगुप्ताचार्यश्चतुर्भिर्ज्ञानैस्तं बन्धमोक्षस्वरूपोपदेशेन परितोपयति स्म । तदा सुवीरनृपतिर्जातवैराग्यः संनम्रज्यां गृहीतवान् ।

तदा वसुमित्रमुनिर्भद्रगुप्ताचार्यस्याद्भुतं चतुर्ज्ञानप्रभावमवलोक्य मनसि चिन्तयति-अहो ! आत्मनो वीर्यं महदद्भुतम्-यदन्तर्मुहूर्तमात्रेणैव ज्ञानावरणीया-

आचार्य महाराज भी उन को धर्मदेशना देते थे । राजा के हृदय में एक दिन बंध और मोक्ष के यथार्थ स्वरूप को जानने की जिज्ञासा हुई, वे शीघ्र ही आचार्य महाराज के पास आये और बंदना एवं पर्युपासना कर समीप बैठे । आचार्य महाराज ने उनसे कहा-कहो हे राजन् ! आज बंध और मोक्ष का यथार्थ स्वरूप पूछने को आये हो क्या ? राजाने बड़े विनय के साथ दोनों हाथ जोड़कर कहा-हाँ भदन्त ! । चार ज्ञान के धारी आचार्य महाराज ने राजा को बंध और मोक्ष का यथार्थ स्वरूप अच्छी तरह समझाया । उपदेशमें स्पष्ट किये गये बंध और मोक्ष के स्वरूप को सुनकर राजा को बड़ा ही आनंद आया । राजा अपनी वैराग्य भावना से आचार्य महाराज के पास दीक्षा धारण करली ।

वसुमित्र मुनि जिनका नाम संसारी अवस्था में वसुमित्र सेठ था, उन्होंने ने भद्रगुप्त आचार्य के चार ज्ञानों का प्रभाव देखकर मन में विचार किया-अहो ! आत्मा की शक्ति अचिन्त्य है, इसके बल से

महाराज पण तेमने धर्मदेशना आपता हुता. राजाना हृदयमां अेक द्विवस अंध अने मोक्षना यथार्थ स्वरूपने जणवानी लज्ञासा थछ. ते तुरत ज आचार्यनी पासे आव्या अने वंदना करी सामे जेठा. आचार्य महाराजे तेमने कहुं, कडे राजन् ! आज अंध अने मोक्षनुं यथार्थ स्वरूप पुछवाने आव्या छे ने ? राजाजे विनय साथे अने हाथ जेडीने कहुं, हा ! चार ज्ञानना धारक. आचार्य महाराजे राजाने ज्ञान अने अंधतुं यथार्थ स्वरूप सारी रीते समजव्युं. उपदेशमां कडेवामां आवेल अंध अने मोक्षना स्वरूपने सांजणीने राजाने धरुं आनंद थये अने वैराग्य लावना जगृत यतां राजाजे आचार्य महाराज पासे दीक्षा अंगीकार करी.

वसुमित्रमुनि के जेमतुं संसारी अवस्थामां नाम वसुमित्र सेठ हुतुं. तेमणे भद्रगुप्त आचार्यने चार ज्ञानने प्रभाव जेछने मनमां विचार कर्यो, अडे ! आत्मानी शक्ति अचिन्त्य छे. तेना जणथी आत्मा अेक अंतर्मुहूर्तमां ज्ञाना-

ઘટ્ટવિધકર્મરજોડપનીય, અયમાત્મા સર્વજ્ઞઃ સર્વદર્શો ભવતિ । મયા તુ ઇકાદશાઙ્ગા-
ન્યધીતાનિ, ઇવં નિરતિચારં શ્રુતજ્ઞાનમારાધિતમ્ । નિઃશકિત-નિષ્કાઙ્ગિતાદિ ભેદ-
દર્શનાચારોડપ્યારાધિતઃ, સમિતિગુપ્તિભિઃ પ્રશસ્તપોગયુક્તો ભૂત્વા ચારિત્રાચારઃ
સમારાધિતઃ, અગ્લાનતયા દ્વાદશવિધૈરનશનાદિતપોભિસ્તપઆચારઃ સમારાધિતઃ ।
ઇયુ જ્ઞાનાચારાદિષુ ચતુર્ણુ જ્ઞાનાચારઃ કાલવિનયાદિભેદૈરઘટ્ટવિધઃ, દર્શનાચારઃ સહ
નિઃશકિત-નિષ્કાઙ્ગિતાદિ ભેદૈરઘટ્ટવિધઃ, ચારિત્રાચારઃ સમિતિ-ગુપ્તિપાલનાત્મકોડ-
ઘટ્ટવિધઃ, તથાડનશનાદિદ્વાદશવિધસ્તપઆચારસ્તેષુ સર્વેષુ પદ્મિત્રિશદ્વિધેષ્વાચારેષુ

આત્મા ઇક અન્તર્મુહૂર્ત મેં હી જ્ઞાનાવરણીયાદિક આઠ પ્રકાર કી કર્મ-
રજ કો નઘ્ટ કર સર્વજ્ઞ સર્વદર્શો હો જાતા હેં । મેંને ગ્યારહ અંગ પઠે હેં
ઁનકા ઁવ મનન કિયા હૈ ઇસ પ્રકાર નિરતિચાર શ્રુતજ્ઞાન કી આરા-
ધના કી હૈ । નિઃશકિત ઇવં નિઃકાંક્ષિત આદિ ભેદોં સે યુક્ત દર્શના-
ચાર કા યથાવત્ પાલન કિયા હૈ । સમિતિ ગુપ્તિયોં દ્વારા પ્રશસ્ત ઉપ-
યોગ યુક્ત હોકર ચારિત્રાચાર કા;મી અચ્છી તરહ આરાધન કિયા હૈ ।
અગ્લાનભાવ સે અનશન આદિ વારહ પ્રકાર કે તપોં કા અનુષ્ઠાન
કરને સે તપ આચાર કો મી અચ્છી તરહ પાલા હૈ । ઇસી તરહ કાલ
વિનયાદિક કે ભેદ સે આઠ પ્રકાર કે જ્ઞાનાચાર, નિઃશકિત, નિઃકાં-
ક્ષિત આદિ ભેદ સે આઠ પ્રકાર કે દર્શનાચાર, સમિતિ ગુપ્તિ આદિ
કે પાલનસ્વરૂપ આઠ પ્રકાર કે ચારિત્રાચાર, ઇવં ચોવીસ તથા અન-
શનાદિ વારહ પ્રકાર કા તપ, ઇસ પ્રકાર છત્તીસ ૩૬ ભેદવાલે ઇસ

વરણીયાદિક આઠ પ્રકારની કર્મરજને નાશ કરી સર્વજ્ઞ સર્વદર્શિ બની બય છે.
મેં અગીયારઅંગનો અભ્યાસ કર્યો છે. તેનું ખૂબ મનન કર્યું છે. એ પ્રકારે
નિરતિચાર શ્રુતજ્ઞાનની આરાધના કરેલ છે. નિઃશકિત અને નિઃકાંક્ષિત આદિ
લેદથી યુક્ત દર્શનાચારનું યથાવત્ પાલન કર્યું છે. સમિતિ ગુપ્તિઓ દ્વારા
પ્રશસ્ત ઉપયોગયુક્ત બનીને ચારિત્રાચારનું પણ સારી રીતે આરાધન કર્યું છે.
અગ્લાનભાવથી અનશન આદી ૧૨ પ્રકારના તપોનું અનુષ્ઠાન કરવાથી તપ
આચારને પણ સારી રીતે પાળેલ છે. એવી રીતે કાલ વિનયાદિકના લેદથી આઠ
પ્રકારના જ્ઞાનાચાર, નિઃશકિત, નિઃકાંક્ષિત, આદિ લેદથી આઠ પ્રકારનો દર્શના-
ચાર, સમિતિગુપ્તિ આદિના પાલન સ્વરૂપ આઠ પ્રકારનો ચારિત્ર આચાર અને ચોવીસ
તથા અનશન આદિ બાર પ્રકારનું તપ આ પ્રકારે છત્તીસ લેદવાળા આ આચારને

अगोपितबलवीर्येण, अर्थात्-परिपूर्णस्वशक्तिप्रयोगेण सोपयोगं पराक्रमणेन वीर्याचारोऽपि समाराधितः । एतानि पटत्रिंशदाचाररूपोद्यानानि वीर्याचारवारिणा निरन्तरपरिसेचनेन हरितीकृतानि शुभभावनानिरीक्षणैः शोभया भरितीकृतानि तथाप्यद्यावधि मम ज्ञानावरणीय-कर्मणां क्षयाभावाद्बद्ध्यादिरूपं प्रत्यक्षज्ञानं न जातम्, अतोऽहमपि पुनस्तथा यतिष्ये, यथा तन्ममावश्यं भविष्यत्येव । तस्मादधुना विपादाकरणेनाज्ञानपरीपहं सहमानः पुनरपि वीर्याचारं निरतिचारं निरतिशयं

आचार को परिपूर्ण अपनी शक्ति के प्रयोग से उपयोगपूर्वक तल्लीन होकर पालन किया है । इसीका नाम वीर्याचार है । मैंने इन पांचों आचारों का सम्यक् रीति से पालन किया है । छत्तीसभेदविशिष्ट इस आचाररूप उद्यान को वीचाररूप निर्मल जल से मैंने निरन्तर सिंचित कर हरा-भरा रखा है । शुभ भावनाओं से इसे शोभित किया है । तो भी अभीतक ज्ञानावरणीयकर्मों के क्षय नहीं होने से मुझे अवधि आदि प्रत्यक्ष ज्ञान की प्राप्ति नहीं हुई है, इसलिये मैं फिर इस प्रकार का यत्न करूँ कि जिससे मुझे इस प्रत्यक्ष ज्ञान की प्राप्ति अवश्य हो जाय । इस प्रकार सोचकर वसुभिन्न मुनि ने पुनः यह विचार किया कि प्रत्यक्षज्ञान की प्राप्ति नहीं होने का मुझे इस समय कुछ भी विपाद नहीं करना चाहिये, क्यों कि विपाद करने से अज्ञान परीपह विजित नहीं होता है, अतः विपाद को नहीं लाकर अज्ञान परीपह सहन करना यह साधुमार्ग है, इसलिये वीर्याचार की

परिपूर्ण चोतानी शक्तिना प्रयोगधी उपयोगपूर्वक तद्वलीन जनी पालन कथुं छे, तेनुं नाम वीर्याचार छे. में आ पांचे आचारतुं सम्यक् रीतिधी पालन कथुं छे. छत्तीस भेद विशिष्ट आ आचाररूप उद्यानने वीर्याचार रूप निर्मल जलधी में निरन्तर सिंचित करी कथुं लथुं राभ्युं छे. शुभ भावनाओधी तेने शोभित कथुं छे. तो पण्डु उल सुधी ज्ञानावरणीयकर्मोने क्षय न थवाधी भने अवधि आदि प्रत्यक्षज्ञाननी प्राप्ति थयेल नथी. आ माटे हुं करी ओ प्रकारने यत्न करुं के, जेनाधी भने आ प्रत्यक्ष ज्ञाननी प्राप्ति अवश्य थई नथ. आ प्रकारधी विचारीने वसुभिन्न मुनिओ करीधी ओ विचार कथी के प्रत्यक्षज्ञाननी प्राप्ति न थवाने। माटे आ समये कांई पण्डु विपाद न करवे। जेधये. केमके, विपाद करवाधी अज्ञानपरीपहने लताते। नथी. आधी विपाद न लावतां अज्ञानपरीपह सहन करवे। ओ साधुमार्ग छे. आ माटे वीर्याचारनी निरतिचार

सम्यगाराधयामि इत्येवं विचिन्त्य प्रशस्तध्यानेन शुभाध्यवसायेन अवधिं मनःपर्ययं च
संप्राप्य क्षपकश्रेणिमारुह्य केवलीं जातः। एवमन्यैरपि मुनिभिरज्ञानपरीपहः सोढव्यः।

अथाऽज्ञानाऽसद्भाव(ज्ञानसद्भाव)पक्षे दृष्टान्तः प्रदर्श्यते—

उग्रविहारी चतुर्ज्ञानचतुर्दशपूर्वधारी जिनवचनानुगामी गौतमस्वामी शिष्य-
परिवारेण सह ग्रामानुग्रामं विहरन् भास्करवदज्ञानान्धकारं विध्वंसयन् स्याद्वाद-
सिद्धान्तं स्थापयन् क्षान्त्यादिधर्मं प्रद्योतयन् चार्वाकादिपाखण्डमतं खण्डयन्
विचरति स्म। एवं विहरन् गौतमस्वामी चम्पानगर्यां पूर्णभद्रोद्याने समवसृतः।

निरतिचार सम्यक् आराधना करते २ प्रत्यक्ष ज्ञानकी प्राप्ति मुझे हो
जायगी। इस प्रकार विचार करके उसने प्रशस्तध्यान के हेतुभूत शुभ
अध्यवसाय से अवधि एवं मनःपर्यय ज्ञान को प्राप्त कर लिया, तथा
क्षपकश्रेणी पर आरोहण कर केवलपद को भी प्राप्त कर लिया। इसी
तरह अन्यमुनियों को भी अज्ञानपरीपह सहन करना चाहिये।

अज्ञान के असद्भाव (ज्ञान के सद्भाव) पक्षमें दृष्टान्त इस प्रकार है—
उग्र विहार करने वाले, मति, श्रुत, अवधि एवं मनःपर्ययज्ञान के
धारी, चौदह पूर्व के पाठी, एवं जिनवचन के अनुसार चलने वाले
गौतमस्वामी शिष्यपरिवार के साथ ग्रामानुग्राम विहार करते हुए,
सूर्य के समान भव्यों के अज्ञानरूप अन्धकार को ध्वस्त करते हुए,
स्याद्वादसिद्धान्त की विजयपताका फरकाते हुए, क्षान्ति आदि धर्मका
उद्योत करते हुए एवं भौतिकवादी चार्वाक आदि मत का निराकरण
करते हुए विहार करते २ चंपानगरी के पूर्णभद्र उद्यान में पधारे।

सम्यक् आराधना करतां करतां प्रत्यक्ष ज्ञानकी प्राप्ति मने र्थे ७३०. आ प्रकारने वि-
चार करी तेणे प्रशस्त ध्यानना हेतुभूत शुभ अध्यवसायथी अवधि अने मनःपर्य-
यज्ञानने प्राप्त कथुं, तथा क्षपकश्रेणी उपर आरूढ र्थे केवण पदने पक्ष प्राप्त करी
लीधुं. आ प्रकारे अन्य मुनिओअे पक्ष अज्ञानपरीपह छतवे न्नेधअे—

ज्ञानना सद्भाव पक्षमां दृष्टान्त आ प्रकारतुं छे.—

उग्र विहार करवावाणा, मति, श्रुत, अवधि अने मनःपर्ययज्ञानना धारी,
चौदह पूर्वना पाठी, अने अनवचन अनुसार चलवावाणा गौतमस्वामी शिष्य
परिवारनी साथे ग्रामानुग्राम विहार करता, सूर्यनी भाङ्क लेव्येना अज्ञानरूप
अंधकारने हर करता स्याद्वादसिद्धांतनी विजयपताका हरकावता, क्षान्ति आदि
धर्मने उद्योत करता करता अने भौतिकवादि चार्वाक आदि मतनुं निरा-
करण करता करता, विचारण करता करता, चंपानगरीना पूर्णभद्र पधारे।

एकदा सोमभद्रनामा कश्चिदधर्मानुयायी, अधर्मसेवी, अधर्मिष्ठः, अधर्मख्याति-
रधर्मानुरागी, अधर्मप्रलोकी, अधर्मजीवी, अधर्मप्रजनकः, अधर्मप्रचारकः, सकल-
शास्त्रदर्शी तच्चाविमर्शी प्रकाण्डकुतर्ककेसरी शास्त्रार्थं कर्तुं तत्र गौतमस्वामिसंनिधौ
समागतः । तयोः शास्त्रार्थविषये विवादः प्रवृत्तः, परस्परं खण्डनमण्डनकरणे
प्रवृत्तयोस्तयोरेकस्य कस्यापि जयः पराजयो वा नाभूत् । गौतमस्वामी
शास्त्रार्थविषये स्वबुद्धिप्रतिभावलेन नास्तिकमतं निराकर्तुं प्रवृत्तः, सोऽपि नास्तिकः
स्वबुद्धिकौशलेन गौतमस्वामिनः स्पर्धया वाग्जालं वितन्वन् परिपदि तत्प्रदर्शितयुक्ति-

एक दिन की बात है कि सोमभद्र नामका कोई एक विशिष्ट विद्वान्
शास्त्रार्थ करने के लिये उनके पास आया । यह जैनधर्म से अतिरिक्त
धर्म का अनुयायी था, अधर्मसेवी था, अधर्मिष्ठ था, अधर्माख्यायी था,
अधर्मानुरागी था, अधर्मप्रलोकी था, अधर्मजीवी था, अधर्मप्रजनक था,
अधर्मप्रचारक था, सकलशास्त्रदर्शी होने पर भी तत्त्व-अविमर्शी था,
इसलिये प्रकाण्डकुतर्ककेसरी था । गौतमस्वामी एवं सोमभद्र का
परस्पर शास्त्रार्थ के विषय में विवाद प्रारम्भ हुआ । एक दूसरे के
खंडन मंडन करने में प्रवृत्त हुए । इन दोनों में जब किसी का भी जय
और पराजय नहीं हुआ तब गौतमस्वामी ने शास्त्रार्थ के विषय में
अपनी प्रतिभा के बल पर नास्तिकमत का निराकरण करना प्रारंभ
कर दिया । सोमभद्र ने भी जो नास्तिकमत का पक्षपाती था जब
अपने मत का खंडन होते देखा तो उसने सिर्फ अपनी बुद्धि की ही
कुशलता से गौतमस्वामी की युक्तियों का स्पर्धा के बश सभा के

एक दिवसनी बात छे के, सोमभद्र नामनेो केछे एक विशिष्ट विद्वान्
शास्त्रार्थ करवा माटे तेमनी पासे आब्यो. ते जैनधर्माधी अतिरिक्त धर्मा
अनुयायी हुतो. अधर्मसेवी हुतो, अधर्मिष्ठ हुतो, अधर्माख्यायी हुतो, अध-
मानुरागी हुतो, अधर्मप्रलोकी हुतो, अधर्मजीवी हुतो, अधर्मप्रजनक हुतो,
अधर्मप्रचारक हुतो, सकल शास्त्र दर्शी होवा छतां पणु तत्व-अविमर्शी हुतो.
आ माटे प्रकाण्डकुतर्ककेसरी हुतो. गौतमस्वामी :अने सोमभद्रनेो परस्पर
शास्त्रार्थना विषयमां विवाद शरु थयो. एक भीलनुं अंडन मंडन करवामां
प्रवर्त अन्या. आ अनेमांथी न्यारे केछेनेो पणु जय अने पराजय न थयो
त्यारे गौतमस्वामीअे शास्त्रार्थना विषयमां पोतानी प्रतिबाना अण उपर
नास्तिकमतनुं निराकरण करवानुं शरु करी हीधुं. सोमभद्र के जे नास्तिक
मतनेो पक्षपाती हुतो तेछे न्यारे पोताना मतनुं अंडन थतुं जेथुं तो तेछे
इकत पोतानी बुद्धिनी कुशलताधी स्पर्धाने वश थरु गौतमस्वामीनी युक्तिअेने

सम्पगाराधयामि इत्येवं विचिन्त्य प्रशस्तध्यानेन शुभाध्यवसायेन अवधि मनःपर्ययं च
संप्राप्य क्षपकश्रेणिमारुह्य केवली जातः। एवमन्यैरपि मुनिभिरज्ञानपरीपहः सोढव्यः।

अथाऽज्ञानाऽसद्भाव(ज्ञानसद्भाव)पक्षे दृष्टान्तः प्रदर्श्यते—

उग्रविहारी चतुर्ज्ञानचतुर्दशपूर्वधारी जिनवचनानुगामी गौतमस्वामी शिष्य-
परिवारेण सह ग्रामानुग्रामं विहरन् भास्करवदज्ञानान्धकारं विध्वंसयन् स्याद्वाद-
सिद्धान्तं स्थापयन् क्षान्त्यादिधर्मं प्रद्योतयन् चार्वाकादिपाखण्डमतं खण्डयन्
विचरति स्म। एवं विहरन् गौतमस्वामी चम्पानगर्यां पूर्णभद्रोद्याने समवसृतः।

निरतिचार सम्पक् आराधना करते २ प्रत्यक्ष ज्ञानकी प्राप्ति मुझे हो
जायगी। इस प्रकार विचार करके उसने प्रशस्तध्यान के हेतुभूत शुभ
अध्यवसाय से अवधि एवं मनःपर्यय ज्ञान को प्राप्त कर लिया, तथा
क्षपकश्रेणी पर आरोहण कर केवलपद को भी प्राप्त कर लिया। इसी
तरह अन्यमुनियों को भी अज्ञानपरीपह सहन करना चाहिये।

अज्ञान के असद्भाव (ज्ञान के सद्भाव) पक्षमें दृष्टान्त इस प्रकार है—

उग्र विहार करने वाले, मति, श्रुत, अवधि एवं मनःपर्ययज्ञान के
धारी, चौदह पूर्व के पाठी, एवं जिनवचन के अनुसार चलने वाले
गौतमस्वामी शिष्यपरिवार के साथ ग्रामानुग्राम विहार करते हुए,
सूर्य के समान भव्यों के अज्ञानरूप अन्धकार को ध्वस्त करते हुए,
स्याद्वादसिद्धान्त की विजयपताका फरकाते हुए, क्षान्ति आदि धर्मका
उद्योत करते हुए एवं भौतिकवादी चार्वाक आदि मत का निराकरण
करते हुए विहार करते २ चंपानगरी के पूर्णभद्र उद्यान में पधारे।

सम्पक् आराधना करतां करतां प्रत्यक्ष ज्ञानकी प्राप्ति मने थई जशे. आ प्रकारने वि-
चार करी तेजे प्रशस्त ध्यानना हेतुभूत शुभ अध्यवसायथी अवधि अने मनःपर्य-
यज्ञानने प्राप्त कथुं, तथा क्षपकश्रेणी उपर आइठ थई केवण पढ़ने पखु प्राप्त करी
लीधुं. आ प्रकारे अन्य मुनिओओ पखु अज्ञानपरीपह छतवे ओधओ—

ज्ञानना सद्भाव पक्षमां दृष्टान्त आ प्रकारनुं छे.—

उग्र विहार करवावाणा, मति, श्रुत, अवधि अने मनःपर्ययज्ञानना धारी,
चौदह पूर्वना पाठी, अने अनवचन अनुसार चलवावाणा गौतमस्वामी शिष्य
परिवारनी साथे ग्रामानुग्राम विहार करता, सूर्यनी भाइके लओथेना अज्ञानरूप
अंधकारने हर करता स्याद्वादसिद्धान्तनी विजयपताका इरकावता, क्षान्ति आदि
धर्मना उद्योत करता करता अने लौकिकवादि चार्वाक आदि मतनुं निरा-
करखु करता करता, विचरखु करता करता, चंपानगरीना पूर्णभद्र उद्यानमां पधायी.

स्त्व हृदये जातो न वा ? । तदाऽसौ नास्तिकस्तद्वचनं स्वीकुर्वन् वदति-भदन्त ! भवान् सत्यं वदति मम मनस्ययमेव विचारः प्रादुरासीत् । इत्युक्त्वाऽसौ गौतमस्वामिनः शिष्यो भूत्वा दीक्षितो जातः । तेन शिष्येणान्यैश्च शिष्यपरिवारैः सह ग्रामानुग्रामं विहरन् गौतमस्वामी राजगृहनगरे गुणशिष्ठे चैत्ये भगवतः श्रीवर्धमानस्वामिनः संनिधौ समागतः । भगवन्तं वन्दित्वा नमस्कृत्य गौतमस्वामी चतुर्ज्ञानगर्वमकुर्वन् सविनयं ब्रवीति-हे भगवन् ! अयं भगवत्प्रभावादेव सन्मार्गं समायातः । ततो भगवता श्रीवर्धमानस्वामिना श्रमणनिर्ग्रन्थानाहूय कथितम्-भो ! मुनयः ! गौतम-

भद्र से पूछा कि-कहो महानुभाव ! तुम्हारे मन में यह विचार उत्पन्न हुआ या नहीं ? । तब सोमभद्र ने गौतमस्वामी के इस कथन को स्वीकार करते हुए कहा-भदन्त ! आपने विलकुल ही यथार्थ कहा है, मेरे मन में ऐसा ही विचार उत्पन्न हुआ था । इस प्रकार अपने हृदयंगम अभिप्राय को प्रगट करते हुए उसने गौतमस्वामी के पास दीक्षा धारण करली और उनका शिष्य हो गया । मुनि सोमभद्र एवं अन्य शिष्यों के साथ ग्रामानुग्राम विहार करते हुए गौतमस्वामी राजगृह नगर के गुणशिलचैत्य में भगवान् वर्धमान स्वामी के पास आये । वंदना एवं नमस्कार कर के गौतमस्वामी ने अपने में रहे हुए चतुर्ज्ञान की विशिष्टता का गर्व न करके प्रभु से बड़े विनय के साथ कहा-भगवन् ! यह सोमभद्र मुनि आपके ही प्रभाव से सन्मार्ग में आया है । भगवान् श्रीवर्धमानस्वामी ने श्रमणनिर्ग्रन्थों को बुलाकर कहा कि हे मुनियों ! देखो चार

उत्पन्न थयेल के नही ? त्यारे सोमभद्रे गौतमस्वामीना आ कथनने स्वीकार करीने कहुं, भदन्त ! आपे विलकुल यथार्थ कहुं छे. भारा मनमां आवे ज विचार उत्पन्न थये हतो. आ प्रकारे पोताना हृदयमांनो अलिप्रायने प्रगट करीने तेछे गौतमस्वामीनी पासे दीक्षा अडखु करी लीधी. अने तेमना शिष्य भनी गया. मुनि सोमभद्र अने वीज शिष्ये साथे ग्रामानुग्राम विहार करता करता गौतमस्वामी राजगृह नगरना शुषुशिलचैत्यमां भगवान् वर्धमान स्वामीनी पासे आव्या. वंदना अने नमस्कार करी गौतमस्वामीजे पोतानामां आरज्ञान विशिष्टतानो गर्व न करतां प्रभुने धर्या विनय साथे कहुं, भगवन् ! आ सोमभद्रमुनि आपना ज प्रभावधी सन्मार्गमां अख्या छे. भगवान् श्री वर्धमान स्वामीजे श्रमणनिर्ग्रन्थेने जालावीने कहुं के, हे मुनियो ! ज्यो

खण्डनात् प्रतिनिवृत्तो नाभूत्, परंतु अन्ततस्तदुक्तयुक्तिप्रतियुक्तिस्वरूपं खण्डयितुम-
समर्थः सन् मनसि विचारयति—“सत्यम् अयमस्ति गौतमस्वामी महान् विद्या-
निधिः, यदीदृशं मम मनोगतं भावं गौतमस्वामी कथयिष्यति तदाऽहमस्य शिष्यो
भविष्यामि” इति ।

गौतमस्वामी मनःपर्ययज्ञानधारकतया तदानीमेव परिपदि वदति—“अस्य
तर्ककेसरिणो मनसि संप्रति अयं विचारः समायातः—“सत्यमयं गौतमस्वामी महान्
विद्यानिधिः परंत्वेवं मम मनोगतं विचारं गौतमस्वामी यदि कथयेत् तर्हि तस्य
शिष्यो भविष्यामी”ति । इत्युक्त्वा पुनस्तं नास्तिकं पृच्छति—कथय किमयं विचार-

बीच खंडन करना प्रारंभ कर दिया, परन्तु गौतमस्वामी ने जब उसकी
युक्तियों का पूरे तोर से खंडन किया तो वह उसको संभालने में समर्थ
नहीं हो सका । गौतमस्वामी के अगाध ज्ञान को देखकर उस समय
उसके मन में यही विचार आया कि वास्तव में ये गौतमस्वामी विशिष्ट
विद्यानिधान हैं, परन्तु यदि ये मेरे इस मनोगत भाव को बतला दें
तो मैं इनका शिष्य हो जाऊँगा ?

गौतमस्वामी मनःपर्ययज्ञान के धारी थे, अतः उसी समय वे
इसके मानसिक विचार को स्पष्टरूप से जान गये । उन्होंने ने उसी
समय सभा के बीच में कहा कि इस तर्ककेसरी सोमभद्र के मन में
इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ है कि “ये गौतमस्वामी महान्
विद्या के निधान हैं यदि ये मेरे इस अभिप्राय को बतला दें तो मैं
इनका शिष्य हो जाऊँगा” । गौतमस्वामी ने ऐसा कह कर उस सोम-

सभानी वयमां अंडन करवाने प्रारंभ करीःदीधे। परंतु गौतमस्वामीजे न्यारे
तेनी युक्तिजेनुं पुरी रीते अंडन कथुं त्यारे ते पोतानी नतने संलाणवामां
समर्थं न जन्थे। गौतमस्वामीना अगाध ज्ञानने जेष्ठजे समय जेना मनमां जे
विचार आव्ये के, वास्तवमां आ गौतमस्वामी विशिष्टविद्यानिधान छे। परंतु
जे तेजे मारा आ मनोलावने अतावी आवे तो हुं जेमने शिष्य अनी जठं।

गौतमस्वामी मनःपर्ययज्ञानना धारी हुता। आथी जेज वपते तेमजे
जेना मानसिक विचारने स्पष्ट रूपथी जेष्ठी लीधा। अने जेज वपते सभानी
वयमां कहुं के, आ तर्ककेसरी सोमभद्रना मनमां जे प्रकारने विचार उत्पन्न
थये छे के, “आ गौतमस्वामी महान् विद्यानिधान छे तेजे जे मारा आ
अभिप्रायने अतावी आवे तो हुं तेमने शिष्य अनी जठं।” गौतमस्वामीजे
जेजुं कहीने सोमभद्रने कहुं के, कडे मंडानुलाव । तमारा मनमां आ विचार

ટીકા—‘ નત્થિ નૂણં ’ ઇત્યાદિ ।

પરો લોકઃ=પરભવઃ—જન્માન્તરમ્, નૂનં=નિશ્ચયેન નાસ્તિ=ન ભવતિ । અયં ભાવઃ—શરીરં હિ ભૂતાત્મકં, તદિદૈવ નશ્યતિ, શરીરે વર્તમાનસ્ય ચૈતન્યસ્યાપિ ભૂત-ધર્મત્વાદેવ શરીરેણ સહ નાશસંભવાત્ । શરીરવ્યતિરેકેણ આત્મનઃ પ્રત્યક્ષતોડનુપ-લમ્બમાનત્વાચ્ચ જન્માન્તરં ન ભવતીતિ નિશ્ચેતવ્યમિતિ । યદ્વા—નૂનમિતિ સંભાવ-નાયામ્ પરલોકઃ સ્વર્ગાદિનાંસ્તીતિ સંભાવયામિ, યતઃ પરલોકે ગતઃ કોડપિ નાત્રા-ગત્ય વદતિ, તસ્માત્ પ્રત્યક્ષાભાવાન્નાસ્તિ પરલોક ઇતિ । વા=અથવા, અપિ=ઈહાપિ-

અવ સૂત્રકાર વાઈસવાં ઢર્શનપરીપહજય કો વતલાતે હેં—

‘ નત્થિ નૂણં ’—ઈત્યાદિ ।

અન્વયાર્થ—(પરે લોષ નૂણં નત્થિ—પરઃ લોકઃ નૂનં નાસ્તિ) નિશ્ચય સે જન્માન્તર નહીં હૈ—યહ શરીર ભૂતાત્મક હૈ, ઇસલિયે યહ તો યહાં હી વિનિષ્ટ હો જાતા હૈ । ઇસ શરીર મેં જો ચૈતન્ય વર્તમાન હૈ વહ ભી ભૂતોં કા ધર્મ હોને સે શરીર કે સાથ હી નાશ કો પ્રાપ્ત હો જાતા હૈ । ઢૂસરે—શરીર સે ભિન્ન આત્મા—નામક કોઈ પદાર્થ હૈ, યહ કિસી ભી પ્રત્યક્ષ પ્રમાણ સે સાવિત નહીં હોતા હૈ અતઃ પરલોકી (પરલોક જાને વાલા આત્મા) કા અભાવ હોને સે પરલોક કા અભાવ સ્વતઃ સિદ્ધ હૈ, અર્થાત્ જન્માન્તર નહીં હૈ । અથવા “ નૂનં ” યહ પદ સંભાવના મેં ભી પ્રયુક્ત કિયા જાતા હૈ ઇસ અપેક્ષા પરલોક-સ્વર્ગાદિક જો માને જાતે હેં સો વે ભી નહીં હેં, ઇસી સંભાવના હોતી હૈ, ક્યોં કિ કોઈ ઇસા તો હૈ નહીં જો પરલોક મેં જાકર પશ્ચાત્ યહાં આકર યહ કહે કિ મેં અમુક

હવે સૂત્રકાર બાવીસમા ઢર્શનપરીપહજને શ્રુતવાનું બતાવે છે—

‘ નત્થિ નૂણં ’ ઇત્યાદિ.

અન્વયાર્થ—પરે લોષ નૂણં નત્થિ—પરલોકઃ નૂનં નાસ્તિ નિશ્ચયથી જન્માન્તર નથી. આ શરીર ભૂતાત્મક છે, આ માટે તે તો અહિં જ વિનિષ્ટ થઈ જાય છે. આ શરીરમાં જે ચૈતન્ય વર્તમાન છે તે પણ ભૂતોનો ધર્મ હોવાથી શરીરની સાથેસાથ નાશ પામે છે, ખીજું શરીરથી ભિન્ન આત્મા નામનો કોઈ પદાર્થ છે, એ કોઈ પણ પ્રત્યક્ષ પ્રમાણથી જાણખી શકાતો નથી. આથી પરલોકીનો (પરલોક જવાવાળો આત્મા) અભાવ હોવાથી પરલોકનો અભાવ સ્વતઃ સિદ્ધ છે. અર્થાત્ જન્માન્તર નથી. અથવા ‘ નૂનં ’ આ પદ સંભાવનામાં પણ પ્રયુક્ત કરાય છે. આ અપેક્ષા પરલોક, સ્વર્ગાદિક જે માનવામાં આવે છે તે પણ નથી એવી સંભાવના થાય છે. કેમકે, કોઈ એવો તો છે જ નહીં જે પરલોકમાં

अतुर्ज्ञानचतुर्दशपूर्वधारकः स्वज्ञानप्रभावाद्नेकयुक्तिपतियुक्तीः प्रदर्श्य, मत्तगजेन्द्रमिव सोमभद्रं वशीकृत्य दीक्षितं कृत्वाऽऽनीतयान् । अयं गौतमस्य प्रयत्नेनैव मोक्षमार्गमाश्रितः, तथापि गौतमो विनयातिशयं कुर्वन् ज्ञानगर्वं न बहति, न च केवलज्ञानाप्राप्तिविषयकविषादाकरणेन च परिपन्न तदुपरि विनयः प्राप्तस्तथाऽन्यैरपि मुनिभिरज्ञानाभावपरीपहः सोढव्यः ॥ ४३ ॥

अथ द्वाविंशतितमं दर्शनपरीपहजयं ग्राह—

मूलम्—नैत्थि नूणं परे लोपे ईड्ढी वा विं तवस्सिणो ।

अटुंवा 'वंचि'ओ मि-त्ति', ईइ भिक्खू नै चित्तंए ॥४४॥

छाया—नास्ति नूनं परो लोकः ऋद्धिर्वाऽपि तपस्विनः ।

अथवा वञ्चितोऽस्मीति इति भिक्षुर्न चिन्तयेत् ॥ ४४ ॥

ज्ञानके धारी एवं चतुर्दशपूर्वके पाठी गौतमने अपने प्रभावसे ही मत्तगजराजकी तरह इस सोमभद्रको अनेक युक्ति प्रयुक्तियों द्वारा वशमें करके दीक्षित किया है, और यहां ये इसको ले आये हैं, गौतमका ही यह प्रयत्न है जो यह मोक्षमार्गमें आ गया है, फिर भी गौतमको अपने विनयातिशयसे इस बातका जरा भी गर्व नहीं है। तथा केवलज्ञानकी अप्राप्तिके विषयमें विषाद भी नहीं है। जिस तरह गौतमने अवधिमनःपर्ययज्ञानके परीपहको उनका मद नहीं करनेसे तथा केवलज्ञानकी अप्राप्तिमें विषाद नहीं करनेसे जीता है उसी तरह तुम सब मुनियोंको भी अज्ञानाभाव अर्थात् ज्ञानका सद्भाव परीपह जीतना चाहिये ॥ ४३ ॥

आर ज्ञानना धारी अने चौदहपूर्वना पाठी गौतमने मत्तगजराजकी भांइ स्वैरविहारी अने युक्ति प्रयुक्तियोंना स्वाभी अथवा आभने पोताना ज्ञानवडे वश करीने दीक्षित करेले छे. अने तेने अही लई आवेल छे. गौतमने ज आ प्रयत्न छे के जे आ मोक्षमार्गमा आवेल छे. छातां पणु गौतमने पोताना विनय अतिशयथी आ वातने जरा पणु गर्व नथी तथा डेवजज्ञाननी अप्राप्तिना विषयमां विषाद पणु नथी. जेवी रीते गौतमने अवधिमनःपर्ययज्ञानना परीपहने मद नही करवाथी तथा डेवजज्ञाननी अप्राप्तिमां विषाद नही करवाथी छतेले छे. आ रीते तमे सधणा मुनियोंअथे पणु अज्ञान अभाव अर्थात् ज्ञानने सइभाव छतवे जेई अ. ॥ ४३ ॥

टीका—‘ नत्थि नूनं ’ इत्यादि ।

परो लोकः=परभवः-जन्मान्तरम्, नूनं=निश्चयेन नास्ति=न भवति । अयं भावः-शरीरं हि भूतात्मकं, तदिहैव नश्यति, शरीरे वर्तमानस्य चैतन्यस्यापि भूत-धर्मत्वादेव शरीरेण सह नाशसंभवात् । शरीरव्यतिरेकेण आत्मनः प्रत्यक्षतोऽनुप-लभ्यमानत्वाच्च जन्मान्तरं न भवतीति निश्चेतव्यमिति । यद्वा-नूनमिति संभाव-नायाम् परलोकः स्वर्गादिनांस्तीति संभावयामि, यतः परलोके गतः कोऽपि नात्रा-गत्य वदति, तस्मात् प्रत्यक्षाभावान्नास्ति परलोक इति । वा=अथवा, अपि=इहापि-

अयं सूत्रकार चाईसवां दर्शनपरीपहजय को वतलाते हैं—

‘नत्थि नूनं’-इत्यादि ।

अन्वयार्थ—(परे लोके नूनं नत्थि-परः लोकः नूनं नास्ति) निश्चय से जन्मान्तर नहीं है-यह शरीर भूतात्मक है, इसलिये यह तो यहां ही विनिष्ट हो जाता है । इस शरीर में जो चैतन्य वर्तमान है वह भी भूतों का धर्म होने से शरीर के साथ ही नाश को प्राप्त हो जाता है । दूसरे-शरीर से भिन्न आत्मा-नामक कोई पदार्थ है, यह किसी भी प्रत्यक्ष प्रमाण से साबित नहीं होता है अतः परलोकी (परलोक जाने वाला आत्मा) का अभाव होने से परलोक का अभाव स्वतः सिद्ध है, अर्थात् जन्मान्तर नहीं है । अथवा “नूनं” यह पद संभावना में भी प्रयुक्त किया जाता है इस अपेक्षा परलोक-स्वर्गादिक जो माने जाते हैं सो वे भी नहीं हैं, ऐसी संभावना होती है, क्यों कि कोई ऐसा तो है नहीं जो परलोक में जाकर पश्चात् यहां आकर यह कहे कि मैं अमुक

इसे सूत्रकार भावीसभा दर्शनपरीपहजने उतवानुं भतावे छे—

‘ नत्थि नूनं ’ इत्यादि.

अन्वयार्थ—परे लोके नूनं नत्थि-परलोकः नूनं नास्ति निश्चयधी जन्मान्तर नहीं. आ शरीर भूतात्मक छे, आ भाटे ते तो अडिं न विनष्ट थर्ष जय छे. आ शरीरमां ने चैतन्य वर्तमान छे ते पक्षु भूतोना धर्म डोवाधी शरीरनी साथेसाथ नाश पावे छे, धीनुं शरीरथी लिन्न आत्मा नामनेो डोर्ष पदार्थ छे, ओ डोर्ष पक्षु प्रत्यक्ष प्रमाळुधी ओणभी शकतो नहीं. आधी परलोकीने (परलोके नवावाणे आत्मा) अभाव डोवाधी परलोकेने अभाव स्वतः सिद्ध छे. अर्थात् जन्मान्तर नहीं. अथवा ‘नूनं’ आ पद संभावनामां पक्षु प्रयुक्त कथय छे. आ अपेक्षा परलोके, स्वर्गादिक ने मानवामां आवे छे ते पक्षु नहीं ओवी संभावना थाय छे. डेभके, डोर्ष ओवे तो छे न नहीं ने परलोकेमां

शब्दो भिन्नक्रमः अतोऽयमर्थः—तपस्विनोऽपि मम ऋद्धिः=आमशौषध्यादिलब्धि-
रूपा नास्ति=न विद्यते, तस्या अप्यनुपलभ्यमानत्वात् ।

प्रसङ्गादिह लब्धिभेदा उच्यन्ते—

१ आमशौषधिः, २ विप्रुडोपधिः, ३ खेलौपधिः, ४ जल्लौपधिः, ५ सर्वौषधिः,
६ संभिन्नश्रोतोलब्धिः, ७ अवधिलब्धिः, ८ ऋजुमतिलब्धिः, ९ विपुलमतिलब्धिः,
१० चारणलब्धिः, ११ आशीर्विपलब्धिः, १२ केवलिलब्धिः, १३ गणधरलब्धिः,
१४ पूर्वधरलब्धिः, १५ अर्हल्लब्धिः, १६ चक्रवर्तिलब्धिः, १७ बलदेवलब्धिः,
१८ वासुदेवलब्धिः, १९/१ क्षीरास्रवलब्धिः, १९/२ मध्वास्रवलब्धिः,
१९/३ सर्पिरास्रवलब्धिः, २० कोष्ठबुद्धिलब्धिः, २१ पदानुसारिलब्धिः, २२

स्वर्गं से आया हूं, इसलिये प्रत्यक्ष से उनकी उपलब्धि का अभाव होने
से परलोक नहीं है । (वा) अथवा (तवस्सिणो इड्डी अवि-तपस्विनः
ऋद्धिः अपि) तपस्वी जन को ऋद्धिकी प्राप्ति हो जाती है यह भी बात
ठीक नहीं है, क्योंकि ऋद्धियों अर्थात् लब्धियों की सिद्धि भी प्रत्यक्षप्र-
माण से होती नहीं है । लब्धियां २८ प्रकार की हैं वे ये हैं—

आमशौषधि १, विप्रुडोपधि २, खेलौपधि ३, जल्लौपधि ४, सर्वौ-
षधि ५, संभिन्नश्रोतोलब्धि ६, अवधिलब्धि ७, ऋजुमतिलब्धि ८, विपु-
लमतिलब्धि ९, चारणलब्धि १०, आशीर्विपलब्धि ११, केवलिलब्धि १२,
गणधरलब्धि १३, पूर्वधरलब्धि १४, अर्हल्लब्धि १५, चक्रवर्तिलब्धि १६,
बलदेवलब्धि १७, क्षीरास्रवलब्धि १९/१, मध्वास्रवलब्धि १९/२, सर्पि-
रास्रवलब्धि १९/३, कोष्ठबुद्धिलब्धि २०, पदानुसारिलब्धि २१, बीजबु-

ज्ज पाछे अडिं आवी ते अेम कडे के हुं अमुक स्वर्गमां ज्जने आये।
हुं. आ माटे प्रत्यक्षथी तेनी उपलब्धीने। अलाव होवाथी परलोक नहीं. अथवा
तवस्सिणो इड्डी अवि तपस्वीअोने ऋद्धियोनी प्राप्ति थध नय छे अे वात पञ्च
ठीक नहीं. केमके, ऋद्धियोनी सिद्धि पञ्च प्रत्यक्ष प्रमाणथी थती नहीं. ऋद्धियो
२८ प्रकारनी छे. ते आ प्रमाणे छे.

(१) आमशौषधि, (२) विप्रुडोपधि, (३) खेलौपधि, (४) जल्लौपधि,
(५) सर्वौषधि, (६) संभिन्नश्रोतोलब्धि, (७) अवधिलब्धि, (८) ऋजुमति
लब्धि, (९) विपुलमतिलब्धि, (१०) चारणलब्धि, (११) आशीर्विपलब्धि,
(१२) केवलिलब्धि, (१३) गणधरलब्धि, (१४) पूर्वधरलब्धि, (१५) अर्हल्लब्धि,
(१६) चक्रवर्तिलब्धि, (१७) बलदेवलब्धि, (१८) वासुदेवलब्धि, (१९) क्षीरास्रव-
लब्धि, मध्वास्रवलब्धि, सर्पिरास्रवलब्धि, (२०) कोष्ठबुद्धिलब्धि १) पदानु-

बीजबुद्धिलब्धिः, २३ तेजोलेश्यालब्धिः, २४ आहारकलब्धिः, २५ शीतलेश्यालब्धिः, २६ वैक्रियलब्धिः, २७ अक्षीणमहानसिकलब्धिः, २८ पुलाकलब्धिः ।

भव्यत्वाभव्यत्वविशिष्टानां पुरुषाणां च यावत्यो लब्धयो भवन्ति, ता एवम्—भव्यपुरुषाणामेताः पूर्वोक्ता सर्वा अपि लब्धयो भवन्ति । अर्हचक्रवर्तिवासु-देववलदेवसंभिन्नश्रोतश्चारणपूर्वधरगणधरपुलाकाऽऽहारकलब्धिलक्षणा एतादृश लब्धयो भव्यस्त्रीणां नैव भवन्ति । शेषास्त्वष्टादशलब्धयो भव्यस्त्रीणां भवन्ति ।

यच्च मल्लिस्वामिनः स्त्रीत्वेऽपि तीर्थंकरत्वमभूत् तदाश्चर्यभूतत्वान्न गण्यते । तथा—अनन्तरोक्ता अर्हदाद्या आहारकर्पर्यन्ता दश लब्धयः, केवलि—ऋजुमति—विपुलमति

द्विलब्धि २२, तेजोलेश्यालब्धि २३, आहारकलब्धि २४, शीतलेश्या-लब्धि २५, वैक्रियलब्धि २६, अक्षीणमहानसीकलब्धि २७, पुलाकलब्धि २८।

अथ भव्यत्वभावविशिष्ट एवं अभव्यत्वभावविशिष्ट पुरुष को जितनी जितनी लब्धियां होती हैं वे कहते हैं—

भव्यत्वभावविशिष्ट पुरुषों के ये सभी लब्धियां होती हैं । भव्य स्त्रियों के अर्हल्लब्धि १, चक्रवर्तिलब्धि २, वासुदेवलब्धि ३, वलदेव-लब्धि ४, संभिन्नश्रोतोलब्धि ५, चारणलब्धि ६, पूर्वधरलब्धि ७, गण-धरलब्धि ८, पुलाकलब्धि ९, एवं आहारकलब्धि १०, ये दस लब्धियां नहीं होती हैं । बाकी अवशिष्ट अठारह लब्धियां भव्य स्त्रियों के भी होती हैं । जो मल्लिस्वामी के स्त्रीपना होने पर भी तीर्थंकरत्व वहां हुआ वह अच्छेरा—आश्चर्य होने की वजह से गिना नहीं जाता है । ये १३ तेरह लब्धियां अभव्यपुरुषों के नहीं होती हैं—केवलिलब्धि, ऋजु-

सारिलब्धि, (२२) भीजबुद्धिलब्धि, (२३) तेजोलेश्यालब्धि, (२४) आहारकलब्धि, (२५) शीतलेश्यालब्धि, (२६) वैक्रियलब्धि, (२७) अक्षीणमहानसिकलब्धि, (२८) पुलाकलब्धि.

इसके अन्वयत्वभावविशिष्ट अथ अभाव्यत्वभाव विशिष्ट पुरुषोने जेटली जेटली लब्धिओ थाय छे ते अतावे छे.

अन्वयत्वभाव विशिष्ट पुरुषोने आ अधी लब्धिओ थाय छे. अन्वय स्त्रियोने १ अर्हल्लब्धि, २ चक्रवर्तिलब्धि, ३ वासुदेवलब्धि, ४ वलदेवलब्धि, ५ संभिन्नश्रोतोलब्धि, ६ चारणलब्धि, ७ पूर्वधरलब्धि, ८ गणधरलब्धि, ९ पुलाकलब्धि, अने १० आहारकलब्धि. आ दश लब्धिथे। यती नथी. आडीनी अठार लब्धिथे। अन्वय स्त्रीओने पणु थाय छे. जेम मल्लि स्वामीने श्रीपणु' होवा छतां पणु तीर्थंकरत्व तेमने थयुं. ते अच्छेरा—आश्चर्य' थवानी गणुत्रीमां गणवामां आवतुं नथी. आ तेर लब्धिओ अभाव्य पुरुषोने यती नथी.

—લઘ્વયથૈતાસ્રયોદશ લઘ્વયઃ પુરુપાણામપ્યભવ્યાનાં નૈવ ભવન્તિ, શેપાઃ પચ્ચદશ લઘ્વયસ્તુ ભવન્તિ । અભવ્યસ્ત્રીણામપ્યેતાસ્રયોદશ લઘ્વયો ન ભવન્તિ, મધુસીરાસ્રવલ્લઘિરપિચતુર્દશી તાસાં નૈવ ભવતિ । શેપાથતુર્દશલઘ્વયસ્તુ તાસામપિ ભવન્તિ ।

અથાસાં વ્યાખ્યા પ્રદર્શયતે—આમર્શોપધિઃ—આમર્શો દિ હસ્તાદિના સ્પર્શઃ, સ એવ ઓપધિઃ, કરાદિસંસ્પર્શમાત્રાદેવ વ્યાધ્યપનયનસામર્થ્યમ્ ॥ ૧ ॥

ચિપુહોપધિઃ—યન્માહાત્મ્યાન્મૂત્રપુરીપાવયવમાત્રમપિ રોગરાશિમ્નાશાય સંપદ્યતે મુરમિ ચ સા ॥ ૨ ॥

મતિલઘ્વિ, ચિપુલમતિલઘ્વિ ત્રીણે તથા ભવ્ય સ્ત્રિયોં કે જિન દશ ૧૦ ઋદ્ધિયોં કા અભાવ વતલાયા ગયા હૈ વે । ઇસ પ્રકાર ૧૩ તેરહ લઘ્વિયોં કા અભવ્યપુરુપોં કે અભાવ રહતા હૈ । વાકી ૧૫ લઘ્વિયાં હોતી હૈ । ઇસી તરહ અભવ્યસ્ત્રિયોં કે મી યે હી ૧૩ તેરહ લઘ્વિયાં નહીં હોતી હૈ । તથા ક્ષીરાસ્રવ એવં મધ્વાસ્રવ નામકી મી લઘ્વિ અનેકે નહીં હોતી હૈ । ઇસ પ્રકાર તેરહ ૧૩ પૂર્વોક્ત ઓર ૧૪ ચૌદહવીં ક્ષીરાસ્રવ, મધ્વાસ્રવ સર્પિરાસ્રવરુપ કા અનેકેઅભાવ જાનના ચાહિયે । વાકી ૧૪ ચૌદહ લઘ્વિયાં અભવ્યસ્ત્રિયોં કે હોતી હૈ ।

ઇન લઘ્વિયોં કી વ્યાખ્યા કી જાતી હૈ—હસ્ત આદિ દ્વારા સ્પર્શ હોને કા નામ આમર્શ હૈ । યહ સ્પર્શ હી જિનકા ઓપધિ કા કામ કરતા હૈ વહ આમર્શોપધિ હૈ । ઇસ લઘ્વિ કે ધારી કો જો રોગી અપને હસ્તાદિક સે છૂ લેતા હૈ ઉસકા વહ રોગ છૂતે હી નષ્ટ હો જાતા હૈ ૧, જિસ કે પ્રભાવ સે મૂત્ર, પુરીપ, આદિ મી રોગરાશિકે વિનાશ કરને મેં ઓષ-

કેવલીલઘ્વિ, ઋબુમતિલઘ્વિ, ચિપુલમતિલઘ્વિ, ત્રણ આ તથા લઘ્વ્ય સ્ત્રીઓને જે દશઋદ્ધિઓને અભાવ બતાવેલ છે તે આ પ્રકારની તેર લઘ્વિઓને અલઘ્વ્ય પુરુષોને અભાવ રહે છે. બાકી પંદર લઘ્વિઓ થાય છે. આ રીતે અલઘ્વ્ય સ્ત્રીઓને પણ આ તેર લઘ્વિઓ થતી નથી. તથા ક્ષીરાસ્રવ અને મધ્વાસ્રવ સર્પિરાસ્રવ નામની પણ તેને થતી નથી. આ રીતે તેર પૂર્વોક્ત અને ચૌદમી ક્ષીરાસ્રવ મધ્વાસ્રવ લઘ્વિનો તેને અભાવ બહુવો બેધએ. બાકી ચૌદ લઘ્વિઓ અલઘ્વ્ય સ્ત્રીઓને થાય છે.

આ લઘ્વિઓની વ્યાખ્યા કહેવામાં આવે છે,—હાથ આદિ દ્વારા થવાનું નામ આમર્શ છે. આ સ્પર્શ જેને ઓપધિનું કામ કરે છે તે આમર્શ ઓપધિ છે. આ લઘ્વિના ધારીને જે રોગી પોતાના હાથથી અડે છે એને એ રોગ અડતાં જ નાશ પામે છે. (૧) જેના પ્રભાવથી મૂત્ર, પુરીપ, આદિ રોગ વિનાશ કરવામાં ઓપધિનું કામ કરવા લાગે છે તથા તેમ આવવા

खेलौपधिः—यत् प्रभावात् श्लेष्मा सर्वरोगापहारकः सुरभिश्च भवति सा ॥३॥

जल्लौपधिः—जल्लो=मलः कर्णयदननासिकानयनजिह्वासमुद्भवः शरीरसमुद्भवश्च,
स एव ओपधिर्भवति यत्प्रभावात् सा ॥ ४ ॥

सर्वौपधिः—यत्प्रभावात् सर्वे विष्मूत्रकेशनखादय ओपधयो भवन्ति सा ॥५॥

संभिन्नश्रोतोलब्धिः—यत्प्रभावात् सर्वैरपि शरीरावयवः सुस्पष्ट शृणोति
सा । यद्वा—‘संभिन्नस्रोतस्’ इतिच्छाया । अत्र स्रोतस् शब्द इन्द्रियवाचकः, तेन
यत्प्रभावात्—एकैकमिन्द्रियं सर्वेषामिन्द्रियाणां कार्यं संपादयति सा । यथा—कर्णे-
नैव श्रवणदर्शनघ्राणरसनस्पर्शनकार्याणि लब्धिप्रभावात् संपादयति ॥ ६ ॥

अवधिलब्धिः—अवधिज्ञानमेव लब्धिः—अवधिलब्धिः । अरूपिद्रव्यं विहाय

धिका काम करने लग जाते हैं, तथा उनमें सुगंध आने लगती है, इस
का नाम विप्रुडोपधि है २ । जिसके प्रभाव से श्लेष्मा सर्वरोग का अप-
हारक हो जाता है उस का नाम खेलौपधि है । इसके प्रभाव से श्लेष्म
भी सुगंधवाला हो जाता है ३ । जिसके प्रभावसे कान, मुख, नासिका,
नयन, एवं जिह्वा का मैल, तथा शरीरका मैल औपधि जैसा परिणमित
होता है उसका नाम जल्लौपधि है ४ । जिसके प्रभावसे विष्टा, मूत्र, केश,
तथा नख आदिक औपधि जैसे हो जाते हैं उसका नाम सर्वौपधि है ५ ।
जिसके प्रभावसे समस्त शारीरिक अवयवों द्वारा सुना जाय, अथवा एक ही
इन्द्रिय जिसके प्रभाव से अन्य इन्द्रियों का काम करने लग जाय उस का
नाम संभिन्नश्रोतोलब्धि है । जिसके यह लब्धि होती है वह एक कर्ण
इन्द्रिय से ही अवशिष्ट इन्द्रियों के काम—दर्शनादिक करने की शक्ति-
वाला हो जाता है ६ । जिसके प्रभाव से अमूर्तिक द्रव्य को छोड़ कर
मूर्तिक द्रव्यको जानने की सामर्थ्य आत्मामें प्रकट हो जाती है उसका नाम

लागे थे. तेनुं नाम विप्रुड औपधि थे. (२) जेना प्रभावथी श्लेष्मा सर्व
रोगोना नाश करनार थे तेनुं नाम खेलौपधि थे, तेना प्रभावथी श्लेष्म पणु
सुगंधवाणा थई जय थे. (३) जेना प्रभावथी कान, मोडुं, नाक, नेणु अने
लभनेा मैल तथा शरीरनेा मैल, औपधिनी जेम परिणमित अने थे तेनुं
नाम जल औपधि थे. (४) जेना प्रभावथी विष्टा, मूत्र, वाण, नथ, आदि
औपधि जेवा थई जय थे तेनुं नाम सर्वौपधि थे. (५) जेना प्रभावथी शरी-
रनां तमाम अवयवो द्वारा संभणाय अथवा जेक जे इन्द्रिय जेना प्रभावथी
धील इन्द्रियेनुं काम करवा लागी जय तेनुं नाम संभिन्नश्रोतोलब्धि थे.
जेने आ लब्धि होय थे ते जेक कषु इन्द्रियथी जे अवशिष्ट इन्द्रियेनां

रूपिद्रव्यविषयकमिन्द्रियनिरपेक्षं मनःप्रगिधानवीर्यकं प्रतिविशिष्टक्षयोपशमनिमित्तकं देवमनुष्यतिर्यङ्मनारकस्वामिकं ज्ञानं भवति यत्प्रभावात् सा ॥ ७ ॥

ऋजुमतिलब्धिः—ऋजुः=सामान्यं-विशेषरहितं, देशकालाद्यनेकपर्यायवर्जितं, संज्ञिना चिन्तितं, तद्ग्राहिणी मतिः-ऋजुमतिः, सैव लब्धिः। सा च घटोऽनेन चिन्तितः, इत्येवं संज्ञिमनोद्रव्यपरिच्छेदः ॥८॥

विपुलमतिलब्धिः—विशुद्धतरः संपूर्णमनुष्यक्षेत्रवर्तिसंज्ञिपठ्वेन्द्रियमनोद्रव्यप्रत्यक्षीकरणहेतुर्मनःपर्ययज्ञानविशेषः। यथा-परेण चिन्तितं घटं प्रसंगतो बहुभिः

अवधिलब्धि है, यह अवधि, इन्द्रिय और मनकी सहायता से उत्पन्न नहीं होता है। अवधिज्ञानावरणीय कर्मके प्रतिविशिष्ट क्षयोपशम से उत्पन्न होता है। देव, मनुष्य, नरक एवं तीर्यञ्च, इस प्रकार चारों गतियों के जीव इस के स्वामी हो सकते हैं ७। जिस के प्रभाव से-देश, काल आदि अनेक पर्यायों से वर्जित पदार्थ का सामान्य ज्ञान होता है, और जो संज्ञी जीव के द्वारा चिन्तित पदार्थ को ग्रहण करता है उसका नाम ऋजुमतिलब्धि है। जैसे जिसने अपने मन के द्वारा घट का विचार किया तो ऋजुमतिलब्धि वाला उसे शीघ्र बतला देगा कि इसने घट का विचार किया है ८। जिसके प्रभाव से मनुष्यक्षेत्रवर्ती समस्त संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों के मनोद्रव्य को साक्षात् करनेवाला जो विशुद्धतर ज्ञान होता है उसका नाम विपुलमतिलब्धि है। यह मनःपर्यय ज्ञान का एक भेद है। जैसे किसी ने घट का विचार किया

ठाम दर्शनादिक करवानी शक्तिवाणा भनी लय छे. (६) लेना प्रभावथी अमुक्तिके द्रव्यने छोडीने मुक्तिके द्रव्यने लक्षवानुं समर्थ आत्माभां प्रगट थाय छे. तेनुं नाम अवधिलब्धि छे. आ अवधि छेन्द्रिय अने मननी सहायताथी उत्पन्न थता नथी. अवधि ज्ञानावरणीय कर्मना प्रतिविशिष्ट क्षयोपशमथी उत्पन्न थाय छे, देव, मनुष्य, नरक अने तीर्यञ्च आ चार गतीना एवो तेना स्वामी भनी शके छे.(७) लेना प्रभाव देश, काल आदिअनेक पर्यायोथी वर्जित सामान्य ज्ञान थाय छे. अने जे संज्ञी एव द्वारा चिन्तित पदार्थने ग्रहण करे छे. अने तेनुं नाम ऋजुमतिलब्धि छे. लेवो लेबु पोताना मननी साथे विचार कर्यो तो ते ऋजुमति लब्धिवाणा तेने तुरत भतावी शके छे के आबु मनभां आ विचार कर्यो छे.(८) लेना प्रभावथी मनुष्य क्षेत्रवर्ती समस्तसंज्ञनी पंचेन्द्रिय एवोना मनोद्रव्येने साक्षात् करवावाणुं जे विशुद्धतरज्ञान डोय छे. तेनुं नाम विपुलमतिलब्धि छे आ मनःपर्ययज्ञानने अेक लेद छे. जेभे दोध अे मनभां विचार कर्यो डोय तो आ लब्धिवाणा तेने प्रसंगवश अेवा

પર્યાયરૂપેતં જાનાતિ, તત્ર ઘટોડયં દ્રવ્યતઃ સૌવર્ણઃ, ક્ષેત્રતો મરુદેશીયસ્તથા ગૃહા-
મ્યન્તરસ્થઃ, કાલતલ્લૈમાસિકઃ, ભાવતઃ-સુસંસ્થાનચાક્રચિક્યાદિયુક્તઃ, આકારેણ
મહાન્, ઇત્યાદિ પ્રચુરવિશેષણવિશિષ્ટં જાનાતિ ॥ ૯ ॥ ચારણલલ્લિધઃ-આકાશ-
ગમનશક્તિઃ ॥ ૧૦ ॥ આશીર્વિપલલ્લિધઃ-આશીઃ-અનુગ્રહઃ, વિપં-નિગ્રહઃ, તદ્ગ્પા
લલ્લિધઃ, નિગ્રહાનુગ્રહસામર્થ્યમિત્યર્થઃ ॥ ૧૧ ॥ કેવલિલલ્લિધઃ-કેવલિનઃ-કેવલ-
જ્ઞાનસિદ્ધિઃ ॥ ૧૨ ॥ ગણધરલલ્લિધઃ-ગણધરત્વપ્રાપ્તિઃ ॥ ૧૩ ॥ પૂર્વધરલલ્લિધઃ
-પૂર્વધરત્વપ્રાપ્તિઃ ॥ ૧૪ ॥ અર્હલ્લલ્લિધઃ-અર્હત્વપ્રાપ્તિઃ ॥ ૧૫ ॥ ચક્રવર્તિલલ્લિધઃ-

હૈ તો હસ લલ્લિધવાલા ઉસે પ્રસંગવશ હસ રૂપ સે સ્પષ્ટ જાન લેતા હૈ
કિ હસને દ્રવ્ય કી અપેક્ષા સુવર્ણ કા, ક્ષેત્ર કી અપેક્ષા મરુદેશ કા
અથવા ઘર કે ખીતર કા, કાલ કી અપેક્ષા તીન માસ કા, ઇવં ભાવ
કી અપેક્ષા અચ્છે આકાર કા, અથવા ચાક્રચિક્યાદિ રૂપ સે યુક્ત ઘટ
કા ચિન્તન કિયા હૈ । હસ પ્રકાર વિપુલમતિલલ્લિધ વાલા ઘટકો અનેક
વિશેષણાં સે વિશિષ્ટ જાન સકતા હૈ તવ કિ ઋજુમતિલલ્લિધ વાલા
હસ પ્રકાર સે ઘટ કો નહીં જાન સકતા હૈ વહ તો ઉસે સામાન્યરૂપ
સે હી જાનતા હૈ ૯ । આકાશ મેં ગમન કરને કી શક્તિ જિસ લલ્લિધ
દ્વારા ઉત્પન્ન હો જાતી હૈ વહ ચારણલલ્લિધ હૈ ૧૦ । જિસકે પ્રભાવ સે
અનુગ્રહ ઓર નિગ્રહ કરને કી શક્તિ પ્રગટ હો જાવે વહ આશીર્વિપ-
લલ્લિધ હૈ ૧૧ । કેવલિયોં કે જો કેવલજ્ઞાન કી સિદ્ધિ હોતી હૈ ઉસકા
નામ કેવલિલલ્લિધ હૈ ૧૨ । ગણધરપદ કી પ્રાપ્તિ હોને મેં જો કારણ
હોતી હૈ વહ ગણધરલલ્લિધ હૈ ૧૩ । પૂર્વધરત્વ કી પ્રાપ્તિ પૂર્વધરલલ્લિધ ।
૧૪; અર્હત્વપદ કી પ્રાપ્તિ અર્હલ્લલ્લિધ ૧૫, ચક્રધરત્વ કી પ્રાપ્તિ ચક્રવર્તિ-

તેવા રૂપથી સ્પષ્ટ બાણી લે છે કે, તેણે દ્રવ્યની અપેક્ષા, સુવર્ણના ક્ષેત્રની
અપેક્ષા, મરુદેશના અથવા ઘરની અંદરના કાળની અપેક્ષા ત્રણ માસનું અને
ભાવની અપેક્ષા સારા આકારનું અથવા ચળકાટ ચકચકાટાદિ રૂપથી યુક્ત
ઘટ બાણી છે. આ પ્રકારે વિપુલમતિ લલ્લિધવાળા ઘટને અનેક વિશેષણોથી વિશિષ્ટ
બાણી શકે છે. ત્યારે ઋજુમતિ લલ્લિધવાળા આ રીતે ઘટને બાણી શકતા નથી.
તે તો અને સામાન્યરૂપથી જ બાણી છે. (૯) આકાશમાં ઉડવાની શક્તિ જે લલ્લિધ-
દ્વારા ઉત્પન્ન થાય છે તે ચારણલલ્લિધ છે. (૧૦) જેના પ્રભાવથી અનુગ્રહ
અને નિગ્રહ કરવાની શક્તિ પ્રગટ થાય છે તે આશીર્વિપલલ્લિધ છે. (૧૧)
કેવલીએને કેવળજ્ઞાની લલ્લિધ થાય છે તેનું નામ કેવળલલ્લિધ છે. (૧૨) ગણ-
ધર પદની પ્રાપ્તિ થવામાં જે કારણ હોય છે તે ગણધરલલ્લિધ છે. (૧૩) પૂર્વધર-
ત્વની પ્રાપ્તિ પૂર્વધરલલ્લિધ. (૧૪) અર્હત્વપદની પ્રાપ્તિ અર્હત્વલલ્લિધ. (૧૫)

चक्रधरत्वप्राप्तिः ॥१६॥ यलदेवलब्धिः—यलदेवत्वप्राप्तिः ॥१७॥ वासुदेवलब्धिः—वासुदेवत्वप्राप्तिः ॥१८॥ क्षीरास्रवलब्धिः—यत्प्रभावाद्बचनं क्षीरवन्मधुरं भवति ॥ १९॥ ११ ॥ मध्वास्रवलब्धिः—यत्प्रभावाद्बचनं मधुतुल्यं भवति ॥ १९॥ २१ ॥ सर्पिरास्रवलब्धिः—यत्प्रभावाद्बचनं घृतवत् स्निग्धमरूक्षं भवति ॥१९॥ ३॥

कोष्ठबुद्धिलब्धिः—यथा कोष्ठके धान्यं प्रक्षिप्तं तदवस्थमेव चिरमप्यवतिष्ठते, न किमपि कालान्तरेऽपि गलति, एवं यस्मिन् पुरुषे श्रुतज्ञानं निक्षिप्तं तदवस्थमेव चिरकालं तिष्ठति न कदापि विस्मरति यत्प्रभावात् सा ॥२०॥ पदानुसारिणी लब्धिः—यत्प्रभावात् पुनरेकमपि श्रुतपदमवधार्य शेषमश्रुतमपितदवस्थमेव श्रुतमवगाहते सा ॥ २१ ॥ बीजबुद्धिलब्धिः—यथा—एकस्माद् बीजान्महातरुत्पद्यते, लब्धि १६, यलदेव पद की प्राप्ति यलदेवलब्धि १७, वासुदेव पद की प्राप्ति वासुदेवलब्धि १८, क्षीर जैसे मीठे वचनों की प्राप्ति जिसके प्रभाव से हो वह क्षीरास्रवलब्धि, मधुतुल्य मधुर वचनों का होना वह मध्वास्रवलब्धि, सिग्ध एवं अरूक्ष वचन जिसके प्रभाव से हो वह सर्पिरास्रव लब्धि है १९ । जिस प्रकार कोठे में रक्खा हुआ धान्य ज्यों का त्यों बहुत काल तक रहता है—विगडता नहीं है, उसी प्रकार जिसके प्रभाव से प्राप्त श्रुत भी ज्यों का त्यों स्थिर रहे विस्मृत न हो उसका नाम कोष्ठबुद्धिलब्धि है २० जिसके प्रभाव से श्रुत का एक पद भी अवधारित होने पर शेष नहीं सुना हुआ भी श्रुत अवधारित हो जाय इस का नाम पदानुसारिणीलब्धि है २१ । जिस प्रकार एक छोटे से भी बीज से विशाल काय वृक्ष उत्पन्न हो जाता है, उसी प्रकार उत्पाद; व्यय,

चक्रधरत्वनी प्राप्ति चक्रवर्ति^१लब्धि. (१६) अलदेवपदनी प्राप्ति अणदेवलब्धि. (१७) वासुदेव पदनी प्राप्ति वासुदेवलब्धि. (१८) क्षीर जेवां मीठा वचनोनी जेना प्रभावथी थाय ते क्षीरास्रवलब्धि. मधुतुल्य मधुर वचनोनु अननु ते मध्वास्रवलब्धि. सिग्ध अने अरूक्षवचन जेना प्रभावथी थाय ते सर्पिरास्रवलब्धि छे. (१९) जे रीते कोडीमां राजेतुं अनाज जेमनुं तेम धया संभय सुधी रहे छे. छातां अगडतुं नथी. ते प्रकारे जेना प्रभावथी प्राप्त श्रुत पद्य न्यानुं त्यां स्थिर रहे, विस्मृत न अने, तेनुं नाम कोष्ठबुद्धिलब्धि छे. (२०) जेना प्रभावथी श्रुतनुं जेक पद पद्य अवधारित थवाथी आगण न सांभजेद पद्य श्रुत अवधारित थर्ध नय तेनुं नाम पदानुसारीणीलब्धि छे. (२१) जे रीते जेक नाना बीजथी विशालकाय वृक्ष उत्पन्न थाय छे. ते प्रकारे उत्पाद,

તયા-ઉત્પાદવ્યયધ્રોવ્યયુક્તં સદિત્યાદિરૂપમર્થપ્રધાનં પદમર્થપદં, તદેકં વીજભૂત-
મર્થપદમનુસૃત્ય શેપમપિ તથૈવ પ્રભૂતતરમર્થપદં જાનાતિ યત્પ્રભાવાત્ સા ॥ ૨૨ ॥

તેજોલેશ્યાલઘ્વિઃ -- યત્પ્રભાવાદનેકયોજનપ્રમાણક્ષેત્રાશ્રિતવસ્તુદહનદક્ષતી-
વ્રતેજોનિસર્જનશક્તિરૂત્પદ્યતે સા । इह यः खलु शमी-क्षमाशीलो मुनिर्निरन्तरम-
પાનકં પૃથતપઃ કગોતિ, પારણકદિને ચ સનલ્કુલ્માપમુષ્ટયા જલચુલુકે નૈવ
એકેન આત્માનં યાપયતિ, પુનરાતાપનાં કરોતિ તસ્ય પખ્માસાન્તે તેજોલેશ્યાલઘ્વિ-
રૂત્પદ્યતે ॥૨૩॥ આહારકલઘ્વિઃ-આહારકશરીરકરણશક્તિઃ । આહારકશરીરં ચ-
સ્ફટિકવદુજ્જ્વલં હસ્તપ્રમાણમેકસ્મિન્ ભવે દ્વિઃ, સંસારે ચતુર્વારં કૃત્વા મોક્ષમવશ્યં

एवं ध्रौव्य युक्त सत् है, इत्यादिरूप एक भी अर्थ प्रधानपद के अनु-
સરણ સે શેપ પ્રભૂતતર અર્થપદ મી ઇસી તરહ જ્ઞાત હો જાવેં વહ
વીજબુદ્ધિલઘ્વિ હૈ । ૨૨ જિસકે પ્રભાવ સે અનેકયોજનપ્રમાણ ક્ષેત્ર
મેં રહી હુઈ વસ્તુ કો જલાને વાલે તેજ કો નિકાલ ને કી શક્તિ ઉત્પન્ન
હો જાતી હૈ ઇસકા નામ તેજોલેશ્યાલઘ્વિ હૈ, જો શમી-ક્ષમાશીલમુનિ
નિરન્તર ચૌવિહાર પૃથ તપ કરતા હૈ, ઓર પારણા કે દિન સનલ્ક-
કલ્માપમુષ્ટિ અર્થાત્-સીજે હુણ એક મુઢી ભર ઉડદ લાકર ઉસી
સમય એક ચુલ્હૂ ભર પાની પીતા હૈ, ઓર આતાપના લેતા હૈ, ઇસ પ્રકાર
છહ મહિને તક લગાતાર કરતા રહતા હૈ તો ઉસકે તેજોલેશ્યાલઘ્વિ
ઉત્પન્ન હો જાતી હૈ । ૨૩ આહારક-શરીર કે ઉત્પન્ન હોને કી લઘ્વિ કા
નામ આહારકલઘ્વિ હૈ । આહારક શરીર સ્ફટિકમણિ કે જૈસા ઉજ્જ્વલ
તથા એક હાથ કા હોતા હૈ । એક ભવ મેં ઇસકી પ્રાપ્તિ જીવ કો દો વાર,
તથા સંસાર અવસ્થા મેં ચાર વાર તક હોતી હૈ, પશ્ચાત્ વહ જીવ મુક્તિ

વ્યય, અને ધ્રોવ્ય યુક્ત સત્ છે રૂપ એક પણ અર્થ પ્રધાનપદના અનુસરણથી
શેષ પ્રભુતતરઅર્થ પદ પણ તેવી રીતે જ્ઞાત થઈ જાય તે બીજબુદ્ધિ લઘ્વિ છે. (૨૨)
જેના પ્રભાવથી અનેક યોજન પ્રમાણક્ષેત્રમાં રહેલી વસ્તુઓને બાબુનાર તેજને
કાઢવાની શક્તિ ઉત્પન્ન થાય છે તેનું નામ તેજોલેશ્યાલઘ્વિ છે. જે શમી-ક્ષમાશીલ
મુનિ નિરન્તર ચૌવિહાર છઠ્ઠ તપ કરે છે અને પારણાના દિવસે ખાઈલા એક મુઠીભર
અડદ ખાઈ ને એજ વખતે એક ચાપલું પાણી પીયે છે અને આતાપના લે છે આ
પ્રકાર લગાતાર છ મહિના મુઠી કરતા રહે છે તો તેને તેજોલેશ્યાલઘ્વિ ઉત્પન્ન થાય
છે. (૨૩) આહારક શરીરના ઉત્પન્ન થવાની લઘ્વિનું નામ આહારકલઘ્વિ છે, આહાર-
ક શરીર સ્ફટિકમણીના જેવું ઉજ્જ્વળ અને એક હાથનું હોય છે. એક ભવમાં તેની
પ્રાપ્તિ જીવને બે વાર તથા સંસાર અવસ્થામાં ચાર વાર થાય છે. પછીથી એ

प्रयाति । कश्चिच्चतुर्दशपूर्वधारी ऋद्धिं प्राप्य, तीर्थंकरसमीपे प्रेपणार्थमाहारकशरीरं करोति । तत्र प्रेपणं निगोदादिसंशयविच्छेदनार्थं, सूक्ष्मार्थनिर्णयार्थम् ऋद्धिदर्शनार्थं, प्राणिरक्षणार्थं, छद्मस्थोपग्रहार्थं च भवति । उक्तञ्च—

पाणिदय-ऋद्धिदरिसण, छउमत्थोवग्गहणहेउं वा ।

सुहुमत्थ संसयच्छे, -यत्थं गमणं जिणस्संते ॥ १ ॥

इदमत्र बोध्यम्—आहारकशरीरं यत्र स्थाने लब्धिधारी मुनिः प्रेपयति, तत्र भगवतोऽनुपस्थितौ तस्मादाहारकशरीराद्गहनहस्तं शरीरं निःसरति, तदेव भगवतः

को अवश्य प्राप्त कर लेता है । चतुर्दश पूर्व का पाठी कोई मुनि आहारक लब्धि को प्राप्त कर तीर्थंकर के समीप में भेजने के लिये आहारक शरीर की रचना करता है । निगोदादिसंबंधी संशय को दूर करने रूप सूक्ष्म अर्थ का निर्णय करने के लिये १ ऋद्धि के दर्शन करने के लिये २ प्राणियों की रक्षा करने के लिये ३ और छद्मस्थों का उपकार करने के लिये ४ इस शरीर का तीर्थंकर के पादमूल में गमन होता है । कहा भी है—

“पाणिदय-रिद्धिदंसण, -छउमत्थोवग्गहणहेउं वा ।

सुहुमत्थसंसयच्छेयत्थं गमणं जिणस्संते ॥ १ ॥”

छाया—पाणिदया-ऋद्धिदर्शन-छद्मस्थोपग्रहणहेतुं वा ।

सूक्ष्मार्थसंशयच्छेदार्थं गमनं जिनस्यान्ते ॥”

आहारक शरीर को जिस स्थान में लब्धिधारी मुनि भेजता है वहां यदि भगवान् न हों तो उस आहारक शरीर से एक हाथ से कुछ

एव अवश्य मुक्ति प्राप्त करी द्ये छे. योद्धपूर्वना पाठी कोई मुनि आहारक लब्धिने प्राप्त करी तीर्थंकरना समीपमां भोक्कवा भाटे आहारक शरीरनी रचना करे छे. निगोदादि संशयि संशयने हर हर करवा भाटे, सूक्ष्म अर्थना निष्पुय करवा भाटे, ऋद्धिनां दर्शन करवा भाटे, प्राणीओनी रक्षा करवा भाटे, अने छद्मस्थोना उपकार करवा भाटे आ शरीरनु तीर्थंकरना पादमूलमां गमन थाय छे. कहुं पणु छे.—

“पाणीदय-ऋद्धिदरिसण, छउमत्थोवग्गहणहेउं वा ।

सुहुमत्थ-संसयच्छेयत्थं, गमणं जिणस्संते ॥”

छाया—पाणीदया ऋद्धिदर्शन, -छद्मस्थोपग्रहणहेतुं वा ।

सूक्ष्मार्थसंशयच्छेदार्थं, गमनं जिनस्यान्ते ॥

आहारक शरीरने के स्थानमां लब्धिधारी मुनि भोक्के छे त्यांने भगवान् न होय तो ते आहारक शरीरथी एक हाथ ओछु (मु'उहाथ) शरीर ओछु

संनिधौ गत्वा स्वकार्यं संपाद्य हस्तप्रमाणशरीरे प्रविशति । तच्चाहारकशरीरं स्वमूल-
भूते शरीरे पुनर्लीनं भवति ॥२४॥ शीतलेइयालब्धिः—परमकारुण्यवशादनुग्राहं
प्रति तेजोलेइयाप्रशमनहेतुशीतलेजोविशेषविमोचनसामर्थ्यम् ॥ २५ ॥ वैक्रिय-
लब्धिः — वैक्रियशरीरकरणशक्तिः । सा चानेकविधा—अणुत्व—महत्त्व—लघुत्व—
गुरुत्व—प्राप्ति—प्राकाम्ये—शित्व—वशित्वा—ऽप्रतिघातित्वा—ऽन्तर्धान—कामरूपित्वादि-
भेदात् ॥२६॥ अक्षीणमहानसीलब्धिः—महानसम्—अन्नपाकस्थानं, तदाश्रित-
त्वादनमपि महानसमुच्यते, तच्च यत्प्रभावात् अक्षीणं=स्वल्पमप्यन्नं पात्रे पतितं
पुरुषशतसहस्रैरपि वृप्त्या भुक्तं न क्षीयते, यावत् स्वेन तदन्नं न भुज्यते सा ॥२७॥

कम शरीर और निकलता है, वही भगवान के पास जाकर अपने कार्य को
संपादित कर पूर्व के हस्तप्रमाण शरीर में समा जाता है, और वह पूर्व-
हस्त प्रमाण शरीर भी फिर वहां से लौट कर अपने मूल शरीर में समा-
जाता है २४। परम करुणा के वश से दया करने योग्य प्राणी के प्रति तेजो-
लेइया के प्रशमन का हेतु जो शीततेजविशेष को निकालने की शक्ति है
उसका नाम शीतलेइयालब्धि है २५। वैक्रियशरीर को करने की
शक्ति का नाम वैक्रियलब्धि है। यह लब्धि अणुत्व, महत्त्व, लघुत्व,
गुरुत्व, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व, अप्रतिघातित्व, अन्तर्धान,
कामरूपित्व आदि के भेद से अनेक प्रकार की है २६। महानस-शब्द
का अर्थ यद्यपि रसोईघर है तो भी तदाश्रित होने से अन्न को भी
महानस कह दिया गया है इसलिये महानस शब्द से अन्न समझना

नीकणे छे ते लगवाननी पासे जेठने पोताना कार्यने संपादित करी पूर्वना हस्त
प्रमाण शरीरमां समाध न्य छे. अने ते पूर्वहस्त प्रमाण शरीर पछु त्यांथी
पाछुं करी पोताना मूल शरीरमां समाध न्य छे. (२४) परम कर्षणा वशथी इया
करीने योग्य प्राणी तरक्ष तेजेवेश्याना प्रशमनने हेतु, जे शीत तेज विशेषने काढ-
वानी शक्ति छे तेनुं नाम शीतलेइयालब्धि छे. (२५) वैक्रियशरीरने जनाववानी
शक्तिनुं नाम वैक्रियलब्धि छे. आ लब्धि अणुत्व, महत्त्व, लघुत्व, गुरुत्व, प्राप्ति,
प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व, अप्रतिघातित्व, अन्तर्धान, कामरूपित्व आदिना वेदथी
अनेक प्रकारनी छे. (२६) महानस शब्दने अर्थ जे के रसोई घर छे ते पछु
तदाश्रित होवाथी अन्नने पछु महानस कहवायेल छे. माटे महानस शब्दथी अन्न
समज्जुं जेठये. आथी आ अन्न जोजन सामग्री जेना प्रभावथी अक्षीण-स्वल्प

પુલાકલઙ્ઘિઃ—તપઃશ્રુતહેતુકા પ્રવચનલાઘવાદિપ્રયોજને જિનશાસનવિરોધિનઃ સવલવાહનસ્ય ચક્રવર્ત્યાંદેરપિ પુલાકવન્નિઃસારકરણે સમર્થા યા શક્તિઃ સા ॥૨૮॥

અથવા—ઈતિ=અનેન-કેશલુધ્વનેન પંચમહાવ્રતાગ્રીકારેણ, યાતનાત્મકેનાન-શનાદિના તપસા, પૃથિવીકાયાદિસપ્તદશવિધસંયમેન મહાકષ્ટપ્રદદીક્ષાગ્રહણેન વૈત્યર્થઃ, વન્નિતોઽસ્મિ=કામસુખાદપવર્જિતોઽસ્મીત્યર્થઃ । ઉક્તં ચ—

ચાહિયે અતઃ યહ અન્ન-ભોજનસામગ્રી જિસકે પ્રભાવ સે અક્ષીણ-સ્વલ્પ ધી અન્ન પાત્ર મેં પઢે તો ધી ઉસસે હજારોં મનુષ્ય ધરપેટ આહાર કરલે ફીર ધી ઘૂટે નહીં, જય તક કિ વહ સ્વયં આહાર ન કરલે, ઈસી શક્તિ કા નામ અક્ષીણમહાનસ લઙ્ઘિ હૈ ૨૭ । પ્રવચન કી લઘુતા કે સમય જિનશાસન કા વિરોધી સેના ઓર વાહનસહિત ચક્રવર્તી ધી હોવે તો વહ ધી જિસકે પ્રભાવ સે પુલાક (દાનારહિત ઘાસ કા પુલા) કી તરહ નિઃસાર કર દિયા જાતા હૈ ઈસી શક્તિ કા નામ પુલાકલઙ્ઘિ હૈ, યહ લઙ્ઘિ તપ એવં શ્રુત હેતુક હોતી હૈ ૨૮ ।

ઈસ પ્રકાર યે અઠાઈસ લઙ્ઘિયાં જો વતલાઈ ગઈ હેં વે, અથવા ઈનમેં સે કોઈ ઈક લઙ્ઘિ ધી મુક્ષે પ્રાપ્ત નહીં હુઈ હૈ । ઈસી પ્રકાર કેશ હુંચન કરના પંચમહાવ્રતોં કા પાલન કરના, યતનાત્મક અનશનાદિક તપોં કા તપના, પૃથિવીકાયાદિકોં કી રક્ષા કરને રૂપ સત્તરહ ૧૭ પ્રકાર કે સંયમ કા પાલના, મહાકષ્ટપ્રદ દીક્ષા કા ગ્રહણ કરના, ઈન સવ ઘાતોં સે મેં ઠગા ગયા હું—અર્થાત્ સાંસારિક વિલાસતા સે મુક્ત

પણ અન્ન પાત્રમાં પડે તો પણ તેનાથી હબરો મનુષ્ય પેટભરીને આહાર કરી લે છતાં પણ ખૂટે નહીં બ્યાં સુધી તે પોતે આહાર ન કરી લે. આવી શક્તિનું નામ અક્ષીણમહાનસલઙ્ઘિ છે. (૨૭) પ્રવચનની લઘુતાના સમયે જીન શાસનના વિરોધી સેના અને વાહન સહિત કોઈ ચક્રવર્તી હોય તો તે પણ જેના પ્રભાવથી પુલાકની માફક નિઃસાર કરી દેવામાં આવે છે. એવી શક્તિનું નામ પુલાકશક્તિ છે. આ લઙ્ઘિ તપ અને શ્રુત હેતુક હોય છે. (૨૮)

આ પ્રકારે જે અઠ્યાવીસ લઙ્ઘિઓ જે બતાવવામાં આવી છે તે અથવા આમાંથી એક લઙ્ઘિ પણ મને પ્રાપ્ત થયેલ નથી. આ રીતે કેશનો લોચ કરવો ખાંચ મહાવ્રતોનું પાલન કરવું, યતનાત્મક અનશનાદિક તપોને તપવા, પૃથ્વી-કાયાદિકોની રક્ષા કરવારૂપ સત્તર પ્રકારના સંયમનું પાલન, મહાકષ્ટપ્રદ દીક્ષાને મહણ કરવી, આ સઘળી વાતોથી હું ઠગાયો છું. અર્થાત્ સાંસાર વાસતાથી

“તપાંસિ યાતનાશ્ચિત્રાઃ સંયમો ભોગવચ્ચના” ઇત્યાદિ । ઇતિ=એતદ્, મિશ્રુઃ, ન ચિન્તયેત્=ન વિચારયેત્ । અસ્ય ચિન્તનસ્ય સંયમઘાતકત્વેન તુચ્છત્વાત્ ।

તથાહિ-યદુચ્યતે-જન્માન્તરં નાસ્તિ, શરીરસ્ય ભૂતસમુદાયાત્મકત્વાત્ ભૂતધર્મ-સ્વાશૈતન્યરૂપસ્યાત્મનઃ શરીરેણ સદૈવ નાશાત્, ઇતિ, તદસત્-ન વયં શરીરસ્ય જન્માન્તરાણ્જુગામિત્વમક્ષીકુર્મઃ, કિંત્વાત્મન એવ, સ ચાત્મા નાસ્તિ ભૂતધર્મઃ, તથાહિ-

મોઢ કર જો મેં હન કષ્ટપ્રદ નિઃસાર કાર્યોં કી આરાધના મેં લગ ગયા હું વહ સવ વ્યર્થ હૈ । કહા મી હૈ-

તપાંસિ યાતનાશ્ચિત્રાઃ, સંયમો ભોગવચ્ચના ” ઇત્યાદિ ।

અર્થાત્-તપ એક વિચિત્ર પ્રકાર કા કષ્ટ હૈ, સંયમ જો હૈ વહ ભોગોં સે ઠગાના હૈ ।

ભૂતવાદી યનકર મિશ્રુ કો હસ પ્રકાર કા વિચાર નહીં કરના ચાહિયે । ક્યોં કિ હસ પ્રકાર કી વિચારધારા સર્વથા તુચ્છ યતલાઈ ગઈ હૈ । હસીકા વિચાર અવ યહાં સે કિયા જાતા હૈ ।

જો ભૂતવાદી યહ કહતા હૈ કિ “જન્માન્તર નહીં હૈ ક્યોં કિ યહ શરીર ભૂતોં કા સમુદાયસ્વરૂપ હૈ ઓર ચૈતન્યરૂપ આત્મા મી ભૂત કા ધર્મ હૈ । ડસકા વિનાશ મી શરીર કે વિનાશ કે સાથ હી હો જાતા હૈ ।” સો હસકા હસ પ્રકાર કા કહના ઠીક નહીં હૈ । ક્યોં કિ હમ લોગ અર્થાત્ જૈન-શરીર કો પરલોક મેં જાનેવાલા નહીં માનતે હૈં, હમ તો પરલોક મેં જાનેવાલી એક આત્મા કો હી માનતે હૈં । વહ આત્મા ભૂતોં કા ધર્મ નહીં હૈ । જવ મિત્ર ૨ અવસ્થા મેં ભૂતોં સે

મોહુ મરહીને હું આ કષ્ટપ્રદ નિઃસાર કાર્યોંની આરાધનામાં લાગી ગયો છું તે સઘળું વ્યર્થ છે. કહ્યું છે—

“ તપાંસિ યાતનાશ્ચિત્રાઃ સંયમો ભોગવચ્ચના ” ઇત્યાદિ.

અર્થાત્ તપ એક વિશિષ્ટ પ્રકારનું કષ્ટ છે સંયમ જે છે તે ભોગોને ઠગનાર છે. ભૌતિકવાદી બની ભિક્ષુએ આ પ્રકારનો વિચાર નહીં કરવો જોઈએ. કેમકે, આ પ્રકારની વિચારધારા સર્વથા તુચ્છ અતાવવામાં આવી છે તેનો વિચાર હવે અહીં કહેવામાં આવે છે.

પહેલાં જે ભૌતિકવાદીએ એવું કહ્યું છે કે, “જન્માન્તર નથી કેમકે આ શરીર ભૂતોના સમુદાય સ્વરૂપ છે અને ચૈતન્યરૂપ આત્મા પણ ભૂતોનો ધર્મ છે. તેનો વિનાશ પણ શરીરના વિનાશની સાથે થાય છે.” તેનું તેવા પ્રકારનું કહેવું ઠીક નથી. કેમકે, અમે લોક અર્થાત્ જૈનશરીરને પરલોકમાં જવા વાળું માનતા નથી. અમે તો એક આત્મા ભૂતોનો ધર્મ નથી. જ્યારે જુદી જુદી

पुलाकलब्धिः—तपःश्रुतहेतुका प्रवचनलाघवादिप्रयोजने जिनशासनविरोधिनिः
सवलवाहनस्य चक्रवर्त्यादेरपि पुलाकवन्निःसारकरणे समर्था या शक्तिः सा ॥२८॥

अथवा—इति=भनेन-केशलक्षणेन पञ्चमहाव्रताङ्गीकारेण, यातनात्मकेनान-
शनादिना तपसा, पृथिवीकायादिसप्तदशविधसंयमेन महाकष्टप्रददीक्षाग्रहणेन
चेत्यर्थः, वञ्चितोऽस्मि=कामसुखादपवर्जितोऽस्मीत्यर्थः । उक्तं च—

चाहिये अतः यह अन्न-भोजनसामग्री जिसके प्रभाव से अक्षीण-
स्वल्प भी अन्न पात्र में पड़े तो भी उससे हजारों मनुष्य भरपेट
आहार करले फीर भी खूटे नहीं, जब तक कि वह स्वयं आहार न
करले, ऐसी शक्ति का नाम अक्षीणमहानस लब्धि है २७ । प्रवचन
की लघुता के समय जिनशासन का विरोधी सेना और वाहनसहित
चक्रवर्ती भी होवे तो वह भी जिसके प्रभाव से पुलाक (दानारहित
घास का पुला) की तरह निःसार कर दिया जाता है ऐसी शक्ति का
नाम पुलाकलब्धि है, यह लब्धि तप एवं श्रुत हेतुक होती है २८ ।

इस प्रकार ये अठारह लब्धियाँ जो बतलाई गई हैं वे, अथवा
इनमें से कोई एक लब्धि भी मुझे प्राप्त नहीं हुई है । इसी प्रकार केश
लुंचन करना पंचमहाव्रतों का पालन करना, यतनात्मक अनशनादिक
तपों का तपना, पृथिवीकायादिकों की रक्षा करने रूप सत्तरह १७
प्रकार के संयम का पालना, महाकष्टप्रद दीक्षा का ग्रहण करना, इन
सब बातों से मैं ठगा गया हूँ—अर्थात् सांसारिक विलासता से मुख

पञ्च अन्न पात्रमां पडे तो पथ तेनाथी डलशे मनुष्य पेटभरीने आहार करी वे
छतां पञ्च खूटे नहीं ज्यां सुधी ते पोते आहार न करी वे. आवी शक्तिनुं नाम
अक्षीणमहानसलब्धि छे. (२७) प्रवचननी लघुताना समये छन शासनना विरोधी
सेना अने वाहन सहित केछि चक्रवर्ति होय तो ते पञ्च जेना प्रभावथी पुला-
कनी भाङ्क निःसार करी देवामां आवे छे. जेवी शक्तिनुं नाम पुलाकशक्ति
छे. आ लब्धि तप अने श्रुत हेतुक होय छे. (२८)

आ प्रकारे जे अठ्यावीस लब्धियाँ जे बताववामां आवी छे ते अथवा
आमांथी जेक लब्धि पञ्च मने प्राप्त थयेल नथी. आ रीते केशना होय करवे
पांथ महाव्रतानुं पालन करवुं, यतनात्मक अनशनादिक तपाने तपवा, पृथ्वी-
कायादिकेनी रक्षा करवाइप सत्तर प्रकारना संयमनुं पालन, महाकष्टप्रद दीक्षाने
भङ्क करवी, आ सधणी वातोथी हुं ठगायो छुं: अर्थात् संसार ।सताथी

વાયુવિશેષોડાનર્ગા તતોડપત્તિત્ત્વમ્ન્યતે, તર્હિ જીવ એવ નામાન્તરેણ સ્વીકૃતો ભવતિ, અસ્તુ યત્ કિંચિદેતત્, કથમપિ ભૂતસમુદાયમાત્રેણ ન ચૈતન્યાવિર્ભાવ ઇતિ સિદ્ધમ્, પૃથિવ્યાદિપુ એકત્ર વ્યવસ્થાપિતેષ્વપિ ચૈતન્યાનુપલબ્ધેઃ । અથ કાયાકાર- પરિણતૌ સત્યાં તદભિવ્યક્તિરિષ્યતે, તદપિ ન, યતો લેપ્યમયપુત્તલિકાયાં સમસ્તભૂતસદ્ભાવેડપિ જડત્વમેવોલભ્યતે, તદેવમન્વયવ્યતિરેકાભ્યામાલોચ્યમાનો

ડસકા સડના હો નહીં સકતા હેં । યદિ હસ પર ઘોં કહા જાય કિ “ સૂક્ષ્મ વાયુ તથા અગ્નિ વહાં સે અપગત હો ડુકો હે અતઃ શરીર મેં મરણ કા વ્યવહાર હો જાયગા ” સો ઁસા કહના આત્મા કે હી સદ્ભાવ કા રૂપાપક માના જાતા હે । તુમ જિસે સૂક્ષ્મ વાયુ યા અગ્નિ કહતે હો હમ ડસે આત્મા કહતે હેં । ભૂતસમુદાય સે ચૈતન્ય કા આવિર્ભાવ હસલિયે મો સિદ્ધ નહીં હોતા હે કિ એક હી જગહ હન ચારોં કો સ્થાપિત કરને પર મો ડનસે ચૈતન્ય કો ડપલબ્ધિ નહીં હોતી હે । યદિ ભૂતવાદી હસ પર યોં કહે કિ “ જવ યે ભૂત કાયાકાર પરિણત હોતે હેં તવ હી જાકર હન સે ચૈતન્ય કો અભિવ્યક્તિ હોતી હે ” સો ઁસા કહના મો હસ લિયે ડચિત નહીં હે કિ લેપ્યમયપુત્તલિકા મેં સમસ્તભૂતોં કા સદ્ભાવ હોને પર મો વહાં ચૈતન્ય કો ડપલબ્ધિ નહીં હોતી હે, કિન્તુ જડતા હી ડપલબ્ધિ હોતી હે । કાર્યકારણભાવ અન્વયવ્યતિરેક કે સદ્ભાવ મેં હી વનતા હે । હસ પ્રકાર યહાં ભૂત ઓર ચૈતન્ય કા અન્વયવ્યતિરેક ઘટિત નહીં હોતા હે, -અતઃ ભૂતોં કા કાર્ય

ત્યાંથી અપગત થઈ ગયેલ છે, આથી શરીરમાં મરણનો વહેવાર થવાનો છે” તે એવું કહેવું તે આત્માના સદ્ભાવનો ખ્યાપક મનાય છે. તમે સૂક્ષ્મ વાયુ અગરતો અગ્નિ કહો છો અને તેને આત્મા કહીયે છીએ. ભૂત સમુદાયથી ચૈતન્યનો આવિર્ભાવ એ માટે પણ સિદ્ધ નથી થતો કે, એકજ જગ્યાએ તે ચારેને લેળા કરવા છતાં પણ તેમાં ચૈતન્યની ડપલબ્ધિ થતી નથી. જો કહાય ભૂતવાદી આ ડપર એવું કહે કે, “ જ્યારે એ ભૂતકાયઆકાર પરિણત હોય છે ત્યારે જ જઈને તેનાથી ચૈતન્યની અભિવ્યક્તિ થાય છે.” તે એવું કહેવું પણ એ માટે ઠીક નથી કે, લેપ્યમય પુતલીકામાં સમસ્ત ભૂતોનો સદ્ભાવ હોવા છતાં પણ ત્યાં ચૈતન્યની ડપલબ્ધિ થતી નથી પરંતુ જડતાજ ડપલબ્ધિ થાય છે. કાર્યકારણભાવ અન્વય વ્યતિરેકના સદ્ભાવમાં જ બને છે. આ પ્રકાર અહિં ભૂત અને ચૈતન્યનો અન્વય વ્યતિરેક ઘટીત થતો નથી માટે ભૂતોનું કાર્ય ચૈતન્ય છે તે કોઈ પ્રકારે સિદ્ધ થતું નથી. આ માટે આ ચૈતન્ય શુભ

एकैकस्य पृथिव्यादेः पृथक्त्वे चैतन्योत्पत्तिर्न भवति चेत् तर्हि पृथिव्यादिसमुदाया-
दपि चैतन्यं न भवितुमर्हति । यथैकस्मात् सिरुताकणात् तैलं नोत्पद्यते, तेन सिकता-
समुदायादपि न भवति तैलोत्पत्तिः किंच—चैतन्यस्य भूतधर्मत्वस्वीकारे मरणाभावः
स्यात्, मृतकायेऽपि पृथिव्यादिभूतानां सद्भावात्, न च मृतकाये वायोस्तेजसो
वा अभावान्मरणसद्भावः इति वाच्यम्, यतः मृतकाये शोफोपलब्धेर्न वायोरभावः ।
पक्तिस्वभावस्य च कोथस्य (शटनस्य) दर्शनात्तान्मरणाभाव इति । अथ सूक्ष्मः कश्चिद्

चैतन्य की उत्पत्ति नहीं होनी है तो उनके समुदाय में चैतन्य की
उत्पत्ति कैसे हो सकती है, जैसे एक सिकता (रेती) के कण से जब
तैल नहीं निकलता है तो समुदाय से तैल निकल सकेगा यह बात
कौन बुद्धिमान मान्य कर सकता है । दूसरी बात यह भी है कि जब
चैतन्य को भूतों का धर्म माना जायगा तो मरण का अभाव प्रसक्त
होता है, क्योंकि मृतकाय में भी पृथिवी आदि भूतों का सद्भाव
तो रहता ही है । यदि मृत शरीर में मरणसद्भाव ख्यापित करने के
लिये यह कहा जाय कि “वहां पर वायु एवं तेज का अभाव है
इसलिये इन दो तत्त्वों का अभाव होने से वहां भी मरण का सद्भाव
अंगीकार किया जाता है” सो ऐसा कहना इसलिये उचित नहीं है
कि मृतकाय में भी शोफ (सूजन) की उपलब्धि होने से वायु का वहां
असद्भाव नहीं माना जा सकता है । अग्नि तत्त्व का भी वहां इसी
तरह अभाव नहीं माना जा सकता है, क्योंकि इसके अभाव में

अवस्थाभां भूतोऽथी चैतन्यनी उत्पत्ति नथी थती तो तेना समुदायभां चैतन्यनी
उत्पत्ति केवी रीते थर्छ शके ? जेम रेतीना जेकं कथुभांथी तेल नीकणी शकतुं
नथी तो रेतीना ढगलाभांथी तेल नीकणी शके तेषुं केषु कही शके ? जीञ्ज
वात जे पथु छे के, जे चैतन्यने भूतोना धर्म मानवामां आवे तो मरथुने
अभाव प्रसक्त थाय छे. केभके, मृतकायभां पथु पृथ्वी आदि भूतोना सद्भाव
तो रहेले ज छे. जे मरथु शरीरभां मरथु सद्भाव ज्थापित करवा भाटे जेम
कडेवामां आवे के, “त्यां वायु अने तेजने अलाव छे भाटे आ जन्ने तत्वेना
अभाव होवाथी त्यां पथु मरथुने सद्भाव अंगिकार करवामां आवे छे.” तो जेम
कडेवुं जे भाटे उचित नथी के, मृतकायभां पथु सुजननी उपलब्धि होवाथी
वायुने त्यां असद्भाव भांनी शकतो नथी. अग्नि तत्त्वने पथु त्यां तेवी रीते
अभाव नथी मानवामां आवतो केभके, तेना अलावभां जेतुं सडुं अनतुं
नथी, जे क्दाय जे उपर जेम कडेवामां आवे के, “सूक्ष्म वायु तथा अग्नि

वायुविशेषोऽर्था ततोऽपि त इति मन्यते, तर्हि जीव एव नामान्तरेण स्वीकृतो भवति, अस्तु यत् किंचिदेतत्, कथमपि भूतसमुदायमात्रेण न चैतन्याविर्भाव इति सिद्धम्, पृथिव्यादिषु एकत्र व्यवस्थापितेष्वपि चैतन्यानुपलब्धेः। अथ कायाकार-परिणतो सत्यां तदभिव्यक्तिरिष्यते, तदपि न, यतो लेप्यमयपुत्तलिकायां समस्तभूतसद्भावेऽपि जडत्वमेवोल्भ्यते, तदेवमन्वयव्यतिरेकाभ्यामालोच्यमानो

उसका सड़ना हो नहीं सकता हैं। यदि इस पर यों कहा जाय कि “सूक्ष्म वायु तथा अग्नि वहां से अपगत हो चुकी है अतः शरीर में मरण का व्यवहार हो जायगा” सो ऐसा कहना आत्मा के ही सद्भाव का ख्यापक माना जाता है। तुम जिसे सूक्ष्म वायु या अग्नि कहते हो हम उसे आत्मा कहते हैं। भूतसमुदाय से चैतन्य का आविर्भाव इसलिये भी सिद्ध नहीं होता है कि एक ही जगह इन चारों को स्थापित करने पर भी उनसे चैतन्य की उपलब्धि नहीं होती है। यदि भूतवादी इस पर यों कहे कि “जब ये भूत कायाकार परिणत होते हैं तब ही जाकर इन से चैतन्य की अभिव्यक्ति होती है” सो ऐसा कहना भी इस लिये उचित नहीं है कि लेप्यमयपुत्तलिका में समस्तभूतों का सद्भाव होने पर भी वहां चैतन्य की उपलब्धि नहीं होती है, किन्तु जड़ता ही उपलब्ध होती है। कार्यकारणभाव अन्वयव्यतिरेक के सद्भाव में ही बनता है। इस प्रकार यहाँ भूत और चैतन्य का अन्वयव्यतिरेक घटित नहीं होता है, -अतः भूतों का कार्य

त्यांथी अपगत थर्ध गयेल छे, आंथी शरीरमां भरणुनो वडेवार थवानो छे” तो अेवुं कडेवुं ते आत्मानो सहलावनो ष्यापक मनाय छे. तमे सूक्ष्म वायु अगगतो अग्नि कडे छे अमे तेने आत्मा कडीये छीअे भूत समुदायथी चैतन्यनो आविर्भाव अे भाटे पषु सिद्ध नथी थतो के, अेकअे अ्याअे ते थारेने लेणा करवा छतां पषु तेमां चैतन्यनी उपलब्धि थती नथी. अे कदाच भूतवादी आ उपर अेवुं कडे के, “अ्यारे अे भूतकायआकार परिणत डोय छे थारे अे अेने तेनाथी चैतन्यनी अभिव्यक्ति थाय छे.” तो अेवुं कडेवुं पषु अे भाटे डीक नथी के, लेप्यमय पुत्तलीकांमां समस्त भूतानो सद्भाव डोवां छतां पषु त्यां चैतन्यनी उपलब्धि थती नथी परंतु अउताअे उपलब्ध थाय छे. कार्यकारणभाव अन्वय व्यतिरेकना सहलावमां अे अने छे. आ प्रकार अडिं भूत अने चैतन्यनो अन्वय व्यतिरेक घटीत थतो नथी भाटे भूतानुं कार्य चैतन्य छे ते कौर्ध प्रकारे सिद्ध थतुं नथी. आ भाटे आ चैतन्य गुण

નાયં ચૈતન્યાख्यो गुणो भूतानां भवितुमर्हति । तस्मात् पारिशेष्याच्चैतन्यमात्मनो धर्म इति सिद्धान्तोऽनुसरणीयः ।

यदप्युक्तम्—आत्मनः प्रत्यक्षतोऽनुपलभ्यमानत्वादिति तदप्यसदेव, सर्वेषां स्वात्मा स्वप्रत्यक्ष एव, ज्ञानादीनामात्मगुणानां प्रत्यक्षानुभवात् घटमहं जानामीत्याद्यनुभवस्य सर्वसिद्धत्वात् । यथा घटादीनां रूपादयः प्रत्यक्षतपोपलभ्यन्ते, तथाऽऽत्मनोऽपि ज्ञानसुखादयो गुणाः कस्य न सन्ति प्रत्यक्षानुभवगोचराः, किंतु सर्वेषामाबालवृद्धानां प्रत्यक्षानुभवगोचराः सन्त्येव । उक्तं च—‘आत्मप्रत्यक्ष आत्माऽयम्’ इत्यादि ।

चैतन्य है यह किसी प्रकार सिद्ध नहीं होता है इसलिये यह चैतन्यगुण पारिशेष्यात् (अनुमानविशेष से) आत्मा का ही एक धर्म है, इसी से आत्माका सद्भाव ख्यापित होता है यह सिद्धान्त अनुसरणीय है ।

तथा और भी जो ऐसा कहा है कि “आत्मा की प्रत्यक्ष से अनुपलब्धि होने की वजह से सत्ता ज्ञात नहीं होती है ” सो ऐसा कहना भी ठीक नहीं है क्यों कि प्रत्येक संसारी जीवों को अपनी २ आत्मा का स्वानुभव से प्रत्यक्ष होता है, कारण कि उसके ज्ञानादिक गुणों का प्रत्यक्ष अनुभव होता रहता है । “ मैं घट को जानता हूँ ” यह अनुभव तो सब को ही होता है । जिस प्रकार घटादिकों के रूपादिक गुण प्रत्यक्ष से उपलब्ध हैं उसी प्रकार आत्मा के भी ज्ञानादिक गुण समस्त जीवों को प्रत्यक्ष से अनुभवित हो रहे हैं । ऐसा कोई भी जीव नहीं है चाहे वह बालक हो चाहे वृद्ध कि जिसे इन का प्रत्यक्ष से अनुभव न होता हो । कहा भी है—“आत्मप्रत्यक्ष आत्माऽयम् ” इत्यादि ।

अनुमान विशेषથી આત્માને જ એક ધર્મ છે. આથી જ આત્માને સદ્ભાવ સ્થાપિત થાય છે. આ સિદ્ધાંત અનુસરણીય છે.

તેમ વધુમાં એમ પણ કહ્યું છે કે, “આત્માની પ્રત્યક્ષથી અનુપલબ્ધિ હોવાના કારણે સત્તા જ્ઞાત થતી નથી.” તેવું કહેવું પણ ઠીક નથી. કેમકે, પ્રત્યેક સંસારી જીવોને પોત પોતાના આત્માના સ્વાનુભવથી પ્રત્યક્ષ થાય છે. કારણ કે, તેને જ્ઞાનાદિક ગુણોનો પ્રત્યક્ષ અનુભવ થતો રહે છે.” હું ઘટને બાહ્ય છું ” આ અનુભવ તો દરેકને થાય છે. જેવી રીતે ઘટાદિકના તથા રૂપાદિકના ગુણ પ્રત્યક્ષથી ઉપલબ્ધ છે જેવી રીતે આત્માને પણ જ્ઞાનાદિક ગુણ સમસ્ત જીવોને પ્રત્યક્ષથી અનુભવિત થઈ રહે છે. એવો કોઈ પણ જીવ નથી, ભલે તે બાળક અથવા વૃદ્ધ હોય કે જેને તેના પ્રત્યક્ષથી અનુભવ ન થતો હોય. કહ્યું છે કે—“આત્મ-પ્રત્યક્ષ આત્માઽયમ્ ” ઇત્યાદિ. ! એ આની ઉપર એમ કહેવામાં આવે કે,

નન્નુ ન ચં દૃષ્ટિગોચરો ભવતીત્યતો નાસ્તીત્યુચ્યતે ? નાયમપ્યેકાન્તઃ, ઉક્તં હિ-
 “ ન ચ નાસ્તીહ તત્ સર્વં, ચક્ષુષા યન્ન ગૃહ્યતે । ” અન્યથા ચૈતન્યમપિન દૃષ્ટિ-
 ગોચરીભવંતીતિ ભૂતધર્મત્વેન, તદપ્યસત્ સ્યાત્ । અથ યદિ તત્ સ્વસંવિદિતમ્, અતઃ
 સદિત્યુચ્યતે, તર્હિ અયમાત્માઽપિ સ્વસંવિદિત એવ ભવતીતિ વિદ્યમાનો ભવતુ । યતઃ-
 અસ્ત્યેવ ચાત્મા પ્રત્યક્ષો, જીવો હ્યાત્માનમાત્મના ।
 અહમસ્મીતિ સંવેત્તિ, રૂપાદીનિ યથેન્દ્રિયૈઃ ॥ ૧ ॥ ઈતિ ॥

યદિ હસ પર યૉં કહા જાય કિ-“ યહ આત્મા દૃષ્ટિગોચર નહીં
 હોતા હૈં હસ લિયે યહ નહીં હૈં ” સો યહ કથન એકાન્તતઃ સત્ય નહીં
 માના જા સકના । “ ન ચ નાસ્તીહ તત્સર્વં, ચક્ષુષા યન્ન ગૃહ્યતે ”
 જો ચક્ષુ સે ગૃહીત નહીં હોતા હૈં વહ નહીં હૈં, એસા મત કહો, અર્થાત્
 જો વસ્તુ ચક્ષુ સે નહીં દિલ્વાઈ દે વહ મી હૈં એસા કહો । નહીં તો તુમ્હારે
 મતસે ચૈતન્ય મી દૃષ્ટિગોચર નહીં હોતા હૈં અતઃ વહ ભૂત કા ધર્મ હૈં
 યહ ઘાત અસત્ માનની પડેગી । હસ પર યદિ યહ કહા જાય કિ “ વહ તો
 સ્વસંવેદન પ્રત્યક્ષ કા વિષય હૈં અતઃ ઉસે સર્ માન લિયા જાવેગા ” તો
 આત્મા મી સ્વસંવેદિત હૈં હસ લિયે હસે મી સર્ માનના ચાહિયે ।

યતઃ—“ અસ્ત્યેવ ચાત્મા પ્રત્યક્ષો, જીવો હ્યાત્માનમાત્મના ।

અહમસ્મીનિ સંવેત્તિ, રૂપાદીનિ યથેન્દ્રિયૈઃ ” ॥ ૧ ॥

અર્થાત્ આત્મા પ્રત્યક્ષ સે હૈં ક્યૉં કિ જીવ હી આત્મા સે આત્મા કો
 “મૈંહ્” હસ પ્રકાર સંવેદન (અનુભવ) કરતા હૈં, જૈસે ઈન્દ્રિયૉં સે રૂપાદિકકા

“ આત્મા દૃષ્ટાગોચર થતો નથી માટે આ નથી ” તો આ કહેવું એકાન્તતઃ
 સત્ય માનવામાં આવતું નથી. “ ન ચ નાસ્તીહ તત્સર્વં ચક્ષુષા યન્ન ગૃહ્યતે ” જે
 ચક્ષુથી ગૃહીત થતું નથી, તે નથી. એવું ન કહેા. અર્થાત્ જે વસ્તુ ચક્ષુથી
 ન દેખાય તે પણ છે એમ કહેા નહીં તો તમારા મતથી ચૈતન્ય પણ દૃષ્ટીગોચર
 થતું નથી. માટે તે ભૂતનો ધર્મ છે એ વાત અસત્ય માનવી પડશે. આ ઉપર
 જે કદાચ એમ કહેવામાં આવે કે, “ તે તો સ્વસંવેદન પ્રત્યક્ષનો વિષય છે
 આથી એને સાચું માની લેવામાં આવે ” તો આત્મા પણ સ્વસંવેદિત છે આ
 માટે તેને પણ સત્ માનવો ભેઈ એ. કહું પણ છે—

“ અસ્ત્યેવ ચાત્મા પ્રત્યક્ષો, જીવો હ્યાત્માનમાત્મના ।

અહમસ્મીતિ સંવેત્તિ, રૂપાદીનિ યથેન્દ્રિયૈઃ ॥ ૧ ॥ ”

અર્થાત્—આત્મા પ્રત્યક્ષથી છે. કેમકે, જીવ આત્માથી આત્માને “હું છું” આ
 પ્રકારનો સંવેદન (અનુભવ) કરે છે. જેમ ઈન્દ્રિયોથી રૂપ આદિનું સંવેદન થાય છે.

અલમધિકેન, યથા ચૈતન્યમસ્તીતિ મન્યતે, તથા ડડ્ડમાડ્ડતીત્યપિ મન્તબ્યઃ ।
તથા ચોક્તમ્—

જ્ઞાનં સ્વસ્થં પરસ્થં વા યથા જ્ઞાનેન ગૃહ્યતે ।

જ્ઞાતા સ્વસ્થઃ પરસ્થો વા, તથા જ્ઞાનેન ગૃહ્યતામ્ ॥ ૧ ॥

અથાડ્ડત્મસત્ત્વે તદભાવે સર્વસમ્બન્ધ્યનુપલમ્ભસ્ય હેતુત્વં ન સમ્મંભતીત્યુચ્યતે,
યતોડ્ડયમપ્યસિદ્ધો હેતુઃ, અહમસ્મીત્યનુમવસ્ય સદ્ભાવાત્, સર્વેયાં પ્રાણિનાં હિ સ્વસ્ય
સ્વસ્યાત્મનં ઉપલમ્ભઃ પ્રતિપેદ્ધમશ્કયઃ, કેવલિનાં ચ સર્વાત્મનામુપલંભઃ પ્રતિપેદ્ધપ્રસન્ન્યઃ ।

સંવેદન હોતા હૈ । જિસ પ્રકાર ઉક્ત કથન સે ચૈતન્ય કા સદ્ભાવ માના
જાતા હૈ ઉસી પ્રકાર આત્માકા ભી સદ્ભાવ માનના ચાહિયે । કહા ભી હૈ—

“ જ્ઞાનં સ્વસ્થં પરસ્થં વા, યથા જ્ઞાનેન ગૃહ્યતે ।

જ્ઞાતા સ્વસ્થો પરસ્થો વા, તથા જ્ઞાનેન ગૃહ્યતામ્ ” ॥ ૧ ॥

જિસ પ્રકાર અપને મેં રહા હુઆ જ્ઞાન, તથા દૂસરે મેં રહા હુઆ જ્ઞાન,
જ્ઞાન સે જાના જાતા હૈ ઉસી પ્રકાર અપને ઓર દૂસરે મેં રહે હુએ જ્ઞાતા
(આત્મા) કો ભી જ્ઞાન સે ગ્રહણ કર લેના ચાહિયે ॥ ૧ ॥

આત્મા કે અભાવ મેં જો અનુપલમ્ભરૂપ હેતુ દિયા ગયા હૈ । સો
આત્મા કા અનુપલંભ સવ કો હોતા હૈ, યદિ એસા કહા જાય તો યહ હેતુ
અસિદ્ધ હો જાતા હૈ, કયોં કિ સવ કો આત્મા કા અનુપલમ્ભ હૈ એક
તો યહ વાત ઇન્દ્રિયજન્ય પ્રત્યક્ષ સે જાન નહીં સકતે દૂસરે પ્રત્યેક પ્રાણી
કો “ અહમસ્મિ ” ઇત્યાકારક સ્વસંવેદનરૂપ પ્રત્યક્ષ સે ઉસ કી ઉપલબ્ધિ

જે રીતે આ કથનથી ચૈતન્યનો સદ્ભાવ માની લેવામાં આવે એજ રીતે
આત્માનો પણ સદ્ભાવ માનવો જોઈએ. કહ્યું પણ છે—

“ જ્ઞાનં સ્વસ્થં પરસ્થં વા, યથાજ્ઞાનેન ગૃહ્યતે ।

જ્ઞાતા સ્વસ્થો પરસ્થો વા, તથા જ્ઞાનેન ગૃહ્યતામ્ ॥ ૧ ॥ ”

જે રીતે પોતાનામાં રહેલું જ્ઞાન તથા બીજામાં રહેલું જ્ઞાન જ્ઞાનથી જાણી
શકાય છે એવી રીતે પોતામાં અને બીજામાં રહેલા આત્માને પણ જ્ઞાનથી
સમજી લેવો જોઈએ.

આત્માના અભાવમાં જે અનુપલમ્ભરૂપ હેતુ આવે છે તે આત્માનો
અનુપલંભ કરેકને થાય છે. તેલું જે કહેવામાં આવે તો આ હેતુ અસિદ્ધ બની
જાય છે કેમકે, સઘળાને આત્માનું અનુપલંભ છે. એક તો આ વાત ઇન્દ્રિય-
જન્ય પ્રત્યક્ષથી જાણી નથી શકાતાં બીજા પ્રત્યેક પ્રાણીને “ અહમસ્મિ ” ઇત્યાદિ

યદપિ-ઋદ્ધિર્વા તપસ્યિનો નાસ્તીત્યુક્તં, તદપિ નિષ્પમાણકમ્ । ઋદ્ધેરમાવેડ-
નુપલમ્બો હેતુરુક્તઃ સોડપિ સ્વસમ્બન્ધો, સર્વસમ્બન્ધી વા ? તત્ર સ્વસમ્બન્ધી નિ-
યતદેશકાલાપેક્ષયાડન્યથા વાડનુપલમ્બઃ સ્યાત્, તત્ર પ્રથમપક્ષે ક્વચિત્ કદાચિત્
પંચમારકાપેક્ષયા ભરતક્ષેત્રાપેક્ષયા ઋદ્ધેરનુપલમ્બસ્યોપલમ્બસ્ય વાસ્માકમપિ સંમ-
ત્વાત્ । દ્વિતીયપક્ષે તુ હેતોરનૈકાન્તિકતા, યથા દેશવિપ્રકૃષ્ટાનાં મેરુપ્રભૃતીનાં
કાલવિપ્રકૃષ્ટાનાં પિતામહાદીનામનુપલમ્બેડપિ સત્ત્વાત્ । દૃશ્યતે ચ ક્વચિત્ કદાચિ-
છન્ધિપ્રભાવાચરણધૂલિસ્પર્શાદિ માત્રેણ વ્યાધિ પ્રશમનાદિઃ । તતથ્થેહાડપિ ભરતાદૌ
હોતી હૈ । કેવલિયોંકો તો સવ આત્માકા ઉપલમ્બ હોતા હૈ, યહ
તો નિપેધ નહીં કિયા જા સકતા ।

તથા લવ્ધિયોંકો અસત્તા પ્રકટ કરને કે લિયે મી આપને જો
અનુપલંબરૂપ હેતુ કહા હૈ સો વહ મી ટીક નહીં હૈ । યહાં પર અનુપ-
લંબ સ્વસંબંધી ગ્રહણ કિયા હૈ યા સર્વસંબંધી । સ્વસંબંધી અનુપલંબ મી
કૈસા ? નિયતદેશકાલાપેક્ષ, અથવા અનિયતદેશકાલાપેક્ષ ? પ્રથમપક્ષ મેં
સિદ્ધસાધનતા હૈ । અર્થાત્ યહ વાત તો હમ મી માનતે હૈં કિ હસ પંચમ-
કાલ કે અંદર ભરતક્ષેત્ર મેં લવ્ધિયોંકા અનુપલમ્બ હૈ । દ્વિતીયપક્ષ
મેં હેતુ અનૈકાન્તિક હૈ । દેશવિપ્રકૃષ્ટ મેર્વાદિકોંકા, કાલવિપ્રકૃષ્ટ
પિતામહ આદિકોંકા અનુપલમ્બ હોને પર મી ઉનકા સદ્ભાવ માના
જાતા હૈ । કહીં ૨ કમો ૨ લવ્ધિ કે પ્રભાવ સે ચરણધૂલિ કે સ્પર્શ
આદિ કરને માત્ર સે વ્યાધિ કી શાંતિ હોતી હુઈ દેખી જાતી હૈ । ડસી
તરહ યહાં ભરત આદિ ક્ષેત્રોં મેં મી પહિલે સમય મેં લવ્ધિયોંકા સદ્ભાવ

કારણે સ્વ સંવેદન રૂપ પ્રત્યક્ષથી તેની ઉપલબ્ધિ થાય છે. કેવલીઓને તો બધા
આત્માને ઉપલંબ થાય છે. આને તો નિપેધ થઈ શકે તેમ નથી.

અર્થાત્—ઋદ્ધિઓની અસત્તા પ્રકટ કરવા માટે પણ આપે જે અનુપ-
લંબ રૂપ હેતુ કહેલ છે તે પણ ઠીક નથી. આ સ્થળે અનુપલંબ સ્વ સંબંધી
કહેલું કરેલ છે, કે સર્વ સંબંધી ? સ્વ સંબંધિ અનુપલંબ પણ કેવો ?
નિયત દેશકાળ અપેક્ષ કે અનિયત દેશકાળ અપેક્ષ. પ્રથમ પક્ષમાં સિદ્ધ સાધ-
નતા છે. અર્થાત્ એ વાત અમે પણ માનીએ છીએ કે, આ પંચમકાળની અંદર
ભરતક્ષેત્રમાં ઋદ્ધિઓના અનુપલંબ છે. બીજા પક્ષમાં હેતુ અનૈકાન્તિક છે.
દેશવિપ્રકૃષ્ટ મેર્વાદિ કોનું કાલવિપ્રકૃષ્ટ પિતામહ આદિકોનું અનુપલંબ હોવા
છતાં પણ તેનો સદ્ભાવ માનવામાં આવે છે. કોઈ કોઈ સ્થળે કદી કદી લબ્ધિના
પ્રભાવથી ચરણરજને સ્પર્શ આદિ કરવા માત્રથી વ્યાધિની શાંતિ થતી બેવામાં
આવે છે. એજ રીતે અહિં ભરત આદિ ક્ષેત્રોમાં પણ પહેલા સમયમાં લબ્ધિ-

કાલાન્તરેડવીતે કાલે, મહાવિદેહેપુ ચ સર્વકાલમૃદ્ધીનામપિ સદ્ભાનાત્ । સર્વસમ્યન્ધી અનુપલમ્ભસ્તુ અસિદ્ધ એવ ।

યદપિ “કામસુખાદ્ વચ્ચિતોડ્સમી”-ત્યુક્તં તદપ્યસમીક્ષિતમ્, વિપયસુખં હિ રાગદ્વેપમોહજનનદ્વારેણ અત્સિકાક્ષાશોકવિપાદાદિભિર્વિવિધકર્મવન્ધહેતુત્વેન ચ ચતુર્ગતિભ્રમણકારકત્વેન યદ્દુલ્લુઃખજનકત્વાત્ પ્રેક્ષાવતાં તત્ત્વેદિનામનુપાદેયમ્ । વિપસંપૃક્તાડ્બન્ધસદૃશં કામસુખં કસ્ય વિવેકિનો મનો રમયેત્, ન કસ્યાપિ ।

યદપિ-તપસો યાતનાત્મકત્વમુક્તં, તદપ્યસત્-તકલદુઃખમૂલકર્મક્ષયહેતુત્વાત્, મનઇન્દ્રિયયોગાનામહાનિકારકત્વેન તપસો યયાશક્તિ વિધાનાત્ । ઉક્તં હિ—

થા તથા વિદેહક્ષેત્ર મેં સર્વદા લઘ્વિયોં કા સદ્ભાવ રહતા હૈ । સર્વસંબંધી અનુપલમ્ભ તો અસિદ્ધ હી હૈ. અર્થાત્ સર્વસમ્યન્ધી અનુપલમ્ભ લઘ્વિયોં કી અભાવાત્મકતા પ્રકટ કરને મેં અસમર્થ હૈ ।

“મેં કામસુખ સે વંચિત હો ગયા હું” જો યહ ઘાત કહી હૈ વહ મી ઠીક નહીં હૈ ક્યોં કિ વિપયસુખ રાગદ્વેપ મોહ કી ઉત્પત્તિ કા કારણ હોને સે, અત્સિ, કાંક્ષા, શોક એવં વિપાદ આદિ કો ઉત્પન્ન કરતે રહતે હૈં, ઇનસે વિવિધ કર્મોં કા વંધ હોતા રહતા હૈં, ડસ કે ઉદય સે જીવ ચારોં ગતિયોં મેં ભ્રમણ કરતા ૨ અનેક દુઃખપરમ્પરા કો વહાં ભોગતા રહતા હૈં, અતઃ કામ કો સુખ માનના યહ ભ્રમ હૈં । ઇસી લિયે તત્ત્વજ્ઞાનિયોં કે લિયે યે ઉપાદેય નહીં હૈં । વિચાર કિયા જાય તો વિપમિશ્રિત અન્નકી તરહ યે કામસુખ કિસ વિવેકી કે મન કો આનંદ પહૂંચા સકતે હૈં, અર્થાત્ કિસી કો મી નહીં । તપ કો યાતનાત્મક કહના ઇસલિયે અનુ-

ઓનો સદ્ભાવ રહે છે. સર્વસંબંધિ અનુપલમ્ભ તો અસિદ્ધ જ છે. અર્થાત્ સર્વસંબંધિ અનુપલમ્ભ ઋદ્ધિઓની અભાવાત્મકતા પ્રકટ કરવામાં અસમર્થ છે.

“હું કામસુખથી વંચિત બની ગયો છું” આ વાત કહી છે તે પણ ઠીક નથી. કેમકે, વિપયસુખ રાગદ્વેશ મોહની ઉત્પત્તિનું દ્વાર હોવાથી અત્સિકાંક્ષા સુખ શોક અને વિપાદ આદિને ઉત્પન્ન કરતાં રહે છે, તેનાથી વિવિધ કર્મોનો બંધ થતો રહે છે. તેના ઉદયથી જીવ ચારે ગતિઓમાં ભ્રમણ કરતાં કરતાં અનેક દુઃખ પરંપરાને ત્યાં લોગવતો રહે છે. માટે કામને સુખ માનવું એ ભ્રમ છે. આથી તત્ત્વજ્ઞાનીઓ માટે એ ઉપાદેય નથી. વિચારવામાં આવે તો વિષમિશ્રીત અન્નની માફક એ કામ સુખ કયા વિવેકીના મનને આનંદ પહોંચાડી શકે છે? અર્થાત્ કોઈને પણ નહીં. તપને યાતનાત્મક કહેવું એ માટે અનુચિત છે કે, એનાથી કોઈને પણ કષ્ટ પહોંચવું નથી. કારણે તે

मनइन्द्रिययोगाना, - महानिः कथिता जिनैः ।

यतोऽत्र तत्कथं तस्य, युक्ता स्याद् दुःखरूपता ? ॥ १ ॥

केशलुञ्चनादीनामपि किञ्चित् पीडाजनकत्वेऽपि समीहितार्थप्रापकत्वेन दुःखदायकत्वं नास्ति । तदुक्तम्—

“ दृष्टा चेष्टार्थसंसिद्धौ, कायपीडाऽप्यदुःखदा ।

रत्नादिवणिगादीनां, तद्वदत्रापि भाव्यताम् ” ॥ १ ॥

चित्त है कि उस से किसी को भी कष्ट नहीं पहुंचता है प्रत्युत यह सकल दुःखों के मूल कारण कर्मों का क्षय करनेवाला है । मन, इन्द्रिय तथा, योग इन को हानि न पहुंचने पावे इस रूप से यथाशक्ति तपस्या करने का विधान है । कहा भी है—

मनइन्द्रिययोगाना, - महानिः कथिता जिनैः ।

यतोऽत्र तत्कथं तस्य, युक्ता स्यात् दुःखरूपता ॥ १ ॥

तपमें मन और इन्द्रियों के योगों की हानि नहीं होती है, ऐसा भगवानने फरमाया है तो फिर तपमें दुःखरूपता कैसे मानी जाय, अर्थात् तप दुःखरूप नहीं है किन्तु सुखरूप है ॥ १ ॥

यद्यपि केशलुञ्चन आदि क्रियाएँ किञ्चित् पीडाजनक हैं तो भी समीहित अर्थ की सिद्धिके कारण होने से उनमें सर्वथा दुःखदायकता नहीं है । कहा भी है—

दृष्टा चेष्टार्थसंसिद्धौ, कायपीडाऽप्यदुःखदा ।

रत्नादिवणिगादीनां, तद्वदत्रापि भाव्यताम् ॥ १ ॥

सकल दुःखोत्तुं भूषण कारण अने कर्मोना क्षय करनार छे. मन इन्द्रिय तथा योग अने हानी न पडोये तेवा रूपथी यथाशक्ति तपस्या करवातुं विधान छे. कहुं पणु छे—

मनइन्द्रिययोगाना, - महानिः, कथिता जिनैः ।

यतोऽत्र तत्कथं तस्य, युक्ता स्यात् दुःखरूपता ॥ १ ॥

तपमां मन अने इन्द्रियोना योगोनी हानी थती नथी अणुं भगवाने फरमाव्युं छे. तो पछी तपमां दुःखरूपता केम मानवामां आवे ? अर्थात् तप दुःख रूप नथी परंतु सुखरूप छे.

केश लोचन आदि क्रियाओ ने के पिडाजनक कडेवाय छे तो पणु समीहित सिद्धिनुं कारण होवाथी तेनामां सर्वथा दुःखदायकता नथी. कहुं पणु छे—

दृष्टा चेष्टार्थ संसिद्धौ, कायपीडाऽप्यदुःखदा ।

रत्नादिवणिगादीनां, तद्वदत्रापि भाव्यताम् ॥ १ ॥

इत्थमत्रानुमानप्रयोगः—यत् इष्टार्थप्रसाधकं, न तत् कायपीडाकारत्वेऽपि दुःखदायकं, यथा रत्नवणिजामध्वश्रमादि । इष्टार्थप्रसाधकं च तपः। न चाऽस्याप्यसिद्धता, प्रशम-हेतुत्वेन तपसस्तत्परिपक्तितारतम्यात् परमानन्दतारतम्यस्यानुभूयमानत्वेन तत्प्रकर्षे तस्यापि प्रकर्षाऽनुमानात् । प्रयोगश्च—यत्तारतम्येन यस्य तारतम्यं तस्य प्रकर्षे तत्प्रकर्षः, यथाऽग्नितापप्रकर्षे काञ्चनविशुद्धिप्रकर्षः, अनुभूयते च प्रशमतारतम्येन परमानन्दतारतम्यम्, लोकप्रतीतत्वाच्च ॥ ४४ ॥

इसलिये ऐसा अनुमान यनाना चाहिये कि जो इष्ट अर्थ का प्रसाधक होता है वह काय का पीड़ा कारक होने पर भी दुःखदायक नहीं होता है, जैसे रत्नव्यापारियों का मार्गश्रम देशाटन का परिश्रम, इसलिये तप भी इष्ट अर्थ का प्रसाधक है अतः यह भी दुःखदायक नहीं है । तप में इष्टार्थप्रसाधकता असिद्धि नहीं है, क्यों कि तप प्रशम का हेतु है । तप द्वारा प्रशमभाव की जैसी २ तरतमता आत्मा में होगी वैसी २ परमानंद की तरतमता भी आत्मा में अनुभवित होगी इसलिये प्रशम के प्रकर्ष में परमानंद का भी प्रकर्ष अनुमित होता है । जैसे अग्नि के ताप के प्रकर्ष में काञ्चन की विशुद्धि का प्रकर्ष, प्रयोग से देखा जाता है । अतः परम्परा रूप से तप इष्ट अर्थ का प्रसाधक सिद्ध होता है, क्यों कि तप प्रशम का कारण, प्रशम परमानंद का कारण इस प्रकार बनता है ॥ ४४ ॥

आ भाटे ओबु अनुमान बनावबु जेधःओ के, जे इष्ट, अर्थना प्रसाधक होय छे—ते कायाने पीडा कारक होवा छतां पबु दुःख हायक थता नथी। जेभके रत्नव्यापारीओने। मार्गश्रम देशाटनने। परिश्रम—आ भाटे तप पबु इष्ट अर्थने प्रसाधक छे। भाटे ओ पबु दुःखदायक नथी। तपमां इष्टार्थ प्रसाधकता असिद्ध नथी, केभके, तप प्रशमने हेतु छे। तप द्वारा प्रशमभावनी जेवी जेवी तारतम्यता आत्मांमां दुशे तेवी तेवी परमानंदनी तरतमता पबु आत्मांमां अनुभवित थशे। आ भाटे प्रशमना प्रकर्षमां परमानंदने पबु प्रकर्ष अनुमित थाय छे। जेभ अग्निना तापना प्रकर्षमां काञ्चननी शुद्धिने प्रकर्ष प्रयोगथी देभाय छे। आधी परंपरा इपथी तप प्रशमनु कारण, प्रशम परमानंदनु कारण आ प्रकारथी बने छे ॥ ४४ ॥

तथा—

मूलम्—अभू जिणा अत्थि जिणा, अदुवा वि भविस्सइ ।

मुंसं ते एव माहंसु, इइं भिक्खू न चित्तए ॥ ४५ ॥

छाया—अभूवन् जिनाः सन्ति जिनाः, अथवाऽपि भविष्यन्ति ।

मृषा ते एवमाहुः, इति भिक्षुर्न चिन्तयेत् ॥ ४५ ॥

टीका—‘अभू जिणा’ इत्यादि ।

जिनाः—रागादिजयिनः—केवलिनः, अभूवन् अतीतकाले, ‘जिनाः सन्ति’=वर्तमानकाले जिना विद्यन्ते विदेहेषु इत्यर्थः । अथवा—जिना भविष्यन्ति, भरतादिषु इत्यपि । अपि शब्दो भिन्नक्रमः, ते=जिनास्तित्वादिनः, एवम्=उक्तरीत्या मृषा=मिथ्या-अलीकम्, असत्यमर्थम्, आहुः=वदन्ति, इति भिक्षुर्न चिन्तयेत्, अनुमानादि प्रमाणैर्जिनानां कालत्रयवर्तित्वसिद्धेः ।

अयं भावः—मिथ्यात्वमोहनीयोदयप्रभावात् कथंचिदसम्यक्त्वे समुत्पन्ने प्रत्यक्षा-

तथा—‘अभू जिणा’ इत्यादि ।

अन्वयार्थ—(जिणा-जिनाः) रागादिक के जीतने वाले केवली भगवान् (अभू-अभूवन्) अतीतकाल में हुवे हैं (जिणा अत्थि-जिनाः सन्ति) वर्तमानकाल में जिन हैं (अदुवा वि भविस्सइ-अथवाऽपि भविष्यति) अथवा भविष्यत्काल में होंगे । (एवं-एवम्) इस प्रकार जो कहते हैं (ते मुंसं आहंसु-ते मृषा आहुः) वे मिथ्या कहते हैं, (इइं भिक्खू न चित्तए-इति भिक्षुः न चिन्तयेत्) इस प्रकार भिक्षु विचार नहीं करे, कारण कि अनुमानादिक प्रमाणों से जिनका त्रिकाल में अस्तित्व सिद्ध होता है ।

भावार्थ—आत्मामें जब मिथ्यात्वमोहनीयका उदय रहता है तब उसके

तथा—‘अभू जिणा’ इत्यादि ।

अन्वयार्थ—जिणा-जिनाः रागादिनने लुतनार केवली भगवान् अभू-अभूवन् अतीतकालमां तथा छे जिणा अत्थि-जिनाः सन्ति वर्तमानकालमां लुन छे अदुवा वि भविस्सइ-अथवाऽपि भविष्यति अथवा भविष्यत् कालमां थरे एवं-एवम् आ प्रकारनुं ने कडेवामां आवे छे ते मुंसं आहंसु-ते मृषा आहुः ते मिथ्या करे छे. इइं भिक्खू न चित्तए-इति भिक्षुः न चिन्तयेत् आ प्रकारने विचार भिक्षु न करे. कारण के, अनुमानादिक प्रमाणोथी नेनुं त्रिकालमां अस्तित्व सिद्ध थयुं छे.

भावार्थ—आत्मां न्यारे मिथ्यात्व मोहनियनो उदय होय छे त्यारे तेना

દિપમાળે: સદ્ભાવનયા તન્નિરાકૃત્ય સમ્યક્વરણમે નૈવ દર્શનપરીપહઃ સોઢ્યવ્ય ઇતિ ।
અન્ન દૃષ્ટાન્તઃ પ્રદર્શ્યતે—

અવન્તીનગર્યાં વૈશ્રવણાચાર્યઃ શિષ્યપરિવારેણ સહ સમવસૃતઃ । તસ્ય દૃઢમતિ
નામકઃ શિષ્ય આસીત્, સ ઉગ્રતપસ્વી ઉગ્રવિહારી ઉત્કૃષ્ટક્રિયાપાલકશ્રાસીત્,
અન્તપ્રાન્તાહારેણાવમોદરિકાદિ તપઃ કરોતિ, વીરાસનાદિકં કરોતિ, ગ્રીષ્મકાલે
પ્રચન્ડસૂર્યાતાપનાં સેવતે । શીતકાળે શીતસ્પર્શ સહતે સ્મ, કેવલં ચોલપટકં, મુલો-

પ્રભાવ સે સમ્યક્ત્વ કી પ્રાપ્તિ કા અભાવ હોને પર જીવ એસા માનતા
હૈ કિ જિન આદિ પરોક્ષપદાર્થ નહીં હું । અતઃ ઉનકા પ્રત્યક્ષ ન હોને
પર ઘી અન્ય અનુમાનાદિક પ્રમાણોં દ્વારા ઉનકી સત્તા સિદ્ધ હોતી
હૈ, ઇસલિયે ઉનકી સદ્ભાવના સે ઉનકી અસંભાવતારૂપ મિથ્યાત્વ-
પરિણતિ કા પરિહાર કરતે હુણ સાધુ કો અપને સમ્યક્ત્વ કા રક્ષણ
કરતે રહના ચાહિયે । ઇસી કા નામ દર્શનપરીપહ જય હૈ ।

દૃષ્ટાન્ત—વૈશ્રવણાચાર્ય અપને શિષ્ય પરિવાર કે સાથ વિહાર
કરતે હુણ કિસી સમય અવન્તી નગરી મેં પધારે । ઉન શિષ્યોં મેં
દૃઢમતિ નામ કા ઇક શિષ્ય થા જો ઉગ્રતપસ્વી, ઉગ્રવિહારી ઇવં ઉત્કૃષ્ટ-
રૂપ સે પ્રત્યેક ક્રિયા કા પાલન કરતા થા । અન્ત પ્રાન્ત આહાર સે યહ
અવમોદરિકા આદિ તપોં કો તપતા થા । વીરાસન આદિ આસનોં કો
કરતા થા । ગ્રીષ્મકાલ મેં પ્રચન્ડ સૂર્ય કી અતાપના લેતા થા । શીત-
કાલ મેં શીતસ્પર્શ કો સહતા થા । કેવલ ચોલપટક તથા મુખ પર

પ્રભાવથી સમ્યક્ત્વની પ્રાપ્તિને અભાવ હોવાના કારણે જીવ એવું માને છે કે, જીવ
આદિ પરોક્ષપદાર્થ નથી. આથી તે પ્રત્યક્ષ ન હોવાથી અન્ય અનુમાનાદિક
પ્રમાણો દ્વારા તેની સત્તા સિદ્ધ હોય છે. આ માટે તેની સદ્ભાવનાથી તેની
અસંભવતારૂપ મિથ્યાત્વ પરિણતિને પરિહાર કરીને સાધુએ પોતાના સમ્ય-
ક્ત્વનું રક્ષણ કરતા રહેવું જોઈએ તેનું નામ દર્શનપરીપહ જય છે.

દૃષ્ટાન્ત—વૈશ્રવણાચાર્ય પોતાના શિષ્ય પરિવાર સાથે વિહાર કરતાં કરતાં
એક સમય અવન્તી નગરીમાં પધાર્યા. તેમના શિષ્યોમાં દૃઢમતિ નામે એક
શિષ્ય હતો. જે ઉગ્રતપસ્વી, ઉગ્રવિહારી અને ઉત્કૃષ્ટ રૂપથી પ્રત્યેક ક્રિયાઓનું
પાલન કરતો હતો. અન્તપ્રાન્ત આહારથી તે અવમોદરિકા આદિ તપ તપતો
હતા. વીરાસન આદિ આસનો કરતો હતો, ગ્રીષ્મકાળમાં પ્રચન્ડ સૂર્યની આતાપના
લેતો હતો, શીતકાળમાં ઠંડીના સ્પર્શને સહન કરતો, ફક્ત ચોલપટ્ટો અને

परि सदोरकमुखवस्त्रिकां च विभ्रत्, संपूर्णशरीरमनावृतं कृत्वा हेमन्ते रात्रौ उत्थितां एव तिष्ठति, जिनवचने सम्यक् श्रद्धालुत्वात् ।

एकदा कश्चिन्मिथ्यात्वी देवस्त्वत्रागत्य वैक्रियिकं नन्दनवनमिवोद्यानं प्रदर्श्य, दृढमतिमुनिमब्रवीत् - हे मुने ! अस्यामातापनायां को लाभः, किं निरर्थकमेतत् कष्टं वहसि, नास्ति परलोकः, आगम्यताम्, मया सहाऽस्य नन्दनवनसमानोद्यानस्य सुखमनुभूयताम् । यदाऽसौ दृढमतिमुनिर्वीरासनमध्यास्ते, तदा वैक्रियपुष्पशय्या-प्रदर्श्य स देवो वदति-अत्रास्यताम्, किमर्थं कष्टमावहसि, नास्ति परलोकः । यदा-ऽसौ तपस्पति, तदा स देवः स्ववैक्रियशक्त्या विविधं मिष्टान्नं निर्माय तस्य बुभुक्षामु-

सदोरकमुखवस्त्रिका को धारण कर एवं समस्त शरीर को अनावृत रख-कर हेमन्त ऋतु में रात्रि के समय को खड़े २ व्यतीत करता था । जिनवचन में इसे अप्रतिम श्रद्धा थी ।

एक समय की बात है कि कोई मिथ्यात्वी देव वहां आया और उसने अपनी वैक्रियशक्ति से नन्दनवनके समान एक उद्यान की रचना कर दृढमति मुनि से कहा हे मुने ! इस आतापना से क्या लाभ है । निरर्थक आप इस कष्ट को सहन करते हो । परलोक आदि कुछ भी नहीं है, अतः आओ और मेरे साथ इस नन्दनवन के समान उद्यान के सुख का यथेच्छ अनुभव करो । जिस समय दृढमति मुनि वीरासन से विराजते तो वह देव वैक्रियपुष्पशय्या की रचना कर उनसे कहता कि इस आसन में बैठने में क्या लाभ है इस पुष्प की शय्या पर आप विराजो । जिस को लक्षित कर यह आप कर रहे हो, हे मुनि वह कुछ भी नहीं है । इसी तरह जब यह तप तपते तो वह अपनी

सदोरकमुखवस्त्रिकाने धारण करी साराञ्च शरीरने शुद्धुं राभी हेमन्त ऋतुमां रात भर उठे पगे रहतेो डते, उन वचनमां अने अप्रतिम श्रद्धा डती.

अेक समयनी बात छे के, केध मिथ्यात्वी देव त्यां आयेो अने तेहे पोतानी वैक्रियशक्तिथी नन्दनवन जेवुं सुंदर उद्यान बनावी दीधुं. अने दृढमति मुनिने कछुं के, हे मुनि ! आ आतापनाथी शुं लाभ छे ? निरर्थक आप आ कष्टने सहन करेो छे ! परलोक वगेरे कांठ पणु नथी. आथी भारी साथे आवेो अने आ नन्दनवन समान उद्यानना सुभनेो यथेच्छ अनुभव करेो. जे समये दृढमति मुनि वीरासनमां विराजत थता त्यारे ते देव वैक्रिय पुष्पशय्यानी रचना करी अेनाथी कहेतेो के, आ आसनथी भेसवामां कथेो लाभ ? आ पुष्पनी शैया उपर आप जीराजे. जेनुं लक्ष करीने आप आ भधुं करी रखा छे तेवुं हे मुनि कांठ छे नडीं. आ रीते तप तपता त्यारे पणु ते देव पोतानी

दिप्रमाणैः सद्भावनाया तन्निराकृत्य सम्यक्वरक्षणेनैव दर्शनपरीषहः सोढव्य इति ।
अत्र दृष्टान्तः प्रदर्श्यते—

अवन्तीनगर्या वैश्रवणाचार्यः शिष्यपरिवारेण सह समवसृतः । तस्य दृढमति नामकः शिष्य आसीत्, स उग्रतपस्वी उग्रविहारी उत्कृष्टक्रियापालकश्चासीत्, अन्तप्रान्ताहारेणाबमोदरिकादि तपः करोति, वीरासनादिकं करोति, ग्रीष्मकाले प्रचण्डसूर्यातापनां सेवते । शीतकाले शीतस्पर्श सहते स्म, केवलं चोलपट्टकं, मुखो-

प्रभाव से सम्यक्त्व की प्राप्ति का अभाव होने पर जीव ऐसा मानता है कि जिन आदि परोक्षपदार्थ नहीं हैं । अतः उनका प्रत्यक्ष न होने पर भी अन्य अनुमानादिक प्रमाणों द्वारा उनकी सत्ता सिद्ध होती है, इसलिये उनकी सद्भावना से उनकी असंभावतारूप मिथ्यात्व-परिणति का परिहार करते हुए साधु को अपने सम्यक्त्व का रक्षण करते रहना चाहिये । इसी का नाम दर्शनपरीषह जय है ।

दृष्टान्त—वैश्रवणाचार्य अपने शिष्य परिवार के साथ विहार करते हुए किसी समय अवन्ती नगरी में पधारे । उन शिष्यों में दृढमति नाम का एक शिष्य था जो उग्रतपस्वी, उग्रविहारी एवं उत्कृष्ट-रूप से प्रत्येक क्रिया का पालन करता था । अन्त प्रान्त आहार से यह अबमोदरिका आदि तपों को तपता था । वीरासन आदि आसनों को करता था । ग्रीष्मकाल में प्रचण्ड सूर्य की अतापना लेता था । शीत-काल में शीतस्पर्श को सहता था । केवल चोलपट्टक तथा मुख पर

प्रभावधी सम्यक्त्वनी प्राप्तिने अभाव होवाना कारणे एव अेषु माने छे के, एन आदि परोक्षपदार्थ नथी. आथी ते प्रत्यक्ष न होवाथी अन्य अनुमानादिक प्रमाणा द्वारा तेनी सत्ता सिद्ध होय छे. आ भाटे तेनी सद्भावनाथी तेनी असंभावताइय मिथ्यात्व परिणतीने परिहार करीने साधुअे पोताना सम्यक्त्वनु रक्षण करेता रहेवुं नोर्थअे तेनुं नाम दर्शनपरीषह जय छे.

दृष्टान्त—वैश्रवणाचार्य पोताना शिष्य परिवार साथे विहार करतां करतां अेके समय अवन्ती नगरीमां पधायो. तेमना शिष्योमां दृढमति नामे अेके शिष्य छेते. ए उग्रतपस्वि, उग्रविहारी अने उत्कृष्ट रूपधी प्रत्येक क्रियाअेनुं पालन करेते छेते. अन्तप्रान्त आहारधी ते अबमोदरिका आदि तप तपते छेते. वीरासन आदि आसने करेते छेते, ग्रीष्मकालमां प्रचण्ड सूर्यनी आतापना वेते छेते, शीतकालमां ठंडीना स्पर्शने सहन करेते, इकत चोलपट्टे अने

मधुरं वारि, किमात्मनः पिपासाऽऽकुलीकरणेन, नास्ति परलोकः । इत्येवं विविधः
परीपदानुत्पाद्य स देवस्तस्य मुनेः सम्यक्त्वमपनेतुं प्रवृत्तः, तथापि स दृढमतिः
मुनिस्तपःसंयमाराधनाद् लेशतोऽपि विचलितो नाभूत् । तदाऽसौ मेरुरिवाप्रकम्पः
सागर इव गम्भीरः सन् विचारयति—भगवतः सर्वज्ञतया तद्वचनं सत्यं संदेहरहितं ध्रुवं
नित्यं - परमकल्याणसाधकं श्रद्धेयमेवास्ति । एभ्यः पौद्गलिकसुखेभ्यः किमपि

कि हे मुनि ! देखो यह कितना सुन्दर तालाव भरा हुआ है । आपको
इस समय घोर पिपासा की वेदना हो रही है अतः आप शीतल
मधुर जल का पान कर पिपासा को शान्त करो । व्यर्थ में पिपासा से
आत्मा को आकुलित करने से क्या लाभ है ? परलोक नहीं है । इस
प्रकार इस देव ने मुनिराज के लिये अनेक परीपहों को उत्पन्न कर उनको
सम्यक्त्व से पतित करने के निमित्त अनेक प्रयत्न किये तो भी वे
मुनिराज सम्यक्त्व से रंचमात्र भी चलायमान नहीं हुए । प्रत्युत
संयम एवं तप की आराधना करने में मेरु के समान अप्रकंप होकर
एवं सागर के समान गंभीर बनकर अधिक से अधिक दृढ बनते रहे ।
साथ में यह भी इन्होंने विचार करने में कसर नहीं रखी कि भगवान्
वीतराग होने से, तथा सर्वज्ञ होने से कभी भी असत्य वचन वाले
नहीं हो सकते हैं, इनका प्रत्येक वचन संदेहरहित ध्रुव सत्य है ।
जिन वचनों की आराधना से ही जीवों को निःश्रेयस मार्ग की प्राप्ति
होती है, अतः यही एकान्ततः परमकल्याणसाधक है, और इसी

आ समय पूषण तरस लागी रही छे, आधी आ शितल मधुर जलतुं पान
करीने तमारी तरसने छीपावे। तरसथी आत्माने नकामे पीडीत करवाथी शु
लाह ? परदोह छे नहीं. आ प्रकारे ते देवे मुनिराज माटे अनेक परीपडो
उत्पन्न कयो अने तेमने सम्यक्त्वथी पतित भनाववा पूषण प्रयत्ने कयो तो
पषु अे मुनिराज लेश मात्र पषु बलायमान थया नही. अने चोताना संयम
अने तपनी आराधनाभां भेइनी भाइक अउग रीते उला रहा अने सागरनी
भाइक धीर गलिर अनी अधिक दृढ बनता गया. साथे साथे तेमण्णे अे पषु
विचार करवाभां कसर न राभी के भगवान वीतरागी सर्वज्ञ होवाने
कारण्णे कही पषु असत्य वचनवाणा होई शकता नथी. अेमनुं प्रत्येक संयम
संदेह रहित ध्रुव—सत्य छे. अनवचनेनी आराधनाथी जे लवोने निश्रेयस
(मोक्ष) मार्गनी प्राप्ति थाय छे. जेथी तेना विश्वास करवो योग्य छे. आधी
आज्जे अेक मात्र परम कल्याणतुं साधन छे. आ पौद्गलिक सुखेथी लवोनुं

ત્પાઘ વદતિ-મુને ! કિં વુમુક્ષયા પ્રાણાન્ ગમયસિ ! મુન્દસ્વ વિવિધાનિ મિષ્ટાન્નાનિ,
 યદર્થમેતત્ કષ્ટમઙ્ગીકરોપિ સ નાસ્તિ પરલોકઃ । યદાઽસી મુનિરુગ્રવિહારં કરોતિ,
 તેન ચ શ્રાન્તો ભવતિ, તદા સ દેવઃ સ્વવૈક્રિયશક્ત્યા શિવિકાં વાદકૈર્નીયમાના
 પ્રદર્શ્ય વદતિ-મુને ! યાનમારુહતામ્, અલમનેન કષ્ટકરેણ પાદચારેણ, નાસ્તિ
 પરલોકઃ । ઉષ્ણકાલે સ્વશક્ત્યા ઘોરપિપાસામુત્પાઘ શીતલસુગન્ધિનિર્મલજલપૂર્ણ-
 જલાશયં તદીયદૃષ્ટિગોચરીકુર્વન્ સ દેવસ્તં મુનોમત્રચીત્-મુને ! પિત્ર શીતલમિદં

વૈક્રિયશક્તિ કે પ્રભાવ સે વિવિધ મિષ્ટાન્નોં કો તયાર કર ઓર ઉન્હેં
 વુમુક્ષિત વનાકર કહને લગતા હે મુને ! ક્યોં ખૂલ્લ સે વ્યર્થ મેં ઇન પ્યારે
 પ્રાણોં કો નષ્ટ કરના ચાહતે હો । જિસકે નિમિત્ત તુમ યહ કષ્ટ-
 પરંપરા સહ રહે હો વહ તો કુછ હૈ હી નહીં, અતઃ વિવિધ ઇન મિષ્ટાન્નોં
 કો ભોગો । જવ મુનિરાજ ઉગ્રવિહારી હોતે ઓર શ્રાન્ત હો જાતે તો
 યહ દેવ ઉસ સમય શિવિકા કી રચના કર ઉન્હેં ઇત્ત પ્રકાર દિખાતા
 કિ યહ શિવિકા અનેક પુરુષોં દ્વારા અપને કંઘો પર ઉઠાઈ જા રહી હૈ,
 ઓર ફિર કહને લગતા કિ મહારાજ આપ થક ચુકે હૈં અતઃ ઇસ
 શિવિકા પર ચઢકર વિહાર કરિયે । કષ્ટપ્રદ ઇસ પૈદલ ચલને સે
 ક્યા લાભ ? ઇસે છોડિયે । ઉષ્ણકાલ મેં અપની શક્તિ કે પ્રભાવ સે
 મુનિ કો ઘોર પિપાસા ઉત્પન્ન કર ઓર શીતલ સુરભિ નિર્મલ જલ સે
 પરિપૂર્ણ જલાશય કી રચના કરકે મુનિ કો દિખાતા હુઆ કહને લગતા

વૈક્રિયશક્તિના પ્રભાવથી વિવિધ મિષ્ટાન્ન તૈયાર કરી તેને વિભૂષિત બનાવી
 કહેવા લાગતો હે મુનિ ! શા માટે વ્યર્થમાં ભૂખ અને તરસથી આ પ્યારા
 પ્રાણોને નષ્ટ કરી રહ્યા છો ? જે નિમિત્તથી તમે આ બધાં કષ્ટો સહન કરો
 છો એવું કાંઈ પણ નથી. આથી આ વિવિધ મિષ્ટાન્નોને આરોગો. બ્યારે મુનિ-
 રાજ ઉગ્ર વિહારી બનતા અને શ્રાન્ત બની જતા તો તે દેવ એ સમયે
 શિવિકા (પાલખી)ની રચના કરી એને બતાવતો અને કહેતો આ શિવિકા
 અનેક પુરુષોદ્વારા પોતાના ખભે ઉઠાવવામાં આવી રહી છે. મહારાજ આપ
 થાકી ગયા છો જેથી આ શિવિકામાં ખેસી જાઓ. અને વિહાર કરો. કષ્ટપ્રદ
 એવા પગપાળા ચાલવાથી શું લાભ મંજવાને છે ? એને છોડી દો. ઉષ્ણકાળમાં
 પોતાની શક્તિના પ્રભાવથી મુનિરાજ ને પાણીની ખૂબ તરસ ઉત્પન્ન કરાવી,
 શિતળ સુરભી નિર્મળ જળથી પરિપૂર્ણ જલાશયની રચના કરી મુનિને દેખા-
 ડીને કહેતો કે, હે મુનિ ! જુઓ આ કેવું સુંદર તળાવ બન્યું છે. આપને

अथ परीपहावतरणमाह—

एते धर्मस्यान्तरायकारणभूताः द्वाविंशतिपरीपहाः सोढव्या इत्युक्तम् । तत्र-
ज्ञानावरणीय-वेदनीय-दर्शनमोहनीय-चारित्रमोहनीया-ऽन्तरायाणां कर्मणामुदयादेते
सर्वे परीपहाः प्रादुर्भवन्ति । चतसृषु कर्मप्रकृतिषु=ज्ञानावरणीय-वेदनीय-मोहनीया
-न्तरायेषु द्वाविंशतिः परीपहाः समवतरन्ति, इतरासु चतसृषु-दर्शनावरणीयाऽऽ-
युक्त-नाम-गोत्रेषु परीपहा नोत्पद्यन्ते । (भग० ८ । ८)

यः सूक्ष्म संपरायः सूक्ष्मलोभपरमाणुसञ्जावात् न वीतरागत्वं प्राप्तः स दशमगुण-
स्थानवर्ती उपशमश्रेणिसंपन्नो वा क्षपकश्रेणिसंपन्नो वा तस्य संयतस्य, तथा छद्मस्थवी-
तरागयोर्गुणस्थानभेदेन द्विविधयोरेकादशद्वादशगुणस्थानवर्तिनोश्च संयतयोश्चतुर्दश-

अथ परीपहों का अवतरण कहते हैं—

यद्यपि धर्मके सेवन करने में ये बाईस परीपह अन्तरायरूप हैं साधु
को इन को सहन करते रहना चाहिये, यह धात बतलाई जा चुकी है ।
अब कौन २ से परीपह किस २ कर्म के उदय से होते हैं यह बतलाया
जाता है—ज्ञानावरणीय, वेदनीय, मोहनीय (दर्शनमोहनीय चारित्रमो-
हनीय) एवं अन्तराय, इन चार कर्मों के उदय से ये २२ बाईस परीपह
उत्पन्न होते हैं । दर्शनावरणीय आयु नाम एवं गोत्र, इन चार कर्मों के
उदय में परीपह उत्पन्न नहीं होते हैं । (भग० श ८ उ० ८)

सूक्ष्मलोभ परमाणु के सदभाव से जो वीतरागता को प्राप्त नहीं
हुआ है ऐसा दशमगुणस्थानवर्ती जीव चाहे वह उपशमश्रेणी में स्थित
हो चाहे क्षपकश्रेणी में उसके तथा छद्मस्थ वीतराग के ११ ग्यारहवें एवं

द्वे परीपहानुं अवतरणु कडेवामां आवे छे—

धर्मनुं सेवन करवामां कदाय आ भावीस परीपह अंतरायरूप थाय
छतां साधुये अने सहन करता रहेवुं लेधये. आ वात समभववामां आवी.
द्वे कया कया परीपह कया कया कर्माना उदयथी थाय छे अने भताववामां आवे
छे—ज्ञानावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, (दर्शन मोहनीय चारित्र मोहनीय) अने
अंतराय आ चार कर्माना उदयथी आ भावीस परीपह उत्पन्न थाय छे. दर्शनाव-
रणीय, आयु, नाम, अने गोत्र आ चार कर्माना उदयथी परीपह उत्पन्न यता नथी.
भग. श. ८, उ. ८

सूक्ष्मलोभ परमाणुना सदभावथी जे वीतरागताने प्राप्त नथी थया अवे
दशगुण स्थानवर्ती छव आडे ते उपशम श्रेणीमां स्थित छेय, आडे क्षपक
श्रेणीमां तथा छद्मस्थ वीतरागता अगीयार अने आरभा. गुणस्थानवर्ती छवेने

कल्याणं नास्ति । मयाऽनादिभयसमागतं मिथ्यात्वमपनीय सम्यक्त्वं लब्धम् । तदेव पुनः पुनरात्मनि दृढीकृत्य ज्ञानावरणीयाद्यष्टविधकर्मरजः समुत्सारेण केवलित्वप्राप्तिपूर्वकं मोक्षपदं मम लब्धव्यमस्ति । अन्नमननं तुच्छेन विषयसुखेन । इति विमृश्य तपःसंयमसमाराधनपूर्वकनिरतिचारसम्यक्त्वरक्षणेन दृढमतिमुनिदर्शनपरीषदं परिपद्य, क्षपकश्रेणिमारुह्य, केवलित्वं लब्ध्वा स्वात्मकल्याणं साधितवान् । एवमन्यैरपि मुनिभिर्दर्शनपरीषदः सोढव्यः ।

का विश्वास करना योग्य है । इन पौद्गलिक सुखों से जीवों का कुछ भी आत्महित नहीं हो सकता है । मैंने बड़ी कठिनता से अनादि भयों से संसक्त मिथ्यात्व का अपनयन कर सम्यक्त्व का लाभ किया है । इसलिये यह दुर्लभता से प्राप्त होने वाली वस्तु (सम्यक्त्व) का नाश न होने पावे, इस प्रकार सचेष्ट होकर मुझे यार २ इस को निज आत्मा में दृढ करते रहना चाहिये, और ज्ञानावरणीय आदि अष्ट प्रकार कर्मरजके निवारण से केवलित्वकी प्राप्तिपूर्वक मुक्तिपदका लाभ करना चाहिये इसी में मेरा कल्याण है । इन तुच्छ वैषयिक सुखों के सेवन से कौनसा निज का लाभ हो सकता है । इस प्रकार विचार कर तप एवं संयम की आराधना करते हुए दृढमति मुनिराज ने निरतिचार सम्यक्त्व की रक्षा से दर्शनपरीषदको सहन किया और क्षपकश्रेणी पर आरुह हो कर केवलित्वका लाभ कर अपना आत्मकल्याण कर लिया । इसी प्रकार अन्य मुनिजनों को भी दर्शनपरिषदजयी धनना चाहिये ।

कई पद्य आत्महित थोड़ा शकवानुं नहीं, मैं लारे कहीनताथी अनादि भयोधी संसक्त मिथ्यात्वनुं अपनयन करी सम्यक्त्वने लाल कथो छे, आ माटे आ दुर्लभताथी प्राप्त थयेल वस्तु सम्यक्त्वने नाशन थाय अे रीते सचेत अनीने मारे वारंवार अेने मारा चोताना आत्माभां दृढ करता रडेवुं जेधअे, अने ज्ञानावरणीय आदि आठ प्रकारनी कर्मरजना निवारणुथो केवलित्वनी प्राप्तिपूर्वक मुक्ति पदने लाल भेजवो जेध अे, आ करवामां ज मारुं कल्याण छे, तुच्छ अेवां वैषयिक सुखेना सेवनथी भने कथो लाल थवानो छे ? आ प्रकारने दृढ विचार करी तप अने संयमनी आराधनां करतां दृढमति मुनिराजे निरतिचार सम्यक्त्वनी रक्षाथी दर्शनपरीषद सहन करी क्षपकश्रेणी उपर आरुह अनी केवलीपदने लाल करी चोताना आत्मानुं कल्याण कथुं, आ रीते अन्य मुनिजनेअे पद्य दर्शनपरीषद जयी अनवुं जेधअे.

નનુ આત્યન્તિકશીતસ્પર્શો સતિ વહ્નિસાન્નિધ્યે, તથા-શરીરસ્યૈકસ્મિન્ ભાગે છાયાશ્રિતેઽપરસ્મિન્ ભાગે સૂર્યકિરણપ્રતપ્તે સતિ એકસ્ય પુરુપસ્ય એકસ્યાં દિશિ શીતમ્, અન્યસ્યાં ચોષ્ણમિત્યેવં દ્વયોરપિ શીતોષ્ણપરીપહયોર્યુગપત્ સંભવોઽસ્તીતિ ચેત્, ઉચ્યતે-અત્ર પરીપહે કાલકૃતશીતોષ્ણયોર્ગ્રહણમ્, અતો નાસ્થેતત્પ્રશ્ના-વકાશ ઇતિ ।

શંકા—શીતસ્પર્શી ઓર ઉષ્ણસ્પર્શી કા જો આપને પરસ્પર વિરોધ યતલાયા હૈ વહ જચતા નહીં હૈ, ક્યોં કિ આત્યંતિક શીતસ્પર્શી હોને પર ભી અગ્નિ કે સમીપ મેં, તથા શરીર કા એક ભાગ છાયાશ્રિત હોને પર, દૂસરા ભાગ સૂર્ય કી કિરણોં સે તસ હોને પર એક હી પુરુપ કો એક દિશા મેં શીત કા, અન્ય દિશા મેં ઉષ્ણ કા અનુભવ યુગપત્ હોતા હૈ, ઇસ પ્રકાર શીત ઓર ઉષ્ણસ્પર્શી કા એક હી પુરુપ મેં દેશાદિક કી અપેક્ષા એક સાથ સદ્ભાવ પાચે જાનેસે ઇનમેં આપ વિરોધ કેસે કહતે હૈં ।

ઉત્તર—ઇસ પ્રકાર કી આશંકા યહાં નહીં કરના ચાહિયે । ક્યોં કિ યહાં જો શીત ઉષ્ણ પરીપહ કા યુગપત્ વિરોધ યતલાયા ગયા હૈ વહ કાલ કી અપેક્ષા સે યતલાયા ગયા હૈ । શીતકાલ મેં શીતપરીપહ કા ઉષ્ણકાલ મેં ઉષ્ણપરીપહ કા સદ્ભાવ રહતા હૈ । શીતકાલ મેં ઉષ્ણકાલ નહીં હોતા ઓર ઉષ્ણકાલ મેં શીતકાલ નહીં હોતા, અતઃ ઇસ અપેક્ષા સે યહાં ઇસ પ્રશ્ન કે હોને કા અવકાશ હી નહીં હૈ ।

શંકા—શીતસ્પર્શી અને ઉષ્ણસ્પર્શીનો જે આપે પરસ્પર વિરોધ બતાવેલો છે તે ખરોખર નથી. કેમકે, અત્યંતિક ઠંડીનો સ્પર્શ હોવાથી પણ અગ્નિના સાંનિધ્યમાં તથા શરીરનો એક ભાગ છાયાશ્રિત હોવાથી, બીજો ભાગ સૂર્યનાં કિરણોથી તૃપ્ત હોવાથી, એકજ માણસને એક દિશામાં ઠંડીનો અને બીજી દિશામાં ઉષ્ણનો અનુભવ યુગપત્ થાય છે. આ રીતે ઠંડી અને ઉષ્ણસ્પર્શનો એકજ માણસમાં દેશાદિકની અપેક્ષા એક સાથ સદ્ભાવ દેખાતાં આમાં આપ વિરોધ કેવી રીતે કહો છો ?

ઉત્તર—આ પ્રકારની આશંકા અહિં ન કરવી જોઈએ કેમકે, અહિં જે ઠંડી અને ઉષ્ણ પરીપહનો યુગપત્ વિરોધ બતાવવામાં આવેલ છે તે કાળની અપેક્ષાથી બતાવવામાં આવેલ છે. શીતકાળમાં ઠંડીનો પરીપહ અને ઉષ્ણકાળમાં ઉષ્ણપરીપહનો સદ્ભાવ રહે છે. શીતકાળમાં ઉષ્ણકાળ હોતો નથી અને ઉષ્ણકાળમાં શીતકાળ હોતો નથી. આથી આ અપેક્ષાએ અહિંયાં આ પ્રશ્ન થવાનો અવકાશ જ નથી.

अचेल-रति-स्त्री-निपद्या-ऽऽक्रोश-याचना-सत्कारपुरस्कारपरीपहाः भवन्ति । दर्शनमोहनीयोदये-एकः दर्शनपरीपहः-वेदनीयोदये-एकादश ध्रु-त्पिपासा-शीतोष्ण दंशमशक-चर्या-शय्या-वध-रोग-तृणस्पर्श-मलाख्याः परीपहाः उत्पद्यन्ते । लाभान्तरायोदये-एकः अलामपरीपहः । अष्टविधकर्मबन्धकस्य, तथाऽऽयुर्बन्धितसप्तविधकर्मबन्धकस्य च संयतस्य द्वाविंशतिः परीपहाः संभवन्ति, तत्र स उत्कर्षतो युगपद् विंशतिपरीपहान् वेदयति । यत्र समये शीतपरीपहं वेदयति न तदोष्णपरीपहम्, यदा चोष्णपरीपहं वेदयति, न तदा शीतपरीपहं, तयोः परस्परमत्यन्तविरोधेन एकदा एकत्रासम्भवात् । तथा यस्मिन् समये चर्यापरीपहम् वेदयति, न तदा निपद्यापरीपहम्, यदा निपद्या परीपहं वेदयति न तदा चर्यापरीपहं, चर्यानिपद्यापरीपहयोरपि परस्परमत्यन्तविरोधेन एकदा एकत्रासम्भवात् ।

ये दो परीपह होते हैं । चारित्रमोहनीय के उदय में अचेल १; अरति २, स्त्री ३, निपद्या ४, आक्रोश ५, याचना ६, सत्कारपुरस्कार ७, ये ७ सात परीपह होते हैं । दर्शनमोहनीय के उदय में एक दर्शनपरीपह, वेदनीय के उदय में ११ ग्यारह परीपह-क्षुधा १, तृषा २, शीत ३, उष्ण ४, दंशमशक ५, चर्या ६, शय्या ७, वध ८, रोग ९, तृणस्पर्श १०, और मेल ११ होते हैं । लाभान्तराय के उदय में एक अलामपरीपह उत्पन्न होता है । आठों प्रकार के कर्म का बन्धक तथा आयु सिवाय सात कर्मों का बन्धक जो संयत है उसके २२ चाईस परीपह होते हैं । एक काल में जीव अधिक से अधिक २० बीस परीपहों का वेदन कर सकता है, क्यों कि चर्या और निपद्या में से किसी एक का, शीत एवं उष्ण में से किसी एक एक का ही वेदन होगा, दोनों का युगपत् नहीं, कारण कि इनका परस्पर एक साथ रहने में विरोध है ।

परीपह छे. चारित्र मोहनीयना उदयमां अचेल, १ अरति, २ स्त्री, ३ निपद्या, ४ आक्रोश ५ याचना, ६ सत्कारपुरस्कार, ७ आ सात परीपह डोय छे. दर्शनमोहनीयना उदयमां अेक दर्शनपरीपह, वेदनीयना उदयमां ११ अजीयार परीपह, क्षुध, १ तरस, २ ठंडी, ३ उष्ण, ४ दंशमशक, ५ चर्या, ६ शय्या, ७ वध, ८ रोग, ९ तृणस्पर्श १० अने मेल ११ डोय छे. लाभान्तरायना उदयमां अेक अलामपरीपह उत्पन्न थाय छे. आठ प्रकारनां कर्मना अंधक तथा आयु शिवाय सात कर्मोना अंधक ने संयत छे तेने २२ आबीस परीपह डोय छे. अेक कारणमां अेक एव अधिकमां अधिक २० बीस परीपहनुं वेदन करी शके छे. कर्मके, अथां अने निपद्यामांथी कोरि अेकनुं ठंडी अने उष्णमांथी कोरि अेकनुं वेदन यतुं डोय छे. अनेनुं युगपत् नडीं. कारण के, तेने परस्पर अेक साथे रहेवामां विरोध छे.

વેદુચ્યતે — સૂક્ષ્મસંપરાયસ્ય ચારિત્રમોહનીયં દર્શનમોહનીયં સત્તામાત્રં વર્તતે, ન તુ પરીપહહેતુભૂતઃ સૂક્ષ્મોઽપિ મોહનીયોદયોઽસ્તીતિ ન મોહનીયજન્યપરીપહો ભવતિ, તત્તથ્થ પદ્વિધવન્ધકસ્ય મોહનીયોદયાભાવેન સર્વત્રૌત્સુક્યનિવૃત્તિર્ભવતિ, ઔત્સુક્યનિવૃત્ત્યા ચ વિહારપરિણામાભાવઃ, તેન શય્યાપરીપહવેદનસમયે ચર્યાયા અભાવઃ । અત્ર તુ—મોહનીયોદયાદ્ વાદરરાગવચ્ચેન ઔત્સુક્યં વિહારપરિણામરૂપં સંભવતિ, તદા શય્યાપરીપહવેદનસમયે ચર્યાપરીપહં પરિણામરૂપેણ વેદયતિ, અતો વિશતિપરીપહાન્ વેદયતીતિ કથનં સમ્યગેવ ।

કિ શય્યા ઓર નિપચા મેં સે ઈક ફિર ઘટ જાને સે વીસ કી જગહ ૧૧
ઉચ્ચીસ પરીપહોં કે વેદના કા હી સદ્ભાવ કહના ચાહિયે ?

ઉત્તર—સૂક્ષ્મસંપરાય સંયત કે ચારિત્રમોહનીય એવં દર્શનમોહનીય કેવલ સત્તામાત્ર હૈ, પરીપહ કા હેતુભૂત ધોડા સા મોહનીય કા ઉદય વહાં નહીં હૈ કિ જિસસે વહાં મોહનીય કે ઉદય સે હોને વાલા પરીપહ હો સકે, અતઃ છહ કર્મોં કા વંધક જો સંયત હૈ ઉસકે મોહનીય કર્મ કે ઉદય કે અભાવ સે સર્વત્ર ઔત્સુક્ય કી નિવૃત્તિ હો જાતી હૈ । ઔત્સુક્ય કી નિવૃત્તિ સે વિહાર કરને કે પરિણામ કી મો નિવૃત્તિ હો જાતી હૈ, ઈસસે શય્યાપરીપહ કે વેદન કે સમય મેં વહાં ચર્યા કા અભાવ હૈ પરન્તુ જો સપ્તવિધ કર્મ કા અથવા અષ્ટવિધ કર્મ કા વંધક હૈ ઉસકે મોહનીય કા ઉદય હૈ ઈસસે વાદર રાગવાલા હોને સે ઉસકે વિહારપરિણામરૂપ ઔત્સુક્યભાવ સંભવિત હોતા હૈ । ઉસ સમય વહ શય્યાપરીપહ કે વેદન કે સમય મેં ચર્યાપરીપહ કો પરિણામ-

કારણ કે શય્યા અને નિપદામાંથી એક ઘટિ જવાથી વીસને બદલે આગ્રહીસ પરીપહોના વેદનનો જ સદ્ભાવ કહેવો બોધ એ.

ઉત્તર—સૂક્ષ્મ સાંપરાય સંયતના ચારિત્ર મોહનીય અને દર્શનમોહનીયની કેવળ સત્તા માત્ર છે. પરીપહના હેતુભૂત થોડો પણ મોહનીયનો ઉદય ત્યાં નથી કે જેનાથી ત્યાં મોહનીયના ઉદયથી આવનાર પરીપહ થઈ શકે. આથી છ કર્મોના અંધક જે સંયત છે તેના મોહનીય કર્મના ઉદયના અભાવથી સર્વત્ર ઔત્સુક્યની નિવૃત્તિ થઈ જાય છે. ઔત્સુક્યની નિવૃત્તિથી વિહાર કરવાના પરિણામની પણ નિવૃત્તિ થઈ જાય છે. આથી શય્યાપરીપહનાં વેદનના સમયે ત્યાં ચર્યાનો અભાવ છે પરંતુ જે સાત પ્રકારના કર્મોના અથવા આઠ પ્રકારના કર્મોના અંધક છે તેને મોહનીયના ઉદય છે. આ કારણે બાદર રાગ વાળા હોવાથી એના વિહાર પરિણામ રૂપ ઔત્સુક્યભાવ સંભવિત બને છે. એ સમયે તે શય્યાપરીપહના વેદન સમયમાં ચર્યાપરીપહને પરિણામરૂપથી વેદિત

ननु भगवता 'आयुर्मोहनीयवर्जितपञ्चविधकर्मबन्धकः सूक्ष्मसंपरायसंयत उत्कर्षतो युगपद् द्वादश परीपहान् वेदयति' इत्युक्तम्, तत्र यदा शय्यापरीपहं वेदयति, न तदा चर्यापरीपहम्, यदा चर्यापरीपहं वेदयति, न तदा शय्यापरीपहम्, इति कथितम्, कथं तर्हि-सप्तविधकर्मबन्धकोऽष्टविधकर्मबन्धकश्च संयतो युगपद् विंशतिपरीपहान् वेदयेत्। यतश्चर्याया सह शय्यानिषघयोर्विरोधेन चर्यासद्भावे शय्यानिषघयोरसंभवात्, एकोनविंशतेरेव परीपहाणां वेदनसंभव इति

शंका—भगवान् ने "आयु एवं मोहनीय वर्जित छह कर्मों का बंध करनेवाला सूक्ष्मसंपराय गुणस्थानवाला संयत उत्कर्ष की अपेक्षा युगपत् १२ बारह परीपहोंका वेदन करता है" ऐसा कहा है सो उसमें जिस समय वह शय्यापरीपहका वेदन करता है उस समय वह चर्यापरीपहका वेदन नहीं करता है, और जिस समय चर्यापरीपह का वेदन करता है उस समय शय्यापरीपह का वेदन नहीं करता सो इस प्रकार की विवक्षा से वहाँ चौदह परीपहों के सामान्य कथन में उत्कर्षक की अपेक्षा बारह परीपह का वेदन करना ठीक बैठ जाता है, परन्तु जो आयुवर्जित सात प्रकार के अथवा आठ प्रकार के कर्मों का बंधक संयत है उसके चर्या के साथ शय्या और निषघा का विरोध होने से चर्या के सद्भाव में शय्या और निषघा का संभव हो नहीं सकता है ऐसी परिस्थिति में इस संयत के जो उत्कर्षक की अपेक्षा २० बीस परीपहों का सद्भाव बतलाया है वह कैसे संगत हो सकता है, क्यों

शंका—भगवाने "आयु अने मोहनीय वर्जित छ कर्मोना बंध करवावाणा सूक्ष्म संपराय संयत उत्कर्षनी अपेक्षा युगपत् बार परीपहंतुं वेदन करे छे." जेवुं छळुं छे तेो तेमां जे समय ते शय्यापरीपहंतुं वेदन करे छे. ते समय ते चर्यापरीपहंतुं वेदन करता नथी. अने जे समय चर्यापरीपहंतुं वेदन करे छे ते समय शय्यापरीपहंतुं वेदन नथी करता. आ प्रकारनी विविक्षाथी शीद प्रकारना परीपहोना सामान्य कथनमां उत्कर्षनी अपेक्षा बार परीपहंतुं वेदन करवुं अरोअर बंध जेसतुं छे. परंतु आयुवर्जित जे सात प्रकारना अथवा आठ प्रकारना कर्मोना बंधक संयत छे—जेनी चर्या साथे शय्या अने निषघानो विरोध होवाथी चर्याना सद्भावमां शय्या अने निषघानो संभव थर्छ शकतो नथी. जेवी परिस्थितिमां आ संयत के जे उत्कर्षनी अपेक्षा जे बीस परीपहोना सद्भाव बतावेद छे. ते कर्छ रीते संगत थर्छ शकै ?

सम्यक्त्व-मोहनीयरूपस्य बृहति भागे उपशान्ते, शेषे चानुपशान्ते एव स्यात् । नपुंसकवेदं चासौ दर्शनत्रयस्य शेषांशेन सहोपशमयितुं प्रवर्तते, ततश्च नपुंसकवेदोपशमावसरे अनिवृत्तिवादरसंपरायस्य सतो दर्शनमोहनीयस्य प्रदेशत उदयोऽस्ति, न तु दर्शनमोहनीयस्य सत्तामात्रम्, ततस्त्वन्निमित्तको दर्शनपरीपहस्तस्यास्ति, ततश्चाप्यावपि परीपहान् वेदयति ।

उत्तर—यह अनिवृत्तिवादरसंपराय वाला संयम दर्शनसप्तक के उपशम होने के ऊपर ही नपुंसकवेदादिक के उपशमकाल में होता है । इसके दर्शनमोहनीय का उदय प्रदेश की अपेक्षा से माना गया है । यह इस प्रकार - दर्शनसप्तक के अन्तर्गत जो मिथ्यात्व, मिश्र, सम्यक्त्वमोहनीय, ये तीन दर्शन हैं, इनका अधिक से अधिक जब उपशमन हो जाता है तथा कुछ भाग अनुपशान्त रहता है तब नपुंसकवेद को यह इसी अनुपशान्त दर्शनत्रय के भाग के साथ २ उपशांत करने के लिये प्रवृत्त होता है, इसलिये नपुंसकवेद के उपशमन के काल में इस अनिवृत्तिवादरसंपराय वाले संयत के दर्शनमोहनीय का प्रदेश की अपेक्षा से उदय माना गया है, अतः दर्शनमोहनीय का इसके केवल सत्तामात्र ही नहीं है, प्रदेशोदय भी है । इससे उसके दर्शनमोहनीय उदय जन्य परीपह है ऐसा मानना चाहिये इससे वहाँ यह आठ परीपहों का वेदन करता है ।

उत्तर—आ अनिवृत्ति भादर संपरायवाणा संयमदर्शनसप्तकनो उपशम थवाना उपर नपुंसकवेदादिकना उपशम काणमां थाय छे. जेना दर्शनमोहनीयनो उदय प्रदेशनी अपेक्षाथी मानवामां आवेल छे ते आ प्रकारे-दर्शन सप्तकना अंतर्गत जे मिथ्यात्व, मिश्र, सम्यक्त्व मोहनीय आ दर्शनत्रय छे. जेभनो अधिकथी अधिक भाग न्यारे उपशांत थई जय छे तथा थोडा भाग अनुपशांत रहे छे त्यारे नपुंसकवेदने आ जेअ अनुपशान्त दर्शनत्रयना भागनी साथे साथ उपशांत करवा भाटे प्रवृत्त थाय छे. आ भाटे नपुंसकवेदना उपशमना काणमां आ अनिवृत्ति भादर संपरायवाणा संयतना दर्शनमोहनीयना प्रदेशनी अपेक्षाथी उदय मानवामां आवेल छे. आथी दर्शनमोहनीयने जेमां केवण सत्ता मात्र नथी, प्रदेशोदय पणु छे. आथी जेना दर्शन मोहनीय उदयजन्य दर्शनपरीपह छे. जेभ मानवुं जेईजे. आथी त्यां ते आठ परिपहोतुं वेदन करे छे.

ननु अनिवृत्तिवादरसंपरायस्य मोहनीयसंभवानामप्यनामपि परीपहाणां कथं संभवः ? यतो दर्शनसप्तकोपशमे वादरकपायस्य दर्शनमोहनायोदयामावेन दर्शन-परीपहाभावात् सप्तानामेव संभवो नाप्यनाम, अथ दर्शनमोहनीयोदयामावेऽपि दर्शनमोहनीयसत्ताऽपेक्षया दर्शनपरीपहोऽपि स्यादित्युच्यते, तर्हि उपशमकक्षे सूक्ष्मसंपरायस्यापि मोहनीयसत्तासद्भावात् कथं तज्जनिताः सर्वेऽपि परीपहा न भवन्तीति न्यायस्य समानत्वात् ? ।

अत्रोच्यते—दर्शनसप्तकोपशमस्योपर्येव ननुसकवेदाद्युपशमकाले अनिवृत्ति-वादरसंपरायो भवति, स च दर्शनसप्तकान्तर्गतस्य दर्शनत्रयस्य मिथ्यात्व-मिश्र-रूप से वेदित करता है । इस कारण वह २० वीस परीपहों का वेदन करता है, यह कथन समीचीन ही है ।

शंका—जो संयत अनिवृत्ति वादर संपराय वाला है उसके मोहनीय से संभवित आठ परीपहों की संभावना कैसे हो सकती है ? क्यों कि दर्शनसप्तक के उपशम होने पर उस वादर कषाय वाले संयत के दर्शनमोहनीय के उदय के अभाव से दर्शनपरीपह तो होगा नहीं, इसलिये वहां आठ की जगह ७ सान परीपह ही संभवित होते हैं, फिर आठ की संभावना कैसे कही गई है ? यदि दर्शनमोहनीय के उदय के अभाव में भी दर्शनमोहनीय की सत्ता की अपेक्षा से दर्शन-परीपह भी है ऐसा कहा जाय तो उपशमक होने पर सूक्ष्मसंपराय वाले के भी मोहनीय की सत्ता के सद्भावसे उसके उदय से होनेवाले सर्व परीपह नहीं मानना चाहिये क्यों कि न्याय सर्वत्र समान होता है ।

करे छे आ कारणे ते वीस परीपहोऽनु वेदन करे छे आ कथन समीचीन न छे.

शंका—जे संयत अनिवृत्ति वादर संपरायवाणा छे तेना मोहनीयथी संभवित आठ परीपहोनी संभावना केवी रीते भनी शके ? केभके दर्शनसप्तकं उपशम थवाथी छे वादर कषायवाणा संयतना दर्शन मोहनीयना उदयना अभावथी दर्शनपरीपह तो थसे नडीं आ भाटे त्यां आठनी न्यथाये सात परीपह न संभवित हेभाय छे. छतां आठनी संभावना केम कडेवाछे छे ? कदाच दर्शन मोहनीयना उदयना अभावमां पषु दर्शन मोहनीयनी सत्तानी अपेक्षा दर्शनपरीपह पषु छे. जेसुं कडेवामां आवे तो उपशमक होवा छतां सूक्ष्म संपरायवाणाने पषु मोहनीयनी सत्ताना सद्भावथी तेना उदयथी थनार सर्व परीपह न मानवा जेछंजे. कारणे के, न्याय सर्वत्र समान होय छे.

तत्र प्रथमं स्थानम्—उदितकर्मा । उदितं प्रबलं वा कर्म=मिथ्यात्वमोहनीयादि यस्य स तथा, खलु अयं पुरुष उन्मत्तकभूतो मदिरादिना विप्लुतचित्त इवास्ति, तेन कारणेन 'मामयमाक्रोशति वा, अपहसति वा, निच्छोटयति=हस्तादीं गृहीत्वा बलात् क्षिपति वा, दुर्वचनैर्निर्भत्सयति वा, रज्ज्वादिना बध्नाति वा, कारागार-प्रवेशनादिना रुणद्धि वा, छविच्छेदं—छवेः शरीरावयवस्य हस्तादेश्छेदं करोति वा, मारणस्थानं नयति वा, मारयति वा, अपद्रावयति वा, उपद्रवं करोति वा, बध्ने,

अधिक से अधिक समय तक रखना चाहिये ताकि उनके सहन करने की क्षमता आत्मा में आती रहे । पांच स्थानों में सर्वप्रथम स्थान उदितकर्मा है—मिथ्यात्व मोहनीय आदि कर्म जिसका प्रबलरूप से उदय में आरहा है ऐसा जीव उदितकर्मा है । इस प्रथमस्थान को लेकर जब परीपह एवं उपसर्गों का निपात संयत के ऊपर हो तब उसे यह विचार करना चाहिये कि यह पुरुष उदितकर्मा है—इसका मिथ्यात्वमोहनीयादिक कर्म प्रबलरूप से उदय में आरहा है, इसलिये यह उन्मत्त जैसा हो रहा है—मदिरा के पान से जिस प्रकार मनुष्य होश हवाश खो बैठता है उसी तरह का यह बना हुआ है, इसी कारण यह मेरे प्रति रुष्ट हो रहा है, मेरी हँसी मजाक करता है, हाथ पकड़ कर मुझे खेंचना है, दुर्वचनों से मेरा तिरस्कार करता है, रस्सी आदि से मुझे बांधता है, कारागार में मुझे बंध करता है, मेरे शरीर के अवयव को छेदता है, बधस्थान पर मुझे ले जाता है, मारता है, मुझे यहाँ

अधिक समय सुधी रहेंगे नैद्ये. जेथी तेने सहन करवानी समता आदिमां आवती रहे. पांच स्थानोमां सर्वप्रथम स्थानं उदित कर्मां छे. मिथ्यात्व मोहनीय आदि कर्म जेतुं प्रमण इपथी उदयमां आवी रहैल छे जेवो उव उदित कर्मां छे. आ प्रथम स्थानने लघने न्यारे परीपह अने उपसर्गोना निपात साधु संयतनी उपर डोय त्यारे तेले जे विचार करवो जेई जेई आ पुरष उदित कर्मां छे. तेनुं मिथ्यात्व मोहनीयादिक कर्म प्रमण इपथी उदयमां आवी रहैल छे आथी जे ते उन्मत्त जेवो अनी रहैल छे. मदिराना पानथी जेवी रीते मनुष्य शुद्धि पुद्धि जोई जेसे छे जेवी रीतनुं आ अनेल छे. आ कारणथी ते मारा तरङ्ग इष्ट अनी रहैल छे, मारी डांसी मजाक करे छे, हाथ पकडीने भने जेजे छे. दुर्वचनोथी मारा तिरस्कार करे छे, डारडा आदिथी भने बांधे छे, कारागारमां भने बंध करे छे, मारा शरीरना अवयवोने छेदे छे, बधस्थान उपर भने लघ जेथे छे, मारे छे, भने त्याथी लगाडे छे, मारा उपर उपद्रव

एते च परीपहा द्विविधाः—द्रव्यपरीपहा भावपरीपहाश्च । तत्र द्रव्यपरीपहा नाम ये इहलोक निमित्तका बधबन्धनादयः परवशादधिसम्बन्धे ते । भावपरीपहा के संसारोच्छेदनार्थमनाकुलेन मनसाऽधिसम्बन्धे । अत्र शास्त्रे भावपरीपहाणामेवाधिकारः । अथ छद्मस्थपरीपहाणां भेदाः—

ज्ञानावरणीयादिघातिकर्मचतुष्टयं छद्म, तत्र तिष्ठतीति छद्मस्थः=कृपायसहितः, स पञ्चमिः परीपहादिसहनालम्बनरूपः स्थानैरुदितान् परीपहोपसर्गान् सम्यक् तत्कृपायोदयनिरोधाऽऽदिना सहेत=विचलितो न भवेत्, क्षान्त्या धमेत, अदीनः तथा तिविक्षेत, अध्यासीत्=परीपहादायेव आधिक्येनासीत्, न चलेत् ।

ये परीपह दो प्रकार के हैं—एक द्रव्यपरीपह दूसरा भावपरीपह । इस लोकसंबंधी जो बध बंधन आदिक परवशता से सहन किये जाते हैं वे द्रव्यपरीपह हैं । संसार बंधन को नष्ट करने के लिये भव्य संयमीजनों द्वारा जो बिना किसी आकुलता के सहन किये जाते हैं वे भावपरीपह हैं । इस शास्त्र में इन्हीं भावपरीपहों को सहन करने का उपदेश है, और उसी निमित्त यह अधिकार है ।

छद्मस्थपरीपहों के भेद—ज्ञानावरणीय आदि चार घातिकात्मक का नाम छद्म है । इस छद्म में जो रहता है उसका नाम छद्मस्थ है । ऐसा संयमी जीव कृपायसहित होता है । उसे पांच स्थानों से उदित परीपहों एवं उपसर्गों को कृपाय के उदय का निरोध आदि करते हुए सहन करना चाहिये । शान्तिभाव से अविचलित होकर उसे उस समय घबराना नहीं चाहिये । परीपह आदि के स्थान में ही अपने आपको

आ परीपह के प्रकारना छे—एक द्रव्यपरीपह धीने भावपरीपह, आ लोक संबन्धी के बध बंधन आदिक परवशताथी सहन करवाभां आवे छे ते द्रव्यपरीपह छे, संसार बंधनने नष्ट करवा भाटे लव्य संयमी जनेनो द्वारा के कौर्ध प्रकारनी व्याकुलता वगर सहन करवाभां आवे छे ते भावपरीपह छे, आ शास्त्रभां ते भावपरीपहोने सहन करवाने उपदेश छे अने ये निमित्ते आ अधिकार छे ।

छद्मस्थपरीपहोना भेद—

ज्ञानावरणीय आदि चार घातिका कर्मनुं नाम छद्म छे, आ छद्मभां के रहे छे तेनुं नाम छद्मस्थ छे, जेवा संयमीलव कृपाय सहीत छे, जेने पांच स्थानोथी उदित परीपहो अने उपसर्गोने कृपायना उदयने निरोध आदि समलने सहन करवा जेधे जे, शान्तिभावथी अविचलीत जनीने तेजे जे समये तेनाथी, गलराबु न जेधे जे, परीपह आदिना स्थानभां जे पोते पोताने अधिकथी ।

तथा-एष बालः पापभयरहितत्वात् करोतु नाम आक्रोशनादि, मम पुनरसहमानस्य=अक्षममाणस्य अतितिक्षमाणस्य=अनध्यासमानस्य, सर्वथा असात्वादि पापकर्म संपद्यते । इति चतुर्थं स्थानम् ।

तथा-एष बालः पापभयरहितत्वात् करोतु नाम आक्रोशनादिकं, मम पुनःखलु सम्यक् सहमानस्य यावत् अध्यासमानस्य किं संपद्यते, अयं तावत् पापं वध्नाति मया च एकान्तेन निर्जरा क्रियते । इति पञ्चमं स्थानम् ।

तृतीय स्थान में ऐसा विचार करें कि यह तो बाल है, पाप के भय से रहित होने के कारण भले ही यह आक्रोश आदि करता रहे, परन्तु मेरा कर्तव्य तो इनको सहन करने का ही है । यदि मैं इनको सहन नहीं करता हूँ-सहन में साहस को छोड़ देता हूँ, इनसे यदि घबरा जाता हूँ तो मुझे असाता आदि पापकर्म का नियमतः बंध होगा । इस प्रकार यह चतुर्थ स्थान है ।

पंचमस्थान में संयमी को ऐसा विचार करना चाहिये, कि यह परीपह एवं उपसर्गकारी व्यक्ति पाप के भय से रहित होने के कारण बाल है, इसकी इच्छा है यह आक्रोशादिक करे । इससे मेरा त्रिगडता क्या है? मुझे तो उल्टा फायदा ही है, क्योंकि उपसर्ग और परीपह को समतापूर्वक सहन करनेवाले के एकान्ततः कर्मों की निर्जरा होती है, परन्तु यह उपसर्ग परीपहकारी पुरुष पापका बंध करता है । यह पंचम स्थान है ।

तृतीय स्थानमां-अथैव विचार करे के, आ तो भाण छे, पापेनी लयथी रहित ध्याना कारणे लवे अे आक्रोश आदि करतो रहे परंतु माइ कर्तव्य तो अने सहन करवातुं छे. जे हुं तेने सहन करतो नथी. तो संक्षिप्तताना शुभ्रथी विमुक्त थाउं छुं. जे तेनाथी हुं गभराधं नउछुं, तो अने असाता आदि पापे कर्मोनी नियमतः बंध थये. आ प्रकारे आ योथुं स्थानः पणु छे.

पंचम स्थानमां-संयमीअे अथैव विचार करवे जेधअे के, आ परीपह अने उपसर्ग करनार व्यक्ति पापना लयथी रहित ध्याना कारणे भाण छे. तेनी इच्छा छे के, आ आक्रोश आदि करे पणु तेथी माइं भगडे छे शुं? अने तो अथी उलटो शयदोअ छे. कारणेके उपसर्ग अने परीपहने समता पूर्वक सहन करनारने अेकान्ततः कर्मोनी निर्जरा थाय छे. परंतु द्यानी वात अे छे के उपसर्ग परीपहकारी पुइप तो केवण पापनोअ बंध करे छे. आ पांचमं स्थान छे.

પાત્ર, કમ્બલ, પાદમોચ્છન, સદોરકમુખવલ્લિકાં રજોહરણં વા આચ્છિનત્તિ=
 ચલાદુહાલપતિ વા, વિચ્છિનત્તિ=વિચ્છિન્નં કરોતિ દૂરે વ્યવસ્થાપયતિ વા, અથવા
 વહ્નમીપચ્છિનત્તિ-આચ્છિનત્તિ, વિશેષેણ છિનત્તિ-વિચ્છિનત્તિ । મિનત્તિ=પાત્ર
 સ્ફોટયતિ વા, અપહરતિ=ચોરયતિ વા । इदं चाक्रोशादिकमत्र आक्रोशवधाभिधान-
 परीपहद्वयरूपं-मन्तव्यम् । उपसर्गविवक्षायां तु मानुष्यकमाद्वेषिकाद्युपसर्गरूपमिति
 प्रथमं स्थानम् ।

તથા—અર્થ પરીપહોપસર્ગકારી, મિથ્યાત્વાદિકર્મવશવર્તી પુરુષો યજ્ઞાઽઽવિષ્ટઃ
 =દેવાધિષ્ઠિતઃ, તેન કારણેન મામાક્રોશતીત્યાદિ । इति द्वितीयं स्थानम् ।

તથા—મમ તદ્ભવવેદનીયં કર્મ ઉદિતમસ્તિ, તેનૈવ મામાક્રોશતીત્યાદિ । तेनैव
 मानुष्यकेण भवेन वेधते=अनुभूयते यत्तत्, તદ્ભવવેદનીયમ્ । इति तृतीयं स्थानम् ।

સે ભગાતા હૈ, મેરે ऊपर उपद्रव करता है, वस्त्र, पात्र, कम्बल, पाद-
 मोच्छन, दोरासहित मुखवल्लिका रजोहरण आदि मेरे छुड़ाता है,
 और छुड़ाकर उन्हें दूर फेंक देता है, अथवा उन्हें झटकता है उन्हें फोड़ता
 है, चुराता है । ये आक्रोश आदि यहां पर आक्रोश एवं वधपरीपहरूप
 मानना चाहिये । जिस समय उपसर्ग की विवक्षा में ये आक्रोशादिक
 हों उस समय इनको मनुष्यकृत अथवा किसी द्वेषीकृत उपसर्ग में
 परिगणित करना चाहिये । इस प्रकार यह प्रथमस्थान है ।

द्वितीय स्थान में यह विचार करना चाहिये कि मिथ्यात्वादिकर्म-
 वशवर्ती यह परीपह एवं उपसर्गकारी पुरुष किसी देव से अधिष्ठित
 हो रहा है । इसी कारण यह मुझे आक्रोश आदि से पीड़ित कर
 रहा है । यह द्वितीय स्थान है ।

કરે છે, વસ્ત્ર, પાત્ર, કમ્બલ, પાદમોચ્છન, દોરા સહિત મુખવલ્લિકા, રજોહરણ
 આદિ મારી પાસેથી ખસેડે છે, ખસેડીને તેને દૂર ફેંકી દે છે; અથવા તેને ઝાટકે
 છે, તેને ફોડે છે, ચોરાવે છે, એ આક્રોશ આદિ સર્વને આ રથેણ આક્રોશ અને વધ
 પરીપહરૂપ માનવા જોઈએ. એ સમયે ઉપસર્ગની વિવક્ષામાં એ આક્રોશ આદિક
 થાય તે સમયે એને મનુષ્યકૃત અથવા કોઈ દ્વેષીકૃત ઉપસર્ગમાં પરિગણીત
 કરવું જોઈએ. એ પ્રકારે આ પ્રથમ સ્થાન છે.

બીજા સ્થાનમાં—એ વિચાર કરવો જોઈએ કે, મિથ્યાત્વ આદિ કર્મના વશવર્તી
 આ પરીપહ અને ઉપસર્ગકારી પુરુષ કોઈ દેવથી અધિષ્ઠિત થઈ રહેલ છે. આ
 કારણથી મને આક્રોશ વગેરેથી પીડા આપી રહેલ છે. આ બીજું સ્થાન છે.

તથા-एष बालः पापभयरहितत्वात् करोतु नाम आक्रोशनादि, मम पुनरसहमानस्य=अक्षममाणस्य अतितिक्षमाणस्य=अनध्यासमानस्य, सर्वथा असातादि पापकर्म संपद्यते । इति चतुर्थं स्थानम् ।

तथा-एष बालः पापभयरहितत्वात् करोतु नाम आक्रोशनादिकं, मम पुनः खलु सम्यक् सहमानस्य यावत् अध्यासमानस्य किं संपद्यते, अयं तावत् पापं वध्नाति मया च एकान्तेन निर्जरा क्रियते । इति पञ्चमं स्थानम् ।

તૃતિય સ્થાન મેં એસા વિચાર કરેં કિં યહ તો બાલ હૈ, પાપ કે ભય સે રહિત હોને કે કારણ મહે હી યહ આક્રોશ આદિ કરતા રહે, પરંતુ મેરા કર્તવ્ય તો ઇનકો સહન કરને કા હી હૈ । યદિ મેં ઇનકો સહન નહીં કરતા હું-સહન મેં સાહસ કો છોડૂ દેતા હું, ઇનસે યદિ ઘવરા જાતા હું તો મુક્તે અસાતા આદિ પાપકર્મ કા નિયમતઃ વંધ હોગા । ઇસ પ્રકાર યહ ચતુર્થ સ્થાન હૈ ।

પંચમસ્થાન મેં સંઘમી કો એસા વિચાર કરના ચાહિયે, કિં યહ પરીપહ એવં ઉપસર્ગકારી વ્યક્તિ પાપ કે ભય સે રહિત હોને કે કારણ બાલ હૈ, ઇસકી ઇચ્છા હૈ યહ આક્રોશાદિક કરે । ઇસસે મેરા ત્રિગડતા કયા હૈ? મુક્તે તો ઉલ્ટા ફાયદા હી હૈ, કયોં કિં ઉપસર્ગ ઓર પરીપહ કો સમતાપૂર્વક સહન કરનેવાલે કે એકાન્તતઃ કર્મોં કી નિર્જરા હોતી હૈ, પરંતુ યહ ઉપસર્ગ પરીપહકારી પુરુષ પાપ કા વંધ કરતા હૈ । યહ પંચમ સ્થાન હૈ ।

ત્રીતી સ્થાનમાં-એવો વિચાર કરે કે, આ તો બાળ છે, પાપના ભયથી રહિત થવાના કારણે ભલે એ આક્રોશ આદિ કરતો રહે પરંતુ મારું કર્તવ્ય તો એને સહન કરવાનું જ છે. જો હું તેને સહન કરતો નથી. તો સંહિષ્ણુતાનો ગુણથી વિમુખ થાઉં છું. જો તેનાથી હું ગભરાઈ બહાઈ, તો મને અસાતા આદિ પાપ કર્મનો નિયમતઃ બંધ થશે. આ પ્રકારે આ ચોથું સ્થાન પણ છે.

પાંચમ સ્થાનમાં-સંઘમીએ એવો વિચાર કરવો જોઈએ કે, આ પરીપહ એને ઉપસર્ગ કરનાર વ્યક્તિ પાપના ભયથી રહિત હોવાના કારણે બાળ છે. તેની ઇચ્છા છે કે, આ આક્રોશ આદિ કરે પણ તેથી મારું બગડે છે શું? મને તો એથી ઉલટો ફાયદો જ છે. કારણકે ઉપસર્ગ અને પરીપહને સમતા પૂર્વક સહન કરનારને એકાન્તતઃ કર્મોની નિર્જરા થાય છે. પરંતુ દયાની વાત એ છે કે ઉપસર્ગ પરીપહકારી પુરુષ તો કેવળ પાપનો જ બંધ કરે છે. આ પાંચમું સ્થાન છે.

इत्येतैः पञ्चभिः स्थानैश्चमस्यसंयतः उदितान् परीपहोपसर्गान् सम्यक् सहेत, समेत, तितिक्षेत, अध्यासीत ।

अथ केवलिपरीपहाणां भेदाः—

पञ्चभिः स्थानैः केवली उदितान् परीपहोपसर्गान् सम्यक् सहेत यावत् अध्यासीत । तद् यथा—सिप्तचित्तः=पुत्रशोकादिना नष्टचित्तः खलु अयं पुरुषः, तेन कारणेन—एष पुरुषो मामाक्रोशति वा तथैव यावत् अपहरति वा । इति प्रथमं स्थानम् ।

तथा—अयं पुरुषो हर्षाधिक्याद् दृप्तचित्तोऽस्ति, पुत्रजन्मादि जनितहर्षेण गर्वितोऽस्ति, तेन कारणेन एष पुरुषो मामाक्रोशति यावत् अपहरति वा । इति द्वितीयं स्थानम् ।

इस प्रकार इन पूर्वोक्त पांच स्थानों से उदित परीपह एवं उपसर्गों को सम परिणाम से युक्त हो कर साधु को सहन करना चाहिये । उन से घबराना नहीं चाहिये ।

केवलीपरीपहों के भेद—

केवली पांच स्थानों से उदित परिपहों को सहन करते हैं, यावत् अध्यासित करते हैं—अर्थात् सम्यक् रूपसे सहन करते हैं । प्रथम स्थानमें वे यह विचार करते हैं कि—यह पुरुष पुत्रशोक आदि से विक्षिप्तचित्त है—इसका चित्त ठिकाने पर नहीं है इस कारण यह मेरे प्रति आक्रोश आदि कर रहा है ।

द्वितीयस्थानमें वे यह विचार करते हैं कि यह पुरुष हर्षातिरेकसे दृप्तचित्त है—पुत्रोत्पत्ति आदि जनित हर्ष से गर्वित हो रहा है, इस कारण यह मेरे प्रति आक्रोश आदि चेष्टाएँ कर रहा है ।

आ प्रकारनां च पूर्वोक्त पांच स्थानाथी उदित परीपहं अने उपसर्गोने समं परिष्ठाभथी युक्त, अग्नीने साधुजे सहन करवां जेठं अथः अनाथी गलेशु नं जेठं जे.

केवली पांच स्थानाथी उदित परीपहोने सहन करे यावत् अध्यासित करे. प्रथम स्थानमां ते विचार करे के आ. पुरुष, पुत्रशोक आदिथी चित्तभ्रम स्थितमां जे. जेठुं चित्त ठेकाळे नथी ते कारणे ते भास उपर आक्रोश आदि करी रहेल छे. भीम स्थानमां ते जेवा विचार करे के, आ पुरुष हर्षना आवेशमां कुलाठ गयेल छे, पुत्रोत्पत्ति वगेरेना कारणथी ते हर्षथी छकी ० ल छे. आ कारणे जे भास तरक्ष आक्रोश वगेरे चेष्टाओ करे छे.

તથા—યક્ષાવિષ્ટઃ खलु अयं पुरुषः, तेन कारणेन एष पुरुषो मामाक्रोशति यावत्-अपहरति वा । इति तृतीयं स्थानम् ।

તથા—મમ પુનઃ खलु तद्भववेदनीयं कर्म उदितम् । तेन कारणेन एष पुरुषो मामाक्रोशति यावत्-अपहरति वा । इति चतुर्थं स्थानम् ।

તથા—માં પુનઃ खलु सम्यक् सहमानं क्षममाणं तितिक्षमाणम् अध्यासमानं दृष्ट्वा बहुवोऽन्ये छद्मस्थाः श्रमणा निर्ग्रन्था उदितान् परीपहोपसर्गान् एवं सम्यक् सहिष्यन्ते यावत् अध्यासिष्यन्ते । इति पञ्चमं स्थानम् ॥

इत्येतैः पञ्चभिः स्थानैः केवली उदितान् परीपहोपसर्गान् सम्यक् सहेत् यावत् अध्यासीत् । एतत् स्थानाङ्गसूत्रे स्पष्टम् । (स्था ५ ठा. १ उ०) ॥ ४५ ॥

તૃતીયસ્થાન મેં વે યહ વિચાર કરતે હૈં કિ યહ પરીપહ એવં ઉપ-સર્ગાકારી વ્યક્તિ યક્ષાવિષ્ટ હો રહા હૈં ઇસ કારણ મેરે પ્રતિ આક્રોશ આદિ કર રહા હૈં ।

ચતુર્થસ્થાન મેં વે એસા વિચાર કરતે હૈં કિ—મેરે ઇસી ભવ કા વેદનીય કર્મ ઉદિત હો રહા હૈં ઇસ કારણ યહ પુરુષ મેરે પ્રતિ આક્રોશા-દિક કર રહા હૈં ।

પંચમસ્થાન મેં એસા વિચાર કરતે હૈં—મુજે ઇન પરીપહ એવં ઉપ-સર્ગોં કો અચ્છી તરહ સહન કરતે હુણ દેખકર અન્ય અનેક છદ્મસ્થ શ્રમણ નિર્ગ્રન્થ ઉદિતપરીપહોં એવં ઉપસર્ગોંકો સહન કરેંગે, ડનકે સહન કરને મેં ચલાયમાન નહીં હોવેંગે—સહન કરતે સમય ધૈર્ય ધારણ કરેંગે ।

ઇસ પ્રકાર ઇન પાંચ સ્થાનોં સે પરીપહોં એવં ઉપસર્ગોં કો સહન આદિ કરતે હૈં । યહ સ્થાનાંગસૂત્રમેં સ્પષ્ટ લિખા હુઆ હૈં । (સ્થા.૫ વ.૧) ॥૪૬॥

ત્રીજા સ્થાનમાં એવો વિચાર કરે કે, આ પરીપહ અને ઉપસર્ગ કરનાર વ્યક્તિ યક્ષાવિષ્ટ થઈ રહેલ છે. આ કારણે તે મારા તરફ આક્રોશ વગેરે કરી રહેલ છે.

ચોથા સ્થાનમાં એવો વિચાર કરે છે કે, મારાં આ ભવનાં વેદનીય કર્મ ઉદયમાં આવેલ છે, અને તે કારણને લઈ આ પુરૂષ મારા તરફ આક્રોશ કરી રહેલ છે.

પાંચમા સ્થાનમાં એવો વિચાર કરે છે કે, મને આવા પરીપહ અને ઉપસર્ગોંને સારી રીતે સહન કરતાં બોધને અન્ય અનેક છદ્મસ્થ નિર્ગ્રન્થ શ્રમણ ઉદિત પરીપહો અને ઉપસર્ગોંને સહન કરશે. તેના સહન કરવામાં ચલાયમાન નહીં થાય અને સહન કરતી વખતે ધૈર્ય ધારણ કરતા રહેશે.

આ પ્રકારે એ પાંચે સ્થાનોથી પરીપહો અને ઉપસર્ગોંને સહન કરે. આ સ્થાનાંગસૂત્રમાં સ્પષ્ટ લખેલ છે. (સ્થા. ૫ ઉ૦૧) ॥૪૬॥

અધ્યયનાર્થમુપસંહરન્નાહ—

મૂલમ—એએ પરીસહા સંભવે, કાસવેણં પવેદ્યા ।

જે ભિર્વસ્તૂ ણે વિહમ્મેજ્ઞાં, પુંટો કેળાં કણ્હુદ્ ॥૪૬॥ સિલ્લેમિ ॥

॥ વીયં પરિસહજ્ઞયણં સમત્તં ॥

છાયા—એતે પરીપહાઃ સર્વે, કાશ્યપેન પ્રવેદિતાઃ ।

યાન્ ભિક્ષુર્ન વિહન્યેત, સ્પૃષ્ટઃ કેનાપિ કસ્મિશ્ચિત્ ॥૪૬॥ ઇતિ બ્રવીમિ ॥

ટીકા—‘ એએ ’ ઇત્યાદિ ।

એતે સર્વે પરીપહાઃ કાશ્યપેન=કાશ્યપગોત્રોત્પન્નેન ભગવતા શ્રીવર્ધમાનસ્વામિના તીર્થકરેણ પ્રવેદિતાઃ—પ્રતિવોધિતાઃ । યાન્=પરીપહાન્ જ્ઞાત્વા ભિક્ષુઃ કેનાપિ પરીપહેણ કસ્મિશ્ચિત્ સ્થાને સ્પૃષ્ટઃ સન્ ‘ ન વિહન્યેત=ન પરાજિતો ભવેત્, સંયમાત્

અવ અધ્યયન કે અર્થ કા ઉપસંહાર કરતે છુએ સૂત્રકાર કહતે હૈ—
‘ એએ ’ ઇત્યાદિ ।

અન્વયાર્થ—(એએ પરીસહા—એતે પરીપહાઃ) યે ૨૨ યાઈસ પરીપહ (કાસવેણ—કાશ્યપેન) કાશ્યપગોત્રોત્પન્ન તીર્થકર ભગવાન્ શ્રીમહાવીર સ્વામીને (પવેદ્યા—પ્રવેદિતાઃ) કહે હૈ । (જે—યત) જિનકા જાનકર (ભિક્ષુ—ભિક્ષુઃ) ભિક્ષુ (કેળા—કેનાપિ) કિસી ખી પરીપહ સે (કણ્હુદ્—કુત્રચિત) કિસી સ્થાન મેં આક્રાન્ત હોને પર (ણ વિહમ્મેજ્ઞા—ન વિહન્યેત) પરાજિત નહીં

હવે અધ્યયનના અર્થનો ઉપસંહાર કરતાં સૂત્રકાર કહે છે.—

‘ એએ ’ ઇત્યાદિ.

અન્વયાર્થ—એએ પરીસહા—એતે પરીપહાઃ આ બાવીસ પરીપહ કાસવેણ—કાશ્યપેન કાશ્યપગોત્રોત્પન્ન તીર્થકર ભગવાન શ્રી મહાવીર સ્વામીએ પવેદ્યા—પ્રવેદિતાઃ કહેલ છે. જે—યત્ જેને બાણીને ભિક્ષુ—ભિક્ષુઃ કોઈ પણ ભિક્ષુ કેળા—કેનાપિ પરીપહથી કણ્હુદ્—કુત્રચિત્ કોઈ સ્થાનમાં આક્રાન્ત થવાથી ણ વિહમ્મેજ્ઞા—ન વિહન્યેત સંયમથી ભિક્ષુ પ્રતિત ન થાય. “ ઇતિ બ્રવીમિ ” આ પ્રકારે હે બંધુ ! ભગવાને જેવું કહ્યું છે તેવું જ મેં કહ્યું છે. મારીપોતાની યુદ્ધિની કલ્પનાથી—કોઈ પણ નથી.

पतितो न भवेदित्यर्थः । इति ब्रवीमि=भगवता यथा प्रतिबोधितं, तथा कथयामि
न तु स्वयुद्धया प्रकल्प्येति भावः ॥ ४६ ॥

इति श्रीविश्वविख्यात-जगद्गुरु-प्रसिद्धाचार्य-पञ्चदशभाषा-
कलितललितकलापालापक-प्रविशुद्धगद्यपद्यनैकग्रन्थनिर्मायक-
वादिमानमर्दक-श्रीशाहूछत्रपति-कोल्हापुरराजमदत्त-
“ जैनशास्त्राचार्य ”-पदभूषित-कोल्हापुरराजगुरु-
वालव्रतचारि-जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-पूज्य-
श्रीघासीलालव्रतिविरचितायां श्रीमदुत्तराध्ययन-
सूत्रस्य प्रियदर्शिन्याख्यायां व्याख्यायां

परीपहनामकं द्वितीयमध्ययनं
सम्पूर्णम् ॥ २ ॥

—(०)—

होवे-संयम से पतित नहीं होवे। “ इति ब्रवीमि ” इस प्रकार हे जम्बू !
भगवान् ने जैसा कहा है मैंने वैसा ही कहा है। अपनी बुद्धि से कल्पित
कर कुछ नहीं कहा है।

भावार्थ—अध्ययन की समाप्ति करते हुए सूत्रकार कहते हैं कि जो
साधु इन परीपहों से पराजित नहीं होता है वह संयम की टीका २
आराधना करता है। ये बाईस परीपह मैंने नहीं कहे हैं, भगवान् महा-
धीरने कहे हैं। अतः इनका स्वरूप जानकर इनके सहन करने में प्रत्येक
संयत को सावधान रहना चाहिये ॥

॥ यह द्वितीय परीपह अध्ययन समाप्त हुआ ॥२॥



भावार्थ—अध्ययन की समाप्ति करतां सूत्रकार कहे छे के, जे साधु
आ परीपहोधी पराजित नथी यतां, ते संयमनी ठीक ठीक आराधना करे छे.
आ आनीस परीपह में कथा नथी भगवान् महाधीरे कथा छे आथी जेनुं
स्वर्ष लक्ष्मीने तेने सहन करवाभां प्रत्येक संयते सावधान रहेवुं जेछेअ.

॥ आ आनीस परीपह नाभनुं अध्ययन समाप्त थयुं ॥२॥



અધ્યયનાર્થમુપસંહરન્નાહ—

મૂલમ—એણે પરીસહા સંઘ્વે, કાસવેણં પવેઙ્ઘ્યા ।

જે ભિવ્સૂ ણે વિહમ્મેજ્ઞાં, પુંટોકેળ્હ કળ્હુઙ્ઘ ॥૪૬॥ સિલોમિ ॥

॥ વીયં પરિસહજ્ઞયણં સમત્તં ॥

છાયા—એતે પરીપહાઃ સર્વે, કાશ્યપેન પ્રવેદિતાઃ ।

યાન્ મિશ્નુર્ન વિહન્યેત, સ્પૃષ્ટઃ કેનાપિ કસ્મિશ્ચિત્ ॥૪૬॥ ઇતિ બ્રવીમિ ॥

ટીકા—‘ એણે ’ ઇત્યાદિ ।

એતે સર્વે પરીપહાઃ કાશ્યપેન=કાશ્યપગોત્રોત્પન્નેન ભગવતા શ્રીવર્ધમાનસ્વામિના તીર્થકરેણ પ્રવેદિતાઃ—પ્રતિવોધિતાઃ । યાન્=પરીપહાન્ જ્ઞાત્વા મિશ્નુઃ કેનાપિ પરીપહેણ કસ્મિશ્ચિત્ સ્થાને સ્પૃષ્ટઃ સન્ ‘ ન વિહન્યેત=ન પરાજિતો ભવેત્, સંયમાત્

અવ અધ્યયનના અર્થના ઉપસંહાર કરતે છુણે સૂત્રકાર કહેતે હૈ—
‘ એણે ’ ઇત્યાદિ ।

અન્વયાર્થ—(એણે પરીસહા—એતે પરીપહાઃ) યે ૨૨ ચાર્હસ પરીપહ (કાસ-
વેણ—કાશ્યપેન) કાશ્યપગોત્રોત્પન્ન તીર્થકર ભગવાન્ શ્રીમહાવીર સ્વામીને
(પવેઙ્ઘ્યા—પ્રવેદિતાઃ) કહે હૈ । (જે—યત) જિનકા જ્ઞાનકર (મિશ્નુ—મિશ્નુઃ)
મિશ્નુ (કેળ્હ—કેનાપિ) કિસી મી પરીપહ સે (કળ્હુઙ્ઘ—કુત્રચિત) કિસી
સ્થાન મેં આક્રાન્ત હોને પર (ણ વિહમ્મેજ્ઞા—ન વિહન્યેત) પરાજિત નહીં

હવે અધ્યયનના અર્થના ઉપસંહાર કરતાં સૂત્રકાર કહે છે.—

‘ એણે ’ ઇત્યાદિ.

અન્વયાર્થ—એણે પરીસહા—એતે પરીપહાઃ આ બાવીસ પરીપહ કાસવેણ—કાશ્યપેન
કાશ્યપગોત્રોત્પન્ન તીર્થકર ભગવાન્ શ્રી મહાવીર સ્વામીએ પવેઙ્ઘ્યા—પ્રવેદિતાઃ
કહેલ છે. જે—યત જેને બાણીને મિશ્નુ—મિશ્નુઃ કોઈ પણ ભિક્ષુ કેળ્હ—કેનાપિ પરીપહથી
કળ્હુઙ્ઘ—કુત્રચિત્ કોઈ સ્થાનમાં આક્રાન્ત થવાથી ણ વિહમ્મેજ્ઞા—ન વિહન્યેત સંયમથી
ભિક્ષુ પતિત ન થાય. “ ઇતિ બ્રવીમિ ” આ પ્રકારે હે. જં. છુ. ! ભગવાને જેવું કહ્યું
છે તેવું જ મેં કહ્યું છે. મારીપોતાની પુષ્ટિની કલ્પનાથી કોઈ પણ કહેલ નથી.

मूलम्—चत्वारि परमंगाणि, दुल्लहाणीह जंतुणो ।

माणुसत्तं सुई सद्धा, संजंमम्मि यं वीरियं ॥१॥

छाया—चत्वारि परमाङ्गानि, दुर्लभानि इह जन्तोः ।

मानुपत्वं श्रुतिः श्रद्धा, संयमे च वीर्यम् ॥ १ ॥

टीका—‘चत्वारि’ इत्यादि ।

इह=संसारे चत्वारि परमाङ्गानि-परमाणु=उत्कृष्टानि, अङ्गानि=साधनानि-मुक्तिप्राप्तिकारणानि, जन्तोः=प्राणिनः, दुर्लभानि=दुःखेन लभ्यानि, नरकनिगोदाद्यनन्तजन्ममरणानन्तरप्राप्यत्वात् । तानि धर्मप्राप्तेः प्रधानकारणानि चत्वारि । कानि ? इत्यत आह—‘माणुसत्तं’ इत्यादि । मानुपत्वं=मनुष्यजन्म, श्रुतिः=धर्मस्य श्रवणम्, श्रद्धा=धर्मं रुचिः, च=पुनः संयमे आस्रवविरमणरूपे विरतिलक्षणो सप्तदशविधे वीर्यं विशेषेण ईरयति प्रवर्तयति आत्मानं तासु तासु क्रियासु इति वीर्यं=सामर्थ्यम् । एतानि चत्वारि जीवस्य दुर्लभानि सन्तीति ।

अन्वयार्थ—(इह) इस संसार में (चत्वारि परमंगाणि-चत्वारि परमाङ्गानि) मुक्तिप्रापक ये चार अंग (जंतुणो-जन्तोः) प्राणि को (दुल्लहाणि-दुर्लभानि) महादुर्लभ हैं-नरक निगोदादिक में अनन्त जन्म कर लेने के बाद जीवों को प्राप्त होते हैं । धर्मप्राप्ति के प्रधान कारण चार अंग ये हैं-(माणुसत्तं-मानुपत्वम्) १ मनुष्यजन्म, (सुई-श्रुतिः) २ धर्म का श्रवण, (सद्धा-श्रद्धा) ३ धर्म में श्रद्धा रुचि (य-च) और (संजंमम्मि य वीरियं-संयमे वीर्यम्) ४ आस्रव का विरमणरूप जो १७ सब्रह प्रकार का संयम है उसमें विशेषरूप से शक्ति के अनुरूप प्रवृत्ति । ये चार बातें जीवके लिये प्राप्त होना महादुर्लभ हैं ।

अन्वयार्थ—इह आ संसारमां चत्वारि परमंगाणि-चत्वारि परमाङ्गानि मुक्ति आपनार ये चार अंग जंतुणो-जन्तोः प्राणीने दुल्लहाणि-दुर्लभानि भडा दुर्लभ छे. नरक निगोदादिकमां अनन्त जन्म करी लीधा पछी एवोने प्राप्त थाय छे. धर्म प्राप्तितुं प्रधान कारण आ चार अंग छे माणुसत्तं-मानुष्यत्वम् १ मनुष्य जन्म, सुई-श्रुतिः २ धर्मतुं श्रवणु सद्धा-श्रद्धा ३ धर्ममां श्रद्धा-रुची य-च अने संजंमम्मि वीरियं-संयमे वीर्यम् ४ आस्रवना विरमणरूप ने सत्तर प्रकारने संयम छे तेमां विशेषरूपथी शक्तिनी अनुरूप प्रवृत्ति आ चारे वातो एव भाटे प्राप्त भवी भडा दुर्लभ छे.

॥ અથ તૃતીયમધ્યયનમ્ ॥

પરીપહનામકં દ્વિતીયમધ્યયનમુક્તમ્ । અથ તૃતીયં ચતુસ્ત્રીયમધ્યયનં પ્રારમ્ભ્યતે ।
 અસ્ય ચાયમભિસમ્બન્ધઃ—શ્વાનન્તરાધ્યયને પરીપહાઃ સોઢવ્યા ઇત્યુક્તમ્, તત્ર
 ‘કિમાલમ્બનં કૃત્વા તે સોઢવ્યાઃ ?’ ઇત્યાકાઢ્ઢ્યાયાં ચતુર્ણામિજ્ઞાનાં દુર્લભસ્વમેવ
 તત્રાલમ્બનમિતિ યોધયિતું. ચતુસ્ત્રીયનામકમિદં તૃતીયમધ્યયનમુચ્યતે, તત્રાદૌ તેષાં
 નામાનિ નિર્દિશન્નાહ—

તૃતીય અધ્યયન—

પરીપહનામક દ્વિતીય અધ્યયન કહા જા ચુકા હૈ । અબ ચતુ-
 રંગીયનામક તૃતીય અધ્યયન પ્રારંભ હોતા હૈ । દ્વિતીય અધ્યયન કે
 ઘાદ હસ અધ્યયન કો પ્રારંભ કરને કા સૂત્રકાર કા યહ ઉદ્દેશ્ય હૈ કિ
 જો દ્વિતીય અધ્યયન મેં “પરીપહ સહન કરના ચાહિયે” એસા કહા હૈ
 સો વહાં પર એસા પ્રશ્ન હોતા હૈ કિ: “ઇન પરીપહોં કો કિસકા અવલમ્બન
 લેકર સહન કરના ચાહિયે” । હસકે સમાધાન નિમિત્ત હી હસ તૃતીય
 અધ્યયન કા પ્રારંભ હૈ । હસમેં યહ વતલાયા જાયગા કિ ચાર પરમ-
 ઉત્કૃષ્ટ અંગોં કી પ્રાપ્તિ મહાદુર્લભ હૈ । યે ચાર અંગ વઢે પુણ્ય સે મિલે
 હૈ, એસા સમજ્ઞકર મુનિ પરીપહોં કો સહન કરતે હૈ, વે હી ચાર અંગ
 યહાં અવલમ્બન-આધાર-રૂપ હૈ અતઃ ડન ચાર અંગોંકો યહાં વતલાતે હૈ-
 ‘ચત્તારિ’-ઇત્યાદિ ।

અધ્યયન ત્રીણું

પરીપહ નામનું ત્રીણું અધ્યયન કહેવાઈ ગયું. હવે ચતુરંગિય નામનું
 ત્રીણું અધ્યયન શરૂ થાય છે. ત્રીજા અધ્યયન પછી આ ત્રીજા અધ્યયનનો
 પ્રારંભ કરવાનો સૂત્રકારનો એ ઉદ્દેશ છે કે, ત્રીજા અધ્યયનમાં “પરીપહ સહન
 કરવો જોઈએ” એવું કહેલ છે. તેમાં એવો પ્રશ્ન ઉત્પન્ન થાય છે કે, આ
 પરીપહોને કોનું અવલંબન લઈને સહન કરવા જોઈએ. એના સમાધાન નિમિત્તે
 જ આ ત્રીજા અધ્યયનનો પ્રારંભ છે. આમાં એ વાત બતાવવામાં આવે છે કે,
 ચાર પરમ-ઉત્કૃષ્ટ અંગોની પ્રાપ્તિ મહા દુર્લભ છે. એ ચાર અંગ ઘણા પુન્યથી
 મળે છે. એવું સમજીને મુનિ પરીપહોને સહન કરે. એ ચાર અંગ અહીં
 અવલંબન આધાર રૂપ છે. આથી એ ચાર અંગોને અહીં બતાવવામાં આવેલ છે.

‘ચત્તારિ’ ઇત્યાદિ.

માનુપત્વાદિષુ ચતુર્ણુકસ્યાપ્યેકસ્યામાવે મોક્ષો ન સંભવતીત્યતત્કં 'ચત્તારિ' ઇતિ । ધર્મશ્રવણં વિનાઽપિ યસ્ય શ્રદ્ધા દૃશ્યતે સા જન્માન્તરીયશ્રવણજન્યૈવેતિ નાસ્તિ શક્ત્વાસરઃ । મૃદં વિના ઘટ ઇવ, તન્તૂન્ વિના પટ ઇવ, કાષ્ઠં વિના શકટમિવ માનુપત્વાદિચતુષ્ટયં વિના મોક્ષો ન ભવતિ ।

નિર્જરા કી અપેક્ષા યે ચાર અંગ સર્વપ્રથમ ઉપાદેય હોને કે કારણ મુખ્ય હૈ । ઇસલિયે ડનમૈં હી ઉત્કૃષ્ટતા આતી હૈ । ઇન ચારોં મૈં સે યદિ ઁક ભી અંગ કા અભાવ રહતા હૈ તો મુક્તિ કા લાભ જીવ કો નહોં હો સકતા હૈ । યહી વાત "ચત્તારિ" ઇસ વિશેષણ સે પુષ્ટ કી ગઈ હૈ ।

પ્રશ્ન—ધર્મ કે શ્રવણ સે હી જીવ કો ધર્મ મૈં શ્રદ્ધા હાતી હૈ. ઁસાં ઁકાન્તિક નિયમ નહીં હૈ, ક્યોં કિ પ્રાયઃ ઁસે ભી જીવ દેલે જાતે હૈં કિ જો ધર્મ કા શ્રવણ તો નહીં કરતે હૈં ફિર ભી ડનકી ધર્મ મૈં અટૂટ શ્રદ્ધા રહતી હૈ ।

ઉત્તર—પ્રશ્ન ઠીક હૈ । પરન્તુ ડસકા ઉત્તર યહ હૈ કિ—જો જીવ ઁસે હૈં કિ ધર્મ શ્રવણ કિયે વિના ભી ધર્મ મૈં શ્રદ્ધાશાલી હોતેહૈં ડનહોં ને પહિલે ભવ મૈં ધર્મશ્રવણ કિયા હૈ, ડસીકા પ્રતાપ હૈ । મિટી કે વિના જૈસે ઘટ ઉત્પન્ન નહીં હો સકતા હૈ, તન્તુઓં કે વિના જૈસે વહ્ન નહીં ઘન સકતા હૈ, કાષ્ઠ કે વિના જૈસે શકટ કા નિર્માણ

ચાર અંગ સર્વ પ્રથમ ઉપાદેય થવાના કારણે મુખ્ય છે. આ કારણે તેનામાં ઉત્કૃષ્ટતા આવે છે. આ ચારમાંથી જો એક પણ અંગનો અભાવ રહે તો મુક્તિનો લાભ જીવને થઈ શકતો નથી. આ વાત "ચત્તારિ" એ વિશેષણથી નક્કી કરવામાં આવેલ છે.

પ્રશ્ન—ધર્મના શ્રવણથી જ જીવને ધર્મમાં શ્રદ્ધા થાય છે એવો એકાન્તિક નિયમ નથી. કેમકે, ઘણા એવા જીવ જોવામાં આવે છે કે, જે ધર્મનું શ્રવણ કરતા નથી છતાં પણ એની ધર્મમાં અતૂટ શ્રદ્ધા રહે છે.

ઉત્તર—પ્રશ્ન ઠીક છે. પરંતુ એનો ઉત્તર એ છે કે, જે જીવ એવા છે કે જે ધર્મનું શ્રવણ ક્યો વગર પણ ધર્મમાં શ્રદ્ધાવાળા છે, એમણે આગલા ભવમાં ધર્મ શ્રવણ કરેલું હોય છે આથી જ આ ભવમાં ધર્મમાં જે શ્રદ્ધા છે તે પરભવને વીશે સાંભળેલા ધર્મ શ્રવણનો પ્રતાપ છે. માટી વગર જેમ ઘડો બની શકતો નથી, તંતુઓ વગર જેમ વસ્ત્ર બની શકતું નથી, લાકડા વગર જેમ શકટનું નિર્માણ

एतदङ्गचतुष्टयं हि गिरिषु मेरुरिव, तरुषु कल्पतरुरिव, धातुषु सुवर्णमिव, पानेषु पीयूषमिव, मणिषु चिन्तामणिरिव, प्रामाणिकपुरुषेषु तीर्थंकर इव, घेनुषु कामधेनुंरिव, मनुष्येषु चक्रवर्तीव, देवेषु शक्र इव प्रधानमस्तीति सूचनायै 'परमंगाणि' इत्यत्र परमेति विशेषणम् ।

નરુ માનુષત્વાદીનાં કથં પરમાઙ્ગત્વમ્ નિર્જરાયા એવ મુક્તિપ્રાપ્તૌ સાક્ષાત્ કારણત્વેન પ્રાધાન્યાદિતિ ચેત્? ઉચ્યતે—માનુષત્વાદિચતુષ્ટયં વિના નિર્જરાયા અનુત્પન્નયા તદપેક્ષયા માનુષત્વાદિચતુષ્ટયસ્ય પ્રથમોપાદેયતયા મુખ્યત્વાદુત્કૃષ્ટત્વમસ્તિ ।

ये चार अंग, पर्वतों में जैसे मेरु प्रधान है, वृक्षों में जैसे कल्पवृक्ष प्रधान है, धातुओं में जैसे सुवर्ण प्रधान है, पेय पदार्थों में जैसे अमृत प्रधान है, मणियों में जैसे चिन्तामणि प्रधान है, प्रामाणिक पुरुषों में जैसे तीर्थंकर प्रधान है, गायों में जैसे कामधेनु प्रधान है, मनुष्यों में जैसे चक्रवर्ती प्रधान है और देवों में जैसे इन्द्र प्रधान है उसी प्रकार ये चार अंग प्रधान हैं । इसी बात को ब्योतन करने के लिये सूत्रकारने "परम" यह विशेषण दिया है ।

પ્રશ્ન—માનુષત્વ આદિ મેં પરમાઙ્ગતા-પ્રધાનતા કૈસે હો સકતી હૈ । ક્યોં કિ મુક્તિ કી પ્રાપ્તિ મેં નિર્જરા હી સાક્ષાત્કારણ હોતી હૈ અતઃ નિર્જરા કી પ્રધાનતા હૈ ।

ઉત્તર—યથાપિ મુક્તિ કી પ્રાપ્તિ મેં સાક્ષાત્કારણ નિર્જરા હૈ પરંતુ નિર્જરા નિરાશ્રય તો હોગી નહીં, અતઃ માનુષત્વાદિ ચાર કે વિના જબ નિર્જરા નહીં બન સકતી હૈ તો યહ વાત સ્વતઃ સિદ્ધ હોતી હૈ કિ

બેવી રીતે પર્વતોમાં મેરુ પ્રધાન છે, વૃક્ષોમાં જેમ કલ્પવૃક્ષ પ્રધાન છે, ધાતુમાં જેમ સુવર્ણ પ્રધાન છે, પીવાના પદાર્થોમાં જેમ અમૃત પ્રધાન છે, મણીઓમાં જેમ ચિન્તામણી પ્રધાન છે, પ્રામાણિક પુરુષોમાં જેમ તીર્થંકર પ્રધાન છે, ગાયોમાં જેમ કામધેનુ પ્રધાન છે, મનુષ્યોમાં જેમ ચક્રવર્તી પ્રધાન છે, અને દેવોમાં જેમ ઇન્દ્ર પ્રધાન છે, આવી રીતે આ ચાર અંગ પ્રધાન છે. આ વાતને સમજાવવા માટે સૂત્રકારે "પરમ" એવું વિશેષણ આપેલ છે.

પ્રશ્ન—મનુષ્યત્વ આદિમાં પરમાંગતા-પ્રધાનતા કઈ રીતે હોઈ શકે કેમકે, મુક્તિની પ્રાપ્તિમાં નિર્જરા જ સાક્ષાત્ કારણ હોય છે. આથી નિર્જરાની પ્રધાનતા છે.

ઉત્તર—કદાચ મુક્તિની પ્રાપ્તિમાં સાક્ષાત્કારણ નિર્જરા છે. પરંતુ નિર્જરા નિરાશ્રય તો રહે નહીં. આથી માનુષત્વાદિ ચાર અંગ વગર નિર્જરા બની શકતી નથી. આથી આ વાત સ્વતઃ સિદ્ધ થાય છે કે, નિર્જરાની આ

चुलन्यामासक्तो जातः । तयोर्दुश्चरितं ब्रह्मदत्तेन विदितम् । ब्रह्मदत्तेन काकहंसी
युगलं पिष्टमयं मैथुनपरायणं निर्माय शूलप्रोतं कृत्वा ताभ्यां प्रदर्शितम् । तथा-
गोनस-पद्मनागिनीयुगलं पिष्टमयं कृत्वा वाचा तर्जयति-रे दुष्ट ! दुराचारिन् !
गोनस ! किं पद्मनागिन्या सह रमसे ? तत्फलं भुङ्क्ष्व, इत्युक्त्वा तदुभयं प्रज्वलज्ज्व-
लने प्रक्षिपति । एवं दुष्कर्मनिवृत्त्यर्थं ब्रह्मदत्तप्रदर्शितं दण्डं विलोक्यापि तौ दुष्कर्म-
करणान्न निवृत्तौ । ततश्चुलन्या दीर्घपृष्ठनृपेण च परस्परं विचार्य ब्रह्मदत्तस्य विवाहः

तो वह दीर्घपृष्ठ चुलनी के मोह में फँस गया । चुलनी और दीर्घपृष्ठ
के दुश्चरित की बात ब्रह्मदत्त के कान तक भी पहुँच गई । ब्रह्मदत्त ने
उन दोनों को शिक्षा देने के अभिप्राय से आटे का एक, मैथुन में परा-
यण काक और हँसी का जोड़ा निर्मापित कर और उसे शूल में पिरो-
कर उन दोनों को दिखलाया । तथा गोनस (फणरहित सर्प) और
पद्मनागिनी का भी एक जोड़ा आटे से उसने तयार किया, और
उन्हीं के समक्ष कहने लगा रे-दुष्ट ! दुराचारी गोनस ! तुझे लज्जा नहीं
आती जो तू पद्मनागिनी के साथ रमता है ? अरे अधम ! तू अब
अपने किये हुए कर्म का फल भोग । इस प्रकार वाणी से तर्जित कर
उसने उन दोनों को जलती हुई अग्नि में डाल दिया । इस प्रकार
दुष्कर्म की निवृत्ति के लिये ब्रह्मदत्त के द्वारा प्रदर्शित दण्ड को देखकर
भी रानी और दीर्घपृष्ठ अपने अनर्थविधायक दुष्कर्म से पीछे नहीं हटा ।

समय विती गया आठ ते दिवंपृष्ठ चुलनीना मोहमां इसाई गयो. चुलनी
अने दिवंपृष्ठनी आ दुश्चरितनी वात ब्रह्मदत्तना कान सुधी पडोन्ची गध,
ब्रह्मदत्ते अे अन्ने ने शिक्षा देवाना अभिप्रायधी आटाभांधी (दोटाभांधी)
अेक मैथुनमां परायण्य काक अने हंसलीतुं जेडुं निर्माण्य करी तेने शुध्यमां
परोवीने ते अन्नेने अताव्युं. तथा इेषु वगरने साप अने पद्मनागण्युं
पण्य अेक जेडुं आटाभांधी (दोटाभांधी) अनावी तयार कर्युं. अने तेनी सामे
कडेवा लाग्ये, रे दुष्ट ! दुराचारि गोनस (इेषु रक्षित सर्प) ! तने लाज नधी
आवती के तुं, पद्मनागण्युनी साथे रमी रह्यो छे. अरे अधम ! तुं डवे पोताना
कडेवा कर्मनुं इण लागव. आ प्रकारे कडीने अे अन्ने ने तेणु लडलडती
अग्निमां नापी दीधा. आ प्रकारे दुष्कर्मनी निवृत्ति भाटे ब्रह्मदत्तद्वारा
प्रदर्शित दंडने जेईने राखी अने दिवंपृष्ठ पोताना अनर्थ विधायक
दुष्कर्मधी पाछां न कर्या. अेक दिवसनी वात छे के, आ अन्नेअे अेकतमां

मानुपत्वं दुर्लभमित्यत्र दश दृष्टान्ताः प्रदर्शयन्ते, तद् यथा—चोल्लकः १, पाशकः २, धान्यं ३, घृतं ४, रत्नं ५, स्वप्नः ६, चक्रं ७, कूर्मः ८, युगं ९, परमाणुः १० ।

अथ प्रथमचोल्लकदृष्टान्तः—चोल्लको=भोजनं तदुपलक्षितो दृष्टान्तः प्रोच्यते—कांपिल्यनगरे ब्रह्मनामको नृपतिरासीत्, तस्य भार्या चुलनीनाम्नी, पुत्रो ब्रह्मदत्तनामकः । तस्मिन् ब्रह्मनृपती मृते सति तत्पुत्रस्य ब्रह्मदत्तस्य बाल्यावस्थां विलोक्य ब्रह्मनृपसुहृद् दीर्घपृष्ठनामको नृपस्तद्राज्यं रक्षति । तदनन्तरं स

नहीं हो सकता है उसी तरह इन मानुपत्व आदि चार अंगों की प्राप्ति हुए बिना मुक्ति की प्राप्ति जीव को नहीं हो सकती है ।

“मानुपत्वं दुर्लभं” मनुष्यपन की प्राप्ति महादुर्लभ है, इस विषय में दश दृष्टान्त कहे जाते हैं, जैसे—चोल्लक १, पाशक २, धान्य ३, घृत ४, रत्न ५, स्वप्न ६, चक्र ७, कूर्म ८, युग ९ परमाणु १० ।

चोल्लक नाम भोजनका है । इससे उपलक्षित होनेसे चोल्लकको भी दृष्टान्त कह दिया गया है । यह प्रथम चोल्लकदृष्टान्त इस प्रकार है—

कांपिल्य नगर में ब्रह्म नाम का राजा था । इसकी स्त्री का नाम चुलनी और पुत्र का नाम ब्रह्मदत्त था । राजा ब्रह्म के काल प्राप्त हो जाने के बाद ब्रह्मदत्त की बाल अवस्था देखकर “राज्य में अव्यवस्था न फैल जाय” इस दृष्टि से राजा ब्रह्म के मित्र दीर्घपृष्ठ नाम के राजा ने उसके राज्य को संभाल लिया । जब कुछ समय व्यतीत हो गया

यद्यं शक्तुं नथी, अथ रीते आ मानुपत्व आदि चार अंगोनी प्राप्ति यथा विना मुक्तिनी प्राप्ति एवमे यद्यं शक्तुं नथी.

मानुपत्वं दुर्लभं मनुष्यपणानी प्राप्ति महादुर्लभं छे, आ विषयमां दश दृष्टांत कहेवामां आवे छे. जेम—चोल्लक १, पाशक २, धान्य ३, घृत ४, रत्न ५, स्वप्न ६, चक्र ७, कूर्म ८, युग ९, परमाणु १०.

चोल्लक नाम भोजननुं छे अथी उपलक्षित यवाथी चोल्लकनुं पद्य दृष्टांत कहेवामां आवेल छे. आ प्रथम चोल्लकदृष्टांत आ प्रकारनुं छे.—

कांपिल्य नगरमां ब्रह्मनामनो राजा इतो. तेनी स्त्रीनुं नाम चुलनी अने पुत्रनुं नाम ब्रह्मदत्त इतुं. राजा ब्रह्मनी काणप्राप्ति पछी, ब्रह्मदत्तनी पाण अवस्था जेधने “राज्यमां अव्यवस्था न हेलाध नथ” आ इत्थीथी राजा ब्रह्मना मित्र दीर्घपृष्ठ नामना राजा अे तेना राज्यने संभाली थी ...

तत्समीपे प्रकोष्ठकान्तरे शयनार्थं गतः । तदाऽर्धरात्रे जनन्याऽग्निसंयोजनात्
तज्जतुगृहं प्रदीपितम् । ब्रह्मदत्त उत्थितः । तदा वरधनुर्ब्रह्मदत्तं वदति-नाथ !
मासादः प्रज्वलति, भवान् निःसरतु । इति तद्वचनं श्रुत्वा ब्रह्मदत्तो ब्रवीति-प्रदर्शय
मार्गम्, तदा वरधनुर्वदति नाथ ! अयमस्ति सुरङ्गमार्गः, पादाघातेन सुरङ्गाद्वारवर्ति-
शिलापट्टकं चूरय, ब्रह्मदत्तेन तथा कृते सति उभौ तेनैव सुरङ्गापथेन निःसृत्य वह्नि-
द्वारावस्थिततुरङ्गमौ समारुह्य देशान्तरं गतौ ।

द्वारा प्रेरित होने पर ब्रह्मदत्त उस लाक्षागृह में जाकर सो गया । वर-
धनु भी उसी के समीप एक प्रकोष्ठक में सो गया । जब आधी रात
होने का समय आया तो चुलनी माता ने उस लाक्षागृह में आग
लगा दी मकान जलने लगा । ब्रह्मदत्त एकदम उठा । वरधनु ने शीघ्र
पास आकर ब्रह्मदत्त से कहा-नाथ ! महल जल रहा है, अपन यहां से
शीघ्र चले जायें । वरधनु के वचन सुनकर ब्रह्मदत्तने कहा-वताओ मार्ग
कहां है ? ब्रह्मदत्त के वचन सुनकर वरधनु ने कहा-नाथ ! यह रहा
सुरंग का मार्ग । इसके द्वार पर जो यह पत्थर की शिला का ढक्कन
लगा हुआ है इसे आप पैरों से हटा दीजिये और बाहर निकल जाईये ।
ब्रह्मदत्त ने ऐसा ही किया । सुरंग के द्वार पर लगे हुए पत्थर को पैर से
हटाकर वे और वरधनु दोनों सुरंगमार्गसे बाहर निकल आये और बाहर
के द्वारपर खड़े हुए दोनों घोड़ोंपर चढ़कर वहांसे दूसरे देशको चले गये ।

भडेलमां सुवा भाटे गयो. भंन्नीना पुत्र वरधनुं पथु तेनी साथे ते भडेलमां
गयो अने तेनी साथे अे भडेलमां ते पथु अेक आसन उपर सुते न्यारे
अरधी रातने प्रारंभ थध युक्तये त्यारे दुष्कर्मिणी अेवी कुमारनी माता
युवनीअे ते लाभागृहमां आग लगाडी. भडेल सणगवा लाग्ये, अ्रह्मदत्त
अेकदम उठयो. वरधनुअे अे वणते तेनी पासे आवीने कहुं, नाथ ! भडेल
सणगी रह्यो अे. आपथे अडीथी तुरत अ नीकणी अणुं अेधअे. वरधनुनां
वचन सांलणीने अ्रह्मदत्ते कहुं के मार्ग कथां अे ? अतावे. अ्रह्मदत्तनुं वचन
सांलणीने वरधनुअे कहुं, नाथ ! आ रह्यो अडार नीकणवाने रस्ते. अडों अे
पत्थरनुं ढांकणु लगाडेणुं अे तेने आप पगथी हर करे अने पथी लोयरामां
उतरी अडार नीकणी अे. अ्रह्मदत्ते अे प्रभाणु कथुं. लोयराणा सुणदारना
पत्थरने हर करी कुमार अ्रह्मदत्त अने वरधनु अने लोयराणा रस्ते अडार
नीकणी गथा अने अडारना द्वार पासे तैयार राणवामां आवेला घोडा उपर
अेगी अे अणु हर देशमां आल्या गथा.

कारितः । ततः कपटप्रवन्धेन ब्रह्मदत्तमारणार्थं जतुगृहं कारितम् । तदा धनुनामका ब्रह्मनृपतेर्मन्त्री तत् कपटं ज्ञातवान् । स च नदीतीरात् तद्गृहाभ्यन्तरेऽधः पृथिव्यां सुरङ्गां निर्माय नदीतटे सुरङ्गाद्वारे तुरंगमद्वयं स्थापयित्वा स्वपुत्रं वरधनुनामकं जतुगृहनिर्माणकारणं ज्ञापयति । ततो निःसरणार्थं निर्मापितां सुरङ्गां च दर्शयति । स वरधनुः स्वपित्राज्ञया ब्रह्मदत्तानुचरोऽभवत् ।

अन्यदा कदाचित् जनन्या प्रेरितो ब्रह्मदत्तस्तस्मिन् जतुगृहे सुप्तः, वरधनुष

एक दिन की बात है कि इन दोनोंने एकान्त में इस प्रकार की गुप्तमंत्रणा की कि ब्रह्मदत्त का विवाह कर देना चाहिये । ऐसा ही हुआ ब्रह्मदत्त का विवाह कर दिया गया । तथा ब्रह्मदत्त को मारने के लिये कपट से एक लाक्षागृह-लाख का महल भी बनवा कर तयार कराया गया । राजा ब्रह्म के मंत्री को उनकी यह कपट रचना ज्ञात हो गई । मंत्री का नाम धनु था । उसने नदी के तीर से लेकर उस लाक्षागृह के भीतर तक पृथिवी के नीचे एक सुरंग बनवाई । जब सुरंग बनकर तयार हो चुकी तो नदी के तट पर कि जहाँ सुरंग से बाहर निकलने का द्वार था दो घोड़े खड़े करवा दिये और अपने पुत्र से कि जिसका नाम वरधनु था लाक्षागृह के निर्माण का कारण प्रकट कर दिया । तथा यहाँ से निकलने के लिये जो सुरंग बनाई गई थी उसका भी भीतरी दरवाजा उसे दिखला दिया । वरधनु अपने पिता की आज्ञा से ब्रह्मदत्त का अनुचर बन गया । एक दिन की बात है कि अपनी माता

अथवा प्रकारनी शुभ्र मंत्रणा करी के, ब्रह्मदत्तने विवाह करी देवा. अने अे प्रभाषे ब्रह्मदत्तने विवाह करी देवाभां आब्या. आ यधी ब्रह्मदत्तने कपटथी भारवा भाटे अेक लाभागृह (जेगृहीना भडेल) बनावी तयार करी. राजा ब्रह्मना मंत्रीने तेमनी आ कपट रचना बलुवाभां आवी गध. मंत्रीनुं नाम धनु हुतुं. तेहे नदीना कांठाथी लधने अे लाभागृहनी अंदर सुधीनुं अेक लोयडुं तयार कराव्युं. न्यारे लोयडुं तयार थरुं गथुं तयारे नदीना कांठा उपर के न्यां लोयारमांथी अडार नीकणवाने रस्तो राभ्ये हुतो ते स्थणे जे घोडा तयार रभाव्या. अने पीताना पुत्र के लेनुं नाम वरधनु हुतुं तेने लाभागृहनी समस्त वातथी बलुकार करी तेमांथी निकणवा भाटे जे लोयडुं बनाववाभां आवेक हुतुं तेनी सधणी भाडिती आपी नीकणवा भाटेने दरवाने तेने अतावी दीधे. अेक दिवसनी वात छे के, कुमार ब्रह्मदत्त तेनी माताना कडेवाथी, गृह

तत्समीपे प्रकोष्ठकान्तरे शयनार्थं गतः । तदाऽर्धरात्रे जनन्याऽग्निसंयोजनात् तज्जतुगृहं प्रदीपितम् । ब्रह्मदत्त उत्थितः । तदा वरधनुर्ब्रह्मदत्तं वदति-नाथ ! प्रासादः प्रज्वलति, भवान् निःसरतु । इति तद्वचनं श्रुत्वा ब्रह्मदत्तो ब्रवीति-प्रदर्शय मार्गम्, तदा वरधनुर्वदति नाथ ! अयमस्ति सुरङ्गामार्गः, पादाघातेन सुरङ्गाद्वारवर्ति-शिलापट्टकं चूरय, ब्रह्मदत्तेन तथा कृते सति उभौ तेनैव सुरङ्गापथेन निःसृत्य वहि-द्वारावस्थितदुरङ्गमौ समारुह्य देशान्तरं गतौ ।

द्वारा प्रेरित होने पर ब्रह्मदत्त उस लाक्षागृह में जाकर सो गया । वर-धनु भी उसी के समीप एक प्रकोष्ठक में सो गया । जब आधी रात होने का समय आया तो चुलनी माता ने उस लाक्षागृह में आग लगा दी मकान जलने लगा । ब्रह्मदत्त एकदम उठा । वरधनु ने शीघ्र पास आकर ब्रह्मदत्त से कहा-नाथ ! महल जल रहा है, अपन यहां से शीघ्र चले जायें । वरधनु के वचन सुनकर ब्रह्मदत्तने कहा-वताओ मार्ग कहाँ है ? ब्रह्मदत्त के वचन सुनकर वरधनु ने कहा-नाथ ! यह रहा सुरंग का मार्ग । इसके द्वार पर जो यह पत्थर की शिला का ढक्कन लगा हुआ है इसे आप पैरों से हटा दीजिये और बाहर निकल जाईये । ब्रह्मदत्त ने ऐसा ही किया । सुरंग के द्वार पर लगे हुए पत्थर को पैर से हटाकर वे और वरधनु दोनों सुरंगमार्गसे बाहर निकल आये और बाहर के द्वारपर खड़े हुए दोनों घोड़ोंपर चढ़कर वहांसे दूसरे देशको चले गये ।

मडेलमां सुवा भाटे गयो. मंत्रीना पुत्र वरधनुं पशु तेनी साथे ते मडेलमां गयो अने तेनी साथे ये मडेलमां ते पशु अेक आसन उपर सुते न्यारे अरधी रातने प्रारंभ थध युक्रये त्यारे हुंभिंछी अेवी कुमारनी माता चुलनीअे ते लाक्षागृहमां आग लगाडी. मडेल सणगवा लाग्यो, अ्रह्मदत्त अेकदम उठयो. वरधनुअे अे वपते तेनी पासे आवीने कहुं, नाथ! मडेल सणगी रह्यो छे. आपखे अ्डीथी तुरत न नीकणी नपुं अेधअे. वरधनुनां वचन सांलणीने अ्रह्मदत्ते कहुं के मार्ग कयां छे? गतायो. अ्रह्मदत्तनुं वचन सांलणीने वरधनुअे कहुं, नाथ! आ रह्यो अ्हार नीकणवाना रस्ते. अ्डीं ने पत्थरनुं हांकणु लगाउठुं छे तेने आप पगथी हर करे अने पछी लोयराभां उतरी अ्हार नीकणी नअ्यो. अ्रह्मदत्ते अे प्रभाखे कयुं. लोयराणा सुणद्वारना पत्थरने हर करी कुमार अ्रह्मदत्त अने वरधनु अन्ने लोयराणा रस्ते अ्हार नीकणी गया अने अ्हारना द्वार पासे तैयार राणवामां आवेला घोडा उपर अेसी अन्ने न्छा हर देशमां आल्या गया.

अत्यन्तदूरपथभ्रमणजनितश्रमादश्वौ मृती । पादचारेण ब्रह्मदत्तो वरधेनुना सह पृथिव्यामट्टि । ततो दीर्घपृष्ठनृपस्य भयात् पृथक् पृथक् भूत्वा तौ पर्यटतः । अथ ब्रह्मदत्तः पर्यटन् निर्धनवेपेण क्वचिद् वृक्षतले उपविष्टः । तदा केनचित् सामुद्रिकविद्यावता विप्रेण मार्गे ब्रह्मदत्तचरणन्यासं दृष्ट्वा मुदितचित्तः शीघ्रगत्या तत्र वृक्षतले समायातः । तत्र निर्धनवेपेण वर्तमानं ब्रह्मदत्तमवलोस्य स विमो रोदिति । तं ब्रह्मदत्तः पृच्छति—हे विप ! कथं रोदिषि ? , सामुद्रिकशास्त्रज्ञोऽसौ विप आह—अद्य मम विद्या असदर्थवोधिका जाता, मन्वचरणलक्षणं भवतश्चक्रवर्तित्वमादे-

अत्यन्त दूर तक अधिक वेग से चलने के कारण उनके घोड़े बहुत थक गये थे इसलिये उनका पेट फूल गया और दोनों घोड़े मर गये । ब्रह्मदत्त और वरधनु दोनों ही पैदल जंगलमें घूमने लगे, पर दीर्घपृष्ठ राजा का भय हृदय में बना हुआ था । इसलिये उन्होंने ने अब अलग २ होकर चलना ही अच्छा समझा । ब्रह्मदत्त चलते २ एक किसी वृक्ष के नीचे आकर ठहर गया । इतने में वहाँ एक सामुद्रिक शास्त्र का वेत्ता ब्राह्मण जो उसी रस्तेसे होकर कहीं जा रहा था मार्गमें ब्रह्मदत्त के चरणचिह्नों को देखकर बड़ा ही प्रसन्न हुआ, और चरणचिह्नों को लक्षित कर वह उस स्थान पर आपहुँचा जहाँ ब्रह्मदत्त वृक्ष के नीचे बैठा हुआ था । ब्रह्मदत्त की निर्धन अवस्था देखकर ब्राह्मण को रोना आगया । ब्राह्मण को रोते देखकर ब्रह्मदत्त ने पूछा हे ब्राह्मण ! क्यों रो रहे हो ? सामुद्रिक शास्त्रज्ञ उस ब्राह्मण ने कहा कि मैंने जो सामुद्रिक

दृष्ट्वा वेगधी लांभी भज्ज क्वापवाधी तेभना घोडा थाकी गया अने अथी अे घोडाअेअुं पेट कुली जतां अने घोडा भरी गया. वरधनु अने अ्रह्मदत्त अने पगपाणा जंगलमां इरवा लाया. आ रीते इरवाधी दीर्घपृष्ठ राजा तरक्षधी लय आवी पउथे तेवी दडेशतथी अने जण्णुअे लुदा लुदा आलवानुं राअुथुं. अ्रह्मदत्त आलतां आलतां केअि अेक वृक्षनी नीअे जअि पडोअ्ये अने त्यां रोकाअि गये. आ समये सामुद्रिकशास्त्रज्ञानने जणुकार अेक अ्राह्मणु के अे अे रस्तेधी जअि रह्यो अतो तेअे भागमां अ्रह्मदत्तनां अरअुनां धूणमां पडेलां पगतानां अिन्डोने जेअेने पूअ प्रसन्नता अनुभववी अने अरअु अिन्डोने लक्षमां राअतो राअतो ते अे स्थजे कुमार अ्रह्मदत्त अतो त्यां आवी पडोअ्ये. अ्रह्मदत्तनी निर्धन अवस्था जेअेने अ्राह्मणुनी आंअमां आंसु आवी गयां. अ्राह्मणुने रोतां जेअि अ्रह्मदत्ते कअुं, अे अ्राह्मणु शा भाटे रडे अे ? सामुद्रिक शास्त्रना जणुकार तं अ्राह्मणु कअुं के, में आज सुधी

दयति किंतु भवान् निर्धनावतारो मिलितः । ब्रह्मदत्तो वदति—अहमस्मि चक्रवर्ती,
यदा मम राज्यप्राप्तिः स्यात्तदा भवता ममान्तिकमागन्तव्यम् ।

कालान्तरे ब्रह्मदत्तेन चक्रवर्तिराज्यं प्राप्तम्, द्वादश वर्षाणि राज्याभिषेको-
त्सवः प्रारब्धः । सामुद्रिकशास्त्रज्ञोऽसौ विप्रस्तदुत्सवसमाचारं प्राप्य तत्रागतः ।

शास्त्र का अभीतक अध्ययन किया है वह आज बिलकुल गलत
साबित हो रहा है इसलिये मैं रो रहा हूँ। आपके चरणों में जो चिह्न
यने हुए हैं उनसे यह बात ज्ञात होती है कि आपको चक्रवर्ती होना
चाहिये पर आपकी तो यह दशा है कि इस समय आपके पास खाने
तक को अन्न भी नहीं है। आपका यह वेप दरिद्रियों जैसा है। अव-
स्था आपकी निर्धन है। ऐसे मालूम पड़ता है कि मानों आप में
निर्धनताने ही अवतार लिया है। ब्राह्मण की बात सुनकर ब्रह्मदत्त ने
कहा—तुम्हारा सामुद्रिक शास्त्र मिथ्या नहीं है दुःखी मत होओ, मैं
वास्तव में चक्रवर्ती ही हूँ। जब मुझे राज्य की प्राप्ति हो तो उस
समय तुम मेरे पास आना।

कालान्तर में ब्रह्मदत्त को चक्रवर्तिपद की प्राप्ति हुई। ब्रह्मदत्त
चक्रवर्ती बन गये। बारह वर्ष का राज्याभिषेक बड़ा ही ठाट वाट से
मनाया जाने लगा। इसी अवसर में उस ब्राह्मण ने जब यह समाचार
सुना तो वह भी वहाँ पर आगया पर वह ब्रह्मदत्तसे मिल नहीं सका।

सामुद्रिक शास्त्रतुं जे अध्ययन कथुं छे ते आजे भीलकुल नकामुं मालुम पडथुं
छे. आ माटे हुं रोध रह्यो छुं. आपना यरखोमां जे चिन्ह जेवामां आवे
छे तेनाथी जेनी वात सिद्ध थाय छे के, आप यकवर्तीं बनवा जेथं जे. परंतु
आपनी तो जे दशा छे के, आ समये आपनी पासे भावाने अन्न पण्य
नथी. आपने आ वेश दरिद्रीज्योना जेयो छे. आपनी अवस्था निर्धन छे.
जेथुं मालुम पडे छे के, आपनामां निर्धनताजे अवतार लीधो छे, ब्राह्मणनी
वात सांखणी ब्रह्मदत्ते कथुं. आ तमाइं सामुद्रिक शास्त्र मिथ्या नथी, दुःखी न
भने. हुं वास्तवमां यकवर्तीं न छुं न्यारे भने रान्यनी प्राप्ति थाय जे
समये तमे भारी पासे आवजे.

समयना वडेवा साथे ब्रह्मदत्तेने यकवर्ति पद प्राप्त थथुं. रान्यमां १२
वर्ष सुधी तेना रान्याभिषेकेना उत्सव ठामठाम भनावा लाग्यो. जे ब्राह्मणे
न्यारे आ प्रसंगना शुभ समाचर बध्या तो ते पण्य त्यां आवी पडेअथो,
पण्य ते ब्रह्मदत्तेने भणी शक्यो नही. ब्रह्मदत्त यकवर्तीं साथे तेने भेणाय

ब्रह्मदत्तचक्रवर्तिनो दर्शनं मम कथं स्यादिति पृष्टः कथित् श्रेष्ठो तं विप्रं मार्गं दर्शयति । अथोत्सवसमये चक्रवर्ती गजमारुह्य वहिर्निःसरति । स विप्रस्तदा जनसमूहमध्ये वंशाग्रे पादत्राणमालां संयोज्य तं वंशमुत्थाप्य स्थितवान् । चक्रवर्ती स्वराज्यैश्वर्यशोभां समन्ताद् विलोकयन् वंशाग्रसंलग्नानुपानद्मालामपश्यत् । ततः कोपारुणनेत्रश्चक्रवर्ती भृत्यैस्तमाहूय पृच्छति-किमेतत् त्वया मर्तुमाचरितम् ? । विप्रः प्राह-नहि मर्तुं, किंतु जीवितुम् । चक्रवर्ती वंशोत्थापनकारणं विश्राय

ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती से अब मेरा मिलाप कैसे हो ? इस बात को उसने किसी वहाँ के सेठ से पूछा तो उसने उसे मिलाप का रस्ता भी बतला दिया । उत्सव के समय चक्रवर्ती हाथी पर चढ़कर आ रहे थे, भीड़ काफी थी । ब्राह्मण ने मिलाप का मार्ग सोचा, उसके अनुसार एक वांस पर जूतों की माला लटका कर और उस वांस को भीड़ के बीच में ऊपर उठा कर वह खड़ा हो गया । चक्रवर्ती अपने राज्य के ऐश्वर्य की शोभा का चारों ओर से निरीक्षण करते हुए चल रहे थे । उन्होंने ने इस दृश्य को ज्यों ही देखा इकदम देखते ही आंखों में क्रोध की लाली उतर आई, नौकरों के जरिये उस ब्राह्मण को बुलवाकर पूछा, अरे ! इस सुन्दर अवसर पर यह तूने क्या काम किया है ? मालूम पड़ता है तेरी मौत आगई है । ब्राह्मण ने चक्रवर्ती की बात सुनकर कहा यह काम मैंने अपनी मौत को बुलाने के लिये नहीं किया है, किन्तु जीने के लिये किया है । जब चक्रवर्ती वंशोत्थापन के कारण से

अर्ध रीते थाय आ वात तेज्जे त्यांना डोळ शेडने पूछी तो तेज्जे भेगाप भाटेना रस्ते भताव्ये. उत्सवना समये चक्रवर्ती हाथी उपर गेसी आवी रक्षा हुता. लीड भूष हुती, प्राह्मणे भेगापनेा मार्ग विचार्ये. आ अनुसार ते अेक वांस उपर लटकावेव नेडानी भाणा साथे ते बोडोनी लीडभां हाथभां वांसडे उंचे राणीने उलो रह्यो. चक्रवर्ती पोताना राब्धनी अैश्वर्यनी शोभाने आरे तरश् दधी डेरवी नेर् रडेव हुता, तेभजे आ द्य नेयुं अने नेतां अ अेक-दम आंणेभां डोधनी-लावीभां छवाध गध. नोकरे द्वारा अे प्राह्मणने गेलावी पूछ्युं. अरे ! आ सुंदर अवसर उपर तुं आंजुं काम केम करी रह्यो छे ? मालुम पडे छे के ताइं मोत आव्युं छे. चक्रवर्तीनी वात सांभणी प्राह्मणे कहुं, आ काम में मारा मोतना गेलाववाथी नथी कथुं, परंतु लववा भाटे करेव छे. आ पछी चक्रवर्ती वंशोत्थापनना कारणथी यथार्थ इपथी

परितुष्टो भूत्वा गजोपरि स्वपार्श्वे तमुपवेश्य ब्रवीति—हे विप्र! स्वाभोष्टं ब्रूहि, सोऽवदत् भार्यां पृष्ट्वा कथयामि । ततस्तेन स्वगृहमागत्य भार्यां पृष्ट्वा । भार्या मनसि चिन्तयति—धनागमे त्रीणि नश्यन्ति जीर्णं गृहं, जीर्णां भार्यां, जिर्णं मित्रम् । इति विचार्य सा प्राह — एकैकस्मिन् दिने एकैकगृहे पायसभोजनं भवतु, इत्येव प्रार्थनीयम् । ततोऽसौ विप्रश्चक्रवर्तिसंनिधौ समागत्य तदेव प्रार्थितवान् । चक्रवर्ती

यथार्थरूप में परिचित हो चुके, तब वे बड़े प्रसन्न हुए । उन्होंने ने उस ब्राह्मण को शीघ्र ही हाथी पर अपने पास बैठा कर कहा कि कहो विप्रदेव ! तुम क्या चाहते हो ? उसने कहा महाराज ! मैं क्या चाहता हूँ यह बात तो अपनी भार्या से पूछकर आपसे कहूँगा । चक्रवर्ती से वह घर जाने की आज्ञा लेकर घर आगया । घर पर आकर उसने अपनी पत्नी से समस्त वृत्तान्त कह दिया । पत्नी ने सुनकर विचार किया कि यदि यह धनवान् बच जायगा तो मुझे अवश्य छोड़ देगा, क्यों कि धन के आने पर तीन चीजें छोड़ दी जाती हैं—१जूना घर, २ जूनी भार्या और ३ जूना मित्र । इसलिये इससे कह दिया जाय कि हमें तो प्रतिदिन एक घर पर खीर का भोजन मिलता रहे, ऐसी व्यवस्था हो जानी चाहिये । वस इस प्रकार विचार कर ब्राह्मणी ने अपने पति से यही बात कही और कहा कि जाकर तुम राजा से यही मांगो अपने लिये और वस्तु को क्या करना है । ब्राह्मण ने अपनी पत्नी की सलाह मान कर चक्रवर्ती से यही मांगा । चक्रवर्ती ने ब्राह्मण से कहा

परिचित जनतां भूषणं प्रसन्नं यथा अने तेभ्ये प्राद्वक्ष्ये अने वपते पोताना हाथी उपर भेसाडी लथने पूछ्युं, कडे विप्रदेव तमे शुं थाडो छे ? जवा-
णमां ते प्राद्वक्षे कहुं, भडारण ! हुं शुं थाडुं छुं ते वात मारी स्त्रीने पूछ्या पछी आपने कडीश. चक्रवर्तीनी आज्ञा लथ ते पोताने घेर गये. घेर पडोंची तेणे पोतानी स्त्रीने सधणे वृत्तांत कडी संभजाव्यो. स्त्रीचे सधणी भीना सांभणीने विचार कथे के, मारी पति धनवान् पनी जशे तो अे भने अवस्थ छेडी देशे. हेभके, धनना आववाथी त्रणु स्त्रीने बुद्धार्थ न्य छे. अेक तो ज्युनां घर, भीजुं स्त्री, त्रीजुं ज्युनामित्र. आ माटे अेने अेम भागवातुं कडेवामां आवे के, अभने प्रतिदिन अेक अेक घेरथी पीरतुं बोवन भगतुं रडे अेवी व्यवस्था करवामां आवे. आ प्रकारने विचार करी प्राद्वक्षीअे पोताना पतिने अे वात कही अने कहुं के, तमे राज पासे जधने अे प्रभाषे भागे. आपले भीजु वस्तुनी शुं जर छे ? प्राद्वक्षे स्त्रीनी सदाह भानीने राज पासे जधतेनी स्त्रीना कीधा प्रभाषे ज भाग्युं.

प्राह-किमिदं प्रार्थयसि? ग्रामो, नगरं, वा कोशो वा याच्यताम् । स विप्रोऽवदत्-
इदमेव ममोप्सितम्, ततश्चक्रवर्तिना तत्स्वीकृतम् । प्रथमदिने चक्रवर्तिनो भवने परम-
सुखाद् पायसं लब्धम् । तत्र काम्पिल्यनगरे चक्रवर्त्याङ्गयाऽसौ त्रिषः प्रत्येकगृहे
भोजनं क्रमेण प्रतिदिनं लभते, तथाप्यसौ गृहाणामन्तं न प्राप, कथं तर्हि तस्य समस्त
भरतक्षेत्रवर्तिषु गृहेषु एकैकगृहे क्रमेण प्रतिदिनं भोजनप्राप्त्यनन्तरं पुनश्चक्रवर्तिभवने

यह तुमने क्या चीज मांगी है, गांव मांगो नगर मांगो वा कोश-
खजाना मांगो । सुनकर ब्राह्मण ने कहा हमें इन चीजों की आवश्य-
कता नहीं है । हमारी इच्छा तो जो है वह आप से निवेदित कर दी है ।
चक्रवर्ती ने ब्राह्मणकी बात स्वीकार करली । चक्रवर्तीने स्वयं सयसे
पहिले दिवस इसके लिये परम स्वादिष्ट बढ़िया खीर अपने महलमें तैयार
करवाई । ब्राह्मण ने बड़े आनंद के साथ खाई । क्रमर से अब यह उस
काम्पिल्य नगर में सय के घर एकर दिन खीर के भोजन के लिये जाने
लगा, परन्तु वहां इतने अधिक घर थे कि इसके जीवनभर तक भी
जीमतेर घरों के बारे नहीं समाप्त हो सकते थे । तथा छह खंड की
पृथिवी का अधिपति चक्रवर्ती होता है इसलिये यद्यपि उसके जीमने
का नंबर छह खंडोंमें नियत कर दिया गया था, पर जब काम्पिल्य नगर
के घरों की ही समाप्ति नहीं हो सकी तो भरतक्षेत्र भर के घरों का
बारा उसके कैसे प्राप्त हो सकता था ? अतः वह बड़ा ही चिन्तित रहने
लगा । वह विचारता रहता कि कब समस्त घरों का बारा मेरा समाप्त

चक्रवर्ती'ओ ब्राह्मणने कहुं के तमे आ शुं भाग्युं ? गाम, नगर अथवा तो धन
होखत जे जेध ओ ते भागी'थ्यो । ब्राह्मणु कहुं के, भडारान ! मने ओवी कोध थी'जनी
जडरी'आत नहीं । अमारी जे ध'छा छे ते आपनी समक्ष रणु करी छे । चक्रवर्ती'ओ
ब्राह्मणुनी बातने स्वीकार करी अने पोताना'ज भडेलमां तेने भाटे स्वादिष्ट
ओवी भीर तैयार करावी । ब्राह्मणु पूण ज आन'हुथी ते आधी । कमे कमे ते
काम्पिल्य नगरमां भधाने त्यां ओक ओक दिवस भीरना बोजन भाटे जवा
लाग्यो । परंतु त्यां ओटलां अधां धरो हुतां के ओना एवन सुधी जमतां जमतां
धरने वारे समाप्त थई शके तेम न'हुतुं । तेमांजणी चक्रवर्ती' तो छ थंड
धरतीने अधिपती होय छे । आधी तेना जभवाने नंबर छ थंडांमां नझी
करी आपेल हुतो पणु न्यारे ओकला'काम्पिल्य नगरनां ज धरो ते पुरां करी
शके तेम न'हुतुं त्यां भरतक्षेत्रना विस्तारनां धराने वारे तो कथांथी'ज आवे ?
आधी ते पूण ज थिंता करवा लाग्यो । ते विचारवा लाग्यो के, कथारे समस्त

भोजनं लब्धव्यम्, समस्तभरतक्षेत्रान्तर्गतगृहाणां वाहुल्यात् । एवं यथा चक्रवर्तिनो भवनेऽनुपमं पायसं प्राप्तुमिच्छतस्तस्य विप्रस्य तद् दुर्लभं तथा मनुष्यजन्म दुर्लभम् ।
अत्र संग्रहश्लोकः — (शार्दूलविक्रीडितवृत्ताम्)

भुक्तं स्वादुरसं द्विजेन भवने श्रीब्रह्मदत्तस्य यत्,
क्षेत्रेऽस्मिन् भरतेऽखिले प्रतिगृहे भुक्त्वा पुनस्तद्गृहे ।
जातं तस्य यथा मनोऽभिलषितं तद् भोजनं दुर्लभं,
संसारे भ्रमतः पुनर्नरभवो जन्तोस्तथा दुर्लभः ॥ १ ॥
॥ इति प्रथमश्चोलकदृष्टान्तः ॥ १ ॥

हो, और कच मुझे पुनः चक्रवर्ती के घर पर बढिया खीर खानेको मिले, परन्तु न समस्त छह खण्ड के घरों का चारा उसका समाप्त हो और न पुनः चक्रवर्ती के घर की खीर उसको मिले । जैसे इस ब्राह्मण को पुनः वह खीर भोजन दुर्लभ हो गया उसी प्रकार यह मनुष्यजन्म भी बड़ा दुर्लभ है । यह प्रथम दृष्टान्त है । इस पर यह संग्रह श्लोक है—

भुक्तं स्वादुरसं द्विजेन भवने श्रीब्रह्मदत्तस्य यत्,
क्षेत्रेऽस्मिन् भरतेऽखिले प्रतिगृहे भुक्त्वा पुनस्तद्गृहे ।
जातं तस्य यथा मनोऽभिलषितं तद्भोजनं दुर्लभं ।
संसारे भ्रमतः पुनर्नरभवो जन्तोस्तथा दुर्लभः ॥ १ ॥

इस श्लोक में इस कथा का सार घतलाया गया है । अर्थात् जिस प्रकार ब्रह्मदत्तचक्रवर्ती के घर पर एक चार बढिया खीर का भोजन

धराने। वारे। पुरे। थाय अने क्यारे भने यकवतीं।ना महालयमां इरीथी उत्तम
येवी भीर भावाने। प्रसंग भणे? आ रीते न ते। समस्त छ षंडना धराने।
तेने। वारे। पुरे। थाय अने न यकवतींने त्यां इरीथी भीर भावा ज्वाने।
प्रसंग भणे। आ रीते ते प्राह्मणुने इरीथी यकवतींने त्यां भीर भावाने।
प्रसंग प्राप्त न थयो। तेवी न रीते आ मनुष्य जन्म पणु धणु। दुर्लभ
छे। आ प्रथम दृष्टान्त छे येना उपर आ संग्रह श्लोक छे।

भुक्तं स्वादुरसं द्विजेन भवने श्रीब्रह्मदत्तस्य यत् ।
क्षेत्रेऽस्मिन् भरतेऽखिले प्रतिगृहे भुक्त्वा पुनस्तद्गृहे ॥
जातं तस्य यथा मनोऽभिलषितं तद्भोजनं दुर्लभं ।
संसारे भ्रमतः पुनर्नरभवो जन्तोस्तथा दुर्लभः ॥ १ ॥

आ श्लोकमां आ कथाने। सार षताववामां आवेव छे। अर्थात् न रीते
प्राह्मणुने यकवतीं।ना धरे येकवार उत्तम भीरनुं लोवन करीने ते प्राह्मणुने

अथ द्वितीयः पाशकदृष्टान्तः प्रोच्यते—

पाशको घृतोपकरणविशेषः, स एव दृष्टान्तः—पाशकदृष्टान्तः, स चैवम्—
गोहृद्देशे चणकनामके ग्रामे बहु शीलव्रतगुणव्रतविरमणप्रत्याख्यानपौषधोपवास
आदि श्रावकधर्म पालयन् चणकनामको ब्राह्मण आसीत् । स वज्रसदोरुसमुखवह्निकः
सन्नुभयकालं सामायिकप्रतिक्रमणं कुर्वन्नासीत् । अन्यदा कदाचित् तस्य गृहे सुव्रत-
कर उस ब्राह्मण को उसी घरपर पुनः भोजन करने की अभिलाषा हुई-
परन्तु उसकी पूर्ति होनी बड़ी ही मुश्किल थी क्योंकि जब तक उनके
साम्राज्यभर के घरों का वारा वह समाप्त नहीं कर लेता तब तक
उसको पुनः चक्रवर्ती के घर का नंबर प्राप्त नहीं हो सकता । इसी
प्रकार इस संसार में भ्रमण करने वाले इस जीव को पुनः नरभव
मिलना बड़ा दुर्लभ है । यह प्रथम चोल्लकदृष्टान्त हुआ ॥ १ ॥

अब दूसरा पाशकदृष्टान्त कहते हैं—

जुआ खेलने का जो उपकरण विशेष होता है जिसको हिन्दी में
पासा कहते हैं उसका नाम पाशक है । उसका दृष्टान्त इस प्रकार है—

गोहृद्देशस्थ चणक नाम के ग्राम में बहु शील व्रत गुण अर्थात् व्रत-
प्राणातिपातादिविरमण, प्रत्याख्यान-पौषधोपवास आदि श्रावकधर्म
को पालन करने वाला चणक नाम का एक ब्राह्मण रहता था । यह
दोनों काल मुख पर डोरे से मुखपत्ति बांधकर सामायिक एवं प्रति-
क्रमण किया करता था । एक दिन की बात है कि उसके घर पर एक

अकवर्तिने त्यां भीरनुं लोअन इरीथी करवानी छिछा जगी परंतु तेनी अे छिछा
पूछूं थर्छ शकी नडी. डेभके, अेना साआअ्यलरनां धरेनो वारे ते पूछूं न
करी वे त्यां सुधी तेने इरी अकवर्तीने त्यां भीर भावा भाटे जवानो वारे प्राप्त
थतो न डते. अे प्रकारे आ संसारमां जमलु करवावाणा आ लवने पुनः मनुष्य
अवतार भजवे मडा दुर्लभ छे. आ प्रथम अौदलक दृष्टांत पतावेळ छे.

इवे भीलुं पाशकदृष्टांत कडेवामां आवे छे—

जुगार जेखवामां जेने उपयोग करवामां आवे छे तेने पासा कडे छे.
तेनुं नाम पाशक छे. तेनुं दृष्टांत आ प्रकारनुं छे.—

गोदल देशमां अलुक नामना गाममां धणा ज शील व्रत शुषु संपन्न अने
व्रत प्राणातिपातादि विरमलु प्रत्याख्यान पौषध उपवास वगेरथी श्रावक धर्मनुं
पालन करवावाणा अलुक नामने अेक ब्राह्मणु रहेतो डते. अे अन्ने वपत
भोठा उपर टोरा साथेनी सुअवखिका राभीने सामायिक अने प्रतिकमलु करतो
डते. अेक दिवसनी बात छे के, तेने घेर सुव्रत नामना अेक सु

नामा मुनिर्भिक्षार्थं समागतः । तदा चणकब्राह्मणस्य दन्तसहितः पुत्रो जातः ।
वालकं मुनेः समीपमानीयाऽब्रवीत्—‘भदन्त ! अयं दन्तसहितो जातः, किमस्य फलं
भविष्यति ’ । मुनिः प्राह—अयं दन्तसहितः समुत्पन्नस्तस्मादयं राजा भविष्यति ।
चणको मुनेर्वचनं निशम्य चिन्तयति—अयं राजा भूत्वा नरकं यास्यति । इत्येवं
त्रिचिन्त्य वालकस्य दन्तान् घृष्टवान् ।

पुनरेकदा कालान्तरे सुव्रतमुनिश्चणकस्य गृहे समागतः, ततश्चणकब्राह्मणो
मुनिं प्राह—भदन्त ! अस्य वालकस्य दन्ता घृष्टाः । मुनिर्वदति—दन्तेषु घृष्टेषु
वालकोऽयं राजा न स्यात्, किं तु सर्वाधिकारसंपन्नः सचिवो भविष्यति । चणकेन

सुव्रत नाम के मुनिराज भिक्षा के लिये आये । उस समय उस ब्राह्मण
के यहां दांत सहित एक पुत्र उत्पन्न हुआ था । चणक ने उस वालक
को मुनि के समीप लाकर कहा—भदन्त ! यह वालक दांतसहित उत्प-
न्न हुआ है इसका क्या फल होना चाहिये सो कृपा कर कहिये ।
सुनकर मुनिराज ने कहा—यह जो दांतोंसहित उत्पन्न हुआ है उसका
यह फल है कि यह राजा होगा । चणक ने मुनि के वचन सुनकर
विचार किया कि यदि यह राजा होगा तो दुर्गति का भागी हो
जायगा इसलिये उसने उसके दांतों को घिस दिया ।

कालान्तर में वे ही सुव्रतमुनि एक दिन चणक के घर पर पुनः
पधारे । मुनिराज को आये देखकर चणक ने उनसे कहा—भदन्त ! इस
वालक के दांतों को मैंने घिस दिया है । चणक की बात सुनकर
मुनिराज ने कहा—दांतों को घिसे जाने से यद्यपि यह वालक राजा नहीं
हो सकेगा तो भी राजा जैसा होगा, अर्थात् राजा का सर्वाधिकार

भाटे आया. ते वभते अे प्राह्मणने घेर जन्म वभते दांत सहित अेक पुत्र जन्मये।
डतो, यषुक अे भाणकने मुनि पासे लध आये अने कहुं, लदंत ! आ
भाणक दांत साथे उत्पन्न थये छे. अेतुं शुं इण डोपुं लेध अे ? सांभणी
मुनिराजे कहुं डे, दांत सडीत उत्पन्न थयेल आ भाणकनुं इण अे छे डे, ते
रान्ण थये. यषुके मुनिनुं वचन सांभणीने मनमां विचार कर्ये डे, ने आ भाणक
रान्ण थये तो दुर्गति बोणवणार भनशे. आथी तेण्ण ते भाणकना दांत घसीनाय्या.

वभत जतां ते सुव्रत मुनि अेक दिवस यषुकने त्यां इरीथी पधार्था.
मुनिराजने आवेला लेधने यषुके तेभने कहुं डे लदंत ! में आं भाणकना
दांतोने घसी नाय्या छे. यषुकनी वात सांभणीने मुनिराजे कहुं,—दांतोना घसी
नाय्याथी ले डे ते रान्ण लदं न भनी शके तो यषु ते रान्ण जेवो थये. अर्थात्

તસ્ય વાલકસ્ય 'ચાગક્ય' इति नाम कृतम् । स चतुर्दश विद्या अधीतवान् ।
तस्य यौवने वयसि विवाहः कारितः ।

चाणक्यस्य श्वशुरो धनाढ्य आसीत् । कदाचित् तस्य गृहे पुत्रस्य परिणयो-
त्सवः संजातः । तद् वृत्तं विदित्वा चाणक्यस्य भार्या पितुर्भवनं गता । सा गच्छ-
न्ती पतिमत्रोचत्-भवताऽपि तत्रागन्तव्यम् । चाणक्यो वदति-अहं निर्धनोऽस्मि,
स धनाढ्योऽस्ति, स ममादरं न करिष्यति, मां निर्धनं मत्वा तेन नाहं निमन्त्रितः,

સંપન્ન પ્રધાન વનેગા । ચાણક ને ઉસ વાલક કા નામ ચાણક્ય રચા ।
ચાણક્ય ને ૧૪ ચૌદહ વિદ્યાઈ પઢી । પઢકર જવ ચાણક્ય યોગ્યતા
સંપન્ન હો ગયા તવ યુવા હોને પર પિતાને હસકા વિવાહ કર દિયા ।

ચાણક્ય કા શ્વશુરપક્ષ ધનસંપન્ન થા । કિસી એક સમય ચાણક્ય
કે સસુરાલ મેં વિવાહ હોનેવાલા થા । ચાણક્ય કી ભાર્યા કો જવ યહ
વૃત્તાન્ત જ્ઞાત હુઆ તો વહ વિવાહ મેં સંમિલિત હોને કે લિયે પતિગૃહ
સે અપને પિતા કે ઘર આઈ । જિસ સમય યહ પતિગૃહ સે પિતૃગૃહ
આઈ થી તવ હસને અપને પતિ ચાણક્ય સે ચલતે ૨ યહ કહા થા કિ
આપ મી સંમિલિત હોને કે લિયે વહાં આવેં । ચાણક્ય ને ઉસકે
પ્રત્યુત્તર મેં ઉસસે કહા કિ મેં નિર્ધન હું-વે ધનિક હું વહાં વિના
ધુલાયે આને પર મેરા કોઈ આદર નહીં હોગા । યહી કારણ હૈ કિ
સસુરને મુજ્જે વિવાહકા આમંત્રણ તક મી નહીં મેજા હૈ । ચાણક્ય કી યહ

રાજાને સર્વ અધિકાર સંપન્ન એવો સર્વાધિકારી પ્રધાન બનશે. ચણકે એ
બાણકનું નામ ચાણક્ય રાખ્યું. ચાણક્યે ચૌદ વિદ્યાને અભ્યાસ કર્યો. આ પછી
તે વિદ્યાથી સંપન્ન બની ગયો અને યોગ્ય વયે પહોંચ્યો ત્યારે તેના પિતાએ
તેનો વિવાહ કરી દીધો.

ચાણક્યનો શ્વસુરપક્ષ ધન સંપન્ન હતો. કોઈ એક સમય ચાણક્યના
શ્વસુરપક્ષમાં લગ્ન પ્રસંગ હતો. ચાણક્યની પત્નિએ ત્યારે આ હકીકત
બાણી ત્યારે તે લગ્ન પ્રસંગમાં સામેલ થવા માટે પતિને ત્યાંથી નીકળી પોતાના
પિતાના ઘેર આવી. જે સમય તે પોતાના પતિને ત્યાંથી નીકળેલી ત્યારે તેણે
પોતાના પતિ ચાણક્યને પણ લગ્ન પ્રસંગમાં આવવાનું કહેલું. જેના પ્રત્યુ-
ત્તરમાં ચાણક્યે બાણાવેલું કે, હું નિર્ધન છું એ ધનવાન છે. ત્યાં બોલાવ્યા
વગર બવાથી મારો યોગ્ય આદર ન પણ થાય અને મારી નિર્ધન અવસ્થા એ પણ
એક કારણ છે કે જેને લઈ મને લગ્નનું આમંત્રણ પણ આપવામાં આવેલ નથી.

चाणक्ये नैवमुक्ता भार्या पुनस्तत्राऽऽगन्तुं प्रति प्रार्थितवती । ततः स्वभार्यानुरो-
 रोधेन चाणक्योऽपि पथात् तत्र गतः । ग्रामाद् वहिः क्वचिद् वृक्षतले चाणक्यः
 स्थित्वा श्वशुरं प्रति संदेशं प्रेषयति । श्वश्रूः श्वशुरश्च चाणक्यं प्रति तदुत्तरं दत्तवन्तौ-
 त्वया दिवसेऽत्र नागन्तव्यम्, रात्रौ भवनस्य पथाद्भागवतिना मार्गेणागन्तव्यम् ।
 चाणक्यस्तच्छ्रुत्वा तथैव रात्रौ गतः । श्वश्रूः श्वशुरश्च भवनस्याधस्तनभूमिकायां
 चाणक्यं भोजयतः । अग्रान् सम्वन्धिनस्तु भवनोपरितनभूमिकायाम् । श्वश्रूश्चा-
 णक्याय शुष्कं रुक्षं भोजनीयं परिवेषयति, अन्येभ्यस्तु विविधानि मिष्टानानि ।

यात सुनकर उसकी भार्या ने पुनः उनसे यही प्रार्थना की कि आप इस
 यात का विचार न कर वहां अवश्य आवें । भार्या के इस प्रकार के
 अनुरोध करने पर चाणक्य भी पीछे से वहां गया । उसने श्वशुर-
 गृह में पहुँच ने के पहिले बाहिर ही किसी वृक्ष के नीचे ठहर कर श्वशुर
 के पास अपने आनेका समाचार भेजा । सास ससुर ने चाणक्य के प्रति
 उत्तररूप संदेश भेजा कि आप आये बहुत अच्छा किया परन्तु आप यहां
 दिनमें नआवें, रात्रिमें आवें, सो भी मकान के पीछे के मार्ग से आवें
 -साम्हनेके मार्ग से नहीं । चाणक्यने ऐसा ही किया । वे रात्रिमें श्वशुरगृह
 पर पहुँचे । सास और श्वशुर न चाणक्य को भोंयरेमें बैठाकर भोजन कराया।
 बाकीजो और संबधीजन थे उन सबको मकान की छतपर बैठाकर भोजन
 कराया । चाणक्य के लिये सासुजी ने जो भोजन परोसा था वह इक-
 दम बिलकुल शुष्क एवं रुक्ष था । दूसरे महेमानों के लिये जो भोजन
 परोसा गया था वह विविध प्रकार के मिष्टान्तों से युक्त था । चाणक्य

याण्ड्यनुं आ वचन सांभणी तेनी पतिन्ने ऐवी प्रार्थना करी के, तमे आवी वातने।
 विचार न करतां लग्नमां अर्द्धी आवे। पतिना आवा आग्रहने वक्ष णनी पाछ-
 णधी याण्ड्य लग्न प्रसंगमां साभेल थवा त्यां गया. ऐले सासराने त्यां पडेयतां
 पडेलां गामनी लागेणे कोष्ठ ऐक वृक्ष नीचे शेकाधने सासराने पोताना आववाना
 अणर भोक्तया. सासु ससराने तेना आववाना समाचार नाली तेने इडेवराव्युं के,
 तमे आव्या ते हीक कथुं. परंतु तमे द्विवसना भागमां अडिं आवथो नडी. रातना
 वणते अने ते पक्षु मकानना पाछला लागमां थधने आवणे. याण्ड्ये ऐम न
 कथुं. ते रातना वणते सासराने घेर पडेय्या. सासु ससराने तेने मकानना
 लोयतणीथे जेसाडीने लोव्न कराव्युं. न्यारे णाकीना मडेमानेने ऐक साथे सभा-
 शेडमां उपरना भाणे लोव्न कराव्युं. याण्ड्यने आपवामां आवेल लोव्न
 पक्षु साव निरस अने शुष्क इतुं. न्यारे णीन मडेमानेने स्वादिष्ट मिष्ट

एवमपमानितो भूत्वा सभार्यथाणक्यः स्वगृहं समागतः । तदा चाणक्येन चिन्तितम्—श्वशुरेण मम निर्धनत्वादपमानः कृतः । इति विचिन्त्य धनमर्जयितुं चाणक्यः पाटलीपुत्रनगरे नन्दनाम्नो नृपस्य समीपे योगवेपेण गतः । पूर्वाह्ने राज्यकार्यालये प्रविष्टः, तदा तस्य दासी कार्यालयं समार्जयन्ती पश्यति—चाणक्यः सिंहासने तुम्बीपात्रं स्वासनं च स्थापयति । नन्दनृपस्य भृत्याश्चाणक्यं तिरस्कृत्य बहिर्निःसारयन्ति । तदा चाणक्येन प्रतिज्ञा कृता—नन्दनृपस्य राज्यं समूलं नाशयिष्यामि ।

अपना इस प्रकार का वहां निरादर देख कर भार्या को साथ में लेकर अपने घर पर वापिस आ गया। आकर उसने विचार किया कि श्वशुर ने जो मेरा निरादर किया है उसका कारण मेरी यह निर्धनता है, अतः धन कमाने का प्रयत्न करना चाहिये। इस प्रकार विचार करने के बाद यह धन कमाने के लिये पाटलीपुत्र नगर में नन्द नाम के राजा के पास योगी का वेप धारण कर पहुँचा। पूर्वाह्न अर्थात् दिन के पूर्व भाग में चाणक्य ने कचहरी में प्रवेश किया, एक उस कचहरी की दासी ने जो उस समय उस कचहरी को झाड़ रही थी चाणक्य को देखा, चाणक्य ने वहाँ एक ओर सिंहासन के ऊपर अपना तुम्बीपात्र और आसन रख दिया। नन्द राजा के नौकरों ने यह देखकर चाणक्य को धक्का देकर एवं तिरस्कार कर के वहाँ से बाहिर निकाल दिया। चाणक्य ने इस अपमान से क्रुद्ध होकर वहीं पर यह प्रतिज्ञा की, कि मैं इस नन्दनृप के राज्य का समूल विनाश कर दूंगा। इस प्रकार कह

लोचन नभाड्युं. आणुक्ये आ प्रकारनी पोताना प्रत्येनी वर्तुं क् नोर्धने पोतानी पत्तिने लर्धने. पोताने घेर पाछा कुर्या. घेर आवीने तेष्ते मनभां जेवे। विचार कुर्ये के, सासुससराजे भाइं ने अपमान कथुं तेतुं कारणु भारी निर्धनता न छे. आर्थी धन कभावानो भारे प्रयत्न करवे। नोर्धजे. आ प्रभाजे विचार कुर्या पछी ते धन कभावा भाटे पाटलीपुत्र नगरभां नंद राजनी पासो योगीने वेश धारणु करी पडोंची गया. द्विसना पडेलो प्रहरभां आणुक्ये राजकचेरीभां प्रवेश कुर्यो. जे वजते राजकचेरीनी दासी कचेरीने साक्षुइ करी रडी डती. तेष्ते आणुक्यने जेया. आणुक्ये त्यां जेक सिंहासन उपर पोतातुं तुंभीपात्र जने आसन राभी दीधुं. नंद राजना नोकरो जे आ जेर्धने आणुक्यने धक्का भारीने तथा तेने तिरस्कार करीने अडार कोठी सुकथा. आणुक्ये आ अपमानधीं क्रोधित थर्धने त्यांज प्रतिज्ञा करी के, डवे डुं आ नंदराजना राजने सभूजो विनाश करी नाभीश. आ प्रभाजे निर्णय करीने ते

ततश्चाणक्यस्तस्य नन्दनृपस्य राज्ये भ्रमन् मयूरनामके लघुग्रामे समागतः, तत्र मयूरपालको निवसति । तत्र मयूरपालकस्य सगर्भायां भार्यायाश्चन्द्रपानदोहदो जातः। सा दोहदालाभेन कृशशरीरा खिन्ना संजाता । संन्यासिवेषेण चाणक्यस्तत्र भ्रमन् मयूरपालकस्य गृहे समायातः। दोहदालाभेन मयूरपालकस्य भार्या कृशां दीनां विलोक्य चाणक्यो ब्रूते—भो ! मयूरपालक ! अहमस्या दोहदं पूरयिष्यामि, यदाऽस्याः पुत्रोऽष्टवर्षवयस्कः स्यात् तदा मम शिष्यत्वेन भवता समर्पणीयः । मयूरपालकेन तद् वचनं स्वीकृतम् । ततश्चाणक्यः सच्छिद्रं मण्डपं कारयित्वा तस्पो-

कर वह चाणक्य वहां से चलकर नंद राजा के राज्य के ही अन्तर्गत मयूर नाम के किसी एक छोटे से गांव में चला गया । वहां एक मयूरों को पालने वाला मयूरपालक नामक पुरुष रहता था । उसकी भार्या गर्भवती थी ! उसे चन्द्र को पीने का दोहला उत्पन्न हुआ था । दोहले की पूर्ति न हो सकने के कारण शरीर से वह विशेष कृश हो गई थी । तथा चिन्तित भी रहती थी । चाणक्य भी इधर उधर घूमता घामता मयूरपालक के घर आया । मयूरपालक की पत्नी को ज्यों ही उसने दोहद की पूर्ति न हो सकने के कारण कृश-शरीर एवं खेदखिन्न जाना तो कहने लगा हे मयूरपालक ! तुम्हारी धर्मपत्नी के चन्द्र पीने के दोहद की पूर्ति मैं कर सकता हूं यदि तुम हमारी इस शर्त को कबूल कर सको तो, शर्त यह है कि जब इसका बालक आठ वर्ष का हो जाय तो तुम उसे मुझे दे देना, मैं उसे अपना शिष्य बना लूंगा । मयूरपालक ने चाणक्य की शर्त स्वीकार करली ।

आण्ड्य नंदराजाना राज्यानी अंदर आवेला मयूर नामना एक नानकडा गाममां आव्या गया. त्यां भोरने पाणवावाणो मयूरपालक नामनो एक पुत्र रडेतो। डतो. तेनी स्त्री गर्भवती डती. तेने अंद्र पिवाणी ध्रिष्ठा उत्पन्न थर्ष डती. ते ध्रिष्ठा परिपूर्णुं न थर्ष शकवाना कारणे ते शरीरे अत्यंत दुग्णी थर्ष गर्ष तथा चिंता-तुर रडेती डती. आण्ड्य पणु आम तेम इरतां इरतां मयूरपालकने घेर आवी पडेण्य्या. मयूरपालकनी स्त्रीने तेनी ध्रिष्ठा परिपूर्णुं न थर्ष शकवाना कारणे शरीरे दुग्णी तेमअ चिंतातुर देणीने ते कडेवा लाग्या, मयूरपालक तारी पत्तिने अंद्र पीवानी जे ध्रिष्ठा थर्ष छे ते हुं परिपूर्णुं करी शकुं तेम छुं पणु तुं भारी एक शरतने कणुत करे तो अ. शर्त जे छे के, न्यारे तारी पत्तिने अवतारनार पाणक आठ वर्षनो थाय त्यारे ते पाणक भने सोंपी देवो पडशे. हुं तेने भारी शिष्य जनावीश. मयूरपालके आण्ड्यनी शर्तनो स्वीकार कर्यो. आण्ड्ये

ध्वंभागे तच्छिद्राच्छादनार्थं कंचिदंके पुरुषं गुप्तरीत्या नियोज्य छिद्रस्याधस्तात्
सितामिश्रणयःपूर्णं स्थालं स्थापितवान् । अथ मध्यरात्रे तच्छिद्रद्वारेण तत्र स्थाले
चन्द्रप्रतिविम्बसंपाते सति मयूरपालभार्यां तत्र नोत्वा चाणक्यः स्थालगतं चन्द्र-
प्रतिविम्बं प्रदर्शयन् प्राह—अयं चन्द्रः पीयताम् । ततः सा चन्द्रप्रतिविम्बसहितं
स्थालमुत्थाप्य दुग्धं पिबति, तस्मिन्नेव समये छिद्रसमीपस्थः पुरुषः ग्रनैः शनै-
श्छिद्रमाच्छादयति ।

चाणक्य ने अब उसके चन्द्र पीने के दोहले की पूर्ति करने का प्रयत्न
प्रारंभ कर दिया । इसमें उसने एक सछिद्र मंडप तयार करवाया ।
उसके उर्ध्वभाग में गुप्तरिति से एक पुरुष की उसने नियुक्ति की,
जो उस छिद्र के पास जाकर बैठ गया । जहां छिद्र था ठीक उसी के
नीचे उसने मिश्री से मिश्रित कर एक दूध का भरा हुआ थाल रख
दिया । मध्यरात्रि में उस छिद्र के द्वारा उस थाल में चन्द्र का प्रतिबिंब
ज्यों ही पड़ा कि चाणक्य ने मयूरपालक की भार्या को वहां बुलवा
लिया । उसके आनेपर चाणक्य ने उसको उस थाल में रहे हुए प्रति-
विम्ब को दिखलाया और कहने लगा देखो यह रहा चन्द्र, पी जाओ ।
उस ने उसी समय चन्द्रप्रतिविम्बसहित थाल को उठा कर उसमें का
दूध पीना प्रारंभ कर दिया । ज्यों २ यह दूध पीती जाती थी त्यों २
छिद्र के पास बैठा हुआ वह मंडप के ऊपर रहा व्यक्ति उस छिद्र को
धीरे २ बन्द करता जाता था । जब वह पूरा दूध पी चुकी तो उसने भी
उस छिद्र को पूरा बन्द कर दिया । इस प्रकार चाणक्य ने उसके चन्द्र

इसे चंद्र पीवानी मयूरपालकनी पत्निनी ध्वंभाने परिपूर्ण करवाना प्रयत्ननी शङ्-
आत करी दीधी, आमां तेष्ते ऐक छिद्रवाणे। मंडप तैयार कराव्ये। तेना उर्ध्व-
भागमां शुभं रीते ऐक पुरुषने ते छिद्र पासि भेसाव्ये। न्यां छिद्र इतुं त्यां
अशभर तेनी नीचे साकरथी मिश्रीत करेव दूधथी लरेवो। ऐक थाण राभ्ये।
मध्यरात्रीये आ छिद्र द्वारा ते थाणमां चंद्रनुं न्यारे प्रतिबिंब पश्यु त्यारे
आवृत्त्ये मयूरपालकनी स्त्रीने त्यां भेसावी। अने थाणीमां देभाता चंद्रने
अतावी कथुं के, ल्ये आ रह्यो चंद्र। पी जाव्ये। तेष्ठीये ते वभते चंद्रना
प्रतिबिंबवाणा थाणने उठावीने तेमांनुं दूध पीवानी शङ्आत करी। नेम
नेम ते दूध पीती गध तेम तेम ते छिद्रनी पासि जेठेवो तेमअ ते मंडपनी
ऊपर धुपाध रडेव ते व्यक्तिये ते छिद्रने धीरे धीरे बंध करवा मांस्युं।
न्यारे तेष्ठीये अधुं दूध पी लीधुं त्यारे तेष्ते पञ्च छिद्रने पुरेपुर् अंध करी दीधुं।

एवं चाणक्येन तस्याश्चन्द्रपानदोहदः सफलीकृतः । तदनु चाणक्यो रसायनादिभिर्धनार्जनं कर्तुं प्रवृत्तः । इतश्च समये प्राप्ते सति संपूर्णदोहदायास्तस्याः पुत्रो जातः । जनन्या दोहदपूर्तिसमये चन्द्रस्य गोपनात् पित्रा तस्य बालकस्य 'चन्द्रगुप्त' इति नाम कृतम् । चन्द्रगुप्तः क्रीडनकाले बालकैः सह राजनीतिं प्रदर्शयन् क्रीडति । यदा चन्द्रगुप्तोऽष्टवर्षवयस्को जातः, तदा पुनश्चाणक्यस्तत्रागतः । ततो विदितस्वजन्मवृत्तान्तोऽसौ चन्द्रगुप्तश्चाणक्यं प्राह—भो मुनीन्द्र ! भवान् स्वेन सह मां नयतु । चाणक्यो वदति—त्वत्पिता त्वां प्रतिपेत्स्यति । चन्द्रगुप्तो वदति—मम पिता

पीने के दोहले की पूर्ति करने में सफलता प्राप्त करली । वह भी अपने दोहले की पूर्ति से विशेष प्रसन्न हुई । इसके बाद चाणक्य ने रासायनिक क्रिया द्वारा धन का उपार्जन करना प्रारंभ कर दिया । इस तरफ जय पूरे नौ मास व्यतीत हो चुके तब दोहले की पूर्ति से प्रसन्न हुई उस मयूरपालक की पत्नी के पुत्र उत्पन्न हुआ । माता की गर्भावस्था में चंद्र को गोपन करने से पिताने उसका नाम चन्द्रगुप्त रखा । धीरे २ जय चन्द्रगुप्त बालकों के साथ क्रीडा करने के लायक हो गया तब वह उनके साथ खेलते समय राजनीति का प्रदर्शन करने लगा । जिस समय चन्द्रगुप्त की अवस्था आठ वर्ष की हो गई उस समय चाणक्य मयूरपालक के घर पर आया चाणक्य ने चंद्रगुप्त को उसकी उत्पत्ति के वृत्तान्त से विदित कर दिया । चन्द्रगुप्त को जय अपनी उत्पत्ति का वृत्तान्त विदित हो चुका तो उसने चाणक्य से कहा हे महात्मा ! आप मुझे अपने ही साथ ले चलिये । चाणक्य ने कहा तुम्हारा पिता

आ प्रभाञ्जे आञ्जये तेषीनी चंद्र पीवानी धञ्छाने परिपूर्णुं करवाभां सङ्गता मेणवी पोतानी धञ्छानी परिपूर्णुं ताथी मयूरपालकनी पत्नि भूष प्रसन्नताभां रडेवा लागी. आ पछी आञ्जये रसायणीक क्रियाञ्जे द्वारा धन मेणववानी शङ्खात करी दीधी. आ तरङ्ग न्यारे पुरा नव भङ्गिना वीती गया त्यारे पोतानी धञ्छानी पूर्तिथी प्रसन्न थयेली ते मयूरपालकनी पत्निञ्जे पुत्रने जन्म आभ्ये. पिताञ्जे तेनुं नाम चंद्रगुप्त राञ्जुं. समय जतां न्यारे चंद्रगुप्त आणकेनी साथे रभवाने लायक थये त्यारे तेञ्जे आणकेनी साथे जेवती वषते राजनीतिनुं शिक्षण आपवा मांङ्जुं. यथा समये न्यारे चंद्रगुप्त आठ वर्षने थये त्यारे अञ्जय मयूरपालकने घेर आवी पडोअ्या. आञ्जये चंद्रगुप्तने तेना जन्म काणतुं वृत्तांत कहुं चंद्रगुप्ते पोताना जन्मकाणतुं वृत्तांत न्दणुं त्यारे तेञ्जे आञ्जयेने कहुं, हे महात्मा ! आप भने आपनी साथे लड न्दो, आञ्जये

પૂર્વમેવ માં દત્તવાન્ । તતશ્ચાણક્યચન્દ્રગુપ્તં સહ નીત્વા પ્રાહ-તવ રાજ્યલાભં કરિ-
 પ્યામિ । તતશ્ચાણક્યો વનં ગત્વા રસાયનેન દ્રવ્યં નિર્માય તત્પભાનાત્ સેનાં સંગૃ-
 હીતવાન્ । સૈનિકૈઃ સહ સ પાટલિપુત્રનગરે નન્દનૃપતિમાક્રમતે સ્મ । નન્દનૃપતિશ્ચા-
 ણક્યસ્ય પરાજયં કૃતવાન્ । ચન્દ્રગુપ્તેન સહ ચાણક્યસ્તતોડપ્સૃત્ય ક્વચિત્ પ્રચ્છન્નો
 ભૂત્વા સ્થિતઃ । નન્દનૃપતેઃ કશ્ચિત્ સૈનિકોડશ્વમારુદ્ય ચાણક્યં ગ્રહીતુમાગતઃ । ચાણ-
 ક્યસ્તં વિલોક્ય ચિન્તયતિ-અયં તુ માં ગ્રહીતું પ્રત્યાસન્નો ભવતિ, વાલકોડયં ચન્દ્ર-

મેરે સાથ ચલને મેં તુમ્હેં નિપેધ કરેગા । ચન્દ્રગુપ્ત ને કહા-નિપેધ કયો
 કરેગા ? પિતા ને તો મુજ્હે આપકો પહિલે સે હી દે દિયા હૈ । ચન્દ્રગુપ્ત કી
 યાત સુનકર ચાણક્ય ને ચન્દ્રગુપ્ત કો અપને સાથ લે લિયા । કહા-ચલો
 મૈ તુમ્હેં રાજ્ય કી પ્રાપ્તિ કરાઝંગા । ચન્દ્રગુપ્ત કો સાથ લેકર ચાણક્ય
 વન મેં પહુંચા । રસાયન સે ઉસને વહાં દ્રવ્ય કો સૂચ ઇકદ્વા કિયા ઔર
 ઉસકે પ્રભાવ સે ઉસને વહીં પર સેના કા સંગ્રહ કરના ખી પ્રારંભ કર
 દિયા । જવ સેના અચ્છી તરહ સંગૃહીત હો ચુકી તો ચાણક્ય ને સેના
 કો લેકર પાટલિપુત્ર મેં જાકર રાજા નન્દ કે ડુપર આક્રમણ કર દિયા ।
 રાજા નન્દ ને ચાણક્ય કો પરાજિત કર વહાં સે નિકાલ દિયા । ચાણ-
 ક્ય ખી પરાસ્ત હોકર ચન્દ્રગુપ્ત કો સાથ લેકર વહાં સે ચલા ગયા
 ઔર કિસી જગહ ગુપ્તરૂપ સે જાકર છિપ ગયા । રાજા નન્દ ને ચાણક્ય
 કો પકડ ને કે લિયે ડુસકે પીછે ઇક અપના ઘુડસવાર ખેજા । ઘુડ-
 સવાર કો અપના પીછા કરતે હુપ દેખકર ચાણક્ય ને વિચાર કિયા

કહું કે તારા પિતા તને મારી સાથે મોકલવામાં અડચણ ઉભી કરશે ચંદ્રગુપ્તે
 કહું અડચણ શા માટે કરશે ? પિતાએ તો પહેલેથી જ મને આપને સુપ્રત કરેલ
 છે. ચંદ્રગુપ્તની વાત સાંભળીને ચાણક્યે ચંદ્રગુપ્તને પોતાની સાથે લઈ લીધો
 અને કહું, ચાલો ! હું તમને રાજ્યની પ્રાપ્તિ કરાવીશ. ચંદ્રગુપ્તને લઈ ચાણક્ય
 વનમાં ગયા, રસાયણ પ્રયોગથી ત્યાં તેણે ખૂબ દ્રવ્ય એકઠું કર્યું અને એની
 સહાયથી સેના એકઠી કરવાનો આરંભ કરી લીધો. સેનાને લઈને પાટલીપુત્ર
 પહોંચી નંદરાજ ઉપર આક્રમણ કર્યું. યુદ્ધમાં રાજા નંદે ચાણક્યનો પરાજય કરીને
 ભગાડી મૂક્યા, ચાણક્ય હારી જવાથી ચંદ્રગુપ્તને સાથે લઈ ત્યાંથી ચાલી
 નીકળ્યા અને કોઈ છુપા સ્થળે જઈ રહેવા લાગ્યા. રાજા નંદે ચાણક્યને
 પકડવા માટે તેની પાછળ એક ઘોડેસ્વારને મોકલ્યો. ઘોડેસ્વાર પોતાનો પીછો
 પકડી રહ્યો છે. બહાની ચાણક્ય વિચાર કરવા લાગ્યા કે તે પકડવા

गुप्तः कथं मया सह गन्तुं प्रभवति । इत्येवं विचार्य स तत्र सरस्तटे वृद्धं धात्रमानस्य रजकस्यान्तिके गत्वा वदति—अरे रजक ! नन्दनृपतेः सैनिकास्त्वां हन्तुमागच्छन्ति । रजकस्तद्वचनं श्रुत्वा तद्गयात् ततः पलायितः । चाणक्यस्तानि वस्त्राणि धात्रमानस्त्र संस्थितः, चन्द्रगुप्तोऽपि तत्रैवान्यभागे जले प्रविश्य प्रच्छन्नोऽभवत् । अश्वारूढोऽसौ नन्दराजपुरुषस्तत्रागत्य पृच्छति—अरे रजक ! चाणक्यः क्व गतः ? रजकवेपथारी चाणक्यः प्राह—जले प्रविष्टः ततोऽसौ नन्दराजपुरुषस्तस्य कृतरज-

कि यह तो मुझे पकड़ने के लिये बिलकुल ही पास आ चुका है, यह चन्द्रगुप्त बालक है मेरे साथ दौड़ सकता नहीं है अतः एक उपाय करना चाहिये कि जो साहूने के तालाव पर धोबी कपडे धो रहा है उसको किसी वहाने से वहां से भगा देना चाहिये और स्वयं को उसका काम करने लग जाना चाहिये तभी रक्षा हो सकती है। ऐसा विचार कर चाणक्य उस धोबी के पास आकर कहने लगा कि अरे धोबी ! तूं देखता नहीं है राजा के सैनिक तुझे मारने के लिये आ रहे हैं । धोबी ने ज्यों ही चाणक्य की इस बात को सुना कि वह वहां से एकदम भग गया । चाणक्य ने अपनी नीति में सफलता प्राप्त की और उस धोबी के जो कपडे वहां धोने के लिए पडे हुए थे उन्हें धोना प्रारंभ कर दिया । चन्द्रगुप्त भी वहीं पर एक किनारे पानी में जाकर छुप गया । वह आश्वारूढ राजपुरुष जो इनके पीछे पड़ा हुआ था वहां पर आ पहुँचा । उसने आते ही उससे पूछा कि अरे धोबी ! चाणक्य कहाँ गया है । रजकवेपथारी चाणक्य ने कहा कि वह अभी जल में घुस

भाटे तद्दैन नष्टक आवी गयेल छे. आ बाणक चंद्रगुप्त भारी साथे होडी शक्ये नही. भाटे अने कांछक उपाय करये जेधये. सामा तणाव उपर धोबी कपडां धोई रह्यो छे, तेमने केध पणु अडाने त्यांथी लगाडी हे अने पोते ते काम करवा लागी नय के जेथी रक्षा थाय आवे विचार करीने आणुक्य ते धोबीनी पास जेधने कडेवा लाग्या, के छे धोबी । तुं जेतो नथी के रावने सैनिक तने मारवा भाटे आवी रह्यो छे ! धोबी आणुक्यनी आ वात सांलणीने त्यांथी अकहम लागवा लाग्यो. आणुक्ये पोतानी नीतिने भजेली सङ्गता जेधने ते धोबीनां जे कपडां त्यां धोवा भाटे पड्यां हुतां तेने धोवा लाग्यो. चंद्रगुप्त पणु किनारा उपर पाणीभां जेधने छुपाई गयो. अटलाभां चेकी घोडेस्वार राजपुरुष जे तेमनी पाछण पड्यो हुतो ते त्यां आवी पड्यो. तेछे आवीने पूछयुं, अरे धोबी ! आणुक्य कध आणुक्ये गयो ? धोबी वेशधारी आणुक्ये कहुं के, ते डमल्यां ज पाणीभां उतरी गयो छे. तेनी

पूर्वमेव मां दत्तवान् । ततश्चाणक्यश्चन्द्रगुप्तं सह नीत्वा प्राह—तव राज्यलाभं करिष्यामि । ततश्चाणक्यो वनं गत्वा रसायनेन द्रव्यं निर्माय तत्प्रभावात् सेनां संगृहीतवान् । सैनिकैः सह स पाटलिपुत्रनगरे नन्दनृपतिमाक्रमते स्म । नन्दनृपतिश्चाणक्यस्य पराजयं कृतवान् । चन्द्रगुप्तेन सह चाणक्यस्ततोऽपसृत्य क्वचित् प्रच्छन्नो भूत्वा स्थितः । नन्दनृपतेः कश्चित् सैनिकोऽश्वमारुह्य चाणक्यं ग्रहीतुमागतः । चाणक्यस्तं विलोक्य चिन्तयति—अयं तु मां ग्रहीतुं प्रत्यासन्नो भवति, वालकोऽयं चन्द्र-

मेरे साथ चलने में तुम्हें निषेध करेगा । चन्द्रगुप्त ने कहा—निषेध क्यों करेगा ? पिता ने तो मुझे आपको पहिले से ही दे दिया है । चंद्रगुप्त की बात सुनकर चाणक्य ने चंद्रगुप्त को अपने साथ ले लिया । कहा—चलो मैं तुम्हें राज्य की प्राप्ति कराऊंगा । चन्द्रगुप्त को साथ लेकर चाणक्य वन में पहुँचा । रसायन से उसने वहाँ द्रव्य को खूब इकट्ठा किया और उसके प्रभाव से उसने वहाँ पर सेना का संग्रह करना भी प्रारंभ कर दिया । जब सेना अच्छी तरह संगृहीत हो चुकी तो चाणक्य ने सेना को लेकर पाटलिपुत्र में जाकर राजा नन्द के ऊपर आक्रमण कर दिया । राजा नन्द ने चाणक्य को पराजित कर वहाँ से निकाल दिया । चाणक्य भी परास्त होकर चन्द्रगुप्त को साथ लेकर वहाँ से चला गया और किसी जगह गुप्तरूप से जाकर छिप गया । राजा नन्द ने चाणक्य को पकड़ने के लिये उसके पीछे एक अपना घुड़सवार भेजा । घुड़सवार को अपना पीछा करते हुए देखकर चाणक्य ने विचार किया

कहूँ के तारा पिता तने मारी साथे भोडलवामां अडयण्ण उभी करशे अंद्रगुप्ते कहूँ अडयण्ण शा माटे करशे ? पिताअे तो पडेवेथी ज मने आपने सुप्रत करेव छे. अंद्रगुप्तनी वात सांलणीने आण्णुअे अंद्रगुप्तने पोतानी साथे लछं दीधो अने कहूँ, आलो । हुं तमने राज्जनी प्राप्ति करवीश. अंद्रगुप्तने लछं आण्णुअ वनमां गया. रसायण्ण प्रयोगथी त्यां तेह्णु भूअ द्रव्य अेकहुं कथुं अने अेनी सहायथी सेना अेकडी करवानो आरंभ करी दीधो. सेनाने लछंने पाटलीपुत्र पडोअी नंहराअ उपर आकमण्ण कथुं. युअमां राज नंटे आण्णुअनेो पराअ्ज करीने लग्गाडी भूकथा. आण्णुअ हारी जवाथी अंद्रगुप्तने साथे लछं त्यांथी आली नीकल्या अने केअ छुपा स्थणे जछं रडेवा लाग्या. राज नंटे आण्णुअने पकडवा माटे तेनी पाछण अेक घोडेस्वारने भोडलेथो. घोडेस्वार पोतानो पीछे पकडी रह्यो छे. लछणीने आण्णुअ विचार करवा लाग्या के ते मने पकडवा

वृद्धा प्राह—भोजने राज्यग्रहणे च प्रथमं प्रान्तभागे हस्तो निक्षेपणीयः । एतद्वचनं श्रुत्वा चाणक्यो हिमगिरिं गतवान् । तत्र पर्वतनामको नृपतिरासीत् । तस्य समीपं गत्वा चाणक्योऽवदत्—पाटलिपुत्रनगरे नन्दनृपतिना सह युद्धे भवान् सहयोगं दद्यात् तर्हि तदर्थं राज्यं भवते दास्यामि । तदा पर्वतेन तस्य वचनं स्वीकृतम् ।

ततश्चाणक्यः पर्वतश्च चन्द्रगुप्तेन सह पाटलिपुत्रनगरमागत्य नन्दं विजित्य राज्यं गृहीतवन्तौ । तदा नन्दनृपतिर्धर्मद्वारेण निःसर्तुं प्रार्थयति, चन्द्रगुप्तेन तत्प्रार्थनं स्वीकृत्य कथितम्—एकस्मिन् रथे यावद् द्रव्यं समाविशति, तावद् द्रव्यमुपादाय

ने क्या अनुचित क्रिया है ? । वृद्धा ने कहा भोजन एवं राज्यग्रहण में प्रथम प्रान्तभाग में हाथ डालना चाहिये । वृद्धा के वचन सुनकर चाणक्य हिमगिरि जाकर वहाँ के राजा पर्वत से मिला । उससे चाणक्य ने कहा पाटलिपुत्र नगर में नन्दनृपति के साथ यदि युद्ध में आप हमें सहयोग प्रदान करें तो वहाँ का आधा राज्य हम आपको देंगे । चाणक्य की बात सुनकर पर्वत ने युद्ध में सहायता देना कबूल कर लिया ।

चंद्रगुप्त को लेकर चाणक्य और पर्वत दोनों मिल कर पाटलिपुत्र आये । वहाँ नन्द राजा के ऊपर इन्होंने धावा बोल दिया । नन्द को परास्त कर उसका राज्य ले लिया । उस समय नन्द ने धर्मद्वार से निकलने के लिये प्रार्थना की । चंद्रगुप्त ने उसकी प्रार्थना को स्वीकार करते हुए कहा—एक रथ में जितना द्रव्य हो सकता हो उतने द्रव्य को

अनुचित काम क्युं छे ? वृद्धाये कछुं के, लोअन अने राज्य अडछुमां प्रथम अेक छेडेथी हाथ नाअवेने लेछेअे. वृद्धातुं आ वचन सांभणी तेने नमन करीने आछुक्य त्यांथी आलता थया. आ पछी आछुक्ये हिमगिरि न्छ त्यांना राज पर्वतनी मुलाकात वीधी अने तेने कछुं के, पाटलीपुत्रना राज नदनी सामे अमे युद्ध करवा छेछीये छीअे. अे युद्धमां तमे ले अभने साथ आपथे। ते ते छेतेवा रान्यने। अरथे। लाग तमने आपवामां आवथे. आछुक्यनी आ वात सांभणी पर्वत राजअे युद्धमां सहायता देवातुं कछुल क्युं.

अंद्रगुप्तेने लछेने आछुक्य अने पर्वत अनेअे पाटलीपुत्र छपर आकभछु क्युं. सामसामी लडाई थर्र जेमां राज नद डारी गया, तेना रान्यने। कभजे अंद्र-गुप्ते सांभणी वीधी. आ समये नद धर्मद्वारथी निकणवा भाटे प्रार्थना करी. अंद्र-गुप्ते तेनी प्रार्थनाने स्वीकार करीने कछुं के, अेक रथमां जेठलुं द्रव्य समाध

कवेपस्य चाणक्यस्य हस्ते स्य खड्गं इयं च दत्त्वा जले प्रविशति । तस्मिन्नेव समये रजकरूपश्चाणक्यस्तेन खट्वेन तस्य नन्दराजपुरुषस्य शिरश्चिच्छेद ।

ततश्चाणक्यश्चन्द्रगुप्तेन सह स्थानान्तरं गतः । कस्मिंश्चिद् ग्रामे भिक्षार्थं गृहस्थगृहे गत्वा पश्यति—एका वृद्धा स्थालके पायसं परिविप्य बालकाय भोक्तुं ददाति । तेन बालकेन स्थालकस्य मध्यभागे हस्तो निक्षिप्तः । प्रतप्तपायसस्पर्शेन तस्य हस्तो दग्धः, तेनासौ क्रन्दति । वृद्धा वदति—रे मूढ ! त्वं चाणक्य इव किमाचरसि । एतद् वचनं श्रुत्वा वृद्धां चाणक्यः माह—मातः ! किमनुचितं चाणक्येन कृतम्,

गया है । सवार ने ज्यों ही यह बात सुनी तो वह अपने घोड़े से नीचे उतर पड़ा और कहने लगा कि तुम मेरे इस घोड़े को और तलवार को पकड़े रहो, जबतक मैं जलमें घुस कर उसे पकड़ लाता हूँ । इतने में ही चाणक्य ने उसकी ही तलवार से उसको मार दिया ।

चाणक्य वहाँ से चंद्रगुप्त को साथ लेकर किसी दूसरे स्थान पर चला गया । एक समय की बात है कि चाणक्य जब भिक्षा लेने के लिये किसी दूसरे गांव में एक गृहस्थ के घर पर गया हुआ था तब उसने वहाँ देखा कि एक वृद्धा ने धाली में गर्म खीर परोस कर खाने के लिये किसी बालक को दी और उस बालक ने उस गर्म खीर से युक्त धाली के बीचोबीच हाथ डाल दिया सो गर्म खीर के उष्णस्पर्श से उस बालक का हाथ जल गया इससे वह रोने लगा । उसको रोता देखकर वृद्धा ने कहा कि रे मूढ ! तू चाणक्य की तरह क्यों होता जा रहा है । वृद्धा के ये वचन सुनकर चाणक्य ने उससे कहा हे माता ! चाणक्य

आ बात सांभलीने ते पोताना घोडा उपरथी नीचे उतर्यो अने कड़ेवा लाग्यो, मारा आ घोडाने अने तरवारने तमे साथयो त्यांसुधीमां छुं डमछुं न तेने पाष्ठी-मांथी पकडी लावुं छुं । घोडा अने तरवार डायं करीने आणुक्ये तरवारथी चेवा स्वारने भारी नाथ्यो । अने भारीने आणुक्य चंद्रगुप्तने साथे लथं डोर्छ भील स्थणे आल्या गया । अेक समयनी बात छे के न्यारे आणुक्य त्यां स्थिर थर्छ भिक्षा लेवा भाटे डोर्छ भील गाभे अेक गृहस्थने त्यां गया । त्यां ते भिक्षा भाटे पडोस्या, अेन वभते अेक वृद्धा धालीमां गरमा गरम भीर पीरसी आणुकने भवराववानी तैयारी करी रखेव डती । आणुके भीर भावानी उतावणमां ते गरम भीरथी भरदही धालीनी वस्थो वस्थ डायं नाथ्यो । गरम भीरना स्पर्शथी आणुकनेो डायं दान्यो अने रोवा लाग्यो । आ जेध वृद्धाअे ते आणुकने कहुं, के अरे मूढ ! आणुक्यना जेवो तुं केम थतो नाय छे ? वृद्धानां आ वचन सांभली आणुक्ये ते वृद्धाने पछयुं के डे माता ! आणुक्ये कथुं

चाणक्यस्तदा नन्दराज्यस्य द्वौ भागौ कृत्वा पर्वताय चन्द्रगुप्ताय चैकैकं भागं मदत्तवान् । नन्देन स्वभवने विपकन्या स्थापिता । तत्र पर्वतनृपस्तां विचोक्य मोहितो जातः, तस्याः स्पर्शमात्रेण पर्वतनृपो विपाक्रान्तः संजातः । तद्विपापहारार्थं चन्द्रगुप्तः प्रवृत्तः, स चाणक्येन प्रतिषेधितः, तदनन्तरं पर्वतनृपो मृतः । तदा चन्द्रगुप्तस्य राज्यमखण्डं संजातम् ।

अथ नन्दराज्यान्तर्गताः शत्रुलोकाश्चौर्यादिभिरुपद्रवं कुर्वन्ति । चाणक्यश्चौराणां

मंगल है। चक्र के जो नव आरे टूट गये हैं उससे यह सूचित होता है कि नौ पीढ़ी पर्यन्त यह राज्य स्थिर रहेगा। इसके बाद चाणक्य, पर्वत और चंद्रगुप्त राज्यभवन में प्रविष्ट हो गये।

चाणक्य ने उस भिड़े हुए नन्दराज्य के दो भाग किये। एक भाग पर्वत के लिये और दूसरा भाग चन्द्रगुप्त के लिये दिया। नन्द के भवन में एक विपकन्या पाली हुई थी। पर्वत इस कन्या को देखकर उस पर मोहित हो गया। ज्यों ही उसने उसका स्पर्श किया कि उसका समस्त शरीर विप से व्याप्त हो गया। पर्वत के समस्त शरीर में व्याप्त विप को दूर करने के लिये चंद्रगुप्त ने प्रयत्न करना चाहा, परन्तु चाणक्य ने उसे इसके लिये मना कर दिया अतः वह उससे दूर रहने लगा। बाद में पर्वत मर गया। पर्वत के मरते ही चंद्रगुप्त का एकछत्र राज्य हो गया।

राज्य परिवर्तित होने से अब नन्दराज्यान्तर्गत लोकों ने चोरी आदि उपद्रव करना प्रारंभ कर दिया। चाणक्य ने चोरों को दमन

गणरूप नहीं परंतु लारे मंगणरूप छे. यकना जे नव आरा तूटी गया छे जेनाथी जे सूचित थाय छे के, तभारी नव पेढी सुधी आ राज्य अथल अने स्थिर रहेथे. पछी आणुक्य, राज पर्वत अने चंद्रगुप्त भधा राजलवनमां गया.

नंद राजना जे राज्यना आणुक्ये जे लागला पाउया. जेक लाग राज पर्वतने अने जेक चंद्रगुप्तने सुप्रत करवामां आंथे. नंदना राजलवनमां जेक विपकन्या उछेस्वामां आवी हुती. पर्वत जेने जेठ जेना उपर मोहीत जनी गयो. तेजे जे कन्याना शरीरने स्पर्श कर्यो के तुरत ज तेना समस्त शरीरमां विप प्रसरी गयुं. पर्वतना शरीरमां प्रसरी गयेला विपने दूर करवा चंद्रगुप्त तत्पर जंथे. जेज वधते आणुक्ये तेने तेम करतां अटकांथे. आथी तेजे तेम करवुं मांडी पाज्युं. विपना लारे प्रकोपथी पर्वतनुं मृत्यु थयुं. पर्वतना मृत्युने कारहे राज नंदनुं समभ राज्य चंद्रगुप्तना जेक छत्र नीये आवी गयुं.

राज्यनुं परिवर्तन थवाथी राज्यनुं शासन भदलातां डेटलाक बोडोअे चोरी आदि उपद्रवने प्रारंभ करी दीथे. आणुक्ये चोरी आदि उपद्रव करनाराज्ये सामे

भार्यापुत्रादिभिः सह भवान्निःसरतु । नन्देन तथैव कृतम् । तदा रथस्थिता नन्दस्य पुत्री निर्गच्छन्ती चन्द्रगुप्तं सानुरागं पश्यति, तदा नन्दः स्वपुत्रीं प्राह-पुत्रि ! अमीष्टं चेच्चन्द्रगुप्तं वरय । ततोऽसौ नन्दपुत्री चन्द्रगुप्तस्य रथे समारोहति, तदा नव संख्यका रथचक्रस्य अरा भग्नाः । चन्द्रगुप्तस्तद्भङ्गममङ्गलं विज्ञाय नन्दपुत्रीं प्रतिषेधयति । चाणक्यश्चन्द्रगुप्तं वदति-इदं महन्मङ्गलम्, नवसंख्यका अरा भग्ना इति नवपुरुषपर्यन्तं राज्यं स्थास्यति । ततश्चन्द्रगुप्तः पर्यतश्चाणक्यश्च सर्वे राजभवनं प्रविष्टाः ।

लेकर आप अपने स्त्रीपुत्रादिकसहित यहां से चले जायें । चन्द्रगुप्त की आज्ञानुसार नन्द ने वैसा ही किया । जिस समय नन्द राज्य से बाहर होकर बालकचक्रसहित चलने लगा उस समय रथ में बैठी हुई नन्द की पुत्री सुचन्द्रा ने बड़े ही अनुराग से चंद्रगुप्त की ओर देखा । चंद्रगुप्त की ओर अनुराग से देखनेवाली अपनी पुत्री को देखकर नन्द ने कहा कि हे पुत्री ! यदि तेरी इच्छा हो तो तू इस चंद्रगुप्त को बरले । पिता की बात सुनकर पुत्री चंद्रगुप्त के रथ पर जाकर बैठ गई । जिस समय यह उसके रथ पर बैठी उसी समय चंद्रगुप्त के रथ के पहिये के नौ आरे टूट गये । चंद्रगुप्त ने ज्यों ही अपने रथ के पहिये की यह हालत देखी तो उसने इसमें अमंगल माना और नन्द की पुत्री को उस में बैठने से निषेध कर दिया । चाणक्य ने इस बात को देखकर चंद्रगुप्त से कहा कि तुम जिसे अमंगल समझ रहे हो वह बड़ा भारी

शक्रे तेदृष्टं लघं आप आपना स्त्री पुत्रादिकने लघं अडीथी यात्या नव. नंदे अंद्रशुसनी आज्ञानुसार कथुं. ने समये राज. नंद पोताना परिवार सहित राज्य छोडीने नवा लाग्या. ते समये रथमां भेडेल नंदनी पुत्री सुचन्द्राये अंद्रशुसनी सामे भारे अनुरागथी द्रष्टि ईंकी. अंद्रशुस तरश् अनुरागथी भेध रडेल पोतानी पुत्रीने उद्देशीने नंदे कथुं के, डे पुत्रि ! ने तारी धम्भा. डोय तो तूं शुशीथी अंद्रशुसने वरी डे. पितानी आ वात सांलणी सुचंद्रा ते रथमांथी उतरी अंद्रशुसना रथ उपर अही गध. नेवी ते अंद्रशुसना रथ उपर न्छने भेडी तेवा न अंद्रशुसना रथना पधडांना नव आरा तूटी गया. अंद्रशुसे पोताना रथनां पैडांना आ भनाव नेतां तेना मनमां अमंगलनी शंका नगी अने ओथी नंदनी पुत्रीने रथ उपर अठवानी. ना पाडी. आक्षुये आ भेध अंद्रशुसने समज्जये के, तमे नेने अमंगल मानो छे ते अमं-

चाणक्यस्तदा नन्दराज्यस्य द्वौ भागौ कृत्वा पर्वताय चन्द्रगुप्ताय चैकैकं भागं प्रदत्तवान् । नन्देन स्वभवने विपकन्या स्थापिता । तत्र पर्वतनृपस्तां विच्छोक्य मोहितो जातः, तस्याः स्पर्शमात्रेण पर्वतनृपो विपाक्रान्तः संजातः । तद्विषापहारार्थं चन्द्रगुप्तः प्रवृत्तः, स चाणक्येन प्रतिपेधितः, तदनन्तरं पर्वतनृपो मृतः । तदा चन्द्रगुप्तस्य राज्यमखण्डं संजातम् ।

अथ नन्दराज्यान्तर्गताः शत्रुलोकाश्चौर्यादिभिरुपद्रवं कुर्वन्ति । चाणक्यचौराणां

मंगल है। चक्रके जो नव आरे टूट गये हैं उससे यह सूचित होता है कि नौ पीढ़ी पर्यन्त यह राज्य स्थिर रहेगा। इसके बाद चाणक्य, पर्वत और चंद्रगुप्त राज्यभवन में प्रविष्ट हो गये।

चाणक्य ने उस मिले हुए नन्दराज्य के दो भाग किये। एक भाग पर्वत के लिये और दूसरा भाग चन्द्रगुप्त के लिये दिया। नन्द के भवन में एक विपकन्या पाली हुई थी। पर्वत इस कन्या को देखकर उस पर मोहित हो गया। ज्यों ही उसने उसका स्पर्श किया कि उसका समस्त शरीर विष से व्याप्त हो गया। पर्वत के समस्त शरीर में व्याप्त विष को दूर करने के लिये चंद्रगुप्त ने प्रयत्न करना चाहा, परन्तु चाणक्य ने उसे इसके लिये मना कर दिया अतः वह उससे दूर रहने लगा। बाद में पर्वत मर गया। पर्वत के मरते ही चंद्रगुप्त का एकछत्र राज्य हो गया।

राज्य परिवर्तित होने से अब नन्दराज्यान्तर्गत लोकों ने चोरी आदि उपद्रव करना प्रारंभ कर दिया। चाणक्य ने चोरों को दमन

गणश्य नथी परंतु लारे भंगणश्य छे. अकना जे नव आरा तूरी गया छे अनाथी अे सूचित थाय छे के, तभारी नव पेढी सुधी आ राज्य अथल अने स्थिर रहेसे. पछी आखुअ्य, राज पर्वत अने अंद्रगुप्त पथा राजलवनमां गया.

नंद राजना अे राज्यना आखुअ्ये जे लागला पाउथा. अेक लाग राज पर्वतने अने अेक अंद्रगुप्तने सुप्रत करवामां आये. नंदना राजलवनमां अेक विपकन्या छेरेवामां आवी हुती. पर्वत अेने जेध अेना उपर मोडीत अनी गये. तेहे अे कन्याना शरीरने स्पर्श कर्यो के तुरत ज तेना समस्त शरीरमां विष प्रसरी गयुं. पर्वतना शरीरमां प्रसरी गयेला विषने दूर करवा अंद्रगुप्त तत्पर अये. अेज वपते आखुअ्ये तेने तेम करतां अटकाये. आथी तेहे तेम करवुं मांडी पायुं. विषना लारे प्रकोपथी पर्वतनुं मृत्यु थयुं. पर्वतना मृत्युने कारखे राज नंदनुं समअे राज्य अंद्रगुप्तना अेक छत्र नीअे आवी गयुं.

राज्यनुं परिवर्तन थवाथी राज्यनुं शासन अदलातां डेटलाके लोकोअे चोरी आदि उपद्रवने प्रारंभ करी दीये. आखुअ्ये चोरी आदि उपद्रव करनाराअे सामे

दमनार्थं विचिन्तयन् कदाचिद् नगरतो वह्निर्निःसृतः सन् पश्यति-नलदामनामा कुविन्दः पुत्रं मत्कोटकैर्दण्डं दृष्ट्वा कोपाविष्टो भूत्वा तेषां विलमन्वेपयति । चाणक्यस्तथाकुर्वन्तं कुविन्दं दृष्ट्वा पृच्छति-कुविन्द ! किमन्वेपयसि ? कुविन्दः प्राह-मत्पुत्रदंशदायिनां मत्कोटकानां गृहम्, एवं तद्वृत्तं विदित्वा चाणक्यो मनसि विचारयति-योग्योऽयं कुविन्दो वैरनिर्यातनस्य । इति मनसि विचार्य तमेव नगराध्यक्षं कृतवान् ।

एकदा कोशपूरणार्थं चाणक्यः मुवर्णप्राप्तिकामो देवाराधनं कृतवान् । देवः

करने का बहुत कुछ विचार किया पर समझ में नहीं बैठा । एक दिन इसी विषय का विचार करते २ चाणक्य नगर से बाहर जा पहुँचे । पहुँचते ही वहाँ एक नलदाम नामक कुविन्द (जुलाहे) को देखा जो अपने पुत्र को काटने वाले मकोड़ों के विल की तलास करने में बड़े क्रोध से अभिभूत होकर इधर उधर फिर रहा था । चाणक्य ने इस प्रकार से तलाशी करने में प्रयत्न करते हुए देखकर कुविन्द से पूछा कि हे कुविन्द ! कहो क्या दूँड रहे हो ? कुविन्द ने कहा मेरे पुत्र को एक मकोड़े ने काट लिया है सो मैं उसके घर को देख रहा हूँ । इस प्रकार कुविन्द की बात सुनकर चाणक्य ने मन में विचार किया कि यह कुविन्द वैर का बदला लेने में योग्य है । इस प्रकार विचार कर चाणक्य ने उसे नगर का कोतवाल बना दिया ।

एक समय की बात है कि खजाने की पूर्ति करने के निमित्त चाणक्य ने किसी देव की आराधना की । चाणक्य की आराधना से

सप्त ङाथे काम लेवानो तेमज्ज हननो केरडा वीजवानो विचार क्यो. परंतु तेम करवुं अत्यारना संजोगोमां तेने उचितन लाग्युं. ओक द्विपस आञ्ज आण-तनो विचार करतां करतां आणुक्ये नगरनी अहार जता हुता, त्यां रस्तामां ओक स्थणे ओक नलदाम नामना कुविन्द (वणुकर)ने ज्यो. जे पोताना पुत्रने करडनारा म'डोडानुं दर शोधी रह्यो हुतो. तेने आणुक्ये पूछ्युं, कुविन्द शुं शोधी रह्यो छे? वणु जे कोधना आवेशथी अडीं तडीं करी रह्येला कुविन्दे कहुं, मारा पुत्रने ओक म'डोडाओ करडी भाधेल छे, हुं तेना घरने गोती रह्यो छुं. आ प्रकारनी कुविन्दनी वात सांखणी आणुक्ये विचार्युं के, आ माणुस जह्यो लेवामां योग्य छे. आम विचारी तेने समजवी पछीथी आणुक्ये तेने नगरना केटवाणानी जगाओ नीभ्यो.

ओक समयनी वात छे-राज्यना भवताने भरपुर जनाववा आणुक्ये

प्रसन्नो भूत्वा चाणक्याय जयप्रदानं पाशकान् ददौ । तदनन्तरं चाणक्येन दीनारपूर्णस्यालेन सह पाशकान् दत्त्वा कश्चिद् घृतपटुः पुरुषो घृतार्थं नगरे प्रेषितः । दीनारपूर्णं स्थालं पाशकानपि गृहीत्वाऽसौ पुरुषः पुराभ्यन्तरे भ्रमन् वदति—यद्यहं जयामि, तर्हि दीनारमेकं गृह्णामि । यदि मामन्यो जयति, तदा दीनारपूर्णमिदं स्थालं ददामि—इति । ततो वह्नो जना घृतक्रीडार्थं समागताः । सर्वे तेन पुरुषेण पराजिता, तं पाशकहस्तं पुरुषं विजेतुमसमर्था जाताः । यथा तस्य पाशकहस्तपुरुषस्य पराजयो दुर्लभस्तथा संसारे खलु मनुष्यजन्म दुर्लभम् ।

देव प्रसन्न भी हो गया । प्रसन्न होकर देव ने चाणक्य के लिये जय कराने वाले चार पासे वरदानरूप में दिये । इसके बाद चाणक्य ने स्वर्णमुद्रा-सोनामुहर से परिपूर्ण एक थाली को उन पासों के साथर किसी घृतक्रीडा में निपुण पुरुष को देकर उसको नगर में जुआ खेलने के लिये भेजा । सोनामुहरों से पूर्ण थाल को तथा पासों को लेकर वह पुरुष नगर में यह अवाज देते हुए फिरने लगा कि यदि मैं जीत जाता हूँ तो पराजित हुए व्यक्ति से सिर्फ एक ही सोनामुहर लेता हूँ, और यदि हार जाता हूँ तो जीतने वाले को सोनामुहरों से पूर्ण यह थाल का थाल दे देता हूँ । उसकी इस घोषणा को सुनकर अनेक जन घृतक्रीडा के लिये आने लगे । जुआ खेलना प्रारंभ हो गया । उस पुरुष ने सब को जीत लिया, इस को कोई भी पराजित न कर सका । सारांश—जिस प्रकार इस देवप्रदत्त पासों के प्रभाव से उस पुरुष का पराजित होना

कैाँ देवनी आराधना करी. आणुक्यनी आराधनाथी प्रसन्न थई देवे आणुक्यने विन्यथ अपावनार अेवा आर पासा तेने आभ्या. आ पछी आणुक्ये वरदानना इपमां भजेला अे पासानो प्रयोग करवानुं विचारी अेक थाणमां सुवर्ण मुद्राअो लरी घृतक्रीडांमां निपुषु अेवा अेक पुइपने पासा साथे ते थाण आपी नगरीमां जुगार रमवा भेकहथे. सोनामडोरथी लरेल थाण तथा पासा लथ ते पुइप नगरमां घोषणा करतो इरवा लाग्ये. के जे कैाँ भने दावमां डरावे तो सोनामडोरथी लरेल आ थाण आपी हँ अने सामे माणुस डारे तो तेले भने इकत अेक न सोनामडोर आपवी. अेनी आपी घोषणा सांलणीने अनेक माणुसे जुगार रमवा आववा लाग्या. जुगार रमवानो प्रारंल थई युकथे. तेले रमवा आवनार हरेकने छती लीधा पषु तेने कैाँ पराजित करी शक्युं नही. सारांश—देवना आपेला प्रसाइइप पासाना प्रभावथी जेवी रीते अे

दमनार्थं विचिन्तयन् कदाचिद् नगरतो वर्दिनिःसृतः सन् पश्यति-नलदामनामा कुविन्दः पुत्रं मत्कोटकैर्दष्टं दृष्ट्वा कोपाविष्टो भूत्वा तेषां विलमन्वेपयति । चाणक्यस्तथाकुर्वन्तं कुविन्दं दृष्ट्वा पृच्छति-कुविन्द ! किमन्वेपयसि ? कुविन्दः प्राह-मत्पुत्रदंशदायिनां मत्कोटकानां गृहम्, एवं तद्वृत्तं विदित्वा चाणक्यो मनसि विचारयति-योग्योऽयं कुविन्दो वैरिनिर्यातनस्य । इति मनसि विचार्य तमेव नगराध्यक्षं कृतवान् ।

एकदा कोशपूरणार्थं चाणक्यः मुवर्णमाप्तिकामो देवाराधनं कृतवान् । देवः

करने का बहुत कुछ विचार किया पर समझ में नहीं बैठा । एक दिन इसी विषय का विचार करते २ चाणक्य नगर से याहर जा पहुँचे । पहुँचते ही वहाँ एक नलदाम नामक कुविन्द (जुलाहे) को देखा जो अपने पुत्र को काटने वाले मकोड़ों के बिल की तलास करने में बड़े क्रोध से अभिभूत होकर इधर उधर फिर रहा था । चाणक्य ने इस प्रकार से तलाशी करने में प्रयत्न करते हुए देखकर कुविन्द से पूछा कि हे कुविन्द ! कहो क्या दूँढ रहे हो ? कुविन्द ने कहा मेरे पुत्र को एक मकोड़े ने काट लिया है सो मैं उसके घर को देख रहा हूँ । इस प्रकार कुविन्द की बात सुनकर चाणक्य ने मन में विचार किया कि यह कुविन्द वैर का बदला लेने में योग्य है । इस प्रकार विचार कर चाणक्य ने उसे नगर का कोतवाल बना दिया ।

एक समय की बात है कि खजाने की पूर्ति करने के निमित्त चाणक्य ने किसी देव की आराधना की । चाणक्य की आराधना से

सप्त ङाथे काम लेवानो तेमञ्ज इमननो डेरडो वीञ्जवानो विचार कर्यो, परंतु तेम करवुं अत्यारना सन्नेगोभां तेने उचित न लाग्युं. ओक द्विवस आञ्ज आभ-तने विचार करतां करतां आणुक्य नगरनी अडार जता हुता, त्यां रस्ताभां ओक स्थणे ओक नलदाम नामना कुविन्द (वणुकर)ने ज्येथो. जे घोताना पुत्रने करडनारा म'कोडातुं दर थोधी रह्यो हुतो. तेने आणुक्ये पूछ्युं, कुविन्द थुं थोधी रह्यो छे ? धण्ण जे कोधना आवेशथी अडीं तडीं करी रह्येला कुविन्दे कहुं, मारा पुत्रने ओक म'कोडाओ करडी जाधेल छे, हुं तेना घरने जोती रह्यो छुं. आ प्रकारनी कुविन्दनी वात सांलणी आणुक्ये विचार्युं के, आ माणुस अहवो लेवामां योग्य छे. आम विचारी तेने समजवी पछीथी आणुक्ये तेने नगरना कोतवाणानी जगाओ नीभ्यो.

ओक समयनी वात छे-राज्यना भजनाने शरपुर अनाववा आणुक्ये

व्रीहि-कद्दु-कोद्रव-मकुष्ठका-ढकी-वह्ल-कुलत्थ-शण-चीनक-ममूरा-तसी-कलम्बपष्टिका-मक्का-वर्जरीत्यादिवहुभेदभिन्नान् संपूर्णभरतक्षेत्रमध्यगान् धान्य-राशीन् कोऽपि देवः स्वशक्त्या संमील्याभ्रंलिहं तत्पुञ्जं कुर्यात् तत्र प्रस्थैकपरिमित-सर्पं निक्षिप्य सर्वं धान्यं संमिश्रयेत्, तदनन्तरं जराजर्जरां विगलन्नेत्रां कम्पमा-नगात्रामेकां वृद्धां तान् सर्पान् धान्यराशिम्यः कणशः पृथक् कृत्य प्रस्थं पूरयितुं समादिशेत् तदा तस्यास्तत्पृथक्करणं यथा दुष्करं भवेत् तथा मनुष्यभवात् प्रच्यु-तस्य प्रमादिनः पुनर्मनुष्यजन्म दुर्लभमिति ॥

उडद, तिल, राजमाप (चौला), मटर, मोंठ, वाजरा आदि समस्त धान्यों को वो देवें और वे जव अपने समय पर निरूपद्रवरूप से पककर तैयार हो जावें तब कोई देव इस समस्त धान्यराशि की उड़ावनी अर्थात्-तुप साफ-करके एक बहुत अधिक ऊँची जो मानो आकाश को भी स्पर्श करती हो ऐसी ढेरी लगा दे। फिर उसमें एक प्रस्थप्रमाण सर्पप मिलाकर किसी वृद्धा को कि जिसे कम दीखता हो तथा शरीर भी जिसका कंपित हो रहा हो यह आदेश दे कि तू इस ढेरी में उस प्रस्थप्रमाण सर्पप को अलग २ छांट दे। तो जैसे ढेरी में उस प्रस्थप्रमाण सर्पप का एक २ कण करके छांटना बडा मुश्किल है, उसी प्रकार मनुष्य भव के छूट जाने पर पुनः उसका मिलना जीव को बड़ा दुर्लभ है।

योष्ठा, धर्त, यष्ठा, भग, अडद, तल, योष्ठा, भड, कण्ठी, पाञ्जरा, लुवार वगैरे समस्त धान्येनां वावेतर करवाना काममां लागी नय छे. ववायेल ते समथ धान्य तेना योष्य समथे उपद्रवरडीत पाडीने तैयार थर्त नय त्यारे. केर्त देव ये समस्त धान्यराशीनी उडावखी अर्थात् तुल साक्ष करीने अेक भूष अधिक उँचो मानो के आकाशने पष्प स्पर्श करी नय अेवडा मोटो अेक ढगला करी दे, पष्ठी तेमां अेक प्रस्थप्रमाष्प सरसव मेणवीने केर्त वृद्धा के जेने आष्पुं हेभातुं छोय, तथा शरीर पष्प जेतुं कंपतुं छोय तेने कडे के, तुं आ ढगला मांथी अे प्रमाष्पप्रस्थ सरसवने जोणी जोणीने अलग पाडी आपतो जेम अे ढगलामांथी अे प्रस्थप्रमाष्प सरसवने अेकेक कष्प करीने लुवा पाडवा धष्पुं मुश्केल छे. छतां पष्प ते.शकथ भने तो पष्प मनुष्यभव पुरो थतां इरीथी मनुष्य भव पाभवे आत्माने धष्पुं न दुर्लभ छे.

अत्र संग्रहः श्लोकः—(शार्दूल चिक्रीडितवृत्ताम्)

देवाराधनलब्धपाशकवरान् स्थालं च रत्नैर्भृतम्,
चाणक्येन वितीर्य कोऽपि पुरुषः स्वीये पुरे प्रेषितः।
सर्वेषां स च तत्पुराधिवसतां जातो यथा दुर्जयः,
संसारे भ्रमतः पुनर्नरभवो जन्तोस्तथा दुर्लभः ॥

इति द्वितीयः पाशकदृष्टान्तः ॥ २ ॥

अथ तृतीयो धान्यदृष्टान्तः प्रोच्यते—

भरतक्षेत्रे द्वात्रिंशत्सहस्रदेशसमन्वितेऽनेकग्रामनगरपत्तनादिसहिते पञ्चस्त
वृष्टौ सत्यां कृपिकर्मदक्षैः कृपीवलैः सर्वधान्यबीजेषूपेतु समुत्पन्नान् निरुपद्रवं
निष्पन्नान् शालि-गोधूम-चणक-मुद्ग-माप-तिलाणुक-राजमाप-कलाय-यव-

दुर्लभ वना उसी प्रकार इस संसार में यह मनुष्यजन्म बड़ा दुर्लभ है।

संग्रह श्लोक—

देवाराधनलब्धपाशकवरान् स्थालं च रत्नैर्भृतम्,
चाणक्येन वितीर्य कोऽपि पुरुषः स्वीये पुरे प्रेषितः।
सर्वेषां स च तत्पुराधिवसतां जातो यथा दुर्जयः,
संसारे भ्रमतः पुनर्नरभवो जन्तोस्तथा दुर्लभः ॥ २ ॥

यह दूसरा पाशकदृष्टान्त हुआ ॥ २ ॥

तृतीय धान्यदृष्टान्त इस प्रकार है—अनेक ग्राम, नगर, पत्तन
आदि से सहित इस ३२ वतीस हजार देशवाले भरतक्षेत्र में वृष्टि के
होने पर कृपि कर्म में दक्ष किसान लोग शालि, गोधूम, चणक, मुद्ग,

पुष्पने पशुत बनाववे। मडाहुर्लभ इतुं जेवीज रीते आ संसारमां आ
मनुष्य जन्म मडाहुर्लभ छे। संग्रह श्लोक—

देवाराधनलब्धपाशकवरान्, स्थालं च रत्नैर्भृतम्,
चाणक्येन वितीर्य कोऽपि पुरुषः स्वीये पुरे प्रेषितः।
सर्वेषां स च तत्पुराधिवसतां जातो यथा दुर्जयः,
संसारे भ्रमतः पुनर्नरभवो जन्तोस्तथा दुर्लभः ॥ २ ॥

आ भीण्डुं पाशकदृष्टान्तः ययुः ॥ २ ॥

भीण्डुं धान्यदृष्टान्त आ प्रकारतुं छे।

अनेक ग्राम, नगर, जंगल वगेरे हरेक स्थणे उर इतर देशवाला आ
भरतक्षेत्रमां परसाह वरसतां जेतीना काममां रन्था पन्थ जेडुती

ग्रीहि-कद्द्रु-कोद्रव-मकुष्ठका-ढकी-वह-कुलत्थ-शण-चीनक-ममूरा-तसी-कलम्बपण्डिका-मका-वर्जरीत्यादिवहुभेदभिन्नान् संपूर्णभरतक्षेत्रमध्यगान् धान्य-राशीन् कौऽपि देवः स्वशक्त्या संमीलयाभ्रंलिहं तत्पुञ्जं कुर्यात् तत्र प्रस्थैकपरिमित-सर्पं निक्षिप्य सर्वं धान्यं संमिश्रयेत्, तदनन्तरं जराजर्जरां विगलन्नेत्रां कम्पमा-नगावामेकां वृद्धां तान् सर्पान् धान्यराशिम्यः कणशः पृथक् कृत्य प्रस्थं पूरयितुं समादिशेत् तदा तस्यास्तत्पृथक्करणं यथा दुष्करं भवेत् तथा मनुष्यभवात् प्रच्यु-तस्य प्रमादिनः पुनर्मनुष्यजन्म दुर्लभमिति ॥

उडद, तिल, राजमाप (चौला), मटर, मोंठ, वाजरा आदि समस्त धान्यों को दो देवों और वे जव अपने समय पर निरूपद्रवरूप से पककर तैयार हो जावें तब कोई देव इस समस्त धान्यराशि की उड़ावनी अर्थात्-तुप साफ-करके एक बहुत अधिक ऊँची जो मानो आकाश को भी स्पर्श करती हो ऐसी ढेरी लगा दे। फिर उसमें एक प्रस्थप्रमाण सर्पप मिलाकर किसी वृद्धा को कि जिसे कम दीखता हो तथा शरीर भी जिसका कंपित हो रहा हो यह आदेश दे कि तू इस ढेरी में उस प्रस्थप्रमाण सर्पप को अलग २ छांट दे। तो जैसे ढेरी में उस प्रस्थप्रमाण सर्पप का एक २ कण करके छांटना बड़ा मुश्किल है, उसी प्रकार मनुष्य भव के छूट जाने पर पुनः उसका मिलना जीव को बड़ा दुर्लभ है।

योग्या, घडं, यष्या, मग, अडद, तल, योग्या, मठ, कणधी, आन्देश, ज्वार वगेरे समस्त धान्योंनां वावेतर करवाना काममां लागी न्य छे. ववायेव ते समथ धान्य तेना योग्य समये उपद्रवर्द्धांत पाकीने तैयार थर्ध न्य त्यारे कौर्ध देव अे समस्त धान्यराशीनी उडावणी अर्थात् तुल साङ् करीने अेक भूष अधिक उँचो मानो के आकाशने पषु स्पर्श करी न्य अेवडा भोटो अेक ढगला करी दे, पछी तेमां अेक प्रस्थप्रमाण सरसव मेणवीने कौर्ध वृद्धा के जेने आधुं देणातुं डोय, तथा शरीर पषु जेतुं कं'पतुं डोय तेने कडे के, तुं आ ढगला मांथी अे प्रमाणप्रस्थ सरसवने जोगी जोगीने अलग पाडी आपतो जेम अे ढगलामांथी अे प्रस्थप्रमाण सरसवने अेकेक कषु करीने ज्वहा पाडवा धषुं मुश्केव छे छतां पषु ते थक्य जने तो पषु मनुष्यभव पुरो थतां इरीधी मनुष्य भव पाभये आत्माने धषुा अे दुर्लभ छे.

अथ संग्रहः श्लोकः—(शार्दूल विक्रीडितवृत्तम्)

देवाराधनलब्धपाशकवरान् स्थालं च रत्नैर्भृतम्,
चाणक्येन वितीर्य कोऽपि पुरुषः स्वीये पुरे प्रेषितः ।
सर्वेषां स च तत्पुराधिवसतां जातो यथा दुर्जयः,
संसारे भ्रमतः पुनर्नरभवो जन्तोस्तथा दुर्लभः ॥

इति द्वितीयः पाशकदृष्टान्तः ॥ २ ॥

अथ तृतीयो धान्यदृष्टान्तः प्रोच्यते—

भरतक्षेत्रे द्वात्रिंशत्सहस्रदेशसमन्वितेऽनेकग्रामनगरपत्तनादिसहिते मशस्त
वृष्टौ सत्यां कृपिकर्मदक्षैः कृषीन्तैः सर्वधान्यबीजेभूतेषु समुत्पन्नान् निरुपद्रवं
निष्पन्नान् शालि-गोधूम-चणक-मुद्ग-माप-तिलाणुक-राजमाप-कलाय-यव-

दुर्लभ वना उसी प्रकार इस संसार में यह मनुष्यजन्म बड़ा दुर्लभ है ।

संग्रह श्लोक—

देवाराधनलब्धपाशकवरान् स्थालं च रत्नैर्भृतम्,
चाणक्येन वितीर्य कोऽपि पुरुषः स्वीये पुरे प्रेषितः ।
सर्वेषां स च तत्पुराधिवसतां जातो यथा दुर्जयः,
संसारे भ्रमतः पुनर्नरभवो जन्तोस्तथा दुर्लभः ॥ २ ॥

यह दूसरा पाशकदृष्टान्त हुआ ॥ २ ॥

तृतीय धान्यदृष्टान्त इस प्रकार है—अनेक ग्राम, नगर, पत्तन
आदि से सहित इस ३२ वनीस हजार देशवाले भरतक्षेत्र में वृष्टि के
होने पर कृषि कर्म में दक्ष किसान लोग शालि, गोधूम, चणक, मुद्ग,

पुश्पने पराश्रित भनाववे। मडादुर्लभ इतुं येवीञ् शीते आ संसारभां आ
मनुष्य जन्म मडादुर्लभ छे. संग्रह श्लोक—

देवाराधनलब्धपाशकवरान्, स्थालं च रत्नैर्भृतम्,
चाणक्येन वितीर्य कोऽपि पुरुषः स्वीये पुरे प्रेषितः ।
सर्वेषां स च तत्पुराधिवसतां जातो यथा दुर्जयः,
संसारे भ्रमतः पुनर्नरभवो जन्तोस्तथा दुर्लभः ॥ २ ॥

आ णीन्तु पाशकदृष्टान्तः यथुं ॥ २ ॥

त्रीन्तु धान्यदृष्टान्त आ प्रकारतुं छे.

अनेक ग्राम, नगर, जंगल वगेरे हरेक स्थणे उर हुनर देशवाजा आ
भरतक्षेत्रभां परसाठ वरसतां जेतीना कामभां २२या पन्थ जेडुती

अत्र संग्रहः—(शार्दूल विक्रीडितवृत्तम्)
 स्तम्भानां हि सहस्रमष्टसहितं प्रत्येकमष्टोत्तरं ।
 कोणानां च सहस्रमेपु जयति द्यूते पितु र्यः सुतः ।
 साम्राज्यं लभते स, तस्य विजयो द्यूते यथा दुर्लभः ।
 संसारे भ्रमतः पुनर्नरभवो जन्तो स्तथा दुर्लभः ॥ २ ॥
 इति चतुर्थो द्यूतदृष्टान्तः ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमो रत्नदृष्टान्तः—

धनसमृद्धे पुरे रत्नकोटिप्रभुर्धनदनामा वणिक् प्रतिवसति स भूमौ रत्नानि
 निखन्य तद्गुपरि पर्यङ्कं निधाय शयनं करोति । स विश्वासाभावेन पुत्रानपि
 तानि न प्रदर्शयति । स्वधनानुरूपं वेषं भवनादिकं च न करोति, व्यापारकरणे
 धनानि हस्तादपगतानि भविष्यन्तीति बुद्ध्या व्यापारमपि न करोति ।

संग्रह श्लोक—

स्तम्भानां हि सहस्रमष्टसहितं प्रत्येकमष्टोत्तरं,
 कोणानां च सहस्रमेपु जयति द्यूते पितु र्यः सुतः ।
 साम्राज्यं लभते स तस्य विजयो द्यूते यथा दुर्लभः
 संसारे भ्रमतः पुनर्नरभवो जन्तोस्तथा दुर्लभः ॥ ४ ॥
 यह चौथा द्यूतदृष्टान्त है ॥ ४ ॥

पांचवा रत्न दृष्टान्त इस प्रकार है—धनसमृद्ध नामका एक
 नगर था । उसमें एक करोड रत्नों का मालिक धनद नामका वणिक्
 रहता था । वह जमीन में गडे हुए रत्नों के ऊपर पलंग विछाकर
 सोया करता था । उसको अपने पुत्रों तक का भी विश्वास नहीं था

संग्रह श्लोक—स्तम्भानां हि सहस्रमष्टसहितं प्रत्येकमष्टोत्तरं,
 कोणानां च सहस्रमेपु जयति द्यूते पितु र्यः सुतः ॥
 साम्राज्यं लभते स तस्य विजयो ते यथा दुर्लभः
 संसारे भ्रमतः पुनर्नरभवो जन्तोस्तथा दुर्लभः ॥ ४ ॥
 आ येशुं द्यूतदृष्टान्त छे ॥ ४ ॥

पांचमुं रत्नदृष्टान्त आ प्रकारनुं छे—

धनसमृद्ध नामनुं अेक नगर छतुं, तेमां अेक करोड रत्नानो मालिक अेवो
 धनद नामनो वणिक् रहैतो छतो. ते जमीनमां दाटी राखेला रत्नो उपर पलंग
 पाथरीने सुध रहैतो छतो. तेने पोताना पुत्रानो पखु विश्वास न छतो, तेथी

ચરસહસ્રવારં વિજિતે સતિ તનૈવ ક્રમેણ સર્વે સ્તમ્ભા વિજિતા ભવેયુઃ, તત્રાપ્યષ્ટો-
 ત્તરસહસ્રવારવિજયકરણે દૈવાત્ તન્મધ્યે પરાજયઃ સ્યાત્ તદા સર્વે વિજિતાઃ
 કોળા અવિજિતાઃ ભવન્તિ, સઠ્ઠદપિ વ્રહ્મચર્યમન્ત્રે સર્વં મહાવ્રતમિવ, અતઃ
 પુનરાદિત એવ સર્વે કોળા વિજેતવ્યાઃ, એવં ત્યમપિ કુરુ । ઇતિ પિતૃવચનં શ્રુત્વા
 વસુમિત્રચિન્તયતિ-ઘૂતાદેવ રાજ્યં લભ્યં પુનઃ કિમર્થે પિતરં ઇન્મિ, ઇતિ વિચાર્ય
 રાજ્ઞા સહ ઘૂતક્રીડાર્યાં પ્રવૃત્તઃ, તથાપિ જયો દુર્લભો જાતઃ તસ્ય વમૃમિત્રસ્યૈતત્
 કાર્યં યથા દુષ્કરં, તથા મનુષ્યત્વમપિ દુર્લભમ્ ।

इनके जो प्रत्येक के एक हजार आठ १००८ कोने हैं उन कोनों में से
 एक २ कोने को एक हजार आठ १००८ बार जीत जाता है । इसी क्रम
 से ये समस्त खंभे जय जीत लिये जाते हैं तब जाकर वह विजयी
 कहलाता है । यदि सब कोने जीत भी लिये जायें और एक भी कोना
 यदि जीता न जा सके तो जीते हुए भी सब कोने नहीं जीते समझे
 जा सकते हैं, और उन सब को पुनः जीतने के लिये घूत का आरंभ
 करना पड़ता है । जैसे एक बार भी यदि गृहीत ब्रह्मचर्य खंडित हो
 जाता है तो समस्त महाव्रत खंडित माना जाता है । इस प्रकार पिता
 के वचन को सुनकर वसुमित्र ने विचार किया कि जब घूत क्रीडा में
 जीत होने से राज्य मिलता है तो फिर पिता के मार ने से क्या लाभ ।
 इस प्रकार विचार कर पिता के साथ जुआ खेलने में प्रवृत्त हो गया ।
 परन्तु उसे विजय पूर्वोक्त प्रकार से जैसे दुष्कर बनी उसी प्रकार यह
 मनुष्यभवं भी पुनः प्राप्त होना प्राणी के लिये दुर्लभ जानना चाहिये ।

એ અને એ પ્રત્યેકને એકહજારઆઠ૧૦૦૮ ખુણા છે એ ખુણામાંથી એક એક ખુણાને
 એકહજારઆઠ ૧૦૦૮વાર જીતવામાં આવે છે. આ ક્રમથી તે સઘળા ધાંભલા ન્યારે
 જીતવામાં આવે ત્યારે તે વિજયી કહેવાય છે. કદાચ બધા ખુણા જીતી લેવામાં આવે
 અને એકાદ ખુણા જીતવામાં બાકી રહે તો બધા ખુણા ન જીતાયેલા જ મનાય
 છે. અને એ બધાને જીતવા માટે ફરીથી જુગાર રમવો પડે છે. જેમ એક
 વાર પણ ગ્રહણ કરેલ બ્રહ્મચર્ય ખંડિત થઈ જાય તો સમસ્ત મહાવ્રત ખંડિત
 માનવામાં આવે છે. આ પ્રકારનાં પિતાનાં વચન સાંભળીને વસુમિત્રે વિચાર
 કર્યો કે, ન્યારે જુગાર રમવામાં જીત થવાથીજ જે રાજ્ય મળતું હોય તો પિતાને
 મારવાથી લાભ શું થવાનો ? આ પ્રકારનો વિચાર કરી વસુમિત્ર પિતાની સાથેજુગાર
 ખેલવામાં પ્રવૃત્ત બન્યો. પરંતુ તેને ઉપરોક્ત પ્રકારથી વિજય મેળવવો દુષ્કર
 બન્યો તેવીજ રીતે આ મનુષ્યભવ પુનઃ પ્રાપ્ત થવો પ્રાણી માટે દુર્લભ બાબતે બોધ્યો

अत्र संग्रहः—(शार्दूल विक्रीडितवृत्तम्)

स्तम्भानां हि सहस्रमष्टसहितं प्रत्येकमष्टोत्तरं ।
 कोणानां च सहस्रमेपु जयति द्यूते पितु र्यः सुतः ।
 साम्राज्यं लभते स, तस्य विजयो द्यूते यथा दुर्लभः ।
 संसारे भ्रमतः पुनर्नरभवो जन्तोस्तथा दुर्लभः ॥ २ ॥
 इति चतुर्थो द्यूतदृष्टान्तः ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमो रत्नदृष्टान्तः—

धनसमृद्धे पुरे रत्नकोटिमभ्युर्धनदनामा वणिक् प्रतिवसति स भूमौ रत्नानि
 निखन्य तद्गुपरि पर्यङ्कं निधाय शयनं करोति । स विश्वासाभावेन पुत्रानपि
 तानि न प्रदर्शयति । स्वधनानुरूपं वेषं भवनादिकं च न करोति, व्यापारकरणे
 धनानि हस्तादपगतानि भविष्यन्तीति बुद्ध्या व्यापारमपि न करोति ।

संग्रह श्लोक—

स्तम्भानां हि सहस्रमष्टसहितं प्रत्येकमष्टोत्तरं,
 कोणानां च सहस्रमेपु जयति द्यूते पितु र्यः सुतः ।
 साम्राज्यं लभते स तस्य विजयो द्यूते यथा दुर्लभः
 संसारे भ्रमतः पुनर्नरभवो जन्तोस्तथा दुर्लभः ॥ ४ ॥
 यह चौथा द्यूतदृष्टान्त है ॥ ४ ॥

पांचवा रत्न दृष्टान्त इस प्रकार है—धनसमृद्ध नामका एक
 नगर था । उसमें एक करोड रत्नों का मालिक धनद नामका वणिक्
 रहता था । वह जमीन में गडे हुए रत्नों के ऊपर पलंग बिछाकर
 सोया करता था । उसको अपने पुत्रों तक का भी विश्वास नहीं था

संग्रह श्लोक—स्तम्भानां हि सहस्रमष्टसहितं प्रत्येकमष्टोत्तरं,
 कोणानां च सहस्रमेपु जयति द्यूते पितु र्यः सुतः ॥
 साम्राज्यं लभते स तस्य विजयो ते यथा दुर्लभः
 संसारे भ्रमतः पुनर्नरभवो जन्तोस्तथा दुर्लभः ॥ ४ ॥
 आ योथुं द्यूतदृष्टान्त छे ॥ ४ ॥

पांचमुं रत्नदृष्टान्त आ प्रकारतुं छे—

धनसमृद्ध नामतुं अेक नगर छतुं, तेमां अेक करोड रत्नानो मालिक अेवो
 धनद नामनो वणिक् रहैतो छतो. ते जमीनमां हाटी राणेलो रत्नो उपर पलंग
 पाथरीने सुध रहैतो छतो. तेने पोताना पुत्रानो पथु विश्वास न छतो, तेथी

ત્રસહસ્રવારં વિજિતે સતિ તનેવ ક્રમેણ સર્વે સ્તમ્ભા વિજિતા મહેયુઃ, તન્નાપ્યષ્ટો-
ત્રસહસ્રવારવિજયકરણે દૈવાત્ તન્મધ્યે પરાજયઃ સ્પાત્ તદા સર્વે વિજિતાઃ
કોણા અવિજિતાઃ ભવન્તિ, સઠદપિ વ્રહ્મચર્યમક્તે સર્વં મહાવ્રતમિવ, અતઃ
પુનરાદિત એવ સર્વે કોણા વિજેતવ્યાઃ, એવં ત્વમપિ કુરુ । ઇતિ પિર્તુવચનં શ્રુત્વા
વસુમિત્રશ્ચિન્તયતિ—દ્યૂતાદેવ રાજ્યં લભ્યં પુનઃ કિમર્થં પિતરં હન્મિ, ઇતિ વિચાર્ય
રાજ્ઞા સહ દ્યૂતક્રીડાર્યાં પ્રવૃત્તઃ, તથાપિ જયો દુર્લભો જાતઃ તસ્ય વસુમિત્રસ્યૈતવ
કાર્યં યથા દુષ્કરં, તથા મનુષ્યત્વમપિ દુર્લભમ્ ।

इनके जो प्रत्येक के एक हजार आठ १००८ कोने हैं उन कोनों में से
एक २ कोने को एक हजार आठ १००८ वार जीत जाता है । इसी क्रम
से ये समस्त खंभे जब जीत लिये जाते हैं तब जाकर वह विजयी
कहलाता है । यदि सब कोने जीत भी लिये जायें और एक भी कोना
यदि जीता न जा सके तो जीते हुए भी सब कोने नहीं जीते समझे
जा सकते हैं, और उन सब को पुनः जीतने के लिये द्यूत का आरंभ
करना पड़ता है । जैसे एक वार भी यदि गृहीत ब्रह्मचर्य खंडित हो
जाता है तो समस्त महाव्रत खंडित माना जाता है । इस प्रकार पिता
के वचन को सुनकर वसुमित्र ने विचार किया कि जब द्यूत क्रीडा में
जीत होने से राज्य मिलता है तो फिर पिता के मार ने से क्या लाभ ।
इस प्रकार विचार कर पिता के साथ जुआ खेलने में प्रवृत्त हो गया ।
परन्तु उसे विजय पूर्वोक्त प्रकार से जैसे दुष्कर बनी उसी प्रकार यह
मनुष्यभव भी पुनः प्राप्त होना प्राणी के लिये दुर्लभ जानना चाहिये ।

છે અને એ પ્રત્યેકને એકહજારઆઠ૧૦૦૮ ખુણા છે એ ખુણામાંથી એક એક ખુણાને
એકહજારઆઠ ૧૦૦૮વાર જીતવામાં આવે છે. આ ક્રમથી તે સઘળા ધાંભલા બ્યારે
જીતવામાં આવે ત્યારે તે વિજયી કહેવાય છે. કદાચ બધા ખુણા જીતી, દેવામાં આવે
અને એકાદ ખુણા જીતવામાં બાકી રહે તો બધા ખુણા ન જીતાયેલા જ મનાય
છે. અને એ બધાને જીતવા માટે ફરીથી જુગાર રમવો પડે છે. જેમ એક
વાર પણ ગ્રહણ કરેલ બ્રહ્મચર્ય ખંડિત થઈ જાય તો સમસ્ત મહાવ્રત ખંડિત
માનવામાં આવે છે. આ પ્રકારનાં પિતાનાં વચન સાંભળીને વસુમિત્રે વિચાર
કર્યો કે, બ્યારે જુગાર રમવામાં જીત થવાથીજ જો રાજ્ય મળતું હોય તો પિતાને
મારવાથી લાભ શું થવાનો ? આ પ્રકારનો વિચાર કરી વસુમિત્ર પિતાની સાથેજુગાર
ખેલવામાં પ્રવૃત્ત બન્યો. પરંતુ તેને ઉપરોક્ત પ્રકારથી વિજય મેળવવો દુષ્કર
બન્યો તેવીજ રીતે આ મનુષ્યભવ પુનઃ પ્રાપ્ત થવો પ્રાણી માટે દુર્લભ બાજુવો બોધ્યો.

सन्तस्तन्नगरागतानामन्यान्यदेशवासिनां श्रेष्ठिनां हस्ते रत्नानि विक्रीय वाणि-
ज्यार्थं पण्यवस्तूनि क्रीतवन्तः, तैर्वाणिज्यकार्यं प्रसारयन्ति स्म । ततस्तत्पुत्राः
कोटिध्वजा जाताः । चिरेण तेषां पिता गृहमागतः । स स्वस्थापितानि रत्नान्य-
दृष्ट्वा वसुप्रियं पुत्रं पृच्छति-अरे ! केन मम रत्नानि गृहीतानि ? । वसुप्रिय आह-
सर्वैर्भ्रातृभिरपहृतानि । ततः पुत्रवाक्यं श्रुत्वा धनदः कोपाविष्टः सन्नव्रीत्-रे
लक्ष्मीकन्दकुहालकाः । यूयं मदृहान्निर्गच्छत, तानि विक्रीतरत्नानि समानीय
मद्गृहे स्थापयन्तु, अन्यथा गृहे नागन्तव्यम् । यथा तेषां रत्नानां पुनरानयनं
धनदपुत्राणां दुष्करं, तथा मनुष्यत्वमपि दुर्लभम् ॥

रत्नों को निकाल लिया । सर्वों को रत्न की प्राप्ति से अपार हर्ष हुआ ।
जो दूसरे देश के वाणिज्यजन व्यापार के लिये नगर में आये हुए थे
उनके लिये वे सब रत्न उन लोगों ने बेच दिये और अपना पुंजी बना-
कर फिर वे सब के सब व्यापार करने में लग गये । इनका व्यापार
कार्य खूब चला । सब के सब कोटिध्वज हो गये । कालान्तर में धनद
घर पर वापिस आया । उसने अपने रखे हुए रत्नों की ज्यों ही
संभाल की वे उसको नहीं मिले-तब उसने वसुप्रिय पुत्र से पूछा ।
किसने मेरे रत्नों को लिया है । वसुप्रिय ने कहा-सब भाईओं ने ।
वसुप्रिय की बात सुनकर धनद को बहुत ही अधिक क्रोध आ गया ।
गुस्से में आकर उसने कहा-तुम सब के सब लक्ष्मीरूपी कन्द को
उखाड़ने के लिये कुहाली के समान हो अतः तुम्हारी अब भलाई
इसी में है कि तुम सब मेरे घर से निकल जाओ । नहीं तो बेचे हुए
रत्नों को वापिस लाओ । जब तक रत्न नहीं आवे तब तक याद

दुर्लभं श्रेयो. जीवन् देशना वणिक्जनो वेपार भाटे नगरमां आव्या हुता तेभने
आ लोकोऽप्ये अथां रत्नो वेथी हीधा अने पोतपोतानी पुञ्ज अनापी लधने दरेक
जुञ्ज वेपार करवा लाग्या. तेभने वेपार भूम आव्यो. अथा करोडपती अनी
अथा कालान्तरे धनद पाछो घेर आव्या, त्यारे तेजे पोते राभेलां रत्नोनी जे
ते स्थणे तपास करी तो ते तेने भज्यां नही. त्यारे तेजे वसुप्रियने पूछ्युं, कोजे
भारां रत्नोने लीधां छे ? वसुप्रिये कहुं, अथा लार्थ ओऽप्ये रत्नो वडोथी लीधां छे.
वसुप्रियनी वात सांभजीने धनदने अकहम कथ अथो अने गुस्साभां आवीने
तेजे कहुं, तमे अथा लक्ष्मीरूपी कंदने उणाडनारा कोहाणी जेवा छे. आथी
तमे अथा भारा घरमांथी आव्या नव अेमांज तमे सधगानी बलाध छे,
नखितर वेथेलां रत्नोने पाछां लावो. ज्यां सुधी रत्नो पाछां नही आवे त्यां

कदाचित् सम्वन्धिनः कार्यवशादामन्त्रणपत्रं समागतम् । तत्र गन्तुं प्रस्थितो धनदस्तद्रत्नरक्षणाय वसुप्रियं स्वकनिष्ठपुत्रं सूचयति । तदनन्तरं धनदे गृहान्निःसृते सति वसुप्रियस्य भ्रातरः सर्वे गृहे समागताः । वसुप्रियः पितृसूचितं रत्नस्थानं भ्रातृन् कथयति । तैर्भूमिं खनित्वा रत्नान्युद्धृतानि । सर्वे हृष्टचित्ताः

इसलिये वह रत्नों को वे कहाँ २ रखे हुए हैं पुत्रों को नहीं बतलाया था । जैसा यह धनपति था उसके अनुरूप न इसका मकान था और न रहन सहन भी । व्यापार भी यह इसलिये नहीं करता था, यह मानता था कि व्यापार करने में जो धन लगाया जाता है वह हाथ से चला जाता है । उसकी पुनः प्राप्ति कोई निश्चित नहीं होती है ।

एक समय की बात है कि किसी संबंधी का इसके पास बुलाने के लिये आमंत्रण पत्र आया । जब यह वहाँ जाने को तयार हुआ तब रत्नों की रक्षा करने के लिये इसने सब से छोटे पुत्र को कि जिसका नाम वसुप्रिय था, नियुक्त कर दिया । तब कहाँ कितने २ रत्न रखे हुए हैं यह बात भी उसको बतला दी । धनद जब चला गया और वसुप्रिय रत्नादिक की रक्षा करने लगा तब सब भाई मिलकर वसुप्रिय के पास आये और बातों बातों में उसने उन अपने भाईओं को रत्न रखने के समस्त स्थानों को बतला दिया । उन्होंने ने जमीन खोद कर

रत्नोने तेहे कथां कथां राख्यां छे ते पोताना पुत्रोने पथु भतावतो न डते। जेवे ते धनपती डते तेने अतुइप तेने रडेवानुं भडान न डतुं तेम तेनी रडेष्ठी करणी पथु तेने अतुइप न डती। ते वेपार पथु करतो नडी कारणु के तेनी मान्यता जेवी डती के, वेपारमां जे धन राकवामां आवे ते डायथी याल्युं नथ छे। अने गथेलुं धन इरीधी भणवानुं निश्चित डेतुं नथी।

એક સમયની વાત છે કે, જ્યારે તેને ખોલાવવા માટે તેના કેઇ સંબંધીનું આમંત્રણ આવ્યું. જ્યારે તે ત્યાં જવા માટે તૈયાર થયો ત્યારે તેણે રત્નોની રક્ષા માટે પોતાના સૌથી નાનો પુત્ર કે જેનું નામ વસુપ્રિય હતું તેને નિયુક્ત કર્યો. અને કઇ કઇ જગ્યાએ કેટલાં રત્નો રાખ્યાં છે, એ વાત પણ તેને ખતાવી દીધી. તે ધનદ જ્યારે બહારગામ ગયો ત્યારે વસુપ્રિય રત્નાદિકની રક્ષા કરવા લાગ્યો. બધા ભાઈઓ એકઠા મળીને વસુપ્રિયની પાસે આવ્યા અને વાત વાતમાં વસુપ્રિયે પોતાના ભાઈઓને રત્નનાં બધાં ઠેકાણાં ખતાવી દીધાં. તેમણે જમીન ખોદી રત્નો કાઢી લીધાં. ઠરેકને રત્નોની પ્રાપ્તિ થવાથી અપાર

जिनवचनानुरागी धर्मे दृढमतिरासीत् । मूलदेवः कार्पटिकशोभाः काञ्चनपुरनगराद्बहिः
 सरसस्तटे रात्रौ विष्टतः । तत्र सुप्तेन मूलदेवेन रात्रिशेषे स्वप्नो दृष्टः—
 मुखे चन्द्रः प्रविष्ट इति । तदानीमेव तत्र सुप्तेन कार्पटिकेनापि तादृश एव स्वप्नो
 दृष्टः । स्वप्नदर्शनात्तन्तरं तौ विनिद्रौ जातौ । कार्पटिको वदति—स्वप्नात्रस्थायां मम
 मुखे चन्द्रः प्रविष्ट इति मया दृष्टः । मूलदेवः प्राह—अयं स्वप्नो रक्षणीयः, साधारण-
 जनानामग्रे नायं प्रकाशनीयः । स्वप्नोत्थितयोस्तयोर्मनः प्रसन्नमभवत् । सूर्योदया-
 नन्तरमेव तौ काञ्चनपुरनगरे प्रविष्टौ ।

वृद्धि के लिये दूसरे देश को घर से चला । मार्ग में जाते २ एक कार्प-
 टिक ने इसका साथ कर लिया । मूलदेव जिन वचन में श्रद्धालु था ।
 चलते २ ये दोनों काञ्चनपुर नगर के बहार रहे हुए किसी एक तालाब
 के तीर पर रात्रि को ठहर गये । मूलदेव को रात्रि के शेष भाग में एक
 स्वप्न दिखाई दिया । जिसमें उसने देखा कि मेरे मुख में चन्द्रमा
 प्रविष्ट हो गया है । उसी समय कार्पटिक ने भी इसी तरह का स्वप्न
 देखा । स्वप्न देखने के बाद दोनों जग गये । आपस में बातचीत होने
 लगी । कार्पटिक ने कहा आज मैंने स्वप्न में चन्द्रमा को अपने मुख में
 प्रवेश करता हुआ देखा है । मूलदेव ने उसका स्वप्न सुनकर उससे
 कहा यह स्वप्न गोपनीय है, हर एक आदमी के सामने इसको प्रका-
 शित नहीं करना । जब प्रातः काल हो चुका तब ये दोनों उठे, उस समय
 ये बड़े ही प्रसन्न मालूम देते थे, क्योंकि इनका मन बड़ा प्रसन्न था ।
 सूर्योदय के अनन्तर फिर इन दोनों ने काञ्चनपुर नगरमें प्रवेश किया ।

भागों में आबतां आबतां तेने जेक बुवाने साथ थरु गये। भूणदेव उन
 पयनमां भूम श्रद्धालु छते। आबतां आबतां भन्ने काञ्चनपुर नगरनी अडारना
 जेक तणावना डांडा उपर रातना राकाठ गया। भूणदेवने रात्रीना पाछवा
 भागमां जेक स्वप्न देखायुं। जेमां तेहु जेयुं के, जेहु तेना मोढाभां चंद्रमाजे
 आवीने प्रवेश कथी छे। आज समथे तेनी आनुभां सुतेला बुवाजे पछु
 तेहुं जे स्वप्न जेयुं। स्वप्न जेया पछी भन्ने लगी गया। आपसमां बातचीत
 करवा लाग्या बुवाजे कहुं, आजे मे स्वप्नमां चंद्रमाने भार मोढाभां प्रवेश
 करतां जेयो मूलदेवे तेना स्वप्नातुं कथन सांलणीने कहुं के, आ स्वप्न जानगी
 राभवा जेपुं छे। दरेक आदमीनी सामे आने प्रकाशित न करवुं जेधजे,
 न्यारे सवार थयुं त्यारे भन्ने उकथा ते समथे तेजो धषा प्रसन्न मालुम
 पडता छता केमके, तेमनां मन धषां प्रसन्न छतां। सूर्योदय पछी भन्ने
 जेधुजे काञ्चनपुर नगरमां प्रवेश कथी।

अत्र संग्रह—(शार्दूलविक्रीडितवृत्तम्)

तातेऽन्यत्र गते धरान्तरगतान्यादाय रत्नानि यद्,
विक्रीतानि सुतैर्विदेशिवणिजां हस्तेषु पश्चात् ततः ।
रत्नान्यानयतेति तातकथने, तत्प्रापणं दुष्करं,
संसारे भ्रमतः पुनर्नरभवो जन्तोस्तथा दुर्लभः ॥ ५ ॥

इति पञ्चमो रत्नदृष्टान्तः ॥ ५ ॥

अथ षष्ठः स्वप्नदृष्टान्तः—

आसीत् पाटलिपुत्रनगरे मूलदेवनामकः क्षत्रियः । स स्वाभ्युदयार्थं देशान्तरं
गन्तुं प्रस्थितः । मार्गं गच्छतस्तस्य कश्चित् कार्पटिकः सहचरोऽभवत् । मूलदेवः सर्व

रखना घर में तुम्हारे लिये स्थान नहीं है । इस दृष्टान्त से यह समझना
चाहिये कि जैसे उन विक्रीत रत्नों की प्राप्ति उन पुत्रों के लिये दुष्कर
हुई उसी तरह से हाथ से निकला हुआ मनुष्य जन्म भी महा दुर्लभ है ।

इस दृष्टान्त का सार प्रदर्शक श्लोक इस प्रकार है—

तातेऽन्यत्रगते धरान्तरगतान्यादाय रत्नानि यत्,
विक्रीतानि सुतैर्विदेशिवणिजां हस्तेषु पश्चात्ततः ।
रत्नान्यानयतेति तातकथने तत्प्रापणं दुष्करम्,
संसारे भ्रमतः पुनर्नरभवो जन्तोस्तथा दुर्लभः ॥

यह पांचवां रत्नदृष्टान्त है ॥ ५ ॥

छठा स्वप्नदृष्टान्त इस प्रकार है—पाटलिपुत्र नगर में मूलदेव
नाम का एक क्षत्रिय रहता था । वह किसी समय अपने भाग्य की

सुधी याद रागो के, तमारा भाटे घरमां डोर्ध स्थान नहीं. ओटला भाटे आ
ध्यांतधी ओम समजुं ओध ओ के, वेथेला रत्नोनी प्राप्ति ते पुत्रोने भाटे ओम दुष्कर
थध तेम डायमांथी निकणी गथेव मनुष्यजन्म पथुक्षी प्राप्त थयो मडाडुर्लभ छे.

संग्रह श्लोक—तातेऽन्यत्रगते धरान्तरगतान्यादाय रत्नानि यत्,

विक्रीतानि सुतैर्विदेशिवणिजां हस्तेषु पश्चात्ततः ।
रत्नान्यानयतेति तातकथने तत्प्रापणं दुष्करम्,
संसारे भ्रमतः पुनर्नरभवो जन्तोस्तथा दुर्लभः ॥

आ पांचवुं रत्नदृष्टान्त छे ॥ ५ ॥

छठुं स्वप्नदृष्टान्त आ प्रकारधी छे—

पाटलीपुत्र नगरमां मूलदेव नामनो ओक क्षत्रिय रहतेो डतो. ते ओक
समय येताना भाग्यनी वृद्धि भाटे धरधी थीला देशमां न नीकथे.

लोकैः कथितम्—शुक्रस्य रात्रौ स्वप्नो दृष्टः, अद्य शनिवासरः, तेन कारणेन घृतगुडसहितं रोटकं तैलं च मिलिष्यति। यत्र यत्र गृहस्थगृहे कार्पाटिको भिक्षार्थं गच्छति, तत्र तत्र शनिदिवसे प्रचुरं तादृशं रोटकं तैलं च तेन लब्धम्।

अथ पुत्ररहितस्तन्नगरनृपः स्वायुषः क्षयेण मृतः। तस्मिन् मृते सति मन्त्रिप्रभृतयस्तदा व्यवस्थां कृतवन्तः—इयं राजहस्तिनी यस्य गले पुष्पमालां दद्यात्, स एव राजा भविष्यति। इत्येवं निश्चिते सति हस्तिनी स्वशुण्डया पुष्पमालां नीत्वा मनुष्यपरिवारैः सह नगरे प्रतिमार्गं भ्रमन्ती वनं गता। सा तत्र वृक्षच्छायायामुपविष्टस्य मूलदेवस्य गले पुष्पमालां ददौ। ततो मनुष्यवृन्दैः सह राजमन्त्रिणो मूलदेवं

तुमने शुक्र की रात्रि में यह स्वप्न देखा है, आज शनिवार है, इस कारण तुमको घृत गुड सहित रोटक एवं तैल मिलेगा। अब जिस २ घर में वह कार्पाटिक भिक्षा के लिये गया वहां २ उसको वही चीज खूब मिली। जब छह दिन पूरे हुए उसी रात में उस नगर का राजा मर गया। राजा के कोई पुत्र नहीं था इसलिये जब वह मरा तब मन्त्रियों ने राज्य की व्यवस्था के लिये ऐसा विचार किया कि यह राजा की हथिनी जिसके गले में पुष्पमाला डाले वही राजा समझा जाय। इस प्रकार का विचार जब पूर्णरूप से निश्चित हो चुका तब हथिनी को अपनी सूंड में पुष्पमाला देकर छोड़ा। नगर के प्रत्येक मार्ग में वह घूमती रही। उसके साथ मनुष्यों का समुदाय भी बहुत था। घूमते २ वह जंगल में पहुँची। मूलदेव उस समय एक वृक्ष के नीचे छाया में बैठा हुआ था। हथिनी ने पहुँचते ही मूलदेव के गले में वह पुष्पमाला डाल दी।

कह्युं के, शुक्रनी रात्रीमां आ स्वप्न देष्यायुं छे आने शनीवार छे. अे कारणे तुमने धी गोण साथे रोटको अने तेल भणथे. डवे ज्यां ज्यां अे भिक्षा भाटे गथे त्यां त्यां तेने अे थीजे भूष प्रमाळुमां भणी.

न्यारे छ द्विस पुरा थये अेक रात्रिअे ते नगरने राज भरी गथे. राजने कोर पुत्र न छतो. मंत्रीअेअे राजनी व्यवस्था भाटे अेवी भसवत करी के राजनी हाथणी जेना गणामां पुष्पमाणा पडेरावे तेने राजगादी सुप्रद करवी. आ प्रकारने न्यारे पूषुंइपथी निषुंथ लेवाथे न्यारे हाथणीनी सुंढमां पुष्पमाणा आपीने तेने छुटी मुकी. नगरना दरेक मार्ग उपर ते इरती छती, तेनी पाछण भाषुसेने समूड पषु थाव्ये आवतो छतो. घूमतां घूमतां ते जंगल तरइ वणी. मूलदेव आ वभते त्यां अेक वृक्षनी छायामां जेके छतो. हाथणीअे त्यां पडेथीने मूलदेवना

तत्र मूलदेवः स्वप्नपाठकस्य गृहे गत्या विनयेन स्वप्नपाठकं पृच्छति-
मुखे चन्द्रः प्रविष्ट इति स्वप्नो मया दृष्टः किमस्य फलं भविष्यति ? । तेनोक्तम्-
प्रथमं मम कन्यकया सह विवाहमङ्गीकरोषि चेत्तदाऽस्य स्वप्नस्य फलं वक्ष्यामि ।
मूलदेवेन तदङ्गीकृतम्, स स्वप्नपाठकः स्वपुत्रीं प्रदाय जामातृसम्बन्धं विधाय भोजनं
कारयित्वा मूलदेवं वदति-इतः सप्तमे दिवसे भवानस्य नगरस्य राजा भविष्यति ।
कार्पटिकस्तु स्वकीयस्वप्नवृत्तं तत्र नगरे साधारणलोकानां पुरः प्रकाशितवान्,

मूलदेव ने वहाँ स्वप्न के फल को कहने वाले विद्वान के घर की
तलाश की । जब उसको इसका पता लग गया तो वह बड़े ही विनय
के साथ स्वप्नपाठक के घर गया-और वहाँ विनीतभाव से उसने
स्वप्नपाठक से पूछा-महानुभाव ! आज मैंने रात्रि के पिछले पहर में
चन्द्रमा को मुख में प्रवेश करते हुवे देखा है इसका फल क्या होगा ।
कृपाकर कहिये । मूलदेव की बात सुनकर स्वप्नपाठक ने कहा कि-
यदि तुम पहिले मेरी कन्या के साथ अपना विवाह करना मंजूर करो
तो मैं इसका फल तुम्हें बतला सकता हूँ । मूलदेव ने स्वप्नपाठक की
बात अंगीकार करली । स्वप्नपाठक ने अपनी पुत्री का विवाह उसके
साथ कर दिया । मूलदेव अब स्वप्नपाठक का जमाई बन गया । स्वप्न-
पाठक ने जमाई का आदरसत्कार किया और भोजन करा कर कहा
आज से सातवें दिन आप इस नगर के राजा हो जायेंगे ।

इधर कार्पटिक ने अपना स्वप्न नगर के साधारण से भी साधारण
व्यक्ति को सुनाना शुरू कर दिया । लोगों ने भी उससे यही कहा कि

मूलदेवे त्यां स्वप्न इणना कडेवावाणा विद्वानना घरनी तपासं करी,
तेना पत्तो मेणवी स्वप्नपाठकने घर गये अने त्यां विनीत लावथी तेषु स्वप्न-
पाठकने पूछ्युं, महानुभाव ! आज में रात्रिना पाछला पडोरमां चंद्रमाने मुखमां
प्रवेश करतो जेथे छे. तेनुं इण शुं डरो ? ते कृपाकरिने कडे. मूलदेवनी बात
सांभजीने स्वप्नपाठके कहुं के, जे तमे पडेलं भारी कन्यानी साथे तमारा विवाह
करवानुं मंजूर करे तोज हुं तमने तेनुं इण भतानुं. मूलदेवे स्वप्नपाठकनी बात
स्वीकारी छीथी. स्वप्नपाठके पोतानी पुत्रीने विवाह तेनी साथे करी छीथे.
मूलदेव डवे स्वप्नपाठकने जमाध जनी गये. स्वप्नपाठके जमाधने
आदरसत्कार करी अने लोअन जमाडीने कहुं के आजथी सातमे दिवसे तमे
आ नगरना राज थरो. जीछ पाअनु भुवाअे पोतानुं स्वप्न नगरना साधा-
रणथी साधारण भावुअने पण संभजापवुं शङ् करी छीथुं. लोडेअे तेने अम

अत्र संग्रहश्लोकः—(शार्दूलचिक्रीडितवृत्तम्)

स्वप्ने कार्पटिकेन रात्रिविगमे चन्द्रं मुखान्तर्गतं,

दृष्ट्वा सर्वजनाग्रतो निगदितं लब्धं न राज्यं फलम् ।

स्वप्नस्तस्य पुनः स तत्र शयितस्यासीद् यथा दुर्लभः,

संसारे भ्रमतः पुनर्नरभवो जन्तोस्तथा दुर्लभः ॥ १ ॥

॥ इति पण्डः स्वप्नदृष्टान्तः ॥ ६ ॥

अथ सप्तमश्चक्रदृष्टान्तः—चक्रोपलक्षितो दृष्टान्तः, राधावेधदृष्टान्त

इत्यर्थः स चैवम्—

मथुरानगर्यां जितशत्रुनामको भूपतिरासीत् । इन्दिरानाम्नी तस्य पुत्री चतुः-

उस स्वप्न की प्राप्ति पुनः दुर्लभ हुई उसी प्रकार इस मनुष्यजन्म से

प्रच्युत प्रमादी जीव को पुनः मनुष्यभव की प्राप्ति दुर्लभ है ।

इस कथा का भावदर्शक श्लोक इस प्रकार है—

स्वप्ने कार्पटिकेन रात्रिविगमे चन्द्रं मुखान्तर्गतं,

दृष्ट्वा सर्वजनाग्रतो निगदितं लब्धं न राज्यं फलम् ।

स्वप्नस्तस्य पुनः स तत्र शयितस्यासीद्यथा दुर्लभः,

संसारे भ्रमतः पुनर्नरभवो जन्तोस्तथा दुर्लभः ॥ १ ॥

- यह छद्म स्वप्नदृष्टान्त है ॥ ६ ॥

सातवां चक्र दृष्टान्त इस प्रकार है—इसका दूसरा नाम राधावेध

दृष्टान्त भी है—मथुरा नगरी में जितशत्रु नाम का राजा रहता था ।

इसकी एक कन्या थी, जिसका नाम इन्दिरा था । यह चौंसठ कलाओं

प्राप्ति दुर्लभ थी, तेरी ते आ मनुष्यजन्मभी प्रच्युत प्रमादी भवने द्वी

मनुष्यभवनी प्राप्ति दुर्लभ छे.

आ कथानो भावदर्शक श्लोक आ प्रकारनो छे.

स्वप्ने कार्पटिकेन रात्रिविगमे चन्द्रं मुखान्तर्गतं,

दृष्ट्वा सर्व जनाग्रतो निगदितं लब्धं न राज्यं फलम् ।

स्वप्नस्तस्य पुनः स तत्र शयितस्यासीद्यथा दुर्लभः,

संसारे भ्रमतः पुनर्नरभवो जन्तोस्तथा दुर्लभः ॥ १ ॥

छद्म स्वप्नदृष्टान्त छे.

सातवुं चक्रदृष्टान्त आ प्रकारनुं छे. आनुं धीनुं नाम राधावेधं दृष्टान्तं पंथु छे.

मथुरा नगरीमां छतशत्रु नामनो ऐकं राजा राज्य करतो इतो। तेने ऐक

कन्या इती नेनुं नाम इन्दिरा इतुं. ते चौंसठ कलाओमां कुशल इती ऐक

तामेव हस्तिनीं सादरं समारोह्य नगरं प्रवेशयन्ति ।

कार्पटिकस्तु—मनुष्यवृन्दैः सह हस्तिनीसमारूढं प्राप्तराज्यं मूलदेवं विलोक्य चन्द्रपानस्वप्नाराधनेन मूलदेवस्य राज्यलाभो जातः, इति बुद्ध्या स्वात्मानं निन्दयन् पश्चात्तापं करोति—धिगूमाम्, मन्दलोकानां पुरस्तात् स्वप्नप्रकाशनेन मया स्वप्नो निष्फलीकृतः, तस्मात् पुनरहं तत्रैव सरस्तीरे शयिष्ये, तदा राज्यप्राप्तिकरं स्वप्नं पुनः पश्यामीति विचिन्त्यं राज्यलक्ष्मीं कारुण्यमाणाः पुनः पुनस्तत्र स्वपिति ।

यथा कार्पटिकस्य तत्स्वप्नदर्शनं दुर्लभं, तथा मनुष्यदेहात् प्रच्युतस्य प्रमादिनः पुनर्मनुष्यत्वं दुर्लभम् ।

हथिनी ने—पुष्पमाला मूलदेवं के गले में डाली देखकर मन्त्रियों ने मूलदेव को उसी समय उस हथिनी पर बैठा कर यज्ञ आदर के साथ उनके नगर में प्रवेश कराया ।

कार्पटिक ने मनुष्यवृन्दों के साथ मूलदेव को हस्तिनी पर बैठा एवं वहाँ का राजा बना हुआ देखकर "चन्द्रमापानरूप स्वप्न के आराधन के प्रभाव से मूलदेव को राज्य का लाभ हुआ है" इस विचार से अधिक से अधिक पश्चात्ताप किया—मुझ अभागों को धिक्कार है जो मैंने सब लोकों के सामने अपने स्वप्न को प्रकाशित कर निष्फल बनाया । अब वह पुनः इस विचार से राजलक्ष्मी की प्राप्ति की आशा से उस स्थान पर बार २ सोने लगा कि कब वह चन्द्रस्वप्न मुझे दिखलाई दे और कब मुझे राज्य की प्राप्ति हो ।

इस दृष्टान्त से यही समझना चाहिये कि जिस प्रकार कार्पटिक का

गणानां पुष्पमाला पडिरावती दीधी, हाथणीये भूणहेवने पुष्पमाला पडिरावती नेधने मन्त्रीयेये भूणहेवने ते समये ते हाथणी उपर, जेसाडीने धृष्टा आदर-सत्कारनी साथे तेना नगरप्रवेश कराये।

बुवाये मनुष्यना टोणानी वये भूलहेवने हाथणीपर जेठेले तेमज त्याने राज भनेवे नेधने तेने लाग्यु के स्वप्नना आराधनना प्रभावथी भूलहेवने राज्यने लाव थये छे, आ विचारथी तेने धृष्टा ज पश्चात्ताप थये, अने मनमाने मनमां जडंभउथे के, अने अलागीने धिक्कार छे के, जे सधणा लोकानी साथे मारा स्वप्नने प्रकाशीत करी निष्फल भनाये, आ पथी न्यां तेने स्वप्न आये उतुं त्यां राजलक्ष्मीनी आराधी राजप्रीती सुधे जवा लाग्ये, क्यारे स्वप्नमां अने यद्र हेभाय अने क्यारे अने राज्यनी प्राप्ती थाय,

अदृष्टान्तथी जे ससज्जु नेधये के, जे प्रकारे बुवाने स्वप्ननी

अत्र संग्रहश्लोकः—(शादूलचिकीडितवृत्तम्)

स्वप्ने कार्पटिकेन रात्रिविगमे चन्द्रं मुखान्तर्गतं,

दृष्ट्वा सर्वजनाग्रतो निगदितं लब्धं न राज्यं फलम् ।

स्वप्नस्तस्य पुनः स तत्र शयितस्यासीद् यथा दुर्लभः,

संसारे भ्रमतः पुनर्नरभवो जन्तोस्तथा दुर्लभः ॥ १ ॥

॥ इति पष्ठः स्वप्नदृष्टान्तः ॥ ६ ॥

अथ सप्तमश्चक्रदृष्टान्तः—चक्रोपलक्षितो दृष्टान्तः, राधाविषदृष्टान्त

इत्यर्थः स चैवम्—

मथुरानगर्यां जितशत्रुनामको भूपतिरासीत् । इन्दिरानाम्नी तस्य पुत्री चतुः-

उस स्वप्न की प्राप्ति पुनः दुर्लभ हुई उसी प्रकार इस मनुष्यजन्म से

प्रच्युत प्रमादी जीव को पुनः मनुष्यभव की प्राप्ति दुर्लभ है ।

इस कथा का भावदर्शक श्लोक इस प्रकार है—

स्वप्ने कार्पटिकेन रात्रिविगमे चन्द्रं मुखान्तर्गतं,

दृष्ट्वा सर्वजनाग्रतो निगदितं लब्धं न राज्यं फलम् ।

स्वप्नस्तस्य पुनः स तत्र शयितस्यासीद्यथा दुर्लभः,

संसारे भ्रमतः पुनर्नरभवो जन्तोस्तथा दुर्लभः ॥ १ ॥

- यह छद्म स्वप्नदृष्टान्त है ॥ ६ ॥

सातवां चक्र दृष्टान्त इस प्रकार है—इसका दूसरा नाम राधाविष

दृष्टान्त भी है—मथुरा नगरी में जितशत्रु नाम का राजा रहता था ।

इसकी एक कन्या थी, जिसका नाम इन्दिरा था । यह चौंसठ कलाओं

प्राप्ति दुर्लभ थी, तेरी तेरी आ मनुष्यजन्मभी प्रच्युत प्रमादी भवने इरी

मनुष्यभवनी प्राप्ति दुर्लभ छे.

आ कथानो भावदर्शक श्लोक आ प्रकारनो छे.

स्वप्ने कार्पटिकेन रात्रिविगमे चन्द्रं मुखान्तर्गतं,

दृष्ट्वा सर्वजनाग्रतो निगदितं लब्धं न राज्यं फलम् ।

स्वप्नस्तस्य पुनः स तत्र शयितस्यासीद्यथा दुर्लभः,

संसारे भ्रमतः पुनर्नरभवो जन्तोस्तथा दुर्लभः ॥ १ ॥

॥ छद्म स्वप्नदृष्टान्त छे.

सातवुं चक्रदृष्टान्त आ प्रकारनुं छे. आर्षुं गीनुं नाम राधाविषदृष्टान्त पंखु छे.

मथुरा नगरीमें जितशत्रु नामनो ओक राजा रान्त्य करतो હતો! तेने ओक

કન્યા હતી જેનું નામ ઇન્દિરા હતું. તે ચોસઠ કલાઓમાં કુશળ હતી એક

पष्टिकलाभिज्ञा जाता । जितशत्रुपस्तस्याः विवाहयोग्यं वयो विद्योक्त्य चिन्तयति
 -यः खलु राजकुमारो धार्मिकः कलाकुशलः सकलनीतिशास्त्रनिष्णो राधावेधसाध-
 नसमर्थः स्यात् स एव योग्यो वरः स्यादस्याः इति विचिन्त्य, तेन राज्ञा स्वयंवर-
 मण्डपः कारितः । तत्संनिधौ चैकमुच्यते स्तम्भः स्थापितः । तस्य स्तम्भस्योर्ध्व-
 भागेऽनुलोमेन चत्वारि, विलोमेन च चत्वारि लोहचक्राणि निवेशितानि । तेषां
 चक्राणामुपरि राधानाम्ना प्रसिद्धा काष्ठमयी भ्रमन्ती पुत्तलिका स्थापिता । तत्रा-
 धस्तात् तैलपूर्णकटाहश्च स्थापितः । यः खलु राधाया वामनयनं श्रेण विध्येत् स
 एव मत्कन्यकाया इन्दिराया वरः स्यादिति जितशत्रुणा घोषणारूपेण प्रतिज्ञातम् ।

की ज्ञाता थी । जिस समय जितशत्रु ने विवाहयोग्य इसकी अवस्था
 देखी तो विचार किया कि-जो राजकुमार धार्मिक, कलाकुशल,
 सकलनीति शास्त्र में निष्णात एवं साथ में राधावेधसाधन में भी
 समर्थ हो वही इस कन्या का पति होने योग्य है । इस प्रकार विचार
 कर राजा ने स्वयंवरमंडप रचाया और उसके पास ही एक ओर एक
 बड़ा ऊँचा खंभा भी खड़ा करवाया । पश्चात् उसने उस खंभे के उर्ध्व-
 भाग में लोहे के चार चक्र अनुलोम-सुलटे फिरने वाले और चार
 चक्र विलोम-उलटे फिरनेवाले लगवा दिये । फिर उन चक्रों के भी
 ऊपर राधा नाम की एक काष्ठमयी घूमती हुई पुत्तली रखवा दी । खंभे
 के ठीक नीचे के भाग में तैल से भरा हुआ एक कटाह भी रखवा दिया ।
 जब इस प्रकार से स्वयंवरमंडप की पूर्ण तयारी हो चुकी तब उसने यह
 घोषणारूप में अपनी प्रतिज्ञा प्रकट करवाई कि जो व्यक्ति राधा के
 वामनयन को बाण से वेध देगा वही मेरी कन्या इन्दिरा का पति

समये जितशत्रुने तेनी विवाहयोग्य वय लेधने विचार करी के, जे
 राजकुमार धार्मिक, कलाकुशल, सकल नीतिशास्त्रमां निष्णात अने साथे साथ
 राधावेध साधनामां पणु समर्थ होय तेज् आ कन्याने पति थवा योग्य छे.
 आ प्रकारने विचार करी राजने स्वयंवरमंडप रचये अने तेनी पास जे
 ओक पूष बडो उंचो स्तंभ पणु उलो करायो. जे पछी तेलु ते स्तंभना
 उर्ध्व भागमां बोलाना चारें यक सीधां इरवावाणां अने चारें यक अपणां इरवा
 वाणां गोठवाव्यां पछी ते यकोनी उपर पणु राधा नामनी इरती लाकडानी
 पुतणी गोठवावी स्तंभना छेक नीचा भागमां तेलथी भरली ओक कटाह रखावी.
 ज्यारे आ प्रकारे स्वयंवरनी संपूर्ण तयारी थई चुकी त्यारे ओक बडो

ततस्तेन नृपतिना निमन्त्रिता ब्रह्मो राजानो राजकुमाराश्च देशाद् देशान्तरादपि
 तत्र सोत्साहं समागताः । सर्वेषु राजसु राजकुमारेषु च मण्डपे समुपविष्टेषु जित-
 शत्रुनृपस्तत्रागत्य वदति-यो राधापुत्तलिकाया वामनेत्रं शरेण विधेत् तस्मै मया
 कन्यका दातव्येति । राज्ञो वचः श्रुत्वा एकैकमुत्थितो नृपादिकस्तत्र राधावेधनाय
 शरं धनुषि संयोज्य प्राक्षिपत् । स च शरः कस्यचिदेकेन चक्रेणास्फाल्य भग्नः सन्
 भूमौ निपतितः, कस्यचिदेकं चक्रमतिक्रान्तः, कस्यचिद् द्वे, कस्यचित् त्रीणि,
 अन्येषां तु लक्ष्यादन्यत्रैव निर्गतः, कोऽपि राधावेधं साधयितुं नाशक्तः ।

होगा । राजा ने इस प्रकार अपना भाव प्रकट कर सब राजाओं एवं
 राजपुत्रों के लिये स्वयंवरमंडप में आनेका आमंत्रण भेज दिया ।
 राजा से आमंत्रित हो बड़े उत्साह से अनेक राजा और राजकुमार
 देश देशान्तर से उत्साहपूर्वक आये और स्वयंवरमंडप में बैठ गये ।
 जब समस्त राजा और राजपुत्र अच्छी तरह अपने २ स्थानों पर बैठ
 गये तब राजा जितशत्रु वहां आये और कहने लगे कि जो इस भ्रमण
 करती हुई राधा पुत्तलिका के वामनेत्र को वाण से वेधित करेगा वही
 मेरी पुत्री का पति होगा-अपनी पुत्री मैं उसे ही परणाऊँगा । राजा
 के इस प्रकार वचन सुनकर वे राजा तथा राजकुमार आदि राधावेध
 साधने के लिये उठे और अपने २ धनुष पर वाण रख कर राधावेध
 साधने के अभिप्राय से वाण को छोड़ने लगे । इनमें से किसी का
 वाण एक चक्र से टकरा कर, किसी का दूसरे चक्र से टकरा कर और

भङ्गार पाडी पोतानी भङ्गार प्रगट करी के, जे व्यक्ति राधाना डाणा नेत्रने पाण्डुथी
 विधेशे ते भारी राजकन्या धन्दिशाने पति बनथे. राज्ञे आ प्रकारे ढंढेशे
 पीटावीने सधणा राज्ञे आने राजपुत्रेने स्वयंवर मंडपमां आववातुं
 आमंत्रण भेकलाव्युं. राजनुं आमंत्रण भणतां धण्डा उत्साहथी अनेक राज
 अने राजकुमारे देश देशांतरथी उत्साहपूर्वक आव्या अने स्वयंवर मंडपमां
 भिराज्या. न्यारे सर्व राज्ञे आने राजपुत्रो सारी रीते पोते पोताना
 स्थान उपर भेसी गया त्यारे राज लतशत्रु त्यां आव्या अने कडेवा लाग्या
 के, जे केाछ व्यक्ति आ करती राधा पुतणीना डाणा नेत्रने पाण्डुथी विधेशे तेने
 भारी पुत्री वरभाणा पडेरावथे अने तेनेज हुं भारी पुत्री परणवाथे. राजनुं
 आ प्रकारनुं वचन सांलणीने मंडपमां भिरालत थयेला राज तथा
 राजकुमार वगेरे राधावेध साधवा भाटे उठ्या अने पोतपोताना धनुष्य उपर
 पाण्डु अडावीने राधावेध साधवाना लक्ष्यथी पाण्डुने छोडवा लाग्या. तेयोभांथी केाधनुं

अधेन्द्रपुराधीशस्येन्द्रदत्तनाम्नो नृपस्य पुत्रो जयन्तकुमारः सोत्साहमुच्छ्रितिः
 लोकाः करतालीप्रदानपूर्वकमुपहसन्तो वदन्ति-अहो ! इमे वीरा धनुर्धरा यत्र न
 क्षमास्तत्रास्य कुमारस्य कीदृशं साहसम् ? किमनेन कर्तुं शक्यते? एवं वदन्तुः वज्रमः
 वास्तव्येषु मनोरूपरुपलावण्यसंपन्नो जयन्तकुमारः स्तम्भस्मःसंनिधौ गत्वा धनुषि सं
 संयोज्य, तैलपूर्णकटाहसंक्रान्तचक्रप्रतिविम्बान्तरालमार्गणं राधावामनेत्रप्रतिवि-

किसीका तीसरे चक्र से टकरा कर टूट कर नीचे गिर पड़ा। लक्ष्यस्थान तक किसी का भी वाण नहीं पहुँच सका। किसी रं का वाण तो लक्ष्य से भी खचटकर आगे निकल गया। इस प्रकार राधावेध किसीके भी द्वारा साध्य नहीं हो सका। इतने में इन्द्रपुर का राजा इन्द्रदत्त का पुत्र जयन्तकुमार बड़े उत्साह से अपने स्थान से उठा। उसके उठते ही लोगों ने करतलध्वनि से पहिले तो उसकी हँसी करने लगे, फिर कहने लगे-देखो ये एक नवीन वीरपुरुष आये हैं; जहाँसे इन् वीर धनुर्धारियों की भी नहीं चली वहाँ विचारे इस कुमार की क्या चलेगी जो यह साहस दिखला ने को खंडा हुआ है। लोग जब इस तरह से जयन्तकुमार की हँसी करने में तंतपर हो रहे थे कि कुमार सबके देखते रं ही वंस स्तंभ के पास पहुँच गया। पहुँचते ही उसने पहिले अपने धनुष पर वाण चढाया। चढाकर फिर वह तैलपूर्ण कटाह में पड़े हुए चक्र के प्रतिविम्ब को देखने लगा। देखते रं चक्रके

भाष्य पडेला एक साथे अथडाधने तो डोधनुं पील एक साथे अथडाधने डोधनुं
 नील एक साथे अथडाधने तुटीने नीचे पडी जतां पषु लक्ष्य स्थान सुधी डोधनुं
 पषु भाष्य जध शक्युं नडीं डोध डोधनां भाष्य तो लक्ष्यथी पषु उपर धधने आगण
 निकली गयां आ प्रकारे राधावेध डोधनाथी पषु साध्य न थध शक्ये अट्टाभां
 धद्रपुर नगरना रंल धद्रदत्तने पुत्र जयंतकुमार धनुः उत्साहथी पोताना स्थनेथी
 उठ्ये तेना उठतां व डोडो अने नी डांसी उडाववा मांडी अने पधी कडेवा लाव्या
 लुओ आ अक नवीन वीरपुरुष आवेल छे जयां मोटा मोटा वीर धनुधा
 रीओतुं पषु न आदथुं त्यां आ भियांश कुमारनुं शुं आदवानुं छे जे
 आ साहस गताववा उठयो छे डोडो न्यारे आवी रीते न्यंत कुमारनी डांसी
 उडाववाभां तत्पर अनी रखा डता त्यारे कुमार अधाना नेतनेताभां ते स्तंभनी
 पासे पडोंथी गया अने पडोंथ्यां ज तेछे पडेलां पोताना धनुष्य उपर भाष्य
 यडाव्युं अने पधी तेदथी बरेल कडाधभां पडता अकना प्रतिधिं अने जेवा
 लाव्यो नेतां नेतां अकना अंतरालमार्गंथी पधी तेछे राधा 1 डापी

मन्निवेशितदृष्टिरुर्ध्वमुष्टिर्भवति, तदा जयन्तकुमारस्य कलाचार्यस्तं पृच्छति-
पश्यसि, किं दृष्टिगतं भवति? जयन्तकुमारः प्राह-केवलं पुत्तलिकाया वामनेत्रम्,
न तु किंचिदन्यत् । तद्वचनं श्रुत्वा गुरुः परितुष्टो जातः । ततोऽसौ जयन्तकुमार-
स्तैलपूर्णकटाद्वगतं प्रतिविम्बितं वामनेत्रं पश्यन् निश्चलेन मनसा करं स्थिरीकृत्य
हस्तलाघवं दर्शयन् सद्यः शरं व्यमुचत् । स शरश्चक्रान्तरालेन सवेगं निर्गच्छन्
पुत्तलिकाया वामनेत्रकनीनिकामविध्यत् । ततस्तस्य करस्थैर्यलघुदस्तत्वादिकं वर्ण-
यन्तो लोकाः प्रमुदिता जयजयध्वनिं प्रकुर्वन्ति । तदा जितशत्रुपुत्री इन्दिरा

अन्तराल मार्ग से फिर उसने राधा पुत्तली के वामनेत्र का प्रति-
विम्ब देखा । देखकर उसने फिर धनुष को चढाने के लिये हाथ की
मुट्टी ऊँची की । इतने में उसके कालाचार्य बीच ही में उससे पूछा
जयन्त ! तुम्हें इस समय क्या दिख रहा है ? । जयन्त ने कहा-गुरुमहा-
राज ! मुझे इस समय पुत्तली के वामनेत्र सिवाय और कुछ नहीं
दिख रहा है । जयन्तकुमार के वचन सुनकर कलाचार्य के हर्ष का
ठिकाना नहीं रहा । जयन्त ने तैलपूर्ण कडाह में पड़े हुए पुत्तली के
वामनेत्र के प्रतिविम्ब को लक्ष्यकर शीघ्र ही निश्चल मन से हाथ को
संभालते हुए उस ओर धनुष से बाण छोड़ दिया । छूटते ही बाण ने
चक्र के अन्तराल से निकलते हुए उस पुत्तली के वामनेत्र की कनी-
निका को वेध दिया । उपस्थित जनताने जयन्तके लक्ष्यवेधकी निपुणता
की एवं हस्तलाघवकी बहुत अधिक प्रशंसा की । सब के सब बड़े ही प्रसन्न
हुए । जयन्त की चारों ओर से जयध्वनिपूर्वक वधाई होने लगी ।

आंणतुं प्रतिभिंभ ज्ञेयुं. ज्ञेधने तेष्ते धनुष्यने चडाववा माटे डाधनी मुडी
उंची करी. ज्ञे वणते तेना कणाचार्ये वयभां न तेने पूछयुं न्यंत तमने
आ समये शुं देभाय छे? न्यते कछुं. शुरुभडाराज मने आ समये पुतणीनी
डाणी आंण सिवाय थीणुं कंछ देणतुं नथी. न्यंतकुमारनां वयन सांलणीने
कलाचार्यं दुर्पित गन्या. न्यते तेव लरेव कडाधमां परता पुतणीना डाणा
नेत्रना प्रतिभिंभने लक्ष्य करी तरत न निश्चल मनथी डाधने संलाणीने
ते तरक्षे णाणु छोडयुं णाणु छुटतां न चकना अंतरालथी नीकणीने
पुतणीनी डाणी आंणनी डीडीनुं वेधन कयुं. लेणी थयेली जनताज्जे न्यंत-
कुमारना लक्ष्यवेधनी प्रशंसा करी अने डाधकुशणतानी धणुीन प्रशंसा करी.
सधणा णणन प्रसन्न थया. न्यंतनी आदे णाणुथी न्यध्वनी पूर्वक वधाई थवा
लागी. धन्दिरा पणु येताना लाज्यने वणाणुती न्यंतना गणाभां वरभाणा

जयन्तकुमारस्य कण्ठे पुष्पमालां ददौ । यथा राधावेधो दुष्करस्तथा मनुष्यदेहा-
च्युतस्य प्रमादिनः पुनर्मनुष्यत्वं दुर्लभमिति ।

अत्र संग्रहश्लोकः—(शार्दूलविक्रीडितवृत्तम्)

राधायावदनादधः क्रमवशाच्चक्राणि चत्वार्यपि,
भ्राम्यन्तीह विपर्ययेण खलु तद्वामाक्षिवेधो यथा ।
प्राप्तो दुष्करतां नरेन्द्रतनयापाणिग्रहाकाङ्क्षिणां,
संसारे भ्रमतः पुनर्नरभवो जन्तोस्तथा दुर्लभः ॥ १ ॥

इति सप्तमधकदृष्टान्तः ॥ ७ ॥

अथाष्टमः कूर्मदृष्टान्तः—

अगाधजलपरिपूर्णः सहस्रयोजनविस्तीर्णः सलिलजन्तुसंभृतः सुशोभितः

इन्दिरा भी अपने भाग्य की सराहना करती हुई जयन्त के गले में
वरमाला डालकर अपने आपको धन्य मानने लगी । इस दृष्टान्त का भाव
केवल इतना ही है कि जिस प्रकार राधावेध साधना दुष्कर कार्य
है उसी प्रकार मनुष्य जन्मको हारा हुआ प्रमादी प्राणी को पुनः मनुष्य-
जन्मकी प्राप्ति दुर्लभ है । इस दृष्टान्तका भावप्रदर्शकश्लोक इस प्रकार है—

राधाया वदनादधः क्रमवशात् चक्राणि चत्वार्यपि,
भ्राम्यन्तीह विपर्ययेण खलु तद्वामाक्षिभेदो यथा ।
जातो दुष्करतां नरेन्द्रतनयापाणिग्रहाकाङ्क्षिणाम् ;
संसारे भ्रमतः पुनर्नरभवो जन्तोस्तथा दुर्लभः ॥ १ ॥

यह सातवा चक्रदृष्टान्त है ॥ ७ ॥

आठवाँ कूर्म (कच्छप) का दृष्टान्त इस प्रकार है—अगाधजल से

पडेशवीने पोते पोताने धन्य मानवा लागी, आ दृष्टान्तने भाव अष्टवै छे के,
जे रीते राधावेध साधना अत्यंत कठीन अने दुष्कर छे ओज रीते मनुष्य
जन्मने हारी गयेल प्रमादी प्राणीने पुनः मनुष्यजन्मनी प्राप्ति दुर्लभ छे.
आ दृष्टान्तने भावप्रदर्शक श्लोक आ प्रकारने छे.

राधाया वदनादधः क्रमवशात् चक्राणि चत्वार्यपि,
भ्राम्यन्तीह विपर्ययेण खलु तद् वामाक्षि भेदो यथा ।
जातो दुष्करतां नरेन्द्रतनयापाणिग्रहाकाङ्क्षिणाम्,
संसारे भ्रमतः पुनर्नरभवो जन्तोस्तथा दुर्लभः ॥ १ ॥

आ सातवुं चक्रदृष्टान्त छे ॥ ७ ॥

आठवुं कूर्म कायथा (कच्छप) नुं दृष्टान्त आ प्रकारनुं छे—

जलथी परिपूर्ण अवे अक (धरी) डोल इते, जे

एको हृद आसीत् । तदुदकं च परस्परसम्बद्धशैवालजालैश्चादितमभवत् । तत्र
स्वाप्त्यसंततिसमन्वितः कच्छपः प्रतिवसति । अन्यदा कदाचित् तत्र सान्द्र
शैवालमध्ये हृदोपान्तस्थितजम्बूविटपिनः सुपक्वफलसंपातेन शैवालतन्तु-
विच्छेदाच्छिद्रमभवत्, तस्मिन्नेव समये तत्रस्थिताऽसौ कूर्मस्तत्कालजातच्छिद्रमा-
श्रित्य ग्रीवां वहिष्करोति । तदनु खल्वसौ निर्मलगगनमण्डलमण्डनायमान तारा-
गणसमन्वितसुपमासम्पन्नशरदपूर्णशशाङ्कविम्बमवलोक्य साश्चर्यं मनसि चिन्तयति
-अहो ! किमिदं विलोक्यते । कीदृशमिदमदृष्टपूर्वं नयनानन्दजनकम् ? इत्येवं

परिपूर्ण एक द्रह था । जिसका विस्तार एक हजार योजन का था ।
इसमें अनेक जलचर जीव रहते थे । यह बड़ा सुन्दर था । इसका जल
परस्पर संबद्ध शैवालसमूह से आच्छादित था । इसमें एक कच्छुआ
अपने बच्चों के साथ रहता था । एक समय की बात है कि उस द्रह
के किनारे पर जो जामुन के वृक्ष खड़े हुए थे उनके कुछ जम्बूफल
उस शैवालजाल के ऊपर गिरे । उनके गिरने से उस शैवालजाल के
बीच में शैवाल के तन्तुओं के टूट जाने से छिद्र हो गया । उसी समय
कच्छुए ने जो उस शैवालजाल के नीचे रहता था उस छिद्र से अपनी
गर्दन को बाहर निकाला । बाहर निकालते ही उसने स्वच्छ आकाश
में आकाश का मण्डनस्वरूप एवं तारागणों से सुशोभित परमशोभा-
संपन्न ऐसे शरदकालीन पूर्णचन्द्रमा के विम्ब को देखा । देखते ही उसे
बड़ा भारी आश्चर्य हुआ । विचार ने लगा-अहो ! यह क्या दिखाई
देता है ? मैंने तो आज तक ऐसा नेत्रों को अपूर्व आनन्द देने वाला

हृदय योजन बेटवो डतो. तेमां अनेक प्रकारना जलचर एव रहता डता. ते धरा
पूषण सुंदर डतो. तेतुं जल शेवाण समूहथी आच्छादित डतुं अेमां अेक कायणे
पोतानां अश्चांअे साधे रहते डतो. अेक समयनी वात छे डे, ते धराना
डांठे न्भुडानां वृक्षे डारण्थे अेमां डतां ते पैडीना अेक वृक्षे उपरथी थेडां न्भुडण
शेवाणे उपर पडयां. आ रीते न्भुडाना पडवाथी जल उपर आच्छादित थयेली
शेवाणमां छिद्र पडी गयां. आ वपते अे शेवाणनी नीचे रहते कायणां
न्भुने लधने शेवाणमां पडेला छिद्रमांथी पोतानी डोक भडार डाढी. पोतानी
डोकने शेवाणमांथी भडार डाढतां ज कायणां अे स्वच्छ आकाशमां तारागणोथी
सुशोभित परम शोभासंपन्न अेवा शरदकाणना पूरुं चंद्रमाना प्रकाशने अेथी.
नेतां ज तेने धलुं ज आश्चर्य थयुं अने ते मनोमन विचारवा लाग्थे डे,
.। शुं देणां रहुं छे ? में आज सुधी नेत्रोने आनंद देवावाणे आवे

जयन्तकुमारस्य कण्ठे पुष्पमालां ददौ । यथा राधावेधो दुष्करस्तथा मनुष्यदेहा-
च्युतस्य प्रमादिनः पुनर्मनुष्यत्वं दुर्लभमिति ।

अत्र संग्रहश्लोकः—(शार्दूलविक्रीडितवृत्तम्)

राधायावदनादधः क्रमवशाच्चक्राणि चत्वार्यपि,
भ्राम्यन्तीह विपर्ययेण खलु तद्वामाक्षिवेधो यथा ।
प्राप्तो दुष्करतां नरेन्द्रतनयापाणिग्रहाकाक्षिणां,
संसारे भ्रमतः पुनर्नरभवो जन्तोस्तथा दुर्लभः ॥ १ ॥

इति सप्तमथक्रदृष्टान्तः ॥ ७ ॥

अथाष्टमः कूर्मदृष्टान्तः—

अगाधजलपरिपूर्णः सहस्रयोजनविस्तीर्णः सलिलजन्तुसंभृतः सुशोभितः

इन्दिरा भी अपने भाग्य की सराहना करती हुई जयन्त के गले में
वरमाला डालकर अपने आपको धन्य मानने लगी । इस दृष्टान्त का भाव
केवल इतना ही है कि जिस प्रकार राधावेध साधना दुष्कर कार्य
है उसी प्रकार मनुष्य जन्मको हारा हुआ प्रमादी प्राणी को पुनः मनुष्य-
जन्मकी प्राप्ति दुर्लभ है । इस दृष्टान्तका भावप्रदर्शकश्लोक इस प्रकार है—

राधाया वदनादधः क्रमवशात् चक्राणि चत्वार्यपि,
भ्राम्यन्तीह विपर्ययेण खलु तद्वामाक्षिवेधो यथा ।
जातो दुष्करतां नरेन्द्रतनयापाणिग्रहाकाक्षिणाम् ;
संसारे भ्रमतः पुनर्नरभवो जन्तोस्तथा दुर्लभः ॥ १ ॥

यह सातवा चक्रदृष्टान्त है ॥ ७ ॥

आठवाँ कूर्म (कच्छप) का दृष्टान्त इस प्रकार है—अगाधजल से

थड़ेसपीने पीते पीताने धन्य मानना लागी, आ दृष्टान्तने भाव अेटवो छे के,
जे रीते राधावेध साधना अत्यंत कठीन अने दुष्कर छे अेज रीते मनुष्य
जन्मने डारी गयेल प्रमादी प्राणीने पुनः मनुष्यजन्मनी प्राप्ति दुर्लभ छे,
आ दृष्टान्तने भावप्रदर्शक श्लोक आ प्रकारने छे.

राधाया वदनादधः क्रमवशात् चक्राणि चत्वार्यपि,
भ्राम्यन्तीह विपर्ययेण खलु तद् वामाक्षि वेधो यथा ।
जातो दुष्करतां नरेन्द्रतनयापाणिग्रहाकाक्षिणाम्,
संसारे भ्रमतः पुनर्नरभवो जन्तोस्तथा दुर्लभः ॥ १ ॥

आ सातसुं यकदृष्टान्त छे. ॥ ७ ॥

आठसुं कुर्म कायथा (कच्छप) तुं दृष्टान्त आ प्रकारसुं छे.—

अगाध जलथी परिपूर्ण अेवो अेक (धरो) डोअ इतो, अेक

શૈવાલે મિલિતે યથૈવ શશિનઃ સંદર્શનં દુર્લભં,
સંસારે ભ્રમતઃ પુનર્નરભવો જન્તોસ્તથા દુર્લભઃ ॥ ૧ ॥

इत्यष्टमः कूर्मदृष्टान्तः ॥ ८ ॥

अथ नवमो युगदृष्टान्तः प्रोच्यते—

અસંખ્યયોજનવિસ્તીર્ણો વલયાકારઃ સદ્દ્વ્યયોજનગમ્भीરઃ સ્વયંભૂરમણ-
સમુદ્રોઽસ્તિ । તસ્ય પ્રાચ્યાં દિશિ કોઽપિ દેવો યુગં પ્રાક્ષિપત્ તસ્ય યુગસ્ય કીલિકાં
પશ્ચિમાયાં દિશિ । યથા તસ્મિન્ સમુદ્રે ભ્રામ્યન્ત્યાસ્તસ્પ્યાઃ કીલિકાયાસ્તેન યુગેન

शैवाले मिलिते यथैव शशिनः संदर्शनं दुर्लभम्,
संसारे भ्रमतः पुनर्नरभवो जन्तोस्तथा दुर्लभः ॥ १ ॥

यह आठवा कूर्मदृष्टान्त हुआ ॥ ८ ॥

નોવાં યુગદષ્ટાન્ત ઇસ પ્રકાર હૈ—યહ દષ્ટાન્ત કલ્પનો સે સંબંધ
રખતા હૈ । અસંખ્યાત દ્વીપ ઓર સમુદ્રોં કે વાદ એક અન્તિમ દ્વીપ
ઓર સમુદ્ર હૈ । અન્તિમ સમુદ્ર કા અસંખ્યાત યોજન કા વિસ્તાર હૈ ।
ગહરાઈ મી ઇસકી એક હજાર યોજન કી હૈ । ઇસમેં કલ્પના કરો કિં
કોઈ એક દેવ પૂર્વ દિશા કી ઓર એક જુઆ-ગાડી કા અવયવવિશેષ
જો વૈલોં કે કન્ધાં પર રખા જાતા હૈ-ડાલ દે, ઓર પશ્ચિમ દિશા કી
ઓર ઉસકી કીલિકા-સેલ-ડાલ દે । અવ યહ કીલિકા ઉસ સમુદ્ર મેં
ઉસ દિશા સે વહતી હુઈ ચલી આવે ઓર વહતે હુए જુઆ કે સાથ

शैवाले मिलिते यथैव शशिनः संदर्शनं दुर्लभम्,
संसारे भ्रमतः पुनर्नरभवो जन्तोस्तथा दुर्लभः ॥ १ ॥

આ આઠમું કૂર્મદષ્ટાન્ત છે. ॥ ૮ ॥

नवमुं युगदृष्टान्तं आ प्रकारतुं छे—

આ દષ્ટાન્ત કલ્પનાથી સંબંધ રાખે છે. અસંખ્યાત દ્વીપ અને સમુદ્રો
પછી એક છેલ્લો દ્વીપ અને સમુદ્ર છે. એ છેલ્લા સમુદ્રનો વિસ્તાર અસંખ્ય
યોજનનો છે. ઉંડાઈ પણ તેની એક હજાર યોજનની છે. આમાં કલ્પના કરો
કે, કેઈ એક દેવ પૂર્વદિશા તરફ એક ધોંસરું કે જે ગાડીમાં બળદના કાંધ
ઉપર રાખવામાં આવે છે તે નાખી દે અને પશ્ચિમ દિશા તરફથી એ ધોંસ-
રાની લાકડીઓ નાખી દે. પશ્ચિમ દિશાએ નાખેલી ધોંસરાની એ સાંખેલ
વહેતાં વહેતાં ચાલી આવે અને તે ધોંસરી સાથે મળી જાય. જે રીતે આ વાત

विचिन्त्य स कूर्मः स्ववन्धूनपि तद् दर्शयितुं जले निमज्ज्य यावता काष्ठेन तैः सह पुनरायाति, तावत् पुनः समीरसंयोजितशैवालैस्तच्छिद्रमाच्छादितम् । यथा तच्चन्द्रमण्डलदर्शनं पुनस्तस्य कूर्मस्य दुर्लभं तथा मनुष्यदेहाच्च्युतस्य प्रमादिनः पुनर्मनुष्यत्वं दुर्लभमिति ।

अत्र संग्रहश्लोकः—(शार्दूलचिक्रीडितवृत्ताम्)

दृष्ट्वा कोऽपि हि कच्छपो हृदमुखे शैवालबन्धच्युते,
पूर्णेन्दुं मुदितः कुडुम्बमिह तं द्रष्टुं समानीतवान् ।

पदार्थ नहीं देखा है, यह कितना सुन्दर है । इस प्रकार विचार कर उसने इस अपूर्व वस्तु को अपने परिवार को भी दिखाने का विचार किया, अतः वह पानी में डुबकी लगाकर अपने परिवार के पास पहुँचा और उनको साथ में लेकर ज्यों ही यह वहाँ आया कि वह शैवालजाल हवा के लगने से फिर से ज्यों का त्यों परस्पर में मिल गया । इस दृष्टान्त से हम को यह शिक्षा मिलती है कि जिस प्रकार हवा के झोकों के लगने से शैवाल के तन्तु आपस में मिल गये और छिद्र का अभाव हो गया, अतः उस अभागे कछुए को पुनः चंद्रदर्शन होना दुर्लभ हुआ, उसी प्रकार मनुष्यजन्म को हारे हुए प्रमादी प्राणी को पुनः मनुष्यजन्म मिलना महा दुर्लभ है । इस दृष्टान्त का भावसंग्रह श्लोक इस प्रकार है—

दृष्ट्वा कोऽपि हि कच्छपो हृदमुखे शैवालबन्धच्युते,
पूर्णेन्दुं मुदितः कुडुम्बमिह तं द्रष्टुं समानीतवान् ।

अपूर्व पदार्थ कहीं पशु नेथो नहीं.. आ केवो सुंदर छे ? आ प्रकारनो विचार करी, ओ अपूर्व वस्तु पोताना परिवारने पशु पताववानो विचार करीं अने पाष्ठीमां दुष्करी मारी ते पोताना परिवारनी यासे पछोन्थे. अने तेने साथे लक्ष ते उपशोक्त स्थणे पछोन्थे त्यारे ते शैवाण के नेमां लंछुने लक्ष छिद्र पउथुं छतुं ते पवनने कारणे पुरार्थ जतां शैवाणनी सपाटी करीथी संधाध गध तेथी कायभा अने तेना परिवारने करीथी चंद्रनां दर्शन न थयां. ओ प्रकारे मनुष्य जन्मने डारी गयेव प्रमादी प्राणीने मनुष्य जन्म भणवो मडा दुर्लभ छे.
आ दृष्टान्तनो भावसंग्रहक श्लोक आ प्रमाणे छे.—

दृष्ट्वा कोऽपि हि कच्छपो हृदमुखे शैवालबन्धच्युते,
पूर्णेन्दुं मुदितः कुडुम्बमिह तं द्रष्टुं समानीतवान् ।

तुल्यं तच्चूर्णं नलिकान्तर्निधाय मेरुशिखरं समाख्य फूत्कृतसमीरणैस्तच्चूर्णं सकलं सर्वतः समुद्रापितम् ।

अथ तेन देवेन विस्त्रिप्तास्ते परमाणवः प्रचण्डपवनोद्भूताः सर्वासु दिक्षु दूरं गता एकैकशो विभिन्नाः पतिताः ।

यथा तान् परमाणून् सर्वतः संचित्य तैः पुनः स्तम्भनिष्पादनं लोकस्य दुष्करं, तथा मनुष्यभवात् प्रच्युतरस्य प्रमादिनः प्राणिनो मनुष्यजन्म दुर्लभमिति ॥

दसवां परमाणु दृष्टान्त इस प्रकार है—यह दृष्टान्त भी कल्पना से संबंध रखने वाला है—जैसे क्रीडावश किसी देव ने माणिक्यनिर्मित एक स्तम्भ को वज्र के प्रहार से तोड़ा । पश्चात् उसे इतना पीसा कि उसका चूरा चूरा हो गया । चूर्ण जैसा जब वह वन चुका तब उस चूर्ण को उसने एक नलिका में भरा और सुमेरु पर्वत के शिखर पर खड़े होकर उसको सब तरफ फूंक से उड़ा दिया । वे सब के सब उस स्तम्भके परमाणु जो उस देव ने अपनी फूंक से इधर उधर उड़ा दिये हैं और वायुके प्रवल झोंको ने उनकोप्रत्येक दिशा में ले जाकर और भी दूर फेंक दिये । उन सब के सब परमाणुओं को एकत्रित कर के फिर से जैसे उस स्तम्भ का उसी रूप से निर्माण करना दुष्कर है—उसी तरह मनुष्यभव से प्रच्युत जीव को मनुष्यभवकी पुनः प्राप्ति होना दुर्लभ है ।

इसमुं परमाणुदृष्टान्त आ प्रकारनुं छे.

आ दृष्टान्त पक्ष कल्पनाथी संबंध राभवावाणुं छे. जेभ रमतना तोरथी केरु देवे भाषिकुयथी भरेला ओवा ओक स्तंभने वज्रना प्रहारथी तोडी नाथ्यो. पछी तेने ओटवे पिरयो के, तेना चूरेचूरा थरु गया. चूर्ण जेवे न्यारे ते थरु गयो त्यारे ते लुकाने तेवे ओक नणीभां भयो अने सुमेरुपर्वतना शिखर उपर उला रङ्गिने आरे भाणु ते लुकाने कुंकथी उडाडी दीधा. ओ स्तंभना लुका रुपे भनेला सधगा परमाणुओने ते देवे पोतानी कुंकथी आरे केर उडावी दीधा अने वायुओ प्रणज वेगथी दरेक दिशाभां लरु जधने दुर ईंकी दीधा. इर इर न्यां त्यां ईंकाई गयेला ओ सधगा परमाणुओने ओकत्रित करी करीथी स्तंभनुं निर्माण करवुं दुष्कर छे तेवीर रीते आ मनुष्यभवने डारी ओटवे एव करी मनुष्य जन्मनी प्राप्ति करी शकतो नथी.

સહ સંઘટનમેવ દુર્લભં, તસ્ય યુગસ્ય છિદ્રે પુનઃ પ્રવેશસ્તુ તત્રાપિ દુર્લભસ્તયા
મનુષ્યભવાત્પચ્યુતસ્ય પ્રમાદિનઃ પુનર્મનુષ્યજન્મ દુર્લભમિતિ ।

અત્ર સંગ્રહઃ— (શાર્દૂલચિક્રીઢિતવૃત્તમ્)

પ્રાચ્યવ્થૌ યુગ-કીલિકા વિનિહિતા ક્ષિપ્તં યુગં પશ્ચિમે,
યદ્દુર્લભમેવ તત્ર વહતોઃ સંમીલનં તદ્વયોઃ ।
શમ્યાયાસ્તુ પુનર્યુગસ્ય વિવરે તસ્યાઃ પ્રવેશો યથા,
સંસારે ભ્રમતઃ પુનર્નરભવો જન્તોસ્તથા દુર્લભઃ ॥ ૧ ॥
इति नवमो युगदृष्टान्तः ॥ ९ ॥

અથ દશમઃ પરમાણુદૃષ્ટાન્તઃ—

કેનાઽપિ ક્રીડાપરેણ દેવેન મણિક્યમયં સ્તમ્ભં વજ્રેણ ચૂર્ણીકૃત્ય પરમાણુ-

મિલ જાવે તો જિસ પ્રકાર યહ વાત વહુત દુર્લભ હૈ ઓર હસસે ભી
અધિક દુર્લભ યહ હૈ કિ વહ કીલિકા વહતે ૨ ઉસ જુએ કે છેદ મેં
પ્રવિષ્ટ હો જાવે યહ વાત દુર્લભ હૈ । હસી તરહ મનુષ્ય ભવ સે પ્રચ્યુત
પ્રમાદી જીવ કો પુનઃ મનુષ્યભવ કી પ્રાપ્તિ હોના દુર્લભ હૈ । હસકા
ભાવપ્રદર્શકશ્લોક હસ પ્રકાર હૈ—

પ્રાચ્યવ્થૌ યુગકીલિકા વિનિહિતા ક્ષિપ્તં યુગં પશ્ચિમે,
યદ્દુર્લભમેવ તત્ર વહતોઃ સંમીલનં તદ્વયોઃ ।
શમ્યાયાસ્તુ પુનર્યુગસ્ય વિવરે તસ્યાઃ પ્રવેશો યથા,
સંસારે ભ્રમતઃ પુનર્નરભવો જન્તોસ્તથા દુર્લભઃ ॥ ૧ ॥
यह नौवां युगदृष्टान्त है ॥ ९ ॥

ઘણી જ દુર્લભ છે અને તેનાથી પણ અધિક દુર્લભ તો એ છે કે, ધોંસરાની
તે સાંબેલો વહેતાં વહેતાં તે ધોંસરાના વીંધમાં ભેડાઈ જાય એ વાત દુર્લભ
છે. આ રીતે મનુષ્યભવથી પ્રચ્યુત પ્રમાદી જીવને ફરીથી મનુષ્યભવની પ્રાપ્તિ
થી દુર્લભ છે.

તેના ભાવને દર્શાવતો શ્લોક આ પ્રકારનો છે—

પ્રાચ્યવ્થૌ યુગકીલિકા વિનિહિતા ક્ષિપ્તં યુગં પશ્ચિમે,
યદ્દુર્લભમેવ તત્ર વહતોઃ સંમીલનં તદ્વયોઃ ।
શમ્યાયાસ્તુ પુનર્યુગસ્ય વિવરે તસ્યાઃ પ્રવેશો યથા,
સંસારે ભ્રમતઃ પુનર્નરભવો જન્તોસ્તથા દુર્લભઃ ॥ ૧ ॥

આ નવમું યુગદૃષ્ટાન્ત છે. ॥ ૯ ॥

छाया—एकदा देवलोकेषु, नरकेष्वपि एकदा ।

एकदा आसुरं कायं, यथा कर्मभिः गच्छति ॥ ३ ॥

टीका—‘एगया’ इत्यादि ।

जीवः, एकदा=एकस्मिन् काले शुभकर्मानुभवकाले देवलोकेषु=सौधर्मादिषु यथाकर्मभिः=तद्वत्पनुरूपैश्चेष्टितैः सरागसंयमदेशविरत्यकामनिर्जरावालतपःकर्मभिः गच्छति । एकदा=अशुभकर्मोदयकाले, नरकेषु=रत्नप्रभादिषु यथाकर्मभिः=महारम्भमहापरिग्रहपञ्चेन्द्रियवधकुणपाहारैर्गच्छति । एकदा आसुरम्-असुरसम्बन्धिनं, कायं=निकायम् असुरकुमारभावमित्यर्थः, यथा कर्मभिः=सरागसंयमादिभिः, गच्छति=प्राप्नोति । उपलक्षणत्वाज्ज्योतिर्व्यन्तरयोरपि गच्छतीति बोध्यम् ॥ ३ ॥

उपरोक्त कथन को स्पष्ट करते हुए कहते हैं—‘एगया’-इत्यादि ।
अन्वयार्थ—यह जीव (एगया-एकदा) कभी तो शुभ कर्म के अनुभवन काल में (देवलोकेषु-देवलोकेषु) सौधर्म आदि देव लोक में (अहाकस्मेहिं - यथाकर्मभिः) ‘सरागसंयम, देशविरति, अकामनिर्जरा एवं वालतप आदिरूप उस गति के कर्म के कारणों से (गच्छइ-गच्छति) जन्म लेता है । (एगया-एकदा) कभी अशुभकर्म के अनुभवनकाल में (नरएषु-नरकेषु) रत्नप्रभा आदिक नरकों में (अहाकस्मेहिं-यथाकर्मभिः) महा आरंभ, महापरिग्रह, पंचेन्द्रियवध कुणप (मांस) आहार आदि करने से (गच्छइ-गच्छति) जाता है । (एगया-एकदा)

उपरोक्त कथनने वधारे स्पष्ट करतां कडे छे—

“एगया” इत्यादि.

अन्वयार्थ—आ एव एगया-एकदा क्यारेक तो शुभकर्मना अनुभव काणमां देवलोकेषु-देवलोकेषु सौधर्म आदि देवलोकां अहाकस्मेहिं-यथाकर्मभिः सराग संयम, देशविरति, अकाम निर्जरा, अने वालतप आदि रूप ये गतीनां कर्मोनां कारणोत्थी गच्छइ-गच्छति जन्म ले छे. एगया-एकदा क्यारेक अशुभ कर्मना उदयमां नरएषु-नरकेषु रत्नप्रभा आदि नरकोमां अहाकस्मेहिं-यथाकर्मभिः आरंभ, महाआरंभ, महापरिग्रह, पंचेन्द्रियवध कुणप (मांस) आहार आदि करवाथी

(१) “चउहिं ठाणेहिं जीवा देवाउयत्ताए कम्मं पगरेति, तं जहा-सरांग संजमेणं, संजमासंजमेणं, वालतवोकस्मेणं, अकामणिज्जराए” । (स्था. स्था. ४ व. ४ एवं औपातिक सूत्रेऽपि)

(२) “चउहिं ठाणेहिं जीवा णेरइयत्ताए कम्मंपकरेति, तं जहा-महारंभाए महा-परिगाहाए, पंचेन्द्रियवधेणं, कुणिमाहारेणं (स्था० स्था० ४ उ ४. एवम् औपा-तिकसूत्रेऽपि)

अयं भावः—मानुषं जन्म लब्ध्वाऽपि प्रमादकृतदुष्कर्मप्रभावादेकेन्द्रियादि-
जातिप्राप्त्या चक्रवर्तिपायसादिवत् पुनर्मानुषत्वं दुर्लभमिति ॥ २ ॥

एतदेव स्पष्टयति—

मूलम्—एगया देवलोएसु, नरएंसुवि एगया ।

एगया आंसुरं कायं, अहा कम्महिं गच्छइ ॥ ३ ॥

ને અપને જન્મ મરણ સે ન ભર દિયા હો । જીવ ને સૂક્ષ્મપૃથિવી-
કાયાદિ સ્થાવર કાય મેં ઉત્પન્ન હોકર લોકાકાશ કા પ્રત્યેક પ્રદેશ કો
તૈલ સે તિલ કી તરહ ભર દિયા હૈ । ફસલિયે મનુષ્યજન્મ પાકર મી
જો પ્રમાદી હોકર દુષ્કર્મો કા ઉપાર્જન કરતે હૈં વે અનેકે પ્રભાવ સે
એકેન્દ્રિયાદિક જાતિ કી પ્રાપ્તિ સે ચક્રવર્તીં કે પાયસ આદિ કી તરહ
મનુષ્યભવ કી પ્રાપ્તિ કો દુર્લભ બનાલેતે હૈં—

भावार्थ—मनुष्यभव पाकर भी प्राणी का कर्तव्य है कि वह
प्रमादी नहीं बने । प्रमाद के कारण ज्ञानावरणीयादिक कर्मों का बंध
होने से इस जीव का एकेन्द्रियादिक योनियों में जन्म होता है ।
इसमें इसका अनन्तकाल निकल जाता है । अतः पुनः मनुष्यभव की
प्राप्ति दुर्लभ बन जाती है । तात्पर्य कहने का यह है कि मनुष्यभव
सार्थक करने का यही उपाय है कि प्रमादी न बना जाय ॥ २ ॥

જન્મમરણથી ન ભરી દીધા હોય. એ સૂક્ષ્મ પૃથ્વી કાયાદિ સ્થાવર કાયમાં
ઉત્પન્ન થઈ થઈને લોકાકાશના પ્રત્યેક પ્રદેશને તલના તેલની માફક ભરી દીધેલ
છે. આ માટે મનુષ્યજન્મ મળવા છતાં પણ જે પ્રમાદી બની દુષ્કર્મોનું ઉપાર્જન
કરે છે, તે એના પ્રભાવથી એકેન્દ્રિયાદિક બનીની પ્રાપ્તિથી ચક્રવર્તીના દુધપાંક
વગેરેની માફક ફરી મનુષ્યભવની પ્રાપ્તિને દુર્લભ બનાવે છે.

ભાવાર્થ—મનુષ્યભવ મેળવીને પણ પ્રાણીનું કર્તવ્ય છે કે, તે પ્રમાદી ન
બને. પ્રમાદના કારણે જ્ઞાનાવરણીયાદિક કર્મોના બંધ થવાથી આ જીવનો એકે-
ન્દ્રિયાદિક જેવી યોનીઓમાં જન્મ થાય છે. તેમાં તેનો અનંત કાળ નીકળી
ભય છે. આથી મનુષ્યભવની પ્રાપ્તિ દુર્લભ બની ભય છે. તાત્પર્ય કહેવાનું
એ છે કે; મનુષ્યભવ સાર્થક કરવાનો એક માત્ર ઉપાય એ છે કે, આપણે
પ્રમાદી ન બની અને ત્યાં સુધી સુક્રિતની પ્રાપ્તિ ન થાય ત્યાં સુધી મનુષ્યભવની જ
ફરી ફરી પ્રાપ્તિ થતી રહે એવો પ્રયત્ન તો કરવો જોઈએ. ॥ ૨ ॥

एवं चतुरशीतिलक्षसंख्यका योनयस्तासु, इत्यर्थः । न निर्विघ्नन्ते=अस्मात् पर्यटनात् कदा मोक्षो भविष्यतीति नोद्विजन्ते=उद्वेगं न प्राप्नुवन्ति । केषु क इव ? सर्वार्थेषु=सर्वे च ते अर्थाः, सर्वार्थास्तेषु हिरण्य-सुवर्ण-मणि-मुक्ताफल-वज्र-वैडूर्य-ग्राम-नगर-कोश-कोष्ठागार-भूमि-गजाश्वादिषु सर्वविभवेषु प्राप्तेष्वपि, क्षत्रियाः=राजान इव । अयं भावः—यथा सर्वेषु विषयेषु प्राप्तेष्वपि राजानः संतोषं नाप्नुवन्ति, किंतु तत्प्राप्त्यर्थमेव पुनः पुनः प्रवर्तन्ते । एवं तासु तासु योनिषु पुनः पुनरुत्पत्तिमनुभवन्तोऽपि जीवाः पुनः पुनः ज्ञानावरणीयाद्यष्टविधकर्म कुर्वन्तस्तत्तद् योनिप्राप्त्यर्थमेव प्रवर्तन्ते, तस्मान्मनुष्यजन्म दुर्लभम् इति ।

लाख, तथा मनुष्य की चौदह लाख, इस प्रकार इन चौरासी लाख योनियों—उत्पत्ति स्थानों में) (न निर्विज्जन्ति—न निर्विघ्नन्ते) 'इस संसार परिभ्रमणसे मेरा कब मोक्ष होगा' इस प्रकार कभी भी निर्वेद—उद्वेग को प्राप्त नहीं होते हैं । (व-इव) जैसे(सबद्वेषु खत्तिया-सर्वार्थेषु क्षत्रियाः)हिरण्य सुवर्ण, मणि, मुक्ताफल, वज्र वैडूर्य, ग्राम, नगर, कोश एवं कोष्ठागार, भूमि, गज अश्व आदि प्राप्त विभवोंमें क्षत्रिय लोग उद्वेग (उदासीनता) को प्राप्त नहीं होते हैं । तात्पर्य इसका यह है कि जैसे युद्ध कर २ के समस्त देशों का राज्य प्राप्त होने पर भी क्षत्रिय लोग उद्वेग (उदासीनता) को प्राप्त नहीं होते हैं, किन्तु उनकी प्राप्ति के लिये ही वे चार २ चेष्टा किये करते हैं उसी प्रकार उन उन योनियों में चार २ जन्म मरण के दुःखों का अनुभव करते हुए भी ये जीव पुनः पुनः ज्ञानावरणीयादिक अष्टविध कर्मों का बन्ध करते हुए उन २ योनियों की प्राप्ति करने के लिये

तथा मनुष्योंकी चौदह लाख, आ प्रकार के चौरासी लाख योनीओंमें 'न निर्विज्जन्ति—न निर्विघ्नन्ते आ संसार परिभ्रमणार्थी भारे क्यारे मोक्ष थसे?' के प्रकारे तेने कोष्ठगतनी चिता थती नथी. व-इव जेभ सबद्वेषु खत्तिया-सर्वार्थेषु क्षत्रियाः हीराभाषेक, सुवर्ण, मणी, मुक्ताफल, वज्र, वैडूर्य, ग्राम, नगर, कोश अने कुष्ठागार, भूमि, गज, अश्व, आदि प्राप्त वैभवोंमें रथ्यापरथ्या रडेता क्षत्रियोने कोष्ठ उद्वेग थतो नथी. तात्पर्य जेतुं जे छे के, जेभ युद्ध करी करीने सभस्त देशनुं राज्य प्राप्त थवा छतां पणु क्षत्रियोने कोष्ठ उद्वेग थतो नथी परंतु तेनी प्राप्तने भाटे जे जे वारंवार प्रयत्न करता रडे छे. जेवी रीते योनीओंमें वारंवार जन्म मरणने अनुभव करवा छतां पणु जे एव करी करी ज्ञानावरणीयादि आठ प्रकारना कर्मोने बंध करीने ते ते योनीओंकी प्राप्ति करवाभां जे कीयाशील रडे छे.

मूलम्—एवमावृट्टजोर्णासु, पाणिणो कम्मकिल्विसा ।

न निविज्जंति संसारे, संवट्टेसु व खत्तिंया ॥५॥

छाया—एवम् आवर्तयोनिषु, प्राणिनः कर्मकिल्विपाः ।

न निर्विघ्नन्ते संसारे, सर्वार्थेषु इव सत्रियाः ॥ ५ ॥

टीका—‘ एवम् ’ इत्यादि ।

कर्मकिल्विपाः=कर्मभिर्मलिनाः प्राणिनः संसारे=भवे एवम्=अमुना प्रकारेण, आवर्तयोनिषु=आवर्तेन-पुनःपुनःपरिभ्रमणेन स्पृष्टा योनयः आवर्तयोनयस्तासु चतुरशीतिलक्षप्रकारासु, तत्र पृथिव्यपृतेजोवायुकायेषु प्रत्येकं सप्त सप्त लक्षाः, दश लक्षाः प्रत्येकवनस्पतिषु, निगोदजीवेषु च चतुर्दश लक्षाः, द्वि-त्रि-चतुरिन्द्रियेषु प्रत्येकं द्वे द्वे लक्षे, तिर्यङ्नारकदेवेषु प्रत्येकं चतस्रश्चतस्रो लक्षाः मनुजेषु चतुर्दश लक्षाः,

कभी तेन्द्रिय जीवों में और कभी चतुरिन्द्रिय जीवों में जन्म लेता है । इस प्रकार इस संसार में प्रमादी जीव भ्रमण करता ही रहता है । इस कीटादिक शब्द के उपलक्षणसे समस्त तीर्यञ्चजाति के भेदोपभेदों का ग्रहण जानना चाहिये ॥ ४ ॥

‘ एवम् ’—इत्यादि ।

अन्वयार्थ—(कम्मकिल्विसा-कर्मकिल्विपाः) कर्मां से मलिन (पाणिणो-प्राणिनः) प्राणी (संसारे-संसारे) संसार में (एवं-एवम्) उक्त प्रकार से भ्रमण करते हुए (आवट्टजोणीसु-आवर्तयोनिषु) इन चौरासी लाख योनियों में (पृथिवीकाय की सातलाख, अपकाय की सात लाख, तेजस्काय की सात लाख, वायुकाय की सात लाख, प्रत्येक वनस्पति की दश लाख, निगोदजीवों की चौदह लाख, द्विन्द्रिय, तेन्द्रिय चतुरिन्द्रिय की दो दो लाख, तिर्यञ्च, देव एवं नारकी की चार चार

ये प्रकारे आ संसारमा प्रमादी एव भ्रमण करोति च रडे छे आ कीटादिके शब्दानां उपलक्ष्युथी समस्त तिर्यञ्च जातीनां भेदोपभेदेषु अडणु नडणुषु जेधञ्जे ॥ ४ ॥

“ एवम् ”—इत्यादि.

अन्वयार्थ—कम्मकिल्विसा-कर्मकिल्विपाः कर्मोथी मलीन पाणिणो-प्राणिनः प्राणी संसारे-संसारे संसारमा एव-एवम् उक्त प्रकारथी भ्रमण करोतां करोतां आवट्टजोणीसु-आवर्तयोनिषु आ चौरासी लाख योनीओमां (पृथ्वीकायनी सात लाख, अपकायनी सात लाख, तेजस्कायनी सात लाख, वायुकायनी सात लाख, प्रत्येक वनस्पतिनी दश लाख, निगोद जीवानी चौदह लाख, द्वे इन्द्रिय, त्रय इन्द्रिय, चार इन्द्रियनी अडे लाख अने तिर्यञ्च, देव अने नारकीनी चार चार लाख,

एवं चतुरशीतिलक्षसंख्यका योनयस्तासु, इत्यर्थः । न निर्विद्यन्ते=अस्मात् पर्यटनात् कदा मोक्षो भविष्यतीति नोद्विजन्ते=उद्वेगं न प्राप्नुवन्ति । केषु कं इव ? सर्वार्थेषु=सर्वे च ते अर्थाः, सर्वार्थास्तेषु हिरण्य-सुवर्ण-मणि-मुक्ताफल-वज्र-वैदूर्य-ग्राम-नगर-कोश-कोष्ठागार-भूमि-गजाश्वादिषु सर्वविभवेषु प्राप्तेष्वपि, क्षत्रियाः=राजान इव । अयं भावः—यथा सर्वेषु विषयेषु प्राप्तेष्वपि राजानः संतोषं नाप्नुवन्ति, किंतु तत्प्राप्त्यर्थमेव पुनः पुनः प्रवर्तन्ते । एवं तासु तासु योनिषु पुनः पुनरुत्पत्तिमनुभवन्तोऽपि जीवाः पुनः पुनः ज्ञानावरणीयाद्यष्टविधकर्म कुर्वन्तस्तत्तद् योनिप्राप्त्यर्थमेव प्रवर्तन्ते, तस्मान्मनुष्यजन्म दुर्लभम् इति ।

लाख, तथा मनुष्य की चौदह लाख, इस प्रकार इन चौरासी लाख योनियों—उत्पत्ति स्थानों में) (न निर्विज्जन्ति—न निर्विद्यन्ते) 'इस संसार परिभ्रमणसे मेरा कब मोक्ष होगा' इस प्रकार कभी भी निर्वेद—उद्वेग को प्राप्त नहीं होते हैं । (व-इव) जैसे(सबद्वेषु खत्तिया-सर्वार्थेषु क्षत्रियाः)हिरण्य सुवर्ण, मणि, मुक्ताफल, वज्र वैदूर्य, ग्राम, नगर, कोश एवं कोष्ठागार, भूमि, गज अश्व आदि प्राप्त विभवोंमें क्षत्रिय लोग उद्वेग (उदासीनता) को प्राप्त नहीं होते हैं । तात्पर्य इसका यह है कि जैसे युद्ध कर २ के समस्त देशों का राज्य प्राप्त होने पर भी क्षत्रिय लोग उद्वेग (उदासीनता) को प्राप्त नहीं होते हैं, किन्तु उनकी प्राप्ति के लिये ही वे बार २ चेष्टा किये करते हैं उसी प्रकार उन उन योनियों में बार २ जन्म मरण के दुःखों का अनुभव करते हुए भी ये जीव पुनः पुनः ज्ञानावरणीयादिक अष्टविध कर्मों का बन्ध करते हुए उन २ योनियों की प्राप्ति करने के लिये

तथा मनुष्यानी चोद लाख, आ प्रकारे ये चौरासी लाख योनीओभां 'न निर्विज्जन्ति—न निर्विद्यन्ते आ संसार परिभ्रमणधी भारो कथारे मोक्ष थशे?' ये प्रकारे तेने कोध नतनी चिता थती नथी. व-इव जेम सबद्वेषु खत्तिया-सर्वार्थेषु क्षत्रियाः क्षीरा भाषेक, सुवर्ण, मणी, मुक्ताफल, वज्र, वैदूर्य, ग्राम, नगर, कोश अने कुष्ठागार, भूमि, गज, अश्व, आदि प्राप्त वैभवोभां रन्ध्यापन्ध्या रहैता क्षत्रियोने कोध उद्वेग थतो नथी. तात्पर्य ऐतुं ये छे के, जेम युद्ध करी करीने समस्त देशनुं रान्य प्राप्त थवा छतां पणु क्षत्रियोने कोध उद्वेग थतो नथी परंतु तेनी प्राप्तने माटे जे ये वारवार प्रयत्न करता रहै छे. जेवी रीते येनीओभां वारवार जन्म भरथुने अणुणव करवा छतां पणु ये लव करी करी ज्ञानावरणीयादि आठ प्रकारना कर्मोने अंध करीने ते ते येनीओनी प्राप्ति करवाभां जे कीयाशील रहै छे.

મનુષ્યાણામ્, તથા વિપયા અપ્યનુકૂલતયા મનો હરન્તિ સર્વેષામ્ । વર્ષાકાલે જલબુદ્બુદા ઇવ, કરાઙ્ગલિગતા આ ઇવ સમ્પદઃ ક્ષણનશ્વરાઃ સન્તિ । યથા-સ્વચ્છ-જલપરિપૂર્ણગમ્भीરગર્તે પ્રતિવિમ્બભાગાપન્નં તત્તટવર્તિવૃક્ષ-ઞ્ચાયા-લતા-પત્ર-પુષ્પાદિકં કિમપિ કાર્યં સાધયિતું ન શ્યનોતિ, તથા સંસારાન્તર્ગતં વસ્તુજાતમ્ કિમપિ સ્વા-ત્મકલ્યાણાય ન ભવતિ । એવમનન્તદુઃસ્વસંમૃતે સંસારેડનન્તાનન્તદુઃસ્વમનુભવન્તોઽપિ નોદ્વિજન્તે સર્વાર્થેષુ લઙ્ઘેષ્વપિ રાજાન ઇવ પ્રાણિનઃ । અતો મનુષ્યજન્મદુર્લભમ્ ।

વિપયસુખ મ્હી અનુકૂલ હોને સે સવ કો સુહાવને લગતે હૈં, સવ કે ચિત્ત લુભાતે રહતે હૈં । વર્ષાકાલ મેં જૈસે જલ કા બુદ્બુદા દેખતે ૨ નષ્ટ હો જાતા હૈ, ઓર અંજલિ કા જલ જૈસે ક્ષણભર મેં શ્વર જાતા હૈ ઁસી પ્રકાર સે યહ વૈભવ મ્હી ક્ષગવિનશ્વર જાનના ચાહિયે । જૈસે સ્વચ્છ જલ સે પરિપૂર્ણ ગમ્ભીર ઁલ્લે મેં પ્રતિવિમ્બરૂપ સે પતિત ઁસકે તટવર્તી વૃક્ષ કી છાયા લતા પત્ર પુષ્પાદિક કુછ મ્હી કાર્ય સાધક નહીં હો સકતે હૈં, ઁસી તરહ સંસાર કે અન્તર્ગત વસ્તુઁ કા સમૂહ મ્હી આત્મકલ્યાણ કા કુછ મ્હી સાધક નહીં હોતા હૈ । હસ પ્રકાર અનંત દુઃસ્વો સે ભરે હુએ હસ સંસાર મેં અનન્ત દુસ્વો કા અનુભવ કરતે હુએ મ્હી સંસારી જીવ પ્રાપ્ત અર્થ મેં અધિકતર લુભાને ચાલે રાજા કી તરહ પ્રતિદિનં ઁન્હીં સંસારવર્ધક વૈપયિક સુસ્વો મેં લુભાતે રહતે હૈં । આત્મકલ્યાણ કૈસે હોગા હસકી થોડી સી મ્હી ચિન્તા નહીં કરતે હૈં । હસલિયે યદિ મનુષ્યજન્મ પાયા હૈ તો કુછ કર લેના ચાહિયે, નહીં તો હસ મનુષ્ય

પ્રકારથી આ વિષયસુખ પણ અનુકૂળ હોતાં સઘળાને સુખરૂપ લાગે છે. બધાના ચિત્તને લોભાવે છે, વધોકાળમાં પાણીના પરપોટાની જેમ ભેત ભેતામાં નાશ પામે છે અને હાથમાં લીધેલ પાણી જેમ ક્ષણભરમાં ચોદ્યું બચ છે. એજ પ્રકારથી આ વૈભવ પણ ક્ષણભરમાં નાશ પામનાર સમજવો જોઈએ. જેમ સ્વચ્છ જળથી ભરેલા ઊંડા ખાડામાં પ્રતિબિંબ રૂપથી પતિત તેની પાસેના વૃક્ષની છાયા, લતા, પાંદડાં, પુષ્પ વગેરે, કાંઈ પણ કાર્યસાધક થતાં નથી. એવી રીતે સંસારનો અંતર્ગત વસ્તુઓનો સમૂહ પણ આત્મકલ્યાણમાં કાંઈપણ સાધક બનતો નથી. આ પ્રકારનાં અનંત દુઃખોથી ભરેલા આ સંસારમાં અનંત દુઃખોનો અનુભવ કરવા છતાં પણ સંસારી જીવ પ્રાપ્ત અર્થમાં અધિકતર લોભાવનારા સભની માફક દરેજ તેની સંસારવર્ધક વિષયી સુખોમાં લોભાતો રહે છે. આત્માનું કલ્યાણ કઈ રીતે થશે તેની થોડી પણ ચિન્તા કરતો નથી. અપ્રેલા માટેજ મનુષ્યજન્મ મળેલ છે તો તેનું કાંઈક સાર્યક કરી જોઈએ.

तस्मान्मनुष्यजन्म लब्ध्वा संसारस्वरूपं भावयेत्—अहो ! ईदृशं दुःखस्थानमन्यत्
किमपि नास्ति यादृशः संसारः ॥ ५ ॥

जन्म छुट जाने के बाद इसकी पुनः प्राप्ति दुर्लभ है, अतः मनुष्य का कर्तव्य है कि वह मनुष्यजन्म प्राप्त कर संसार के स्वरूप का अवश्यर विचार करता रहे, उसको सोचना चाहिये कि ऐसा दुःख का स्थान और कोई दूसरा नहीं है जैसा की यह संसार है ।

भावार्थ—कर्म से कदर्थित ये संसारी जीव चौरासी लक्ष योनियों में भ्रमण करते हुए भी पुनः उसी चक्कर में फँसने के अभिलाषी होते रहते हैं । यह चक्कर कैसे बंद होगा इसकी चिन्ता ही नहीं करते हैं । जैसे कोई क्षत्रिय बार बार युद्ध करने पर भी युद्ध से अरुचि नहीं लाता है । उसी प्रकार ये संसारो जीव भी सांसारिक अनंत दुःखों से अरुचि न लाकर ज्ञानावरणीय कर्मों को पुनः पुनः बढ़ाने की ओर ही अग्रेसर बने रहते हैं । इन को इस बात का पता नहीं कि इस मनुष्यभव से ही इन अनंत दुःखों का अंत होता है, अतः इस भवसे यदि ये दुःख नहीं नष्ट किये गये तो फिर दूसरा कौन ऐसा भव है जो इन दुःखों का अन्त करनेवाला हो सकेगा, अतः मिले हुए मनुष्य भव

नहीं तो आ मनुष्यजन्म पुरे धतां तेनी प्राप्ति इरी धवी दुर्लभ छे. आधी मनुष्यजन्म कर्तव्य छे के, ज्यादे महादुर्लभ जेवो मनुष्यजन्म तेने प्राप्त धये छे तो संसारना साया स्वर्गने अवश्य अवश्य विचार करतो रडे. तेखे विचारतुं जेधजे के, जेवो आ संसार छे तेना जेवुं दुःखतुं स्थान थीतुं केध नथी.

भावार्थ—कर्मधी कदाच संसारी एव चौरासी लाख योनीजोमां भ्रमण करवा छतां पणु इरी जेच अक्करमां इसाय—भूथी नथ तेवां कार्योमां ते रत रडे छे पणु जे अक्कर कर्ध रीते पंध थाय तेनी चिता करतो नथी. जेम केध क्षत्रिय वारंवार युद्ध करवा छतां तेना दिलमां युद्धनी अइथी नगती नथी. तेवी रीते संसारी एव पणु संसारनां अनंत दुःखोने नखुवा छतां तेना प्रत्ये अइथी न लावतां ज्ञानावरणीय कर्मोने इरी इरी वधारवानी तरइ ज तेनी मुष्य प्रवृत्ति पनी रडे छे. तेने जे वातनेा प्याव पणु नथी आवतो के, आ मनुष्यलवद्वारा ज ते अनंत दुःखोनेा अंत लावी शक्य छे. जे कारखे आ लवद्वारा ज जे ते दुःख नष्ट करवामां नही आवे तो इरी जेवो कथो लव छे के, आ दुःखोनेा अंत लावनामां उपयोगी थाय ? आधी महापूष्यना उदयथी अप्राप्य जेवा भजेला मनुष्यलवने सङ्ग पनाववा तरइ लक्ष देवुं

मूलम्—कम्मसंगेहिं संमूढा, दुःखिया बहुवेयणा ।

अमाणुसासु जोणीसु, विणिहम्मंति पाणिणो ॥ ६ ॥

छाया—कर्मसंगैः संमूढाः, दुःखिता बहुवेदनाः ।

अमानुषीषु योनिषु, विनिहन्यन्ते प्राणिनः ॥ ६ ॥

टीका—‘कम्मसंगेहिं’ इत्यादि ।

कर्मसंगैः=ज्ञानावरणीयादि कर्मसंयोगैः, संमूढाः—तत्त्वातत्त्वविवेकरहिताः, दुःखिताः=विविधदुःखजालजनकरोगशोकादिसमाक्रान्ताः, बहुवेदनाः=मन्द तीव्र-तीव्रतर-पीडायुक्ताः प्राणिनः, अमानुषीषु=एकेन्द्रिय-द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रियमनुष्यभिन्नपञ्चेन्द्रियरूपासु च, योनिषु कर्मभिः विनिहन्यन्ते=पुनः पुनरुत्पद्यन्ते । अतो मानुषत्वं दुर्लभमिति भावः ॥ ६ ॥

को सफल बनाने की ओर लक्ष्य देना यही सब से प्रथम कर्तव्य है ॥ ६ ॥

“कम्मसंगेहिं” इत्यादि

अन्वयार्थ—(कम्मसंगेहिं—कर्मसंगैः) ज्ञानावरणीयादिक कर्मों के संयोग से (संमूढा—संमूढाः) तत्त्वातत्त्व के विवेक से विकल बने हुए अतएव (दुःखिया—दुःखिताः) विविधदुःखजनक ऐसे रोग, शोक आदि से समाक्रान्त एवं (बहु वेयणा—बहु वेदनाः) मन्द, तीव्र, तीव्रतर पीडाओं से युक्त ये (पाणिणो—प्राणिनः) संसारी प्राणी (अमाणुसासु जोणीसु—अमानुषीषु योनिषु) एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय एवं मनुष्य भिन्न पञ्चेन्द्रिय इन योनियों में (विणिहम्मंति—विनिहन्यन्ते) पुनः पुनः जन्ममरणजनित दुःख पाते हैं । इसलिये मनुष्यभवं दुर्लभ है ।

जेष्ठे अने ते प्राणीभानुं जेष्ठं मात्र सौ प्रथम कर्तव्यं छे ॥ ५ ॥

“कम्मसंगेहिं”—इत्यादि.

अन्वयार्थ—कम्मसंगेहिं—कर्मसंगैः ज्ञानावरणीय आदि कर्मोंना संयोगी संमूढा—संमूढाः तत्त्वातत्त्वना विवेकधी, विकल अनेला तेभज दुःखिया—दुःखिताः विविध दुःखजनक अवा रोग, शोक आदिधी समाक्रांत अने बहु वेयणा—बहु वेदनाः मंद, तीव्र, तीव्रतर, पीडाअधी युक्त आ पाणिणो—प्राणिनः संसारी प्राणी अमाणुसासु जोणीसु—अमानुषीषु योनिषु जेष्ठेन्द्रिय, जेष्ठेन्द्रिय, त्रीष्ठेन्द्रिय, आर धेन्द्रिय, अने मनुष्य भिन्न पांच धेन्द्रिय आ योनीअभां विणिहम्मंति—विनिहन्यन्ते इरी इरी जन्म मरण जनीत दुःख पाते छे. अटला भाटे मनुष्यभवं दुर्लभ कही छे.

कथं तर्हि मानुपत्वं प्राप्नोतीत्याह—

मूलम्—कम्माणं तु पहाणाए, आणुपुर्व्वि कंयाइ वि ।

जीवां सोहिमणुप्वत्ता, औययंति मणुस्सयं ॥ ७ ॥

छाया—कर्मणां तु प्रहाण्या, आनुपूर्व्व्या कदाचिदपि ।

जीवा शोधिमनुप्राप्ताः, आददते मनुष्यताम् ॥ ७ ॥

टीका—‘ कम्माणं ’ इत्यादि ।

तु=पुनः आनुपूर्व्व्या=अनुक्रमेण, कर्मणां=मनुष्यगतिविधातकानामनन्तानु-
वन्धिक्रोधादिरूपाणाम्, प्रहाण्या=क्षयेण-अपगमेन, जीवाः=पागिनः, आनुपूर्व्व्या
=अनुक्रमेण पृथिवीकायादिक्रमेणेत्यर्थः, शोधिम्=अशुभकर्मापगमरूपां शुद्धिम्,

भावार्थ—प्राप्त मनुष्यभव यदि प्रमादी होकर यों ही गुमा दिया जाता है तो फिर इस जीव को कर्मों के प्रभाव से तत्त्वातत्त्वविवेक रहित बनकर अनेक अमानुषीय योनियों में अनेक प्रकार के कष्टों का साम्हना करते हुए उत्पन्न होते रहते हैं। इसलिये मिले हुए इस मनुष्य-
भव को व्यर्थ मत जाने दो, नहीं तो पुनः इसका मिलना दुर्लभ है ॥ ६ ॥

मनुष्यभव प्राप्त कैसे होता है यह बात सूत्रकार बतलाते हैं—

“ कम्माणं ” इत्यादि

अन्वयार्थ—(आणुपुर्व्वी-आनुपूर्व्व्या) अनुक्रम से (कम्माणं-कर्मणाम्)
मनुष्यगतिविधातक अनन्तानुबन्धी क्रोधादि कर्मों की पहाणाए-प्रहाण्या
प्रहाणि-क्षयसे (जीवा जीवाः) जीव (आणुपुर्व्वी-आनुपूर्व्व्या) पृथिवी-

भावार्थ—प्राप्त मनुष्यत्व ले प्रमादी अपनी अभने अभन गुमावी देवाय तो
पछी आ लवने कर्मोना प्रभावथी तत्त्वातत्त्वविवेकरहीत अपनी अनेक अमा-
नुषिय योनीओभां अनेक प्रकारनां कष्टोना सामने करतां करतां उत्पन्न यता
रहे छे. पछु मनुष्यत्व पाभवे दुर्लभ रहे छे. भाटे भजेला आ मनुष्यत्वने
व्यर्थ लवा न देवे लोछे अ. लवने करी करी मनुष्यत्व भजवे दुर्लभ छे. ॥६॥

मनुष्यत्व केवी रीते प्राप्त थाय छे ते सूत्रकार बतावे छे—

‘ कम्माणं ’ इत्यादि.

अन्वयार्थ—आणुपुर्व्वी-आनुपूर्व्व्या अनुक्रमथी कम्माणं-कर्मणाम् मनुष्यगती
विधातक अनन्तानुबन्धी क्रोधादि कर्मोना पहाणाए-प्रहाण्याक्षयथी जीवा-जीवाः लव
आणुपुर्व्वी-आनुपूर्व्व्यापृथ्वीकायादिकना कर्मथी सोहि-शोधिम् अशुभ कर्मोना अपग-

मूलम्—कम्मसंगेहिं संमूढा, दुःखिया बहुवेयणा ।

अमाणुसासु जोणीसु, विणिहम्मंति पाणिणो ॥ ६ ॥

छाया—कर्मसंगैः संमूढाः, दुःखिता बहुवेदनाः ।

अमानुषीषु योनिषु, विनिहन्यन्ते प्राणिनः ॥ ६ ॥

टीका—‘कम्मसंगेहिं’ इत्यादि ।

कर्मसंगैः=ज्ञानावरणीयादि कर्मसंगैः, संमूढाः—तत्त्वातत्त्वविवेकरहिताः, दुःखिताः=विविधदुःखजालजनकरोगशोकादिसमाक्रान्ताः, बहुवेदनाः=मन्द तीव्र तीव्रतर-पीडायुक्ताः प्राणिनः, अमानुषीषु=एकेन्द्रिय-द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रियमनुष्यभिनपञ्चेन्द्रियरूपासु च, योनिषु कर्मभिः विनिहन्यन्ते=पुनः पुनरुत्पद्यन्ते । अतो मानुपत्वं दुर्लभमिति भावः ॥ ६ ॥

को सफल बनाने की ओर लक्ष्य देना यही सब से प्रथम कर्तव्य है ॥ ६ ॥

“कम्मसंगेहिं” इत्यादि

अन्वयार्थ—(कम्मसंगेहिं—कर्मसंगैः) ज्ञानावरणीयादिक कर्मों के संयोग से (संमूढा—संमूढाः) तत्त्वातत्त्व के विवेक से विकल बने हुए अतएव (दुःखिया—दुःखिताः) विविधदुःखजनक ऐसे रोग, शोक आदि से समाक्रान्त एवं (बहु वेयणा—बहु वेदनाः) मन्द, तीव्र, तीव्रतर पीडाओं से युक्त ये (पाणिणो—प्राणिनः) संसारी प्राणी (अमाणुसासु जोणीसु—अमानुषीषु योनिषु) एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय एवं मनुष्य भिन्न पञ्चेन्द्रिय इन योनियों में (विणिहम्मंति—विनिहन्यन्ते) पुनः पुनः जन्ममरणजनित दुःख पाते हैं । इसलिये मनुष्यभवं दुर्लभ है ।

जोधये अने ते प्राणीभावनुं अेक मात्र सौ प्रथम कर्तव्य छे ॥ ५ ॥

“कम्मसंगेहिं”—इत्यादि.

अन्वयार्थ—कम्मसंगेहिं—कर्मसंगैः ज्ञानावरणीय आदि कर्मोंना संयोगी संमूढा—संमूढाः तत्त्वातत्त्वना विवेकधी, विकल अनेवा तेमज दुःखिया—दुःखिताः विविध दुःखजनक अेवा रोग, शोक आदिधी समाक्रान्त अने बहु वेयणा—बहु वेदनाः मंद, तीव्र, तीव्रतर, पीडाअेधी युक्त आ पाणिणो—प्राणिनः संसारी प्राणी अमाणुसासु जोणीसु—अमानुषीषु योनिषु अेकेन्द्रिय, जेधन्द्रिय, त्रीधन्द्रिय, आर धन्द्रिय, अने मनुष्य भिन्न पांच धन्द्रिय आ योनीअेभां विणिहम्मंति—विनिहन्यन्ते इरी इरी जन्म मरण जनीत दुःख पाते छे. अेटवा भाटे मनुष्यभवं दुर्लभ कइते छे.

कस्यचिद् विशिष्टपुण्यस्योदयेन मानुषत्वलाभेऽपि श्रुतिर्दुर्लभेत्याह—
मूलम्—माणुस्सं विग्रहं लब्धुं, सुई धम्मस्स दुल्लहा ।

जं सोच्चा पडिवज्जंति, तवं खंतिमहिंसयं ॥८॥

छाया—मानुष्यं विग्रहं लब्ध्वा, श्रुतिर्धर्मस्य दुर्लभा ।

यं श्रुत्वा प्रतिपद्यन्ते, तपः क्षान्तिम् अहिंसताम् ॥ ८ ॥

टीका—‘माणुस्सं’ इत्यादि ।

मानुष्यं=मनुष्यभवसम्बन्धिनं, विग्रहं=शरीरं, लब्ध्वा=प्राप्य, धर्मस्य=श्रुतचारित्रलक्षणस्य, श्रुतिः=श्रवणं, दुर्लभा, यं धर्मं श्रुत्वा, तपः=अनशनादि द्वादशविधम्, इन्द्रियजयं वा, क्षान्तिः=क्रोधजयरूपां, उपलक्षणमेतन्मानादिजयस्यापि, अहिंसताम्=अहिंसकत्वम्, अनेन प्रथमव्रतमुक्तम्, इदमप्युपलक्षणम्—मृषावादादत्तादानमैथुनपरिग्रहविरमणस्य, प्रतिपद्यन्ते=प्राप्नुवन्तीत्यर्थः । धर्मस्य श्रवणं हि मिथ्यात्वतिमिरप्रणाशकं, श्रद्धाज्योतिःप्रकाशकं, तत्त्वातत्त्वविवेचकं, पीयूषपानमिव

कहते हैं—“माणुस्सं” इत्यादि ।

अन्वयार्थ—(माणुस्सं विग्रहं लब्धुं मानुष्यकं विग्रहं लब्ध्वा) मनुष्यभव संबंधी शरीर को पाकर भी (धम्मस्स सुई दुल्लहा—धर्मस्य श्रुतिः दुर्लभा) श्रुतचारित्ररूप धर्मका श्रवण दुर्लभ है। (जं सोच्चा—यं श्रुत्वा) जिस धर्म को सुनकर प्राणी (तवं खंतिमहिंसयं—तपः क्षान्तिम् अहिंसताम्) अनशन आदि चारह १२ प्रकार के तप को, अथवा इन्द्रियनिग्रह को, क्रोध जयरूप क्षान्ति को, उपलक्षण से मान आदि कषाय के विजय को, तथा अहिंसक भाव को, उपलक्षण से मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन एवं परिग्रह से विरमणरूप व्रत को (पडिवज्जंति—प्रतिपद्यन्ते) प्राप्त करते हैं। धर्म का श्रवण जीव के मिथ्यात्वरूप तिमिर का विनाशक, श्रद्धारूप ज्योति का प्रकाशक, तत्त्व अतत्त्व का विवेचक, अमृतपान के समान

‘माणुस्सं’ इत्यादि.

अन्वयार्थ—माणुस्सं विग्रहं लब्धुं—मानुष्यकं विग्रहं लब्ध्वा मनुष्यत्व संबंधी शरीरने भोगवीने पणु धम्मस्स सुई दुल्लहा—धर्मस्य श्रुतिः दुर्लभा श्रुत चारित्ररूप धर्मनुं श्रवण दुर्लभ छे. जं सोच्चा—यं श्रुत्वा जे धर्मने सांभलीने प्राणी तवं खंतिमहिंसयं—तपः क्षान्तिम् अहिंसताम् अनशनादि चार १२ प्रकारना तपने अथवा इन्द्रियनिग्रहने, क्रोधजयरूप, क्षान्तिने उपलक्षणथी मान आदि कषायना विजयने तथा अहिंसक बोवने उपलक्षणथी मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन अने परिग्रहथी वीरभणु रूप व्रतने पडिवज्जंति—प्रतिपद्यन्ते प्राप्त करे छे. धर्मनुं श्रवणु लवने मिथ्यात्वरूपी अधकारना नाश करनार, श्रद्धारूप ज्योतिने प्रका-

અનુમાતાઃ સન્તઃ, કદાચિદેવ, ન તુ સર્વદા, અત્ર તુ-શબ્દ એવાર્થકઃ । મનુષ્યતામ્
આદદતે=પૃહ્નન્તિ-પ્રાપ્નુવન્તીત્યર્થઃ । અયં ભાવઃ-પ્રકૃતિભદ્રતયા, પ્રકૃતિવિનીતતયા,
સાનુક્રોશતયા (સદયતયા) અત્સરિતયા મનુષ્યેષુ પ્રાણિન ઉત્પદ્યન્તે । અપિ ચ-
વિશિષ્ટશુદ્ધિહેતુભિસ્તનુકૃપાયત્વાદિર્મિર્મનુષ્યાયુર્વન્થો ભવતિ । ઉક્તચ્ચ—

પયર્ષે તણુકસાઓ, દાળરઓ સીલસંજમવિહૂળો ।

મજ્જમગુણેહિં જુત્તો મણુયાઉં વંધણ જીવો ॥ ૨ ॥

છાયા-પ્રકૃત્યા તનુકૃપાયો, દાનરતઃ શીલસંયમવિહીનઃ ।

મધ્યમગુણૈર્યુક્તો મનુજાયુર્વન્થાતિ જીવઃ ॥ ૧ ॥ ૭ ॥

કાયાદિક કે ક્રમસે (સોહિ-શોધિમ્) અશુભ કર્મોં કે અપગમરૂપ
શુદ્ધિ કો પ્રાપ્ત હોતે હુણે (કયાઈ વિ-કદાચિદપિ) કમી કમી હી-
સર્વદા નહીં, (મણુસ્સયં આયયંતિ-મનુષ્યતાં આદદતે) મનુષ્યભવ
કો પ્રાપ્ત કરતે હેં । પ્રાણી સ્વાભાવિક ભદ્રપરિણામી હો, સ્વાભાવિક
વિનીત હો, દયાલુ હો, મત્સરભાવ સે રહિત હો તો વહ મરકર
મનુષ્યપર્યાય કો પ્રાપ્ત કરતા હેં । વિશિષ્ટ શુદ્ધિ કા કારણ જો કષાયોં
કી મંદતા હેં ઉસસે મી મનુષ્યાયુકા વંધ પ્રાણી કો હોતા હેં । ઉક્તચ્ચ—

પયર્ષે તણુકસાઓ દાળરઓ સીલસંજમવિહૂળો ।

મજ્જમગુણેહિં જુત્તો મણુયાઉં વંધણ જીવો ॥ ૧ ॥

છાયા-પ્રકૃત્યા તનુકૃપાયો દાનરતઃ શીલસંયમવિહીનઃ ।

મધ્યમગુણૈર્યુક્તો મનુજાયુર્વન્થાતિ જીવઃ ॥ ૧ ॥ ૭ ॥

વિશિષ્ટ પુણ્ય કે ઉદય સે કિસી જીવ કો મનુષ્યભવ કી પ્રાપ્તિ હો
મી જાય તો મી ધર્મ કા સુનના દુર્લભ હેં ઇસ વાત કો સૂત્રકાર

મરૂપ શુદ્ધિને પ્રાપ્ત કરીને કયાઈ વિ-કદાચિદપિ કોઈ કોઈ વખત મણુસ્સયં-મનુષ્યતા—
મનુષ્યભવને આયયંતિ-આદદતે પ્રાપ્ત કરે છે. પ્રાણી સ્વાભાવિક ભદ્ર પરિણામી હોય,
સ્વાભાવિક વિનીત હોય, દયાળુ હોય, મત્સરભાવથી રહિત હોય તો તે મરીને
મનુષ્યપર્યાયને પ્રાપ્ત કરે છે. વિશિષ્ટ શુદ્ધિનું કારણ જે કષાયોની મંદતા
છે તેનાથી પણ મનુષ્ય આયુને વંધ પ્રાણીને થાય છે. કહું પણ છે—

પયર્ષે તણુકસાઓ દાળરઓ સીલસંજમવિહૂળો ।

મજ્જમ ગુણેહિં જુત્તો મણુયાઉં વંધણ જીવો ॥ ૧ ॥

છાયા-પ્રકૃત્યા તનુકૃપાયો દાનરતઃ શીલસંયમવિહીનઃ ।

મધ્યમગુણૈર્યુક્તો મનુજાયુર્વન્થાતિ જીવઃ ॥ ૧ ॥ ૭ ॥

વિશિષ્ટ કર્મના ઉદયથી કોઈ જીવને મનુષ્યભવની પ્રાપ્તિ થઈ પણ જાય
તો પણ ધર્મને સાંભળવો દુર્લભ છે આ વાતને સૂત્રકાર

ટીકા—‘ આહચ્ચ ’ ઇત્યાદિ ।

કદાચિત્ શ્રવણં=ધર્મશ્રવણં લઙ્ઘ્વાઽપિ શ્રદ્ધા=ધર્મવિપયિકા રુચિઃ, પરમદુર્લભાઽસ્તિ । શ્રદ્ધા ઠિ સંસારસાગરતરણતરણિઃ, મિથ્યાત્વતિમિરહરણદ્યુમણિઃ, સ્વર્ગાપવર્ગસુખચિન્તામણિઃ, ક્ષપકશ્રેણિસરણિઃ, કર્મરિપુદમની, કેવલજ્ઞાનકેવલદર્શનજનની । શ્રદ્ધાયાઃ પરમદુર્લભત્વે હેતુમાહ—‘ વહવે ’ ઇત્યાદિ ।

વહવો મનુષ્યા નૈયાયિકં—ન્યાયે પશ્ચસમવાયકારણે ભવં નૈયાયિકં પશ્ચસમ-

ધર્મશ્રવણ કી પ્રાપ્તિ કે વાદ સૂત્રકાર અથ શ્રદ્ધા કી દુર્લભતા દિખલાતે હૈં—‘ આહચ્ચ ’—ઇત્યાદિ ।

અન્વયાર્થ—(આહચ્ચ-આહત્ય) કદાચિત્ (સવણં લઙ્ઘુ-શ્રવણં લઙ્ઘ્વા) ધર્મકા શ્રવણ મ્હી પ્રાપ્ત હો જાય તો મ્હી (સદ્ધા પરમદુર્લભા-શ્રદ્ધા પરમદુર્લભા) ધર્મ મ્હેં શ્રદ્ધા-રુચિ-હોના પરમ દુર્લભ હૈં । યહ શ્રદ્ધા સંસારરૂપી સાગર સે પાર કરાને કે લિયે નૌકા જૈસી હૈ, મિથ્યા-સ્વરૂપી તિમિર કો દૂર કરને કે લિયે દ્યુમણિ-સૂર્ય જૈસી હૈ । સ્વર્ગ એવં મોક્ષ કે સુખોં કો દેને કે લિયે ચિન્તામણિરત્ન જૈસી હૈ । ક્ષપક શ્રેણી પર આરૂઢ હોને કે લિયે નિસરણી જૈસી હૈ । કર્મરૂપી શત્રુ કો પરાસ્ત કરને વાલી હૈ, એવં કેવલ જ્ઞાન કેવલ દર્શન કો ઉત્પન્ન કરને કે લિયે જનની જૈસી હૈ । યહ શ્રદ્ધા પરમ દુર્લભકર્યોં હૈ? યહ વાત સ્વયં સૂત્રકાર કહતે હૈં (વહવે-વહવઃ) સંસારમ્હેં એસે મ્હી કિતનેક મનુષ્ય હૈં જો

ધર્મ શ્રવણની પ્રાપ્તિ ખાઠ સૂત્રકાર હવે શ્રદ્ધાની દુર્લભતા સમભવે છે.—‘ આહચ્ચ ’ ઇત્યાદિ.

અન્વયાર્થ—આહચ્ચ-આહત્ય કદાચિત્ સવણં લઙ્ઘુ-શ્રવણં લઙ્ઘ્વા ધર્મનું શ્રવણ પ્રાપ્ત થઈ નય તો પણ સદ્ધા પરમદુર્લભા-શ્રદ્ધા પરમદુર્લભા ધર્મમાં શ્રદ્ધા રૂપી થવી એ પરમ દુર્લભ વાત છે. આ શ્રદ્ધા સંસારરૂપી સાગરથી પાર ઉતારનાર નૌકાનું કામ કરે છે. મિથ્યાત્વ રૂપી ઘોર અંધકારને દૂર કરી માણસના હૃદયમાં સૂર્ય તેજનાં કિરણો જેવો પ્રકાશ પહોંચાડે છે. સ્વર્ગ અને મોક્ષનાં સુખોને આપવા માટે ચિન્તામણીરત્ન જેવી છે. ક્ષપકશ્રેણી ઉપર આરૂઢ થવા માટે એ નિસરણી જેવી છે. કર્મરૂપી શત્રુનો નાશ કરવા માટે એ અતુલ બળવાળી છે. અને કેવળજ્ઞાનદર્શનને ઉત્પન્ન કરવા માટે એ જનની જેવી છે. આ શ્રદ્ધા પરમ દુર્લભ કેમ છે? આ વાત સ્વયં સૂત્રકાર ખતાવે છે. તેઓ કહે છે કે, વહવે-વહવઃ સંસારમાં એવા પણ કેટલાક મનુષ્યો છે જે નેયાવયં-

હિતાવહં; ચક્ષુચન્દ્રચન્દ્રિકેય હૃદયાઠાદકં, સ્વપ્નદૃષ્ટવસ્તુનઃ પુનર્જાગ્રદવસ્થાયાં તદ્દા-
ભવત્ પ્રમોદજનકં, ભૂમિગતનિધાનપ્રાપ્તિરિવ સુલ્લજનકં, સફલસંતાપહારકમ્ ।
તસ્માદ્ ધર્મઃ શ્રોતવ્ય ઇતિ ભાવઃ ॥ ૮ ॥

શ્રુતિલાભેઽપિ શ્રદ્ધા દુર્લભેત્યાહ—

મૂલમ્—આહચ્ચ સર્વેણં લદ્ધું, સદ્ધા પરમદુલ્લહા ।

સોર્ષ્ચા નૈયાંતયં મર્ગં, વહવે પરિભંસ્સઈ ॥ ૯ ॥

છાયા—ઋદાચિત્ શ્રવણં લબ્ધ્વા, શ્રદ્ધા પરમદુર્લભા ।

શ્રુત્વા નૈયાયિકં માર્ગં, વહવઃ પરિભ્રમ્યન્તિ ॥ ૯ ॥

एकान्ततः हितविधायक, निर्मल चांदनी के समान हृदय को आनंद
उत्पन्न करने वाला, स्वप्न में दृष्ट पदार्थ की जागृत अवस्था में प्राप्ति
होने की तरह प्रमोदजनक, भूमि में गड़े हुए निधान की प्राप्ति के समान
सुल्लजनक एवं समस्त संताप का अपहारक होता है, इसलिये धर्म
अवश्य श्रवण करने योग्य है ।

भावार्थ—मनुष्यभव पाकर भी जीव को श्रुतचारित्ररूप धर्म का
श्रवण बड़े भाग्य से मिलता है । धन्य वे पुरुष हैं जो इस प्रकार से
अपने जीवन को सफल करते हैं, क्योंकि धर्म के श्रवण से ही यह
जीव को मालूम होता है कि हमारा क्या कर्तव्य है क्या अकर्तव्य है ?
हिंसादिक पाप अकर्तव्य हैं, तथा प्रणातिपातादि विरमणरूपकर्तव्य हैं ।
तप पालो योग्य हैं एवं कषायादिक परित्याग करने योग्य हैं ॥ ८ ॥

શક, તત્વ અતત્વનો વિવેચક અમૃત પાન સમાન, એકાન્તતઃ હિત વિધાયક,
નિર્મળ ચાંદની સમાન હૃદયને ઉત્પન્ન કરવાવાળા, સ્વપ્નમાં દૃષ્ટ પદાર્થની જાગૃત
અવસ્થામાં પ્રાપ્તિ થવાની માફક, પ્રમોદ જનક ભૂમિમાં ઘટાયેલા ધનની પ્રાપ્તિ
સમાન, સુખ જનક અને સમસ્ત સંતાપનો અપહારક બને છે. માટે ધર્મ
અવશ્ય શ્રવણ કરવા યોગ્ય છે.

ભાવાર્થ—મનુષ્યભવ મેળવીને પણ જીવને શ્રુતચારિત્રરૂપ ધર્મનું શ્રવણ ભાગ્યના
ઉદયથી જ મળે છે. એ પુરૂષને ધન્ય છે કે જે આ પ્રકારથી પોતાના જીવનને
સફળ બનાવે છે. કેમકે ધર્મનું શ્રવણ કરવાથી જ આ જીવને ખબર પડે છે
કે માફ કર્તવ્ય શું છે અને અકર્તવ્ય શું છે. હિંસાદિક પાપ એ અકર્તવ્ય
છે, અને એનાથી પ્રાણાતિપાતાદિ વિરમણરૂપ કર્તવ્ય છે. તપ પાળવા યોગ્ય
છે, અને કષાયાદિક પરિત્યાગ કરવા યોગ્ય છે. ॥૮॥

યસ્ય સઃ, સંયતાદિજ્ઞાને સંદિગ્ધવુદ્ધિઃ । ૩ । અશ્વમિત્રતુર્યઃ સામુચ્છેદિકઃ, સ ઉત્પાદાનન્તરમેવ વસ્તુનઃ સમુચ્છેદઃ—વિનાશો ભવતીતિ પ્રરૂપયતિ । ૪ । ગંગાચાર્યઃ પંચમો દ્વૈક્રિયઃ—સ એકસ્મિન્ સમયે ક્રિયાદ્વયાનુભવો ભવતીતિ પ્રરૂપયતિ । ૫ । પડુલૂકઃ પટ્ટમૈરાશિકઃ, સ જીવા-જીવ-નોજીવ-ભેદાત્ ત્રયો રાશયઃ સન્તીતિ પ્રરૂપયતિ । ૬ । ગોષ્ઠઃમાહિલઃ સ્થવિરઃ સાત્તમોઽવદ્ધિકઃ સ ચ જીવેન સ્પૃષ્ટં કર્મ અવદ્ધં પ્રરૂપયતિ । ૭ ।

તત્ર જમાલેર્વૃત્તાન્તઃ પ્રોચ્યતે—

ક્ષત્રિયકુણ્ડપુરે ભગવતઃ શ્રીવીરવર્ધમાનસ્વામિનો ભગિન્યાઃ સુદર્શનાયાઃ પુત્રઃ ક્ષત્રિયા

એસી માન્યતા હૈ કિ સંયત આદિ કા જ્ઞાન સદા સંદિગ્ધ રહતા હૈ, કૌન સંયત હૈ કૌન નહીં ઇસકા યથાર્થ નિશ્ચય નહીં હો સકતા હૈ, ઇસ પ્રકાર યે અવ્યક્તવાદી હૈ ૩ । ચતુર્થ નિહવ-અશ્વમિત્ર હૈ, ઇનકી એસી માન્યતા હૈ કિ ઉત્પાદ કે અનન્તર હી વસ્તુ વિનષ્ટ હો જાતી હૈ ૪ । પંચમ નિહવ ગંગાચાર્ય હૈ, ઇનકી એસી માન્યતા હૈ કિ એક સમય મેં દો ક્રિયાઓં કા અનુભવ હોતા હૈ ૫ । છઠવાં નિહવ પડુલૂક હૈ, ઇનકી એસી માન્યતા હૈ કિ જીવ અજીવ ંવં નોજીવ, ઇસ પ્રકાર ત્રીન રાશિ હૈ ૬ । ગોષ્ઠ માહિલ સ્થવિર સાતવાં નિહવ હૈ, ઇનકી એસી માન્યતા હૈ કિ જીવ કે સ્પૃષ્ટ કર્મ સદા ઉસસે અવદ્ધ રહતા હૈ ૭ ।

જમાલિ કા વૃત્તાન્ત ઇસ પ્રકાર હૈ—જમાલિ ભગવાન્ વર્ધમાન સ્વામાં કી વહિન સુદર્શના કે પુત્ર થે । યે ક્ષત્રિયકુણ્ડપુર કા નિવાસી ક્ષત્રિય થે । ભગવાન્ વીર પ્રસુ કી પુત્રી જો પ્રિયદર્શના થી ઉસકા

સ્વરૂપ છે. (૨) તૃતીય નિહવ આપાઠ હતા એમની એવી માન્યતા હતી કે, સંયત આદિનું જ્ઞાન સદા સંદિગ્ધ રહે છે. કેાણુ સંયત છે ? કેાણુ સંયત નથી ? એનો યથાર્થ નિશ્ચય થઈ શકતો નથી. આ પ્રકારથી તેઓ અવ્યક્તવાદી હતા. (૩) ચતુર્થ નિહવ અશ્વમિત્ર હતા એમની એવી માન્યતા હતી કે, ઉત્પાદના અનંતરજ વસ્તુનો નાશ થઈ જાય છે. (૪) પંચમ નિહવ ગંગાચાર્ય હતા, એમની એવી માન્યતા હતી કે, એક સમયમાં બે ક્રિયાઓનો અનુભવ થાય છે. (૫) છઠા નિહવ પડુલૂક હતા એમની એવી પણ માન્યતા હતી કે, જીવ, અજીવ અને નો જીવ આ રીતે ત્રણ પ્રકારની રાશી છે. (૬) સાતમા નિહવ ગોષ્ઠમાહિલસ્થવિર હતા એમની એવી પણ માન્યતા હતી કે, સ્પૃષ્ટ કર્મ હંમેશાં તેનાથી અખદ્ધ રહે છે.

જમાલિનું વૃત્તાંત આ પ્રકારે છે—જમાલિ ભગવાન વર્ધમાન સ્વામીની ખહેન સુદર્શનાના પુત્ર હતા. તેઓ ક્ષત્રિય હતા અને ક્ષત્રિયકુણ્ડપુરના નિવાસી હતા. ભગવાન વીરપ્રસુની પુત્રી જે પ્રિયદર્શના હતી, તેના તેઓ

वायकारणवादरूपं जैनदर्शनं, यद्वा-न्याययुक्तं मार्गं सम्यग्दर्शनादिरूपं मार्गं-
मोक्षमार्गं श्रुत्वा परिभ्रश्यन्ति-मोक्षमार्गात् प्रच्युता भवन्ति ।

अत्र दृष्टान्ताः—जमालिप्रभृतयो निह्ववाः ।

अथ के ते जमालिप्रभृतयः ? इत्युच्यते—जमालिप्रभृतयः सप्त प्रवचननिह्ववाः—
मिथ्यात्वाभिनिवेशाज्जिनोक्ततत्त्वापलापकास्त्यक्तसम्यग्दर्शना अभूवन् । तत्र ज-
मालिः प्रथमः, स बहुमतः—बहुषु समयेषु रतः=सक्तः, प्रभृतसमयैः कार्योत्पत्तिर्भ-
वति, नत्वेकेन समयेनेति प्ररूपयति ॥ १ ॥ तिष्यगुप्तो द्वितीयः—स जीवमदेशिकः
—जीवः प्रदेश एव यस्य स जीवमदेशः, स एव जीवमदेशिकः, चरमप्रदेश एव जीव
इति प्ररूपयति ॥२॥ तृतीय आपाढः—स तु अव्यक्तिकः, अव्यक्तम्—अस्फुटं वस्तु

(नेयाउयं मगं-नैयायिकं मार्गं) पंचसमवायकारणवादरूपं जैनदर्शनं
को, अथवा सम्यग्दर्शनादिरूपं न्याययुक्तं मार्गं—मोक्षमार्गं को (सोच्चा-
श्रुत्वा) स्तुनकर भी उसमें अद्धानहीं होने से (परिभ्रस्सइ-परिभ्रश्यन्ति)
उस मोक्षमार्ग से भ्रष्ट हो जाते हैं इसलिये श्रद्धा को दुर्लभ बतलाई है ।

इस विषय में दृष्टान्तस्वरूप जमालि निह्वव आदि समझना चाहिये ।
जमालि आदि कौन हैं ? इस विषय को यहां प्रदर्शित किया जाता है ।
ये जमालि आदि सात व्यक्ति निह्वव-प्रवचन को छिपाने वाले हुए हैं—
मिथ्यात्व के अभिनिवेश से जिनोक्त तत्त्व के अपलापक-सम्यग्दर्शन
से रहित हुए हैं । इनमें सर्वप्रथम जमालि हुए हैं, इनकी मान्यता यह
है कि अनेकसमयों से द्रव्य की उत्पत्ति होती है, एक समय से नहीं ?
द्वितीय निह्वव तिष्यगुप्त हुए हैं, इनकी ऐसी मान्यता है कि जीवका एक
अन्तिम प्रदेश ही जीवस्वरूप है २ । तृतीय निह्वव आपाढ हुए हैं, इनकी

मगं-नैयायिकं मार्गं पांथं समवायकारणवादइयं जैनदर्शनने अथवा सम्यग्
दर्शनादिरूपं न्याययुक्तं मार्गं—मोक्ष मार्गने सौख्ये सोच्चा-श्रुत्वा सांख्यीने पथ
अनामां श्रद्धा न होवाथी परिभ्रस्सइ-परिभ्रश्यन्ति अथ मोक्षमार्गांथी भ्रष्ट थर्ध
नय छे. आ माटे श्रद्धाने दुर्लभ भतावेले छे.

आ विषयमां दृष्टान्तस्वरूपं जमालि निह्वव आदि समज्जवा जेधअ.
जमालि आदि कोषु उता अथ विषयने आदि प्रदर्शित करवामां आवे छे. अथ
जमालि आदि सात व्यक्तित प्रवचननिह्वव छुपाववावाणा उता. मिथ्यात्वना
अभिनिवेशथी अनोक्त तत्त्वना अपलापक-सम्यग्दर्शनथी रहित उता.
अमां सर्वं प्रथम जमालि उता. अमनी मान्यता अथ उती के अनेक समयेथी
द्रव्यनी उत्पत्ति थाय छे अथ समयथी नही. (१) द्वितीय निह्वव तिष्यगुप्त
उता, अमनी अथी मान्यता उती के, अथना अथ अन्तिम प्रे ज अथ

यस्य सः, संयतादिज्ञाने संदिग्धबुद्धिः । ३ । अश्वमित्रश्चतुर्थः सामुच्छेदिकः, स उत्पादानन्तरमेव वस्तुनः समुच्छेदः—घिनाशो भवतीति प्ररूपयति । ४ । गङ्गाचार्यः पञ्चमो द्वैक्रियः—स एकस्मिन् समये क्रियाद्वयानुभवो भवतीति प्ररूपयति । ५ । पडुलूकः षष्ठैराशिकः, स जीवा-जीव-नोजीव-भेदात् त्रयो राशयः सन्तीति प्ररूपयति । ६ । गोष्ठःमाहिलः स्थविरः सप्तमोऽव्यद्विकः स च जीवेन स्पृष्टं कर्म अवद्धं प्ररूपयति । ७ ।

तत्र जमालेवृत्तान्तः प्रोच्यते—

क्षत्रियकुण्डपुरे भगवतः श्रीवीरवर्धमानस्वामिनो भगिन्याः सुदर्शनायाः पुत्रः क्षत्रिया

ऐसी मान्यता है कि संयत आदि का ज्ञान सदा संदिग्ध रहता है, कौन संयत है कौन नहीं इसका यथार्थ निश्चय नहीं हो सकता है, इस प्रकार ये अव्यक्तवादी हैं ३ । चतुर्थ निहव-अश्वमित्र हैं, इनकी ऐसी मान्यता है कि उत्पाद के अनन्तर ही वस्तु विनष्ट हो जाती है ४ । पंचम निहव गंगाचार्य हैं, इनकी ऐसी मान्यता है कि एक समय में दो क्रियाओं का अनुभव होता है ५ । छठवां निहव पडुलूक हैं, इनकी ऐसी मान्यता है कि जीव अजीव एवं नोजीव, इस प्रकार तीन राशि हैं ६ । गोष्ठ माहिल स्थविर सातवां निहव हैं, इनकी ऐसी मान्यता है कि जीव के स्पृष्ट कर्म सदा उससे अवद्ध रहता है ७ ।

जमालि का वृत्तान्त इस प्रकार है—जमालि भगवान् वर्धमान स्वामी की वहिन सुदर्शना के पुत्र थे । ये क्षत्रियकुण्डपुर का निवासी क्षत्रिय थे । भगवान् वीर प्रभु की पुत्री जो प्रियदर्शना थी उसका

स्व३५ छे. (२) तृतीय निहव आषाढ हुता ऐमनी ऐवी मान्यता हुती के, संयत आदिनुं ज्ञान सदा संदिग्ध रहे छे. केषु संयत छे ? केषु संयत नथी ? ऐनो यथार्थ निश्चय थर्ध शकतो नथी. आ प्रकारथी तेओ अव्यक्तवादी हुता. (३) चतुर्थ निहव अश्वमित्र हुता ऐमनी ऐवी मान्यता हुती के, उत्पादन अनन्तरव वस्तुनो नाश थर्ध नथ छे. (४) पंचम निहव गंगाचार्य हुता, ऐमनी ऐवी मान्यता हुती के, ऐक समयमां ये क्रियाओनो अनुभव थाय छे. (५) छठा निहव पडुलूक हुता ऐमनी ऐवी षष्ठ मान्यता हुती के, एव, अएव अने नो एव आ रीते त्रष्ट प्रकारनी राशी छे. (६) सातमा निहव गोष्ठमाहिलस्थविर हुता ऐमनी ऐवी षष्ठ मान्यता हुती के, स्पृष्ट कर्म हंभेशां तेनाथी अणद्ध रहे छे.

जमालिनुं वृत्तान्त आ प्रकारे छे—जमालि भगवान वर्धमान स्वामीनी अडेन सुदर्शनाया पुत्र हुता. तेओ क्षत्रिय हुता अने क्षत्रियकुण्डपुरना निवासी हुता. भगवान वीरप्रभुनी पुत्री जे प्रियदर्शना हुती, तेना तेओ

जमालिरासीत् । श्रीवीरवर्धमानस्वामिनः पुत्री प्रियदर्शना जमालः भार्याऽभवत् । एकदा कदाचित् भगवान् श्रोत्रोत्सर्धमानस्वामी तत्र क्षत्रियकुण्डपुरे समवसृतः । जमालिर्भार्याया सह तं वन्दितुं समागतः । भगवद्देशनया जातवैराग्योऽसौ जमालिर्गृहभागस्य पित्रोरनुज्ञां गृहीत्वा पञ्चशतक्षत्रियकुमारैः सह प्रव्रज्यां गृहीतवान् । अयं भगवतः श्रोमहावीरस्य केवलज्ञानप्राप्त्यनन्तरं चतुर्दशे वर्षे प्रव्रजितः । तदा तस्य भार्या प्रियदर्शनाऽपि भगवतः श्रीवीरवर्धमानस्वामिनः समीपे स्त्रीसहस्रेण सह प्रव्रजिता । ततः पञ्चशतसंख्यकान् साधून् जमालिमृणये, तस्यै प्रियदर्शनासाध्व्यै च साध्वीसहस्रं शिष्यतया भगवान् प्रददौ । अथ जमालिमुनिः श्रीवर्धमानस्वामिना सह विहरन् दुश्चरं तपस्तेपे, एकादशाङ्गानि चाधीतवान् ।

ये पति थे। एक दिन की बात है कि वीर श्रीवर्धमान स्वामी क्षत्रिय-कुण्डपुर में पधारे। जमालि अपनी पत्नी प्रियदर्शना के साथ उनको वंदना करने के लिये आये। भगवान् ने इनको धर्मदेशना दी। दिव्य धर्मदेशना का पान कर जमालि को वैराग्य जागृत हो गया। घर पर आकर इन्होंने अपने माता पिता से आज्ञा लेकर पांचसौ क्षत्रिय-कुमारों के साथ दीक्षा अंगीकार करली। उस समय भगवान् को केवल ज्ञान प्राप्त हुए को चौदह वर्ष व्यतीत हो चुके थे। पति को दीक्षित देखकर प्रियदर्शना ने भी एक हजार स्त्रियों के साथ दीक्षा अंगीकार करली। प्रभु ने पांचसौ मुनियों को जमालिमुनि की नेसराय में करदिये, एवं एक हजार साध्वियों को प्रियदर्शना साध्वी की नेसराय में कर दी। पांचसौ जमालि के शिष्य और एक हजार साध्वियां प्रियदर्शना की शिष्याएँ हुईं। जमालिमुनि ने श्री वर्धमान-

पति हुआ। एक समयकी बात छे डे, श्री वीर वर्धमानस्वामी दीक्षा लीधा पछी क्षत्रियकुण्डपुरमां पधायो। जमालि पोतानी पत्नी प्रियदर्शनानी साथे तेमने वंदना करवा भाटे आया। भगवाने तेमने धर्मदेशना आपी। दिव्य धर्म देशनानुं पान करतां जमालिने वैराग्य जागृत थयो। घर आवी पोतानां मातापितानी आज्ञा लध तेमहे पांचसो क्षत्रिय कुमारे सहित दीक्षा अंगीकार करी: आ समये भगवाने केवलज्ञान प्राप्त थया ने चौदह वर्ष विती गयां हुतां। पतिने दीक्षित थयेला जेध प्रियदर्शनाये पछु जेक हुनर सीजे सहित दीक्षा अंगीकार करी। प्रभुजे पांचसो मुनियेने जमालि मुनिनी नेसरायमां करी दीधा। अने जेक हुनर साध्वीयेने प्रियदर्शना साध्वीनी नेसरायमां करी दीधी। जमालिना पांचसो शिष्य थया अने जेक हुनर साध्वीये प्रिय दर्शनानी शिष्या थध: जमालि मुनिजे श्री वर्धमान स्वामीनी

अथान्यदा जमालिमुनिर्भगवतः श्रीवीरवर्धमानस्वामिनं वन्दित्वा नमस्कृत्य कृताञ्जलिः सन् पप्रच्छ-भगवन् ! भवदाज्ञयाऽन्यत्र विहर्तुमिच्छामि ? तदा भगवता पृथग्विहारे जमालेर्लाभादर्शनात् मौनमवलम्बितम् । जमालिस्तु अप्रतिपिद्धमनुमतं भवतीति मत्वा भगवन्तं वन्दित्वा नमस्कृत्य पञ्चशतशिष्यैः सह तदन्तिकात् प्रतिनिष्क्रामति ।

अथाऽसौ पञ्चशतैरनगरैः सह ग्रामानुग्रामं विहरन् श्रावस्तीनगर्यां कोष्ठकनामके उद्याने समागतः । तत्र यथाप्रतिरूपमवग्रहं गृहीत्वा संयमेन तपसाऽऽत्मानं भावयन् विहरति ।

स्वामी के साथ विहार करते २ खूब तो तपश्चर्या की और ग्यारह अंगों का अध्ययन भी कर लिया ।

किसी समय जमालि मुनि ने भगवान् श्री वर्धमानस्वामी को दोनों हाथ जोड़कर वन्दना एवं नमस्कार कर के पूछा कि हे भगवान् ! आपकी आज्ञा से मैं दूसरी जगह विहार करना चाहता हूँ । जमालि की बात सुनकर भगवान् ने इस अभिप्राय से कि इनका पृथग् विहार लाभकारी नहीं है, उनको कुछ भी उत्तर नहीं दिया किन्तु मौन रहे । भगवान् ने जब जमालि से कुछ भी नहीं कहा तो उन्होंने ने यह समझकर कि “अप्रतिपिद्धं अनुमतम्” अप्रतिपिद्ध अनुमत होता है, वहाँ से प्रभु को वन्दना नमस्कार करके अपने पांचसौ शिष्यों को साथ लेकर विहार कर दिया ।

पांचसो शिष्यो के साथ ग्रामानुग्राम विहार करते हुए वे श्रावस्ती

साथे विहार करतां करतां भूष तपश्चर्या करी अने अग्यार अंगोना अभ्यास पषु करी दीधो.

कोई एक समये जमालिमुनिअे भगवान् श्री वर्धमान स्वामीने जे हाथ जोडीने वंदना नमस्कार करीने पृच्छुं के, हे भगवन्त ! आपनी आज्ञाथी हूं पीछे जग्याअे विहार करवा छिच्छुं छुं. जमालिनी आ वात सांभगीने भगवान् जेमनो बुद्धो विहार लाभकारी नथी. जेवा अलिप्रायथी मौन रह्या अने उत्तर न आप्थो. भगवाने ज्यारे जमालिने कांछि कछुं नडीं त्यारे तेभजे जेम समलु दीधुं के, “अप्रतिपिद्धं अनुमतं भवति” मौन अे अनुमती छे, जेम समलुने त्यांथी प्रभुने वंदना नमस्कार करीने पोताना पांचसो शिष्यो साथे प्रभुथी अलग विहार करी दीधो.

पांचसो शिष्यानी साथे ग्रामानुग्राम विहार करतां करतां तेअो श्रावस्ती

ततः खलु श्रमणो भगवान् महावीरोऽन्यदा कदाचित् पूर्वानुपूर्व्याचरन् यावत् सुखंसुखेन विहरन् यत्रैव चम्पानगरी यत्रैव पूर्णभद्रनामकमुद्यानं तत्रैवोपागतः, उपागत्य यथाप्रतिरूपमवग्रहं गृहीत्वा संयमेन तपसाऽऽत्मानं भावयन् विहरति ।

ततः खलु तस्य जमालेरनगारस्य शरीरेऽन्तप्रान्तरूक्षतुच्छाहारैरन्यदा कदाचित् विपुलरोगातङ्कः प्रादुर्भूतः । तदा स उपवेष्टुमशक्तः सन्ननगारान् प्राह—मम संस्तारकः शीघ्रं क्रियताम् । ते मुनयः संस्तारकं कर्तुं मृत्ताः । जमालिस्तान् पुनः पुनः पृच्छति—संस्तारकः कृतो नो वा भवद्भिः ? त ऊचुः—संस्तारकः कृतो

नगरी के कोष्ठक नामक उद्यान में आये । वहां वनपाल से वसति की आज्ञा ग्रहण कर संयम एवं तप से अपनी आत्मा को भवित करते हुए विचरने लगे ।

श्रमण भगवान् महावीर ने भी कोई समय पूर्वानुपूर्वी से ग्रामानुग्राम विहार करते हुए वे चंपानगरी के पूर्णभद्रनामक उद्यान में पधारे और यथाप्रतिरूप अवग्रह (वसति की आज्ञा) ग्रहण कर संयम एवं तप से आत्मा को भवित करते हुए विचरने लगे ।

इधर जमालि के शरीर में अन्त प्रान्त रूक्ष एवं तुच्छ आहार के लेने से अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न हो गये । इससे ये बैठने में भी अशक्त बन गये । इस स्थिति में इन्होंने अपने शिष्यों से कहा—मेरे लिए संस्तारक शीघ्र कर दो । मुनियों ने संस्तारक करना प्रारंभ कर दिया ।

नगरीना कोष्ठक नामना पागमां आवी पडोऽन्या. त्यां वनपाल पासेथी आज्ञा लधने उतथा. अने ते स्थणे संयम अने तपथी पोतानी आत्माने लावित करतां करतां विचरवा लाग्या.

श्रमणु भगवान् महावीर पणु कोष्ठकसमय पूर्वानुपूर्वीथी ग्रामानुग्राम विहार करता करता चंपानगरीना पूर्णभद्र नामना पागमां पधार्या. अने यथाप्रतिरूप अवग्रह (वसतीनी आज्ञा) लधने संयम अने तपथी आत्माने लवित करतां करतां विचरवा लाग्या.

आ तरक्ष जमालिना शरीरमां अन्त, प्रान्त, रूक्ष तेमज तुच्छ आहार लेवाथी अनेक प्रकारना रोगो उत्पन्न थया, आ रोगाना कारणु तेओ जेसवामां पणु अशक्त पनी गथ। आ स्थितिमां तेमणु पोतानी शिष्येने कहुं के, मांरे माटे जहदी संस्तारक (पधारी) करी हो. मुनिओ संस्तारकनी तीयारी करवा लाग्या जमालिओ तेमने वारंवार पूछवा माड्युं के, संस्तारक क - नही ?

नास्ति, किं तु क्रियते, एवमुक्ते सति स जमालिर्मिथ्यात्वमोहनीयोदयात् सम्य-
क्चपरिभ्रष्टः सन् व्यचिन्तयत्-क्रियमाणं कृतमिति जिनोक्तं सत्यं न भवितुमर्हति,
यतोऽयं संस्तारकः क्रियमाणो न कृतः संस्तीर्यमाणोऽपि न संस्वृतः इत्युच्यते ।
इति मनसि विचिन्त्य तत्र सर्वान् मुनीनाहूय जमालिः प्राह—यत् क्रियमाणं तत्
कृतम्, यच्चलत् तच्चलितम्, यदुदीर्यमाणं तदुदीरितम्, इत्यादि श्रीमहावीरस्वा-
मिना यद् भाषितं तत् खलु मिथ्या, क्रियमाणे संस्तारके शयनरूपार्थसाधकत्वा-
भावेन कृतत्वाभावात् ।

जमालि ने उनसे चार २ पूछना शुरु किया कि संस्तारक किया या नहीं ?
उन्होंने ने कहा संस्तारक अभी नहीं किया है कर रहे हैं । इस
प्रकार जब उन्होंने ने कहा तब मिथ्यात्वमोहनीय के उदय से
सम्यक्त्व से पतित होकर जमालि ने विचार किया कि “ क्रियमाणं
कृतम् ” जो किया जा रहा है वह “ किया गया ” ऐसा जो जिन
भगवान ने कहा है वह सत्य नहीं हो सकता है, क्यों कि संस्तारक
क्रियमाण है वह “ कृतः ” किया गया ऐसा नहीं कहा जा सकता है ।
उसी तरह यह तो अभी “ संस्तीर्यमाण ” है विछाया जा रहा है, इसे
“ संस्वृतः ” विछ गया है, ऐसे कैसे कह सकते हैं । इस प्रकार विचार
कर उन्होंने ने अपने समस्त शिष्यों को बुलाकर कहा कि देखो भगवान्
वीर प्रभु जो ऐसा कहते हैं कि “ क्रियमाणं कृतम् ” “ यच्चलत् तत्
चलितम् ” “ यदुदीर्यमाणं तदुदीरितम् ” जो क्रियमाण है वह
किया गया है, जो चल रहा है वह चल चुका है, जो उदय में आ

शिष्योऽपि कथं के, संस्तारक कथं करेव नथी परंतु करीये छी ये आ प्रकारे
न्यारे शिष्योऽपि कथं, त्त्यारे मिथ्यात्व मोहनीयता उदयथी सम्यक्त्वथी पतित
थर्धने जमालिने विचार करीये के, “ क्रियमाणं कृतं ” ने करवाभां आवे छे ते
“ यर्धं चूक्युं ” अपुं ने लुन भगवाने कथुं छे ते सत्य करतुं नथी. केम के
संस्तारक क्रियमाण छे ते “ कृतः ” यर्धं चूक्युं छे येम कही शक्य नहि.
आ प्रभाहे आ ने कथणं “ संस्तीर्यमाण ” छे-थीछापवभां आवे छे येने
थीछावी दीधल छे येम केम कही शक्य ? आ प्रभाहे विचार करीने तेमहे
पोताना समस्त शिष्योने बोलावीने कथुं के, लुज्यो भगवान वीर प्रभु ने येम
कडे छे के, “ क्रियमाणं कृतम् ” “ यच्चलत् तत् चलितम् ” “ यदुदीर्यमाणं तदु-
दीरितम् ” ने क्रियमाण छे ते यर्धं चूक्युं छे, ने आदी रह्युं छे, ते आदी

ततः खलु श्रमणो भगवान् महावीरोऽन्यदा कदाचित् पूर्वानुपूर्व्याचरन् यावत् सुखंसुखेन विहरन् यत्रैव चम्पानगरी यत्रैव पूर्णभद्रनामकमुद्यानं तत्रैवोपागतः, उपागत्य यथाप्रतिरूपमवग्रहं गृहीत्वा संयमेन तपसाऽऽत्मानं भावयन् विहरति।

ततः खलु तस्य जमालेरनगारस्य शरीरेऽन्तप्रान्तस्त्वक्षतुच्छाहारैरन्यदा कदाचित् विपुलरोगातङ्कः प्रादुर्भूतः। तदा स उपवेष्टुमशक्तःसन्ननगारान् प्राह—मम संस्तारकः शीघ्रं क्रियताम्। ते मुनयः संस्तारकं कर्तुं प्रवृत्ताः। जमालिस्तान् पुनः पुनः पृच्छति—संस्तारकः कृतो नो वा भवद्भिः? त ऊचुः—संस्तारकः कृतो

नगरी के कोष्ठक नामक उद्यान में आये। वहाँ वनपाल से वसति की आज्ञा ग्रहण कर संयम एवं तप से अपनी आत्मा को भवित करते हुए विचरने लगे।

श्रमण भगवान् महावीर ने भी कोई समय पूर्वानुपूर्वी से ग्रामानुग्राम विहार करते हुए वे चंपानगरी के पूर्णभद्रनामक उद्यान में पधारे और यथाप्रतिरूप अवग्रह (वसति की आज्ञा) ग्रहण कर संयम एवं तप से आत्मा को भवित करते हुए विचरने लगे।

इधर जमालि के शरीर में अन्त प्रान्त स्त्वक्ष एवं तुच्छ आहार के छेने से अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न हो गये। इससे ये बैठने में भी अशक्त बन गये। इस स्थिति में इन्होंने अपने शिष्यों से कहा—मेरे लिए संस्तारक शीघ्र कर दो। मुनियों ने संस्तारक करना प्रारंभ कर दिया।

नगरीना डोळक नामना भागमां आवी पडोऽन्या. त्यां वनपाल पासधी आशा लधने उतर्या. अने ते स्थणे संयम अने तपधी पोतानी आत्माने लावित करतां करतां विचरवा लाग्या.

श्रमणु भगवान् महावीर पणु कोळ समय पूर्वानुपूर्वीधी ग्रामानुग्राम विहार करता करता चंपानगरीना पूरुणभद्र नामना भागमां पधार्था. अने यथाप्रतिरूप अवग्रह (वसतीनी आशा) लधने संयम अने तपधी आत्माने लावित करतां करतां विचरवा लाग्या.

आ तरश् जमालिना शरीरमां अन्त, प्रान्त, इक्ष तेमश् तुच्छ आहार लेवाधी अनेक प्रकारना रोगो उत्पन्न थया, आ रोगोना कारणु तेजो जेसवाभां पणु अशक्त जनी गया। आ स्थितिमां तेमणु पोताना शिष्योने कणु के, मारे माटे जवही संस्तारक (पधारी) करी हो. मुनियो संस्तारकनी तयारी करवा लाग्या जमालिजे तेमने वारंवार पृथवा माड्युं के, संस्तारक कथो के नडीं ?

હત્યાદિ; તત્સર્વમસંવદ્ધમેવેતિ. । एवं मिथ्यात्वमोहनीयोदयात् जमालिमुन्मार्गगतं
જાત્યા સ્થવિરા અવદન્-જમાલે । ભગવત આશયં ન જાનાસિ; ભગવાન્ આપ્તઃ,
વિગતદોષસત્યવક્તા; તન્મતમનેકાન્તવાદાત્મકમ્, એકોપિ પ્રદાર્થઃ; અપેક્ષાભેદેન
અનેકરૂપો ભવતિ; યથા. એક. એવ પુરુષઃ. અપ્રેક્ષાભેદેનઃ જામાતાઃ. જ્વાલકઃ. પુત્રઃ
પિતા ચ । તથૈવ પ્રકૃતેઽપિ. ક્રિયમાણત્વેપિ સંસ્તારકે કૃતત્વઃ સંભવતિ । પટસ્ય
ક્રિયમાણતાયાં કૃતઃ પટઃ' ઇત્યાદિવત્ । નતુ કથં ક્રિયમાણં પટાદિકં કૃતં સ્યાદિતિ
ચેત્ત્રોચ્યતે-પટસ્યોત્પદ્યમાનતાકાલે પ્રથમતન્તુપ્રવેશે ઉત્પદ્યમાન. એવ. પટં ઉત્પન્નો

—'હત્યાદિ' સો યહ શ્રદ્ધેય નહીં હૈ । હસ પ્રકારઃ ભાગ્યદોષ સે
જમાલિ કો વિપરીત માર્ગ મેં જાતે હુમ્ દેલકર સ્થવિરાં ને કહા-હે
જમાલિ ! આપ ભગવાન કૈ આશય કો નહીં જાનતે હો । ભગવાન સર્વ
દોષ-રહિત યથાર્થવક્તા હૈ । ભગવાન કા મત અનેકાન્તરૂપ હૈ । એક
હી પ્રદાર્થ અપેક્ષા-ભેદ સે અનેકરૂપ હોતા હૈ । જૈસે એક હી પુરુષ શશુર
કી અપેક્ષા સે જામાતા કહલાતા હૈ, વહનોઈ કી અપેક્ષા સાલા કહલાતા હૈ
પિતા કી અપેક્ષા સે પુત્ર કહલાતા હૈ; પુત્ર કી અપેક્ષા સે પિતા કહ-
લાતા હૈ । ઁસી પ્રકાર પ્રકૃત મેં આપકા વિસ્તર હો બી રહા હૈ, હો બી
ગયા હૈ; એસા કહ સકતે હૈ । જૈસે કિ પટ કી ક્રિયમાણતા મેં બી
કૃતત્વ કા વ્યવહાર હોતા હૈ ઁસી તરહ । પુનઃ પ્રશ્ન કરતા હૈ કિ જો
ક્રિયમાણ હૈ વહ કૃત કૈસે હો સકતાં હૈ ? હસકા ઉત્તર દેતે હૈ-પટ કૈ
ઉત્પત્તિકાલ મેં પ્રથમ તંતુ કૈ પ્રવેશ સમય મેં બી વહ ઉત્પન્ન હોતા હી હૈ

તે શ્રદ્ધા કરવા શોધ્ય નથી. આ પ્રમાણે ભાગ્યદોષથી વિપરીત માર્ગે જતા
જમાલીને જોઈ તે સ્થવિરાંએ તેઓને કહ્યું કે-હે જમાલિ ! તમે ભગવાનના
આશયને બાધતા નથી. ભગવાન સર્વદોષ રહિત સાચું જોલવાવાળા છે.
ભગવાનનો મત અનેકાન્ત રૂપ છે. એક જ પ્રદાર્થ અપેક્ષા લેકંથી અનેકરૂપ થાય
છે. જેમ એક જ પુરુષ સસરાની આગળ જમાઈ કહેવાય છે. બનેવીની આગળ સાળો
કહેવાય છે. અને પિતા આગળ પુત્ર કહેવાય છે. અને તે જ પુરુષ પુત્ર આગળ
પિતા કહેવાય છે. એવી જ રીતે પ્રસ્તુતમાં આપની યથારી યદ્, રહી છે. યદ્ પદ્મ
ગદ્ છે. એવું કહેવામાં આવે છે. જેવી રીતે, પટની ક્રિયમાણતામાં કૃતત્વનો
વ્યવહાર થાય છે. તેવી જ રીતે.

... કરીથી પ્રશ્ન કરે છે કે-જે ક્રિયમાણ છે તે કૃત કેવી રીતે થઈ શકે ?
એનો ઉત્તર આપતાં કહે છે કે-પટના ઉત્પત્તિકાળમાં પ્રથમ તન્તુના પ્રવેશ
સમયે પટને ઉત્પન્ન થાય છે. કેમકે પ્રથમ તન્તુપ્રવેશ કાળથી જ " પટ

કૃતે સંસ્તારકે શયનાર્થક્રિયાકારિત્વં વિદ્યતે, કરણસમયે તુ નાસ્તિ તાદૃશી અર્થક્રિયા, અતઃ ક્રિયામાણં કૃતમિતિ વ્યપદેશઃ કથં સ્યાત્ ? । કિંચ-ક્રિયામાણમિતિ વર્તમાનવ્યપદેશઃ, કૃતમિતિ ચ ભૂતવ્યપદેશઃ, વર્તમાનત્વં ભૂતત્વં ચ પરસ્પરવિરુદ્ધમિતિ પરસ્પરવિરુદ્ધયોસ્તયોરેકતા ન સ્યાત્, વર્તમાનધ્વંસપ્રતિયોગિત્વસ્ય ભૂતત્વાદિતિ મહાવીરસ્વામિના યત્ પ્રતિપાદિતમ્-‘ કરેમાણે કઢે ચલમાણે ચલિય્મ ’

રહા હૈ વહ ઉદય મેં આચુકા હૈ ” સો વહ સય મિધ્યા હૈ, કારણ કિ ક્રિયામાણ સંસ્તારક મેં શયનરૂપ અર્થક્રિયા કે પ્રતિ સાધકત્વ કા અભાવ હોને સે વહાં કૃતત્વ નહીં આ સકના હૈ ।

સંસ્તારક (વિસ્તર) કરને કે યાદ હી ઉસમેં શયનાદિરૂપ અર્થ ક્રિયાકારિતા આતી હૈ, પરન્તુ સંસ્તારક કરને કે સમય મેં ઉસમેં ઉસ પ્રકાર કી અર્થક્રિયાકારિતા નહીં હૈ, ફિર “ ક્રિયામાણં કૃતમ્ ”-ક્રિયામાણ કૃત હોતા હૈ-યહ વ્યપદેશ કૈસે હો સકતા હૈ ? ।

ઔર મી-“ ક્રિયામાણમ્ ” યહ વર્તમાન કાલ કા કથન હૈ ઔર “ કૃતમ્ ” યહ ભૂતવ્યપદેશ હૈ । ભૂત ઔર વર્તમાન પરસ્પર વિરુદ્ધ હૈ, ઔર પરસ્પર વિરુદ્ધ દો પદાર્થો કી એકતા નહીં હો સકતી હૈ, ક્યોં કિ વર્તમાન કાલ મેં વિચમાન જો ધ્વંસ ઉસકે વિરોધી કા નામ હૈ ભૂત, એતાદૃશ ભૂત ઔર વર્તમાન યે દોનોં એક અધિકરણ મેં નહીં રહ સકતે હૈ । ફિર જો મહાવીર સ્વામી ને કહા હૈ કિ ક્રિયામાણં કૃતમ્, ચલત્ ચલિતમ્

ચુક્યું છે, જે ઉદયમાં આવી રહેલ છે તે ઉદયમાં આવી ચુકેલ છે, એ અર્થ સઘળું મિધ્યા છે. કારણ કે, ક્રિયામાણ સંસ્તારકમાં શયનરૂપ અર્થ ક્રિયામાં સાધકત્વના અભાવથી ત્યાં કરેલ છે એમ આવી શકતું નથી.

સંસ્તારક (પથારી) ક્યાં પછી જ તેમાં શયનાદિરૂપ “ ક્રિયાકારિતા ” આવે છે. પરન્તુ સંસ્તારક કરતી વખતે તો તેમાં તેવા પ્રકારની ‘ અર્થક્રિયા કારિતા ’ આવતી નથી. તો પછી ક્રિયામાણં કૃતમ્-ક્રિયામાણ કૃત થાય છે, એવો વ્યવહાર કેવી રીતે થઈ શકે ?

વળી “ ક્રિયામાણમ્ ” એ વર્તમાનકાળનું કથન છે. અને “ કૃતમ્ ” એ ભૂતકાળનો વ્યવહાર છે. ભૂત (કાળ) અને વર્તમાન એ બંને પરસ્પર વિરુદ્ધ અર્થવાળાં છે. એટલે પરસ્પર વિરુદ્ધ એવા એ પદાર્થોની એકતા થઈ શકતી નથી. કેમકે વર્તમાનકાળથી વિરુદ્ધ ભૂત (કાળ) છે, એવા પ્રકારનો ભૂત અને વર્તમાન એ બંને એક અધિકરણમાં રહી શકતા નથી. તો પછી મહાવીર સ્વામીએ જે કહ્યું છે કે, “ ક્રિયામાણં કૃતમ્ ” “ ચલત્ ચિ ”-વિગેદ

પ્રવેશે પટસ્યોત્પત્તિરિતિ પ્રથમસમયાદારમ્ય કિञ્ચિત્ કાર્યે સર્વેરપિ ક્ષણેઃ કૃતમિતિ મન્તવ્યમ્ । યદિ પ્રથમક્રિયાયા નોત્પન્નઃ પટસ્તદા ઉત્તરક્રિયાયાપિ નોત્પન્નઃ સ્યાદિતિ સર્વદૈવ પટાનુત્પત્તિપ્રસંગઃ, સ ચ ન કસ્યાપિ ઇષ્ટઃ, અતઃ પ્રથમતન્તુપ્રવેશકાલે એવ કિञ્ચિદુત્પન્નપટસ્ય યાવાન્ અંશો નોત્પન્નઃ સ યવાંશઃ ઉત્તરક્રિયાયા ઉત્પાદ્યતે યદિ પુનરુત્પદ્યેત તદા એકદેશેનૈવ ઉત્પાદનં ક્રિયાયા ઇતિ સ્વીકર્તવ્યમ્ । યદિ પ્રથમાં-શોત્પાદનનિરપેક્ષા દ્વિતીયાદિક્રિયા તદૈવ દ્વિતીયા ફલવતી સ્યાત્, નાન્યથા, તતથ યથા ઉત્પદ્યમાન એવ પટ ઉત્પન્નઃ, તથા ક્રિયમાણમેવ સંસ્તારકં કૃતમિતિ-

અન્તિમ તન્તુ કે પ્રવેશ હોને પર પટ કો ઉત્પત્તિ હોતી હૈ હસલિયે 'પટ ઉત્પન્નઃ' -એસા વ્યવહાર હોતા હૈ, અતઃ એસા માનો કિ પ્રથમ સમય સે લેકર કુછર કાર્ય સભી ક્ષણોં મેં હોતા હૈ । યદિ કદોચિત્ પ્રથમ ક્રિયા સે પટ ઉત્પન્ન નહીં છુઆ તો દ્વિતીય સે મી ઉત્પન્ન નહીં હોગા, તૃતીય સે મી નહીં હોગા, હસ પ્રકાર અન્તિમ ક્રિયા સે મી નહીં હોગા તો પટ કો કમી મી ઉત્પત્તિ નહીં હોગી । પરન્તુ યહ કિસી કો મી ઇષ્ટ નહીં હૈ । અતઃ પ્રથમતંતુપ્રવેશકાલ મેં મી ધોડા પટ ઉત્પન્ન છુઆ, ઓર જો અંશ અનુત્પન્ન હૈ વહ દ્વિતીયાદિ ક્ષણોં મેં હોતા હૈ । હસ પ્રકાર યહ સિદ્ધાન્ત હોતા હૈ કિ ક્રિયા કો એક વેશ સે હી ઉત્પાદકત્વ હૈ, ઓર યહ આપકો મી માનના પડેગા । યદિ પ્રથમ અંશ કે ઉત્પાદન સે નિરપેક્ષ દ્વિતીય ક્રિયા કો માનોગે તમી દ્વિતીયાદિ ક્રિયાયેં સાર્વક હોંગી, અન્યથા નહીં । તય જૈસે પ્રથમ ક્રિયા સે ઉત્પન્ન હોતે છુવ પટ કો ઉત્પત્તિ દ્વિતીયાદિ ક્રિયા સે હોતી હૈ ડસી પ્રકાર

તન્તુના પ્રવેશ થતાની સાથે જ પટની ઉત્પત્તિ થાય છે. એટલા માટે "પટઃ ઉત્પન્નઃ" એવો વ્યવહાર થાય છે. એટલે એવું માનવું બેઠએ કે પ્રથમ સમયથી લઇને દરેક ક્ષણે કંઈક કંઈક કાર્ય થાય છે જ. બે કદાચ પ્રથમ ક્રિયાથી પટ ઉત્પન્ન ન થયું તો બીજીથી પણ ઉત્પન્ન થયે. નહીં. અને ત્રીજીથી પણ ઉત્પન્ન થયે નહિ. તેવી જ રીતે અન્તિમ ક્રિયાથી પણ થયે નહીં, અને એ રીતે તો પટની કોઈ રીતે ઉત્પત્તિ થયે જ નહીં. પરંતુ એ વાત કોઈ માની શકે તેમ નથી. એટલે પ્રથમતન્તુપ્રવેશકાળમાં પણ પટના થોડા ભાગ ઉત્પન્ન થયા, અને બે અંશ ઉત્પન્ન નથી થયા, તે બીજી ત્રીજી વિગેરે ક્ષણોમાં થાય છે. આ રીતે એ વાત સિદ્ધ થાય છે કે ક્રિયાના એક દેશથી જ ઉત્પાદ-કત્વ છે. અને એ વાત તમારે પણ માનવી પડયે. બે પ્રથમ અંશના ઉત્પાદનથી નિરપેક્ષ દ્વિતીય ક્રિયાને માન્યો ત્યારે જ દ્વિતીયાદિક્રિયાઓ સાર્થક થયે. અન્ય રીતે નહીં. તો જેવી રીતે પ્રથમ ક્રિયાથી ઉત્પન્ન થતા પટની ઉત્પત્તિ દ્વિતીયાદિ

ભવતિ, ઉત્પદ્યમાનતા ચ પટસ્ય પ્રથમતન્તુપ્રવેશકાન્વાદારમ્બેવ ભવતિ તદૈવ 'પટ ઉત્પદ્યતે' इति व्यवहारदर्शनात् । उत्पन्नत्वमपि तस्य पटस्य तत्काले एव, तथाहि—उत्पत्तिक्रियाकाले—प्रथमतन्तुपवेशे एवासौ उत्पन्नोऽभूत्, अन्यथा उत्पत्तिक्रियाकाले यदि तस्य पटस्योत्पत्तिर्न स्वीक्रियेत तदा प्रथमक्रिया निरर्थिका स्यात्, कार्यकरणमेव धर्मः क्रियायाः । यदि प्रथमक्रिया उत्पत्तिरूपं कार्यं न कुर्यात् तदा सा निरर्थिकैव स्यात्, उत्पाद्योत्पादनमेव क्रियाया धर्मः । एवं यथा प्रथमक्षणे पटो नोत्पन्नस्तथा द्वितीयक्षणेऽपि नोत्पन्न एव, तृतीयादावपि क्षणे नोत्पन्न इति अंतिमक्रिययापि अनुत्पन्न एव स्यात्, युक्तैः सर्वत्र समानत्वात् । यदा तु प्रथमादिक्रियया न किमपि फलमुत्पादितं तदा अन्त्यया फलं स्यादिति प्रत्याशामात्रमेव, दृश्यते चान्यतन्तु'

કયોં કિ પ્રથમતંતુપ્રવેશ-કાલ સે હી 'પટ ઉત્પન્ન હોતા હૈ' એસા વ્યવહાર દેખને મેં આતા હૈ । તથા ઉત્પન્નત્વ ધી ઉસ પટ મેં ઉસ કાલ સે હી હૈ, કયોં કિ ઉત્પત્તિક્રિયાકાલ મેં પ્રથમ તન્તુ કે પ્રવેશ હોને પર હી પટ ઉત્પન્ન હો ગયા, યદિ ઉસ પટ કી ઉત્પત્તિ સ્વીકાર નહીં કરે તો વહ પ્રથમ ક્રિયા નિરર્થક હો જાયગી, કારણ કિ કાર્યોત્પાદ હી ક્રિયા કા ધર્મ હૈ । યદિ એસા માને કિ પ્રથમ ક્ષણ મેં પટ ઉત્પન્ન નહીં હુઆ તો ઇસી તરહ દ્વિતીય ક્ષણ મેં ધી ઉત્પન્ન નહીં હોગા, તૃતીય ક્ષણ મેં ધી ઉત્પન્ન નહીં હોગા, ઇસ તરહ સે અંતિમ ક્રિયા તક પટ કી ઉત્પત્તિ નહીં હોગી, કયોં કિ યુક્તિ સર્વત્ર સમાન હૈ ।

યદિ પ્રથમ ક્રિયા સે કુછ ધી ફલ નહીં હુઆ તો અન્તિમ ક્રિયાસે ધી ઉત્પાદરૂપ ફલ કા હોના અસંભવ હી હૈ, પરન્તુ દેખને મેં આતા હૈ કિ

ઉત્પન્ન થાય છે" એવો વ્યવહાર જોવામાં આવે છે. તથા ઉત્પન્ન થવાપણું પછી તે પટમાં તે કાળથી જ છે, કેમકે ઉત્પત્તિક્રિયાકાળમાં પ્રથમતન્તુનાં પ્રવેશ થતાની સાથે જ પટ ઉત્પન્ન થઈ ગયું, જો તે પટની ઉત્પત્તિને સ્વીકાર ન કરીએ તો તે પ્રથમક્રિયા નિરર્થક થઈ જશે. કારણ કે કાર્યની ઉત્પત્તિ ક્રિયાનો ધર્મ છે. કહાય જો એમ માનીએ કે પ્રથમ ક્ષણમાં પટ ઉત્પન્ન થયું નથી. તો એવી જ રીતે બીજા ક્ષણમાં પણ ઉત્પન્ન નહિ થાય, તેમ જ ત્રીજા ક્ષણમાં પણ ઉત્પન્ન થશે નહીં. એવી જ રીતે અંતિમક્રિયા સુધી પટની ઉત્પત્તિ થશે નહીં, કેમકે ક્રિયા સર્વત્ર એકસરખી હોય છે.

જો પ્રથમ ક્રિયાથી કંઈ પણ ફલ ન થયું તો અન્તિમ ક્રિયાથી પણ ઉત્પાદરૂપ ફલનું થવું અસંભવ જ છે. પરંતુ જોવામાં આવે છે કે અન્તિમ

અથ યસ્મિન્નેવ સમયે ઘટાદિકાર્ય પ્રારમ્ભ્યતે, તસ્મિન્નેવ સમયે નિષ્પન્નતે, અતો નિષ્પન્નમેવ તત્ ક્રિયતે-ઈતિ ચેન્નૈવમ્, યસ્માત્ ઘટાદિકાર્યાણામુત્પદ્યમાનાનામસંખ્યેયસમયરૂપો દીર્ઘ એવ નિર્વર્તનક્રિયાકાલો દૃશ્યતે, અતો ન યસ્મિન્નેવ

-અવસ્થા મેં અવિદ્યમાન રહતા હૈ, કુંભકારાદિક કૈ વ્યાપાર કૈ વાદ હી વહ ઉત્પન્ન હુઆ માના જાતા હૈ । ઇસલિયે જો અકૃત હોતા હૈ વહી ક્રિયા જાતા હૈ કૃત નહીં ક્રિયા જાતા, એસા માનના ચાહિયે । વહ તીસરા પક્ષ હૈ ।

યદિ કોઈ “કૃતં ક્રિયતે” ઇસ વ્યવહાર કો સત્ય સાવિત કરને કૈ લિયે એસા કહે કિ-જિસ સમય મેં ઘટાદિક કાર્ય વનના પ્રારંભ હોતા હૈ વહ ઉસી સમય મેં નિષ્પન્ન હો જાતા હૈ ઇસલિયે જવ નિષ્પન્ન હી ઘટ ક્રિયા જાતા હૈ તય “કૃતમેવ ક્રિયતે” ઇસ પ્રકાર કૈ વ્યવહાર મેં કૌનસી વાધા આતી હૈ ? સો એસા કહના ખી ઠીક નહીં હૈ, ક્યૌં કિ ઉત્પદ્યમાન ઘટાદિક કાર્યોં કી ઉત્પત્તિરૂપ ક્રિયા કા વહ સમય અસંખ્યાતસમયરૂપ વહુત ખારી કાલ હૈ । એસા નહીં હૈ કિ જિસ સમય ઘટ વનના પ્રારંભ હોતા હૈ વહ ઉસી સમય નિષ્પન્ન હો જાતા હૈ । ઇસકે વનને મેં તો વહુત સમય લગતા હૈ । મિટ્ટી કા લાના, ઉસકા પિંડ વનાના, ઉસે ચક્ર પર રખના શિવક આદિ પર્યાય મેં ઉસે પરિણમિત કરના, ઇસ પ્રકાર ઘટ કી ઉત્પત્તિ હોને મેં વહુત અધિક સમય લગ જાતા હૈ,

અવસ્થામાં ઘટ તરીકે તો અવિદ્યમાન રહે છે. કુંભકારાદિકના વ્યાપાર બાદ જ તે ઉત્પન્ન થયેલ માનવામાં આવે છે. આ માટે જે અકૃત હોય છે તેજ કરવામાં આવે છે. કૃત નથી કરાતું એવું માનવું ભેદએ. આ ત્રીજો મુદ્દો છે. ॥ ૩ ॥

જે કોઈ “કૃતં ક્રિયતે” આ વ્યવહારને સાચો સાબીત કરવા માટે એવું કહે કે જે સમયમાં ઘટાદિ બનાવવાના કાર્યનો પ્રારંભ થાય છે તે એ સમયમાં પુરું થાય છે માટે બ્યારે નિષ્પન્ન જ ઘટ કરવામાં આવે છે. ત્યારે “ક્રિયતે” આ પ્રકારના વ્યવહારમાં કઈ બાધા આવે છે ? તેથી એમ કહેવું એ પણ ઠીક નથી. કેમકે, ઉત્પદ્યમાન ઘટાદિક કાર્યોની ઉત્પત્તિરૂપ ક્રિયાનો તે સમય અસંખ્યાત સમયરૂપ ઘણો ભારે કાળ છે. એવું નથી કે, જે સમયે ઘટ બનવાનો પ્રારંભ થાય છે તે તેજ સમયે નિષ્પન્ન થઈ જાય છે. તેના બનવામાં તો ઘણો સમય લાગે છે. માટીને લાવવી, તેને કચરીને તેનો પિંડ બનાવવો, તે પછી તેને આકડા ઉપર ચઢાવવો, તેને આકાર આપવો, આ રીતે ઘટની ઉત્પત્તિ થવામાં ઘણો જ લાંબો સમય લાગે છે. આથી જે સમયે ઘટને બનાવવાનો

यदि कृतमपि क्रियते, तदाऽन्येऽपि दोषाः सन्ति, तथाहि—यदि कृतमपि क्रियते, अर्थात्—क्रियमाणं कृतं मन्यते तदा घटादिकार्योत्पादनार्थं मृन्मर्दनचक्र-भ्रमणादिकायाः क्रियाया वैफल्यं स्यात्, तस्मिन् काले कार्यस्य घटस्य कृतत्वा-स्युपगमात्, तस्य प्रागेव सत्त्वात् ॥ २ ॥

किञ्च—कृतं क्रियते इति यन्मन्यते तत्र, प्रत्यक्षचिरोधः, यस्मादुत्पत्तेः पूर्वं मृत्पिण्डावस्थायामविद्यमानं, पश्चात् कुम्भकारादिव्यापारे घटादिकार्यजायमानं दृश्यते उत्पत्तिकाले, तस्मादकृतमेव क्रियमाणं भवति ॥ ३ ॥

સંજ્ઞાવ સે કમી ખી વહાં 'મવન-હોને-રૂપ ક્રિયા કી પરિસમાપ્તિ નહીં હો સકને કે કારણ કિસી ખી કાર્ય કી પૂર્ણરૂપ સે નિષ્પત્તિ નહીં હો સકેગો । યહ કાર્યઅનિષ્પત્તિરૂપ પ્રથમ દોષ હૈ ॥ ૧ ॥

यदि कृतं भी "क्रियते" ऐसा माना जाय अर्थात् जो हो चुका है वह भी किया जाता है ऐसा ही पक्ष स्वीकार किया जाय तो इसका यह भी तात्पर्य होता है कि जो क्रियमाण है—हो रहा है—वह हो चुका ऐसा कहा जाता है तो इस पक्ष में यह सय से प्रचल दोष उपस्थित होता है कि घटादि कार्य की उत्पत्ति के लिये जो मिट्टा का मर्दन चाक का भ्रमण आदि क्रियाएँ की जा रही हैं ये सय निष्फल हो जाती हैं, क्यों कि क्रियमाण अवस्था में भी घट कृत तो हो चुका तब उसके वर्तमान होनेसे निष्पन्न करने की क्या आवश्यकता रही? यह दूसरा पक्ष है ॥ २ ॥

और भा—“कृतं क्रियते” यह व्यवहार इसलिये भी दूषित साबित होता है कि जबतक घट उत्पन्न नहीं हो जाता है तब तक वह मृत्पिण्ड

તર ઘટોત્પત્તિરૂપ ક્રિયાના સદ્ભાવથી કહી પણ ત્યાં ભવન-થવારૂપ ક્રિયાની પરિસમાપ્તિ ન થઈ શકવાના કારણે કોઈ પણ કાર્યની પૂર્ણરૂપથી નિષ્પત્તિ થઈ શકશે નહીં. આ કાર્ય અનિષ્પત્તિરૂપ પ્રથમ દોષ છે. ॥ ૧ ॥

જે કૃત પણ "ક્રિયતે" એમ માનવામાં આવે અર્થાત જે બની ગયેલ છે તે પણ કરવામાં આવી રહ્યું છે તેવો સ્વીકાર કરવામાં આવે તો તેનું એ તાત્પર્ય થાય છે કે, જે ક્રિયામાણ છે બની રહ્યું છે તે બની ચુક્યું એમ કહેવામાં આવે છે તો આ પક્ષમાં એ બધાથી મોટો દોષ ઉપસ્થિત થાય છે. ઘટાદિકાર્યની ઉત્પત્તિ માટે જે માટીનું મર્દન અને ચાકનું ભ્રમણ આદિ ક્રિયાઓ કરવામાં આવે છે તે બધી નિષ્ફળ બની જાય છે. કેમકે, ક્રિયામાણ અવસ્થામાં પણ ઘટ કૃત તો થઈ ગયો તો એનું વર્તમાન થવાથી નિષ્પન્ન કરવાની કઈ આવશ્યકતા રહી? આ બીજો સુધો. ॥ ૨ ॥

વળી—“કૃતં ક્રિયતે” આ વ્યવહાર એટલા માટે પણ દૂષિત. સાબીત થાય છે કે, જ્યાં સુધી ઘટ ઉત્પન્ન નથી થતો ત્યાં સુધી તે માટીના પિંડની

તદાનીમદર્શનાત્ । દીર્ઘક્રિયાકાલસ્થાન્તે તુ કાર્યં ભવિતુમર્હતિ, તદાનીમેવ તસ્ય દર્શનાત્ । તદેવં ન નિર્વર્તનક્રિયાકાલે કાર્યમસ્તિ, અનુપલભ્યમાનત્વાત્, કિંતુ તન્નિષ્ઠાકાલ એવ તદસ્તિ, તૈવોપલભ્યમાનત્વાત્, ક્રિયાકાલનિષ્ઠાકાલયોથ્વાત્યન્ત-ભેદાત્, અતઃ ક્રિયમાણં કૃતં ન ભવતિ । સર્વલોકપ્રત્યક્ષાનુભવસિદ્ધમેવૈતત્ ॥૫॥
 इति जमालेः पूर्वपक्षः ।

एवं मार्गविच्युतं जमालिं प्रति स्थविराः प्रोचुः—आर्य ! किं विरुद्धवचनं वदसि ?, रागद्वेषपरहितानां सर्वज्ञानां जिनानां वचने दोषलेशोऽपि नास्ति, नहि ते मृषा भाषन्ते । आर्य ! “ कृतं न क्रियते, कृतत्वात्, कृतघटवत् ” इति कुतर्कमा-

नर्हि हो सकता है, अतः “ अनुपलभ्यमानत्वात् निर्वर्तनक्रियाकाले विवक्षितघटरूपं कार्यं नास्ति इति मन्तव्यम् ” जब यह बात निश्चित हो जाती है तो यह बात भी स्वतः मान लेनी पड़ती है कि कार्य अपने निष्ठाकाल में ही बनकर तयार होता है, क्यों कि वही पर उसकी उप-लब्धि होती है । क्रियाकाल एवं निष्ठाकाल इन दोनों में अत्यन्त भेद है इसलिये क्रियमाण कृत नहीं कहा जा सकता । यह बात सर्वजन साक्षिक भी है । यह पांचवा पक्ष है, यह हुआ जमालि का पूर्व पक्ष॥५॥

इस प्रकार जमालि द्वारा स्थापित इस पूर्वपक्ष का सुनकर स्थविरों ने उनको मार्ग से च्युत जाना और इसलिये वे उनसे कहने लगे कि—हे आर्य ! विरुद्ध वचन आप क्यों कहते हैं ? रागद्वेषरहित सर्वज्ञ जिन भगवान के वचन अन्यथा नहीं होते हैं उनमें दोष का अंश भी संभवित नहीं हो सकता है । साधारण पुरुषों की तरह वे मिथ्याभाषी

“ अनुपलभ्यमानत्वात् निर्वर्तनक्रियाकाले विवक्षितघटरूपं कार्यं नास्ति इति मन्तव्यम् ”
 બ્યારે આ નિશ્ચિત બની જાય છે તો એ વાત પણ આપ મેળે માની લેવી પડે છે કે, કાર્ય પોતાના યોગ્ય વખતે જ બનીને તૈયાર થાય છે. કેમકે, તે સ્થળે તેની ઉપલબ્ધિ થાય છે. ક્રિયાકાળ અને નિષ્ઠાકાળ આ બન્નેમાં અત્યંત ભેદ છે. આ માટે ક્રિયમાણ કૃત કહી શકાય નહીં. આ વાત સર્વજનથી સાક્ષીભૂત છે. આ પાંચમો સુદ્ધો. આ થયો જમાલિનો પૂર્વપક્ષ. ॥ ૫ ॥

આ પ્રકારે જમાલિ દ્વારા સ્થાપિત એ પૂર્વપક્ષને સાંભળીને સ્થવિરોએ જાણ્યું કે જમાલીમુનિ ભગવાનના માર્ગથી ચલિત થયા છે. અને તે માટે તેઓ તેમને કહેવા લાગ્યા કે, હે આર્ય ! વિરોધ વચન આપ કેમ કહો છો ? રાગદ્વેષરહિત સર્વજ્ઞ જીન ભગવાનનું વચન અન્યથા થતું નથી. તેમાં દોષનો અંશ પણ સંભવિત થતો નથી. સાધારણ પુરૂષોની માફક તે મિથ્યાભાષી પણ નથી. આપે જે અસત્કાર્યવાદને

समये घटादि प्रारम्भ्यते, तस्मिन्नेव समये निष्पद्यते, घटानयनतत्पिण्डविधान-
चक्रारोपणशिवकादिविधानादिभिश्चिरकालेनैव तदुत्पत्तिर्भवति ॥ ४ ॥

अस्तु दीर्घः कार्यनिर्वर्तनक्रियाकालः क्रियायाः प्रथमसमय एव कार्य
निष्पद्यते, इति चेन्न, यदि क्रियायाः प्रथमसमय एव कार्य निष्पद्येत, तर्हि
तत् तत्रैवोपलभ्येत, न चारम्भसमय एव घटादिरूपं कार्य दृश्यते, नापि शिवक-
स्थास-कोश-कुशलादिसमये दृश्यते । किंतु दीर्घक्रियाकालस्यान्ते घटादिरूपं कार्य
दृश्यते, तस्मात् क्रियाया आरम्भकाले कार्यं निष्पद्यते, इति कथनं न युक्तम्, तस्य

अतः “ जिस समय में घट का बनना प्रारंभ होता है वह उसी समय
में बन जाता है ” यह कहना अनुचित है । यह चौथा पक्ष है ॥४॥

यदि कोई फिर भी ऐसा कहे कि कर्म को निर्वर्तन करने वाली
क्रिया का काल भले ही अधिक हो इसमें हमें कोई आपत्ति नहीं है,
परन्तु क्रिया से जो कार्य निष्पन्न होना होता है वह उस क्रिया के प्रथम
समय में ही निष्पन्न हो जाता है, सो ऐसा कहना भी ठीक नहीं है ।
कारण कि यदि क्रिया के प्रथम समय में ही कार्य निष्पन्न हो जाता है
तो वह उस समय ही दिखना चाहिये-परन्तु ऐसा तो होता नहीं है,
और न विवक्षित कार्य कोश कुशल शिवक स्थासक आदि समयों में
प्रतीत होता है, किन्तु दीर्घक्रियाकाल के अन्त में ही निष्पन्न हुआ
दिखलाई देता है । इसलिये ऐसा मानना कि क्रियाके आरंभकाल में ही
घट बनकर तयार हो जाता है, यह कथमपि-किसी तरह भी युक्तियुक्त

प्रारंभ थाय छे । अने समये ते बनी लय छे अने कहेवुं अनुचित छे । आ
शेषो भुवे छे ॥ ४ ॥

जे डोर्ध इरी पणु अने कहे के, कर्मने निवर्तन करवावाणी क्रियाने
काण लवे अधिक डोर्ध अने अने डोर्ध वांधे नथी । परंतु क्रियाथी जे
कार्य निष्पन्न यहुं जेधुं अने ते अने क्रियाना प्रथम समयमां जे निष्पन्न बनी
लय छे । तेस कहेवुं पणु ठीक नथी । कारण के, जे क्रियाना प्रथम समयमां जे
कार्य निष्पन्न यहुं लय छे, तो ते ते समये जे देखावुं जेधुं अने परंतु अने तो
बनतुं नथी । अने विवक्षित कार्य, कोश, कोशानी, आकार, स्थासक आदि
समयमां प्रतीत धतो नथी । परंतु दीर्घ क्रियाकाणना अंतमां जे निष्पन्न यथेव
देखाय छे । आ भाटे अने भानी अने के क्रियाना आरंभ काणमां जे घट बनीने
तयार यहुं लय छे । तो आ डोर्ध पणु शीते भानी शक्य तेवुं आथी

તદાનીમદર્શનાત્ । દીર્ઘક્રિયાકાલસ્યાન્તે તુ કાર્યં ભવિતુમર્હતિ, તદાનીમેવ તસ્ય દર્શનાત્ । તદેવં ન નિર્વર્તનક્રિયાકાલે કાર્યમસ્તિ, અનુપલભ્યમાનત્વાત્, કિંતુ તન્નિષ્ઠાકાલ એવ તદસ્તિ, તત્રૈવોપલભ્યમાનત્વાત્, ક્રિયાકાલનિષ્ઠાકાલયોશ્ચાત્યન્ત-
ભેદાત્, અતઃ ક્રિયમાણં કૃતં ન ભવતિ । સર્વલોકપ્રત્યક્ષાનુભવસિદ્ધમેવૈતત્ ॥૧॥
इति जमालेः पूर्वपक्षः ।

एवं मार्गविच्युतं जमालिं प्रति स्थविराः प्रोचुः—आर्य ! किं विरुद्धवचनं
वदसि ?, रागद्वेषपरहितानां सर्वज्ञानां जिज्ञानां वचने दोषलेशोऽपि नास्ति, नहि ते
मृषा भाषन्ते । आर्य ! “ कृतं न क्रियते, कृतत्वात्, कृतघटवत् ” इति कुतर्कमा-

नहीं हो सकता है, अतः “ अनुपलभ्यमानत्वात् निर्वर्तनक्रियाकाले
विवक्षितघटरूपं कार्यं नास्ति इति मन्तव्यम् ” जब यह बात निश्चित
हो जाती है तो यह बात भी स्वतः मान लेनी पड़ती है कि कार्य अपने
निष्ठाकाल में ही बनकर तयार होता है, क्यों कि वहीं पर उसकी उप-
लब्धि होती है । क्रियाकाल एवं निष्ठाकाल इन दोनों में अत्यन्त भेद है
इसलिये क्रियमाण कृत नहीं कहा जा सकता । यह बात सर्वजन
साक्षिक भी है । यह पांचवा पक्ष है, यह हुवा जमालि का पूर्व पक्ष॥१॥

इस प्रकार जमालि द्वारा स्थापित इस पूर्वपक्ष को सुनकर स्थविरों
ने उनको मार्ग से च्युत जाना और इसलिये वे उनसे कहने लगे कि-
हे आर्य ! विरुद्ध वचन आप क्यों कहते हैं ? रागद्वेषरहित सर्वज्ञ जिन
भगवान के वचन अन्यथा नहीं होते हैं उनमें दोष का अंश भी
संभवित नहीं हो सकता है । साधारण पुरुषों की तरह वे मिथ्याभाषी

“ अनुपलभ्यमानत्वात् निर्वर्तनक्रियाकाले विवक्षितघटरूपं कार्यं नास्ति इति मन्तव्यम् ”
બ્યારે આ નિશ્ચિત બની જાય છે તે એ વાત પણ આપ મેળે માની લેવી પડે
છે કે, કાર્ય પોતાના યોગ્ય વખતે જ બનીને તૈયાર થાય છે. કેમકે, તે સ્થળે
તેની ઉપલબ્ધિ થાય છે. ક્રિયાકાળ અને નિષ્ઠાકાળ આ બંનેમાં અત્યંત ભેદ
છે. આ માટે ક્રિયમાણ કૃત કહી શકાય નહીં. આ વાત સર્વજનથી સાક્ષીભૂત
છે. આ પાંચમો મુદ્દો. આ થયો જમાલિનો પૂર્વપક્ષ. ॥ ૧ ॥

આ પ્રકારે જમાલિ દ્વારા સ્થાપિત એ પૂર્વપક્ષને સાંભળીને સ્થવિરોએ બાપુ
કે જમાલીમુનિ ભગવાનના માર્ગથી ચલિત થયા છે. અને તે માટે તેઓ તેમને કહેવા
લાગ્યા કે, હે આર્ય ! વિરોધ વચન આપ કેમ કહો છો ? રાગદ્વેષરહિત સર્વજ્ઞ જન
ભગવાનનું વચન અન્યથા થતું નથી. તેમાં દોષનો અંશ પણ સંભવિત થતો નથી.
સાધારણ પુરુષોની માફક તે મિથ્યાભાષી પણ નથી. આપે જે અસત્કાર્યવાદને

समये घटादि प्रारम्भ्यते, तस्मिन्नेव समये निष्पद्यते; मृदानयनतत्पिण्डविधान-
चक्रारोपणशिवकादिविधानादिभिश्चिरकालेनैव तदुत्पत्तिर्भवति ॥ ४ ॥

अस्तु दीर्घः कार्यनिर्वर्तनक्रियाकालः क्रियायाः प्रथमसमय एव कार्य
निष्पद्यते, इति चेन्न, यदि क्रियायाः प्रथमसमय एव कार्य निष्पद्येत, तर्हि
तत् तत्रैवोपलभ्येत, न चारम्भसमय एव घटादिरूपं कार्य दृश्यते, नापि शिवक-
स्यास-कोश-कुशलादिसमये दृश्यते। किंतु दीर्घक्रियाकालस्यान्ते घटादिरूपं कार्य
दृश्यते, तस्मात् क्रियाया आरम्भकाले कार्यं निष्पद्यते, इति कथनं न युक्तम्, तस्य

अतः "जिस समय में घट का बनना प्रारंभ होता है वह उसी समय
में बन जाता है।" यह कहना अनुचित है। यह चौथा पक्ष है ॥४॥

यदि कोई फिर भी ऐसा कहे, कि कर्म को निर्वर्तन करने वाली
क्रिया का काल भले ही अधिक हो इसमें हमें कोई आपत्ति नहीं है,
परन्तु क्रिया से जो कार्य निष्पन्न होना होता है वह उस क्रिया के प्रथम
समय में ही निष्पन्न हो जाता है, सो ऐसा कहना भी ठीक नहीं है।
कारण कि यदि क्रिया के प्रथम समय में ही कार्य निष्पन्न हो जाता है
तो वह उस समय ही दिखना चाहिये-परन्तु ऐसा तो होता नहीं है,
और न विवक्षित कार्य कोश कुशल शिवक स्यासक आदि समयों में
प्रतीत होता है, किन्तु दीर्घक्रियाकाल के अन्त में ही निष्पन्न हुआ
दिखलाई देता है। इसलिये ऐसा मानना कि क्रियाके आरंभकाल में ही
घट बनकर तयार हो जाता है, यह कथमपि-किसी तरह भी युक्तियुक्त

प्रारंभ थाय्ये ऐमं समये ते जनी जाय्ये ऐमं कडेवु अनुचित छे आ
बाथे मुवे छे ॥ ४ ॥

जे कौध ईरी पण्य ऐमं कडे के, कर्मने निर्वर्तन करवावाणी क्रियाने
काण जेवें अधिक होय ऐमां अभने कौध वाथे नथी, परंतु क्रियाथी जे
कायं निष्पन्न थवुं जेधं ऐ ते ऐ क्रियाना, प्रथम समयमां जे निष्पन्न जनी
जाय्ये, तेम कडेवु पण्य ठीक नथी, कारण के, जे क्रियाना प्रथम समयमां जे
कायं निष्पन्न थय्ये जाय्ये, तो ते ते समये जे देभावुं जेधं ऐ परंतु ऐवुं तो
जानतुं नथी, जेने विवक्षित कायं, कोश, कोडाणी, आकार, स्यासक आदि
समयेमां प्रतीत थतो नथी, परंतु दीर्घ क्रियाकाणना अंतमां जे निष्पन्न थयेव
देभाय्ये छे, आ माटे ऐवुं भानीजे के क्रियाना आरंभ काणमां जे घट जनीने
तयार थय्ये जाय्ये, तो आ कौध पण्य रीते भानी शंकायं तेवुं आथी

चेति दोषद्वयं यदुक्तं, तद् भवन्मतेऽपि शक्यते वक्तुम्, यथाऽस्मत्स्वीकृते कृत-
पक्षे दोषा भवता प्रदीयन्ते, तथा भवदङ्गीकृते अप्यकृतपक्षेऽपि एते दोषाः आप-
तन्ति । तथाहि-यद्यकृतम्-(अविद्यमानं) क्रियते, तर्हि नित्यमेव क्रियताम्, शश
विषाणकल्पस्यासत्तः करणं कथमुपरमेत । तादृशे कार्ये समुत्पाद्ये क्रियाया वैफल्य-
मपि तव दुर्वारम्, असत्तः कदाप्युत्पत्त्यभावात् ।

इससे प्रथम तो करण-क्रिया की वहां कभी भी समाप्ति नहीं हो
सकती है १, दूसरा वहां करणक्रिया की विफलता भी आती है २ ।
जब पदार्थ स्वयं मौजूद है तो वहां करनेरूप क्रिया सफलित कैसे हो
सकती है ? इस प्रकार कृत करण मानने पर आपने ये जो क्रिया की
असमाप्ति १ और क्रिया की विफलता २ ये दो दोष दिये हैं सो ये दोनों
दोष आपके मन्तव्य में भी आते हैं, और वे इस प्रकार से-यदि
“अविद्यमान ही क्रिया जाता है” यह बात ही एकान्ततः स्वीकार की
जाय तो उसको भी नित्य ही होते रहना चाहिये, क्यों कि जो शश
विषाण की तरह सर्वथा असत् है उसकी करनेरूप क्रिया का विराम
कैसे हो सकता है । दूसरे असत् की जब उत्पत्ति ही नहीं होती है तो
असत्कार्य की उत्पत्ति में क्रिया की सफलता भी कैसे हो सकती है ? ।
वह तो वहां विलकुल निष्फल ही होगी, क्यों कि उसकी उससे
उत्पत्ति तो हो नहीं सकती है, कारण वह असत् है इसलिये ।

अति प्रसंग प्राप्त थाय છે. તેનાથી પ્રથમ તો કરણ ક્રિયાની ત્યાં કદી પણ
સમાપ્તિ થતી નથી. ખીન્નું ત્યાં કરણ ક્રિયાની વિક્ષણતા પણ આવે છે ? ન્યારે
પદાર્થ સ્વયં મોબુદ છે તો ત્યાં કરવારૂપ ક્રિયા ક્ષણભૂત કેમ થઈ શકે ? આ
પ્રકારથી કૃતને કરણ માનવાથી આપે જે ક્રિયાની અસમાપ્તિ અને ક્રિયાની
વિક્ષણતારૂપ બે દોષ આપેલ છે તો આ બંને દોષ આપના મંતવ્યમાં પણ આવે
છે. અને તે આ પ્રકારથી-જે “અવિદ્યમાન જ કરવામાં આવે છે” આ વાત
જ એકાન્તતઃ સ્વીકાર કરવામાં આવે તો તેને પણ નિત્ય જ બની રહેવું જોઈએ.
કેમકે, જે શશવિષાણની (સસલાના શીંગ) માફક સર્વથા અસત્ છે. તેના
કરવારૂપ કરવાનો વિરામ કઈ રીતે હોઈ શકે ? ખીન્ન અસત્ની ન્યારે ઉત્પત્તિ
થતી નથી તો અસત કાર્યની ઉત્પત્તિમાં ક્રિયાની સક્ષણતા પણ કેવી રીતે હોઈ
શકે ? એ તો તદ્દન નિષ્ફળ જ થવાની. કેમકે, તેનાથી ઉત્પત્તિ તો બની શકતી
નથી. કારણ તે અસત છે માટે.

श्रित्याऽसत्कार्यवादिना भवताऽभिधीयते, अकृतं खलु क्रियमाणं भवतीति, तत्र
 पयं सत्कार्यवादिनो ब्रूमः-निष्प्रमाणमेतद्भवदीयवचनम्। अकृतम् (अविद्यमानं)
 घटादिकार्यं न क्रियते, असत्त्वात्, आकाशकुसुमवत्। यदि अकृतम् (अविद्यमान-
 नम्) अपि क्रियते, तर्हि शशविषाणमपि क्रियताम्, अकृतत्वाविशेषात् (अविद्य-
 मानत्वाविशेषात्)। अपि च-ये नित्यकरणादयो दोषाः सत्कार्यवादे प्रदत्तास्ते
 खल्वसत्कार्यवादेऽपि तत्र सन्ति। विद्यमाने वस्तुनि करणक्रियाया अङ्गीकारे पुनः-
 पुनरनवरतं करणक्रियाया अतिप्रसङ्गात्, क्रियाया अपरिसमाप्तिः क्रियाया वैफल्यं

नहीं हैं। आपने जो असत्कार्यवाद को लेकर कुतर्क का आश्रय करते
 हुए ऐसा कहा है कि-‘कृतं न क्रियते कृतत्वात्, कृतघटवत्’ अर्थात्-
 कृत होनेसे कृत किया नहीं जाता है जैसे कृत घट, अकृतं खलु क्रियमाणं
 भवति’ अर्थात् अकृत ही क्रियमाण होता है सो आपका यह कथन कथंचित्
 सत्कार्यवादी हमलोगों के चित्त में उतरता नहीं है भला आप को यह
 विचारना चाहिये जो सर्वथा असत् होता है-द्रव्य दृष्टि से भी जिसकी
 सत्ता कायम नहीं है ऐसा असत् पदार्थ कभी भी निष्पन्न नहीं हो
 सकता है। यदि इस प्रकार का भी पदार्थ निष्पन्न होने लगे तो शश
 विषाण को भी उत्पन्न होना चाहिये। दूसरे द्रव्य की अपेक्षा सत् को
 कार्य मानने पर जो आपने नित्यकरण होने की प्रसक्तिरूप दोष दिये हैं
 सो ये सभी दोष आपके असत्कार्यवाद में भी आते हैं, आपने जो
 यह कहा है कि विद्यमान वस्तु में करनेरूप क्रिया को अङ्गीकार करने
 पर पुनः पुनः अनवरत उस करनेरूप क्रिया का अतिप्रसंग प्राप्त होता है

स्वीकारी कुतर्कने। आश्रय लब्धने जेवुं कहुं छे के, कृतं न क्रियते कृतत्वात्
 कृत घटवत् अर्थात् कृत थवाथी कृत करेव भनातुं नथी जेवी रीते कृत घट,
 अकृतं खलु क्रियमाणं भवति अर्थात् ज्यारे अकृत न क्रियमाणुं होय छे, जेथी
 आपनुं आ कथन कथंचित् सत्कार्यवादी अमारा बोडोना दिवभां उतरतुं नथी,
 आपे जे विचारतुं जेधजे के, जे सर्वथा असत् होय छे द्रव्यदृष्टिथी पञ्चजेनी
 सत्ता कायम नथी जेवा असत् पदार्थ कही तैयार थछ शकता नथी, जे कही
 आ प्रकारना पञ्च पदार्थ पुरा थयेला भानवामां आवे तो अरविषाणु (गधेडांने
 शीगडां) पञ्च उत्पन्न थवां जेधजे. द्रव्यनी अपेक्षा सत्ने कार्य मानवाथी
 जे आपे नित्यकरणुं होवानो प्रशस्तीरूप दोष आप्यो छे, ते सधणा दोष आपना
 असत्कार्य वादमां पञ्च आवे छे, आपे जे जेभ कहुं के, विद्यमान वस्तुमां
 करवाइप कथिने अङ्गीकार करवाथी, करी करी अनवरत जे क. नो

दुर्वारः, तथाहि—यदि पूर्वम् (कारणावस्थायाम्) असत् (अविद्यमानं) कार्यं जायते, तर्हि मृत्पिण्डाद् कुम्भवत्, शशशृंगमपि जायमानं किं न दृश्यते, असत्त्वा विशेषात्? । अथ शशशृङ्गमुत्पद्यमानमपि न दृश्यते, तर्हि घटोऽपि तथैवास्तु, उत्पद्यमानत्वाविशेषात् । अथवा—मृत्पिण्डात् पटोऽपि उत्पद्यताम्, असत्त्वाविशेषात् ॥ ३ ॥

अपेक्षा भी कार्य असत् है, और वह उससे उत्पन्न होता है तो जिस प्रकार मृत्पिण्ड से घट उत्पन्न होता है उसी तरह शशशृंग भी उससे उत्पन्न होते दिखना चाहिये, क्यों कि जिस प्रकार मृत्पिण्ड में घट विद्यमान नहीं है उसी प्रकार शशविषाण भी वहां विद्यमान नहीं है फिर अविद्यमान की अविशेषता होने पर भी मृत्पिण्ड से घट ही क्यों उत्पन्न होता है शशशृंग क्यों नहीं? । यदि इसके ऊपर ऐसा कहा जाय कि शशशृंग भी मृत्पिण्डसे उत्पन्न होता है परन्तु वह दिखता नहीं है तो हम भी यह कह सकते हैं कि इसी तरह उससे जायमान घट भी नहीं दिखना चाहिये, अतः यह मानना ही चाहिये कि अपने कारण में किसी अपेक्षा कार्य रहा हुआ है तभी जाकर वह उससे ही उत्पन्न होता है अन्य से नहीं । नहीं तो फिर क्या है चाहे जिससे चाहे जैसा पदार्थ उत्पन्न होने लगेगा । ऐसी स्थिति में मृत्तिका से पट की भी उत्पत्ति माननी पड़ेगी ॥ ३ ॥

अपेक्षाधी कार्य असत् छे अने ते अनाधी उत्पन्न थाय छे. तो ते रीते भाटीना पिंडधी घट उत्पन्न थाय छे. अने रीते ससलाने शींगडां पछु थतां देभावां नेछे अ. डेमडे ते रीते भाटीना पिंडमां घट विद्यमान नधी अने रीते ससलाने पछु शींगडां विद्यमान नधी. पछी अविद्यमाननी अविशेषता डोवाधी पछु मृत पिंडधी घट न डेम उत्पन्न थाय छे? ससलानां शींग डेम नधी? ने आ अगे अेम डडेवामां आवे डे, ससलानां शींग पछु भाटीना पिंडधी उत्पन्न थाय छे परंतु ते देभतां नधी तो अमे पछु अेम कही शकीअे डे, अे रीते अेनाधी तैथार थनार घट पछु न देभावो नेछेअे. आधी अे मानपुं नेछेअे डे, पोताना डारपुमां डोछे अपेक्षा कार्य रडेव छे त्यारे न ते तेमांधी उत्पन्न थाय छे. पीनधी नधी. अेम न डोय तो पछी गमे ते थीनधी गमे ते पदार्थ उत्पन्न थवा लागथे. आपी स्थितिमां भाटीधी पटनी पछु उत्पत्ति मानवी पडथे. ॥ ३ ॥

आयुष्कमेपुद्गलानर्जरणेन, 'भवक्खएणं' भवक्षयेण=देवभवसम्बन्धकमेणां गत्यादीनां निर्जरणेन ठिइक्खएणं' स्थितिक्षयेण=देवभवसम्बन्धि शरीरावस्थान-क्षयेण, अनन्तरं चयं=देवभवसम्बन्धि शरीरं त्यक्त्वा कुत्र गमिष्यति ? कुत्रोत्पत्स्यते ? हे गौतम ! महाविदेहे वर्षे=महाविदेहक्षेत्रे सिज्झिहिइ' सेत्स्यति सकलकार्यकारितया सिद्धो भविष्यति, वुज्झिहिइ' भोत्स्यते=विमलकेवलालोकेन सकललोकालोकं ज्ञास्यति, 'मुच्चिहिइ' मोक्षयति=सर्वकर्मभ्यो मुक्तो भविष्यति, 'परिनिव्वाहिइ' परिनिर्वास्यति=समस्तकर्मकृतविकाररहितत्वेन स्वस्थो भविष्यति, 'सव्वदुःखाणमंतं करेहिइ' सर्वदुःखानामन्तं करिष्यति=समस्तक्लेशानां नाशं विधास्यति, अव्यावायसुखभोगी भविष्यतीत्यर्थः। अथ-

देवे ताओ देवलोयाओ आउक्खएणं भवक्खएणं ठिइक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता कहिं गच्छहिइ कहिं उववज्झिहिइ ?) इस प्रकार प्रभु के मुखारविन्द से मेघकुमार की उत्पत्ति का स्थान सुन कर गौतमने पुनः उनसे यह पूछा कि हे भदंत ! अब ये मेघकुमार देव उस देवलोकसे आयु के क्षय से, भव के क्षय से, स्थिति के क्षय से देवभव संबन्धी शरीर का त्याग कर कहां जावेगे । कहां उत्पन्न होंगे ! (गोयमा ! महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ, वुज्झिहिइ, मुच्चिहिइ, परिनिव्वाहिइ सव्वदुवखाण मंतं करेहिइ) इस प्रकार गौतम द्वारा पुनः पूछने पर प्रभुने उनसे कहा- गौतम ये मेघकुमार देव महाविदेह में उत्पन्न हो कर वहीं से सिद्ध होंगे विमल केवल ज्ञानरूप आलोक से समस्तलोक और आलोक का ज्ञाता होंगे। समस्त ज्ञानावरणादिक अष्ट कर्मों से रहित होंगे, कर्मकृत समस्त विकारों से

सागर लटली स्थिति डडेवाभां आवी छे. (एसणं भंते मेहे देवे ताओ देवलो-याओ आउक्खएणं भवक्खएणं ठिइक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता कहिं-गच्छिहिइ कहिं उववज्झिहिइ ?) आ प्रभाणु मेघकुमारनी उत्पत्ति विषेना स्थान-नी वात सांलणीने गौतमे करी प्रश्न कथो-डे डे-भदंत ! मेघकुमार देव ते देवलोकथी आयुष्य क्षयथी, भवक्षयथी, स्थितिक्षयथी देवभवना शरीरने त्याग करीने कथां जथे ? कथां उत्पन्न थथे ? (गोयमा ! महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ वुज्झिहिइ, मुच्चिहिइ, परिनिव्वाहिइ, सव्वदुवखाणमंतं करेहिइ) आ प्रभाणु गौतमना प्रश्नने सांलणीने प्रभुअे तेभने कहुं डे-डे गौतम ! आ मेघकुमार देव महाविदेहुभां उत्पन्न थथेने त्यांथी सिद्ध थथे. विमण अने देवणज्ञानरूप आवेकथी समस्तलोक अने आ लोकना लघुनाश थथे. तेअो समस्त ज्ञानावरणु वगेरे आठ कर्मों रहित थथे अने विकारो रहित थथेने स्वस्थता पाभथे. तेअो जथां दुःखेने नाश करथे

यनार्थमुपसहरन् अ. सुधर्मास्वामी जम्बूस्वामिनमाह-एव खलु हे जम्बूः।
 श्रमणेन भगवता महावीरेण आदिकरेण तीर्थकरेण यावत्संप्राप्तेन आत्मोपा-
 लम्भनिमित्तं-आप्तेन हितेन गुरुणेत्यर्थः, विनेयम्याविहितविधायिनः उपालम्भः-
 आत्मोपालम्भः तन्निमित्तं=तदर्थः प्रथमस्य ज्ञाताध्ययनस्य अर्थः=पूर्वोक्तः=
 मेघकुमारचरितरूपोऽर्थः प्रज्ञप्तः=कथितः। अविधिप्रवृत्तस्य शिष्यस्य गुरुणा मोक्ष-
 मार्गो स्थापनाय हितसारगर्भितवचनेन प्रतिबोधनम् उपालम्भः स दातव्यः,
 यथा भगवता दत्तो मेघकुमाराय, इत्येवमर्थं प्रथममध्ययनमिति भावः ॥

रहित होकर स्वमथ होंगे, ममस्त दुःखों का नाश करेंगे अव्याघाधं सुख के
 भांक्ताधनेंगे अब सूत्रकार श्री सुधर्मास्वामी इस अध्ययन के अर्थ का उपसंहार
 करते हुए श्री जंबूस्वामी से कहते हैं। (एवं खलु जंबू। समणे णं भगवया महा-
 वीरेण आइगरेणं तित्थगरेणं जाव संपत्तेणं अप्पोपालंभनिमित्तं पदमस्स नायज्ज
 णस्स अयमट्ठे पन्नत्ते त्तिवेमि) कि हे जंबू। आदिकर तीर्थकर श्री श्रमण
 भगवान् महावीरने कि जो सिद्धिस्थान को प्राप्त हो चुके हैं अविहित
 विधायी शिष्य को आत्मोपालभनिमित्त यह मेघकुमार के चरित्ररूप प्रथम
 ज्ञाताध्ययन का अर्थ प्रज्ञप्त (प्ररूपित) किया है। अविधि में प्रवृत्त हुए शिष्य
 को गुरु देव मोक्षमार्ग में स्थापन करने के लिये जो हित सारगर्भित वचनों
 द्वारा समझाया है। इसी का नाम आत्मोपालंभ है। आप्तजन के द्वारा दिया
 गया उपालंभ यही आत्मोपालंभ का अर्थ है। मेघकुमार के साथ यही
 कार्य प्रभुने किया है। यही विषय इस अध्ययन द्वारा समझाया गया है।
 अतः इस अध्ययन का नाम भी आप्तदत्त परोपालंभ है। स्वोपालंभ परोपालंभ

अने अव्याघाध सुभने लोगवनारा थसे. अहीं हुवे सूत्रकार श्री सुधर्मास्वामी आ
 अध्ययनना अर्थने। उपसंहार करता जंभूस्वामीने कहे छे. (एवं खलु जंबू ! सम-
 णेणं भगवया महावीरेण आइगरेणं तित्थगरेणं जाव संपत्तेणं अप्पोपालंभ-
 निमित्तं पदमस्स नायज्जणस्स अयमट्ठे पन्नत्ते त्तिवेमि) छे जंभू. आदिकर तीर्थ-
 कर श्री श्रमणु लगवान महावीरे नेभणु सिद्धिस्थानने भेणव्युं. छे-अेवा तेभणु अवि-
 हित विधायी शिष्यने आत्मोपालंभना भाटे आ मेघकुमारना आश्रित्तत्रय प्रथम ज्ञाताध्य-
 यनने अर्थं प्ररूपित कथे छे. अवधिमां प्रवृत्त थयेल शिष्यने गुरुदेव मोक्षमार्गमां
 वाणवा भाटे ने हितसार युक्त वचने द्वारा समजवे छे. ते आत्मोपालंभ कडेवाय छे.
 आप्तजन वडे आपवामां आवेले उपालंभ अे ज आत्मोपालंभने अर्थ छे मेघकुमारनी
 साथे पणु लगवाने आ प्रभाणु ज व्यवहार कथे छे. आ अध्ययन द्वारा अे ज
 विषय समजववामां आवेले छे. अेथी आ अध्ययननुं नाम 'आप्तदत्त परोपालंभ'

आयुष्कमेपुद्गलानर्जरणेन, 'भवक्खणं' भवक्षयेण=देवभवसम्बन्धकर्मणां गत्यादीनां निर्जरणेन ठिइक्खणं' स्थितिक्षयेण=देवभवसम्बन्धि शरीरावस्थान-क्षयेण, अनन्तरं चयं=देवभवसम्बन्धि शरीरं त्यक्त्वा कुत्र गमिष्यति ? कुत्रोत्पत्स्यते ? हे गौतम ! महाविदेहे वर्षे=महाविदेहक्षेत्रे सिज्झिहिइ' सेत्स्यति सकलकार्यकारितया सिद्धो भविष्यति, वुज्झिहिइ' भोत्स्यते=विमलकेवलालोकेन सकललोकालोकं ज्ञास्यति, 'मुच्चिहिइ' मोक्षयति=सर्वकर्मभ्यो मुक्तो भविष्यति, 'परिनिव्वाहिइ' परिनिर्वास्यति=समस्तकर्मकृतविकाररहितत्वेन स्वस्थो भविष्यति, 'सव्वदुःखाणमंतं करेहिइ' सर्वदुःखानामन्तं करिष्यति=समस्तक्लेशानां नाशं विधास्यति, अव्यावाधसुखभोगी भविष्यतीत्यर्थः। अध्य-

देवे ताओ देवलोयाओ आउक्खणं भवक्खणं ठिइक्खणं अणंतरं चयं चइत्ता कहिं गच्छहिइ कहिं उववज्झिहिइ ?) इस प्रकार प्रभु के मुखारविन्द से मेघकुमार की उत्पत्ति का स्थान सुन कर गौतमने पुनः उनसे यह पूछा कि हे भदंत ! अब ये मेघकुमार देव उस देवलोकसे आयु के क्षय से, भव के क्षय से, स्थिति के क्षय से देवभव संबन्धी शरीर का त्याग कर कहां जावेगे ? कहां उत्पन्न होंगे ! (गोयमा ! महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ, वुज्झिहिइ, मुच्चिहिइ, परिनिव्वाहिइ सव्वदुक्खाणमंतं करेहिइ) इस प्रकार गौतम द्वारा पुनः पूछने पर प्रभुने उनसे कहा— गौतम ये मेघकुमार देव महाविदेह में उत्पन्न हो कर वहीं से सिद्ध होंगे विमल केवल ज्ञानरूप आलोक से समस्तलोक और आलोक का ज्ञाता होंगे। समस्त ज्ञानावरणादिक अष्ट कर्मों से रहित होंगे, कर्मकृत समस्त विकारों से सागर बेटली स्थिति कडेनामां आवी छे. (एसणं भंते मेहे देवे ताओ देवलोयाओ आउक्खणं भवक्खणं ठिइक्खणं अणंतरं चयं चइत्ता कहिं गच्छहिइ कहिं उववज्झिहिइ ?) आ प्रभाण्णे मेघकुमारणी उत्पत्ति विधेना स्थानणी वात सांलणीने गौतमे इरी प्रश्न कथो—केहे—अहंत ! मेघकुमार देव ते देवलोकथी आयुष्य क्षयथी, भवक्षयथी, स्थितिक्षयथी देवभवना शरीरनेा त्याग करीने कथां वथे ? कथां उत्पन्न थथे ? (गोयमा ! महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ वुज्झिहिइ, मुच्चिहिइ, परिनिव्वाहिइ, सव्वदुक्खाणमंते करेहिइ) आ प्रभाण्णे गौतमना प्रश्नने सांलणीने प्रलुअे तेभने कहुं केहे गौतम ! आ मेघकुमार देव महाविदेहमां उत्पन्न थधने त्यांथी सिद्ध थथे. विमण अने देवणज्ञानइथ आवेकथी समस्तवेक अने आ वेकना अलुनारा थथे. तेअो समस्त ज्ञानावरणु वगेरे आइ कर्मो रद्धित थथे अने विकारे रद्धित थधने स्वस्थता पाभथे. तेअो अधां दुःपोनेा नाथ करथे

तदुभयोपालम्भो यथा—

अज्ञानिनोऽमी निजजीवितस्य,

हेतोः किमर्थं बहु जीव कोटीः ।

संस्थापयन्तीह च दुःखगर्तो

किं जीवनं शाश्वतमस्ति तेषाम् ? ॥ ३ ॥

अत्र आप्तदत्तपरोपालम्भाधिकारः—

अयमत्राभिप्रायः—प्रातरत्नत्रयक्षणस्य विचक्षणस्यापि विनेयस्य प्रमाद-
वशात्स्खलनायां सत्यां तं सन्मार्गं स्थापनाय भगवता मेघमुनेरिव गुरुणो-
पालम्भो देय इति ।

परोपालम्भ में अविधि में प्रवृत्त हुए जीव को गुर्वादि आप्त जन सम-
झाते हैं—जैसे हे चत्स । तुम्हारा जन्म विशुद्ध वंश में हुआ है, और तुम
जिनेन्द्र प्रभु के धर्म में दीक्षित हुए हो । सदा तुम उत्तम ज्ञानादि गुणों से
युक्त हो रहे हो—तो फिर ऐसी क्या बात है जो तुम सहमा इस प्रकार
के अविहित कार्य में प्रवृत्ति करने की ओर झुक रहे हो । यह कार्य तुम्हें शोभा
नहीं देता है अतः इससे विरक्त होकर विहित कर्तव्य की ओर ही प्रवृत्ति करो ॥२॥

तदुभयोपालम्भमें इस प्रकार बोध दिया जाता है—ये अज्ञानी जीव
अपने स्वयं के जीवन के लिये अनेक जातों की कोटियों को दुःखरूपी
खड्गों में न मालूम क्यों पटकते रहेते हैं । तो क्या वे अपने जीवन को
शाश्वत मान रहे हैं ॥ ३ ॥

मेघकुमार को महावीर प्रभुने जो यह उपालम्भ दिया है—वह परोपा-
लम्भ रूप है । जिस अपने शिष्यने रत्नत्रयरूप मुक्ति का मार्ग प्राप्त कर

परोपालम्भ अविधिमा प्रवृत्त यता एवने शुरु वगेरे आप्तजनो समन्तवे छे-
नेभके छे जेटा । तमारो जन्म विशुद्ध वंशमां थयो छे अने तमे जिनेन्द्र प्रभुनी
दीक्षा पाभ्या छे । दुमेथां तमे श्रेष्ठज्ञान वगेरे शुद्धोत्थी युक्त थथ रह्या छे,
तो पछी जेवुं शुं थथ गयुं छे ओकदम तमे आप्तताना न करवा थोअ
(अविहित) कार्यमां प्रवृत्ति करवा तैयार थया छे. आ काम तमने शोभतुं नथी.
ओटवे ओनाथी वि-कत थथने विहित (विहित) कर्तव्यमां प्रवृत्त थोअो. ॥२॥

तदुभयोपालम्भमां आ प्रभावे बोध अपाय छे—के आ अज्ञानी एवो पीताना
एवन भाटे धर्या एवोने दु भेइपी आडामां हेम नाभता रहे छे ? शुं जेवा माखुसो
पीताना एवनने शाश्वत मानीने जेका छे. ॥३॥

मेघकुमारने महावीर प्रभुजे ने उपालम्भ आप्यो छे ते परोपालम्भ छे. ने शिष्ये
रत्नत्रय रूप मुक्तिमार्ग भेज्यो छे, अने दुवे प्रभादवश यतां ते मुक्तिमार्गथी प्रष्ट

स्वोपालम्भो यथा-
 लब्ध्वा जनुर्मानुपमघ्न दुर्लभं,
 रे जीव ! कल्पद्रुमवत्प्रमोदम् ।
 जैनेन्द्रधर्मं न करोषि सादरं,
 स्वस्यात्मनः शत्रु रहो ! परोऽस्तिकः ? ॥ १ ॥
 परोपालम्भो यथा--
 विशुद्धवंशे च तत्रास्ति जन्म,
 जिनेन्द्रधर्मे खलु दीक्षितोऽसि ।
 सदोत्तमज्ञानगुणाढ्य ! वत्स !
 कथं त्वमेवं सइसा प्रवृत्तः ? ॥ २ ॥

तथा तदुभयोपालम्भ के भेद से उपालम्भ ३ प्रकार का कहा गया है—स्वोपालम्भ में जीव अपने आपको उपालम्भ देता है—जैसे—जब किसी अविहित कार्य में प्रवृत्ति करता हुआ जैनेन्द्र धर्म में प्रवृत्ति नहीं करता है—तब अपने आप अन्तरात्मा से जो ऐसी आवाज आती है कि हे जीव इस परिभ्ररण रूप संसार में किसी बड़े भारी पुण्य के उदय से तुझे यह मनुष्य भव प्राप्त हुआ है—तो इसमें यदि कोई प्रमोददायक वस्तु तुझे मिली है तो वह एक जिनेन्द्र देव द्वारा प्रतिपादित धर्म ही है। तू जिस तरह अन्ध संसारिक कार्यों को बड़े आदर के साथ करता है उसी तरह इसे क्यों नहीं करता। याद रख यदि इसके करने से तू बंचित हो रहा है तो तू स्वयं निज का शत्रु है दूसरा नहीं है। ॥१॥

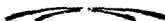
छे.—स्वोपालम्भ, परोपालम्भ, तेमज तदुभयोपालम्भना लेदथी उपालम्भना त्रय प्रकार कहेवाभां आव्या छे. स्वोपालम्भमां भाषुस पोतानी नतने उपालम्भ आपे छे. जेभडे एव न्यारे कोध अविहित (न करवा योग्य) कार्यमां प्रवृत्ति करता जैनेन्द्र धर्ममां प्रवृत्त थतो नथी त्यारे पोतानी भेजेज अन्तरथी जे अवाज उठे छे डे डे एव। आ परिभ्रमणरूप संसारमां कोध भइल पुण्यना उदयथी तने मनुष्यभव भज्ये छे. आ लव जे कोध एक प्रमोद आपनारी वस्तु तने भणी छे ते इक्षत जिनेन्द्र देव बडे प्रतिपादित धर्म जे छे. तु जेभ पीज संसारिक कामे भहुज पुशीथी करे छे तेम तु आ धर्ममां प्रवृत्त केम थतो नथी? अरोजर याद राभजे डे आ धर्ममां तु प्रवृत्ति करीथ नडि, तो तु पोते पोतानी नतने शत्रु भनी गये छे. तादे पीजे कोध शत्रु नथी. ॥१॥

जो यह संग्रह गाथा उद्धृत की गई है—उमका अभिप्राय यह है—जो मुखके
अभिलाषी हैं उनका यह प्रधान कर्तव्य है कि वे श्रुतज्ञान का अविनय
न हो ऐसा सदा ध्यानमें रखें । अपने मनसे कल्पित कर आगम
की कोई बात न कहें वर्यो कि छद्मस्थावस्थामे दृष्टि अरूण
रहती है यही विषय (तिवेमी) इन पदों से सूचित किया
गया है ।

जैनाचार्य जैन धर्मद्विवाकर पूज्य श्री घासीलालजी महाराज कृत
ज्ञाताधर्मकथागमूत्रकी अनगारधर्मात्मनविणीटीका के
उत्सिप्त नामक प्रथम अध्ययन संपूर्ण ॥ १ ॥

में तमने कथ्यो छे. आ अर्थ विषे ने आ अंशङ्गाथा टांकावामां आवी छे तेने
अभिप्राय आ प्रभाणे छे के—ने सुअनी छ्यछा धरावे छे तेमनी आ सुअ इये इरन्
छाय छे के तेआथी श्रुतज्ञानने अविनय थाय नहि आ विषयमां दुभियां सावयेत
रहे. पोताना मनथी कथीने आगमनी केछ वात कहे नहि. केभके छद्मस्थावस्थाभां दृष्टि
अपुल्लं रहे छे, अन् विषय (तिवेमि) पदोथी सूखववामां आब्ये छे.

जैनाचार्य जैनधर्म द्विवाकर पूज्य श्री. घासीलाल महाराज कृत
ज्ञाता धर्मकथ गमूत्रकी अनगारधर्मात्मनविणीटीका के
उत्सिप्त नामक पहिले अध्ययन समाप्त. ॥१॥



'त्ति वेमि' इति=उत्तररूपं तत्त्वं यथा तीर्थंकरस्य भगवतो महावीरस्य
सहायान्मया श्रुतं न तु स्वबुद्ध्या कल्पितं, यतः स्वबुद्ध्या कथने श्रुत-
ज्ञानस्य चिनयो भवति, किं च छद्मस्थानां दृष्टयोऽप्यपूर्णा भवन्ति, तस्माद्
यथा भगवत्प्रतिपादितमेव त्वां ब्रवीमि=उपदिशामीत्यर्थं इहार्थं चेयं संग्रहमाथा—

सुभ्रूणस्स अत्रिणभो परिहरणिज्जो परिहरणिज्जो मुहादिलासीदिं ।

छउमत्थाणं दिट्ठी, पुण्णाणत्थित्ति सुइयं इट्ठणा ॥ इति ॥ मूत्र. ५० ॥

॥ इति श्री विश्वविख्यात-जगद्गुरु-पसिद्धवाचक-पञ्चदशभाषाकलितललित

कलापालापक-पविशुद्भगधपद्यनैकग्रन्थनिर्मापक-वादिमानमर्दक श्री

शाहू छत्रपति कोल्हापुरराजप्रदत्त-'जैनशास्त्राचार्य'-पद-

भूषित-कोल्हापुरराजगुरु वालब्रह्मचारि जैनाचार्य-

जैनधर्मदिवाकर=पूज्यश्री घासीलालव्रति-विर-

चितायां श्री ज्ञानार्थमकथाङ्गमूत्रस्याऽनगर

धर्माग्नवर्णिणी टीकायाम् उत्ति-

सनामकं प्रथममध्ययनं

समाप्तम् ॥१॥

लिया है, और वह अब प्रमादवशवर्ती होकर उससे स्वल्पित हो रहा है-
या हो चुका है- तो उसे पुनः सन्मार्ग में स्थापित करने के लिये गुरु
महाराज का कर्तव्य है कि वे उसे उपालम्भ दें। जिस प्रकार महावीर
प्रभुने मेघकुमार मुनिराज को दिया है (त्तिवेमि) इस प्रकार यह उक्त
रूप तत्त्व जिस तरह तीर्थंकर भगवान महावीर प्रभुके पाससे मैंने सुना
है, उसी तरह यह तुमसे कहा है। अपनी बुद्धिसे कल्पित कर यह नहीं
कहा है। क्यों कि बुद्धिसे कल्पित कर कहनेमें श्रुत ज्ञान की आशा
तना होती है दूसरी बात यह भी है कि छद्मास्थजिओं की दृष्टियां
अपूर्ण होती हैं। अतः वे वस्तु का पूर्णरूप प्रतिपादित नहीं कर सका
हैं। इस लिये प्रभु प्रतिपादित अर्थ ही यह तुम से कहा है। इस अर्थमें

यद्य रक्षो छे, अथवा तो ते मुडितभार्गथी अथ यद्य चूकथो छे ओवी व्यकितने
इरी स-भार्गभां वाणवा भाटे शुभुमडारान्नी इरन् छे के तेने उपाव'ल आपे. ले
प्रभाणे प्रभुओ मुनि-ान् मेघकुमारने उपाव'ल आप्यो छे. (त्तिवेमि) आ रीते उच-
शेकत तत्व में लेवी रीते तीर्थंकर भगवान महावीरनी पासेथी सांलप्युं छे तेवी
र रीते में तमने कहुं छे. में पैतानी बुद्धिथी कल्पना करीने कहुं नथी. डेभके
बुद्धिथी कल्पितकरीने कहेवाथी श्रुतज्ञाननी आशातना होय छे. नीए वात ओ छे
के छद्मस्व एवोनी दृष्टिओ अपूर्ण होय छे. ओटवा भाटे प्रभु प्रतिपादित अर्थ

ज्ञाताध्ययनस्य कोऽर्थः प्रज्ञप्तः १ । श्री सुधर्मास्वामी जम्बूस्वामिनमाह-

‘एवं खलु जम्बू’ ति-एवं खलु जम्बूः ! तस्मिन् काले तस्मिन् समये राजगृहं नाम नगरमासीत् वर्णकः, तस्य खलु राजगृहस्य नगरस्य वहिरुत्तरपौरस्त्ये दिग्भागे गुणशिलकं नामं चैत्यमासीत् वर्णकः, तस्य खलु

इस अध्ययन का पहिले अध्ययन के साथ इस प्रकार संबन्ध रहा हुआ है-कि पहिले अध्ययन में यह विषय समझाया गया है कि अनुचित मार्ग में प्रवृत्त हुए शिष्य को गुरु का कर्तव्य है कि वह उसे उपालम्भ देवे। इस अध्ययन में यह समझाया जावेगा कि मैं तथा अनुचित मार्ग में प्रवृत्त होते हैं उन्हें अपने अपने कृत कर्मानुसार अर्थ तथा अनर्थ की प्राप्ति परंपरा भोगनी पडती है। इसी निमित्त से यह अध्ययन पहिले के वाद प्रारंभ किया गया है इस अध्ययन का यह प्रथम सूत्र है-‘जइणं भंते ! इत्यादि ।

टीका—जंबू स्वामी सुधर्मा स्वामी से पूछते हैं—(जइ) यदि (णं) निश्चय से (भंते) हे भद्रेत ! (समणेणं भगवया महावीरेणं पढमस्स नायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते) श्रमण भगवान् महावीरने प्रथम ज्ञाताध्ययन का यह पूर्वोक्त अर्थ प्रदिपादित किया है तो (वीयस्सणं भंते ! नायज्झयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते) द्वितीय ज्ञाताध्ययन का उन्होंने क्या भाव अर्थ कहा है? इस प्रकार जंबू स्वामी के पूछने पर श्री सुधर्मा स्वामीने उनसे कहा—(एवं खलु जंबू) हे जंबू सुनी—इस प्रकार है—(तेणं कालेणं तेणं समणेणं रायगिहे नामं नयरे इत्था) उस काल उस समय में राजगृह नामका नगर था (वन्नओ) इसका

अध्ययनना पहिला अध्ययननी साथे संबन्ध आ रीते छे-के पहिला अध्ययननां आ विषयनुं स्पष्टीकरुणु करवाभां आवुं छे के अनुचित मार्गनां प्रवृत्त शिष्यने भाटे युनुनी करुणु छे के ते तेमने उपालंल आपे. आ अध्ययन वडे समजववाभां आवथे के ने अनुचित अथवा तो उचित मार्गनां प्रवृत्त थांय छे, तेमने पौताना करेलां केमो अनुसार अर्थ तेमने अनर्थनी प्राप्ति परंप। लोगववी पडे छे. आ करवुथी के आ अध्ययन पहिला अध्ययन पछी आरंभवाभा आवुं छे. आ पीन अध्ययनना पहिले सत्र आ छे—‘जइणं भंते ! इत्यादि !

टीका—जंबूस्वामी सुधर्मास्वामीने पूछे छे—(जइ) जे (णं) निश्चित रूपे (भंते) उच्यते। (समणेणं भगवया महावीरेणं पढमस्स नायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते) श्रमण भगवान् महावीर पहिला ‘ज्ञाताध्ययन’ ना अर्थ उपर कहा सुज्ज स्पष्ट कथो छे, तो (वीयस्सणं भंते ! नायज्झयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते) पीन ज्ञाताध्ययनना तेमणे कथ रीते लावार्थ समजववो छे ? जंबूस्वामीने आ प्रकारने प्रश्न सांलणीने श्री सुधर्मास्वामीने तेमने कहुं के (एवं खलु जंबू) छे जंबू तमार प्रश्नना जवाप

अथ द्वितीयमध्ययनं प्रारभ्यते

व्याख्यातं प्रथममध्ययनं, साम्प्रतं द्वितीयमारभ्यते, अस्य पूर्वेषु सहाऽ-
यमनिसम्बन्धः—पूर्वस्मिन्नध्ययने भगवताऽनुचितमार्गप्रवृत्तस्य दिव्यस्योपा-
लम्भः प्रोक्तः, अत्र तु अनुनितोचितमार्गप्रवृत्तानामनर्थावर्थप्राप्तिपरम्परा
प्रोच्यते, इत्यनेन सम्बन्धेनायातस्यास्येदमादिमम्वम् ।

मूलम्—जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं पढमस्स
नयज्झयणस्स अयमट्टे पन्नत्ते वीयस्स णं भंते ! नायज्झयणस्स के
अट्टे पन्नत्ते ? एवं खलु ! जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समणं रागगिहे
णामं नयरे होत्था वन्नओ तस्स णं रायगिहस्स नयरस्स वहिया-
उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए गुणसिलए नामं चेइए होत्था वन्नओ,
तस्सणं गुणसिलयस्स चेइयस्स अदुरसामंते एत्थणं महं एगे जि-
ण्णुजाणे यावि होत्था, विण्णुदेवउले परिसडियतोरणवरे
नाणाविहगुच्छगुल्मलयावह्लिवच्छच्छाइए अणेगवालसयसंकणिजे
यावि होत्था । तस्सणं जिन्नुज्जणस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थणं महं
एगे भग्गकूवए यावि होत्था, तस्सणं भग्गकूवस्स अदुरसामंते एत्थणं
महं एगे मालुयाकच्छए यावि होत्था, किण्हे किण्होभासे जाव रम्मे
महामेहनिउरंवभूए बहुहिं रुक्खेहि य गुच्छेहि य गुम्मेहि य लय हि य
वह्लोहि य कुसेहि य खाणुएहि य संच्छन्ने पलिच्छन्ने अंतो झुसिरे वहिं
गंभीरे अणेग वालस संकणिजे यावि होत्था ॥सू०१॥

टीका—'जइणं भंते !' इत्यादि—यदि खलु भदन्त ! श्रमणेन भगवता
महावीरेण प्रथमस्य ज्ञाताध्ययनस्य, अपमर्थः प्रज्ञस द्वितीयस्य खलु भदन्त !

दूसरा अध्ययन प्रारम्भ

प्रथम अध्ययन संपूर्ण हो चुका है। अब द्वितीय अध्ययन प्रारंभ

भीष्म अध्ययन प्रारंभ

पहेलु अध्ययन पुरं धरं गयुं छे हुवे भीष्म अध्ययन शुरु यथा छे. आ

ज्ञाताध्ययनस्य कोऽर्थः प्रज्ञसः ? । श्री सुधर्मास्वामी जम्बूस्वामिनमाह-

‘एवं खलु जम्बू’ ति-एवं खलु जम्बूः ! तस्मिन् काले तस्मिन् समये राजगृहं नाम नगरमासीत् वर्णकः, तस्य खलु राजगृहस्य नगरस्य वहिरुत्तरपौरस्त्ये दिग्भागे गुणशिलकं नामं चैत्यमासीत् वर्णकः, तस्य खलु

इस अध्ययन का पहिले अध्ययन के साथ इस प्रकार संबन्ध रहा हुआ है-कि पहिले अध्ययन में यह विषय समझाया गया है कि अनुचित मार्ग में प्रवृत्त हुए शिष्य को गुरु का कर्तव्य है कि वह उसे उपालम्भ देवे। इस अध्ययन में यह समझाया जावेगा कि मैं तथा अनुचित मार्ग में प्रवृत्त होते हैं उन्हें अपने अपने कृत कर्मानुसार अर्थ तथा अनर्थ की प्राप्ति परंपरा भोगनी पडती है। इसी निमित्त से यह अध्ययन पहिले के बाद प्रारंभ किया गया है इस अध्ययन का यह प्रथम सूत्र है-‘जइणं भंते ! इत्यादि ।

टीका—जंबू स्वामी सुधर्मा स्वामी से पूछते हैं—(जइ) यदि (णं) निश्चय से (भंते) हे भद्रेत ! (समणोणं भगवया महावीरेणं पढमस्स नायज्झयणस्स अयमट्ठे पणत्ते) श्रमण भगवान् महावीरने प्रथम ज्ञाताध्ययन का यह पूर्वोक्त अर्थ प्रदिपादित किया है तो (वीयस्सणं भंते ! नायज्झयणस्स के अट्ठे पणत्ते) द्वितीय ज्ञाताध्ययन का उन्होंने क्या भाव अर्थ कहा है? इस प्रकार जंबू स्वामी के पूछने पर श्री सुधर्मा स्वामीने उनसे कहा—(एवं खलु जंबू) हे जंबू सुनों—इस प्रकार है—(तेणं कालेणं तेणं समणं रायगिहे नामं नयरे होत्या) उस काल उस समय में राजगृह नामका नगर था (वन्नओ) इसका

अध्ययनना पहिला अध्ययननी साथे संघंथ आ रीते छे-के पहिला अध्ययनमां आ विषयनुं स्पष्टीकरण करवामां आओं छे के अनुचित मार्गमां प्रवृत्त शिष्यने भाटे युनुनी करण छे के ते तेमने उपालंभ आपे. आ अध्ययन वडे समजववामां आवये के ने अनुचित अथवा तो उचित मार्गमां प्रवृत्त थाय छे, तेमने पैताना करेलां केमो अनुसार अर्थ तेमज अनर्थनी प्राप्ति परंप। लोगववी पडे छे. आ करणुथी के आ अध्ययन पहिला अध्ययन पछी आरंभवामा आओं छे. आ भीज अध्ययनने पहिलुं सत्र आ छे:—‘जइणं भंते’ ! इत्यादि !

टीका—जंबूस्वामी सुधर्मास्वामीने पूछे छे—(जइ) जे (णं) निश्चित रूपे (भंते) हे भद्रेत ! (समणोणं भगवया महावीरेणं पढमस्स नायज्झयणस्स अयमट्ठे पणत्ते) श्रमण भगवान् महावीर पहिला ‘ज्ञाताध्ययन’ ने अर्थ उपर कहा मुज्ज स्पष्ट क्यो छे, तो (वीयस्सणं भंते ! नायज्झयणस्स के अट्ठे पणत्ते) भीज ज्ञाताध्ययनने तेमणे कथं रीते लवार्थ समजववो छे ? जंबूस्वामीने आ प्रकारने प्रश्न सांभलीने श्री सुधर्मास्वामीने तेमने कहुं के (एवं खलु जंबू) हे जंबू तभारा प्रश्नने जंबू

गुणशिलकस्य चैवस्य 'अदूरसामंते' नातिदूरं नात्यासन्नं, अत्र खलु महदेकं जीर्णोद्यानं चाप्यासीत्, तन्कीदृशमित्याह—'विणट्टदेवउले' विणट्ट देवकुलं—विणट्टव्यन्तरायतनं, 'परिसडियतोरणघरे' परिशट्टिततोरण गृहं—परिशट्टिता नि नष्टमायाणं तोणानि वहिद्वाराणि गृहाणि, 'माकार द्वारव्यन्तरायतनसम्बन्धीनि गृहाणि यत्र तत्तथा । 'नाणविहगुच्छगुल्मलयावल्लिवच्छच्छाइए' नानाविधगुच्छगुल्मलयावल्लीवृक्षच्छादितं—नानाविधा ये गुच्छाः=कापांसी जपाकुसुमप्रभृतयः, गुन्नाः=वंशजाती प्रभृतयः, लताः अशोकलतादयः, वभ्यः=त्रपुपीप्रभृतयः वृक्षाः=आम्राश्यः तैश्चादितं यत्तत्तथा । 'अणेगवालमयसंरुणिज्जे' अनेकव्यालशतशङ्कनीयम्, अनेकैः=नानाविधै व्याल-शतैः=सर्पादि श्वापदशतैः शङ्कनीयं=मयावहं चाप्यासीत् ।

वर्णन पहिले क्रिया गया है। (तस्स णं रायगिहस्स नयरस्स वहिया उत्तर-पुरत्थिमे दिसीभाए गुणसिलए नामं चेइए होत्था) उस राजगृह नगर के बाहर की ओर उत्तर पूर्व के दिग्विभाग में अर्थात् ईशानकोणमें गुणशिलक नामका उद्यान था। (वन्नओ) इसका वर्णन पहिले क्रिया गया है। (तस्स णं गुणसिलयस्स चेइयस्स अदूरसामंते एत्थणं महंएगे जिणुज्जाणे यावि होत्था) उस गुणशिलक उद्यान के न अति समीप और न अति दूर एक और भी बड़ा भारी जीर्ण उद्यान था। (विणट्टदेवउले परिसडियतोरणघरे नाणाविहगुच्छगुल्मलयावल्लीवच्छच्छाइए अणेगवालसयसंरुणिज्जे या वि होत्था) इसमें जो देवकुल था वह कभी का नष्ट हो चुका था।

सांख्यो—(तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नामं नयरे होत्था) तेकणे अने तेसभये राजगृह नामे ओक नगर इत्तुं (वन्नओ) ते नगरत्तुं वर्णन पहिलां करवाभां आबुं छे। (तस्स णं रायगिहस्स नयरस्स वहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए गुणसिलए नामं चेइए होत्था) राजगृह नगरनी गडार उत्तर पूर्व दिशाभां ओटले उद्यानकोणुभां गुणशिलक नामे उद्यान इत्ते। (वन्नओ) आ उद्यानत्तुं वर्णन पहिलां करवाभां आबुं छे। (तस्सणं गुणसिलयस्स चेइयस्स अदूरसामंते एत्थणं महंएगे जिणुज्जाणे यावि होत्था) गुणशिलक उद्याननी वधारे पासे पणु नडि अने वधारे दूर पणु नडि ओवुं ओक पीले ओवुं उद्यान इत्तुं। (विणट्टदेवउले परिसडियतोरणघरे नाणाविहगुच्छ गुल्मलयावल्लिवच्छाइए अणेगवालसयसंरुणिज्जे यावि होत्था) आभात्तुं देवकुल व्यन्तरायन उधारत्तुं ओ नाथ पाभुं इत्तुं। देवकुलने अर्थ अडी व्यन्तरत्तुं आयतन

तस्य खलु जीर्णोद्यानस्य बहुमध्यदेशभागे अत्र खलु महानेको भग्नकूवापीन् तस्य खलु भग्नकूपस्य अदूरसामंते अत्र खलु महानेः 'मालुया कच्छए' मालुहा कक्षकः मालुकाः एकास्थिफल वृक्षविशेषास्तेषां कक्षकः=गानं वनम् चाप्यासीत् । मकोदशः १ इत्याह—'किण्हे किण्हो भासे' कृष्णः कृष्णावभासः, तत्र-कृष्णः=कृष्णवर्ण-

देवकुल का अर्थ यहां व्यंतर का आयतन है। इस व्यन्तरायतन संवन्धी जिनने घर थे उन सबके भी यहाँ चहिद्वार नष्टपाय हो चुके थे। यह जोर्ण उद्यान अनेक प्रकार के गुच्छों से कपास के जपा पुष्पों आदि के गुच्छों से—वंशजाली आदि गुल्मों से अशोकलता आदि लताओं से त्रपुगी (करुडो) आदि वेत्रोंसे, आम्र आदि वृक्षों से, आच्छादित हो रहा था। इसमें अनेक प्रकार के सँकड़ों सर्प इधर से ऊधर फिरते रहते थे अतः उनके द्वारा यह विशेष भयंकर बना हुआ था। (तस्स णं जिन्नुज्जाणस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं महं एगे भग्गकूवए यावि होत्था) इस जीर्ण उद्यान के ठीक मध्य भाग में एक बड़ा भारी भग्न जीर्ण हुआ कुँआ भी था (तस्स णं भग्गकूवस्य अदूरसामंते एत्थ णं महंएगे मालुया कच्छए यावि होत्था) उस भग्न कुँए के न अति समीप और न अति दूर—पास में मालुका वृक्षों का बहुत बड़ा गहन वन था। एकास्थिकूट वाक्रे वृक्ष विशेषों का नाम मालुका है (किण्हे किण्हो भासे जाव रम्मे महामेहनिउरं वभूए वहूहिं रुक्खे हि य गुच्छे हि य गुम्मे

छे. आ व्यन्तरायतननां जेटलां घर हुतां, ते अधाना षडारना इरवान नष्टप्राय थध गया हुता. जूनु' उद्यान धष्ठी लतना शुष्ठा.—जेटले के पशु अने जपापुष्प वगेरेना शुष्ठा—वंशजाली वगेरे शुष्ठा अशोकलता वगेरे लताओ, त्रपुगी (काकडी) वगेरेनी वेवो, आम्र वगेरे वृक्षाथी ढंकाओलो हुतो. धष्ठी लतना सेंकडो साप आ उद्यानमां आभथी तेभ विचरता रहेता हुता. ओथी आ उद्यान सविशेष लयंकर लागतुं हुतुं. (तस्सणं जिन्नुज्जाणस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थणं एगे भग्गकूवए यावि होत्था) आ जूता उद्याननी ठीक वर्योवर्य ओक मोटो लअकूप नामे ओक लुब्धुं थथेवो धूवो हुतो. (तस्स णं भग्गकूवस्स अदूरसामंते एत्थणं महं एगे मालुया कच्छए याविहोत्था) ते लअ धूवानी वधारे हर पशु नडि अने वधारे नलुक पशु नडि डडेवाय ओधुं पासे मालुका वृक्षानुं मोटुं सधन वन हुतुं. ओकास्थिकूट वृक्ष विशेषतुं नाम मालुका छे. (किण्हे किण्हो भासे जाव रम्मे महामेहनिउरं वभूए वहूहिं रुक्खे हि य गुच्छे हि य

गुणशिलकस्य चैत्यस्य 'अदूरसामंते' नातिदूरं नात्यासन्ने, अत्र खलु महदेकं जीर्णोद्यानं चाप्यासीत्, तन्कीदृशमित्याह—'विणट्टदेवउले' विणट्ट देवकुलं—विणट्टव्यन्तरायतनं, 'पडिसडियतोरणघरे' परिशटिततोरण गृहं—परिशटिता नि नष्टमायाणि त्तोणानि वहिद्वाराणि गृहाणि, माकार द्वारव्यन्तरायतनसम्बन्धीनि गृहाणि यत्र तत्तथा । 'नागविहगुच्छगुम्मलया वह्लिवच्छच्छाडए' नानाविधगुच्छगुल्मलयावह्लीवृक्षच्छादितं—नानाविधा ये गुच्छाः=कार्पासी जपाकुसुमप्रभृतयः, गुदनाः=वंशजाली प्रभृतयः, लताः अशोकलतादयः, वभ्यः=त्रपुपीप्रभृतयः वृक्षाः=आम्रादयः तैश्चादितं यत्तथा । 'अणेगवालमयसंक्कणिज्जे' अनेकग्यालशतशङ्कनीयम्, अनेकैः=नानाविधै ग्याल-शतैः=सर्पादि श्वापदशतैः शङ्कनीयं=भयावहं चाप्यासीत् ।

वर्णन पहिले क्रिया गया है। (तस्स णं रायगिहस्स नयरस्स वहिया उत्तर-पुरत्थिमे दिसीभाए गुणसिलए नामं चेइए होत्था) उस राजगृह नगर के बाहर की ओर उत्तर पूर्व के दिग्विभाग में अर्थात् ईशानकोणमें गुणशिलक नामका उद्यान था। (वन्नओ) इसका वर्णन पहिले क्रिया गया है। (तस्स णं गुणसिलयस्स चेइयस्स अदूरसामंते एत्थणं महंएगे जिणुज्जाणे यावि होत्था) उस गुणशिलक उद्यान के न अति समीप और न अति दूर एक ओर भी बड़ा भारी जीर्ण उद्यान था। (विणट्टदेवउले परिसडियतोरणघरे नाणाविहगुच्छगुल्मलयावह्लीवच्छच्छाडए अणेगवालसयसंक्कणिज्जे या वि होत्था) इसमें जो देवकुल था वह कभी का नष्ट हो चुका था।

सांभणे—(तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नामं नयरे होत्था) ते अणे अने ते सभये राजगृह नामे अेक नगर इत्तुं (वन्नओ) ते नगरत्तुं वल्लं पडेलं करवाभां आण्युं छे। (तस्स णं रायगिहस्स नयरस्स वहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए गुणसिलए नामं चेइए होत्था) राजगृह नगरनी अडार उत्तर पूर्व दिशाभां अेट्ठे ध्यानकोणभां गुणशीलक नामे उद्यान इत्तो। (वन्नओ) आ उद्यानत्तुं वल्लं पडेलं करवाभां आण्युं छे। (तस्स णं गुणसिलयस्स चेइयस्स अदूरसामंते एत्थणं महंएगे जिणुज्जाणे यावि होत्था) गुणशीलक उद्याननी वधारे पासे पल्लु नडि अने वधारे इर पल्लु नडि अेत्तुं अेक पीणे अत्तुं उद्यान इत्तुं। (विणट्टदेवउले परिसडियतोरणघरे नाणाविहगुच्छ गुल्मलयावह्लिवच्छाडए अणेगवालसयसंक्कणिज्जे यावि होत्था) आभात्तुं इवकुण व्यंतरायन अयारत्तुं अे नाथ पाण्युं इत्तुं। इवकुणने अर्थ अडी व्यन्तरत्तुं आयतन

तस्य खलु जीर्णोद्यानस्य बहुमध्यदेशभागे अत्र खलु महानेको भग्नकृपाशीन् तस्य खलु भग्नरूपस्य अदूरसामंते अत्र खलु महानेः 'मालुया कच्छए' मालुका कक्षकः मालुकाः एकास्थिफल वृक्षविशेषास्तेषां कक्षकः=गहनं वनम् चाप्यासीत् । मकोदशः १ इत्याह—'किण्हे किण्ठो भासे' कृष्णः कृष्णावभासः, तत्र-कृष्णः=कृष्णवर्ण-

देवकुल का अर्थ यहां व्यंतर का आयतन है। इस व्यन्तरायतन संवन्धी जिनने घर थे उन सबके भी यहां बहिर्द्वार नष्टपाय हो चुके थे। यह जोर्ण उद्यान अनेक प्रकार के गुच्छों से कपास के जपा पुष्पों आदि के गुच्छों से—वंशजाली आदि गुल्मों से अशोकलता आदि लनाओं से त्रयुती (करुड़ी) आदि वेगैले, आत्र आदि वृक्षों से, आच्छादित हो रहा था। इसमें अनेक प्रकार के सँकड़ों सर्प इधर से ऊधर फिरते रहते थे अतः उनके द्वारा यह विशेष भयंकर बना हुआ था। (तस्स णं जिन्नुज्जाणस्स बहुमज्झदेशभाए एत्थ णं महं एगे भग्गकूवए यावि हो त्या) इस जीर्ण उद्यान के ठीक मध्य भाग में एक बड़ा भारी भग्न जीर्ण हुआ कुंआ भा था (तस्स णं भग्गकूवस्य अदूरसामंते एत्थ णं महंएगे मालुया कच्छए यावि होत्या) उस भग्न कुँए के न अति समीप और न अति दूर—पास में मालुका वृक्षों का बहुत बड़ा गहन वन था। एकास्थिकरु वाजे वृक्ष विशेषों का नाम मालुका है (किण्हे किण्ठो भासे जाव रम्मे महामेहनिउरं वभूए व्हूर्हि रुक्खे हि य गुच्छे हि य गुम्मे

छे. आ व्यन्तरायतननां जेटलां घर इतां, ते गद्याना गद्धारना इरवान् नष्टप्राय थथ गथा इता. जूतुं उद्यान धर्षी लतना गुच्छे. —जेटले के वधु अने जपापुष्प वगेरेना गुच्छे—वंशजाली वगेरे गुच्छे अशोकलता वगेरे लताओ, त्रयुती (काकडी) वगेरेनी वेदो, आत्र वगेरे वृक्षोथी ढंकाओलो इतो. धर्षी लतना सेंकडो साप आ उद्यानमां आभथी तेभ विथरता रहेता इता. ओथी आ उद्यान सविशेष लयंकर लागतुं इतुं. (तस्सणं जिन्नुज्जाणस्स बहुमज्झदेशभाए एत्थणं एगे भग्गकूवए यावि होत्या) आ जूता उद्याननी ठीक वन्धोवन्ध ओक मोटो लज्जकूप नामे ओक लुब्धुं थयेवो दूषो इतो. (तस्स णं भग्गकूवस्स अदूरसामंते एत्थणं महं एगे मालुया कच्छए यावि होत्या) ते लज्ज कूपानी वधारे इरे पल्लु नडि अने वधारे नल्लु पल्लु नडि कडेवाय ओपुं पासे मालुका वृक्षोतुं मोटुं सधन वन इतुं. ओकास्थिकरण वृक्ष विशेषतुं नाम मालुका छे. (किण्हे किण्ठो भासे जाव रम्मे महामेहनिउरं वभूए व्हूर्हि रुक्खे हि य गुच्छे हि य

गुणशिलकस्य चैत्यस्य 'अदूरसामंते' नातिदूरे नात्यासन्ने, अत्र खलु महदेकं जीर्णोद्यानं चाप्यासीत्, तत्क्रीदशमित्याह—'विणट्टदेवउले' विनष्ट देवकुलं—विनष्टव्यन्तरायतनं, 'पडिसडियतोरणघरे' परिस्रटिततोरण गृहं—परिस्रटिता नि नष्टपायाण तोगणानि वहिद्यांराणि गृहाणि, प्राकार द्वारव्यन्तरायतनसम्बन्धीनि गृहाणि यत्र तत्तथा । 'नाणाविहगुच्छगुल्मलया वल्लिवच्छच्छाइए' नानाविधगुच्छगुल्मलयावल्लीवृक्षच्छादितं—नानाविधा ये गुच्छाः=कापांसी जपाकुसुमप्रभृतयः, गुल्माः=वंशजाली प्रभृतयः, लताः भशोकलतादयः, वभ्यः=त्रपुपीप्रभृतयः वृक्षाः=आम्रादयः तैश्चादितं यत्तत्तथा । 'अणेगवालसयसंरुणिज्जे' अनेकग्यालशतशङ्कनीयम्, अनेकैः=नानाविधै व्यालशतैः=सर्पादि श्वापदशतैः शङ्कनीयं=भयावहं चाप्यासीत् ।

वर्णन पहिले क्रिया गया है (तस्स णं रायगिहस्स नयरस्स वहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए गुणसिलए नामं चेइए होत्था) उस राजगृह नगर के बाहर की ओर उत्तर पूर्व के दिग्विभाग में अर्थात् ईशानकोणमें गुणशिलक नामका उद्यान था। (वन्नओ) इसका वर्णन पहिले क्रिया गया है। (तस्स णं गुणसिलयस्स चेइयस्स अदूरसामंते एत्थणं महएगे जिण्युज्जाणे यावि होत्था) उम गुणशिलक उद्यान के न अति समीप और न अति दूर एक और भी बड़ा भारी जीर्ण उद्यान था। (विणट्टदेवउले परिसडियतोरणघरे नाणाविहगुच्छगुल्मलयावल्लीवच्छच्छाइए अणेगवालसयसंरुणिज्जे या वि होत्था) इसमें जो देवकुल था वह कभी का नष्ट हो चुका था।

सांभणो—(तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नामं नयरे होत्था) तेक्षणे अने तेसभये राजगृह नामे ओक नगर इत्तुं (वन्नओ) ते नगरत्तुं वल्लुंन पडेलं करवाभां आण्युं छे। (तस्स णं रायगिहस्स नयरस्स वहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए गुणसिलए नामं चेइए होत्था) राजगृह नगरनी गहार उत्तर पूर्व दिशाभां ओटले उद्यानकेणुभां गुणशीलक नामे उद्यान इतो. (वन्नओ) आ उद्यानत्तुं वल्लुंन पडेलं करवाभां आण्युं छे। (तस्सगं गुणसिलयस्स चेइयस्स अदूरसामंते एत्थणं महएगे जिण्युज्जाणे यावि होत्था) गुणशीलक उद्याननी वधारे पासे पणु नडि अने वधारे दूर पणु नडि ओवुं ओक भीजे अत्तुं उद्यान इत्तुं. (विणट्टदेवउले परिसडियतोरणघरे नाणाविहगुच्छ गुल्मलयावल्लिवच्छच्छाइए अणेगवालसयसंरुणिज्जे यावि होत्था) आण्यत्तुं देवकुल व्यंतरायन क्यारत्तुं अे नाथ पाण्युं इत्तुं. देवकुलने अर्थ अर्धी व्यन्तरत्तुं आयतन

तस्य खलु जीर्णोद्यानस्य बहुमध्यदेशभागे अत्र खलु महानेको भग्नकूवापीन् तस्य खलु भग्नकूपस्य अदूरसामंते अत्र खलु महानेः 'मालुया कच्छए' मालुका कक्षकः मालुकाः एकास्थिफल वृक्षविशेषास्तेषां कक्षकः=गहनं वनम् चाप्यासीत् । मकोदशः १ इत्याह—'किण्हे किण्ठो भासे' कृष्णः कृष्णावभासः, तत्र-कृष्णः=कृष्णवर्ण-

देवकुल का अर्थ यहां व्यंतर का आयतन है । इस व्यन्तरायतन संवन्धी जिनने घर थे उन सबके भी यहां बहिर्द्वार नष्टपाय हो चुके थे । यह जीर्ण उद्यान अनेक प्रकार के गुच्छों से कपास के जपा पुष्पों आदि के गुच्छों से—वंशजाली आदि गुल्मों से अशोकलता आदि लताओं से त्रपुगी (कहड़ो) आदि वेगैले, आम्र आदि वृक्षों से, आच्छादित हो रहा था । इसमें अनेक प्रकार के सँकड़ों सर्प इधर से ऊधर फिरते रहते थे अतः उनके द्वारा यह विशेष भयंकर घना हुआ था । (तस्स णं जिन्नुज्जाणस्स बहुमज्झदेमभाए एत्थ णं महं एगे भग्गकूवए यावि होत्था) इस जीर्ण उद्यान के ठीक मध्य भाग में एक बड़ा भारी भग्न जीर्ण हुआ कुंआ भी था (तस्स णं भग्गकूवस्य अदूरसामंते एत्थ णं महंएगे मालुया कच्छए यावि होत्था) उस भग्न कुँए के न अति समीप और न अति दूर—पास में मालुका वृक्षों का बहुत बड़ा गहन वन था । एकास्थिरुत्त वाक्के वृक्ष विशेषों का नाम मालुका है (किण्हे किण्ठो भासे जान् रम्मे महामेहनिउरंवभूए बहूहिं रुक्खे हि य गुच्छे हि य गुम्मे

छे. आ व्यन्तरायतननां जेटलां धर इतां, ते णधाना णडारना इरवान् नष्टप्राय थधं गथा इता. जूत्तं उद्यान धष्ठी जलना शुष्ठा.—जेटले के वधु अने जपापुष्प वगेरेना शुष्ठा—वंशजाली वगेरे शुष्भा अशोकलता वगेरे लताजो, त्रपुली (काकडी) वगेरेनी वेवो, आम्र वगेरे वृक्षोथी ढंक्रजेटो इतो. धष्ठी जलतना सेंकडो साय आ उद्यानमां आभथी तेभ विचरता रडेता इता. जेथी आ उद्यान सविशेष लयकर लागतुं इतुं. (तस्सणं जिन्नुज्जाणस्स बहुमज्झदेमभाए एत्थणं एगे भग्गकूवए यावि होत्था) आ जूता उद्याननी ठीक वञ्चोवञ्च जेक मोटो लभ्नकूप नामे जेक जूत्तं थयेवो डूवो इतो. (तस्सणं भग्गकूवस्य अदूरसामंते एत्थणं महं एगे मालुया कच्छए यावि होत्था) ते लभ्न डूवानी वधारे हर पल्लु नडि अने वधारे नल्लुक पल्लु नडि डडेवाय जेधुं पासे मालुका वृक्षोत्तं मोटुं सधन वन इतुं. जेकास्थिरुत्त वृक्ष विशेषतुं नाम मालुका छे. (किण्हे किण्ठो भासे जान् रम्मे महामेहनिउरंवभूए बहूहिं रुक्खे हि य गुच्छे हि य

अञ्जनवत्, कृष्णावभासः=कृष्णमभः स्वरूपेण कृष्णवर्णपचावभासते, यावद्
 रम्यः=सुन्दरः 'महामेहनितुरं वभूग' महामेघनिकुरम्बभूतः, महामेघः=वर्षाकाल
 भावि मेघस्तस्य निकुरम्बः=समूहः तथाभूतः-यनीभूतः नूतनधर्मापम इत्यर्थः
 नीलधर्मसाम्यात् । बहुभिर्दृशैश्च, गुच्छैश्च, गुल्मैश्च, लताभिश्च, वल्लीभिश्च,
 कुशैश्च=रंभैश्च, स्थाणुकैश्च=ऊर्ध्वकीलकैश्च 'डुंठाइति भाषायाम्' संज्ञाः=
 व्यासः, परिच्छन्नः=विशेषेण समाच्छादितः 'अंतो जुसिरे' अन्तः=मध्ये
 शुशिरः सावकाशत्वात् 'वाहिं गंभीरे' वाहिर्गंभीरः, अतिगहनत्वेन दृष्टेरपसृत-
 त्वात्, अनेक न्यालशतशङ्कनीयः-अनेकशतसर्पादिभिः शङ्कनीयः-मयजनकथा-
 प्यासीत् ॥ सू. १॥

मूलम्—तत्थ णं रायगिहे नयरे धणणे नामं सत्थवाहे अंहुं दित्ते
 जाव विच्छड्डियविउलभत्तपाणे, तस्स णं धणणस्स सत्थवाहस्स
 भद्दा नामं भारिया होत्था, सुकुमालपाणिपाया अहीणपडिपुण्णपंचि-

हि य लया हि य वल्लि हि य कुए हि य खाणुएहि य मच्छन्ने पलिच्छन्ने
 अंतो जुसिरे वाहिं गंभीरे अणेगवालसयसंकणिज्जे यावि होत्था) यह
 गहन वन कज्जल की तरह कृष्ण वर्णवाला था स्वरूप से ही इसकी प्रमा
 कृष्ण थी। यावत् यह सुन्दर था। वर्षाकाल भावी मेघ के समूह जैसा
 यह नीला था। अनेक प्रकार के वृक्षों से, अनेक प्रकार के गुल्मों से, अनेक
 प्रकार की लताओं से, अनेक प्रकार की वल्लियों से, अनेक प्रकार के कुशों
 से, अनेक विध स्थाणुओं से यह बहुत अधिक रूप में आच्छादित हो रहा था।

बीच में यह सावकाश होने से पोला था। वाहिर गहन होनेकी वजह
 से गंभीर था। अनेक प्रकार के सैकड़ों सर्पों से यह भी महान भया-
 नक था। सूत्र " १ "

गुम्मे हि य लया हि य वल्ली हि य खाणुएहि य सच्छन्ने पलिच्छन्ने अंतो जुसिरे
 वाहिं गंभीरे अणेगवालसयसंकणिज्जे यावि होत्था) आ सधनवन मेघनी
 नेम काणा रंगत्तं इत्तुं. आनी प्रभा स्वइपथी न काणी इती. वर्षाकाणता मेघ नेवा
 ते नीला रंगत्तं इत्तुं. धएी नतनां दृक्षे, धएी नतना गुल्मे, धएी नतनी इताये
 धएी नतनी वल्लीये, धएी नतना इत्थे धएी नतना स्थाणुयेथी आ उद्यान
 सधन इपे इंकायेत्तुं इतो. वच्चे भादी नच्चा इती पत्तु आणूणांणू येमेर वृक्षावली-
 ने वीधे ते सधन इत्तुं. धएी नतना सेइडे सापोथी आ पूभ न भयकारी लागत्तुं
 इत्तुं. सूत्र ॥ १ ॥

दियसरीरा लक्खणवंजणगुणोववेया माणुम्माणप्पमाणपडिपुन्न-
सुजायसव्वंगसुंदरंगा ससिसोमोगारा कंता पियदंसणा सुरूवा
करयल-परिमियतिवल्लियमज्झा कुंडल्लुल्लिहियगंडलेहा कोमुइ-रय-
णियर-पडिपुण्णसोमवयणा सिंगारागारचारुवेसा जाव पडिरूवा
वंझा आवयाउरी जाणुकोप्परमाया यावि होत्था ॥सू. २॥

टीका- 'तएणं रायगिहे' ति-तत्र खलु राजगृहे नगरे धन्यनामा
सार्थवाहः=जनसमूहनायकः गरिम-धरिम-मेय, परिच्छेद्यरूपं क्रयाणकद्रव्य-
जातं गृहीत्वा लाभार्थमन्यदेशं त्रजन् सहागतवणिगूजनस्य योगक्षेमचिन्तया
परिपालक इति भावः अड्ढे 'आढयः-ऋद्धयादिपूर्णः 'दित्ते' दीप्तः-सचरित्रेण
उज्वलः यावद् विच्छर्दितविपुलभक्तपानः। यावच्छब्देनायमर्थो ग्रहीतव्यः-
विस्तीर्णविपुल भवनशयनासनयानवाहनाकीर्णः, बहुधनयद्भुजातरपरजनः, आयी-

तत्थ णं रायगिहे नगरे इत्यादि

टीकार्थ- (तत्थ णं रायगिहे नगरे) उस राजगृह नगरमें (धन्नेनामं सत्थवा
हे) धन्य नाम के सार्थवाह थे। जब ये गरिम धरिम मेय एवं परिच्छेद्य
रूप-क्रयाणक द्रव्य समूह लेकर लाभप्राप्ति की इच्छा से परदेश जाते थे
तो इनके साथ जो और भी वर्णकजन होते उनके ये योगक्षेमकारक
होते थे। उनकी हरएक प्रकार की चिन्ता रखते थे। ये (अड्ढे)
ऋद्धयादि से परिपूर्ण थे। (दित्ते) सचरित्र से उज्ज्वल थे। (जाव विच्छ-
र्दियविपुलभक्तपाणे) यावत् विच्छर्दित विपुलभक्तपानवाले थे--
यहां यावत् शब्द से इनके विषय में इतना और समझ लेना चाहिये कि
इनके भवन बहुत विस्तीर्ण थे, शयन, आसन, यान, वाहन, भी इनके

'तत्थणं रायगिहे नगरे' इत्यादि ॥

टीकार्थ- (तत्थणं रायगिहे नगरे) तत्र गृह नगरमां (धन्ने नामं सत्थवाहे)
धन्य नामे सार्थवाह उता. न्यारे तेओ गरिम, धरिम, मेय अने परिच्छेद्य रूप कस्याणक द्रव्य-
। न. धि लधने लाभनी छिच्छाथी विट्थेता अता उता त्तारे ओमनी साथे ले पीव्व वल्लुक्कन्न
रड्ढेता तेमना भाटे तेधन्य सार्थवाह अधी रीते कुशण करनार उता. तेमनी दरेक अतानी
संभाण राभता उता उता. ओ (आड्ढे) ऋद्धि वगेरेथी संपूर्ण पणे पूर्ण उता.
(दित्ते) सच्यारिच्यथी उन्नवण उता, (जाव विच्छर्दियविपुलभक्तपाणे) यावत्
विच्छर्दित विपुल भक्त पान वा.। उता. अड्ढा ले यावत् शब्द आओये छेतेने
अर्थ आ प्रभाणे छे के ओमनां भवन गहुअ विशाण उतां. शयन, आसन, यान,

अञ्जनवत्, कृष्णावभासः=कृष्णप्रभः स्वरूपेण कृष्णवर्णपद्यावभासते, यावद्
 रम्यः=सुन्दरः 'महामेघनिउरंयभूत्' महामेघनिकुम्बभूतः, महामेघः=वर्षाकाल
 भावि मेघस्तस्य निकुम्बः=समूहः तथाभूतः-घनीभूतः नूतनघनोपम इत्यर्थः
 नीलधर्मसाम्यात् । घट्टुभिर्दृष्टैश्च, गुच्छैश्च, गुल्मैश्च, लताभिश्च, वल्लीभिश्च,
 कुशैश्च=द्वैभ्यश्च, स्थाणुकैश्च=ऊर्ध्वकीलकैश्च 'दुंठाइति भाषायाम्' संज्ञाः=
 व्यासः, परिच्छन्नः=विशेषेण समाच्छादितः 'अंतो जुसिरे' अन्तः=मध्ये
 शुशिरः सावकाशत्वात् 'वाहिं गंभीरे' चर्दिगंभीरः, अतिगहनत्वेन दृष्टेरप्रसृत-
 त्वात्, अनेक व्यालशतशङ्कनीयः-अनेकशतसर्पादिभिः शङ्कनीयः-मयजनकश्चा-
 प्यासीत् ॥सू. १॥

मूलम्—तत्थ णं रायगिहे नयरे धणणे नामं सत्थवाहे अहं दित्त
 जाव विच्छड्डियविउलभत्तपाणे, तस्स णं धणणस्स सत्थवाहस्स
 भद्दा नामं भारिया होत्था, सुकुमालपाणिपाया अहीणपडिपुण्णपंचि-

हि य लया हि य वल्लि हि य कुए हि य खाणुएहि य मच्छन्ने पलिच्छन्ने
 अंतो जुसिरे वाहिं गंभीरे अपेगवालसयसंकणिज्जे यावि होत्था) यह
 गहन वन कज्जल की तरह कृष्ण वर्णवाला था स्वरूप से ही इसकी प्रभा
 कृष्ण थी। यावत् यह सुन्दर था। वर्षाकाल भावी मेघ के समूह जैसा
 यह नीला था। अनेक प्रकार के वृक्षों से, अनेक प्रकार के गुल्मों से, अनेक
 प्रकार की लताओं से, अनेक प्रकार की वल्लियों से, अनेक प्रकार के कुशों
 से, अनेक विश्व स्थाणुओं से यह बहुत अधिक रूप में आच्छादित हो रहा था।

बीच में यह सावकाश होने से पोला था। बाहिर गहन होनेकी वजह
 से गभीर था। अनेक प्रकार के सँकड़ों सर्पों से यह भी महान भया-
 नक था। सूत्र " १ "

गुम्मे हि य लया हि य वल्ली हि य खाणुएहि य सच्छन्ने पलिच्छन्ने अंतो जुसिरे
 वाहिं गंभीरे अपेगवालसयसंकणिज्जे यावि होत्था) आ सधनवन भेशनी
 नेम डाणा रंगत्तुं इत्तुं. आनी प्रभा स्वइपथी न डाणी इती. वर्षाडाणना मेघ नेवा
 ते नीला रंगत्तुं इत्तुं. धएी नतनां वृक्षा, धएी नतना गुल्मे, धएी नतनी लताये
 धएी नतनी वल्लीये, धएी नतना इषो. धएी नतना स्थाणुयेथी आ उद्यान
 सधन इपे इंअयेत्तुं इतो. वच्चे आदी नच्चा इती पत्तुं आगूणां नू येमेर वृक्षावली-
 ने वीधे ते सधन इत्तुं. धएी नतना सेंकडा सापोथी आ पूज न भयकारी सागत्तुं
 इत्तुं. सूत्र ॥ १ ॥

करेष्वाहपाणि, 'व्यञ्जण' व्यञ्जनानि, व्यञ्ज्यन्ते-सूच्यन्ते भाग्योदया येन्नानि तिलमपादीनि 'गुण' गुणाः मौशील्यपातिव्रत्यादयभैः उववेया' उपपे ॥-समन्विता, तत्र उप अपइत्युपसर्गयोः 'अप' इत्यत्राद्यड कारस्यपृषादरादि-त्वाद्योपः। 'माणुष्माणष्यमाणपडिपुन्नसृजायसव्वंगसुंदरंगा' मानोन्मान-प्रमाणपतिपूर्णावृजाउपवर्षाङ्गुन्दराङ्गी, तत्र= 'माण' मानं=जलद्रोणप्रमाणता, तथाहि-परिपूर्णजळकुण्डे यस्य पुरुषस्य यस्याः स्त्रियो वा प्रवेशे एति यदि द्रोणपरिमितं जल वहिर्निस्सरति तदा स पुरुषः सा स्त्री वा मानमाप्तो-च्यते, मानपाप्तायाः शरीरावगाहनाविशेषो मानमित्युच्यते। 'उम्माण' उन्मानम्, अर्धभारप्रमाणता साचेत्यम्-तुलायामारोपितो नरो नारी वा यद्य धेभारप्रमाणा भवति तदा स पुरुषः सा स्त्री वा उन्मानपाप्ता निगद्यते 'प्रमाण' प्रमाण स्वार्द्धुठैरष्टोत्तरशोच्छ्रायः, इत्थं च-मानं चोन्मानं च प्रमाणं

युक्तं था। (लक्षण) से विद्या, धन आदि की सूचक करस्पृशुम रेखा रूप गिहों से, तथा भाग्योदय सूचक तिलमसा आदि रूप व्यञ्जनों से यह समन्वित थी। सुशीलता तथा पातिव्रत आदि गुणों का यह घर थी। (माणुष्माणष्यमाणपडिपुन्नसृजायसव्वंगसुंदरंगा) मान, उन्मान और प्रमाण इनके अनुसार इसके समस्त अंगपूर्ण थे। परिपूर्ण जळ कुण्ड में प्रवेश करने पर द्रोण परिमित जल यदि उस कुंड से बाहर निकल आवे तो वह पुरुष अथवा स्त्री मान वाली कही जाती है। अर्थात् इसके शरीर की अवगाहना इतने मान प्रमाण थी। तुला पर आरोपित होने पर जिम स्त्री अथवा पुरुष का वजन अर्धभार प्रमाण निकलता है। तो वह उन्मान प्राप्त कहलाता है। आने अंगुलीते १०८ अंगुल वाली चने हार ऊंचाई

धन वगेरेने सूचयनारी ढाधनी शुभरेणाओथी तेमज्ज भाओद्ययना सूचक तलमपा वगेरे इप व्यञ्जनेथी ते संपन्न इती. शाहीनता तेमज्ज पातिव्रत्य वगेरे शुष्णुते ते घर इती. (माणुष्माणष्यमाणपरिपुन्नसृजायसव्वंगसुंदरंगा) मान, उन्मान अने प्रमाण सहित तेनां गंधां अगो पूषुं इतां. संपूषुं इपथी भरेला पाणीना कुंडमां प्रवेश्या णाढ ने द्रोण परिमाणु नेटलुं पाणी ते कुंडमांथी णडर नीडणे तो ते पुरुष अथवा स्त्री 'मान' वाणी कडेवामां आवे छे. नेटले के तेमना शरीरनी अवगाहना अमुक नेटला मान प्रमाणवाणी इती. त्राज्वां उपर यदीने ने स्त्री अथवा पुरुष पोतातुं वजन क्सावतां तेमत्तुं वजन अर्धभार प्रमाणु नेटलुं थाय तो ते उन्मान प्राप्त कडेवाय छे. पोताना आंगणथी ज् माप क्स्वामां आवे अने ते पुरुष के स्त्री ओकसे आक नेटला आंगणता माप नेटली थाय तो ते प्रमाण प्राप्त कडेवाय छे. ओवी रीते मान, उन्मान अने प्रमाण युक्त तेमना दरेके

गमयोगसम्बुक्तः, आयोगेन द्विगुणादिलिप्सया प्रयोगः अधमर्णानां सचिधे
द्रव्यस्य वितरणं, तेन युक्तः। विच्छर्दितविपुलभक्तपानः=यस्य गृहे भोजना-
वशिष्टैर्बहुभिरन्नपानैः क्षुधार्तानामनेकहीनदीनानां परिपोषणमभूदित्यर्थः।

तस्य खलु धन्यस्य सार्धवाहस्य भद्रा नामभार्याऽभवत् सा कीदृशीत्याह-
'सुकुमालपाणिपाया' सुकुमारपाणिपादा, तत्र सुकुमारी कोमलौ पाणी च पादौ यस्य
सा अतिकोमलकरचरणवतीत्यर्थः। 'अहीणपडिपुष्ण पंचिदियसरीरा' अहीन
प्रतिपूर्णपञ्चेन्द्रियशरीरा, तत्र-'अहीण' अहीनानि लक्षणस्वरूपाभ्याम् 'पडि-
पुष्ण' प्रतिपूर्णानि, 'पंचिदिय' पञ्चेन्द्रियाणि यस्मिन् तादृशं शरीरं यस्याः
सा तथा 'लखखण्वंजणगुणोववेया' लक्षणव्यञ्जनगुणोपपेता, तत्र-'लखखण' लक्ष-
णानि लक्ष्यन्ते दृश्यन्ते ज्ञायन्ते यैस्तानि शुभचिह्नानि-करस्थत्रिधाधनादि सूच-

पास नाना प्रकार के बहुत अधिक थे। गाय भैरव आदि धन तथा चाँदी
सोना भी इनके पास बहुत अधिक मात्रामें था। आयोग प्रयोग से ये युक्त
थे-अर्थात् कर्जदारों के लिये ये द्विगुणित लेने की अभिलाषा से कर्ज दिया
करते थे। भोजन के बाद जो विविध प्रकार की भोजन सामग्री बचती-
थी उसे ये बुभुक्षित, भूखे अनेक हीन प्राणियों में वितरित करवा दिया करते
थे। अथवा भोजन करते समय इनके यहां इतना अधिक खाना उच्छिष्ट
रूप में बचता था कि जिससे अनेक दीन हीनबुभुक्षित प्राणियों का पालन-
पोषण हो जाता था (तस्स णं धण्णस्स सत्थवाहस्स भद्धानामं भारिया होत्या)
उन धन्य सार्धवाह की भद्रा नाम का धर्मपत्नी थी। (सुकुमाल पाणिपाया
अहीणपडिपुष्णपंचिदियसरीरा लखखण्वंजणगुणोववेया) इनका शरीर
सुकुमार हाथ चरण वाला था लक्षण एवं स्वरूप इन दोनों से इनका शरीर

वाहन पशु ऐमनी पासे धण्णी नतनां अने पुष्ण प्रभाषुमां हुतां. गाय बेस
वगेरे, पशु धन तेमन्न खांदी सोतुं पशु तेमनी पासे पुष्ण प्रभाषुमां हुतुं. आयोग
प्रयोगधी तेयो युक्त हुता ऐटवे के ऋषु आपता हुता. नम्या पछी के धण्णी
नतनी बोअननी सामथीयो वधती ते सामथीने तेयो भूष्या धण्णी हीन, हीन,
प्राणीयोमां वडेयावी देता हुता. अथवा तो ऐमने त्यां ऐटकुं ऋषुं पाधा पछी
ऐहुं वधतुं के नेधी धण्णी गरीय. हीन, भूष्या प्राणीयोतुं ऋषुं पोपणु थर्ध
जतुं हुतुं. (तस्स णं धण्णस्स सत्थवाहस्स भद्दा नामं भारिया होत्या) ते धन्य
सार्धवाहनी भद्रा नामे धर्मपत्नी हुती. (सुकुमालपाणिपाया अहीणपडिपुष्ण-
पंचिदियसरीरा लखखण्वंजणगुणोववेया) ते बुभुक्षण हाथपंग वाणी हुती
तेमन्न वसणु अने स्वरेप आ अनेधी तेमनुं शरीर युक्त हुतुं. (लखखण) विद्या,

करेवारुपाणि, 'वञ्जण' व्यञ्जनानि, व्यञ्जन्ते-सूच्यन्ते भाग्योदया येनानि तिलमपादीनि 'गुण' गुणाः मौशील्यपातिव्रत्यादयस्तैः उववेया' उपपे।-समन्विता, तत्र उप अण्डित्युपसर्गयोः 'अप' इत्यत्राद्यङ्कारस्यपृषादरादि-त्वाङ्गोपः। 'माणुम्माणप्प्रमाणपडिपुन्नसुजायसव्वंगसुंदरंगा' मानोन्मान-प्रमाणपरिपूर्णावुजायसव्वंगसुंदराङ्गी, तत्र= 'माग' मानं=जलद्रोणप्रमाणता, तथाहि-परिपूर्णजळकुण्डे यस्य पुरुषस्य यस्याः स्त्रियो वा प्रवेशे सति यदि द्रोणपरिमितं जलं वहिर्निस्सरति तदा स पुरुषः सा स्त्री वा मानमाप्तो-च्यते, मानप्राप्तायाः शरीरावगाहनाविशेषो मानमित्युच्यते। 'उन्मान' उन्मानप्, अर्धभारप्रमाणता सावेत्यम्-तुलायामारोपितो नरो नारी वा यद्यर्धभारप्रमाणा भवति तदा स पुरुषः सा स्त्री वा उन्मानप्राप्ता निगद्यते 'पनाग' पनाण स्वार्थुनैरष्टोत्तरशतोच्छ्रायः, इत्थं च-मानं चोन्मानं च प्रमाणं

युक्तं था। (लक्षण) से विद्या, धन आदि की सूचक करस्थशुभ रेखा रूप यिहों से, तथा भाग्योदय सूचक तिलमसा आदि रूप व्यञ्जनों से यह समन्वित थी। सुशीलता तथा पातिव्रत आदि गुणों का यह घर थी। (माणुम्माणप्प्रमाणपडिपुन्नसुजायसव्वंगसुंदरंगा) मान, उन्मान और प्रमाण इनके अनुसार इसके समस्त अंगपूर्ण थे। परिपूर्ण जळ कुण्ड में प्रवेश करने पर द्रोण परिमित जल यदि उस कुंड से बाहर निकल आवे तो वह पुरुष अथवा स्त्री मान वाली कही जाती है। अर्थात् इसके शरीर की अवगाहना इतने मान प्रमाण थी। तुला पर आरोपित होने पर जिम स्त्री अथवा पुरुष का वजन अर्धभार प्रमाण निकलता है। तो वह उन्मान प्राप्त कहलाना है। अग्ने अंगुलीते १०८ अंगुठ वाली वने हुए ऊँचाई

धन वगेरेने सूचयनारी हाथनी शुभरेणाओथी तेमञ्ज लाओधयना सूचक तलमपा वगेरे इप व्यञ्जनेथी ते संपन्न हुती. शालीनता तेमञ्ज पातिव्रत्य वगेरे शुष्णोत्तुं ते घर हुती. (माणुम्माणप्प्रमाणपरिपुन्नसुजायसव्वंगसुंदरंगा) मान, उन्मान अने प्रमाणु सङ्घित तेनां गंधां अंगो पूर्ण हुतां. संपूर्ण इपथी भरेला पाणीना कुंडमां प्रवेश्या गाढ जे द्रोणु परिमाणु जेटहुं पाणी ते कुंडमांथी गडर नीकणे तो ते पुरुष अथवा स्त्री 'मान' वाणी कडेवामां आवे छे. जेटवे के तेमना शरीरनी अवगाहना असुक जेटला मान प्रमाणुवाणी हुती. त्रान्वां उपर थदीने जे स्त्री अथवा पुरुष पोतानुं वञ्ज कशावतां तेमनुं वञ्ज अर्धभार प्रमाणु जेटहुं थाय तो ते उन्मान प्राप्त कडेवाय छे. पोताना आंगणथी ज माप करवामां आवे अने ते पुरुष के स्त्री जेकसे आठ जेटला आंगणना माप जेटली थाय तो ते प्रमाणु प्राप्त कडेवाय छे. जेथी रीते मान, उन्मान अने प्रमाणु युक्त तेमना हरेके

गमयोगसम्बुक्तः, आयोगेन द्विगुणादिलिप्सया प्रयोगः अधमर्णानां सविधे
द्रव्यस्य वितरणं, तेन युक्तः। विच्छर्दितविपुलभक्तपानः=यस्य गृहे भोजना-
वशिष्टैर्वह्निभिरन्नपानैः क्षुधार्तानामनेकहीनदीनानां परिपोषणमभूदित्यर्थः।

तस्य खलु धन्यस्य सार्धवाहस्य भद्रा नामभार्याऽभवत् सा कीदृशीत्याह-
'सुकुमालपाणिपाया' सुकुमारपाणिपादा, तत्र सुकुमारी कोमलौ पाणी च पादौ यस्य
सा अतिकोमलकरचरणवतीत्यर्थः। 'अहीणपडिपुण्ण पंचिदियसरीरा' अहोन
प्रतिपूर्णपञ्चेन्द्रियशरीरा, तत्र-'अहीण' अहीनानि लक्षणस्वरूपाभ्याम् 'पडि-
पुण्ण' प्रतिपूर्णानि, 'पंचिदिय' पञ्चेन्द्रियाणि यस्मिन् तादृशं शरीरं यस्याः
सा तथा 'लखणवञ्जणगुणोववेया' लक्षणव्यञ्जनगुणोपपेता, तत्र-'लखण' लक्ष-
णानि लक्ष्यन्ते दृश्यन्ते ज्ञायन्ते यैस्तानि शुभचिह्नानि-करस्थविद्याधनादि सूच-

पास नाना प्रकार के बहुत अधिक थे। गाय भैम आदि धन तथा चाँदी
सोना भी इनके पास बहुत अधिक मात्रामें था। आयोग प्रयोग से ये युक्त
थे-अर्थात् कर्जदारों के लिये ये द्विगुणित लेने की अभिलाषा से कर्ज दिया
करते थे। भोजन के बाद जो विविध प्रकार की भोजन सामग्री बचती-
थी उसे ये बुभुक्षित, भूखे अनेक हीन प्राणियों में वितरित करवा दिया करते
थे। अथवा भोजन करते समय इनके यहां इतना अधिक खाना उच्छिष्ट
रूप में बचता था कि जिससे अनेक दीन हीन बुभुक्षित प्राणियों का पालन-
पोषण हो जाता था (तस्स णं धण्णस्स सत्थवाहस्स भद्धानामं भारिया होत्था)
उन धन्य सार्धवाह की भद्रा नाम की धर्मपत्नी थी। (सुकुमाल पाणिपाया
अहीणपडिपुण्णपंचिदियसरीरा लखणवञ्जणगुणोववेया) इनका शरीर
सुकुमार हाथ चरण वाला था लक्षण एवं स्वरूप इन दोनों से इनका शरीर

वाहन पशु ऐभनी पासे धण्णी लतनीं अने पुष्कण प्रभाणुमां हुतां. गाय बेस
वगेरे, पशु धन तेमन् यांही सोतुं पशु तेमनी पासे पुष्कण प्रभाणुमां हुतुं. आयोग
प्रयोगधी तेओ युक्त हुता ऐटवे डे ऋणु आपता हुता. न्म्या पधी ने धण्णी
लतनी लोअननी सामग्रीओ वधती ते सामग्रीने तेओ भूण्या-धण्णा हीन, हीन,
प्राण्णीओमां वडेयावी हेता हुता. अथवा तो ऐभने त्यां ऐटलुं णधुं पाधा पधी
ऐहुं वधतुं डे नेधी धण्णा गरीण. हीन, भूण्या प्राण्णीओतुं भरणु पोपणु थर्ध
अतुं हुतुं. (तस्स णं धण्णस्स सत्थवाहस्स भद्धानामं भारिया होत्था) ते धन्य
सार्धवाहनी भद्रा नामे धर्मपत्नी हुती. (सुकुमालपाणिपाया अहीणपडिपुण्ण-
पंचिदियसरीरा लखणवञ्जणगुणोववेया) ते सुकैमण हाथपंग वाणी हुती
तेमन् लक्षणु अने स्वश्य आ जनेधी तेमनुं शरीर युक्त हुतुं. (ल विद्या,

करेवाहपाणि, 'वञ्जण' व्यञ्जनानि, व्यञ्ज्यन्ते-सूच्यन्ते भाग्योदया यन्मानि
 तिलमपादीनि 'गुण' गुणाः सौशील्यपातिव्रत्यादयस्तैः उच्येया' रूपे ॥-
 समन्विता, तत्र उप अर्पइत्युपसर्गयोः 'अप' इत्यत्राद्यड कारस्य पृषादरादि-
 त्वाद्योपः। 'माणुष्माणप्माणपडिपुन्नसुजायसन्वंगसु'दंरंगा' मानोन्मान-
 प्रमाणपरिपूर्णसुजायसर्वोद्गुण्डराक्षी, तत्र= 'माग' मानं=जलद्रोणप्रमाणता,
 तथाहि-परिपूर्णजलकुण्डे यस्य पुरुषस्य यस्याः स्त्रियो वा प्रवेशे एति यदि
 द्रोणपरिमितं जलं वह्निर्निस्सरति तदा स पुरुषः सा स्त्री वा मानमाप्नो-
 च्यते, मानप्राप्तायाः शरीरावगाहनाविशेषो मानमित्युच्यते। 'उम्माण'
 उन्मानम्, अर्धभारप्रमाणता साचेत्थम्-तुलायामारोपितो नरो नारी वा यद्य
 धेनारप्रमाणा भवति तदा स पुरुषः सा स्त्री वा उन्मानप्राप्ता निगद्यते
 'पनाग' पनाग इत्यनुष्ठेयप्रोत्तरशोच्छ्रायः, इत्थं च-मानं चोन्मानं च प्रमाणं

युक्तं था। (लक्षण) से विद्या, धन आदि की सूचक करस्य शुभ रेखा रूप
 विहो से, तथा भाग्योदय सूचक तिलमसा आदि रूप व्यंजनों से यह
 समन्वित थी। सुशीलता तथा पातिव्रत आदि गुणों का यह घर थी।
 (माणुष्माणप्माणपडिपुन्नसुजायसन्वंगसु'दंरंगा) मान, उन्मान और प्रमाण
 इनके अनुसार इसके समस्त अंगपूर्ण थे। परिपूर्ण जल कुण्ड में प्रवेश
 करने पर द्रोण परिमित जल यदि उस कुंड से बाहर निकल आवे
 तो वह पुरुष अथवा स्त्री मान वाली कही जाती है। अर्थात् इसके शरीर
 की अवगाहना इतने मान प्रमाण थी। तुला पर आरोपित होने पर जिन
 स्त्री अथवा पुरुष का वजन अर्धभार प्रमाण निकलता है। तो वह उन्मान
 प्राप्त कहलाता है। अने अंगुलींते १०८ अंगुल वाली चने हूर ऊंचाई

धन वगेरेने सूच्यनारी हाथनी शुभरेणाञ्चोधी तेमञ्ज लाञ्छेद्यथा सूचक तलमपा
 वगेरे रूप व्यञ्जनाधी ते संपन्न हुती. शाहीनता तेमञ्ज पातिव्रत्य वगेरे शुष्णु'
 ते धर हुती. (माणुष्माणप्माणपरिपुन्नसुजायसन्वंगसु'दंरंगा) मान,
 उन्मान अने प्रमाण सहित तेनां अधां अंगो पूर्ण हुतां. संपूर्ण रूपथी लरेला
 पाणीना कुंडमां प्रवेश्या जाह ने द्रोण परिमाणु जेटहुं पाणी ते कुंडमांथी अहुर
 नीकणे तो ते पुरुष अथवा स्त्री 'मान' वाणी कडेवाभां आवे छे. जेटवे के तेमना
 शरीरनी अवगाहना असुक जेटला मान प्रमाणवाणी हुती. त्रानवां उपर चढीने
 जे स्त्री अथवा पुरुष पोतानुं वजन करावतां तेमनुं वजन अर्धभार प्रमाणु जेटहुं
 थाय तो ते उन्मान प्राप्त कडेवाय छे. पोताना आंगणथी न माप करवाभां आवे
 अने ते पुरुष के स्त्री जेकसे आठ जेटला आंगणना माप जेटली थाय तो ते
 प्रमाण प्राप्त कडेवाय छे. जेवी रीते मान, उन्मान अने प्रमाण युक्त तेमना हरेके

चेत्यपां द्वे मानान्मानप्रमाणानि तेः प्रातर्पूर्णाणि-संयन्नानि, अतएव
 'सुजायुः' सुजातानि यथोचितावयवमन्निवेशयन्ति 'सर्व'
 सर्वाणि सकलानि, 'भंग' अङ्गानि-प्रज्यते व्यज्यते प्राणो यैस्तानि मस्त-
 कादारभ्य चरणान्तानि यस्मिस्तत्, अतएव 'सुंदरंगा' सुन्दराङ्गी-सुंदरमङ्गं
 वपुर्यस्याः सा तथा, 'ससिसोमागारा' शशिसौम्याकागा-शशी=चन्द्रस्तद्वत्
 सौम्यो-रमणीय आकारः-स्वरूपं यस्याः सा 'कंता' कान्ता कमनीया। 'पिय
 दंसणा' प्रियदर्शना प्रियं दर्शकजनमनोह्लादकं दर्शनमवलोकनं यस्याः सा, अत ए
 'सुख्वा' सुरूपा सर्वातिशायिरूपलावण्यवतीत्यर्थः 'करयलपरिमिय-ति वलीय-
 मज्झा' करतलपरिमितत्रिवलिकमध्या करतलपरिमितः=मुष्टिग्रहः, त्रिवलिकश्च-
 वलिकत्रयोपेतः रेखात्रयवान् 'मज्झा' मध्यभागो यस्याः सा, कृशोद्री
 तनु कटिश्वेत्यर्थः 'कुंडलुल्लिहियगंडलेहा' कुण्डलोल्लिखितगण्डलेखा कुण्डलाभ्या-
 मुल्लिखिता-उग्रदृष्टागण्डलेखा-कपोलावस्थितचन्दनादि रेखा यस्याः सा, कुण्डल
 शोभासम्पन्नेत्यर्थः। 'कोमुद्-रयणियरपडि पुण्णसोम्मवयणा' कौमुदी=कार्तिकी

वाला जिस पुरुष अथवा स्त्री का शरीर होता है वह प्रमाण प्राप्त कहलाता
 है। इस तरह मान उन्मान एवं प्रमाण के अनुसार इसके समस्त शारीरिक
 अवयव थे अतएव वे यथोचित सन्निवेश विशिष्ट थे। मस्तक से लेकर चरण
 पर्यन्त उपांग अवयव कहलाते हैं। इसी कारण इनका शरीर बहुत अधिक
 सुन्दर था। (ससिसोमागारा कंता पियदंसणा सुख्वा करयलपरिमिय तिवलिय-
 मज्झा) चन्द्रमा के समान इसका आकार सौम्य था। अतः बहुत ही कमनीय
 थी। दर्शक जनों के मन को इनका अवलोकन आह्लादकारक था। यह सर्वातिशायी-
 रूप लावण्य से युक्त थी इनका त्रिवली युक्त मध्य भाग इतना अधिक
 पतला था कि मुष्टि ग्राह्य हो जाता था। (कुंडलुल्लिहिय गंडलेहा कोमुद्दरयणियर-
 पडिपुण्णसोम्मवयणा सिंगारागारचारुवेसा जाव पडिह्वा बंझा अरियाउरी
 द्वेक अवयवो सप्रभाण्यु अने योज्य इत्ता. मस्तकथी भांडीने पग सुधी उपांग
 अवयव कडेवाय छे. अटला भाटे व अेमनुं शरीर पूणव सुंदर उतुं. (ससि
 सोमगारा . कंता .पियदंसणा सुख्वा करयलपरिमियतिवलिमज्जा)
 तेमनी आकृति अन्द्र जेवी सौम्य इती. अथी ते पूण व कमनीय इती. जेनार
 अे भाटे तेमनुं दर्शन आह्लाद कान्क इतुं. ते अतिशय रूप अने लावण्य संपन्न
 इती. तेमनी त्रिवली युक्त कभर (मध्य भाग) अटली अथी पातणी इती के तेने
 समावेश भूद्धीमां पय थथ शकते इते. (कुंडलुल्लिहियगंडलेहा कोमुद्-
 रयणियरपडिपुण्णसोम्मवयणा सिंगारागारचारुवेसा जाव पडिह्वा बंझा

पौर्णमासी तस्याः रजनीकरश्चन्द्रस्तद्वत् प्रतिर्णा-सौम्यं=आर्द्धादजनकं वदनं-
मुखं यस्याः सा तथा 'सिगारागारचारुवेसा,' शृङ्गागारचारुवेसा, शृङ्गारारुच्य
प्रथमरसस्य अगारमिव-गृहमिव चारुवेपो यस्याः सा, यद्वा शृङ्गारो
भूषणाटोपस्तत्प्रधान आकारो यस्याः सा तथा मनोहरनेपथ्या, अत्र पद
द्वयस्य कर्मधारयः। 'जाव' यावत् 'पडिरुवा' प्रतिरूपा 'वंझा' वन्ध्या-
श्रवत्यक्तशपेक्षया निष्कृता, एहवार संनानसंज्ञाता नंतरमपत्यमरणेनापि
फलतो वन्ध्या भवति, अतएव 'अविया उरी' देशी शब्दः, अविजनयित्री
मर्त्या संतानाऽजननशीला संतानजननशक्तिरहिता, इत्यतः 'जाणु-
कोप्परमाया' जानु कूर्परमाता, 'जाणु' जानुनी चरणयोर्मध्यभागी 'कोप्पर'
कूर्परी करयोर्मध्यभागी तेषामेव 'माया' माता-जननी चाप्यासीत् ॥सू. २॥

मूलम्—तस्स णं धणस्स सत्थवाहस्स पंथए नामं दासचेहे
होत्था, सव्वंगसुंदरंगे संसोवचिएवालकीलावणकुसले यावि होत्था,
तएणं से धणणे सत्थवाहे रायगिहे नयरे वहुणं नयरनियगसेट्टि
सत्थवाहाणं अट्टारसणह य सेणिप्पसेणीणं वट्टसु कज्जेसु य कुडुवेसु य
मंतेसु य जाव चक्खुभूए यावि होत्था, नियगस्स वियणं कुडुवस्स
वहुसु य कज्जेसु जाव चक्खुभूए यावि होत्था ॥सू. ३॥

जाणुकोप्परमाया यावि होत्था) उसके कपोल मंडल पर जो चन्दनादिक की
रेखा लगी रहनी थी वह दोनों कानों के कुंडलों से घेरित होनी रहनी
थी। हाँति ही पूर्णमासी के पूर्ण चन्द्र मंडल के समान इनका सौम्य-आर्द्धाद-
जनक-मुख था। इसका सुन्दर वेप शृंगाररस के वर जैसा था। फिर भी
यह इतनी त्रिभुवन सुन्दरी होने पर भी वन्ध्या थी। ऐसी वन्ध्या थी-कि
इसके मारंभ से ही संतान नहीं हुई थी-संनान जननशक्ति से यह बिलकुल
रहित थी। यह तो केवल जानु और कूर्पर-करके मध्यभाग देहनी की
माता थी। ॥अत्र २॥

अवियाउरी (जाणुकोप्परमाया यावि होत्था) तेमना कपोल उपर अनाववामां
आपेली चन्दन रेखाये, अने अनेमां पडिरेला कुंडोयोथी घसाती इती. कार्तिंक
पूनमना चन्द्रमंडलनी जेम तेमनुं में सौम्य अने आल्हादनक इतुं. त्रिभुवन
सुंदरी होवा छतां ते वंध्या इती. शङ्खातथी न तेने अके संतान थयुं न इतुं.
संतान जनन शक्ति तेमनामां सदंतर समूण रूपे इती नडि. अने तो संतान
इपे इकत दीचल्लु अने कोली न इतां. ॥ सूत्र २ ॥

चेत्येषां द्वंद्वं मानान्मानवमाणांनि तेः प्रातपूर्णांनि-संयन्नांनि, अतएव
 'सुजायुः' सुजातानि यथोचितावयवमन्निवेशयन्ति 'सव्य'
 सर्वाणि सकलानि, 'भंग' अङ्गानि-अज्यते न्यज्यते पागो यैस्तानि मस्न-
 कादारभ्य चरणान्तानि यस्मिस्तत्, अतएव 'सुंदरंगा' सुन्दराङ्गी-सुंदरमङ्गं
 वपुर्यस्याः सा तथा, 'ससिसोमागारा' शशिमौम्याकाग-शशी=चन्द्रस्तद्वत्
 सौम्यो-रमणीय आकारः-स्वरूपं यस्याः सा 'कंता' कान्ता कमनीया। 'पिय
 दंसणा' प्रियदर्शना प्रियं दर्शकजनमनोह्लादकं दर्शनमवलोकनं यस्याः सा, अत एव
 'सुरूवा' सुरूपा सर्वातिशायिरूपलावण्यवतीत्यर्थः 'करयलपरिमिय-ति त्रिलीय-
 मज्झा' करतलपरिमितत्रिवलिकमध्या करतलपरिमितः=मुष्टिग्रहः, त्रिवलिकश्च-
 वलिकत्रयोपेतः रेखात्रयवान् 'मज्झा' मध्यभागो यस्याः सा, कृशोदरी
 तनु कटिश्चेत्यर्थः 'कुंडलुल्लिहियगंडलेहा' कुण्डलोल्लिखितगण्डलेखा कुण्डलाभ्या-
 मुल्लिखिता-उजूदृष्टागण्डलेखा-कपोलावस्थितचन्दनादि रेखा यस्याः सा, कुण्डल
 शोभासम्पन्नेत्यर्थः। 'कोमुइ-रयणियरपडि पुण्णसोम्मवयणा' कौमुदी=कार्तिकी

वाला जिस पुरुष अथवा स्त्री का शरीर होता है वह प्रमाण प्राप्त कहलाता
 है। इस तरह मान उन्मान एवं प्रमाण के अनुसार इसके समस्त शारीरिक
 अवयव थे अतएव वे यथोचित सन्निवेश त्रिशिष्ट थे। मस्तक से लेकर चरण
 पर्यन्त उपांग अवयव कहलाते हैं। इसी कारण इनका शरीर बहुत अधिक
 सुन्दर था। (ससिसोमागारा कंता पियदंसणा सुरूवा करयलपरिमिय त्रिवाल्य-
 मज्झा) चन्द्रमा के समान इसका आकार सौम्य था। अतः बहुत ही कमनीय
 थी। दर्शक जनों के मन को इनका अवलोकन आह्लादकारक था। यह सर्वातिशायी-
 रूप लावण्य से युक्त थी इनका त्रिवली युक्त मध्य भाग इतना अधिक
 पतला था कि मुष्टि ग्राह्य हो जाता था। (कुंडलुल्लिहिय गंडलेहा कोमुइरयणियर-
 पडिपुण्णसोम्मवयणा सिंगारागारचारुवेसा जाव पडिरूवा बंझा अविद्याउरी
 इरेक अवयवो सप्रभाषु अने योज्य इता, मस्तकथी भांडीने पग सुधी उपांग
 अवयव इडेवाय छे, अेटला भाटे न् अेमनुं शरीर भूण्ण सुंदर इतुं, (ससि
 सोमगारा कंता पियदंसणा सुरूवा करयलपरिमियतिवलियमज्झा)
 तेमनी आङ्गुति चन्द्र जेवी सौम्य इती, अेथी ते पूण न् कमनीय इती, जेनार
 अे भाटे तेमनुं इथंन आड्डाड डारक इतुं, ते अतिशय इप अने लावण्य संपन्न
 इती, तेमनी त्रिवली युक्त कमर (मध्य लाग) अेटली जधी पातणी इती डे तेने
 सभावेश भूडीभां पवु थं थकते इते, (कुंडलुल्लिहियगंडलेहा कोमुइ-
 रयणियरपडिपुण्णसोम्मवयणा सिंगारागारचारुवेसा जाव पडिरूवा बंझा

पथोननेनु च कुटुम्बेषु च परिवारेषु च 'मंत्रेषु' मन्त्रेषु-कर्तव्यानश्रयार्थं सुसं-
 विचारेषु यावत्सुभी मार्गदर्शकत्वाप्यामीन् 'नियगन्तवि' निजकस्यापि-स्वकी-
 यस्यापि च खलु कुटुम्बस्य चक्षुषु च कार्येषु यावत्सुभ्रूतत्वाप्यासीन् ॥सू० ३॥

मन्त्रम्—तद्य पां रायगिहे नयरे विजए नामं तकरे होत्था, पावे

चडालहवे भीमतररुइकम्मे आरुसियदित्तरत्तनयणे खरफरुस-
 महल्लविगयत्रीभत्थदाडिए असंपुडिवउठ्टे उद्धयपइन्नलवंतमूद्धए
 भमरराहुवन्ने निरणुकोसे निरणुतावे दारुणे पइभए निसंसइए
 निरणु हंपे अहिब्ब एगंतदिट्टिए खुरेव.एगंतधारए गिद्धेव आमिस
 तल्लिच्छे अगिमिव सव्वभक्खी जलमिव सव्वगाही उक्कचण-वंच-
 णमाया-नियडि-कूड-कवड-साइ-संपओग-वहुले, चिरनगर विणट्टु
 दुट्टुसीलायारचरित्ते जूयपसंगी मज्जपसंगी, भोज्जपसंगी मंसपसंगी
 दारुणे हियप्रदारए साहसिय संविच्छेयए उवहिए विसंभवाई आली-
 यगतित्थभेयलहुहत्थसंपउए परस्स दव्वहराणम्मि निच्चं अणुवद्धे
 तिब्बवेरे, रायगिहस्स नयस्स वहुणि अइगमणाणि य निग्गमणा-
 णिय दाराणि य अत्रदाराणि य छिंडीओ य खंडीओ य नगरनिद्धम-
 णाणिय संवट्टणाणि य निवट्टणाणिय जूवखलयाणि य पाणागाराणि-
 वेस्सागाराणि य तदारट्टाणाणि य तकरट्टाणाणि य तकरघराणिय सिंगाड-
 गाणि यत्तियाणि य चउत्ताणि य चच्चगाणि य नागवराणि य भूयघराणि
 य जकखदेउलाणि य सभाणि य पराणि य पणियसालाणिय सुन्न-

प्रश्नेगी शब्द से यहां ली गई हैं। (नियगन्तवि यणं कुटुम्बस्स चक्षुषु य
 कज्जेसु जाव चक्षुषूए यावि होत्था) तथा अने निज कुटुम्ब के भी अनेक
 कार्यआदि में चक्षुभूत थे मार्गदर्शक थे। ॥सूत्र ३॥

विजगं, कुटुम्बस्स चक्षुषु य कज्जेसु जाव चक्षुषूए यावि होत्था) तेभ
 पोत्ताना कुटुम्बेना धरुा कज्जेभां तेभो मार्गदर्शनं तस्सिडे इत्ता. ॥ सूत्र ३ ॥

टीका—तस्स ण इति—तस्य खलु धन्यस्य सार्थवाहस्य पन्थकनामा दासचेटकः—दासपुत्र आसीत् सर्वाङ्गसुन्दराङ्गः, मांसोपचितः—पुष्टशरीरः, बालक्रीडनकुशलः—बालान् क्रीडयितुं दक्षथाप्यभवत् । तदनु खलु न धन्यः सार्थवाहस्तस्मिन् राजगृहे नगरे बहूनां 'नयरनिगमसेट्टिसत्थवाहाणं' नगरनिगमश्रेष्ठिसार्थवाहानाम्, तत्र 'नयर' नगरस्य=राजगृहस्य, 'निगम' निगमस्य=वणिग्ग्रामस्य, 'सेट्टि' श्रेष्ठिनः—सार्थवाहाथ, एतेषां च पुनः 'अट्टारसण्ह य' अट्टादशानाम् 'सेणिप्पसेणीयं' श्रेणिप्रश्रेणीनाम्, तत्र 'सेणि' श्रेणयः कुम्भकारादिजातयः 'प्वसेगी' प्रश्रेणयः—अवान्तरजातघणामां बहुषु कार्येषु—

'नय्य णं धणस्स सत्थवाहस्स' इत्यादि ।

टीकार्थ—(तस्स णं धणस्स) उस धन्य सार्थवाह के यहाँ (पंथण नामं दासचेट्टे) होत्था) पंथक नामका एक दासपुत्र था (सन्वंगसुदरंगे) यह सर्वांग सुंदर था । (मांसोपचिण) पुष्टशरीर वाला था । (बालक्रीलावणकुसले याचि होत्था) बालकों के खिलाने में बड़ा चतुर था । (तरणं से धण्णे सत्थवाहे-रायगिहे नयरे बहू णं नयरनियगसेट्टिसत्थवाहाणं अट्टारसण्ह य सेणिप्पसेणीयं बहुसु कज्जेसु य कुडुवेसु य मंतेसु य जाव चक्खुभूए याचि होत्था) वह धन्य । सार्थवाह राजगृह नगर में अनेक नगर निवासी वणिकजनों को—श्रेष्ठिजनों को सार्थवाहों को तथा अठारह श्रेणी प्रश्रेणियों को बहुत से कार्यों में अनेक परिवारों में अनेक मंत्रणाओं में—गुप्त विचारों में यात्रा चक्षुभूत थे मार्ग दर्शक थे । कुम्भकार आदि जातियां श्रेणी शब्द से और अवान्तरजातियां

'तस्स णं धणस्स सत्थवाहस्स' इत्यादि ॥

टीकार्थ—(तस्स णं धणस्स)ते धन्य सार्थवाहने त्यां (पंथण नामं दास चेट्टे होत्था) पंथक नामके एक दास पुत्र होतो. (सन्वंगसुदरंगे) ते सर्वांग सुंदर होतो. (मांसोपचिण) सुडोण शरीर बाणो होतो. (बालक्रीलावणकुसले याचि होत्था) बालकोंके रमाउवागं तेजहुं न कुशण होतो. (तरणं से धण्णे सत्थवाहे रायगिहे नयरे बहू णं नयरनियगसेट्टिसत्थवाहाणं अट्टारसण्ह य सेणिप्पसेणीयं बहुसु कज्जेसु य कुडुवेसु य मंतेसु य जाव चक्खुभूए याचि होत्था) ते धन्य सार्थवाह राजगृह नगरमां धण्ण नगरना वणिक्के, श्रेष्ठिने, सार्थवाहा तेम न अट्टार श्रेणी प्रश्रेणीने धण्ण कम्मोमां धण्ण कुटुम्भोमां, अनेक नतनी मंत्रणाओमां, गुप्त विचारोमां यावत् चक्षुभूत हुता अट्टे के मार्गदर्शक हुता. कुंभार वगेदनी नतने अही श्रेणी शब्दही अने पैटा नतने प्रश्रेणी शब्द दास नताववामां आवी छे. (नियगस्स

फलत्रयउड्विगयवीभःत्रादिर्' खरखरनहाभिक्रिादीभत्सदंष्ट्रिकः, तत्र-
 'खापुरुषे=अतिकर्कशे 'मदल्ल' महत्यौ=अतिविशाले 'त्रिगय' विकृते=शोभा
 वर्जिते 'वीभत्थ' वीभत्से=वृगाजनके 'दादि' दंष्ट्रिके=दादिके हनुवर्द्धितकेशयु
 च्छरूपे वा यस्य सः-कर्मविह्वलवृणितदादिकायुक्तः, खापरामहाभिक्रिावोभत्स-
 दन्तो वा। 'असंपुडियउट्टे' असंपुडिनौः, असंपुडिनी, अमंशुती वा परस्पर-
 रासंमिलिनी स्फाटिती ओष्ठलघुवाइशनदीर्घत्वाच्चीष्ठी यस्य सः स्फाटित-
 मुत्र इत्यर्थः। 'उड्वेयपइन्नलंबंतमुद्धए' उड्वेय प्रकीर्णलम्बमानमूर्धजः, तत्र-
 'उड्वेय' उड्वेनाः=ययुमम्पर्कात्प्रचलिता अत एव-'पइन्न' प्रकीर्णाः=इतस्ततो
 विक्षिप्ताः 'लंबंत' लम्बमानाः=अधः प्रसर्पन्तः 'मुद्धए' मूर्धजाः=केश यस्य
 स तथा। 'भमरराहुवन्ने' भमरराहुवर्णः-भ्रमरराहुवर्ण इव वर्णो यस्य सः-
 अत्यन्तकृष्णवर्ण इत्यर्थः। 'निरणुकोसे' निरनुकोशः=निर्दयः, निरणुतावे'
 निरनुतावः= पापं कृत्वा पश्चात्तारदितः अतएव 'दारुणे' दारुणः=क्रूरः। 'उड्वे-

की अतिशय कठोर थीं; बहुत विशाल थीं, शोभा रहित थीं, तथा वृगा-
 जनक थी-अथवा इस की दाही के वाक कठोर थे, बड़ा-
 घने थे, शोभासे रहित थे और वृणा उत्पादक थे। (असंपुडिय-
 उट्टे उड्वेय, पइन्नलंबंतमुद्धए, भमरराहुवन्ने, निरणुकोसे, निरणुतावे दारुणे
 पइभए) दाहों को दीर्घ होने के कारण इसके ओष्ठ परस्पर में मिले हुए
 नहीं थे-किन्तु खुले हुए थे। इसके मस्तक पर जो केश थे-वे पवन में
 झर, उधर उड़ते, इसलिये फैले हुए थे बंधे हुए नहीं थे। तथा बहुत
 बड़े हुए थे। इसका शारीरिक वर्ण राहु तथा भ्रमर जैसा अत्यन्त काला
 था। दया से यह सर्वथा रहित था। पाप करके भी इसके हृदय में
 पश्चात्ताप का भाव उत्पन्न नहीं होता था। इसलिये क्रूर प्रकृति का था।

महालयंकर इती. तेनी दादो भूगज कठोर इती, घण्णी मोठी इती, शोला वगरनी
 इती. तेभज धृष्टान्तक इती, अथवा तो तेनी दादीना वाण कठोर इता, सधन इता,
 शोला वगरना इता, अने धृष्टान्तक इता. (असंपुडियउट्टे उड्वेयपइन्नलंबंत
 मुद्धए, भमरराहुवन्ने निरणुकोसे, निरणुतावे दारुणे पइभए) तेना दांत
 लांणा इता. तेथी अने ओठ ओठ पीजना स्थर्थ वगर हर न रडेता इता. ते
 उड्वेयां पुड्यां न रडेता इता. तेना माथाना वाग पवनने लीधि अस्तव्यस्त-थधने
 उडता इता, अथी तेओ इलाध नता इता. तेना वाण गांधेला रडेता न इता
 अने ते भुङ्गुं न वधेला इता, तेना शरीरने रंभ राहु अने लभश लेयो कणो
 भंश लेयो इतो. ते तदन निर्दय इतो. पाप करवा छातां तेना मनमां पस्तावे
 थतो न इतो. अट्टेला मटे ते क्रूर प्रकृतिने इतो: तेने जेतानी साथे न माणीयेनां

घराणि य आभोऽमाणीर मग्गमाणे गवेसमाणे बहुजणस्स छिद्देषु य
 विसंसेसु य विहुरेषु य वसगेषु य अग्गुदएसु य उस्तत्रेषु य पत्तत्रेषु य
 तिहीसुय छणेषुय जन्नेसु य पव्वणीसु य मत्त-पमत्तस्स य विक्खि-
 त्तस्स य वाउलस्स य र हिदस्स य दुक्खियस्स विदेसत्थस्स य विप्प-
 वसियस्स य मग्गं च छिद्दं च विरहं च अंतरं च मग्गमाणे गवेस-
 माणे एवं च णं विहरइ, वेहिया वि य णं रायगिहस्स नगरस्स आरा-
 मेषु य उज्जाणेषु य वावि पोक्खरिणा-दीहि यागुंजालिया सरेसु य
 सरपंतियासु य सरसरपंतियासु १ जिणगुज्जाणेषु य भग्गहूवएसु य
 मालुयाकच्छएसु य सुसाणएसु य गिरेकंदरलेगउवग्गणेषु य
 बहुजणस्स छिद्देषु य जाव एवं च णं विहरइ ॥सू. ४॥

टीका—‘तत्थ णं’ इत्यादि । तत्र खलु राजगृहे नगरे विजयनामा
 तक्करे=चौरः होत्या=आसीत् । स कीदृशः ! इत्याह—‘पावे’ इति, पापः=
 पापकर्मा चाण्डालरूपः=चाण्डालसदृशः, भीमतरुदकम्मे’ भीमतरुदकर्मा-
 चाण्डालकर्मापेक्षयाऽपि भीमतराणि=भयङ्कराणि रौद्रकर्माणि हिंसादिक्रूरकर्माणि
 यस्य स तथा, ‘आरुसियदित्तरत्तनयणे’ आरुपित दीप्तरत्तनयनः, तत्र-‘आरुसिय’
 आरुपितम्येव ‘दित्त’ दीप्ति=विकराळे ‘रत्त’ रक्त नयने यस्य स तथा, ‘खर-

‘तत्थ णं रायगिहे नगरे विजए नामं तक्करे होत्या’ इत्यादि ।

टीका—(तत्थ णं रायगिहे नगरे) उसी राजगृह नगर में विजय नामको
 चौर था (पावे चंडालहूवे भीमतरुदकम्मे आरुसियदित्तरत्तनयणे, खरफरस
 महल्लविगयवीमत्थदादिण) यह पापी था। चंडाल जैसा था। इसके हिंसा
 दिक्रूरकर्म चाण्डाल के कार्य की अपेक्षा भी बहुत भयंकर थे। इसके
 नेत्र क्रौंयो पुरुष के नेत्र जैसे लाल थे, और महा विकराल था दाढ़े इस

टीका—(तत्थ णं रायगिहे नगरे) ते राजगृहनगरमां (विजएनामं
 तक्करे होत्या) विजय नामे चौर रहतेो हतेो. (पावे चंडालहूवे भीमतर
 रुदकामे आरुसियदित्तरत्तनयणे, खरफरस-महल्ल-विगय-वीमत्थ
 दादिण) ते पापी हतेो. चाण्डाल जैसा हतेो. हिंसा नगरे तेनां क्रूर कर्मो चाण्डाल
 करतां पणु भयंकर हतां. तेनी आंघो दीपी भाषुसनां जेवी दाव हती अने ते

कनकत्रयउड्विगयीभन्धरादि' खरखनहापिक्राचीभत्सदंष्ट्रिकः, तत्र-
 'खापुरुषे=अतिकर्षे 'मदल्ल' महत्स्यो=अतिविशाले 'त्रिगय' विकृते=शोभा
 वर्जिते 'वीमत्य' वीमत्से=वृणाजनके 'दादि' द्रष्टिके=दादिके हनुवर्द्धितकेशयु
 क्तरूपे वा यस्य सः-हर्कविकृतवृणिनदादिकायुक्तः, खरखनहापिक्राचीभत्स-
 दन्तो वा । 'असंपुडियउद्वे' असंपुडिनौष्ठः, असंपुडिनौ, अमंगुती वा परस्पर-
 रासंमिलिनौ स्फाटितौ ओष्ठलघुवाद्गहनदीर्घत्वाच्चौष्ठौ यस्य सः स्फाटित-
 मुख इत्यर्थः । 'उद्वेयपइन्नलंबंतमुद्वे' उद्वेय प्रकीर्णलम्बमानमूर्धजः, तत्र-
 'उद्वेय' उद्वेयः=वायुमम्पर्कतप्रचलिता अत एव-'पइन्न' प्रकीर्णः=इतस्ततो
 विक्षिप्ताः 'लंबंत' लम्बमानाः=अधः प्रसर्पन्तः 'मुद्वेय' मूर्धजाः=केशा यस्य
 स तथा । 'भमरराहुवन्ने' भमरराहुवर्णाः-भमरराहुवर्ण इव वर्णो यस्य सः-
 अत्यन्तकृष्णवर्ण इत्यर्थः । 'निरणुकोसे' निरनुकोशः=निर्देयः, निरणुतावे'
 निरनुतावः= पापं कृत्वा पश्चात्तारहितः अतएव 'दारुणे' दारुणः=क्रूरः । 'पइ-

की अतिशय कठोर थीं; बहुत विशाल थीं, शोभा रहित थीं, तथा वृणा-
 जनक थी-अथवा इस की दाढ़ी के वाळ कठोर थे, वृणा-
 घने थे, शोभासे रहित थे और वृणा उतादक थे। (असंपुडिय-
 उद्वे उद्वेय, पइन्नलंबंतमुद्वे, भमरराहुवन्ने, निरणुकोसे, निरणुतावे दारुणे
 पइभए) दाँतों को दीर्घ होने के कारण इसके ओष्ठ परस्पर में मिले हुए
 नहीं थे-किन्तु खुले हुए थे। इसके मस्तक पर जो केश थे-वे पवन में
 झपक उधर उड़ते, इसलिये फैले हुए थे चवे हुए नहीं थे। तथा बहुत
 चढ़े हुए थे। इसका शारीरिक वर्ण राहु तथा भ्रमर जैसा अत्यन्त काला
 था। दया से यह सर्वथा रहित था। पाप करके भी इसके हृदय में
 पश्चात्ताप का भाव उत्पन्न नहीं होता था। इसलिये क्रूर प्रकृति का था।

महालयंकर इती. तेनी दाढा पूगज कठोर इती, धल्ली मोटी इती, शोभा वगरनी
 इती, तेभज धृष्णजनक इती, अथवा तो तेनी दाढीना वाण कठोर इता, सघन इता,
 शोभा वगरना इता, अने धृष्णजनक इता. (असंपुडियउद्वे उद्वेयपइन्नलंबंत
 मुद्वेय, भमरराहुवन्ने निरणुकोसे, निरणुतावे दारुणे पइभए) तेना दांत
 दांणा इता. तेथी जने ओक ओक जीजना स्पर्श वगर इर न रहेता इता. ते
 उद्वेयां खुदवा, न रहेता इता. तेना माथाना वा न पवनने लीधि अस्तव्यस्त यंधने
 उडता इता, अथी तेओ हेवार्य जता इता. तेना वाण गांधेवा रहेता न इता
 अने ते जहुं न चवेवा इता, तेना शरीरने रंग राहु अने लभश जेयो अण्ये
 भेथ जेयो इतो. ते तदन निर्देय इतो. पाप करवा छतां तेना मनमां पस्तवे
 यतो न इतो. अथेवा भ.टे.ते क्रूर प्रकृतिने इतो: तेने जेतानी साथे न प्राणीजानां

भय' प्रतिभयः=भयोत्पादकः। 'निसंसिपे' नृशंसकः। 'निरनुकम्पे' निरनुकम्पः=दयागुणवर्जितः। 'अहिब्वएगंतदिद्विपे' अहिरिवैकान्तदृष्टिकः, सुनङ्ग इव क्रूरकर्मकरणे एकाग्रतालक्षणः एकान्ता=एक निश्चया दृष्टिः=विचारसरणिर्यस्य स तथा। 'सुरेव एगंतधारए'धुर इव एकान्तधारकः, धुरो=नाभितडा-स्त्वविशेषः 'उम्तरा' इति भाषायाम्, तद्वत् 'एगंत' एकान्तेन=तीव्रत्वात्सर्व प्रकारेण परवस्तुधरणे 'धारा' धारा=परोपतापनरूपा परिणामधारा यस्य सः, सर्वस्वापहारोत्यर्थः। 'गिद्धेव आमिसतल्लिच्छे' गृद्ध इव-आमिप तल्लिप्सः गृद्ध इव-गृहक्षिवत् 'आमिस, आमिपे=शब्दादिविषये 'तल्लिच्छे' तल्लिच्छः=तत्परः'तल्लिच्छे' इति तत्परार्थो देशी शब्दः। अथवा आमिपे=विषयभोगादिके सा=अत्युत्कटा लिप्सा यस्य सः-कान्भोगे तोत्राभिलाषोत्यर्थः। 'अग्गमिव सव्वभक्खी' अग्निरिव सर्वभक्षी=भक्ष्याभक्ष्यसर्वभोजी सर्वजनलुण्टको

इसे देखते ही जीवाँ के हृदयमें भय का संचार हो जाता था। (निसमइए निरनुकम्पे अहिब्वएगंतदिद्विपे, सुरेव एगंतधारए, गिद्धेव आमिसतल्लिच्छे) यह स्वभावतः नृशंसक (घातक) था निरनुकम्पे-दयागुण वर्जित था। सर्प की तरह क्रूर कर्म करने में इस की विचारसरणि एक निश्चयवाची होती थी, धुरा-उम्तरा के समान वह सर्व प्रकार से परकीय वस्तुओं के हरण करने में परोपतापनरूप परिणाम धारावाला था। गिद्धपक्षी की तरह यह शब्दादि विषयरूप आमिप में अथवा कामवासना में तत्पर रहा करता था। (अग्गमिव सव्वभक्खी जलमिवसव्वग्गाही उक्कं वग, वं वग, माया नियडि, कूड, कवड, साइ, संपओग, वहुले, चिरणपरविणट्टुद्ध सीलायारचरित्ते, जूयपसंगी, मज्जपसंगी, भोज्ज, पसंगी, मंसपसंगी दारुणे हिययदारए) अग्नि के समान यह सर्व भक्षी था, अथवा लक्षण से सर्व जीवों को

भय लयभीत थीं जातीं हतीं। (निसंसिपे निरनुकम्पे अहिब्व एगंतदिद्विपे सुरेव एगंतधारए, गिद्धेव आमिसतल्लिच्छे) स्वभावधीं ते नृशंसं अने घातकं हतो। (निरनुकम्पे) निर्दयं हतो। सापनी नेमं क्रूर कर्मभां प्रवृत्तं यत्नारं तेना विचारो दृढ निश्चयवाणं हतो। अस्तरानी नेमं ते षधीं रीते पीअओनी वस्तुओने डरी लेवाभां परोपतापनं इपं परिष्ठाभं वाणे हतो। गीधनी नेमं शण्डं वगेरे विषयं इपं आमिपभां अथवा कामवासनां नेवीं आभतभां ते हमेथां तेषारं शहेतो हतो। (अग्गमिव सव्वभक्खी जलमिव सव्वग्गाही उक्कं वग, वं वग, माया नियडि, कूड, कवड, साइसंपओग, वहुले, चिरणपरविणट्टुद्ध सीलायारचरित्ते, जूयपसंगी, मज्जपसंगी, भोज्जपसंगी, मंसपसंगी दारुणे हिययदारए) अग्निना नेवे ते सर्वभक्षीं हतो अथवा ते अपां प्राणीओने वं टनार

चा । 'जलमिव सव्वग्गादी' जलमिव सर्वप्राणी-यथा जलं स्वविषयमाप्तं
 सर्वं स्वान्तर्गमनं करोति तथैवापी मर्त्तुं सर्वस्मादपहरति । 'उक्कंचण-
 वंचणमायानियडि कूडकवडमाइसंपभोगवहुले' उक्तञ्चनवञ्चनमाया-
 निकृति कूडकपटमातिसंपयोगवहुलः, तत्र-'उक्कंचण' उक्तञ्चनं=स्वपरगुणा-
 भावेऽपि गुणोत्कीर्त्तनम्, 'वंचण' वञ्चनं-छलकरणं, माया=परवञ्चनम्, 'नियडि'
 निकृतिः=मायाऽऽच्छादनार्थं पुनर्मायाकरणं-चक्रवृत्त्या गर्तञ्चक्रवृत्तिधारणम्,
 'कूड' कूटं परवञ्चनार्थं तुलादेन्युनाधिककरणम्, 'कवड' कपटम्=वेपभा-
 षादिविपर्ययकरणम्, एभिस्तुक्तञ्चनादिभिः सह 'साइसंपभोग' सानिसंप-
 योगः-अतिगयेन योगस्तेन यो बहुलः=व्याप्तः सकृत्कूटकपटादि भण्डागार-
 इत्यर्थः । 'चिानगरविणदुट्टुमीलायारचरित्ते' चिानगरविनष्टदुष्टशीलाचार-

लूटने वाला था । जल की तरह सर्वप्राणी था अर्थात् जल जिस प्रकार
 अपने में पड़े हुए पदार्थ को अपने भीतर ले जाता है-उसी प्रकार यह
 भी दूसरों के पास से समस्त चीजों का अग्रहण कर आने पास रख
 लेता था । अपने भीतर जो गुण नहीं थे उनकी भी यह अपने में हैं इस
 तरह की प्रशंसा किया करता था । वंचना-छल करने में यह विशेषपटु-वृत्त था,
 माया परवंचन में बहुत होशियार था-निकृति अपने मायावारीको दवाने में
 दुवारा माया करने में बड़ा ही सिद्धहस्त था । तुला आदि का न्यूनाधिक
 करना इसका नाम व्युह है, वेप आदि को बदलना इसका नाम कपट है।
 इन सबके करने में यह प्रख्यात था । अर्थात् इन उक्तंचन माया, निकृति
 कूट, कपट का यह भण्डार था। चिरकाल से यह नगर से बाहर रहता
 था । इसलिये इसका स्वभाव दुष्ट हो गया था । आचार-कुल मर्यादाह्व

इतो. पाण्डुनी नेम ते सर्वत्राडी इतो- अेटवे के पाण्डु नेम तेमां पडी गयेडा
 गधा पदार्थो ते पोतानी अंहर लध न्य छ, ते प्रमात्रे न ते चोर पद्य षीज-
 ओनी पासेथी गधी वस्तुओ चोराने तेनी पासे संत्रडी राणतो इतो. ने शुष्णे
 तेमां इता तेमनी पद्य षीजओनी सामे प्रथंसा करतो रडेतो इतो. षीजने छेत्-
 श्वाभां ते पावधी इतो. माया-अेटवे के षीजने ठगवाभां ते भूम न कुशण इतो.
 निकृति-अेटवे के माया चोराने पराजित करवाभां ते षीज वधत माया (पर
 वंचन) करवाभां गहु न चतुर इतो. त्राजवां वगेरेने याडाडीथी न्यूनाधिक करतुं
 तेनु नाम व्युह छ. वेपलूषा वगेरे गदलवी ते कपट कडेवाय छ. आ माटे ते
 प्रख्यात इतो. अेटवे के छेत्ंचन, वंचन, माया, निकृति, कूट, कपटने ते षजने
 इतो. वांणा वधतथी ते नगरनी गदुर न रह्या करतो इतो. अेटला माटे स्वभाव

भय' प्रतिभयः=भयोत्पादकः। 'निसंसिप' वृशंसकः। 'निगुणकंपे' निरनु-
 कम्पः=दयागुणवर्जितः। 'अहिव्वएगंतदिट्ठिए' अहिरिवैकान्तदृष्टिकः, भुजङ्ग-
 इव क्रूरकर्मकरणे एकाग्रतालक्षणः एकान्ता=एक निश्चया दृष्टिः=विचारसरणि-
 र्यस्य स तथा। खुरेव एगंतधारए'धुर इव एकान्तधारकः, धुरो=नामित्तज्ञ-
 ह्वविशेषः 'उम्तरा' इति भाषायाम्, तद्वत् 'एगंत' एकान्तेन=तीव्रत्वात्सर्व-
 प्रकारेण परवस्तुधारणे 'धारा' धारा=परोपतापनरूपा परिणामधारा यस्य सः,
 सर्वस्यापहारीत्यर्थः. 'गिद्धेव आमिसतल्लिच्छे' गृद्ध इव-आमिप तल्लिप्सः गृद्ध
 इव-गृह्यभिवत् 'आमिस, आमिपे=शब्दाद्विषय 'तल्लिच्छे' तल्लिच्छः=
 तत्परः'तल्लिच्छे' इति तत्परार्थो देशी शब्दः। अथवा आमिपे=विषयभोगादिके
 सा=अत्युत्कटा लिप्सा यस्य सः-कामभोगे तोत्रामिलापोत्यर्थः। 'अग्गमिव
 सव्वभवली' अग्निग्नि व सर्वभक्षी=भक्ष्याभक्ष्यसर्वभोजी सर्वजनलुष्टको

इसे देखते ही जीवों के हृदयमें भय का संचार हो जाता था। (निसमइए
 निरनुकम्पे अहिव्वएगंतदिट्ठिए, खुरेव एगंतधारए, गिद्धेव आमिसतल्लिच्छे)
 यह स्वभावतः वृशंसक (घातक) या निरनुकम्पे-दयागुण वर्जित था। सर्प
 की तरह क्रूर कर्म करने में इस की विचारसरणि एक निश्चयवाली होती
 थी, धुरा-उम्तरा के समान वह सर्व प्रकार से परकीय वस्तुओं के हरण
 करने में परोपतापनरूप परिणाम धारावाला था। गिद्धपक्षी की तरह यह
 शब्दादि विषयरूप आमिप में अथवा कामवासना में तत्पर रहा करता था।
 (अग्गमिव सव्वभवली जलमिव जग्गाही उक्कंचण, वंचण, माया नियडि,
 कूड, कवड, साड, संभोग, बहुले, चिरणपरविणट्टुट्ट सीलाचारचरित्ते,
 जूयपसंगी, मज्जपसंगी, भोज्ज, पसंगी, मंसपसंगी दारुणे द्विययदारए)
 अग्नि के समान यह सर्व भक्षी था, अथवा लक्षण से सर्व जीवों की
 मन लयलीत र्थं ज्वां इत्तां. (निसमइए निरनुकम्पे, अहिव्व एगंतदिट्ठिए
 खुरेव एगंतधारए, गिद्धेव आमिसतल्लिच्छे) स्वभावधी ज ते नृथंस अने
 घातक इतो. (निरनुकम्पे) निर्दय हुनो. सापनी जेम दूर कर्ममां प्रवृत्त यनाश
 तेना विचारो दद निश्चयवागा इता. अस्तरानी जेम ते जधी रीते षीअओनी
 वस्तुओने डरी देवाभां परोपतापन इप परिष्ठाभं वाणे इतो. गीधनी जेम थण्ड
 वगेरे विषय इप आमिपमां अथवा कामवासना जेवी जाअतमां ते इमेथां. तंधार
 रडेतो इतो. (अग्गमिव सव्वभवली जलमिव जग्गाही उक्कंचण, वंचण,
 माया नियडि, कूड, कवड, साइसंपभोग, बहुले, चिरणपरविणट्टुट्ट
 सीलाचारचरित्ते, जूयपसंगी, मज्जपसंगी भोज्जपसंगी मंसपसंगी दारुणे द्वियय
 दारए) अग्निना जेयो ते सर्वभक्षी इतो अथवा ते अपा प्राणीओने बंटनार

मान्तकं पदं प्राकृतत्वात् 'नित्यभेयलघुहस्तसंपयुक्तं' तीर्थभेदलघुहस्तसंपयुक्तः,
 'नित्यभेय' तीर्थभेदे=धर्मपध्वंसने धर्मस्थानध्वंसने वा लघुहस्तसंपयुक्तः=
 हस्तलाघवयुक्तः अतिकुशल इत्यर्थः। 'परस्स दव्वहरणम्मि निच्चं अणुवद्धे'
 परस्य द्रव्यहरणे नित्यमनुवद्धः=आसक्तः। 'तिव्ववेरे' तीर्थवैरः= उत्कट
 विरोधवान् स राजगृहस्य नगरस्य बहूनि 'अइगमणाणिय' अतिगमनानि=
 च प्रवेशमार्गाः 'निग्गमणाणि' निर्गमनानि=निस्सरणमार्गाः, 'दाराणि' दाराणि=
 नगरद्वाराणि, 'अव्वाराणि' अव्वाराणि-लघुद्वाराणि गुप्तद्वाराणि वा, 'छिंडीओ'
 छिण्डाः=वृत्तिछिद्रारूपाः कण्टक प्राकारछिद्राणीत्यर्थः, 'खंडीओ' खण्डाः=
 दुर्गछिद्राणि, 'नगरनिद्धमणाणि' नगरनिर्द्धमनानि=नगरजलनिर्गमनद्वाराणि,
 'संवट्टणाणि' संवर्त्तनानि=अनेकमार्गसङ्गमस्थानानि. 'निव्वट्टणाणि' निर्वर्त्तनानि=
 नूतननिर्मितमार्गरूपाणि, 'जूखलयाणि' जूनखलकानि=वृत्तक्रीडास्थानानि,
 'पाणाणि' 'पानागाराणि' मंदिरास्थानानि, 'वेस्सागाराणि' वेद्यागाराणि=

तीर्थ भेद लघु हस्त संपयुक्त था-अर्थात् धर्मस्थान को नष्ट करने में यह
 अति कुशल था। (परस्स दव्वहरणम्मि निच्चं अणुवद्धे) दूसरों के द्रव्य
 हरण में यह आसक्त रहता था। (तिव्ववेरे) तीर्थ वैर वाला था।
 (रायगिहस्स नयरस्स बहूणि अइगमणाणि य निग्गमणाणि य दाराणि य अव्वारा-
 णिय छिंडीओ य खंडीओ य नगरनिद्धमणाणि य) यह राजगृहनगरके अनेक
 प्रवेशमार्गों को जाने के मार्गों को वहाँ के अनेक द्वारों को छोटे-द्वारों
 को-अथवा गुप्त द्वारों को कांटों की लगी हुई बाड़के छिद्रों को जल के
 निकलने की नालियों को (संवट्टणाणि) अनेक मार्गों के संगमस्थानों को
 (निव्वट्टणाणि) नूतननिर्मित मार्गों को (जूखलयाणि) जूवा के खेलने के
 स्थानों को (पाणागाराणि) मंदिरा पीने के स्थानों को (वेस्सागाराणि)

विचार पण उत्पन्न थतो इतो के २। हुं डेपुं कृत्य करी रथो धुं. ते ' तीर्थभेद
 लघुहस्त संपयुक्त ' इतो—अटले के धर्मस्थानने नष्ट करवाभां ते अतिकुशल इतो.
 (परस्सदव्व हरणम्मि निच्चं अणुवद्धे) परस्सना द्रव्यने हरवाभां ते आसक्त
 रथो इतो. (तिव्ववेरे) ते लयंहर रीते वेर (दुश्मनावट) सम्पन्नर इतो.
 (रायगिहस्स नयरस्स बहूणि अइगमणाणि निग्गमणाणि य दाराणिय अव्व-
 दाराणि य छिंडीओ य खंडीओ य नगरनिद्धमणाणि य) राजगृह नगरना
 धरुा प्रवेश भागोने अवर ववरना रस्ताओने, त्यां ना धरुा दरवान्ओने, नाना
 दरवान्ओने अथवा तो गुप्त दरवान्ओने, डोटोने, वाडना छिद्रोने, डिडवाना
 छिद्रोने, पाण्णीनी नणीओने. (संवट्टणाणि) धरुा रस्ताओ. लेण थता डाय तेना
 स्थानोने. (निव्वट्टणाणि) नया पनाववाभां आवेवा रस्ताओने. (जूखलयाणि)
 जूवा रस्ताओने, (पाणागाराणि) दाडु पीवान् स्थानोने, (वेस्सागाराणि)

चरित्रः, तत्र—'चिर' चिरं=बहुकालं यावत् 'नगर' नगरात् 'विणद्र' विनष्टः=
 लीणितः, अत एव 'दुष्ट' दुष्टं शीलं=स्वभावः, आचारः कुलमर्षादालक्षणः,
 चरित्रं=जीवनव्यवहाररूपं यस्य स तथा । 'जूयपसंगी' घूनमसङ्गी=घूनक्रीडा-
 सक्तः 'मज्जप्पसंगी' मद्यमसङ्गी=मद्यपायी, 'भोज्यप्पसंगी' भोज्यप्रसङ्गी=खण्ड-
 खाद्यादिरसलोच्छ्रयः । 'भोगमसङ्गी' इति पाठ गणिकापरायण इति । 'मांसपसंगी'
 मांसपसङ्गी=मांसाहारी, उपलक्षणात् सप्तव्यसनसेवी । 'दारुणे' दारुणः=कठोर-
 हृदयः । 'द्वियदारए' हृदयदारकः—अन्वेषां हृदयविदारकः । साहसिए' साह-
 सिकः=अविचारकारी । 'संधिच्छेपए' सन्धिच्छेदकः—क्षत्रखानकः=गृहादिभित्ति-
 भेदकः 'उव्हिए' औपधिकःसमायित्वेन प्रच्छन्नचारी । 'विसंभथाई' विसंभ-
 थाती=विश्वोसघातकः । 'आलीयग' आदीपकः=ग्रामादिप्रज्वालकः 'लुमपय

व्यवहार इसका विलकुल नष्ट भ्रष्ट हो गया था, और चरित्र इसका विक-
 कुल पतित बन गया था । यह घून संगी—जुआ खेलने में आसक्त मद्य पाने
 में प्रसक्त भोज्य प्रसंगी—मिष्ठान्न आदिरस का लोचुगी, और गणिकाओं
 के सेवन करने में सदा तल्लीन रहता था । यह मांसाहारी था—उपलक्षण
 से सातों ही व्यसनों का सेवन करने वाला था । कठोर हृदय था—अन्य
 प्राणियों के हृदय विदारक था (साहसिए) बड़ा साहसिक था बिना विचारे
 हर एक काम कर डालता था । (संधिच्छेपए, उव्हिए, विसंभथाई, आली-
 यगतिरथभेयलहृदयसंपउए) मकानों में सेव (खात) लगाने में उनकी
 भित्तियों को डने में—यह प्रख्यात था, औपधिक था—मायावारी होने के कारण
 यह अपना वेत परिवर्तित कर इधर उधर फिरा करता था । विश्वासघातक
 था । आदीपक—ग्राम आदि के जलाने में उसे कोई विचार नहीं होता था ।

ते दुष्ट यथ गथे इतो. आचार-अेटवे के कुणनी मथांदा इप तेने व्यवहार संहतर
 नाथ पान्थो इतो अने तेनुं आरिन्थ साव भ्रष्ट यथ गथुं इतुं ते घुत प्रसंगी
 गुणारमां आसक्त, मद्यपी-दादु पीचामां प्रसक्त, लोन्थ प्रसंगी-मिष्ठान्न वगेरे
 गथुं पावामां लोचुप अने गथिक्कांथो वगेरेना सेवनमां ते इमेयां तल्लीन रह्य
 करतो इतो ते मांस लसक इतो. उपद्रक्षणेथी ते साते सात व्यसनोने आचरनार
 इतो. कठोर हृदय वाणे इतो. भीज भाषुसेना हृदयने दुःषी गनावनार इतो
 (साहसिए) ते शूश'न साहसिक इतो. विवेक वगरने यथने ते गमे ते काम
 करतो इतो. ('संधिच्छेपए' उव्हिए विसंभथाई आलीयगतिरथभेयलहृ-
 हृदयसंपउए) धरमां भातर पाडंवामां ते प्रन्थात इतो. ते औपधिक इतो—अेटवे
 के माया थारी डोवा जडव ते पेतानो वेय जडवीने आम तेम पडंथा करतो
 इतो. ते विश्वास घात करनार इतो. आदीपक—अेटवे के आम ने सणगावतां इतेने

रूपेषु 'विहरेषु' विधुरेषु व्याकुलावस्थारूपेषु 'वसणेषु' व्यसनेषु-विपत्तु
 'अबुद्धेषु' अबुद्धेषु राज्यलक्ष्म्यादिमाप्तिरूपेषु 'उत्सवेषु' उत्सवेषु
 विवाहादिप्रसङ्गरूपेषु 'पमत्रेषु' प्रपत्रेषु-पुत्रादिजन्मोत्सवेषु 'तिहिषु' 'तिथिषु-
 सांवत्सरिकादिरूपासु' छणेषु क्षणेषु आनन्दजनकव्यापाररूपेषु 'जन्नेषु'
 यज्ञेषु नागाद्युत्सवेषु 'पव्वणीसु' पर्वणीषु-कार्तिकपूर्णिमादिपर्वतिथिषु 'मत्त-
 पमत्तस्य' मत्तपमत्तस्य तत्र 'मत्त' उन्मत्तः 'पमत्त' प्रमत्तः-प्रमादवान् यः म
 तस्य 'विविक्तस्य' विक्षिप्तस्य प्रयोगविशेषेण भ्रान्तचित्तस्य 'वाउलस्य'
 वातुलस्य वातरोगयुक्तस्य अन्यमनस्कस्य वा 'सुहियस्य' सुखितस्य'
 सकलेन्द्रियानुकूलविषयप्राप्तत्वात्सुखमग्नस्य 'दुःखितस्य' दुःखितस्य इष्ट
 वियोगानिष्टसंयोगादिना दुःखनिमग्नस्य 'विदेसत्थस्य' विदेशस्थस्य परदेश-
 स्थितस्य 'विप्पवसियस्य' विप्रोपितस्य-इष्टजनवियोगिनः इत्यादि बहुज-

विहरेषु) व्याकुल अवस्था में होता था (वसणेषु) हिंसी और विपत्ति से
 ग्रस्त होता था उस समय में तथा (अबुद्धेषु) राज्यलक्ष्मी आदि की
 माप्तिरूप उत्सवों में (उत्सवेषु य पमत्रेषु य तिहिषु य छणेषु य जन्नेषु य
 पव्वणीसु य) विवाह आदि प्रसंगों में पुत्रादि जन्मोत्सवों में सांवत्सरिक
 तिथियों में, आनंद जनक व्यापाररूप क्षणों में नागादि उत्सवरूप यज्ञों में
 कार्तिक पूर्णिमा आदिरूप पर्वतिथियों में, (मत्त-पमत्तस्य विविक्तस्य वाउ-
 लस्य य सुहियस्य य दुःखितस्य य विदेसत्थस्य य विप्पवसियस्य य) जब
 कोई जन मत्त हो जाता था प्रमादवशगत हो जाता था, प्रयोग विशेष
 से भ्रान्त चित्त बन जाता था, वातव्याधि से युक्त हो जाता था। या
 अन्यमनस्क हो जाता था, सकल इन्द्रियों के अनुकूल विषयों की प्राप्ति
 से आनन्द युक्त बन जाता था इष्ट वियोग अनिष्ट संयोग आदि से दुःख-

(वसणेषु) पीछे डोढ़ आक्षतमां क्षयावधौ रहितो, ते समये तेभ्य (अबुद्धेषु)
 संन्य लक्ष्मी वगेरेनी प्राप्तिरूप उत्सवोमां (उत्सवेषु य पमत्रेषु य तिहिषु य
 छणेषु य जन्नेषु य पव्वणीसु य) लब्ध वगेरेनी प्रसंगोमां, पुत्र वगेरेना जन्मो-
 त्सवोमां, सांवत्सरिक तिथियोमां, आनन्दनी क्षणोमां, नाग वगेरेना उत्सव रूप
 यज्ञोमां कार्तिक पूनम वगेरे रूप पर्व तिथियोमां (मत्त पमत्तस्य विविक्तस्य वाउलस्य य
 सुहियस्य य दुःखितस्य य विदेसत्थस्य य पयत्तस्य विखयस्य विप्पवसियस्य य)
 न्यारे डोढ़ माणुस गांडो थर्भवतो, प्रमादी थर्भवतो, (तत्र भंत्रना) प्रयोग विशेषथी
 भ्रान्तचित्त थर्भवतो, वातना रोगथी पीडित थर्भवतो, शून्य मनस्क थर्भवतो,
 अधी इन्द्रियोने सुष प्राप्ति थाय ज्येयो संयोग थतां न्यारे डोढ़ आनंद भजन
 थर्भवतो, इष्ट वियोग तथा अनिष्ट संयोग वगेरेथी दुःखी थर्भवतो, परदेशमां

गणिकागृहाणि 'तद्दारद्वाराणि' तद्द्वारस्थानानि=गणिकागृहाद्वाराणीत्यर्थः, 'तद्वरद्वाराणि य' तद्वरस्थानानि च=चोरनिवासस्थानानि, 'सिंघाडगाणि' शृङ्गाटकानि=शृङ्गाटकाकृतित्रिकोणस्थानानि, 'तियाणि' त्रिकोणणि मार्गत्रयसमीलनस्थानानि, 'चउकाणि' चतुष्कोणणि=चतुष्कोणस्थानानि, चच्चराणि चच्चराणि=चतुष्पथरूपाणि. 'नागघराणि' नागगृहाणि 'भूयघराणि' भूतगृहाणि 'जक्खदेउलानि' यक्षदेवकुलानि=यक्षायतनानि 'सभाणि' सभाः 'पवाणि' प्रपाः—पानीयशाला 'पणियसालानि' पणितशालानि—क्रयविक्रयस्थानानि 'सुन्नघराणि' शून्यगृहाणि 'आभोएमाणेर' अ(भोगयन्त्र-सोपयोग प्रेक्षमाणः 'मग्गमाणे' मार्गमाणः—अन्विष्यन् । 'गवेसमाणे' गवेपमाणः, मृक्षपरीत्या विलोकमानः—बहुजनस्य 'छिदेसु' छिद्रेषु स्वल्पनारूपेषु 'विसमेसु' विषमेषु—रोगाद्यवस्था-

वेश्याओं के गृहों को (तद्दारद्वाराणि) उनके दरवाजों को (तद्वरद्वाराणि) चोरों के निवासस्थानों को (सिंघाडगाणि) शृंगोटक जैसे त्रिकोण वाले स्थानों को (तियाणि) तीन मार्ग जहाँ मिले हों ऐसे स्थानों को (चउकाणि) चतुष्कोण वाले स्थानों को (चच्चराणि) चतुष्पथ रूप स्थानों को (नागघराणि) नागगृहों को, (भूयघराणि) भूतगृहों को, (जक्खदेउलानि) यक्ष के देरलों को (पवाणि) सभाओं को (राणि) व्याऊँओं को, (पणियसालाणि) क्रयविक्रय के स्थानों को (सुन्नघराणि) शून्य घरों को (आभोएमाणेर) उपयोग देकर चारवार देखता था। (मग्गमाणे) उन्हें चार-तलाशता। (गवेसमाणे) मृक्षमदृष्टि से उन की गवेपणा करता था (बहुजनसस छिदेसु य) जब कोई किसी प्रकार के कष्ट में होता था (विसमेसु) रोगादि अवस्था संतान्

वेश्याओंनां धरने, (तद्दारद्वाराणि) ते वेश्याओंना इश्वान्धरने, (तद्वरद्वाराणि) चोराना अधरने (सिंघाडगाणि) शृंगोटक-ओटले के त्रयु रस्ता लेगा यथा होय तेवा स्थानेने, (चउकाणि) चतुष्कोणवाणा स्थानेने (चच्चराणि) चार रस्ताओ लेगा यथा होय तेवा स्थानेने, (नागघराणि) नागनां गृहेने, (भूयघराणि) भूतियां धरने, (जक्ख देउलानि) यक्षाना देवालयेने (मभाणि) सभाओने (पवाणि) परणेने, (पणिय सालाणि-कथ पिडडयना स्थानेने, (सुन्नघराणि) धात्री पडी रहेला धरने, (आभोएमाणे) मङ्कर आपीने वारे धरीओ नेतो इतो (मग्गमाणे) ते स्थानेने चारवार तथासता रहे तो इतो. (गवेसमाणे) मृक्षमदृष्टि तेभने नेतो रहेतो इतो. (बहुजनसस छिदेसु य) न्यारे कोध भावुस कोध पण्य नतना कष्टभां पीडतो रहे छि. (विसमेसु) रोग वगेरथी मुक्त रहेतो,

रूपेषु 'विहरेषु' विधुरेषु व्याकूलान्ग्यारूपेषु 'वसणेषु' व्यसनेषु-विपत्सु
 'अभ्युदयसु' अभ्युदयेषु राज्यलक्ष्म्यादिमाप्तिरूपेषु 'उत्सवेषु' उत्सवेषु
 विवाहादिपरङ्करूपेषु 'पमवेषु' प्रपवेषु-पुत्रादिजन्मोत्सवेषु 'तिहिसु' 'तिथिसु-
 सांचत्सरिकादिरूपासु 'छणेषु' क्षणेषु आनन्दजनकव्यापाररूपेषु 'जन्नेसु'
 यज्ञेषु नागाद्युत्सवेषु 'पञ्चणीसु' पर्वणीषु-कार्तिकपूर्णिमादिपर्वतिथिषु 'मत्त-
 पमत्तस्य' मत्तपमत्तस्य तत्र 'मत्त' उन्मत्तः 'पमत्त' प्रमत्तः-प्रमादवान् यः स
 तस्य 'विक्लिप्तस्य' विक्लिप्तस्य पयोगविशेषेण भ्रान्तचित्तस्य 'वाउलस्य'
 वातुलस्य वातरोगयुक्तस्य अन्यमनस्कस्य वा 'सुहियस्य' सुखितस्य'
 सकलेन्द्रियानुकूलविषयप्राप्तत्वात्सुखमग्नस्य 'दुःखियस्य' दुःखितस्य इष्ट
 वियोगानिष्टसंयोगादिना दुःखनिमग्नस्य 'विदेसत्थस्य' विदेशस्यस्य परदेश-
 स्थितस्य 'विप्पवसियस्य' विप्रोपितस्य-इष्टजनवियोगिनः इत्यादि बहुज-

विहरेषु) व्याकूल अवस्था में होता था (वाणेषु) हिंसी और विपत्ति से
 ग्रस्त होता था उस समय में तथा (अभ्युदयसु) राज्यलक्ष्मी आदि का
 माप्तिरूप उत्सवों में (उत्सवेषु य पमवेषु सुय तिहीसु य छणेषु य जन्नेसु य
 पञ्चणीसु य) विवाह आदि प्रसंगों में पुत्रादि जन्मोत्सवों में सांचत्सरिक
 तिथियों में, आनंद जनक व्यापाररूप क्षणों में नागादि उत्सवरूप यज्ञों में
 कार्तिक पूर्णिमा आदिरूप पर्वतिथियों में, (मत्त-पमत्तस्य विक्लिप्तस्य वाउ-
 लस्य य सुहियस्य य दुःखियस्य य विदेसत्थस्य य विप्पवसियस्य य) जब
 कोई जन मत्त हो जाता था प्रमादवशंगत हो जाता था, प्रयोग विशेष
 से भ्रान्त चित्त बन जाता था, वातव्याधि से युक्त हो जाता था। या
 अन्यमनस्क हो जाता था, सकल इन्द्रियों के अनुकूल विषयों की प्राप्ति
 से आनन्द युक्त बन जाता था इष्ट वियोग अनिष्ट संयोग आदि से दुःख-

(वसणेषु) पीछे डोई आइतमां इसाथको रडेतो, ते समये तेमज (अभ्युदयसु)
 सन्ध्य लक्ष्मी वगेरेनी प्राप्तिरूप उत्सवोमां (उत्सवेषु य पमवेषु य तिहीसु य
 छणेषु य जन्नेसु य पञ्चणीसु य) लज्ज वगेरेनी प्रसंगोमां, पुत्र वगेरेना जन्मो-
 त्सवोमां, सांचत्सरिक तिथियोमां, आनंदनी क्षणोमां, नाग वगेरेना उत्सव रूप
 यज्ञोमां कार्तिक पूनम वगेरे रूप पर्व तिथियोमां (मत्त-पमत्तस्य विक्लिप्तस्य वाउलस्य य
 सुहियस्य य दुःखियस्य य विदेसत्थस्य य पयत्तस्य विखियस्य विप्पवसियस्य य)
 न्यारे डोई भाणुस गांडो थईजतो, प्रमादी थईजतो, (तत्र मत्तना) प्रयोग विशेषथी
 भ्रान्तचित्त थई जतो, वातना रोगथी पीडित थई जतो, शून्य मनस्क थई जतो,
 गंधी इन्द्रियोने सुख प्राप्ति थाय जेवो संयोग थतां न्यारे डोई आनंद भजन
 थई जतो, इष्ट वियोग तथा अनिष्ट संयोग वगेरेथी दुःखी थई जतो, परदेशमां

नस्य 'मगं' मार्गम् अवसरम् 'छिद्' छिद्रम्-स्खलनारूपम् विरहं' वियोगम् 'अंतरं' स्थानान्तरगमनरूपं सायंकालादिरूपं वा 'मगमाणे' मार्गयमाणः विलोकमानः 'गवेसमाणे' अन्विष्यन् एवं च णं' उक्तरीत्या 'विहरइ' विहरति विजयतःकरोऽवतिष्ठते इत्यर्थः, चकारः समुच्चयार्थः, णं वाक्यालङ्कारे । 'वहिया वि य णं' वहिरपि च खलु राजगृहनगरस्य 'आरामेसु' आरामेषु-पुष्पफलादि समृद्धवृक्षलतासंकुलक्रीडास्थानेषु 'उज्जाणेसु' उद्यानेषु= पत्रपुष्पफलच्छायोपशोभितनगरासन्नवर्तिक्रीडास्थानेषु 'वावीपोक्खरिणी-दीहियागुंजालियासरेसु' वापीपुष्करिणीदीर्घिकागुञ्जालिकासरसु, तत्र 'वावी' वापी चतुष्कोणयुक्ता 'पोक्खरिणी' पुष्करिणी-कमल युक्तगोलाकारा 'दीहिया' दीर्घिका=दीर्घाकार वापी. 'गुंजालिया' गुञ्जालिका=वक्राकारवापी 'सरः' = तडागः, 'सरपंतियासु' सरःपर्णिकासु=सरोवरभेणिसु

मग्न हो जाता था, परदेश में गये हुए जनों का, इष्ट जनों से वियुक्त होता था-तब यह उनके (मगं च छिद् च विरहं च अंतरं च मगमाणे, गवेसमाणे एवं च णं विहरइ) अवसर की, स्खलनारूप छिद्रको, वियोग को स्थानान्तर गमनरूप अथवा सायंकाल आदिरूप अंतर को ताकता रहता था-उनकी खोज में रहता था इस प्रकार से यह जब नगर में रहता था तब अपना समय व्यतीत करता था । तथा (वहियावि य णं रायगिहस्स नयरस्स आरामेसु य उज्जाणेसु य वाविपोक्खरिणी-दीहिया गुंजालिया-सरेसु य सरपंतियासु य सरसरपंतियासु य जिणुज्जाणेसु य मगकूवेसु य मालुया कच्छएसु य सुसाणएसु य गिरिकंदलेणउवट्टाणेसु य बहुजणस्स छिदेसु य जाव एवं च णं विहरइ) राजगृह नगरके बाहर वहाँ के आरामों में पुष्पफल

गयेला भाणुसोने तेभना धृष्टनोथी वियोग यं जतो त्यारे ते (वि.) तेभना (मगं च छिद् च विरहं च अंतरं च मगमाणे, गवेसमाणे एवं च णं विहरइ) उपर आपती नजर राभतो. वियोग, स्थानान्तर गमन, सायंकाल वगेरेना अवसरनी तेभनी असावधानीनी भराभर तकने लाल देवा तैथार रहेतो. आवा अवसरानी ते तथासमां रहे तो. आ रीते नगरमां रहिने, ते पोतानो वपत पसार करते. हुतो. तेभ ज (वहिया वि य णं रायगिहस्स नयरस्स आरामेसु य उज्जाणेसु य वाविपोक्खरिणीदीहिया गुंजालिया,सरेसु य सरपंतियासु य सरसरपंतियासु य जिणुज्जाणेसु य मगकूवेसु य मालुया कच्छएसु य सुसाणएसु य गिरिकंदलेणउवट्टाणेसु य बहुजणस्स छिदेसु य जाव एवं च णं विहरइ) राजनगरनी अहार त्यांना आरामोमां, पुष्पइणथी समृद्धि युक्त तथा

'सरसरपंतियासु' सःसरःपिक्लिंकासु=परस्परं संलग्नेषु बहुषु तडागेषु येषु सःसु पङ्क्त्या व्यवस्थितेषु एहस्नात्सरसोऽन्वस्मिन् सरसि ततोऽन्वत्, एवं जलसंचारदापाटकेन जलं संचरति। अथवा ऊर्ध्वाधः क्रमेण पिक्लिंरूपेण व्यवस्थितेषु सरससु स्वन एव सुतरां जलं संचरति, तत्रेत्यर्थः। 'जिष्णुज्जाणेसु' जीर्णोद्यानेषु=शुष्कप्रायतरुज्जलादियुक्तवनखण्डेषु 'भग्नकूपसु' भग्नकूपकेषु=खण्डितकूपकेषु 'मालुयाकच्छेषु' मालुकाकक्षकेषु सुमाणसु' इमशानकेषु गिरिकंदरलेणोवट्टाणेषु' गिरिकंदरलयनोपस्थानेषु=तत्र-गिरिकंदरेषु=पर्वतरन्ध्रेषु 'लेज' लयनेषु=गिरिस्थितपापाणगृहेषु 'उवट्टाणेषु' उपस्थानेषु=लतादिमण्डपेषु बहुजनस्य=जनसमुदायस्य छिद्रेषु अत आरभ्य यावत्-अनन्तरं गवेष्यमाणोऽसौ तस्करः एवं प्रकारेण विचरति ॥ सू० ४ ॥

मूलम्—तण्णं तीसे भदाए भारियाए अन्नया कयाइं पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि कुडुंवजागरियं जागरमाणीए अयमेयाखुवे अज्झत्थिए जाव समुपज्जित्था—अहं धणणेण सत्थवाहेण सद्धिं वडूणि वासाणि सद्धफरिसरसगंधरूवाणि माणुस्सगाइं काम-

आदि से समृद्ध वृक्षों वाले तथा लता से युक्त ऐसे क्रीडास्थानों में—उद्यानों में नगरासन्नवर्ती ऐसे क्रीडा के स्थलों में जो पत्र पुष्प फल एवं छाया वाले वृक्षों से शोभित होते हैं, वावडियों में, पुष्करणियों में दीर्घिकाओं में गुंजालिकाओं में तालाव में सरोवरश्रेणियों में परस्पर संलग्न अनेक तालावों में जीर्ण उद्यानों में, भग्नकुंभों में, मालुकाकच्छों में इमशानों में, पर्वत की गुफाओं में पर्वत ऊपर रहे हुए पापाणगृहों में और लतादि मंडपों में छुपर कर यह जन समुदाय के छिद्रों की विरह की अंतरआदि की तक में रहा करता था उन की गवेषणामें लगा रहता था। सू. ४।

लता वितानोथी ढंकाओलां ड्रीडा स्थणोभां, उद्यानोभां—नगरनी पासोना पत्र, पुष्प इण अने छायादावाणा वृक्षोथी शोभित ड्रीडा स्थणोभां, वावोभां पुष्करणीओभां, दीर्घिकाओभां 'गुंजालिकाओभां, तपावोभां, सरोवरानी ओलुओभां, लेभनां पाणी ओक थर्ष रहं छे. ओवां धणुं तणावोभा नूना भगीयाओभां, नूना भग्न कुवाओभां, मालुका कच्छोभां, इमशानोभां, पर्वतनी गुफाओभां, पर्वत उपरना थिला फटोनी वन्थेना पापासु गृहोभां अने लता भंडोभां छुपाधने ते (आर) जन समुदायनी असावधानता तेभ न तेओ क्यारे पोताना धरथी विभूटा थाय छे तेनी शोधनां रडेतेो इतेो, तेनी भरोवर तपास राभतेो इतेो. ॥ सूत्र ४ ॥

नस्य 'मगं' मार्गम् अवसरम् 'छिद्ं' छिद्रम्—स्वलनारूपम् विरहं वियोगम्
 'अंतरं' स्थानान्तरगमनरूपं सायंकालादिरूपं वा 'मगमाणे' मार्गयमाणः
 विलोकमानः 'गवेसमाणे' अन्विष्यन् 'एवं च णं' उक्तरीत्या 'विहरइ'
 विहरति विजयतस्करोऽवतिष्ठते इत्यर्थः, चकारः समुच्चयार्थः, णं वाक्या-
 लङ्कारे । 'बहिया वि य णं' बहिरपि च खलु राजगृहनगरस्य 'आरामेसु' आरा-
 मेषु—पुष्पफलादि समृद्धसलतासंकुलक्रीडास्थानेषु 'उज्जाणेषु' उद्यानेषु=
 पत्रपुष्पफलच्छायोपशोभितनगरासन्नवर्तिक्रीडास्थानेषु 'वाचीपोक्खरिणी-
 दीहियागुंजालियासरेसु' वापीपुष्करिणीदीर्घिकागुञ्जालिकासरस्सु,
 तत्र 'वाची' वापी चतुष्कोणयुक्ता 'पोक्खरिणी' पुष्करिणी—कमल युक्तगो-
 लाकारा 'दीहिया' दीर्घिका=दीर्घाकार वापी, 'गुंजालिया' गुञ्जालिका=वक्रा
 कारवापी 'सरः'=:तडागः, 'सरपंतियासु' सरःपर्णैकैकासु=सरोवरश्रेणिषु

मग्न हो जाता था, परदेश में गये हुए जनों का, हृष्ट जनों से वियुक्त
 होता था—तब यह उनके (मगं च छिद्ं च विरहं च अंतरं च मगमाणे,
 गवेसमाणे एवं च णं विहरइ) अवसर की, स्वलनारूप छिद्रकी, वियोग को
 स्थानान्तर गमनरूप अथवा सायंकाल आदिरूप अंतर को ताकता रहता था—
 उनकी खोज में रहता था इस प्रकार से यह जब नगर में रहता था तब
 अपना समय व्यतीत करता था। तथा (बहियावि य णं रायगिहस्स नयरस्स
 आरामेसु य उज्जाणेषु य वाचिपोक्खरिणी—दीहिया गुंजालिया—सरेसु य
 सरपंतियासु य सरसरपंतियासु य जिण्णुज्जाणेषु य भग्गकूवेसु य मालुया
 कच्छएसु य सुसाणएसु य गिरिकंदलेणउवट्टाणेषु य बहुजणस्स छिदेसु य
 जाव एवं च णं विहरइ) राजगृह नगरके बाहर वहाँ के आरामों में पुष्पफल

गयेला भाष्यसोने तेमना छल्लनोथी वियोग थल्लं नतो त्यारे ते (थो-) तेमना
 (मगं च छिद्ं च विरहं च अंतरं च मगमाणे, गवेसमाणे एवं च णं विहरइ)
 उपर थांपती नजर राधतो. वियोग, स्थानान्तर गमन, सायंकाल वगेरेना अव-
 सरनी तेमनी असावधानीनी भराभर तकने लाभ लेवा तैयार रहेता. आवा अवसरानी
 ते तथासमां रहे तो. आ रीते नगरमां रहीने, ते पोतानो वधत पसार करते.
 डतो. तेम न (बहिया वि य णं रायगिहस्स नयरस्स आरामेसु य उज्जाणेषु य
 वाचिपोक्खरिणीदीहिया गुंजालिया,सरेसु य सरपंतियासु य सरसर-
 पंतियासु य जिण्णुज्जाणेषु य भग्गकूवेसु य मालुया कच्छएसु य सुसाण-
 एसु य गिरिकंदलेणउवट्टाणेषु य बहुजणस्स छिदेसु य जाव एवं च णं
 विहरइ) राजनगरनी अहार त्यांना आरामोमां, पुष्पफलथी अशुद्धि युक्त तथा

अहं देवाणुप्पिया ! तुव्भेहिं सदिं बहुइं वासाइं जाव देंति समुल्ला-
वए सुमहुरे पुणे मंजुलप्पभणिए तण्णं अहं अहन्ना अपुन्ना
अलक्खणा एत्तो एगमवि न पत्ता, तं इच्छामि णं देवाणुप्पिया !
तुव्भेहिं अब्भणुन्नाया समाणी विपुलं असणं ४ जाव अणुवड्ढेमि
(त्तिकट्टु) उवाइयं करेतए । तण्णं धण्णे सत्थवाहे भइं भा रयं
एवं वयासी—ममांप य णं खल्लु देवाणुप्पिया ! एस चेव मणोरहे
—रुहं णं तुमं दारग दारिगं वा पयाएज्जसि ? भदाए सत्थवाहीए
एयमट्टमगुजाणइ । तए गं सा भदा सत्थवाही धण्णेणं सत्थवाहेणं
अव्भणुन्नाया समाणी हट्टुट्टु जाव हियया विपुलं असणपाण
खाइमसाइमं उवक्खडावेइ उवक्खड्ढावित्ता सुवहुं पुप्फगंधवत्थम-
ल्लालंकारं गेणहइ गेण्हत्ता सयाओ गिहाओ निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता
रायगिहं नयरं मज्झं मज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव पोक्ख-
रिणी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पुक्खरिणीए तीरे सुवहु
पुप्फजाव मल्लालंकारं ठवेइ, ठवित्ता पुक्खरिणिं ओगाहइ, ओगा-
हित्ता जलमज्जणं करेइ जलकीडं करेइ, करित्ता ण्हाया कयवलिकम्मा
उल्लपडसाडिगा जाइं तत्थ उप्पलाइं जाव सहस्सपत्ताइं ताइं
गिण्हइ गिण्हित्ता पुक्खरिणीओ पच्चोरुहइ पच्चोरुहित्ता जेणमेव
नागघरए य जाव वेसमणघरइ य तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता
तत्थ णं नागपडिमाण य जाव वेसमणपडिमाण य आलोए पणाम-
करेइ करित्ता ईसिं पच्चुन्नमइ पच्चुन्नमित्ता लोमहत्थगं परामुसइ
परामुसित्ता नागपडिमाओ य जाव वेसमणपडिमाओ य लोमहत्थ-

भोगाइं पच्चणुभवमाणी विहरामि, नो चैव णं अहं दारगं वा दारिगं
 पयायामि, तं धन्नाओ णं ताओ अम्मयाओ जाव सुलद्धेणं माणुस्सए
 जम्मजीवियफले तासिं अम्मयाणं जासिं मन्ने णियगकुच्छिसंभूयाइं
 थणदुद्धलु द्दयाइं महुरसमुद्धावगाइं मम्मंणपयंपियाइं थणमूलकं-
 कखदेसभागं अभिसरमाणाइं मुद्धयाइं थणयं पिवंति, तओ य
 कोमलकमलोवमेहिं हत्थेहिं गिण्हऊणं उच्छंगे निवेसियाइं देति
 समुद्धावए पिए सुमद्धुरे पुणोर मंजुलप्पभणिए, तं अहन्नं अधन्ना
 अपुत्ता अलकखणा अकयपुन्ना एत्तो एगमवि न पत्ता, तं सेयं मम
 कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए जाव जलंते धणं सत्थवाहं आपुच्छित्ता
 धण्णेणं सत्थवाहेणं अब्भणुन्नाया समाणी सुवहुं विपुलं असण-
 पाणखाइमसाइमं उवकखंडावेत्ता सुवहुं पुप्फवत्थगंधमल्लालंकारं
 गहाय वहुहिं मित्तनाइनियगसयणसंबंधिपरिजणमहिलाहिं सद्धिसंप-
 रिबुडा जाइं इभाइं रायगिहस्स नयरस्स वहिया णागाणि य भूयाणि य
 जकखाणि य इंदाणि य खंदाणि य रुद्धाणि य सिवाणिय वेसमणाणि
 य तत्थ णं य वहुणं नागपडिमाण य जाव वेसमणपडिमाण य मह-
 रिं पुप्फच्चणियं करेत्ता जाणुपायवडियाए एवं वइत्तए—जइ णं अहं
 देवाणुप्पया ! दारगं वा दारिगं वा पयायामि तो णं अहं तुब्भं
 जायं च दायं च मायं च अकखयणिहिं च अणुवड्ढेमि त्ति कहुं उव-
 याइयं उवयाइत्तए, एवं संपेहित्ता कल्लं जाव जलंते जेणामेव धण्णे
 सत्थवाहे तेणामेव उवागच्छइ; उवागच्छित्ता एवं वयासी—एवं खलु

अहं देवाणुपिया ! तुव्मेहिं सार्द्धं बहुइं वासाइं जाव देति समुल्ला-
वए सुमहुरे पुणे मंजुलप्पभणिए तणं अहं अहन्ता अपुन्ना
अलक्खणा एत्तो एगमवि न पत्ता, तं इच्छामि णं देवाणुपिया !
तुव्मेहिं अब्भणुन्नाया समाणी विपुलं असणं ४ जाव अणुवड्ढेमि
(त्तिकट्टु) उवाइयं करेत्तए । तणं धण्णे सत्थवाहे भइं भारयं
एवं वयासी—ममां प य णं खल्लु देवाणुपिया ! एस चेव मणोरहे
—कहं णं तुमं दारग दारिगं वा पयाएज्जसि ? भद्दाए सत्थवाहीए
एयमट्टमगुजाणइ । तएणं सा भद्दा सत्थवाही धण्णेणं सत्थवाहेणं
अव्भणुन्नाया समाणी हट्टुत्तु जाव हियया विपुलं असणपाण
खाइमसाइमं उवक्खडावेइ उवक्खड्ढावित्ता सुवहुं पुप्फगंधवत्थम-
ल्लालंकारं गेणहइ गेण्हित्ता सयाओ गिहाओ निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता
रायगिहं नयरं मज्झं मज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव पोक्ख-
रिणी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पुक्खरिणीए तीरे सुवहु
पुप्फजाव मल्लालंकारं ठवेइ, ठवित्ता पुक्खरिणिं ओगाहइ, ओगा-
हित्ता जलमज्जणं करेइ जलकीडं करेइ, करित्ता ण्हाया कयवलिकम्मा
उल्लपडसाडिगा जाइं तत्थ उप्पलाइं जाव सहस्सपत्ताइं ताइं
गिण्हइ गिण्हित्ता पुक्खरिणीओ पच्चोरुहइ पच्चोरुहित्ता जेणमेव
नागघरए य जाव वेसमणघरइ य तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता
तत्थ णं नागपडिमाण य जाव वेसमणपडिमाण य आलोए पणाम-
करेइ करित्ता ईसिं पच्चुन्नमइ पच्चुन्नमित्ता लोमहत्थगं परामुसइ
परामुसित्ता नागपडिमाओ य जाव वेसमणपडिमाओ य लोमहत्थ-

भोगाङ्गं पञ्चणुभवमाणी विहरामि, नो चेव णं अहं दारगं वा दारिणं
 पयायामि, तं धन्नाओ णं ताओ अम्मयाओ जाव सुलद्धेणं माणुस्सए
 जम्मजीवियफले तासिं अम्मयाणं जासिं मन्ने णियगकुच्छिसंभूयाइं
 थणदुद्धल्लु द्धयाइं महुरसमुद्धावगाइं मम्मंणपयंपियाइं थणमूलक-
 कखदेसभागं अभिसरमाणाइं मुद्धयाइं थणयं पिवंति, तओ य
 कोमलकमलोवमेहिं हत्थेहिं गिण्हिउणं उच्छंगे निवेसियाइं देति
 समुद्धावए पिए सुमदुरे पुणोरे संजुलप्पभणिए, तं अहन्नं अधन्ना
 अपुत्ता अलक्खणा अकयपुत्ता एत्तो एगमवि न पत्ता, तं सेयं मम
 कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए जाव जलंते धणं सत्थवाहं आपुच्छित्ता
 धण्णेणं सत्थवाहेणं अब्भणुत्ताया समाणी सुवहुं विपुलं असण-
 पाणखाइमसाइमं उवक्खंडावेत्ता सुवहुं पुप्फवत्थगंधमल्लालंकारं
 गहाय बहूहिं मित्तनाइ नियगसयणसंबंधिपरिजणमहिलाहिं सद्धिंसं-
 रिबुडा जाइं इमाइं रायगिहस्स नयरस्स बहिया णागाणि य भूयाणि य
 जक्खाणि य इंदाणि य खंदाणि य रूद्धाणि य सिवाणिय वेसमणाणि
 य तत्थ णं य बहूणं नागपडिमाण य जाव वेसमणपडिमाण य मह-
 रिहं पुप्फच्चणियं करेत्ता जाणुपायवडियाए एवं वडत्तए—जइ णं अहं
 देवाणुप्पिया ! दारगं वा दारिणं वा पयायामि तो णं अहं तुब्भं
 जायं च दायं च मायं च अक्खयणिहिं च अणुवड्ढेमि ति कहु उव-
 याइयं उवयाइत्तए, एवं संपेहित्ता कल्लं जाव जलंते जेणामेव धण्णे
 सत्थवाहे तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता एवं वयासी—एवं खल्लु

आध्यात्मिकः=आत्मनि विचारः यावत् समुदपद्यत—अहं खलु धन्येन सार्थ
 वाहेन सादं वह्नि वर्षाणि तावत्—वहुवर्षपर्यन्तं शब्दस्पर्शरसरूपात्मकान्
 मानुष्यकान् कामभोगान् 'पञ्चगुणभवमाणी' मत्यनुभवन्ती=परिशुज्जाला
 विहरामि=तिष्ठामि किन्तु नोचैव खलु अहं दारकं वा दारिकां वा प्रजन-
 यामि, तत्-धन्याः खलु ता अम्वा यावत् मूलव्यं खलु मानुष्यकं जन्म-
 जीवितफलं तासामम्बानां यासां मन्ये निजककुक्षिसम्भूताः स्तनदुग्धलुब्धा
 मधुरसमुल्लापका 'मम्मणपत्रं पिपाइं' मम्मणपत्रलिपताः— 'मम्मण' इति
 खलत् प्रजल्पितं येषां ते 'तथा यणमूलकवत्त्वदेसभागं अभिसरमाणाइं'
 स्तनमूलकवत्त्वदेसभागमभिमरन्तः— स्तनमूलात्=स्तनमूलभागात् कक्षदेश-

रुवे अङ्गतिथिए जाव समुपज्जित्था) इस प्रकार यह आध्यात्मिक यावत्
 मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ कि (अहं) मैं (धन्येण सत्यवाहेण सदिं) धन्य
 सार्थवाह के साथ (वह्नि) बहुत वर्षों से (सदफरिसरसगंधरूपाणि माणुस-
 गाइं कामभोगइं पञ्चगुणभवमाणी विहरामि) शब्द, स्पर्श, रस, गंध,
 और रूप स्वरूप मनुष्यभव संबंधी काम भोगों को भोग रही हुई हूं।
 (नो चैव णं अहं दारगं वा दारिगां वा पयायामि) परन्तु अभां तक मेरे
 न लडका ही हुआ है और न लडकी ही (तं धन्नाओ णं ताओ अम्म-
 याओ जाव सुलदेणं माणुससए मण्णे जम्मजी वियफलेतासि अम्मयाओ)
 अतः मैं उन माताओं को धन्य मानती हूं, उन्हीं का जीवन सफल
 समजती हूं, और यह मानती हूं कि उन्हींने अपने मनुष्य भव सम्बन्धी
 जन्म का और जीवन का फल पाया है। (जासि नियगकुच्छिसंभूयाइं-
 यणदुद्धलुब्धयाइं मधुरसमुल्लावगाइं मम्मणयं पिपाइं यणमूलकवत्त्वदेसभागं

धन्य सार्थवाहनी साथे (वह्नि वासाणि) णु वर्षोथी (सदफरिसरसगंध-
 रूपाणि माणुसगाइं कामभोगाइं, पञ्चगुणभवमाणी विहरामि)
 शब्द, स्पर्श, रस, गंध अने इपना मनुष्यभावना कामलोगो लोगवी रही छुं.
 (नो चैव णं अहं दारगं वा दारिगां वा पयायामि) पञ्च अत्यार सुधी भारे पुत्र के,
 पुत्रीकंधं यथुं नथी. (तं धन्नाओ णं ताओ अम्मयाओ जाव सुलदेणं माणुससए
 मण्णे जम्मजीवियफले तासि अम्मयाओ) हूं ते माताओने धन्य समभुं
 छुं, तेमना एवनने न सइण भातुं छुं, के नेमने मनुष्यभावना जन्म
 अने एवननां सइण इण मज्जां छे (जासि नियगकुच्छिसंभूयाइं यण दुद्धलुब्धयाइं
 मधुरसमुल्लावगाइं मम्मणयं पिपाइं यणमूल-कवत्त्वदेसभागं अभिसरमाणाइं

एणं पमज्जइ पमज्जिता उदगधाराए अच्चुक्खेइ, अच्चुक्खित्ता
 पम्हलसुकुमालाए गंधकासाइयाए गायाइं ल्हहेइ, ल्हहित्ता महरिहं
 वत्थारुहणं च मल्लारुहणं च गंधारुहणं च चुन्नारुहणं च करेइ, करित्ता
 जाव धूवं उहइ, उहित्ता जाणुपायवडिया पंजलिउडा एवं वयासी-
 जइणं अहं दारगं वा दारिगं वा पयायामि तो णं अहं आयं च जाव
 अणुवड्ढेमि त्तिकट्टं उवाइयं करेइ, करित्ता जेणेव पोक्खरिणी तेणेव
 उवागच्छइ, उवागच्छित्ता विउलं असणं४ आसाएमाणी जाव विह-
 रइ, जिमेया जाव सुईभूया जेणेव सए गिहे तेणेव उवागया, अदु-
 त्तर च णं भद्दा सत्थवाही चाउइसट्टमुद्धिट्टुपुन्नमासिणीसु विउलं
 असणं४ उवक्खडेइ, उवक्खडित्ता वहवे नागा य जाव वेसमणा य
 उवायमाणी जाव एवं च णं विहरइ ॥सु० ५॥

टीका—‘तएणं तीसे’ इत्यादि । ततःखलु तस्याः भद्राया भार्याया अन्यदा
 कदाचित् ‘पुंवरत्तावरत्तकालसमयंसि’ पूर्वरात्रापररात्रकालसमये=रात्रेः पश्चिमे
 भागे ‘कुडुं वजागरियं’ कुडुंभवजागरिकां=कुडुंभवसम्बन्धिविन्तया निद्रास्यरूपां
 जागरणम् ‘जागरमाणीए’ जाग्रत्याः=कुर्वत्याः अयमेतद्रूपः ‘अज्झत्थिए’

‘तएणं तीसे भद्दाए भारियाए’ इत्यादि ।

टीकार्थ—(तएणं) इसके बाद (तीसे भद्दाए भारियाए) उस भद्रा भार्या
 को (अन्नया कयाइं) किसी एक समय (पुंवरत्तावरत्तकालं समयंसि) रात्रि
 के पूर्वभाग के बाद पश्चाद्भाग में (कुडुं वजागरियं जागरमाणीए) कुडुंभव
 की विन्ता से निद्रा नहीं आने के कारण जगती हुई स्थिति में (अयमेया-

‘तएणं तोसे भद्दाए भारियाए’ इत्यादि ॥

टीकार्थ—(तएणं) त्सार भाइ (तीसे भद्दाए भारियाए) भद्रा भार्याने
 (अन्नया कयाइं) डोड वधते (पुंवरत्तावरत्तकालसमयंसि
 रात्रिना पूर्वं लागनी पछी पश्चाद्भागंभां (कुडुं वजागरि यं जागरमाणीए)
 कुडुंभनी चिंताने दीधे उधं न आवतां न्यथावस्थाभां (अय-
 मेयारूवे अज्झत्थिए नाव समुपजित्था) आ नतने आध्यामिक आवत्
 भनेगत संकल्प उद्भवोः (अहं) दुं (धन्नेण सत्थवाहेण सद्धिं)

सञ्चितपुण्याऽग्नि 'एतो' इतः पूर्वमद्यावधि=एपां मध्याद् एकमपि शिशुं
 चेष्टनकलापादेकमपि चेष्टनमेकमपि शिशुं वा न प्राप्ता 'तंतत्=तस्मात्कार-
 णात् 'सेयं' श्रेयः=श्रेयस्करं शोभनं मम कल्ये प्रादुष्यभातायां रजन्यां
 यावत् 'जलति' ज्वलते'=सूर्योदये सति धन्यं सार्थवाहमापृच्छय धन्येन सार्थवाहेन
 'अम्भणुन्नाया' अभ्यनुज्ञाता=प्राप्तनिदेशा सती 'सुवहुं'=प्रकारवहुलं 'विपुलं'
 विपुलं=पचुरम् अशनपानखाद्यस्वाद्यम् 'उक्त्वखडावेत्ता=उपस्कार्यं चतुर्विध-
 माहारं निष्पाद्य 'सुवहु' सुवहुम्=वहुप्रकारकं पुष्पवस्त्रगंधमाल्यालंकारं गृहीत्वा
 बहुभिर्भिव्रजातिनिजकस्वजनसम्बन्धिपरिजनमहिलाभिः साद्धं संपरिवृता

है ऐसी हूं जो अभी तक इस प्रकार की चेष्टा संपन्न बालों में से एक भी चेष्टा
 विशिष्ट और मीठी तोतली वाणी बोलने वाले शिशु को नहीं पा सकी हूँ। (तं सेयं
 मम कल्लं पाउष्पाभायाएः रयणीए जाव जलंते धण्णं सत्थवाहं आपुच्छित्ता
 धण्णेणं सत्थवाहेणं अम्भणुन्नाया समाणी सुवहुं विपुलं असणपाण-
 खाइमसाइमं उक्त्वखडावेत्ता) तो अब मुझे यही श्रेयस्कर है कि मैं कल
 प्रभात होते ही— सूर्यके उदित होने पर धन्यसार्थवाह से पूछकर और
 उनकी आज्ञा प्राप्त कर अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य इस तरह चार
 प्रकार का आहार निष्पन्न करा कर (सुवहुं पुष्पवस्त्रगंधमल्लालंकारं गहाय
 बहुहिं मित्त नाइ-नियग-सयण-संवंधि-परिजनमहिलाहिं सद्धिं संपरिवुडा-
 जाइं इमाइं रायगिहस्स नयरस्स बहिया णागाणि य भूयाणि य जक्खाणि य
 इंदाणि य खंदाणि य रुदाणि य) और पुष्प, वस्त्र, गंध, माला, एवं
 अलंकार को लेकर अपने अनेक मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन संवन्धी

हुं छुं, डेभडे डल्ल येवी णाण येएओ इरनार णाणकोभांथी भे' ओके पणु णाणक
 भेणवु' नथी. (तं सेयं मम कल्लं पाउष्पाभायाए रयणीए जाव जलं
 ते धण्णं सत्थवाहं आपुच्छित्ता धण्णेणं सत्थवाहेणं अम्भणुन्नाया समाणी
 सुवहुं विपुले असणपाणखाइमसाइमं उक्त्वखडावेत्ता) येवी स्थितिभां
 भने ये ए उचित लागे छे डे आवती डाले सवारे सुरण उदय पामतां धन्य
 सार्थवाहने पूछिने तेभनी आज्ञा भेणवीने अशन, पान आद्य अने स्वाद्य आ रीते
 थार नतने आहार तैयारकरावडावीने (सुवहुं पुष्पवस्त्रगंधमल्लालंकारं
 गहाय बहुहिं मित्तनाइनियगसयणसंवंधिपरिजनमहिलाहिं सद्धिं
 संपरिवुडा जाइं इमाइं रायगिहस्स नयरस्स बहिया णागाणि य भूयाणि य
 जक्खाणि य दाणि य खंदाणि य रुदाणि य वेसमणाणि य) अने पुष्प वस्त्र,
 गंध भाणा अने धरेणुंओ साथे लधने अनेक मित्र, ज्ञाति, निजक स्वजन संवन्धी

भागम् अभिरन्तः=मग्मुखं सञ्चरन्तः सन्तः 'सुद्धयाइ' सुग्धाः=मनोहराः
 शिशवः 'धणयं' पिवन्ति, स्तनजं=दग्धं पिवन्ति स्तन्यपानं कुर्वन्तीत्यर्थः ।
 ततश्च ते 'कोमलकमलोवमेहिं' कोमलकमलोपमाभ्यां=सुकुमालकमल-
 सदृशाभ्यां हस्ताभ्यां गृहीत्वा 'उच्छंगनिवेशियाइं' उत्सङ्गनिवेशिताः=अङ्गे
 स्थागिताः सन्तः स्तनन्धया मातृभ्यः 'देति' ददति, किमित्याह—'समु-
 द्धावे' समुद्रापहान्, संजल्पान् कीदृशान् ? इत्याह—'पिए' पियान् प्रीति-
 जनकान् 'सुमहुरे' सुमधुरान्=कर्णसुखजनकान् 'पुणो पुणो मंजुलपभणिए'
 पुनः पुनर्मंजुलप्रभणितान्=वारंवारं कोमलाक्षरप्रयुक्तजल्पितान् ददति प्रियम-
 ङ्गुलभापया भापन्ते धन्या इत्यर्थः। 'तं' तत्-किन्तु अहं खलु 'अधन्ना'
 अधन्या=अकृतार्था 'अपुण्णा' अपुण्या=पुण्यहीना, 'अलखणा'='अक्षणा
 =कुलक्षणा 'अकयपुण्णा' अकृतपुण्या=न कृतं पूर्वभवे पुण्यं यया सा पूर्वभवाऽ

अभिसरमाणाइं सुद्धयां धणयं पिवन्ति) कि जिनकी कुक्षिसे उत्पन्न स्तन
 के दग्ध में लुब्ध, मीठी रसोत्तरी बोलते हुए बालक शिशु स्तन के
 मूल भाग से कक्ष देश पर्यन्त सरक कर दूध पीते हैं। (तओ य
 कोमलकमलोवमेहिं इत्येहिं गिण्डिकुणं उच्छंगे निवेशियाइं) और माता
 उन्हें अपने सुकुमार तथा कमल जैसा दोनों हाथों से पकड़ कर उत्संग
 में बैठाती है। और वे स्तनन्धय-बालक (समुद्रलावए देति) उन अपनी
 माताओं को इस प्रकार के आलापों को देते हैं (पिए सुमहुरे पुणो र
 मंजुलपभणिए) जो मोति जनक होते हैं, कर्ण सुखजनक होते हैं
 और जिनमें वारं वार कोमल अक्षरवाली वाणी होती है। (तं अहन्नं अधन्ना
 अपुण्णा अलखणा अकयपुण्णा एत्तोएगमवि न पत्ता) किन्तु मैं तो अधन्य
 हूँ, पुण्यहीन हूँ-कुलक्षणा हूँ अकृत पुण्या हूँ पूर्वभव में पुण्यजितने नहीं हिया

सुद्धयाइं धणयं पिवन्ति) એણે માણું છે કે જેમના ઉદરે જન્મેલું, સ્તન પાન
 માટે ઉલકિત, મીઠું મીઠું અને તોતડું બોલતું બાળક સ્તનો સુધી—પડખા સુધી
 ધસી આવીને દૂધ પીવે છે. (તઓ ય કોમલકમલોવમેહિં इत्येहिं
 गिण्डिकु उच्छंगे निवेशियाइं) અને માતા તેને કમળ જેવા અને હાથોમાં
 ઉચકીને જોખામાં બેસાડે છે. તે બાળકો પણ (સમુદ્રલાવए देति) માતાઓની
 સાથે એવી રીતે કાલુ કાલુ બોલે છે કે (पिए सुमहुरे पुणो र मंजुलपभणिए)
 જે અત્યંત પ્રેમ જનક હોય છે, કાનોને સુખકર હોય છે. તેની વાણી કોમલ
 અક્ષરથી યુક્ત હોય છે. (तं अहन्नं अधन्ना अपुण्णा अलखणा
 अकयपुण्णा एतो एगमवि न पत्ता) પણ હું તો અભાગી છું, પુણ્ય હીન છું,
 કુલક્ષણ છું, અકૃત પુણ્ય છું, જેણે પૂર્વભવ જન્મમાં પુણ્ય કર્યો જ નથી એવી

યાનીમાનિ રાજગૃહસ્ય નગરસ્ય વદ્ધિઃ 'નાગાણિ ચ' નાગાનિચ-નાગગૃહાણો-
ત્યર્થઃ, एवं सर्वत्र विज्ञेयम्: भूतानि च-भूतगृहाणि, यक्षाणि च यक्षगृहाणि,
इन्द्राणि च-इन्द्रगृहाणि, स्कन्दानि च-स्कन्दगृहाणि, रुद्राणि च-रुद्रगृहाणि
शिवानि च-शिवगृहाणि, वैश्रमणानि च-वैश्रमणगृहाणि सन्ति, तत्र खलु बहूनां
नागपत्निमानां च यावत् वैश्रमणप्रतिमानां च 'महरिहं' महाहो.
बहुमूल्यां 'पुष्पचणियं' पुष्पार्चनिकां=कुसुमसेवां कृत्वा, जाणुपायवडियाए
जानुपादपतितायाः—पादयोः पतिता-पादपतिता. जानुभ्यां पादपतिता जानु-
पादपतिता=जानुनी भूमौ विन्यस्य प्रणेत्यर्थः. तस्या मम एवं वक्ष्यमाण-
प्रकारेण चकुं=पार्थयितुं श्रेयः 'श्रेयः' इति पूर्वेण सम्बन्धः । तदेव दर्श-
यति--'जइ णं अहं' इत्यादिना,—यदि खलु अहं देवानुप्पिया ! 'दारगं
दारकं=निजकुक्षिसंजातं पुत्रं दारिकां वा=पुत्रीं वा, पयायामि' प्रजनयामि
प्रजनयिष्यामीत्यर्थः 'तो णं' तर्हि खलु अहं युष्मभ्यं 'जायं' यागं=सेवां

परिजनોં કી મહિલાઓં કે સાથ મિલકર રાજગૃહનગર કે વાહર જિતને
भी नागघर हैं, जितने भी भूत घर हैं, जितने भी यक्ष घर हैं,
जितने भी इन्द्र घर हैं, जितने भी स्कन्द घर हैं, जिनने भी रुद्रघर
हैं, जितने भी शिवघर हैं, जितने भी वैश्रमणघर है— और
(तत्थणं वयणं नागपडिमाण य जाय वेसमणपडिमाण य) उनमें जिननी
नाग देव की प्रतिमाएँ हैं यावत् वैश्रमण देव प्रतिमाएँ हैं उन सबको
(महरिहं पुष्पचणियं करिना) बहुमूल्य पुष्पों से अर्वा करके (जाणुपाय-
वडियाए एवं वइत्तए) उनके पैरों में दोनों छुटने झुकाकार पडजाउँ और
उनसे ऐसी पार्थना करूं (जइणं अहं देवानुप्पिया ! दारगं वा दरिगं वा
पयायामि तो णं अहं तुष्मं जायं च दायं च मायं च अक्खयणिहिं च

પરિજનોની મહિલાઓની સાથે રાજગૃહ નગરની બહાર જેટલાં નાગ ઘરો છે, જેટલાં
ભૂતઘરો છે, જેટલાં યક્ષ ઘરો છે, જેટલાં રુદ્ર ઘરો છે, જેટલાં ઇન્દ્ર ઘરો છે,
જેટલાં યક્ષ ઘરો છે, જેટલાં રુદ્ર ઘરો છે, જેટલાં શિવઘરો છે, અને જેટલાં
વૈશ્રમણ ઘરો છે તેમજ (તત્થણં વહૂણં નાગપાડિમાણ ય જાવ વેસમણ
પડિમાણ ચ) તેઓમાં જેટલાં નાગ દેવથી માંડીને વૈશ્રમણ દેવ સુધીની પ્રતિમાઓ
છે, તે બધી પ્રતિમાઓની (મહરિહં પુષ્પચણિયં કરિત્તા) બહુમૂલ્ય પુષ્પોથી પૂજા કરીને
(જાણુપાયવડિયાए एवं वइत्तए) તેમના ચરણોમાં બંને પૂંટથી ટેકીને પડી
જાઉં અને તેમને વિનંતી કરું કે (જइणं अहं देवानुप्पिया ! दारगं वा
दारिगां वा पायायामि तो णं अहं तुष्मं जायं च दायं च मायं च अक्ख-

'दायच' दायं=दानम् अभयदानादिकं, पचाद्वसादिदानं वा, 'भायंच' भारां
वर्द्धयामि-प्रभृतद्रव्यमर्पयिष्यामीत्यर्थः, 'तिवहु' इति कृत्वा=इत्युक्त्वा
'उवाइयं' उपयाचितम्=अपत्यप्राप्तिपार्थनारूपां मान्यतां 'मनौती' इति
प्रसिद्धाम् 'उवायइत्तर' उपयाचितुं=कर्तुं 'श्रयः' इति पूर्वेण सम्बन्धः । एवं
सम्प्रेक्षते, सम्प्रेक्ष्य कल्पे यावज्ज्वलति यत्रैव धन्यः सार्थवाहस्तत्रैवोपा-
गच्छति, उपागम्य एवमवादीत--एवं खलु अहं देवानुप्रियाः ! युष्माभिः

अणुवहुमि) यदि मैं हे देवानुप्रियों ! अपनी कुक्षिसे पुत्र या पुत्री
को जन्म दूंगी तो मैं आपकी सेवा करूंगी—आपके निमित्त अभय-
दानादिकका वितरण करूंगी, अथवा पूर्व दिनों में दान आदि वांटने
की व्यवस्था करदूंगी । अपने हिस्सेमें आपके लिये विभाग अलग
तथा आपके अक्षय कोष की वृद्धि करवादूंगी—तात्पर्य इसका यह है
कि मेरी मनो कामना पूर्णहोने पर मैं प्रभृत द्रव्य आप सबके लिये
अर्पित करूंगी । (त्ति क् उवाइयं उवायइत्तर) इस तरह की मुझे
उनके पास मनौती—मानता—मनाने में मेरी भलाई है । (एवं संपेहेइ)
इस प्रकार का उसने विचार किया । (संपेहित्ता) और विचार कर (कल्लं-
जावजलंते जेणामेव धण्णे सत्थवाहे तेणामेव उवागच्छइ) वह दूसरे दिन
(उसी दिन) मातः काल होते ही मुर्य के प्रकाशित होने पर जहां
अपने पति धन्य सार्थवाह थे वहां गई । (उवागच्छत्ता एवं वयासी)
वहां जाकर उसने उनसे ऐसा कहा—(एवं खलु अहं देवाणुप्पिया !

याणिहिं च अणुवहुमि) हे देवानुप्रियो ! ने भारा उदरथी पुत्र के पुत्री जन्मथे
तो हुं आपनी पूज करीश. आपना निमित्ते अलभयदान वगेरे करीश, अथवा
तो पडेदाना द्विसोभां दान वगेरे वडेयवानी व्यवस्था करीश. भारा द्विस्सामां ने
कंथ आवशे तेभांथी तभारे लाग लुद्धे भूडावडावीश. तेभज तभारा अक्षय निधिनी
पणु हुं वृद्धि करीश. मतलण ये छे के ने भारी मनोडामना पूरी थशे तो हुं
प्रभृत द्रव्य तभारा थरखोभां लेट इपे अर्पणु करीश. (त्तिकहुं उवाइयं उवाय
इत्तर) आ नतनी मान्यताभां ज भने हुवे भाउं श्रेथ जणुथ छे. (एवं संपेहेइ)
आ प्रभाणु तेणु विचार कथो. (संपेहित्ता) अने विचार करीने (कल्लं जाव जलंते
जेणामेव धण्णे सत्थवाहे तेणामेव उवागच्छइ) थीने द्विसे अवारे सुथीदथ
थतां ज नथां पोताना पति धन्य सार्थवाहु हुता त्यां गथ. (उवागच्छत्ता
एवं वयासी) त्यां जधने तेने आम कहुं— (एवं खलु अहं देवाणुप्पिया !

साद् वह्नि वर्षाणि यावद् ददति समुल्लापकान् सुमधुरान् पुनःपुनर्मञ्जुल-
 मभणितान् तत् खलु अहमधन्या, अपुण्या, अकृतलक्षणा, इत एकमपि न
 प्राप्ता, तद् इच्छामि खलु देवानुप्रिय ! युष्माभिरभ्यनुज्ञाता सती विपुल-
 शनं ४ यावद् अनुवर्द्धयामि, (त्तिट्टु) इतिकृत्वा=इत्युक्त्वा उपयाचितं
 तुम्हेहिं सद्धिं वह्निं वासा जाव देति समुल्लावए सुमहुरे) हे देवानु-
 प्रिय ! आपके साथ बहुत वर्षों से मैं मनुष्य भवसंवन्धी काम भाग
 भोग रही हूँ परन्तु अभी तक मेरे यहां न कोई लडका हुआ है और
 न कोई लडकी वे माताएँ धन्य हैं जो संतान से युक्त हैं एवं उनकी
 तोतली मधुर बोली से जो अपने को प्रसन्न रखती हैं—इत्यादि कह
 कर फिर उसने कहा (अहं अहन्नाअपुण्या अलक्खणा एत्तो एगमवि न पत्ता)
 मैं अधन्या हूँ अपुण्या हूँ पूर्व में मैंने कोई भी ऐसा पुण्य नहीं किया
 है, जिससे मेरे यहां तो लडका लडकी मेंसे कोईभी नहीं है—
 (तं इच्छामि णं देवाणुप्पिया ! तुम्हेहिं अब्भणुत्ताय समाणा विपुलं
 असणं ४ जाव अणुवड्ढेमि त्तिट्टु उवयाइयं करेत्तए) इसलिए हे देवानु-
 प्रिय ! मैं आपसे आज्ञापित होकर यह चाहती हूँ। की चारों प्रकार
 का आहार विपुल मात्रा में तैयार कराकर तथा गंध पुष्पादिलेकर
 अनेक मात्रादिक महिलाओं के साथ यहां के जितने भी इन्द्रादिकों के
 घर हैं उन सब की पुष्पार्चाकर उन के चरणों में पड़कर संतान होने
 की मनाती (मानता) मनाऊँ—। इस इच्छा के पूर्ण होने पर फिर मैं
 तुम्हेहिं सद्धिं वह्निं वासाइं जाव देति समुल्लावए सुमहुरे)
 हे देवानुप्रिय ! तमारी साथे बहुत लांणा वषट्ठी हूँ मनुष्यत्वना कामलोगो
 लोगवी रही छुं, पणु डल्लु मारे पुत्र के पुत्री भांथी कंथ थयुं नथी, आ संसारमां
 संतानवाणी माताओ ४ लाज्यथाणी गणाय छे, के जेभनां नानां नानां आणके
 तोतली मधुर वाणी द्वारा तेभने सुथ सजे छे, (अहं अहन्ना अपुण्या
 अलक्खणा एत्तो एगमवि न पत्ता) हूँ तो अलागी छुं, पापिणी छुं, पूर्वत्वमां
 में संतान थाय आबुं कंथ पुण्य कथं कथुं नथी, (तं इच्छामि णं देवाणुप्पिया !
 तुम्हेहिं अब्भणुत्ताया समाणा विपुलं असणं जाव अणुवड्ढेमि त्ति ट्टु
 उवयाइयं करेत्तए) हूँ तमारी आज्ञाथी पुष्प प्रमाणमां थारे वतना आडार
 जनावशवीने तेभज गंध पुष्प वगेरे लधने अनेक महिलाओनी साथे अडिंयां
 जेटलां धन्ना वगेरे देवाना धरे छे ते जधानी पुष्प वगेरेथी पूज करी तेभना
 अरओमां पडीने संतानवती थवानी मानतां सधुं, न्यारे मारी आ मनेकामना

कर्तुं श्रेयः । ततः खलु धन्यः सार्थवाहो भद्रां भायामोविमवादात्-ममापि च खलु हे देवानुप्रिये ! एष एव मनोरथः' यथा—'कहं णं' कथं खलु केनोपायेन त्वं दारकं वा दारिकां च मजनयिष्यसि ? इति कथयित्वा सार्थवाह्यः 'एयं' एतम्=मनोरथरूपम् अर्थम् 'अणुजाणइ' अनुजानाति=अनुमोदयति । ततः खलु सा भद्रा सार्थवाही धन्येन सार्थवाहेन अभ्यनुज्ञाता सती 'हृदुतुद्धा जाव हियया' हृष्ट तुष्ट यावत्-हृष्टतुष्ट चिन्तानन्दिता हर्षवशविसर्प-दृहृदया विपुलमशनपानखाद्यस्वाद्यमुपस्कारयति, उपस्कार्य सुचहुं

अभयदानादिक का वितरण करूं इत्यादि । इस तरह उपयुक्त सब अपनी भावना उस भद्रा भार्याने धन्य सार्थवाह से निवेदित की । (तए णं धन्ने सत्थवाहे भदं भारियं एवं वयासी) इस प्रकार धन्य सार्थवाह ने अपनी भद्राभार्या की भावना सुनकर उससे ऐसा कहा—(ममंपि णं खलु देवानुप्पिया ! एस चेव मणोरहे) हे देवानुप्रिये मेरा भी ही मनोरथ है किं (कहं णं तुमं दारगं दारियं वा पयाएज्जसि) तुम किस उपाय से दारक या दारिका को जन्म दोगी ! इस प्रकारकहकर (भद्राए सत्थवाहीए एयमट्टमणुजाणइ) धन्य सार्थवाहने उस भद्रा सार्थवाही के इस मनोरथरूप अर्थ को स्वीकार कर लिया उसकी अनुमोदना की । (तए णं सा भद्रा सत्थवाही धन्नेणं सत्थवाहेणं अब्भणुन्नाया समाणी हृदुतुद्ध जाव) इसके बादभद्रा सार्थवाहीने अपने पति धन्य सार्थवाह से आज्ञा प्राप्त कर बहुत अधिक हर्षित एवं सन्तुष्ट चित्त होते हुए (विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं उववखडावेइ) विपुलमात्रा में अशन पान खादिम और

सङ्गण थध नथ त्तारे हुं अलथदान वगेरे वडेयुं आ प्रभाणुे लद्रा लाथांथ्ये तेना पति धन्यसार्थवाहने विनंती करी. (तए णं धन्ने सत्थवाहेभदं भारियं एवं वयासी) आ प्रभाणुे धन्य सार्थवाहे तेमनी लद्रा लाथांथी वात सांलणीने तेने आ प्रभाणुे कहुः— ममंपि खलु देवानुप्पिया ! एसचेव मणोरहे) हे देवानुप्रिये भारी पणु धंथ्छा थ्येवी न छि डे(कहं णं तुमं दारगं दारियं वा पयाएज्जसि) डेवी रीते तमे पुत्र डे पुत्रीने न-भ आपी थडे? आ रीते डडीने (भद्राए सत्थवाहीए एयमट्टमणुजाणइ) धन्यसार्थवाहे तेमनी लद्रा लाथांथी वात स्वीडारी थने तेने अनुमति आपी. (तए णं सा भद्रा सत्थवाही धन्नेणं सत्थवाहेणं अब्भणुन्नाया समाणी हृदु तुद्ध जाव) त्थारणाड लद्रासार्थवाहीथ्ये तेमना पति साथवाहनी आज्ञा भेणवीने अत्यंत प्रसन्नता : अनुलवीने थने संतुष्ट थधने तेणुे (विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं उववख-डावेइ) पुष्कण प्रभाणुभां अशन, पान, पादिम स्वादिम आहार त्थार करवडांथ्ये

पुष्पगन्धवत्पुष्पमालाङ्कारं गृह्णाति, गृहीत्या स्वच्छाद् गृह्णातिर्गच्छति. निर्गत्य राजगृहं नगरं मध्यममध्येन निर्गच्छति, निर्गत्य यत्रैव पुष्करिणी तत्रैवोपागच्छति, उपगत्य पुष्करिण्यास्तीरे सुवह्नुं पुष्पगन्धवत्पुष्पमालाङ्कारं स्थापयति, स्थापयित्वा पुष्करिणीमवगाहते, अगाद्य जलमज्जनं करोति, कृत्वा जलक्रीडां करोति, कृत्वा स्नाना कृतयत्निकर्मा 'उल्लपडसाडिगा' आर्द्रपटशाटिका=जलावगाहनेन आर्द्रे पटशाटिके=उत्तरीयपरिधानवच्छे यस्याः सा तथ, तादृशी सा यानि तत्र 'उप्पलाइं' उत्पलानि=कमलानि 'जाव सहस्सपत्ताइं' यावत्सहस्रपत्राणि=सहस्रदलकल्पितानि महापत्राणि सन्ति तानि

स्वादिम आहार तैयार कराया-(उक्खल्लडाविचा सुवह्नुं पुष्पगन्धवत्पुष्पमलालंकारं गेण्हइ) चाद मे पुष्प गंध वत्त माला अलंकार को लिया और (गेण्हिता) लेकर (सयाओ गिहाओ) अपने घर से (निगच्छइ) वह (निकळी-निग्गच्छित्ता रायगिहं नगरं मज्झं मज्झणं णिग्गच्छइ) निकल कर राजगृह नगर के ठीक बीचोबीच मार्ग से हो कर वह चली (निग्गच्छित्ता जेणेव पोक्खरणीतेणेव-उवागच्छइ) चलतेर वह वहां पहुँची जहां पुष्करिणी थी। (उवागच्छित्ता पुक्खरिणीए तीरे सुवह्नुं पुष्पजावमलालंकरं ठवेइ) पहुँचते ही उसने उस पुष्करिणी के तीर पर वह चारों प्रकार के आहार को सामग्री तथा पुष्प आदि सब वस्तुएँ रख दी (ठवित्ता पुक्खरिणि ओगाहइ) रख कर फिर उसने उस में अवगाहन किया (ओगाहित्ता जलमज्जनं करेइ) अवगाहन कर स्नान किया (जलक्रीडा करेइ) जल क्रीडा को (करित्ता ण्हाया कयवल्लिक्कमा उल्लपडसाडिगा जाइं तथ उप्पलाइं जाव सहस्सपत्ताइं ताइं-

(उक्खल्लडाविचा सुवह्नुं पुष्पगन्धवत्पुष्पमलालंकारं गेण्हइ) त्सारपथी पुष्प, वत्त, भाणा अने अलंकारोने लीया अने (गेण्हिता) लधने (सयाओ गिहाओ) पोताना घेरथी (निगच्छइ) ते ण्हार नीक्खी (निग्गच्छित्ता रायगिहं नगरं मज्झं मज्झणं णिग्गच्छइ) नीक्खीने राजगृह नगरनी ठीक वत्थो वत्थ रस्तेथी ते आली (निग्गच्छित्ता जेणेव पोक्खरणी तेणेव उवागच्छइ) आलतां आलतां न्यां पुष्करिणीं इती त्यां पडोन्थी. (उवागच्छित्ता पुक्खरिणीए तीरे सुवह्नुं पुष्प जाव मलालंकार ठवेइ) त्यां पडोन्थीने तेण्ण पुष्करिणीनां कडे आरे वतना आण्हारनी सामग्री वगेरे णधी वस्तुणो भूडी धीधी. (ठवित्ता पुक्खरिणि ओगाहइ) भूडीने ते पुष्करिणीमां उतरि (ओगाहित्ता जलमज्जनं करेइ) त्यां उतरिने तेण्ण स्नान क्खुं (जलक्रीडा करेइ) जलक्रीडा करी (करित्ता ण्हाया कयवल्लिक्कमा उल्लपडसाडिगा-जाइं तथ उप्पलाइं जाव सहस्सपत्ताइं ताइं गिण्हइ) त्सार पथी न्यारे तेण्ण

गृह्णन्ति, गृहीत्वा पुष्पां णांतः प्रत्यवरोहति, प्रत्यवरुय तं सुवहं पुष्पगन्ध-
 वल्लमाल्यालङ्कारं गृह्णन्ति, गृहीत्वा यत्रैव नागगृहं च यावद् वैश्रमण-
 गृहं च तद्यैवोपागच्छति, उपागत्य तत्र खलु नागप्रतिमानां च यावद्
 वैश्रमणप्रतिमानांच, 'आलोए' आलोके=दृष्टिपथमागते सति प्रणामं
 करोति, कृत्वा 'ईसि पचुण्णमइ' ईपत्प्रत्युन्नमति=स्तोकं प्रणमति, प्रत्युन्नम्य
 'लोमहत्थगं' लोमहस्तकं=मयूरपिच्छप्रमार्जनकं 'परामुसइ' परामुसति=गृह्णाति

गिण्डइ) वाद में जब वह अच्छी तरह स्नान कर चुकी और काकादि
 पक्षी को अन्नादि को दिया तब गीली पटशाटिका पहिने हुए ही उसने
 वहां जिनने कमल थे यावत् सहस्रपत्र युक्त महाकमल थे उन सबको उस
 पुष्पकरिणी से लिया और (गिह्णित्ता पुक्खरिणीओ पचोरुहइ, पचोरुहत्ता
 तं सुवहं पुष्प गंधवत्थमल्लालंकारं गेणइ, गिण्ड १ जेगामेवनागघरए
 य जाव वेसमणए एय तेणेव उवागच्छइ) लेकर वह उस पुष्पकरिणी से
 बाहर निकली-निकल कर उसने समस्त उन पुष्प, गंध वस्त्र, माला,
 अलंकार आदि को लिया-और लेकर जहां नागघर यावत् वैश्रमण का घर
 था वहां गई (उवागच्छित्ता तत्थणं नागपडिमाण य जाव वेसमणपडिमाण य
 आलोए पणामं करेइ वहुं पहुं च कर उसने वहां नाग प्रतिमाओं को यावत्
 वैश्रमण प्रतिमाओं को दृष्टिपथ होते ही प्रणाम किया। (करित्ता ईसि पचु-
 न्नमइ) प्रणाम कर फिर वह कुछ झुकी-(पचुन्नमिन्ना लोमहत्थग परामुसइ-
 परामुसित्ता नागपडिमाओ य जाव वेसमणपडिमाओ य लोमहत्थएणं पम-

सारी रीते स्नान करी लीधुं' अने डागडा वगेरे पक्षीओने अन्न वगेरेनेो लाग
 आप्थेो त्थारणाड बीनी साडी पडेरीने व तेणु त्थां नेटलां डमणेो, सडुस पत्रवाणा
 मडा डमणेो हुतां ते अधाने पुष्पिणीभांथी लथ लीधां अने (गिण्हत्ता पुक्खरि-
 णीओ पचोरुहइ, पचोरुहत्ता तं सुवहं पुष्पगंधवत्थमल्लालंकारं गेणइ-
 गिण्हत्ता जेगामेव नागघरए य जाव वेसमणघरए य तेणेव उवागच्छइ)
 लधने ते पुष्पिणीनी अडार नीडणी-नीडणीने तेणु अधां पुष्प वस्त्र, गंध, माणा
 अलंकार वगेरे लीधां अने लधने त्थां नागघर वैश्रमणु घर वगेरे हुतां त्थां गध-
 (उवागच्छित्ता तत्थ णं नागपडिमाण य जाववेससेणपडिमाण य आलोए पणामं
 करेइ) त्थां पडेोन्थीने तेणु नाग अने वैश्रमणु वगेरेनी प्रतिमाओने नेतां व प्रणाम क्थीं.
 (करित्ता ईसि पचुन्नमइ) प्रणाम करीने ते नीथी नमी (पचुन्नमिन्ना लोम
 हत्थगं परामुसइ परामुसित्ता नागपडिमाओ य जाव वेसमणपडिमाओ य

पुष्पगन्धवस्त्रपालङ्कारं गृह्णाति, गृहीत्या स्वकाद् गृह्णातिर्गच्छति।
निर्गत्य राजगृहं नगरं मध्यममध्येन निर्गच्छति, निर्गत्य यत्रैव पुष्करिणी
तत्रैवोपागच्छति, उपगत्य पुष्करिण्यास्तीरे सुवह्नुं पुष्पगन्धवस्त्रपालङ्कारं
स्थापयति, स्थापयित्वा पुष्करिणीमवगाहते, अवगाह्य जलमज्जनं करोति,
कृत्वा जलक्रीडां करोति, कृत्वा स्नाना कृतबलिहर्मा 'उल्लपडसाडिगा'
आर्द्रपटशाटिका=जलावगाहनेन आर्द्रे पटशाटिके=उत्तरीयपरिधानवन्ने यस्याः
सा तथ, तादृशी सा यानि तत्र 'उप्पलाइं' उत्पलानि=कमलानि 'जाव स-
हस्सपत्ताइं' जावसहस्रपत्राणि=सहस्रदलकलितानि महापत्राणि सन्ति तानि

स्वादिम आहार तैयार कराया-(उवक्खडाविच्चा सुवह्नुं पुष्पगन्धवस्त्रमल्ला-
लकारं गेह्णइ) चाद् में पुष्प गंध वस्त्र माला अलंकार को लिया और (गेण्डिच्चा)
लेकर (सयाओ गिहाओ) अपने घर से (निगच्छइ) वह (निकली-निग्ग-
च्छिच्चा रायगिहं नगरं मज्झं मज्झं गिग्गच्छइ) निकल कर राजगृह
नगर के ठीक बीचोबीच मार्ग से हो कर वह चली (निग्गच्छिच्चा जेणेव
पोक्खरणीतेणेव-उवागच्छइ) चलतेर वह वहां पहुँची जहां पुष्करिणी थी।
(उवागच्छिच्चा पुक्खरिणीए तीरे सुवह्नुं पुष्पजावमल्लालंकरं ठवेइ) पहुँचते ही
उसने उस पुष्करिणी के तीर पर वह चारों प्रकार के आहार की सामग्री
तथा पुष्प आदि सब वस्तुएँ रख दी (ठविच्चा पुक्खरिणि ओगाहइ) रख
कर फिर उसने उस में अवगाहन किया (ओगाहिच्चा जलमज्जनं करेइ)
अवगाहन कर स्नान किया (जलक्रीडा करेइ) जल क्रीडा को (करिच्चा ण्हाया
कयबलिम्मा उल्लपडसाडिगा जाइं तत्थ उप्पलाइं जाव सहस्सपत्ताइं ताइं-

(उवक्खडाविच्चा सुवह्नुं पुष्पगन्धवस्त्रमल्लालंकारं गेह्णइ) त्थारपछी पुष्प,
वस्त्र, भाणा अने अलंकारोने लीधा अने (गेण्डिच्चा) लधने (सयाओ गिहाओ)
घेताना घेश्ठी (निगच्छइ) ते ण्हार नीकणी (निग्गच्छिच्चा रायगिहं नगरं मज्झं
मज्झं गिग्गच्छइ) नीकणीने राजगृह नगरनी डीक वस्त्रो वस्त्र रस्तेथी ते आली
(निग्गच्छिच्चा जेणेव पोक्खरणी तेणेव उवागच्छइ) आलतां आलतां न्यां पुष्प-
रिष्ठी हुती त्यां पडोन्थी. (उवागच्छिच्चा पुक्खरिणीए तीरे सुवह्नुं पुष्प जाव
मल्लालंकार ठवेइ) त्यां पडोन्थीने तेण्ण पुष्पनिष्ठीनां कोठे आरे नतना आहारनी
सामग्री वगेरे ण्धी वस्तुओ मूडी दीधी. (ठविच्चा पुक्खरिणि ओगाहइ) मूडीने ते
पुष्परिष्ठीमां उतरी (ओगाहिच्चा जलमज्जनं करेइ) त्यां उतरीने तेण्ण स्नान क्खुं
(जलक्रीडा करेइ) जलक्रीडा करी (करिच्चा ण्हाया कयबलिम्मा उल्लपडसाडिगा-
जाइं तत्थ उप्पलाइं जाव सहस्सपत्ताइं ताइं गिण्णइ) त्थार पछी न्थारे तेण्ण

धूपं दहति, दग्धा जानुपादपतिता 'पञ्जलिउडा' प्राञ्जलिपुंटा=संयोजित-
 कादया एवमादीत—'यदि खलु अहं दारकं वा दारिकां वा 'पायायामि=
 प्रजनयामि=प्रजनयिष्यामि तदा खलु अहं यागं च यावत् अनुवक्ष्यामि
 =संवर्द्धयिष्यामि ! 'त्तिरुद्' इति कृत्वा=इत्युक्त्वा उपवाचितं करोति.
 कृत्वा यत्रै पुष्करिणी तत्रैशोपागच्छति, उपागत्य त्रिपुलमशनं पानं खाद्यं
 स्वाद्यमास्वादयन्ती यावद् विहरति। तदनन्तरं सा 'जिमिया' जिमिता=
 भुक्ता यावद् 'सुईभूया' भुवीभूता=प्रक्षालितहस्तमुख्वा सती यत्रैव स्वकं

चंदनादि गंध द्रव्यों को रखा अथवा उनके ऊपर चन्दनादि तेल को छिड़का
 अगरतगर आदि सुगंधिद्रव्यों का उन्हें समर्पण किया विलेपनद्रव्य उन पर
 लगाया। (करिन्ता जाव धूपं डहइ डहिन्ता जानुपायपडिया पंजलिउडा एवं
 वयासी) इन सब वस्तुओं का समर्पण करने के बाद फिर उसने वहां धूप
 को जला कर फिर वह उनके समक्ष दोनों घुटने टेक कर नीचे जमीन
 पर झुक गई और दोनों हाथ जोड़ कर इस प्रकार प्रार्थना करने लगी
 (जइणं अहं दारगं वा दारिगं वा पायायामि तो णं अहं जायं च जाव अणुवड्ढेमि
 त्तिरुद् उवाइयं करेइ) यदि मैं पुत्र अथवा पुत्री को जन्म दूंगी तो
 आपकी सेवा पूजा करूंगी यावत् आपके क्रोध की वृद्धि कहूंगी—इस
 प्रकार उसने प्रार्थना रूपमें मनौती मानता मनाई (करिन्ता जेणेव पोक्खरिणी
 तेणेव उवागच्छइ उवागच्छिता विउलं असणं ४ आसाएमाणी जाव विहरइ)
 मनौती मना कर फिर वह उस पुष्करिणी पर आई आकर वहां उसने
 उस त्रिपुल खाने पीने की सामग्री का आहार किया (जिमिया जाव सुई-
 भूया जेणेव सएगिहे तेणेव उवागया) आहार कर के फिर उसने हाथ

धुपुं. अगरतगर वगेरे सुगंधित द्रव्यों अर्पण कर्था. अने सुगंधित लेपानो लेप कर्था.
 (करिन्ता जाव धूपं डहइ डहिन्ता जानुपायपडिया पंजलिउडा एवं वयासी)
 आ अर्धी वस्तुओंनुं समर्पण करीने तेणु धूपसणी सणगावी अने सणगावीने ते तेमनी
 सामे अने धूंटणो टेडीने नीचे पृथ्वी उपर नमी अने अने हाथ जोडीने आ प्रमाणे
 प्रार्थना करवा लागी (जइणं अहं दारगं वा दारिगं वा पायायामि तोणं अहं जायं
 च जाव अणुवड्ढेमि त्तिरुद् उवाइयं करेइ) जे हुं पुत्र के पुत्रीने जन्म आपीश
 तो आपनी सेवा-पूजा करीश अने आपना निधिनी अलिपुद्धि करीश. आ रीते तेणु
 प्रार्थना करतां मानता राणी. करिन्ता जेणेव पोक्खरिणी तेणेव उवागच्छइ उवा-
 गच्छिता विउलं असणं ४ आसाएमाणी जाव विहरइ) मानता आनीनीने ते
 पुष्करिणीना कंठे आनी अने जथां तेणु भूषण व सारी पेटे लोअन कथु. (जिमिया
 जाव सुईभूया जेणेव सए गिहे तेणेव उवागया) आहार वगेरे करीने तेणु हाथ

परामृश्य नागप्रतिमाथ यावद् वैश्रमणप्रतिमाथ लाभहस्तकेन प्रमार्जयति रजोऽपनयति, प्रमार्ज्य उदकधाराया 'अञ्भुक्खेइ' अञ्भुक्षति=अभिषिञ्चति, अभ्युक्ष्य 'पम्हलसुकुमालाए' पक्ष्मलसुकुमारया=पक्ष्मवती सुकुमारा तथा 'गंधकासाइयाए' गन्धकापायिकया= गन्धप्रधानकपायरागेण रक्ता शटिका= लघुवस्त्रं तथा 'गायाइं' गात्राणि 'लूहेइ' रक्षयति मोहयति, रूक्षयित्वा 'महरिइं महार्इं=बहुमूल्यं' वत्थारुहणं च वत्थारोहणं च वस्त्रसमर्पणम्, ए। 'मल्लारुहणं' माल्यारोहणं च=पुष्पसमर्पणं, गन्धारुहणं' गंधारोहणं च=चन्दनादिगन्धसमर्पणं, 'चुन्नारुहणं' चूर्णारोहणं च=अगरतगरादिगन्धद्रव्यचूर्णसमर्पणं, 'वन्नारुहणं' वर्णारोहणं च=विलेपनद्रव्यसमर्पणं च करोति यावद्

ज्जई) झुक कर वहां रखी हुई उसने भयूर पिच्छ की प्रमार्जनी को उठाया- उठा कह नागप्रतिमाओं का यावत् वैश्रमण प्रतिमाओं का उस प्रमार्जनी से प्रमार्जन किया। (पमज्जिता उदगधाराए अञ्भुक्खेइ) प्रमार्जन कर फिर उसने उनके ऊपर पानी की धारा छोड़ी-(अञ्भुक्खिन्ना पम्हलसुकुमालाए गंधकासाइयाए) पानी की धारा से सिञ्चित कर के फिर उसने उनका पक्ष्मल, सुकुमार गंध कपाय से रंगी हुई वस्त्र से (गायाइं लूहेइं) उनके शरीर को पोंछा (लूहिन्ना) पोंछ कर (महरियं वत्थारुहणं च मल्लारुहणं च गंधारुहणं च चुन्नारुहणं च वन्नारुहणं च करेइ) फिर उसने उन पर वस्त्र का आरोपण किया- माल्य का आरोपण किया, गंध द्रव्य का आरोपण किया चूर्ण का आरोपण किया, विलेपन द्रव्य का आरोपण किया अर्थात् जब वह उनके शरीर को पोंछ चुकी तब बाद में उसने उनको वैश्रकीमती-बहुमूल्य वस्त्र पहिराये-उन्हें बहुमूल्य मालाए पहिराई, उनके समस्त

लोमहृत्थणं पमज्जई) नभीने तेष्से त्या भूडेली मेरना पीछांनी प्रमार्जनी उपाडी उपाडीने नाग वैश्रवणु वगेरेनी प्रतिमाओत्तं प्रमार्जनीथी प्रमार्जनं कथुं. (पमज्जिता उदगधाराए अञ्भुक्खेइ) प्रमार्जनं कथां णाए तेष्से ते प्रतिमाओ उपर णणधारा वडे सिञ्चनं कथुं (अञ्भुक्खिन्ना पम्हलसुकुमालाए गंध कासाइयाए) णणधाराथी अबिषिक्त करीने तेष्से ते प्रतिमाओने पक्ष्मल, सुकुमार, गंध, कपायथी रंगाओला वस्त्रथी (गायाइं लूहेइं) तेभना शरीरने वस्त्रुं. (लूहिन्ना) वस्त्रुं (महरियं वत्थारुहणं च मल्लारुहणं च गंधारुहणं च चुन्नारुहणं च वन्नारुहणं च करेइ) त्यार पछी तेष्से प्रतिमाओ उपर वस्त्रो यदाव्यां, भाणाओ पडरावी, गंधद्रव्यो यदाव्यां, चूर्णं यदाव्युं, सुगंधित वेष यदाव्यो ओटवे डे न्यारे तेष्से प्रतिमाओने वस्त्रथी वस्त्रुं वीधी त्यार पछी तेष्से ते प्रतिमाओने णडु डिंभती वस्त्रो पडराव्यां, णडु मूल्य भाणाओ पडरावी तेभनी साणे यदंन वगेरेना सुगंधित तेवत्तं सिञ्चनं

गच्छित्ता पोक्खरिणीं ओगाहंति, ओगहिन्ता ष्हायाओ कयत्रलिक-
 म्माओ सव्वालंकारविभूसियाओ विपुलं असणं ४ आसाएमाणीओ
 जाव परिभुंजेमणीओ दोहलं विणेइ । एवं संपेहेइ संपहिन्ता कल्लं
 जाव जलंते जेणेव धण्णे सत्थवाहे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता
 धण्णं सत्थवाहं एवं वयासी-एवं खल्लु देवाणुप्पिया ! मम तस्स
 गव्भस्स जाव विणेइ तं इच्छामि णं देवाणुप्पिया ! तुव्भेहिं अव्व-
 णुन्नायासमाणी जाव विहरित्तए, अहा सुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिवधं
 करेह, तएणं सा भद्दा सत्थवाही धण्णेणं सत्थवाहेणं अव्वणुन्नाया
 समाणी हट्टुट्टा जाव विपुलं असणं ४ जाव ष्हाया जाव उल्लपड
 साडिया जेणेव नागघरण जाव धूवं डहइ, डहिन्ता पणामं करेइ
 पणामं करित्ता जेणेव पोक्खरिणी तेणेव उवागच्छइ । तएणं ताओ
 मित्तनाइ जाव नगरमहिलाओ भदं सत्थवाहिं सव्वालंकारविभूसियं
 करेत्ति, तएणं सा भद्दा सत्थवाही ताहिं मित्तनाइ नियगसयणसं-
 वंधिपरिजणणगरमहिलाहिं सद्धिं तं विपुलं असणं ४ जाव परिभुंज-
 माणी य दोहलं विणेइ विणेइत्ता जामेव दिस्सिं पाउव्वभूया तामेव दिस्सिं
 पडिगयां । तएणं सा भद्दा सत्थवाही संपुन्नडोहला जाव तं गव्वं
 सुहं सुहेणं परिवहइ, तएणं सा भद्दा सत्थवाही णवण्हं मासाणं
 वहुपडिपुन्नाणं अद्धट्टमाण राइंदियाणं सुकुमालपाणिपायं जाव दारगं
 पयाया, तएणं तस्स दारगस्स अम्मापियरो पढमे दिवसे जाय-
 कम्मं करेत्ति करित्ता तहेव जाव विपुलं असणं ४ उवक्खडावेत्ति
 उवक्खडावित्तां तहेव मित्तनाइनिजकसयणसंबंधिपरिजणे भोयावेइ

गृह तत्रोपागता । अदुत्तरं=तदनन्तरं 'दशा शब्दाऽयम्, गृहपन्नानन्तरं च खलु सा भद्रा सार्धवाही 'चाउदसद्वृद्धिपुन्नमासिणीसु' चतुर्दशपट्टम्युद्धिष्टपूर्णाभासीषु 'उद्धि' उद्धिष्ट'-इत्यभावात्स्या, चतुर्दश्यादिदिवसेषु विपुलमशन-पानखाद्यस्वाद्यमुपस्करोति, उपस्कृत्य चतुर्नागांश्च याचद् वैश्रवणांश्च 'उपायमाणी' उपायमाना याचद् एवं च खलु 'विहरइ' विहति=तिष्ठति । म० ५ ॥

मूलम्--तएण सा भद्रा सत्थवाही अन्नया कयाइं केणइ कालंतरेणं आवन्नसत्ता जाया यावि होत्था, तएणं तीमे भद्राए सत्थवाहीए दोसु मासेसु वीइकंतेसु तइए मासे वट्टमाणे इमेयारूवे दोहले पाउव्भूए धन्नाओ णं ताओ अम्मयाओ जाव कयलक्खणाओ णं ताओ अम्मयाओ जाओ णंविउलं असणं ४ सुवहुयं पुक्कवत्थगधमल्लाकारं गहाय मित्तनाइनियगसयणसंबंधिपरियणमहिला हि य सद्धिं संपरिवुडाओ राधगिहस्स नयरस्स मज्झ मज्झेणं निगच्छंति, निगच्छित्ता जेणेव पुक्खरिणी तेणेव उवागच्छंति, उवा-

चगैरह का प्रक्षालन किया इस प्रकार भुचीभूत होकर फिर वह वहां से जहां अपना घर था वहां आ गई । (अदुत्तरं भद्रा सत्थवाही चाउदसद्वृद्धिपुणमासिणीसु' विउलं असणं ४ उवक्खडेइ-उवक्खडिन्ना वहवे नागा य जाव वेसमणा य उवायमाणी जाव एवं च णं विहरइ इसके बाद वह भद्रा-सार्धवाही चतुर्दशी अष्टमी अमावस्या और पूर्णमासी के दिनों में विपुल चारों प्रकार के आहार बनाती और बनाकर उन अनेक नाग याचत वैश्रवण की पूजा सेवाकरती हुई उनसे मनाती मनाती रहती । ॥सूत्र ५॥

मां धियां आ प्रभाषु शुद्ध थरुने ते त्यांथी पोताने धेर आवी. (अदुत्तरं च णं भद्रा सत्थवाही चाउदसद्वृद्धिपुणमासिणीसु विउलं असणं ४ उवक्खडेइ-उवक्खडित्ता वहवे नागाय जाव वेसमणाय उवायमाणी जाव एवं च णं विहरइ) त्यारणाए वाद्रा सार्धवाही चोदश, आठम, अमावस्ये अने पूनभना द्विसेमां पुण्ण प्रभाषुमां चोरे जलना आडार जनावधवती अने जनावधवतीने नाग अने वैश्रवण वगेरे जधा देवोनी पूजा करती अने मानता राधती हुती. ॥ सूत्र. ५ ॥

गच्छिता पोक्खरिणीं ओगाहंति, ओगाहिता ण्हायाओ कयवलिक-
 म्माओ सव्वालंकारविभूसियाओ विपुलं असणं ४ आसाएमाणीओ
 जाव परिभुंजेमगीओ दोहलं विणेइ । एवं संपेहेइ संपहिता कल्लं
 जाव जलंते जेणेव धण्णे सत्थवाहे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छिता
 धण्णं सत्थवाहं एवं वयासी-एवं खल्ल देवाणुप्पिया ! मम तस्स
 गव्वस्स जाव विणेइ तं इच्छामि णं देवाणुप्पिया ! तुव्वभेहिं अव्व-
 णुन्नायासमाणी जाव विहरित्तए, अहा सुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिवधं
 करेह, तएणं सा भद्दा सत्थवाही धण्णेणं सत्थवाहेणं अव्वणुन्नाया
 समाणी हट्टुत्तुट्ठा जाव विपुलं असणं ४ जाव ण्हाया जाव उल्लपड
 साडिया जेणेव नागघरणे जाव धूवं डहइ, डहित्ता पणामं करेइ
 पणामं करित्ता जेणेव पोक्खरिणी तेणेव उवागच्छइ । तएणं ताओ
 मित्तनाइ जाव नगरमहिलाओ भद्वं सत्थवाहिं सव्वालंकारविभूसियं
 करेति, तएणं सा भद्दा सत्थवाही ताहिं मित्तनाइ नियगसयणसं-
 वंधिपरिजणणगरमहिलाहिं सद्धिं तं विपुलं असणं ४ जाव परिभुंज-
 माणी य दोहलं विणेइ विणेइत्ता जामेव दिस्सिं पाउव्वभूया तामेव दिस्सिं
 पडिगया । तएणं सा भद्दा सत्थवाही संपुन्नडोहला जाव तं गव्वं
 सुहं सुहेणं परिवहइ, तएणं सा भद्दा सत्थवाही णवण्हं मासाणं
 वहुपडिपुन्नाणं अद्धट्टुमाण राइंदियाणं सुकुमालपाणिपायं जाव दारगं
 पयाया, तएणं तस्स दारगस्स अम्मापियरो पढमे दिवसे जाय-
 कम्मं करेति करित्ता तहेव जाव विपुलं असणं ४ उव्वखडावेति
 उव्वखडावेति तत्रेव तिज्जाननिजकसयणसंबंधिपरिजणे भोयावेइ

गृह तत्रोपागता । अदुत्तरं=तदनन्तरं 'दशा शब्दाऽयम्, गृहगमनानन्तरं च खलु सा भद्रा सार्थवाही 'चाउदसद्वृद्धिपुन्नमासिणीम्' चतुर्दशपट्म्युद्धिष्टपूर्णा मासीपु 'उद्धिष्ट' उद्धिष्ट'-इत्यमावास्या, चतुर्दश्यादिदिवसेषु विपुलमशन-पानस्वाद्यस्वाद्यमुपस्करोति, उरस्कृत्य चतुर्नागांश्च यावद् वैश्रवणांश्च 'उवायमाणी' उपयाचमाना यावद् एवं च खलु 'विहरइ' विहरति=तिष्ठति. १. म० ५ ॥

मूलम्--तएण सा भद्रा सत्थवाही अन्नया कयाइं केणइ कालंतरेणं आवन्नसत्ता जाया यावि होत्था, तएणं तीमे भद्राए सत्थवाहीए दोसु मासेसु वीइकंतेसु तइए मासे वट्टमाणे इमेयारूवे दोहले पाउब्भूए धन्नाओ णं ताओ अम्मयाओ जाव कयलक्खणाओ णं ताओ अम्मयाओ जाओ णं विउलं असणं ४ सुवहुयं पुक्खवत्थगधमल्लाकारं गहाय मित्तनाइ नियगसयणसंबंधिपरियणमहिला हि य सद्धिं संपरिवुडाओ राधगिहस्स नयरस्स मज्झ मज्झेणं निगंच्छंति, निगच्छित्ता जेणेव पुक्खरिणी तेणेव उवागच्छंति, उवा-

गौरह का प्रक्षालन किया इस प्रकार शुचोभूत होकर फिर वह वहां से जहां अपना घर था वहां आ गई। (अदुत्तरं भद्रा सत्थवाही चाउदसद्वृद्धिपुणमासिणीम्) विउलं असणं ४ उवक्खडेइ-उवक्खडित्ता वहवे नागा य जाव वेसमणा य उवायमाणी जाव एवं च णं विहरइ इसके बाद वह भद्रा-सार्थवाही चतुर्दशी अष्टमी अमावस्या और पूर्णमासी के दिनों में विपुल चारों प्रकार के आहार बनाती और बनाकर उन अनेक नाग याचतु वैश्रवण की पूजा सेवाकरती हुई उनसे मनींती मनाती रहती। ॥ मूत्र ५ ॥

में धियां आ प्रभाषे शुद्ध थडिने ते त्यांथी पोताने घेर आवी. (अदुत्तरं च णं भद्रा सत्थवाही चाउदसद्वृद्धिपुणमामिणीम्) विउलं असणं ४ उवक्खडेइ-उवक्खडित्ता वहवे नागाय जात्र वेसमणाय उवायमाणी जाव एवं च णं विहरइ) त्यारणाए वाद्रा सार्थवाही योदथ, आठम, अमास अने पूनभना द्विवसेमां पुक्खण प्रभाषुमां यारे नतना आहार जनावडवती अते जनावडावीने नाग अने वैश्रवण वगेरे जधा देवोनी पून करती अने मानता राणती ॥ ५ ॥ ॥ सूत्र. ५ ॥

खलु विपुलमशनं पानं त्वाद्यं स्वाद्यं, सुवह्यं पुष्पवत्त्वगन्धमाल्यालङ्कारं गृहीत्वा मित्रज्ञानिनिजहस्वजनसम्बन्धिपरिजनमहिलाभिश्च सार्द्धं संपरिवृता राजगृहस्य नगरस्य मध्यमध्येन निर्गच्छन्ति, निर्गत्य यत्रव पुष्करिणी तत्रैवोपागच्छन्ति, उपागत्य पुष्करिणीमवगाहन्ते, अवगाह्य स्नाता कृतवलिकर्माणः सर्वालंकारविभूषिताः तद्: विपुलमशनपानखाद्यस्वाद्यमास्वादयन्त्यः चात्र परिभुञ्जाना दोहदं व्यप-

(जाओ णं विउलं असणं ४ सुवह्यं-पुष्प-वत्थ-गंध-मल्लालंकारं गहाय मत्तनाइ-नियग-पयण-संबंधिपरियणमहिलाहि य सद्धिं संपरिवुडाओ रायगिहस्त नयरस्त मज्झं मज्जेणं निगगच्छंति) जो माताए विपुल अशन पानादि ४ प्रकार के आहार को और बहुत अधिक पुष्प वत्त गंध, माला अलंकार को लेकर मित्रज्ञाति, निजह, स्वजन, संबन्धी-परिजन की महिलाओं के साथे घिरी हुई होकर राजगृह नगर के ठीक बीचो बीच के मार्ग से निकलती हैं। (निगगच्छिन्ता जेणेव पुष्करिणी तेणेव उवागच्छंति उवागच्छिन्ता पुष्करिणी ओगाहंति, ओगाह्तिन्ता ष्हायाओ कयवलिकम्माओ सन्वालंकारविभूसियाओ विउलं असणं आसाएमाणोओ जाव परिभुंजे-माणीओ दोहलं विणेइ) और निकल कर जहां पुष्करिणी है वहां जाती हैं जा कर उसमें अवगाहन करती हैं, अवगाहन कर स्नान करती हैं-स्नात होकर बलिकर्म वायसादि को अन्नादि का भाग देकर समस्त अलंकारों से शरीर को विभूषित करती हैं और फिर उस विपुल मात्रा में निष्पन्न

ते माताओंनां ४ साभुद्धिकं शास्त्र प्रमाणेना शारीरिक लक्षणेषु सक्षणं यथां छे, (जाओ णं विउलं असणं ४ सुवह्यं पुष्पवत्थगंधमल्लालंकारं गहाय मत्तनाइ-नियग-पयण-संबंधिपरियणमहिलाहि य सद्धिं संपरिवुडाओ रायगिहस्त नयरस्त मज्झं मज्जेणं निगगच्छंति) ७ माताओं पुष्प प्रमाणुमां अशन पान वगेरे चार लतने आहार अने भूषण ७ पुष्प, वत्त, गंध, भाषा अने अलंकारने लधने मित्र, ज्ञाति, निजह, स्वजन संबंधी परिजननी महिलाओंनी साथे राजगृह नगरना वत्थो वत्थ मार्गमां थधने पसार थाय छे. (निगगच्छिन्ता जेणेव पुष्करिणी तेणेव उवागच्छंति उवागच्छिन्ता, पुष्करिणी ओगाहंति, ओगाह्तिन्ता ष्हायाओ कयवलिकम्माओ सन्वा-लंकारविभूसियाओ विउलं असणं आसाएमाणोओ जाव परिभुंजे माणीओ दोहलं विणेइ) अने पसार थधने न्यां पुष्करिणी छे त्यां नय छे. त्यां ७धने तेमां उत्तरे छे, उत्तरीने नडाथ छे. नडाधने डागडा वगेरे पक्षीओंने अन्ननेना भाग अर्पीने जलिकर्म करे छे, अने शरीरनां जधां अंगोने धरेलुंओधी अलंकरण करे छे. अने इरी ते पुष्प प्रमाणुमां तैयार करवामां आवेला अशन

भोयावेत्ता अयमेयारूवं गोणं गुणानिष्फन्न नामधेज्जं करेति जम्हाणं अम्हं इमे दारए वडूणं नागपडिमाण य जाव वेसमण— पडिमाण य उवाइयलद्धे, तं होउ णं अम्हं इमे दारए देवदिन्ने नामेणं, तएणं तस्स दारगस्स अम्मापियरो नामधिज्जं करेति देवदिन्नेत्ति। तएणं तस्स दारगस्स अम्मापियरो जायं चदायं च मायं च अक्खयनिहिं च अणुवड्ढेति ॥सू ६॥

टीका—‘तएणं सा’ इत्यादि—ततः खलु सा भद्रा सार्थवाही अन्यदा कदाचित् ‘केणउकालंतरेणं’ केनापि कालान्तरेण=क्रियता कालान्तरेण ‘आवन्नसत्ता जाया’ आपन्नसत्त्वा जाता, आपन्नः=उत्पन्नः सन्धः=जीवो गर्भे यस्याः सा तथा गर्भवती जाता चाप्यासीत्। ततः खलु तस्याः भद्रायाः सार्थवाहा द्वयोर्मासयोर्व्यतिक्रान्तयोः सनोः तृतीये मासे वर्तमानेऽयमेतद्रूपो दोहदः प्रादुर्भूतः—धन्याः खलु ता अम्हाः यावत् कृतलक्षणाः खलु ता अम्हाः, याः

‘तएणं सा भद्रा सत्थवाही’ इत्यादि।

टीकार्थ—(तएणं) इसके बाद (सा भद्रा सत्थवाही) वह भद्रा सार्थवाही (अन्नया कयाइं) किसी समय (केणइकालंतरेणं) कितने काल के अनन्तर (आवन्नसत्ता जाया यावि होत्या) गर्भवती हुई। (तएणं तीसे भद्राए सत्थवाहीए) इससे उस भद्रासार्थवाही के (दोसु मासेसु वीइक्कंतेसु) दो मास व्यतीत होने पर (तईए मासे वट्टमाणे) जब तीसरा मास प्रारम्भ हुआ तब (इमेयारूवे दोहले पाउब्भूए) इस तरह का यह वक्ष्यमाण दोहला उत्पन्न हुआ—(धन्नाओ णं ताओ अम्मयाओ) वे माताएँ धन्य हैं (जाव कयलक्खणाओ णं ताओ अम्मयाओ) यावत् वे माताएँ कृत लक्षणा हैं

‘तएणं सा भद्रा सत्थवाही’ इत्यादि।

टीकार्थ—(तएणं) त्पार पछी (सा भद्रा सत्थवाही) लद्रा सार्थवाही (अन्नया कयाइं) डेअ वप्पं केणइ कालंतरेणं) डेलाउट समथ णाड (आवन्नसत्ता जाया यावि होत्या) गर्भवती थई। (तए णं से भद्राए सत्थवाहीए) सगलाव. स्थाभां अ न्यारे लद्रा सार्थवाहीने (दोसु मासेसु वीइक्कंतेसु) जे भडिना पूरा थया (तईए मासे वट्टमाणे) अने त्रीन्ने भडिने। जेठो त्त्यारे (इमेयारूवे दोहले पाउब्भूए) आ प्रभाणु डोडड थयुं डे—(धन्नाओ णं ताओ अम्मयाओ) ते माताओ ने धन्य ते (जाव कयलक्खणाओ णं ताओ अम्मयाओ)

नयन्ति। एवं संप्रेक्षते, संप्रेक्ष्य कल्पे यावज्ज्वलति यत्रैव धन्यः सार्थवाहस्तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य धन्यं सार्थवाहमेवमवादीत=एवं खलु देवानुप्रियाः। मम तस्य गर्भस्य (प्रभावेण) यावत् व्यपनयन्ति, तद् इच्छामि खलु देवानुप्रियाः ! भवद्भिरभ्यनुज्ञाता सतो यावद् विहर्षुम्। यथा मुखं देवानुप्रिये! मा प्रतिवन्द्यं कुरु ततः खलु स

हुए अज्ञान पानादिक चारों प्रकार के आहार करती हैं—दूसरों को कराती हैं—इस तरह जो अपने दोहले की पूर्ति करती हैं। (एवं संपेहेइ) इस प्रकार उस दोहले में उसने विचार किया (संपेहिता कल्लं जाव जलंते जेणेव सत्थवाहे तेणेव उवागच्छइ) विचार करके फिर चढ़ प्रातः होते ही जब सूर्य चमकने लग गया—तब जहां धन्य सार्थवाह था वहां गई। (उवागच्छिता धणं सत्थवाहे एवं वयासी) जाकर उसने धन्यसार्थवाह से इस प्रकार कहा (एवं खलु देवानुप्रिया ! मम तस्स गवभस्स जाव विणेइ-तं इच्छामि णं देवानुप्रिया तुब्भेहिं अब्भणुन्नाया समाणी जाव विहरित्तए) हे देवानुप्रिय ! मुझे उस गर्भ के प्रभाव से इस प्रकार का दोहला उत्पन्न हुआ है कि जो माताएं ऐसा र करती हैं और अपने गर्भके मनोरथ की पूर्ति करती हैं वे धन्य हैं कृत लक्षणा हैं इत्यादि। अतः मैं आपके द्वारा आज्ञापित हो कर इसी रूप से अपना दोहलासंपन्न करना चाहती हूँ (इस प्रकार उसने अपना सब विचार धन्य सार्थवाह से निवेदित कर दिया)। धन्य सार्थवाहने उसका ऐसा अभिप्राय सुनकर उससे कहा—

पान वगेरे आरे नतने आहार पोते करे छे. अने जीअओने करावे छे आ प्रभावे ने माताओ पोताना दोहदनी पूर्ति करे छे ते माताओने धन्य छे (एवं संपेहेइ) आ प्रभावे तेहे पोताना दोहद भाटे विचार कथी. (संपेहिता कल्लं जाव जलंते जेणेव सत्थवाहे तेणेव उवागच्छइ) विचार करीने तेहे सवारभा न्यारे सूरज पूर्व दिशाभां प्रकाशित थयो त्यारे न्यां धन्यवार्थवाह न्यां इतो त्यां गधं (उवाच्छिता धणं, सत्थवाहं एवं वयासी) त्यां नधने तेहे धन्य सार्थवाहने आ प्रभावे कहुं—(एवं खलु देवानुप्रिया ! मम तस्स गवभस्स जाव विणेइ तं इच्छामि णं देवानुप्रिया तुब्भेहिं अब्भणुन्नाया समाणी जाव विहरित्तए) हे देवानुप्रिय ! गर्भस्थाने वीधि भने दोहद थयुं छे. ने माताओ आ नतनुं पोतानुं दोहद पुरुं करी थके छे. पोतानी गलेच्छा पूरी करे छे ते माताओ परेपर धन्य छे. अने कृतलक्षणा छे वगेरे वगेरे. ओटला भाटे हुं आपनी आज्ञा भेजवीने आ रीते न मारुं दोहद पुरुं करवा धंथुं छुं. (आ रीते तेहे पोतानी धंछा धन्य सार्थवाहनी सामे प्रकट करी). धन्य सार्थवाहने तेनी बात सांभलीने कहुं के (अहामुहं देवानुप्रिया ! मा पडि

तथैव मित्रज्ञातिनिजकम्बजनमम्यन्धिपरिजनान् भोजयित्वा इममेतद्रूपं 'गौणं'
 गौणं=गुणैर्निर्वृत्तं गौणं=यथार्थं, 'गुणनिष्पन्नं' गुणनिष्पन्नं=गुणसञ्जातं नाम-
 धेयं कुरुतः-यस्मात् खलु आवयोरयं दारको बहूनां नागप्रतिमानां च यावत्
 वैश्रवणप्रतिमानां च 'उवाङ्मलद्वे-प' उपवाचिनलब्धः=प्रार्थनया प्राप्तः तद्
 भवतु खलु आवयोरयं दारकः 'देवदिन्ने नामेण' देवदत्तो नाम्ना। ततः
 खलु तस्य दारकस्याम्मापितरौ नामधेयं कुरुतः 'देवदत्तः' इति। ततःखलु
 तस्य दारकस्याम्मापितरौ यागं च दायं च भागं च अक्षयनिधिं चानु-
 वर्द्धवतः ॥मूत्र ६॥

बालक के माता पिताने प्रथम दिन बालक का जात कर्म किया
 करके उसी तरह यावत् विपुल मात्रा में अशन आदिचारों प्रकार का आहार
 तैयार किया (उवखलुडावित्ता तद्देव मित्तनाइनिजकमयणमं वंधिपरिजणे
 भोयावेत्ता अयमेयाख्वं गौणं गुणनिष्पन्नं नामधेज्जं करेति) आहार
 तैयार करके फिर उन्होंने उसे मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन संबंधिजन
 और परिजनों को खिलाया-खिलाकर उन्होंने बच्चे का नाम यथार्थरूपं
 में गुणों से निष्पन्न होने के कारण इस तरह बक्ष्यमाणरूप से रखा !
 (जम्हाणं अम्हं इमे दारए बहूणं नागपडिमाण य जाव वेसमणपडिमाण य
 उवइयालद्वे तं होउणं अम्हं इमे दारए देवदिन्ने नामेणं) यह हमारा पुत्र-
 नाग प्रतिमा यावत् वैश्रवण प्रतिमाओं की मनौती से उत्पन्न हुआ है इसलिये
 इसका नाम देवदत्त हो। (तएणं तस्स दारगस्स अम्मापियरो नामधेज्जं
 करेति) इस प्रकार कहकर उस दारक के माता पिताने उसका नाम देव-
 दत्तो रख दिया। (तएणं तस्स दारगस्स अम्मापियरो जायं च भायं च

आणकनां मातापिताये जन्मना पडेला द्विसे पुञ्ज प्रभाषुमां अशन वगेरे
 थारे थार प्रक्षरने आहार तैयार कराव्ये। (उवखलुडावित्ता तद्देव मित्तनाइ-
 निजकमयणसंबंधिपरिजणे भोयावेत्ता अयमेयाख्वं गौणं गुण
 निष्पन्नं नामधेज्जं करेति) आहार तैयार कराव्ये तेभने मित्र, ज्ञाति,
 निजक, स्वजन संबंधिजन अने परिजनोने जभाड्यां जभाडीने तेभणे आणकनुं
 नाम तेना शुष्णे प्रभाषुं राभ्युं (जम्हाणं अम्हं इमे दारए बहूणं नागपडिमा-
 णय जाव वेसमणपडिमाणय उवइयालद्वे तं होउणं अम्हं इमे दारए
 देवदिन्ने नामेणं) डोडोनी साने आणकनां मातापिताये कहुं डे आ अभासे
 पुत्र नाग वैश्रमणु वगेरे देव प्रतिमाओनी मानता राभवधी थये छे, ओधी
 आनुं नाम देवदत्त राभवामां आव्युं छे। (तए णं तस्स दारगस्स अम्मा-
 पियरो नामधेज्जं करेति) आ प्रभाषुं आणकनां मातापिताये भजीने आण-
 कतं नाम देवदत्त पाड्युं। (तए णं तस्स दारगस्स अम्मापियरो जायं च

भृता तामेव दिशं प्रतिगता । ततः खलु सा भद्रा सार्धवाही सम्पूर्णं दोहदा यावत् तं गर्भं सुखं सुखेन परिवहति । ततः खलु सा भद्रा सार्धवाही नवसु मासेषु बहुमतिपूर्णेपु अर्द्धाष्टमेपु रात्रिन्दिवेषु (व्यतीतेषु) सुकुमारपाणिपादं यावत् दारकं प्रजनिता । ततः खलु तस्य दारकस्य अम्भापितरो प्रथमे दिसे जातवर्म कुरुतः कृत्वा तथैव यावत् विपुलमशनं पानं खाद्यं स्वाद्यमुपस्कारयतः, उपस्कार्य

य सद्धिं तं विपुलं असणं ४ जाव परिभुञ्जमाणी य दोहलं विणेइ) इसके बाद उन मित्र ज्ञाति निजक, स्वजन, संवन्धी, परिजन की नगर महिलाओं के साथ २ उस ४ चारों प्रकार के आहार को किया कराया—और अपने दोहले की पूर्ति की । (विणिइत्ता जामेव दिस्सि पउब्भूया तामेव दिस्सि पडिगया) दोहले की पूर्ति कर वह फिर जिस दिशा से मकट हुई थी—आई थी उसी दिशा की ओर चली गई । अर्थात् अपने घर पहुँच गई (तएणं सा भद्रा सत्थवाही संपुन्नडोहला जाव त गव्वं सुहं सुहेणं परिवहइ) इसके अनन्तर उस भद्रा सार्धवाहीने कि जिसका गर्भ मनोरथ अच्छी तरह परिपूर्ण हो गया है यावत् अपने गर्भ को भलीभाँति से सुख पूर्वक परिवहन किया । (तएणं सा भद्रा सत्थवाही णवणं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं अद्धइराइदियाणं सुकुमालपाणिपायं दारगं पयाया) बाद में जब गर्भ के ठीक नौ मास ७। साठे सात दिन समाप्त हो चुके तब उसने सुकुमार कर चरणवाला पुत्र को जन्म दिया । (तएणं तस्स दारगस्स अम्भापिगरो पदमे दिवसे जाय कम्मं करेति, करित्ता तहेव विउलं असणं ४ उवक्खडावेति) इसके बाद

संवधिपरियणणनगरमहिलाहिं य सद्धिं तं विपुलं असणं ४ जाव परिभुञ्जमाणी य दोहलं विणेइ) त्थार ७।६ तेणु पोताना सणंधीनी नगरनी श्रीओ साथे थारे नतने आहार कथां. अने करावडाव्यो. आ रीते तेणु पोताना दोहदनी पूर्ति करी. (विणेइत्ता जामेव दिस्सि पाउब्भूया तामेव दिस्सि पडिगया) दोहद पूर्ति कथां ७।६ ते न्याथी आवी हती. त्यां थाली गध. अटवे ते तेना घेर पडोन्थी गध. (तए णं सा भद्रा सत्थवाही संपुन्नडोहला जाव तं गव्वं सुहं सुहेणं परिवहइ) त्थार पछी पूर्ण दोहदा लद्रा सार्धवाही सुजेथी पोताना गळने परिवहन करती रहेवा लागी. (तए णं सा भद्रा सत्थवाही णवणं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं अद्धइराइदियाणं सुकुमालपाणि पायं दारगं पयाया) आ प्रभाणु गळं न्यारे णराणर नव मास अने साडा सात दिवस रातने थयो. त्थारे लद्रासार्धवाहीओ सुकोमण डाय पग वाणा पुत्रने जन्म आथ्ये (तए णं तस्स दारगस्स अम्भापिगरो पदमे दिवसे जायकम्मं करेति करित्ता तहेव जाव विउलं असणं ४ उवक्खडावेति) त्थार पछी

तथैव मित्रज्ञातिनिजकम्बजनमम्बन्धिपरिजनान् भोजयित्वा इममेतदूर्ध्वं 'गौणं' गौणं=गुणैर्निर्वृत्तं गौणं=यथार्थं, 'गुणनिष्कन्नं' गुणनिष्कन्नं=गुणसञ्जातं नामधेयं कुरुतः—यस्मात् खलु आवयोरयं दारको बहूनां नागप्रतिमानां च यावत् वैश्रवणप्रतिमानां च 'उवाङ्मलद्धे-य' उपवाचितलब्धः=प्रार्थनया प्राप्तः तद्भवतु खलु आवयोरयं दारकः 'देवदिन्ने नामेण' देवदत्तो नाम्ना। ततः खलु तस्य दारकस्याम्बापितरौ नामधेयं कुरुतः 'देवदत्तः' इति। ततःखलु तस्य दारकस्याम्बापितरौ यागं च दायं च भागं च अक्षयनिधिं चानुवर्द्धयतः ॥ सूत्र ६ ॥

बालक के माता पिताने प्रथम दिन बालक का जात कर्म क्रिया करके उसी तरह यावत् विपुल मात्रा में अशन आदिचारों प्रकार का आहार तैयार किया (उचम्बलडावित्ता तद्देव मित्रनाइनिजकमयणसंबंधिपरिजणे भोयावेत्ता अयमेयारुवं गौणं गुणनिष्कन्नं नामधेज्जं करेति) आहार तैयार करके फिर उन्होंने उसे मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन संबंधिजन और परिजनों को खिलाया-खिलाकर उन्होंने वच्चे का नाम यथार्थरूप में गुणों से निष्पन्न होने के कारण इस तरह वक्ष्यमाणरूप से रक्खा ! (जम्हाणं अम्हं इमे दारए बहूणं नागपडिमाणय जाव वेसमणपडिमाणय उवइयलद्धे तं होउणं अम्हं इमे दारए देवदिन्ने नामेणं) यह हमारा पुत्र-नाग प्रतिमा यावत् वैश्रवण प्रतिमाओं की मनोती से उत्पन्न हुआ है इसलिये इसका नाम देवदत्त हो। (तएणं तस्स दारगस्स अम्मापियरो नामधेज्जं करेति) इस प्रकार कहकर उस दारक के माता पिताने उसका नाम देवदत्त रख दिया। (तएणं तस्स दारगस्स अम्मापियरो जायं च भायं च

गाणकनां मातापिताये जन्मना पडेल्ल दिवसे पुष्पण प्रभाजुभां अशन वगेरे थारे थार प्रक्षरने आहार तैयार करावथे। (उचम्बलडावित्ता तद्देव मित्रनाइ-निजकमयणसंबंधिपरिजणे भोयावेत्ता अयमेयारुवं गौणं गुणनिष्कन्नं नामधेज्जं करेति) आहार तैयार करावीने तेभने मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन संबंधिजन अने परिजनोने जन्माडयां जन्माडीने तेभाणु गाणकनुं नाम तेना शुणु प्रभाणु राणुं (जम्हाणं अम्हं इमे दारए बहूणं नागपडिमाणय जाव वेसमणपडिमाणय उवइयलद्धे तं होउणं अम्हं इमे दारए देवदिन्ने नामेणं) लोकेनी सामे गाणकनां मातापिताये कहुं के आ अभासे पुत्र नाग वैश्रवण वगेरे देव प्रतिमाओनी मानता राभवथी थये छि, येथी आणुं नाम देवदत्त राणवाभां आणुं छि। (तए णं तस्स दारगस्स अम्मापियरो नामधेज्जं करेति) आ प्रभाणु गाणकनां मातापिताये मणीने गाणकनुं नाम देवदत्त पाणुं। (तए णं तस्स दारगस्स अम्मापियरो जायं च

मूलम्—तएणं से पंथए दासचेडए देवदिन्नस्स दारगस्स

वालगाही जाए, देवदिन्नंदारयं कडीए गेणहइ, गेण्हत्ता वडूहिं डिंभ
एहि य डिंभयाहि य दारएहि य दारियाहि य कुमारएहि य कुमारियाहि य
सद्धि संपरिवुडे अभिरमइ। तए णं भद्दा सत्थवाही अन्नया कयाइं देव-
दिन्नं दारयं णहायं कयवलिकम्मं कयकोउलपायच्छित्तं सव्वालंकार-
विभूसियं करेइ, करित्ता पंथयस्स दासचेटयस्स हत्थयंसि दलइ । तएणं
से पंथए दासचेडए भद्दाए सत्थवाहीए हत्थाओ देवदिन्नं दारगं
कडिए गिणहइ, गिण्हत्ता सयाओ गिहाओ पडिनिक्खमइ, पडिनि-
क्खमित्ता वडूहिं डिंभएहि य डिंभियाहि य कुमारएहि य कुमारियाहि
य सद्धि संपारिवुडे जेणेव गयमग्गे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता
देवदिन्नं दारगं एगंते ठावेइ, ठावित्ता वडूहिं डिंभएहि य जाव
कुमारियाहि य सद्धि संपरिवुडे पमत्ते यावि विहरइ। इमं च णं विजए तक्करे
रायगिहस्स वडूणि दाराणि य अवदाराणि य तहेव जाव आभोएमाणे
मग्गेमाणे गवेसेमाणे जेणेव देवदिन्ने दारए तेणेव उवागच्छइ, उवा-
गच्छित्ता देवदिन्नं दारगं सव्वालंकारविभूसियं पासइ पासित्ता देवदिन्नस्स
दारगस्स आभरणालंकारेसु मुच्छिए गडिए गिद्धे अज्झोववन्ने पंथयं

अक्खयनिहिं च अणुवडुंतेति) बालक के नाम संस्कार होने के पश्चात् मातापिता ने
उन नाग भादिह प्रतिमाओं की खूब सेवा की—दान दिया—अपने हिस्से में से खूब
द्रव्य का वितरण किया और उनके कोप की खूब वृद्धि की ॥ सूत्र ६ ॥

दायं च भाय च अक्खयनिहिं च अणुवडुंतेति) गाणकनां नाम संस्कार गाढ
गाणकनां मातापिताये नाग वगेरे प्रतिमाओनी पूज न सारी, पेडे पूज करी,
पुङ्गव प्रभाषुमां दान आयुं, पीताना लागना द्रव्यत्तं अहुं न प्रभाषुमां वितरण
कथुं अने देवताओना डोपनी पूज अलिपुद्धि करी ॥ सू ६ ॥

दासचेडं पमत्तं पासइ, पासित्ता दिसालोय करेइ करेत्ता देवदिन्नं
 द्वारगं गेण्हइ, गेण्हित्ता कक्खंसि अल्लियावेइ अल्लियावित्ता उत्तरिजेणं
 पिहेइ, पिहित्ता सिग्धं तुरियं चवलं चेइयं रायगिहस्स नगरस्स अव-
 द्वारेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव जिण्णुज्जाणे जेणेव
 भग्गकूवए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता देवदिन्नं दारयं जीवि
 याओ ववरोवेइ, ववरोवित्ता आभरणालंकारे गिण्हइ गिण्हित्ता देव-
 दिन्नस्स दारगस्स सरीरगं निप्पाणं निच्चेट्ठं जीवियविप्पजहं भग्गकू-
 वए पक्खिवइ, पक्खिवित्ता जेणेव मालुयाकच्छए तेणेव उवागच्छइ
 उवागच्छित्ता मालुयाकच्छयं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता निच्चले
 निप्फंदे तुसिगीए दिवसं खवेमाणे चिट्ठइ ॥सू. ७॥

टीका—‘तएणं से पंधए’ इत्यादि—‘तएणं’ ततः खलु=तदनन्तरं ‘से’
 अस्मिं पान्थकनामा ‘दासचेडए’ दासचेटकः= दासपुत्रो यो धन्यसार्थवाहस्य
 गृहे कर्मकरत्वेन स्थित आसीत्—स देवदत्तस्य दारकस्य ‘वालगाही’ बाल
 ग्राही बालं गृहीतुं शीलमस्यास्तीति बालग्राही=शिशुसंरक्षको जातः । अस्मिं देव-
 दत्तं दारकं कट्यां गृह्णाति, गृहीत्वा बहूमिः ‘डिभएहि य’ डिम्भकैथ,

‘तएणं से पंधए दासचेडए’ इत्यादि ।

टीकार्थ—(तएणं) इसके बाद (से पंधए दासचेडए) यह पान्थकनाम
 का दास पुत्र जो धन्य सार्थवाह के घर पर—नौकर—था (देवदिन्नस्स दारगस्स
 बालग्राही जाए) वह देवदत्त का बालग्राही—शिशु अवस्था का संरक्षक—
 हुआ । (देवदिन्नं दारयं कट्टीए गेण्हइ) यह देवदत्त को अपनी कमर=गोद में
 लिये रहता था । (गेण्हित्ता) यह उसे अपनी गोद में लेकर (बहूहिं

तए णं से पंधए दासचेडए इत्यादि ॥

टीकार्थ (तए णं) त्थार पथी (से पंधए दासचेडए) पान्थक नामे दास
 पुत्र—के धन्यसार्थवाहना घर नोकर हुतो— (देवदिन्नस्स दारगस्स बालग्राही
 जाए) पाणक देवदत्तना संरक्षणु भाटे नियुक्त करवाभां आये। (देवदिन्नं दारगं
 कट्टीए गेण्हइ) ते देवदत्तने केड=जोणभां जेसाडीने राखतो हुतो. (गेण्हित्ता) अने

मूलम्—तएणं से पंथए दासचेडए देवदिन्नस्स दारगस्स
 वालग्गाही जाए, देवदिन्नंदारयं कडीए गेणहइ, गेण्हत्ता बहूहिं डिंभ
 एहि य डिंभयाहि य दारएहि य दारियाहि य कुमारएहि य कुमारियाहि य
 सद्धिं संपरिवुडे अभिरमइ। तएणं भद्दा सत्थवाही अन्नया कयाइं देव-
 दिन्नं दारयं ण्हायं कयवलिकम्मं कयकोउलपायच्छित्तं सव्वालंकार-
 विभूसियं करेइ, करित्ता पंथयस्स दासचेटयस्स हत्थयंसि दलइ। तएणं
 से पंथए दासचेडए भद्दाए सत्थवाहीए हत्थाओ देवदिन्नं दारगं
 कडिए गिणहइ, गिण्हत्ता सयाओ गिहाओ पडिनिक्खमइ, पडिनि-
 क्खमित्ता बहूहिं डिंभएहि य डिंभियाहि य कुमारएहि य कुमारियाहि
 य सद्धिं संपारिवुडे जेणेव गयमग्गे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता
 देवदिन्नं दारगं एगंते ठावेइ, ठावित्ता बहूहिं डिंभएहि य जाव
 कुमारियाहिय सद्धिं संपरिवुडे पमत्ते यावि विहरइ। इमं च णं विजए तक्करे
 रायगिहस्स बहूणि दाराणि य अवद्धाराणि य तहेव जाव आभोएमाणे
 मग्गेमाणे गवेसेमाणे जेणेव देवदिन्ने दारए तेणेव उवागच्छइ, उवा-
 गच्छित्ता देवदिन्नं दारगं सव्वालंकारविभूसियं पासइ पासित्ता देवदिन्नस्स
 दारगस्स आभरणालंकारेसु मुच्छिए गट्टिए गिद्धे अज्झोववन्ने पंथयं

अक्खयनिहिं च अणुवडुंतेति) बालक के नाम संस्कार होने के पश्चात् मातापिताने
 उन नाग आदि ऋ प्रतिमाओं की खूब सेवा की—दान दिया—अपने हिस्से में से खूब
 द्रव्य का वितरण किया और उनके क्रोध की खूब वृद्धि की ॥सूत्र ६॥

दायं च भाय च अक्खयनिहिं च अणुवडुंतेति) आणकनां नाम संस्कार बाद
 आणकनां मातापिताये नाग वगेरे प्रतिमाओंकी पूजा व सारी, पेटे पूजा करी,
 पुष्प प्रमाणुमां दान आभ्युं, पोताना लागना द्रव्यत्वं बहु व प्रमाणुमां वितरण
 क्युं अने देवताओंना डोपनी पूजा अभिवृद्धि करी ॥ सू ६ ॥

दासचेडं पमत्तं पासइ, पासित्ता दिसालोय करेइ करेत्ता देवदिन्नं
 द्वारगं गेण्हइ, गेण्हित्ता कक्खंसि अल्लियावेइ अल्लियावित्ता उत्तरिज्जेणं
 पिहेइ, पिहित्ता सिग्घं तुरियं चवलं वेइयं रायगिहस्स नगरस्स अव-
 द्वारेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव जिण्णुज्जाणे जेणेव
 भग्गकूवए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता देवदिन्नं दारयं जीवि
 याओ ववरोवेइ, ववरोवित्ता आभरणालंकारे गिण्हइ गिण्हित्ता देव-
 दिन्नस्स दारगस्स सरीरगं निप्पाणं निच्चेट्ठं जीवियविप्पजठं भग्गकू-
 वए पक्खिवइ, पक्खिवित्ता जेणेव मालुयाकच्छए तेणेव उवागच्छइ
 उवागच्छित्ता मालुयाकच्छयं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता निच्चले
 निप्फंदे तुसिगीए दिवसं खवेमाणे चिट्ठइ ॥सू. ७॥

टीका—‘तएणं से पंधए’ इत्यादि—‘तएणं’ ततः खलु=तदनन्तरं ‘से’
 असौ पान्थकनामा ‘दासचेडए’ दासचेटकः= दासपुत्रो यो धन्यसार्थवाहस्य
 गृहे कर्मकरत्वेन स्थित आसीत्—स देवदत्तस्य दारकस्य ‘वालगाही’ वाल
 ग्राही वालं ग्रहीतुं शीलमस्यास्तीति वालग्राही=शिशुसंरक्षको जातः । असौ देव-
 दत्तं दारकं कट्यां गृह्णाति, गृहीत्वा बहुभिः ‘डिभएहि य’ डिम्भकैश्च,

‘तएणं से पंधए दासचेडए’ इत्यादि ।

टीकार्थ—(तएणं) इसके बाद (से पंधए दासचेडए) यह पान्थकनाम
 का दास पुत्र जो धन्य सार्थवाह के घर पर-नौकर-था (देवदिन्नस्स दारगस्स
 वालगाही जाए) वह देवदत्त का वालग्राही—शिशु अवस्था का संरक्षक-
 हुआ । (देवदिन्नं दारयं कडीए गेण्हइ) यह देवदत्त को अपनी कमर=गोद में
 लिये रहता था । (गेण्हित्ता) यह उसे अपनी गोद में लेकर (वहूहिं

तए णं से पंधए दासचेडए इत्यादि ॥

टीकार्थ (तए णं) त्थार पथी (से पंधए दासचेडए) पान्थक नामे दास
 पुत्र-के धन्यसार्थवाहना घेर नोकर हुते— (देवदिन्नस्स दारगस्स वालगाही
 जाए) जाणक देवदत्तना संरक्षक भाटे नियुक्त करवाभां आव्ये (देवदिन्नं दारगं
 कडीए गेण्हइ) ते देवदत्तने केड=जाणामां जेसाडीने राखतो हुते. (गेण्हित्ता) अने

मूलम्—तएणं से पंथए दासचेडए देवदिन्नस्स दारगस्स
 वालगाही जाए, देवदिन्नंदारयं कडीए गेणहइ, गेण्हत्ता वडूहिं डिंभ
 एहि य डिंभयाहिय दारएहि य दारियाहि य कुमारएहि य कुमारियाहिय
 सद्धिं संपरिवुडे अभिरमइ। तए णं भद्दा सत्थवाही अन्नया कयाइं देव-
 दिन्नं दारयं ण्हायं कयवलिकम्मं कयकोउलपायच्छित्तं सव्वालंकार-
 विभूसियं करेइ, करित्ता पंथयस्स दासचेटयस्स हत्थयंसि दलइ । तएणं
 से पंथए दासचेडए भद्दाए सत्थवाहीए हत्थाओ देवदिन्नं दारगं
 कडिए गिणहइ, गिण्हत्ता सयाओ गिहाओ पडिनिक्खमइ, पडिनि-
 क्खमित्ता वडूहिं डिंभएहि य डिंभियाहिय य कुमारएहि य कुमारियाहि
 य सद्धिं संपारवुडे जेणेव गयमग्गे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता
 देवदिन्नं दारगं एगंते ठावेइ, ठावित्ता वडूहिं डिंभएहि य जाव
 कुमारियाहिय सद्धिं संपरिवुडे पमत्ते यावि विहरइ। इमं च णं विज्जए तक्करे
 रायगिहस्स वडूणि दाराणि य अवहाराणि य तहेव जाव आभोएमाणे
 मग्गेमाणे गवेसेमाणे जेणेव देवदिन्ने दारए तेणेव उवागच्छइ, उवा-
 गच्छित्ता देवदिन्नं दारगं सव्वालंकारविभूसियं पासइ पासित्ता देवदिन्नस्स
 दारगस्स आभरणालंकारेसु मुच्छिए गडिए गिद्धे अज्झोववन्ने पंथयं

अवस्वयनिर्दि च अणुवडूँतेति) वालक के नाम संस्कार होने के पश्चात् मातापिताने
 उन नागवादि रु प्रतिमाओं की खूब सेवा की-दान दिया-अपने हिस्से में से खूब
 द्रव्य का वितरण किया और उनके कोप की खूब वृद्धि की ॥ सूत्र ६ ॥

दायं च भाय च अक्खयनिर्दिच अणुवडूँतेति) णाण्डनां नाम संस्कार णाण्ड
 णाण्डनां मातापिताओ नाग वजेरे प्रतिमाओनी पूण ७ सारी, पेठे पूण करी,
 पुष्प प्रमाणुमां दान आप्थुं, पीताना भागना द्रव्यत्वं णहु ७ प्रमाणुमां वितरलु
 क्थुं अने देवताओना डोपनी पूण अलिवृद्धि करी ॥ सू ६ ॥

कृत्वा पांथकस्य दासचेटकस्य हस्ते ददाति । ततः खलु स पांथको दास-
चेटको भद्रायाः सार्थवाद्या हस्ताद् देवदत्तं दारकं कट्यां गृह्णाति, गृहीत्वा
म्वकाद् गृह्णात् प्रतिनिष्कामति, प्रतिनिष्काम्य बहुभिः डिम्भकैश्च डिम्भिकाभिश्च
दारकैश्च दारिकाभिश्च, कुमारकैश्च कुमारिकाभिश्च सार्द्धं संपरिवृतो यत्रैव राज-
मार्गस्तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य देवदत्तदारकमेतन्ते 'ठवेड' स्थापयति=उपवेशयति
उपवेश्य बहुभिः डिम्भकैश्च यावत्कुमारिकाभिश्च सार्द्धं संपरिवृतः 'पमते'
पमतः=तद्रक्षणं प्रमादवान् चापि 'विहरड' विहरति=यावत्कचालिकादिभिः
सहान्यत्र रमते ।

चरित कर समस्त अलंकारों से विभूषित किया (करिचा पंथयस्स दासचेट
यस्म हत्ययंसि दलयइ) विभूषित करके बाद में उसने उसे पांथक दास
चेटथ के हाथमें दे दिया! (तएणं से पंथए दासचेडए भद्दाए मत्थवा
हीए हत्थाओ देवदिन्न दारयं कडिए गिण्हइ) उस पांथकदासचेटकने भद्रा
सार्थवादीके हाथ से लेकर देवदत्त को अपनी कटी=गोद में ले लिया।
(गिण्हिना सयाओ गिहाओ पडिनिक्खमइ) और लेकर वह अपने घर
से बाहर निकला। (पडिनिक्खमित्ता वहुहिं डिम्भएहिं डिम्भयाहिय कुमा-
रएहि य कुमारियाहि य सद्धिं संपरिवुडे जेणेव रायमग्गे तेणेव उवा-
गच्छइ) निकल कर वह अनेक डिम्भिकों से अनेक डिम्भिकाओं से कुमार
और कुमारिकाओं से घिरा हुआ होकर जहां राजमार्ग था वहां पर गया
(उवागच्छित्ता देवदिन्नं दारयं एगंते ठवेड, ठावित्ता वहुहिं डिम्भएहिं
जाव कुमारियाहि य सद्धिं संपरिवुडे पमत्ते यावि विहरइ। जाकर उसने

अलंकृत कथों। (करिचा पंथयस्स दासचेटयस्स हत्ययंसि दलयइ) जाणकने
घरेण्णोओथी अलंकृत कथां. जाह माताओ तेने पांथक दास चेटकने सोंपी दीथो.
(तए णं से पंथए दासचेडए भद्दाए मत्थवाहीए हत्थाओ देवदिन्नं
दारयं कडिए गिण्हइ) पांथक दासचेटकके भद्रा सार्थवादीना हाथमांथी जाणकने
लधने पोताना जाणामां लधं दीथो. (गिण्हित्ता सयाओ गिहाओ पडिनिक्ख-
मइ) अने लधने ते घेरथी जाडार निक्खथो. (पडिनिक्खमित्ता वहुहिं डिम्भ
एहिं डिम्भियाहि य कुमारयाहि य कुमारियाहि य सद्धिं संपरिवुडे जेणेव
रायमग्गे तेणेव उवागच्छइ) नीकजीने ते घण्णु डिंकिओ-माणओ-डिंकि-
ओओ-जाणओओ, तेमज कुमार अने कुमारीओनी साथे न्यां राज-
मार्गं उतो त्यां गथो. (उवागच्छित्ता देवदिन्नं दारयं एगंते ठवेड
ठावित्ता वहुहिं डिंएहिं जाव कुमारियाहि य सद्धिं संपरिवुडे पमत्ते यावि

डिम्भाः=अल्पकालिकाः शिशवः. डिम्भा एव डिम्भकास्तेः, डिम्भिकाभिश्च=अल्पकालिकवालिकाभिश्च. 'दारएहि य, दारकैश्च=पट्टकालिकवालकैः, दारिकाभिश्च=वालिकाभिः सार्द्धं संपरिवृतः=सहितः 'अभिरममाणे' अभिरममाणः=ःशोडन् सन् 'अभिरमइ' अभिरमति=तिष्ठति । ततः खलु सा भद्रा सार्थवाही अन्वया कदाचित् देवदत्तं दारकं 'ह्रिया' स्नातं कारितस्नानं, 'कयवलिकम्मं' कृतवालिकर्माणम्=अरिष्टादि निवारणाय पशुपदयादि सर्वपापनिमित्तं कारिताद्योत्सर्गम् 'कयकोउयमंगलपायच्छित्तं' कृतकौतुकमङ्गलपायश्चित्तं=दृष्टिरोपादिनिवारणार्थं कृतमपो निलकादिकं सर्वालंकारविभूषितं करोति.

डिम्भएहि य डिम्भियाहि य दारएहि य दारियाहि य कुमारेहि य कुमारियाहि य सद्धिं संपरिवुडे अभिरममाणे अभिरमइ) अनेक डिम्भकों के—छोटेश्वालकों के साथ अनेक छोटी र वालिकाओं के साथ, अनेक दारकों के साथ—डिम्भकों की अपेक्षा कुछ अधिक उमरवाले वालकों के साथ कुछ अधिक अनेक दारिकाओं के साथ, अनेक कुमार और कुमारिकाओं के साथ उनसे युक्त होकर क्रीडा किया करता था । अर्थात् उन सबके साथ मिलकर वह उस देवदत्त बालक को खिलाया करता था । (तएणं सा भद्रा सत्थवाही अन्नया कयाइं देवदिन्नं दारयं ण्हायं कयवलिकम्मं कयकोउयमंगलपायाच्छित्तं सञ्चालंकारविभूसियं करेइ) एक दिन की बात है कि उस भद्रा सार्थवाही उस देवदत्त नामके अपने पुत्र को स्नान करावा कर तथा उसके निमित्त से वायसादि पक्षियों को अन्नादि का भागरूप बलिकर्म कर एवं कौतुक, मंगल और प्रायश्चित्त विधि समा-

जाणाभां जेयाहीने (वहहिं डिम्भएहि य डिम्भियाहे य दारएहि य दारियाहि य कुमारेहि य कुमारियाहि य सद्धिं संपरिवुडे अभिरममाणे अभिरमइ) अनेक डिम्भकों—नाना नानां धणुं जाणकेनी साथे—नानी नानी जाणाओनी साथे, धणुा दारकेनी साथे ओटवे डे डिम्भके क्तां जरा मोठी उंभर थाणा जाणकेनी साथे—धणुा दारिकाओनी साथे, धणुा कुमार अने कुमारािकाओनी साथे भणीने रभतो रभाउतो हुतो. ओटवे डे पांथक णथां जाणकेनी साथे भणीने देवदत्त रभाउतो हुतो. (तए णं सा भद्रा सत्थवाही अन्नया कयाइं देवदिन्नं दारयं ण्हायं कयवलिकम्मं कयकोउयमंगलपायाच्छित्तं सञ्चालंकारविभूसियं करेइ) ओके दिवस भद्रा सार्थवाहीजे पोताना जाणक देवदत्तने नय-अवीने ते निमित्ते डागअ वगेरे पक्षीओने अन्न वगेरेनेा भाग अर्पिने, कौतुक, मंगल अने प्रायश्चित्त विधि पूरी करी अने त्यार जाद जाणकेने सुंदर धरेणांओथी

कृत्वा पान्थकस्य दासचेटकस्य हस्ते ददाति । ततः खलु स पान्थको दास-
चेटको भद्रायाः सार्थवाद्या हस्ताद् देवदत्तं दारकं कट्यां गृह्णाति, गृहीत्वा
स्वकाद् गृहात् प्रतिनिष्क्रामति, प्रतिनिष्क्रम्य बहुभिः डिम्भकैश्च डिम्भिकाभिश्च
दारकैश्च दारिकाभिश्च, कुमारकैश्च कुमारिकाभिश्च सार्द्धं संपरिवृतो यत्रैव राज-
मार्गस्तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य देवदत्तदारकमेतन्ते 'उवेड' स्थापयति=उपवेशयति
उपवेश्य बहुभिः डिम्भकैश्च यावत्कुमारिकाभिश्च सार्द्धं संपरिवृतः 'पमते'
पमतः=तद्रक्षणे प्रमादवान् चापि 'विहरइ' विहरति=वालकवालिकादिभिः
सहान्यत्र रमते ।

चरित कर समस्त अलंकारों से विभूषित किया (करित्ता पंथयस्स दासचेट
यम्म हत्थयंसि दलयइ) विभूषित करके बाद में उसने उसे पांथक दास
चेटथ के हाथमें दे दिया! (तएणं से पंथए दासचेडए भद्दाए मत्थवा
हीए हत्थाओ देवदिन्न दारयं कडिए गिण्हइ) उस पांथकदासचेटकने भद्रा
सार्थवादीके हाथ से लेकर देवदत्त को अपनी कटी=गोद में ले लिया ।
(गिण्हिन्ना सयाओ गिहाओ पडिनिक्खमइ) और लेकर वह अपने घर
से बाहर निकला । (पडिनिक्खमित्ता चहुँहि डिम्भएहि डिम्भयाहिय कुमा-
रएहि य कुमारियाहि य सद्धि संपरिवुडे जेणेव रायमग्गे तेणेव उवा-
गच्छइ) निकल कर वह अनेक डिम्भिकों से अनेक डिम्भिकाओं से कुमार
और कुमारिकाओं से घिरा हुआ होकर जहाँ राजमार्ग था वहाँ पर गग
(उवागच्छित्ता देवदिन्नं दारयं एगंते ठावेइ, ठावित्ता चहुँहि डिम्भएहि
जाव कुमारियारि य सद्धि संपरिवुडे पमत्ते यावि विहरइ। जाकर उसने

अलं कृतं कथीं. (करित्ता पंथयस्स दासचेटयस्स हत्थयंसि दलयइ) आणकने
धरेणुआथी अलं कृत कथीं. आद माताये तेने पांथक दास चेटकने सोंपी दीथो.
(तए णं से पंथए दासचेडए भद्दाए मत्थवाहीए हत्थाओ देवदिन्नं
दारयं कडिए गिण्हइ) पांथक दासचेटके लद्दा सार्थवादीना हाथमांथी आणकने
लधने पोताना ओणाभां लध दीथो. (गिण्हित्ता सयाओ गिहाओ पडिनिक्ख-
मइ) अने लधने ते धरेथी आडार निक्खथे. (पडिनिक्खमित्ता चहुँहि डिम्भ
एहि डिम्भयाहिय कुमारयाहि य कुमारियाहि य सद्धि संपरिवुडे जेणेव
रायमग्गे तेणेव उवागच्छइ) नीकणीने ते धणु डिंकिडे-आणके-डिंकि-
डेओ-आणाओ, तेभए कुमार अने कुमारीओनी साथे न्थां राज-
मार्गं उतो त्यां गथो. (उवागच्छित्ता देवदिन्नं दारयं एगंते ठावेइ
ठावित्ता चहुँहि डिं एहि जाव कुमारियाहि य सद्धि संपरिवुडे पमत्ते यावि

डिम्भाः=अल्पकालिकाः शिशवः. डिम्भा एव डिम्भकास्तैः, डिम्भिकाभिश्च= अल्पकालिकवालिकाभिश्च. 'दारएहि य, दारकैश्च=चतुःकालिकवालकैः, दारिकाभिश्च=वालिकाभिः सार्द्धं संपरिवृतः=सहितः 'अभिरममाणे' अभिरममाणः= क्रीडन् सन् 'अभिरमइ' अभिरमनि=तिष्ठति। ततः खलु सा भद्रा सार्थवाही अन्यदा कदाचित् देवदत्तं दारकं 'ह्याया' स्नातं कारितस्नानं, 'कयवलिकम्मं' कृत्वा लिकर्माणम्=अरिष्टादि निवारणाय पशुपदयादि सर्वपापनिमित्तं कारितान्नोत्सर्गम् 'कयकोउयमंगलपायाच्छित्त' कृतकौतुकमङ्गलपायश्चित्तं=दृष्टिदोषादिनिवारणार्थं कृतमपी तिलकादिकं सर्वालंकारविभूषितं करोति.

डिम्भएहि य डिम्भियाहि य दारएहि य दारियाहि य कुमारेहि य कुमारियाहि य सद्धिं संपरिवृटे अभिरममाणे अभिरमइ) अनेक डिम्भकों के—छोट्टेवालकों के साथ अनेक छोटी २ वालिकाओं के साथ, अनेक दारकों के साथ—डिम्भकों की अपेक्षा कुछ अधिक उमरवाले वालकों के साथ कुछ अधिक अनेक दारिकाओं के साथ, अनेक कुमार और कुमारिकाओं के साथ उनसे युक्त होकर क्रीडा किया करता था। अर्थात् उन सबके साथ मिलकर वह उस देवदत्त बालक को खिलाया करता था। (तएणं सा भद्रा सत्थवाही अन्नया कयाइं देवदिन्नं दारयं ण्हायं कयवलिकम्मं कयकोउयमंगलपायाच्छित्तंसञ्चालंकारविभूसियं करेइ) एक दिन की बात है कि उस भद्रा सार्थवाही उस देवदत्त नामके अपने पुत्र को स्नान करवा कर तथा उसके निमित्त से वायसादि पक्षियों को अन्नादि का भागरूप बलिकर्म कर एवं कौतुक, मंगल और प्रायश्चित्त विधि समा-

भोणाभां भेसादीने (वहूहिं डिम्भएहिं य डिम्भियाहे य दारएहि य दारियाहि य कुमारेहि य कुमारियाहि य सद्धिं संपरिवृटे अभिरममाणे अभिरमइ) अनेक डिम्भकों—नाना नानां धणुं भाणकेनी साथे—नानी नानी भाणाओनी साथे, धणुा दारकेनी साथे ओटवे के डिम्भके कन्तां जरा भोटी उभर पाणा भाणकेनी साथे—धणुी दारिकाओनी साथे, धणुा कुमार अने कुमारिकाओनी साथे भणीने रभतो रमाउतो हुतो. ओटवे के पांथक धणुं भाणकेनी साथे भणीने देवदत्त रमाउतो हुतो. (तए णं सा भद्रा सत्थवाही अन्नया कयाइं देवदिन्नं दारयं ण्हायं कयवलिकम्मं कयकोउयमंगलपायाच्छित्तं सञ्चालंकारविभूसियं करेइ) ओक दिवस भद्रा सार्थवाहीके पोताना भाणक देवदत्तने नव-अवने ते निमित्ते कागडा वगेरे पक्षीओने अन्न वगेरेने लाग अर्पिने, कौतुक, मंगल अने प्रायश्चित्त विधि पूरी करी अने त्यार भाद भाणकेने सुंदर धरेणुंओथी

चेटं 'पमतं' प्रमतम् अन्यत्र संज्ञानचित्त पश्यति, दृष्ट्वा दिनाश्लोपं' दिशाश्लो-
कम्— 'अस्मिन्नवसरे कस्यापि गमनागमनमस्ति न वा?' इति सकलदिशा
निरीक्षणं करोति, कृत्वा देवदत्तं दारकं गृह्णाति, गृहीत्वा 'कक्खसि' कक्षे=
चाहृमूळे 'अल्लियावेइ' आलीनयति=अन्तर्धानं करोति आलीनयित्वा 'उत्त-
रिज्जेणं' उत्तरीयेण=उपरिवस्त्रेण 'दुपट्टा' इति भाषायां, तेन 'पिहेइ' पिद-
धाति,=प्रच्छादयति, प्रच्छाद्य शीघ्रं त्वरितं चपलं वेगितं=शीघ्रातिशीघ्रमित्यर्थः
राजगृहस्य नगरस्यापद्वारेण निर्गच्छति, निर्गत्य यत्रैव जीर्णोद्यान. यत्रैव
भग्नकूपकस्तत्रैवोपागच्छति. उपागत्य देवदत्तं दारकं 'जीवियाओ' जीविनात्

च्छित हा गया--प्रायत हा गया--उनमें एकाग्र बन गया, अथवा गृह--
लुब्ध हो गया--इन्हें मैं छेळूं इस स्थिति से युक्त हुए उसने साथ
में पॉथक दास चेटक का भी अन्यत्र संलग्न चित्तवाला देवा (पासित्ता
दिसाश्लोपं करेइ करित्ता देवदिन्नं दारयं गेण्हइ) देखकर फिर उसने दिशा-
श्लोकन किया--भाजू वाजू को ओर इधर उधर देखा की कहीं से कोई
आता जाता तो नहीं है, जब कोई कहीं नहीं दिखाईपडा तो उसने
उसी समय उस देवदत्त दारक को उठा लिया। (गेण्हित्ता कक्खसि
अल्लियावेइ, अल्लियावित्ता उत्तरिज्जेणं पिहेइ) उठाकर फिर उसने उसे
अपनी काँख में छुपा लिया। छुपाकर बाद में उसे दुपट्ट से ढक लिया
(पिहित्ता सिग्घं, तुरियं चवलं चेइयं रायगिहस्स नयरस्स अवहारणं निग्गच्छइ)
ढक कर वह फिर वहाँ से शीघ्र, त्वरित, जल्दी जल्दी राजगृह नगर के
अन्दर पिछले द्वार २ से बाहर निकला (निग्गच्छित्ता जेणेव जिण्णुज्जाणे जेणेव

पासइ) देवदत्तने गड्डु भूय्य धरेष्वांओथी अलं'कृत नेधने ते भोडवथ थथं गथे,
तेनुं चित्त धरेष्वांओमां न चोटी गथुं अथवा तो ते बोनाथं गथे. आ धरेष्वा-
ओने हुं' डुरी लड' आ नतने विचार तेना मनमा स्कुथी. चारे दास चेटक
पंथकने पथु त्यां थोडे हर रमतमां तस्सीन नेथे. (पासित्ता दिमाश्लोपं करेइ करित्ता
देवदिन्नां दारयं गेण्हइ) पंथकने नेथे पथी तेणु ओभेर नेथुं डे डोथ आवतुं
तो नथी? न्यारे तेने डोथ देणायुं नडि. त्यारे तेणु तरत आणक देवदत्तने उपाडी
दीथे. (गेण्हित्ता कक्खसि अल्लियावेइ अल्लियावित्ता उत्तरिज्जेणं पिहेइ) उपाडीने
तेणु आणकने पडणांमां छुपावीने तेने दुपट्टाथी ढांडी दीथे. (पिहित्ता सिग्घं तुरियं
चांउं चेइयं रायगिहस्स नयरस्स अवहारणं निग्गच्छइ) ढांडीने ते सत्तरे
त्वरित गतिथी राजगृह नगरना अपद्वारथी गड्डार नीकणी गथे. (निग्गच्छित्ता
जेणेव जिण्णुज्जाणे जेणेव भग्नकूपे तेणेव उवागच्छइ) नीकणीने ते
ते न्यां भूतुं उद्यान अने लज्ज दूयो डतो त्यां पडोन्थे. (उवागच्छित्ता

अयं च खलु विजयस्तस्करो राजगृहस्य नगरस्य बहूनि दाराणि च 'अवदाराणि य' अपद्वाराणि=लघुद्वाराणि च 'तद्देव तथैव=पूर्वदेवात्र सर्वस्थानानि वाच्यानि यावत् 'आभोएमाणे आभोगयन्=सोपयोगमवलोकयन् मार्गयमाणो गवेपयमाणो यथैव देवदत्तो दारकस्तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य देवः तं दारकं सर्वालङ्कारविभूषितं पश्यति, दृष्ट्वा देवदत्तस्य दारकस्याभरणालङ्कारेषु 'मुच्छिष्टे' मूर्च्छितः=कर्तव्यव्यापारशून्यः 'गद्विष्टे' ग्रथितः=एकाग्रतामापन्नः, 'गिद्वे' गृहः=लुब्ध 'अज्ज्ञोचवन्ने' अध्युपपन्नः=ममत्वबहुलः पान्थकं नाम

उस देवदत्त दारक को एकांत में छोड़ दिया और स्वयं उन डिब्बत यावत् कुमारिकाओं के साथ घिरा हुआ होकर प्रमादवान् बन गया— अर्थात् उन बालक बालिका आदिकों के—साथ अन्यत्र खेलने लग गया। (इमंच णं विजए तक्करे रायगिहस्स नगरस्स बहूणि दाराणि य अवदाराणि य तद्देव जाव आभोएमाणे मग्गेमाणे गवेसेमाणे जेणेव—देव दिन्ने दारए तेणेव उवागच्छइ) इतने में विजय तस्कर राजगृह नगर के अनेक द्वारों को अनेक छोटे २ द्वारों को पहिले की तरह उपयोग पूर्वक देखता हुआ उन्हें चार २ तपासता हुआ, सूक्ष्मदृष्टि से उनकी गवेपणा करता हुआ जहाँ वह देवदत्त दारक था वहाँ आया। (उवागच्छिच्चा देवदिन्नं दारगं सव्वालंकारविभूसियं पासइ) आकर उसने देवदत्त दारक को समस्त अलंकारों से विभूषित हुआ देखा। (पासित्ता देवदिन्नस्स दारगस्स आभरणालंकारेसु मुच्छिष्टे गद्विष्टे गिद्वे अज्ज्ञोचवन्ने पंथयं दासचेडं पमत्तं पासइ) देखकर के वह देवदत्त के आभरण और अलंकारों में मुविहरइ) त्यां पढेअंथिने तेण्णु देवदत्तने प्रमाद वथ थधने अेकांत न्थाअे भूद्धी दीथे अने पोते ने न्था डिळक, डिळिका, कुमार अने कुमारिकाअेःनी साथे रमतमां पडी गथे. अेटवे डे तेमनी साथे रमवा लाअे. (इमंच णं विजए तक्करे रायगिहस्स नगरस्स बहूणि दाराणि य अवदाराणि य तद्देव जाव आभोएमाणे गवेसमाणे जेणेव देवदिन्ने दारए तेणेव उवागच्छइ) अेटलाभां विन्थ नामे ते तस्कर (थार) राजगृह नगरना अनेक दरवाज्जथे, अनेक नाना दरवाज्जथेने पढेलांती नेभ न् थोरीनी ताकमां जीण्णी नन्दे तपासतो नेतो—न्थां णाणक देवदत्त इतो त्यां आअे. (उवागच्छिच्चा देवदिन्नं दारगं सव्वालंकारविभूसियं पासइ) त्यां आपतांती साथे न् तेण्णु णाणक देवदत्तने सवालंकारथी अलंघृत थयेथे नेथे. (पासित्ता देवदिन्नस्स दारगस्स आभरणालंकारेसु मुच्छिष्टे गद्विष्टे गिद्वे अज्ज्ञोचवन्ने पंथयं दासचेडं पमत्तं

मूलम्--तएणं से पंथए दासचेडे तओ मुहुत्तंतरस्स जेणेव
 देवदिन्ने दारए ठविए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता देवदिन्नं
 दारगं तंसि ठाणंसि अपासमाणे रोयमाणे कंदमाणे विलवमाणे देव-
 दिन्नस्स दारगस्स सब्बओ समंता मग्गणगवेसणं करेइ करित्ता देव-
 दिन्नस्स दारगस्स कत्थइ सुइं वा खुइं वा पउत्तिं वा अलभमाणे
 जेणेव सए गिहे जेणेव धण्णे सत्थवाहे तेणेव उवागच्छइ, उवाग-
 च्छित्ता धण्णं सत्थवाहं एवं वयासी--एवं खलु सामी ! भद्दा सत्थ-
 वाही देवदिन्नं दारयं ण्हायं जाव मम हत्थंसि दलयइ, तएणं अहं
 देवदिन्नं दारयं कडीए गिण्हामि गिण्हित्ता जाव, मग्गणगवेसणं करेमि
 तं न णज्जइ णं सामि ! देवदिन्ने दारए केणइ हये वा अवहिए वा
 अवखित्ते वा पायवडिए धण्णस सत्थवाहस्स एयमट्टं निवेदेइ, त . णं
 से धण्णे सत्थवाहे पंथयदासचेडयस्स एयमट्टं सोच्चा णिसम्म तेण य
 महया पुत्तसोएणाभिभूये समाणे परसुणियत्तं चंपगपायवे धसत्ति
 धरणीतलंसि सब्बंगेहिं सन्निवइए, तएणं मे धण्णे सत्थवाहे तओ
 मुहुत्तंतरस्स आसत्थे पच्छागयपाणे देवदिन्नस्स दारगस्स सब्बओ
 समंता मग्गणगवेसणं करेइ देवदिन्नस्स दारगस्स कत्थइ सुइं वा
 खुइं वा पउत्तिं वा अलभमाणे जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ,
 उवागच्छित्ता महत्थं पाहुडं गेण्हइ, गेण्हित्ता जेणेव नगरगुत्तिया
 तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तं महत्थं पाहुडं उवणेइ, उवणित्ता
 एवं वयासी एवं खलु देवाणुप्पिया ! मम पुत्ते भद्दाए भारियाए अत्तए
 देवदिन्ने नाम दारए इट्ठे जाव उंवरपुप्फंपिव दुल्लहे सवणयाए किमंग

माणेभ्यः ववरोवेइ' वपरोपयात=पृथक्कराति मरयतात्यथः, जीविता-
 द्वयपरोप्य आभरणालङ्कारान् गृह्णाति, गृह्णीत्वा देवदत्ताय दारयकस्य शरीरं
 'निष्पाणं' निष्पाणम्=वासोच्छ्रामादि माणरुद्धिं 'निच्चेइ' निश्चेष्टं=जीवनव्यापार-
 रहितं 'जीवविष्यजहं' जीवविप्रत्यक्तम्=आत्मप्रदेशरहितं देवदत्तादारकशरीरं भग्नकूपे
 प्रक्षिपति, प्रक्षिप्य यत्रैव मालुकाकक्षकस्तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य मालुकाकक्ष-
 कमनुप्रविशति, अनुप्रविश्य 'निचले' निश्चलः=गमनागमनादिवर्जितः 'निष्फंदे'
 निष्फन्दः=हस्तपादाद्यवयवचलनरहितः 'तुसिणीए' तूष्णीकः=वचनव्यापार-
 हितः सन् दिवसं=तदिनं 'खवेमाणे' क्षपयन्=गमयन् तिष्ठति ॥सू० ७॥

भग्नकूपे, तेणैव उवागच्छइ) निकल कर वहां गया कि जहां वह जीव
 उद्यान और भग्न कूप था। (उवागच्छिता देवदिन्नं दारयं जीवियाओ
 ववरोवेइ) वहां पहुँच कर उसने उस देवदत्त दारक को मार डाला।
 (ववरोविन्ना आभरणालंकारे गिण्डइ, गिण्हिता देवदिन्नस्स दारगस्स सरीरं
 निष्पाणं निच्चेइ जीवियविष्यजहं भग्नकूपे पक्खिवइ) मार कर उसके
 ममस्तआभूषण उतार लिये—और देवदत्त दारक के उस निष्पाण, निश्चेष्ट
 तथा आत्मप्रदेशों से विहीन बने हुए शरीर को भग्नकूप में डाल दिया।
 (पक्खिवित्ता जेणैव मालुया कच्छए तेणैव उवागच्छइ उवागच्छिता
 मालुया कच्छए अणुपविसइ, अणुपविसित्ता निचले निष्फंदे तुसिणीए
 दिवसं खवेमाणे चिइइ) डालकर फिर वह जहां मालुका कक्ष था वहां
 आया। आकर वह उसमें प्रविष्ट हुआ—और उसी में चुपचाप घुसे
 उसने निश्चल और निश्चेष्ट होकर वह अपना दिन व्यतीत—किया। ॥सूत्र ७॥

देवदिन्नं दारय जीवियाओ ववरोवेइ) त्यां पडोन्थीने तेण्णु भाणकं देवदत्तने मारी
 नाण्णे. (ववरोवेत्ता आभरणालंकारे गिण्डइ गिण्हिता देवदिन्नस्स दारगस्स
 सरीरं निष्पाणं निच्चेइ जीवियविष्यजहं भग्नकूपे पक्खिवइ) मारीने
 तेनां यथा धरेणुंओ तेण्णु उतारी वीधां अने तेना निष्पाण, निश्चेष्ट तेमं आत्म
 प्रदेशो वगरना शरीरने भग्न कूपामां ईकी वीधुं. (पक्खिवित्ता जेणैव मालुया
 कच्छए तेणैव उवागच्छइ उवागच्छिता मालुयाकच्छयं अनुपविसइ
 अणुपविसित्ता निचले निष्फंदे तुसिणीए दिवसं खवेमाणे चिइइ).
 (ईकीने ते न्यां मालुका कक्ष इतो त्यां गथो. अथने तेमां प्रवेथीने तेण्णु थप
 थाप निश्चल अने निश्चेष्ट यथने पोतने दिवस पसार कथो. ॥ सूत्र ७ ॥

मूलम्--तएणं से पंथए दासचेडे तओ मुहुत्तंतरस्स जेणेव
 देवदिन्ने दारए ठविए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता देवदिन्नं
 दारगं तंसि ठाणंसि अपासमाणे रोयमाणे कंदमाणे विलवमाणे देव-
 दिन्नस्स दारगस्स सव्वओ समंता मग्गणगवेसणं करेइ करित्ता देव-
 दिन्नस्स दारगस्स कत्थइ सुइं वा खुइं वा पउत्तिं वा अलभमाणे
 जेणेव सए गिहे जेणेव धण्णे सत्थवाहे तेणेव उवागच्छइ, उवाग-
 च्छित्ता धण्णं सत्थवाहं एवं वयासी--एवं खलु सामी ! भद्दा सत्थ
 वाही देवदिन्नं दारयं ण्हायं जाव मम हत्थंसि दलयइ, तएणं अहं
 देवदिन्नं दारयं कडीए गिण्हामि गिण्हित्ता जाव, मग्गणगवेसणं करेमि
 तं न णज्जइ णं सामि ! देवदिन्ने दारए केणइ ह्ये वा अवहिए वा
 अवखित्ते वा पायवडिए धण्णस सत्थवाहस्स एयमट्ठं निवेदेइ, त . णं
 से धण्णे सत्थवाहे पंथयदासचेडयस्स एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म तेण य
 महया पुत्तसोएणाभिभूये समाणे परसुणियत्तव चंपगपायवे धसत्ति
 धरणीतलंसि सव्वंगेहिं सन्निवइए, तएणं मे धण्णे सत्थवाहे तओ
 मुहुत्तंतरस्स आसत्थे पच्छागयपाणे देवदिन्नस्स दारगस्स सव्वओ
 समंता मग्गणगवेसणं करेइ देवदिन्नस्स दारगस्स कत्थइ सुइं वा
 खुइं वा पउत्तिं वा अलभमाणे जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ,
 उवागच्छित्ता महत्थं पाहुडं गेण्हइ, गेण्हित्ता जेणेव नगरयुत्तिया
 तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तं महत्थं पाहुडं उवणेइ, उवणित्ता
 एवं वयासी एवं खलु देवाणुप्पिया ! मम पुत्ते भद्दाए भारियाए अत्तए
 देवदिन्ने नाम दारए इट्ठे जाव उंवरपुष्फंपिव दुल्लहे सवणयाए किमंग

पुण पासणयाए?, तएणं सा भद्वा देवदिन्नं दारयं सव्वालंकारविभू-
 सियं पंथगस्स हत्थे दलाइ जाव पायवडिए तं मम निवेदेइ, तं इच्छा
 मिणं देवाणुप्पिया! देवदिन्नदारगस्स सव्वओ समंता मग्गणगवेसणं
 काउं। तएणं ते नगरगुत्तिया धण्णेणं सत्थवाहेणं एवं वुत्ता समाणा
 सन्नद्धवद्धवम्मियकवया उप्पीलियसरासणवट्टिया जाव गहियाउयप-
 हरणा धण्णेणं सत्थवाहेणं सद्धिं रायगिहस्स नगरस्स बहूणि अइ-
 गमणाणि य जाव पवासु य मग्गणगवेसणं करेमाणा रायगिहाओ
 नगराओ पडिनिक्खमंति पडिनिक्खमित्ता जेणेव जिण्णुज्जाणे जेणेव
 भग्गकूवए तेणेव उवागच्छंति उवागच्छित्ता देवदिन्नस्स दारगस्स
 सरीरगं निप्पाणं जीवविप्पजढं पासंति, पासित्ता हा हा अहो अक-
 ज्जमितिकट्टु देवदिन्नं दारगं भग्गकूवाओ उत्तारंति उत्तारित्ता धण्णस्स
 सत्थवाहस्स हत्थे दलयंति ॥सू० ८॥

टीका—‘तएणं से पंथए’ इत्यादि ततःखलु स पान्थको दासचेटकः,
 .तओ मुहुत्तंतरस्स’ ततो मुहुत्तान्तरस्य=मुहुत्तान्तरं यत्र देवदत्तो दारकस्थापि
 तस्तत्रैवोपागच्छंति, उपागत्य देवदत्तं दारकं तस्मिन् स्थाने ‘अपासमाणे’ अपश्यन्

‘तएणं से पंथए दासचेडे’ इत्यादि ।

टीकार्थ—इसके बाद (से पंथए दासचेडे) वह पांथकदासचेटक
 (तओ) वहां से (मुहुत्तंतरस्स जेणेव देवदिन्ने दारए ठविए तेणेवाउवग-
 च्छइ) एक मुहुत्त के बाद जहां देवदत्त को बैठाया था वहां—गया
 (उवागच्छित्ता देवदिन्न दारगं तंसि ठाणंसि अपासमाणे रोयमाणे कंद-

तएणं से पंथए दासचेडे इत्यादि ॥

टीकार्थ—(तएणं) त्थार णुए (से पंथए दासचेडे) पांथक दास चेटक (तओ)
 त्यांथी (मुहुत्तंतरस्स जेणेव देवदिण्णे दारए ठविए तेणेव उवागच्छइ)
 ओक मुहुत्तं पछी ज्थां देवदत्तने जेसाउथे इतो त्यां गथे. (उवागच्छित्ता
 देवदिन्नं दारगं तंसि ठाणंसि अपासमाणे रोयमाणे कंद

'रोयमाणे' रुदन=साश्रुपातमार्त्तनाद कुर्वन्, 'कंदमाणे' क्रन्दन्=उच्चैः स्वरेण रुदन 'विलम्बमाणे' विलम्बन्=कृतो दारकः? तन्मन्तरेण कीदृशोऽनर्थो भविष्यति किं करोमि? क्व गच्छामि? इति जल्पन् देवदत्तस्य दारकस्य सर्वतः समन्तान् मार्गणगवेपणां करोति कृत्वा देवदत्तस्य दारकस्य कुत्रापि 'सुइं वा' श्रुतिं वा=दारकवृत्तान्तं 'सुइं वा' श्रुतिं वा छिक्काव्यक्तं तच्चिह्नम्, 'पउत्तिवा' मृत्तिं वा=प्रकटतरवातीम् 'अलभमाणे' अलभमानः=अप्रामुख्यं यत्रैव स्वकं गृहं यत्रैव धन्यः सार्थवाहस्तत्रैवोपागच्छति

माणे विलम्बमाणे देवदिक्कास्त दारगस्त सन्वाओ समता मग्गणगवेसणं करेइ) जाकर उसने उस स्थानपर देवदत्त दारक को नहीं देखा—तो रो पडा अश्रु पात करता हुआ आर्तनाद करने लग गया जोर २ से चिल्ला चिल्ला कर रोने लगा, विलाप करने लगा— देवदत्त दारक कहाँ गया--अब-उसके बिना कैसा अनर्थ होगा, क्या कहूँ--कहाँ--जाऊँ--इस प्रकार बहबडाने लगा--वाद में उसने उम् देवदत्त की वहाँ सब तरफ चारों ओर मार्गणा की गवेपणा की। (करित्ता देवदिक्कास्त दारगस्त कत्थइ सुइं वा खुइं वा पउत्तिं वा अलभमाणे जेणेव सए गिहे जेणेव धन्ने सत्थवाहे तेणेव उवागच्छइ) करके जब उसे उस देवदत्त दारक की कोई श्रुति नहीं सुनाई दी, छिक्कादि अव्यक्त चिह्न भी नहीं ज्ञात हो सका तथा म्पष्ट उसकी किसी बात का पता नहीं पडा तो वह जहाँ अपना घर था-- और जहाँ धन्य सार्थवाह थे-- वहाँ आया (उवागच्छित्ता धणं सत्थवाहं एवं वयासी) आकर धन्य सार्थ-

देवदिक्कास्त दारगस्त सन्वाओ समता मग्गणगवेसणं करेइ) त्यां अधने ते णाणक देवदत्तने नद्धि नेतां उवा भाउथे। विलाप करवा लाउथे। "णाणक देवदत्त कथां जतो रहो? ते वगर हुवे शुं थथे? शुं कडुं? हुवे कथां नद्धि? आ प्रभाणे ते दुःभी थधने विचार करवा लाउथे। त्थार पछी तेणे थोभेर णाणक देवदत्तनी तपास करी अने शोध करी। (करित्ता देवदिक्कास्त दारगस्त कत्थइ सुइं वा खुइं वा पउत्तिं वा अलभमाणे जेणेव सए गिहे जेणेव धन्ने सत्थवाहे तेणेव उवागच्छइ) शोध करवाभां ज्थारे तेने देवदत्तने उवा वगेरेने अवाज तेभज छींके वगेरेनी अव्यक्त ध्वनी संलणाध नद्धि अने णाणकने डोह पछु रीते पत्तो भेणवी शक्ये नद्धि त्थारे ते ज्थां तेतुं घर हुतुं अने धन्य सार्थवाह हुता त्यां आउथे। (उवागच्छित्ता धणं सत्थवाहं एवं वयासी)

पुण पासणयाए ? , तएणं सा भद्दा देवदिन्नं दारयं सब्वालंकारविभू-
 सियं पंथगस्स हत्थे दलाइ जाव पायवडिए तं मम निवेदेइ, तं इच्छा
 मिणं देवाणुप्पिया ! देवदिन्नदारगस्स सब्बओ समंता मग्गणगवेसणं
 काउं । तएणं ते नगरगुत्तिया धणणेणं सत्थवाहेणं एवं वुत्ता समाणा
 सन्नद्धवद्धवम्मियकवया उप्पीलियसरासणवट्टिया जाव गहियाउयप-
 हरणा धणणेणं सत्थवाहेणं सद्धिं रायगिहस्स नगरस्स बहूणि अइ-
 गमणाणि य जाव पवासु य मग्गणगवेसणं करेमाणा रायगिहाओ
 नगराओ पडिनिक्खमंति पडिनिक्खमित्ता जेणेव जिण्णुज्जाणे जेणेव
 भग्गकूवए तेणेव उवागच्छंति उवागच्छित्ता देवदिन्नस्स दारगस्स
 सरीरगं निप्पाणं जीवविप्पजढं पासंति, पासित्ता हा हा अहो अक-
 ज्जमितिकट्टु देवदिन्नं दारगं भग्गकूवाओ उत्तारंति उत्तारित्ता धणणस्स
 सत्थवाहस्स हत्थे दलयंति ॥सू० ८॥

टीका—‘तएणं से पंथए’ इत्यादि। ततःखलु स पान्थको दासचेटकः,
 .तओ मुहुत्तंतरस्स’ ततो मुहूर्तान्तरस्य=मुहूर्तान्तरं यत्र देवदत्तो दारकस्थानि
 नस्तत्रैवोपागच्छंति, उपागत्य देवदत्तं दारकं तस्मिन् स्थाने ‘अपासमाणे’ अपश्यन्

‘तएणं से पंथए दासचेडे’ इत्यादि ।

टीकार्थ—इसके बाद (से पंथए दासचेडे) वह पांथकदासचेटक
 (तओ) वहाँ से (मुहुत्तंतरस्स जेणेव देवदिन्ने दारए ठविए तेणेवाउवग-
 च्छइ) एक मुहूर्त के बाद जहाँ देवदत्त को बैठाया था वहाँ—गया
 (उवागच्छित्ता देवदिन्न दारगं तंसि ठाणंसि अपासमाणे रोयमाणे कंद-

तएणं से पंथए दासचेडे इत्यादि ॥

टीकार्थ—(तएणं) त्थार षाए (से पंथए दासचेडे) पांथक दास चेटक (तओ
 त्यांथी (मुहुत्तंतरस्स जेणेव देवदिन्ने दारए ठविए तेणेव उवागच्छइ)
 ओक मुहुत्तं पथी त्यां देवदत्तने जेसांथे इतो त्यां गथे. (उवागच्छित्ता
 देवदिन्नं दारगं तंसि ठाणंसि अपासमाणे रोयमाणे कंदमाणे विलवमाणे

'रोयमाणे' रुदन=साश्रुपातमार्तनाद कुर्वन्, 'कंदमाणे' क्रन्दन्=उच्चैः स्वरेण रुदन 'विलवमाणे' विलपन्=कगतो दारकः? तन्मन्तरेण कीदृशोऽनर्थो भविष्यति किं करोमि? क गच्छामि? इति जल्पन् देवदत्तस्य दारकस्य सर्वतः समन्तान् मार्गणगवेषणां करोति कृत्वा देवदत्तस्य दारकस्य कुत्रापि 'सुइं वा' श्रुतिं वा=दारकटत्तान्तं 'सुइं वा' श्रुतिं वा छिक्काव्यक्तं तच्चिह्नम्, 'पउत्तिवा' प्रवृत्तिं वा=पकटतरवाताम् 'अलभमाणे' अलभमानः=श्रमप्राप्तुवन् यत्रैव स्वकं गृहं यत्रैव धन्यः सार्थवाहस्तत्रैवोपागच्छति

माणे विलवमाणे देवदिग्नास्त दारगस्त सव्वाओ समता मगगणगवेषणं करेइ) जाकर उसने उस स्थानपर देवदत्त दारक को नहीं देखा—तो रो पड़ा अश्रु पात करता हुआ आर्तनाद करने लग गया जोर २ से चिल्ला चिल्ला कर रोने लगा, विलाप करने लगा— देवदत्त दारक कहाँ गया—अब-उसके बिना कैसा अनर्थ होगा, क्या करूँ—कहाँ—जाऊँ—इस प्रकार बड़बड़ाने लगा—बाद में उसने उम् देवदत्त की वहाँ सब तरफ चारों ओर मार्गणा की गवेषणा की। (करिन्ता देवदिग्नास्त दारगस्त कत्थइ सुइं वा खुइंवा पउत्ति वा अलभमाणे जेणेव सए गिहे जेणेव धन्ने सत्थवाहे तेणेव उवागच्छइ) करके जब उसे उस देवदत्त दारक की कोई श्रुति नहीं सुनाई दी, छिक्कादि अव्यक्त चिन्ह भी नहीं ज्ञात हो सका तथा स्पष्ट उसकी किसी बात का पता नहीं पड़ा तो वह जहाँ अपना घर था— और जहाँ धन्य सार्थवाह थे— वहाँ आया (उवागच्छित्ता धण्णं सत्थवाहं एवं वयासी) आकर धन्य सार्थ-

देवदिग्नास्त दारगस्त सव्वाओ समता मगगणगवेषणं करेइ) त्यां ज्जने ते णाणञ्ज देवदत्तने नद्धि जेत्यां रउवा मांडथे. विलाप करवा लाग्ये. "णाणञ्ज देवदत्त कथां जेतो रह्यो? ते वगर हुवे शुं थथे? शुं कडुं? हुवे कथां नद्धि? " आ प्रभासो ते दुःखी धर्म्मि विचार करवा लाग्ये. त्थार पछी तेसो बोभेर णाणञ्ज देवदत्तनी तपास करी अने शोध करी. (करिन्ता देवदिग्नास्त दारगस्त कत्थइ सुइं वा खुइंवा पउत्तिवा अलभमाणे जेणेव सए गिहे जेणेव धन्ने सत्थवाहे तेणेव उवागच्छइ) शोध करवाभां ज्ज्यारे तेने देवदत्तनी रउवा वगेरेने आवान् तेमज्ज छीक वगेरेनी अव्यक्त ध्वनी संभणार्ह नद्धि अने णाणञ्जने केह पणु सीते पत्तो भेणवी शक्ये नद्धि त्थारे ते ज्ज्यां तेसुं धर हत्तुं अने धन्य सार्थवाह हुता त्यां आव्ये. (उवागच्छित्ता धण्णं सत्थवाहं एवं वयासी)

उपगत्य धन्यं सार्थवाहमेवमवादीत्—एवं—खलु ! स्वामिन् भद्रा
सार्थवाही देवदत्तं दारकं स्नातं यावन्मम हस्ते ददाति, ततः खलु अहं
देवदत्तं दारकं कट्यां गृह्णामि, गृहीत्वा यावत्—मार्गणगवेषणां करोमि,
तन्न ज्ञायते खलु स्वामिन् ! देवदत्तो दारकः केनापि 'णीषवा' नीतः=
मित्रादिना कुत्रापि गुप्तस्थाने प्रापितः 'अवहिए वा' अपहृतः=चोरादिना
चोरितः 'अवखिचने वा' अवक्षिप्तः=अधोगर्तादिपृ क्षिप्तो वा ! इति प्रोच्य
'पायवडिए' पादपतितः=चरणलग्नः सन् धन्यस्य सार्थवाहस्य एतमर्थं
'निवेदेद्' निवेदयति=दारकवृत्तान्तं कथयति । ततः खलु स धन्यः सार्थवाहः

वाह से इस प्रकार कहा--(एवं खलु मामी भद्रा सत्यवाही देवदिन्नं
दारकं ण्हायं जाव मम हत्थंसि दलयइ) हे स्वामिन् ? मेरी बात सुनिये
भद्रा सार्थवाहीने देवदत्त दारक को स्नान करा कर तथा वेप भूषा से
सुसज्जित कर मेरे हाथ में दिया-- (तएण अहं देवदिन्नं दारकं कडीए
गिण्ढामि) मैने उसे कटि भाग पर ले लिया (गिण्ढत्ता जाव मग्गणगवेषणं
करेमि तं न णज्जइ) उसे लेकर मैं कोई कुमार कुमारीका-आदिकों के
साथ खेलनेमें लग-गया--खेलने के थोड़ी देर बाद ज्यों ही मैने उम
स्थान पर आकर देखा तो मुझे वहाँ देवदत्त दारक नहीं मिला है ।
(णं सामि ! देवदिन्ने दारए केणइ हये वा अवहिए वा अवखिचने वा पाय-
वडिए घण्णस्स सत्यवाहस्स एयमट्ठं निवेदेद्) अतः हे स्वामिन् ? नहीं
मालूम कि--देवदत्त दारक को वहाँ से किसी मित्रनेकहीं अन्यत्र रख
दिया है या किसी चोर ने उसे वहाँ से हर लिया है या किसी खड्डे

आवीने धन्यसार्थवाहने आ प्रभाषो कथं--(एवं खलु मामी भद्रा सत्यवाही
देवदिन्नं दारकं ण्हायं जाव मम हत्थंसि दलयइ) हे स्वामी ! आणक देव-
दत्तने नवरावीने सुंदर वस्त्रो तेभञ्ज धरेण्णांओथी अलंकृत करीने, लद्रा सार्थवाहीओ
भने सोंओथो डतो. (तए णं अहं देवदिन्नं दारकं कडीए गिण्ढामि)
मे' तेने डेडभां लीधो. (गिण्ढत्ता जाव मग्गणगवेषणं करेमि ण जज्जइ)
आणकने लधने डु डेट्लाक कुमार कुमारीओ वगेरेनी साथे सज्जभाणं उपर गथो.
त्यां आणकने ओक तरइ जेसाडीने डु' ते गथा आणक अने आणओनी साथे रमतमां ओक
चित्त थडं गथो. रमतां रमतां थोटावपत्त पसार थयो त्यारे मे' जे स्थाने आणकने जेसा
ओथो डतो. त्यां लधने जेथुं तो भने आणक देवदत्त मओथो नडि. (णं सामि ! देव-
दिन्ने दारए केणइ हये वा अवहिए वा अवखिचने वा पायवडिए घण्णस्स
सत्यवाहस्स एयमट्ठं निवेदेद्) तेथी हे स्वामी ! डंथ भणर पडती नथी.
डे आणकने आपणु डोअं न भिने लधने डंथ जीजे भूडी दीधो छे डेडो थोरे

पान्यकदासचेटकस्य एतमथ श्रुत्वा नशम्य तन च महता पुत्रशाकन
, अभिभूए' अभिभूतः=आक्रान्तः सन 'परसुणियत्तेव' परशुनिकृत्त इव
परशुना=कुठारेण निकृतः=दिन्नः 'चंपगपायनेव' चम्पकपादप् इव= चम्पक
वृक्ष इव 'धमन्ति धरणीयलमि' 'धस' इति शब्देन भूमितले 'मन्वगेहि'
सर्वाङ्गैः 'संनिवडए' संनिपतितः । तनः न्वलु स धन्यः सार्थवाहः 'ततो
मुहुत्तंतरस्स' ततो मुहूर्तान्तरस्य=मुहूर्तस्य पश्चात् मुहूर्तान्तरमित्यर्थः
'आसत्थे' आम्वस्थः. आश्वस्तो वा=प्राप्तचेष्टः 'पच्छागयपाणे' पश्चादाग-
तप्राणः=पूर्व मृतप्राण इव भूत्वा पुनर्जागरितप्राणः सन् देवदत्तस्य दारकस्य
'सव्वओ समंता' सर्वतः समन्तान्=सर्वासु दिशासु मार्गगवेपणं करोति,

आदि में डाल दिया है । इस प्रकार कह कर वह धन्य सार्थवाह के
पैरोंपर गिर पडा । (तएणं से धन्ने सत्थवाहे पंथयदासचेडयस्स एयमट्टं
सोच्चा णिसम्म तेणय महया पुत्तोसोएणा भिभूए समाणे परसुणियत्ते चंपगपायवे
धसत्ति धरणीतलंमि सव्वंगेहि संनिवडए) इस प्रकार वह धन्य सार्थवाह
पांथक दासचेटक से इस अर्थ-समानागर-को स्तनकर और उसे हृदय में अव-
धृतकर उस महान् पुत्र शोक से युक्त होता हुआ परशु कुठार से काटे गये चंपक
वृक्षके समान समस्त अंगों से इकदम जमीन पर गिर पडा । (तएणं
से धन्ने सत्थवाहे ततो मुहुत्तंतरस्स आसत्थे पच्छागयपाणे
देवदिन्नस्स दारगस्स सव्वओ समंता मग्गणगवेसणं करेइ) बाद में
वह धन्य सार्थवाह १ मुहुत्त के बाद आश्वस्त हुआ ऐसा उस समय
मालूम हुआ कि मानों इसमें प्राण लौटकर पुनः आ गये हैं--
अपने पुत्र देवदत्त की सब तरफ चारों दिशाओं में मार्गणा गवेपणा
तेनुं अपहरणुं कथुं छे. अथवा णाणकने कोणं दुटे णाडा वगेरेमां हे'की दीधि छे.
आ रीते कहेतां ते धन्यसार्थवाडना पगे पडयो. (तए णं से धण्णे सत्थवाहे
पंथयदासचेडयस्स एयमट्टं सोच्चा णिसम्म तेणय महया पुत्तोसोएणाभि
भूये समाणे परसुणियत्तेव चंपगपायवे धसत्ति धरणीतलंमि सव्वंगेहि
संनिवडए) आ प्रभाषो धन्य सार्थवाडे पांथकदास चेटकना मोढेथी णधी विगत
सांलणीने तेने णशभर हृदयमां धारणुं करीने महान् पुत्रशोकथी पीडतो कुडा-
दीथी क्षपेला अंघाना वृक्षणी नेम ते पृथ्वी उपर पडी गयो, (त एणं से धण्णे
सत्थवाहे ततो मुहुत्तंतरस्स आमस्थे पच्छागयपाणे देवदिन्नस्स दार
गस्स सव्वओ समंता मग्गणगवेसणं करेइ) त्थार आड ओड मुहुत्त
पधी धन्य सार्थवाड लानमां आव्यो. ते वणते न्णुं करी तेओमां प्राणुं अंथ-
युं डाय तेम वायुं. ओलो थधने ते पोताना पुत्र देवदत्तनी ओमेर तथास

देवदत्तस्य दारकस्य कुत्रापि युति वा क्षुति वा प्रवृत्ति वा अलभमानो यत्रैव स्वकं गृहं तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य 'महत्थं' महार्थं=बहुमूल्यं 'पाहुडं' प्राभृतम्=उपहारं गृह्णाति, गृहीत्वा यत्रैव 'नगरगुप्तिया' नगर गोप्तकाः=नगररक्षकाः कोटपाला इत्यर्थः तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य तन्महार्थं प्राभृतम् 'उवणेइ' उपनयति तेषां समीपे स्थापयति, उपनीय एवमवादीत् एवं खलु देवानुप्रियाः ! मम पुत्रो भद्राया भार्याया आत्मजो देवदत्तो नाम दारकः उद्वे इष्टः=अभिलषितः यावत् 'उंवरपुष्कंपिव' दुल्लहे सवणयाए किमंगपुणपासणयाए' उदुम्बरपुष्पमिव दुर्लभः भव-

काने मेलग गया-परन्तु (देवदिन्नस्स दारगस्स कत्थइ सुइ वा खुं वा पउत्ति वा अलभमाणे जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ) देवदत्तदारक की उसे कहीं पर भी कुछ भी खबर नहीं मिली, छिक्का आदि चिह्न भी उसका उसे कहीं दिखलाई नहीं दिया--और न उसकी किसी बात का ही ठीक २ उसे पता पडा। इस तरह निराश होकर वह अपने घर पर आ गया। (उवागच्छिता महत्थं पाहुडं गेहइ, गेह्णिता जेणेव नगरगुप्तिया, तंणेव उवागच्छइ) घर आकर उसने बहुमूल्य प्राभृत लिया और लेकर जहाँ नगर के रक्षक कोटपाल थे वहाँ गया--(उवागच्छिता तं महत्थं पाहुडं उवणेइ, उवणिसा एवं वयासी)--जाकर उसने वह बहुमूल्य नजराना उन्हें भेटमें दिया--देकर फिर इस प्रकार बोला (एवं खलु देवानुप्रिया ! मम पुत्रो भद्राए भारियाए अत्तए-देवदिन्ने नामं दारए उद्वे जाव उंवरपुष्कंपिव दुल्लहे मत्रणयाए किमंग पुण

करवा लाये। पक्ष (देवदिन्नस्स दारगस्स कत्थइ सुइ वा खुं वा पउत्ति वा अलभमाणे जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ) आजक देवदत्त तेने क्यांच देखाये नहि. आजकना छींके वगेरेना अन्यकत चिट्ठे पक्षु कोटपक्षु स्थाने संलणया नहि. आ राते धन्य सार्थवाडने आजक देवदत्त विशेषी थोडी पक्षु भाडिती भणी थकी नहि. अते निराश थधने ते पौताने घेर पाछि इथे। (उवागच्छिता महत्थं पाहुडं गेहइ, गेह्णिता जेणेव नगर गुणया, तेणेव उवागच्छइ) घेर आवीने तेहे अहुं द्रव्य वीधुं अने नगररक्षक कोटवाणनी पावे गये। (उवागच्छिता तं महत्थं पाहुडं उवणेइ, उवणिसा एवं वयासी) अने तेहे अहुंकिभती नजराना कोटवाणने लेटमां आभ्यां अने कहुं--(एवं खलु देवानुप्रिया ! मम पुत्रं भद्राए भारियाए अत्तए देवदिन्ने नाम दारए उद्वे जाव उंवरपुष्कंपिव दुल्लहे सवणयाए किमंगपुणपासणयाए ?) उ देवाउप्रिया ! सांलणया

गतया किंपद्म पुनर्दर्शनतया=अयमुदुम्बरपुष्पवत् श्रवणगाचरतया दुर्लभः
 किं पुनर्दर्शनेन. तस्य नाम श्रवणमपि दुर्लभं वर्तते दर्शनस्य का कथे
 नि भावः । ततः खलु=एकदा सा भद्रा भार्या देवदत्तं दारकं स्नातं
 सर्वालङ्कारविभूषितं पान्थकस्य हस्ते ददाति यावत् पादपतितस्तन्मम निवे-
 दयति. तत्=तस्मात् कारणात् इच्छामि खलु हे देवानुमियाः देवदत्तस्य
 दारकस्य सर्वतः समन्तान्मार्गणगवेपणं कर्तुम् । ततः खलु ते नगर-

पासणयाए) हे देवानुमियों ! सुनो ! भद्रा भार्या की कुक्षि से उत्पन्न
 हुआ देवदत्त नामक मेरा एक पुत्र है जो विशेष इष्ट यावत् उदुंबर
 पुष्प के समान सुनने के लिये भी मुझे दुर्लभ था । उसके देखने
 को तो बात ही क्या है (तएणं सा भद्रा देवदिन्नं दारयं ण्हायं सव्वा-
 लंकारविभूसियं पंथगस्स हत्थे दलाइ) उस देवदत्त दारक को भद्रा भार्याने
 स्नान करा कर और समस्त अलंकारों से विभूषित कर पांथक के
 हाथमें दिया । (जात्र पायपडिए तं मम निवेदेइ) वह उसे गोद में
 लेकर क्रीडा के लिये राजमार्ग ले गया साथ में और भी कई बालक
 बालिकायें थीं--उसने वहाँ जाकर उसे एक तरफ एकान्त स्थान में
 रख दिया और स्वयं उन बालक बालिकाओं के साथ खेलने लग गया ।
 थोडा समय बाद जब वह वहाँ आया तो क्या देखता है कि वहाँ देवदत्त
 नहीं है आकर उसने मेरे पैरों में पडकर मुझसे यह समाचार
 निवेदित किया है । अतः (इच्छामि णं देवानुप्पिया ! देवदिन्नदारगस्स
 सव्वओ समंता मग्गणगवेसणं काउ) अतः मैं चाहता हूँ कि हे देवा

भारी पत्नी लद्राना उदरथी नन्नेवो देवदत्त नामे भारे पुत्र इतो. ये भने अहु न
 छत्त इतो. तेने ज्ञेवानी वात तो इर रथी पणु उडुंअरना पुष्पनी जेम तेतुं नाम श्रवण
 पणु असंभव इतुं. (तएणं सा भद्रा देवदिन्नं दारयं ण्हायं सव्वालंकार-
 विभूसियं पंथगस्स हत्थे दलाइ) देवदत्तने लद्राभार्याये नवउवीने अधां धरेण्णां-
 ओथी सुसन्न कथो अने पांथकने सोंथो. (जात्र पायपडिए, तं मम निवेदेइ)
 आणकने ते डेउमां लधने राजमार्गं उपर रमाउवा लध गयो. तेनी साथे धण्णां
 आणके अने आणाओ इती. त्यां न्धने तेणु आणक देवदत्तने ओक तरइ जेसाडी
 दीधो. अने जते ते जीज आणकेनी साथे रमतमां पडी गयो. थोडा वपत पडी
 न्यारे ते त्यां आओ त्यारे आणक देवदत्त तेने नउथो नहि. भारी पासे आवीने
 तेणु आ अधी वात करी छे. (इच्छामि णं देवानुप्पिया ! देवदिन्न
 दारगस्स सव्वओ समंता मग्गणगवेसणं काउ) हुं आहुं छे डे आणक देव-

देवदत्तस्य दारकस्य कुत्रापि श्रुति वा क्षुति वा प्रवृत्ति वा अलभमानो यत्रैव स्वकां गृहं तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य 'महत्थं' महार्थं=बहुमूल्यं 'पाहुडं' प्राप्तम्=उपहारं गृह्णाति, गृहीत्या यत्रैव 'नगरगुप्तिया' नगर गोप्तृकाः=नगररक्षकाः कोट्टपाला इत्यर्थः तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य तन्महार्थं प्राप्तम् 'उवणेइ' उपनयति तेषां समीपे स्थापयति, उपनीय एवमवादीत् एवं खलु देवानुपियाः ! मम पुत्रो भद्राया भार्याया आत्मजो देवदत्तो नाम दारकः 'इष्टे इष्टः=अभिलषितः यावत् 'उंवरपुष्कंपिव' दुल्लहे सवणयाए किमंगपुणपासणयाए' उदुम्बरपुष्पमिव दुर्लभः श्रव-

करने में लग गया—परन्तु (देवदिन्नस्स दारगस्स कत्थइ सुइं वा खुं वा पउत्ति वा अलभमाणे जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ) देवदत्तदारक की उसे कहीं पर भी कुछ भी खबर नहीं मिली, छिन्ना आदि चिह्न भी उसका उसे कहीं दिखलाई नहीं दिया—और न उसकी किसी बात का ही ठीक २ उसे पता पडा। इस तरह निराश होकर वह अपने घर पर आ गया। (उवागच्छिता महत्थ पाहुडं गेहइ, गेह्णिता जेणेव नगरगुप्तिया, तेणेव उवागच्छइ) घर आकर उसने बहुमूल्य प्राप्त लिया और लेकर जहाँ नगर के रक्षक कोट्टपाल थे वहाँ गया—(उवागच्छिता तं महत्थं पाहुडं उवणेइ, उवणिसा एवं वयासी)—जाकर उसने वह बहुमूल्य नजराना उन्हें भेटमें दिया—देकर फिर इस प्रकार बोला (एवं खलु देवानुपिया ! मम पुत्तो भद्राए भारियाए अत्तए—देवदिन्ने नामं दारए इष्टे जाव उंवरपुष्कंपिव दुल्लहे सवणयाए किमंग पुण

करवा लाये। पण (देवदिन्नस्स दारगस्स कत्थइ सुइं वा खुइं वा पउत्ति वा अलभमाणे जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ) आणक देवदत्त तेने क्यांथ देहाये नहि. आणकना छींके वगेरेना अन्यकता थिद्रो पणु डोअपणु त्याने संभणया नहि. आ रीते धन्य सार्थवाहुने आणक देवदत्त विसेनी थोडी पणु माद्धिती भणी थकी नहि. अंते निराश थधने ते पेताने घेर पाछा क्षयी. (उवागच्छिता महत्थं पाहुडं गेहइ, गेह्णिता जेणेव नगर गुप्ताया, तेणेव उवागच्छइ) घेर आवीने तेखे अहुं द्रव्य वीधुं अने नगररक्षक डोटवाणनी पावे गये. (उवागच्छिता तं महत्थं पाहुडं उवणेइ, उवणिसा एवं वयासी) अधने तेखे अहुकिंभती नजरालां डोटवाणने सेटभां आभ्यां अने कहुं—(एवं खलु देवानुपिया ! मम पुत्तं भद्राए भरियाए अत्तए देवदिन्ने नाम दारए इष्टे जाव उंवरपुष्कंपिव दुल्लहे सवणयाए किमंगपुणपासणयाए ?) छे देवात्थंअिये ! संभणये

यथेव भग्नकूपस्तत्रवापागच्छन्ति, उपागत्य देवदत्तस्य दारकस्य शरीरकं निष्पाणं निश्चेष्टं जीवविप्रत्यक्तं पश्यति. इष्ट्वा 'हा ! हा ! अहो ! अकज्ज' हा ! हा ! अहो अकार्यवृ=अनिष्टं मज्जातम् ? इतिक्रिया=इति प्रोच्य देवदत्तं दारकं भग्नकूपात् 'उत्तारेति' उत्तारयन्ति=वर्द्धिर्निष्काशयन्ति उत्तार्य धन्यस्य सार्थवाहस्य हस्ते ददति. ॥सू. ८ ॥

मूलम्—तए णं ते नगरयुत्तिया विजयस्स तक्करस्स पयमग्गमणुगच्छमाणा जेणेव माल्लुयाकच्छए तेणेव उवागच्छंति उवागच्छित्ता माल्लुयाकच्छयं अणुपविसंति अणुपविसित्ता विजयं तक्करं ससक्खं सहोढं सगेवेज्जं जीवग्गाहं गिण्हति गिण्हित्ता अट्ठिमुट्ठिजाणुकोप्परपहारसंभग्गमहियगतं करेति, करित्ता अवउडग वंधणं करेति कारित्ता देवदिन्नस्स दारगस्स आभरणं गेण्हति गेण्ह-

(पडिनिक्खमित्ता जेणेव जिणुज्जाणे जेणेव भग्गकूपे तेणेव उवागच्छइ) निकल कर वे फिर वहाँ भाये जहाँ वह जीर्ण उद्यान और वह भग्गकूप था । उवागच्छित्ता देवदिन्नस्स दारगस्स सरीरगं निष्पाणं निश्चेष्टं जीव विष्पजढं पासंति पासित्ता हा हा अहो अकज्जमित्ति कट्टुदेवदिन्नं दारगं भग्गकूवाओ उत्तारेति उत्तारिता धणस्स सत्थवाहस्स हत्थे दलयंति) आकर के उन लोगोंने देवदत्त दारक के शरीरको निष्पाण निश्चेष्ट और जीव से विप्रमुक्त देखा देखकर "हाय हाय यह महान् अनर्थ हुआ" इस प्रकार कहकर देवदत्त दारक को उस भग्गकूप से बाहर निकाला । बाहर निकाल कर फिर उसे धन्य सार्थवाह के हाथ में सौंप दिया । सूत्र ॥ ८ ॥

शोध करता राजगृह नगरनी गडार नीकल्या (पडिनिक्खमित्ता जेणेव जिणु-ज्जाणे जेणेव भग्गकूपे तेणेव उवागच्छइ) गडार नीकलीने तेथो करता इस्ता लुण्ठ उद्यान तेभज्ज भज्ज कूवाणी पासो आव्या. (उवागच्छित्ता देवदिन्नस्स दारगस्स सरीरगं निष्पाणं निश्चेष्टं जीवविष्पजढं पासंति पासित्ता हा हा अहो अकज्जमित्ति कट्टु देवदिन्नं दारगं भग्गकूवाओ उत्तारेति उत्तारित्ता धणस्स सत्थवाहस्स हत्थे दलयंति) त्यां तेथोथे गणक देवदत्तना शरीरने निष्पाणु, निष्पाणु अने निश्चेष्ट लोथुं अने लोथने "अरे ! अरे !! गडुं जोडुं थयुं" आ प्रभाणुे कडीने तेथोथे गणक देवदत्तना शरीरने भज्ज कूवाभांथी गडार काडयुं. गडार काडीने धन्य सार्थवाहने ते शरीर सोंपी दीधुं. ॥ सूत्र ॥ ८ ॥

गोप्तृका धन्येन सार्थवाहेन एवमुक्ताः सन्तः 'सन्नद्धवद्धवस्मिन्मयकवचा' संनद्धवद्धवर्मितकवचाः संनद्धः=कृतसन्नाहाः=चन्धनोपयोगिसाधनेः सज्जभूताः, वद्धाकशाबन्धनेन, वर्मिताः=शरीरे परिभूताः कवचा यैस्ते तथा, 'उष्पीलियस्रामणपट्टिया' उत्पीडितशरामनपट्टिकाः—'उष्पीलिय' उत्पीडिताः=गुणारोपणेन नमिताः 'स्रामणपट्टिया' शरामनपट्टिकाः=धनुः पट्टिका यैस्ते तथा, यान् 'गह्वियाउपहरणा' गृहीतायुधप्रहरणाः 'गह्विय' गृहीतानि 'भाउह' आयुधानि=धनुरादीनि 'पहरणा' पहरणानि=भसिकुन्तादीनि यैस्ते तथा, एवम्भूताः सन्तो नगरगोप्तृकाः धन्येन सार्थवाहेन सार्द्धं राजगृहस्य नगरस्य चहूनि 'अङ्गमणाणि य' अतिगमनानि च प्रवेशमार्गाः, इत्यादि—स्थानानि तेषु यावत् प्रवासु च मार्गणगवेपणं कुर्वन्तो राजगृहान्नगरात्प्रतिनिष्कामात्, प्रतिनिष्क्रम्य यत्रैव जीर्णोद्यानं

नुप्रियो ! आप लोक उस देवदत्त दारक का सब भार चारों दशाओं में मार्गणकरें गवेपण करें । (तएणं से नगरगुप्तिया धरणेण सत्थवाहेण एवं युत्ता समाणा सन्नद्धवद्धवस्मिन्मयकवचा उत्पीलियस्रामणवट्टिया जाव गह्वियाउपहरणा धन्नेणं सत्थवाहेणं मद्धिं रायगिहस्स वह्वणि अङ्गमणाणि य जाव पवासु य मग्गणगवेसणं करेमाणा रायगिहाओ नगराओ पड्डिणिवलमंति) धन्य सार्थवाह से इस प्रकार कहे वे नगर रक्षक जन बंधनोपयोगी साधनों से सज्ज भूत हुए कशाबंधन से बद्ध हुए और शरीर पर कवचों को पहिन २ कर अपने २ धनुषों पर प्रत्येका आरोहित कर यावत् आयुध और पहरणों को लेले कर धन्यसार्थवाह के साथ राजगृह नगर के गमनागमनों के स्थानों की यावत् प्रवास (पिवाउ) आदि स्थलोंकी मार्गणा गवेपणा करते हुए राजगृहनगर से निकले ।

इत्तनी तमे अधा भणीने थोभेर तथास उरे। (तएणं से नगरगुप्तिया धरणेणं सत्थवाहेणं एवं युत्ता समाणा सन्नद्धवद्धवस्मिन्मयकवचा उत्पीलियस्रामणवट्टिया जाव गह्वियाउपहरणा धन्नेणं सत्थवाहेणं मद्धिं रायगिहस्स वह्वणि अङ्गमणाणि य जाव पवासु य मग्गणगवेसणं करेमाणा रायगिहाओ नगराओ पड्डिणिवलमंति) धन्य-सार्थवाहनी आ रीते वात सांलणीने ते अधा नगर रक्षकेश्चे थोर वगेरे शुनेगारेने भांधया थोय्य साधनेो सांथे वीध, तेभञ्ज डोरशाओ भांध्या अने शरीरे कवचो पडेरीने पोतपोताना धनुओ उपर प्रत्येचा चहावी आ प्रभाणे तेओ अधा आयुधो तेभञ्ज प्रहरणेो लधने धन्य सार्थवाहनी साथे राजगृह नगरना अवर ववरना स्थानोनी तेभञ्ज परयो वगेरे स्थणोभां

चरणचिह्न 'अणुगच्छमाणा' अनुगच्छन्तो यत्रैव मालुकाकक्षकस्तत्रैवोपागच्छान्तं,
 उपागत्य मालुकाकक्षकमनुप्रविशन्ति, अनुप्रविश्य विजयं तस्करं 'ससक्खं' ससाक्ष्यं
 ससाक्षिकमित्यर्थः 'सढोढं' सढोढं=समोषं चौर्यापहनवस्तुमदितं देवदत्तदार-
 काकक्षास्युक्तमित्यर्थः, 'सगेवेज्जं' सग्रेवेयकं=ग्रीवाबन्धनसहितं गलबन्धन-
 वद्धं गले रज्जुं बद्धेत्यर्थः, तं 'जीवग्गाहं' जीवग्राहं=जीवन्तं 'गिहंति' गृह्णन्ति'
 गृहीत्वा 'अट्टिसुट्टिजाणुकोप्परपहारं सभग्गमदियगतं' अस्थिसुट्टिजानुकूर्परपहार
 संभग्न मथितगात्रम्-अस्थि च सुट्टिश्च जानुनी च कूर्परां च-अस्थिसुट्टिजानुकूर्पराः,
 तेषु तैर्वा ये प्रहारास्तैः 'सभग्गं' मग्गमग्गं=चूर्णितं 'महियं' मथितं=जर्जरितम्
 'गत्तं' गात्रं=शरीरं यस्य स तं=भग्नसकलशरीरसन्धिस्थानं कुर्वन्ति. कृत्वा
 'अवउड्ढगबंधणं' अवकोटकबन्धनम्-अवकोटकेन बाहोः शिरसश्च पश्चाद्वागा-

तस्करस्तस्य पयमग्गमणुगच्छमाणा जेणेव मालुयाकच्छए तेणेव उवागच्छन्ति)
 विजयतस्कर के पाद चिह्नो का अनुसरण करते हुए वहां पहुँचे जहाँ
 वह (मालुका काच्छया उवागच्छिता मालुयाकच्छयं अणुपविसन्ति)
 पहुँचकर वे उसमें घुसे (अणुपविसित्ता विजयं तस्करं ससक्खं सढोढं
 सगेवेज्जं जीवग्गाहं गिहंति) घुसकर उन्होंने उसके गलेमें रस्सी बांधकर जीता
 ही मसाक्ष्य देवदत्त दारक के अलंकार रूप साक्ष्य सहित पकड़ लिया। गिहित्ता
 अट्टिसुट्टि जाणुकोप्परपहारसंभग्गमदियगतं करेति) पकड़कर उन्होंने उसकी
 हड्डियों में सुट्टियों में, घुटनों में, कुहनियों में, खूब प्रहार किये--इससे
 उसका शरीर का चूर २ हो गया--जर्जरित हो गया। तात्पर्य यह
 कि उसे इतनी बुरी तरह उन लोगोंने पीटा कि जिससे उसके शरीर
 की समस्त संधियां भग्न हो गईं। (करित्ता अवउड्ढगबंधणं, करेति

तस्करस्तस्य पयमग्गमणुगच्छमाणा जेणेव मालुयाकच्छए तेणेव उवागच्छन्ति)
 विजय नामना चोरनां पगना चिह्णेने अनुसरतां मालुका कक्षमां पडोन्था.
 (उवागच्छिता मालुयाकच्छयं अणुपविसन्ति अने मालुका कक्षमां पेडा.
 अणुपविसित्ता विजयं तस्करं ससक्खं सढोढं सगेवेज्जं जीवग्गाहं
 गिहंति) पेसीने तेज्याज्ये विजय नामना चोरने ससाक्ष्य अट्टे ज्ञाणक देव-
 दत्तना धरेणुंज्यानी साथे न जणाभां धेरी भांधीने लुपतो न पडडी लीधा.
 (गिहित्ता अट्टिसुट्टिजाणुकोप्परपहारं संभग्गमदियगत्तं करेति)
 पडडीने तेज्याज्ये चोरना हाड्डां, भूडीज्या, दींयज्या अने डोलीज्या उपर भूज प्रहारे
 थ्यां. अथी तेजुं शरीर शिथिल अने भूडा जेपुं थर् गथुं. भतलण अे छि तेने
 ज्येवे अथल भार पडये ड जेथी तेना शरीरना गधा सांधाज्ये तूटी गया.

ता विजयस्स तक्करस्स गीवाए वंधंति वंधित्ता मालुया कच्छगाओ
 पडिनिक्खमंति पडिनिक्खमित्ता जेणेव रायगिहे नयरे तेणंव उवा
 गच्छंति उवागच्छित्ता रायगिहं नगरं अणुपविसंति अणुपविसित्ता
 रायगिहे नयरे सिंघाडगतियचउक्कचच्चरमहापहपहेसु कसप्पहारे य
 लयप्पहारे य छिवापहारे य निवाएमाणा २ छारं च धूलिं च कय-
 वरं च उवरिं पक्किरमाणा २ महया २ सद्देणं उग्घोसेमाणा एवं
 वयंति,—एसणं देवाणुप्पिया ! विजए नामं तक्करे जाव गिद्धे
 विव आमिसभक्खी वालघायए वालमारए, तं नो खलु देवा
 णुप्पिया ! एयस्स केइ राया वा रायपुत्ते वा रायमच्च वा अवरज्झइ
 एत्थट्ठे अप्पणो सयाइं कम्माइं अवरज्झंति तिकट्ठु जेणामेव चार
 गसाला तेणामेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता हडिवंधणं करेति
 करित्ता भत्तपाणनेरोहं करेति, करित्ता तिसंअं कसप्पहारे य जाव
 निवाएमाणा २ विहरंति । तएणं से धण्णे सत्थवाहे मित्तनाइ
 नियगसयणसंबंधिप रयणेणं सद्धि रोयमाणे जाव विलवमाणे
 देवदिन्नस्स दारगस्स सरीरस्स महया इट्ठिसक्कारसमुदएणं नीह-
 रणं करेइ, करित्ता वहुइं लोइयाइं मयगकिच्चाइं करेइ करित्ता
 केणइ कालंतरेणं अवगयसोए जाए यावि होत्था ॥ सू. ८ ॥

टीका—‘तएणं ते’ इत्यादि । ततः खलु तदनु=सज्जीभूतानन्तरं जिगमिपवो
 ते नगरगोप्तृहा=नगररक्षकाः विजयस्य तस्करस्य ‘पयमर्गं’ पदमार्गं=पद-यासम्

नए णं ते नगर गुत्तिया इत्यादि ॥

ट् कार्थं--(नएणं) डमके वाद (ने नगर गुत्तिया) वे नगर रक्षक (विजयस)

तएणं ते नगरगुत्तिया इत्यादि !

टीकार्थं--(नएणं) त्वा२ णा२ {ते नगरगुत्तिया) नगर रक्षका (विजयस्य

चरणविह्व 'अणुगच्छमाणा' अनुगच्छन्तो यत्रैव मालुकाकक्षकस्तत्रैवोपागच्छन्ति,
 उपागत्य मालुकाकक्षकमनुप्रविशन्ति, अनुप्रविश्य विजयं तत्रकरं 'ससवखं' ससाक्ष्यं
 ससाक्षिकमित्यर्थः 'सहोढ' सहोढं=समोषं चौर्यापहनवस्तुमहितं देवदत्तदार-
 काङ्कारयुक्तमित्यर्थः, 'सगेवेज्जं' सग्रेवेयकं=श्रीवाचनधनसहितं गलवन्धन-
 वद्धं गले रज्जुं बद्धेत्यर्थः, तं 'जीवगाहं' जीवगाहं=जीवन्तं 'गिहंति' गृह्णन्ति'
 गृहीत्वा 'अट्टिमुट्टिजाणुकोप्परपहारसंभगमहियगत्तं' अस्थिमुट्टिजानुर्कूर्परपहार
 संभग्न मथितगात्रम्-अस्थि च मुट्टिश्च जानुनी च कूर्परी च-अस्थिमुट्टिजानुर्कूर्पराः,
 तेषु तैर्वा ये प्रहारस्तैः 'संभग' सम्भग्नं=चूर्णितं 'महिय' मथितं=जर्जरितम्
 'गत्तं' गात्रं=शरीरं यस्य स तं=भग्नसकलशरीरमन्विस्थानं कुर्वन्ति. कृत्वा
 'अवउडगवंधणं' अवकोटकवन्धनम्-अवकोटकेन बाहोः शिरसश्च पश्चाद्वागा-

तत्रकरस्स पयमग्गमणुगच्छमाणा जेणेव मालुयाकच्छए तेणेव उवागच्छन्ति)
 विजयतस्कर के पाद चिह्नों का अनुसरण करते हुए वहाँ पहुँचे जहाँ
 वह (मालुका का) उवागच्छिता मालुयाकच्छयं अणुपविसन्ति)
 पहुँचकर वे उसमें घुसे (अणुपविसित्ता विजयं तत्रकरं ससवखं सहोढ
 सगेवेज्जं जीवगाहं गिहंति) घुसकर उन्होंने उसके गलेमें रस्सी बांधकर जीता
 ही मसाक्ष्य देवदत्त दारक के अलंकार रूप साक्ष्य सहित पकड़ लिया । गिह्णित्ता
 अट्टिमुट्टि जाणुकोप्परपहारसंभगमहियगत्तं करेति) पकड़कर उन्होंने उसकी
 हड्डियों में मुठियों में, घुटनों में, कुहनिथो में, खूब प्रहार किये--इससे
 उसका शरीर का चूर २ हो गया--जर्जरित हो गया । तात्पर्य यह
 कि उसे इतनी बुरी तरह उन लोगोंने पीटा कि जिससे उसके शरीर
 की समस्त संधियां भग्न हो गई । (करित्ता अवउडगवंधणं, करेति

तत्रकरस्स पयमग्गमणुगच्छमाणा जेणेव मालुयाकच्छए तेणेव उवागच्छन्ति)
 विजय नाभना योरनां पगना चिह्णेने अनुसरतां मालुका कक्षमां पडोन्थ्या.
 (उवागच्छिता मालुयाकच्छयं अणुपविसन्ति अने मालुका कक्षमां पेडा.
 अणुपविसित्ता विजयं तत्रकरं ससवखं सहोढ सगेवेज्जं जीवगाहं
 गिहंति) . पेसीने तेओओ विजय नाभना योरने ससाक्ष्य ओटवे गाणक देव-
 दत्तना धरेणुंओनी साथे न गणाभां घेरी गांधीने एवतो न पडडी लीधा.
 (गिह्णित्ता अट्टिमुट्टिजाणुकोप्परपहार संभगमहियगत्तं करेति)
 पडडीने तेओओ योरना डाड्कां, भूडीओ, डींओओ अने डोएलीओ उपर भूथ प्रडारे
 थ्यां. ओथी तेनुं शरीर शिथिल अने भूडा नेपुं थई गथुं. मतलण ओ छे तेने
 ओवे सपत भार पडयो इ नेथी तेना शरीरना गधा सांधाओ तूटी गया.

नयनपूर्वकं चन्धनं यम्य स तं कुर्वन्ति. कृत्वा द्वादशस्य दारकस्याभरणं
 गृह्णन्ति, गृहीत्वा विजस्य तस्करस्य ग्रीवायां बध्नन्ति बद्धा मालुका कच्छकात्
 प्रतिनिष्कामन्ति, प्रतिनिष्कस्य यत्रैव राजगृहं नगरं तत्रैवापागच्छन्त. उपा-
 गत्य राजगृहं नगरमनुप्रविशन्ति. अनुप्रविश्य राजगृहं नगरे श्रृङ्गाटकृत्तिकवृष्क-
 चत्वरसहापथपथेषु 'कयवरं' हारे य कशाप्रहारांश्च 'चाबुक' इति शोषापाम्,
 'लयप्पहारे य' लताप्रहारांश्च यष्टिप्रहारात् 'छिवापहारे य' छिवाप्रहारांश्च=
 चिकणकशाप्रहारांश्च 'निवाएमाणा' निवायन्तः=पुनः पुनः कुर्वन्तः छारं 'भारं'=
 भस्म धूलिं=रजः, कयवरं, कचवरं=वृणधूल्यादिपुञ्जं च 'उवरिं' उपरि
 तस्योपरि 'पक्किरमाणा २' प्रकीर्यमाणाः २=पुनः पुनः उत्क्षिपन्तो महता
 महता शब्देन उद्योपयन्त एवं वदन्ति एष खलु देवानुप्रियाः !

करिचा देवदिन्नन्मस आभरणं गेह्णंति) मार मार कर फिर उन्होंने उसके
 दोनों हाथों को कमर के पीछे करके बांध लिया और बांध कर उसके
 पास से देवदत्त दारक के आभरणों को ले लिया। (गेह्णित्ता विजयस्य
 तस्करस्य ग्रीवाए बध्न्ति बधित्ता मालुया कच्छगाओ निक्खमंति) ले कर
 फिर उन्होंने उस विजय चोर को ग्रीवामें बांधा और बांधकर फिर वे
 उस मालुयाकच्छक से बाहर निकले। (पडिनिक्खमित्ता जेगेव राज गेहे नयरे
 तेणेव उवागच्छंति) बाहर निकल कर फिर-वे सबके सब राजगृह नगरकी ओर
 चल दिये (उवागच्छित्ता रायगिहे नयरं अणुपविसंति) चलकर वे राजगृह
 नगर आये ८ अणुपविसित्ता रायगिहे नयरे सिंघाडगति यच्च उक्कचच्चरमहा
 पइपइसु कसप्पहारे य लयप्पहारे छिवापहारे य निवाएमाणा २ छारं च
 धूलिं च कयवरं च उवरिं पक्किरमाणा २ महयार सणेण उग्घोसेमाणा

(करिचा अवउडगबंधणं करेन्ति, करिचा देवदिन्नन्मस दारगस्स आभ-
 रणं गेह्णंति) आभ भारी पीटीने तेना धने ङाथ पाछण भांध्या अने
 तेनी पासेथी भाणक देवदत्तनां धरेण्णाम्भो पोताना उण्णे क्थी. (गेह्णित्ता विजयस्य
 तस्करस्य ग्रीवाए बध्न्ति बधित्ता मालुयाकच्छगाओ पडिनिक्खमंति)
 ङण्णे क्शीने तेण्णाम्भे चोर विन्धने पीछ वपत्त गणाभां भांध्या अने पछी तेण्णो
 भाणुका उक्कथी भाणार नीकण्ण्या. (पडिणिक्खमित्ता जेगेव रायगिहे नयरे तेणेव
 उवागच्छंति) त्यांधी तेण्णो राजगृह नगर तरइ गथा (उवागच्छित्ता रायगिहे
 नयरं अणुपविसंति) अने राजगृह नगरभां प्रवेश्या (अणुपविसित्ता रायगिहे
 नयरे सिंघाडगति यच्च उक्कचच्चरमहापइपइसु कसप्पहारेय लयप्पहारे
 छिवापहारे य निवाहमाणा २ छारं च धूलिं च कयवरं च उवरिं पक्किरमाणा
 २ महयार सणेण उग्घोसेमाणा एवं वयंति) राजगृह नगर वेश्तिने

'वज्रयो नाम नन्दरः याचद् युद्ध इवामिपभक्षो चालघातको चालमारकोऽपि
 तन्=तस्मान्काणान् नो खलु देवानुपियाः ! एतस्य कोऽर्ः राजा वा राज-
 पुत्रो वा राजामात्यो वा 'अचरञ्जइ' अपराध्यन्ति=न 'कोऽप्यन्य एनं
 पीडयतीत्यर्थः. किन्तु 'एत्यष्टे अचार्ये=एतद्विषये 'अप्पणो' आत्मनः=
 निजस्य 'सयाइं कम्मइ' स्वकानि कर्माणि=स्वकृतान्येव कर्माणि 'भवर-
 ज्जति' अन्तराध्यन्ति=एनं पीडयन्ति, 'उक्कु' इति प्रोच्य यत्रैव 'चाग्गसाला'

एवं वयंति) राजगृह नगर में आकरके वहाँ के शृगाटक, त्रिक वनुक्त
 चत्वर और मद्रापथ इन सब मार्गों में उन्होंने उस विजय चौर को
 कोड़ों से घेताँ से चिकने किये हुए कोड़ों--से बार बार और भी
 घुरी तरह पीटते हुए उसके ऊपर भस्म धूली और तृग आदि रू।
 कड़ा करकट चार २ डालते हुए फिर इस प्रकार जोर जोर से घोषण-
 की--(एएणं देवाणुपिया विजणं नामं तक्करे जाव गिट्ठे विव आमिद-
 भक्खी चालघायए चालमारए) हे देवानुपियो ! यह विजय नामका
 चौर है। यह युद्ध पक्षी की तरह आमिप (मांस) का भक्षो है चाल
 घातक है और चाल मारक है। (तं नो खलु देवानुपिया ! एयस्स
 केइ राया वा रायपुरिसे वा रायमच्चवे वा अचरञ्जइ) सो हे देवानुपियो !
 इस णिय में इनका न कोई राजा अपराधी है. न राजपुत्र अपराधी है
 न राजा का प्रधान अपराधी है। (एयमष्टे अप्पणो सयाइं कम्म इं

नयनपूर्वकं बन्धनं यम्य स तं कुर्वन्ति. कृत्वा द्वादशस्य दारक्याभरणं
 गृह्णन्ति, गृहीत्वा विजयस्य तस्करस्य ग्रीवायां बध्नन्ति वद्ध्वा मालुका क्लृप्तकान्त
 प्रतिनिष्क्रामन्ति, प्रतिनिष्क्रम्य यत्रैव राजगृहं नगरं तत्रैवागच्छन्त, उपा-
 गत्य राजगृहं नगरमनुप्रविशन्ति. अनुप्रविश्य राजगृहं नगरे श्रृङ्गाटकृत्तिक मण्ड-
 चत्वसहापथपथेषु 'कयणहारे य' कशापहारांश्च 'चाबुक' इति भोषायाम्,
 'लयणहारे य' लतापहारांश्च यष्टिप्रहारान् 'छिवापहारे य' छिवापहारांश्च=
 चिकणकशापहारांश्च 'निवाणमाणा' निवाणन्तः=पुनः पुनः कुर्वन्तः छारं 'क्षारं'=
 भस्म धूलिं=रजः कयवरं, कचवरं=वृणधूल्यादिपुञ्जं च 'उवरिं' उपरि
 तस्योपरि 'पक्किरमाणा २' प्रकीर्यमाणाः २=पुनः पुनः उत्क्षिपन्तो महता
 महता शब्देन उद्घोषयन्त एवं वदन्ति एष खलु देवानुप्रियाः !

करिन्ता देवदिन्नन्मस आभरणं गेह्णति) मार मार कर फिर उन्होंने उसके
 दोनों हाथों को कदर के पीछे करके बांध लिया और बांध कर उसके
 पास से देवदत्त दारक के आभरणों को ले लिया। (गेह्णित्ता विजयम्-
 त्वस्करम्स गीत्राण वंधन्ति वंधित्ता मालुया कच्छगाओ निवस्वमंति) ले कर
 फिर उन्होंने उस विजय चोर को ग्रीवामें बांधा और बांध कर फिर वे
 उस मालुयाकच्छक से बाहर निकले। (पडिनिवस्वमिन्ना जेणेव राजगिहे नयरे
 तेणेव उवागच्छन्ति) बाहर निकल कर फिर—वे सबके सब राजगृह नगरकी ओर
 चल दिये (उवागच्छित्ता रायगिहं नयरं अणुणपविसन्ति) चल कर वे राजगृह
 नगर आये ८ अणुविसित्ता रायगिहे नयरे सिवाडगनियचउक्कचचरमहा
 पहपहेसु कसप्पहारे य लयणहारे छिवापहारे य निवाणमाणा २ छारं च
 धूलिं च कयवरं च उवरिं पक्किरमाणा २ महयार सणेणं उग्घोसेमाणा

(करिन्ता अवउडगबंधणं करेन्ति, करिन्ता देवदिन्नन्मस दारगस्स आभ-
 रणं गेह्णति) आभ भारी पीटीने तेना भने ड्वाथ पाछण बांध्या अने
 तेनी पासैथी णाणक देवदत्तनां धरेण्णांओ पोताना उण्णे कथां. (गेह्णित्ता विजयम्स
 त्वस्करम्स गीत्राण वंधन्ति वंधित्ता मालुयाकच्छगाओ पडिनिवस्वमंति)
 उण्णे करीने तेओओ चोर विजयने णील्ल वधत्त गणाभां बांध्या अने पछी तेओ
 मालुया कच्छकी गडार नीकल्या. (पडिनिवस्वमिन्ना जेणेव रायगिहे नयरे तेणेव
 उवागच्छन्ति) त्यांथी तेओ राजगृह नगर तरश् गया (उवागच्छित्ता रायगिहं
 नयरं अणुपविसन्ति) अने राजगृह नगरभां प्रवेश्या (मणुपविसित्ता रायगिहे
 नयरे सिवाडगनियचउक्कचचरमहापहपहेसु कसप्पहारेय लयणहारे
 छिवापहारे य निवाणमाणा २ छारं च धूलिं च कयवरं च उवरिं पक्किरमाणा
 २ महयार सणेणं उग्घोसेमाणा एवं वयन्ति) राजगृह नगरभां— प्रवेशीने

'विजयो नाम तस्करः यावद् गृध्र इवामिषभक्षी चालघातको चालमारकोऽस्मि
 तत्=तस्मात्काणात् नो खलु देवानुप्रियाः ! एतस्य क्रांतिः राजा वा राज-
 पुत्रो वा राजामात्यो वा 'अवरज्जङ्ग' अपराध्यन्ति=न 'कोऽप्यन्य एनं
 पीडयतीत्यर्थः. किन्तु 'एत्यद्वे अत्रार्थे=एतद्विषये 'अप्यणो' आत्मनः=
 निजस्य 'सयाङ्कम्माङ्' स्वकानि कर्माणि=स्वकृतान्येव कर्माणि 'अवर-
 ज्जङ्गति' अपराध्यन्ति=एनं पीडयन्ति, 'उकट्टु' इति प्रोच्य यत्रैव 'चागसाला'

एवं वर्यन्ति) राजगृह नगर में आकरके वहाँ के श्रृगाटक, त्रिक चतुष्क
 चत्वर और महापथ इन सब मार्गों में उन्होंने उस विजय चोर को
 कोड़ों से वेतों से चिकने किये हुए कोड़ों--से बार बार और भी
 घुरी तरह पीटते हुए उसके ऊपर भस्म धूली और तृण आदि रूा
 कूड़ा करकट चार २ डालते हुए फिर इस प्रकार जोर जोर से घोषण-
 की--(एणं देवानुप्रिया विजय नामं तस्करे जाव गिद्धे विव आमिष-
 भक्खी चालघायए चालमारए) हे देवानुप्रियों ! यह विजय नामका
 चोर है। यह गृध्र पक्षी की तरह आमिष (मांस) का भक्षो है चाल
 घातक है और चाल मारक है। (तं नो खलु देवानुप्रिया ! एयस्स
 केइ राया वा रायपुरिसे वा रायमच्चे वा अवरज्जङ्ग) सो हे देवानुप्रियों !
 इस प्रिय में इनका न कोई राजा अपराधी है, न राजपुत्र अपराधी है
 और न राजा का प्रधान अपराधी है। (एयमद्वे अप्यणो सयाङ् कम्मङ्
 अवरज्जङ्गति) किन्तु हमके निज कृत कर्म ही अपराधी बने हुए हैं।
 (तिक्कट्टु) ऐना कट्टर (जेगामेव चागसाला तेगामेव उवागच्छन्ति) वे

श्रृगाटक, त्रिक, चतुष्क चत्वर अने महापथ आ जथा मार्गों उपर डेरडा, वेतो
 अने थिकणा करान्नेला डेरडान्नेथी सणत रीते विजयचोरने भारतां अने वारंवार
 तेना उपर राण, भाटी अने कचरे वगेरे नाभतां रक्षकान्ने गोटेथी घोषणा (ढंढेरे)
 करी (एसणु देवानुप्रिया विजय नामं तस्करे जाव गिद्धे विव आमिष
 भक्खी चालघायए चालमारए) हे देवानुप्रियो ! आ विजय नामे चोर छे.
 गीधनी जेम आ मांस खानारे छे, जाण घाती छे अत जाण हत्यारे छे.
 (तं नो खलु देवानुप्रिया ! एयस्स केइ राया वा रायपुत्ते वा रायमच्चे
 वा अवरज्जङ्ग) अटवे हे देवानुप्रियो ! आ विषे कोषिणु रीते राज अपराधी
 नथी, राजपुत्र अपराधी नथी, तेमज् रानना प्रधान पणु अपराधी नथी.
 (एयमद्वे अप्यणो सयाङ् कम्मङ् अवरज्जङ्गति) पणु परी रीते अना पोताना
 कर्मो ज् अने अपराधी साणित करे छे. (तिक्कट्टु) आभ कडीने (जेगामेव

नग्नपूर्वकं चन्धनं यम्य स तं कुर्वन्ति कृत्वा देवदत्तस्य दारकस्याभरणं
 गृह्णन्ति, गृहीत्वा विजयस्य तस्करस्य ग्रीवायां बध्नन्ति बद्ध्वा मालुया कच्छकात्
 प्रतिनिष्कामन्ति, प्रतिनिष्कम्य यत्रैव राजगृहं नगरं तत्रैवापागच्छन्त, उपा-
 गत्य राजगृहं नगरमनुप्रविशन्ति. अनुप्रविश्य राजगृहे नगरे श्रृङ्गाटकृत्तिकानुष्क-
 चत्वसमहापथपथेषु 'कयवहारे य' कशाप्रहारांश्च 'चावुक' इति भोषायाम्,
 'लयप्पहारे य' लताप्रहारांश्च यष्टिप्रहारात् 'छिवापहारे य' छिवाप्रहारांश्च=
 चिकणकशाप्रहारांश्च 'निवाणमाणा' निवाणन्तः=पुनः पुनः कुर्वन्तः छारं 'क्षारं'=
 भस्म धूर्लिं=रजः, कयवरं, कचवरं=वृणधूल्यादिपुञ्जं च 'उवरिं' उपरि
 तस्योपरि 'पक्किरमाणा २' प्रकीर्यमाणाः २=पुनः पुनः उत्क्षिपन्तो महता
 महता शब्देन उद्घोषयन्त एवं वदन्ति एष खलु देवानुप्रियाः !

करित्ता देवदिन्नस्म आभरणं गेण्हंति) मार मार कर फिर उन्होंने उसके
 दोनों हाथों को कमर के पीछे करके बांध लिया और बांध कर उसके
 पास से देवदत्त दारक के आभरणों को ले लिया। (गेह्णित्ता विजयस्म
 तस्करस्म ग्रीवाय बध्न्ति बधित्ता मालुया कच्छगाओ निवस्वमंति) ले कर
 फिर उन्होंने उस विजय चोर को ग्रीवामें बांधा और बांधकर फिर वे
 उस मालुयाकच्छक से बाहर निकले। (पडिनिक्खमिन्ना जेजेव राज गिहे नयरे
 तेणेव उवागच्छंति) बाहर निकल कर फिर—वे सबके सब राजगृह नगरकी ओर
 चल दिये (उवागच्छित्ता रायगिहं नयरं अणुणपविसंति) चलकर वे राजगृह
 नगर आये ८ अणुणविसित्ता रायगिहे नयरे सिंघाडगतियच्चउक्कचच्चरमहा
 पद्दपद्देषु कसप्पहारे य लयप्पहारे छिवापहारे य निवाणमाणा २ छारं च
 धूर्लिं च कयवरं च उवरिं पक्किरमाणा २ महयार सण्णेण उग्घोसेमाणा

(करित्ता अवउडगवध्णं करेति, करित्ता देवदिन्नस्म दारगस्स आभ-
 रणं गेह्णंति) आभ भारी पीटीने तेना धने ङ्ख पाछण ञ्ध्या अने
 तेनी पासैथी ञ्णण्ठ देवदत्तनां धरेण्ण्णो पोताना ङ्खणे थ्यां. (गेह्णित्ता विजयस्म
 तस्करस्म ग्रीवाय बध्न्ति बधित्ता मालुयाकच्छगाओ पडिनिक्खमंति)
 ङ्खणे करीने तेण्णोथे थार विन्धने णील वधत गणाभां ञ्ण्णो अने पछी तेण्णो
 मालुका ङ्खण्ठी ञ्ण्णार नीङ्ख्या. (पडिणिक्खमित्ता जेजेव रायगिहे नयरे तेणेव
 उवागच्छंति) त्यांथी तेण्णो राजगृह नगर तरङ्ग ग्या (उवागच्छित्ता रायगिहं
 नयरं अणुणपविसंति) अने राजगृह नगरभां प्रवेश्या (मणुणविसित्ता रायगिहे
 नयरे सिंघाडगतियच्चउक्कचच्चरमहापद्दपद्देषु कसप्पहारेय लयप्पहारे
 छिवापहारे य निवाणमाणा २ छारं च धूर्लिं च कयवरं च उवरिं पक्किरमाणा
 २ महयार सण्णेण उग्घोसेमाणा एवं वयंति) राजगृह नगरभां प्रवेशीने

'विजयो नाम तस्करः यावद् गृह्न इवामिषभक्षी चालवातको चालमारकोऽस्मि
 नन्=तस्मात्काणान् नो खलु देवानुप्रियाः ! एतस्य कर्णः राजा वा राज-
 पुत्रो वा राजामात्यो वा 'अवरज्जड' अपराध्यन्ति=न 'कोऽप्यन्य एनं
 पीडयतीत्यर्थः. किन्तु 'एतद्वे अत्रार्थे=एतद्विषये 'अप्यणो' आत्मनः=
 निजस्य 'सयाङ्कम्माङ्' स्वकानि कर्माणि=स्वकृतान्येव कर्माणि 'अवर-
 ज्जति' अपराध्यन्ति=एनं पीडयन्ति, 'उकट्टु' इति मांश्च यत्रैव 'चागसाला'
 एवं वयंति) राजगृह नगर में आकरके वहाँ के शृगाटक, त्रिक चतुष्क
 चत्वर और महापथ इन सब मार्गों में उन्हांने उस विजय चोर का
 कोडों से वेतों से चिकने किये हुए कोडों--से बार बार और भी
 बुरी तरह पीटते हुए उसके ऊपर भस्म धूली और तृण आदि रूा
 कूडा करकट बार २ डालते हुए फिर इस प्रकार जोर जोर से घोषण-
 की--(एएणं देवाणुप्रिया विजणं नामं तक्करे जाव गिद्धे विव आमिष-
 भक्खी चालघायणं चालमारणं) हे देवानुप्रियों ! यह विजय नामका
 चोर है। यह गृह पक्षी की तरह आमिष (मांस) का भक्षी है चाल
 वातक है और चाल मारक है। (तं नो खलु देवानुप्रिया ! एयस्स
 केइ राया वा रायपुरिसे वा रायमच्चे वा अवरज्जड) नो हे देवानुप्रियों !
 इस विषय में इनका न कोई राजा अपराधी है. न राजपुत्र अपराधी है
 और न राजा का प्रधान अपराधी है। (एयमद्वे अप्पणो सयाङ् कम्मङ्
 अवरज्जति) किन्तु हमके निज कृत कर्म ही अपराधी बने हुए हैं।
 (तिक्कट्टु) ऐरा कहकर (जेणामेव चागसाला तेणामेव उवागच्छंति) वे

शृगाटक, त्रिक, चतुष्क चत्वर अने महापथ आ गधा मार्गों उपर डेरडा, वेतो
 अने खीकण्डा क्सायेला डेरडायेथी सभत रीते विजयचोरने भारतां अने बारंवार
 तेना उपर सभ, भाटी अने क्यदेश वगेरे नाभतां रक्षेथी भेटेथी घोषणा (ढंढेरे)
 करी (एसणु देवाणुप्रिया विजणं नामं तक्करे जाव गिद्धे विव आमिष
 भक्खी चालघायणं चालमारणं) हे देवानुप्रियो ! आ विजय नामे चोर छे.
 गीधनी जेभ आ मांस खानासे छे, जाण घाती छे अन जाण हुत्यासे छे.
 (तं नो खलु देवाणुप्रिया ! एयस्स केइ राया वा रायपुत्ते वा रायमच्चे
 वा अवरज्जड) अेटवे हे देवानुप्रियो ! आ विषे डोषिण्य रीते सन्न अपराधी
 नथी, राजपुत्र अपराधी नथी, तेभन्न सन्नना प्रधान पणु अपराधी नथी.
 (एयमद्वे अप्पणो सयाङ् कम्मङ् अवरज्जति) पणु पारी रीते अेना चेताना
 कुभो न अेने अपराधी साणित करे छे (तिक्कट्टु) आम कडीने (जेणामेव

चारकशाला=भाराभारग्रहं तत्रापागच्छन्त, उपागत्य तन्ध 'हृदिवंधणं'
 हाडवन्धनं=हाडवांशेषवन्धनं 'वेडी' इति भाषाप्रसिद्धे हृदियन्त्रे वन्धनं
 कुर्वन्ति, कृत्वा 'भक्तपाणनिरोह' भक्तपाणनिरोधम्=भक्षणपाणप्रतिषेधं कुर्वन्ति
 कृत्वा 'तिसंज्ञ' त्रिसन्ध्यं=प्रातर्मध्याह्नसायंस्वरूपे कालत्रये कशाप्रहारांश्च
 यावद् निपातयन्तो निपातयन्तो विहरन्ति। 'तएणं' ततः खलु=इतः स
 धन्यः सार्थवाहो मित्रज्ञातिनिजकस्वजनसम्बन्धिपरिजनेन सार्द्धं रुदन्
 यावद् विलपन् देवदत्तस्य दारकस्य शरीरस्य 'महया इड्डोसकारसमुदणं'
 महता कृद्धिसकारसमुदयेन=महता=विस्तीर्णेन कृद्धया=रह्यादि सामग्रा
 सत्कारः=मृतशरीरसम्मानं तेन, समुदयेन=जनसङ्घेन च 'नीहरणं' निर्हरणं=
 शवस्य श्मशानभूमिनयनं करोति, कृत्वा मृतकशरीरदहनक्रियानन्तरं बहूनि
 कारागार (कैदखाना) जहां था। वहां गये उवागच्छिता हृदिवंधणं करे'ति)
 वहां जाकर वे उसे हृदियत्र में बांध देते हैं। (करित्ता भक्तपाणनिरोहं
 करे'ति करित्ता तिसंज्ञं कसप्पहारे य जाव निवाएमाणा २ विहरंति)
 बाद में उसे खानापीना देना बंध कर देते हैं। और तीनों संध्या के
 समय (सुबह दो पहर तथा सांयकाल) उसे कोठे आदि के प्रहारों
 से जर्जरित शरीर कर देते हैं। (तएणं से धन्ने सत्थवाहे भिननाइ
 नियगसणसंबंधिपरियणेणं सद्धि रोयमाणे जाव विलवमाणे देवदि
 न्नम्म दारगस्स सरीरस्स महया इड्डोसकारसमुदणं नीहरणं करेइ)
 इसके बाद उस धन्य सार्थवाहने मित्र, ज्ञाति, निजक स्वजन, सम्बन्धी
 और परिजनों से युक्त होकर रोते हुए यावत् विलाप करते हुए अपने
 देवदत्त दारक के शरीरकी बड़े भारी उत्सव के साथ अर्धी निकाली। --

चारकशाला तेणाग्रेव उवागच्छंति) तेओ जेव तरक्ष गथा. (उवागच्छिता
 हृदिवंधणं करे'ति) त्यां गधने तेओओ ओरने हृदियंत्र (हाडकानी वेडी)भा
 गंधन ओओ 'करित्ता भक्तपाणनिरोहं' करे'ति करित्ता तिसंज्ञं कसप्पहारे य
 जाव निवाएमाणा २ विहरंति' त्यार गाह तेओ ओर ने गावा
 पीवानी गधी वस्तुओ आपवानी गंध करे छे अने सवार, गपोर अने सांज
 त्रणे सांध्याना समये डोरडा वजेरेना प्रहारेथी तेना शरीरने शिथिल अने जर्जरित
 करी नाओ छे. (त एणं से धन्ने सत्थवाहे भिणेनाइ नियगसणसंबंधिपरि-
 यणेणं सद्धि रोयमाणे जाव विलवमाणे देवदिन्नस दारगस्स सरीरस्स महया
 इड्डोसकारसमुदणं नीहरणं करेइ) त्यार पछी धन्य सार्थवाहे मित्र, ज्ञाति,
 निजक, स्वजन, सांघंधी अने परिजनोनी साथे भणीने रडतां रडता अने करुण कंठन
 करतां गाणक देवदत्तना शरीरनी गहु मोटा उत्सव रूपे श्मशानयात्रा करी. श्मशा-

लौ ककानि=शोकमन्वन्धीनि 'मयगकिचाड' मृतककृत्यानि=मृत कश्चिदुस
 मन्धिकार्याणि करोति, कृत्वा 'केगइ कालंतरेणं' केनचित्कालान्तरेण=कतिप
 यकालान्तरेण 'अवगयसोए' अवगतशोकः=शोकरहितो जानश्चाप्यासीत् ॥ सू. ९ ॥

मूलम्— तएणं धणणे सत्थवाहे अन्नया कयाइं लहूसयंसि
 ययावराहंसि संपलत्ते जाए यावि होत्था, तएणं ते नगरगुत्तिया
 धणणं सत्थवाहं गेण्हंति गेण्हत्ता जेणेव चारगे तेणेव उवागच्छंति,
 उवागच्छत्ता चारगं अणुपविसंति, अणुपविसित्ता विजएणं तकरेणं
 सद्धिं एगयओ हडिवंधणं करेति । तएणं सा भद्दा भारिया कल्लं
 जाव जलत्ते विउलं असणं ४ उवक्खडेइ, उवक्खडित्ता भोयणपिडयं
 करेइ, करित्ता भोयणाइं पक्खिक्खवइ लंछियमुद्धियं करेइ, करित्ता
 एगंच सुरभिवरवारिपडिपुन्नं दगवारयं करेइ, कारत्ता पंथयं दास-
 चेडं सदावेइ, सदावित्ता एवं वयासी गच्छ णं तुमं देवाणुप्पिया!
 इमं विउलं असणं ४ गहाय चारगसालाए धणणस्स सत्थवाहस्स
 उवणेहि, तएण से थए दासचेडए भद्दाए सत्थवाहीए एवं वुत्ते
 समाणे हट्टुट्टे तं भोयणपिडयं तं च सुरभिवरवारिपडिपुन्नं
 दगवारयं गेण्हइ, गेण्हत्ता सयाओ गिहाओ पडिनिक्खमइ,
 पडिनिक्खमित्ता रायगिहे नगरे मज्झं मज्झेणं जेणेव चारगसाला

इसमें बहुत अधिक जन समूह सम्मिलित हुआ था । (करित्ता बहूई लोड-
 या 'मयगकिचाड' करेइ, करित्ता कालंतरेणं अवगयस ए जाए यावि होत्था)
 वाइ में उमने अनेक और भी लौकिक कृत्य किये । कर के, फिर
 धीरे २ बहू अपने पुत्र के शोक से भी रहित हो गया । सूत्र ॥ ९ ॥

नयात्राभां धणु भाणुसो अेकडा थथा डता. (करित्ता बहूइ लोडयाइं मयगकि-
 चाडं करेइ, करित्ता कालंतरेणं अवगयसोएजाए यावि होत्था) त्थारपथी धन्य-
 सार्थवाडे पुत्रनी अन्त्येथी भरलु पथीनी उत्तर डिया अणंधी धणु लोडिड
 डभोडयो. अने आम ते वणत पत्तार थतां धीमे धीमे पुत्र शोकने पणु लूली गथे. ॥ सू. ९ ॥

जेणेव धणणे सत्थवाहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता भोय-
णपिडयं ठावेइ, ठावित्ता उल्लंछेइ, उल्लंछित्ता भायणाइं गेण्हइ
गेण्हित्ता भायणाइं धोवेइ, धोवित्ता हत्थसोयं दलयइ, दलयित्ता
धणणं सत्थवाहं तेणं विउलेणं असणं ४ परिवेसइ, तएणं मे
विजए तकरे धणणं सत्थवाहं एवं वयासी—तुमणणं देवाणुप्पिया !
मम एयाओ विउलाओ असण० ४ संविभागं करेहि, तएणं से
धणणे सत्थवाहे विजयं तकरं एवं वयासी अविद्याइं अहं विजया !
एयं विउलं असणं ४ कायाणं वा सुणगाणं वा दलएज्जा उक्कुरु-
डियाए वा णं छड्ढेज्जा नो चेव णं तव पुत्तघायगस्स पुत्तमारगस्स
अरिस्सवेरियस्स पडिणीयस्स पच्चामित्तस्स एत्तो विउलाओ
असण० ४ संविभागं करेज्जामि, तएणं से धणणे सत्थवाहे तं
विउल असणं ४ आहारेइ, आहारित्ता तं पंथयं पडिविसज्जेइ,
तएणं से पंथए दासचेडे तं भोयणपिडगं गिण्हइ, गिण्हित्ता जामेव
दिसिं पाउव्भूए तामेव दिसिं पडिगए, तएणं तस्स धणणस्स सत्थ-
वाहस्स तं विउलं असणं ४ आहारियस्स समाणस्स उच्चारपासवणे
णं उव्वाहित्था, तएणं से धणणे सत्थवाहे विजयं तकरं एवं वयासी
—एहि ताव विजया ! एगंतमवक्कमामो जेणं अहं उच्चारपासणं
परिट्ठवेमि, तएण से विजए तकरे धणणं सत्थवाहं एवं वयासी—
तुव्भं देवाणुप्पिया ! विउलं असणं ४ आहारियस्स अत्थि उच्चारे वा
पासवणे वा ममंणं देवाणुप्पिया ! इमेहिं व्हूहिं कसप्पहारेहि
य जाव लयापहारेहि य तण्हाए य लुहोय य परव्भवमाणस्स णत्थि
केइ उच्चारे वा पासवणे वा तं छंदेणं तुमं देवाणुप्पिया ! एगंते

अवक्रमित्ता उच्चारपासवणं परिट्टवेइ, तएणं से धणणे सत्थवाहे
 विजएणं तकरेणं एवं बुत्ते समाणे तुसिणीए संचिट्टेइ, तएणं से
 धणणे सत्थवाहे मुहुत्ततरस्स वलियतरांगं उच्चारपासवणेणं उट्वाहिज्ज-
 माणे विजयं तकरं एवं वयासी—एहि ताव विजया ! जाव अव-
 क्रमामो, तएणं से विजए धणणं सत्थवाहं एवं वयासी—जइणं
 तुमं देवाणुप्पिया ! तओ विउलाओ असणं ४ संविभागं करेहि
 तओहं तुब्भेहिं सद्धि एगंतं अवक्रमामि, तएणं से धणणे सत्थवाहे
 विजयं एवं वयासी—अहणणं तुब्भं तओ विउलाओ असणं ४
 संविभागं करिस्सामि, तएणं से विजए धणणस्स सत्थवाहस्स एय-
 मट्ठं पडिसुणेइ, तएणं से विजए धणणेणं सद्धि एगंते अवक्रमेइ
 उच्चारपासवणं परिट्टवेइ, परिट्टवित्ता आयंते चोक्खे परमसुईभूए
 तमेव ठाणं उवसंकमित्ता विहरइ, तएणं सा भ । कळं जाव
 जलंते विउलं असणं ४ जाव परिवेसेइ, तएणं से धणणे सत्थ
 वाहे विजयस्स तकरस्स तओ विउलाओ असणं ४ संविभागं
 करेइ, तएणं से पंथए भोयणपिडयं गहाय चारगाओ पडिनिक्ख-
 मइ, पडिनिक्खमित्ता रायगिहं नगरं मज्झं मज्झेणं जेणेव सए
 गिहे जेणेव भद्दा भारिया सत्थवाही तेणेव उवागच्छइ, उवा
 गच्छित्ता भदं सत्थवाहिणिं एवं वयासी—एवं खल्ल देवाणुप्पिए !
 धणणे सत्थवाहे तव पुत्तघायगस्स जाव पच्चामित्तस्स ताओ
 विउलाओ असणं ४ संविभागं करेइ । तएणं सा भद्दा सत्थ-
 वाही पंथयस्स दासचेडयस्स अंतिएएयमट्ठं सोच्चा आसुरुत्ता रुट्टा जाव
 मिसिमित्तेमाणा धणणस्स सत्थवाहस्स पओसमावज्जइ ॥सू. १०॥

टीका—तए णं से इत्यादि । ततः खलु स धन्यः सार्थवाहोऽन्यथा

कदाचित्—एकस्मिन् कस्मिंश्चित्समये 'लहूसयंसि रायावराहंसि' लघुस्त्रके राजापराधे=स्तोके राजकामप्रदानरूपे भूपापराधे सति केनाऽपि पिशुनेन भूपाय 'संपलत्ते' संपलपितः=अपराधित्वेन कथितो जातश्चाप्यासीत् । ततः खलु=पैशुन्यप्रत्यपनानन्तरं ते नगरगोप्तृका धन्यं सार्थवाहं गृह्णन्ति, गृहीत्वा यत्रैव चारकः=कारागारस्तत्रैवोपागच्छन्ति उपागत्य चारकमनुप्रवेशयन्ति. अनुप्रवेश्य विजयेन तत्करेण सार्द्धम् 'एगयओ' एकतः=एकत्र तेन सहैव एकस्मिन् दंडियन्त्रे 'वेडी' इति भाषामसिद्धे हडिबन्धनं कुर्वन्ति । ततः खलु सा भद्रा भार्या कल्ये यावज्ज्वलति=धन्यश्रेष्ठिनी दंडिबन्धनस्य द्वितीयदिवसे मूर्खोदये सति त्रिपुलं=विस्तीर्णं स्वपतिभोजनार्हम् अन्नं पानं वाद्यं ध्याद्यं=नानाविधमशनादिकम् 'उक्कलडेड' उपकरोति=नीरकद्वि-

तए णं से धण्णे सत्थवाहे इत्यादि ।

टीकार्थ—(तएणं) इसके बाद (से धण्णे सत्थवाहे) वह धन्यसार्थवाह

(अन्नया कथाई) किसी एक समय (लहूसयंसि रायावराहंसि) टेक्स न देने के छोटे अपराध में (संपलत्ते जाए यावि होत्था) राजा के पास किसी चुगल खोरने फंसा हुआ कद्व दिया। (तएणं ते नगरगुत्तिया धण्णं सत्थवाहं गेह्णन्ति) इसके बाद नगरक्षकीने उस धन्य सार्थवाह को पकड़ लिया। (गेह्णित्ता जेणेव चारगे तेणेव उवा च्छन्ति उवागच्छित्ता चारगं अणुपविसंति) पकड़ कर वे उसे जहां कारागार था, वहां ले गये, लेजाकर उन्होंने उसे कारागार में बन्द कर दिया। (अणुपविसित्ता विजएणं तक्करेणं सद्धि एग यओ हडिबन्धणं करेति) बन्द करके उसे जहां वह विजयचोर था वही उसीकी वेडी से बांध दिया। (तएणं सा भद्रा भारिया कल्यं

'(त एणं से धण्णे सत्थवाहे' इत्यादि !

टीकार्थ—(तएणं) त्थार पछी (से धण्णे सत्थवाहे) धन्यसार्थवाहे (अन्नया

कथाई) कैध अेक पथते (लहूसयंसि रायावराहंसि) डर न आपवा इपी नाना अपराध अदल (संपलत्ते जाए यावि होत्था) कैध आडियाअे शब्दनी पास पछोयाडी दीधा. (त एणं ते नगरगुत्तिया धण्णं सत्थवाहं गेह्णन्ति) त्थार आद नगर रक्षेअे धन्य सार्थवाहने पकडयो. (गेह्णित्ता जेणेव चारगे तेणेव उवागच्छन्ति उवागच्छित्ता चारगं अणुपविसंति) पकडीने तेअे तेने अेलमां लध गया अने तेमां पूरी दीधा. (अणुपविसित्ता विजएणं तक्करेणं सद्धि एगयओ हडिबन्धणं करेति) अ्यां विअय नामे थार हुते त्यां अ धन्यसार्थ वाहने पधु अेडीथी आंधी दीधा. (तएणं सा भद्रा

ग्वादिना संस्कारपूर्वकं पवति, उपस्कृत्य 'भोयणपिडयं' भोजनपिटकं=भोजन
 भरणाय पिटकं=सम्पुटकम् 'पिटारा' 'कटोरदान' 'डब्बा' इति. सम्प्रति
 काले 'टीफनबोयस' इति च प्रसिद्धं 'करेइ' करोति=सज्जयति, कृत्वा=
 मज्जयित्वा तस्मिन् 'भोयणाइ' भोजनानि=खाद्यपदार्थानि 'पक्खिवइ' पक्षिः
 पनि=स्थायति, पक्षिष्य 'लंछियमुदियं' लाच्छिआमुदियं लाच्छित्तं=रेखादिचिह्नः
 युक्तं, मुद्रितं=आक्षादिमुद्रासाहसं, 'करेइ' करोति=सज्जयति, कृत्वा एकं च
 'सुरभिवरवारिपडिपुन' सुरभिवरवारिप्रतिपूर्णं-सुरभि=केतकीपाटलादि
 सुगन्धवासितं वरं श्रेष्ठं स्वच्छं वारि=जल, तेन प्रतिपूर्णं=भृतं 'दगवारयं'
 दगवारकं=जलपात्रविशेषं 'झारी' इति भाषा प्रसिद्धं जलपात्रं 'करेइ'
 करोति=सज्जयति, कृत्वा. पान्थकं दासचेटकं शब्दयति शब्दयित्वा एवमवादीव-गच्छ-

जाव जलंते विउलअसणं ४ उववखडेइ) डमके वाद उस भद्रा सार्थ-
 वाहीने दूसरे दिन मातः काल जय मूर्यप्रकाशित हो चुका तब ४
 प्रकारका आहार तैयार किया—(उववखडित्ता भोयणपिडयं करेई—
 करित्ता भोयणाइं पक्खिवइ, लंछियमुदियं करेइ,—करित्ता एगं च सुरभि-
 वरवारिपडिपुनदगवारयं करेइ) जब आहार निष्पन्न हो चुका तब उसने
 उसके रखने के लिये एक कटोरदान तैयार किया। जब कटोरदान
 साफ सुथरं रूप से तैयार हो चुका तब उसमें उसने आहार को
 रख दिया—आहार रखकर फिर उसे लाख की मुद्रा से मुद्रित कर
 दिया। कटोरदान को मुद्रित करने के बाद फिर उसने एक सुगन्धित
 उत्तम जल से प्रतिपूर्ण झारी को तैयार किया। (करित्ता पंथयं दास-
 चेडं सदावेइ, सदाविता एवं वयासी) झारी तैयार कर उसने फिर
 पान्थक दास चेटक को बुलाया—और बुलाकर उसने इस प्रकार कहा—

भरिया कल्लं जाव जलंते विउलअसणं ४ उववखडेइ) त्थार जाड लद्दाभाया
 सार्थवाहीये जीण दिवसे सवारं सूरज उदय पामतां थार जलते आहार तैयार करावडव्यो.
 (उववखडित्ता भोयणपिडयं करेई करित्ता भोयणाइं पक्खिवइ, लंछियमुदियं
 करेइ, करित्ता एगं च सुरभिवरवारिपडिपुनदगवारयं करेइ) आहार न्यारे तैयार
 थर्ध गथे त्थारे तेहे आहारने भूइवा भाटे उभे तैयार कथे न्यारे साइ पाणीथी उभे
 धोपाधिने साइ थर्ध गथे त्थारे तेभं आहार भूई दीधा. आहार भूईने वाण वगेरे
 लगावीने तेने जणवर जंध करी दीधा. उणातु "शील" करीने तेहे अेक सुवास
 युक्त जणथी पुण्णं लरेवी आरी तैयार करी. (करित्ता पंथयं दासचेडं सदावेइ,
 सदाविता एवं वयासी) आरी तैयार करीने तेहे पान्थकदास चेटकने जेलाव्ये. अने

खलु त्वं देवानुप्रिया इदं विपुल=प्रचुरम् अशनं पानं खाद्यं स्वाद्यं गृहीत्वो चारं
कशालायां धन्यस्य सार्थवाहस्य 'उचणेहि' उपनय=समीपे प्रापय। ततः खलु
स पान्यको दासचेटको भद्रया सार्थवाद्या एवमुक्तः सन् हृष्टतुष्टस्नद्
भोजनपिटकं, तच्च सुरभिवरवारिप्रतिपूर्णदकवारकं गृह्णाति, गृहीत्वा
स्वकाद् गृहात् प्रतिनिष्क्रामति, प्रतिनिष्क्रम्य राजगृहे नगरे मध्यमन्धेन
यजेव चारकशाला, यजेव धन्यः सार्थवाहस्तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य

(गच्छ णं तुम देवाणुप्पया। विउलं असणं ४ गहाय चारगसालाए धन्नस्स
सत्थवाहस्स उचणेहि) हे देवानुप्रिय! तुम इस विपुल अशन, पान, खाद्य
और स्वाद्य—आहार का लेकर कारावास में धन्य सार्थवाह के पास
पहुँचाओ। (तएण से पंथए दासचेडए भद्राए सत्थवाहीए एवं वुत्तो
समाणे हट्टवुत्ते तं भोयणपिटथं तं च सुरभिवरवारिपडिपुत्तं दगवारयं
गेहइ) भद्रा सार्थवाही के इस कथन को सुनकर वह पांथक दास चेटक
बहुत अधिक हर्षित हुआ और संतुष्ट हुआ। तथा उस भोजन के भरे
हुए डिब्बेको एवं सुगन्धित उजम जल से परिपूर्ण उस झारी को
उसने ले लिया। (गेह्णिता सयाओ गिहाओ पडिनिक्खमइ) लेकर वह
अपने घर से निकला—(पडिनिक्खमिन्ना रायगिहे नयरे मज्झं मज्झेण
जेणेव चारगसाला जेणेव धन्ने सत्थवाहे तेणेव उवागच्छइ) निकल कर
वह राजगृह नगर के ठीक बीचो बीच के मार्ग से हाता हुआ जहाँ
वह कारावास एवं धन्य सार्थवाह था, वहाँ गया—(उवागच्छिता भोयण

तेने आ प्रभाणु तेहु—(गच्छ णं तुम देवाणुप्पया। विउलं असणं ४ गहाय
चारगसालाए धन्नस्स सत्थवाहस्स उचणेहि) हे देवानुप्रिय! तुम आ
पुच्छण प्रभाणुमां गतायेला अशन, पान, खाद्य अने स्वाद्य आहारने लधने जेलमां
धन्यसार्थवाहनी पासो पडोच्येतां करे। (त एण से पंथए दासचेडए भद्राए सत्थ-
वाहाए एवं वुत्तो समाणे हट्टवुत्ते तं भोयणपिटथं तं च सुरभिवरवारि-
पडिपुत्तं दगवारयं गेहइ) भद्रा सार्थवाहीनी आत्ता सासणीनी पांथकदास चेटक
णहु व प्रसन्न थये—अने संतुष्ट थये। त्थारे पछी तेहे लोअनथी परिपूछुं उमाने
तेमज्ज सुवासित जणथी पूछुं अरेली अरीने तेहे लधं वीथी। (गेह्णिता सयाओ
गिहाओ पडिनिक्खमइ) लधने ते पोताने थयेथी नीक्खये। (पडिनिक्खमिन्ना
रायगिहे नयरे मज्झं मज्झेण जेणेव चारगसाला जेणेव धन्ने सत्थवाहे
तेणेव उवागच्छइ) नीक्खणीने राजगृह नगरनी ठीक वच्चैतां मार्गथी पसार थय्नि
ते त्थां जेल अने धन्यसार्थवाह उतो त्थां पडोच्ये। (उवागच्छिता भोयण

भोजनपिटकं स्थापयति, स्थापयित्वा 'उल्लंछेइ' उल्लाञ्छयति= निर्लाञ्छितं करोति=उद्वाटयतीत्यर्थः, उल्लाञ्छय 'भायणाणि' भाजनानि= स्थाली कटोरकादीनि गृह्णाति, गृहीत्वा भाजनानि 'धोवेइ' धावति=प्रक्षालयति, धावयित्वा=पात्रप्रक्षालनानन्तरं 'हृत्थसोयं दलयइ' हस्तशौचं ददाति, श्रेष्ठिनो हस्तौ धावयति, हस्तशौचानन्तरं धन्यं सार्थवाहं तेन विपुलेन— अशन-पान-खाद्यस्याद्येन 'परिवेसइ' परिवेषयति=श्रेष्ठिनो भोजनपात्रेऽशन-दीनि निदधातीत्यर्थः 'तएणं' तदाखिलं=श्रेष्ठिभोजनसमये स विजयस्तस्करो धन्यं सार्थवाहमेवमवादीत्-त्वं खलु देवानुप्रिय ! मम एतस्माद् विपुलाद् अशन-पान-खाद्य-स्वाद्यात् संविभागं कुरु । ततः खलु म धन्यः सार्थवाहस्तस्य वाक्यं श्रुत्वा विजयं तस्करमेवमवादीत्अपि 'आइ' वाक्पा-

पिडगं ठवेइ) जाकर उसने उस भोजन के डिब्बेको वहां रख दिया । (ठविच्चा उल्लंछेइ) रखकर फिर उसने उस डिब्बेको खोला (उल्लंछित्ता भायणाइं गेहइ गेह्णित्ता भायणाइं धोवेइ धोविच्चा हृत्थसोयं दलयइ) खोलकर उसने थाली-कटोरी आदि को उठाया-उठा कर उन्हें धोया, (दलयित्ता धणं सत्यवाहं तेणं असणं ४ परिवेसइ) धुलाकर उस सेठ धन्य सार्थवाह के लिये वह विविध आहार परोसा (तएणं से विजयं तक्करे धणं सत्यवाहं एवं वयासी) इसी बीच में उस विजय चौरने धन्य सार्थवाह से इन प्रकार कहा— (तुमणं देवाणुप्पिया मम एयाओ विउलाओ असणं ४ संविभागं करेहि) हे देवानुप्रिय ! तुम इस अशन, पान खाद्य, एवं स्वाद्यरूप चार प्रकार के आहार में से विभाग करो (तएणं से धन्ने सत्यवाहेविजयं तक्करं एवं वयासी) विजय चौर की इस प्रकार बात सुनकर धन्य सार्थवाहने उस विजय चौर

पिडगं ठवेइ) अने त्यां पडोन्थीने लोअनना उणाने तेण्णे त्यां भूडी दीधे. (ठविच्चा उल्लंछेइ) त्यां भूडीने तेण्णे उभे उधाउथे. (उल्लंछित्ता भायणाइं गेहइ गेह्णित्ता भायणाइं धोवेइ धोविच्चा हृत्थसोयं दलयइ) उधाडीने तेण्णे याणी अने वाडडीने दीधी अने लधने पाणीथी धेध. त्यार भाइ तेण्णे शेठना जने उाथ धाव-आव्या. (दलयित्ता धणं सत्यवाहं तेणं विउलेणं असणं ४ परिवेसइ) धाव-आवीने तेण्णे धन्यसार्थवाहने माठे विविध जतना आडारे पीरस्या. (तएणं से विजयतक्करे धणं सत्यवाहं एवं वयासी) अे जे वज्जते ते विजय थोरे धन्यसार्थवाहने आ प्रभाण्णे उण्णं—(तुमणं देवाणुप्पिया मम एयाओ विउलाओ असणं ४ संविभागं करेहि) हे देवानुप्रिय ! तमे आ अशन, पान खाद्य अने स्वयं आहारमांथी मारेपण्णे डिस्से करे. (तएणं से धन्ने सत्यवाहं विजयं तक्करं एवं वयासी) विजय थोःनी आ जतनी बात सांखणीने

लङ्कारे अहं हे विजय ! एतद् विपुलमशनं स्वाद्यं स्वाद्यं काकेभ्यो वा मुनकेभ्यो वा दद्याम्, 'उक्कुरुडियाए' उक्कुरुडिकायां=रुचवरपुठननिक्षेपणस्थाने वा खलु=निश्चयेन 'छडेज्जा' त्यजेयं=प्रक्षिपेयं किन्तु नैव खलु=तुभ्यं पुत्र-वातकाय, पुत्रमारकाय, 'अरिस्स' अरये=अनिष्टकारिणं 'वेरियस्स' वैरिकाय=परिणतशत्रुभावनाय, 'पडिणीयस्स' प्रत्यनीकाय=प्रतिकूलविधायिने, 'पच्चा-मित्तस्स' प्रत्यामित्राय=हार्दिकशत्रवे 'एत्तो' एतस्माद् विपुलाद् अशनपान-स्वाद्यस्वाद्यात् 'संविभाग' संविभागम्=अंशरूपेण पृथकरणं 'करेज्जामि' कुर्वामि। अस्मादशनादिकात्तुभ्यं किञ्चिदपि न दास्यामीति भावः। ततः खलु=इत्युक्त्वा स धन्यः सार्थवाहस्तद् विपुलमशनपानस्वाद्यस्वाद्यम् आहारेद् 'आहारयति'=भुङ्क्तं, आहारयित्वा तं पान्यकं 'पडिविसज्जेइ' प्रतिविसर्जयति=गृह्णति

से इस प्रकार कहा—(अविद्याः अहं विजया ! एयं विउलं असणं ४ कायाणं वा मुणगाणं वा दलएज्जो उक्कुरुडियाए वा णं छडेज्जा नो चैव णं तव पुत्तघायगस्स पुत्तमारगस्स अरिस्सवेरियस्स पडिणीयस्स पच्चामित्तस्स एत्तो विउलाओ असणं ४ संविभागं करेज्जामि) हे विजय चौ ! मैं चाहे इस विपुल अशन, पान, स्वाद्य, स्वाद्य, रूप चतुर्विध आहार को कौरों के लिये अथवा कुतों के लिये दे दूंगा—या इसे उकड़े पर—कूडा करकट डालनेके स्थान पर—डाल-दूंगा परन्तु पुत्रघातक, पुत्रमारक, अनिष्टकारी, शत्रुभाव से परिणत, प्रति-कूल विधायी तथा हार्दिक शत्रु ऐसे तुम्हारे लिये इसमें से विभाग तुम्हें नहीं दूंगा। (तएणं से धन्ने सार्थवाहे तं विउलं असणं ४ आहारेइ, आहारित्ता तं पंथयं पडिविसज्जेइ) इस प्रकार उस विजय नन्दर से कह कर धन्य सार्थवाहने उस विविध प्रकार के अशनादिरूप चतुर्विध

धन्यसार्थवाहे ते विजय योरने आ प्रभाणु क्खु—(अविद्याः अहं विजया !

एयं विउलं असणं ४ कायाणं वा मुणगाणं वा दलएज्जो उक्कुरुडियाए वा णं छडेज्जा नो चैव णं तव पुत्तघायगस्स पुत्तमारगस्स अरिस्स वेरियस्स पडिणीयस्स पच्चामित्तस्स एत्तो विउलाओ असणं ४ संविभागं करेज्जामि) हे विजय योर ! आ पुक्कण प्रभाणुमां भनाववाभा आवेलां यार भतना आहारे हुं क्खण्डाओ अथवा कृताराओने भवडाववा तैयार छुं के उक्कुराणी न्ज्याओ नाभीथ पथु तारा जेवा पुत्रना इत्यारा पुत्र मारनारा, अनिष्ट करनार शत्रु धर गथेवा, जेहुं करनान तेमज्ज क्खण्डित शत्रुने आभांथी इत्थो भणी न थके, तमार जेवा हुण्टने तो जेक क्कडा पथु आभांथी भणी थके तेम नथी। (तएणं से धन्ने तं विउलं असणं ४ आहारेइ, आहारित्ता तं पंथयं पडिविसज्जेइ) आ प्रभाणु विजय योरने न्ज्याण आपीने धन्य सार्थवाह ते अशन, पान, वगेरेना

प्रपयति । ततः खलु स पाण्डको दासचेष्टस्तं भोजनपिटकं गृह्णात, गृहीत्वा यस्या दिशः प्रादुर्भूतस्तस्यामेव दिशि प्रतिगतः, येन मार्गेणागतस्तेनैव मार्गेण गतवानित्यर्थः । ततः खलु=तदनु तस्य धन्यस्य सार्थवाहस्य तद् विपुलमशनं पानं खायं स्वाद्यम् 'आहारियस्स' आहारितस्वप=भुक्तस्य सतः 'उच्चारपासवणेणं' उच्चारप्रसवणं खलु=उच्चारंच=विष्ठाप्रसवणेच=मूत्रमित्युच्चार=प्रसवणे, ते उवाहित्या' उदाघपतां पीडयतः स्मेत्यर्थः । 'तएणं' ततः खलु =तदनु स धन्यः सार्थवाहो विजयं तस्करमेववादीत-एहि=आगच्छ तावत्-प्रथमं हे विजय ! आवाम् 'एगंतमवकमामो' एकान्तमपक्रामावः=उच्चार-प्रसवणनिवृत्तपथं निर्जने स्थाने गच्छावः, येनाहमुच्चारप्रसवणे 'परिट्टवेमि' परिष्ठापयामि=उच्चारप्रसवणोत्सर्गं करोमि। ततः खलु स विजयस्तस्करो धन्यं

आहार कोया-आहार कर वादमें उस पांथक को वहां से खाना कर दिया । (तएणं से पयए दासचेष्टे तं भोजणपिडगं गिह्णइ गिह्णित्ता जायेव दिशि पाउब्भूए तामेव दीसिं पडिगए) खाना खाते समय उस पांथकदास चेष्टकने उस भोजन के डिब्बे को ले लिया और लेकर जहां से आया था वहीं पर चला गया (तएणं तस्स धण्णस्स सत्थवाहस्स तं विउलं असणं) आहारियस्स समाणस्स उच्चारपासवणे णं उवाहित्या) इसके बाद धन्यसार्थवाह को उस ४ प्रकार के अशन आदि खाने से बड़ी नीत और लघुनीत की बाधा उपस्थित हुई (तएणं से धन्ने सत्थवाहे विजयं तस्करं एव वयासी) सो उस धन्यसार्थवाहने विजय चौर से इस प्रकार कहा-(एहि ताव विजया ! एगंतं अवकमामो जेणं अहं उच्चारपासवणं परिट्टवेमि) आओ-विजय चौर तुम और हम दोनों निर्जन एकान्त-स्थान में चले । मुझे उच्चारप्रसवण की बाधा ही रही है सो मैं वहां उच्चार प्रसवण से निवृत्त होऊंगा ।

आर नातना आहारने जभ्या जभ्या पछी तेले पांथकने त्यांथी जयानी आरा आपी. (तएणं से पयए दासचेष्टे तं भोजणपिडगं गिण्हइ गिह्णित्ता जायेव दिशि पा उब्भूए तामेवदिशि पडिगए) जभ्या पछी पांथकदास चेष्टके ते उआनेलीधो अने लधने जभ्यां थोआओहे हुतो त्यां जतो रथो. (तएणं तस्स धण्णस्स सत्थवाहस्स तं विउलं असणं ४ आहारियस्य समाणस्स उच्चारपासवणे णं उवाहित्या) त्थार आद धन्यसार्थवाहने आर नातना आहारो जभ्या पछी दीर्घं थंअ तेमज लघु थंअनी मुशकेली लथी थं. (तएणं से धन्ने सत्थवाहे विजयं तस्करं एव वयासी त्थारे धन्य सार्थवाहे विजय्य चोरने कलुं—(एहि ताव विजया ! एगंतं अव-कमामो जेणं अहं उच्चारपासवणं परिट्टवेमि) विजय्य चोर यावो आपणे अने निर्जन एकान्त स्थानमां जथो. अने उच्चार प्रसवणानी मुशकेली लथी

लङ्कारे अहं हे विजय ! एतद् विपुलमशनं त्वाद्यं स्वाद्यं काकेभ्यो वा
 सुनकेभ्यो वा दद्याम्, 'उक्कुरुडियाए' उक्कुरुडिकायां=हृत्वरपुठननिक्षणस्थाने
 वा खलु=निश्चयेन 'छडेज्जा' त्यजेयं=प्रक्षिपेयं किन्तु नैव खलु=तुभ्यं पुत्र-
 घातकाय, पुत्रमारकाय, 'अरिस्स' अरये=अनिष्टकारिणे 'वेरियस्स' वैरिकाय=
 परिणतशत्रुभावाय, 'पडिणीयस्स' प्रत्यनोकाय=प्रतिकूलविधायिने, 'पञ्च-
 मित्तस्स' प्रत्यामित्राय= हार्दिकशत्रवे 'एत्तो' एतस्माद् विपुलाद् अशनपान-
 खाद्यन्वाघात 'संविभाग' संविभागम्=अंशरूपेण. पृथकरणं 'करेज्जामि'
 कुर्वामि। अस्मादशनादिकातुभ्यं किञ्चिदपि न दास्यामीति भावः. ताः खलु=
 दयुक्त्वा स धन्यः सार्थवाहस्तद् विपुलमशनपानखाद्यन्वाद्यम् आहारेद् 'आहारयति=
 भुङ्क्ते, आहारयित्वा त पान्यकं 'पडिविसज्जेइ' प्रतिविसर्जयति=ग्रहं प्रति

से इस प्रकार कहा—(अवियाइ अहं विजया ! एयं विउलं असणं ४ कायाणं
 वा सुणगाणं वा दलएज्जो उक्कुरुडियाए वा णं छडेज्जा नो चेव णं तव पुत्तघायगस्स
 पुत्तमारगस्स अरिस्सवेरियस्स पडिणीयस्स पञ्चामित्तस्स एत्तो विउलाओ असणं ४
 संविभागं करेज्जामि) हे विजय चौ ! मैं चाहे इस विपुल अशन, पान,
 स्वाद्य. स्वाद्य, रूप चतुर्विध आहार को कौनों के लिये. अथवा कुतों के
 लिये दे दूंगा—या इसे उकड़े पर—कूड़ा करकट डालनेके स्थान पर—डाल-
 दूंगा परन्तु पुत्रघातक, पुत्रमारक, अनिष्टकारी, शत्रुभाव से परिणत, प्रति-
 कूल विधायी तथा हार्दिक शत्रु ऐसे तुम्हारे लिये इसमें से विभाग तुम्हें
 नहीं दूंगा। (तएणं से धन्ने सत्थवाहे तं विउलं असणं ४ आहारेइ,
 आहारित्ता तं पण्यं पडिविसज्जेइ) इस प्रकार उस विजय नशर से
 कह कर धन्य सार्थवाहने उस विविध प्रकार के अशनादिरूप चतुर्विध

धन्यसार्थवाहं ते विजय योरने आ प्रभाञ्जे ३६५—(अवियाइ अहं विजया !
 एयं विउलं असणं ४ कायाणं वा सुणगाणं वा दलएज्जो उक्कुरुडियाए
 वाणं छडेज्जा नोचेव णं तव पुत्तघायगस्स पुत्तमारगस्स अरिस्स वेरियस्स
 पडिणीयस्स पञ्चामित्तस्स एत्तो विउलाओ असणं ४ संविभागं करेज्जामि)
 हे विजय योर ! आ पुञ्ज प्रभाञ्जुमां जनाववामां आपेलां यार लतनां आहार
 हुं डागडाओ अथवा कृतशब्देने भवडाववा तैयार हुं हे उक्कुरुडानी ज्ञ्याओ नाभीय
 पणु तारा लेवा पुत्तना हत्यारा पुत्त मारनारा, अनिष्ट करनार शत्रु धर गयेला,
 जोहुं करनान तेमज्ज डारिउ शत्रुने आमांथी । हुरसे मणी न शके, तमार
 लेवा हुण्टने तो ओक ककडा पणु आमांथी मणी शके तेम नथी. (तएणं से धन्ने
 तं विउलं असणं ४ आहारेइ, आहारित्ता तं पण्यं पडिविसज्जेइ)
 आ प्रभाञ्जे विजय योरने ज्ञ्याण आभीने धन्य सार्थवाह, ते अशन, पान, वगेरेना

सार्धवाहमेवमवादीत-हे देवानुप्रियाः ! = हे श्रेष्ठिवर्याः ! युष्माकं 'विउलं' विपुलं = प्रचुरमंशानादिकमाहारितानामस्ति-उच्चारं वा, प्रस्रवणं वा, मम खलु हे देवानुप्रियाः ! एतैर्वहुभिः कशाप्रहारैश्च : यावत्-लताप्रहारैश्च, तृष्णयाः च क्षुधया च, 'परम्भवमाणस्स' परामभवतः = पीडितस्याऽनाहारितस्य च नास्ति किमपि उच्चारं वा प्रस्रवणं वा, का नामः वुमुक्षामहार-पीडितस्योच्चारप्रस्रवणवाधे ? ति भावः, 'तं' तस्मात्कारणात् 'छंदेण' छन्देन = स्वेच्छया युयं हे देवानुप्रियाः ! एकान्ते उपक्रम्योच्चारप्रस्रवणे परि-

(तएणं से विजयतक्करे धणं सत्थवाहं एवं वयासी) धन्यसार्धवाह की इस बात को सुनकर उत्तं विजय चौरने उनसे ऐसा कहा-(तुम्हें देवाणुप्पिया ! विउलं असणं ४ आहारियस्स अत्थि उच्चारं वा पासवणे वा) हे देवानुप्रिय ! इम विपुल अशानादिरूप ४ प्रकार का आहार करने वाले आप को बड़ा नाब लघुनीत की बाधा भले हो गई है। परन्तु (ममणं देवाणुप्पिया ! इमेहिं वहुहिं कसप्पहारेहि य जाव लयापहारेहि य तण्हाए य लुहाए य परामभवमाणस्स णत्थि केइ उच्चारं वा पासवणे वा तं छंदेण देवाणुप्पिया ! तुम एगंतं अवक्कामित्ता उच्चारपासवणं परिट्टवेइ) हे देवानुप्रिय ! इन अनेक कशा के प्रहारों से यावत् लता-यष्टि-के प्रहारों से तथा क्षुधा और प्यास से पीड़ित हुए मूझ अनाहारी को उच्चार प्रस्रवण की कोई बाधा ही नहीं है। अर्थात् मुझ पर जो मार पड़ी है उससे भूख और प्यास सब शांत हो गई है। उच्चार और प्रस्रवण की बाधा मुझे कहां से हो सकती है। अतः हे देवानुप्रिय ! आप ही अपनी इच्छा से एकान्त में जाकर उच्चार और

यद्य छे भाटे भारे तेनाथी निवृत्त थयुं छे. (तएणं से विजयतक्करे धणं सत्थवाहं एवं वयासी) धन्यसार्धवाहनी आ बात : सालणीने विजय चोरे तेने कहुं--(तुम्हें देवाणुप्पिया ! विउलं असणं ४ आहारियस्स अत्थि उच्चारं वा पासवणे वा) हे देवानुप्रिय ! पुष्कण प्रमाणुमां अशन वगेरे थार लताना आहारने करनार तमने दीधं शंका अने लघुः शंकानी मुश्केली-छाली यद्य शके छे, पथु (ममणं देवाणुप्पिया ! इमेहिं वहुहिं कसप्पहारेहि य जाव लयापहारेहि य तण्हाए य लुहाए य परामभवमाणस्स णत्थि केइ उच्चारं वा पासवणे वा तं छंदेण देवाणुप्पिया ! तुम एगंतं अवक्कामित्ता उच्चारपासवणं परिट्टवेइ) हे देवानुप्रिय ! डोरडा अने लाकडीओ वगेरेना सभत भारथी तेमणं लुप्प्या अने तरस्या मारा जेवा निराहारी माणुसने उच्चार प्रस्रवणुनी बाधा कयांथी छेय ? अटले के सभत भारपीट तेमणं लुप्प अने तरसने लीधि दीधं शंका अने लघुशंकाओ अकदम शांत पडी गद्य छे, अथी उच्चार प्रस्रवणुनी मुश्केली उत्पन्न थयानी संभावना न देखाती नथी. अटला भाटे हे देवानुप्रिय ! तमि न तमारी धंअ

'जाव जलने' = यावच्चलति = यावत् - मादुःप्रभातायां रजन्यां = प्रभातसमये दिन-
करे जाति नुर्योदये सति पुनर्विपुलमशनं ४ यावत् - उपभृन्व्य पान्थकाय
दामचेदाय भोजनपिटकं ददाति, स चारकशालायां गत्वा धन्यस्य सार्थ-
चाहम्य भोजनपात्रे 'परिवेसेइ' परिवेषयति = निदधानि । ततः खलु स धन्यः
सार्थवाहो विजयस्य तस्करस्य तस्माद् विपुलाद् अन्नपानखाद्यभ्याद्यात्
संविभागं करोति, स्वयं च भुङ्क्ते । ततः खलु स धन्यः सार्थवाहः पान्थकं
दासचेदं 'विमज्जेइ' विमर्जयति = गृहगमनायाऽऽदिगति । ततः खलु स
पान्थको भोजनपिटकं गृह्णात्वा 'चारगाओ' चारकात् = चारागागन् प्रतिनिष्का-
मति, प्रतिनिष्क्रम्य राजगृहं नगरं मध्यमध्यंन दत्तैव स्वकं गृहं यत्रैव भद्रा

चोखे हृत् और परमशुचीभूत हो कर उसी अपने स्थान पर आ गये। (तएणं
मा भद्रा कल्लं जाव जलने विउलं अमणं ४ जाव परिवेसेइ) दूसरे दिन
जब प्रातःकाल हुआ और सूर्य प्रकाशित हो चुका तब उस भद्राने अशनादि
रूप चतुर्विध आहार को विपुलमात्रा में बनाकर उसे भोजन के डिव्चे में
रख पांथकदास चेटक के हाथ धन्यसार्थवाह के पास कारागार में भेजा-
पांथकदासचेटकने पहिलेकी ही तरह होकर उसे थालीमें भोजन के लिये
परोसा-परोस कर उमने सेठ के दोनों हाथों को धुलाया-(तएणं से धण्णे
सत्थवाहे विजयस्स तस्करस्स तओ विउलाओ अमणं संविभागं करेइ)
वाद में उस धन्यसार्थवाहने विजय चौर के लिये उस अपने चार प्रकार
के आहार में से विभाग कर दिये (तएणं से धण्णे सत्थवाहे पंथगं दास
चेडयं विमज्जेइ) धन्य सार्थवाहने वाद में उस पांथक दाम चेटक को
वहां से वापिस कर दिया। (तएणं से पंथए भोगणपिडगं गहाय चारगाओ

४ जाव परिवेसेइ) पीन द्विसे अवार थयुं अने सूर्य उदय पाये। त्यारे
भद्रा लायाये पुष्कण प्रभातुमां अशन पगेरे चार वततना आहार जनावी ते अेक
स्वच्छ उग्गामां भूडीने पांथकदास चेटकने जेलमां धन्य सार्थवाहनी पासे पहोवाउवा
आज्ञा करी, पहोवांनी जेम ४ पांथक दास चेटके त्यां जधने थणीमां जभवत्तुं
पीरस्थुं पीरसीने तेणे शेठना जने डाय धावडाव्या. (तएणं से धण्णे सत्थवाहे
विजयस्स तस्करस्स तओ विउलाओ अमणं ४ संविभागं करेइ) त्यार पछी
धन्य सार्थवाहे विजय चोरने भाटे चार वततना आहारमांथी भाग करी आये।
(तएणं से धण्णे सत्थवाहे पंथगं दासचेडयं विमज्जेइ) त्यार पछी धन्य
सार्थवाहे पांथक दास चेटकने धेर पाछे वये. (तएणं से पंथए भोगण-
पिडगं गहाय चारगाओ पडिनिक्खमइ) पांथक दास चेटक लोचनना उग्गाने

विपुलाद् अशनपानखाद्यस्वाद्यान् संविभागम्=अंशरूपेण पृथकारणं कुर्यात् तदाऽहं
 युष्माभिः सार्द्धमेकान्तमपक्रामामि । ततः खलु=तदनु स धन्यः सार्थवाहे
 विजयमेवमवादीत्-अहं खलु तुभ्यं तस्माद् विपुलाद् अशनपानखाद्य-स्वाद्यान्
 संविभागं करिष्यामि । ततः खलु म विजयो धन्यस्य सार्थवाहस्यैतम्=
 संविभागस्वीकरणरूपमर्थ 'पडिसुणेइ' प्रतिश्रूणोति=स्वीकरोति । ततः खलु=
 अशनादि संविभागस्वीकारानन्तरं स विजयो धन्येन सार्द्धमेकान्तमपक्रामति,
 श्रेष्ठी उच्चारणसूत्रेण परिष्ठापयति, परिष्ठाप्य 'आयंते' आचमितः=कृत-
 शुद्धिकः 'चोक्खे' चोक्षः=सच्छः 'परमसुइभूए' परमशुचीभूतः=प्रक्षालित-
 मुखहस्तः सन् तदेव स्थानम् 'उवसंकमिच्चा' उपसंक्रम्य=तंप्राप्य 'विहरइ'
 विहरति=तिष्ठति । ततः खलु=इतश्च सा भद्रा 'कल्ल' कल्ये=द्वितीयदिवसे

अशनादिरूप चतुर्विध आहार में से विभक्त मुझे खानेको दो अर्थात्-उसमें
 मेरा विभाग रखो-तो मैं तुम्हारे साथ एकान्त में चलता हूँ । (तएणं से
 धण्णे सत्थवाहे विजयं एवं वयासी-अहणं तुभं तओ विपुलाओ असणं संवि-
 भागं करिस्सामि तएणं से विजणं धण्णस्स सत्थवाहस्स एयमट्ठं पडिसुणेइ)
 तब धन्य सार्थवाहने उस विजय वीर से इस प्रकार कहा-हां मैं तेरे लिये
 उस विपुल आहार में से विभाग कर दूंगा। इसके बाद उस विजयने धन्य
 सार्थवाह के इस अर्थ को-कहने को मानलिया-(तएणं से विजणं धण्णं
 सद्धि एगंते अवक्कमइ उच्चारपासवणं परिट्टवेइ) बाद में वह विजय धन्य
 सार्थवाह के साथ एकान्त में गया-वहाँ जाकर सेठ धन्यने उच्चार और
 पसवण की परिष्ठापन की । (परिट्टविच्चा आयंते चोक्खे परमसुइभूए तमेव
 ठाण उवसंकमिच्चा विहरइ) परिष्ठापना के बाद आचमन कर धन्यसार्थवाह

ने तमे हुवे तभारा भाटे आवता अशन, पान, वगेरे आ-जतना
 आहारभांथी छिस्से भने पणु आपवानी गाडेधरी आपो तो हुं तभारी साथे
 ओकांतमां आववा तैयार छुं । (तएणं से धण्णे सत्थवाहे विजयं एवं वयासी
 अहणं तुभं तओ विपुलाओ असणं संविभागं करिस्सामि तएणं
 से विजणं धण्णं सत्थवाहस्स एयमट्ठं पडिसुणेइ) अना जवाणमा धन्य
 सार्थवाहे विजय थोरने कल्लु-सारुं अशन, पान, वगेरे आ-जतना विपुल
 आहारभांथी तने पणु भाग आपीथ। त्थार पछी विजय थोरने धन्य सार्थवाहनी
 वात स्वीकारी (तएणं से विजणं धण्णं सद्धि एगंते अवक्कमइ उच्चार-
 पासवणं परिट्टवेइ) अने ते धन्य सार्थवाहनी साथे ओकांतमां गये। त्यां जधने
 धन्य सार्थवाहे उच्चार अने प्रसवणुनी परिष्ठापना करी। (परिट्टविच्चा आयंते
 चोक्खे परमसुइभूए तमेव ठाण उवसंकमिच्चा विहरइ) परिष्ठापना पछी
 धन्य सार्थवाहे शुद्धी करी अने आ प्रभाले तेओ शुद्ध अने निर्मण थधने करी
 पोताना स्थाने आवी गया। (तएणं सा भद्रा कल्लं जाव जलंते विउल्लं असणं

'जाय जलने' = यावच्चलति = यावत् - मातृपभातायां रजन्यां = पभातसमये दिन-
करे जाति सूर्योदये सति पुनर्विपुलमशनं ४ यावत् - उपस्कृत्य पान्थकाय
दास्येदाय भोजनपिटकं ददाति, स चारकशालायां गत्वा धन्यस्य सार्थ-
वाहस्य भोजनपात्रे 'परिवेसेइ' परिवेषयति = निदधानि । ततः खलु स धन्यः
सार्थवाहो विजयस्य तस्करस्य तस्माद् विपुलाद् अशनपानस्वाद्यभ्याद्यात्
संविभागं करोति, स्वयं च भुङ्क्ते । ततः खलु स धन्यः सार्थवाहः पान्थकं
दास्येदे 'विमज्जेइ' विमर्जयति = वृद्धगमनायाऽऽदिगति । ततः खलु स
पान्थको भोजनपिटकं गृह्णात्वा 'चारगाओ' चारकात् = रागगागान् प्रतिनिष्का-
रति, प्रतिनिष्क्रम्य राजगृहं नगरं प्रथममध्येन द्वात्रैव स्वकं वृद्धं यत्रैव भद्रा

चोखे हुए और परमशुचीभूत हो कर उसी अपने स्थान पर आ गये। (तएणं
गा भद्रा कल्लं जाय जलने विउलं अमणं ४ जाय परिवेसे!) दूसरे दिन
जब प्रातःकाल हुआ और सूर्य प्रकाशित हो चुका तब उम भद्राने अशनादि
रूप चतुर्विध आहार को विपुलमात्रा में बनाकर उसे भोजन के डिब्बे में
रख पांथकदास चेटक के हाथ धन्यसार्थवाह के पास कारागार में भेजा-
पांथकदासचेटकने पहिलेकी ही तरह होकर उसे थालीमें भोजन के लिये
परोसा-परोस कर उमने सेठ के दोनों हाथों को धुलाया-(तएणं से धण्णे
सन्धवाहे विजयसस तस्करसस तओ विउलाओ अमणं संविभागं करेइ)
वाद में उम धन्यसार्थवाहने विजय चौर के लिये उम अपने चार प्रकार
के आहार में से विभाग कर दिये (तएणं से धण्णे सन्धवाहे पंथगं दास
चेडयं विमज्जेइ) धन्य सार्थवाहने वाद में उम पांथक दास चेटक को
चटां से वापिस कर दिया। (तएणं से पंथए भोजणपिटगं गहाय चारगाओ

४ जाय परिवेसेइ) पीला दिवसे सवार थयुं अने सूर्य उदय पाग्यो त्थारे
सद्रा लाथांये पुण्ण प्रमाणुमां अशन वगेरे चार नतना आहार जनावी ते अेड
स्वच्छ उग्गामां भूरीने पांथकदास चेटकने जेलमां धन्य सार्थवाहनी पासे पडोआउवा
आत्ता करी. पहिलेजानी जेम व पांथक दास चेटके त्यां जेधने थजीमां जभरतुं
पीरस्थुं पीरसीने तेणे शेंडना अने छाथ धावडाव्या. (तएणं से धण्णे सन्धवाहे
विजयसस तस्करसस तओ विउलाओ अमणं संविभागं करेइ) त्थार पथी
धन्य सार्थवाहे विजय चोरने भाटे चार नतना आहारमांथी लाग डी आयो.
(तएणं से धण्णे सन्धवाहे पंथगं दासचेडयं विमज्जेइ) त्थार पथी धन्य
सार्थवाहे पांथक दास चेटकने वेर पाछे वज्यो. (तएणं से पंथए भोजण-
पिटगं गहाय चारगाओ पडिनिक्खमइ) पांथक दास चेटक लोचनता उग्गाने

भार्या=धन्यसार्थवाहपत्नी तन्नीपोपागगच्छति, उपागत्य भद्रां सार्थवाहीमेवमवा-
 दीत्-एवं खलु हे देवानुप्रिये ! धन्यः सार्थवाहस्तवपुत्रघातकस्य यावत्
 प्रत्यामित्रस्य तस्माद् विपुलाद् अशनपानखाद्यस्वाघात् संविभागं करोति ।
 ततः=तदनन्तरं खलु सा भद्रा सार्थवाही पान्थकस्य दासचेटकस्य 'अंतिए'
 अन्तिके=समीपे 'एवं' एतम् पान्थककथितम् 'अट्ट' अर्थम्=धन्यसार्थवाहस्य
 विजयतस्करार्थं स्वस्याशनादेः संविभागकरणरूपवृत्तान्तं श्रुत्वा 'आसुरुक्ता'
 आशुरुक्ता, आशुरक्ता=आशु=शीघ्रं रक्ता=कोपोदयाद् विमृष्टा, यथा आशु=शीघ्रं
 पडिनिक्खमइ) वह पांथक दासचेटक भोजन पिटक को लेकर कारावास
 से निकला (पडिनिक्खमिच्चा रायगिह नयरं मज्झं मज्झे णं जेणेव सएगिहे
 जेणेव भद्दा भारिया सत्थवाही तेणेव उवागच्छइ) निकल कर। राजगृह नगर
 के ठीक बीचों बीच मार्ग से होता हुआ जहाँ अपना घर और वह
 भद्रा सार्थवाहीथी वहाँ आया—(उवागच्छिच्चा भदं सार्थवाहीणि एवं वयासी)
 आकर उसने भद्रा सार्थवाहीनी से ऐसा कहा—एवं खलु देवाणुप्पिए
 घण्णे सत्थवाहे तव पुत्तघायगस्स जाव पच्चामित्तस्म ताभो विउलाओ
 असण ४ संविभागं करेइ) हे देवानुप्रिये ! धन्य सार्थवाह तुम्हारे पुत्र
 घातक यावत् हार्दिक शत्रु विजय चौर को विपुल अशन आदि रूप चार
 प्रकार के आहारमें से हिस्सा देते हैं। (तएणं सा भद्दा सत्थवाही
 पंथयस्स दासचेडयस्म अंतिए एयमं सोच्चा आसुरुक्ता रुद्धाजाव मिस-
 मिसेमाणा घण्णस्स सत्थवाहस्स पओसमावज्जइ) इस तरह पांथक

वर्धने ळेलमांथी षडार निडण्यो (पडिनिक्खमिच्चा रायगिहं नयरं मज्झं
 मज्झेणं जेणेव सएगिहे जेणेव भद्दा भारिया सत्थवाही तेणेव उवागच्छइ)
 नीडणीनि राजगृह नगरनी ठीक पन्थेना मार्गमां पसार थर्धने ळ्यां पोताना
 घर अने लद्दा सार्थवाही डती त्यां आण्ये (उवागच्छिच्चा भदं सत्थ
 वाहीणि एवं वयासी) आधीने तेण्णे लद्दा सार्थवाहीनि आ प्रभाण्णे कड्हु
 (एवं खलु देवाणुप्पिए ! घण्णे सत्थवाहे तव पुत्तघायगस्स जाव पच्चामित्त
 स्स ताभो विउलाओ असण ४ संविभागं करेइ) डेहेवात्त प्रिये ! धन्य सार्थवाह
 तभारा पुत्रना घातक अने शत्रु पिण्य थोरने षडु ४ वधारे अशन वगेरेना
 थार प्रकारना आहारमांथी हिस्से आवा भाटे आपे छे. (तएणं सा भद्दा भारिया
 सत्थवाही पंथयस्स दासचेडयस्स अंतिए एयमं सोच्चा आसुरुक्ता
 रुद्धा जाव मिसमिसेमाणा घण्णस्स सत्थवाहस्स पओसमावज्जइ)

रक्ता=कोपावेशाद् रक्तमुखनेत्रा. 'रुद्धा' हृष्टा=रोपयुक्ता यावत् 'मिमिसि-
माणा' निसमित्तन्ती=क्रोधज्वालायाऽन्तर्दाहममन्विता सती धन्यस्य सार्ध-
वाहस्योपरि 'पशोसं' पद्वेपं=प्रकृष्टद्वेषम् 'भावज्ज' अपव्यते=णमोति ॥ सू० १० ॥

मूलम्— से धरणे सत्थवाहे अन्नया कयाइं मित्तनाइं

नियगसयणसंबंधिपरियणेणं सएण य अत्थसारेणं रायकज्जाओ
अप्पाणं मोयावेइ, मोयावित्ता चारगसालाओ पडिनिक्खमइ पडि
निक्खमित्ता जेणेव अलंकारियसभा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता
अलंकारियकम्मं कारवेइ, कारवित्ता जेणेव पुक्करिणी तेणेव उवा-
गच्छइ, उवागच्छित्ता अह धोयमट्टीयं गेणहइ, गिण्हित्ता पोक्खरिणीं
ओगाहइ, आगाहित्ता जलमज्जणं करेइ करित्ता पहाए कयवलिकम्मे
जाव रायगिहं नगरं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता रायगिहनगरस्स
मज्झंमज्जेणं जेणेव सए गिहे तेणेव पहारेत्थ गमणाए । तएणं
तं धणं सत्थवाहं एज्जमाणं पासित्ता रायगिहे नगरे वहवे नियग
सेट्ठिसत्थवाहपभियओ आढंति परिजाणंति सक्कारेति सम्माणंति
अव्भुट्ठेति सरीरकुसलं पुच्छंति । तएणं से धरणे सत्थवाहे जेणेव
सए गिहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता जा वि य से तत्थ
वाहिरिया परिसा भवइ, तंजहा—दासाइ वा पेस्साइ वा भियगाइ

दासचेट्ठक के मुख से इस ममाचार को सुनकर वह भद्रा सार्धवाही
एकदम क्रोध से लाल मुख नेत्रवाली बन गई, और रोप से युक्त होती
हुई क्रोध की तीव्र ज्वाला से भीतर ही भीतर नलने लगी । इस
तरह उसने धन्यसार्धवाह के ऊपर प्रकृष्ट द्वेष भाव को धारण कर लिया । सूत्र १०

आ रीते पांधक दासचेट्ठकना चेध्थी सभाचार सांलणीने लद्रा लायां येकदम
डोध्थी लाल योण थधं गधं, अने ते डेधनी न्वाण्णयेध्थी सणगवा लागी. आ
प्रभाण्णे तेना मनमां धन्य सार्धवाड उपर सणत्त देण लाव न्वाये. ॥ सूत्र १० ॥

भार्या=धन्यसार्थवाहपत्नी तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य भद्रां सार्थवाहीमेवमवा-
दीत्-एवं खलु हे देवानुप्रिये ! धन्यः सार्थवाहस्तत्रपुत्रघातकस्य यावत्
प्रत्यामित्रस्य तस्माद् विपुलाद् अशनपानखाद्यस्वाघात संविभागं करोति ।
ततः=तदनन्तरं खलु सा भद्रा सार्थवाही पान्थकस्य दासचेटकस्य 'अंतिए'
अन्तिके=समीपे 'एवं' एतम् पान्थकरुथितम् 'अद्रु' अर्थम्=धन्यसार्थवाहस्य
चिजयतस्करार्थं स्वस्थाशनादेः संविभागकरणरूपप्रदान्तं श्रुत्वा 'आसुरुक्ता'
आशुरुक्ता, आशुरक्ता=आशु=शीघ्रं रक्ता=कोपोदयाद् विमूढा, यद्वा आशु=शीघ्रं

पडिनिक्खमइ) वह पांथक दासचेटक भोजन पिटक को लेकर कारावास
से निकला (पडिनिक्खमिक्का रायगिह नयरं मज्झं मज्झे णं जेणेव सएगिहे
जेणेव भद्रा भारिया सत्थवाही तेणेव उवागच्छइ) निकल कर। रातगृह नगर
के ठीक बीचों बीच मार्ग से होता हुआ जहाँ अपना घर और वह
भद्रा सार्थवाहीथी वहाँ आया—(उवागच्छिता भद्रं सार्थवाहीणि एवं वयासी)
आकर उसने भद्रा सार्थवाहीनी से ऐसा कहा—एवं खलु देवाणुप्पिए
धण्णे सत्थवाहे तव पुत्तघायगस्स जाव पच्चामिन्नस्म ताओ विउलाओ
असण ४ संविभागं करेइ) हे देवानुप्रिये ! धन्य सार्थवाह तुम्हारे पुत्र
घातक यावत् हार्दिक शत्रु विजय चौर को विपुल अशन आदि रूप चार
प्रकार के आहारमें से हिस्सा देते हैं। (तएणं सा भद्रा सत्थवाही
पंथयस्स दासचेडयस्म अंतिए एयमं सोच्चा आसुरुक्ता रुद्धाजाव मिस-
मिसेमाणा धण्णस्स सत्थवाहस्स पओसमावज्जइ) इस तरह पांथक

वर्धने जेवमांथी अहार निकळ्यो (पडिनिक्खमिक्का रायगिहं नयरं मज्झं
मज्झेणं जेणेव सएगिहे जेणेव भद्रा भारिया सत्थवाही तेणेव उवागच्छइ)
नीकणीने शज्जुह नगरनी हीक वच्चेना मार्गमां पसार थर्धने न्यां पोताना
घर अने लद्रा सार्थवाही हुती त्यां आण्ये। (उवागच्छिता भद्रं सत्थ-
वाहीणि एवं वयासी) आधीने तेणु लद्रा सार्थवाहीने आ प्रभाणु कळुं
(एवं खलु देवाणुप्पिए ! धण्णे सत्थवाहे तव पुत्तघायगस्स जाव पच्चामिन्त
स्स ताओ विउलाओ असण ४ संविभागं करेइ) हे देवानु प्रिये ! धन्य सार्थवाह
तमारा पुत्रना घातक अने शत्रु विजय चोरने गहु ४ वधारे अशन वगेदेना
यार प्रकारना आहारमांथी द्विस्से आना माटे आये छे. (तएणं सा भद्रा भारिया
सत्थवाही पंथयस्स दासचेडयस्स अंतिए एयमं सोच्चा आसुरुक्ता
रुद्धा जाव मिसमिसेमाणा धण्णस्स सत्थवाहस्स पओसमावज्जइ)

एवं वृत्ता समाणी हृद् जाव आसणाओ अचमुद्देइ अचमुद्वित्ता
कंठाकंठि अवयासइ खेमकुसलं पुच्छइ पुच्छित्ता पहाया जाव
पायच्छित्ता विउलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणी विहरइ ॥ सू. ११ ॥

टीका—तए

अन्यथा कदाचित् द्वारा स्वकेन च 'अन्धमारेण' अन्धमारेण=बहुमूल्यरत्नादिना बहुमूल्यरत्नादि
ममर्पणेनेत्यर्थः 'रायकज्जाओ' राजकार्यात्=राजसङ्कटात् आत्मानं=स्वकं
'मोयावेइ' मोचयति, मोचयित्वा=मुक्तो भूत्वा चारुगसालायाः प्रतिनिष्का-
मति, प्रतिनिष्क्रम्य यत्रैव 'अलंकारियसभा' अलंकारिकसभा=नापितशाला-
शौरकर्मादिशरीरमन्कारम्यातमित्यर्थः, तत्रैवापगच्छति, उपागत्य 'अलंकारि-
यकम्मं' अलंकारिककर्म=नखकेदमण्डनादिकर्म 'कारवेइ' कारयति, कारयित्वा
यत्रैव 'पुक्खरिणी' पुक्खरिणी=वर्तुलयापी तत्रैवापगच्छति, उपागत्य—अथ

'तए णं से धण्णे मन्थवाहे अन्नया कयाइ' इत्यादि ॥

टीकार्थ—(तएणं) इसके बाद (से णं से धण्णे मन्थवाहे) अन्नया कयाइने
(अन्नया कयाइ) किसी एक समय (निजक स्वजन संबंधी परिजनो द्वारा (स्वकेन
अन्धमारेण) अपने वह मूल्य रत्नादि भेट राजाको समर्पण करवा कर
(रायकज्जाओ अप्पाणं मोयावेइ) राज्य संकट से अपने आपको मुक्त करवा
लिया। (मोयावित्ता चारुगसालाओ पडिणिकवमइ) जब वह मुक्त होपित
हो चुका—तब कारागार से बाहर निकला (पडिणिकवमिच्चा जेणेव
अलंकारियसभा तेणेव उवागच्छइ) बाहर निकल कर वह जहां नापित
की दुकान थी—वहां गया—(उवागच्छित्ता अलंकारियकम्मं कारवेइ)

'तएणं से धण्णे मन्थवाहे अन्नया कयाइ' इत्यादि ॥

टीकार्थ—(तएणं) त्वाए पथी (से धण्णे मन्थवाहे) धन्य सार्थवाडे (अन्नया
कयाइ) डेअ थैक पणते (मित्तनाइनियमसयणमवधिपरियोगं)
पोताना भिव. ज्ञाति स्वजन, संबंधी अने परिजनों द्वारा (स्वकेन अन्धमारेणं)
जहु किंमती रत्नो वगेरे समर्पणु करवीने (रायकज्जाओ अप्पाणं मोयावेइ)
रत्न्य संकटमांथी पोतानी जतने छेअपी (मोयावित्ता चारुगसालाओ पडिणि-
कवमइ) त्वाए ते मुक्त थयेडे जडेर करवाभां आये, त्वाए ते जेअमांथी
जडार निअये. (पडिणिकवमिच्चा जेणेव अलंकारियसभा तेणेव उवागच्छइ)
जडार नीअपीने ते जडामनी दुआन उपर गये. (उवागच्छित्ता अलंकारियकम्मं

वा भाइल्लागाइ वा, सा वि य णं धणं सत्थवाहं एज्जंतं पासइ,
 पासित्ता पायवडियाए खेमकुलं पुच्छंति, जावि य से तत्थ
 अब्भंतरिया . परिसा भवइ तं जहा—मायाइ वा पियाइ वा
 भायाइ वा भगिणीइ वा, सावि य णं धणं सत्थवाहं एज्जमाणं
 पासंति पासित्ता आसणाओ अब्भुट्ठेइ अब्भुट्ठित्ता कंठाकठियं अव-
 यासिय वाहप्पमोक्खणं करेति तएणं धणणे सत्थवाहे जेणेव
 भद्दा भारिया तेणेव उवागच्छइ तएणं सा भद्दा धणं सत्थवाहं
 एज्जमाणं पासइ पासित्ता णो आढाइ नो परियाणाइ नो सक्कारेइ,
 नो सम्माणेइ, नो अब्भुट्ठेइ नो सरीरकुसलं पुच्छइ, अणाढा
 यमाणी अपरिजाणमाणी असक्कारेमाणी, असम्माणेमाणी, अणव्भु
 ट्ठेमाणी सरीरकुसलं अपुच्छमाणी तुसिणीया परम्मुही संचिट्ठइ,
 तएणं से धणणे सत्थवाहे भइं भारियं एवं वयासी—किण्णं
 तुव्वं देवाणुप्पिए ! न तुट्ठी वा न हरिसे वा नाणंदे वा जं मए
 सएणं अत्थसारेणं रायकज्जाओ अप्पा विमोइए, तएणं सा भद्दा
 धणं सत्थवाहं एवं वयासी—कहण्णं देवाणुप्पिया ! मम तुट्ठी
 वा जाव आणंदे वा भविस्सइ, जेणं तुभं मम पुत्तघायगस्स जाव
 पच्चामित्तस्स तओ विउलाओ असणपाणखाइम साइमाओ४ संविभागं
 करेसि, तएणंमे धणणे भइं एवं वयासी—नो खल्ल देवाणुप्पिए !
 धम्मेत्ति वा तवोत्ति वा कयपडिकइयाइ वा लोगजत्ताइ वा घाडि-
 एइ वा सहाएइ वा सुहि वा तओ विपुलाओ असण०४ संविभागे
 कए नन्नत्थ सरीरचित्ताए, तएणं सा भद्दा धणणेणं सत्थवाहेण

एवं वृत्तः समाणी हट्ट जाव आसणाओ अवमुट्टेइ अवमुट्टित्ता
कंठाकंठि अवयासइ खेमकुसलं पुच्छइ पुच्छित्ता पहाया जाव
पायच्छित्ता विउलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणी विहरइ ॥ सू. ११ ॥

टोका—'तएणं से धण्णे' इत्यादि—ततः खलु म धन्यः सार्थवाहः
अन्यदा कदाचित् मित्रज्ञानिनिजकस्वजनमन्यन्धिपरिजनेन=मित्रज्ञानिप्रभृति-
द्वारा स्वकेन च 'अन्धमारेण' अर्थसारेण=बहुमूल्यरत्नादिना बहुमूल्यरत्नादि
समर्पणेनेत्यर्थः 'रायकज्जाओ' राजकार्यात्=राजसङ्कटात् आत्मान=स्वकं
'मोगावेइ' मोचयति, मोचयित्वा=मुक्तो भूत्वा चारकशालायाः प्रतिनिष्का-
मति, प्रतिनिष्कम्य यत्रैव 'अलंकारियसभा' अलङ्कारिकसभा=नापिनशाला-
शौरगर्मादिशौरसम्भारस्थानमित्यर्थः, तत्रैवोपागच्छति. उपागत्य 'अलंकारि
यकम्मं' अलङ्कारिककर्म=नखकेसमण्डनादिकर्म 'कारवेइ' कारयति, कारयित्वा
यत्रैव 'पुव्वारिणी' पुष्करिणी=वर्चुलवापी तत्रैवोपागच्छति. उपागत्य—अथ

'तए णं से धण्णे मन्थवाहे अन्नया कयाइं' इत्यादि ॥

टीकार्थ—(तएणं) इसके बाद (से धण्णे सान्धवाहे) उस धन्यमार्थवाहने
(अन्नया कयाइं) किसी एक समय (मित्रनाइनियगमयणसंबंधिपरियणेणं)
मित्र. ज्ञानि, निजक स्वजन संबंधी परिजनों द्वारा (स्वकेन
अन्धमारेणं) अपने वहू मूल्य रत्नादि भेट राजाको समर्पण करवा कर
(रायकज्जाओ अप्पाणं मोगावेइ) राज्य संकट से अपने आपको मुक्त करवा
लिया। (मोगावित्ता चारगसालाओ पडिणिक्खमइं) जब वह मुक्त होपि
हो चुका—तब कारागार से बाहर निकला (पडिणिक्खमित्ता जेणेव
अलंकारियसभा तेणेव उवागच्छइं) बाहर निकल कर वह जहाँ नापिन
की दुकान थी—वहाँ गया—(उवागच्छित्ता अलंकारियकम्मं कारवेइ)

'तएणं से धण्णे मन्थवाहे अन्नया कयाइं' इत्यादि ॥

टीकार्थ—(तएणं) त्पार पछी (से धण्णे मन्थवाहे) धन्य सार्थवाहे (अन्नया
कयाइं) डोह अेक वपते (मित्रनाइनियगमयणसंबंधिपरियणेणं)
पेताना मित्र. ज्ञानि स्वजन, संबंधी अने परिजनों द्वारा (स्वकेन अन्धमारेणं)
बहु डिंभती रत्नो वगेरे समर्पणु करावीने (रायकज्जाओ अप्पाणं मोगावेइ)
रान्य संकटमांधी पेतानी नतने छोडावी (मोगावित्ता चारगसालाओ पडिणि-
क्खमइं) न्यारे ते मुक्त थयेवो नहरे करवाभां आव्यो, त्यारे ते खेवमांधी
गहार निकर्यो. (पडिणिक्खमित्ता जेणेव अलंकारियसभा तेणेव उवागच्छइं)
गहार नीकणीने ते दुकाननी दुकान उपर गयो. (उवागच्छित्ता अलंकारियकम्मं

वा भाइल्लागइ वा, सा त्रि य णं धणं सत्थवाहं एजंतं पासइ,
 पासित्ता पायवाडियाए खेमकुलं पुच्छंति, जात्रि य से तत्थ
 अब्भंतरिया . परिसा भवइ तं जहा--मायाइ वा पियाइ वा
 भायाइ वा भगिणीइ वा, सात्रि य णं धणं सत्थवाहं एजमाणं
 पासंति पासित्ता आसणाओ अब्भुट्टेइ अब्भुट्टित्ता कंठाकटिथं अव-
 यासिय वाहप्पमोक्खणं करेति तएणं धणणे सत्थवाहे जेणेव
 भद्दा भारिया तेणेव उवागच्छइ तएणं सा भद्दा धणं सत्थवाहं
 एजमाणं पासइ पासित्ता णो आढाइ नो परियाणाइ नो सक्कारेइ,
 नो सम्माणेइ, नो अब्भुट्टेइ नो सरीरकुसलं पुच्छइ, अणाढा-
 यमाणी अपरिजाणमाणी असक्कारेमाणी, असम्माणेमाणी, अणव्भु-
 ट्टेमाणी सरीरकुसलं अपुच्छमाणी तुसिणीया परम्मुही संचिट्ठइ,
 तएणं से धणणे सत्थवाहे भइं भारियं एवं वयासी-किण्णं
 तुब्भं देवाणुप्पिए ! न तुट्ठी वा न हरिसे वा नाणंदे वा जं मए
 सएणं अत्थसारेणं रायकजाओ अप्पा विमोइए, तएणे सा भद्दा
 धणं सत्थवाहं एवं वयासी--कहणं देवाणुप्पिया ! मम तुट्ठी
 वा जाव आणंदे वा भविस्सइ, जेणं तुभं मम पुत्तघायगस्स जाव
 पच्चामित्तस्स तओ विउलाओ असणपाणखाइम साइमाओ४ संविभागं
 करेसि, तएणंमे धणणे भइं एवं वयासी-नो खलु देवाणुप्पिए !
 धम्मेत्ति वा तवोत्ति वा कयपडिकइयाइ वा लोगजत्ताइ वा घाडि-
 एइ वा सहाएइ वा सुहि वा तओ विपुलाओ असण०४ संविभागे
 कए नन्नत्थ सरीरचित्ताए, तएणं सा भद्दा धणणेणं सत्थवाहेण

'आढंति' आद्रियन्ते हृदयेन 'परिजाणंति' परिजानन्ति=सुस्वागतं श्रेष्ठिनः' इति नस्यागमनमनुमोदयन्ति 'सक्कारेति' सत्कारयन्ति मधुरवचनैः, मम्मार्णोति' सम्मानयन्ति विविधवस्तुसमर्पणेन, 'अव्मुट्टेति' अभ्युत्तिष्ठन्ति विनयार्थमभिसुद्धमुत्तिष्ठन्ति शरीरकुशलं च पृच्छन्ति। ततः खलु=तद-नन्तरं स धन्यः सार्थवाहो यत्रैव स्वक गृहं तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य यापि च तस्य तत्र वाह्या परिपद्=गृहवर्तिवर्तिजनसमुदायः, 'तंजहा' तद्यथा- म यथा 'दामाइवा' दामा इतिवा. दासाः=गृहदासी पुत्राः. 'पेस्साइ वा'

चला- (तएणं त धणं सत्थवाहं एज्जमाणं पासित्ता रायगिहे नगरे वहवे नियमसेट्ठिसत्थवाहपभियओ आढंति परिजाणंति सक्कारेति मम्मार्णोति अव्मुट्टेति सरीरकुशलं पुच्छंति) घर को आते हुए उस धन्य सार्थवाह को जब राजगृह नगर में निजक श्रेष्ठी. सार्थवाह आदि लोगोंने देखा तो उन लोगों ने उसका हृदयसे खूब आदर किया- "आपका स्वागत हो" इस प्रकार कहकर उसके आगमन की खूब अनुमोदनाकी मधुर वचनों द्वारा उसका खूब सत्कार किया। अने वस्तुओंको भेंट में देकर खूब सम्मान किया। अपनी विनय प्रकट करने के लिये उसके सम्मुख आने पर उठ बैठे शरीर में कुशल समाचार पूछे। (तएणं से धणो सत्थवाहे जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ) इसके बाद धन्य सार्थवाह जहां अपना घर था गया (उवागच्छित्ता) जात्रि य से तत्थ वाहिरिया परिसा भवइ) वहां जाकर उसका जो घरके बाहर के लोगों का समुदाय था—(तं जहा) जैसा—(दामाइ वा पेस्साइ

एज्जमाणं पासित्ता रायगिहे नगरे वहवे नियमसेट्ठि सत्थवाहपभियओ आढंति परिजाणंति सक्कारेति मम्मार्णोति अव्मुट्टेति सरीरकुशलं पुच्छंति) राजगृह नगरना निजक श्रेष्ठीओ, सार्थवाहो वगेरेओ न्यारे धन्य सार्थवाहोने घर परइ न्तां जेया त्यारे तेओ गधाओ मणीने तेमनुं उदय पूर्वक भूण न सरस रीते सन्मान कथुं. " तमाइं स्वगत छि." आ रीते तेना आगमनने अनुमोदन आभ्युं मधुर वचनोशी बोडोओ धन्य सार्थवाहोने सत्कार कयो. तेने बोडोओ अनेक वस्तुओ लेटमां आपी. विनय जताववा भाटे न्यारे धन्य सार्थवाह बोडोनी सामे पडोअ्या त्यारे तेओ जिला थइ गथा अने तेमले शरीरनी कुशलता पूछी. (त एणं से धणो सत्थवाहे जेणेव सए गेहे तेणेव उवागच्छइ) त्यार जाइ न्यां तेनुं घर उतुं त्यां गयो. (उवागच्छित्ता जात्रि य से तत्थ वाहिरिया परिसा भवइ) त्यां घरनी गहार तेना घरना भाणुसोना समुदाय ओकडो थयो उतो. (तं जहा)

‘धोयमद्वियं’ धौतमृत्तिकां=शुद्धसुगन्धितमृत्तिकां गृह्णाति, गृहीत्वा पुष्करिणीम्
 ‘ओगाहइ’ अवगाहते=प्रविशति, अवगाह्य ‘जलमज्जणं जलमज्जनं=जलेन-
 शरीरशुद्धिं करोति, कृत्वा ‘झाप’ स्नातः=सर्वतः कृतस्नानः ‘कयवलिकम्मे’
 कृतवलिकर्मा कृतं स्नानान्तमवश्यकरणीय-पशुपक्ष्यादिनिमित्तमन्नदानादिरूप-
 वलिार्म येन सः, कृतदानकृत्य इत्यर्थः, यावद् राजगृहं नगरमनुप्रविशति,
 अनुप्रविश्य राजगृहनगरस्य मध्यमध्येन यत्रैव भ्यक्तं गृहं तत्रैव ‘गमणाए’
 गमनाय ‘पहारेत्थ’ प्रधारयति=विचारयति, गृहं प्रति गमनायोद्यतो भवती-
 त्यर्थः, गृहं गच्छतीति भावः। ततःतल्लु तं धन्यं सार्थवाहम् ‘एज्जमाणं’
 एज्जमानम्=आगच्छन्तं दृष्ट्वा राजगृहे नगरे बह्वत्रा निजकप्रेष्ठिसार्थवाहप्रभृतयः

जाकर उसने वहाँ वाल बनवाये । (कारचित्ता जेणेव पुक्खरिणी तेणेव
 उवागच्छइ) दाढी मूछ आदि के वाल बनवा कर फिर वह जहाँ पुष्करि-
 णी थी वहाँ गया । (उवागच्छित्ता अह धोयमद्वियं गेणइ) जाकर
 उसने वहाँ से शुद्ध सुगन्धित मिट्टी को लिया—(गिण्हित्ता पोक्खरिणी
 ओगाहइ) लेकर वह वाद में उस पुष्करिणी में प्रविष्ट हुआ । (ओगा-
 हित्ता जलमज्जणं करेइ, करित्ता ष्हाए कयवलिकम्मे जाव रायगिहं नयरं
 अणुपविसइ) प्रविष्ट होकर वहाँ उसने स्नान किया स्नानकर वायसादि
 पक्षियों के लिये अन्नादि देने रूप वलिकर्म किया । यावत् राजगृह
 नगरमें वह प्रविष्ट हुआ । (अणुपविसित्ता रायगिहनयरस्स मज्जणं मज्जेणं जेणेव
 सए गिहे तेणेव पहारेत्थ गमणाए) प्रविष्ट होकर फिर वह ठीक राजगृह नगर के
 बीचो बीचवाले मार्ग से होता हुआ—जहाँ अपना घर था उस तरफ
 कारवेइ) त्यों अधने तेण्हे वाण क्खाव्था. (कारचित्ता जेणेव पुक्खरिणी तेणेव
 उवागच्छइ) दाढी मूछ अने भाथा वगेरेना वाण साइ क्खवीने ते पुक्खरिणी तरइ
 गथे. (उवागच्छित्ता अह धोयमद्वियं गेणइ) त्यों अधने तेण्हे सुवासित भाटी
 वीथी (गिण्हित्ता पोक्खरिणी ओगाहइ) भाटी वधने तेण्हे पुक्खरिणीमां प्रवेशे कथे.
 (ओगाहित्ता जलमज्जणं करेइ करित्ता ष्हाए कयवलिकम्मे जाव रायगिहं
 नयरं अणुपविसइ) प्रवेशीने तेण्हे स्नान कथुं. स्नान करीने तेण्हे अणुअ वगेरे
 पक्षीअेने भाटे अन्न वगेरेना वाण आपीने वालि कर्म कथुं. त्थार वाह ते राजगृह
 नगरमां आव्थे. (अणुपविसित्ता रायगिहनगरस्स मज्जणं मज्जेणं जेणेव सए गिहे
 तेणेव पहारेत्थ गमणाए) नगरमां आवीने ते ठीक राजगृह नगरनी वत्थेना
 मार्गथी पसार थधने त्यों तेणुं घर इतुं त्यों गथे. (तण्णं त धण्णं सत्थवाहं

धन्यस्य विजयेन सह हृदयानादिकम्
 धन्यं सार्थवाहमेजमानं पश्यति, दृष्ट्वा 'आसणाओ'
 धन्यं सार्थवाहमेजमानं पश्यति, दृष्ट्वा 'आसणाओ'
 धन्यं सार्थवाहमेजमानं पश्यति, दृष्ट्वा 'आसणाओ'
 धन्यं सार्थवाहमेजमानं पश्यति, दृष्ट्वा 'आसणाओ'

(पासिता) तव देखकर (आसणाओ अब्मुट्टेइ अब्मुट्टित्ता कंठाकठियं अवया-
 सिय वाहप्पमोक्खणं करेति) ने अपने २ अधिष्ठित स्थान से उठ बैठे
 और उठकर परस्पर मे गले से गला लगाकर मिले। सचने उससे भेंट
 की। आलिङ्गनकिया। तथा बहुत दिनों के बाद मिलने से उन लोगों
 ने आनंद जन्य हर्षाश्रुओं का मोचन भी किया अर्थात् हर्षाश्रु
 वरमाये (तएणं से धण्णे सत्यवाहे जेणव भद्रा भारिया, तेणव उवा-
 गच्छइ) इसके बाद वह धन्य सार्थवाह जहां भद्रा सार्थवाही थी वहां
 गया (तएणं सा भद्रा धण्णं सत्यवाहं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता
 णो आढाइ, णो परिग्याणाइ, णो सक्कारेइ, णो सम्माणेइ, णो
 अब्मुट्टेइ, णो सरीरकुसलं पुच्छइ) भद्रा सार्थवाहीने आते हुए धन्य
 सार्थवाह को देखा भी परन्तु उसने उस का आदर नहीं किया उसका
 स्वागत नहीं किया, मधुर वचनों से उसका सत्कार नहीं किया विविध
 वस्तुओंके समर्पण से उसने उसका सम्मान नहीं किया। वह उसके

सार्थवाहने धर तरश् आवतो ज्येथो. (पासित्ता) जेधने (आसणाओ अब्मुट्टेइ
 अब्मुट्टित्ता कंठा कंठियं अवयासिय वाहप्पमोक्खणं करेति) तेज्यो गधा
 पोतपोतानी ज्यथाज्योथी जिला यथा अने जिला धधने ज्येक णीज्जना गणाधी प्रेम.
 पूर्णक लेटथा. धन्य सार्थवाहने गधा माणुसे मज्ज्या. अने तेजुं आलिङ्गनं क्युं
 धणु द्विसो पथी धन्य सार्थवाहने ज्येथो अने मिलनं थयुं ज्येदेवे गधानी आंजोभां
 धर्षणां आंसुज्जा वरसवा लाज्यां. (तएणं से धण्णे सत्यवाहे जेणव भद्रा
 भारिया, तेणव उवागच्छइ) त्यार पथी धत्य सार्थवाहं न्यां लद्रा लार्थो
 लनी-त्यां गथो. (तएणं सा भद्रा धण्णं सत्यवाहं एज्जमाणं पासइ,
 पासित्ता णो आढाइ, णो सम्माणेइ, णो अब्मुट्टेइ, णो सरीरकुसलं
 पुच्छइ) लद्रा सार्थवाही ज्ये धन्य सार्थवाहं आवतां ज्येथ पणु तेज्जे तेभने
 आदरं क्यो नडि, तेभनुं स्वागतं क्युं नडि, मधुर वाणी वडे तेभने सत्कारो नडि,

प्रेष्या इति वा, प्रेष्याः=प्रयोजनविशेषे ये नगरान्तरादिषु प्रेष्यन्ते ते, मिय
गाइ वा' भृत्यका इति वा, भृत्याः=आचालपोषिता 'माइलगा वा' भागिका
इति वा, भागिकाः=भागवन्तः चतुर्थांशादिलाभेन कृष्यादिकारिणां वा यस्यां
पत्निपदि साऽपि च खलु-पात्रा परिपद् धन्यं सार्थवाहमेजमानं पश्यति,
दृष्ट्वा 'पायवडिया' पादपतिता=पादसंलग्ना पादस्पर्शपूर्वकं नग्रीभूता 'खेम-
कुशलं' क्षेमकुशलम्, अनर्थानुत्पत्तिः क्षेमम्, अनर्थप्रतिघातः कुशलं, तद्
'पुच्छइ पृच्छति। अप्रे अपि--च तस्य तत्र 'अब्भंतरिया' आभ्यन्तरिका=
गृहाभ्यन्तरवर्तिनी परिपद् भवति=अस्ति, 'तद्यथा-तथाहि-मातेति वा
पितेति वा आतर इति वा भगिन्य इति वा, साऽपि च खलु मातापित्रा-

वा मियगाइवा माइलगाइ वा साविणं धणं सत्यवाहं एजंतं पासइ)
दास-गृहदासी पुत्र-दास्य-जो काम पडने पर नगरान्तरों में भेजे जाते
थे वे भृत्य-जो बालक अवस्थासे ही इस के घर पड़े पुसे थे--भागिक-
चौथाई हिस्सा लेकर जो कृष्यादि कर्म करते थे वह सब धन्यसार्थवाह
को जब आते हुए देखा--तब (पासित्ता पायवडियाए खेमकुशलं
पुच्छंति) देखकर उसके पैरों पर गिर पडा और उसकी क्षेम कुशल
की बात पूछने लगा। अनर्थ की निवृत्तिका नाम क्षेम, और अनर्थ
के प्रतिघात का नाम कुशल है (जा विय से तत्थ अब्भंतरिया परिसा-
भवइ--तं जहा-मायाइ वा पियाइ वा भायाइ वा भगिनेइ वा सा विणं धणं सत्यवाहं
एज्जमाणं पासंति) इसी तरह उस धन्य सार्थवाह की जो भीतरी सभा
थी--जसे माता, पिता, भाई, और बहिने--सो इन माता पिता भाई
और भगिनो रूप सभाने जब धन्य सार्थवाह को आते हुए देखा

जेभ डे--दासाइ वा पेस्साइ वा मियगाइ वा माइलगाइ वा सा विणं
धणं सत्यवाहं एजंतं पासइ) दास-धरना दासी पुत्र, दास्य-डोई पशु नानना
काम भाटे जीला नगरोंमां नोकरवां भाटेना नोकरे, नृत्य-जे नानपशुथी तेने घेर
पोषण भेजवीने मोटा थया डोना, भागिक-थोथा भाग लधने जेती वगेरे करता डटा
आ गथाये धन्यसार्थवाहने आवतो जेधने (पासित्ता पायवडियाए खेमकुशलं
पुच्छंति) तेना पगे पड्या अने तेनी कुशल क्षेम पूछवा लाग्या. अनर्थ दूर थाय
ते क्षेम, अने अनर्थने प्रथम पूर्वक दृष्टावपुं ते कुशल छे. (जाविय से तत्थ
अब्भंतरिया भवइ तं जहा-मायाइ वा पियाइ वा भायाइ वा भगिनेइ वा
सा विणं धणं सत्यवाहं एज्जमाणं पासंति) आ प्रभाळे जे धन्य सार्थवाहना
घरमां रहेनारा कुटुंबना माणुसो-माता, पिता, भाई अने बडेना-वगेरेये धन्य

दिरुपाऽऽभ्यन्तरपरिपद् धन्यं सार्थवाहमेजमानं पश्यति, दृष्ट्वा 'आसणाओ'
 ग्रामनात्=स्वस्वोपवेशनस्थानात् 'अम्बुद्वेइ' अम्बुद्वित्ता कंठाकण्ठिकं=कण्ठे च कण्ठे च
 भवति, अभ्युत्थाय 'कंठाकंठियं' कण्ठाकण्ठिकं=कण्ठे च कण्ठे च
 गृहीत्वा यत्पवतन तत् कण्ठद्वयसंमिलनपूर्वकम् 'अवयासिय' आश्लिष्य=
 समालिङ्ग्य 'वाहपमोक्खणं' वाहपमोक्षणं=चिरवियुक्तप्रियसमागमजन्य-
 हर्षाश्रुमोचनं करोति । ततः खलु=नदनु सं धन्यः सार्थवाहो यत्रैव भद्रा
 भार्या तत्रैवोपागच्छति । ततः खलु सा भद्रा धन्यं सार्थवाहम् 'एजमाणं'
 एजमानं=स्वसमीपे समायातं पश्यति. दृष्ट्वा नो आद्रिगने, नो परिजानानि.

(पासित्ता) त्वं देखकर (आसणाओ अम्बुद्वेइ अम्बुद्वित्ता कंठाकण्ठियं अवया-
 सिय वाहपमोक्खणं करेति) ने अपने २ अधिष्ठित स्थान से उठ बैठे
 और उठकर परस्पर मे गले से गला लगाकर मिले । सबने उससे भेंट
 की । आलिङ्गनकिया । तथा बहुत दिनों के बाद मिलने से उन लोगों
 ने आनंद जन्य हर्षाश्रुओं का मोचन भी किया अर्थात् हर्षाश्रु
 वरमाये (तएणं से घण्णे सत्यवाहे जेणेव भद्रा भारिया, तेणेव उवा-
 गच्छइ) इसके बाद वह धन्य सार्थवाह जहां भद्रा सार्थवाही थी वहां
 गया (तएणं सा भद्रा घण्णं सत्यवाहं एजमाणं पासइ, पासित्ता
 णो आढाइ. नो परिगणाइ, नो सक्कारेइ, नो सम्माणेइ, णो
 अम्बुद्वेइ. नो सररीकुसलं पुच्छइ) भद्रा सार्थवाहीने आते हुए धन्य
 सार्थवाह को देखा भी परन्तु उसने उस का आदर नहीं किया उसका
 स्वागत नहीं किया. मधुर वचनों से उसका सत्कार नहीं किया विविध
 वस्तुओंके समर्पण से उसने उसका सम्मान नहीं किया । वह उसके

सार्थवाहने घर तरफ आवतो ज्येथे. (पासित्ता) नेधने (आसणाओ अम्बुद्वेइ
 अम्बुद्वित्ता कंठा कंठियं अवयासिय वाहपमोक्खणं करेति) तेज्यो अधा
 पोतपोतानी ज्यथाज्येथी लिला यथा अने लिला यधने ज्येक धीनता गणाधी प्रेम
 पूर्वक लेटथा. धन्य सार्थवाहने अधा भाषुसे मज्या. अने तेजुं आविगन क्युं
 धल्लु दिवसे पथी धन्य सार्थवाहने ज्येथे अनेमिलन थयुं जेटवे अधानी आंजोमां
 डर्पनां आंसुज्यो वरसवा लाय्यां. (तएणं से घण्णे सत्यवाहे जेणेव भद्रा
 भारिया, तेणेव उवागच्छइ) त्यार पथी धत्य सार्थवाह न्यां लद्रा लार्थी
 डनी-त्यां गथे. (तएणं सा भद्रा घण्णं सत्यवाहं एजमाणं पासइ,
 पासित्ता णो आढाइ, नोसम्माणेइ, णो अम्बुद्वेइ, नो सररीकुसलं
 पुच्छइ) लद्रा सार्थवाही ज्ये धन्य सार्थवाहने आवतां ज्येथ पथु तेज्ये तेभने
 आदर क्ये नडि, तेभनुं स्वागत क्युं नडि, मधुर वाणी वडे तेभने सत्कार्यो नडि,

नो सत्करोति, नो सम्मानयति, नो अभ्युत्तिष्ठति, नो शरीरकुशलं पृच्छति, अनाद्रियमाणा, अपरिजानन्ती, असत्कुर्वन्ती, असम्मानयन्ती, अनभ्युत्तिष्ठन्ती, शरीरकुशलमपृच्छन्ती 'तुसिणीया' तूष्णीका=मौनावलम्बिनी 'परम्मुही' पराङ्मुखी=पतिफूला मुखं परावर्त्य संतिष्ठतीत्यर्थः । ततः खलु स धन्यः सार्थवाहो भद्रां भार्यामेवमवादीत्— किण्वं किं तल्लु=किमर्थं तव हे देवानुप्रिये ! न तुष्टी वा' न तुष्टिः=सन्तोषो न वर्तते न हर्षो वा नानन्दो वा, यन्मया स्वकेन=स्वकीयेन अर्थसारेण=बहुमूल्यरत्नादि दानेन 'रायकज्जाओ राजकार्यात्=राजसङ्कटाद् आत्मा खलु विमोचितः ? ।

सन्मुख नहीं गई— उठी नहीं, और न उसने उसकी कुशल क्षेम पूछी । (अणाढायमाणी, अपरिजाणमाणी, असक्कारेमाणी, असम्मानेमाणी, अणव्युष्टेमाणी, शरीरकुशलं अपृच्छमाणी तुसिणीया, परम्मुही संचिद्वद्) इम तरह अपने पति अनादर का भाव प्रदर्शित करने वाली अपना— स्वागत नहीं करने वाली सत्कार नहीं करने वाली सन्मान नहीं करने वाली, उठकर अपने सन्मुख नहीं आनेवाली, शरीर की कुशल क्षेम नहीं पूछने वाली ऐसी भद्रासार्थवाही को चुपचाप मुँह-फेरकर बैठी हुई जब धन्य सार्थवाहने देखा तो (तएणं से धण्णे सत्थवाहे भद्रा भारियं एवं वयासी) उस धन्य सार्थवाह ने उस भद्रा भार्या से इम प्रकार कहा—(किण्वं तुभं देवानुप्पए ! न तुष्टी वा न हरिसे वा, नाणं दे वा जं मए सएणं अत्यसारे णं रायकज्जाओ अप्पाणं विमोडए) हे देवानुप्रिये ! क्या तुझे सन्तोष नहीं हुआ है, हर्ष नहीं हुआ है, जो मैंने बहु मूल्य रत्नादिरूप अर्थसार देकर राज्य सकट से अपने को मुक्त करवाया है

लेटमां अनेक वस्तुओ आपीने सन्मान क्युं नहि. लद्रा लार्था तेभन्नी सामे गध नहि, लली पल्लु न डोती थध तेभ न तेल्ले शेठनी कुशल क्षेम विशेने प्रश्न क्ये न डतो. (अणाढायमाणी अपरिजाणमाणी, असक्कारेमाणी, असम्मानेमाणी, अणव्युष्टेमाणी, शरीरकुशलं अपृच्छमाणी तुसिणीया परम्मुही, संचिद्वद्) आ रीते धन्य सार्थवाहे तेभना प्रत्ये अनादरने लोव जतावनारी, स्वागत नहि क नारी, सत्कार नहि करनारी, सन्मान नहि करनारी, लली थधने सामे सत्कार माटे नहि आवनारी, तेभना शरीरन्नी कुशल अने क्षेमन्नी वात नहि पूछनारी पोताना पत्नी लद्रा सार्थवाहीने जेध त्यारे (नएणं से धण्णे सत्थवाहे भद्रा भारियं एवं वयासी) तेभल्ले लद्रा सत्थवाहीने क्युं (किण्वं तुभं देवानुप्पियाए ! न तुष्टी वा न हरिसेवा नाणं देवा जं मए सएणं अत्यसारेणं रायकज्जाओ अप्पाणं विमोडए) हे देवानुप्रिये ! शुं तने सन्तोष थये नथी, मे त्ने वगेरे अडु किंमती द्रव्य आपीने सन्त्य संकटथी मुक्ति भेजवी छे, शुं तने

ततः खलु सा भद्रा धन्यं सार्थवाहमेवमवादीत्—कथं खलु मां देवानुप्रिय! मम तुष्टिर्वा यावदानन्दो वा भविष्यति 'जेणं' यः खलु त्वं मम पुत्रघातकाय यावत्प्रत्याभिवाय तस्माद् विपुलाद् अशनपानखाद्य-
ग्वाघात् संविभागं करोषि? । ततः खलु= तदनु तच्छ्रुत्वा स धन्या भद्रामेव
मवादीत्—हे देवानुप्रिये! नो खलु=नैव 'धम्मोत्ति वा' धर्म इति भा

(तएणं सा भद्रा सत्यवाहं एवं वयासी) इस प्रकार सुनकर भद्रा सार्थ-
वाहीने धन्य सार्थवाह से ऐसा कहा— (कहणं देवाणुप्पिया ! मम तुट्ठी
वा जाव आणंदे वा भविस्सइ जेणं तुमं मम पुत्रघायगस्स जाव पच्चामि
चास्स तत्रो विउलाओ असण ४ संविभागं करेसि) हे देवाणुप्रिय ! मुझे तुष्टि
यावत् आनंद कैसे होगा जो तुमने (कारावत् में) मेरे पुत्रघातक यावत् दार्दिक
शत्रु उम विजय के लिये विपुल मात्रा वाले उस चतुर्विध आहार को विभक्त
कर दिया है। (तएणं से धण्णे भइं एवं वयासी) ऐसा सुनकर धन्यमार्थ-
वाहने भद्रा सार्थवाही से ऐसा कहा—(नो खलु देवाणुप्पियाए ! धम्मोत्ति वा
तवोत्ति वा कयपडिकयाइ वा लोगज्जाइ वा नायएत्ति वा घाडिए
वा सहाएइ वा सुहिइ वा तत्रो विपुलाओ असण ४ संविभागे
कए नन्नत्थ सरীরचिंताए) हे देवानुप्रिये! मैंने जो उस
चतुर्विध अशन, पान, खाद्य एवं स्वाद्य रूप चतुर्विध आहार में से विभाग
कर जो विजय चौर को हिस्सा (कारावासमें) दिया है वह संविभागकरण-

आ गधुं गन्धुं नधी? (तएणं सा भद्रा सत्यवाहं एवं वयासी) आ रीते
धन्य सार्थवाहनी वात् सांभणीने भद्रा सार्थवाहीसे तेभने क्खुं—(कहणं देवाणु-
प्पिया ! मम तुट्ठी वा जाव आणंदे वा भविस्सइ जेणं तुमं मम पुत्र-
घायगस्स जाव पच्चामिचस्स तत्रो विउलाओ असण ४ संविभागं करेसि)
हे देवानुप्रिये! भने आनंद थाय न डेम? कअरु के जयादे तये जेवमां मारा
पुत्रना इत्याराने ते पुच्छण प्रमाणुमां जनाववामां आवेला आहारमांथी लाग
आपता इता. (त एणं से धण्णे भइं एवं वयासी) त्थारे धन्य सार्थवाह
भद्रा साथीने क्खुं—(नो खलु देवाणुप्पिए ! धम्मोत्ति वा तवोत्तिवा कय
पडिकइयाहवा लोगज्जाइ वा नायएत्ति वा घाडिए वा सहाएइ वा सुहिइ वा
तत्रो विउलाओ असण ४ संविभागे कए नन्नत्थ सरীরचिंताए)
हे देवानुप्रिये! भे के विजय थारने पुच्छण प्रमाणुमां जनाववा आवेला
थार जतना अशन, पान, खाद्य भने स्वाद्य रूप आहारमांथी के कंठ पथु लाग
आथी छे ते तेने लाग आपवेा जेधये आ जतना संविभागकरु रूप धर्मथी

‘संविभागकरणरूपा धर्मः स्यात्’ इति मत्वा, ‘तद्योक्त्या’ ‘त’ इति वा= स्वभ्या-उर्नोदारिकं तपो भवित्यति’ इति मत्वा, ‘कयपदिकउयाडवा’ कृत-प्रतिकृतिवैति वा=‘कृतस्य प्रत्युपकारोऽयम्’ इति मत्वा, ‘लोगजनाद् वा’ लोकयाज्ञेति वा ‘लोकव्यवहारोऽयम्’ इति मत्वा, लोकलज्जया वा, ‘नाय-एत्ति वा’ ज्ञातक इति वा=‘पूर्वापरसम्बन्धनिधनः इति ज्ञात्वा, ‘नायक’ इति च्छायापक्षे ‘स्वामी’ ति, ‘न्यायदः इति पक्षे ‘न्यायदाता’ इति च मत्वा ‘घाडिएत्ति वा’ घाटिक इति वा=‘सहजातमित्रं’ बालमित्रमित्यर्थः, इति कृत्वा, ‘सहाएत्तिवा’ सहाय इतिवा, सहायकः=सहचारीति मत्वा, ‘मुहिति वा’ मुहदिति वा=प्रियमित्रमयम्, इति मत्वा मया तस्माद् विपुलाद् अशनपान-स्वाद्यस्वाद्यात् संविभागो न कृतः, किन्तु ‘नन्नत्थसरीरचित्ताए’ नान्यत्रसरीर-चिन्तायाः, उच्चारप्रसन्नवणपरिष्ठापनरूपशरीरचित्तां विहाय न मया संविभागः

रूप धर्म मानकर नहीं दिया है, मुझे ऊनोदर तप की प्राप्ती होगी ऐसा मानकर भी नहीं दिया है, अथवा प्रत्युपकार के रूपमें भी नहीं दिया है, लोगव्यवहार की दृष्टि से भी नहीं दिया है, लोकलाजके ख्याल से भी नहीं दिया है, यह हमारा पूर्वापरसंबंधी है इस भाव से भी नहीं दिया है, अथवा यह न्याय प्रदाता है ऐसा जानकर भी नहीं दिया है, यह हमारा घाटिका है बाल मित्र है, ऐसा मानकर भी नहीं दिया है, यह हमें सहायता देनेवाला है ऐसा समझ कर भी नहीं दिया है, यह हमारा प्रिय मित्र है ऐसा जानकर भी नहीं दिया है किन्तु केवल शारिरिक चिन्ता के भाव से ही दिया है। अर्थात् मुझे कारावासमें उच्चार प्रसन्नवण की वाधाने सताया था, सो उसकी

प्रेराधने आभ्ये नथी, मने तेथी उनादर तपनी प्राप्ति थथे आम नालीने पखु भें तेने लाग आभ्ये नथी, प्रत्युपकारना इपभां पखु भें तेने लाग आभ्ये नथी लोखलाजनी दृष्टिथे प्रेराधने पखु भें तेने लाग आभ्ये नथी, ते भावे पूर्वापर सणंधी छे, आम नालीने पखु लोखनभांथी भें तेने लाग आभ्ये नथी, ते न्याय आपनार छे आवुं नालीने पखु तेने लाग आभ्ये नथी, ते अभावे घाटिक छे जाण सभा छे. आवुं नालीने पखु तेने भें लाग आभ्ये नथी, ते मने सडायता करे छे आम समलने पखु भें तेने लाग आभ्ये नथी, ते अभावे प्रिय मित्र छे. आ नालीने पखु तेने लोखनभांथी लाग आभ्ये नथी. पखु शारीरिक चिन्ता इर इवाना विचारथी न भें तेने पोताना लोखनभांथी लाग आभ्ये छे, जेवभां इतां मने उच्चार प्रसन्नवणनी मुशकेली सताव्या करती हुती तेथी ते जाधाथी

कृतः, शरीरचिन्ताथेमेव तस्म संविभागः कृत इति भावः। ततःखलु मा भद्रा धन्येन सार्थवाहेन एवमुक्ता सती 'हृष्ट जाव' हृष्टयावत्=हृष्टतुष्टचिचानन्दिता हर्षवशविसर्पहृदया आपनात् अभ्युत्तिष्ठति, अभ्युत्थार 'कंठाकंठे' कंठा-कण्ठि=कण्ठेन कण्ठं संमेलयेत्यर्थः 'अवयासेइ' आश्लिष्यति=आलिङ्गति, आदर-सकारादिकं करोति क्षेमकुशलं=कुशलवार्तां पृच्छति च। कुशलपश्चमोपृच्छयः 'पहाया' स्नाता=कृतस्नाना 'जाव' यावत् 'कयवलिकम्मा' कृतर्वालिर्कर्मा=कृतं=सम्पादितं बलिकर्म=प्रियागमननिमित्तं पशुपश्यादिप्राणिभ्योऽन्नादिदानरूपं यया सा तथा, 'कयकोउयमंगलपायच्छित्ता' कृतकौतुकमङ्गलप्रायश्चित्ता कृतं कौतुकं=दृष्टिदोषादिनिवारणार्थं मपीपुण्ड्रादिकं, मङ्गलं= दुस्स्वप्नादिफलस्याग-

निवृत्ति के भाव से उसे हमने उस चतुर्विध आहार में से विभक्त कर उसे हिस्सा दिया है (तएणं सा भद्रा धण्णेणं सत्थवाहेणं एवं वुत्ता समाणी, हृष्टजाव आसणाओ अब्भुट्ठेइ अब्भुट्ठित्ता कंठाकंठि अवयासेइ, खेमकुशलं पुच्छइ) इसके बाद धन्य सार्थवाह के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर हर्षित और संतुष्ट-हृदय होती हुई वह भद्रा सार्थवाही आमन से उठ कर बैठी, उठकर उभवा उसने कंठसे आलिङ्गन किया और दुःख प्रादिक क्षेमकुशलकी बात पूछी। (पुच्छित्ता पहाया जाव पायच्छित्ता विउलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणी विहरइ) पूछकर फिर उसने स्नान किया यावत् प्रयश्चित्त किया। और विपुल भोगोंको भोगते हुए वह अना समय आनन्द से व्यतीत करने लगी। यहां "जाव" पद से (कयवलिकम्मा कयकोउयमंगलपायच्छित्ता) "इन पदों का सूचन किया गया है। इनका भाव यह है कि—प्रिय आगमन के निमित्त को लेकर उभने पशु पक्षी

निवृत्त थवा माटे तेने हुं पोताना यार जतना आहारमांथी आहार आपतो हुतो. (तएणं सा भद्रा धण्णेणं सत्थवाहेणं एवं वुत्ता समाणी हृष्टजाव आसणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता कंठाकंठि अवयासेइ, खेमकुशलं पुच्छइ) त्थार पाए लद्दा सार्थवाडी ये धन्य सार्थवाडनी आ वात सालणीने हुपित्त अने संतुष्ट हृदया थने तेण्णु धन्य सार्थवाडतुं आदिंगन कथुं अने तेनी क्षेम कुशणनी वात पूथी. (पुच्छित्ता पहाया जाव पायाच्छित्ता विउलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणी विहरइ)पूथीने तेण्णु स्नान अने प्रायश्चित्त कथुं. तेमञ्च धन्य सार्थवाडनी साधे विपुल भोग भोगवतां तेण्णु पोतानो वण्त सुजेथी पसार करवा मांडये. अडीं 'जाव' पदथी ('कयवलिकम्मा कयकोउयमंगलपायच्छित्ता') आ पदेतुं सूचन करवामां आब्धुं छे. अनेना अर्थ आ प्रभाण्णु छे डे तेण्णु प्रिय आगमनत

'संविभागरूपया धर्मः स्यात्' इति मत्वा, 'तद्योत्तवा' 'त' इति वा= स्वभ्या-ऽनोदारिकं तपो भविष्यति' इति मत्वा, 'कयपटिकडयाऽवा' कृत-प्रतिकृतितेति वा='कृतस्य प्रत्युपकारोऽयम्' इति हेतुमुपादाय, 'लोगजनाइ वा' लोकयात्रेति वा 'लोकव्यवहारोऽयम्' इति मत्वा, लोकलज्जया वा, 'नाय-एत्ति वा' ज्ञातक इति वा='पूर्वापरसम्बन्धिजनः इति ज्ञात्वा, 'नायक' इति च्छायापक्षे 'स्वामी' ति, 'न्यायदः इति पक्षे 'न्यायदाता' इति च मत्वा 'घाडिएत्ति वा' घाटिक इति वा='सहजातमित्रं' बालमित्रमित्यर्थः, इति कृत्वा, 'सहाएत्तिवा' सहाय इतिवा, सहायकः=सहचारीति मत्वा, 'मुहिति वा' मुहदिति वा=प्रियमित्रमयम्, इति मत्वा मया तस्माद् विपुलाद् अशनपान-खाद्यस्वाधात् संविभागो न कृतः, किन्तु 'नन्नत्यसरीरचिन्ताए' नान्यत्रशरीर-चिन्तायाः, उच्चारप्रसवणपरिष्ठापनरूपशरीरचिन्तां विहाय न मया संविभागः

रूप धर्म मानकमर नहीं दिया है, मुझे जनोदर तप की प्राप्ति होगी ऐसा मानकर भी नहीं दिया है, अथवा प्रत्युपकार के रूपमें भी नहीं दिया है, लोगव्यवहार की दृष्टि से भी नहीं दिया है, लोकलाजके खयाल से भी नहीं दिया है, यह हमारा पूर्वापरसंबंधी है इस भाव से भी नहीं दिया है, अथवा यह न्याय प्रदाता है ऐसा जानकर भी नहीं दिया है, यह हमारा घाटिका है बाल मित्र है, ऐसा मानकर भी नहीं दिया है, यह हमें सहायता देनेवाला है ऐसा समझ कर भी नहीं दिया है, यह हमारा प्रिय मित्र है ऐसा जानकर भी नहीं दिया है किन्तु केवल शारिरिक चिन्ता के भाव से ही दिया है। अर्थात् मुझे कारावासमें उच्चार प्रसवण की बाधाने सताया था, सो उसकी

प्रेराधने आभ्यो नथी, भने तेथी उनोदर तपनी प्राप्ति थथे आभ नालीने पथु भे' तेने लाग आभ्यो नथी, प्रत्युपकारना रूपमां पथु भे' तेने लाग आभ्यो नथी लोकलाजनी दृष्टिजे प्रेराधने पथु भे' तेने लाग आभ्यो नथी, ते भारे पूर्वापर सणधी छे, आभ नालीने पथु लोकनभांथी भे' तेने लाग आभ्यो नथी, ते न्याय आपनार छे आवुं नालीने पथु तेने लाग आभ्यो नथी, ते अभासे घाटिक छे भाण सभा छे. आवुं नालीने पथु तेने भे' लाग आभ्यो नथी, ते भने सहायता करे छे आभ समलने पथु भे' तेने लाग आभ्यो नथी, ते अभासे प्रिय मित्र छे. आ नालीने पथु तेने लोकनभांथी लाग आभ्यो नथी. पथु शारिरिक चिन्ता हर क्वाना विचारथी न भे' तेने चोताना लोकनभांथी लाग आभ्यो छे, जेवमां देतां भने उच्चार प्रसवणनी मुश्केली सताव्या करती हुती तेथी ते बाधाथी

वधैः=षष्ठ्यादिना ताडनरूपैः 'कसप्पहारैश्च' कशाप्रहारैश्च दिवसेऽनेकवार
 कशाघातरूपैः 'जाव' यावत् एवं लतादिपरिघातरूपैश्च प्रहारैः, तृप्यया
 च क्षुधया च 'परम्भवमाणे' पराभवन्ः=परिपीडयमानो जर्जरितशरीरः
 सन् कालमासे= मृत्युसमये कालं कृत्वा 'नरएसु' नरके पापकर्मिणां
 यातनास्थाने 'सूत्रे प्राकृतत्वाद् बहुवचनम्' 'नेरइयत्ताए' नैरधिकतया
 नारकत्वेन 'उववन्ने' उपपन्नः=उत्पन्नः। स खलु तत्र=नरके नैरधिको जातः,
 कीदृशः? इत्याह— 'काले' इत्यादि, 'काले' कालः=कृष्णवर्णः 'कालोभासे'
 कालावभासः=द्रष्टव्य काल इव=मृत्युरिव अवभासते, यद्वा कालः=श्यामः
 अवभासः= दीप्तिर्यस्य स तथा 'जाव' यावत् यावच्छब्देन—'गंभीर
 लोमहरिसे भीमे उत्तासणए परमकण्हे वण्णेण' से णं तत्थे निच्चं भीए,

य परम्भवमाणे कालमासे कालं किञ्चा नरएसु नेरइयत्ताए उववन्ने)
 उन पूर्व प्रदर्शित रज्ज्वादि द्वारा दहनियत्रणरूप बंधों से षष्ठ्यादि द्वारा
 ताडन रूप बंधों से, दिवस में अनेक बार कृत कशाघातरूप प्रहारों
 से— लतादि परिघात रूप प्रहारों से भ्रूव और पियास से परिपीडित
 होना हुआ—जर्जरित-शरीर होता हुआ काल अवसर काल कर
 के ओर पाप कर्मों के यातना स्थानहा नरकमें नारकी
 की पर्याय से उत्पन्न हुआ। (से णं तत्थ नेरइए जाए) वह वहाँ
 ऐसा नैरधिक हुआ कि जो (काले कालोभासे जाव वेणणं पच्चणुमावमाणे
 विहरइ) शरीर में कृष्ण वर्ण वाला देखने वालों को मृत्यु जैसा प्रतीत
 होता था—अथवा कालो दीप्तिवाला। या यावत् शब्द से इस पाठ का
 यहाँ और संग्रह किया गया है। (गंभीरलोमहरिसे, भीमे, उत्तासणए
 परमकण्हे वण्णेणं से तत्थ निच्चं भीए, निच्चं तत्थे, निच्चं तत्थिए,

परम्भवमाणे कालमासे कालं किञ्चा नरएसु नेरइयत्ताए उववन्ने) पडेलां
 वधुंनं करवाभां आव्या भुञ्जं दोरीओना सभत णंधने लाडडीओ वगेरेने
 भार अने दिवसमां धणीवार करवाभा आवेला डेरओओना प्रहारो, लता वगेरेना
 प्रहारो भूष अते तरसथी दुःभी थतो शिथिण शरीरवायो थधने आथरे मृत्यु
 पाभ्यो अने पापकर्मोना यातना स्थानइप नरकमां नारकीनी पर्यायमां ननभ्यो.
 (से णं तत्थ नेरइए जाए) नैरधिकनी पय... (काले कालोभासे जाव
 वेणणं पच्चणुभवमाणे विहरइ) शरीरे ओ भिंशं नेयो अने नेताराओ
 ते मृत्युं नेयो अथंड लागतो डतो. अडीं (यावत्) शण्ठथी आ पाडने संश्रु
 थयो छे.— (गंभीरलोमहरिसे भीमे उत्तासणए परमकण्हे वण्णेणं से

न्तुकारिष्टादेश्च निवारणाय दध्यक्षतादिग्रहणं तदेव प्रायश्चित्तम्=भवश्यंकरणी-
यत्वेन यथा सा विपुलान् भोगभोगान् भुञ्जाना सती विहरति=आस्ते स्म. ॥मू. ११॥
मूलम्—तएणं से विजए तक्करे चारगसालाए तेहिं वंधेहिं वहेहिं
कसप्पहारेहि य जाव तण्हाए य लुहाए य परवभवमाणे कालमासे
कालं किञ्चा नरएसु नेरइयत्ताए उववन्ने । सेणं तत्थ नेरइए जाएकाले
कालोभासे जाव वेयणं पच्चणुभवमाणे विहरइ । से णं ताओ उव्व
ट्टित्ता अणाइयं अणवदरगं दीहमद्धं चाउरंतसंसारकंतरं अणुपरिअट्टि-
स्सइ । एवामेव जंबू ! जेणं अम्हं निग्गंथो वा निग्गंथी वा आय
रियउवज्झायाणं अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्व-
इए समाणे विपुलमणिमुत्तिय धणकणगरयणसारेणं लुव्वभइ से
वि य एवं चेव ॥सू० १२॥

टीका—तएणं से विजय' इत्यादि ।

ततः खलु=इतथ स विजयस्तस्करः 'चारगसालाए' चारकशालायां=
कारागारे तैः पूर्वप्रदर्शितैः 'बंधेहिं' वन्धैः रज्ज्वादिदृढनियन्त्रणरूपैः, 'वहेहिं'
आदि प्राणियों के लिये अन्नादि देनेरूप बलिर्कर्म किया । तथा दृष्टि दोष
आदि को निवारण करने के लिये उसने मपोपुंइ आदि किये तथा
स्वप्नके फल रूप आगन्तुक अरिष्ट आदिके निवारण करने के लिये
उसने दध्यक्षत आदिक ग्रहण किया । ॥मू० ११॥

'तएणं से विजए तक्करे' इत्यादि ।

टीकार्थ—(तएणं) इसके बाद (विजए तक्करे) विजय तस्कर—(चारग सालाए)
कारावासमें (तेहिं वंधेहिं वहेहिं कसप्पहारेहिं य जाव तण्हाए य लुहाए
निमित्त पशु पक्षी वगेरे प्राणीओने अन्न वगेरे अभींने अलिक्कं क्युं. तेमन्न
दृष्टि दोषथी निवृत्ति भाटे तेणु मपीयुंउं वगेरे क्युं. स्वप्नना इणना इपमां
अविध्यमां थनार अनिष्ट वगेरेनी निवृत्ति भाटे तेणु द्डीं अक्षत वीधां. (सू. ११)

'तएणं से विजए तक्करे' इत्यादि ।

टीकार्थ—(तएणं) त्थार पथी (से विजए तक्करे) विध्यओरे (चारगसालाए)
ओलमां (तेहिं वंधेहिं वहेहिं कसप्पहारेहिं य जाव तण्हाए य लुहाए य

રૂપં સંસાર એવ કાગતારં=મઝાડરણ્યં, તત્=મવાટવીમિત્યર્થઃ, 'અણુપરિયટ્ટિ-
મ્મહ' અણુપર્યટ્ટિપ્યતિ=નિરન્તરં પરિભ્રમિત્યનિ । 'एवमेव' એવમેવ=અનેનેવ
પ્રકારેણ હે જન્મ્ઃ ! યઃશ્વલુ અસ્માકં નિર્ગ્રન્થો વા નિર્ગ્રન્થી વા આચાર્યો-
પાધ્યયાનામન્તિકે 'મુંડો' મુણુઃ, દ્રવ્યતો ભાવતથ મુંડિતો મૂન્વા અગારાઃ=
અનગારિતાં પવ્રજિતઃ=પાપ્તઃસન્ વિપુલમણિમૌક્તિકથનકનકરત્નસારેણ
'લુબ્ધ' લુબ્ધતિ=મણિમૌક્તિકથનાદિ લુબ્ધો ભવતિ 'સે વિ ય' સોડપિ ચ
સાધુ વા સાધ્વી વા 'एवंचेव' એવમેવ=વિજયનસ્કરવદેવ ચાતુરન્તસંસાર-
કાન્તારે ભ્રમિત્યતીતિ ભાવઃ ॥૨૦ ૧૨॥

પૂલપ્—તેણં કાલેણં તેણં સમણં ધમ્મઘોસા થેરા મગ-
વંતો જાઙ્ સંપન્ના જાવ પુલ્વાણુપુલ્લિવં ચરમાણા ગામાણુગામં દૂઙ્ગમાણા
જેણેવ રાયગિહે નગરે જેણેવ ગુણસિલણ્ણે ચેઙ્ગે તેણેવ ઉવાગચ્છંતિ,
ઉવાગચ્છિત્તા અહાપડિરૂવં ઉગ્ગહં ઉગ્ગિપિહિત્તા સંજમેણં તવસા અ-

માર્ગ વહુત લંવા ચોડા હે અથાા ઉત્સર્પિણી અવસર્પિણી રૂપ કાલ
જિસહા વહુત દીર્ઘ હે—પરિભ્રમણ કરેગા । (एवमेव जंवू ! जे णं अम्हं
निगंथो वा निगंथी वा आयरियउवज्झायणं अंतिण्ण मुंडे भवित्ता
अगाराओ अणगारियं पव्वइए समाणे विपुलमणिमुत्तयधणकणग
रयणसारेणं लुब्भइ से वि य एवं चेव) इसी प्रकार से हेजंवू । जो
हमारे निर्ग्रन्थ अथवा निर्ग्रन्थी साधु साध्वी जन आचार्य, उपाध्याय के
पास द्रव्य भाा रूपसे मुंडित होकर अगार से अनगारी अवस्था को
प्राप्त करते हुए विपुल मणिमौक्तिक, धन, कनक, रत्न आदि में
लुभा जाते हैं वे भी इसी तरह चतुर्गतिरूप इस संसार अटवी में भ्रमण
करते रहेगे । ॥२० १२॥

ખહુ ન લાંગો અને વિસ્તાર પામેલો છે અથવા ઉત્સર્પિણી અવસર્પિણી રૂપ કાળ
જેમનો ખહુ દીર્ઘ છે—પરિભ્રમણ કરશે. (एवमेव जंवू ! जे णं अम्हं निगंथो वा
निगंथी वा आयरियउवज्झायणं अंतिण्ण मुंडे भवित्ता अगाराओ
अणगारियं पव्वइए समाणे विपुलमणिमुत्तयधणकणगरयणसारेणं लुब्भइ
से वि य एवं चेव) આ રીતે ન ન'યૂ ! જે અમારા નિર્ગ્રંથ કે નિર્ગ્રંથી સાધુ
સાધ્વીજન આચાર્ય અને ઉપાધ્યાયની પાસે દ્રવ્ય ભાવ રૂપથી મુંડિત થઈને અગારથી
અવસ્થાને મેળવતાં ખૂબ ન મણિ, મૌક્તિક, ધન, કનક રત્ન વગેરેમાં લોલુપ
થઈ નત્ય છે તેઓ પણ આ વિજય તરફ જેવા ન છે. અને તેઓ પણ આ
પ્રભાણે ન ચતુર્ગતિરૂપ આ સંસાર રૂપી અટવીમાં પરિભ્રમણ કરતા રહેશે. સ્ત્ર. ૧૨ ।

निच्चं तत्थे, निच्चं तस्सिए, निच्चं परमसुहसंबद्धं नरगः' इत्येतेषां सं
 ग्रहः, तत्र—'गंभीर' गम्भीरः=प्रचुरः 'लोमहरिसे' रामहर्षः=भयजनितरोमांचो
 यस्य सः, 'भीमे' भीमः=भयङ्करः, अत एव 'उत्तासणाए' उत्तासकः=
 भयजनितदुःखजनकः, वर्णेन परमकृष्णः—असौ तत्र नित्यं भीतः, नित्यं 'तस्सिए'
 त्रसितः=परमाधर्मिभिस्त्रासं प्रापितः सन 'परमसुहसंबद्धं' परमाधुमसम्बद्धाम्
 =उत्कृष्टपापकर्मोपनीतां 'नरगवेयण' नरकवेदनां= नरकसम्बन्धिघोरयातनां
 'पच्चणुभयसाणे' प्रत्यनुभवन्=आत्मनः प्रतिप्रदेशतोऽनुभवन् 'विहरइ' विहरति=
 उपतिष्ठते। स खलु=विजयतस्करजीवः 'तओ' तस्मान् नरकस्थानान् 'उवट्टिचा'
 उद्वृत्य=निस्सृत्य 'अणाइयं' अनादिकम्=आदि रहितम् 'अणवदग्गं' अनवदग्रम्=
 'दीहमदं' दीर्घाध्वानं=दीर्घमार्गं चतुर्गैतिलक्षणम्, दीर्घादम्' इति
 उच्यते। अत्र तु दीर्घा=अद्वा=कालः उत्सर्पिष्यवसर्पिणी लक्षणो यत्र तत्र दीर्घकालिकां
 मेत्यर्थः 'चाउरंतं संसारकंतरं' चातुरन्तं संसारस्थान्तरं—चातुरन्तं=चतुर्गति-

निच्चं परमसुहसंबद्धं नरग) इन पदों का अर्थ इस प्रकार है—इसे वहाँ
 सदा भय रहेता है इसलिये सर्वदा इसे भयजनित रोमांच बना रहता
 है—यह नरक स्वयं भयंकर है—इसलिये भय से उत्पन्न होनेवाले दुःख
 का यह उत्पादक है। वर्ण की दृष्टि से यह परम कृष्ण है। यह वहाँ
 नित्य भयशील और त्रस्त बना रहता है। परमाधार्मिक देव इसे वहाँ
 नित्य त्रास दिया करते है। उत्कृष्ट पाप कर्म के उदय से प्राप्त हुई
 नरक संबन्धी घोर यातनाओं को आत्माके प्रति प्रदेश से वह भोगता
 है (से णं ताओ उवट्टिचा अणाइयं अणवदग्गं दीहमदं चाउरंतसं-
 सारकंतरं अणुपरिअट्टिस्सइ) इसके बाद वह विजय तस्कर का जीव
 उस नरक स्थान से निकल कर अनादि—आदि रहित नाश रहित
 —अनन्त रूप ऐसी चतुर्गति रूप भवाटवी में जिसका कि चतुर्गति रूप

निच्चं भीए निच्चं तत्थे, निच्चं तस्सिए, निच्चं परमसुहसंबद्धं नरगं)
 आ पटोने। अर्थ आ प्रभाषे छ— तेने नरकमां णिक रहे छे. अथी सदा ते
 लयलनक रोमांच युक्त रहे छे. ते पोते लयथी उत्पन्न दुःखने ते उत्पन्न करनार
 छे. रंगे ते सावकाणे छे. उभेथां ते नरकमां लयशील अने संत्रस्त भनी रहे छे.
 परमाधार्मिक देव तेने सदा त्यां नरकमां त्रास आपता रहे छे. उत्कृष्ट पापकर्मोने
 दीर्घे प्राप्त थयेदी नरकनी लयंकर मुश्केलीओने ते आत्माना इरेके इरेके प्रदेशथी
 भोगवे छे. (से णं ताओ उवट्टिचा अणाइयं अणवदग्गं दीहमदं चाउरंत-
 संसारकंतरं अणुपरिअट्टिस्सइ) त्थार णाड विजय योःने एव ते नरकस्थानथी
 अहार नीवणीने अनादि आदिरहित नाशरहित, अनन्त रूप अथी चतुर्गतिरूप भाग

मर्यादया विचरन्तः 'गामाणुगाम' ग्रामानुग्रामम्=एक ग्रामादव्यवधानेनान्य-
ग्रामं 'दृडज्जमाणा' द्रवन्तः=गच्छन्तः यत्रैव राजगृहं नगरं यत्रैव गुणशिलकं
'चेइए' चैत्यम्=उद्यानं तत्रैवोपागच्छन्ति, उपागन्त्य 'अहापडिख्वं' यथाप्रति-
रूपं=यथायोग्यं=साधुमर्यादाहम् 'उग्गहं' अत्रग्रहं=रामतेराज्ञाम् 'उग्गिह्जित्ता'
अवगृह्य=वनपालसकाशाभार्गीयित्वा संयमेन तपसाऽऽत्मानं 'भावेमाणा'
भावयन्तः=वासयन्तो विहरन्ति=तिष्ठन्ति। परिपन्निर्गता। धर्मः कथितः।
ततः खलु तस्य धन्यस्य मर्यादाहस्य बहुजनस्यान्तिके एतमर्थं श्रुत्वा निश्चय
अयमेतद्रूप आध्यात्मिको यावत् समुदपद्यत एव खलु स्थविरा भगवन्तो

पुत्राणुपुत्रिं चरमाणा गामाणुगामं दृडज्जमाणा जेणेव रायगिहे नयरे
गुणसिलए चेइए तेणेव उवागच्छन्ति) जो कि विशुद्ध मातृवंशवाले थे
यावत् तीर्थंकरों की परम्परा के अनुसार विहार करते थे। वे एक ग्राम से
दूसरे ग्राम में विहार करते हुए जहां राजगृह नगर और गुणशिलक चैत्य
था वहां आये (उवागच्छित्ता अहापडिख्वं उग्गहं उग्गिह्जित्ता संजमेणं तपसा
अप्पाणं भावेमाणाविहरन्ति) वहां आकर वे साधुजन की मर्यादा के अनुसार
वसति की आज्ञा वहां के वनपालक से मांग कर संयम और तपसे अपनी आत्मा
को भावित करते हुए टहर गये। (परिस्ता निग्गया, धम्मो कहिओ तएणं तस्स
धण्णस्स सत्थवाहस्स बहुजणस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म इमेयारुवे अज्झत्थिए
जाव समुपज्जित्था) राजगृह नगर से परिपद यहां आई-भगवान् ने उसे धर्म की
देखना दी। इसके बाद उस धन्य मर्यादा ने अनेक जनों के मुख से इस
अर्थ-भगवदागमन रूप समाचार-को सुनकर-उसे हृदय में अवधारित

पुत्रिं चरमाणा गामाणुगामं दृडज्जमाणा जेणेव गुणसिलए चेइए तेणेव
उवागच्छन्ति) ३ ७७० विशुद्ध मानवंशना हुता, अने तीर्थंकरानी परंपरागत
प्रथा मुग्गण विहार करता हुता तेओ ओक गाभथी पीओ गाम विहार करतां जयां
राजगृह नगर अने उष् शिल्क चैत्य हुत्तुं त्यां आव्या. (उवागच्छित्ता अहा
पडिख्वं उग्गहं उग्गिह्जित्ता संजमेणं तपसा अप्पाणं भावेमाणा विहरन्ति)
त्यां आवीने तेओ साधुज्जनेयित मर्यादाने अनुसरतां त्यांना वन पालकनी पांसिथी
वास करवानी आज्ञा भेजवीने तप अने संयमथी पोताना आत्माने भाविक करतां
त्यां शैक्षथा. (परिस्ता निग्गया धम्मो कहिओ तएणं तस्स धण्णस्स सत्थवा-
हस्स बहुजणस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म इमेयारुवे अज्झत्थिए जाव
समुपज्जित्था) राजगृह नगरथी त्यां परिपद ओकडी थड. भगवाने परिपदने संजोधी
ओठवे के धर्म देशना आपी. त्यार पछी धन्य मर्यादाहे धण्ण भावुसोना भेदिथी
भगवाने पधारवानी समाचार सांभलीने, तेने हृदयमां अवाधरित करतां तेना

प्याणं भावेमोणा विहरंति, परिसा निग्गया धम्मो कहिओ, तएणं
 तस्स धणस्स सत्थवाहस्स बहुजणस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णि
 सम्म इमेयारूवे अज्झतिथए जाव समुपज्जित्था—एवं खलु थेरा भग-
 वंतो जाइसंपन्ना इहमागया इहसंपत्ता तं इच्छामि णं थेरे भग-
 वंते वंदामि नमंसामि ण्हाए जाव सुद्धप्पवेसाइं मङ्गल्लाइं वत्थाइं
 पवरपरिहिए पायविहारचारेणं जेणेव गुणसिले चेइए जेणेव थेरा
 भगवंतो तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता वंदइ नमंसइ। तएणं
 थेरा भगवंतो धणस्स सत्थवाहस्स विचित्तं धम्ममाइक्खंति, तएणं
 से धन्ने सत्थवाहे धम्मं सोच्चा एवं वयासी—सइहामि णं भंते!
 निग्गंथे पावयणे जाव पव्वइए जाव वहूणि वासाणि सामन्नपरियाणं
 पाउणित्ता भत्तं पच्चक्खाइ, पच्चक्खित्ता मासियाए संलेहणाए सट्ठिं
 भत्ताइं अणसणाए छेदेइ, छेदित्ता कालमासे कालं किच्चा सोहम्मं
 कप्पे देवत्ताए उववन्ने, तत्थणं अत्थेगइया णं देवाणं चत्तारि पलि-
 ओवमाइं ठिई पन्नत्ता, तत्थ णं धणस्स देवस्स चत्तारि पलिओ-
 वमाइं ठिई पणत्ता, से णं धणे देवे ताओ देवलोयाओ आउक्ख-
 एणं भवक्खएणं ठिइक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता महाविदेहे वासे
 सिज्झिहिइ जाव सब्बदुक्खाणामंतं करेहिइ ॥सू, १३॥

टीका—तेणं कालेणं इत्यादि तस्मिन् काले तस्मिन् समये धर्मघोषा नाम स्थ-
 विरा भगवन्तो जातिसम्पन्ना यावत् 'पुव्वाणुपुब्बि' पूर्वानु पूर्व्या चरन्तः=तीर्थङ्कर-

'तेणं कालेणं तेणं समए णं' इत्यादि ।

टीकार्थ—(तेणं कालेणं तेणं समाएणं) उस काल, उस समय में (धम्मघोसा
 नामं थेरा) धर्मघोष नामके स्थविर (भगवंतो) भगवान (जाइ संपन्ना जाव

(तेणं कालेणं तेणंसमएणं) इत्यादि ।

टीकार्थ—(तेणं कालेणं तेणं समएणं) ते काले अने ते समये (धम्मघोसा नामं
 थेरा) धर्मघोषनामकेस्थविर (भगवंतो) भगवान (जाइसंपन्ना जाव पव्वाणु-

मर्षाद्या विचरन्तः 'गामाणुगाम' ग्रामानुग्रामम्=एक ग्रामादव्यवधानेनान्य-
ग्रामं 'दृडज्जमाणा' द्रवन्तः=गच्छन्तः यत्रैव राजगृहं नगरं यत्रैव गुणशिलकं
'चेइए' चैत्यम्=उद्यानं तत्रैवोपागच्छन्ति, उपागत्य 'अहापडिख्वं' यथापति-
रूपं=यथायोग्यं=साधुमर्षादाहर्षं 'उग्गहं' अग्रगृहं=यमतेराज्ञाम् 'उग्गिह्जिता'
अवगृह्य=वनपालसकाशान्मार्गयित्वा संयमेन तपसाऽऽत्मानं 'भावेमाणा'
भावयन्तः=वासयन्तो विहरन्ति=तिष्ठन्ति। परिपन्निर्गता। धर्मः कथितः।
ततः खलु तस्य धन्यस्य सार्थवाहस्य बहुजनस्यान्तिके एतमर्थं श्रुत्वा निशम्य
अयमेतद्रूप आध्यात्मिको यावत् समुदपद्यत एव खलु स्थविरा भगवन्तो

पुत्राणुपुत्रि चरमाणा गामाणुगामं दृडज्जमाणा जेणेव रायगिहे नयरे
गुणसिलए चेइए तेणेव उवागच्छन्ति) जो कि विशुद्ध मानवंशवाले थे
यावत् तीर्थंकरों की परम्परा के अनुसार विहार करते थे। वे एक ग्राम से
दूसरे ग्राम में विहार करते हुए जहां राजगृह नगर और गुणशिलक चैत्य
था वहां आये (उवागच्छन्ति अहापडिख्वं उग्गहं उग्गिह्जिता संजमेणं तवमा
अप्पाणं भावेमाणाविहरन्ति) वहां आकर वे साधुजन की मर्षादा के अनुसार
वसति की आज्ञा वहां के वनपालक से मांग कर संयम और तपसे अपनी आत्मा
को भावित करते हुए ठहर गये। (परिसा निग्गया, धम्मो कहिओ तएणं तस्स
धणस्स सत्थवाहस्स बहुजणस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म इमेयारुवे अज्झत्थिए
जाव समुपज्जित्था) राजगृह नगर से परिपद यहां आई-भगवान ने उसे धर्म की
देखना दी। इसके बाद उस धन्य सार्थवाह ने अनेक जनों के मुख से इस
अर्थ-भगवदागमन रूप समाचार-को सुनकर-उसे हृदय में अवधारित

पुत्रि चरमाणा गामाणुगामं दृडज्जमाणा जेणेव गुणसिलए चेइए तेणेव
उवागच्छन्ति) के जेओ विशुद्ध मानवंशवाले हता, अने तीर्थंकरानी परंपरागत
प्रथा मुज्ज विहार करता हता तेओ ओक गाभथी थीके गाभ विहार करतां जथां
राजगृह नगर अने गुण शिलक चैत्य हतुं त्यां आव्या. (उवागच्छन्ति अहा
पडिख्वं उग्गहं उग्गिह्जिता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणा विहरन्ति)
त्यां आवीने तेओ साधुजनोचित मर्षादाने अनुसरतां त्यांना वन पालकनी पांसेथी
पास करवानी आज्ञा भेजवीने तप अने संयमथी पोताना आत्माने भाविक करतां
त्यां शैकाथा. (परिसा निग्गया धम्मो कहिओ तएणं तस्स धणस्स सत्थवा-
हस्स बहुजणस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म इमेयारुवे अज्झत्थिए जाव
समुपज्जित्था) राजगृह नगरथी त्यां परिपद ओकठी थं. भगवाने परिपदने संघोधी
ओटवे के धर्म देखना आपी. त्यार पछी धन्य सार्थवाह धणु भाणुसेना मोढेथी
भगवानेने पधारवानी समाचार सांभलीने, तेने हृदयमां अवधारित करतां तेना

जातिसम्पन्ना इहागता, इहसम्पन्नाः, तद् इच्छामि खलु स्थविरान भगवन्तो वन्दे नमस्यामि। स्नानः यावत् शुद्ध प्रवेशानि माह्वयानि वस्त्राणि 'पवर-परिहिण' पवरपरिहिता=पवरं यथास्यात्तथा गृह्णतयेत्यर्थः परिहितः=शृतः परिहितपवरवस्त्रः सन् 'पायविहारचारेणं' पादविहारचारेण=पादाभ्यां सञ्चरणेन यत्रैव गुणशिलकं चैत्यं यत्रैव स्थविरा भगवन्तरतत्रैवोपागच्छति, उवागत्य वन्दते नमस्यति। ततः खलु स्थविरा भगवन्तो धन्यस्य सार्थवाहस्य विचित्रं धर्ममाख्याति। ततः खलु स धन्यः सार्थवाहो धर्मं श्रुत्वा एवमवादीत्-श्रद्धामि खलु भदन्त। निर्ग्रन्थं प्रवचनं यावत् मन्त्रजितः यावद्

कर-इस प्रकार की यह आध्यात्मिक यावत् मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ। (एवं खलु थेरा-भगवन्तो जाइसंपन्ना इहमागया इहसंपत्ते, तं इच्छामि णं थेरे-भगवन्ते वंदामि नमंसांमि) स्थविर भगवन्त जो जाति संपन्न है यहाँ आये हुए हैं-यहाँ सम्प्राप्त हुए हैं। अतः मैं चाहता हूँ कि मैं उन्हें वंदू-नमन करूँ। ऐसा विचार कर उसने (ह्लाए, जाव सुद्धप्पवेसाइं मंगल्लाइं वत्थाइं पवर-परिहिण) स्नान किया-यावत् शुद्ध प्रवेश करने योग्य, मंगल रूप वस्त्रों की पहिना (पाय विहारचारेणं जेणेव गुणसिले चेइए जेणेव थेरा भगवन्तो. तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता वंदइ नमंसइ) पहिन कर फिर वह पैदल ही जहाँ गुणशिलक चैत्य और स्थविर धर्मघोष भगवन्त विराजमान थे वहाँ गया। जाकर उसने उन्हें वंदन किया नमस्कार किया। (तएणं थेरा भगवन्तो धण्णस्स सत्थवाइस्स विचित्रं धम्मामाइक्खंति) इसके बाद उन स्थविर भगवन्तने धन्य सार्थवाहको विचित्र धर्म का उपदेश दिया। (तएणं से धण्णे सत्थवाहे

मनमां आ लतने आध्यात्मिक अने मनोगत संकल्प उद्भवन्थे—(एवं खलु थेरा भगवन्तो जाइसंपन्ना इहमागया इहसंपत्ते तं इच्छामि णं थेरे भगवन्ते वंदामि नमंसांमि) जाती संपन्न स्थविर भगवन्त अडं पधारिता छे. संप्राप्त थथा छे. जेथी मने धच्छा थथ छे के हुं तेमने वंदु अने नमन कुं. आ प्रभाण्णे विचार करीने तेमण्णे (पहाए, जाव, सुद्धप्पवेसाइं मंगल्लाइं वत्थाइं पवरपरिहिण) स्नान क्युं भगवान पासो ज्वा जेज्य शुद्ध वस्त्रो पहियो. (पायविहारचारेणं जेणेव गुणसिले चेइए जेणेव थेरा भगवन्तो तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता वंदइ नमंसइ) पढेरीने तेज्जा पगथी आलीते ज्वां शुष्पशिलक अत्य अने स्थविर धर्मघोष भगवन्त विराजमान हुता त्यां गया. पढोन्थीने तेज्जाजे भगवानने वंदन अने नमस्कार कथी. (तएणं थेरा भगवन्तो धण्णस्स सत्थवाइस्स विचित्रं धम्मामाइक्खंति) त्थार पछी ते स्थविर भगवन्ते धन्य सार्थवाहुने अइलुत रीते धर्म-देशना आपी. (तएणं से धण्णे सत्थवाहे सोवा

वहूनि वर्षाणि श्रामण्यपर्यायं पालयित्वा भक्तं प्रत्याख्ययति, प्रत्याख्यय मासिक्या संलेखनया पट्टि भक्तानि अनशनेन छिनत्ति, छित्त्वा कालमासे कालं कृत्वा सौधर्मे कल्पे देवत्वेन उपपन्नः। तत्र खलु अस्त्येककानां देवानां चत्वारि पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता, तत्र खलु धन्यस्य देवस्य चत्वारि पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता। स खलु धन्यो देवस्तस्माद्देवलोकात् आयुः

धम्मं सोच्चा एयं वयासी) इसके बाद उस धन्यसार्थवाहने धर्म मुनकर इस प्रकार कहा—(सद्दामि णं भंते निग्गंथे पावयणे जाव पञ्चइए जाव वहूणि वासाणि सामन्नपरियागं पाउणित्ता भत्तं पच्चक्खाइ) हे भदंत! मैं निर्गन्ध प्रवचन को श्रद्धा करता हूँ। यावत् वह प्रव्रजित हो गया। बहुत वर्षों तक उसने श्रामण्य पर्याय का पालन किया—बाद में उसने चतुर्विध भक्त को प्रत्याख्यान कर दिया।—(पच्चक्खित्ता मासियाए संलेहणाए सट्ठि-भत्ताइं अणसणाए छेदेइ) प्रत्याख्यान करके १ एक मास की संलेखना से उसने ६० भक्तों को अनशन द्वारा छेद दिया—(छेदित्ता कालमासे कालं किच्चा-सोहम्मो कप्पे देवत्ताए उव्वन्ने) छेदकर फिर वह मृत्यु के अवसर आने पर मरा—और मर कर सौधर्मे कल्प में देव की पर्याय से उत्पन्न हो गया। (तत्थणं अत्थेगइयाणं देवाणं चत्तारिपलिओवमाइं ठिई पणत्ता) वहाँ कितनेक देवों की चार पल्योवमप्रमाणस्थिति कही गई है सो (तत्थणं धण्णस्स देवस्स चत्तारिपलओवमाइं ठिइ पणत्ता) इसमें धन्यकुमार देवकी वहाँ चार

एवं वयासी त्थार पछी धर्म-दशानुं श्रवणु करीने धन्य सार्थवाडे कहुं— सद्दामि णं भंते निग्गंथे पावयणे जाव पञ्चइए जाव वहूणि वासाणि सामन्नपरियागं पाउणित्ता भत्तां पच्चक्खाइ) हे भदंत! निर्गन्ध प्रवचनमां हुं सारी पेटे श्रद्धा धरावुं छुं. आ रीते धन्य सार्थवाड प्रव्रजित थड गया. धणुं वर्षो सुधी तेज्जोअे श्रामण्य पर्यायनुं पालन कथुं. त्थार भाद नेभणुे यतुर्विध लकतनुं प्रत्याख्यान कथुं. (पच्चक्खित्ता मासियाए संलेहणाए सट्ठि भत्ताइं अण-सणाए छेदेइ) प्रत्याख्यान करीने अेक भडिनानी संलेखना वडे तेभणुे साधठि लकतोनुं अनशन वडे छेदन कथुं. (छेदित्ता कालमासे कालं किच्चा सोहम्मो कप्पे देवत्ताए उव्वन्ने) छेदन कथां भाद मृत्युनेो वपत्त न्यारे आओो त्तारे तेज्जो मरणु पाभ्या अने मरणु पाभीने सौधर्म कल्पमां देवनी पर्यायथी तेज्जो उत्पन्न थया. (तत्थ णं अत्थेगइयाणं देवाणं चत्तारि पलिओवमाइं ठिई पणत्ता) त्यां डेट-लाक देवानी स्थिति थारपल्योपम प्रमाणुे नेटली छे. (तत्थ णं च धण्णस्स देवस्स चत्तारिपलिओमाइं ठिई पणत्ता) आ रीते धन्यकुमार देवनी स्थिति त्यां थार

क्षयेण स्थितिक्षयेण भवक्षयेण 'अणंतरं' अनन्तरम्-अन्तररहितं व्यवधान-
रहितं चयं=शरीरं 'चइत्ता' त्यक्त्वा महाविदेहे वासे सिञ्चिद्विद्वा जाव सव्व-
द्वेन भोत्स्यते भोक्ष्यति परिनिर्वास्यति, सर्वदुःखानामन्तं करिष्यति । मू. १३।

मूलम्— जहा णं जंबू ! धण्णेणं नो धम्मो ति वा जाव
विजयस्स तक्करस्स तओ विउलाओ असणपाणखाइमसाइमाओ
संविभागे कए, नन्नत्थ सरीरसारक्खणट्ठाए । एवामेव जंबू ! जेणं
अम्हं निग्गंथे वा निग्गंथी वा जाव पव्वइए समाणे ववगयणहा-
णुम्मइणपुप्फगंधमल्लालंकारविभूसे इमस्स ओरालियसरीरस्य नो वन्न-
हेउं वा रूवहेउंसिसयहेउं वा असणं पाणं खाइमं साइमं आहार-
माहारेइ, नन्नत्थ णाणदंसणचरित्ताणं वहणयाए, से णं इहलोए
चेव वहुणं समणाणं समणीणं सावगाण य साविगाण य अच्चणिजे
वंदणिज्ज, पूयणिज्जे, पज्जुवासणिज्जे भवइ, परलोए वि य णं नो
वहुणि हत्थच्छेयणाणि य कन्नेच्छेयणाणि य नासाच्छेयणाणि य,

पत्य की स्थिति हुई। (से णं धन्ने देवे ताओ देवलोयाओ आउक्खएणं भव
वखएणं ट्ठिइक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता महाविदेहे वासे सिञ्चिद्विद्वा जाव
सव्वदुक्खानमंतं करेद्विइ) वे धन्यदेव उस देवलोक से आयु के क्षय से,
स्थिति के क्षय से भव के क्षय से, अनंतर शरीर को छोड़कर महाविदेह
क्षेत्र में (उत्पन्न होकर वहां से सिद्ध पद प्राप्त करेंगे) यहाँ यावत् पद से
'भोत्स्यते भोक्ष्यति, परिनिर्वास्यति सर्वं दुःखानामन्तं करिष्यति' इस पाठका
संग्रह हुआ है। ॥मूत्र १३॥

पत्य लेटली थछ. (सेणं धन्ने देवे ताओ देवलोयाओ आउक्खएणं भवक्खएणं
ट्ठिइक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता महाविदेहे वासे सिञ्चिद्विद्वा जाव सव्व-
दुक्खानमंतं करेद्विइ) ते धन्यदेव ते बोद्धी आयुष्य क्षय, स्थिति क्षय अने भावना
क्षय थया पछी शरीरनेो त्याग करीने महाविदेह क्षेत्रमां उत्पन्ने । एते त्यां सिद्ध
पद भेणवथे. अह्दी 'यावत्' पद्धी 'भोत्स्य ते भोक्ष्यति, परिनिर्वास्यति सर्वदुःखा
नामन्तं करिष्यति' आ पाठनेो संग्रह थयो छे. ॥ मू. १३ ॥

एवं हियय उप्पाडणाणि य, वसणुप्पाडणाणि य, उल्लंघणाणि य
पाविहिइ, अणाइयं च णं अणवदग्गं दीहमच्चं चाउरंतसंसागकंतारं
वीइवइस्सइ जहा व से धणणे सत्थवाहे। एवं खलु जंबू! समणेणं जाव
संपत्तेणं दोच्चस्स णायज्झयस्स अयमट्ठे पणत्ते-त्तिवेमि।सू. १४।
॥ विइयं णायज्झयणं समत्तं ॥ २ ॥

टीका—‘जहाणं जंबू’ इत्यादि। ‘जहाणं’ यथा खलु=येन प्रकारेण हे
जम्बूः! धन्येन सार्थवाहेन ‘नो’ न ‘धम्मोत्ति वा’ धर्मइति वा मत्वा यावत्
‘सुइद्’ इति वा मत्वा विजयाय तस्कराय तस्माद् विपुलाद् अशनपानखा-
द्यस्वाधात् संविभागः कृतः, नान्यत्र शरीरसंरक्षणार्थाय-शरीरसंरक्षणं विहाय
अशनादि संविभागो न कृत इत्यर्थः एवमेव हे जम्बूः! यः खलु अस्माकं
निर्ग्रन्थो वा निर्ग्रन्थी वा ‘जाव’ यावत्-आचार्योपाध्यायानामन्तिके मुण्डो
भूत्वा श्रगाराद् अणगारितां प्रव्रजितः सन् ‘ववगयण्णाणुम्मदणपुप्फगंधम-

‘जहा णं जंबू!’ इत्यादि।

टीकार्थ—(जहाणं जंबू!) हे जंबू जिस प्रकार (धणणेणं सत्थवाहेणं)
धन्य सार्थवाहने (नो धम्मोत्ति वा जाव विजयस्स तक्करस्स तओ विउलाओ
असणपाणलाइमसाइमाओ संविभागं कए) धर्म नहीं मानकर यावत् मित्र
नहीं मानकर विजय तस्कर के लिये उस विपुल अशन, पान, खाद्य स्वाद्य
रूप आहार में से विभाग किया (नन्तथ शरीरसारक्खणट्ठाए) केवल
अपने शरीर की रक्षा के निमित्त। (एवामेव जंबू! जेणं अम्महं निगमथे
वा निगमंथी वा जाव पव्वइए समाणे ववगयण्णाणुम्मदणपुप्फगंधमल्लालंकार-
विभूसे) इसी तरह हे जंबू! जो हमारे निर्ग्रन्थ साधु वा निर्ग्रन्थी साध्वियां

‘जहा णं जंबू!’ इत्यादि।

टीकार्थ—(जहाणं जंबू!) हे जंबू! जेवी रीते (धणणे णं सत्थवाहेणं)
धन्यसार्थवाडे (नो धम्मोत्ति वा जाव विजयस्स तक्करस्स तओ विउलाओ
असणपाणलाइमसाइमाओ संविभागं करेइ) चोतानी इरर के चोतानो मित्र
अपुं कंधं न आधुतां विजय तस्करने भाटे विपुल अशन पान, आद्य अने स्वाद्यधु
अड्ढुमांथी भाग करी आधुओ. (नन्तथ शरीरसारक्खणट्ठाए) ते इकत्त चोतानो
शरीरनी रक्षा भाटे ए (एवामेव जंबू! जेणं अम्महं निगमथे वा निगमंथी वा
जाव पव्वइए समाणे ववगयण्णाणुम्मदणपुप्फमल्लालंकारविभूसे) आ प्रभाणे
ए जंबू हे! जेअभारा निअर्थे साधु के निअर्थे साध्वीओ आचार्य के उपाध्यायनी

क्षयेण स्थितिक्षयेण भवक्षयेण अणंतरं अनन्तरम्-अन्तररहितं व्यवधान-
रहितं चयं=शरीरं 'चइत्ता' त्यक्त्वा महाविदेहे वपे' सेत्स्यति यावत्-यावच्छ-
ब्देन भोत्स्यते भोक्ष्यति परिनिर्वास्यति, सर्वदुःखानामन्तं करिष्यति । सू. १३।

मूलम्— जहा णं जंजू ! धणणेणं नो धम्मो ति वा जाव
विजयस्स तद्धरस्स तओ विउलाओ असणपाणखाइमसाइमाओ
संविभागे कए, नन्नत्थ सरीरसारक्खणट्ठाए। एवामेव जंजू ! जेणं
अम्हं निगंथे वा निगंथी वा जाव पव्वइए समाणे ववगयणहा-
णुम्मइणपुप्फगंधमद्दालंकारविभूसे इमस्स ओरालियसरीरस्य नो वन्न-
हेउं वा रूवहेउं विसयहेउं वा असणं पाणं खाइमं साइमं आहार-
माहारेइ, नन्नत्थ णाणदंसणचरित्ताणं वहणयाए, से णं इहलोए
चेव वहूणं समणाणं समणीणं सावगाण य साविगाण य अच्चणिजे
वंदणिज्ज, पूयणिजे, पज्जुवासणिजे भवइ, परलोए वि य णं नो
वहूणि हत्थच्छेयणाणि य कन्नेच्छेयणाणि य नासाच्छेयणाणि य,

पत्य की स्थिति हुई। (से णं धन्ने देवे ताओ देवलोयाओ आउक्खएणं भव
क्खएणं ठिइक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ जाव
सव्वदुक्खणमंतं करेहिइ) वे धन्यदेव उस देवलोक से आयु के क्षय से,
स्थिति के क्षय से भव के क्षय से, अनंतर शरीर को छोड़कर महाविदेह
क्षेत्र में (उत्पन्न होकर वहां से सिद्ध पद प्राप्त करेंगे)। यहाँ यावत् पद से
'भोत्स्यते भोक्ष्यति, परिनिर्वास्यति सर्व दुःखानामन्तं करिष्यति' इस पाठका
संग्रह हुआ है। ॥सूत्र १३॥

पत्य ँटली थध. (से णं धन्ने देवे ताओ देवलोयाओ आउक्खएणं भवक्खएणं
ठिइक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ जाव सव्व-
दुक्खणमंतं करेहिइ) ते धन्यदेव ते वोइथी आयुष्य क्षय, स्थिति क्षय अने भावना
क्षय तथा पछी शरीरने त्याग करीने महाविदेह क्षेत्रमां उत्प-न एने त्यां सिद्ध
पद भेजवथे. अही 'यावत्' पदथी 'भोत्स्य ते भोक्ष्यति, परिनिर्वास्यति सर्वदुःखा
नामन्तं करिष्यति' आ पाठने संग्रह थथे छे. ॥ सू. १३ ॥

गिज्जे' अर्चनीयः=माननीयोऽभ्युत्थनादिना, वंदणिज्जे' वन्दनीयः गतियोग्यो
 गुणोःकीर्तनादिना, 'पूयणिज्जे' पूजनीयः=आदरणीयश्रवणस्पर्शादिना, 'पज्जु-
 वासणिज्जे' पयुपासनीयः=सेवनीय आहार वस्त्रपात्रादिभिर्भवति । परलोकं
 ऽपि च खलु=भवान्तरेऽपि 'वहूणि' वहूनि=वहुविधानि 'हृत्थच्छेयणाणि य'
 हृत्थच्छेदनानि=करकृन्तनानि, 'कण्णच्छेयणाणि य' कर्णच्छेदनानि च 'नासा
 छेयणाणि य' नासाच्छेदनाणि च, एवं 'हिययउप्पाडणाणि य' हृदयोत्पाट-
 नानि च=हृदयचिदारणानि 'वसणुप्पाडणाणि य' वृषणोत्पाटनानिच=अण्ड-
 कोपचिदारणानि 'उल्लंघणाणि य' उल्लंघनानि च उत=ऊर्ध्वप्रदेशे वृक्षशाखादौ
 लम्बनानि=बन्धनानि उद्वन्धनानीत्यर्थः 'नो'न 'पाविहिइ' प्राप्स्यति पूर्वोक्त-
 दुःखानि न लप्स्यतइति भावः । 'अणाइयं' अनादिकम्=आदिरहितं च खलु
 'अणवदग्गं' अनवदग्रम्=अनन्तम्, दीहमद्धं' दीर्घाध्वानं=चतुर्गतिलक्षणं दीर्घमार्गम्,

गाग य साविगाण य अचणिज्जे वंदणिज्जे; पूयणिज्जे, पज्जुवासणिज्जे
 भवइ, परलोए वि य णं नो वहूणि हृत्थच्छेयणाणि य कण्णच्छेयणाणि य ना-
 साच्छेयणाणि य एवं हिययउप्पाडणाणिय वसणुप्पाडणाणि य उल्लं-
 घणाणि य पाविहिइ) वे निर्घन्थ साधु और निर्घन्थ साध्वि या महाराज
 इस लोकमे अनेक श्रमण और श्रमणीयों के श्रावक और श्राविकाओं के
 माननीय होते हैं, वंदनीय होते हैं, पूजनीय होते हैं पयुपासनाय होते
 हैं तथा परलोकमे वे हृत्थच्छेदसे कर्णच्छेदसे, नासिकाच्छेदसे वचते हैं ।
 उनके हृदय नहीं विदारें जाते हैं, अण्डकोप उनके नहीं विदारें जाते हैं । इस
 न वे ऊर्ध्व प्रदेशरूप वृक्षादिकों की शाखा पर ही लटकाये जाते हैं । इस
 पूर्वोक्त समस्त दुःखोंसे वे परे रहते हैं । (अणाइयं च णं अणवदग्गं दी

चंदणिज्जे, पूयणिज्जे, पज्जुवासणिज्जे भवइ, परलोए वि य णं नो वहूणि
 हृत्थच्छेयणाणि य कण्णच्छेयणाणि य नासाच्छेयणाणि य एवं हिययउप्पा-
 डणाणिय वसणुप्पाडणाणि य उल्लंघणाणि य पाविहिइ) ते निर्धथ साधु अने
 निर्धथ साध्वीओ (महाराज) आ जगतमां श्रमणु अने श्रणीओना तेभज श्रावक अने
 श्राविकाओनी वच्ये सम्मान युक्त पह भेजवे छे अने तेओ वंदनीय, पूजनीय अने
 पयुपासनीय होय छे । तथा परलोकमां तेवा साधु-साध्वीओ उस्तच्छेदथी णची नथ छे ।
 तेभना हृदय अने अण्डकोपो विहीणुं करवामां आवतां नथी अने तेभने ओंया वृक्षानी
 शाखाओ उपर पणु लटकववामां आवता नथी । उपर छेडेवामां आवेलां अधां दुःखोथी
 तेओ युक्त रहे छे । (अणाइयं च णं अणवदग्गं दीहमद्धं चाउरंतसंसारकंतारं

मल्लालंकारविभूसे' व्यपगतस्नानोन्मर्दनपुष्पगन्धमाल्यालङ्कारविभूषः, तत्र-
 'व्यपगत' व्यपगता=परित्यक्ता-ह्लाणुम्मदन'स्नानम्=देवतः सर्वतो वा शरीर
 संस्काररूपम् उन्मर्दनं=तैलादिभिः शरीरसंमर्दनम् 'पुष्क' पुष्पाणि=त्रपादि-
 कुसुमानि, 'मल्ल' माल्यं=पुष्पमाला 'अलंकार' अलङ्काराणि=मणिमुक्ताद्याभ-
 णानि, तैर्विभूषा=शरीरशोभा येन स तथोक्तः-परित्यक्तस्नानादिसर्वश्रृङ्गार-
 शोभा इत्यर्थः अस्यौदारिकशरीरस्य 'चण्णहेउं वा' वर्णहेतवे=कान्त्याद्यर्थम्,
 'रुवहेउं वा' रूपहेतवे=आकृति सौन्दर्यार्थम्, 'विसयहेउं वा' विषयभोगार्थ-
 मशनं पानं खाद्यं स्वाद्यम्, एतद्रूपं चतुर्विधमाहारं 'नो' न 'आहारेड' आह-
 रति, औदारिकशरीरस्य वर्णादिनिमित्तमाहारं न करोतीति भावः 'नन्नत्थ-
 णाणदंसणचरित्ताणं वहणयाए' नान्यत्र ज्ञानदर्शनचरित्राणां वहनतायाः=
 ज्ञानादिरत्नत्रयागाधनाया अन्यत्र न, ज्ञानाद्याराधनं विहायाहारं न करोति
 किन्तु संयमयात्रानिर्वाहार्थमेव करोतीति तात्पर्यम् । सः खलु निर्ग्रन्थो वा
 निर्ग्रन्थो वा इहलोके चैव बहूनां श्रमणानां श्रमणीनां श्रावकाणां च 'अच्च-

इ वे आचार्य उपाध्याय के समीप आगारअवस्था से अनगार अवस्था
 धारण कर स्नान, उन्मर्दन, पुष्प, गन्ध, माला, अलंकार इन से शारीरिक
 शोभा करने का परित्याग कर (इमस्स ओरालियसरीरस्स नो
 वन्नहेउं वा रुवहेउं वा विसयहेउं वा असणं, पाणं, खाइमं साइमं
 आहारमाहारेइ नन्नत्थ णाणदंसण चारित्ताणं वहणयाए) इस औदारिक
 शरीर की कांति के निमित्त, आकृति की सुन्दरता के निमित्त, अथवा
 विषयभोगों को भोगने के निमित्त अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य रूप
 चतुर्विध आहार नहीं करते हैं किन्तु ज्ञान दर्शन और चारित्र को बहन
 करने के लिये करते हैं (सेणं इहलोके चैव बहूणं समणाणं समणीणं साव-

पासेथी आगार अवस्थाभांथी अनगार अवस्था धारण करीने स्नान, उन्मर्दन, पुष्प,
 गन्धमाणा घरेणुंओ वगेरेथी शरीरने शब्बुगारबुं छेडीने (इमस्स ओरालियसरी-
 रस्स नो वन्नहेउं वा रुवहेउं वा विसयहेउं वा अनणं, पाणं,
 खाइम, साइमं आहारमाहारेइ नन्नत्थ णाणदंसणचारित्ताणं वहणयाए)
 आ औदारिकसापने अंतिवाणुं णनाववा भाटे, आकृतिने सुंदर णनाववा भाटे अथवा विषय
 भोगो भोगववा भाटे अशन, पान, खाद्य अने स्वाद्यइय आ नतना आहारो करता
 नथी, पणु ज्ञान, दर्शन अने चारित्र्यनी सिद्धि भाटेअ ओओ आहार वगेरे करे छे,
 'नेणं इहलोके चैव बहूणं समणाणं समणीणं सावगाणय साविगाण य अच्चणिज्जे

गिज्जे' अर्चनीयः=माननीयोऽभ्युत्थनादिना, वंदणिज्जे' चन्दनीयः स्तुतियोग्यो गुणोत्कृतिनादिना, 'पूयणिज्जे' पूजनीयः=आदरणीयश्चरणस्पर्शादिना, 'पज्जु-वासणिज्जे' पर्युपासनीयः=सेवनीय आहार वस्त्रपात्रादिभिर्भवति । परलोकं ऽपि च खलु=भवान्तरेऽपि 'वहूणि' वहूनि=बहुविधानि 'हत्थच्छेयणाणि य' हस्तच्छेदनानि=करकृतनानि, 'कण्णच्छेयणाणि य' कर्णच्छेदनानि च 'नासाच्छेयणाणि य' नासाच्छेदनाणि च, एवं 'हिययउप्पाडणाणि य' हृदयोत्पाट-नानि च=हृदयविदारणानि 'वसणुप्पाडणाणि य' वृषणोत्पाटनानि च=अण्ड-कोपविदारणानि 'उल्लंघणाणि य' उल्लंघनानि च उत=ऊर्ध्वप्रदेशे वृक्षशाखादौ लम्बनानि=वन्धनानि उल्लंघनानोत्पर्यः 'ना'न 'पाविहिइ' प्राप्स्यति पूर्वोक्त-दुःखानि न लप्स्यतइति भावः । 'अणाइयं' अनादिकम्=आदिरहितं च खलु 'अणवदग्गं' अनवदग्रम्=अनन्तम्, दीहमद्धं' दीर्घाध्वानं=चतुर्गतिलक्षणं दीर्घमार्गम्,

गाय य साधिगाण य अचणिज्जे वंदणिज्जे; पूयणिज्जे, पज्जुवासणिज्जे भवइ, परलोए वि य णं नो वहूणि हत्थच्छेयणाणि य कण्णच्छेयणाणि य नासाच्छेयणाणि य एवं हिययउप्पाडणाणिय वसणुप्पाडणाणि य उल्लंघणाणि य पाविहिइ) वे निर्ग्रन्थ साधु और निर्ग्रन्थ साधि या महाराज इस लोकमे अनेक श्रमण और श्रमणीयो के श्रावक और श्राविकाओं के माननीय होते हैं, वंदनीय होते हैं, पूजनीय होते हैं पर्युपासनाय होते हैं तथा परलोकमे वे हस्तच्छेदसे कर्णच्छेदसे, नासिकाच्छेदसे वचते हैं । उनके हृदय नहीं विदारें जाते हैं, अंडकोप उनके नहीं विदारें जाते हैं । इस न वे उर्ध्व प्रदेशरूप वृक्षादिकों की शाखा पर ही लटकाये जाते हैं । इस पूर्वोक्त समस्त दुःस्वोंसे वे परे रहते हैं । (अणाइयं च णं अणवदग्गं दी

वंदणिज्जे, पूयणिज्जे, पज्जुवासणिज्जे भवइ, परलोए वि य णं नो वहूणि हत्थच्छेयणाणि य कण्णच्छेयणाणि य नासाच्छेयणाणि य एवं हिययउप्पाडणाणिय वसणुप्पाडणाणि य उल्लंघणाणि य पाविहिइ) ते निर्ग्रन्थ साधु अने निर्ग्रन्थ साध्वीओ (मंडारान्) आ जगतमां श्रमणु अने श्रणीओना तेमज्ज श्रावक अने श्राविकाओनी वच्चे सन्मान युक्त पद भेजये छे अने तेओ वंदनीय, पूजनीय अने पर्युपासनीय होय छे. तथा परलोकमां तेवा साधु-साध्वीओ हस्तच्छेदथी गच्छी नय छे. तेमना हृदय अने अ'उडोयो विदीधुं करवामां आवतां नथी अने तेमने ओ'या वृक्षोनी थाप्पाओ उपर पणु लटकाववामां आवता नथी. उपर उडेवामां आवेलां अधां दुःणोथी तेओ अन्न रहे छे. (अणाइयं च णं अणवदग्गं दीहमद्धं चाउरंतसंसारकंतांरं

दीर्घाद्वं वा=दीर्घकालिकम्, 'चाउरंतं संसारकंतारं' चातुरन्तं संसारकान्तारं=चातुर तं=चतुर्गतिरूपं संसार एव कान्तारं=महारण्यं, तत्र-अटवीमित्यर्थः 'वीड-वडस्सइ' व्यतिवृत्तिरूपति=व्यतिक्रमिष्यति मोक्षं यास्यतीति भावः, कथम्? यथा स धन्यः सार्थवाहः । अत्र दृष्टान्तयोजना चैवम्—

इह मनुष्यक्षेत्रं राजगृहनगररूपम्, तत्र साधुजीवो धन्यसार्थवाहस्वरूपः। शरीर शब्दादिविषयप्रवृत्तं सद्विजयचौरः। अनुपमानन्दजनकत्वेन संयमः पुत्रः। समितिगुणितपः शीलान्याभरणानि। संसारो जीर्णोद्यानम्। आसन्नरूपो भग्नकूपः। तत्र=अवसन्नपार्श्वस्थत्वादि प्रवृत्तिरूपनिकुञ्जपरिवृतो मायामृपादिरूपो मालुकाकक्षः। अष्टादशपापभेद प्रभेदाः सर्पाः। जीवशरीरयोरविभागे-

इमद्वं चाउरंतसंसारकंतारं पीडवडस्सइ जहा व से धण्णे सत्थवाहे एवं खलु जंबू। समणेणं जाव संपत्तेणं दोच्चस्स णायज्जयणस्स आयमद्वे पण्णत्ते-त्तिवेमि) ऐसे जीव ही अनादि-अनंत इस चतुर्गतिरूप दीर्घमार्ग वाली भवाटवी को उद्धारण कर देगे। जैसे धन्यसार्थवाह करेगा। इस दृष्टान्त को योजना यहां इस प्रकार करनी चाहिये। यह मनुष्य क्षेत्र राजधानी के नगर के समान है। इसमें धन्य सार्थ की तरह ये साधुरूप जीव हैं। शब्दादिरूप विषयोंमें प्रवृत्त हुआ यह शरीर विजय चौर के स्थानापन्न हैं। अनुपम आनंद का जनक होने से संयम ही यहां पुत्र है। समिति, गुणित, तप तथा शील ये सब आभरण हैं। जीर्ण उद्यान की तरह यह संसार है। आसन्नही इसमें जीर्णरूप जैसा है। अवसन्न पासस्थ आदिकों की प्रवृत्तिरूप निकुञ्ज से परिवृत हुआ मायामृपादिरूप मालुका कक्ष है। इसमें १८ पापस्थान के भेद प्रभेद ही सर्प हैं। जीव और शरीर का अविभाग

वीडवडस्स जहा व से धण्णे सत्थवाहे एवं खलु जंबू! समणेणं जाव संपत्तेणं दोच्चस्स णायज्जयणस्स आयमद्वे पण्णत्ते त्तिवेमि) जेवा एवे व अनादि अनंत इय चतुर्गतिना दीर्घमार्गवाणा भवाटवीने ज्ञानांशे जेम के धन्य सार्थवाह पोताना सदायरक्षुथी सिद्धि भेजणसे. आ दृष्टांत अडीं आरीते रत्न करवामां आवे छे—
आ मनुष्य जगत पाटनगर जेवुं छे आ जगतमां धन्यसार्थवाहनी जेम साधु-इय एवे छे. शब्द वगेरे विषयोमां प्रवृत्त यतुं शरीर विजय चौरनी जेम छे. उत्तम सुभ आपनार डोवा अद्व संधम व आ मनुष्य जगत माटे पुत्रइय छे. समिति, गुणित, तप तेमज शील आ अथा आसन्नो छे. जगत एव उद्यान जेवुं छे. आ जगत आसन्नधर्मो छे ते व एवो इवे छे. अवसन्न, पासस्थ वगेरेनी प्रवृत्तिइय निकुञ्जथी वीटणायेवो मय्यामृपावगेरे इय-मालुकाकक्ष छे आमां अदार पापस्थानोमां लेह अने उपशेह व साप छे. एव अने शरीरतुं अविभाज्य इये - 14 छे

नावस्थानं इडिवन्धनम्, कर्मपरिणामो भूपः कर्मप्रकृतयो राजपुरुषाः, मनु-
प्यायुष्कवन्धहेतवः स्वल्पापराधाः, प्रतिलेखनादि क्रिया मलमूत्रपरित्यागरूपाः,
प्रतिलेखनादि क्रियार्थं हि शरीरं प्रवर्तते, तच्चाऽऽहारादिदानं विना प्रवर्तितुं
न प्रभवति, अतो विजयचौरस्थानीयस्य शरीरस्याऽऽहारादिदानं प्रतिलेखनादि
क्रियार्थमेवेति । पन्थकदासचेदकरस्थानीयः—प्रकृतिभद्रकः साधुः । यतः—स
भक्तादिकमानीय ददाति । भद्रासार्थवाहीरूपा आचार्याः । ते हि आहारा-
दिभिः शरीरपोषणपरं साधुमुपालम्भयन्ति, तदा साधुर्भोजनकारणं क्षुधावे-

रूप से जो अवस्थान है वही हृडिवन्धन है । कर्मपरिणाम राजा और
कर्म की प्रकृतियां राजपुरुष हैं । स्वल्प अपराध मनुष्यायु के बंध के हेतु
है मलमूत्र परित्यागरूप प्रति लेखनादि क्रियाएँ हैं । प्रतिलेखनादि क्रिया
करनेके लिये शरीर ही प्रवर्तित होता है । परन्तु जबतक इसे आहारादि
न दिया जाय तबतक इसकी प्रवृत्ति उनके करने के लिये नहीं हो सकती
है । इस लिये विजयचौर के स्थानापन्न इस शरीर को जो आहारादि का
देना होता है वह उससे प्रतिलेखनादि क्रिया कराने के लिये ही होता
है । पन्थदासचेदक के जैसा प्रकृति से भद्र परिणाम वाला साधुजन है ।
क्यों कि वह भक्तादि लाकर देता है । भद्रा सार्थवाही की तरह आचार्य
महाराज है । क्योंकि वे आहारादिद्वारा शरीर के पोषणमें तत्पर हुए
साधुओंको उपालम्भ—उलहना देते हैं । उस समय साधुजन इसका कारण

बेज 'हुडिवन्धन' छे. अहीं कर्मंतुं परिष्णाम शान्त अने कर्मनी प्रकृतिओ राजपुरुष छे.
स्वल्प अपराध मनुष्यना आयुष्यना अंधनो हेतु छे. भणभूत्र परित्यागइय प्रतिले-
खना वगेरे क्रियाओ छे. शरीर ज प्रतिलेखना वगेरे क्रियाओ करवा माटे प्रवृत्त थाय
छे. पण जयां सुधी आ शरीरने आहार वगेरे अपातो नथी त्यां सुधी आ शरीर
भणभूत्रना त्याग माटे प्रवृत्त थतुं नथी. विजयचौरना स्थाने भूझाओला आ शरीरने
जे आहार वगेरे आपनामां आवे छे, ते प्रतिलेखना वगेरे क्रियाओ कराववा माटे
ज आपनामां आवे छे. पांथकदास चेटक जेवो उत्तम स्वभाववाणो भाषुस साधुज-
नना स्थाने भूझी शक्य. डेमके ते लोअन वगेरे लाचीने आपे छे. लद्रा सार्थवा-
वाहीनी जेम आचार्य महाराज छे. डेमके तेओ आहार वगेरेथी पीताना शरीरने
पुष्ट पनावनारा साधुओने उपालंल (उपकी) आवे छे. ते वधते साधुओ आहारतुं
करषुक्षुधा (भूष) वेदनाथी निवृत्ति अतावे छे त्यारे तेओ (आचार्य) संतुष्ट थथं नथ
छे. संथम यात्राना निवांड माटे चेटवे डे संथमथी एवन चत्तार करवा माटे ज साधुओ
आहार करे छे. आ प्रभावे संपूर्ण पील अध्ययननो आ निष्कर्षा इपे अर्थ स्पष्ट

नादि निवेदयति, एवं निवेदितेसंन्याचार्याः परितुष्टा भवन्ति, साधवः संन-
मयात्रा निर्वाहार्थमेतद्गारं कुर्वन्तीति समप्राध्ययनस्य निष्कृत्योऽर्थः ।

एवं खलु हे जम्बू ! श्रमणेन भगवता यावत् मोक्षं सम्पाप्तेन द्वितीयस्य=
संघाटाख्यस्य ज्ञाताध्ययनस्यायमर्थः प्रज्ञप्तः 'त्तिवेमि' इति त्रयीमि, पूर्ववत् । सू. १४।

इति श्री विश्वविरुयात-जगद्वल्लभ-प्रसिद्धवाचकपठचदशा भाषाक-
लितललितकलापालापरु-प्रविशुद्धगद्यपद्यनैकग्रन्थनिर्मापक-
वादिमानमर्दकक श्री शाहूच्छत्रपति कोल्हापुर राजप्रदत्त-'जैन-
शास्त्राचार्यपदभूषित-कोल्हापुरराजगुरु-बालल्लत्र
चारी-जैनाचार्य-जैनधर्मद्विवाकरपूज्यश्री-
घासीलालत्रतिविरचितायां 'ज्ञाताधर्मकथाङ्ग'

सूत्ररूपानगारधर्माभृतवर्षिण्या-

ख्यां व्याख्यायां द्वितीय-

मध्यमने सम्पूर्णम् । २ ।

क्षुधा वेदना आदि हैं' ऐसा जब कह देते हैं तो वे संतुष्ट हो जाते हैं ।
संनम यात्रा के निर्वाह के लिये ही साधुजन आहार करते हैं । इस
प्रकार उस समग्र अध्ययन का यह निष्कर्षार्थ निकलता है ।

इस तरह हे जम्बू ! मोक्षमे संप्राप्त हुए श्रमण भगवान महावीरने
संघाटाख्य ज्ञाताध्ययन का यह अर्थ प्ररूपित किया है ऐसा मैं कहता हूँ ।
“त्तिवेमि” इन पदों की व्याख्या पहिले अध्ययनमे की ही जा चुकी है ।

अतः यहाँ नहीं की गई है । “सूत्र १४”

जैनाचार्य-जैनधर्मद्विवाकर पूज्यश्री-घासीलालजी महाराजकृत 'ज्ञाताध-
र्मकथाङ्ग सूत्र' की अनगारधर्माभृतवर्षिणी व्याख्याका
दूसरा अध्ययन समाप्त ॥ २ ॥

करवायां आये। छे.

आ शीते छे जम्बू ! मोक्षमां संप्राप्त थयेला श्रमणु भगवान महावीरे संघाटा-प्य
ज्ञाताध्ययनने उपर लप्या मुज्ज अर्थ जताये छे. आ हुं तने कहुं छे. 'त्तिवेमि'
आ पढोनी व्याख्या प्रथम अध्ययनमां करवांमां आवी छे. ॥ सूत्र १४ ॥

जैनाचार्य-जैनधर्मद्विवाकर पूज्यश्री-घासीलालजी महाराजकृत

'ज्ञाताधर्मकथाङ्ग सूत्र, नी अनगारधर्माभृतवर्षिणी व्याख्या

तुं भीखुं अध्ययन समाप्त ॥ २ ॥

तृतीयाध्ययनमारभ्यते.

द्वितीयाध्ययने विषयकपायादावासक्तस्य दोषा, अनासक्तस्य गुणा उपदिष्टास्तेन चारित्रशुद्धिः कर्तव्येति प्रतिबोधयितुम्, अथास्मिन्नध्ययने सशङ्कनिःशङ्कयोर्दोषगुणा उपदिश्यन्ते, तेन संयमशुद्धिकारणीभूत—सम्यक्त्वशुद्धिं कर्तव्यतया प्रतिबोधयति, तत्रेदं सुपक्षेपसूत्रमाह—

मूलम्—जड्गणं भन्ते ! समणे णं भगवया महावीरेणं विड्यय अज्झपणस्स णायाधम्मकहाणं अयमट्ठे पन्नत्ते, तइअस्स णं भन्ते णायज्झयणस्स के अट्ठे पणत्ते ? ॥सू. १ ॥

टीका—‘जड्गणं भन्ते !’ इत्यादि

यदि खलु भदन्त ! श्रमणेन भगवता महावीरेण द्वितीयस्याध्ययनस्य ज्ञाताधर्मकथानामयमर्थः प्रज्ञप्तः, तृतीयस्य खलु भदन्त ! ज्ञाताध्ययनस्य कोऽर्थः प्रज्ञप्तः ? । सर्वं सुगमम् ॥सूत्र १ ॥

तीसरा अध्ययन प्रारंभ

द्वितीय अध्ययनमें, विषय कपाय आदि में आसक्त हुए व्यक्ति के दोष तथा उनमें आसक्त हुए व्यक्ति के गुण उपदिष्ट हुए हैं । इससे वहां यही समझाया है कि चारित्र की शुद्धि अवश्य ही करनी चाहिये अब इस तृतीय अध्ययनमें जो शंका सहित है और जो शंका रहित है उन दोनों के दोष और गुण कहते हैं । इससे संयम की शुद्धिमें कारणीभूत जो सम्यक्त्व की शुद्धि है वह कर्तव्य है यह वान प्रतिबोधित होती है । यह बात यहां सूत्रकार समझाते हैं—इसके लिये वे इस आरंभ बोधक सूत्र को कहते हैं—जड्गणं भन्ते ! इत्यादि

तृतीय अध्ययन प्रारंभ

धीन अध्ययनमां विषयकपाय वर्गेरेमां आसक्त थयेला भाणुसना दोषो तेमज्ज असक्त थयेला भाणुसना शुद्धो णताववामां आव्या छे आ रीते धीन अध्ययनमां सुप्यइपे जेज्ज वात समणववामां आवी छे के चारित्रिनी शुद्धि चोक्कस करवी जेठजे. आ धीन अध्ययनमां जे भाणुसो शंकाशील अथवा शंका रहित छे, ते भन्तेना शुद्धो कडेवामां आव्या छे. जेथी संयमनी शुद्धि भाटे कारणुइपे जे सम्यक्त्वनी शुद्धि छे ते ज्ज कर्तव्य छे, आ वात समणव छे. सूत्रकार अड्डीं जेज्ज वात समणवे छे. तेज्जो समणवतां आरंभ बोधक पडेज्जुं सूत्र कडे छे—जड्गणं भन्ते ! इत्यादि ।

नादि निवेदयति. एवं निवेदितेसन्त्याचार्याः परितुष्टा भवन्ति, साधवः संय-
मयात्रा निर्वाहार्थमेतद्धारं कुर्वन्तीति समग्राध्ययनस्य निष्कृतोऽर्थः ।

एवं खलु हे जम्बू ! श्रमणेन भगवता यावत् मोक्षां सम्पाप्तेन द्वितीयस्य-
संघाटाख्यस्य ज्ञाताध्ययनस्यायमर्थः प्रज्ञप्तः 'त्तिवेमि' इति त्रयीमि, पूर्ववत् ॥ १४ ॥

इति श्री विन्धविरुधात-जगद्वल्लभ-प्रसिद्धवाचरूपठचदशा भाषाक-
द्वितिललितकलापालापरक-प्रविशुद्धगद्यपद्यनैकग्रन्थनिर्मापर-
वादिमानमर्दकक श्री शाहच्छापरि कोल्हापुर राजप्रदस-जैन-
शास्त्राचार्यपदभूषित-कोल्हापुरराजगुरु-बालह्वत्र
चारी-जैनाचार्य-जैनधर्मद्विवाकरपूज्यश्री-
घासीलालव्रतिविरचितायां 'ज्ञाताधर्मकथासूत्र'
सूत्रखण्डानगरधर्माभूतवर्षिण्या-
ख्यां व्याख्यायां द्वितीय-
मध्ययनं सम्पूर्णम् ॥ २ ॥

ध्रुवा वेदना आदि हैं' ऐसा जब कह देते हैं तो वे संतुष्ट हो जाते हैं।
संयम यात्रा के निर्वाह के लिये ही साधुजन आदार करते हैं। इस
प्रकार उस समग्र अध्ययन का यह निष्कर्ष निकलता है।

इस तरह हे जम्बू ! मोक्षमे संप्राप्त हुए श्रमण भगवान महावीरने
संघाटाख्य ज्ञाताध्ययन का यह अर्थ प्ररूपित किया है ऐसा मैं कहता हूँ।
'त्तिवेमि' इन पदों की व्याख्या पहिले अध्ययनमे की ही जा चुकी है।
अतः यहाँ नहीं की गई है। "सूत्र १४"

जैनाचार्य-जैनधर्मद्विवाकर पूज्यश्री-घासीलालजी महाराजकृत 'ज्ञाताध-
र्मकथासूत्र' की अनगरधर्माभूतवर्षिणी व्याख्याका
दूसरा अध्ययन समाप्त ॥ २ ॥

करवाभां आव्ये छि.

आ रीते छे जम्बू ! मोक्षमां संप्राप्त थयेला श्रमणु भगवान महावीरे संघाटाख्य
ज्ञाताध्ययनने उपर लख्या सुजण अर्थ भताव्ये छे. आ हुं तने कहुं छुं. 'त्तिवेमि'
आ पढोनी व्याख्या प्रथम अध्ययनमां करवांमां आवी छे. ॥ सूत्र १४ ॥

जैनाचार्य-जैनधर्मद्विवाकर पूज्यश्री-घासीलालजी महाराज कृत
'ज्ञाताधर्मकथासूत्र' की अनगरधर्माभूतवर्षिणी व्याख्या
दुं थीसुं अध्ययन समाप्त ॥ २ ॥

नगर्यां वहिहृत्तरपौरस्त्वे दिग्भागे सुभूमिभागं नामोद्यानमासीत् तत्
 कीदृशमित्याह—‘सन्वोउयपुष्पफलसमिद्धे’ : सर्वैर्तूकपुष्पफलसमृद्धम्—
 चसन्तादिवद्भृत्तुननितपुष्पफलादिसम्पन्नम्, सुरम्यम्—अतिशयरमणीयं,
 नन्दनवनवत् ‘सुहसुरभिस्त्रीयलच्छायाए’ शुभसुरभि—शीतलछायाया—तत्र
 ‘सुह’ शुभा—शोभना ‘सुरभि’ मुग्ग्धिः ‘स्त्रीयलं’ शीतला च या छाया
 तथा ‘समणुवद्धे’ समणुवद्धम्—युक्तम्, तस्य खलु सुभूमिभागस्योद्यानस्य
 ‘उत्तरओ’ उत्तरतः—उत्तरदिशायामित्यर्थः ‘एग देसंमि, एकदेशे—एकस्मिन्

‘एवं खलु जंजू ! तेणं कालेणं इत्यादि ।

टीकार्थ—(जंजू ! एवं खलु) हे जंजू ! तुम्हारे प्रश्न का उत्तर इस
 प्रकार है—(तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपा नामं नयरी होत्था) उस कालमें उस
 समयमें चंपा नामकी नगरी थी (वन्नओ) इसका वर्णन पहिले किया जा
 चुका है । (तीसेणं चंपाए नयरीए वहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसिभाए सु-
 भूमिभाए नामं उज्जाणे होत्था) उस चंपा नगरी के बाहर ईशान कोणमें
 सुभूमिभाग नामका उद्यान था । (सन्वोउय पुष्पफलसमिद्धे सुरम्ये नदणवणे
 इव) यह समस्त ऋतुओं की शोभासे समृद्ध था—आर्थात् समस्त ऋतु
 संवन्धी फलपुष्पादिकों से यह सम्पन्न था. अतिशय रमणीय था । नन्दन-
 वन के समान यह (सुहसुरभि स्त्रीयलच्छायाए समणुवद्धे) शुभ, सुरभि
 और शीतल छायासे युक्त था । (तस्स णं सुभूमिभागस्स उज्जाणस्स
 उत्तरओ एगदेसंमि मालुयाकच्छए वन्नओ) उस सुभूमिभाग उद्यान की

‘एवं खलु जंजू ! तेणं कालेणं’ इत्यादि ॥

टीकार्थ—(जंजू ! एवं खलु) जंजू ! तभाश प्रश्नने जवाण आ प्रभाणु छे—(तेणं-
 कालेणं तेणं समएणं चंपा नामं नयरी होत्था) ते क्षणे अने ते सभये चंपा नामे
 नगरी छती. (वन्नओ) ते नगरीतुं वर्णन पहिले करवाभां आण्युं छे.
 (तीसेणं चंपाए नयरीए वहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसिभाए सुभूमिभाए नामं
 उज्जाणे होत्था) ते चंपानगरीनी णडार ईशान कोणुमां सुभूमिभाग नामे उद्यान छते।
 (सन्वोउयपुष्पफलसमिद्धे सुरम्ये नदणवणे इव) ते उद्यानसभस्तऋतुओनी
 शोभाथी युक्त छतुं अटवे के अधी ऋतुओनां इणे अने पुष्पोथी ते सम्पन्न छतुं
 अने ते णडु ज रमणीय छतुं. नन्दन वननी जेम ते (सुहसुरभिस्त्रीयलच्छायाए
 समणुवद्धे) शुभ सुरभि अने शीतल छायावाणुं छतुं. (तस्स णं सुभूमिभागस्स उज्जा-
 णस्स उत्तरओ एगदेसंमि मालुयाकच्छए वन्नओ) ते सुभूमि भाग उद्याननी
 उत्तर दिशाअे अेके तरङ्ग मालुका कच्छनाअे वन छतुं. ते मालुका कच्छनुं वर्णन

सुधर्मास्वामी जम्बू स्वामिनमाह—'एवं खलु जम्बू इत्यादि—

मूलम्—एव खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समणं चपा-

नामं नयरी होत्था वन्नओ, तीसेणं चपाए नयरीए वहिया उत्तर
पुरत्थिमे दिसिभाए सुभूमिभाए नामं उज्जाणे होत्था, सब्बोउय
पुप्फफलसमिद्धे सुरम्मे नंदणवणे इव सुह सुरभिसीयलच्छायाए
समणुवद्धे, तस्स णं सुभूमिभागस्स उज्जाणस्स उत्तरओ एगदेसंमि
मालुया कच्छए वन्नओ, तत्थ णं एगा वणमउरी दो पुट्टे परि-
यागये पिड्डुडी पंडुरे निव्वणे निरुवहए भिन्नमुट्ठिप्पमाणे मउरी
अंडए पसवइ पसवित्ता सएणं पक्खवाएणं सारक्खमाणी संगो-
वमाणी संविट्ठेमाणी विहरइ ॥ सू. २ ॥

'एवं खलु जम्बूः, इत्यादि

टीका—तस्मिन् काले तस्मिन् समये चम्पानाम नगरी आसीत्,
वर्णकः=वर्णनग्रन्थः चम्पानगर्या वणनं प्रागुक्तम्, 'तीसेणं' तस्याश्चम्पाया

टीकार्थ—(भंते) हे भदंत (जइणं समणेणं भगवया महावीरेणं) यदि
श्रमण भगवान महावीरने (ण्हायाधम्मकहाणं विइय अज्झयणस्स) ज्ञाता धर्म
कथा के द्वितीय अध्ययन का (अयमट्ठे पण्णत्ते) यह भाव-अर्थ प्ररूपित
किया है तो (तइअस्स णं भंते ! णायज्झयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते) तृतीय
ज्ञाताध्ययन का क्या अर्थ प्रकट किया है। इस प्रकार जंबू स्वामी की
वात सुनकर सुधर्मा स्वामीने उनसे कहा कि—“ सू. १ ”

टीकाथ—(भंते) हे भदंत ! (जइणं समणेणं भगवया महावीरेणं
श्रमणु भगवान महावीरे (ण्हायाधम्मकहाणं विइयअज्झयणस्स) ज्ञाता धर्म
इथाना पीत्त अध्ययनने (अयमट्ठे पण्णत्ते) आ भाव-अर्थ निरूपित कथो छे, तो
(तइअस्स णं भंते ! णायज्झयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते) त्रीत्त ज्ञाता अध्ययनने
शो अर्थ जताव्थो छे ? आ रीते जंबू स्वामीनी वात सांख्यीने सुधर्मास्वामीने
तेभने कलु-के प्रसूद ॥

नगर्यां बहिहत्तरपौरस्थे दिग्भागे सुभूमिभागं नामोद्यानमासीत् तत्
 कीदृशमित्याह—‘सर्वोऽयपुष्पफलसमिद्धे’ : सर्वैर्तू र्पुष्पफलसमृद्धम्—
 चसन्तादिबहुऋतुजनितपुष्पफलादिसम्पन्नम्, सुरम्यम्—अतिशयरमणीयं,
 नन्दनवनवत् ‘सुहसुरभिसीयलच्छायाए’ शुभसुरभि-शीतलछायाया-तत्र
 ‘सुह’ शुभा-शोभना ‘सुरभि’ मृगन्धिः ‘सीयलं’ शीतला च या छाया
 तथा ‘समणुवद्धे’ समणुवद्धम्-युक्तम्, तस्य खलु सुभूमिभागस्योद्यानस्य
 ‘उत्तरओ’ उत्तरतः—उत्तरदिशायामित्यर्थः ‘एग देसंमि, एकदेशे—एकस्मिन्

‘एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं इत्यादि ।

टीकार्थ—(जंबू ! एवं खलु) हे जंबू ! तुम्हारे प्रश्न का उत्तर इस
 प्रकार है—(तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपा नामं नयरी होत्था) उस कालमें उस
 समयमें चंपा नामकी नगरी थी (वन्नओ) इसका वर्णन पहिले किया जा
 चुका है। (तीसेणं चंपाए नयरीए बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसिभाए सु-
 भूमिभाए नामं उज्जाणे होत्था) उस चंपा नगरी के बाहर ईशान कोणमें
 सुभूमिभाग नामका उद्यान था। (सर्वोऽयपुष्पफलसमिद्धे सुरम्ये नदणवणे
 इव) यह समस्त ऋतुओं की शोभासे समृद्ध था—अर्थात् समस्त ऋतु
 संबन्धी फलपुष्पादिकों से यह सम्पन्न था। अतिशय रमणीय था। नन्दन-
 वन के समान यह (सुहसुरभि सीयलच्छायाए समणुवद्धे) शुभ, सुरभि
 और शीतल छायासे युक्त था। (तस्स णं सुभूमिभागस्स उज्जाणस्स
 उत्तरओ एगदेसंमि मालुयाकच्छए वन्नओ) उस सुभूमिभाग उद्यान की

‘एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं’ इत्यादि ॥

टीकार्थ—(जंबू ! एवं खलु) जंबू ! तमारा प्रश्नो जवाब आ प्रमाणे छे—(तेणं-
 कालेणं तेणं समएणं चंपा नामं नयरी होत्था) ते कालेअने ते समये चंपा नामे
 नगरी छती. (वन्नओ) ते नगरीतुं वर्णन पहिलां करवाभां आव्युं छे.
 (तीसेणं चंपाए नयरीए बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसिभाए सुभूमिभाए नामं
 उज्जाणे होत्था) ते चंपानगरीनी णडार ईशान कोणुमां सुभूमिभाग नामे उद्यान छते।
 (सर्वोऽयपुष्पफलसमिद्धे सुरम्ये नदणवणे इव) ते उद्यानसमस्त ऋतुओनी
 शोभाथी युक्त छतुं अट्ठे के अधी ऋतुओनां इयोअने पुष्पोथी ते सम्पन्न छतुं
 अने ते णडु ज रमणीय छतुं. नन्दन वननी जेम ते (सुहसुरभिसीयलच्छायाए
 समणुवद्धे) शुभ सुरभि अने शीतल छायावाणुं छतुं. (तस्स णं सुभूमिभागस्स उज्जा-
 णस्स उत्तरओ एगदेसंमि मालुयाकच्छए वन्नओ) ते सुभूमि भाग उद्याननी
 उत्तर दिशाअे अेक तरफ मालुका कच्छनामे वन छतुं. ते मालुका कच्छनुं वर्णन

भागे मालुकाकक्षकः आसीत्, वर्णकः वर्णनः=मालुकाकक्षकस्य वर्णन-
मत्रैव द्वितीयाध्ययनेऽभिहितम् ।

‘तत्थ णं तत्र खलु एका वनमयूरी द्वे-दिसंख्यके ‘पुट्टे’ पुट्टे-वदिते
‘परियागए’ पर्यायागते-पर्यायेण प्रवृत्तिकालक्रमेण आगते प्रवृत्तिकालमाप्ते
इत्यर्थः, परियागए-इत्यत्र यकारलोपः प्राकृतत्वात् ‘पिट्टुंठी पंडुरे’
पिट्टोण्ठी पाण्डुरे तत्र-‘पिट्ट’ पिट्टस्य-ताण्डुलचूर्णस्य ‘उंडी’ पिण्डो तद्वत्
पाण्डुरे धवले ये ते तथा ‘निव्वणे’ निर्व्रणे-क्षतरहिते ‘निरुवहते-उपद्रव
-रहिते ‘भिन्नमुट्टिपमाणे’ भिन्नमुट्टिपमाणे तत्र ‘भिन्नं’ भिन्ना मध्यरिक्ता
या मुट्टिः सा प्रमाणं ययोस्ते तथा ‘मऊरी अंडए’ मयूराण्डके मयूरी
त्पादके अंडे ‘पसवइ’ प्रसृते-जनयति, प्रसूय-जनयित्वा ‘सएणं’ पक्व
वाएण’ स्वकेन पक्षपातेन अण्डोपरि स्वकीयपक्षाच्छादनेन ‘सारक्खमाणी’

उत्तर दिशामें एक ओर मालुक कच्छनाम का वन था । इस मालुका कच्छ
का वर्णन इसी शास्त्र के द्वितीय अध्ययनमें किया जा चुका है । (तत्थ
णं एगा वणमऊरी दो पुट्टे मऊरी अंडए पसवइ परियागए) उस कक्षकमें एक
वन मयूरी ने दो पुट्ट मयूर उत्पादक अंड उत्पन्न किये । ये दोनों अंडे
उसने भिन्न भिन्न समयमें अर्थात् एक पहिले और एक दूसरा उमके
उसी समय बादमें प्रसुन किये थे । (पिंडुंठी पंडुरे) ये दोनों ही तंदुल
चूर्ण को पिठी-पिण्डी-के समान धवले थे । (निव्वणे निरुवहये भिन्न
मुट्टिपमाणे) बिना किसी क्षत के थे । उपद्रव रहित थे । और मध्यरिक्त
पौरो मुट्टि के बराबर थे । (पसवित्ता सएणं पक्ववाएण सारक्खमाणी
संगोचमाणी सवड्डेमाणी विहरइ) पसव करके उसने उन दोनों मयू-
रोत्पादक अंडों की अपने पंखों के द्वारा आच्छादन करके अर्थात् उन
दोनों अंडों को अपने पंखों के नीचे रख और उन पर पंखों को पसार

जाता सूत्रना भीज अध्ययनमां करवामां आबुं छे. (तत्थगएगा वणमऊरी दो-
पुट्टे मऊरीअंडए पसवइ परियागए) ते मालुका कक्षमां अेक वननीडेवे जे सुडोण
भोरिने उत्पन्नकरनासो जेवा जे धंअ भूझ्यां आ धंअ तेजे अेक पछी सुने अेटवे डे
अेक पडेलां जेम लुद लुद वणते भूझ्यांइतां. (पिट्टुंठी पंडुरे) जने धंअो जेवा जेथाना
दोटना पींउनी जेम धोणा इता. (निव्वणे निरुवहये भिन्नमुट्टिपमाणे) ते जने
धंअो क्षत वगरना, उपद्रव रहित जने वच्चे पोली भूडीनी जराजर इता.
(पसवित्ता सएणं पक्ववाएणं) सारक्खमाणी संगोचमाणी सवडेमाणी विहरइ)
धंअं भूझ्या जाद जने भयुरोत्पादक तेडेवे पांजो प्रसारीने जने पांजोथी

संरक्षन्ती रक्षां कुर्वन्ती, 'संगोवेमाणी' संगोपायन्तो-उपद्रवतः परिरक्षन्ती 'संठे-
माणी' सम्वेष्टयन्ती पोषयन्ती समन्तात् पक्षीराट्टत्य वर्धयन्ती विहरति । सू. २ ।

मूलम्—तत्थणं चंपाए नयरीए दुवे सत्थवाहदारगा परि-
वसंति तं जहा—जिनदत्तपुत्ते य सागरदत्तपुत्ते य सह जायया सहवड्ढिय-
यया सहपंसुकीलियया सहदारदरिसी अन्नमन्नमणुरत्तया अन्नमन्नमणु-
व्वयया अन्नमन्नच्छंदाणुवत्तया अन्नमन्नहियइच्छियकारया अन्नम-
न्नेसु गिहेसु किच्चाइं करणिजाइं पच्चणुभवमाणा विहरंति ॥ सू. ३ ॥

'तत्थणं' इत्यादि,

टीका—तत्र खलु चम्पायां नगर्यां द्वौ सार्थवाहदारकौ परिवसतः तद्यथा
—जिनदत्तपुत्रश्च सागरदत्तपुत्रश्च, तौ विशेषयति 'सहजायया' सहजातकौ
—समानजन्मकालत्वात् 'सह वड्ढियया' सहवद्धितकौ—सार्धमेव दृष्टिमुपगतत्वात्
'सहपंसुकीलियया' सह पांशुकीडितकौ समानकाले बूली क्रीडाकरत्वात्
'सहदारदरिसी' सहद्वारदर्शिनीं सह द्वारदर्शिनीं सह सार्धमेव परस्परं
गृहयोर्द्वारि दृष्टुं शीलं ययोः तौ तथा—सहदारदर्शिनी—इति छायापक्षे
समानकालकृतविवाहौ 'अन्नमन्नमणुरयया' अन्योऽन्यमनुरक्तकौ—पर-

कर रक्षा कौ—उपद्रवौ से उन्हे वचाया चारों तरफ से उन्हे पंखों से
आवृत कर उनका पोषण क्रिया ॥ सू. २ ॥

टीकार्थ—(तत्थणं चंपाए नयरीए) उस चंपा नामकी नगरीमें (दुवे सत्थ-
वाहदारगा परिवसंति) दो सार्थवाह दारक रहते थे । (तं जहा) वे ये
है—(जिनदत्तपुत्ते य सागरदत्तपुत्ते य) एक जिनदत्त का पुत्र दूसरा
सागरदत्त का पुत्र (सहजायया सहवड्ढियया सहपंसुकीलियया सहदार-
दरिसी अन्नमन्नमणुरत्तया अण्णमन्नमणुव्वयया अण्णमन्नच्छंदाणुवत्तया

ढांडीने तेमनी रक्षा करी. उपद्रवोथी ध'अंने अथाव्यां; थोमेर ध'अंने पांजोथी ढांडीने-
थावृत्त करीने—तेव्वात्तुं पोषणुं कथुं. ॥ सूत्र २ ॥

'तत्थणं चंपाए नयरीए' इत्यादि ।

टीकार्थ—(तत्थणं चंपाए नयरीए) ते चंपा नामे नगरीमां (दुवे सत्थ-
वाहदारगा परिवसंति) ये सार्थवाह दारके (पुत्रे) रहता हता. (तं जहा)
तेव्वा आ प्रभाणुं छे—(जिनदत्तपुत्ते य सागरदत्तपुत्ते य) अेक जिनदत्तने
पुत्र अने धीने सागरदत्तने पुत्र (सह जायया सह वड्ढियया सह पुंसकीलियया
सहदारदरिसी अन्नमन्नमणुरत्तया अण्णमन्नमणुव्वयया अण्णमन्नच्छंदाणुव-

स्परं स्नेहयन्तौ 'अन्नमन्नमनुवायया' अन्योऽन्यानुव्रजकौ-परस्परानुगामिनौ
 'अन्नमन्नच्छंदाणुयत्तया' अन्योऽन्यच्छन्दानुवर्तकौ-परस्पराभिप्रायानुव-
 तिनौ 'अन्नमन्नद्वियश्छिद्यकारया अन्योऽन्यद्व्ययेमितकारकौ परस्पर
 चिन्तानुकूलकारिणौ 'अन्नमन्नेषु गिहेषु अन्योऽन्यगृहयोः 'किञ्चाइं करणि-
 ज्जाइं' कृत्यानि करणीयानि कृत्यानि=उचितकार्याणि, करणीयानि=आइयर्त्न-
 व्यानि गृहसंघन्धीनि 'पचणुभवमाणे' प्रत्यनुभवन्तौ कुर्वन्तौ विहरतः । मृ. ३।
 मूलम्— तए णं तेसि सत्थवाहदारगाणं अन्नया
 कयाइं एगयओ सहियाणं समुवागयाणं सन्नि सन्नाणं सन्निविट्ठणं
 इमेयारूवे मिहो कहासमुल्लावे समुप्पज्जित्था जं णं देवाणुप्पिया!
 अहं सुहं वा दुक्खं वा पव्वज्जावा विदेसगमणं वा समुप्पज्जइ-

अन्नमन्नद्वियश्छिद्यकारया अन्नमन्नेषु गिहेषु किञ्चाइं करणिज्जाइं पचणु-
 भवमाणा विहरन्ति) ये दोनों एक साथ ही उत्पन्न हुए थे । एक साथ
 ही बड़े हुए थे । साथ ही साथ खेले कूदे थे । साथ ही साथ इन दोनों
 का विश्रुत हुआ था । अतः इन्हीं सब बातों को लेकर इन दोनों का
 आपसमें बड़ा अधिक स्नेह था । जहाँ कहीं भी एक जाता था तो दूसरा
 भी उमके साथ जाता था । कोई किसी की इच्छा के विरुद्ध काम नहीं
 करता था अर्थात् ये दोनों परस्परमें एक दूसरे के अभिप्रायानुसार वर्तन
 करते थे । परस्परमें ये दोनों एक दूसरे के चित्त के अनुकूल हो प्रवृत्ति
 क्रिया करते थे । यहाँ तक इन दोनों के स्नेह की अनुवृत्ति बड़ा
 हुई थी कि ये आपस में एक दूसरे के घरके करने योग्य कार्यों को
 भी कर दिया करते थे । मृ. ३ ॥

नया अन्नमन्नद्वियश्छिद्यकारया अन्नमन्नेषु गिहेषु किञ्चाइं करणि-
 ज्जाइं पचणुभवमाणा विहरन्ति) ते अने ऐकी साथे जन्म्या हुता. ऐकी साथे
 मोटा थया हुता, अने ऐकी साथे रम्या हुता. तेज्यो अनेनां लज्ज पणु साथे साथे ज
 थया हुता. आ अधी वातोने लीधि ते अनेमां ऐक पील्ल उपर पणुज्ज प्रेम हुतो
 गमे त्यां ऐकने ज्वातु डोय त्यारे पील्ले पणु नेनी साथे योद्धस गये ज डोय अने-
 मांथी-डोय पणु ऐकपील्लने विपरीत काम करता ज न हुता. ऐटवे डे तेज्यो ऐक पील्लना
 मन मुज्ज पवर्ताता हुता. ऐक पील्लना चिन्ने अनुकूल ज तेज्यो काम करता हुता.
 आ अनेने प्रेम ऐटवे सुधी पडोअ्यो हुतो डे तेज्यो अने ऐक पील्लना धरतुं
 करवा योअ्य काम पणु करी आपता हुता. ॥सू. ३॥

तन्नं अम्हेहि एगयओ समेच्चा णित्थरियव्वं त्तिकट्टु अन्नमन्न
मेयारूव्वं संगारं पडिसुणेति, पडिसुणित्ता सकम्मसपउत्ता जाया
यावि होन्था. ॥ सू. ४ ॥

टीका—‘तत्थ णं इत्यादि—तत्र खलु तयोः सार्थवाहदारकयोरन्यदा
कदाचित् ‘एगयओ’ एकतः कस्मिंश्चित् एकस्मिन्स्थाने ‘सहियाणं’ सहितयोः
—मिलितयोः ‘समुवागयाणं’ समुपागतयोः एकतरस्य गृहे प्राप्तयोः ‘सन्निम-
न्नाणं’ सन्निपण्णयो’ उपविष्टयो ‘सन्निविट्ठाणं’ सन्निविष्टयोः एतस्मिन्
स्थले संमिलिततया स्थिरमुत्वासनतयाच स्थितयोः ‘इमेयारूवे’ अयमे
तूयः वक्ष्यमाणस्वरूपः ‘मिहो क्हासमुल्लावे’ मिथः कथासमुल्लापः, तत्र
‘मिहो क्हा’ मिथः कथा—परस्परकथा तभ्यां ‘समुल्लाव’ समुल्लापः जल्पो यस्व
स तथा ‘समुप्पज्जित्था’ समुपपद्यत अभवत् ‘जणं’ यत् खलु देवानुप्रियः
‘अम्हं’ आवयोः मुखं वा दुःखं वा ‘पव्वज्जा’ प्रवज्या वा पर्यटन—तसेता-

‘तएणं तंसि सत्थवाहदारगाणं’ इत्यादि ॥

टीकार्थ—(तएणं) इसके बाद (अन्नया कयाइं) किसी समयमें
(एगयओ सहिया णं) किसी एक स्थलमें मिले हुए (समुवागयाणं)
एक दूसरे के घरमें प्राप्त हुए (सन्निमन्नाणं, सन्नि विट्ठागइमेयारूपे
मिहो क्हासमुल्लावे समुप्पज्जित्था) अच्छी तरह बैठे हुए, अच्छी तरह
एक स्थल पर मिलकर सुग्वरूप से स्थित हुए । (तंसि सत्थवाहदारगाणं)
उन सार्थवाह पुरुषों को (इमेयारूवे मिहोक्हासमुल्लावे समुप्पज्जित्था) इस
तरह यह वक्ष्यमाण मिथो कथा समुल्लाप उत्पन्न हुआ ।—परस्पर की गोष्ठी में
उन लोगोंने इस प्रकार विचार किया (अम्हं सुहं वा दुक्खं वा पव्वज्जा
वा विदेसगमणं वा समुप्पज्जइ) अपन दोनों चाहे सुग्वमें रहें या दुग्वमें

‘तएणं तंसि सत्थवाहदारगाणं’ इत्यादि ।

टीकार्थ—(तएणं) त्थार भाव (अन्नया कयाइं) डोईक वपते (एगयओ सहि-
याणं) डोई ओक स्थाने संयुक्त थयेला (समुवागयाणं) ओक भीतना घरमां ओकठ
थया. (सन्निमन्नाणं सन्निविट्ठाणं) इमेयारूवेमिहो क्हासमुल्लावे समुप्पज्जित्था)
तेज्जो णंने त्यां सारी रीते जेठा अने जेठ्ठ स्थाने ओक भीतथी भणीने प्रसन्नता
अनुभवी (तंसि सत्थवाहदारगाणं) ते सार्थवाह पुरोने (इमेयारूवे मिहोक्हा-
समुल्लावे समुप्पज्जित्था) आ प्रभाजे ओक भीतनी आये प्रेमपूर्वक वार्तालाप करतां विचार
उद्भव्यो—जेठ्ठे जे तेज्जो णंनेजे आ प्रेभाजे विचार कथो जे—(अम्हं सुहं वा दुक्खं
वा पव्वज्जा वा विदेसगमणं वा समुप्पज्जइ) अने णंने जेले सुभमां ‘डीशुं

स्परं स्नेहवन्तौ 'अन्नमन्नमनुभवया' अन्योऽन्यानुव्रजकी-परस्परानुगामिनौ
 'अन्नमन्नच्छंदाणुव्रतया' अन्योऽन्यच्छन्दानुवर्तकी-परस्परामिप्रियायानुव-
 तिनौ 'अन्नमन्नहियइच्छियकारया' अन्योऽन्यहृदयेमितकारकी परस्पर
 चिचानुकूलकारिणौ 'अन्नमन्नेसु गिहेसु' अन्योऽन्यगृहयोः 'किच्चाइं करणि-
 ज्जाइं' कृत्यानि करणीयानि कृत्यानि=उचितकार्याणि, करणीयानि=आश्रयकर्म-
 व्यानि गृहसंबन्धीनि 'पचणुभवमाणे' प्रत्यनुभवन्ती कुर्वन्ती विहरन्ति । सू. ३।

मूलम्— तए णं तेसिं सत्थवाहदारगाणं अन्नया
 कयाइं एगयओ सहियाणं समुवागयाणं सन्नि सन्नाणं सन्निविट्ठाणं
 इमेयारूवे मिहो कहासमुल्लावे समुप्पज्जित्था जं णं देवाणुप्पिया!
 अहं सुहं वा दुक्खं वा पठवजावा विदेसगमणं वा समुप्पज्जइ-

अन्नमन्नहियइच्छियकारया अन्नमन्नेसु गिहेसु किच्चाइं करणिज्जाइं पचणु-
 भवमाणा विहरन्ति) ये दोनों एक साथ ही उत्पन्न हुए थे । एक साथ
 ही बड़े हुए थे । साथ ही साथ खेले कूदे थे । साथ ही साथ इन दोनों
 का विवाह हुआ था । अतः इन्हीं सब बातों को लेकर इन दोनों का
 आपसमें बड़ा अधिक स्नेह था । जहाँ कहीं भी एक जाता था तो दूसरा
 भी उसके साथ जाता था । कोई किसी की इच्छा के विरुद्ध काम नहीं
 करता था अर्थात् ये दोनों परस्परमें एक दूसरे के अभिप्रायानुसार वर्तन
 करते थे । परस्परमें ये दोनों एक दूसरे के चित्त के अनुकूल हो प्रवृत्ति
 किया करते थे । यहाँ तक इन दोनों के स्नेह की अनुवृत्ति बड़ा
 हुई थी कि ये आपस में एक दूसरे के घरके करने योग्य कार्यों का
 भी कर दिया करते थे । सू. ३ ॥

चाया अन्नमन्नहियइच्छियकारया अन्नमन्नेसु गिहेसु किच्चाइं करणि-
 ज्जाइं पचणुभवमाणा विहरन्ति) ते अने ऐकी साथे अनन्या हुता. ऐकी साथे
 भोटा थया हुता, अने ऐकी साथे रम्या हुता. तेअो अनेनां लज्ज पणु साथे साथे न
 थया हुतां. आ अधी वातेने लीधि ते अनेमां ऐक णीज्ज उपर णडुअ प्रेम हुतो
 जमे त्यां ऐकने नवाणु होय त्यारे णीजे पणु तेनी साथे योअस गये न होय अने-
 भांधी-डोअ पणु ऐकणीज्जने विपरीत काम करता न हुता. ऐटवे डे तेअो ऐक णीज्जना
 मन मुअण वर्तता हुता. ऐक णीज्जना चित्तने अनुकूल न तेअो काम करता हुता.
 आ अनेने प्रेम ऐटवे सुधी पहोअ्यो हुतो डे तेअो अने ऐक णीज्जना घरनुं
 करवा योग्य काम पणु करी आपता हुता. ॥सू. ३॥

टोक—'तत्थणं इत्यादि तत्र खलु चम्पायां नगर्यां देवदत्ता नाम गणिका परिवसति, सा च आढ्या यावद् अपरिभूता 'चउसट्टिकलापंडिया' चतुष्पष्टि कला पण्डिता-चतुष्पष्टिसंख्यकाः कलाः नृत्यादि फलवृष्टि पर्यन्ताः तत्र पण्डिता-निपुणा 'चउसट्टिगणियागुणोववेया' चतुष्पष्टि-गणिकागुणोपवेता चतुष्पष्टिसंख्यकाः गणिकागुणाः शृङ्गारचेष्टारूप्यः तैरुपवेता-युक्ता 'अउणतीसं विसेसे रममाणी' एकोनत्रिंशद् विशेषान् रममाणा-एकोनत्रिंशद्विशेषान् कामशास्त्रप्रसिद्धान् अधिकृत्य रममाणा-विलासं कुर्वाणा 'एकवीसरइगुणप्पहाणा' एकत्रिंशति रतिगुणप्रधाना एक-त्रिंशति सख्यकाः रतिगुणाः, तै प्रधाना 'वत्तीसपुरिसोवयारकुसला' द्वात्रिंशत् पुरुषोपचारकुशला द्वात्रिंशत् सख्यकाः पुरुषोपचाराः कामशास्त्रप्रसिद्धास्तेषु कुशला-दक्षा 'णवंगसुत्तपडिवोहिया' नवाङ्गसप्त पतिवोधितानि--

'तत्थणं चंपाए नयरीए' इत्यादि ॥

टीकार्थ—(तत्थणं चंपाए नयरीए) उसी चंपा नगरीमें (देवदत्ता नाम गणिया परिवसइ) देवदत्ता नाम की एक गणिका रहती थी । (अउणतीस अपरिभूया चउसट्टिकलापंडिया, चउसट्टिगणियागुणोववेया अउणतीसं विसेसे रममाणी) यह धन संपन्न थी । यावत् अपरिभूत थी-कोई इसका तिरस्कार नहीं कर सकता था । नृत्यादि से लेकर फलवृष्टि पर्यंत की ६४ कलाओं में यह निपुण थी । शृंगार चेष्टारूप जो ६४ गणिकागुण होते हैं उनसे यह भरपूर थी । कामशास्त्र प्रसिद्ध २५ विशेषों को लक्ष्य में रख कर यह विलास करती थी । (एकवीसरइगुणप्पहाणा) २५ प्रकार के रति गुणों से यह समन्वित थी । (वत्तीसपुरिसोवयारकुसला) ३२ प्रकारके कामशास्त्र प्रसिद्ध पुरुषोपचारों में यह कुशल थी । (णवंगसुत्तपडिवोहिया)

'तत्थणं चंपाए नयरीए' इत्यादि ।

टीकार्थ—(तत्थणं चंपाए नयरीए) ते चंपा नगरीमां देवदत्ता नाम गणिया परिवसइ) देवदत्ता नामे गणिका रहती હતી. (अउणतीस अपरिभूया चउस-ट्टिकलापंडिया, चउसट्टिगणियागुणोववेया अउणतीसं विसेसे रममाणी) ते धन संपन्न હતી. અપરિભૂત હતી-એટલે કે કોઈપણ વ્યક્તિની એવી તાકાત ન હતી કે તેને તિરસ્કાર કરી શકે. નૃત્ય વગેરેથી માંડીને ફળવૃષ્ટિ સુધીની એસઠ કલાઓમાં તે કુશળ હતી. શૃંગારની એષ્ટાશ્પે જે એસઠ ગણિકા ગુણો હોય છે, તેમના ગુણો તેમાં વિદ્યમાન હતા. કામશાસ્ત્રમાં પ્રસિદ્ધ એગણત્રીસ (૨૯) વિશેષોને લક્ષ્યમાં રાખીને તે વિલાસ કરતી હતી. (એકવીસરઇગુણપ્પહાણા) એકવીસ બાતના રતિગુણોથી તે યુક્ત હતી. (વત્તીસ પુરિસોવયારકુસલા) બત્રીસ (૩૨) બાતના કામશાસ્ત્રમાં પ્રસિદ્ધ પુરુષો પચાસોમાં

धर्मम् विदेशगमनं-व्यापाराद्यर्थे वा 'गमृप्पञ्ज' समुत्पद्येत भवेत् 'तन्न'
 तत्खलु 'अम्हेहि' आवाभ्याः 'एगयओ' एकनः एकत्र 'समेच्चा' समेत्य
 मिलित्वा कार्यं, 'णित्थरियञ्चं' निस्तरितव्यम् पारयितव्यं कर्तव्यमि-
 न्यर्थः, 'तिकट्टु' इति कृत्वा अन्योन्यं परस्परं, एतद्द्वयं-एतादृशम् 'संगारं'
 सङ्केतम् 'पडिसुणेति' प्रतिशणुनः स्वीकृतः प्रतिश्रुत्य-स्वीकृत्य 'सकम्म-
 संपउत्ता' स्वकर्मसम्पुक्ता-स्वकार्यपरायणौ जातौ चाप्यभूताम्, स्व स्वकार्य
 कारणोत्सुकौ स्वगृहं जगत्पुरित्यर्थः ॥ सूत्र ४ ॥

मूलम्—तत्स्थणं चंपाए नयरीए देवदत्ता नामं गणिया
 परिवसइ अट्ठा जाव अपरिभूया चउसट्टिकलापंडिया चउसट्टि-
 गणियागुणोववेया अउणतीसंविसेसे रत्तमाणी एकवीस रइ
 गुणप्पहाणा वत्तीसपुरिसोवयारकुसला णवंगसुत्तपडिवोहिया अट्टा-
 रसदेसीभासा विसारया सिंगारागारचारुवेसा संगयगयहसियं उसि-
 यझया सहस्सलंभा विदिन्नलत्तचामर वालवियणिवाकन्नी रहप्पयाया
 यावि होत्था वहुणं गणिया सहस्साणं आहेवच्चं जाव विहरइ। सू. ५।

रहे, प्रव्रज्या प्रव्रण करे' या व्यापार आदि के लिये परदेशमें जावे (तन्नं
 अम्हेहि एगयओ समेच्चा णित्थरियञ्चं ति कट्टु अन्नमन्नमेयाख्वं संगारं पडि-
 सुणेति) फिर भी अपने दोनों जो कुछ काम करे वह मिलकर ही
 करें। इस प्रकार उन दोनों ने परस्परमें संकेत स्वीकृत कर लिया। (पडि
 सुणित्ता सकम्मसंपउत्ता जाया यावि होत्था) इस तरह परस्परमें संकेत
 बद्ध होकर वे दोनों अपने २ कार्य करनेमें उत्कंठित बनकर वहांसे अपने
 २ घर को चल दिये। सू. ४ ॥

डे दुःखमां रडीथुं, प्रमन्था अड्ठु करीथुं डे वेपार भाटे परदेशे जेडीथुं (तन्नं
 अम्हेहि एगयओ समेच्चा णित्थरियञ्चं ति कट्टु अन्नमन्नमेयाख्वं संगारं पडि-
 सुणेति) पणु अने अने गमे ने काममां पडीथुं ते भणीने न करीथुं आ प्रभाणु
 तेणो अनेणो परस्पर संकेत (थरत्त) स्वीकारी वीथो। (पडिसुणित्ता सकम्म संपउत्ता
 जाया यावि होत्था) आ रीते परस्पर संकेत (थरत्त) अड्ठ (प्रतिज्ञाअड्ठ) अथने तेणो
 अने पोतपोताना काममां उत्सुक अणीने त्यांथी अने पोतपोताने घेर गया, ॥सूत्र ४ ॥

यस्याः सा तथा चाप्यभवत् गणिक्सासहस्रस्याधिपत्यं कुर्याती यावद्विहरति ॥ सू. ५ ॥

सृष्टम्--तएणं तेसिं सत्थवाहदारगाणं अन्नया कयाइ पुब्बा-
 चरण्हकालसमयंसि जिमियभुत्तत्तरागयाणं समाणाणं आयन्ताणं
 चोक्खाणं परमसुइभूयाणं सुहासणवरगयाणं इमेयारूवे मिहो-
 कहासमुल्लावे समुप्पजित्था, तं सेयं खल्लु अम्हं देवाणुप्पिया !
 कल्लं जाव जलंते विउलं असणं ४ उवक्खडावेत्ता तं विउलं असणं
 ४ धूव पुप्फगंधवत्थं गहाय देवदत्ताए गणियाए सद्धिं सुभूमिभा-
 गस्स उज्जाणस्स उज्जाणसिंरिं पच्चणुभवमाणाणं विहरित्ते ए तिकुट्टु
 अन्नमन्नस्स एयमट्टुं पडिसुणोति पडिसुणित्ता कल्लं पाउप्पभायाए
 रयणीए कोडुविय पुरिसे सदावेत्ति सदावित्ता एवं वयासी-गच्छह
 णं देवाणुप्पिया ! विउलं असणं ४ उवक्खडेह तं विउलं असणं
 ४ धूवपुप्फवत्थं गहाय जेणेव सुभूमिभागे उज्जाणे जेणेव णंदा-
 पुक्खरिणी तेणामेव उवागच्छह, णंदा पुक्खरिणीतो अदूरसामंते
 थूणा मंडवं आहणह. । आसित्त सम्मज्जियोवलित्तं सुगंधं जाव कलियं
 करेह, अम्हे पडिवालेमाणा २ चिट्टह जाव चिट्टति. ॥सू. ६ ॥

पालकी-तामजाम-पर बैठ कर यह चलती थी। (नरवाहयान विशेष का नाम कर्णीरथ है) ऐसी यह गणिका (बहूणं गणियासहस्राणं आहेवच्चं जाव विहरइ) और हजार गणिका जनों का आधिपत्य करती हुई अपने समय को आनन्दके साथ व्यतीत करती थी। सूत्र ४॥

‘तएणं तेसिं सत्थवाहदारगाणं’ इत्यादि ।

तामजाम-उपर सवार थडने ते अवरग्वर करती, नरवाहयान विशेषतुं नाम कर्णीरथ छे. जेवी ते गणिका (बहूणं गणियासहस्राणं आहेवच्चं जाव विहरइ) उबर गणिकाओतुं आधिपत्य करती पोताना वधतने ते सुजेथी पसार करती हुती. ॥सूत्र ५॥

नवाङ्गानि द्वे श्रोत्रे, त्रे नयने, द्वे नासिके, त्रिणास्य! मनश्रेत्येतानि सुप्तानि च सुप्तानि तानि गौचनप्राप्त्या प्रतिबोधितानि स्वस्वविषयग्रहणपटुतां प्रापितानि यथा सा तथा 'अट्टारसदेसभासविसारया' अष्टादशदेश भाषाविशारदा--अष्टादशदेशभाषासु विशारदा--कुशला 'सिंगारागारचारुवेसा' शृंगारागारचारुवेसा-शृंगारस्यागारमिव चारु मनोहरो वेषो यस्याः सा तथा 'संगत-गत-हसित-भणित-चेष्टित-विहित-विलास-संलावु-ल्लावनिउणजुत्तोचचारकुशला' मङ्गत-गत हसित-भाणितचेष्टितविविध-विलाससंल्लापोलापनिपुणयुक्तोपचारकुशला इति तु व्याख्यातपूर्वम् 'उत्सियझया' उच्छ्रितध्वजा-उच्छ्रिता ध्वजा यस्याः सा तथा 'सहस्सलंभा' सहस्रलम्भा भुवकेन सहस्रलम्भो लाभो यस्याः सा तथा 'विदिन्नछत्तचामरवालवियणिया' वितीर्णलत्रचामरवालव्यजनिका वितीर्णानि=भूपेन दत्तानि छत्रचामराणि चाल व्यजनिकाचामरविशेषो यस्याः सा तथा 'कन्नीरहप्पयाया' कर्णीरथप्रयाता-कर्णीरथः प्रवहणं नरवाहयानविशेषस्तेन 'पयाया प्रयातं-गमनं

दो श्रोत्र, दो नयन दो नासिका के छिद्र ६ जिह्वा ७ स्पर्श ८ तथा मन ९ इन सुप्त नवांगों की यह प्रतिबोधक थी। (अट्टारसदेसभासा विसारया) अष्टादश देशों की भाषामें यह विशारदा-निपुण थी। (सिंगारागारचारुवेसा संगतगत हसिय० ऊत्सियझया) शृंगार के आगार के समान इसका सुन्दर वेष था। संगत यावत् निपुण युक्तोपचार में यह कुशल थी। संगत, गत, हसित, भणित इत्यादि निपुणयुक्तोपचार पर्यन्त पदों की व्याख्या पहिले की जा चुकी है। इसकी ध्वजा फहराती थी। (सहस्सलंभा) एक हजार रूपया इम थी कीम थी (विदिन्नछत्तचामरवालवियणिया) राजाने इसके लिये छत्र, चामर, और चालव्यजनियें वितीर्ण किये थे। (कन्नीरहप्पयाया गाविहोत्था)

ते निपुणु इती. (णवंगसुत्तपडिवोहिया) जे डान, जे आंणो, जे नाडना डण्णो लुल, स्पर्श अने मन आ नव सुप्त अंगोनी ते प्रतिबोधक इती. (अट्टारसदेस-भासाविसारया) अट्टार देशोनी भाषाभां ते पंडित इती. (सिंगारागारचारुवेसा संगतगतहसिय ऊत्सियझया) शृंगारना निवासस्थाननी जेम तेना वेष सुंदर इतो. संगत अने णील युक्तोपचारभांते निपुणु तेमज कुशण इती. संगत, गत, हसित, लणित, वगेरे निपुणु युक्तोपचार सुधीना पढोनी व्याख्या पढेवां करवाभां आवी छे. ते शुद्धिडानी धन लडेरती इती. (सहस्सलंभा) अेकडणर इपिया तेनी डी इती. (विदिन्नछत्तचामरवालवियणिया) राजजे तेना भाटे छत्र, चामर अने चालव्यजनिकाये (वीणणी) अपी इती. (कन्नीरहप्पयायायावि होत्था) पालणी-

यस्याः सा तथा चाप्यभवत् गणिकासद्वलस्याधिपत्यं कुर्वती यावद्विहरति ॥ सू. ५ ॥

मूलम्—तएणं तेसिं सत्थवाहदारगाणं अन्नया कयाइ पुब्बा-
 चरण्हकालसमयंसि जिमियभुत्ततरागयाणं समाणाणं आयन्ताणं
 चोक्खाणं परमसुइभूयाणं सुहासणवरगयाणं इमेयारूवे मिहो-
 कहासमुद्भावे समुप्पजित्था, तं सेयं खलु अम्हं देवाणुप्पिया !
 कल्लं जाव जलंते विउलं असणं ४ उक्खडवेत्ता तं विउलं असणं
 ४ धूव पुप्फगंधवत्थं गहाय देवदत्ताए गणियाए सद्धिं सुभूमिभा-
 गस्स उज्जाणस्स उज्जाणसिरिं पच्चणुभवमाणं विहरित्ताए तिकट्टु
 अन्नमन्नस्स एयमट्टं पडिसुणोति पडिसुणित्ता कल्लं पाउप्पभायाए
 रयणीए कोड्विय पुरिसे सदावेति सदावित्ता एव वयासी-गच्छह
 णं देवाणुप्पिया ! विउलं असणं ४ उक्खडवेह तं विउलं असणं
 ४ धूवपुप्फवत्थं गहाय जेणेव सुभूमिभागे उज्जाणे जेणेव णंदा-
 पुक्खरिणी तेणामेव उवागच्छह, णंदा पुक्खरिणीतो अदूरसामंते
 थूणा मंडवं आहणह. । आसित्त सम्मज्जियोवलित्तं सुगंध जाव कलियं
 करेह, अम्हें पडिवालेमोणा २ चिट्ठह जाव चिट्ठंति. ॥सू. ६ ॥

पालकी-तामजाम-पर बैठ कर यह चलती थी। (नरवाहयान विशेष का नाम
 कर्णारथ है) ऐसी यह गणिका (बहूणं गणियासदस्साणं आद्देवच्चं जाव
 विहरइ) और हजार गणिका जनों का आधिपत्य करती हुई अपने समय
 को आनन्दके साथ व्यतीत करती थी। । सूत्र ४॥

‘तएणं तेसिं सत्थवाहदारगाणं’ इत्यादि ।

तामजाम-उपर सवार थडने ते अवरणपर करती, नरवाहयान विशेषतुं नाम कर्णारिथ
 छे. येवी ते गणिका (बहूणं गणियासदस्साणं आद्देवच्चं जाव विहरइ) उजर
 गणिकाओतुं आधिपत्य करती पोताना वणतनेते सुपेथी पसार करती હતી. ॥सूत्र ५॥

नवाङ्गानि द्वे श्रोत्रे, द्वे नयने, द्वे नासिके, त्रिणास्यः मनश्चेत्येतानि सुप्ता-
 नोव सुप्तानि तानि गौचनप्राप्त्या प्रतिबोधितानि स्वस्वविषयग्रहणपदुर्ग
 मापितानि यथा सा तथा 'अद्वारसदेसभासाविसारया' अष्टादशदेश
 भाषाविशारदा--अष्टादशदेशभाषासु विशारदा-कुशला 'सिंगारागार-
 चारुवेसा' श्रृंगारागारचारुवेसा- शृङ्गारस्यागारमिव चारु मनोहरो वेषो
 यस्याः सा तथा 'संगत-गत-हसित-भणित-चेष्टित-विहित-विलास-संलाबु-
 लावनिउणजुक्तोपचारकुशला' सङ्गत-गत हसित-भाणितचेष्टितविहित
 —विलाससंलापोलापनिपुणयुक्तोपचारकुशला इति तु व्याख्यातपूर्वम्
 'उत्सियञ्जया' उत्क्षिप्तध्वजा-उच्छिन्ना ध्वजा यस्याः सा तथा 'सहस्स-
 लम्भा' सहस्रलम्भा शुक्रेण सहस्रलम्भो लाभो यस्याः सा तथा 'विदिन्नछत्त-
 चामरवात्रियगिया' वितीर्णछत्रचामरवालव्यजनिका वितीर्णानि=भूपेन दत्तानि
 छत्रचामराणि चाल व्यजनिकाचामरविशेषो यस्याः सा तथा 'कन्नौरहप्पयाया'
 कर्णारिप्रयाता-कर्णारिः प्रवहणं नरवाहयानविशेषस्तेन 'प्रयाया प्रयातं-गमनं

दो श्रोत्र, दो नयन दो नासिका के छिद्र ६ जिह्वा ७ स्पर्श ८ तथा मन ९ इन
 सुप्त नवांगों की यह प्रतिबोधक थी। (अद्वारसदेसभासा विसारया) अष्टादश
 देशों की भाषामें यह विशारदा-निपुण थी। (सिंगारागारचारुवेसा संगयगय
 हसिय० ऊत्सियञ्जया) श्रृंगार के आगार के समान इसका सुन्दर वेष था।
 सगत यात्रत निपुण युक्तोपचार में यह कुशल थी। संगत, गत, हसित,
 भणित इत्यादि निपुणयुक्तोपचार पर्यन्त पदों की व्याख्या पहिले की जा
 चुकी है। इसकी ध्वजा फहराती थी। (सहस्सलम्भा) एक हजार रुपया इम
 की फीस थी (विदिन्नछत्तचामरवालव्यजिनिया) राजाने इसके लिये छत्र,
 चामर, और चालव्यजनियें वितीर्ण किये थे। (कन्नौरहप्पयाया नाविहोत्या)

ते निपुण्यु इति। (णचंगसुत्तपडिचोद्विया) जे कान, जे आंजो, जे नाकना काण्डां
 लल, स्पर्शं अने मन आ नव सुप्त अंगोनी ते प्रतिबोधक इति। (अद्वारसदेस-
 भासाविसारया) अद्वार देशोनी भाषाभां ते पंडित इति। (सिंगारागारचारुवेसा
 संगयगयहसिय ऊत्सियञ्जया) श्रृंगारना निवासस्थाननी जेम तेना वेष सुंदर
 इतो। संगत अने भील युक्तोपचारभां ते निपुण्यु तेमज कुशल इति। संगत, गत,
 हसित, भणित, वगेरे निपुण्यु युक्तोपचार सुधीना पढोनी व्याख्या पढेलां करवाभां
 आवी छे। ते शुद्धिकानी धन लडेराती इति। (सहस्सलम्भा) एकडुब्बर रुपिया तेनी
 शी इति। (विदिन्नछत्तचामरवालव्यजिनिया) राजजे तेना माटे छत्र, चामर अने
 चालव्यजनिकाओ (वीजणी) खणी इति। (कन्नौरहप्पयायायावि होत्या) चालणी-

पुष्पगन्ध वस्त्रं गृहीत्वा देवदत्तया गणिकया सार्द्धं सुभूमिभागस्योद्यानस्य
 उद्यानश्रियम्—उद्यानशोभांम् प्रत्यनुभवतोः—उपवनशोभादर्शनादिना
 प्रमोदयतोः विहर्तुं=विलासितुम् इति कृत्वा अन्योऽन्ययोरेतमर्थं प्रतिश्रुणुतः
 प्रतिश्रुत्य निश्चित्येत्यर्थः 'कल्लं' कल्पे 'पाउष्पभाया रयणीए' पाउष्पभानायां
 रजण्यां रात्र्यन्ते प्राच्यां दिशि प्रकाशोदये कौटुम्बिकपुरुषान् शब्दयतः
 शब्दयित्वा एवमवादिष्टाम् गच्छत खलु य्यं देवानुप्रियाः ! विपुलमशन-

(तं सेयं खलु अहं देवानुप्रिया) हे देवानुप्रिय ! हम दोनोंका अब यह
 अच्छा है कि (कल्लं जाव जलते विउलं असणं उवक्खडावित्ता तं विउलं
 असणं ४ धूव, पुष्प, गंधवत्थं गहाय देवदत्ताए गणियाए सद्धिं
 सुभूमिभागस्स उज्जाणस्स उज्जाणसिंरिं पच्चणुभवमाणणं विहरित्ते)
 हम दोनों कल जब कि प्रभात हो जाय और सूर्य प्रकाश हो
 जाय तब विपुलमात्रामें अशन पान, खाद्य, और स्वाद्य चारों प्रकार
 का आहार निष्पन्न करा कर उस निष्पन्न हुए अशन आदि ४ चारों प्रकार
 के आहारको तथा धूप, पुष्प, गंध, और वस्त्र को लेकर देवदत्त गणिका
 के साथ सुभूमिभाग उद्यान की उद्यान श्री का अनुभव करते हुए विच-
 रण करें। (त्तिकट्टुं अन्नमन्नस्स एयमट्ठं पडिसुणेति) ऐसा विचार उन दोनोंने किया
 परस्पर के इस विचारको स्वीकार कर लिया (पडिसुणित्ता कल्लं पाउष्प-
 भायाए रयणीए कौटुम्बियपुरिसे सद्दावेति) विचार स्वीकृत हो चुकने के
 बाद कल जब रात्रि प्रभात प्राय हो चुकी और सूर्य प्रकाशित हो चुका
 तब उन दोनोंने अपने-कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया (सद्दावित्ता एवं

(तं सेयं खलु अहं देवानुप्रिया) हे देवानुप्रिये ! आपणुं भन्ने भाटे ये वात
 सुभउप थये के (कल्लं जावजलते विउलं असणं ४ उवक्खडावित्ता तं विउलं
 असणं ४ धूव, पुष्प, गंधवत्थं गहाय देवदत्ताए गणियाए सद्धिं सुभूमिभाग-
 स्स उज्जाणस्स उज्जाणसिंरिं पच्चणुभवमाणणं विहरित्ते) आवती अवे न्यारे
 सवार थाय अने सूर्य प्रकाशतो थाय त्यारे पुच्छण प्रमाणभां अशन, पान, आद्य,
 अने स्वाद्य चारे प्रकारने आहार भनावअवीने ते चारे नातना आहारने तेमअ धूप,
 पुष्प, गंध अने वस्त्रने लधने देवदत्ता गणिकानी साथे सुभूमि भाग उद्याननी
 उद्यानश्रीने अनुभवता विहार करीये. (त्तिकट्टुं अन्नमन्नस्स एयमट्ठं पडिसुणेति)
 आ विचारने भन्नेये स्वीकारीं वीधि. (पडिसुणित्ता कल्लं पाउष्पभायाए रयणीए
 कौटुम्बिय पुरिसे सद्दावेति) विचारनी स्वीकृति आद न्यारे रात्रि पसार थय
 प्रभात थयुं अने सूर्यने प्रकाश चोभेर प्रसथीं त्यारे भन्नेये पोतपोताना कौटुम्बिक
 पुरुषोने बोलाव्या. (सद्दावित्ता एवं वयासी) बोलावीने उद्धुं—(गच्छह णं देवा-

टीका—‘तएणं तेसिं इत्यादि—ततः खलु तयोः सार्थवाहदारकयोरन्यदा-
कदानित् पूर्वापराहकालसमये पश्चिमप्रहरे ‘जिमियभुनुतरागयाणं’ जिमित
भुक्तं—आस्वादानेन अनुभूतम् उत्तरं—तत्पश्चात् आगतयोः ‘समाणाणं’ सतोः
‘आयंताणं’ आचमितयोः—कृतचुलुकयोः ‘चोक्खाणं’ चोक्षयोः अन्नादिले-
पापनयनेन शुद्धयोः अतएव ‘परमसुईभूयाणं’ परमशुची भूतयोः हस्तमुखादि
प्रक्षालनेन परमपवित्रयोः ‘सुहांसणवरगयाणं’ सुखासनवरगतयोः सुखा-
सनावस्थितयोः ‘इमेयारूवे’ अयमेतद्रूपो वक्ष्यमाणलक्षणः ‘मिहो कहासमुल्लावे’
मिथः कथासमुल्लापः विलासविषयकवार्ता संल्लापः ‘समुपज्जित्था’ समुदपगत
अभवत् तत्रेयः खलु आवयोः देवानुमिय! कल्ये यावज्जलति विपुल-
मशन पानं खाद्यस्वाद्यमुपस्कार्यं तं विपुलमशनपानखाद्यस्वाद्यं धूप-

टीकार्थ—(तएणं) इसके बाद (अन्नया कयाइं) किसी एक समयकी
(तेसिं सत्थवाहदारगाणं) उन दोनों सार्थवाह पुत्रों को (जिमियभुनुतरागयाणं)
जब कि वे जीम कर और खाकर कुल्ला करने के लिये अपने स्थान से
उठ चुके थे और (आयंताणं) अच्छी तरह कुल्लाभी कर चुके थे।
(चोक्खाण) तथा धोती आदि वस्त्रों पर खाते समय पड़े हुए अन्नादिकों के
सीतों को जब वे साफ कर शुद्ध हो चुके थे। परमसुईभूयाणं) हस्तमुख
आदि के प्रक्षालन से उनके मुख आदि अवयव जब शुद्ध हो चुके
थे तब (पुत्रावरहकालसमयसिं) पश्चिम प्रहर में (सुहांसणवरगयाण) जब वे
एक स्थान पर आनन्द के साथ बैठे हुए थे—(इमेयारूवे मिहो कहासमुल्लावे
समुपज्जित्था) इस प्रकार का यह बातचीत करते हुए विचार बांधा—

‘तएणं तेसिं सत्थवाहदारगाणं’ इत्यादि ।

टीकार्थ—(तएणं) त्थार ग्राह (अन्नया कयाइं) डेढ़ अेक वषतनी बात छि.
(तेसिं सत्थवाहदारगाणं) ते णने सार्थवाह पुत्रोने (जिमिय भुनुतरागयाणं)—डे
न्यारे तेओ नीने पीताना नमवाना स्थानेथी डेगणा करवा माटे उला थड बुक्या
हता, अने (आयंताणं) सारी रीते तेमणे डेगणा पणु करी लीधा हता (चोक्खाणं)
तेमण पीती वगेरे वस्त्रो उपर नमती वषते पडेला अन्न वगेरेना कल्लोने साइ करीने
शुद्ध णनी बुक्या हता. (परमसुईभूयाणं) हाथ में वगेरेना प्रक्षालनथी तेमना में
वगेरे अवयवो न्यारे स्वच्छ णनी बुक्य. हता. (पुत्रावरहकालसमयसिं) द्विवसना
छेला पडोरमां (सुहांसणवरगयाणं) न्यारे तेओ अेक स्थाने आनंदपूर्वक डेडा हता.
(इमेयारूवे मिहो कहासमुल्लावे समुपज्जित्था) त्थारे बातचीतने विचार उल्लेख्ये

२ पुनः पुनः प्रतीक्षमाणाः इत्यर्थः 'चिद्वद्' तिष्ठत यावत्ते कौटुम्बिक-
पुरुषाः तदाज्ञानुसारेण कार्यं सम्पाद्य तिष्ठन्तः ॥ सू. ६ ॥

मूलम्—तए णं ते सत्थवाहदारगा दोच्चंपि कौडुंभिय-
पुरिसे सदावेति सदावित्ता एवं वयासी-खिप्पामेव लहुकरण जुत्त
जोयं समखुरवालिहाणसमलिहियतिक्खग्गसिगएहिं रययमय-
घंटसुत्तरज्जुपवरकंचणखचियणत्थपग्गहोवग्गहिएहिं नील्लुप्पलकया-
मेलएहिं पवरगोणजुवाणएहिं नाणामणिरयणकंचणघंटिया जाल-
परिक्खित्तं पवरलक्खणोववेयं जुत्तमेव पवहणं उवणेह तेऽपि
तहेव उवणंति ॥ सू. ७ ॥

टीका—'तएणं ते सत्थवाहदारगा दोच्चंपि' इत्यादि—ततः खलु तौ सार्थ-
वाहदारकौ द्वितीयवारमपि कौटुम्बिकपुरुषान् शब्दयतः शब्दयित्वा एव-

वहां का सब अच्छी तरह साफ करो। उसे अच्छे रूपमें गोमय आदि से
लीपो। अगरवत्ती, काला गुरु आदि सुगंधित द्रव्यों से उसे वासित करो।
पश्चात् हमारी वहां प्रतीक्षा करो। इस प्रकार उन सार्थवाह पुत्रों की वान
सुनकर उन कौटुम्बिक पुरुषोंने जैसा उन्होंने कहाथा वैसा ही सब कार्य
संपादित कर दिया और उनकी प्रतीक्षा करते हुए वहां बैठ रहे ॥ सूत्र ६ ॥

'तएणं ते सत्थवाहदारगा' इत्यादि ।

टीकार्थ—(तएणं) इसके बाद (ते सत्थवाहदारगा) उन दोनों सार्थ
वाह पुत्रोंने (दोच्चंपि) दुवारा भी कौडुंभियपुरिसे) कौटुम्बिकपुरुषों को
(सदावेति) बुलाया (सदावित्ता) बुलाकर उनसे (एवं वयासी) इस प्रकार कहा—

वगेरे त्यांथी साङ्ग करी नाओ। ते स्थानने छाण्णु भाटी वगेरेथी सरस रीते वीपे
धूप सणी, डालाशुडु, वगेरे सुवासित द्रव्येथी ते स्थानने सुगंधित बनावे। त्थार णाद
तमे अमारी त्यां न रहिने प्रतीक्षा करे। आ रीते ते सार्थवाह पुत्रोनी वात सांल-
णीने ते कौटुम्बिक पुरुषोअे तेमण्णे वेम आण्णु आपी हुती तेमण्णे काम पुडुं करी
दीधुं. अने तेमनी प्रतीक्षा करता त्यां न भेसी रह्या ॥ सूत्र. ६ ॥

'तए णं ते सत्थवाहदारगा' इत्यादि ।

टीकार्थ—(त एणं) त्थार णाद (ते सत्थवाहदारगा) ते अने सार्थवाह पुत्रोअे
(दोच्चंपि) भील वार (कौडुंभियपुरिसे) कौटुम्बिक पुरुषोअे (सदावेति) भेलांथा

पानखाद्यस्वाद्यं 'उवक्खडेह' उपस्कारयत उपस्कार्यं तं विपुलमशनपानखाद्य
 स्वाद्यं धूपपुष्पगन्धवस्त्रं गृहीत्वा यत्रैव सुभूमिभागमुत्थानं यत्रैव
 नन्दा पुष्करिणी तत्रैवोपागच्छत उपागत्य नन्दायाः पुष्करिण्या
 अदूरसामन्ते 'धूणामंडवं' स्थूणामंडपं छादनादि स्तम्भनाथं
 यज्ञी काष्ठं धूणा स्थूणा, तत्प्रधानो वस्त्राच्छादितमण्डपः स्थूणा मण्डपस्तम् 'आह-
 णह' आहृत-निवेशयत कुरुतेत्यर्थः 'आसित्तसम्मज्जियोवलित्तं' आसित्त
 संमार्जितोपलित्तं, तत्र-'आसित्त' आसित्तं-जलेन सित्तं 'सम्मज्जिय'
 संमार्जितं कचवरापनयनेन प्रमार्जितं 'उवलित्तं' उपलित्तं-गोमयादिना संलि-
 सत् सुगन्ध यावत् कलितम्--आगरवर्ति कालागुरुमभृत्सुगन्धिद्रव्यैः,
 कलितं-युक्तम् 'करेह' कुरुत 'अम्हे पडिवालेमाणा' आवां प्रतिपालयमाना

वयासी) बुलाकर इस प्रकार कहा-(गच्छह णं देवाणुप्पिया)हे देवानुप्रियो!
 तुम जाओ और (विउलं असणं उवक्खडेह) विपुल मात्रा में अशन, पान,
 खाद्य, और स्वाद्य आहार निष्पन्न करो (तं विउलं असणं ४ धूव पुष्पवत्थं गहाय
 जेणेव सुभूमिभागे उज्जाणे जेणेव णंदा पुक्खरिणी तेणामेव उवागच्छह) निष्पन्न
 होने के बाद विपुल अशनादिरूप खुतुर्विध आहार को धूप, पुष्प, वस्त्रको लेकर
 जहाँ सुभूमि भाग नामका उद्यान है और जहाँ नन्दा नामकी पुष्करिणी है, वहाँ
 जाओ-(नन्दापुक्खरिणी अदूरसामन्ते धूणामंडवं आहणह) वहाँ जाकर तुम
 नन्दापुष्करिणी से न बिलकुल पास और न बहुत दूर किन्तु उचित प्रदेश
 में एक स्थूणामंडप को रचो-बनाओ-तैयार करो। (आसित्तसम्मज्जियोव-
 लित्तं सुगंध जाव कलियं करेह, अम्हे पडिवालेमाणा २ चिट्ठह जाव चिट्ठंति)
 जब वह तैयार हो जावे तब उसे जल से सिञ्चित करो, कचरा वगैरह

णुप्पिया) हे देवानुप्रियो ! तमे नत्थो (विउलं असणं ४ उवक्खडेह) अने पुष्पण
 प्रभाषुभां अशन, पान, खाद्य अने स्वाद्य आहार तैयार करे। (तं विउल असण ४
 धूवपुष्पवत्थं गहाय जेणेव सुभूमिभागे उज्जाणे जेणेव णंदा पुक्खरिणी
 तेणामेव उवागच्छह) अने न्यारे अशन, पान, खाद्य वजेने थार नत्तने आहार तैयार
 थं नत्थ त्यारे खुतुर्विध आहार तेमञ्च धूप, पुष्प अने वस्त्रोने लधने न्यां सुभू-
 मिभाग नामे उद्यान छे अने न्यां नन्दा नामनी पुष्करिणी (जाव) छे त्यां नत्थो-

(नन्दा पुक्खरिणीतो अदूरसामन्ते धूणामंडवं आहणह) त्यां नत्थने नन्दा
 पुष्करिणीथी वधारे हर पणु नडि तेमञ्च तेनाथी वधारे नत्थक पणु नडि जेवा थोत्थ
 स्थाने तमे स्थूणा मंडप तैयार करे। (असित्त सम्मज्जियोवलित्तं सुगंध जाव
 कलियं करेह अम्हे पडिवाले माणा २ चिट्ठह जाव चिट्ठंति) स्थूणा मंडप
 न्यारे तैयार थं नत्थ त्यारे तमे पाणी छांटीने ते नत्थाने सिञ्चित करे, कथरे।

२ पुनः पुनः प्रतीक्षमाणाः इत्यर्थः 'चिद्वि' तिष्ठत यावत्ते कौटुम्बिक-
पुरुषाः तदाज्ञानुसारेण कार्यं सम्पाद्य तिष्ठन्तः ॥ सू. ६ ॥

मूलम्—तए णं ते सत्थवाहदारगा दोच्चंपि कोडुंभिय-
पुरिसे सद्दावेति सद्दावित्ता एवं वयासी-खिप्पामेव लहुकरण जुत्त
जोयं समखुरवालिहाणसमलिहियतिक्खग्गसिंणएहिं रययमय-
घंटसुत्तरज्जुपवरकंचणखचियणत्थपग्गहोवग्गहिंएहिं नीलुप्पलकया-
मेलएहिं पवरगोणजुत्ताणएहिं नाणामणिरयणकंचणघंटिया जाल-
परिक्खित्तं पवरलक्खणोववेयं जुत्तमेव पवहणं उवणेह तेऽवि
तहेव उवणेति ॥ सू. ७ ॥

टीका—'तएणं ते सत्थवाहदारगा दोच्चंपि' इत्यादि—ततः ग्लुत्तां सार्थ-
वाहदारकौ द्वितीयवारमपि कौटुम्बिकपुरुषान् शब्दयतः शब्दयित्वा एव-

वहां का सब अच्छी तरह साफ करो। उसे अच्छे रूपमें गोमय आदि से
लीपो। अगरवत्ती, काला गुरु आदि सुगंधित द्रव्यों से उसे वासित करो।
पश्चात् हमारी वहां प्रतीक्षा करो। इस प्रकार उन सार्थवाह पुत्रों की बात
सुनकर उन कौटुम्बिक पुरुषोंने जैसा उन्होंने कहाथा वैसा ही सब कार्य
संपादित कर दिया और उनकी प्रतीक्षा करते हुए वहां बैठ रहे ॥ सूत्र ६ ॥

'तएणं ते सत्थवाहदारगा' इत्यादि ।

टीकार्थ—(तएणं) इसके बाद (ते सत्थवाहदारगा) उन दोनों सार्थ
वाह पुत्रोंने (दोच्चंपि) दुबारा भी कौटुंभियपुरिसे) कौटुम्बिकपुरुषों को
(सद्दावेति) बुलायां (सद्दावित्ता) बुलाकर उनसे (एवं वयासी) इस प्रकार कहा—

वगेरे, त्यांथी साइ करी नाणे। ते स्थानने छाण्णा भाटी वगेरेथी सरस रीते वीणे
धूप सणी, कालागुरु, वगेरे सुवासित द्रव्येथी ते स्थानने सुगंधित बनावे। त्थार णाद
तमे अमारी त्यां व र्हीने प्रतीक्षा करे। आ रीते ते सार्थवाह पुत्रोनी बात सांल-
णीने ते कौटुंभिक पुरुषोन्ने तेमण्णे वेम आजा आपी हती तेमण्णे काम पुरुं करी
दीधुं. अने तेमनी प्रतीक्षा करता त्यां व भेसी र्हा. ॥ सूत्र. ६ ॥

'तए णं ते सत्थवाहदारगा' इत्यादि ।

टीकार्थ—(त एणं) त्थार णाद (ते सत्थवाहदारगा) ते णंने सार्थवाह पुत्रोन्ने
(दोच्चंपि) णील वार (कौटुंभियपुरिसे) कौटुंभिक पुरुषोन्ने (सद्दावेति) वेलाव्या

पानखाद्यस्वाद्यं 'उक्वखडेह' उपस्कारयत उपस्कार्यं तं विपुलमशनपानखाद्य
 स्वाद्यं धूपपुष्पगन्धधूम्रं गृहीत्वा यत्रैव सुभूमिभागमुष्णं यत्रैव
 नन्दा पुष्करिणी तत्रैवोपागच्छत उपागत्य नन्दायाः पुष्करिण्या
 अदूरसामन्ते 'धूणामंडवं' स्थूणामंडपं छादनादि स्तम्भनाथं
 वल्ली काष्ठं 'धूणा' स्थूणा, तत्प्रधानो वज्राच्छादितमण्डपः स्थूणा मण्डपस्तम् 'आह-
 णह' आहत-निवेशयत कुरुतेत्यर्थः 'आसित्तसम्मज्जियोवलित्तं' आसित्त
 संमार्जितोपलिप्तं, तत्र-'आसित्त' आसित्तं-जलेन सिक्तं 'सम्मज्जिय'
 संमार्जितं कचवरापनयनेन प्रमार्जितं 'उवलित्तं' उपलिप्तं-गोमयादिना संलि-
 प्तम् सुगन्ध यावन् कलियम्--आरचयति कालागुरुमभृतिस्सुगन्धिद्रव्यैः,
 कलित्तं-युक्तम् 'करेह' कुरुत 'अम्हे पडिवालेमाणा' आवां प्रतिपालयमाना

वयासी) बुलाकर इस प्रकार कहा-(गच्छह णं देवाणुप्पिया)हे देवानुप्रियो!
 तुम जाओ और (विउलं असणं उक्वखडेह) विपुल मात्रा में अशन, पान,
 खाद्य, और स्वाद्य आहार निष्पन्न करो (तं विउलं असणं उक्व पुष्पवत्थं गहाय
 जेणेव सुभूमिभागे उज्जाणे जेणेव णंदा पुष्करिणी तेणामेव उवागच्छह) निष्पन्न
 होने के बाद विपुल अशनादिरूप चतुर्विध आहार को धूप, पुष्प, वस्त्रको लेकर
 जहां सुभूमि भाग नामका उद्यान है और जहां नन्दा नामकी पुष्करिणी है, वहां
 जाओ-(नन्दापुष्करिणी अदूरसामन्ते धूणामंडवं आहणह) वहां जाकर तुम
 नन्दापुष्करिणी से न बिलकुल पास और न बहुत दूर किन्तु उचित प्रदेश
 में एक स्थूणामंडप को रचो-बनाओ-तैयार करो। (आसित्तसम्मज्जियोव-
 लित्तं सुगंध जाव कलियं करेह, अम्हे पडिवालेमाणा २ चिट्ठह जाव चिट्ठंति)
 जब वह तैयार हो जावे तब उसे जल से सिञ्चित करो, कचरा वगैरह

णुप्पिया) हे देवानुप्रियो ! तमे नत्थो (विउलं असणं उक्वखडेह) अने पुष्प
 प्रमाणुमां अशन, पान, भाद्य अने स्वाद्य आहार तैयार करो. (तं विउल असण उ
 भूवपुष्पवत्थं गहाय जेणेव सुभूमिभागे उज्जाणे जेणेव णंदा पुष्करिणी
 तेणामेव उवागच्छह) अने न्यारे अशन, पान, भाद्य वजेने चार नतने आहारतैयार
 थं न्य त्यारे चतुर्विध आहार तेमन् धूप, पुष्प अने वस्त्रोने लधने न्यां सुभू-
 मिभाग नामे उद्यान छे अने न्यां नन्दा नामकी पुष्करिणी (वाव) छे त्यां नत्थे.

(नन्दा पुष्करिणीतो अदूरसामन्ते धूणामंडवं आहणह) त्यां नधने नन्दा
 पुष्करिणीथी वधारे दूर पणु नडि तेमन् तेनाथी वधारे नल्लक पणु नडि येवा योत्थ
 स्थाने तमे स्थूणा मंडप तैयार करो. (असित्त सम्मज्जियोवलित्तं सुगंध जाव
 कलियं करेह अम्हे पडिवाले माणा २ चिट्ठह जाव चिट्ठंति) स्थूणा मंडप
 न्यारे तैयार थं न्य त्यारे तमे पाणी छांटीने ते नत्थाने सिञ्चित करो, कचरा

संलग्नं-ट्टपभाकरेकरज्जुद्रयमित्यर्थः ताभ्याम् उपगृहीतो शकटवाहकपुरुषेण स्ववशीकृतौ, रजतमयघण्टौ च तौ सूत्रज्जुप्रवरकाञ्चनखचिननस्त प्रग्रहोपगृहीतो इतिकर्मधारयः ताभ्याम् 'नीलोत्पलकयामेलर्हि' नीलोत्पल-कृतापीडाभ्याम् तत्र-नीलोत्पलैः=नीलकमलैः, कृतः आपीडः=शिरोभूषणं ययो स्तौ ताभ्याम्. 'प्रवरगोणजुवाणर्हि' प्रवरगोयुवभ्याम्-तरुणोत्तम-वशीवर्दाभ्यादम् 'जुत्तमेव' युक्तं-सर्वथा संयुक्तमेव 'नानामणिरयणकंचण घंटियाजालपरिक्खित्तं' नानामणिरत्नकाञ्चनघटिकाजालपरि-क्षित्तं-अनेकमणिरत्नखचितसुवर्णमयघटिकासमूहेन युक्तम्. 'प्रवरलक्ख-णोववेयं' प्रवरलक्षणोपपेतं-शुभलक्षणयुक्तं 'प्रवहणं' प्रवहणं-शकटम् सेजगाडीति भाषायाम्. 'उवणेह' उपनयत-समानयत. । ते कौटुम्बिकपुरुषा अपि नथैवोपनयन्ति. ॥ म. ७ ॥

हो। कपास के तन्तुओं से निर्मित रस्सी कि जो प्रवर कांचन से खचित हो जिनके दोनों नयनों में पड़ी हुई हो और इसी के बल पर जो शकट वाहक पुरुषों द्वारा वशीभूत किये गये हों (नीलोत्पलकयामेलर्हि) तथा नीलकमलों का बना हुआ शिरोभूषण जिनके मस्तक पर लगाहो (नाणामणिरयणकंचणघंटिया जालपरिक्खित्तं) जो एवं नानामणियों से तथा रत्नों से खचित ऐसे सुवर्णमय घंटिका समूह से युक्त हों तथा जो (प्रवरलक्खणोववेयं) शुभलक्षणों से संपन्न हों (ते वि तहेव उवणेति) इस प्रकार उन दोनों सार्धवाह पुत्रों का आदेश सुनकर उन कौटुम्बिक पुरुषोंने जैसा उन्होंने प्रवहण लाने को कहा था-वैसा ही लाकर उपस्थित कर दिया। और उनकी ॥ सूत्र ७ ॥

घंटिीओ नेमना गणाभां गांधवाभां आवी छि ओवा, तेमञ्ज सूतरनी प्रवर काञ्चनथी परिवेष्टित दोरीनी नाथ नेमना षंने नाकनां छिट्रोभां नाथेली डोय अने ओवी नाथोने लीधे न ते गणदो गाडीने डांकनाराओ वडे पथभां रप्पाता डोय. (नीलोत्पलकयामेलर्हि) तेमञ्ज नीलकमणोवाणुं शिरोभूषणु नेमना मस्तके थोअतुं डोय (नाणामणिरयणकंचणघंटिया जालपरिक्खित्तं) नेमणु अनेक मणु अने रत्नो नडेली सोनानी धुधरीओ पडेरेली डोय तेमञ्ज ने (प्रवरलक्खणोववेय) शुभ लक्षणोवाणा डोवा नेधओ. (ते वि तहेव उवणेति) आ रीते षंने सार्धवाह-पुत्रोनी आसा सांलणीने कौटुम्बिक पुरुषो आसा प्रमाणे न थोअ्य प्रवडणु लध आओवा. ॥ सूत्र ७ ॥

મત્રાદિષ્ટામ્. આશાપયતઃ 'લિપ્પામેવ' ક્ષિપમેવ 'લહુકરણજુતે જોડ્યં'
 લઘુકરણયુક્તયોજિતમ્ તત્ર-લઘુકરણેન-ગમનાદિક્રિયાદશત્વેન યુક્તાઃ યે
 પુરુપાસ્તૈઃ, યોજિતં યન્નયૂપાદિભિઃ સમ્બન્ધિતમ્. અસ્ય પ્રવહણમિત્યનેન
 સમ્બન્ધઃ 'સમસુરવાલિહાણસમલિહિયતિકલ્ગ્ગસિગર્હિ' સમસુર
 વાલધાનસમલિખિતતીક્ષ્ણાગ્રશુદ્ધકાભ્યામ્. તત્ર-સમ=સમૌ-સમાનો સુરૌ,
 વાલધાનો=પુચ્છૌ, સમસુરવાલધાનો તથા સમ=સમે-તુલ્યે, લિખિતે=શસ્ત્રા-
 પસારિતવાહ્યત્વચ્ચે, તીક્ષ્ણાગ્રશુદ્ધે યયોઃ તૌ, તથા સમસુરવાલધાનો ચ
 સમલિખિતતીક્ષ્ણાગ્રશુદ્ધકૌ ચેતિ કર્મધારયઃ તાભ્યામ્ 'રયયમયઘંટસુત્તરજ્જુ
 પવરકંચણસ્વચિયણત્યપગ્ગહોઽગ્ગહિર્હિ' રજતમયઘણ્ટામ્ત્રરજ્જુપવરકાઠ્ઠચન-
 સ્વચિતનસ્તપ્રગ્રહોપગૃહીતાભ્યામ્ તત્ર-રજતમયે=રુપ્યનિર્મિતે ઘણ્ટે=શુદ્રઘણ્ટિકે
 ગલપ્રદેશે ઘંટે યયોસ્તૌ તથા-સૂત્તરજ્જૂ=કાર્પાસિક-તન્તુ નિર્મિતે રજ્જુ-
 મયે પવરકાઠ્ઠચનસ્વચિતે યે 'નત્યે।' નસ્તે-તયોઃ પ્રગ્રહો=રશ્મીનસ્ત-

(લિપ્પામેવ લહુકરણ જુત જોડ્યં પવહણં ઉવણેહ) તુમલોગ શીઘ્ર હી લઘુકરણ
 યુક્ત પુરુપૌ દ્વારા યંત્રયૂપાદિ સે સંબંધિત કિયે હુપ્ એક પવહણ-શકટકો
 લે આઝો માપા મેં ઈસે સેજ-ગાડી કહતે હૈં। જો (પવરગોણ જુવાણર્હિં જુત
 મેવ) તરુણ એવં ઉત્તમ વૈલોં સે સર્વથા યુક્ત હો (સમસુર વાલિહાણ સમ-
 લિહિયતિકલ્ગ્ગસિગર્હિં) યે વૈલ મી સમાન સુરૌં વાલે હો એક સી પૂછોંવાલે
 હોં તથા શસ્ત્ર સે ડપર કી સ્વાલ ઊલ્લ. જાને સે જિનકે અગ્રમાગ નુકીલે
 વને રહે હૈં એસે એક સે સીંગોં વાલે હોં (રયયમયઘંટ, સુત્તરજ્જુપવરકંચણ-
 સ્વચિયણત્યપગ્ગહોઽગ્ગહિર્હિં) ઘાંદી કે ઘંટિકાઈ જિનકે ગલે મેં વેંધી હુઈ

(સદ્વાચિત્તા) બાલાવીરે તેમને (એવં વયાસી) આ પ્રમાણે કહ્યું (લિપ્પામેવં લહુકરણ
 જુતજોડ્યં પવહણં ઉવણેહ) તમે સત્વરે લઘુકરણ યુક્ત પુરુપો વડે યંત્ર યૂપ વગેરેથી
 સંપન્ન એક પ્રવહણ-ગાડને લાવો. ભાષામાં પ્રવહણ-શકટને 'સેજગાડી' કહે છે.
 (ધાડગાડીની જેમ આવી 'સેજગાડી' પણ એમર અને ઉપર એમ સરસ આવરણથી
 આસ્થાદિત રહે છે માણસ આરામથી આમાં આવરણવર કરી શકે છે એટલા માટે
 એને 'સેજગાડી' કહે છે.) તે સેજગાડી (પવરગોણજુવાણર્હિં જુતમેવ)
 જુવાન અને ઉત્તમ બળદોવાળી હોવી હોવી બેધએ. (સમસુરવાલિહાણસમલિહિય-
 તિકલ્ગ્ગસિગર્હિં) બળદો સરખી પૂછી વાળા તેમજ એબર વડે, ઉપર
 ઉપરથી જેમતું આમંડુ છાંટી નંખાયું છે અને તેથી જેમનાં શિંગડાંનાં આગળના
 ભાગ અણીદાર થઈ ગયા ગયા છે તેવા સરખા શિંગડાંવાળા હોવા બેધએ.
 (રયયમયઘંટસુત્તરજ્જુપવરકંચણસ્વચિયણત્યપગ્ગહોઽગ્ગહિર્હિં) આંદીની

देवदत्ताया गणिकाया गृह वर्तते तत्रैवोपागच्छतः, उपागत्य प्रवहणान् प्रत्यच-
रोहनः प्रत्यवरुह्य देवदत्तायां गणिकायां गृहमनुप्रविशतः ततस्तदनन्तरं खलु
सा देवदत्ता गणिका तौ सार्थवाहदारकी एजमानौ-आगच्छन्तौ पश्यति,
दृष्ट्वा हृष्टतुष्टा=अतिशयेन प्रमुदिता, अथ मम भाग्योदयो जातो यत् एताविभ्य-
पुत्रौ मम गृहे आगताविति विचार्य स्वासनाद्भ्युत्तिष्ठति, अभ्युत्थाय सप्ता-
ऽष्टपदान्यनुगच्छति=अभिगच्छति अनुगम्य, तयोः संग्रुखं गत्वा तौ सार्थवाह-
दारकौ प्रत्येवं वक्ष्यमाणप्रकारेणावादीत् 'संदिसंतु णं' सन्दिदन्तु आदेशं

हे (प्रवहणं दुरुहंति) उस प्रवहण पर सवार हुए। (दुरुहिता जेणेव देवदत्ताए
गणियाए गिहं तेणेव उवागच्छंति) सवार होकर जहां देवदत्ताका घर था वहां
पहुंचे। (उवागच्छिता प्रवहणाओ पच्चोरुहंति) पहुँच कर वे उसे प्रवहण से
नीचे उतरे। (पच्चोरुहिता देवदत्ताए गणियाए गिहं अणुप्रविसंति) नीचे
उतरकर देवदत्ता गणिका के घरमें प्रवेश किया (तएणं सा देवदत्ता गणिया
सत्थवाहदारए एज्जमाणे पासइ) देवदत्ता गणिकाने उन दोनों सार्थवाह पुत्रोंको
आते हुए देखा (पासित्ता इदुत्तु आसणाओ अब्भुट्ठेइ) देखकर बड़ी
अधिक प्रसन्न हुई उसने विचारा आज मेरे भाग्य का उदय हुआ है, जो
ये दोनों इभ्यपुत्र मेरे घर पर आये हैं-इस प्रकार विचार कर वह अपने
आसन से उठी-(अब्भुट्ठिता सत्तट्ठपयाइं अणुगच्छइ) उठ कर वह सात
आठ पैर और सामने गई (अणुगच्छिता ते सत्थवाहदारए एवं वयासी)
जाकर उसने उन सार्थवाह दारकों से इस प्रकार कहा (संदिसंतु णं देवाणु-

वओ धारणु क्थीं. (प्रवहणं दुरुहंति) अने प्रवहणु (सिञ्जाली) मां भेडा (दुरुहिता
जेणेव देवदत्ताए गणियाए गिहं तेणेव उवागच्छंति) भेसिने तेओ देवदत्ताने
घेर पडेओथा. (उवागच्छिता प्रवहणाओ पच्चोरुहंति) त्यां पडेओथिने तेओ प्रव-
हणु मांथी नीचे उतरां (पच्चोरुहिता देवदत्ताए गणियाए गिहं अणुप्रविसंति)
नीचे उतरिने गणिका देवदत्ताना घरमां प्रविष्ट थया. (तए णं सा देवदत्ता गणिया
सत्थवाहदारए एज्जमाणे पासइ) गणिका देवदत्ताओ अने सार्थवाह पुत्रोने आवता
नेया. (पासित्ता इदुत्तु आसणाओ अब्भुट्ठेइ) नेधने ते भूण न प्रसन्न
थथ अने तेने थयुं के आणे भारे लाग्थेइथ थये छे डेभके आ अने धव्यपुत्रो
(शिडिथाना पुत्रो) भारे घेर आव्था छे. आ रीते विचार करिने ते पोताना आसन
परथी भेली थथ (अब्भुट्ठिता सत्तट्ठपयाइं) भेली थथने ते सात-आठ पगदां सामे
गथ. अणुगच्छिता ते सत्थवाहदारए एवं वयासी) सामे न्धने तेणु सार्थवाह
पुत्रोने क्थुं-- (संदिसंतु णं देवाणुप्पिया! किमिहागमणप्पओयणं)

भूलष—तए णं ते सत्थवाहदारगा ण्हाया जाव सरीरा पवहणं दुरूहंति दुरूहिता जेणेव देवदत्ताए गणियाए गिहं तेणेव उवागच्छंति उवागच्छिता पवहणाओ पच्चोरुहंति, पच्चोरुहिता देवदत्ताए गणियाए गिहं अणुप्पविसंति, तएणं सा देवदत्ता गणिया सत्थवाहदारए एज्जमाणे पासइ पासिता हट्टुट्टु आसणाओ अब्भुट्टेइ अब्भुट्टिता सत्तट्टुपयाइं अणुगच्छइ, अणुगच्छिता ते सत्थवाहदारए एवं वयासी—सदिसंतु णं देवाणुप्पिया ! किमिहागमणपओयणं ? तएणं ते सत्थवाहदारगा देवदत्तं गणियं एवं वयासी—इच्छामो णं देवाणुप्पिए ! तुब्भेहिं सद्धिं सुभुमिभागस्स उज्जाणस्स उज्जाणसिंरिं पच्चणुब्भवमाणा विहरित्तए । तएणं सा देवदत्ता तौस सत्थवाहदारगाणं एयमट्ठं पडिसुणेइ, पडिसुणिता ण्हाया कयकिच्चा कित्ते पवर जाव सिरिसमाणवेसा जेणेव सत्थवाहदारगा तेणेव समागया ॥ सू. ८ ॥

टीका—‘तएणं ते सत्थवाहदारगा ण्हाया’ इत्यादि—ततस्तदनन्तरं खलु तौ सार्थवाहदारकौ स्नातौ—स्नानानन्तरं कृतबलिकर्माणौ यावदाभरणालङ्घितशरीरौ परिहितशुद्धवस्त्रौ प्रवहणं दूरोहतः आरोहतः दूरुह्य यत्रैव

‘तएणं से सत्थवाहदारगा’ इत्यादि ।

टीकार्थ—(तएणं) इसके बाद (ते सत्थवाहदारगा) वे दोनों सार्थवाहदारक (ह्याया) कि जिन्होंने पडिले से स्नान कर लिया है (जाव सरीरा) स्नान के बाद वायसादि पक्षियों के लिये अन्नादिका भागरूपबलिकर्म कर जिन्होंने अपने शरीरको आभरण से अलंकृत किया है और शुद्ध वस्त्रों को पहिना

‘तएणं से सत्थवाहदारगा’ इत्यादि ।

टीकार्थ—(तएणं) त्थार पधी (ते सत्थवाहदारगा) जने सार्थवाह पुत्रोच्चे (ण्हाया) स्नान करीने (जाव सरीरा) जने स्नान कथां णाह डागडा वगेरे पक्षीज्जने अत्ता भाग अथीने अलिकर्म करीने पोताना शरीरे सुंदर आभरणे तेभज्ज शुद्ध

देवदत्ताया गणिकाया गृहं वर्तते तत्रैवोपागच्छतः, उपागत्य प्रवहणान् प्रत्यत्र-
रोहनः प्रत्यवृत्त्य देवदत्तायां गणिकाया गृहमनुप्रविशतः ततस्तदनन्तरं खलु
सा देवदत्ता गणिका तौ सार्थवाहदारकौ एजमानौ-आगच्छन्तौ पश्यति,
दृष्ट्वा हृष्टतुष्टा=अतिप्रयेन प्रमुदिता, अथ मम भाग्योदयो ज्ञातो यत एताविभ्य-
पुत्रौ मम गृहे आगताविति विचार्य स्वासनाद्भ्युत्तिष्ठति, अभ्युत्थाय समा-
ऽष्टपदान्यनुगच्छति=अभिगच्छति अनुगम्य, तयोः संमुखं गत्वा तौ सार्थवाह-
दारकौ प्रत्येवं वक्ष्यमाणप्रकारेणावादीत् 'संदिसंतु णं' सन्दिदन्तु आदेशं

है (पवहणं दुरुहंति) उस प्रवहण पर सवार हुए। (दुरुहिता जेणेव देवदत्ताए
गणियाए गिहं तेणेव उवागच्छंति) सवार होकर जहाँ देवदत्ताका घर था वहाँ
पहुँचे। (उवागच्छिता पवहणाओ पच्चोरुहंति) पहुँच कर वे उसे प्रवहण से
नीचे उतरे। (पच्चोरुहिता देवदत्ताए गणियाए गिहं अणुपविसंति) नीचे
उतरकर देवदत्ता गणिका के घरमें प्रवेश किया (तएणं सा देवदत्ता गणिया
सत्थवाहदारए एज्जमाणे पासइ) देवदत्ता गणिकाने उन दोनों सार्थवाह पुत्रोंको
आते हुए देखा (पासित्ता इदुत्तु आसणाओ अब्भुट्ठेइ) देखकर बड़ी
अधिक प्रसन्न हुई उसने विचारा आज मेरे भाग्य का उदय हुआ है, जो
ये दोनों इभ्यपुत्र मेरे घर पर आये हैं-इस प्रकार विचार कर वह अपने
आसन से उठी-(अब्भुट्ठिता सत्तट्ठपयाइं अणुगच्छइ) उठ कर वह सात
आठ पैर और सामने गई (अणुगच्छिता ते सत्थवाहदारए एवं वयासी)
जाकर उसने उन सार्थवाह दारकों से इस प्रकार कहा (संदिसंतु णं देवाणु-

पञ्चो धारणु धर्मां. (पवहणं दुरुहंति) अने प्रवहणु (सिञ्जाली) भां भेडा (दुरुहिता
जेणेव देवदत्ताए गणियाए गिहं तेणेव उवागच्छंति) भेसिने तेणो देवदत्ताने
घेर पडोन्था. (उवागच्छिता पवहणाओ पच्चोरुहंति) त्यां पडोन्थिने तेणो प्रव-
हणु भांथी नीचे उतयो (पच्चोरुहिता देवदत्ताए गणियाए गिहं अणुपविसंति)
नीचे उतरिने गणिका देवदत्ताना घरभां प्रविष्ट थया. (तए णं सा देवदत्ता गणिया
सत्थवाहदारए एज्जमाणे पासइ) गणिका देवदत्ताये भंने सार्थवाहु पुत्रोने आवता
लेया. (पासित्ता इदुत्तु आसणाओ अब्भुट्ठेइ) लेधने ते पूष व प्रसन्न
थध अने तेने थयुं डे आणे भारे लाग्थेइथ थये छे डेभडे आ भंने धव्यपुत्रो
(शिक्षिथाना पुत्रो) भारे घेर आव्था छे. आ रीते विचार करीने ते पोटाना आसन
परथी लेथी थध (अब्भुट्ठिता सत्तट्ठपयाइं) लेथी थधने ते सात-आड पगडां सामे
गध. अणुगच्छिता ते सत्थवाहदारए एवं वयासी) सामे लधने तेणु सार्थवाहु
पुत्रोने धधुं-- (संदिसंतु णं देवाणुपिया! किमिदागमणपपओयणं)

कुर्वन्तु खलु देवानुप्रियाः किं—रुथमिहागमनप्रयोजनं जातं? ममोपरि भव-
द्ग्यां महती कृपा कृता यतो मदृष्टे भवन्तीं समागतौ ततस्तदनन्तरं तौ सार्धवाह-
दारकौ देवदत्तां गणिकां प्रत्येयमवादिष्टाम् 'इच्छामोणं' आवामिच्छावः खलु
देवानुप्रिये युष्माभिः साद्रे सुभूमिभागस्योद्यानस्योद्यानश्रियं प्रत्यनुभवन्ती-
विहर्तुम् त्वया सार्द्धमावाप्तुष्वनदर्शनादिसुखं कर्तुमिच्छामोऽतस्त्वमावाभ्यां सार्द्ध-
मागच्छ, इति भावः। ततस्तदनन्तरं खलु सा देवदत्ता तयोः सार्धवाहदारकयो-
रेतमर्थं प्रतिशृणोति, प्रतिश्रुत्य स्नाता स्नानानन्तरं कृतकृत्या 'किं ते' किं
तेन अलं तेन वर्णनेन 'पवरपरिहिया' पवरपरिहिता=पवरं यथा स्यात्तथा
परिहिता, वस्त्रपरिधानकलाऽभिज्ञतया सुष्टुपरिधाना यावत् श्रीसमानवेपा=
वेपथ्रिया साक्षाद्दृश्यीवत् प्रणिभासमाना यत्रैव सार्धवाहदारकौ तत्रैव समागता। मू.८।

प्रिया! किमिहागमणप्रयोजनं हे देवानुप्रियो! कहिये किस प्रयोजन से
यहां आना हुआ है? (तएणं ते सत्थवाहदारगा देवदत्तां गणियं एवं वयासी)
देवदत्तागणिकाकी ऐसी बात सुनकर उन दोनों सार्धवाह पुत्रोंने उससे ऐसा
कहा—(इच्छामो णं देवाणुप्पिए ! तुम्हेहिं सद्धिं सुभूमिभागस्स उज्जाणस्स
उज्जाणसिरिं पच्चणुम्भवमाणा विहरित्तए) हे देवाणुप्रिय इमलोग यह चाहते
हैं कि तुम्हारे साथ सुभूमिभाग उद्यान की शोभा का अनुभव करते हुए
विचरण करें। (तएणं सा देवदत्ता तेसिं सत्थवाहदारगाणं एयमट्ठं पडिसुणेइ)
इसके बाद उस देवदत्ताने उन सार्धवाहदारकों के इस कथन रूप अर्थ
को स्वीकार कर लिया। (पडिसुणित्ता ह्याया कयकिच्चा किं ते पार जाव
सिरिसमाणवेसा जेणेव सत्थवाहदारगा तेणेव समागया) इसके पश्चात्
उसने स्नान किया स्नान कर वह कृत कृत्य हुई अब इस विषय में और

हे देवानुप्रियो! आता करे। शांताधर्मकथा अडी। आप पधार्या छे। (तएणं ते
सत्थवाहदारगा देवदत्तां गणियं एवं वयासी) गणिका देवदत्तानी बात सांभलीने
तेओओे कहुं--(इच्छामो णं देवाणुप्पिए ! तुम्हेहिं सद्धिं सुभूमिभागस्स
उज्जाणस्स उज्जाणसिरिं पच्चणुम्भवमाणा विहरित्तए) हे देवानुप्रियो! तभारी
साधे सुभूमिभाग उद्याननुं सौदर्यं पान करतां करतां त्यां विहार करीओे ओवी अभारी
धर्या छे। (तएणं सा देवदत्ता तेसिं सत्थवाहदारगाणं एयमट्ठं पडिसुणेइ)
त्यारे देवदत्ताओे सार्धवाह पुत्रोनी बात स्वीकारी लीधी। (पडिसुणित्ता ह्याया कय
किच्चा किंते पार जाव सिरिसमाणवेसा जेणेव सत्थवाहदारगा तेणेव
समागया) त्यार भाद देवदत्ताओे स्नान कथुं अने स्नान कथो पधी आ विषे

मूलम्—तएणं ते सत्थवाहदारगा देवदत्ताए गणियाए सद्धिं
जाणं दुरुहंति दुरुहित्ता चंपाए नयरीए मज्झं मज्झेणं जेणेव सुभूमि-
भागे उज्जाणे जेणेव नंदा पुक्खरिणी तेणेव उवागच्छंति उवागच्छित्ता
पवहणातो पच्चोरुहंति पच्चोरुहित्ता नंदा पोक्खरिणी ओगाहंति ओगाहित्ता
जलमज्जणं करेति, करित्ता जलकीडं करेति, करित्ता पहाया देवदत्ताए
सद्धिं पच्चुत्तरंति पच्चुत्तरित्ता जेणेव थूणामंडवे तेणेव उवा
गच्छंति, उवागच्छित्ता थूणामंडवे अणुपविसंति अणुपविसित्ता सव्वा-
लंकारविभूसिया आसत्था विसत्था सुहासणवरगया देवदत्ताए सद्धिं
तं विउलं असणं ४ धूवपुप्फगंधवत्थं आसाएमाणा वीसाएमाणा
परिभुंजेमाणा एवं च णं विहरंति जिमिय् भुत्तुत्तरागया वि य णं समाणा
देवदत्ताए सद्धिं विपुलाइं माणुस्सगाइं कामभोगइं भुंजमाणा
विहरंति ।सू. ९।

टीका—‘तएणं ते’ इत्यादि—ततस्तदनन्तरं खलु तौ सार्थवाहदारकौ
देवदत्तया गणिकया सद्धिं यानं—रथं दूरोहतः, आरोहतः, दूरुह्य=आरुह्य चम्पा-

अधिकवर्णन क्या करें—उसने अच्छी तरह वस्त्र पहिरे यात्रत अपना वेपथ्री केजैसा
चनाया-और जहां वे दोनों सार्थवाह पुत्र थे, वही आनंद के साथ गई । ॥पूत्र ८॥

‘तएणं ते सत्थवाहदारगा’ इत्यादि ।

टीकार्थ—(तएणं) इसके बाद (ते सत्थवाहदारगा) वे दोनों सार्थ-
वाह पुत्र (देवदत्ताए गणियाए सद्धिं) देवदत्ता गणिका के साथ (जाणं दुरुहंति)

पधारे शुं श्लोके तेष्णे सुंदर वस्त्रो पहियो अने तेष्णे पीतानो देह लक्ष्मी जेयो
सुंदर गनावीने ते न्यां गंने सार्थवाह पुत्रो हुता त्यांआनंद अनुभवती पडोंथी । सूत्र ८ ।

‘तए णं ते सत्थवाहदारगा’ इत्यादि ।

टीकार्थ—(तएणं) त्थार पथी (ते सत्थवाहदारगा) गंने सार्थवाह पुत्रो
(देवदत्ताए गणियाए सद्धिं) गणिका देवदत्तानी साथे (जाणं दुरुहंति) ते रथमां

कुर्वन्तु खलु देवानुप्रियाः किं-कथमिहागमनप्रयोजनं जातं? ममोपरि भव-
द्गथां महती कृपा कृता यतो मदृष्टहे भवन्तीं समागतौ ततस्तदनन्तरं तौ सार्थवाह-
दारकौ देवदत्तां गणिकां प्रत्येयमवादिष्ट्याम् 'इच्छामोणं' आवामिच्छावः खलु
देवानुप्रिये युष्माभिः सार्द्धं सुभूमिभागस्योद्यानस्योद्यानश्रियं प्रत्यनुभवन्ती-
विहर्तुम् त्वया सार्द्धमावाप्तुपवनदर्शनादिसुखं कर्तुमिच्छावोऽतस्त्वमावाभ्यां सार्द्ध-
मागच्छ, इति भावः। ततस्तदनन्तरं खलु सा देवदत्ता तयोः सार्थवाहदारकयो-
रेतमर्थं प्रतिशृणोति, प्रतिश्रुत्य स्नाता स्नानानन्तरं कृतकृत्या 'किं ते' किं
तेन अलं तेन वर्णनेन 'पवरपरिहिता' पवरपरिहिता=पवरं यथा स्यात्तथा
परिहिता, बह्वपरिधानकलाऽभिज्ञतया सुष्टुपरिधाना यावत् श्रीसमानवेपा=
वेपथ्रिया साक्षाच्छमीवत् प्रतिभासमाना यत्रैव सार्थवाहदारकौ तत्रैव समागता। सू. ८।

प्रिया ! किमिहागमणप्रयोजनं हे देवानुप्रियो ! कहिये किस प्रयोजन से
यहां आना हुआ है? (तएणं ते सत्यवाहदारगा देवदत्तां गणियं एवं वयासी)
देवदत्तागणिकाकी ऐसी बात सुनकर उन दोनों सार्थवाह पुत्रोंने उससे ऐसा
कहा--(इच्छामो णं देवाणुप्पिए ! तुम्हेहिं सद्धिं सुभूमिभागस्स उज्जाणस्स
उज्जाणसिंरिं पच्चणुग्भवमागा विहरित्तए) हे देवाणुप्रिय हमलोग यह चाहते
हैं कि तुम्हारे साथ सुभूमिभाग उद्यान की शोभा का अनुभव करते हुए
विचरण करें। (तएणं सा देवदत्ता तेसिं सत्यवाहदारगाणं एयमहं पडिसुणेइ)
इसके बाद उस देवदत्ताने उन सार्थवाहदारकों के इस कथन रूप अर्थ
को स्वीकार कर लिया। (पडिसुणिता ह्याया कयकिच्चा किं ते पार जाव
सिरिसमाणवेसा जेणेव सत्यवाहदारगा तेणेव समागया) इसके पश्चात्
उसने स्नान किया स्नान कर वह कृत कृत्य हुई अब इस विषय में और

हे देवानुप्रियो ! आता करे शा डारलुथी अही, आप पधार्या छे. (तएणं ते
सत्यवाहदारगा देवदत्तां गणियं एवं वयासी) गल्लिडा देवदत्तानी वातं सांलणीने
तेओओे डधु--(इच्छामो णं देवाणुप्पिए ! तुम्हेहिं सद्धिं सुभूमिभागस्स
उज्जाणस्स उज्जाणसिंरिं पच्चणुग्भवमाणा विहरित्तए) हे देवानुप्रियो ! तमारी
सार्थ सुभूमिभाग उद्यानतुं सौ धर्थं पान करतां करतां त्यां विहार करीओे ओवी अंभारी
धंछा छे. (तएणं सा देवदत्ता तेसिं सत्यवाहदारगाणं एयमहं पडिसुणेइ)
त्यारे देवदत्ताओे सार्थवाह पुत्रोनी वात स्वीकारी लीधी. (पडिसुणिता ष्हाया कय
किच्चा किंते पवर जाव सिरिसमाणवेसा जेणेव सत्यवाहदारगा तेणेव
समागया) त्यारे णाह देवदत्ताओे स्नान करुं अने स्नान कर्यां पथी आ विपे

भरणशोभितौ, 'असत्या' आस्वस्थौ परिश्रमापनयनेन स्वस्थौभूतौ, प्रसन्नचित्तौ इत्यर्थः
 'वीसत्या' विश्वस्थौ विशेषेण स्वस्थौभूतौ सर्वथाऽपगतश्रमौ, सुखासनवरगतौ
 सुखप्रदपर्यङ्काद्यासनोपविष्टौ, देवदत्तया सार्द्धं तं चिपुलं विस्तीर्णम् अशनं पानं खाद्यं-
 स्वाद्यं धूपं पुष्पं गन्धं वस्त्रं च, 'असाएमाणा' आस्वादयन्तौ-ईपत्स्वादयन्तौ
 'विसाएमाणा' विस्वादयन्तौ-विशेषेण वारं वारमास्वादयन्तौ, 'परिभुंजेमाणा'
 परिभुंजानी-परिभोगं कुर्वानी एवं च अनेन प्रकारेण खलु विहरतः आसाते।
 अपि च खलु 'जिमिय भुक्तुत्तरागया' जिमित भुक्तोत्तरागतौ जिमितं=खादितं,
 भुक्तम्=आस्वादितं ताभ्यामुत्तरं=अनन्तरम् आगतौ सुखासनं पर्यङ्कादिकं प्राप्तौ,
 जिमितमुक्तानन्तरम्-आचान्तौ शुद्धोदकेन कृताचमनौ, लेपाद्यपनयनेन चोद्यौ

आकर वे उसमें प्रविष्ट हुए (अणुप्रविसिक्ता सञ्चालंकारविभूसिया आसत्या वीसत्या सुहासणवरगया देवदत्ताए सद्धि) प्रविष्ट होकर सर्व अलंकारो
 से विभूषित बने हुए वे आश्वस्त-परिश्रम के अपनयन से स्वस्थचिन्त हुए
 विश्वस्त हुए-सर्वथा परिश्रम से रहित हुए और सुखप्रदपर्यङ्क (पलंग) आदि
 आसन पर जाकर बैठ गये। बाद में उन्होंने उस देवदत्ता के साथ (तं
 विउलं असणं ४ धूपपुष्पगंधवस्त्रं आसाएमाणा, वीसाएमाणा परिभुंजे
 माणा एवं च णं विहरंति) उस विपुलमात्रामें निष्पन्न हुए अशन, पान, खाद्य,
 स्वाद्य,रूप चारों प्रकार के आहार को किया रुचर कर उसका स्वाद लिया-
 धूप, पुष्प, गंध, वस्त्र का वितरण किया-(जिमियभुक्तुत्तरागया वि य णं समाणा
 देवदत्ताए सद्धि विउलाइंमाणुस्सगाइं कामभोगाइं भुंजमाणा विहरंति) जब
 वे अच्छी तरह खा पी चुके-तब देवदत्ता के साथ वे पर्यङ्क आदि आसन
 पर आकर बैठ गये वहां इतना संवन्ध और इसप्रकार जोड़ लेना चाहिये-

(अणुप्रविसिक्ता सञ्चालंकारविभूसिया आसत्या वीसत्या सुहासणवरगया
 देवदत्ताए सद्धि) प्रवेशीने सर्व अलंकारोत्थी विभूषित थयेला तेज्यो आश्वस्त-थाड वगर
 स्वस्थचित्त णन्या. विश्वस्त थया-सर्वथा श्रम रद्धित थया, अने सुषेथी भोसाथ तेवा
 पलंग (पर्यङ्क) वगेरे आसनो पर भेसी गया. त्यारणाह तेमण्णे देवदत्ता गुण्डिकानी साथे
 (तं विउलं असणं धूपपुष्पगंधवस्त्रं आसाएमाणा, वीसाएमाणा परि-
 भुंजेमाणा एवं च णं विहरंति) पुष्पण प्रमाणुमां तैयार करावीने त्यां पडोया-
 उवाभां आवेला अशन, पान, भाद्य अने स्वाद्य इप आर नतना आहारने यथारुचि
 अभ्या. तेमन् धूप, -पुष्प, गंध अने वस्त्रोत्थं वितरणकथुं. (जिमिय भुक्तुत्तरागया
 वि य णं समाणा देवदत्ताए सद्धि विउलाइं माणुस्सगाइं कामभोगाइं भुंजमाणा
 विहरंति) अभ्या पडी तेज्यो पलंग वगेरे सरस आसनो पर आवीने देवदत्ता
 गुण्डिकानी साथे भेसी गया. अच्छी आटली विगत वधाराणी नष्टी लेवी लेधये हे-

नगर्या मध्य-मध्येन-मध्ये भूत्वा यत्रैव सुभूमिभागपुद्यानमस्ति यत्रैव नन्दा नाम्नी
 पुष्करिणी तत्रैवोपागच्छतः, उपागत्य प्रवहणात्=रथात् प्रत्यवरोहतः-प्रत्यवतरतः
 वेद्यापि यानादुत्तीर्णा, ततःपश्चात्, नन्दा पुष्करिणीमवसाहन्ते, अवगात्र=प्रवेशं
 कृत्वा देवदत्तया सार्द्धं जलमज्जनं-स्नानं कुरुतः स्नानं कृत्वा जलक्रीडां कुरुतः
 कृत्वा स्नात्वा (स्नातौ) देवदत्तया गणिकया सार्द्धं प्रभो प्रत्युत्तरतः नन्दापुष्क
 रणीतो चर्द्धिर्निस्सरतः प्रत्युत्तीर्य यत्रैव स्थूणामण्डपो वस्त्राच्छादितमंडपस्तत्रैवो-
 पागच्छतः, उपागत्य स्थूणामण्डपमनुप्रविशतः,=मण्डपमध्ये देवदत्तया सार्द्धं तौ
 साथैवाहदारकौ प्रवेशं कुरुत इत्यर्थः । अनुप्रविश्य सर्वालंकारविभूषितौ वस्त्रा-

उस रथ पर आरूढ हुए (दुरुहिता चंपाए नयरोए) आरूढ होकर चंपा-
 नगरी के (मज्झं मज्झेणं) ठीक बीचोबीच से होकर (जेणेव सुभूमिभागे
 उज्जाणे) जहां सुभूमि भाग नाम का उद्यान और उसमें भी (जेणेव नन्दा-
 पुष्करिणी) जहां नन्दा नाम की पुष्करिणी (यावडी) थी (तेणेव उवागच्छंति)
 वहां पहुँचे । (उवागच्छिता प्रवहणातो पच्चोरुहंति) पहुँच कर फिर वे रथ
 से नीचे उतरे । (पच्चोरुहिता नन्दापोष्वरिणीं ओगाहंति) उतर कर नन्दा
 पुष्करिणी में प्रवेश किया (ओगाहिता जलमज्जनं करंति) प्रवेश कर वहाँ
 उन्होंने स्नान किया (करिता जलक्रीडां करंति) स्नान करके जलक्रीडा की
 (करिता ह्याया देवदत्ताए सार्द्धं पच्चुत्तरंति) जलक्रीडा करके वे दोनों देव
 दत्ता गणिका के साथ उस पुष्करिणी से बाहर निकले (पच्चुत्तरिता जेणेव
 थूणामंडवे तेणेव उवागच्छंति) बाहर निकल कर जहाँ वह स्थूणामंडप-
 वस्त्राच्छादितमंडप-था-वहाँ आये-(उवागच्छिता थूणामंडवं अणुपविसंति)

सवार तथा. (दुरुहिता चंपाए नयरीए) सवार होने चंपानगरीनी (मज्झं
 मज्झेणं) ठीक बीचे थधने (जेणेव सुभूमिभागे उज्जाणे) न्यां सुभूमिभाग उद्यान
 तेभञ्ज (जेणेव नन्दा पुष्करिणी) न्यां नन्दा नामे पुष्करिणी (कभण जेभां डोय
 तेवी स्वच्छ पाणीनी नानी सुंदर वाव) इती (तेणेव उवागच्छंति) त्यां पडोन्था.
 (उवागच्छिता प्रवहणातो पच्चोरुहंति) पडोन्थीने तेज्यो रथभांथी नीचे उतर्यां.
 (पच्चोरुहिता नन्दा पोष्वरिणीं ओगाहंति) उतारीने नन्दा पुष्करिणी (वाव) मां पेडा
 थने (ओगाहिता जलमज्जनं करंति) प्रवेशीने तेज्योअे स्नानं कथुं. (करिता
 जलक्रीडां करंति) स्नान करीने तेज्योअे जल क्रीडाअे करी. (करिता ह्याया देव-
 दत्ताए सार्द्धं पच्चुत्तरंति) जल क्रीडा करीने तेज्यो अने देवदत्ता गणिकानी साथे
 पुष्करिणीभांथी अडार नीडल्या. (पच्चुत्तरिता जेणेव थूणामंडवे तेणेव उवागच्छंति
 अडार नीडणीने न्यां स्थूणा मंडप (वस्त्राच्छादितमंडप) अथात् तथू इती त्यां गथां.
 (उवागच्छिता थूणामंडवं अणुपविसंति) त्यां अने तेज्यो मंडपभां प्रविष्ट तथा.

भरणशोभितौ, 'असत्या' आस्वस्थौ परिश्रमापनयनेन स्वस्थीभूतौ, प्रसन्नचित्तौ इत्यर्थः
 'वीसत्या' विस्वस्थौ विशेषेण स्वस्थीभूतौ सर्वथाऽपगतश्रमौ, सुखासनवरगतौ
 सुखप्रदपर्यङ्काद्यासनोपविष्टौ, देवदत्तया साद्धं तं विपुलं विस्तीर्णम् अशनं पानं खाद्यं-
 स्वाद्यं धूपं पुष्पं गन्धं वस्त्रं च, 'असाएमाणा' आस्वादयन्तौ-ईपत्स्वादयन्तौ
 'विसाएमाणा' विस्वादयन्तौ-विशेषेण वारं वारमास्वादयन्तौ, 'परिश्रुंजेमाणा'
 परिश्रुंजानौ-परिश्रमं कुर्वाणौ एवं च अनेन प्रकारेण खलु विहरतः आसाते।
 अपि च खलु 'जिमिय भुत्तुत्तरागया' जिमित भुक्तोतरागती जिमितं=खादितं,
 भुक्तम्=आस्वादितं ताभ्यामुत्तरं=अनन्तरम् आगतौ सुखासनं पर्यङ्कादिकं प्राप्त्वा,
 जिमितमुक्तानन्तरम्-आचान्तौ शुद्धोदकेन कृताचमनौ, लेपाद्यपनयनेन चोक्षौ

आकर वे उसमें प्रविष्ट हुए (अणुविसिक्ता सञ्चालंकारविभूसिया आसत्या
 वीसत्या सुहासणवरगया देवदत्ताए सद्धिं) प्रविष्ट होकर सर्व अलंकारों
 से विभूषित बने हुए वे आश्वस्त-परिश्रम के अपनयन से स्वस्थविन हुए
 विश्वस्त हुए-सर्वथा परिश्रम से रहित हुए और सुखप्रदपर्यङ्क (पलंग) आदि
 आसन पर जाकर बैठ गये। बाद में उन्होंने उस देवदत्ता के साथ (तं
 विडलं असणं धूपपुष्पगंधवस्त्रं आसाएमाणा, वीसाएमाणा परिश्रुंजे
 माणा एवं च णं विहरंति) उस विपुलमात्रामें निष्पन्न हुए अशन, पान, खाद्य,
 स्वाद्य, रूप चारों प्रकार के आहार को किया रुचर कर उसका स्वाद लिया-
 धूप, पुष्प, गंध, वस्त्र का वितरण किया-(जिमियभुत्तुत्तरागया वि य णं समाणा
 देवदत्ताए सद्धिं विडलाइंमाणुस्सगाइं कामभोगाइं भुंजमाणा विहरंति) जब
 वे अच्छी तरह खा पी चुके-तब देवदत्ता के साथ वे पर्यङ्क आदि आसन
 पर आकर बैठ गये वहां इतना संवन्ध और इस प्रकार जोड़ लेना चाहिये-

(अणुविसिक्ता सञ्चालंकारविभूसिया आसत्या वीसत्या सुहासणवरगया
 देवदत्ताए सद्धिं) प्रवेशीने सर्व अलंकारोशी विलूषित थयेला तेज्यो आश्वस्त-थाक वजर
 स्वस्थचित्त बन्या. विश्वस्त थया-सर्वथा श्रम रूडित थया, अने सुषेथी णेसाथ तेवा
 पलंग (पर्यङ्क) वगेरे आसनेा पर भेसी गया. त्यांरण्याइ तेमळु देवदत्ता गुण्डिकांनी साथे
 (तं विडलं असणं धूपपुष्पगंधवस्त्रं आसाएमाणा, वीसाएमाणा परि-
 श्रुंजेमाणा एवं च णं विहरंति) पुष्कण प्रमाणुभां तैथार करवीने त्यां पडोंच्या-
 उवाभां आवेला अशन, पान, भाद्य अने स्वाद्य रूप चार जतना आडारने यथारुचि
 अभ्या. तेमज धूप-पुष्प, गंध अने वस्त्रोळं पितरळुकरुं. (जिमिय भुत्तुत्तरागया
 वि य णं समाणा देवदत्ताए सद्धिं विडलाइं माणुस्सगाइं कामभोगाइं भुंजमाणा
 विहरंति) अभ्या पछी तेज्यो पलंग वगेरे सरस आसनेा पर आवीने देवदत्ता
 गुण्डिकांनी साथे भेसी गया. अडीं आटली विगत वधारांनी जाली लेवी जेथजे हे-

स्वच्छौ, अत एव परमशुचिभूतो सुखासनं प्राप्योपविष्टौ इत्यर्थः । 'समाणा'
सन्तौ देवदत्ताया गणिकया साद् विपुलान्—रीस्तीर्णान् मानुष्यज्ञान-मनुष्य-
संबन्धिनः कामभोगान् शब्दादीन् पञ्चेन्द्रियविषयान् भुञ्जानो विहरत आसातेस्मान् १

मूलम्—तएणं ते सत्थवाहदारगा पुञ्वावरणहकालसमयंसि
देवदत्ताए गणियाए सद्धिं धूणामंडवाओ पडिनिक्खमंति पडिनि-
क्खमित्ता हत्थ संगेह्ठीए सुभूमिभागे उज्जाणे बहुसु आलिघरएसु य
कयलीघरेसु य लयाघरएसु य अच्छणघरएसु य पेच्छणघरएसु य
पसाहणघरएसुय मोहणघरएसु य सालघरएसुय जालघरएसु य कु-
सुमघरएसु य उज्जाणसिरिं पच्चणुभवमाणा विहरंति ॥सू. १०॥

टीका—ततस्तदनन्तरं खलु तौ सार्थवाहदारकौ पूर्वापराहकालसमये-
पश्चिमे प्रहरे देवदत्ताया गणिकया साद्धिं धूणामण्डपात् प्रतिनिष्क्रामतः वहि-

‘भोजन करने के बाद उन्होंने आचमन-शुद्ध जल से कुल्ला किया। खाते
समय जो अन्नादि के सीत उनके पैर आदि अवयवों पर गिर गये थे उन्हें
उन्होंने दूर कर उन अवयवों को साफ किया। इस तरह परमशुचि भूत
होकर सुखासन पर आकर बैठ गये’ बैठने के बाद उन्होंने उस देवदत्ता
गणिका के साथ विपुल मनुष्यभ्रव संबन्धी कामभोगों को शब्दादिक पांचो
इन्द्रियों के विषयों को सेवन किया। ॥सूत्र ९॥

‘तएणं ते सत्थवाहदारगा’ इत्यादि ।

टीकार्थ—(तएणं) इसके बाद (ते सत्थवाहदारगा) वे सार्थवाह दारक
(पुञ्वावरण-काल समयंसि) पश्चिम प्रहर में (देवदत्ताए गणियाए सद्धिं) देवदत्ता

जन्मा पछी तेज्जाये शुद्ध पाणीथी डोगणा कयां. जन्ती वणते अन्न वगेरेना कल्ले।
तेमना डाय पग उपर पडी गया हुता तेमने तेज्जाये साद्धिं कयां. अने आ प्रभाण्णे
पोताना अवयवोने स्वच्छ अनाज्या. शुद्ध थया. णाह तेज्जा सरस सुणह आसन पर
आधीने णेहा. जेसीने तेज्जाये गणिका देवदत्तानी साथे पुच्छण मनुष्यभवना कामभोगो
तेमन् शण्ड वगेरे पांचे छिन्द्रियोना विषयोनुं सेवन कथुं. ॥सूत्र. ९॥

‘त एणं ते सत्थवाहदारगा’ इत्यादि !

टीकार्थ—(तएणं) त्पारणाह (ते सत्थवाहदारगा) सार्थवाहना पुत्रो (पुञ्वावर-
हकालसमयंसि) पाछला पंडारना वणते (देवदत्ताए गणियाए सद्धिं) देवदत्ता श-
खिकानी साथे (धूणामंडवाओ पडिनिक्खमंति) स्थलु भंडपनी णडार नीकज्या.

निस्सरतः प्रतिष्क्रिय 'हृत्थसंगेह्लिना-अन्योन्यं हस्तावलम्बनेन सुभूमिभागे उद्याने बहुषु 'आलिघरएमु' आलिगृहकेषु श्रेणिचद्गृहाकारपरिणतवनस्पतिविशेष-निकुञ्जेषु च-पुनः 'कयलीघरेषु' कदली गृहकेषु-कदली निकुञ्जेषु च 'लयाघरएमु' लतागृहकेषु-चंपकाशोकादिलतागृहेषु च 'अच्छणघरएमु' आसनगृहकेषु आसन-उपवेशनम् तेषां गृहेषु यदा तदा जना आगत्य सुखासिकव्योपविशन्ति यत्र तत्र च 'पेच्छणघरएमु' प्रेक्षणगृहकेषु-प्रेक्षण-प्रेक्षणकं तस्यगृहेषु-यत्रागत्य जना नाटकदिकं कुर्वन्ति प्रेक्षन्ते च तेषु 'पसाहणघरएमु य' प्रसाधनगृहकेषु प्रसाधनं मण्डनं यत्रागत्य जना स्वं परं च मण्डयन्ति तेषां गृहेषु 'मोहणघरएमु' मोहनगृहकेषु-विलासगृहेषु 'सालघरएमु' शाला-गृहकेषु शाला शाखा तासां गृहेषु वृक्षगृहेषु वा' जालघरएमु' जालगृहकेषु-जालिकान्वितगृहेषु यत्राभ्यन्तरस्थिता वहिः स्थितैर्न दृश्यन्ते किन्तु अन्तः

गणिका के साथ (श्रृणामंडवाओ पडिनिक्खमंति) उस स्थणामंडप से बाहर निकले (पडिनिक्खमिच्चा) बाहर निकल कर (हृत्थसंगेल्लीए) हाथ में हाथ मिलाए हुए वे (सुभूमिभागे उज्जाणे बहुसु आलिघरएमुय) उस सुभूमिभाग उद्यान में अनेक श्रेणिचद् गृहाकार परिणत हुए वनस्पति विशेषों के निकुंजों में (कयलीघरएमु य लयाघरएमुय) कदलीगृहोंमें और लतागृहोंमें (अच्छण घरएमुय) यदा कदा आई हुई जनता को बैठने के लिये बनाये हुए आसन गृहोंमें (पेच्छणघरएमुय) जहां पर आकर के जन नाटक आदि करते हैं और देखते हैं उन प्रेक्षण घरों में (पसाहणघरएमु य) प्रसाधन गृहों में-जहां आकर के मनुष्य अपने को और दूसरो को अलंकारो से विभूषित करते हैं ऐसे घरोंमें (मोहणघरएमुय) विलास गृहों में (सालघरएमु य) शाला घरों में (जालघरएमु य) जालिकान्वित घरों में-जिनके भीतर रहे हुए

(पडिनिक्खमिच्चा) गडार नीडणीने (हृत्थसंगेल्लीए) हाथमां हाथ नाणीने तेओ (सुभूमिभागे उज्जाणे बहुसु आलिघरएमु य) सुभूमिभाग उद्यानमां आवेला धणु श्रेणिचद् घरना आकार वेवा वनस्पति विशेषोथी जनाववामां आवेला निकुंजेमां (कयलीघरएमु य लयाघरएमु य) कदली गृहोमां, लतागृहोमां, (अच्छणघरएमु य) अवारनवार आवता सामान्निडेने जेअवा माटे जनाववामां आवेला आसनगृहोमां (पेच्छणघरएमु य) माणुसो न्यां आवीने नाटक वगेरे करे छि अने बुओ छि तेवा प्रेक्षागृहोमां (पसाहणघरएमु य) प्रसाधन गृहोमां ऐटवे डे न्यां माणुसो पोतानी नतने अने पीनओने शणुगारे छि, तेवा धरोमां, [मोहणघरएमु य] विलासगृहोमां (सालघरएमु य) शालागृहोमां (जालघरएमु य) नणीओवाणा धरोमां ऐटवे डे

स्वितैर्बहिःस्था दृश्यन्ते तादृशेषु च 'कुसुमघरएसु' कुसुमगृहकेषु=पुष्पगृहकेषु, इत्यादिषु, स्थानेषु 'उज्जाणसिरिं' उद्यानश्रियं, उपवनस्य शोभां सुखं च 'पञ्चणु भवमाणा' प्रत्यनुभवन्ती देवदत्ताया सार्द्धमनुभवन्ती विहरतः=विचरतः । मू. १०।

मूलम्—तए णं ते सत्थवाह दारया जेणेव से मालुया कच्छए तेणेव पहारेत्थ गमणाए, तएणं सा वणमऊरी ते सत्थहदारए एज्जमाणे पाएइ पासित्ता भीया तत्था तसिया उट्ठिग्गा पलाया महया महया सइणं केकारवं विणिम्मुयमाणी २ मालुयाकच्छाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता एगसि रुक्खडालयंसि टिच्चा ते सत्थ वाहदारए मालुयाकच्छयं च अणिमिसाए दिट्ठिए पेहमाणी २ चिट्ठइ ॥सू० ११॥

टीका—'तएणं ते' इत्यादि—ततस्तदनन्तरं खलु तदुद्यानशोभासु-खानुभवानन्तरं तौ सार्धवाहदारकौ यत्रैव स मालुकाकक्षकः पूर्वोक्त एका-स्थिकफलानां वृक्षविशेषाणां काननं वर्तते तत्रैव 'पहारेत्थ गमणाए' प्राधार यतां

मनुष्य बाहिर रहे हुए मनुष्यों की दृष्टि में न आवे किन्तु बाहिर मनुष्य उन भीतर में रहे हुए मनुष्यों को दिखलाई पड़ते रहे ऐसे घरों में—(कुसुमघरएसु य) पुष्प गृहों (उज्जाणसिरिं पञ्चणुभवमाणा विहरंति) देवदत्ता के साथ २ उद्यानश्री का निरीक्षण करता हुआ आनंद भोग करते हुए विचरते रहे । सूत्र १० ॥

'तएणं ते सत्थवाहदारगा' इत्यादि ।

टीकार्थ—(तएणं) इसके बाद (ते सत्थवाहदारगा) वे दोनों सार्धवाह दारक (जेणेव मालुयाकच्छए) जहाँ वह मालुका कच्छ था (तेणेव पहारेत्थ गमणाए) उस ओर जानेके लिये उत्कंठित हुए (तएणं सा वणमऊरी ते

येवा घशेमां के जेमनी अंदर भेडेला माणुसेने सारी पेठे लेछ थके पणु णडारना माणुसे अंदरना माणुसेने लेछन थके, (कुसुमघरएसु य) पुष्प गृहोभां, (उज्जाणसिरिं पञ्चणुभवमाणा विहरंति) उद्याननी शोभा लेता देवदत्तानी साथे सुभ अनुभवता विचरता रहा. ॥सूत्र १०॥

'तएणं ते सत्थवाह-दारगा' इत्यादि ।

टीकार्थ—(त एणं) त्यारणाए (ते सत्थवाह दारगा) णंने सार्धवाह पुणे (जेणेव से मालुया कच्छए) जे तरइ मालुका कच्छ इतो. (तेणेव पहारेत्थ गमणाए)

गमनाय=तत्र गन्तुमुत्कण्ठितौ गतौ च, ततस्तदनन्तरं खलु सा वनमयूरी
 तौ सार्थवाहदारकौ 'एजमाणे' एजमानौ प्रत्यागच्छन्तौ पश्यति दृष्ट्वा च'
 'भीया' भीताः अकस्माद् भयजनकवस्तुदर्शनेन भयं प्राप्ता 'तत्या' अस्ता-
 भयजनितदुःखं प्राप्ता स्तब्धा वा क्षणमात्रं भयेन निश्चला जाता 'तसिया'
 अन्तर्भावितव्यर्थः, त्रासिता आत्मनः प्रतिप्रदेशं भयेन संक्रान्ता जाता 'उच्चिग्गा'
 उच्चिग्गा-त्रोणशरणरहितत्वेनोद्वेगं प्राप्ता 'पलाया' पलायिता-उड्डेयनोद्युक्ता
 'महया २ सद्देणं' महता २ शब्देन उच्चस्वरेण 'केकारवं' मयूरशब्दं 'विणि-
 म्मुयमाणी २' विनिर्मुञ्चन्ती=पुनःपुनः कुर्वती मालुकारुक्षान् 'पडिनिक्ख-
 मइ' प्रतिनिष्कामति-निस्सरति 'पडिनिक्खत्ता' प्रतिनिष्कम्य निस्सृत्य स्वस्था-
 नाडुड्डीय 'एगंसि' एकस्यां वृक्षशाखायां 'ठिचा' स्थित्वा तौ सार्थवाहदारकौ तं

सत्यवाहदारण एजमाणे पासइ) उस वनमयूरीने उन दोनों सार्थवाह
 दारकों का ज्यों ही आते हुए देखा-तो (पासित्ता) देखकर (भीया तत्या
 तसिया उच्चिग्गा पलाया) भयभीत हो गई अस्त हो गई--अकस्मान्
 भयजनक वस्तु को देखने से भय जनित दुःखको प्राप्त हुई-अथवा क्षण
 मात्र के लिये भयसे निश्चल हो गई-आत्मा के प्रतिप्रदेश में भय
 से युक्त हो गई, उद्वेग वी प्राप्त हो गई-और उस स्थान से उडी (महयार सद्देणं
 केकारवं विणिम्मुयमाणी २ मालुयारुच्छाओ पडिनिक्खमइ) उडती २ बडे जोर २ ने
 केकारव (शब्द) बारबार करती करती वह उस मालुका कच्छरु से बाहर हो गई
 (पडिनिक्खमित्ता एगंसि रुक्खडालयंसि ठिचा ते सत्यवाहदारण मालुया-
 कच्छयं च अणिमिसाए दिट्ठिए पेहमाणी २ चिडइ) बाहर होकर एक

ते आणु ज्वा आगण वत्था (तएणं सा वणमऊरी ते सत्यवाहदारण एजमाणे पासइ)
 ते डेवे णंने सार्थवाहोने नेया अने (पासित्ता) नेधने (भीया तत्या तसिया उच्चिग्गा
 पलाया) ठरी गध, संत्रस्त थध गध ओच्चिंता लय पमाडनारी वस्तुने नेधने ते
 दुःख पाभी, अथवा तो ते लयभीत थधने थोडा वणत भाटे स्तब्ध थध गध, तेना
 आत्मप्रदेशेमां लय प्रसरी गयो. ते उच्चिग्ग थध गध तेनी सामे रक्षाने थोड पध
 नतने उपाय हुतो नडि तेथी ते व्याकुण णनी गध अने ते स्थानेथी उडी
 (महया २ सद्देणं केकारवं विणिम्मुयमाणी २ मालुया कच्छाओ पडिनिक्खमइ)
 अने थोटा स्वरेथी उड्डीती २ उडती ते मालुका कच्छथी णडार नीडणी गध. (पडिनि-
 क्खमित्ता एगंसि रुक्खडालयंसि ठिचा ते सत्यवाहदारण मालुया
 कच्छयं च अणिमिसाए दिट्ठिए पेहमाणी २ चिडइ) मालुका कच्छनी णडार नीडणीने ते

स्वितैर्ध्विःस्था दृश्यन्ते तादृशेषु च 'कुसुमघरएसु' कुसुमगृहकेषु=पुष्पगृहकेषु, इत्यादिषु, स्थानेषु 'उज्जाणसिरि' उद्यानश्रियं, उपवनस्य शोभां सुखं च 'पञ्चणु भवमाणा' प्रत्यनुभवन्ती देवदत्ताया सार्द्धमनुभवन्ती विहरतः=विचरतः। मू. १०।

मूलम्—तए णं ते सत्थवाह दारया जेणेव से मालुया कच्छए तेणेव पहारेत्थ गमणाए, तएणं सा वणमऊरी ते सत्थहदारए एज्जमाणे पारुइ पासित्ता भीया तत्था तसिया उट्ठिग्गा पलाया महया महया सइणं केकारवं विणिम्मुयमाणी २ मालुयाकच्छाओ पडिणिकखमइ, पडिणिक्खमित्ता एगसि रुक्खडालयंसि टिच्चा ते सत्थ वाहदारए मालुयाकच्छयं च अणिमिसाए दिट्ठिए पेहमाणी २ चिट्ठइ ॥सू० ११॥

टीका—'तएणं ते' इत्यादि—ततस्तदनन्तरं खलु तदुद्यानशोभासु खानुभवानन्तरं तौ सार्धवाहदारकौ यत्रैव स मालुकाकक्षकः पूर्वोक्त एकास्थिकफलानां वृक्षविशेषाणां काननं वर्तते तत्रैव 'पहारेत्थ गमणाए' प्राधार यतां

मनुष्य वाहिर रहे हुए मनुष्यों की दृष्टि में न आवे किन्तु वाहिर मनुष्य उन भीतर में रहे हुए मनुष्यों को दिखलाई पड़ते रहे ऐसे घरों में—(कुसुमघरएसु य) पुष्प गृहों (उज्जाणसिरि पञ्चणुभवमाणा विहरन्ति) देवदत्ता के साथ २ उद्यानश्री का निरीक्षण करता हुआ आनंद भोग करते हुए विचरते रहे। सूत्र १० ॥

'तएणं ते सत्थवाहदारगा' इत्यादि।

टीकार्थ—(तएणं) इसके बाद (ते सत्थवाहदारगा) वे दोनों सार्धवाहदारक (जेणेव मालुयाकच्छए) जहां वह मालुका कच्छ था (तेणेव पहारेत्थ गमणाए) उस ओर जानेके लिये उत्कंठित हुए (तएणं सा वणमऊरी ते

येवा धशेभां डे जेमनी अंदर भेडेला भाणुसोने सारी पेडे जेध थडे यलु णडारना भाणुसो अंदरना भाणुसोने जेधन थडे, (कुसुमघरएसु य) पुष्प गृहोभां, (उज्जाणसिरि पञ्चणुभवमाणा विहरन्ति) उद्याननी शोभा जेत्या देवदत्तानी साथे सुभ अनुभवता विचरता रथ्या ॥सूत्र १०॥

'तएणं ते सत्थवाहदारगा' इत्यादि।

टीकार्थ—(त एणं) त्पारणाद (ते सत्थवाहदारगा) अने सार्धवाह पुत्रे (जेणेव से मालुया कच्छए) जे तरक्ष मालुका कच्छ हुतो. (तेणेव पहारेत्थ गमणाए)

टाका—'तएणं ते' ततस्तदनन्तरं—मयूषा उर्द्ध्वनान्ता' तौ सार्थवाह-
दारका अन्योऽन्यं=परस्परं शब्दयतः=भ्राम्यतः=संमुखी कुरुतः 'सदावित्ता'
शब्दयित्वा=अन्योन्यमाहूय वक्ष्यमाणप्रकारेणावादिष्टाम् 'जहाणं' यथा खलु
देवानुप्रिय ! एषा वनमयूरी आवामेजमानौ आगच्छन्ती दृष्ट्वा च भीता, त्रस्ता,
त्रसिता, उद्विग्ना पलायिता—स्वस्थानं त्यक्त्वाऽन्यत्स्थानं गता महता शब्देन
केकारवं मुञ्चन्ती मती यावदावां मालुकाकच्छकं च पुनः पुनः प्रेक्षमाणी
तिष्ठति 'तं' तत्-तस्मात् 'भविष्यत्वं' भवितव्यम् 'एत्थ' अत्र केनापि कार-

'तएणं ते सत्थवाहदारगा' इत्यादि ।

टीकार्थ—(तएणं) इसके बाद (ते सत्थवाहदारगा) उन दोनों सार्थवाह
दारगोंने (अन्नमणं सदावेति) परस्पर में विचार किया बातचीत की (सदा-
वित्ता) बातचीत कर के (एवं वयासी) फिर वे इस प्रकार कहने लगे—
(जहाणं देवाणुप्पिया ! एसा वणमज्जरी अम्हे एज्जमाणा पासित्ता भीया
तत्था तस्सिया उद्विग्गा पलाया महया २ सदेणं जाव अम्हे मालुयाक
च्छयं च पेच्छमाणी २ चिद्धइ) जिस कारण हे देवानुप्रिय ! यह वनमयूरी
हम लोगों को आता हुआ—देखकर भयभीत, त्रस्त और त्रसित होकर
उद्विग्न बनी और यहां से उड़ गई—उड़ती २ उसने बड़े जोर २ से के-
कारव किया—और इस मालुकाकच्छक से बाहर होकर एक वृक्ष की
डाल पर बैठी २ यह हम लोगों की ओर और मालुकाकच्छक की ओर
वार २ देख रही है (तं भविष्यत्वं एत्थ कारणेणं त्तिरुद्धु मालुयाकच्छयं अंतो
अणुपविसंति) तो इसमें कोई न कोई कारण अवश्य होना चाहिये—ऐसा

'तएणं ते सत्थवाहदारगा' इत्यादि ।

टीकार्थ—(तएणं) त्यारणान् (ते सत्थवाहदारगा) अने सार्थवाह पुत्रोच्चे
(अन्नमणं सदावेति) ऐक्यधीन साथे बातो करी (सदावित्ता) बातचीत करीने
(एवं वयासी) तेथो कडेवा लाया (जहाणं देवाणुप्पिया ! एसा वणमज्जरी अम्हे
एज्जमाणा पासित्ता भीया तत्था तस्सिया उद्विग्गा पलाया महया २ सदेणं जाव
अम्हे मालुयाकच्छयं च पेच्छमाणी २ चिद्धइ) हे देवानुप्रिय ! आ देल आपणुने
आपता नेधने लयलीत संत्रस्त, त्रसित, अने व्याकुण थधने अडीथी उडी, अने
न्यारे ने उडी त्यारे तेथे मोटा अवाजे डेकारव क्यो. अने ते मालुकाकच्छनी णडार
नीकणीने ऐक आउनी शाणा उपर गेसी गध छि अने त्यांथी पणु ते आपणुने अने
मालुकाकच्छने वारवार नेध रही छि. (तं भविष्यत्वं एत्थ कारणेणं त्तिरुद्धु मालुया
कच्छयं अंतो अणुपविसंति) तो ऐनी पाछण कंधने कंध रहस्य बोधस छेपुं

मालुकाकक्षकं च 'अणिमिसाए' अनिमेषया निश्चलया 'दिद्वीए' दृष्टया 'पेहमाणी २' प्रेक्षमाणी २-पुनः पुनः पश्यन्ती 'चिद्वइ' तिष्ठति ॥सू० ११॥

मूलम्—तएणं ते सत्थवाहदारगा अण्णमण्णं सदावेत्ति सदावित्ता एवं वयासी जहाणं देवानुप्पिया ! एसा वणमऊरी अम्हे एज्जमाणा पासित्ता भीया तत्था तसिया उच्चिग्गा पलाया महया महया सद्देणं जाव अम्हे मालुया कच्छयं च पेच्छमाणी रचिद्वइ, तं भयियव्वमेत्थ कारणेणं त्तिक्कड्ढ मालुयाकच्छयं अंतो अणुपविसंति अणुपविसित्ता तत्थ दो पुढे परियागये जाव पासित्ता अब्रमन्नं सदावेत्ति, सदावित्ता एवं वयासी-सेयं खलु देवाणुप्पिया ! अम्हं इमे वणमऊरी अंडए साणं २ जाइमंताणं कुक्कुडियाणं अंडएसुअ पक्खिवावित्तए तएणं ताओ जाइमंताओ कुक्कुडियाओ एए अंडए सएणं पक्खिवाएणं सारक्खमाणीओ संगेवेमाणीओ विहरिस्संति, तएणं अम्हं एत्थं दो कीलामणगा मऊरीपोयगा भविस्संतित्ति कड्ढे अन्नमन्नस्स एयमट्ठं पडिसुणति, पडिसुणित्ता सए सए दासवेडए सदावेत्ति सदावित्ता एवं वयासी गच्छह णं तुव्वमेदेवाणुप्पिया ! इमे अंडए गहाय सयाणं जाइमंताणं कुक्कुडीणं अंडएसु पक्खिवह जाव-तेवि पक्खिवेत्ति ॥सू. १२॥

वृक्ष की डाल पर जाकर बैठ गई और बैठी २ वहीं से उन दोनों सार्थवाहदारकों को और मालुका कक्षक की ओर बार बार अनिमिष दृष्टि से देखने लगी । सूत्र । ११ ।

એક આડની શાખા ઉપર બેસી ગઈ, અને ત્યાંથી જ તે બંને સાર્થવાહોને તેમજ માલુકા કચ્છની તરફ વારંવાર એકી નજરે બેવા લાગી ॥સૂત્ર ૧૧॥

टाका—'तएणं ते' ततस्तदनन्तरं—प्रयुषी उर्ध्वयनान्ता' तौ सार्धवाह-
दारकां अन्योऽन्यं=परस्परं शब्दयतः=भ्रायतः=संमुखी कुरुतः 'सद्वावित्ता'
शब्दयित्वा=अन्योन्यमाहूय वक्ष्यमाणप्रकारेणावादिष्टाम् 'जहाणं' यथा खलु
देवानुप्रिय ! एषा वनमयूरी आवामेजमानौ आगच्छन्तौ दष्टा च भीता, त्रस्ता,
त्रसिता, उद्विग्ना पलायिता—स्वस्थानं त्यक्त्वाऽन्यत्स्थानं गता महता शब्देन
केकारवं मृञ्चन्ती मती यावदावां मालुकाकच्छकं च पुनः पुनः प्रेक्षमाणी
तिष्ठन्ति 'तं' तत्-तस्मात् 'भवियच्चं' भवितव्यम् 'एत्थ' अत्र केनापि कार-

'तएणं ते सत्थवाहदारगा' इत्यादि ।

टीकार्थ—(तएणं) इसके बाद (ते सत्थवाहदारगा) उन दोनों सार्धवाह
दारगोंने (अन्नमणं सद्वावेति) परस्पर में विचार किया धानचीन की (सद्वा-
वित्ता) वातचीत कर के (एवं वयासी) फिर वे इस प्रकार कहने लगे—
(जहाणं देवाणुप्पिया ! एसा वणमऊरी अम्हे एज्जमाणा पासित्ता भीया
तत्था तसिया उद्विग्गा पलाया महया २ सद्देणं जाव अम्हे मालुयाक
च्छयं च पेच्छमाणी २ चिट्ठइ) जिस कारण हे देवानुप्रिय ! यह वनमयूरी
हम लोगों को आता हुआ—देखकर भयभीत, त्रस्त और त्रसित होकर
उद्विग्ना बनी और यहाँ से उड़ गई—उड़ती २ उसने बड़े जोर २ से के-
कारव किया—और इस मालुकाकच्छक से बाहर होकर एक वृक्ष की
डाल पर बैठी २ यह हम लोगों की ओर और मालुकाकच्छक की ओर
वार २ देख रही है (तं भवियच्चं एत्थ कारणेणं त्तिरुहु मालुयाकच्छयं अंतो
अणुपविसंति) तो इसमें कोई न कोई कारण अवश्य होना चाहिये—ऐसा

'तएणं ते सत्थवाहदारगा' इत्यादि ।

टीकार्थ—(तएणं) त्थारणाह (ते सत्थवाहदारगा) णंने सार्धवाह पुत्रोच्चे
(अन्नमणं सद्वावेति) ऐकधीण्ण साथे वातो करी (सद्वावित्ता) वातचीत करीने
(एवं वयासी) तेओ कडेवा लाओ (जहाणं देवाणुप्पिया ! एसा वणमऊरी अम्हे
एज्जमाणा पासित्ता भीया तत्था तसिया उद्विग्गा पलाया महया २ सद्देणं जाव
अम्हे मालुयाकच्छयं च पेच्छमाणी २ चिट्ठइ) हे देवानुप्रिय ! आ देल आपणुने
आपता नेधने लयलीत संत्रस्त, त्रसित, अने व्याकुण थधने अडींथी उडी, अने
न्थारे ने उडी त्यारे तेणु मोटा अवाणे डेकारव कथे अने ते मालुकाकच्छनी णडार
नीकणीने ऐक आडनी शाणा उपर भेसी गध छे अने त्यांथी पणु ते आपणुने अने
मालुकाकच्छने वारंवार नेध रही छे. (तं भवियच्चं एत्थ कारणेणं त्तिरुहु मालुया
कच्छयं अंतो अणुपविसंति) तो ऐनी पाछण कंधने कंध रहस्य बोक्कस डोपु'

मालुकाकक्षकं च 'अणिमिसाए' अनिमेषया निश्चलया 'दिशीए' दृष्टया
'पेहमाणी २' प्रेक्षमाणी २-पुनः पुनः पश्यन्ती 'चिद्द' तिष्ठति ॥४० ११॥

भूलम्—तएणं ते सत्थवाहदारगा अणमणं सदावेति
सदावित्ता एव वयासी जहाणं देवानुप्पिया ! एसा वणमजरी अम्हे
एज्जमाणा पासित्ता भीया तत्था तसिया उच्चिग्गा पलाया महया
महया सदेणं जाव अम्हे मालुया कच्छयं च पेच्छमाणी रचिद्दइ, तं
भयियव्वमेत्थ कारणेणं त्तिकद्द मालुयाकच्छयं अंतो अणुपविसंति
अणुपविसित्ता तत्थ दो पुढे परियागये जाव पासित्ता अन्नमन्नं
सदावेति, सदावित्ता एवं वयासी-सेयं खलु देवाणुप्पिया ! अम्हं
इमे वणमजरी अंडए साणं २ जाइमंताणं कुक्कुडियाणं अंडएसुअ
पक्खिवावित्तए तएणं ताओ जाइमंताओ कुक्कुडियाओ एए अंडए
सएणं पक्खिवाएणं सारक्खमाणीओ संगेवेमाणीओ विहरिस्संति,
तएणं अम्हं एत्थं दो कीलामणगा मज्जरीपोयगा भविस्संतित्ति कहुं
अन्नमन्नस्स एयमद्दं पडिसुणत्ति, पडिसुणित्ता सए मए दासचेडए
सदावेति सदावित्ता एवं वयासी गच्छह णं तुव्वेदेवाणुप्पिया ! इमे
अंडए गहाय सयाणं जाइमंताणं कुक्कुडीणं अंडएसु पक्खिवह जाव-
तेवि पक्खिवेति ॥सू. १२॥

दृक्ष की डाल पर जाकर बैठ गई और बैठी २ वही से उन दोनों
सार्थवाहदारकों को और मालुका कक्षक की ओर बार बार अनिमिष
दृष्टि से देखने लगी । सूत्र । ११ ।

એક આડની શાખા ઉપર બેસી ગઈ, અને ત્યાંથી જ તે બંને સાર્થવાહીને તેમજ
માલુકા કચ્છની તરફ વારંવાર એકી નજરે બેવા લાગી ॥સૂત્ર ૧૧॥

स्थाने स्वगृहे एवं अ(नेन प्रकारेण) 'दो कीलामणगा' द्वौ क्रीडनकौ-क्रीडा कारकौ द्वौ मयू(पौतकौ मयूरीशावकौ भविष्यत इति कृत्वा-इति विचार्य, अन्योऽन्यस्यैतमर्थं प्रतिश्रुणुतः मनसि धारयतः, प्रतिश्रुत्य 'सए सए' स्वकान् स्वकान्-दासचेष्टकान् शब्दयतः शब्दयित्वा चैवं वक्ष्यमाणप्रकारेणावादिष्टाम् हे देवानुपियाः गच्छत खलु यूयं इमे—एते अण्डके मयूरी अण्डके गृहीत्वा स्वकानां जातिमतीनां कुक्कुटीनामण्डकेषु प्रक्षिपत, इति वचनं श्रुत्वा यावत्ते दासा अपि तथैवाण्डके प्रक्षिपन्ति ॥ सू. १२ ॥

वाली हम दोनों की कुक्कुटिकाएं उन हम लोगों के द्वारा लाये हुए मयूरी के अंडों की अपने २ अंडों की रक्षा तथा उनकी परकृत उपद्रवों से प्रतिपालना करती हुई रक्षा और प्रतिपालना करलेगी। (तएणं अम्हं एत्थं दो कीलामणगा मजरपोयगा भविस्संति तिकट्टु अन्नमन्नस्स एयमट्ठं पडिसुणेत्ति) इस प्रकार हम लोगों के अपने २ घर पर दो क्रीडा कारक मयूरी पौत (बच्चे) हो जावेंगे ऐसा विचार कर उन दोनोंने आपसमें एक दूसरे का विचार स्वीकार कर लिया (पडिसुणिच्चा सए सए दासचेडए सदावेत्ति) स्वीकार कर फिर उन्होंने अपने २ नौकरो को बुलाया (सदावित्ता एवं वयासी) बुलाकर ऐसा कहा—(गच्छहं तुम्हे देवानुपिया !) हे देवानुपियो ! तुम लोग जाओ और (इमे अण्डए गहाय सयाणं जाइमंताणं कुक्कुडीणं अण्डएसु पक्खिवह जाव ते वि पक्खिवेत्ति) इन मयूरी के दोनों अंडोको ले जाकर अपनी २ जातीवाली कुक्कुटिकाओं के अंडों में रख दो। इस प्रकार के उनके कथन को सुनकर “यावत् उन दासोंने भी उस तरह उन दोनों अंडो को ले जाकर उन कुक्कुटिकाओं के अंडों में रख दिया ॥ सू. १२ ॥

अडारना उपद्रवोथी वक्ष्यु करती देलना छ'डानु' पणु रक्षयु करथे अने पालन पोपणु करथे (तएणं अम्हं एत्थं दो कीलामणगा मजरपोयगा भविस्संति तिकट्टु अन्नमन्नस्स एयमट्ठं पडिसुणेत्ति)आ रीते आपणु अनेनां धरोमां डीडामयूरना अन्थाओ थधं नथे. आभ तेओ अने ओक थीलना विचारोथी सहमत थया. (पडिसुणिच्चा सए सए दासचेडए सदावेत्ति) सहमत थधने तेओओ पोतपोताना नोकरेने ओलाव्या (सदावित्ता एवं वयासी) ओलावीने आ प्रमाणे कहुं (गच्छहं तुम्हे देवानुपिया !) हे देवानुपियो ! तमे लथे अने (इमे अण्डए गहाय सयाणं जाइमंताणं कुक्कुडीणं अण्डएसु पक्खिवह जाव ते वि पक्खिवेत्ति) आ देलना अने छ'डाने, आभारी भरथीओना छ'डओनी वरथे भूडी हो. आ रीते तेभनी वात सांखणीने नोकरेओ अने छ'डाने लधने सार्थवाड पुत्रीनी भरथीओना छ'डओनी वरथे भूडी दीधां सू. १२

વિનશ્યન્તીત્યયઃ, एवं ' परिचा जीवयणा उत्पञ्जिता उपज्जिता निलीयन्ति ' परीताः असंख्याताः प्रत्येकशरीराः अतीतानागत सन्तानानपेक्षया वा संक्षिप्ताः जीवयणाः उत्पद्य उत्पद्य निलीयन्ते विनश्यन्ति । अनेन असंख्यातप्रदेशात्मके लोके अनन्तानां रात्रि दिवानाम्, परीतानाम् असंख्यातानां च रात्रिदिवानां समावेशो भवतीति सिद्धम् । यतोऽनन्त-परीतजीवसम्बन्धात् कालविशेषा अपि अनन्ताः, परीताश्च व्यपदिश्यन्ते अतः असंख्यातप्रदेशात्मके लोके अनन्तानाम् असंख्यातानां च रात्रि दिवानां कथं समावेशो भवतीति विरोधोऽपि परिहृतो भवति । अथ लोकमेव स्वरूपतः प्रतिपादयति- ' से णूणं भूए, उप्पन्ने, विगए, परिणए, अजीवेहिं लोक्कइ, पलोक्कइ ' स लोकः नूनं निश्चितं भूतः, यत्र जीवयणा-

कहा है । (परिचा जीवयणा उत्पञ्जिता उपज्जिता निलीयन्ति) परीत-असंख्यात-प्रत्येक शरीर की अपेक्षा के असंख्यात जीवयन, अथवा अतीत अनागत सन्तान की अपेक्षा से संक्षिप्त जीवयन उत्पन्न हो हो नष्ट होते हैं । इस कारण असंख्यातप्रदेशात्मक लोक में अनन्तरातदिनों का समावेश हो जाता है यह वान सिद्ध हो जाती है । क्योंकि अनन्त और परीत ऐसे जीवों के सम्बन्ध से कालविशेष भी अनन्त और परीत इस रूप से कहे जाते हैं । अतः असंख्यात प्रदेशात्मक इस लोक में अनन्त और असंख्यात रातदिनों का समावेश कैसे हो सकता है ऐसा विरोध भी परिहृत हो जाता है । अब सूत्रकार स्वरूप की अपेक्षा लेकर लोक का ही प्रतिपादन करते हैं- (से णूणं भूए उप्पन्ने, विगए,

सूक्ष्मादि साधारण्य शरीराने अनुलक्षीने अथवा अत्रसन्ततिनी सपर्यवसानताने अनुलक्षीने करायेल છે. તથા અવ જ્ઞાનાદિક અનંત પર્યાયોના સમુદાય રૂપ છે, અથવા અસંખ્યાત પ્રદેશોના એક પિન્ડારૂપ છે, તેથી તેને “ અવધન ” કહેલ છે. (પરિચા જીવયણા ઉત્પજ્જિત્તા ઉપજ્જિત્તા નિલીયન્તિ) પરીત-અસંખ્યાત-પ્રત્યેક શરીરની અપેક્ષાએ અસંખ્યાત અવધન, અથવા અતીત અનાગત સાન્તતાની અપેક્ષાએ સંક્ષિપ્ત અવધન ઉત્પન્ન થઈ થઈને નષ્ટ થયાં કરે છે. આ કારણે અસંખ્યાત પ્રદેશોવાળા લોકમાં અનંત રાત્રિદિવસનો સમાવેશ થઈ જાય છે, એ વાત સિદ્ધ થઈ જાય છે. કારણ કે અનંત અને પરીત એવાં અવધોના સંબંધથી કાળવિશેષને પણ અનંત અને પરીત રૂપે સ્વીકારી શકાય છે. આ રીતે “ અસંખ્યાત પ્રદેશોવાળા આ લોકમાં અનંત અને અસંખ્યાત રાત્રિદિવસોનો સમાવેશ કેવી રીતે થઈ શકે ” એવી જે વિરોધાત્મક શંકા ધતાવવામાં આવી છે, તેનું પણ સમાધાન થઈ જાય છે. હવે સૂત્રકાર સ્વરૂપની અપેક્ષાએ લોકનું પ્રતિપાદન કરે છે- “ સે ણૂણં ભૂએ ઉપ્પન્ને, વિગએ,

ઉત્પન્ન ઉત્પન્ન વિલીયન્તે સ લોકો ભૂતઃ મવનધર્મયોગાત્ સદ્ભૂતઃ, સ ચ ભૂતઃ અનુત્પત્તિકોઽપિ સ્પાત્ પથા નવમતેન ગગનમ્, અત આદ્-ઉત્પન્નઃ-ઉત્પાદયુક્તઃ, ઉત્પન્નથ ઘટાભાવયત્ અવિનશ્વરોઽપિ સ્પાત્ અવ આદ્-વિગતઃ-વિનષ્ટઃ વિનાશ-યુક્તઃ, વિગતથ નિરન્વયોઽપિ ભવતિ અવ આદ્-પરિણતઃ, પર્યાયાન્તરાખ્યાપન્નઃ, ન તુ નિરન્વયનાશં નષ્ટઃ । અથ તસ્યૈવંવિધસ્ય લોકસ્ય નિશયાર્થમાદ્-અર્જીવૈઃ

પરિણય, અર્જીવેહિં લોકાદ્, પલોકાદ્) જહાં પર પાર ૨ જીવધન ઉત્પન્ન હો હોકર નષ્ટ હોતે રહતે હેં એસા વહ લોક ભવનધર્મ કે યોગ સે સદ્ ભૂતસ્વરૂપ હૈ-અસદ્ભૂતરૂપ નહીં હેં અર્થાત્ દ્રવ્ય કા લક્ષણ ઉત્પાદ વ્યય ઓર ધ્રોવ્યાત્મક માના ગયા હૈ લોક ઓ એક દ્રવ્ય હૈ-અતઃ યહ ઓ ઉત્પાદ વ્યય ઓર ધ્રોવ્ય લક્ષણ ચાલા હૈ-યહી ચાત સૂત્રકાર ને (ભૂત ઉત્પન્ને વિગત) ઇન પદોં દ્વારા પ્રકટ કી હૈ-ભૂતપદ સે સૂત્રકાર ને લોક મેં ધ્રોવ્ય ધર્મ પ્રકટ કિયા હૈ જો પદાર્થ અનુત્પન્ન હોતા હૈ વહ ઓ નૈયાયિકમતમેં આકાશકી તરહ ભૂતધર્મવાલા હોતા હૈ-સો લોક પદાર્થ એસા ભૂત ધર્મવાલા નહીં હૈ કિન્તુ વહ (ઉત્પન્ને) ઉત્પત્તિ ધર્મવાલા-ઉત્પાદ-ધર્મવાલા હૈ-જો ઉત્પાદ ધર્મવાલા હોતા હૈ વહ ઘટાભાવ અર્થાત્ ઘટપ્રધ્વંસાભાવ કી તરહ અવિનશ્વર ઓ હોતા હૈ-અતઃ યહ લોકપદાર્થ એસા નહીં હૈ, કિન્તુ (વિગત) વિનાશ-વ્યય-ધર્મ વાલા હૈ જો વિનાશધર્મ-યુક્ત હોતા હૈ વહ નિરન્વય ઓ હોતા હૈ-અર્થાત્ વિનાશ કો નિરન્વય

પરિણય, અર્જીવેહિં લોકાદ્, પલોકાદ્ ” ન્યાં વારંવાર જીવધન ઉત્પન્ન થઈ થઈને નાશ થયા કરે છે એવો આ લોક ભવનધર્મથી યુક્ત હોવાને કારણે સદ્ભૂત સ્વરૂપ છે. પણ અસદ્ભૂત-સ્વરૂપ નથી. એટલે કે દ્રવ્યનું લક્ષણ ઉત્પાદ, વ્યય અને ધ્રોવ્યાત્મક મનાય છે લોક પણ એક દ્રવ્ય છે, તેથી તે પણ ઉત્પાદ, વ્યય અને ધ્રોવ્યતા લક્ષણવાળો છે. એજ વાત સૂત્રકારે “ ભૂત ઉત્પન્ને વિગત ” ઇત્યાદિ પદો દ્વારા પ્રકટ કરી છે. ‘ ભૂત ’ પદથી સૂત્રકારે લોકમાં ધ્રોવ્ય ધર્મ પ્રકટ કર્યો છે. જે પદાર્થ અનુત્પન્ન હોય છે તેને પણ નૈયાયિક મતાનુસાર ભૂત-ધર્મવાળો કહ્યો છે, જેમકે આકાશને નૈયાયિક મત પ્રમાણે ભૂતધર્મવાળું કહ્યું છે. પરંતુ લોકપદાર્થ આકાશના જેવા ભૂતધર્મવાળો નથી, તે તો “ ઉત્પન્ને ” ઉત્પત્તિ ધર્મવાળો (ઉત્પાદ ધર્મવાળો) છે. ઉત્પાદ ધર્મવાળો પદાર્થ ઘટાભાવ (ઘટપ્રધ્વંસાભાવ) ની જેમ અવિનશ્વર પણ હોઈ શકે છે, પરંતુ આ લોકપદાર્થ એવો નથી, આ લોક તો “ વિગત ” વિનાશ (વ્યય) ધર્મવાળો છે. વિનાશ ધર્મયુક્ત પદાર્થ નિરન્વય પણ હોઈ શકે છે (ખૂદ મતની આ પ્રકારની માન્યતા છે.) પરંતુ આ લોક નિરન્વય વિનાશથી

पुद्गलादिभिः, जीवैश्च सत्तां धारयद्भिः, उत्पन्नमानैः, विनश्यद्भिः, परिणमद्भिश्च लोकानन्यभूतैः लोकयते-निश्चीयते, प्रलोभयते प्रकर्षेण निश्चीयते भूतादिधम-कोऽयं लोक इति विनीययते, अत एवान्वयतया यथार्थसंज्ञकोऽसौ इति दर्शयति - 'जे लोकइ से लोए?' यो लोकयते प्रमाणेन स लोकः पश्चास्तिकायात्मक

यौद्धों ने स्वीकार किया है-ऐसे निरन्वयविनाश से युक्त यह लोक नहीं है, किन्तु (परिणम) यह लोक विनाश धर्मवाला होकर भी अपने मूलरूप से नष्ट नहीं होता है किन्तु पर्यायान्तरों को प्राप्त करता रहता है जो निरन्वयनाश धर्मवाला होता है वह अपने मूलरूप से भी नष्ट हो जाता है और जब वह मूलरूप से ही नष्ट हो जाता है-तब पर्यायान्तरों को प्राप्त कौन कर सकता है अतः यह लोक ऐसा नहीं है, किन्तु पर्यायान्तरों को प्राप्त करता है अतः निरन्वयनाश धर्मयोगी नहीं है। इस प्रकार के लोक का निश्चय कैसे होता है तो इसके लिये सूत्रकार कहते हैं कि-(अजीवेहिं लोकइ परलोकइ) सत्ता को धारण करनेवाले-ध्रौव्यरूप-उत्पाद धर्मवाले, विनाश धर्मवाले, परिणमनशील और लोक से अनन्यभूत-अभिन्न-ऐसे अजीव पुद्गलों से तथा जीवों से इस लोक का निश्चय किया जाता है तथा यह लोक भूतादि धर्मवाला है ऐसा प्रकर्षरूप से निश्चय किया है इसलिये इसका लोकऐसा नाम सार्थक है इस बात को दिखाते हुए सूत्रकार कहते हैं कि (जे लोकइ

नथी, "परिणम" आ लोक विनाश धर्मवालो होवा छतां पणु पोताना भूण इपभांथी नाश पाभतो नथी, पणु अन्य पर्यायाने (पर्यायान्तराने) प्राप्त करतो रहे छे. निरन्वयनाश धर्मवालो पदार्थ तो पोताना भूण इपभांथी पणु नष्ट धर्ष जाय छे, आ रीते भूण इपने नाश पाभ्या पछी अन्य पर्यायि प्राप्त करवानी वात न संभवी शकती नथी आ लोक तो पर्यायान्तराने प्राप्त करतो रहे छे, तेथी ते निरन्वयनाश धर्मवालो नथी. आ प्रकारने लोक छे ओने निश्चय देवी रीते करी शकय छे? सूत्रकार डवे ओन प्रश्नतुं नीयेनां सूत्रे द्वारा समाधान करे छे. (अजीवेहिं लोकइ परलोकइ) सत्ताने धारण करनारा-ध्रौव्यरूप (उत्पाद धर्मवालां,) विनाश धर्मवाला, परिणमनशील आने लोकथी अलिन्न ओवां अणुव पुद्गलौथी तथा लुपोथी आ लोकने निश्चय करी शकय छे, तथा आ लोक लूतादि धर्मवालो छे ओवे प्रकर्षरूपे निश्चय करी शकय छे. तेथी तेतुं "लोक" ओबुं नाम सार्थक छे. ओन वाततुं प्रतिपादन करता सूत्रकार कहे छे-"जे लोकइ से लोए" ओने प्रमाण द्वारा

મગનલ્ખંડો લોકપદવાચ્યઃ, ઇતિ સત્યં કિમ્ ? તતઃ ઉક્તરીત્યા લોકસ્વરૂપાઽભિ-
ધાયકપાર્શ્વજિનવચનસંસ્મરણદ્વારા મગવાન્ સ્વવચનં સમર્થિતવાનિતિ ' સ્થવિરા
આહુઃ ' હંતા, મગવં ' હે મદન્ત ! હન્ત, સત્યં ભવતા યદ્ લોકસ્વરૂપં પ્રતિપાદિતં
તત્ સર્વથા સત્યમેવેત્યર્થઃ ।

મગવાનાહ—' સે તેણદ્દેણં અજ્જો ! एवं पुच्चइ—असंखेज्जे तं चेव' हे आर्याः ।
સ્થવિરાઃ ! તત્ તેનાર્થેન તસ્માદ્દેતોઃ એવમ્ ઉક્તરીત્યા ઉચ્યન્તે—અસંખયેયે લોકે
તદેવ પૂર્વવદેવ અનન્તાનિ રાત્રિદિવાનિ પરીતાનિ ચ ઉદ્પદન્ત ' ઇત્યાદિ વોઘ્યમ્
' તપ્પમિહં ચ ણં તે પાસાવચ્ચેજ્જા ઘેરા મગવંતો સમણં મગવં મહાવીરં ' સઘ્વન્નુ

સે લોણ) જો પ્રમાણ કે દ્વારા વિલોકિત ક્રિયા જા સકે उसका नाम
लोक है यह लोक मगन का पंचास्तिकाय रूप एक खण्ड है कहो आर्यो
यह वात सत्य है न ? इस प्रकार पार्श्वनाथ भगवान के लोकस्वरूप के
अभिधायक वचनों को याद कराकर भगवान् ने अपने वचनों को सम-
र्थन किया तब स्थविरों ने (हंता मगवं) हां भगवान् ! ऐसा ही है—
अर्थात् आपने जो लोक के स्वरूप का प्रतिपादन किया है वह सर्वथा
सत्य ही है ऐसा कहा—तब प्रभु ने उनसे (से तेणद्वेणं अज्जो एवं पुच्चइ
असंखेज्जे तं चेव) ऐसा कहा कि हे आर्यो ! इसी कारण मैंने ऐसा
कहा है कि असंख्यात लोक में असंख्यात और अनंत रातदिन उत्पन्न
हुए हैं, उत्पन्न होते हैं और आगे भी उत्पन्न होते रहेंगे इत्यादि सब
कथन यहांपर पूर्वोक्त रूप से लगाठेना चाहिये । (तप्पमिहं च णं ते
पासावचचेज्जा घेरा मगवंतो समणं मगवं महावीरं सघ्वन्नु सव्वदरिसी

વિદ્વાડી શકાય (જોઈ શકાય) છે, તેનું નામ જ લોક છે. આ લોક મગનનો
(આપાશનો) પંચાસ્તિકાય રૂપ એક ખંડ છે. “કહો આર્ય ! આ વાત સત્ય
છે ને ?” આ પ્રમાણે પાર્શ્વનાથ ભગવાનના લોક—સ્વરૂપનું પ્રતિપાદન કરનારાં
વચનોને યાદ કરાવીને બ્યારે ભગવાન મહાવીરે પીતાનાં વચનોનું સમર્થન
કયું, ત્યારે સ્થવિરોએ કહ્યું “હંતા મગવ” હા, ભગવાન ! એવું જ છે.
એટલે કે લોકના સ્વરૂપનું આપે જે પ્રતિપાદન કયું છે તે સર્વથા સત્ય છે.
ત્યારે મહાવીર પ્રભુએ તેમને કહ્યું—(સે તેણદ્દેણં અજ્જો ! एवं पुच्चइ, असंखेज्जं
तं चेव) હે આર્યો ! તે કારણે મેં એવું કહ્યું છે કે અસંખ્યાત પ્રદેશવાળા
લોકમાં અનંત અને અસંખ્યાત રાત્રિદિવસ ઉત્પન્ન થયાં છે, ઉત્પન્ન થાય છે
અને ભવિષ્યમાં પણ ઉત્પન્ન થશે, ઇત્યાદિ સમસ્ત પૂર્વોક્ત કથન અહીં અહીં કરવું.

“ तपमिहं च णं ते पासावचचेज्जा घेरा मगवंतो समणं मगवं महावीरं
सघ्वन्नु सव्वदरिसी ति पच्चमिजाणंति ” આ પ્રમાણે શ્રમણ ભગવાન મહા-

सर्वदरित्री ' सति पञ्चभिजांति' तत्प्रभृति तत्कालादारभ्य च ते पार्श्वपत्नीयाः पार्श्वनाथशिष्यशिष्याः स्वविराः भगवन्तः धमणं भगवन्तं महावीरं ' सर्वज्ञः, सर्वदर्शी ' इति अनेन रूपेण प्रत्यभिजानन्ति निश्चिन्वन्ति ! ' तएणं ते धेरा भगवंतो समणं भगवं महावीरं वंदंति, नमंसंति, ' ततः तदनन्तरं ते स्थविराः भगवन्तः धमणं भगवन्तं महावीरं वन्दन्ते, नमस्यन्ति, ' वंदित्ता, नमंसित्ता, एवं वयासी ' वन्दित्वा, नमस्यित्वा, एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण अवादिषुः—' इच्छामो णं भंते ! तुब्भं अंतिए चाउज्जामाओ धम्माओ पंच महव्वयाइं, सपडिक्कमणं धम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्ताए ' हे भदन्त ! इच्छामः खलु वयं युष्माकम् भवताम् अन्तिके समीपे चातुर्यामाद् धर्माद् चातुर्यामधर्मं परित्यज्येत्यर्थः पञ्चमहाव्रतानि सप्रति-

सति पञ्चभिजांति) इस प्रकार से श्रमण भगवान् महावीर के मुख से लोकविषयक सत्य प्रतिपादन श्रवणकर उन पार्श्वपत्नीय स्थविरों ने उन श्रमण भगवान् महावीर को सर्वज्ञ और सर्वदर्शीरूप से निश्चित किया (तएणं ते धेरा भगवंतो समणं भगवं महावीरं वंदंति, नमंसंति) तब उन स्थविर भगवंतों ने श्रमणभगवान् महावीर को वंदना की अर्थात् गुणोंकी स्तुति की और फिर उन्हें पंचांगशुक्राकर नमस्कार किया । (वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी) वंदना नमस्कार कर फिर उन्होंने ने ऐसा कहा (इच्छामो णं भंते ! तुब्भं अंतिए चाउज्जामाओ धम्माओ पंचमहव्वयाइं सपडिक्कमणं धम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्ताए) हे भदन्त ! हमलोग यह चाहते हैं कि चातुर्याम धर्म को छोड़ कर प्रतिक्रमण सहित पंचमहाव्रतरूप धर्म को धारण करें—आदि जिन और अन्तिम

वीरने भुजेथी लोकविषयक सत्य प्रतिपादनने सांभलीने ते पार्श्वपत्नीय (पार्श्वनाथना प्रशिष्य) स्थविराओ श्रमण भगवान महावीरने सर्वज्ञ अने सर्वदर्शी इथे निश्चित कर्था—त्यारथी तेओ तेभने सर्वज्ञ अने सर्वदर्शी मानवा लाग्या. " तएणं ते धेरा भगवंतो समणं भगवं महावीरं वंदंति, नमंसंति " त्यारणाड ते स्थविर भगवंतोओ श्रमण भगवान महावीरने वंदणु करी ओटवे के सुल्लोनी स्तुति करी, अने त्यारणाड पांथ अंगो शुक्रावीने तेभणु तेभने नमस्कार कर्था. " वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी " वंदणु नमस्कार करीने तेभणु तेभने आ प्रभाणु कहुं—(इच्छामो णं भंते ! तुब्भं अंतिए चाउज्जामाओ धम्माओ पंचमहव्वयाइं सपडिक्कमणं धम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्ताए) हे भदन्त ! अने यार यामयुक्ता (यार महाव्रतोवाणा) धर्मने णदवे, आपनी समक्ष पांथ महाव्रतोने अने प्रतिक्रमण युक्त धर्मने धारण करवा मागीये छीओ. आदि

क्रमणं प्रतिक्रमणसहितं धर्मं च उपसंपन्न अङ्गीकृत्य खलु विद्वर्तुं स्यात्तुम् 'इच्छामः' इति पूर्वोणान्वयः । तत्र आदिमान्तिमजिनयोरादिनाथ-महावीरयोरेव नियमेनावश्यं कर्तव्यः सप्रतिक्रमणो धर्मः, अन्येषां तु मध्यमानां द्वाविंशतितीर्थकराणां कदाचिस्क एव सहेतुकः प्रतिक्रमणधर्मः, उक्तञ्च—

“ सपड्डिकमणो धम्मो, पुरिमस्स य पच्छिमस्स य जिणस्स ।

मज्झिमगाण जिणाणं, कारणजाए पड्डिकमणं ” ॥ १ ॥

“ सप्रतिक्रमणो धर्मः पूर्वस्य च पश्चिमस्य च जिनस्य ।

मध्यमकानां जिनानां कारणजाते प्रतिक्रमणम् ” ॥ २ ॥

ततो भगवानाह—‘ अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेह ’ भो देवानुप्रियाः ! यथामुखं यथा मुखं भवेत्तथा क्रियन्ताम्, किन्तु प्रतिबन्धं बिलम्बं

जिन-आदिनाथ और महावीर को ही नियम से प्रतिक्रमण सहित धर्म अवश्य करणीय है और अन्य २२ तीर्थकरों को वह प्रतिक्रमण अतिचार लगने पर करने का है—कहा है कि—

“ सपड्डिकमणो धम्मो पुरिमस्स य पच्छिमस्स य जिणस्स ।

मज्झिमगाण जिणाणं कारणजाए पड्डिकमणं ॥१॥ ”

प्रतिक्रमण सहित धर्म आदिजिन और अन्तिम जिनको होता है और मध्य जिनके कारण होने पर प्रतिक्रमण किया जाता है ।

जब उन स्थविरों ने ऐसा कहा—तब श्रमण भगवान महावीर ने उनसे कहा—‘ अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेह ’ हे देवानुप्रियो ! जैसा आपको रुचे वैसा आपलोग करें परन्तु इस कार्य में विलम्ब करना

जिन (आदिनाथ भगवान) અને અન્તિમ જિન (મહાવીર ભગવાન) ને નિયમથી જ પ્રતિક્રમણ યુક્ત ધર્મ અવશ્ય કરવા યોગ્ય છે, એ સિવાયના ૨૨ તીર્થકરોને ક્યારેક કારણસર જ પ્રતિક્રમણ સહિત આચરવા યોગ્ય છે. કહ્યું પણ છે:—

“ સપડિકમણો ધમ્મો પુરિમસ્સ ય પચ્છિમસ્સ ય જિણસ્સ ।

મજ્જિમગાણ જિણાણં કારણજાણ પડિકમણં ॥ ૧ ॥ ”

પ્રતિક્રમણ સહિત ધર્મ પહેલા જન તથા છેલ્લા જન ભગવાનને આદ્ય થાય છે અનેમધ્યમ જનને કોઈ પણ કારણ હોય તેજ પ્રતિક્રમણ કરાય છે.

અ્યારે તે સ્થવિરોએ આ પ્રમાણે કહ્યું ત્યારે શ્રમણ ભગવાન મહાવીરે તેમને કહ્યું—(અહાસુહં દેવાણુપ્પિયા ! મા પડિબંધં કરેહ) હે દેવાનુપ્રિયો ! આપને જેમ મુખ ઉપરે તેમ કરો, પણ આવા કામમાં વિલંબ કરવા બેધર્મ.

न कुर्वत । 'तएणं ते पासावच्चिज्जा थेरा भगवंतो जाव-चरमेहिं उस्तासनिस्ता-
सेहिं सिद्धा' ततस्ते पार्श्वपत्नीयाः-पार्श्वशिष्यशिष्याः स्थविराः भगवन्तः यावत्
चरमैरुच्छ्वास-निःश्वांसैः सिद्धाः संजाताः 'जाव-सव्वदुक्खप्पहीणा, अत्थेगइया
देवलोएसु उव्वन्ना' यावत्-सर्वदुःखप्रहीणाः सर्वदुःखरहिताः अस्त्येके अवशिष्ट-
शुभकर्मणः अन्यतमाः केचिद् स्थविरा देवलोकेषु देवरूपेण उत्पन्नाः देवाः संजाता
इत्यर्थः प्रथमयावत्करणत् संलेखनादिकं कृत्वा, इत्यादि संग्राहम् । द्वितीययाव-
त्करणत् 'बुद्धा मुक्ता परिनिर्वाता' इति संग्राहम् ॥ सू० ४ ॥

देवलोकवक्तव्यता

पूर्वं देवलोकेषु उत्पन्ना इत्युक्तम् अतो देवलोकं निरूपयितुमाह-'कइविहाणं
भंते' इत्यादि ।

मूळम्-कइविहा णं भंते ! देवलोगा पन्नत्ता ? गोयमा!
चउव्विहा देवलोगा पन्नत्ता, तं जहा-भवणवासी-वाणमंतर-
जोतिसिय-वेमाणिय-भेयेणं । भवणवासीवाणमंतरा अट्टविहा,

उचित नहीं है । (तएणं ते पासावच्चिज्जा थेरा भगवंतो जाव चरमेहिं
उस्तासनिस्तासेहिं सिद्धा) इसके बाद वे पार्श्वपत्नीय स्थविर भग-
वंत यावत् अंतिम श्वासों से सिद्ध हो गये (जाव सव्वदुक्खप्पहीणा)
यावत् वे समस्त दुःखों से रहित हो गये तथा कितनेक स्थविर ऐसे भी
थे कि जिनका शुभकर्म अवशिष्ट था सो वे देवरूप से देवलोकों में
उत्पन्न हो गये । यहाँ पहिले यावत् पद से (संलेखनादिक करके) इत्यादि
पाठ ग्रहण किया गया है और द्वितीय यावत्पद से (बुद्धा, मुक्ता, परि-
निर्वाता) ऐसा पाठ ग्रहण किया गया है ॥ सू०४ ॥

नर्डी. (तएणं ते पासावच्चिज्जा थेरा भगवंतो जाव चरमेहिं उस्तासनिस्ता-
सेहिं सिद्धा) त्पारणाह पंचमहाव्रतत्रय धर्मनी संयम पूर्वक आराधना करीने
ते पार्श्वनाथ लगवानना डेटलाक शिष्य स्थविर लगवतो (यावत्) अंतिम
श्वासेथी सिद्धपदने पाभ्या. "जाव सव्वदुक्खप्पहीणा" (यावत्) तेओ
समस्त दुःभोथी रडित थछ गया, तथा डेटलाक स्थविरो जेवा पणु डता डे
जेभनां शुभ कर्म अवशिष्ट (भाडी) डतां. जेवा स्थविरो देवलोकेभां देव-
पथिये उत्पन्न थया. अर्डी पडेलो "यावत्" पदथी "संलेखना आदि
करीने" इत्यादि पाठ अडणु करायो छे, अने भीज "यावत्" पदथी "बुद्धा,
मुक्ता, परिनिर्वाता" आ पाठ अडणु करायो छे. ॥ सूत्र ४ ॥

જોતિસિયા પંચવિહા, વેમાણિયા દુવિહા, ગાહા—કિમિયં રાય-
ગિહં ત્તિ ય, ઉઝ્જોણ, અંધયાર, સમણ ય પાસંતિવાસિપુચ્છા,
રાહંદિયદેવલોગા ય, સેવં મંતે ! સેવં મંતે ! ત્તિ ॥ સૂ૦૫ ॥

છાયા—કવિચિધાઃ સ્વરુ મદન્ત ! દેવલોકાઃ પ્રજ્ઞતાઃ ? ગૌતમ ! ચતુર્વિધાઃ
દેવલોકાઃ પ્રજ્ઞતાઃ, તદ્વધા—ભવનવાસિ—વાનવ્યન્તર—જ્યોતિષ્ક—વૈમાનિક—ભેદેત !
ભવનવાસિનો દશવિધાઃ, વાનવ્યન્તરાઃ અષ્ટવિધાઃ, જ્યોતિષ્કાઃ પન્નવિધાઃ
વૈમાનિકા દ્વિવિધાઃ,

દેવલોક ચક્તવ્યતા—

(કહવિહા ણં) ઇત્યાદિ ।

સૂત્રાર્થ—(કહવિહા ણં મંતે ! દેવલોગા પન્નતા) હે મદન્ત ! દેવલોક
કિતને પ્રકાર કે કહે ગયે હૈં ? (ગોયમા ! ચઝવિહા દેવલોગા પન્નતા)
હે ગૌતમ ! દેવલોક ચાર પ્રકાર કે કહે ગયે હૈં । (તં જહા) વે ઇસ
પ્રકાર સે હૈં (ભવનવાસી—વાણમંતર—જોહસિય—વેમાણિય મેણં) ભવ-
નવાસી ? વાણવ્યન્તર ૨, જ્યોતિષિક ૩, ઔર વૈમાનિક ૪ (ભવનવાસી
દસવિહા પન્નતા) ભવનવાસીદેવ દસ પ્રકાર કે કહે ગયે હૈં (વાણમંતરા
અઠ્ઠવિહા) વાણ વ્યન્તરદેવ આઠ પ્રકાર કે હૈં । (જોહસિયા પંચવિહા)
જ્યોતિષિક દેવ પાંચ પ્રકાર કે હૈં (વેમાણિયા દુવિહા) વૈમાનિક દેવ દો
પ્રકાર કે હોતે હૈં । (કિમિયં રાયગિહં ત્તિ ય ઉઝ્જોણ અંધયારસમણ ય,
પાસંતિ વાસિપુચ્છા રાહંદિય દેવલોગા ય) ઇસ ઉદ્દેશક મેં પ્રતિપાદિત
વિષય કી સંગ્રહ માધા યહ હૈ—ઇસમેં યહ પ્રકટ ક્રિયા ગયા હૈ—કિ

દેવલોકની વક્તવ્યતાઃ—

“ કહવિહાણ ” ઇત્યાદિ—

સૂત્રાર્થ—(કહવિહાણં મંતે ! દેવલોગા પન્નતા ?) હે ભદન્ત ! દેવ-
લોકના પ્રકાર કેટલા છે ? (ગોયમા ! ચઝવિહા દેવલોગા પન્નતા) હે ગૌતમ !
દેવલોક ચાર પ્રકારનાં કહ્યાં છે. (તં જહા) તે ચાર પ્રકારો આ પ્રમાણે છે—
(ભવનવાસી, વાણમંતર, જોહસિયવેમાણિય મેણં) (૧) ભવનવાસી, (૨)
વાનવ્યન્તર, (૩) જ્યોતિષિક અને (૪) વૈમાનિક એ ભેદથી (ભવનવાસી દસ-
વિહા પન્નતા) ભવનવાસી દેવો દસ પ્રકારના કહ્યા છે, (વાણમંતરા અઠ્ઠવિહા)
વાનવ્યન્તરો આઠ પ્રકારના કહ્યા છે, (જોહસિયા પંચવિહા) જ્યોતિષિક દેવો
પાંચ પ્રકારના કહ્યા છે અને (વેમાણિયા દુવિહા) વૈમાનિક દેવો બે પ્રકારના
કહ્યા છે (કિમિયં રાયગિહં ત્તિ ય ઉઝ્જોણ અંધયાર સમણ ય, પાસંતિવાસિ પુચ્છા
રાહંદિય દેવલોગા ય) આ ઉદ્દેશકમાં જેનું પ્રતિપાદન કરવામાં આવ્યું છે, એ

गाथा—' किमिदं राजगृहमिति च उद्द्योतोऽन्धकारः समयश्च,
पार्श्वान्तेयासिपृच्छा, रात्रिं दिवानि देवलोकाश्च ॥

तदेवं भदन्त ! तदेवं भदन्त ! इति ॥ सू० ५ ॥

टीका—' कइविहा णं भंते ! देवलोगा पणत्ता ' गौतमः पृच्छति—हे
भदन्त ! कतिविधाः कियत्प्रकाराः खलु देवलोकाः प्रज्ञप्ताः कथिताः ? भगवानाह
—' गोयमा ! चउन्विहा देवलोगा पन्नत्ता ' हे गौतम ! चतुर्विधाः चतुःप्रकाराः
खलु देवलोकाः प्रज्ञप्ताः कथिताः ' तं जहा भवणवासी-वाणमंतर-जोइसिय-

“ राजगृह नगर यह क्या है ? दिनमें उद्योत और रात्रिमें अंधकार क्यों
होता है ? समय आदि रूप काल का ज्ञान किन जीवों को होता है और
किन जीवों को नहीं होता है ? रात्रि और दिवस के प्रमाण में श्री
पार्श्वनाथ जिन कें प्रशिष्यों के प्रश्न ? देवलोक संबंधी प्रश्न ” इतने विषय
इस उद्देशक में आये हैं। (सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति) हे भदन्त !
आपका कहा हुआ भाव सर्वथा सत्य ही है—सर्वथा सत्य ही है।

टीकार्थ—(देवलोकों में उत्पन्न हुए) ऐसी बात पहिले कही गई है
—सो देवलोक के स्वरूप को निरूपण करने के लिये सूत्रकार यहां पर
कहते हैं इसमें गौतम ने उनसे यह पूछा है कि (कइविहा णं भंते !
देवलोगा पन्नत्ता) हे भदन्त ! देवलोक कितने प्रकार के कहे गये हैं ?
इसके उत्तर में प्रभु ने उनसे कहा—(गोयमा ! चउन्विहा देवलोगा
पणत्ता) हे गौतम ! देवलोक चार प्रकार के कहे गये हैं—भवणवासी

विषयनी संशुद्ध गाथाने अर्थ आ प्रमाणे थाय छे—“ राजगृह नगर कथे
पदार्थ छे ? दिवसे प्रकाश अने रात्रे अंधकार केम होय छे ? समय आदि-
इप काणनुं ज्ञान कथा लोवने होय छे अने कथा लोवने होतुं नथी ? रात्रि
अने दिवस विषयक श्री पार्श्वनाथ जिननेन्द्रना प्रशिष्योना प्रश्न ? देवलोक
संबंधी प्रश्न ” आटला विषयोनुं आ उद्देशकभां निरूपण करवानां आबुं छे,
“ सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति ” छे लदन्त ! आपनी बात सर्वथा सत्य छे,
आपे आ विषयनुं जे प्रतिपादन कथुं ते यथार्थ छे.

टीकार्थ—पूर्व प्रकरणनुं अंतिम वाक्य “ देवलोकभां उत्पन्न तथा ” कोनुं
छे. तेथी देवलोकना स्वरूपनुं निरूपण करवाने भाटे सूत्रकारे नीचेना प्रश्नोत्तरे
आप्या छे:—

गौतम स्वामी मंडावीर प्रलुने पूछे छे—(कइविहाणं भंते ! देवलोगा
पन्नत्ता ?) छे लदन्त ! देवलोक केटला प्रकारना कइयां छे ?

उत्तर—“ गोयमा ! चउन्विहा देवलोगा पणत्ता ” छे गौतम ! देवलोक

વૈમાણિયભેષણ ' તથા-ભવનવાસિ-વાનવ્યન્તર-જ્યોતિષ્ક-વૈમાનિક મેદેન તત્ર-' ભવનવાસી દસવિદ્યા ' ભવનવાસિનોઽસુરકુમારાદિકાઃ દસવિદ્યાઃ પ્રજ્ઞતાઃ, ' વાણમંતરા અટ્ટવિદ્યા ' વાનવ્યન્તરાઃ પિશાચાદિકા અષ્ટવિદ્યાઃ પ્રજ્ઞતાઃ, एवं ' જોડસિયા પંચવિદ્યા ' જ્યોતિષ્કાઃ ચન્દ્રસૂર્યાદયઃ પશ્ચવિદ્યાઃ પ્રજ્ઞતાઃ, 'વૈમાણિયા દુવિદ્યા ' વૈમાનિકાઃ કલ્પોપન્ન-કલ્પાતીતમેદેન દ્વિવિદ્યાઃ પ્રજ્ઞતાઃ- ઉરેષ્ઠકાર્ય સંગ્રહાય ગાથામાહ—

ગાથા—“ કિમિદં રાયગિદં તિ ય ડજ્જોણ અંધયાર-સમણ ય,
પાસંતિ વાસિપુચ્છા રાંદિય દેવલોગા ય ” ॥ ૧ ॥

કિમિદં રાજગૃહં નગરમિથિ ચ ઇદં રાજગૃહં કિમ્ પૃથિવી ? ક્ષ્પાદિવિચાર-
ચર્ચા, તતઃ કથમ્ ઉદ્ધોતઃ દિવસે પ્રકાશઃ, રાત્રી ચ અન્ધકારઃ ? અત્ર કિં-

વાણવ્યન્તર, જ્યોતિષિક ઓર વૈમાનિક હનમે ભવનવાસી-દશ પ્રકાર
કે હૈં-उनके नाम ये हैं १ असुरकुमार २ नागकुमार ३ सुवर्णकुमार
४ विद्युत्कुमार ५ अग्निकुमार ६ द्वीपकुमार ७ उदधिकुमार ८ दिक्कु-
मार ९ वायुकुमार और १० स्तनितकुमार वाणव्यन्तर आठ प्रकार के
हैं, उनके नाम ये हैं-१ पिशाच, २ भूत, ३ यक्ष, ४ राक्षस, ५ किन्नर,
६ किं पुरुष, ७ महोरग, और ८ गन्धर्व ।

જ્યોતિષિક ૫ પાંચ પ્રકાર કે હૈં-સૂર્ય ૧ ચન્દ્રમા ૨, ગ્રહ ૩ નક્ષત્ર
તારા યે અનેકે નામ હૈં ।

વૈમાનિક દેવ દો પ્રકાર કે હોતે હૈં-કલ્પોપન્ન ૨ ઓર દૂસરે
કલ્પાતીત અવશિષ્ટ પદોં કા અર્થ મૂલાર્થ મેં લિખ દિયા ગયા હૈં ઇસી
પ્રકાર સંગ્રહ ગાથા કા ખી અર્થ મૂલ કા અર્થ કરતે સમય લિખા જા

ચાર પ્રકારનાં કથ્યાં છે. તે ચાર પ્રકારો આ પ્રમાણે છે-(૧) ભવનવાસી, (૨)
વાનવ્યન્તર, (૩) જ્યોતિષિક અને (૪) વૈમાનિક.

ભવનવાસી દેવોના નીચે પ્રમાણે દસ પ્રકાર છે-(૧) અસુરકુમાર, (૨)
નાગકુમાર, (૩) સુવર્ણકુમાર (૪) વિદ્યુતકુમાર (૫) અગ્નિકુમાર (૬) દ્વીપકુમાર
(૭) ઉદધિકુમાર, (૮) દિશાકુમાર (૯) પવનકુમાર (૧૦) સ્તનિતકુમાર.

વાણવ્યન્તર દેવોના આઠ પ્રકાર છે-(૧) પિશાચ (૨) ભૂત (૩) યક્ષ
(૪) રાક્ષસ (૫) કિન્નર (૬) કિંપુરુષ (૭) મહોરગ (૮) ગન્ધર્વ.

જ્યોતિષિક દેવોનાં પાંચ પ્રકાર આ પ્રમાણે છે-(૧) સૂર્ય, (૨) ચન્દ્ર,
(૩) ગ્રહ, (૪) નક્ષત્ર અને (૫) તારાઓ.

વૈમાનિક દેવોના બે પ્રકાર છે-(૧) કલ્પોપન્ન, (૨) કલ્પાતીત.

આડીનાં પદોનો અર્થ સૂત્રાર્થમાં આપી દીધો છે. સંગ્રહગાથાનો અર્થ

કારણમ્ इति प्रश्नोत्तरम् । ततः समयथ, समयादिकालपरिज्ञानं केषां जीवानां भवतीति प्रश्नोत्तरम् । तदनन्तरम् पार्श्वान्तेवासिनां पार्श्वनाथशिष्य-शिष्याणाम् स्पष्टविराणाम्, असंख्यातप्रदेशे कथमनन्तानि रात्रिदिवानि संभवन्ति, इत्यादि रात्रि दिवविषये पृच्छा प्रश्नोत्तरम्, अन्ते देवलोकाश्च-देवलोकभेदानां प्रतिपादनमित्यर्थः । अन्ते गौतमः सत्यापयति-तदेवं भदन्त ! तदेवं भदन्त इति । हे भदन्त ! तदेवं भवद्भुक्तं सर्वं सत्यमेव,-तदेवं सत्यमेवेत्यर्थः । इति कथयित्वा भगवान् गौतमः संयमेन तपसा आत्मानं भावयन् विहरति ॥ सू० ५ ॥

इति श्री-जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-पूज्य श्री घासीलालं प्रतिविरचित्तायां भगवती सूत्रस्य प्रमेयचन्द्रिकाख्यायां व्याख्यायां पञ्चमशतकस्य नवमोद्देशकः समाप्तः ॥ १५-१॥

શુકા છે । અન્ત મેં ગૌતમ પ્રભુ સે કહતે હેં કિ હે ભદન્ત ! આપ દેવાનુ-પ્રિય દારા પ્રતિપાદિત યહ સચ વિષય સર્વથા સત્ય હી છે । હે ભદન્ત ! સર્વથા સત્ય હી છે । હસ પ્રકાર કહકર વે ભગવાન્ ગૌતમ સંયમ ઓર તપ સે આત્મા કો ભાવિત કરતે હુણ્ અપને સ્થાન પર વિરાજમાન હો ગયે ॥ સૂ૦૫ ॥

શ્રી જૈનાચાર્ય જૈનધર્મદિવાકર શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજકૃત “ભગવતીસૂત્ર” કી પ્રમેયચન્દ્રિકાખ્ય વ્યાખ્યાકે પાંચવે શતકકા નવવા ઉદ્દેશક સમાપ્ત ॥ ૧૫-૧ ॥

પણ સૂત્રાર્થમાં આપી દીધો છે. સૂત્રને અન્તે ગૌતમ સ્વામી મહાવીર પ્રભુને કહે છે કે ભદન્ત ! આપ દેવાનુપ્રિય દારા આ વિષયનું જે પ્રતિપ્રાદન કરવામાં આવ્યું છે તે સર્વથા સત્ય જ છે । કે ભદન્ત ! તે સર્વથા સત્ય અને યથાર્થ છે. આ પ્રમાણે કહીને ભગવાન મહાવીરને વંદણા નમસ્કાર કરીને, સંયમ અને તપથી આત્માને ભાવિત કરતા ગૌતમ સ્વામી પોતાને સ્થાને વિરાજમાન થઈ ગયા. ॥ સૂત્ર ૫ ॥

જૈનાચાર્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ કૃત ‘ભગવતીસૂત્ર’ની પ્રમેયચન્દ્રિકા વ્યાખ્યાનો. પાંચમાં શતકનો તપનો ઉદ્દેશક સમાપ્ત ॥ ૫-૬ ॥

॥ दशमोद्देशकः प्रारभ्यते ॥

चन्द्रवक्तव्यता

अनन्तरेतदुद्देशकान्ते देवाः प्रतिपादिताः, अतो देवविशेषभूता चन्द्रमसौ समुद्दिश्य दशमोद्देशकमाह—'तेणं कालेणं' इत्यादि ।

मूलम्—तेणं कालेणं, तेणं समएणं चंपा नामं नयरी, जहा पढमिल्लो उद्देसओ तथा नेयव्वो एसो वि, नवरं—चंदिमा भाणियव्वा ॥ सू० १ ॥

छाया—तस्मिन् काले, तस्मिन् समये खलु चम्पा नाम नगरी आसीत्, यथा प्रथम-उद्देशकस्तथा ज्ञातव्य एषोऽपि, नवरं चन्द्रमसौ भणितव्याः ॥ १ ॥

टीका—'तेणं कालेणं, तेणं समएणं चंपा नामं नयरी होत्था' तस्मिन् काले, तस्मिन् समये खलु चम्पा नाम नगरी आसीत्—'जहा पढमिल्लो उद्देसओ तथा

पंचम शतक १० वां उद्देशक

चन्द्रवक्तव्यता—

(तेणं कालेणं तेणं समएणं) इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपा नामं नयरी) उस काल और उस समय में चंपा नाम की नगरी थी (जहा पढमिल्लो उद्देसओ तथा नेयव्वो एसो वि नयरं—चंदिमा भाणियव्वा) जैसा प्रथम उद्देशक कहा है उसी प्रकार से यह उद्देशक भी समझना चाहिये, विशेष यह कि यहाँ चन्द्रमा कहना चाहिये ।

टीकार्थ—अभी अभी इस उद्देशक के पास के उद्देशक के अन्त में देवों का कथन किया गया है सो देवविशेषभूत चन्द्रमाको लेकर ही सूत्रकार ने इस दशवें उद्देशक का कथन किया है (तेणं कालेणं तेणं समएणं) उस काल और उस समय में (चंपा नामं नयरी होत्था) चंपा

पांचम शतकने दसवो उद्देशक—

चन्द्रनी वक्तव्यता—

“तेणं कालेणं तेणं समएणं” इत्यादि—

सूत्रार्थ—(तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपा नामं नयरी) ते काले अने ते समये चंपा नामनी नगरी હતી. (जहा पढमिल्लो उद्देसओ तथा नेयव्वो एसो वि नवरं—चंदिमा भाणियव्वा) જે પ્રભાષે પહેલો ઉद्देशક કહેવામાં આવ્યો.

નેયન્વો एसो वि' यथा प्रथमः उद्देशकः प्रतिपादितः, तथा एषोऽपि दशमोद्देशकः ज्ञातव्यः वक्तव्यः, 'णवरं-चंदिमा भाणियन्वा' नवरं चन्द्रमसौ भणितव्यौ, विशेषः पुनरेतावानेव यद् दशमोद्देशकः चन्द्राभिलापेन पञ्चमशतकस्य प्रथमोद्देशक-गत सूर्यवर्णनवच्चन्द्रवर्णनपरतया विज्ञेयः ।

तथा च चन्द्रविषयकाभिलाषकाकारश्चेत्—' तस्मिन् काले, तस्मिन् समये चंपा नाम नगरी आसीत्, वर्णकः स्वामी समवसतः यावत्-पर्यत् प्रतिगता, तस्मिन् नाम की नगरी थी (जहा पढमिल्लो उद्देशओ तहा नेयन्वो एसो वि) जिस प्रकार से प्रथम उद्देशक प्रतिपादित हुआ है उसी तरह से यह दशवां उद्देशक भी जानना चाहिये (णवरं चंदिमा भाणियन्वा) यहाँ यही केवल विशेष है कि पांचवें शतक में जिस तरह से प्रथम उद्देशक कहा गया है उसी तरह से यह उद्देशक चन्द्रमा के अभिलाप से कह-लेना चाहिये—

तथा च—चन्द्रविषयक अभिलाप का आधार इस प्रकार से है (तस्मिन् काले तस्मिन् समये चंपा नाम नगरी आसीत्, वर्णकः तस्यां चंपाया नगर्यां पूर्णभद्रं नाम उद्यानं आसीत् वर्णकः इत्यादि—उस काल

छे, એ જ પ્રમાણે આ ઉદ્દેશક પણ સમજવો. પણ વિશેષતા જ છે કે, એટલી આ ઉદ્દેશકમાં 'સૂર્ય'ની 'વગ્યાએ 'ચન્દ્રમા' કહેવો જોઈએ.

ટીકાર્થ—નવમાં ઉદ્દેશકના છેલ્લા સૂત્રમાં ટેવોનું કથન કરવામાં આવ્યું છે. ચન્દ્રમા પણ ન્યોતિપિક દેવ ગણાય છે. તેથી સૂત્રકારે આ સૂત્રમાં ચન્દ્ર-માનું નિરૂપણ નીચેના પ્રશ્નોત્તરો દ્વારા કર્યું છે—

“ તેણં કાલેણં તેણં સમણં ” તે કાળે અને તે સમયે “ ચંપા નામ નયરી હોત્યા ” ચંપા નામે નગરી હતી “ જહા પઢમિલ્હો ઉદ્દેસઓ તહા નેયન્વો एसो वि ” જે રીતે ાહેલા ઉદ્દેશકનું પ્રતિપાદન કરવામાં આવ્યું છે, એ જ પ્રમાણે આ દસમાં શકનું પણ પ્રતિપાદન કરવું જોઈએ. “ ણવરં ચંદિમા ભાણિયન્વા ” અહીં ક્રૂતા એટલી જ વિશેષતા છે કે પાંચમાં શતકના પહેલા ઉદ્દેશકમાં જે આલાપકો આપ્યા છે, તે આલાપકોમાં 'સૂર્ય'ને બદલે 'ચન્દ્રમા' શબ્દ વાપરીને પ્રશ્નોત્તરોનું કથન થવું જોઈએ.

ચન્દ્ર વિષયક આલાપકોની રચના આ પ્રકારની થશે—(તસ્મિન્ કાલે તસ્મિન્ સમયે ચંપા નામ નગરી આસીત્, વર્ણકઃ તસ્યાં ચંપાયાં નગર્યાં પૂર્ણભદ્ર નામ ઉદ્યાનં આસીત્ વર્ણકઃ) ઇત્યાદિ. તે કાળે અને તે સમયે ચંપા નામે

फाले, तस्मिन् समये श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य ज्येष्ठोऽन्तेवासी इन्द्रभूतिर्नाम अनगारः गौतमगोत्रो यावत्-एवम् अवादीत्-जम्बूद्वीपे भगवन् । द्वीपे द्वयोश्चन्द्र-मसौः सद्भावात्-चन्द्रमसौ उदीचीमाच्याम् उद्गत्य प्राचीदक्षिणस्याम् आगच्छतः? प्राचीदक्षिणस्याम् उद्गत्य दक्षिणप्रतीच्याम् आगच्छतः? २ दक्षिणप्रतीच्याम् उद्गत्य प्रतीच्युदीच्याम् आगच्छतः? ३ प्रतीच्युदीच्याम् उद्गत्य उदीचीमाच्याम्

और उस समय में चंपा नाम की नगरी थी उस नगरी का वर्णन औपपातिक सूत्र से जानना चाहिये उस नगरीमें पूर्णनद्र नामका उद्यान था वर्णक-श्रमण भगवान् महावीर प्रभु उस उद्यान में विहार करते हुए पधारें, धर्म का उपदेश सुनने के लिये जनता वहाँ पर एकचित्र हुई, प्रभुने श्रुतचारित्ररूप धर्म का उपदेश दिया, उपदेश सुनकर जनता वहाँ से वापिस गई । उस काल में और उस समय में श्रमण भगवन् महावीर के प्रधान शिष्य ने जिनका नाम इन्द्रभूति अनगार था, और गोत्र जिनका गौतम था प्रभु से यावत् इस प्रकार पूछा-हे भदन्त ! जम्बूद्वीप नामके इस द्वीप में दो चंद्रमा हैं ये उत्तर और पूर्वदिशाके अन्तरालवर्ती ईशानकोणसे उदित होकर पूर्व और दक्षिणदिशाके अन्तरालवर्ती अग्नि-कोण में अस्त होते हैं क्या ? अग्निकोणसे उदित होकर नैऋत्यकोण में अस्त होते हैं क्या ? नैऋत्यकोणसे उदित होकर वायव्यकोणमें अस्त होते हैं क्या ? और वायव्यकोणसे उदित होकर ईशानकोणमें अस्त होते हैं क्या ?

नगरी હતી. તે નગરીનું વર્ણન ઔપપાતિક સૂત્રમાંથી જાણી લેવું. તે નગરીમાં પૂર્ણનદ્ર નામે ઉદ્યાન હતું. તે ઉદ્યાનનું વર્ણન પણ ઔપપાતિક સૂત્રમાંથી જાણી લેવું. શ્રમણ ભગવાન મહાવીર વિહાર કરતાં કરતાં એ ઉદ્યાનમાં પધાયા. ધર્મોપદેશ સાંભળવાને લોકો ત્યાં એકઠાં થયા. પ્રભુએ શ્રુતચારિત્ર રૂપ ધર્મને ઉપદેશ દીધો. ઉપદેશ સાંભળીને લોકો પોતપોતાને સ્થાને પાછા ફર્યા. તે કાળે અને તે સમયે શ્રમણ ભગવાન મહાવીરના મુખ્ય શિષ્ય ઈન્દ્રભૂતિ અણગાર હતા. તેઓ ગૌતમ ગોત્રના હતા. અહીં ગૌતમના શુભેાનું વર્ણન શ્રદ્ધણ કરવું. ગૌતમ સ્વામીએ મહાવીર પ્રભુને આ પ્રમાણે પૂછ્યું-હે ભદન્ત ! જમ્બૂદ્વીપ નામના આ દ્વીપમાં બે ચન્દ્રમા છે. તેઓ શુ પૂર્વ અને ઉત્તર દિશાની વચ્ચેના ઈશાન કોણમાંથી ઉદય પામીને પૂર્વ અને દક્ષિણ દિશાની વચ્ચેના અગ્નિકોણમાં અસ્ત પામે છે ? અથવા અગ્નિકોણમાંથી ઉદય પામીને નૈઋત્ય કોણમાં અસ્ત પામે છે ? અથવા નૈઋત્ય કોણમાંથી ઉદય પામીને વાયવ્ય કોણમાં અસ્ત પામે છે ? અથવા વાયવ્ય કોણમાંથી ઉદય પામીને ઈશાન કોણમાં અસ્ત પામે છે ?

આગચ્છતઃ ૪ ? હન્ત, ગૌતમ ! જમ્બૂદ્વીપે દ્વીપેચન્દ્રમસી ઉદીચી-પ્રાચ્યામુદ્ગત્ય યાવત્-ઉદીચી-પ્રાચ્યામાગચ્છતઃ । યદા સ્વત્તુ ભદન્ત ! જમ્બૂદ્વીપે દ્વીપે દક્ષિણાર્ધે રાત્રિર્ભવતિ, તદા ઉત્તરાર્ધેઽપિ રાત્રિર્ભવતિ, યદા ઉત્તરાર્ધે રાત્રિર્ભવતિ, તદા જમ્બૂદ્વીપે દ્વીપે મન્દરસ્ય પર્વતસ્ય પૌરસ્ત્યે પશ્ચિમે ચ દિવસો ભવતિ ? હન્ત, ગૌતમ ! યદા જમ્બૂદ્વીપે દ્વીપે દક્ષિણાર્ધેઽપિ રાત્રિર્ભવતિ તદા ઉત્તરાર્ધેઽપિ રાત્રિર્ભવતિ, યદા ઉત્તરાર્ધે રાત્રિર્ભવતિ, તદા જમ્બૂદ્વીપે દ્વીપે મન્દરસ્ય પર્વતસ્ય પૌરસ્ત્ય પશ્ચિમે-દિવસો ભવતિ ।

યદા સ્વત્તુ ભદન્ત ! જમ્બૂદ્વીપે દ્વીપે મન્દરસ્ય પર્વતસ્ય પૌરસ્ત્યે રાત્રિર્ભવતિ, તદા પશ્ચિમેઽપિ રાત્રિર્ભવતિ, યદા પશ્ચિમે રાત્રિર્ભવતિ તદા જમ્બૂદ્વીપે દ્વીપે મન્દ-

ઉત્તર—હાં ગૌતમ ! પેસા હી હોતા હૈ—જમ્બૂદ્વીપ નામકે દ્વીપ મેં દો ચન્દ્રમા ઈશાનકોણ સેડિત હોકર યાવત્ ઈશાનકોણ મેં અસ્ત હોતે હૈં ।

પ્રશ્ન—હે ભદન્ત ! જ્ય જમ્બૂદ્વીપ મેં દક્ષિણાર્ધ મેં રાત્રિ હોતી હૈ, ઉસ સમય ઉત્તરાર્ધ મેં બી રાત્રિ હોતી હૈ ઓર જ્ય ઉત્તરાર્ધ મેં રાત્રિ હોતી હૈ તય જમ્બૂદ્વીપ નામ કે દ્વીપ મેં મન્દર પર્વત કી પૂર્વપશ્ચિમદિશા મેં દિવસ હોતા હૈ કયા ?

ઉત્તર—હાં ગૌતમ ! જ્ય જમ્બૂદ્વીપ મેં દક્ષિણાર્ધ મેં રાત્રિ હોતી હૈ તય ઉત્તરાર્ધ મેં બી રાત્રિ હોતા હૈં । ઓર જ્ય ઉત્તરાર્ધ મેં રાત્રિ હોતી હૈ, તય જમ્બૂદ્વીપ મેં મન્દર પર્વત કી પૂર્વપશ્ચિમદિશા મેં દિવસ હોતા હૈં ।

પ્રશ્ન—હે ભદન્ત ! જ્ય જમ્બૂદ્વીપ મેં મન્દર પર્વત કી પૂર્વ દિશા મેં રાત્રિ હોતી હૈ તય પશ્ચિમ મેં બી રાત્રિ હોતી હૈ ઓર જ્ય પશ્ચિમ મેં

ઉત્તર—હા, ગૌતમ ! એવું જ બને છે. “ જમ્બૂદ્વીપ નામના દ્વીપમાં જે ચન્દ્રમા ઈશાન કોણમાં ઉદય પામીને અગ્નિ કોણમાં અસ્ત પામે છે, ત્યાંથી શરૂ કરીને ઈશાન કોણમાં અસ્ત પામે છે. ” ત્યાં સુધીનું પૂર્વોક્ત સમસ્ત કથન અહીં ગ્રહણ કરવું.

પ્રશ્ન—હે ભદન્ત ! જ્યારે જમ્બૂદ્વીપના દક્ષિણાર્ધમાં રાત્રિ હોય છે, ત્યારે શું ઉત્તરાર્ધમાં પણ રાત્રિ હોય છે ? અને જ્યારે ઉત્તરાર્ધમાં રાત્રિ હોય છે, ત્યારે શું જમ્બૂદ્વીપમાં મન્દર પર્વતની પૂર્વ-પશ્ચિમ દિશામાં દિવસ હોય છે ?

ઉત્તર—હા, ગૌતમ ! જ્યારે જમ્બૂદ્વીપના દક્ષિણાર્ધમાં રાત્રિ હોય છે ત્યારે ઉત્તરાર્ધમાં પણ રાત્રિ હોય છે, અને જ્યારે ઉત્તરાર્ધમાં રાત્રિ હોય છે, ત્યારે જમ્બૂદ્વીપમાં મન્દર પર્વતની પૂર્વ-પશ્ચિમ દિશામાં દિવસ હોય છે.

પ્રશ્ન—હે ભદન્ત ! જ્યારે જમ્બૂદ્વીપમાં મન્દર પર્વતની પૂર્વ દિશામાં રાત્રિ હોય છે, ત્યારે શું પશ્ચિમ દિશામાં પણ રાત્રિ હોય છે ? અને જ્યારે

રસ્ય પર્વતસ્ય ઉત્તર-દક્ષિણે દિવસો ભવતિ ? હન્ત, ગૌતમ ! યદા જમ્બૂદ્વીપે દ્વીપે મન્દરપૌરસ્ત્યે રાત્રિર્ભવતિ, તદા પશ્ચિમેઽપિ રાત્રિર્ભવતિ, યદા પશ્ચિમે રાત્રિર્ભવતિ તદા ઉત્તર-દક્ષિણે દિવસો ભવતિ । યદા મદન્ત ! જમ્બૂદ્વીપે દ્વીપે દક્ષિણાર્ધે ઉત્કૃષ્ટાઽષ્ટાદશમુહૂર્તા રાત્રિર્ભવતિ તદા ઉત્તરાર્ધેઽપિ ઉત્કૃષ્ટાઽષ્ટાદશમુહૂર્તા રાત્રિર્ભવતિ, યદા ઉત્તરાર્ધે ઉત્કૃષ્ટાઽષ્ટાદશમુહૂર્તા રાત્રિર્ભવતિ તદા મન્દરસ્ય પૌરસ્ત્યપશ્ચિમે જઘન્યેન દ્વાદશમુહૂર્તો દિવસો ભવતિ ? હન્ત ગૌતમ ! યદા જમ્બૂદ્વીપે યાવત્-દ્વાદશમુહૂર્તો દિવસો ભવતિ । યદા મદન્ત ! જમ્બૂદ્વીપે મન્દર-પૌરસ્ત્ય રાત્રિ હોતી હૈ તથ જંબૂદ્વીપ મેં મંદર પર્વત કી ઉત્તરદક્ષિણ દિશા મેં દિવસ હોતા હૈ કયા ?

ઉત્તર—હાં ગૌતમ ! જય જંબૂદ્વીપ મેં મન્દરપર્વત કી પૂર્વદિશા મેં રાત્રિ હોતી હૈ તથ પશ્ચિમ મેં ભો રાત્રિ હોતી હૈ ઓર જય પશ્ચિમ મેં ભો રાત્રિ હોતી હૈ તથ ઉત્તર-દક્ષિણ દિશા મેં દિવસ હોતા હૈ ।

પ્રશ્ન—હે મદન્ત ! જય જમ્બૂદ્વીપ મેં દક્ષિણાર્ધ મેં ઉત્કૃષ્ટ ૧૮ અઠારહ મુહૂર્ત કી રાત્રિ હોતી હૈ તથ ઉત્તરાર્ધ મેં ભો ૧૮ અઠારહ મુહૂર્ત કી રાત્રિ હોતી હૈ ? ઓર જય ઉત્તરાર્ધ મેં ભો ૧૮ મુહૂર્ત કી રાત્રિ હોતી હૈ તથ મન્દરપર્વત કી પૂર્વ પશ્ચિમ દિશા મેં જઘન્ય સે ૧૨ ચારહ મુહૂર્ત કા દિન હોતા હૈ કયા ?

ઉત્તર—હાં ગૌતમ ! તથ જંબૂદ્વીપ મેં યાવત્ ૧૨ ચારહ મુહૂર્ત કા દિન હોતા હૈ ?

મન્દર પર્વતની પશ્ચિમ દિશામાં રાત્રિ હોય છે, ત્યારે શું જંબૂદ્વીપમાં મંદર પર્વતની ઉત્તર અને દક્ષિણ દિશામાં દિવસ હોય છે ?

ઉત્તર—હા, ગૌતમ ! જ્યારે જંબૂદ્વીપમાં મન્દર પર્વતની પૂર્વ દિશામાં રાત્રિ હોય છે, ત્યારે પશ્ચિમ દિશામાં પણ રાત્રિ હોય છે, અને જ્યારે પશ્ચિમમાં રાત્રિ હોય છે, ત્યારે ઉત્તર દક્ષિણ દિશામાં દિવસ હોય છે.

પ્રશ્ન—હે મદન્ત ! જ્યારે જંબૂદ્વીપના દક્ષિણાર્ધમાં પણ ૧૮ મુહૂર્તની જ રાત્રિ હોય છે ? અને જ્યારે ઉત્તરાર્ધમાં વધારેમાં વધારે ૧૮ મુહૂર્તની જ રાત્રિ હોય છે, ત્યારે મન્દર પર્વતની પૂર્વ-પશ્ચિમ દિશામાં શું ટુંકામાં ટુંકો ૧૨ મુહૂર્તનો દિવસ થાય છે ?

ઉત્તર—હા, ગૌતમ ! એ પ્રમાણે જ અને છે. (અહીં પ્રશ્નોક્ત કથનજ શરૂ કરવું.)

पश्चिमे उत्कृष्टाष्टादशमुहूर्ता रात्रिर्भवति, तदा उत्तर-दक्षिणे जघन्येन द्वादश मुहूर्तो दिवसो भवति ? इन्त, गौतम ! यदा पौरस्त्यपश्चिमेऽष्टादशमुहूर्ता रात्रि स्वदोत्तरदक्षिणे द्वादशमुहूर्तो दिवसो भवति ? इन्त, गौतम ! यावत् द्वादशमुहूर्तो दिवसो भवति, इत्यादिरीत्या स्वपृथग् । तथा ' यदा खलु भदन्त ! जम्बूद्वीपे द्वीपे दक्षिणार्धे वर्षाणां प्रथमः समयः प्रतिपद्यते तदा उत्तरार्धेऽपि वर्षाणां प्रथमः समयः प्रतिपद्यते, यदा उत्तरार्धेऽपि वर्षाणां प्रथमः समयः प्रतिपद्यते तदा जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पौरस्त्यपश्चिमेऽनन्तरपुरस्कृतसमये अव्यवहितोत्तरकाले वर्षाणां प्रथमः समयः प्रतिपद्यते ! इन्त, गौतम ! यदा जम्बूद्वीपे

प्रश्न—हे भदन्त ! जय जंबूद्वीप में मन्दरपर्वत की पूर्वपश्चिम दिशा में उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त की रात्रि होती है, तब उत्तर दक्षिण दिशा में जघन्य से क्या १२ चारह मुहूर्त का दिन होता है ? हां गौतम ! जय पूर्वपश्चिम में १८ अठारह मुहूर्त की रात्रि होती है, तब उत्तर दक्षिण में चारह मुहूर्त का दिन होता है । इत्यादि रीति से सब विषय प्रथम उद्देशक में कहे हुए अनुसार अपने आप समझलेना चाहिये ।

तथा—प्रश्न—हे भदन्त ! जंबूद्वीप नाम के द्वीप में जय दक्षिणार्ध में वर्षाणुत्तु का प्रथम समय होता है—तब उत्तरार्ध में भी वर्षा का प्रथम समय होता है, और जय उत्तरार्ध में भी वर्षा का प्रथम समय होता है तब जंबूद्वीप नाम के द्वीप में मन्दरपर्वत की पूर्वपश्चिम दिशा में अव्यवहित उत्तरकाल में वर्षा का प्रथम समय होता है क्या ?

प्रश्न—हे भदन्त ! न्यारे जंबूद्वीपमां मन्दर पर्वतनी पूर्व-पश्चिम दिशांमां लांणामां लांणी १८ मुहूर्तनी रात्रि डोय छे, न्यारे शु उत्तर दक्षिण दिशांमां दुंकांमां दुंके १२ मुहूर्तनी दिवस डोय छे ?

उत्तर—हा, गौतम ! न्यारे पूर्व-पश्चिममां लांणामां लांणी १८ मुहूर्तनी रात्रि डोय छे, न्यारे उत्तर-दक्षिणमां दुंकांमां दुंके १२ मुहूर्तनी दिवस डोय छे.

इत्यादि समस्त विषयं कथन पडेवा उद्देशकमां कथा प्रमाणे समझनुं.

प्रश्न—हे भदन्त ! न्यारे जंबूद्वीपमां दक्षिणार्धमां वर्षाणुत्तुने प्रथम समय डोय छे, न्यारे शु उत्तरार्धमां पणु वर्षाणुत्तुने प्रथम समय डोय छे ? अने न्यारे उत्तरार्धमां वर्षाणुत्तुने प्रथम समय डोय छे, न्यारे मन्दर पर्वतनी पूर्व-पश्चिम दिशांमां अव्यवहित (आंतरा रडित) उत्तर दिशांमां शु वर्षाणुत्तुने प्रथम समय डोय छे ?

દ્વીપે દક્ષિણાર્ધે વર્ષાના પ્રથમઃ સમયઃ પ્રતિપદ્યતે, તદા ઉત્તરાર્ધેઽપિ વર્ષાના પ્રથમઃ સમયઃ પ્રતિપદ્યતે, યદા ઉત્તરાર્ધે વર્ષાના પ્રથમઃ સમયઃ પ્રતિપદ્યતે તદા મન્દર-પૌરસ્ત્યપથિમેઽનન્તરપુરસ્કૃતસમયે વર્ષાના પ્રથમઃ સમયઃ પ્રતિપદ્યતે । યદા ભદન્ત । જમ્બૂદ્વીપે દ્વીપે મન્દરપર્વતસ્ય પૌરસ્ત્યે વર્ષાના પ્રથમઃ સમયઃ પ્રતિપદ્યતે, તદા પથિમેઽપિ વર્ષાના પ્રથમઃ સમયઃ પ્રતિપદ્યતે, યદા પથિમેઽપિ વર્ષાના પ્રથમઃ સમયઃ પ્રતિપદ્યતે તદા મન્દરપર્વતસ્ય ઉત્તરદક્ષિણેઽનન્તરપુરસ્કૃતસમયે વર્ષાના પ્રથમઃ સમયઃ પ્રતિપદ્યન્તો ભવતિ ? ઇન્ત, ગૌતમ ! યદા જમ્બૂદ્વીપે દ્વીપે મન્દરસ્ય પર્વતસ્ય પૌરસ્ત્યે વર્ષાના પ્રથમઃ સમયઃ પ્રતિપદ્યતે તદા પથિમેઽપિ પ્રથમઃ સમયઃ,

ઉત્તર—હાં ગૌતમ ! જ્ય જમ્બૂદ્વીપ નામકે દ્વીપ મેં દક્ષિણાર્ધ મેં વર્ષા કા પ્રથમ સમય હોતા હૈ, ત્ય ઉત્તરાર્ધ મેં બી વર્ષા કા પ્રથમ સમય હોતા હૈ ઓર જ્ય ઉત્તરાર્ધ મેં વર્ષા કા પ્રથમ સમય હોતા હૈ ત્ય મન્દર પર્વત કી પૂર્વપશ્ચિમ દિશા મેં અવ્યવહિત ઉત્તરકાલ મેં વર્ષા કા પ્રથમ સમય હોતા હૈ ।

પ્રશ્ન—હે ભદન્ત ! જ્ય જમ્બૂદ્વીપ નામ કે દ્વીપ મેં મન્દરપર્વત કી પૂર્વદિશા મેં વર્ષા કા પ્રથમ સમય હોતા હૈ, ત્ય પશ્ચિમ મેં બી વર્ષા કા પ્રથમ સમય હોતા હૈ, ઓર જ્ય પશ્ચિમ મેં બી વર્ષા કા પ્રથમ સમય હોતા હૈ ત્ય મન્દર પર્વત કી ઉત્તર દક્ષિણદિશા મેં અનન્તર પશ્ચાત્કૃત સમય મેં અવ્યવહિત પૂર્વકાલ મેં—વર્ષા કા પ્રથમ સમય હોતા હૈ કયા ?

ઉત્તર—હાં ગૌતમ ! જ્ય જમ્બૂદ્વીપ નામકે દ્વીપ મેં મન્દર પર્વત કી પૂર્વદિશા મેં વર્ષા કા પ્રથમ સમય હોતા હૈ ત્ય પશ્ચિમ મેં બી વર્ષા કા

ઉત્તર—હા, ગૌતમ ! જ્યારે જમ્બૂદ્વીપના દક્ષિણાર્ધમાં વર્ષાનો પ્રથમ સમય હોય છે, ત્યારે ઉત્તરાર્ધમાં પણ વર્ષાનો પ્રથમ સમય હોય છે, અને જ્યારે ઉત્તરાર્ધમાં વર્ષાનો પ્રથમ સમય હોય છે, ત્યારે મન્દર પર્વતની પૂર્વ પશ્ચિમ દિશામાં અવ્યવહિત ઉત્તરકાળમાં વર્ષાનો પ્રથમ સમય હોય છે.

પ્રશ્ન—હે ભદન્ત ! જ્યારે જમ્બૂદ્વીપમાં મન્દર પર્વતની પૂર્વ દિશામાં વર્ષાનો પ્રથમ સમય હોય છે, ત્યારે શું પશ્ચિમ દિશામાં પણ વર્ષાનો પ્રથમ સમય હોય છે ? અને જ્યારે પશ્ચિમમાં વર્ષાનો પ્રથમ સમય હોય છે, ત્યારે શું મન્દર પર્વતની ઉત્તર દક્ષિણ દિશામાં અનન્તર પશ્ચાત્કૃત (ત્યારબાદના સમયમાં) સમયમાં અવ્યવહિત (આંતરા રહિત) પૂર્વકાળમાં વર્ષાનો પ્રથમ સમય હોય છે ?

ઉત્તર—હા, ગૌતમ ! જ્યારે જમ્બૂદ્વીપમાં મન્દર પર્વતની પૂર્વ દિશામાં વર્ષાનો પ્રથમ સમય હોય છે, ત્યારે પશ્ચિમમાં પણ વર્ષાનો પ્રથમ સમય હોય

यदा पश्चिमे प्रथमः समयः, तदा मन्दरस्य उत्तरदक्षिणेऽनन्तरपुरस्कृतसमये वर्षाणां प्रथमः समयः प्रतिपद्यो भवति । एवं यथा समयेन अभिलापो भणितो वर्षाणां तथा आवलिकयाऽपि भणितव्यः । एवम्—आनप्राणाभ्यामपि, स्तोकेनापि, लवेनापि, गृह्णतेनापि, अहोरात्रेणापि, पक्षेणापि, मासेनापि, ऋतुनाऽपि, एतेषां सर्वेषां यथा समयस्याभिलापस्तथा भणितव्यः । यदा खलु भदन्त ! जम्बूद्वीपे द्वीपे हेमन्तानां प्रथमः समयः प्रतिपद्यते० ? यथैव वर्षाणाम् अभिलापः, तथैव हेमन्तानामपि, ग्रीष्माणामपि भणितव्यो यावत्—ऋतुना, एवं त्रीणि अपि । एतेषां त्रिंशद् आलापका भणितव्याः । यदा भदन्त ! जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य

प्रथम समय होता है और जब पश्चिम में भी प्रथम समय होता है तब मन्दर पर्वत की उत्तर दक्षिणदिशा में अनन्तर पश्चालकृत समय में वर्षा का प्रथम समय होता है । जिस प्रकार से वर्षा का यह अभिलाप समय को लेकर कहा गया है—उसी प्रकार से आवलिका को लेकर भी वर्षा का अभिलाप कहलेना चाहिये तथा आनप्राण को, स्तोक को, लव को, गृह्णते को, अहोरात्र को, पक्ष को मास को और ऋतु को भी लेकर इसी प्रकार से अभिलाप वर्षा का कहलेना चाहिये ।

प्रश्न—हे भदन्त ! जम्बूद्वीप नाम के द्वीप में दक्षिण में जब हेमन्त-ऋतु का प्रथम समय प्रारम्भ होता है, तब उत्तर में भी हेमन्त ऋतु का प्रथम समय प्रारंभ होता है और जब उत्तर में भी हेमन्त ऋतु का प्रथम समय प्रारंभ होता है तब जम्बूद्वीप में मन्दर पर्वत की पूर्व पश्चिमदिशा में क्या अनन्तपुरस्कृत समय में हेमन्त ऋतु का प्रारंभ होता है ?

छे अने न्यारे पश्चिमभां पानि प्रथम समय होय छे, त्यारे मन्दर पर्वतनी उत्तर दक्षिण दिशाभां अनन्तर (त्यारभाहना समयभां) समयभां वर्षानो प्रथम समय होय छे, जेवी रीते समयनी अपेक्षाये वर्षानो आ आलापक (प्रश्नोत्तर ३५ सूत्रो) कह्यो छे, जेज प्रमाणे आवलिका, आनप्राण, स्तोत्र, लव, गृह्णते, रात्रि-दिवस, पक्ष, मास अने ऋतुयोनी अपेक्षाये पणु वर्षानो आलापक कहेवा जेधये.

प्रश्न—हे भदन्त ! जम्बूद्वीप नामना द्वीपभां दक्षिण दिशाभां न्यारे हेमन्त ऋतुना प्रथम समयनो प्रारंभ थाय त्यारे शु उत्तरभां पणु हेमन्त ऋतुना प्रथम समयनो प्रारंभ थाय छे ? अने न्यारे उत्तरभां हेमन्त ऋतुना प्रथम समयनो प्रारंभ थाय छे, त्यारे जम्बूद्वीपभां मन्दर पर्वतनी पूर्व-पश्चिम दिशाभां शु (त्यारभाहना समयभां) हेमन्त ऋतुना प्रारंभ थाय छे ?

દક્ષિણાર્ધે પ્રથમમ્ અયનં પ્રતિપદ્યતે તદ્વા ઉત્તારાર્ધેઽપિ પ્રથમમ્ અયનં પ્રતિપદ્યતે ! યથા સમયેનાભિલાપસ્તથૈવ અયનેનાપિ ભણિતવ્યઃ, યાવત્-અનન્તરપશ્ચાત્કૃતસમયે પ્રથમમ્ અયનં પ્રતિપન્નં ભવતિ । યથાઽયનેનાભિલાપસ્તથા સંવત્સરેણાપિ ભણિતવ્યઃ પુનેના ।

ઉત્તર—હે ગૌતમ ! હસ સંયંથી સમસ્ત કથન અર્થાત્ હેમંત સંબંધ અભિલાપ વર્ષા કે અભિલાપ કી તરહ કહ લેના યાહિયે—હસી તરહ સે ગ્રીષ્મ ઋતુ સંયંથી અભિલાપ ધી જાનના યાહિયે તથા હેમન્ત ઓર ગ્રીષ્મ કે પ્રથમ સમય કી તરહ ડનકી પ્રથમ આવલિકા આદિ સબ ઋતુ તક સમજના યાહિયે, હસ તરહ ડન તીન ઋતુઓં કે વિષય મેં ઇક સરીલા કથન જાનના યાહિયે યે સય મિલકર ૩૦ તીસ આલાપક હો જાતે હેં ।

પ્રશ્ન—હે ભદન્ત ! જમ્બૂદ્વીપ નામકે દ્વીપ મેં મન્દરપર્વત કે દક્ષિણાર્ધ મેં જય પ્રથમ અયન પ્રારંભ હોના હૈ, તય ઉત્તારાર્ધ મેં ધી પ્રથમ અયન પ્રારંભ હોતા હૈ કયા ? ૩૦—હે ગૌતમ ! જિસ પ્રકાર સે સમયકે સમ્યન્ધ મેં કહા જા ચુકા હૈ ડસી તરહ સે અયન કે સમ્યન્ધમેં ધી જાનના યાહિયે । ઓર યહ કથન હસ વિષયમેં “ યાવત્ અનન્તર પશ્ચાત્કૃતસમયે પ્રથમં અયનં પ્રતિપન્નં ભવતિ યહાં તક હી ગ્રહણ કરનાં યાહિયે । જિસ પ્રકાર સે અયન કો લેકર અભિલાપ કહા હૈ ડસી તરહ

ઉત્તર—હે ગૌતમ ! વર્ષાના આલાપકો જેવાં જ હેમન્તના આલાપકો પણ સમજવા. જેજ પ્રમાણે શ્રીમન્કૃતુ સંયંથી આલાપકો પણ સમજવા. તથા વર્ષાઋતુના સમય, આવલિકા આદિની અપેક્ષાએ જેવા આલાપકો કહા છે એવાં આલાપકો હેમન્ત અને શ્રીમન્તા સમયથી ઋતુ પર્યન્તના કાળને અનુલક્ષીને કહેવા ભેદએ. આ રીતે આ ત્રણે ઋતુઓતું કથન એકસરખું સમજવું. ત્રણે ઋતુના એકંદર ૩૦ આલાપકો બને છે.

પ્રશ્ન—હે ભદન્ત ! જંબૂદ્વીપના મન્દર પર્વતના દક્ષિણાર્ધમાં જ્યારે પહેલા અયનની શરૂઆત થાય છે, ત્યારે શું ઉત્તારાર્ધમાં પણ પહેલા અયનની શરૂઆત થાય છે ?

ઉત્તર—હે ગૌતમ ! સમયના વિષે જેમ કહેવામાં આવ્યું છે તેમ અયનના વિષયમાં પણ સમજવું. અને તે કથન “ અનન્તરપશ્ચાત્કૃતસમયે પ્રથમં અયનં પ્રતિપન્નં ભવતિ ” અહીં સુધી જ શરૂ કરવું. જેવી રીતે અયન વિષેના આલાપકો કહા છે જેજ પ્રમાણે સંવત્સર વિષેના આલાપકો પણ કહેવા

पि, वर्षशतेनापि वर्षसहस्रेणापि, वर्षशतसहस्रेणापि, पूर्वार्द्धेणापि, पूर्वेणापि, त्रुटिता-
 र्द्धेणापि त्रुटितेनापि, एवम्-अट्टाङ्गम्, अट्टम्, अववाङ्गम्, अववम्, हुहुकाङ्गम्,
 हुहुकम्, उत्पलाङ्गम्, उत्पलम्, पद्माङ्गम्, पद्मम्, नलिनाङ्गम्, नलिनम्, अर्थनि-
 पुराङ्गम्, अर्थनिपूरम्, अयुताङ्गम्, अयुतम्, नयुताङ्गम्, नयुतम्, प्रयुताङ्गम्,
 प्रयुतम्, चूलिकाङ्गम्, चूलिका, शीर्षप्रहेलिकाया, पल्योपमेन, सागरोपमेणापि
 मणितव्यः । यदा भदन्त ! जम्बूद्वीपे द्वीपे दक्षिणार्धे प्रथमावसर्पिणी प्रतिपद्यते,
 तदा उत्तरार्धेऽपि प्रथममावसर्पिणी प्रतिपद्यते यदा उत्तरार्धेऽपि प्रथमाऽवसर्पिणी
 प्रतिपद्यते तदा जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पौरस्त्ये पश्चिमे नैवास्ति अवस-
 र्पिणी, नैवास्ति उत्सर्पिणी, अवस्थितस्तत्र कालः प्रज्ञप्तः, श्रमणायुष्मन् ! इन्त,

से संवत्सरको लेकर भी अभिलाप कहलेना चाहिये इसी तरह से युग,
 वर्षरात वर्षसहस्र, वर्षशतसहस्र, पूर्वाङ्ग, पूर्व, त्रुटिताङ्ग, त्रुटित, अट्टाङ्ग,
 अट्ट, अववाङ्ग, अवव, हुहुकाङ्ग, हुहुक, उत्पलाङ्ग उत्पल, पद्माङ्ग, पद्म नलि-
 नाङ्ग, नलिन, अर्थनिपुराङ्ग, अर्थनिपुर, अयुताङ्ग, अयुत, नयुताङ्ग, नयुत,
 प्रयुताङ्ग, प्रयुत, चूलिकाङ्ग, चूलिका, शीर्षप्रहेलिकाङ्ग, शीर्षप्रहेलिका, पल्यो-
 पम और सागरोपम इन को लेकर भी अभिलाप कहलेना चाहिये ।

प्रश्न— हे भदन्त ! जम्बूद्वीप नाम के द्वीप में दक्षिणार्ध में जब प्रथम
 अवसर्पिणी प्रारंभ होती है, तब उत्तरार्ध में भी प्रथम अवसर्पिणी
 प्रारंभ होती है और जब उत्तरार्ध में भी प्रथम अवसर्पिणी प्रारंभ होती
 है तो क्या जम्बूद्वीप नाम के द्वीप में मन्दर पर्वत की पूर्व पश्चिम दिशा
 में जब अवसर्पिणी नहीं है और उत्सर्पिणी भी नहीं है तो क्या हे
 दीर्घजीविन् ! श्रमण ! वहाँ पर काल अवस्थित कहा गया है ?

नेधञ्जे. अथ प्रभाषे युग, वर्षसहस्र, पूर्वाङ्ग, पूर्व, त्रुटिताङ्ग, त्रुटित, अट-
 टाङ्ग, अट्ट, अववाङ्ग, अवव, हुहुकाङ्ग, हुहुक, उत्पलाङ्ग, उत्पल, पद्माङ्ग, पद्म,
 नलिनाङ्ग, नलिन, अर्थनिपुराङ्ग, अर्थनिपूर, अयुताङ्ग, अयुत, नयुताङ्ग, नयुत,
 प्रयुताङ्ग, प्रयुत, चूलिकाङ्ग, चूलिका, शीर्षप्रहेलिकाङ्ग, शीर्षप्रहेलिका, पल्योपम
 अने सागरोपमना विषयमां पद्य आलापक उडेवा नेधञ्जे.

प्रश्न— हे भदन्त ! त्वारे जम्बूद्वीपना दक्षिणार्धमां प्रथम अवसर्पिणी
 शङ् थाय छे, त्वारे शुं उत्तरार्धमां पद्य प्रथम अवसर्पिणी शङ् थाय छे ?
 अने त्वारे उत्तरार्धमां पद्य अवसर्पिणी शङ् थाय छे, त्वारे शुं जम्बूद्वीपमां
 मन्दर पर्वतनी पूर्व-पश्चिम दिशांमां उत्सर्पिणी पद्य होती नथी अने अव-
 सर्पिणी होती नथी ? तो हे भदन्त ! हे दीर्घजीविन् ! शुं त्वां अवस्थित
 काय कथ्यो छे ?

ગૌતમ ! તદેવ યાવત્-ઉચારયિતજ્યમ્, યાવત્-શ્રમણાયુષ્મન્ ! યથા અવસર્પિણ્યા આલાપકો મણિતઃ, એવમ્ ઉત્સર્પિણ્યાઽપિ મણિતજ્યઃ ।

તથા ચન્દ્રવિષયકસ્તૃતીયાલાપકમેત્યમ્-લવણે ભદન્ત ! સમુદ્રે ચન્દ્રો ડરીતી -માચ્યામ્ ઉદ્ગત્ય પ્રાચી-દક્ષિણાયામ્ આગચ્છતઃ ? પ્રાચી-દક્ષિણાયામ્ ઉદ્ગત્ય દક્ષિણ-મતીચ્યામ્ આગચ્છતઃ ? દક્ષિણ-મતીચ્યામ્ ઉદ્ગત્ય મતીચ્યુદીચ્યા માગચ્છતઃ ? મતીચ્યુદીચ્યુમુદ્ગત્ય ડરીતી-માચ્યામાગચ્છતઃ ? લવણસમુદ્રે ચલારશ્ચન્દ્રા ભવન્તિ તેષુ પ્રતિદિને તત્ર ભાગદ્વયં ડ્રો ચન્દ્રો આગચ્છતઃ, તદપેક્ષયા 'દ્રો' ઇત્યુક્તમ્, યા એવ જન્મ્વદ્વોપસ્ય વક્તવ્યતા મણિતા સા એવ અપરિશેષિકા

ઉત્તર—હાં ગૌતમ ! એસા હી હૈ-પૂર્વ કી તરહ સે હી યહાં સય કહ-લેના ચાહિયે-યાવત્ હે શ્રમણાયુષ્મન્ ! જિસ પ્રકાર સે અવસર્પિણી કે સંબંધ મેં આલાપક કહા હૈ-ઉસી પ્રકાર સે ઉત્સર્પિણી કે વિષય મેં બી આલાપક જાનના ચાહિયે ।

તથા—ચન્દ્ર કે વિષય મેં તૃતીય આલાપક હસ પ્રકાર સે હૈ-પ્ર-હે ભદન્ત ! લવણસમુદ્ર મેં દો ચન્દ્રમા ઈશાન કોણ મેં ઉદિત હોકર અગ્નિકોણ મેં જાતે હૈં કયા ? અગ્નિકોણ મેં ઉદિત હોકર નૈઋત્ય કોણ મેં જાતે હૈં કયા ? નૈઋત્ય કોણ મેં ઉદિત હોકર વાયવ્ય કોણ મેં જાતે હૈં કયા ? વાયવ્યકોણ મેં ઉદિત હોકર ઈશાન કોણ મેં જાતે હૈં કયા ? લવ-ણસમુદ્ર મેં ચાર ચન્દ્રમા હૈં । ડનમેંસે પ્રતિદિન વહાં પર દો ભાગમેં દો ચન્દ્ર ઉદિત હોતે હૈં-હસી અપેક્ષા કો લેકર (દો) એસા પાઠ કહા ગયા હૈ ?

ઉત્તર—હા, ગૌતમ ! એવું જ છે. એટલે કે પ્રશ્નસૂત્ર પ્રમાણે જ અહીં સમસ્ત કથન સમજવું. જે પ્રકારે અવસર્પિણીના વિષયમાં આલાપક કહ્યો છે, એ જ પ્રમાણે ઉત્સર્પિણીના વિષયમાં પણ આલાપક સમજવો. તથા ચન્દ્રના વિષયમાં ત્રીજો આલાપક આ પ્રમાણે છે:—

પ્રશ્ન—હે ભદન્ત ! લવણ સમુદ્રમાં જે ચન્દ્રમા ઈશાન કોણમાં ઉદય પામીને શુ' અગ્નિકોણમાં જાય છે ? અગ્નિકોણમાં ઉદય પામીને શુ' નૈઋત્ય કોણમાં જાય છે ? નૈઋત્ય કોણમાં ઉદય પામીને શુ' વાયવ્ય કોણમાં જાય છે ? વાયવ્ય કોણમાં ઉદય પામીને શુ' ઈશાન કોણમાં જાય છે ? (લવણ સમુદ્રમાં ચાર ચન્દ્રમા છે. તેમાંથી પ્રતિદિન ત્યાં જે ભાગમાં જે ચન્દ્ર ઉદય પામે છે, તે કારણે સૂત્રપાઠમાં 'જે ચન્દ્ર' કહ્યા છે.)

લવણસમુદ્રસ્યાપિ ભણિતવ્યા, નવરમ્-અભિલાષોડયં જ્ઞાતવ્યઃ-યદા ભદન્ત ! લવણે સમુદ્રે દક્ષિણાર્ધે રાત્રિર્ભવતિ, તદેવ યાવત્-તદા લવણસમુદ્રે પૌરસ્ત્ય-પશ્ચિમે દિવસો ભવતિ, एतेन અભિલાષેન જ્ઞાતવ્યમ્ । યદા ભદન્ત ! લવણસમુદ્રે દક્ષિણાર્ધે પ્રથમા અવસર્પિણી પ્રતિપદ્યતે, તદા ઉત્તરાર્ધે પ્રથમા અવસર્પિણી પ્રતિપદ્યતે ? યદા ઉત્તરાર્ધે પ્રથમા અવસર્પિણી પ્રતિપદ્યતે તદા લવણસમુદ્રે પૌરસ્ત્ય-પશ્ચિમે નૈવાસ્તિ અવસર્પિણી નૈવાસ્તિ ઉત્સર્પિણી શ્રમણાયુષ્મન્ ! । હન્ત, ગૌતમ ! યાવત્-શ્રમણાયુષ્મન્, ધાત-

ઉત્તર—હે ગૌતમ ! જંબૂદ્વીપ કી જો વક્તવ્યતા કહી હૈ, વહી પૂરી વક્તવ્યતા લવણસમુદ્ર કી ખી કહની ચાહિયે । વિશેષતા કેવલ ઉસમેં યહી હૈ કિ યહાં અભિલાષ ઇસ પ્રકાર સે જાનના—(હે ભદન્ત ! જિસ સમય લવણ સમુદ્ર કે દક્ષિણાર્ધ મેં દિવસ હોતા હૈ ઇત્યાદિ સય ઉસી પ્રકાર સે કહના ચાહિયે—યાવત્ તવ લવણ સમુદ્ર મેં પૂર્વ પશ્ચિમ મેં રાત્રિ હોતી હૈ ” । ઇસ પ્રકાર કે અભિલાષ દ્વારા ઇસ વિષય સે સંવંધ રક્ષને વાલે પ્રશ્નોત્તર કહના ચાહિયે ।

પ્રશ્ન—હે ભદન્ત ! લવણ સમુદ્ર મેં જય દક્ષિણાર્ધ મેં પ્રથમ અવસર્પિણી કાલ હોતા હૈ તય ઉત્તરાર્ધ મેં ખી પ્રથમ અવસર્પિણી કાલ હોતા હૈ ઓર જય ઉત્તરાર્ધ મેં ખી પ્રથમ અવસર્પિણી કાલ હોતા હૈ, તય લવણસમુદ્ર મેં પૂર્વ ઓર પશ્ચિમમેં ન અવસર્પિણીકાલ હોતા હૈ ઓર ન ઉત્સર્પિણીકાલ હી હોતા હૈ તો કયા વહાં કાલ અવસ્થિત પ્રકટ કિયા ગયા હૈ ?

ઉત્તર—હે ગૌતમ ! જંબૂદ્વીપના વિષયમાં જે વક્તવ્યતા કહી છે, એજ પ્રમાણેની પૂરેપૂરી વક્તવ્યતા લવણ સમુદ્રના વિષયમાં પણ સમજવી. વિશેષતા એટલી જ છે કે ત્યાં સૂત્રપાઠમાં આવતા ‘જંબૂદ્વીપને’ બદલે અહીં ‘લવણ સમુદ્ર’ સમજવો. જેમકે—“ હે ભદન્ત ! ત્યારે લવણસમુદ્રના દક્ષિણાર્ધમાં દિવસ હોય છે ” ઇત્યાદિ સમસ્ત કથન એ પ્રમાણે જ કહેવું. “ ત્યારે લવણ સમુદ્રમાં પૂર્વ-પશ્ચિમે રાત્રિ હોય છે, ” પર્યન્તનું કથન અહીં ગ્રહણ કરવું. આ પ્રકારના આલાપકો દ્વારા આ વિષય સાથે સંબંધ રાખતા પ્રશ્નોત્તરો અહીં કહેવા લેઈએ.

પ્રશ્ન—હે ભદન્ત ! લવણ સમુદ્રના દક્ષિણાર્ધમાં ત્યારે પ્રથમ અવસર્પિણી કાળ હોય છે, ત્યારે ઉત્તરાર્ધમાં પણ પ્રથમ અવસર્પિણી કાળ હોય છે, અને ઉત્તરાર્ધમાં પ્રથમ અવસર્પિણી કાળ હોય છે, ત્યારે લવણ સમુદ્રની પૂર્વ અને પશ્ચિમમાં અવસર્પિણી કાળ પણ હોતો નથી અને ઉત્સર્પિણી કાળ પણ હોતો નથી. તો શું ત્યાં અવસ્થિત કાળ કહ્યો છે ?

ગૌતમ ! તદેવ ગાવત્-ઉચારયિતવ્યમ્, યાવત્-શ્રમણાયુષ્મન્ ! યથા અવસર્પિણ્યા આલાપકો મણિતઃ,; એવમ્ ઉત્સર્પિણ્યાઽપિ મણિતવ્યઃ ।

તથા ચન્દ્રવિષયકસ્તૃતીયાલાપકથેત્યમ્-લઘ્વણે ભદન્ત । સમુદ્રે ચન્દ્રી ઉદીચી-પ્રાચ્યામ્ ઉદ્ગત્ય પ્રાચી-દક્ષિણાયામ્ આગચ્છતઃ ? પ્રાચી-દક્ષિણાયામ્ ઉદ્ગત્ય દક્ષિણ-પ્રતીચ્યામ્ આગચ્છતઃ ? દક્ષિણ-પ્રતીચ્યામ્ ઉદ્ગત્ય પ્રતીચ્યુદીચ્યા માગચ્છતઃ ? પ્રતીચ્યુદીચ્યુમુદ્ગત્ય ઉદીચી-પ્રાચ્યામાગચ્છતઃ ? લઘ્વણસમુદ્રે ચત્વારશ્વદ્રા ભવન્તિ તેષુ પ્રતિદિનં તત્ર ભાગદ્વયે ઢ્રી ચન્દ્રી આગચ્છતઃ, તદપેક્ષયા ' ઢ્રી ' ઇત્યુક્તમ્, યા એવ જમ્બૂદ્વીપસ્ય વક્તવ્યતા મણિતા સા એવ અપરિશેષિકા

ઉત્તર—હાં ગૌતમ ! એસા હી હૈ-પૂર્વે કી તરહ સે હી યહાં સય કહ-લેના ચાહિયે-યાવત્ હે શ્રમણાયુષ્મન્ ! જિસ પ્રકાર સે અવસર્પિણી કે સંબંધ મેં આલાપક કહા હૈ-ઉસી પ્રકાર સે ઉત્સર્પિણી કે વિષય મેં મી આલાપક જાનના ચાહિયે ।

તથા—ચન્દ્ર કે વિષય મેં તૃતીય આલાપક હસ પ્રકાર સે હૈ-પ્ર૦-હે ભદન્ત । લઘ્વણસમુદ્ર મેં ઢો ચંદ્રમા ઈશાન કોણ મેં ઉદિત હોકર અગ્નિકોણ મેં જાતે હેં કયા ? અગ્નિકોણ મેં ઉદિત હોકર નૈઋત્ય કોણ મેં જાતે હેં કયા ? નૈઋત્ય કોણ મેં ઉદિત હાકર વાયવ્ય કોણ મેં જાતે હેં કયા ? વાયવ્યકોણ મેં ઉદિત હોકર ઈશાન કોણ મેં જાતે હેં કયા ? લઘ્વણસમુદ્ર મેં ચાર ચંદ્રમા હેં । ડનમેંસે પ્રતિદિન વહાં પર ઢો ભાગમેં ઢો ચંદ્ર ઉદિત હોતે હેં-હસી અપેક્ષા કો લેકર (ઢો) એસો પાઠ કહા ગયા હૈ ?

ઉત્તર—હા, ગૌતમ ! એવું જ છે. એટલે કે પ્રશ્નસૂત્ર પ્રમાણે જ અહીં સમસ્ત કથન સમજવું. જે પ્રકારે અવસર્પિણીના વિષયમાં આલાપક કહ્યો છે, એ જ પ્રમાણે ઉત્સર્પિણીના વિષયમાં પણ આલાપક સમજવો. તથા ચન્દ્રના વિષયમાં ત્રીણે આલાપક આ પ્રમાણે છે:—

પ્રશ્ન—હે ભદન્ત ! લઘ્વણ સમુદ્રમાં જે ચન્દ્રમા ઈશાન કોણમાં ઉદય પામીને શુ' અગ્નિકોણમાં જાય છે ? અગ્નિકોણમાં ઉદય પામીને શુ' નૈઋત્ય કોણમાં જાય છે ? નૈઋત્ય કોણમાં ઉદય પામીને શુ' વાયવ્ય કોણમાં જાય છે ? વાયવ્ય કોણમાં ઉદય પામીને શુ' ઈશાન કોણમાં જાય છે ? (લઘ્વણ સમુદ્રમાં ચાર ચન્દ્રમા છે. તેમાંથી પ્રતિદિન ત્યાં જે ભાગમાં જે ચન્દ્ર ઉદય પામે છે, તે કારણે સૂત્રપાઠમાં ' જે ચન્દ્ર ' કહ્યા છે.)

લવણસમુદ્રસ્વાપિ ભણિતવ્યા, નવરમ્-અભિલાષીસ્ય જ્ઞાતવ્યઃ-યદા ભદન્ત ! લવણે સમુદ્રે દક્ષિણાર્ધે રાત્રિર્ભવતિ, તદેવ યાવત્-તદા લવણસમુદ્રે પૌરસ્ત્ય-પશ્ચિમે દિવસો ભવતિ, एतेन અભિલાષેન જ્ઞાતવ્યમ્ । યદા ભદન્ત ! લવણસમુદ્રે દક્ષિણાર્ધે પ્રથમા અવસર્પિણી પ્રતિપદ્યતે, તદા ઉત્તરાર્ધે પ્રથમા અવસર્પિણી પ્રતિપદ્યતે ? યદા ઉત્તરાર્ધે પ્રથમા અવસર્પિણી પ્રતિપદ્યતે તદા લવણસમુદ્રે પૌરસ્ત્ય-પશ્ચિમે નૈવાસ્તિ અવસર્પિણી નૈવાસ્તિ ઉત્સર્પિણી શ્રમણાયુષ્મન્ ! । હન્ત, ગૌતમ ! યાવત્-શ્રમણાયુષ્મન્, યાત-

ઉત્તર—હે ગૌતમ ! જંબૂદ્વીપ કી જો વક્તવ્યતા કહી છે, વહી પૂરી વક્તવ્યતા લવણસમુદ્ર કી ભી કહની ચાહિયે । વિશેષતા કેવલ ઉસમેં યહી છે કિ યહાં અભિલાષ ઇસ પ્રકાર સે જાનના—(હે ભદન્ત ! જિસ સમય લવણ સમુદ્ર કે દક્ષિણાર્ધ મેં દિવસ હોતા છે ઇત્યાદિ સબ ઉસી પ્રકાર સે કહના ચાહિયે—યાવત્ તવ લવણ સમુદ્ર મેં પૂર્વ પશ્ચિમ મેં રાત્રિ હોતી છે ” । ઇસ પ્રકાર કે અભિલાષ દ્વારા ઇસ વિષય સે સંબંધ રાખને ઘાઠે પ્રશ્નોત્તર કહના ચાહિયે ।

પ્રશ્ન—હે ભદન્ત ! લવણ સમુદ્ર મેં જય દક્ષિણાર્ધ મેં પ્રથમ અવસર્પિણી કાલ હોતા છે તય ઉત્તરાર્ધ મેં ભી પ્રથમ અવસર્પિણી કાલ હોતા છે ઓર જય ઉત્તરાર્ધ મેં ભી પ્રથમ અવસર્પિણી કાલ હોતા છે, તય લવણસમુદ્ર મેં પૂર્વ ઓર પશ્ચિમમેં ન અવસર્પિણીકાલ હોતા છે ઓર ન ઉત્સર્પિણીકાલ હી હોતા છે તો કયા વહાં કાલ અવસ્થિત પ્રકટ કિયા ગયા છે ?

ઉત્તર—હે ગૌતમ ! જંબૂદ્વીપના વિષયમાં જે વક્તવ્યતા કહી છે, એજ પ્રમાણેની પૂરેપૂરી વક્તવ્યતા લવણ સમુદ્રના વિષયમાં પણ સમજવી. વિશેષતા એટલી જ છે કે ત્યાં સૂત્રપાઠમાં આવતા ‘જંબૂદ્વીપને’ બદલે અહીં ‘લવણ સમુદ્ર’ સમજવો. જેમકે—“ હે ભદન્ત ! ત્યારે લવણસમુદ્રના દક્ષિણાર્ધમાં દિવસ હોય છે ” ઇત્યાદિ સમસ્ત કથન એ પ્રમાણે જ કહેવું. “ ત્યારે લવણ સમુદ્રમાં પૂર્વ-પશ્ચિમે રાત્રિ હોય છે, ” પર્યંતનું કથન અહીં ગ્રહણ કરવું. આ પ્રકારના આલાપકો દ્વારા આ વિષય સાથે સંબંધ રાખતા પ્રશ્નોત્તરો અહીં કહેવા નોંધવો.

પ્રશ્ન—હે ભદન્ત ! લવણ સમુદ્રના દક્ષિણાર્ધમાં ત્યારે પ્રથમ અવસર્પિણી કાળ હોય છે, ત્યારે ઉત્તરાર્ધમાં પણ પ્રથમ અવસર્પિણી કાળ હોય છે, અને ઉત્તરાર્ધમાં પ્રથમ અવસર્પિણી કાળ હોય છે, ત્યારે લવણ સમુદ્રની પૂર્વ અને પશ્ચિમમાં અવસર્પિણી કાળ પણ હોતો નથી અને ઉત્સર્પિણી કાળ પણ હોતો નથી. તો શું ત્યાં અવસ્થિત કાળ કહ્યો છે ?

કોણે મદન્ત ! ચન્દ્રી ઉદીચી-પ્રાચ્યામુદ્ગત્ય યાવત્ - મતીચ્યુદીચ્યા મુદ્ગત્ય ઉદીચી-પ્રાચ્યામાગચ્છતઃ ? ગૌતમ ! યથૈવ જમ્બૂદ્વીપસ્ય વક્તવ્યતા મણિતા, સા એવ ધાતકીચ્છણ્ડસ્યાપિ મણિતવ્યા, નવરમ્-અનેન અમિલાપેન સર્વે અમિલાપાઃ મણિતવ્યાઃ- યદા મદન્ત ! ધાતકીચ્છણ્ડે દ્વીપે દક્ષિણાર્ધે રાત્રિર્ભવતિ તદા ઉત્તરાર્ધેડપિ ? યદા ઉત્તરાર્ધે રાત્રિર્ભવતિ તદા ધાતકીચ્છણ્ડે દ્વીપે મન્દરાણાં પર્વતાનાં પૌરસ્ત્ય-પશ્ચિમે દિવસો ભવતિ ? હન્ત, ગૌતમ ! એવમેવ યાવત્-પૌરસ્ત્ય-

હે ગૌતમ ! હાં, વહાં પર ઇસી પ્રકાર સે હૈ યાવત્ હે શ્રમણા-યુગ્મન્ ! ઇત્યાદિ ।

પ્રશ્ન-હે મદન્ત ! ધાતકીચ્છણ્ડમેં દ્વાદશ ચંદ્રમા ઈશાનકોગસે ઉદિત હોકર અગ્નિકોણ મેં જાતે હું કયા ? અગ્નિકોણ સે ઉદિત હોત્તર નૈઋત્યકોણ મેં જાતે હું કયા ? નૈઋત્યકોણ સે ઉદિત હોકર વાયવ્યકોણ મેં જાતે હું કયા ? વાયવ્યકોણ સે ઉદિત હોકર ઈશાનકોણ મેં જાતે હું કયા ?

ઉત્તર-હે ગૌતમ ! ઇસ વિષય મેં જૈસી વક્તવ્યતા જમ્બૂદ્વીપ કો લેકર કહી ગઈ હૈ ઁસી પ્રકાર સે વક્તવ્યતા યહાં પર મી કહલેની ઁહિયે વિશેષતા કેવલ ઇસ વક્તવ્યતા મેં ઁસ વક્તવ્યતા કી અપેક્ષા ઇતની હી હૈ કિ જમ્બૂદ્વીપ કે સ્થાન પર ઇસ વક્તવ્યતા મેં (ધાતકીચ્છણ્ડ) શબ્દ કા ઉચ્ચારણ કરના ઁહિયે

પ્રશ્ન-હે મદન્ત ! જબ ધાતકીચ્છણ્ડદ્વીપ મેં દક્ષિણાર્ધ મેં રાત્રિ હોતી હૈ, તબ ઉત્તરાર્ધ મેં મી રાત્રિ હોતી હૈ ઁર જબ ઉત્તરાર્ધ મેં રાત્રિ હોતી હૈ, તબ ધાતકી ચ્છણ્ડ દ્વીપ મેં મન્દરપર્વતો કી પૂર્વપશ્ચિમ દિશા મેં દિવસ હોતા હૈ કયા ?

ઉત્તર-હા, ગૌતમ ! ત્યાં એ પ્રમાણે જ છે. (હે શ્રમણ આયુષ્મન્ ! પર્યન્તનું સમસ્ત પૂર્વોક્ત કથન અહીં ગ્રહણ કરવું.)

પ્રશ્ન-હે ભદન્ત ! ધાતકી ખંડમાં બાર ચન્દ્રમા શું ઈશાન કોણમાં ઉદય પામીને અગ્નિ કોણમાં જાય છે ? અગ્નિ કોણમાં ઉદય પામીને શું નૈઋત્ય કોણમાં જાય છે ? નૈઋત્યમાં ઉદય પામીને શું વાયવ્યમાં જાય છે ? વાયવ્ય કોણમાં ઉદય પામીને શું ઈશાન કોણમાં જાય છે ?

ઉત્તર-હા, ગૌતમ ! આ વિષયમાં જમ્બૂદ્વીપની વક્તવ્યતા જેવી જ વક્તવ્યતા સમજવી. તે વક્તવ્યતામાં ' જમ્બૂદ્વીપની ' જગ્યાએ ' ધાતકીખંડ ' પદ મૂકવાથી ધાતકીખંડ વિષેના પ્રશ્નોત્તરો તૈયાર થશે. જેમકે- " હે ભદન્ત ! જ્યારે ધાતકી ખંડના દક્ષિણાર્ધમાં રાત્રિ હોય છે, ત્યારે શું ઉત્તરાર્ધમાં પણ રાત્રિ હોય છે ? અને જ્યારે ઉત્તરાર્ધમાં રાત્રિ હોય છે, ત્યારે ધાતકીખંડ દ્વીપમાં મન્દર પર્વતની પૂર્વ-પશ્ચિમે શું દિવસ હોય છે ? "

પશ્ચિમે દિવસો ભવતિ । યદા ભદન્ત ! ધાતકીઁખ્ણડે દ્વીપે મન્દરયોઃ પર્વતયોઃ પૌરસ્ત્યે રાત્રિર્ભવતિ, તદા પશ્ચિમેઽપિ રાત્રિર્ભવતિ ? યદા પશ્ચિમેઽપિ તદા ધાતકીઁખ્ણડે દ્વીપે મન્દરયોઃ પર્વતયોઃ ઉત્તરે દક્ષિણે દિવસો ભવતિ ? હન્ત, ગૌતમ ! યાવત્-ઉત્તર-દક્ષિણે દિવસો ભવતિ, એમ્ એતેન અભિષેકાપેન જ્ઞાતવ્યં યાવત્, યદા ભદન્ત ! દક્ષિણાર્ધે પ્રથમા અવસર્પિણી તદા ઉત્તરાર્ધેઽપિ ? યદા ઉત્તરાર્ધે તદા ધાતકીઁખ્ણડે દ્વીપે મન્દરયોઃ પર્વતયોઃ પૌરસ્ત્ય પશ્ચિમે નાસ્તિ અવસર્પિણી યાવત્-શ્રમણાયુષ્મન્ !

ઉત્તર—હાં ગૌતમ ! એસા હી હોતા હૈ । યાવત્ પૂર્વપશ્ચિમદિશા મેં દિવસ હોતા હૈ ।

પ્રશ્ન—હે ભદન્ત ! ધાતકી ઁખ્ણડ દ્વીપ મેં જય દો મન્દરપર્વતોં કી પૂર્વદિશા મેં રાત્રિ હોતી હૈ તય પશ્ચિમ મેં ભી કયા રાત્રિ હોતી હૈ ? ઔર જય પશ્ચિમ મેં રાત્રિ હોતી હૈ તય ધાતકીઁખ્ણડ દ્વીપ મેં મન્દરપર્વતોં કી ઉત્તર ઔર દક્ષિણ દિશા મેં દિવસ હોતા હૈ કયા ?

ઉત્તર—હાં ગૌતમ ! યાવત્ ઉત્તર ઔર દક્ષિણ દિશા મેં દિવસ હોતા હૈ । હસ તરહ્ હસ અભિલાપ દ્વારા જાનના ચાહિયે યાવત્—

પ્રશ્ન—હે ભદન્ત ! જય દક્ષિણાર્ધ મેં પ્રથમ અવસર્પિણી હોતી હૈ તય ઉત્તરાર્ધ મેં ભી પ્રથમ અવસર્પિણી હોતી હૈ । ઔર જય ઉત્તરાર્ધ મેં પ્રથમ અવસર્પિણી હોતી હૈ, તય ધાતકીઁખ્ણડ દ્વીપ મેં મન્દર પર્વતોં કી પૂર્વપશ્ચિમ દિશા મેં અવસર્પિણી નહીં હોતી, ઉત્સર્પિણી ભી નહીં હોતી—તો કયા હૈ શ્રમણાયુષ્મન્ વહાં કાલ અવસ્થિત માના ગયા હૈ ?

ઉત્તર—હા, ગૌતમ ! એવું જ અને છે. એટલે કે પ્રશ્નમાં કહ્યા પ્રમાણે જ સમસ્ત કથન અહીં શ્રદ્ધણુ કરવું.

પ્રશ્ન—હે ભદન્ત ! ધાતકીખ્ણડ દ્વીપના જે મન્દર પર્વતોની પૂર્વ દિશામાં ન્યારે રાત્રિ હોય છે, ત્યારે શું પશ્ચિમમાં પણ રાત્રિ હોય છે ? અને ન્યારે પશ્ચિમમાં રાત્રિ હોય છે, ત્યારે શું ધાતકીખ્ણડ દ્વીપના મન્દર પર્વતોની ઉત્તર અને દક્ષિણ દિશામાં દિવસ હોય છે ?

ઉત્તર—હા, ગૌતમ ! એ પ્રમાણે જ હોય છે. એટલે કે “ ઉત્તર દક્ષિણ દિશામાં દિવસ હોય છે, ” ત્યાં સુધીનું સમસ્ત કથન અહીં શ્રદ્ધણુ કરવું.

હે ભદન્ત ! ન્યારે ધાતકીખ્ણડ દ્વીપના દક્ષિણાર્ધમાં પ્રથમ અવસર્પિણી હોય છે, ત્યારે શું ઉત્તરાર્ધમાં પણ પ્રથમ અવસર્પિણી હોય છે ? અને ઉત્તરાર્ધમાં પ્રથમ અવસર્પિણી હોય છે, ત્યારે મન્દર પર્વતોની પૂર્વ-પશ્ચિમ દિશામાં અવસર્પિણી પણ હોતી નથી અને ઉત્સર્પિણી પણ હોતી નથી. તો હે શ્રમણાયુષ્મન્ ! શું ત્યાં અવસ્થિત કાળ કહ્યો છે ?

इन्त, गौतम ! यावत्-श्रमणायुष्मन् ! यथा-लवणसमुद्रस्य वक्तव्यता तथा कालो-
दस्यापि वक्तव्यता भणितव्या, नवरम्-कालोदस्य नाम भणितव्यम्, अभ्यन्तर-
पुष्करार्धे भदन्त ! चन्द्रो उदीची - माघ्याम् उद्गस्य यावत्-उदीची-माघ्या
मागच्छतः ? गौतम ! यथैव धातकीखण्डस्य वक्तव्यता तथैव अभ्यन्तरपुष्करार्ध-
स्यापि भणितव्या, नवरम्-अभिलोपो ज्ञातव्यः, यावत्-तदा अभ्यन्तरपुष्करार्धे
मन्दरयोः पर्वतयोः पौरस्त्य-पश्चिमे नैवास्ति अवसर्पिणी, नैवास्ति उरसर्पिणी,

उत्तर—हां गौतम ! इसी तरह से है यावत् श्रमणायुष्मन् ! जिस प्रकार से लवणसमुद्र की यह वक्तव्यता कही है, उसी प्रकार से कालोद संबंधी वक्तव्यता भी जाननी चाहिये। विशेषता केवल यही है कि लवणसमुद्र के स्थानपर पाठ के उच्चारण करते समय (कालोद) इस शब्द का प्रयोग करना चाहिये।

प्रश्न—हे भदन्त ! आभ्यन्तरपुष्करार्धे में दो चन्द्रमा ईशानकोण से उदित होकर अग्निकोण में जाते हैं क्या ? अग्निकोण से उदित होकर नैऋत्यकोण में जाते हैं क्या ? नैऋत्यकोण से उदित होकर वायव्यकोण में जाते हैं क्या ? वायव्य कोण से उदित होकर ईशान कोण में जाते हैं क्या ? हे गौतम ! इस विषय में जैसी धातकीखण्ड को लेकर कही गई है वैसी ही वक्तव्यता आभ्यन्तर पुष्करार्धके विषय में भी जाननी चाहिये। विशेषता केवल यही है। कि धातकीखण्ड शब्दके बदले इस वक्त-

ઉત્તર—હા, ગૌતમ ! એવું જ છે. શ્રમણાયુષ્મન્ પર્યન્તનું સમસ્ત કથન અહીં અહણુ કરવું. લવણુ સમુદ્રની આ વક્તવ્યતા પ્રમાણે જ કાલોદની વક્તવ્યતા પણ સમજવી. વિશેષતા એટલી જ છે કે સૂત્રપાઠમાં લવણુ સમુદ્રને બદલે ' કાલોદ ' શબ્દનો પ્રયોગ કરવો.

પ્રશ્ન—હે ભદન્ત ! આભ્યન્તર પુષ્કરાર્ધમાં બે ચન્દ્રમા શુ' ઈશાન કોણમાંથી ઉદય પામીને અગ્નિ કોણમાં જાય છે ? અગ્નિ કોણમાં ઉદય પામીને શુ' નૈઋત્યમાં જાય છે ? નૈઋત્યમાં ઉદય પામીને શુ' વાયવ્ય કોણમાં જાય છે ? શુ' વાયવ્યમાં ઉદય પામીને ઈશાનમાં જાય છે ?

ઉત્તર—હે ગૌતમ ! આ વિષયને અનુલક્ષીને ધાતકીખંડના વિષયમાં જે પ્રમાણે કહ્યું છે, એ જ પ્રમાણે આભ્યન્તર પુષ્કરાર્ધના સંબંધમાં પણ સમજવું. આ કથનમાં વિશેષતા એટલી જ છે કે ' ધાતકીખંડ ' શબ્દનો પ્રયોગ કર્યો છે તેને બદલે અહીં " આભ્યન્તર પુષ્કરાર્ધ " શબ્દનો પ્રયોગ કરવો. આ પ્રમાણે ફેરફાર કરીને પ્રશ્નોત્તરો બનાવવા ભોધએ. કયાં સુધી તે કથનને અહણુ

अवस्थितस्तत्र कालः प्रज्ञप्तः भ्रमणायुष्मन् । सूत्रे बहुवचन कथनेन लवणसमुद्रे
चत्वारः सूर्याः चत्वारश्चन्द्राः, तथा धातकीखण्डे द्वादशसूर्या द्वादश चन्द्राश्च
वक्तव्याः ॥ सू० १ ॥

इति पञ्चमशतकस्य दशमोद्देशकः समाप्तः ॥ ५-१०

इति श्री विश्वविख्यात - जगद्बल्लभ - प्रसिद्धयाचकपञ्चदशभाषाकलि-
तललितकलापालापक-प्रविशुद्धगद्यग्रन्थनिर्मापक-त्रादिमानमर्दक-
श्रीशाहू छत्रपतिकोल्हापुरराजप्रदत्त ' जैनशास्त्राचार्य ' पदभूषित-
कोल्हापुरराजगुरु-बालब्रह्मचारि-जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-पूज्यश्री
घासीलालव्रतिविरचितार्या श्री भगवतीसूत्रस्य प्रमेयचन्द्रिकाख्यायां
व्याख्यायां पञ्चमं शतकं समाप्तम् ॥१०॥

व्यता में आभ्यन्तर पुष्करार्ध शब्द का उच्चारण कर पाठ बोलना
चाहिये। यावत् आभ्यन्तर पुष्करार्ध में मंदरो की पूर्व पश्चिमदिशा में
अवसर्पिणी काल नहीं होता है और उत्सर्पिणी काल भी नहीं होता है
क्यों कि वहां पर कोल अवस्थित कहा गया है। सूत्रमें बहुवचनके कथन
से लवणसमुद्र में चार सूर्य चंद्रमा हैं तथा धातकी खण्ड में १२ वारह
सूर्य १२ वारह चंद्रमा हैं यह बात प्रतिपादित हुई है ॥ सू०१ ॥

श्री जैनाचार्य जैनधर्म दिवाकर श्री घासीलालजी महाराजकृत " भगव-
तीसूत्र"की प्रमेयचन्द्रिका व्याख्याके पांचवे शतकका दशवा
उद्देशक समाप्त ॥ ५-१०॥

४२५; ते अताववा भाटे सूत्रकार कहे छे-" आभ्यन्तर पुष्करार्धभां मन्दर
पर्वतोनी पूर्व-पश्चिम दिशाभां अवसर्पिणी काण होता नथी अने उत्सर्पिणी
काण पणु होता नथी, कारणु के त्यां अवस्थित काण कळो छे," अर्ही सुधीतुं
कथन अहणु ४२५. सूत्रभां अहुवचनने प्रयोग थयेवो होवाथी जे वातनुं
प्रतिपादन, थाय छे के लवण समुद्रभां चार सूर्य अने चार चन्द्रमा छे, तथा
धातकी अंठभां चार सूर्य अने चार चन्द्रमा छे. ॥ सूत्र १ ॥

जैनाचार्य श्री घासीलालजी महाराज कृत भगवती सूत्रनी प्रमेयच-
न्द्रिका व्याख्याना पांचमा शतकने दशमो उद्देशक समाप्त ॥५-१०॥

इन्त, गौतम ! यावत्-श्रमणायुष्मन् । यथा-लवणसमुद्रस्य वक्तव्यता तथा कालो-
दस्यापि वक्तव्यता भणितव्या, नवरम्-कालोदस्य नाम भणितव्यम्, अभ्यन्तर-
पुष्करार्धे भदन्त । चन्द्रो उदीची - प्राच्याम् उद्गास्य यावत्-उदीची-प्राच्या
मागच्छतः ? गौतम ! यथैव धातकीखण्डस्य वक्तव्यता तथैव अभ्यन्तरपुष्करार्ध-
स्यापि भणितव्या, नवरम्-अभिलोपो ज्ञातव्यः, यावत्-तदा अभ्यन्तरपुष्करार्धे
मन्दरयोः पर्वतयोः पौरस्त्य-पथिमे नैवास्ति अवसर्पिणी, नैवास्ति उत्सर्पिणी,

उत्तर--हां गौतम ! इसी तरह से है यावत् श्रमणायुष्मन् । जिस
प्रकार से लवणसमुद्र की यह वक्तव्यता कही है, उसी प्रकार से कालोद
संबंधी वक्तव्यता भी जाननी चाहिये । विशेषता केवल यही है कि
लवणसमुद्र के स्थानपर पाठ के उच्चारण करते समय (कालोद) इस
शब्द का प्रयोग करना चाहिये ।

प्रश्न-हे भदन्त ! आभ्यन्तरपुष्करार्ध में दो चन्द्रमा ईशानकोण से
उदित होकर अग्निकोण में जाते हैं क्या ? अग्निकोण से उदित होकर
नैऋत्यकोण में जाते हैं क्या ? नैऋत्यकोण से उदित होकर वायव्यकोण
में जाते हैं क्या ? वायव्य कोण से उदित होकर ईशान कोण में जाते हैं
क्या ? हे गौतम ! इस विषय में जैसी धातकीखण्ड को लेकर कही गई
है वैसी ही वक्तव्यता आभ्यन्तर पुष्करार्धके विषय में भी जाननी
चाहिये । विशेषता केवल यही है । कि धातकीखण्ड शब्दके बदले इस वक्त-

उत्तर—हां, गौतम ! अतुं ञ् छे. श्रमणायुष्मन् पर्यन्तानुं समस्त कथन
अर्धो अर्धेषु करवुं. लवण समुद्रनी आ वक्तव्यता प्रभाषे ञ् कालोदनी वक्त-
व्यता पणु समञ्ची. विशेषता अटली ञ् छे के सूत्रपाठमां लवण समुद्रने
अद्वे ' कालोद ' शब्दने प्रयोग करवे.

प्रश्न—हे भदन्त ! आभ्यन्तर पुष्करार्धमां जे चन्द्रमा शुं ईशान कोण-
मांथी उदय पाभीने अग्नि कोणमां जाय छे ? अग्नि कोणमां उदय पाभीने शुं
नैऋत्यमां जाय छे ? नैऋत्यमां उदय पाभीने शुं वायव्य कोणमां जाय छे ?
शुं वायव्यमां उदय पाभीने ईशानमां जाय छे ?

उत्तर—हे गौतम ! आ विषयने अनुलक्षिने धातकीखण्डना विषयमां जे
प्रभाषे कथुं छे, अज्ज प्रभाषे आभ्यन्तर पुष्करार्धना संशोधमां पणु समञ्चुं.
आ कथनमां विशेषता अटली ञ् छे के ' धातकीखण्ड ' शब्दने प्रयोग कर्ये
छे तेने अद्वे अर्धो " आभ्यन्तर पुष्करार्ध " शब्दने प्रयोग करवे. आ
प्रभाषे ईशान करीने प्रश्नोत्तरे अनापवा लेधञ्जे. कयां सुधी ते कथनने अर्धेषु

अवस्थितस्तत्र कालः प्रज्ञप्तः श्रमणाशुप्सन् । सूत्रे बहुवचन कथनेन लवणसमुद्रे
चत्वारः सूर्याः चत्वारश्चन्द्राः, तथा धातकीखण्डे द्वादशसूर्या द्वादश चन्द्राश्च
वक्तव्याः ॥ सू० १ ॥

इति पञ्चमशतकस्य दशमोद्देशकः समाप्तः ॥ ५-१०

इति श्री विश्वविख्यात - जगद्वल्लभ - प्रसिद्धवाचकपञ्चदशभाषाकलि-
तललितकलापालापक-प्रविशुद्धगद्यपद्यनैरुग्रन्यनिर्मापक-वादिमानमर्दक-
श्रीशाहू छत्रपतिकोल्हापुरराजप्रदत्त ' जैनशास्त्राचार्य ' पदभूषित-
कोल्हापुरराजगुरु-बालब्रह्मचारि-जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-पूज्यश्री
घासीलालव्रतचिरचितायां श्री भगवतीसूत्रस्य प्रमेयचन्द्रिकाख्यायां
व्याख्यायां पञ्चमं शतकं समाप्तम् ॥१०॥

व्यता में आभ्यन्तर पुष्करार्थ शब्द का उच्चारण कर पाठ बोलना
चाहिये। यावत् आभ्यन्तर पुष्करार्थ में मंदरो की पूर्व पश्चिमदिशा में
अवसर्पिणी काल नहीं होता है और उत्सर्पिणी काल भी नहीं होता है
क्यों कि वहां पर काल अवस्थित कहा गया है। सूत्रमें बहुवचनके कथन
से लवणसमुद्र में चार सूर्य चंद्रमा हैं तथा धातकी खण्ड में १२ चारह
सूर्य १२ चारह चंद्रमा हैं यह बात प्रतिपादित हुई है ॥ सू० १ ॥

श्री जैनाचार्य जैनधर्म दिवाकर श्री घासीलालजी महाराजकृत " भगव-
तीसूत्र"की प्रमेयचन्द्रिका व्याख्याके पांचवे शतकका दशवा

उद्देशक समाप्त ॥ ५-१०॥

४२वुं, ते गताववा भाटे सूत्रकार कहे थे-“ आभ्यन्तर पुष्करार्थमां भन्दर
पर्वतोनी पूर्व-पश्चिम दिशांमां अवसर्पिणी काण छोटो नथी अने उत्सर्पिणी
काण पणु छोटो नथी, ४२वुं के त्यां अवस्थित काण कह्यो छे, ” अर्ही सुधीनुं
कथन अहणु ४२वुं. सूत्रमां बहुवचनने प्रयोग थयेलो होवाथी जे वातनुं
प्रतिपादन, थाय छे के लवण समुद्रमां चार सूर्य अने चार चन्द्रमा छे, तथा
धातकी खण्डमां चार सूर्य अने चार चन्द्रमा छे. ॥ सूत्र १ ॥

जैनाचार्य श्री घासीलालजी महाराज कृत भगवती सूत्रनी प्रमेयच-
न्द्रिका व्याख्याना पांचमा शतकने दशमे उद्देशक समाप्त ॥५-१०॥

इन्त, गौतम ! यावत्-श्रमणायुष्मन् ! यथा-लवणसमुद्रस्य वक्तव्यता तथा कालो-
दस्यापि वक्तव्यता भणितव्या, नवरम्-कालोदस्य नाम भणितव्यम्, अभ्यन्तर-
पुष्करार्थे भदन्त ! चन्द्रो उदीची - माष्याम् उद्गतस्य यावत्-उदीची-माष्या
मागच्छतः ? गौतम ! यथैव धातकीखण्डस्य वक्तव्यता तथैव अभ्यन्तरपुष्करार्थ-
स्यापि भणितव्या, नवरम्-अभिलोपो ज्ञातव्यः, यावत्-तदा अभ्यन्तरपुष्करार्थे
मन्दरयोः पर्वतयोः पौरस्त्य-पथिमे नैवास्ति अवसर्पिणी, नैवास्ति उरसर्पिणी,

उत्तर--हां गौतम ! इसी तरह से है यावत् श्रमणायुष्मन् ! जिस प्रकार से लवणसमुद्र की यह वक्तव्यता कही है, उसी प्रकार से कालोद संबंधी वक्तव्यता भी जाननी चाहिये। विशेषता केवल यही है कि लवणसमुद्र के स्थानपर पाठ के उच्चारण करते समय (कालोद) इस शब्द का प्रयोग करना चाहिये।

प्रश्न-हे भदन्त ! आभ्यन्तरपुष्करार्थ में दो चन्द्रमा ईशानकोण से उदित होकर अग्निकोण में जाते हैं क्या ? अग्निकोण से उदित होकर नैऋत्यकोण में जाते हैं क्या ? नैऋत्यकोण से उदित होकर वायव्यकोण में जाते हैं क्या ? वायव्यकोण से उदित होकर ईशानकोण में जाते हैं क्या ? हे गौतम ! इस विषय में जैसी धातकीखण्ड को लेकर कही गई है वैसी ही वक्तव्यता आभ्यन्तरपुष्करार्थके विषय में भी जाननी चाहिये। विशेषता केवल यही है। कि धातकीखण्ड शब्दके बदले इस वक्त-

उत्तर--હા, ગૌતમ ! એવું જ છે. શ્રમણાયુષ્મન્ પર્યન્તનું સમસ્ત કથન અહીં અહંબુ કરવું. લવણ સમુદ્રની આ વક્તવ્યતા પ્રમાણે જ કાલોદની વક્તવ્યતા પણ સમજવી. વિશેષતા એટલી જ છે કે સૂત્રપાઠમાં લવણ સમુદ્રને બદલે 'કાલોદ' શબ્દનો પ્રયોગ કરવો.

પ્રશ્ન--હે ભદન્ત ! આભ્યન્તર પુષ્કરાર્થમાં બે ચન્દ્રમા શુ' ઈશાન કોણમાંથી ઉદય પામીને અગ્નિ કોણમાં જાય છે ? અગ્નિ કોણમાં ઉદય પામીને શુ' નૈઋત્યમાં જાય છે ? નૈઋત્યમાં ઉદય પામીને શુ' વાયવ્ય કોણમાં જાય છે ? શુ' વાયવ્યમાં ઉદય પામીને ઈશાનમાં જાય છે ?

ઉત્તર--હે ગૌતમ ! આ વિષયને અનુલક્ષીને ધાતકીખંડના વિષયમાં બે પ્રમાણે કહ્યું છે, એ જ પ્રમાણે આભ્યન્તર પુષ્કરાર્થના સંબંધમાં પણ સમજવું. આ કથનમાં વિશેષતા એટલી જ છે કે 'ધાતકીખંડ' શબ્દનો પ્રયોગ કર્યો છે તેને બદલે અહીં "આભ્યન્તર પુષ્કરાર્થ" શબ્દનો પ્રયોગ કરવો. આ પ્રમાણે ફેરફાર કરીને પ્રશ્નોત્તરો બનાવવા બેઠાએ. ક્યાં સુધી તે કથનને અહંબુ

તતો મહાવેદના-અલ્પવેદનયોર્મધ્યે પ્રશસ્તનિર્જરાવાન્ શ્રેષ્ઠઃ इति प्रतिपादनम् ।
 તતઃ પૃષ્ઠી-સમ્પ્રયોઃ પૃથિવ્યોર્નિવાસિનાં નૈરયિકાણાં મહાવેદનાવચ્ચપ્રતિપાદનમ્ ।
 મહાવેદનાચતામપિ નૈરયિકાણાં શ્રમણનિર્ગ્રન્થાપેક્ષયા અલ્પનિર્જરત્વકથનમ્, તત્ર
 કર્દમરાગરક્તપદ્મરાગરક્તવન્નયોર્દૃષ્ટાન્તત્તયોપન્યાસઃ । નૈરયિકાણાં પાપકર્મણાં
 ચિક્ષ્ણત્વેન દુર્ધાગ્ન્યત્વે અયોધનસ્ય દૃષ્ટાન્તીકરણમ્ । શ્રમણનિર્ગ્રન્થાનાં તુ કર્મણાં
 શુક્લતૃણપુણ્ણામ્બોઃ, જલચિન્દુ-સંતપ્ત્યાપરુઠાદયોથ દૃષ્ટાન્તતયા પ્રતિપાદનમ્,
 તતો મનોવચઃકાયકર્મરૂપકરણાનાં ચતુર્વિધાનામ્ પ્રતિપાદનમ્ । નૈરયિકાણાં
 પંચેન્દ્રિયાણાં ચ જીવાનામ્ ઉપર્યુક્તચતુર્વિધકરણપ્રતિપાદનમ્ । એકેન્દ્રિ-
 યાણાં કાય-કર્મરૂપદ્વિકરણકથનમ્ । વિકલેન્દ્રિયાણાં વચન-કાય-કર્મરૂપત્રિક-

इसका उत्तर महावेदनावालों और अल्पवेदना वालों के बीच में प्रश-
 स्तनिर्जरावाला श्रेष्ठ है, ऐसा कथन छद्मी और सातवींके नारकोंके महा-
 वेदना का कथन; महावेदनावाले नारकों में श्रमणनिर्ग्रन्थों की अपेक्षा
 अल्पनिर्जरावच का प्रतिपादन, कर्दमराग से रक्त और पद्मरागसे
 रक्त वस्त्र का दृष्टान्त प्रदर्शन नारक जीवों के पापकर्म चिकने
 होते हैं इस कारण वे दुर्धाग्न्य होते हैं अर्थात्-कर्मका बोना बहुत
 ही कठिन होता है इस विषय में एरण का दृष्टान्त-श्रमणनिर्ग्र-
 न्थों के कर्म-क्षपण के विषयमें शुक्लतृणपुञ्ज और अग्नि का, जलचि-
 न्दु का, संतप्त लोहे के कटाह का दृष्टान्त, मन, वचन, काय और कर्म
 इन चार प्रकार के करणों का कथन, नारकों के और पंचेन्द्रिय जीवों
 के इन चार करणों का प्रतिपादन एकेन्द्रिय जीवों के काय और कर्म-
 रूप दो करण होते हैं ऐसा कथन विकलेन्द्रिय जीवों के वचन, काय

કયું છે કે મહાવેદનાવાળા અને અલ્પ વેદનાવાળા કરતાં પ્રશસ્ત નિર્જરાવાળા
 શ્રેષ્ઠ છે. છદ્મી અને સાતમી પૃથ્વી (નારકો) ના નારકોની મહાવેદનાતું કથન,
 મહાવેદનાવાળા નારકોમાં શ્રમણ નિર્ગ્રંથોની અપેક્ષાએ અલ્પ નિર્જરાયુક્ત
 કથન, કર્દમરાગથી રક્ત અને (પદ્મરાગ) પતંગ રાગથી રક્ત અને મલિન
 વસ્ત્રતું દૃષ્ટાન્ત, નારકોના પાપકર્મ ચિક્ષ્ણા હોય છે અને તે કારણે તે કર્મોને
 ઘોષ નાખવાતું કાર્ય ઘણુંજ કઠિન હોય છે, આ વિષયના પ્રતિપાદન માટે
 એન્દ્રિયતું દૃષ્ટાન્ત શ્રમણ નિર્ગ્રંથોના કર્મોના ક્ષય કેવી રીતે થાય છે તે બતા-
 વવા માટે સૂકા તૃણપુણ્ણતું, અગ્નિતું, જળચિન્દુતું અને તપાવેલી લોખંડની કઠાહીતું
 દૃષ્ટાન્ત. મન, વચન, અને કર્મ, એ ચાર પ્રકારનાં કરણોતું કથન. નારકો અને
 પંચેન્દ્રિય જીવોનાં તે ચાર કરણોતું પ્રતિપાદન એકેન્દ્રિય જીવોને કાય અને
 કર્મરૂપ બે કરણ હોય છે એવું કથન, વિકલેન્દ્રિય જીવોને વચન, કાય અને

॥ पण्डं शतकम् ॥

॥ पण्डशतके प्रथमोद्देशकस्य संक्षिप्तविषयविवरणम् ॥

प्रथमं पण्डशतकस्थसर्वोद्देशकार्यसंग्रहाय गाथायाः प्रतिपादनम्—
वेदना १ आहार २ महास्रव ३ संप्रदेश ४ तमस्काय ५ भव्य ६ शालि
पृथिवीकर्मा ९-अन्यतीर्थिका १० एते विषयाप्रतिपादिता सन्ति ।

अथ प्रथमोद्देशकार्यं माह—महावेदनावन्तो महानिर्जरावन्तो भवन्ति, महानि-
र्जरावन्तो महावेदनावन्तो भवन्ति ? इति मद्गोचरम् ।

छद्दाशतक के पहला उद्देश का प्रारंभ

इस छद्दे शतक के प्रथम उद्देशक में जो विषय प्रतिपादित किया गया है—उसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार से है—सब से पहिले इसमें (वेद्यण-आहार) यह गाथा कही गई है—इसमें वेदना (१) आहार (२) महास्रव (३) संप्रदेश (४) तमस्काय (५) भव्य (६) शालि (७) पृथिवी (८) कर्म (९) अन्यतीर्थिक (१०) ये विषय जो कि दश उद्देशकों में प्रतिपादित किये गये हैं उनका संग्रह किया गया है (वेदना) यह प्रथम शब्द है इसका अर्थ ऐसा है—कि जो महावेदना वाले होते हैं वे महानिर्जरा वाले होते हैं या नहीं होते हैं—तथा जो महानिर्जरा वाले होते हैं वे महावेदनावाले होते हैं, या नहीं होते हैं ऐसा प्रश्न—और फिर

छद्दा शतकनो प्रारंभ

शतक-६ उद्देशक-१

छद्दा शतकना उद्देशकभां ने विषयानुं प्रतिपादन करवाभां आण्युं छे, तेनुं संक्षिप्त वणुं न नीये प्रमाणुं छे—सौथी पडेलं तेभां “वेद्यण-आहार” आदि गाथा कही छे. आ गाथाभां इस उद्देशाण्योभां ने इस विषयानुं प्रतिपादन करवाभां आण्युं छे, ते विषयो कही छे. ते दस विषयो नीये प्रमाणुं छे.

(१) वेदना, (२) आहार, (३) महास्रव, (४) संप्रदेश, (५) तमस्काय, (६) भव्य, (७) शालि, (८) पृथ्वी, (९) कर्म अने (१०) अन्यतीर्थिक.

“वेदना उद्देशक” नामना पडेलं उद्देशकभां अये। प्रश्न पूछये के “जेअो महावेदनावाणा होय छे, तेअो शुं महानिर्जरावाणा होय छे के नथी होता ? तथा जेअो महानिर्जरावाणा होय छे, तेअो महावेदनावाणा होय छे के नथी होता ? आ प्रश्नो उत्तर आण्यो छे:—”

તતો મહાવેદના-અલ્પવેદનયોમંધ્યે પ્રશસ્તનિર્જરાવાન્ શ્રેષ્ઠઃ ઇતિ પ્રતિપાદનમ્ ।
 તતઃ પૃષ્ઠી-સમ્પ્રયોઃ પૃથિવ્યોર્નિવાસિનાં નૈરયિકાણાં મહાવેદનાવચ્ચપ્રતિપાદનમ્ ।
 મહાવેદનાવતામપિ નૈરયિકાણાં શ્રમણનિર્ગ્રન્થાપેક્ષયા અલ્પનિર્જરત્વકથનમ્ , તત્ત
 કર્દમરાગરક્તપત્તરાગરક્તવન્ત્રયોદ્દાન્તયોપન્યાસઃ । નૈરયિકાણાં પાપકર્મણાં
 ચિક્ષ્ણત્વેન દુર્ધાવ્યત્વે અયોગ્યનસ્ય દૃષ્ટાન્તીકરણમ્ । શ્રમણનિર્ગ્રન્થાનાં તુ કર્મણાં
 શુક્તૃણપુણ્યાન્વોઃ, જલચિન્દુ-સંતપ્તાયત્કટાહયોથ દૃષ્ટાન્તવયા પ્રતિપાદનમ્,
 તતો મનોવચઃકાયકર્મરૂપકરણાનાં ચતુર્વિધાનામ્ પ્રતિપાદનમ્ । નૈરયિકાણાં
 પંચેન્દ્રિયાણાં ચ જીવાનામ્ ઉપર્યુક્તચતુર્વિધકરણપ્રતિપાદનમ્ । એકેન્દ્રિ-
 યાણાં કાય-કર્મરૂપદિકરણકથનમ્ । વિકલેન્દ્રિયાણાં વચન-કાય-કર્મરૂપત્રિક-

इसका उत्तर महावेदनावालों और अल्पवेदनो वालों के बीच में प्रश-
 स्तनिर्जरावाला श्रेष्ठ है, ऐसा कथन इष्टी और सान्त्विके नारकोंके महा-
 वेदना का कथन; महावेदनावाले नारकों में श्रमणनिर्ग्रन्थों की अपेक्षा
 अल्पनिर्जरावच्य का प्रतिपादन, कर्दमराग से रक्त और पतङ्गरागसे
 रक्त वन्त्र का दृष्टान्त प्रदर्शन नारक जीवों के पापकर्म चिकने
 होते हैं इस कारण वे दुर्धाव्य होते हैं अर्थात्-कर्मका बोना बहुत
 ही कठिन होता है इस विषय में एरण का दृष्टान्त-श्रमणनिर्ग्र-
 न्थों के कर्म-क्षपण के विषयमें शुक्तृणपुञ्ज और अग्नि का, जलचि-
 न्दु का, संतप्त लोहे के कटाह का दृष्टान्त, मन, वचन, काय और कर्म
 इन चार प्रकार के करणों का कथन, नारकों के और पंचेन्द्रिय जीवों
 के इन चार करणों का प्रतिपादन एकेन्द्रिय जीवों के काय और कर्म-
 रूप दो करण होते हैं ऐसा कथन विकलेन्द्रिय जीवों के वचन, काय

કયું છે કે મહાવેદનાવાળા અને અલ્પ વેદનાવાળા કરતાં પ્રશસ્ત નિર્જરાવાળા
 શ્રેષ્ઠ છે. છઠ્ઠી અને સાતમી પૃથ્વી (નરકો) ના નારકોની મહાવેદનાતું કથન,
 મહાવેદનાવાળા નારકોમાં શ્રમણ નિર્ગ્રંથોની અપેક્ષાએ અલ્પ નિર્જરાયુક્ત
 કથન, કર્દમરાગથી રક્ત અને (પાંચનરાગ) પતંગ રાગથી રક્ત અને મદિન
 વચ્ચું દૃષ્ટાંત, નારકોના પાપકર્મ ચિક્ષ્ણા હોય છે અને તે કારણે તે કર્મોને
 ઘોષ નાખવાતું કાર્ય ધણું જ કઠિન હોય છે, આ વિષયના પ્રતિપાદન માટે
 એન્થાતું દૃષ્ટાંત. શ્રમણ નિર્ગ્રંથોના કર્મોને ક્ષય કેવી રીતે થાય છે તે બતા-
 વવા માટે સૂકા તૃણપુણ્જું, અગ્નિતું, જળચિન્દુતું અને તપાવેલી લોખંડની કડાહીતું
 દૃષ્ટાંત. મન, વચન, અને કર્મ, એ ચાર પ્રકારનાં કરણોતું કથન. નારકો અને
 પંચેન્દ્રિય જીવોનાં તે ચાર કરણોતું પ્રતિપાદન એકેન્દ્રિય જીવોને કાય અને
 કર્મરૂપ બે કરણ હોય છે એવું કથન, વિકલેન્દ્રિય જીવોને વચન, કાય અને

॥ पण्डं शतकम् ॥

॥ पण्डशतके प्रथमोद्देशकस्य संक्षिप्तविषयविवरणम् ॥

प्रथमं पण्डशतकस्य सर्वोद्देशकार्यसंग्रहाय गाथायाः प्रतिपादनम्—
वेदना १ आहार २ महास्रव ३ संप्रदेश ४ तमस्काय ५ भव्य ६ शालि
पृथिवीकर्म ९-न्यतीर्थिका १० एते विषयाप्रतिपादिता सन्ति ।

अथ प्रथमोद्देशकार्यं माह-महावेदनावन्तो महानिर्जरावन्तो भवन्ति, महानि-
र्जरावन्तो महावेदनावन्तो भवन्ति ? इति मन्त्रोत्तरम् ।

छट्ठाशतक के पहला उद्देश का प्रारंभ

इस छठे शतक के प्रथम उद्देशक में जो विषय प्रतिपादित किया गया है-उसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार से है-सब से पहिले इसमें (वेयण-आहार) यह गाथा कही गई है-इसमें वेदना (१) आहार (२) महास्रव (३) संप्रदेश (४) तमस्काय (५) भव्य (६) शालि (७) पृथिवी (८) कर्म (९) अन्यतीर्थिक (१०) ये विषय जो कि दश उद्देशकों में प्रतिपादित किये गये हैं उनका संग्रह किया गया है (वेदना) यह प्रथम शब्द है इसका अर्थ ऐसा है-कि जो महावेदना वाले होते हैं वे महानिर्जरा वाले होते हैं या नहीं होते हैं-तथा जो महानिर्जरा वाले होते हैं वे महावेदनावाले होते हैं, या नहीं होते हैं ऐसा प्रश्न-और फिर

छठा शतकનો प्रारंभ

शतक-६ उद्देशक-१

छठा शतकना उद्देशकमां के विषयतुं प्रतिपादन करवामां आठ्युं छे, तेतुं संक्षिप्त वणुंन नीचे प्रमाणे छे-सौथी पडेलं तेमां “ वेयण-आहार ” आदि गाथा कही छे. आ गाथामां इस उद्देशाओमां के इस विषयतुं प्रतिपादन करवामां आठ्युं छे, ते विषयो कही छे. ते दस विषयो नीचे प्रमाणे छे.

(१) वेदना, (२) आहार, (३) महास्रव, (४) संप्रदेश, (५) तमस्काय, (६) भव्य, (७) शालि, (८) पृथ्वी, (९) कर्म अने (१०) अन्यतीर्थिक.

“ वेदना उद्देशक ” नामना पडेलं उद्देशकमां ओवो प्रश्न पूछ्यो के “ जेओ महावेदनावाणा होय छे, तेओ शुं महानिर्जरावाणा होय छे के नथी होता ? तथा जेओ महानिर्जरावाणा होय छे, तेओ महावेदनावाणा होय छे के नथी होता ? आ प्रश्नो उत्तर अःप्यो छे: तथा ओषुं प्रतिपादन

पञ्चमं शतकं विविधवर्णनतया व्याख्यातम्, अथ अवसर संगत्या प्राप्तं पष्ठं शतकमपि विविधवर्णनतयैव विविच्यते, तस्य च पष्ठशतकस्य दशो-
द्देशकार्यसंग्रहगाथामाह—' वेपण ' इत्यादि ।

प्लव-वेपण-आहार-महस्सवे य. सपएस-तमुयाए-भविसए य ।

साली पुढवी कम्मं, अन्नउत्थिं दस छट्टगम्मि सए" ॥१॥

आथा-वेदना १-SSहार २-महास्रवाथ ३-सप्रदेश ४-तमस्कायो ५ भव्यश्च ६ ।
शालिः ७, पृथ्वी ८, कर्मा ९ अन्ययुधिका १० दश पष्ठके शतके ।

टीका—वेदना महावेदना महानिर्जरा इत्याद्यर्थप्रतिपादनपरतया प्रथमः उद्दे-
शकः १, आहारः—आहाराद्यर्थाभिधायको द्वितीयः २ महास्रवथ-महास्रव-

वेदना १, आहार २, महाआस्रव ३, सप्रदेश ४, तमस्काय ५, भव्य
६, शाली ७, पृथिवी ८, कर्म ९ और अन्ययुधिक वक्तव्यता ये १०
उद्देशक इस छठे शतक में हैं ।

विचित्र अर्थवाले पांचवें शतक की व्याख्या हो चुकी अथ अव-
सर प्राप्त छठे शतक का कि जिसमें विविध प्रकार का वर्णन है
विवेचन प्रारंभ होता है—इस छठे शतक में दस १० उद्देशक हैं । इन
दस १० उद्देशकों में क्या २ विषय प्रतिपादिन हुआ है इस बात को
कहने वाली यह संग्रह गथा है—प्रथम उद्देशक का नाम वेदना है—इसमें
महावेदना महानिर्जरा इत्यादि अर्थ का प्रतिपादन किया गया है इस
कारण इसका नाम वेदना उद्देशक ऐसा हुआ है । आहार—इस उद्देशक

आ छठे शतकमां नीचे प्रमाणे इस उद्देशके छे—(१) वेदना (२) आहार,
(३) महाआस्रव, (४) सप्रदेश, (५) तमस्काय, (६) भव्य, (७) शाली,
(८) पृथिवि, (९) कर्म अने (१०) अन्ययुधिक वक्तव्यता.

टीका—विचित्र अर्थवाला पांचवां शतकनी व्याख्या पूरी थछ. डवे
छठे शतकनी शर्यात थाय छे. आ शतकमां विविध विषयानुं प्रतिपादन थयुं
छे छठे शतकना इस उद्देशक छे. हसे उद्देशकमां क्या क्या विषयानुं प्रतिपादन
करवामां आण्युं छे, जे उपयुक्त संग्रह गाथामां कथुं छे. पहिला उद्देशकनुं
'वेदना' छे, कारण के तेमां महावेदना, महानिर्जरा वगैरे विषयानुं प्रति-
पादन करवामां आण्युं छे. थीला उद्देशाने 'आहार उद्देशक' कथी छे, कारण

रूपानि । ततो नैरयिकाणां करणद्वारा अशातावेदना, असुरकुमारादि यात्रु
स्तनितकुमारपर्यन्तानां तु करणद्वारा शातावेदना । पृथिवीकायानाम्, औदारि-
कशरीरवतां देवानां च विषये तद्विचारचर्चा, । ततो महावेदना-महानिर्जरा,-
महावेदना-अल्पनिर्जरा, अल्पवेदना-महागुनीनां महावेदना-महानिर्जरा, पृष्ठी-
सप्तम्योः पृथिव्योः वासिनां नैरयिकाणात् महावेदना-अल्पनिर्जरा, शैलेशीकरण-
योगवताम् अनगाराणाम् अल्पवेदना-महानिर्जरा, अनुत्तरोपपातिकदेवानाम् अल्प-
वेदना-अल्पनिर्जरा भवन्तीति प्रतिपादनम् । ततो गौतमस्य भगवद्वाक्यस्वीक-
रणम् । संग्रहगाथा, उद्देशसमाप्तिश्च ॥

और कर्म ये तीन करण होते हैं ऐसा कथन नारक जीवों के करणद्वारा
आशातावेदना, असुरकुमार से लेकर स्तनितकुमारों तक के दोनों के
करण द्वारा शातावेदना पृथिवीकायों के औदारिक शरीरवालों के और
देवों के विषय में इसके विचार की चर्चा महावेदना, महानिर्जरा, महा-
वेदना अल्पनिर्जरा, अल्पवेदना महानिर्जरा अल्पवेदना अल्पनिर्जरा,
ऐसा कथन, प्रतिमाधारी मुनियों के महावेदना महानिर्जरा, और सात-
वीं पृथिवीमें रहने वाले नारकोंमें महावेदना और अल्पनिर्जरा, शैलेशी-
करण योगवाले अनगरों के अल्पवेदना महानिर्जरा और अनुत्तरोप-
पातिक देवों के अल्पवेदना अल्पनिर्जरा होती है ऐसा कथन गौतमद्वारा
भगवान् के वचनों का स्वीकरण, संग्रह गाथा उद्देशसमाप्ति ।

संग्रह गाथा—

“वेयण १ आहार २ महस्सवे ३ य सपएस ४ तमुयाए ५ भविए ६ य ।
साली ७ पुढवी ८ कम्म ९ अन्नउत्थि १० दस छट्ठगम्मिसए ॥१॥”

कर्मात्तु तेषु करणु डोय छे अेषु कथन. नारक जिवाने करणु द्वारा अशाता
वेदना, असुरकुमारोधी स्तनितकुमारो पर्यन्तानां देवाने करणु द्वारा शाता वेदना.
पृथिवीकायो, औदारिक शरीरवाणा अने देवाना विषयमां आ पाणत (करणु)
नी यथो. महावेदना महानिर्जरा, महावेदना अल्प निर्जरा, अल्प वेदना
महानिर्जरा, अल्प वेदना अल्पनिर्जरा, इत्यादिषु कथन. प्रतिमाधारी मुनि-
ज्जांमां महावेदना महानिर्जरा, छट्ठी अने सातमी नरकना नारकोमां महावेदना
अने अल्पनिर्जरा, शैलेशीकरणु योगवाणा अणुगारोमां अल्प वेदना अने महा-
निर्जरा, अनुत्तरोपपातिक देवोमां अल्प वेदना अने अल्पनिर्जरा याय छे अेषु
कथन. गौतम द्वारा भगवाननां वचनोना स्वीकार, संग्रह गाथा, उद्देशकनी समाप्ति.

संग्रहगाथा—

वेयण १, आहार २, महस्सवे ३, य सपएस ४, तमुयाए ५, भविए ६ य, ।
साली ७, पुढवी ८, कम्म ९, अन्नउत्थि १०, दस छट्ठगम्मिसए ॥ १ ॥

वेदना-निर्जरा-वक्तव्यता

महावेदनां महानिर्जरां च स्वरूपतः फलतश्च निरूपयितुमाह 'से णूणं भंते' इ०

मूलम्—से णूणं भंते ! जे महावेयणे से महानिजरे, जे महानिजरे से महावेयणे, महावेयणस्स य, अप्पवेयणस्स य से सेए जे पसत्थनिजराए ? हंता, गोयमा ! जे महावेयणे एवंचेव । छट्ठि-सत्तमासु णं भंते! पुढवीसु नेरइया महावेयणा ? हंता महावेयणा तेणं भंते! समणेहिंती निगंथेहिंती महानिज्जरतरा ? गोयमा ! गो इणट्टे समट्टे । से केणट्टेणं भंते ! एवं बुच्चइ-जे महावेयणे, जाव-पसत्थनिजराए ? गोयमा ! से जहा नामए दुवे वत्था सिया, एगे वत्थे कइमरागरत्ते, एगे वत्थे खंजणरागरत्ते, एएसि णं गोयमा ! दोणहं वत्थाणं कयरे वत्थे दुद्धोयतराए चेव, दुवामतराए चेव, दुप्परिकम्मतराए चेव, कयरे वा वत्थे सुद्धोयतराए चेव, सुवामतराए चेव, सुपरिकम्मतराए चेव, जे वा से वत्थे कइमरागरत्ते, जे वा से वत्थे खंजणरागरत्ते ? । भयवं ! तत्थ णं जे वत्थे कइमरागरत्ते, से णं भंते ! वत्थे दुद्धोयतराए चेव, दुवामतराए चेव, दुप्परिकम्मतराए चेव । एवामेव गोयमा ! नेरइयाणं पावाइं कम्माइं गाढीकयाइं, चिक्कणीकयाइं, सिलिट्ठीकयाइं, खिल्लीभूयाइं भवंति, संपगाढं पि य णं ते वेयणं वेएमाणाणो महानिज्जरा, नो महापज्जवसाणा भवंति । से जहा वा केइ पुरिसे

करने वाला अन्ययूथिक नामका १० वां उद्देशक है । इस प्रकार ये १० दस उद्देशक इस छठे शतक में कहे गये हैं ।

तीर्थिकानी वक्तव्यतानु' निरूपय कथुं छे तेथी तेने 'अन्ययूथिक' उद्देशक कथी छे. आ प्रकारना इस उद्देशाओ आ छठ्ठा शतकमां छे.

સમ્પન્નસ્ય પુદ્ગલા વધ્યન્તે, इत्याद्यर्थाभिधानपरतया तृतीयः ३, सप्रदेशः-स-
प्रदेशो जीवः, अप्रदेशो वा ? इत्याद्यर्थाभिधायकतया चतुर्थः ४, तमस्कायः-तम-
स्कायार्थाभिधानपरतया पञ्चमः ५, भव्यः-मनुष्यत्वेन नैयतिकस्यादिना वा
उत्पत्तियोग्यस्य निरूपणपरतया षष्ठः ६, शालिः-शाल्यादिधान्यवक्तव्यता परतया
सप्तमः ७, पृथिवी-रत्नप्रभादिपृथिवीवक्तव्यतापरोऽष्टमः ८, कर्म-कर्मबन्धा-
भिधायकतया नवमः ९, अन्ययुधिकाः-अन्यतीयिकवक्तव्यतानिरूपणार्थो दशमः १०
उद्देशकाः प्रतिपादिताः षष्ठके शतके ॥ १ ॥ इति

મેં આહાર આદિ કા વર્ણન ક્રિયા ગયા છે ફસલિયે ફસકા નામ આહાર
ઉદ્દેશક છે યહ દૂસરા ઉદ્દેશક છે મહાદ્વચ વાલે કે પુદ્ગલોં કા વંધ હોતા
છે ફસ અર્થ કો કહને વાલા મહાદ્વચ ઉદ્દેશક છે યહ તૃતીય ઉદ્દેશક છે ।
જીવ પ્રદેશ સહિત છે યા અપ્રદેશ-પ્રદેશ રહિત છે ફત્યાદિ અર્થકા કથન
કરને વાલા સપ્રદેશ ઉદ્દેશક છે યહ ચતુર્થ ઉદ્દેશક છે । તમસ્કાય સંબંધી
અર્થ કા વિવેચન કરને વાલા યહ તમસ્કાય ઉદ્દેશક છે યહ પાંચવાં
ઉદ્દેશક છે, જો જીવ મનુષ્યરૂપ સે અથવા નારકરૂપ સે ઉત્પન્ન હોને કે
યોગ્ય હોતા છે વહ ભવ્ય કહા ગયા છે-ફસ ભવ્ય કા કથન કરને વાલે
યહ ભવ્ય. ઉદ્દેશક છે-યહ છઠા ઉદ્દેશક છે । શાલિ આદિ ધાન્ય કો
વક્તવ્યતા કરને વાલા શાલિ ઉદ્દેશક છે-યહ સાતવાં ઉદ્દેશક છે । રતન-
પ્રભા આદિ પૃથિવીયોં કા કથન કરને વાલા પૃથિવી ઉદ્દેશક છે યહ
આઠવાં ઉદ્દેશક છે । કર્મબન્ધ કા કથન કરને વાલા કર્મ ઉદ્દેશક છે,
યહ નવવાં ઉદ્દેશક છે ઓર અન્યતીર્થિક જનોં કો વક્તવ્યતા કા નિરૂપણ

કે તેમાં આહાર વગેરેનું વર્ણન કરાયું છે. ત્રીજા ઉદ્દેશકને 'મહા આસ્રવ ઉદ્દેશો' કહ્યો છે, કારણ કે આ ઉદ્દેશમાં એ વાતનું પ્રતિપાદન થયું છે કે મહા આસ્રવવાળા જીવો કર્મને બંધ કરતા હોય છે. ચોથા ઉદ્દેશને 'સપ્રદેશ ઉદ્દેશ' કહ્યો છે, કારણ કે આ ઉદ્દેશમાં જીવ પ્રદેશ સહિત છે કે પ્રદેશરહિત છે એ બતાવ્યું છે. તમસ્કાય સંબંધી અર્થનું વિવેચન કરનાર પાંચમા ઉદ્દેશનું નામ 'તમસ્કાય ઉદ્દેશ' છે. જે જીવ મનુષ્ય રૂપે અથવા નારક રૂપે ઉત્પન્ન થવાને યોગ્ય હોય છે, તેને ભવ્ય કહે છે. છઠ્ઠા ઉદ્દેશમાં તે ભવ્યનું પ્રતિપાદન કર્યું છે, તેથી તેને 'ભવ્ય ઉદ્દેશક' કહ્યો છે. સાતમા ઉદ્દેશમાં શાલિ (એક ભતના ચોખા) આદિ ધાન્યનું વર્ણન કર્યું છે. તેથી તેને 'શાલિ ઉદ્દેશક' કહ્યો છે. આઠમા ઉદ્દેશમાં રતનપ્રભા આદિ પૃથ્વીવસ્તુનું નિરૂપણ કર્યું છે તેથી તેને પૃથ્વી ઉદ્દેશક કહ્યો છે. નવમા ઉદ્દેશકમાં કર્મબંધનું વર્ણન કર્યું છે, તેથી તેને કર્મ ઉદ્દેશક કહ્યો છે. દસમા ઉદ્દેશમાં અન્ય

दन्त, गौतम ! यो महावेदनः एवमेव । पृष्ठी-सप्तम्योः भदन्त ! पृथिव्योः
 नैरयिका महावेदनाः? दन्त, महावेदनाः, ते खलु भदन्त ! श्रमणेभ्यो निर्ग्रन्थेभ्यो
 महानिर्जरतराः ? गौतम ! नो अयमर्थः समर्थः । तत् केनार्थेन भदन्त ! एवम्

वेदना-निर्जरा-वस्त्र वक्तव्यता-

‘ से णूणं भंते ! ’ इत्यादि ॥

सूत्रार्थ—(से णूणं भंते ! जे महावेयणे से महानिज्जरे, जे महा-
 निज्जरे से महावेयणे, महावेयणस्स य अप्पवेयणस्स य से सेए जे
 पसत्थनिज्जराए ?) हे भदन्त ! जो महावेदना वाला होता है वह महा-
 निर्जरा वाला होता है क्या ? तथा जो महानिर्जरावाला होता है वह
 महावेदना वाला होता है क्या ? तथा जो महावेदनावाला एवं अल्पवे-
 दना वाला है—उनमें क्या वह जीव उत्तम है जो प्रशस्त निर्जरा वाला
 होता है ? (हंता, गोयमा ! जे महावेयणे एवं चैव) हां गौतम ! जो
 महावेदना वाला होता है उसी प्रकार जानना चाहिये है । (छट्ठी-सत्त-
 मासु णं भंते ! पुढवीसु नैरइया महावेयणा) हे भदन्त ! छठी और
 सातवी पृथिवी में नारक जीव क्या महावेदना वाले होते हैं ? (हंता,
 महावेयणा) हां गौतम ! छठी और सातवी पृथिवी में नारक जीव
 महावेदन वाले होते हैं । (तेषां भंते ! समणेहिंतो निग्गंथेहिंतो महा-
 निज्जरतरा) हे भदन्त ! छठी और सातवी पृथिवी में रहने वाले नारक

वेदना-निर्जरा-वस्त्रवक्तव्यता—

“ से णूणं भंते ! ” इत्यादि.

सूत्रार्थ—(से णूणं भंते ! जे महावेयणे से महानिज्जरे जे महानिज्जरे से
 महावेयणे, महावेयणस्स य अप्पवेयणस्स य से सेए जे पसत्थनिज्जराए ?) हे भदन्त !
 जे एव महावेदनावाणो डाय छे ते शुं महानिर्जरावाणो डाय छे ? तथा जे
 एव महानिर्जरावाणो डाय छे ते शुं महावेदनावाणो डाय छे ? तथा महा-
 वेदनावाणा अने अल्पवेदनावाणा एवानी अपेक्षाअे शुं अे एव उत्तम छे
 के जे प्रशस्त निर्जरावाणो डाय छे ? (हंता गोयमा ! जे महावेयणे एवं चैव)
 हां, गौतम ! एवुं अे अने छे. “ जे महावेदनावाणो डाय छे ” त्यांथी लधने
 समस्त प्रश्नोक्त कथन अर्द्धी अर्द्धेषु करवुं. (छट्ठी-सत्तमासु णं भंते ! पुढवीसु नैरइया
 महावेयणा ?) हे भदन्त ! छठी अने सातवी तरकना नारको शुं महावेदनावाणा
 डाय छे ? (हंता महावेयणा) हां, गौतम ! छठी अने सातवी तरकना नारको
 महावेदनावाणा डाय छे. (तेषां भंते ! समणेहिंतो निग्गंथेहिंतो महानिज्जरतरा

अहिगरणि आउडेमाणे महया महया सवेणं, महया महया
घोसेणं, महया महया परंपराघाएणं णो संचाएइ तीसे अहि-
गरणीए केई अहावायरे पोग्गले परिसाडित्तए, एवामेव गोयमा!
नेरइयाणं पावाइं कम्माइं गाढीकयाइं, जाव-णो महापज्जव-
साणा भवंति । भयवं ! तत्थ जे से वत्थे खंजणरागरत्ते से
णं वत्थे सुद्धोयतराए चेव, सुवामतराए चेव, सुपरिकम्मतराए
चेव । एवामेव गोयमा ! समणाणं निग्गंथाणं अहावायराइं
कम्माइं सिढिलीकयाइं, निट्टियाइं कडाइं त्रिप्परिणामियाइं
खिप्पामेव विद्धत्थाइं भवंति, जाव तियं तावतियं पि ते वेयणं
वेएमाणा महानिज्जरा, महापज्जवसाणा भवंति । से जहा नामए
केइ पुरिसे सुक्कं तणहत्थयं जायतेयंसि पक्खिजे, से णूणं
गोयमा ! से सुक्कं तणहत्थए जायतेयंसि पक्खित्ते समाणे
खिप्पामेव मसमसाविज्जइ ? हंता, मसमसाविज्जइ । एवामेव
गोयमा ! समणाणं निग्गंथाणं अहावायराइं कम्माइं, जाव-
महापज्जवसाणा भवंति । से जहा नामए केइ पुरिसे तत्तंसि
अयकवेल्लुयंसि उदगविंदुं, जाव-हंता, विद्धंसं आगच्छइ । एवा-
मेव गोयमा ! समणाणं निग्गंथाणं, जाव - महापज्जवसाणा
भवंति, से तेणट्टेणं जे महावेयणे से महानिज्जरे जाव-
पसत्थनिज्जराए ॥ सू० १ ॥

छाया-तद् नूनं भदन्त ! यो महावेदनः स महानिर्जरः यो, महानिर्जरः स
महावेदनः, महावेदनस्य च, अल्पवेदनस्य च स श्रेयान् यः प्रशस्तनिर्जरकः ?

यदा तद् वस्त्रं कर्दमरागरक्तं, यदा तद् वस्त्रं खञ्जनरागरक्तम्? । भदन्त ! तत्र यत् तद् वस्त्रं कर्दमरागरक्तं तद् खलु भदन्त ! वस्त्रं दुर्धौततरकं चैव, दुर्धाम्यतरकं चैव, दुष्परिकर्मतरकं चैव । एवमेव गौतम ! नैरयिकाणां पापानि कर्माणि गाढीकृतानि, चिकणीकृतानि, श्लिष्टीकृतानि, खिलीभूतानि, भवन्ति, संपगाढमपि च

तराए चैव) कौनसा वस्त्र सुधौततर, सुधाम्यतर और सुपरिकर्मतर होगा (जे वा से वत्थे कर्दमरागरक्ते जे वा से वत्थे खञ्जनरागरक्ते ?) अर्थात् हे गौतम ! जो वस्त्र कर्दमराग से रक्त हो और जो वस्त्र खञ्जनराग से रक्त हो तो इनमें कौन सा दुःशोध्य और कौन सा सुशोध्य होगा-कहो- (भगवं ! तत्थ णं जे से वत्थे कर्दमरागरक्ते, से णं भंते ! वत्थे दुद्धोयतराए चैव, दुधामतराए चैव, दुष्परिकर्मतराए चैव) हे भगवन् ! इन दोनों वस्त्रों में से जो वस्त्र कर्दमरंग से रंगा हुआ होगा हे भदन्त ! वही वस्त्र दुर्धौततर, दुर्धाम्यतर और दुष्परिकर्मतर होगा, (एवामेव गोयमा ! नैरइयाणं पावाइं कम्माइं गाढीकपाइं चिकणीकपाइं, सिलिटीकपाइं खिलीभूयाइं भवन्ति) इसी तरह से हे गौतम ! नैरयिकों के पापकर्म गाढीकृत होते हैं, चिकणीकृत होते हैं, श्लिष्टीकृत होते हैं, और खिलीभूत होते हैं । (संपगाढं पि य णं ते वेयणं वेएमाणा

राए चैव, सुपरिकर्मतराए चैव ?) कथुं पञ्च धोवाभां वधारे सरलता रडिथे ? कथा पञ्च उपरता उध डाढवा सरण पडथे ? कथा पञ्चपर चित्रालेपन आदि करपुं सरण थध पडथे ? (जे वा से वत्थे कर्दमरागरक्ते जे वा से वत्थे खञ्जनरागरक्ते !) ओट्ठे डे डे गौतम ! डीअडथी भरडायेला अने णंजनरागधी रंजिला वस्त्रो-भांथी कथुं पञ्च दुःशोध्य (मुश्केलीथी धोअ शकय ओपुं) इथे, अने कथुं पञ्च सुशोध्य (सरणताथी साइ करी शकय ओपुं) इथे ? (भगवं तत्थणं जे से वत्थे कर्दमरागरक्ते, से णं भंते ! वत्थे दुद्धोयतराए चैव, दुधामतराए चैव, दुष्परिकर्मतराए चैव) डे लगवान ! ते णन्ने वस्त्रोभांथी ने पञ्च डीअडथी भरडायेत्तुं इथे, ते मुश्केलीथी धोअ शकय तेपुं, मुश्केलीथी उध इर कराय तेपुं अने मुश्केलीथी चित्रालेपन करी शकय ओपुं इथे । (एवामेव गोयमा ! नैरइयाणं पावाइं कम्माइं गाढीकपाइं, चिकणीकपाइं, सिलिटीकपाइं, खिलीभूयाइं भवन्ति) डे गौतम ! ओअ प्रमाणे नारकेनां पाप कर्म गाढी कृत (इढताथी संपाद) थीकणा, श्लिष्टीकृत (ओकमेकथी अलग न करी शकय तेवा) अने खिलीभूत (कोगव्या विना नेने नाश न थध शके तेवा) डेय थे । (संपगाढं पि य णं ते वेयणं वेएमाणा णो महानिज्जरा, णो महापज्जवसाणा भवन्ति)

ઉચ્યતે—યો મહાવેદનઃ યાવત્-પ્રશસ્તનિર્જરકઃ ? ગૌતમ ! તદ્ યયા નામ દ્રે વલ્લે
 સ્યાતામ્, એકં વલ્લં કર્દમરાગરક્તમ્, એકં વલ્લં સ્વજનરાગરક્તમ્, એતયોઃ સ્વલુ ગૌતમ!
 દ્વયોઃ વલ્લયોઃ કતરદ્ વલ્લં દુર્ધૌતતરકં ચૈવ, દુર્વામ્પતરકં ચૈવ, દુષ્પરિકર્મતરકં
 ચૈવ, કતરદ્ યા વલ્લં સુધૌતતરકં ચૈવ, સુવામ્પતરકં ચૈવ, સુપરિકર્મતરકં ચૈવ

જીવ કયા શ્રમણનિર્ગ્રન્થોં કી અપેક્ષા મહાનિર્જરાચાલે હોતે હેં? (ગોયમા!
 ણો ઇણદ્દે સમદ્દે) હે ગૌતમ ! યહ અર્થ સમર્થ નહીં હી. (સે કેણદ્દેણં
 મંતે ! એવં વુચ્છહ જે મહાવેયણે જાવ પસત્થનિજ્જરાણ) હે ભદન્ત ! એસા
 આપ કિસ કારણ સે કહતે હેં કિ જો મહાવેદનાચાલા હોતા હૈ યાવત્
 પ્રશસ્ત નિર્જરાચાલા હોતા હૈ ? (ગોયમા ! સે જહાનામણ દુવે વત્થા સિયા,
 એગે વત્થે કહમરાગરક્તે, એગે વત્થે સ્વજનરાગરક્તે, એણસિ ણં ગોયમા !
 દોણહં વત્થાણં કયરે વત્થે દુદ્ધોયતરાણ ચૈવ, દુવામતરાણ ચૈવ) હે ગૌતમ !
 જૈસે દો વલ્લ હોં-ઇનમેં એક વલ્લ કર્દમરાગ સે રંગા હુઆ હો ઓર દુસરા
 વલ્લ સ્વજન રંગ સે રંગા હુઆ હો તો કહો ગૌતમ ! ઇન દોનોં મેં સે કૌન
 સા વલ્લ દુર્ધૌતતર-વઢી સુધિકલ સે જિસકા રંગ ધોકર દૂર કિયા જા
 સકે એસા હોતા, હૈ દુર્વામ્પતર-જિસકે ધવ્વે દુઃસ્ર સે દૂર કિયે જા
 સકે એસા હોગા (દુષ્પરિકર્મતરાણ ચૈવ) ઓર દુષ્પરિકર્મતર-જિસમેં
 કઠિનાઈ સે ચિત્ર કી અહ્કન આદિ ક્રિયાઈ કી જા સકેં એસા હોગા ?
 તથા (કયરે વા વત્થે સુદ્ધોયતરાણ ચૈવ, સુવામતરાણ ચૈવ, સુપરિકર્મ-

હે ભદન્ત ! શું છઠ્ઠી અને સાતમી નરકના નારકો શ્રમણ નિર્ગ્રન્થો કરતાં મહા
 નિર્જરાવાળા હોય છે ? (ગોયમા ! ણો ઇણદ્દે સમદ્દે) હે ગૌતમ ! એવું છે. તું
 નથી. એટલે કે તેઓ શ્રમણ નિર્ગ્રન્થો કરતાં મહા નિર્જરાવાળા હોતા નથી.
 (સે કેણદ્દેણં મંતે ! એવં વુચ્છહ ? જે મહાવેયણે જાવ પસત્થનિજ્જરાણ) હે
 ભદન્ત ! આપ શા કારણે એવું કહો છો કે “ જે મહાવેદનાવાળા હોય છે ”
 (યાવત્) “ પ્રશસ્ત નિર્જરાવાળા હોય છે ?)

(ગોયમા ! સે જહાનામણ દુવે વત્થા સિયા, એગે વત્થે કહમરાગરક્તે, એગે
 વત્થે સ્વજનરાગરક્તે, એણસિ ણં ગોયમા ! દોણહં વત્થાણં કયરે વત્થે દુદ્ધોયતરાણ
 ચૈવ, દુવામતરાણ ચૈવ) હે ગૌતમ ! ધારો કે બે વસ્ત્ર છે, તેમાંનું એક વસ્ત્ર
 કીચઠ્ઠી ખરડાયેલું છે અને બીજું વસ્ત્ર (ખલ્લનરાગથી રંગેલું)
 પતંગ રંગથી, તે હે ગૌતમ ! તે બન્ને વસ્ત્રમાંથી કયા વસ્ત્રને ધોવામાં
 વધારે મુશ્કેલી પડશે ? અને કયા વસ્ત્રપરના ડાઘ દૂર કરવામાં વધારે
 મુશ્કેલી પડશે ? (દુષ્પરિકર્મતરાણ ચૈવ) અને કયા વસ્ત્રપર ચિત્રાલેખન આદિ
 કરવું વધારે મુશ્કેલ થશે ? તથા (કયરે વા વત્થે સુદ્ધોયતરાણ ચૈવ, સુવામત-

यदा तद् वस्त्रं कर्दमरागरक्तं, यदा तद् वस्त्रं खंजनरागरक्तम्? । भदन्त ! तत्र यत् तद् वस्त्रं कर्दमरागरक्तं तत् खन्तु भदन्त! वस्त्रं दुर्धौततरकं चैव, दुर्धाम्यतरकं चैव, दुष्परिकर्मतरकं चैव । एवमेव गौतम ! नैरयिकाणां पापानि कर्माणि गाढीकृतानि, चिकणीकृतानि, श्लिष्टीकृतानि, खिलीभूतानि, भवन्ति, संपगाढामपि च

तराए चैव) कौनसा वस्त्र सुधौततर, सुवाम्यतर और सुपरिकर्मतर होगा (जे वा से वत्ये कर्दमरागरक्ते जे वा से वत्ये खंजनरागरक्ते?) अर्थात् हे गौतम ! जो वस्त्र कर्दमराग से रक्त हो और जो वस्त्र खंजनराग से रक्त हो तो इनमें कौन सा दुःशोध्य और कौन सा सुशोध्य होगा-कहो-(भगवं ! तत्थ णं जे से वत्ये कर्दमरागरक्ते, से णं भंते ! वत्ये दुद्धोयतराए चैव, दुवामतराए चैव, दुष्परिकर्मतराए चैव) हे भगवन् ! इन दोनों वस्त्रों में से जो वस्त्र कर्दमराग से रंगा हुआ होगा हे भदन्त ! वही वस्त्र दुर्धौततर, दुर्धाम्यतर और दुष्परिकर्मतर होगा, (एवामेव गोयमा ! नैरइयाणं पावाइं कम्माइं गाढीकयाइं चिकणीकयाइं, सिलिटीकयाइं खिलीभूयाइं भवंति) इसी तरह से हे गौतम ! नैरपिको के पापकर्म गाढीकृत होते हैं, चिकणीकृत होते हैं, श्लिष्टीकृत होते हैं, और खिलीभूत होते हैं । (संपगाढं पि य णं ते वेयणं वेएमाणा

राए चैव, सुपरिकर्मतराए चैव ?) कथुं वस्त्र धोवाभां वधारे सरलता रडिसे ? क्या वस्त्र उपरना उध काढवा सरण पडसे ? क्या वस्त्रपर चित्रालेपन आदि करवुं सरण थध पडसे ? (जे वा से वत्ये कर्दमरागरक्ते जे वा से वत्ये खंजनरागरक्ते ?) अट्ठे के डे गौतम ! डीअथी भरडायेला अने भंजनरागथी रंगेला वस्त्रोभांथी कथुं वस्त्र दुःशोध्य (मुश्केलीथी धोए शकय अेषुं) छरे, अने कथुं वस्त्र सुशोध्य (सरणताथी साइ करी शकय अेषुं) छरे ? (भगवं तत्थणं जे से वत्ये कर्दमरागरक्ते, से णं भंते ! वत्ये दुद्धोयतराए चैव, दुवामतराए चैव, दुष्परिकर्मतराए चैव) छे लगवान ! ते णन्ने वस्त्रोभांथी जे वस्त्र डीअथी भरडायेतुं छरे, ते मुश्केलीथी धोए शकय तेषुं, मुश्केलीथी उध इर कराय तेषुं अने मुश्केलीथी चित्रालेपन करी शकय अेषुं छरे. (एवामेव गोयमा ! नैरइयाणं पावाइं कम्माइं गाढीकयाइं, चिकणीकयाइं, सिलिटीकयाइं, खिलीभूयाइं भवंति) छे गौतम ! अने प्रमाणे नारकेनां पाप कर्म गाढी कृत (हुदताथी स'भद्ध) थीकण्ठा, श्लिष्टीकृत (ओकमेकथी अलग न करी शकय तेवा) अने खिलीभूत (लोगव्या चिना जेने नाश न थध शके तेवा) छेय छे. (संपगाढं पि य णं ते वेयणं वेएमाणा णो महापज्जरा, णो महापज्जवसाणा भवंति)

સ્વલુ તે વેદનાં વેદ્યમાના નો મહાનિર્જનાઃ, નો મહાપર્યવસાના ભવન્તિ । તદ્ વયા
યાં કોઽપિ પુરુષોઽધિકરણીમ્ આકુરુચ્ચ મહતા મહતા શ્વન્દેન, મહતામહતા ગોપેન,
મહતા મહતા પરંપરાઘાતેન નો શ્વનોતિ, તસ્યાઃ અધિકરણ્યાઃ કાનપિ
યથાવાદરાન્ પુદ્ગલાન્ પરિશાટયિતુમ્, પૂવમેવ ગૌતમ ! નૈરયિકાણાં
પાપાનિ કર્માણિ ગાઢીકૃતાનિ, યાવત્-નો મહાપર્યવસાના ભવન્તિ । મદન્ત ! તન્ન
યત્ તદ્ વદ્ધં સ્વઙ્જનરાગરક્તમ્ તદ્ વદ્ધં સુધીતવરકં ચૈવ, સુવામ્યતરકં ચૈવ,

ળો મહાનિર્જરા નો મહાપજ્જવસાણા ભવન્તિ) ઇસ કારણ વે સમ્પ્રગાઢ
મી વેદના કો ભોગતે દુષ્ટ મહાનિર્જરા વાલે નહીં હોતે હિ ઓર ન મહા
પર્યવસાન (અન્ત) વાલે હોતે હિ । (સે જહા વા કેઈ પુરિસે અહિગરણિ
આઝહેમાણે મહયા ૨ સદ્દેળં, મહયા ૨ ઘોસેળં મહયા ૨ પરંપરાઘાણં
ળો સંચાવદ્દ તીસે અહિગરણીય કેઈ અહાવાયરે પોગલે પરિસાહિત્તય)
અથવા-જૈસે કોઈ પુરુષ જોર ૨ સે શબ્દોં કા ઉચ્ચારણ કરતા હુઆ,
મયંકર શબ્દોં કો ઘોલતા હુઆ ણરણ કે ઝપર નિરન્તર હથોડા સે
આઘાત કરે તો મી વહ ઉસ ણરણ કે યથાવાદર-સ્થૂલ પુદ્ગલોં કો ઉસસે
નિકાલ કર ઉન્હેં નષ્ટ કરને કે લિયે સમર્થ નહીં હો સકતા હૈ (ણવામેવ
ગોયમા ! નેરહયા ણં પાવાઈં કન્માઈં ગાઢીકયાઈં જાવ ણો મહાપજ્જવ-
સાણાઈં ભવન્તિ) ઇસી તરહ સે હે ગૌતમ ! નારક જીવોં કે જો પાપ
કર્મ હોતે હૈ વે ગાઢીકૃત હોતે હિ યાવત્ વે મહાપર્યવસાનવાલે નહીં હોતે હિ
(તત્થ જે સે વત્થે સુદ્ધોપતરાણ ચેવ, સુવામતરાણ ચેવ સુપરિકમ્મતરાણ

તે કારણે બયંકરમાં બયંકર વેદના લોગવવા છતાં તેઓ મહા નિર્જરાવાળા
હોતા નથી અને પર્યવસાનવાળા (સર્વથા કર્મથી રહિત) પણ હોતા નથી.
“ સે જહા વા કેઈ પુરિસે અહિગરણિ આઝહેમાણે મહયા ૨ સદ્દેળં, મહયા ૨, ઘોસેળં,
મહયા ૨, પરંપરાઘાણં ણો સંચાવદ્દ તીસે અહિગરણીય કેઈ અહાવાયરે પોગલે
પરિસાહિત્તય ” ધારે કે કોઈ એક માણસ જોર જોરથી હોકારા પડકારા કરતો
કરતો, અને બયંકર શબ્દો ઘોલતો ઘોલતો હુથોડા વડે એરણુ ઉપર નિરંતર
ધા કર્યા કરે, તો પણ તે માણસ એરણુના સ્થૂલ પુદ્ગલોને તેમાંથી બહાર
ઠાઢીને તેમને નાશ કરવાને શક્તિમાન થતો નથી, “ ણવામેવ ગોયમા ! નેર-
હયાણં પાવાઈં કન્માઈં ગાઢીકયાઈં જાવ ણો મહાપજ્જવસાણાઈં ભવન્તિ ” એજ
પ્રમાણે હે ગૌતમ ! નારક જીવોનાં જે પાપકર્મો હોય છે તે ગાઢીકૃત (દઢ-
તાથી વળગેલાં) હોય છે, તેથી તેઓ મહાનિર્જરાવાળા હોતા નથી અને તે
કર્મોના સર્વથા નાશ કરવાને તેઓ સમર્થ હોતા નથી. (તત્થ જે સે વત્થે

सुपरिकर्मतरकं चैव, एवमेव गौतम ! श्रमणानां निर्ग्रन्थानां यथाचादराणि कर्माणि विधिशीलानि, निष्ठितानि कृतानि, विपरिणामितानि क्षिप्रमेव विध्वस्तानि भवन्ति, यावत्तिकां तावत्तिकावपि वेदनां वेदयमाना महानिर्जराः महापर्यसनाः भवन्ति, तद् यथा नाम कोऽपि पुरुषः शुष्कं तृणदस्तकं जाततेजसि प्रक्षिपेत्, तद्गूढं गौतम ! स शुष्कः तृणदस्तको जाततेजसि प्रक्षिप्तः सन् क्षिप्रमेव मसमसाप्यते ? । इन्त, मसमसाऽऽप्यते । एवमेव गौतम ! श्रमणानां निर्ग्रन्था-

चैव-एवामेव गोयमा ! समणाणं निर्गन्थाणं अहावायराइं कम्माइं सिद्धि-लीक्याइं निट्टियाइं कडाइं विपरिणामियाइं खिप्पामेव विद्धत्थाइं भवन्ति) तथा जो वत्त खंजनराग से रक्त होता है वह वत्त सुधौततर ही होता है, सुवाम्यतर ही होता है और सुपरिकर्मतर ही होता है, इसी तरह से है गौतम ! श्रमण निर्ग्रन्थोंके जो स्थूल स्कन्धरूप कर्म होते हैं-वे शिथिलीकृत होते हैं, अर्थात् मंदविपाक वाले होते हैं, निष्ठित होते हैं सत्ता विनाके होते हैं, विपरिणाम वाले होते हैं इसलिये वे शीघ्र ही विध्वस्त हो जाते हैं (जावइयं तावइयं वि ते वेयणं वेएमाणा, महानिज्जरा महाप-ज्जवसाणा भवन्ति) जितनी जितनी भी-कुछ भी-वेदना को भोगते हुए वे श्रमण निर्ग्रन्थ महानिर्जरावाले और महापर्यसान वाले होते हैं। (से जहा नामए केइ पुरिसे सुक्कं तण हत्थए जायतेयंसि पक्खिवेज्जा से पूणं गोयमा ! से सुक्के तणहत्थए जायतेयंसि पक्खित्ते समाणे खिप्पामेव मसमसाविज्जइ) जैसे कोई पुरुष शुष्क घासके पूलेको अग्नि

खंजनरागरत्ते से णं वत्थे सुद्धोचतराए चैव, सुवामतराए चैव, सुपरिकम्मतराए चैव-एवामेव गोयमा ! समणाणं निर्गन्थाणं अहावायराइं कम्माइं सिद्धि-लीक्याइं निट्टियाइं कडाइं विपरिणामियाइं खिप्पामेव विद्धत्थाइं भवन्ति)
 જેવી રીતે ખંજનરાગથી ખરડાયેલું વસ્ત્ર સરળતાથી ઘેઇ શકાય તેવું સરળતાથી ડાઘ દૂર કરી શકાય એવું અને સરળતાથી ચિત્રાલેખન આદિ કરી શકાય તેવું હોય છે, એજ પ્રમાણે હે ગૌતમ ! શ્રમણુ નિર્ગન્થોના જે સ્થૂલ-તર સ્કન્ધરૂપ કર્મ હોય છે, તે શિથિલીકૃત હોય છે-એટલે કે વિપાકવાળાં હોય છે. તેથી તે કર્મોના જલદીથી નાશ થઇ જતો હોય છે. (જાવઇયં તાવઇયં વિ તે વેયણં વેએમાણા, મહાનિજ્જરા મહાપજ્જવાસાણા ભવન્તિ) જેટલી તેટલી પણુ-એટલે કે નાની સરળી પણુ વેદનાને ભોગવતા તે શ્રમણુ નિર્ગન્થો મહાનિર્જરાવાળા અને મહાપર્યવસાનવાળા (કર્મોના અન્ત કરનારા) હોય છે. (સે જહા નામए કેइ पुरिसे सुक्कं तणहत्थए जायतेयंसि पक्खिवेज्जा-से पूणं गोयमा ! से सुक्के तणहत्थए जायतेयंसि पक्खित्ते समाणे खिप्पामेव मसमसाविज्जइ) हे

નાં યથાવાદરાણિ કર્માણિ-યાવત્-મહાપર્યવસાના ભવન્તિ । તદ્ગથાનામ ક્ષોડ્ધ
પિ પુરુષસ્તપ્તે અયસ્કપાલે ઉદગવિન્દુમ્, યાવત્-હન્ત, વિધ્વંસમ્ આગચ્છતિ ।
एवमेव गौतम ! श्रमणानां निर्ग्रन्थानाम्, यावत्-महापर्यवसाना भवन्ति, तद्
तेनार्थेन यो महावेदनः सः महानिर्जरः यावत्-प्रशस्तनिर्जराकः ॥ सू० १ ॥

મેં ડાલ દે-તો હે ગૌતમ ! વહ શુષ્ક ઘાસ કા પૂના અગ્નિ મેં ડાલતે હી
શીઘ્ર હી જલ જાતા હૈ ન ? (હંતા, મસમસાવિજ્જહ) હાં, 'મદન્ત ! વહ
શીઘ્ર હી જલ જાતા હૈ (એવામેવ ગોયમા ! સમણાણં નિર્ગંધાણં અહા
યાયરાહં કમ્માહં જાવ મહાપજ્જવસાણા ભવંતિ) ઇસી તરહ સે હે ગૌતમ !
શ્રમણ નિર્ગંથોં કે સ્થૂલતર સ્કન્ધરૂપ કર્મ જલ જાતે હું યાવત્ વે શ્રમણ
નિર્ગંથ મહાપર્યસાનવાલે હોતે હું (સે જહા નામણ કેહુ પુરિસે તત્તંસિ
અયકવેલ્લુંસિ ઉદગવિન્દું જાવ હંતા વિદ્વંસં આગચ્છહ) જૈસે કોઈ પુરુષ
તપાવે-લાલ હુણ ગરમ-તવે પર જલ કે વિન્દુ કો ડાલે તો વહ શીઘ્ર હી
વિધ્વસ્ત હો જાતા હૈ ન ? હાં, પ્રભુ શીઘ્ર હી વહ વિધ્વસ્ત હો જાતા હૈ
(એવામેવ ગોયમા ! સમણાણં નિર્ગંધાણં જાવ મહાપજ્જવસાણા ભવંતિ)
इसी तरह से हे गौतम ! श्रमण निर्ग्रन्थों के स्थूलतर स्कन्धरूप कर्म
शीघ्र ही विध्वस्त हो जाते हैं-यावत् वे महापर्यवसानवाले होते हैं ।
(से तेणट्ठेणं जे महावेयणे से महानिज्जरे जाव पसत्थनिज्जराए) इस

ગૌતમ ! કોઈ પુરુષ કોઈ સૂકા ઘાસના પૂજાને અગ્નિમાં નાખી દે તો તે સૂકા
ઘાસને પૂજો અગ્નિમાં નાખતાની સાથે જ બળી બંધ છે કે નહીં ? (હંતા
મસમસાવિજ્જહ) હા, તે તુરત જ બળી બંધ છે. (એવામેવ ગોયમા ! સમણાણં
નિર્ગંધાણં અહાવાયરાહં કમ્માહં જાવ મહાપજ્જવસાણા ભવંતિ) હે ગૌતમ !
એજ પ્રમાણે શ્રમણુ નિર્ગંથોના સ્થૂલતર સ્કન્ધરૂપ કર્મ બળી બંધ છે, તે
કારણે તેઓ મહાનિર્જરાવાળા અને મહા પર્યવસાનવાળા હોય છે. (સે જહા
નામણ કેહુ પુરિસે તત્તંસિ અયકવેલ્લુંસિ ઉદગવિન્દું જાવ હંતાવિદ્વંસં આગચ્છહ)
એમ કોઈ પુરુષ તપાવેલી લાલચોળ જેવી કડાહી પર પાણીતું ટીપું નાખે, તો
તે ટીપું તુરત જ નષ્ટ થઈ બંધ છે કે નહીં ? “ હા, પ્રભુ ! તે તુરત જ નષ્ટ
થઈ બંધ છે. ” (એવામેવ ગોયમા ! સમણાણં નિર્ગંધાણં મહાપજ્જવસાણા ભવંતિ)
હે ગૌતમ ! એજ પ્રમાણે શ્રમણુ નિર્ગંથોનાં સ્થૂલતર સ્કન્ધરૂપ કર્મ બંધી
નષ્ટ થઈ બંધ છે, તે કારણે તેઓ મહા નિર્જરાવાળા અને મહા પર્યવસાન-
વાળા હોય છે. (સે તેણટ્ઠેણં જે મહાવેયણે સે મહાનિજ્જરે જાવ પસત્થનિજ્જરાણે)

ટીકા— 'સે જૂળં મંતે ! જે મહાવેયણે સે મહાનિજ્જરે, જે મહાનિજ્જરે સે મહાવેયણે' ગૌતમઃ પૃચ્છતિ—હે ભદન્ત ! તદ્ નૂનં નિશ્ચયેન કિમ્ યો મહાવેદનઃ મહતી વેદના દુઃખં યસ્ય સઃ ઉપસર્ગાદિસમુત્પન્નવિશિષ્ટદુઃખવાન્ ભવતિ સઃ મહાનિર્જરઃ મહતીનિર્જરા યસ્ય ઈવંવિપ્રવિશિષ્ટકર્મક્ષયવાન્ ભવતિ । અનયોથ તાદૃશવેદનનિર્જરયોઃ પરસ્પરમવિનાભાવસમ્બન્ધઘોતનાય=પ્રાહ—યો મહાનિર્જરઃ વિશિષ્ટકર્મક્ષયવાન્ સ કિમ્ મહાવેદનો ભવતિ ? ઇતિ પ્રથમઃ પ્રશ્નઃ અથ દ્વિતીયં પ્રશ્નપ્રાહ—“ મહાવેયણસ્ત ય, અપ્પવેયણસ્ત ય સે સેણ જે પસત્થનિર્જરાણ ? ”

કારણ હે ગૌતમ ! મને જેસા કહા હૈ કિ જો મહાવેદનાવાલા હોતા હૈ વહ મહાનિર્જરાવાલા હોતા હૈ યાવત્ વહ પ્રશસ્ત નિર્જરાવાલા હાતા હૈ ।

ટીકાર્થ—સૂત્રકાર ને હસ સૂત્ર દ્વારા મહાવેદના ઓર મહાનિર્જરા કા સ્વરૂપ ફલ કી અપેક્ષા સે નિરૂપણ કિયા હૈ—હસમેં ગૌતમ પ્રશ્ન સે જેસા પૂછ રહે હૈં કિ—(સે જૂળં મંતે ! જે મહાવેયણે સે મહાનિજ્જરે જે મહાનિજ્જરે સે મહાવેયણે) હે ભદન્ત ! જો મહાવેદના વાલા હોતા હૈ વહ કયા મહાનિર્જરા વાલા હોતા હૈ ? તાત્પર્ય કહનેકા યહ હૈ કિ જો ઉપસર્ગ આદિસેં ઉદ્ભૂત વિશિષ્ટ દુઃખોંવાલા હોતા હૈ—યહ કયા વિશિષ્ટ કર્મક્ષય રૂપ નિર્જરાવાલા હોતા હૈ ? હસ પ્રકારકી હન દોનોં વેદના ઓર નિર્જરા મેં કયા પરસ્પર અવિનાભાવ સંબંધ હૈ ? હસ વાતકો પ્રકટ કરનેકે લિયે પૂછા ગયા હૈ કિ “જો મહાનિર્જરાવાલા હોતા હૈ વહ મહાવેદનાવાલા હોતા હૈ” હસ પ્રકાર યહ પ્રથમ પ્રશ્ન હૈ । દ્વિતીય પ્રશ્ન હસ પ્રકાર સે હૈ—(મહા

હે ગૌતમ ! તે કારણે મેં એવું કહ્યું છે કે જે મહાવેદનાવાળો હોય છે તે મહાનિર્જરાવાળો હોય છે, (યાવત્) તે પ્રશસ્ત નિર્જરાવાળો હોય છે.

ટીકાર્થ—સૂત્રકારે આ સૂત્ર દ્વારા મહાવેદના અને મહાનિર્જરાનું સ્વરૂપ રૂપની અપેક્ષાએ નિરૂપણ કયું છે—

ગૌતમ સ્વામી મહાવીર પ્રભુને એવો પ્રશ્ન પૂછે છે કે (સે જૂળં મંતે ! જે મહાવેયણે સે મહાનિજ્જરે, જે મહાનિજ્જરે સે મહાવેયણે) હે ભદન્ત ! જે એવ મહાવેદનાવાળો હોય છે, તે શું મહાનિર્જરાવાળો હોય છે ? પ્રશ્નનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે—

જે એવ ઉપસર્ગ આદિથી જનિત વિશિષ્ટ દુઃખોવાળો હોય તે શું વિશિષ્ટ કર્મક્ષયરૂપ નિર્જરાવાળો હોય છે ? આ પ્રકારની વેદના અને નિર્જરા વચ્ચે શું અવિનાભાવ સંબંધ છે ? એ વાત બહુવાને માટે જ આ પ્રશ્ન પૂછવામાં આવ્યો છે કે “ જે મહાનિર્જરાવાળો હોય તે શું મહાવેદનાવાળો હોય છે ? ” બીજો પ્રશ્ન આ પ્રમાણે પૂછ્યો છે—

મ્યો નિર્ગ્રન્થેમ્યો નિર્ગ્રન્થશ્રમણાપેક્ષયા, इत्यर्थः किम् महानिर्जरतराः ? अतिशय
विशिष्टरूपं क्षयवन्तो भवन्ति ?

મગવાનાહ—' ગોયમા ! ગો ઇણદ્દે સમદ્દે ' હે ગૌતમ ! નાયમયઃ સમર્થઃ, નૈવ
ભવિતુમર્હતિ મહાવેદનાવાન્ શ્રમણનિર્ગ્રન્થસ્તુ દુરેઽપાસ્તામ્ કિન્તુ અલ્પવેદનસ્યાપિ
શ્રમણનિર્ગ્રન્થસ્યાપેક્ષયા મહાવેદનાવતોઽપિ નૈરપિકસ્ય મહાનિર્જરત્વાસંભવાત્ ।
ગૌતમઃ પૃચ્છતિ—“ સે કેણદ્દેણં મંતે ! एवं बुचइ जे महावेयणे, जाव पसत्थ
निज्जराए ? हे भदन्त ! तत् केनार्थेन एवम् उपर्युक्तरीत्या उच्यते यद् यो महा-
वेदनः, स यावत्-महानिर्जराकः, यत्र महानिर्जराकः स महावेदनः, अथ च म-
हावेदना-अल्प वेदनयोर्मध्ये प्रशस्तनिर्जरः श्रेयान् ? इति,

होते हैं ? इसके उत्तर में प्रभु गौतम से कहते हैं कि (गोयमा) हे
गौतम ! (गो इणद्वे समद्वे) यह अर्थ समर्थ नहीं है । महावेदनावाले
श्रमण निर्गन्थ की तो बात ही क्या है, पर जो अल्पवेदनावाले भी
श्रमण निर्गन्थ है उसकी अपेक्षा से भी नैरपिक जीव में महानिर्जरा-
वत्त्व असंभव है । अब इस विषय में कारण की जिज्ञासा से गौतम
प्रभु से पूछते हैं—कि (से केणद्वेणं मंते ! एवं बुच्चइ जे महावेयणे जाव
पसत्थनिज्जराए) हे भदन्त ! ऐसा आप किस कारण से कहते हैं कि जो
महावेदनावाला होता है वह यावत् महानिर्जरावाला होता है और जो
महानिर्जरावाला होता है वह महावेदनावाला होता है तथा महावेदना-
वाले और अल्पवेदनावाले जीव के बीच में प्रशस्तनिर्जरावाला जीव

ગૌતમ સ્વામીના આ પ્રશ્નનું સમાધાન કરતા મહાવીર પ્રભુ કહે છે,
(ગોયમા ! ગો ઇણદ્દે સમદ્દે) હે ગૌતમ ! એવું બનતું નથી. મહાવેદનાવાળા
શ્રમણ-નિર્ગ્રન્થની વાત જ શું કરવી ! એટલે કે મહાવેદનાવાળા શ્રમણનિર્ગ્રન્થો
તો નારકો કરતાં મહાનિર્જરાવાળા હોય છે જ. એટલું જ નહીં પણ અલ્પ-
વેદનાવાળા શ્રમણ-નિર્ગ્રન્થો પણ છઠ્ઠી અને સાતમી નરકના નારકો કરતાં મહા-
નિર્જરાવાળા હોય છે—તે નારકોમાં શ્રમણ નિર્ગ્રન્થો કરતાં મહાનિર્જરાયુક્તતા
સંભવી શકતી નથી. તેનું કારણ બાલુવાની જાણસાથી ગૌતમ સ્વામી મહા-
વીર પ્રભુને પૂછે છે—

(સે કેણદ્દેણં મંતે ! एवं बुचइ जे महावेयणे जाव पसत्थनिज्जराए ?)
હે ભદન્ત ! આપ શા કારણે એવું કહો છો કે જે મહાવેદનાવાળો હોય છે
તે મહાનિર્જરાવાળો હોય છે, અને જે મહાનિર્જરાવાળો હોય છે તે મહા-
વેદનાવાળો હોય છે, તથા મહાવેદનાવાળા અને અલ્પવેદનાવાળા જીવોની અપે-
ક્ષાએ પ્રશસ્ત-નિર્જરાવાળો જ એ શ્રેષ્ઠ હોય છે !

भगवानाह—‘गोयमा ! से जहा नामए दुवे वत्या सिया’ हे गौतम ! तद् यथा ‘नाम’ इति वाक्यालङ्कारे हे वस्त्रे स्वाताम्, तयोर्मध्ये ‘एगे वत्ये कद्-मरागत्ते’ एकं वस्त्रं कर्दमरागरक्तं स्यात् पद्मपुञ्जेन लिप्तं भवेत् अथ ‘एगे वत्ये खंजणरागत्ते एगम् अपरं वस्त्रं खंजनरागरक्तं स्यात् पतङ्गरागे रक्तं भवेत्, अथ खंजनरागशब्देन पतङ्गरागो गृह्यते । एएसि णं गोयमा ! दोण्हं वत्याणं क्यरे वत्ये दुदोयतराए चैव’ हे गौतम ! एतयोः उपर्युक्तयोः द्वयोर्वस्त्रयोः कर्दमखंजनरागरक्तयोर्मध्ये कतरद् वस्त्रं, कर्दमरागरक्तं वा, खंजनरागरक्तं वा, दुधौततरकं चैव, अनिशयदुष्करमभालनप्रक्रियं स्यात् ? ‘दुवामतराए चैव’ दुर्वाभ्यतरकं चैव ? दुस्त्याज्वतरमलं स्यात् ? दुःशोध्यमलमित्यर्थः, ‘दुप्परिक-मतराए चैव’ दुष्परिकर्मतरकं चैव, कष्टसाध्यचित्रोल्लेखनभङ्गकरणादिप्रक्रियम्

उत्तम होता है ? इसके उत्तर में प्रभु गौतम से कहते हैं कि (गोयमा) हे गौतम ! (से जहा नामए दुवे वत्या सिया) जैसे कोई दो वस्त्र हों (एगे वत्ये कद्मरागत्ते) इनमें एक वस्त्र कर्दमराग से रक्त हो—अर्थात् कीचड़ से मलिन हो—और दूसरा (एगे वत्ये खंजणरागत्ते) दूसरा वस्त्र खंजनराग से पतंगरंग से रक्त हो (एएसि णं गोयमा ! दोण्हं वत्याणं क्यरे वत्ये दुदोयतराए चैव) तो हे गौतम ! हम तुमसे यह पूछते हैं कि इन दोनों वस्त्रों के बीच में कौन सा वस्त्र दुधौततरक—जिसकी प्रक्षालन क्रिया अत्यन्त कठिन होगी (दुवामतराए) दुर्वाभ्यतरक—जिसका कलङ्क धब्बे चगौरह—बड़ी कठिनाई से धोयेजा सकेगा होगा तथा (दुष्परिकर्मतराए चैव) दुष्परिकर्मतरक—जिसमें चित्रोल्लेखन क्रिया एवं भङ्गकरणादिरूप क्रिया—विशेष प्रकार की रचना करने रूप क्रिया कष्ट

तेना ज्वाण आपता भडापीर प्रभु कडे छे—“गोयमा !” हे गौतम ! (से जहा नामए दुवे वत्या सिया) जेभडे कोण जे वस्त्र होय, (एगे वत्ये कद्मरागत्ते) तेभानुं जेक वस्त्र कद्मरागथी रक्त होय—जेठले डे डीयडथी मलिन थयेवुं होय, अने श्रीजुं “एगे वत्ये खंजणरागत्ते” श्रीजुं वस्त्र अंजनरा गथी रक्त होय—जेठले डे पतंग रंगथी रंगाथेवुं जेठले मलिन थयेवुं होय, (ए एसि णं गोयमा ! दोण्हं वत्याणं क्यरे वत्ये दुदोयतराए चैव) हे गौतम ! ते जेभाने वस्त्रोभांथी कथुं वस्त्र “दुधौततरक” उथे—जेठले डे कथा वस्त्रने धोवानुं वधारे मुश्केल जनथे ? “दुवामतराए” दुर्वाभ्यतरक जेठले डे जेना उपरथी अथ डाढवा मुश्केल पडे तेवुं उथे ? “दुष्परिकर्मतराए” दुष्प-रिर्कर्मतरक उथे—जेठले डे जेभां चित्रालेखन अने लंगडरजुाडि रूप क्रियाज्ये (विशेष प्रकारनी रचना करवा रूप क्रिया) करवाभां मुश्केली पडथे ? आ ज्ये

भ्यो निर्ग्रन्थेभ्यो निर्ग्रन्थश्रमणापेक्षया, इत्यर्थः किम् महानिर्जरतराः ? अतिशय विशिष्टकर्म क्षमवन्तो भवन्ति ?

भगवानाह—' गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे ' हे गौतम ! नापमर्थः समर्थः, नैवं भवितुमर्हति महावेदनावान् श्रमणनिर्ग्रन्थस्तु दूरेऽपास्ताम् किन्तु अल्पवेदनस्यापि श्रमणनिर्ग्रन्थस्यापेक्षया महावेदनायतोऽपि नैरयिकस्य महानिर्जरत्वासंभवात् । गौतमः पृच्छति—' से केणट्ठेणं भंते ! एवं चुच्चइ जे महावेयणे, जाव पसत्थ निज्जराए ? हे भदन्त ! तत् केनार्थेन एवम् उपर्युक्तीत्या उच्यते यद् यो महावेदनः, स यावत्-महानिर्जराकः, यत्र महानिर्जराकः स महावेदनः, अथ च महावेदना-अल्प वेदनयोर्मध्ये प्रशस्तनिर्जरः श्रेयान् ? इति,

होते हैं ? इसके उत्तर में प्रभु गौतम से कहते हैं कि (गोयमा) हे गौतम ! (णो इणट्ठे समट्ठे) यह अर्थ समर्थ नहीं है । महावेदनावाले श्रमण निर्ग्रन्थ की तो बात ही क्या है, पर जो अल्पवेदनावाले भी श्रमण निर्ग्रन्थ है उसकी अपेक्षा से भी नैरयिक जीव में महानिर्जरावत्त्व असंभव है । अब इस विषय में कारण की जिज्ञासा से गौतम प्रभु से पूछते हैं—कि (से केणट्ठेणं भंते ! एवं चुच्चइ जे महावेयणे जाव पसत्थनिज्जराए) हे भदन्त ! ऐसा आप किस कारण से कहते हैं कि जो महावेदनावाला होता है वह यावत् महानिर्जरावाला होता है और जो महानिर्जरावाला होता है वह महावेदनावाला होता है तथा महावेदनावाले और अल्पवेदनावाले जीव के बीच में प्रशस्तनिर्जरावाला जीव

गौतम स्वामीना आ प्रश्नं समाधान करता महावीर प्रभु कहे थे, (गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे) हे गौतम ! એવું બનતું નથી. મહાવેદનાવાળા શ્રમણ-નિર્ગ્રંથની વાત જ શું કરવી ! એટલે કે મહાવેદનાવાળા શ્રમણનિર્ગ્રંથો તો નારકો કરતાં મહાનિર્જરાવાળા હોય છે જ. એટલું જ નહીં પણ અल्प-વેદનાવાળા શ્રમણ-નિર્ગ્રંથો પણ છઠ્ઠી અને સાતમી નરકના નારકો કરતાં મહા-નિર્જરાવાળા હોય છે-તે નારકોમાં શ્રમણ નિર્ગ્રંથો કરતાં મહાનિર્જરાયુક્તતા સંભવી શકતી નથી. તેનું કારણ બાણવાની જ્ઞાસાથી ગૌતમ સ્વામી મહા-વીર પ્રભુને પૂછે છે—

(से केणट्ठेणं भंते ! एवं चुच्चइ जे महावेयणे जाव पसत्थनिज्जराए ?) हे भदन्त ! आप शा कारणे એવું કહો છો કે જે મહાવેદનાવાળો હોય છે તે મહાનિર્જરાવાળો હોય છે, અને જે મહાનિર્જરાવાળો હોય છે તે મહા-વેદનાવાળો હોય છે, તથા મહાવેદનાવાળા અને અल्पવેદનાવાળા જીવોની અપે-ક્ષાએ પ્રશસ્ત-નિર્જરાવાળો જ એક હોય છે ?

પત્ત્ વત્ત્ કર્દમરાગસ્વતં સ્યાત્, ' સે ણં મંતે ! વત્થે દુદ્ધોયતરાણ ચેવ ' હે મદન્ત ! તન્ સ્વલ્લ કર્દમરાગસ્વતં વત્ત્ દુર્ધોતતરકં ચૈવ સ્યાત્ ' દુવામતરાણ ચેવ ' દુર્ધામ્વતરકં ચૈવ દુસ્ત્યાજ્યક્લલ્લં સ્યાત્, ' દુપ્પરિકમ્મતરાણ ચેવ ' દુપ્પરિકર્મ-તરકં ચૈવ, કાટ્ઠાધ્યવચિચોલ્લેક્ષન-મદ્ધકરણાદિપ્રક્રિયં સ્યાત્ ।

મગવાનાહ-' ઇવામેવ ગોયમા ! નેરહ્યાણં પાવાહં કમ્માહં ગાઢીકયાહં ' હે ગૌતમ ! ઇવમેવ કર્દમદ્ધરાગસ્વત્ત્વદેવ નૈરયિકાણાં પાપાનિ પાપરૂપાણિ કર્માણિ ગાઢીકૃતાનિ ગુણસુત્રદ્ધવદ્ધસુચીકટ્ટાપવત્ આત્મપ્રદેશૈઃ સહ અત્યન્તગાઢ-

કર્દમરાગ સે યુક્ત હોગા (સે ણં મંતે ! વત્થે દુદ્ધોયતરાણ ચેવ) વહી વચ્છ દુર્ધોતતરક હોગા, (દુવામતરાણ ચેવ) દુર્ધામ્વતરક હોગા, ઓર (દુપ્પરિકમ્મતરાણ) દુપ્પરિકર્મતરક હોગા, -જય ગૌતમ ને ઇસા અપના અભિ-પ્રાય પ્રકટ કર દિયા તવ પ્રભુ ને उनसे कहा-(इवामेव गोयमा) हे गौतम । इसी तरह से (नेरह्याणं पावाहं कम्माहं) नारक जीवों के जो पापरूप कर्म होते हैं, वे कर्दम के दृढ राग से रक्त हुए वच्र की तरह ही गाढी कृत होते हैं-अर्थात् जिस प्रकार से शण की सूतली से खूब मजबूती के साथ सुइयों का समुदाय कसकर बांध दिया जाता है उसी प्रकार जो पापरूप कर्म आत्मा के प्रदेशों के साथ अत्यन्त गाढरूप से दृढरूप में संबद्ध होते हैं वे गाढीकृत पापरूप कर्म कहलाते हैं, ऐसे ही गाढीकृत पापरूप कर्म नारक जीवोंके होते हैं,(चिकणीकयाहं) जिस प्रकार

ગૌતમ સ્વામીએ કહ્યું " મગવં " હે પ્રભો ! " તત્થણં જે સે વત્થે કર્દમરાગસ્વત્તે " તે બન્નેમાંથી જે વચ્છ કીચડથી ખરડાયેલું હશે (સે ણં મંતે ! વત્થે દુદ્ધોયત-રાણ ચેવ) તે વચ્છ દુર્ધોતતર (ધોવામાં મુશ્કેલ હશે, (દુવામતરાણ ચેવ) દુર્ધામ્વતરક (ડાઘ કાઢવા મુશ્કેલ પડે એવું) હશે, અને " દુપ્પરિકમ્મતરાણ " દુપ્પરિકર્મતરક (ચિત્રાલેખન આદિ કરવામાં મુશ્કેલી પડે એવું) હશે. ગૌત-મને આ પ્રકારનો જવાબ સાંભળીને મહાવીર પ્રભુ તેમને કહે છે-" ઇવામેવ ગોયમા ! " હે ગૌતમ ! એજ પ્રમાણે " નેરહ્યાણં પાવાહં કમ્માહં " નારક જીવોનાં જે પાપકર્મો હોય છે, તે કર્દમના (કીચડના) ગાઢ રંગથી ખરડાયેલા વચ્છની જેમ ગાઢીકૃત હોય છે. જેમ શણની સૂતળી વડે સોયોના સમુ-દાયને ખૂબ મજબૂતીથી બાંધી દેવામાં આવે છે, તેમ પાપરૂપ કર્મ આત્મ-પ્રદેશોની સાથે અત્યન્ત દૃઢતાથી સંબદ્ધ હોય છે, એવાં પાપકર્મોને ગાઢીકૃત પાપકર્મ કહે છે. નારક જીવોનાં પાપકર્મો એવા ગાઢીકૃત હોય છે. " ચિક-ણીકયાહં " જેવી રીતે ચીકણી માટીનો બનેલો પિંડ તેની ચીકણને કારણે

મહેતુ ? એતાવતા વિશેષણત્રયેણાપિ દુર્વિશોધ્યત્વમુક્તમ્ । અપરાધમાદ-‘ કચરે વા વત્યે સુદ્ધોયતરાણ ચેવ ’ કતારદ્ વા વ કર્દમરાગરક્તં વા, સંજનરાગરક્તં વા, સુધૌતતરકં ચેવ, સુપ્રકાશિતવતરં સ્યાત્ ? ‘ સુવામતરાણ ચેવ ’ સુવામ્પતરકં ચેવ, સુપ્રકાલ્યરુલક્ર સ્યાત્ ? ‘ સુપરિક્રમ્મતરાણ ચેવ ’ સુપરિક્રમ્મતરકં ચેવ, સુસાધ્યચિત્રલેખનમજ્જકરણાદિપ્રક્રિયં સ્યાત્ ? ઉક્તવિકલ્પાવિષયમાદ-‘ જે વા સે વત્યે કદમરાગરક્તે, જે વા સે વત્યે સંજનરાગરક્તે ? ’ યદ્ વા તદ્ વદ્યં કર્દમરાગરક્તમ્ ? યદ્વા તદ્વદ્યં સંજનરાગરક્તમ્ ? અનર્ગોમધ્યે કિમ્ દુઃશોધ્યં કિચ્ચ સુશોધ્યં મહેદિતિ મગવત આશ્રયઃ । ઉપર્યુક્તં મગવદ્વચનં શ્રુત્વા ગૌતમઃ કથયતિ ‘ મગવં તત્થ ણં જે સે વત્યે કદમરાગરક્તે ’ હે મગવન્ ! તત્ર તપોર્વદ્વયોર્મધ્યે સ્વ

સાધ્ય હો-હોગી इन तीन विशेषणों द्वारा ऐसे वस्त्र में दुर्विशोध्यता प्रकट की गई है तथा (कचरे वा वत्ये) कौनसा वस्त्र-(सुद्धोयतराण चैव) सुधौततरक होगा-जिसकी सफाई करना सरल हो-ऐसा होगा, (सुवामतराण चैव) सुवामतरक होगा-जिसमें से धब्बे आदि रूप कलङ्क सरलता से निकाला जा सके ऐसा होगा तथा (सुपरिक्रमतराण चैव) जिसमें चित्रोल्लेखन क्रिया एवं विशेष प्रकार की रचना करनेल्य क्रिया सुसाध्य हो ऐसा होगा अर्थात् (जे वा से वत्ये कदमरागक्ते, जे वा से वत्ये संजनरागक्ते) इन वस्त्रों के बीच में जो वस्त्र कर्दमराग से रक्त है और जो वस्त्र संजनराग से रक्त है, कौन सा वस्त्र दुःशोध्य होगा और कौन सा वस्त्र सुशोध्य होगा इस प्रकार से भगवान् के द्वारा पूछे गये वचन को सुन करके गौतम ने उनसे कहा-(भगवं) हे भगवन् (तत्थ णं जे से वत्ये कदमरागक्ते) इन दोनों वस्त्रों में से जो वस्त्र

વિશેષણો દ્વારા એવા વસ્ત્રમાં દુર્વિશોધ્યતા (તેની સફાઈ કરવામાં મુશ્કેલી) પ્રકટ કરી છે. તથા (કચરે વા વત્યે સુદ્ધોયતરાણ ચેવ) કયું વસ્ત્ર સુધૌતતરક હશે-એટલે કે કયા વસ્ત્રને સાફ કરવામાં સરળતા રહેશે ? “ સુવામતરાણ ચેવ ” કયા વસ્ત્રપરથી સરળતાથી ડાઘ દૂર કરી શકાશે ? “ સુપરિક્રમ્મતરાણ ચેવ ” કયા વસ્ત્ર ઉપર ચિત્રાલેખન અને વિશેષ પ્રકારની રચના કરવી સુગમ થઈ પડશે ? પ્રશ્નનો ભાવાર્થ એ છે કે “ જે વા સે વત્યે કદમરાગરક્તે, જે વા સે વત્યે સંજનરાગરક્તે ” એક વસ્ત્ર કે બે ક્રિયાક્રમથી ખરડાયેલું છે અને બીજું વસ્ત્ર કે બે પતંગ રંગથી ખરડાયેલું છે, તેમાંથી કયું વસ્ત્ર દુઃશોધ્ય (મુશ્કેલીથી સફાઈ કરી શકાય તેવું) હશે અને કયું સુશોધ્ય (સુગમતાથી સફાઈ કરી શકાય તેવું) હશે ?

व्यानि निकाचितानीत्यर्थः, एतेनापि विशेषणचतुष्टयेन नैरयिकपापानि दुर्विशो-
 ध्यानि भवन्ति, इति प्रतिपादितम्, तथा च नैरयिकाणां पापानामपि कर्मणां
 दुर्विशोधयत्वेन 'एवामेव' इत्याद्युपनयवाक्यं सुवदितं भवति। एवं च 'संपगा-
 ढं पि य णं ते वेयणं वेण्माणा णो महानिज्जरा, णो महापज्जवसाणा भवंति' तस्मात्
 हे गौतम! संपगाढामपि अत्यन्तदृढीभूतामपि च तां वेदनां वेदयमानाः अनुभवन्तः
 ते नैरयिका नो महानिर्जराः नात्यन्तविशिष्टकर्मक्षयवन्तो. नो वा महापर्यवसाना

टीका की पंक्ति द्वारा समझाई गई है—अर्थात् जिस प्रकार अग्नि में खूब
 तपा तपा कर लोहे के मुद्गर से कूट २ कर पिण्डीभूत करली जाती हैं,
 उसी प्रकार जो कर्म आपस में इस रूप से मिलकर पिण्डीभूत हो जाते
 हैं वे कर्म निकाचित खिलीभूत कहे जाते हैं। इन चार विशेषणों द्वारा
 यह समझाया गया है कि नारक जीवों के पापकर्म दुर्विशोध्य होते हैं
 इसी कारण वे मैले से मैले वस्त्रके समान यहां प्रकट किये गये हैं अतः
 (एवामेव) ऐसा जो यह उपनय वाक्य है वह सुवदित हो जाता है।
 अब आगे सूत्रकार यह प्रकट करते हैं कि नारक जीवों के पापकर्म ऐसे
 दुर्विशोध्य होते हैं—इसी कारण वे उन्हें अत्यन्तवेदनाके कारण वनते हैं
 (संपगाढं पि य णं ते वेयणं वेण्माणा णो महानिज्जरा, णो महापज्ज-
 वसाणा भवंति) हे गौतम! वे नारक जीव इसी निमित्त से अत्यन्त
 दृढीभूत भयङ्कर से भी भयङ्कर वेदना को भोगते हुए भी अत्यन्तवि-

“ अग्निसंत्तप्तलोहमुद्गरकुट्टित सूचीकलापवत् पिण्डीभूतानि भवन्ति ”
 उपर्युक्त वात ७ आ लींटीओ द्वारा समझवी छे—जेम लोढानी सोथेने
 अग्निमां पूण तपावी तपावीने तेमना पर लोढाना धणुने घा मारी मारीने
 तेमने अेक पिउइय णनानी देवामां आवे छे, अेवी ७ रीते ७े कर्मां अेक-
 मेकनी साथे मणी ७धने पिउइय णनी जय छे, अेवां कर्मेने निकाचित अथवा
 पिण्डीभूत कडेवामां आवे छे. उपर्युक्त आर विशेषणे द्वारा अे समजववामां
 आ७युं छे के नारकेनां पापकर्मां दुर्विशोध्य होय छे ते कारणे तेमने अर्डी
 मेलां मेला वस्त्र ७ेवां कहां छे. “ एवामेव ” ते पापकर्मां मलिनमां मलिन
 वस्त्रनी जेम दुर्विशोध्य होय छे. हवे सूत्रकार नीचेना सूत्रे द्वारा अे वात
 प्रकट करे छे के नारक अेवानां पापकर्मां उपर कहां प्रभाणे दुर्विशोध्य होवने
 लीधे तेमने अत्यन्त वेदना करववामां कारणभूत णने छे. (संपगाढं पि य णं
 ते वेयणं वेण्माणा णो महानिज्जरा, णो महापज्जवसाणा भवंति) हे गौतम!
 आ कारणे ते नारक अेवां अत्यन्त दृढीभूत (अयंकरमां अयंकर) वेदने

ત્વેન દ્યતયા સંવદાતિ, 'ચિક્ષણીકયાઈ' ચિક્ષણીકૃતાનિ, અત્યન્તસ્નિગ્ધતપા
 દુર્ભેદમૃત્પિણ્ડવત્ સૂક્ષ્મકર્મસ્કન્ધાનાં સરસતયા પરસ્પરં શ્વતસ્થકરણતો દુર્ભેદી-
 કૃતાનિ 'સિલિટ્ટીકયાઈ' શ્લિષ્ટીકૃતાનિ લોહમુદ્રપદ્માગ્નિતપ્ત્વોદશલાઠાકલા-
 પવત્ નિધત્તાનીત્યર્થઃ 'ચિલીભૂયાઈ' ચિલીભૂતાનિ, અગ્નિસંતપ્ત્વોદમુદ્રમરકુટિત
 સૂચીકલાપવત્ પિણ્ડીભૂતાનિ ભવન્તિ, યાનિ ભોગં વિના ઉપાયાન્તરેણ ક્ષપયિતુમશ્ન-

સે ચિક્ષનાઈ-ચિકાશકે સંબંધસે અત્યન્ત સ્નિગ્ધ હોને કે કારણ નૃતિકા
 ફા પિણ્ડ દુર્ભેદ્ય હો જાતા હૈ ડસી પ્રકાર સે જો કર્મ સૂક્ષ્મકર્મો કે રસ
 કે સાથ પરસ્પરગાઠ સંબંધ કરને કે કારણ દુર્ભેદ્ય હો જાતે હૈં વે ચિક્ષ-
 ણીકૃત પાપકર્મ કહલાતે હૈં-એસે હી ચિક્ષણીકૃત પાપકર્મ નારક જીવોં કે
 હોતે હૈ। (સિલિટ્ટીકયાઈ) જિસ પ્રકાર લોહે કે તાર સે મજબૂત બાંધ-
 ફર અગ્નિ મેં તપાર્થી ગઈં લોહે કી શલિયોં પરસ્પર ચિપક જાતી હૈ-
 ફિર વે અલગ નહીં હો સકતી હૈં, ડસી પ્રકાર સે જો કર્મ આપસ મેં
 એકમેક હો જાતે હૈં-જુદે નહીં કિયે જા સકતે હૈ-અર્થાત્ નિધત્ત હોં વે
 પાપકર્મ શ્લિષ્ટીકૃત કહલાતે હૈં-એસે શ્લિષ્ટીકૃત પાપકર્મ નારક જીવોં કે
 હોતે હૈં। (ચિલી ભૂયાઈ) જો કર્મ ભોગે વિના ઓર કિસી ઉપાય સે
 નષ્ટ ન કિયે જા સકે અર્થાત્ નિકાચિત્ત હો વે પાપકર્મ ચિલીભૂત કહ-
 લાતે હૈં એસે ચિલીભૂત પાપકર્મ નારક જીવોં કે હોતે હૈં (અગ્નિ સંતપ્ત
 લોહમુદ્રકુટિત સૂચીકલાપવત્ પિણ્ડીભૂતાનિ ભવન્તિ) યહી વાત હમ

દુર્ભેદ યની નય છે, એજ પ્રમાણે જે કર્મો સૂક્ષ્મકર્મોના રસની સાથે પરસ્પર
 ગાઠ સંબંધ થવાને કારણે દુર્ભેદ યની નય છે, એવાં કર્મોની ચીકણા પાપ-
 કર્મો કહે છે. નારક જીવોનાં પાપકર્મો એવાં ચીકણાં હોય છે.

“સિલિટ્ટીકયાઈ” જેવી રીતે લોઠાના તારથી મજબૂત બાંધીને અગ્નિમાં
 તપાવેલી લોઠાની સળીઓ એક બીજી સાથે ચોટી નય છે-અને તેમને પછી
 જીદી પાડી શકાતી નથી-એટલે કે જે પાપકર્મો નિધત્ત હોય છે તેને શ્લિષ્ટી-
 કૃત પાપકર્મો કહે છે. નારક જીવોનાં પાપકર્મો એવાં શ્લિષ્ટીકૃત હોય છે.
 “ચિલી ભૂયાઈ” જે કર્મોના લોગળ્યા વિના-બીજા કોઈ પણ ઉપાયથી નાશ
 થતો નથી, એવાં નિકાચિત્ત કર્મોને ચિલીભૂત કહે છે. નારકોનાં કર્મો એવાં
 ચિલીભૂત હોય છે.

વ્યાપિ નિકાચિતાનીત્યર્થઃ, પતેનાપિ વિશેષણચતુષ્ટયેન નૈરથિકપાપાનિ દુર્વિશો-
 ધ્યાનિ ભવન્તિ, इति प्रतिपादितम्, तथा च नैरथिकाणां पापानामपि कर्मणां
 दुर्विशोध्यत्वेन 'एवामेव' इत्याद्युपनयवाक्यं सुघटितं भवति । एवं च 'संपगा-
 ढं पि य णं ते वेयणं वेयमाणा णो महानिज्जरा, णो महापज्जवसाणा भवंति' तस्मात्
 हे गौतम ! संपगाढामपि अत्यन्तदृढीभूतामपि च तां वेदनां वेदयमानाः अनुभवन्तः
 ते नैरथिका नो महानिर्जराः नात्यन्तविशिष्टकर्मक्षयवन्तो. नो वा महापर्ववसाना

टीका की पंक्ति द्वारा समझाई गई है—अर्थात् जिस प्रकार अग्नि में खूब
 तपा तपा कर लोहे के मुद्गर से कूट २ कर पिण्डीभूत करली जाती हैं,
 उसी प्रकार जो कर्म आपस में इस रूप से मिलकर पिण्डीभूत हो जाते
 हैं वे कर्म निकाचित खिलीभूत कहे जाते हैं। इन चार विशेषणों द्वारा
 यह समझाया गया है कि नारक जीवों के पापकर्म दुर्विशोध्य होते हैं
 इसी कारण वे मैले से मैले वस्त्रके समान यहां प्रकट किये गये हैं अतः
 (एवामेव) ऐसा जो यह उपनय वाक्य है वह सुघटित हो जाता है।
 अब आगे सूत्रकार यह प्रकट करते हैं कि नारक जीवों के पापकर्म ऐसे
 दुर्विशोध्य होते हैं—इसी कारण वे उन्हें अत्यन्तवेदनाके कारण वनते हैं
 (संपगाढं पि य णं ते वेयणं वेयमाणा णो महानिज्जरा, णो महापज्ज-
 वसाणा भवंति) हे गौतम ! वे नारक जीव इसी निमित्त से अत्यन्त
 दृढीभूत भयङ्कर से भी भयङ्कर वेदना को भोगते हुए भी अत्यन्तवि-

“ अग्निसंतप्तलोहमुद्गरकुट्टित सूचीकलापवत् पिण्डीभूतानि भवन्ति ”
 ઉપયુક્ત વાત જ આ લીંટીઓ દ્વારા સમબળવી છે—જેમ લોઢાની સોયોને
 અગ્નિમાં ખૂબ તપાવી તપાવીને તેમના પર લોઢાના ઘણુનો ઘા મારી મારીને
 તેમને એક પિંડરૂપ બનાવી દેવામાં આવે છે, એવી જ રીતે જે કર્મો એક-
 એકની સાથે મળી જઈને પિંડરૂપ બની જાય છે, એવાં કર્મોને નિકાચિત અથવા
 ખિલીભૂત કહેવામાં આવે છે. ઉપયુક્ત ચાર વિશેષણો દ્વારા એ સમબળવવામાં
 આવ્યું છે કે નારકોનાં પાપકર્મો દુર્વિશોધ્ય હોય છે તે કારણે તેમને અહીં
 મેલામાં મેલા વસ્ત્ર જેવાં કહ્યાં છે. “ એવમેવ ” તે પાપકર્મો મલિનમાં મલિન
 વસ્ત્રની જેમ દુર્વિશોધ્ય હોય છે. હવે સૂત્રકાર નીચેના સૂત્રો દ્વારા એ વાત
 પ્રકટ કરે છે કે નારક જીવોનાં પાપકર્મો ઉપર કહ્યા પ્રમાણે દુર્વિશોધ્ય હોવાને
 લીધે તેમને અત્યન્ત વેદના કરાવવામાં કારણભૂત બને છે. (સંપગાઢં પિ ય ણં
 તે વેયણં વેયમાણા ણો મહાનિજ્જરા, ણો મહાપજ્જવસાણા ભવન્તિ) હે ગૌતમ !
 આ કારણે તે નારક જીવો અત્યન્ત દૃઢીભૂત (ભયંકરમાં ભયંકર) વેદનાને

ત્વેન દ્યુતયા સંવદાતિ, 'નિષ્કળીકયાઈ' નિષ્કળીકૃતાનિ, અત્યન્તરિનગ્ધતયા દુર્ભેદમૃત્પિષ્ઠવત્ સૂક્ષ્મકર્મસ્કન્ધાનાં સરસતયા પરસ્પરં દ્યુતચન્દ્યહરણતો દુર્ભેદી-કૃતાનિ 'સિલિટ્ટીકયાઈ' શ્લિટ્ટીકૃતાનિ લોહમુદ્રવદ્વાગ્નિતત્સબોદશલાકાકલા-પવત્ નિષ્કળીત્યર્થઃ 'સ્વિલીભૂયાઈ' સ્વિલીભૂતાનિ, અગ્નિસંતપ્તલોહમુદ્રગરકૃટિત સૂચીકલાપવત્ પિષ્ઠીભૂતાનિ ભવન્તિ, યાનિ મોગં વિના ઉપાયાન્તરેણ ક્ષપયિતુમશ-

સે ચિકનાઈ-ચિકાશકે સંબંધસે અત્યન્ત સ્નિગ્ધ હોને કે કારણ નૃસિકા કા પિષ્ઠ દુર્ભેદ્ય હો જાતા હૈ ડસી પ્રકાર સે જો કર્મ સૂક્ષ્મકર્મોં કે રસ કે સાથ પરસ્પરગાઢ સંબંધ કરને કે કારણ દુર્ભેદ્ય હો જાતે હૈં વે ચિક-ળીકૃત પાપકર્મ કહલાતે હૈં-એસે હી ચિકળીકૃત પાપકર્મ નારક જીવોં કે હોતે હૈં । (સિલિટ્ટીકયાઈ) જિસ પ્રકાર લોહે કે તાર સે મજબૂત બાંધ-કર અગ્નિ મેં તપાર્યોં ગઈં લોહે કી શલિયોં પરસ્પર ચિપક જાતી હૈ-ફિર વે અલગ નહીં હો સકતી હૈં, ડસી પ્રકાર સે જો કર્મ આપસ મેં ઇકમેક હો જાતે હૈં-જુદે નહીં કિયે જા સકતે હૈ-અર્થાત્ નિષ્કળ હોં વે પાપકર્મ શ્લિટ્ટીકૃત કહલાતે હૈં-એસે શ્લિટ્ટીકૃત પાપકર્મ નારક જીવોં કે હોતે હૈં । (સ્વિલી ભૂયાઈ) જો કર્મ મોગે વિના ડર કિસી ઉપાય સે નષ્ટ ન કિયે જા સકે અર્થાત્ નિકાચિત હો વે પાપકર્મ સ્વિલીભૂત કહ-લાતે હૈં એસે સ્વિલીભૂત પાપકર્મ નારક જીવોં કે હોતે હૈં (અગ્નિ સંતપ્ત લોહમુદ્રકૃટિત સૂચીકલાપવત્ પિષ્ઠીભૂતાનિ ભવન્તિ) યહી વાત હસ

દુર્ભેદ ધની બાય છે, એજ પ્રમાણે જે કર્મો સૂક્ષ્મકર્મોના રસની સાથે પરસ્પર ગાઢ સંબંધ થવાને કારણે દુર્ભેદ ધની બાય છે, એવાં કર્મોને ચીકળા પાપ-કર્મો કહે છે. નારક જીવોનાં પાપકર્મો એવાં ચીકળાં હોય છે.

“સિલિટ્ટીકયાઈ” જેવી રીતે લોઢાના તારથી મજબૂત બાંધીને અગ્નિમાં તપાવેલી લોઢાની સળીઓ એક બીજા સાથે ચોટી બાય છે-અને તેમને પછી બીજી પાડી શકાતી નથી-એટલે કે જે પાપકર્મો નિષ્કળ હોય છે તેને સિલિટ્ટી-કૃત પાપકર્મો કહે છે. નારક જીવોનાં પાપકર્મો એવાં સિલિટ્ટીકૃત હોય છે. “સ્વિલી ભૂયાઈ” જે કર્મોને લોગબ્યા વિના-બીજા કોઈ પણ ઉપાયથી નાશ થતો નથી, એવાં નિકાચિત કર્મોને સ્વિલીભૂત કહે છે. નારકોનાં કર્મો એવાં સ્વિલીભૂત હોય છે.

दृष्टान्तान्तरमाह—‘से जहा वा केइ पुरिसे अहिगरणि आउडेमाणे महया महया सहेंणं’ तद्-अथवा यथा कोऽपि पुरुषः अधिकरणीम् अधिकरणीं-लोहकारा यत्रा-योपनेन ‘हयोडा’ इति भाषाप्रसिद्धेन लोहानि आकुट्टयन्ति सा तामित्यर्थः ‘एरण’ इति प्रसिद्धाम् आकुट्टयन् महता महता अतिदीर्घेण शब्देन अयोधनवात-जन्यध्वनिना, पुरुषहुंकारेण वा, ‘महया महया घोसेणं’ महता महता घोपेण अतिभङ्ग्यरवेण प्रतिध्वनिना वा ‘महया महया परंपराघाएणं’ महता महता पर-म्पराघातेन अतिदीर्घनिरन्तरोप्युपरिघातेन ‘अधिकरणीम् आकुट्टयन्’ इति

यहां २ पर महावेदनावत्त्व हो ही क्यों कि कोई २ अयोगिकेवली ऐसे भी होते हैं जो महानिर्जरा वाले होकर भी महावेदना वाले कदाचित् नहीं भी होते हैं।

दृष्टान्त से सूत्रकार इसी पूर्वोक्त वात को समझाते हैं—(से जहा वा केइ पुरिसे अहिगरणि आउडेमाणे महया २ सहेंणं) लुहार जिस पर लोहा रखकर हथौडा से कूटना है—उसका नाम (एरण) है तो जैसे कोई पुरुष लुहार—एरण को बड़े जोर २ से हुं हुं ऐसे शब्द का उच्चारण करता हुआ कूटे अथवा—वह इस रूप से उसे कूटे कि जिससे उससे कूटने का बड़े जोर का शब्द होवे, (महया २ घोसेणं) कूटते समय उसके मुखसे ऐसा शब्द निकले कि जो बड़ा भयङ्कर हो—अथवा कूटने के शब्द की वहां प्रतिध्वनि हो रही हो इस रूप से उस एरण को वह कूटे (महया २ परंपराघाएणं) एक ही बार वह उसे नहीं कूटे

निर्जरायुक्तता होय त्यां त्यां महावेदनायुक्तता पणु होनी न् नोधये, कारणु के कोध कोध अयोगि—केवली जेवा पणु होय छे के न् महानिर्जरावाणा होवा छतां थ्यारेक महावेदनावाणा होता नथी.

इसे सूत्रकार भीलं दृष्टान्तो द्वारा पूर्वोक्त वातनुं वधारे स्पष्टीकरणु करे छे—‘से जहा वा केइ पुरिसे अहिगरणि आउडेमाणे महयार सहेंणं’ जेभके कोध पुरुष (लुहार) धणु जेरथी होंकारा अने पडकारा करतो करतो जेरणु पर धणुना प्रहार करे—अथवा तो ते जेवा जेरथी जेरणु पर डथो-डाना प्रहार करे के तेना आघातथी धणु लारे ध्वनि थतो होय, ‘महया २ घोसेणं’ आ रीते धणुने जेरणु पर प्रहार करती वणते तेना सुभमांधी जेवो ध्वनि नीकणतो होय के न् धणु लयंकर लागतो होय—अथवा जेरणु पर धणुने धा पडवाथी त्यां अवाजने प्रतिध्वनि उठतो होय जेवी रीते ते जेरणु पर धणुना धा भारतो होय ‘महयार परंपराघाएणं’ आ प्रभाणु

ભવન્તિ, સર્વથા કર્મરહિતાઃ ન ભવન્તીત્યર્થઃ । एतेन महानिर्जराया अभावस्य निर्वाणाभावस्वरूपफलं प्रतिपादितम् । एतच्च 'यो महावेदनः स महानिर्जरः' इति प्रायुक्तो नियमः विशिष्टात्मापेक्षो वेदितव्यः, नतु नैरयिकादिविलष्टकर्मजीवापेक्ष इति, एवं 'यो महानिर्जरः स महावेदनः' इति नियमोऽपि प्रायिको बोध्यः, अयोगिकेवलिनी महानिर्जरत्वेऽपि महावेदनत्वस्य अनेकान्वितकत्वात् अयोगिकेवली महानिर्जरो भवत्येव, महावेदनस्तु कदाचित् स्थात्, कदाचित् नापिरयादिति भावः ।

શિષ્ટ કર્મક્ષયરૂપ નિર્જરાવાણે નહીં હોતે હું ઓર ન સર્વથા કર્મ સે હી રહિત હોતે હું । इससे सूत्रकार ने यह प्रकट किया है कि जब उनमें महानिर्जरा का ही अभाव रहता है तब इस महानिर्जरा के अभाव का फल तो निर्वाणोभाव (नोक्ष का अभाव) है वह उनमें है ही यह स्पष्ट है अतः इस कथन से सूत्रकार ने यह प्रमाणित किया है कि (यो महावेदनः स महानिर्जरः) यह जो पहिले कहा गया है " जो महावेदनावाला होता है वह महानिर्जरावाला होता है " सो यह कथन विशिष्ट आत्मा की अपेक्षा से कहा गया ही जानना चाहिये । क्लिष्ट कर्मवाले नारक जीवों की अपेक्षा से नहीं । इसी तरह से " जो महानिर्जरावाला होता है वह महावेदनावाला होता है " यह कथन भी-नियम भी प्रायिक जानना चाहिये क्यों कि अयोगि केवली जो होते हैं वे महानिर्जरावाले होकर भी महावेदनावाले नहीं भी होते हैं । तात्पर्य कहने का यह है कि ऐसा नियम नहीं बन सकता है कि जहां २ पर महानिर्जरात्व हो

લોગવવા છતાં પણ વિશિષ્ટ કર્મક્ષયરૂપ નિર્જરાવાળા હોતા નથી, અને તેઓ કર્મથી સર્વથા રહિત હોતા નથી. આ સૂત્ર દ્વારા સૂત્રકારે એ વાત પ્રકટ કરી છે કે નારકોમાં મહાનિર્જરાનો અભાવ હોય છે, તે કારણે મહાનિર્જરાના ક્ષણ સ્વરૂપ નિવૌણુનો પણ અભાવ હોય છે. સૂત્રકારે આ કથન દ્વારા એ સિદ્ધાન્તનું પ્રતિપાદન કર્યું છે કે " યો મહાવેદનઃ સ મહાનિર્જરઃ " જે મહાવેદનાવાળો હોય છે તે મહાનિર્જરાવાળો હોય છે. એવું જે પહેલા કહેવામાં આવ્યું છે તે વિશિષ્ટ આત્માને અનુલક્ષીને જ કહેવામાં આવ્યું છે, ક્લિષ્ટ કર્મોવાળા નારકાદિ જીવોને આ કથન લાગુ પડતું નથી. એજ પ્રમાણે " જે મહાનિર્જરાવાળો હોય છે, તે મહાવેદનાવાળો હોય છે. "

આ કથન પણ પ્રાયિક સામાન્યતઃ સમજવું, કારણ કે અયોગિકેવલી મહાનિર્જરાવાળા હોવા છતાં પણ મહાવેદનાવાળા નથી-પણ હોતા. કહેવાનું તાત્પર્ય એ છે કે એવો કોઈ નિયમ સંભવી શકતો નથી કે ન્યાં ન્યાં મહા-

લિલીભૂતાનિ ભવન્તિ, સંપગાઠામપિ ચ તાં તે વેદનાં વેદયમાના નો મહાનિર્જરાઃ
 નો વા મહાપર્યવસાના ભવન્તિ । તથા ચાત્રાપિ ‘ ગાઢીકૃતાનિ ’ ઇત્યાદિવિશેષ-
 ણચતુષ્ટયેન દુષ્પરિશાટનીયાનિ ભવન્તિ, ઇતિ પ્રતિપાદિતમ્ ।

અથ સ્વંજનરાગરક્તવસ્ત્રવિપયે પૃષ્ઠો ગૌતમ આહ-‘ ભયવં ! તત્થ જે સે વત્થે
 સ્વંજનરાગરક્તે સે ણં વત્થે સુધોયતરાણ ચેવ, સુવામતરાણ ચેવ, સુપરિકમ્મતરાણ
 ચેવ ’ હે ભદન્ત ! તત્થ તયોઃ કર્દમરાગરક્તસ્વંજનરાગરક્તયોઃ વસ્ત્રયોર્મધ્યે યત્
 તદ્ વસ્ત્રં સ્વંજનરાગરક્તં પતંગરાગેણ રજિતં તદ્ વસ્ત્રં સુધૌતતરકં ચૈવ સુપક્ષાલિતવરં
 સ્પાત્, સુવામ્પતરકંચૈવ સુત્યાજ્યકલકું સ્પાત્, ‘ સુપરિકર્મતરં ચૈવ-અનાયાસચિ-

(દૃઢતા સે આત્મા મેં લગે હુણ) હોતે હેં તથા ઇસી કારણ જો નારક
 જીવ ભયદૂરસે મી ભયદૂર વેદનાકો ભોગા કરતે હેં-એસે વે નારક જીવ
 મહાનિર્જરાચાલે નહોં હોતે હેં ઓર ન મહાપર્યવસાનવાલે હી હોતે હેં ।
 યહાં પર “ ગાઢીકૃતાનિ ” આદિ ચાર વિશેષણોં દ્વારા યહ સમજાયા
 ગયા હેં કિ ડન નારક જીવોં કે પાપકર્મ દુષ્પરિશાટનીય હોતે હેં ।

અવ સ્વંજનરાગસે રક્ત દ્રુણ વસ્ત્રકે વિપયમેં પ્રભુ દ્વારા પૂછે ગયે ગૌતમ
 ને ડનસે કહા-(ભયવં ! તત્થ જે સે વત્થે સ્વંજનરાગરક્તે સે ણં વત્થં સુધો-
 યતરાણ ચેવ, સુવામતરાણ ચેવ સુપરિકમ્મતરાણ ચેવ) હે ભગવન્ ! જો વસ્ત્ર
 સ્વંજનરાગ સે-પતંગરાગ સે રંગા હુઆ હોતા હે અર્થાત્-કર્દમરાગ ઓર
 પતંગરાગ સે રંગે હુણ વસ્ત્રોં કે વીચ મેં જો પતંગરાગ સે રંગા ગયા વસ્ત્ર
 હે-વહ સુધૌતતરક હોતા હેં-અચ્છીતરહ સે ઘોષો જા સકે એસા હોતા

(દેઠ રૂપે આત્મામાં લાગેલા) હોય છે, અને જે પાપકર્મોને કારણે નારક
 જીવો ભયંકરમાં ભયંકર વેદનાને ભોગવતા હોય છે, એવા તે નારક જીવો
 મહાનિર્જરાવાળા અને મહાપર્યવસાનવાળા (કર્મોને સદંતર ક્ષય કરનારા)
 હોતા નથી. સૂત્રમાં વપરાયેલાં “ ગાઢીકૃત ” આદિ ચાર વિશેષણો દ્વારા એ
 સમજાવવામાં આવેલ છે કે તે નારક જીવોનાં પાપકર્મો દુષ્પરિશાટનીય (જેનો
 ક્ષય મહા સુશ્કેલીએ કરી શકાય તેવાં) હોય છે.

ખંજનરાગથી રક્ત એવા વસ્ત્રના વિપયમાં જે પ્રશ્ન મહાવીર પ્રભુ દ્વારા
 પૂછવામાં આવ્યો હતો. તેના જવાબરૂપે ગૌતમ સ્વામી કહે છે-(ભયવં !
 તત્થ જે સે વત્થે સ્વંજનરાગરક્તે સે ણં વત્થં સુધોયતરાણ ચેવ, સુવામતરાણ ચેવ,
 સુપરિકમ્મતરાણ ચેવ) હે પ્રભો, જે વસ્ત્રને ખંજનરાગથી (પતંગરાગથી)
 રંગેલું હોય છે-એટલે કે કર્દમરાગ (ક્રીચક) અને પતંગરાગથી રંગેલા
 વસ્ત્રોમાંથી જે વસ્ત્ર પતંગરાગથી રંગેલું હોય છે તે સુધૌતતરક (સુગમતાથી

પૂર્વેણ સમ્બન્ધઃ 'જો સંચાણ્દ તીસે અહિગરણીણ્ કેઈ અહાવાયરે પોગણ્ણે પરિસાહિત્તણ્' નો શ્વનોતિ નો પારયતિ, તસ્યા અધિકરણ્યાઃ કાનપિ યથાવાદ-
રાન્ યથાસ્થૂલાન્ પુદ્ગલાન્ પરિસાટયિતું પૃથગત્ત્વમ્ અધિકરણ્યાઃ સ્થૂલાન્ પુદ્ગલાન્
લોહકણ્ણરૂપાન્ પૃથક્કૃત્વા ધ્યંસપિતું સમર્થાં ન ભવતીતિ ભાવઃ । એતદેવ મગવાન્
દાર્પાન્તિક્કે યોજયતિ-‘એવામેવ ગોયમા । નેરહ્યાણં પાવાઈં કમ્માઈં ગાઢીકયાઈં’
હે ગૌતમ ! એવમેવ મહતા આઘાતેન પરિહન્યમાનાયા અપિ અધિકરણ્યાઃ સ્થૂલપુદ્-
ગલ્લવદેવ નૈરયિક્કણાં પાપાનિ કર્માણિ ગાઢીકૃતાનિ ઇદતપા અત્તમપ્રદેસીઃ સહ સં-
વદ્ધાનિ યાવત્-ચિક્કણીકૃતાનિ અતિસ્નિગ્ધતામાપાદિતાનિ, શ્લિષ્ટીકૃતાનિ,

કિન્તુ લગાતાર વહ ઉસે કૂટતા જાવે તૌ મ્હી વહ (જો સંચાણ્દ તીસે અહિ-
ગરણીણ્ કેઈ અહાવાયરે પોગણ્ણે પરિસાહિત્તણ્) હસ સ્થિતિ મેં ઉસ
પ્રણ કે યથાવાદર પુદ્ગલોં કો-લોહ કે કળોં કો-ઉસસે અલગ કરકે
નષ્ટ કરને કે લિયે સમર્થ નહાં હોતા હૈ, (એવામેવ ગોયમા) હસી તરહ
સે હે ગૌતમ ! (નેરહ્યાણં પાવાઈં કમ્માઈં) નારક જીવોં કે જો પાપરૂપ
કર્મ હોતે હેં વે (ગાઢીકયાઈં જાવ જો પજ્જવસાણાઈં ભવંતિ) ગાઢીકૃત
હોતે હેં યાવત્ વે નારક જીવ મહાપર્યવસાનવાલે નહીં હોતે હેં-અર્થાત્
કહને કા તાત્પર્ય એસા હૈ કિ જિસ પ્રકાર સે વડેભારી આઘાતોં દારા
વાર ૨ કૂટે જાને પર મ્હી પ્રણ કે સ્થૂલ પુદ્ગલ ઉસસે પૃથક્ક હોકર નષ્ટ
નહીં કિયે જા સકતે હૈ, ઉસી પ્રકાર સે નૈરયિક જીવોં કે પાપકર્મ મ્હી
જો કિ આત્મપ્રદેશોં કે સાથ ગાઢતરરૂપ સે સંબદ્ધ હોતે હેં, યાવત્-ચિક્ક-
ણીકૃત-અતિસ્નિગ્ધતા કો લિયે હુપ હોતે હેં શ્લિષ્ટીકૃત એવં ક્વિલીભૂત

લગાતાર એરણુ પર નેરથી ધા મારવા છતાં પણ (જો સંચાણ્દ તીસે અહિ-
ગરણીણ્ કેઈ અહાવાયરે પોગણ્ણે પરિસાહિત્તણ્) તે એરણુના સ્થૂલ પુદ્ગલોને
(લોઢાના કહોને) તેનાથી અલગ પાડીને તેમનો નાશ કરવાને તે શક્તિમાન
થતો ગથી. “ એવામેવ ગોયમા ” હે ગૌતમ ! એજ પ્રમાણે “ નેરહ્યાણં પાવાઈં
કમ્માઈં ” નારક જીવોનાં જે પાપરૂપ કર્મો હોય છે “ ગાઢીકયાઈં જાવ જો
પજ્જવસાણાઈં ભવંતિ ” તે ગાઢીકૃત હોય છે, તેથી તે નારક જીવો મહાપર્યવ-
સાનવાળા (કર્મોનો સર્વથા નાશ કરનારા) હોતા નથી. કહેવાનું તાત્પર્ય એ છે
કે જેવી રીતે એરણુ ઉપર ઘણું વડે ઘણું નેરથી વારંવાર ધા મારવા છતાં
એરણુનાં સ્થૂલ પુદ્ગલોને એરણુમાંથી અલગ પાડીને તેમનો નાશ કરી શકાતો
નથી, એવી જ રીતે નારક જીવોનાં પાપકર્મો કે જે આત્મપ્રદેશોની સાથે દં-
તર રૂપે સંબદ્ધ હોય છે, જે ચીકણું હોય છે, જે એકમેકની સાથે શ્લિષ્ટી-
કૃત (સબ્બડ રીતે ચાંટેલા) હોય છે અને જે નિકાચિત અથવા ક્વિલીભૂત

खिलीभूतानि भवन्ति, संगगाढामपि च तां ते वेदनां वेद्यमाना नो महानिर्जराः
नो वा महापर्यवसाना भवन्ति । तथा चात्रापि ' गाढीकृतानि ' इत्यादिविशेष-
णचतुष्टयेन दुष्परिशाटनीयानि भवन्ति, इति प्रतिपादितम् ।

अथ खंजनरागरक्तवह्निविषये पृष्ठो गौतम आह- ' भयवं ! तत्थ जे से वत्थे
खंजणरागरत्ते से णं वत्थे सुधोयतराए चैव, सुवामतराए चैव, सुपरिकम्मतराए
चैव ' हे भदन्त । तत्र तयोः कर्दमरागरक्तखंजनरागरक्तयोः वस्त्रयोर्मध्ये यत्
तद् वस्त्रं खंजनरागरक्तं पतङ्गरागेण रज्जितं तद् वस्त्रं सुधौततरकं चैव सुप्रक्षालिततरं
स्यात्, सुवाम्यतरकंचैव सुत्याज्यकलङ्कं स्यात्, ' सुपरिकर्मतरं चैव-अनायासचि-

(दृढ़ता से आत्मा में लगे हुए) होते हैं तथा इसी कारण जो नारक
जीव भयङ्करसे भी भयङ्कर वेदनाको भोगा करते हैं-ऐसे वे नारक जीव
महानिर्जरावाले नहीं होते हैं और न महापर्यवसानवाले ही होते हैं ।
यहां पर " गाढीकृतानि " आदि चार विशेषणों द्वारा यह समझाया
गया है कि उन नारक जीवों के पापकर्म दुष्परिशाटनीय होते हैं ।

अथ खंजनरागसे रक्त द्रष्टुं वस्त्रके विषयमें प्रभु द्वारा पूछे गये गौतम
ने उनसे कहा-(भयवं ! तत्थ जे से वत्थे खंजणरागरत्ते से णं वत्थं सुधो-
यतराए चैव, सुवामतराए चैव सुपरिकम्मतराए चैव) हे भगवन् ! जो वस्त्र
खंजनराग से-पतङ्गराग से रंगा हुआ होता है अर्थात्-कर्दमराग और
पतंगराग से रंगे हुए वस्त्रों के बीच में जो पतंगराग से रंगा गया वस्त्र
है-वह सुधौततरक होता है-अच्छीतरह से धोया जा सके ऐसा होता

(દઢ રૂપે આત્મામાં લાગેલા) હોય છે, અને જે પાપકર્મોને કારણે નારક
જીવો ભયંકરમાં ભયંકર વેદનાને ભોગવતા હોય છે, એવા તે નારક જીવો
મહાનિર્જરાવાળા અને મહાપર્યવસાનવાળા (કર્મોનો સદંતર ક્ષય કરનારા)
હોતા નથી. સૂત્રમાં વપરાયેલાં " ગાઢીકૃત " આદિ ચાર વિશેષણો દ્વારા એ
સમજાવવામાં આવેલ છે કે તે નારક જીવોનાં પાપકર્મો દુષ્પરિશાટનીય (જેનો
ક્ષય મહા મુશ્કેલીએ કરી શકાય તેવાં) હોય છે.

ખંજનરાગથી રક્ત એવા વસ્ત્રના વિષયમાં જે પ્રશ્ન મહાવીર પ્રભુ દ્વારા
પૂછવામાં આવ્યો હતો. તેના જવાબરૂપે ગૌતમ સ્વામી કહે છે-(ભયવં !
તથ જે સે વત્થે खंजणरागरत्ते से णं वत्थं सुधोयतराए चैव, सुवामतराए चैव,
सुपरिकम्मतराए चैव) हे प्रभो, જે વસ્ત્રને ખંજનરાગથી (પતંગરાગથી)
રંગેલું હોય છે-એટલે કે કર્દમરાગ (કીચક) અને પતંગરાગથી રંગેલા
વસ્ત્રોમાંથી જે વસ્ત્ર પતંગરાગથી રંગેલું હોય છે તે સુધૌતતરક (સુગમતાથી

ત્રોલ્લેખન-મજ્જકરણાદિમક્રિયં સ્યાત્ । एवं गौतमेन कथितं सति भगवान् पतं दृष्टान्तं दाष्टान्तिके योजयति-’ एवामेव गोयमा ! समणाणं निर्गंधाणं अहावायराइं कम्माइं सिद्धिलीकयाइं, निद्वियाइं कयाइं, विप्परिणामियाइं खिप्पामेव विद्वत्थाइं भवंति’ हे गौतम ! एवमेव खंजनरागस्वरस्य सुपशाळनीयत्वादिवदेव श्रमणानां निर्ग्रन्थनाम् यथावादराणि स्थूलतरस्करुभानि स्थूलप्रकाराणि असाराणि कर्माणि शिथिलीकृतानि श्लथत्वमापादितानि भवन्ति, निष्ठितानि कृतानि. निःसत्तकानि

हे, सुवाम्यतरक-ध्वं च गौरह् जिसके अच्छी तरह से धोये जा सकें ऐसा होता है और सुपरिकर्मतरक अनायास जिसमें चित्रोल्लेखन और रचना करने रूप आदि क्रियाएँ की जा सकें ऐसा होता है ऐसा जब गौतम ने कहा-तो इसी दृष्टान्त को दाष्टान्त में योजित करते हुए प्रभु ने उन्हें समझाया-(एवामेव गोयमा) इसी तरह से हे गौतम ! (समणाणं निर्गंधाणं अहावायराइं कम्माइं सिद्धिलीकयाइं निद्वियाइं कयाइं विप्परिणामियाइं खिप्पामेव विद्वत्थाइं भवंति) श्रमण निर्ग्रन्थों के जो यथावादा कर्म होते हैं, वे शिथिलीकृत होते हैं, निष्ठित होते हैं और विपरिणामित होते हैं-इसी कारण वे शीघ्र ही विध्वस्त हो जाते हैं- तात्पर्य कहने का यह है कि श्रमण निर्ग्रन्थों की आत्मा सम्यग्दर्शन से वासित रहा करती है इस कारण उनके कर्म जैसे मिथ्यादृष्टियों की आत्मा में गाढरूप आदि विशेषणों से विशिष्ट होते हैं वैसे वे यहाँ नहीं होते हैं-यहाँ तो वे खंजनराग से रंगे हुए वस्त्र की तरह शिथिल आदि विशेषणों वाले होते हैं-जैसे खंजन (पतंग) रंग से रंगे हुए वस्त्र

પોઈ શકાય એવું) હોય છે, સુવામ્યતરક (સુગમતાથી ઊધ ઢૂર કરી શકાય તેવું) હોય છે, અને સુપરિકર્મતરક (સરળતાથી ચિત્રાલેખન, વિશિષ્ટ રચના આદિ કરી શકાય તેવું) હોય છે. હવે આ દૃષ્ટાન્તને આધારે શ્રમણુ નિર્ગંથોના કર્મોને પણ ખંજનરાગથી રંગેલા વસ્ત્રની જેમ સુવિશેષ્ય બતાવવાને માટે મહાવીર પ્રભુ કહે છે-“ એવમેવ ગોયમા ! ” એજ પ્રમાણે હે ગૌતમ ! (સમણાણં નિર્ગંધાણં અહાવાયરાઈં કમ્માઈં સિદ્ધિલીકયાઈં, નિદ્વિયાઈં કયાઈં, વિપ્પરિણામિયાઈં ક્ષિપ્પામેવ વિદ્વત્થાઈં ભવંતિ) શ્રમણુ નિર્ગંથોનાં જે સ્થૂલ કર્મો હોય છે, તે શિથિલીકૃત હોય છે, નિષ્ઠિત-દૃઢ હોય છે, તે અરણ્યે તેમનો જલ્દી નાશ થઈ જાય છે. કહેવાનું તાત્પર્ય એ છે કે શ્રમણુ નિર્ગંથોના આત્મા સમ્યગ્દર્શનથી યુક્ત હોય છે. તેથી તેમનાં કર્મ મિથ્યાદૃષ્ટિઓની જેમ આત્માની સાથે ગાઢીકૃત (દૃઢ રૂપે અંબદ) હોતાં નથી. પણ તેમના કર્મો તો ખંજન

વિદિતાનિ વિપરિણામિતાનિ સ્થિતિઘાત-રસઘાતાદિભિઃ વિપરિણામં પ્રાપિતાનિ, સિમમેવ સ્પટિત્યેવ વિઘ્વસ્તાનિ ભવન્તિ, एतैश्च विशेषणैः सुविशोध्यानि, इत्युक्तम् । શ્રમણાનાં મહાવેદનત્વાડલ્પવેદનત્વે આદિ-‘ જાવડ્યં તાવડ્યંપિ તે વેયણં વેણ-માણા મહાનિજ્જરા, મહાપજ્જવસાણા ભવંતિ ’ તે શ્રમણનિર્ગ્રન્થ્યાઃ યાવતિકાં તાવ-તિકામપિ યાવત્તાવત્પરિમિતામપિ અલ્પાં વર્ધાં વા વેદનાં વેદ્યમાનાઃ મહાનિર્જરાઃ, મહાપર્યવસાનાશ્ચ ભવન્તિ સર્વકર્મણાં ક્ષપિતત્વેન મહાનિર્જરત્વાપાદનેન સકલકર્મ-

મેં સે ઉસકા રંગ યદ્દુત હી જલ્દી ધોને પર નિકલ જાતા હૈ ક્યોં કિ ઉસકે પ્રદેશોં મેં અત્યન્તરૂપ સે સંસક્ત નહીં હોતા, ઉસી પ્રકાર વે કર્મ મ્હી સમ્યગ્દર્શન કે પ્રભાવ સે સ્થિતિઘાત, રસઘાત આદિ રૂપ સે વિપરિણામ કો વહાં પ્રાપ્ત હોતે રહતે હૈં-અતઃ વે સત્તા સે રહિત બનકર શીઘ્ર હી કટે હુણ વૃક્ષ કી તરહ આત્મા સે પૃથક્ હો જાતે હૈં । इन विशेषणों द्वारा सूत्रकार ने यही प्रकट किया है कि जो ऐसे असारूप कर्म होते हैं वे सुविशोध्य होते हैं । इसी कारण वे श्रमण निर्ग्रन्थ (जावड्यं तावड्यं पि ते वेषणं वेणमाणा महानिज्जरा महापज्जवसाणा भवन्ति) थोड़ी यद्दुत किसी भी प्रकार की चाहे वेदना को भोग रहे हो तब भी महानिर्जरावाले और महापर्यवसानवाले होते हैं-तात्पर्य कहने का यह है कि सम्यग्दर्शन के हो जाने पर पदार्थ का यथार्थ बोध उनकी आत्मा में हो जाता है-अतः वे अल्प वा महावेदना को भोगते हुए भी उस अवस्था में रागद्वेषरूप कलुषित परिणामवाले नहीं बनते हैं-क्यों कि उन्हें यह

રાગથી રંગેલા વસ્ત્રની જેમ શિથિલ આદિ વિશેષણોવાળાં હોય છે. જેવી રીતે ખંજનરાગથી રંગેલા વસ્ત્રને ઘોતાની સાથે જ તેનો રંગ સુગમતાથી દૂર કરી શકાય છે, કારણ કે તે રંગ તેના પ્રદેશોમાં અધિક રૂપે સંસક્ત હોતો નથી, એજ પ્રમાણે શ્રમણ નિર્ગ્રન્થોના કર્મ પણ સમ્યગ્દર્શનના પ્રભાવથી સ્થિતિઘાત, રસઘાત આદિરૂપે વિપરિણામને પ્રાપ્ત કરતાં રહે છે તે કારણે તે કર્મો સત્તાથી રહિત બનીને જલ્દીથી કપાયેલા વૃક્ષની જેમ આત્માથી અલગ થઈ નત્ય છે. આ વિશેષણો દ્વારા સૂત્રકારે એજ વાત પ્રકટ કરી છે કે તેમનાં તે શિથિલી-કૃત કર્મો સુવિશોધ્ય હોય છે.

એજ કારણે શ્રમણ નિર્ગ્રન્થ (જાવડ્યં તાવડ્યં પિ તે વેયણં વેણમાણા મહાનિજ્જરા મહાપજ્જવસાણા ભવંતિ) ઓછી કે વધારે, ગમે તે પ્રકારની વેદનાને ભોગવતા હોય છતાં પણ મહાનિર્જરાવાળા અને મહાપર્યવસાનવાળા

क्षयन्तो भवन्तीति भावः । तदेव दृष्टान्तद्वारा दृश्यति— 'सं जहानामए केइ पुरिसे सुक्कं तणहत्थयं जायतेयंसि पविस्सवेज्जा ' हे गौतम ! तत्-अथ यथा नाम कोऽपि पुरुषः शुष्कं तृणहस्तकं घासपूतकं जाततेजसि अग्नीं प्रक्षिपेत्, 'से

यथार्थरूप से ज्ञात होने लग जाता है कि यह जो कूट हो रहा है वह ऐसा ही होना था सो हो रहा है—मेरे हर्षचिपोद करने से यह कमती पड़ती नहीं हो सकता है—ऐसा करने से तो उल्टा कर्म का ही आगामी बंध होगा अतः मध्यस्थ भाव रखकर वे उस आपतित थोड़ी चाहे बहुत भी वेदना को समताभाव से भोगते रहते हैं । उनकी आत्मा में यह दृढश्रद्धा जमी रहती है कि (अनहोनी कोई घात होती नहीं है और जो होती है वह (होने लायक) इसलिये होती है—अतः ऐसी स्थिति में अधीर बनना यह कथमपि उचित नहीं है इस तरह के दृढ साहस के साथ रागद्वेष रहित समताभाव धारण करने से आत्मा में नवीन कर्मों का बंध होता नहीं है और जो संचित कर्म होते हैं, उनकी निर्जरा होते रहने से अन्त में वे सर्व कर्मों से विप्रमुक्त होते हैं । इसी घात को सूत्रकार दृष्टान्त द्वारा पुष्ट करने के निमित्त गौतम से (सं जहा नामए केइ

(कर्मोना सर्वथा अन्त करनारा) डोय छे. कडिवानुं तात्पर्यं अे छे के सम्यग्दर्शननी प्राप्ति थर्ध गया पछी तेमने पदार्थानुं यथार्थं ज्ञान प्राप्त थर्ध शकतुं डोय छे, ते कारणे अद्वय अथवा भडावेदनानुं वेदन करवा छतां पणु तेअो अे परिस्थितिमां रागद्वेष इप कलुषित परिणामवाणा जनता नथी, कारणु के तेमने ते यथार्थं इपे समज्जवा लागे छे के ले जनवानुं छतुं अेज्ज अनी रहुं छे. भासा द्वारा डुषं अथवा शोक करवाथी तेमां कंथं पणु इरक पडी शकै तेम नथी. अेम करवाथी उडटा कर्मोना वधु अंध अंधाशे. ते कारणे तअो तेमना पर आवी पडेल दुःअने अथवा थोडी के वधारे वेदनाने समतालावे सहन कर्या करे छे. अेमना आत्मांमां अेवी पाडी श्रद्धा अंधायेवी रहे छे के " न जनवा लायक कोय वात जनती नथी अने ले कंथं अने छे ते जनवाने लायक डोवाथी ज्ज अन्या करे छे " ते अेवी परिस्थितिमां अकणार्धं ज्जुं अथवा समतावृत्तिना इत्याग करवा ते णिलकुल उचित नथी. आ प्रकारने रागद्वेष रहितने समतालाव रागवाथी आत्मांमां नवीन कर्मोना अंध थतो नथी अने संचित कर्मोनी निर्जरा थती रहे छे अने अन्ते अेवो एव समस्त कर्मोना निर्जरा भोक्ष पावी शकै छे.

पूर्णं गोयमा ! से सुषके तणहत्थए जायतेयंसि पक्खित्ते समाणे खिप्पामेव मस-
 मसा विज्जइ ?' हे गौतम ! तत् नूनं निश्चयेन स शुष्कः तृणहस्तकः यासपूलकः
 ज्ञातवज्ञसि अग्नी प्रक्षिप्तः सन् क्षिप्रमेव द्युटित्येव मसमसाप्यते ? दहते भस्मी
 भवति खलु ? । गौतमः स्वीकरोति—' हंता, मसमसाविज्जइ ' हे भदन्त ! इन्त,
 सत्यम् मसमसाप्यते, सद्य एव दग्धो भवति । तमेव भगवान् दार्ष्टान्तिके योज-
 यति - ' एवामेव गोयमा ! समणाणं निर्गंधाणं : अहावायराइं कम्माइं, जाव-
 पज्जवसाणा भवंति ' हे गौतम ! एवमेव अग्निप्रक्षिप्तशुष्कतृणपूलकवदेव श्रम-
 णानां निर्ग्रन्थानां यथावादराणि यावत्-शिथिलीकृतानि निष्ठितानि कृतानि,
 विपरिणामितानि क्षिप्रमेव विध्वस्तानि भवन्ति, यावत् तावत्परिमितामपि वेदनां
 वेद्यमाना निर्ग्रन्थाः श्रमणाः महानिर्जराः महापर्यवसाना भवन्तीत्याशयः ।

पुरिसे सुष्कं तणहत्थयं जायतेयंसि पक्खियेज्जा) ऐसा कह रहे हैं कि-
 हे गौतम ! जैसे कोई एक पुरुष शुष्क घास के पूले को धधकती हुई
 अग्नि में डालता है-तो (से पूर्णं गोयमा ! से सुष्के तणहत्थए जायते-
 यंसि पक्खित्ते समाणे खिप्पामेव मसमसाविज्जइ) हे गौतम ! क्या वह
 शुष्क घास का पूला देखते २ उस धधकती हुई ज्वाला में जल नहीं
 जाता है क्या ? (हंता मसमसाविज्जइ) हां, भदन्त ! जल जाता है तो
 (एवामेव गोयमा) इसी तरह से हे गौतम ! (समणाणं निर्गंधाणं)
 श्रमण निर्ग्रन्थों के (अहावायराइं कम्माइं) यथावादा-असार कर्म
 (जाव पज्जवसाणा भवंति) यावत् शिथिलीकृत, निष्ठित, एवं विपरि-
 णामित होकर शीघ्र ही विध्वस्त हो जाते हैं वे चाहे थोड़ी या बहुत
 कैसे ही वेदना क्यों न भोगें अन्त में महानिर्जरावाले बनकर वे समस्त
 कर्मों को नष्ट कर देते हैं ।

इये सूत्रकार ऐञ् वातनी दृष्टांती द्वारा पुष्टि करे छे—“ से जहा नामए
 केइ पुरिसे सुष्कं तणहत्थयं जायतेयंसि पक्खियेज्जा ” हे गौतम ! केछ पुत्र्य
 सूका घासना पूजाने प्रवृत्तित अग्निभां नापे तो “ से पूर्णं गोयमा ! से
 सुष्के तणहत्थए जायतेयंसि पक्खित्ते समाणे खिप्पामेव मसमसाविज्जइ ” हे
 गौतम ! शुं ते सूका घासना पूजा जेतज्जेताभां ते प्रवृत्तित आगभां णणी
 जेतो नथी ? “ हंता मसमसाविज्जइ ” हा, प्रसे ! ते जइर णणी नथ छे.
 “ एवामेव गोयमा ! ” हे गौतम ! ऐञ् प्रभाञ्जे “ समणाणं निर्गंधाणं ”
 श्रमणु निर्ग्रन्थाना “ अहावायराइं कम्माइं ” असार कर्म “ जाव पज्जवसाणा
 भवति ” शिथिलीकृत, निष्ठित अने विपरिष्णामित थधने जेदी नष्ट थध नथ
 छे. लदे तेज्जे थोडी वेदना लोभवता डाय के वधारे वेदना लोभवता डाय,
 पञ्च अते महानिर्जरावाणा णनीने समस्त कर्मोने क्षय करी नापे छे.

ક્ષયન્તો ભવન્તીતિ ભાવઃ । તદેવ દૃષ્ટાન્તદ્વારા દૃષ્ટયતિ-’ સે જહાનામણ કેઈ પુરિસે સુવકં તળહત્યયં જાયતેયંસિ પવિત્રવેજ્ઞા ’ હે ગૌતમ ! તત્-અથ યથા નામ કોડપિ પુરુષઃ શુષ્કં તળહસ્તકં ઘાતપૂરકં જાતતેજસિ અન્ની પશિષેન્, ‘ સે

યથાર્થરૂપ સે જ્ઞાત હોને લગ જાતા હૈ કિ યહ જો કૃષ્ટ હો રહ્યા હૈ વહ એસો હી હોના ધા સો હો રહ્યા હૈ-મેરં હર્ષાવિષાદ કરને સે યહ કમતી યદતી નહીં હો સક્તા હૈ-એસા કરને સે તો ઉલ્ટા કર્મ કા હી આગામી બંધ હોગા અતઃ મધ્યસ્થ ભાવ રાખકર વે ઉસ આપતિત થોડી જાહે યદુત બી વેદના કો સમતાભાવ સે ભોગતે રહતે હું । ડનકી આત્મા મેં યહ દૃઢશ્રદ્ધા જમી રહતી હૈ કિ (અનહોની કોઈ ઘાત હોતી નહીં હૈ ઓર જો હોતી હૈ વહ (હોને લાયક) હસલિયે હોતી હૈ-અતઃ એસી સ્થિતિ મેં અધીર બનના યહ કયમપિ ઉચિત નહીં હૈ હસ તરહ કે દૃઢ સાહસ કે સાથ રાગદ્વેષ રહિત સમતાભાવ ધારણ કરને સે આત્મા મેં નવીન કર્મોં કા બંધ હોતા નહીં હૈ ઓર જો સંચિત કર્મ હોતે હું, ડનકી નિર્જરા હોતે રહને સે અન્ત મેં વે સર્વ કર્મોં સે વિપ્રમુક્ત હોતે હું । હસી ઘાત કો સૂત્ર-કાર દૃષ્ટાન્ત દ્વારા પુષ્ટ કરને કે નિમિત્તા ગૌતમ સે (સે જહા નોમણ કેઈ

(કર્મોના સર્વથા અન્ત કરનારા) હોય છે. કહેવાનું તાત્પર્ય એ છે કે સમ્ય-જ્ઞાનની પ્રાપ્તિ થઈ ગયા પછી તેમને પદાર્થનું યથાર્થ જ્ઞાન પ્રાપ્ત થઈ શકતું હોય છે, તે કારણે અલ્પ અથવા મહાવેદનાનું વેદન કરવા છતાં પણ તેઓ એ પરિસ્થિતિમાં રાગદ્વેષ રૂપ કલુષિત પરિણામવાળા બનતા નથી, કારણ કે તેમને તે યથાર્થ રૂપે સમજવા લાગે છે કે જે બનવાનું હતું એજ બની રહ્યું છે. મારા દ્વારા હવે અથવા શોક કરવાથી તેમાં કંઈ પણ ફરક પડી શકે તેમ નથી. એમ કરવાથી ઉલ્ટા કર્મનેા વધુ બંધ બંધાશે. તે કારણે તેઓ તેમના પર આવી પડેલ દુઃખને અથવા થોડી કે વધારે વેદનાને સમતાભાવે સહન કર્યા કરે છે. એમના આત્મામાં એવી પાકી શ્રદ્ધા બંધાયેલી રહે છે કે “ ન બનવા લાયક કોઈ વાત બનતી નથી અને જે કંઈ બને છે તે બનવાને લાયક હોવાથી જ બન્યા કરે છે. ” તે એવી પરિસ્થિતિમાં અકળાઈ જવું અથવા સમતાવૃત્તિનેા ત્યાગ કરવો તે ઝિલકુલ ઉચિત નથી. આ પ્રકારનેા રાગદ્વેષ રહિતનેા સમતાભાવ રાખવાથી આત્મામાં નવીન કર્મોના બંધ થતો નથી અને સંચિત કર્મોની નિર્જરા થતી રહે છે અને અન્તે એવો જીવ સમસ્ત કર્મોના ક્ષય કરીને મોક્ષ પામી શકે છે.

पूर्णं गोयमा ! से सुक्के तणहत्थए जायतेयंसि पक्खित्ते समाणे खिप्पामेव मस-
 मसा विज्जइ ?' हे गौतम ! तत् नूनं निश्चयेन स शुष्कः तृणहस्तकः वासपूलकः
 ज्ञाततेजसि अग्नीं प्रक्षिप्तः सन् क्षिप्रमेव श्रुटियेव मसमसाप्यते ? दहते भस्मी
 भवति खलु ? । गौतमः स्वीकरोति—' हंता, मसमसाविज्जइ ' हे भदन्त ! इन्त,
 सत्यम् मसमसाप्यते, सद्य एव दग्धो भवति । तमेव भगवान् दार्ष्टान्तिके योज-
 यति - ' एवामेव गोयमा ! समणाणं निर्गंधाणं : अहावायराइं कम्माइं, जाव-
 पज्जवसाणा भवंति ' हे गौतम ! एवमेव अग्निप्रक्षिप्तशुष्कतृणपूलकवदेव श्रम-
 णानां निर्ग्रन्थानां यथावादराणि यावत्-शिथिलीकृतानि निष्ठितानि कृतानि,
 विपरिणामितानि क्षिप्रमेव विध्वस्तानि भवन्ति, यावत् तावत्परिमितामपि वेदनां
 वेदयमाना निर्ग्रन्थाः श्रमणाः महानिर्जराः महापर्यवसाना भवन्तीत्याशयः ।

पुरिसे सुक्कं तणहत्थयं जायतेयंसि पक्खिवेज्जा) ऐसा कह रहे हैं कि-
 हे गौतम ! जैसे कोई एक पुरुष शुष्क वास के पूले को धधकती हुई
 अग्नि में डालता है-तो (से पूर्णं गोयमा ! से सुक्के तणहत्थए जायते-
 यंसि पक्खित्ते समाणे खिप्पामेव मसमसाविज्जइ) हे गौतम ! क्या वह
 शुष्क वास का पूला देखते २ उस धधकती हुई ज्वाला में जल नहीं
 जाता है क्या ? (हंता मसमसाविज्जइ) हां, भदन्त ! जल जाता है तो
 (एवामेव गोयमा) इसी तरह से हे गौतम ! (समणाणं निर्गंधाणं)
 श्रमण निर्ग्रन्थों के (अहावायराइं कम्माइं) यथावादर-असार कर्म
 (जाव पज्जवसाणा भवंति) यावत् शिथिलीकृत, निष्ठित, एवं विपरि-
 णामित होकर शीघ्र ही विध्वस्त हो जाते हैं वे चाहें थोड़ी या बहुत
 कैसे ही वेदना क्यों न भोगें अन्त में महानिर्जरावाले बनकर वे समस्त
 कर्मों को नष्ट कर देते हैं ।

इवे सूत्रकार अत्र वातनी दृष्टान्तो द्वारा पुष्टि करे छे—“ से जहा नामए
 केइ पुरिसे सुक्कं तणहत्थयं जायतेयंसि पक्खिवेज्जा ” छे गौतम ! कोइ पुरुष
 सूका घासना पूणाने प्रवृत्तित अग्निभां नाणे तो “ से पूर्णं गोयमा ! से
 सुक्के तणहत्थए जायतेयंसि पक्खित्ते समाणे खिप्पामेव मसमसाविज्जइ ” छे
 गौतम ! शुं ते सूका घासना पूणा जेतजेताभां ते प्रवृत्तित आगभां णणी
 जतो नथी ? “ हंता मसमसाविज्जइ ” छे, प्रसो ! ते जइर णणी नथ छे.
 “ एवामेव गोयमा ! ” छे गौतम ! अत्र प्रभावे “ समणाणं निर्गंधाणं ”
 श्रमणु निर्ग्रन्थानां “ अहावायराइं कम्माइं ” असार कर्म “ जाव पज्जवसाणा
 भवंति ” शिथिलीकृत, निष्ठित अने विपरिणामित थधने जल्दी नष्ट थध नथ
 छे, लखे तेज्जा थोडी वेदना लोगवता डाय के वधारे वेदना लोगवता डाय,
 पणु अते महानिर्जरावाला जनीने समस्त कर्मोना क्षय करी नाणे छे.

तमेवापरदृष्टान्तेन दृढतरं करोति—' से जहा नामए केइ पुरिसं तत्तंसि अय कवेव्लुपंसि उदगविन्दुं, जाव-हंता, विद्वंसं आगच्छइ ' हे गौतम ! तत् यथा नाम कोऽपि पुरुष तप्ते अय कवेव्लुकं-लोहकटाहे उदकविन्दुं यावत्-प्रक्षिपत्, तत् नूनं स उदकविन्दुः तप्ते लोहकटाहे प्रक्षिप्तः सन् क्षिपमेव विध्वंसमागच्छति ? हन्त, भदन्त ! क्षिपमेव विध्वंसमागच्छति नाशं प्राप्नोति । भगवान् तं दार्ष्टान्तिके योजयति—'एवामेव गोयमा ! समणाणं निग्गंयाणं, जाव-महापज्जवसाणा भवंति ' हे गौतम ! एवमेव तस्यलोहकटाहप्रक्षिप्तोदकविन्दुवदेव श्रमणानां निर्ग्रन्थानां यावत्-यथावादराणि कर्माणि शिथिलीकृतानि निष्ठितानि कृतानि, विपरिणामितानि क्षिपमेव विध्वंसमागच्छन्ति, यावत्किं तावत्किमपि च वेदनां

इसी बात को दूसरे दृष्टान्त से दृढतर करते हुए वे गौतम से कहते हैं—(से जहा नामए केइ पुरिसे) गौतम ! जैसे कोई एक पुरुष (तत्तंसि अयकवेव्लुसि) अत्यन्त गरम हुए लोहे के तवे पर (उदग विन्दुं) जल की विन्दु को डाले-तो क्या गौतम ! उस लोहे के अत्यन्त गर्म हुए तवे पर डाला गया वह जल का विन्दु वहां नष्ट नहीं होगा क्या ? इसके उत्तर में गौतम स्वामी प्रभु से कहते हैं—क्यों नहीं-भदन्त ! वह वहां अवश्य ही शीघ्र नष्ट हो जायगा—(एवामेव गोयमा) तो हे गौतम ! इसी तरह से (समणाणं निग्गंथाणं) श्रमण निर्ग्रन्थों के (जाव महापज्जवसाणा भवंति) श्रमण, निर्ग्रन्थोंके यथावादा कर्म शिथिलीकृत, निष्ठित, एवं विपरिणामित होकर शीघ्र ही आमूलचूल(बिल्कुल) नष्ट हो जाते हैं । वे चाहें थोड़ी या बहुत-कैसी ही वेदना क्यों न भोगें अन्त में वे महानिर्जरा शाली होकर वे समस्त कर्मों के विध्वंस कर्त्ता

अथ वातने भील दृष्टान्त द्वारा वधारे पुष्टि आपवा भाटे मडावीर स्वाभी गौतम स्वाभीने कडे छे—“ से जहा नामए केइ पुरिसे ” हे गौतम ! केछ ओक पुत्र “ तत्तंसि अयकवेव्लुसि ” अतिशय तपावेवा बोढाना तावडा छपर “ उदग विन्दुं ” पाणीनुं दीपु नाणे, ते छे गौतम ! शुं ते पाणीनुं दीपु नाश नहीं पाये ? तेना जवाथ आपता गौतम स्वाभी मडावीर प्रभुने कडे छे “ छे भदन्त ! ते दीपु तुरत ज अवश्य नाश पाभये.

“ एवामेव गोयमा ! ” हे गौतम ! अथ प्रभाछे “ समणाणं निग्गंयाणं ” श्रमण निर्ग्रन्थेना “ जाव महापज्जवसाणा भवंति ” स्थूल पुद्गले अक्षर कर्मो शिथिलीकृत, निष्ठित अने विपरिणामित यधने तुरत ज सर्वथा नष्ट यध लय छे. तेओ भले थोडी वेदना लागवे छे वधारे वे आवे, पण तेओ अन्ते महानिर्जराणा जनीने समस्त कर्मोना

વેદ્યમાનાસ્તે નિર્ગ્ન્યાઃ શ્રમણાઃ મહાનિર્જરાઃ મહાપર્યવસાનાથ ભવન્તિ । ભગવાન્ ઉપસંહરન્નાહ—‘ સે તેળટ્ટેણં જે મહાવેયણે સે’ મહાનિજ્જરે જાવ-પસત્થ નિજ્જરાણ’ હે ગૌતમ ! તત્ તેનાર્યેન એમુચ્ચતે—યે મહાવેદનાસ્તે મહાનિર્જરા ભવન્તિ । યાવત્—યે મહાનિર્જરાસ્તે મહાવેદનાઃ ભવન્તિ, મહાવેદનસ્ય અલ્પવેદનસ્ય ચ મધ્યે સ શ્રેયાન્ ભવતિ, યઃ પ્રશસ્તનિર્જરાભવતિ ॥ સૂ૦ ૧ ॥

જીવકરણવક્તવ્યતા ।

પૂર્વ જીવાનાં વેદના પ્રતિપાદિતા, સા ચ વેદના કરણતો ભવતીતિ કરણ પદાર્થ નિરૂપયિતુમાહ—‘ કઙ્કિહેણં ભંતે ’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—કઙ્કિહે ણં ભંતે ! કરણે પળણત્તે ? ગોયમા ! ચડઙ્કિહે કરણે પળણત્તે, તં જહા—મળકરણે, વઙ્કરણે, કાયકરણે, કમ્મકરણે । ણેરઙ્કયાણં ભંતે ! કઙ્કિહે કરણે પળણત્તે ? ગોયમા ! ચડઙ્કિહે પત્તત્તે, તં જહા — મળકરણે, વઙ્કરણે, કાયકરણે, કમ્મકરણે । પંચિંદિયાણં સત્ત્વેસિં ચડઙ્કિહે કરણે પળણત્તે । ઇગિંદિયાણં ટુવિહે—કાયકરણે ય, કમ્મકરણે ય । વિગલિંદિયાણં તિવિહે વઙ્કરણે, કાયકરણે, કમ્મકરણે ય । નેરઙ્કયાણં ભંતે ! કિં કરણઓ અસાયં વેયણં વેયંતિ, અકરણઓ અસાયં વેયણં વેયંતિ ?

હી ઘનતે હિં । અપ ભગવાન્ હસ વિષય કા ઉપસંહાર કરતે હુણ કહતે હિં (સે તેળટ્ટેણં જે મહાવેયણે સે મહાનિજ્જરે જાવ પસત્થનિજ્જરાણ) હે ગૌતમ ! હસી કારણ સે મેંને એસા કહા હે કિ જો મહાવેદનાવાલે હોતે હિં વે મહાનિર્જરાવાલે હોતે હિં—યાવત્—જો મહાનિર્જરાવાલે હોતે હિં—વે મહાવેદનાવાલે હોતે હિં । મહાવેદનાવાલે એવં અલ્પવેદનાવાલે કે વીચ મેં વહી ઉત્તમ હોતા હિં જો પ્રશસ્ત નિર્જરાવાલા હોતા હે ॥ સૂ૦ ૧ ॥

અને છે. હવે મહાવીર પ્રભુ આ વિષયને ઉપસંહાર કરતા ગૌતમ સ્વામીને કહે છે—(સે તેળટ્ટેણં જે મહાવેયણે સે મહાનિજ્જરે, જાવ પસત્થનિજ્જરાણ) હે ગૌતમ ! તે કારણે મેં એવું કહ્યું છે કે જે મહાવેદનાવાળા હોય છે, તે મહાનિર્જરાવાળા હોય છે અને મહાનિર્જરાવાળા હોય છે, તે મહાવેદનાવાળા હોય છે. પણ મહાવેદનાવાળા અને મહાનિર્જરાવાળાની અપેક્ષાએ પ્રશસ્ત નિર્જરાવાળા એવ ઉત્તમ હોય છે. ॥ સૂત્ર ૧ ॥

गोयमा ! नेरइया णं करणओ असायं वेयणं वेयंति, नो अकरणओ असायं वेयणं वेयंति । से केणट्टेणं ? । गोयमा ! नेरइयाणं चउव्विहे करणे पणत्ते, तं जहा-मणकरणे, वयकरणे, कायकरणे, कम्मकरणे, इच्चेएणं चउव्विहेणं असुभेणं करणेणं नेरइया करणओ असायं वेयणं वेयंति, णो अकरणओ, से तेणट्टेणं० । असुरकुमाराणं किं करणओ अकरणओ ? गोयमा ! करणओ, णो अकरणओ । से केणट्टेणं ? । गोयमा ! असुरकुमाराणं चउव्विहे करणे पणत्ते, तं जहा-मणकरणे, वयकरणे, कायकरणे, कम्मकरणे, इच्चेएणं सुभेणं करणेणं असुरकुमाराणं करणओ सायं वेयणं वेयंति, णो अकरणओ । एवं जाव-थणियकुमाराणं । पुढवीकाइयाणं एवामेव पुच्छा ? णवरं-इच्चेएणं सुभाऽसुभेणं करणेणं पुढविक्काइया करणओ वेमायाए वेयणं वेयंति, णो अकरणओ । ओरालियसरोरा सव्वे सुभाऽसुभेणं वेमायाए, देवा सुभेणं सायं ॥ सू० २ ॥

छाया-कृतिविधं खलु भदन्त ! करणं प्रज्ञप्तम् ! गौतम ! चतुर्विधं करणं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा-मनस्करणम्, वचस्करणम्, कायकरणम्, कर्मकरणम् । नैरयिकाणां

जीवकरण वक्तव्यता-

‘कइविहेणं भंते !’ इत्यादि-

सूत्रार्थ—(कइविहेणं भंते ! करणे पणत्ते) हे भदन्त ! करण कितने प्रकार का कहा गया है ? (गोयमा) हे गौतम ! (चउव्विहे

जीवकरण वक्तव्यता—

“कइ विहेणं भंते” इत्यादि—

सूत्रार्थ—(कइ विहेणं भंते ! करणे पणत्ते ?) हे भदन्त ! कइ कइ प्रकारनां कइयां छे ? (गोयमा !) हे गौतम ! (चउव्विहे करणे पणत्ते) कइ कइ प्रकारनां कइयां छे. (तंजहा) ते चार प्रकार आ प्रमाणे छे—(मणकरणे

भदन्त ! कतिविधं करणं प्रसप्तम् ? गौतम ! चतुर्विधं प्रसप्तम्, तद्यथा—मनस्करणम्, वचस्करणम्, कायकरणम्, कर्मकरणम् । पञ्चेन्द्रियाणां सर्वेषां चतुर्विधं करणं प्रसप्तम् । एकेन्द्रियाणाम् द्विविधम्—कायकरणं च, कर्मकरणं च विकलेन्द्रियाणां त्रिविधम्—वचस्करणम्, कायकरणम्, कर्मकरणम् । नैरयिकाः खलु भदन्त ! किं करणतोऽसातां वेदनां वेदयन्ति, अकरणतोऽसातां वेदनां वेदयन्ति ! गौतम !

करणे पण्णत्ते) करण चार प्रकार का कहा गया है । (तं जहा) वे चार प्रकार ये हैं—(मणकरणे, वड्करणे, कायकरणे, कम्मकरणे) मनकरण, वचनकरण, कायकरण और चौथा कर्मकरण । (नेरइयाणं भंते ! कइविहे करणे पण्णत्ते) हे भदन्त ! नारकों के कितने करण कहे गये हैं ? (गोयमा-चउव्विहे पत्तत्ते) हे गौतम ! चार करण कहे गये हैं । (तंजहा) जैसे—(मणकरणे, वड्करणे, कायकरणे, कम्मकरणे) मनकरण, वचनकरण, कायकरण और कर्मकरण (पंचिंदियाणं सव्वेसिं चउव्विहे करणे पण्णत्ते) समस्त पञ्चेन्द्रिय जीवों के चार करण कहे गये हैं (एगिंदियाणं दुविहे कायकरणे कम्मकरणे य) एकेन्द्रिय जीवों के दो करण कहे गये हैं—एक कायकरण और दूसरा कर्मकरण (विगलेदियाणं तिविहे-वड्करणे, कायकरणे, कम्मकरणे) विकलेन्द्रियों के तीन करण कहे गये हैं—एक-वचनकरण दूसरा कायकरण और तीसरा कर्मकरण । (नेरइयाणं भंते ! किं करणओ असायं वेयणं वेयंति, अकरणओ असायं वेयणं वेयंति) हे भदन्त ! नारक जीव क्या करण से अशातावेदना को वेदते

वड्करणे, कायकरणे, कम्मकरणे) मनकरणे, वचनकरणे, कायकरणे, कर्मकरणे, (नेरइयाणं भंते ! कइविहे करणे पण्णत्ते ?) हे भदन्त ! नारक जीवों के कितने करण कहे गये हैं ? (गोयमा ! चउव्विहे पण्णत्ते) हे गौतम ! नारकों के चार करण कहे गये हैं । (तंजहा) जैसा कि (मणकरणे, वड्करणे, कायकरणे, कम्मकरणे) मनकरणे, वचनकरणे, कायकरणे, कर्मकरणे, (पंचिंदियाणं सव्वेसिं चउव्विहे करणे पण्णत्ते) समस्त पञ्चेन्द्रिय जीवों के चार करण कहे गये हैं (एगिंदियाणं दुविहे कायकरणे कम्मकरणे य) एकेन्द्रिय जीवों के दो करण कहे गये हैं—(१) कायकरणे, कर्मकरणे, (विगलेदियाणं तिविहे-वड्करणे, कायकरणे, कम्मकरणे) विकलेन्द्रियों के तीन करण कहे गये हैं—(१) वचनकरणे, (२) कायकरणे, (३) कर्मकरणे ।

(नेरइयाणं भंते ! किं करणओ असायं वेयणं वेयंति, अकरणओ असायं वेयणं वेयंति ?) हे भदन्त ! नारक जीवों के कितने करण कहे गये हैं ?

नैरयिकाः करणतोऽसातां वेदनां वेदयन्ति, नो अकरणतोऽसातां वेदनां वेदयन्ति। तत् केनार्थेन ? । गौतम ! नैरयिकाणां चतुर्विधं करणं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा-मनस्करणम्, वचस्करणम्, कायकरणम्, इत्येतेन चतुर्विधेन अशुभेन करणेन नैरयिकाः करणतोऽसातां वेदनां वेदयन्ति, नो अकरणतः, तत् तेनार्थेन० असुरकुमाराः किं करणतः, अकरणतः ? गौतम ! करणतः, नो अकरणतः, तत्-केनार्थेन ? ।

हैं ? या अकरण से अशातावेदना को वेदते हैं ? (गौतम) हे गौतम ! (नेरइयाणं करणओ असायं वेयणं वेयंति, नो अकरणओ असायं वेयणं वेयंति) नारक जीव करण से अशातावेदना का वेदन करते हैं, वे अकरण से अशातावेदना का वेदन नहीं करते हैं। (से केणट्टेणं) हे भदन्त ! ऐसा आप किस कारण से कहते हैं ? (गौतम) हे गौतम ! (नेरइयाणं चउव्विहे करणे पण्णत्ते) नारक जीवों के चार करण कहे गये हैं (तं जहा) जैसे—(मणकरणे, वइकरणे, कायकरणे, कम्मकरणे) मनकरण, वचनकरण, कायकरण और कर्मकरण (इच्छेणं चउव्विहेणं असुभेणं करणेणं नेरइया करणओ असायं वेयणं वेयंति, नो अकरणओ से तेणट्टेणं०) इन चार प्रकार के अशुभ करणों से नारक जीव अशातावेदना का वेदन करते हैं अतः वे करण से अशातावेदना का वेदन करते हैं—अकरण से नहीं इस कारण मैंने ऐसा कहा है। (असुरकुमाराणं किं करणओ, अकरणओ) हे भदन्त ! असुरकुमार क्या करण से शातावेदना करते हैं, या अकरण से शातावेदना का वेदन करते हैं ?

करे छे, के अकरणथी अशातावेदनानुं वेदन करे छे ? (गौतम !) हे गौतम ! (नेरइयाणं करणओ असायं वेयणं वेयंति, नो अकरणओ असायं वेयणं वेयंति) नारक जीवो करणथी अशाता वेदनानुं वेदन करे छे, तेजो अकरणथी अशाता वेदनानुं वेदन करता नथी। (से केणट्टेणं) हे भदन्त ! अबुं आप शा करणुं कछे छे ? (गौतम !) हे गौतम ! नेरइयाणं चउव्विहे करणे पण्णत्ते) नारक जीवोनां चार करणुं कछे छे, (तं जहा) जेवां के (मणकरणे वइकरणे, कायकरणे, कम्मकरणे) मनकरणुं, वचनकरणुं, कायकरणुं अने कर्मकरणुं।

(इच्छेणं चउव्विहेणं असुभेणं करणेणं नेरइया करणओ असायं वेयणं वेयंति, नो अकरणओ-से तेणट्टेणं) आ चार प्रकारनां अशुभ करणुंथी नारक जीवो अशातावेदनानुं वेदन करे छे, तेथी तेजो करणुंथी अशातावेदनानुं वेदन करे छे, अकरणथी अशातावेदनानुं वेदन करता नथी। हे गौतम ! ते करणुं अं अबुं कछुं छे। (असुरकुमाराणं किं करणओ, अकरणओ ?) हे भदन्त ! असुरकुमारेणुं करणुंथी शातावेदनानुं वेदन करे छे, के अकरणथी शातावेदनानं वेदन करे

ગૌતમ ! અસુરકુમારાણાં ચતુર્વિધં કરણં પ્રણપ્તમ્, તદ્વથા-મનસ્કરણમ્, વચસ્કરણમ્, કાયકરણમ્, કર્મકરણમ્, ડ્યયેતેન શુભેન કરણેન અસુરકુમારાઃ કરણતઃ સાતાં વેદનાં વેદયન્તિ, નો અકરણતઃ । એવં યાવત્-સ્તનિતકુમારાણામ્ । પૃથિવી-કાયિકાનામ્-પ્રયમેવ પૃચ્છા ? નવરમ્-ડ્યયેતેન શુભાશુભેન કરણેન પૃથિવીકા-

(ગોયમા) હે ગૌતમ ! (કરણઓ ણો અકરણઓ) અસુરકુમાર કરણ સે શાતાવેદનાકા વેદન કરતે હૈં-અકરણ સે વે શાતાવેદના કા વેદન નહીં કરતે હૈં । (સે કેણટ્ટેણં) હે ભદન્ત ! એસા આપ કિસ કારણ સે કહતે હૈં ? (ગોયમા ! અસુરકુમારાણં ચતુર્વિધે કરણે પળ્લત્તે) હે ગૌતમ અસુરકુમારોં કૈ ચાર પ્રકાર કૈ કરણ કહે ગયે હૈં (તં જહા) જો ઇસ પ્રકાર સે હૈં (મળકરણે, વચકરણે, કાયકરણે, કર્મકરણે) મનકરણ, વચનકરણ, કાયકરણ ઓર કર્મકરણ (ઇચ્છેણં સુભેણં કરણેણં અસુરકુમારાણં કરણઓ સાયં વેયણં વેયંતિ) ઇન શુભ કરણોં સે અસુરકુમાર શાતાવેદનાકા વેદન કરતે હૈં ઇસ કારણ વે કરણસે શાતાવેદન કા વેદન કરતે હૈં (ણો અકરણઓ) અકરણ સે શાતાવેદના કા વે વેદન નહીં કરતે હૈં (એવં જાવ ધણિયકુમારાણં) ઇસી તરહ સે યાવત્ સ્તનિતકુમારોં કૈ ભી જાનનાં ચાહિયે । (પુઢવીકાઙ્ગાણં એવામેવ પુચ્છા) હે ભદન્ત ! પૃથિવીકાયિક જીવ કરણ સે શાતા ઓર અશાતારૂપ વેદના કા અનુભવ કરતે હૈં ? યા અકરણ સે શાતા ઓર અશાતા વેદના કા

છે ? (ગોયમા ! કરણઓ, ણો કરણઓ) હે ગૌતમ ! કરણથી શાતાવેદનાનું વેદન કરે છે, તેઓ અકરણથી શાતાવેદનાનું વેદન કરતા નથી. (સેકેણટ્ટેણં) હે ભદન્ત ! આપ શા કારણે એવું કહો છો ? (ગોયમા ! અસુરકુમારાણં ચતુર્વિધે કરણે પળ્લત્તે) હે ગૌતમ ! અસુરકુમારોનાં ચાર પ્રકારનાં કરણ કહ્યાં છે, (તંજહા) એવાં કે (મળકરણે, વચકરણે, કાયકરણે, કર્મકરણે) મન કરણ, વચનકરણ, કાયકરણ અને કર્મકરણ. (ઇચ્છેણં સુભેણં કરણેણં અસુરકુમારાણં કરણઓ સાયં વેયણં વેયંતિ) તે શુભ કરણોથી અસુરકુમારો શાતાવેદનાનું વેદન કરે છે. તે કારણે તેઓ કરણથી શાતાવેદનાનું વેદન કરે છે. (ણો અકરણઓ) અકરણથી શાતાવેદનાનું વેદન કરતા નથી. (એવં જાવ ધણિયકુમારાણં) સ્તનિતકુમાર પર્યન્તના દેવોના વિષયમાં પણ એમ જ સમજવું. (પુઢવીકાઙ્ગાણં એવામેવ પુચ્છા) હે ભદન્ત ! પૃથ્વીકાય જીવો કરણથી શાતાવેદના અને અશાતાવેદનાનું વેદન કરે છે, કે અકરણથી શાતાવેદના અને અશાતાવેદનાનું વેદન કરે છે ?

વિકા: કરણતો વિમાત્રયા વેદનાં વેદયન્તિ, નો મહાગત: । ઔદારિક: સર્વે શુભાશુભેન વિમાત્રયા । દેવા: શુભેન ॥

ટીકા—‘ કહિહે પં મંતે ! કરણે પણતે ? ’ ગૌતમ: પૃચ્છતિ—હે મહાગતિવિધં ક્રિયત્પ્રકારમ્ સ્વલ્લ કરણં સુલ્લદુ:લાનુમનિમિત્તભૂતં પ્રશ્નત્મ્ ? મગ્ધ

અનુભવ કરતે હું ? (પવરં—इच्छेष्णं सुभाऽसुभेणं करणेणं पुढवीका करणओ वेमायाए वेयणं वेयंति, णो अकरणओ) હે ગૌતમ ! પૃથિવી વિકા જીવ શુભાશુભ કિતને ભેદ કદાચિત્ શાતારૂપ ઓર કદા અશાતારૂપ વેદના કા અનુભવ કરતે હું । અકરણ સે—કરણ કે વિ નહીં । યહી યહાં પર વિશેષતા હૈ । (ઓરાલિય સરીરાસવ્વે સુભાસુભે કરણેણં વેમાયાए—દેવા સુભેણં સાયં) જિતને મી ઔદારિક શરીરવા જીવ હું વે સવ હી શુભ ઓર અશુભરૂપ કરણ સે હી દોનો પ્રકાર ડ વેદના કા અનુભવ કરતે હું દેવ શુભકરણ સે કેવલ શાતાવેદના ક અનુભવ કરતે હૈ ।

ટીકાર્થ—પહિલે જીવોં કી વેદના કા કથન ક્રિયા ગયા હૈ । વહ વેદના કરણ દ્વારા હોતી હૈ ઇસ કારણ સૂત્રકાર ઇસ સૂત્ર સે ડસી કા નિરૂપણ કર રહે હું—ઇસમેં ગૌતમ ને પ્રશ્ન સે ઇસા પૂઝા હૈ કિ—‘ કહિવિ-હેણં મંતે ! કરણે પણતે) હે મહાગત ! કરણ કિતને પ્રકાર કા હોતા હૈ ? સુલ્લ ઓર દુ:લ્લ કે અનુભવ કરને મેં જો નિમિત્ત મૂત હોતા હૈ ડસકા નામ કરણ હૈ સો ઇસ કરણ કે કિતને ભેદ હું ? ઇસ

(પવરં—इच्छेष्णं सुभाऽसुभेणं करणेणं पुढवीका इया करणओ वेमायाए वेयणं वेयंति, णो अकरणओ) હે ગૌતમ ! પૃથ્વીકાય જીવો શુભાશુભ કરણથી જ ક્યારેક શાતાવેદનાનું વેદન કરે છે અને ક્યારેક અશાતાવેદનાનું વેદન કરે છે, અકરણથી તેઓ તેનું વેદન કરતા નથી, એટલી જ અહીં વિશેષતા છે. (ઓરાલિય સરીરા સવ્વે સુભાસુભેણં કરણેણં વેમાયાए—દેવા સુભેણં સાયં) સમસ્ત ઔદારિક શરીરવાળા જીવો શુભ અને અશુભરૂપ કરણથી જ યન્ને પ્રકારની વેદનાનું વેદન કરે છે. દેવો શુભકરણથી ક્ષત શાતાવેદનાનો જ અનુભવ કરે છે.

ટીકાર્થ—આગલા પ્રકરણમાં જીવોની વેદનાનું કથન કરવામાં આવ્યું છે. તે વેદના કરણ દ્વારા થતી હોય છે. તે કારણે સૂત્રકાર આ સૂત્રમાં કરણનું નિરૂપણ કરે છે.

ગૌતમ સ્વામી મહાવીર પ્રભુને જીવો પ્રશ્ન પૂછે કે “ કહિવિહેણં મંતે ! કરણે પણતે ? ” હે મહાગત ! કરણ કેટલાં પ્રકારનાં કયાં છે ? (સુખ અને દુ:ખનો અનુભવ કરવામાં જે નિમિત્તરૂપ હોય છે, તેને કરણ કહે છે.)

-‘ગોયમા ! ચતુર્વિદ્ધે કરણે પળ્લત્તે’ હે ગૌતમ ! ચતુર્વિધં-ચતુઃપ્રકારં કરણં પ્રજ્ઞ-
પ્તમ્, ‘તં જહા-મળકરણે, વચકરણે, કાયકરણે, કમ્મકરણે’ તથા-મનઃકરણમ્,
વચઃકરણમ્, કાયકરણમ્, કર્મકરણં ચ-તત્ર મનોવાકાયવિપયકં કરણં તત્ત્ત્કર-
ણમ્, કર્મકરણં ચ કર્મવિપયકં કરણં, વન્ધન-સંક્રમણાદિનિમિત્તભૂતં જીવવીર્યં
કર્મકરણમ્ । ગૌતમઃપૃચ્છતિ-‘નેરઙ્ગયાણં ભંતે ! કઙ્ગિદ્ધે કરણે પળ્લત્તે ?’ હે ભદન્ત !
નેરયિકાણાં કતિવિધં ક્કરણં પ્રજ્ઞપ્તમ્ ? ભગવાનાહ-‘ગોયમા ! ચતુર્વિદ્ધે પળ્લત્તે’ હે
ગૌતમ ! નેરયિકાણાં ચતુર્વિધં કરણં પ્રજ્ઞપ્તમ્, તં જહા-મળકરણે, વઙ્કરણે, કાય-
કરણે, કમ્મકરણે’ તથા-મનઃકરણમ્, વચઃકરણમ્, કાયકરણમ્, કર્મકરણમ્,

ગૌતમ કે પ્રશ્ન કા ઉત્તર દેતે હુણ પ્રશ્નુ ડનસે કહતે હેં કિ-(ગોયમા)
હે ગૌતમ ! (ચતુર્વિદ્ધે કરણે પળ્લત્તે) કરણ ચાર પ્રકાર કા હોતા હૈ (તં
જહા) જૈસે-(મળકરણે) મનકરણ, (વઙ્કરણે) વચનકરણ, (કાયકરણે)
કાયકરણ, (કમ્મકરણે) કર્મકરણ, કર્મોં કે વંધન મેં. ડનકે સંક્રમણ
આદિમેં જો નિમિત્તભૂત જીવ કો વીર્યવિશેષ હૈ વહ કર્મકરણ હૈ ।

અવ ગૌતમ પ્રશ્નુ સે પુનઃ પૂછતે હેં કિ-(નેરઙ્ગયાણં ભંતે ! કઙ્ગિદ્ધે
કરણે પળ્લત્તે) હે ભદન્ત ! નારક જીવોં કે કિતને કરણ હોતે હેં-અર્થાત્
પૂર્વોક્ત ડન ચાર કરણોં મેં સે ચાર હી કરણ હોતે હેં યા કુચ્છ કમ કરણ
હોતે હેં ? તો ડસકે ઉત્તર મેં પ્રશ્નુ ડનસે કહતે હેં કિ (ગોયમા)
હે ગૌતમ ! નારક જીવોં કે (ચતુર્વિદ્ધે પળ્લત્તે) ચારોં પ્રકાર
કે હી કરણ હોતે હેં । (તં જહા) જૈસે (મળકરણે, વઙ્કરણે,
કાયકરણે, કમ્મકરણે) મનકરણ, વચનકરણ, કાયકરણ, ઓર કર્મકરણ

મહાવીર પ્રશ્નુ તેનો જવાબ આપતા કહે છે-“ ગોયમા ! ચતુર્વિદ્ધે કરણે
પળ્લત્તે ” હે ગૌતમ ! કરણુ ચાર પ્રકારનાં હોય છે, “ તંજહા ” જેવાં કે-
“ મળકરણે ” મનકરણુ, “ વઙ્કરણે ” વચનકરણુ, “ કાયકરણે ” કાયકરણુ
અને “ કમ્મકરણે ” કર્મકરણુ. કમોના વંધન અને તેમના સંક્રમણુ આદિનાં
નિમિત્તભૂત (કારણરૂપ) જે જીવનું વીર્ય વિશેષ છે તેને કર્મકરણુ કહે છે

ગૌતમ સ્વામીનો પ્રશ્ન-(નેરઙ્ગયાણં ભંતે ! કઙ્ગિદ્ધે કરણે પળ્લત્તે ?)
હે ભદન્ત ! નારક જીવોનાં કેટલાં કરણુ હોય છે ? એટલે કે પૂર્વોક્ત ચાર
ચાર કરણુ હોય છે, કે તેથી ઓછાં કરણુ હોય છે ?

મહાવીર પ્રશ્નુ તેનો જવાબ આપતા કહે છે-“ ચતુર્વિદ્ધે પળ્લત્તે ” હે
ગૌતમ ! નારકોનાં ચાર કરણુ હોય છે, “ તંજહા ” જેવાં કે (મળકરણે, વઙ્ક-
કરણે, કાયકરણે, કમ્મકરણે) મનકરણુ, વચનકરણુ, કાયકરણુ અને કર્મકરણુ.

યિકા: કરણતો વિમાત્રયા વેદનાં વેદયન્તિ, નો અકરણત: । ઔદારિકસરીરા: સર્વે શુભાશુભેન વિમાત્રયા । દેવા: શુભેન ॥

ટીકા—‘કહ્વિદે જં મંતે ! કરણે પળ્લત્તે ?’ ગૌતમ: પૃચ્છતિ—હે મદન્ત ! કતિવિધં ક્રિયત્પ્રકારમ્ સ્વલ્લ કરણં સુલ્લદુ:સ્વાનુભવનિમિત્તભૂતં પ્રશ્નતમ્ ? મગવાનાર

અનુભવ કરતે હેં ? (જવરં-ઇચ્છેણં સુમાસુમેળં કરણેણં પુદ્ધીકાઠ્યા કરણઓ વેમાયાણ વેયણં વેયંતિ, જો અકરણઓ) હે ગૌતમ ! પૃથિવીકા-યિક જીવ શુભાશુભ કિતને ભેદ કદાન્તિ શાતારૂપ ઓર કદાન્તિ અશાતારૂપ વેદના કા અનુભવ કરતે હેં । અકરણ સે-કરણ કે ત્રિના નહીં । યહી યહાં પર વિશેષતા હે । (ઓરાલિય સરીરાસવ્વે સુમાસુમેળં કરણેણં વેમાયાણ-દેવા સુમેળં સાયં) જિતને ખી ઔદારિક શરીરવાળે જીવ હેં વે સવ હી શુભ ઓર અશુભરૂપ કરણ સે હી દોનો પ્રકાર કી વેદના કા અનુભવ કરતે હેં દેવ શુભકરણ સે કેવલ શાતાવેદના કા અનુભવ કરતે હે ।

ટીકાર્થ—પહિલે જીવોં કી વેદના કા કથન ક્રિયા ગયા હે । વહ વેદના કરણ દ્વારા હોતી હે । સ્વ કારણ સૂત્રકાર સ્વ સૂત્ર સે ડસી કા નિરૂપણ કર રહે હેં—સમ્મં ગૌતમ ને પ્રશ્ન સે એસા પૂછા હે કિ—“કહ્વિ-દેણં મંતે ! કરણે પળ્લત્તે) હે મદન્ત ! કરણ કિતને પ્રકાર કા હોતા હે ? સુલ્લ ઓર દુ:લ્લ કે અનુભવ કરને મેં જો નિમિત્ત ભૂત હોતા હે ડસકા નામ કરણ હે સો સ્વ કરણ કે કિતને ભેદ હેં ? સ્વ

(જવરં-ઇચ્છેણં સુમાસુમેળં કરણેણં પુદ્ધીકાઠ્યા કરણઓ વેમાયાણ વેયણં વેયંતિ, જો અકરણઓ) હે ગૌતમ ! પૃથિવીકાય ઇવો શુભાશુભ કરણથી જ ક્યારેક શાતાવેદનાનું વેદન કરે છે અને ક્યારેક અશાતાવેદનાનું વેદન કરે છે, અક-રણથી તેઓ તેનું વેદન કરતા નથી, એટલી જ અહીં વિશેષતા છે. (ઓરાલિય સરીરા સવ્વે સુમાસુમેળં કરણેણં વેમાયાણ-દેવા સુમેળં સાયં) સમસ્ત ઔદારિક શરીરવાળા ઇવો શુભ અને અશુભરૂપ કરણથી જ ખન્ને પ્રકારની વેદનાનું વેદન કરે છે. દેવો શુભકરણથી ક્ષત શાતાવેદનાનો જ અનુભવ કરે છે.

ટીકાર્થ—આગલા પ્રકરણમાં ઇવોની વેદનાનું કથન કરવામાં આવ્યું છે. તે વેદના કરણ દ્વારા થતી હોય છે. તે કારણે સૂત્રકાર આ સૂત્રમાં કરણનું નિરૂપણ કરે છે.

ગૌતમ સ્વામી મહાવીર પ્રભુને એવો પ્રશ્ન પૂછે કે “કહ્વિદેણં મંતે ! કરણે પળ્લત્તે ?” હે મદન્ત ! કરણ કેટલાં પ્રકારનાં કલાં છે ? (સુખ અને દુ:ખનો અનુભવ કરવામાં જે નિમિત્તરૂપ હોય છે, તેને કરણ કહે છે.)

અશુભાત્મિકાં વેદનાં વેદયન્તિ ? અનુભવન્તિ ? અથવા ' અકરણઔ અસાયં વેચયં વેયંતિ ? ' અકરણતઃ કરણં વિના અસાતાં વેદનાં વેદયન્તિ ? । મગવાનાહ— ' ગોયમા ! નેરહ્યાણં કરણઔ અસાયં વેચયં વેયંતિ, હે ગૌતમ ! નૈરયિકાઃ સ્વલુ કરણતો મનોવચનાદિદ્વારા અસાતામ્ દુઃસ્વરૂપાં વેદનાં વેદયન્તિ, ' ણો અકરણઔ અસાયં વેચયં વેયંતિ ' નો અકરણતઃ કરણં વિના અસાતાં વેદનાં વેદયન્તિ । ગૌતમ આહ— ' સે કેણદ્દેણં ' હે મદન્ત ! તત્ કેનાર્યેન નૈરયિકાઃ કરણતોડસાતાં વેદનાં વેદયન્તિ, નો અકરણતઃ ? કિં તત્ત્ર કારણમિતિ પ્રશ્નાશયઃ ? મગવાનાહ— ' ગોયમા ! નેરહ્યાણં ચઙ્ચિહે કરણે પ્પણ્ણત્તે ' હે ગૌતમ ! નૈરયિકાણાં ચતુર્વિધં કરણં પ્રજ્ઞસમ્, ' તં જહા-મણકરણે, વચકરણે, કાયકરણે, કમ્મકરણે ' તથથા-

આશાતાવેદના કા અનુભવ કરતે રહતે હૈં સો વે મનવચન કાયાદિ દ્વારા ઉસ અશુભાત્મક અશાતા કા અનુભવ કરતે હૈં ? યા કરણ કે વિના હી અસાતાવેદના કા અનુભવ કરતે હૈં ? હિસ પ્રશ્ન કે ઉત્તર મૈં પ્રશુ ઉનસે કહતે હૈં કિ (ગોયમા) હૈં ગૌતમ ! (નેરહ્યાણં કરણઔ અસાયં વેચયં વેયંતિ) નારક જીવ નરકોં મૈં જો અશુભાત્મક અસાતા કા વેદન કરતે હૈં-વે મનવચન કાય આદિ કરણ દ્વારા ઉનકા વેદન કરતે હૈં, કરણ-વિના ઉસકા વેદન નહીં કરતે હૈં । નારક જીવ નરકોં મૈં કરણદ્વારા હી અશાતાવેદના કા અનુભવ કરતે હૈં કરણ કે વિના નહીં ંસા જો આપને કહા હૈ સો (સે કેણદ્દેણં) ંસા આપ કિસ કારણ સે કહતે હૈં ? હિસકે ઉત્તર મૈં પ્રશુ ઉનસે કહતે હૈં કિ (ગોયમા) હે ગૌતમ ! (નેરહ્યાણં ચઙ્ચિહે કરણે પ્પણ્ણત્તે) નારક જીવોં મૈં અહી મનકરણ, વચનકરણ,

વેદન કરે છે, તે શુ' મન, વચન, કાય અને કમ્મ કરશે. વડે અશુભાત્મક અશાતાનું વેદન કરે છે, કે અકરણથી (કરણ વિના જ) અશાતાવેદનાનું વેદન કરે છે ?

ઉત્તર—“ ગોયમા ! ” હે ગૌતમ ! (નેરહ્યાણં કરણઔ અસાયંવેચયં વેયંતિ) નારકો નરકોની અંદર જે અશુભાત્મક અશાતાનું વેદન કરે છે, તે મન, વચન, કાય આદિ કરશે. દ્વારા જ કરે છે, કરણ વિના તેઓ તેનું વેદન કરતા નથી.

પ્રશ્ન—“ સે કેણદ્દેણં ” હે મદન્ત ! આપ શા કારણે એવું કહો છો કે નારક એવો કરણ દ્વારા જ અશાતાવેદનાનું વેદન કરે છે, કરણ વિના તેઓ તેનું વેદન કરતા નથી ?

ઉત્તર—“ ગોયમા ! ” હે ગૌતમ ! (નેરહ્યાણં ચઙ્ચિહે કરણે પ્પણ્ણત્તે) મેં આગળ કહ્યું તે પ્રમાણે નારક એવોમાં મનકરણ, વચનકરણ, કાયકરણ

एवं 'पंचिन्द्रियाणं सञ्चेत्ति चउच्चिहे करणे पण्णत्ते' पञ्चेन्द्रियाणां तिर्यग्योनिकादि-
 मनुष्यपर्यन्तानां सर्वेषां चतुर्विधं करणं मत्तप्तम्, तत्र मनोवचःकायकर्मरूपं
 बोध्यम् 'एगिन्द्रियाणं द्विविहे-कायकरणे य, कम्मकरणे य' एकेन्द्रियाणां द्विवि-
 धम् करणम् मत्तप्तम्, तद्यथा-कायकरणं च, कर्मकरणं च, विगल्लिन्द्रियाणं त्रिविहे-
 वइकरणे, कायकरणे, कम्मकरणे य' विकलेन्द्रियाणां त्रिचतुरिन्द्रियाणां जीवानां
 त्रिविधं करणं मत्तप्तम्, तद्यथा-वचःकरणम्, कायकरणम्, कर्मकरणं च । गौतमः
 पुनः पृच्छति—'नेरइयाणं भंते ! किं करणओ असायं वेयणं वेयंति ?
 हे भदन्त ! नैरयिकाः खलु किम् करणतः-मनोवचनकायादिद्वारा असाताम्

-ये चारों ही करण नारक जीवों में पाये जाते हैं। (एवं) इसी तरह से
 (पंचिन्द्रियाणं सञ्चेत्ति चउच्चिहे करणे पण्णत्ते) जितने भी पंचेन्द्रियजीव
 -संज्ञी पञ्चेन्द्रिय प्राणी हैं-तिर्यग्योनि के संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों से
 लेकर मनुष्यपर्यन्त उन सबके ये मनवचन काय और कर्मरूप चारों
 प्रकार के ही करण होते हैं। (एगिन्द्रियाणं द्विविहे कायकरणे य कम्मक-
 रणे य) एकेन्द्रिय जीवों के कायकरण और कर्मकरण ये दो ही करण
 होते हैं। (विगल्लिन्द्रिया णं त्रिविहे वइकरणे, कायकरणे, कम्मकरणे य)
 दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चौइन्द्रिय जीवों के वचनकरण, कायकरण,
 और कर्मकरण ये तीन प्रकार के करण होते हैं। अब गौतम प्रभु से
 पुनः पूछते हैं कि-(नेरइयाणं भंते ! किं करणओ असायं वेयणं वेयंति,
 अकरणओ असायं वेयणं वेयंति) हे भदन्त ! नारक जीव नरकों में जो

આ ચારે કારણો નારક જીવોમાં જોવામાં આવે છે. “ એવં ” એ જ પ્રમાણે
 (પંચિન્દ્રિયાણં સજ્જેત્તિં ચઉચ્ચિહે કરણે પણ્ણત્તે) સમસ્ત પંચેન્દ્રિય જીવોને
 સંજ્ઞી પંચેન્દ્રિય જીવોને-મન, વચન, કાય અને કર્મરૂપ ચારે કારણો હોય
 છે. એટલે કે તિર્યગ્યોનિના સંજ્ઞી પંચેન્દ્રિય જીવોથી લઈને મનુષ્ય પર્યન્તના
 સમસ્ત પંચેન્દ્રિય જીવો મન, વચન, કાય અને કર્મરૂપ ચારે કારણોવાળા
 હોય છે. (એગિન્દ્રિયાણં દુવિહે કાયકરણે ય કમ્મકરણે ય) એકેન્દ્રિય જીવોને
 એ જ કારણ હોય છે-(૧) કાયકરણ અને (૨) કર્મકરણ.

(વિગલેન્દ્રિયાણં ત્રિવિહે વइकरणे, कायकरणे, कम्मकरणे) विकलेन्द्रिय જીવોને
 (દ્વિન્દ્રિય, ત્રીન્દ્રિય અને ચતુરિન્દ્રિય જીવોને) ત્રણ કારણ હોય છે-(૧) વચન
 કારણ, (૨) કાયકરણ અને (૩) કર્મકરણ.

પ્રશ્ન—“ નેરइयाणं भंते ! किं करणओ असायंवेयणं वेयंति, अकरणओ
 असायंवेयणं वेयंति ? ” હે ભદન્ત ! નારક જીવો નરકોમાં જે અશાતાવેદનાનું

वेदनाम् अनुभवन्ति, नो अकरणतस्तामनुभवन्ति ? गौतम आह—‘से केणट्टेणं ?’ हे भदन्त ! तत् केनार्थेन असुरकुमाराः करणत एव, नो अकरणतः सातां वेदनां वेदयन्ति ? । भगवानाह—‘ गोयमा ! असुरकुमाराणं चउव्विहे करणे पण्णत्ते ’ हे गौतम ! असुरकुमाराणाम् चतुर्विधं करणं प्रज्ञप्तम्, ‘तं जहा—मणकरणे, वयकरणे कायकरणे, कम्मकरणे’ तत्रया—मनःकरणम्, वचःकरणम्, कायकरणम्, कर्मकरणं च, ‘ इच्चेएणं सुभेणं करणेणं असुरकुमारा णं करणओ सायं वेयणं वेयंति’ इत्येतेन उपर्युक्तेन मनोवचःकायादिना शुभेन करणेन असुरकुमाराः खलु करणत एव सातां वेदनां वेदयन्ति, ‘ णो अकरणओ ’ नो अकरणतः सातां वेदनां ते वेदयन्ति, ‘ एवं जाव—थणियकुमाराणं ’ एवम्—असुरकुमारवदेव यावत्—नागकुमार

उनसे कहते हैं (गोयमा) हे गौतम ! (करणओ नो अकरणओ) असुरकुमार करणद्वारा ही सुखरूप शातावेदना का अनुभव करते हैं अकरण—करण के बिना नहीं, अब गौतम स्वामी प्रभु से ऐसे कथन में कारण क्या है ? इस विषय को जानने की इच्छा से पूछते हैं (से केणट्टेणं) हे भदन्त ! आप ऐसा किस कारण से कहते हैं ? इसके उत्तर में प्रभु कहते हैं कि (गोयमा) हे गौतम ! (असुरकुमाराणं चउव्विहे करणे पण्णत्ते तं जहा मणकरणे, वयकरणे, कायकरणे, कम्मकरणे—इच्चेएणं सुभेणं करणेणं असुरकुमाराणं करणओ सायं वेयणं वेयंति) असुरकुमारों के मनकरण, वचनकरण कायकरण और कर्मकरण ये चार होते हैं ऐसा अभी २ प्रकट किया गया है सो इन चार शुभ करणों से युक्त होने के कारण ये करण से ही सुखरूप शातावेदना का अनुभव करते हैं (णो अकरणओ) करण के सिवाय नहीं ऐसा मैंने कहा है (एवं जाव

कुमारो करणु द्वारा न शातावेदानां वेदन करे छे, तेओ करणु विना तेनुं वेदन करता नथी. तेनुं करणु न्णव्वा भाटे गौतम स्वामी आ प्रकारेणो प्रश्न पूछे छे.

“ से केणट्टेणं ” हे भदन्त ! आप शा करणु ओवुं कडो छे ?

उत्तर—“ गोयमा ! ” हे गौतम ! ” (असुरकुमाराणं चउव्विहे करणे पण्णत्ते—तं जहा ” असुरकुमारोने नीचे प्रमाणे थार करणुो डोय छे—(मणकरणे, वयकरणे, कायकरणे, कम्मकरणे) मनकरणु, वचनकरणु, कायकरणु अने कर्मकरणु.

(इच्चेएणं सुभेणं करणेणं असुरकुमाराणं करणओ सायं वेयणं वेयंति) आ शुभ करणुोधी युक्त डोवाने करणुे तेओ करणु द्वारा न सुभरूप शातावेदानो अनुभव करे छे, “ णो अकरणओ ” करणु विना तेओ तेना अनुभव करता नथी.

મનઃકરણમ્, વચઃકરણમ્, કાયકરણમ્, કર્મકરણં ન 'इच्छेष्टं चउच्चिहेष्टं' અસુમેષં કરણેણં નેરહ્યા કરણમ્ અસાયં વેયણં વેયંતિ, ' इच्छेष्टेन उपर्युवतेन मनोवचनादिरूपेण चतुर्विधेन भुमेन करणेन नैरयिकाः करणत एव असातां वेदनां वेदयन्ति, ' णो अकरणमो ' नो अकरणतः करणं विना नैरयिकाः असातां वेदनां न वेदयन्ति—इत्यर्थः । उपसंहरति—' से तेणट्टेणं ' हे गौतम ! तत् तेनार्येन यत् नैरयिकाः करणत एव, नो अकरणतः असातां वेदनां वेदयन्तीत्युच्यते । गौतमः पृच्छति—' असुरकुमाराणं किं करणमो ? ' असुरकुमाराः खलु किम् करणतः, अकरणतो वा सातां सुखरूपां वेदनां वेदयन्ति ? भगवानाह—' गोयमा ! करणमो, नो अकरणमो ' हे गौतम ! असुरकुमाराः करणत एव सातां सुखरूपां

કાપકરણ, ઔર કર્મકરણ યે ચાર પ્રકાર કે કરણ હોતે હેં એસા પ્રકૃટ ક્રિયા ગયા હે સો (इच्छेष्टं चउच्चिहेष्टं અસુમેષં કરણેણં નેરહ્યા કરણમ્ અસાયં વેયણં વેયંતિ) વે નારક જીવ ઇન પૂર્વોક્ત ચાર કરણો વલે હોતે હેં—ઇસ કારણ વે કરણ દ્વારા આશાતાવેદના કા અનુભવ કરતે હેં (णो अकरणो) કરણ કે વિના વે ઉસ વેદના કા અનુભવ નહીં કરતે હેં (से तेणट्टेणं) ઇસ કારણ હે ગૌતમ ! મેને એસા કહા હેં કિ નારક જીવ કરણ સે હી અશાતા કા અનુભવ કરતે હેં કરણ કે વિના નહીં । અથ ગૌતમ સ્વામી પ્રશ્ન સે પુનઃ એસા પૂછતે હેં કિ—(असुरकुमारा णं किं करणमो अकरणमो) હે ભદન્ત ! અસુરકુમાર કયા કરણ દ્વારા હી શાતા—સુખરૂપ વેદના કા અનુભવ કરતે હેં યા કરણ કે વિના હી સુખરૂપ શાતા વેદના કા અનુભવ કરતે હેં ? ઇસકે ઉત્તર મેં પ્રશ્ન

અને કર્મકરણ, એ ચાર પ્રકારનાં કરણ હોય છે. (इच्छेष्टं चउच्चिहेष्टं અસુમેષં કરણેણં નેરહ્યા કરણમ્ અસાયં વેયણં વેયંતિ) એ ચાર પ્રકારનાં અશુભ કરણો દ્વારા તેઓ અશાતાવેદનાનો અનુભવ કરે છે, “ णो अकरणमो ” તેઓ અકરણથી (કરણો વિના) તે વેદનાનો અનુભવ કરતા નથી. “ से तेणट्टेणं ” હે ગૌતમ ! તે કરણે મેં એવું કહ્યું છે કે નારક જીવો કરણથી જ અશાતા વેદનાનો અનુભવ કરે છે, કરણ વિના તેઓ અશાતાવેદનાનો અનુભવ કરતા નથી.

હવે ગૌતમ સ્વામી મહાવીર પ્રભુને એવો પ્રશ્ન પૂછે છે કે—(असुरकुमाराणं किं करणमो अकरणमो ?) હે ભદન્ત ! શું અસુરકુમાર દેવો કરણ દ્વારા જ શાતા—સુખરૂપ—વેદનાનો અનુભવ કરે છે, કે અકરણ દ્વારા (કરણ વિના) જ સુખરૂપ શાતાવેદનાનો અનુભવ કરે છે ?

ઉત્તર—“ ગોયમા ! ” હે ગૌતમ ! (કરણમો નો અકરણમો) અસુર-

वेदनाम् अनुभवन्ति, नो अकरणतस्तामनुभवन्ति ? गौतम आह—‘से केणट्टेणं ?’ हे भदन्त ! तत् केनोर्येन अमुरकुमाराः करणत एव, नो अकरणतः सातां वेदनां वेदयन्ति ? । भगवानाह—‘ गोयमा ! अमुरकुमाराणं चउच्चिवहे करणे पणत्ते ’ हे गौतम ! अमुरकुमाराणाम् चतुर्विधं करणं प्रज्ञप्तम्, ‘तं जहा—मणकरणे, वयकरणे कायकरणे, कम्मकरणे’ तत्रथा—मनःकरणम्, वचनःकरणम्, कायकरणम्, कर्मकरणं च, ‘ इच्चेएणं सुभेणं करणेणं अमुरकुमारा णं करणओ सायं वेयणं वेयंति ’ इत्येतेन उपर्युक्तेन मनोवचःकायादिना शुभेन करणेन अमुरकुमाराः खलु करणत एव सातां वेदनां वेदयन्ति, ‘ णो अकरणओ ’ नो अकरणतः सातां वेदनां ते वेदयन्ति, ‘ एवं जाव—थणियकुमाराणं ’ एवम्—अमुरकुमारवदेन यावत्—नागकुमार

उनसे कहते हैं (गोयमा) हे गौतम ! (करणओ नो अकरणओ) असुरकुमार करणद्वारा ही सुखरूप शातावेदना का अनुभव करते हैं अकरण—करण के बिना नहीं, अब गौतम स्वामी प्रभु से ऐसे कथन में कारण क्या है ? इस विषय को जानने की इच्छा से पूछते हैं (से केणट्टेणं) हे भदन्त ! आप ऐसा किस कारण से कहते हैं ? इसके उत्तर में प्रभु कहते हैं कि (गोयमा) हे गौतम ! (असुरकुमाराणं चउच्चिवहे करणे पणत्ते तं जहा मणकरणे, वयकरणे, कायकरणे, कम्मकरणे—इच्चेएणं सुभेणं करणेणं अमुरकुमाराणं करणओ सायं वेयणं वेयंति) असुरकुमारों के मनकरण, वचनकरण कायकरण और कर्मकरण ये चार होते हैं ऐसा अभी २ प्रकट किया गया है सो इन चार शुभ करणों से युक्त होने के कारण ये करण से ही सुखरूप शातावेदना का अनुभव करते हैं (णो अकरणओ) करण के सिवाय नहीं ऐसा मैंने कहा है (एवं जाव

कुमारे। करण द्वारा ज शातावेदानुं वेदन करे छे, तेओ करण विना तेनुं वेदन करता नथी. तेनुं करण जणुवा भाटे गौतम स्वामी आ प्रकारेनो प्रश्न पूछे छे.

“ से केणट्टेणं ” छे भदन्त ! आप शा करण्णे ओवुं कडे छे ?

उत्तर—“ गोयमा ! ” छे गौतम ! ” (असुरकुमाराणं चउच्चिवहे करणे पणत्ते—तं जहा ” असुरकुमारेने नीचे प्रमाणे चार करण्णे डोय छे—(मणकरणे, वयकरणे, कायकरणे, कम्मकरणे) मनकरण, वचनकरण, कायकरण अने कर्मकरण.

(इच्चेएणं सुभेणं करणेणं अमुरकुमाराणं करणओ सायं वेयणं वेयंति) आ शुभ करण्णेधी युक्त होवाने करण्णे तेओ करण्णे द्वारा ज सुभरूप शातावेदानो अनुभव करे छे, “ णो अकरणओ ” करण विना तेओ तेने अनुभव करता नथी.

સુવર્ણકુમાર-વિશ્વકુમાર - અગ્નિકુમાર - ક્ષીપકુમારો-દધિકુમાર-દિશાકુમાર-
પવનકુમારાણાં સ્તનિતકુમારાણાં ન ભવનપતીનામપિ બોધ્યમ્, તથા ન નાગકુમા-
રદિ-સ્તનિતકુમારપર્યન્તા અપિ દેવાઃ કરણતઃ ઇવ સાતાં વેદનાં વેદયન્તિ, નો
અકરણતઃ ઇતિ । ' પુદવીકાશ્યાણં ઇવામેવ પુચ્છા ? ' પૃથિવીકાચિકાનામપિ
જીવાનામ્ ઇવમેવ નૈરધિકાદિવદેવ પૃચ્છા પ્રશ્નઃ, તથા ચ-પૃથિવીકાચિકા જીવાઃ
કિં કરણતઃ અકરણતો યા સાતામ્ અસાતાં યા વેદનાં વેદયન્તિ ? ઇતિ પ્રશ્ન ક્ષદ-
નીયઃ, ભગવાન્ તત્ર વિશેષતાં પ્રતિપાદયતિ-' ણવરં-ઇચ્છેણં સુભાસુભેણં કર-
ણેણં પુદવીકાશ્યા કરણઓ વેમાયાપ વેયણં વેયંતિ, ણો અકરણઓ ' નવરમ્-

ધણિયકુમારાણં) અસુરકુમારોં કોં તરહ્ સે હી યાવત્-નાગકુમાર,
સુવર્ણકુમાર, વિશ્વકુમાર, અગ્નિકુમાર, ક્ષીપકુમાર, ઉદધિકુમાર,
દિશાકુમાર, પવનકુમાર, ઓર સ્તનિતકુમાર ઇન ભવનપતિયોં કે ભી
જાનના ચાહિયે । ઇસ તરહ્ નાગકુમારદિ સ્તનિતકુમારતક કે સય હી
દેવ ભવનપતિદેવ-કરણદ્વારા હી સાતાવેદના કા અનુભવ કરતે હેં અક-
રણ દ્વારા નહીં । (પુદવીકાશ્યાણં ઇવામેવ પુચ્છા) પૃથિવીકાચિક જીવોં
કે ભી નારક જીવોં કી તરહ્ સે હી પ્રશ્ન કરના ચાહિયે-તથા ચ હે ભદન્ત !
પૃથિવીકાચિક જીવ કયા કરણ દ્વારા, યા કરણ કે વિના હી શાતા
અશાતારૂપ વેદના કા અનુભવ કરતે હેં ? ઇસા પ્રશ્ન અપને આપ
સમજલેના ચાહિયે-તય ઇસ પ્રશ્ન કે ઉત્તર મેં પ્રશ્ન વિશેષતા કા પ્રતિ-
પાદન કરતે હેં (ણવરં ઇચ્છેણં સુભાસુભેણં કરણેણં પુદવીકાશ્યા કર

(ઇવં જાવ ધણિયકુમારાણં) ઓ જ પ્રમાણે (અસુરકુમારોની જેમજ)
સ્તનિતકુમાર પર્યન્તના દેવો પશુ ચાર કરણ દ્વારા જ અનુભવ કરે છે. એટલે
કે અસુરકુમાર, નાગકુમાર, સુવર્ણકુમાર, વિશ્વકુમાર, અગ્નિકુમાર, ક્ષીપકુમાર,
ઉદધિકુમાર, દિશાકુમાર, પવનકુમાર, અને સ્તનિતકુમાર, એ ભવનપતિ દેવો
પશુ ચાર કરણો વડે જ સુખરૂપ શાતાવેદનાનું વેદન કરે છે. તેઓ અકરણ
દ્વારા સાતાવેદનાનો અનુભવ કરતા નથી.

(પુદવિકાશ્યાણં ઇવામેવ પુચ્છા) કે ભદન્ત ! પૃથ્વીકાચી જીવોના વિષ-
યમાં પશુ હું ઓજ પ્રકારનો પ્રશ્ન પૂછવા માગું છું-શું પૃથ્વીકાચી જીવો કરણ
દ્વારા શાતાવેદના અને અશાતાવેદનાનો અનુભવ કરે છે, કે અકરણ દ્વારા તેનો
અનુભવ કરે છે ?

આ પ્રશ્નનો જવાબ આપતા મહાવીર પ્રશ્ન તેમના વિષયમાં કેટલીક
વિશેષતાનું પ્રતિપાદન કરે છે-(ણવરં ઇચ્છેણં સુભાસુભેણં કરણેણં કાશ્યા

विशेषः पुनरेतावानेव यत् इत्येतेन उपरि वर्णितेन शुभाऽशुभेन करणेण पृथिवी
 कायिकाः करणतो विमात्रया-विविधया मात्रया कदाचित् सुखात्मिकां सातां
 वेदनां वेदयन्ति, कदाचिच्च दुःखात्मिकाम् असातां वेदनां वेदयन्ति किन्तु नो
 अकरणतः करणं विना तथाविधवेदनां शुभामशुभां वा वेदयन्ति । तथा
 'ओरालियसरीरा सव्वे सुभामुभेणं वेमायाए' औदारिकशरीराः सर्वे जीवाः
 शुभाऽशुभेन करणेन विमात्रया कदाचित् सातां वेदनां वेदयन्ति, कदाचित् असातां
 वेदनां वेदयन्ति । 'देवा सुभेणं सायं' देवाः शुभेन करणेन सातां सुखरूपां
 वेदनां वेदयन्ति, नो दुःखरूपाम् असातां वेदनां वेदयन्तीति भावः ॥ सू० २ ॥

णओ वेमायाए वेयणं वेयंति, णो अकरणओ) ये कहते हैं कि जो
 पृथिवीकायिक एकेन्द्रिय जीव हैं वे पूर्वोक्त शुभाशुभ करण द्वारा,
 विमात्रा से-भजना से कभी सुखरूप शातावेदना का और कभी दुःख-
 रूप अशातावेदना का-इस प्रकार की विविधमात्रा से-वेदना का अनुभव
 करते हैं-करण के विना तथाविध शुभाशुभ वेदना का अनुभव नहीं
 करते । तथा-(ओरालियसरीरा सव्वे सुभामुभेणं वेमायाए) जितने
 भी औदारिक शरीरवाले-एकेन्द्रिय से लेकर समस्त पंचेन्द्रिय मनुष्य
 और तिर्यच जीव हैं वे सब शुभ और अशुभकरण द्वारा ही विमात्रा
 से कदाचित् सातावेदना का और कदाचित् आसातावेदना का अनुभव
 करते हैं । (देवा सुभेणं सायं) देव शुभकरण द्वारा साता सुखरूप
 वेदनाका ही अनुभव करते हैं, दुःखरूप असातावेदना का नहीं ॥सू० २॥

करणओ वेमायाए वेयणं वेयंति) छे गीतम ! ते पृथ्वीकायिक ऐकेन्द्रिय एवो
 छे तेओ उच्युंक्त शुभाशुभ करणो वटे क्यारेक दुःखरूप अशातावेदनानो
 अनुभव करे छे, तेओ करणु विना शातावेदना अने अशातावेदनानो अनुभव
 करता नथी. आ रीते पृथ्वीकायोमां विकल्पे शातावेदना अने अशातावेदनाना
 वेदननुं प्रतिपादन करायुं छे.

(ओरालियसरीरा सव्वे सुभामुभेणं वेमायाए) नेटला औदारिक शरीर-
 पाणा एवो छे, (अटले के ऐकेन्द्रियथी लधने समस्त पंचेन्द्रिय मनुष्य अने
 तिर्यचो) तेओ शुभ अने अशुभ करणु द्वारा विकल्पे शातावेदना अने
 अशातावेदनानो अनुभव करे छे-अटले के क्यारेक शातावेदनानो अनुभव करे
 छे अने क्यारेक अशातावेदनानो अनुभव करे छे. "देवा सुभेणं सायं"
 हेरो शुभ करणु वटे सुखरूप शातावेदनानो अनुभव करे छे. तेओ दुःख-
 रूप अशातावेदनानो अनुभव करता नथी. ॥ सूत्र २ ॥

वेदना-निर्जरयोः सादनर्थवक्तव्यता ।

वेदना-निर्जरयोरधिकारान् तयोः सादनर्थं प्रतिपादयितुमाह- 'जीवाणं भंते !' इत्यादि ।

मूलम्—“ जीवा णं भंते ! किं महावेयणा महानिज्जरा, महावेयणा अप्पनिज्जरा, अप्पवेयणा महानिज्जरा, अप्पवेयणा अप्पनिज्जरा ? गोयमा ! अत्थेगइया जीवा महावेयणा महानिज्जरा, अत्थेगइया जीवा महावेयणा अप्पनिज्जरा, अत्थेगइया जीवा अप्पवेयणा महानिज्जरा, अत्थेगइया जीवा अप्पवेयणा अप्पनिज्जरा । से केणट्टेणं०? गोयमा ! पडिमा पडिवन्नए अणगारे महावेयणे महानिज्जरे, छट्टि-सत्तमासु पुढवीसु नेरइया महावेयणा अप्पनिज्जरा । सेलेसि पडिवन्नए अणगारे अप्पवेयणे महानिज्जरे । अणुत्तरोववाइया देवा अप्पवेयणा अप्पनिज्जरा । सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति,

‘महावेयणे य वत्थ कहम-खंजणकए य अहिगरणी । तणहत्थे य कवल्ले, करण महावेयणा जीवा ” ॥सू०३॥

छाया- जीवाः खलु भदन्त ! किं महावेदनाः-महानिर्जराः १, महावेदनाः अल्पनिर्जराः २, अल्पवेदनाः-महानिर्जराः, ३, अल्पवेदनाः-अल्पनिर्जराः ४,

वेदना और निर्जरा में साहचर्यवक्तव्यता-

‘जीवाणं भंते !’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(जीवा णं भंते ! किं महावेयणा, महानिज्जरा, महावेयणा अप्पनिज्जरा, अप्पवेयणा महानिज्जरा, अप्पवेयणा अप्पनिज्जरा)

वेदना अने निर्जरां साहचर्यं वक्तव्यता—

“ जीवाणं भंते ! इत्यादि—

सूत्रार्थ—(जीवाणं भंते ! किं महावेयणा महानिज्जरा, महावेयणा अप्पनिज्जरा, अप्पवेयणा महानिज्जरा, अप्पवेयणा अप्पनिज्जरा ?) ६ अह-त. १. ७

ગૌતમ ! સન્ત્યેકકે જીવાઃ મહાવેદનાઃ-મહાનિર્જરાઃ ૧, સન્ત્યેકકે જીવાઃ મહાવેદનાઃ-અલ્પનિર્જરાઃ ૨, સન્ત્યેકકે જીવાઃ અલ્પવેદનાઃ-મહાનિર્જરાઃ ૩, સન્ત્યેકકે જીવાઃ અલ્પવેદનાઃ-અલ્પનિર્જરાઃ ૪ । તત્ કેનાર્થેન ? । ગૌતમ ! પઠિમાપતિપદ્મકોડનગારો મહાવેદનો-મહાનિર્જરઃ । પૃષ્ઠી-સપ્તમ્યોઃ પૃથિવ્યોઃ

હે ભદ્રન્ત ! જો જીવ મહાવેદના વાળે હોતે હૈં ? વે કયા મહાનિર્જરાવાલે હોતે હૈં ? તથા-જો જીવ મહાવેદના વાલે હોતે હૈં, વે કયા અલ્પનિર્જરા વાલે હોતે હૈં ? તથા-જો જીવ અલ્પવેદના વાળે હોતે હૈં, વે કયા મહાનિર્જરાવાલે હોતે હૈં ? તથા-જો જીવ અલ્પવેદનાવાલે હોતે હૈં વે કયા અલ્પનિર્જરાવાલે હોતે હૈં ? (અત્યેગદ્યા જીવા મહાવેયણા મહાનિર્જરા મહાવેયણા અપ્પનિર્જરા, અત્યેગદ્યા જીવા અપ્પવેયણા મહાનિર્જરા, અત્યેગદ્યા જીવા અપ્પવેયણા અપ્પનિર્જરા) હે ગૌતમ ! કિતનેક જીવ એસે હોતે હૈં જો મહાવેદનાવાલે હોતે હૈં ઓર મહાનિર્જરાવાલે હોતે હૈં । કિતનેક જીવ એસે હોતે હૈં જો મહાવેદનાવાલે હોતે હૈં ઓર અલ્પનિર્જરાવાલે હોતે હૈં । કિતનેક જીવ એસે હોતે હૈં જો અલ્પવેદનાવાલે હોતે હૈં ઓર મહાનિર્જરાવાલે હોતે હૈં ? ઓર કિતનેક જીવ એસે હોતે હૈં જો અલ્પવેદના વાલે હોતે હૈં ઓર અલ્પનિર્જરા વાલે હોતે હૈં ? (સે કેળટ્ટેણં) હે ભદ્રન્ત ! એસા આપ કિસ કારણ સે કહતે હૈં ? (ગોચમા) હે ગૌતમ ! (પઠિમાપતિવન્નપ અળગારે મહાવેયણે મહાનિર્જરે, છદ્ધસત્તમાસુ પુઢવીસુ નેરહયા

અવ મહાવેદનાવાળા હોય તેઓ શું મહાનિર્જરાવાળા હોય છે ? અથવા જે
 અવ મહાવેદનાવાળા હોય તેઓ શું અલ્પનિર્જરાવાળા હોય છે ? તથા જે
 અવ અલ્પવેદનાવાળા હોય તેઓ શું મહાનિર્જરાવાળા હોય છે ? અથવા જે
 અવ અલ્પવેદનાવાળા હોય તેઓ શું અલ્પનિર્જરાવાળા હોય છે ?

(અત્યેગદ્યા જીવા મહાવેયણા મહાનિર્જરા મહાવેયણા અપ્પનિર્જરા, અત્યેગદ્યા જીવા અપ્પવેયણા મહાનિર્જરા, અત્યેગદ્યા જીવા અપ્પવેયણા અપ્પનિર્જરા) હે ગૌતમ ! કેટલાક અવ એવા હોય છે કે જે મહાવેદનાવાળા હોય છે અને મહાનિર્જરાવાળા હોય છે. કેટલાક અવ એવાં હોય છે કે જે મહાવેદનાવાળા હોય છે અને અલ્પનિર્જરાવાળા હોય છે. કેટલાક અવ એવાં હોય છે કે જે અલ્પવેદનાવાળા હોય છે અને મહાનિર્જરાવાળા હોય છે. અને કેટલાક અવ એવા હોય છે કે જે અલ્પવેદનાવાળા હોય છે અને અલ્પનિર્જરાવાળા હોય છે. (સે કેળટ્ટેણં) હે ભદ્રન્ત ! એવું આપ શા કારણે કહો છો ! (ગોચમા) હે ગૌતમ ! (પઠિમાપતિવન્નપ અળગારે મહાવેયણે મહાનિર્જરે, છદ્ધિ સત્તમાસુ

वेदना-निर्जरयोः सादन्यवक्तव्यता ।

वेदना-निर्जरयोरधिकारान् तयोः सादन्यं प्रतिपादयितुमाह- 'जीवाणं भंते !' इत्यादि ।

मूलम्—“ जीवा णं भंते ! किं महावेयणा महानिज्जरा, महावेयणा अप्पनिज्जरा, अप्पवेयणा महानिज्जरा, अप्पवेयणा अप्पनिज्जरा ? गोचमा ! अत्थेगइया जीवा महावेयणा महानिज्जरा, अत्थेगइया जीवा महावेयणा अप्पनिज्जरा, अत्थेगइया जीवा अप्पवेयणा महानिज्जरा, अत्थेगइया जीवा अप्पवेयणा अप्पनिज्जरा । से केणट्टेणं०? गोयमा ! पडिमा पडिवन्नए अणगारे महावेयणे महानिज्जरे, छट्ठि-तत्तमासु पुढवीसु नेरइया महावेयणा अप्पनिज्जरा । सेलेसि पडिवन्नए अणगारे अप्पवेयणे महानिज्जरे । अणुत्तरोववाइया देवा अप्पवेयणा अप्पनिज्जरा । सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति,

‘महावेयणे य वत्थ कहम-खंजणकए य अहिगरणी । तणहत्थे य कवल्ले, करण महावेयणा जीवा ” ॥सू०३॥

छाया- जीवाः खलु भदन्त ! किं महावेदनाः-महानिर्जराः १, महावेदनाः अल्पनिर्जराः २, अल्पवेदनाः-महानिर्जराः, ३, अल्पवेदनाः-अल्पनिर्जराः ४,

वेदना और निर्जरा में साहचर्यवक्तव्यता-

‘जीवाणं भंते !’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(जीवा णं भंते ! किं महावेयणा, महानिज्जरा, महावेयणा अप्पनिज्जरा, अप्पवेयणा महानिज्जरा, अप्पवेयणा अप्पनिज्जरा)

वेदना अने निर्जरां साहचर्यं वक्तव्यता—

“ जीवाणं भंते ! इत्यादि—

सूत्रार्थ—(जीवाणं भंते ! किं महावेयणा महानिज्जरा, महावेयणा अप्पनिज्जरा, अप्पवेयणा महानिज्जरा, अप्पवेयणा अप्पनिज्जरा ?) हे लक्ष्मण ! ७

अतिशय वेदानावन्तः, अतिशय निर्जरावन्तश्च?, अथवा 'महावेद्येणा अप्पनिज्जरा'
महावेदनाः अल्पनिर्जरा भवन्ति २, 'अप्पवेद्येणा महानिज्जरा?' अल्पवेदनाः
महानिर्जरा वा भवन्ति? ३, उताहो 'अप्पवेद्येणा अप्पनिज्जरा?' अल्पवेदनाः
अल्पनिर्जरा भवन्ति? ४। भगवानाह—'गोयमा! अत्थेग्दया जीवा महावेद्येणा-
महानिज्जरा' हे गौतम! सन्ति एकके केचन जीवाः महावेदनाः महानिर्जरा-
वन्तश्च?, इत्यादिव्याख्या निगदसिद्धा, गौतम आह—'से केणट्टेण?' हे
भदन्त! तत् केनार्थेन एवम्-पूर्वाक्तप्रकारेण उच्यते? भगवानाह—'गोयमा!
पडिमापडिवन्नए अणगारे महावेद्येणे महानिज्जरे' हे गौतम! प्रतिमाप्रति-
पन्नकः प्रतिमाधारी अनगारः महावेदनावान् महानिर्जरावांश्च भवति। 'छट्टि-
सत्तमासु पुढवीसु नेरइया महावेद्येणा अप्पनिज्जरा' पण्ठी-सप्तन्योः पृथिव्योः

महानिज्जरा?) हे भदन्त! जीव ऐसे भी होते हैं क्या? जो महावेदना-
वाले होकर भी महानिर्जरावाले होते हैं? अथवा—(महावेद्येणा अप्प-
निज्जरा) जो महावेदनावाले होकर भी अल्पनिर्जरावाले होते हैं? अथवा
(अप्पवेद्येणा महानिर्जरा) अल्पवेदनावाले होकर भी जो महानिर्जरा-
वाले होते हैं? अथवा (अप्पवेद्येणा अप्पनिज्जरा) अल्पवेदनावाले
होकर भी जो अल्प ही निज्जरावाले होते हैं? ऐसे ये चार प्रश्न गौतम-
स्वामी ने प्रभु से पूछे हैं। इन प्रश्नों का उत्तर देते हुए प्रभु गौतम से
कहते हैं कि—(गोयमा) हे गौतम! (पडिमापडिवन्नए अणगारे महावे-
द्येणे महानिज्जरे) जो, प्रतिमा को जिसने धारण कर रखा है ऐसा
अनगार होता है वह महावेदना को भी सहन करता है और महानि-
र्जरा अतिशय निर्जरावाला भी होता है। (छट्टिसत्तमासु पुढवीसु नेर-

महानिज्जरा?) हे भदन्त! शुं ज्जेवां पण्णु एवो डोय छे उं ने मडावेदना-
वाणा डोवा छतां महानिर्जरावाणा डोय छे? अथवा (महावेद्येणा अप्पनिज्जरा)
ने मडावेदनावाणा डोवा छतां अप्पनिर्जरावाणा डोय छे? अथवा (अप्प-
वेद्येणा महानिज्जरा) ने अप्पनिर्जरावाणा डोवा छतां महानिर्जरावाणा डोय
छे? अथवा (अप्पवेद्येणा अप्पनिज्जरा) ने अप्पवेदनावाणा डोवा छतां
अप्पनिर्जरावाणा डोय छे? गौतम स्वामीज्जे आ प्रभाण्णे आर प्रश्नो मडा-
वीर प्रभुने पूछथा छे.

गौतम स्वामीना प्रश्नोना ज्जाण आपता मडावीर प्रभु उडे छे—
"गोयमा!" हे गौतम! (पडिमापडिवन्नए अणगारे महावेद्येणे महानिज्जरे)
प्रतिमाधारी अण्णुगार मडावेदनां पण्णु वेदन करतो डोय छे अने महानिर्ज-
रावाणा (अतिशय निर्जरा करुनाशे) पण्णु डोय छे. (छट्टिसत्तमासु पुढवीसु

નેરયિકાઃ મહાવેદનાઃ—અલ્પનિર્જરાઃ । શૈલેશીં પ્રતિપન્નકઃ અનગારઃ અલ્પવેદનો-
મહાનિર્જરઃ । અનુત્તરોપપાતિકા દેવા અલ્પવેદનાઃ અલ્પનિર્જરાઃ । તદેવં મદન્ત !
તદેવં મદન્ત ! ઇતિ ॥ “મહાવેદનથા, વચ્ચં, કર્દમ-લગ્નકૃતં ચાધિકરણી । ત્થ
હસ્તકથ કચલ્લં, કરણ-મહાવેદના ગીતાઃ” ॥ ૫૦ ૩ ॥

ટીકા— ‘જીવા ણં મંતે ! કિં મહાવેયણા - મહાનિજ્જરા ?’ ગૌતમઃ
પૃચ્છતિ—હે મદન્ત ! ગીવાઃ સલુ કિમ્ મહાવેદનાઃ મહાનિર્જરાશ્ચ મવન્તિ,

મહાવેયણા અલ્પનિજ્જરા સેલેસિં પઢિવન્નપ્ અનગારે અલ્પવેયણે મહાનિ-
જ્જરે અણુત્તરોવવાહ્યા દેવા અલ્પવેયણા અલ્પનિજ્જરા । સેવં મંતે ! સેવં
મંતે ! ત્તિ) જો અનગાર પ્રતિમાપ્રતિપન્ન હોતા હૈ, વહ મહાવેદનાવાલા
ઔર મહાનિર્જરાવાલા હોતા હૈ, છટ્ટી ઔર સાતવીં પૃથિવી મેં જો નારક
જીવ હોતે હૈં વે મહાવેદનાવાલે ઔર અલ્પનિર્જરાવાલે હોતે હૈં । શૈલેશી
અવસ્થા પ્રાપ્ત જો અનગાર હોતા હૈ, વહ અલ્પવેદનાવાલા ઔર મહાનિ-
ર્જરાવાલા હોતા હૈ ! તથા અનુત્તરોપપાતિક જો દેવ હોતે હૈં, વે અલ્પ-
વેદના ઔર અલ્પનિર્જરાવાલે હોતે હૈં । હે મદન્ત ! જૈસા આપને વહ
કહા હૈ વહ ઁસા હી હૈ—હે મદન્ત ! વહ ઁસા હી હૈ । ઁસા કહકર વે
ગૌતમ યાવત્ અપને સ્થાન પર વિરાજમાન હો ગયે ।

ટીકાર્થ—વેદના ઔર નિર્જરા કા અધિકાર ચલ રહા હૈ ઇસસે યહાં
પર સૂત્રકાર ને ઇન દોનોં કા સાહચર્ય પ્રતિપાદન કિયા હૈ—ગૌતમ ને
પ્રશ્ન સે ઇસ વિષય મેં ઁસા પૂછા હૈ કિ—(જીવાણં મંતે ! કિં મહાવેયણા

પુલ્લોસુ નેરહ્યા મહાવેયણા અલ્પનિજ્જરા, સેલેસિં પઢિવન્નપ્ અનગારે અલ્પવેયણે
મહાનિજ્જરે, અણુત્તરોવવાહ્યા દેવા અલ્પવેયણા અલ્પનિજ્જરા) પ્રતિમા ધારણુ કર-
નારે અણુગાર મહાવેદનાવાણો અને મહાનિર્જરાવાણો હોય છે, છટ્ટી અને
સાતમી નરકના નારકો મહાવેદનાવાણા અને અલ્પનિર્જરાવાણા હોય છે.
શૈલેશી અવસ્થા પ્રાપ્ત કરનાર અણુગાર અલ્પવેદનાવાણો અને મહાનિર્જરાવાણો
હોય છે, અને અનુત્તર વિમાનવાસી દેવો અલ્પવેદનાવાણા અને અલ્પનિર્જરા-
વાણા હોય છે. (સેવં મંતે ! સેવં મંતે ત્તિ) હે મદન્ત ! આપે કહ્યા પ્રમાણે જ
છે. આપની વાત સત્ય અને યથાર્થ છે. આ પ્રમાણે કહીને વંદણા નમસ્કાર
કરીને ગૌતમ સ્વામી તેમને સ્થાને બેસી ગયા.

ટીકાર્થ—વેદના અને નિર્જરાનો અધિકાર આવી રહ્યો છે. તેથી સૂત્રકારે
આ સૂત્રમાં તે બંનેના સાહચર્યનું પ્રતિપાદન કર્યું છે. આ વિષયમાં ગૌતમ
સ્વામી મહાવીર પ્રભુને એવો પ્રશ્ન પૂછે છે કે (જીવાણં મંતે ! કિં મહાવેયણા

अतिशय वेदानावन्तः, अतिशय निर्जरावन्तश्च?, अथवा 'महावेयणा अप्पनिज्जरा'
 महावेदनाः अल्पनिर्जरा भवन्ति २, 'अल्पवेयणा महानिज्जरा?' अल्पवेदनाः
 महानिर्जरा वा भवन्ति? ३, उताहो 'अल्पवेयणा अप्पनिज्जरा?' अल्पवेदनाः
 अल्पनिर्जरा भवन्ति? ४। भगवानाह—'गोयमा! अरुधेगइया जीवा महावेयणा-
 महानिज्जरा' हे गौतम! सन्ति एकके केचन जीवाः महावेदनाः महानिर्जरा-
 वन्तश्च?, इत्यादिव्याख्या निगदसिद्धा, गौतम आह—'से केणट्ठेण?' हे
 भदन्त! तत् केनार्थेन एवम्-पूर्वोक्तप्रकारेण उच्यते? भगवानाह—'गोयमा!
 पडिमापडिवन्नए अणगारे महावेयणे महानिज्जरे' हे गौतम! प्रतिमाप्रति-
 पन्नकः प्रतिमाधारी अनगारः महावेदनावान् महानिर्जरावांश्च भवति। 'छट्ठि-
 सत्तमासु पुढवीसु नेरइया महावेयणा अप्पनिज्जरा' पण्ठी-सत्तन्योः पृथिव्योः

महानिज्जरा?) हे भदन्त! जीव ऐसे भी होते हैं क्या? जो महावेदना-
 वाले होकर भी महानिर्जरावाले होते हैं? अथवा—(महावेयणा अप्प-
 निज्जरा) जो महावेदनावाले होकर भी अल्पनिर्जरावाले होते हैं? अथवा
 (अल्पवेयणा महानिर्जरा) अल्पवेदनावाले होकर भी जो महानिर्जरा-
 वाले होते हैं? अथवा (अल्पवेयणा अप्पनिज्जरा) अल्पवेदनावाले
 होकर भी जो अल्प ही निज्जरावाले होते हैं? ऐसे ये चार प्रश्न गौतम-
 स्वामी ने प्रभु से पूछे हैं। इन प्रश्नों का उत्तर देते हुए प्रभु गौतम से
 कहते हैं कि—(गोयमा) हे गौतम! (पडिमापडिवन्नए अणगारे महावे-
 यणे महानिज्जरे) जो, प्रतिमा को जिसने धारण कर रखा है ऐसा
 अनगार होता है वह महावेदना को भी सहन करता है और महानि-
 र्जरा अतिशय निर्जरावाला भी होता है। (छट्ठिसत्तमासु पुढवीसु नेर-

महानिज्जरा?) हे भदन्त! शुं जेवां पणु एवो डोय छे के जे महावेदना-
 वाणा डोवा छतां महानिर्जरावाणा डोय छे? अथवा (महावेयणा अप्पनिज्जरा)
 जे महावेदनावाणा डोवा छतां अल्पनिर्जरावाणा डोय छे? अथवा (अल्प-
 वेयणा महानिज्जरा) जे अल्पनिर्जरावाणा डोवा छतां महानिर्जरावाणा डोय
 छे? अथवा (अल्पवेयणा अप्पनिज्जरा) जे अल्पवेदनावाणा डोवा छतां
 अल्पनिर्जरावाणा डोय छे? गौतम स्वामीजे आ प्रभाजे चार प्रश्नो महा-
 वीर प्रभुने पूछथा छे.

गौतम स्वामीना प्रश्नोना ज्वाअ आपता महावीर प्रभु कडे छे—
 "गोयमा!" हे गौतम! (पडिमापडिवन्नए अणगारे महावेयणे महानिज्जरे)
 प्रतिमाधारी अणुगार महावेदनां पणु वेदन करतो डोय छे अने महानिर्ज-
 रावाणो (अतिशय निर्जरा करतारे) पणु डोय छे. (छट्ठिसत्तमासु पुढवीसु

નૈરયિકાઃ મહાવેદનાઃ—અલ્પનિર્ગમાઃ । શૈલેશીં પ્રતિમાન્નકઃ અનગારઃ અલ્પવેદનો-
મહાનિર્જરઃ । અનુત્તરોપપાતિકા દેવા અલ્પવેદનાઃ અલ્પનિર્ગમાઃ । તદેવં મદન્ત !
તદેવં મદન્ત ! ઇતિ ॥ “મહાવેદનમ, વયમ્, કર્દમ-લગ્નનક્રમં તાપિકરણી । ત્વ
હસ્તકથ કચલ્લં, કરણ-મહાવેદના ત્રીયાઃ ” ॥ યુ૦ ૩ ॥

ટીકા— ‘ જીવા ણં મંતે ! કિં મહાવેયના - મહાનિજ્જરા ? ’ ગૌતમઃ
પૃચ્છતિ—હે મદન્ત ! ત્રીયાઃ સ્વલુ કિમ્ મહાવેદનાઃ મહાનિર્જરાશ્ર મવન્તિ,

મહાવેયના અલ્પનિજ્જરા સેલેસિ પઢિવન્નપ્ અણગારં અલ્પવેયને મહાનિ-
જ્જરે અણુત્તરોવવાડ્યા દેવા અલ્પવેયના અલ્પનિજ્જરા । સેવં મંતે ! સેવં
મંતે ! ત્તિ) જો અનગાર પ્રતિમાપ્રતિપન્ન હોતા હૈ, વહ મહાવેદનાવાલા
ઑર મહાનિર્જરાવાલા હોતા હૈ, છટ્ટી ઑર સાતવાં પૃથિવી મેં જો નારક
જીવ હોતે હૈં વે મહાવેદનાવાલે ઑર અલ્પનિર્જરાવાલે હોતે હૈં । શૈલેશી
અવસ્થા પ્રાપ્ત જો અનગાર હોતા હૈ, વહ અલ્પવેદનાવાલા ઑર મહાનિ-
ર્જરાવાલા હોતા હૈ ! તથા અનુત્તરોપપાતિક જો દેવ હાતે હૈં, વે અલ્પ-
વેદના ઑર અલ્પનિર્જરાવાલે હોતે હૈં । હે મદન્ત ! જૈસા આપને વહ
કહા હૈ વહ ંસા હી હૈ—હે મદન્ત ! વહ ંસા હી હૈ । ંસા કહકર વે
ગૌતમ યાવત્ અપને સ્થાન પર વિરાજમાન હો ગયે ।

ટીકાર્થ—વેદના ઑર નિર્જરા કા અધિકાર ચલ રહા હૈ ઇસસે યહાં
પર સૂત્રકાર ને ઇન ઢોનોં કા સાહચર્ય પ્રતિપાદન કિયા હૈ—ગૌતમ ને
પ્રશ્ન સે ઇસ વિષય મેં ંસા પૂછા હૈ કિ—(જીવાણં મંતે ! કિં મહાવેયના

પુઢ્વોસુ નેરડ્યા મહાવેયના અલ્પનિજ્જરા, સેલેસિં પઢિવન્નપ્ અણગારે અલ્પવેયને
મહાનિજ્જરે, અણુત્તરોવવાડ્યા દેવા અલ્પવેયના અલ્પનિજ્જરા) પ્રતિમા ધારણુ કર-
નારે અણુગાર મહાવેદનાવાળો અને મહાનિર્જરાવાળો હોય છે, છટ્ટી અને
સાતમી નરકના નારકો મહાવેદનાવાળા અને અલ્પનિર્જરાવાળા હોય છે.
શૈલેશી અવસ્થા પ્રાપ્ત કરનાર અણુગાર અલ્પવેદનાવાળો અને મહાનિર્જરાવાળો
હોય છે, અને અનુત્તર વિમાનવાસી દેવો અલ્પવેદનાવાળા અને અલ્પનિર્જરા-
વાળા હોય છે. (સેવં મંતે ! સેવં મંતે ત્તિ) હે ભદન્ત ! આપે કહ્યા પ્રમાણુ જ
છે. આપની વાત સત્ય અને યથાર્થ છે. આ પ્રમાણુ કહીને વંદણુ તમસ્કાર
કરીને ગૌતમ સ્વામી તેમને સ્થાને બેસી ગયા.

ટીકાર્થ—વેદના અને નિર્જરાને અધિકાર ચાલી રહ્યો છે. તેથી સૂત્રકારે
આ સૂત્રમાં તે બન્નેના સાહચર્યનું પ્રતિપાદન કર્યું છે. આ વિષયમાં ગૌતમ
સ્વામી મહાધીર પ્રભુને એવો પ્રશ્ન પૂછે છે કે (જીવાણં મંતે ! કિં મહાવેયના

अतिशय वेदनायन्तः, अतिशय निर्जरायन्तश्च?, अथवा 'महावेयणा अप्पनिज्जरा' महावेदनाः अल्पनिर्जरा भवन्ति २, 'अप्पवेयणा महानिज्जरा?' अल्पवेदनाः महानिर्जरा वा भवन्ति? ३, उताहो 'अप्पवेयणा अप्पनिज्जरा?' अल्पवेदनाः अल्पनिर्जरा भवन्ति? ४। भगवानाह—'गोयमा! अत्थेग्दया जीवा महावेयणा—महानिज्जरा' हे गौतम! सन्ति एकेके केचन जीवाः महावेदनाः महानिर्जरायन्तश्च?, इत्यादिव्याख्या निगदसिद्धा, गौतम आह—'से केणट्ठेण?' हे भदन्त! तत् केनार्थेन एवम्—पूर्वाक्तप्रकारेण उच्यते? भगवानाह—'गोयमा! पडिमापडिवन्नए अणगारे महावेयणे महानिज्जरे' हे गौतम! प्रतिमापत्तिपन्नकः प्रतिमाधारी अनगारः महावेदनावान् महानिर्जरावांश्च भवति। 'छट्ठिसत्तमासु पुढवीसु नेरइया महावेयणा अप्पनिज्जरा' पण्ठी—सत्तन्योः पृथिव्योः

महानिज्जरा?) हे भदन्त! जीव ऐसे भी होते हैं क्या? जो महावेदनावाले होकर भी महानिर्जरावाले होते हैं? अथवा—(महावेयणा अप्पनिज्जरा) जो महावेदनावाले होकर भी अल्पनिर्जरावाले होते हैं? अथवा (अप्पवेयणा महानिर्जरा) अल्पवेदनावाले होकर भी जो महानिर्जरावाले होते हैं? अथवा (अप्पवेयणा अप्पनिज्जरा) अल्पवेदनावाले होकर भी जो अल्प ही निज्जरावाले होते हैं? ऐसे ये चार प्रश्न गौतमस्वामी ने प्रभु से पूछे हैं। इन प्रश्नों का उत्तर देते हुए प्रभु गौतम से कहते हैं कि—(गोयमा) हे गौतम! (पडिमापडिवन्नए अणगारे महावेयणे महानिज्जरे) जो, प्रतिमा को जिसने धारण कर रखा है ऐसा अनगार होता है वह महावेदना को भी सहन करता है और महानिर्जरा अतिशय निर्जरवाला भी होता है। (छट्ठिसत्तमासु पुढवीसु नेर-

महानिज्जरा?) हे भदन्त! शुं अेवां पणु एवो डोय छे डे ने महावेदनावाणा डोवा छतां महानिर्जरावाणा डोय छे? अथवा (महावेयणा अप्पनिज्जरा) ने महावेदनावाणा डोवा छतां अप्पनिर्जरावाणा डोय छे? अथवा (अप्पवेयणा महानिज्जरा) ने अप्पनिर्जरावाणा डोवा छतां महानिर्जरावाणा डोय छे? अथवा (अप्पवेयणा अप्पनिज्जरा) ने अप्पवेदनावाणा डोवा छतां अप्पनिर्जरावाणा डोय छे? गौतम स्वाभीअे आ प्रभाण्णे आर प्रश्नो महावीर प्रभुने पूछया छे.

गौतम स्वाभीना प्रश्नोना ज्वाण आपता महावीर प्रभु कडे छे—
“गोयमा!” हे गौतम! (पडिमापडिवन्नए अणगारे महावेयणे महानिज्जरे) प्रतिमाधारी अणुगार महावेदनानुं पणु वेदन करतो डोय छे अने महानिर्जरावाणा (अतिशय निर्जरा करतारे) पणु डोय छे. (छट्ठिसत्तमासु पुढवीसु

નૈરયિકાઃ મહાવેદનાવન્તોડલ્ય નિર્જરાવન્તથ મન્તિ તેષાં સર્વથા અશુભકર્મ
 સમ્યન્થસદ્ભાવાત્, । ' સેલેસિં પઢિવન્નપ્ અળગારે અપ્પવેયણે મહાનિજ્જરં '
 શૈલેશીં ચતુર્દશગુણસ્વાનાવસ્થાયામ્, મતિપન્નકઃ પ્રાપ્તઃ કૈવલી અનગારઃ અલ્પ-
 વેદનો મહાનિર્જરાવાન્ ભવતિ । ' અણુત્તરોવવાહ્યા દેવા અપ્પવેયણા અપ્પનિજ્જરા, '
 અણુત્તરોપપાતિકા દેવાઃ અલ્પવેદનાઃ અલ્પનિર્જરાથ મન્તિ । ગૌતમ આદ-સેવં
 ભંતે ! સેવં ભંતે ! સિ ' હે મદન્ત ! તદેવં મવદુક્કં સત્પમેવ, હે મદન્ત ! મવડુક્કં
 સત્પમેવેતિ ? અયૈતદુદ્દેશકાર્યસંગ્રહ ગાથામાદ- ' મદાવેયણે ' ઇત્યાદિ । ગાયાર્યઃ
 પૂર્વમકરણેનૈવ વ્યાખ્યાત પવ ॥ મૂ૦ ૩ ॥

इतिश्री-जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-वृज्यश्री यासीलाल प्रतिविरचितायां भगवती
 सूत्रस्य प्रमेयचन्द्रिकाख्यायां व्याख्यायां पद्यप्रतकस्य प्रथमोद्देशकःसमाप्तः । ६-१।

હયાં મહાવેયણા અપ્પનિજ્જરા) તથા છટ્ટી ઓર સાતઠીં પૃથિવી મેં જો
 નારક જીવ રહતે હેં, વે વહાં પર મહાવેદના કો ભોગતે કુપ્ ધી અલ્પ
 હી નિર્જરાવાલે હોતે હેં । વ્યોં કિ વહાં પર ડનકે સર્વથા અશુભકર્મ કા
 હી ડદ્ય ચલતા રહતા હે (સેલેસિં પઢિવન્નપ્ અળગારે અપ્પવેયણે મહા-
 નિજ્જરે) તથા-જો અનગાર શૈલેશી અવસ્થા કો-ચૌદહવેં ગુગસ્થાન
 કો પ્રાપ્ત હો જોતા હે-પેસા વહ કેવલજ્ઞાની અનગાર અલ્પવેદનાવાલા
 હોકર ધી મહાનિર્જરાવાલા હોતા હે । (અણુત્તરોવવાહ્યા દેવા અપ્પવેયણા
 અપ્પનિજ્જરા) તથા જો દેવ અણુત્તરવિમાનોં મેં રહતે હેં, વે અલ્પવેદ-
 નાવાલે હોતે હેં ઓર અલ્પ હી નિર્જરાવાલે હોતે હેં । હસ પ્રકાર કા
 કથન પ્રભુ કે મુખ સે સુનકર ગૌતમ ને (સેવં ભંતે ! સેવં ભંતે ! સિ)

નેરડ્યા મહાવેયણા અપ્પનિજ્જરા) છટ્ટી અને સાતઠીં નરકોમાં રહેનારા નારકો
 ત્યાં મહાવેદના ભોગવતા હોય છે. છતાં પણ તેઓ અલ્પનિર્જરાવાળા જ હોય
 છે, કારણ કે ત્યાં તેમના અશુભ કર્મોના જ ઉદ્ય લગભગ આલ્યા કરે છે.
 (સેલેસિં પઢિવન્નપ્ અળગારે અપ્પવેયણે મહાનિજ્જરે) શૈલેશી અવસ્થા (ચૌદમું
 ગુણસ્થાન પ્રાપ્ત કરનાર કેવળજ્ઞાની અણુગાર અલ્પવેદનાવાળો હોવા છતાં મહા-
 નિર્જરાવાળો હોય છે. (અણુત્તરોવવાહ્યા દેવા અપ્પવેયણા અપ્પનિજ્જરા) તથા
 જે દેવો અણુત્તર વિમાનોમાં રહે છે, તેઓ અલ્પવેદનાવાળા હોય છે અને
 અલ્પનિર્જરાવાળા હોય છે.

આ પ્રકારનું પ્રતિપાદન મહાવીર પ્રભુને શ્રીસુખે સાંભળીને ગૌતમ સ્વામી
 તેમના વચનોમાં પોતાની શ્રદ્ધા પ્રકટ કરતા કહે છે- (સેવં ભંતે ! સેવં ભંતે !

પેસા પ્રભુ સે કહા-હે ભદન્ત ! આપકા કહા હુઆ સય સત્ય હી હૈ હૈ
ભદન્ત ! આપકા કહા હુઆ સય સત્ય હી હૈ ।

હસ ઉદ્દેશક કે અર્થ કા સંગ્રહ કરનેવાલી (મહાવેયણે ય વત્થે કહ્-
મલ્લંજણકણ ય અહિકરણી, તણહરયે ય કવલ્લે કરણ મહાવેયણા જીવા)
યહ ગાથા હૈ-હસકે દ્વારા યહ પ્રકટ કિયા ગયા હૈ કિ હસ ઉદ્દેશક મેં
મહાવેદના, કર્દમરાગ ઓર લંજનરાગ સે રક્ત વચ્ચ, ઇરણ તૃણ કા પૂળા,
લોહેકા ગરમ તથા, કરણ ઓર મહાવેદના ઓર નિર્જરા કા સાહચર્ય
યે સઘ વિષય પ્રતિપાદિત હુવ હૈ ॥ સૂ૦ ૩ ॥

શ્રી જૈનચાર્ય જૈનધર્મ દિવાકર શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજકૃત “ ભગવ-
તીસૂત્ર ” કી પ્રમેયચન્દ્રિકા વ્યાખ્યાકે છઠ્ઠે શતકકા પહલા
ઉદ્દેશક સમાપ્ત ॥ ૬-૧ ॥

વિ) હે ભદન્ત ! આપે આ વિષયનું જે પ્રતિપાદન ક્યું તે સર્વથા સત્ય છે.
આ પ્રમાણે ઠહીને વંદણા નમસ્કાર કરીને તેઓ તેમને સ્થાને બેસી ગયા.

આ ઉદ્દેશકના વિષયોનો સંગ્રહ કરનારી ગાથા--

(મહાવેયણે ય વત્થે કહ્મલ્લંજણકણ ય અહિકરણી, તણહરયે ય કવલ્લુકરણ
મહાવેયણા જીવા) આ ગાથા દ્વારા એ વાત બતાવવામાં આવી છે કે આ
ઉદ્દેશકમાં મહાવેદના, કર્દમરાગ અને ખંજનરાગથી રંગેલું વચ્ચ, ઐરણ, ઘાસનો
પૂળા, લોહાનો ગરમ તાવડો, કરણ, મહાવેદના અને નિર્જરાનું સાહચર્ય એ
બધા વિષયોનું પ્રતિપાદન કરવામાં આવ્યું છે. ॥ સૂત્ર ૩ ॥

જેનાચાર્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ કૃત ‘ભગવતીસૂત્ર’ની પ્રમેયચન્દ્રિકા
આખ્યાનો છઠ્ઠા શતકનો પહલો ઉદ્દેશક સમાપ્ત ॥ ૬-૧ ॥

॥ पृष्ठशतकस्य द्वितीयोद्देशकः ॥

आहारपक्वव्यता

पूर्वोद्देशके येषां जीवानां वेदनावत्त्वं प्रतिपादितम् ते च जीवाः आहारका अपि भवन्ति अतस्तेषामाहारं निरूपयितुं द्वितीयोद्देशकमारमते—‘ रायगिहं ’ इत्यादि ।

मूलम्—रायगिहं नगरं जाव-एवं वयासी - आहारुद्देशो जो पन्नवणाए सो सव्वो नेयव्वो, सेवं भंते ! सेवं भंते ! ति । ” ॥१॥

छट्सपस्स वीओ उद्देशो समत्तो ॥ ६-२ ॥

छाया—राजगृहं नगरं यावत्-एवम् अवादीत्-आहारोद्देशको यः प्रज्ञाप-
नायां स सर्वो ज्ञातव्यः, तदेवं भदन्त ! तदेवं भदन्त इति ॥ सू० १ ॥

पृष्ठशतकस्य द्वितीय उद्देशः समाप्तः ॥ ६-२ ॥

टीका— ‘ रायगिहं नगरं जाव-एवं वयासी- आहारुद्देशो पन्नवणाए
सो सव्वो नेयव्वो ’ तस्मिन् काले, तस्मिन् समये राजगृहं नाम नगरमासीत्

छठे शतक के दूसरे उद्देशक का प्रारंभ

‘ रायगिहं नगरं जाव एवं वयासी ’

सूत्रार्थ—(रायगिहं नगरं जाव एव वयासी-आहारुद्देशो जो पन्नव-
णाए सो सव्वो नेयव्वो) राजगृह नगर यावत् इस प्रकारसे बोले—आहार
उद्देशक, जो प्रज्ञापना सूत्र में कहा गया वह सब यहाँ जानना चाहिये
(सेवं भंते ! सेवं भंते ! ति) हे भदन्त ! आपका कहा हुआ सब सत्य
है, हे भदन्त ! आप का कहा हुआ सब सत्य ही है ।

टीकार्थ—पूर्व उद्देशक में जिन जीवों में वेदनावत्त्व प्रतिपादित
किया गया है—वे जीव आहारक भी होते हैं, इसलिये उनके आहार

छठे शतकने पीले उद्देशक

“ रायगिहं नगरं जाव एवं वयासी ” इत्यादि—

सूत्रार्थ—(रायगिहं नगरं जाव एवं वयासी-आहारुद्देशो जो पन्नवणाए
सो सव्वो नेयव्वो) “ राजगृह नगर ” थी लघने “ आ प्रभाण्णे जाल्यां ”
त्यां सुधीनुं प्रज्ञापना सूत्रना आहार उद्देशकतुं समस्त कथन अर्द्धी अहलु करवुं.
(सेवं भंते ! सेवं भंते ! ति) हे भदन्त ! आपनी बात तदन साथी छे.
हे भदन्त ! आ विषयनुं आपे ने प्रतिपादन कथुं छे ते यथार्थ छे.

टीकार्थ—पहेला उद्देशकमां ने लघोमां वेदनाव्यक्ततातुं प्रतिपादन कर-
वामां आणुं छे ते लघो आहारक (आहार लेनारा) पणु डोय छे. ते कारण

यावत्-स्वामी समवस्यतः, निर्गच्छति पर्यत्, प्रतिगता पर्यत्, ततः श्रम-
णस्य भगवतो महावीरस्य ज्येष्ठः अन्तेवासी गातमगोत्रीयः इन्द्रभूतिः श्रु-
षमाणो नमस्यन् अभिमुखं विनयेन प्राञ्जलिपुटः त्रिविधया पर्युपासनया पर्युपा-
सीनः एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण अवादीत्-पृष्टवान्, अत्र आहारोद्देशको यः प्रज्ञाप-
नायां प्रतिपादितः । स सर्वः अत्र ज्ञातव्यः,

अन्ते गौतमो भगवद्वाक्यं यथार्थत्वेन स्वीकुर्वन्नाह-‘ सेवं भंते ! सेवं भंते
त्ति ’ हे भदन्त । तदेवं-भवदुक्तं सत्यमेव हे वदन्त भवदुक्तं सत्यमेव ॥ सू० १ ॥
पष्ठशतकस्य द्वितीय उद्देशः समाप्तः ॥ ६-२ ॥

का निरूपण करने के लिये यह द्वितीय उद्देशक सूत्रकार ने प्रारंभ किया
है-(रायगिहं नयरं जाव-एवं वयासी-आहारुद्देशओ जो पन्नवणाए सो
सव्वो नेयव्वो) उस काल में उस समय में राजगृह नामका नगर था
यावत्-महावीर स्वामी पधारे, परिपटा अपने २ स्थान से निकली
फिर चापिस अपने २ स्थान पर वह गई इस के बाद श्रमण भगवान्
महावीर के प्रधानशिष्य गौतमगोत्रीय इन्द्रभूति जो कि धर्म के उप-
देश को सुनने के अभिलाषा वाले थे प्रभु को नमस्कार कर फिर उन्होंने
ने प्रभु से ऐसा पूछा-इत्यादि आहारक उद्देशक जो प्रज्ञापना सूत्र के
अष्टादश वे पद में प्रतिपादित हुआ है वह सब यहां जानना चाहिये ।
अन्त में गौतम ने भगवान् के कथन को यथार्थस्वरूप से स्वीकार
करते हुए उनसे कहा-(सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति) हे भदन्त ! आपके
द्वारा कहा गया सब विषय सत्य ही है वह सब सत्य ही है ॥ सू० १ ॥

सूत्रकारे आ णीने उद्देशकमां तेभना आहारनुं निरूपणुं कथुं छे. (रायगिहं
नयरं जाव एवं वयासी-आहारुद्देशओ जो पन्नवणाए सो सव्वो नेयव्वो) ते
डाणे अने ते सभये राजगृह नामे नगर इत्तुं. त्यां महावीर स्वामी पधार्था.
धर्मोपदेश श्रवणुं करवाने परिपटा पोतपोताने स्थानेथी नीकणी, अने धर्मोपदेश
संलग्णीने परिपटा विषयार्थ गच्छं. त्थारणाइ श्रमणुं लगवान महावीरना प्रधान
शिष्य गौतम गोत्रीय इन्द्रभूति (गौतम स्वामी) के ने धर्मोपदेश
संलग्गवानी तीम जिज्ञासावाणा इता, तेमण्णे महावीर प्रभुने पण्णुं नमस्कार
करीने आ प्रमाणुं पृथुं-इत्यादि उद्देशक के नेनुं प्रज्ञापना सूत्रना २८ मां
पदमां प्रतिपादन करायुं छे ते सभस्त कथन अर्द्धां श्रद्धणुं करवुं.

उद्देशकने अन्ते गौतम स्वामी महावीर प्रभुना कथनमां पोताने विश्वास
प्रकट करतां इडे छे-“ सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति ” छे लदन्त ! आपना द्वारा
आ विषयनुं ने प्रतिपादन करायुं छे ते सर्वथा सत्य अने यथार्थं जे छे. ॥सू० १॥

॥ छट्ठा शतकने णीने उद्देशक समाप्त ॥

अथ तृतीयोद्देशकः

पष्ठशतके तृतीयोद्देशकस्य संक्षिप्तविषयविवरणम्

तत्र प्रथमं तृतीयोद्देशकार्यं संपरगायाज्यम्—' बहुकम्म ' इत्यादि ।

ततो महाकर्मवतो जीवस्य सर्वतः कर्मपुद्गलाः बध्यन्ते, ? सर्वतः कर्मपुद्गलाधीयन्ते ? सर्वतः कर्मपुद्गला उपचीयन्ते ? निरन्तरं कर्मपुद्गलाः बध्यन्ते, निरन्तरं कर्मपुद्गलाधीयन्ते ? निरन्तरं कर्मपुद्गला उपचीयन्ते ? तस्य च महाकर्मवतो जीवस्य शरीराणि बाह्यात्मरूपाणि दुरूपतया, दुर्बलतया, अशुभतया, अनिष्टतया भूयोभूयः परिणमन्ति ? इति गौतमस्य प्रश्नः, स्वीकारात्मकं भगवत उत्तरं

छठे शतक के उद्देशक प्रारंभ

छठे शतक के इस तीसरे उद्देशो का विषयविवरण संक्षेप से इस प्रकार से है—सब से पहिले इस उद्देशक में प्रतिपादित विषयको संग्रह करके प्रकट करनेवाली दो गाथाएँ कही गई हैं—उनमें प्रथमरूप से यह प्रकट किया गया है कि महाकर्मवाले जीव के क्या सर्व प्रकार से कर्म पुद्गलों का बंध होता है ? सर्व प्रकार से उसके क्या कर्मपुद्गलों का चय होता है ? सर्व प्रकार से क्या उसमें कर्मपुद्गलों का उपचय होता है ? या निरन्तर कर्मपुद्गल क्या उस जीव के बंधते रहते हैं ? निरन्तर कर्मपुद्गलों का क्या उसके चय होता रहता है ? निरन्तर कर्मपुद्गलों का क्या उसके उपचय होता रहता है ? उस महाकर्मवाले जीव की बाह्यशरीर रूप आत्मा कुत्सितरूप से, कुत्सितवर्ण से, कुत्सित दुर्बल आदिरूप से, अशुभरूप से, अनिष्टरूपसे, क्या बार २ परिणमित होती रहती है ?

छठे शतकने त्रीन्ने उद्देशक—

आ उद्देशकना विषयं संक्षिप्त विवरणम्—

आ उद्देशकनी शब्दात्मनां आ उद्देशकनां जे विषयं प्रतिपादन करायुं छे ते विषयने प्रकट करनारी जे संग्रह गाथाओ आपी छे—ते गाथाओमां प्रश्नो जे प्रकट करवामां आओ छे के—महाकर्मवाला एवो शुं सर्व प्रकारे कर्मपुद्गलोना अंध करे छे ? शुं ते सर्व प्रकारे कर्मपुद्गलोना चय करे छे ? शुं ते सर्व प्रकारे कर्मपुद्गलोना उपचय करे छे ? शुं ते एवोनां कर्मपुद्गल निरंतर अंधातां रहे छे ? शुं तेमना कर्मपुद्गलोना निरंतर चय थता रहे छे ? शुं तेमनां कर्मपुद्गलोना निरंतर उपचय थया करे छे ? ते महाकर्मवाला एवोना गाह्य शरीररूप आत्मा शुं कुत्सितरूपे, कुत्सित वर्णधी, कुत्सित दुर्बल आदि रूपे, अशुभ रूपे, अने अनिष्ट रूपे बार २ परिणमित थया

च, । तत्र हेतुप्रदर्शनप्रसङ्गे अहत धौत-तन्तूदगत वस्त्रस्य दृष्टान्तीकरणम् । ततः
अल्पकर्मवतो जीवस्य सर्वतः कर्मपुद्गलाः भिद्यन्ते ? सर्वतः कर्मपुद्गलाः यावत्-
परिविध्वस्यन्ते ? तस्य चाल्पकर्मवतो जीवस्य बाह्यात्मानः शरीराणि सुरुपतया,
शुभतया, यावत्-इष्टतया, सुखतया नो दुःखतया भूयोभूयः वरिणमन्ति ? इति
प्रश्नस्य स्वीकारात्मकमुत्तरम् । तत्र हेतुकथने जलित-पङ्कित-मलिन-धूलिधूसरि-
तस्यापि वस्त्रस्य जलेन प्रक्षाल्यमानस्य दृष्टान्ततयोपन्यासः । ततो वस्त्रे पुद्गलाना-

इस प्रकार से ये गौतम के प्रश्न हैं-इनका स्वीकारात्मक प्रश्न का उत्तर
है । इसमें कारण क्या है ? इस विषय में हेतु का प्रदर्शन इसी प्रसङ्ग
में अर्हत, धौत और यन्त्रोद्गत वस्त्र का उदाहरण अल्पकर्मवाले जीव
के सर्वप्रकार से क्या कर्मपुद्गल भेद को प्राप्त होते हैं ? सर्वप्रकार से
क्या कर्मपुद्गल यावत् उसके परिविध्वस्त होते हैं ? उस अल्पकर्मवाले
जीव की बाह्यशरीररूप आत्मा क्या अच्छे रूप से शुभरूप से यावत्
इष्टरूप से सुखरूप से, दुःखरूप से नहीं-वार २ परिणमित होती
रहती है ? इन प्रश्नों का स्वीकारात्मक उत्तर इस विषय में क्या कारण
है ? इस प्रश्न में हेतु का कथन इसी प्रसङ्ग में जलित, पङ्कित, मलिन
और धूलि से धूसरित हुए वस्त्र का जो कि जल से प्रक्षालित किया जा
रहा है उदाहरण ।

वस्त्र में पुद्गलों का उपचय प्रयोग से होता है या स्वभाव से होता

करे छे ? गौतम स्वामीना आ प्रश्नोना प्रभु उकारमां (स्वीकारात्मक) ज्ञाण
आपे छे तेनुं कारण्य शुं छे ? कारण्यनुं प्रतिपादन करवा माटे अहत (वपराया
विनाना) धोयेला अने साण उपर तैयार करेला नवा वस्त्रनुं उठाडरवु.

अल्पकर्मवाणा ज्वनां कर्मपुद्गल शुं सर्व प्रकारे लेदने प्राप्त करे छे ?
अटवे के अलग थर्ध जाय छे ? शुं अल्पकर्मवाणा ज्वनां कर्मपुद्गल सर्व
प्रकारे परिविध्वस्त (गिलकुल नष्ट) थर्ध जाय छे ? ते अल्पकर्मवाणा ज्वने
बाह्यशरीर रूप आत्मा शुं सुंदर रूपे, शुभरूपे, (यावत्) धर्धरूपे अने सुभ-
रूपे वारवार परिष्कृतित थया करे छे ? आ प्रश्नोना प्रभु द्वारा स्वीकारात्मक
उत्तर-तेनुं कारण्य ज्ञानुवानी गौतमनी जिज्ञासा-कारण्यनुं प्रतिपादन करवा माटे
परसेवाथी कादवथी, भेलथी अने धूणथी भेला थयेला वस्त्रने पाणीथी स्वच्छ
कराय छे, तेनुं दृष्टान्त.

प्रश्न-वस्त्रमां पुद्गलोना उपचय प्रयोगथी थांय छे के स्वभावथी थांय छे ?

મુપચયઃ પ્રયોગેણ વિશ્વસયા ચ, જીવે કર્મપુદ્ગલાનામુપચયસ્તુ પ્રયોગેણ, નો વિશ્વ-
સયા, સ્વભાવેન । તતઃ પદ્ધેન્દ્રિયાણાં જીવાનાં મનઃપ્રયોગઃ, વચઃ પ્રયોગઃ,
કાયપ્રયોગથ, પૃથિવ્યાદિ-યાવત્-વનસ્પતિપર્યન્ત જીવાનાં કાયપ્રયોગ એવ, વિકલ્પે-
ન્દ્રિયાણાં વચનપ્રયોગા, કાયપ્રયોગથ, દેવાનાં મનઃપ્રયોગાદિત્રિપ્રયોગા મવન્તિ,
ઇતિ કથનમ્ । તતો વચ્ચે વધ્યમાનઃ પુદ્ગલોપચયઃ કિં સાદિઃ સાન્તઃ ? સાદિરન્તો
વા ? અનાદિ સાન્તો વા ? અનાદિરન્તો વા ? ઇતિ પ્રશ્નસ્ય સાદિઃ સાન્ત એવ
વચ્ચે પુદ્ગલોપચયઃ ઇત્યુત્તરમ્ । વચ્ચેવદેવ જીવાનાં વધ્યમાનકર્મપુદ્ગલોપચયવિષયે

હે એસા પ્રશ્ન?—દોનો પ્રકાર સે ખી હોતા હે એસા ઉત્તર—જીવ મેં કર્મ-
પુદ્ગલોં કા ઉપચય પ્રયોગ સે હોતા હે યા સ્વભાવ સે હોતા હે ? તો હસ
પ્રશ્ન કા ઉત્તર યહ હે કિ જીવ મેં કર્મપુદ્ગલોં કા ઉપચય પ્રયોગ સે હી
હોતા હે, સ્વભાવ સે નહીં એસા કથનઃ જીવ કે તીન પ્રકાર કે પ્રયોગોં
કા કથન કરતે હુપ પંચેન્દ્રિય જીવોં મેં મનપ્રયોગ, વચનપ્રયોગ ઓર
કાય પ્રયોગ હન તીન પ્રયોગોં સે કર્મ કે ઉપચય હોને કા કથન પૃથિવી
કાયિક જીવ સે છેકર વનસ્પતિકાયિક તક કે જીવોં કે કાયપ્રયોગ
સે હી કર્મપુદ્ગલોં કા ઉપચય હોતા હે એસા કથન વિકલ્પેન્દ્રિય જીવોં કે
વચનપ્રયોગ, તથા દેવોં કે મનઃ પ્રયોગ અદિ તીનોં પ્રયોગ કર્મપુદ્ગલોં
કે ઉપચય હોને મેં કારણ હોતે હેં એસા કથન વચ્ચે મેં વધ્યમાન પુદ્ગલોં
પચય કયા સાદિ સાન્ત હે ? યા સાદિ અનન્ત હે ? યા અનાદિસાન્ત હે ?
યા અનાદિ અનન્ત હે ? હસ પ્રશ્ન કે ઉત્તર મેં, “વચ્ચે મેં પુદ્ગલોપચય સાદિ

ઉત્તર—મન પ્રકારે થાય છે.

પ્રશ્ન—અવમાં કર્મપુદ્ગલોનો ઉપચય પ્રયોગથી થાય છે કે સ્વભાવથી થાય છે ?

ઉત્તર—અવમાં કર્મપુદ્ગલોનો ઉપચય પ્રયોગથી જ થાય છે, સ્વભાવથી
થતો નથી. અવના ત્રણ પ્રકારના પ્રયોગનું કથન—પંચેન્દ્રિય અવોમાં મનપ્રયોગ,
વચનપ્રયોગ અને કાયપ્રયોગ, આ ત્રણ પ્રયોગોથી કર્મનો ઉપચય થાય છે
એવું કથન. પૃથ્વિકાયિક અવોથી લઇને વનસ્પતિ કાયિક પર્યન્તના અવોમાં
કાયપ્રયોગથી જ કર્મનો ઉપચય થાય છે એવું પ્રતિપાદન. વિકલ્પેન્દ્રિય અવોમાં
વચનપ્રયોગ અને કાયપ્રયોગથી અને દેવોમાં મનપ્રયોગ આદિ ત્રણ પ્રયોગોથી
કર્મપુદ્ગલોનો ઉપચય થાય છે એવું કથન.

વચ્ચેમાં થતો પુદ્ગલોપચય શું સાદિ સાન્ત (આદિ સહિત અને અન્ત
સહિત) હોય છે ? કે સાદિ અનન્ત હોય છે ? કે અનાદિ સાન્ત હોય છે ?
કે અનાદિ અનન્ત હોય છે ?

प्रश्नः, ईर्यापथबन्धकजीवस्य कर्मपुद्गलोपचयः सादिः सान्तः, भव्यस्य अनादिः सान्तः, अभव्यस्य अनादिरनन्तः, नतु कश्चित् कर्मपुद्गलोपचयः सादिरनन्तः, इत्युत्तरम्। ततो वल्लं सादि-सान्तम् ? सादि-अनन्तम् ? अनादि-सान्तम् ? अनादि-अनन्तं वा ? इति प्रश्नः, वल्लं सादि सान्तमेव, नान्यत्, इत्युत्तरम्। ततो वल्लवदेव जीव विषये प्रश्नः। नैरेयिक-तिर्यग्-मनुष्य-देवाः सादयः सान्ताः, सिद्धः सादिरनन्तः, भव्योऽनादिः सान्तः, अभव्योऽनादिरनन्तश्च, इत्युत्तरम्। ततः कर्म प्रकृतीनामृणानां ज्ञानावरणयावत्-अन्तरायिकानाम् अवाधाकालसहितवन्धस्थिति प्रतिपादनम्। तेषां कर्मणां बन्धकत्वेन स्त्रीपुरुषनपुंसकानां कथनम्, तद्भिन्नानां तु कदाचित्

सान्त ही है" ऐसा, उत्तर वल्ल सादि सान्त है ? कि-सादि अनन्त है ? भव्या-अनादि सान्त है ? या अनादि अनन्त है ? ऐसा प्रश्न-" वल्ल-सादिसान्त ही है ऐसा उत्तर, वल्ल की तरह ही जीव के वीषय में प्रश्न नैरेयिक, तीर्यञ्च, मनुष्य एवं देव ये सब जीव तो सादिसान्त हैं, सिद्ध सादि अनन्त हैं, भव्यजीव अनादि सान्त हैं, और अभव्यजीव अनादि अनन्त हैं ऐसा उत्तर।

ज्ञानावरणसे लेकर अन्तरायतक आठ कर्मप्रकृत्तियोंकी अवाधाकाल सहित बन्धस्थिति का प्रतिपादन इन कर्मों के बन्धक होने के कारण स्त्री, पुरुष और नपुंसक जीवों का कथन जो जीव स्त्री, पुरुष और नपुंसक नहीं है वे इन कर्मों को बांधे भी और नहीं भी बांधे ऐसा कथन स्त्री आदिकों में कदाचित् आयुष्क कर्म का बन्धकत्व और कदाचित्

उत्तर-वल्लमां पुद्गलोपचय सादि सान्त न् डोय छे.

प्रश्न-वल्ल सादि सान्त छे ? के सादि अनन्त छे ? अथवा अनादि सान्त छे ? के अनादि अनन्त छे ?

उत्तर-वल्ल सादि सान्त न् छे.

वल्लनी नेम न् एवना विषयमां प्रश्नो-नारडो, तिथेयो मनुष्यो अने देवो सादि सान्त न् छे; सिद्ध सादि अनन्त छे, भव्य एव अनादि सान्त छे अने अभव्य एव अनादि अनन्त छे, जेवो उत्तर.

ज्ञानावरणथी लघने अन्तराय पर्यन्तनी आठ कर्मप्रकृत्तियोंनी अवाधाकाल सहित बन्धस्थितिनुं प्रतिपादन, स्त्री, पुरुष, नपुंसक आदि एवोके कर्मना बांधनार डोवाथी तेमनुं कथन. न् एवो स्त्री, पुरुष के नपुंसक डोता नथी, तेको कर्मना बांधक डोय छे पणु परां अने नथी पणु डोता. स्त्री आदि-कर्मना क्यारैक आयुष्ककर्मना बांधकत्वनुं अने क्यारैक अबांधकत्वनुं कथन.

अपन्धकत्वं कदाचिदपन्धकत्वं च । स्यादीनां कदाचिद् आयुष्यकर्मवन्धकत्वं, कदा-
चिन्ना । ततः संयतासंयतादीनां कर्मवन्धकत्वं मदनोत्तरम् । तथा सम्यग्दृष्टि मिथ्या-
दृष्टि-सम्यग्मिथ्यादृष्टि-संशयसंज्ञि-नोसंज्ञि नोभसंज्ञि, -भवसिद्धिका-भवसिद्धिक-
नोतदुभयसिद्धिक-चक्षुर्दर्शन्यचक्षुर्दर्शनि-केवलदर्शनि-पर्याप्त-पर्याप्त-नोतदुभय-
भाषका-भाषक-परित्त-परित्त - नोतदुभय-मतिज्ञानि-श्रुतज्ञान्यवधिज्ञानि-मनः
पर्यवज्ञानि-केवलज्ञानि - मतिश्रुताद्यप्यज्ञानि - मनोवचः काययोग्ययोग्याकारोप-
योगि-निराकारोपयोग्याहारका-नाहारक-सूक्ष्म - बादर नोतदुभय - चरमाचर-
माणाम् कर्मवन्धविवारः, स्त्री-पुरुष-नपुंसकवेदका-वेदक जीवाल्पबहुत्वकयनम् ।

अपन्धकत्व का कथन संयतासंयतादिकों के कर्मवन्ध होने में प्रश्नोत्तर
इसके बाद-सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, संज्ञी, असंज्ञी,
नो संज्ञी, नो असंज्ञी, भवसिद्धक, अभवसिद्धिक, नो भवसिद्धिक, नो
अभवसिद्धिक, चक्षुर्दर्शनी, अचक्षुर्दर्शनी, अवधिदर्शनी, केवलदर्शनी,
पर्याप्त, अपर्याप्त, नो पर्याप्त, नो अपर्याप्त, भाषक, अभाषक, परित्त,
अपरित्त, नो परित्त, नो अपरित्त, मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी, मनः पर्यवज्ञानी
केवलज्ञानी, मति अज्ञानी, श्रुत अज्ञानी, विभङ्ग अज्ञानी मनोयोगी,
वचोयोगी, काययोगी, अयोगी, साकारोपयोगी निराकारोपयोगी, आ-
हारक, अनाहारक, सूक्ष्म, बादर, नो सूक्ष्म, नो बादर, चरम और
अचरम इन सब के कर्मवन्ध का विचार तथा अन्त में स्त्री, पुरुष, एवं
नपुंसक इन वेदवालों के और अवेदवालों के अल्प-बहुत्व का कथन ।

संयतासंयत आदिकोर्मां कर्मवन्ध यथा विधेना प्रश्नोत्तराः । त्वात्तथाऽसम्यग्-
दृष्टि, मिथ्यादृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, संज्ञी, असंज्ञी, नो असंज्ञी, भवसिद्धिक,
अभवसिद्धिक, नो भवसिद्धिक, नो अभवसिद्धिक, चक्षुर्दर्शनी, अचक्षुर्दर्शनी,
अवधिदर्शनी, केवलदर्शनी, पर्याप्त, अपर्याप्त, नो पर्याप्त, नो अपर्याप्त, भाषक,
अभाषक, परित्त, अपरित्त, नो परित्त, नो अपरित्त, मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी,
मनः पर्यवज्ञानी, केवलज्ञानी, मतिअज्ञानी, श्रुतअज्ञानी, अवधिअज्ञानी, मनो-
योगी, काययोगी, अयोगी, साकारोपयोगी, निराकारोपयोगी, आहारक, अना-
हारक, सूक्ष्म, बादर, नो सूक्ष्म, नो बादर, चरम अने अचरम, ये पदाना
कर्मवन्धनो विचार. अन्ते स्त्री, पुरुष अने नपुंसक अने अवेदवाणानां
अल्प-बहुत्वत्वं कथन.

द्वितीयोद्देशके पुद्गलानामाहारतो निरूपणं कृतम् अथ वन्धादित-
सन्निरूपयितुमादौ तृतीयोद्देशकार्यसंग्रहाय गाथाद्वयमाह— ' बहुकम्म ' इत्यादि,
' भविण ' इत्यादि च—

मूलम्—गाथा

' बहुकम्मं वत्थ पोग्गल पओगसा वीससा यं सादीए ।

कम्मट्ठिइं तिथे संजयं सम्मदिट्ठी यं सन्नी य ॥ १ ॥

भविण दंसण—पजत्त—भासअ—परित्त,—नाण—जोगे य ।

उवओगा—ऽऽहारग—सुहुम--चरिम--वंधे र्यं अल्पवहुं ॥ २ ॥

गाथा छाया—बहुकर्म, वत्थ पुद्गलाः प्रयोगेन विस्रसया च सादिकः ।

कर्मस्थिति—स्त्री—संयत—सम्यग्दृष्टिश्च संज्ञी च ॥ १ ॥

भविको दर्शन—पर्याप्त—भाषक—परीताज्ञान—योगाश्च ।

उपयोगा—ऽऽहारक—सूक्ष्म—चरमवन्धश्चाल्पवहुत्वम् ॥ २ ॥

टीका—' बहुकर्म ' महाकर्मणो जीवस्य सर्वतः पुद्गला वध्यन्ते
इत्यादिनिरूपणम् १, ' वत्थपोग्गलपओगसा वीससा .य ' ' वत्थे पुद्गलाः प्रयो-

' बहुकम्म ' इत्यादि ।

बहुकर्म १, वत्थपुद्गल प्रयोग से या स्वभाव से २, सादिक ३, कर्म-
स्थिति ४, स्त्री ५, संयत ६, सम्यक् दृष्टि ७, संज्ञी, भव्य, दर्शन,
पर्याप्त, भाषक, परित्त, ज्ञान, योग, उपयोग, आहारक, सूक्ष्म, चरम
बंध ८, अल्पबहुत्व ९,

टीकार्थ—द्वितीय उद्देशक में आहार की अपेक्षा से पुद्गलों का निरू-
पण किया जा चुका है अथ उन्हीं पुद्गलों का वन्धादिककी अपेक्षा लेकर
इस उद्देशक में निरूपण करने के लिये, सब से प्रथम सूत्रकार ने इस

" बहुकम्म " इत्यादि—

संग्रहगाथा—(१) बहुकर्म, (२) वत्थपुद्गल प्रयोगथी के स्वभावथी,
(३) सादिक, (४) कर्मस्थिति, (५) स्त्री, (६) संयत, (७) सम्यग्दृष्टि, (८)
संज्ञी, भव्य, दर्शन, पर्याप्त, भाषक, परित्त, ज्ञान, योग, उपयोग, आहारक,
सूक्ष्म, चरम, बंध, (९) अल्पबहुत्व.

टीकार्थ—प्रीति उद्देशकमां आहारनी अपेक्षाये पुद्गलानुं निरूपणं करवामां
आण्युं छे. इवे अत्र पुद्गलानुं वन्धादिकनी अपेक्षाये निरूपणं करवाने भाटे

મેળ વિસ્રસયા ચ ' યથા ત્વે પુદ્ગલાઃ પ્રયોગેન-મયોગદ્વારા વિસ્રસયા સ્વભાવિક તયા ચ વધ્યન્તે તથા જીવાનામપિ કિમ્ કર્મપુદ્ગલાઃ પ્રયોગેન વિસ્રસયા ચ વધ્યન્તે ?' ઇત્યાદિ ચિવેચનમ્ ૨, ' સાદીપ ' ' સાદિકઃ ' - યથા વજ્રસ્ય સાદિઃ પુદ્ગલચયઃ, एवं जीवानामपि किम् सादिः कर्मपुद्गलचयः ? इत्यादिनिरूपणम् ૩, ' કમ્મદ્વિહ ' કર્મસ્થિતિઃ કર્મણાં સ્થિતિનિરૂપણમ્ ૪, ' ઇત્થી ' સ્ત્રી ' કિમ્ સ્ત્રી.

ઉદ્દેશક કે અર્થ કો સંગ્રહ કરને થાલી ઇન દો ગાથાઓં કો કહા હૈ- (વહુકમ્મ) ઇત્યાદિ તથા (મવિપ) ઇત્યાદિ-(વહુકર્મ) હસ પદ સે પ્રશ્નરૂપ મેં યહ પ્રકટ કિયા ગયા હૈ કિ જિસ જીવ કે કર્મ વહુત હૈ-ઉસ કે કયા કર્મપુદ્ગલોં કા સર્વ પ્રકાર સે વંધ હોતા હૈ? ઇત્યાદિ (વત્ય-પોગ્ગલ પઓગસા વીસસા ય) હસ પદ દ્વારા પ્રશ્ન રૂપમેં યહ પ્રકટ કિયા ગયા હૈ કિ જિસ પ્રકાર સે વત્ત મેં પુદ્ગલ પ્રયોગદ્વારા ઓર સ્વભાવિક રીતિ સે વંધતે હૈ, ઉસી તરહ સે કયા જીવોં કે બી કર્મપુદ્ગલ પ્રયોગ ઓર સ્વભાવ સે વંધતે હૈ? ઇત્યાદિ (સાદિકઃ) હસ પદ દ્વારા પ્રશ્નરૂપ મેં યહ પ્રકટ કિયા ગયા હૈ કિ જિસ પ્રકાર સે વત્ત મેં સાદિ પુદ્ગલોં કા ચય હોતા હૈ, ઉસી પ્રકાર સે કયા જીવોં કો બી સાદિ કર્મ પુદ્ગલોં કા ચય હોતા હૈ? ઇત્યાદિ (કમ્મદ્વિહ) હસ પદ દ્વારા કર્મ કો સ્થિતિ કા વિચાર પ્રકટ કિયા ગયા હૈ (ઇત્થી) હસ પદ દ્વારા યહ પૂછા ગયા

સૂત્રકારે આ ઉદ્દેશકની શરૂઆતમાં એ સંગ્રહગાથાઓ આપી છે. તે ગાથાઓ આ ઉદ્દેશકમાં આવતા વિષયને પ્રકટ કરે છે. પહેલી ગાથા “વહુકમ્મ” ઇત્યાદિ. બીજી ગાથા “મવિપ” ઇત્યાદિ છે. “વહુકર્મ” આ પદથી પ્રશ્નરૂપે એ પ્રકટ કરવામાં આવ્યું છે કે જે જીવનાં કર્મ વહુત છે એવો વહુકર્મ-જીવ શું સર્વ પ્રકારે કર્મનો ખંધ કરે છે? ઇત્યાદિ.

“વત્ય-પોગ્ગલ-પઓગસા વીસસા ય” આ પદ દ્વારા પ્રશ્નરૂપે એ પ્રકટ કરવામાં આવ્યું છે કે જેવી રીતે વત્તમાં પુદ્ગલ પ્રયોગદ્વારા અને સ્વભાવિક રીતે ખંધાય છે, એજ પ્રમાણે શું જીવોનાં કર્મપુદ્ગલ પણ પ્રયોગ અને સ્વભાવથી ખંધાય છે? ઇત્યાદિ.

“સાદિકઃ” આ પદ દ્વારા પ્રશ્નરૂપે એ પ્રકટ કરવામાં આવ્યું છે કે જેમ વત્તમાં સાદિ (આદિ યુક્ત) પુદ્ગલોનો ચય થાય છે, તેમ શું જીવોમાં પણ સાદિ કર્મપુદ્ગલોનો ચય થાય છે.

“કમ્મદ્વિહ” આ પદ દ્વારા કર્મની સ્થિતિનું પ્રતિપાદન કરવામાં આવ્યું છે.

“ઇત્થી” આ પદ દ્વારા એ પ્રકટ કરવામાં આવ્યું કે શું સ્ત્રી અથવા

पुरुषादीनां कर्मवन्धाति ? इत्यादिविचारः ५ 'संजय' संयतः' कः संय-
तादिः ? इत्यादिनिरूपणम् ६ 'सम्महिट्टी' 'सम्यग्दृष्टिः' कः सम्यग्-
दृष्ट्यादिः ? इत्यादिनिरूपणम् ७ । एवं 'सत्री' इत्यादि । 'संज्ञी, भव्यः,
दर्शनी, पर्याप्तकः, भाषकः, परीतः, ज्ञानी योगी, उपयोगी, आहारकः, सूक्ष्मः,
चरमः' एतान् समाश्रित्य 'बन्धश्च' बन्धविषयकं निरूपणम् ८, 'अल्पवहुं'
'अल्पवहुत्वम्' एतेषामेव उपर्युक्तानां स्त्रीप्रभृतीनां कर्मबन्धकानां परस्परम्
अल्प-बहुत्वविवेचनं प्रतिपादितम् ॥ २ ॥

महाकर्मा—ल्पकर्मवक्तव्यता ।

महाकर्माल्पकर्मादीनां जीवानां दुःखसुखादिवन्धतारतम्यं वस्त्रदृष्टान्तेन

हे कि क्या स्त्री अथवा पुरुष आदि जीव कर्म का बंध करते हैं ? इत्यादि
(संजय) पद से संयत आदि कौन हैं ? इत्यादि विचार प्रकट किया
गया है । (सम्महिट्टी) पद यह प्रकट करता है कि सम्यग्दृष्टि आदिकौन
हैं ? (सत्री) संज्ञी—(भविण) भव्य (दंसण) दर्शनी, (पज्जत्त) पर्याप्तक
(भासय) भाषय (परित्ते) परीत, (नाण) ज्ञानी, (जोगे) योगी,
(उवओगाऽऽहारग) उपयोगी, आहारक, (सुहुम, चरिम) सूक्ष्म, चरम
ये सब पद यह बतलाते हैं कि इनको अश्रित करके (बंधेय) बन्धवि-
षयक निरूपण हुआ है (अल्पवहुं) यह पद यह कहता है कि इन्हीं
उपर्युक्त स्त्री आदि कर्मबन्ध जीवों का परस्पर में अल्प बहुत्व का विचार
किया गया है ।

पुरुष आदि लोको कर्मना बंध करे छे ? इत्यादि.

“संजय” आ पदथी संयत आदितुं निरूपण करवाभां आण्युं छे.

“सम्महिट्टी” आ पद अे प्रकट करे छे के सम्यग्दृष्टि आदि कोणु छे ?

“सत्री” संज्ञी, “भविण” भव्य, “दंसण” दर्शनी, “पज्जत्त”
पर्याप्तक, “भासय” भाषक, “परित्ते” “नाण” ज्ञानी, “जोगे” योगी,
“उवओगाऽऽहारग” उपयोगी, आहारक, “सुहुम, चरिम” सूक्ष्म, चरम आ
अधां पदो अे अतावे छे के ते अधाने अनुलक्षिने “बंधेय” बंधविषयक
निरूपणु आ उदेशकभां करायुं छे.

“अल्पवहुं” आ पद अे प्रकट करे छे के आ उदेशकभां स्त्री आदि
कर्मबंधक लोकोभां कोणु वधारे छे अने कोणु अल्प प्रमाणुभां छे. आ रीते
तेभना अल्पबहुत्वुं आ उदेशकभां प्रतिपादन करायुं छे.

गेण विस्रसया च ' यथा नखे पुद्गलाः प्रयोगेण-प्रयोगद्वारा विस्रसया स्वभाविक
 तथा च वध्यन्ते तथा जीवानामपि किम् कर्मपुद्गलाः प्रयोगेण विस्रसया च
 वध्यन्ते ? इत्यादि विवेचनम् २, ' सादीए ' ' सादिकः ' -यथा वस्त्रस्य सादिः
 पुद्गलचयः, एवं जीवानामपि किम् सादिः कर्मपुद्गलचयः ? इत्यादिनिरूपणम् ३,
 कम्मट्ठिइ ' कर्मस्थितिः कर्मणां स्थितिनिरूपणम् ४, ' इत्थी ' स्त्री ' किम् स्त्री,

उद्देशक के अर्थ को संग्रह करने वाली इन दो गाथाओं को कहा है-
 (बहुकम्म) इत्यादि तथा (भविए) इत्यादि-(बहुकर्म) इस पद से
 प्रश्नरूप में यह प्रकट किया गया है कि जिस जीव के कर्म बहुत हैं-उस
 के क्या कर्मपुद्गलों का सर्व प्रकार से बंध होता है ? इत्यादि (वत्थ-
 पोग्गल पओगसा वीससा य) इस पद द्वारा प्रश्न रूपमें यह प्रकट किया
 गया है कि जिस प्रकार से वस्त्र में पुद्गल प्रयोगद्वारा और स्वभाविक
 रीति से बंधते हैं, उसी तरह से क्या जीवों के भी कर्मपुद्गल प्रयोग
 और स्वभाव से बंधते हैं ? इत्यादि (सादिकः) इस पद द्वारा प्रश्नरूप
 में यह प्रकट किया गया है कि जिस प्रकार से वस्त्र में सादि पुद्गलों
 का चय होता है, उसी प्रकार से क्या जीवों को भी सादि कर्म पुद्गलों
 का चय होता है ? इत्यादि (कम्मट्ठिइ) इस पद द्वारा कर्म की स्थिति
 का विचार प्रकट किया गया है (इत्थी) इस पद द्वारा यह पूछा गया

સૂત્રકારે આ ઉદ્દેશકની શરૂઆતમાં બે સંગ્રહગાથાઓ આપી છે. તે ગાથાઓ
 આ ઉદ્દેશકમાં આવતા વિષયને પ્રકટ કરે છે. પહેલી ગાથા “ बहुकम्म ”
 ઇત્યાદિ. બીજી ગાથા “ भविए ” ઇત્યાદિ છે. “ बहुकर्म ” આ પદથી પ્રશ્નરૂપે
 એ પ્રકટ કરવામાં આવ્યું છે કે જે જીવનાં કર્મ બહુ છે એવો બહુકર્મ-
 જીવ શું સર્વ પ્રકારે કર્મનો બંધ કરે છે ? ઇત્યાદિ.

“ वत्थ-पोग्गल-पओगसा वीससा य ” આ પદ દ્વારા પ્રશ્નરૂપે એ પ્રકટ
 કરવામાં આવ્યું છે કે જેવી રીતે વસ્ત્રમાં પુદ્ગલ પ્રયોગદ્વારા અને સ્વાભાવિક
 રીતે બંધાય છે, એજ પ્રમાણે શું જીવોનાં કર્મપુદ્ગલ પણ પ્રયોગ અને સ્વાભા-
 વથી બંધાય છે ? ઇત્યાદિ.

“ सादिकः ” આ પદ દ્વારા પ્રશ્નરૂપે એ પ્રકટ કરવામાં આવ્યું છે કે
 જેમ વસ્ત્રમાં સાદિ (આદિ યુક્ત) પુદ્ગલોનો ચય થાય છે, તેમ શું જીવોમાં
 પણ સાદિ કર્મપુદ્ગલોનો ચય થાય છે.

“ कम्मट्ठिइ ” આ પદ દ્વારા કર્મની સ્થિતિનું પ્રતિપાદન કરવામાં આવ્યું છે.

“ इत्थी ” આ પદ દ્વારા એ પ્રકટ કરવામાં આવ્યું કે શું સ્ત્રી અથવા

वा, रङ्घ्रियस्स वा, आणुपुव्वीए परिकम्मिज्जमाणस्स सुद्वेणं
वारिणा धोव्वेमाणस्स सव्वओ पोग्गला भिज्जंति, जाव
परिणमति, से तेणद्वेणं ॥ सू० १ ॥

छाया—तद् नूनं भदन्त ! महाकर्मणः, महाक्रियस्य, महास्रवस्य, महावेद-
नस्य, सर्वतः पुद्गलाः बध्यन्ते, सर्वतः पुद्गलाधीयन्ते, सर्वतः पुद्गला उपचीयन्ते,
सदासमितं पुद्गलाः बध्यन्ते, सदा समितं पुद्गलाधीयन्ते, सदा समितं पुद्गला
उपचीयन्ते, सदासमितं च खलु तस्य आत्मा दूरूपतया, दुर्वर्णतया, दुर्गन्ध-
तया, दूरसतया, दुस्पर्शतया, अनिष्टतया, अकान्ता—ऽप्रिया—ऽशुभा—ऽनोक्ता—ऽम-

महाकर्माल्पकर्म वक्तव्यता

‘ से णूणं भंते ! ’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(से णूणं भंते ! महाकम्मस्स, महाकिरियस्स, महासवस्स,
महावेयणस्स, सव्वओ पोग्गला वज्झंति, सव्वओ पोग्गला चिज्जंति,
सव्वओ पोग्गला उवचिज्जंति) हे भदन्त ! यह निश्चित है क्या कि जो
जीव महाकर्मवाला होता है, महाक्रियावाला होता है, महा आस्रववाला
होता है और महावेदनावाला होता है, उसके सब तरफ से पुद्गलों का
बंध होता है ? सब तरफ से उनके पुद्गलों का चय होता है ? सब तरफ
से उसके पुद्गलों का उपचय होता है ? (सया समियं पोग्गला वज्झंति,
सया समियं पोग्गला चिज्जंति, सया समियं पोग्गला उवचिज्जंति,
सया समियं च णं तस्स आया दुरूवत्ताए दुवण्णताए दुर्गंधत्ताए, दुर-

महाकर्मं अने अल्पकर्मं वक्तव्यता—

“ से णूणं भंते ! ” इत्यादि—

सूत्रार्थ—(से णूणं भंते ! महाकम्मस्स, महाकिरियस्स, महासवस्स, महा-
वेयणस्स, सव्वओ पोग्गला वज्झंति, सव्वओ पोग्गला चिज्जंति, सव्वओ पोग्गला
उवचिज्जंति ?) हे भदन्त ! तुं अे वात निश्चित छे के के अुव महाकर्मं.
वाणेो डोय, महाक्रियावाणेो पणु डोय छे, महाआस्रववाणेो डोय छे अने
महाकर्मवाणेो डोय छे, ते अधी दिशाओमांथी कर्मपुद्गलोनेो अंध करतो रडे
छे ? तुं ते अधी दिशाओमां कर्मपुद्गलोनेो अय करतो डोय छे ? तुं तेने
अधी दिशाओमांथी कर्मपुद्गलोनेो उपचय थतो डोय छे ? (सया समियं
पोग्गला वज्झंति, सयासमियं पोग्गला चिज्जंति, सया समियं पोग्गला उवचिज्जंति,
सया समियं च णं तस्स आया दुरूवत्ताए दुवण्णताए दुर्गंधत्ताए, दुरसत्ताए, दुष्पा-

प्रतिपादयति- 'से णूं भंते !' इत्यादि ।

मृत्म्-से णूं भंते ! महाकम्मस्स, महाकिरियस्स महासवस्स, महावेयणस्स सव्वओ पोग्गला वज्झंति, सव्वओ पोग्गला चिज्जंति, सव्वओ पोग्गला उवचिज्जंति ? । सया समिअं पोग्गला वज्झंति, सयासमियं पोग्गला चिज्जंति, सया समियं पोग्गला उवचिज्जंति, सया समियं चं णं तस्स आया दूरुवत्ताए, दुव्वणत्ताए, दुग्गंधत्ताए, दूरसत्ताए, दुप्फासत्ताए, अणिट्ठत्ताए, अकंत-अप्पिय-असुभ-अमणुन्न-अमणामत्ताए, अणिव्वच्छियत्ताए, अभिज्झियत्ताए, अहत्ताए-णो उड्डत्ताए, दुक्खत्ताए नो सुहत्ताए, भुज्जो भुज्जो परिणमइ ? । हंता, गोयमा ! महाकम्मस्स तं चेव । से केणट्ठेणं ? गोयमा ! से जहा नामए वत्थस्स अहयस्स वा, धोयस्स वा, तंतुग्गयस्स वा आणुपुव्वीए परिभुज्जमाणस्स सव्वओ पोग्गला वज्झंति, सव्वओ पोग्गला चिज्जंति, जाव-परिणमइ, से तेणट्ठेणं । से णूं भंते ! अप्प-कम्मस्स, अप्पकिरियस्स, अप्पासवस्स अप्पवेयणस्स सव्वओ पोग्गला भिज्जंति, सव्वओ पोग्गला छिज्जंति, सव्वओ पोग्गला विद्धंसंति, सव्वओ पोग्गला परिविद्धंसंति, सया समियं पोग्गला भिज्जंति, सया समियं पोग्गला छिज्जंति, विद्धस्संति, परिविद्धस्संति, सया समियं च णं तस्स आया सुरूवत्ताए पसत्थं नेयव्वं, जाव-सुहत्ताए णो दुक्खत्ताए भुज्जो भुज्जो परिणमइ ? हंता गोयमा ! जाव-परिणमइ । से केणट्ठेणं ? गोयमा ! से जहा नामए वत्थस्स जल्लियस्स वा, पंक्रियस्स वा, मइल्लियस्स

धीयन्ते, यावत्-परिणमति, तत् तेनार्थेन०, । तद् नूनं भदन्त ? अल्पकर्मणः, अल्पक्रियस्य, अल्पाम्बुस्य, अल्पवेदनस्य, सर्वतः पुद्गलाः भिद्यन्ते, सर्वतः पुद्गला विद्यन्ते, सर्वतः पुद्गलाः विध्वंसन्ते, सर्वतः पुद्गलाः परिविध्वंसन्ते, सदा समितं

तंतुगणस्य वा आणुपुन्वीणपरिभुज्यमाणस्य सव्वाओ पोगगला वज्जंति सव्वाओ पोगगला चिज्जंति, जाव परिणमंति, से तेणट्टेणं०) हे गौतम ! जैसे कोई एक नवीन अहत-अक्षत-अपरिभुक्त-नहीं पहिरा हुआ ऐसा वस्त्र हो अथवा ऐसा वस्त्र हो जो पहिन करके फिर साफ किया गया हो अथवा ऐसे वस्त्र हो जो तुरीवेमादिरूप तन्त्र से अभी २ उतारा गया हो तो ऐसे वह वस्त्र जैसे अपने पहिरने के काम में आता रहता है -तैसे २ वह मलिन होता रहता है-अर्थात् सय तरफ से पुद्गल आ आकर उसमें संबद्धित होते रहते हैं, सय तरफ से आ आ करके पुद्गल उसमें निधत्ता होते रहते हैं, यावत् वे पुद्गल उसमें पर्यायान्तरों को पाते रहते हैं-इसी कारण वह कालान्तर में रसोई घर में दाल शाक आदि के वर्तनों को सिगड़ी ऊपर से उतारने आदि के काम में आने वाले वस्त्र के समान मैला हो जाता है। इसी कारण हे गौतम ! मैंने महाकर्म आदि विशेषणोंवाले जीव के विषय में पूर्वोक्त रूप से कहा है। (से णूं भंते ! अप्पकम्मस्स, अप्पकिरियस्स अप्पाऽऽसवस्स, अप्पवेयणस्स, सव्वओ पोगगला विद्धंसंति, सव्वओ पोगगला परिविद्धंसंति,

माणस्स सव्वओ पोगगला वज्जंति, सव्वओ पोगगला चिज्जंति, जाव परिणमंति, से तेणट्टेणं) हे गौतम ! जेभडे डोअ ओक नवीन (वापर्या विनातुं) वस्त्र डोअ, अथवा ओपुं वस्त्र डोअ डे जेने पडेरीने साइ करवाभां आण्युं डोअ, अथवा ओपुं वस्त्र डोअ डे जेने साण आदि उपर ताण्णावाण्णाथी वणीने तैयार करवाभां आण्युं डोअ, ओवां ते वस्त्रने जेम जेम पडेरेवाना उपयोगभां देवाभां आवे तेम तेम ते वधारेने वधारे मलिन थतु लय छे-ओटवे डे मधी दिशाभांथी पुद्गला आवी आवीने तेनी उपर ओटतां रडे छे, तेना उपर जभा थतां रडे छे, (यावत्) ते पुद्गला तेभां पर्यायान्तरा (ओक पर्यायभांथी णीण पर्यायभां परिणमन पामतां रडे छे, ते डारणे डानान्तरे ते वस्त्र भसोताना ओपुं मलिन थथ लय छे, हे गौतम ! ते डारणे महाकर्मआदिथी युक्त एवना विषयभां जे उपर प्रभाणे कहुं छे.

(से णूं भंते ! अप्पकम्मस्स, अप्पकिरियस्स, अप्पाऽऽसवस्स, अप्पवेयणस्स सव्वओ पोगगला विद्धंसंति, सव्वओ पोगगला परिविद्धंसंति, सया समियं

નોડમતયા, અનિચ્છિતયો, અભિધ્યનતયા, અપસ્તયા, નો ઝર્ચતયા, દુઃસ્વતયા,
નો સુસ્વતયા ધૂયો ધૂયઃ પરિણમતિ ? હન્ત, ગૌતમ ! મહાકર્મણસ્તદેવ । તત્કેના-
ર્થેન૦ ? ગૌતમ ! તદ્ યથા નામ-વ્રણસ્ય અહતસ્ય વા, ધૌતસ્ય વા, તન્નોદ્
ગતસ્ય વા, આનુપૂર્વ્યાં પરિભુજ્યમાનસ્ય સર્વેતઃ પુદ્ગલાઃ વધ્યન્તે, સર્વેતઃ પુદ્ગલા-

સત્તાણ, દુષ્ણસત્તાણ અણિદ્ધત્તાણ, અકંત, અપ્પિય-અસુમત્રમણુમ્મ અમ-
ણામત્તાણ અણિવ્વચ્છિયત્તાણ, અભિજ્ઞિયત્તાણ અહત્તાણ, ણો ઉદ્ધત્તાણ,
દુક્કલ્લત્તાણ, નો સુહત્તાણ મુજ્જો ૨ પરિણમદ્ધ) કયા એસે જીવ કે નિત્ય
નિરન્તર પુદ્ગલોં કા વંધ હોતા રહતા હૈ ? નિરંતર ઉસકે કયા પુદ્ગલોં કા
વચ હોતા રહતા હૈ ? નિરન્તર કયા ઉસકે પુદ્ગલોં કા ઉપવચ હોતા રહતા
હૈ ? ઉસકા આત્મા-શરીરરૂપ યાહ આત્મા-કયા સદા નિરન્તર દુરૂપ
રૂપ સે, દુર્વર્ણરૂપ સે, દુર્ગંધરૂપ સે, સ્વોટે રસરૂપ સે, સ્વોટેસ્પર્શરૂપ સે,
અનિષ્ઠરૂપ સે, અકાન્તરૂપ સે, અપ્રિયરૂપ સે, અમનામરૂપ સે, અનીપ્પિ-
ત્તરૂપ સે, અભિપ્પિત્તરૂપ સે, જઘન્યરૂપ સે, અનૂર્ધ્વરૂપ સે, દુઃખરૂપ સે
ઔર અસુખરૂપ સે, વારંવાર પરિણમિત હોતા રહતા હૈ ? (હંતા ગોયમા !
મહાકમ્મસ્સ તં ચેવ) હાં, ગૌતમ ! મહાકર્મવાલે જીવ કી યહી પૂર્વોક્ત
સય કુદ્ધ સ્થિતિ હોતી હૈ । (સે કેળદ્દેણ) હે ભદન્ત ! એસા આપ કિસ
કારણ સે કહતે હૈ ? (સે જહાનામણ વરથસ્સ અહયસ્સ વા ધોયસ્સ વા,

સત્તાણ અણિદ્ધત્તાણ અકંત, અપ્પિય-અસુમ, અમણુમ્મ અમણામત્તાણ અણિવ્વચ્છિય-
ત્તાણ, અભિજ્ઞિયત્તાણ અહત્તાણ, ણો ઉદ્ધત્તાણ, દુક્કલ્લત્તાણ, નો સુહત્તાણ મુજ્જોર
પરિણમદ્ધ) શું એવો ઊવ નિત્ય નિરંતર પુદ્ગલોનો વંધ કરતો રહે છે ?
શું તે નિરંતર પુદ્ગલોનો વચ કયો કરે છે ? શું નિરંતર તેનાં પુદ્ગલોનો
ઉપવચ થતો રહે છે ? તેનો આત્મા-શરીરરૂપ યાહ આત્મા-શું નિરંતર કુરૂપે
ખરાબ વર્ણરૂપે, દુર્ગંધરૂપે, ખરાબ રસરૂપે, ખરાબ સ્પર્શરૂપે, અનિષ્ઠરૂપે,
અકાન્તરૂપે, અપ્રિયરૂપે, અમનામરૂપે, (અમનોસરૂપે), અનીપ્પિત્તરૂપે, અભિ-
પ્પિત્તરૂપે, જઘન્યરૂપે, અનૂર્ધ્વરૂપે, દુઃખરૂપે ઓ અસુખરૂપે વારંવાર પરિભ્રમન
પામ્યા કરે છે ?

(હંતા ગોયમા ! મહાકમ્મસ્સ તં ચેવ) હા, ગૌતમ ! મહાકર્મવાળા ઊવની
એવી જ દશા થાય છે.

(સે કેળદ્દેણ) હે ભદન્ત ! એવું આપ શા કારણે કહો છો ? (સે જહા
નામણ વરથસ્સ અહયસ્સ વા ધોયસ્સ વા; સંતુગ્ગયસ્સ વા આણુપુવ્વીપ પરિભુજ્ઞ-

केनार्थेन ? गौतम ! तद् यथा नाम वस्त्रस्य जल्लितस्य वा पङ्कितस्य वा मलितस्य वा, रजस्कृतस्य वा, आणुपुर्व्यां परिकर्म्यमाणस्य शुद्धेन वारिणा धोव्यमानस्य सर्वतः पुद्गला भिद्यन्ते, यावत्-परिणमति, तत् तेनार्थेन० ॥ सू० १ ॥

टीका— ' से पूर्णं भंते ! महाकर्मस्य, महाकिरियस्स, महासवस्स, महावेणस्स सव्वओ पोग्गला यज्झंति ' गौतमः पृच्छति — हे भदन्त !

जाव परिणमंति) हां, गौतम ! यावत् परिणमता रहता है । (से केणट्ठेणं) हे भदन्त ! आप ऐसा किस कारण से कहते हैं ? (से जहा नामए वत्थस्स जल्लियस्स वा पंक्कियस्स वा मइल्लियस्स वा रइल्लियस्स वा आणुपुव्वीए परिकम्मिज्जमाणस्स सुद्धेणं वारिणा धोव्वेमाणस्स सव्वओ पोग्गला भिज्जंति, जाव परिणमंति, से तेणट्ठेणं०) हे गौतम ! जैसे कोई एक वस्त्र ऐसा हो कि जो शारीरिक मेल से युक्त हो, जिस में गीली कीचड़ लगी हुई हो, रज सहित हो, तो वह जैसे धीरे २ साफ किये जाने पर, शुद्धपानीसे धोये जाने पर साफ-शुद्ध हो जाता है अर्थात् उसमें संसक्त हुए मलिन पुद्गल उससे सय तरफ से पृथक् हो जाते हैं यावत् वह वस्त्र अपने रूपमें परिणम जाता है—इसका कारण हे गौतम ! मैंने अल्पकर्मादि विशेषणोंवाले जीवके विषयमें पूर्वोक्तरूपसे कहा है ।

टीकार्थ—महाकर्म और अल्पकर्म आदि वाछे जीवों के दुःख सुख आदि बंध की तरतमता (भेद) इस सूत्र द्वारा सूत्रकार प्रकट कर

डा, गौतम ! तेना आत्मा ते इपे वारंवार परिणुमन पाभ्या करे छे । (से केणट्ठेणं) हे भदन्त ! आप शा शरथे ओवुं कडो छे ? (से जहा नामए वत्थस्स जल्लियस्स वा, पंक्कियस्स वा, मइल्लियस्स वा, रइल्लियस्स वा, आणुपुव्वीए परिकम्मिज्जमाणस्स सुद्धेणं वारिणा धोव्वेमाणस्स सव्वओ पोग्गला भिज्जंति जाव परिणमंति, से तेणट्ठेणं)

हे गौतम ! कौछ ओक वस्त्र शरीरना परसेवाथी युक्त डोय, जेना उपर शीनी भाटी लागी डोय (कडवथी जे भरडायेतुं डोय) जेना उपर भूगनी रज जमा थयेली डोय, जेवां वस्त्रने धीमे धीमे साइ करवाथी, अने शुद्ध पापिमां धोवाथी ते साइ थछ नय छे—ओट्ठे के तेने वणजेलां मलिन पुद्गले तेमांथी तइत अलग थछ नय छे, अने ते वस्त्र शुद्धइपे परिणुमन पाभे छे । हे गौतम ! ते क्खथे मे' अल्पकर्म' आदिथी युक्त एवोना विषयमां पूर्वोक्त कथन कथुं छे ।

टीकार्थ—महाकर्म, अल्पकर्म आदिथी युक्त एवोना दुःख, सुख आदि बंधना सेडोतुं सूत्रकार आ सूत्रद्वारा निरूपण करे छे—गौतम स्वामी महावीर

પુત્રલાઃ મિધન્તે, સદા સમિતં પુત્રલામ્હિષ્યન્તે, વિધ્વંસન્તે; પરિવિદ્વંસન્તે, સદા-
સમિતં ચ સ્વલુ તસ્પાત્મા પુરુપતયા, મશસ્ત્રં શાતઙ્યમ્, યાવન્-ગુલ્લતયા નો
દુઃસ્વતયા ભૂપોભૂયઃ પરિણમતિ ? હન્ત, ગૌતમ ! યાવન્ - પરિણમતિ । ત્વ

સયા સમિયં પોગલા મિજ્જંતિ, સયા સમિયં પોગલા છિજ્જંતિ, વિદ્વં-
સ્સંતિ, પરિવિદ્વંસંતિ) હે ભદન્ત ! યદ્ નિશ્ચિત્ત હે યયા, કિ જો જીવ
અલ્પકર્મવાલા હોતા હૈ, અલ્પક્રિયાવાલા હોતા હૈ, અલ્પઆશ્રવવાલા હોતા
હૈ, અલ્પવેદનાવાલા હોતા હૈ ઉસકે પુત્રલ સય તરફ સે ઘ્બહ્ હો જાતે
હૈં ? સય તરફ સે છિદ્ જાતે હૈં ? સય તરફ સે વે ભ્રષ્ટ (નષ્ટ) હો જાતે
હૈં ? સય તરફ સે વે સર્વરૂા મેં નાશ હો જાતે હૈં ? સદા નિરન્તર ઉસકે
વે પુત્રલ ઉસસે ઘ્બહ્ હોતે રહતે હૈં ? સદા નિરન્તર ઉસકે વે પુત્રલ
છિદતે રહતે હૈં ? સદા નિરન્તર ઉસકે વે પુત્રલ ઉસસે ભ્રષ્ટ હોતે રહતે
હૈં ? તથા-સદા નિરન્તર ઉસકે વે પુત્રલ ઉસસે કુલરૂપ મેં નહીં કિન્તુ
સર્વરૂપ મેં નષ્ટ હોતે રહતે હૈં ? (સયા સમિયં ચ ણં તસ્સ આયા સુરૂવ-
ત્તાણ પમત્થં નેયઙ્ગં) ઓર ઉસકા આત્મા ઘાહ્યશરીરરૂપ આત્મા નિર-
ન્તર હંમેશા કે લિયે જવનક શરીર હૈ તથતક કે લિયે સુરૂપરૂપ સે
(યહાં વર્ણાદિ પ્રશસ્ત જાનના ચાહિયે) સો સુવર્ણાદિરૂપ સે (જાવ
સુહત્તાણ ણો દુક્કલ્લાણ મુજ્જોર પરિણમંતિ) યાવત્ સુરૂપરૂપ સે-દુઃસ્વ-
રૂપ સે નહીં-વારંવાર પરિણમનરૂપ હોતા રહતા હૈ યયા ? (હંતા ગોયમા

પોગલા મિજ્જંતિ, સયા સમિયં પોગલા છિજ્જંતિ, વિદ્વંસ્સંતિ, પરિવિદ્વંસંતિ)

હે ભદન્ત ? શું એ નિશ્ચિત છે કે જે છવ અલ્પકર્મવાળો, અલ્પક્રિયા-
વાળો, અલ્પઆશ્રવવાળો અને અલ્પવેદનાવાળો હોય તેનાં પુત્રલો અધી તરફથી
અલગ થઈ જાય છે ? અધી તરફથી છિન્ન થઈ જાય છે ? અધી તરફથી નષ્ટ
થઈ જાય છે ? અધી તરફથી સર્વરૂપે નષ્ટ થઈ જાય છે ? શું તેના તે પુત્રલો
સદા નિરન્તર તેનાથી અલગ થતાં રહે છે ? શું તે પુત્રલો સદા નિરન્તર છેદાતાં
રહે છે ? શું તેનાં તે પુત્રલ સદા નિરન્તર નષ્ટ થતાં રહે છે ? શું તેનાં તે
પુત્રલો સદા નિરન્તર સર્વરૂપે નષ્ટ થતાં રહે છે ? (સયા સમિયં ચ ણં તસ્સ
આયા સુરૂવત્તાણ પમત્થં નેયઙ્ગં) અને તેના આત્મા ઘાહ્યશરીરરૂપ આત્મા
શું નિરન્તર એટલે કે જ્યાં સુધી શરીરનું અસ્તિત્વ રહે ત્યાં સુધી સુરૂપ, સુવર્ણ
(અહીં પ્રશસ્ત વર્ણ આદિ સમજવા) આદિ રૂપે, (જાવ સુહત્તાણ ણો દુક્કલ-
લાણ મુજ્જોર પરિણમંતિ ?) અને કાન્તથી લઈને સુખ પર્યન્તના રૂપે અને
અદુઃખરૂપે વારંવાર પરિભ્રમિત થયા કરે છે ? (હંતા ગોયમા ! જાવ પરિણમંતિ)

પુદ્ગલાઃ ઉપચીયન્તે નિષેકરચનતઃ ઉપચિતા ભવન્તિ કિમ્ ? અથવા વન્ધનતો વધ્યન્તે, નિષત્તથીયન્તે, નિકાચનત ઉપચીયન્તે કિમ્ ? ' સયા સમિયં પોગ્ગલા વજ્જંતિ ' સદા-સર્વદા-નિત્યમ્ , સમિતં-નિરન્તરં પુદ્ગલાઃ વધ્યન્તે ? સદાત્વં તુ વ્યવહારતોઽસાતત્યેઽપિ સ્યાત્ અત આઠ-સમિતપ્રિતિ ' ' સયા સમિયં પોગ્ગલા

ઉપચિત્ હોતે હૈં કયા ? અથવા-(વજ્જંતિ, ચિજ્જંતિ, ઉવચિજ્જંતિ) એસી ઇન ત્રીન ક્રિયાઓં કા જો સૂત્રકાર ને પાઠ રહ્યા હૈં સો ઉસકા અભિપ્રાય એસાં ખી હો સકતા હૈં કિ પ્રકૃતિ, સ્થિતિ, અનુભાગ ઓર પ્રદેશ ઇન ચાર પ્રકાર કૈં વંધો કી અપેક્ષા લેકર (વજ્જંતિ) એસાં પ્રશ્ન ક્રિયા ગયા હૈં કર્મવન્ધન કૈં વાદ કર્મોં મૈં દસ ૧૦ પ્રકાર કી અવસ્થાએં હોતી હૈં ઉનમૈં ઁક અથવા નિષત્ત હૈં સો ઇસ અવસ્થા કો લેકર (ચિજ્જંતિ) એસાં પ્રશ્ન ક્રિયા ગયા હૈં ઓર નિકાચિત અવસ્થા કો લેકર (ઉવચિ-જ્જંતિ) એસાં પ્રશ્ન ક્રિયા હૈં (સયા સમિયં પોગ્ગલા વજ્જંતિ) એસાં જો પૂછા ગયા હૈં-સો ઉસકા અભિપ્રાય એસાં હૈં કિ (જીવો સમયવબદ્ધં વજ્જંતિ) ઇસ સિદ્ધાન્ત સ્વીકૃત માન્યતા કો ધ્યાન મૈં રહકર હી પૂછા ગયા હૈં-અર્થાત્ જીવ કયા સમયાસમય કર્મકા વંધ કરતા હૈં ? યર્હાં જો (સમિયં) યહ પદ દિયા ગયા હૈં વહ ઇસ વાત કો દૂર કરને કૈં લિયે દિયા ગયા હૈં કિ નિરંતરતા કૈં અભાવ મૈં ખી જો લોકસ્થિતિ સે (સદા)

છે ? " સવ્વઞો પોગ્ગલા ઉવચિજ્જંતિ " શું એવો જીવ સમસ્ત દિશાઓમાંથી કર્મવર્ણણા રૂપ પુદ્ગલોને ઉપચય કરે છે ? (વજ્જંતિ, ચિજ્જંતિ, ઉવચિજ્જંતિ) આ ત્રણે ક્રિયાઓને એવો પણ અર્થ થાય છે કે પ્રકૃતિ, સ્થિતિ, અનુભાગ અને પ્રદેશ આ ચાર પ્રકારના બંધોની અપેક્ષાએ " વજ્જંતિ " એવો પ્રશ્ન કરાયો છે.

કર્મવન્ધન થયા પછી કર્મોમાં દસ પ્રકારની અવસ્થાઓ થાય છે, તેમાંની એક નિષત્ત અવસ્થા છે, અને તે નિષત્ત અવસ્થાને અનુલક્ષીને " ચિજ્જંતિ " એવો પ્રશ્ન પૂછયો છે, અને નિકાચન અવસ્થાને અનુલક્ષીને " ઉવચિજ્જંતિ " એવો પ્રશ્ન પૂછયો છે. " સયાસમિયં પોગ્ગલા વજ્જંતિ " આ પ્રશ્ન પૂછવા પાછા બનેા હેતુ એવો છે કે " જીવો સમયવબદ્ધં વજ્જંતિ " શું જીવ પ્રત્યેક સમયે કર્મને બંધ કરે છે ? સૂત્રમાં જે " સમિયં " પદ આપવામાં આવ્યું છે તે એ વાતને દૂર કરવાને માટે આપવામાં આવ્યું છે કે નિરંતરતાને અભાવ હોવા છતાં લોકો " સદા " પદને ઉપયોગ કરતા હોય છે. અહીં તેા સૂત્રકાર એમ બતાવવા માગે છે કે જીવ સદા (હંમેશા) નિરંતર (વ્યવધાન

तद् अथ, नूनं निश्चयेन किम् महाकर्मणः स्थित्याद्यपेक्षया बहुकर्मवतः महाक्रियस्य कायिक्यादिमहाक्रियायुक्तस्य, महास्रवस्य — कर्मबन्धहेतुभूत-महामिथ्यात्वमहारम्भमहापरिमहदिमतः, महावेदनस्य — महादाहज्वरादिजनित-पीडायुक्तस्य जीवस्य, सर्वतः सर्वाणु दिशुः सर्वान वा जीवमदेशान् अभ्रित्य पुद्गलाः कर्मपरमाणवः वध्यन्ते ? 'सर्वभो पोगला चिज्जन्ति' सर्वतः पुद्गलाः चीयन्ते ? बन्धनरूपेण संघटान्ते किम् ? 'सर्वभो पोगला उवचिज्जन्ति' सर्वतः

रहे हैं—इसमें गौतम प्रभु से पूछ रहे हैं कि (से णूणं भंते!) हे भदन्त! क्या यह निश्चित बात है कि (महाकम्मस्स) जिस जीव के कर्म की स्थिति वगैरह बहुत अधिक पड़ी ऐसे महाकर्मवाले जीव के अर्थात् अधिक स्थितिवाले, अधिक अनुभागवाले और अधिक प्रदेशवाले कर्मों से सहित जीव के (महाकिरियस्स महासवस्स) जिसकी कायिकी आदि क्रियाएँ बहुत पड़ी चदी हुई हैं इसी कारण जो कर्मबंध के हेतुभूत महामिथ्यात्व, महारम्भ महापरिमह में फँसा हुआ है (महावेयणस्स) महादाहज्वर आदि जनित व्यथा से जो बहुत घुरी तरह तडफड रहा है ऐसे जीव के (सर्वभो पोगला चिज्जन्ति) समस्त दिशाओं में से अथवा जीव के सर्व प्रदेशों को आश्रित करके पुद्गल-कर्मपरमाणुओं का संकलनरूप बंध होता है ? (सर्वभो पोगला चिज्जन्ति) समस्त दिशाओं में से अथवा जीव के सर्व प्रदेशों का आश्रित करके कर्म वर्गणारूप पुद्गल ऐसे जीव द्वारा बंधनरूप से ग्रहण किये जाते हैं क्या ? (सर्वभो पोगला उवचिज्जन्ति) सर्वतः निपेक रचना की अपेक्षा से वे

प्रभुने जेवो प्रश्न पूछे छे के "से णूणं भंते!" छे भदन्त! शुं जे वात निश्चित छे के "महाकम्मस्स" जे एवनां कर्मनी स्थिति वगेरे णहुं व धारे डोय छे जेवा मडाकर्मवाणा एवना-जेठवे के अधिक स्थितिवाणा, अधिक अनुभागवाणा अने अधिक प्रदेशवाणा कर्मथी युक्त एव के जेनी "महाकिरियस्स महासवस्स" कायिकी आदि क्रियाओ वणी व धारे प्रभाषुमां अने ते कारणे जे कर्मबंधना कारणरूप मडामिथ्यात्व, मडाआरंभ, मडापरिमह आदिमां इसायेवे डोय छे, "महावेयणस्स" अने जे मडादाह ज्वर आदिथी जनित व्यथाथी (पीडाथी) लयंकर वेदनाने अनुभव करतो डोय छे, जेवो एव "सर्वभो पोगला चिज्जन्ति" शुं समस्त दिशाओमांथी अथवा समस्त आत्मप्रदेशोथी पुद्गल जेठवे के कर्मपरभाषुओना संकलन रूप बंध करे छे परे ? "सर्वभो पोगला चिज्जन्ति" शुं जेवो एव समस्त दिशाओमांथी अथवा समस्त आत्मप्रदेशोथी कर्मवर्गणारूप पुद्गलाने अय करे

દુષ્કાસત્તાઈ ' દુર્ગન્ધતયા-દુર્ગન્ધત્વેન, દૂરસતયા કદુઃકટ્યાદિરસત્વેન દુસ્પર્શતયા-
કર્કશકઠોરાદિસ્પર્શતયા, ' અણિઠ્ઠત્તાઈ ' અણિઠ્ઠતયા કસ્યાપિ ઇચ્છાયા અવિપય-
ત્વેન ' અકન્ત-અપ્પિય-અસુમ-અમણુન્ન-અમણામત્તાઈ, અણિચ્છિયત્તાઈ ' અકાન્ત
તયા અમણીયતયા, અપ્રિયતયા પ્રેમરાહિત્યેન અમનોઙ્ગત્વેન, અમુન્દરતયા, અધુમ-
ત્વેન-અમદ્ગ્ગતયા, અમનોઙ્મતયા મનસા પ્રાપ્તુમવાઞ્છિતતયા, અનિચ્છિતતયા-
પ્રાપ્તુમનભિવાઞ્છિતત્વેન ' અભિજ્ઞિયત્તાઈ અદ્દત્તાઈ-નો ઉદ્દત્તાઈ ' અભિધિયતતયા

(દૂરસત્તાઈ) કુત્સિતરસવાલા (દુષ્કાસત્તાઈ) કુત્સિતસ્પર્શવાલા, -ક-
ર્કશ કઠોર આદિસ્પર્શવાલા હોતા હૈ કયા ? (અણિઠ્ઠત્તાઈ) કિસી કી
મી ઇચ્છા કા વિપય મ્હૂત વહ નહીં ઘનતા હૈ કયા ? અર્થાત્ એસે શરીર
ધારી કો કોઈ મી નહીં ચાહતા હૈ કયા (અકન્ત-અપ્પિય-અસુમ-અમ-
ણુન્ન-અમણામત્તાઈ અણિચ્છિયત્તાઈ) વહ સુન્દર નહીં હોતા હૈ કયા ?
કોઈ મી ઉસસે પ્યાર નહીં કરતા હૈ કયા ? કિસી કે મી મન કો વહ
નહીં ગમતા હૈ કયા ? કોઈ મી જીવ કયા એસે વ્યક્તિ કી મન સે મી
કમી વાદ નહીં કરતા હૈ કયા ? અભિજ્ઞિયત્તાઈ અદ્દત્તાઈ " નો ઉદ્દ-
ત્તાઈ " દુક્લત્તાઈ " નો સુહત્તાઈ મુજ્જો ૨ પરિણમઈ " એસી સ્થિતિ
કો પ્રાપ્ત કરને કા કિસી કો લોભ મી નહીં હોતા હૈ કયા ? વહ સર્વ
પ્રકાર સે કયા ચિલકુલ જઘન્યરૂપ (નીચે પરિસ્થિતિ) મેં હી રહતા હૈ ?
કમી મી કયા વહ ઉત્કૃષ્ટ નહીં માના જા સકતા હૈ ? સદા ઉસમેં
દુઃખોં કા હી વાસ રહતા હૈ કયા ? કમી મી કયા ઉસમેં સુખરૂપતા
કો ભાસતક્ર મી નહીં હોતા હૈ ? ઇસ રૂપ સે હી વહ કયા પ્રત્યેક ક્ષણ
૨ મેં પરિણામિત હોતા રહતા હૈ ? તાત્પર્ય પૂછને કા કેવલ યહી હૈ કિ

પરાળ સ્પર્શવાણું (કર્કશ, કઠોર આદિ સ્પર્શવાણું) યાય છે ખરું ? (અણિ-
ઠ્ઠત્તાઈ) શું એવા છવને કોઈ પણ ચાહતું નથી ? (અકન્ત, અપ્પિય, અસુમ,
અમણુન્ન, અમણામત્તાઈ અણિચ્છિયત્તાઈ) શું તે સુંદર હોતો નથી ? શું કોઈપણ
તેના પર પ્રેમ રાખતું નથી ? શું કોઈના મનને તે ગમતો નથી ? શું કોઈ
પણ વ્યક્તિ એવા છવને મનથી પણ કદી યાદ કરતી નથી ? (અભિજ્ઞિયત્તાઈ
અદ્દત્તાઈ, નો ઉદ્દત્તાઈ, દુક્લત્તાઈ નો સુહત્તાઈ મુજ્જો મુજ્જો પરિણમઈ) એવી
સ્થિતિને પ્રાપ્ત કરવાનો શું કોઈને પણ લોભ થતો નથી ? શું તે સર્વ પ્રકારે
અધમ દશામાં જ રહે છે ? શું કદી પણ તેની ઉન્નતિ થતી નથી ? શું સદા
તેને દુઃખો જ સહન કરવા પડે છે ? શું તેને કદી પણ સુખનો ભાસમાત્ર
પણ થતો નથી ? આ પ્રકારે જ શું તે સદા પરિણમિત થતો રહે છે ?

ચિજ્જંતિ ? ' સદા સમિતં પુદ્ગલાઃ સ્વીયન્તે ? ' સયા સમિયં પોગ્ગલા ઉવચિજ્જંતિ ' સદા સમિતં પુદ્ગલા ઉપસ્વીયન્તે ? ' સયા સમિયં ચ ણં તસ્સ આયા ' સદા સર્વદા સમિતં સતતં ચ સ્વલુ તસ્ય મહાકર્માદિમતો જીવસ્ય આત્મા, યસ્ય જીવસ્ય પુદ્ગલાઃ વ્યવ્યન્તે તસ્ય આત્મા-શરીરરૂપવાદાત્મા ' દુરુવત્તાણ, દુવ્વગ્ગત્તાણ ' દુરુ-પતયા કુત્તિસતરૂપતયા, દુર્ગંધતયા કુત્તિસતવર્ણતયા ' દુર્ગંધત્તાણ, દુરસત્તાણ એસા વ્યવહાર હો જાતા હૈ સો એસી યાત મહાં નહીં સમક્કની ચાહિયે અર્થાત્ એસા જીવ તો-સદા-હમેશા-નિરન્તર હી અન્તર-વ્યવધાન-પદ્દે વિના હી-કર્મોં કા વંધ કરતા રહતા હૈ કયા ? ઉત્તકા જયતક વદ્દે સંસારદશા મેં હસ સ્થિતિવાલા વના રહતા હૈ એસા એક મી સમય નહીં નિકલતા હૈ કયા કિ જિસમેં ઉત્તકે કર્મવંધ ન હોતા રહતા હો ? કર્મ-વંધ હો જાને કે વાદ (સયા સમિયં પોગ્ગલા ચિજ્જંતિ) નિરન્તર ઉત્તકે વે વંધદશા કો પ્રાપ્ત હુણ કર્મવર્ગણારૂપ પુદ્ગલ ચપરૂપ મેં ઓર (સયા-સમિયં પોગ્ગલા ઉવચિજ્જંતિ) ઉપચયરૂપ અવસ્થા મેં આતે રહતે હૈં કયા ? (સયા સમિયં ચ ણં તસ્સ આયા) જિસ મહાકર્મ આદિ વિશેષર્ણોવાલે જીવ કે નિરન્તર કર્મપુદ્ગલ વંધતે રહતે હૈં ઉત્ત જીવ કા આત્મા-ચાહ્ય શરીરરૂપ આત્મા (દુરુવત્તાણ, દુવ્વગ્ગત્તાણ) કુત્તિસતરૂપતા કે કુત્તિસ-તવર્ણતા સે યુક્ત હોતા રહતા હૈં કયા ? તાત્પર્ય પૂઝને કા વહ્દ હૈં કિ એસે કર્મવંધનાદિરૂપ માર સે અધિક વજનદાર વને હુણ જીવ કા શરીર કુત્તિસતરૂપવાલા કુત્તિસતવર્ણવાલા, (દુર્ગંધત્તાણ) કુત્તિસત દુર્ગંધવાલા

પડયા વિના) કર્મોના બંધ કરે છે. પ્રશ્નકાર એ બાલુના માગે છે કે મહા-કર્મ આદિથી યુક્ત હવ શું સદા નિરંતર કર્મોના બંધ કરતો રહે છે ?
 ન્યાં સુધી તે સંસારદશામાં એજ સ્થિતિવાળો રહે ત્યાં સુધી તે એક પણ એવો સમય બ્યતીત કરતો નથી કે ન્યારે તેના દ્વારા કર્મબંધ બંધાતો ન હોય. કર્મબંધ થઈ ગયા પછી (સયા સમિયં પોગ્ગલા ચિજ્જંતિ) તે હવના બંધદશાને પામેલાં કર્મવર્ગણારૂપ પુદ્ગલો શું નિરંતર ચય અને (સયા સમિયં પોગ્ગલા ઉવચિજ્જંતિ) ઉપચયરૂપ અવસ્થામાં આવતાં રહે છે ? (સયા સમિયં ચ ણં તસ્સ આયા) જે મહાકર્મ આદિ વિશેષણોવાળા હવનાં કર્મપુદ્ગલ નિર-ન્તર બંધદશાને પ્રાપ્ત કરતાં રહેતાં હોય છે, તે હવના આત્મા બાહ્યશરીર રૂપ આત્મા- (દુરુવત્તાણ, દુવ્વગ્ગત્તાણ) કુરૂપતાથી અને દુર્વણુતાથી (ખરાબ વણુથી) શું યુક્ત થતો રહે છે ? આ પ્રશ્નનો ભાવાર્થ એ છે કે એવાં કર્મ-બંધનાદિરૂપ ભારથી અધિક વજનદાર બનેલા હવનું શરીર શું ખરાબ રૂપ-વાળું; (દુર્ગંધત્તાણ) દુર્ગંધવાળું, (દુરસત્તાણ) ખરાબ રસવાળું,

दुष्कासत्ताए ' दुर्गन्धतया-दुर्गन्धत्वेन, दूरसतया कटुकत्वादिस्पर्शत्वेन दुस्पर्शतया-
 कर्कशकठोरादिस्पर्शतया, ' अणिष्टत्ताए ' अनिष्टतया कस्यापि इच्छाया अविषय-
 त्वेन ' अकन्त-अपिय-असुभ-अमणुज-अमणामत्ताए, अणिच्छियत्ताए ' अकान्त
 तया अरमणीयतया, अमियतया प्रेमराहित्येन अमनोत्तत्वेन, अमुन्दरतया, अशुभ-
 त्वेन-अमङ्गलतया, अमनोऽमतया मनसा प्राप्तुमवाञ्छिततया, अनिच्छिततया-
 प्राप्तुमनभिवाञ्छितत्वेन ' अभिज्ञियत्ताए अदत्ताए-णो उद्दत्ताए ' अभिध्यततया

(दूरसत्ताए) कुत्सितरसवाला (दुष्कासत्ताए) कुत्सितस्पर्शवाला, -क-
 केश कठोर आदिस्पर्शवाला होता है क्या ? (अणिष्टत्ताए) किसी की
 भी इच्छा का विषय भूत वह नहीं घनता है क्या ? अर्थात् ऐसे शरीर
 धारी को कोई भी नहीं चाहता है क्या (अकन्त-अपिय-असुभ-अम-
 णुज-अमणामत्ताए अणिच्छियत्ताए) वह सुन्दर नहीं होता है क्या ?
 कोई भी उससे प्यार नहीं करता है क्या ? किसी के भी मन को वह
 नहीं गमता है क्या ? कोई भी जीव क्या ऐसे व्यक्ति की मन से भी
 कभी वाद नहीं करता है क्या ? अभिज्ञियत्ताए अदत्ताए " नो उद्दु-
 त्ताए " दुःखत्ताए " नो सुहत्ताए भुज्जो २ परिणमइ " ऐसी स्थिति
 को प्राप्त करने का किसी को लोभ भी नहीं होता है क्या ? वह सर्व
 प्रकार से क्या बिलकुल जघन्यरूप (नीचे परिस्थिति) में ही रहता है ?
 कभी भी क्या वह उत्कृष्ट नहीं माना जा सकता है ? सदा उसमें
 दुःखों का ही वास रहता है क्या ? कभी भी क्या उसमें सुखरूपता
 का भासतक भी नहीं होता है ? इस रूप से ही वह क्या प्रत्येक क्षण
 २ में परिणामित होता रहता है ? तात्पर्य पूछने का केवल यही है कि

अरण स्पर्शवाणुं (कर्कश, कठोर आदि स्पर्शवाणुं) थाय छे षइं ? (अणि-
 ष्टत्ताए) शुं अेवा एवने कोधं पणु याडतुं नथी ? (अकन्त, अपिय, असुभ,
 अमणुज, अमणामत्ताए अणिच्छियत्ताए) शुं ते सुन्दर डोतो नथी ? शुं कोधपणु
 तेना पर प्रेम राणतुं नथी ? शुं कोधना मनने ते गभतो नथी ? शुं कोध
 पणु व्यङ्गित अेवा एवने मनथी पणु कही याड करती नथी ? (अभिज्ञियत्ताए
 अदत्ताए, नो उद्दत्ताए, दुःखत्ताए नो सुहत्ताए भुज्जो भुज्जो परिणमइ) अेवी
 स्थितिने प्राप्त करवाने शुं कोधने पणु बोला थतो नथी ? शुं ते सर्व प्रकारे
 अधम दशाभां न रहे छे ? शुं कही पणु तेनी उन्नति थती नथी ? शुं सदा
 तेने दुःखो न सदन करवा पडे छे ? शुं तेने कही पणु सुभने वासमात्र
 पणु थतो नथी ? आ प्रकारे न शुं ते सदा परिणामित थतो रहे छे ?

મિધ્યા લોભઃ સા સંજાતાઽસ્મિન્ ઇતિ મિધ્યિતસ્તસ્ય ભાવસ્તદુરાદિત્યેન સર્વ-
યાઽવાઠ્ઠનીયત્વેન અલોભનીયતયા, અથસ્તયા યન્યત્વેન, નો ઝર્થતયા નોક્ત-
ત્વેન ' દુસ્વચાણ, ણો સુહચાણ ' દુઃસ્વતયા દુસ્વત્વેન, નો સુસ્વતયા નો સુસ્વ-
ત્વેન ' યુજ્જો યુજ્જો પરિણમઃ ? ' ભૂયો ભૂયઃ વારં વારં પરિણમતિ ? એવં મહા-
કર્માદિજીવસ્પાત્મા દૂરૂપદુર્વણાદિયુક્તો ભવતિ ક્ષિમિતિ ભાવઃ ।

મગવાન્ આહ—' હંતા, ગોયમા ! મહાકર્મસ્સ તં ચેવ ' હે ગોતમ ! હન્ત, સત્યમ્ મહાકર્મણઃ તદેવ પૂર્વોક્તચત્તેવ મહાક્રિયસ્સ મહાસ્રવસ્સ મહાવેદનસ્સ જીવસ્સ સર્વતઃ પુદ્ગલા વધ્યન્તે, ઇત્યાદિ સર્વં સંગ્રાહમ્ ।

ગોતમ આહ—' સે કેણટ્ટેણં ? ' હે ભદન્ત ! તત્ કેનાર્યેન એવં પૂર્વોક્તહ-
ચ્યતે યત્-મહાકર્મણઃ મહાક્રિયસ્સ મહાસ્રવસ્સ મહાવેદનસ્સ ચ જીવસ્સ પુદ્ગલા
વધ્યન્તે ઇત્યાદિ । મગવાન્ સદ્દાન્ટમાહ—' ગોયમા ! સે જહા નામણં વત્થસ્સ

મહાકર્માદિ યુક્ત જીવ કા શરીર દુરૂપ દુર્વણાદિ સે યુક્ત હોતા હૈ કયા ?
ઉ. (હંતા, ગોયમા ! મહાકર્મસ્સ તં ચેવ) હાં, ગોતમ ! મહાકર્મવાલે
જીવ કે વહી પૂર્વોક્તરૂપ સે સપ કુછ હોતા હૈ । અર્થાત્ જો જીવ મહાક-
ર્મવાલા હોતા હૈ, મહાક્રિયાવાલા હોતા હૈ, મહાસ્રવવાલા હોતા હૈ, મહા-
વેદનાવાલા હોતા હૈ, ઉસ જીવ કે સર્વતઃ પુદ્ગલો કા વંધ હોતા હૈ
ઇત્યાદિ સઘ કથન યહાં પર લગા લેના ચાહિયે । (સે કેણટ્ટેણં) હૈ
ભદન્ત ! એસા આપ કિસ કારણ સે કહતે હૈં કિ જો જીવ મહાકર્મા
હોતા હૈ, મહાક્રિયાવાલા હોતા હૈ, મહાસ્રવવાલા હોતા હૈ, ઓર મહાવે-
દનાવાલા હોતા હૈ એસે જીવ કે પુદ્ગલ વંધતે હૈં ઇત્યાદિ । મગવાન્ ઇસ
પ્રશ્ન કા ઉત્તર દૃષ્ટાન્ત દેકર દેતે હૈં-વે વતલાતે હૈં કિ (ગોયમા) હૈં

આ પ્રશ્નનું તાત્પર્ય એટલું જ છે કે મહાકર્મ આદિથી યુક્ત જીવનું
શરીર શું કુવળું, કુરૂપ આદિથી યુક્ત હોય છે ?

મહાવીર પ્રભુ તેનો જવાબ આપતા કહે છે—(હંતા ગોયમા ! મહાક-
ર્મસ્સ તં ચેવ) હા, ગોતમ ! મહાકર્મવાળા જીવની એવીજ દશા હોય છે.
એટલે કે જીવ મહાકર્મવાળો, મહાક્રિયાવાળો, મહાસ્રવવાળો અને મહા-
વેદનાવાળો હોય છે, એ જીવ સમસ્ત દિશાઓમાંથી—આત્મપ્રદેશોમાંથી
કર્મનો બંધ કરે છે, ઇત્યાદિ કથન અહીં પ્રહણ કરવું. (સે કેણટ્ટેણં)
હૈ ભદન્ત ! આપ શા કારણે એવું કહો છો કે જે જીવ મહાકર્મવાળો હોય
છે, મહાક્રિયાવાળો હોય છે, મહાસ્રવવાળો હોય છે અને મહાવેદનાવાળો
હોય છે, એવો જીવ કર્મબંધ કરતો રહે છે ?

અહ્યસ્સ વા, ધોયસ્સ વા ' હે ગૌતમ ! તદ્ યથા નામ વહ્નસ્ય અહતસ્ય નૂતનસ્ય સર્વયા અપરિહિનસ્ય વા વહ્નસ્ય ધૌતસ્ય પરિધાયાપિ પ્રક્ષાલિતસ્ય વા, તથા 'તંતુ-ગયસ્સ વા, અણુપુન્વીણ પરિભુજ્જમાણસ્સ ' તન્ત્રોદ્ગતસ્ય, તન્ત્રાત્-તુરી-વેમાદેઃ સઘઃ ઉદ્ધૃતમાત્રસ્ય નિષ્કાશિતમાત્રસ્ય આનુપૂર્વ્યા અનુક્રમેણ પરિભુજ્યમાનસ્ય પરિધીયમાનસ્ય ' સવ્વઓ પોગ્ગલા વજ્જંતિ ' સર્વતઃ સર્વાભ્યો દિશાભ્યઃ પુદ્ગલા દ્રવ્યાદિપરમાણવઃ વધ્યન્તે-સંવદ્ધાઃ ભવન્તિ ' સવ્વઓ પોગ્ગલા ચિજ્જંતિ ' સર્વતઃ પુદ્ગલાથીયન્તે નિષ્પત્તાઃ ભવન્તિ, ' જાવ-પરિણમતિ ' યાવત્-પરિણમતિ પર્યાયાન્તરાણિ પ્રાપ્નુવન્તિ, યાવત્ કરણાત્- ' સર્વતઃ પુદ્ગલાઃ ઉપચીયન્તે, સદા-

ગૌતમ ! (સે જહા નામણ વત્થસ્સ અહ્યસ્સ વા ધોયસ્સ વા, તંતુગયસ્સ વા અણુપુન્વીણ પરિભુજ્જમાણસ્સ સવ્વઓ પોગ્ગલા વજ્જંતિ, સવ્વઓ પોગ્ગલા ચિજ્જંતિ, જાવ પરિમંતિ-સે તેણટ્ટેણ) જૈસે કોઈ વહ્ન હો ઓર વહ્ન કામ મેં આયા હુઆ નહીં હો-વિલકુલ નયા હો, અથવા કામ મેં આયા હુઆ હોને પર ઓ ફિર સે વહ્ન વિલકુલ સાફ-સ્વચ્છ કર દિયા ગયા હો અથવા-તુરીવેમાદિરૂપ તાને ડપર સે વસી વહ્ન ઉતારા ગયા હો-તો એસા વહ્ન તાજા વહ્ન જય ક્રમ ૨ સે પહિરને આદિ કે કામ મેં આતા રહતા હૈ-તપ ધીરે ૨ વસકે ડપર સર્વ દિશાઓં કી તરફ સે મલિન પુદ્ગલ આ ૨ કર ચિપકતે રહતે હૈં-ઉસ પર વે ચય હો જાતે હૈં-યાવત્ વહી સાફ સુધરા નવીન વહ્ન કાલાન્તર મેં વિલકુલ મલિન હો જાતા હૈ-ઉસસે દુગંધ આને લગતી હૈં-ઉસકે સ્પર્શ આદિ સય મેં ભિન્નતા આ જાતી હૈ-ચર્હા યાવત્ શબ્દ સે " સર્વતઃ પુદ્ગલા

તેના જવાબ આપતા મહાવીર પ્રભુ કહે છે-" ગોયમા ! " હે ગૌતમ !

(સે જહા નામણ વત્થસ્સ અહ્યસ્સ વા ધોયસ્સ વા, તંતુગયસ્સ વા અણુપુન્વીણ પરિભુજ્જમાણસ્સ સવ્વઓ પોગ્ગલા વજ્જંતિ, સવ્વઓ પોગ્ગલા ચિજ્જંતિ, જાવ પરિણમંતિ-સે તેણટ્ટેણ) જેમકે કોઈ એક વહ્ન હોય, તેને બિલકુલ ઉપયોગમાં લીધું ન હોય-એટલે કે તે બિલકુલ નવું હોય, અથવા તેના ઉપયોગ કર્યા પછી તેને ધોઈને બિલકુલ સ્વચ્છ કરેલું હોય, અથવા તેને સાળ ઉપરથી તાબું જ ઉતારેલું હોય, એવું તે વહ્ન ન્યારે વારંવાર પહેરવાના કામમાં આવતું રહે છે અથવા બીજા ઉપયોગમાં આવતું રહે છે ત્યારે ધીરે ધીરે તેના ઉપર સમસ્ત દિશાઓમાંથી મલિન પુદ્ગલો આવી આવીને ચોટી લાય છે-તેના ઉપર તેમને ચય (જમાવ) થતો રહે છે, અને ઉપચય થતો રહે છે. તે વહ્ન કાલાન્તરે એટલું બધું મલિન થઈ લાય છે કે તે મસોતા જેવું દેખાય છે, તેમાંથી દુગંધ નીકળતી હોય છે, તેના સ્પર્શદિમાં પણ ભિન્નતા દેખાય છે. અહીં ' યાવત્ ' પદથી (સર્વતઃ

મિધ્યા લોભઃ સા સંજાતાઽસ્મિન્ इति मिध्यितस्तस्य भावस्तद्वरादित्येन सर्व-
 याઽવાઞ્છનીયત્વેન અલોભનીયતયા, અપસ્તયા જયન્યત્વેન, નો ઝર્થ્યતયા નોત્ક-
 ષ્ટત્વેન ' દુઃસ્વચાપ, ણો મુહચાપ ' દુઃસ્વતયા દુઃસ્વત્વેન, નો મુલ્લતયા નો મુલ્લ-
 ત્વેન ' મુજ્જો મુજ્જો પરિણમઃ ? ' મૂયો મૂયઃ વારં વારં પરિણમતિ ? एवं महा-
 કર્માદિજીવસ્યાત્મા દૂરૂપદુર્વણાદિયુક્તો મચતિ કિમિતિ ભાવઃ ।

મગધાન્ આહ—' હંતા, ગોયમા । મહાકર્મસ્સ તં ચેવ ' હે ગૌતમ ! હન્ત,
 સત્યમ્ મહાકર્મણઃ તદેવ પૂર્વોક્તવદેવ મહાક્રિયસ્સ મહાસ્રવસ્ય મહાવેદનસ્ય જીવસ્ય
 સર્વતઃ પુદ્ગલા વધ્યન્તે, ઇત્યાદિ સર્વં સંપ્રાપ્તમ્ ।

ગૌતમ આહ—' સે કેણદ્દેણં ? ' હે મદન્ત ! તત્ કેનાર્થેન एवं પૂર્વોક્તહ-
 ચ્યતે યત્-મહાકર્મણઃ મહાક્રિયસ્ય મહાસ્રવસ્ય મહાવેદનસ્ય ચ જીવસ્ય પુદ્ગલા
 વધ્યન્તે ઇત્યાદિ । મગધાન્ સદ્દષ્ટાન્તમાહ—' ગોયમા ! સે જહા નામપ વત્થસ્સ

મહાકર્માદિ યુક્ત જીવ કા શરીર દુરૂપ દુર્વણાદિ સે યુક્ત હોતા હૈ કયા ?
 ડ. (હંતા, ગોયમા ! મહાકર્મસ્સ તં ચેવ) હાં, ગૌતમ ! મહાકર્મવાલે
 જીવ કે વહી પૂર્વોક્તરૂપ સે સઘ કુછ હોતા હૈ । અર્થાત્ જો જીવ મહાક-
 મ્મવાલા હોતા હૈ, મહાક્રિયાવાલા હોતા હૈ, મહાસ્રવવાલા હોતા હૈ, મહા-
 વેદનાવાલા હોતા હૈ, ડસ જીવ કે સર્વતઃ પુદ્ગલો કા વંધ હોતા હૈ
 ઇત્યાદિ સઘ કથન યહાં પર લગા લેના યાહિયે । (સે કેણદ્દેણં) હૈ
 મદન્ત ! એસા આપ કિસ કારણ સે કહતે હૈં કિ જો જીવ મહાકર્મા
 હોતા હૈ, મહાક્રિયાવાલા હોતા હૈ, મહાસ્રવવાલા હોતા હૈ, ડર મહાવે-
 દનાવાલા હોતા હૈ એસે જીવ કે પુદ્ગલ વંધતે હૈં ઇત્યાદિ । મગધાન્ ઇસ
 પ્રશ્ન કા ડત્તર દષ્ટાન્ત દેકર દેતે હૈં-વે ચતલાતે હૈં કિ (ગોયમા) હૈં

આ પ્રશ્નનું તાત્પર્ય એટલું જ છે કે મહાકર્મ આદિથી યુક્ત જીવનું
 શરીર શું કુવળું, કુરૂપ આદિથી યુક્ત હોય છે ?

મહાવીર પ્રભુ તેનો જવાબ આપતા કહે છે—(હંતા ગોયમા ! મહાક-
 મ્મસ્સ તં ચેવ) હા, ગૌતમ ! મહાકર્મવાળા જીવની એવીજ વશા હોય છે.
 એટલે કે જીવ મહાકર્મવાળો, મહાક્રિયાવાળો, મહાસ્રવવાળો અને મહા-
 વેદનાવાળો હોય છે, એ જીવ સમસ્ત દિશાઓમાંથી—આત્મપ્રદેશોમાંથી
 કર્મનો બંધ કરે છે, ઇત્યાદિ કથન અહીં ગ્રહણ કરવું. (સે કેણદ્દેણં)
 હે મદન્ત ! આપ શા કારણે એવું કહેા છે કે જે જીવ મહાકર્મવાળો હોય
 છે, મહાક્રિયાવાળો હોય છે, મહાસ્રવવાળો હોય છે અને મહાવેદનાવાળો
 હોય છે, એવો જીવ કર્મબંધ કરતો રહે છે ?

अल्पकर्मवतः, अल्पक्रियस्य कायिक्याद्यल्पक्रियायुक्तस्य, अल्पास्रवस्य—कर्मबन्ध-
हेतु भूताल्पमिथ्यात्वादियुक्तस्य, अल्पवेदनस्य ईपज्ज्वरादिजनितपीडायुक्तस्य,
जीवस्य सर्वतः सर्वान् दिक्षु सर्वेभ्यो जीवप्रदेशेभ्यो वा पुद्गलाः भिद्यन्ते प्राक्त-
नसम्बन्धविशेषपरित्यागात् पृथक् भवन्ति ? 'सब्यो पोग्गला छिज्जन्ति ?'

करते हैं— हे भदन्त ! यह बात निश्चित है क्या ? कि जो जीव अल्प-
कर्मा होता है—कर्म की अल्पस्थितिवाला, कर्म के अल्पप्रदेशोंवाला—होता
है, तथा—अल्पक्रियावाला—कायिक आदि थोड़ी क्रियाओं वाला होता है,
अल्पआस्रववाला—कर्मबंध के हेतुभूत अल्पमिथ्यात्ववाला—होता है,
और अल्पवेदनावाला—ईपत् ज्वरादि जनितपीडावाला—होता है ऐसे
उस जीव के सर्वतः—समस्त दिशाओं में से अथवा समस्त जीव प्रदेशों
से पुद्गल—कर्म परमाणु (भिद्यन्ते) भेद को प्राप्त होते हैं ? अर्थात् पहिछे
वे जिस संबंध विशेष का लेकर बंधते थे—अप वे उस संबंध विशेष
से वहां परित्यक्त हो जाते हैं क्या ? तात्पर्य—इस का यह है कि महा-
कर्मादि से युक्त होने की स्थिति में जीवके साथ जिस स्थिति अनुभाग
आदि को लेकर गाढ आदि रूप में कर्मपुद्गलों का बंध होता था—अप
अल्पकर्मादि से युक्त होने की स्थिति में जीव के साथ उस स्थिति
अनुभाग को लेकर गाढ आदि रूप में कर्मपुद्गलों का बंध नहीं होता है
यही उनका भेदन है यही बात गौतम ने यहां प्रभु से प्रश्न के रूप में

शुं अे वात तो निश्चित छे के के एव अल्पकर्मवाणो डोय छे—अेटवे के
कर्मनी अल्प स्थितिवाणो, कर्मना अल्प अनुभागवाणो अने कर्मना अल्प
प्रदेशोवाणो डोय छे, तथा अल्प क्रियावाणो (कायिक आदि थोड़ी क्रियाओ-
वाणो) डोय छे, अल्प आस्रववाणो (कर्मबंधना कारणे इप मिथ्यात्व जेनामां
आणुं छे अेवो) डोय छे, अने अल्प वेदनावाणो (ज्वर वगेरेथी जनित
पीडा साथे जे लोगवनारो) डोय छे, अेवां एवना कर्मपरमाणुओ शुं समस्त
दिशाओमांथी अथवा समस्त आत्मप्रदेशोमांथी “ भिद्यन्ते ” वेदतां रडे छे ?
अेटवे के पडेवां के कारणे तेमनो बंध पडतो छतो ते कारणे नडीं रडेवाथी
तेमनुं वेदन थवा भांटे छे अइं ?

आ प्रश्नतुं तात्पर्यं आ प्रमाणे छे—महाकर्मआदिथी युक्त डोय अेवी
स्थितिमां एवनी साथे के स्थिति, अनुभाग आदिनी अपेक्षाअे गाढ आदि
इपे कर्मपुद्गलोना के बंध थतो छतो, ते अल्पकर्म आदिथी युक्त एवने
शुं थतो नथी ? अेनुं नाम जे तेमनुं वेदन छे. अेज वात गौतम स्वाभीअे

સમિતં પુદ્ગલાઃ વધ્યન્તે, સદા સમિતં પુદ્ગલાશ્ચીયન્તે ' इत्यादि संग्राहम् ।
 अन्ते उपसंहारति- ' से तेणट्टेणं ' हे गौतम ! तत् तेनार्थेन तेन पूर्वोक्तेन कारणेन
 महाकर्मणो यावत् महावेदनस्य जीवस्य सर्वतः कर्मपुद्गलाः बध्यन्ते, चीयन्ते,
 उपचीयन्ते यावत्-दुःखतया नो सुखतया भूयो भूयः परिणमति इति भावः ।
 ' बध्यन्ते ' इत्यादि पदत्रयेणात्र वस्त्रस्य पुद्गलानां चोत्तरोत्तरं सम्बन्धमकर्षः
 प्रतिपादितः । अथाल्पकर्मादियुक्तस्य जीवस्य स्वरूपं पृच्छन्ति- ' से णूं भंते !
 अप्पकम्मस्स, अप्पकिरियस्स अप्पासवस्स अप्पवेयणस्स, सव्वओ पोग्गला
 भिज्जंति' हे भदन्त ! तत्-अथ नूनं निश्चयेन किम् अल्पकर्मणः, स्थित्याद्यपेक्षया

उपचीयन्ते, सदा समितं पुद्गलाः बध्यन्ते, सदा समितं पुद्गलाश्चीयन्ते ”
 इत्यादि पाठका ग्रहण हुआ है । अब अन्त में इस विषय का उपसंहार
 करने के निमित्त सूत्रकार कहते हैं-गौतम ! इसी पूर्वोक्त कारण को
 लेकर मैं ने ऐसा कहा है कि महाकर्मवाले यावत् महावेदनावाले जीव के
 सर्वतः कर्मपुद्गल बंधते हैं, चय होते हैं, उपचित होते हैं यावत् उसका
 बाह्य शरीररूप आत्मा दुःखरूप से, सुखरूप से नहीं, क्षण २ में परिण-
 मता रहता है । “ बध्यन्ते, चीयन्ते, उपचीयन्ते ” इत्यादि इन तीन
 क्रियापदों से सूत्रकार ने वस्त्र और पुद्गलों का उत्तरोत्तर संबंध का
 प्रकर्ष बतलाया है, अब गौतम प्रभु से अल्पकर्मादि से युक्त जीव के
 स्वरूप को पूछते हुए उनसे (से णूं भंते ! अप्पकम्मस्स अप्पकिरिय-
 स्स अप्पासवस्स अप्पवेयणस्स सव्वओ पोग्गला भिज्जंति) ऐसा प्रश्न

पुद्गला उपचीयन्ते, सदा समितं पुद्गलाः बध्यन्ते, सदा समितं पुद्गलाश्चीयन्ते)
 इत्यादि सूत्रपाठने श्रद्धा કરવામાં આવ્યો છે. હવે સૂત્રનો ઉપસંહાર કરતા
 સૂત્રકાર કહે છે કે હે ગૌતમ ! ઉપર કહ્યા પ્રમાણેના કારણે મેં એવું કહ્યું છે
 કે મહાકર્મવાળો, મહાક્રિયાવાળો, મહાઆસવવાળો અને મહાવેદનાવાળો જીવ
 સમસ્ત દિશાઓમાંથી કર્મપુદ્ગલ બાંધતો રહે છે, કર્મપુદ્ગલનો ચય અને ઉપ-
 ચય કરતો રહે છે, અને તેનો બાહ્યશરીરરૂપ આત્મા દુઃખરૂપે-નહીં કે સુખ
 રૂપે-ક્ષણે-ક્ષણે પરિણમતો રહે છે “ બધ્યન્તે, ચીયન્તે, ઉપચીયન્તે ” આ ત્રણ
 ક્રિયાપદોનો પ્રયોગ કરીને સૂત્રકારે વસ્ત્ર અને પુદ્ગલોના સંબંધનો ઉત્તરોત્તર
 પ્રકર્ષ બતાવ્યો છે.

હવે ગૌતમ સ્વામી અલ્પકર્માદિથી યુક્ત જીવનું સ્વરૂપ બાલુવાને માટે
 મહાવીર પ્રભુને આ પ્રમાણે પ્રશ્ન પૂછે છે- (સે ણૂં ભંતે ! અપ્પકમ્મસ્સ, અપ્પ-
 કિરિયસ્સ, અપ્પાસવસ્સ અપ્પવેયણસ્સ સવ્વઓ પોગ્ગલા ભિજ્જંતિ) હે ભદન્ત !

‘સયા સમિયં પોગ્ગલા ઇજ્જંતિ’ સદા સમિતં પુદ્ગલાભિચ્ચન્તે ? ‘વિદ્ધસ્સંતિ, પરિવિદ્ધસ્સંતિ ?’ સદા સમિતં પુદ્ગલાઃ વિધ્વંસન્તે ? પરિવિધ્વંસન્તે ? ‘સયા-સમિયં ચ ણં તસ્સ આયા સુહ્વત્તાણ પસત્થં નેયવ્વં’ સદા સમિતં ચ સલ્લુ તસ્ય અલ્પકર્મણઃ, અલ્પક્રિયસ્ય, અલ્પાસ્રવસ્ય, અલ્પવેદનસ્ય જીવસ્ય આત્મા સુરૂપતયા પ્રગસ્તં જ્ઞાતવ્યમ્, અન્ન વર્ણાદિપદાનિ પ્રગસ્તરૂપેણ વ્યાહવેયાનિ, તથા ચ સુવર્ણતયા

મેં અકર્મપર્યાય સે ઉસ આત્મામેં સ્થિત રહતે આતે હેં યહી સિદ્ધાન્તકી યાત (સવ્વઓ પોગ્ગલા પરિવિદ્ધંસંતિ) હસ પદ ઘરા પુટ કી ગઈ હૈ-સો હસી યાત કો ગૌતમ ને પ્રભુ સે પ્રશ્ન કે રૂપ મેં પૂછા હૈ । (સયા સમિયં પોગ્ગલા મિજ્જંતિ) સદા નિરન્તર કર્મપુદ્ગલ ભેદ કો પ્રાપ્ત હોતે હેં કયા ? (સયા સમિયં પોગ્ગલા ઇજ્જંતિ) સદા નિરન્તર કર્મપુદ્ગલ ભેદ કો પ્રાપ્ત હોતે હેં કયા ? (વિદ્ધંસંતિ પરિવિદ્ધંસંતિ) વિધ્વંસ કો પ્રાપ્ત હોતે હેં કયા, સમસ્ત રૂપ સે નાશ હોતે હેં કયા ? હન પ્રશ્નોં કો કરને કી આવશ્યકતા હસલિયે હુઈ કિ જવ પૂર્વોક્ત રૂપ સે આત્મા સે કર્મ-પુદ્ગલોં કા ભેદન છેદન પૂછા ગયા હૈ તો ઘરાં નિરન્તર છેદન ભેદન આદિ હોને કી ઘાત નહીં પૂછી ગઈ હૈ અતઃ હન પ્રશ્નોં ઘરા યહી ઘાત ઘરાં પૂછી ગઈ હૈ (સયા સમિયં ચ ણં તસ્સ આયા સુહ્વત્તાણ પસત્થં નેયવ્વં) અલ્પકર્મ આદિ વિશેષણોં સે વિશિષ્ટ ઉસ જીવ કા આત્મા ઘાહ્ય શરીર રૂપ આત્મા-ક્ષણ ૨ મેં કયા અચ્છેરૂપ મેં, અચ્છેવર્ણ મેં, અચ્છે ગંધ મેં,

આવે છે કે ન્યારે તે કર્મપુદ્ગલો સર્વથા અકર્મપર્યાયરૂપે તે આત્મામાં રહેવા લાગે છે. એ જ સિદ્ધાન્તની વાત (સવ્વઓ પોગ્ગલા પરિવિદ્ધંસંતિ) આ સૂત્ર ઘરા પ્રકટ કરી છે.

ગૌતમ સ્વામીએ પ્રશ્ન ઘરા એ જ વાત પ્રભુને પૂછી છે, (સયા સમિયં પોગ્ગલા મિજ્જંતિ) હે ભદન્ત ! અલ્પકર્મ આદિથી યુક્ત જીવનાં કર્મપુદ્ગલો શું સદા નિરન્તર ભેદાતાં રહે છે ? (સયા સમિયં પોગ્ગલા ઇજ્જંતિ) શું તેના કર્મપુદ્ગલો સદા નિરન્તર છેદાતાં રહે છે ? (વિદ્ધંસંતિ પરિવિદ્ધંસંતિ) શું તેનાં કર્મપુદ્ગલોં આ પ્રકારના પ્રશ્નો પૂછવાની આવશ્યકતા એ છે કે પૂર્વોક્ત પ્રશ્નોમાં કર્મપુદ્ગલોં નિરન્તર ભેદન, છેદન આદિ થવાની વાત પૂછવામાં આવી નથી. છેદન, ભેદન આદિ નિરન્તર થયા કરે છે કે નહીં, તે જાણવાને માટે (સયાસમિયં પોગ્ગલા મિજ્જંતિ) ઈત્યાદિ પ્રશ્નો પૂછવામાં આવ્યા છે. (સયા-સમિયં ચ ણં તસ્સ આયા સુહ્વત્તાણ પસત્થં નેયવ્વં) અલ્પકર્મ આદિથી યુક્ત જીવનો આત્મા-ખાહ્યશરીર રૂપ આત્મા શું ક્ષણે ક્ષણે સુરૂપતા, સુવર્ણયુક્તાતા,

સર્વતઃ પુદ્ગલાશ્ચિઙ્ચન્તે ? ' સન્વઓ પોગ્ગલા વિદ્વંમંતિ ' સર્વતઃ પુદ્ગલાઃ વિઘ્વંસન્તે ? તેભ્યો જીવપદેશેભ્યોઽધો ધ્રંશન્તે ? ' સન્વઓ પોગ્ગલા પરિવિદ્વંસંતિ ' સર્વતઃ પુદ્ગલાઃ પરિઘ્વંસન્તે ? તજ્જીવ પદેશેભ્યો નિઃશેપતયા પરિઘ્રંશન્તે ? ' સયા સમિયં પોગ્ગલા મિઙ્ગંતિ ' સદા સમિતં નિરન્તરં પુદ્ગલાઃ મિયન્તે ?

પૂછી છે (સન્વઓ પોગ્ગલા ઇઙ્ગંતિ) વે પુદ્ગલ સર્વતઃ શ્વેદ કો પ્રાપ્ત ઠા જાતે હું કયા ? અર્થાત્-જય વે કર્મપુદ્ગલ શિઘિલ આદિ અવસ્થા મેં અલ્પસ્થિતિ અનુભાગ આદિ કો લેકર ઉસ આત્મા મેં વંધેંગે-તો યહ નિશ્ચિત હૈ કિ વે શ્વેદ કો પ્રાપ્ત હોકર-ધીરે ૨ નષ્ટ હી હોતે રહેંગે-યહી વાત યહાં ગૌતમ ને પ્રશ્ન સે પ્રશ્ન કે રૂપ મેં પૂછી હૈ ? (સન્વઓ પોગ્ગલા વિદ્વંસંતિ) કયા વે જીવ કે પ્રદેશોં સે અધઃપતિત હો જાતે હું ? તાત્પર્ય યહ હૈ-ઈક કર્મપુદ્ગલોં કા ધીરે ૨ નષ્ટ હોના અર્થાત્ મિર્જરા હોને સે ઇસકા યહ મતલબ નહીં હૈ કિ વે કર્મપુદ્ગલ ઉસ આત્મા સે ઘિલકુલ અપને મૂલરૂપ સે હી નષ્ટ હો જાતે હું-કારણ દ્રવ્ય કા તો કમી નાશ હોતા હી નહીં હૈ-અતઃ " વે જીવ કે પ્રદેશોં સે અધઃ પતિત હો જાતે હું " સો ઇસકા તાત્પર્ય ઈસા હૈ કિ વે વહાં અલ્પમાત્રા મેં અકર્મરૂપ પર્યાય સે આક્રાન્ત હોને લગ જાતે હું-ઈસી સ્થિતિ હોતે ૨ ઈક સમય ઈસા મી આના હૈ કિ જય કે કર્મપુદ્ગલ ઘિલકુલ હી રૂપ મેં-સર્વથા રૂપ

મહાવીર પ્રભુને આ પ્રશ્ન દ્વારા પૂછી છે. (સન્વઓ પોગ્ગલા ઇઙ્ગંતિ ?) શું તે પુદ્ગલોનું સર્વથા છેદન થાય છે ? એટલે કે-ન્યારે તે કર્મપુદ્ગલો શિઘિલ આદિ અવસ્થામાં અલ્પસ્થિતિ, અનુભાગ આદિથી યુક્ત થઈને તે આત્મામાં બંધાય છે-જમા થાય છે-તો એ વાત નહીં જ છે કે તેઓનું ધીરે ધીરે છેદન થતું રહેશે-તેઓ ધીરે ધીરે નષ્ટ થતાં રહેશે. એ જ વાત ગૌતમ સ્વામીએ આ પ્રશ્નરૂપે પૂછી છે. (સન્વઓ પોગ્ગલા વિદ્વંસંતિ) શું તે કર્મપુદ્ગલો અવના આત્મપ્રદેશોમાંથી ખરી ડે છે ખરાં ?

આ પ્રશ્નનો બાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે-કર્મપુદ્ગલોનું ધીરે ધીરે નષ્ટ થવું એટલે કે નિર્જરા થવી. પણ તેનો એવો અર્થ નથી થતો કે તે કર્મપુદ્ગલો તે આત્મામાંથી ઘિલકુલ પોતાના મૂળ રૂપમાંથી નષ્ટ થઈ જાય છે, કારણ કે દ્રવ્યનો તો કદી નાશ જ થતો નથી. એટલે " તે અવના પ્રદેશોમાંથી અધઃ પતિત થઈ જાય છે. "

આ કથનનું તાત્પર્ય એવું સમજવું કે તેઓ ત્યાં અલ્પમાત્રામાં અકર્મરૂપ પર્યાયમાં આવી જવા માંડે છે, આમ થતાં થતાં એક સ - એવો પણ

‘से केणट्टेणं०’ हे भदन्त ! तत् केनार्थेन एवं पूर्वोक्तमुच्यते यत् तस्यात्मा यावत्-सुखतया नो दुःखतया परिणमति? भगवानाह-‘गोयमा ! से जहानामए वत्थस्स जल्लियस्स वा, पंक्कियस्स वा’ हे गौतम ! तत् यथा नामवहस्य जल्लितस्य शरीरमलोपेतस्य वा, पङ्कितस्य-आर्द्रमलोपेतस्य वा ‘मइल्लियस्स वा, रइल्लियस्स वा’ मलितस्य-कठिनमलयुक्तस्य वा, रजस्कितस्य-रजोयुक्तस्य धूलिधूसरितस्य वा, ‘आणुपुब्बीए परिकम्मिज्जमाणस्स’ आणुपूर्व्या अनुक्रमेण परिकर्म्यमाणस्य मलापनयनार्थे क्षारादिद्रव्येण शोध्यमानस्य ‘सुद्धेणं वारिणा धोव्वेमाणस्स’ शुद्धेन निर्मलेन स्वच्छेन वारिणा जलेन धाव्यमानस्य प्रक्षाल्यमानस्य वद्वस्य

परिणम जाता है। अब गौतम इस विषय में प्रभु से कारण जानने की इच्छा से (से केणट्टेणं०) ऐसा प्रश्न करते हैं वे पूछते हैं कि हे भदन्त ! आप ऐसा किस कारण को लेकर कहते हैं कि उसका आत्मा-शरीर यावत् सुखरूप से-दुःखरूप से नहीं परिणमता है? इसके उत्तर में प्रभु उनसे कहते हैं कि (गोयमा से जहा नामए वत्थस्स जल्लियस्स वा, पंक्कियस्स वा) हे गौतम ! जैसे कोई एक वस्त्र हो और उसके ऊपर शरीर का मल लगा हो, अथवा कोई ताजी गीली कीचड़ लगी हो मइल्लियस्स वा, रइल्लियस्स वा) या कोई उसके ऊपर कठिन मैल लगा हो, या धूल उस पर चिपकी हो-धूलसे धूसरित बना हुआ हो ऐसा वह वस्त्र हो-तो वह जब (अणुपुब्बीए परिकम्मिज्जमाणस्स) बार २ धो धाकर साफ किया जाता है अर्थात्-क्षारद्रव्य से जब मैल दूर करने के लिये वह धोया जाता है (सुद्धेणं वारिणा धोव्वेमाणस्स) और निर्मल-साफ-जल से जब वह निखारा जाता है, तो (सव्वओ पोग्गला

डोय छे. तेभने आत्मा सुप्पइपे परिणमे छे, त्यां सुधीतुं समस्त कथन अडल्लु करवुं “से केणट्टेणं” हे भदन्त ! आप शा करवुं अबुं कडो छे ?

आ प्रश्नने उत्तर आपतां महावीर प्रभु नीचेतुं दष्टांत आपे छे— (गोयमा ! से जहा नामए वत्थस्स जल्लियस्स वा, पंक्कियस्स वा) हे गौतम ! कौंध अबुं वस्त्रने शरीरने मैल, परसेवेो वगेरे लागेलां डोय, अथवा तेना उपर ताशु धीनी भाठी लागी डोय, “मइल्लियस्स वा, रइल्लियस्स वा” अथवा तेना उपर धूणनां रजकल्लो चोटां डोय, अबुं वस्त्रने न्यारे “आणुपुब्बीए परिकम्मिज्जमाणस्स” बार-बार धोअने साइ करवाभां आवे छे-अट्टे के सोडा जेवा क्षारयुक्त पाणीथी तेना मैल दूर करवाभां आवे छे, (सुद्धेणं वारिणा धोव्वेमाणस्स) अने निर्मल पाणीभां न्यारे तेने तारववाभां आवे छे, त्यारे

સુગન્ધતયા, સુરસતયા, સુસ્પર્શતયા, ડૃષ્ટતયા, કાન્તતયા, પ્રિયતયા, શુભતયા, મનોજ્ઞતયા, મનોઽમતયા, ઈંપ્સિતતયા, ગિધ્પિતતયા, ઉત્કૃષ્ટતયા, નો અધમ-તયા, સુખતયા, નો દુઃખતયા, ભૂયો ભૂયઃ પરિણમતિ ક્ષિમિતિ । મગવાનાદ— 'હંતા, ગોયમા ! જાવ-પરિણમઈ' હે ગૌતમ ! દન્ત, સત્યમ્ અલ્પકર્માદિમતો જીવસ્ય સર્વતઃ કર્મપુદ્ગલાઃ યાવત્-પરિધ્વંસન્તે, તસ્ય ચ જીવસ્યાત્મા યાવત્ સુખતયા નો દુઃખતયા પરિણમતિ, ઇતિ મગવદુત્તરમ્ । ગૌતમસ્ત્ર ચારણં પૃચ્છતિ

અच्छे रक्त में, अच्छे स्पर्श में, परिणमता है ? तथा इष्टरूप से, कान्तरूप से, प्रियरूप से, शुभरूप से, मनोमरूप से, इंप्सितरूप से, पुनः प्राप्त करने के लोभरूप से, उत्कृष्टरूप से, अधमरूप से नहीं-सुखरूप से, दुःखरूप से नहीं-परिणमता है क्या ? तात्पर्य इस प्रश्न का यही है कि जो जीव अल्पकर्मवाला है, अल्पक्रियावाला है, अल्प-आस्रचवाला है, अल्पवेदनावाला है, उसका शरीर क्या अच्छेरूपादि विशेषणों वाला होता हैक्या ? तथा वह इच्छा आदि का विषयभूत बनता है क्या ? इसके उत्तर में प्रभु गौतम से कहते हैं कि—(हंता गोयमा ! जाव परिणमंति) हां गौतम ! यावत् उसका वाह्य शरीर रूप आत्मा परिणमता है । अर्थात् हे गौतम ! जो अल्पकर्म आदि विशेष-णोपेत जीव होता है उसके कर्मपुद्गल सर्वतः यावत् विलकुल नष्ट हो जाते हैं, और उस जीव का शरीर यावत् सुखरूप से, दुःखरूप से नहीं

सुगंधयुक्तता, सुरसता, અને સુસ્પર્શતા રૂપે પરિણમતો રહે છે ? તથા શુ' તેવા જીવનો આત્મા ઇષ્ટરૂપે, કાન્તરૂપે, પ્રિયરૂપે, શુભરૂપે, મનોજ્ઞરૂપે, મનો-મરૂપે, ઇંપ્સિતરૂપે, પુનઃ પ્રાપ્ત કરવાની લાલચ થાય એવી રીતે, ઉત્તરૂપે (નહીં કે અધમરૂપે) સુખરૂપે (નહીં કે દુઃખરૂપે) પરિણમતો રહે છે ?

આ પ્રશ્નનો લાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે—જે જીવ અલ્પકર્મવાળો, અલ્પ ક્રિયાવાળો, અલ્પઆસ્રવવાળો અને અલ્પવેદનાવાળો હોય છે, તેનું 'શરીર શુ' સુંદર રૂપ, વર્ણ આદિથી યુક્ત હોય છે ? તથા શુ' તે ખીન્નને ઇષ્ટ, પ્રિય આદિ થઈ પડે છે ?

મહાવીર પ્રભુ તેનો જવાબ આપતા કહે છે—(હંતા ગોયમા ! જાવ પરિ-ણમંતિ) હા, ગૌતમ ! અલ્પકર્મ આદિથી યુક્ત જીવનાં કર્મપુદ્ગલોના વિષયમાં એવું જ બને છે. અહીં પ્રશ્નોક્ત સમસ્ત કથનનો સ્વીકાર થયો છે તેમ સમ-જવું. એટલે કે એવાં જીવોનાં કર્મપુદ્ગલોનું છેદન, લેહન, વિધ્વંસ આદિ થયા કહે છે અને તેમનો આત્મા-આસ્રશરીર રૂપ આત્મા-સુરૂપતા આદિથી યુક્ત

ભાવાર્થ—આ સૂત્રમાં શુદ્ધવસ્ત્ર અને અશુદ્ધ વસ્ત્રના દૃષ્ટાન્ત દ્વારા સૂત્રકારે એ વાત સમજાવ્યા છે કે જેમ શુદ્ધ વસ્ત્ર એવું થઈ જાય છે, તેજ પ્રમાણે મહાકર્મ આદિથી યુક્ત જીવ પણ યોગ અને કપાયોથી યુક્ત હોવાને કારણે કર્મરૂપ પરિણમનને યોગ્ય પુદ્ગલ દ્રવ્યના કાર્મણવર્ગનાઓંનાં યોગ અને કપાયોથી યુક્ત હોવાને કારણે આકર્ષણ કરતા રહે છે અને કર્મબંધ બાંધતો રહે છે, તેવું શરીર પણ અશુભરૂપે પરિણમતું રહે છે—એટલે કે તેની માનસિક વાચનિક અને કાયિક ક્રિયાઓ અશુભરૂપે જ ચાલતી રહે છે. તે કારણે તે પ્રત્યેક સમયે કર્મોના બંધ કરતો રહે છે. એવાં જીવને સૂત્રકારે અશુદ્ધ વસ્ત્રની ઉપમા આપી છે. જેવી રીતે વસ્ત્ર પહેલાં શુદ્ધ હતું, એજ પ્રમાણે જીવ (આત્મા) પણ મૂળ તો શુદ્ધ જ હતો. જેવી રીતે વસ્ત્ર પર ધીરે ધીરે રંગ, મેલ આદિ જમા થવાથી વસ્ત્ર મલિન થઈ જાય છે, એવી જ રીતે શુદ્ધ આત્મા પણ રાગ દેવ આદિને કારણે કર્મબંધન આદિથી જકડાતો રહે છે. અનાદિ કાળથી પોતાની જ ભૂલથી તે અજ્ઞાની બનીને પર પદાર્થોમાં આસક્ત બનેલો છે. તેથી મૂળ જે શુદ્ધ હતો એવો આત્મા કર્મે કર્મે અશુદ્ધ અને અપુદ્ધ બનેલો છે. જેવી રીતે મલિન વસ્ત્રને ધોઈને શુદ્ધ કરી શકાય છે એજ પ્રમાણે પોતાના

આવાર્થ—આ સૂત્રમાં શુદ્ધ વસ્ત્ર અને અશુદ્ધ વસ્ત્રના દૃષ્ટાન્ત દ્વારા સૂત્રકારે એ વાત સમજાવી છે કે જેમ શુદ્ધ વસ્ત્ર એવું થઈ જાય છે, તેજ પ્રમાણે મહાકર્મ આદિથી યુક્ત જીવ પણ યોગ અને કપાયોથી યુક્ત હોવાને કારણે કર્મરૂપ પરિણમનને યોગ્ય પુદ્ગલ દ્રવ્યનું—કાર્મણ વર્ગનાઓંનાં સમસ્ત દિશાઓમાંથી (આત્મપ્રદેશો દ્વારા) આકર્ષણ કરતો રહે છે અને કર્મબંધ બાંધતો રહે છે, તેવું શરીર પણ અશુભરૂપે પરિણમતું રહે છે—એટલે કે તેની માનસિક વાચનિક અને કાયિક ક્રિયાઓ અશુભરૂપે જ ચાલતી રહે છે. તે કારણે તે પ્રત્યેક સમયે કર્મોના બંધ કરતો રહે છે. એવાં જીવને સૂત્રકારે અશુદ્ધ વસ્ત્રની ઉપમા આપી છે. જેવી રીતે વસ્ત્ર પહેલાં શુદ્ધ હતું, એજ પ્રમાણે જીવ (આત્મા) પણ મૂળ તો શુદ્ધ જ હતો. જેવી રીતે વસ્ત્ર પર ધીરે ધીરે રંગ, મેલ આદિ જમા થવાથી વસ્ત્ર મલિન થઈ જાય છે, એવી જ રીતે શુદ્ધ આત્મા પણ રાગ દેવ આદિને કારણે કર્મબંધન આદિથી જકડાતો રહે છે. અનાદિ કાળથી પોતાની જ ભૂલથી તે અજ્ઞાની બનીને પર પદાર્થોમાં આસક્ત બનેલો છે. તેથી મૂળ જે શુદ્ધ હતો એવો આત્મા કર્મે કર્મે અશુદ્ધ અને અપુદ્ધ બનેલો છે. જેવી રીતે મલિન વસ્ત્રને ધોઈને શુદ્ધ કરી શકાય છે એજ પ્રમાણે પોતાના

‘ સર્વથો પોગલા મિજ્જંતિ ’ સર્વતઃ સર્વાણુ દિશુ સર્વેભ્યો વસ્તુપદ્દેશ્યો વા પુદ્-
ગલા મિઘન્તે પૃથગ્ભવન્તિ, ‘ જાવ-પરિણમદ્ ’ યાવત્-પરિણમતિ, યાવત્ કરણાત્
સર્વતઃ પુદ્ગલાશ્ચિઘન્તે, સર્વતઃ પુદ્ગલાઃ પરિવિઘ્વંસન્તે, સદા સમિતં પુદ્-
ગલાઃ મિઘન્તે, સદાસમિતં પુદ્ગલાશ્ચિઘન્તે, સદાસમિતં પુદ્ગલાઃ વિઘ્વંસન્તે
પરિવિઘ્વંસન્તે, સદા સમિતં ચ સ્વલુ તસ્ય વસ્તુસ્વાત્મા તદ્વસ્તુમિત્યર્થઃ
સુરૂપતયા સુવર્ણતયા इत्यादि યાવત્-સુલુતયા નો દુઃસ્વતયા પરિણમતિ, इति સંપ્રા-
ણમ્, ‘ સે તેણદ્દેણં ’ હે ગૌતમ ! તન્.તેનાર્થેન અલ્પકર્મણઃ યાવત્ અલ્પવેદનસ્ય
જીવસ્ય યાવત્-સર્વતઃ કર્મપુદ્ગલાઃ પરિવિઘ્વંસન્તે, તસ્ય ચ જીવસ્ય આત્મા
યાવત્-સુલુતયા નો દુઃસ્વતયા પરિણમતીતિ ॥ ૨ ॥

મિજ્જંતિ) उस पर जो मैल के पुद्गल जमे हुए होते हैं वे उस वस्तु से
सब ओर से दूर होने लग जाते हैं, (जाव परिणमद्) यावत् वह वह
पिलकुल साफ स्थिति में परिणम जाना है। यहां (यावत्) शब्द से
(सर्वतः पुद्गलाः छिद्यन्ते, सर्वतः पुद्गलाः विध्वस्यन्ते, सर्वतः पुद्गलाः परि-
विध्वंसन्ते, सदा समितं पुद्गला मिघन्ते, सदा समितं पुद्गलाश्चिद्यन्ते,
सदा समितं पुद्गलाः विध्वंसन्ते, परिविध्वंसन्ते, सदा समितं च तस्य
वस्तुस्य आत्मा सुरूपतया) इत्यादि सब पूर्वोक्त पाठ यहां ग्रहण किया
गया है ऐसा जानना चाहिये। (से तेणद्वेणं) इस कारण हे गौतम !
मैंने ऐसा कहा है कि अल्पकर्मवाले यावत् अल्पवेदनवाले जीव के
यावत् सर्वतः कर्मपुद्गल पिलकुल नष्ट हो जाते हैं और उस जीव का
अत्मा यावत् सुलुवरूप से दुःस्वरूप से नहीं-परिणम जाता है।

“ સર્વથો પોગલા મિજ્જંતિ ” તે વસ્તુને વળગેલાં મેલનાં પુદ્ગલો વસ્તુમાંથી
અલગ થઈ જાય છે, “ જાવ પરિણમદ્ ” અને તે વસ્તુ તદન સ્વચ્છ થઈ જાય
છે. અહીં “ યાવત્ ” પદ્યથી “ સર્વતઃ પુદ્ગલાઃ છિદ્યન્તે, સર્વતઃ પુદ્ગલાઃ વિધ્વસ્યન્તે
સર્વતઃ પુદ્ગલાઃ પરિવિધ્વસ્યન્તે, સદા સમિતં પુદ્ગલા મિઘન્તે, સદાસમિતં પુદ્ગલાઃશ્ચિ-
દ્યન્તે, સદાસમિતં પુદ્ગલાઃ વિધ્વંસન્તે, પરિવિધ્વંસન્તે, સદા સમિતં ચ તસ્ય વસ્તુસ્ય
આત્મા સુરૂપતયા ” ઇત્યાદિ પૂર્વોક્ત સૂત્રપાઠ અહીં અડધું કરવામાં આવ્યો છે.

“ સે તેણદ્દેણં ” હે ગૌતમ ! તે કારણે મેં એવું કહ્યું છે કે અલ્પકર્મથી
અલ્પવેદના પચન્તના વિશેષણોવાળા જીવના કર્મપુદ્ગલોનું છેદન, ભેદન આદિ
થયા કદે છે અને તેમનો આત્મા સુરૂપતા યુક્ત અને છે અને ઈડ, ઠાન્ત,
પ્રિય આદિ રૂપે પરિણમતો રહે છે. એવો આત્મા દુઃખરૂપે પરિણમતો નથી.

છાયા-વપ્ત્રસ્ય સ્વલુ ભદન્ત ! પુદ્ગલોપચયઃ કિં પ્રયોગેણ, વિસ્રસયા ? ગૌતમ ! પ્રયોગેણાપિ, વિસ્રસયાપિ । યથા સ્વલુ ભદન્ત ! વપ્ત્રસ્ય સ્વલુ પુદ્ગલોપચયઃ પ્રયોગેણાપિ, વિસ્રસયાપિ, તથા સ્વલુ જીવાનાં કર્મોપચયઃ કિં પ્રયોગેણ વિસ્રસયા ? । ગૌતમ ! પ્રયોગે, ન વિસ્રસયા । તન્ કેનાર્થેન ? । ગૌતમ ! જીવાનાં ત્રિવિધઃ પ્રયોગઃ પ્રજ્ઞપ્તઃ,

જીવકર્મ વસ્તુવ્યતા

(વત્થસ્સ ણં મંતે !) इत्यादि ।

સૂત્રાર્થ—(વત્થસ્સ ણં મંતે ! પોગલોવચચે કિં પયોગસા વીસસા) હે ભદન્ત ! વસ્ત્ર કે પુદ્ગલોં કા જો ઉપચય હોતા હૈ વહ કયા પ્રયોગ સે હોતા હૈ ? યા સ્વાભાવિકરૂપ સે હોતા હૈ ? (ગોયમા) હે ગૌતમ ! (પઓગસા વિ વીસસા વિ) પ્રયોગ સે-પુરુપપ્રયત્ન સે મી હોતા હૈ ઓર સ્વાભાવિકરૂપ સે મી હોતા હૈ । (જહાં ણં મંતે ! વત્થસ્સ ણં પોગલોવચચે પયોગસા વિ વીસસા વિ, તહા ણં જીવા ણં કર્મોવગણ કિં પયોગસા વીસસા) હે ભદન્ત ! જિસ પ્રકાર સે વસ્ત્ર કે પુદ્ગલોં કા ઉપચય પ્રયોગ સે મી ઓર સ્વાભાવિકરૂપ સે મી હોતા હૈ, ઊસી તરહ સે કયા જીવોં કે કર્મ કા ઉપચય મી પ્રયોગ સે ઓર સ્વાભાવિકરૂપ સે હોતા હૈ ? (ગોયમા ! પઓગસા નો વીસસા) હે ગૌતમ ! જીવોં કે જો કર્મ કા ઉપચય હોતા હૈ વહ પ્રયોગ સે હી હોતા હૈ-સ્વાભાવિકરૂપ સે નહીં હોતા । (સે કેણટ્ટેણં) હે ભદન્ત ! મેસા આપ કિસ કારણ સે કહતે હૈં કિ જીવ કે જો કર્મકા ઉપચય હોતા હૈ વહ પ્રયોગસે હી હોતા હૈ-સ્વાભાવિકરૂપ

છવકર્મવસ્તુવ્યતા—

(વત્થસ્સ ણં મંતે !) इत्यादि

સૂત્રાર્થ—(વત્થસ્સ ણં મંતે ! પોગલોવચચે કિં પયોગસા વીસસા) હે ભદન્ત ! વસ્ત્રનાં પુદ્ગલોનેાં જે ઉપચય થાય છે તે શું પ્રયોગથી થાય છે, કે સ્વાભાવિક રૂપે થાય છે ? (ગોયમા !) હે ગૌતમ ! (પયોગસા વિ વીસસા વિ) પ્રયોગથી-પુરુપ પ્રયત્નથી પણ થાય છે અને સ્વાભાવિક રૂપે પણ થાય છે. (જહાં ણં મંતે ! વત્થસ્સ ણં પોગલોવચચે પયોગસા વિ વીસસા વિ, તહા ણં જીવા ણં કર્મોવગણ કિં પયોગસા વીસસા ?) હે ભદન્ત ! જેમ વસ્ત્રનાં પુદ્ગલોનેાં ઉપચય પ્રયોગથી પણ થાય છે અને સ્વાભાવિક રૂપે પણ થાય છે ? (ગોયમા ! પઓગસા નો વીસસા) હે ગૌતમ ! છવોનાં કર્મોનેાં ઉપચય પ્રયોગથી જ થાય છે, સ્વાભાવિક રૂપે થતો નથી.

(સે કેણટ્ટેણં) હે ભદન્ત ! આપ શા કારણે એવું કહો છો કે છવોનેાં કર્મોનેાં જે ઉપચય થાય છે તે પ્રયોગથી જ થાય છે, સ્વાભાવિક રૂપે થતો

जीवरमनकव्यता

पद्मपुद्गलोपनपदष्टान्तेन जीरार्मभृगुगोपनयं प्रतिभादणितुमाह—'वत्थ-
स्स णं भंते' इत्यादि ।

मूलव—वत्थस्स णं भंते ! पोग्गलोवचये किं पयोगसा
वीससा ? गोयसा ! पओगसा वि, वीससा वि जहाणं भंते !
वत्थस्स णं पोग्गलोवचए पओगसावि, वीससावि, तथा णं
जीवाणं कम्मोवचए किं पयोगसा, वीससा ? । गोयसा ! पयो-
गसा नो वीससा । से केणट्टेणं ? । गोयसा ! जीवाणं तिविहे
पओगे पणत्ते तं जहा-मणप्पओगे, वड्ढप्पओगे, कायप्प-
ओगे । इच्चेएणं, तिविहेणं पओगेणं जीवाणं कम्मोवचये
पयोगसा णो वीससा । एवं सव्वेसिं पंचिदियाणं तिविहे
पओगे भाणियव्वे पुढवीकाइयाणं एगविहेणं पओगेणं,
एवं जाव-वणस्सइकाइयाणं । विगल्लिदियाणं दुविहे पओगे
पणत्ते, तं जहा-वड्ढप्पओगे, कायप्पओगे य । इच्चेएणं
दुविहेणं पओगेणं कम्मोवचए पयोगसा, णो वीससा, ।
से तेणट्टेणं जाव-णो वीससा । एवं जस्स जो पओगो,
जाव-वेमाणियाणं ॥ सू० २ ॥

भी व्यवहार की दृष्टि से अशुद्ध और अवुद्ध बना हुआ है । परन्तु
जिस प्रकार मलिन वस्त्र साफ हो जाता है उसी प्रकार यह आत्मा भी
अपने पुरुषार्थ के बलपर कर्मरूपी मैल को धोकर के अपने मूल रूप में
आ सकता है । जैसे कि मलिन वस्त्र साफ करने की प्रक्रिया से अपने
मूल रूप में आ जाता है ॥ सू० १ ॥

पुरुषार्थी कर्मरूपी मैलने घाँघाँने आत्मा पण तेना मूण शुद्ध स्वइपमां
आवी शके छे. जेभ मलिन वस्त्रने साइ करवानी प्रक्रिया द्वारा मूण इपमां
सावी शकिय छे, जेवी ज रीते आत्मा पण शुद्ध यर्ध शके छे. ॥ सू० १ ॥

प्रयोगश्च । इत्येतन्न द्विविधेन प्रयोगेण कर्मोपचयः प्रयोगेण, न विस्रसया, तत्
तेनार्थेन यावत्-नो विस्रसया, एवं यस्य यः प्रयोगः यावत्-वैमानिकानाम् ॥ सू० ॥ २

टीका—'वत्थस्स णं भंते ! पोग्गलोवचये किं पयोगसा, वीससा ?'

गौतमः पृच्छति-हे भदन्त ! वत्थस्य खलु पुद्गलानाम् उपचयः-वृद्धिः किम्
प्रयोगेण पुरुषव्यापारेण ? आद्योस्वित् विस्रसया=स्वभावेन, पुरुषव्यापारमन्तराऽपि

वचनप्रयोग और दूसरा का प्रयोग (इच्छेपणं द्विविहेणं पओगेणं कम्मो-
वचणं पओगसा णो वीससा) इन दो प्रकार के प्रयोगों से कर्म का उप-
चय विकलेन्द्रिय जीवों के होता है अतः वह स्वाभाविकरूप से नहीं
होता है (से तेणट्ठेणं जाव णो वीससा) इस कारण है गौतम ! मैंने
ऐसा कहा है जीवों के कर्म का उपचय यावत् स्वाभाविकरूप से नहीं
होता है (एवं जस्स जो पओगो-जाव वेमाणियाणं) इस तरह जिस
जीव के जो प्रयोग हो वह उस तरह से यावत् वैमानिक देवों तक
कहना चाहिये ।

टीकार्थ—सूत्रकार, इस सूत्र द्वारा वत्थपुद्गलोपचय के दृष्टान्त से
जीव और कर्मपुद्गलों के उपचय का प्रतिपादन कर रहे हैं-इसमें गौतम
ने प्रभुसे ऐसा पूछा है कि (वत्थस्स णं भंते ! पोग्गलोवचये किं पयोगसा
वीससा ?) हे भदन्त ! वत्थ के पुद्गलों का जो उपचय-वृद्धि होता है,
वह क्या प्रयोग से-पुरुषप्रयत्न से होता है या स्वाभाविकरूप से होता

(वइपओगे, कायपओगे च) (१) वचनप्रयोगे अने (२) कायप्रयोगे । (इच्छेपणं
द्विविहेणं पओगेणं कम्मोवचणं पओगसा णो वीससा) आ जे प्रयोगथी विकलेन्द्रिय
एवोने कर्म्मोने उपचय थाय छे, तेथी स्वाभाविक इपे तेमने कर्म्मोने उपचय थतो
नथी । (से तेणट्ठेणं जाव णो वीससा) हे गौतम ! ते कारणे में एवेणुं कळुं छे के
एवोने प्रयोगथी कर्म्मोने उपचय थाय छे, स्वाभाविक इपे थतो नथी । (एवं
जस्स जो पओगो-जाव वेमाणियाणं) आ रीते जे एवना जे प्रयोगे छाय,
ते प्रयोगथी ते एव कर्म्मोने उपचय करे छे, वैमानिक देवो पर्यन्तना एवोना
विपथमां पणुं जेम जे समजवुं ।

टीकार्थ—सूत्रकारे आ सूत्रमां वचनना पुद्गलोपचयना दृष्टान्त द्वारा एव
अने कर्म्मपुद्गलोना उपचयनुं प्रतिपादन कथुं छे, गौतम स्वामी महावीर प्रभुने
ज्यो प्रश्न पूछे छे के (वत्थस्स णं भंते ! पोग्गलोवचये किं पयोगसा वीससा ?)
हे भदन्त ! वचनना पुद्गलोना जे उपचय (जभावट, वृद्धि) थाय छे, ते शुं
प्रयोगथी (पुरुष प्रयत्नथी) थाय छे, के स्वाभाविक रीते थाय छे ? अटवे
के पुरुष प्रयत्न विना थाय छे ?

तद्यथा-मनःप्रयोगः, वचःप्रयोगः, कायप्रयोगः, इत्येतेन त्रिविधेन प्रयोगेण जीवानां कर्मोपचयः प्रयोगेण, न विस्तसया । एवं सर्वेषां पञ्चेन्द्रियाणां त्रिविधः प्रयोगो भणितव्यः । पृथ्वीकायिकानाम् एकविधेन प्रयोगेण । एवं यावत्-वनस्पतिकायिकानाम् । विकलेन्द्रियाणां द्विविधः प्रयोगः मशुप्तः, तद्यथा-वचःप्रयोगः, काय-

से नहीं होता है ? (गोयमा ! जीवाणं त्रिविहं पओगे पणत्ते) हे गौतम ! जीवों के तीन प्रयोग कहे गये हैं । (तं जहा) वे तीन प्रयोग ये हैं (मणप्पओगे, वइप्पओगे, कायप्पओगे, इच्चेएणं त्रिविहेणं पओगेणं जीवाणं कम्मोवचये पओगसा णो वीससा) मनः प्रयोग, वचः प्रयोग और कायप्रयोग इन तीन प्रकार के प्रयोगों (व्यापारों) से जीवों के कर्म का उपचय होता है, अतः जीवों के कर्म का उपचय प्रयोग से होता है स्वाभाविकरूप से नहीं होता ऐसा कहा गया है । (एवं सव्वेसि पंचिदियाणं त्रिविहे पओगे भाणियव्वे) इसी तरह से समस्त पंचेन्द्रिय जीवों के तीन प्रकार का प्रयोग कहना चाहिये (पुढ्वीकाइयाणं एगविहेणं पओगेणं एवं जाव वणस्सइ काइयाणं) पृथ्वीकायिक जीवों के केवल एक प्रकार-का ही प्रयोग होता है-इसी प्रकार से यावत् वनस्पतिकायिक जीवों के भी जानना चाहिये । (विगळिदियाणं दुविहे पओगे पणत्ते) विकलेन्द्रिय जीवों के दो प्रकार का प्रयोग होता है ऐसा कहा गया है (तं जहा) जैसे-(वइप्पओगे, कायप्पओगे य) एक

नथी ? (गोयमा !) हे गौतम ! (जीवाणं त्रिविहे पओगे पणत्ते तं जहा) लोकोनां नीचे प्रमाणे त्रय प्रयोग कइया छे-(मणप्पओगे, वइप्पओगे, कायप्पओगे, इच्चेएणं त्रिविहेणं पओगेणं जीवाणं कम्मोवचये पओगसा णो वीससा) मनःप्रयोग, वचनप्रयोग अने कायप्रयोग. आ त्रय प्रकारना प्रयोगेथी (व्यापारोथी-प्रवृत्तिओथी) लोकोने कर्मने उपचय थतो डोय छे. ते कारणे मे अबुं कहुं छे के लोकोने कर्मने उपचय प्रयोगेथी थाय छे, स्वाभाविक रूपे थतो नथी. (एवं सव्वेसि पंचिदियाणं त्रिविहे पओगे भाणियव्वे) ओअ प्रमाणे समस्त पंचेन्द्रिय लोकोना त्रय प्रकारना प्रयोग समज्जा. (पुढ्वीकाइयाणं एगविहेणं पओगेणं एवं जाव वणस्सइकाइयाणं) पृथ्वीकायिक लोकोने ओक अ प्रकारने प्रयोग-कायप्रयोग डोय छे. वनस्पतिकाय पर्यन्तना विषयभां पय ओअ प्रमाणे समज्जुं. (विगळिदियाणं दुविहे पओगे पणत्ते) द्वीन्द्रियेथी चतुन्द्रिय पर्यन्तना विकलेन्द्रिय लोकोना मे प्रयोग कइया छे. (तजहा) ओवां के

પ્રયોગથ । इत्येतेन द्विविधेन प्रयोगेण कर्मोपचयः प्रयोगेण, न विस्रसया, तत्
तेनार्थेन यावत्-नो विस्रसया, एवं यस्य यः प्रयोगः यावत्-वैमानिकानाम् ॥ सू० ॥ २

टीका—‘वत्थस्त णं भंते ! पोग्गलोवचये किं पयोगसा, वीससा ?’
गौतमः पृच्छति-हे भदन्त ! वत्थस्य खलु पुद्गलानाम् उपचयः-वृद्धिः किम्
प्रयोगेण पुरुषव्यापारेण ? आहोस्वित् विस्रसया=स्वभावेन, पुरुषव्यापारमन्तराऽपि

वचनप्रयोग और दूसरा कायप्रयोग (इच्छेएणं दुविहेणं पओगेणं कम्मो-
वचणं पओगसा णो वीससा) इन दो प्रकार के प्रयोगों से कर्म का उप-
चय विकलेन्द्रिय जीवों के होता है अतः वह स्वाभाविकरूप से नहीं
होता है (से तेणट्टेणं जाव णो वीससा) इस कारण है गौतम ! मैंने
ऐसा कहा है जीवों के कर्म का उपचय यावत् स्वाभाविकरूप से नहीं
होता है (एवं जस्स जो पओगो-जाव वेमाणियाणं) इस तरह जिस
जीव के जो प्रयोग हो वह उस तरह से यावत् वैमानिक देवों तक
कहना चाहिये ।

टीकार्थ—सूत्रकार, इस सूत्र द्वारा वत्थपुद्गलोपचय के दृष्टान्त से
जीव और कर्मपुद्गलों के उपचय का प्रतिपादन कर रहे हैं-इसमें गौतम
ने प्रभुसे ऐसा पूछा है कि (वत्थस्त णं भंते ! पोग्गलोवचये किं पयोगसा
वीससा ?) हे भदन्त ! वत्थ के पुद्गलों का जो उपचय-वृद्धि होता है,
वह क्या प्रयोग से-पुरुषप्रयत्न से होता है या स्वाभाविकरूप से होना

(वइप्पओगे, कायप्पओगे य) (१) वचनप्रयोग અને (२) કાયપ્રયોગ. (इच्छेएणं
दुविहेणं पओगेणं कम्मोवचणं पओगसा णो वीससा) આ બે પ્રયોગથી વિકલેન્દ્રિય
જીવોને કર્મનો ઉપચય થાય છે. તેથી સ્વાભાવિક રૂપે તેમને કર્મનો ઉપચય થતો
નથી. (સે તેણટ્ટેણં જાવ ણો વીસસા) છે ગૌતમ ! તે કારણે મેં એવું કહ્યું છે કે
જીવોને પ્રયોગથી કર્મનો ઉપચય થાય છે, સ્વાભાવિક રૂપે થતો નથી. (એવં
જસ્સ જો પઓગો-જાવ વેમાણિયાણં) આ રીતે જે જીવના જે પ્રયોગ હોય,
તે પ્રયોગથી તે જીવ કર્મનો ઉપચય કરે છે. વૈમાનિક દેવો પર્યન્તના જીવોના
વિષયમાં પણ એમ જ સમજવું.

टीकार्थ—सूत्रकारे आ सूत्रमां वत्थना पुद्गलोपचयना दृष्टान्त द्वारा एव
अने कर्मपुद्गलोना उपचयनुं प्रतिपादनं कथुं छे. गौतम स्वामी महावीर प्रभुने
अथेवा प्रश्न पूछे छे के (वत्थस्त णं भंते ! पोग्गलोवचये किं पयोगसा वीससा ?)
हे भदन्त ! वत्थना पुद्गलोनां जे उपचय (जभावट, वृद्धि) थाय छे, ते शुं
प्रयोगधी (पुरुष प्रयत्नधी) थाय छे, के स्वाभाविक रीते थाय छे ? अथेवे
के पुरुष प्रयत्न विना थाय छे ?

સ્વાભાવિકઃ ? મગવાનાહ-‘ ગોયમા ! પયોગસાવિ વીસસાવિ ’ હે ગૌતમ ! વચ્ચસ્ય પુદ્ગલોપચયઃ પ્રયોગેનાપિ - પુરુપાદિવ્યાપારેનાપિ, વિસ્રસયાડપિ સ્વભાવેનાપિ । તતો ગૌતમઃ પુચ્છતિ-‘ જહાણં મંતે ! વત્થસ્સ ણં પોગ્ગલોવચ્ચે પયોગસા વિ, વીસસા વિ ’ હે મદન્ત ! યથા સ્વલુ વચ્ચસ્ય પુદ્ગલોપચયઃ પ્રયોગેનાપિ, -પુરુપવ્યાપારેનાપિ, વિસ્રસયાડપિ-સ્વભાવેનાપિ, ‘ તદ્દા ણં જીવાણં કમ્મોવચ્ચે કિં પયોગસા, વીસસા ? ’ તથા સ્વલુ જીવાણાં કર્મોપચયઃ કિમ્ પ્રયોગેણ પુરુપાદિવ્યાપારેનાપિ વિસ્રસયા સ્વભાવેનાપિ ભવતિ ? મગવાનાહ-‘ ગોયમા ! પયોગસા, ણો વીસસા । ’ હે ગૌતમ ! જીવાણાં કર્મ પુદ્ગલોપચયઃ પ્રયોગેણ પુરુ-

હૈ અર્થાત્ પુરુપવ્યાપાર કે વિના હી હોતા હૈ ? હસકે ઉત્તર મેં પ્રમુ ગૌતમ સે કહતે હેં કિ (ગોયમા) હે ગૌતમ ! (પયોગસા વિ વીસસા વિ) વચ્ચ કે પુદ્ગલોં કા જો ઉપચય હોતા હૈ વહ પુરુપાદિ કે વ્યાપાર સે મી હોતા હૈ ઓર પુરુપાદિ કે વ્યાપાર કે વિના મી હોના હૈ, અવ ગૌતમસ્વામી પુનઃ હસી વિપય કો લેકર પ્રમુ સે પ્રશ્ન કરતે હેં કિ-(જહા ણં મંતે ! વત્થસ્સ ણં પોગ્ગલોવચ્ચયં પયોગસા વિ વીસસા વિ) હે મદન્ત ! જિસ તરહ વચ્ચ કે પુદ્ગલોં કા ઉપચય પ્રયોગ સે મી હોતા હૈ ઓર પ્રયોગ કે વિના-સ્વાભાવિક રીતિ સે મી હોતા હૈ (તદ્દા ણં જીવાણં કમ્મોવચ્ચે કિં પયોગસા વીસસા) ઉસી તરહ સે કયા જીવોં કે જો કર્મ કા ઉપચય હોતા હૈ વહ કયા પ્રયોગ સે મી હોતા હૈ ? યા પ્રયોગ કે વિના મી હોતા હૈ ? હસકા ઉત્તર દેતે હુણ પ્રમુ ગૌતમ સે કહતે હેં કિ -(ગોયમા) ગૌતમ ! (પયોગસા ણો વીસસા) જીવોં કે જો કર્મ કા

તેનો જ્વાળ આપતા મહાવીર પ્રભુ કહે છે-(ગોયમા ! પયોગસા વિ વીસસા વિ) હે ગૌતમ ! વચ્ચનાં પુદ્ગલોનો જે ઉપચય થાય છે તે પ્રયોગથી (પુરુપાદિની પ્રવૃત્તિથી) પણ થાય છે અને સ્વાભાવિક રીતે પણ થાય છે, એટલે કે પુરુપાદિની પ્રવૃત્તિ વિના પણ થાય છે.

ગૌતમ સ્વામી જીવોનાં પુદ્ગલોપચયના વિષયમાં એવો પ્રશ્ન કરે છે કે (જહાણં મંતે ! વત્થસ્સ ણં પોગ્ગલોવચ્ચયં પયોગસા વિ વીસસા વિ) હે મદન્ત ! જેવી રીતે વચ્ચનાં પુદ્ગલોનો ઉપચય પ્રયોગથી પણ થાય છે અને પ્રયોગ વિના સ્વાભાવિક રીતે પણ થાય છે, (તદ્દા ણં જીવાણં કમ્મોવચ્ચે કિં પયોગસા વીસસા ?) એજ પ્રમાણે શું જીવોનાં પુદ્ગલોનો ઉપચય પ્રયોગથી પણ થાય છે અને સ્વાભાવિક રીતે (પ્રયોગ વિના) પણ થાય છે ?

તેનો જ્વાળ આપતા મહાવીર પ્રભુ કહે છે-(ગોયમા !) હે ગૌતમ ! (પયોગસા ણો વીસસા) જીવોને કર્મોનો જે ઉપચય થાય . . . ગથી

પાદિવ્યાપારેણૈવ ભવતિ નો વિત્તસયા સ્વભાવેન, અન્યથા અયોગિનોઽપિ કર્મ-
વ્યાપત્તિઃ સ્યાત્ । ગૌતમસ્તત્ર કારણં પૃચ્છતિ—‘ સે કેળદ્વેણ ’ હે ભદન્ત !
તત્ કેનાર્થેન કથં તાવત્ જીવાનાં કર્મોપચયઃ પ્રયોગેણૈવ, નો સ્વભાવેન ? ભગવા-
નાહ—‘ ગોયમા ! જીવાણં તિવિદ્દે પયોગે પળ્લત્તે હે ગૌતમ ! જીવાનાં ત્રિવિધઃ
પયોગઃ, પ્રજ્ઞસઃ, ‘ તં જહા—મળ્લપ્પઓગે, વહ્પ્પઓગે, કાય્પ્પઓગે ’ તથથા—મનઃ
પયોગઃ, માનસિકશુભાશુભચિન્તનાદિવ્યાપારઃ, વચઃપયોગઃ—શબ્દોચારણાદિ-
વચનવ્યાપારઃ, કાયપ્રયોગશ્ચ ચેષ્ટા, પરતાડનહિંસનાદિકાયિકવ્યાપારઃ, ‘ ઇચ્છે-
ણં તિવિદ્દેણં પઓગેણં જીવાણં કર્મ્મોવચ્ચે પયોગસા, નો વીસસા ’ इत्यनेन

વપચ્ય હોતા હૈ વહ પ્રયોગ સે હી-પુરુપ આદિ વ્યાપાર સે હી હોતા હૈ,
સ્વભાવ સે નહીં હોતા હૈ । યદિ સ્વભાવ સે હી જીવોં કે કર્મપુદ્ગલોં કા
વપચ્ય હોના માના જાય તો અયોગિ જીવોં કે ખી કર્મબંધ હોને કી
આપત્તિ આ જાવેગી । અવ ગૌતમ હસ વિપય મેં કારણ જાનને કી ઇચ્છા
સે પૂછતે હૈં કિ (સે કેળદ્વેણં) હે ભદન્ત ! એસા આપ કિસ કારણ સે
કહતે હૈં કિ જીવોં કે કર્મોપચય પ્રયોગ સે હી હોતા હૈ—સ્વભાવ સે નહીં
હોતા—હસકા ઉત્તર વેતે દુણ પ્રશ્ન ગૌતમ સે કહતે હૈં કિ—(ગોયમા) હે
ગૌતમ ! (જીવાણં તિવિદ્દે પઓગે પળ્લત્તે) જીવોં કે તીન પ્રકાર કે
પ્રયોગ કહે ગચે હૈં—(તં જહા) જો હસ પ્રકાર સે હૈં—(મળ્લપ્પઓગે, વહ્-
પ્પઓગે, કાય્પ્પઓગે) મનઃ પ્રયોગ—માનસિક શુભાશુભ ચિન્તન આદિ
વિચાર, વચઃ પ્રયોગ—શબ્દોચારણ આદિરૂપ વચન વ્યાપાર, ઓર કાયપ્ર-
યોગ—ચેષ્ટા કરને, દૂસરોં કો તાડને ઓર હિંસા આદિ કરને રૂપ શરીર
કા વ્યાપાર (ઇચ્છેણં તિવિદ્દેણં પઓગેણં જીવાણં કર્મ્મોવચ્ચે પઓ-

(પુરુપાદિના વ્યાપારથી) જ થાય છે, સ્વાભાવિક રીતે થતો નથી. જો સ્વભા-
વથી જ હવેને કર્મપુદ્ગલોને ઉપચય થાય છે એમ માનવામાં આવે તો
અયોગિ હવેને પણ કર્મબંધ થવાની વાત સ્વીકારવી પડશે. તેનું કારણ
બહુવા માટે ગૌતમ સ્વામી પૂછે છે કે (સે કેળદ્વેણં) હે ભદન્ત ! આપ શા
કારણે એવું કહો છો કે હવેને કર્મને ઉપચય પ્રયોગથી જ થાય છે,
સ્વભાવથી થતો નથી ?

ઉત્તર—(ગોયમા !) હે ગૌતમ ! (જીવાણં તિવિદ્દે પઓગે પળ્લત્તે)
હવેના ત્રણ પ્રકારના પ્રયોગ કહ્યા છે—“ તં જહા ” જે આ પ્રમાણે છે—

(મળ્લપ્પઓગે, વહ્પ્પઓગે, કાય્પ્પઓગે)—(૧) મનપ્રયોગ—માનસિક શુભા-
શુભ ચિન્તન આદિ વિચાર, (૨) વચનપ્રયોગ—શબ્દોચારણ આદિ રૂપ વ્યાપાર,
અને (૩) કાયપ્રયોગ—શારીરિક ચેષ્ટા, મારપીટ આદિ રૂપ શારીરિક વ્યાપાર.
(ઇચ્છેણં તિવિદ્દેણં પઓગેણં જીવાણં કર્મ્મોવચ્ચે પઓગસા 'નો વીસસા) આ

ઉપર્યુક્તેન ત્રિવિધેન પ્રયોગેન જીવાનાં કર્મોપચયઃ—કર્મબંધો ભવતિ પ્રયોગેણ,
 નો વિભ્રસપા સ્વભાવેન । ' एवं सर्वेति पंचिदियाणं त्रिविहे पओगे भाणियव्वे '
 एवं-તયૈવ સર્વેણ પંચેન્દ્રિયાણાં જીવાનાં ત્રિવિધઃ પ્રયોગઃ મનોવચઃકાયભેદેન
 ત્રિપકારો વ્યાપારો ભણિતચ્ચઃ । ' पुढवीकाइयाणं एगविहेणं पओगेणं ' પૃથિવી-
 કાયિકાનાં જીવાનામ્ એકવિધેન પ્રયોગેણૈવ કાયવ્યાપારરૂપેણ કર્મોપચયો વક્તવ્યઃ,
 ' एवं जाव-वणस्सइकाइयाणं ' एवं પૃથિવીકાયિકવદેવ યાવત્-અપ્કાયિક-
 તેજસ્કાયિક-વાયુકાયિકાનાં વનસ્પતિકાયિકાનામપિ એકવિધેન કાયવ્યાપાર
 લક્ષણેન પ્રયોગેણૈવ કર્મોપચયો વોધ્યઃ । ' विगलेंदियाणं दुविहे पओगे पणत्ते '

મસા, નો વોસસા) ઇસ ત્રીન પ્રકાર કે પ્રયોગ સે જીવોં કે કર્મોપચય
 હોતા હૈ અતઃ ઇસ કર્મોપચય-કર્મબંધ મેં કારણ જીવ કા ત્રિવિધરૂપ
 પ્રયોગ પડતા હૈ ઇસલિયે વહ કર્મોપચય પ્રયોગ સે હોતા હૈ સ્વાભાવ સે
 નહીં, એસા માનના ચાહિયે (एवं सर्वेति पंचिदियाणं त्रिविहे पओगे
 भाणियव्वे) જિતને મી પંચેન્દ્રિય જીવ હૈં, ઊન સ્વ કે યહ ત્રીન પ્રકાર
 કા પ્રયોગ હોતા હૈ (पुढवीकाइयाणं एगविहेणं पओगेणं) પૃથિવીકાયિક
 જો એકેન્દ્રિય જીવ હૈં-ઊનકે એક કાયપ્રયોગ હી હોતા હૈં-ઊસસે વે કર્મો-
 પચય ક્રિયા કરતે હૈં । (एवं जाव वणस्सइ काइयाणं) ઇસી તરહ સે
 અપ્કાયિક, તેજસ્કાયિક, વાયુકાયિક ઓર વનસ્પતિકાયિક વે એકે-
 ન્દ્રિય જીવ મો એક કેવલ કાયપ્રયોગ સે હી કર્મોપચય કરતે રહતે હૈં
 એસા જાનના ચાહિયે । અવ રહે દોહ્ન્દ્રિય તેહ્ન્દ્રિય ઓર ચૌહ્ન્દ્રિય જીવ
 સો વે (विगलेंदियाणं दुविहे पओगे पणत्ते) ઇન વિકલેન્દ્રિય જીવોં કે

ત્રણ પ્રકારના પ્રયોગથી જીવોને કર્મોપચય થાય છે. તેથી આ કર્મોપચયના
 (કર્મબંધના) કારણ રૂપ જીવના એ ત્રિવિધ પ્રયોગ ગણાય છે. તેથીજ એવું
 કહ્યું છે કે કર્મોપચય પ્રયોગથી જ થાય છે, સ્વભાવથી થતો નથી.

(एवं सर्वेति पंचिदियाणं त्रिविहे पओगे भाणियव्वे) એજ પ્રમાણે જ્યાં પંચે-
 ન્દ્રિય જીવોનાં પણ એજ ત્રણ પ્રયોગ હોય છે. (पुढवीकाइयाणं एगविहेणं
 पओगेणं) પૃથ્વીકાયિક જીવોને એક કાયપ્રયોગ જ હોય છે. તેઓ તે પ્રયોગ
 દ્વારા જ કર્મોપચય કરે છે. (एवं जाव वणस्सइकाइयाणं) એજ પ્રમાણે
 અપ્કાય, તેજસ્કાય, વાયુકાય અને વનસ્પતિકાય, એ એકેન્દ્રિય જીવોને પણ
 ફક્ત એક જ પ્રયોગ-કાયપ્રયોગ હોય છે, અને તેઓ કાયપ્રયોગથી જ કર્મો-
 પચય કરતા રહે છે. (विगलेंदियाणं दुविहे पओगे पणत्ते) દ્વીન્દ્રિય, ત્રીન્દ્રિય
 અને ચતુરિન્દ્રિય, એ વિકલેન્દ્રિય, જીવોના જે પ્રયોગ હોય છે.

विकलेन्द्रियाणां द्वि-त्रि-चतुरिन्द्रियाणां जीवानां द्विविधः प्रयोगः प्रज्ञप्तः, ' तं जहा-वङ्गप्रभोगे, कायप्रभोगे य ' तद्यथा-वचःप्रयोगः, कायप्रयोगश्च, ' इच्छे-एणं दुविहेणं पभोगेणं कम्मोवचणं पयोगसा, नो वीमसा ' इत्येतेन उपर्युक्तरूपेण द्विविधेन प्रयोगेण कर्मोपचयः विकलेन्द्रियाणां प्रयोगेणैव, नो विस्रमया-स्वभावेन ' से तेणट्टेणं, जाव-नो वीमसा ' हे गौतम । तत् तेनार्थेन यावत्-जीवानां कर्मोपचयः प्रयोगेणैव, नो विस्रमया-स्वभावेन, ' एवं जस्स जो पयोगो, जाव-वेमाणियाणं ' एवं तथैव पूर्वोक्तदेव यस्य जीवस्य चः प्रयोगः मानसिको वा, वाचिको वा, कायिको वा, तस्य तथैव वक्तव्यः, यावन्-वैमानिकानाम्-वैमानिक-देवपर्यन्तानाम् बोध्यः, यावत्करणात्-नैरथिकामुङ्कुमारादिभवनपति-मानव्य-न्तर-ज्योतिषिकदेवाः संग्राह्याः ॥ सू० २ ॥

दो प्रकार का प्रयोग होता है (तं जहा) जैसे कि (वङ्गप्रभोगे, काय-प्रभोगे) वचनप्रयोग और कायप्रयोग (इच्छेएणं दुविहेणं पभोगेणं कम्मोवचणं पयोगसा नो वीमसा) इन दो प्रकार के प्रयोग से ये विकलेन्द्रिय जीव कर्मोपचय करते हैं-अतः इनका कर्मोपचय प्रयोगद्वारा ही होता है स्वभाव से नहीं (से तेणट्टेणं जाव, नो वीमसा) इसी कारण हे गौतम ! मने ऐसा कहा है कि जीवों के जो कर्मोपचय होता है, वह प्रयोग से ही होता है-स्वभाव से नहीं, (एवं जस्स जो पयोगो जाव वेमाणियाणं) इस तरह जिस जीव के जो प्रयोग हो-चाहे वह मानसिक प्रयोग हो, चाहे वह वाचनिक प्रयोग हो, चाहे वह कायिक हो उसके उसी प्रयोग से कर्मबंध होता है-ऐसा यावत् वैमानिक देवों तक

“ तं जहा ” जेवां के (वङ्गप्रभोगे, कायप्रभोगे)-(१) वचन प्रयोग अने कायप्रयोग. (इच्छेएणं दुविहेणं पभोगेणं कम्मोवचणं पयोगसा, नो वीमसा) ते जे प्रकारना प्रयोगेथी विकलेन्द्रिय जेवां कर्मोपचय करे छे. तेथी तेभने कर्मोपचय प्रयोगेथी न थाय छे, प्रयोग विना (स्वाभाविक रीते) थतो नथी. (से तेणट्टेणं जाव नो वीमसा) हे गौतम ! ते कारणे जे जेवुं कहुं छे के जेवने जे कर्मोपचय थाय छे ते प्रयोग द्वारा थाय छे, स्वाभाविक रीते (प्रयोग विना) थतो नथी. (एवं जस्स जो पयोगो जाव वेमाणियाणं) जे प्रभावे जे जेवना जे प्रयोग होय छे ते प्रयोग द्वारा न ते कर्मोपचय करे छे-कर्मबंध करे छे. जेठवे के मानसिक, कायिक अथवा वाचिक, जे प्रकारने जेवने प्रयोग (व्यापार) होय ते प्रकारना प्रयोग द्वारा जेव कर्मने बंध करतो रहे छे. जे प्रभावे वैमानिक देवा पर्यन्तना जेवां विधे समजवुं

जीवानां कर्मपुद्गलोपनयस्य सादिसान्तत्वविषये यद्यपुद्गलोपनयदृष्टान्तेन विशेषं प्ररूपयितुनाह—‘वत्थस्स णं भंते’ इत्यादि ।

मूलम्—वत्थस्स णं भंते ! पोग्गलोवचए किं साइए, सप-
ज्जवसिए १, साइए अपज्जवसिए २, अणाइए सपज्जवसिए ३,
अणाइए अपज्जवसिए ४ ? । गोयमा ! वत्थस्स णं पोग्गलो
वचए साइए—सपज्जवसिए, णो साइए—अपज्जवसिए, णो
अणाइए—सपज्जवसिए, णो अणाइए—अपज्जवसिए जहाणं
भंते ! वत्थस्स पोग्गलोवचए साइए सपज्जवसिए ? नो
साइए अपज्जवसिए २, नो अणाइए सपज्जवसिए ३,
नो अणाइए अपज्जवसिए ४, तथा णं जीवाणं कम्मो-
वचए पुच्छा ? गोयमा ! अत्थेगइयाणं जीवाणं कम्मो-
वचए, साइए सपज्जवसिए, अत्थेगइयाणं अणाइए
सपज्जवसिए, अत्थे गइयाणं अणाइए अपज्जवसिए,
णो चेव णं जीवाणं कम्मोवचए साइए अपज्जव-
सिए । से केणट्टेणं ? । गोयमा ! इरियावहियबंधयस्स
कम्मोवचए साइए सपज्जवसिए, भवसिद्धियस्स कम्मोव-
वचए अणाइए सपज्जवसिए, अभवसिद्धियस्स कम्मोव-
चए अणाइए अपज्जवसिए, से तेणट्टेणं गोयमा ! एवं
बुच्चइ अत्थेगइयाणं जीवाणं कम्मोवचए साइए णो चेव णं
जीवाणं कम्मोवचए साइए अपज्जवसिए । वत्थे णं भंते !

कहना चाहिये, यहां यावत् शब्द से नैरयिक, असुरकुमार आदि भव-
नपति, वानव्यन्तर और ज्योतिषिक देव इनका ग्रहण हुआ है ॥ सू० २ ॥

अर्द्धा (यावत्) पृथ्वी तारको, असुरकुमारो, वानव्यन्तरो अने ज्योतिषिक
देवोने अर्द्धं करवाभां आल्या छे ॥ सूत्र २ ॥

किं साइए सपञ्जवसिए?, चउभंगो । गोयमा ! वत्थे साइए सपञ्जवसिए, अवसेसा तिन्निवि पडिसेहेयव्वा, । जहा णं भंते ! वत्थे साइए सपञ्जवसिए, णो साइए अपञ्जवसिए, णो अणाइए सपञ्जवसिए, णो अणाइए अपञ्जवसिए, तथा णं जीवा णं किं साइया सपञ्जवसिया ?, चउभंगो पुच्छा ? । गोयमा ! अत्थेगइया साइया सपञ्जवसिया, चत्तारि वि भाणियव्वा । से केणट्टेणं ? गोयमा ! नेरइया तिरिक्खजोणिया मणुस्सा, देवा गइमागइं पडुच्च साइया सपञ्जवसिया । सिद्धा गइं पडुच्च साइया अपञ्जवसिया । भवसिद्धिया लद्धिं पडुच्च अणाइया सपञ्जवसिया, अभवसिद्धिया संसारं पडुच्च अणाइया अपञ्जवसिया, से तेणट्टेणं ॥ सू० ३ ॥

छाया— वत्थस्य खलु भदन्त ! पुद्गलोपचयः किं सादिकः—सपर्यवसितः १, सादिकः—अपर्यवसितः २, अनादिकः—सपर्यवसितः ३, अनादिकः अपर्यवसितः ४?, गौतम ! वत्थस्य खलु पुद्गलोपचयः सादिकः सपर्यवसितः, नो सादिकः अपर्य-

(वत्थस्स णं भंते !) इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(वत्थस्स णं भंते ! पोग्गलोवचए किं साइए सपञ्जवसिए, साइए अपञ्जवसिए, अणाइए सपञ्जवसिए, अणाइए अपञ्जवसिए) हे भदन्त ! वत्थ के जो पुद्गलोपचय होता है, वह क्या सादि सान्त है ? अथवा सादि अनन्त है ? या अनादि सान्त है ? कि—अनादि अनन्त है ? (गोयमा—वत्थस्स णं पोग्गलोवचए साइए सपञ्जवसिए,

(वत्थस्स णं भंते !) इत्यादि—

सूत्रार्थ—(वत्थस्स णं भंते ! पोग्गलोवचए किं साइए, सपञ्जवसिए, साइए अपञ्जवसिए अणाइए सपञ्जवसिए, अणाइए अपञ्जवसिए) हे भदन्त ! पञ्चानां पुद्गलानां ने उपचय थाय छे, ते शुं आदि (आदियुक्त) सान्त (अन्तयुक्त) छाय छे ? के सादि अनन्त छाय छे ? के अनादि सान्त छाय छे ? के अनादि अनन्त छाय छे ?

(गोयमा !) हे गौतम ! (वत्थस्स णं पोग्गलोवचए साइए सपञ्जवसिए, णो

વસિતઃ, નો અનાદિકઃ સપર્યવસિતઃ, નો અનાદિકઃ અપર્યવસિતઃ । યથા સલુ
 ભદન્ત ! વત્થસ્સ પુદ્ગલોપચયઃ, સાદિકઃ સપર્યવસિતઃ ૧, નો સાદિકોઽપર્યવ-
 સિતઃ ૨, નો અનાદિકઃ સપર્યવસિતઃ ૩, નો અનાદિકઃ અપર્યવસિતઃ ૪, તથા સલુ
 જીવાનાં કર્મોપચયઃ પુચ્છા ? ગૌતમ ! અસ્ત્યેકેવાં જીવાનાં કર્મોપચયઃ સાદિકઃ
 સપર્યવસિતઃ, અસ્ત્યેકેવામ્ અનાદિકઃ સપર્યવસિતઃ અસ્ત્યેકેવામ્ અનાદિકઃ

ળો સાહ્ણ અપજ્જવસિણ, નો અણાહ્ણ સપજ્જવસિણ, ણો અણાહ્ણ અપ-
 જ્જવસિણ) હે ગૌતમ ! વલ્લ કે જો પુદ્ગલોપચય હોતા હૈ વહ સાદિ સાન્ત
 હૈ, સાદિ અનન્ત નહીં હૈ, ન અનાદિ સાન્ત હૈ ઓર ન વહ અનાદિઅનન્ત
 હૈ । (જહાણં મંતે ! વત્થસ્સ પોગલોવચણ સાહ્ણ સપજ્જવસિણ ણો સાહ્ણ
 અપજ્જવસિણ, નો અણાહ્ણ સપજ્જવસિણ, ણો અણાહ્ણ અપજ્જવસિણ,
 તહાણં જીવાણં કર્મોવચણ પુચ્છા) હે ભદન્ત ! જિસ્ પ્રકાર વલ્લ કા
 પુદ્ગલોપચય સાદિ સાન્ત હૈ । સાદિ અનન્ત નહીં, અનાદિ સાન્ત નહીં હૈ
 ઓર અનાદિ અનન્ત મી નહીં હૈ, ડસી પ્રકાર વ્યા જીવોં કા કર્મોપ-
 ચય મી સાદિ સાન્ત હૈ સાદિ અનન્ત નહીં હૈ ? અનાદિ સાન્ત નહીં હૈ ?
 ઓર અનાદિ અનન્ત મી નહીં હૈ ? (ગોયમા) હે ગૌતમ ! (અત્યેગહ-
 યાણં જીવાણં કર્મોવચણ સાહ્ણ સપજ્જવસિણ) કિતનેક જીવ એસે હૈં
 કિ જિનકા કર્મોપચય સાદિ સાન્ત હૈ (અત્યેગહયાણં અણાહ્ણ સપજ્જ-
 વસિણ) કિતનેક જીવ એસે હૈં કિ જિનકા કર્મોપચય અનાદિ સાન્ત હૈ
 (અત્યેગહયાણં આણાહ્ણ અપજ્જવસિણ) તથા કિતનેક જીવ એસે હૈં

સાહ્ણ અપજ્જવસિણ, ણો અણાહ્ણ સપજ્જવસિણ, ણો અણાહ્ણ અપજ્જવસિણ) વલ્લનાં
 પુદ્ગલોનો જે ઉપચય થાય છે તે સાદિ સાન્ત હોય છે, સાદિ અનંત હોતો નથી
 અનાદિ સાન્ત હોતો નથી અને અનાદિ અનંત પણ હોતો નથી. (જહાણં મંતે !
 વત્થસ્સ પોગલોવચયે સાહ્ણ સપજ્જવસિણ, ણો સાહ્ણ અપજ્જવસિણ, ણો અણાહ્ણ
 અપજ્જવસિણ, તહાણં જીવાણં કર્મોવચણ પુચ્છા) હે ભદન્ત ! જેવી રીતે વલ્લનાં
 પુદ્ગલોનો ઉપચય સાદિ સાન્ત હોય છે, સાદિ અનંત હોતો નથી, અનાદિ
 સાન્ત હોતો નથી અને અનાદિ અનંત હોતો નથી, એજ પ્રમાણે શું જીવોનાં
 પુદ્ગલોનો ઉપચય પણ સાદિ સાન્ત હોય છે ? શું તે સાદિ અનન્ત, અનાદિ
 સાન્ત અને અનાદિ અનંત હોતો નથી ? (ગોયમા !) હે ગૌતમ ! (અત્યેગ
 હયાણં જીવાણં કર્મોવચણ સાહ્ણ સપજ્જવસિણ) હે ગૌતમ ! કેટલાક જીવો
 એવાં હોય છે કે તેમનો કર્મોપચય સાદિ સાન્ત હોય છે, (અત્યેગહયાણં
 અણાહ્ણ સપજ્જવસિણ) કેટલાક જીવોનો કર્મોપચય અનાદિ સાન્ત હોય છે,
 (અત્યેગહયાણં આણાહ્ણ અપજ્જવસિણ) કેટલાક જીવોનો કર્મોપચય અનાદિ

अपर्यवसितः, नो चैव खलु जीवानां कर्मोपचयः सादिकोऽपर्यवसितः । तत् केनार्थेन ? । गौतम ! ऐर्थापथिकवन्धकस्य कर्मोपचयः सादिकः सपर्यवसितः । भवसिद्धिकस्य कर्मोपचयोऽनादिकः सपर्यवसितः, अभवसिद्धिकस्य कर्मोपचयः अनादिकोऽपर्यवसितः, तत् तेनार्थेन गौतम ! एवमुच्यते—अस्त्येकैषां जीवानां

किं जिनका कर्मोपचय अनादि अनन्त हैं (जो चैव णं जीवा णं कम्मोवचए साइए अपज्जवसिए) परन्तु ऐसा कोई भी जीव नहीं है कि जिसका कर्मोपचय सादि और अनन्त हो । (से केणट्टेणं) हे भदन्त ! ऐसा आप किस कारण से कहते हैं ? (गोयमा) हे गौतम ! (ईरिया वहियबंधयस्स कम्मोवचए साइए सपज्जवसिए) ऐर्थापथिकवन्धक के ११ वे १२ वें और १३ वें गुणस्थानवर्ती जीव के कर्मोपचय सादि और सान्त होता है (भवसिद्धियस्स कम्मोवचए अणाइए सपज्जवसिए) भवसिद्धिक जीव का कर्मोपचय अनादि सान्त होता है । (अभवसिद्धियस्स कम्मोवचए अणाइए अपज्जवसिए) अभवसिद्धिक जीव का कर्मोपचय अनादि अनन्त होता है । (से तेणट्टेणं गोयमा ! एवं बुच्चइ) इस कारण हे गौतम ! मैंने पूर्वोक्त रूप से ऐसा कहा है कि (अत्येगइयाणं जीवाणं) कितनेक जीवों का (कम्मोवचए) कर्मोपचय (साइए० जो चैव णं जीवाणं कम्मोवचए साइए अपज्जवसिए) सादि सान्त होता है, कितनेक जीवों का कर्मोपचय अनादि सान्त होता है कितनेक जीवों का कर्मोपचय अनादि अनन्त होता है—परन्तु ऐसा कोई सा भी

अनंत होय छे, (जो चैव णं जीवाणं कम्मोवचए साइए अपज्जवसिए) पधु अवेो कोइ पधु एव नथी के वेनेो कर्मोपचय सादि अने अनंत होय. (से केणट्टेणं०) हे भदन्त ! अेषुं आप सा कारणे कडो छे ?

(गोयमा !) हे गौतम ! (ईरियावहियबंधयस्स कम्मोवचए साइए सपज्जवसिए) ऐर्थापथिक बंधकने—११ भां, १२ भां अने तेरभां शुद्धस्थानवर्ती एवनेो कर्मोपचय सादि अने सान्त होय छे. (भवसिद्धियस्स कम्मोवचए अणाइए सपज्जवसिए) भवसिद्धिक एवनेो कर्मोपचय अनादि सान्त होय छे. (अभवसिद्धियस्स कम्मोवचए अणाइए अपज्जवसिए) अभवसिद्धिक एवनेो कर्मोपचय अनादि अनंत होय छे. (से तेणट्टेणं गोयमा ! एवं बुच्चइ) हे गौतम ! ते कारणे मे अेषुं कहुं छे के (अत्येगइयाणं जीवाणं) केटलाक एवनेो (कम्मोवचए) कर्मोपचय (साइए० जो चैव णं जीवाणं कम्मोवचए साइए अपज्जवसिए) सादि सान्त होय छे, केटलाक एवनेो कर्मोपचय अनादि सान्त होय छे अने केटलाक एवनेो कर्मोपचय अनादि अनंत होय छे. परंतु अेक पधु अवेो एव नथी होतो के वेनेो कर्मोपचय सादि अनंत होय.

कर्मोपचयः सादिकः०, नो चैव खलु जीवानां कर्मोपचयः सादिकः
 अपर्यवसितः। वत्सं खलु भदन्त ! किं सादिकम्-सपर्यवसितम्, चतुर्भङ्गम् ?।
 गौतम ! वत्सं सादिकं सपर्यवसितम्, अवशेषाद्यगोऽपि प्रतिषेधयितव्याः
 यथा खलु भदन्त ! वत्सं सादिकं सपर्यवसितम्, नो सादिकम् अपर्यवसितम्, नो
 अनादिकं सपर्यवसितम्, नो अनादिकम् अपर्यवसितं तथा जीवाः किं सादिकाः
 सपर्यवसिताः, चतुर्भङ्गम् पृच्छा ? गौतम ! अस्त्येकके सादिकाः सपर्यवसिताः,
 चत्वारोऽपि भणितव्याः।

जीव नहीं है कि जिसका कर्मोपचय सादि और अनन्त हो
 (वत्ये णं भंते ! किं साइए सपज्जवसिए, चउभंगो) हे भदन्त !
 वत्स क्या सादिसान्त है ? कि सादि अनन्त है ? या अनादि
 सान्त है ? कि अनादि अनन्त है ? इस प्रकार ये यहाँ चार भंग होते हैं
 क्या ? (गोयमा ! वत्ये साइए सपज्जवसिए, अवसेसा तिन्नि वि पडिसेहे
 यव्वा) हे गौतम ! वत्स सादि सान्त है वाकी के तीन भंग वत्स में
 प्रतिषेध्य हैं। (जहा णं भंते ! वत्ये साइए सपज्जवसिए, णो साइए
 अपज्जवसिए, णो अणाइए सपज्जवसिए, णो अणाइए अपज्जवसिए-
 तहाणं जीवाणं किं साइया सपज्जवसिया ? चउभंगो पुच्छा) हे भदन्त !
 वत्स जिस तरह से सादि सान्त है, वह सादि अनन्त नहीं है, अनादि
 सान्त नहीं है, और अनादि अनन्त भी नहीं है, उसी प्रकार से क्या
 जीव भी सादि सान्त हैं ? वे सादि अनन्त नहीं हैं क्या ? अनादि
 सान्त नहीं हैं ? क्या ? अनादि अनन्त नहीं हैं क्या ? (गोयमा !) हे

(वत्ये णं भंते किं साइए सपज्जवसिए चउभंगो) हे भदन्त ! वत्स
 सादि (आदिथी युक्त) सान्त (अन्तथी युक्त) छे, के सादि अनन्त छे ?
 अथवा अनादि सान्त छे, के अनादि अनन्त छे ? शुं वत्सने आ यारे लंग
 (विडव्यो) लाशु पडे छे ?

(गोयमा ! वत्ये साइए सपज्जवसिए, अवसेसा तिन्नि वि पडिसेहेयव्वा) हे
 गौतम ! वत्स आदि सान्त छे, आदीना वत्से लंगने अस्वीकार थये समज्ये
 ओटवे के वत्स सादि अनन्त नथी, अनादि सान्त नथी अने अनादि अनन्त नथी।

(जहाणं भंते ! वत्ये साइए सपज्जवसिए, णो साइए अपज्जवसिए, णो
 अणाइए सपज्जवसिए, णो अणाइए अपज्जवसिए-तहाणं जीवाणं किं साइया सप-
 ज्जवसिया ? चउभंगो पुच्छा) हे भदन्त ! जेभ वत्स सादि सान्त छे, ते
 सादि अनन्त नथी, ते अनादि सान्त नथी अने अनादि अनन्त पणु नथी।
 ओज प्रभावे शुं एवे पणु सादि सान्त छे ? शुं एवे सादि अनन्त,
 अनादि सान्त अने अनादि अनन्त नथी ?

तत् केनार्थेन ? गौतम ! नैरयिक-तिर्यग्गोणिक-मनुष्य-देवाः, गतिम्-
आगतिं प्रतीत्य सादिकाः सपर्यवसिताः, सिद्धा गतिं प्रतीत्य सादिकाः अपर्यव-
सिताः, भवसिद्धिका लब्धिं प्रतीत्य अनादिकाः सपर्यवसिताः, अभवसिद्धिकाः संसारं
प्रतीत्यानादिका अपर्यवसिताः, तत् तेनार्थेन० ॥ सू० ३ ॥

गौतम ! (अथेगइया साइया सपञ्जवसिया, चत्तारि वि भाणियच्चा)
कितनेक जीव ऐसे हैं जो सादि सान्त हैं, कितनेक जीव ऐसे हैं जो
सादि अनन्त हैं । कितनेक जीव ऐसे हैं जो अनादि सान्त हैं और कि-
तनेक जीव ऐसे हैं जो अनादि अनन्त हैं । इस प्रकार से यहां चारों
भंग कहना चाहिये । (से केणट्टेणं०) हे भदन्त ! ऐसा आप किस
कारण से कहते हैं ? (गोयमा ! नेरइया तिरिखजोणिया मणुस्सा देवा
गइमागइं पडुच्च साइया, सपञ्जवसिया सिद्धा गइं पडुच्च साइया अप-
ञ्जवसिया, भवसिद्धिया लद्धि पडुच्च अणाइया सपञ्जवसिया, अभव-
सिद्धिया संसारं पडुच्च अणाइया अपञ्जवसिया से तेणट्टेणं०) हे गौतम !
नैरयिक, तिर्यग्गोणिक, मनुष्य और देव गति आगति की अपेक्षा
से सादि सान्त हैं । सिद्ध जीव सिद्ध गति की अपेक्षा से सादि अन-
न्त हैं । भवसिद्धिक जीव लब्धि की अपेक्षा से अनादि सान्त हैं और
अभवसिद्धिक जीव संसार की अपेक्षा से अनादि अनन्त हैं ।

(गोयमा !) हे गौतम ! (अथेगइया साइया सपञ्जवसिया, चत्तारि वि
भाणियच्चा) डेटवाक एवो सादि सान्त डोय छे, डेटवाक एवो सादि अनंत
डोय छे, डेटवाक एवो अनादि सान्त डोय छे अने डेटवाक एवो अनादि
अनंत डोय छे. आ रीते अर्ही आरे भंग (विक्कथे) कडेवा जेधजे. (से
केणट्टेणं० ?) हे भदन्त ! आप शा कारखे जेवुं कडे छे ?

(गोयमा ! नेरइया तिरिखजोणिया मणुस्सा देवा गइमागइं पडुच्च साइया
सपञ्जवसिया, सिद्धा गइं पडुच्च साइया अपञ्जवसिया, भवसिद्धिया लद्धि पडुच्च
अणाइया सपञ्जवसिया, अभवसिद्धिया संसारं पडुच्च अणाइया अपञ्जवसिया
से तेणट्टेणं) हे गौतम ! नारके, तिर्यग्गो, मनुष्ये अने देवगतिना एवोने
नारक आदि गतिमां आववाने कारखे सादि कइया छे अने नारक आदि
गतिजोभांधी तेजो नीकणवाना डोवार्थी तेमने सान्त कइया छे. सिद्ध एव
सिद्ध गतिनी अपेक्षाजे सादि अनंत छे, भवसिद्धिक एव लब्धिनी अपे-
क्षाजे अनादि सान्त छे अने अबवसिद्धिक एव संसारनी अपेक्षाजे अनादि
अनंत छे. हे गौतम ! ते कारखे मे जेवुं कइं छे.

ટીકા—‘વત્થસ્સ ણં મતે ! પોગ્ગલોવચણ કિં સાણ્ણ સપજ્જવસિણ ?’ ગૌતમઃ પૃચ્છતિ—હે મદન્ત ! વત્થસ્ય ત્વહ્ પુદ્ગલોપચયઃ કિં સાદિઃ કઃ આદિના સહિતઃ, સપર્યવસિતઃ પર્યવસિતેન પર્યવસાનેન સહિતઃ સાન્તઃ ?? અથવા ‘સાણ્ણ અપજ્જવસિણ’ સાદિકઃ—અપર્યવસિતઃ અન્તરહિતઃ ૨ ?, અથવા ‘અણાણ્ણ સપજ્જવસિણ’ અનાદિકઃ—આદિરહિતઃ, સપર્યવસિતઃ સાન્તઃ ૩ ?, અથવા ‘અણાણ્ણ અપજ્જવસિણ !’ અનાદિકઃ અપર્યવસિતઃ ૪ કિમ્ ? મગધનાહ—‘ ગોયમા ! વત્થસ્સ ણં પોગ્ગલોવચણ

ટીકાર્થ—સૂત્રકાર ને જીવોં કે કર્મપુદ્ગલોપચય કે દૃષ્ટાન્તત્વ કે વિષય મેં વસ્તુપુદ્ગલોપચય કે દૃષ્ટાન્ત સે વિશેષતા પ્રસ્થપિત કરને કે લિયે (વત્થસ્સ ણં મંતે !) इत्यादि सूत्र कहा है—इसमें गौतम ने प्रभु से ऐसा पूछा है कि (वत्थस्स णं मंते ! पोग्गलोवचण किं साण्ण सपज्जवसिण) हे भदन्त ! वस्त्र का जो पुद्गलोपचय है वह क्या सादि सान्त है ? अथवा—(साण्ण अपज्जवसिण) सादि अनन्त है ? अथवा—(अणाण्ण सपज्जवसिण) अनादि सान्त है ? अथवा—(अणाण्ण अपज्जवसिण) अनादि अनन्त है ? जो आदि-प्रारम्भ-सहित होता है उसका नाम सादि और जो पर्यवसान-अन्त सहित होता है वह सपर्यवसित होता है । तथा जो अन्त रहित होता है वह अपर्यवसित होता है तात्पर्य यह है कि यहां परवस्त्र विषय में ऐसे ये चार प्रश्न गौतमस्वामी ने प्रभु से पूछे हैं । इनका उत्तर देने के लिये प्रभु ने उनसे कहा (गौयमा) हे

ટીકાર્થ—જીવોનાં કર્મપુદ્ગલોપચયની સાદિ સાન્તતા આદિતું સૂત્રકારે વસ્ત્રનાં પુદ્ગલોપચયના દૃષ્ટાન્ત દ્વારા આ સૂત્રમાં નિરૂપણ કર્યું છે, અને જીવોનાં કર્મપુદ્ગલોપચયમાં રહેલી વિશેષતાનું આ સૂત્રમાં નિરૂપણ કર્યું છે.

ગૌતમ સ્વામીનો પ્રશ્ન—(વત્થસ્સ ણં મતે ! પોગ્ગલોવચણ કિં સાણ્ણ સપજ્જવસિણ ?) હે ભદન્ત ! વસ્ત્રનાં પુદ્ગલોનો ઉપચય (વૃદ્ધિ, જન્માવ) થું સાદિ સાન્ત હોય છે ? અથવા (સાણ્ણ અપજ્જવસિણ ?) સાદિ અનંત હોય છે ? અથવા (અણાણ્ણ સપજ્જવસિણ ?) અનાદિ સાન્ત હોય છે ?

અથવા (અણાણ્ણ અપજ્જવસિણ ?) અનાદિ અનંત હોય છે ? (સાદિ ’ એટલે આદિ (પ્રારંભ) સહિત અને ‘ સપર્યવસિત અથવા સાન્ત ’ એટલે અન્ત સહિત, (અપર્યવસિત ’ એટલે અન્ત રહિત) અહીં વસ્ત્રનાં પુદ્ગલોપચયને અનુલક્ષીને ગૌતમ સ્વામીએ ઉપર મુજબ ચાર પ્રશ્નો મહાવીર પ્રભુને પૂછ્યા છે. હવે તેનો જવાબ આપતા મહાવીર પ્રભુ કહે છે—

साइए सपञ्जवसिए ' हे गौतम ! वत्थस्य खलु पुद्गलोपचयः सादिकः सपर्यवसितः ' णो साइए अपञ्जवसिए ' नो सादिकः अपर्यवसितः ' णो अणाइए सपञ्जवसिए ' नो वा अनादिकः सपर्यवसितः, ' णो अणाइए अपञ्जवसिए ' नापि अनादिकः अपर्यवसितो वा वत्थस्य पुद्गलोपचयो भवति, गौतमः पृच्छति— ' जहा णं भंते ! वत्थस्स पोग्गलोवचए साइए सपञ्जवसिए ' हे भदन्त ! यथा खलु वत्थस्य पुद्गलोपचयः सादिकः—सपर्यवसितो भवति, ' णो साइए

गौतम ! ' वत्थस्स णं पोग्गलोवचए साइए सपञ्जवसिए) वत्थ का जो पुद्गलोपचय है वह सादि सान्त है ' णो साइए अपञ्जवसिए ' सादि अनन्त नहीं है ' णो अणाइए सपञ्जवसिए ' अनादि सान्त नहीं है (णो अणाइए अपञ्जवसिए) और अनादि अनन्त भी नहीं है। कहने का भाव यह है कि वत्थ में जो पुद्गलोपचय है वह प्रारंभ होने के कारण तो सादि है और भविष्य में वह नष्ट हो जाने वाला है इसलिये सान्त है सादि अपर्यवसित वह इसलिये नहीं है कि प्रारंभ होने पर भी वह शाश्वत-ध्रुव-रूप में नहीं रहा है, अनादि सपर्यवसित उसे इस लिये नहीं कहा गया है कि वत्थ में उस पुद्गलोपचय की शुरुआत हुई है अनादि अपर्यवसित वह इसलिये अमान्य हुआ है कि वह प्रारंभसहित है और अन्तसहित है। अब गौतम प्रभु से पुनः पूछते हैं कि (जहा णं भंते ! वत्थस्स पोग्गलोवचए साइए सपञ्जवसिए) हे भदन्त जिस प्रकार से आपने वत्थ के पुद्गलोपचय को सादि और सान्त कहा है (णो

(गौयमा ! वत्थस्स णं पोग्गलोवचए साइए सपञ्जवसिए) हे गौतम ! पञ्चनां पुद्गलोपो ऽपथय (वृद्धि) सादि सान्त ङाय छे. (णो साइए अपञ्जवसिए) ते सादि अनन्त ङायो नथी. (णो अणाइए सपञ्जवसिए) ते सादि अनन्त ङायो नथी, (णो अणाइए सपञ्जवसिए) ते अनादि सान्त ङायो नथी, (णो अणाइए अपञ्जवसिए) ते अनादि अनन्त पथ्य ङायो नथी. आ इधनत्तुं तात्पर्यं नीये प्रभाण्णु छे—वत्थसो पुद्गलोपथय प्रारंभथी युक्त ङाय छे, तेथी तेने सादि क्खो छे. लविपथमां तेने नाश थतो ङाय छे, तेथी तेने सान्त क्खो छे. तेने प्रारंभ थया पथी ते शाश्वत (नित्य) इपे र्हेतो नथी तेथी तेने सादि अनन्त क्खो नथी. ते पुद्गलोपथयने अनादि सान्त अे कारण्णु क्खो नथी के वत्थमां ते पुद्गलोपथयने प्रारंभ थयेतो छे. तेने अनादि अनन्त क्खो नथी कारण्णु के ते प्रारंभ सङ्घित अने अनन्त सङ्घित छे. गौतम स्वामी डवे णीणे प्रश्न पूछे छे—(जहा णं भंते ! वत्थस्स पोग्गलो वचये साइए सपञ्जवसिए) हे भदन्त ! जेभ वत्थनां पुद्गलोपो ऽपथय सादि

અપજ્જવસિણ' નો સાદિકઃ—અપર્યવસિતઃ, 'ખો અઘાણ્ણ સપજ્જવસિણ' નો અનાદિકઃ સપર્યવસિતઃ, 'ખો અઘાણ્ણ અપજ્જવસિણ' નો વા અનાદિકઃ અપર્યવસિતો ભવતિ 'તદ્દા ણં જીવાણં કમ્મોવચણ પુચ્છા?' તથા સલુ જીવાણાં કર્મોપચયઃ કિં સાદિકઃ સપર્યવસિતઃ, નો સાદિકઃ અપર્યવસિતઃ, નો વા અનાદિકઃ સપર્યવસિતઃ ન વા અનાદિકઃ અપર્યવસિતો ભવતિ? ઇતિ પૃચ્છા પ્રશ્નઃ । મગધાનાહ— 'ગોયમા ! અત્થેગહયાણં જીવાણં કમ્મોવચણ સાણ્ણ સપજ્જવસિણ, ' હે ગૌતમ !

સાણ્ણ અપજ્જવસિણ) સાદિ અનન્ત નહીં કહ્યા હૈ (ખો અઘાણ્ણ સપજ્જવસિણ) અનાદિ સાન્ત નહીં કહ્યા હૈ ઓર (ખો અઘાણ્ણ અપજ્જવસિણ) ન અનાદિ અનન્ત હી કહ્યા હૈ (તદ્દા ણં જીવાણં કમ્મોવચણ પુચ્છા) ડસી તરહ સે જીવોં કે જો કર્મોપચય—કર્મવંધ હોતા હૈ—ડસ વિપય મેં મી મેરા ંસા હી પૂછના હૈ કિ જીવોં કા કર્મોપચય કયા સાદિ સાન્ત હી હોતા હૈ? સાદિ અપર્યવસિત નહીં હોતા હૈ? અનાદિ સપર્યવસિત નહીં હોતા હૈ? ઓર અનાદિ અપર્યવસિત નહીં હોતા કયા? ડસકા ડત્તર દેતે હુણ પ્રમુ ગૌતમ સે કહ્તે હૈં કિ (ગોયમો) હે ગૌતમ ! વલ્લર કે પુદ્ગલોપચય કો અપેક્ષા જીવ કે કર્મવંધ મેં વિશેપતા હૈ—જો હસ પ્રકાર સે હૈ—(અત્થેગહયાણં જીવાણં કમ્મોવચણ સાણ્ણ સપજ્જવસિણ) કિત્તનેક જીવ ંસે હૈં કિ જિનકા કર્મોપચય—કર્મવંધ સાદિ ઓર સાન્ત હૈ, યદ્યપિ સિદ્ધાન્ત કી દૃષ્ટિ સે સમસ્ત જીવોં કા કર્મોપચય અનાદિ કહ્યા

સાન્ત ડોય છે, (ખો સાણ્ણ અપજ્જવસિણ) સાદિ અનન્ત ડોતો નથી, (ખો અઘાણ્ણ સપજ્જવસિણ) અનાદિ સાન્ત ડોતો નથી, અને (ખો અઘાણ્ણ અપજ્જવસિણ) અનાદિ અનન્ત ડોતો નથી, (તદ્દા ણં જીવાણં કમ્મોવચણ પુચ્છા) ઁજ પ્રમાણે ઁવોના કર્મોપચય (કર્મવંધ) વિપે પલુ હું ઁજ ળલુવા માથું છું કે શું ઁવોનો કર્મોપચય સાદિ સાન્ત ડોય છે? શું તે સાદિ અનન્ત ડોતો નથી? શું તે અનાદિ સાન્ત ડોતો નથી? શું તે અનાદિ અનન્ત ડોતો નથી?

તેનો જવાબ આપતા મહાવીર પ્રભુ કહે છે—“ગોયમા !” હે ગૌતમ ! વલ્લરનાં પુદ્ગલોપચય કરતાં ઁવોના કર્મવંધમાં નીચે પ્રમાણે વિશેષતા છે— (અત્થેગહયાણં જીવાણં કમ્મોવચણ સાણ્ણ સપજ્જવસિણ) કેટલાક ઁવો ઁવાં ડોય છે કે તેમનો કર્મોપચય (કર્મવંધ) સાદિ અને સાન્ત ડોય છે. જો કે

ગયા છે-જ્યોં કિ કર્મવંધ કો સાદિ માનને મેં અનેક દૂષણ આતે હેં
 ઉનમેં સે સવ સે જવદસ્ત દૂષણ ણક તો યહ આતા હે કિ કર્મવંધ યદિ
 સાદિ માના જાવેગા-તો હસકે પહિલે જીવ કો વિલકુલ સિદ્ધ કે સમાન
 હી માનના પડેગા ફિર ણેસી સ્થિતિ મેં કર્મવંધ હોગા ખી કૈસે જ્યોંકિ
 કર્મવંધકે કારણભૂત મિથ્યાત્વ અવિરતિ તો વહાં હે નહીં-ફિર ખી યદિ
 કર્મવંધ વહાં હોતા હે ણેસા કહા જાવે તો સિદ્ધોં કે ખી કર્મ કા વંધ
 હો જાના ચાહિયે-પરન્તુ હોતા નહીં હે-અતઃ સામાન્યરૂપ સે યહી
 માન્યતા હે કિ જીવ કે સાથ કર્મોં કા વંધ અનાદિકાલ કા હે, પર યહાં
 જો ઉસે સાદિરૂપ મેં પ્રકટ કિયા ગયા હે વહ કિસી કર્મપ્રકૃતિ કે વંધ
 કી અપેક્ષા સે હી કિયા ગયા હે જૈસે જિસ જીવ કો પહિલે કે ગુણ-
 સ્થાનોં મેં જિસ કર્મપ્રકૃતિ કા વંધ નહીં હોતા હે વહ જીવ યદિ આગે
 કે ગુણસ્થાનોં પર ચઢતા હે તો ઉસે ઉસ પ્રકૃતિ કા વંધ હો જાતા હે
 હસ અપેક્ષા યહ વેધ સાદિ માના ગયા ઓર જવ વહ જીવ ઉસ સ્થાન
 સે નીચે ઉતર આતા હે તો ઉસ પ્રકૃતિ કા વંધ ઉસસે છૂટ જાતા હે અતઃ
 ઉસકા અન્ત હો જાતા હે હસલિયે ણેસા કર્મવંધ સાદિ ઓર સાન્ત હોતા

સિદ્ધાન્તની દૃષ્ટિએ તો સમસ્ત જીવોના કર્મોપચયને (કર્મબંધને) અનાદિ
 કલ્પો છે, કારણ કે કર્મબંધને સાદિ (પ્રારંભ યુક્ત) માનવામાં અનેક બાધા
 રહેલ છે. સૌથી મોટી બાધા તો એ નડે છે કે કર્મબંધને એ સાદિ (પ્રારંભ
 સહિત) માનવામાં આવે તો એ કર્મબંધ થયા પહેલાં જીવને બિલકુલ સિદ્ધ
 સમાન માનવો પડશે અને એ એ વાત માની લેવામાં આવે તો એ સ્થિતિમાં
 કર્મબંધ કેવી રીતે સંભવી શકે ?

કારણ કે કર્મબંધના કારણરૂપ મિથ્યાત્વ અને અવિરતિનો તો તેમનામાં
 અભાવ હોય છે. છતાં પણ ‘ ત્યાં કર્મબંધ થાય છે, ’ એવું કહેવામાં આવે
 તો સિદ્ધોમાં પણ કર્મબંધ સ્વીકારવો પડે; પણ એવું બનતું નથી તેથી
 સામાન્ય રીતે એવી માન્યતા છે કે જીવોની સાથે કર્મોના બંધ અનાદિકાળથી
 અસ્તિત્વ ધરાવે છે. પરંતુ અહીં એ કર્મબંધને ‘ સાદિ ’ કહેવામાં આવેલો
 છે તે કોઈ કર્મપ્રકૃતિના બંધની અપેક્ષાએ જ કહેલ છે. જેમ કે એ જીવને
 આગલા શુભસ્થાનોમાં એ કર્મપ્રકૃતિનો બંધ હોતો નથી, તે જીવ એ પછીના
 શુભસ્થાનો પર ચડે છે તો તેને તે પ્રકૃતિનો બંધ થઈ જાય છે, તે દૃષ્ટિએ
 તે બંધને સાદિ માનવામાં આવેલ છે. ત્યારે જીવ તે સ્થાનથી નીચે ઉતરી
 જાય છે ત્યારે તે પ્રકૃતિનો બંધ તેને છૂટી જાય છે, તેથી તેનો અન્ત આવી
 જાય છે, તે કારણે તે કર્મબંધ સાદિ અને સાન્ત હોય છે. આ વાતને
 ધ્યાનમાં રાખીને કેટલાક જીવોના કર્મબંધરૂપ પુદ્ગલોપચયને સાદિ સાન્ત

અસ્તિ એકેષાં કતિપયાનાં જીવાનાં કર્મોપચયઃ સાદિકઃ સપર્યવસિતો ભવન્તિ । ' અત્યેગદ્યાણં અણાદૈ સપજ્જવસિણ્ ' એકેષાં કતિપયાનાં જીવાનાં તુ કર્મોપચયઃ અનાદિકઃ સપર્યવસિતઃ સાન્તોઽસ્તિ ' અત્યેગદ્યાણં અણાદૈ અપજ્જવસિણ્ ' અસ્તિ એકેષાં કતિપયાનાં જીવાનાં કર્મોપચયઃ અનાદિકઃ અપર્યવસિતઃ અનન્તઃ, કિન્તુ ' ણો ચેવ ણં જીવાણં કમ્મોવચણ સાદૈ અપજ્જવસિણ્ ' નો ચેવ સ્વલુ-નૈવ કથમપિ જીવાનાં કર્મોપચયઃ સાદિકઃ અપર્યવસિતઃ અનન્તો ભવતિ । ' ગૌતમઃ પૃચ્છતિ- ' કેણદ્દેશં ? ' હે ભદન્ત ! તત્

હૈ इसी अपेक्षा को ध्यान में रखकर यहां कर्मबंधरूप पुद्गलोपचय को किसी जीव की अपेक्षा से सादि सान्त कह दिया गया है ऐसा जानना चाहिये सूत्रकार इस विषय को स्वयं आगे स्पष्ट करनेवाले हैं-अतः विशेषरूप में इस पर कुछ नहीं लिखा जाता है-इसी कारण (अत्येग-इयाणं जीवाणं कम्मोवचण सादए सपज्जवसिण्) ऐसा कहा है । (अत्ये-गइयाणं जीवाणं अणादए सपज्जवसिण्) तथा कितनेक जीव ऐसे भी हैं कि जिनका कर्मबंधरूप पुद्गलोपचय अनादि होकर भी सान्त होता है । ऐसे वे जीव अन्तरात्मा-सम्यग्दृष्टि होते हैं । (अत्येगइयाणं अणा-इए अपज्जवसिण्) कितनेक जीव ऐसे भी हैं कि जिनका कर्मबंधरूप कर्मोपचय अनादि अनन्त होता ऐसे जीव अभव्यश्रेणी के होते हैं । किन्तु (णो चेव णं जीवाणं कम्मोवचण सादए अपज्जवसिण्) ऐसे जीव कोई भी नहीं हैं कि जिनका कर्मोपचय सादि होकर भी अनन्त ही बना रहे क्यों कि ऐसी मान्यता में मुक्ति के अभाव का प्रसङ्ग प्राप्त होता है । अब गौतम इसी विषय को विशेषरूप से स्पष्ट समझने के लिये प्रभु

કહેલ છે આ વિષયનું સૂત્રકારે પહેલાં વધારે સ્પષ્ટીકરણ કરેલું છે, તેથી અહીં તેનું વધુ પિષ્ટવેપણ કયું નથી. એ જ કારણે (અત્યેગદ્યાણં જીવાણં કમ્મોવચણ સાદૈ સપજ્જવસિણ્) કેટલાક જીવોને સાદિ સાન્ત કહ્યા છે.

(અત્યેગદ્યાણં જીવાણં અણાદૈ સપજ્જવસિણ્) કેટલાક જીવો એવાં હોય છે કે જેમનો કર્મબંધરૂપ પુદ્ગલોપચય અનાદિ હોવા છતાં સાન્ત (પ્રારંભ સહિત) હોય છે. એવાં જીવો (અન્તરાત્માઓ) સમ્યગ્દૃષ્ટિ હોય છે. (અત્યેગદ્યાણં અણાદૈ અપજ્જવસિણ્) કેટલાંક જીવો એવા હોય છે કે જેમનો કર્મબંધરૂપ પુદ્ગલોપચય અનાદિ અને અનંત હોય છે. એવાં જીવો અભવ્ય શ્રેણિના હોય છે. પરંતુ (ણો ચેવ ણં જીવાણં કમ્મોવચણ સાદૈ અપજ્જવસિણ્) કેટલાંક જીવો એવાં હોતા નથી કે જેમનો કર્મોપચય સાદિ અને અનંત હોય, કારણ કે આ પ્રકારની માન્યતાના સ્વીકારથી મુક્તિના અભાવ - સ્વીકાર-

કેનાર્થેન કેન કારણેન વ્યમુચ્યતે ? કેવાશ્ચિત્ જીવાનાં તથાવિધવર્ણિતઃ ત્રિવિધઃ કર્મોપચયો ભવતિ, ન તુ સાદિકઃ સપર્યવસિતઃ કર્મોપચયો ભવતિ ? મગવાનાદ- 'ગોયમા ! ઈરિયાવહિયવંધયસ્સ કમ્મોવચણ સાહણ સપજ્જવસિણ' હે ગૌતમ ! ઈર્યાપથિકવન્ધકસ્ય, ઈર્યાપથિકં કેવલયોગપ્રત્યયં કર્મ, તદ્વન્ધકસ્ય, ઉપ- શાન્તમોહસ્ય ધીજમોહસ્ય સયોગિકેવલિનશ્ચ કર્મોપચયઃ સાદિકઃ સપર્યવસિતઃ સાન્તો ભવતિ, ઈર્યાપથિકર્મણો હિ જીવસ્ય અવદ્ધપૂર્વસ્ય વન્ધનાત્ કર્મોપચયસ્ય

સે પૂછતે હૈં કિ-(સે કેળટ્ટેણં) હે ભદન્ત ! આપ એસા કિસ આધાર કો લેકર કહતે હૈં કિ કિન્હીં જીવોં કા કર્મોપચય સાદિ સાન્ત હૈ, કિન્હીં જીવોં કા કર્મોપચય અનાદિ સાન્ત હૈ ઓર કિન્હીં જીવોં કા કર્મોપચય અનાદિ અનન્ત હૈ-પર સાદિ અનન્ત કર્મોપચય કિસીં મી જીવ કા નહીં હૈ ? હસકે ઉત્તર મેં પ્રભુ ઝનસે કહતે હૈં કિ-(ગોયમા) હે ગૌતમ ! (ઈરિયાવહિયવંધયસ્સ કમ્મોવચણ સાહણ સપજ્જવસિણ) જો કર્મ કેવલ યોગ કે હી નિમિત્ત સે આતા હૈ-કપાય કે નિમિત્ત સે નહીં- વહ ઈર્યાપથિક હૈ હસ ઈર્યાપથિક કર્મ કા વંધ કરનેવાલા જો જીવ હૈ-જૈસે ગ્યારહવેં ૧૧ વોરહવેં ૧૨ ઓર તેરહવેં ગુણસ્થાનવર્તી જીવ ઝસકે જો કર્મોપચય હોતા હૈ વહ સાદિક ઓર સપર્યવસિત હોતા હૈ । હસમેં સાદિતા હસલિયે કહી ગઈ હૈ કિ યહ કર્મ જીવ કો નીચેકે ગુણ- સ્થાનોં મેં રહને પર નહીં વંધતા હૈ-કયોં કિ વહાં પર કપાય કા સદ્ગાવ

રવો પરશે. હવે આ વિષયના વધારે સ્પષ્ટીકરણને માટે ગૌતમ સ્વામી મહા- વીર પ્રભુને આ પ્રમાણે પ્રશ્ન પૂછે છે—

(સે કેળટ્ટેણં ?) હે ભદન્ત ! આપ શા કારણે એવું કહેા છે કે કેટ- લાક જીવોનો કર્મોપચય સાદિ સાન્ત હોય છે, કેટલાક જીવોનો કર્મોપચય અનાદિ સાન્ત હોય છે અને કેટલાક જીવોનો કર્મોપચય અનાદિ અનન્ત હોય છે, પણ કોઈ પણ જીવોનો કર્મોપચય સાદિ અનન્ત હોતો નથી ?

તેનો જવાબ આપતા મહાવીર પ્રભુ કહે છે—(ગોયમા !) હે ગૌતમ ! (ઈરિયાવહિયવંધયસ્સ કમ્મોવચણ સાહણ સપજ્જવસિણ) જે ક્કર્મબંધ યોગને કારણે જ થાય છે, કપાયને કારણે થતો નથી, એવાં કર્મબંધને “ ઈર્યાપથિક બંધ ” કહે છે. એ પ્રકારના ઈર્યાપથિક કર્મોના બંધ કરનાર જીવોનો કર્મો- પચય સાદિ અને સાન્ત હોય છે. જેમકે—અગિયાર, બાર અને તેરમા ગુણ- સ્થાને રહેલો જીવ આ પ્રકારનો હોય છે, એટલે કે તે જીવોનો કર્મોપચય સાદિ અને સાન્ત હોય છે. તેને સાદિ કહેવાનું કારણ એ છે કે જીવ આ કર્મબંધ નીચેનાં ગુણસ્થાનોમાં રહે ત્યારે બાંધતો નથી, કારણે કે નીચેનાં

અસ્તિ એકેષાં કતિપયાનાં જીવાનાં કર્મોપચયઃ સાદિકઃ સપર્યવસિતો ભવતિ । ' અત્યેગદ્યાણં અણાદૈ સપજ્જવસિણ્ ' એકેષાં કતિપયાનાં જીવાનાં તુ કર્મોપચયઃ અનાદિકઃ સપર્યવસિતઃ સાન્તોઽસ્તિ ' અત્યેગદ્યાણં અણાદૈ અપજ્જવસિણ્ ' અસ્તિ એકેષાં કતિપયાનાં જીવાનાં કર્મોપચયઃ અનાદિકઃ અપર્યવસિતઃ અનન્તઃ, કિન્તુ ' ણો ચેવ ણં જીવાણં કમ્મોવચણ્ સાદૈ અપજ્જવસિણ્ ' નો ચેવ સ્વલુ-નૈવ કથમપિ જીવાનાં કર્મોપચયઃ સાદિકઃ અપર્યવસિતઃ અનન્તો ભવતિ । ' ગૌતમઃ પૃચ્છતિ- ' કેણદ્ટ્ટં ? ' હે મદન્ત ! તત્

હૈ इसी अपेक्षा को ध्यान में रखकर यहां कर्मबंधरूप पुद्गलोपचय को किसी जीव की अपेक्षा से सादि सान्त कह दिया गया है ऐसा जानना चाहिये सूत्रकार इस विषय को स्वयं आगे स्पष्ट करनेवाले हैं-अतः विशेषरूप में इस पर कुछ नहीं लिखा जाता है-इसी कारण (अत्येगदद्याणं जीवाणं कम्मोवचण सादए सपज्जवसिण्) ऐसा कहा है । (अत्येगदद्याणं जीवाणं अणादए सपज्जवसिण्) तथा कितनेक जीव ऐसे भी हैं कि जिनका कर्मबंधरूप पुद्गलोपचय अनादि होकर भी सान्त होता है । ऐसे वे जीव अन्तरात्मा-सम्यग्दृष्टि होते हैं । (अत्येगदद्याणं अणादए अपज्जवसिण्) कितनेक जीव ऐसे भी हैं कि जिनका कर्मबंधरूप कर्मोपचय अनादि अनन्त होता ऐसे जीव अभव्यश्रेणी के होते हैं । किन्तु (णो चैव णं जीवाणं कम्मोवचण सादए अपज्जवसिण्) ऐसे जीव कोई भी नहीं हैं कि जिनका कर्मोपचय सादि होकर भी अनन्त ही बना रहे क्योंकि ऐसी मान्यता में सुक्ति के अभाव का प्रसङ्ग प्राप्त होता है । अब गौतम इसी विषय को विशेषरूप से स्पष्ट समझने के लिये प्रश्न

કહેલ છે આ વિષયનું સૂત્રકારે પહેલાં વધારે સ્પષ્ટીકરણ કરેલું છે, તેથી અહીં તેનું વધુ પિષ્ટવેપણુ કર્યું નથી. એ જ કારણે (અત્યેગદ્યાણં જીવાણં કમ્મોવચણ સાદૈ સપજ્જવસિણ્) કેટલાક જીવોને સાદિ સાન્ત કહ્યા છે.

(અત્યેગદ્યાણં જીવાણં અણાદૈ સપજ્જવસિણ્) કેટલાક જીવો એવાં હોય છે કે જેમનો કર્મબંધરૂપ પુદ્ગલોપચય અનાદિ હોવા છતાં સાન્ત (પ્રારંભ સહિત) હોય છે. એવાં જીવો (અન્તરાત્માઓ) સમ્યગ્દૃષ્ટિ હોય છે. (અત્યેગદ્યાણં અણાદૈ અપજ્જવસિણ્) કેટલાક જીવો એવા હોય છે કે જેમનો કર્મબંધરૂપ પુદ્ગલોપચય અનાદિ અને અનન્ત હોય છે. એવાં જીવો અભવ્ય શ્રેણિના હોય છે. પરંતુ (ણો ચેવ ણં જીવાણં કમ્મોવચણ સાદૈ અપજ્જવસિણ્) કોઈ પણ જીવ એવાં હોતા નથી કે જેમનો કર્મોપચય સાદિ અને અનન્ત હોય, કારણ કે આ પ્રકારની માન્યતાના સ્વીકારથી સુક્તિના અભાવને સ્વીકાર

સાદિત્વમ્ અયોગ્યવસ્થાયાં, શ્રેણિપતિપાતે વા અવન્યનાત્ સપર્યવસિતત્વં સાન્તત્વં
 ચ વોધ્યમ્ ' ભવસિદ્ધિયસ્ત કમ્મોવચણ અણાદ્દણ સપજ્જવસિણ ' ભવસિદ્ધિકસ્ય
 ભવે ભવેપુ વા સિદ્ધિર્યસ્ય તસ્ય ભવ્યસ્ય જીવસ્ય કર્મોપચયઃ અનાદિકઃ સપર્યવ-

કે કારણ જો કર્મવંધ હોગા વહ બી અપૂર્વ હી હોગા-ઔર યોગ.નિમિત્તક
 હી હોગા, શરીરજન્ય યા વાર્ણીજન્ય હી હોગા । ઇસ નિમિત્ત કો લેકર
 ઇસ કર્મવંધ મેં સાદિતા પ્રકટ કી ગઈ હૈ ઔર જવ વહી આત્મા તેરહવે
 મે ચૌદહવે ગુણસ્થાન પર આરૂઢ હો જાવેગા-યા ગ્યારહવે સે વહ જીવ
 પતિત હો જાવેગા-તો એસી સ્થિતિ મેં ડસ વંધ કિચે હુણ કર્મ કા અંત
 હો જાવેગા અતઃ ડસમેં સપર્યવસિતતા આ જાવેગી ઇસી કારણ યહાં
 પર " કિતનેક જીવોં કા કર્મવંધ સાદિ સાન્ત હોતા હૈ " એસા કહા
 ગયા હૈ (ભવસિદ્ધિયસ્સ કમ્મોવચણ અણાદ્દણ સપજ્જવસિણ) ઇક ભવ
 મેં અથવા અનેક ભવોં મેં જિસ જીવ કો સિદ્ધિ કી પ્રાપ્તિ હોગી વહ
 જીવ ભવસિદ્ધિક હૈ એસે ભવસિદ્ધિક-ભવ્ય-જીવ કે જો કર્મોપચય હૈ
 વહ અનાદિ હોતા હુઆ બી સાન્ત હોતા હૈ-ઇસકા કારણ યહ હૈ કિ
 જવતક ડસકી આત્મા મેં સમ્યગ્દર્શન ગુણ પ્રકટ નહીં હુઆ હૈ તવતક
 કર્મવંધ અનાદિ હૈ ઔર ઇસકે હોતે હી ચારિત્ર કી પ્રાપ્તિ હો જાને પર
 ઇસકા નાશકર વહ મુક્તિ મેં ચલા જાતા હૈ અતઃ ડસ જીવ કા કર્મ-

પ્રમાણે પ્રાર્થનાં શુભસ્થાનમાં પણ કપાયોની ક્ષીણતા થઈ જવાને કારણે જે
 કર્મવંધ થશે તે પણ અપૂર્વ જ હશે અને યોગનિમિત્તક જ હશે એટલે કે
 શરીરજન્ય કે વાર્ણીજન્ય જ હશે. આ કારણે આ કર્મવંધમાં સાદિતા (પ્રાર્થના
 યુક્તતા) બતાવી છે. અને જ્યારે એ જ આત્મા તેરમાં શુભસ્થાનેથી ચૌદમાં
 શુભસ્થાને ચડી જશે, અથવા અગિયારમાં શુભસ્થાનેથી નીચેની શ્રેણિના શુભ-
 સ્થાને ઉતરી જશે, ત્યારે તે બાંધેલા કર્મોના અંત આવી જશે. તે કારણે
 તેમાં સપર્યવસિતતા (સાન્તતા-અન્ત યુક્તતા) બતાવી છે. તે કારણે એવું
 કહ્યું છે કે " કેટલાક જીવોનો કર્મવંધ સાદિ અને સાન્ત હોય છે. "

(ભવસિદ્ધિયસ્સ કમ્મોવચણ અણાદ્દણ સપજ્જવસિણ) જે જીવને એક ભવમાં
 અથવા અનેક ભવમાં સિદ્ધિની પ્રાપ્તિ થવાની હોય એવા જીવને 'ભવસિદ્ધિક'
 કહે છે. ભવસિદ્ધિક-ભવ્ય-જીવોને જે કર્મોપચય હોય છે તે અનાદિ હોવા
 છતાં પણ સાન્ત (અન્ત સહિત) હોય છે. તેનું કારણ એ છે કે જ્યાં સુધી
 તેના આત્મામાં સમ્યગ્દર્શન શુભ પ્રકટ થયો નથી ત્યાં સુધી કર્મવંધ અનાદિ
 છે, પણ સમ્યગ્દર્શન પ્રકટ થતાં જ ચારિત્રની પ્રાપ્તિ થઈ જાય છે તેના (કર્મોનો)

રહતા હૈ અતઃ અવદ્ધ પૂર્વે હોને કે કારણ ઇસ કર્મ કા વંધ હોને સે યહ કર્મવંધ સાદિ માના ગયા હૈ ઓર અયોગી અવસ્થા હોને પર અર્થાત્ ચૌદહવે ગુણસ્થાન મેં ચલે જાને પર અથવા શ્રેણિ સે પતિત હોને પર ડસકા વંધ છૂટ જાતા હૈ, ઇસલિપે વહ સ્નાન્ત માના જાતા હૈ તાત્પર્ય કહને કા યહ હૈ કિ કર્મવંધ કા જવ વિચાર કિયા ગયા હૈ તો વહાં પર (જોગા પયડિપદ્દા ઠિઠ્ઠે અણુભાગા કસાયઓ હોતિ) એસા કહા ગયા હૈ અર્થાત્ પ્રકૃતિ વંધ ઓર પ્રદેશવંધ યે દો વંધ યોગ સે હોતે હૈ ઓર સ્થિતિવંધ તથા અનુભાગ વંધ યે દો વંધ કપાય સે હોતે હૈ—હસતરહ કર્મવંધ કે દો મુખ્યકારણ હૈ—એક યોગ ઓર દૂસરા કપાય જો કર્મવંધ કેવલ ગમનાગમનાદિક ક્રિયાઓં કે નિમિત્ત સે હી હોતા હૈ વહ એર્યાપથિક કર્મ કહલાતા હૈ ઇસ કર્મ કો વાંધને વાલા જીવ એર્યાપથિક વંધક કહા ગયા હૈ—દસવેં ગુણસ્થાનતક હી કપાય કા સદ્ભાવ કહા ગયા હૈ હસકે ડપર કે ગુણસ્થાનોં મેં કપાય તો હોની નહીં હૈ કેવલ યોગ હી રહતા હૈ—ચારહવેં ગુણસ્થાન મેં કપાય બિલકુલ ઉપશાન્ત રહ-સી હૈ અતઃ વહ નહીં કે ચરાધર વહાં હૈ યહાં જો કર્મપ્રકૃતિ કા વંધ હોગા ઇસી તરહ વારહવેં ગુણસ્થાન મેં ઘી કપાયોં કી ક્ષીણતા હો જાને

શુભસ્થાનોમાં કપાયનો સદ્ભાવ રહે છે તેથી અબદ્ધ પૂર્વ (પૂર્વે નહીં બંધાયેલા) હોવાને કારણે આ કર્મબંધને સાદિ (પ્રારંભ યુક્ત) કહ્યો છે. અયોગી અવસ્થામાં એટલે કે ચૌદમાં શુભસ્થાને ચડી જવાથી અથવા શ્રેણિથી નીચે ઉતરતા તેના બંધ છૂટી જાય છે, તે કારણે તેને સ્નાન્ત (અન્ત સહિત) માનેલો છે.

કર્મબંધનો ન્યારે વિચાર કરવામાં આવે ત્યારે એ વાત ધ્યાનમાં રાખવા જેવી છે કે (જોગા પયડિપદ્દા ઠિઠ્ઠે અણુભાગા કસાયઓ હોતિ) પ્રકૃતિબંધ અને પ્રદેશબંધ એ બંને બંધ યોગથી થાય છે, અને સ્થિતિબંધ તથા અનુભાગબંધ કપાયથી થાય છે. આ રીતે કર્મબંધનાં મુખ્ય બે કારણ છે—

(૧) યોગ અને (૨) કપાય.

જે કર્મબંધ ગમનાગમન સાદિ ક્રિયાઓને કારણે થાય છે તે કર્મબંધને એર્યાપથિક કર્મબંધ કહે છે, અને એવાં કર્મને બાંધનાર જીવને એર્યાપથિક બંધક કહ્યો છે. દસમાં શુભસ્થાન સુધી જ કપાયનો સદ્ભાવ કહ્યો છે, ત્યાર પછીનાં શુભસ્થાનોમાં કપાયનો અભાવ હોય છે પણ યોગનો સદ્ભાવ હોય છે. અગિયારમાં શુભસ્થાનમાં કપાય બિલકુલ ઉપશાન્ત રહે છે. તેથી ત્યાં તે નહીં જેવી જ હોય છે. ત્યાં જે કર્મપ્રકૃતિનો બંધ થશે તે અપૂર્વ

સાદિત્વમ્ અયોગ્યવસ્થાયાં, શ્રેણિપતિપાતે વા અવન્યનાત્ સપર્યવસિતત્વં સાન્વત્વં
 ચ બોધ્યમ્ ' ભવસિદ્ધિયસ્સ કર્મોવચણ અણાહણ સપજ્જવસિણ ' ભવસિદ્ધિકસ્ય
 ભવે ભવેપુ વા સિદ્ધિર્યસ્ય તસ્ય ભવ્યસ્ય જીવસ્ય કર્મોપચયઃ અનાદિકઃ સપર્યવ-

કે કારણ જો કર્મવંધ હોગા વહ્ બી અપૂર્વહી હોગા-ઔર યોગ,નિમિત્તક
 હી હોગા, શરીરજન્ય યા વાર્ણાજન્ય હી હોગા । ઇસ નિમિત્ત કો ઢેકર
 ઇસ કર્મવંધ મેં સાદિતા પ્રકટ કી ગઈ હૈ ઔર જવ વહી આત્મા તેરહવે
 મેં ચૌદહવે ગુણસ્થાન પર આરૂઢ હો જાવેગા-યા ગ્યારહવેં સે વહ જીવ
 પતિત હો જાવેગા-તો એસી સ્થિતિ મેં ડસ વંધ ક્રિયે હુણ કર્મ કા અંત
 હો જાવેગા અતઃ ડસમેં સપર્યવસિતતા આ જાવેગી ડસી કારણ યહાં
 પર " કિતનેક જીવોં કા કર્મવંધ સાદિ સાન્ત હોતા હૈ " એસા કહા
 ગયા હૈ (ભવસિદ્ધિયસ્સ કર્મોવચણ અણાહણ સપજ્જવસિણ) ઁક ભવ
 મેં અથવા અનેક ભવોં મેં જિસ જીવ કો સિદ્ધિ કી પ્રાપ્તિ હોગી વહ
 જીવ ભવસિદ્ધિક હૈ એસે ભવસિદ્ધિક-ભવ્ય-જીવ કે જો કર્મોપચય હૈ
 વહ અનાદિ હોતા હુઆ બી સાન્ત હોતા હૈ-ઇસકા કારણ યહ હૈ કિ
 જવતક ડસકી આત્મા મેં સમ્યગ્દર્શન ગુણ પ્રકટ નહીં હુઆ હૈ તવતક
 કર્મવંધ અનાદિ હૈ ઔર ઇસકે હોતે હી ચારિત્ર કી પ્રાપ્તિ હો જાને પર
 ઇસકા નાશકર વહ મુક્તિ મેં ચલા જાતા હૈ અતઃ ડસ જીવ કા કર્મ-

પ્રમાણે બારમાં ગુણસ્થાનમાં પણ ક્રપાયોની ક્ષીણતા થઈ જવાને કારણે જે
 કર્મવંધ થયે તે પણ અપૂર્વ જ હશે અને યોગનિમિત્તક જ હશે એટલે કે
 શરીરજન્ય કે વાર્ણાજન્ય જ હશે. આ કારણે આ કર્મવંધમાં સાદિતા (પ્રારંભ
 યુક્તતા) બતાવી છે. અને ન્યારે એ જ આત્મા તેરમાં ગુણસ્થાનેથી ચૌદમાં
 ગુણસ્થાને ચડી જશે, અથવા અગિયારમાં ગુણસ્થાનેથી નીચેની શ્રેણિના ગુણ-
 સ્થાને ઉતરી જશે, ત્યારે તે બાંધેલા કર્મને અંત આપી જશે. તે કારણે
 તેમાં સપર્યવસિતતા (સાન્તતા-અન્ત યુક્તતા) બતાવી છે. તે કારણે એવું
 કહ્યું છે કે " કેટલાક જીવોને કર્મવંધ સાદિ અને સાન્ત હોય છે. "

(ભવસિદ્ધિયસ્સ કર્મોવચણ અણાહણ સપજ્જવસિણ) જે જીવને એક ભવમાં
 અથવા અનેક ભવમાં સિદ્ધિની પ્રાપ્તિ થવાની હોય એવા જીવને 'ભવસિદ્ધિક'
 કહે છે. ભવસિદ્ધિક-ભવ્ય-જીવને જે કર્મોપચય હોય છે તે અનાદિ હોવા
 છતાં પણ સાન્ત (અન્ત સહિત) હોય છે. તેનું કારણ એ છે કે ન્યાં સુધી
 તેના આત્મામાં સમ્યગ્દર્શન ગુણ પ્રકટ થયો નથી ત્યાં સુધી કર્મવંધ અનાદિ
 છે, પણ સમ્યગ્દર્શન પ્રકટ થતાં જ ચારિત્રની પ્રાપ્તિ થઈ જાયથી તેનો (તે કર્મને)

સિત: સાન્તો મવતિ, ' અભવસિદ્ધિયસ્સ કમ્મોવચણ અણાહણ અપજ્જવસિણ ' અભ-
વસિદ્ધિકસ્ય ન વિઘટે મવં મણેપુ વા સિદ્ધિર્યસ્ય તસ્ય અભવ્યસ્ય જીવસ્ય કર્મો-
પચય: અનાદિકઃ અપર્યવસિત: અનન્તો મવતિ, ' સે તેણદ્દેણં ગોયમા ! एवं
વુચ્છહ-અત્યેગહયાણં જીવાણં કમ્મોવચણ સાહણં ણો ચેવ ણં જીવાણં કમ્મોવચણ
સાહણ અપજ્જવસિણ ' હે ગૌતમ ! તત્ તેનાર્થેન ઇવમ્ ઉક્તરીત્યા ઉચ્યતે-યત્-
અસ્તિ એકેપાં જીવાનાં કર્મોપચય: સાદિકઃ, સપર્યવસિત:-સાન્ત:, કેવાચ્ચિત્
અનાદિકઃ સપર્યવસિત: સાન્ત:, કેવાચ્ચિત્ અનાદિકઃ અપર્યવસિત: કર્મોપચય:
કિન્તુ નો ચૈવ સ્વલુ જીવાનાં કર્મોપચય: સાદિકઃ અપર્યવસિત: અનન્ત: સંભવતિ ।
ગૌતમ: પૃચ્છતિ-' વત્યે ણં મંતે ! કિં સાહણ સપજ્જવસિણ, ચડમંગો ? ' હે

વંધ અનાદિ હોને પર મી સાન્ત પ્રકટ ક્રિયા ગયા હૈ । ' અભવસિદ્ધિય-
સ્સ કમ્મોવચણ અણાહણ અપજ્જવસિણ) તથા જો અભવસિદ્ધિક જીવ
હૈ-કિસી મી ભવ મેં જિસે મુક્તિ પ્રાપ્ત નહીં હોતી હૈ એસે અભવ્ય જીવ
કા જો કર્મોપચય હૈ વહ અનાદિ હોકર મી અનન્ત હોતા હૈ । (સે
તેણદ્દેણં ગોયમા ! एवं વુચ્છહ, અત્યેગહયાણં જીવાણં કમ્મોવચણ સાહ-
ણં, ણો ચેવ ણં જીવાણં કમ્મોવચણ સાહણ અપજ્જવસિણ) હસી કારણ
હે ગૌતમ ! મેંને એસા કહા હૈ કિ કિતનેક જીવોં કા કર્મોપચય સાદિ
સાન્ત હોતા હૈ ઇત્યાદિ પરન્તુ કિસી મી જીવ કા વહ કર્મોપચય સાદિ
ઔર અપર્યવસિત નહીં હોતા હૈ ।

અવ ગૌતમ સ્વામી પ્રમુ સે પુન: એસા પૂછતે હૈં કિ (વત્યેણં મંતે ।
કિં સાહણ સપજ્જવસિણ, ચડમંગો) હે મદન્ત ! વસ્ત્ર વ્યા સાદિ હોકર

નાશ કરીને તે મોક્ષે બચ છે, તે કારણે તે જીવને કર્મબંધ અનાદિ હોવા
છતાં પણ સાન્ત (અન્ત સહિત) કહ્યો છે. (અભવસિદ્ધિયસ્સ કમ્મોવચણ અણા-
હણ અપજ્જવસિણ) જે જીવને કોઈ પણ ભવમાં મોક્ષની પ્રાપ્તિ થતી નથી એવાં
અભવ્ય જીવને કર્મબંધ (કર્મોપચય) અનાદિ હોવા છતાં અન્ત કહ્યો છે.
(સે તેણદ્દેણં ગોયમા ! एवं વુચ્છહ અત્યેગહયાણં જીવાણં કમ્મોવચણ સાહણં ણો
ચેવ ણં કમ્મોવચણ સાહણ અપજ્જવસિણ) હે ગૌતમ ! તે કારણે મેં એવું કહ્યું
છે કે કેટલાક જીવોને કર્મોપચય સાદિ સાન્ત હોય છે, કેટલાકને અનાદિ
સાન્ત હોય છે અને કેટલાકને અનાદિ અન્ત હોય છે, પરંતુ કોઈ પણ
જીવને કર્મોપચય સાદિ અને અન્ત હોતો નથી.

ગૌતમ સ્વામી મહાવીર પ્રમુને એવો પ્રશ્ન પૂછે છે કે (વત્યેણં મંતે !
કિં સાહણ સપજ્જવસિણ, ચડમંગો) હે મદન્ત ! શું વસ્ત્ર સાદિ સા-

भदन्त ! वत्सं खलु किम् सादिकम्-सपर्यवसितम् सान्तम् ? १, चतुर्भङ्गम्-
चत्वारो भङ्गा भवन्ति किम् ? सादिकम् अपर्यवसितम्-अनन्तम् २. अनादिकम्-
सपर्यवसितम् सान्तम् ३ ? अनादिकम्-अपर्यवसितमनन्तं ४ ? भवति किम् ? भग-
वान् आह- ' गोयमा ! वत्थे साइए सपज्जवसिए, ' हे गौतम ! वत्सं सादिकं-
सपर्यवसितम् सान्तं भवति ' अवसेसा तिन्नि वि पडिसेहेयव्वा ' अवशेषाः
सादिसान्तमिन्नास्सयोऽपि भङ्गाः प्रतिपेधयितव्याः न वाच्या इत्यर्थः । तथा च
वत्सं नो सादिकम् अनन्तम्, नो वा अनादिकम्-सान्तम्, नापि अनादिकम्-
अनन्तम्-इति भावः । गौतमः पुनः पृच्छति-' जहा णं भंते ! वत्थे साइए सप-
ज्जवसिए ' हे भदन्त ! यथा खलु वत्सं सादिकं सपर्यवसितम् सान्तम्, नो
साइए अपज्जवसिए ' नो सादिकम् अनन्तम्, ' णो अणाइए सपज्जवसिए ' नो

भो सान्तं है ? या सादि होकर भी अनन्त है ? या अनादि सान्त है ?
या अनादि अनन्त है ? इस प्रकार से वत्स के विषय में गौतम ने ये चार
भंग प्रश्न से पूछे-इसके उत्तर में प्रभु ने उनसे कहा (गोयमा ! वत्थे
साइए सपज्जवसिए) हे गौतम ! वत्स सादि सान्त है । (अवसेसा
तिन्नि वि पडिसेहेयव्वा) सादि अनन्त वह नहीं है, अनादि सान्त वह
नहीं है और न वह अनादि अनन्त ही है-इस प्रकार से अवशेष
तीन भङ्गों का यहां प्रभु ने प्रतिपेध किया अब इसी दृष्टान्त से गौत-
मस्वामी प्रभु से यह पूछते हैं कि-(जहा णं भंते ! वत्थे साइए सपज्ज-
वसिए) हे भदन्त ! जिस प्रकार से आपने वत्स को सान्त कहा है (नो
साइए अपज्जवसिए) सादि अनन्त नहीं कहा है, (णो अणाइए सप-

डे सादि अनन्त होय छे ? डे अनादि सान्त होय छे ? डे अनादि अनन्त
होय छे ? वत्थेसा विषे आ प्रकारेण आर लंओ (विकल्पे) गौतम स्वामीओ
महावीर प्रभुने पूछया.

तेनो ज्वाण आपता महावीर प्रभु कहे छे-(गोयमा !) डे गौतम !
(वत्थे साइए सपज्जवसिए) वत्स सादि सान्त होय छे, (अवसेसा तिन्नि वि
पडिसेहेयव्वा) ते सादि अनन्त होतुं नथी, अनादि सान्त होतुं नथी अने
अनादि अनन्त पणु होतुं नथी. आ रीते पाडीना प्रभु विकल्पेनो नकारात्मक
ज्वाण आप्थे छे डेवे ओ ए दृष्टान्तने आधारे गौतम स्वामी ओपेना विष-
यमां नीचेनो प्रश्न पूछे छे-

(जहाणं भंते ! वत्थे साइए सपज्जवसिए) डे भदन्त ! जेभ आपे वत्थेने
सादि अने सान्त कहुं छे, (नो साइए अपज्जवसिए) सादि अनन्त कहुं नथी,
(णो अणाइए सपज्जवसिए) अनादि सान्त कहुं नथी, अने (णो अणाइए

સિતઃ સાન્તો મવતિ, ' અમવસિદ્ધિયસ્ત કમ્મોવચણ અણાહણ અપ્પજ્જવસિણ ' અમ-
વસિદ્ધિકસ્ય ન વિધતે મવં મવેપુ વા સિદ્ધિર્યસ્ય તસ્ય અમવસ્ય જીવસ્ય કર્મો-
વચયઃ અનાદિકઃ અપર્યવસિતઃ અનન્તો મવતિ, ' સે તેણદ્દેણં ગોયમા ! एवं
वुच्चइ-अथेगइयाणं जीवाणं कम्मोवचण साइए० णो चेव णं जीवाणं कम्मोवचण
साइए अपज्जवसिण ' हे गौतम ! तत् तेनार्थेन एवम् उक्त्वा उच्यते-यद्-
अस्ति एकेषां जीवानां कर्मोपचयः सादिकः, सपर्यवसितः-सान्तः, केणाञ्चित्
अनादिकः सपर्यवसितः सान्तः, केणाञ्चित् अनादिकः अपर्यवसितः कर्मोपचयः
किन्तु नो चैव खलु जीवानां कर्मोपचयः सादिकः अपर्यवसितः अनन्तः संभवति ।
गौतमः पृच्छति-' वत्ये णं भंते ! किं साइए सपज्जवसिण, चउभंगो ? ' हे

बंध अनादि होने पर भी सान्त प्रकट किया गया है । ' अमवसिद्धि-
स्त कम्मोवचण अणाहण अपज्जवसिण) तथा जो अमवसिद्धिक जीव
है-किसी भी भव में जिसे मुक्ति प्राप्त नहीं होती है ऐसे अभव्य जीव
का जो कर्मोपचय है वह अनादि होकर भी अनन्त होता है । (से
तेणद्वेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ, अथेगइयाणं जीवाणं कम्मोवचण साइ-
ए०, णो चेव णं जीवाणं कम्मोवचण साइए अपज्जवसिण) इसी कारण
हे गौतम ! मैंने ऐसा कहा है कि कितनेक जीवों का कर्मोपचय सादि
सान्त होता है इत्यादि परन्तु किसी भी जीव का वह कर्मोपचय सादि
और अपर्यवसित नहीं होता है ।

अब गौतम स्वामी प्रभु से पुनः ऐसा पूछते हैं कि (वत्येणं भंते !
किं साइए सपज्जवसिण, चउभंगो) हे भदन्त ! वस्त्र क्या सादि होकर

नाश करीने તે મોક્ષે જાય છે, તે કારણે તે જીવને કર્મબંધ અનાદિ હોવા
છતાં પણ સાન્ત (અન્ત સહિત) કહ્યો છે. (અમવસિદ્ધિયસ્ત કમ્મોવચણ અણા-
હણ અપ્પજ્જવસિણ) જે જીવને કોઈ પણ ભવમાં મોક્ષની પ્રાપ્તિ થતી નથી એવાં
અભવ્ય જીવને કર્મબંધ (કર્મોપચય) અનાદિ હોવા છતાં અન્ત કહ્યો છે.
(સે તેણદ્દેણં ગોયમા ! एवं वुच्चइ अथेगइयाणं जीवाणं कम्मोवचण साइए० णो
चेव णं कम्मोवचण साइए अपज्जवसिण) हे गौतम ! ते कारणे मे ' एवम् ' कहुं
छे के डेटलाड जिवोने कर्मोपचय सादि सान्त होय छे, डेटलाडने अनादि
सान्त होय छे अने डेटलाडने अनादि अन्त होय छे, परंतु कौछे पण
जिवोने कर्मोपचय सादि अने अन्त होतो नथी.

ગૌતમ સ્વામી મહાવીર પ્રભુને એવો પ્રશ્ન પૂછે છે કે (વત્યેણં ભંતે !
કિં સાઈએ સપજ્જવસિણ, ચઉભંગો) હે ભદન્ત ! શું વસ્ત્ર સાદિ સા-

भदन्त ! वत्सं खलु किम् सादिकम्-सपर्यवसितम् सान्तम् ? १, चतुर्भङ्गम् ?-
 चत्वारो भङ्गा भवन्ति किम् ? सादिकम् अपर्यवसितम्-अनन्तम् २. अनादिकम्-
 सपर्यवसितम् सान्तम् ३ ? अनादिकम्-अपर्यवसितमनन्तं ४ ? भवति किम् ? भग-
 वान् आह- ' गोयमा ! वत्ये साइए सपज्जवसिए, ' हे गौतम ! वत्सं सादिकं-
 सपर्यवसितम् सान्तं भवति ' अवसेसा तिन्नि वि पडिसेहेयव्वा ' अवशेषाः
 सादिसान्तमिन्नासुरयोऽपि भङ्गाः प्रतिषेधयितव्याः न वाच्या इत्यर्थः । तथा च
 वत्सं नो सादिकम् अनन्तम्, नो वा अनादिकम्-सान्तम्, नापि अनादिकम्-
 अनन्तम्-इति भावः । गौतमः पुनः पृच्छति- ' जहा णं भंते ! वत्ये साइए सप-
 ज्जवसिए ' हे भदन्त ! यथा खलु वत्सं सादिकं सपर्यवसितम् सान्तम्, नो
 साइए अपज्जवसिए ' नो सादिकम् अनन्तम्, ' णो अणाइए सपज्जवसिए ' नो

भो सान्त है ? या सादि होकर भी अनन्त है ? या अनादि सान्त है ?
 या अनादि अनन्त है ? इस प्रकार से वत्स के विषय में गौतम ने ये चार
 भंग प्रश्न से पूछे-इसके उत्तर में प्रश्न ने उनसे कहा (गोयमा ! वत्ये
 साइए सपज्जवसिए) हे गौतम ! वत्स सादि सान्त है । (अवसेसां
 तिन्नि वि पडिसेहेयव्वा) सादि अनन्त वह नहीं है, अनादि सान्त वह
 नहीं है और न वह अनादि अनन्त ही है-इस प्रकार से अवशेष
 तीन भङ्गों का यहां प्रश्न ने प्रतिषेध किया अब इसी दृष्टान्त से गौत-
 मस्वामी प्रश्न से यह पूछते हैं कि-(जहा णं भंते ! वत्ये साइए सपज्ज-
 वसिए) हे भदन्त ! जिस प्रकार से आपने वत्स को सान्त कहा है (नो
 साइए अपज्जवसिए) सादि अनन्त नहीं कहा है, (णो अणाइए सप-

डे सादि अनंत डोय छे ? डे अनादि सान्त डोय छे ? डे अनादि अनंत
 डोय छे ? वत्सना विषे आ प्रकारना आर लगे (विकल्पे) गौतम स्वामीके
 मंडावीर प्रश्नने पूछया.

तेना ज्वाण आपता मंडावीर प्रश्न कहे छे-(गोयमा !) हे गौतम !
 (वत्ये साइए सपज्जवसिए) वत्स सादि सान्त डोय छे, (अवसेसा तिन्नि वि
 पडिसेहेयव्वा) ते सादि अनंत डोतुं नथी, अनादि सान्त डोतुं नथी अने
 अनादि अनंत पणु डोतुं नथी. आ रीते जाडीना प्रश्न विकल्पेनो नकारात्मक
 ज्वाण आप्थे छे डेवे अे न दृष्टान्तने आधारे गौतम स्वामी ज्येवना विष-
 यमां नीचेने प्रश्न पूछे छे-

(जहाणं भंते ! वत्ये साइए सपज्जवसिए) हे भदन्त ! जेभ आपे वत्सने
 सादि अने सान्त कहुं छे, (नो साइए अपज्जवसिए) सादि अनंत कहुं नथी,
 (णो अणाइए सपज्जवसिए) अनादि सान्त कहुं नथी, अने (णो अणाइए

સિતઃ સાન્તો ભવતિ, 'અભવસિદ્ધિયસ્ત કમ્મોવચણ અણાણ અપજ્જવસિણ' અભવસિદ્ધિકલ્પ ન વિઘ્ને ભવે મનેપુ વા સિદ્ધિર્યસ્ય તસ્ય અગવ્યસ્ય જીવસ્ય કર્મોપચયઃ અનાદિકઃ અપર્યવસિતઃ અનન્તો ભવતિ, 'સે તેણદ્દેણં ગોયમા ! एवं वुच्चइ-अत्येगइयाणं जीवाणं कम्मोवचण साइए० णो चेव णं जीवाणं कम्मोवचण साइए अपज्जवसिण' हे गौतम ! तत् तेनार्थेन एवम् उक्तरीत्या उच्यते-यद्-अस्ति एकेषां जीवानां कर्मोपचयः सादिकः, सपर्यवसितः-सान्तः, केषाञ्चित् अनादिकः सपर्यवसितः सान्तः, केषाञ्चित् अनादिकः अपर्यवसितः कर्मोपचयः किन्तु नो चैव खलु जीवानां कर्मोपचयः सादिकः अपर्यवसितः अनन्तः संभवति । गौतमः पृच्छति-' वत्ये णं भंते ! किं साइए सपज्जवसिण, चउभंगो ? ' हे

બંધ અનાદિ હોને પર મી સાન્ત પ્રકટ કિયા ગયા હૈ । ' અભવસિદ્ધિય-સ્ત કમ્મોવચણ અણાણ અપજ્જવસિણ) તથા જો અભવસિદ્ધિક જીવ હૈ-કિસી મી ભવ મેં જિસે મુક્તિ પ્રાપ્ત નહીં હોતી હૈ એસે અભવ્ય જીવ કા જો કર્મોપચય હૈ વહ અનાદિ હોકર મી અનન્ત હોતા હૈ । (સે તેણદ્દેણં ગોયમા ! एवं वुच्चइ, अत्येगइयाणं जीवाणं कम्मोवचण साइए०, णो चेव णं जीवाणं कम्मोवचण साइए अपज्जवसिण) इसी कारण हे गौतम ! मैंने ऐसा कहा है कि कितनेक जीवों का कर्मोपचय-सादि सान्त होता है इत्यादि परन्तु किसी भी जीव का वह कर्मोपचय सादि और अपर्यवसित नहीं होता है ।

અવ ગૌતમ સ્વામી પ્રમુ સે પુનઃ એસા પૂછતે હૈં કિ (વત્યેણં મંતે ! કિં સાઈએ સપજ્જવસિણ, ચઉમંગો) હૈ ભદન્ત ! વહ્ન વ્યા સાદિ હોકર

નાશ કરીને તે મોક્ષે ન્તય છે, તે કારણે તે જીવનો કર્મબંધ અનાદિ હોવા છતાં પણ સાન્ત (અન્ત સહિત) કહ્યો છે. (અભવસિદ્ધિયસ્ત કમ્મોવચણ અણાણ અપજ્જવસિણ) જે જીવને કોઈ પણ ભવમાં મોક્ષની પ્રાપ્તિ થતી નથી એવાં અલભ્ય જીવનો કર્મબંધ (કર્મોપચય) અનાદિ હોવા છતાં અન્ત કહ્યો છે. (સે તેણદ્દેણં ગોયમા ! एवं वुच्चइ अत्येगइयाणं जीवाणं कम्मोवचण साइए० णो चेव णं कम्मोवचण साइए अपज्जवसिण) हे गौतम ! ते कारणे भे 'एवम्' कहुं छे के डेटलाक जिवोना कर्मोपचय सादि सान्त होय छे, डेटलाकनो अनादि सान्त होय छे अने डेटलाकनो अनादि अन्त होय छे, परंतु कौछिं-पयु जिवोना कर्मोपचय सादि अने अन्त होतो नथी.

ગૌતમ સ્વામી મહાવીર પ્રમુને એવો પ્રશ્ન પૂછે છે કે (વત્યેણં મંતે ! કિં સાઈએ સપજ્જવસિણ, ચઉમંગો) હૈ ભદન્ત ! શું વહ સાદિ સાન્ત

अपर्यवसिताः अनन्ताश्च भवन्ति । गौतमः पृच्छति—‘ से केणट्टेणं ? ’ हे भदन्त ! तत् केनाग्नेन—केन कारणेन एवमुच्यते कतिपये सादिकाः सपर्यवसिताः यावत्—कतिपये अनादिकाः अपर्यवसिताः भवन्ति ? भगवानाह—‘ गोयमा ! नेरइय—तिरिक्ख—जोणिय—मणुस्स—देवा गइमागइं पडुच्च साइया सपज्जवसिया ’ हे गौतम ! नैरियिक — तिर्यग्योनिक — मनुष्य — देवाः गतिम् नरकाद्युद्धर्त्तनादिकमाश्रित्य सादिकः आगतिम्—नरकादीं गमनमाश्रित्य सपर्यवसिताः सान्ता भवन्ति, ‘ सिद्धा गइं पडुच्च साइया अपज्जवसिया ’ सिद्धाः जीवाः सिद्धगतिं प्रतीत्य आश्रित्य सादिकाः अपर्यवसिताः अनन्ताः भवन्ति । ‘ भवसिद्धिया लद्धिं पडुच्च अणाइया सपज्जवसिया, ’ भवसिद्धिकाः भव्याः जीवाः लब्धिं प्रतीत्य अनादिकाः

क्या कारण है इस बात को जानने के अभिप्राय से उनसे पूछा—(से केणट्टेणं) हे भदन्त ! ऐसा आप किस कारण से कहते हैं कि कितनेक जीव सादि सान्त हैं यावत् कितनेक जीव अनादि अनन्त हैं ? इसका उत्तर देते हुए प्रभु ने उनसे कहा—(गोयमा ! नेरइय—तिरिक्खजोणिय मणुस्स देवा गइमागइं पडुच्च साइया सपज्जवसिया) हे गौतम ! नारक, तिर्यग्योनिक, मनुष्य और देव ये नरक आदिगति में आने की अपेक्षा से सादि और आगति—उस २ गति से निकलने की अपेक्षा से सान्त माने गये हैं । (सिद्धा गइं पडुच्च साइया अपज्जवसिया) सिद्ध जीव सिद्ध गति की अपेक्षा से सादि अनन्त माने गये हैं । (भवसिद्धिया लद्धिं पडुच्च अणाइया सपज्जवसिया) भव्यजीव लब्धि की अपेक्षा अनादि सान्त माने गये हैं—क्यों कि भवसिद्धिक जीवों की भव्यत्वलब्धि

इसे लोभाना विषयमां आ प्रभारतुं प्रतिपादन सांभणीने तेनुं कारणु लणुवानी लज्जासाथी गौतम स्वामी महावीर प्रभुने आ प्रभाणु पूछे छे— (से केणट्टेणं) हे भदन्त ! आप शा कारणु अणुं कडो छे के केटलाक लोवे सादि सान्त होय छे, केटलाक सादि अनन्त होय छे, केटलाक अनादि सान्त होय छे, अने केटलाक अनादि अनन्त होय छे ?

उत्तर—(गोयमा ! नेरइयतिरिक्खजोणिय, मणुस्स देवा गइमागइं पडुच्च साइया सपज्जवसिया) हे गौतम ! नारक, तिर्यग्योनिक, मनुष्य अने देव, अने नरक आदि गतिमां आववानी अपेक्षाअे सादि छे अने नरक आदि गति-ओमांथी नीकणवानी अपेक्षाअे सान्त छे. (सिद्धा गइं पडुच्च साइया अपज्जवसिया) सिद्ध लोवेने सिद्ध गतिनी अपेक्षाअे सादि अनन्त मानवामां आवेला छे. (भवसिद्धिया लद्धिं पडुच्च अणाइया सपज्जवसिया) भवसिद्धिक लोव्य लोवेने लब्धिनी अपेक्षाअे अनादि सान्त कडो छे, कारणु के लव-

અનાદિકમ્ સપર્યવસિતં સાન્તમ્, ' ણો અણાઇણ અપ્પજ્જવસિણ ' નો અનાદિકમ્ અપર્યવસિતમ્ અનન્તમ્, ' તદ્દા ણં જીવા ણં કિં સાહ્યા સપ્પજ્જવસિયા, ચત્તારિ ણિ ભાણિયવ્વા ' હે પુચ્છા ? ' તથા સલુ જીવાઃ કિમ્ સાદિકાઃ સપર્યવસિતાઃ સાન્તાઃ ? ચનુર્ભક્તમ્-નો સાદિકાઃ અપર્યવસિતાઃ અનન્તાઃ ? નો વા અનાદિકાઃ સપર્યવસિતાઃ સાન્તાઃ ? ન વા અનાદિકાઃ અપર્યવસિતાઃ અનન્તાઃ ભવન્તિ કિમ્ ? ઇતિ પૂચ્છા પ્રશ્નઃ ? મગવાનાહ- ' ગોયમા ! અત્થેગહ્યા સાહ્યા સપ્પજ્જવસિયા, ચત્તારિ ણિ ભાણિયવ્વા ' હે ગૌતમ ? સન્તિ યત્-પ્રક્રુકે કતિપપ્પે જીવાઃ સાદિકાઃ સપર્યવસિતાઃ સાન્તાઃ ભવન્તિ, ચત્થારોડ્ડપિ મણિતવ્વાઃ તથા ચ કનિપપ્પે જીવાઃ સાદિકાઃ અપર્યવસિતાઃ અનન્તાઃ, કતિપપ્પે ચ અનાદિકાઃ સપર્યવસિતાઃ સાન્તાઃ, કતિપપ્પે તુ અનાદિકાઃ

જ્જવસિણ) અનાદિ સાન્ત નહીં કહ્યા (ણો અણાઇણ અપ્પજ્જવસિણ)
 ઓર ન અનાદિ અનન્ત હી કહ્યા હૈ (તદ્દા ણં જીવાણં કિં સાહ્યા સપ્પજ્જવસિયા ચત્તારિ ણિ ભાણિયવ્વા) તો કયા ઇસી તરહ સે જીવ ખી કેવલ સાદિ સાન્ત હી હું ? વે સાદિ અનન્ત નહીં હું ? અનાદિ સાન્ત નહીં હું ? અનાદિ અનન્ત નહીં હું ? ઇસ પ્રશ્ન કે ઉત્તર મેં પ્રશુ ને ઉનસે કહ્યા - (ગોયમા) હે ગૌતમ ! જીવોં કે વિષય મેં એસી વાત નહીં હૈ-કપોં કિ (અત્થેગહ્યા સાહ્યા સપ્પજ્જવસિયા) કિતનેક જીવ એસે ખી હું જો સાદિ સાન્ત હું, (ચત્તારિ ણિ ભાણિયવ્વા) કિતનેક જીવ એસે હું જો સાદિ અપર્યવસિત-અનન્ત હું । કિતનેક જીવ એસે ખી હું જો અનાદિ સાન્ત હું ઓર કિતનેક જીવએસે હું જો અનાદિ અનન્ત હું । ઇસ પ્રકાર સે જીવ કે વિષય મેં પ્રશુ કા પ્રતિપોદન સુનકર ગૌતમ ને એસે કથન કા

અપ્પજ્જવસિણ) અનાદિ અનન્ત કહ્યું નથી, (તદ્દા ણં જીવાણં કિં સાહ્યા સપ્પજ્જવસિયા, ચત્તારિ ણિ ભાણિયવ્વા) એજ પ્રમાણે શું હવેા પણ માત્ર સાદિ સાન્ત જ છે ? શું તેઓ સાદિ અનન્ત નથી ? શું તેઓ અનાદિ સાન્ત નથી ? શું તેઓ અનાદિ અનન્ત નથી ?

તેનો ઉત્તર આપતા મહાવીર પ્રભુએ કહ્યું—(ગોયમા !) હવેાનાં વિષયમાં એવી વાત નથી. (અત્થેગહ્યા સાહ્યા સપ્પજ્જવસિયા) કેટલાક હવેા એવાં હોય છે કે જે સાદિ સાન્ત હોય છે, (ચત્તારિ ણિ ભાણિયવ્વા) કેટલાક હવેા એવાં હોય છે કે જે સાદિ અનન્ત હોય છે, કેટલાક હવેા એવાં પણ હોય છે કે જે અનાદિ સાન્ત હોય છે, અને કેટલાક હવેા એવાં હોય છે કે જે અનાદિ અનન્ત હોય છે.

न संभवति, तथापि कालस्यानादित्वानुसारेण अहोरात्रादेरनादित्वेऽपि उत्पत्ति-
माश्रित्य सादित्वव्यवहारत्वं सिद्धेः सिद्धजीवरहितत्वाभावेन अनादित्वेऽपि
सिद्धस्य उत्पत्तिमाश्रित्य सादित्वम् अनन्तत्वमुक्तम्, तथा चोक्तम्

“ सत्त्वं साइ सरীরं न य, नामाऽऽइमय देहसम्भावो ।

कालाऽणाइत्तणओ जहा व राइं-दियाईणं ॥ १ ॥

“ सर्वं सादि शरीरं न च नामाऽऽदिमयः देहसद्भावः ।

कालाऽनादित्वान् यथा वा रात्रिदिवादीनाम् ॥ १ ॥

गति की अपेक्षा अनादि अनन्तता ही घटित होती है-सादि अनन्तता
नहीं? तो इस शंका का समाधान यह है कि सिद्धान्त के इस प्रकार
के कथन से यद्यपि सिद्धों में सिद्धिगति की अपेक्षा लेकर सादि अन-
न्तता घटित नहीं हो सकती है-फिर भी जैसे काल अनादि माना गया
है-और इसी कारण इस काल के परिणमन रूप रात और दिवस भी
अनादि सिद्ध होते हैं, क्योंकि-काल इनसे कभी शून्य रहा हो सो ऐसी
यात बनती नहीं है-फिर भी उत्पत्ति की अपेक्षा लेकर जैसे रातदिनों
को सादि कहा जाता है इसी तरह से नवीन सिद्ध जीवों की उत्पत्तिकी
अपेक्षा सिद्ध जीवों को सादि और अनन्त कहा गया है। तथा चोक्तम्

सत्त्वं साइ सरীরं न य नामाऽऽइमय देहसम्भावो ।

कालाणाइत्तणओ जहा व राइं दियाईणं ॥ १ ॥ ”

એવું કહ્યું છે કે ભૂતકાળમાં કદી પણ સિદ્ધગતિ સિદ્ધ અવેશી રહિત રહી
નથી. આ સિદ્ધાન્તના કથન અનુસાર તો સિદ્ધ અવેશમાં સિદ્ધ ગતિની અપે-
ક્ષાએ અનાદિ અનંતતા જ ઘટાવી શકાય છે-સાદિ અનંતતા ઘટાવી શકાતી નથી.

સમાધાન—સિદ્ધાન્તના આ કથન પ્રમાણે જો કે સિદ્ધોમાં સિદ્ધગતિની
અપેક્ષાએ સાદિ અનંતતા ઘટાવી શકાતી નથી, પણ જેવી રીતે કાળને અનાદિ
માન્યો છે અને તે કારણે તે કાળના પરિણમન રૂપ રાત અને દિવસ પણ
અનાદિ સિદ્ધ થાય છે, કારણ કે કાળ કદિ પણ રાત અને દિવસથી રહિત
રહ્યો નથી. છતાં પણ ઉત્પત્તિની અપેક્ષાએ જેમ રાત્રિ દિવસને સાદિ કહેવામાં
આવે છે, એજ પ્રમાણે નવિન સિદ્ધ અવેશની ઉત્પત્તિની અપેક્ષાએ સિદ્ધ
અવેશને સાદિ અને અનંત કહ્યા છે. કહ્યું પણ છે કે—

“ સત્ત્વં સાઈ સરીરં ન ચ નામાઽઽઈમય દેહસમ્ભાવો ।

કાલાણાઈત્તણઓ જહા વ રાઈં દિયાઈણં ॥ ૧ ॥ ”

सपर्यवसिताः सान्ता भवन्ति, भवसिद्धिदानां जीवानां भव्यतालब्धिः सिद्धत्वे सति निर्वर्तते इति कृता अनादिकाः सपर्यवसिताः सान्ताः भवन्ति । 'अभव-सिद्धिया संसारं पडुच्च अणाइया अपज्जवसिया' अभवसिद्धिका अभव्या जीवाः संसारं प्रतीत्य आश्रित्य अनादिकाः अपर्यवसिताः अन्तरङ्गिता भवन्ति ? 'से तेणट्ठेणं' तत् तेनार्येण हे गौतम ! उपर्युक्तरीत्या एवमुच्यते जीवाश्रतुर्विधा भवन्ति, यद्यपि ।

'साई अपज्जवसिया, सिद्धा न य नाम तीयकालम्मि ।

आसि कयाइ वि सुग्गा, सिद्धी सिद्धेहिं सिद्धंते' ॥ १ ॥

सादयः अपर्यवसिताः सिद्धा न च नामाऽतीतकाले । ॥ १ ॥

आसीत् कदाचिदपि शून्या सिद्धिः सिद्धैः सिद्धान्ते' इति वचनप्रमाण्यात् भूतकाले सिद्धजीवरहितसिद्धेरभावप्रतिपादनेन सिद्धस्यानादित्वात् सादित्वं

सिद्ध अवस्था प्राप्त कर लेने पर दूर हो जाती है। इसलिये इस अपेक्षा उन्हें अनादि सान्त प्रकट किया गया है। (अभवसिद्धिया संसारं पडुच्च-अणाइया अपज्जवसिया) जो अभव्य होते हैं वे संसार से कभी भी पार नहीं होते हैं-अतः संसार की अपेक्षा लेकर अभव्यजीव अनादि अनन्त कहे गये हैं। (से केणट्ठेणं) इस कारण हे गौतम ! मैंने उपर्युक्त रूप से ऐसा कहा है कि जीव चारों प्रकार के होते हैं। यद्यपि ।

साई अपज्जवसिया सिद्धा न य नाम तीय कालम्मि, ।

आसि कयावि सुग्गा सिद्धी सिद्धेहिं सिद्धंते ॥ १ ॥

यहां पर कोई ऐसी आशंका कर सकता है कि आप सिद्ध जीवों को सिद्धिगति की अपेक्षा से सादि अनन्त कैसे प्रकट कर रहे हैं-क्यों कि सिद्धान्त का ऐसा वचन है कि अतीत कालमें कभी भी सिद्धि सिद्ध जीवोंसे शून्य रही नहीं है। तो इस सिद्धान्तवचनसे तो सिद्धजीवोंमें सिद्ध-

सिद्धिक लोचनी लब्धत्व-लब्धि सिद्धपद प्राप्त करता न दूर थोड़ा नय छे, ते रीते विचार करता तेमने अनादि सान्त कक्षा छे (अभवसिद्धिया संसारं पडुच्च अणाइया अपज्जवसिया) ले अलब्ध लोचो डोय छे तेज्या कदि पणु संसारने तरी नथे शकता नथी, ते कारणे संसारनी अपेक्षाजे तेमने अनादि अनन्त कक्षा छे. (से केणट्ठेणं) हे गौतम ! उपर्युक्त कारणे मे अणु कक्षु छे के केटलाक लोचो सादि सान्त डोय छे, धत्यादि. ले के

साई अपज्जवसिया सिद्धा न य नाम तीयकालम्मि,

आसि कयावि सुग्गा सिद्धि सिद्धेहिं सिद्धंते ॥ १ ॥

अर्द्धा कोषने जेवी शंका उद्भवती शके के आप सिद्ध लोचने सिद्ध-गतिनी अपेक्षाजे सादि अनन्त केवी रीते कडो छे ? कारणे के सिद्धान्तमें

ન સંભવતિ, તથાપિ કાલસ્વાનાદિત્વાનુસારેણ અહોરાત્રાદેરનાદિત્વેઽપિ ઉત્પત્તિ-
માશ્રિત્ય સાદિત્વવ્યવહારયન્ સિદ્ધેઃ સિદ્ધજીવરદિત્વાભાવેન અનાદિત્વેઽપિ
સિદ્ધસ્ય ઉત્પત્તિમાશ્રિત્ય સાદિત્વમ્ અનન્તત્વમુક્તમ્, તથા ચોક્તમ્

“ સર્વં સાદ્ સરીરં ન ય, નામાઽઽમય દેહસઞ્ચભાવો ।

કાલાઽનાદિત્તણ્ણઞ્ચો જહા વ રાઈ-દિવાઈણં ॥ ૧ ॥

“ સર્વં સાદિ શરીરં ન ચ નામાઽઽમયઃ દેહસઞ્ચભાવઃ ।

કાલાઽનાદિત્વાત્ યથા વા રાત્રિદિવાદીનામ્ ॥ ૧ ॥

ગતિ કી અપેક્ષા અનાદિ અનન્તતા હી ઘટિત હોતી હૈ-માદિ અનન્તતા
નહીં ? તો ઇત્ત શંકા કા સમાધાન યહ હૈ કિ સિદ્ધાન્ત કે ઇસ પ્રકાર
કે કથન સે યચ્ચપિ સિદ્ધોં મેં સિદ્ધિગતિ કી અપેક્ષા લેકર સાદિ અન-
ન્તતા ઘટિત નહીં હો સક્તી હૈ-ફિર ખી જૈસે કાલ અનાદિ માના ગયા
હૈ-ઔર ઇસી કારણ ઇસ કાલ કે પરિણમન રૂપ રાત ઔર દિવસ ખી
અનાદિ સિદ્ધ હોતે હૈં, ક્યોં કિ-કાલ ઇનસે કમી શૂન્ય રહા હો સો પેસી
વાત ઘનતી નહીં હૈ-ફિર ખી ઉત્પત્તિ કી અપેક્ષા લેકર જૈસે રાતદિનોં
કો સાદિ કહા જાતા હૈ ઇસી તરહ સે નવીન સિદ્ધ જીવોં કી ઉત્પત્તિકી
અપેક્ષા સિદ્ધ જીવોં કો સાદિ ઔર અનન્ત કહા ગયા હૈ । તથા ચોક્તમ્

સર્વં સાદ્ સરીરં ન ય નામાઽઽમય દેહસઞ્ચભાવો ।

કાલાઽનાદિત્તણ્ણઞ્ચો જહા વ રાઈ દિવાઈણં ॥ ૧ ॥”

એવું કહ્યું છે કે ભૂતકાળમાં કદી પણ સિદ્ધગતિ સિદ્ધ જીવોથી રહિત રહી
નથી. આ સિદ્ધાન્તના કથન અનુસાર તો સિદ્ધ જીવોમાં સિદ્ધ ગતિની અપે-
ક્ષાએ અનાદિ અનન્તતા ન ઘટાવી શકાય છે-સાદિ અનન્તતા ઘટાવી શકાતી નથી.

સમાધાન—સિદ્ધાન્તના આ કથન પ્રમાણે જો કે સિદ્ધોમાં સિદ્ધગતિની
અપેક્ષાએ સાદિ અનન્તતા ઘટાવી શકાતી નથી, પણ જેવી રીતે કાળને અનાદિ
માન્યે છે અને તે કારણે તે કાળના પરિણમન રૂપ રાત અને દિવસ પણ
અનાદિ સિદ્ધ થાય છે, કારણ કે કાળ કદિ પણ રાત અને દિવસથી રહિત
રહ્યો નથી. છતાં પણ ઉત્પત્તિની અપેક્ષાએ જેમ રાત્રિ દિવસને સાદિ કહેવામાં
આવે છે, એજ પ્રમાણે નવિન સિદ્ધ જીવોની ઉત્પત્તિની અપેક્ષાએ સિદ્ધ
જીવોને સાદિ અને અનન્ત કહ્યા છે. કહ્યું પણ છે કે—

“ સર્વં સાદ્ સરીરં ન ય નામાઽઽમય દેહસઞ્ચભાવો ।

કાલાઽનાદિત્તણ્ણઞ્ચો જહા વ રાઈ દિવાઈણં ॥ ૧ ॥”

“ સર્વો સાઈ સિદ્ધો ન યાદિમો વિજ્ઞહ તદ્દા તં ચ ।

સિદ્ધી સિદ્ધા ય સયા નિષ્ઠિદ્ધા રોહપુચ્છાપ્ ॥ ૨ ॥

“ સર્વઃ સાદિઃ સિદ્ધઃ ન ચાદિમો વિચિતે તથા તચ ।

સિદ્ધિઃ સિદ્ધાથ સદા નિર્દિષ્ટા રોહપૃચ્છાયામ્ ॥ ૨ ॥ ઇતિ । સૂ૦ ૩ ॥

॥ કર્મસ્થિતિવક્તવ્યતા ॥

પૂર્વે કર્મોપચયસ્ય સાદિસાન્તત્વમુક્તમ્, તત્સમ્બન્ધ્યાન્ કર્મણઃ ભેદાન્ સ્થિતિ
ચ મરૂપયિતુમાહ—‘ કઙ્ઞ ણં મંતે ! ’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—કઙ્ઞ ણં મંતે ! કમ્મપ્પયડીઓ પળ્લણ્ણાઓ ?
ગોચમા ! અટ્ટકમ્મપ્પયડીઓ પળ્લણ્ણાઓ તં જહા—

સર્વો સાઈ સિદ્ધો ન યાદિમો વિજ્ઞહ તદ્દા તં ચ ॥

સિદ્ધી સિદ્ધા ય સયા નિષ્ઠિદ્ધા રોહપુચ્છાપ્ ॥૨॥ ”

તાત્પર્યં યદ્દ હૈ કિ—કાલ અનાદિ હૈ—હમ કારણ કિસી કા ખી એસે
શરીર કા સજ્ઞાવ નહીં હૈ કિ જો સચ સે પહિલા હો, ફિર ખી શરીર
સાદિ હૈ એસા કહા હી જાતા હૈ ઇસી પ્રકાર સે રાતદિન મેં ખી એસા હી
સમજ્ઞના ચાહિયે અર્થાત્ કોઈ રાતદિવસ ખી એસા નહીં હૈ જો સચ સે
પહિલા હો—ફિર ખી રાતદિવસ સાદિ પ્રકટ કિયે ગયે હૈ ઇસી પ્રકાર સે
સિદ્ધિ કિસીખી સમય સિદ્ધોં રહિત નહીં હોતી હૈ ઇસી કારણ અમુક
જીવ સર્વ પ્રથમ સિદ્ધ હુઆ હૈ એસા નિશ્ચય નહીં હોતા હૈ ફિર ખી ઉત્પત્તિ
કો હેકર સિદ્ધોંકો સાદિ અનન્ત કહા ગયા ગયા હૈ । ઇસી કારણ રોહક
અનગારકે પ્રશ્નોંમેં સિદ્ધિ ઓર સિદ્ધ અનાદિ પ્રકટ કિયે ગયે હૈ ॥સૂ૦૩॥

“ સર્વો સાઈ સિદ્ધો ન યાદિમો વિજ્ઞહ તદ્દા તં ચ ।

સિદ્ધિ સિદ્ધા ય સયા નિષ્ઠિદ્ધા રોહપુચ્છાપ્ ॥ ૨ ॥ ”

ભાવાર્થ—કાળ અનાદિ છે, તે કારણે એવું કોઈ પણ શરીર સંભવી
શકતું નથી કે જે સૌથી પહેલું હોય ! છતાં પણ “ શરીર સાદિ છે, ” એવું
કહેવામાં આવે છે. રાતદિવસ વિષે પણ એવું જ સમજવું. એટલે કે કોઈપણ
રાત્રિદિવસ એવાં નથી કે જેને સૌથી પહેલા માની શકાય । છતાં પણ રાત્રિ
દિવસને સાદિ કહેલાં છે. એજ પ્રમાણે સિદ્ધિ કોઈ પણ સમયે સિદ્ધોથી
રહિત હોતી નથી. તે કારણે એવો નિશ્ચય કરી શકાતો નથી કે અમુક જીવ
સૌથી પહેલો સિદ્ધ થયો છે. છતાં પણ ઉત્પત્તિની અપેક્ષાએ સિદ્ધોને સાદિ
અનન્ત કહ્યા છે. એજ કારણે શેઠક અણુગારના પ્રશ્નોમાં સિદ્ધિ અને સિદ્ધને
અનાદિ પ્રકટ કરેલ છે. ॥ સૂત્ર ૩ ॥

णाणावरणिज्जं, दरिसणावरणिज्जं, जाव-अंतराइयं । णाणा
वरणिज्जस्स णं भंते ! कम्मस्स केवइयं कालं वंधट्ठिई
पणत्ता ? गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तीसं
सागरोवमकोडाकोडीओ, तिन्नि यं वाससहस्साइं अवाहा,
अवाहूणिया कम्मट्ठिई—कम्मनिसेओ, एवं दरिसणावरणिज्जं
वेयणिज्जं जहत्तेणं दो समया उक्कोसेणं जहा णाणावरणिज्जं,
मोहणिज्जं जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं सत्तरि सागरोवम-
कोडाकोडीओ, सत्तय वास सहस्साणि अवाहा अवाहूणिया
कम्मट्ठिई कम्मनिसेओ, आउगं जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाणि पुव्वकोडितिभागो अवाहा,
अवाहूणिया कम्मट्ठिई—कम्मनिसेओ, नाम-गोयाणं जहण्णेणं
अट्ठ मुहुत्ता, उक्कोसेणं वीसं सागरोवमकोडाकोडीओ, दोणिण
य वाससहस्साणि अवाहा, अवाहूणिया कम्मट्ठिई—कम्मनि-
सेओ, अंतराइयं जहा--णाणावरणिज्जं ॥ सू० ४ ॥

छाया—कति खलु भदन्त ! कर्मप्रकृतयः प्रज्ञप्ताः ? गौतम ! अष्ट कर्म-
प्रकृतयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—ज्ञानावरणीयम्, दर्शनावरणीयम्, यावत्-अन्तरायिकम् ।

कर्मस्थिति वक्तव्यता—

‘ कइणं भंते ! कम्मप्पगडीओ ’ इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(कइणं भंते ! कम्मप्पयडीओ पणत्ताओ) हे भदन्त !
कर्मप्रकृतियां कितनी कही गई हैं ? (गोयमा ! अट्ठ कम्मप्पयडीओ पणत्ताओ)

कर्मस्थिति वक्तव्यता—

“ कइणं भंते ! कम्मप्पगडीओ ” इत्यादि—

सुत्रार्थ—(कइणं भंते ! कम्मप्पयडीओ पणत्ताओ) हे भदन्त ! कर्म-
प्रकृतियों के कितनी कही हैं ? (गोयमा ! अट्ठ कम्मप्पयडीओ पणत्ताओ)

“ સર્વો સાઈ સિદ્ધો ન યાદિમો વિજ્ઞઃ તદ્દા તં ન ।

સિદ્ધી સિદ્ધા ય સયા નિષ્ણિદ્ધા રોહપુચ્છાણ ” ॥ ૨ ॥

“ સર્વઃ સાદિઃ સિદ્ધઃ ન વાદિમો વિગતં તથા તચ ।

સિદ્ધિઃ સિદ્ધાથ સદા નિર્ણિદ્ધા રોટપૃચ્છાયામ્ ॥ ૨ ॥ ર્નિ ૧. મૂ૦ ૩ ॥

॥ કર્મસ્થિતિવક્તવ્યતા ॥

પૂર્વે કર્મોપચયસ્ય સાદિસાન્તત્વપુક્તમ્, તત્સમ્બન્ધાન્ કર્મણઃ ખેદાન્ સ્થિતિ
ચ પ્રરૂપયિતુમાહ—‘ ક્વ ણં મંતે ! ’ શ્વાદિ ।

મૂલમ્—ક્વ ણં મંતે ! કમ્મપ્પયડીઓ પ્પણત્તાઓ ?
ગોયમા ! અટુકમ્મપ્પયડીઓ પ્પણત્તાઓ તં જહા—

સર્વો સાઈ સિદ્ધો ન યાદિમો વિજ્ઞઃ તદ્દા તં ચ ॥

સિદ્ધી સિદ્ધા ય સયા નિષ્ણિદ્ધા રોહપુચ્છાણ ॥૨॥ ”

તાત્પર્ય યહ હૈ કિ—કાલ અનાદિ હૈ—ઇમ કારણ કિસી કા મી એસે
શરીર કા સજ્ઞાવ નહીં હૈ કિ જો સવ સે પહિલા હો, ફિર મી શરીર
સાદિ હૈ એસા કહા હી જાતા હૈ ઇસી પ્રકાર સે રાતદિન મેં મી એસા હી
સમજ્ઞના ચાહિયે અર્થાત્ કોઈ રાતદિવસ મી એસા નહીં હૈ જો સવ સે
પહિલા હો—ફિર મી રાતદિવસ સાદિ પ્રકટ કિયે ગયે હૈ ઇસી પ્રકાર સે
સિદ્ધિ કિસીમી સમય સિદ્ધોં રહિત નહીં હોતી હૈ ઇસી કારણ અમુક
જીવ સર્વ પ્રથમ સિદ્ધ હુઆ હૈ એસાનિશ્ચય નહીં હોતા હૈ ફિર મી ઉત્પત્તિ
કો લેકર સિદ્ધોંકો સાદિ અનન્ત કહા ગયા ગયા હૈ । ઇસી કારણ રોહક
અનગારકે પ્રશ્નોંમેં સિદ્ધિ ઓર સિદ્ધ અનાદિ પ્રકટ કિયે ગયે હૈ ॥મૂ૦૩॥

“ સર્વો સાઈ સિદ્ધો ન યાદિમો વિજ્ઞઃ તદ્દા તં ચ ।

સિદ્ધિ સિદ્ધા ય સયા નિષ્ણિદ્ધા રોહપુચ્છાણ ॥ ૨ ॥ ”

ભાવાર્થ—કાળ અનાદિ છે, તે કારણે એવું કોઈ પણ શરીર સંભવી
શક્તું નથી કે જે સૌથી પહેલું હોય । છતાં પણ “ શરીર આદિ છે, ” એવું
કહેવામાં આવે છે. રાતદિવસ વિષે પણ એવું જ સમજવું. એટલે કે કોઈપણ
રાત્રિદિવસ એવાં નથી કે જેને સૌથી પહેલા માની શકાય । છતાં પણ રાત્રિ
દિવસને સાદિ કહેલાં છે. એજ પ્રમાણે સિદ્ધિ કોઈ પણ સમયે સિદ્ધોથી
રહિત હોતી નથી. તે કારણે એવો નિશ્ચય કરી શકાતો નથી કે અમુક જીવ
સૌથી પહેલાં સિદ્ધ થયો છે. છતાં પણ ઉત્પત્તિની અપેક્ષાએ સિદ્ધોને સાદિ
અનન્ત કહ્યા છે. એજ કારણે શેડક અણુગારના પ્રશ્નોમાં સિદ્ધિ અને સિદ્ધને
અનાદિ પ્રકટ કરેલ છે. ॥ સૂત્ર ૩ ॥

નાન્નર્મુહર્તમ્, ઉત્કર્ષેણ સપ્તતિસાગરોપમકોટીકોટયઃ, સત્ત ચ વર્ષસહસ્રાણિ અવાધા, અવાધોનિકા કર્મસ્થિતિઃ કર્મનિપેક્ઃ આયુષ્કં જઘન્યેનાન્નર્મુહર્તમ્, ઉત્કર્ષેણ ત્રયલ્લિ-
શ્ચ સાગરોપમાણિ, પૂર્વકોટીત્રિભાગઃ અવાધા, અવાધોનિકા, કર્મસ્થિતિઃ-કર્મ-
નિપેક્ઃ । નામ-ગોત્રયોઃ જઘન્યેનાષ્ટ મુહૂર્તાનિ, ઉત્કર્ષેણ વિગ્રતિસાગરોપમકોટી

નીચ કર્મ ક્ષી જઘન્ય સ્થિતિ અકપાય આત્મા ક્ષી અપેક્ષા દો સમય ક્ષી
હૈ ઓર ઉત્કૃષ્ટ સ્થિતિ જ્ઞાનાવરણીય કર્મ ક્ષી જૈસી તીસ ૩૦ કોડાકોડી
સાગરોપમ ક્ષી હૈ । (મોહણિજ્ઞં જહ્ણણેણં, અંતોમુહુત્તં ચક્રોસેણં સત્ત-
રિસાગરોવમકોટાકોટીઓ) મોહનીય કર્મ ક્ષી વંધસ્થિતિ જઘન્ય તો
અન્તર્મુહર્ત ક્ષી હૈ ઓર ઉત્કૃષ્ટ ૭૦ સત્તર કોડાકોડી સાગરોપમ ક્ષી હૈ ।
(સત્ત ય વાસ સહસ્સાણિ અવાહા-અવાહુણિયા કમ્મટ્ઠિઈ કમ્મનિસેઓ)
૭૦૦૦ વર્ષ કા ઇસકા અવાધાકાલ હૈ ઇસ અવાધાકાલ સે રહિત જો
કર્મસ્થિતિ હૈ વહ ઇસકા કર્મનિપેક્ હૈ । (આઝગં જહ્ણણેણં અંતોમુહુત્તં,
ચક્રોસેણં તેત્તીસં સાગરોવમાણિ પુન્નવકોડિતિભાગો અવાહા અવાહુણિયા
કમ્મટ્ઠિઈ કમ્મનિસેઓ) આયુકર્મ ક્ષી જઘન્યસ્થિતિ અન્તર્મુહર્ત ક્ષી હૈ
-ઉત્કૃષ્ટસ્થિતિ તેત્તીસ ૩૩ સાગરોપમ ક્ષી હૈ ઓર ઇસકા અવાધાકાલ
પૂર્વકોટિ કા ત્રિભાગ પ્રમાણ હૈ ઇસ અવાધાકાલ સે રહિત જો કર્મસ્થિતિ
હૈ, વહ ઇસકા કર્મનિપેક્કાલ હૈ । (નામ-ગોત્રાણં જહ્ણણેણં અદ્દમુહુત્તા,

જઘન્ય સ્થિતિ અકપાય આત્માની અપેક્ષાએ જે સમયની છે અને ઉત્કૃષ્ટ
સ્થિતિ જ્ઞાનાવરણીય કર્મના બેટલી જ-ત્રીસ કોડાકોડી સાગરોપમની છે.
(મોહણિજ્ઞં જહ્ણણેણં અંતોમુહુત્તં ચક્રોસેણં સત્તરિસાગરોવમકોડાકોડીઓ) મોહ-
નીય કર્મની વંધસ્થિતિ ઓછામાં ઓછી અન્તર્મુહૂર્તની અને વધારેમાં વધારે
૭૦ કોડાકોડી સાગરોપમની છે.

(સત્ત ય વાસ સહસ્સાણિ અવાહા-અવાહુણિયા કમ્મટ્ઠિઈ કમ્મનિસેઓ)
તેનો આબાધકાલ ૭૦૦૦ વર્ષનો છે. તે આબાધકાળ સિવાયની જે કર્મસ્થિતિ
છે તે તેનો કર્મનિપેક્ (કર્મવેદનાનો કાળ) છે.

(આઝગં જહ્ણણેણં અંતોમુહુત્તં ચક્રોસેણં તેત્તીસં સાગરોવમાણિ પુન્નવકોડિતિભાગો
અવાહા, અવાહુણિયા કમ્મટ્ઠિઈ કમ્મનિસેઓ) આયુકર્મની સ્થિતિ ઓછામાં
ઓછી અન્તર્મુહૂર્તની અને વધારેમાં વધારે ૩૩ સાગરોપમની છે, અને તેનો
આબાધકાળ પૂર્વ કોટિના ત્રીસ ભાગ બેટલો છે, તે આબાધકાળ સિવાયની
જે કર્મસ્થિતિ છે, તે તેનો કર્મનિપેક્ (કર્મવેદનાનો કાળ) છે.

(નામ-ગોત્રાણં જહ્ણણેણં અદ્દમુહુત્તા, ચક્રોસેણં વીસં સાગરોવમકોડાકોડીઓ

જ્ઞાનાવરણીયસ્ય સ્વત્તુ ભદન્ત ! કર્મણઃ ક્ષિયન્તં ક્ષાન્તં વંધસ્થિતિઃ પ્રપ્નતા ? ગૌતમ !
 જયન્નેનાન્તર્મુહૂર્તામ્, ઉત્કૃષ્ટેન ત્રિસતાગરોપમકોટીકોટયઃ, ત્રીણિ ચ વર્ષ
 સહસ્રાણિ અવાધા, અવાધોનિકા કર્મસ્થિતિઃ—કર્મનિપેદઃ એવં દર્શનાવરણીય-
 મપિ, વેદનીયં જયન્નેન ત્રી સમયાં ઉત્કૃષ્ટેન યથા જ્ઞાનાવરણીયમ્, મોહનીયં જયન્ને-

ત્તોઓ) હે ગૌતમ ! કર્મપ્રકૃતિયાં આઠ કહી ગઈ હું । (તં જહા) જો હસ પ્રકાર સે હું (ળાળાવરણિજ્જં, દરિસળાવરણિજ્જં જાવ અંતરાયં) જ્ઞાના વરણીય, દર્શનાવરણીય, યાવત્ અન્તરાય । (ળાળાવરણિજ્જસ્સ ણં મંતે ! કમ્મસ્સ કેવહ્યં કાલં વંધટ્ઠિઈં પળ્ળત્તા) હે ભદન્ત ! જ્ઞાનાવર- ણીય કર્મ કી વંધ સ્થિતિ કિતને કાલતક કી કહી ગઈ હું ? (ગોયમા) હે ગૌતમ ! (જહળ્ણેણં અંતો મુહુત્તં, ઉકોસેણં તીસં સાગરોવમકોડાકો- ડીઓ—તિન્નિય વાસસહસ્સાઈં આવાહા) જયન્ન સે અન્તમુહુત્તં કી ઓર ઉત્કૃષ્ટ સે તીસ સાગરોપમ કોડાકોડી કી જ્ઞાના વરણીય કર્મ કી વંધસ્થિતિ કહી ગઈ હે । તથા હસ કા અવાધાકાલ તીન હજાર વર્ષ કા કહા ગયા હે (અવાહુળિયા કમ્મટ્ઠિઈં કમ્મનિસેઓ) તથા અવાધાકાલ સે રહિત જો કર્મસ્થિતિ હે વહ કર્મનિપેક હે (એવં દરિસળાવરણિજ્જં- પિ) હસી તરહ સે દર્શનાવરણીય કર્મ કે વિપય મેં ધી જાનના ચહિયો (વેયળિજ્જં જહળ્ણેણં વો સમયા, ઉકોસેણં જહા ળાળાવરણિજ્જં) વેદ-

હે ગૌતમ ! કર્મપ્રકૃતિઓ આઠ કહી છે (તં જહા) તે આઠ પ્રકાર નીચે પ્રમાણે છે.

(ળાળાવરણિજ્જં, દરિસળાવરણિજ્જં જાવ અંતરાયં) જ્ઞાનાવરણીય, દર્શના- વરણીય, વેદનીય, મોહનીય, આયુષ્ક, નામ, ગોત્ર અને અન્તરાય.

(ળાળાવરણિજ્જસ્સ ણં મંતે ! કમ્મસ્સ કેવહ્યં કાલં વંધટ્ઠિઈં પળ્ળત્તા ?)

હે ભદન્ત ! જ્ઞાનાવરણીય કર્મની બંધ સ્થિતિ કેટલા કાળ પર્યાંતની કહી છે ?

(ગોયમા !) હે ગૌતમ ! (જહળ્ણેણં અંતોમુહુત્તં ઉકોસેણં તીસં સાગરોવમ-

કોડાકોડીઓ—તિન્નિય વાસસહસ્સાઈં આવાહા.) જ્ઞાનાવરણીય કર્મની બંધસ્થિતિ જયન્નની અપેક્ષાએ (ઓછામાં ઓછી) અન્તમુહુત્તની અને ઉત્કૃષ્ટની અપે- ક્ષાએ (વધારેમાં વધારે) ત્રીસ સાગરોપમ કોડાકોડી કાળની કહી છે. તથા તેના આબાધાકાળ (કર્મબંધ થયા પછી કર્મ ઉદયમાં ન આવે ત્યાં સુધીના કાળ) ત્રણ હજાર વર્ષનો કહ્યો છે. (અવાહુળિયા કમ્મટ્ઠિઈં કમ્મનિસેઓ) તથા આબાધાકાળ સિવાયની જે કર્મસ્થિતિ છે તેને કર્મનિપેક કહે છે. (એવં દરિ- સળાવરણિજ્જંપિ) એજ પ્રમાણે દર્શનાવરણીય કર્મના વિપયમાં પણ સમજવું. (વેયળિજ્જં જહળ્ણેણં વો સમયા ઉકોસેણં જહા ળાળાવરણિજ્જં) વેદનીય કર્મની

નાન્તર્મુહૂર્તમ્, ઉત્કર્ષેણ સત્તતિસાગરોપમકોટીકોટયઃ, સત્ત ચ વર્ષસહસ્રાણિ અવાધા, અવાધોનિકા કર્મસ્થિતિઃ કર્મનિપેક્ઃ આયુષ્કં જઘન્યેનાન્તર્મુહૂર્તમ્, ઉત્કર્ષેણ ત્રયલ્લિ- શ્વ સાગરોપમાણિ, પૂર્વકોટીત્રિભાગઃ અવાધા, અવાધોનિકા, કર્મસ્થિતિઃ-કર્મ- નિપેક્ઃ । નામ-ગોત્રયોઃ જઘન્યેનાષ્ટ ગુહૂર્તાનિ, ઉત્કર્ષેણ વિશ્વતિસાગરોપમકોટી

નીચ કર્મ કી જઘન્ય સ્થિતિ અકપાય આત્મા કી અપેક્ષા દો સમય કી હૈ ઓર ઉત્કૃષ્ટ સ્થિતિ જ્ઞાનાવરણીય કર્મ કે જૈસી તીસ ૩૦ કોડાકોડી સાગરોપમ કી હૈ । (મોહણિજ્ઞં જહ્ણેણં, અંતોમુહુત્તં ઉક્ષોસેણં સત્ત- રિસાગરોવમકોડાકોડીઓ) મોહનીય કર્મ કી વંધસ્થિતિ જઘન્ય તો અન્તર્મુહૂર્ત કી હૈ ઓર ઉત્કૃષ્ટ ૭૦ સત્તર કોડાકોડી સાગરોપમ કી હૈ । (સત્ત ય વાસ સહસ્સાણિ અવાહા-અવાહુણિયા કમ્મટ્ઠિં કમ્મનિસેઓ) ૭૦૦૦ વર્ષ કા ઇસકા અવાધાકાલ હૈ ઇસ અવાધાકાલ સે રહિત જો કર્મસ્થિતિ હૈ વહ ઇસકા કર્મનિપેક્ હું । (આઠગં જહ્ણેણં અંતોમુહુત્તં, ઉક્ષોસેણં તેત્તીસં સાગરોવમાણિ પુવ્વકોડિતિભાગો અવાહા અવાહુણિયા કમ્મટ્ઠિં કમ્મનિસેઓ) આયુકર્મ કી જઘન્યસ્થિતિ અન્તર્મુહૂર્ત કી હૈ -ઉત્કૃષ્ટસ્થિતિ તંતીસ ૩૩ સાગરોપમ કી હૈ ઓર ઇસકા અવાધાકાલ પૂર્વકોટિ કા ત્રિભાગ પ્રમાણ હૈ ઇસ અવાધાકાલ સે રહિત જો કર્મસ્થિતિ હૈ, વહ ઇસકા કર્મનિપેક્કાલ હૈ । (નામ-ગોયાણં જહ્ણેણં અટ્ટમુહુત્તા,

જઘન્ય સ્થિતિ અકપાય આત્માની અપેક્ષાએ જે સમયની છે અને ઉત્કૃષ્ટ સ્થિતિ જ્ઞાનાવરણીય કર્મના બેટલી જ-ત્રીસ કોડાકોડી સાગરોપમની છે. (મોહણિજ્ઞં જહ્ણેણં અંતોમુહુત્તં ઉક્ષોસેણં સત્તરિસાગરોવમકોડાકોડીઓ) મોહ- નીય કર્મની વંધસ્થિતિ યોછામાં યોછી અન્તર્મુહૂર્તની અને વધારેમાં વધારે ૭૦ કોડાકોડી સાગરોપમની છે.

(સત્ત ય વાસ સહસ્સાણિ અવાહા-અવાહુણિયા કમ્મટ્ઠિં કમ્મનિસેઓ) તેનો આબાધકાલ ૭૦૦૦ વર્ષનો છે. તે આબાધકાળ સિવાયની બે કર્મસ્થિતિ છે તે તેનો કર્મનિપેક્ (કર્મવેદનાનો કાળ) છે.

(આઠગં જહ્ણેણં અંતોમુહુત્તં ઉક્ષોસેણં તેત્તીસં સાગરોવમાણિ પુવ્વકોડિતિભાગો અવાહા, અવાહુણિયા કમ્મટ્ઠિં કમ્મનિસેઓ) આયુકર્મની સ્થિતિ યોછામાં યોછી અન્તર્મુહૂર્તની અને વધારેમાં વધારે ૩૩ સાગરોપમની છે, અને તેનો આબાધકાળ પૂર્વ કોટિના ત્રીજા ભાગ બેટલો છે, તે આબાધકાળ સિવાયની બે કર્મસ્થિતિ છે, તે તેનો કર્મનિપેક્ (કર્મવેદનનો કાળ) છે.

(નામ-ગોયાણં જહ્ણેણં અટ્ટમુહુત્તા, ઉક્ષોસેણં વીસં સાગરોવમકોડાકોડીઓ

કોટયઃ, હે ચ વર્ષસહસ્રે અવાધા, અવાધોનિકા કર્મસ્થિતિઃ—કર્મનિષેઠઃ ॥ ખાન્ત-
રાપિકં યથા જ્ઞાનાવરણીયમ્ ॥ ૧૦ ૪ ॥

ટીકા — 'કરૂ ણં મંતે ! કમ્મપ્પયડીઓ પળ્લતાઓ' ગૌતમઃ પૃચ્છતિ—હે
મદન્ત ! કવિ કિયત્યઃ સ્વલુ કર્મપ્રકૃતયઃ કર્મભેદાઃ પ્રજ્ઞતાઃ ? કથિતાઃ ? મગ-
વાનાહ—ગોચમા ! અટ્ટ કમ્મપ્પયડીઓ પળ્લતાઓ' હે ગૌતમ ! અટ્ટ કર્મપ્રકૃતયઃ

ઉપોસેણં વીસં સાગરોત્તમકોડાકોડીઓ—દોષિણ ય વાસસહસ્સણિ
અવાહા, અવાહૂણિયા કમ્મટ્ટિઈ કમ્મનિસેઓ—અંતરાહ્યં જહા ણાણાવર-
ણિજ્ઞં) નામ ઓર ગોત્ર ઇન દો કર્મોં કી જવન્યસ્થિતિ આઠ મુહૂર્ત્તં કી
હે ઉત્કૃષ્ટસ્થિતિ વીસ ૨૦ કોડાકોડી સાગરોપમ કી હે દો હજારવર્ષ કી
ઇનકી અવાધા હે ઇન અવાધા સે રહિત જો કર્મસ્થિતિ હે વહ કર્મ-
નિષેઠકાલ હે । અંતરાયકર્મ કે વિષય મેં સ્થિતિ આદિ કા કથન જ્ઞાના-
વરણીય કર્મ કે સમાન જાનના ચાલિયે ।

ટીકાર્થ—પહિલે કર્મોપચય—કર્મબંધ—કો સાદિ સાન્ત કહ્યા ગયા હે
સો ઇસી સંવંધ કો લેકર સૂત્રકાર ઇસ સૂત્રદ્વારા કર્મ કે ભેદોં કી ઓર
ઉનકી સ્થિતિ કી પ્રરૂપણા કર રહે હે—ઇસમેં ગૌતમ ને પ્રશ્ન સે એસા
પૂછા હે કિ—(કરૂ ણં મંતે ! કમ્મપ્પયડીઓ પળ્લતાઓ) હે મદન્ત !
કર્મ કે કિતને ભેદ કહે ગયે હે ? ઉત્તર મેં પ્રશ્ન ને કહ્યા—(ગોચમા) હે
ગૌતમ ! (અટ્ટ કમ્મપ્પયડીઓ પળ્લતાઓ) કર્મ કે ભેદ આઠ કહે ગયે

દોષિણ ય વાસસહસ્સણિ અવાહા, અવાહૂણિયા કમ્મટ્ટિઈ કમ્મનિસેઓ અંતરાહ્યં
જહા ણાણાવરણિજ્ઞં) નામકર્મ અને ગોત્રકર્મની સ્થિતિ ઓછામાં ઓછી આઠ
મુહૂર્ત્તની અને વધારેમાં વધારે ૨૦ કોડાકોડી સાગરોપમની છે. તેમને
આળાધકાળ બે હબ્દર વર્ષનો છે, આ આળાધકાળ સિવાયની બે કર્મસ્થિતિ
છે તે તેને કર્મનિષેઠ કાળ છે. અંતરાય કર્મની બંધન્ય, ઉત્કૃષ્ટ આદિ
સ્થિતિના વિષયમાં જ્ઞાનાવરણીય કર્મ પ્રમાણે જ સમજવું :

ટીકાર્થ—પહેલાના સૂત્રમાં કર્મોપચયને (કર્મબંધને) સાદિ સાન્ત કહ્યા
એ કર્મબંધને અનુલક્ષીને સૂત્રકાર આ સૂત્ર દ્વારા કર્મના પ્રકારોની અને
તેમની સ્થિતિની પ્રરૂપણા કરી રહ્યા છે—આ વિષયને અનુલક્ષીને ગૌતમ સ્વામી
મહાવીર પ્રશ્નને એવો પ્રશ્ન પૂછે છે કે (કરૂ ણં મંતે ! કમ્મપ્પયડીઓ પળ્લતાઓ ?)
હે મદન્ત ! કર્મના કેટલા ભેદ કહ્યા છે ?

ઉત્તર—(ગોચમા) હે ગૌતમ ! (અટ્ટ કમ્મપ્પયડીઓ પળ્લતાઓ) કર્મના
આઠ પ્રકાર કહ્યા છે (તંજહા) તે આઠ પ્રકારો નીચે પ્રમાણે છે—

प्रज्ञप्ताः ' तं जहा-णाणावरणिज्जं, दरिसणावरणिज्जं, जाव-अंतराइयं' तद्यथा-
 ज्ञानावरणीयम्, दर्शनावरणीयम्, यावत्-आन्तरायिकम् ! यावत् करणात्-वेदनी-
 यम्, मोहनीयम्, आयुष्कम्, नाम, गोत्रम्, इति संग्राह्यम् । तत्र ज्ञानावरणीयादि-
 कर्मणो बन्धस्थित्यादिविषये पृच्छति-' णाणावरणिज्जस्स णं भंते ! कम्मस्स
 केवइयं कालं बंधट्ठिई पणत्ता ? हे भदन्त ! ज्ञानावरणीयस्य खलु कर्मणः
 क्रियन्तं कालं क्रियत्कालपर्यन्तम् बन्धस्थितिः प्रज्ञप्ता ? भगवान् उत्तरयति-
 ' गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तीसं सागरोवमकोडाकोडीओ
 गौतम ! कर्मणो बन्धस्थितिः बन्धनकालः जघन्येन अन्तमुहुत्तपरिमिता,
 उत्कपेण त्रिशत्सागरोपमकोटीकोटयः, अथ च ' तिननि य वाससहस्साइं
 अवाहा, अवाहणिया कम्मट्ठिई कम्मनिसेओ ' त्रीणि च वर्षसहस्राणि

हैं ? (तं जहा) जो इस प्रकार से हैं- (णाणावरणिज्जं, दरिसणावरणिज्जं
 जाव अंतराइयं) ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय यावत्-वेदनीय, मोह-
 नीय, आयुष्क, नाम, गोत्र और अन्तराय । अब गौतमस्वामी इन
 ज्ञानावरणीय आदि कर्मों की बंधस्थिति आदि के विषय में पूछते हैं कि
 - (णाणावरणिज्जस्स णं भंते ! कम्मस्स केवइयं कालं बंधट्ठिई पणत्ता) हे
 भदन्त ! ज्ञानावरणीय जो कर्म है- उसकी बंधस्थिति कितने काल की
 कही गई है ? इसका उत्तर देते हुए प्रभु उनसे कहते हैं- (गोयमा) हे
 गौतम ! (जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तीसं सागरोवमकोडाको-
 डीओ) ज्ञानावरणीय कर्म की बंधस्थिति जघन्य से तो एक अन्तमुहुत्त
 की है और उत्कृष्ट से तीस ३० सागरोपम कोडा होडी की है । (तिननि
 य वाससहस्साइं अवाहा अवाहणिया कम्मट्ठिई कम्मनिसेओ) इसका

“ णाणावरणिज्जं, दरिसणावरणिज्जं, जाव अंतराइयं ” ज्ञानावरणीय,
 दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयुष्क, नाम, गोत्र अने अन्तराय.

इसे गौतम स्वामी ने कर्मोनी बंधस्थिति आदि विषे प्रश्न पूछे थे—
 (णाणावरणिज्जस्स णं भंते ! कम्मस्स केवइयं कालं बंधट्ठिई पणत्ता ?) हे
 हे भदन्त ! ज्ञानावरणीय कर्मोनी बंधस्थिति कितना कालकी कही है ?

उत्तर— (गोयमा !) हे गौतम ! (जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तीसं
 सागरोवमकोडाकोडीओ) ज्ञानावरणीय कर्मोनी बंधस्थिति आठ्यामां आठ्ठी
 अंतमुहुत्तनीं छे अने अधिकमां अधिक त्रीस सागरोपम कोडाकोडी कालथी छे.
 (तिननि य वाससहस्साइं अवाहा, अवाहणिया कम्मट्ठिई कम्मनिसेओ) तेने
 आठ्याधकाण त्रयु इत्तर वर्षने छे, अने ते आठ्याधकाणथी रडित ते कर्मोनी
 के स्थिति छे, ते तेने नियेककाण (वेदनकाण) छे.

સહસ્રત્રયવર્ષાણિ અવાધા, વાપતે ઇતિ વાધા, વાધનં વા વાધા-કર્મણઃ ઉદયઃ,
 ન વાધા, અવાધા, કર્મણો વન્ધકાલાદારભ્ય ઉદયકાલવર્ષાન્તો યઃ કાલઃ કર્મણો
 વન્ધસ્ય ઉદયસ્ય ચ મધ્યકાલઃ અવાધાવદાર્પઃ કથ્યતે, તત્કાલથ્ર સહસ્રવર્ષત્રય-

અવાધાકાલ ત્રીન હજાર વર્ષે કા હૈ તથા ઇસ અવાધાકાલ સે રહિત જો
 ઇસ કર્મ ફી સ્થિતિ હૈ વહ-ઇસ કર્મ કા નિપેક્ષકાલ હૈ । અવાધા કિસે
 કહતે હૈ ? સો અવ ઇસકા વિચાર કિયા જાતા હૈ-કર્મ કે ઉદય કા
 નામ વાધા હૈ ઇસ વાધા કા ન હોના ઇસકા નામ અવાધા હૈ । અર્થાત્
 કર્મ કે વંધકાલ સે લેકર વહ કર્મ જયતક ઉદય મેં નહીં આના હૈ-ઇસી
 કા નામ અવાધાકાલ હૈ અર્થાત્ કર્મ કે વંધ ઓર ઉદય કે વંધ કા જો
 કાલ હૈ યહી અવાધાકાલ હૈ-કર્મ કે વંધ હો જાને પર ઉસી સમય સે
 ઉદય મેં નહીં હૈ કિન્તુ કુછ કાલ વાદ હી વહ ઉદય મેં આતા હૈ-કિતને
 કાલ વાદ ઉદય મેં આતા હૈ ? યહ સવ શાસ્ત્રકારોં ને નિર્ધારિત કિયા
 હૈ-સો જિતને સમય તક, કર્મસ્થિતિ વંધ યુક્તને કે વાદ ખી ઉદય મેં
 કર્મ નહીં આતા હૈ ઉસ સમય કા નામ અવાધાકાલ હૈ । જ્ઞાનાવરણીય
 કર્મ ઉત્કૃષ્ટ સ્થિતિ સે ત્રીસ ૩૦ સાગરોપમ કોડાકોડી કા વંધા-તો
 ઇસમેં અવાધાકાલ ત્રીન હજાર વર્ષે કા પડતો હૈ ક્યોં કિ એસા સિદ્ધાન્ત
 કા કથન હૈ કિ કર્મસ્થિતિ જિતને કોડાકોડી સાગરોપમ ફી હોતી હૈ
 ઉતને સૌ વર્ષે કા ઉસકા અવાધાકાલ હોતા હૈ ઇસ હિસાબ સે જય યહાં

અજાધાકાળનું તાત્પર્ય નીચે પ્રમાણે છે—કર્મના ઉદયને વાધા કહે છે.
 આ વાધાના અભાવને અજાધા કહે છે. કર્મના વંધ થયા પછી તે કર્મ
 વ્યાં સુધી ઉદયમાં આવતું નથી ત્યાં સુધીના કાળને તે કર્મના અજાધાકાળ
 કહે છે, એટલે કે કર્મના વંધ અને ઉદયની વચ્ચેનો જે કાળ છે તેને અજા-
 ધાકાળ કહે છે. કર્મના વંધ થયા પછી કર્મ તુરત જ એજ સમયે ઉદયમાં
 આવતું નથી, પણ કેટલાક કાળ પછી જ તે ઉદયમાં આવે છે. કેટલા કાળ
 પછી તે કર્મ ઉદયમાં આવે છે તે શાસ્ત્રકારોએ નિર્ધારિત કરી બતાવેલું છે.
 અજાધાકાળનો અર્થ આ પ્રમાણે બતાવ્યો છે—

“ તેમણે કર્મના વંધ થઈ ગયા પછી પણ જેટલા સમય સુધી કર્મ
 ઉદયમાં આવતું નથી તેટલા સમયને તે કર્મના અજાધાકાળ કહે છે. ” જેમકે
 જ્ઞાનાવરણીય કર્મની ઉત્કૃષ્ટ (અધિકમાં અધિક) સ્થિતિ ત્રીસ સાગરોપમ
 કોડાકોડી કાળની કહી છે, તેમાં અજાધાકાળ ત્રણ હજાર વર્ષનો કહ્યો છે.
 સિદ્ધાન્તોમાં એવું કહ્યું છે કે “ જેટલા કોડાકોડી સાગરોપમની કર્મસ્થિતિ

સ્વ: પ્રતિપાદિત એવ. । અથ ચ અવાધોનિકા, અવાધયા પૂર્વાક્તસ્વરૂપયા ઝનિકા
ન્યૂના કર્મસ્થિતિ: - સદસ્રવર્ષત્રય ન્યૂન: ઉપર્યુક્તત્રિશત્સગરોપમકોટીકોટીલક્ષણ:
કર્માવસ્થાનકાલ: કર્મનિપેકો ભવતિ, તત્ર કર્મનિપેકો હિ કર્મદલિકસ્યાનુભવના-
ત્મકમોગાર્થો રચનાવિશેષ ઉચ્યતે, તત્ર ચ પ્રથમસમયે અધિકં નિપિશ્ચતિ રચ-
પતિ, દ્વિતીયસમયે વિશેષહીનં કરોતિ, તૃતીયસમયે વિશેષહીનમ્, એવં વાવત્-
ઉત્કૃષ્ટસ્થિતિકં કર્મદલિકં તાવદ્ વિશેષહીનં નિપિશ્ચતિ,

તીસ ૩૦ સાગરોપમ કોડાકોડી કી કર્મસ્થિતિ હૈ-તો ઉતને સૌ વર્ષ
કા અર્થાત્ તીસ ૩૦ સૌ વર્ષ કા-તીન હજાર વર્ષ કા-અવાધાકાલ હસ
કર્મ કા હોગા-ઉત્કૃષ્ટસ્થિતિ હેકર જય યહ કર્મ વંધ જાતા હૈ તો હતને
હજાર વર્ષ વાદ વહ અપના ફલ દેના પ્રારંભ કર દેતા હૈ, તીન ૩ હજાર
વર્ષતક તો યહ કેવલ સત્તામૈ હી રહેગા યે તીન હજાર વર્ષ જો તીસ ૩૦
કોડાકોડી સાગરોપમ સે કમ હો જાતે હૈ-અર્થાત્ ઉત્કૃષ્ટસ્થિતિ મૈ સે
જો અવાધાકાલ કમ હો જાતા હૈ-ઉસકા નામ કર્મનિપેક હૈ હસ કર્મ-
નિપેક મૈ કર્મદલિકોં કી અનુભવ કરને કે નિમિત્ત એક તરહ કી રચના
વિશેષ હોતી હૈ । તાત્પર્ય કહને કા યહ હૈ કિ-ઉદયયોગ્ય કર્મદલિકોં
કી જો રચના હોતી હૈ ઉસકા નામ કર્મનિપેક હૈ । ઉદય કે પ્રથમ સમય
મૈ કર્મદલિકોં કા અધિકમાત્રા મૈ નિપેક હોતા હૈ હસકે વાદ દ્વિતીય
સમય મૈ વિશેષહીન કર્મદલિકોં કા નિપેક હોતા હૈ તૃતીય સમય મૈ
મી વિશેષહીન-ચયહીન-કર્મદલિકોં કા નિપેક હોતા હૈ હસ તરહ

હોય છે, એટલાં સો વર્ષનો તેનો અજાધાકાળ હોય છે. ” આ હિસાબ
પ્રમાણે જ્ઞાનાવરણીય કર્મની ઉત્કૃષ્ટ સ્થિતિ ત્રીસ સાગરોપમ કોડાકોડીની છે,
તેથી તેટલા સો વર્ષનો એટલે કે ત્રીસસો (ત્રણ હજાર) વર્ષનો તેનો અજા-
ધાકાળ હોય છે. ઉત્કૃષ્ટ સ્થિતિ લઇને જો આ કર્મ બંધાઈ બંધ છે, તો
ત્રણ હજાર વર્ષ પછી તે તેનું ફળ દેવા માંડે છે, ત્રણ હજાર વર્ષ સુધી તો
તે ફક્ત રસ્તામાં જ રહેશે. ત્રીસ કોડાકોડી સાગરોપમમાંથી અજાધાકાળના
આ ત્રણ હજાર વર્ષ બાદ કરતાં જે કાળ બાકી રહે છે તેને કર્મનિપેક (કર્મ
વેદનકાળ) કહે છે. આ કર્મનિપેકમાં અનુભવ (વેદન) કરવાને નિમિત્તે
કર્મદલિકોની એક પ્રકારની ખાસ રચના થાય છે કહેવાનું તાત્પર્ય એ છે કે
ઉદય યોગ્ય કર્મદલિકોની જે રચના થાય છે તેનું નામ કર્મનિપેક છે. ઉદયના
પ્રથમ સમયમાં કર્મદલિકોનો અધિક માત્રામાં નિપેક થાય છે, ત્યારબાદ બીજા
સમયમાં વિશેષહીન કર્મદલિકોનો નિપેક થાય છે, ત્રીજે સમયે પણ વિશેષહીન

उक्तञ्च—' मोक्षूण सगमवाहं, पढमाइ ठिइइ बहुयरं दव्वं ।

सेसे विसेसहीणं जा उक्कोसंति सव्वासिं ॥ १ ॥

मुक्त्वा स्वकाम् अवाधां प्रथमायां स्थितौ बहुतरं दव्वम् ।

शेषे विशेष हीनं यावद् उत्कृष्टमिति सर्वेषाम् ॥ २ ॥

અર્થ ભાવઃ—સર્વેણ અષ્ટવિધેષ્વપિ વધ્વમાનેણ કર્મણુ તત્તત્કર્મણઃ અવાધાકાલં મુક્ત્વા તદનન્તરં દલિકુનિપેક્કો ભવતિ,

પ્રત્યેકકર્મવન્ધાનન્તરં તત્તત્કર્મણઃ ઉદયે—તત્તત્કર્મણઃ અવાધાકાલે પૂર્ણે સતિ કર્માનુભવનસ્ય પ્રથમપ્રમાણવાદાભ્યેત્યર્થઃ વદ્ધકર્મણાં દલિકેષ્યો વેદિતું શક્યાનાં વેદનયોગ્યાનાં દલિક્ષાનાં નિપેક્કો ભવતિ, તથા ચ—ઉદયસ્ય પ્રથમ-સમયે તેણુ વહુતરદલિક્ષાનાં નિપેક્કો ભવતિ, તદનન્તરં દ્વિતીયાદિસ્થિતિણુ

વિશેષહીન કર્મદલિકોં કા નિપેક્ક યાવત્ ઉત્કૃષ્ટસ્થિતિવાલે કર્મદલિકોં તક હોતા હૈ, કહા ખી હૈ—

“ મોક્ષૂણ સગમવાહં પઢમાઈ ઠિંઈઈ વહુયરં દવ્વં ।

સેસે વિસેસહીણં જો ઉક્કોસંતિ સવ્વાસિં ॥ ”

તાત્પર્ય યહ હૈ કિ—આઠોં પ્રકાર કે કર્મ જવ વંધ ચુકતે હું—ઔર અપની ૨ અવાધા કે યાદ જવ વે ઉદય મેં આને લગ જાતે હું તવ ડન કર્મોં કે વેદને યોગ્ય દલિકોં કી નિપેક્ક રચના હોતી હૈ અર્થાત્—કર્માનુ-ભવ કે પ્રથમ સમય સે લેકર વદ્ધકર્મોં કે દલિકોં મેં સે વેદને યોગ્ય દલિકોં કા નિપેક્ક હોતા હૈ ઇસમેં ઉદય કે પ્રથમ સમય મેં ઇનમેં સે વહુતર દલિકોં કા નિપેક્ક હોતા હૈ, ઇસકે વાદ ઇક સમય પ્રમાણવાલી દ્વિતીય આદિ સ્થિતિમેં, ક્રમ ૨ સે દ્વિતીય તૃતીયાદિ સમયોં મેં વિશેષ-

અયહીન—કર્મદલિકોનેા નિપેક્ક થાય છે, આ રીતે વિશેષહીન કર્મદલિકોનેા નિપેક્ક ઉત્કૃષ્ટ સ્થિતિવાળાં કર્મદલિકો પર્યન્ત થયા કરે છે. કહું પણ છે—

“ મોક્ષૂણ સગમવાહં પઢમાઈ ઠિંઈઈ વહુયરં દવ્વં ।

સે સે વિસેસહીણં જો ઉક્કોસંતિ સવ્વાસિં ॥ ”

ભાવાર્થ—આઠે પ્રકારનાં કર્મ ન્યારે બંધાઈ ચુકે છે, અને પોતપોતાના અપાધાકાળ પછી ન્યારે તેઓ ઉદયમાં આવવા માંડે છે, ત્યારે તે કર્મનાં વેદનાયોગ્ય દલિકોની નિપેક્ક રચના થાય છે, એટલે કે કર્માનુભવના પ્રથમ સમયથી લઈને બદ્ધ કર્મોનાં દલિકોમાંથી વેદવાયોગ્ય દલિકોનેા નિપેક્ક થાય છે. તેમાં ઉદયના પ્રથમ સમયે તેમાંના અધિક દલિકોનેા નિપેક્ક થાય છે, ત્યારબાદ એક એક સમય પ્રમાણવાળી દ્વિતીય આદિ સ્થિતિમાં ક્રમશઃ દ્વિતી વીય

एकैकसमयममाणासु क्रमशो द्वितीयतृतीयादिसमयेषु विशेषहीनविशेषहीन कर्मदलिकानां निषेको भवति, स च तावद् भवति यावत् तत्तत्समयवध्यमान- कर्मणामुत्कृष्टा स्थितिर्भवेत्, यद्दकर्मस्थितेश्रमसमयपर्यन्तमयं निषेको भव- तीति भावः । अयं चावाधां मुक्त्वा दलिकनिषेकविधिः आयुर्वर्जशेषसप्तकर्मणां विषये वेदितव्यः । आयुष्कर्मण्यपि निषेकस्तु भवत्येव किन्तु तत्र स निषेकः आयुष्कर्मबन्धस्य प्रथमसमयादेव प्रारभ्यते न तत्रावाधाकालपूर्णताया आवश्यक-

हीन २ कर्मदलिकों का निषेक होता है और यह निषेक यद्दकर्मस्थिति के चरम समयतक होता है । अवाधा को छोड़कर यह दलिक निषेक- विधि आयु कर्म के सिवाय सातकर्मों के विषय में ही जानना चाहिये आयुकर्ममें भी निषेकतो होता ही है किन्तु वहाँ वह निषेक आयुकर्मबन्ध प्रथमसमय से लेकर ही प्रारंभ हो जाता है—यहाँ निषेकरचना में अवा- धाकाल के पूर्ण होने की आवश्यकता नहीं है । यद्यपि आयुकर्म का भी अवाधाकाल होता है । परंतु आयुकर्म के इस निषेक के प्रसङ्ग पर अवाधाकाल को छोड़ने की जो आवश्यकता नहीं है उसका कारण यह है कि आयुकर्म के बन्ध के प्रथम समय में ही आयुकर्म के बहुत अधिक दलिकों का निषेक होना प्रारंभ हो जाता है अर्थात् प्रथम समय में ही आयुकर्म के बहुत दलिकों का निषेक हो जाता है और इसके बाद द्वितीय आदि समयों में तो उत्तरोत्तर—आगे २ विशेष २ हीन ही निषेक होता है और यह निषेक अन्तिम दलिकों तक इसी प्रकार से

आदि समयोभां विशेष हीन विशेषहीन कर्मदलिकोना निषेक थाय छे, अने ते निषेक षड्दकर्म स्थितिना अन्तिम समय पर्यन्त थाय छे. अवाधा सिवा- यनी आ दलिक निषेक विधि : आयुकर्म सिवायना सात कर्मोना विषयभां न समन्वी. आयुकर्मभां पञ्च निषेक तो थाय छे न; पञ्च त्यां ते निषेक आयु- कर्मबन्धना प्रथम समयथी न शर्ध थर्ध लय छे, आयुकर्मनी निषेक रचनाभां अवाधाकाण पूरा थवानी आवश्यकता रडेती नथी. जे के आयुकर्मना पञ्च अवाधाकाण डोय छे, पञ्च आयुकर्मना आ निषेक वणते अवाधाकाणने जाह करवानी नरर रडेती नथी तेनुं कारण नीये प्रभाञ्छे छे—

आयुकर्मना षड्द थया पछी प्रथम समये न आयुकर्मनां धर्षां न अधिक दलिकोना निषेक थवाने प्रारंभ थर्ध लय छे—अष्टवे के प्रथम समयभां न आयुकर्मनां धर्षां दलिकोना निषेक थर्ध लय छे, अने त्यारणाद द्वितीय, तृतीय आदि समयोभां तो उत्तरोत्तर विशेषहीन विशेष हीन निषेक थतो रडे छे, अने आ निषेक अन्तिम दलिको पर्यन्त वधु ने वधु हीन थतो रडे छे,

ઉક્તञ्च—‘ મોક્ષણ સગમવાહં, પદમાઈ ઠિઠ્ઠ ઘટ્ટયરં દવ્વં ।

સેસે વિસેસહીણં જા ઉક્કોસંતિ સવ્વાસિં ” ॥ ૧ ॥

મુક્ત્યા સ્વકામ્ અવાધાં પ્રથમાયાં સ્થિતીં વહુતરં દ્રવ્યમ્ ।

શેષે વિશેષ હીનં યાવદ્ ઉત્કૃષ્ટમિતિ સર્વેપામ્ ॥ ૧ ॥

અર્થ ભાવઃ—સર્વેષુ અપ્તવિષેષવપિ વધ્યમાનેષુ કર્મણુ તત્તત્કર્મણઃ અવાધાકાલે મુક્ત્યા તદનન્તરં દલિકનિપેક્કો ભવતિ,

પ્રત્યેકકર્મવન્ધાનન્તરં તત્તત્કર્મણઃ ઉદયે—તત્તત્કર્મણઃ પ્રવાધાકાલે પૂર્ણે સત્તિ કર્માનુભવનસ્ય પ્રથમસમયોદારભ્યેત્યર્થઃ વદ્ધકર્મણાં દલિકેભ્યો વેદિતું શક્યાનાં વેદનયોગ્યાનાં દલિકાનાં નિપેક્કો ભવતિ, તથા ચ—ઉદયસ્ય પ્રથમ-સમયે તેષુ વહુતરદલિકાનાં નિપેક્કો ભવતિ, તદનન્તરં દ્વિતીયાદિસ્થિતિષુ

વિશેષહીન કર્મદલિકોં કા નિપેક્ક યાવત્ ઉત્કૃષ્ટસ્થિતિવાલે કર્મદલિકોં તક હોતા હૈ, કહા ઓ હૈ—

“ મોક્ષણ સગમવાહં પદમાઈ ઠિઠ્ઠ ઘટ્ટયરં દવ્વં ।

સેસે વિસેસહીણં જો ઉક્કોસંતિ સવ્વાસિં ॥ ”

તાત્પર્ય યહ હૈ કિ—આઠો પ્રકાર કે કર્મ જય યંત્ર ચુકતે હૈ—ઔર અપની ૨ અવાધા કે યાદ જય વે ઉદય મેં આને લગ જાતે હૈ તય્ઞે ઝન કર્મોં કે વેદને યોગ્ય દલિકોં કી નિપેક્ક રચના હોતી હૈ અર્થાત્—કર્માનુ-ભવ કે પ્રથમ સમય સે લેકર વદ્ધકર્મોં કે દલિકોં મેં સે વેદને યોગ્ય દલિકોં કા નિપેક્ક હોતા હૈ હસમેં ઉદય કે પ્રથમ સમય મેં હનમેં સે વહુતર દલિકોં કા નિપેક્ક હોતા હૈ, હસકે યાદ ઇક સમય પ્રમાણવાલી દ્વિતીય આદિ સ્થિતિમેં, ક્રમ ૨ સે દ્વિતીય તૃતીયાદિ સમયોં મેં વિશેષ-

અયહીન—કર્મદલિકોનેા નિપેક્ક થાય છે, આ રીતે વિશેષહીન કર્મદલિકોનેા નિપેક્ક ઉત્કૃષ્ટ સ્થિતિવાળાં કર્મદલિકો પર્યન્ત થયા કરે છે. કહું પણ છે—

“ મોક્ષણ સગમવાહં પદમાઈ ઠિઠ્ઠ ઘટ્ટયરં દવ્વં ।

સે સે વિસેસહીણં જો ઉક્કોસંતિ સવ્વાસિં ॥ ”

ભાવાર્થ—આઠ પ્રકારનાં કર્મોં ન્યારે અવાધાં ચુકે છે, અને પોતપોતાના અવાધાકાળ પછી ન્યારે તેઓ ઉદયમાં આવવા માંડે છે, ત્યારે તે કર્મના વેદનાયોગ્ય દલિકોની નિપેક્ક રચના થાય છે, એટલે કે કર્માનુભવના પ્રથમ સમયથી લઈને બદ્ધ કર્મોનાં દલિકોમાંથી વેદનાયોગ્ય દલિકોનેા નિપેક્ક થાય છે. તેમાં ઉદયના પ્રથમ સમયે તેમાંના અધિક દલિકોનેા નિપેક્ક થાય છે, ત્યારબાદ એક એક સમય પ્રમાણવાળી દ્વિતીય આદિ સ્થિતિમાં કર્મશઃ દ્વિતીય તૃતીય

કાલઃ ત્રિંશત્સાગરોપમકોટીકોટીપ્રમાણથ વાધાકાલઃ, એતદ્વયસ્યાપિ અવાધાવાધાકાલસ્ય મિશ્રણાત્મકઃ કર્મસ્થિતિકાલઃ, અવાધાકાલવર્જિતો વાધાકલાત્મકઃ કર્મનિપેકકાલ ઇત્યાહુઃ । એવમન્યકર્મસ્વપિ અવાધાકાલો વિજ્ઞેયઃ, વિશેષસ્તુ આયુષિ ત્રયત્વિંશત્સાગરોપમાણિ નિપેકકાલઃ, પૂર્વકોટીતૃતીયભાગથ અવાધાકાલ ઇતિ । સ ચ પૂર્વકોટિત્રિભાગઃ, -ત્રયત્વિંશત્સહસ્ર ત્રયત્વિંશત્ત્રયચત્વરિંશત (૩૩૦૦૦૦૦, ૩૩૦૦૦, ૩૩૩) પૂર્વત્રયોવિંશતિલક્ષ-દ્વિપ-શ્ચાશત્સહસ્ર (૨૩૦૦૦૦૦૦, ૫૨૦૦૦) વર્ષકોટિપરિમિતો ભવતિ । ' એવં દરિસણાવરણિજ્જંપિ ' એવમ્ જ્ઞાનાવરણીયકર્મવદેવ દર્શનાવરણીયમપિ કર્મ-વોઘ્યમ્ । ' વેયણિજ્જં જહ્વણેણં દો સમયા, ઉક્કોસેણં જહ્વા-ણાણાવરણિજ્જં '

અવાધાકાલ ઓર ત્રીસ ૩૦ સાગરોપમ કોડાકોડી પ્રમાણ વાધાકાલ, ઇન દોનોં કો મિલા દેને સે જો પ્રમાણ નિકલતા હૈ વહ કર્મસ્થિતિકાલ હૈ તથા અવાધાકાલ સે રહિત જો વાધાકાલ હૈ વહ કર્મનિપેક કાલ હૈ ।" ઇસી તરહ સે કૂસરે કર્મોં કે વિષય મેં ભી અવાધાકાલ જાન ળેના ચાહિયે-આયુકર્મ મેં તેંતીસ ૩૩ સાગરોપમ કા નિપેકકાલ હૈ । તથા ઇસ મેં જો અવાધાકાલ હૈ વહ પૂર્વ કોટિ કા તૃતીયભાગપ્રમાણ હૈ । પૂર્વકોટિ તૃતીય ભાગ તેંતીસ ૩૩ લાખ, તેંતીસ ૩૩ હજાર, ત્રીનસૌ તેંતીસ, પૂર્વ ઓર ૨૩ તેવીસ લાખ, વાચન ૫૨ હજાર કોટિ વર્ષપ્રમાણ હોતા હૈ । (એવં દરિસણાવરણિજ્જં) જ્ઞાનાવરણીય કર્મ કી તરહ દર્શના વરણીય કર્મ કો ભી જાનના ચાહિયે । (વેયણિજ્જં જહ્વણેણં દો સમયા ઉક્કોસેણં જહ્વા ણાણાવરણિજ્જં) વેદનીયકર્મ કી જઘન્યસ્થિતિ દો

અને ત્રીસ સાગરોપમ કોડાકોડી પ્રમાણ વાધાકાલ, એ બંનેને સરવાળો કરવાથી જે પ્રમાણ આવે છે તે કર્મસ્થિતિકાલ છે, તથા અવાધાકાલ સિવાયનો જે વાધાકાલ છે, તે કર્મનિપેક કાલ છે. ”

એજ પ્રમાણે બીજાં કર્મોને આવાધકાલ પણ સમજવો જોઈએ આયુ-કર્મને નિપેકકાલ (વેદનકાલ) ૩૩ સાગરોપમને કહ્યો છે, તથા તેને આવા-ધકાલ પૂર્વકોટિના ત્રીજા ભાગ પ્રમાણ છે. પૂર્વકોટિને ત્રીજો ભાગ તેત્રીસ લાખ તેત્રીસ હજાર ત્રણસો તેત્રીસ (૩૩૩૩૩૩૩) પૂર્વ અને તેવીસ લાખ બાવન હજાર (૨૩૫૨૦૦૦) કોટિવર્ષ પ્રમાણ છે.

(એવં દરિસણાવરણિજ્જં) જ્ઞાતાવરણીય કર્મની સ્થિતિ પ્રમાણે જ દર્શ-નાવરણીય કર્મની પણ સ્થિતિ સમજવી.

(વેયણિજ્જં જહ્વણેણં દો સમયા, ઉક્કોસેણં જહ્વા ણાણાવરણિજ્જં) વેદનીય કર્મની

કતા વર્તે, યદપિ આયુષ્કર્મણોઽપિ અવાધાકાલસ્તુ મવસ્યંત્ય કિન્તુ ન તત્ત વદ્-
વર્જનસ્યાવશ્યકતા ભવતિ । આયુષ્કર્મવ્યવસ્થા પ્રથમસમયે પુનાયુષ્ઃ પ્રભૂતદલ્લિકાનાં
નિષેકો ભવતિ, દ્વિતીયાદિસમયેષુ તુ ઉત્તરોત્તરં વિશેષદીનો ભવતિ યાવ-
શ્યમસમય ઇતિ ।

તથા ચૈવાવતા વદ્મપિ જ્ઞાનાવરણીયં કર્મ સદસ્યર્પણત્રયં યાવત્ ભવેદ-
માનતયા તિષ્ઠતિ, તતઃ સદસ્યર્પણત્રયન્યૂનદ્વિગતસાગરોપમકોટીકોટીપમાણસ્તાન્ત્
જ્ઞાનાવરણીયકર્માનુભવકાલો વેદિતવ્યઃ, કેનિતુ-સદસ્યર્પણત્રયપમાણઃ આવાધા-

વિશેષ ૨ હીન હોતા રહતા હૈ । इस तरहू चंधा दृआ भी ज्ञानावरणीय
कर्म तीन हजार वर्षतक अवेद्यमान अवस्था में रहता है, याद में वह
अनुभवन-उदय में आता है-इस प्रकार उसका अनुभवन काल तीन
३ हजार वर्ष कम तीस ३० कोडाकोडी सागरोपम को है ऐसा जानना
चाहिये, तात्पर्य कहने को यह है कि कर्म की स्थिति के दो प्रकार है-
एक तो उसे कर्मरूप में रहना और दूसरी उसे अनुभव योग्य कर्मरूप
में घनना, यहाँ जो उत्कृष्ट अथवा जयन्यरूप से कर्मस्थिति कही गई है
वह कर्मरूप से रहने वाली कर्मस्थिति कही गई है और जब अवाधा-
काल के बाद कर्म उदय में आने लग जाता है-तब की स्थिति अनुभव
योग्य कर्मस्थिति कही गई है कर्म की स्थिति में से अवाधाकाल घटाने
से जो स्थिति बचती है वही अनुभव योग्य कर्मस्थिति है ऐसा
जानना चाहिये ।

कोई आचार्य ऐसा करहते हैं कि “ तीन ३ हजार वर्ष प्रमाण

આ રીતે જ્ઞાનાવરણીય કર્મોના બંધ થયા પછી પણ ત્રણ હજાર વર્ષ
સુધી તે અવેદ્યમાન અવસ્થામાં જ રહે છે અને ત્યારબાદ તે ઉદયમાં આવે
છે. આ રીતે તેનો વેદનકાળ ત્રીસ કોડાકોડી સાગરોપમ કરતાં ત્રણ હજાર
વર્ષ ન્યૂન (ઓછા) છે. કહેવાનું તાત્પર્ય એ છે કે કર્મની સ્થિતિના એ
પ્રકાર છે-(૧) કર્મરૂપે રહેવાની સ્થિતિ અને (૨) અનુભવવા (વેદવા) યોગ્ય
કર્મરૂપ બનવાની સ્થિતિ. અહીં જે ઓછામાં ઓછી કે વધારેમાં વધારે કર્મ
સ્થિતિ કહી છે, તે કર્મરૂપે રહેનારી કર્મસ્થિતિ કહી છે, અને બધારે અમા-
ધાકાળ પૂરો થયા પછી કર્મ ઉદયમાં આવવા લાગી જાય છે ત્યારની સ્થિતિને
અનુભવયોગ્ય કર્મસ્થિતિ કહી છે. કર્મની સ્થિતિમાંથી અમાધાકાળ બાદ કરતા
જે સ્થિતિ બાકી રહે છે એજ અનુભવયોગ્ય કર્મસ્થિતિ છે એમ સમજવું.

કોઈ કોઈ આચાર્ય એવું કહે છે કે “ ત્રણ હજાર વર્ષ ” પ્રમાણ,

मोहनीयकर्मणो जघन्येन अन्तर्मुहूर्तं बन्धस्थितिः, उत्कर्षेण सप्ततिसागरोपम-
कोटीकोटयः 'सत्त य वाससदस्साणि अवाहा' सप्त च वर्षसदस्साणि अवाधा
मोहनीयकर्मबन्धोदयान्तकालः, 'अवाहृणिया कम्मट्ठिई-कम्मनिसेओ' अवाधो
निका अवाधया सप्त सप्तवर्षरूपा अनिका न्यूना कर्मस्थितिः सप्तसदस-
वर्षन्यूनः सप्ततिसागरोपमकोटीकोटीमानलक्षणो मोहनीयकर्मावस्थानकालः निपेको
भवति । 'आउगं जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाणि' आयु-
ष्कम् आयुष्यकर्मणो जघन्येन अन्तर्मुहूर्तम्, उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत् सागरोपमाणि
'पुव्वकोडितिभागो अवाहा, अवाहृणिया कम्मट्ठिई-कम्मनिसेओ' पूर्वकोटीत्रि-
भागः पूर्वकोटीपतृतीयभागः अवाधाकालः, अवाधोनिका-अवाधाकालेन न्यूना
त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि कर्मस्थितिः आयुष्यकर्मावस्थानकालः कर्मनिपेको भवति ।
पूर्वकोटित्रिभागस्य संख्यामानमत्रेव सूत्रे पूर्वमवाधाकालप्रकरणे प्रदर्शितमेवेति
अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं सत्तरिसागरोवमकोडाकोडीओ) मोहनीय कर्म
की जघन्य बंधस्थिति अन्तर्मुहूर्त की है उत्कृष्ट बंधस्थिति ७० सत्तर
कोडाकोडी सागरोपम की है, इसका अवाधाकाल ७००० हजार वर्ष का
है अत्कृष्टस्थिति में अवाधा काल को घटाने पर जो स्थिति बचे वह
मोहनीय का अवस्थानकाल रूप कर्मनिपेककाल है । (आउगं जहण्णेणं
अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाणि) आयुकर्म की जघन्यस्थिति
अन्तर्मुहूर्त की है और उत्कृष्ट स्थिति ३३ सागरोपम की है (पुव्वकोडि
ति भागो अवाहा) पूर्व कोटि के त्रिभागप्रमाण अवाधाकाल है (अवा-
हृणिया कम्मट्ठिई-कम्मनिसेओ) अवाधाकाल से हीन जो कर्मस्थिति
है वह इस कर्म का निपेक काल है । पूर्वकोटि के त्रिभाग की संख्या
का प्रमाण पहिले अवाधकाल के प्रकरण में दिखा ही दिया है (नाम-

उक्कोसेणं सत्तरिसागरोवमकोडाकोडीओ) मोहनीय कर्मणी जघन्य बंधस्थिति
अन्तर्मुहूर्तनी अने उत्कृष्ट बंधस्थिति ७० कोडाकोडी सागरोपमनी छे. तेना
अवाधाकाल ७००० वर्षेना छे. उत्कृष्ट स्थितिभांथी अवाधाकालने पाह उर-
वाथी जेट्ठो काल पाडी रह तेत्ठो मोहनीय कर्मने कर्मनिपेक काल (कर्म
वेदनकाल) समज्जेवा (आउगं जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाणि)
आयुकर्मनी जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्तनी छे अने उत्कृष्ट स्थिति ३३ साग-
रोपमनी छे. (पुव्वकोडि तिभागो अवाहा) तेना अवाधाकाल पूर्व कोटिना
तीज भाग प्रमाण छे. (अवाहृणिया कम्मट्ठिई-कम्मनिसेओ) अवाधाकाल
सिवायनी जे कर्मस्थिति छे, ते आ कर्मने निपेककाल समज्जेवा. पूर्वकोटिना
तीज भागनुं प्रमाण आ सूत्रमां ज अवाधाकालनुं वलुं करती वथते आपी
म ११०

તથા વેદનીયં કર્મ જઘન્યેન ક્ષીં સમયો, તથા ચ કેવલયોગમત્યયવન્શ્રાવેક્ષ્યા
 વેદનીયં કર્મ દ્વિગમયસ્થિતિકં ભવતિ, તત્ત્વ પરિમિત્ત સમયે વ્યવત્તે, દ્વિતીયે તુ
 વેદને યત્તુ “ વેયણિયસ્સ જહ્ણમા વારસ, નામ-ગોયાળ અદ્દ મુદ્દત્તા” વેદનીયસ્ય
 જઘન્યા ઢાદશ, નામ-ગોત્રયોઃ અદ્દમુદ્દર્તાં ક્ષયુક્તમ્ તત્ સક્રુપાયસ્થિતિ વન્ધ-
 માથિત્વ વેદિત્વમિતિ ન તદ્વિરોધઃ ઉદ્દર્શયં યથા જ્ઞાનાવરણીયં કર્મ તથૈવ
 વેદનીયમપિ કર્મ વોધ્યમ્, તથા ચ વેદનીયસ્યાપિ કર્મણઃ ઉત્ક્રુષ્ટનઃ સ્થિતિકાલઃ
 ત્રિસદ્દસર્પન્યૂનત્રિશત્સાગરોપમ ક્ષોટીક્ષોટીપ્રમાણઃ । ‘ મોહ્ણિજ્જં જહ્ણણેજં
 અંતોમુદ્દત્તં, ઉપક્ષોતેણં સચરિત્સાગરોપમક્ષોટાક્ષોટીઓ ’ મોહ્ણીયં કર્મ

સમય કી હૈ ઓર ઉત્ક્રુષ્ટ સ્થિતિ જ્ઞાનાવરણીય કે સમાન તીસ ૩૦
 ક્ષોટાક્ષોટી સાગરોપમ કી હૈ । યહાં જો વેદનીય કર્મ કી જઘન્ય સ્થિતિ
 દો સમય કી કહી ગઈ હૈ વહ કેવલ યોગ કે નિમિત્ત સે હોને વાલે વંધ
 કી અપેક્ષા સે કહી ગઈ હૈ-એસી સ્થિતિ મેં વેદનીય કર્મ કી જઘન્ય
 સ્થિતિ દો સમય કી હોતી હૈ ઇક સમય મેં વહ વંધતા હૈ, ઓર દ્વિતીય
 સમય મેં વહ વેદા જાતા હૈ જો (વેયણિયસ્સ જહ્ણણા વારસ, નામ
 ગોયાળ અદ્દ મુદ્દત્તા) વેદનીય કર્મ કે વિષય મેં એસા કહા ગયા હૈ કિ
 વેદનીયકર્મ કી જઘન્ય સ્થિતિ ૧૨ મુદ્દર્ત કી હોતી હૈ સો યહ કથન
 કપાયસહિત જીવોં કી અપેક્ષા સે હી જાનના ચાહિયે-ક્યોં કિ કપાય-
 યુક્ત જીવોં કે જો વેદનીય કર્મ કા જઘન્ય સ્થિતિ વંધ હોતા હૈ વહ ૧૨
 મુદ્દર્ત કા હોતા હૈ ઉત્ક્રુષ્ટ સ્થિતિ કાલ વેદનીય કર્મ કા તીન હજાર વર્ષ
 કમ તીસ સાગરોપમ ક્ષોટાક્ષોટી પ્રમાણ કા હૈ (મોહ્ણિજ્જં જહ્ણણેજં

ઓછામાં ઓછી સ્થિતિ જે સમયની અને વધારેમાં વધારે સ્થિતિ જ્ઞાનાવર-
 ણીય કર્મના જેટલી જ (ત્રીસ કોટાક્ષોટી સાગરોપમની) છે. અહીં જે વેદનીય
 કર્મની જઘન્ય (ઓછામાં ઓછી) સ્થિતિ જે સમયની કહી છે તે માત્ર
 યોગને કારણે થનારા વંધને અનુલક્ષીને કહી છે-એટલે કે એવી પરિસ્થિતિમાં
 વેદનીય કર્મની જઘન્ય સ્થિતિ જે સમયની હોય છે-એક સમયમાં તે વંધાય
 છે અને બીજે સમયે તેનું વેદન થાય છે. (વેયણિયસ્સ જહ્ણણા વારસ, નામ
 ગોયાળ અદ્દમુદ્દત્તા) આ કથન પ્રમાણે વેદનીય કર્મની જે ખાર મુદ્દર્તની જઘન્ય
 સ્થિતિ કહી છે તે કપાય યુક્ત જીવોની અપેક્ષાએ જ સમજી, કારણ કે
 કપાયયુક્ત જીવોના વેદનીય કર્મનો જે જઘન્ય સ્થિતિ વંધ થાય છે, તે ખાર
 મુદ્દર્તનો હોય છે, વેદનીય કર્મનો ઉત્ક્રુષ્ટ સ્થિતિકાળ ત્રીસ સાગરોપમ કોટા
 કોટી કરતાં ત્રણ હજાર વર્ષ ઓછો હોય છે. (મોહ્ણિજ્જં જહ્ણણેજં અંતોમુદ્દત્તં,

कर्मनाम	उत्कृष्टा स्थितिः	जघन्या स्थितिः	उत्कृष्टः अ- वाधाकालः	जघन्यः अवा- धाकालः	उत्कृष्टः वाधा- काल कर्मनिपेकः	जघन्यः वाधाकाल कर्मनिपेकः
मोहनीय कर्म	सप्तति सागरो- पम कोटीकोट्यः	अन्तर्मुहूर्तम्	७००० सप्तति वर्षशतानि	अन्तर्मुहूर्तम्	सप्तसहस्रवर्षन्यूना सप्तति सागरोपम कोटीकोट्यः	अन्तर्मुहूर्तं न्यूनम्- अन्तर्मुहूर्तम्
ज्ञानावरणीय कर्म	त्रिंशत्सागरो- पम कोटीकोट्यः	"	३००० सहस्र वर्षत्रयम्	"	त्रिसहस्रवर्षन्यूनाः त्रिंशद् सागरोपम कोटी कोट्यः	"
दर्शनावरणीय कर्म	"	"	"	"	"	"
सकापायाम वद्धं वेदनीय कर्म	"	द्वादश मुहूर्तानि	"	"	"	अन्तर्मुहूर्तं न्यूनानि एकादश मुहूर्तानि
अन्तरायिकं कर्म	"	अन्तर्मुहूर्तम्	"	"	"	अन्तर्मुहूर्तं न्यूनम् अन्तर्मुहूर्तम्
नामकर्म	विंशति सागरोपम कोटीकोट्यः	अष्टौ मुहूर्तानि	२००० वर्षाणि "	"	विंशति शतन्यूनविंशति सागरोपम कोटीकोट्यः	अन्तर्मुहूर्तं न्यूनानि सप्तमुहूर्तानि
गोत्रकर्म	"	"	"	"	"	"
आयुष्यकर्म	पूर्वकोटि त्रिभागा धिकानि त्रयस्त्रिंशत् सागरोपमाणि	अन्तर्मुहूर्तम्	पूर्वकोटि त्रिभागा "	"	पूर्वकोटि त्रिभागा न्यूनानि त्रयस्त्रिंशत् सागरोपमाणि	अन्तर्मुहूर्तं न्यूनम् अन्तर्मुहूर्तम्

‘ નામ-ગોયાણં જહ્ણણેણં અટ્ટમુહુત્તા, ઉત્ક્રોસેણં વીસં સાગરોપમકોડાકોડીઓ ’
 નામ-ગોત્રપોઃ કર્મણોઃ ધન્યસ્થિતિઃ જઘન્યેન અટ્ટ મુહુર્તાનિ, ઉત્કર્ષેણ વિશતિસા-
 ગરોપમકોટીકોટ્યઃ ‘ દોષિણ ય વાસસહસ્સાણિ અવાહા ’ દ્વે ન વર્ષસદસ્રે અવાધા,
 ‘ અવાહુણિયા કમ્મટ્ઠિઈ-કમ્મનિસેઓ ’ અવાધોનિદા-અવાધયા દ્વિસદસ્રવર્ષરૂ-
 પયા ળનિકા ન્યૂના કર્મસ્થિતિઃ-દ્વિ સદસ્રવર્ષન્યૂનો વિશતિસાગરોપમકોટીકોટી-
 માનઃ નામ ગોત્ર કર્માવસ્થાન કાલઃ, કર્મનિપેક્ષો ભવતિ । ‘ અંતરાહ્યં જહા-ણાણા-
 વરણિજ્જં ’ આન્તરાયિકં કર્મ યથા જ્ઞાનાવરણીયં તથા વેદિત્વમિતિ ભાવઃ ॥ ૫૦ ॥
 કર્મવન્ધકવક્તવ્યતા

જ્ઞાનાવરણીયાદિકર્મમસ્તાવાત્ તદ્વન્ધકાન્ નિરૂપયિતું પ્રથમં સ્વ્યાદિ-
 દ્વારમાહ-‘ ણાણા વરણિજ્જં ણં ભંતે ! ’ इत्यादि ।

મૂલમ્-ણાણાવરણિજ્જં ણં ભંતે ! કર્મમં કિં इत्थી વંધइ,
 પુરિસો વંધइ નપુંસઓ વંધइ ? णोइत्थी - णोपुरिस -

ગોયાણં જહ્ણણેણં અટ્ટમુહુત્તા, ઉત્ક્રોસેણં વીસં સાગરોપમકોડાકોડીઓ)
 નામ ઓર ગોત્ર ઇન દોનોં કર્મોં કી જઘન્ય સ્થિતિ આઠ મુહૂર્ત કી હૈ
 ઓર ઉત્ક્રુષ્ટસ્થિતિ વીસ ૨૦ સાગરોપમ કોડાકોડી કી હૈ । (દોષિણ ય
 વાસસહસ્સાણિ અવાહા) દો હજાર વર્ષ કી અવાધા હૈ । (અવાહુણિયા
 કમ્મટ્ઠિઈ કમ્મનિસેઓ) અવાધાકાલરૂપ જો દો હજાર વર્ષ હૈં ડનસે
 રહિત ૨૦ વીસ સાગરોપમ કોડાકોડી કા ઇનકા અવસ્થાનકાલ-કર્મ
 નિપેક હૈ । (અંતરાહ્યં જહા ણાણાવરણિજ્જં) અન્તરાય કી સ્થિતિ,
 અવાધા, અવસ્થાન કાલ યે સઘ વિપય જ્ઞાનાવરણીય કર્મ કે સમાન હી
 જાનના ચાહિયે ॥ ૫૦ ॥

દીધેલું છે. (નામગોયાણં જહ્ણણેણં અટ્ટમુહુત્તા ઉત્ક્રોસેણં વીસં સાગરોપમકોડા-
 કોડીઓ) નામકર્મ અને ગોત્રકર્મની જઘન્ય સ્થિતિ આઠ મુહૂર્તની છે અને
 ઉત્ક્રુષ્ટ સ્થિતિ વીસ સાગરોપમ કોડાકોડીની છે. (દોષિણ ય વાસસહસ્સાણિ
 અવાહા) અનેનેા આખાધકાળ યે હજાર વર્ષનેા છે. (અવાહુણિયા કમ્મટ્ઠિઈ
 કમ્મનિસેઓ) તેમની વીસ સાગરોપમની ઉત્ક્રુષ્ટ સ્થિતિમાંથી ૨૦૦૦ વર્ષ
 પ્રમાણે આખાધકાળ આઠ કરતાં જેટલો કાળ બાકી રહે તેટલો તેમનેા અવ-
 સ્થાન કાળ-કર્મ નિપેક કાળ સમજવો. (અંતરાહ્યં જહા ણાણાવરણિજ્જં) અન્ત-
 રાય કર્મની સ્થિતિ, આખાધકાળ, અવસ્થાન કાળ આદિ જ્ઞાનાવરણીય કર્મ
 પ્રમાણે જ સમજવા, ॥ સૂત્ર ૪ ॥

कर्मनाम	उच्छृष्टा स्थितिः	जघन्या स्थितिः	उच्छृष्टः अ- वाधाकालः	जघन्यः अवा- धाकालः	उच्छृष्टः वाधा- काल कर्मानिपेकः	जघन्यः वाधाकाल कर्मनिपेकः
सौहनीय कर्म	सप्तति सागरो- पम कोटीकोटयः	अन्तर्गृह्यम्	७००० सप्तति वर्षशतानि	अन्तर्गृह्यम्	सप्तसहस्रवर्षन्यूना सप्तति सागरोपम कोटीकोटयः	अन्तर्गृह्यत् न्यूनम् + अन्तर्गृह्यम्
ज्ञानावरणीय कर्म	त्रिंशत्सागरो- पम कोटीकोटयः	"	३००० सहस्र वर्षत्रयम्	"	त्रिसहस्रवर्षन्यूनाः त्रिंशद् सागरोपम कोटी कोटयः	"
दर्शनावरणीय कर्म	"	"	"	"	"	"
सकापायात्म वद्धं वेदनीय कर्म अन्तराधिकं कर्म	"	द्वादश गृह्यन्ति	"	"	"	"
नामकर्म	"	अन्तर्गृह्यम्	"	"	"	"
गोत्रकर्म	विंशति सागरोपम कोटीकोटयः	अष्टौ गृह्यन्ति	२००० वर्षाणि	"	विंशति शतन्यूनाविंशति सागरोपम कोटीकोटयः	अन्तर्गृह्यत् न्यूनानि एकादश गृह्यन्ति अन्तर्गृह्यत् न्यूनम् अन्तर्गृह्यम्
आयुष्यकर्म	"	अन्तर्गृह्यम्	"	"	पूर्वकोटि त्रिभाग न्यूनाः त्रयस्त्रिंशत् सागरोपमाणि	अन्तर्गृह्यत् न्यूनम् अन्तर्गृह्यम्

+ अन्तर्गृह्यत् शब्दो भिन्न भिन्न जातीय कालवाचकोऽत्रावगन्तव्यः ।

-णो नपुंसओ वंधइ ? । गोयमा ! इत्थीवि वंधइ, पुरिसो वि
 वंधइ, नपुंसओ वि वंधइ, णोइत्थीणोपुरिसणोनपुंसओ
 सिय वंधइ, सिय णो वंधइ । एवं आउगवज्जाओ सत्त कम्म-
 प्पयडीओ । आउगं णं भंते ! कम्मं किं इत्थी वंधइ, पुरिसो
 वंधइ, नपुंसओ वंधइ०, पुच्छा ? गोयमा ! इत्थी सिय वंधइ,
 सिय णो वंधइ । एवं तित्थि वि भाणियव्वा, णोइत्थी णो-
 पुरिस-णोनपुंसओ न वंधइ । णाणावरणिज्जं णं भंते ! कम्मं
 किं संजए वंधइ, असंजए वंधइ, संजयाऽसंजए वंधइ, णो
 संजय-णोअसंजय-णोसंजयाऽसंजए वंधइ ? । गोयमा !
 संजए सिय वंधइ, सिय णो वंधइ, असंजए वंधइ, संजयाऽ-
 संजए वि वंधइ, नोसंजय-णोअसंजय-णोसंजयासंजए ण
 वंधइ । एवं आउगवज्जाओ सत्तवि, आउगे हेट्टिला तिण्णि
 भयणाए, उवरिह्हे णं वंधइ । णाणावरणिज्जं णं भंते ! कम्मं
 किं सम्मदिट्ठी वंधइ, मिच्छदिट्ठी वंधइ, सम्मामिच्छदिट्ठी वंधइ ?
 गोयमा ! सम्मदिट्ठी सिय वंधइ, सिय णो वंधइ, मिच्छदिट्ठी
 वंधइ, सम्मामिच्छदिट्ठी वंधइ, एवं आउगवज्जाओ सत्त वि,
 आउए हेट्टिला दो भयणाए, सम्मामिच्छदिट्ठी न वंधइ। णाणा-
 वरणिज्जं णं भंते ! कम्मं किं सन्नी वंधइ, णोसन्नि-णोअसन्नी
 वंधइ ? गोयमा ! सन्नी सिय वंधइ, सिय णो वंधइ, असन्नी
 वंधइ, णोसन्नि-णोअसन्नी न वंधइ, एवं वेयणिज्जाऽऽउगोवज्जाओ
 छ कम्मप्पयडीओ, वेयणिज्जं हेट्टिला दो वंधति, उवरिह्हे

न वंधइ । णाणावरणिज्जं णं भंते ! कम्मं किं भवसिद्धिए
 वंधइ ? अभवसिद्धिए वंधइ, णो भवसिद्धिय-णो अभवसिद्धिए
 वंधइ ? गोयमा ! भवसिद्धिए भयणाए, अभवसिद्धिए वंधइ,
 णोभवसिद्धिय-णोअभवसिद्धिएन वंधइ, एवं आउगवज्जाओ
 सत्तवि, आउगं हेट्टिछा दो भयणाए, उपरिल्ले न वंधइ ।
 णाणावरणिज्जं णं भंते ! कम्मं किं चक्खुदंसणी वंधइ ?,
 अचक्खुदंसणी वंधइ ? ओहिदंसणी वंधइ ? केवल दंसणी
 वंधइ ? गोयमा ! हेट्टिछा तिण्णिण भयणाए, उवरिल्ले
 न वंधइ, एवं वेयणिज्जवज्जाओ सत्त वि, वेयणिज्जं हेट्टिछा
 तिन्नि वंधंति, केवलदंसणी भयणाए । णाणावरणिज्जं णं
 भंते ! कम्मं किं पज्जत्तओ वंधइ, अपज्जत्तओ वंधइ,
 णोपज्जत्तय-णोअपज्जत्तओ वंधइ ? गोयमा ! पज्जत्तओ
 भयणाए, अपज्जत्तओ वंधइ, णोपज्जत्तय-णोअपज्ज-
 त्तओ न वंधइ, एवं आउगवज्जाओ सत्त वि, आउगं हेट्टिछा
 दो भयणाए, उवरिल्ले न वंधइ । णाणावरणिज्जं णं भंते !
 कम्मं किं भासए वंधइ, अभासए वंधइ ? गोयमा ! दो वि
 भयणाए, एवं वेयणिज्जवज्जाओ सत्त वि, वेयणिज्जं भासए
 वंधइ, अभासए भयणाए । णाणावरणिज्जं णं भंते ! कम्मं
 किं परित्ते वंधइ, अपरित्ते वंधइ, णोपरित्ते णो अपरित्ते वंधइ ?
 गोयमा ! परित्ते भयणाए, अपरित्ते वंधइ, णोपरित्तणोअप-
 रित्ते न वंधइ, एवं आउगवज्जाओ सत्त कम्मप्पगडीओ,
 आउयं परित्तो वि, अपरित्तो वि भयणाए, णोपरित्त णो-

अपरित्तो न बंधइ । णाणावरणिज्जं णं भंते ! कम्मं किं
 आभिणिवोहियणाणी बंधइ, सुयणाणी, ओहिणाणी, मण-
 पज्वनाणी, केवलणाणी बंधइ ? गोयमा ! हेट्टिल्ला चत्तारि
 भयणाए, केवलणाणी न बंधइ, एवं वेयणिज्जवज्जाओ सत्त
 वि, वेयणिज्जं हेट्टिल्ला चत्तारि बंधंति, केवलणाणी भयणाए ।
 णाणा वरणिज्जं णं भंते ! कम्मं किं मइअन्नाणी बंधइ, सुय-
 अन्नाणी बंधइ, विभंगअन्नाणी बंधइ ? गोयमा ! आउग
 वज्जाओ सत्त वि बंधंति, आउगं भयणाए । णाणवरणिज्जं णं
 भंते ! कम्मं किं मणजोगी बंधइ, वयजोगी बंधइ, कायजोगी
 बंधइ, अजोगी बंधइ ? गोयमा ! हेट्टिल्ला तिन्नि भयणाए,
 अजोगी न बंधइ, एवं वेयणिज्जवज्जाओ सत्त वि। वेयणिज्जं
 हेट्टिल्ला तिणिण बंधंति, अजोगी न बंधइ । णाणा वरणिज्जं णं
 भंते ! कम्मं किं सागरोवउत्ते बंधइ, अणागारोवउत्ते बंधइ ?
 गोयमा ! अट्टसुवि भयणाए । णाणावरणिज्जं णं भंते ! कम्मं
 किं आहारए बंधइ, अणाहारए बंधइ ? गोयमा ! दो वि
 भयणाए, एवं वेयणिज्जाऽऽउगवज्जाणं छण्हं, वेयणिज्जं
 आहारए बंधइ, अणाहारए भयणाए, आउए आहारए भयणाए
 अणाहारए न बंधइ ? णाणा वरणिज्जं णं भंते ! कम्मं किं
 सुहुमे, बंधइ वायरे बंधइ णो सुहुम-णो वायरे बंधइ ? गोयमा !
 सुहुमे बंधइ, वायरे भयणाए, णो सुहुमणो वायरे न बंधइ,
 एवं आउगवज्जाओ सत्त वि, आउए सुहुमे, वायरे भयणाए,

णोसुहुमणोवायेरे न वंधइ । णाणावरणिज्जं णं भंते !
कम्मं किं चरिमे वंधइ, अचरिमे वंधइ ? गोयमा ! अट्ट वि
भयणाए ॥ सू० ५ ॥

छाया—ज्ञानावरणीयं खलु भदन्त । कर्म किं स्त्री वध्नाति, पुरुषो वध्नाति,
नपुंसको वध्नाति ? नोस्त्रीनोपुरुषनोनपुंसको वध्नाति ? गौतम ! स्त्री अपि वध्नाति,
पुरुषोऽपि वध्नाति नपुंसकोऽपि वध्नाति, नोस्त्रीनोपुरुषनोनपुंसकः स्याद् वध्नाति,
स्याद् नो वध्नाति, एवम् आयुष्कवर्जाः सप्त कर्मप्रकृतयः । आयुष्कं खलु

कर्मबन्धक वक्तव्यता

‘ णाणावरणिज्जं णं भंते ! ’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(णाणावरणिज्जं णं भंते ! कम्मं किं इत्थी वंधइ, पुरिसो
बंधइ, नपुंसओ बंधइ ?) हे भदन्त ! ज्ञानावरणीय कर्म क्या स्त्री बांधती
है ? या पुरुष बांधता है ? या नपुंसक बांधता है ? कौन बांधता है ?
अथवा—(णोइत्थी णोपुरिस - णोनपुंसओ बंधइ) स्त्री नहीं बांधती
है ? पुरुष नहीं बांधता है ? नपुंसक नहीं बांधता है ? तो कौन बांधता
है ? (गोयमा ! इत्थी वि बंधइ, पुरिसो वि बंधइ, नपुंसओ वि बंधइ)
हे गौतम ! स्त्री भी ज्ञानावरणीय कर्म बांधती है । पुरुष भी ज्ञानावर-
णीय कर्म बांधता है । नपुंसक भी ज्ञानावरणीय कर्म बांधता है । (णो
इत्थी णो पुरिस-णो नपुंसओ सिय बंधइ, सिय णो बंधइ) तथा जो
जीव नोस्त्री होता है—स्त्री नहीं होता है, नोपुरुष होता है—पुरुष नहीं

कर्मबन्धक वक्तव्यता—

“ णाणावरणिज्जं णं भंते ! ” इत्यादि—

सूत्रार्थ—(णाणावरणिज्जं णं भंते ! कम्मं किं इत्थी वंधइ, पुरिसो वंधइ,
नपुंसओ वंधइ ?) हे भदन्त ! ज्ञानावरणीय कर्म शुरु स्त्री बांधे छे ? के पुरुष
बांधे छे ? के नपुंसक बांधे छे ? अथवा—(णोइत्थी, णोपुरिस, णोनपुंसओ
बंधइ ?) ज्ञानावरणीय कर्म शुरु स्त्री बांधती नथी ? पुरुष बांधतो नथी ?
नपुंसक बांधतो नथी ? (गोयमा ! इत्थी वि बंधइ, पुरिसो वि बंधइ, नपुंसओ
वि बंधइ) हे गौतम ! स्त्री पणु ज्ञानावरणीय कर्म बांधे छे, पुरुष पणु
ज्ञानावरणीय कर्म बांधे छे. अने नपुंसक पणु ज्ञानावरणीय कर्म बांधे छे.
(णोइत्थी, णोपुरिस, णोनपुंसओ सिय बंधइ, सिय णो बंधइ) तथा वे
एव ‘ नो स्त्री ’ डोय छे—स्त्री डोती नथी, ‘ नो पुरुष ’ डोय छे—पुरुष डोतो

મદન્ત ! કર્મ કિં ત્રી વધ્નાતિ, પુરુષો વધ્નાતિ, નપુંમહો વધ્નાતિ પૃચ્છા ?
 ગૌતમ ! સ્ત્રી સ્યાદ્ વધ્નાતિ, સ્યાદ્ નો વધ્નાતિ, एवं प्रयोऽपि भणितव्याः, नो
 स्त्रीनोपुरुषनोनपुंसको वध्नाति । ज्ञानावरणीयं सत्यु भदन्त ! कर्म किं संयतो
 वध्नाति, असंयतो वध्नाति, संयताःसंयतो वध्नाति, नोसंयतनोअसंयतनो-

होता है, नोनपुंसक-नपुंसक नहीं होता है, वह जीव ज्ञानावरणीय
 कर्म बांधता भी है और नहीं भी बांधता है । (एवं आउगवज्जाओ
 सत्त कम्मप्पगडीओ) इसी प्रकार का कथन आयु कर्म को छोडकर
 बाकी के सातों कर्मों के विषयमें भी जानना चाहिये । (अउगं णं भंते !
 कम्मं किं इत्थी बंधइ, पुरिसो बंधइ, नपुंसओ बंधइ०पुच्छा) हे भदन्त !
 आयुर्कर्म का बंध क्या स्त्री करती है ? पुरुष करता है ? नपुंसक करता
 है ? इस प्रकार से पहिले के जैसा प्रश्न यहां पर भी करना चाहिये ।
 (गोयमा ! इत्थी सिय बंधइ, सिय णो बंधइ, एवं तिन्नि वि भाणिय-
 व्वा) हे गौतम ! आयुर्कर्म का बंध स्त्री करती भी है और नहीं भी
 करती है । इसी प्रकार से पुरुष और नपुंसक के विषय में भी ऐसा
 ही कथन कर लेना चाहिये । (णोइत्थी, णोपुरिस, णो नपुंसओ
 न बंधइ) जो नोस्त्री है नोपुरुष है ओ नोनपुंसक है वह आयुर्कर्म
 का बंध नहीं करना है । (णाणावरणिज्जं णं भन्ते ! कम्मं
 किं संजए बंधइ, असंजए बंधइ, संजयासंजए बंधइ, णो संजय,

नथी, ' नो नपुंसक ' डोय छे-नपुंसक डोतो नथी, ते एव ज्ञानावरणीय
 कर्म बांधे छे पणु णरे अने नथी पणु बांधतो. (एवं आउगवज्जाओ सत्त-
 कम्मप्पगडीओ) आयुर्कर्म सिवायना आकीनां साते कर्मोना विषयभां पणु आ
 प्रक्षारतुं कथन न समञ्जुं.

(आउगं णं भंते ! कम्मं किं इत्थी बंधइ, पुरिसो बंधइ, नपुंसओ बंधइ,
 पुच्छा) हे भदन्त ! आयुर्कर्मना બંધ સું સ્ત્રી કરે છે ? પુરુષ કરે છે ?
 નપુંસક કરે છે ? આ પ્રમાણે પહેલાંની જેવાં જ પ્રશ્નો અહીં સમજવા.

(ગોયમા ! इत्थी सिय बंधइ, सिय णो बंधइ एवं तिन्नि वि भाणियव्वा)
 हे गौतम ! आयुर्कर्मना બંધ સ્ત્રી કરે પણુ છે અને નથી પણુ કરતી. પુરુષ
 અને નપુંસકના વિષયમાં પણુ એવું જ કથન થવું લેઈએ. (ણોइत्थी, णो
 पुरिस, णोनपुंसओ न बंधइ) नो स्त्री-स्त्री न डोय .એવો एव, नो पुरुष-
 पुरुष न डोय એવો एव અને नो नपुंसक-नपुंसक न डोय એવો एव
 आयુર્કર્મના બંધ કરતો નથી. (णाणावरणिज्जं णं भंते ! किं संजए बंधइ, असं-

संयतासंयतो वध्नाति ? गौतम ! संयतः स्याद् वध्नाति, स्याद् न वध्नाति' असंयतो वध्नाति, संयताऽसंयतोऽपि वध्नाति, नोसंयतनोअसंयत-नोसंयत्रा संयतो न वध्नाति, एवम् आयुष्मवर्णाः सप्तापि, आयुष्कम् अधस्तनास्त्रयो

णा असंजय-णो संजयासंजए वंधइ ?) हे भदन्त ! ज्ञानाचरणीय कर्म क्या संयत जीव बांधता है ? असंयत जीव बांधता है ? या संयतासंयत जीव बांधता है ? अथवा-जो नो संयत होना है वह बांधता है ? या जो नो असंयत या नो संयतासंयत जीव होता है वह बांधता है । (गोयमा) हे गौतम ! (संजए सिय वंधइ, सिय णो वंधइ, असंजए वंधइ, संजयासंजए वि वंधइ, णो संजय, णो असंजय णो संजयासंजए ण वंधइ) ज्ञानाचरणीय कर्म संयत बांधना भी है और नहीं भी बांधता है । पर जो असंयत होता है वह बांधता है तथा जो संयतासंयत होता है वह भी बांधता है । तथा जो नो संयत होता है, नो असंयत होता है, नो संयतासंयत होता है, वह नहीं बांधता है । (एवं आउगवज्जाओ सत्त वि, आउगे हेट्टिह्ला तिण्णि भयणाए, उवरिल्ले ण वंधइ) इसी तरह से आयुर्कर्म को छोड़कर शेष सात कर्म प्रकृतियों के विषय में भी जानना चाहिये । आयुर्कर्म के विषय में ऐसा जानना चाहिये कि जो जीव संयत हो, असंयत हो, या संयतासंयत हो वह आयुर्कर्म को बांधता भी है

जए वंधइ, संजयासंजए वंधइ, णो संजय, णो असंजय, णो संजयासंए वंधइ ?) हे भदन्त ! शु संयत एव ज्ञानाचरणीय कर्म बांधे छे ? शु असंयत एव ते कर्म बांधे छे ? शु संयतासंयत एव ते कर्म बांधे छे ? अथवा शु नो संयत एव ते कर्म बांधे छे ? नो असंयत एव ते कर्म बांधे छे ? शु नो संयतासंयत एव ते कर्म बांधे छे ?

(गोयमा !) हे गौतम ! (संजए सिय वंधइ सिय णो वंधइ, असंजए वंधइ, संजयासंजए वि वंधइ, णो संजय, णो असंजय णो संजयासंजए ण वंधइ) ज्ञानाचरणीय कर्म संयत एव बांधे पणु छे अने नथी पणु बांधतो, पणु असंयत एव तथा संयतासंयत एव बांधे छे, नो संयत, नो असंयत अने नो संयतासंयत एवो ज्ञानाचरणीय कर्म बांधता नथी.

(एवं आउगवज्जाओ सत्त वि, आउगे हेट्टिह्ला तिण्णि भयणाए, उवरिल्ले ण वंधइ) आयुर्कर्म सिवायनी साते कर्मप्रकृतिओना विषयमां पणु आ प्रमा- षे न समञ्जुं. आयुर्कर्मना विषयमां ओवुं समञ्जुं के नो एव संयत होय, असंयत होय, अथवा तो संयतासंयत होय ते आयुर्कर्म बांधे छे पणु भरो अने नथी पणु बांधतो. परंतु नो एव.नो संयत होय, नो असंयत

મદન્ત ! કર્મ કિં સ્ત્રી વધ્નાતિ, પુરુષો વધ્નાતિ, નપુંમકો વધ્નાતિ પૃચ્છા ?
 ગૌતમ ! સ્ત્રી સ્યાદ્ વધ્નાતિ, સ્યાદ્ નો વધ્નાતિ, एवं प्रयोऽपि भणितव्याः, नो
 स्त्रीनोपुरुषनोनपुंसको वध्नाति । ज्ञानावरणीयं सन्तु भदन्त ! कर्म किं संयतो
 वध्नाति, असंयतो वध्नाति, संयताऽसंयतो वध्नाति, नोसंयतनोअसंयतनो-

હોતા હૈ, નોનપુંસક-નપુંસક નહીં હોતા હૈ, વહ્ જીવ જ્ઞાનાવરણીય
 કર્મ યાંધતા મી હૈ ઓર નહીં મી યાંધતા હૈ । (एवं आउगवज्जाओ
 सत्त कम्मप्पगहीओ) इसी प्रकार का कथन आयु कर्म को छोडकर
 वाकी के सातों कर्मों के विषयमें भी जानना चाहिये । (अउगं णं भंते !
 कम्मं किं इत्थी वंधइ, पुरिसो वंधइ, नपुंसओ वंधइ०पुच्छा) हे भदन्त !
 आयुर्कर्म का वंध क्या स्त्री करती है ? पुरुष करता है ? नपुंसक करता
 है ? इस प्रकार से पहिले के जैसा प्रश्न यहां पर भी करना चाहिये ।
 (गोयमा ! इत्थी सिय वंधइ, सिय णो वंधइ, एवं तित्ति वि भाणिय-
 व्वा) हे गौतम ! आयुर्कर्म का वंध स्त्री करती भी है और नहीं भी
 करती है । इसी प्रकार से पुरुष और नपुंसक के विषय में भी ऐसा
 ही कथन कर लेना चाहिये । (णोइत्थी, णोपुरिस, णो नपुंसओ
 न वन्धइ) जो नोस्त्री है नोपुरुष है ओ नोनपुंसक है वह आयुर्कर्म
 का वन्ध नहीं करता है । (णाणावरणिज्जं णं भन्ते ! कम्मं
 किं संजए वंधइ, असंजए वंधइ, संजयासंजए वंधइ, णो संजय,

नथी, 'नो नपुंसक' डोय छे-नपुंसक डोतो नथी, ते एव ज्ञानावरणीय
 कर्म यांधे छे पणु परे। अने नथी पणु यांधतो. (एवं आउगवज्जाओ सत्त-
 कम्मप्पगहीओ) आयुर्कर्म सिवायना णाकीनां साते कर्मांना विषयमां पणु आ
 प्रकारतुं कथन न समञ्जुं.

(आउગં णं भंते ! कम्मं किं इत्थी वंधइ, पुरिसो वंधइ, नपुंसओ वंधइ,
 पुच्छा) हे ભદન્ત ! આયુકર્મના ંધ શું સ્ત્રી કરે છે ? પુરુષ કરે છે ?
 નપુંસક કરે છે ? આ પ્રમાણે પહેલાંની જેવાં જ પ્રશ્નો અહીં સમજવા.

(ગોયમા ! इत्थी सिय वंधइ, सिय णो वंधइ एवं तित्ति वि भाणियव्वा)
 हे गौतम ! आयुर्कर्मना वंध स्त्री करे पणु छे अने नथी पणु करती. पुरुष
 अने नपुंसकना विषयमां पणु जेवुं न कथन थवुं जेधजे. (णोइत्थी, णो
 पुरिस, णोनपुंसओ न वंधइ) नो स्त्री-स्त्री न डोय जेवे। एव, नो पुरुष-
 पुरुष न डोय जेवे एव अने नो नपुंसक-नपुंसक न डोय जेवे एव
 आयुर्कर्मना वंध करतो नथी. (णाणावरणिज्जं णं भंते ! किं संजए वंधइ, असं-

वध्नाति, असंज्ञी वध्नाति, नोमञ्जि नोअसंज्ञि वध्नाति ? गौतम ! संज्ञी स्याद् वध्नाति, स्याद् न वध्नाति, असंज्ञी वध्नाति, नोसंज्ञि-नोअसंज्ञी न वध्नाति, एवं वेदनीया-ऽऽयुष्कवर्जाः पट् कर्मप्रकृतयः, वेदनीयम् अधस्तनो द्वौ वध्नीतः, उपरितनो भजनया, आयुष्कम् अधस्तनो द्वौ भजनया, उपरितनो न वध्नाति ।

होता है वह इस स्थिति में आयुर्कर्म का बंध नहीं करता है । (णाणावरणिज्जं णं भंते । कम्मं किं सन्नी वंधइ, असन्नी वंधइ, णो सन् नी, णो असन्नी वन्धइ) हे भदन्त ! ज्ञानावरणीय कर्म का बंध कौन जीव करता है-क्या जो जीव संज्ञी होता है वह करता है ? या जो जीव असंज्ञी होता है वह करता है ? (नो असन्नी वंधइ) अथवा जो नो संज्ञी होता है वह या जो असंज्ञी होता है वह करता है ? (गोयमा) हे गौतम ! (सन्नी सिय वंधइ, सिय नो वंधइ, असन्नी वंधइ, नो सन्नी, नो असन्नी न वन्धइ) जो संज्ञी जीव होता है व ज्ञानावरणीय कर्म का बंध करता भी है, और नहीं भी करता है । जो असंज्ञी जीव होता है वह ज्ञानावरणीय कर्म का बंध करता है । पर जो नो संज्ञी असंज्ञी जीव २ हैं वे इस ज्ञानावरणीय कर्म का बंध नहीं करते हैं । (एवं वेयणिज्जाउगवज्जाओ छ कम्मप्पयडोओ, वेयणिज्जं हेट्ठिल्ला दो वंधंति, उवरिल्ले भयणाए, आउगंहेट्ठिल्ला दो भयणाए, उवरिल्ले न वंधइ) इसी तरह से वेदनीय और आयु के सिवाय छ कर्म प्रकृतियों के विषय में भी कथन जानना चाहिये । वेदनीय कर्म का बंध

(णाणावरणिज्जं णं भंते ! कम्मं किं सन्नी वंधइ, असन्नी वंधइ, णो सन्नी, णो असन्नी वंधइ ?) हे भदन्त ! ज्ञानावरणीय कर्मने बंधं शुं संज्ञी एव पांधे छे ? के असंज्ञी एव पांधे छे ? अथवा ने नो संज्ञी डोय छे ते पांधे छे ? के ने नो असंज्ञी डोय ते पांधे छे ?

(गोयमा ! (सन्नी सिय वंधइ, सिय नो वंधइ, असन्नी वंधइ, नो सन्नी, नो असन्नी न वंधइ) संज्ञी एव ज्ञानावरणीय कर्मने बंधं करे पळु छे अने नथी पळु करतो, असंज्ञी एव ज्ञानावरणीय कर्मने बंधं करे छे, पळु नो संज्ञी अने नो असंज्ञी एवो ज्ञानावरणीय कर्मने बंधं करता नथी.

(एवं वेयणिज्जाउगवज्जाओ छ कम्मप्पयडोओ, वेयणिज्जं हेट्ठिल्ला दो वंधंति, उवरिल्ले भयणाए, आउगं हेट्ठिल्ला दो भयणाए, उवरिल्ले न वंधइ) आ प्रका-रतुं कथन वेदनीय अने आयुर्कर्म सिवायनी छ कर्मप्रकृतिओना विषयमां पळु सभज्जुं. संज्ञी एवो वेदनीय कर्मने बंधं करे छे, असंज्ञी एवो वेदनीय

મજનયા, ઉપરિતનો ન વધ્નાતિ । જ્ઞાનાવરણીયં લલુ મદન્ત ! કર્મ કિં સમ્યગ્-
દષ્ટિર્વધ્નાતિ, મિથ્યાદષ્ટિર્વધ્નાતિ, સમ્યગ્મિથ્યાદષ્ટિર્વધ્નાતિ ? ગૌતમ ।
સમ્યગ્દષ્ટિઃ સ્યાદ્ વધ્નાતિ, સ્યાદ્ ન વધ્નાતિ, મિથ્યાદષ્ટિર્વધ્નાતિ, સમ્યગ્
મિથ્યાદષ્ટિર્વધ્નાતિ, एवम्-आयुष्कर्मजाः सप्ताऽपि, आयुषम् अभस्तनौ द्वौ मज्ज-
नया, सम्यग्मिथ्यादष्टिर्न वध्नाति । ज्ञानावरणीयं ललु मदन्त ! कर्म किं संज्ञी

और नहीं भी बांधता है । पर जो जीव नो संयत, नो असंयत या नो
संयतासंयत होते हैं वे नहीं बांधते हैं । (पाणावरणिज्जं णं भंते ! कम्मं
किं सम्मद्विटी वंधइ, मिच्छद्विटी वंधइ, सम्मामिच्छद्विटी वंधइ) हे
भदन्त । ज्ञानावरणीय कर्म क्या सम्यग्दष्टि जीव बांधता है ? या मिथ्या-
दष्टि जीव बांधता है ? (गोपमा ! सम्मद्विटी सिय वंधइ, सिय
णो वंधइ, मिच्छद्विटी वंधइ, सम्मामिच्छद्विटी वंधइ) हे गौतम !
जो जीव सम्यग्दष्टि होता है वह ज्ञानावरणीय कर्म बांधता भी
है और नहीं भी बांधता है । पर जो जीव मिथ्यादष्टि या सम्यक्
मिथ्यादष्टि होता है वह तो बांधता ही है । (एवं आउगवज्जाओ सत्त
वि आउए हेद्विल्ला दो भयणाए, सम्मामिच्छद्विटी न वंधइ) इसी तरह
से आयुर्कर्म को छोड़कर बाकी के सातकर्मों को बांधने के विषय में भी
जानना चाहिये । आयुर्कर्म के विषय में ऐसा समझना चाहिये कि
जो जीव सम्यग्दष्टि या मिथ्यादष्टि होता है वह आयुर्कर्म का बंध
करता भी है—और नहीं भी करता है परन्तु जो सम्यग्मिथ्यादष्टि जीव

હોય, અથવા તે નો સંયતાસંયત હોય, તેઓ આયુકર્મ બાંધતા નથી.

પાણાવરણિજ્જં ણં ભંતે ! કિં સમ્મદ્વિટ્ટો વંધઈ, મિચ્છદ્વિટ્ટો વંધઈ, સમ્મામિ-
ચ્છદ્વિટ્ટો વંધઈ ?) :હે ભદન્ત ! શું જ્ઞાનાવરણીય કર્મ સમ્યગ્દષ્ટિ ઇવ બાંધે
છે ? કે મિથ્યાદષ્ટિ - ઇવ બાંધે છે ? કે સમ્યગ્મિથ્યાદષ્ટિ . ઇવ બાંધે છે ?

(ગોપમા !) :હે ગૌતમ ! (સમદ્વિટ્ટો સિય વંધઈ, સિય ણો વંધઈ,
મિચ્છદ્વિટ્ટો વંધઈ, સમ્મામિચ્છદ્વિટ્ટો વંધઈ) હે ગૌતમ ! સમ્યગ્દષ્ટિ ઇવ ક્યારેક
જ્ઞાનાવરણીય કર્મ બાંધે છે અને ક્યારેક નથી બાંધતો, પરંતુ મિથ્યાદષ્ટિ ઇવ
અથવા તે સમ્યક્ મિથ્યાદષ્ટિ ઇવ તે જ્ઞાનાવરણીય કર્મ બાંધે છે જ.

(एवं आउगवज्जाओ सत्त वि, आउए हेद्विल्ला दो भयणाए, सम्मामि-
च्छद्विटी न वंधइ) આયુકર્મ સિવાયના સાતે કર્મબંધ વિષે આ પ્રમાણે જ
સમજવું. આયુકર્મના બંધ વિષે નીચે પ્રમાણે સમજવું—જે ઇવ સમ્યગ્દષ્ટિ
હોય છે અથવા તે મિથ્યાદષ્ટિ હોય છે તે આયુકર્મનો બંધ ક્યારેક બાંધે
છે અને ક્યારેક નથી બાંધતો. પરંતુ જે ઇવ સમ્યક્ મિથ્યાદષ્ટિ હોય છે તે
આયુકર્મનો બંધ કરતો નથી.

वध्नाति, असंज्ञी वध्नाति, नोमञ्चि नोअसंज्ञि वध्नाति ? गौतम ! संज्ञी स्याद् वध्नाति, स्याद् न वध्नाति, असंज्ञी वध्नाति, नोसंज्ञि-नोअसंज्ञी न वध्नाति, एवं वेदनीया-ऽऽयुष्कवर्जाः पट् कर्मप्रकृतयः, वेदनीयम् अधस्तनी द्वौ वध्नीतः, उपरितनो भजनया, आयुष्कम् अधस्तनी द्वौ भजनया, उपरितनो न वध्नाति ।

होता है वह इस स्थिति में आयुर्कर्म का बंध नहीं करता है । (णाणा-वरणिज्जं णं भंते । कम्मं किं सन्नी वंधइ, असन्नी वंधइ, णो सन् नी, णो असन्नी वन्धइ) हे भदन्त ! ज्ञानावरणीय कर्म का बंध कौन जीव करता है-क्या जो जीव संज्ञी होता है वह करता है ? या जो जीव असंज्ञी होता है वह करता है ? (नो असन्नी वंधइ) अथवा जो नो संज्ञी होता है वह या जो असंज्ञी होता है वह करता है ? (गोयमा) हे गौतम ! (सन्नी सिय वंधइ, सिय नो वंधइ, असन्नी वंधइ, नो सन्नी, नो असन्नी न वन्धइ) जो संज्ञी जीव होता है व ज्ञानावरणीय कर्म का बंध करता भी है, और नहीं भी करता है । जो असंज्ञी जीव होता है वह ज्ञानावरणीय कर्म का बंध करता है । पर जो नो संज्ञी असंज्ञी जीव २ हैं वे इस ज्ञानावरणीय कर्म का बंध नहीं करते हैं । (एवं वेयणिज्जाउगवज्जाओ छ कम्मप्पयडीओ, वेयणिज्जं हेट्टिल्ला दो वंधंति, उवरिल्ले भयणाए, आउगंहेट्टिल्ला दो भयणाए, उवरिल्ले न वंधइ) इसी तरह से वेदनीय और आयु के सिवाय छ कर्म प्रकृतियों के विषय में भी कथन जानना चाहिये । वेदनीय कर्म का बंध

(णाणावरणिज्जं णं भंते ! कम्मं किं सन्नी वंधइ, असन्नी वंधइ, णो सन्नी, णो असन्नी वंधइ ?) हे भदन्त ! ज्ञानावरणीय कर्मने बंधंते शुं संज्ञी एव भांधे छे ? के असंज्ञी एव भांधे छे ? अथवा ने नो संज्ञी भांधे छे ते भांधे छे ? के ने नो असंज्ञी भांधे ते भांधे छे ?

(गोयमा ! (सन्नी सिय वंधइ, सिय नो वंधइ, असन्नी वंधइ, नो सन्नी, नो असन्नी न वंधइ) संज्ञी एव ज्ञानावरणीय कर्मने बंधंते पणु छे अने नथी पणु करतो, असंज्ञी एव ज्ञानावरणीय कर्मने बंधंते पणु छे, पणु नो संज्ञी अने नो असंज्ञी एवो ज्ञानावरणीय कर्मने बंधंते पणु करतो नथी ।

(एवं वेयणिज्जाउगवज्जाओ छ कम्मप्पयडीओ, वेयणिज्जं हेट्टिल्ला दो वंधंति, उवरिल्ले भयणाए, आउगं हेट्टिल्ला दो भयणाए, उवरिल्ले न वंधइ) आ प्रका-रं कथन वेदनीय अने आयुर्कर्म सिवायनी छ कर्मप्रकृतियोंना विषयभां पणु समञ्जुं संज्ञी एवो वेदनीय कर्मने बंधंते पणु छे, असंज्ञी एवो वेदनीय

જ્ઞાનાવરણીયં લલુ મદન્ત ! કમ્ કિં ભવસિદ્ધિકો વધ્નાતિ, અભવસિદ્ધિકો વધ્નાતિ, નોભવસિદ્ધિક-નોઅભવસિદ્ધિકો વધ્નાતિ ? ગૌતમ ! ભવસિદ્ધિકો મજ્જનયા, અભવસિદ્ધિકો વધ્નાતિ, નોભવસિદ્ધિક-નોઅભવસિદ્ધિકો ન વધ્નાતિ,

જો જીવ સંજી હોતે હું વે તો કરતે હું પર જો જીવ ન સંજી હું ઓર ન અસંજી હું, વે વેદનોય કર્મ કા વંધ કરતે મી હું ઓર નહીં મી કરતે હું । આયુકર્મ કા વંધ જો જીવ સંજી હોતે હું વે અથવા જો અસંજી હોતે હું વે કરતે મી હું ઓર નહીં મી કરતે હું તથા જો જીવ ન સંજી હું ઓર ન અસંજી હું વે આયુકર્મ કા વંધ નહીં કરતે હું । (જાનાવરણિ-વ્જં ણં મંતે ! કમ્મં કિં ભવસિદ્ધિય વંધહ, અભવસિદ્ધિય વંધહ ?) હે મદન્ત ! જ્ઞાનાવરણીય કર્મ કા વંધ જો જીવ ભવસિદ્ધિક હોતા હૈ વંધ કરતા હૈ ? યા જો જીવ અભવસિદ્ધિક-અભવ્ય હોતા હૈ વહ કરતા હૈ । યા જો (જો ભવસિદ્ધિય, જો અભવસિદ્ધિય વંધહ) જીવ નો ભવ-સિદ્ધિક હોતા હૈ, નો અભવસિદ્ધિક હોતા હૈ વહ કરતા હૈ ? (ગોયમા ! ભવસિદ્ધિય મયણાણ, અભવસિદ્ધિય વંધહ, જો ભવસિદ્ધિય, જો અભ-વસિદ્ધિય ન વંધહ) હે ગૌતમ ! જો જીવ ભવસિદ્ધિક હોતા હૈ, વહ હસ જ્ઞાનાવરણીય કર્મ કા વંધ કરતા મી હૈ ઓર નહીં મી કરતા હૈ । પર જો અભવસિદ્ધિક હોતા હૈ, વહ તો વંધ કરતા હી હૈ; તથા જો જીવ ન ભવસિદ્ધિક હું, ન અભવસિદ્ધિક હું વે જ્ઞાનાવરણીય કર્મ કા વંધ નહીં

કર્મનો બંધ કરે છે, પરંતુ નો સંજી અને નો અસંજી હોવો વેદનીય કર્મનો બંધ કરે પણ છે અને નથી પણ કરતા. આયુકર્મનો બંધ સંજી તથા અસંજી હોવો કરે પણ છે અને નથી પણ કરતા, પરંતુ નો સંજી હોવો આયુકર્મનો બંધ કરતા નથી.

(જાનાવરણિવ્જં ણં મંતે ! કમ્મં કિં ભવસિદ્ધિય વંધહ, અભવસિદ્ધિય વંધહ ?) હે મદન્ત ! જ્ઞાનાવરણીય કર્મ ભવસિદ્ધિક (ભવ્ય હવ) બાંધે છે કે અભ-વસિદ્ધિક (અભવ્ય હવ) બાંધે છે ? અથવા (જો ભવસિદ્ધિય, જો અભ-વસિદ્ધિય વંધહ ?) ને હવ નો ભવસિદ્ધિક હોય છે તે બાંધે છે ? કે ને હવ નો અભવસિદ્ધિક હોય છે તે બાંધે છે ?

(ગોયમા ! ભવસિદ્ધિય મયણાણ, અભવસિદ્ધિય વંધહ, જો ભવસિદ્ધિય જો અભવસિદ્ધિય ન વંધહ) હે ગૌતમ ! ને હવ ભવસિદ્ધિક હોય છે તે જ્ઞાના-વરણીય કર્મ બાંધે પણ છે અને નથી પણ બાંધેતા, પણ ને હવ અભવ-સિદ્ધિક હોય છે તે તો આ કર્મ બાંધે ન છે. નો ભવસિદ્ધિક અને નો અભવસિદ્ધિક હોવો જ્ઞાનાવરણીય કર્મ બાંધેતા નથી.

एवम् आयुष्क वजाः सप्तापि, आयुष्कम् अथस्तनो द्वौ भजनया, उपरितनो न
बध्नाति, ज्ञानावरणीयं खलु भदन्त ! कर्म किं चक्षुर्दर्शनी बध्नाति, अचक्षुर्दर्शनी
बध्नाति अवधिदर्शनी बध्नाति, केवलदर्शनी बध्नाति ? गौतम ! अथस्वनात्प्रयो
भजनया, उपरितनो न बध्नाति, एवं वेदनीयवजाः सप्ताऽपि, वेदनीयम् अथ-

करते हैं। (एवं आउगज्जाओ सत्तवि, आउगं हेट्टिल्ला दो भयणाए उव-
रिल्ले न वंधइ) इसी तरह से आयुर्कर्म को छोड़कर बाकी के सात कर्मों
के बंध करने के विषय में जानना चाहिये। आयु कर्म का बंध जो भव-
सिद्धिक है वे तथा जो अभवसिद्धिक हैं वे करते भी हैं और नहीं भी
करते हैं। पर जो भवसिद्धिक हैं, नो अभवसिद्धिक हैं वे आयुर्कर्म का
बंध नहीं करते हैं। (णाणावरणिज्जं णं भंते ! कम्मं किं चक्खुदंसणी
बंधइ, ? अचक्खुदंसणी बंधइ, ओहिदंसणी बंधइ ? केवलदंसणी बंधइ ?)
हे भदन्त ! ज्ञानावरणीय कर्म का बंध क्या चक्षु दर्शनवाला जीव करता
है ? या जो अचक्षुदर्शनवाला जीव है वह करता है ? या जो अवधिद-
र्शनवाला जीव है वह करता है ? या केवलदर्शनवाला जो जीव है वह
करता है ? (हेट्टिल्ला तिण्णि भयणाए, उवरिल्ले न वंधइ, एवं वेयणि-
ज्जवज्जाओ सत्त वि) हे गौतम ! नीचे के तीन-चक्षुदर्शनी, अचक्षु-
दर्शनी और अवधिदर्शनी-ये तीन-ज्ञानावरणीय कर्म का बंध करते भी
हैं, नहीं भी करते हैं। तथा ऊपर का जो केवलदर्शनजीव है वह ज्ञाना-

(एवं आउगवज्जाओ सत्त वि, आउगं हेट्टिल्ला दो भयणाए, उवरिल्ले न
बंधइ) आयुर्कर्म निवायना साते कर्मेना बंध विषे पणु आ प्रभावे अ
संभंअणुं. भवसिद्धिक अने अभवसिद्धिक एवे आउकर्मनेो बंध करे पणु छे
अने नथी पणु करता. पणु नेो भवसिद्धिक एवेो अने नेो अभवसिद्धिक
एवेो आउकर्मनेो बंध करता नथी.

(णाणावरणिज्जं णं भंते ! कम्मं किं चक्खुदंसणी बंधइ ? अचक्खुदंसणी
बंधइ ? ओहिदंसणी बंधइ ? केवलदंसणी बंधइ ?) हे भदन्त ! ज्ञानावरणीय
कर्मनेो बंध शु चक्षु-दर्शनवाणेो एव करे छे ? के अचक्षु-दर्शनवाणेो एव
करे छे ? के अवधि-दर्शनवाणेो एव करे छे ? के केवण-दर्शनवाणेो एव करे छे ?

(हेट्टिल्ला तिण्णि भयणाए, उवरिल्ले न वंधइ. एवं वेयणिज्जवज्जाओ सत्त वि)
हे गौतम ! चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी अने अवधिदर्शनी एवेो ज्ञानावरणीय
कर्मनेो बंध करे छे पणु अरां अने नथी पणु करता. परंतु केवल दर्शनवाणेो

જ્ઞાનાવરણીયં સ્વલુ ભદન્ત ! કર્મ કિં ભવસિદ્ધિકો વધ્નાતિ, અભવસિદ્ધિકો વધ્નાતિ, નોભવસિદ્ધિક-નોઅભવસિદ્ધિકો વધ્નાતિ ? ગૌતમ ! ભવસિદ્ધિકો મજનયા, અભવસિદ્ધિકો વધ્નાતિ, નોભવસિદ્ધિક-નોઅભવસિદ્ધિકો ન વધ્નાતિ,

જો જીવ સંજી હોતે હિં વે તો કરતે હિં પર જો જીવ ન સંજી હિં ઓર ન અસંજી હિં, વે વેદનોય કર્મ કા વંધ કરતે ખી હિં ઓર નહીં ખી કરતે હિં । આયુકર્મ કા વંધ જો જીવ સંજી હોતે હિં વે અથવા જો અસંજી હોતે હિં વે કરતે ખી હિં ઓર નહીં ખી કરતે હિં તથા જો જીવ ન સંજી હિં ઓર ન અસંજી હિં વે આયુકર્મકા વંધ નહીં કરતે હિં । (ળાળાવરણિ-વ્જં ણં મંતે ! કર્મ્મ કિં ભવસિદ્ધિય વંધઈ, અભવસિદ્ધિય વંધઈ ?) હે ભદન્ત ! જ્ઞાનાવરણીય કર્મ કા વંધ જો જીવ ભવસિદ્ધિક હોતા હે વંધ કરતા હે ? યા જો જીવ અભવસિદ્ધિક-અભવ્ય હોતા હે વંધ કરતા હે । યા જો (ણો ભવસિદ્ધિય, ણો અભવસિદ્ધિય વંધઈ) જીવ નો ભવસિદ્ધિક હોતા હે, નો અભવસિદ્ધિક હોતા હે વંધ કરતા હે ? (ગોયમા ! ભવસિદ્ધિય મયણાણ, અભવસિદ્ધિય વંધઈ, ણો ભવસિદ્ધિય, ણો અભવસિદ્ધિય ન વંધઈ) હે ગૌતમ ! જો જીવ ભવસિદ્ધિક હોતા હે, વંધ હસ જ્ઞાનાવરણીય કર્મ કા વંધ કરતા ખી હે ઓર નહીં ખી કરતા હે । પર જો અભવસિદ્ધિક હોતા હે, વંધ તો વંધ કરતા હી હે; તથા જો જીવ ન ભવસિદ્ધિક હે, ન અભવસિદ્ધિક હે વે જ્ઞાનાવરણીય કર્મ કા વંધ નહીં

કર્મનેા બંધ કરે છે, પરંતુ નો સંજી અને નો અસંજી હોવો વેદનીય કર્મનેા બંધ કરે પણુ છે અને નથી પણુ કરતા. આયુકર્મનેા બંધ સંજી તથા અસંજી હોવો કરે પણુ છે અને નથી પણુ કરતા, પરંતુ નો સંજી હોવો આયુકર્મનેા બંધ કરતા નથી.

(ળાળાવરણિવ્જં ણં મંતે ! કર્મ્મ કિં ભવસિદ્ધિય વંધઈ, અભવસિદ્ધિય વંધઈ ?) હે ભદન્ત ! જ્ઞાનાવરણીય કર્મ ભવસિદ્ધિક (ભવ્ય હવ) બાધે છે કે અભવસિદ્ધિક (અભવ્ય હવ) બાધે છે ? અથવા (ણો ભવસિદ્ધિય, ણો અભવસિદ્ધિય વંધઈ ?) જે હવ નો ભવસિદ્ધિક હોય છે તે બાધે છે ? કે જે હવ નો અભવસિદ્ધિક હોય છે તે બાધે છે ?

(ગોયમા ! ભવસિદ્ધિય મયણાણ, અભવસિદ્ધિય વંધઈ, ણો ભવસિદ્ધિય ણો અભવસિદ્ધિય ન વંધઈ) હે ગૌતમ ! જે હવ ભવસિદ્ધિક હોય છે તે જ્ઞાનાવરણીય કર્મ બાધે પણુ છે અને નથી પણુ બાધતો, પણુ જે હવ અભવસિદ્ધિક હોય છે તે તો આ કર્મ બાધે ન છે. નો ભવસિદ્ધિક અને નો અભવસિદ્ધિક હોવો જ્ઞાનાવરણીય કર્મ બાધતા નથી.

एवम् आयुष्क वर्जाः सप्तापि, आयुष्कम् अधस्तनीं श्रो भजनया, उपरितनो न
बध्नाति, ज्ञानावरणीयं खलु भदन्त ! कर्म किं चक्षुर्दर्शनीं बध्नाति, अचक्षुर्दर्शनी
बध्नाति अवधिदर्शनीं बध्नाति, केवलदर्शनीं बध्नाति ? गौतम ! अधस्तनाह्वयो
भजनया, उपरितनो न बध्नाति, एवं वेदनीयवर्जाः सप्ताऽपि, वेदनीयम् अध-

करते हैं। (एवं आउगज्जाओ सत्तवि, आउगं हेट्टिल्ला दो भयणाए उव-
रिल्ले न वंधइ) इसी तरह से आयुर्कर्म को छोड़कर बाकी के सात कर्मों
के बंध करने के विषय में जानना चाहिये। आयु कर्म का बंध जो भव-
सिद्धिक है वे तयां जो अभवसिद्धिक हैं वे करते भी हैं और नहीं भी
करते हैं। पर जो भवसिद्धिक हैं, नो अभवसिद्धिक हैं वे आयुर्कर्म का
बंध नहीं करते हैं। (णाणावरणिज्जं णं भंते ! कम्मं किं चक्खुदंसणी
बंधइ, ? अचक्खुदंसणी बंधइ, ओहिदंसणी बंधइ ? केवलदंसणी बंधइ ?)
हे भदन्त ! ज्ञानावरणीय कर्म का बंध क्या चक्षु दर्शनवाला जीव करता
है ? या जो अचक्षुदर्शनवाला जीव है वह करता है ? या जो अवधिद-
र्शनवाला जीव है वह करता है ? या केवलदर्शनवाला जो जीव है वह
करता है ? (हेट्टिल्ला तिणिण भयणाए, उवरिल्ले न वंधइ, एवं वेयणि-
ज्जवज्जाओ सत्त वि) हे गौतम ! नीचे के तीन-चक्षुदर्शनी, अचक्षु-
दर्शनी और अवधिदर्शनी-ये तीन-ज्ञानावरणीय कर्म का बंध करते भी
हैं, नहीं भी करते हैं। तथा ऊपर का जो केवलदर्शनजीव है वह ज्ञाना-

(एवं आउगज्जाओ सत्त वि, आउगं हेट्टिल्ला दो भयणाए, उवरिल्ले न
बंधइ) आयुर्कर्म सिधायना साते कर्मेना भंध विसे पणु आ प्रमाहे न
समंजसं, भवसिद्धिक अने अभवसिद्धिक एवे आयुर्कर्मने भंध करे पणु छे
अने नथी पणु करता. पणु नो भवसिद्धिक एवे अने नो अभवसिद्धिक
एवे आयुर्कर्मने भंध करता नथी.

(णाणावरणिज्जं णं भंते ! कम्मं किं चक्खुदंसणी बंधइ ? अचक्खुदंसणी
बंधइ ? ओहिदंसणी बंधइ ? केवलदंसणी बंधइ ?) हे भदन्त ! ज्ञानावरणीय
कर्मने भंध शुं चक्षु-दर्शनवाणे एव करे छे ? के अचक्षु-दर्शनवाणे एव
करे छे ? के अवधि-दर्शनवाणे एव करे छे ? के केवल-दर्शनवाणे एव करे छे ?

(हेट्टिल्ला तिणिण भयणाए, उवरिल्ले न वंधइ, एवं वेयणिज्जवज्जाओ सत्त वि)
हे गौतम ! चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी अने अवधिदर्शनी एवे ज्ञानावरणीय
कर्मने भंध करे छे पणु भरां अने नथी पणु करता. परंतु केवल दर्शनवाणे

જ્ઞાનાવરણીયં સ્વલુ ભદન્ત ! કર્મ કિં ભવસિદ્ધિકો વધ્નાતિ, અભવસિદ્ધિકો વધ્નાતિ, નોભવસિદ્ધિક-નોઅભવસિદ્ધિકો વધ્નાતિ ? ગૌતમ ! ભવસિદ્ધિકો મજનયા, અભવસિદ્ધિકો વધ્નાતિ, નોભવસિદ્ધિક-નોઅભવસિદ્ધિકો ન વધ્નાતિ,

જો જીવ સંજી હોતે હું વે તો કરતે હું પર જો જીવ ન સંજી હું ઓર ન અસંજી હું, વે વેદનોય કર્મ કા વંધ કરતે મી હું ઓર નહીં મી કરતે હું । આયુકર્મ કા વંધ જો જીવ સંજી હોતે હું વે અથવા જો અસંજી હોતે હું વે કરતે મી હું ઓર નહીં મી કરતે હું તથા જો જીવ ન સંજી હું ઓર ન અસંજી હું વે આયુકર્મ કા વંધ નહીં કરતે હું । (ળાળાવરણિ-જ્ઞં ણં મંતે ! કર્મં કિં ભવસિદ્ધિય વંધઈ, અભવસિદ્ધિય વંધઈ ?) હે ભદન્ત ! જ્ઞાનાવરણીય કર્મ કા વંધ જો જીવ ભવસિદ્ધિક હોતા હૈ વંધ કરતા હૈ ? યા જો જીવ અભવસિદ્ધિક-અભવ્ય હોતા હૈ વહ કરતા હૈ । યા જો (ણો ભવસિદ્ધિય, ણો અભવસિદ્ધિય વંધઈ) જીવ નો ભવસિદ્ધિક હોતા હૈ, નો અભવસિદ્ધિક હોતા હૈ વહ કરતા હૈ ? (ગોયમા ! ભવસિદ્ધિય મયળાઈ, અભવસિદ્ધિય વંધઈ, ણો ભવસિદ્ધિય, ણો અભવસિદ્ધિય ન વંધઈ) હે ગૌતમ ! જો જીવ ભવસિદ્ધિક હોતા હૈ, વહ હસ જ્ઞાનાવરણીય કર્મ કા વંધ કરતા મી હૈ ઓર નહીં મી કરતા હૈ । પર જો અભવસિદ્ધિક હોતા હૈ, વહ તો વંધ કરતા હી હૈ; તથા જો જીવ ન ભવસિદ્ધિક હું, ન અભવસિદ્ધિક હું વે જ્ઞાનાવરણીય કર્મ કા વંધ નહીં

કર્મનો બંધ કરે છે, પરંતુ નો સંજી અને નો અસંજી હવે। વેદનીય કર્મનો બંધ કરે પણ છે અને નથી પણ કરતા. આયુકર્મનો બંધ સંજી તથા અસંજી હવે। કરે પણ છે અને નથી પણ કરતા, પરંતુ નો સંજી હવે। આયુકર્મનો બંધ કરતા નથી.

(ળાળાવરણિજ્ઞં ણં મંતે ! કર્મં કિં ભવસિદ્ધિય વંધઈ, અભવસિદ્ધિય વંધઈ ?) હે ભદન્ત ! જ્ઞાનાવરણીય કર્મ ભવસિદ્ધિક (ભવ્યં હવ) બાધે છે કે અભવસિદ્ધિક (અભવ્યં હવ) બાધે છે ? અથવા (ણો ભવસિદ્ધિય, ણો અભવસિદ્ધિય વંધઈ ?) જે હવ નો ભવસિદ્ધિક હોય છે તે બાધે છે ? કે જે હવ નો અભવસિદ્ધિક હોય છે તે બાધે છે ?

(ગોયમા ! ભવસિદ્ધિય મયળાઈ, અભવસિદ્ધિય વંધઈ, ણો ભવસિદ્ધિય ણો અભવસિદ્ધિય ન વંધઈ) હે ગૌતમ ! જે હવ ભવસિદ્ધિક હોય છે તે જ્ઞાનાવરણીય કર્મ બાધે પણ છે અને નથી પણ બાધેતા, પણ જે હવ અભવસિદ્ધિક હોય છે તે તો આ કર્મ બાધે ન છે. નો ભવસિદ્ધિક અને નો અભવસિદ્ધિક હવે। જ્ઞાનાવરણીય કર્મ બાધેતા નથી.

कर्म किम् आभिनवोधिकज्ञानी बध्नाति, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनः पर्यवज्ञानी, केवलज्ञानी बध्नाति? गौतम ! अद्यस्तनाश्रत्वारो भजनया, केवलज्ञानी न बध्नाति, एवं वेदनीयवर्जाः सप्ताऽपि, वेदनीयम् अद्यस्तनाश्रत्वारोऽपि बध्नन्ति, केवलज्ञानी भजनया । ज्ञानावरणीयं खलु भदन्त । कर्म किं मत्यज्ञानी बध्नाति, श्रुताऽज्ञानी

का बंध भजना से परित्त भी और अपरित्त भी ये दोनों जीव भी करते हैं । परन्तु जो नो परित्त और नो अपरित्त जीव हैं वे आयु कर्म का बंध नहीं करते हैं । (णाणावरणिज्जं णं भंते ! कम्मं किं आभिणिवोहियणाणी बंधइ, सुयणाणी, ओहिनाणी, मणपज्जवनाणी, केवलणाणी बंधइ) हे भदन्त ! ज्ञानावरणीय कर्म का बंध क्या आभिनवोधिकज्ञानी-मतिज्ञानवाला जीव करता है ? कि श्रुतज्ञानी करता है ? अथवा कि अवधिज्ञानवाला जीव करता है, या मनः पर्यव ज्ञानवाला जीव करता है ? या केवलज्ञानवाला जीव करता है ? (गौयमा ! हेट्टिला चत्तारि भयणाए, केवलणाणी न बंधइ) हे गौतम ! मतिज्ञानवाला, श्रुतज्ञानवाला, अवधिज्ञानवाला और मनः पर्यवज्ञानवाला जीव भजना से ज्ञानावरणीय कर्म का बंध करता है । परन्तु जो केवल ज्ञानवाला जीव होता है वह ज्ञानावरणीय कर्म का बंध नहीं करता है । (एवं वेयणिज्जवज्जाओ सत्त वि) इसी तरह से वेदनीयकर्म को छोड़कर सातकर्मप्रकृतियों के बंध करनेके

परंतु जे नो परित्त अने नो अपरित्त एवो छे तेओ आयु कर्मना अंध करता नथी।

(णाणावरणिज्जं णं भंते ! किं कम्मं अभिणिवोहियणाणी बंधइ, सुयणाणी, ओहिनाणी, मणपज्जवनाणी, केवलणाणी बंधइ ?) हे भदन्त ! शुं ज्ञानावरणीय कर्मना अंध आभिनवोधिकज्ञानी (मतिज्ञानवालो) एव करे छे ? हे श्रुतज्ञानी करे छे ? हे अवधिज्ञानवालो एव करे छे ? हे मनःपर्यवज्ञानवालो एव करे छे ? हे केवलज्ञानवालो एव करे छे ?

(गौयमा ! हेट्टिला चत्तारि भयणाए, केवलणाणी न बंधइ) हे गौतम ! मतिज्ञानवालो, श्रुतज्ञानवालो, अवधिज्ञानवालो अने मनःपर्यवज्ञानवालो एव विकल्पे ज्ञानावरणीय कर्मना अंध करे छे. अट्टले के तेओ ते कर्मना अंध पाधि पणु छे अने नथी पणु पांधता. परंतु केवलज्ञानी एव ज्ञानावरणीय कर्मना अंध करतो नथी।

(एवं वेयणिज्जवज्जाओ सत्त वि) वेदनीय कर्म सिवायनी साते कर्म-प्रकृतियेना कर्मबंधना विषयमां पणु अे ज प्रभाणुे समण्वुं।

भदन्त ! कर्म किं परीतो वध्नाति ? अपरीतो वध्नाति ? नोपरीत-नोअपरीतो वध्नाति ? गौतम ! परीतो भजनया, अपरीतो वध्नाति, नोपरित-नोअपरीतो न वध्नाति, एवम् आयुःकवर्जाः सप्त कर्ममहृतयः, आयुःकं परीतोऽपि, अपरीतोऽपि भजनया, नोपरीत-नोअपरीतो न वध्नाति । ज्ञानावरणीयं खलु भदन्त !

हे ! (जाणावरणिज्जं णं भंते ! कम्मं किं परिच्छे वंधइ, अपरिच्छे वंधइ, णो परिच्छे णो अपरिच्छे वंधइ ?) हे भदन्त ! ज्ञानावरणीय कर्म का बंध परिच्छे-प्रत्येक शरीर वाला जीव, अथवा जिसका संसार निकट है ऐसा भव्यजीव करता है ? कि अपरिच्छे जीव करता है ? अथवा नो परिच्छे जीव करता है कि नो अपरिच्छे जीव करता है ? (गोयमा) हे गौतम ! (परिच्छे भयणाए, अपरिच्छे वंधइ, णो परिच्छे णो अपरिच्छे न वंधइ) जो परिच्छे जीव है वह ज्ञानावरणीय कर्म का बंध भजना से करता है- अर्थात् करताभी है और नहीं भी करता है । अपरिच्छे जीव ज्ञानावरणीय कर्म का बंध करता है । जो जीव नो परिच्छे और नो अपरिच्छे हैं वे इसका बंध नहीं करते हैं । (एवं आउगावज्जाभो सत्तकम्मप्पयडीओ) इसी तरह का कथन आयुःकर्म को छोड़कर शेष सातकर्मप्रकृतियों के बंध करने के विषय में भी जानना चाहिये । (आउयं परिच्छो वि अपरिच्छो वि भयणाए, णो परिच्छे णो अपरिच्छे न वंधइ) आयुःकर्म

(जाणावरणिज्जं णं भंते ! किं परिच्छे वंधइ, अपरिच्छे वंधइ, णो परिच्छे-णो अपरिच्छे वंधइ ?) हे भदन्त ! ज्ञानावरणीय कर्मने बंध परिच्छे (प्रत्येक शरीरवाले) एव, अथवा नोने संसार परिच्छे-भयादिसे एवेने एव एव) करे छे ? के अपरिच्छे एव करे छे ? के नो परिच्छे एव करे छे ? के नो अपरिच्छे एव करे छे ?

(गोयमा !) हे गौतम ! (परिच्छे भयणाए, अपरिच्छे वंधइ, णो परिच्छे णो अपरिच्छे न वंधइ) ने परिच्छे एव छे ते ज्ञानावरणीय कर्मने बंध निकटसे करे छे-अदृष्टे के एवेने एव ज्ञानावरणीय कर्म बांधे छे पण अरेने अने नथी पण बांधते, अपरिच्छे एव ज्ञानावरणीय कर्मने बंध करे छे, परंतु नो परिच्छे एवेने नो अपरिच्छे एवेने ज्ञानावरणीय कर्मने बंध करता नथी । (एवं आउगावज्जाभो सत्त कम्मप्पयडीओ) आयुःकर्म सिवायती साते कर्मप्रकृतियोने बंध करवाना विषयमां पण अथ ममाण्णे समज्जुं (आउयं परिच्छो वि, अपरिच्छो वि भयणाए, णो परिच्छे णो अपरिच्छे न वंधइ) परिच्छे अने अपरिच्छे एवेने आयुःकर्मने बंध बांधे छे पण अरेने अने नथी पण

एवं वेदनीयवर्जाः सप्ताऽपि, वेदनीयम् अधस्तना वध्नन्ति, अयोगी न वध्नाति । ज्ञानावरणीयं खलु भदन्त ! कर्म किम् साकारोपयुक्तो वध्नाति, अनाकारोपयुक्तो वध्नाति ? गौतम ! अष्टमु अपि भजनया । ज्ञानावरणीयं खलु भदन्त ! कर्म किम् आहारको वध्नाति, अनाहारको वध्नाति ? गौतम ! द्वावपि भजनया, एवं वेद-

जो योगवाले नहीं हैं वे करते हैं ? (गोयमा ! हेद्विह्ला तिणि भयणाए, अजोगी न वंधह, एवं वेयणिज्जवज्जाओ सत्त वि, वेयणिज्जं हेद्विह्ला, तिणि वंधंति, अजोगी न वंधह) हे गौतम ! मनयोगी वचनयोगी और काययोगी ये तीन योगवाले जीव ज्ञानावरणीय कर्म का बंध भजना से करते हैं-और जो अयोगी जीव होते हैं वे नहीं करते हैं । इसी तरह से वेदनीय कर्म को छोड़कर शेष सात कर्मप्रकृतियों को बांधने के विषय में भी जानना चाहिये वेदनीय कर्म का बंध नीचे के ये मनयोगी, वचनयोगी और काययोगी जीव करते हैं । अयोगी जीव इसका बंध नहीं करते हैं । (णाणावरणिज्जं णं भंते ! कम्मं किं सागारोवउत्ते वंधह ? अणागारोवउत्ते वंधह ?) हे भदन्त ! ज्ञानावरणीय कर्मका बंध जो साकार उपयोगवाला जीव होता है-वह बांधता है कि जो अनाकारोपयोगवाला होता है वह बांधता है ? (अट्टसु वि भयणाए) हे गौतम ! आठों कर्म-प्रकृतियों को ऐसा जीव भजना से बांधता है । (णाणावरणिज्जं णं भंते ! कम्मं किं आहारए वंधह ? अणाहारए वंधह ?) हे भदन्त ! ज्ञानावरणीयकर्म का

वजाओ सत्त वि, वेयणिज्जं हेद्विह्ला तिणि वंधंति अजोगी न वंधह) हे गौतम ! मनयोगी, वचनयोगी અને काययोगी एवो ज्ञानावरणीय कर्मनेो अंध विकल्पे करे छे અને अयोगी एवो ज्ञानावरणीय कर्मनेो अंध करता नथी. वेदनीय कर्म सिवायनी साते कर्मप्रकृतियेना अंध विषे पणु अण प्रमाणे समञ्जुं. वेदनीय कर्मनेो अंध मनयोगी, वचनयोगी અને काययोगी एवो करे छे, परंतु अयोगी एव तेनेो अंध करता नथी.

(णाणावरणिज्जं णं भंते ! कम्मं किं सागारोवउत्ते वंधह ? अणागारोवउत्ते वंधह ?) हे भदन्त ! शु साकार उपयोगवाणे एव ज्ञानावरणीय कर्मनेो अंध करे छे ? के अनाकार उपयोगवाणे एव ते कर्मनेो अंध करे छे ?

(अट्टसु वि भयणाए) हे गौतम ! साकार उपयोगवाणे અને अनाकार उपयोगवाणे एव आठे कर्मनेो अंध विकल्पे अंधे छे.

(णाणावरणिज्जं णं भंते ! कम्मं किं आहारए वंधह, अणाहारए वंधह ?) हे भदन्त ! शु ज्ञानावरणीय कर्मनेो अंध आहारक एव करे छे ? के अना-
हारक एव करे छे ?

વધ્નાતિ, વિમ્બજ્ઞાની વધ્નાતિ, ? ગૌતમ ! આયુષ્કર્ત્તાઃ સપ્તાઽપિ વધ્નન્તિ, આયુષ્કં ભજનયા । જ્ઞાનાવરણીયં સ્વભદન્ત । કર્મ કિં મનોયોગી વધ્નાતિ, વચોયોગી વધ્નાતિ, અયોગી વધ્નાતિ ? ગૌતમ ! અધસ્તનાસ્ત્રયો ભજનયા, અયોગી ન વધ્નાતિ,

વિષય મેં મી જાનના ચાહિયે । (વેયણિજ્ઞં હેટ્ઠિહા ચત્તારિ વંધંતિ, કેવલણાણી મયણાણ) વેદનીય કર્મ કા વંધ ચાર ક્ષાયોપશમિક મતિજ્ઞાન આદિવાલે જીવ કરતે હેં । કેવલજ્ઞાનવાલા જીવ વેદનીય કર્મ કા વંધ કરતા મી હે ઓર નહીં મી કરતા હે । (ણાણાવરણિજ્ઞં ણં મંતે । કર્મમં કિં મદ્ અન્નાણી વંધદ્ ? સુય અન્નાણી વંધદ્ ? ચિમ્બંગ અન્નાણી વંધદ્ ?) હે મદન્ત ! જ્ઞાનાવરણીય કર્મ કયા મતિ અજ્ઞાનવાલા જીવ વાંધતા હે ? કિં શ્રુતઅજ્ઞાનવાલા જીવ વાંધતા હે ? કિં ચિમ્બંગજ્ઞાની વાંધતા હે ? (ગોયમા ! આઝગવડ્ઝાઓ સત્ત વિ વંધંતિ, આઝગં મયણાણ) આયુકર્મ કો છોડકર સાતોં કર્મો કો યે તીન અજ્ઞાનવાલે જીવ વાંધતે હેં । તથા આયુકર્મ કા વંધ યે મજના સે કરતે હેં) (ણાણાવરણિજ્ઞં ણં મંતે । કર્મમં કિં મજજોગી વંધદ્, વયજોગી વંધદ્, કાયજોગી વંધદ્, અજોગી વંધદ્ ? હે મદન્ત ! જ્ઞાનાવરણીય કર્મ કા વંધ કયા મનયોગવાલે જીવ કરતે હેં ? યા વચનયોગવાલે જીવ કરતે હેં ? યા કાયયોગવાલે જીવ કરતે હેં ? યા

(વેયણિજ્ઞં હેટ્ઠિહા ચત્તારિ વંધંતિ, કેવલણાણી મયણાણ) વેદનીય કર્મને બંધ પહેલા આર પ્રકારના જીવો-એટલે કે ક્ષાયોપશમિક મતિજ્ઞાન, શ્રુતજ્ઞાન, અવધિજ્ઞાન અને મનઃપર્યાયજ્ઞાનવાળા જીવો કરે છે, પણ કેવલજ્ઞાની જીવ વેદનીય કર્મને બંધ કરે પણ છે અને નથી પણ કરતો.

(ણાણાવરણિજ્ઞં ણં મંતે । કર્મમં કિં મદ્ અન્નાણી વંધદ્, સુય અન્નાણી વંધદ્, વિમ્બંગ અન્નાણી વંધદ્ ?) હે મદન્ત ! શુ જ્ઞાનાવરણીય કર્મ મતિ અજ્ઞાનવાળો જીવ બાંધે છે ? કે શ્રુત અજ્ઞાનવાળો જીવ બાંધે છે ? કે વિમ્બંગ અજ્ઞાનવાળો જીવ બાંધે છે ?

(ગોયમા ! આઝગવડ્ઝાઓ સત્ત વિ વંધંતિ, આઝગં મયણાણ) હે ગૌતમ ! આયુકર્મ સિવાયના સાતે કર્મોને બંધ આ ત્રણ અજ્ઞાનવાળા જીવો બાંધે છે, તથા તેઓ આયુકર્મને બંધ વિકલ્પે બાંધે છે.

(ણાણાવરણિજ્ઞં ણં મંતે ! કર્મમં કિં મજજોગી વંધદ્, વયજોગી વંધદ્, કાયજોગી વંધદ્, અજોગી વંધદ્ ?) હે મદન્ત ! જ્ઞાનાવરણીય કર્મને બંધ શુ મનયોગવાળા જીવ કરે છે ? કે વચનયોગવાળા કરે છે ? કે કાયયોગવાળા જીવો કરે છે ? કે યોગરહિત જીવો કરે છે ?

(ગોયમા ! હેટ્ઠિહા તિન્નો મયણાણ, અજોગી ન વંધદ્, યવં વેયણિજ્ઞવ-

गौतम । सूक्ष्मो बध्नाति, वादरो भजनया, नोसूक्ष्म-नोवादरो न बध्नाति, एवम् आयुष्कवर्ताः सप्ताऽपि, आयुष्कं सूक्ष्मो, वादरो भजनया, नोसूक्ष्म-नो वादरो न बध्नाति ? ज्ञानावरणीयं खलु भदन्त ! कर्म किं चरमो बध्नाति, अचरमो बध्नाति ? गौतम । अष्टाऽपि भजनया ॥ सू० ५ ॥

टीका-णाणावरणिज्जं णं भंते ! कम्मं किं इत्थी वंधइ ?' गौतमः पृच्छति-
हे भदन्त ! ज्ञानावरणीयं खलु कर्म किम् स्त्री बध्नाति ? ' पुरिसो वंधइ ?'

का बंध सूक्ष्मजीव करता है वादर जीव तो भजना से इसका बंध करता है, जो नो सूक्ष्म और नो वादर हैं वे इसका बंध नहीं करते हैं। (एवं सत्त वि, आउण सुहुमे, वायरे भयणाए, णो सुहुम णो वायरे न वंधइ) इसी प्रकार से ये जीव आयुर्कर्म को छोड़कर शेष सात कर्म प्रकृतियों का बंध करते हैं ऐसा जानना चाहिये। ये दोनों सूक्ष्म वादर जीव आयु कर्म का बंध भजना से करते हैं। तथा जो नो सूक्ष्मजीव हैं और नो वादर जीव हैं वे आयुर्कर्म का बंध नहीं करते हैं। (णाणावरणिज्जं णं भंते ! कम्मं किं चरिमे वंधइ, अचरिमे वंधइ) हे भदन्त ! ज्ञानावरणीय कर्म का बंध जो चरम जीव होता है वह करता है कि जो अचरम जीव होता है वह करता है ? (गोयमा ! अट्ट वि भयणाए) हे गौतम । ऐसे जीव आठों कर्मप्रकृतियों का बंध भजना से करता है।

टीकार्थ-ज्ञानावरणीय आदि कर्म के प्रस्ताव से सूत्रकार इस सूत्र द्वारा उन ज्ञानावरणीय आदि कर्मों के बांधनेवालों का निरूपण करने के लिये सर्वप्रथम स्त्री आदि द्वारा का कथन कर रहे हैं-इसमें गौतम ने प्रभु से ऐसा प्रश्न किया कि (णाणावरणिज्जं णं भंते ! कम्मं किं इत्थी

करता नथी. (एवं आउणवज्जाओ सत्त वि, आउण सुहुमे, वायरे भयणाए, णो सुहुम णो वायरे न वंधइ) ज्येष्ठ प्रभाञ्जे ते एवे। आयुर्कर्म सिंवायना साते कर्मेना णं ध करे छे तेम सभञ्जुं. सूक्ष्म अने वादर एवे। आयुर्कर्मने णं ध करे छे परंतु नोसूक्ष्म अने नोवादर एवे। आयुर्कर्मने णं ध करता नथी.

(णाणावरणिज्जं णं भंते ! कम्मं किं चरिमे वंधइ, अचरिमे वंधइ ?) हे भदन्त ! शुं चरम शरीरी एव ज्ञानावरणीय कर्मने णं ध करे छे ? हे अचरम शरीरी एव करे छे ? (गोयमा ! अट्ट वि भयणाए) हे गौतम । ज्येष्ठ एव आठे कर्मप्रकृतियोने णं ध विकल्पे करे छे.

टीकार्थ-आ सूत्रमां सूत्रकारे ज्ञानावरणीय आठ कर्मोना णं धकोनुं निरु-
कथुं छे. सौथी पढेलां सूत्रकार स्त्री आदि द्वारनुं कथन प्रश्नोत्तरे। द्वारा करे छे.

गौतम स्वामी महावीर प्रबने ज्येष्ठ प्रश्न पूछे छे के " णाणावरणिज्जं

નીયાયુષ્કવર્જાનાં પળ્ગામ્, વેદનીયમ્ આહારકો વધ્નાતિ, અનાહારકો ભજનયા, આયુષ્કમ્ આહારકો ભજનયા, અનાહારકો ન વધ્નાતિ । જ્ઞાનાવરણીયં સ્વલ્લુ ભદન્ત । કર્મ કિં સૂક્ષ્મો વધ્નાતિ વાદરો વધ્નાતિ ? નોસૂક્ષ્મ નોવાદરો વધ્નાતિ ?

વંધ કયા આહારક જીવ કરતા હૈ કિ અનાહારક જીવ કરતા હૈ ? (દો વિ ભયળા) હૈ ગૌતમ ! યે દોનો જીવ જ્ઞાનાવરણીય કર્મ કા વંધ ભજના સે કરતે હૈ । (એવં વેયણિજ્જાઝગવજ્જાણં છળ્હં) ઇસી તરહ સે યે જીવ વેદનીય ઓર આયુકર્મ કો છોડકર શોપ કર્મો કા વંધ ભજના સે કરતે હૈ (વેયણિજ્જં આહારણ વંધહ) વેદનીય કર્મ કા વંધ આહારક જીવ કરતા હૈ । (અણાહારણ ભયળા) પર જો અનાહારક જીવ હૈ વહ વેદનીય કર્મ કા વંધ કરતા મી હૈ ઓર નહીં મી કરતા હૈ (આઝણ આહારણ ભયળા, અણાહારણ ન વંધહ) આયુ કર્મ કા વંધ જો જીવ આહારક હોતા હૈ વહ ભજના સે કરતા હૈ ઓર જો અનાહારક હોતા હૈ વહ ડસકા વંધ નહીં કરતા હૈ । (ણાણાવરણિજ્જં ણં મંતે ! કર્મં કિં સુહુમે વંધહ, વાયરે વંધહ, ણો સુહુમ ણો વાયરે વંધહ) હૈ ભદન્ત ! જ્ઞાનાવરણીય કર્મ કા વંધ કયા સૂક્ષ્મજીવ કરતા હૈ ? કિ વાદર જીવ કરતા હૈ ? અથવા-નો સૂક્ષ્મ કરતા હૈ કિ નો વાદર કરતા હૈ ? (ગોયમા ! સુહુમે વંધહ, વાયરે ભયળા, ણો સુહુમ ણો વાયરે ન વંધહ) હૈ ગૌતમ ! જ્ઞાનાવરણીય કર્મ

(દો વિ ભયળા) હે ગૌતમ ! તે બન્ને પ્રકારના જીવો જ્ઞાનાવરણીય કર્મનો બંધ વિકલ્પે કરે છે. (એવં વેયણિજ્જાઝગવજ્જાણં છળ્હં) એજ પ્રમાણે તે બન્ને પ્રકારના જીવો વેદનીય અને આયુકર્મ સિવાયના છ કર્મોનો બંધ વિકલ્પે કરે છે. (વેયણિજ્જં આહારણ વંધહ) આહારક જીવ વેદનીય કર્મનો બંધ કરે છે, (અણાહારણ ભયળા) પણ અનાહારક જીવ વિકલ્પે તેનો બંધ કરે છે—એટલે કે અનાહારક જીવ વેદનીય કર્મનો બંધ કરે છે પણ બરો અને નથી પણ કરતો. (આઝણ આહારણ ભયળા અણાહારણ ન વંધહ) આહારક જીવ આયુકર્મનો બંધ વિકલ્પે કરે છે, પણ અનાહારક જીવ તેનો બંધ કરતો નથી.

(ણાણાવરણિજ્જં ણં મંતે ! કર્મં કિં સુહુમે વંધહ, વાયરે વંધહ, ણો સુહુમ ણો વાયરે વંધહ ?) હે ભદન્ત ! જુ જ્ઞાનાવરણીય કર્મનો બંધ સૂક્ષ્મ જીવ કરે છે ? કે બાદર (સ્થૂળ) જીવ કરે છે ? અથવા નો સૂક્ષ્મ જીવ કરે છે ? કે નો બાદર જીવ કરે છે ?

(ગોયમા ! સુહુમે વંધહ, વાયરે ભયળા, ણો સુહુમ ણો વાયરે ન વંધહ) હે ગૌતમ ! જ્ઞાનાવરણીય કર્મનો બંધ સૂક્ષ્મ જીવ કરે છે, બાદર જીવ તે કર્મનો બંધ વિકલ્પે કરે છે, પણ નો સૂક્ષ્મ અને નો બાદર જીવો તેનો બંધ

पुरुषो बध्नाति ? ' नपुंसको बंधइ ? ' नपुंसको बध्नाति ? णोइत्थी-णोपुरिस-
णोनपुंसओ बंधइ ? ' नोस्त्री - नोपुरुष - नोनपुंसको बध्नाति ? यो जीवः न
स्त्री, न पुरुषः, नापि नपुंसको वर्तते सोऽपि किं ज्ञानावरणीयं कर्म बध्नाति ?
इत्याशयः, भगवानाह - ' गोयमा ! इत्थी वि बंधइ, पुरिसो वि बंधइ, नपुंसओ
वि बंधइ ' हे गौतम ! स्त्री अपि ज्ञानावरणीयं कर्म बध्नाति, पुरुषोऽपि
तत्कर्म बध्नाति, नपुंसकोऽपि जीवः तत्कर्म बध्नाति, किन्तु ' नोइत्थी-णो-
पुरिस-णोनपुंसओ सिय बंधइ, सिय णो बंधइ ' नो स्त्री-नोपुरुष-नोनपुंसको जीवः

बंधइ) हे भदन्त ! आत्मा के ज्ञानगुण को आवरणकरने के स्वभाववाले
ज्ञानावरणीय कर्म का बंध कौन करता है ? क्या इस कर्म का बंध स्त्री
करती है ? या (पुरिसो बंधइ) पुरुष करता है ? या (नपुंसओ बंधइ)
नपुंसक करता है ? अथवा-ऐसा जीव करता है कि जो (णोइत्थी)
न स्त्री है ? (णोपुरिस णोनपुंसओ) न पुरुष है ? न नपुंसक है ?
इसके उत्तर में प्रभु उनसे कहते हैं-(गोयमा) हे गौतम ! (इत्थि वि
बंधइ, पुरिसो वि बंधइ, नपुंसओ वि बंधइ) ज्ञानावरणीय कर्म के बंध
करने में ऐसी कोई रुकावट नहीं है कि स्त्री ही इस कर्मका बंध करे-
पुरुष न करे अथवा पुरुष ही करे-नपुंसक न करे-तीनों ही वेदवाले इस
कर्म का बंध करते हैं-" स्त्री भी इस कर्म का बंध करती है, पुरुष भी
इस कर्म का बंध करता है और नपुंसक भी इस कर्म का बंध करता
है । पर हां, यह बात अवश्य है कि जो जीव (णोइत्थी, णोपुरिस, णो

णं भंते ! कम्मं किं इत्थो बंधइ ? " डे भदन्त ! आत्माना ज्ञानगुणुं आव-
रण करवाना स्वभाववाला ज्ञानावरणीय कर्मना बंध केल्लु करे छे ? शु आ
कर्मना बंध स्त्री करे छे ? अथवा " पुरिसो बंधइ " पुरुष करे छे ? अथवा
" नपुंसओ बंधइ ? " नपुंसक करे छे ? अथवा ज्ञानावरणीय कर्मना बंध
शु जेवो लव करे छे के ले " णो इत्थी " स्त्री नथी ? " णो पुरिसे " पुरुष
नथी ? " णो नपुंसओ " अने नपुंसक नथी ?

गौतम स्वामीना आ प्रश्नना जवाब आपता महावीर प्रभु कडे छे-

(गोयमा !) डे गौतम ! (इत्थि वि बंधइ, पुरिसो वि बंधइ, नपुंसओ वि बंधइ)
ज्ञानावरणीय कर्मना बंध स्त्री पल्लु करे अथवा पुरुष पल्लु करे अने नपुंसक पल्लु करे
छे तल्ले वेदवाला लवो आ कर्मना बंध करे छे-" ज्ञानावरणीय कर्मना बंध स्त्री
पल्लु करे छे, पुरुष पल्लु करे छे अने नपुंसक पल्लु करे छे." परन्तु जेवुं अपरथ
अने छे के ले लव (णोइत्थी, णोपुरिस, णोनपुंसओ सिय बंधइ, वि बंधइ)

भगवानाह-‘गोयमा ! इत्थी सिय बंधइ, सिय नो बंधइ, हे गौतम ! स्त्री स्यात् कदाचित् बध्नाति, स्यात् कदाचिन्न बध्नाति; एवं तिन्नि वि भाणियव्वा! एवं रीत्या अनया त्रयोऽपि स्त्रयपि पुरुषोऽपि; नपुंसकोऽपि कदाचिद् बध्नाति; कदाचिन्न बध्नाति; इति रीत्या मणितव्याः वक्तव्याः । णोइत्थी-गोपुरिस-णोनपुंसओ न बंधइ । नोस्त्री-नोपुरुष-णोनपुंसको जीवः आयुष्यं कर्म न बध्नाति, अयं भावः-एकत्र भवे सहृदेव आयुषो बध्नात् स्त्रीपुरुषादियं बन्धकाले बध्नाति, अयन्धकाले तु न बध्नाति अत एवोक्तम्-‘सिय बंधइ सिय नो बंधइ’ इति ।

बंध, पुच्छा) हे भदन्त ! आयुर्कर्म का बंध कौन करता है ? क्या स्त्री आयुर्कर्म का बंध करती है ? या पुरुष आयुर्कर्म का बंध करता है ? या नपुंसक आयुर्कर्म का बंध करता है ? इस प्रकार से यह गौतम का प्रश्न है । इसका उत्तर देते हुए प्रभु गौतम से कहते हैं कि (गोयमा) हे गौतम ! (इत्थी सिय बंधइ, सिय नो बंधइ) स्त्री आयुर्कर्म का कदाचित् बंध करती है और कदाचित् बंध नहीं भी करती है । (एवं तिन्नी वि भाणियव्वा) इसी तरह से पुरुष और नपुंसक के विषय में भी जानना चाहिये । अर्थात् पुरुष आयुर्कर्म का बंध करता भी है और नहीं भी करता है-तथा नपुंसक भी आयुर्कर्म का बंध करता भी है और नहीं भी करता है । इसका भाव यह है कि एक भव में आयुर्कर्म जीव एक ही बार बांधता है अतः जब आयुर्कर्म के बंध होने का समय आता है-तब ही आयुर्कर्म का बंध जीव करता है । और जब बंध का समय नहीं होता-तब आयुर्कर्म का जीव बंध नहीं करता है । इसी भाव को लेकर

पुच्छा) हे भदन्त ! आयुर्कर्मने बंध कोण करे छे ? शु स्त्री आयुर्कर्मने बंध करे छे ? के पुरुष आयुर्कर्मने बंध करे छे ? के नपुंसक तेने बंध करे छे ? आ प्रकारना गौतमना प्रश्नने जवाब आपता भेडावीर प्रबु कडे छे-
 “गोयमा !” हे गौतम ! (इत्थी सिय बंधइ, सिय नो बंधइ) स्त्री आयुर्कर्मने बंध क्यारेक करे छे अने क्यारेक नथी पध करती, (एवं तिन्नी वि भाणियव्वा) जेण प्रम जे पुरुष अने नपुंसकना विषे पणु समन्वु, जेटवे के पुरुष आयुर्कर्मने बंध करे छे पणु जरे अने नथी पणु करतो, नपुंसक पणु आयुर्कर्मने बंध क्यारेक करे छे अने क्यारेक करतो नथी, तेनु तात्पर्य जे छे के-जेके लवमा आयुर्कर्म लव जेके न वारे जाधि छे, तेथी न्यारे आयुर्कर्मने बंध थवने समय आवे छे त्यारे न लव आयुर्कर्मने बंध करे छे, अने न्यारे बंधने समय डातो नथी त्यारे लव आयुर्कर्मने बंध करतो नथी, जेण लवने अनुलक्षिने ‘सिय बंधइ, सिय

વન્ધકત્વાત્ જ્ઞાનાવરણીયસ્ય અવન્ધકો ભવતિ, અત આદ્-સ્યાદ્ વન્ધનાતિ, સ્યાત્ ન વન્ધનાતિ-इति । 'एवं आउगचज्जाओ सत्त कम्मप्पयडीओ' एवं तथैव आयुष्क-वर्जाः आयुष्कभिन्नाः आयुष्यं वर्जयित्वा-इत्यर्थः सप्त कर्मप्रकृतयः ज्ञानावरणीयः माभित्य दर्शनावरणीयादयः सप्तवेदिनव्याः, दर्शनावरणीयादीनि कर्माण्यपि आयुष्क-वर्जानि स्त्री पुरुषादयः वन्धनाति, नोस्त्री-नोपुरुष-नोनपुंसकस्तु कदाचिन् वन्धनाति, कदाचिन्न वन्धनाति-इत्यर्थः । गौतमः पुनः पृच्छति-आउगं णं भंते ! कम्मं किं इत्थी वंधइ, पुरिसो वंधइ, नपुंसओ वंधइ, पृच्छा ? ' हे भदन्त ! आयुष्कं कर्म किं स्त्री वन्धनाति, पुरुषो वन्धनाति, नपुंसको वन्धनाति ? इति पृच्छा-गौतमस्य प्रश्नः,

गुणस्थान से छेकर अघोर्गिकेवली नाम के चौदहवें गुणस्थान तक के जीव नो स्त्री, नो पुरुष, और नो नपुंसक होते हुए भी ज्ञानावरणीय कर्मके बंधक नहीं होते हैं, क्योंकि ये जीव एकविधकर्म (सातावेदनीय) के बंधक कहे गये हैं। इसी कारण ऐसा कहा गया है कि जो (नो स्त्री नो पुरुष और नो नपुंसक) होता है वह इस ज्ञानावरणीय कर्म का बंध करता भी है और नहीं भी करता है। (एवं आउगचज्जाओ सत्तकम्म-प्पयडीओ) इसी प्रकार से यह भी जानना चाहिये कि जो जीव नो स्त्री, नो पुरुष और नो नपुंसक है वह जीव आयुष्कर्म को छोड़कर शेष दर्शनावरणीय आदि कर्मों को बांधता है। परन्तु जो स्त्री, पुरुष और नपुंसक वेदनावाले जीव हैं वे तो दर्शनावरणीय आदि सात कर्मों का बंध करते ही हैं। अब गौतम प्रश्नु से आयु के बंध के विषय में पूछते हैं कि-(आउगं णं भंते ! कम्मं किं इत्थी वंधइ, पुरिसो वंधइ, नपुंसओ

શુભસ્થાનથી લઈને અયોગી કેવલી નામના ચૌદમાં શુભસ્થાન સુધીના જીવ નો સ્ત્રી, નો પુરુષ અને નો નપુંસક હોવા છતાં પણ જ્ઞાનાવરણીય કર્મ બાંધતા નથી કારણ કે તે જીવોને એક જ પ્રકારના કર્મોના-સાતાવેદનીય કર્મોના બંધક કહ્યા છે તે કારણે એવું કહ્યું છે કે "નો સ્ત્રી, નો પુરુષ અને નપુંસક જ્ઞાનાવરણીય કર્મોનો બંધ કયારેક કરે છે અને કયારેક કરતા નથી." (એવં આઉગચજ્જાઓ સત્ત કમ્મપ્પયડીઓ) એ જ પ્રમાણે જે જીવ નો સ્ત્રી, નો પુરુષ અને નો નપુંસક હોય છે તે આયુષ્કર્મ સિવાયના બાકીના સાત કર્મોના બંધ કયારેક બાંધે છે અને કયારેક બાંધતા નથી. પરંતુ જે સ્ત્રી, પુરુષ અને નપુંસક વેદનાળા જીવો છે તેઓ આયુષ્કર્મ સિવાયના (દર્શનાવરણીય આદિ) સાતે કર્મોના બંધ કરે જ છે.

ગૌતમ સ્વામી આયુના બંધ વિષે મહાવીર પ્રશ્નને પ્રશ્ન પૂછે છે—
(આઉગં ણં મંતે ! કમ્મં કિં ઇત્થી વંધइ, પુરિસો વંધइ, નપુंसओ વંધइ

भगवानाह—'गोयमा ! इत्थी सिय वंधइ, सिय नो वंधइ, हे गौतम ! स्त्री स्यात् कदाचित् बध्नाति, स्यात् कदाचिन्न बध्नाति, एवं तिन्नि वि भाणियव्वाः एवं रीत्या अनया त्रयोऽपि रूपिः पुरुषोऽपि, नपुंसकोऽपि कदाचिद् बध्नाति, कदाचिन्न बध्नाति, इति रीत्याः भणितव्याः वक्तव्याः । 'नो इत्थी—नो पुरिस—नोनपुंसओ न वंधइ' नो स्त्री—नो पुरुष—नोनपुंसको जीवः आयुष्यं कर्म न बध्नाति, अयं भावः—एकत्र भवेत् स क्रुदेव आयुषो बध्नात् स्त्रीपुरुषादिवयं बन्धकाले बध्नाति, अयन्धकाले तु न बध्नाति अत एवोक्तम्—'सिय वंधइ सिय नो वंधइ' इति ।

बंध, पुच्छा) हे भदन्त ! आयुर्कर्म का बंध कौन करता है ? क्या स्त्री आयुर्कर्म का बंध करती है ? या पुरुष आयुर्कर्म का बंध करता है ? या नपुंसक आयुर्कर्म का बंध करता है ? इस प्रकार से यह गौतम का प्रश्न है । इसका उत्तर देते हुए प्रभु गौतम से कहते हैं कि (गोयमा) हे गौतम ! (इत्थी सिय वंधइ, सिय नो वंधइ) स्त्री आयुर्कर्म का कदाचित् बंध करती है और कदाचित् बंध नहीं भी करती है । (एवं तिन्नी वि भाणियव्वा) इसी तरह से पुरुष और नपुंसक के विषय में भी जानना चाहिये । अर्थात् पुरुष आयुर्कर्म का बंध करता भी है और नहीं भी करता है—तथा नपुंसक भी आयुर्कर्म का बंध करता भी है और नहीं भी करता है । इसका भाव यह है कि एक भव में आयुर्कर्म जीव एक ही बार बांधता है अतः जब आयुर्कर्म के बंध होने का समय आता है—तब ही आयुर्कर्म का बंध जीव करता है । और जब बंध का समय नहीं होता—तब आयुर्कर्म का जीव बंध नहीं करता है । इसी भाव को लेकर

पुच्छा) हे भदन्त ! आयुर्कर्मना बंध करे छे ? शु स्त्री आयुर्कर्मना बंध करे छे ? के पुरुष आयुर्कर्मना बंध करे छे ? के नपुंसक तेना बंध करे छे ? आ प्रकारना गौतमना प्रश्नना न्वान् आपता भेडावीर प्रभु कडे छे—
 "गोयमा ! " हे गौतम ! (इत्थी सिय वंधइ, सिय नो वंधइ) श्री आयुर्कर्मना बंध क्यारिक करे छे अने क्यारिक नथी पद्य करती, (एवं तिन्नी वि भाणियव्वा) अने प्रभु पुरुष अने नपुंसकना विषे पद्य समनपुं अटवे के पुरुष आयुर्कर्मना बंध करे छे पद्य नरी अने नथी पद्य करतो, नपुंसक पद्य आयुर्कर्मना बंध क्यारिक करे छे अने क्यारिक करतो नथी, तेनुं तापयं अे छे के-अेक लवमां आयुर्कर्म लव अेक न वारे बांधि छे, तेथी न्यारे आयुर्कर्मना बंध थवानो समथ आवे छे त्यारे न लव आयुर्कर्मना बंध करे छे, अने न्यारे बंधना समथ डोतो नथी त्यारे लव आयुर्कर्मना बंध करतो नथी, अने लवना अनुलक्षिने "सिय वंधइ, सिय

निवृत्तिवादरसंपरायादिगुणस्थानकेषु आयुर्वन्धस्य व्यवच्छेदात् स्त्र्यादिवेद-
रहितो जीवो न बध्नाति, इति । पठं संयतद्वारमाश्रित्याह—' णाणावरणिज्जं णं
भंते । कम्मं किं संजए बंधइ, असंजए, संजयाऽसंजए बंधइ ' हे भदन्त ! ज्ञाना-
वरणीयं कर्म किं संयतो बध्नाति ? असंयतो वा बध्नाति ? संयताऽसंयतो वा

(सिय बंधइ, सिय नो बंधइ) ऐसा कहा गया है । तथा जो जीव न स्त्री
वेदवाले हैं, न पुरुषवेदवाले हैं और न नपुंसक वेदवाले हैं—अर्थात् जिन
जीवों के कर्मों की सत्ता में से स्त्री आदि वेदों को उदय निकल गया
है—उन वेदों के बंध की व्युच्छित्ति जिन जीवों के हो गई है, ऐसे वे
निवृत्त वादर संपराय आदि गुणस्थानक वाले जीव स्त्र्यादि वेद से रहित
हुए आयुर्कर्म के बंध का व्युच्छेद हो जाने के कारण आयुर्कर्म का बंध
नहीं करते हैं । कारण आयुर्कर्म का व्यवच्छेद भी तो निवृत्तिवादर संप-
राय आदि गुणस्थानों में हो जाता है ।

छठे संयतद्वारकी अपेक्षा लेकर अय सूत्रकार कहते हैं—इसमें गौतम
प्रभु से पूछते हैं कि—(णाणावरणिज्जं णं भंते ! कम्मं किं संजए बंधइ,
असंजए संजया संजए बंधइ) हे भदन्त ! ज्ञानावरणीय कर्मका बंध कौनसा
जीव करता है ? क्या जो संयतजीव होता है वह ज्ञानावरणीय कर्म का
बंध करता है ? या जो असंयत जीव होता है वह ज्ञानावरणीय कर्म का
बंध करता है ? या जो संयतासंयत जीव होता है, वह ज्ञानावरणीय

नो बंधइ " એવું કથન કરવામાં આવ્યું છે. તથા જે જીવ ન સ્ત્રી વેદવાળો
છે, ન પુરુષ વેદવાળો છે અને ન નપુંસક વેદવાળો છે—એટલે કે જે જીવોનાં
કર્મોની સત્તામાંથી સ્ત્રી આદિ વેદોનો ઉદય નીકળી ગયો છે—તે વેદોના બંધોની
વ્યુચ્છિત્તિ (વિચ્છેદ) જે જીવોને થઈ ગઈ છે, એવાં તે નિવૃત્તિવાદર સંપ-
રાય આદિ ગુણસ્થાનકવાળા જીવો સ્ત્રી આદિ વેદથી રહિત થઈને આયુર્કર્મના
બંધનો વિચ્છેદ થઈ જવાના કારણે, આયુર્કર્મનો બંધ કરતા નથી. કારણ કે
નિવૃત્તિવાદર આદિ ગુણસ્થાનોમાં આયુર્કર્મનો વિચ્છેદ થઈ જતો હોય છે.

હવે સૂત્રકાર છઠ્ઠા સંયતદ્વારને અનુલક્ષીને નીચે પ્રમાણે પ્રશ્નોત્તરો દ્વારા
કર્મબંધનું નિરૂપણ કરે છે—ગૌતમ સ્વામી મહાવીર પ્રભુને એવો પ્રશ્ન પૂછે છે
કે (ણાણાવરણિજ્જં ણં ભંતે ! કમ્મં કિં સંજએ બંધइ, અસંજએ સંજયાસંજએ
બંધइ) હે ભદન્ત ! જ્ઞાનાવરણીય કર્મનો બંધ કયો જીવ કરે છે ? શું સંયત
જીવ જ્ઞાનાવરણીય કર્મનો બંધ કરે છે ? કે અસંયત જીવ જ્ઞાનાવરણીય કર્મનો
બંધ કરે છે ? કે સંયતાસંયત જીવ જ્ઞાનાવરણીય કર્મનો બંધ કરે છે ?

વધ્નાતિ ? અથવા ' જોસંજય—જોઅસંજય—જોસંજયાસંજય વંધ ? ' નો સંયત—નોઅસંયત -- નોસંયતાસંયતો વધ્નાતિ ? ભગવાનાહ—' ગોયમા ! સંજય સિય વંધ, સિય જો વંધ, ' હે ગૌતમ ! સંયતઃ આદ્યસંયમચતુષ્ટયવૃત્તિર્જ્ઞાનાવરણં સ્યાત્ કદાચિદ્ વધ્નાતિ, યથાહ્યાતસંયતસ્તુ ઉપશાન્ત મોહાદિઃ સ્યાત્ કદાચિત્ નો વધ્નાતિ, ' અસંજય વંધ ' અસંયતો મિથ્યાદૃષ્ટ્યાદિઃ જ્ઞાનાવરણં કર્મ વધ્નાતિ, ' સંજયાસંજય વિ વંધ ' સંયતાસંયતોઽપિ દેશવિર-

કર્મકા વંધકરતા હૈ ? (જોસંજય—જોઅસંજય જોસંજયાસંજય વંધ) જો જીવ ન સંયત હૈ, ન અસંત હૈ ઓર ન સંયતાસંયત હૈ વહ જ્ઞાનાવરણીય કર્મકા વંધ કરતા હૈ કયા ? હસકા ઉત્તર દેતે હુણ પ્રશુ ગૌતમસે કહતે હૈ કિ,(ગોયમા) હે ગૌતમ ! (સંજય સિય વંધ, સિય જો વંધ) સંયત જીવ જ્ઞાનાવરણીય કર્મ કા વંધ કરતા ખી હૈ ઓર નહી ખી કરતા હૈ—હસકા ભાવ યહ હૈ કિ જો જીવ સામાયિક, છેદોપસ્થાપનીય, પરિહારવિશુદ્ધ ઓર સૂક્ષ્મસાંપરાય હન આદિ કે ચાર સંયમ મેં રહનેવાલા હૈ વહ તો જ્ઞાનાવરણીય કર્મ કા વંધ કરતા હૈ ઓર જો યથાહ્યાત સંયમવાલા જીવ હૈ વહ ઉપશાન્ત મોહ આદિ ગુણસ્થાનોં મેં રહનેવાલા હોનેકે કારણ જ્ઞાનાવરણીય કર્મ કા વંધ નહીં કરતા હૈ । હસી વાત કો લક્ષ્ય મેં લેકર (સંજય સિય વંધ, સિય જો વંધ) એસા કહા ગયા હૈ । (અસંજય વંધ) અસંયમી જો મિથ્યાદૃષ્ટિ આદિ જીવ હૈ—વહ જ્ઞાનાવરણીય કર્મ

અથવા—(જોસંજય—જોઅસંજય જોસંજયાસંજય વંધ ?) જે એવનો સંયત છે, નો અસંયત છે અને નો સંયતાસંયત છે, તે શુ જ્ઞાનાવરણીય કર્મનો બંધ કરે છે ?

ઉત્તર—“ ગોયમા ! ” હે ગૌતમ ! (સંજય સિય વંધ, સિય જો વંધ) સંયત એ જ્ઞાનાવરણીય કર્મનો બંધ ક્યારેક કરે છે અને ક્યારેક નથી કરતો. આ કથનનું તાત્પર્ય નીચે પ્રમાણે છે—જે એવ સામાયિક, છેદોપસ્થાપનીય, પરિહાર વિશુદ્ધિ અને સૂક્ષ્મ સાંપરાય આદિ ચાર સંયમમાં રહેનાર હોય છે, તે જ્ઞાનાવરણીય કર્મનો બંધ કરે છે, પણ જે યથાહ્યાત સંયમવાળો એવ હોય છે તે ઉપશાન્ત મોહ આદિ શુભસ્થાનોમાં રહેનારો હોવાથી જ્ઞાનાવરણીય કર્મનો બંધ કરતો નથી. એજ વાતને અનુલક્ષીને “ સંજય સિય વંધ, સિય જો વંધ ” એવું કહેવામાં આવ્યું છે.

“ અસંજય વંધ ” અસંયમી મિથ્યાદૃષ્ટિ આદિ એવ જ્ઞાનાવરણીય કર્મનો બંધ કરે છે, (સંજયાસંજય વિ વંધ) તથા સંયતાસંયત એવ

તાદિઃ જ્ઞાનાવરણં કર્મ વધ્નાતિ, કિન્તુ 'જોસંજય-જોઅસંજય-જોસંજયા-સંજય' ન વધઈ 'નોસંયત-નોઅસંયત-નોસંયતાસંયતો' નિપિદ્ધસંયમાદિભાવઃ સિદ્ધો ન વધ્નાતિ હેત્વભાવાત્ । 'एवं आउगवज्जाओ सत्तवि' एवम् अनेन प्रकारेण आयुष्कवर्जाः ज्ञानावरणवदेव सप्तापि कर्मप्रकृतयो विज्ञेयाः तथा च आयुष्कवर्जितानि दर्शनावरणीयादि कर्माण्यपि संयतः कदाचिद् वध्नाति, कदाचिन्न वध्नाति । असंयतो वध्नाति । संयतासंयतोऽपि वध्नाति, किन्तु 'अउगे हेद्विल्ला तिणिण भयणाए' आयुष्कं कर्म अधस्तनाः आधास्त्रयः संयतः, असंयतः, संयतासंयतश्च

કા વંધ કરતા હૈ (સંજયાસંજય વિ વંધઈ) તથા જો સંયતાસંયત-દેશ-વિરત-પંચમગુણસ્થાનવર્તી, જીવ હૈ-વહ્ ભી જ્ઞાનાવરણીય કર્મ કા વંધ કરતા હૈ । તથા-જો જીવ, (જો, સંજય-જો, અસંજય) , ઇત્યાદિ હૈ-અર્થાત્ । જિસકે સંયમાદિભાવ નિપિદ્ધ હૈ, એસે, સિદ્ધજીવ જ્ઞાનાવરણીય કર્મ કા વંધ-વંધ કે કારણ કા અભાવ હૈ જાને સે નહીં કરતે હૈ । (एवं आउ-गवज्जाओ सत्त. वि) इसी तरह से संयतद्वार में जीव-संयत, असंयत और संयतासंयत जीवों में से संयतजीव आयुर्कर्म को छोड़कर दर्शनावरणीय आदि कर्मप्रकृतियों को कदाचित् बांधता भी है और कदाचित् नहीं भी बांधता है, इस विषय में समस्तकथन संयतजीव के ज्ञानावरणीय कर्म के बांधने, न बांधने के जैसा समझना चाहिये । (असंयत) जीव आयुर्कर्म को छोड़कर शेष दर्शनावरणीय आदि कर्मप्रकृतियों को बांधता है इसी तरह से जो पंचमगुणस्थानवर्ती जीव है उसे भी जानना चाहिये । किन्तु (आउगे हेद्विल्ला तिणिण भयणाए) अधस्तन तीन जो ये संयत, असंयत और संयतासंयत जीव हँ वे आयुर्कर्म का वंघ भजना

એટલે કે દેશવિરતિવાળો, પાંચમાં ગુણસ્થાને રહેલો ૭૧-૫૯ જ્ઞાનાવરણીય કર્મનો બંધ કરે છે, તથા (જો સંજય, જો અસંજય, જો સંજયાસંજય ન વંધઈ) નો સંયત, નો અસંયત અને નો સંયતાસંયત ૭૧ જ્ઞાનાવરણીય કર્મનો બંધ કરતા નથી-એટલે કે જેમના સંયમાદિ ભાવ નિપિદ્ધ છે એવા સિદ્ધ ૭૧ જ્ઞાનાવરણીય કર્મનો બંધ કરતા નથી કારણ કે ત્યાં કર્મબંધના કારણનો અભાવ હોય છે. (एवं आउगवज्जाओ सत्त वि) એ જ પ્રમાણે સંયત, અસંયત અને સંયતાસંયત ૭૧ જ્ઞાનાવરણીય કર્મ પ્રકૃતિઓનો બંધ ક્યારેક બાંધે છે અને ક્યારેક બાંધતા નથી, અસંયત ૭૧ જ્ઞાનાવરણીય કર્મ પ્રકૃતિઓનો બંધ બાંધે છે. એ જ પ્રમાણે પાંચમાં ગુણસ્થાને રહેલા ૭૧ જ્ઞાનાવરણીય કર્મ પ્રકૃતિઓનો બંધ બાંધે છે. એ જ પ્રમાણે (આઉગે હેદ્વિલ્લા તિણિણ ભયણાએ) પહેલા ત્રણ પ્રકારના ૭૧ જ્ઞાનાવરણીય કર્મ પ્રકૃતિઓનો બંધ બાંધે છે અને સંયત, અસંયત અને સંયતાસંયત ૭૧ જ્ઞાનાવરણીય કર્મ પ્રકૃતિઓનો બંધ બાંધે છે.

एते त्रयोऽपि भजनया—कदाचिद् वध्नन्ति, कदाचिन्न; वध्नन्ति; आयुर्वन्धकाले
 वध्नन्ति तद्भिन्नकाले आयुष्यं न वध्नन्तीत्यर्थः; 'उवरिल्ले ण वंधइ' उपरितनः
 अन्तिमः नोसंयत-नोअसंयत-नोसंयतासंयतः सिद्धो जीवः आयुर्न वध्नाति ।
 अयं सप्तमं दृष्टिद्वारमाह—(णाणावरणिज्जं णं भंते ! कम्मं किं सम्मदिट्ठी वंधइ ?'
 हे भदन्त ! ज्ञानावरणीयं खलु कर्म किं सम्मग्दृष्टिर्वध्नाति ? 'अथवा मिच्छ-
 दिट्ठी वंधइ ?' मिथ्यादृष्टिर्वध्नाति ? 'सम्मामिच्छदिट्ठी वंधइ ?' सम्यग्मिथ्या-
 दृष्टिर्वध्नाति ? भगवानाह—'गोयमा ! सम्मदिट्ठी सिय वंधइ, सिय णो
 वंधइ' हे गौतम ! सम्यग्दृष्टिः वीतरागः, तद्भिन्नश्च भवति, तत्र वीतराग-

से करते हैं—अर्थात् जय आयुर्कर्म के वंध का समय होता है—तब करते
 हैं और जय उसके वंध का समय नहीं होता तब नहीं करते हैं। (उव-
 रिल्ले ण वंधइ) तथा जो "नो संयत, नो असंयत और नो संयतासंयत
 सिद्ध जीव है" वे आयुर्कर्म का वंध नहीं करते हैं ।

अयं सातवें दृष्टिद्वार की अपेक्षा सूत्रकार कथन करते हैं—इसमें
 गौतमने प्रभुसे पूछा है कि—(णाणावरणिज्जं णं भंते ! कम्मं किं सम्मदिट्ठी
 वंधइ) हे भदन्त ! ज्ञानावरणीय कर्म क्या सम्यग्दृष्टि वांधता है ? अथवा
 (मिच्छदिट्ठी वंधइ) मिथ्यादृष्टि वांधता है ? या (सम्ममिच्छदिट्ठी
 वंधइ) सम्यग् मिथ्यादृष्टि वांधता है ? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए प्रभु
 गौतम से कहते हैं कि (गोयमा) हे गौतम ! (सम्मदिट्ठी सिय वंधइ,
 सिय णो वंधइ) सम्यग्दृष्टि जो जीव होता है वह ज्ञानावरणीय कर्मको
 वांधता भी है और नहीं भी वांधता है—इस कथन का तात्पर्य ये है कि

छे-એટલે કે જ્યારે આયુકર્મના બંધને સમય હોય છે ત્યારે તેઓ આયુ-
 કર્મનો બંધ કરે છે, પણ જ્યારે તેના બંધને સમય ન હોય ત્યારે તેઓ
 તેનો બંધ કરતા નથી. "ઉવરિલ્લે ણ વંધઈ" તથા જે " નો સંયત, નો અસં-
 યત અને નો સંયતાસંયત સિદ્ધ એવો છે તેઓ આયુકર્મનો બંધ કરતા નથી.
 હવે સૂત્રકાર સાતમાં દૃષ્ટિદ્વારની અપેક્ષાએ નીચે પ્રમાણે પ્રશ્નપૂછા કરે છે—ગૌતમ
 સ્વામી! મહાવીર પ્રભુને એવો પ્રશ્ન પૂછે છે કે—(ણાણાવરણિજ્જં ણં ભંતે ! કમ્મં, કિં
 સમ્મદિટ્ઠી વંધઈ) હે ભદ્રન્ત ! શું સમ્યગ્દૃષ્ટિ, અથવા જ્ઞાનાવરણીય કર્મનો બંધ
 કરે છે ? અથવા, " મિચ્છદિટ્ઠી વંધઈ ", મિથ્યાદૃષ્ટિ બાંધે છે ? અથવા " સમ્મ-
 મિચ્છદિટ્ઠી વંધઈ ", સમ્યગ્ મિથ્યાદૃષ્ટિ બાંધે છે ?
 ઉત્તર—' ગોયમા ! ', હે ગૌતમ ! (સમ્મદિટ્ઠી, સિય વંધઈ, સિય ણો
 વંધઈ) સમ્યગ્દૃષ્ટિ અથવા જ્ઞાનાવરણીય કર્મનો બંધ બાંધે છે, પણ પ્રભુ અને

भिन्नः सम्पगृह्णति ज्ञानावरणं कर्म बध्नाति, वीतरागश्च सम्यग्दृष्टिः शाता-
वेदनीयरूपैकविधकर्मबन्धकत्वात् ज्ञानावरणं कर्म न बध्नाति इत्यभिप्रायेणाह-
स्वात् कदाचित् अवीतरागावस्थायां ज्ञानावरणं कर्म बध्नाति, स्वात् कदाचित्-
वीतरागावस्थायां ज्ञानावरणं कर्म न बध्नाति, 'मिच्छाद्विद्वी बंधइ, सम्मामिच्छा-
द्विद्वी बंधइ' मिथ्यादृष्टिर्बध्नाति, सम्यग्मिथ्यादृष्टिः मिश्रदृष्टिरीत्यर्थः बध्नाति
'एवं आउगवज्जाओ सत्त वि' एवम् अनेन प्रकारेण आयुष्कवजाः सत्तापि
कर्मप्रकृतयो विज्ञेयाः दर्शनावरणादिकर्माण्यपि आयुष्पवर्जितानि सम्पगृह्णतिः

सम्पगृह्णति दो प्रकार का होता है एक वीतराग सम्पगृह्णति और दूसरा
वीतरागभिन्न सम्पगृह्णति; इनमें जो वीतरागभिन्न सम्पगृह्णति जीव है
वह तो ज्ञानावरणीय कर्म का बंध करता है और जो वीतराग सम्पगृ-
ह्णति जीव है वह ज्ञानावरणीय कर्म का बंध नहीं करता है। वह तो
केवल एक विध-शातावेदनीयरूप-कर्मका ही बंध करता है-इसी कारण
ऐसा कहा है कि जो सम्पगृह्णति जीव अवीतराग है-अर्थात् सरागस-
म्पगृह्णति है-वह ज्ञानावरण कर्म का बंध करता है और जो सम्पगृह्णति
वीतराग है-वह ज्ञानावरणीय कर्म का बंध नहीं करता है। (मिच्छाद्विद्वी
बंधइ, सम्मामिच्छाद्विद्वी बंधइ) परन्तु जो मिथ्यादृष्टि जीव है वह और
जो मिश्र दृष्टि जीव है वह ज्ञानावरणीय कर्म का बंध करता है। (एवं
आउगवज्जाओ सत्त वि) इस द्वार में ज्ञानावरणीय कर्म का बंध की
तरह से ही आयु को छोड़कर शेष-दर्शनावरणीय आदि कर्मों के बांधने

नथी पणु बांधतो. आ कथनतुं तात्पर्यं नीचे प्रमाणे छे-सम्पगृह्णति जे प्रका-
रना डोय छे-वीतराग सम्पगृह्णति अने वीतराग बिन्न सम्पगृह्णति. आ अन्ने
प्रकारना सम्पगृह्णति लुपोमानो वीतराग बिन्न सम्पगृह्णति लुव तो ज्ञानावर-
णीय कर्मनो अंध करे छे, पणु वीतराग सम्पगृह्णति लुव ज्ञानावरणीय कर्मनो
अंध करतो नथी. ते तो मात्र शातावेदनीय कर्मनो न अंध करे छे. ते कारणे
अेतुं कहुं छे के जे सम्पगृह्णति लुव अवीतराग छे-अेतवे के सराग सम्पगृह्णति
छे, ते तो ज्ञानावरणीय कर्मनो अंध करे छे, पणु जे सम्पगृह्णति वीतराग
लुव डोय छे ते ज्ञानावरणीय कर्मनो अंध करतो नथी. (मिच्छाद्विद्वी बंधइ,
सम्मामिच्छाद्विद्वी बंधइ) परंतु मिथ्यादृष्टि लुव तथा मिश्रदृष्टि लुव ज्ञाना-
वरणीय कर्मनो अंध करे छे. (एवं आउगवज्जाओ सत्त वि) आ द्वारमां
आयुकर्म सिवायना साते कर्मनो अंध बांधवा विषेणुं समस्त कथन ज्ञाना-

કદાચિત્ વધ્નાતિ, કદાચિન્ન વધ્નાતિ, મિથ્યાદષ્ટિર્મિશ્રદષ્ટિથ વધ્નાત્યેવેત્યર્થઃ,
 કિન્તુ ' આડે હેઢિલા દો મયણા ' આયુષ્કં વર્મ અધરત્નો આઘો દ્વો સમ્પગ્-
 દષ્ટિ-મિથ્યાદષ્ટિરૂપો ભજનયા કદાચિત્ આયુર્વન્ધકાલે વધ્નીતઃ કદાચિત્ તદ્-
 મિન્નકાલે ન વધ્નીતઃ, પરન્તુ ' સમ્મામિચ્છદિટ્ઠી ન વંધઈ ' સમ્પગ્મિથ્યાદષ્ટિઃ
 મિશ્રદષ્ટિરિત્યર્થઃ આયુષ્યં કર્મ ન વધ્નાતિ, અયં માત્રઃ-અપૂર્વકરણાદૌ સમ્પગ્દષ્ટિઃ
 આયુષ્યં કર્મ ન વધ્નાતિ, તદ્મિન્નસ્તુ સમ્પગ્દષ્ટિરપિ આયુર્વન્ધકાલે આયુર્વધ્નાતિ,
 તદ્મિન્નકાલે ન વધ્નાતિ. તથા મિથ્યાદષ્ટિરપિ આયુર્વન્ધકાલે તદ્ વધ્નાતિ. અન્યદા

કે વિષય મેં મી કથન જાનનાં ચાહિયે-અર્થાત્ આયુકર્મ કો છોડકર
 સમ્પગ્દષ્ટિ જીવ દર્શનાવરણીય આદિ કર્મો કો મી કદાચિત્ વાંધના
 હૈ ઓર કદાચિત્ નહીં વાંધતા હૈ । તથા જો મિથ્યાદષ્ટિ ઓર મિશ્રદષ્ટિ
 જીવ હૈ, વે ઇન કર્મો કા વંધ કરતે હી હૈ । કિન્તુ (આડે હેઢિલા દો
 મયણા) આયુ જો કર્મ હૈ ઉસે આદિ કે વે સમ્પગ્દષ્ટિ ઓર મિથ્યાદષ્ટિ
 જીવ ભજના સે વાંધતે હૈ-જય આયુ કે વંધ હોને કા સમય હોતા હૈ-તય
 ઉસકા વંધ કરતે હૈ ઓર જય સમય નહીં હોતા તય નહીં વંધ કરતે હૈ ।
 ઓર જો (સમ્મામિચ્છદિટ્ઠી ન વંધઈ) મિશ્રદષ્ટિ જીવ હૈ વહ આયુકર્મ
 કા વંધ નહીં કરતા હૈ । હસકા તાત્પર્ય એસા હૈ કિ-અપૂર્વકરણ આદિ
 ગુણસ્થાનવર્તી સમ્પગ્દષ્ટિ જીવ આયુકર્મ કા વંધ નહીં કરતા હૈ ઓર
 ઇનસે ભિન્ન જો સમ્પગ્દષ્ટિ હૈ વહ આયુ કે વંધ કાલ મેં આયુ કો વાંધના
 હૈ ઓર ભિન્નકાલ મેં નહીં વાંધતા હૈ । મિથ્યાદષ્ટિ મી એસા હી કરતા

વરણીય કર્મના કથન પ્રમાણે જ સમજવું. એટલે કે સમ્પગ્દષ્ટિ એવ આયુ-
 કર્મ સિવાયના સાતે કર્મોના બંધ બાંધે પણ છે અને નથી પણ બાંધતો,
 તથા મિથ્યાદષ્ટિ એવ અને મિશ્રદષ્ટિ એવ આયુકર્મ સિવાયના સાતે કર્મોના
 બંધ કરે જ છે. પણ (આડે હેઢિલા દો મયણા) આયુકર્મના બંધ પહેલા
 બે પ્રકારના એવો એટલે કે સમ્પગ્દષ્ટિ અને મિથ્યાદષ્ટિ એવો વિકલ્પે બાંધે
 છે, એટલે કે બ્યારે આયુનો બંધ બાંધવાનો સમય થાય છે, ત્યારે તેઓ
 તે કર્મના બંધ બાંધે છે, પણ બ્યારે તે બંધ બાંધવાનો સમય હોતો નથી
 ત્યારે તેઓ તે બંધ બાંધતા નથી. અને (સમ્મામિચ્છદિટ્ઠી ન વંધઈ) સમ્પગ્-
 મિથ્યાદષ્ટિ (મિશ્રદષ્ટિ) એવ આયુકર્મના બંધ બાંધતો નથી તેનું તાત્પર્ય
 આ પ્રમાણે છે-અપૂર્વકરણ આદિ ગુણસ્થાનનાં રહેલો સમ્પગ્દષ્ટિ એવ આયુ-
 કર્મના બંધ કરતો નથી, પણ તે સિવાયના જે સમ્પગ્દષ્ટિ હોય છે તેઓ
 આયુના બંધકાળે આયુકર્મના બંધ બાંધે છે પણ તે સિવાયના કાળે તેઓ
 આયુકર્મ બાંધતા નથી. મિથ્યાદષ્ટિ પણ એવું જ કરે છે, તથા સમ્પગ્ મિથ્યા-

तन्न वध्नातीत्यर्थः, अन एव ' स्यादि ' त्युक्तम्, ' असन्नी वंधइ ' असंज्ञीः
 मनः पर्याप्तिरहितो जीवः वध्नात्येव. ' णोसन्नि-णोअसन्नी नः वंधइ ' किन्तुः
 नोसंज्ञि-नोअसंज्ञी केवली सिद्धश्च हेत्वभावात् न वध्नाति, ' एवं वेयणि-
 ज्ञाऽऽउगवज्जाओ छ कम्मप्पयडीओ ' एवम्-अनेन प्रकारेण वेदनीयाऽऽयुष्क-
 र्वाः पट् कर्मप्रकृतयो विज्ञेयाः, तथा च दर्शनावरणादिकर्माण्यपि वेदनीयाऽऽ-
 युष्कवर्जितानि संज्ञी कदाचित् वध्नाति, कदाचिन्न वध्नाति, असंज्ञी तु वध्नात्येव,
 नोसंज्ञि - नोअसंज्ञी केवली सिद्धश्च वन्धकारणाभावात् तानि न वध्नात्येव

है-और यदि वह संज्ञी जीव वीतराग है तो ज्ञानावरणीय कर्म का वंध
 नहीं करता है इसी कारण (स्यात्) ऐसा कहा है। (असन्नी-बंधइ)
 जो जीव मनः पर्याप्त से शून्य है, वह ज्ञानावरणीय कर्म का वंध करता
 ही है। (णोसन्नी णोअसन्नी वंधइ) किन्तु जो जीव न संज्ञी है और
 न असंज्ञी है अर्थात् जो केवलज्ञानी है और जो सिद्ध है-ऐसा जीव
 कर्मबंध के कारणों के अभाव के कारण ज्ञानावरणीय कर्म का वंध नहीं
 करता है (एवं वेयणिज्ञाऽऽउगवज्जाओ छ कम्मप्पयडीओ) ज्ञानावरणीय
 कर्म की तरह ही इस द्वार में वेदनीय और आयु को छोड़कर ६ कर्मप्र-
 कृतियों के विषय में भी जानना चाहिये, तथा च-वेदनीय और आयु
 को छोड़कर दर्शनावरणादि ६ कर्मप्रकृतियों को भी संज्ञी जीव कदाचित्
 बांधता भी है और कदाचित् नहीं भी बांधता है। तथा जो असंज्ञी जीव
 है वह तो बांधता ही है और जो न संज्ञी है, न असंज्ञी है-ऐसे केवली

तो ज्ञानावरणीय कर्मों को बांध करता नहीं. अत्र कारणेः अतुं कहुं छ के
 " संज्ञी एव क्यारेक ज्ञानावरणीय कर्मों को बांध करे छे अने क्यारेक करतो
 नहीं. " " असन्नी वंधइ " असंज्ञी एव (मनःपर्याप्तिरिही रक्षित एव)
 ज्ञानावरणीय कर्मों को बांध करे छे. (णो सन्नी णो असन्नी न वंधइ) परंतु
 नो एव नो संज्ञी होय छे अथवा तो नो असंज्ञी होय छे-अटले के
 देवणज्ञानी अथवा सिद्ध एव, अथवा एवने कर्मबंधनां कारणों को अभाव
 होवाथी ते ज्ञानावरणीय कर्मों को बांध करतो नहीं. (एवं वेयणिज्ञाऽऽ उगव-
 ज्जाओ छ कम्मप्पयडीओ) संज्ञी आदि एवोना वेदनीयकर्म अने आयुकर्म
 सिवायना छ कर्मों को बांधतुं कथन ज्ञानावरणीय कर्मों बांधना कथन प्रभावे
 समञ्जसुं. अटले के संज्ञी एव वेदनीय अने आयुकर्म सिवायनी छ कर्म
 प्रकृतियों को बांध क्यारेक बांधे छे अने क्यारेक बांधतो नहीं, असंज्ञी एव
 ते छ कर्मप्रकृतियों को बांध बांधे छे, पणुं नो संज्ञी अने नो असंज्ञी

વધ્નાતિ ? મગવાનુ ઉત્તરપતિ-‘ગોયમા । મવસિદ્ધિણ મયણાણ’ હે ગૌતમ ! મવ-
સિદ્ધિકો મજનયા-કદાચિદ્ વધ્નાતિ, કદાચિન્ન વધ્નાતિ, વીતરાગમિત્તો મવ-
સિદ્ધિકો જ્ઞાનાવણં વધ્નાતિ, વીતરાગસ્તુ ન વધ્નાતિ, અતઃ ‘મજનયા’ इत्युक्तम्,
‘અમવસિદ્ધિણ વંધઈ’ અમવસિદ્ધિકો જ્ઞાનાવણીયં કર્મ વધ્નાત્યેવ, કિન્તુ

યા જો જીવ ન મવસિદ્ધિક હોતા હૈ ઓર ન અમવસિદ્ધિક હોતા હૈ વહ
બંધતા હૈ ? હસ પ્રશ્ન કા ઉત્તર દેતે હુણ પ્રભુ ગૌતમ સે કહતે હૈ કિ
(ગોયમા) હે ગૌતમ ! (મવસિદ્ધિણ મયણાણ) જો મવસિદ્ધિક જીવ
હોતા હૈ વહ મજના સે જ્ઞાનાવરણીય કર્મ કા વંધ કરતા હૈ અર્થાત્-
કદાચિત્ વહ હસ કર્મ કા વંધ કરતા મી હૈ ઓર કદાચિત્ વહ નહીં
મી કરતા હૈ । હસકા કારણ યહ હૈ કિ મવસિદ્ધિક જીવ દો પ્રકાર કે
હોતે હૈ-એક વે જો વીતરાગ હોતે હૈ દસરે વે જો વીતરાગ નહીં હોતે હૈ ।
વીતરાગ મવસિદ્ધિક જીવ જ્ઞાનાવરણીય કર્મ કા વંધ નહીં કરતે ઓર
જો અવીતરાગ મવસિદ્ધિક જીવ હૈ વે તો જ્ઞાનાવરણીય કર્મ કા વંધ
કરતે હી હૈ । ગ્યારહવે ચારહવે ઓર તેરહવે ગુણસ્થાનવર્તી જીવ મવસિ-
દ્ધિક વીતરાગ હૈ ઓર હનકે નીચે કે ચતુર્થ ગુણસ્થાનતક કે જીવ
અવીતરાગમવસિદ્ધિક જીવ હૈ । હસી અભિપ્રાય સે યહાં (મજના) પદ
કા પ્રયોગ કિયા ગયા હૈ । તથા જો જીવ અમવસિદ્ધિક-અમવ્ય હૈ વહ
જ્ઞાનાવરણીય કર્મ કા વંધ કરતા હી હૈ-હસી કારણ-(અમવસિદ્ધિણ
વંધઈ) એસા પાઠ કહા ગયા હૈ । કિન્તુ જો જીવ એસે હૈ કિ ન મવસિ-

જે એવ ન મવસિદ્ધિક અને ન અમવસિદ્ધિક હોય છે, તે આ કર્મ બંધે છે ।
આ પ્રશ્નનો જવાબ આપતા મહાવીર પ્રભુ કહે છે-“મવસિદ્ધિણ
મયણાણ” મવસિદ્ધિક એવ જ્ઞાનાવરણીય કર્મ વિકલ્પે બંધે છે-એટલે કે
ક્યારેક બંધે છે અને ક્યારેક બંધતો નથી, તેનું કારણ નીચે પ્રમાણે છે-
મવસિદ્ધિક એવ બે પ્રકારના હોય છે-(૧) વીતરાગ મવસિદ્ધિક અને
(૨) અવીતરાગ મવસિદ્ધિક. તેમાંનો વીતરાગ મવસિદ્ધિક એવ તે કર્મનો બંધ
કરતો નથી, પણ અવીતરાગ મવસિદ્ધિક એવ તેનો બંધ કરે છે. અગિયારમાં,
બારમાં અને તેરમાં ગુણસ્થાનનો એવ વીતરાગ મવસિદ્ધિક હોય છે પણ
ચારથી દસ સુધીના ગુણસ્થાને રહેલો એવ અવીતરાગ મવસિદ્ધિક હોય છે.
તે વાતને ધ્યાનમાં રાખીને અહીં એવું કહ્યું છે કે “મવસિદ્ધિક એવ વિકલ્પે
જ્ઞાનાવરણીય કર્મનો બંધ બંધે છે. પરંતુ ‘અમવસિદ્ધિણ વંધઈ’ અમવસિદ્ધિક
(અમવ્ય) એવ તે જ્ઞાનાવરણીય કર્મનો બંધ કરે જ છે. (જો મવસિદ્ધિણ

णो भवसिद्धिः - णो अभवसिद्धिः न बंधः' नो भवसिद्धिः - नो अभवसिद्धिः
सिद्धो जीवो न बध्नाति, ' एवं आउगवज्जाओ सत्त वि ' एवं ज्ञानावरणवदेव
आयुष्कवर्जाः सप्तापि कर्मप्रकृतयो विज्ञेयाः तथा च आयुष्यवर्जितानि दर्शना-
वरणादिकर्माग्यपि भवसिद्धिः कदाचिद् बध्नाति, कदाचिन्न बध्नाति, अभव-
सिद्धिरस्तु बध्नात्येव, नो भवसिद्धिः - नो अभवसिद्धिः सिद्धस्तु न बध्नात्येवेति
भावः । ' आउगं हेट्टिल्ला दो भयणाए ' आयुष्कं कर्म अधस्तनो आद्यो द्वौ
भवोऽभवश्च भवसिद्धिरपदवाच्यः, अभवसिद्धिरपदवाच्यश्चेत्यर्थः भजनया

द्विक-भव्य हैं और अभवसिद्धिक-अभव्य हैं- इन दोनों प्रकार के
पारिणामिक भावों से रहित हैं ऐसे वे सिद्ध परमात्माहूप जीव ज्ञानाव-
रणीय कर्म का बंध नहीं करते हैं यही बात (णो भवसिद्धिः णो अभ-
वसिद्धिः न बंधः) इस सूत्र द्वारा प्रदर्शित की गई है । (एवं आउग-
वज्जाओ सत्त वि) ज्ञानावरणीय कर्म की तरह ही आयुष्कवर्ज सात
कर्मप्रकृतियों को जानना चाहिये-अर्थात् जो भवसिद्धिक जीव होता है
वह आयुष्कवर्ज दर्शनावरणीयादि कर्मों का बंध करता भी है और नहीं
भी करता है । तथा जो अभवसिद्धिक जीव होता है वह तो नियम से
आयुष्कवर्ज दर्शनावरणीयादि कर्मों का बंध करता है । परन्तु जो ऐसे
जीव होते हैं कि न वे भवसिद्धिक हैं और न अभवसिद्धिक हैं तो वे
आयुष्कवर्ज दर्शनावरणीयादि कर्मप्रकृतियों का बंध नहीं करते हैं । कारण
ऐसे जीवों में इन कर्मों को बंध करने के कारणों का सर्वथा अभाव हो
जाता है । (आउगं हेट्टिल्ला दो भयणाए) भवसिद्धिक और अभवसिद्धिक

णो अभवसिद्धिः न बंधः) नो भवसिद्धिः (लव्य न डाय ओवो एव)
अने नो अबवसिद्धिः (अबव्य न डाय ओवो एव) एव-आ णन्ने प्रका-
रणा पारिधुमिक लावेथी रडित ओवा सिद्ध परमात्मा इप एव ज्ञानावरणीय
कर्मोना णंध करतो नथी. " एवं आउगवज्जाओ सत्त वि " आ एवोना
आयुष्यकर्म सिवायना साते. कर्मोना णंधतुं कथन ज्ञानावरणीय कर्मोना कथन
प्रमाणे न समन्वुं ओट्ठे के लवसिद्धिः एव आयुष्कर्म सिवायना साते
कर्मोना णंध विकल्पे करे छे, अबवसिद्धिः एव ते साते कर्मोना णंध अवश्य
करे छे, अने नो लवसिद्धिः अने नो अबवसिद्धिः एवो आयुष्कर्म सिवा-
यना साते कर्मोना णंध करता नथी, कारणु के ते एवोमां ओ कर्मोना णंध
करवानां कारणेना अबवाव डाय छे.

(आउगं हेट्टिल्ला दो भयणाए) लवसिद्धिः अने अबवसिद्धिः एवो

વધ્નાતિ ? મગવાન્ ઉત્તરયતિ-‘ગોયમા । મવસિદ્ધિણ મયણાણ’ હે ગૌતમ । મવ-
સિદ્ધિકો મજનયા-કદાચિદ્ વધ્નાતિ, કદાચિન્ન વધ્નાતિ, વીતરાગમિત્તો મવ-
સિદ્ધિકો જ્ઞાનાવરણં વધ્નાતિ, વીતરાગસ્તુ ન વધ્નાતિ, અતઃ ‘મજનયા’ ઇચ્યુક્તમ્,
અમવસિદ્ધિણ વંધઈ’ અમવસિદ્ધિકો જ્ઞાનાવરણીયં કર્મ વધ્નાત્યેવ, કિન્તુ

યા જો જીવ ન મવસિદ્ધિક હોતા હૈ ઓર ન અમવસિદ્ધિક હોતા હૈ વહ
બંધતા હૈ ? હસ પ્રશ્ન કા ઉત્તર દેતે હુણ પ્રભુ ગૌતમ સે કહતે હં કિ
(ગોયમા) હૈ ગૌતમ । (મવસિદ્ધિણ મયણાણ) જો મવસિદ્ધિક જીવ
હોતા હૈ વહ મજના સે જ્ઞાનાવરણીય કર્મ કા વંધ કરતા હૈ અર્થાત-
કદાચિત્ વહ હસ કર્મ કા વંધ કરતા મી હૈ ઓર કદાચિત્ વહ નહીં
મી કરતા હૈ । હસકા કારણ યહ હૈ કિ મવસિદ્ધિક જીવ દો પ્રકાર કૈ
હોતે હૈ-એક વે જો વીતરાગ હોતે હૈ દુસરે વે જો વીતરાગ નહીં હોતે હૈ ।
વીતરાગ મવસિદ્ધિક જીવ જ્ઞાનાવરણીય કર્મ કા વંધ નહીં કરતે ઓર
જો અવીતરાગ મવસિદ્ધિક જીવ હૈ વે તો જ્ઞાનાવરણીય કર્મ કા વંધ
કરતે હી હૈ । ગ્યારહવે વારહવે ઓર તેરહવે ગુણસ્થાનવર્તી જીવ મવસિ-
દ્ધિક વીતરાગ હૈ ઓર હનકે નીચે કૈ ચતુર્થ ગુણસ્થાનતક કૈ જીવ
અવીતરાગમવસિદ્ધિક જીવ હૈ । હસી અમિપ્રાય સે યહાં (મજના) પદ
કા પ્રયોગ કિયા ગયા હૈ । તથા જો જીવ અમવસિદ્ધિક-અમભ્ય હૈ વહ
જ્ઞાનાવરણીય કર્મ કા વંધ કરતા હી હૈ-હસી કારણ-(અમવસિદ્ધિણ
વંધઈ) એસા પાઠ કહા ગયા હૈ । કિન્તુ જો જીવ એસે હૈ કિ ન મવસિ-

જે એવ ન મવસિદ્ધિક અને ન અમવસિદ્ધિક હોય છે, તે આ કર્મ બાંધે છે ?
આ પ્રશ્નનો જવાબ આપતા મહાવીર પ્રભુ કહે છે—“મવસિદ્ધિણ
મયણાણ” મવસિદ્ધિક એવ જ્ઞાનાવરણીય કર્મ વિકલ્પે બાંધે છે-એટલે કે
ક્યારેક બાંધે છે અને ક્યારેક બાંધતો નથી. તેનું કારણ નીચે પ્રમાણે છે—
મવસિદ્ધિક એવ બે પ્રકારના હોય છે-(૧) વીતરાગ મવસિદ્ધિક અને
(૨) અવીતરાગ મવસિદ્ધિક. તેમાંનો વીતરાગ મવસિદ્ધિક એવ તે કર્મનો બંધ
કરતો નથી, પણ અવીતરાગ મવસિદ્ધિક એવ તેનો બંધ કરે છે. અગિયારમાં,
બારમાં અને તેરમાં ગુણસ્થાનનો એવ વીતરાગ મવસિદ્ધિક હોય છે પણ
સારથી દસ સુધીના ગુણસ્થાને રહેલા એવ અવીતરાગ મવસિદ્ધિક હોય છે.
તે વાતને ધ્યાનમાં રાખીને અહીં એવું કહ્યું છે કે “મવસિદ્ધિક એવ વિકલ્પે
જ્ઞાનાવરણીય કર્મનો બંધ બાંધે છે. પરંતુ ‘અમવસિદ્ધિણ વંધઈ’ અમવસિદ્ધિક
(અમભ્ય) એવ તો જ્ઞાનાવરણીય કર્મનો બંધ કરે જ છે. (જો મવસિદ્ધિણ

મગવાનાહ—' ગોયમા ! હેટ્ટિલા તિણિ મયણા' હે ગૌતમ ! અપસ્તનાઃ આઘાસ્વયથ્ચક્ષુર્દર્શની, અચક્ષુર્દર્શની, અવધિદર્શની ચ, ઇત્યેતે જ્ઞાનાવરણં કર્મ ભજનયા કદાચિદ્ વધ્નન્તિ, કદાચિન્નો વધ્નન્તિ, ચક્ષુરચક્ષુરવધિદર્શનિનો યદિ સરાગા ભવન્તિ તદા જ્ઞાનાવરણં વધ્નન્તિ યદા તુ છદ્મસ્થવીતરાગા ષ્કાદશગુણસ્થાન વર્તિનો જીવાસ્તદા જ્ઞાનાવરણં કર્મ ન વધ્નન્તિ, છદ્મસ્થવીતરાગાણાં વેદનીયસ્યૈવ વન્ધકત્વાન્, અત એવ 'ભજનયા' ઇત્યુક્તમ્, 'અવરિલ્લે ન વંધઈ' ઉપરિતનઃ અન્તિમઃ કેવલદર્શની ભવસ્થઃ સયોગિકેવલી અયોગિકેવલી ઇત્યર્થઃ સિદ્ધો વા હેત્વભાવાત્ ન વધ્નાતિ । ' એવં વેયણિજ્જવજ્ઞાઓ સત્ત વિ ' એવં જ્ઞાનાવરણવદેવ વેદનીયવર્જાઃ

(કેવલદંસણી વંધઈ) કેવલદર્શનવાલા જીવ વાંધતા હૈ? કૌન સે દર્શનવાલા જીવ વાંધતા હૈ? હસકે ઉત્તર મેં પ્રશ્નુ ડનસે કહતે હું— (ગોયમા) હે ગૌતમ ! (હેટ્ટિલા તિણિ મયણા) જો જીવ ચક્ષુદર્શનવાલા, અચક્ષુદર્શનવાલા ઓર અવધિદર્શનવાલા હૈ, વહ જીવ જ્ઞાનાવરણકર્મ કા વંધ ભજના સે કરતા હૈ—અર્થાત્ કમ્બી વાંધતા મ્બી હૈ, ઓર કમ્બી નહીં મ્બી વાંધતા હૈ । યદિ ડન દર્શનો વાલા જીવ સરાગ હૈ તો વહ જ્ઞાનાવરણ કર્મ કા વંધ નિયમ સે કરતા હૈ ઓર યદિ વહ છદ્મસ્થ વીતરાગ—ગ્યારહવે ઓર વારહવે ગુણસ્થાનવાલા હૈ તો વહ જ્ઞાનાવરણ કર્મ કા વંધ નહીં કરતા હૈ ક્યોં કિ જો છદ્મસ્થ વીતરાગ હોતા હૈ ડસકે વેદનીય કર્મ કા હી વંધ હોતા હૈ ડસીલિયે યહાં (ભજનયા) એસા પદ કહા હૈ (અવરિલ્લે ન વંધઈ) તથા જો કેવલદર્શની જીવ હૈ અર્થાત્ ભવસ્થ સયોગ કેવલી ઓર અયોગકેવલી હું—વે યા જો સિદ્ધ જીવ હૈ વહ વંધહેતુ કે અભાવ હો જાને કે કોરણ જ્ઞાનાવરણીયકર્મ

ઉત્તર—“ ગોયમા ! ” હે ગૌતમ ! “ હેટ્ટિલા તિણિ મયણા' ચક્ષુ દર્શનવાણો છવ. અચક્ષુ દર્શનવાણો છવ અને અવધિ દર્શનવાણો છવ જ્ઞાનાવરણીય કર્મ વિકલ્પે ણાંધે છે—એટલે કે ણાંધે છે પણ ખરાં અને નથી પણ ણાંધતા. જો આ દર્શનવાણા છવો સરાગ હોય તો તેઓ જ્ઞાનાવરણીય કર્મને બંધ અવસ્થા ણાંધે છે, પણ જો તે છદ્મસ્થ વીતરાગ અગિયારમાં અને ખારમાં શુભસ્થાનવાણો હોય તો તે જ્ઞાનાવરણીય કર્મ ણાંધતો નથી, કારણ કે છદ્મસ્થ વીતરાગને તો વેદનીય કર્મ જ ણાંધાય છે. તે કારણે એવું કહ્યું છે કે “ પહેલા ત્રણ દર્શનવાણો છવ જ્ઞાનાવરણીય કર્મ વિકલ્પે ણાંધે છે. ” “ અવરિલ્લે ન વંધઈ ” પરંતુ કેવળ દર્શની છવ—એટલે કે ભવસ્થ સયોગ કેવલી અને અયોગ કેવલી અથવા તો સિદ્ધ છવ—જ્ઞાનાવરણીય કર્મને બંધ કરતો નથી, કારણ કે એવા છવને બંધનાં કારણોને જ સર્વાં અભાવ હોય

કદાચિદ્ વધ્નીતઃ, કદાચિન્ન વધ્નીતઃ, ઉભાવપિ તૌ આયુર્વન્ધકાલે આયુષ્યં વધ્નીતઃ, તદ્મિન્નકાલે આયુષ્યં ન વધ્નીત ઇતિ ભાવઃ, અતएव 'મજનયા' ઇત્યુક્તમ્ 'ઉવરિલ્લે ન વંધઃ' ઉપરિતનઃ નોમવસિદ્ધિક-નોઅમવસિદ્ધિક પદ-વાચ્યઃ સિદ્ધો ન વધ્નાતીત્યર્થઃ ।

અથ દર્શનવિષયકવન્ધદ્વારમાશ્રિત્ય ગૌતમઃ પૃચ્છતિ- 'જાણાવરણિજ્જં ણં મંતે ! કમ્મં કિં ચક્કુદંસણી વંધઃ અચક્કુદંસણી વંધઃ, ઓહિદંસણી વંધઃ, કેવલદંસણી વંધઃ?' હે મદન્ત ! જ્ઞાનાવરણીય કર્મ કિં ચક્ષુર્દર્શની વધ્નાતિ ? અચક્ષુર્દર્શની વા કિં વધ્નાતિ ? આધિદર્શની વા કિં વધ્નાતિ ? કેવલદર્શની વા કિં વધ્નાતિ ?

ये दोनों जीव आयु कर्म का बंध करते भी हैं और नहीं भी करते हैं। इसका कारण यह है कि गृहीतभव में आयु कर्म का बंध जीव को एक ही वार अपने बंध काल में होता है अवंधकाल में नहीं। अतः इसी भाव को लेकर ऐसा कहा गया है। (उवरिल्ले न बंधइ) जो जीव न भव-सिद्धिक हैं और न अभवसिद्धिक हैं ऐसे वे सिद्ध जीव इस आयु कर्म का बंध नहीं करते हैं।

અવદર્શન વિષયવન્ધદ્વારકો આશ્રિત કરકે ગૌતમસ્વામી પ્રશ્નુસે પૂછતે હેં કિ (જાણાવરણિજ્જં ણં મંતે ! કમ્મં કિં ચક્કુદંસણી વંધઃ, અચક્કુદંસણી વંધઃ ઓહિદંસણી વંધઃ કેવલદંસણી વંધઃ) હે મદન્ત ! જ્ઞાનાવરણીયકર્મ કો કયા ચક્ષુર્દર્શનવાલા જીવ વાંધતા હે ? યા અચક્ષુર્દર્શનવાલા જીવ વાંધતા હે ? યા અવધિદર્શનવાલા જીવ વાંધતા હે ? યા

આયુકર્મનો બંધ વિકલ્પે કરે છે. એટલે કે તેઓ તેનો બંધ કરે પણ છે અને નથી પણ કરતા. તેનું કારણ એ છે કે ગૃહીત ભવમાં જીવને આયુકર્મનો બંધ એક જ વાર પોતાના બંધકાળમાં બંધાય છે, અબંધકાળમાં એ બંધ બંધાતો નથી. "ઉવરિલ્લે ન વંધઈ" નો ભવસિદ્ધિક અને નો અભવસિદ્ધિક એવાં સિદ્ધ પરમાત્મા આયુકર્મનો બંધ કરતા નથી.

હવે ગૌતમસ્વામી-દર્શનવિષય બંધદ્વારને અનુલક્ષીને નીચેનો પ્રશ્ન પૂછે છે કે (જાણાવરણિજ્જં ણં મંતે ! કમ્મં કિં ચક્કુદંસણી વંધઃ, અચક્કુદંસણી વંધઃ, ઓહિદંસણી વંધઃ, કેવલદંસણી વંધઃ ?) હે મદન્ત ! જ્ઞાનાવરણીય કર્મ શું ચક્ષુ દર્શનવાળો જીવ બાંધે છે ? કે અચક્ષુ દર્શનવાળો જીવ બાંધે છે ? કે અવધિ દર્શનવાળો જીવ બાંધે છે ? કે કેવળ દર્શનવાળો જીવ બાંધે છે ? આ ચારમાંથી કયા દર્શનવાળો જીવ જ્ઞાનાવરણીય કર્મ બાંધે છે ?

गौतमः पृच्छति—‘णाणावरणिज्जं णं भंते! कम्मं किं पज्जत्तओ वंधइ? अपज्जत्तओ वंधइ णोपज्जत्त—णो अपज्जत्तओ वंधइ’ हे भदन्त ! ज्ञानावरणीयं कर्म किम् पर्याप्तको वध्नाति? अपर्याप्तको वध्नाति? नोपर्याप्तक—नोअपर्याप्तको वध्नाति?। भगवानाह—‘ गोयमा ! पज्जत्तए भयणाए ’ हे गौतम ! पर्याप्तकः भजनया कदाचिद् वध्नाति, कदाचिन्न वध्नाति, सरागः पर्याप्तको ज्ञानावरणं वध्नाति, वीतरागः पर्याप्तकस्तु ज्ञानावरणं न वध्नाति, अतो ‘ भजनया ’ इत्युक्तम्। ‘ अपज्जत्तए वंधइ ’ अपर्याप्तकस्तु ज्ञानावरणं वध्नात्येव ‘ णोपज्जत्तय—

अथ पर्याप्तक विषयव्यन्धद्वारको आश्रित करके गौतम स्वामी प्रभुसे पूछते हैं कि—(णाणावरणिज्जं णं भंते ! कम्मं किं पज्जत्तओ वंधइ ? अपज्जत्तओ वंधइ ? णोपज्जत्तओ वंधइ णो अपज्जत्तओ वंधइ) हे भदन्त ! ज्ञानावरणीय कर्म क्या पर्याप्तक जीव बांधता है ? या जो अपर्याप्तक जीव होता है वह बांधता है ? या जो न पर्याप्तक होता है और न अपर्याप्तक होता है वह बांधता है ? इसके उत्तर में प्रभु गौतम से कहते हैं कि—(गोयमा) हे गौतम ! (पज्जत्तए भयणाए) जो जीव पर्याप्तक होता है वह ज्ञानावरणीय कर्म का बांध भजना से करता है— अर्थात् कदाचित् करता भी है और कदाचित् नहीं भी करता है। पर्याप्तक—तीन शरीर व पर्याप्तियों के योग्य पुद्गल परमाणुओं को ग्रहण करने वाला जीव—यदि सराग है तो वह ज्ञानावरणीय कर्म का बांध अवश्य ही करता है। और यदि वह पर्याप्तक जीव वीतराग है तो ज्ञानावरणीय कर्म का बांध वह नहीं करता है। इसी अभिप्राय से

इसे पर्याप्तक विषयक बांधद्वारनी अपेक्षासे गौतमस्वामी नीचे प्रमाणे प्रश्न पूछे (णाणावरणिज्जं णं भंते ! कम्मं किं पज्जत्तओ वंधइ ? अपज्जत्तओ वंधइ ? णो पज्जत्तओ—णो अपज्जत्तओ वंधइ ?) हे भदन्त ! ज्ञानावरणीय कर्मना बांध तु पर्याप्तक एव करे छे ? के अपर्याप्तक एव करे छे ? के नोपर्याप्तक एव करे छे ? के नोअपर्याप्तक एव करे छे ?

उत्तर—“ गोयमा ! ” हे गौतम ! “ पज्जत्तए भयणाए ” पर्याप्तक एव ज्ञानावरणीय कर्मना बांध विकल्पे करे छे, अटले के क्यारेक करे छे अने क्यारेक करतो नथी. पर्याप्तक—त्रयु शरीर अने छ पर्याप्तियोंने योग्य पुद्गल परमाणुओंने ग्रहण करतारे एव—ने सराग डाय तो ज्ञानावरणीय कर्मना बांध अवश्य करे छे, पणु जो ते पर्याप्तक एव वीतराग डाय तो ते ज्ञानावरणीय कर्मना बांध करतो नथी. तेथी न “ तेओ विकल्पे करे छे ” अथु

સંભાવિ કર્મપ્રકૃતયો વિગ્નેયાઃ, તથા ચ વેદનીયવર્જિતાનિ દર્શનાવરણાદિકર્મા-
 પ્યપિ ચક્ષુરચક્ષુરવધિદર્શનિનઃ કદાચિદ્ વધનન્તિ, કદાચિન્ન વધનન્તિ, કેવલ-
 દર્શની ભવસ્થઃ સિદ્ધો વા ન વધનાતીત્યર્થઃ, 'વેયણિજ્જં હેટ્ઠિજ્જા તિગ્ગિ વંધંતિ'
 વેદનીયં કર્મ અધસ્તનાઃ આઘાઃ ચક્ષુરચક્ષુરવધિ દર્શનિનસ્ત્રયોઽપિ ઇમસ્થ-વીતરાગાઃ
 સરાગાશ્ચ વધનન્ત્યેવ, કિન્તુ 'કેવલદંસણી મયણાણ' કેવલદર્શની મનનયા કદા-
 ચિદ્ વેદનીયં વધનાતિ, કદાચિન્ન વધનાતિ, સયોગિકેવલી વેદનીયં વધનાતિ,
 અયોગિકેવલી, સિદ્ધશ્ચ વેદનીયં ન વધનાતીતિ માવઃ । અય પર્યાપ્તકદ્વારમાશ્રિત્ય

કા વંધ નહીં કરતા હૈ । (एवं वेयणिज्जवज्जाभो सत्त वि) જ્ઞાનાવરણ
 ફી તરહ્ હી વેદનીય કર્મ વર્જ સાતકર્મ પ્રકૃતિયોં કો-અર્થાત્ ૬ કર્મ
 પ્રકૃતિયોં કો જાનના ચાહિયે-તથા ચ વેદનીય કર્મ કો છોડકર દર્શના
 વરણીયાદિ કર્મોં કો ભી ચક્ષુદર્શની, અચક્ષુદર્શની ઓર અવધિદર્શની
 જીવ કદાચિત્ વાંધતે હૈ ઓર કદાચિત્ નહીં વાંધતે હૈ । પરન્તુ જો
 ભવસ્થ કેવલદર્શની હૈ-અથવા જો સિદ્ધ કેવલદર્શની હૈ વહ્ હન દર્શ-
 નાવરણીયાદિ ૬ કર્મપ્રકૃતિયોં કો નહીં વાંધતા હૈ । (वेयणिज्जं हेट्ठिज्जा
 तिग्गि वंधंति). વેદનીય કર્મ કા વંધ ચક્ષુદર્શની આદિ ત્રીન દર્શનિચાહે
 જીવ કરતે હી હૈ-ચાહે યે સરાગ હોં, ચાહે છદ્મસ્થ વીતરાગ હોં, સય
 હી હસ કર્મ કા વંધ કરતે હી હૈ । કિન્તુ જો (કેવલ દંસણી મયણાણ)
 કેવલદર્શની જીવ હૈ વહ્ અયોગી કેવલી કો અપેક્ષા સે યા સિદ્ધ જીવ
 ફી અપેક્ષા સે તો હસ વેદનીય કર્મ કા વંધ નહીં કરતા હૈ ઓર
 સયોગિ કેવલી ફી અપેક્ષાસે વેદનીય કર્મ કા વહ્ વંધ કરતા હૈ ।

છે (एवं वेयणिज्जवज्जाभो सत्त वि) દર્શનદ્વારને અનુલક્ષીને વેદનીય
 કર્મ સિવાયની સાતે કર્મપ્રકૃતિયોના બંધનું સમસ્ત કથન જ્ઞાનાવરણીય કર્મના
 કથન પ્રમાણે જ સમજવું. એટલે કે દર્શનાવરણીય આદિ બીજાં છ કર્મોના
 બંધ પણ ચક્ષુ દર્શની, અચક્ષુ દર્શની અને અવધિ દર્શની ઓર ક્યારેક કરે
 છે અને ક્યારેક કરતા નથી. પરંતુ જે ભવસ્થ કેવલ દર્શની અથવા તો સિદ્ધ
 કેવલ દર્શની જીવ હોય છે તે તો દર્શનાવરણીય આદિ છ કર્મોના બંધ કરતો નથી.
 (वेयणिज्जं हेट्ठिज्जा तिग्गि वंधंति) વેદનીય કર્મોના બંધ ચક્ષુદર્શની, અચક્ષુ-
 દર્શની અને અવધિદર્શની જીવ કરે છે; તે જીવો ભલે સરાગ હોય કે છદ્મસ્થ
 વીતરાગ હોય પણ તેઓ વેદનીય કર્મોના બંધ અવસ્થ કરે છે. પરંતુ " કેવ-
 લદંસણી મયણાણ " કેવલદર્શની જીવ વિકલ્પે વેદનીય કર્મોના બંધ કરે છે.
 આ કથનને ભાવ નીચે પ્રમાણે છે-કેવલદર્શની જીવને અયોગી કેવલી હોય
 અથવા તો સિદ્ધ પરમાત્મા હોય તો તે વેદનીય કર્મોના બંધ કરતો નથી,
 પણ સયોગિ કેવલી હોય તો તે વેદનીય કર્મોના બંધ કરે છે.

આયુર્વધ્નીતઃ, તદન્યકાલે આયુર્ન વધ્નીતઃ ઇતિ ભાવઃ, 'ઉવરિલ્લે ન વંધઈ' ઉપરિતનઃ અન્તિમઃ નોપર્યાસકઃ નોઅપર્યાસકઃ-સિદ્ધો ન વધ્નાતિ । અથ ભાપકવિપયકવંધ દ્વારમાશ્રિત્ય ગૌતમઃ પૃચ્છતિ 'જ્ઞાનાવરણં મંતે ! ભાસણ વંધઈ ? અભાસણ વંધઈ ?' હે ભદન્ત ! જ્ઞાનાવરણં કર્મ કિં ભાપકો વધ્નાતિ ? અભાપકો વા વધ્નાતિ ? મગ-વાન્ ઉત્તરયતિ-' ગોયમા ! દો વિ મયજ્ઞાણ ' હે ગૌતમ ! દ્વાવપિ ભાપકઃ ભાપા-લઙ્ઘિમાન્ તદન્યઃ અભાપકથેતિ દ્વી મજનવા કદાચિદ્ જ્ઞાનાવરણં કર્મ વધ્નીતઃ, કદાચિન્ન વધ્નીતઃ, તથાહિ-સરાગો ભાપકઃ જ્ઞાનાવરણીયં વધ્નાતિ, વીતરાગસ્તુ ભાપકો ન વધ્નાતિ, અભાપકઃ અયોગી સિદ્ધથ ન વધ્નાતિ, પૃથિવ્યાદયો વિપ્રહ-

કાલ મેં હી આયુ કર્મ કા વંધ કરતે હેં--અવંધકાલ મેં નહીં કરતે હેં । (ઉવરિલ્લે ન વંધઈ) જો જીવ સિદ્ધ હેં--અર્થાત્ ન પર્યાસક હેં ઓર ન અપર્યાસક હે--વે આયુ કર્મ કા વંધ નહીં કરતે હેં ।

અવ ભાપાકવિપયકવંધદ્વારકો આશ્રિત કરકે ગૌતમસ્વામી પ્રભુ સેં પૂછતે હેં કિ-(જ્ઞાનાવરણિજ્ઞં જં મંતે ! કર્મ કિં ભાસણ વંધઈ ? અભાસણ વંધઈ ?) હે ભદન્ત ! જ્ઞાનાવરણીય કર્મ કો વ્યા ભાપક જીવ વાંધતા હેં વા અભાપક જીવ વાંધતા હેં ? હિસકા ઉત્તર દેતે હુણ પ્રભુ ગૌતમ સેં કહતે હેં કિ (ગોયમા) હે ગૌતમ ! (દો વિ મયજ્ઞાણ) વે દોનોં હી જીવ--અર્થાત્ જો ભાપાલઙ્ઘિવાલા હેં એસા ભાપક જીવ ઓર જા ભાપક સેં મિન્ન-અભાપકભાપાલઙ્ઘિવાલા નહીં હેં--એસે દોનોં હી જીવ જ્ઞાનાવરણીય કર્મ કા વંધ કદાચિત્ કરતે મી હેં ઓર કદાચિત્ નહીં મી કરતે હેં । ભાપક યદિ સરાગ હેં તો વહ જ્ઞાનાવરણીય કર્મ કા વંધ

વાંધતા નથી. તેઓ આયુકર્મના વંધકાળે જ આયુકર્મનો વંધ કરે છે, અવંધ-કાળે કરતા નથી. " ઉવરિલ્લે ન વંધઈ " જે એવ સિદ્ધ હોય છે--એટલે કે ન પર્યાસક અને ન અપર્યાસક હોય છે--તેઓ આયુકર્મનો વંધ કરતા નથી.

હવે ભાપકવિપયકવંધદ્વારને અનુલક્ષીને ગૌતમ સ્વામી મહાવીર પ્રભુને નીચે પ્રમાણે પ્રશ્ન પૂછે છે--(જ્ઞાનાવરણિજ્ઞં જં મંતે ! કર્મ કિં ભાસણ વંધઈ ? અભાસણ વંધઈ ?) હે ભદન્ત ! જ્ઞાનાવરણીય કર્મભાપક એવ વાંધે છે ? કે અભાપક એવ વાંધે છે ?

મહાવીર પ્રભુ તેનો જવાબ આપતા કહે છે--" દો વિ મયજ્ઞાણ " હે ગૌતમ ! ભાપાલઙ્ઘિવાળો ભાપક એવ તથા ભાપાલઙ્ઘિ વિનાનો અભાપક એવ જ્ઞાનાવરણીય કર્મ વાંધે છે પણ ખરો અને નથી પણ વાંધતો. ભાપક જે સરાગ હોય તો તે જ્ઞાનાવરણીય કર્મ અવશ્ય વાંધે છે, પણ જે તો

‘નોપર્યાસક-નોઅપર્યાસક: સિદ્ધો ન વધ્નાત્યેવ, ‘एवं-
 आउगवज्जाओ सत्त वि’ एवं ज्ञानावरणवदेर आयुष्कवर्जा: सत्तापि कर्म प्रकृतयो
 वेदितव्या: । तथा च आयुष्यवर्जितानि दर्शनावरणादिकर्माण्यपि पर्यासक:
 कदाचिद् वध्नाति, कदाचिन्न वध्नाति, अपर्यासकस्तु वध्नात्येव, नोपर्यासक-नो
 अपर्यासक: सिद्धस्तु न वध्नात्येवेति भाव: । ‘आउगं हेद्विल्ला दो भयणाए’
 आयुष्कं कर्म अधस्तनो आद्यो दो पर्यासकाऽपर्यासकी भजनया आयुषो वन्धकाले

(भजनया) यहां ऐसा कहा है। (अपज्जत्तए वंधइ) तथा जो जीव
 अपर्यासक है-पर्यासक नहीं है-वह तो ज्ञानावरणीय कर्म का बंध
 करता ही है। (नोपज्जत्तए-नोअपज्जत्तए न वंधइ) परन्तु जो
 जीव न पर्यासक की कोटि में है और न अपर्यासक की ही कोटि में
 है-ऐसा वह सिद्ध जीव ज्ञानावरणीय कर्म का बंध करता ही नहीं है
 (एवं आउगवज्जाओ सत्त वि) ज्ञानावरण की तरह ही आयुष्कवर्ज
 सातकर्मप्रकृतियों को अर्थात् ज्ञानावरणीयको कह चुके हैं और
 आयुष्कका निषेध है, अतः ६ कर्मप्रकृतियों को जानना चाहिये-तथा
 च आयुष्क वर्जित दर्शनावणीय आदि कर्म भी पर्यासक जीव कदाचित्
 बांधता है। और कदाचित् नहीं बांधता है। परन्तु जो अपर्यासक
 होता है वह तो बांधता ही है। एवं जो न पर्यासक होता है और न
 अपर्यासक होता है अर्थात् जो सिद्ध जीव है, वह भी नहीं बांधता है।
 (आउगं हेद्विल्ला दो भयणाए) आयुष्क के पर्यासक और अपर्यासक
 ये दो जीव विकल्प से-भजना से-बांधते हैं अर्थात्-आयुष्क के बंध

કહ્યું છે. “ અપજ્જત્તએ વંધઈ ” તથા જે એ અપર્યાસક હોય છે તે તે જ્ઞાના-
 વરણીય કર્મનો બંધ અવશ્ય કરે છે. (નોપજ્જત્તએ નોઅપજ્જત્તએ ન વંધઈ)
 પણ જે એ નોપર્યાસકની કોટિમાં હોય છે, અને નોઅપર્યાસકની કોટિમાં
 હોય છે, એવો સિદ્ધ એ જ્ઞાનાવરણીય કર્મનો બંધ કરતો જ નથી (एवं
 आउगवज्जाओ सत्त वि) પર્યાસક દ્વારાની, અપેક્ષાએ આયુષ્ક સિવાયના સાત
 કર્મબંધનું કથન જ્ઞાનાવરણીય કર્મના કથન પ્રમાણે જ સમજવું એટલે કે
 આયુષ્ક સિવાયના સાત કર્મોનો બંધ પર્યાસક એ બાંધે છે પણ ખરો
 અને નથી પણ બાંધતો. અપર્યાસક એ તે તે આયુષ્ક સિવાયના સાત
 કર્મોનો બંધ અવશ્ય બાંધે જ છે. અને જે ન પર્યાસક અને ન અપર્યાસક
 હોય છે. એટલે કે સિદ્ધ એ જ હોય છે તે આયુષ્ક સિવાયના સાત કર્મોનો
 બંધ કરતો નથી. (आउगं हेद्विल्ला दो भयणाए) પર્યાસક અને અપર્યાસક
 એ આયુષ્ક વિકલ્પે બાંધે છે-એટલે કે ક્યારેક બાંધે છે અને ક્યારેક

કદાચિદ્ વેદનીયં કર્મ વધ્નાતિ, કદાચિન્ન વધ્નાતિ, પૃથિવ્યાદિકઃ અભાપકઃ વધ્નાતિ, અયોગી, સિદ્ધ અભાપકો ન વધ્નાતિ, અત આહ-‘ ભજનયા ’ ઇતિ । અય પરીતદ્વારમાશ્રિત્ય ગૌતમઃ પૃચ્છતિ - ‘ જાણાવરણિજ્જં ણં મંતે કમ્મં કિં પરિત્તે વંધઈ અપરિત્તે વંધઈ જોપરિત્ત-જોઅપરિત્તે વંધઈ ’ હે ભદન્ત ! જ્ઞાનાવરણીયં સ્વલુ કર્મ કિં પરીતો વધ્નાતિ ? અપરીતો વધ્નાતિ ? નોપરીત-નોઅપરીતો વધ્નાતિ ? મગવાનાહ-‘ ગોયમા ! પરિત્તે ભયણાઈ ’ હે ગૌતમ ! પરીતઃ પ્રત્યેકશરીરવનસ્પતિકાયઃ અલ્પસંસારો વા ભજનયા જ્ઞાનાવરણં કદાચિદ્ વધ્નાતિ,

હું ઓર કદાચિત્ નહીં વાંધતે હું-એસા જો કહા ગયા હૈ-તો ઉસકા અભિપ્રાય એસા હૈ કિ જવ અભાપકપદ અયોગી ઓર સિદ્ધોં કો રલા જાતા હૈ તથ વે વેદનીય કર્મ કા વંધ નહીં કરતે હું । ઓર જવ વિગ્રહ-ગત્યાપન્ન પૃથિવ્યાદિક જીવોં કો ગ્રહણ કિયા જાતા હૈ તથ વે વેદનીય કર્મ કા વંધ કરતે હું । ઇસી કારણ યહાં પર ભજના પ્રકટ કો ગઈ હૈ ।

અવ પરીતદ્વાર કો આશ્રિત કરકે ગૌતમ પ્રભુ સે પૂછતે હું કિ- (જાણાવરણિજ્જં ણં મંતે ! કમ્મં કિં પરિત્તે વંધઈ, અપરિત્તે વંધઈ ? જો પરિત્ત જો અપરીત્તે વંધઈ ?) હે ભદન્ત ! જ્ઞાનાવરણીય કર્મ કો કયા પરીત જીવ વાંધતા હૈ કિ અપરીત જીવ વાંધતા હૈ-અથવા જો જીવ ન પરીત હૈ ઓર ન અપરીત હૈ વહ વાંધતા હૈ ? ઇસકા ઉત્તર દેતે હુઈ પ્રભુ ગૌતમ સે કહતે હું કિ (ગોયમા) હે ગૌતમ ! (પરિત્તે ભયણાઈ) પરીત પ્રત્યેક શરીરવાલા વનસ્પતિ કાયિક જીવ અથવા અલ્પસંસાર વાલા

ક્યારેક બાંધે છે અને ક્યારેક બાંધતો નથી. આ કથનનો ભાવ નીચે પ્રમાણે છે-અભાપક અયોગી અને સિદ્ધ પરમાત્માઓ વેદનીય કર્મનો બંધ કરતા નથી, પણ વિગ્રહ ગતિમાં રહેલા પૃથ્વીકાય આદિ જીવો વેદનીય કર્મનો બંધ કરે છે.

હવે પરીત દ્વારની અપેક્ષાએ ગૌતમ સ્વામી મહાવીર પ્રભુને નીચેનો પ્રશ્ન પૂછે છે-(જાણાવરણિજ્જં ણં મંતે ! કમ્મં કિં પરિત્તે વંધઈ ? અપરિત્તે વંધઈ ? જો પરિત્ત-જો અપરિત્તે વંધઈ ?) હે ભદન્ત ! જ્ઞાનાવરણીય કર્મ શું પરીત (પ્રત્યેક શરીરવાળો વનસ્પતિકાય જીવ અથવા અલ્પ સંસારવાળો જીવ) જીવ બાંધે છે ? કે અપરીત જીવ બાંધે છે ? કે નોપરીત જીવ બાંધે છે ? કે નોઅપરીત જીવ બાંધે છે ?

તેનો જવાબ આપતા મહાવીર પ્રભુ કહે છે-(ગોયમા ! પરિત્તે ભયણાઈ) હું ગૌતમ ! પરીત જીવ (પ્રત્યેક શરીરવાળો વનસ્પતિકાયિક જીવ અથવા

મર્યાસપન્નાશ્વાભાપકા વધ્નન્તિ, અત્ત પ્વ ' દોષિ મયળાપ ' શ્ત્યુક્તમ્ । એવં વેયણિજ્જવજ્જાઓ સત્ત વિ ' એવં જ્ઞાનાવરણવદેવ વેદનીયવર્ગાઃ સત્તાપિ કર્મ પ્રકૃતયો વેદિતવ્યાઃ, તથા ચ વેદનીયવર્જિતાનિ દર્શનાવરણાદિકર્માણ્યપિ ભાપકા-ભાપકૌ ભજનયા કદાચિદ્ વધ્નીતઃ, કદાચિન્ન વધ્નીતઃ, ' વેયણિજ્જં ભાસપ વંધઈ ' વેદનીયં કર્મ ભાપકઃ ભાપાલઙ્ઘિમાન્ વધ્નાતિ, સયોગ્યવસાનસ્યાપિ ભાપા-લઙ્ઘિમતઃ શાતવેદનીયવન્ધકત્વાત્, ' અમાસપ મયળાપ ' અમાપકઃ ભજનયા

અવશ્ય હી કરતા હૈ । ઓર ભાપક યદિ ચીતરાગ હૈ તો વહ જ્ઞાનાવર-ણીય કર્મ કા વંધ નહીં કરતા હૈ । હસી તરહ અગોગી જીવ ઓર સિદ્ધ જીવ યે અભાપક હૈ તો યે જ્ઞાનાવરણીય કર્મ કા વંધ નહીં કરતે હૈ । તથા પૃથિવી આદિ જીવ જય વિગ્રહ ગતિ મેં રહતે હૈ તથ યે ભી અભા-પક માને જાતે હૈ-સો યે તો જ્ઞાનાવરણીય કર્મ કા વંધ કરતે હી હૈ । હસી કારણ યહાં દોનોં મેં જ્ઞાનાવરણીય કર્મ કે વંધ કરને કી ભજના કહી ગઈ હૈ । (એવં વેયણિજ્જવજ્જાઓ સત્ત વિ) હસી તરહ સે અર્થાત્ જ્ઞાનાવરણ કર્મ કી તરહ હી-વેદનીય વર્જ સાતકર્મપ્રકૃતિયોં કો જાનના ચાહિયે-તથા ચ-વેદનીય વર્જિત દર્શનાવરણીય આદિ કર્મ ભી ભાપક ઓર અભાપક યે દોનોં જીવ ભજના સે વાંધતે હૈ । (વેયણિજ્જં ભાસપ વંધઈ) વેદનીય કર્મ કો ભાપક જીવ વાંધતા હૈ-કારણ કિ સયોગિ કે અવસાનવાલા ભી ભાપક-ભાપાલઙ્ઘિવાલા-શાતાવેદનીય કર્મ કા વંધ કરતા હૈ । (અમાસપ મયળાપ) અમાપક જીવ કદાચિત્ વાંધતે

વીતરાગ હોય તો જ્ઞાનાવરણીય કર્મ વાંધતો નથી. એજ પ્રમાણે અયોગી જીવ અને સિદ્ધ જીવ અભાપક હોય છે. તેઓ જ્ઞાનાવરણીય કર્મ વાંધતા નથી. તથા પૃથ્વીકાય આદિ જીવ જ્યારે વિગ્રહ ગતિમાં રહેતા હોય છે, ત્યારે તેમને પણ અભાપક ગણવામાં આવે છે. પણ તેઓ જ્ઞાનાવરણીય કર્મ અવશ્ય વાંધતા હોય છે. તે કારણે જ એવું કહ્યું છે કે " ભાપક અને અભાપક વિકલ્પે જ્ઞાનાવરણીય કર્મ વાંધે છે. " (એવં વેયણિજ્જવજ્જાઓ સત્ત વિ.) ભાપક તથા અભાપક જીવોના વેદનીય કર્મ સિવાયના સાતે કર્મ વાંધતું કથન જ્ઞાનાવરણીય કર્મ પ્રમાણે સમજવું. એટલે કે વેદનીય કર્મ સિવાયના સાતે કર્મોના વંધ ભાપક અને અભાપક જીવો વાંધે પણ છે અને નથી પણ વાંધતા. (વેયણિજ્જં ભાસપ વંધઈ) વેદનીય કર્મ ભાપક જીવ વાંધે છે, કારણ કે સયોગિ અવસ્થાવાળો ભાપક (ભાપાલઙ્ઘિવાળો જીવ) પણ શાતાવેદનીયનો વંધ કરે છે. " અમાસપ મયળાપ " અભાપક જીવ વેદનીય કર્મ વિકલ્પે વાંધે છે. એટલે કે

અપરીતોઽપિ દ્વાવપિ ભજનયા કદાચિદ્ વચ્નીતઃ, કદાચિન્ન વચ્નીતઃ, પ્રત્યેકકાયઃ સાધારણકાયઃ, પરીતઃ, અપરીતઃ અલ્પસંસાર, અનન્તસંસારો વા આયુર્વચ્ચકાલે એવ આયુર્વચ્ચનાતિ, તદ્મિન્નકાલે ન આયુર્વચ્ચનાતિ, અતો ' ભજનયા ' ઇત્યુક્તમ્, કિન્તુ ' ણોપરિત્ત- ણોઅપરિત્તો ન વંધઈ ' નોપરીત- નોઅપરીતઃ સિદ્ધસ્તુ ન વચ્ચનાત્યેવ ।

અથ જ્ઞાનવિષયકવંધદ્વારમધિકૃત્ય ગૌતમઃ પૃચ્છતિ- ' ણાગાવરણિજ્જં ણં મંતે ! કર્મં કિં અભિણિચોદ્ધિયાણી વંધઈ ? સુચણાણી, ઓદ્ધિયાણી, મળપજ્જવનાણી, કેવલ્લણાણી વંધઈ ? ' હે ભદન્ત ! જ્ઞાનાવરણીયં કર્મ કિમ્ અભિણિચોધિકજ્ઞાની

સિદ્ધ જીવ હૈં, વે કમ્મી નહીં વાંધતે હૈં । (આગમં પરિત્તો ચિ અપરિત્તો ચિ ભયણાણ) આયુષ્ક કર્મ કો પરીત મ્મી ઓર અપરીત મ્મી ભજના સે વાંધતે હૈં । પ્રત્યેક કાયવાલા જીવ પરીત ઓર સાધારણ કાયવાલા જીવ અપરીત, અથવા અલ્પસંસારવાલા પરીત જીવ ઓર અનન્તસંસાર વાલા અપરીત જીવ વે દોનોં હી પ્રકાર કે જીવ આયુ કે વંધ કાલ મ્મી હી આયુ કા વંધ કરતે હૈં ઓર આયુ કે વંધકાલ કે અસમય મ્મી આયુ કા વંધ નહીં કરતે હૈં-ઇસ કારણ ભજના યહાં કહી ગઈ હૈ । કિન્તુ (ણોપરિત્ત ણોઅપરિત્તો ન વંધઈ) એસા જો કહા ગયા હૈ સો સિદ્ધ જીવ ન પરીત હૈં ઓર ન અપરીત હી હૈં-ઇસ કારણ વે સિદ્ધ જીવ આયુકર્મ કા વંધ નહીં કરતે હૈં ।

અથ જ્ઞાનવિષયકવંધદ્વારકો આશ્રિત કરકે ગૌતમસ્વામી પ્રમુસે પૂચ્છતે હૈં કિ- (ણાગાવરણિજ્જં સ્વલ્લ મંતે ! કર્મં કિં અભિણિચોદ્ધિયાણી વંધઈ સુચણાણી, ઓદ્ધિયાણી, મળપજ્જવનાણી, કેવલ્લણાણી વંધઈ ?) હે ભદન્ત !

કહી કરતો નથી. (આગમં પરિત્તો ચિ અપરિત્તો ચિ ભયણાણ) પરીત અને અપરીત એવો આયુકર્મનો વંધ વિકલ્પે ણાંધે છે. પ્રત્યેક કાયવાણો પરીત એવ અને સાધારણ કાયવાણો અપરીત એવ, અથવા અલ્પ સંસારવાણો પરીત એવ અને અનન્ત સંસારવાણો અપરીત એવ, એ ણન્ને પ્રકારના એવ આયુના વંધકાણે ન આયુકર્મનો વંધ કરે છે પણ આયુના અવંધકાણે આયુકર્મનો વંધ કરતા નથી, તે કારણે " વિકલ્પે કર્મવંધ " કહ્યો છે. પરંતુ (ણો પરિત્ત ણો અપરિત્તો ન વંધઈ) નોપરીત અને નોઅપરીત એવો સિદ્ધ એવ આયુ- કર્મનો વંધ કરતો નથી.

હવે ગૌતમસ્વામી જ્ઞાનવિષયકવંધદ્વારને અનુલક્ષીને નીચેનો પ્રશ્ન પૂછે છે- (ણાગાવરણિજ્જં સ્વલ્લ મંતે ! કર્મં કિં અભિણિચોદ્ધિયાણી વંધઈ ? સુચણાણી, ઓદ્ધિયાણી, મળપજ્જવનાણી, કેવલ્લણાણી વંધઈ ?) હે ભદન્ત ! જ્ઞાનાવરણીય કર્મ કયા જ્ઞાનવાણો એવ ણાંધે છે ? શું અભિણિચોધિક જ્ઞાની (મત્તિજ્ઞાની)

कदाचिन्न वध्नाति, सरागपरीतो ज्ञानावरणीयं कर्म वध्नाति, वीतरागपरीतस्तु तन्नवध्नाति, अतो ' भजनया ' इत्युक्तम् ' अपरित्ते बंधइ ' अपरीतः साधारण-वनस्पतिकायः अनन्तसंसारो वा वध्नात्येव, ' णोपरित्त-णोअपरित्ते न बंधइ ' नोपरीत-नोअपरीतः सिद्धो न वध्नाति । ' एवं आउगवज्जाओ सत्त कम्मप्पयडीओ ' एवं ज्ञानावरणादेव आयुष्कवर्जाः सप्त कर्मप्रकृतयो ज्ञातव्याः तथाहि-आयुष्कवर्जितानि दर्शनावरणादिकर्माण्यपि परीतः कदाचिद् वध्नाति, कदाचिन्न वध्नाति, अपरीतस्तु वध्नात्येव, नोपरीत-नोअपरीतः सिद्धस्तु न कयमपि वध्नातीति भावः । ' आउगं परित्तो वि अपरित्तो वि भयणाए ' आयुष्कं कर्म परीतोऽपि,

जीव भजना से ज्ञानावरणीय कर्म का बंध करता है । इसका भाव यह है कि यदि परीत जीव सराग है तो वह ज्ञानावरणीय कर्म का बंध करता है और यदि वह वीतराग है तो वह ज्ञानावरणीय कर्म का बंध नहीं करता है । (अपरित्ते बंधइ) साधारण वनस्पतिकारूप जीव अथवा जीसका संसार अनन्त है ऐसा जीव-ज्ञानावरणीय कर्म का बंध करता है (णो परित्त णो अपरित्ते न बंधइ) जो न परीत है और न अपरीत है ऐसा सिद्ध जीव ज्ञानावरणीय कर्म का बंध नहीं करता है (एवं आउगवज्जाओ सत्त कम्मप्पयडीओ) ज्ञानावरण कर्म की तरह से ही आयुष्कवर्ज सात कर्मप्रकृतियों को जानना चाहिये-तथा च-आयुष्कवर्जित दर्शनावरणीयादि कर्मों को भी परीत जीव कदाचित् बांधता है और कदाचित् नहीं बांधता है । पर जो अपरीत जीव है, वह तो बांधता ही है । जो नो परीत नो अपरीत हैं अर्थात् ऐसे जो

अथ संसारवाणो एव) ज्ञानावरणीय कर्मोना अंध विकल्पे करे छे आ कथनोना लाव नीचे प्रमाणे छे-जे परीत एव सराग डोय तो ज्ञानावरणीय कर्म बांधे छे, पण जे ते परीत एव वीतराग डोय, तो ते ज्ञानावरणीय कर्म बांधतो नथी. " अपरित्ते बंधइ " साधारण वनस्पतिकाय इय एव अथवा जेना संसार अनन्त डोय छे जेवो एव ज्ञानावरणीय कर्म बांधे न छे. (णोपरित्त-णोअपरित्ते न बंधइ) परंतु नोपरित्त अने नोअपरीत जेवो सिद्ध एव ज्ञानावरणीय कर्मोना अंध करतो नथी. (एवं आउगवज्जाओ सत्त वि कम्मप्पयडीओ) परीत द्वारनी अपेक्षाजे आयुष्कं सिवायनी साते कर्म-प्रकृतियोना अंधनुं सभस्त कथन ज्ञानावरणीय कर्मोना कथन प्रमाणे न सभज्जु. अट्टे के परीत एव आयुष्कं सिवायनी दर्शनावरणीय आदि साते कर्म-प्रकृतियोना अंध विकल्पे बांधे छे, अपरीत एव तो ते कर्मोना अंध अवश्य बांधे छे, पण न परीत अने न अपरीत इय सिद्ध एव ते कर्मोना अंध

नीयवर्जाः सतापि कर्मप्रकृतयो वेदितव्याः, तथाहि-वेदनीयवर्जितानि दर्शनावरणादिकर्माग्यपि आभिनिबोधिकज्ञानि प्रभृतयश्चत्वारो ज्ञानिनः कदाचित् सरागावस्थायां बध्नन्ति, कदाचिद् वीतरागावस्थायां न बध्नन्ति, केवलज्ञानी तु न बध्नाति । वेयणिज्जं हेट्टिल्ला चत्तारि बंधंति ' वेदनीयं कर्म अधरतनाः आद्याश्चत्वार आभिनिबोधिकज्ञानिप्रभृतयोऽपि बध्नन्ति, छद्मस्थानां शाताशातवेदनीयस्य वीतरागाणां च शातवेदनीयस्य बन्धकत्वात् । ' केवलज्ञानी भयणाए' केवलज्ञानी भजनया कदाचिद् बध्नाति वेदनीयम्, कदाचिन्न बध्नाति, सयोगिकेवल्लिनां वेदनीयबन्धकत्वात् अयोगिकेवल्लिनां सिद्धानां चाबन्धकत्वात् ' भजनया ' इत्युक्तम् ।

के सर्वथा क्षय से ही केवलज्ञानप्राप्त होता है (एवं वेयणिज्जवज्जाओ सत्त वि) ज्ञानावरण कर्म की तरह से ही वेदनीयवर्ज सात कर्म प्रकृतियां जाननी चाहिये- तथा च-वेदनीयकर्म से रहित दर्शनावरणीय आदि कर्मों का भी आभिनिबोधिक आदि चारज्ञानवाले जीव कदाचित् बंध करते हैं और कदाचित् नहीं करते हैं । जब ये सरागावस्थापन्न होते हैं-तब तो करते हैं और जब ये वीतरागावस्थापन्न होते हैं तब नहीं करते हैं । केवलज्ञानी तो इनका बंध करते ही नहीं है । (वेयणिज्जं हेट्टिल्ला चत्तारि बंधंति) आदि के चार ज्ञानवाले जीव वेदनी कर्म का बंध करते हैं । ज्यों कि छद्मस्थों के शातावेदनीय का और अशातावेदनीयका बंध होता है और वीतरागोंके केवल एक शातावेदनीय का ही बन्ध होता है । (केवलज्ञानी भयणाए) केवलज्ञानी जीव के वेदनीय कर्म का बंध विकल्प से होता है ऐसा जो कहा गया है उसका कारण यह है कि जब केवलज्ञानी जीव तेरहवें गुणस्थान में रहता

विनाश थवाथी तो केवलज्ञान प्राप्त थतुं होय छे. (एवं वेयणिज्जवज्जाओ सत्त वि) वेदनीय कर्म सिवायनी साते कर्मप्रकृतियोना कर्मबंध विपेनुं कथन ज्ञानावरणीय कर्मना कथन प्रभाणुं न समज्जुं. अट्ठे के वेदनीय कर्म सिवायना साते कर्मो भतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी अने मनःपर्ययज्ञानी क्यारेक बांधे छे अने क्यारेक बांधता नथी-अ्यारे तेजो सराग अवस्थावाणा होय छे त्यारे करे छे पणु वीतराग अवस्थावाणा होय त्यारे करता नथी. केवलज्ञानी आत्मा तो तेभनो बांध करतो न थी. (वेयणिज्जं हेट्टिल्ला चत्तारि बंधंति) वेदनीय कर्मनो बांध पडेल्ले चार ज्ञानवाणा एव करे छे, कारण के छद्मस्थाने शातावेदनीयनो अने अशातावेदनीयनो बांध होय छे, पणु वीतरागाने मात्र शातावेदनीयनो न बांध होय छे. (केवलज्ञानी भयणाए) केवलज्ञानी एव वेदनीय कर्मनो बांध विकल्पे बांधे छे. आभ कडेवानुं कारणे अ

मतिज्ञानी किं ज्ञानवरणीयं कर्म बध्नाति ? । भगवानाह—‘ गोयमा । हेद्विद्व्या चत्तारि भयणाए ’ हे गौतम ! अयस्तना आद्याधस्वारः अभिनिबोधिक-श्रुता-वधि-मनःपर्ययज्ञानिनः भजनया कदाचिद् ज्ञानावरणीयं कर्म बध्नन्ति, कदाचिन्न बध्नन्ति, सरागावस्थायां बध्नन्ति, वीतरागावस्थायां ज्ञानावरणीयं कर्म न बध्नन्ति, अतो ‘ भजनया ’ इत्युक्तम्, ‘ केवलणाणी न बंधइ ’ केवल-ज्ञानी न बध्नाति । ‘ एवं वेयणिज्जनवज्जाओ सत्तपि ’ एवं ज्ञानावरणवदेव वेद-

ज्ञानावरणीय कर्म कौन से ज्ञानवाला जीव बांधता है ? क्या आभिनि-
बोधिकज्ञानी-मतिज्ञानी जीव बांधता है । या श्रुतज्ञानी जीव बांधता है ?
या अवधिज्ञानी जीव बांधता है या मनः पर्ययज्ञानो बांधता है ? या
केवलज्ञानी बांधता है ? इसके उत्तर में प्रभु गौतम से कहते हैं कि
(गोयमा) हे गौतम ! (हेद्विद्व्या चत्तारि भयणाए) आदि के चार जीव
मतिज्ञानी-श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी और मनः पर्ययज्ञानी जीव-केवल-
ज्ञानावरणीय कर्म का बंध भजना से करते हैं-अर्थात् ये चार जीव
कदाचित् ज्ञानावरणीय कर्म का बंध करते भी हैं और कदाचित् नहीं
भी करते हैं । जब ये सरागावस्था में रहते हैं, तब तो ज्ञानावरणीय
कर्म का बंध करते हैं और जब ये वीतरागावस्था में रहते हैं-तब ज्ञाना-
वरणीय कर्म का बंध नहीं करते हैं । इसीलिये यहां (भजना) पद
प्रयुक्त किया गया है । (केवलणाणी न बंधइ) केवलज्ञानी आत्मा
ज्ञानावरणीय कर्म का बंध नहीं करता है-क्यों कि ज्ञानावरणीय कर्म

एव बांधे छे ? के श्रुतज्ञानी एव बांधे छे ? के अवधिज्ञानी एव बांधे छे ?
के मनःपर्ययज्ञानी एव बांधे छे ? के केवलज्ञानी एव बांधे छे ?

तेनो उत्तर आपता भडावीर प्रभु कडे छे के (गोयमा ।) हे गौतम ।
(हेद्विद्व्या चत्तारि भयणाए) पडेका आर प्रकारना एवो-मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी,
अवधिज्ञानी अने मनःपर्ययज्ञानी एवो ज्ञानावरणीय कर्मनो बांध विकडेपे
करे छे-अेटवे के तेओ ज्ञानावरणीय कर्म क्यारेक बांधे छे अने क्यारेक
बांधता नथी. न्यारे तेओ सराग अवस्थावाजा डोय छे. त्यारे तो ज्ञाना-
वरणीय कर्म बांधे छे, परंतु न्यारे वीतराग अवस्थावाजा डोय छे, त्यारे
तेओ ज्ञानावरणीय कर्म बांधता नथी. तेकारे अर्ही “ विकडेपे कर्म बांधे
छे ” अेरुं कहुं छे. (केवलणाणी न बंधइ). परंतु केवलज्ञानी आत्मा तो
ज्ञानावरणीय कर्म बांधतो न नथी, कारेके ज्ञानावरणीय कर्मनो सर्वथा

અવ યોગવિપયકચંધદ્વારમાશ્રિત્ય ગૌતમઃ પૃચ્છતિ-‘(નાનાવરણિજ્જં ણં મંતે કમ્મં કિં મણજોગી વંધઈ? વચજોગી વંધઈ? કાયજોગી વંધઈ? અયોગી વંધઈ? હે ભદન્ત ! જ્ઞાનાવરણીયં કર્મ કિમ્ મનોયોગી વધ્નાતિ ? કિં વચોયોગી વધ્નાતિ ? કિં કાય-યોગી વધ્નાતિ ? કિં વા અયોગી વધ્નાતિ ? । મગવાનાહ-‘ ગોયમા ! હેટ્ઠિલ્લા તિન્નિ મયણાણ’ હે ગૌતમ ! અધસ્તનાઃ આચ્ચાહ્મયઃ મનોવચઃકાયયોગિનઃ મજનયા કદાચિદ્ વધ્નન્તિ, કદાચિન્ન વધ્નન્તિ, યે તાવત્ મનોવચઃકાય-

વે અજ્ઞાની જીવ ભજના સે કરતે હૈં-અર્થાત્ આયુકર્મ કે વંધકાલ મેં આયુ કા વંધ કરતે હૈં ઓર ભિન્ન કાલમેં ડસકા વંધ નહીં કરતે હૈં ।

અવ યોગવિપયકચંધદ્વાર કો આશ્રિત કરકે ગૌતમ પ્રશ્ન સે પૂછતે હૈં કિ-(નાનાવરણિજ્જં ણં મંતે ! કમ્મં કિં મણજોગી વંધઈ? વચજોગી વંધઈ? કાયજોગી વંધઈ? અયોગી વંધઈ?) હે ભદન્ત ! જ્ઞાનાવરણીય કર્મ કા વંધ યોગદ્વાર કી અપેક્ષા વિચાર કરને પર કૌનસા જીવ કરતા હૈં-કયા મનોયોગ વાલા જીવ જ્ઞાનાવરણીય કર્મ કા વંધ કરતા હૈં? યા વચનયોગવાલા જીવ જ્ઞાનાવરણીય કર્મ કા વંધ કરતા હૈં? યા જો કાયજોગવાલા જીવ હૈં વહ જ્ઞાનાવરણીય કર્મ કા વંધ કરતા હૈં? યા જિસકે ડન તીનોં યોગોં મેં સે ઇક ભી યોગ નહીં હૈં ઇસા જીવ જ્ઞાનાવરણીય કર્મ કા વંધ કરતા હૈં? ડસકે ઉત્તર મેં પ્રશ્ન ગૌતમ સે કહ્તે હૈં કિ-(ગોયમા) હે ગૌતમ ! (હેટ્ઠિલ્લા તિન્નિ મયણાણ) આદિ કે તીનોં

તેનો જ્વાળ આપતા મહાવીર પ્રભુ કહે છે-(ગોયમા !) હે ગૌતમ !

(ભાગવજ્જાઓ સત્ત વિ વંધંતિ) મતિ અજ્ઞાની આદિ ઇવો આયુકર્મ સિવાયના સાતે ક્રમોનો વંધ બાંધે છે. પરંતુ (આડમં મયણાણ) અજ્ઞાની ઇવો આયુકર્મનો વંધ વિકલ્પે કરે છે. તેઓ આયુકર્મના વંધકાળે આયુનો વંધ કરે છે. અધકાળે તેઓ તેનો વંધ કરતા નથી.

હવે યોગવિપયકચંધદ્વારની અપેક્ષાએ ગૌતમસ્વામી મહાવીરપ્રભુને એવો પ્રશ્ન પૂછે છે કે-(નાનાવરણિજ્જં ણં મંતે ! કમ્મં કિં મણજોગી વંધઈ? વચજોગી વંધઈ? કાયજોગી વંધઈ? અયોગી વંધઈ?) યોગદ્વારની દૃષ્ટિએ વિચાર કરતા કયા યોગવાળો ઇવ જ્ઞાનાવરણીય કર્મ બાંધે છે? શું મનોયોગવાળો ઇવ જ્ઞાનાવરણીય કર્મ બાંધે છે? કે વચનયોગવાળો ઇવ જ્ઞાનાવરણીય કર્મ બાંધે છે? કે કાયયોગવાળો ઇવ બાંધે છે? કે અયોગી ઇવ (આ ત્રણે યોગમાંથી એક પણ યોગ ન હોય એવો ઇવ જ્ઞાનાવરણીય કર્મ બાંધે છે ?

તેનો જ્વાળ આપતા મહાવીર પ્રભુ કહે છે-(ગોયમા !) હે ગૌતમ !

(હેટ્ઠિલ્લા તિન્નિ મયણાણ) પહેલા ત્રણ યોગવાળા ઇવો-મનયોગી, વચન-

અથ અજ્ઞાનવિપયકવંધદ્વારમાશ્રિત્ય ગૌતમઃ પૃચ્છતિ—‘(નાનાવરણિજ્ઞં ણં મંતે કમ્મં કિં મહ્ અન્નાણિ વંધહ્ સુય અન્નાણી વંધહ્ ?’ હે મદન્ત ! જ્ઞાનાવરણીયં કર્મ કિં મત્યજ્ઞાની વધ્નાતિ ? કિમ્ શ્રુતાજ્ઞાની વધ્નાતિ ? કિં વિભજ્ઞજ્ઞાની વધ્નાતિ ? । મગવાનાહ — ગોયમા ! આઝમવજ્જામ્મો સત્તવિ વંધંતિ ’ હે ગૌતમ ! આયુષ્કવર્ત્તાઃ સત્તાઽપિ કર્મપ્રકૃતોઃ મત્યજ્ઞાનિમમૃતયો વધ્નન્તિ । ‘આઝમં મયણાણ’ આયુષ્કં મજ્જનયા કદાચિદ્ આયુષ્કવંધનકાલે વધ્નન્તિ, કદાચિત્ તદ્મિન્નકાલે આયુર્ન વધ્નન્તીત્યર્થઃ ।

હૈ તપ તો વહ શાતાવેદનીય કર્મ કા વંધ કરતા હી હૈ ઓર જય વહી ચૌદહવે ગુણસ્થાનમેં વિરાજમાન હો જાતા હૈ યા સિદ્ધ થનજાતા હૈ તથ ઉસકે વેદનીય કર્મ કાં વંધ નહીં હોતા હૈ ।

અવ અજ્ઞાનવિપયકવંધદ્વાર કો આશ્રિત કરકે ગૌતમસ્વામી પ્રમુ સે પૂછતે હૈં કિ—(નાનાવરણિજ્ઞં ણં મંતે ! કમ્મં કિં મહ્ અન્નાણી વંધહ્, સુય અન્નાણી વંધહ્, વિભંગ અન્નાણી વંધહ્) હે મદન્ત ! જ્ઞાનાવરણીય કર્મ કા વંધ જય અજ્ઞાન કી અપેક્ષા લેકર વિચાર કરતે હૈં તો કૌન સાં અજ્ઞાની જીવ વાંધતા હૈં—વયા મતિ અજ્ઞાની વાંધતા હૈ ? યા શ્રુત અજ્ઞાની વાંધતાં હૈ ? યા વિભંગજ્ઞાની—જિસકા અવધિજ્ઞાન મિધ્યાત્વ કે સંબંધ સે વિપરીત થના હુઆ હૈ—એસા જીવ વાંધતા હૈ ? હિસકે ઉત્તર મેં પ્રમુ ગૌતમ સે કહતે હૈં કિ (ગોયમા) હે ગૌતમ ! (આઝમવજ્જામ્મો સત્ત વિ વંધંતિ) આયુ કો છોડકર વાકી કી સાતોં હી કર્મપ્રકૃતિયોં કો મત્યજ્ઞાની આદિ જીવ વાંધતે હૈં । (આઝમં મયણાણ) આયુકર્મ કા વંધ

છે કે ન્યારે કેવળજ્ઞાની છવ તેરમાં ગુણસ્થાને રહે છે, ત્યારે તો તે શાતાવેદનીય કર્મને વંધ કરે જ છે, પણ ન્યારે તે ચૌદમાં ગુણસ્થાને વિરાજમાન થઈ જાય છે અથવા તો સિદ્ધપદને પ્રાપ્ત કરી લે છે, ત્યારે તે વેદનીય કર્મ વાંધતો નથી.

હવે અજ્ઞાનવિપયકવંધદ્વારની અપેક્ષાએ ગૌતમસ્વામી મહાવીર પ્રભુને એવો પ્રશ્ન પૂછે: છે કે (નાનાવરણિજ્ઞં ણં મંતે ! કમ્મં કિં મહ્ અન્નાણી વંધહ્, સુય અન્નાણી વંધહ્, વિભંગ અન્નાણી વંધહ્ ?) હે મદન્ત ! અજ્ઞાનીની અપેક્ષાએ વિચાર કરવામાં આવે તો કયો અજ્ઞાની છવ જ્ઞાનાવરણીય કર્મ વાંધે છે ? શુ મતિ અજ્ઞાની વાંધે છે ? કે શ્રુત અજ્ઞાની વાંધે છે ? કે વિભંગ અજ્ઞાની વાંધે છે ? (જેનું અવધિજ્ઞાન મિધ્યાત્વના સંબંધથી વિપરીત બનેલું હોય એવા છવને વિભંગ અજ્ઞાની કહે છે.)

अथ योगनिपयकबंधद्वारमाश्रित्य गौतमः पृच्छति—'णाणावरणिज्जं णं भंते कम्मं किं मणजोगी बंधइ? वयजोगी बंधइ? कायजोगी बंधइ? अयोगी बंधइ? हे भदन्त ! ज्ञानावरणीयं कर्म किम् मनोयोगी बध्नाति ? किं वचोयोगी बध्नाति ? किं काय-योगी बध्नाति ? किं वा अयोगी बध्नाति ? । भगवानाह—' गोयमा ! हेट्टिल्ला तिन्नि भयणाए ' हे गौतम ! अथस्तनाः आद्याद्ययः मनोवचःकाययोगिनः भजनया कदाचिद् बध्नन्ति, कदाचिन्न बध्नन्ति, ये तावत् मनोवचःकाय-

वे अज्ञानी जीव भजना से करते हैं—अर्थात् आयुर्कर्म के बंधकाल में आयु का बंध करते हैं और भिन्न कालमें उसका बंध नहीं करते हैं।

अब योगनिपयकबंधद्वार को आश्रित करके गौतम प्रभु से पूछते हैं कि—(णाणावरणिज्जं णं भंते ! कम्मं किं मणजोगी बंधइ? वयजोगी बंधइ? कायजोगी बंधइ? अयोगी बंधइ?) हे भदन्त ! ज्ञानावरणीय कर्म का बंध योगद्वार की अपेक्षा विचार करने पर कौनसा जीव करता है—क्या मनोयोग वाला जीव ज्ञानावरणीय कर्म का बंध करता है? या वचनयोगवाला जीव ज्ञानावरणीय कर्म का बंध करता है? या जो कायजोगवाला जीव है वह ज्ञानावरणीय कर्म का बंध करता है? या जिसके इन तीनों योगों में से एक भी योग नहीं है ऐसा जीव ज्ञानावरणीय कर्म का बंध करता है? इसके उत्तर में प्रभु गौतम से कहते हैं कि—(गोयमा) हे गौतम ! (हेट्टिल्ला तिन्नि भयणाए) आदि के तीनों

तेना ज्वाण आपता भडावीर प्रभु कडे छे—(गोयमा !) हे गौतम !

(आत्तगवज्जाओ सत्त वि बंधति) भति अज्ञानी आदि एवो आयुर्कर्म सिवायना साते क्कोनेो बंध भांधे छे. परंतु (आत्तं भयणाए) अज्ञानी एवो आयुर्कर्मना बंध विकल्पे करे छे. तेओ आयुर्कर्मना बंधकाणे आयुनेो बंध करे छे. अधकाणे तेओ तेना बंध करता नथी.

इवे योगनिपयकबंधद्वारनी अपेक्षाओ गौतमस्वामी भडावीरप्रभुने ओवो प्रश्न पूछे छे के—(णाणावरणिज्जं णं भंते ! कम्मं किं मणजोगी बंधइ ? वयजोगी बंधइ ? कायजोगी बंधइ ? अयोगी बंधइ ?) योगद्वारनी दृष्टिओ विचार करता कया योगवाणे एव ज्ञानावरणीय कर्म भांधे छे ? शु मनोयोगवाणे एव ज्ञानावरणीय कर्म भांधे छे ? के वचनयोगवाणे एव ज्ञानावरणीय कर्म भांधे छे ? के काययोगवाणे एव भांधे छे ? के अयोगी एव (आ त्रहे योगभांधी ओक पणु योग न होय ओवो एव ज्ञानावरणीय कर्म भांधे छे ?

तेना ज्वाण आपता भडावीर प्रभु कडे छे—(गोयमा !) हे गौतम ! (हेट्टिल्ला तिन्नि भयणाए) पडेला त्रभु योगवाणा एवो—मनयोगी, वचन-

યોગિનઃ ઉપરાન્તમોદગુણસ્થાનઠ્ઠર્તિનઃ ધોગમોદગુણસ્થાનઠ્ઠર્તિનઃ સયોગિ-
કેવલિનથ વર્તન્તે તે જ્ઞાનાવરણં ન વધન્તિ, તદન્યે તુ વધન્ત્યેવ, ધ્વો ' ભજ-
નયા ' ઇત્યુક્તમ્ । 'અજોગી ન વંધઈ' 'અયોગી અયોગિકેવલી, સિદ્ધથ ન વધ્નાતિ,
' ઇવં વેયણિજ્જવજ્જાઓ સત્તવિ ' ઇવં જ્ઞાનાવરણવદેવ વેદનીયવર્જાઃ સત્તાપિ
કર્મપ્રકૃતયો વેદિતવ્યાઃ, તથાદિ--વેદનીયવર્જાનિ ધર્શનાવરણીયાદિ કર્માણિ
મનોવચઃ કાયયોગિનઃ કદાચિદ્ વધન્તિ, કદાચિન્ન વધન્તિ, અયોગી ન વધ્ના-

હી યોગવાલે-મન વચન ઓર કાય યોગવાલે જીવ જ્ઞાનાવરણીય કર્મ
કા વંધ ભજના સે કરતે હૈ-અર્થાત્ કદાચિત્ વે કરતે ધી હૈ ઓર
કદાચિત્ વે નહીં ધી કરતે હૈ । તાત્પર્યં ઇસકા ઇસા હૈ કિ જો મન,
વચન, કાય યોગવાલે જીવ જયતક ગ્યારહવે, ચારહવે ઓર તેરહવે ગુણ-
સ્થાન મેં વર્તમાન રહતે હૈ વે વહાં પર જ્ઞાનાવરણીય કર્મ કા વંધ નહીં
કરતે હૈ । ઇન ગુણસ્થાનોં સે ભિન્ન નીચે કે ગુણસ્થાનોં મેં જો જીવ રહતે
હૈ વે અવશ્ય ૨ હી જ્ઞાનાવરણીય કર્મ કા વંધ કરતે હૈ । ઇસી યાત
કો સૂચિત કરને કે લિયે સૂત્રકારને યહાં ભજના પદ કા પ્રયોગ કિયા
હૈ । અયોગિ કેવલી ઓર સિદ્ધ જીવ ઇન યોગોં સે રહિત હો જાને કે
કારણ જ્ઞાનાવરણીય કર્મ કા વંધ નહીં કરતે હૈ । (ઇવં વેયણિજ્જવજ્જા-
ઓ સત્ત વિ) જ્ઞાનાવરણીય કર્મ કી તરહ સે હી વેદનીયવર્જ સાર્તોં હી
કર્મપ્રકૃતિયોં કે વિષય મેં ધી જાનના ચાહિયે-તથા ચ-વેદનીય કર્મ
કો છોડકર ધર્શનાવરણીય આદિ કર્મપ્રકૃતિયોં કા વંધ યે મન, વચન,
કાયયોગવાલે જીવ કધી કરતે હૈ ઓર કધી નહીં ધી કરતે હૈ । તથા

યોગી અને કાયયોગી જીવો જ્ઞાનાવરણીય કર્મનો ંધ વિકલ્પે કરે છે એટલે
કે ક્યારેક તેઓ તેનો ંધ કરે છે અને ક્યારેક નથી કરતા. આ કથનનો
ભાવ નીચે પ્રમાણે છે-મન, વચન અને કાયયોગવાણાં જીવો ત્યાં સુધી
અગિયારમાં, ધારમાં અને તેરમાં ગુણસ્થાનોમાં રહેલા હોય છે, ત્યાં સુધી તેઓ
જ્ઞાનાવરણીય કર્મ ંધતા નથી, પણ તે ગુણસ્થાનો કરતાં નીચિના ગુણસ્થાનોમાં
રહેલા જ્ઞાનાવરણીય કર્મ અવશ્ય ંધે છે. એ વાત પ્રકટ કરવાને માટે
" વિકલ્પે ંધે છે, " એવું કથન કર્યું છે. અયોગી કેવલી અને સિદ્ધ જીવ
આ યોગીથી રહિત થઈ જવાને કારણે જ્ઞાનાવરણીય કર્મ ંધતા નથી.

(ઇવં વેયણિજ્જવજ્જાઓ સત્ત વિ) વેદનીય કર્મ સિવાયના સાતે કર્મના
બંધ વિષેનું કથન જ્ઞાનાવરણીય કર્મના કથન પ્રમાણે જ સમજવું. એટલે કે
મન, વચન અને કાયયોગવાણા જીવો વેદનીય કર્મ સિવાયના સાતે કર્મોના
બંધ ક્યારેક કરે છે અને ક્યારેક કરતા નથી, તથા અયોગી જીવો આ સાતે

तिनी भावः । 'वेपणिज्जं हेट्टिल्ला वंधंति' वेदनीयं कर्म अधस्तनाः आद्यात्तयो मनोवचः काययोगिनः वध्नन्ति, सयोगानां वेदनीयवन्धकत्वात्, 'अजोगी न वंधइ' अयोगी वेदनीयं कर्म न वध्नाति, अयोगिनः सर्वकर्मवन्धकत्वात् ।
अथ उपयोगविषयकबंधद्वारमाश्रित्य गौतमः पृच्छति—'णाणावरणिज्जं णं भंते कम्मं किं सागारोवउत्ते वंधइ' हे भगवन् । ज्ञानावरणीयं कर्म किम् साकारोपयुक्तो वध्नाति ?
'अणागारोवउत्ते वंधइ ?' अनाकारोपयुक्तो वा वध्नाति ? भगवानाह—'गोयमा ।

अयोगी जीव इन कर्मप्रकृतियों का बंध नहीं करता है (वेपणिज्जं हेट्टिल्ला वंधंति) वेदनीय कर्म का बंध तीनों योग वाले करते हैं । क्यों कि तीनों योगवालों को वेदनीय कर्म का बंधक माना गया है । (अजोगी न वंधइ) अयोगी जीव वेदनीय कर्म का बंध नहीं करता है । क्यों कि अयोगी जीव के किसी भी कर्म का बंध नहीं होता है ।

अब सूत्रकार उपयोग विषयकबंधद्वारको आश्रित करके ज्ञानावरणीय आदिकर्मोंके बांधनेके विषयमें कथन करते हैं—इसमें गौतमप्रभुसे ऐसा पूछते हैं कि—(णाणावरणिज्जं णं भंते ! कम्मं किं सागारोवउत्ते वंधइ ? अणागारोवउत्ते वंधइ ?) हे भदन्त ! ज्ञानावरणीय कर्म का बंध कौन से उपयोग वाला जीव करता है ?—क्या जो साकारोपयोग से युक्त होता है अर्थात् ज्ञानोपयोगवाला होता है—वह करता है ? या अनाकारोपयोगवाला होता है—अर्थात् दर्शनोपयोगवाला होता है—वह करता है ? इसके उत्तर में प्रभु गौतम से कहते हैं कि—(गोयमा) हे गौतम !

कर्मप्रकृतियोना अंध कही पणु करता नथी. (वेपणिज्जं हेट्टिल्ला वंधंति) वेदनीय कर्मना अंध त्रणे योगवाणा एवे करे छे, कारणु के त्रणे योगवाणा एवेने वेदनीय कर्मना अंधक मानवामां आवेला छे, (अजोगी न वंधइ) पणु अयोगी एव वेदनीय कर्मना अंध करतो नथी, कारणु के अयोगी एवने केअ पणु कर्मना अंध थतो नथी.

इये गौतम स्वामी उपयोग द्वारने अनुलक्षीने ज्ञानावरणीय आदि कर्मना अंधना विषयमां भडावीर प्रलुने आ प्रभाणु प्रश्न पूछे छे—(णाणावरणिज्जं णं भंते ! कम्मं किं सागारोवउत्ते वंधइ ? अणागारोवउत्ते वंधइ ?) छे भदन्त ! ज्ञानावरणीय कर्मना अंध क्या प्रकारना उपयोगवाणो एव करे छे ? शुं साकार उपयोगवाणो एव (ज्ञानोपयोगवाणो एव दर्शनोपयोगवाणो एव) तेना अंध करे छे ?

अदृशुवि भयणाए' हे गौतम ! अष्टस्यपि कर्मप्रकृतिषु भजनया बन्धो भवति, तथाहि—अष्टस्यपि कर्मप्रकृतीः ज्ञानावरणीयादिप्रकृतीः, साकारोपयुक्तः अनाकारोपयुक्तो वा भजनया—कदाचिद् वध्नाति, कदाचिन्न वध्नाति, साकारऽनाकारौ सयोगानाम् अयोगानां च उपयोगी स्याताम्, तत्रोपयोगश्चयेऽपि सयोगा ज्ञानावरणादिकर्मप्रकृतीः यथायथं वध्नन्ति, अयोगास्तु न वध्नन्ति, अतो 'भजनया' इत्युक्तम् ।

अथ आहारविषयकबंधद्वारमाश्रित्य गौतमः पृच्छति—'जाणावरणिज्जं णं भंते । कम्मं किं आहारए बंधइ ?' हे भदन्त ! ज्ञानावरणीयं कर्म किम् आहारको वध्नाति ? 'अणाहारए बंधइ' किम् अनाहारको वध्नाति ? मगवानाह—'गोयमा ! दोवि भयणाए' हे गौतम ! द्वौ अपि आहारकः, अनाहारकश्च भज-

(अदृशु वि भयणाए) आठों भी कर्मप्रकृतियों के विषय में यहाँ भजना से बंध करना कहा गया है—इस विषय में खुलाशा इस प्रकार से है—सयोग और अयोग इन दोनों के साकार और अनाकार दोनों प्रकार का उपयोग होता है। सयोग अर्थात् योगसहित जीव इन दोनों भी उपयोगों में ज्ञानावरणीय आदि कर्मप्रकृतियों का यथायोग्य बंध करते हैं। और जो योग से रहित जीव हैं वे इन ज्ञानावरणीय आदि कर्मप्रकृतियों का बंध नहीं करते हैं।

अब आहारविषयकबंधकद्वार को आश्रित करके गौतमप्रभुसे पूछते हैं कि (जाणावरणिज्जं णं भंते ! कम्मं किं आहारए बंधइ ?) हे भदन्त ! ज्ञानावरणीय कर्म क्या आहारक जीव बांधते हैं या (अणाहारए बंधइ) अनाहारक जीव बांधते हैं ? इसका उत्तर देते हुए प्रभु गौतम से कहते

उत्तर—(गोयमा ! अदृशु वि भयणाए) हे गौतम ! ते भन्ने प्रकारना लुवे आठे कर्म्मोना बंध विकल्पे करे छे—क्यारैक करे छे अने क्यारैक करता नथी आ विषयमां नीचे प्रभुले स्पष्टीकरलु करी शक्य—सयोग अने अयोग अने भन्नेना साकार अने अनाकार अने भन्ने प्रकारना उपयोग होय छे, संयोग लुव अटले के योगयुक्त लुव अने भन्ने उपयोगेमां ज्ञानावरणीय आदि आठे कर्मप्रकृतियोना यथायोग्य बंध करे छे, यलु लु लुवे योग्यी रहित होय छे, तेओ ज्ञानावरणीय आदि कर्मप्रकृतियोना बंध करता नथी.

इसे आहारक द्वारने अनुलक्षीने गौतम स्वामी महावीर प्रभुने ओवा प्रश्न पूछे छे के—(जाणावरणिज्जं णं भंते ! कम्मं किं आहारए बंधइ ? अणाहारए बंधइ ?) हे भदन्त ! ज्ञानावरणीय कर्म शु' आहारक लुव बांधे छे ? के अनाहारक लुव बांधे छे ?

નપા કદાચિદ્ વધ્નીતઃ, કદાચિન્ન વધ્નીતઃ, આહારકો વીતરાગોઽપિ ભવતિ, નાસી જ્ઞાનાવરણં વધ્નાતિ, સરાગસ્તુ આહારકો વધ્નાતિ, इति भजनया आहारको वध्नाति । तथा अनाहारकः समुद्घातगतकेवली, विग्रहगत्याऽऽपन्नश्च भवेत्, तत्र समुद्घातगतकेवली अनाहारको न वध्नाति, विग्रहगत्यापन्नस्तु अनाहारको वध्नाति, इति भजनया अनाहारको वध्नाति, । ' एवं वेद्यजिज्जाऽऽउगवज्जाणं छण्हं ' एवं જ્ઞાનાવરણવદેવ વેદનીયાયુષ્કવર્જિતાં પળ્લામપિ કર્મપ્રકૃતીનામ્ આલાપકાઃ સ્વયમૂહનીયાઃ, તયાદિ-વેદનીયાયુષ્કવર્જિતાનિ દર્શનાવરણાદિકર્મણ્યપિ

हैं कि (गोयमा) हे गौतम ! (दो वि भयणाए) आहारक और अनाहारक जीव भजना से ज्ञानावरणीय कर्म का बंध करते हैं । यदि आहारक जीव वीतराग है तो वह ज्ञानावरणीय कर्म का बंध नहीं करता है, और यदि वह सराग है तो अवश्य ही ज्ञानावरणीय कर्म का बंध करता है । इसलिये भजना से आहारक जीव ज्ञानावरणीय कर्म का बंध करता है ऐसा कहा है । जिस समय केवली भगवान् समुद्घात करते हैं उस समय वे, तथा विग्रहगति में रहा हुआ जीव ये अनाहारक होते हैं । अनाहारक समुद्घातगत केवली ज्ञानावरणकर्म का बंध नहीं करता है और विग्रहगतिवाला अनाहारक जीव ज्ञानावरणकर्म का बंध करता है-इसलिये भजना से अनाहारक जीव ज्ञानावरण कर्म का बंध करता है ऐसा कहा है । (एवं वेद्यजिज्जा आउगवज्जाणं छण्हं) ज्ञानावरणकर्म की तरह से ही वेदनीय और आयुष्क कर्म को छोड़कर

તેને ઉત્તર આપતા મહાવીર પ્રભુ કહે છે-(ગોયમા ! દો વિ ભયનાએ) આહારક અને અનાહારક જીવ જ્ઞાનાવરણીય કર્મનો બંધ વિકલ્પે કરે છે એટલે કે ક્યારેક કરે છે અને ક્યારેક કરતા નથી. જો આહારક જીવ વીતરાગ હોય તો તે જ્ઞાનાવરણીય કર્મનો બંધ કરતો નથી, પણ જો તે સરાગ હોય તો જ્ઞાનાવરણીય કર્મનો બંધ અવશ્ય કરે છે. તેથી જ એવું કહ્યું છે કે " આહારક જીવ વિકલ્પે જ્ઞાનાવરણીય કર્મનો બંધ કરે છે. " જે અમરે કેવલી ભગવાન સમુદ્ઘાત કરે છે ત્યારે તેઓ અનાહારક હોય છે, અને વિગ્રહ ગતિમાં રહેલા જીવ અનાહારક હોય છે. અનાહારક સમુદ્ઘાતગત કેવલી ભગવાન જ્ઞાનાવરણીય કર્મનો બંધ કરતા નથી, પણ વિગ્રહ ગતિમાં જો અનાહારક જીવ જ્ઞાનાવરણીય કર્મનો બંધ કરે છે. તેથી જ એવું કહ્યું છે કે " અનાહારક વિકલ્પે જ્ઞાનાવરણીય કર્મનો બંધ કરે છે. (एवं वेद्यजिज्जा आउगवज्जाणं छण्हं) આહારક અને અનાહારક જીવોના વેદનીય અને આયુ-

अथ सूक्ष्मविषयकबंधद्वारमाश्रित्य गौतमः पृच्छति—‘णाणावरणिज्जं णं भंते कम्मं किं सुहुमे, वंधइ वायरे वंधइ ?’ हे भदन्त ! ज्ञानावरणीयं कर्म किं सूक्ष्मः वध्नाति वादरो वा वध्नाति ? ‘णोसुद्धम-णोवायरे वंधइ ?’ नोसूद्धम-नोवादरो वा किं वध्नाति ? भगवानाह—‘गोयमा ! सुहुमे वंधइ’ हे गौतम ! सूक्ष्मो वध्नाति, ‘वायरे भयणाए’ वादरो भजनया कदाचिद् वध्नाति, कदाचिन्त वध्नाति, वीतरागवादराणां ज्ञानावरणावन्धकत्वात्, सरागवादराणां च तद्वन्ध-

हारक जीव-समुद्धानगत केवली और विग्रहगति वाछे जीव-आयुर्कर्म का बंध नहीं करते हैं। क्यों कि इस अवस्था में वे आयु कर्म के अग्रन्धक माने गये हैं।

अथ सूक्ष्मविषयकबंधद्वारका आश्रित करके गौतमस्वामी प्रभुसे पूछते हैं कि—(णाणावरणिज्जं णं भंते ! कम्मं किं सुहुमे वंधइ, वायरे वंधइ ?) हे भदन्त ! सूक्ष्मद्वार की अपेक्षा विचार करनेपर कौनसा जीव ज्ञानावरणीय कर्म का बंध करता है ? क्या जो सूक्ष्मनामकर्म के उदयवाला जीव है वह ज्ञानावरणीय कर्म का बंध करता है ? या जो वादर नाम कर्म के उदयवाला जीव है, वह ज्ञानावरणीय कर्म का बंध करता है ? (णो सुद्धम णो वायरे वंधइ) जो जीव न सूक्ष्म है और न वादर है वह ज्ञानावरणीय कर्म का बंध करता है ? इसके उत्तर में प्रभु गौतम से कहते हैं (गोयमा) हे गौतम ! (सुहुमे वंधइ) सूक्ष्म जीव ज्ञानावरणीय कर्मका बंध करता है (वायरे भयणाए) वादर जीव भजना से

हारण णो वंधइ) अनाहारक एव ओटले के समुद्धानगत केवली अने विग्रह गतिवाणा एवे। आयुर्कर्मने अंध करता नथी, कारण के आ अवस्थाभां तेभने आयुर्कर्मना अग्रन्धक मानवामां आवेला छे.

इवे गौतम स्वामी सूक्ष्मद्वारने अनुलक्षीने भक्षानीर प्रभुने ओवे। प्रश्न पूछे छे के (णाणावरणिज्जं णं भंते ! कम्मं किं सुहुमे वंधइ ?) हे भदन्त ! सूक्ष्मद्वारनी अपेक्षाओ विचार करता कथे एव ज्ञानावरणीय कर्म आंधे छे ? शुं सूक्ष्मनामकर्मना उदयवाणे एव ज्ञानावरणीय कर्म आंधे छे ? के “वायरे वंधइ ?) वादर (स्थूण) नामकर्मना उदयवाणे एव ज्ञानावरणीय कर्म आंधे छे ? अथवा (णो सुद्धम णो वायरे वंधइ) ओ एव न सूक्ष्म अने न वादर होय छे, तेओ ज्ञानावरणीय कर्म आंधे छे ?

उत्तर—(गोयमा !) हे गौतम ! (सुहुमे वंधइ) सूक्ष्म एव ज्ञानावरणीय कर्मने अंध करे छे, (वायरे भयणाए) वादर (स्थूण) एव ते कर्मने

આહારકઃ, અનાહારકઃ કદાચિદ્ વધ્નાતિ, કદાનિન્ન વધ્નાતિ 'વેયગિજ્જં આહારણ વંધઈ' વેદનીયં કર્મ આહારકો વધ્નાતિ, અયોગિર્જાનાં સર્વેષાં વેદનીયકર્મ-વન્ધકત્વાત્, 'અણાહારણ ભયણાણ' અનાહારકો મજનયા વિગ્રહગત્યાપન્નઃ, સમુદ્ઘાતગતકેવલી ચ વેદનીયં વધ્નાતિ, અયોગી, સિદ્ધશ્ચ ન વધ્નાતીતિ માયઃ । 'આઉણ આહારણ ભયણાણ' આયુષ્કં કર્મ આહારકો મજનયા, આયુર્વન્ધકાલે ણવાયુષ્કવન્ધકત્વાત્, તદ્મિન્નકાલે ચ તદ્વન્ધકત્વાત્, 'અણાહારણ ણ વંધઈ' અનાહારકો ન વધ્નાતિ, સમુદ્ઘાતગતકેવલિનાં વિગ્રહગતિગતાનાં ચ આયુષ્કા-વન્ધકત્વાત્ ।

દર્શનાવરણ આદિ છ કર્મપ્રકૃતિયોં કે આલાપક-સૂત્ર-અપને આપ વિચાર લેના ચાહિયે જૈસે-વેદનીય ઓર આયુષ્ક કો છોડકર દર્શનાવરણ આદિ કર્મોં કો ઓ આહારક જીવ ઓર અનાહારક જીવ કદાચિત્ વાંધતા હૈ ઓર કદાચિત્ નહીં વાંધતા હૈ । (વેયગિજ્જં આહારણ વંધઈ) વેદનીય કર્મ કો આહારક જીવ વાંધતા હૈ । ક્યોં કિ અયોગી કો છોડકર સવ હી જીવ વેદનીય કર્મકે વંધક માને ગયે હૈ । (અણાહારણ ભયણાણ) અનાહારક જીવ મજના સે વેદનીય કર્મ કા વંધ કરતા હૈ-અર્થાત્ વિગ્રહગતિવાલા અનાહારક જીવ ઓર સમુદ્ઘાતગત કેવલી તો વેદનીય કર્મ કા વંધ કરતે હૈ ઓર અયોગી જીવ તથા સિદ્ધપરમાત્મા યે વેદનીય કર્મ કા વંધ નહીં કરતે હૈ । (આઉણ આહારણ ભયણાણ) આહારક જીવ આયુષ્કર્મ કા વંધ ઉસકે વંધ હોને કે સમય મેં હી કરતા હૈ ઓર મિન્ન સમય મેં નહીં કરતા હૈ । (અણાહારણ ણ વંધઈ) અના-

કર્મ સિવાયના છ કર્મખેાનું કથન જ્ઞાનાવરણીય કર્મના કથન પ્રમાણે જ સમજવું. એટલે કે આયુષ્કર્મ સિવાયના છ કર્મોના બંધ આહારક અને અનાહારક જીવો વિકલ્પે બાંધે છે-બાંધે છે પણ ખરાં અને નથી પણ બાંધતા. (વેયગિજ્જં આહારણ વંધઈ) વેદનીય કર્મ આહારક જીવ બાંધે છે. આનું કારણ એ છે કે અયોગી સિવાયના સઘણા જીવોને વેદનીય કર્મના બંધક માનવામાં આવેલા છે. (અણાહારણ ભયણાણ) અનાહારક જીવ વેદનીય કર્મ વિકલ્પે બાંધે છે-આ કથનનો ભાવ નીચે પ્રમાણે છે-

વિગ્રહ ગતિવાળો અનાહારક જીવ અને સમુદ્ઘાતગત કેવલી તો વેદનીય કર્મનો બંધ કરે છે, પરંતુ અયોગી જીવ તથા સિદ્ધ પરમાત્મા વેદનીય કર્મનો બંધ કરતા નથી. (આઉણ આહારણ ભયણાણ) આહારક જીવ આયુષ્કર્મના બંધ વિકલ્પે કરે છે-એટલે કે આયુષ્કર્મના બંધકાળે તે આયુષ્કર્મનો બંધ કરે છે, પણ અબંધકાળે તેઓ આયુષ્કર્મનો બંધ કરતા નથી. (અણ-

अथ सूक्ष्मविषयकबंधद्वारमाश्रित्य गौतमः पृच्छति—‘णाणावरणिज्जं णं भंते कम्मं किं सुहुमे, बंधइ वायरे बंधइ ?’ हे भदन्त ! ज्ञानावरणीयं कर्म किं सूक्ष्मः वध्नाति वादरो वा वध्नाति ? ‘णोसुहुम-णोवायरे बंधइ ?’ नोसूक्ष्म-नोवादरो वा किं वध्नाति ? भगवानाह—‘गोयमा ! सुहुमे बंधइ’ हे गौतम ! सूक्ष्मो वध्नाति, ‘वायरे भयणाए’ वादरो भजनया कदाचिद् वध्नाति, कदाचिन्त वध्नाति, वीतरागवादराणां ज्ञानावरणावन्धकत्वात्, सरागवादराणां च तद्वन्ध-

हारक जीव-समुद्धानगत केवली और विग्रहगति वाले जीव-आयुर्कर्म का बंध नहीं करते हैं। क्यों कि इस अवस्था में वे आयु कर्म के अवन्धक माने गये हैं।

अब सूक्ष्मविषयकबंधद्वारका आश्रित करके गौतमस्वामी प्रभुसे पूछते हैं कि—(णाणावरणिज्जं णं भंते ! कम्मं किं सुहुमे बंधइ, वायरे बंधइ ?) हे भदन्त ! सूक्ष्मद्वार की अपेक्षा विचार करनेपर कौनसा जीव ज्ञानावरणीय कर्म का बंध करता है ? क्या जो सूक्ष्मनामकर्म के उदयवाला जीव है वह ज्ञानावरणीय कर्म का बंध करता है ? या जो वादर नाम कर्म के उदयवाला जीव है, वह ज्ञानावरणीय कर्म का बंध करता है ? (णो सुहुम णो वायरे बंधइ) जो जीव न सूक्ष्म है और न वादर है वह ज्ञानावरणीय कर्म का बंध करता है ? इसके उत्तर में प्रभु गौतम से कहते हैं (गोयमा) हे गौतम ! (सुहुमे बंधइ) सूक्ष्म जीव ज्ञानावरणीय कर्मका बंध करता है (वायरे भयणाए) वादर जीव भजना से

हारणो बंधइ) अनाहारक एव ज्येष्ठे के समुद्धानगत केवली अने विग्रह गतिवाला एवो आयुर्कर्मना बंध करता नहीं, कारण के आ अवस्थाभां तेभने आयुर्कर्मना अवन्धक मानवामां आवेला छे.

इवे गौतम स्वामी सूक्ष्मद्वारने अनुलक्षिने महावीर प्रभुने ज्येष्ठे प्रश्न पूछे छे के (णाणावरणिज्जं णं भंते ! कम्मं किं सुहुमे बंधइ ?) हे भदन्त ! सूक्ष्मद्वारनी अपेक्षाजे विचार करता क्यो एव ज्ञानावरणीय कर्म भांधे छे ? शुं सूक्ष्मनामकर्मना उदयवाणे एव ज्ञानावरणीय कर्म भांधे छे ? के “वायरे बंधइ ?” वादर (स्थूण) नामकर्मना उदयवाणे एव ज्ञानावरणीय कर्म भांधे छे ? अथवा (णो सुहुम णो वायरे बंधइ) ने एव न सूक्ष्म अने न वादर होय छे, तेजो ज्ञानावरणीय कर्म भांधे छे ?

उत्तर—(गोयमा !) हे गौतम ! (सुहुमे बंधइ) सूक्ष्म एव ज्ञानावरणीय कर्मना बंध करे छे, (वायरे भयणाए) वादर (स्थूण) एव ते कर्मना

फत्वात्, अतो 'भजनया' इत्युक्तम्, किन्तु 'नोगुहम-नोवायरे न बंध' नोसूक्ष्म-नोवादरो हि सिद्धो न बध्नाति, सिद्धस्य बन्धकत्वाभावात्, 'एवं आउगवज्जाओ सत्तवि' एवं ज्ञानावरणवदेव आयुष्कवर्जाः सत्तापि कर्ममकृतयो वेदितव्याः, तथाहि आयुष्कवर्जितानि दर्शनावरणादिकर्माण्यपि सूक्ष्मो बध्नाति, वादरो भजनया कदाचिद् बध्नाति, कदाचिन्न बध्नाति, नोसूक्ष्म-नोवाद्रस्तु सिद्धो न बध्नात्वेवेत्यर्थः । 'आउए सुहुमे, वायरे भयणाए' आयुष्कं सूक्ष्मः वादरथ भजनया कदाचिद् बध्नाति, कदाचिन्न बध्नाति, आयुर्वन्धकाले आयुर्व-

ज्ञानावरणीय कर्म का बंध करता है अर्थात् जो वादर जीव वीतराग है वे तो ज्ञानावरणीय कर्म का बंध नहीं करते हैं—और जो वादर जीव सराग हैं वे ज्ञानावरणीय कर्म का बंध करते हैं। (नो सुहुम नो वायरे न बंधइ) सिद्ध जीव जो कि न सूक्ष्म हैं और न वादर हैं, वे ज्ञानावरणीय कर्म का बंध नहीं करते हैं। क्यों कि सिद्ध जीव किसी भी कर्म का बंध करने वाले नहीं होते हैं। (एवं आउगवज्जाओ सत्त वि) ज्ञानावरण की तरह से ही आयुष्कवर्ज सात कर्मों को भी जानना चाहिये। तथा च—आयुष्कवर्ज दर्शनावरण आदि कर्मों को भी सूक्ष्म जीव बांधते हैं। वादर इन्हें भजना से बांधता है। और जो सूक्ष्म वादर नहीं हैं ऐसे सिद्ध जीव इन्हें नहीं बांधते हैं। (आउए सुहुमे, वायरे भयणाए) आयुष्कर्म को सूक्ष्म और वादर जीव भजना से बांधता है—अर्थात् आयुष्क बंधकाल में आयु का बंध करता है और भिन्नकाल में—

बंध करे छे पक्ष अरे: अने नथी पक्ष करता. वीतराग आदर एव ते कर्मने बंध करता नथी, पक्ष सराग आदर एव तेने बंध करे छे. (नो सुहुम, नो वायरे न बंधइ) सिद्ध एव के नो सूक्ष्म पक्ष नथी अने आदर पक्ष नथी, ते ज्ञानावरणीय कर्मने बंध करना नथी, कारण के सिद्ध एव कौछ पक्ष कर्मने बंध करता नथी. (एवं आउगवज्जाओ सत्त वि) आ दारनी अपेक्षाओ आयुष्कर्म सिवायनी साते कर्मप्रकृतियोना बंधनुं कथनं ज्ञानावरणीय कर्मना कथन प्रमाणेन समञ्चु

अटले के आयुष्कर्म सिवायना दर्शनावरणीय आदि साते कर्मों पक्ष सूक्ष्म एवो बांधे छे, आदर एवो ते साते कर्मों विकल्पे बांधे छे, अने नो एवो सूक्ष्म के आदर नथी अने सिद्धगतिना एवो तेमने बंध करता नथी. (आउए सुहुमे वायरे भयणाए) आयुष्कर्मने बंध सूक्ष्म अने आदर एवो विकल्पे बांधे छे. अटले के तेओ आयुना बंधकाले आयुने बंध करे छे,

न्यक्तत्वात्, तदभिनकाले तदवन्धकत्वात् । 'णोसुहुम-णोवायरे न वंधइ' नोसुहुम-नोवायरे हि सिद्धो जीवो न आयुष्कं कर्म वध्नाति । अथ चरमद्वार-माश्रित्य गौतमः पृच्छति—'पाणावरणिज्जं णं भंते ! कम्मं किं चरिमे वंधइ, अचरिमे वंधइ ?' ज्ञानावरणीयं खलु कर्म किं चरमो वध्नाति ? किं वा अचरमो वध्नाति ? भगवानाह—'गोयमा ! अट्ट वि भयणाए' हे गौतम ! चरमः, अचरमश्च अद्यापि कर्मप्रकृतीः भजनया कदाचिद् वध्नाति, कदाचिन्न वध्नाति, अत्रेदं बोध्यम्—यस्य चरमो भवो भविष्यति सः चरमः, यस्य तु कदापि चरमो भवो न

अबंधकाल में—आयु का बंध नहीं करता है । (णो सुहुम णो वायरे न वंधइ) सिद्ध जीव भी आयु का बंध नहीं करते हैं ।

अथ चरमबंधद्वार को आश्रित करके गौतमस्वामी प्रभुसे पूछते हैं कि पाणावरणिज्जं णं भंते ! कम्मं किं चरिमे वंधइ, अचरिमे वंधइ) हे भदन्त ! जब चरमद्वार की अपेक्षा से ज्ञानावरणीय आदि कर्मों के बांधने का विचार किया जाता है तो कौन सा जीव ज्ञानावरणीय कर्म का बंध करता है ? क्या जो चरम जीव है वह ज्ञानावरणीय कर्म का बंध करता है ? या जो अचरम जीव है वह ज्ञानावरणीय कर्म का बंध करता है ? भगवान् इसका उत्तर देते हुए गौतम से कहते हैं कि (गोयमा) हे गौतम ! (अट्टवि भयणाए) चाहे चरम जीव हो—चाहे अचरम जीव हो ये दोनों ही भजना से आठों भी कर्मप्रकृतियों का बंध करते हैं । जिस जीव का अन्तिम भव होगा वह चरम जीव है और जिसका कभी भी अन्तिम-

पणु अणंधकाले आयुनो णंध करता नथी (णोसुहुम णोवायरे न वंधइ) सिद्ध एव पणु आयुनो णंध करता नथी.

डेव गौतम स्वामी चरमद्वारने अनुवक्षीने महावीर प्रभुने अने प्रश्न पूछे छे के (पाणावरणिज्जं णं भंते ! कम्मं किं चरिमे वंधइ, अचरिमे वंधइ ?) हे भदन्त ! चरमद्वारनी अपेक्षासे विचार करवासां आवे तो ज्ञानावरणीय आदि कर्मों को णंध करे छे ? शुं चरम एव (अन्तिम एव करीने भोक्षे ज्जानार एव) ज्ञानावरणीय कर्मनो णंध करे छे ? के अचरम एव ज्ञानावरणीय कर्मनो णंध करे छे ?

उत्तर—(गोयमा !) हे गौतम ! (अट्ट वि भयणाए) चरम एव अने अचरम एव आठे कर्मप्रकृतियेनो णंध करे छे—अएट्ठे के तेज्जे आठे कर्मप्रकृतियेनो णंध करे छे पणु असां अने, नथी पणु करता,

કત્વાત્, અતો ' ભજનયા ' इत्युक्तम्, किन्तु ' णोसुहृम-णोवायरे न बंध ' नोसૂક્ષ્મ-નોવાદરો हि सिद्धो न बध्नाति, सिद्धस्य बन्धकत्वाभावात्, ' एवं आउगवज्जाओ सत्तवि ' एवं જ્ઞાનાવરણવદેવ આયુષ્કવર્જાઃ સત્તાપિ કર્મપ્રકૃતયો વેદિતવ્યાઃ, तथाहि आयुष्कवर्जितानि दर्शनावरणादिकर्माण्यपि सूक्ष्मो बध्नाति, वादरो भजनया कदाचिद् बध्नाति, कदाचिन्न बध्नाति, नोसूक्ष्म-नोवादरस्तु सिद्धो न बध्नात्वेवेत्यर्थः । ' आउए सुहृमे, वायरे भयणाए ' आयुષ્કં सूक्ष्मः वादरश्च भजनया कदाचिद् बध्नाति, कदाचिन्न बध्नाति, आयुर्वन्धकाले आयुर्व-

જ્ઞાનાવરણીય કર્મ કા બંધ કરતા હૈ અર્થાત્ જો વાદર જીવ વીતરાગ હૈ વે તો જ્ઞાનાવરણીય કર્મ કા બંધ નહીં કરતે હૈ-ઔર જો વાદર જીવ સરાગ હૈ વે જ્ઞાનાવરણીય કર્મ કા બંધ કરતે હૈ । (ણો સુહૃમ ણો વાયરે ન બંધઈ) સિદ્ધ જીવ જો કિ ન સૂક્ષ્મ હૈ ઔર ન વાદર હૈ, વે જ્ઞાનાવરણીય કર્મ કા બંધ નહીં કરતે હૈ । કયોં કિ સિદ્ધ જીવ કિસી ણી કર્મ કાં બંધ કરને વાલે નહીં હોતે હૈ । (एवं आउगवज्जाओ सत्त वि) જ્ઞાનાવરણ કી તરહ સે હીં આયુષ્કવર્જ સાત કર્મોં કો ણી જાનનાં વાંહિયે । तथा च-आयुष्कवर्ज दर्शनावरण आदि कर्मों को भी सूक्ष्म जीव बांधते हैं । वादर इन्हें भजनां से बांधता है । और जो सूक्ष्म वादर नहीं हैं ऐसे सिद्ध जीव इन्हें नहीं बांधते हैं । (आउए सुहृमे, वायरे भयणाए) आयुर्कर्म को सूक्ष्म और वादर जीव भजना से बांधता है- अर्थात् आयुर्के बंधकाल में आयु का बंध करता है और भिन्नकाल में-

બંધ કરે છે પણ ખરે અને નથી પણ કરતો. વીતરાગ બાદર હવ તે કર્મનો બંધ કરતો નથી, પણ સરાગ બાદર હવ તેનો બંધ કરે છે. (ણો સુહૃમ, ણો વાયરે ન બંધઈ) સિદ્ધ હવ કે જે સૂક્ષ્મ પણ નથી અને બાદર પણ નથી, તે જ્ઞાનાવરણીય કર્મનો બંધ કરતા નથી, કારણ કે સિદ્ધ હવ કોઈ પણ કર્મનો બંધ કરતા નથી. (एवं आउगवज्जाओ सत्त वि) આ દ્વારની અપેક્ષાએ આયુકર્મ સિવાયની સાતે કર્મપ્રકૃતિઓના બંધનું કથન જ્ઞાનાવરણીય કર્મના કથન પ્રમાણેજ સમજવું

એટલે કે આયુકર્મ સિવાયના દર્શનાવરણીય આદિ સાતે કર્મો પણ સૂક્ષ્મ હવો બાંધે છે, બાદર હવો તે સાતે કર્મો વિકલ્પે બાંધે છે, અને જે હવો સૂક્ષ્મ કે બાદર નથી એવા સિદ્ધગતિના હવો તેમને બંધ કરતા નથી. (આઉએ સુહૃમે વાયરે ભયણાએ) આયુકર્મનો બંધ સૂક્ષ્મ અને બાદર હવો વિકલ્પે બાંધે છે. એટલે કે તેઓ આયુના બંધકાળે આયુનો બંધ કરે છે,

अप्या वा, बहुया वा, तुल्ला वा, विसेसाहिया वा ? गोयमा !
 सव्वत्थोवा जीवा पुरिसवेयगा, इत्थिवेयगा संखेज्जगुणा,
 अवेयगा अणंतगुणा, नपुंसगवेयगा अणंतगुणा, एएसिं
 सव्वेसिं पयाणं अप्प-बहुगाइं उच्चारयेव्वाइं, जाव-सव्व-
 त्थोवा जीवा अचरिमा, चरिमा अणंतगुणा, सेवं भंते !
 सेवं भंते ! त्ति ॥ सू० ६ ॥

॥ छट्टसए तइओ उद्देसो समत्तो ॥ ६-३ ॥

छाया—एतेषां खलु भदन्त ! जीवानां स्त्रीवेदकानाम्, पुरुषवेदकानाम्,
 नपुंसकवेदकानाम्, अवेदकानां च कतरे कतरेभ्यः अल्पा वा, बहुका वा तुल्या
 वा, विशेषाधिका वा ? गौतम ! सर्वज्ञोकाः जीवाः पुरुषवेदकाः, स्त्रीवेदकाः

वेदवाले जीवों के अल्प-बहुत्व का कथन

‘एएसिणं भंते ! इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(एएसिणं भंते ! जीवाणं इत्थीवेयगाणं, पुरिवेयगाणं,
 नपुंसगवेयगाणं, अवेयगाणं य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा, बहुया वा
 तुल्ला वा विसेसाहिया वा) हे भदन्त ! स्त्रीवेदक, पुरुषवेदक, नपुंसकवे-
 दक और अवेदक इन सभ में कौन २ जीव किन २ जीवों की अपेक्षा
 से अल्प हैं ? कौन २ जीव किन २ जीवों की अपेक्षा से बहुत हैं ?
 कौन २ जीव किन २ जीवों की अपेक्षा समान हैं ? और कौन २ जीव
 किन २ जीवों की अपेक्षा विशेषाधिक हैं ? (गोयमा ? सव्वत्थो

वेदवाणा एवोनी अल्पता अने बहुतातुं निरूपण—

“ ए एसि णं भंते ! ” इत्यादि—

सूत्रार्थ—(ए एसि णं भंते ! जीवाणं इत्थीवेयगाणं, पुरिसवेयगाणं, नपुं-
 सगवेयगाणं, अवेयगाणं य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा, बहुया वा, तुल्ला वा,
 विसेसाहिया वा ?) हे भदन्त ! स्त्री वेदक, पुरुष वेदक, नपुंसक वेदक अने
 अवेदक एवोभांधी क्या क्या एवो क्या क्या एवो करतां अल्प छे ? क्या
 क्या एवो क्या क्या एवो करतां अधिक छे ? क्या क्या एवो क्या क्या एवोनी
 अपेक्षासे समान छे ? अने क्या क्या एवो क्या क्या एवो करतां विशेषाधिक
 छे ? (गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा पुरिसवेयगा, इत्थिवेयगा संखेज्जगुणा, अवेयगा

ભવિષ્યતિ સ અચરમઃ અભવ્યઃ સંસારી, સિદ્ધઃ અચરમઃ, તસ્ય ચરમ ભવામાવાત્, તત્ર ચરમો યથાસંભવમ્ અપ્ટાપિ કર્મપ્રકૃતીઃ વધ્નાતિ, અયોગિત્વે ન વધ્નાતિ, ક્વિ મજના તત્ર વોધ્યા, અચરમસ્તુ સંસારી અપ્ટાપિ કર્મપ્રકૃતીઃ વધ્નાતિ, સિદ્ધસ્તુ ન વધ્નાતીત્યત્રાપિ મજના ॥ સૂ૦ ૫ ॥

વેદકર્મજીવાલ્પવદુત્તવચક્તવ્યતા ।

કર્મવેદાધિકારાત્ વેદકર્મજીવાનામ્ અલ્પવદુત્તવચક્તવ્યતાં નિહ્વયિતુમાદ-
'એસિ ણં મંતે !' ક્વિયાદિ ।

મૂલમ્—એસિ ણં મંતે ! જીવાણં ક્વિધીવેયગાણં, પુરિસ-
વેયગાણં નપુંસગવેયગાણં, અવેયગાણં ય કયરે કયરેહિતો

ભવ નહીં હોગા વહ અચરમ જીવ હૈ, અચરમ પદ સે અભવ્ય સંસારી કા મી ગ્રહણ હોતા હૈ ઓર સિદ્ધ જીવ કા મી ગ્રહણ હોતા હૈ ક્યોં કિ સિદ્ધ જીવ કે સિદ્ધપદ પ્રાપ્ત હો જાને કે ઘાદ ચરમભવ કા અભાવ હૈ । ઇનમ્ જો ચરમ જીવ હૈ—અમી જિસકા અન્તિમ ભવ નહીં હૈ વહ તો યથાસંભવ આઠોં મી કર્મપ્રકૃતિયોં કો ઘાંધતા હૈ ઓર જો ચરમ જીવ અયોગી હૈ—જિસકા અમી યહી અન્તિમ ભવ હૈ—તો વહ કિસી મી કર્મ-પ્રકૃતિ કા ઘંધ નહીં કરતા હૈ । ઇસી તરહ અચરમપદ કે જય અભવ્ય-સંસારી જીવ કા ગ્રહણ કરતે હૈ તો વહ મી આઠોં કર્મપ્રકૃતિયોં કા ઘંધ કરતા હૈ ઓર જય અચરમપદ સે સિદ્ધ જીવ કા ગ્રહણ કરતે હૈ તો વહ કિસી મી કર્મપ્રકૃતિ કા ઘંધ નહીં કરતા હૈ—ઇસ તરહ સે ઉભયપ્ર ચરમ અચરમ દોનોં જગહે । મજના જાનની ચાહિયે ॥ સૂ૦ ૫ ॥

જે જીવનો ભવ અન્તિમ હોય તેને ચરમ જીવ કહે છે, અને જેનો અન્તિમ ભવ કદી પણ થવાનો નથી તેને અચરમ જીવ કહે છે. અચરમ પદ અભવ્ય સંસારીને માટે પણ વપરાય છે, અને સિદ્ધ જીવને માટે પણ વપરાય છે કારણ કે સિદ્ધપદ પ્રાપ્ત કર્યા પછી તેમને ચરમભવનો અભાવ હોય છે. આ બંને પ્રકારના જીવોમાંથી જે ચરમ જીવ છે—અત્યારે જ જેનો અન્તિમ ભવ ચાલુ નથી, તે તો યથા સંભવ આઠે કર્મોના બંધ કરે છે, પણ જે ચરમ જીવ અયોગી છે—જેનો અન્તિમ ભવ અત્યારે જ ચાલુ છે તે તો કોઈ પણ કર્મોના બંધ કરતો નથી. એજ પ્રમાણે અચરમ પદને અભવ્ય સંસારી જીવની અપેક્ષાએ પ્રયોગ કરવામાં આવે ત્યારે તે પ્રકારનો જીવ (અભવ્ય સંસારી જીવ) આઠે પ્રકારના કર્મોના બંધ કરે છે, પણ અચરમ પદનો પ્રયોગ સિદ્ધ જીવને માટે કરવામાં આવે, ત્યારે તેઓ કોઈ પણ કર્મોના બંધ કરતા નથી. તે કારણે “તેઓ વિકલ્પે આઠે કર્મોના બંધ કરે છે” એવું કથન કર્યું છે. ॥ સૂ. ૫ ॥

अप्या वा, बहुया वा, तुल्ला वा, विसेसाहिया वा ? गोयमा !
 सव्वत्थोवा जीवा पुरिसवेयगा, इत्थिवेयगा संखेज्जगुणा,
 अवेयगा अणंतगुणा, नपुंसगवेयगा अणंतगुणा, एएसिं
 सव्वेप्पिं पयाणं अप्य-बहुगाइं उच्चारयेव्वाइं, जाव-सव्व-
 त्थोवा जीवा अचरिमा, चरिमा अणंतगुणा, सेवं भंते !
 सेवं भंते ! त्ति ॥ सू० ६ ॥

॥ छट्टसए तइओ उदेसो समत्तो ॥ ६-३ ॥

छाया—एतेषां खलु भदन्त ! जीवानां स्त्रीवेदकानाम्, पुरुषवेदकानाम्,
 नपुंसवेदकानाम्, अवेदकानां च कतरे कतरेभ्यः अल्पा वा, बहुका वा तुल्या
 वा, विशेषाधिका वा ? गौतम ! सर्वस्त्रोकाः जीवाः पुरुषवेदकाः, स्त्रीवेदकाः

वेदवाले जीवों के अल्प-बहुत्व का कथन

‘एएसिणं भंते ! इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(एएसिणं भंते ! जीवाणं इत्थीवेयगाणं, पुरिवेयगाणं,
 नपुंसगवेयगाणं, अवेयगाण य कयरे कयरेहिंतो अप्या वा, बहुया वा
 तुल्ला वा विसेसाहिया वा) हे भदन्त ! स्त्रीवेदक, पुरुषवेदक, नपुंसकवे-
 दक और अवेदक इन सब में कौन २ जीव किन २ जीवों की अपेक्षा
 से अल्प हैं ? कौन २ जीव किन २ जीवों की अपेक्षा से बहुत हैं ?
 कौन २ जीव किन २ जीवों की अपेक्षा समान हैं ? और कौन २ जीव
 किन २ जीवों की अपेक्षा विशेषाधिक हैं ? (गोयमा ? सव्वत्थो

वेदवाणा लुवोनी अल्पता अने बहुतातुं निरूपयु—

“एएसिणं भंते !” इत्यादि—

सूत्रार्थ—(एएसिणं भंते ! जीवाणं इत्थीवेयगाणं, पुरिवेयगाणं, नपुं-
 सगवेयगाणं, अवेयगाण य कयरे कयरेहिंतो अप्या वा, बहुया वा, तुल्ला वा,
 विसेसाहिया वा ?) हे भदन्त ! स्त्री वेदक, पुरुष वेदक, नपुंसक वेदक अने
 अवेदक लुवोमांथी क्या क्या लुवो क्या क्या लुवो करतां अल्प छे ? क्या
 क्या लुवो क्या क्या लुवो करतां अधिक छे ? क्या क्या लुवो क्या क्या लुवोनी
 अपेक्षाये समान छे ? अने क्या क्या लुवो क्या क्या लुवो करतां विशेषाधिक
 छे ? (गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा पुरिसवेयगा, इत्थिवेयगा संखेज्जगुणा, अवेयगा

संख्येयगुणाः, अवेदकाः अनन्तगुणाः, नपुंसकवेदका अनन्तगुणाः, एतेषां सर्वेषां पदानाम् अल्प-बहुत्वकानि उच्चारयितव्यानि, यावत्-सर्वस्तोका जीवा अचरमाः, चरमाः अनन्तगुणाः, तदेवं भदन्त ! तदेवं भदन्त ! इति ॥ मू० ५ ॥

टीका—'एएसि णं भंते ! जीवाणं इत्थीवेयमाणं पुरिसवेयमाणं, अवेयमाणं य कयरे कयरेदितो अप्पा वा, बहुया वा तुल्ला वा, विसंसारिया वा जीवा पुरिसवेयगा, इत्थि वेयगा संखेज्जगुणा, अवेयगा अणंतगुणा, नपुंसगवेयगा अणंतगुणा) हे गौतम ! सब से कम पुरुषवेदक जीव हैं। इनसे संख्यातगुणे स्त्रीवेदक जीव हैं। अवेदक जीव अनन्तगुणे हैं। नपुंसकवेदक भी अनन्तगुणे हैं। (एएसि सव्वेसि पयाणं अप्पबहुगाइं उच्चारेयन्वाइं जाय सव्वत्थोवा जीवा अचरिमा, चरिमा, अणंतगुणा सेवं भंते ! सेवं भंते ! ति) इन सब पदों का अल्प बहुत्व कहना चाहिये यावत् सब से कम अचरम जीव हैं और चरम जीव अनन्तगुणे हैं। हे भदन्त ! जैसा आपने कहा है—वह सब ऐसा ही है—हे भदन्त ! वह सब ऐसा ही है। इस प्रकार कहकर गौतम अपने स्थानपर बैठ गये।

टीकार्थ—कर्म और वेद के अधिकार से सूत्रकार इस सूत्र द्वारा वेदक जीवों की अल्प बहुत्व वक्तव्यता का निरूपण कर रहे हैं—इसमें गौतम ने प्रभु से ऐसा पूछा है कि—(एएसि णं भंते ! जीवाणं इत्थीवेयमाणं पुरिसवेयमाणं, नपुंसगवेयमाणं, अवेयमाणं य कयरे कयरे-

अणंतगुणा, नपुंसगवेयगा अणंतगुणा) पुरुष वेदवाणा लुवो सीधी ओछां छे, स्त्री वेदवाणा लुवो तेमना करतां सभ्यातगण्णा छे, अवेदवाणा लुवो अनंतगण्णा छे, नपुंसक वेदवाणा लुवो पण्ण अनंतगण्णा छे. (एएसि सव्वेसि पयाणं अप्पबहुगाइं उच्चारेयन्वाइं जाय सव्वत्थोवा जीवा अचरिमा, चरिमा अणंतगुणा, सेवं भंते ! सेवं भंते ! ति) आ पधा पढातुं अल्प बहुत्व कडेकुं जेधजे सीधी ओछां अचरम लुवो छे अने चरम लुवो अनंतगण्णा छे, अडीं सुधीतुं समस्त कथन करपुं जेधजे. डे लदन्त ! आपनी बात साची न छे. डे लदन्त ! आ विषयतुं आपे ने प्रतिपादन कयुं ते यथार्थ न छे. आ भ्रमाणे कडीने गौतम स्वामी तेमने स्थाने भेसी गया.

टीकार्थ—कर्म अने वेदको अधिकार वाली रथो छे. सूत्रकार आ सब द्वारा वेदक (लुवा लुवा वेदवाणा) लुवोनी अल्प-बहुतातुं प्रतिपादन करे छे. गौतम स्वामी आ विषयने अनुवक्षीने जेवो प्रश्न पूछे छे के—(एएसि णं भंते ! जीवाणं इत्थीवेयमाणं, पुरिसवेयमाणं, नपुंसगवेयमाणं, अवेयमाणं य कयरे

वा ? गौतमः पृच्छति—हे भदन्त ! एतेषां खलु जीवानां स्त्रीवेदकानाम् , पुरुषवेदकानां, नपुंसकवेदकानाम् , अवेदकानाम् अनिष्टृत्तियादरसूक्ष्मसंपरा-
यगुणस्थानवर्तिमभृतीनां सिद्धानां च मध्ये कतरे जीवाः कतरे जीवेभ्योः
अल्पा वा, बहुका वा, तुल्या वा, विशेषाधिका वा भवन्ति ? भगवानह—‘गोयमा ।
संवत्थोवा जीवा पुरिसवेयगा ’ गौतम ! सर्वस्तोकाः सर्वेभ्यो जीवेभ्योऽल्पाः
पुरुषवेदकाः ‘ इत्थिवेयगा संखेज्जगुणा ’ स्त्रीवेदकाः संखेयगुणाः भवन्ति,
यतो हि देवपुरुषेभ्यो देवस्त्रियः द्वात्रिंशद्गुणाः भवन्ति, मनुष्यपुरुषेभ्यो मनु-
ष्यस्त्रियः सप्तत्रिंशत्तिगुणाः भवन्ति, तिर्यक्पुरुषेभ्यस्तिर्यक्स्त्रियः त्रिगुणाः भवन्ति,

हिंसो अप्पा वा, बहुया वा, तुल्ला वा विसेसाहिया वा) हे भदन्त ! इन
स्त्रीवेदक, पुरुषवेदक, नपुंसकवेदक और अवेदक-अनिष्टृत्तियादर सूक्ष्म
सांपराय आदि गुणस्थानवर्ती जीव और सिद्ध इनके बीच में कौन
जीव किस जीव से अल्प है ? कौन जीव किम जीव से अधिक है ?
कौन जीव किस जीव से चराचर है और कौन जीव किस जीव से
विशेषाधिक है ? भगवान इस प्रश्न का उत्तर देते हुए गौतम से कहते
हैं कि—(गोयमा) हे गौतम ! (संवत्थोवा जीवा पुरिसवेयगा) पुरुषवेद
वाले जो जीव हैं, वे सप जीवों से कम हैं । (इत्थिवेयगा संखेज्जगुणा)
स्त्रीवेदक-स्त्रीवेदवाले-जीव संख्यातगुणे हैं । क्यों कि—देव, पुरुष और
तिर्यंच रूप पुद्गिग इन की अपेक्षा क्रमशः इनकी स्त्रियो वत्तीस गुणी,
सत्ताईसगुणी, और तिगुनी होती हैं । अर्थात् देवों की अपेक्षा देवियों
का प्रमाण वत्तीस गुणा होता है—मनुष्य पुरुषों की अपेक्षा मनुष्याणियों

क्यरेहितो अप्पा वा, बहुया वा, तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?) हे भदन्त ! आ
स्त्री वेदक, पुरुष वेदक, नपुंसक वेदक, अने अवेदक-अनिष्टृत्ति पादर सूक्ष्म
सांपराय आदि गुणस्थानवर्ती लोको अने सिद्ध लोकोभांथी कया कया लोको
कया कया लोको करतां ओछां छे ? कया लोको कया लोको करतां अधिक छे ? कया
लोको कया लोकोनीं अराअर छे ? अने कया लोको कया लोको करतां विशेषाधिक छे ?
तेनो अनाअं आपता मडावीर प्रलु कडे छे के (गोयमा ।) हे गौतम !
(संवत्थोवा जीवा पुरिसवेयगा) पुरुष वेदवणा लोको औथी ओछां छे । (इत्थि-
वेयगा संखेज्जगुणा) स्त्री वेदवणा लोको तेमना करतां संध्यातगंधा छे,
कारण के देव, पुरुष, अने तिर्यंचरूप पुद्गिग (नरनति) करतां ते वत्तिनी
औओ अनुअं अत्रीसगणी, सत्यावीशगणी अने प्रलुगणी डोय छे. अेटवे
के देवो करतां देवीओ अत्रीसगणी छे, भाणुसो करतां औओ सत्यावीशगणी छे;

‘ અવેયગા અણંતગુણા ’ અવેદકાઃ અનિવૃત્તિ યાદરમુક્ષમસંપરાયગુણસ્થાનવર્તિ પ્રમૃતયઃ, સિદ્ધાથ જીવાઃ અનન્તત્વાત્ સ્ત્રીવેદકેભ્યોડનન્તગુણા ભવન્તિ. ‘ નપુંસગ-વેયગા અણંતગુણા ’ નપુંસકવેદકાઃ અનન્તગુણા ભવન્તિ, અનન્તકાવિકાનાંસિદ્ધે-ભ્યોડનન્તગુણત્વાત્ । એપ્સિં સર્વેસિં પદાણં અપ્પ-વહુગાઈં ઉચ્ચારેયઢ્વાઈં ’ એતેપાં પૂર્વોક્તાનાં સર્વેપામ્ સંયતાદિચરમાન્તાં ચતુર્દશાનાં પદાનાં દ્વારાણામ્ તદ્ગતભેદા-પેક્ષયા અલ્પવહુત્વમ્ ઉચ્ચારયિત્વ્યં વક્તવ્યમ્, તથથા ‘ એપ્સિં ણં મંતે ! સંજ-યાણં, અસંજયાણં, સંજયાસંજયાણં, ણોસંજય ણોઅસંજય - ણોસંજયાસંજયાણં કયરે કયરેહિંતો અપ્પા વા, વહુયા વા, તુલ્લા વા, વિસેસાહિયા વા ? ગોયમા !

(મનુષ્યચ્છિત્તે) કા પ્રમાણ૨૭ ગુણા હોતા હૈ ઓર તિયંચ પુરુષોંકી અપેક્ષા તિર્યંચનિયોંકા પ્રમા ગ તિગુના હોતા હૈ । ઈસી કારણ સ્ત્રીવેદક જીવ પુરુષ વેદકોંકી અપેક્ષા સંખ્યાતગુણિત પ્રકટ કિયે ગયે હૈ । (અવેયગા અણંતગુણા અનિવૃત્તિ યાદર મુક્ષમસંપરાય આદિ ગુણસ્થાનવર્તી જીવ તથા સિદ્ધ જીવ યે સ્ત્રીવેદકોં સે અનન્તગુણે હૈ । (નપુંસગવેયગા અણંતગુણા) નપું સક વેદવાલે જીવ ધી અનન્તગુણે હૈ । કયોં કિ સિદ્ધોં સે અનન્તગુણે અનન્તકાવિક જીવ હૈ । (એપ્સિં સર્વેસિં પયાણં અપ્પવહુગાઈં ઉચ્ચારેયઢ્વાઈં) ઈન સવ પૂર્વોક્ત સંયત સે લેકર ચરમ તક કે ૧૪ દ્વારોં કા અલ્પ વહુત્વ તદ્ગત ભેદોં કી અપેક્ષા સે કહ લેના ચાહિયે-વહ ઈસ પ્રકાર સે હૈ-“ એપ્સિં ણં મંતે ! સંજયાણં, અસંજયાણં, સંજયા સંજયાણં ણો સંજય ણો અસંજય-ણો સંજયા સંજયાણં કયરે કયરેહિંતો અપ્પા વા,

અને તિયંચ નર કરતાં તિયંચ માદા (નારી બલિ) ત્રણગણી હોય છે. તે કારણે પુરુષ વેદવાળા જીવોના પ્રમાણ કરતાં સ્ત્રી વેદવાળા જીવોનું પ્રમાણ સંખ્યાતગણું કહ્યું છે.

(અવેયગા અણંતગુણા) અનિવૃત્તિ યાદર મુક્ષમ સંપરાય આદિ ગુણ-સ્થાનવર્તી જીવ તથા સિદ્ધ જીવની સંખ્યા સ્ત્રી-વેદવાળા જીવો કરતાં અનંત ગણી છે. (નપુંસગવેયગા અણંતગુણા) અવેદક જીવો કરતાં નપુંસક વેદવાળા જીવો પણ અનંતગણા છે, કારણ કે સિદ્ધોથી અનંતગણા અનંતકાવિક જીવો છે. (એપ્સિં સર્વેસિં પયાણં અપ્પવહુગાઈં ઉચ્ચારેયઢ્વાઈં) પૂર્વોક્ત સંયતથી લઈને ચરમ પર્યન્તના ૧૪ દ્વારોનું અલ્પ બહુત્વ તેમના જોડોની અપેક્ષાએ કહેવું જોઈએ. તે આ પ્રમાણે કહી શકાય—

(એપ્સિં ણં મંતે ! સંજયાણં અસંજયાણં, સંજયાસંજયાણં ણો સંજય ણો અસંજય ણો સંજયાસંજયાણં કયરે કયરેહિંતો અપ્પા વા, વહુયા વા, તુલ્લા વા,

सव्वत्थोवा संजया, संजयासंजया अणंत्वेज्जगुणा, णोसंजय-णोअसंजया णोसंजया-
संजया अणंतगुणा, असंजया अणंतगुणा " इत्यादि प्रज्ञापनायां तृतीयाल्पवहुत्व
पदानुसारेण वक्तव्यम्, यावत्-चरमान्ताल्पवहुत्वम्, तदेवाह-जाव-सव्वत्थोवा
जीवा अचरिमा चरिमा अणंतगुणा ' यावत्-सर्वतोकाः जीवा अचरमाः, चरमाः
अनन्तगुणाः भवन्ति, तत्र अचरमाः अभव्याः, चरमाश्च ये मव्याथरमं भवं
माप्स्यन्ति=सिद्धिं गदिष्यन्ति, ते अचरमेभ्योऽभव्येभ्योऽनन्तगुणा भवन्ति, यतः

पहुया वा, तुह्हा वा, विसेसाहिया वा) हे भदन्त ! संयत, असंयत,
संयतासंयत, नो संयत-नो असंयत-नो संयतासंयत इन सब में कौन
जीव किस जीव की अपेक्षा कम है ? बहुत है ? तुल्य है ? और
विशेषाधिक है ? (गौयमा) हे गौतम ! (सव्वत्थो वा संजया) सब
से कम संयत जीव हैं। (संजयासंजया असंखेज्जगुणा) संयतासंयत
(देशविरति) जीव संयत (सर्वविरति) जीवों की अपेक्षा
असंख्यातगुणे हैं। (णोसंजय-णोअसंजय-णोसंजयासंजय अणं-
तगुणा) नोसंयत नोअसंयत नोसंयतासंयत जीव इनसे भी
अनंतगुणे हैं। और (असंजया अणंतगुणा) असंयत जीव इनसे
भी अनंतगुणे हैं।" इत्यादि प्रज्ञापना सूत्र के अनुसार चरम तक के
अल्प बहुत्व तक कथन कर लेना चाहिये। जैसे कि- ' जाव सव्वत्थोवा
जीवा अचरिमा, चरिमा अणंतगुणा " इत्यादि, अचरम-अर्थात् अभ-
व्य और चरम-अन्तिम भव को जो पावेंगे अर्थात्-सिद्ध होंगे वे सो

विसेसाहिया वा) हे भदन्त ! संयत, असंयत, संयतासंयत, नो संयत, नो
असंयत अने नो संयतासंयत एवोमांधी क्या एवो केना करतां अल्प छे ?
क्या एवो केना करतां अधिक छे ? क्या एवो क्या एवो नेटतां न छे ?
क्या एवो क्या एवो करतां विशेषाधिक छे ?

उत्तर—(गौयमा !) हे गौतम ! (सव्वत्थो वा संजया) संयत एव
सौधी ओछां छे, (संजयासंजया असंखेज्जगुणा) संयत एवो करतां संयता-
संयत एवो संप्र्यातगणु छे. (णोसंजय-णोअसंजय-णो संजयासंजया
अणंतगुणा) संयतासंयत एवो करतां नोसंयत, नोअसंयत अने नो
संयतासंयत, एवो अनंतगणु छे, (असंजया अणंतगुणा) तेमना करतां
पणु असंयत एवो अनंतगणु छे, इत्यादि समस्त कथन प्रज्ञापना सूत्र अनु-
सार न करवुं नेछो. आ रीने चरम अने अचरम एवोना अल्प णंहुत्तना
कथन पर्यन्तनुं थोहे दारोनुं कथन करवुं. नेभके (जाव सव्वत्थोवा जीवा अचरिमा,
म १२८

‘અવેયગા અણંતગુણા’ અવેદકાઃ અનિવૃત્તિ યાદરમૃદ્ધમસંપરાયગુણસ્થાનવર્તિ પ્રમૃતપઃ, સિદ્ધાથ જીવાઃ અનન્તત્વાત્ સ્ત્રીવેદકેભ્યોઽનન્તગુણા ભવન્તિ, ‘નપુંસગ-વેયગા અણંતગુણા’ નપુંસકવેદકાઃ અનન્તગુણા ભવન્તિ, અનન્તકાયિકાનાં સિદ્ધે-ભ્યોઽનન્તગુણત્વાત્ । ‘एएसि सव्वेसि पयाणं अप्प-बहुगाइं उच्चारयेव्वाइं’ एतेषां पूर्वोक्तानां सर्वेषाम् संयताद्विचरमान्तां चतुर्दशानां पदानां द्वाराणाम् तद्गतभेदा-पेक्षया अल्पबहुत्वम् उच्चारयितव्यं यक्तव्यम्, तद्यथा ‘एएसि णं भंते । संज-याणं, असंजयाणं, संजयासंजयाणं, णोसंजय णोअसंजय - णोसंजयासंजयाणं कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा, बहुया वा, तुल्ला वा, विसेसाहिया वा ? गोयमा ।

(મનુષ્યચ્છિત્તે) કા પ્રમાણ ૨૭ ગુણા હોતા હૈ ઓર તિયંચ પુરુષોંકી અપેક્ષા તિયંચનિયોંકા પ્રમા ગ તિગુણા હોતા હૈ । ઈસી કારણ સ્ત્રીવેદક જીવ પુરુષ વેદકોંકી અપેક્ષા સંખ્યાતગુણિત પ્રકટ કિયે ગયે હૈ । (અવેયગા અણંતગુણા અનિવૃત્તિ યાદર સૂક્ષ્મસંપરાય આદિ ગુણસ્થાનવર્તી જીવ તથા સિદ્ધ જીવ યે સ્ત્રીવેદકોં સે અનન્તગુણે હૈ । (નપુંસગવેયગા અણંતગુણા) નપુંસક વેદવાલે જીવ મી અનન્તગુણે હૈ । કયોં કિ સિદ્ધોં સે અનન્તગુણે અનન્તકાયિક જીવ હૈ । (एएसि सव्वेसि पयाणं अप्पबहुगाइं उच्चारयेव्वाइं) इन सय पूर्वोक्त संयत से लेकर चरम तक के १४ द्वारों का अल्प बहुत्व तद्गत भेदों की अपेक्षा से कह लेना चाहिये-वह इस प्रकार से है-“एएसि णं भंते । संजयाणं, असंजयाणं, संजया संजयाणं णो संजय णो असंजय-णो संजया संजयाणं कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा,

અને તિયંચ નર કરતાં તિયંચ માદા (નારી ભર્તિ) ત્રણગણી હોય છે. તે કારણે પુરુષ વેદવાળા જીવોના પ્રમાણ કરતાં સ્ત્રી વેદવાળા જીવોનું પ્રમાણ સંખ્યાતગણું કહ્યું છે.

(અવેયગા અણંતગુણા) અનિવૃત્તિ યાદર સૂક્ષ્મ સંપરાય આદિ ગુણ-સ્થાનવર્તી જીવ તથા સિદ્ધ જીવની સંખ્યા સ્ત્રી-વેદવાળા જીવો કરતાં અનંત ગણી છે. (નપુંસગવેયગા અણંતગુણા) અવેદક જીવો કરતાં નપુંસક વેદવાળા જીવો પણ અનંતગણા છે, કારણ કે સિદ્ધોથી અનંતગણા અનંતકાયિક જીવો છે. (एएसि सव्वेसि पयाणं अप्पबहुगाइं उच्चारयेव्वाइं) पूर्वोक्त संयतથી લઈને ચરમ પર્યંતના ૧૪ દ્વારોનું અલ્પ બહુત્વ તેમના ભેદોની અપેક્ષાએ કહેવું બેધએ. તે આ પ્રમાણે કહી શકાય—

(एएसि णं भंते ! संजयाणं असंजयाणं, संजयासंजयाणं णो संजय णो असंजय णो संजयासंजयाणं कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा, बहुया वा, तुल्ला वा,

अथ चतुर्थोद्देशकः प्रारम्भ्यते—

षष्ठशतके चतुर्थोद्देशकस्य संक्षिप्तविषयविवरणम्—

एकत्वेन जीवः कालापेक्षया सप्रदेशः किं वा अप्रदेशः इति प्रश्नः, नियमतः सप्रदेश एव नो अप्रदेश इत्युत्तरम् । तथा नैरर्थिकः कालापेक्षया सप्रदेशः अप्रदेशो वा ? इति प्रश्नः, कदाचित् सप्रदेशः कदाचित् अप्रदेशश्च, इत्युत्तरम् । ततो बहुत्वेन जीवाः कालापेक्षया सप्रदेशाः अप्रदेशा वा ? नियमतः सप्रदेशा एव, नो

छठे शतके चौथा उद्देशकका प्रारम्भ-

इस शतक के इस चतुर्थ उद्देशक का विषय विवरण संक्षेप से इस प्रकार है—एक जीव काल की अपेक्षा से क्या प्रदेशों से सहित है कि प्रदेशों से रहित है ? ऐसा प्रश्न—इसका “नियम से जीव प्रदेशों से सहित ही है प्रदेशों से रहित नहीं है” ऐसा उत्तर एक नारक जीव काल की अपेक्षा से क्या प्रदेशसहित है कि प्रदेशरहित है ? ऐसा प्रश्न इसका “कदाचित् वह प्रदेशसहित है और कदाचित् वह प्रदेशरहित है” ऐसा २ उत्तर, अनेक जीव काल की अपेक्षा से सप्रदेश हैं कि प्रदेशों से रहित हैं ? ऐसा प्रश्न, इसका “नियम से वे सब प्रदेशसहित ही हैं” ऐसा उत्तर, अनेक नारक जीव—सब नारक जीव—काल की अपेक्षा से प्रदेशसहित हैं कि प्रदेशों से रहित हैं ऐसा प्रश्न—इसका

छठ्ठा शतकनो चौथा उद्देशक

छठ्ठा शतकना चौथा उद्देशकना विषयनुं संक्षिप्त विवरणम्—

प्रश्न—એક જીવ કાળની અપેક્ષાએ પ્રદેશો સહિત છે કે પ્રદેશોથી રહિત છે ?

ઉત્તર—નિયમથી જ જીવ પ્રદેશોથી યુક્ત છે, પ્રદેશોથી રહિત નથી.

પ્રશ્ન—એક નારક જીવ શું કાળની અપેક્ષાએ પ્રદેશો સહિત છે કે પ્રદેશોથી રહિત છે ?

ઉત્તર—ક્યારેક તે પ્રદેશોથી યુક્ત છે અને ક્યારેક પ્રદેશોથી રહિત છે.

પ્રશ્ન—અનેક (સખળા) જીવ કાળની અપેક્ષાએ પ્રદેશોથી યુક્ત છે કે પ્રદેશોથી રહિત છે ?

ઉત્તર—નિયમથી જ તેઓ બધાં પ્રદેશોથી યુક્ત છે.

પ્રશ્ન—અનેક (સખળા) નારક જીવ કાળની અપેક્ષાએ પ્રદેશયુક્ત છે કે પ્રદેશ રહિત છે ?

અમન્યેભ્યઃ સિદ્ધા અનન્તગુણાઃ મતિપાદિતાઃ, યાવન્નશ્ર સિદ્ધાસ્તાન્ત એવ ચરમાઃ
 યસ્માદ્ યાવન્તઃ સિદ્ધાઃ અતીતાદ્વાપાં તાવન્ત એવ અનાગતાદ્વાપી સિદ્ધિ ગમિષ્યન્તિ,
 અન્તે ગૌતમો મગવત્વાપ્યં સ્વીકૃર્વન્નાદ- ' સેવં મંતે ! સેવં મંતે ! ત્તિ તદેવં
 ભવદુક્તં સત્પમેવ, હે મદન્ત ! મવદુક્તં સત્પમેવેત્પર્યઃ ॥ સુ. ૬ ॥

इति श्री विश्वखिलात - जगद्वल्लभ-प्रसिद्धनाचरु - पञ्चदशभाषाकलि-
 तललितकलापालापक-प्रविशुद्धगद्यपद्यनैकग्रन्थनिर्मापक-वादिमानमर्दक-
 श्रीशाहू छत्रपतिकोल्हापुरराजप्रदत्त 'जैनशास्त्राचार्य' पदभूषित-
 कोल्हापुरराजगुरु-बालब्रह्मचारि-जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-पूज्यश्री
 घासीलालव्रतिविरचितायां श्रीमगवतीसूत्रस्य प्रमेयचन्द्रिकाख्यायां
 व्याख्यायां पष्ठशतकस्य तृतीयो शकः समाप्तः ॥ ६-३ ॥

इन दोनों में से चरम जीव अचरम जीवों की अपेक्षा अनन्तगुणे हैं।
 क्यों कि अभव्यों की अपेक्षा सिद्ध जाव सिद्धान्त में अनन्तगुणे कहे
 गये हैं। जितने सिद्ध हैं उतने ही चरम जीव हैं। क्यों कि जितने जीव
 भूतकाल में सिद्ध हो चुके हैं उतने ही जीव भविष्यत्काल में सिद्ध
 होंगे। अब अन्त में गौतम प्रभु के वचनों को स्वीकार करते हुए कहते
 हैं कि (सेवं मंते ! सेवं मंते ! त्ति) हे भदन्त ! आपका कहा हुआ
 सर्वथा सत्य ही है-हे भदन्त ! सर्वथा सत्य ही है ॥ सू. ६ ॥

श्री जैनाचार्य जैनधर्म दिवाकर श्री घासीलालजी महाराजकृत "मगव-
 तीसूत्र"की प्रमेयचन्द्रिका व्याख्याके छठे शतकका तीसरा

उद्देशक समाप्त ॥ ६-३॥

ચરિમા અનંતગુણા) અચરમ (અમન્ય) અને ચરમ (અન્તિમ ભવ કરીને સિદ્ધપદ
 પ્રાપ્ત કરનારા) જીવોમાંથી ચરમ જીવો અચરમ જીવો કરતાં અનંતગણા છે, કારણ
 કે અભવ્ય જીવો કરતાં સિદ્ધ જીવ સિદ્ધાંતમાં અનંતગણા કહ્યા છે. જેટલાં સિદ્ધ છે
 એટલાં જ ચરમ જીવ છે, કારણ કે જેટલાં જીવો ભૂતકાળમાં સિદ્ધપદ પામી
 ચૂક્યા છે, એટલાં જ જીવો ભવિષ્યકાળમાં પણ સિદ્ધપદ પામશે. સૂત્રનો
 ઉપસંહાર કરતા ગૌતમ સ્વામી મહાવીર પ્રભુનાં વચનોનો સ્વીકાર કરતા કહે
 છે-(સેવં મંતે ! સેવં મંતે ! ત્તિ) હે ભદન્ત ! આપે આ વિષયનું જે પ્રતિ-
 પાદન કર્યું તે સર્વથા સત્ય છે. હે ભદન્ત ! આપ જે કહો છો તે યથાર્થ જ છે. સુ. ૬

જૈનાચાર્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજકૃત મગવતી સૂત્રની પ્રમેયચ-

ન્દ્રિકા વ્યાખ્યાના છઠ્ઠા શતકનો ત્રીજો ઉદ્દેશક સમાપ્ત ॥૬-૩॥

कालापेक्षया सामान्यजीवसमुच्चयवन् भद्रद्वयं, भद्रत्रयं च । नोभवसिद्धिक-नो
 अभवसिद्धिकानां भद्रत्रयम् । संज्ञिनाम् असंज्ञिनां च कालापेक्षया भद्रत्रयम् । नैर-
 यिक-देव - मनुष्याणाम् असंज्ञिनां भद्रपट्टकम् । नोसंज्ञि-नोअसंज्ञिनां भद्र-
 त्रिकम् । औचिकजीववत् लेश्यावताम् एको भद्रः, ततः कृष्णलेश्या-नीललेश्या-
 कापोतलेश्या-तेजोलेश्या-पद्मलेश्या-शुक्ललेश्या-ऽलेश्यैः सम्यग्दृष्टि-मिथ्या-
 दृष्टि-सम्यग्मिथ्यादृष्टिभिः, संयता-ऽसंयत-संयतासंयत - नोसंयत नोअसं-
 यतनोसंयतासंयत, सकपाधि - क्रोधकपायि-मानकपायि - लोभकपाय्यकपा-

जीवों, अभवसिद्धिक जीवों के काल की अपेक्षा से सामान्य जीव की
 तरह दो भंग और तीन भंग, नो भवसिद्धिक नो अभवसिद्धिक जीवों
 के तीन भंग, संज्ञि जीवों के और असंज्ञी जीवों के काल की अपेक्षा
 से तीन भंग, नारक, देव, मनुष्य और असंज्ञी जीव इनके ६ भंग, नो
 संज्ञी नो असंज्ञी इनके तीन भङ्ग होते हैं ऐसा कथन, सामान्य जीव की
 तरह लेश्यावाले जीवों के एक भङ्ग होता है ऐसा विचार, वाद में-
 कृष्णलेश्या, वाले नीललेश्यावाले, कापोतलेश्यावाले, तेजोलेश्यावाले
 पद्मलेश्यावाले, शुक्ललेश्यावाले जीवों के साथ तथा इन लेश्याओं से
 रहित जीवों के साथ, सम्यग्दृष्टि मिथ्यादृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, संय-
 त, असंयत, संयतासंयत, नोसंयत नोअसंयत नोसंयतासंयत
 जीवों के साथ, कपायसहित-क्रोधसहित, मानकपायसहित, मायाकपा-
 यसहित, लोभकपायसहित जीवों के साथ तथा कपायरहित जीवों के

लवोना काणनी अपेक्षाञ्च सामान्य लवोनी जेम जे लंग अने त्रयु लंग,
 नो अवसिद्धिक अने नो अलवसिद्धिक लवोना त्रयु लंग, संज्ञी लवोना
 तथा असंज्ञी लवोना काणनी अपेक्षाञ्च त्रयु लंग, नारक, देव, मनुष्य अने
 असंज्ञी लवोना ६ लंग, अने नो संज्ञी अने नो असंज्ञी लवोना काणनी
 अपेक्षाञ्च त्रयु लंग थाय छे जेवुं कथन.

सामान्य लवनी जेम लेश्यावाणा लवोना जेक लंग थाय छे जेवुं
 कथन, कृष्ण लेश्यावाणा, नील लेश्यावाणा, कापोत लेश्यावाणा, तेजो लेश्या-
 वाणा, पद्म लेश्यावाणा अने शुक्ल लेश्यावाणा लवोनी साथे तथा ते लेश्या-
 वाणी रहित लवोनी साथे, तथा सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि, सम्यग् मिथ्यादृष्टि,
 संयत, असंयत, संयतासंयत, नो संयत, नो असंयत, अने नो संयता-
 संयत लवोनी साथे, कपाययुक्त (क्रोध, मान, माया, लोभयी युक्त) लवोनी

અપ્રદેશાઃ । વહુસ્વેન નૈરયિકાઃ કાલાપેક્ષયા સપ્રદેશાઃ, અપ્રદેશા વા ? સર્વેઽપિ કદાચિત્ સપ્રદેશાઃ, કદાચિદ્ વહવઃ સપ્રદેશાઃ, અથવા અપ્રદેશથ' વા-અથવા 'વહવઃ સપ્રદેશા, વહવઃ અપ્રદેશથ' ઇતિ મદનોત્તરમ્ । એવં યાગન્-સ્તનિતકુમારા અપિ બોધ્યાઃ । તતઃ પૃથિવીકાયિકાદીનાં યાગત્ વનસ્પતિપર્યન્તાનાં કાલાપેક્ષયા સપ્રદેશાપ્રદેશત્વવિષયે પ્રશ્નોત્તરમ્ । શેષાણાં વિકલેન્દ્રિવાદારમ્ય સિદ્ધપર્યન્તાનાં જીવાનાં નૈરયિકવત્ સપ્રદેશાપ્રદેશત્વવિષયકવિચારઃ । તતઃ આહારકાર્ણા કાલાપેક્ષયા સપ્રદેશત્વાદિભદ્રપ્રવમ્, અનાહારકાણામ્ કાલાપેક્ષયા સપ્રદેશત્વાદિભદ્રપટ્કમ્, સિદ્ધસ્ય કાલાપેક્ષયા ભદ્રવિક્રમ્, ભવગિદ્ધિકામવસિદ્ધિકાનામ્

“ સમસ્ત નારક જીવ કદાચિત્ પ્રદેશોં સે સહિત હું ઓર કદાચિત્ કિતનેક નારક જીવ પ્રદેશોં સે સહિત હું ” તથા કોઈ એક નારક જીવ પ્રદેશોં સે રહિત હું, અથવા કિતનેક નારક જીવ પ્રદેશોં સે સહિત હું ઓર કિતનેક નારક જીવ પ્રદેશોં સે રહિત હું ” એસા ઉત્તર, હસી તરહ સે સ્તનિતકુમારોં તક જાનના ચાહિયે એસા કથન પૃથિવીકાયિક આદિ સે લગાકર વનસ્પતિકાયિક તક કાલ કી અપેક્ષા સે સપ્રદેશત્વ ઓર અપ્રદેશત્વ કી ચર્ચા શેષ વિકલેન્દ્રિયોં સે લેકર સિદ્ધતક કે જીવોં મેં નૈરયિક જીવોં કી તરહ સપ્રદેશત્વ ઓર અપ્રદેશત્વ વિષયક વિચાર; આહારક જીવોં કે કાલ કી અપેક્ષા સે સપ્રદેશત્વ આદિ તીન ભંગ હોતે હું તથા અનાહરકોં કે કાલ કી અપેક્ષા સે સપ્રદેશત્વ આદિ ૬ ભંગ, સિદ્ધ જીવ કે કાલ કી અપેક્ષા સે તીન ભંગ, ભવસિદ્ધિક

ઉત્તર—“ અધાં નારક એવ ક્યારેક પ્રદેશોથી યુક્ત હોય છે, અને ક્યારેક કેટલાક નારક એવ પ્રદેશોથી યુક્ત હોય છે ” તથા કોઈક નારક એવ પ્રદેશોથી રહિત છે, અથવા કેટલાક નારક એવ પ્રદેશોથી યુક્ત છે. અને કેટલાક નારક એવ પ્રદેશોથી રહિત છે. એ જ પ્રમાણે સ્તનિતકુમારો. પર્યન્તના વિષે સમજવું.

પૃથ્વીકાયિક આદિથી લઈને વનસ્પતિકાય પર્યન્તના જીવોના કાળની અપેક્ષાએ સપ્રદેશત્વ અને અપ્રદેશત્વની ચર્ચા, બાકીના વિકલેન્દ્રિય (દ્વિન્દ્રિયથી ચતુરિન્દ્રિય સુધીના જીવો) થી લઈને સિદ્ધ સુધીના જીવોના સપ્રદેશત્વ અને અપ્રદેશત્વનો નારકોના સપ્રદેશત્વ અને અપ્રદેશત્વની જોમ વિચાર, કાળની અપેક્ષાએ આહારક જીવોમાં સપ્રદેશત્વ આદિ ત્રણ ભંગ (વિકલ્પ) થાય છે, અનાહારકોના કાળની અપેક્ષાએ સપ્રદેશત્વ આદિ ૬ ભંગ થાય છે, સિદ્ધ જીવોના કાળની અપેક્ષાએ ત્રણ ભંગ, ભવસિદ્ધિક જીવોના અને અભવસિદ્ધિક

નાપ્રત્યાહ્યાનિત્વપ્રતિપાદનમ્, પૃથમેવ નૈરગિકાદિ-ચારત્-ચતુરિન્દ્રિય-પંચેન્દ્રિય-તિર્યગ્ચોનિક-મનુષ્યૈઃ સહ પ્રત્યાહ્યાનવિચારચર્ચા, જીવાનાં પ્રત્યાહ્યાનાપ્રત્યાહ્યાનજ્ઞાનપ્રશ્નઃ । પંચેન્દ્રિયાણાં તજ્ઞાનિત્વમ્, તદ્ભિન્નાનાં તદજ્ઞાનિત્વં ચ, તતો જીવાનાં પ્રત્યાહ્યાનાઽપ્રત્યાહ્યાનકરણવિચારઃ તતઃ પ્રત્યાહ્યાનાઽપ્રત્યાહ્યાન-નિર્વર્તિતાયુષ્યચંધકથનમ્ દણ્ડકચતુષ્ટયમ્, ગૌતમસ્ય સર્વસમર્થનં ચ ।

જીવસ્ય સપ્રદેશાઽપ્રદેશવક્તવ્યતા ।

મૂલમ્-જાંવે ણં ભંતે ! કાલાદેસેણં કિં સપણ્સે, અપણ્સે ?
ગાયમા ! નિયમા સપણ્સે । નેરઙ્ણ ણં ભંતે ! કાલાદેસેણં કિં

ભવ્ય, સંજી, લેશ્યા, દટ્ટિ, સંયત, કપાય, યોગ, ઉપયોગ, વેદ, શરીર, પર્યાસિ, એ દ્વારે હૈં એસા કથન જીવોંકે પ્રત્યાહ્યાની અપ્રત્યાહ્યાની ઓર પ્રત્યાહ્યાનાપ્રત્યાહ્યાની કા પ્રતિપાદન ઇસી તરહ નૈરગિકસે લેકર ચૌદ્દિન્દ્રિય, પંચેન્દ્રિય તિર્યચ્ચ ઓર મનુષ્યોંકે સાથ પ્રત્યાહ્યાન કે વિચારકી ચર્ચા, જીવોંકો પ્રત્યાહ્યાન અપ્રત્યાહ્યાન આદિકા જ્ઞાન હોતા હૈં કયા ? એસા પ્રશ્ન; પંચેન્દ્રિયોંકો ઇનકા જ્ઞાન હોતા હૈં ઓર ઇનસે ભિન્ન જીવોંકો ઇનકા જ્ઞાન નહીં હોતા હૈં એસા કથન કયા જીવ પ્રત્યાહ્યાન, અપ્રત્યાહ્યાન આદિ કરતે હૈં એસા પ્રશ્ન, હાં કરતે હૈં એસા ઉત્તર પ્રત્યાહ્યાન ઓર અપ્રત્યાહ્યાન આદિસે આયુષ્ક કા વંધ હોતા હૈં કયા ? હાં હોતા હૈં એસા ઉત્તર, ઇસ વિષયક ચાર દણ્ડક ગૌતમકી ઓર સે સર્વ સમર્થન ।

સંબ્રહ્મગાથા—તેમાં સપ્રદેશત્વ, આહારક, લભ્ય, સંજી, લેશ્યા, દટ્ટિ, સંયત, કપાય, યોગ, ઉપયોગ, વેદ, શરીર અને પર્યાસિ, એ દ્વારે છે એવું કથન. જીવોની પ્રત્યાહ્યાની. અપ્રત્યાહ્યાની, અને પ્રત્યાહ્યાના-પ્રત્યાહ્યાની-તાનું પ્રતિપાદન, એજ પ્રમાણે નારકોથી લઈને ચતુરિન્દ્રિ, પંચેન્દ્રિય તિર્યચ્ચ અને મનુષ્યોના પ્રત્યાહ્યાનાદિનું કથન.

પ્રશ્ન—જીવોને પ્રત્યાહ્યાન અપ્રત્યાહ્યાન આદિનું જ્ઞાન હોય છે ખરું ?

ઉત્તર—પંચેન્દ્રિયોને તેનું જ્ઞાન હોય છે, તે સિવાયના જીવોને તેનું જ્ઞાન હોતું નથી એવું કથન.

પ્રશ્ન—શું જીવ પ્રત્યાહ્યાન, અપ્રત્યાહ્યાન આદિ કરે છે ?

ઉત્તર—હા કરે છે.

પ્રશ્ન—શું પ્રત્યાહ્યાન અને અપ્રત્યાહ્યાન આદિથી આયુનો વંધ થાય છે ?

ઉત્તર—હા, થાય છે. આ વિષેના ચાર દંડક. ગૌતમ દ્વારા તેનું સમર્થન.

विभिः, औधिकज्ञानाऽऽभिनियोधिकज्ञान-ध्रुतज्ञाना-अधिज्ञान-मनःपर्ययज्ञान-
केवलज्ञानैः, औधिकज्ञान-मत्पज्ञान-ध्रुताज्ञान-विभङ्गज्ञानैः, सयोगि-मनोयोगि-
वचनयोगि-काययोग्ययोगिभिः, साकारोपयुक्ता-नाकारोपयुक्तैः, सवेदक-स्त्रीवेदक-
पुरुषवेदक-नपुंसकवेदका-ऽवेदकैः, सशरीरौदारिकवैक्रिया - ऽऽहारक-तैजस-
कर्मणाऽशरीरैः, आहारपर्याप्ति-शरीरपर्याप्ति -न्द्रियपर्याप्त्यानप्राणपर्याप्तिभाषा-
मनःपर्याप्तिभिः, आहारपर्याप्ति-शरीरपर्याप्ति -न्द्रियापर्याप्त्यानप्राणपर्याप्ति-
भाषा-मनोऽपर्याप्तिभिः सह कालापेक्षया सप्रदेशत्वाप्रदेशत्वादिविचारः संग्रह-
गाथा, सप्रदेशाहारक-भव्य-संज्ञि-लेश्या-दृष्टि-संयत-कंपाय-योगो-पयोग-
वेद-शरीर-पर्याप्तयः, ततो जीवानां प्रत्याख्यानित्वाऽप्रत्याख्यानित्व-प्रत्याख्या-

साथ, औधिकज्ञान-आभिनियोधिकज्ञान, ध्रुतज्ञान, अधिज्ञान, मन
पर्ययज्ञान, केवलज्ञान इन ज्ञानोंके साथ, औधिक अज्ञान-मति अज्ञान,
ध्रुतअज्ञान, विभङ्गज्ञान इन तीन अज्ञानों के साथ, सयोगी, मनोयोगी,
वचनयोगी, काययोगी, इनके साथ तथा अयोगियों के साथ, साकार
उपयोगवाले अनाकार उपयोगवालों के साथ, सवेदक-स्त्रीवेदक, पुरुष-
वेदक, नपुंसकवेदक, इन वेदवालों के साथ और वेदरहित जीवों के
साथ, सशरीर-औदारिक वैक्रिय-आहारक-तैजस-कर्मण-अशरीर,
आहारपर्याप्ति, शरीरपर्याप्ति, इन्द्रियपर्याप्ति, आनप्राणपर्याप्ति, भाषा-
पर्याप्ति, मन पर्याप्ति इन सबके साथ काल की अपेक्षा से सप्रदेशत्व
और अप्रदेशत्व आदिका विचार, संग्रहगाथा इसमें सप्रदेशत्व, आहारक,

साथे तथा कथाय रक्षित लोवानी साथे, औधिकज्ञान (आभिनियोधिक ज्ञान)
ध्रुतज्ञान, अधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, अने केवलज्ञाननी साथे, औधिक अज्ञान
(मति अज्ञान), ध्रुत अज्ञान अने विभङ्गज्ञान (विपरीत ज्ञान) आ त्रलु
अज्ञानोनी साथे, सयोगी, मनोयोगी, वचनयोगी अने काययोगीनी साथे तथा
अयोगीओनी साथे, साकार उपयोगवाला अने अनाकार उपयोगवाला साथे,
सवेदके (स्त्री वेदक, पुरुष वेदक अने नपुंसक वेदक) साथे तथा वेदरहित
लोवानी साथे, सशरीर (औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस अने कर्मण
शरीरवाला) लोवानी साथे अने अशरीर लोवानी साथे, आहार पर्याप्ति,
शरीर पर्याप्ति, इन्द्रिय पर्याप्ति, आनप्राण पर्याप्ति, भाषा पर्याप्ति अने मनः-
पर्याप्ति, आ अथा लोवानी साथे कालनी अपेक्षासे सप्रदेशत्व अने
अप्रदेशत्वनी विचार.

भंगो । अलेसेहिं जीव-सिद्धेहिं त्रियभंगो । मणुएसु छवभंगो ।
सम्मादिद्धिहिं जीवाइओ त्रियभंगो । विगलिदिएसु छवभंगो ।
मिच्छद्विद्धीहिं एगिंदियवज्जो त्रियभंगो । सम्मामिच्छद्विद्धीहिं
छवभंगा । संजएहिं जीवाइओ त्रियभंगो । असंजएहिं एगि-
दियवज्जो त्रियभंगो । संजयासंजएहिं त्रियभंगो जीवाइओ ।
णोसंजय-णोअसंजय-णोसंजयामंजय-जाव सिद्धेहिं त्रियभंगो ।
सकसाईहिं जीवाइओ त्रियभंगो । एगिदिएसु अभंगकं । कोह-
कसाइहिं जीव-एगिंदियवज्जो त्रियभंगो । देवेहिं छवभंगा,
माणकसाई मायाकसाई जीवे गिंदियवज्जो त्रियभंगो । नेरइय-
देवेहिं छवभंगा । लोभकसाईहिं जीव-एगिंदियवज्जो त्रिय-
भंगो । नेरएसु छवभंगा । अकसाई-जीव-मणुएहिं, सिद्धेहिं
त्रियभंगो । ओहियणाणे, अभिणिवोहियणाणे, सुयणाणे, जीवा-
इओ त्रियभंगो । विगलिदिएहिं छवभंगा । ओहिणाणे, मण-
पज्जवणाणे केवलणाणे जीवाइओ त्रियभंगो । ओहिय-अपणाणे,
मइ-अन्नाणे, सुय-अन्नाणे, एगिंदियवज्जो त्रियभंगो । त्रिभंगं
अपणाणे जीवाइओ त्रियभंगो । सजोगी जहा-ओहिओ ।
मणजोगि-वयजोगि-कायजोगिहिं जीवाइओ त्रियभंगो, नवरं-
कायजोगी एगिंदिया, तेसु अभंगयं । अजोगी जहा-अलेस्ता ।
सागरोवउत्त-अणागारोवउत्तेहिं जीव-एगिंदियवज्जो त्रियभंगो ।
सवेयगा य जहा-सकसाई । इत्थिवेयग-पुरिसवेयगं-नपुंसगं-
वेयगेसु जीवाइओ त्रियभंगो, नवरं नपुंसगंवेदे एगिदिएसु

सपएसे अपएसे ? गोयमा ! सिय सपएसे, सिय अपएसे, एत्रं
जाव-सिद्धे । जीवा णं भंते ! कालादेसेणं किं सपएसा, अप-
एसा ? गोयमा ! नियमा सपएसा । नेरइया णं भंते ! काला-
देसेणं किं सपएसा, अपएसा ? गोयमा ! सव्वे त्रि ताव होज्जा
सपएसा, अहवा सपएसा य, अपएसे य, अहवा सपएसा य
अपएसा य, एवं असुरकुमारा जाव थणियकुमारा । पुढवीका-
इया णं भंते ! किं सपएसा, अपएसा ? गोयमा ! सपएसा त्रि,
अपएसा त्रि, एवं जाव-वणस्सकाइया, सेसा जहा नेरइया
तहा, जाव-सिद्धा, आहारगाणं जीव-एगिंदियवज्जो तियभंगो ।
अणाहारगाणं जीवेगिंदियवज्जा छवभंगा एवं भाणियव्वा-
सपएसा १, अपएसा २, अहवा सपएसे य, अपएसेय ३, अहवा
सपएसे य अपएसा य ४, अहवा सपएसा य अपएसे य,
अहवा सपएसा य अपएसा य, सिद्धेहिं तियभंगो । भवसि-
द्धिया, अभवसिद्धिया, जहा-ओहिया । णोभवसिद्धिय-णो-
अभवसिद्धियजीवसिद्धेहिं तियभंगो । सन्नीहिं जीवाइओ
तियभंगो । असन्नीहिं एगिंदियवज्जो तियभंगो । नेरइय-देव-
मणुएहिं छवभंगो । णोसन्नि - णोअसन्नि-जीवमणुयसिद्धेहिं
तियभंगो । सलेसा जहा ओहिया । कणहलेस्सा, नीललेस्सा,
काउलेस्सा जहा आहारओ, नवरं जस्स अत्थि एयाओ । तेउ-
लेस्साए जीवाइओ तियभंगो, नवरं-पुढविककाइएसु, आउव-
णस्सईसु छवभंगा । पम्हलेस्स-सुक्कलेस्साए जीवाइओ तिय-

ગૌતમ ! સ્યાન્ સપ્રદેશઃ, સ્યાદ્ અપ્રદેશઃ । एवं यावत्-सिद्धः । जीवाः खलु भदन्त । कालादेशेन किं सप्रदेशाः, अप्रदेशाः ? गौतम ! नियमात् सप्रदेशाः, नैरपेक्षाः खलु भदन्त । कालादेशेन किं सप्रदेशाः, अप्रदेशाः ? गौतम ! सर्वेऽपि तावद् भवेयुः सप्रदेशाः, अथवा सप्रदेशाश्च अप्रदेशश्च, अथवा सप्रदेशश्च अप्रदेशश्च, एवम् असुरकुमारा यावत्-स्तनितकुमाराः । पृथिवीकायिकाः खलु भदन्त !

પ્રદેશરહિત હૈ ? (ગોયમા) હૈ ગૌતમ ! (સિય સપણસે સિય અપણસે) નારકજીવ કાલકી અપેક્ષાસે કદાચિત્ પ્રદેશસહિત હૈ ઓર કદાચિત્ પ્રદેશરહિત હૈ (एवं जाव सिद्धे) इसी तरह से यावत् सिद्ध भी कदा चित् प्रदेशसहित हैं और कदाचित् प्रदेशरहित हैं । (जीवा णं भंते । कालादेशेणं किं सपणसा अपणसा) हे भदन्त ! समस्त जीव क्या काल की अपेक्षा से प्रदेशरहित हैं कि प्रदेशरहित हैं ? (गोयमा) हे गौतम ! समस्त जीव काल की अपेक्षा से (नियमा) नियम से (सपणसा) प्रदेशसहित हैं । (नेरइया णं भंते ! कालादेशेणं किं सपणसा अपणसा) हे भदन्त ! समस्त नारक जीव काल की अपेक्षा क्या प्रदेशसहित हैं कि प्रदेशरहित हैं ? (गोयमा) हे गौतम ! (सर्वे वि ताव होज्जा सपणसा, अहवा सपणसा य अपणसे, अहवा-सपणसा य अपणसा य एवं असुरकुमारा जाव थणियकुमारा) समस्त नारक जीव भी काल की अपेक्षा प्रदेशसहित हैं । अथवा कितनेक नारक जीव प्रदेशस-

(गोयમા ! સિય સપણસે સિય અપણસે) હૈ ગૌતમ ! નારક જીવ કાળની અપેક્ષાએ ક્યારેક સપ્રદેશી છે અને ક્યારેક અપ્રદેશી છે.

(एवं जाव सिद्धे) એજ પ્રમાણે સિદ્ધ પર્યન્તના જીવ ક્યારેક સપ્રદેશી છે અને ક્યારેક અપ્રદેશી છે.

(जीवाणं भंते ! कालादेशेणं सपणसा अपणसा) હૈ ભદન્ત ! સમસ્ત જીવો કાળની અપેક્ષાએ સપ્રદેશી છે કે અપ્રદેશી છે ?

(गोयमा !) હૈ ગૌતમ ! સમસ્ત જીવો કાળની અપેક્ષાએ (नियमा सपणसे) નિયમથી જ સપ્રદેશી છે.

(नेरइया णं भंते ! कालादेशेणं किं सपणसा अपणसा ?) હૈ ભદન્ત ! સમસ્ત નારક જીવો શું કાળની અપેક્ષાએ પ્રદેશસહિત છે કે પ્રદેશરહિત છે ?

(गोयमा !) હૈ ગૌતમ ! (सर्वे वि ताव होज्जा सपणसा, अहवा सपणसा य अपणसे, अहवा-सपणसा य अपणसाय एवं असुरकुमारा जाव थणियकुमारा) સમસ્ત નારક જીવો પણ કાળની અપેક્ષાએ પ્રદેશસહિત છે. અથવા

अभंगयं । अवेयगा जहा-अकसाई । ससरीरी जहा ओहिओ ।
 ओरालिय-वेउद्वियसरीरेहिं जीव-एगिंदियवज्जो तियभंगो ।
 आहारगसरीर-जीव-मणुपसु छवभंगा । तेयग-कम्मगेहिं जहा
 ओहिया । असरीरेहिं जीव-सिद्धेहिं तियभंगो । आहारपज्जत्तीए,
 सरीरपज्जत्तीए, इंदियपज्जत्तीए आणपाणपज्जत्तीए, जीव-
 एगिंदियवज्जो तियभंगो । भासा-मणपज्जत्तीए जहा सत्ती ।
 आहार-अपज्जत्तीए जहा-अणाहारगा । सरीर-अपज्जत्तीए,
 इंदियअपज्जत्तीए, आणपाण अपज्जत्तीए, जीव-एगिंदिय-
 वज्जो तियभंगो । नेरइय-देव-मणुएहिं छवभंगा ॥ संगहगाहा-
 सपएसा आहारग भविय-सन्नि-लेसा-दिट्ठि-संजय-कसाया ।
 णाणे जोयु-वओगे वेदे य सरीर-पज्जत्ती ॥ सू०? ॥

छाया—जीवः खलु भदन्त । कालादेशेन किं सप्रदेशः, अप्रदेशः, ? गौतम ।
 नियमात् सप्रदेशः नैरयिकः खलु भदन्त । कालादेशेन किं सप्रदेशः, अप्रदेशः ?

जीव के सप्रदेश और अप्रदेश की वक्तव्यता—

‘ जीवे णं भंते ! ’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(जीवे णं भंते ! कालादेशेणं किं सपएसे, अपएसे) हे
 भदन्त ! जीव काल की अपेक्षा से क्या प्रदेशसहित है ? कि प्रदेश-
 रहित है ? (गोयमा) हे गौतम ! (नियमा सपएसे) नियम से जीव
 प्रदेशसहित है । (नेरइयणं भंते ! कालादेशेणं किं सपएसे अपएसे)
 हे भदन्त ! नारक जीव क्या काल की अपेक्षा से प्रदेश सहित है ? कि

अपना सप्रदेशत्व अने अप्रदेशत्वनुं निरूपय—

“ जीवे णं भंते ! इत्यादि—

सूत्रार्थ—(जीवेणं भंते ! कालादेशेणं सपएसे अपएसे ?) हे भदन्त ! शु
 अत्र क्षणनी अपेक्षासे प्रदेशसहित छे के प्रदेशरहित छे ?

(गोयमा । नियमा सपएसे) हे गौतम ! अत्र नियमशी के प्रदेशरहित छे ।

(नेरइयणं भंते ! कालादेशेणं किं सपएसे अपएसे ?) हे भदन्त ! नारक
 अत्र शु क्षणनी अपेक्षासे सप्रदेशी छे के अप्रदेशी छे ?

तन्व्याः-संप्रदेशा वा १, अप्रदेशा वा २, अथवा संप्रदेशश्च अप्रदेशश्च ३, अथवा संप्रदेशश्च अप्रदेशश्च ४, अथवा संप्रदेशश्च अप्रदेशश्च ५, अथवा संप्रदेशश्च अप्रदेशश्च ६ । सिद्धेषु त्रयो भङ्गाः । भवसिद्धिकाः, अभवसिद्धिका यथा औघिकाः । नोभवसिद्धिक-नोत्रभवसिद्धिकजीव-सिद्धयोत्तयो भङ्गाः, सन्निपु जीवादिका-

१, अपणसा वा २, अहवा-सपणसे य अपणसे य ३, अहवा सपणसे य अपणसा ४ अहवा-सपणसा य अपणसे य, अहवा सपणसा य अपणसा य-सिद्धेहिं तिय भंगो, भवसिद्धियां अभवसिद्धिया जहा ओहिया) अनाहारक जीवों के जीव और एकेन्द्रिय को छोड़कर छ भंग इस प्रकार से कहना चाहिये-कितनेक अनाहारक जीव प्रदेशसहित होते हैं (१), कितनेक अनाहारक जीव प्रदेशरहित होते हैं (२) अथवा-कोई एक अनाहारक जीव प्रदेशसहित होता है और कोई एक अनाहारक जीव प्रदेशरहित होता है (३) कोई एक अनाहारक जीव प्रदेशसहित होता है और कितनेक अनाहारक जीव प्रदेशरहित होते हैं (४) कितनेक अनाहारक जीव प्रदेशसहित होते हैं और कोई एक प्रदेशरहित होता है (५) कितनेक अनाहारक जीव प्रदेशसहित होते हैं और कितनेक अनाहारक जीव प्रदेशरहित होते हैं ६ । सिद्ध जीवों के तीन भंग होते हैं । सामान्य जीवों की तरह भवसिद्धिक भव्यजीव और अभव्यसिद्धिक

(३) अहवा-सपणसे य अपणसे य, (४) अहवा-सपणसे य. अपणसा य, (५) अहवा-सपणसा य अपणसे य (६) अहवा-सपणसा य अपणसा य-सिद्धेहिं तिय भंगो, भवसिद्धिया अभवसिद्धिया जहा ओहिया) एव अने एकेन्द्रिय सिवायना अनाहारक एवोना नीचे प्रभाणे ६ भंग समजवा-(१) केटलाक अनाहारक एवो प्रदेशसहित होय छे. (२) केटलाक अनाहारक एवो प्रदेशरहित होय छे. (३) अथवा कौंछक अनाहारक एव प्रदेशसहित होय छे अने कौंछक अनाहारक प्रदेशरहित होय छे. (४) कौंछक अनाहारक एव प्रदेशसहित होय छे अने केटलाक अनाहारक एवो प्रदेशरहित होय छे. (५) केटलाक अनाहारक एवो प्रदेशसहित होय छे अने कौंछक नारक एव प्रदेशरहित होय छे. (६) केटलाक अनाहारक एवो प्रदेशसहित होय छे अने केटलाक अनाहारक एवो प्रदेशरहित होय छे. सिद्ध एवोना त्रयुं भंग (विकल्प) थाय छे. सामान्य एवोनी नोभं भवसिद्धिक (भव्य एव) अने अभवसिद्धिक (अलंघ्य एव) ना विषयभां पणु समजवुं.

કિં સપ્દેશાઃ અપ્દેશાઃ ? ગૌતમ ! સપ્દેશા અપિ, અપ્દેશા અપિ, एवं यावत्-
वनस्पतिकायिकाः, शेषाः यथा नैरयिहास्तथा, यावत्-सिद्धाः । आहारकाणां
जीव-केन्द्रियवर्जलिकमङ्गः । अनाहारकाणां जीविकेन्द्रियवर्जाः पद्मत्रा एवं भणि-

हित हैं और कोई एक नारक जीव प्रदेशरहित हैं अथवा-कितनेक
नारक जीव प्रदेशसहित हैं और कितनेक नारक जीव प्रदेशरहित हैं ।
इसी तरह असुरकुमारों से लेकर यावत् स्तनितकुमारों तक जानना
चाहिये । (पुढवीकाइया णं भंते ! किं सपपसा अपपसा) हे भदन्त !
पृथिवीकायिक जीव क्या प्रदेशसहित हैं कि प्रदेशरहित हैं ? (गोयमा)
हैं गौतम ! (सपपसा वि अपपसा वि) पृथिवीकायिक जीव प्रदेशसहित
भी हैं और प्रदेशरहित भी हैं । (एवं जाव वणस्सइकाइया सेसा जहा
नेरइयां तथा जाव सिद्धा) इसी तरह से यावत् वनस्पतिकायिक तक के
जीवों के विषय में जानना चाहिये । जिस तरह से नैरयिक जीवों के
विषय में कहा है, उसी तरह से सिद्धतक के चाकी के जीवों के विषय
में जानना चाहिये । (आहारगाणं जीव-एगिंदियवज्जो तियभंगो) जीव
और एकेन्द्रियको छोड़कर आहारक जीवों के तीनभंग होते हैं । (अणा-
हारगा णं जीव-एगिंदियवज्जा छवभंगा एवं भाणियव्वा-सपपसा वा

કેટલાક નારક જીવો પ્રદેશસહિત છે અને કેટલાક નારક જીવ પ્રદેશરહિત છે.
અથવા કેટલાક નારક જીવો પ્રદેશસહિત છે અને કેટલાક નારક જીવો પ્રદેશ-
રહિત છે. એજ પ્રમાણે, અસુરકુમારોથી લઈને સ્તનિતકુમારો પર્યન્તના
વિષયમાં સમજવું.

(પુઢવિકાઈયા ણં ભંતે ! કિં સપપસા અપપસા) હે ભદન્ત ! પૃથ્વીકાયિક
જીવો શું પ્રદેશસહિત છે કે પ્રદેશરહિત છે ?

(ગોયમા !) હે ગૌતમ ! (સપપસા વિ અપપસા વિ) પૃથ્વીકાયિક જીવો
પ્રદેશસહિત પણ છે અને પ્રદેશરહિત પણ છે. (एवं जाव वणस्सइकाइया
सेसा जहा नेरइयां तथा, जाव सिद्धा) એજ પ્રમાણે વનસ્પતિકાય સુધીના
જીવો વિષે સમજવું. જે પ્રમાણે નારક જીવોના વિષયમાં કહ્યું છે, એજ
પ્રમાણે સિદ્ધજીવો પર્યન્તના બાકીના વિષયમાં પણ સમજવું.

(આહારગાણં જીવ-એગિંદિયવજ્જો તિયભંગો) જીવ અને એકેન્દ્રિય
સિવાયના આહારક જીવોના ત્રણ ભંગ (વિકલ્પ) થાય છે. (અણાહારગાણં
જીવ-એગિંદિયવજ્જા છવભંગા एवं ભાણિયવ્વા (૧) સપપસા વા, (૨) અપપસા વા,

तन्व्याः-सप्रदेशा वा १, अप्रदेशा वा २, अथवा सप्रदेशश्च अप्रदेशश्च ३, अथवा सप्रदेशश्च अप्रदेशश्च ४, अथवा सप्रदेशश्च अप्रदेशश्च ५, अथवा सप्रदेशश्च अप्रदेशश्च ६ । सिद्धेषु त्रयो भङ्गाः । भवसिद्धिकाः, अभवसिद्धिका यथा औघ्रिहाः । नोभवसिद्धिक-नोअभवसिद्धिकजीव-सिद्धयोत्तयो भङ्गाः, संज्ञिषु जीवादिका-

१; अपएसा वा २, अहवा-सपएसे य अपएसे य ३, अहवा सपएसे य अपएसा ४ अहवा-सपएसा य अपएसे य, अहवा सपएसा य अपएसा य-सिद्धेहिं तिय भंगों, भवसिद्धियां अभवसिद्धियां जहा ओहिया) अनाहारक जीवों के जीव और एकेन्द्रिय को छोड़कर छ भंग इस प्रकार से कहना चाहिये-कितनेक अनाहारक जीव प्रदेशसहित होते हैं (१), कितनेक अनाहारक जीव प्रदेशरहित होते हैं (२) अथवा-कोई एक अनाहारक जीव प्रदेशसहित होता है और कोई एक अनाहारक जीव प्रदेशरहित होता है (३) कोई एक अनाहारक जीव प्रदेशसहित होता है और कितनेक अनाहारक जीव प्रदेशरहित होते हैं (४) कितनेक अनाहारक जीव प्रदेशसहित होते हैं और कोई एक प्रदेशरहित होता है (५) कितनेक अनाहारक जीव प्रदेशसहित होते हैं और कितनेक अनाहारक जीव प्रदेशरहित होते हैं ६ । सिद्ध जीवों के तीन भंग होते हैं । सामान्य जीवों की तरह भवसिद्धिक भव्यजीव और अभव्यसिद्धिक

(३) अहवा-सपएसे य अपएसे य, (४) अहवा-सपएसे य. अपएसा य, (५) अहवा-सपएसा य अपएसे य (६) अहवा-सपएसा य अपएसा य-सिद्धेहिं तिय भंगों, भवसिद्धियां अभवसिद्धियां जहा ओहिया) एव अने एकेन्द्रिय सिवायना अनाहारक एवेना नीचे प्रमाणे ६ भंग समजवा-(१) केटलाक अनाहारक एवेः प्रदेशसहित डोय छे. (२) केटलाक अनाहारक एवेः प्रदेशरहित डोय छे. (३) अथवा कौंछक अनाहारक एव प्रदेशसहित डोय छे अने कौंछक अनाहारक प्रदेशरहित डोय छे. (४) कौंछक अनाहारक एव प्रदेशसहित डोय छे अने केटलाक अनाहारक एवेः प्रदेशरहित डोय छे. (५) केटलाक अनाहारक एवेः प्रदेशसहित डोय छे अने कौंछक नारक एव प्रदेशरहित डोय छे. (६) केटलाक अनाहारक एवेः प्रदेशसहित डोय छे अने केटलाक अनाहारक एवेः प्रदेशरहित डोय छे. सिद्ध एवेना त्रयु भंग (विकल्प) थाय छे. सामान्य एवेनी जेभं लवसिद्धिक (लव्य एव) अने अलवसिद्धिक (अलव्य एव) ना विषयभां पणु समजवु.

स्रगे भद्राः। अरांशुपु एकेन्द्रियवर्जास्रयो भद्राः, नैरयिक-देव-मनुजेषु पद् भद्राः, नोसंज्ञि-नोअसंज्ञि-जीव-मनुजसिद्धेषु प्रयो भद्राः। सलेदया यथा औषिकाः। कृष्णलेदयाः, नीललेदयाः, कापोतलेदयाः, यथा आहारकः, नवरम्-यस्य सन्ति एताः। तेजोलेदयायां जीवादिकास्रयो भद्राः, नवरम्-पृथिवीकायकेषु, भव्-

अभव्यजीव जानना चाहिये (णो भवसिद्धिय णो अभवसिद्धि य जीव सिद्धेहिं तियभंगो) नो भवसिद्धिक नो अभवसिद्धिक, जीव और सिद्धों में तीन भंग होते हैं। (सन्नीहिं जीवाइओ तियभंगो) संज्ञी जीवों में जीवादिक तीन भंग होते हैं। (असन्नीहिं एगिंदियवज्जो तियभंगो) असंज्ञी जीवों में एकेन्द्रिय को छोड़कर तीन भंग होते हैं। (नेरइय-देव-मणुएहिं छवभंगो) नैरयिक देव और मनुष्य में छह भंग होते हैं। (णोसण्णि नोअसन्नि जीवमणुयसिद्धेहिं तियभंगो) नोसंज्ञी, नोअसंज्ञी जीव, मनुष्य और सिद्धों में तीन भंग होते हैं। (सलेसा जहा ओहिया) सामान्य जीवों की तरह लेदया-वाले जीवों को जानना चाहिये। (कण्हेस्सा, नीललेस्सा, काउलेस्सा जहा-आहारओ) कृष्णलेदयावाले, नीललेदयावाले और कापोतलेदया-वाले जीव आहारक जीवों की तरह से जानना चाहिये। (नवरं जस्स अत्थिएयाओ) विशेषता यह है कि जिस जीव के जो लेदया होती हैं उस जीव के उस लेदया को कहना चाहिये। (तेउलेस्साए जीवाइओ

(णो भवसिद्धिय णो अभवसिद्धिय जीवसिद्धेहिं तियभंगो) नो भव-सिद्धिक, नो अभवसिद्धिक अने सिद्ध एवेना तथु भंग थाय छे. (सन्नीहिं जीवाइओ तियभंगो) संज्ञी एवेमां एवादिक तथु भंग थाय छे. (असन्नीहिं एगिंदियवज्जो तियभंगो) एकेन्द्रिय सिवायना असंज्ञी एवेमां तथु भंग थाय छे. (नेरइय, देव, मणुएहिंछवभंगो) नारक देव अने मनुष्यों, मां छ भंग थाय छे. (णोसण्णि णोअसण्णि जीवमणुयसिद्धेहिं तियभंगो) नो, संज्ञी, नो असंज्ञी, एव, मनुष्य अने सिद्धीमां तथु भंग थाय छे. (सलेसा जहा ओहिया) सामान्य एवेनी नेम न् वेस्थावाणा एवेना विषयमां पथु समज्जु. (कण्हेस्सा, नीललेस्सा, काउलेस्सा, जहा आहारओ) कृष्ण वेस्थावाणा, नील वेस्थावाणा अने कापोत वेस्थावाणा एवेना विषयमां आहारक एवे प्रमात्ते समज्जु. (नवरं जस्स अत्थिएयाओ) पथु तेमां छोटवी न विशेषता छे के ने एवनी ने वेस्था डाय छे, ते एवनी ते वेस्था

વનસ્પતિષુ પદ્ મહ્નાઃ । પદ્મલેશ્ય-શુકલલેશ્યયોઃ જીવાદિકાશ્ચયો મહ્નાઃ ।
 અલેશ્યેષુ જીવસિદ્ધેષુ ત્રયો મહ્નાઃ । મનુજેષુ પદ્મમહ્નાઃ । સમ્યગ્દષ્ટિષુ જીવા-
 દિકાશ્ચયો મહ્નાઃ । વિકલેન્દ્રિયેષુ પદ્મમહ્નાઃ । મિથ્યાદષ્ટિષુ એકેન્દ્રિયવર્જાશ્ચયો
 મહ્નાઃ, સમ્યગ્મિથ્યાદષ્ટિષુ પદ્ મહ્નાઃ । સંપતેષુ જીવાદિકાશ્ચયો મહ્નાઃ । અસંપતેષુ
 એકેન્દ્રિયવર્જાશ્ચયો મહ્નાઃ । સયતાઽસંપતેષુ ત્રયો મહ્ના જીવાદિકાઃ । નોસંયત-

તિયમંગો, નવરં-પુદ્ગલિકાણસુ આઠ-વળસ્સઈસુ છઠ્ઠમંગા) તેજોલેશ્યા મેં
 જીવાદિક ત્રીન મંગ હોતે હેં એસા જાનના ચાહિયે । નવરં-વિશેષતા
 યહ હેં કિ પૃથિવીકાયિકાં મેં, અપ્કાયિકાં મેં ઓર વનસ્પતિ કાયિકાં મેં
 છહ મંગ હોતે હેં । (પમ્હલેસ સુકલેસાણ જીવાઈઓ તિયમંગો) પદ્મ-
 લેશ્યા મેં ઓર શુકલલેશ્યા મેં જીવાદિક ત્રીન મંગ હોતે હેં । (અલેસેહિં
 જીવ સિદ્ધેહિં તિયમંગો) લેશ્યા સે રહિત અલેશ્યાવાલોં મેં જીવ ઓર
 સિદ્ધોં મેં ત્રીન મંગ હોતે હેં । (મણુણસુ છઠ્ઠમંગા) મનુષ્યોં મેં છહ મંગ
 હોતે હેં । (સમ્મદિદ્દીહિં જીવાઈઓ તિયમંગો) સમ્યક્ દષ્ટિયોં મેં જીવા-
 દિક ત્રીન મંગ હોતે હેં । (વિગલિંદિણસુ છઠ્ઠમંગા) વિકલેન્દ્રિય જીવોં
 મેં છહ મંગ હોતે હેં । (મિચ્છાદિદ્દીહિં ઇર્ગિદિયવજ્જો તિયમંગો) મિથ્યા-
 દષ્ટિયોં મેં એકેન્દ્રિય કો છોડકર ત્રીન મંગ હોતે હેં । (સમ્મામિચ્છ-
 દિદ્દીહિં છઠ્ઠમંગા) સમ્યક્મિથ્યાદષ્ટિ જીવોં મેં છહ મંગ હોતે હેં ।
 (સંજપહિં જીવાઈઓ તિયમંગો) સંપતોં મેં જીવાદિક ત્રીન મંગ હોતે
 હેં । (અસંજપહિં ઇર્ગિદિયવજ્જો તિયમંગો) અસંયત જીવોં મેં એકેન્દ્રિય

કહેવી નેકહે. (તેડલેસાણ જીવ ઈઓ તિયમંગો, નવરં પુદ્ગલિકાણસુ આઠ-
 વળસ્સઈસુ છઠ્ઠમંગા) તેજોલેશ્યામાં જીવાદિક ત્રણ ભંગ થાય છે એમ સમજવું.
 પણ તેમાં એ વિશેષતા છે કે પૃથિવકાયિકામાં, અપ્કાયિકામાં અને વનસ્પતિ
 કાયિકામાં છ ભંગ થાય છે. (પમ્હલેસ સુકલેસાણ જીવાઈઓ તિયમંગો)
 પદ્મ લેશ્યામાં અને શુકલ લેશ્યામાં જીવાદિક ત્રણ ભંગ થાય છે. (અલેસેહિં
 જીવ-સિદ્ધેહિં તિયમંગો) અલેશ્યાવાળામાં (લેશ્યાથી રહિત જીવોમાં) જીવ
 અને સિદ્ધોમાં ત્રણ ભંગ થાય છે. (મણુણસુ છઠ્ઠમંગા) મનુષ્યોમાં છ ભંગ
 થાય છે. (સમ્મદિદ્દીહિં જીવાઈઓ તિયમંગો) સમ્યક્દષ્ટિ જીવોમાં જીવાદિક
 ત્રણ ભંગ થાય છે (વિગલિંદિણસુ છઠ્ઠમંગા) વિકલેન્દ્રિય જીવોમાં છ ભંગ
 થાય છે. (મિચ્છાદિદ્દીહિં ઇર્ગિદિયવજ્જો તિયમંગો) એકેન્દ્રિય સિવાયના મિથ્યા-
 દષ્ટિઓમાં ત્રણ ભંગ થાય છે. (સમ્મામિચ્છદિદ્દીહિં છઠ્ઠમંગો) સમ્યક્ મિથ્યા-
 દષ્ટિ જીવોમાં છ ભંગ થાય છે. (સંજપહિં જીવાઈઓ તિયમંગો) સંયતોમાં

નોસંયત-નો સંયતાસંયત-જીવ-સિદ્ધેષુ પ્રયોમદ્વાઃ । સક્રપાયિષુ ત્રીવાદિકા-
સુયો મદ્વાઃ । એકેન્દ્રિયેષુ મમદ્મરુપ્ । ક્રોધરૂપાયિષુ ત્રીવૈકેન્દ્રિયવર્જાયો મદ્વાઃ ।
દેવેષુ પદ્ મદ્વાઃ । માનરૂપાયિ માયારૂપાયિષુ ત્રીવૈકેન્દ્રિયવર્જાયો મદ્વાઃ, નૈરયિક-
દેવેષુ પદ્ મદ્વાઃ । લોમરૂપાયિષુ ત્રીવૈકેન્દ્રિયવર્જાયો મદ્વાઃ, નૈરયિકેષુ પદ્ મદ્વાઃ ।

વર્જ ત્રીન ભંગ હોતે હિં (સંજયા સંજર્ણિં તિયમંગો જીવાઈઓ) સંય-
તાસંયત જીવોં મેં જીવાદિક ત્રીન ભંગ હોતે હિં । (જો સંજય જો અસંજય
જો સંજયાસંજય જીવસિદ્ધેહિં તિયમંગો) નો સંયત નો અસંયત નો
સંયતાસંયત જીવસિદ્ધોં મેં, ત્રીન ભંગ હોતે હિં । (સકસાઈહિં જીવાઈઓ
તિયમંગો) કપાય સહિત છુપ જીવોં મેં જીવાદિક ત્રીન ભંગ હોતે હિં ।
(ઈર્ગિદિપસુ અમંગકં) એકેન્દ્રિય જીવોં મેં એક ભંગ હોતા હૈ-ત્રીનભંગ
નહીં હોતે । (કોહકસાઈહિં જીવ-ઈર્ગિદિયવજ્જો તિયમંગો) ક્રોધ કપા-
યવાલોં મેં જીવ ઓર એકેન્દ્રિય કો છોડકર ત્રીન ભંગ હોતે હિં । (દેવેહિં
છવમંગો) દેવોં મેં છહ ભંગ હોતે હિં । (માળકસાઈ માયાકસાઈ જીવ
ઈર્ગિદિયવજ્જો તિયમંગો) માનકપાયવાલોં મેં માયારૂપાયવાલોં મેં જીવ
ઓર એકેન્દ્રિય કો છોડકર ત્રીનભંગ હોતે હિં । (નેરહ્ય-દેવેહિં છવમંગા)
નારક ઓર દેવોં મેં છહ ભંગ હોતે હિં । (લોમકસાઈહિં જીવ-ઈર્ગિદિય-
વજ્જો તિયમંગો) લોમકપાયવાલોં મેં જીવ ઓર એકેન્દ્રિય કો છોડકર
ત્રીન ભંગ હોતે હિં । (નેરપસુ છવમંગા) નારકોં મેં છહ ભંગ હોતે હિં

અવાદિક ત્રણ ભંગ થાય છે. (અસંજર્ણિં ઈર્ગિદિયવજ્જો તિયમંગો) અસંયત
અવેમાં એકેન્દ્રિય વર્જિત ત્રણ ભંગ થાય છે. (સંજયા સંજર્ણિં તિયમંગો
જીવાઈઓ) સંયતાસંયત અવેમાં અવાદિક ત્રણ ભંગ થાય છે. (જો સંજય,
જો અસંજય, જો સંજયાસંજય જીવ સિદ્ધેહિં તિયમંગો નો સંયત, નો અસંયત,
નો સંયતાસંયત અવસિદ્ધોમાં ત્રણ ભંગ થાય છે. (સકસાઈહિં જીવાઈઓ
તિયમંગો) કપાયયુક્ત અવેમાં અવાદિક ત્રણ ભંગ થાય છે. (ઈર્ગિદિપસુ
અમંગકં) એકેન્દ્રિય અવેમાં એક ભંગ થાય છે-ત્રણ ભંગ થતા નથી. (કોહ-
કસાઈહિં જીવ-ઈર્ગિદિયવજ્જો તિયમંગો). અને એકેન્દ્રિય સિવાયના ક્રોધ,
કપાયવાળા અવેમાં ત્રણ ભંગ થાય . . .

(દેવેહિં છવમંગો) દેવોમાં છ ભંગ થાય છે. (માળકસાઈ માયાકસાઈ જીવ
ઈર્ગિદિયવજ્જો તિયમંગો) માન કપાયવાળામાં અને માયા કપાયવાળામાં અવ
અને એકેન્દ્રિય વર્જિત ત્રણ ભંગ થાય છે. (નેરહ્ય-દેવેહિં છવમંગા) નારક
અને દેવોમાં છ ભંગ થાય છે. (લોમકસાઈહિં જીવ-ઈર્ગિદિયવજ્જો તિયમંગો)
અવ અને એકેન્દ્રિય સિવાયના લોલકપાયવાળા અવેમાં ત્રણ ભંગ થાય છે.

અકુશાપિ-જીવ-મનુજેપુ સિદ્ધેપુ ત્રયો મદ્નાઃ । ઓધિકજ્ઞાને, આમિનિવોધિક-જ્ઞાને, શ્રુતજ્ઞાને જીવાદિકાસ્ત્રયો મદ્નાઃ । વિકલેન્દ્રિયેપુ પદ્ મદ્નાઃ । અવધિજ્ઞાને, મનઃપર્યવજ્ઞાને કેવલજ્ઞાને જીવાદિકાસ્ત્રયો મદ્નાઃ । ઓધિકાજ્ઞાને, મત્યજ્ઞાને, શ્રુતાજ્ઞાને એકેન્દ્રિયવર્જાસ્ત્રયો મદ્નાઃ । વિમદ્નાજ્ઞાને જીવાદિકાસ્ત્રયો મદ્નાઃ । સયોગી-પથા ઔધિકઃ । મનોયોગિ-વચોયોગિ-કાયયોગિપુ જીવાદિકાસ્ત્રયો મદ્નાઃ, નવ-

(અકસાઈ-જીવ-મણુપરિહિં સિદ્ધેહિં તિયમંગો) કપાયરહિત જીવોં મેં મનુષ્યોં મેં ઓર સિદ્ધોં મેં તીન મંગ હોતે હેં । (ઓહિયણાણે-અમિણિ-વોહિયણાણે સુચણાણે જીવાઈઓ તિયમંગો) ઔધિક જ્ઞાન મેં, આમિ-નિવોધિક જ્ઞાન મેં, શ્રુતજ્ઞાન મેં જીવાદિક તીન મંગ હોતે હેં । (વિગ-લિંદિપરિહિં છઠમંગા) વિકલેન્દ્રિયોં મેં છહ મંગ હોતે હેં । (ઓહિયાણે મણવજ્ઞવણાણે, કેવલણાણે જીવાઈઓ તિયમંગો) ઔધિક જ્ઞાનમેં મનઃ-પર્યય જ્ઞાન મેં, કેવલ જ્ઞાન મેં જીવાદિક તીન મંગ હોતે હેં । (ઓહિય અણાણે મદ્ અન્નાણે, સુચ અન્નાણે, ઇમિંદિયવજ્જો તિયમંગો) ઔધિક અજ્ઞાન મેં, મતિ અજ્ઞાન શ્રુત અજ્ઞાન મેં એકેન્દ્રિય વર્જ તીન મંગ હોતે હેં । (વિમંગ અણાણે જીવાઈઓ તિયમંગો) વિમંગ જ્ઞાન મેં જીવાદિક તીન મંગ હોતે હેં । (સજોગી જહા ઓહિઓ) ઔધિક કી તરહ સયોગી હોતે હેં । (મણ-જોગિ-વચજોગિ-કાયજોગિહિં જીવાઈઓ તિયમંગો) મનોયોગી મેં, વચનયોગી મેં ઓર કાયયોગી મેં જીવાદિક તીન મંગ

(નેરૂપસુ છઠમંગા) અને નારકોમાં છ ભંગ થાય છે. (અકસાઈ જીવમણુ-પરિહિં, સિદ્ધેહિં તિયમંગો) કપાય રહિત જીવોમાં, મનુષ્યોમાં અને સિદ્ધોમાં ત્રણ ભંગ થાય છે. (ઓહિયાણે આમિણિવોહિયાણે સુચણાણે જીવાઈઓ તિય-મંગો) ઔધિક જ્ઞાનમાં-આમિણિવોધિક જ્ઞાનમાં અને શ્રુતજ્ઞાનમાં જીવાદિક ત્રણ ભંગ થાય છે, (વિગલિંદિપરિહિં છઠમંગા) વિકલેન્દ્રિયોમાં છ ભંગ થાય છે. (ઓહિયાણે મણવજ્ઞવણાણે, કેવલજ્ઞાણે જીવાઈઓ તિયમંગો) ઔધિક જ્ઞાનમાં, મનઃપર્યય જ્ઞાનમાં અને કેવલ જ્ઞાનમાં જીવાદિક ત્રણ ભંગ થાય છે. (ઓહિય અણાણે મદ્અણાણે સુચઅણાણે, ઇમિંદિયવજ્જો તિયમંગો) ઔધિક અજ્ઞા-નમાં, મતિ અજ્ઞાનમાં અને શ્રુત અજ્ઞાનમાં એકેન્દ્રિય વર્જિત ત્રણ ભંગ થાય છે. (વિમંગઅણાણે જીવાઈઓ તિયમંગો) વિમંગજ્ઞાનમાં જીવાદિક ત્રણ ભંગ થાય છે. (સજોગી જહા ઓહિઓ) ઔધિકની જેમ સયોગીના વિષયમાં અમંગુ. (મણજોગિ, વચજોગિ, કાયજોગિહિં જીવાઈઓ તિયમંગો) મનોયોગી,

નો અસંયત-નો સંયતાસંયત-ત્રીવ-સિદ્ધેષુ ત્રયો મદ્દાઃ । સકળાણિષુ ત્રીવાદિકા-
 સ્ત્રયો મદ્દાઃ । એકેન્દ્રિયેષુ ત્રયમદ્દરુમ્ । ક્રોધકળાણિષુ ત્રીવકેન્દ્રિયવર્જાસ્ત્રયો મદ્દાઃ ।
 દેવેષુ પદ્મદ્દાઃ । માનકળાણિ માયાકળાણિષુ ત્રીવકેન્દ્રિયવર્જાસ્ત્રયો મદ્દાઃ, નૈરયિક-
 દેવેષુ પદ્મદ્દાઃ । લોભકળાણિષુ ત્રીવકેન્દ્રિયવર્જાસ્ત્રયો મદ્દાઃ, નૈરયિકેષુ પદ્મદ્દાઃ ।

વર્જ ત્રીન ભંગ હોતે હિં (સંજયા સંજર્ણિં તિયમંગો જીવાઈઓ) સંય-
 તાસંયત જીવોં મેં જીવાદિક ત્રીન ભંગ હોતે હિં) (નો સંજય નો અસંજય
 નો સંજયાસંજય જીવસિદ્ધેહિં તિયમંગો) નો સંયત નો અસંયત નો
 સંયતાસંયત જીવસિદ્ધોં મેં, ત્રીન ભંગ હોતે હિં । (સકસાઈહિં જીવાઈઓ
 તિયમંગો) કળાણ સહિત છુણ જીવોં મેં જીવાદિક ત્રીન ભંગ હોતે હિં ।
 (ઇગિંદિણસુ અમંગકં) એકેન્દ્રિય જીવોં મેં એક ભંગ હોતા હૈ-ત્રીનમંગ
 નહોં હોતે । (કોહકસાઈહિં જીવ-ઇગિંદિયવજ્જો તિયમંગો) ક્રોધ કળા-
 યવાલોં મેં જીવ ઓર એકેન્દ્રિય કો છોડકર ત્રીન ભંગ હોતે હિં । (દેવેહિં
 છઞમંગો) દેવોં મેં છહ ભંગ હોતે હિં । (માળકસાઈ માયાકસાઈ જીવ
 ઇગિંદિયવજ્જો તિયમંગો) માનકળાણવાલોં મેં માયાકળાણવાલોં મેં જીવ
 ઓર એકેન્દ્રિય-કો છોડકર ત્રીનમંગ હોતે હિં । (નેરહ્ય-દેવેહિં છઞમંગા)
 નારક ઓર દેવોં મેં છહ ભંગ હોતે હિં । (લોભકસાઈહિં જીવ-ઇગિંદિય-
 વજ્જો તિયમંગો) લોભકળાણવાલોં મેં જીવ ઓર એકેન્દ્રિય કો છોડકર
 ત્રીન ભંગ હોતે હિં । (નેરણસુ છઞમંગા) નારકોં મેં છહ ભંગ હોતે હિં

અવાદિક ત્રણ ભંગ થાય છે. (અસંજર્ણિં ઇગિંદિયવજ્જો તિયમંગો) અસંયત
 અવોમાં એકેન્દ્રિય વર્જિત ત્રણ ભંગ થાય છે. (સંજયા સંજર્ણિં તિયમંગો
 જીવાઈઓ) સંયતાસંયત અવોમાં અવાદિક ત્રણ ભંગ થાય છે. (નો સંજય,
 નો અસંજય, નો સંજયાસંજય જીવ સિદ્ધેહિં તિયમંગો નો સંયત, નો અસંયત,
 નો સંયતાસંયત અવસિદ્ધોમાં ત્રણ ભંગ થાય છે. (સકસાઈહિં જીવાઈઓ
 તિયમંગો) કળાણયુક્ત અવોમાં અવાદિક ત્રણ ભંગ થાય છે. (ઇગિંદિણસુ
 અમંગકં) એકેન્દ્રિય અવોમાં એક ભંગ થાય છે-ત્રણ ભંગ થતા નથી. (કોહ-
 કસાઈહિં જીવ-ઇગિંદિયવજ્જો તિયમંગો). અને એકેન્દ્રિય સિવાયના ક્રોધ,
 કળાણવાળા અવોમાં ત્રણ ભંગ થાય

(દેવેહિં છઞમંગો) દેવોમાં છ ભંગ થાય છે. (માળકસાઈ માયાકસાઈ જીવ-
 ઇગિંદિયવજ્જો તિયમંગો) માન કળાણવાળામાં અને માયા કળાણવાળામાં અવ,
 અને એકેન્દ્રિય વર્જિત ત્રણ ભંગ થાય છે. (નેરહ્ય-દેવેહિં છઞમંગા) નારક
 અને દેવોમાં છ ભંગ થાય છે. (લોભકસાઈહિં જીવ-ઇગિંદિયવજ્જો તિયમંગો)
 અવ અને એકેન્દ્રિય સિવાયના લોભકળાણવાળા અવોમાં ત્રણ ભંગ થાય છે;

શરીર-જીવ-મનુજેપુ પઢ્ મદ્ધાઃ । તૈજસ-કાર્મણેપુ યથોઘિકાઃ । અશરીરેપુ જીવ-
સિદ્ધેપુ પ્રવો મદ્ધાઃ । આહારપર્યાપ્તો, શરીરપર્યાપ્તો, ઇન્દ્રિયપર્યાપ્તો, આનમાણ-
પર્યાપ્તો, જીવકેન્દ્રિયવર્જાસ્ત્રયો મદ્ધાઃ । મયામનઃપર્યાપ્તો યથા સંતી । આહારાઽ-
પર્યાપ્તો યથા અનાહારકાઃ । શરીરાપર્યાપ્તો, ઇન્દ્રિયાપર્યાપ્તો, આન-માણાઽપર્યાપ્તો
જીવકેન્દ્રિયવર્જાસ્ત્રયોમદ્ધાઃ । નૈરયિક-દેવ-મનુજેપુ પઢ્ મદ્ધાઃ । સંપ્રદગ્ધાથા—

રીરી જહા ઓહિઓ) સામાન્ય જીવ કી तरह શરીરવાલે જીવો કો
જાનના ચાહિયે । (ઓરાલિય-વેઝવિય-સરીરેહિં જીવ ઇન્દિયવજ્જો
તિયમંગો) ઔદારિક શરીરવાલોં મેં વૈક્રિય શરીરવાલોં મેં જીવ ઇકેન્દ્રિય
કો છોઢકરં તીનમંગ હોતે હિં (આહારગસરીર જીવ મણુણુ છબમંગા)
આહાર શરીર મેં, જીવ ઓર મનુપ્યોં મેં છહ મંગ હોતે હિં । (તેયગકમ્મ-
મેહિં જહા ઓહિયા) ઔવિક કી तरह તૈજસ ઓર કાર્મણ શરીરવાલોં
કો જાનના ચાહિયે । (અસરીરેહિં જીવ સિદ્ધેહિં તિયમંગો) અશરીરી
જીવ ઓર સિદ્ધોં મેં તીન મંગ હોતે હિં । (આહારપજ્જત્તીણ, સરીરપજ્જ-
ત્તીણ, ઇન્દિયપજ્જત્તીણ, આણપાણપજ્જત્તીણ જીવ ઇન્દિયવજ્જો
તિયમંગો) આહારપર્યાપ્તિ મેં, શરીરપર્યાપ્તિ મેં, ઇન્દ્રિયપર્યાપ્તિ મેં, શ્વાસો-
ચ્છ્વાસપર્યાપ્તિ મેં, જીવ ઓર ઇકેન્દ્રિય કો છોઢકર તીન મંગ હોતે હિં ।
(ભાસામણપજ્જત્તીણ જહા સન્ની) ભાપાપર્યાપ્તિ મેં ઓર મનઃપર્યાપ્તિ
મેં સંજી કી तरह જાનના ચાહિયે । (આહાર અપજ્જત્તીણ જહા અણા-
હારગા) અનાહારક જીવોં કી तरह આહાર અપર્યાપ્તિવાલે જીવોં

જહા ઓહિઓ) શરીરવાળા જીવોના વિષયમાં સામાન્ય જીવોના કથન પ્રમા
ણેનું જ કથન સમજવું. (ઓરાલિય-વેઝવિય-સરીરેહિં જીવ ઇન્દિયવજ્જો
તિયમંગો) ઔદારિક શરીરવાળામાં અને વૈક્રિય શરીરવાળામાં જીવ એકેન્દ્રિય
વર્જિત ત્રણ ભાગ થાય છે. (આહારગસરીર જીવ મણુણુ છબમંગા) આહારક
શરીરમાં, જીવ અને મનુષ્યના છ ભાગ થાય છે. (તેયગકમ્મમેહિં જહા ઓહિયા)
તૈજસ અને કાર્મણ શરીરવાળા જીવોના વિષયમાં ઔઘિકના જેવું જ કથન
સમજવું. (અસરીરેહિં જીવ સિદ્ધેહિં તિયમંગો) અશરીરી જીવ અને સિદ્ધોમાં
ત્રણ ભાગ થાય છે. (આહાર પજ્જત્તીણ, સરીરપજ્જત્તીણ, ઇન્દિયપજ્જત્તીણ, આણ-
પાણપજ્જત્તીણ જીવ ઇન્દિયવજ્જો તિયમંગો) આહાર પર્યાપ્તિમાં, શરીર પર્યા-
પ્તિમાં, ઇન્દ્રિય પર્યાપ્તિમાં અને શ્વાસોચ્છ્વાસ પર્યાપ્તિમાં જીવ અને એકેન્દ્રિય
વર્જિત ત્રણ ભાગ થાય છે. (ભાસામણપજ્જત્તીણ જહા સન્ની) ભાપા પર્યાપ્તિમાં
અને મના પર્યાપ્તિમાં સંજી પ્રમાણે જ સમજવું. (આહાર અપજ્જત્તીણ જહા
અણાહારગા) આહાર અપર્યાપ્તિવાળા જીવોના વિષયમાં અનાહારક જીવો

રમ્-કાયયોગિનઃ એકેન્દ્રિયાસ્તેષુ અમદ્ગમ્ । અયોગિનો યથા અલેશ્યાઃ । સાકારોપયુક્તાઽનાકારોપયુક્તેષુ જીવૈકેન્દ્રિયવર્જાદ્યયો મદ્ગાઃ । સવેદકાષ્ટ્ર યથા સક્ષ્યા-
યિણઃ । સ્ત્રીવેદક-પુરુષવેદક-નપુંસકવેદકેષુ જીવાદિકાસ્યયો મદ્ગાઃ । નવરમ્-
નપુંસકવેદકે એકેન્દ્રિયેષુ અમદ્ગમ્ । અવેદકા યથા અરુપાયિણઃ । સસરીરી
યથા ઔઘિકાઃ । ઔદારિક-વૈક્રિયસરીરેષુ જીવૈકેન્દ્રિયવર્જાદ્યયો મદ્ગાઃ । આદારક

હોતે હું । (નવરં-કાયજોગી ઈન્દ્રિયા તેસુ અમંગયં) વિશેષતા યહ હૈ
કિ એકેન્દ્રિય જીવ કાયયોગવાલે હોતે હું-ફસલિયે ડનમેં અધિક ભંગ
નહીં હોતે હું-એક ભંગ હોતા હૈ । (અજોગી જહા અલેસા) જૈસે અલે-
શ્યાવાલે જીવ કહે ગયે હું વૈસે હી અયોગી જીવ જાનના ષાહિયે ।
(સાગરોવડત્ત-અળાગારોવડત્તેહિં જીવ ઈન્દ્રિયવજ્જો તિયમંગો)
સાકારોપયુક્ત અનાકારોપયુક્ત જીવોં મેં જીવ એકેન્દ્રિય કો છોડકર ત્રીન
ભંગ હોતે હું । (સવેયગા ય જહા સકસાઈ) કપાયવાલે જીવોં કી તરહ
વેદવાલે જીવોં કો જાનના ષાહિયે । (ઈત્થિવેયગ-પુરિસવેયગ-નપુંસગ-
વેયગેસુ જીવાઈઓ તિયમંગો) સ્ત્રીવેદકોં મેં, પુરુષવેદકોં મેં ઓર નપું-
સકવેદકોં મેં જીવાદિક ત્રીન ભંગ હોતે હું । (નવરં-નપુંસગવેદે ઈન્દ્રિયસુ
અમંગયં) વિશેષતા યહ હૈ કિ નપુંસક વેદ મેં, એકેન્દ્રિય મે અધિક
ભંગ નહીં હોતે હું-કિન્તુ એક ભંગ હોતા હૈ (અવેયગા જહા અકસાઈ)
જૈસે કપાયરહિત જીવ હોતે હું વૈસે હી વેદરહિત જીવ હોતે હું । (સસ-

વચનયોગી અને કાયયોગીમાં જીવાદિક ત્રણ ભંગ થાય છે (નવરં-કાયજોગી
ઈન્દ્રિયા તેસુ અમંગયં) વિશેષતા એટલી જ છે કે એકેન્દ્રિય જીવ કાયયોગ-
વાળા જ હોય છે, તેથી તેમાં એક જ ભંગ થાય છે, વધારે ભંગ થતા નથી.
(અજોગી જહા અલેસા) અયોગી જીવના વિષયમાં અલેશ્યાવાળા જીવો પ્રમા-
ણે જ સમજવું. (સાગરોવડત્ત, અળાગારોવડત્તેહિં જીવ ઈન્દ્રિયવજ્જો તિયમંગો)
સાકાર ઉપયોગવાળા અને અનાકાર ઉપયોગવાળા જીવોમાં જીવ એકેન્દ્રિય
વર્જિત ત્રણ ભંગ થાય છે (સવેયગા ય જહા સકસાઈ) વેદવાળા જીવોમાં
વિષયમાં કપાયયુક્ત જીવો પ્રમાણે જ સમજવું. (ઈત્થિવેયગ-પુરિસવેયગ-નપું-
સગવેયગેસુ જીવાઈઓ તિયમંગો) સ્ત્રી વેદવાળા, પુરુષ વેદવાળા અને નપુંસક
વેદવાળા જીવોમાં જીવાદિક ત્રણ ભંગ થાય છે. (નવરં-નપુંસગવેદે ઈન્દ્રિયસુ
અમંગયં) તેમાં એટલી જ વિશેષતા છે કે નપુંસક વેદવાળા એકેન્દ્રિયમાં અધિક
ભંગ થતા નથી, પણ એક જ ભંગ થાય છે. (અવેયગા જહા અકસાઈ)
વેદરહિત જીવોના વિષયમાં કપાય રહિત જીવો પ્રમાણે જ સમજવું. (સસરીરી

સહિતઃ ? અથવા અપ્રદેશઃ પ્રદેશરહિતો ભવતિ ? । મગવાનાહ—' ગોયમા ! નિયમા સપણ્સે ' હે ગૌતમ ! જીવઃ કાલાપેક્ષયા નિયમાત્-નિયમતઃ સપ્રદેશઃ પ્રદેશસહિતો ભવતિ, જીવસ્થાનાદિતયા અનન્તસમયસ્થિતિકત્વેન સપ્રદેશત્વ નિયમાત્, તથા ચ યઃ એકસમયસ્થિતિકઃ સ એવ અપ્રદેશઃ, દ્વયાદિસમયસ્થિતિ-કસ્તુ સપ્રદેશ એવ ભવતીતિ કલિતમ્ । ઉક્તચ્ચ—

ફર રહે હૈં—इसमें गौतम ने प्रश्नसे ऐसा पूछा 'जीवे णं भंते! काला-
देसेणं किं सपणसे अपणसे?) हे भदन्त । जीव काल की अपेक्षा से
यया प्रदेशसहित है कि प्रदेशरहित है ? भगवान् इस प्रश्न का उत्तर
देते हुए गौतम से कहते हैं कि—(गोयमा) हे गौतम । जीव (नियमा
सपणसे) नियम से प्रदेश सहित है, तात्पर्य कहने का यह है कि
जब काल की अपेक्षा लेकर जीव के प्रदेशसहित और प्रदेश
रहित होने का विचार किया जाता है तो वह नियम से काल की
अपेक्षा प्रदेशसहित ही है, प्रदेशरहित नहीं है यही बात सिद्ध होती
है । कारण कि जीव अनादि काल का है और अनन्तसमय की उसकी
स्थिति है, इसलिये वह सप्रदेश है जो ऐसा नहीं होता है—अर्थात् जो
एकसमय की स्थितिवाला होता है, वही काल की अपेक्षा प्रदेशरहित
अप्रदेश— होता है । दो आदि समय की स्थितिवाला नहीं क्योंकि जो
दो आदि समय की स्थितिवाला होता है वह काल की अपेक्षा प्रदेश
सहित ही होता है । कहा भी है—“ जो जस्स ” इत्यादि ।

સ્વામી મહાવીર પ્રભુને એવો પ્રશ્ન પૂછે છે કે “ જીવેણં મંતે ! કાલાદેસેણં
કિં સપણ્સે અપણ્સે ! ” હે ભદન્ત ! શું કાળની અપેક્ષાએ એવ પ્રદેશ સહિત
છે કે પ્રદેશ રહિત છે ?

ઉત્તર—(ગોયમા !) હે ગૌતમ ! એવ (નિયમા સપણ્સે) નિયમથી જ
પ્રદેશ સહિત છે. કહેવાનું તાત્પર્ય એ છે કે જો કાળની અપેક્ષાએ એવના
સપ્રદેશત્વ અને અપ્રદેશત્વનો વિચાર કરવામાં આવે, તો તે નિયમથી જ
કાળની અપેક્ષાએ પ્રદેશ સહિત છે, પ્રદેશ રહિત નથી એ વાત સિદ્ધ થાય
છે. કારણ કે એવ અનાદિ કાળનો છે અને અનંત સમયની તેની સ્થિતિ છે,
તે કારણે તે પ્રદેશ સહિત છે. જો એવ એવો ન હોય—એટલે કે જો તે એક
સમયની સ્થિતિવાળો હોય તો તે પ્રદેશ રહિત હોઈ શકે છે. એ ત્રણ આદિ
સમયની સ્થિતિવાળો એવ અપ્રદેશી હોતો નથી, કારણ કે એ આદિ સમયની
સ્થિતિવાળો તો કાળની અપેક્ષાએ પ્રદેશયુક્ત જ હોય છે. કહ્યું પણ છે કે—

“ જો જસ્સ ” ઇત્યાદિ

સપ્રદેશા આહારક-ભવ્ય-સંત્તિ-લેશ્યા-દૃષ્ટિ-સંયત-કપાયાઃ, જ્ઞાનં યોગો-
પયોગી વેદથ શરીરપર્યાસિઃ ॥ ૬૦ ॥

તૃતીયોદ્દેશકે જીવઃ પ્રરુપિતઃ, અથ ચતુર્થોદ્દેશકેઽપિ તમેવ પ્રકારાન્તરેણા-
'જીવે ણં મંતે' इत्यादि ।

ટીકા—'જીવે ણં મંતે । કાન્ઢાદેસેણં કિં સપ્રદેસે, મપ્રદેસે ?' ગૌતમઃ
પૃચ્છતિ-દે મદન્ત ! જીવઃ સ્વલુ કાલાદેશેન કાન્ઢાપેશ્યા કિમ્ સપ્રદેશઃ-પ્રવેશ-

કો જાનના ચાહિયે । (સરીર અપજ્જત્તીણ, ઇન્દિય અપજ્જત્તીણ આણપાણ
અપજ્જત્તીણ જીવ ણમિન્દિયવજ્જો તિયમંગો) શરીરપર્યાસિ સે રહિત,
ઇન્દ્રિયપર્યાસિ સે રહિત, શ્વાસોચ્છ્વાસપર્યાસિ સે રહિત જીવોં મેં જીવ
ઔર ણકેન્દ્રિય કો છોદ્ધકર તીન મંગ હોતે હેં । (નેરહ્ય-દેવ-મણુણ્હિ
છમંગા) નેરયિક, દેવ ઔર મનુષ્યોં મેં છહમંગ હોતે હેં । સમ્રહ ગાથા

સપ્રદેસા આહારગ ભવિય-સન્નિ-લેસા-દિટ્ઠિ-સંજય-કસાયા ।

જાણે જોગુ-વઓગે વેદેય સરીર-પજ્જત્તી ॥ ૧ ॥

સપ્રદેશ, આહારક, ભવ્ય, સંત્તિ, લેશ્યા, દૃષ્ટિ, સંયત, કપાય, જ્ઞાન,
યોગ, ઉપયોગ, વેદ, શરીર ઔર પર્યાસિ ॥

ટીકાર્થ—પીછે કે ઉદ્દેશક મેં જીવ કા નિરૂપણ કિયા ગયા હૈ-હસ
ચતુર્થ ઉદ્દેશક મેં મી ડસી જીવ કા સૂત્રકાર પ્રકારાન્તર સે નિરૂપણ

જેવું જ સમજવું. (સરીર અપજ્જત્તીણ, ઇન્દિય અપજ્જત્તીણ આણપાણ અપજ્જત્તીણ
જીવ ણમિન્દિયવજ્જો તિયમંગો) શરીર પર્યાસિથી રહિત, ઇન્દ્રિય પર્યાસિથી
રહિત, અને શ્વાસોચ્છ્વાસ પર્યાસિથી રહિત જીવોમાં જીવ અને એકેન્દ્રિય
સિવાયના ત્રણ ભાગ થાય છે. (નેરહ્ય, દેવ, મણુણ્હિ છમંગા) નારકો, દેવો
અને મનુષ્યોમાં છ ભાગ થાય છે. સમ્રહગાથા—

“ સપ્રદેસા આહારગ-ભવિય-સન્નિ-લેસા-દિટ્ઠિ-સંજય-કસાયા ”

જાણે જોગુ-વઓગે વેદેય સરીર-પજ્જત્તી ॥ ૧ ॥

સપ્રદેશ, આહારક, ભવ્ય, સંત્તિ, લેશ્યા, દૃષ્ટિ, સંયત, કપાય, જ્ઞાન,
યોગ, ઉપયોગ, વેદ, શરીર અને પર્યાસિ.

ટીકાર્થ—આગલા ઉદ્દેશકમાં જીવનું નિરૂપણ કરવામાં આવ્યું છે. આ
ઉદ્દેશકમાં પણ સૂત્રકાર ખીલ રીતે જીવનું નિરૂપણ કરી રહ્યા છે-તેમાં ગૌતમ

અપ્રદેશો ભવતિ, તત્ર ક્વાદિસમયોત્પન્નો નૈરયિકઃ સપ્રદેશઃ, પ્રથમસમયોત્પન્નસ્તુ
 અપ્રદેશો ભવતીતિ ભાવઃ । एवम् नैरयिकवदेव यावत्-सिद्धः कदाचित् सप्रदेशः,
 कदाचित् अप्रदेशो भवति । यावत्कृत्वात्-असुरकुमारादिभवनपतिदशक १०-
 पृथिवीकायादिस्थावरापञ्चक-विकलेन्द्रियत्रिक- - तिर्यक्पञ्चेन्द्रिय-मनुष्य-
 -वृत्तर-ज्योतिषिक-वैमानिक-रूपाणां त्रयोविंशति दण्डकानां संग्रहः ।
 अथ तदेव पुनस्तथैव बहुत्वेन निरूपयितुमाह- 'जीवाणं भन्ते ! कालादेसेणं किं
 सपण्या ? अपणसा ?' गौतमः पृच्छति-हे भदन्त ! जीवाः खलु कालादेशेन
 कालापेक्षया किं सप्रदेशाः भवन्ति ? अथवा अप्रदेशाः ? भवन्ति ? भगवानाह-
 'गोयमा ! नियमा सपणसा' हे गौतम ! जीवाः सर्वे नियमात् कालापेक्षया

ही समय हुआ है वह नारक जीव काल की अपेक्षा अप्रदेश है और
 वही नारक जीव जब द्वितीयादि समयों में वर्तता रहना है तो कालकी
 अपेक्षा वही सप्रदेश । (एवं जाव सिद्धे) नारक की तरह ही यावत्
 सिद्ध कदाचित् सप्रदेश और कदाचित् अप्रदेश हैं ऐसा जानना चाहिये
 यहाँ यावत् पद से “ असुरकुमार आदि भवनपति १०, का पृथिवी
 कादिक पांच स्थावरों का विकलेन्द्रियत्रिक का, तिर्यक् पञ्चेन्द्रिय १, मनु-
 ष्य १, ज्योतिषिक १ और वैमानिक १ इन का ” इस तरह २३ दण्ड-
 कों का संग्रह हुआ है । (जीवा णं भन्ते ! कालादेसेणं किं सपण्या ?
 अपणसा ?) अथ गौतम इम सूत्र द्वारा प्रश्न से ऐसा पूछ रहे हैं कि हे
 भदन्त ! जीवकाल की अपेक्षा क्या सप्रदेश हैं ? या अप्रदेश हैं इसके
 उत्तर में प्रश्न गौतम से कहते हैं कि (गोयमा) हे गौतम ! (नियमा
 सपणसा) समुच्चय-समस्त जीव नियम से काल की अपेक्षा सप्रदेश हैं,

થયો છે તે નારક છવ કાળની અપેક્ષાએ પ્રદેશ રહિત છે, પણ ત્યારે એજ
 નારક છવને ઉત્પન્ન થયાને બે, ત્રણ આદિ સમયો વ્યતીત થઈ વાય છે,
 ત્યારે તે કાળની અપેક્ષાએ પ્રદેશયુક્ત કહેવાય છે. (एवं जाव सिद्धे) નારક
 છવની એમ જ સિદ્ધ પદાન્તના છવ પણ ક્યારેક અપ્રદેશ હોય છે. અહીં
 ' जाव ' (पदान्त) પદથી અસુર કુમાર આદિ ભવનપતિના દસ, પૃથ્વીકાયિક
 આદિ સ્થાવરોના પાંચ, વિકલેન્દ્રિયના ત્રણ (દ્વીન્દ્રિય, ત્રીન્દ્રિય અને ચતુ-
 રિન્દ્રિય એ ત્રણ) પંચેન્દ્રિય તિર્યંચનું એક, મનુષ્યનું એક, જ્યોતિષિકનું એક
 અને વૈમાનિકનું એક એમ ૨૨ ઠંડકોને શ્રદ્ધણ કરવામાં આવ્યા છે. આ
 દિવાયના નારક અને સિદ્ધ એ બે ઠંડકની વાત તો ઉપર કહેવામાં આવી છે.

‘ જો જસા પદમસમય, વટ્ટુ ભાવસા સો ડ અપણો ।

અણમ્મિ વટ્ટમાણો, કાલાવસેગ સપણો ॥ ૧ ॥ ”

યો યસ્ય પ્રથમસમયે વર્તતે ભાવસ્ય સ તુ અપદેશઃ ।

અન્યસ્મિન્ વર્તમાનાઃ કાલાદેશેન સપદેશઃ ” ઈતિ ॥ ૧ ॥

ગૌતમઃ પૃચ્છતિ-‘ નેરહણં મંતે ! કાલાદેસેણં કિં સપણસે, અપણસે ? ’

હે ભદ્રન્ત ! નૈરધિકઃ સ્વહ કાલાદેશેન કાલાપેક્ષયા કિમ્-સપ્રદેશઃ ? કિં વા અપ-

દેશઃ ? મગધાનાહ-‘ ગોયમા ! સિય સપણસે, સિય અપણસે, ઇવં જાવ-સિદ્ધે ’

હે ગૌતમ ! નૈરધિકઃ કાલાપેક્ષયા સ્યાત્ કદાચિત્ સપદેશઃ, સ્યાત્ કદાચિત્

જો જીવ જિસ ભવ કે પ્રથમ સમય મેં વર્તતા હૈ, વહ જીવ અપ્રદેશ પ્રદેશરહિત કહલાતા હૈ ઓર જો જીવ પ્રથમ સમય કે અતિરિક્ત દૂસરે, તોસરે, આદિ સમયોં મેં વર્તતા હૈ વહ કાલ કી અપેક્ષા સપ્રદેશ કહલાતા હૈ ઇસ તરહ સે વહ સપ્રદેશ ઓર અપ્રદેશ કા સ્વરૂપ ઇસ ગાથા દ્વારા પ્રકટ કિયા ગયા હૈ ।

ગૌતમ સ્વામી પ્રશ્ન સે પૂછતે હૈં કિ-(નેરહણં મંતે કાલાદેસેણં કિં સપણસે અપણસે) હૈ ભદ્રન્ત ! એક નારક જીવ કાલ કી અપેક્ષા સે કયા સપ્રદેશ હૈં કિ અપ્રદેશ હૈં ? ઇસકે ઉત્તર મેં પ્રશ્ન ઉનસે કહતે હૈં કિ (ગોયમા) હૈ ગૌતમ ! (સિય સપણસે સિય અપણસે) હૈ ગૌતમ ! નારક જીવ કાલ કી અપેક્ષા સે કદાચિત્ સપ્રદેશ હૈં ઓર કદાચિત્ અપ્રદેશ હૈં । અર્થાત્ જિસ નારક જીવ કો ઉત્પન્ન હુવ અમી પહિલા

ને છવ ને ભવના પ્રથમ સમયમાં રહેલો હોય છે, તે છવ અપ્રદેશી (પ્રદેશ રહિત) કહેવાય છે, અને ને છવ પ્રથમ સમય સિવાયના સમયમાં એટલે કે બીજા, ત્રીજા આદિ સમયમાં રહેલો હોય છે, તે છવ કાળની અપેક્ષાએ સપ્રદેશી (પ્રદેશ સહિત) કહેવાય છે. આ રીતે સપ્રદેશત્વ અને અપ્રદેશત્વનું સ્વરૂપ આ ગાથામાં બતાવવામાં આવ્યું છે.

ગૌતમ સ્વામી મહાવીર પ્રશ્નને પૂછે છે કે (નેરહણં મંતે ! કાલાદેસેણં કિં સપણસે અપણસે ?) હે ભદ્રન્ત ! એક નારક છવ શું કાળની અપેક્ષાએ પ્રદેશયુક્ત છે કે પ્રદેશ રહિત છે ?

ઉત્તર—(ગોયમા !) હે ગૌતમ ! (સિય સપણસે સિય અપણસે) એક નારક છવ ક્યારેક કાળની અપેક્ષાએ સપ્રદેશ હોય છે અને ક્યારેક અપ્રદેશ હોય છે. એટલે કે ને નારક છવને ઉત્પન્ન થયાને હવ પહેલો જ સમય

અપ્રદેશો ભવતિ, તત્ર દ્વાદશમમયોત્પન્નો નૈરયિકઃ સપ્રદેશઃ, પ્રથમસમયોત્પન્નસ્તુ અપ્રદેશો ભવતીતિ ભાવઃ । एवम् नैरयिकवदेव यावत्-सिद्धः कदाचित् सप्रदेशः, कदाचित् अप्रदेशो भवति । यावत्सूत्रणात्-असुरकुमारादिभवनपतिदशक १०-पृथिवीकायादिस्थावरपञ्चक-विकलेन्द्रियत्रिक-तिर्यक्पञ्चेन्द्रिय-मनुष्य-व्यन्तर-ज्योतिषिक-वैमानिक-रूपाणां त्रयोविधति दण्डकानां संग्रहः । अयं तदेव पुनस्तथैव बहुभवेन निरूपयितुमाह- 'जीवाणं भन्ते ! कालादेसेणं किं सपएसा ? अपएसा ?' गौतमः पृच्छति-हे भद्रन्त ! जीवाः खलु कालादेशेन कालापेक्षया किं सप्रदेशाः भवन्ति ? अथवा अप्रदेशाः ? भवन्ति ? भगवानाह- 'गोपमा ! नियमा सपएसा' हे गौतम ! जीवाः सर्वे नियमात् कालापेक्षया

ही समय हुआ है वह नारक जीव काल की अपेक्षा अप्रदेश है और वही नारक जीव जय द्वितीयादि समयों में वर्तता रहता है तो कालकी अपेक्षा वही सप्रदेश । (एवं जाव सिद्धे) नारक की तरह ही यावत् सिद्ध कदाचित् सप्रदेश और कदाचित् अप्रदेश हैं ऐसा जानना चाहिये यहां यावत् पद से "असुरकुमार आदि भवनपति १०, का पृथिवी कादिक पांच स्थावरों का विकलेन्द्रियत्रिक का.तिर्यक् पञ्चेन्द्रिय १, मनुष्य १, ज्योतिषिक १ और वैमानिक १ इन का " इस तरह २२ दण्डकों का संग्रह हुआ है । (जीवा णं भन्ते ! कालादेसेणं किं सपएसा ? अपएसा ?) अब गौतम इस सूत्र द्वारा प्रश्न से ऐसा पूछ रहे हैं कि हे भद्रन्त ! जीवकाल की अपेक्षा क्या सप्रदेश हैं ? या अप्रदेश हैं इसके उत्तर में प्रश्न गौतम से कहते हैं कि (गोपमा) हे गौतम ! (नियमा सपएसा) समुच्चय-समस्त जीव नियम से काल की अपेक्षा सप्रदेश हैं,

થયો છે તે નારક જીવ કાળની અપેક્ષાએ પ્રદેશ રહિત છે, પણ બ્યારે એજ નારક જીવને ઉત્પન્ન થયાને બે, ત્રણ આદિ સમયો વ્યતીત થઈ બચ છે, ત્યારે તે કાળની અપેક્ષાએ પ્રદેશયુક્ત કહેવાય છે. (एवं जाव सिद्धे) નારક જીવની જેમ જ સિદ્ધ પર્યન્તના છત્ર પણ ક્યારેક અપ્રદેશ હોય છે. અહીં 'जाव' (पर्यन्त) પદથી અસુર કુમાર આદિ ભવનપતિના દસ, પૃથ્વીકાયિક આદિ સ્થાવરોના પાંચ, વિકલેન્દ્રિયના ત્રણ (દ્વીન્દ્રિય, ત્રીન્દ્રિય અને ચતુરિન્દ્રિય એ ત્રણ) પંચેન્દ્રિય તિર્યક્ચતુ એક, મનુષ્યતુ એક, જ્યોતિષિકતુ એક અને વૈમાનિકોતુ એક એમ ૨૨ ઠંડકોને થકણ કરવામાં આવ્યા છે. આ વિષયના નારક અને સિદ્ધ એ બે ઠંડકની વાત તો ઉપર કહેવામાં આવી છે.

સપ્રદેશા ભવન્તિ નતુ અપ્રદેશાઃ તેષામનાદિભ્યેન અનન્તસમયસ્થિતિક્રમતયા સપ્રદેશત્વનિયમાત્ । ગૌતમઃ પૃચ્છતિ—‘ નેરણ્યાણં મંતે ! કાલાદેસેણં કિં સપણ્સા, અપણ્સા ? ’ હે ભદન્ત ! નૈરણ્યાઃ સ્વતુ કાલાદેશન—કાલાપેક્ષયા કિં સપ્રદેશાઃ ? આહોસ્થિત્ અપ્રદેશા ભવન્તિ ? મગવાનાહ—‘ ગોયમા । સન્વે વિ તાવ હોજ્જા સપણ્સા ’ હે ગૌતમ ! સર્વંસપિ નૈરણ્યા સ્વાયત્ ’ ઇતિ વાચચાલકારે સપ્રદેશા મન્તિ, ઉત્પાદવિરહકાલે અસંખ્યાતપૂર્વોત્પન્નનૈરણ્યાણાં સપ્રદેશત્વેન વિષમાનસ્વાત્ । ઇતિ પ્રથમો ભક્તઃ ? । અથ દ્વિતીયમાહ—‘ અહવા સપણ્સા ય—અપણ્સેય, ’ અથવા

અપ્રદેશ નહીં હું । ક્યોં કિ સમસ્ત જીવ અનાદિ હું ઓર અનન્તકાલતક કી સ્થિતિવાલે હું । અથ ગૌતમસ્વામી પ્રશ્નુ સે સમસ્ત નારક જીવોં કી અપેક્ષા લેકર ઁસા પૂછતે હું કિ (નેરણ્યાણં મંતે ! કાલાદેસેણં કિં સપણ્સા ? અપણ્સા ?) હે ભદન્ત ! સમસ્ત નારકકયા કાલકી અપેક્ષા સપ્રદેશ હું ? યા અપ્રદેશ હું ? ઇસકે ઉત્તર મેં પ્રશ્નુ ગૌતમ સે કહતે હું કિ (ગોયમા) હે ગૌતમ ! (સન્વે વિ હોજ્જા સપણ્સા) સમસ્ત નારક જીવ મો સપ્રદેશ હું ! “ સમસ્ત નારક જીવ મો સપ્રદેશ હું ” ઇસકા કારણ યહ હૈ કિ ઉત્પાદ વિરહકાલ મેં પૂર્વોત્પન્ન નારક જીવોં કી સંખ્યા—અસંખ્યાત પ્રમાણ મેં રહા કરતી હૈ યહ પહિલા ભક્ત હૈ । તથા દ્વિતીય ભગ ઇસ પ્રકાર સે હૈ—(અહવા સપણ્સા ય અપણ્સે ય) જથ ઇન્હીં પૂર્વોત્પન્ન અસંખ્યાત નારકોં મેં કોઈ નારક જીવ આકર ઉત્પન્ન હો જાતા હૈ—તથ વહ પ્રથમ

ગૌતમ સ્વામીના પ્રશ્ન—(જીવા ણં મંતે ! કાલાદેસેણં કિં સપણ્સા ? અપણ્સા ?) હે ભદન્ત ! સમસ્ત જીવો કાળની અપેક્ષાએ સપ્રદેશ છે કે અપ્રદેશ છે ?

ઉત્તર—(ગોયમા ! નિયમા સપણ્સા) હે ગૌતમ ! સમસ્ત જીવો કાળની અપેક્ષાએ નિયમથી જ સપ્રદેશ છે, અપ્રદેશ (પ્રદેશ રહિત) નથી કારણ કે સમસ્ત જીવ અનાદિ છે અને અનન્તકાળની સ્થિતિવાળા છે.

હવે ગૌતમ સ્વામી સમસ્ત નારક જીવોની અપેક્ષાએ મહાવીર પ્રશ્નુને જીવો પ્રશ્ન પૂછે છે કે (નેરણ્યાણં મંતે ! કાલાદેસેણં કિં સપણ્સા, અપણ્સા ?) હે ભદન્ત ! સમસ્ત નારક જીવો શું કાળની અપેક્ષાએ સપ્રદેશ છે ? કે અપ્રદેશ છે ?

ઉત્તર—(ગોયમા !) હે ગૌતમ ! (સન્વે વિ તાવ હોજ્જા સપણ્સા) સમસ્ત નારક જીવો પશુ સપ્રદેશ છે. “ સમસ્ત નારક જીવો સપ્રદેશ છે, ” એમ કહેવાનું કારણ એ છે કે ઉત્પાદ વિરહ કાળમાં પૂર્વોત્પન્ન (પહેલાં ઉત્પન્ન થયેલા) નારક જીવોની સંખ્યા અસંખ્યાત પ્રમાણમાં રહ્યા કરે છે. આ રીતે પહેલા ભગ (વિકલ્પ) થાય છે. “ સમસ્ત નારક જીવો સપ્રદેશ છે. ” બીજે ભગ આ પ્રમાણે થાય છે—(અહવા સપણ્સા ય અપણ્સે ય)

વહ્યો નૈરયિકાઃ સપ્રદેશાથ ભવન્તિ, એકઃ અપ્રદેશઃ ૨ પૂર્વોત્પન્નાનાં દ્વયાદિસમય-
સ્થિતિકત્વેન સપ્રદેશત્વાદ્ વહ્યઃ સપ્રદેશાઃ, પૂર્વોત્પન્નેષુ વિષમાનેષ્વેવ એકોઽ-
પ્યન્યો નૈરયિક ઉત્પદ્યતે તદા તસ્ય પ્રથમસમયોત્પન્નત્વેનાપ્રદેશત્વાદેકોઽપ્રદેશ
ઇતિ દ્વિતીયો ભદ્રઃ ૨ । અથ તૃતીયભદ્રમાહ—‘ અહવા સપ્સાય અપ્સાય ’
અથવા વહ્યઃ સપ્રદેશાથ. વહ્યઃ અપ્રદેશાથ ભવન્તિ, યદા પૂર્વોત્પન્નાદ્વયાદિ સમ-

સમય કી અપેક્ષા સે અપ્રદેશ હૈં ઓર વાકી વે સમસ્ત નારક જીવ
સપ્રદેશ હૈં । હસ દ્વિતીય ભદ્ર કા અભિપ્રાય એસા હૈ—કિ પ્રથમ ભદ્ર મેં
તો સમસ્ત નારક જીવોં કો સપ્રદેશ પ્રકટ કિયા હૈ ઓર હસ દ્વિતીયભદ્ર
મેં સમસ્ત નારક જીવોં કો સપ્રદેશ પ્રકટ નહીં કિયા ગયા હૈ કિન્તુ
અધિકાંશ નારક જીવોં કો હી સપ્રદેશ પ્રકટ કિયા હૈ ઓર કોઈં એક
નારક જીવોં કો અપ્રદેશ ભી પ્રકટ કિયા હૈ—અસમેં કારણ યહ હૈ કિ
યહાં પૂર્વોત્પન્ન જિતને ભી નારક જીવ હૈં વે સવ તો દ્વયાદિ સમયોં મેં
વર્તતે રહને કી સ્થિતિવાલે હોને કે કારણ સપ્રદેશ હૈં ઓર વહીં પર જો
નયા કોઈં એક નારક જીવ ઉત્પન્ન હુઆ હૈં વહ પ્રથમ સમય મેં ઉત્પન્ન
હોને કે કારણ અપ્રદેશ હૈ । તૃતીયભંગ હસ પ્રકાર સે હૈ—(અહવા સપ્-
સાય અપ્સાય) પૂર્વોત્પન્ન જિતને ભી વહાં નારક જીવ હૈં વે સવ
તો દ્વયાદિ સમયોં મેં વર્તમાન રહને કે કારણ સપ્રદેશ હૈં ઓર કિતનેક
નારક જીવ વહાં જો ઉત્પન્ન હો રહે હૈં—વે સવ એક સમય કી ભી
સ્થિતિવાલે હૈં સો હસ અપેક્ષા વે અપ્રદેશ હૈં—તાત્પર્ય હસ તૃતીયભંગ કા

છે. ” કારણ કે પૂર્વોત્પન્ન અસંખ્યાત નારકોમાં કોઈ નવો જીવ ઉત્પન્ન થઇને
આવી મળે છે, ત્યારે તે આવનાર જીવ પ્રથમ સમયની અપેક્ષાએ અપ્રદેશ
હોય છે અને સમસ્ત નારકો સપ્રદેશ હોય છે. પ્રથમ ભંગમાં તો સમસ્ત
નારકોને સપ્રદેશ કહ્યા છે પણ આ બીજા ભંગમાં સમસ્ત નારકોને સપ્રદેશ
કહ્યા નથી પણ અધિકાંશ નારક જીવોને જ સપ્રદેશ કહ્યા છે અને કોઈક નારક
જીવને અપ્રદેશ પણ કહ્યા છે. આ પ્રમાણે જે કહેવામાં આવ્યું છે તેનું
કારણ નીચે પ્રમાણે છે—

નારકોમાં પૂર્વોત્પન્ન જેટલા નારકો છે તેઓ તો જે, પ્રથમ આદિ સમ-
યેથી ત્યાં રહેલા હોવાને કારણે સપ્રદેશી છે, પણ ત્યાં જે કોઈ નવો નારક
જીવ ઉત્પન્ન થયેલો હોય છે તેને ઉત્પન્ન થયાને પ્રથમ સમય જ ચાલતો હોય
છે તેથી તે અપ્રદેશ છે.

ત્રીજો ભંગ આ પ્રમાણે છે—(અહવા સપ્સાય અપ્સાય) કેટલાક
નારક જીવો સપ્રદેશ છે અને કેટલાક નારક જીવો અપ્રદેશ છે. કારણ કે

સપ્રદેશા ભવન્તિ નતુ અપ્રદેશાઃ તેષામનાદિચ્ચેન અનન્તસમગસ્થિતિક્રતયા સપ્રદેશત્વનિયમાત્ । ગૌતમઃ પૂચ્છતિ—‘ નેરદ્યાણં મંતે ! કાલાદેસેણં કિં સપ્પસા, અપ્પસા ? ’ હે ભદન્ત ! નૈરયિકાઃ સ્વતુ કાલાદેશન-કાલાપેક્ષયા કિં સપ્રદેશાઃ ? આહોસ્થિત્ અપ્રદેશા ભવન્તિ ? મગધનાહ—‘ ગોયમા ! સવ્વે વિ તાવ હોજ્જા સપ્પસા ’ હે ગૌતમ ! સર્વંડપિ નૈરયિકા સ્વાયત્ ’ ઇતિ ચાગ્યાલક્કારે સપ્રદેશા મત્રન્તિ, ઉત્પાદવિરહકાલે અસંખ્યાતપૂર્વોત્પન્નનૈરયિકાણાં સપ્રદેશત્વેન વિઘમાનસ્વાત્ । ઇતિ પ્રથમો મહ્ગઃ ? । અથ દ્વિતીયમાહ—‘ અહવા સપ્પસા ય-અપ્પસેય, ’ અથવા

અપ્રદેશ નહીં હૈં । ક્યોં કિં સમસ્ત જીવ અનાદિ હૈં ઓર અનન્તકાલતક કી સ્થિતિવાલે હૈં । અથ ગૌતમસ્વામી પ્રશ્ન સે સમસ્ત નારક જીવોં કી અપેક્ષા લેકર એસા પૂછતે હૈં કિં (નેરદ્યાણં મંતે ! કાલાદેસેણં કિં સપ્પસા ? અપ્પસા ?) હે ભદન્ત ! સમસ્ત નારકકયા કાલકી અપેક્ષા સપ્રદેશ હૈં ? યા અપ્રદેશ હૈં ? ઇસકે ઉત્તર મેં પ્રશ્ન ગૌતમ સે કહતે હૈં કિં (ગોયમા) હે ગૌતમ ! (સવ્વે વિ હોજ્જા સપ્પસા) સમસ્ત નારક જીવ મો સપ્રદેશ હૈં ! “ સમસ્ત નારક જીવ મો સપ્રદેશ હૈં ” ઇસકા કારણ યહ હૈં કિં ઉત્પાદ વિરહકાલ મેં પૂર્વોત્પન્ન નારક જીવોં કી સંખ્યા-અસંખ્યાત પ્રમાણ મેં રહા કરતી હૈં યહ પહિલા મહ્ગ હૈં । તથા દ્વિતીય મહ્ગ ઇસ પ્રકાર સે હૈં—(અહવા સપ્પસા ય અપ્પસે ય) જધ ઇન્હીં પૂર્વોત્પન્ન અસંખ્યાત નારકોં મેં કોઈ નારક જીવ આકર ઉત્પન્ન હો જાતા હૈં—તથ વહ પ્રથમ

ગૌતમ સ્વામીના પ્રશ્ન—(જીવા ણં મંતે ! કાલાદેસેણં કિં સપ્પસા ? અપ્પસા ?) હે ભદન્ત ! સમસ્ત જીવો કાળની અપેક્ષાએ સપ્રદેશ છે કે અપ્રદેશ છે ?

ઉત્તર—(ગોયમા ! નિયમા સપ્પસા) હે ગૌતમ ! સમસ્ત જીવો કાળની અપેક્ષાએ નિયમથી જ સપ્રદેશ છે, અપ્રદેશ (પ્રદેશ રહિત) નથી કારણ કે સમસ્ત જીવ અનાદિ છે અને અનન્તકાળની સ્થિતિવાળા છે.

હવે ગૌતમ સ્વામી સમસ્ત નારક જીવોની અપેક્ષાએ મહાવીર પ્રશ્નને જીવો પ્રશ્ન પૂછે છે કે (નેરદ્યાણં મંતે ! કાલાદેસેણં કિં સપ્પસા, અપ્પસા ?) હે ભદન્ત ! સમસ્ત નારક જીવો શું કાળની અપેક્ષાએ સપ્રદેશ છે ? કે અપ્રદેશ છે ?

ઉત્તર—(ગોયમા !) હે ગૌતમ ! (સવ્વે વિ તાવ હોજ્જા સપ્પસા) સમસ્ત નારક જીવો પશુ સપ્રદેશ છે. “ સમસ્ત નારક જીવો સપ્રદેશ છે, ” એમ કહેવાનું કારણ એ છે કે ઉત્પાદ વિરહ કાળમાં પૂર્વોત્પન્ન (પહેલાં ઉત્પન્ન થયેલા) નારક જીવોની સંખ્યા અસંખ્યાત પ્રમાણમાં રહ્યા કરે છે. આ રીતે પહેલા ભંગ (વિકલ્પ) થાય છે. “ સમસ્ત નારક જીવો સપ્રદેશ છે. ” બીજે ભંગ આ પ્રમાણે થાય છે—(અહવા સપ્પસા ય અપ્પસે ય)

યાવત્કરણાન્-નાગકુમારાઃ સુપર્ણકુમારાઃ, વિદ્યુત્કુમારાઃ, અગ્નિકુમારાઃ, દ્વીપકુમારાઃ ઉદધિકુમારાઃ દિવકુમારાઃ પવનકુમારાઃ ' ઇતિ સંગ્રાહ્યમ્ । ગૌતમઃ પૃચ્છતિ- ' પુઢવિક્ષાહયા ણં મંતે ! કિં સપ્પસા, અપ્પસા ? ' હે ભદન્ત ! પૃથિવીકાયિકાઃ સહુ જીવાઃ કિમ્ કાલાપેક્ષયા સપ્રદેશાઃ ભવન્તિ ? આઠોસ્વિત્ અપ્રદેશા ભવન્તિ ? મગવાનાહ- ' ગોયમા ! સપ્પસા વિ, અપ્પસા વિ ' હે ગૌતમ ! પૃથિવીકાયિકા જીવાઃ સપ્રદેશા અપિ ભવન્તિ, અપ્રદેશા અપિ ભવન્તિ, વહૂનાં પૂર્વોત્પન્નત્વેન દ્વયાદિ સમયસ્થિતિકાનાં, વહૂનાં ચ ઉત્પદ્યમાનત્વેન એકસમયસ્થિતિકાનાં ચ તેપાં સદ્-

કિતનેક સપ્રદેશ મી હૈં ઓર કિતનેક અપ્રદેશ મી હૈં । યહાં યાવત્ પદ સે (નાગકુમાર, સુપર્ણકુમાર, વિદ્યુત્કુમાર, અગ્નિકુમાર, દ્વીપકુમાર, ઉદધિકુમાર, દિવકુમાર, વાયુકુમાર, ઇન અવશેષ ભવનપતિભેદોં કા ગ્રહણ હુઆ હૈ ।

અવ ગૌતમ પ્રમુ સે પૃથિવીકાયિક જીવોં કે સપ્રદેશ અપ્રદેશ કે વિપય મેં પ્રશ્ન કરતે હૈં-કિ-(પુઢવિક્ષાહયાણં મંતે ! કિં સપ્પસા, અપ્પસા ?) હે ભદન્ત ! પૃથિવીકાયિક જો જીવ હૈં વે વ્યા સપ્રદેશ હૈં કિ અપ્રદેશ હૈં ? ઇસકે ઉત્તરમેં પ્રમુ ગૌતમસે કહતે હૈં કિ (ગોયમા) હે ગૌતમ ! પૃથિવીકાયિક જીવ (સપ્પસા વિ અપ્પસા વિ) સપ્રદેશ મી હૈં ઓર અપ્રદેશ મી હૈં । ઇસકા તાત્પર્ય એસા હૈ કિ યહાં પૂર્વોત્પન્ન જીવ મી અનેક હૈં ઓર ઉત્પદ્યમાન જીવ મી અનેક હૈં અતઃ પૂર્વોત્પન્ન જીવોં કી અપેક્ષા પૃથિવીકાયિક જીવ સપ્રદેશ હૈં ઓર ઉત્પદ્યમાન પૃથિવીકાયિક

પહેલો ભ'ગ- " સમસ્ત ભવનપતિ દેવો સપ્રદેશ છે. " બીજો ભ'ગ આ પ્રમાણે છે- " અધાં ભવનપતિ દેવો સપ્રદેશ નથી, પણ અધિકાંશ સપ્રદેશ છે અને કોઈક અપ્રદેશ છે. "

હસ ભવનપતિના નામ-(૧) અસુરકુમાર (૨) નાગકુમાર (૩) સુપર્ણકુમાર (૪) વિદ્યુત્કુમાર (૫) અગ્નિકુમાર (૬) દ્વીપકુમાર (૭) ઉદધિકુમાર (૮) વિક્ષુકુમાર (૯) વાયુકુમાર (૧૦) સ્તનિતકુમાર.

હવે ગૌતમ સ્વામી પૃથ્વીકાયિક જીવોના સપ્રદેશત્વ અને અપ્રદેશત્વના વિપયમાં મહાવીર પ્રભુને એવો પ્રશ્ન પૂછે છે કે (પુઢવિક્ષાહયાણં મંતે ! કિં સપ્પસા, અપ્પસા ?) હે ભદન્ત ! પૃથ્વીકાયિક જીવો સપ્રદેશ છે કે અપ્રદેશ છે ?

ઉત્તર-(ગોયમા !) હે ગૌતમ ! પૃથ્વીકાયિક જીવો (સપ્પસા વિ અપ્પસા વિ) સપ્રદેશ પણ હોય છે અને અપ્રદેશ પણ હોય છે. કારણ કે પૃથ્વીકાયોમાં પૂર્વોત્પન્ન જીવ પણ અનેક હોય છે અને નવા ઉત્પન્ન થનારા જીવો પણ અનેક હોય છે. તેથી પૂર્વોત્પન્ન જીવોની અપેક્ષાએ પૃથ્વીકાયિકોને સપ્રદેશ કહ્યા છે, અને ઉત્પદ્યમાન પૃથ્વીકાયિકોની અપેક્ષાએ તેમને અપ્રદેશ

યસ્થિતિમન્તો વહયઃ સપદેશાઃ સન્તિ. વહયથ-ઉત્પદમાનાઃ પદસમયસ્થિતિમન્તો-
 પ્રદેશા ભવન્તિ તદા વહયઃ સપદેશાઃ વહયથાપ્રદેશા ભવન્તોતિ । તૃતીયો ભગ્નઃ ૩।

‘ एवं असुरकुमारा जाव-धणियकुमारा ’ एवं नैरयिकवदेव असुरकुमारा
 यावत्-स्तनितकुमारा अपि कदाचिन् सर्वे सपदेषाः स्युः, कदाचित् वहयः सप-
 देशाः, एकः अपदेशथ, कदाचिद् वहयः सपदेशाः, वहयः अपदेशाथ भवन्ति

પણ છે ફિ વહાં નરકોં મેં જિતને મી જીવ પહિલે સે હી નારકાવસ્થા મેં
 ચલે આરહે હેં વે સય કે સય સપદેશ હેં ઓર જિન જીવોં કી અમી ૨
 નારકાવસ્થાપ્રારંભ હોને કે પ્રથમ સમય મેં હેં વે સય અપદેશ હેં-ઈસ
 તરહ વહાં અધિકાંશ જીવ સપદેશ હેં ઓર અધિકાંશ જીવ અપદેશ હેં
 (एवं असुरकुमारा जाव धणियकुमारा) इसी तरह का कथन-नारक
 जीवों के जैसा विवेचन असुरकुमारों से लेकर स्तनितकुमारों तक
 जानना चाहिये-असुरकुमार आदि १० भेद भवनपति देवों के हैं-सो
 पूर्वोक्तरूप से जैसा वर्णन सपदेश अप्रदेश का नारक जीवों में प्रथम
 भंग द्वितीयभंग और तृतीयभंगद्वारा किया गया है उसी प्रकार का
 सपदेश अप्रदेश का वर्णन असुरकुमार से लेकर स्तनितकुमार तक
 जानना चाहिये-निष्कर्ष इसका यही है-कि प्रथम भंग की अपेक्षा सम-
 स्त स्तनितकुमार सपदेश हैं। द्वितीयभंग की अपेक्षा सय नहीं, किन्तु
 अधिकांश सपदेश हैं और कोई अप्रदेश हैं। तृतीय भंग की अपेक्षा

પૂર્વોત્પન્ન જેટલાં નારક જીવો છે તેઓ તો બે, ત્રણ આદિ સમયોથી ત્યાં ઉત્પન્ન
 થઈ રહ્યા છે, તેઓ બધાં એક સમયની સ્થિતિવાળા પશુ હોય છે, તેથી
 તેઓ અપ્રદેશ છે. આ કથનનો ભાવાર્થ એવો છે કે જેટલાં નારક જીવો
 પહેલેથી જ નારકાવસ્થામાં આવી ગયેલા છે તેઓ બધાંસપદેશ છે, પણ જે
 જીવોની નારકાવસ્થાનો હુજ પ્રારંભ જ થયેલો છે-એટલે કે જે નારકોની
 નારકાવસ્થા પ્રારંભ થયાનો પ્રથમ સમય જ આવી રહ્યો છે, એવાં જે નારકો
 છે તેઓ અપ્રદેશી છે. આ રીતે ત્યાં અધિકાંશ જીવો સપદેશ છે અને અધિ-
 કાંશ જીવો અપ્રદેશ છે.

(एवं असुरकुमारा जाव धणियकुमारा) નારકોના જેવું જ કથન અસુર-
 કુમારોથી સ્તનિતકુમારો સુધીના દેવો વિષે સમજવું. ભવનપતિ દેવોના અસુર-
 કુમાર આદિ ૧૦ ભેદ છે. નારક જીવોના સપદેશત્વ અને અપ્રદેશત્વ વિષેના
 ઉપર્યુક્ત જે ત્રણ ભંગ (વિકલ્પો) કહ્યા છે, એજ પ્રમાણે અસુરકુમારોથી
 લઈને સ્તનિતકુમારો સુધીના દસ ભવનપતિ દેવોના સપદેશત્વ અને અપ્રદેશત્વ
 વિષેના પણ ત્રણ ભંગ સમજવા. એ ત્રણ ભંગ નીચે પ્રમાણે છે—

વક્તવ્યાઃ, તથા ચ-દ્વીન્દ્રિયાદયોઽપિ યાવત્-સિદ્ધાઃ કદાચિત્ સર્વેસપ્રદેશાઃ, કદા-
ચિદ્ વહવઃ સપ્રદેશાઃ, એકઃ અપ્રદેશથ કદાચિત્તુ વહવઃ સપ્રદેશાઃ વહવઃ અપ્રદે-
શાથ ભવન્તિ, ઉક્તરીત્યા સર્વેપામેપાં વિરહસંભવાત્, एहाद्युत्पत्तेश्च, યાવત્કરુણાત્
દ્વીન્દ્રિય-ત્રીન્દ્રિય-ચતુરિન્દ્રિય-પંચેન્દ્રિય-તિર્યગ્ચોનિક-મનુષ્ય-વાનવ્યન્તરજ્યો-
તિપિક-વૈમાનિકાઃ સંગ્રાહાઃ । ' આહારગાળં જીવ-एगिदियवज्जो तियभंगो '
આહારકાળામ્ આહારક જીવૈકેન્દ્રિયવર્જાસ્રયોમજ્ઞાઃ, જીવપદમ્, એકેન્દ્રિયપૃથિવી-
કાયાદિપદપંચકં ચ વર્જયિત્વા મજ્જત્રિકમ્, અયં ભાવઃ- 'જીવો નિયમાત્સપ્રદેશઃ' ઇતિ
જીવે એક એવ મજ્જઃ તસ્ય સદા સર્વપ્રદેશત્વાત્ । એકેન્દ્રિયે ' સપ્રદેશા અપિ

પર્યન્ત જીવ ધી કદાચિત્ સવ સપ્રદેશ હેં, કદાચિત્ કિતને સપ્રદેશ હેં
ઔર કોઈ એક જીવ અપ્રદેશ હૈ-ઔર કદાચિત્ અનેક સપ્રદેશ હેં ઔર
અનેક અપ્રદેશ હેં । હસકા કારણ યહ હૈ કિ યહાં પર ઇન સવ કા ચિરહ
સંભવિત હૈ । હસ તરહ યહાં પર યે ત્રીન ભંગ હેં એસા જાનના ચાહિયે
યહાં યાવત્ પદ સે-તેન્દ્રિય, ચતુરિન્દ્રિય, પંચેન્દ્રિયતિર્યગ્ચોનિક, મનુષ્ય,
વાનવ્યન્તર, જ્યોતિપિક ઔર વૈમાનિક ઇન સવ કા સંગ્રહ હુઆ હૈ ।
(આહારગાળં જીવ एगिदियवज्जो तियभंगो) એક જીવપદ કો ઔર
એકેન્દ્રિય કે પાંચ પદ કો છોડકર આહારકોં કે ત્રીન ભંગ હોતે હેં ।
જીવપદ કો છોડકર કહને કા ભાવ યહ હૈ કિ જીવ નિયમ સે સપ્રદેશ
હોતા હૈ । હસલિયે જીવ મેં એક હી ભંગ હૈ-સપ્રદેશ હી હાને કા કારણ
ઉસકી અનાદિતા ઔર અનન્તકાલતકસ્થિતિમત્તા હૈ । તથા એકેન્દ્રિય
કે પાંચપદ કો છોડકર કહને કા ભાવ યહ હૈ કિ એકેન્દ્રિય જીવોં મેં

જવા. એટલે કે (૧) દ્વીન્દ્રિયથી લઇને સિદ્ધ પર્યન્તના બધા જીવો પણ ક્યારેક
પ્રદેશયુક્ત હોય છે. (૨) ક્યારે કેટલાક જીવો સપ્રદેશ હોય છે અને કેઈક
જીવ અપ્રદેશ હોય છે. અને ક્યારેક અનેક સપ્રદેશ હોય છે અને અનેક
અપ્રદેશ હોય છે. તેનું કારણ એ છે કે આ પર્યાયોમાં એ સૌના વિરહ
સંભવિત છે. આ રીતે તેમના ત્રણ ભંગ (વિકલ્પ) સમજવા.

અહીં ' જાવ ' (પર્યન્ત) પદથી તેન્દ્રિય, ચતુરિન્દ્રિય, પંચેન્દ્રિય તિય'જો
મનુષ્ય, વાનવ્યન્તર, જ્યોતિપિક અને વૈમાનિકોને ગ્રહણ કરવામાં આવ્યા છે.

(આહારગાળં જીવ एगिदियवज्जो तियभंगो) એક જીવ પદને અને
એકેન્દ્રિયના પાંચ પદને છોડીને આક્રીના આહારક જીવોના ત્રણ ભંગ થાય
છે. જીવ પદને છોડવાનું કારણ એ છે કે જીવ નિયમથી જ સપ્રદેશ હોય છે.
તેથી જીવમાં એક જ ભંગ છે-જીવને સપ્રદેશી કહેવાનું કારણ એ છે કે જીવ
અનાદિ છે અને તેની સ્થિતિ અનન્તકાળની હોય છે. એકેન્દ્રિયના પાંચ પદોને

ભાવાત્, ' एवं जाव-वणस्तइकाइया ' एवं पृथिवीकायिकादेव यावत्-अएका-
यिकाः, तेजस्कायिकाः, वायुकायिकाः, वनस्पतिकायिकाः अपि बहवः सप्रदेशाः
बहवः अप्रदेशाश्च भवन्ति, सर्वेषामेकेन्द्रियाणामेक एव भद्रः, उत्पत्तिमरणविरहा
भावात् । ' सेसा जहा नेरइया तहा जाव सिद्धा ' शेषाः द्वीन्द्रियादारभ्य सिद्ध-
पर्यन्ताः जीवाः यथा नेरयिकाः अभिलाषप्रयेण प्रतिपादितास्तथैव अभिलाषप्रयेण

जीवों की अपेक्षा वे अप्रदेश हैं-इसीलिये " सप्रदेश भी और अप्रदेश
भी वे हैं " ऐसा कहा है । (एवं जाव वणस्तइकाइया) पृथिवीकायिक
जीवों की तरह ही-अएकायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक और वनस्प-
तिकायिक जीवों के विषय में सप्रदेश अप्रदेश की चर्चा जाननी चाहिये ।
अर्थात् जिस प्रकार से पृथिवीकायिक जीवों में कितनेक जीव सप्रदेश
और कितनेक अप्रदेश हैं उसी प्रकार से यहां अएकायिकादिकों में भी
कितनेक जीव सप्रदेश हैं और कितनेक जीव अप्रदेश हैं । इस तरह से
यहां इन सब एकेन्द्रिय जीवों में उत्पत्तिमरण के विरह के अभाव से
एक ही भंग सप्रदेशवाला होता है ऐसा जानना चाहिये । (सेसा जहा
नेरइया तहा जाव सिद्धा) शेष-द्वीन्द्रिय जीवों से लेकर सिद्धोत्तक में
कथन-सप्रदेश अप्रदेश का विवेचन-जैसा तीन अभिलाषों द्वारा पहिले
नारकों में हो चुका है-उसी प्रकार से जानना चाहिये । अर्थात्
प्रथम भंग सप्रदेश, द्वितीय भंग अप्रदेश, तृतीय भंग सप्रदेश अप्रदेश
इस तरह से जानना चाहिये । तथा च-द्वीन्द्रिय से लेकर यावत् सिद्ध-

કહ્યાં છે. તે કારણ એવું કહું છે કે " પૃથ્વીકાયિકો સપ્રદેશ પણ છે અને
અપ્રદેશ પણ છે. " (एवं जाव वणस्तइकाइया) पृथ्वीकायिक, एवोना, नेवुं न
कथन अपूकायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक અને वनस्पतिकायिक एवोना विष-
यमां પણ समञ्जुं. એટલે કે જેમ પૃથ્વીકાયિક એવોમાં કેટલાક સપ્રદેશ
હોય છે અને કેટલાક અપ્રદેશ હોય છે, તેમ અપૂકાયિક આદિમાં પણ કેટલાક
એવો સપ્રદેશ હોય છે અને કેટલાક અપ્રદેશ હોય છે. આ રીતે અહીં બધાં
એકેન્દ્રિય એવોમાં ઉત્પત્તિ-મરણના વિરહના અભાવે એક જ ભંગ સપ્રદેશ-
વાળો થાય છે એમ સમજવું.

(सेसा जहा नेरइया तहा जाव सिद्धा) બાકીના (દ્વીન્દ્રિયથી લઇને
સિદ્ધ પર્યન્તના) એવોના સપ્રદેશત્વ અને અપ્રદેશત્વનું કથન નારકોના કથન
પ્રમાણે જ સમજવું. નારકોના સપ્રદેશત્વનું કથન ત્રણ આલાપકો (અભિલાષો)
દ્વારા આગળ આપવામાં આવ્યું છે. એટલે કે પહેલો ભંગ સપ્રદેશ, બીજો
ભંગ અપ્રદેશ અને ત્રીજો ભંગ સપ્રદેશઅપ્રદેશ, આ પ્રકારના ત્રણ ભંગ સમ-

વક્તવ્યાઃ, તથા ચ-દ્વીન્દ્રિયાદયોઽપિ યાવત્-સિદ્ધાઃ કદાચિત્ સર્વેસપ્રદેશાઃ, કદા-
ચિદ્ વહવઃ સપ્રદેશાઃ, એકઃ અપ્રદેશથ કદાચિત્તુ વહવઃ સપ્રદેશાઃ વહવઃ અપ્રદે-
શથ ભવન્તિ, ઉક્તરીત્યા સર્વેપામેપાં ત્રિરહસંભવાત્, एकाद्युत्पत्तेश्च, યાવત્કરુણાત્
દ્વીન્દ્રિય-ત્રીન્દ્રિય-ચતુરિન્દ્રિય-પંચેન્દ્રિય-તિર્યગ્ગોનિક-મનુષ્ય-વાનવ્યન્તરજ્યો-
તિપિક-વૈમાનિકાઃ સંગ્રાહ્યાઃ । ' આહારગાળં જીવ-एगिंदियवज्जो तियभंगो '

આહારગાળામ્ આહારક જીવેન્દ્રિયવર્જાસ્ત્રયોભક્તાઃ, જીવપદમ્, એકેન્દ્રિયપૃથિવી-
કાયાદિપદપદ્મકં ચ વર્જયિત્વા ભક્તવિક્રમ્, અયં ભાવઃ- 'જીવો નિયમાત્સપ્રદેશઃ ઇતિ
જીવે એક એવ ભક્તઃ તસ્ય સદા સર્વપ્રદેશત્વાત્ । એકેન્દ્રિયે ' સપ્રદેશા અપિ
પર્યન્ત જીવ ધી કદાચિત્ સવ સપ્રદેશ હૈ, કદાચિત્ કિતને સપ્રદેશ હૈ
ઔર કોई एक जीव अप्रदेश है-और कदाचित् अनेक सप्रदेश हँ और
अनेक अप्रदेश हँ । इसका कारण यह है कि यहाँ पर इन सब का विरह
संभचित है । इस तरह यहाँ पर ये तीन भंग हँ ऐसा जानना चाहिये
यहाँ यावत् पद से-तेन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रियतिर्यग्योनिक, मनुष्य,
वानव्यन्तर, ज्योतिषिक और वैमानिक इन सब का संग्रह हुआ है ।
(आहारगाणं जीव एगिंदियवज्जो तियभंगो) एक जीवपद को और
एकेन्द्रिय के पांच पद को छोड़कर आहारकों के तीन भंग होते हैं ।
जीवपद को छोड़कर कहने का भाव यह है कि जीव नियम से सप्रदेश
होता है । इसलिये जीव में एक ही भंग है-सप्रदेश ही होने का कारण
उसकी अनादिता और अनन्तकालतकस्थितिमत्ता है । तथा एकेन्द्रिय
के पांचपद को छोड़कर कहने का भाव यह है कि एकेन्द्रिय जीवों में

જવા. એટલે કે (૧) દ્વીન્દ્રિયથી લઈને સિદ્ધ પર્યન્તના બધા જીવો પણ ક્યારેક
પ્રદેશયુક્ત હોય છે. (૨) ક્યારે કેટલાક જીવો સપ્રદેશ હોય છે અને કેટલક
જીવ અપ્રદેશ હોય છે. અને ક્યારેક અનેક સપ્રદેશ હોય છે અને અનેક
અપ્રદેશ હોય છે. તેનું કારણ એ છે કે આ પર્યાયોમાં એ સૌનો વિરહ
સંભવિત છે. આ રીતે તેમના ત્રણ ભંગ (વિકલ્પ) સમજવા.

અહીં ' જાવ ' (પર્યન્ત) પદથી તેન્દ્રિય, ચતુરિન્દ્રિય, પંચેન્દ્રિય તિર્યગ્
મનુષ્ય, વાનવ્યન્તર, જ્યોતિષિક અને વૈમાનિકોને ગ્રહણ કરવામાં આવ્યા છે.

(આહારગાળં જીવ એગિન્દિયવજ્જો તિયભંગો) એક જીવ પદને અને
એકેન્દ્રિયના પાંચ પદને છોડીને બાકીના આહારક જીવોના ત્રણ ભંગ થાય
છે. જીવ પદને છોડવાનું કારણ એ છે કે જીવ નિયમથી જ સપ્રદેશ હોય છે.
તેથી જીવમાં એક જ ભંગ છે-જીવને સપ્રદેશી કહેવાનું કારણ એ છે કે જીવ
અનાદિ છે અને તેની સ્થિતિ અનંતકાળની હોય છે. એકેન્દ્રિયના પાંચ પદોને

અપ્રદેશા અપિ ' શ્લોક એ મદ્ભઃ તત્ર-ઉત્પત્તિમણવિરહામાચાત, જત એવોક્તમ્
 જીવૈવેન્દ્રિયવર્જ મદ્ભઝિકમિતિ । તથાદિ ' સપ્રદેશાઃ૨, ' સપ્રદેશાશ્ચ અપ્રદેશાશ્ચ૨
 ' સપ્રદેશાશ્ચ અપ્રદેશાશ્ચ૩ ઈતિ મદ્ભઝવ્યમ્, સિદ્ધપદં ત્વત્ર ન વક્તવ્યં, તેનામનાહાર-
 ક્ત્વાત્ । તથાદિ-આહારકપદવિશેષિતો એકત્રયદ્વૈત્વવિષયકદ્વંડકો અવસ્તન
 પ્રદર્શિતરીત્યા વેદિતવ્યો, તત્ર પ્રથમમ્ એકત્રયદ્વંડકાભિલાપમાદ-'આહારણ જં મંતે !

ઉત્પત્તિ ઓર મરણ કે વિરહ કા અભાવ રહતા હૈ ઇસ કારણ ડસમે
 " સપ્રદેશા અપિ અપ્રદેશા અપિ " એસા એક હી ભંગ-તીસરા હી મદ્ભઝ
 યનતા હૈ । ઇસી કારણ " જીવૈકેન્દ્રિયવર્જ મદ્ભઝિકમ્ " એસા સૂત્રકાર
 ને કહા હૈ । આહારક જીવોં મેં મદ્ભઝિક ઇસ પ્રકાર સે હેં-(૧) આહારક
 જીવ સપ્રદેશ હોતે હેં એસા યહ પ્રથમ ભંગ હૈ । " સપ્રદેશાશ્ચ અપ્રદેશાશ્ચ
 કિતનેક પૂર્વોત્પન્ન અહારક જીવ સપ્રદેશ હોતે હેં ઓર કોઈ એક નયા
 ઉત્પદ્યમાન આહારક જીવ અપ્રદેશ હોતા હૈ । યહ ઘિતીય ભંગ હૈ ।
 " સપ્રદેશાશ્ચ અપ્રદેશાશ્ચ " કિતનેક પૂર્વોત્પન્ન આહારક જીવ સપ્રદેશ
 મી હોતે હેં ઓર કિતનેક ઉત્પદ્યમાન આહારક જીવ અપ્રદેશ મી હોતે
 હેં, યહ તૃતીયમદ્ભઝ હૈ । " સિદ્ધપદંત્વત્ર ન વક્તવ્યમ્ " કા તાત્પર્ય યહ
 હૈ કિ સિદ્ધ જીવ અનાહારક હોતે હેં ઇસ કારણ યહાં ડન્હેં ગ્રહણ નહીં
 ક્રિયા ગયા હૈ । ઇસ વિષય મેં વિશેષરૂપ સે સ્પષ્ટીકરણ ઇસ પ્રકાર સે
 હૈ-આહારક પદ સે વિશેષિત હુણ દો દ્વંડક કિ જો એક આહારક જીવ

છોડવાનું કારણ એ છે કે એકેન્દ્રિય જીવોમાં ઉત્પત્તિ અને મરણના વિરહનો
 અભાવ રહે છે, તે કારણે તેમનો (સપ્રદેશા અપિ અપ્રદેશા અપિ) એવો
 એક જ ભંગ-ત્રીજો ભંગ જ અને છે. તે કારણે સૂત્રકારે એવું કહ્યું છે કે
 (જીવૈકેન્દ્રિયવર્જ મદ્ભઝિકમ્) એક જ પદને અને એકેન્દ્રિયને છોડીને
 ષાકીના આહારક જીવોના ત્રણ ભંગ થાય છે. તે ત્રણ ભંગ નીચે પ્રમાણે છે-

(૧) આહારક જીવો સપ્રદેશ હોય છે. (૨) (સપ્રદેશાશ્ચ અપ્રદેશાશ્ચ)
 કેટલાક પૂર્વોત્પન્ન આહારક જીવો સપ્રદેશ હોય છે અને કેટક નવો ઉત્પન્ન
 થયેલો આહારક જીવ અપ્રદેશ હોય છે. (૩) " સપ્રદેશાશ્ચ અપ્રદેશાશ્ચ " કેટલાક
 પૂર્વોત્પન્ન આહારક જીવો સપ્રદેશ હોય છે અને કેટલાક નવા ઉત્પન્ન થતા
 આહારક જીવો અપ્રદેશ હોય છે. (સિદ્ધપદંત્વત્ર ન વક્તવ્ય) સિદ્ધ જીવ અના-
 હારક હોય છે, તે કારણે ઉપર્યુક્ત આહારક જીવોમાં તેમનો સમાવેશ થતો
 નથી. આ વિષયનું વિશેષ સ્પષ્ટીકરણ નીચે પ્રમાણે છે—

જીવે કાલાણ્ણેણં કિં સપણ્ણે, અપણ્ણે? ગોયમા! સિય સપણ્ણે, સિય અપણ્ણે' ઇત્યાદિ । ' આહારકઃ સ્વલુ મદન્ત । જીવઃ કાલાદેશેન કિં સપ્રદેશઃ? અપ્રદેશઃ? ગૌતમ ! સ્યાત્ સપ્રદેશઃ, સ્યાત્ અપ્રદેશઃ, તત્ર યદા ત્રિગ્રહગતૌ કેવલિસમુદ્ઘાતે ચ યો જીતોઽનાહારત્તો ભૂત્થા પુનરાહારક્ત્વં માપ્નોતિ તદા સ આહારકત્વમાત્તિ-મયવસમયે અપ્રદેશઃ, દ્વયાદિસમયે તુ સપ્રદેશો મવતિ, ઉપર્યુક્તેકત્વાભિલાપઃ સર્વે-પ્યપિ સાદિભાવેષુ ઘોઽપ્યઃ, અનાદિભાવેષુ તુ ' નિયમા સપણ્ણે ' ત્તિ ' નિયમાત્

और अनेक आहारक जीवों की अपेक्षा से कहे गये हैं वे इस प्रकट की गई रीतिके अनुसार हैं—उनमेंसे एक आहारक जीव की अपेक्षासे प्रथम दण्डक "आहारणं भन्ते । जीवे कालाण्णं किं सपण्णं । अपण्णं गोयमा । सिय सपण्णं सिय अपण्णं" इत्यादि यह है—गौतम ने प्रश्न किया—कि हे भदन्त ! आहारक जीव काल की अपेक्षा सप्रदेश है कि अप्रदेश है ? इसका उत्तर प्रभुने "कदाचित् वह सप्रदेश है और कदाचित् वही अप्रदेश है" इत्यादिरूप से दिया—जीव जब विग्रहगति में अथवा केवलिसमुद्घानमें अनाहारक होकर पुनः आहारक अवस्थावाला बनता है, उस समय वह आहारक अवस्था प्राप्त करने के प्रथम समय में अप्रदेश है और जब वही जीव द्रयादिसमयों में वर्तमान होता है तब वह सप्रदेश है, उपर्युक्त एकत्व विषयक अभिलाष समस्त सादि-

આહારક જીવોને આધારે બે ઠંડક કહ્યા છે. એક ઠંડક એક આહારક જીવની અપેક્ષાએ કહ્યું છે અને બીજું ઠંડક અનેક આહારક જીવોની અપેક્ષાએ કહ્યું છે. તે બંને ઠંડકો નીચે બતાવ્યા પ્રમાણે છે—આહારક જીવની અપેક્ષાએ પ્રથમ ઠંડક આ પ્રમાણે છે—(આહારણં ભન્તે ! જીવે કાલાણ્ણં કિં સપણ્ણં અપણ્ણં ? ગોયમા ! સિય સપણ્ણં સિય અપણ્ણં) ઇત્યાદિ.

ગૌતમ સ્વામીને પ્રશ્ન—હે ભદન્ત ! આહારક જીવ કાળની અપેક્ષાએ સપ્રદેશ છે કે અપ્રદેશ છે ?

ઉત્તર—હે ગૌતમ ! ક્યારેક તે સપ્રદેશ હોય છે અને ક્યારેક એ જ અપ્રદેશ હોય છે. જીવ જ્યારે વિગ્રહ ગતિમાં અથવા કેવલિ સમુદ્ઘાતમાં અનાહારક થઈને ક્રીચી આહારક અવસ્થામાં આવે છે, ત્યારે આહારક અવસ્થા પ્રાપ્ત કરવાના પ્રથમ સમયે તે અપ્રદેશ હોય છે, અને જ્યારે એ જ જીવ બે ત્રણ આદિ સમયો સુધી એ જ અવસ્થામાં રહે છે, ત્યારે તે સપ્રદેશ હોય છે. ઉપર્યુક્ત એકત્વ વિષયક અભિલાષ (આલાપક) સમસ્ત સાદિ ભાવો-

અપ્રદેશ અપિ ' સ્ત્યેક એ મદ્ગઃ તત્ર-ઉત્પત્તિમરણવિરહામાચાત, અત એવોક્તમ્
 જીવૈવેન્દ્રિયવર્જ મદ્ગત્રિકમિતિ । તથાદિ ' સપ્રદેશઃ૨, ' સપ્રદેશાથ અપ્રદેશથ૨
 ' સપ્રદેશાથ અપ્રદેશાથ૨ ઇતિ મદ્ગત્રયમ્, સિદ્ધપદં તત્ર ન વક્તવ્યં, તેષામનાહાર-
 ક્ત્વાત્ । તથાદિ-આહારકપદવિશેષિતો પરુત્યગ્નૃત્વવિષયકદ્વંડકો અધસ્તન
 પ્રદર્શિતરીત્યા વેદિતવ્યો, તત્ર પ્રથમમ્ પરુત્યગ્નૃત્વકામિભ્યાપમાહ-'આહારક જં મંતે ।

ઉત્પત્તિ ઓર મરણ કે વિરહ કા અભાવ રહતા હૈ ઇસ કારણ ડસમેં
 " સપ્રદેશા અપિ અપ્રદેશા અપિ " એસા એક હી મંગ-તીસરા હી મદ્ગ
 પનતા હૈ । ઇસી કારણ " જીવૈવેન્દ્રિયવર્જ મદ્ગત્રિકમ્ " એસા સૂત્રકાર
 ને કહા હૈ । આહારક જીવોં મેં મદ્ગત્રિક ઇસ પ્રકાર સે હેં-(૧) આહારક
 જીવ સપ્રદેશ હોતે હેં એસા યહ પ્રથમ મંગ હૈ । " સપ્રદેશાથ અપ્રદેશાથ
 કિતનેક પૂર્વોત્પન્ન અહારક જીવ સપ્રદેશ હોતે હેં ઓર કોઈ એક નવા
 ઉત્પચમાન આહારક જીવ અપ્રદેશ હોતા હૈ । યહ ઢિતીય મંગ હૈ ।
 " સપ્રદેશાથ અપ્રદેશાથ " કિતનેક પૂર્વોત્પન્ન આહારક જીવ સપ્રદેશ
 મી હોતે હેં ઓર કિતનેક ઉત્પચમાન આહારક જીવ અપ્રદેશ મી હોતે
 હેં, યહ તૃતીયમદ્ગ હૈ । " સિદ્ધપદંત્વત્ર ન વક્તવ્યમ્ " કા તાત્પર્ય યહ
 હૈ કિ સિદ્ધ જીવ અનાહારક હોતે હેં ઇસ કારણ યહાં ડન્હેં ગ્રહણ નહીં
 ક્રિયા ગયા હૈ । ઇસ વિષય મેં વિશેષરૂપ સે સ્પષ્ટીકરણ ઇસ પ્રકાર સે
 હૈ-આહારક પદ સે વિશેષિત હુવે દો દ્વંડક કિ જો એક આહારક જીવ

છોડવાનું કારણ એ છે કે એકેન્દ્રિય જીવોમાં ઉત્પત્તિ અને મરણના વિરહનો
 અભાવ રહે છે, તે કારણે તેમનો (સપ્રદેશા અપિ અપ્રદેશા અપિ) એવો
 એક જ ભંગ-ત્રીને ભંગ જ બને છે. તે કારણે સૂત્રકારે એવું કહ્યું છે કે
 (જીવૈવેન્દ્રિયવર્જ મંગત્રિકમ્) એક જ પદને અને એકેન્દ્રિયને છોડીને
 બાકીના આહારક જીવોના ત્રણ ભંગ થાય છે. તે ત્રણ ભંગ નીચે પ્રમાણે છે-

(૧) આહારક જીવો સપ્રદેશ હોય છે. (૨) (સપ્રદેશાથ અપ્રદેશાથ)
 કેટલાક પૂર્વોત્પન્ન આહારક જીવો સપ્રદેશ હોય છે અને કોઈક ત્રણ ઉત્પન્ન
 થયેલા આહારક જીવ અપ્રદેશ હોય છે. (૩) " સપ્રદેશાથ અપ્રદેશાથ " કેટલાક
 પૂર્વોત્પન્ન આહારક જીવો સપ્રદેશ હોય છે અને કેટલાંક નવા ઉત્પન્ન થતા
 આહારક જીવો અપ્રદેશ હોય છે. (સિદ્ધપદંત્વત્ર ન વક્તવ્ય) સિદ્ધ જીવ અના-
 હારક હોય છે, તે કારણે ઉપયુક્ત આહારક જીવોમાં તેમનો સમાવેશ થતા
 નથી. આ વિષયનું વિશેષ સ્પષ્ટીકરણ નીચે પ્રમાણે છે-

विकल्पत्रयेण वाच्याः, तथाहि—‘ आहारयाणं भंते ! नेरइया जीवा कालाएसे णं किं सपएसा, अपएसा ? गोयमा ! सव्वे वि ताव होज्जा सपएसा, अहवा सपएसा य अपएसे य, अहवा सपएसा य अपएसा य ’ चि ‘ आहारकाः खलु भदन्त । नेरयिकाः जीवाः कालादेशेन किं सप्रदेशाः ? अप्रदेशा वा ? गौतम ! सर्वे पि तावत् भवन्ति सप्रदेशाः, अथवा सप्रदेशाश्च अप्रदेशश्च, अथवा सप्रदेशाश्च अप्रदेशश्च ’ इति, एतदभिप्रायेणोक्तम्—‘ आहारयाणं जीव-एगिदियवज्जो तियभंगो ’

न्द्रिय अवस्थावाले हैं वे पूर्वोत्पन्न रूप से सप्रदेश हैं और विग्रहगति से निकलकर जब वे आहारकरूप से एकेन्द्रिय अवस्थावाले बनते हैं उस समय प्रथम समय में आहारक होने के कारण वे अप्रदेश हैं। नैरयिक आदि जीवों को तो तीन विकल्पों द्वारा इस प्रकार से कहना चाहिये— (आहारया णं भंते ! नेरइया जीवा कालाएसेणं किं सपएसा अपएसा गोयमा ! सव्वे वि ताव होज्जा सपएसा, अहवा-सपएसाय अपएसे य अहवा-सपएसा य, अपएसा य) गौतम ने जब प्रभु से ऐसा पूछा कि हे भदन्त ! जो आहारक नारक जीव हैं वे कालकी अपेक्षा क्या सप्रदेश हैं ? या अप्रदेश हैं ? तब इसका उत्तर प्रभुने उन्हें ऐसा दिया कि गौतम ! आहारक अवस्थावाले जितने भी पूर्वोत्पन्न नारक जीव हैं वे सबके सब भी सप्रदेश हैं। अथवा—उनमें कितनेक सप्रदेश हैं और कोई एक अप्रदेश है अथवा—कितनेक सप्रदेश हैं और कितनेक अप्रदेश हैं। इसी

आदिना विषयमां पणु समञ्जुं. એટલે કે જે આહારક જીવો પૃથ્વીકાય આદિ એકેન્દ્રિય અવસ્થાવાળા હોય છે, તેઓ પૂર્વોત્પન્નરૂપે સપ્રદેશ હોય છે, પણ ત્રિશ્લુ ગતિમાંથી નીકળીને ત્યારે તેઓ આહારક રૂપે એકેન્દ્રિય અવસ્થાવાળા બને છે, ત્યારે પ્રથમ સમયે આહારક હોવાને કારણે તેઓ અપ્રદેશ હોય છે. નારક આદિ જીવોના વિષયમાં આ પ્રમાણે ત્રણ વિકલ્પ (ભંગ) સમજવા—(આહારયા ણં ભંતે ! નેરइया जीवा कालाएसेणं किं सपएसा अपएसा ?) (गोयमा ! सव्वे वि ताव होज्जा सपएसा, अहवा-सपएसा य अपएसा य, अहवा-सपएसा य अपएसा य) गौतमस्वामीનો પ્રશ્ન—“ હે ભદન્ત ! આહારક નારક જીવો કાળની અપેક્ષાએ સપ્રદેશક કે અપ્રદેશ છે ? ” તેનો ઉત્તર આપતાં મહાવીર પ્રભુ કહે છે—“ હે ગૌતમ ! આહારક અવસ્થાવાળા જેટલાં પૂર્વોત્પન્ન નારક જીવો છે તેઓ અધાં સપ્રદેશ છે. અથવા તેમનામાંથી કેટલાક સપ્રદેશ છે અને કોઈક અપ્રદેશ છે. અથવા કેટલાક સપ્રદેશ છે. અને કેટ-

સપ્રદેશ: ' શ્ચિ વાચ્યમ્ । વદુસ્વદ્બુકામિલાપસ્સ્વેવં વોધ્ય:—'આહારયાણં મંતે !
 જીવા કાલાણ્સેણં અપણ્સા ? ગોયમા । સપણ્સા વિ, અપણ્સા વિ ' ત્તિ ' આહાર-
 રકાઃ સ્વલુ મદન્ત ! જીવાઃ કાલાદેશેન કિં સપ્રદેશઃ ? અપ્રદેશઃ ? ગૌતમ !
 સપ્રદેશા અપિ, અપ્રદેશા અપિ ' શ્ચિ, તન્ન વહુનામાહારકત્વેનાવસ્થિતસ્માત્ સપ્ર-
 દેશત્વમ્, વહુનાં ચ વિગ્રહગતેરનન્તરં પ્રથમસમયે આહારકત્વસંભવેન આહારકા-
 ણામ્ અપ્રદેશત્વં ચ વોધ્યમ્ । એવં પૃથિગ્વાદયોઽપિ વક્તવ્યાઃ, નૈરપિકાદયસ્તુ

भावों में जानना चाहिये और अनादिभावों में तो “ नियम सपणसे
 त्ति ” नियम से आहारक अवस्थावाला पूर्वोत्पन्न जीव सप्रदेश ही है
 ऐसा जानना चाहिये । वदुस्व वदुवचन विषयक दण्डाभिलाप ऐसा है
 (आहारयाणं मंते ! जीवा कालाणसेणं किं सपणसा, अपणसा ? गोय-
 मा ! सपणसा वि अपणसा वि त्ति) गौतम ने प्रभु से ऐसा पूछा है
 कि भदन्त अनेक आहारक जीव काल की अपेक्षा से क्या सप्रदेश हैं
 कि अप्रदेश हैं ? इसका उत्तर देते हुए प्रभु उनसे कहते हैं कि हे गौतम !
 अनेक आहारक जीव सप्रदेश भी हैं और अप्रदेश भी हैं । अर्थात्
 पूर्वोत्पन्न जितने भी आहारक जीव हैं वे सप तो सप्रदेश हैं और विग-
 र्हागति से निकल कर जब अनेक जीव आहारक अवस्थावाले बनते हैं
 तब वे प्रथम समय में अप्रदेश हैं । क्योंकि प्रथम समय में वे अना-
 हारक नहीं रहते हैं—आहारक ही होते हैं । इसी तरह से पृथिव्यादिकों
 को भी जानना चाहिये, अर्थात् जो आहारक जीव पृथिव्यादिकरूप एके-

ને જ લાગુ પડે છે એમ સમજવું, અનાદિ ભાવોમાં તે । (નિયમ સપણસે ત્તિ)
 આહારક અવસ્થાવાળો પૂર્વોત્પન્ન જ નિયમથી જ સપ્રદેશ છે એમ સમજવું .

વદુસ્વ (વદુવચન) વિષયક અભિલાપ નીચે પ્રમાણે છે—(આહારયાણં
 મંતે ! જીવા કાલાણ્સેણં કિં સપણ્સા, અપણ્સા ? ગોયમા । સપણ્સા વિ
 અપણ્સા વિ ત્તિ) ગૌતમ સ્વામી મહાવીર પ્રભુને એવો પ્રશ્ન પૂછે છે કે હે
 ભદન્ત ! આહારક એવો કાળની અપેક્ષાએ સપ્રદેશ છે કે અપ્રદેશ છે ?

તેને જવાબ આપતા મહાવીર પ્રભુ કહે છે—“ હે ગૌતમ ! અनेक
 આહારક એવો સપ્રદેશ પણ હોય છે અને અપ્રદેશ પણ હોય છે . ” કહેવાતું
 તાત્પર્ય એ છે કે પૂર્વોત્પન્ન જેટલા આહારક એવો છે તેઓ તે સપ્રદેશ છે,
 પણ વિગ્રહગતિમાંથી નીકળીને જ્યારે અનેક એવો આહારક અવસ્થાવાળો
 બને છે, ત્યારે તેઓ પ્રથમ સમયે અપ્રદેશ હોય છે, કારણ કે પ્રથમ સમયે
 તેઓ અનાહારક રહેતા નથી—આહારક જ હોય છે. એજ પ્રમાણે પૃથ્વીકાય

विकल्पत्रयेण वाच्याः, तथाहि—‘ आहारयाणं भंते ! नेरइया जीवा कालाएसे णं किं सपएसा, अपएसा ? गोयमा ! सव्वे वि ताव होज्जा सपएसा, अहवा सपएसा य अपएसे य, अहवा सपएसा य अपएसा य ’ चि ‘ आहारकाः खलु भदन्त । नैरयिकाः जीवाः कालादेशेन किं सप्रदेशाः ? अप्रदेशा वा ? गौतम ! सर्वे पि तावत् भवन्ति सप्रदेशाः, अथवा सप्रदेशाश्च अप्रदेशश्च, अथवा सप्रदेशाश्च अप्रदेशश्च ’ इति, एतदभिप्रायेणोक्तम्—‘ आहारयाणं जीव-एणिंदियवज्जो तियभंगो ’

न्द्रिय अवस्थावाले हूँ वे पूर्वोत्पन्न रूप से सप्रदेश हूँ और विग्रहगति से निकलकर जब वे आहारकरूप से एकेन्द्रिय अवस्थावाले बनते हूँ उस समय प्रथम समय में आहारक होने के कारण वे अप्रदेश हूँ । नैरयिक आदि जीवों को तो तीन विकल्पों द्वारा इस प्रकार से कहना चाहिये— (आहारया णं भंते ! नेरइया जीवा कालाएसेणं किं सपएसा अपएसा गोयमा ! सव्वे वि ताव होज्जा सपएसा, अहवा-सपएसाय अपएसे य अहवा-सपएसा य, अपएसा य) गौतम ने जब प्रभु से ऐसा पूछा कि हे भदन्त ! जो आहारक नारक जीव हैं वे कालकी अपेक्षा क्या सप्रदेश हैं ? या अप्रदेश हैं ? तब इसका उत्तर प्रभुने उन्हें ऐसा दिया कि गौतम ! आहारक अवस्थावाले जितने भी पूर्वोत्पन्न नारक जीव हैं वे सबके सब भी सप्रदेश हूँ । अथवा—उनमें कितनेक सप्रदेश हूँ और कोई एक अप्रदेश है अथवा—कितनेक सप्रदेश हूँ और कितनेक अप्रदेश हूँ । इसी

आदिना विषयमां पञ्च समन्वुः अट्ठे के ने आहारक एवो पृथ्वीकाय आदि अकेन्द्रिय अवस्थावाणा होय छे, तेजो पूर्वोत्पन्नइये सप्रदेश होय छे, पञ्च त्रिअह गतिमांथी नीकणीने न्यारे तेजो आहारक इये अकेन्द्रिय अवस्थावाणा भने छे, त्यारे प्रथम समये आहारक होवाने कारखे तेजो अप्रदेश होय छे. नारक आदि एवेना विषयमां आ प्रभाए त्रय विकल्प (लंग) समन्वा—(आहारया णं भंते ! नेरइया जीवा कालाएसेणं किं सपएसा अपएसा ?) (गोयमा ! सव्वे वि ताव होज्जा सपएसा, अहवा-सपएसा य अपएसा य, अहवा-सपएसा य अपएसा य) गौतमस्वामीने प्रश्न—“ छे लहन्त ! आहारक नारक एवो काणनी अपेक्षाअे सप्रदेशक के अप्रदेश छे ? ” तेनो उत्तर आपतां महावीर प्रभु छे छे—“ छे गौतम ! आहारक अवस्थावाणा नेटलां पूर्वोत्पन्न नारक एवो छे तेजो पधां सप्रदेश छे. अथवा तेमनामांथी केटलाक सप्रदेश छे अने केटलाक अप्रदेश छे. अथवा केटलाक सप्रदेश छे. अने केट-

તિ । એવમ્ અનાહારકપદવિશેષિતાયપિ એકત્વ-વહુતા-વિષયકદણ્ડકો વિજ્ઞેયો, સપ્ત વહુત્વદણ્ડકાલાપકે વિશેષં મૂલે વક્ષ્યતિ, સમ્પતિ એકતાદણ્ડકાલાપકવિષયે ઉચ્યતે-અનાહારકો વિગ્રહમર્યાપન્નઃ । સમુદ્યાતકેવલી, અયોગી સિદ્ધો વા અનાહારકત્વપ્રથમસમયે અપ્રદેશઃ, દ્વયાદિમયે તુ સપ્રદેશો વેદિતઃ ॥

અથ અનાહારકવહુત્વદણ્ડકે મતિતાદયિતુમાદ-અનાહારમાણં જીવ એગિદિય વજ્જા છબ્ભંગા एवं भाणियन्वा ' અનાહારમાણાં જીવાનાં જીવેકેન્દ્રિયવર્ગાઃ સમુ-

અભિપ્રાય કો લેકર " આહારમાણં જીવએગિદિયવજ્જો તિયમંગા " સૂત્રકાર ને એસા કહ્યા હૈ કિ એક જીવ પદ કો ઓર એકેન્દ્રિય કે પાંચ પદો કો છોડકર આહારક જીવોં કે ત્રીન ભંગ કહે ગયે હૈં । ઈસી તરહ સે અનાહારક પદ સે વિશેષિત કરકે અનાહારક જીવોં કે ઓ એક વચન ઓર વહુ વચન કો વિવક્ષા સે દો દણ્ડક કહના ચાહિયે । વહુત્વદણ્ડક મેં-વહુત અનાહારક જીવ વિષયક ત્રિતીય દણ્ડક મેં- " કયા વિશેષતા હૈ ? " યહ માત તો સૂત્રકાર સ્વયં હી મૂલપાઠ મેં પ્રકટ કરેગે યહાં તો હમ એકત્વદણ્ડક કે આલાપ કે વિષય મેં કહતે હૈં-જો ઈસ પ્રકાર સે હૈ-વિગ્રહગતિ મેં રહ્યા હુઆ જીવ, સમુદ્યાતગતકેવલી, અયોગી એવં સિદ્ધ-એ સબ અનાહારક હોતે હૈં । સો યે સબ જબ અનાહારક અવસ્થા કે પ્રથમ સમય મેં રહતે હૈં, તય તો અપ્રદેશ કહે ગયે હૈં ઓર જબ યે ત્રિતીય આદિ સમયોં મેં રહતે હૈં, તય સપ્રદેશ કહે ગયે હૈં । અનાહારક કે વહુત્વદણ્ડક મેં જો વિશેષતા હૈં ઉસે પ્રકટ કરનેકે લિયે સૂત્રકાર કહતે હૈં કિ-(અનાહારમાણં જીવ-એગિદિયવજ્જા છબ્ભંગા एवं

લાક અપ્રદેશ છે. એ જ વાતને ધ્યાનમાં રાખીને સૂત્રકારે કહ્યું છે કે " આહારમાણં જીવએગિદિયવજ્જો તિયમંગો " એક જીવપદને છોડીને તથા એકેન્દ્રિયનાં પાંચ પદોને છોડીને બાકીના આહારક જીવોના ત્રણ ભંગ કહ્યા છે." એ જ પ્રમાણે અનાહારક જીવોના ત્રણ એકવચન અને બહુવચનની વિવક્ષાથી બે દંડક કહેવા બેઠાં. બહુવચનવાળા દંડકમાં (અનેક અનાહારક જીવો વિષેના બીજા દંડકમાં) શી વિશેષતા છે તે સૂત્રકારે મૂળ સૂત્રપાઠમાં આગળ બતાવ્યું છે, અહીં તો એકત્વદંડકના આલાપક વિષે નીચે પ્રમાણે સ્પષ્ટતા કરવામાં આવે છે. વિગ્રહગતિમાં રહેલો જીવ; સમુદ્યાત કેવલી, અયોગી અને સિદ્ધ અનાહારક હોય છે. તેઓ ન્યારે અનાહારક અવસ્થાના પ્રથમ સમયમાં રહેલા હોય છે, ત્યારે તો અપ્રદેશ જ કહેવાય છે, પણ ન્યારે તેઓ તે અવસ્થાના, બીજા, ત્રીજા આદિ સમયોમાં રહેલા હોય છે, ત્યારે તે સપ્રદેશ કહેવાય છે.

હવે સૂત્રકાર અનાહારક જીવોના બહુત્વદંડકમાં જે વિશેષતા રહેલી છે તે પ્રકટ કરતા કહે છે—“ અનાહારમાણં જીવ - એગિદિયવજ્જા છબ્ભંગા एवं

ચયજીવપદવત્, એકેન્દ્રિયપૃથિવ્યાદિપञ्चકપદં ચ વર્જયિત્વા પદ્મજ્ઞાઃ एवं વક્ષ્ય-
માણપ્રકારેણ મણિતવ્યાઃ વક્તવ્યાઃ જીવપદે, એકેન્દ્રિયપદે ચ ' સપણ્સા ય અપ-
ણ્સા ય ' ' સપદેશાથ અપદેશાથ' इत्येवंरूप एको भङ्गो बोध्यः, વહુનાં વિપ્રહ-
મત્યાપન્નાનાં સપદેશાનામ્ અપદેશાનાં ચ સદ્ભાવાત્ । અથ તાનેત્ર પદ્મજ્ઞાનાહ-
' સપણ્સા વા ૧, અપણ્સા વા ૨, અહવા સપણ્સે ય અપણ્સે ય ૩, અહવા સપ-
ણ્સે ય, અપણ્સા ય ૪, અહવા સપણ્સા ય અપણ્સે ય ૫, અહવા સપણ્સા ય,
અપણ્સાય ૬' સપદેશા વા ૧, અપદેશા વા ૨, અથવા સપદેશાથ અપદેશાથ ૩
અથવા સપદેશાથ અપદેશાથ ૪, અથવા સપદેશાથ અપદેશાથ ૫, અથવા સપદેશાથ
અપદેશાથ ૬ અનાહારકા જીવા ભવન્તિ । આદ્યો તત્ર દ્વૌ વહુવચનાન્તો, તૃતીયચ્ચૈક

માણિયવ્યા) અનાહારક જીવોં કે છહ મંગ, જીવપદ કો ઓર એકેન્દ્રિય
પૃથિવી આદિકોં કે પાંચ પદોં કો છોડકર કે હસ પ્રકાર સે કહતે હૈ-
જીવપદ મેં ઓર એકેન્દ્રિયપદ મેં ' સપણ્સા ય અપણ્સા ય ' ' સપદેશાઃ '
ઓર ' અપદેશાઃ ' ણેસા એક હી મંગ હોતા હૈ-કયોં કિ વહાં પર વિપ્રહમતિ
મેં રહે હુણે અનેક જીવ દ્વિતીયાદિ સમય વાલે હોને કે કારણ સપદેશ
હોતે હૈં અનેક જીવ પ્રથમ સમય વર્તી હોને કે કારણ અપદેશ હોતે હૈં ।
અલ્પતર નૈરયિકોં કા અલ્પતર ભવનપતિયોં કા તથા અલ્પતર દો ઇન્દ્રિય
આદિકોં કા ઉત્પાદ હોતા હૈ સો ઇનમેં એક દો આદિ અનાહારક હોતે
હૈ-હસી કારણ વહાં છહ મંગ હૈં-વે છહ મંગ ઇસ પ્રકાર સે હૈં-" સપ-
ણ્સા વા ૧, અપણ્સા વા ૨, અહવા-સપણ્સે ય, અપણ્સે ય ૩, અહવા-
સપણ્સે ય, અપણ્સા ય ૪, અહવા-સપણ્સા ય અપણ્સે ય ૫, અહવા-

માણિયવ્યા " એક છવ પદને અને એકેન્દ્રિય પૃથ્વીકાય આદિ પાંચ પદને
છોડીને ણાક્રીના અનાહારકોના બે ભંગ (વિકલ્પ) થાય છે. છવપદમાં અને
એકેન્દ્રિય પદમાં " સપણ્સા ય અપણ્સા ય " " સપદેશ પણ્ હોય છે અને
અપદેશ પણ્ હોય છે " એવો એક જ ભંગ થાય છે. કારણ કે ત્યાં વિગ્રહ-
ગતિમાં રહેતા છવે દ્વિતીય આદિ સમયવાળા હોવાને કારણે સપદેશ હોય
છે, અને અનેક છવ પ્રથમ સમયમાં વર્તમાન હોવાને લીધે અપદેશ હોય
છે. અલ્પતર ભવનપતિઓના તથા દ્વીન્દ્રિય આદિ કોનો ઉત્પાદ થાય છે, તેથી
તેઓમાં એક, બે આદિ અનાહારક હોય છે. તે કારણે અહીં નીચે પ્રમાણે છ
ભંગ (વિકલ્પ થાય છે-(૧) સપણ્સા વા, (૨) અપણ્સા વા (૩) અહવા-સપણ્સે
ય અપણ્સે ય, (૪) અહવા-સપણ્સે ય અપણ્સા ય, (૫) અહવા-સપણ્સા ય અપ-
ણ્સે ય, (૬) અહવા-સપણ્સા ય અપણ્સાય " આ છ ભંગમાંથી પહેલો અને
બીજો ભંગ બહુવચનાન્ત છે, અને ત્રીજો, એક વચનવાળો છે. ચોથો અને

वचनान्तः, एतद्वचन- बहुवचनसंयोगात् द्वौ चतुर्थ पञ्चमी , षष्ठो भङ्गो बहु-
 वचनान्तः ६। इति। तत्र सप्रदेशश्च अप्रदेशश्च ? इत्येवंरूपं केवलैस्त्वचन-
 गर्भितोभङ्गोऽत्र न संभवति बहुत्वस्पाधिकारात्। एवं च नैरपिकाणां भवन-
 पतीनां द्वीन्द्रियादीनां च अल्पतराणामुत्पत्तेः एकद्वयादीनाम् अनाहारकाणां
 भावात् उपर्युक्ताः पद् भङ्गाः भवन्तीति, ' सिद्धेहि त्रियभंगो ' सिद्धेषु त्रयो
 भङ्गाः - कदाचित् सर्वे सिद्धाः सप्रदेशाः १, कदाचित् बहवः सप्रदेशाः एकः
 अप्रदेशश्च २, कदाचित् बहवः सप्रदेशाः बहवः अप्रदेशश्च भवन्ति ३, सप्रदेशपदस्य
 बहुवचनान्तस्यैव सिद्धेषु संभवात्। ' भवसिद्धिया, अभवसिद्धिया जहा ओहिया '
 भवसिद्धिः भव्याः, अभवसिद्धिः अभव्याश्च जीवाः यथा औचिकाः सामान्य
 जीवास्तथा ज्ञातव्याः, तथाहि औचिकदण्डपयत् एतेषां भवसिद्धिकानाम् अभव-

सपणसा य अपणसा य "। इनमें दो भंग प्रथमभंग और द्वितीयभंग
 ये बहुवचनान्त हैं तीसरा एक वचनान्त है और शेष २ भंग-४था पांचवां
 ये एकवचन और बहुवचन के संयोग से होते हैं। और छटा बहुवचनान्त
 है। (सप्रदेशश्च अप्रदेशश्च) ऐसे केवल एकवचनगर्भित भंग यहां नहीं
 हैं। (कारण किध हां पर बहुवचनका अधिकार है। (सिद्धेहि त्रियभंगो)
 सिद्धोंमें तीनभंग होते हैं-" कदाचित् समस्त सिद्ध सप्रदेश होते हैं ? "
 कदाचित् अनेक सिद्ध सप्रदेश होते हैं और कोई एक सिद्ध अप्रदेश होता
 है २, कदाचित् अनेक सिद्ध सप्रदेश होते हैं और कदाचित् अनेक सिद्ध
 अप्रदेश होते हैं " इस प्रकार से ये तीन भंग हैं। यहां पर जो सप्रदेश
 पद है वह बहुवचनान्त ही है 'भवसिद्धिया अभवसिद्धिया, जहा ओहिया'
 भवसिद्धिक-भव्य, अभवसिद्धिक-अभव्य, ये दोनों जीव सामान्य
 (समुच्चय) जीव की तरह से जानना चाहिये-अर्थात् सामान्य जीव के
 दण्डक की तरह भवसिद्धिक और अभवसिद्धिक इन दोनों में से प्रत्येक

पांचमो लंग ऐकवचन अने बहुवचनना संयोगर्थां जनेल छे. अने छट्टो लंग
 बहुवचनवाणो छे. " सप्रदेशश्च अप्रदेशश्च " जेवो ऐकवचनदर्शक लंग अडीं
 संभवित नथी कारण के अडीं बहुवचननो अधिकार वाली रह्यो छे. "सिद्धेहि त्रिय
 भंगो " सिद्धोमां: त्रयु लंग थाय छे-(१) क्यारेक समस्त सिद्ध सप्रदेश होय
 छे,(२) क्यारेक अनेक सिद्धसप्रदेश होय छे अने क्यारेक सिद्ध अप्रदेश होय छे.
 (३) क्यारेक अनेक सिद्ध सप्रदेश होय छे अने अनेक सिद्ध अप्रदेश होय छे,
 आ रीतेसिद्ध पढने अनुलक्षिने त्रयु लंग थाय छे अडीं जे सप्रदेश पद छे ते
 बहुवचनमां ल वपरायुं छे तेम समजवुं. "भवसिद्धिया, अभवसिद्धिया, जहा
 ओहिया " भवसिद्धिक (भव्य) अभवसिद्धिक (अभव्य) जे जने लवना
 विषयमां सामान्य लव जेवुं ल कथन समजवुं. अेटवे के सामान्य लवना

સિદ્ધિકાનાં અભવ્યાનાં મુક્તિગમનરહિતાનામ્ ચ પ્રત્યેકમ્ એકત્વવહુત્વ-
 વિપયકતયા દણ્ડકદ્વયં વોધ્યમ્, તત્ર ચ ભવ્યોઽભવ્યો વા જીવો નિયમાત્
 સપ્રદેશઃ । એવં વહુત્વેઽપિ ભવ્યા અભવ્યા વા નિયમાત્ સપ્રદેશાઃ, નૈરયિ-
 કાદિસ્તુ ભવ્યોઽભવ્યો વા સપ્રદેશઃ, અપ્રદેશો વા, વહવસ્તુ ભવ્યા અભવ્યા
 વા જીવાઃ સપ્રદેશ એવ । નૈરયિકાયાસ્તુ વહવો ભવ્યા અભવ્યા વા મજ્ઞ-
 વ્યવન્તઃ—સર્વં સપ્રદેશા એવ કદાચિદ્ ભવેયુઃ ૧ કદાચિદ્ વહવઃ સપ્રદેશાથ,
 એકઃ અપ્રદેશાથ ૨, કદાચિદ્ વહવઃ સપ્રદેશાથ વહવઃ અપ્રદેશાથ,
 ભવન્તિ ૩, ઇતિભાવઃ । એકેન્દ્રિયાઃ પુનર્ભવ્યા અભવ્યા વા પૃથિવીકાયિકાદયઃ

કે દો દણ્ડક હૈં । इनमें कोई एक भव्य और कोई एक अभव्य जीव
 नियम से सप्रदेश होता है । यह एकवचनवाला दण्डक है । इसी तरह
 से बहुवचनान्त भव्य और अभव्य भी नियम से सप्रदेश होते हैं ।
 नैरयिक आदिकों में जो कोई एक भव्य अथवा अभव्यजीव है वह तो
 सप्रदेश अथवा अप्रदेश होता है । अनेक भव्य अथवा अनेक अभव्य
 जीव सप्रदेश ही होते हैं । नैरयिक आदिकों में जो अनेक भव्य अथवा
 अभव्य जीव हैं, वे तीनभंग वाले होते हैं । कदाचित् सब सप्रदेश ही
 होते हैं १, कदाचित् अनेक सप्रदेश होते हैं और कोई एक अप्रदेश
 होता है २, कदाचित् अनेक सप्रदेश होते हैं और कदाचित् अनेक
 अप्रदेश होते हैं ३ । एकेन्द्रियपृथिवीकायिक आदि जीवों में जो भव्य
 अथवा अभव्य जीव हैं वे “ सप्रदेश और अप्रदेश होते हैं ” इस तरह

દ'ડકના જેવાં જ ભવસિદ્ધિકના બે દ'ડક અને અભવસિદ્ધિકના બે દ'ડક સમ-
 જવા. તેમાંનો એકવચનવાળો અભિલાપ ખતાવે છે કે કોઈક ભવ્ય જીવ અને
 કોઈક અભવ્ય જીવ નિયમથી સપ્રદેશ હોય છે. બહુવચનવાળો અભિલાપ એ
 ખતાવે છે કે અનેક ભવ્ય જીવો અને અનેક અભવ્ય જીવો સપ્રદેશ અથવા
 અથવા અપ્રદેશ હોય છે.

નારક આદિકોમાં કોઈક ભવ્ય અથવા અભવ્ય જીવ સપ્રદેશ અથવા
 અપ્રદેશ હોય છે. અનેક ભવ્ય અથવા અનેક અભવ્ય જીવો સપ્રદેશજ હોય છે.
 નૈરયિક આદિકોમાં જે અનેક ભવ્ય અથવા અભવ્ય જીવ છે, તેઓ ત્રણ ભંગ
 વાળા હોય છે—(૧) ક્યારેક બધાં સપ્રદેશ જ હોય છે, (૨) ક્યારેક અનેક
 સપ્રદેશ હોય છે અને કોઈક અપ્રદેશ જ હોય છે, (૩) ક્યારેક અનેક સપ્ર-
 દેશ હોય છે અને ક્યારેક અનેક અપ્રદેશ હોય છે તથા એકેન્દ્રિય પૃથ્વીકાય
 આદિ જીવોમાં જે ભવ્ય અથવા અભવ્ય જીવો હોય છે તેઓ “ સપ્રદેશ
 અને અપ્રદેશ હોય છે.” આ રીતે તેમને એક જ ભંગવાળા કહ્યા છે. અહીં

वचनान्तः, एकवचन- बहुवचनसंयोगात् द्वौ चतुर्थ पञ्चमी, षष्ठो भङ्गो बहु-
 वचनान्तः ६। इति। तत्र सप्रदेशश्च अप्रदेशश्च १, इत्येवंरूपं केवलैकवचन-
 गर्भितोभङ्गोऽत्र न संभवति बहुत्वस्याधिकारात्। एवं च नैरपिकाणां भवन-
 पतीनां द्वीन्द्रियादीनां च अल्पतराणामुत्पत्तेः एष्टद्वयादीनाम् अनाहारकाणां
 भावात् उपर्युक्ताः पद् भङ्गाः भवन्तीति, 'सिद्धेहि त्रियभङ्गो' सिद्धेषु त्रयो
 भङ्गाः - कदाचित् सर्वे सिद्धाः सप्रदेशाः १, कदाचित् बहवः सप्रदेशाः एकः
 अप्रदेशश्च २, कदाचित् बहवः सप्रदेशाः बहवः अप्रदेशश्च भवन्ति ३, सप्रदेशपदस्य
 बहुवचनान्तस्यैव सिद्धेषु संभवात्। 'भवसिद्धिया, अभवसिद्धिया जहा ओहिया'
 भवसिद्धिज्ञाः भव्याः, अभवसिद्धिज्ञाः अभव्याश्च जीवाः यथा औघिकाः सामान्य
 जीवास्तथा ज्ञातव्याः, तथाहि औघिकदण्डद्वयवत् एतेषां भवसिद्धिकानाम् अभव-

सपपसा य अपपसा य"। इनमें दो भंग प्रथमभंग और द्वितीयभंग
 ये बहुवचनान्त हैं तीसरा एक वचनान्त है और शेष ४ भंग-४था पांचवां
 ये एकवचन और बहुवचन के संयोग से होते हैं। और छटा बहुवचनान्त
 है। (सप्रदेशश्च अप्रदेशश्च) ऐसे केवल एकवचनगर्भित भंग यहां नहीं
 हैं। (कारण किय हां पर बहुवचनका अधिकार है। (सिद्धेहि त्रियभङ्गो)
 सिद्धोंमें तीनभंग होते हैं-"कदाचित् समस्त सिद्ध सप्रदेश होते हैं?"
 कदाचित् अनेक सिद्ध सप्रदेश होते हैं और कोई एक सिद्ध अप्रदेश होता
 है २, कदाचित् अनेक सिद्ध सप्रदेश होते हैं और कदाचित् अनेक सिद्ध
 अप्रदेश होते हैं" इस प्रकार से ये तीन भंग हैं। यहां पर जो सप्रदेश
 पद है वह बहुवचनान्त ही है 'भवसिद्धिया अभवसिद्धिया, जहा ओहिया'
 भवसिद्धिक-भव्य, अभवसिद्धिक-अभव्य, ये दोनों जीव सामान्य
 (समुच्चय) जीव की तरह से जानना चाहिये-अर्थात् सामान्य जीव के
 दण्डक की तरह भवसिद्धिक और अभवसिद्धिक इन दोनों में से प्रत्येक

पांचमो भंग एकवचन अने बहुवचनना संयोगधी भनेल छे. अने छठो भंग
 बहुवचनवाणो छे. "सप्रदेशश्च अप्रदेशश्च" एवो एकवचनदर्शक भंग अडी
 संभवित नथी कारण के अडी बहुवचनना अधिकार याली रह्यो छे. "सिद्धेहि त्रिय
 भङ्गो" सिद्धोभाः त्रयु भङ्ग थाय छे-(१) क्यारिक समस्त सिद्ध सप्रदेश डोय
 छे, (२) क्यारिक अनेक सिद्ध सप्रदेश डोय छे अने कोठक सिद्ध अप्रदेश डोय छे,
 (३) क्यारिक अनेक सिद्ध सप्रदेश डोय छे अने अनेक सिद्ध अप्रदेश डोय छे,
 आ रीते सिद्ध पढने अनुलक्षिने त्रयु भङ्ग थाय छे अडी जे सप्रदेश पद छे ते
 बहुवचनभां ज वपरायुं छे तेम समज्युं. "भवसिद्धिया, अभवसिद्धिया, जहा
 ओहिया" भवसिद्धिक (भव्य) अभवसिद्धिक (अभव्य) जे भन्ने लवना
 विषयभां सामान्य लव जेवुं ज कथन समज्युं. अटवे के सामान्य लवना

અથ વહુત્વવિષયકદણ્ડકે મહુત્તરમવસેયમ્, તથાહિ- ' નોભવસિદ્ધિય-નો-
અભવસિદ્ધિયા ણં મંતે ! જીવા કિં સપણ્ણમા અપણ્ણમા ? ગોયમા ! સર્વે સપણ્ણમા?,
વહુયા સપણ્ણમા, ણમે અપણ્ણમે ય ૨, વહુયા સપણ્ણમા વહુયા અપણ્ણમા ય ૩ તિ '
' સંત્રીહિં જીવાઃઓ તિયમંગો ' સંત્રિપુ જીવાદિકાસ્ત્રયો મહુત્તરઃ, સંત્રિપુ યૌ એકત્વ-
વહુત્વવિષયકો દણ્ડકો તયોર્વહુત્વવિષયકે દ્વિતીયદણ્ડકે જીવાદિકઃ જીવાદિપદેપુ

વચનવાલે દણ્ડક કા ખી અભિલાપ કહ લેના ચાહિયે-ઇસ વહુવચનવાલે
દણ્ડક મેં ત્રીનભંગ હોતે હે-એ ઇસ પ્રકાર સે-(જો ભવસિદ્ધિય નો
અભવસિદ્ધિયા ણં મંતે ! કિં સપણ્ણમા અપણ્ણમા ? ગોયમા ।) સર્વે સપ્ર-
દેશાઃ ૧, વહુવઃ સપ્રદેશાઃ, ણકઃ અપ્રદેશાઃ ૨, વહુવઃ સપ્રદેશાઃ વહુવઃ
અપ્રદેશાઃ ૩ હે । યહાં ગૌતમ ને પ્રમુ સે પ્રશ્ન કિયા કિ હે મદન્ત ! જો
જીવ એસે હે કિ ન વે મવ્ય ઓર ન વે અમવ્ય હે તો કયા વે સપ્રદેશ
હોતે હે યા અપ્રદેશ હોતે હે ? ઇસ પ્રશ્ન કા ઉત્તર યહાં ત્રીનભંગસ્વરૂપ સે
દિયા હે-અન્હોં ને કહ્યા હે ગૌતમ ! એસે જીવ યા તો સવ સપ્રદેશ હોતે
હે । કિતનેક સપ્રદેશ હોતે હે ઓર કોઈ એક અપ્રદેશ હોતો હે । યા
કિતનેક સપ્રદેશ હોતે હે ઓર કિતનેક અપ્રદેશ હોતે હે । " સંત્રીહિં
જીવાઃઓ તિયમંગો " સંત્રિયોં મેં જીવાદિક ત્રીન મંગ હોતે હે અર્થાત
સંત્રિ જીવોં મેં જો એકત્વ એવં વહુત્વ વિષયક દો દણ્ડક હે, અનમેં સે

અપ્રદેશ હોય છે. એ જ પ્રમાણે બહુવચનવાળા દંડકને અભિલાપ પણ કહેવો
એવો. આ બહુવચનવાળા દંડકમાં ત્રણ ભાગ થાય છે. તે ત્રણ ભાગ નીચે
પ્રમાણે છે-(જો ભવસિદ્ધિય નો અભવસિદ્ધિયા ણં મંતે ! જીવા કિં સપણ્ણમા
અપણ્ણમા ?) " ગોયમા ! સર્વે સપ્રદેશાઃ ૧, વહુવઃ સપ્રદેશાઃ એક અપ્રદેશાઃ ૨,
વહુવઃ સપ્રદેશાઃ વહુવઃ અપ્રદેશાઃ ૩ ।)

આ વિષયમાં ગૌતમ સ્વામી એવો પ્રશ્ન પૂછે છે કે હે ભદન્ત ! ન ભવ્ય
અને ન અભવ્ય એવા છવો શું સપ્રદેશ હોય છે કે અપ્રદેશ હોય છે ?

આ પ્રશ્નના ઉત્તર રૂપે મહાવીર પ્રભુએ નીચે પ્રમાણે ત્રણ ભાગ
(વિકલ્પ) કહ્યા છે-

(૧) એવાં બધાં છવો કાં તો સપ્રદેશ હોય છે, (૨) અથવા અનેક
સપ્રદેશ હોય છે અને કોઈક અપ્રદેશ હોય છે, (૩) અથવા અનેક સપ્રદેશ
હોય છે અને અનેક અપ્રદેશ હોય છે.

(સંત્રીહિં જીવાઃઓ તિયમંગો) સંત્રી છવોમાં છવાદિકે ત્રણ ભાગ થાય
છે. એટલે કે સંત્રી છવોમાં જે એકત્વ અને બહુત્વ વિષયક બે દંડક છે,

સપ્રદેશાથ અપ્રદેશાથ, ઇતિ એકમદ્વયંત એવં । સિદ્ધપદં ત્વમ્ ન વક્તવ્યમ્
 સિદ્ધાનાં મગ્ધામગ્ધત્વવિશેષણાનુવલઙ્ઘ્યઃ । ‘ જોમવસિદ્ધિય-જોમવસિદ્ધિય-
 જીવસિદ્ધિર્હિ તિયમંગો ’ નો મવસિદ્ધિક-નો અમવસિદ્ધિક-જીવ સિદ્ધિયોમ્વયો
 મદ્ધા વેદિતવ્યાઃ, તથાદિ-એતદ્ નોમવસિદ્ધિક નોમવસિદ્ધિક વિશેષણવિશ્વિ-
 ણ્મ ઉપર્યુક્તજીવસિદ્ધદ્વંડકદ્વયં પઠિતવ્યમ્ એકત્વામિલાપાકારાથ્યેત્યમ્-’ જોમવ-
 સિદ્ધિય-જોમવસિદ્ધિય-મંતે ! જીવે કિં સપણ્સે, અપણ્સે ? ગોયમા !
 સિય સપણ્સે સિય અપણ્સે ’ ઇત્યાદિ । એવં વહુત્વદ્વંડકાલાપોઽપિ વક્તવ્યઃ,

કે યે એક મંગવાલે હી કહે ગયે હૈં । યહાં મવ્ય અમવ્ય કે પ્રકરણ મેં
 સિદ્ધપદ નહીં કહના ચાહિયે-કયોં કિ સિદ્ધોં મેં મવ્ય અમવ્ય इन दोनों
 વિશેષણોં કા અભાવ હો ગયા હૈ । (જો મવસિદ્ધિય-જો અમવસિદ્ધિય
 -જીવસિદ્ધિર્હિ તિયમંગો ” નો મવસિદ્ધિક નો અમવસિદ્ધિક જીવ એવં
 સિદ્ધોં મેં ત્રીન મંગ હોતે હૈં-તાત્પર્ય યહ હૈ કિ “ મવ્ય નહીં, અમવ્ય
 નહીં ” એસે વિશેષણોં વાલે જીવાદિક દો દ્વંડક કહના ચાહિયે-इनसे
 લગતા હુઆ એકત્વ અમિલાપ કા આકાર इस प्रकार से हँ-(જો મવ-
 મિદ્ધિય જો અમવસિદ્ધિય-મંતે ! જીવે કિં સપણ્સે અપણ્સે ?) ગૌતમ
 યહાં એસા પ્રશ્ન કિયા હૈ કિ હે મદન્ત ! જો જીવ ન મવસિદ્ધિક હૈ ઓર
 ન અમવસિદ્ધિક હૈ એસા વહ જીવ કયા સપ્રદેશ હોતા હૈ યા અપ્રદેશ
 હોતા હૈ ? इसके उत्तर में प्रभु गौतम से कहते हैं कि (गौयमा) हे
 ગૌતમ ! (સિય સપણ્સે સિય અપણ્સે) ઇત્યાદિ-એસા જીવ કદાચિત્
 સપ્રદેશ હોતા હૈ ઓર કદાચિત્ અપ્રદેશ હોતા હૈ । इसी तरह से यह-

ભવ્ય અભવ્યના પ્રકરણમાં સિદ્ધનો સમાવેશ કરવો જોઈએ નહીં, કારણ કે
 સિદ્ધમાં ભવ્ય અને અભવ્ય એ બંને વિશેષણો સંભવી શકતાજ નથી “ જો
 મવસિદ્ધિય, જો અમવસિદ્ધિય-જીવ સિદ્ધિર્હિ તિયમંગો ” નો ભવસિદ્ધિક, નો
 અભવસિદ્ધિક એવ અને સિદ્ધોમાં ત્રણ ભાગ થાય છે. આ કથનનું તાત્પર્ય
 એ છે કે “ ભવ્ય નહીં, અભવ્ય નહીં ” એવાં વિશેષણોવાળાં શ્વાદિક એ
 દ્વંડક કહેવા જોઈએ. તેમને લાગુ પડતો એકત્વ વિષયક અમિલાપ આ પ્રમાણે
 છે—“ જો મવસિદ્ધિય જો અમવસિદ્ધિય-મંતે ! જીવે કિં સપણ્સે અપણ્સે ? ”
 ગૌતમસ્વામી આહીં એવો પ્રશ્ન કરે છે કે “ હે ભદન્ત ! જે એવ ન ભવસિદ્ધિક
 અને ન અભવસિદ્ધિક છે, તે શું સપ્રદેશ હોય છે કે અપ્રદેશ હોય છે ? તેનો
 જવાબ આપતાં મહાવીરપ્રભુ કહે છે — “ ગોયમા ! ” હે ગૌતમ ! ” સિય
 સપણ્સે, સિય અપણ્સે ” એવો એવ ક્યારેક સપ્રદેશ હોય છે અને ક્યારેક

એકેન્દ્રિયવર્ગઃ - પૃથિવ્યાન્નેકેન્દ્રિયપદાનિ વહુલવિપયકદ્વિતીયદ્વણ્ડકે વર્ગયિત્વા વિક્રમજ્ઞઃ=પૂર્વપદશિત મજ્ઞવયં વોધ્યમ્ । એકેન્દ્રિયપૃથિવ્યાદિપદેષુ તુ ' સપ્રદેશાથ અપ્રદેશાથ ' इत्येक एव भङ्गो वेदितव्यः, ત્ર સદા વહુનામ્ ઉત્પત્ત્યા તેષામ્ અપ્રદેશત્વસ્થાપિ વહુત્વસંભવાત્ । ' નૈરદ્ય-દેવ-મણુર્ણિ છબ્મંગા ' નૈરયિક-દેવ-મનુજેષુ પદ્ મજ્ઞાઃ ભવમેયાઃ । તત્ર અસંજ્ઞિનોઽપિ જીવાઃ પ્રથમનરકે ભવનપતિવાનવ્યન્તરેષુ ચ ઉત્પન્નન્તે ઇતઃ પ્રથમનરકનૈરયિકાણાં ભવનપતિવાનવ્યન્તરાણાં ચ સંજ્ઞિનામપિ પૂર્વમધીયાસંજ્ઞિભ્યઃ ઉત્પાદાન્ ભૂતપૂર્વગત્યા અસંજ્ઞિત્વમવસેયમ્ । તથા

અસંજ્ઞી સમ્યન્ધી વહુત્વ વિપયક દ્વિતીય દ્વણ્ડક મેં ત્રીન ભંગ હોતે હેં એસા જાનના ચાહિયે-યે મજ્ઞ ત્રીન અમી ૨ ડપર દિગ્ગલા હી દિયે ગયે હેં । યહાં જો પૃથિવી આદિક એકેન્દ્રિયોં કો છોડ્ઝને કે લિયે કહા ગયા હે, સો ઉસકા કારણ યહ હે કિ ઇન એકેન્દ્રિય પૃથિવી આદિક પદોં મેં " સપ્રદેશાથ અપ્રદેશાથ " એસા એક હી મજ્ઞ હોતા હેં । ઇસકા કારણ વન પૃથિવ્યાદિકોં મેં અનેક જીવોં કો ઉત્પત્તિ હોતી હે ઇસ કારણ ઉત્પન્નમાન અનેક જીવ અપની ઉત્પત્તિ કે પ્રથમ સમય મેં અપ્રદેશ હોતે હેં અતઃ વહાં પૂર્વોત્પન્ન અનેક જીવ સપ્રદેશ ઓર ઉત્પન્નમાન અનેક જીવ અપ્રદેશ હેં એસા જાનના ચાહિયે ।

" નૈરદ્ય-દેવ મણુર્ણિ છબ્મંગો " નૈરયિક, દેવ ઓર મનુષ્યોં મેં છહ ભંગ હોતે હેં-અસંજ્ઞી જીવ મી પ્રથમ નરક મેં ભવનપતિ દેવોં મેં ઓર વાનવ્યન્તર દેવોં મેં ઉત્પન્ન હોતે હેં । ઇસલિયે સંજ્ઞી મી પ્રથમ નરક કે નારકિયોં કો, ભવનપતિદેવોં કો, ઓર વાનવ્યન્તરદેવોં કો, પૂર્વમ-

કમાં ત્રણ ભંગ થાય છે, એમ સમજવું. એ ત્રણ ભંગો ઉપર બતાવ્યા પ્રમાણે (સંજ્ઞી હોવાના ત્રણ ભંગ પ્રમાણે) સમજવા. એકેન્દ્રિય હોવાને તેમાં સમાવેશ નહીં કરવાનું કારણ એ છે કે પૃથ્વીકાય આદિ એકેન્દ્રિય હોવામાં " સપ્રદેશાથ અપ્રદેશાથ " એવો એક જ ભંગ થાય છે તેનું કારણ એ છે કે તે પૃથ્વીકાય આદિકોમાં અનેક હોવાની ઉત્પત્તિના પ્રથમ સમયે અપ્રદેશ હોય છે, તેથી ત્યાં પૂર્વોત્પન્ન અનેક હોવા સપ્રદેશ હોય છે અને ઉત્પન્નમાન (ઉત્પન્ન થતા) અનેક હોવા અપ્રદેશ હોય છે, એમ સમજવું.

" નૈરદ્ય-દેવ મણુર્ણિ છબ્મંગો " નારક, દેવ અને મનુષ્યોમાં છ ભંગ થાય છે-અસંજ્ઞી હોવા પણ પહેલી નરકમાં, ભવનપતિ દેવોમાં અને વાનવ્યન્તર દેવોમાં ઉત્પન્ન થાય છે. તેથી સંજ્ઞી હોવા છતાં પણ પહેલી નરકના નારકાને, ભવનપતિ દેવાને અને વાનવ્યન્તર દેવાને મ ૧૨૩

હત્યર્થઃ ત્રયો મત્રા મયન્તિ । તગઠિ-સંશ્રિનો જીવાઃ પૂર્વોત્પન્નાન્ દ્રવ્યાદિસમય-
સ્થિતિકાન્ અપેક્ષ્ય કાલતઃ સપ્રદેશાઃ મયન્તિ ૧, ઉત્પાદવિરહાનન્તરં ચ એક-
સ્યોત્પન્નો તસ્ય પ્રથમસમયસ્થિતિદશાયાં - ચહવઃ સપ્રદેશાઃ, એકઃ અપ્રદેશમ્ ૨,
બહુનામુત્પત્તિસમયપ્રમાથમ્યે તુ ચહવઃ સંશ્રિનઃ સપ્રદેશાશ્ચ ચહવઃ અપ્રદેશાશ્ચ
મયન્તિ ૩, ઇતિ રીત્યા મત્રત્રયં ચોદ્યમ્ । એવં સર્વપ્રદેષુ વિભેદમ્ । કેવલમેતયો
દર્ષકરુયોઃ એકેન્દ્રિય-વિકલેન્દ્રિય-સિદ્ધ-પદાનિ ન વક્તવ્યાનિ તેર્વા સંશ્રિવિશે-
પગત્વાસંભવાત્ । ‘ અસન્નીહિં એગિદિયવજ્જો તિયમંગો ’ અસંશ્રિપુ અસંશ્રિવિષયે

ચતુત્વ વિષયક દ્વિતીય દણ્ડક મેં જીવાદિક પદોં મેં ત્રીન મત્ર હોતે હેં
વે ઇસ પ્રકાર સે હોતે હેં-સંજી જીવ દ્રવ્યાદિક સમય કી સ્થિતિ વાલે
પૂર્વોત્પન્ન સંજી જીવોં કી અપેક્ષા લેકર કાલ કી અપેક્ષા સે સપ્રદેશ
હોતે હેં । ઓર ઉત્પાદ વિરહ કે અનન્તર જય એક જીવ કી ઉત્પત્તિ
હોતી હૈ તય ઉસકી પ્રથમ સમય કી સ્થિતિદશા મેં અનેક સંજી જીવ
સપ્રદેશ ઓર એક સંજી જીવ અપ્રદેશ એસા કહા જાતા હૈ । તથા જબ
અનેક સંજી જીવોં કી ઉત્પત્તિ કે સમય કો પ્રથમતા રહતી હૈ તબ
અનેક સંજી જીવ સપ્રદેશ, ઓર અનેક સંજી જીવ અપ્રદેશ હેં એસા
કહા જાના હૈ । ઇસ તરહ સે યહાં યે ત્રીન મંગ હેં । ઇસી તરહ સે સર્વ
પદોં મેં જાનના ચાહિયે । કેવલ ઇન દો દણ્ડકોં મેં એકેન્દ્રિય, વિકલેન્દ્રિ-
ય ઓર સિદ્ધ ઇન પદોં કો કહના ચાહિયે । ક્યોં કિ ઇન સવ મેં (સંજી)
ઇસ વિશેષણ કા અભાવ હૈ । ‘ અસન્નીહિં એગિદિયવજ્જો તિયમંગો ’
અસંજી જીવોં મેં અર્થાત્ પૃથિવી આદિક એકેન્દ્રિય પદોં કો છોડકર

તેમાંના બહુતર વિષયક બીજા દંડકમાં, જીવાદિક પદોમાં ત્રણ ભંગ થાય છે.
તે ત્રણ ભંગ નીચે પ્રમાણે સમજવા-(૧) જે ત્રણ આદિ સમયોની સ્થિતિ-
વાળા પૂર્વોત્પન્ન સંજી જીવોની અપેક્ષાએ સંજી જીવો સપ્રદેશ હોય છે.
(૨) અને ઉત્પાદ વિરહ બાદ ન્યારે એક જીવની ઉત્પત્તિ થાય છે, ત્યારે તેની
પ્રથમ સમયની સ્થિતિદશામાં અનેક સંજી જીવો સપ્રદેશ હોય છે પણ એક જ
સંજી જીવ અપ્રદેશ હોય છે. (૩) તથા ન્યારે અનેક સંજી જીવોની ઉત્પ-
ત્તિના સમયની પ્રથમતા રહે છે, ત્યારે અનેક સંજી જીવો સપ્રદેશ હોય છે
અને અનેક સંજી જીવો અપ્રદેશ હોય છે. આ પ્રકારના ત્રણ ભંગ અહીં
બને છે, એજ પ્રમાણે બધાં પદોમાં સમજવું પરંતુ આ જે દંડકોમાં એકે-
ન્દ્રિય, વિકલેન્દ્રિય અને સિદ્ધનો સમાવેશ કરવો નહીં, કારણ કે તેમને ‘સંજી’
વિશેષણ લાગુ પડતું નથી. ‘ અસન્નીહિં એગિદિયવજ્જો તિયમંગો ’ પૃથ્વી-
કાયિક આદિ એકેન્દ્રિય સિવાયના અસંજી જીવોમાં બહુવચનવાળા બીજા દંડ-

वियमंगो' नोसंज्ञि-नोअसंज्ञि-जीव-मनुज-सिद्धेषु त्रयो भङ्गाः, 'नोसंज्ञि-
नोअसंज्ञि-' इति विशेषणविशिष्टयोरेकत्वबहुत्वविषयकदण्डकयोर्मध्ये बहुत्व-
विषयकदण्डके जीव-मनुज-सिद्धपदेषु पूर्वोक्तरूपं भङ्गत्रिकं भवति । 'सर्वे सप्र-
देशाः १' 'वहवः सप्रदेशाश्च एकः अप्रदेशश्च २' 'वहवः सप्रदेशाश्च वहवः
अप्रदेशाश्च ३' इति भङ्गत्रयम् तेषु वहनाम् अवस्थितानां क्वाभात्, उत्पद्यमानानां च
एकादीनां संभवात् । एतयोश्च नोसंज्ञि-नोअसंज्ञिविषयकयोरेकत्वबहुत्वदण्डकयोः
जीव-मनुज-सिद्धपदान्येव भवन्ति न नैरयिक्तादिपदानि, तेषां नोसंज्ञि-नो
असंज्ञित्वविशेषणस्यासंभवात् । सलेसा जहा-ओहिया' सलेश्याः लेश्यावन्तो
जीवाः यथा ओघिक्ताः सामान्यजीवाः पूर्वं सप्रदेशत्वादिना प्रतिपादितास्तथा

यहां गृहीत नहीं हैं। क्यों कि इनमें असंज्ञित्व का अभाव है। (जो
सन्नि, जो असन्नि जीव मणुपसिद्धेहिं तियमंगो) नो संज्ञी नो असंज्ञी
इन विशेषणों से विशिष्ट एकत्व बहुत्वविषयक दो दण्डकों में-से बहु-
त्व विषयक द्वितोयदण्डक में जीवपद, मनुष्यपद और सिद्ध में पूर्वोक्त
रूप से ये तीन भंग होते हैं-"सर्वे सप्रदेशाः १, वहवः सप्रदेशाश्च,
एकः अप्रदेशश्च २ वहवः सप्रदेशाश्च, वहवः अप्रदेशाश्च ।" कारण
यहां पर पूर्वोत्पन्न अनेक रहते हैं और उत्पद्यमान कोई एकादि रहता
है । इन दो नो संज्ञी नो असंज्ञी विषय एकत्व बहुत्व दण्डकों में जीव,
मनुष्य और सिद्धपद ही होते हैं, नैरयिक आदि पद नहीं । क्यों कि
इनमें नो संज्ञि-नो असंज्ञी विशेषण संभवता नहीं है । (सलेसा जहा
ओहिया) लेश्यावाले जीवों के कथन, पहिले जैसे सामान्य जीव सप्रदे-
शात्व आदि द्वारा प्रतिपादित किये गये हैं, वैसा ही जानना चाहिये-

अभाव होय छे. (जो सन्नी, जो असन्नी जीव मणुपसिद्धेहिं तियमंगो)
नो संज्ञी, नो असंज्ञी अे विशेषणोवाणा अेकत्व बहुत्व विषयक अे दंडको-
भांता बहुत्व विषयक भांता दंडकभां लव पद, मनुष्य पद अने सिद्धभां
पूर्वोक्त त्रयु लंग थाय छे—

(१) सर्वे सप्रदेशाः (२) वहवः सप्रदेशाश्च एकः अप्रदेशश्च, (३) वहवः
सप्रदेशाश्च, वहवः अप्रदेशाश्च) कारण के अर्द्धी पूर्वोत्पन्न अनेक रहे छे अने
उत्पद्यमान कोई अेकादि रहे छे. नो संज्ञी, नो असंज्ञी विषयक अेकत्व अने
बहुत्व दर्शन अे दंडकोभां लव, मनुष्य अने सिद्ध अे त्रयु पदो न होय
छे, नारक आदि पद होतां नथी, कारण के नारक आदिभां नो संज्ञी अने
नो असंज्ञी विशेषण संभवता नथी. " सलेसा जहा ओहिया " लेश्यावाणा
लेश्याना सप्रदेशत्व आदिनुं कथन सामान्य लेश्याना सप्रदेशत्व आदिना कथन

નૈરયિકાદિપુ અસંશ્લિત્વસ્ય કાદાચિરકલ્પેન एकत्व-वहृत्संभवात् गृहमज्ञा भवन्ति, तथाहि-सप्रदेशा वा १, अप्रदेशा वा २, अथवा सप्रदेशश्च अप्रदेशश्च ३, अथवा सप्रदेशश्च अप्रदेशश्च ४, अथवा सप्रदेशश्च अप्रदेशश्च ५, अथवा सप्रदेशश्च अप्रदेशश्च ६, इति । किन्त्वत्र नैरयिकपदेन प्रथमनरकनैरयिकाः, देवपदेन च भवनपति-वानव्यन्तरा एव ग्राह्याः नतु द्वितीयादि नरकजीवाः, ज्योतिषिक-वैमानिकाः, तथा सिद्धाश्च, तेषाम् असंश्लिष्यसांभवात् । 'णोत्तन्नि-णोभसन्नि-जीव-मणुग-सिद्धेर्हि

वीय असंज्ञी जीवों के उत्पत्ति की अपेक्षा से अर्थात् असंज्ञी जीव यहाँ उत्पन्न होते हैं इस भूतपूर्व प्रज्ञापन नय की अपेक्षा से-भूतपूर्वगति को ध्यान में रखकर अर्थात् ये पहिले भव में असंज्ञी थे-इस बात को मानकर असंज्ञी मान लिया जाता है । तथा नैरयिक आदिकों में असंज्ञीपन कादाचित्क है इससे इनमें एकत्व यहृत्व की सम्भावना से छह भंग होते हैं वे इस प्रकार से-“ सप्रदेशा वा १, अप्रदेशा वा २ सप्रदेशश्च अप्रदेशश्च ३, सप्रदेशश्च अप्रदेशश्च ४, सप्रदेशश्च अप्रदेशश्च ५, सप्रदेशश्च अप्रदेशश्च ६ ” इन छह भंगों में प्रथमभंग और द्वितीयभंग बहुवचनान्त हैं । तथा अवशिष्ट चार भंग एकवचन और बहुवचन के संयोग से जन्म हैं । (णेरइय, देवमणुगर्हि) में नैरयिक पद से यहाँ प्रथम नरक के नारक जीव ही गृहीत हुए हैं, द्वितीयादिक नरकों के नारक जीव नहीं । देव पद से भवनपति देव और वानव्यन्तर देव ही गृहीत हुए हैं, ज्योतिषिक देव और वैमानिक देव नहीं । तथा सिद्ध भी

पूर्वलपीय असंज्ञी જીવોના ઉત્પાદનની અપેક્ષાએ-એટલે કે અસંજ્ઞી જીવ અહીં ઉત્પન્ન થાય છે એવા ભૂતપૂર્વ પ્રજ્ઞાપન નયની અપેક્ષાએ-ભૂતપૂર્વ ગતિને ધ્યાનમાં રાખીને-એટલે કે તેઓ આગળના ભવમાં અસંજ્ઞી હતા એ વાતને માનીને, અસંજ્ઞી માની લેવામાં આવે છે. તથા નારક આદિકોમાં અસંજ્ઞીત્વ ક્યારેક હોય છે, તેથી તેઓમાં એકત્વ બહુત્વની સંભાવનાથી નીચે પ્રમાણે છ ભંગ થાય છે.

(૧) સપ્રદેશ વા (૨) અપ્રદેશ વા (૩) સપ્રદેશશ્ચ અપ્રદેશશ્ચ, (૪) સપ્રદેશશ્ચ અપ્રદેશશ્ચ (૫) સપ્રદેશશ્ચ અપ્રદેશશ્ચ, (૬) સપ્રદેશશ્ચ અપ્રદેશશ્ચ. આ છ ભંગોમાંનો પહેલો અને બીજો ભંગ બહુવચનનાંત છે, અને બાકીના ચાર ભંગ એકવચન અને બહુવચનના સંયોગથી બન્યા છે. “ ણેરइय, देव, मणुगर्हि ” માં નારક પદથી પહેલી નરકના નારકોને જ ગ્રહણ કરવા, બીજી, ત્રીજી આદિ નારકોને ગ્રહણ કરવા જોઈએ નહીં. દેવપદથી ભવનપતિ દેવો તથા વાનવ્યન્તરોને જ ગ્રહણ કરવા-જ્યોતિષિક અને વૈમાનિકોને નહીં, તથા અહીં સિદ્ધ જીવોને પણ ગ્રહણ કરવાના નથી, કારણ કે તેમનામાં અસંજ્ઞીત્વનો

पादितत्तथा मत्त्येकम् एकत्वबहुत्वविषयकदण्डकद्वयेन वाच्याः ते च ' सर्वे सप्रदेशाः ' ' बहवः सप्रदेशाश्च एकः अप्रदेशश्च ' ' बहवः सप्रदेशाश्च बहवः अप्रदेशाश्च ' इति भद्रत्रयं नैरयिकादिषु बोध्यम् । जीवैकेन्द्रियेषु तु ' सप्रदेशाश्च अप्रदेशाश्च ' इत्येको भद्रः । ' नवरं-जस्त अत्थि एयाओ ' नवरं विशेषस्तु एतावानेव यत्-यस्य जीवनैरयिकादेः एता लेश्याः सन्ति स एव जीवनैरयिकादिः वक्तव्यः, एताथ तिस्रः कृष्ण-नील-कापोतलेश्याः ज्योतिषिक-वैमानिकानां न भवन्ति, सिद्धानां तु सर्वा अपि न भवन्ति, इति तेऽत्र न वक्तव्याः । ' तेऽलेस्साए जीवाइओ तियभंगो ' तेजोलेश्यायाम्-तेजोलेश्यावतां बहुत्वविषयकदण्डके जीवादिकः जीवादिकपदेषु त्रयो भद्राः-ते एव पूर्वोक्ताः-सर्वे सप्रदेशाः १ बहवः सप्रदेशाः

द्वारा कहना चाहिये । बहुत्वविषयक दण्डक में तीन भंग हैं-वे इस प्रकारसे हैं-" सर्वे सप्रदेशाः " बहवः सप्रदेशाः एकः अप्रदेशश्च बहवः सप्रदेशाश्च, बहव अप्रदेशाश्च " । जीव और एकेन्द्रियों में " सप्रदेशाश्च अप्रदेशाश्च " ऐसा एक ही भंग है । " नवरं जस्त अत्थि एयाओ " यहां विशेषता केवल इतनी ही है कि जिस जीव नैरयिक आदिके ये लेश्याएँ हैं वही जीव नैरयिक आदि यहां कहना चाहिके । ये कृष्ण, नील और कापोत लेश्याएँ ज्योतिषिक और वैमानिकदेवों के नहीं होती हैं । तथा जो सिद्ध जीव हैं उनके तो छहलेश्याओं में से कोई भी लेश्या नहीं होती है । इस कारण इन्हें यहां ग्रहण नहीं करना चाहिये । (तेऽलेस्साए जीवाइओ तियभंगो) तेजो लेश्यावालों के बहुत्वविषयक द्वितीय दण्डक में जीवादिकपदों में पूर्वोक्त ये " सर्वे सप्रदेशाः १, " बहवः सप्रदेशाः, एकः अप्रदेशश्च २ " " बहवः सप्रदेशाः बहवः

अहुत्व विषयक दण्डकां आ प्रभाषे त्रयु लंग थाय छे-" सर्वे सप्रदेशाः " " बहवः सप्रदेशाः एकः अप्रदेशश्च, " " बहवः सप्रदेशाश्च बहवः अप्रदेशाश्च " एव अने एकेन्द्रियभंग " सप्रदेशाश्च अप्रदेशाश्च " एवो एके लंग थाय छे. " नवरं जस्त अत्थि एयाओ " अर्द्धी विशेषता अटली ल डे ने नारक आदि एवोनी लेश्या डाय छे, ते नारकादि एवोना सप्रदेशत्व आदिनुं अर्द्धी प्रतिपादन करवुं लेछे. ज्योतिषिक अने वैमानिक देवोभां कृष्ण, नील अने कापोत लेश्याओ डोती नथी, तथा सिद्ध एवोभां तो छ लेश्याओभांनी एके पणु लेश्या डोती नथी. ते कारणे अर्द्धी तेमने अकषु करवा लेछे नर्द्धी. (तेऽलेस्साए जीवाइओ तियभंगो) तेने लेश्यावाजा एवोना अहुत्व विषयक भील दण्डकां एवादिक पदोभां आ प्रभाषे त्रयु लंग डाय छे.

પ્રતિપત્ત્યાઃ, લેશ્યાવતામેકત્વવહુત્વવિપયકદ્વંડકો જીવતામાન્યરૂપોવિક્ર
 દ્વંડકત્વદ્ જીવનૈરયિકાદયો વક્તવ્યાઃ તથાદિ-એકત્વલેશ્યાદ્વંડકે 'નિયમતઃ સપ્ર-
 દેશઃ' इत्येको भङ्गः, बहुत्वद्वंડके नियमतः सप्रदेशाः इति, जीवत्वस्य अनादि-
 त्ववत् लेश्याया अपि अनादितया सलेश्यतायां विशेषाऽनृत्यादान् केवलं सिद्धपदं न
 वाच्यम्, सिद्धानां लेश्यारहितत्वात्। 'कण्ठलेस्सा, नीललेस्सा, काउलेस्सा, जहा आ-
 हारओ' कृष्णलेश्याः-कृष्णलेश्यावन्तः, नीललेश्याः-नीललेश्यावन्तः, कापोतलेश्याः
 कापोतलेश्यावन्तो जीवनारकादयो यथा आहारकः-आहारकजीवादिः पूर्वं प्रति-

તાત્પર્ય કહને કા યહ હૈ કિ લેશ્યાવાલે જીવોં કે એકત્વ વહુત્વવિપયક
 દો દ્વંડકોં મેં જીવ ઓર નૈરયિક આદિ જીવ સામાન્ય દ્વંડક કી તરહ
 વક્તવ્ય હોતે હૈં કારણ ઇસકા યહ હૈ કિ જીવત્વ કી તરહ સલેશ્યના
 મી અનાદિ સે હૈ । એકત્વલેશ્યાદ્વંડક મેં " નિયમ સે કોઈ એક જીવ
 સપ્રદેશ હોતા હૈ " એસા એક ભંગ હૈ વહુત્વદ્વંડક મેં નિયમ સે પૂર્વોત્પન્ન
 સલેશ્યા જીવ સપ્રદેશ હોતે હૈં । ઇસ તરહ ઔવિક દ્વંડક મેં ઓર ઇસ
 દ્વંડક મેં કોઈ અન્તર નહીં હૈ । ઇસ લેશ્યાદ્વંડક મેં કેવલ સિદ્ધપદ કો
 નહીં કહના ચાહિયે-કયોં કિ સિદ્ધ જીવ લેશ્યા સે રહિત હોતે હૈં ।
 (કળ્હલેસ્સા નીલલેસ્સા કાઉલેસ્સા જહા આહારઓ) કૃષ્ણલેશ્યા વાલે
 જીવોં મેં નીલલેશ્યાવાલે જીવોં મેં ઓર કાપોત લેશ્યાવાલે જીવોં મેં
 ઓર નારક આદિ જીવોં મેં, પ્રત્યેક લેશ્યાવાલે જીવ પૂર્વ મેં પ્રતિપાદિત
 હુએ અહારક જીવાદિક કી તરહ એકત્વ ઓર વહુત્વવિપયક દોદ્વંડકોં

પ્રમાણે જ સમજવું. આ કથનનું તાત્પર્ય એ છે કે લેશ્યાવાળા જીવોના એકત્વ
 બહુત્વ વિષયક બે દંડકોમાં જીવ અને નારક આદિ જીવનું વક્તવ્ય સામાન્ય
 જીવોના વક્તવ્ય પ્રમાણે જ થાય છે, કારણ કે જેમ જીવત્વ અનાદિ છે તેમ
 સલેશ્યતા અનાદિ છે. એકત્વ વિષયક લેશ્યા દંડકમાં " નિયમથી જ કોઈક
 જીવ સપ્રદેશ હોય છે, " એવો એક જ ભંગ છે. બહુત્વ દંડકમાં " નિયમથી
 પૂર્વોત્પન્ન સલેશ્ય જીવ સપ્રદેશ હોય છે. આ રીતે સામાન્ય જીવોના દંડકમાં
 કોઈ તફાવત નથી. આ લેશ્યા દંડકમાં માત્ર 'સિદ્ધ' પદને ગ્રહણ કરવું
 નહીં, કારણ કે સિદ્ધ જીવો લેશ્યા રહિત હોય છે. " કળ્હલેસ્સા, નીલ્લેસ્સા,
 કાઉલેસ્સા જહા આહારઓ " કૃષ્ણ લેશ્યાવાળા, નીલ લેશ્યાવાળા, કાપોત લેશ્યા-
 વાળા અને નારક આદિ જીવોમાંના પ્રત્યેક લેશ્યાવાળા જીવનું કથન આહારક
 જીવાદિકની જેમ એકત્વ અને બહુત્વ વિષયક બે દંડકો દ્વારા કરવું જોઈએ.
 આહારક જીવોના સપ્રદેશત્વ આદિનું પ્રતિપાદન આગળ આવી ગયું છે.

पादितत्तथा प्रत्येकम् एकत्वबहुत्वविषयकदण्डकद्वयेन वाच्याः ते च 'सर्वे सप्रदेशाः' 'बहवः सप्रदेशाश्च एकः अप्रदेशश्च' 'बहवः सप्रदेशाश्च बहवः अप्रदेशाश्च' इति भङ्गत्रयं नैरयिकादिषु बोध्यम्। जीवैकेन्द्रियेषु तु 'सप्रदेशाश्च अप्रदेशाश्च' इत्येको भङ्गः। 'नवरं-जस्त अत्थि एयाओ' नवरं विशेषस्तु एतावानेव यत्-यस्य जीवनैरयिकादेः एता लेश्याः सन्ति स एव जीवनैरयिकादिः वक्तव्यः, एताश्च तिस्रः कृष्ण-नील-कापोतलेश्याः ज्योतिपिक-वैमानिकानां न भवन्ति, सिद्धानां तु सर्वा अपि न भवन्ति, इति तेऽत्र न वक्तव्याः। 'तेउलेस्ताए जीवाइओ तियभंगो' तेजोलेश्यायाम्-तेजोलेश्यायतां बहुत्वविषयकदण्डके जीवादिकः जीवादपदेषु त्रयो भङ्गाः-ते एव पूर्वोक्ताः-सर्वे सप्रदेशाः १ बहवः सप्रदेशाः

द्वारा कहना चाहिये। बहुत्वविषयक दण्डक में तीन भंग हैं-वे इस प्रकारसे हैं-"सर्वे सप्रदेशाः" बहवः सप्रदेशाः एकः अप्रदेशश्च बहवः सप्रदेशाश्च, बहव अप्रदेशाश्च"। जीव और एकेन्द्रियों में "सप्रदेशाश्च अप्रदेशाश्च" ऐसा एक ही भंग है। "नवरं जस्त अत्थि एयाओ" यहां विशेषता केवल इतनी ही है कि जिस जीव नैरयिक आदिके ये लेश्याएँ हैं वही जीव नैरयिक आदि यहां कहना चाहिके। ये कृष्ण, नील और कापोत लेश्याएँ ज्योतिपिक और वैमानिकदेषों के नहीं होती हैं। तथा जो सिद्ध जीव हैं उनके तो छहलेश्याओं में से कोई भी लेश्या नहीं होती है। इस कारण इन्हें यहां ग्रहण नहीं करना चाहिये। (तेउलेस्ताए जीवाइओ तियभंगो) तेजो लेश्यावालों के बहुत्वविषयक द्वितीय दण्डक में जीवादिकपदों में पूर्वोक्त ये "सर्वे सप्रदेशाः १, "बहवः सप्रदेशाः, एकः अप्रदेशश्च २" "बहवः सप्रदेशाः बहवः

अहुत्व विषयक दंडकामां आ प्रभाषे त्रयु लंग थाय छे-"सर्वे सप्रदेशाः" "बहवः सप्रदेशाः एकः अप्रदेशश्च," "बहवः सप्रदेशाश्च बहवः अप्रदेशाश्च" एव अने एकेन्द्रियमां "सप्रदेशाश्च अप्रदेशाश्च" एवे। ओके ४ लंग थाय छे। "नवरं जस्त अत्थि एयाओ" अर्ही विशेषता ओरही ४ के ७ नारक आदि एवेनी लेश्या डाय छे, ते नारकादि एवेना सप्रदेशत्व आदिनुं अर्ही प्रतिपादन करवुं नोछे। न्योतिपिक अने वैमानिक देवोमां कृष्ण, नील अने कापोत लेश्याओ डोती नथी, तथा सिद्ध एवेमां तो छ लेश्याओमांनी ओके पथु लेश्या डोती नथी। ते कारणे अर्ही तेमने अकलु करवा नोछे नर्ही। (तेउलेस्ताए जीवाइओ तियभंगो) तेने लेश्यावाणा एवेना अहुत्व विषयक भील दंडकमां एवादिक पदोमां आ प्रभाषे त्रयु लंग डाय छे,

एकः अपदेशश्च २, बहवः सप्रदेशाः बहवः अपदेशश्च ३, इत्येवंरूपास्तयो मन्त्रा बोध्याः, किन्त्वत्र नैरयिक-तेजस्काय-वायुकाय-विकलेन्द्रिय-सिद्धपदानि न वक्तव्यानि, तेषां तेजोलेश्याया अभावात् सिद्धानां च सर्वोपामपि छेद्यानाम-भावात् । विशेषमाह-‘नवरं-पुढविकाइएसु, आउवणसईसु छम्भंगा’ नवरं-विशेषः पुनस्तेजोलेश्यायामयमेव यत्-पृथिवीकायिकेषु अक्-वनस्पतिषु पद्म भङ्गाः वक्तव्याः यतो हि एतेषु पृथिव्यादिषु तेजोलेश्याः एकद्वयादयो देवाः पूर्वोत्पन्नाः, उत्पद्यमानाथोपलभ्यन्ते इति तत्र सप्रदेशानाम् अप्रदेशानां च एकत्व-बहुत्व संभवात् । ते च पद्म भङ्गा अनाहारकजीवादिषु विशेषाः, तथाहि-सप्रदेशा वा १, अप्रदेशा वा २, अथवा सप्रदेशश्च अप्रदेशश्च ३, अथवा सप्रदेशश्च अप्रदेशश्च ४,

अप्रदेशाश्च ३ तीन भंग हैं । किन्तु यहाँ पर नैरयिक, तेजस्काय, वायु-काय, विकलेन्द्रिय और सिद्ध पद नहीं कहना-क्यों कि इनके तेजोलेश्या नहीं होती । तथा सिद्धों के तो कोई भी लेश्या नहीं होती । (नवरं पुढविकाइएसु आउवणसईसु छम्भंगा) इस तेजोलेश्या में जो विशेष-पता है वह इतनी ही है कि पृथिवीकायिकों में, अपृकायिकों में और वनस्पतिकायिकों में छह भंग है-क्योंकि इन पृथिवी कायादिकों में, तेजो-लेश्यावाले एक दो आदिक पूर्वोत्पन्न देव तथा उत्पद्यमान देव पाये जाते हैं -इस कारण यहाँ सप्रदेशोंका और अप्रदेशोंका एकत्व एवं बहुत्व संभ-विन है । यहाँ अनाहारक जीवादिककी तरह ही छह भंग जानना चाहिये । उनमें दो भंग बहुवचनान्त और एक भंग एक वचनान्त शेष ३ भंग एकवचन और बहुवचनके संयोगजन्य हैं-वे इस प्रकारसे हैं-सप्रदेशाः

(१) सर्वे सप्रदेशाः (२) बहवः सप्रदेशाः एकः अप्रदेशश्च, (३) बहवः सप्रदेशाः पदवः अप्रदेशाश्च । पञ्च तेषां नारका, तेजस्काय, वायुकाय, विकलेन्द्रिय અને સિદ્ધોનો સમાવેશ થતો નથી, કારણ કે તેમને તેજલેશ્યા હોતી નથી, તથા સિદ્ધોને તો એક પણ લેશ્યા હોતી નથી. (નવરં પુઢવિકાઈએસુ આઉવણસઈસુ છમ્ભંગા” આ તેજલેશ્યામાં જે વિશેષતા છે તે આ પ્રમાણે છે-પૃથ્વીકાયિકોમાં, અપૃકાયિકોમાં અને વનસ્પતિ કાયિકોમાં ૬ ભંગ થાય છે, કારણ કે આ પૃથ્વીકાયાદિકોમાં તેજલેશ્યાવાળા એક, જે આદિક પૂર્વોત્પન્ન દેવ તથા ઉત્પ-દ્યમાન દેવ પણ હોઈ શકે છે, તે કારણે ત્યાં સપ્રદેશોત્ એકત્વ અને બહુત્વ સંભ-વિત છે. અહીં અનાહારક જીવાદિકના છ ભંગના જેવાં જ છ ભંગો સમજવા. તેમાંના પહેલાં બે ભંગ બહુવચનનાં છે અને બીજું એક વચનનાં છે. બાકીના ત્રણ ભંગ એકવચન અને બહુવચનના સંયોગથી બન્યા છે. તે છ ભંગ આ પ્રમાણે

अथवा सप्रदेशाथ अप्रदेशाथ५, अथवा सप्रदेशाथ अप्रदेशाथ६, इति । 'पम्हलेस्स-सुकलेस्साए जीवाइओ तियभंगो' पद्मलेश्या-शुक्ललेश्यायोर्वहुत्वविषयके दण्डके जीवादिकः जीवादिषु पदेषु पूर्वोक्ता एव त्रयो भन्ना वक्तव्याः, किन्त्वत्र पञ्चेन्द्रियतिर्यग्-मनुष्य-वैमानिकपदान्येव वक्तव्यानि, अन्येषु नैरयिकादिषु एतयोः पद्मशुक्ललेश्यायोर्भावात् । अलेस्सेहिं जीवसिद्धेहिं तियभंगो, मणुएसु छम्भंगा 'अलेश्येषु-लेश्यारहितेषु जीवसिद्धेषु त्रयो भन्नाः, तथाहि- 'सर्वे सप्रदेशाः १, अथवा सप्रदेशा अप्रदेशाथ २, अथवा सप्रदेशाथ अप्रदेशाथे इति । मनुजेषु तु अनाहारकपदसङ्कोक्ताः पद्मभन्ना वेदितव्याः । अत्र अलेश्यसम्बन्धिनो-रेकत्वबहुत्वविषयकदण्डकयोः जीव-मनुष्य-सिद्धपदान्येव वक्तव्यानि, न तु नैरयिकादिपदानि, तेषाम् अलेश्यत्वासंभवात्, तत्रापि च जीवसिद्धयोः

वा १," अप्रदेशाः वा २, सप्रदेशाथ अप्रदेशाथ ३, सप्रदेशाथ अप्रदेशाथ ४, सप्रदेशाथ अप्रदेशाथ ५, सप्रदेशाथ अप्रदेशाथ ६ ।

"पम्हलेस्स-सुकलेस्साए जीवाइओ तियभंगो" पद्मलेश्या और शुक्ललेश्या के बहुत्वविषयक दण्डक में जीवादिक पदों में पूर्वोक्त ही तीन भंग होते हैं-यहां पर पञ्चेन्द्रियतिर्यग्, मनुष्य, वैमानिक इन पदों का ही उच्चारण करना, नैरयिक आदि पदों का नहीं-क्यों कि इनमें ये दो लेश्याएँ नहीं होती हैं। "अलेस्सेहिं जीवसिद्धेहिं तियभंगो मणुएसु छम्भंगो" लेश्या रहित जीव, सिद्धों में ये तीन भंग होते हैं-(सर्वे सप्रदेशाः १, अथवा-सप्रदेशाः अप्रदेशाथ २, अथवा-सप्रदेशाथ अप्रदेशाथ ३" । मनुष्योंमें अनाहारक प्रकरणकी तरहसे ही ६भंग होते हैं। यहाँ अलेश्या संबंधी एकत्व बहुत्व विषयक दो दण्डकों में

छे-(१) सप्रदेशाः वा, (२) अप्रदेशाः वा, (३) सप्रदेशाथ अप्रदेशाथ (४) सप्रदेशाथ अप्रदेशाथ (५) सप्रदेशाथ अप्रदेशाथ (६) सप्रदेशाथ अप्रदेशाथ)

(पम्हलेस्स-सुकलेस्साए जीवाइओ तियभंगो) पद्मलेश्या अने शुक्ल लेश्याना अहुत्व विषयक दण्डकां जीवादिक पदोभां पूर्वोक्त त्रयु लंग न थाय छे. अर्द्धी पञ्चेन्द्रिय तिर्यग्, मनुष्ये अने वैमानिकेने न अडण्ड करवा, परंतु नारक आदिने अडण्ड करवा लेध्छे नर्द्धी, कारणु के तेमनांभां आ जे लेश्याओ छोती नथी. (अलेस्सेहिं जीव सिद्धेहिं तियभंगो, मणुएसु छम्भंगो) लेश्यारहित एव अने सिद्धोभां त्रयु न लंग थाय छे.

(१) सर्वे सप्रदेशाः (२) अथवा सप्रदेशाः अप्रदेशाथ, (३) अथवा सप्रदेशाथ अप्रदेशाथ) मनुष्योभां अनाहारक प्रकरणनी जेम ६ लंग थाय छे. अर्द्धी अलेश्या संबंधी एकत्व अहुत्व विषयक जे दण्डकोभां एव, मनुष्य अने

ઔચિકજીવાદિવદેવ મદ્ગ્રમયં વક્તવ્યમ્, કિન્તુ મનુષ્યેષુ પદ્ મદ્ગ્રા વક્તવ્યાઃ
 અલેશ્યતાં પ્રતિપદ્માનાં પ્રતિપદ્માનાનાં ચ પરુદ્ધવાદીનાં મનુષ્યાણાં સંમત્રેન સપ-
 દેશાનામ્ અપદેશાનાં ચ પરુદ્ધવચ્ચુત્વસંભવાત્ । 'સમ્મદિદ્વીહિં જીવાહો તિય-
 મંગો, વિગલિંદિપ્પુ છબંગા' સમ્યગ્દષ્ટિપુ સમ્યગ્દષ્ટિદંડક્રયોઃ વહુત્વવિપયક
 દ્વંડકે જીવાદિકઃ જીવાદિપદેષુ ત્રયો મદ્ગ્રાઃ, ઔચિકજીવાદિવદેવ મદ્ગ્રમયમ્
 વક્તવ્યમ્ । વિકલેન્દ્રિયેષુ તુ પદ્ મદ્ગ્રાઃ વાચ્યાઃ, યતો હિ તેષુ સાસાદનસમ્યગ્દ-
 ષ્ટયઃ ઇકાદયઃ પૂર્વોત્પન્નાઃ, ઉત્પદ્યમાનાશ્ચ લભ્યન્તે, અતઃ સપદેશાપદેશત્વયોરે-

જીવ, મનુષ્ય ઓર સિદ્ધ ઇન પદોં કો હો કહના ચાહિયે-નૈરાયક આદિ
 પદોં કો નહોં-કયોં કિ યે લેશ્યા સે રહિત નહોં હેં । લેશ્યા સે રહિત
 જીવ ઓર સિદ્ધ મેં સામાન્ય જીવાદિ ફી તરહ સે હી તીન મંગ
 જાનના-પરંતુ મનુષ્યોં મેં ૬ છહ મંગ જાનના-કારણ કિ જો અલેશ્યા-
 વસ્થા કો પ્રાપ્ત હો ચુકે હેં, અથવા પ્રાપ્ત હો રહે હેં ઈસે વહાં ઇક દો
 આદિ મનુષ્યોં કા સદ્ગ્રાવ હો સકને કે કારણ સપદેશોં કા ઓર અપ્ર-
 દેશોં કા ઇકત્વ ઓર વહુત્વ ઘન સકના હે (સમ્મદિદ્વીહિં જીવાહો
 નિયમંગો વિગલિંદિપ્પુ છબંગા) સમ્યક્દષ્ટિજીવોં કે ઇકત્વવિપયક
 ઓર વહુત્વવિપયક દો દ્વંડકોં મેં સે વહુત્વવિપયક દ્વંડક મેં જીવા-
 દિક પદોં મેં સામાન્ય જીવાદિક ફી તરહ સે હી તીન મંગ કહના તથા
 વિકલેન્દ્રિય જીવોં મેં ૬ મંગ કહના-કયોં કિ વિકલેન્દ્રિયોં મેં ઇકાદિ
 માસાદન સમ્યગ્દષ્ટિ જીવ પૂર્વોત્પન્નરૂપ સે ઓર ઉત્પદ્યમાનરૂપ સે પાપે
 જાતે હેં । હસ કારણ યહાં સપદેશોં કા ઓર અપ્રદેશોં કા ઇકત્વ ઓર

મિદ્ધને જ ગ્રહણ કરવા નારકાદિકને ગ્રહણ કરવા ભેદબે નહીં, કારણ કે તેઓ
 લેશ્યાથી રહિત હોતા નથી. લેશ્યાથી રહિત જીવ અને સિદ્ધમાં સામાન્ય
 જીવાદિની જેમ જ ત્રણ ભાગ સમજવા, પરંતુ મનુષ્યોમાં છ ભાગ સમજવા,
 કારણ કે અલેશ્ય અવસ્થાને પામી ચુકેલા અથવા પામી રહ્યા હોય એવાં
 એક, બે આદિ મનુષ્યોના સદ્ગ્રાવ હોઈ શકે છે અને તે કારણે સપ્રદેશોતું
 અને અપ્રદેશોતું એકત્વ અને બહુત્વ સંભવી શકે છે.

(સમદિદ્વીહિં જીવાહો તિયમંગો વિગલિંદિપ્પુ છબંગા) સમ્યક્દષ્ટિ
 જીવોના એકત્વ વિપયક અને બહુત્વ વિપયક બે દંડકોમાંના બહુત્વ વિપયક
 દંડકમાં જીવાદિક પદોમાં સામાન્ય જીવ દિકના જેવાં જ ત્રણ ભાગ સમજવા,
 કારણ કે વિકલેન્દ્રિયોમાં એકાદિ સાસાદન સમ્યક્દષ્ટિ જીવ પૂર્વોત્પન્ન રૂપે અને
 ઉત્પદ્યમાન રૂપે વિદ્યમાન હોય છે. તે કારણે તે જીવોમાં સપ્રદેશોતું અને
 અપ્રદેશોતું એકત્વ અને બહુત્વ સંભવી શકે છે. પરંતુ આ સમ્યક્દષ્ટિ દ્વારમાં

વત્તવહુત્વસંભવાત્, કિન્તિવહ એકેન્દ્રિયપૃથિવ્યાદિપદાનિ ન વક્તવ્યાનિ, તેષાં સમ્યગ્દર્શનાભાવાત્ તથા ચ સમ્યગ્દર્શનપ્રતિપત્તિપ્રથમસમયે અપ્રદેશત્વમ્, તત્પ્રતિપત્તિદ્વયાદિસમયે તુ પ્રદેશત્વં વિજ્ઞેયમ્ । ' મિચ્છદ્દિટ્ટીદિં ઇગિંદિયવજ્જો તિયમંગો ' મિથ્યાદદિષ્ટિપુ મિથ્યાદદિષ્ટિદ્વકર્યોર્વહુત્વવિપયકદણ્ડકે એકેન્દ્રિય-વર્જઃ એકેન્દ્રિયપદાનિ વર્જયિત્વા જીવાદિપદેપુ ત્રિકભક્તઃ ઉપર્યુક્તઃ ઔઘિકજીવા દિવદેવ ત્રયો ભક્ત્તાઃ વક્તવ્યાઃ એકેન્દ્રિયપદેપુ તુ પૂર્વોત્પન્નાનામ્ ઉત્પદ્યમાનાનાં ચ વહુનામેવ સંભવાત્ ' સપ્રદેશાથ અપ્રદેશાથ ' ઇતિ એક એવ ભક્ત્તો ભવતિ । ઇહ ચ

વહુત્વ વન જાતા હૈ । પરન્તુ ઇસ સમ્યગ્દદિષ્ટિદ્વાર મેં એકેન્દ્રિય પૃથિવી આદિક પદોં કા ઉચ્ચારણ નહીં કરના ચાહિયે-કર્યોં કિ ઉનમેં સમ્યગ્દર્શન કા અભાવ રહતા હૈ । તથા ચ સમ્યગ્દર્શન કી પ્રતિપત્તિ કે પ્રથમ સમય મેં ઇસ દણ્ડક મેં અપ્રદેશત્વ ઓર આગે કે દો આદિ સમયોં મેં સપ્રદેશત્વ હૈ એસા જાનના ચાહિયે-(મિચ્છદ્દિટ્ટીદિં ઇગિંદિયવજ્જો તિયમંગો) મિથ્યાદદિષ્ટિ કે દો દણ્ડકોં મેં સે વહુત્વવિપયક દ્વિતી-યદણ્ડક મેં એકેન્દ્રિય પદ કો ઓડ કર ત્રીન ભંગ હું । એકેન્દ્રિયપદોં મેં ત્રીન ભંગ નહીં હું-કારણ કિ વહાં તો પૂર્વોત્પન્ન ઓર ઉત્પદ્યમાન જીવ વહુત હોતે હું ઇસલિયે (સપ્રદેશાથ અપ્રદેશાથ) એસા એક હી ભંગ હૈ । તથા-મિથ્યાદદિષ્ટિ કે દ્વિતીય ત્રીન ભંગ કહે ગયે હું । સો ઉસકા કારણ યહ હૈ કિ વહાં પર મિથ્યાત્વ કો પ્રતિપન્ન હુએ જીવ તો અનેક હોતે હું ઓર સમ્યક્ત્વ સે ભ્રષ્ટ હોને કે વાદ મિથ્યાત્વ કો પ્રતિપદ્યમાન-પ્રાપ્ત કરને વાલે-જીવ કોઈ એક દો આદિ હી હોતે હું ।

એકેન્દ્રિય પૃથ્વીકાય અ.દિકોને ગ્રહણ કરવાના નથી, કારણ કે તેઓમાં સમ્યગ્ દર્શનને અભાવ હોય છે. વળી સમ્યગ્ દર્શનની પ્રાપ્તિના પ્રથમ સમયમાં આ દંડકમાં અપ્રદેશત્વ છે અને પછીના બે, ત્રણ આદિ સમયોમાં સપ્રદેશત્વ છે એમ સમજવું.

(મિચ્છદ્દિટ્ટીદિં ઇગિંદિયવજ્જો તિયમંગો) એકેન્દ્રિય સિવાયના મિથ્યા-દદિષ્ટિના બે દંડકોમાંના બહુત્વ વિપયક બીજા દંડકમાં ત્રણ ભંગ છે. એકેન્દ્રિય પદોમાં ત્રણ ભંગ થતા નથી કારણ કે ત્યાં તો પૂર્વોત્પન્ન અને ઉત્પદ્યમાન જીવો ઘણા હોય છે, તે કારણે (સપ્રદેશાથ અપ્રદેશાથ) આ એક જ ભંગ થાય છે. તથા મિથ્યાદદિષ્ટિના બીજા દંડકમાં સામાન્ય જીવાદિકની જેમ જ ત્રણ ભંગ કદા છે તેવું કારણ એ છે કે ત્યાં મિથ્યાત્વની જેમણે પ્રાપ્તિ કરી છે એવાં જીવો તો અનેક હોય છે અને સમ્યક્ત્વથી ભ્રષ્ટ થઈને મિથ્યાત્વ પ્રાપ્ત કરનારા જીવો તો એક, બે આદિ જ હોય છે. આ મિથ્યાદદિષ્ટિ દ્વારમાં સિદ્ધને

ઓષ્ઠિકજીવાદિવદેવ ભક્તવ્યમ્, કિન્તુ મનુષ્યેષુ પદ્મજ્ઞા વક્તવ્યાઃ
 અલેક્ષ્યતાં પ્રતિપજ્ઞાનાં પ્રતિપચમાનાનાં ચ એકત્વયાદીનાં મનુષ્યાણાં સંપ્રથેન સપ-
 દેશાનામ્ અપ્રદેશાનાં ચ એકત્વચતુત્વસંભવાન્ । 'સમ્મદિટ્ટીહિં જીવાઈઓ તિય-
 મંગો, વિગલિંદિણસુ છબ્બંગા' સમ્યગ્દષ્ટિપુ સમ્યગ્દષ્ટિદષ્ટક્રયોઃ વહુત્વવિપયક
 દષ્ટકે જીવાદિકઃ જીવાદિપદેષુ પ્રયો મજ્ઞાઃ, ઓષ્ઠિકજીવાદિવદેવ ભક્તવ્યમ્
 વક્તવ્યમ્ । વિકલેન્દ્રિયેષુ તુ પદ્મજ્ઞાઃ વાચ્યાઃ, યતો હિ તેષુ સાસાદનસમ્યગ્દ-
 ણયઃ એકાદયઃ પૂર્વોત્પન્નાઃ, ઉત્પચમાનાથ લભ્યન્તે, ઝનઃ સપ્રદેશાપ્રદેશત્વયોરે-

જીવ, મનુષ્ય ઓર સિદ્ધ ઇન પદોં કો હોં કહનાં ચાહિયે-નેરાયક આદિ
 પદોં કો નહીં-કયોં કિં યે લેક્ષ્યા સે રહિત નહીં હું । લેક્ષ્યા સે રહિત
 જીવ ઓર સિદ્ધ મેં સામાન્ય જીવાદિ કીં તરહ સે હીં તીન બંગ
 જાનના-પરંતુ મનુષ્યોં મેં ૬ છહ બંગ જાનના-કારણ કિં જો અલેક્ષ્યા-
 વસ્થા કો પ્રાપ્ત હોં ચુકે હેં, અથવા પ્રાપ્ત હોં રહે હેં એસે વહાં એક દો
 આદિ મનુષ્યોં કા સદ્ભાવ હોં સકને કે કારણ સપ્રદેશોં કા ઓર અપ્ર-
 દેશોં કા એકત્વ ઓર વહુત્વ ઘન સકતા હે (સમ્મદિટ્ટીહિં જીવાઈઓ
 તિયમંગો વિગલિંદિણસુ છબ્બંગા) સમ્યક્દષ્ટિજીવોં કે એકત્વવિપયક
 ઓર વહુત્વવિપયક દો દષ્ટકોં મેં સે વહુત્વવિપયક દષ્ટક મેં જીવા-
 દિક પદોં મેં સામાન્ય જીવાદિક કીં તરહ સે હીં તીન બંગ કહના તથા
 વિકલેન્દ્રિય જીવોં મેં ૬ બંગ કહના-કયોં કિં વિકલેન્દ્રિયોં મેં એકાદિ
 સાસાદન સમ્યગ્દષ્ટિ જીવ પૂર્વોત્પન્નરૂપ સે ઓર ઉત્પચમાનરૂપ સે પાયે
 જાતે હેં । ઇસ કારણ વહાં સપ્રદેશોં કા ઓર અપ્રદેશોં કા એકત્વ ઓર

નિદ્ધને જ અહુલ્ય કરવા નારકાનિકને અહુલ્ય કરવા ભેદએ નહીં, કારણ કે તેઓ
 લેક્ષ્યાથી રહિત હોતા નથી. લેક્ષ્યાથી રહિત જીવ અને સિદ્ધમાં સામાન્ય
 જીવાદિની જેમ જ ત્રણ ભંગ સમજવા, પરંતુ મનુષ્યોમાં છ ભંગ સમજવા,
 કારણ કે અલેક્ષ્ય અવસ્થાને પામી ચુકેલા અથવા પામી રહ્યા હોય એવાં
 એક, બે આદિ મનુષ્યોના સદ્ભાવ હોઈ શકે છે અને તે કારણે સપ્રદેશોનું
 અને અપ્રદેશોનું એકત્વ અને બહુત્વ સંભવી શકે છે.

(સમ્મદિટ્ટીહિં જીવાઈઓ તિયમંગો વિગલિંદિણસુ છબ્બંગા) સમ્યક્દષ્ટિ
 જીવોના એકત્વ વિપયક અને બહુત્વ વિપયક બે દંડકોમાંના બહુત્વ વિપયક
 દંડકમાં જીવાદિક પદોમાં સામાન્ય જીવ દિકના જેવાં જ ત્રણ ભંગ સમજવા,
 કારણ કે વિકલેન્દ્રિયોમાં એકાદિ સાસાદન સમ્યક્દષ્ટિ જીવ પૂર્વોત્પન્ન રૂપે અને
 ઉત્પચમાન રૂપે વિદ્યમાન હોય છે. તે કારણે તે જીવોમાં સપ્રદેશોનું અને
 અપ્રદેશોનું એકત્વ અને બહુત્વ સંભવી શકે છે. પરંતુ આ સમ્યક્દષ્ટિ દ્વારા

વક્તવ્યો ન નૈરચિકાદયસ્તેષાં સંયતત્વામાસાત્, 'અસંજર્ણિં ઇગિંદિયવજ્જો તિયમંગો ત્તિ' અસંયતેષુ-અસંયતપદવિશિષ્ટદણ્ડકયોર્મધ્યે વહુત્વવિષયકદણ્ડકે એકેન્દ્રિય વર્જઃ એકેન્દ્રિયપૃથિવ્યાદિપદ્મકપદાનિ વર્જયિત્વા જીવાદિપદેષુ ત્રિકમજ્જઃ પૂર્વોક્તાત્ત્રયો મજ્જા વક્તવ્યાઃ, અસંયતત્વં પ્રતિપન્નાનાં સંયતત્વાદિપ્રતિપાનેન અસંયતત્વં પ્રતિપદ્યમાનાનાં ચ એકાદીનાં સંભવાત્, એકેન્દ્રિયપૃથિવ્યાદીનાં તુ પૂર્વોક્તીત્યા 'સપ્રદેશાશ્ચ અપ્રદેશાશ્ચ' ઇતિ એક એવ મજ્જો વાચ્યઃ, કિન્ત્વત્ર સિદ્ધપદં

એસે સંયમ પ્રતિપન્નક જીવ વહુત હોતે હૈં, તથા જો જીવ સંયમ કો પ્રાપ્ત કર રહે હૈં એસે સંયમ પ્રતિપદ્યમાન જીવ એક દો આદિ હી હોતે હૈં। હસ દ્વાર મેં જીવ ઔર મનુષ્ય પદ કા હી ઉચ્ચારણ કરના ક્યોં કિ ઇન્હીં મેં સંયમ હોતા હૈ, નારક આદિ પદોં કા ઉચ્ચારણ નહીં કરના-ક્યોં કિ ઇનમેં સંયમ નહીં હોતા હૈ। 'અસંજર્ણિં ઇગિંદિય વજ્જો તિયમંગો' અસંયત દ્વારમેં અસંયત પદ વિશિષ્ટ એકત્વ ઔર વહુત્વ વિષયક દો દણ્ડકોં મેં સે વહુત્વવિષયક દ્વિતીય દણ્ડકમેં એકેન્દ્રિય કે પાંચ પદોંકે છોડકર જીવાદિ પદોં મેં પૂર્વોક્ત તીન ભંગ હોતે હૈં। ક્યોં કિ અસંયત અવસ્થાકો પહિલેસે પાયે દુષ્ જીવ તો અનેક હોતે હૈં ઔર સંયત આદિ અવસ્થા સે પડ્ કર અસંયત અવસ્થા કો પ્રતિપદ્યમાન હોનેવાલે જીવ એક દો આદિ હી હો સકતે હૈં। યહાં જો એકેન્દ્રિય પાંચ પદોં કા છોડના કહા ગયા હૈ સો ઇસકા કારણ યહ હૈ કિ ઇનમેં તીન ભંગ નહીં હોતે હૈં કિન્તુ "સપ્રદેશાશ્ચ અપ્રદેશાશ્ચ" એસાં એક હી ભંગ હોતા હૈ। ક્યોં

હવે તો ઘણા જ હોય છે, પણ સંયમને પ્રાપ્ત કરી રહ્યા હોય એવાં સંયમ પ્રતિપદ્યમાન હવે તો એક, બે આદિ જ હોય છે. આ દ્વારમાં હવ અને મનુષ્ય પદને જ અહણ કરવા, કારણ કે એ હવે જ સંયત હોઈ શકે છે. નારક આદિને આ દ્વારમાં સમાવેશ થતો નથી કારણ કે તેઓમાં સંયમને અભાવ હોય છે. (અસંજર્ણિં ઇગિંદિયવજ્જો તિયમંગો) અસંયત દ્વારમાં અસંયત સંબંધી એકત્વ અને બહુત્વ વિષયક બે દંડકોમાંના બહુત્વ વિષયક બીજા દંડકમાં એકેન્દ્રિયતા પૃથ્વીકાય આદિ પાંચ પદો સિવાયના હવાદિ પદોમાં પૂર્વોક્ત ત્રણ ભંગ થાય છે, કારણ કે પહેલેથી જ અસંયત અવસ્થામાં હોય એવાં હવે તો ઘણા જ હોય છે, પણ સંયત આદિ અવસ્થામાંથી પતન પામીને અસંયત અવસ્થા પામી રહ્યાં હોય એવાં હવે તો એક, બે આદિ જ સંભવી શકે છે. અહીં એકેન્દ્રિયતા પાંચ પદને અહણ કરવાનો નિયેધ કરવાનું કારણ એ છે કે તે હવેમાં ત્રણ ભંગ થતા નથી, પરંતુ (સપ્રદેશાશ્ચ અપ્રદેશાશ્ચ) આ એક જ ભંગ થાય છે. કારણ કે તે પર્યાયમાં બધાં જ હવે

સિદ્ધા ન ચાચ્યાસ્તેપાં મિથ્યાત્વાભાવાન્ 'સમ્મામિચ્છદિદ્વીહિં છમ્બંગા' સમ્યગ્-
મિથ્યાદષ્ટિપુ સમ્યગ્મિથ્યાદષ્ટિસમ્યન્ધિવદ્વૃત્વવિપયકદ્વંડકે પડ્ મજ્ઞાઃ વેદિ-
ત્વ્યાઃ, યતઃ સમ્યગ્મિથ્યાદષ્ટિત્વં પ્રતિપન્નાઃ પ્રતિપદમાનાથ્મ્ એકદ્વયાદયોઽપિ
લભ્યન્તે અતરતેપુ સમ્યગ્મિથ્યાદષ્ટિત્વં પ્રતિપન્નાઃ પ્રતિપદમાનાથ્મ્ એકદ્વયાદયોઽપિ
લભ્યન્તે અતસ્તેપુ સમ્યગ્મિથ્યાદષ્ટિપુ પડ્ મજ્ઞા મવન્તિ, અત્ર ચ એકેન્દ્રિય-ત્રિક-
લેન્દ્રિય-સિદ્ધપદાનિ ન વક્તવ્યાનિ તેપાં સમ્યગ્મિથ્યાદર્શનાસંભવાન્ । 'સંજર્ણિ
જીવાઙ્ઓ તિયમંગો' સંયતેપુ સંયતશબ્દવિશેષિષ્ટદ્વંડકયોર્મધ્યે વદ્વૃત્વવિપયક-
દ્વંડકે જીવાદિકઃ જીવાદિપદેપુ ત્રયો મજ્ઞાઃ ઉપર્યુક્તા વક્તવ્યાઃ, સંયમં પ્રતિપન્નાનાં
વહૂનામ્ પ્રતિપદમાનાનાં ચ એકાદીનાં સન્નાવાત્, કિન્ત્વત્ર જીવ-મનુષ્યા એવ

इस मिथ्यादृष्टिद्वार में सिद्ध पद का उच्चारण नहीं करना, क्यों कि
सिद्ध जीवों में मिथ्यात्व नहीं होता है। (सम्मामिच्छदिद्वीहिं-छम्बंगा)
सम्यग्मिथ्यादृष्टि के बहुत्वविषयक द्वितीय दण्डक में छद् भंग होते
हैं-सो इसका कारण यह है कि सम्यग्मिथ्यादृष्टि अवस्था को
जिन जीवों ने पहिले से प्राप्त कर रखा है ऐसे जीव और जो इस
अवस्था प्राप्त कर रहे हैं ऐसे जीव सब ही नहीं होते हैं, किन्तु एक दो
आदि जीव भी होते हैं। इससे इस सम्यग्मिथ्यादृष्टि द्वारमें दभंग कहे
गये हैं। इस द्वार में एकेन्द्रिय विकलेन्द्रिय और सिद्धोंका उच्चारण नहीं
करना क्यों कि-इनमें सम्यग्मिथ्यादृष्टिरूप मिथ्र अवस्था नहीं होती है।
'संजर्णि जीवाङ्ओ तियमंगो' संयतशब्दसे विशेषित हुए दो दण्डकों
में से बहुत्व विषयक द्वितीय दण्डक में जीवादिक पदों में पूर्वोक्त तीन
भंग होते हैं। कारण कि संयम को जिन्होंने पहिले प्राप्त कर लिया है

પણ સમાવેશ કરવાનો નથી કારણ કે સિદ્ધ જીવોમાં મિથ્યાત્વ હોતું જ
નથી. (સમ્મામિચ્છદિદ્વીહિં છમ્બંગા) સમ્યગ્ મિથ્યાદષ્ટિના બહુત્વ વિષયક
બીજા દંડકમાં છ ભંગ થાય છે. તેનું કારણ એ છે કે સમ્યગ્ મિથ્યાદષ્ટિ
અવસ્થા જેમણે પહેલેથી જ પ્રાપ્ત કરેલી હોય એવાં જીવો અને એ અવસ્થાને
પ્રાપ્ત કરી રહ્યા હોય એવાં જીવો બધાં હોતા નથી, પણ એક, બે આદિ
જીવો જ હોય છે. તેથી આ સમ્યગ્ મિથ્યાદષ્ટિ દ્વારમાં છ ભંગ કહ્યા છે. આ
દ્વારમાં એકેન્દ્રિ, વિકલેન્દ્રિય અને સિદ્ધોનો સમાવેશ થતો નથી, કારણ કે
તેઓમાં સમ્યગ્ મિથ્યાદષ્ટિ રૂપ મિથ્ર અવસ્થા હોતી નથી. (સંજર્ણિ જીવા-
ઙ્ઓ તિયમંગો) સંયત વિશેષણવાળા એ દંડકોમાંના બહુત્વ વિષયક બીજા
દંડકમાં જીવાદિક પદોમાં પૂર્વોક્ત ત્રણ ભંગ થાય છે, તેનું કારણ એ છે કે
સંયમને પહેલાં પ્રાપ્ત કરી લીધે હોય એવાં સંયમ પ્રતિપન્નક (સંયમી)

સંજયાસંજય - જીવસિદ્ધેર્હિ તિયમંગો ' નોસંયત - નોઅસંયત - નોસંયતાસંયત-
 પદવિશિષ્ટજીવસિદ્ધવિપયકૈકત્વવહુત્વદ્વંડકયોર્મધ્યે વહુત્વદ્વંડકે જીવાદિપદેપુ
 પૂર્વોક્તાશ્ચયો ભક્ત્વા વક્તવ્યાઃ પૂર્વોક્તરીત્યા । વિશેષત્તુ અત્ર જીવ-સિદ્ધાવેવ
 વક્તવ્યો, ન મનુષ્યનૈરચિકાદયસ્તેપાં નોસંયતત્વાચસંભવાત્, અતઃ એવાત્ર
 ' જીવ-સિદ્ધેર્હિ ' इत्येवોક્તम् । ' સકસાઈર્હિ જીવાઈઓ તિયમંગો ' સકપાયિપુ
 સરુપાયશ્ચવિશિષ્ટદ્વંડકયોર્મધ્યે વહુત્વદ્વંડકે જીવાદિકઃ જીવાદિપદેપુ ત્રિકમત્તઃ
 પૂર્વોક્તાશ્ચયો ભક્ત્વા વાચ્યાઃ, તયા ચ સરુપાયાણાં સર્વદાડ્વસ્થાનાત્ તે સકપાયાઃ
 ' સપ્રદેશાઃ ' इत्येवો ભક્ત્વા, એવમ્ ઉપશમશ્રેણીતઃ પ્રચ્યવમાનતાદશાયાં સકપાયત્વં

સંયત-નો અસંયત-નો સંયતાસંયત પદ વિશિષ્ટ જીવ ઓર સિદ્ધ
 સમ્યન્ધી એકત્વ ઘટ્ટસ્વવિપયક દો દ્વંડકોં મેં સે વહુત્વવિપયક દ્વંડક
 મેં જીવાદિ પદોં મેં પૂર્વોક્ત રીતિ કે અનુસાર પૂર્વોક્ત તોન બંગ હોતે હેં
 યહાં કેવલ જીવ ઓર સિદ્ધપદ કા હી ઉચ્ચારણકરના ચાહિયે । મનુષ્ય
 નારક આદિ પદોં કા નહીં । ક્યોં કિં ઉનમેં નો સંયતત્વાદિ અવસ્થા
 નહીં હોતી હેં । હસી કારણ યહાં " જીવ સિદ્ધેર્હિ " એસા હી કહા
 ગયા હેં । " સકસાઈર્હિ જીવાઈઓ તિયમંગો ' સકપાયદ્વાર મેં સકપાય
 શ્ચવિશિષ્ટ દો દ્વંડકોં મેં સે વહુત્વવિપયક દ્વિતીય દ્વંડકમેં જીવા-
 દિકં પદોં મેં પૂર્વોક્ત હી તોન બંગ હોતે હેં ક્યોં કિં કપાયસહિત જીવ
 સંદાં અવસ્થિત રહતે હેં-અર્થાત્ કપાયવાલે જીવ હમેશા પાયે જાતે હેં
 હસ લિયે વે કપાયવાલે જીવ સપ્રદેશ હેં યહ એક બંગ હુમ્ના, તયા ઉપ-
 શમ શ્રેણી સે ગિર કર કપાયસહિત અવસ્થા કો પાનેવાલે જીવ કોહ

સંબંધી એકત્વ બહુત્વ વિપયક બે દંડકોમાંના બહુત્વ વિપયક બીજા દંડકમાં
 એવાદિ પદોમાં પૂર્વોક્ત રીત પ્રમાણેના જ પૂર્વોક્ત ત્રણ ભંગ થાય છે, આ
 દ્વારમાં ક્ષત્ત' એવ પદ અને સિદ્ધ પદનો જ પ્રયોગ થાય છે, મનુષ્ય, નારક
 આદિ પદોને દ્વારમાં અહણ કરવાનો નિષેધ કર્યો છે કારણ કે તેમનામાં નો
 સંયત આદિ અવસ્થામાં હોતી નથી. તે કારણે અહીં (જીવ સિદ્ધેર્હિ) આ
 પ્રમાણે કહ્યું છે.

(સકસાઈર્હિ જીવાઈઓ તિયમંગો) સકપાય દ્વારમાં સકપાય શબ્દયુક્ત બે
 દંડકોમાંના બહુત્વ વિપયક બીજા દંડકમાં એવાદિક પદોમાં પૂર્વોક્ત ત્રણ ભંગ
 જ રહ્યા છે, કારણ કે કપાયવાળા એવો હંમેશા નબરે પડતાં હોય છે. તે
 કારણે તે કપાયવાળા એવો સપ્રદેશ હોય છે, આ પહેલો ભંગ છે. તથા
 ઉપશમ શ્રેણીથી પતન પામીને કપાયયુક્ત અવસ્થા પ્રાપ્ત કરનાર એવ તો

ન વક્તવ્યં, તસ્ય અસંયતસ્થામાનાન્ । ' સંજયાસંજર્ણિ તિયમંગો જીવાર્હો ' સંયતા - સંયતેષુ સંયતાસંયતપદવિશિષ્ટેષ્ઠાવદુઃશરણ્યોર્મણ્યે વદુત્વદણ્ડકે જીવાદિકઃ જીવાદિપદેષુ વિક્રમજઃ પૂર્વોક્તારાગો મજ્ઞા વાચ્યાઃ, દેશચિરતિ પ્રતિ- પચાનાં વહુનાં, સંયમાદ્ અસંયમાદ્ યા નિટ્યપ દેશચિરતિ પ્રતિપચમાનાનાં ચ એકાદીનાં સદ્ભાવાત્, પરન્ત્યત્ર ત્રીવ-પન્ચેન્દ્રિયતિર્યગ્-મનુષ્યા એવ પઠિત્વ્યાઃ ન તુ નૈરચિકાદયઃ, તેષાં સંયતાસંયતત્વચિરકાન્, ' ણોસંજય-ણોઅસંજય-ણો-

કિ યહાં સવ હી દ્વિતીયાદિ સમયોં મેં અસંયમ અવસ્થાચાલે હોતે હેં ઓર અસંયમ અવસ્થા કો ધારણ કરનેચાલે વે હી સવજીવ પ્રથમ સમય મેં મી હોતે હેં । હસ કારણ યહાં એક હી ભંગ કહાં ગયા હે । હસ દ્વાર મેં સિદ્ધ પદ નહીં કહના-વયોં કિ સિદ્ધોં મેં અસંયત અવસ્થા નહીં હોતી હે । ' સંજયા સંજર્ણિ તિયમંગો જીવાર્હો ' સંયતાસંયત દ્વાર મેં- સંયતાસંયતપદ વિશિષ્ટ એકત્વ વદુત્વ વિપચક દો દણ્ડકોં મેં સે વદુ- ત્વવિપચક દ્વિતીય દણ્ડકમેં જીવાદિક પદોં મેં પૂર્વોક્ત ત્રીન ભંગ હોતે હેં । કયોં કિ દેશચિરતિરૂપ ચારિત્ર કો જિન્હોં નેં પહિલે સે પ્રાપ્ત કર લિયા હેં એસે જીવ તો અનેક હોતે હેં, ઓર સંયમ સે અથવા અસંયમ નિવૃત્ત હો કર પુનઃ દેશચિરતિરૂપ ચારિત્ર કો પ્રાપ્ત કરનેચાલે કોઈ એક દો આદિ જીવ હી હોતે હેં । હસ દ્વારમેં જીવ પન્ચેન્દ્રિય તિર્યગ્ ઓર મનુષ્ય હન પદોં કો હી પ્રયોગ કરના કયોં કિ હનકે સિચાય ઓર જગહ દેવનારક આદિ મેં યહ અવસ્થા સંભવિત નહીં હોતી હે ' ણો સંજય-ણો અસંજય-ણો સંજયાસંજય જીવ સિદ્ધેર્હિ તિયમંગો ' નો

દ્વિતીયાદિ સમયોમાં અસંયમ અવસ્થાવાળા હોય છે અને તે બધાં હવે પ્રથમ સમયમાં પણ અસંયમ અવસ્થાવાળા જ હોય છે. આ કારણે એકેન્દ્રિય વિપચક એક જ ભંગ અસંયતને અનુલક્ષીને કહ્યો છે. આ દ્વારમાં સિદ્ધને સમાવેશ થતો નથી કારણ કે તેઓમાં અસંયત અવસ્થા હોતી જ નથી. (સંજયાસંજર્ણિ તિયમંગો જીવાર્હો) સંયતા સંયત દ્વારમાં-સંયતા સંયત સંબંધી એકત્વ બહુત્વ વિપચક એ દંડકોમાંના બહુત્વ વિપચક બીજા દંડકોમાં હવાદિક પદોમાં પૂર્વોક્ત ત્રણ ભંગ થય છે. કારણ કે દેશચિરતિરૂપ ચારિત્રને પ્રાપ્ત કરનારા હવે તો કોઈ જ હોય છે. આ દ્વારમાં હવ, પન્ચેન્દ્રિય તિર્યગ્ અને મનુષ્ય આટલાં પદોનો જ પ્રયોગ કરવો. આ સિચાયના નારક દેવ આદિમાં આ અવસ્થા સંભવી શકતી જ નથી.

(ણોસંજય-ણોઅસંજય-ણોસંજયાસંજય જીવ સિદ્ધેર્હિ તિયમંગો) નો સંયત, નો અસંયત અને નો સંયતાસંયત પદ વિશિષ્ટ હવ અને સિદ્ધ

સંજયાસંત્રય - જીવસિદ્ધેર્હિ તિયમંગો ' નોસંયત - નોઅસંયત - નોસંયતાસંયત-
 પદવિશિષ્ટજીવસિદ્ધવિપયકૈકત્વવહુત્વદ્વંડકયોર્મધ્યે વહુત્વદ્વંડકે જીવાદિપદેપુ
 પૂર્વોક્તાશ્ચયો ભક્ષા વક્તવ્યાઃ પૂર્વોક્તરીત્યા । વિશેષત્તુ અત્ર જીવ-સિદ્ધાવેવ
 વક્તવ્યો, ન મનુષ્યનૈરચિકાદયસ્તેપાં નોસંયતત્વાદ્યસંભવાત્, અતઃ एवात्र
 ' જીવ-સિદ્ધેર્હિ ' ઇત્યેવોક્તમ્ । ' સકસાર્હિર્હિ જીવાઈઓ તિયમંગો ' સકપાયિપુ
 સરુપાયશ્ચવિશિષ્ટદ્વંડકયોર્મધ્યે વહુત્વદ્વંડકે જીવાદિકઃ જીવાદિપદેપુ ત્રિકભક્ષઃ
 પૂર્વોક્તાશ્ચયો ભક્ષા વાચ્યાઃ, તયા ચ સકપાયાણાં સર્વદાઙ્વસ્થાનાત્ તે સકપાયાઃ
 ' સપ્રદેશાઃ ' ઇત્યેકો ભક્ષઃ, એવમ્ ઉપશમશ્રેણીતઃ પ્રચ્યવમાનતાદશાયાં સકપાયત્વં

સંયત-નો અસંયત-નો સંયતાસંયત પદ વિશિષ્ટ જીવ ઓર સિદ્ધ
 સમ્યન્થી એકત્વ વહુત્વવિપયક દો દ્વંડકોં મેં સે વહુત્વવિપયક દ્વંડક
 મેં જીવાદિ પદોં મેં પૂર્વોક્ત રીતિ કે અનુસાર પૂર્વોક્ત તોન ભંગ હોતે હેં
 યહાં કેવલ જીવ ઓર સિદ્ધપદ કા હી ઉચ્ચારણ કરના ચાહિયે । મનુષ્ય
 નારક આદિ પદોં કા નહીં । ક્યોં કિ ઉત્તમં નો સંપન્નત્વાદિ અવસ્થા
 નહીં હોતી હે । હસી કારણ યહાં " જીવ સિદ્ધેર્હિ " એસા હી કહા
 ગયા હે । " સકસાર્હિર્હિ જીવાઈઓ તિયમંગો ' સકપાયદ્વાર મેં સકપાય
 શ્ચવિશિષ્ટ દો દ્વંડકોં મેં સે વહુત્વવિપયક દ્વિતીય દ્વંડકમેં જીવા-
 દિકં પદોં મેં પૂર્વોક્ત હી તોન ભંગ હોતે હેં ક્યોં કિ કપાયસહિત જીવ
 સંદાં અવસ્થિત રહતે હેં-અર્થાત્ કપાયવાલે જીવ હમેશા પાયે જાતે હેં
 હસ લિયે વે કપાયવાલે જીવ સપ્રદેશ હેં યહ એક ભંગ હુમા, તયા ઉપ-
 શમ શ્રેણી સે ગિર કર કપાયસહિત અવસ્થા કો પાનેવાલે જીવ કોહ

સંબંધી એકત્વ વહુત્વ વિપયક જે દંડકોમાંના વહુત્વ વિપયક બીજા દંડકમાં
 એવાદિ પદોમાં પૂર્વોક્ત રીત પ્રમાણેના જ પૂર્વોક્ત ત્રણ ભંગ થાય છે, આ
 દ્વારમાં ક્ષત્ એવ પદ અને સિદ્ધ પદનો જ પ્રયોગ થાય છે, મનુષ્ય, નારક
 આદિ પદોને દ્વારમાં અહણ કરવાનો નિયેધ કર્યો છે કારણ કે તેમનામાં નો
 સંયત આદિ અવસ્થામાં હોતી નથી. તે કારણે અહીં (જીવ સિદ્ધેર્હિ) આ
 પ્રમાણે કહું છે.

(સકસાર્હિર્હિ જીવાઈઓ તિયમંગો) સકપાય દ્વારમાં સકપાય શબ્દયુક્ત જે
 દંડકોમાંના વહુત્વ વિપયક બીજા દંડકમાં એવાદિક પદોમાં પૂર્વોક્ત ત્રણ ભંગ
 જ રહ્યા છે, કારણ કે કપાયવાળા એવો હમેશા નજરે પડતાં હોય છે. તે
 કારણે તે કપાયવાળા એવો સપ્રદેશ હોય છે, આ પહેલો ભંગ છે. તથા
 ઉપશમ શ્રેણીથી પતન પામીને કપાયયુક્ત અવસ્થા પ્રાપ્ત કરનાર એવ તો

ન વક્તવ્યં, તસ્ય અસંયતસ્વાભાવાન્ । ' સંજયાસંજર્ણિ તિયમંગો જીવાઈઓ ' સંયતા - સંયતેષુ સંયતાસંયતપદવિશિષ્ટેશ્ચાવદ્યુત્તરોર્મણ્યે વદ્યુત્તરણ્ડકે જીવાદિકઃ જીવાદિપદેષુ ત્રિભુવનઃ પૂર્વોક્તારાપો મત્તા વાચ્યાઃ, દેશવિરતિ પ્રતિ- પન્નાનાં વહુનાં, સંયમાદ્ અસંયમાદ્ વા નિટ્ય દેશવિરતિ પ્રતિપચમાનાનાં ચ એકાદીનાં સદ્ભાવાત્, પરન્ત્યત્ર જીવ-પદ્મેન્દ્રિયતિર્દગ્-મનુષ્યા एव पठितव्याः ન તુ નૈરવિકાદયઃ, તેષાં સંયતાસંયતત્ત્વચિરઠાન્, ' ણોસંજય-ણોઅસંજય-ણો-

કિ યહાં સવ હી દ્વિતીયાદિ સમયો મેં અસંયમ અવસ્થાવાલે હોતે હેં ઓર અસંયમ અવસ્થા કો ધારણ કરનેવાલે વે હી નવ જીવ પ્રથમ સમય મેં મી હોતે હેં । હસ કારણ યહાં એક ણી ભંગ કહાં ગયા હૈ । હસ દ્વાર મેં સિદ્ધ પદ નહીં કહુના-ચયોં કિ સિદ્ધોં મેં અસંયત અવસ્થા નહીં હોતી હૈ । ' સંજયા સંજર્ણિ તિયમંગો જીવાઈઓ ' સંયતાસંયત દ્વાર મેં-સંયતાસંયતપદ વિશિષ્ટ પદત્વ વદ્યુત્તર વિષયક દો દણ્ડકોં મેં સે વદ્યુ-ત્વવિષયક દ્વિતીય દણ્ડકમેં જીવાદિક પદોં મેં પૂર્વોક્ત ત્રીન ભંગ હોતે હેં । કયોં કિ દેશવિરતિરૂપ ચારિત્ર કો જિન્હોં નેં પહિલે સે પ્રાપ્ત કર લિયા હૈ એસે જીવ તો અનેક હોતે હેં, ઓર સંયમ સે અથવા અસંયમ નિવૃત્ત હો કર પુનઃ દેશવિરતિરૂપ ચારિત્ર કો પ્રાપ્ત કરનેવાલે કોઈ એક દો આદિ જીવ હી હોતે હેં । હસ દ્વારમેં જીવ પદ્મેન્દ્રિય તિર્યચ્ચ ઓર મનુષ્ય હન પદોં કો હી પ્રયોગ કરના કયોં કિ હનકે સિવાય ઓર જગહ દેવનારક આદિ મેં યહ અવસ્થા સંભવિત નહીં હોતી હૈ ' ણો સંજય-ણો અસંજય-ણો સંજયાસંજય જીવ સિદ્ધેહિં તિયમંગો ' નો

દ્વિતીયાદિ સમયોમાં અસંયમ અવસ્થાવાળા હોય છે અને તે બધાં જીવો પ્રથમ સમયમાં પણ અસંયમ અવસ્થાવાળા જ હોય છે. આ કારણે એકેન્દ્રિય વિષયક એક જ ભંગ અસંયતને અનુલક્ષીને કહ્યો છે. આ દ્વારમાં સિદ્ધનો સમાવેશ થતો નથી કારણ કે તેઓમાં અસંયત અવસ્થા હોતી જ નથી. (સંજયાસંજર્ણિ તિયમંગો જીવાઈઓ) સંયતા સંયત દ્વારમાં-સંયતા સંયત સંબંધી એકત્વ બહુત્વ વિષયક બે દંડકોમાંના બહુત્વ વિષયક બીજા દંડકમાં જીવાદિક પદોમાં પૂર્વોક્ત ત્રણ ભંગ થાય છે. કારણ કે દેશવિરતિરૂપ ચારિત્રને પ્રાપ્ત કરનારા જીવો તો કોઈ જ હોય છે. આ દ્વારમાં જીવ, પદ્મેન્દ્રિય તિર્યચ્ચ અને મનુષ્ય આટલાં પદોનો જ પ્રયોગ કરવો. આ સિવાયના નારક દેવ આદિમાં આ અવસ્થા સંભવી શકતી જ નથી.

(ણોસંજય-ણોઅસંજય-ણોસંજયાસંજય જીવ સિદ્ધેહિં તિયમંગો) નો સંયત, નો અસંયત અને નો સંયતાસંયત પદ વિશિષ્ટ જીવ અને સિદ્ધ

संज्ञासंज्ञय - जीवसिद्धेर्हि त्रियभंगो ' नोसंयत - नोअसंयत - नोसंयतासंयत-
 पदविशिष्टजीवसिद्धविषयकैकत्वबहुत्वदण्डकयोर्भेदे बहुत्वदण्डके जीवादिपदेषु
 पूर्वोक्तास्त्रयो भङ्गा वक्तव्याः पूर्वोक्तीत्या । विशेषस्तु अत्र जीव-सिद्धावेव
 वक्तव्यौ, न मनुष्यनैरयिकादयस्तेषां नोसंयतत्वाद्यसंभवात्, अत एवात्र
 ' जीव-सिद्धेर्हि ' इत्येवोक्तम् । ' सकसाईर्हि जीवाइओ त्रियभंगो ' सकपायिषु
 सकपायशब्दविशिष्टदण्डकयोर्भेदे बहुत्वदण्डके जीवादिकः जीवादिपदेषु त्रिकभङ्गः
 पूर्वोक्तास्त्रयो भङ्गा वाच्याः, तथा च सकपायाणां सर्वदाऽवस्थानात् ते सकपायाः
 ' सप्रदेशाः ' इत्येवो भङ्गाः, एषम् उपशमश्रेणीतः प्रच्यवमानतादशायां सकपायत्वं

संयत-नो असंयत-नो संयतासंयत पद विशिष्ट जीव और सिद्ध
 सम्बन्धी एकत्व बहुत्वविषयक दो दण्डकों में से बहुत्वविषयक दण्डक
 में जीवादि पदों में पूर्वोक्त रीति के अनुसार पूर्वोक्त तीन भंग होते हैं
 यहाँ केवल जीव और सिद्धपद का ही उच्चारण करना चाहिये । मनुष्य
 नारक आदि पदों का नहीं । क्योंकि उनमें नो संयतत्वादि अवस्था
 नहीं होती है । इसी कारण यहाँ " जीव सिद्धेर्हि " ऐसा ही कहा
 गया है । " सकसाईर्हि जीवाइओ त्रियभंगो ' सकपायद्वार में सकपाय
 शब्द विशिष्ट दो दण्डकों में से बहुत्वविषयक द्वितीय दण्डकमें जीवा-
 दिक पदों में पूर्वोक्त ही तीन भंग होते हैं क्योंकि कपायसहित जीव
 संज्ञा अवस्थित रहते हैं-अर्थात् कपायवाले जीव हमेशा पाये जाते हैं
 इस लिये वे कपायवाले जीव सप्रदेश हैं यह एक भंग हुआ, तथा उप-
 शम श्रेणी से गिर कर कपायसहित अवस्था को पानेवाले जीव कोइ

संबन्धी एकत्व बहुत्व विषयक दो दण्डकोंमें से बहुत्व विषयक नीचे दण्डकों
 आदि पदोंमें पूर्वोक्त रीति प्रमाणेना न पूर्वोक्त त्रयु लंग थाय छे, आ
 द्वारमें इत्त' एव यह अने सिद्ध पदने न प्रयोग थाय छे, मनुष्य, नारक
 आदि पदने द्वारमें अडलु करवाने निषेध कर्षे छे कारण के तेमनामां नो
 संयत आदि अवस्थांमां डोती नथी. ते कारणे अही' (जीव सिद्धेर्हि) आ
 प्रमाणे कहुं छे.

(सकसाईर्हि जीवाइओ त्रियभंगो) सकपाय द्वारमें सकपाय शब्दयुक्त ने
 दण्डकोंमें बहुत्व विषयक नीचे दण्डकों आदिक पदोंमें पूर्वोक्त त्रयु लंग
 न दृशा छे, कारण के कपायवाणा एवो उमेशा नन्दे पडतां डोय छे. ते
 कारणे ते कपायवाणा एवो सप्रदेश डोय छे, आ पडेवो लंग छे. तथा
 उपशम श्रेणीथी पतन पाभीने कपाययुक्त अवस्था प्राप्त करनार एव ती

પ્રતિપચમાનાનામ્ એકાદીનાં ત્રાનાત્ ' સપ્રદેશાશ્ચ ચત્તરઃ, એકઃ અપ્રદેશાશ્ચ ' રિતિ દ્વિતીયો ભક્તઃ, ' ચત્તરઃ સપ્રદેશાશ્ચ ચત્તરઃ અપ્રદેશાશ્ચ ' રિતિ તૃતીયો ભક્તઃ । નૈરયિકસકપાયવહુત્વદ્વંડકે ભક્તરૂપ્યં પૂર્વપતિપાદિતમંત્રાણિ ચોગ્યમ્ । ' ઇન્દ્રિયેણુ અભંગકં ' એકેન્દ્રિયેણુ સકપાયંકેન્દ્રિયપૃથિવ્યાદિચત્તરવિપયકદ્વંડકે અભક્તમ્ વહુનાં ભક્તતાનામ્ અભાવઃ કિન્તુ ' સપ્રદેશાશ્ચ અપ્રદેશાશ્ચ ' રિતિ એક એવ ભક્તો ચોગ્યઃ, યદ્યપિ પૂર્વે પૃથિવ્યાદિણુ મયં ભક્તઃ પ્રતિપાદિત એવ તથાપિ તસ્ય સકપાયવિપયકતયોક્તત્વેનાત્ર સકપાયવસદ્ગત્યાન્ પ્રતિપાદિતઃ, સકપાયંકેન્દ્રિયાણાં વહુનામ્ વહુતમયાવસ્થિતનાનામ્ એકસમયસ્થિતિકાનાં ચોપલભ્યાત્,

એક દો આદિ મિલતે હું ફસલિયે " વહવઃ સપ્રદેશાઃ, એક અપ્રદેશાશ્ચ " એસા યહ દૂસરા મંગ હુઆ તથા " વહવઃ સપ્રદેશાશ્ચ વહવ અપ્રદેશાશ્ચ " અનેક સપ્રદેશ હું ઓર અનેક અપ્રદેશ હું, યહ તીસરા મંગ હુઆ । નૈરયિક જીવોંકે કપાયસહિત વહુત્ય દ્વંડકમં જિસ પ્રકારસે તીન મંગ પહિલે પ્રતિપાદિત કિયે ગયે હું ફસી તરહ સે વે હી તીન મંગ યહાં પર મી જાનના ચાહિયે । ફસ કપાયદ્વારમં " ઇન્દ્રિયેણુ અભંગકં " એકેન્દ્રિય પદોં મં અર્થાત્ કપાયસહિત એકેન્દ્રિય પૃથિવ્યાદિકોં કે વહુત્વ વિપયકદ્વંડક મં અનેક મંગ નહીં હું, કિન્તુ " સપ્રદેશાશ્ચ અપ્રદેશાશ્ચ " એસા યહ એક હી મંગ હૈ । યદ્યપિ પહિલે પૃથિવ્યાદિ પદોં મં યહ મંગ કહા જા ચુકા હૈ ફિર મી યહાં જો યહ કહા જા રહા હૈ વહ કપાય કે પ્રસંગ કો લે કર કહા જા રહા હૈ-પહિલે કપાય કે પ્રસંગ કો લેકર યહ નહીં કહા ગયા હૈ । એકેન્દ્રિય જીવોં મં કપાયસહિત જીવ પૂર્વોત્પન્ન

કોઇક જ હોય છે, તેથી (વહવઃ સપ્રદેશાશ્ચ એક અપ્રદેશાશ્ચ) ઘણા સપ્રદેશ હોય છે અને કોઇક અપ્રદેશ હોય છે, એવો ખીલે ભંગ બને છે. તથા " વહવઃ સપ્રદેશાશ્ચ વહવ અપ્રદેશાશ્ચ " અનેક સપ્રદેશ હોય છે અને અનેક અપ્રદેશ હોય છે, એવો ત્રીલે ભંગ બને છે. નારક જીવોના કપાયસહિત બહુત્વ દંડકમાં આગળ જેનું પ્રતિપાદન કરવામાં આવ્યું છે એવાં જ ત્રણ ભંગ સમજવા. આ કપાયદ્વારમાં (ઇન્દ્રિયેણુ અભંગકં) એકેન્દ્રિય પદોમાં એટલે કે કપાયસહિત પૃથ્વીકાય આદિકોના બહુત્વ વિષયક દંડકમાં અનેક ભંગ થતા નથી, પણ એક જ ભંગ થાય છે. તે એક ભંગ આ પ્રમાણે છે. "સપ્રદેશાશ્ચ અપ્રદેશાશ્ચ" ને કે પહેલાં પૃથ્વીકાય આદિ પદોમાં આ ભંગ કહેવામાં આવી ગયો છે, છતાં પણ તે ભંગને અહીં જે ફરીથી કહેવામાં આવ્યો છે તે કપાય અવસ્થાને અનુલક્ષીને કહેવામાં આવેલ છે, પહેલાં કપાય અવસ્થાને અનુલક્ષીને આ ભંગ કહ્યો ન હતો, એકેન્દ્રિય જીવોમાં સકપાય પૂર્વોત્પન્ન જીવ

किन्त्वत्र सिद्धो न वक्तव्यः, तस्य अरूपायित्वात् । 'कोदकसाहर्हि जीव-एगिदिय-वज्जो नियभंगो' क्रोधरूपायिषु क्रोधरूपायिविशिष्टवहुत्वदण्डके जीवै-केन्द्रिय-वर्जः जीवपदम् पृथिव्याद्येकेन्द्रियपदानि च वर्जयित्वा अन्येषु मनुष्यनैरयिका-दिषु विक्रमज्ञः पूर्वोक्तं भङ्गत्रयं वाच्यम्, किन्त्वत्रापि सिद्धो न वाच्यः, तस्य क्रोधरूपायविरहात् । क्रोधरूपायिजीवपद-पृथिव्याद्येकेन्द्रियपदेषु च 'सप्रदेशाद्य' इति एक एव भङ्गो वक्तव्यः । सरूपायिजीवस्योपर्युक्तभङ्गत्रयवत् कथमत्रापि क्रोधरूपायिजीव-पृथिव्यादिषु न भङ्गत्रयमिति चेदाह-उपशमश्रेणीतः प्रच्यवमानानां सरूपायित्वं प्रतिपद्यमानानाम् एकादीनामुपलम्भेन तत्र भङ्गत्रयसंभ-

और उत्पद्यमान अनेक पाये जाते हैं । यहाँ इस द्वार में सिद्धों को ग्रहण नहीं करना चाहिये-क्यों कि वे कपायसहित नहीं होते हैं । 'कोदकसाहर्हि जीव एगिदियवज्जो नियभंगो' क्रोधकपाय विशिष्ट बहुत्व दण्डकमें जीवपद को और पृथिव्यादिक पांच पदों को छोड़कर अन्य मनुष्य और नैरयिक आदि पदों में पूर्वोक्त तीन भंग होते हैं । यहाँ पर भी सिद्धपदका ग्रहण नहीं हुआ है क्यों कि उनमें क्रोधकपाय का विरह रहता है । क्रोधकपायवाले जीवपद में और पृथिव्यादिक एकेन्द्रिय पदों में " सप्रदेशाश्च अप्रदेशाश्च " ऐसा एक ही भंग होता है । यदि यहाँपर ऐसी आशंका की जावे कि कपायविशिष्ट जीव के अभी आपने तीन भंग कहे हैं, फिर यहाँ पर क्रोधकपायविशिष्ट जीव और पृथिव्यादिकों में तीन भंग न कह कर एक ही भंग क्यों कहा गया है ? तो इसका उत्तर यह है कि उपशम श्रेणी से नीचे गिरने वाले जीवों में

पञ्च अनेक डोय छे अने उत्पद्यमान लुवे। पञ्च अनेक डोय छे, आ द्वारमां सिद्धोने। समावेश थतो नथी। कारणु के तेअो कपायवाणा डोता नथी। (कोदकसाहर्हि जीव एगिदियवज्जो नियभंगो) क्रोधकपाय पदवाणा अहुत्वविषयक दंडकमां लुव पढने तथा पृथ्वीकाय आदि पांग ओकेन्द्रियोने छोडीने ते सिवायना नारक, मनुष्य आदि पदोमां पूर्वोक्त त्रय लंग थाय छे, अही पञ्च सिद्धोने अहलु करवा लेछे नही, कारणु के तेमनामां क्रोधकपायने अभाव डोय छे, क्रोधकपायवाणा लुव पदमां अने पृथ्वीकाय आदि ओकेन्द्रिय पदोमां (सप्रदेशाश्च अप्रदेशाश्च) अवे। ओक न लंग थाय छे ने अही कोछ ने अवी शंका थाय के कपाययुक्त लुवना डमणुं न आपे त्रय लंग कथा छे, तो अही क्रोधकपायवाणा लुव अने पृथ्वीकाय आदि ओकेन्द्रिय लुवे। ओक न लंग कडेवानुं कारणु शुं छे ? तो तेनुं समाधान आ प्रमाणे समलुं-उपशम श्रेणीथी पतन पाभनार लुवेमां कपायवाणा केछक लुव (ओकादि

વેડપિ માન-માયા-લોભેભ્યો નિવૃત્તાનો ક્રોધં મતિપયમાનાનાં તુ મહનામેવોપસ્મ-
 મ્ભેન પ્રત્યેકં ક્રોધકપાયિરાશોનાનનન્તતયાઽપ્ર એકાદીનામનુપયસ્મ્ભેન મહ્ત્રવ્યા-
 સંમયાત્, કિન્તુ ' દેવેહિં છન્મંગા ' દેવેષુ ક્રોધકપાયિદેવવિશિષ્ટમહ્ત્રવદ્વડકે
 પદ્મ મજ્જાઃ વક્તવ્યાઃ, પ્રયોદશાનામપિ દેવપદ્વાચ્યાનામ્ અસુરકુમારાદિદશમવન-
 પતિ-વાનવ્યન્તર-જ્યોતિષિક-વૈમાનિકાન્તાનાં મધ્યે ક્રોધોદયશાલિના મલ્પતયા
 એકત્વે, મહુત્વે ચ સપ્રદેશ-પ્રદેશત્વયોઃ સંભવેન પૂર્વોક્તમહ્ત્રસંમયાત્ ।
 ' માણકસાઈ-માયાકસાઈ-જીવ-ઈન્દિયવજ્જો તિયમંગો ' માનકપાયિ-માયા-

કપાયવિશિષ્ટ કોઈ એક આદિ જીવ પાયા જાતા છે. આ કારણે કપાય-
 વાર મેં જીવપદ મેં ત્રણ ભાગ કહે ગયે છે પરન્તુ યહાં પર માન, માયા
 ઓર લોભ સે નિવૃત્ત ઠોકર ક્રોધકપાય મેં પ્રવૃત્ત હુપ એસે અનેક જીવ
 પાયે જાતે છે. ક્યોં કિં ઇન પ્રત્યેક માનાદિ કપાયવાલોં મેં ક્રોધકપાય
 વાલોં કી રાશિ અનન્ત કહી ગઈ છે. આ કારણે યહાં પર એકાદિ જીવ
 કા ઉપલંભ નહીં હોને કે કારણ ત્રણ ભાગ નહીં હોતે છે એમા કહા ગયા છે.
 (દેવેહિં છન્મંગા) કિન્તુ ક્રોધ કપાયવાલે દેવોં કે મહુત્વવિષયક દ્વિતીય
 વ્વડક મેં ૬ ભાગ કહે ગયે છે. અસુરકુમાર આદિ દસ મવનપતિ દેવોં
 મેં વાનવ્યન્તર દેવોં મેં, જ્યોતિષિક દેવોં મેં ઓર વૈમાનિક દેવોં મેં ઇન
 તેરહ દેવપદ વાચ્ય દેવોં મેં ક્રોધકપાય કે ઉદયવાલે દેવ અલ્પ પાયે
 જાતે છે-આલિયે એકત્વ ઓર મહુત્વ મેં સપ્રદેશત્વ ઓર અપ્રદેશત્વ કા
 સંભવ હોને કે કારણ યહાં પૂર્વોક્ત ૬ ભાગ હોતે છે. ' માણકસાઈ-માયા-
 કસાઈ જીવ ઈન્દિયવજ્જો તિયમંગો ' માનકપાયવાલોં મેં ઓર માયા-

૭૫) તે હોય છે, તે કારણે કપાય દ્વારમાં ૭૫ પદમાં ત્રણ ભાગ કહ્યા છે
 પરંતુ માન, માયા અને લોભમાંથી નિવૃત્ત થઈને ક્રોધકપાયમાં પ્રવૃત્ત થતા
 હોય છે વળી માનાદિ પ્રત્યેક કપાયોવાળા કરતાં ક્રોધકપાયવાળાની રાશિ અનન્ત
 કહેલી છે. તે કારણે ક્રોધકપાયવાળા એકદિ ૭૫ની પ્રાપ્તિ થતી નથી પણ
 એવાં તે અનેક ૭૫ હોય છે. તે કારણે અહીં ત્રણ ભાગ કહ્યા નથી પણ
 એક જ ભાગ કહ્યો છે. (દેવેહિં છન્મંગા) પરંતુ ક્રોધકપાયવાળા દેવોના મહુત્વ-
 વિષયક વ્વડકમાં ૭ ભાગ કહ્યા છે. અસુરકુમાર આદિ દસ મવનપતિ દેવોમાં
 વાનવ્યન્તર દેવોમાં, જ્યોતિષિક દેવોમાં અને વૈમાનિક દેવોમાં આ તેર દેવ
 પદ વાચ્યદેવોમાં ક્રોધકપાયના ઉદયવાળા દેવો એવાં હોય છે. તે કારણે એકત્વ
 અને મહુત્વમાં અપ્રદેશત્વ અને અપ્રદેશત્વનો સંભવ હોવાને કારણે અહીં
 પૂર્વોક્ત ૭ ભાગ થાય છે.

कपायिषु मान-मायाकपायिपदविशिष्टवद्दण्डके जीवै-केन्द्रियवर्जः जीवपदम्, एकेन्द्रियपृथिव्यादिपदानि च वर्जयित्वा त्रिकभङ्गः पूर्वोक्तास्त्रयो भङ्गाः वक्तव्याः; जीवपदे-एकेन्द्रियपृथिव्यादिपदेषु तु अत्रापि उपर्युक्तक्रोधकपायिवत् 'सप्रदेशाश्च अप्रदेशाश्च' इति एक एव भङ्गो वक्तव्य उक्तरीत्या । किन्तु 'नेरइय-देवेहिं छम्भंगा' नैरयिक-देवेषु मानकपायि-मायाकपायिनैरयिकदेववद्दण्डके पद्मभङ्गाः पूर्वोक्ताः वक्तव्याः, नैरयिकाणां देवानां च मानमायाकपायिणां मध्ये अस्थानामेव मान-मायोदयवतां संभवेन पूर्वोक्तपृथ्या पद्मभङ्गसंभवात् । 'लोभकसाईहिं जीव-एगिन्दियवज्जो तियभंगो' लोभकपायिषु लोभकपायिपदविशिष्टवद्दण्डके जीवै-केन्द्रियवर्जः जीवपदम्, एकेन्द्रियपृथिव्यादिपदानि च, वर्जयित्वा त्रिकभङ्गः पूर्वोक्तक्रोधकपायिपदं भङ्गत्रयं वाच्यम्, जीवैकेन्द्रियेषु तु एक-

कपायवालों में-वद्दण्डविषयक द्वितीय दण्डक में जीव पदको और एकेन्द्रिय पृथिव्यादिक पांच पदों को छोड़कर पूर्वोक्त तीन भंग होते हैं । जीवपद में और एकेन्द्रिय पृथिव्यादिक पांच पदों में क्रोधकपायवाले जीवों की तरह 'सप्रदेशाश्च अप्रदेशाश्च' एसा एक ही भंग होता है । किन्तु 'नेरइय देवेहिं छम्भंगा' मानकपायवाले और मायाकपायवाले जो नैरयिक और देव हैं उनके द्वितीय दण्डक में ६ भंग होते हैं । क्यों कि मान और मायाकपायवाले देवों और नारकों में मान और मायाके उदयवाले देव नारक अल्प ही होते हैं, इस लिये यहां पर पूर्वोक्त ६ भंग कहे गये हैं । 'लोभकसाईहिं जीव-एगिन्दियवज्जो तियभंगो' लोभकपायवालों के वद्दण्डविषयक द्वितीय दण्डकमें जीवपद को और पृथिव्यादिक एकेन्द्रियपदों को छोड़कर क्रोधकपायवालों की तरह तीन भंग

(माणकसाई-मायाकसाई जीव एगिन्दियवज्जो तियभंगो) मानकपायवालां मायाकपायवालां षड्दण्ड विषयक षोडश दण्डकमां एवपदने अने पृथ्वी १५ आदि पांच ऐकेन्द्रिय पदोने छोडीने पूर्वोक्त त्रयु भांग थाय छे. एवपदमां अने पृथ्वीकाय आदि पांच ऐकेन्द्रिय पदोमां क्रोधकपायवाला एवोना जेवोना (सप्रदेशाश्च अप्रदेशाश्च) आ ऐक भांग थाय छे, परंतु (नेरइयदेवेहिं छम्भंगा) मानकपायवाला अने मायाकपायवाला जे नारको अने देवो डोय छेतेंमना षोडश दण्डकमां छ भांग थाय छे. कारणु छे मान अने मायाकपायवाला देवो अने नारकोमां मान अने मायाना उदयवाला देवो अने नारको ओछां डोय छे.

(लोभकसाईहिं जीव एगिन्दियवज्जो तियभंगो) लोभकपायवालां षड्दण्ड विषयक षोडश दण्डकमां एवपदने अने पृथ्वीकाय आदि पांच ऐकेन्द्रिय पदोने छोडीने क्रोधकपायवालां जेवां जे पूर्वोक्त त्रयु भांग थाय छे. परंतु एव-

एव भद्रः उक्तरीत्या । किन्तु 'नेरइएसु छम्भंगा' नैरयिकेषु नैरयिकलोभकपायि बहुत्वदण्डके पूर्वोक्ताः पद् भद्राः वाच्याः, लोभकपायिनैरयिकेषु लोभोदयवता-मल्पका उपयुक्तपद्भद्रसंभवात्, उक्तम्—

“कोहे माणे माया, सोधवा सुरगणेहिं छम्भंगा ।

माणे माया लोभे, नेरइएहिं पि छम्भंगा' ॥ १ ॥ इति ॥

“क्रोधे माने मायायां वोद्धवाः सुरगणेषु पद् भद्राः ।

माने मायायां लोभे नैरयिकेषु पद् भद्राः ॥ १ ॥ इति न्याया,

देवाः लोभमचुरा भवन्ति नैरयिकाश्च क्रोधमचुरा भवन्तीति । 'अकसाई-जीव-मणुएहिं तियभंगो' अकपायिसम्बन्धिवहुत्वदण्डके जीव-मनुजेषु सिद्धेषु त्रिक भद्र पूर्वोक्तास्तयो भद्राः चकव्याः, ननु नैरयिकादिषु, तेषाम् अकपायित्वासंभवात्,

होते हैं । जीव और एकेन्द्रियों में एक ही भंग होता है । किन्तु 'नेर-इएसु छम्भंगो' लोभवाले नारक जीवों में—बहुत्वविषयक द्वितीयदण्डक में—पूर्वोक्त छह भंग होते हैं । क्योंकि लोभकपायवाले नारकों में लोभो-दयवाले नारक जीव अल्प होते हैं । इसलिये यहां छह भंग हो जाते हैं ।

क्रोध, मान, माया इनमें देवों के छह भंग होते हैं । तथा मान माया एवं लोभ में नारकों के छह भंग होते हैं । देवों में लोभ अधिक होता है और नारकों में क्रोध अधिक होता है । (अकसाई जीव मणुएहिं सिद्धेहिं तियभंगो) अकपायिसंबन्धी बहुत्वदण्डक में जीवपद में मनुष्य पद में, और सिद्ध पद में तीन भंग होते हैं । नैरयिक आदिपदों में नहीं क्योंकि इनमें अकपायित्व का संभव ही नहीं है । (ओहियणाणे,

अने ओकेन्द्रियमां ओक ल ग थाय छे (नेरइएसु छम्भंगो) लोभवाणा नारक एवोमां बहुत्वविषयक णीण दंडकमां पूर्वोक्त छ लंग थाय छे, कारखु के लोभकपायवाणा नारकोमां लोभना उदयवाणा नारक एवो ओछां डाय छे तेथी त्यां छ लंग थाय छे. उहुं पखु छे—“कोहेमाणे” इत्यादि.

क्रोध, मान अने मायामां देवोना छ लंग थाय छे, तथा मान, माया अने लोभमां नारकोना छ लंग थाय छे. देवोमां लोभ अधिक डाय छे अने नारकोमां क्रोध अधिक डाय छे.

(अकसाई जीव मणुएहिं सिद्धेहिं तियभंगो) अकपाय संबन्धी बहुत्व दंडकमां एव पदमां, मनुष्य पदमां अने सिद्ध पदमां त्रखु लंग थाय छे. नारक आदिमां त्रखु लंग यता नथी, कारखु के तेभनामां कपाय रक्षितता संभवित नथी.

‘ઓદિયણાણે, આભિણિવોદિયણાણે, સુયણાણે જીવાહો તિયમંગો’ ઔચિકજ્ઞાને, મત્યાદિભેદૈરચિત્તિવિજ્ઞાનમ્ ઔચિકજ્ઞાનમ્ તસ્મિન્, આભિણિવોચિકજ્ઞાને મતિજ્ઞાને શ્રુતજ્ઞાને ચ વદુત્વવિપયકદ્વિતીયે ડણ્ડકે જીવાદિકઃ જીવાદિપદેષુ ત્રિરુમદ્ગઃ પૂર્વોક્તા-સ્વયમભદ્ગા વક્તવ્યાઃ, તથ સામાન્યજ્ઞાનાન્મહોચિકજ્ઞાનિ-મતિ-શ્રુતજ્ઞાનિના સર્વદા-સ્વસ્થિતત્વેન સપ્રદેશત્વસંભવાત્ ‘સર્વે સપ્રદેશાઃ’ इति प्रथमो भद्रः । एवं मिथ्या-જ્ઞાનાત્ મત્યાદિજ્ઞાનમાત્રમ્, મત્યજ્ઞાનાત્ મતિજ્ઞાનમ્, શ્રુતાજ્ઞાનાચ્ચ શ્રુતજ્ઞાને પ્રતિપદ્યમાનાનાં ચ પેકાદીનાં સંભવાત્, ‘વહવઃ સપ્રદેશાશ્ચ એકઃ અપ્રદેશાશ્ચ’ इति द्वितीयो भद्रः । तथा ‘वहवः सप्रदेशाश्च, वहवः अप्रदेशाश्च’ इति तृतीयो भद्रो वेदितव्यः, किन्तु ‘विगलिदिपहिं छब्भंगा’ विकलेन्द्रियेषु द्वित्रिचतुरिन्द्रियेषु

આભિણિવોદિયણાણે, સુયણાણે જીવાહો તિયમંગો) ઔચિકજ્ઞાન મેં મતિ આદિ ભેદ રહિત સામાન્યજ્ઞાન મેં, -આભિણિવોચિક જ્ઞાન મેં-મતિ જ્ઞાન મેં ઓર શ્રુતજ્ઞાનમેં, વદુત્વ વિપયકદ્વિતીય ડણ્ડકમેં જીવાદિકપદોં મેં પૂર્વોક્ત ત્રીને ભંગ હોતે હેં । વ્ધોં કિ સામાન્યજ્ઞાનચાલે તથા મતિશ્રુત જ્ઞાનચાલે જીવ સર્વદા પાયે જાતે હેં, ઇસલિયે ડનેમેં સપ્રદેશત્વ વન જાને કે કારણ “ સર્વે સપ્રદેશાઃ ” યહ પ્રથમ ભંગ, તથા મિથ્યાજ્ઞાન સે હટ-કર માત્ર મતિ આદિ જ્ઞાન કો પાને ચાલા તથા મતિ અજ્ઞાન કે અભાવ સે મતિજ્ઞાન કો પ્રાપ્ત કરને ચાલા, શ્રુત અજ્ઞાન કે અભાવ સે શ્રુતજ્ઞાન કો પ્રાપ્ત કરનેચાલા કોઈ એકાદિ જીવ હોતો હે-ઇસલિયે ‘ વહવઃ સપ્ર-દેશાશ્ચ એકઃ અપ્રદેશાશ્ચ ’ યહ દ્વિતીય ભંગ, ઓર (વહવઃ સપ્રદેશાશ્ચ, વહવઃ અપ્રદેશાશ્ચ) જેસા તોસરા ભંગ ઘટ જાતા હેં । કિન્તુ “ વિગલિ-દિપહિં છબ્ભંગા’ જો વિકલેન્દ્રિય જીવ હેં ડનેમેં ત્રીને ભંગ ન હોકર હહ

(ઓદિયણાણે, આભિણિવોદિયણાણે, સુયણાણે જીવાહો તિયમંગો) ઔચિક જ્ઞાનમાં-મતિ આદિ ભેદરહિત સામાન્ય જ્ઞાનમાં, આભિણિવોચિક જ્ઞાનમાં (મતિ જ્ઞાનમાં) અને શ્રુત જ્ઞાનમાં વદુત્વ વિપયક ધીન ડંડકમાં જીવાદિક પદોમાં પૂર્વોક્ત ત્રણ ભંગ થાય છે. કારણ કે સામાન્ય જ્ઞાનવાળા તથા મતિ અને શ્રુત જ્ઞાનવાળા જીવો સર્વદા મળી આવે છે, તે કારણે તેમનામાં સપ્ર-દેશત્વ સંભવી શકવાને કારણે (સર્વે સપ્રદેશાઃ) આ પ્રથમ ભંગ, તથા મિથ્યા-જ્ઞાનથી નિવૃત્ત થઈને માત્ર મતિજ્ઞાન આદિ પ્રાપ્ત કરનારો, તથા મતિ અજ્ઞા-નને અભાવે મતિ જ્ઞાનને પ્રાપ્ત કરનારો, શ્રુત અજ્ઞાનને અભાવે શ્રુત જ્ઞાનને પ્રાપ્ત કરનારો કોઈ એકાદ જીવ તો હોય છે. તેથી (વહવઃ સપ્રદેશાશ્ચ, એક અપ્રદેશાશ્ચ) આ ધીને ભંગ પણ સંભવી શકે છે, અને (વહવઃ સપ્રદેશાશ્ચ, વહવઃ અપ્રદેશાશ્ચ) આ ત્રીને ભંગ પણ ધની શકે છે. પરંતુ (વિગલિદિપહિં

सासादनसम्पत्त्वसंभवेन अभिनिबोधितादिज्ञानिनाम् एतादीनां संभवेन पूर्वोक्ता-
एव पद् भङ्गा वक्तव्याः, इह न यथायोगम् एकेन्द्रियपृथिव्यादयः सिद्धाश्च न
वक्तव्याः तेषां तदसंभवात् । ' ओहिणाणे मण-केवलणाणे जीवाइओ तियभंगो '
अवधिज्ञाने, मनः पर्यवज्ञाने केवलज्ञाने बहुत्वविषयकदण्डके जीवादिकः जीवादि-
पदेषु त्रिकभङ्गः, पूर्वोक्ताद्यो भङ्गाः वक्तव्याः किन्तु अवधिज्ञानैकत्व बहुत्वदण्ड-
कयोः पृथिव्याद्येकेन्द्रिय-विकलेन्द्रियाः सिद्धाश्च न वक्तव्याः, मनःपर्यवदण्ड-
कयोश्च जीवाः, मनुष्याश्च वक्तव्याः, ननु नैरयिक-पृथिव्यादयः, तेषां तदसंभवात् ।

संग होते हैं । क्यों कि इनमें दो इन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चौइन्द्रियरूप
विकलेन्द्रियों में-सासादन सम्पत्त्व होने के कारण एतादि अभिनिबो-
धिक ज्ञानवाले जीव की संभवता होती है-इससे यहां पर पूर्वोक्त छह
भंग कहे गये हैं । इस द्वार में यथायोग एकेन्द्रियपद् पृथिव्यादिक
पांचपद तथा सिद्ध इनको छोड़ देना चाहिये-क्यों कि ये विकलेन्द्रियों
में परिमाणित नहीं हुए हैं । (ओहिणाणे मणपज्जवणाणे केवलणाणे
जीवाइओ तियभंगो) अवधिज्ञान में, मनःपर्यवज्ञानमें, एवं केवलज्ञान
में बहुत्वविषयक द्वितीय दण्डक में पूर्वोक्त तीन भंग होते हैं । किन्तु
अवधिज्ञान के एकत्व और बहुत्वदण्डक में पृथिव्यादिक पांच पद विक-
लेन्द्रिय और सिद्ध इन्हें संगृहीत नहीं करना चाहिये तथा मनःपर्यवज्ञान
के दोनों दण्डकों में जीव और मनुष्य इनका ही ग्रहण करना चाहिये
नारक एवं पृथिव्यादिकों का नहीं क्यों कि इनमें मनः पर्यव ज्ञान नहीं

छम्भा) विकलेन्द्रिय लोभां छ लंग थाय छे. कारखु के द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय
अने अतुरिन्द्रिय इप विकलेन्द्रिय लोभां सासादन सम्पत्त्व डोवाने लीधि
अेकाइ अभिनिबोधिक ज्ञानवाणा लवनी संलवितता डोछ शके छे. तेथी
अडीं पूर्वोक्त छ लंग क्हा छे. आ द्वारभां पृथ्वीकाय आदि पांच अेकेन्द्रिय
पहोने तथा सिद्धपदने समावेश करवाने नथी, कारखु के विकलेन्द्रियभां
तेओनी गणुतरी धती नथी.

(ओहिणाणे, मणपज्जवणाणे, केवलणाणे जीवाइओ तियभंगो) अवधि
ज्ञानभां, मनःपर्यवज्ञानभां अने केवलज्ञानभां बहुत्व विषयक भील हंडकभां
लोवादि पहोभां पूर्वोक्त त्रलु लंग थाय छे. परंतु अवधिज्ञानता अेकत्व अने
बहुत्व हंडकभां पृथ्वीकाय आदि पांच अेकेन्द्रिय पहोने, विकलेन्द्रियने अने
सिद्धपदने समावेश करवे नडीं, तथा मनःपर्यवज्ञानता गन्ने हंडकभां लव
अने मनुष्यने अ अडलु करवा, नारक, पृथ्वीकाय आदि कोने अडलु करवाना
नथी, कारखु के तेमनाभां मनःपर्यव ज्ञान डोवु नथी.

केवलज्ञानदण्डकयोस्तु जीव-मनुष्य-सिद्धाएव वक्तव्याः, नो नैरयिकादयः, तेषां तदसंभवात्, अत एवोक्तम्—'विष्णवेयं जस्स जं अत्थि' त्ति, विज्ञेयं यस्य यद् अस्ति-इति । 'ओहिए अण्णाणे, मइअण्णाणे सुय अण्णाणे एगिंदियवज्जो तियभंगो' औघिके अज्ञाने मत्यज्ञाने, श्रुताज्ञाने एकेन्द्रियवर्जः एकेन्द्रियपृथिव्यादि वर्जयित्वा जीवादिपदेषु त्रिकभङ्गः, पूर्वोक्ता एव त्रयो भङ्गा वक्तव्याः, तथाहि—औघिकाद्य-ज्ञानिनां सप्रदेशत्वे सदाऽवस्थितत्वात् 'सर्वे सप्रदेशाः' इत्येको भङ्गः । यदा तु सदाऽवस्थितातिरिक्ताः ज्ञानं त्रिमुच्य मत्यज्ञानादितया परिणमन्ति तदा एकादीनां संभवेन 'बहवः सप्रदेशाश्च एकः अप्रदेशश्च' इति द्वितीयो भङ्गः, एवं 'बहवः

होना है। केवलज्ञान के दोनों दण्डकों में जीव, मनुष्य और सिद्ध इन का ही उच्चारण करना चाहिये, नैरयिक आदि पदों का नहीं—क्यों कि इनमें केवलज्ञान नहीं होता है। इसीलिये ऐसा कहा गया है कि—(वि-ष्णवेयं जस्स जं अत्थित्ति) । " ओहिए अण्णाणे, मइ अण्णाणे, सुय अण्णाणे, एगिंदियवज्जो तियभंगो) औघिक अज्ञान में, मति अज्ञान में, श्रुत अज्ञान में, एकेन्द्रिय पृथिव्यदिकपदों को छोड़कर जीवादिकपदों में पूर्वोक्त ही तीन भंग होते हैं क्यों कि मति आदि अज्ञान से अविशेषित हुए सामान्य अज्ञानवाले जीव, मति अज्ञान वाले जीव और श्रुत अज्ञानवाले जीव सदा अवस्थित रहते हैं—इस कारण " सर्वे सप्रदेशाः " ऐसा प्रथमभंग यहाँ बन जाता है। तथा जब अवस्थित जीवों के सिवाय और दूसरे जीव ज्ञान को छोड़कर मति अज्ञान आदि रूप से परिण-मित होते हैं तब उनमें ऐसे जीव एकादि होते हैं—इस कारण (बहवः

केवलज्ञानना भन्ने इ'उकेमां एव, मनुष्य अने सिद्ध, आ पहोना ए प्रयोग करवो, नारकादिने प्रयोग करवो नही, कारण के नारकादिकेमां केवल-ज्ञान होतुं नथी. तेथी ए अणुं इहुं छे के (विष्णवेयं जस्स जं अत्थि त्ति) (ओहिय अण्णाणे, मइ अण्णाणे, एगिंदियवज्जो तियभंगो) औघिक अज्ञानमां, मति-अज्ञानमां अने श्रुत अज्ञानमां अकेन्द्रिय सिवायना एवाधिक पहोमां पूर्वोक्त त्रयु लंग थाय छे. कारण के मति आदि अज्ञानथी अविशेषित थयेला सामान्य अज्ञानवाणा एवो, मति अज्ञानवाणा एवो अने श्रुत अज्ञानवाणा एवो सर्वथा भोणूइ होय छे. ते कारणे (सर्वे सप्रदेशाः) आ पड़ेला. लंग भनी शके छे तथा न्यारे अवस्थित एवो सिवायना थीला एवो ज्ञानने छोडीने मति अज्ञान आदि इये परिष्णित थाय छे तयारे तेमां अवां एव अकादि होय छे. ते कारणे (बहवः सप्रदेशाश्च एकः अप्रदेशश्च) आ थीने

સપ્રદેશાથ ચઢવઃ અપ્રદેશાથ ' રૂપિ ત્તોયો મજ્ઞો ચોચ્ચઃ । એકેન્દ્રિયપૃથિવ્યાદિપૃ
 તુ ' સપ્રદેશાથ અપ્રદેશાથ ' રૂપિ એક એક મજ્ઞોચ્ચયોચ્ચઃ, કિન્તુ-પ્રિવ્યપિ ઉચ-
 યુક્તાજ્ઞાનેષુ સિદ્ધા ન વક્તવ્યાઃ, તેષાં તાદૃશજ્ઞાનાયંભવાન્ । ' વિભંગગણે જીવા-
 રૂઓ તિયમંગો ' વિમજ્ઞજ્ઞાને ચઢવઃચઢવઃકે જીવાદિકઃ જીવાદિપદેષુ વિક્રમજ્ઞઃ
 પૂર્વોક્તાલ્લયો મજ્ઞા વક્તવ્યાઃ, તથા ચ મત્વજ્ઞાનાદિવન્ વિમજ્ઞજ્ઞાનભાવના ભાવ-
 નીયા, કેાલમત્ર એકેન્દ્રિયપૃથિવ્યાદિ-વિકલેન્દ્રિયાઃ, સિદ્ધાથ ન વક્તવ્યાઃ,
 તેષાં વિમજ્ઞજ્ઞાનાયંભવાન્ । ' સજોગી જહા ઓહિમો ' સજોગી યથા ઓધિકસ્તથા
 વક્તવ્યઃ, તથા ચ યથા ઓધિકો જીવાદિઃ પ્રતિપાદિતસ્તથા જીવાદિદ્વણ્ડક દ્વયે

સપ્રદેશાથ એકઃ અપ્રદેશાથ) એસા દ્વિતીય ભંગ ઓર "વહવઃ સપ્રદેશાથ,
 વહવઃ અપ્રદેશાથ" એસા તીસરા ભંગ પન જાતા હૈ । ઇસ દ્વારમેં એકેન્દ્રિય
 પૃથિવ્યાદિકકો છોડને કા તાત્પર્ય યહ હૈ કિ ઇન એકેન્દ્રિયોમેં તીન ભંગ
 નહીં હોતે હૈ કિન્તુ "સપ્રદેશા અપ્રદેશાથ" એસા એક હી ભંગ હોતા હૈ ।
 યહાં સિદ્ધપદકા પ્રયોગ નહીં કરના ચાહિયે-ક્યોંકિ ઇનમેં મતિ અજ્ઞાન
 કી પ્રાપ્તિ અસંભવ હૈ । (વિભંગગણે જીવારૂઓ તિયમંગા) વિભંગજ્ઞાનમેં
 ચહુત્વ વિષયક દ્વિતીય દ્વણ્ડક મેં જીવાદિકપદોં મેં પૂર્વોક્ત તીન ભંગ
 હોતે હૈં । મતિ અજ્ઞાન આદિ કી તરહ હી યહાં તીન ભંગોં કે વનને કી
 ભાવના જાનની ચાહિયે; ઇસ દ્વાર મેં એકેન્દ્રિય પૃથિવી આદિ પાંચ પદ,
 વિકલેન્દ્રિયપદ, ઓર સિદ્ધપદ ઇનકા પ્રયોગ નહીં કરના ચાહિયે-ક્યોં
 કિ ઇન સય મેં વિભંગજ્ઞાન નહીં હોતા હૈ । (સજોગી જહા ઓહિમો)

ભંગ પણ ખની શકે છે. અને (વહવઃ સપ્રદેશાથ વહવઃ અપ્રદેશાથ) આ
 ત્રીજે ભંગ ખની જાય છે. આ દ્વારમાં પૃથ્વીકાય આદિ એકેન્દ્રિય જીવોને
 શ્રદ્ધ પણ નહીં કરવાનું કારણ એ છે કે એકેન્દ્રિયોમાં ત્રણ ભંગ થતા નથી પણ
 (સપ્રદેશા અપ્રદેશાથ) આ એકજ ભંગ થાય છે. વળી આ દ્વારમાં સિદ્ધ-
 પદનો પણ પ્રયોગ કરવો જોઈએ નહીં કારણ કે તેમને મતિ અજ્ઞાનની પ્રાપ્તિ
 સંભવી શકતી નથી (વિભંગગણે જીવારૂઓ તિયમંગા) વિભંગ જ્ઞાન સંબંધી
 બહુત્વ વિષયક ખીજા દંડકમાં જીવાદિક પદોમાં પૂર્વોક્ત ત્રણ ભંગ થાય તે
 (વિપરીત જ્ઞાનને વિભંગ જ્ઞાન કહે છે) મતિ અજ્ઞાન આદિના ત્રણ ભંગ થવા
 વિષે જે સ્પષ્ટીકરણ ઉપર કથું છે, તે સ્પષ્ટીકરણ વિભંગ જ્ઞાનના ત્રણ ભંગ
 માટે પણ સમજવું. આ દ્વારમાં પૃથ્વીકાય આદિ પાંચ એકેન્દ્રિય પદોનો,
 વિકલેન્દ્રિય પદનો અને સિદ્ધ પદનો પ્રયોગ કરવો જોઈએ નહીં કારણ કે તેમ-
 નામાં વિભંગ જ્ઞાન હોતું નથી.

અપિ સયોગી વક્તવ્યઃ, તદમિત્યાપથૈરુત્વેડયમ્—‘સયોગી જીવો નિયમાત્ સપ્રદેશઃ, નૈરયિકાન્તુ સયોગી સપ્રદેશઃ, અપ્રદેશો વા’ । વહુત્વદ્વંડકે ‘વહવો જીવાઃ સયોગિનઃ સપ્રદેશા એવ, નૈરયિકાદયસ્તુ સયોગિનઃ ‘સર્વે સપ્રદેશાઃ ૧ વહવઃ સપ્રદેશાથ એકઃ અપ્રદેશાથ ૨’ ‘વહવઃ સપ્રદેશાથ, વહવઃ અપ્રદેશાથ ૩’ ઇતિ-

જિસ પ્રકાર સે ઔષ્ઠિક જીવાદિક પ્રતિપાદિત દુષ્ટ હૈં ડસી પ્રકાર સે જીવાદિક કે દોનોં દ્વંડકોં મેં ઢી સયોગી પ્રતિપાદિત કરલેના ચાહિયે ઇનકે એકત્વવિપયક દ્વંડક મેં અમિત્યાપ કા આકાર ઇસ તરહ સે હૈ— ‘સજોગી જીવો નિયમાત્ સપ્રદેશઃ, નૈરયિકાદિસ્તુ સયોગી સપ્રદેશઃ, અપ્રદેશો વા’ સયોગી જીવ નિયમ સે સપ્રદેશ હૈ, પરન્તુ જો સયોગી નૈરયિક આદિ જીવ હૈ વહ સપ્રદેશ ઢી હૈ ઓર અપ્રદેશ ઢી હૈ । વહુત્વવિપયક દ્વંડકમેં (વહવો જીવાઃ સયોગિનઃ સપ્રદેશા એવ, નૈરયિકાદયસ્તુ સયોગિનઃ) ‘સર્વે સપ્રદેશાઃ, વહવઃ સપ્રદેશાથ એકઃ અપ્રદેશાથ, વહવઃ સપ્રદેશાથ વહવઃઅપ્રદેશાથ’ એસા કથન જાનના ચાહિયે કિ અનેક સયોગી જીવ સપ્રદેશ હી હોતે હૈં-પરન્તુ જો સયોગી નૈરયિક આદિ જીવ હૈં વે તીનોં ભંગવાલે હોતે હૈં-પ્રથમ ભંગ મેં સવ સયોગી નારક આદિ જીવ સપ્રદેશ હોતે હૈં । દ્વિતીયભંગ મેં કિતનેક સયોગી નારક આદિ જીવ સપ્રદેશ હોતે હૈં ઓર કોઈ એક સયોગી નારક આદિ જીવ અપ્રદેશ ઢી હોતા હૈ । તૃતીયભંગ મેં સવ હી પૂર્વોત્પન્ન સયોગી

(સજોગી જહા ઓહિથો) જે રીતે ઔષ્ઠિક (સામાન્ય) જીવાદિકનું પ્રતિપાદન કરવામાં આવ્યું છે એજ રીતે જીવાદિકના બંને દંડકોમાં પણ સયોગીનું પ્રતિપાદન કરવું જોઈએ. તેમના એકત્વ વિપયક દંડકમાં આ પ્રમાણે અભિલાપ બને છે—

(સજોગી જીવો નિયમાત્ સપ્રદેશઃ, નૈરયિકાદિસ્તુ સયોગી સપ્રદેશઃ અપ્રદેશો વા) સયોગી જીવ નિયમથી જ સપ્રદેશ છે, પરંતુ સયોગી નારકાદિ જીવ સપ્રદેશ પણ હોય અને અપ્રદેશ પણ હોય છે” બહુત્વ વિપયક દંડકમાં (વહવો જીવાઃ સયોગિનઃ એવ, નૈરયિકાદયસ્તુ સયોગિનઃ) (સર્વે સપ્રદેશાઃ, વહવઃ સપ્રદેશાથ એકઃ અપ્રદેશાથ, વહવઃ સપ્રદેશાથ વહવઃ અપ્રદેશાથ) એવું કથન સમજવું કે અનેક સયોગી જીવ સપ્રદેશ જ હોય છે, પરંતુ જે સયોગી નારક આદિ જીવો છે તેઓ ત્રણ ભંગવાળા હોય છે. પહેલા ભંગમાં સમસ્ત સયોગી નારક આદિ જીવો સપ્રદેશ હોય છે. બીજા ભંગમાં કેટલાક સયોગી નારક આદિ જીવો સપ્રદેશ હોય છે અને કેટલાક સયોગી નારક આદિ જીવ અપ્રદેશ પણ હોય છે ત્રીજા ભંગમાં સમસ્ત પૂર્વોત્પન્ન નારક આદિ જીવો સપ્રદેશ

રીત્યા મહાવ્રતવન્તઃ । એકેન્દ્રિયપૃથિગ્યાદયઃ સયોગિનઃ કેવલં ' વહવઃ સપ્રદેશાશ્ચ
 વહવઃ અપ્રદેશાશ્ચ ' इत्येकमद्भक्तं एव बोध्याः, किन्त्वत्र मित्रो न वक्तव्यः, तस्य
 सयोगित्वाभावात् । ' मणजोगी वयजोगी कायजोगी जीवाइओ तियभंगो '
 मनोयोगिनि योगत्रयवति संज्ञिनि, वचोयोगिनि एकेन्द्रियवर्जे, काययोगिनि सर्व-
 स्मिन्नपि एकेन्द्रियादी जीवादिकः जीवादिपदेषु विक्रमद्भः, मद्भवं वाच्यम्, तथा-
 च मनोयोगादीनां सदाऽवस्थितत्वे सप्रदेशा इति पूर्वोक्तः प्रथमो मद्भः, अमनोयो-
 गित्वादिपरित्यागाच्च मनोयोगित्वादिनोत्पद्यमानानाम् एकादीनां संभवेन अप्रदे-

નારક આદિ જીવ સપ્રદેશ હોતે હું ઓર કિતનેક ઉત્પદ્યમાન સયોગી
 નારક આદિ જીવ અપ્રદેશ ઓ હોતે હું । પરન્તુ જો એકેન્દ્રિયપૃથિગી
 આદિક સયોગી જીવ હું વે કેવલ (વહવઃ સપ્રદેશાશ્ચ વહવ અપ્રદેશાશ્ચ)
 એસે એક હી ભંગવાલે હોતે હું-ત્રીન ભંગવાલે નહીં હોતે હું । હમ દ્વાર-
 મેં સિદ્ધ પદ કા ઉચારણ નહીં કરના ચાહિયે-ક્યોં કિ વે સિદ્ધ જીવ
 યોગાતીત હોતે હું । (મણજોગિ, વયજોગિ, કાયજોગિ, જીવાઈઓ તિય-
 ભંગો) મનોયોગવાલે અર્થાત્ ત્રીનોં યોગવાલે સંજ્ઞી જીવોંમેં, વચનયોગ-
 વાલે અર્થાત્ એકેન્દ્રિય જીવોં કો છોડ્ડકર ચાકી કે જીવોં મેં ઓર કાય-
 યોગવાલે અર્થાત્ સમસ્ત એકેન્દ્રિયાદિક જીવોં મેં, ત્રીનભંગ હોતે હું વે
 મનોયોગી આદિ જીવ સદા અવસ્થિત રહતે હું હસ કારણ તો હનમેં
 (સર્વે સપ્રદેશાઃ) એસા પ્રથમ ભંગ વન જાતા હૈ તથા અમનોયોગી આદિ
 કે પરિત્યાગ સે જવ જીવ મનોયોગી આદિરુપ સે ઉત્પદ્યમાન હોતે હું
 તવ એસા આદેશરુપ એકાદિ જીવ મિલ જાતા હૈ-હસ કારણ યહાં દ્વિતીય

હાય છે અને કેટલાક ઉત્પદ્યમાન સયોગી નારક આદિ એવો અપ્રદેશ પણ
 હાય છે, પરન્તુ પૃથ્વીકાય આદિ એકેન્દ્રિય સયોગી એવો (વહવ-સપ્રદેશાશ્ચ
 વહવ અપ્રદેશાશ્ચ) આ એક જ ભંગવાળા હાય છે. તેઓ ત્રણ ભંગવાળા
 હોતા નથી. વળી આ દ્વારમાં સિદ્ધપદનો પણ પ્રયોગ કરવો જોઈએ નહીં,
 કારણ કે સિદ્ધ એવામાં સયોગીતા સંભવી શકતી નથી.

(મણજોગિ, વયજોગિ, કાયજોગિ જીવાઈઓ તિયભંગો) મનોયોગવાળા
 એટલે કે ત્રણે યોગવાળા સંજ્ઞી એવામાં, વચન યોગવાળા એટલે કે એકેન્દ્રિય
 સિવાયના એવામાં, અને કપાયોગવાળા એવામાં એટલે કે સમસ્ત એકેન્દ્રિય
 આદિક એવામાં ત્રણ ભંગ થાય છે. આ મનોયોગી આદિ એવાનું અવસ્થાન
 (અસ્તિત્વ) સદા રહે છે તે કારણે તેમને અનુલક્ષીને (સર્વે સપ્રદેશાઃ) આ
 પ્રથમ ભંગ બની જાય છે. તથા અમનોયોગી આદિ અવસ્થાનો પરિત્યાગ
 કરીને બ્યારે એવો મનોયોગી આદિ રૂપે ઉત્પદ્યમાન થાય એવી છે ત્યારે

શત્વલાભે ' સપ્રદેશાથ અપ્રદેશાથ ' ' સપ્રદેશાથ અપ્રદેશાથ ' इत्यन्यभङ्गकद्वयम् ।
 अत्र विशेषतामाह—' नवरं-कायजोगी एगिंदिया, तेसु अभंगयं ' नवरम्-काय-
 योगिनी वे एकेन्द्रियाः पृथिव्यादयो जीवास्तेषु अभङ्गकम् यद्दूनां भङ्गानाम् अभावो
 वक्तव्यः, किन्तु ' सप्रदेषाथ अप्रदेषाथ ' इत्येक एव भङ्गो बोध्यः । एतेषु च
 मनोवचःकायरूपयोगत्रयदण्डकेषु जीवादिपदानि यथायोगं वक्तव्यानि, किन्तु
 सिद्धपदं न वक्तव्यम्, तस्य मनोवचःकाययोगासंभवात् । ' अजोगी जहा
 अलेस्सा ' अयोगिनः यथा अलेश्याः उक्तास्तथा ज्ञातव्याः, तथा च अयोगिनां
 दण्डकद्वयेऽपि अलेश्यसमवक्तव्यतया अलेश्येषु बहुत्वदण्डके जीव-सिद्धपदयोः
 भङ्गत्रयस्य, मनुष्यपदेषु च भङ्गपट्टकस्योक्तत्वेन अत्रापि बहुत्वदण्डके अयोगिषु

भंग घन जाता है और " सप्रदेशाश्च अप्रदेशाश्च " ऐसा तृतीयभंग
 भी घन जाता है (नवरं कायजोगी एगिंदिया तेसु अभंगयं) यहाँ
 विशेषता इस प्रकार से है कि जो जीव काययोगवाले एकेन्द्रिय हैं उन
 में तीन भंग नहीं हैं, किन्तु (सप्रदेशाश्च अप्रदेशाश्च) ऐसा एकहीभंग
 है । इन मन वचन और कायरूप योगत्रयके दण्डकों में यथायोग जीवा-
 दिक पदों का ही कथन करना चाहिये । सिद्धपद का कथन नहीं करना
 चाहिये । क्यों कि सिद्धों में कोई भी योग नहीं होता है । (अजोगी
 जहा अलेस्सा) लेश्या रहित जीवों के समान अयोगिजीवों की वक्त-
 व्यता जाननी चाहिये । कहनेका आशय यह है कि अयोगियों के दोनों
 दण्डकों में लेश्यारहित जीवों के जैसी वक्तव्यता कही गई होने के कार-
 ण लेश्यारहित जीवों में बहुत्वविषयक द्वितीय दण्डक में जीव और

अवस्थावाजो. એકાદિ જીવ પણ મળી આવે છે, તેથી (વહવઃ સપ્રદેશાશ્ચ
 एकः अप्रदेशश्च) આ બીજો ભંગ પણ બની શકે છે, અને (સપ્રદેશાશ્ચ
 अप्रदेशश्च) આ ત્રીજો ભંગ પણ બની શકે છે (नवरं कायजोगी एगिंदिया
 तेसु अभंगयं) અહીં વિશેષતા એ છે કે કાયયોગવાળા એકેન્દ્રિય જીવોમાં
 ત્રણ ભંગ થતા નથી, પરંતુ (सप्रदेशाश्च अप्रदेशाश्च) આ એક જ ભંગ
 થાય છે. આ મન, વચન અને કાયયોગના ઢંડકોમાં યથાયોગ્ય જીવાદિક
 પદોનો જ પ્રયોગ થવો જોઈએ. અહીં સિદ્ધપદનો પ્રયોગ કરવો જોઈએ નહીં
 કારણ કે સિદ્ધોમાં કોઈ પણ યોગનો અભાવ હોય છે.

(अजोगी जहा अलेस्सा) લેશ્ય રહિત જીવોના જેવું જ કથન અયોગી
 જીવોના વિષયમાં સમજવું. આ કથનનું તાત્પર્ય નીચે પ્રમાણે છે—લેશ્યારહિત
 જીવોના બહુત્વ વિષયક ઢંડકમાં જીવ અને સિદ્ધપદમાં ત્રણ ભંગ, મનુષ્યોમાં

જીવ-સિદ્ધર્થોર્ભક્તવચ્ચમ્, મનુષ્યેષુ ચ પદ્મ-મહાઃ વક્તવ્યા સ્વાગ્રયઃ । તે ચ મહાઃ
 પૂર્વોક્તા એવ વિશેષાઃ । ' સાગારોવત્ત-અનાગારોવત્તેહિ જીવ-અગ્નિદિયવજ્જો-
 તિયમંગો ' સાકારોપયોગેષુ અનાકારોપયોગેષુ નૈરપિકાદિષુ જીવે-કેન્દ્રિયવર્ગઃ
 વિક્રમહઃ, જીવપદમ્, એકેન્દ્રિયપૃથિવ્યાદિપદાનિ ચ વર્ગયિત્વા વહુત્વદષ્ટકે
 પૂર્વોક્તાશ્ચો મહા વક્તવ્યાઃ । જીવપદે, એકેન્દ્રિયપદેષુ ન ' સપ્રદેશાશ્ચ અપ્રદે-
 શશ્ચ' इत्येक एव भक्तो वाच्यः, तत्र च साकारोपयोगान् अनाकारोपयोगमनने, अना-
 कारोपयोगाद् वा साकारोपयोगमनने प्रथमसमये अप्रदेशत्मम्, द्वावादिसमये तु
 सप्रदेशत्वं बोध्यम् । सिद्धानां तु एकसमयोपयोगित्वेऽपि साकारस्य अनाकारस्य च
 उपयोगद्वयस्यापठत् मात्स्या सप्रदेशत्वं, सकृत्मात्स्या चाप्रदेशत्वं विज्ञेयम्,

સિદ્ધપદમે ત્રીન ભંગ, તથા મનુષ્યો-અયોગી મનુષ્યો મેં છઠ્ઠ ભંગ હોતે હેં
 એસા સમજના ચાહિયે । યે છઠ્ઠ ભંગ પહિલે કહ દિયે ગયે હેં । (સાગારોવત્ત-
 અનાગારોવત્તેહિ જીવઅગ્નિદિયવજ્જો તિયમંગો) સાકાર ઉપયોગવાલે
 અનાકાર ઉપયોગવાલે નૈરપિક આદિ જીવો મેં જીવપદ ઓર એકેન્દ્રિય
 પૃથિવ્યાદિક પદોં કો છોડકર વહુત્વ વિષયક દ્વિતીય દષ્ટક મેં પૂર્વોક્ત
 ત્રીન ભંગ હોતે હેં । જીવપદ મેં ઓર એકેન્દ્રિય પદોં મેં (સપ્રદેશાશ્ચ
 અપ્રદેશાશ્ચ) એસા એક હી ભંગ હોતા હે । સાકાર ઉપયોગ સે અનાકાર
 ઉપયોગ મેં આને મેં ઓર અનાકાર ઉપયોગ સે સાકાર ઉપયોગ મેં આને
 મેં પ્રથમ સમય મેં અપ્રદેશતા ઓર દ્વિતીયાદિ સમયોં મેં સપ્રદેશતા
 જાનના ચાહિયે । સિદ્ધોં કે યદ્યપિ એક સમયોપયોગિતા હે, તો ઓ
 સાકાર ઉપયોગ ઓર અનાકાર ઉપયોગ કી ચાર ચાર પ્રાપ્તિ હોને કે

છ ભંગ કહ્યા છે, એ જ પ્રમાણે અયોગીના વિષયમાં પણ અહીં સમજવું
 તે છ ભંગ આગળ કહેવામાં આવ્યા છે.

(સાગારોવત્ત અનાગારોવત્તેહિ જીવ અગ્નિદિયવજ્જો તિયમંગો) એવપદ
 અને એકેન્દ્રિય પૃથ્વીકાય આદિ પાંચ પદો સિવાયના સાકાર ઉપયોગવાળા
 અને અનાકાર ઉપયોગવાળા નારક આદિ એવોમાં બહુત્વ વિષયક બીજા
 દંડકમાં પૂર્વોક્ત ત્રણ ભંગ થાય છે. એવપદમાં અને એકેન્દ્રિય પદોમાં
 (સપ્રદેશાશ્ચ અપ્રદેશાશ્ચ) આ એક જ ભંગ થાય છે. સાકાર ઉપયોગમાંથી
 અનાકાર ઉપયોગમાં અને અનાકાર ઉપયોગમાંથી સાકાર ઉપયોગમાં આવવાના
 પ્રથમ સમયે અપ્રદેશતા અને દ્વિતીય આદિ સમયોમાં સપ્રદેશતા સમજવી.
 સિદ્ધોમાં જો કે એક સમયોપયોગિતા છે, છતાં પણ સાકાર ઉપયોગ અને
 અનાકાર ઉપયોગની વારંવાર પ્રાપ્તિ થવાને કારણે તેમનામાં સપ્રદેશતા અને
 તેમની એક વારંવાર પ્રાપ્તિ થવાને કારણે અપ્રદેશતા છે, એમ સમજવું. આ

तथा च बहुत्वदण्डके असकृत्माप्तसाकारोपयोगान् बहून् जीवानाश्रित्य 'सप्रदेशाः' इति प्रथमो भङ्गः, तानेव असकृत्माप्तसाकारोपयोगान् बहून् जीवान्, सकृत्माप्तसाकारोपयोगं च एकमाश्रित्य 'बहवः सप्रदेशाश्च एकः अप्रदेशश्च' इति द्वितीयो भङ्गः, तानेव सकृत्माप्तसाकारोपयोगान् बहून् आश्रित्य 'बहवः सप्रदेशाश्च बहवः अप्रदेशाश्च' इति तृतीयो भङ्गः । अनाकारोपयोगे तु असकृद्वाप्तानाकारोपयोगान् बहून् आश्रित्य प्रथमो भङ्गः, तान् असकृद्वाप्तानाकारोपयोगान् बहून्, सकृद्वाप्तानाकारोपयोगं चैकमाश्रित्य द्वितीयो भङ्गः, उभयेषामपि असकृ-

कारण उनमें सप्रदेशता और उनकी एक बार बार प्राप्ति होने के कारण उनमें अप्रदेशता है ऐसा जानना चाहिये । तथा च-बहुत्वविषयक द्वितीय दण्डकमें वारंवार प्राप्त साकार उपयोगवाले अनेक सिद्ध जीवोंको आश्रित करके (सप्रदेशाः) ऐसा प्रथम भंग, तथा इन्हीं वारंवार प्राप्त साकार उपयोगवाले एक सिद्ध जीव को आश्रित करके " बहवः सप्रदेशाः, एकः अप्रदेशश्च) ऐसा द्वितीय भंग, तथा एक बार प्राप्त साकार उपयोगवाले अनेक जीवोंको आश्रित करके (बहवः सप्रदेशाश्च, बहवः अप्रदेशाश्च) ऐसा तृतीय भंग जानना चाहिये । अनाकार उपयोग द्वारमें भी तीन भंग इसी प्रकार से होते हैं-अर्थात्-वारंवार प्राप्त अनाकार-उपयोगवाले अनेक जीवोंको आश्रित करके अनाकार उपयोग में प्रथम-भंग, तथा इन्हीं वारंवार प्राप्त अनाकार उपयोगवाले अनेक जीवों को आश्रित करके और एक बार प्राप्त अनाकार उपयोगवाले एक जीव को

आ कथननुं तात्पर्यं ये छे के बहुत्व विषयक जीव दंडकमां वारंवार प्राप्त जेवा साकार उपयोगवाणा अनेक सिद्ध जेवने अनुलक्षिने (सप्रदेशाः) जेवा प्रथम भंग जने छे । तथा जेभने वारंवार साकार उपयोगनी प्राप्ति थछे जेवां अनेक सिद्ध जेवने तथा जेने जेक व वार साकार उपयोगनी प्राप्ति थछे जेवा जेक सिद्ध जेवने अनुलक्षिने जीव भंग आ प्रभाजे जने छे । (बहव सप्रदेशाः, एकः अप्रदेशश्च) तथा जेभने जेक वार साकार उपयोगनी प्राप्ति थछे जेवा अनेक साकार उपयोगवाणा जेवने अनुलक्षिने जीव भंग आ प्रभाजे समजवे- (बहवः सप्रदेशाश्च बहव अप्रदेशाश्च) अनाकार उपयोग द्वारमां पञ्च त्रय भंग जेव प्रभाजे थाय छे । जेटले के वारंवार प्राप्त अनाकार उपयोगवाणा अनेक जेवने अनुलक्षिने अनाकार उपयोगमां प्रथम भंग, तथा जेव वारंवार प्राप्त अनाकार उपयोगवाणा अनेक जेवने जेने जेक वार प्राप्त अनाकार उपयोगवाणा जेक जेवने अनुलक्षिने जीव

જીવ-સિદ્ધયોર્ભક્તવપ્ત્ત્વમ્, મનુષ્યેષુ ચ પદ્મ મજ્જાઃ વક્તવ્યાસ્ત્યાગ્રયઃ । તે ચ મજ્જાઃ
 પૂર્વોક્તા एव विज्ञेयाः । 'सागारोवउत्त-अणागारोवउत्तहिं जीव-एगिदियवज्जो-
 तियभंगो' साकारोपयोगेषु अनाकारोपयोगेषु नैरपिकदिपु जीव-केन्द्रियवर्तः
 प्रिकभङ्गः, जीवपदम्, एकेन्द्रियपृथिव्यादिपदानि च पर्जयित्वा बहुत्वदण्डके
 पूर्वोक्ताद्यो भङ्गा वक्तव्याः । जीवपदे, एकेन्द्रियपदेषु न 'सप्रदेशाश्च अपदे-
 शश्च' इत्येक एव भङ्गो वाच्यः, तत्र च साकारोपयोगान् अनाकारोपयोगमने, अना-
 कारोपयोगाद् वा साकारोपयोगमने प्रथमतमये अपदेशत्वम्, द्वयादिसमये तु
 सप्रदेशत्वं बोध्यम् । सिद्धानां तु एकसमयोपयोगित्वेऽपि साकारस्य अनाकारस्य च
 उपयोगद्वयस्यासक्तुं प्राप्या सप्रदेशत्वं, सकृत्प्राप्या चापदेशत्वं विज्ञेयम्,

સિદ્ધપદમેં તીન ભંગ, તથા મનુષ્યો-અયોગી મનુષ્યોં મેં છહ ભંગ હોતે હેં
 ऐसा समझना चाहिये । ये छह भंग पहिले कह दिये गये हैं । (सागारोवउत्त-
 अणागारोवउत्तहिं जीवएगिदियवज्जो तियभंगो) साकार उपयोगवाले
 अनाकार उपयोगवाले नैरपिक आदि जीवों में जीवपद और एकेन्द्रिय
 पृथिव्यादिक पदों को छोडकर बहुत्व विषयक द्वितीय दण्डक में पूर्वोक्त
 तीन भंग होते हैं । जीवपद में और एकेन्द्रिय पदों में (सप्रदेशाश्च
 अपदेशाश्च) ऐसा एक ही भंग होता है । साकार उपयोग से अनाकार
 उपयोग में आने में और अनाकार उपयोग से साकार उपयोग में आने
 में प्रथम समय में अपदेशता और द्वितीयादि समयों में सप्रदेशता
 जानना चाहिये । सिद्धों के यद्यपि एक समयोपयोगिता है, तो भी
 साकार उपयोग और अनाकार उपयोग की चार चार प्राप्ति होने के

છ ભંગ કહ્યા છે, એ જ પ્રમાણે અયોગીના વિષયમાં પણ અહીં સમજવું
 તે છ ભંગ આગળ કહેવામાં આવ્યા છે.

(સાગારોવઉત્ત અણાગારોવઉત્તહિં જીવ એગિદિયવજ્જો તિયભંગો) એવપદ
 અને એકેન્દ્રિય પૃથ્વીકાય આદિ પાંચ પદો સિવાયના સાકાર ઉપયોગવાળા
 અને અનાકાર ઉપયોગવાળા નારક આદિ એવોમાં બહુત્વ વિષયક બીજા
 દંડકમાં પૂર્વોક્ત ત્રણ ભંગ થાય છે. એવપદમાં અને એકેન્દ્રિય પદોમાં
 (સપ્રદેશાશ્ચ અપ્રદેશાશ્ચ) આ એક જ ભંગ થાય છે. સાકાર ઉપયોગમાંથી
 અનાકાર ઉપયોગમાં અને અનાકાર ઉપયોગમાંથી સાકાર ઉપયોગમાં આવવાના
 પ્રથમ સમયે અપ્રદેશતા અને દ્વિતીય આદિ સમયોમાં સપ્રદેશતા સમજવી.
 સિદ્ધોમાં બે કે એક સમયોપયોગિતા છે, છતાં પણ સાકાર ઉપયોગ અને
 અનાકાર ઉપયોગની વારંવાર પ્રાપ્તિ થવાને કારણે તેમનામાં સપ્રદેશતા અને
 તેમની એક વારંવાર પ્રાપ્તિ થવાને કારણે અપ્રદેશતા છે, એમ સમજવું. આ

સ્રીવેદક-પુરુપવેદક-નપુંસકવેદકેષુ જીવાદિકઃ જીવાદિપદેષુ ત્રિકમજ્ઞઃ પૂર્વોક્તા-
 સ્ત્રયોમજ્ઞાઃ વિજ્ઞેયાઃ । અત્રવેદાત્ વેદાન્તરસંક્રમણે પ્રથમસમયે અપ્રદેશત્વમ્, દ્વયા-
 દિસમયેષુ ચ સપ્રદેશત્વં વિજ્ઞાપ મજ્ઞકત્રયં વિજ્ઞેયમ્ । કિન્ત્વત્ર 'નવરં-નપુંસગવેયે
 ઇનિદિયેસુ અમંગયં' નવરં વિશેષસ્તુ નપુંસકવેદે એકેન્દ્રિયેષુ અમજ્ઞકમ્ વહૂનાં
 મજ્ઞાનામ્ પ્રમાત્રઃ, અપિતુ એક એવ મજ્ઞઃ, તથા ચ નપુંસકવેદકદ્વણ્ડકે પૃથિવ્યા-
 ઘેકેન્દ્રિયેષુ 'સાદેશાથ અપ્રદેશાથ' ઇત્યેક એવ મજ્ઞો વાચ્યઃ પૂર્વોક્તરીત્યા ।
 સ્રીવેદકદ્વણ્ડક-પુરુપવેદકદ્વણ્ડકેષુ દેવ-પંચેન્દ્રિયતિર્યગ્-મનુષ્ય-પદાન્યેવ વાચ્યાનિ,
 નપુંસકવેદકદ્વણ્ડકયોસ્તુ દેવવર્જાનિ પંચેન્દ્રિયતિર્યગ્-મનુષ્યપદાનિ વક્તવ્યાનિ,
 સિદ્ધપદં ચ ત્રિણપિ વેદકેષુ ન વક્તવ્યમ્ તત્ર વેદાભાવાત્ । 'અવેયગા જહા અક-

વેદમે, પુરુપવેદમે ઓર નપુંસકવેદ દ્વાર મેં જીવાદિક પદોમેં તીન ભંગ
 હેં । જય એક વેદસે દૂસરે વેદમેં સંક્રમણ હોતા હેં તય પ્રથમ સમય મેં
 અપ્રદેશત્વ ઓર દ્વિતીયાદિ સમયોં મેં સપ્રદેશત્વ સમજ્ઞકર પહિલે કી
 તરહ ઘર્યાં તીન ભંગ સમજ્ઞના ચાહિયે । નપુંસક વેદકે દોનોં દ્વણ્ડકોં મેં
 તો એકેન્દ્રિયોં મેં એકહી ભંગ હોતા હેં 'અમંગયં' પદ યહ સમજ્ઞતા હેં કિ
 ઘર્યાં એકેન્દ્રિયોં મેં અનેક ભંગોં કા હી અભાવ હેં-એક મજ્ઞ જો (સપ્ર-
 દેશાથ અપ્રદેશાથ) વહ હેં ઇસ્કા અભાવ નહીં હેં । અતઃ ઘર્યાં પર એક
 હી ભંગ હેં । સ્રીવેદ દ્વણ્ડકોં મેં પુરુપવેદ દ્વણ્ડકોં મેં દેવ, પંચેન્દ્રિય તિર્યચ્ચ
 ઓર મનુષ્ય ઇન પદોં કા હી પ્રયોગ કરના ચાહિયે, તથા નપુંસક વેદકે
 દોનોં દ્વણ્ડકોં મેં દેવ પદકો છોડકર પંચેન્દ્રિય તિર્યચ ઓર મનુષ્ય ઇન
 પદોં કા પ્રયોગ કરના ચાહિયે । સિદ્ધ પદકા પ્રયોગ તીનોં વેદોં મેં સે
 કિસી ખી વેદકે દ્વણ્ડક મેં નહીં કરના ચાહિયે-વયોં કિ ચે વેદરહિત

પુરુપવેદમાં અને નપુંસક-વેદદ્વારમાં જીવાદિક પદોમાં ત્રણ ભંગ છે. ત્યારે
 એક વેદમાંથી બીજા વેદમાં સંક્રમણ થાય છે, ત્યારે પ્રથમ સમયે અપ્રદેશત્વ
 અને દ્વિતીય આદિ સમયોમાં સપ્રદેશત્વ સમજીને આગળ બતાવ્યા પ્રમાણેના
 ત્રણ ભંગ સમજવા. નપુંસક વેદકના બંને દંડકોમાં તો એકેન્દ્રિયમાં એકજ
 ભંગ થાય છે. (અમંગયં) પદ એ બતાવે છે કે અહીં એકેન્દ્રિયોમાં અનેક
 ભંગો થતા નથી, પણ (સપ્રદેશાથ અપ્રદેશાથ) આ એકજ ભંગ થાય છે.
 સ્રીવેદ દંડકોમાં, અને પુરુપવેદ દંડકોમાં દેવ, પંચેન્દ્રિય તિર્યચ અને મનુષ્યો
 આ ત્રણ પદોનો જ પ્રયોગ કરવો. નપુંસક વેદના બંને દંડકોમાં દેવપદને
 જતું કરીને પંચેન્દ્રિય તિર્યચ અને મનુષ્યોનો જ પ્રયોગ કરવો. સિદ્ધપદનો
 પ્રયોગ ત્રણ વેદોમાંથી એક પણ વેદના દંડકમાં કરવા નોંધએ નહીં, કારણ

સ્માસનાકારોપયોગાનાં સઠ્ઠ્વપાપ્તાનાકારોપયોગાનામ્ અનેકત્વે તૃતીયો મહોઽ-
વસેયઃ । ' સવેયગા ય જહા સઠ્ઠ્સાઈ ' સંવેદકામ યથા સઠ્ઠ્વાયિગઃ ઉક્તાસ્તથા
વિશેયાઃ, તથા ચ કપાયિણાં યદ્વત્વદ્વડકે ળીવાદિપદેષુ મદ્વપ્રયમ્, એકેન્દ્રિય-
પૃથિવ્યાદિષુ મદ્વૈરુસ્ય પ્રતિપાદિતત્વેન અમાયિ સંવેદકાનાં યદ્વત્વદ્વડકે ળીવાદિ
પદેષુ પૂર્વોક્તં મદ્વૈરુસ્યમ્ એકેન્દ્રિયપૃથિવ્યાદિપદેષુ એકો મહો વિજ્ઞાતવ્યઃ । વેદ-
પ્રતિપદ્ધાન્ વહન્ શ્રેણિભ્રંગાનન્તરં ચ વેદં પ્રતિપદ્ધમાનાન્ એકાદીન્ આશ્રિત્ય મદ્વ-
પ્રયમવસેયમ્ ' इत्थिवेयग-पुरिसवेयग-नपुंसगवेयगेषु जीवाइओ तियभंगो '

આશ્રિત કરકે દ્વિતીય ભંગ, તથા અસકૃત પ્રાપ્ત અનાકાર ઉપયોગવાલોં
કી એવં સકૃત્-એક વાર-પ્રાપ્ત અનાકાર ઉપયોગવાલોં કી અનેકતા મેં
તૃતીય ભંગ હોતા હૈં એસા જાનના ચાહિયે । (સવેયગા ય જહા સઠ્ઠ્સાઈ)
જૈસે સઠ્ઠ્વાય જીવ કહે ગયે હૈં વૈસે હી સવેદક જીવ જાનના ચાહિયે
તથા ચ-કપાયી જીવોં કે યદ્વત્વ વિષયક દ્વિતીય દ્વડક મેં જીવાદિક-
પદોં મેં ત્રીન ભંગ હોતે હૈં એસા કહા ગયા હૈં-સો યહાં પર મી સવેદક
જીવોં કે યદ્વત્વવિષયક દ્વિતીય દ્વડકમેં જીવાદિક પદોં મેં પૂર્વોક્ત ત્રીન
ભંગ હોતે હૈં-તથા એકેન્દ્રિય પૃથિવ્યાદિક પદોં મેં એક ભંગ હોતા હૈં એસા
સમજ્ઞના ચાહિયે । યહાં પર સવેદક જીવોં મેં જો ત્રીન ભંગ કહે ગયે હૈં સો
વેદકો પ્રતિપદ્ધ હુણ્ અનેક જીવોં કો આશ્રિત કરકે પ્રથમ ભંગ તથા
શ્રેણિ સે વ્યુત હોનેકે ઘાદ વેદકો પ્રતિપદ્ધમાન એકાદિ જીવકો આશ્રિત
કરકે દ્વિતીય ભંગ ઓર તૃતીય ભંગ કહે ગયે હૈં એસા જાનના ચાહિયે ।
(इत्थिवेयग-पुरिसवेयग-नपुंसगवेयगेषु जीवाइओ तियभंगो) स्त्री

ભંગ, તથા વારંવાર પ્રાપ્ત અનાકાર ઉપયોગવાળાની અને એક વાર પ્રાપ્ત
અનાકાર ઉપયોગવાળાની અનેકતાને અનુલક્ષીને ત્રીજો ભંગ થાય છે.

(સવેયગા ય જહા સઠ્ઠ્સાઈ) સવેદક જીવોં કથન કપાયયુક્ત જીવોના
કથન પ્રમાણે જ સમજવું. જેમ કપાયયુક્ત જીવોના અહુત્વ વિષયક ળીજ દંડકમાં
જીવાદિક પદોમાં પૂર્વોક્ત ત્રણ ભંગ થાય છે. અને એકેન્દ્રિયમાં એક ભંગ સમજવો.
અહીં સવેદક જીવોમાં જે ત્રણ ભંગ કહ્યા છે તે ત્રીજો પ્રમાણે સમજવા—
પહેલો ભંગ સવેદક અવસ્થા જેમણે પ્રાપ્ત કરેલી છે એવાં અનેક જીવોને
અનુલક્ષીને બને છે. ત્રીજીથી પ્રથમ થઈને સવેદક અવસ્થા પ્રાપ્ત કરનારા કોઈક
જીવને અનુલક્ષીને ળીજો ભંગ બને છે, અને એવાં અનેક જીવોને અનુલક્ષીને
ત્રીજો ભંગ બને છે, એમ સમજવું.

(इत्थिवेयग-पुरिसवेयग-नपुंसगवेयगेषु जीवाइओ तियभंगो) स्त्री

स्त्रीवेदक-पुरुषवेदक-नपुंसकवेदकेषु जीवादिकः जीवादिपदेषु त्रिकभङ्गः पूर्वोक्ता-
स्त्रयोभङ्गाः विज्ञेयाः । अत्रवेदात् वेदान्तरसंक्रमणे प्रथमसगये अप्रदेशत्वम्, द्वि-
तिसमयेषु च सप्रदेशत्वं विज्ञाय भङ्गकत्रयं विज्ञेयम् । किन्त्वत्र 'नवरं-नपुंसगवेये
एनिदियेसु अभंगयं' नवरं विशेषस्तु नपुंसकवेदे एकेन्द्रियेषु अभङ्गकम् बहूनां
भङ्गानाम् अभावः, अपितु एव एव भङ्गः, तथा च नपुंसकवेदकदण्डके पृथिव्या-
द्येकेन्द्रियेषु 'सादेशाश्च अप्रदेशाश्च' इत्येक एव भङ्गो वाच्यः पूर्वोक्तरीत्या ।
स्त्रीवेदकदण्डक-पुरुषवेदकदण्डकेषु देव-पञ्चेन्द्रियतिर्यग्-मनुष्य-पदान्येव वाचयानि,
नपुंसकवेदकदण्डकयोस्तु देववर्जानि पञ्चेन्द्रियतिर्यग्-मनुष्यपदानि वक्तव्यानि,
सिद्धपदं च त्रिष्वपि वेदकेषु न वक्तव्यम् तत्र वेदाभावात् । 'अवेयगा जहा अक-

वेदमें, पुरुषवेदमें और नपुंसकवेद द्वार में जीवादिक पदोंमें तीन भंग
हैं । जब एक वेदसे दूसरे वेदमें संक्रमण होता है तब प्रथम समय में
अप्रदेशत्व और द्वितीयादि समयों में सप्रदेशत्व समझकर पहिले की
तरह यहाँ तीन भंग समझना चाहिये । नपुंसक वेदके दोनों दण्डकों में
तो एकेन्द्रियोंमें एकही भंग होता है 'अभंगयं' पद यह समझता है कि
यहाँ एकेन्द्रियों में अनेक भंगों का ही अभाव है-एक भङ्ग जो (सप्र-
देशाश्च अप्रदेशाश्च) यह है इसका अभाव नहीं है । अतः यहाँ पर एक
ही भंग है । स्त्रीवेद दण्डकों में पुरुषवेद दण्डकों में देव, पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च
और मनुष्य इन पदों का ही प्रयोग करना चाहिये, तथा नपुंसक वेदके
दोनों दण्डकों में देव पदको छोड़कर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च और मनुष्य इन
पदों का प्रयोग करना चाहिये । सिद्ध पदका प्रयोग तीनों वेदों में से
किसी भी वेदके दण्डक में नहीं करना चाहिये-क्यों कि ये वेदरहित

पुरुषवेदमां अने नपुंसक-वेदद्वारमां लुवादि पदेषु लंग्गं छे । न्यारे
अेक वेदमांथी भीन वेदमां संकमणु थाय छे, त्त्यारे प्रथम समये अप्रदेशत्व
अने द्वितीय आदि समयेमां सप्रदेशत्व समलने आगण गताव्या प्रमाणेना
त्रयु लंग्गं समञ्वा । नपुंसक वेदकना गन्ने दंडकोमां तो अेकेन्द्रियमां अेकञ्
लंग्गं थाय छे । (अभंगयं) पद अे गतावे छे के अडी अेकेन्द्रियेमां अनेक
लंग्गो थता नथी, पणु (सप्रदेशाश्च अप्रदेशाश्च) आ अेकञ् लंग्गं थाय छे ।
स्त्रीवेद दंडकोमां, अने पुरुषवेद दंडकोमां देव, पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अने मनुष्ये
आ त्रयु पदोनाञ् प्रयोग करवो । नपुंसक वेदना गन्ने दंडकोमां देवपदने
जतु करीने पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अने मनुष्येनाञ् प्रयोग करवो । सिद्धपदने
प्रयोग त्रयु वेदोमांथी अेक पणु वेदना दंडकोमां करवा जेधअे नथी, डारणु

સાઈ' અવેદકતા યથા બ્રહ્મપાથિનસ્તથા વક્તવ્યાઃ, एवं च ब्रह्मपाथिनां जीव-
 मनुष्यसिद्धपदेषु भद्रवयस्य मनिपादितत्वेन अवेदकानामपि बहुत्वदण्डके जीव-
 मनुष्य-सिद्धपदेष्वेव भद्रवयं पूर्वोक्तं वक्तव्यम् । ' सरीरी जहा ओहिओ ' शरीरी
 यथा औचित्तः सामान्यजीवः मनिपादितस्तथा विज्ञेयः, तथा च औचित्तदण्डक-
 वत् शरीरिणाम् एकत्वबहुत्वदण्डकयोः जीवपदे तपदेशता एव वक्तव्या, नत्व-
 प्रदेशता, सशरीरित्वस्यानादित्वात्, नैरयिहादिषु तु बहुत्वदण्डके भद्रवयम्,
 एकेन्द्रियपृथिव्यादिषु केवलं तृतीयो भद्रः । ' ओरादिय-वेउच्चिय-सरीराणं
 जीव-एगिदियवज्जो तियभंगो ' औदारिक-वैक्रियशरीरेषु जीवैकेन्द्रियवर्जः जीव-
 पदम् एकेन्द्रियपृथिव्यादिषुदानि वर्जयित्वा त्रिकभद्रः, पूर्वोक्तास्त्रयोभद्राः वाच्याः,
 तथा च औदारिक-वैक्रिय-सशरीरिणां बहुत्वदण्डके जीवपदं, एकेन्द्रियपृथिव्या-
 दिपदेषु च केवलम् 'सप्रदेशाथ अप्रदेशाथ' इति तृतीय एव भद्रो विज्ञेयः, तेषु

होते हैं । (अवेदका जहा अकसाई) जीव मनुष्य और सिद्ध इन तीन
 पदों में ही अवेदकता का आश्रय करके अरुपाववाले जीवों की तरह
 तीन भंग होते हैं । 'ससरीरी जहा ओहिओ' सामान्य जीव दंडककी तरह
 सशरीरी के दोनों दण्डकोंमें जीव पदमें सप्रदेशकताका ही कथन करना
 चाहिये, अप्रदेशता का नहीं—क्यों कि सशरीरता अनादि काल से है ।
 नैरयिक आदिकों में तो बहुत्वविषयक द्वितीय दण्डक में तीन भद्र होते
 हैं । तथा एकेन्द्रिय पृथिव्यादिकों में केवल तीसरा भंग होता है । (ओरा-
 लिय-वेउच्चिय सरीराणां जीव एगिदियवज्जो तियभंगो) औदारिक
 शरीरवालों में वैक्रिय शरीरवालों में जीव पद और एकेन्द्रिय को छोड़
 कर पूर्वोक्त तीन भंग होते हैं । तथा च—औदारिक और वैक्रिय शरीर
 वाले जीवों के बहुत्व दण्डकमें और एकेन्द्रिय पृथिव्यादिक पदों में केवल

કે સિદ્ધો વેદરહિત હોય છે. (અવેદકા જહા અકસાઈ) જીવ, મનુષ્ય અને
 સિદ્ધ આ ત્રણ પદોમાં જ અવેદકતાને અનુભક્ષીને અરુપાવવાળા જીવોની જેમ
 ત્રણ ભંગ થાય છે.

(સસરીરી જહા ઓહિઓ) સામાન્ય જીવ દંડકની જેમ સશરીરીના બંને
 દંડકોમાં જીવપદમાં સપ્રદેશતાનું જ કથન કરવું જોઈએ, અપ્રદેશતાનું કથન
 કરવું જોઈએ નહીં, કારણ કે સશરીરતા અનાદિ કાળથી હોય છે. નારક
 આદિમાં તો બહુત્વ વિષયક બીજા દંડકમાં ત્રણ ભંગ થાય છે. પણ પૃથ્વીકાય
 આદિ એકેન્દ્રિય જીવોમાં તો માત્ર ત્રીજો ભંગ જ થાય છે. (ઓરાલિય-વેઊ-
 ચ્ચિય સરીરાણાં જીવ એગિદિયવજ્જો તિયભંગો) ઔદારિક શરીરવાળામાં અને
 વૈક્રિય શરીરવાળામાં જીવપદ અને એકેન્દ્રિયને છોડીને પૂર્વોક્ત ત્રણ ભંગ થાય
 છે. ઔદારિક અને વૈક્રિય શરીરવાળા જીવોના બહુત્વ દંડકમાં જીવપદમાં તથા

दहनामेव प्रतिक्षणं प्रतिपन्नानां प्रतिपद्यमानानां चोपलम्भात्, शोषेषु मनुष्या-
दिषु पूर्वोक्तं भङ्गत्रयमवसेयम्, तेषु दहनां प्रतिपन्नानाम्, औदारिक-वैक्रिय-
परित्यागेन औदारिकं वैक्रियं च प्रतिपद्यमानानाम् एकादीनां सद्भावात्,
किन्त्वत्र औदारिकवैकत्ववहुत्वदण्डकयोः नैरयिकाः देवाश्च न वक्तव्याः,
वैक्रियदण्डकयोश्च पृथिव्यत्तेजोवनस्पति-विकलेन्द्रियाः न वक्तव्याः, अत्र वैक्रिय-
दण्डके एकेन्द्रियपदे तृतीयभङ्गकथने कथं न विरोधः? इति चेदाह-असंख्यातानां

(सप्रदेशाश्च अप्रदेशाश्च) ऐसा एक तीसरा ही भंग होता है। क्यों
कि उनमें प्रतिक्षण प्रतिपन्न और अप्रतिपद्यमान अनेक जीवों की प्राप्ति
होती है। शोष मनुष्यादिकों में पूर्वोक्त तीन भंग होते हैं। क्यों कि
इनमें अनेक प्रतिपन्न जीवों का और औदारिक वैक्रिय शरीर को छोड़
कर पुनः औदारिक और वैक्रिय शरीर को पानेवाले एकादि जीव का
सद्भाव पाया जाता है। यहाँ औदारिक के एकत्व और बहुत्व दण्डक
में नैरयिक और देव इन पदों का प्रयोग नहीं करना चाहिये-क्यों कि
इनको औदारिक शरीर नहीं होता है। वैक्रिय के दोनों दण्डकोंमें पृथिवी
अप्, तेज, वनस्पति और विकलेन्द्रिय इन पदों का प्रयोग नहीं करना
चाहिये-क्योंकि इन जीवोंको वैक्रिय शरीर नहीं होता है। यहाँ ऐसी आशं-
का नहीं करनी चाहिये कि-वैक्रियदण्डक में एकेन्द्रिय पद में जो आपने
तीसरा भंग कहा है सो उसमें विरोध क्यों नहीं आवेगा? नहीं आवेगा

पांचे ऐकेन्द्रिय पदोभां (सप्रदेशाश्च अप्रदेशाश्च) आ ऐकं च लंग (तीन्ने
लंग) थाय छे. कारणु के तेभां प्रत्येक क्षणु प्रतिपन्न (पूर्वोत्पन्न) अने
प्रतिपद्यमान अनेक लवोनी प्राप्ति थती होय छे. ऐ सिवायना मनुष्य
आदि लवोभां त्रलु लंग थाय छे, कारणु के तेमनाभां अनेक पूर्वोत्पन्न लवोना
अने औदारिक के वैक्रिय शरीरने परित्याग करीने इरीथी औदारिक के वैक्रिय
शरीर प्राप्ति करनार कोषक (कोडादि) लवने सद्भाव रहे छे. अही
औदारिकता ऐकत्व अने णहुत्व दंडकभां नारक अने देवने प्रयोग थतो नथी,
कारणु के तेमने औदारिक शरीर छितुं नथी. वैक्रियता णन्ने दंडकभां पृथ्वी-
काय, अपकाय, तेजस्काय, वनस्पतिकाय अने विकलेन्द्रियने प्रयोग करवे
नही, कारणु के ते लवोने वैक्रिय शरीर छितुं नथी. अही ऐवी आशंका
करवी जेधजे नही के वैक्रिय ऐकेन्द्रिय लवोने आपे तीन्ने लंग वाशु पाउये
छे. तो शुअही विरोधाभास लागतो नथी? आ शंकातुं समाधान नीचे

ઘ જીવકેન્દ્રિયવર્ગઃ જીવપદમ્ એકેન્દ્રિયપૃથિવ્યાદિપદાનિ ચ વર્ગમિથા મનુષ્યા-
 દિપુ ત્રિકમદ્ગઃ, પૂર્વોક્તાદ્યપોમદ્ગા વક્તવ્યાઃ. જીવપદે, એકેન્દ્રિયપૃથિવ્યાદિપદેપુ તુ
 બહુનામ્ આહાર-શરીરે-ન્દ્રિયા-ડડનપ્રાણપર્યાપ્તીઃ પ્રતિપદ્માનાં, બહુનામેવ ચ આહાર-
 રાષપર્યાસિપરિત્યગેન આહારાદિપર્યાસિમિઃ પર્યાસિભાવં પ્રતિપદ્માનાનાં સદ્ભાત્રાવ
 'વહવઃ સપ્રદેશાશ્ચ વહવઃ અપ્રદેશાશ્ચ' इति तृतीयो मद्ग एव वक्तव्यः, इत्याशयः
 'भासा-मणपञ्जत्तीए जहा सत्री' भाषामनसोः पर्याप्तिः भाषामनःपर्या-
 प्तिस्तस्याम् बहुश्रुताभिमत्त्वादेकत्वं विवक्षितम् भाषा-मनःपर्याप्सोरित्यर्थः
 पर्याप्तिमन्तो जीवाः यथासंज्ञिनः पूर्वं प्रतिपादितास्तथा सप्रदेशस्वादिना वक्तव्याः.

એકેન્દ્રિયપૃથિવ્યાદિકપદો મેં છોડકર મનુષ્યાદિકો મેં પૂર્વોક્ત ત્રીન ભંગ
 હોતે હેં. જીવપદ મેં એવં એકેન્દ્રિયપૃથિવ્યાદિક પદો મેં તો અનેક જીવો
 કા જો કિ આહાર, શરીર, ઈન્દ્રિય ઓર શ્વાસોચ્છવાસ હન પર્યાસિયો
 કો પહિલે સે હી પ્રતિપદ કિયે દુપ હોતે હેં સદ્ભાવ રહતા હે, તથા આહાર-
 આદિ અપર્યાસિ ભાવ કે પરિત્યાગ સે આહારાદિ પર્યાસિયો સે જો પર્યા-
 સિભાવ કો પ્રતિપદ્યમાન હોતે હેં એસે મી અનેક જીવો કા સદ્ભાવ
 રહતા હે-ઇસ કારણ "વહવઃ સપ્રદેશાશ્ચ વહવઃ અપ્રદેશાશ્ચ" યહા
 એસા એક ત્રીસરા હી ભંગ હોતા હે. તથા યાકી કે અન્ય જીવો મેં ત્રીન
 ભંગ હોતે હેં. (ભાસામણપજ્જત્તીએ જહા સત્રી) ભાષા ઓર મન કી
 જો પર્યાસિ હે વહ ભાષામનઃપર્યાસિ હે. ભાષાપર્યાસિ ઓર મનઃ પર્યાસિ
 હસ પ્રકાર કી યે દો પર્યાસિયાં અલગ ર હેં-ફિર મી જો યહાં ઉન્હે
 એકરૂપ જૈસા વિવક્ષિત કિયા ગયા હેં ઉસકા કારણ બહુ શ્રુતજનો કો

પૃથ્વીકાય આદિ પાંચ એકેન્દ્રિય પદોને છોડીને બાકીના મનુષ્ય આદિકોમાં
 પૂર્વોક્ત ત્રણ ભંગ થાય છે. જીવપદમાં અને એકેન્દ્રિય પૃથ્વીકાય આદિક
 પદોમાં તો આહાર, શરીર, ઈન્દ્રિય અને શ્વાસોચ્છવાસ આ પર્યાસિઓને
 પહેલેથી જ પ્રાપ્ત કરી હોય એવાં અનેક જીવોનો સદ્ભાવ રહે છે, તથા
 આહારાદિ અપર્યાસિક અવસ્થાનો ત્યાગ કરીને આહારાદિ પર્યાસિક અવસ્થામાં
 આવતા હોય એવા અનેક જીવોનો પણ સદ્ભાવ રહે છે, તે કારણે (વહવઃ
 સપ્રદેશાશ્ચ વહવઃ અપ્રદેશાશ્ચ) અહીં આ એક ત્રીજો ભંગ જ થાય છે, અને
 બાકીના જીવોમાં ત્રણ ભંગ થાય છે. (ભાસામણ પજ્જત્તીએ જહા સત્રી) ભાષા
 અને મનની જે પર્યાસિ છે તેને ભાષામન પર્યાસિ કહે છે. ભાષા પર્યાસિ અને
 મન પર્યાસિ, એ બંને જુદી જુદી પર્યાસિઓ છે, છતાં પણ અહીં તેમને
 એકરૂપ જેવી અભાવવામાં આવી છે, તેનું કારણ એ છે કે ત્રણ વિદ્યાનોએ

તથા ચ સંજ્ઞિનાં જીવાદિષુ ભદ્રત્રયસ્યોક્તત્વેન અત્રાપિ સર્વપદેષુ ભદ્રત્રયં વક્તવ્યમ્, પચ્ચેન્દ્રિયપદાન્વેવાત્ર વક્તવ્યાનિ, અન્યેષાં મિશ્રિતભાષામનઃપર્યાપ્તિવિરહાત્ । 'આહાર અપજ્જત્તીણ જહા અણાહારગા' આહારાપર્યાપ્તૌ યથા અનાહારકા ઉક્તા-સ્તથા વક્તવ્યાઃ; તથા ચ-અનાહારકેષુ જીવૈકેન્દ્રિયવર્જિતેષુ ભદ્રપદ્મકસ્યોક્તત્વેના-ત્રાપિ પદ્ ભદ્રા મણિતવ્યાઃ, આહારપર્યાપ્તિમતામલ્પત્વાત્ । જીવૈકેન્દ્રિયેષુ ચ ભદ્રકસ્યોક્તત્વેન જીવપદે, એકેન્દ્રિયપૃથિવ્યાદિપદેષુ ચ ' સપ્રદેશાશ્ચ અપ્રદેશાશ્ચ ' इत्येक एव तृतीयो भद्रः, सततं विग्रहगतिमताम् आहारपर्याप्तिमतां वहूनां सद्-

इनमें एकत्व मान्य है । भाषापर्याप्ति और मनः पर्याप्ति से पर्याप्त हुए जीव संज्ञी जीवों की तरह सप्रदेशत्व आदि रूप से कहे गये हैं ऐसा जानना चाहिये । तथा-संज्ञी जीवों की तरह समस्त पदों में तीन भंग होते हैं । यहां पर पञ्चेन्द्रिय पदों का ही प्रयोग करना चाहिये । क्योंकि अन्य जीवों को मिश्रित भाषामनः पर्याप्ति का अभाव रहता है । "आहार अपज्जत्तीण जहा अणाहारगा" जिस तरह से अनाहारक जीव कहे गये हैं उसी प्रकार से आहार अपर्याप्ति में भी जानना चाहिये-जीव और एकेन्द्रियवर्जित अनाहारकों में छह भंग कहे गये हैं, सो यहां पर भी छह भंग कहना चाहिये-क्यों कि आहारक पर्याप्ति वाले जीव अल्प होते हैं । जीवपद में और एकेन्द्रियपृथिवी आदिकपदों में "सप्रदेशाश्च अप्रदेशाश्च" ऐसा एक तीसरा ही भंग होता है । क्योंकि आहार अपर्याप्तिवाले विग्रहगत्यापन्न जीव निरन्तर अनेक मिलते

તેમના એકત્વને માન્ય કરેલું છે. ભાષા પર્યાપ્તિ અને મનઃપર્યાપ્તિની પર્યાપ્તિ થયેલા જીવોના સપ્રદેશત્વ આદિનું કથન સંજ્ઞી જીવોના કથન પ્રમાણે જ સમજવું. અહીં પણ સંજ્ઞી જીવોની જેમ સમસ્ત પદોમાં ત્રણ ભંગ થાય છે. આ બંને પર્યાપ્તિઓના ઠંડકોમાં પચ્ચેન્દ્રિય પદોનો જ પ્રયોગ કરવો, કારણ કે તે સિવાયના જીવોમાં મિશ્રિત ભાષામન પર્યાપ્તિનો અભાવ હોય છે.

(આહાર અપજ્જત્તીણ જહા અણાહારગા) અનાહારક જીવોના કથન પ્રમાણે જે આહાર અપર્યાપ્તિવાળા જીવોનું કથન સમજવું. જીવ અને એકેન્દ્રિય સિવાયના અનાહારકોમાં છ ભંગ કહ્યા છે, તે અહીં પણ છ ભંગ સમજવા, કારણ કે આહાર પર્યાપ્તિવાળા જીવો ઓછાં હોય છે. જીવપદમાં એકેન્દ્રિય પૃથ્વીકાય આદિકોમાં (સપ્રદેશાશ્ચ અપ્રદેશાશ્ચ) આ એક જ (ત્રીજો ભંગ) ભંગ થાય છે. તેનું કારણ એ છે કે આહાર અપર્યાપ્તિવાળા વિગ્રહગતિ પ્રાપ્ત કરી હોય એવા જીવો નિરન્તર અનેક મળી શકે છે.

ભાવાત્ । ' સરીરઅવજ્જતીણ, ઇંદિય-અવજ્જતીણ, આણ-પાણ-અવજ્જતીણ
 જીવ ઇર્ગિદિયવજ્જો તિયમંગો ' શરીરઅપર્યાસી, ઇન્દ્રિયાઅપર્યાસી પ્રાણપ્રાણઅપર્યાસી
 જીવકેન્દ્રિયવર્જઃ જીવપદમ્ એકેન્દ્રિયપૃથિવ્યાદિપદાનિ ચ વર્જયિત્વા અન્યેણુ
 પદેણુ ત્રિકમજઃ પૂર્વોક્તાસ્યો મજ્ઞાઃ, શરીરેન્દ્રિયાનપ્રાણાઅપર્યાસિતાનાં કાલા-
 પેક્ષયા સપ્રદેશાનાં સર્વદેવ લાભાત્, અપ્રદેશાનાં ચ કદાચિત્ પદાદીનાં લાભાત્ ।
 જીવપદે, એકેન્દ્રિયપૃથિવ્યાદિપદેણુવત્ ઠૃતીયો મજ્ઞઃ, કિન્તુ- ' નેરહ્ય-દેવ-મણુ-
 ઇર્હિ છબ્મંગા ' નૈરયિક-દેવ-મનુજેણુ પૂર્વોક્તાઃ પડ્નજ્ઞાઃ । ' માસા-મણ-અવજ્જતી-
 ણ જીવાહઓ તિયમંગો ' ભાસા-મનોઽપર્યાસી તોવાદિકઃ જીવાદિપદેણુ ત્રિકમજઃ
 પૂર્વોક્તાસ્યો મજ્ઞાઃ વક્તવ્યાઃ, તથા ચ-જીવે, પંચેન્દ્રિયતિર્થેણુ ચ વહતાં ભાષા-

હું । (સરીરઅવજ્જતીણ, ઇંદિય અવજ્જતીણ, આણપાણ અવજ્જતીણ
 જીવ-ઈર્ગિદિયવજ્જો) જીવપદ ઓર એકેન્દ્રિયપદોં કો છોડકર શરીર
 અપર્યાસિ મેં, ઇન્દ્રિય અપર્યાસિ મેં, શ્વાસોચ્છ્વાસ અપર્યાસિ મેં, અન્ય-
 પદોં મેં પૂર્વોક્ત ત્રીન ભંગ હોતે હું । કારણ કિ શરીર, ઇન્દ્રિય ઓર
 શ્વાસોચ્છ્વાસ સે અપર્યાસ અવસ્થાવાલે જીવ કાલ કી અપેક્ષા સે સપ્ર-
 દેશ સર્વદા મિલતે હું ઓર અપ્રદેશ કદાચિત્ પદાદિ મિલતા હું । જીવ
 પદ મેં ઓર એકેન્દ્રિયપૃથિવ્યાદિક પદોં મેં યહાં એક તીસરા હી ભંગ હૈ ।
 કિન્તુ (નેરહ્ય-દેવ-મણુઈર્હિ છબ્મંગા) નૈરયિક જીવોં મેં, દેવોં મેં ઓર
 મનુષ્યોં મેં છહ ભંગ હોતે હું । (માસા-મણ-અવજ્જતીણ જીવાહઓ
 તિયમંગો) મપાઅપર્યાસિ ઓર મનઃ પર્યાસિ સે અપર્યાસ દ્વાર મેં જીવા-
 દિક પદોં મેં પૂર્વોક્ત ત્રીન ભંગ હોતે હું । તથા ચ-જીવ ઓર પંચેન્દ્રિય
 તિર્થોં મેં ભાષા ઓર મન કી અપર્યાસિ કો પ્રતિપન્ન હુણે અનેકજીવોંકાં

(સરીર અવજ્જતીણ, ઇંદિય અવજ્જતીણ, આણપાણ અવજ્જતીણ, જીવ
 ઇર્ગિદિયવજ્જો) એવપદ અને એકેન્દ્રિય પદોં ત્રિવાયના શરીર અપર્યાસિવાળા,
 ઇન્દ્રિય અપર્યાસિવાળા અને શ્વાસોચ્છ્વાસ અપર્યાસિવાળા બાકીના પદોંમાં
 પૂર્વોક્ત ત્રણ ભંગ થાય છે. કારણ કે શરીર, ઇન્દ્રિય અને શ્વાસોચ્છ્વાસમાં
 અપર્યાસિ અવસ્થાવાળા એવે કાળની અપેક્ષાએ સપ્રદેશ સદા મળી શકે છે
 અને અપ્રદેશ ક્યારેક એકાદ એવ જ મળી શકે છે. એવપદમાં અને એકેન્દ્રિય
 પદોંમાં અહીં ત્રીજે ભંગ જ થાય છે. પરન્તુ (નેરહ્ય, દેવ, મણુઈર્હિ છબ્મંગા)
 નારકોમાં, દેવોંમાં અને મનુષ્યોંમાં છ ભંગ થાય છે.

(માસા-મણ-અવજ્જતીણ જીવાહઓ તિયમંગો) ભાષામન અપર્યાસિ દ્વારમાં
 એવાદિક પદોંમાં પૂર્વોક્ત ત્રણ ભંગ થાય છે. કહેવાનું તોત્પર્ય એ છે કે ભાષા

‘ અભવ્યા: ’ તદુભવનિષેવાય તથૈવ, ‘ સંજ્ઞિન: ’ ‘ પ્રસંજ્ઞિન: ’ ‘ નો સંજ્ઞિ-નો
 અસંજ્ઞિનથ તથૈવ, ‘ સહેશ્યા: ’ કૃષ્ણાદિગજ્જેશ્યા:, ‘ અલેશ્યાથ તથૈવ,
 ‘ દષ્ટિ: ’ સમ્યગ્દષ્ટિ:, મિથ્યાદષ્ટિ:, મિશ્રદષ્ટિથ તથૈવ, ‘ સંયતા: ’ અસંયતા:,
 સંયતાસંયતા:, નોસંયત-નોભસંયત-નોસંયતાસંયતાથ તથૈવ, ‘ કૃપાપિણ: ’
 ક્રોધ-માન-માયા-લોભકૃપાપિણ:, અહ્યાપિણથ તથૈવ, ‘ જ્ઞાનિન: ’ મતિ-

(સપણસા) હસ પ્રકરણમે કાલ કી અપેક્ષાસે જીવ સપ્રદેશ મી હેં ઓર
 અપ્રદેશ મી હેં યહ યાત ઇકત્વ ઓર બહુત્વ ઢણ્ડકોં ઢારા પ્રતિપાદિત કી
 ગઈ હે । (આહારગ) હસ પ્રકરણમે આહારક જીવ ઓર અનાહારક જીવ
 સપ્રદેશ મી હેં ઓર અપ્રદેશ મી હેં યહ યાત ઇકત્વ બહુત્વ ઢણ્ડકોં ઢારા
 પ્રતિપાદિત કી ગઈ હે । ભવ્ય જીવ, અભવ્ય જીવ, તથા નો ભવ્ય નો
 અભવ્યજીવ પ્રકરણમે ભવ્ય જીવ, અભવ્ય જીવ તથા નો ભવ્ય નો અભવ્ય
 જીવ મી હસી તરહ સે હેં યહ યાત પ્રતિપાદિત કી ગઈ હે, સંજ્ઞી અસંજ્ઞી
 તથા નો સંજ્ઞી નો અસંજ્ઞી પ્રકરણ મેં સંજ્ઞી જીવ અસંજ્ઞી જીવ ઓર નો
 સંજ્ઞી નો અસંજ્ઞી જીવ મી હસી તરહ સે હેં યહ યાત પ્રતિપાદિત કી ગઈ
 કૃષ્ણાદિં છહ લેશ્યાવાલેં જીવ ઓર લેશ્યાઓં સેં રહિત હુણ જીવ મી
 હસી તરહ સેં હેં, સમ્યગ્દષ્ટિ, મિથ્યાદષ્ટિ ઓર મિશ્ર દષ્ટિવાલેં જીવ
 મી હસી તરહ સેં હેં, સંયત જીવ, અસંયત જીવ, સંયતાસંયત જીવ

છે-(સપણસા) આ પ્રકરણમાં કાળની અપેક્ષાએ જીવ સપ્રદેશ પણ છે અને
 અપ્રદેશ પણ છે એ વાતનું એકત્વ અને બહુત્વ ઢંડકો દ્વારા પ્રતિપાદન કરવામાં
 આવ્યું છે. (આહારગ) આ પ્રકરણમાં આહારક જીવ અને અનાહારક જીવ
 સપ્રદેશ પણ છે અને અપ્રદેશ પણ છે એ વાતનું એકત્વ અને બહુત્વ ઢંડકો
 દ્વારા પ્રતિપાદન કરવામાં આવ્યું છે. (ભવ્ય) આ પ્રકરણમાં ભવ્ય જીવ
 અભવ્ય જીવ, નો ભવ્ય જીવ અને નો અભવ્ય જીવો પણ એવાં જ છે એવું
 પ્રતિપાદન કરવામાં આવ્યું છે.

(સંજ્ઞિ) આ પ્રકરણમાં સંજ્ઞી, અસંજ્ઞી, નો સંજ્ઞી અને નો અસંજ્ઞી
 જીવો પણ એવાં જ છે, એ વાતનું પ્રતિપાદન કરવામાં આવ્યું છે.

(લેશ્યા) કૃષ્ણાદિ છ લેશ્યાવાળા જીવો અને લેશ્યાઓથી રહિત જીવો
 પણ એવાં જ છે, એવું આ પ્રકરણમાં પ્રતિપાદન કરવામાં આવ્યું છે.

(દષ્ટિ) આ પ્રકરણમાં સમ્યગ્દષ્ટિ, મિથ્યાદષ્ટિ અને મિશ્ર દષ્ટિવાળા
 જીવો પણ એવાં જ છે, એ વાતનું પ્રતિપાદન કરાયું છે.

(સંયત) આ પ્રકરણમાં સંયત, અસંયત, સંયતાસંયત, નો સંયત,

श्रुताऽवधि-मनः पर्यवकेवलज्ञानिनः, अज्ञानिनो मत्याद्यज्ञानिनश्च तथैव, 'सयोगाः' मनोवचःकाययोगिनः, अयोगिनश्च तथैव, 'उपयोगाः' साकाराऽनाकारोपयोगाश्च तथैव, 'सवेदाः' स्त्रीपुरुषनपुंसकवेदवन्तः, अवेदाश्च तथैव, 'सशरीराः' औदारिक-वैक्रियशरीरवन्तः, अशरीराश्च तथैव, 'पर्याप्ताः' आहारशरीरेन्द्रियान-प्राण-भाषा-मनःपर्याप्तिमन्तश्च तथैव सप्रदेशाप्रदेशतयोक्ता इति ॥ सू० १ ॥

तथा नो संयत नो असंयत जीव भी इसी तरह से हैं, क्रोध, मान, माया और लोभ कपायवाले जीव और अकपायी जीव भी इसी तरहसे हैं, मति ज्ञानवाले, श्रुत ज्ञानवाले, अवधि ज्ञानवाले, मनःपर्यय ज्ञानवाले और केवलज्ञानवाले जीव तथा मति आदि अज्ञानवाले जीव भी इसी तरह से हैं, सयोग-मन, वचन एवं काय इन तीन योगवाले जीव और अयोगी जीव भी इसी तरह से हैं, साकार उपयोगवाले और अनाकार उपयोगवाले जीव भी इसी तरह से हैं, स्त्रीवेदवाले, पुरुषवेदवाले, नपुंसक वेदवाले जीव और वेद से रहित हुए जीव भी इसी तरहसे हैं, औदारिक, वैक्रिय शरीरवाले जीव तथा शरीररहित हुए जीव, भी इसी तरह से हैं । आहार, शरीर इन्द्रिय और श्वासोच्छ्वास एवं भाषा मनः पर्याप्ति वाले जीव और पर्याप्तियों से रहित हुए जीव भी इसी तरह से हैं ।

नो असंयत अने नो संयतासंयत एवो पक्ष एवां न छे, ए वातनुं प्रति-पादन करवामां आण्युं छे.

(कसाया) आ प्रकरणुमां क्रोध, मान, माया अने दोष कपायवाणा अने अकपायी एवोनुं पक्ष एव प्रभाणु प्रतिपादन कर्युं छे.

(गाणे) आ प्रकरणुमां मतिज्ञानवाणा, श्रुतज्ञानवाणा, अवधिज्ञानवाणा, मनःपर्याय ज्ञानवाणा अने केवलज्ञानवाणा तथा मिति आदि अज्ञानोवाणा एवोनुं एव प्रभाणु प्रतिपादन कर्युं छे.

(जोगुवओगे) आ प्रकरणुमां मन, वचन अने कायाना योगवाणा सयोगी एवोनुं तथा अयोगी एवोनुं एव प्रभाणु प्रतिपादन करायुं छे. साकार उपयोगवाणा अने निराकार उपयोगवाणा एवोनुं पक्ष एव प्रभाणु तेमां प्रतिपादन करायुं छे.

(वेदेय) स्त्री वेदवाणा, पुरुष वेदवाणा अने नपुंसक वेदवाणा एवोनुं तथा अवेदक एवोनुं आ प्रकरणुमां एव प्रभाणु प्रतिपादन करवामां आण्युं छे.

(सरीर पञ्जर्त्तए) औदारिक आदि सशरीरी एवोनुं तथा अशरीरी एवोनुं तथा आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास अने भाषामन पर्याप्ति-

॥ मत्याख्यानादिवक्तव्यता ॥

जीवाधिकारात् तेषां मत्याख्यानादिकं निरूपयितुमाह-^१ जीवाणं भंते ? इत्यादि ।

मूलम्-जीवाणं भंते ! किं पच्चक्खाणी, अपच्चक्खाणी, पच्चक्खाणापच्चक्खाणी ? गोयमा ! जीवा पच्चक्खाणी वि, अपच्चक्खाणी वि, पच्चक्खाणापच्चक्खाणी वि । सव्वजीवाणं एवं पुच्छा ? गोयमा ! नेरइया अपच्चक्खाणी, जाव-चउरिंदिया, सेसा दो पडिसेहेयव्वा । पंचिदिय तिरिक्खजोणिया णो पच्चक्खाणी अपच्चक्खाणी वि, पच्चक्खाणापच्चक्खाणी वि । नणूसा तिण्णि वि । सेसा जहा-नेरइया । जीवा णं भंते ! किं पच्चक्खाणं जाणंति, अपच्चक्खाणं जाणंति, पच्चक्खाणापच्चक्खाणं जाणंति ? गोयमा ! जे पंचिदिया ते तिन्नि वि जाणंति । अवसेसा पच्चक्खाणं न जाणंति । जीवा णं भंते ! किं पच्चक्खाणं कुव्वंति, अपच्चक्खाणं कुव्वंति, पच्चक्खाणापच्चक्खाणं कुव्वंति ? जहा-ओहिया तहा कुव्वणा । जीवाणं भंते ! किं पच्चक्खाणनिव्वत्तियाउया, अपच्चक्खाणनिव्वत्तिया उया, पच्चक्खाणापच्चक्खाण निव्वत्तिया उया ? गोयमा !

-अर्थात् ये सब पूर्वोक्त जीव एकत्व वहुत्व दण्डकों द्वारा सप्रदेश अप्रदेश हैं-यही सब इस संग्रह गाथाद्वारा इन पूर्वोक्त सप्रदेश. आदि भिन्न २ प्रकरणों में प्रतिपादित किया गया है ॥ सू० १ ॥

वाजा एवेतुं तथा अपर्याप्ति एवेतुं पणु ओज प्रमाहे प्रतिपादन करवामां आव्युं छे अटवे के ते मधां एवेनी काणनी अपेक्षाये सप्रदेशता अने अप्रदेशतातुं ओक्त्व अने भहुत्त इंडोके द्वारा प्रतिपादन करवामां आव्युं छे. ओज वात आ संधुडगाथा द्वारा पूर्वोक्त सप्रदेश आदि अलग अलग प्रक-
रणां प्रतिपादित करवामां आवेल छे. ॥ सूत्र १ ॥

जीवा य, वेमाणिया य पच्चक्खाणणिव्वत्तियाउया,
तिन्नि वि । अवसेसा अपच्चक्खाणणिव्वत्तियाउया ।

गाहा--'पच्चक्खाणं जाणइ, कुव्वइ, तिन्नेव आउनिव्वत्ती ।'

सपएसुद्वेसम्मि य, एमेए दंडगा चउरो ॥ १ ॥

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति ' ॥ २ ॥

॥ छट्मए चउत्थो उद्वेसो ॥ ६--४ ॥

छाया—जीवाः खलु भदन्त ! किं प्रत्याख्यानिनः, अप्रत्याख्यानिनः,
प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यानिनः ? गौतम ! जीवाः प्रत्याख्यानिनोऽपि, अप्रत्याख्या-
निनोऽपि, प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यानिनोऽपि । सर्वजीवानाम् एवम् पृच्छा ? गौतम !

॥ प्रत्याख्यानादिवक्तव्यता ॥

'जीवाणं भंते' इत्यदि ॥

सूत्रार्थ—(जीवाणं भंते ! किं पच्चक्खाणी, अपच्चक्खाणी पच्च-
क्खाणापच्चक्खाणी) हे भदन्त ! जीव क्या प्रत्याख्यानी हैं ! या
अप्रत्याख्यानी हैं ? या प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यानी हैं ? (गोयमा ! जीवा
पच्चक्खाणी वि अपच्चक्खाणी वि, पच्चक्खाणापच्चक्खाणी वि) हे
गौतम ! जीव प्रत्याख्यानी भी हैं, अप्रत्याख्यानी भी है और प्रत्याख्या-
नाप्रत्याख्यानी भी हैं । (सच्चजीवाणं एवं पुच्छा) इसी तरह के प्रश्न हे
भदन्त ! मेरे, सब जीवों के विषय में भी हैं ? (गोयमा ! नेरइया अप

प्रत्याख्यानादि पक्षव्यता—

“जीवाणं भंते !” धत्थादि—

सूत्रार्थ—(जीवाणं भंते ! किं पच्चक्खाणी, अपच्चक्खाणी, पच्चक्खाणा
पच्चक्खाणी ?) हे भदन्त ! एव शुं प्रत्याख्यानी (सर्वं विरतिवाणा) छे ?
हे अप्रत्याख्यानी (सर्वं विरतिथी रद्धित) छे ? हे प्रत्याख्याना प्रत्याख्यानी
(अंशतः विरतिवाणा) छे ?

(गोयमा !) हे गौतम ! (जीवा पच्चक्खाणी वि, अपच्चक्खाणी वि, पच्चक्खा-
णापच्चक्खाणीवि) हे गौतम ! एव प्रत्याख्यानी पणु डोय छे, अप्रत्याख्यानी पणु
डोय छे अने प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यानी पणु डोय छे (सच्चं जीवाणं एवं पुच्छा)
हे भदन्त ! अथां एवेना विषयमां पणु हुं अए प्रश्न पूछता भागुं छुं.

નૈરયિકાઃ અપ્રત્યાહ્યાનિનઃ, યાચત્-ચતુરિન્દ્રિયાઃ, શેષા દ્વૌ પ્રતિપંથગિતવ્ષી,
 પંચેન્દ્રિયતિર્યગ્ગોનિકા નો પ્રત્યાહ્યાનિનઃ અપ્રત્યાહ્યાનિનોઽપિ, પ્રત્યાહ્યાનાઽ-
 પ્રત્યાહ્યાનિનોઽપિ, । મનુષ્યાઽમ્નોઽપિ । શેષા યથા નૈરયિકાઃ, । ત્રીવાઃ સત્તુ
 ભદન્તઃ ! કિં પ્રત્યાહ્યાનં જાનન્તિ, અપ્રત્યાહ્યાનં જાનન્તિ, પ્રત્યાહ્યાનાઽપ્રત્યા-
 હ્યાનં જાનન્તિ ? ગૌતમ ! યે પંચેન્દ્રિયાસ્તે ત્રીણ્યપિ જાનન્તિ, અપ્રત્યાહ્યાઃ પ્રત્યા-

ચ્ચક્ષ્ણાણી, જાત્ર ચતુરિન્દ્રિયા, સેસા દ્વૌ પઠિસેહેયવ્વા) હે ગૌતમ !
 નારકજીવ અપ્રત્યાહ્યાની હું-યાચત્ ચૌન્દ્રિયજીવોં તક કે જીવોં કો
 અપ્રત્યાહ્યાની જાનના ચાહ્યે । યાક્રી કે દ્વૌ ભંગો-પ્રત્યાહ્યાની ઔર
 પ્રત્યાહ્યાનાપ્રત્યાહ્યાની કા ઇનમેં નિપેથ કર દેના ચાહ્યે ! (પંચિન્દ્રિ-
 યતિરિક્ષ્ણજોણિયા ણો પચ્ચક્ષ્ણાણી, અપચ્ચક્ષ્ણાણી વિ, પચ્ચક્ષ્ણાણા-
 પચ્ચક્ષ્ણાણી વિ, મળૂસા તિણ્ણિ વિ, સેસા જહા નેરહ્યા) પંચેન્દ્રિય
 તિર્યચ પ્રત્યાહ્યાની નહીં હું કિન્તુ અપ્રત્યાહ્યાની ણી હું, પ્રત્યાહ્યાનાપ્ર-
 ત્યાહ્યાની ણી હું । મનુષ્યોં મેં યે ત્રીનોં ભંગ હોતે હું । અવશિષ્ટ જીવોં
 કો નારકજીવોં કે સમાન સમજ્ઞના ચાહ્યે । (જીવાણં ભંતે ! કિં પચ્ચ-
 ક્ષ્ણાણં જાણંતિ, અપચ્ચક્ષ્ણાણં જાણંતિ, પચ્ચક્ષ્ણાણાપચ્ચક્ષ્ણાણં
 જાણંતિ ?) હે ભદન્ત ! જીવ કયા પ્રત્યાહ્યાન કો જાનતે હું ? અપ્રત્યા-
 હ્યાન કો જાનતે હું ? પ્રત્યાહ્યાનાપ્રત્યાહ્યાન કો જાનતે હું ? (ગોયમા)
 હે ગૌતમ ! (જે પંચિન્દ્રિયા તે તિન્નિ વિ જાણંતિ, અવસેસા પચ્ચક્ષ્ણાણં

(ગોયમા ! નેરહ્યા અપચ્ચક્ષ્ણાણી, જાત્ર ચતુરિન્દ્રિયા સેસા દ્વૌ પઠિસેહેયવ્વા)

હે ગૌતમ ! નારકો અપ્રત્યાહ્યાની હોય છે. ચતુરિન્દ્રિય પર્યન્તના છવેા પણુ
 અપ્રત્યાહ્યાની હોય છે. તેઓ પ્રત્યાહ્યાની પણુ હોતા નથી અને પ્રત્યાહ્યાના
 પ્રત્યાહ્યાની પણુ હોતા નથી આ રીતે ણાક્રીના ણે વિકલ્પોના અહીં સ્વીકાર
 થતો નથી. (પંચિન્દ્રિયતિરિક્ષ્ણજોણિયા ણો પચ્ચક્ષ્ણાણો અપચ્ચક્ષ્ણાણો વિ,
 પચ્ચક્ષ્ણાણાપચ્ચક્ષ્ણાણો વિ, મળૂસા તિણ્ણિ વિ, સેસા જહા નેરહ્યા) પંચેન્દ્રિય
 તિર્યચો પ્રત્યાહ્યાની નથી પરંતુ અપ્રત્યાહ્યાની પણુ છે અને પ્રત્યાહ્યાના-
 પ્રત્યાહ્યાની પણુ છે. મનુષ્યોને તે ત્રણે ભંગ (વિકલ્પ) લાગુ પડે છે.
 ણાક્રીના છવેાના વિષયમાં નારકોની જેમ જ સમજવું.

(જીવાણં ભંતે ! કિં પચ્ચક્ષ્ણાણં જાણંતિ, અપચ્ચક્ષ્ણાણં જાણંતિ, પચ્ચ-
 ક્ષ્ણાણા-પચ્ચક્ષ્ણાણં જાણંતિ ?) હે ભદન્ત ! છવેા શું પ્રત્યાહ્યાનને જાણે છે ?
 અપ્રત્યાહ્યાનને જાણે છે ? પ્રત્યાહ્યાના-પ્રત્યાહ્યાનને જાણે છે ?

(ગોયમા !) હે ગૌતમ ! (જે પંચિન્દ્રિયા તે તિન્નિ વિ જાણંતિ, અવસેસા

સ્થાનં ન જાનન્તિ । જીવાઃ સ્વલુ ભદન્ત ! કિં પ્રત્યાખ્યાનં કુર્વન્તિ, અપ્રત્યાખ્યાનં કુર્વન્તિ, પ્રત્યાખ્યાનાઽપ્રત્યાખ્યાનં કુર્વન્તિ ? યથા ઔઘિકસ્તથા કરણમ્ । જીવાઃ સ્વલુ ભદન્ત ! કિં પ્રત્યાખ્યાનનિર્વર્તિતાયુષ્કાઃ, અપ્રત્યાખ્યાનનિર્વર્તિતા યુષ્કાઃ, પ્રત્યાખ્યાનાઽપ્રત્યાખ્યાનનિર્વર્તિતાયુષ્કાઃ ? ગૌતમ ! જીવાથ વૈમાનિકાથ પ્રત્યા-

ન જાણંતિ) જો જીવ પંચેન્દ્રિય હૈં વે તીનોં કો જાનતે હૈં । વાકી કે જીવ પ્રત્યાખ્યાન કો નહીં જાનતે હૈં । ઈસી તરહ સે વે અપ્રત્યાખ્યાન કો નહીં જાનતે હૈં ઔર પ્રત્યાખ્યાનાપ્રત્યાખ્યાન કો ખા નહીં જાનતે હૈં । (જીવાણં મંતે ! કિં પચ્ચક્ષ્ણાણં કુર્વંતિ, અપચ્ચક્ષ્ણાણં કુર્વંતિ, પચ્ચક્ષ્ણાણાપચ્ચક્ષ્ણાણં કુર્વંતિ) હે ભદન્ત ! જીવ કયા પ્રત્યાખ્યાન કરતે હૈં ? અપ્રત્યાખ્યાન કરતે હૈં ? પ્રત્યાખ્યાનાપ્રત્યાખ્યાન કરતે હૈં ? (જહા ઓહિયા તહા કુર્વ્વણા) હે ગૌતમ ! જિસ પ્રકારસે ઔઘિક દષ્ટક કહા હૈં ઈસી પ્રકાર સે પ્રત્યાખ્યાન ક્રિયા જાનના ચાહિયે । (જીવાણં મંતે ! કિં પચ્ચક્ષ્ણાણનિવ્વત્તિયાઽયા, અપચ્ચક્ષ્ણાણનિવ્વત્તિયાઽયા પચ્ચક્ષ્ણાણાપચ્ચક્ષ્ણાણનિવ્વત્તિયાઽયા ?) હે ભદન્ત ! જીવ કયા પ્રત્યાખ્યાન સે નિર્વર્તિત આયુવાલે હોતે હૈં કયા ? અપ્રત્યાખ્યાનસે નિર્વર્તિત આયુવાલે હોતે હૈં કયા ? પ્રત્યાખ્યાનાપ્રત્યાખ્યાન સે નિર્વર્તિત આયુવાલે હોતે હૈં કયા ? (ગોચમા) હે ગૌતમ ! (જીવા ય વૈમાણિયા ય પચ્ચક્ષ્ણાણનિવ્વત્તિયાઽયા, તિન્નિ વિ, અવસેસા અપચ્ચક્ષ્ણાણનિવ્વત્તિયાઽયા)

પચ્ચક્ષ્ણાણં ન જાણંતિ) પંચેન્દ્રિય ળવો ત્રણેને નણે છે. ખાત્રીના ળવો પ્રત્યાખ્યાનને નણતા નથી અને પ્રત્યાખ્યાના-પ્રત્યાખ્યાનને પણ નણતા નથી.

(જીવાણં મંતે ! કિં પચ્ચક્ષ્ણાણં કુર્વંતિ, અપચ્ચક્ષ્ણાણં કુર્વંતિ, પચ્ચક્ષ્ણાણાપચ્ચક્ષ્ણાણં કુર્વંતિ ?) હે ભદન્ત ! ળવો શું પ્રત્યાખ્યાન કરે છે ? અપ્રત્યાખ્યાન કરે છે ? પ્રત્યાખ્યાના-પ્રત્યાખ્યાન કરે છે ?

(જહા ઓહિયા તહા કુર્વ્વણા) હે ગૌતમ ! ઔઘિક (સામાન્ય ળવ) દંડકમાં જે પ્રમાણે કહું છે એજ પ્રમાણે પ્રત્યાખ્યાન ક્રિયાના વિપર્યયાં પણ સમજવું. (જીવાણં મંતે ! કિં પચ્ચક્ષ્ણાણનિવ્વત્તિયાઽયા, અપચ્ચક્ષ્ણાણનિવ્વત્તિયાઽયા, પચ્ચક્ષ્ણાણાપચ્ચક્ષ્ણાણનિવ્વત્તિયાઽયા ?) હે ભદન્ત ! ળવો શું પ્રત્યાખ્યાનથી નિર્વર્તિત આયુવાળા થાય છે ? શું ળવો અપ્રત્યાખ્યાનથી નિર્વર્તિત આયુવાળા થાય છે ? શું ળવો પ્રત્યાખ્યાના-પ્રત્યાખ્યાનથી નિર્વર્તિત આયુવાળા થાય છે ?

(ગોચમા ।) હે ગૌતમ ! (જીવા ય વૈમાણિયાય પચ્ચક્ષ્ણાણનિવ્વત્તિયાઽયા, તિન્નિ વિ અવસેસા અપચ્ચક્ષ્ણાણનિવ્વત્તિયાઽયા) ળવ અને વૈમાનિક ઈવે

રૂપાનિર્વર્તિતાયુષ્કાઃ, ધ્રુવોઽપિ । અવશેષાઃ પ્રપત્યારૂપાનિર્વર્તિનાયુષ્કાઃ ॥
(ગાથા)—પ્રત્યારૂપાને જાનાતિ, કરોતિ, પ્રીયેવ, પ્રાયુર્નિર્ણુતિઃ ।

સપ્રદેશોદેશે ચ પચમેતે દણ્ડકામત્વારઃ, ॥ ૧ ॥

તદેવં મદન્ત ! તદેવં મદન્ત ! ઇતિ ॥ મૂ० ૨ ॥

પષ્ટઘટકે ચતુર્થઁષ્ટકઃ ॥ ૬-૪

ટીકા— ' જીવાણં મંતે । કિં પચ્ચક્ષણી, અપચ્ચક્ષણી, પચ્ચક્ષણા-
પચ્ચક્ષણી ? ' ગૌતમઃ પૃચ્છતિ—હે મદન્ત ! જીવાઃ સ્વત્ કિં પ્રત્યારૂપાનિનઃ—
જીવ ઓર વૈમાનિક દેવ પ્રત્યારૂપાન સે નિર્વર્તિત આયુવાલે હોતે હં ।
અપ્રત્યારૂપાન સે નિર્વર્તિત આયુવાલે હોતે હં । પ્રત્યારૂપાનાપ્રત્યારૂપાન
સે નિર્વર્તિત આયુવાલે હોતે હં । તથા ચાકી કે જીવ અપ્રત્યારૂપાન સે
નિર્વર્તિત આયુવાલે હોતે હં । (ગાહા-પચ્ચક્ષણાણં જાણઙ્, કુવ્વહ
તિન્નેવ આઝનિવ્વત્તી । સપ્પસુદ્દેસમ્મિ ય પમેણ દંડગા ચરો) " પ્રત્યા-
રૂપાન " યહ એક દણ્ડક હૈ । " જાનાતિ " યહ દ્વિતીયદણ્ડક હૈ । " કુ-
વ્વહ " યહ તીસરા દણ્ડક હૈ । પ્રત્યારૂપાન, અપ્રત્યારૂપાન ઓર પ્રત્યા-
રૂપાનાપ્રત્યારૂપાન ઇન તીનોં કો જાનતા હૈ, કરતા હૈ તથા આયુષ્ક કી
નિવૃત્તિ કરતા હૈ—એસા યહ ચતુર્થ દણ્ડક હૈ સપ્રદેશ ઉદ્દેશક મેં ઇસ
પ્રકાર સે યે ચાર દણ્ડક હૈ । (સેવં મંતે ! સેવં મંતે ! ત્તિ) હે મદન્ત !
જૈસા આપને કહ્યા હૈ વહ એસા હી હૈ, હે મદન્ત ! વહ એસા હી હૈ ।

ટીકાર્થ—જીવ કા અધિકાર હોને કે કારણ સૂત્રકાર ઇનકે પ્રત્યા-
રૂપાન આદિ કા નિરૂપણ ઇસ સૂત્ર દ્વારા કર રહે હૈ—ઇસમેં ગૌતમ ને

પ્રત્યાખ્યાનથી નિવર્તિત આયુવાળા થાય છે, અપ્રત્યાખ્યાનથી નિર્વર્તિત આયુ-
વાળા થાય છે, અને પ્રત્યાખ્યાના-પ્રત્યાખ્યાનથી નિર્વર્તિત આયુવાળા થાય
છે, તથા બાકીના જીવો અપ્રત્યાખ્યાનથી નિર્વર્તિત આયુવાળા થાય છે.

(ગાહા-પચ્ચક્ષણાણં જાણઙ્, કુવ્વહ તિન્નેવ આઝનિવ્વત્તી સપ્પસુદ્દેસમ્મિ ય
પમેણ દંડગા ચરો) " પ્રત્યાખ્યાન " આ એક દંડક છે, " જાનાતિ (જાણે છે) "
આ બીજું દંડક છે, " કુવ્વહ (કરે છે) " આ ત્રીજું દંડક છે. " પ્રત્યા-
ખ્યાન, અપ્રત્યાખ્યાન અને પ્રત્યાખ્યાનાપ્રત્યાખ્યાનને જાણે છે, કરે છે તથા
આયુષ્કની નિવૃત્તિ કરે છે, " એવું ચોથું દંડક છે. સપ્રદેશ ઉદ્દેશકમાં આ
પ્રકારના આ ચાર દંડક છે.

(સેવં મંતે ! સેવં મંતે ! ત્તિ) હે મદન્ત ! આપે કહ્યા પ્રમાણે જ છે.
હે મદન્ત ! આપની વાત સર્વથા સત્ય જ છે.

ટીકાર્થ—જીવને અધિકાર ચાલી રહ્યો છે. તેથી સૂત્રકાર આ સૂત્રમાં
પ્રશ્નોત્તરો દ્વારા જીવનાં પ્રત્યાખ્યાન આદિનું નિરૂપણ કરે છે—

સર્વવિરતિમન્તઃ, અથવા અપ્રત્યાખ્યાનિનઃ વિરતિરહિતાઃ ‘ પ્રત્યાખ્યાનાપ્રત્યાખ્યાનિનો દેશવિરતિમન્તો વા ભવન્તિ ? ભગવાનાહ—‘ ગોયમા ! જીવા પચ્ચક્ષ્ણાણી વિ, અપચ્ચક્ષ્ણાણી વિ, પચ્ચક્ષ્ણાણાપચ્ચક્ષ્ણાણી વિ ’ હે ગૌતમ ! જીવાઃ કેચિત્ પ્રત્યાખ્યાનિનોઽપિ સર્વવિરતા અપિ ભવન્તિ, કેચિદ્ જીવા અપ્રત્યાખ્યાનિનોઽપિ અવિરતા અપિ ભવન્તિ, કેચિચ્ચ જીવાઃ પ્રત્યાખ્યાનાપ્રત્યાખ્યાનિનોઽપિ દેશવિરતા

પ્રશ્નુ સે એસા પૂઝા હૈ કિ—“ જીવાણં મંતે ! કિં પચ્ચક્ષ્ણાણી, અપચ્ચક્ષ્ણાણી, પચ્ચક્ષ્ણાણાપચ્ચક્ષ્ણાણી ? ” હે મદન્ત ! જીવ કયા પ્રત્યાખ્યાની—સર્વવિરતિવાલે હોતે હૈં ? અથવા—અપ્રત્યાખ્યાની—સર્વવિરતિ સે રહિત હોતે હૈં ? યા પ્રત્યાખ્યાનાપ્રત્યાખ્યાની—દેશવિરતિવાલે હોતે હૈં ? હસ ગૌતમકે પ્રશ્નકે ઉત્તારમે પ્રશ્નુ ઉનસે કહતે હૈં કિ—(ગોયમા) હે ગૌતમ ! (જીવા) જીવ (પચ્ચક્ષ્ણાણી વિ, અપચ્ચક્ષ્ણાણી વિ, પચ્ચક્ષ્ણાણાપચ્ચક્ષ્ણાણી વિ) પ્રત્યાખ્યાની મી હોતે હૈં, અપ્રત્યાખ્યાની મી હોતે હૈં ઓર પ્રત્યાખ્યાનાપ્રત્યાખ્યાની મી હોતે હૈં । તાત્પર્ય કહને કા યહ હૈ કિ હસ સંસાર મે કિતનેક એસે મી જીવ હૈં, જો સર્વવિરતિરૂપ ચારિત્રવાલે હોતે હૈં—કિતનેક એસે મી જીવ હૈં કિ જીનકે કિસી મી પ્રકાર કી વિરતિ નહીં હોની હૈ—અવિરત હોતે હૈં । ઓર કિતનેક જીવ એસે મી હોતે હૈં કિ જો દેશવિરતિરૂપ શ્રાવકાચાર કો ધારણ કિયે હુણ હોતે હૈં ।

ગૌતમ સ્વામી મહાવીર પ્રશ્નુને એવો પ્રશ્ન પૂછે છે કે—(જીવાણં મંતે ! કિં પચ્ચક્ષ્ણાણી, અપચ્ચક્ષ્ણાણી, પચ્ચક્ષ્ણાણાપચ્ચક્ષ્ણાણી ?) હે મદન્ત ! એવો શું પ્રત્યાખ્યાની—સર્વ વિરતિવાળા—હોય છે ? કે અપ્રત્યાખ્યાની—સર્વ વિરતિ રહિત—હોય છે ? કે પ્રત્યાખ્યાના—પ્રત્યાખ્યાની—દેશવિરતિવાળા (અંશતઃ વિરતિયુક્ત) હોય છે ?

ગૌતમ સ્વામીના પ્રશ્નને જવાબ આપતા મહાવીર પ્રશ્નુ કહે છે—(ગોયમા !) હે ગૌતમ ! (જીવા) એવો (પચ્ચક્ષ્ણાણી વિ, અપચ્ચક્ષ્ણાણી વિ, પચ્ચક્ષ્ણાણાપચ્ચક્ષ્ણાણી વિ) પ્રત્યાખ્યાની પણ હોય છે, અપ્રત્યાખ્યાની પણ હોય છે, અને પ્રત્યાખ્યાના—પ્રત્યાખ્યાની પણ હોય છે. આ કથનને ભાવાર્થ એ છે કે આ સંસારમાં કેટલાક એવાં એવો હોય છે કે જેઓ સર્વવિરતિરૂપ ચારિત્રવાળા હોય છે, કેટલાક એવાં પણ એવો હોય છે કે જેઓ કોઈ પણ પ્રકારની વિરતિથી રહિત—અવિરત હોય છે, અને કેટલાક એવાં પણ એવો હોય છે કે જેમણે દેશવિરતિરૂપ શ્રાવકાચારને અંગીકાર કરેલ હોય છે.

અપિ ભવન્તિ, ' સઙ્ગજીવાણં एवં पुच्छा ' સઙ્ગજીવાણાં નૈરપિદ્ધાદીનામપિ અપ્-
જીવતામાન્યવદેવ પુચ્છા ગૌતમસ્ય પ્રશ્નો વિજ્ઞેયઃ । મગધનાદ- ' ગોયમા ! નેર-
હયા અવચ્ચક્ષ્ણાણી જાવ-ચરિરિદિયા ' હે ગૌતમ ! નૈરપિદ્ધાઃ અપત્યાહ્યાનિનો-
વિરતિરહિતા ભવન્તિ, યાવત્-ચતુરિન્દ્રિયા અપિ અપત્યાહ્યાનિનઃ અવિરતા ભવન્તિ,
યાવત્-રૂપાત્-માનપતપ એકેન્દ્રિયાઃ પૃથિવ્યાદયઃ પદ્મ સ્વાવરાઃ, દ્વીન્દ્રિયાઃ
ત્રીન્દ્રિયાઃ સંગ્રાહાઃ, કિન્તુ ' સેસા દો પડિસેહેપગ્મા ' નૈરપિદ્ધાદિચતુરિન્દ્રિયપર્થ-

અવ ગૌતમ હસી પાતકો જાનને કે લિયે નારક આદિ જીવોંકે વિષયમેં
પ્રશ્નુ સે એસા કહતે હેં ફિ હે ભદન્ત ! " સઙ્ગજીવાણં एवં पुच्छा "
મેરી ઇચ્છા ઇસાં પ્રકાર સે સવ જીવોં કે પ્રત્યાહ્યાન આદિ કો જાનને કે
લિયે હો રહી હેં તો આપ મુક્તે સમજાઈયે-વ્યોં ફિ અભીતક તો આપને
હમેં સામાન્યરૂપ સે જીવ કે વિષય મેં પ્રત્યાહ્યાન આદિ કો સમજાયા
હેં । ગૌતમકે હસ પ્રશ્ન કા સમાધાન કરને કે નિમિત્ત પ્રશ્નુ ડનસે કહતે
હેં ફિ- ' ગોયમા ' હે ગૌતમ ! (નેરહયા અવચ્ચક્ષ્ણાણી જાવ ચરિરિદિયા)
નારક જીવ અપ્રત્યાહ્યાની હોતે હેં-વ્યોં ફિ ડનકે કિસી મી
પ્રકાર કો વિરતિ કા ડદ્ય નહીં હો સકતા હેં । ઇસી પ્રકાર સે
ચૌદન્દ્રિય જીવ મી અપ્રત્યાહ્યાની હોતે હેં । યહાં પર યાવત્ શબ્દ સે-
" ભવનપતિ, એકેન્દ્રિય જીવ-અર્થાત્ પૃથિવ્યાદિક પાંચ સ્થાવર, દ્વીન્દ્રિય,
તેજન્દ્રિય " ઇન સવકા ગ્રહણ હુઆ હેં । અતઃ જય યે સવ જીવ અપ્રત્યા-

હવે ગૌતમ સ્વામી નારકાદિ જીવોના વિષયમાં પણ આ પ્રકારનો જ
પ્રશ્ન પૂછે છે-(સઙ્ગજીવાણં एवં पुच्छा) હે ભદન્ત ! સમસ્ત જીવોના
પ્રત્યાહ્યાન આદિના વિષયમાં પણ મારો એજ પ્રકારનો પ્રશ્ન છે. આપે
સામાન્ય રૂપે જીવના પ્રત્યાહ્યાન આદિ વિષે તો સમજાવ્યું, પણ હવે નારક
આદિ પ્રત્યેક પર્યાયના જીવોના પ્રત્યાહ્યાન આદિ વિષે જાણવાની મારી ઇચ્છા છે.

મહાવીર પ્રશ્નુ ગૌતમ સ્વામીને આ પ્રમાણે જવાબ આપે છે-(ગોયમા !)
હે ગૌતમ ! (નેરહયા અવચ્ચક્ષ્ણાણી જાવ ચરિરિદિયા) નારક જીવો અપ્રત્યા-
હ્યાની હોય છે, કારણ કે તેઓમાં કોઈ પણ પ્રકારની વિરતિનો ઉદય સંભવી
શકતો નથી. એજ પ્રમાણે ચતુરિન્દ્રિય પર્યન્તના જીવો પણ અપ્રત્યાહ્યાની
હોય છે. અહીં " જાવ (પર્યન્ત)" પદ્યથી " ભવનપતિ, એકેન્દ્રિય જીવો
(પૃથ્વીકાય આદિ પાંચ સ્થાવર) દ્વીન્દ્રિય અને તેજન્દ્રિય " આટલા જીવોને
શ્રદ્ધા કરવા. આ રીતે એ બધાં જીવો અપ્રત્યાહ્યાની (અવિરત) હોવાથી.
તેમને પ્રત્યાહ્યાની પણ કહ્યા નથી અને પ્રત્યાહ્યાના-પ્રત્યાહ્યાની પણ કહ્યા

न्तानां शेषो द्वौ प्रत्याख्यान-प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यानात्मकौ प्रतिषेधयितव्यौ, तथाहि-नैरयिकादिचतुरिन्द्रियान्ता नो प्रत्याख्यानिनः सर्वविरताः, नो वा प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यानिनो देशविरता भवन्ति तेषामविरतत्वात्, 'पंचिदियतिरिक्खजोगिया णो पच्चक्खाणी, अपच्चक्खाणी वि, पच्चक्खाणापच्चक्खाणीवि,' पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकाः नो प्रत्याख्यानिनः न सर्वविरता भवन्ति किन्तु अपत्याख्यानिनोऽपि केचिद् अविरता अपि भवन्ति, केचित् प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यानिनो

ख्यानी-अविरत होते हैं तो इसी कारण से यहाँ पर (सेसा दो पडिसे हेयव्वा) प्रत्याख्यानी होने का और प्रत्याख्याना-प्रत्याख्यानी होने का प्रतिषेध किया गया है । चारित्रमोहनीय कर्मकी प्रकृति जो प्रत्याख्यानावरण क्रोध मान माया लोभ है उसके अभावसे तो सर्वविरतिरूप प्रत्याख्यान होता है और अप्रत्याख्यानवरण क्रोध मान माया लोभके अभाव से श्रावकका देशविरतिरूप चारित्र होता है-सो नारक जीवों में यावत् चौइन्द्रिय जीवोंमें इनका अभाव नहीं होता है । कारण कि नारक आदि जीवों में ऐसी योग्यता नहीं है और एकेन्द्रियादिक जीवों में मन का अभाव है । संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवों के ही चारित्र की प्राप्ति होना कहा गया है । 'पंचिदियतिरिक्ख जोगिया णो पच्चक्खाणी अपच्चक्खाणी वि, पच्चक्खाणापच्चक्खाणी वि ' पंचेन्द्रिय तिर्यग्यों के सर्व विरतिरूप प्रत्याख्यान नहीं होता है । कारण सर्वविरतिरूप चारित्र के नियमों का प्रतिपालन उनसे अपनी अवस्था में पूर्णरूप से यथावत् हो

नथी. ऐत्र वात (सेसा दो पडिसेहेयव्वा) आ सूत्रमां प्रकट करी छे अट्ठे के अप्रत्याख्यानी सिवायना अन्ने विकल्पेने। अर्द्धी अस्वीकार समजवे। चारित्र मोडनीय कर्मनी प्रकृति के प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया अने लोभ छे, तेना अभावथी तो सर्वविरतिरूप प्रत्याख्यान थाय छे, अने अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया अने लोभना अभावथी श्रावकनुं देशविरतिरूप चारित्र संभव छे. पणु नारकथी चतुरिन्द्रिय पर्यन्तना जिवेमां तेमने अभाव छे। कारण के नारक आदि जिवेमां ऐवी योग्यता छेती नथी अने एकेन्द्रियथी चतुरिन्द्रिय पर्यन्तना जिवेमां मनने अभाव छे। संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जिवेमां च चारित्रनी प्राप्ति संभवी शके छे.

(पंचिदियतिरिक्खजोगिया णो पच्चक्खाणी, अपच्चक्खाणी वि, पच्चक्खाणापच्चक्खाणी वि) पंचेन्द्रिय तिर्यग्योंमां सर्वविरतिरूप प्रत्याख्यान थता नथी. कारण के सर्वविरतिरूप चारित्रना नियमोनुं प्रतिपालन ते अवस्थामां योग्य

અપિ ભવન્તિ, ' સઙ્ગજીવાણં एवં પુચ્છા ' તર્વજીવાનાં નૈરપિહાદીનામપિ એવમ્-
 જીવતામાન્યવદેવ પૃચ્છા ગૌતમસ્ય પ્રશ્નો વિજ્ઞયઃ । મગચનાહ- ' ગોચમા ! નેર-
 હયા અપચ્ચક્ષણી જાવ-ચતરિંદિયા ' હે ગૌતમ ! નૈરપિહાઃ અપત્યાહ્યાનિનો-
 ધિરતિરહિા ભવન્તિ, યાવત્-ચતુરિન્દ્રિયા અપિ અપત્યાહ્યાનિનઃ અવિસ્તા ભવન્તિ,
 યાવત્-રૂપાત્-ભવનપતિ એકેન્દ્રિયાઃ પૃથિગ્વાદયઃ પચ્ચ સ્વાચારાઃ, દ્વીન્દ્રિયાઃ
 ત્રીન્દ્રિયાઃ સંગ્રાહાઃ, કિન્તુ ' સેતા દો પડિસેહેપચ્ચા ' નૈરપિહાદિચતુરિન્દ્રિયપર્થ-

અવ ગૌતમ હસી પાતકો જાનને કે લિયે નારક આદિ જીવોંકે વિષયમેં
 પ્રશ્નુ સે એસા કહતે હેં ફિ હે ભદન્ત ! " સઙ્ગજીવાણં एवં પુચ્છા "
 મેરી ઇચ્છા ઇસી પ્રકાર સે સવ જીવોં કે પ્રત્યાહ્યાન આદિ કો જાનને કે
 લિયે હો રહી હેં સો આપ મુક્તે સમજાઈયે-વર્ગોં ફિ અમી તક તો આપને
 હમેં સામાન્યરુપ સે જીવ કે વિષય મેં પ્રત્યાહ્યાન આદિ કો સમજાપા
 હેં । ગૌતમકે હસ પ્રશ્ન કા સમાધાન કરને કે નિમિત્ત પ્રશ્નુ ઉનસે કહતે
 હેં ફિ- ' ગોચમા ' હે ગૌતમ ! (નેરહયા અપચ્ચક્ષણી જાવ ચતરિંદિયા)
 નારક જીવ અપ્રત્યાહ્યાની હોતે હેં-વર્ગોં ફિ ઉનકે કિસી મી
 પ્રકાર કી વિરતિ કા ઉદય નહીં હો સકતા હેં । ઇસી પ્રકાર સે
 ચૌદન્દ્રિય જીવ મી અપ્રત્યાહ્યાની હોતે હેં । યહાં પર યાવત્ શબ્દ સે-
 " ભવનપતિ, એકેન્દ્રિય જીવ-અર્થાત્ પૃથિગ્વાદિક પાંચ સ્થાવર, દ્વીન્દ્રિય,
 તેજન્દ્રિય " ઇન સવકા ગ્રહણ હુઆ હેં । અતઃ જય યે સવ જીવ અપ્રત્યા-

હવે ગૌતમ સ્વામી નારકાદિ જીવોના વિષયમાં પણ આ પ્રકારનો જ
 પ્રશ્ન પૂછે છે- (સઙ્ગજીવાણં एवં પુચ્છા) હે ભદન્ત ! સમસ્ત જીવોના
 પ્રત્યાહ્યાન આદિના વિષયમાં પણ મારો એજ પ્રકારનો પ્રશ્ન છે. આપે
 સામાન્ય રૂપે જીવના પ્રત્યાહ્યાન આદિ વિષે તો સમજાવ્યું, પણ હવે નારક
 આદિ પ્રત્યેક પર્યાયના જીવોના પ્રત્યાહ્યાન આદિ વિષે જાણવાની મારી ઈચ્છા છે.

મહાવીર પ્રશ્નુ ગૌતમ સ્વામીને આ પ્રમાણે જવાબ આપે છે- (ગોચમા !)
 હે ગૌતમ ! (નેરહયા અપચ્ચક્ષણી જાવ ચતરિંદિયા) નારક જીવો અપ્રત્યા-
 હ્યાની હોય છે, કારણ કે તેઓમાં કોઈ પણ પ્રકારની વિરતિનો ઉદય સંભવી
 શકતો નથી. એજ પ્રમાણે ચતુરિન્દ્રિય પર્યન્તના જીવો પણ અપ્રત્યાહ્યાની
 હોય છે. અહીં " જાવ (પર્યન્ત) " પદથી " ભવનપતિ, એકેન્દ્રિય જીવો
 (પૃથ્વીકાય આદિ પાંચ સ્થાવર) દ્વીન્દ્રિય અને તેજન્દ્રિય " આટલા જીવોને
 શ્રદ્ધા કરવા. આ રીતે એ બધાં જીવો અપ્રત્યાહ્યાની (અવિસ્ત) હોવાથી.
 તેમને પ્રત્યાહ્યાની પણ કહ્યા નથી અને પ્રત્યાહ્યાના-પ્રત્યાહ્યાની પણ કહ્યા

नानां शेषो द्वौ प्रत्याख्यान-प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यानात्मकौ प्रतिषेधयित्वा,
 तथाहि-नैरयिकादिचतुरिन्द्रियान्ता नो प्रत्याख्यानिनः सर्वविरताः, नो वा प्रत्या-
 ख्यानाप्रत्याख्यानिनो देशविरता भवन्ति तेषामविरतत्वात्, 'पंचिन्द्रियतिरिक्त्व-
 जोगिया णो पच्चक्खाणी, अपच्चक्खाणी वि, पच्चक्खाणापच्चक्खाणीवि,' पञ्च-
 न्द्रियतिर्यग्योनिकाः नो प्रत्याख्यानिनः न सर्वविरता भवन्ति किन्तु अपत्या-
 ख्यानिनोऽपि केचिद् अविरता अपि भवन्ति, केचित् प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यानिनो

ख्यानी-अविरत होते हैं तो इसी कारण से यहाँ पर (सेसा दो पडिसे हेयव्वा) प्रत्याख्यानी होने का और प्रत्याख्याना-प्रत्याख्यानी होने का प्रतिषेध किया गया है। चारित्रमोहनीय कर्मकी प्रकृति जो प्रत्याख्याना-वरण क्रोध मान माया लोभ है उसके अभावसे तो सर्वविरतिरूप प्रत्याख्यान होता है और अप्रत्याख्यानवरण क्रोध मान माया लोभके अभाव से श्रावकका देशविरतिरूप चारित्र होता है-सो नारक जीवों में यावत् चौहन्द्रिय जीवोंमें इनका अभाव नहीं होता है। कारण कि नारक आदि जीवों में ऐसी योग्यता नहीं है और एकेन्द्रियादिक जीवों में मन का अभाव है। संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवों के ही चारित्र की प्राप्ति होना कहा गया है। 'पंचिन्द्रियतिरिक्त्व जोगिया णो पच्चक्खाणी अपच्चक्खाणी वि, पच्चक्खाणापच्चक्खाणी वि' पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों के सर्व विरतिरूप प्रत्याख्यान नहीं होता है। कारण सर्वविरतिरूप चारित्र के नियमों का प्रतिपालन उनसे अपनी अवस्था में पूर्णरूप से यथावत् हो

नथी. ओज वात (सेसा दो पडिसेहेयव्वा) आ सूत्रमां प्रकट करी छे ओटवे के अप्रत्याख्यानी सिवायना जन्ने विकल्पेनो अर्द्धी अस्वीकार समजवे. चारित्र मोहनीय कर्मनी प्रकृति जे प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया अने लोभ छे, तेना अभावथी तो सर्वविरतिरूप प्रत्याख्यान थाय छे, अने अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया अने लोभना अभावथी श्रावकतुं देशविरतिरूप चारित्र संकवे छे. पण नारकथी चतुरिन्द्रिय पर्यन्तना जिवेमां तेमने अभाव होतो नथी. श्रावक के नारक आदि जिवेमां ऐसी योग्यता होती नथी अने एकेन्द्रियथी चतुरिन्द्रिय पर्यन्तना जिवेमां मनने अभाव होय छे. संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जिवेमां च चारित्रनी प्राप्ति संभवी शके छे.

(पंचिन्द्रियतिरिक्त्वजोगिया णो पच्चक्खाणी, अपच्चक्खाणी वि, पच्चक्खाणापच्चक्खाणी वि) पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चोमां सर्वविरतिरूप प्रत्याख्यान थता नथी. श्रावक के सर्वविरतिरूप चारित्रना नियमोतुं प्रतिपालन ते अवस्थामां योग्य

જીવાઃ સત્તુ કિમ્ પ્રત્યાહ્યાનં જાનન્તિ, અપ્રત્યાહ્યાનં જાનન્તિ પ્રત્યાહ્યાનામપ્રત્યાહ્યાનં જાનન્તિ ? મગધનાહ—' ગોયમા ! જે પંચદિવા તે તિષ્ણિ વિ જાણંતિ ' હે ગૌતમ ! જે પંચેન્દ્રિયાઃ તિર્યગ્ગોનિકા મનુષ્યાશ્ચ તથા નૈરયિકાદયશ્ચ તે પ્રીણ્યપિ પ્રત્યાહ્યાનામ્, અપ્રત્યાહ્યાનં, પ્રત્યાહ્યાનામપ્રત્યાહ્યાનં ચ જાનન્તિ, તેવાં સમનસ્કતયા સમ્યગ્દ્રષ્ટિસ્ત્રે જ્ઞપરિજ્ઞયા પ્રત્યાહ્યાનાદિત્રયજ્ઞાનસંભવાત્, કિન્તુ ' અવસેસા પચ્ચક્લાણં ન જાણંતિ ' અવશેષાઃ એકેન્દ્રિયપૃથિગ્યાદયઃ, વિકલેન્દ્રિયા અસંજ્ઞિપંચેન્દ્રિયાશ્ચ પ્રત્યાનાદિત્રયં ન જાનન્તિ, તેવામમનસ્કત્વાત્ । પ્રત્યાહ્યાનં

જાણંતિ, પચ્ચક્લાણાપચ્ચક્લાણં જાણંતિ ' હે ભદન્ત ! જીવ કયા પ્રત્યાહ્યાન કો જાનતે હું ? અપ્રત્યાહ્યાન કો જાનતે હું ? પ્રત્યાહ્યાનપ્રત્યાહ્યાનકો જાનતે હું ? ઉત્તરમે પ્રશ્નુ ડનસે કહતે હું—'ગોયમા ! હે ગૌતમ ! (જે પંચદિવા તે તિષ્ણિ વિ જાણંતિ) જો પંચેન્દ્રિય તિર્યચ ઓર મનુષ્ય નારક આદિ જીવ હું વે તો પ્રત્યાહ્યાન, અપ્રત્યાહ્યાન, ઇવં પ્રત્યાહ્યાનાપ્રત્યાહ્યાન ઇન તીનોંકો જાનતે હું । કયોંકિ યે સચ સમનસ્ક હોતે હું ઇસ કારણ ઇનકે સમ્યગ્દર્શન હો સકતા હૈ—ઓર ડસ સમય યે જ્ઞપરિજ્ઞા દ્વારા પ્રત્યાહ્યાન આદિ તીનોંકો જાનતે હું । ' અવસેસા પચ્ચક્લાણં ન જાણંતિ ' અવશિષ્ટ જો એકેન્દ્રિય પૃથિગ્યાદિક જીવ હું વે તથા વિકલેન્દ્રિય ઇવં અસંજ્ઞી જો જીવ હું વે પ્રત્યાહ્યાન આદિ ત્રયકો નહીં જાનતે હું । કયોં કિ ઇન સચ કે જાનને કા સાધનમ્ભૂત મન નહીં હોતા હૈ । યે સચ અમનસ્ક હોતે હું । પ્રત્યાહ્યાન તપ હોતા હૈ કિ જય વહ કિયા

હવે પ્રત્યાહ્યાનને જાણે છે ? અપ્રત્યાહ્યાનને જાણે છે ? પ્રત્યાહ્યાના-પ્રત્યાહ્યાનને જાણે છે ?

તેનો જવાબ આપતા મહાવીર પ્રશ્નુ કહે છે—(ગોયમા !) હે ગૌતમ ! (જે પંચદિવા તે તિષ્ણિ વિ જાણંતિ) જે પંચેન્દ્રિય તિર્યચ, અને મનુષ્ય નારક આદિ હવ છે તેઓ તો પ્રત્યાહ્યાન, અપ્રત્યાહ્યાન અને પ્રત્યાહ્યાના પ્રત્યાહ્યાન, એ ત્રણેને જાણે છે, કારણ કે તેઓ બધાં સમનસ્ક હોય છે તેથી તેમને સમ્યગ્દર્શન સંભવી શકે છે, અને તે સમયે તેઓ જ્ઞપરિજ્ઞા દ્વારા પ્રત્યાહ્યાન આદિ ત્રણેને જાણે છે. (અવસેસા પચ્ચક્લાણં ન જાણંતિ) બાકીના હવે—એકેન્દ્રિય પૃથ્વીકાય આદિ હવે તથા વિકલેન્દ્રિય હવે તથા અસંજ્ઞી હવે પ્રત્યાહ્યાન આદિ ત્રણેને જાણતા નથી, કારણ કે તે ત્રણેનાં જાણવાના સાધનરૂપ મનને અભાવ હોય છે. પ્રત્યાહ્યાન ત્યારે જ થાય છે કે જ્યારે તે કરવામાં આવે છે. એ વાતને અનુલક્ષીને ગૌતમ સ્વામી મહાવીર પ્રશ્નુને એવો પ્રશ્ન પૂછે છે—

ચ તદા ભવેત્ યદા કૃતં સ્યાત્ અતસ્તત્કરણં પ્રતિપાદયિતુમાહ—‘ જીવા ણં મંતે ! કિં પચ્ચક્ષણં કુવ્વંતિ, અપચ્ચક્ષણં કુવ્વંતિ પચ્ચક્ષણાપચ્ચક્ષણં કુવ્વંતિ ? ’ ગૌતમઃ પૃચ્છતિ—હે મદન્ત ! જીવાઃ સ્વલુ કિમ્ પ્રત્યાહ્યાનં કુર્વન્તિ, અપ્રત્યાહ્યાનં વા કુર્વન્તિ, પ્રત્યાહ્યાનાપ્રત્યાહ્યાનં કુર્વન્તિ, ? મગવાનાહ—‘ જહા ઓહિયા તદા કુવ્વણા ’ હે ગૌતમ ! યથા ઔઘિકાઃ સપુચ્ચય જીવાઃ પ્રતિપાદિતાઃ તથા કરણં પ્રત્યાહ્યાનાદિકરણમપિ વિજ્ઞાતવ્યમ્, તથા ચ સામાન્યજીવેષુ પ્રત્યાહ્યાનિત્વાદિત્રિતયસ્યાપિ પૂર્વં પ્રતિપાદિતત્વેન અત્રાપિ પ્રત્યાહ્યાનાદિત્રયસ્ય કરણમપિ વોધ્યમ્, એવં ચ કેચિદ્ જીવાઃ પ્રત્યાહ્યાનમપિ કુર્વન્તિ, કેચિત્ અપ્રત્યાહ્યાનમપિ કુર્વન્તિ પ્રત્યાહ્યાનં ન કુર્વન્તિ, કેચિત્ પ્રત્યાહ્યાનાપ્રત્યાહ્યાનમપિ કુર્વન્તિ, પ્રત્યાહ્યાનમ્ આયુષ્યવંધકારણમપિ ભવતીતિ

જાતા હૈ—અતઃ ઈસી વાત કો ગૌતમસ્વામી પ્રશ્નુ સે પૂછતે હૈ કિ—(જીવા ણં મંતે ! કિં પચ્ચક્ષણં કુવ્વંતિ અપચ્ચક્ષણં કુવ્વંતિ પચ્ચક્ષણા પચ્ચક્ષણં કુવ્વંતિ) હે મદન્ત ! જીવ કયા પ્રત્યાહ્યાન કરતે હૈ ? અપ્રત્યાહ્યાન કરતે હૈ ? પ્રત્યાહ્યાનાપ્રત્યાહ્યાન કરતે હૈ ? ઈસકે ઉત્તરમે પ્રશ્નુ ઉનસે કહતે હૈ કિ—હે ગૌતમ ! (જહા ઓહિયા તદા કુવ્વણા) જિસ પ્રકાર સે સામાન્ય જીવ પ્રતિપાદિત હુણ હૈ ઈસી પ્રકાર સે પ્રત્યાહ્યાન આદિકા કરના ધી જાનના ચાહિયે । ઈસ તરહ સે યહ સમજ્ઞ લેના ચાહિયે કિ કિતનેક જીવ એસે ધી હૈ જો પ્રત્યાહ્યાન કો ધી કરતે હૈ । કિતનેક જીવ એસે હૈ જો પ્રત્યાહ્યાન કો નહીં અપ્રત્યાહ્યાનકો ધી કરતે હૈ । કિતનેક જીવ એસે હૈ જો પ્રત્યાહ્યાનાપ્રત્યાહ્યાન કો ધી કરતે હૈ । પ્રત્યાહ્યાન આયુષ્યવંધ કા ધી કારણ હોતા હૈ ઈસલિયે પ્રત્યાહ્યાન કરણ કે વાદ અવ ગૌતમ ઈસકે દ્વારા જીવ આયુષ્ક કા ધી કયા વંધ

(જીવાણં મંતે ! કિં પચ્ચક્ષણં કુવ્વંતિ ? અપચ્ચક્ષણં કુવ્વંતિ પચ્ચક્ષણા પચ્ચક્ષણં કુવ્વંતિ) હે મદન્ત ! એવ શું પ્રત્યાહ્યાન કરે છે ? અપ્રત્યાહ્યાન કરે છે ? પ્રત્યાહ્યાના-પ્રત્યાહ્યાન કરે છે :

તેનો ઉત્તર આપતા મહાવીર પ્રશ્નુ કહે છે—(ગોયમા !) હે ગૌતમ ! (જહા ઓહિયા તદા કુવ્વણા) જે રીતે સામાન્ય જીવના પ્રત્યાહ્યાન આદિનું પ્રતિપાદન કરવામાં આવ્યું છે, એજ પ્રમાણે પ્રત્યાહ્યાન આદિ કરવાના વિષયમાં પણ સમજવું, કહેવાનું તાત્પર્ય એ છે કે કેટલાક જીવો એવાં હોય છે કે જે પ્રત્યાહ્યાન કરે છે, કેટલાક જીવો એવાં હોય છે કે જે પ્રત્યાહ્યાન કરતા નથી પણ અપ્રત્યાહ્યાન કરે છે, અને કેટલાક જીવો એવાં હોય છે કે જે પ્રત્યાહ્યાના-પ્રત્યાહ્યાન પણ કરે છે.

પ્રત્યાહ્યાન આયુષ્વંધમાં પણ કારણરૂપ અને છે, તેથી પ્રત્યાહ્યાનકરણનું પ્રતિપાદન કયો પછી હવે ગૌતમ સ્વામી એ જાણવા માગે છે કે પ્રત્યાહ્યાન

જીવાઃ સ્વલુ કિમ્ પ્રત્યાહ્યાનં જ્ઞાનન્તિ, અપ્રત્યાહ્યાનં જ્ઞાનન્તિ પ્રત્યામયાનાપ્રત્યાહ્યાનં જ્ઞાનન્તિ ? મગધનાદ્-^૧ ગોયમા ! જે પંચેન્દ્રિયા તે તિષ્ઠિન્તિ જાણંતિ ' હે ગૌતમ ! જે પંચેન્દ્રિયાઃ તિર્યગ્પોનિકા મનુષ્યાશ્ચ તથા નૈરપિકાદયશ્ચ તે પ્રીઘ્યપિ પ્રત્યાહ્યાનામ્, અપ્રત્યાહ્યાનં, પ્રત્યાહ્યાનાપ્રત્યાહ્યાનં ન જ્ઞાનન્તિ, તેવાં સમનસ્કતયા સમ્યગ્દર્શિષ્વે સ્વપરિજ્ઞયા પ્રત્યાહ્યાનાદિત્રયજ્ઞાનસંભવાત્, કિન્તુ ' અવસેસા પચ્ચક્ષ્ણાણં ન જાણંતિ ' અવશેષાઃ એકેન્દ્રિયપૃથિવ્યાદયઃ, વિકલેન્દ્રિયા અસન્નિપચ્ચેન્દ્રિયાશ્ચ પ્રત્યાનાદિત્રયં ન જ્ઞાનન્તિ, તેવામમનસ્કત્વાત્ । પ્રત્યાહ્યાનં

જાણંતિ, પચ્ચક્ષ્ણાણાપચ્ચક્ષ્ણાણં જાણંતિ ' હે ભદ્રન્ત ! જીવ કયા પ્રત્યાહ્યાન કો જાનતે હું ? અપ્રત્યાહ્યાન કો જાનતે હું ? પ્રત્યાહ્યાનપ્રત્યાહ્યાનકો જાનતે હું ? ઉત્તરમે પ્રશ્નુ ડનસે કહતે હું-^૨ 'ગોયમા ! હે ગૌતમ ! (જે પંચેન્દ્રિયા તે તિષ્ઠિન્તિ વિ જાણંતિ) જો પંચેન્દ્રિય તિર્યચ ઓર મનુષ્ય નારક આદિ જીવ હું વે તો પ્રત્યાહ્યાન, અપ્રત્યાહ્યાન, ઇવં પ્રત્યાહ્યાનાપ્રત્યાહ્યાન ઇન તીનોંકો જાનતે હું । ક્યોંકિ યે સય સમનસ્ક હોતે હું ઇસ કારણ ઇનકે સમ્યગ્દર્શન હો સકતા હૈ-ઓર ડસ સમય યે સ્વપરિજ્ઞા દ્વારા પ્રત્યાહ્યાન આદિ તીનોંકો જાનતે હું । ' અવસેસા પચ્ચક્ષ્ણાણં ન જાણંતિ ' અવશિષ્ટ જો એકેન્દ્રિય પૃથિવ્યાદિક જીવ હું વે તથા વિકલેન્દ્રિય ઇવં અસન્નિ જો જીવ હું વે પ્રત્યાહ્યાન આદિ ત્રયકો નહીં જાનતે હું । ક્યોંકિ ઇન સય કે જાનને કા સાધનમ્ભૂત મન નહીં હોતા હૈ । યે સય અમનસ્ક હોતે હું । પ્રત્યાહ્યાન તપ હોતા હૈ કિ જય વહ કિયા

હવે પ્રત્યાહ્યાનને જાણે છે ? અપ્રત્યાહ્યાનને જાણે છે ? પ્રત્યાહ્યાના-પ્રત્યાહ્યાનને જાણે છે ?

તેનો જવાબ આપતા મહાવીર પ્રશ્નુ કહે છે-(ગોયમા !) હે ગૌતમ ! (જે પંચેન્દ્રિયા તે તિષ્ઠિન્તિ વિ જાણંતિ) જે પંચેન્દ્રિય તિર્યચ, અને મનુષ્ય નારક આદિ જીવ છે તેઓ તો પ્રત્યાહ્યાન, અપ્રત્યાહ્યાન અને પ્રત્યાહ્યાનાપ્રત્યાહ્યાન, એ ત્રણને જાણે છે, કારણ કે તેઓ બધાં સમનસ્ક હોય છે તેથી તેમને સમ્યગ્દર્શન સંભવી શકે છે, અને તે સમયે તેઓ સ્વપરિજ્ઞા દ્વારા પ્રત્યાહ્યાન આદિ ત્રણને જાણે છે. (અવસેસા પચ્ચક્ષ્ણાણં ન જાણંતિ) બાકીના જીવો-એકેન્દ્રિય પૃથ્વીકાય આદિ જીવો તથા વિકલેન્દ્રિય જીવો તથા અસન્નિ જીવો પ્રત્યાહ્યાન આદિ ત્રણને જાણતા નથી, કારણ કે તે ત્રણેય જાણવાના સાધનરૂપ મનને અભાવ હોય છે. પ્રત્યાહ્યાન ત્યારે જ થાય છે કે ત્યારે તે કરવામાં આવે છે. એ વાતને અનુલક્ષીને ગૌતમ સ્વામી મહાવીર પ્રશ્નુને એવો પ્રશ્ન પૂછે છે—

અપ્રત્યાલ્પાનનિર્વર્તિતાયુક્તાઃ, પ્રત્યાલ્પાનાપ્રત્યાલ્પાનનિર્વર્તિતાયુક્તાશ્ચ જીવાઃ
 ચૈમાનિકા ભાન્તીત્યાશયઃ, ચૈમાનિકેષુ પ્રત્યાલ્પાનાદિત્રયવત્તામ્ સ્વાદાત્ ।

આયુ કા બંધ ડસને પહિલે યા તો પ્રત્યાલ્પાન સે કિયા હૈ, યા અપ્રત્યા-
 લ્પાન સે કિયા હૈ યા દેશવિરતિ સે કિયા હૈ, તમી વહ વર્તમાન પર્યાપ
 મેં ઉત્પન્ન હુઆ હૈ । ઇસ તરહ તીનોસે યહ વદ્વાયુક્ત હો સકતા હૈ । ઇસી
 તરહ ચૈમાનિક દેવ હોતે હૈ ક્યોં કિ પ્રત્યાલ્પાન સે નિર્વર્તિત હૈ આયુષ્ય
 (પ્રત્યાલ્પાન અવસ્થા મેં આયુષ્ય કો બંધ વાંધનેવાલે) જિન્હોં કા ઇસે
 જીવ ચૈમાનિક હોતે હૈ તથા અપ્રત્યાલ્પાન સે નિર્વર્તિત હૈ આયુક્ત
 જિન્હોં કા ઇસે જીવ ચૈમાનિક હોતે હૈ ઓર પ્રત્યાલ્પાનાપ્રત્યાલ્પાન સે
 નિર્વર્તિત હૈ આયુક્ત જિન્હોં કા ઇસે જીવ ચૈમાનિક હોતે હૈ—કહને કા
 તાત્પર્ય યહ હૈ કિ અણુવ્રતી ઓર મહાવ્રતી જીવ દેવ આયુ કા હી બંધ
 કરતા હૈ (અણુવ્યયમહવ્યયાઈ ન લહ્હૈદેવાડયં મોત્તું) અણુવ્રતોં ઓર
 મહાવ્રતોં કો વહી જીવ પાલતા હૈ જિસે દેવાયુ કા બંધ હો ગયા હોતા
 હૈ । સોપ આયુક્તબંધ વાલે જીવ અણુવ્રતોં ઓર મહાવ્રતોં કો નહીં પાલ
 સકતે હૈ ઇસા સિદ્ધાન્ત કા મત હૈ તથા ભોગ ભૂમિ કે જીવ જો કિ
 પ્રત્યાલ્પાન કા પાલન નહીં કરતે હૈ—અપ્રત્યાલ્પાની હી હોતે હૈ વે મર
 કર દેવગતિ મેં હી જાતે હૈ ક્યોં કિ (નિઃશીલવ્રતીત્વં ચ સર્વેપામ્)
 ઇસા આગમ વાક્ય હૈ । ઇસી સવ વિચાર કો ડેકર યહાં (તિણિ વિ)

અત્યારે જે પર્યાયમાં છે તે પર્યાયના આયુનો બંધ તેણે પહેલાં કાં તો પ્રત્યા-
 ખ્યાનથી કર્યો હોય છે, કાં તો અપ્રત્યાખ્યાનથી કર્યો હોય છે, અથવા તો દેશ
 વિરતિથી કર્યો હોય છે, ત્યારે તો તે વર્તમાન પર્યાયમાં ઉત્પન્ન થયો હોય
 છે. આ રીતે ત્રણેથી તે બદ્ધાયુક્ત (આયુનો બંધ કરનાર) થઈ શકે છે.
 એજ પ્રમાણે વૈમાનિક દેવાના વિષયમાં પણ સમજવું કારણ કે વૈમાનિક દેવો
 પ્રત્યાખ્યાનથી નિર્વર્તિત (બદ્ધ) આયુવાળા પણ હોય છે અને દેશવિરતિથી
 નિર્વર્તિત આયુવાળા એવો પણ વૈમાનિક હોય છે આ કથનનું તાત્પર્ય એ
 છે કે અણુવ્રતી અને મહાવ્રતી એવ દેવ આયુનો જ બંધ કરે છે. (અણુવ્યય
 મહવ્યયાઈ ન લહ્હૈ દેવાડયં મોત્તું) અણુવ્રતો અને મહાવ્રતોનું પાલન એજ
 એવ કરે છે કે જેને દેવ આયુનો બંધ થઈ ગયો હોય છે બાકીના આયુક્ત
 બંધવાળા એવો અણુવ્રતો અને મહાવ્રતોને પાળી શકતા નથી, એવો સિદ્ધાં-
 તનો મત છે—તેઓ અપ્રત્યાખ્યાની જ હોય છે. તેઓ મરીને દેવગતિમાં જ
 જાય છે કારણ કે—(નિઃશીલવ્રતિત્વં ચ સર્વેપામ્) એવું આગમમાં કહ્યું છે. આ
 વાતને ધ્યાનમાં રાખીને અહીં (તિણિ વિ) આ પદનો પ્રયોગ થયો છે કહેવાનું

પ્રત્યાહવાનકરણાનન્તરમ્ પ્રત્યાહવાનરદ્વાયુષ્યં મનિવાદ્યપિ—'જીવા ણં મંતે ! કિં પચ્ચક્ષ્ણાણનિવ્વત્તિયાડયા ?' ગૌતમઃ પુચ્છતિ—'દે મદન્ત ! જીવાઃ સન્તુ કિં પ્રત્યાહવાનનિર્વર્તિતાયુષ્કાઃ ? પ્રત્યાહવાનેન નિર્વર્તિતં નિબ્બાદિતમ્ વદમ્ આયુષ્કં વેપાં તે તથોક્તાઃ મગ્ગિતિ કિમ્ ? અથવા 'પચ્ચક્ષ્ણાણનિવ્વત્તિયાડયા ?' અપ્રત્યાહવાનનિર્વર્તિતાયુષ્કાઃ અપ્રત્યાહવાનેન નિર્વર્તિતં વદમ્ આયુષ્કં વેપાં તે તથોક્તા મગ્ગિતિ કિમ્ ? અથવા 'પચ્ચક્ષ્ણાણાપચ્ચક્ષ્ણાણનિવ્વત્તિયાડયા ?' પ્રત્યાહવાનાપ્રત્યાહવાનનિર્વર્તિતાયુષ્કાઃ ? પ્રત્યાહવાનાપ્રત્યાહવાનેન નિર્વર્તિતં વદમ્ આયુષ્કં વેપાં તે તથોક્તા મગ્ગિતિ કિમ્ ? મગ્ગવાનાદ—' ગોયમા ! જીવા ય, વેમાણિયા ય પચ્ચક્ષ્ણાણનિવ્વત્તિયાડયા તિણ્ણિવિ ' દે ગૌતમ ! જીવાથ પ્રત્યાહવાનનિર્વર્તિતાયુષ્કા મગ્ગિતિ એવં વેમાનિકાથ પ્રત્યાહવાનનિર્વર્તિતાયુષ્કા મગ્ગિતિ, ત્રીપ્પયપિ,

કરતે હું ? હસ વાત કો પ્રશ્નુસે પૂછતે હું—'જીવા ણં મંતે ! કિં પચ્ચક્ષ્ણાણનિવ્વત્તિયાડયા' હે મદન્ત ! જીવ કયા પેસે મી શોતે હું જો પ્રત્યાહવાનસે આયુષ્કકા વંધ કરતે હું ? અથવા—(અપચ્ચક્ષ્ણાણનિવ્વત્તિયાડયા) અપ્રત્યાહવાનસે વે વદ્વાયુષ્કા હોતે હું ? અથવા (પચ્ચક્ષ્ણાણાપચ્ચક્ષ્ણાણનિવ્વત્તિયાડયા) પ્રત્યાહવાનાપ્રત્યાહવાનસે આયુષ્કર્મ કા વંધ કરતે હું ? હસકે ઉત્તરમેં પ્રશ્નુ ઉનસે કહતે હું (ગોયમા) હે ગૌતમ ! (જીવા ય વેમાણિયા ય પચ્ચક્ષ્ણાણનિવ્વત્તિયાડયા તિણ્ણિવિ) જીવ પ્રત્યાહવાનસે નિર્વર્તિત હૈ—વદ્દ હૈ આયુષ્ય જિન્હોં કા પેસા હોતા હૈ, અપ્રત્યાહવાનસે નિર્વર્તિત આયુષ્કવાલે હોતે હું ઓર દેશવિરતિ સે નિર્વર્તિત આયુષ્કવાલે હોતે હું । અર્થાત્ જીવ અમી જિસ પર્યાયમેં હું ઉસ પર્યાયકી

આદિ દ્વારા એવ શું આયુષ્કનો પણ બંધ કરે છે ? એવ, વિવચને અનુલક્ષીને ગૌતમ સ્વામી મહાવીર પ્રશ્નુને આ પ્રમાણે પ્રશ્ન પૂછે છે—

(જીવાણં મંતે ! કિં પચ્ચક્ષ્ણાણનિવ્વત્તિયાડયા ?) હે મદન્ત ! શું એવાં પણ એવાં હોય છે કે જે પ્રત્યાહવાનથી આયુષ્કનો બંધ કરતા હોય છે ? અથવા—(અપચ્ચક્ષ્ણાણનિવ્વત્તિયાડયા) શું તેઓ અપ્રત્યાહવાનથી આયુષ્યનો બંધ કરે છે ? અથવા (પચ્ચક્ષ્ણાણાપચ્ચક્ષ્ણાણનિવ્વત્તિયાડયા ?) શું તેઓ પ્રત્યાહવાના—પ્રત્યાહવાનથી આયુષ્કનો બંધ કરતા હોય છે ?

તેનો ઉત્તર આપતા મહાવીર પ્રશ્નુ કહે છે—(ગોયમા !) હે ગૌતમ ! (જીવા ય વેમાણિયા ય પચ્ચક્ષ્ણાણનિવ્વત્તિયાડયા તિણ્ણિવિ) એવ પ્રત્યાહવાનથી નિર્વર્તિત આયુષ્યવાળા પણ હોય છે, અપ્રત્યાહવાનથી નિર્વર્તિત (બદ્ધ) આયુષ્યવાળા પણ હોય છે, અને પ્રત્યાહવાના—પ્રત્યાહવાનથી (દેશવિરતિથી) બદ્ધ આયુષ્યવાળા પણ હોય છે. કહેવાનું તાત્પર્ય એ છે કે એવ

‘प्रत्याख्यानम्’ इत्येतदर्थः एको दण्डकः, तथा ‘जानाति’ इत्येतदर्थं द्वितीयो दण्डकः, एवम् ‘करोति’ इत्येतदर्थकस्तृतीयो दण्डकः, त्रीण्येव-प्रत्याख्यानम्, अप्रत्याख्यानम्, प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यानं चेति त्रीणि जानाति, करोति, तथा ‘आयुष्कनिर्वृत्तिः’ इत्येतदर्थकचतुर्थो दण्डको विज्ञातव्यः, तदुपसंहरन्नाह-सप्रदेशोदेशे च एवम् उक्तप्रकारेण एते उपर्णुक्ताः चत्वारो दण्डकाः प्रतिपादिताः ॥१॥ अन्ते गौतमो भगवद्वाक्यं स्वीकुर्वन्नाह-‘सेवं भंते ! सेवं भंते ! चि’ हे भदन्त ! तदेवं भवदुक्तं सर्वं सत्यमेव, हे भदन्त ! तदेवं भवदुक्तं सर्वं सत्यमेवेति ॥ सू० २ ॥

इति श्री-जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर पूज्यश्री-घासीलालव्रति विरचितायं श्री भगवतीसूत्रस्य प्रमेयचन्द्रिकाख्यायां व्याख्यायां षष्ठशतकस्य चतुर्थोद्देशकः

कही है उससे सूत्रकारने यह समझाया है कि इस सप्रदेश उद्देशक में जो अभी प्रत्याख्यान आदि विषयक प्रकरण कहा है उसमें यह २ अर्थ संग्रहीत किया गया है—इसमें प्रत्याख्यान विषयक एक दण्डक है तथा अप्रत्याख्यानादिकों को जाननेरूप द्वितीय दण्डक है, प्रत्याख्यान आदि को करनेरूप तृतीय दण्डक है एवं प्रत्याख्यानादि द्वारा निर्वर्तितायुष्क का चतुर्थ दण्डक है । अन्तमें गौतम भगवान के वाक्य को स्वीकार करते हुए उन से कहते हैं कि ‘सेवं भंते ! सेवं भंते ! चि’ हे भदन्त ! आपके द्वारा कहा गया यह सब विषय सर्वथा सत्य ही है हे भदन्त ! सर्वथा सत्य ही है ॥ सू० २ ॥

चतुर्थ उद्देशक संपूर्ण ॥ ६-६ ॥

आदि विषयक प्रकरण अर्थात् आभ्युं छे तेमां नीचिना विषयोना संग्रह करवामां आच्ये छे-(१) तेमां प्रत्याख्यान विषयक एक दण्डक छे, (२) प्रत्याख्यान आदि कोने ज्ञापना विषयुं त्रीणुं दण्डक छे, (३) प्रत्याख्यान आदि करवा रूप त्रीणुं दण्डक छे, (४) अने प्रत्याख्यान आदि द्वारा निर्वर्तितायुष्कनुं चोथुं दण्डक छे.

अन्ते गौतम स्वामी महावीर प्रभुनां वचने। स्वीकारः कर्तां कहे छे—(सेवं भंते ! सेवं भंते ! चि) हे भदन्त ! आपे आ विषयनुं जे प्रतिपादन कथुं ते सत्य छे, हे भदन्त ! आपनां वचने। यथार्थं ज छे, जेभ कहीने पदव्या नभस्कार करीने तेजो तेभने स्थाने निराश्रयान थय गया, ॥ सू० २ ॥

કિન્તુ-‘ અવસેસા અપચ્ચક્ષણાણિવ્વત્તિયાડયા ’ અવસેસા નૈરયિકાદયસ્સુ નૈરયિકાદારમ્મ મયનપતિ-વાનવ્યન્તર-જ્યોતિષ્કપર્યન્તા અપ્રત્યાખ્યાનનિર્વર્તિતાયુક્કા એવ મયન્તિ, નૈરયિકાદિયુ વસ્તુતો વિરતિરહિતાનામંચોત્પાદાત્, । અથ ઉક્તાર્થ-સંગ્રહગાથામાહ-‘ પચ્ચક્ષણાણં જાણહ, કુચ્ચહ, તિન્નેવ આઝનિવ્વત્તી ।

સપ્પસુદ્દેસમ્મિ ય, એમેવ દંડગા ચડતો ॥ ૧ ॥ ઇતિ

એસા પદ કહા ગયા હૈ કિ વૈમાનિક દેવોં મેં પ્રત્યાખ્યાનાદિ ત્રીનોંવાલોં કા ઉત્પાદ હોતા હૈ । પરન્તુ (અવસેસા અપચ્ચક્ષણાણિવ્વત્તિયાડયા) ઘાકી કે જો નૈરયિક સે લેકર વાનવ્યન્તર એવં જ્યોતિષ્ક તક કે જીવ હેં વે અપ્રત્યાખ્યાન નિર્વર્તિતાયુક્ક હી હોતે હેં । કયોં કિ ઇન મેં જિન જીવોં સે પહિલે ચિરતિ કા પાલન નહીં કિયા હોતા હૈ ઉનકા હી ઉત્પાદ હોતા હૈ । અતઃ નૈરયિક આદિ જીવરૂપ સે વે હી જીવ ઉત્પન્ન હોતે હેં જો પૂર્વ મેં ચિરતિ સે રહિત હોતે હેં । ઇસી કારણ યહાં (અવસેસા પચ્ચક્ષણાણિવ્વત્તિયાડયા) એસા કહા હૈ । ભાવાર્થ યહી હૈ કિ સામાન્યરૂપ જીવ ત્રીનોં દ્વારા નિર્વર્તિતાયુક્ક હોતે હેં-વૈમાનિક દેવ ઘી ઇસી તરહ કે હોતે હેં પરન્તુ નારક મયનપતિ, વ્યન્તર ઓર જ્યોતિષ્ક જીવ એસે નહીં હોતે હેં વે તો અપ્રત્યાખ્યાનદ્વારા હી નિર્વર્તિતાયુક્ક હોતે હેં । યહાં જો (પચ્ચક્ષણાણં-જાણહ, કુચ્ચહ તિન્નેવ આઝનિવ્વત્તી) ઇત્યાદિ ગાથા

તાત્પર્ય એ છે કે વૈમાનિક દેવોમાં પ્રત્યાખ્યાનાદિ ત્રણેવાળા જીવોનો ઉત્પાદ થાય છે. પરન્તુ (અવસેસા અપચ્ચક્ષણાણિવ્વત્તિયાડયા) ખાડીના જે નારકથી લઇને વાનવ્યન્તર અને જ્યોતિષ્ક પર્યન્તના જીવો છે તેઓ અપ્રત્યાખ્યાનથી નિર્વર્તિત આયુવાળા જ હોય છે-તેઓ અપ્રત્યાખ્યાનથી જ આયુનો ખંધ કરતા હોય છે, કારણ કે જે જીવોએ પહેલાં વિરતિનું પાલન કર્યું નથી એવાં જીવોનો જ તેમાં ઉત્પાદ થાય છે. તેથી નારક આદિ જીવોએ જીવો જ ઉત્પન્ન થાય છે કે પૂર્વભવમાં વિરતથી રહિત હોય છે. એજ કારણે અહીં (અવસેસા અપચ્ચક્ષણાણિવ્વત્તિયાડયા) એવું કહ્યું છે. કહેવાનું તાત્પર્ય એ છે કે સામાન્ય રૂપ જીવ પ્રત્યાખ્યાન આદિ ત્રણ વડે આયુનો ખંધ કરે છે, વૈમાનિક દેવો પણ એવાં જ હોય છે, પરન્તુ નારક, મયનપતિ, વ્યન્તર અને જ્યોતિષ્ક દેવો એવાં હોતા નથી. તેઓ તો અપ્રત્યાખ્યાન વડે જ આયુનો ખંધ કરતા હોય છે.

અહીં જે (પચ્ચક્ષણાણં જાણહ કુચ્ચહ તિન્નેવ આઝનિવ્વત્તી) ઇત્યાદિ ગાથા દ્વારા સૂત્રકાર એ સમજાવે છે કે આ સમગ્ર ઉદ્દેશકમાં જે પ્રત્યાખ્યાન

વિષ્કંભ-પરિક્ષેપવિષયકઃ પ્રશ્નઃ, । સંખ્યેયસદ્ગ્નયોજનવિસ્તૃતાડસંખ્યેયસદ્ગ્ન-
યોજનવિસ્તૃતભેદેન તમસ્કાયસ્ય દ્વિવિધત્વપ્રતિપાદનમ્ । તત્ર સંખ્યેયસદ્ગ્નયોજન-
વિસ્તૃતતમસ્કાયસ્ય અતિશોભ્રદેવગત્યા ગમને પડ્માસૈઃ કથંચિત્ પ્રાપ્યત્વસંભવેડપિ
અસંખ્યાતયોજનવિસ્તૃતતમસ્કાયસ્ય સર્વથા અપ્રાપ્યત્વકથનદ્વારા તસ્ય દૈર્ઘ્યસ્થૂલત્વા-
દિવિષયકપ્રશ્નોત્તરમ્ । તમસ્કાયે ગૃહ-ઘટ્ટ-યાવત્-સન્નિવેશાન્તા ભવન્તિ કિમ્?, ઇતિ
વિષયકપ્રશ્નસ્ય નિષેધાત્મકમુત્તરમ્ । તમસ્કાયે મહામેઘસ્ય સંસ્વેદનસંમૂર્ચ્છિતવર્ષણં
ભવતિ કિમ્? ઇતિ વિષયકપ્રશ્નસ્ય સ્વીકારાત્મકમુત્તરમ્ । સંસ્વેદનાદીનાં દેવાસુરનાગક-

તમસ્કાય કે વિષ્કંભ ઓર પરિક્ષેપ કે વિષયમેં પ્રશ્ન, સંખ્યાત હજાર
યોજન તક વિસ્તૃત ઓર અસંખ્યાત હજાર યોજન તક વિસ્તૃત હસ
પ્રકાર સે તમસ્કાય કે દો ભેદોં કા કથન-સંખ્યાત હજાર યોજન વિસ્તૃત
તમસ્કાય ઇતની વડી દીર્ઘતા ધવં સ્થૂલતાદિવાલા હૈ કિ અતિ શીઘ્રગતિ
વાલા દેવ યદિ છહ મહીને તક ચલે તો વહ ઉસે વડી મુશ્કિલ સે પ્રાપ્ત
કર સકતા હૈ અર્થાત્ ઉસકા પાર પા સકતા હૈ પરન્તુ જો અસંખ્યાત
હજાર યોજન તકકા વિસ્તૃત તમસ્કાય હૈ ઉસકા તો કોઈં મી પાર નહીં
પા સકતા હૈ-એસા ઉત્તારૂપ કથન, તમસ્કાયમેં કયા ઘર હૈ, હાટ હૈ ?
ગાંઘ હૈ ? યાવત્ સન્નિવેશ હૈ ? એસા પ્રશ્ન ઓર ઉસમેં સવ કુછ નહીં
હૈ એસા ઉત્તર, તમસ્કાય મેં વઢેર મેઘ કયા પસીજતે હૈં ? ઉસમેં વે કયા
સંમૂર્ચ્છિત હોતે હૈં ? વરસતે હૈં ? એસા પ્રશ્ન હાં ઉસમેં યહ સવ હોતા હૈ
એસા ઉત્તર વે સંસ્વેદન તથા વર્ષણ આદિ કૌન કરતે હૈં ? દેવ કરતે હૈં ।

છે. તમસ્કાયના વિષ્કંભ (વિસ્તાર) અને પરિક્ષેપના વિષયમાં પ્રશ્ન, સંખ્યાત
હજાર યોજન સુધી વિસ્તૃત અને અસંખ્યાત હજાર યોજન સુધી વિસ્તૃત,
આ પ્રમાણે તમસ્કાયના બે ભેદોનું કથન. સંખ્યાત હજાર યોજન ॥ વિસ્તાર-
વાળો તમસ્કાય એવડી મોટી દીર્ઘતા અને સ્થૂલતા આદિથી યુક્ત છે કે
અતિશય શીઘ્રતાવાળો દેવ જે છ મહિના સુધી ચાલ્યા કરે તો મહા મુશ્કે-
લીથી તે તેનો પાર પામી શકે છે. પરન્તુ અસંખ્યાત હજાર યોજનના વિસ્તારનો
જે તમસ્કાય છે તેનો પાર પામવાનું કોઈનાથી શક્ય બનતું નથી.

પ્રશ્ન—શું તમસ્કાયમાં ઘર છે ? હાટ છે ? ગામ છે ? સન્નિવેશ
પર્યાન્તનાં સ્થાનો છે ? ઉત્તર—તેમાં એવું કંઈ પણ નથી.

પ્રશ્ન—શું મોટા મોટા મેઘ તમસ્કાયમાં પસીજે (ભીંજાય) છે ખરાં ?
શું તેઓ તેમાં સંમૂર્ચ્છિત (એકત્રિત) થાય છે ? વરસે છે ?

ઉત્તર—હા, તેમાં એ બધું થાય છે.

પ્રશ્ન—તે સંસ્વેદન તથા વર્ષણ આદિ કોણુ કરે છે ? ઉત્તર—દેવો કરે છે.

पञ्चमोद्देशकः प्रारभ्यते—

पष्ठशतके पञ्चमोद्देशकस्य संक्षिप्तविषयविवरणम् ।

कोऽयं तमस्कायपदार्थः, किम् पृथिवी तमस्कायः ? भाषो वा तमस्काय इत्युच्यते?, इति प्रश्नः, अप्कायिकपरिणामएव तमस्कायः इत्युत्तरम् । अप्काय-तमस्काययोः समानस्वभावतायास्तत्र हेतुत्वकथनं च । ततः तमस्कायस्य प्रारम्भ-समाप्तयोरवधिविषयकः प्रश्नः अरुणोदधिसमुद्रात्तमस्कायस्य प्रारम्भः, ब्रह्मलोकं तस्य समाप्तिरित्युत्तरम् । ततः तमस्कायस्याकारविषये प्रश्नः । अधोभागे शराव-बुध्नवत्, उपरिभागे कुक्कुटपञ्जराकारवत्, इति उत्तरम् । ततः तमस्कायस्य

॥ छठे शतके के पांचवा उद्देशक प्रारंभ ॥

इस शतकके इस पंचम उद्देशक में जो विषय कहा है उसका विवरण संक्षेप से इस प्रकार है—

तमस्काय क्या पदार्थ है ? क्या वह पृथिवीरूप है ? या जलरूप है ? ऐसा प्रश्न—अप्कायिक का परिणाम ही तमस्काय है ऐसा उत्तर, तमस्काय और अप्कायकी समान स्वभावता का कथन और इसमें हेतु-प्रदर्शन, तमस्काय के प्रारंभ होनेके विषय में और इसकी समाप्ति होने के विषयमें प्रश्न, अरुणोदयसमुद्र से तमस्काय का प्रारंभ कथनरूप और ब्रह्मलोक में समाप्ति कथनरूप उत्तर, तमस्कायका आकार कैसा होता है ऐसा प्रश्न, नीचेमें इसका आकार शरावबुध्नकी तरह होता है और ऊपर भागमें कुक्कुट के पंजरके आकार जैसा होता है ऐसा उत्तर,

शतक ७ उद्देशक पांचमो—

आ उद्देशकमां आवता विषयतुं संक्षिप्त प्रतिपादन—

प्रश्न—तमस्काय शुं छे ? शुं ते पृथ्वीरूप छे के जलरूप छे ?

उत्तर—अप्कायिकतुं परिणाम एव तमस्काय छे, तमस्काय अने अप्कायनी समान स्वभावतानुं कथन अने तेना कारणतुं प्रतिपादन.

तमस्कायनो प्रारंभ थवाने विषे अने तेनी समाप्ति थवा विषे प्रश्न, अरुणोदय समुद्रमांथी तमस्कायनो प्रारंभ थाय छे अने ब्रह्मलोकमां समाप्ति थाय छे अतुं कथन. प्रश्न—तमस्कायनो आकार केवो होय छे ?

उत्तर—नीचेना भागमां तेना आकार शरावबुध्नना जेवो (माटीनां केटियाना तगिया जेवो) होय छे, अने उपरना भागमां कुक्कुटाना पंजरा जेवो होय

કથનમ્, પૃથિવીપરિણામનિગેયથ । તમસ્કાયે સમસ્તજીવાનામનન્તવારમુત્પાદઃ, કિન્તુ નો વાદરપૃથિવીરૂપેણ, નો વાદરાગ્નિરૂપેણ વા । તતઃ અષ્ટવિધકૃષ્ણ-રાજીનામભિધાનમ્ । તાસાં ચ સનત્કુમાર-માહેન્દ્રકલ્પયોરુપરિ બ્રહ્મલોક-સ્યાધોમાગે ચ રિષ્ટવિમાનમસ્તટે સ્થિતિપ્રતિપાદનમ્ । આસાં ચ આકારઃ મહ્લક્રીડા-સ્થાન (અલાડા) વત્ ચતુરસ્રઃ । પૂર્વપશ્ચિમદક્ષિણોત્તરદિગ્ભાગેષુ ચતુર્ણુ પ્રત્યેકં દ્વે દ્વે કૃષ્ણરાજી સ્તઃ । તાથ સર્વાઃ પરસ્પરં સ્પૃષ્ટાઃ સમ્બદ્ધાથ સન્તિ । ઇતાસામા-યામ-વિષ્કમ્ભ-પરિક્ષેપવિષયે વિચારઃ, કૃષ્ણરાજિણુ ગૃહાદિવિચારસ્તમસ્કાયવદેવ, વિશેષઃ કેવલં તત્ર મેઘાનાં સંસ્વેદનાદિકં દેવ એવ કરોતિ-ઈતિ । કૃષ્ણરાજીનામટ

પુદ્ગલ કા પરિણામ તમસ્કાય હૈ । પર પૃથિવી કા પરિણામ તમસ્કાય નહીં હૈ એસા કથન તમસ્કાય મેં સમસ્ત જીવોં કા અનન્તવાર ઉત્પાદ હુઆ હૈ પર ઉનકા ઘર્હાં વાદર પૃથિવીરૂપ સે ઓર વાદર અગ્નિરૂપસે ઉત્પાદ નહીં હુઆ હૈ એસા કથન આઠ પ્રકાર કી કૃષ્ણરાજિયોં કા કથન ઇનકા અવ-સ્થાન ઝપરમેં સનત્કુમાર માહેન્દ્રકલ્પ મેં હૈ ઓર નીચે બ્રહ્મલોક કલ્પમેં, અરિષ્ટવિમાન કે પાથડે મેં હૈ એસા કથન ઇનકા આકાર અલાડેકે જૈસા ચૌકોર હૈ પૂર્વ પશ્ચિમ ઓર ઉત્તર દક્ષિણ ઇન ચાર દિશાઓમેં સે પ્રત્યેક દિશા મેં દો-દો કૃષ્ણરાજિયાં હૈં । યે સવ કૃષ્ણરાજિયાં આપસ મેં સ્પૃષ્ટ ઓર સંવદ્દ હૈં । ઇનકે આયામ, વિષ્કંભ ઓર પરિક્ષેપ કે વિષયમેં વિચાર । તમસ્કાય કી તરહ હી ઇનમેં કૃષ્ણરાજિયાં મેં ગૃહાદિ કા વિચાર ઘર્હાં વિશેષતા કેવલ ઇતની હી હૈ કિ ઇનમેં મેઘોં કા સંસ્વેદન આદિ દેવ હી કરતા હૈ । કૃષ્ણરાજિયાં પૃથિવી કે પરિણામરૂપ હૈં । અપ્-જલ

તમસ્કાયમાં સમસ્ત જીવોનો અનન્તવાર ઉત્પાદ થયો છે, પણ તેમનો ત્યાં બાદર પૃથ્વીરૂપે અને બાદર અગ્નિરૂપે ઉત્પાદ થયો નથી એવું કથન. આઠ પ્રકારની કૃષ્ણરાજિઓનું કથન. તેમનું અવસ્થાન ઉપર સનત્કુમાર માહેન્દ્ર કલ્પમાં છે અને નીચે બ્રહ્મલોક કલ્પમાં, અરિષ્ટ વિમાનના પાથડામાં છે એવું કથન. આકાર તેમનો અખાડાના જેવો-ચતુષ્કોણ જેવો છે. પૂર્વ, પશ્ચિમ, ઉત્તર અને દક્ષિણ એ ચારે દિશાઓમાંની પ્રત્યેક દિશામાં બે, બે કૃષ્ણરાજિઓ છે. તે બધી કૃષ્ણરાજિઓ એક બીજી સાથે સ્પૃષ્ટ અને સંબદ્ધ છે. તમસ્કાયની જેમજ એ કૃષ્ણરાજિઓમાં ઘર, દુકાન આદિનો વિચાર. અહીં વિશેષતા એટલી જ છે કે તે કૃષ્ણરાજિઓમાં મેઘોનું સંસ્વેદન આદિ દેવ જ કરે છે. તે કૃષ્ણરાજિઓના આયામ (લંગાઈ), વિષ્કંભ (પહોળાઈ) અને પરિક્ષેપ (પરિધી) નો વિચાર. કૃષ્ણરાજિઓનાં આઠ નામ. તે કૃષ્ણરાજિઓ પૃથ્વીના પરિણામરૂપ

कथनम्, पृथिवीपरिणामनिषेधश्च । तमस्कायै समस्तजीवानामनन्तवारमुत्पादः, किन्तु नो वादरपृथिवीरूपेण, नो वादराग्निरूपेण वा । ततः अष्टविधकृष्णराजीनामभिधानम् । तासां च सनत्कुमार-माहेन्द्रकल्पयोरुपरि ब्रह्मलोकस्याधोभागे च रिष्टविमानप्रस्तटे स्थितिप्रतिपादनम् । आसां च आकारः मल्लक्रीडास्थान (अखाडा) वत् चतुरस्रः । पूर्वपश्चिमदक्षिणोत्तरदिग्भागेषु चतुर्षु प्रत्येकं द्वे द्वे कृष्णराजी स्तः । ताश्च सर्वाः परस्परं स्पृष्टाः सम्बद्धाश्च सन्ति । एतासामायाम-विष्कम्भ-परिक्षेपविषये विचारः, कृष्णराजिषु गृहादिविचारस्तमस्कायवदेव, विशेषः केवलं तत्र मेघानां संस्वेदनादिकं देव एव करोति-इति । कृष्णराजीनामष्ट

पुद्गल का परिणाम तमस्काय है । पर पृथिवी का परिणाम तमस्काय नहीं है ऐसा कथन तमस्काय में समस्त जीवों का अनन्तवार उत्पाद हुआ है पर उनका यहाँ वादर पृथिवीरूप से और वादर अग्निरूपसे उत्पाद नहीं हुआ है ऐसा कथन आठ प्रकार की कृष्णराजियों का कथन इनका अवस्थान ऊपरमें सनत्कुमार माहेन्द्रकल्प में है और नीचे ब्रह्मलोक कल्पमें, अरिष्टविमान के पाथडे में है ऐसा कथन इनका आकार अखाडेके जैसा चौकोर है पूर्व पश्चिम और उत्तर दक्षिण इन चार दिशाओं में से प्रत्येक दिशा में दो-दो कृष्णराजियां हैं । ये सब कृष्णराजियां आपस में स्पृष्ट और संबद्ध हैं । इनके आयाम, विष्कम्भ और परिक्षेप के विषयमें विचार । तमस्काय की तरह ही इनमें कृष्णराजियां में गृहादि का विचार यहाँ विशेषता केवल इतनी ही है कि इनमें मेघों का संस्वेदन आदि देव ही करता है । कृष्णराजियां पृथिवी के परिणामरूप हैं । अप्र-जल

तमस्कायमां समस्त ज्योत्सो अनंतवार उत्पद्यते यथेष्टे, पञ्च तेमनो त्यां वादर पृथिवीरूपे अने वादर अग्निरूपे उत्पद्यते यथेष्टे नथी ज्येष्ठुं कथन. आठ प्रकारणी कृष्णराज्योत्सुं कथन. तेमनुं अस्थान उपर सनत्कुमार माहेन्द्र कल्पमां छे अने नीचे ब्रह्मलोक कल्पमां, अरिष्ट विमानना पाथडांमां छे ज्येष्ठुं कथन. आकार तेमनो अखाडाना ज्येष्ठो-चतुर्कोणु ज्येष्ठो छे. पूर्व, पश्चिम, उत्तर अने दक्षिणु ज्येष्ठे दिशाज्योत्सोमांणी प्रत्येक दिशांमां ज्येष्ठे, ज्येष्ठे कृष्णराज्योत्सो छे. ते ज्येष्ठे कृष्णराज्योत्सो ज्येष्ठे षीत्साथे स्पृष्ट अने संबद्ध छे. तमस्कायनी ज्येष्ठे ज्येष्ठे कृष्णराज्योत्सोमां घर, दुकान आदिनो विचार. अर्द्धी विशेषता ज्येष्ठेटी ज्येष्ठे छे के ते कृष्णराज्योत्सोमां मेघानु संस्वेदन आदि देव ज्येष्ठे करे छे. ते कृष्णराज्योत्सोमां आयाम (लंणाथ), विष्कम्भ (पडोणाथ) अने परिक्षेप (परिधी) विचार. कृष्णराज्योत्सोमां आठ नाम. ते कृष्णराज्योत्सो पृथिवीना परिष्णामरूप

नामानि कृष्णराजयः पृथिवीपरिणामानि नो अपरिणामाः तत्र सर्वे प्राणभूतजीवसत्त्वा
 अनन्तकृत्यः पूर्वमुत्पन्नाः आसन् ह्नुत्वाद् वादरज्जाग्निरनस्पतिरूपेण नोत्पन्नत्वाः ।
 एतासापवकाशान्तरेषु अग्निः, अग्निमाली, वैरोचनम्, प्रभङ्करः, चन्द्राभः, सूर्याभः,
 शुक्राभः, सुप्रतिष्ठाभः, इत्येतानि अष्टौ विमानानि मध्ये मध्ये रिष्टाभविमानं च, तत्राष्टौ
 लोकान्तिकदेवाः नियमन्ति, तथाहि-सारस्वतः १, आदित्यः २, वरुणः ३, गर्दतोयः ४,
 तुषितः ५, अग्न्यावाधः ६, आग्नेयः, ७ वरिष्ठः, ८ । एतत्सम्बन्धिविनारान्तरं
 च । वायोराधारेण विमानस्थितिः । जीवाभिगमनानुसारेणात्रापि केवञ्चदेवत्वं
 विहाय सर्वे जीवाः पूर्वम् उत्पन्नाः, अष्टसागरोपमाणि लोकान्तिकदेवस्थितिः ।
 लोकान्तिकविमानात् लोकस्यान्तिमसंख्येययोननानि दूरमिति ॥

के परिणामरूप नहीं है । इनमें समस्त प्राण-समस्त भूत, समस्त जीव
 और समस्त सत्त्व अनन्तवार पहिले उत्पन्न हो चुके हैं । परन्तु वे सब
 वादर जलरूप से वादर अग्निरूप से और वादर वनस्पतिरूप से पहिले
 वहां उत्पन्न नहीं हुए हैं । इन राजियों के आठ अवकाशान्तरों में अग्नि,
 अग्निमाली, वैरोचन, प्रभङ्कर, चन्द्राभ, सूर्याभ, शुक्राभ, सुप्रतिष्ठाभ
 ये आठ विमान और इन विमानों के बीच बीच में रिष्टाभविमान है
 ऐसा कथन इनमें आठ लोकान्तिक देव रहते हैं-लोकान्तिक देवोंके नाम
 (सारस्वत, आदित्य, वरुण, गर्दतोय, तुषित, अग्न्यावाध, आग्नेय और
 वरिष्ठ) ये हैं । इनके संबंध में और भी विचार वायु के आधार से
 विमानस्थिति का कथन इन विमानों में भी जीवाभिगमनसूत्र के अनु-
 सार देव की पर्याय को छोड़कर समस्त जीव पहिले उत्पन्न हो चुके हैं ।
 आठ सागरोपम की सब लोकान्तिक देवों की स्थिति होती है । तथो

छे, जलना परिष्ठाभरूप नहीं। तेमां समस्त प्राण, समस्त भूत, समस्त ज्व
 अने समस्त सत्त्व अनंतवार उत्पन्न थयें युक्त्यां छे। परन्तु तेओ अधां वादर
 जलरूपे, वादर अग्निरूपे अने वादर वनस्पतिरूपे पडेलां त्यां उत्पन्न थया
 नथी ते राज्योना आठ अवकाशान्तरांमां अग्नि; अग्निमाली, वैरोचन,
 प्रभङ्कर, चन्द्राभ, सूर्याभ, शुक्राभ अने सुप्रतिष्ठाभ, ओ आठ विमान अने ते
 विमानोनी वरुणोवय्य रिष्टाभविमानं ओठुं कथनं। ते विमानोमां आठ
 लोकान्तिक देव रहते छे लोकान्तिक देवोनां नाम-“ सारस्वत, आदित्य, वरुण,
 गर्दतोय, तुषित, अग्न्यावाध, आग्नेय अने वरिष्ठ। ” तेमना विषयमां विशेष
 विचार, वायुने आधारे विमानस्थितिनु कथनं, आ विमानोमां पणु ज्वा-
 लिंगमसूत्र अनुसार देवनी पर्यायने छोडीने समस्त ज्व पं पं थयें

तमस्कायवक्तव्यता ।

चतुर्थोद्देशके जीवानां सप्रदेशत्वादिकं निरूपितम् अथ पञ्चमोद्देशके सप्रदेशं तमस्कायादिकं निरूपयितुमाह—‘ किमयं भंते ! ’ इत्यादि ।

मूलम्—किमयं भंते ! ‘ तमुक्त्वाए ’ त्ति पव्वुच्चइ, किं पुढवी तमुक्त्वाए त्ति पव्वुच्चइ, आऊ तमुक्त्वाएत्ति पव्वुच्चइ ? गोयमा ! गो पुढवी तमुक्त्वाएत्ति पव्वुच्चइ, आऊ तमुक्त्वाएत्ति पव्वुच्चइ । से केणट्टेणं ? गोयमा ! पुढविकाएणं अत्थेगइए सुभे देसं पगासेइ, अत्थेगइए देसं गो पगासेइ—से तेणट्टेणं । तमुक्त्वाए णं भंते ! कहिं समुट्टिए, कहिं संनिट्टिए ? गोयमा ! जंबूदीवस्स वहियां तिरियमसंखेजे दीवसमुदे वीईवइत्ता, अरुणवरस्स दीवस्स वाहिरिच्छाओ वेइयंताओ अरुणोदयं समुदं वायालीसं जोयणसहस्साणि ओगाहिता उवरिच्छाओ जलंताओ एगपए-सियाए सेढीए एत्थ णं तमुक्त्वाए समुट्टिए, सत्तरस — एकवीसे जोयणसयाइं उडुं उप्पइत्ता तओ पच्छा तिरियं पवित्थरमाणे पवित्थरमाणे सोहम्मी—साण—सणकुमार—माहिंदे चत्तारि विकप्पे आवरित्ता णं, उडुंपि य णं वंभलोगे कप्पे रिट्टविमाणपत्थडं संपत्ते—एत्थ णं तमुक्त्वाए णं संनिट्टिए । तमुक्त्वाए णं भंते ! किं संटिए पणत्ते ? गोयमा ! अहे मल्लगमूलसंटिए, उप्पि कुक्कुडपंजरगसंटिए पणत्ते ! तमुक्त्वाए णं भंते ! केवइयं विक्खं-भेणं, केवइयं परिकखेवेणं पणत्ते ? गोयमा ! तमुक्त्वाए णं दुविहे पणत्ते, तं जहा—संखेज्जवित्थडे य, असंखेज्जवित्थडे, य । तत्थ

लोकान्तिक विमान से लोक का अन्तिमभाग असंख्यात योजन दूर है ऐसा कथन ॥

शुकेवा छे. अथा लोकान्तिक द्वेवानी स्थिति आठ सागरोपमनी डाय छे. तथा लोकान्तिक विमानमांथी लोकने अन्तिम भाग असंख्यात योजन दूर छे अपुं कथन.

णं जे से संखेज्जवित्थडे से णं संखेज्जाइं जोयणसहस्साइं विक्खं-
 भेणं, असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं परिकखेवेणं पण्णत्ते, तत्थ
 णं जे से असंखिज्जवित्थडे से णं असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं
 विक्खंभेणं, असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं परिकखेवेणं पण्णत्ते ।
 तमुक्काए णं भंते ! के महालए पण्णत्ते ? गोयमा ! अयं णं
 जंबुदीवे दीवे सब्बदीव-समुद्दाणं सब्बभंतराए, जाव-परि-
 कखेवेणं पण्णत्ते । देवेणं महिड्डीए, जाव-महाणुभावे इणामेव
 त्ति कट्टु केवलकण्ठं जंबुदीवं दीवं तिहिं अच्छरानिवाएहिं
 तिसत्तखुत्तो अणुपरियट्ठित्ताणं हव्वं आगच्छिज्जा, से णं देवे ताए
 उक्किट्ठाए, तुरियाए, जाव-देवगईए वीईवयमाणे वीईवयमाणे
 जाव-एगाहं दुयाहं वा, तियाहं वा, उक्कोसेणं छम्मासे वीई-
 वइज्जा, अत्थेगइयं तमुक्कायं वीईवइज्जा, अत्थेगइयं तमुक्कायं
 णो वीईवएज्जा, एमहालएणं गोयमा ! तमुक्काए पण्णत्ते ।
 अत्थि णं भंते ! तमुक्काए गेहाइ वा, गेहावणा इ वा ? णो इणट्ठे
 समट्ठे । अत्थि णं भंते ! तमुक्काए गामा इ वा, जाव-सन्निवेसा
 इ वा ? णो इणट्ठे समट्ठे । अत्थि णं भंते ! तमुक्काए उराला
 वलाहया संसेयंति, संमुच्छंति, संवासंति वा ? हंता, अत्थि !
 तं भंते ! किं देवो पकरेइ, असुरो पकरेइ, नागो पकरेइ ?
 गोयमा ! देवो वि पकरेइ, असुरो वि पकरेइ, नागो वि पकरेइ ।
 अत्थि णं भंते तमुक्काए वायरे थणियसदे, वायरे विज्जुए ?
 हंता, अत्थि ! तं भंते ! किं देवो पकरेइ, असुरो पकरेइ, नागो

पकरेइ ? गोयमा ! तिणिणवि पकरेति । अत्थिणं भंते ! तमुक्काए वायरे पुढविकाए, वायरे अगणिकाए ? णो इणट्ठे संमट्ठे, णणत्थ विग्गहगइसमावन्नएणं । अत्थिणं भंते ! तमुक्काए चंदिमसूरिय- गहगण-णवसुत्त-तारारूवा ? णो इणट्ठे समट्ठे, पलिपस्सओ पुण अत्थि । अत्थिणं भंते ! तमुक्काए चंदाभा इ वा, सूराभा इ वा ? णो इणट्ठे समट्ठे, कादूसणिया पुण सा । तमुक्काए णं भंते ! केरिसए वन्नएणं पणत्ते ? गोयमा ! काले कालोभासे, गंभीर- लोमहरिसजणणे, भीमे, उत्तासणए, परमकिण्हेवणणे पणत्ते, देवे णं अत्थेगइए जेणं तप्पढमयाए पासित्ता णं खुभाएज्जा, अहे णं अभिसमागच्छेज्जा, तओ पच्छा सीहं सीहं, तुरियं २ खिप्पामेव वीईवएज्जा । तमुक्कायस्स णं भंते ! कइ नामधेज्जा पणत्ता ? गोयमा ! तेरस्स नामधेज्जा पणत्ता, तं जहा-तमे इ वा १, तमुक्काए इ वा २, अंधयारे इ वा ३, महांधयारे इ वा ४, लोगंधयारे इ वा ५, लोगतमिस्से इ वा ६, देवंधयारे इ वा ७, देवतमिस्से इ वा ८, देवरणणे इ वा ९, देववूहे इ वा १०, देवफ- लिहे इ वा ११, देवपडिक्खोभे इ वा १२, अरुणोदए इ वा, समुहे १३, तमुक्काएणं भंते ! किं पुढवि परिणामे, आउपरिणामे, जीव- परिणामे, पोग्गलपरिणामे ? गोयमा ! णो पुढविपरिणामे, आउपरिणामे वि, जीवपरिणामे वि, पोग्गलपरिणामे वि । तमुक्काएणं भंते ! सव्वे पाणा भूया, जीवा सत्ता पुढवीकाइ- यत्ताए, जावतसकाइयत्ताए उववन्नपुव्वा ? हंता, गोयमा !

અસઈં અદુવા અજંત-વસુત્તો, ણો ચેવ ણં વાદરપુઢવિકાઙ્ગય-
ત્તાણ, વાદરઅગણિકાઙ્ગયત્તાણ વા ॥ સૂ. ૧ ? ॥

છાયા—કિમ્ અપમ્ ભદન્ત ! તમસ્કાય ઇતિપોચ્યતે ? કિં પૃથિવીતમસ્કાય
ઇતિ પ્રોચ્યતે, આપઃ તમસ્કાય ઇતિ પ્રોચ્યતે ? ગૌતમ ! નો પૃથિવીતમસ્કાય ઇતિ
પ્રોચ્યતે, આપઃ તમસ્કાય ઇતિ પ્રોચ્યતે । તન્ કેનાર્થનઃ ? ગૌતમ ! પૃથિવીઠાઓ-
સ્ત્યેકકઃ શુભોદેશં પ્રહાસયન્તિ, અસ્ત્યેકકો દેશં નો પ્રહાસયન્તિ, તન્ તેનાર્થન ।

તમસ્કાય વ્યક્તવ્યતા

‘ કિમયં ભંતે । “ તમુક્કાણ ” ત્તિ પવુચ્ચઈ ’ ઇત્યાદિ ।

સૂત્રાર્થ—(કિમયં ભંતે ! તમુક્કાણ ત્તિ પવુચ્ચઈ, કિં પુઢવિ
તમુક્કાણ ત્તિ પવુચ્ચઈ, આઝ તમુક્કાણ ત્તિ પવુચ્ચઈ) હે ભદન્ત ! વહ જો
તમસ્કાય હૈ વહ કયા પદાર્થ હૈ—અર્થાત્ કિસ પદાર્થરૂપ વહ તમસ્કાય
કહા ગયા હૈ ? કયા વહ તમસ્કાય પૃથ્વીરૂપ કહા ગયા હૈ યા વહ તમ-
સ્કાય અપ્-જલરૂપ કહા ગયા હૈ ? (ગોયમા) હે ગૌતમ ! (ણો પુઢવિ
તમુક્કાણ ત્તિ પવુચ્ચઈ, આઝ તમુક્કાણ ત્તિ પવુચ્ચઈ) વહ તમસ્કાય
પૃથિવીરૂપ નહીં કહા ગયા હૈ કિન્તુ વહ તમસ્કાય અપ્-જલરૂપ કહા
ગયા હૈ । (સે કેળટ્ટેણં) હે ભદન્ત ! આપ ણેસા કિસ કારણ સે કહતે
હૈં કિ તમસ્કાય પૃથિવીરૂપ નહીં કહા ગયા હૈં કિન્તુ અપ્-જલરૂપ કહા
ગયા હૈં ? (ગોયમા) હે ગૌતમ ! (પુઢવિકાણં અત્યેગઈણ સુભે દેસં
પગાસેઈ અત્યેગઈણ દેસં ણો પગાસેઈ, સે તેણટ્ટેણં) કિતનીક પૃથિવી-

તમસ્કાય વક્તવ્યતા—

“ કિ અયં ભંતે ! “ તમુક્કાર ” ત્તિ પવુચ્ચઈ, ” ઇત્યાદિ—

સૂત્રાર્થ—(કિમયં ભંતે ! “ તમુક્કાણ ” ત્તિ પવુચ્ચઈ, કિં પુઢવો તમુક્કાણ
ત્તિ પવુચ્ચઈ, આઝ તમુક્કાણ ત્તિ પવુચ્ચઈ ?) હે ભદન્ત ! આજે તમસ્કાય છે
તે કયો પદાર્થ છે—એટલે કે તમસ્કાય કયા પદાર્થરૂપ છે ? શું તમસ્કાયને
પૃથ્વીરૂપ કહેલ છે ? અથવા તો તેને જળરૂપ કહેલ છે ?

(ગોયમા !) હે ગૌતમ ! (ણો પુઢવિ તમુક્કાણ ત્તિ પવુચ્ચઈ, આઝ તમુક્કાણ
ત્તિ પવુચ્ચઈ) તમસ્કાયને પૃથ્વીરૂપ કહું નથી, પણ તેને જળરૂપ કહું છે.

(સે કેળટ્ટેણં ?) હે ભદન્ત ! આપ શા કારણે એવું કહો છો કે
તમસ્કાયને પૃથ્વીરૂપ કહું નથી પણ જળરૂપ કહું છે ?

(ગોયમા !) હે ગૌતમ ! (પુઢવિકાણં અત્યેગઈણ સુભેદેસં પગાસેઈ,
અત્યેગઈણ દેસં ણો પગાસેઈ, સે તેણટ્ટેણં) કેટલીક પૃથ્વીકાય એવી શુભ

तमस्कायः खलु भदन्त ! कुत्रः समुत्थितः, कुत्र संनिष्ठितः ? गौतम ! जम्बूद्वीपस्य द्वीपस्य बहिः तिर्यगसंख्येयान् द्वीप-समुद्रान् व्यतिव्रज्य अरुणवरस्य द्वीपस्य बाह्याद् वेदिकान्ताद् अरुणोदकं समुद्रं द्वाचत्वारिंशद्द्वयोजनसहस्राणि अवगाह्य उपरितनाद् जलान्ताद् एकप्रदेशिकया श्रेण्या-अत्र खलु तमस्कायः समुत्थितः, सप्त-

काय ऐसी शुभ होती है कि वह देशको-एक भाग को प्रकाशित करती है । और कितनीक पृथिवीकाय ऐसी होती है जो वह देश को-एक भाग को प्रकाशित नहीं करती है । इस कारण मैंने ऐसा कहा है कि तमस्काय पृथिवीरूप नहीं है अप-जलरूप है । (तमुक्त्वा ए णं भंते) कहिं समुद्रिण, कहिं संनिष्ठिण ?) हे भदन्त ! यह तमस्काय कहां से प्रारंभ होता है ? और कहां इसका अन्त होता है ? (गोयमा) हे गौतम ! (जंबूद्वीपस्स बहिया तिरियमसंखेजे दीवसमुद्वे वीईवइत्ता, अरुणवरस्स दीवस्स बाहिरिल्लाओ वेइयंताओ अरुणोदयं समुद्रं बायालीसं जोजण-सहस्साणि ओगहित्ता उवरिल्लाओ जलंताओ एगपएसियाए सेढीए एत्थणं तमुक्त्वाए समुद्रिण) जंबूद्वीप के बाहिर तिरछे असंख्यात द्वीप समुद्रों को उल्लंघन-पार करने के बाद अरुणवर द्वीप आता है । इस अरुणवर द्वीप को चारों ओर से अरुणोदय समुद्र घेरे हुए है । इस समुद्र की बाहिरि वेदिका के अन्त से लेकर अरुणोदय समुद्र में ४२ हजार योजन आगे जाने पर उपरितन जलान्त आता है । इस उपरि-

(देदीप्यमान) डाय छे डे ते देशने (अेक लागने) प्रकाशित करे छे, अने डेटडीक पृथ्वीकाय अेवी डाय छे डे ले क्षेत्रना अेक लागने पणु प्रकाशित करती नथी. डे गौतम ते डारखे मे' अेवुं कहुं छे डे तमस्काय पृथ्वीरूप नथी पणु जणइय छे.

(तमुक्त्वा ए णं भंते ! कहिं समुद्रिण कहिं संनिष्ठिण ?) डे लदन्त ! आ तमस्कायने प्रारंभ कयांथी थाय छे अने कयां तेनी सभासि थाय छे ?

(गोयमा !) डे गौतम ! (जंबूद्वीपस्स बहिया तिरियमसंखेजे दीवसमुद्वे वीईवइत्ता, अरुणवरस्स दीवस्स बाहिरिल्लाओ वेइयंताओ अरुणोदयं समुद्रं बायालीसं जोजणसहस्साणि ओगहित्ता उवरिल्लाओ जलंताओ एगपएसियाए सेढीए एत्थणं तमुक्त्वाए समुद्रिण) जंबूद्वीपनी णडार तिरछा असंख्यात द्वीप समुद्रोने पार कयां पथी अरुणवर द्वीप आवे छे. आ अरुणवर द्वीपने घेरीने आरे तरइ अरुणोदय समुद्र रडेयो छे. ते समुद्रनी णडारनी वेदिकाना अन्तथी लधने अरुणोदय समुद्रमां गेतावीय डडार ये.अन आगण जतां उपरितन जलान्त

દસીકવિંશતિયોજનશતાનિ ઝર્ધમ્ ઉત્પત્ય તતઃ પમાન્ તિર્યક્ પ્રવિસ્તરન્ , પ્રવિસ્ત-
 રન્ સૌધર્મ-શાન-સનત્કુમાર-માહેન્દ્રાન્ ચતુરોઽપિ કલ્પાન્ ભાગ્યત્ ઝર્ધમપિ ન લલુ
 વ્રામ્લોકે કલ્પે રિષ્ટવિમાનપત્નટં સંપાત્તઃ-અપ લલુ તમસ્કાયઃ સંનિદ્વિનઃ। તમસ્કાયઃ
 લલુ ભદન્ત ! ક્લિંસંસ્થિતઃ પગ્નત્ ? ગૌતમ ! અધો મહ્લમૂલપંસ્થિતઃ, ઉપરિહ્નકુટપ-
 ઝરકસંસ્થિતઃ પગ્નત્ । તમસ્કાયઃ લલુ ભદન્ત ! ક્લિયાન્ વિપ્કમ્ભેજ, ક્લિયાન્ પરિક્ષે-

તન જલાન્ત સે એક શ્રેણિ પેસી આતી હૈ જો ઉપર ઓર નીચે સપ્રદેશ-
 ઘાલી હૈ-અર્થાત્ ભિત્તિ કે જૈસે ભિત્તિ ઝપર નીચે મધ્ય મેં એકસી
 હોતી હૈ-इसी तरह की यह श्रेणी है-इस श्रेणि से तमस्काय प्रारंभ
 હોતા હૈ । (સત્તરસ-એકવીસે જોયણસસ ઉઠું ઉપરહત્તા તમો વચ્ચા તિરિયં
 પવિત્થરમાણે પવિત્થરમાણે સોદમ્મીસાણસણંકુમારમાહિદે ચત્તારિ
 વિ કલ્પે આવરિત્તા ણં ઉઠું પિ ય ણં પંમલોગે કલ્પે રિષ્ટવિમાણપત્થઢં
 સંપત્તે-પ્ત્થ ણં તમુક્કાણ ણં સંનિદ્વિણ) યહ તમસ્કાય યહાં સે પ્રારંભ
 હોકર ૧૭૨૧ યોજન ઝેચે જાહર વહાં સે પીઝે તિરછા વિસ્તૃત હોતા
 હુઆ સૌધર્મ, ઈશાન, સનત્કુમાર ઇન ચાર કલ્પોં કો આવૃત્ત આચ્છા-
 દિત્ત કરકે ઝેચે વ્રહ્મલોકકલ્પ મેં રિષ્ટ વિમાન કે પાથઢે તક પહુંચતા
 હૈ-યહીં પર ઇસ તમસ્કાય કા અન્ત હૈ । (તમુક્કાણં મંતે ! ક્લિં સંઠિણ
 પગ્નત્તે) હે ભદન્ત ! ઇસ તમસ્કાય કા આકાર કેસા હૈ ? (ગોયમા)
 હે ગૌતમ ! (અહે મહ્લમૂલસંઠિણ ઉપ્પિ કુક્કુહપંજરગસંઠિણ પગ્નત્તે)

આવે છે. તે ઉપરિતન જલાન્તથી એક શ્રેણિ એવી આવે છે કે જે ઉપર અને
 નીચે સમપ્રદેશનાળી છે-એટલે કે દિવાલના જેવી છે-જેવી રીતે દીવાલ ઉપર,
 નીચે અને મધ્ય ભાગમાં એક સરખી હોય છે એજ પ્રકારની આ શ્રેણી છે.
 તે શ્રેણિમાંથી તમસ્કાયનો પ્રારંભ થાય છે. (સત્તરસ-એકવીસે જોયણસસ ઉઠું
 ઉપરહત્તા તમોહચ્છા તિરિયં પવિત્થરમાણે પવિત્થરમાણે સોદમ્મીસાણસણંકુમારમાહિદે
 ચત્તારિ વિ કલ્પે આવરિત્તાણં ઉઠું પિ ય ણં પંમલોગે કલ્પે રિષ્ટવિમાણપત્થઢં સંપત્તે
 પ્ત્થ ણં તમુક્કાણ ણં સંનિદ્વિણ) આ તમસ્કાય તે શ્રેણિમાંથી શરૂ થઈને ૧૭૨૧
 યોજન ઊંચે જાય છે. ત્યારબાદ ત્યાંથી તે તિરછા વિસ્તૃત થઈને સૌધર્મ,
 ઈશાન, સનત્કુમાર અને માહેન્દ્ર એ ચાર કલ્પોને આવૃત્ત કરીને ઊંચે
 બ્રહ્મલોક કલ્પમાં રિષ્ટ વિમાનના પાથઢા સુધી પહોંચે છે અને ત્યાં જ તેને।
 (તમસ્કાયનો) અન્ત આવી જાય છે.

(તમુક્કાણં મંતે ! ક્લિં સંઠિણ પગ્નત્તે ?) હે ભદન્ત ! તમસ્કાયનો
 આકાર કેવો હોય છે ?

પેણ પ્રજ્ઞપ્તઃ ? ગૌતમ ! તમસ્કાયઃ સ્વલુ દ્વિવિધઃ પ્રજ્ઞપ્તઃ, તદ્યથા—સંખ્યેયવિસ્તૃતથ, અસંખ્યેયવિસ્તૃતથ, તત્ર સ્વલુ યઃ સ સંખ્યેયવિસ્તૃતઃ સ સ્વલુસંખ્યેયાનિ યોજનસહઃ સ્ત્રાણિ વિષ્કમ્બેણ, અસંખ્યેયાનિ યોજનસહસ્ત્રાણિ પરિક્ષેપેણ પ્રજ્ઞપ્તઃ । તત્ર સ્વલુ યઃ સોઽસંખ્યેયવિસ્તૃતઃ સઃ સ્વલુ અસંખ્યેયાનિ યોજનસહસ્ત્રાણિ વિષ્કમ્બેણ, અસંખ્યે-

હે ગૌતમ ! તમસ્કાય કા નીચે કા આકાર મિટ્ટી કે દીપક કે નીચે કે ભાગ જૈસા કહા ગયા હૈ ઓર ડપર કા આકાર મુર્ગા કે પિંજરેકે આકાર જૈસા કહા ગયા હૈ । (તમુક્ષાણ ણં મંતે ! કેવદ્વયં વિક્લંભેણ, કેવદ્વયં પરિક્ષેવેણં પળ્લત્તે) હે મદન્ત ! તમસ્કાય કા વિસ્તાર કિતના હૈ ? ઓર પરિક્ષેવ કિતના હૈ ? (ગોયમા ! તમુક્ષાણં દુવિદ્દે પળ્લત્તે—તં જહા સંલેઝ્જવિત્થડે ય અસંલેઝ્જવિત્થડે ય) હે ગૌતમ ! તમસ્કાય દો પ્રકાર કા કહા ગયા હૈ—એક સંખ્યાત વિસ્તાર વાલા તમસ્કાય ઓર દૂસરા અસંખ્યાત વિસ્તારવાલા તમસ્કાય (તત્થ ણં જે સે સંલેઝ્જવિત્થડે સે ણં સંલેઝ્જાઈં જોયણસહસ્સાઈં વિક્લંભેણ) હનમેં જો સંખ્યાત વિસ્તારવાલા તમસ્કાય હૈ વહ અપને વિષ્કંભ સે સંખ્યાત હજાર યોજન કા તથા (અસંલેઝ્જાઈં જોયણસહસ્સાઈં પરિક્ષેવેણં પળ્લત્તે) પરિક્ષેવસે અસંખ્યાત હજાર યોજન કા કહા ગયા હૈ । (તત્થ ણં જે સે અસંલેઝ્જવિત્થડે સે ણં

(ગોયમા ।) હે ગૌતમ ! (અહે મહ્ધામૂઝ સંઠિય વપ્પિ કુફ્ફુડપંજરગ-સંઠિય પળ્લપ્પ) તમસ્કાયના નીચેના ભાગને આકાર દીવો કરવાના માટીના કોડિયાના નીચેના ભાગ જેવો કહ્યો છે, અને તેના ઉપરના ભાગને આકાર કૂકડાના પિંજરાના આકાર જેવો કહ્યો છે.

(તમુક્ષાણ ણં મંતે ! કેવદ્વયં વિક્લંભેણ, કેવદ્વયં પરિક્ષેવેણં પળ્લત્તે ?) હે ભદન્ત ! તમસ્કાયને વિસ્તાર કેટલો કહ્યો છે ? તેના પરિક્ષેવ (પરિધી) કેટલો કહ્યો છે ?

(ગોયમા ! તમુક્ષાણં દુવિદ્દે પળ્લત્તે—તં જહા—સંલેઝ્જવિત્થડે ય અસંલેઝ્જવિત્થડે ય) હે ગૌતમ ! તમસ્કાયના બે પ્રકાર નીચે પ્રમાણે કહ્યા છે—(૧) સંખ્યાત વિસ્તારવાળો તમસ્કાય અને બીજો અસંખ્યાત વિસ્તારવાળો તમસ્કાય. (તત્થ ણં જે સે સંલેઝ્જવિત્થડે સે ણં સંલેઝ્જાઈં જોયણસહસ્સાઈં વિક્લંભેણ) તેમાંનો જે સંખ્યાત વિસ્તારવાળો છે તેનો વિષ્કંભ (વિસ્તાર) સંખ્યાત હજાર યોજનનો ; તથા (અસંલેઝ્જાઈં જોયણસહસ્સાઈં પરિક્ષેવેણં પળ્લત્તે) પરિક્ષેવ (પરિધી) અસંખ્યાત હજાર યોજનનો કહ્યો છે.

(તત્થ ણં જે સે અસંલેઝ્જવિત્થડે સે ણં અસંલેઝ્જાઈં જોયણસહસ્સાઈં

યાનિયોગનસહસ્રાભિ પરિક્ષેપેન પ્રજ્ઞપ્તઃ । તમસ્કાયઃ સન્નુ મદન્ત ! કિયન્મહાલયઃ
પ્રજ્ઞપ્તઃ ? ગૌતમ ! અયં સન્નુ જંબુદ્વીપો દ્વીપઃ સર્વદ્વીપ-મધુદ્વાનાં સર્વોચ્ચન્તરકઃ,
યાવન્-પરિક્ષેપેન પ્રજ્ઞપ્તઃ । દેવઃ સન્નુ મહર્ષિદ્વિઃ, યાવન્-મહાનુભાવઃ, एतदेव
एतदेव-इति कृत्वा केवलकल्पं जम्बुद्वीपं द्वीपं विभिरस्मणेनिरागिः निम्नविभण्डि-
काभिः त्रिसप्तकृत्यः अनुपर्यटयन् शीघ्रम् भागच्छेत्. स देवस्या उक्तृत्या, त्वरि-
तया, यावन्-दैवगत्या व्यभिन्ननर यावन्-एकाहं वा, इणम वा व्यहं वा, उत्क-

असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं विखल्लंभेणं, असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं
परिखेवेणं पण्णत्ते) और जो असंख्यात विस्तार वाला तमस्काय है
वह विष्कंभ से असंख्यात हजार योजन का और परिक्षेप से भी असं-
ख्यातहजार योजन का कहा गया है । (तमुक्त्वाए णं भवे ! के महालय
पण्णत्ते) हे भदन्त ! तमस्काय कितना यज्ञ है ? (गोयमा) हे गौतम !
(अयं णं जंबुद्वीवे दीवे सब्बदीवसमुद्धानं सब्बभन्तराए जाव परिखे-
वेणं पण्णत्ते) समस्त द्वीप और समस्त समुद्रों के बीच में यह जंबुद्वीप
नाम का द्वीप-मध्यजंबुद्वीप यावत् परिक्षेपवाला कहा गया है-अथ
(देवेणं महिद्विए जाव महाणुभावे, इणामेव इणामेव तिककट्टु केवल
कल्पं जंबुद्वीवं दीवं तिहि तिहि अच्छरनिवाएहिं त्तिसत्तलुत्तो अणुपरि-
यट्टित्ताणं हव्वं आगच्छिज्जा-से णं देवे ताए उक्किट्ठाए तुरियाए जाव देव-
गईए वीईवयमाणे. जाव एकाहं वा दुयाहं वा तियाहं वा उक्कोसेणं छम्मासे

विखल्लंभेणं, असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं परिखेवेणं पण्णत्ते) અને જે સંખ્યાત
વિસ્તારવાળો તમસ્કાય છે તેનો વિષ્કંભ અસંખ્યાત હજાર યોજનનો અને
પરિક્ષેપ પણ અસંખ્યાત હજાર યોજનનો કહ્યો છે

(તમુક્ત્વાએ ણં ભવે ! કે મહાલય પણ્ણત્તે ?) હે ભદન્ત ! તમસ્કાય
કેટલો મોટો છે ?

(ગોયમા !) હે ગૌતમ ! (અયં ણં જંબુદ્વીવે દીવે સબ્બદીવસમુદ્ધાણં
સબ્બભન્તરાએ જાવ પરિક્ષેવેણં પણ્ણત્તે) સમસ્ત દ્વીપ અને સમસ્ત સમુદ્રોની
વચ્ચે આવેલો આ જંબુદ્વીપ નામનો દ્વીપ-મધ્ય જંબુદ્વીપ એક લાખ યોજ-
નના આયામ વિષ્કંભવાળો અને ૩૧૬૨૨૭ યોજન, ૩ કોસ, ૨૮૦૦ ધનુષ
અને ૧૩૧ આંગળથી સહેજ અધિક પરિધીવાળો કહ્યો છે. (અહીં ' જાવ '
પદથી થકલુ, કરવામાં આવેલ સૂત્રપાઠનો અર્થ આપ્યો છે) હવે (દેવેણં
મહિદ્વિએ જાવ મહાણુભાવે, ઇણામેવ ઇણામેવ તિકકટ્ટુ કેવલકલ્પં જંબુદ્વીવં દીવં
તિહિં તિહિં અચ્છરનિવાએહિં ત્તિ સત્તલુત્તો અણુપરિયટ્ટિત્તાણં હવ્વં આગચ્છિજ્જા
સે ણં દેવે તાએ ઉક્કિટ્ઠાએ તુરિયાએ જાવ દેવગઈએ વીઈવયમાણે, જાવ એકાહં વા

વેળ પળ્લાસાન્ વ્યતિવ્રજેન્, અસ્ત્યેકકં તમસ્કાયં વ્યતિવ્રજેન્, અસ્ત્યેકકં તમ-
સ્કાયં નો વ્યતિવ્રજેન્, ઇયમ્મહાલયઃ સ્વદુ ગૌતમ ! તમસ્કાયઃ પ્રજ્ઞતઃ ! અસ્તિ
સ્વદુ ભદન્ત ! તમસ્કાયે ગેહાનિ વા, ગેહાવણા વા ? નો અયમર્થઃ, સમર્થઃ અસ્તિ
સ્વદુ ભદન્ત ! તમસ્કાયે ગ્રામાશ્તિ વા ચાવત્સંનિવેસા ઇતિ વા ? નો અયમર્થઃ

વીર્વૈવૈજ્ઞા, અત્યેગદ્યં તમુસ્કાયં વીર્વૈવૈજ્ઞા, અત્યેગદ્યં તમુસ્કાયં ણો
વીર્વૈવૈજ્ઞા-અમહાલયં ગોયમા ! તમુસ્કાય પળ્લાસે) કોર્ડ વિશાલ-વહી
ભારી-કદિવાલા યાવત્ મહાપ્રભાવવાલા દેવ " યહ મેં ચલા યહ મેં
ચલ " હસ તરહ કા ઉતાચલા ચનકર તીન ચુટકી વજતે હી ૨૧ વાર
વસ સમસ્ત જંબૂદ્વીપ કી પરિક્રમા દેકર શીઘ્ર આજાવે-હસ તરહ વહ
દેવ અપની દેવગતિસંબંધી ત્વરાદિ વિશેષણવાલી ગતિ સે ઇક દિન, દો
દિન યા તીન દિનતક ચલતા રહે ઓર અધિક સે અધિક હસ તરહ સે
વહ છહ માહ તક ચલે તો હસ પ્રકાર કી ચાલ સે ચલને ચાલા વહ દેવ
તમસ્કાય કે ક્રિતનેક અંશ કો પ્રાપ્ત કર સકતા હૈ ઓર ક્રિતનેક તમ-
સ્કાય કે અંશ કો પ્રાપ્ત નહીં કર સકતા હૈ. હે ગૌતમ ! હતના વહા
વિશાલ તમસ્કાય કહા ગયા હૈ. (અત્થિયં ભંતે ! તમુસ્કાય ગેહાઈ વા,
ગેહાવણાઈ વા ?) હે ભદન્ત ! તમસ્કાય મેં કયા ઘર હૈં ? ગૃહાવણ હૈં ?
(ણો ઇગદે ઇગદે) હે ગૌતમ ! યહ અર્થ સમર્થ નહીં હૈ. (અત્થિયં
ભંતે ! તમુસ્કાય ગામાઈ વા જાવ સન્નિવેસાઈ વા) હે ભદન્ત ! તમસ્કાય

દુવાહ, તિયાઈ વા ઉકોસેણં છમ્માસે વીર્વૈવૈજ્ઞા, અત્યેગદ્યં તમુસ્કાયં વીર્વૈવૈજ્ઞા,
અત્યેગદ્યં તમુસ્કાયં ણો વીર્વૈવૈજ્ઞા-અમહાલયં ગોયમા ! તમુસ્કાય પળ્લાસે) કોર્ડ
વિશાળ કદિવાળો, મહાપ્રભાવ આદિથી યુક્ત હોય એવો દેવ " આ ઉપડયો,
આ ઉપડયો " એમ કહેતો ઘણો ઉતાવળો ઉતાવળો ત્રણ વાર અપટ્ટી વગા-
ડતા તો સમસ્ત જંબૂદ્વીપની ૨૧ વાર પ્રદક્ષિણા કરીને પાછો આવી જાય છે,
આ પ્રકારની શીઘ્ર ગતિવાળો તે દેવ, પોતાની આ પ્રકારની ત્વરાદિ વિશેષણો-
વાળી દેવગતિથી એક દિવસ, બે દિવસ, અથવા ત્રણ દિવસ સુધી ચાલ્યા
કરે અને આ રીતે અધિકમાં અધિક છ માસ સુધી તે ચાલ્યા કરે, તો આ
પ્રકારની ગતિથી ચાલનારો તે દેવ તમસ્કાયના કેટલાક અંશને પાર કરી શકે
છે અને તમસ્કાયના કેટલાક અંશને તો પાર કરી શકે નહીં પણ નથી હો
ગૌતમ ! તમસ્કાયને એટલો બધો મોટો અને વિશાળ કહ્યો છે.

(અત્થિયં ભંતે ! તમુસ્કાય ગેહાઈ વા, ગેહાવણાઈ વા ?) હે ભદન્ત !
તમસ્કાયમાં શું ઘરો હોય છે ? ગૃહાવણો (હાટ) હોય છે ?
(ણો ઇગદે સમદે) હે ગૌતમ ! તેમાં એવું કંઈ પણ હોતું નથી.

યાનિયોજનસહસ્રાણિ પરિક્ષેપેણ પ્રગ્નવ્તઃ । તમસ્કાયઃ તાચ્ચ મદન્ત ! દિવ્યન્મહાલયઃ
 પ્રગ્નવ્તઃ ? ગૌતમ ! અયં સહ જમ્બૂદ્વીપો દ્વીપઃ સર્વદ્વીપ-સમુદ્રાણાં સત્તંભ્યન્તરકઃ,
 યાવત્-પરિક્ષેપેણ પ્રગ્નવ્તઃ । દેવઃ સહ મહદ્દ્રિઃ, યાવત્-મહાનુભાવઃ, एतदेव
 एतदेव-इति कृत्वा केवलकल्पं जम्बूद्वीपं द्वीपं त्रिभिरप्यगोनिर्वाण-त्रिभिरभ्रगुष्टि-
 काभिः त्रिसप्तकृत्यः अनुपर्यटयन्-शीघ्रम् भागच्छेत्, स देवताया उकृष्टया, लरि-
 तया, यावत्-देवगत्या व्यनियन्नन्तर यावत्-एकाहं वा, दुयाहं वा व्यहं वा, उत्क-

असंखेज्जाइं जोयणसहस्राइं विखलंभेणं, असंखेज्जाइं जोयणसहस्राइं
 परिखलेवेणं पणत्ते) और जो असंख्यात विस्तार वाला तमस्काय है
 वह विष्कंभ से असंख्यात हजार योजन का और परिक्षेप से भी असं-
 ख्यातहजार योजन का कहा गया है । (तमुक्त्वा णं भंते ! के महालय
 पणत्ते) हे भदन्त ! तमस्काय कितना चड़ा है ? (गोयमा) हे गौतम !
 (अयं णं जंबुद्वीवे दीवे सव्वदीवसमुद्धानं सव्वज्जन्तराणं जाव परिकखे-
 वेणं पणत्ते) समस्त द्वीप और समस्त समुद्रों के बीच में यह जंबुद्वीप
 नाम का द्वीप-मध्यजंबुद्वीप यावत् परिक्षेपवाला कहा गया है-अथ
 (देवेणं महिद्विणं जाव महाणुभावे, इणामेव इणामेव तिकद्धदु केवल
 कल्पं जंबुद्वीवं दीवं तिहिं तिहिं अच्छरनिवापहिं तिसत्तखुत्तो अणुपरि-
 यट्टित्ताणं हव्वं आगच्छिज्जा-से णं देवे ताप उक्किट्ठाए तुरियाए जाव देव-
 गईए वीईवयभाणे, जाव एकाहं वा दुयाहं वा तियाहं वा उक्कोसेणं छम्मासे

विखलंभेणं, असंखेज्जाइं जोयणसहस्राइं परिकखेवेणं पणत्ते) અને જે સંખ્યાત
 વિસ્તારવાળો તમસ્કાય છે તેનો વિષ્કંભ અસંખ્યાત હાર યોજનનો અને
 પરિક્ષેપ પણ અસંખ્યાત હાર યોજનનો કહ્યો છે

(તમુક્ત્વા ણં ભંતે ! કે મહાલય પણત્તે ?) હે ભદન્ત ! તમસ્કાય
 કેટલો મોટો છે ?

(ગોયમા ।) હે ગૌતમ ! (અયં ણં જંબુદ્વીવે દીવે સવ્વદીવસમુદ્ધાણં
 સવ્વજ્જન્તરાણં જાવ પરિક્ષેવેણં પણત્તે) સમસ્ત દ્વીપ અને સમસ્ત સમુદ્રોની
 વચ્ચે આવેલો આ જંબુદ્વીપ નામનો દ્વીપ-મધ્ય જંબુદ્વીપ એક લાખ યોજ-
 નના આયામ વિષ્કંભવાળો અને ૩૧૬૨૨૭ યોજન, ૩ ઠોસ, ૨૮૦૦ ધનુષ
 અને ૧૩૫ આંગળથી સહેજ અધિક પરિધીવાળો કહ્યો છે. (અહીં ' જાવ '
 પદથી થઇણ કરવામાં આવેલ સૂત્રપાઠનો અર્થ આવ્યો છે) હવે (દેવેણં
 મહિદ્વિણં જાવ મહાણુભાવે, ઇણામેવ ઇણામેવ તિકદ્દદુ કેવલકલ્પં જંબુદ્વીવં દીવં
 તિહિં તિહિં અચ્છરનિવાપહિં તિ સત્તલુત્તો અણુપરિયટ્ટિત્તાણં હવ્વં આગચ્છિજ્જા
 સે ણં દેવે તાપ ઉક્કિટ્ઠાए તુરિયાए જાવ દેવગઈए વીઈવયમાણે, જાવ ઇકાહં વા

असुरः प्रकरोति, नागः प्रकरोति ? गौतम त्रयोऽपि प्रकुर्वन्ति । अस्ति खलु भदन्त ! तमस्काये वादरः पृथिवीकायः, वादरोऽग्निकायः ? नो अयमर्थः, समर्थः, नान्यत्र विग्रहगतिसमापन्नकेन । सन्ति खलु भदन्त ! तमस्काये चन्द्र-सूर्य-ग्रहगण-नक्षत्र-तारारूपाः ? नो अयमर्थः समर्थः, परिपार्श्वतः पुनः सन्ति अस्ति खलु

स्तनित शब्द होता है ? वादर विद्युत् होती है ? (हंता अत्थि) हां गौतम ! यह सब होता है (तं भंते ! किं देवो पकरेइ, असुरो पकरेइ, नागो पकरेइ) हे भदन्त ! तो इस वादर स्तनित आदि को वहां कौन करता है-क्या देव करता है ? या असुर करता है ? या नाग करता है ? (गो-यमा ! तिणिण वि पकरेति) हे गौतम ! तीनों ही करते हैं । (अत्थि णं भंते ! तमुक्काये वायरे पुढविकाए, वायरे अगणिकाए) हे भदन्त ! तमस्काय में क्या वादर पृथिवीकाय है ? वादर अग्निकाय है ? (णो इण्ठे सम्ठे) हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है । (णणत्थ विग्गहगइ-समावन्नएणं) परन्तु वहां पर विग्रहगतिसमापन्न वादर पृथिवी और वादर अग्नि है । अत्थि णं भंते ! तमुक्काए चंदिम-सूरिय-गहगण-णक्खत्त-तारारूपा) हे भदन्त ! तमस्काय में क्या चंद्र, सूर्य, ग्रहगण, नक्षत्र एवं तारारूप हैं ? (णो इण्ठे सम्ठे) हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है । (पळियस्सओ पुण अत्थि) पर ये सब उसके पार्श्वभाग की

(हंता अत्थि) हां, गौतम ! ते अधुं थाय छे.

(तं भंते ! किं देवो पकरेइ, असुरो पकरेइ, नागो पकरेइ ?) हे भदन्त ! आ धनगर्जन आदि त्यां डोणु करे छे ? शुं देव करे छे ? शुं असुर करे छे ? शुं नाग करे छे ?

(गोयमा ! तिणिण वि पकरेति) हे गौतम ! त्रणे करे छे.

(अत्थि णं भंते ! तमुक्काए वायरे पुढविकाए, वायरे अगणिकाए ?) हे भदन्त ! तमस्कायमां शुं आदर पृथ्वीकाय छे ? आदर अग्निकाय छे ?

(णो इण्ठे सम्ठे) हे गौतम ! तमस्कायमां आदर पृथ्वीकाय पणु नथी अने आदर अग्निकाय पणु नथी. (णणत्थ विग्गहगइसमावन्नएणं) परन्तु तेमां विग्रहगति समापन्न आदर पृथ्वी अने आदर अग्नि छे.

(अत्थि णं भंते ! तमुक्काए चंदिम-सूरिय गहगण-णक्खत्त-तारारूपा) हे भदन्त ! तमस्कायमां चन्द्र, सूर्य, ग्रहगण, नक्षत्र अने ताराओ डोय छे अरां ?

(णो इण्ठे सम्ठे) हे गौतम ! तमस्कायमां चन्द्रादिक न्येतिपड देवो डोता नथी. (पळियस्सओ पुण अत्थि) परन्तु तेओ तेनी आनुमां डोय छे.

समर्थः । अस्ति सखु भदन्त ! तमस्काय उदारं यथाऽह्नाः संस्विषन्ति, संमूर्च्छन्ति, संवर्षन्ति ? इन्त, अस्ति । तद् भदन्त ! किं देवः प्रकरोति, अगुरोः प्रकरोति, नागः प्रकरोति ? गौतम ! देवोऽपि प्रकरोति, अगुरोऽपि प्रकरोति, नागोऽपि प्रकरोति । अस्ति सखु भदन्त ! तमस्काय वादरः स्तनितशब्दः, वादरा चियुन् ? इन्त, अस्ति ताम् । भदन्त ! किं देवः प्रकरोति,

में क्या ग्राम हैं, याचत् सन्निवेश हैं ? (गो इण्टे समट्टे) हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है । (अत्थिणं भंते ! तमुक्काए उराला वलाहया संसेयन्ति संमुच्छन्ति संवासन्ति वा) हे भदन्त ! तमस्काय में क्या बड़े २ मेघ गीला करने वाला स्निग्ध पृष्ठलो द्वारा गींते हो जाते हैं ? संमुच्छित्त-परस्पर में वे एकत्रित-होते हैं ? (हंता, अत्थि) हाँ गौतम ! ऐसा होता है । (तं भंते ! किं देवो पकरेइ, असुरो पकरेइ, नागो पकरेइ ?) हे भदन्त ! संस्वेदन आदि को देव करता है ? या असुर करता है ? या नाग करता है ? (गोयमा ! देवो वि पकरेइ, असुरो वि पकरेइ, नागो वि पकरेइ) हे गौतम ! उस संस्वेदन आदि को देव भी करता है, असुर भी करता है और नाग भी करता है । (अत्थि णं भंते ! तमुक्काए वायरे धणियसहे, वायरे विज्जुए) हे भदन्त तमस्काय में वादर

(अत्थि णं भंते ! तमुक्काए गामाइ वा जाव सन्निवेशाइ वा) हे भदन्त ! शुं तमस्कायमां गाम डोय छे ? सन्निवेश पर्यन्तनां स्थानो डोय छे ?

(गो इण्टे समट्टे) हे गौतम ! तमस्कायमां गाम आदि कथं पथु डोतुं नथी ।

(अत्थि णं भंते ! उराला वलाहया संसेयन्ति, संमुच्छन्ति, संवासन्ति वा ?) हे भदन्त ! शुं विशाण मेघ (वाहणांओ) तमस्कायमां लींजयनारा स्निग्ध पुद्गलो द्वारा लींजय छे भरां ? परस्परमां एकत्रित थाय छे भरां ? परसे छे भरां ? (हंता अत्थि) हाँ, गौतम अबुं थाय छे ।

(तं भंते ! किं देवोपकरेइ, अगुरो पकरेइ, नागो पकरेइ ?) हे भदन्त ! संस्वेदन आदि देव करे छे ? के असुर करे छे ? के नाग करे छे ?

(गोयमा ! देवो वि पकरेइ, अगुरो वि पकरेइ, नागो वि पकरेइ) हे गौतम ! ते संस्वेदन आदि देव पथु करे छे ? असुर पथु करे छे अने नाग पथु करे छे ?

(अत्थि णं भंते ! तमुक्काए वायरे धणियसहे, वायरे विज्जुए) हे भदन्त ! ते तमस्कायमां शुं वादर स्तनित शब्द-धनगणनं थाय छे ? वादर विधुत थाय छे ?

છેત્ તતઃ પથાત્ શીઘ્રં શીઘ્રમ્, ત્વરિતં ત્વરિતમ્ ક્ષિપ્રમેવ વ્યતિવ્રજેત્ । તમસ્કાયસ્ય
 સ્વલુ ભદન્ત ! કતિનામધેયાનિ પ્રજ્ઞપ્તાનિ ! ગૌતમ ! ત્રયોદશનામધેયાનિ પ્રજ્ઞપ્તાનિ,
 તથા-તમ ઇતિ વા, ૧ તમસ્કાય ઇતિ વા ૨, અન્ધકાર ઇતિ વા ૩, મહાન્ધકાર
 ઇતિ વા ૪, લોકાન્ધકાર ઇતિ વા ૫, લોકતમિસ્રમ્ ઇતિ વા ૬, દેવાન્ધકાર
 ઇતિ વા ૭, દેવતમિસ્રમ્ ઇતિ વા ૮, દેવારણ્યમ્ ઇતિ વા ૯, દેવવૃહ ઇતિ વા ૧૦,
 દેવપરિઘ ઇતિ વા ૧૧, દેવપ્રતિક્ષોભ ઇતિ વા ૧૨, અરુણોદક ઇતિ વા સમુદ્રઃ ૧૩ ।

જ્ઞા, સીહં સીહં, તુરિયં ૨ ક્ષિપ્પામેવ વીઙ્વણ્જ્ઞા) કદાચિત્ કોર્દેવ
 તમસ્કાય મેં પ્રવેશ કરે તો વહ ભય કે મારે વહાં સે વહુત હી જલ્દી-
 શરીર કી ત્વરા સે ઓર મન કી ત્વરાસે વહુત હી શીઘ્ર-ડસ તમસ્કાય
 કો ડલ્લંચન કરકે વાહર નિકલ જાતા હૈ । (તમુક્કાયસ્સ ણં મંતે ! કહ
 નામધેજ્ઞા પ્ણત્તા) હે ભદન્ત ! તમસ્કાય કે કિતને નામ કહે ગયે હૈં ?
 (ગોયમા) હે ગૌતમ ! (તેરસનામધેજ્ઞા પ્ણત્તા) તમસ્કાય કે તેરહ
 નામ કહે ગયે હૈં । (તં જહા) જો ઇસ પ્રકાર સે હૈં- (તમેહ વા, તમુ-
 ક્કાણ્હવા અંધયારેહ વા, મહાંધયારેહ વા, લોગંધયારેહ વા, લોગતમિસ્સેહ
 વા, દેવંધયારેહ વા, દેવતમિસ્સેહ વા, દેવરણ્ણેહ વા, દેવવૃહેહ વા દેવક્ર-
 લિહેહ વા, દેવપડિક્કલોમેહ વા, અરુણોદણ્ણ વા, સમુદ્દે) તમ ૧, તમ-
 સ્કાય ૨, અંધકાર ૩, મહાંધકાર ૪, લોકાંધકાર ૫, લોકતમિસ્ર ૬,
 દેવાંધકાર ૭, દેવતમિસ્ર ૮, દેવારણ્ય ૯, દેવવૃહ ૧૦, દેવ પરિઘ ૧૧,
 દેવપ્રતિક્ષોભ ૧૨, ણં અરુણોદકસમુદ્ર ૧૩ । (તમુક્કાણ્ણ મંતે ! કિં

(અહે ણં અમિસમાગચ્છેજ્ઞા, તઓ પરચ્છા સોહં સોહં, તુરિયં તુરિયં ક્ષિપ્પામેવ
 વીઙ્વણ્ણ) બે કોઈ દેવ તમસ્કાયમાં પ્રવેશ કરે છે, તો તે લયને કારણે
 જલ્દીમાં જલ્દી-શરીર અને મનની ત્વરાથી ઘણી જ ઝડપથી-તે તમસ્કાયને
 પાર કરીને બહાર નીકળી બાક છે.

(તમુક્કાયસ્સ ણં મંતે ! કહ નામધેજ્ઞા પ્ણત્તા ?) હે ભદન્ત ! તમસ્કા-
 યના કેટલા નામ કહ્યાં છે ?

(ગોયમા !) હે ગૌતમ ! તમસ્કાયના (તેરસ નામધેજ્ઞા પ્ણત્તા) તેર
 નામ કહ્યાં છે, (તં જહા) બેમકે (તમેહ વા, તમુક્કાણ્ણ વા, અંધયારેહ વા,
 દેવરણ્ણેહ વા, દેવવૃહેહ વા, દેવકલિહેહ વા, દેવપડિક્કલોમેહ વા, અરુણોદણ્ણ વા
 સમુદ્દે) (૧) તમ, (૨) તમસ્કાય, (૩) અંધકાર, (૪) મહાંધકાર (૫) લોકાં-
 ધકાર, (૬) લોકતમિસ્ર, (૭) દેવાંધકાર, (૮) દેવતમિસ્ર, (૯) દેવારણ્ય, (૧૦)
 દેવવૃહ, (૧૧) દેવપરિઘ, (૧૨) દેવપ્રતિક્ષોભ અને (૧૩) અરુણોદક સમુદ્ર.

મદન્ત ! તમસ્કાયે ચન્દ્રાભેતિ વા. સૂર્યાભેતિ વા ? નો પ્રથમર્થઃ સમર્થઃ, કાદ્ગણિ
 વા પુનઃ સા । તમસ્કાયઃ સત્ત્વ મદન્ત ! ક્ષીરકો વર્ણેન પદ્મનઃ ? ગૌતમ ! કાલઃ,
 કાલોભાસઃ, ગંભીરોમહરિમજનકઃ, મીમઃ, ઉત્તાસનકઃ, પરમકૃષ્ણવર્ણઃ પદ્મનઃ,
 દેવઃ સત્ત્વ અત્યેકકો યઃ સત્ત્વ તત્પ્રથમતયા દદ્ધા ક્ષુભ્યેન્, પ્રથ સત્ત્વ અભિસમાગ-

ઓર હૈં । (અત્થિ ણં મંતે ! તમુક્કાણ ચંદ્રામાહ વા સૂર્યામાહ વા) હૈ
 મદન્ત ! તમસ્કાય મેં ચંદ્રમા કી પ્રમા અથવા સૂર્ય કી પ્રમા હૈ કયા ?
 (ણો ણ્ણટ્ટે સમટ્ટે) હૈ ગૌતમ ! યહ અર્થ સમર્થ નહીં હૈ । (કાદ્મણિયા
 પુણસા) અર્થાત્ તમસ્કાય મેં ચન્દ્રપ્રમા ઓર સૂર્યપ્રમા હૈ તો સહી-પર-
 ત્તુ વહ વહાં નહીં જીસી હૈ । કયોં કિ યહાં પર ઉસકા પરિણમન તમ-
 સ્કાયરૂપ સે હો જાતા હૈ । (તમુક્કાણ ણં મંતે ! કેરિસણ વજ્જણ ણં પળ્ણ-
 સે) હૈ મદન્ત તમસ્કાય કા વર્ણ કૈસે કહા ગયા હૈ ? (ગોયમા ! કાલે,
 કાલોભાસે ગંભીરલોમહરિમજણે, મીમે, ઉત્તાસણણ, પરમકિળ્હે,
 વળ્ણે પળ્ણસે) હૈ ગૌતમ તમસ્કાય કા વર્ણકાલા. કાલીકાન્તિવાલા,
 ગંભીર, રોમરાજી કો સ્ત્રીકરદેનેવાલા, મયઙ્ગર ઓર કંપિત કર દેવે
 ણેસા પરમકૃષ્ણ કહા ગયા હૈ । (દેવે ણં અત્યેગહ્ણ જે ણં તત્પદ્મયાણ
 પામિત્તા ણં સુભાણ્ણ) યદિ કોહ દેવ સવ સે પહિલે હસે દેવલેતા હૈ
 તો વહ મી દેવલે હી ક્ષુભિત હો ઉઠતા હૈ । (અહે ણં અભિસમાંગચ્છે-

(અત્થિ ણં મંતે ! તમુક્કાણ ચંદ્રામાહ વા સૂર્યામાહ વા ?) હૈ મદન્ત !
 તમસ્કાયમાં ચન્દ્રની પ્રમા તથા સૂર્યની પ્રમા હોય છે ખરી ?

(ણો ણ્ણટ્ટે સમટ્ટે) હૈ ગૌતમ ! તેમાં ચન્દ્ર અથવા સૂર્યની પ્રમા હોતી
 નથી. (કા દૂર્લણિયા પુણસા) ને કે તમસ્કાયમાં ચન્દ્ર અને સૂર્યની પ્રમા
 હોય છે ખરી, પણ તે ત્યાં નહીં નેવી હોય છે, કારણ કે ત્યાં તેનું તમસ્કાય
 રૂપે પરિણમન થઈ ભય છે.

(તમુક્કાણ ણ મંતે ! કેરિસણ વજ્જણ ણં પળ્ણસે ?) હૈ મદન્ત ! તમસ્કાયના
 વર્ણ કયા કયા હોય છે ?

(ગોયમા ! કાલે, કાલોભાસે ગંભીરલોમ હરિસજણે, મીમે, ઉત્તાસણણ
 પરમકિળ્હે, વળ્ણે પળ્ણસે) હૈ ગૌતમ ! તમસ્કાયનો વર્ણ કાળો, કાળી કાન્તિ-
 વાળો, ગંભીર, રોમરાજીને ખડી કંડી દેનારો, ભયંકર અને ભયથી ધરધરાવી
 નાખે એવો પરમ કૃષ્ણ કહ્યો છે.

(દેવે ણં અત્યેગહ્ણ જે ણં તત્પદ્મયાણ પામિત્તા ણં સુભાણ્ણ) ને કોહ
 દેવ સૌથી પહેલાં તેને જાણે છે તો તે પણ તેને જાણે જ કોઈ અનુભવે છે.

टीका—‘ किमयं भंते ! तमुक्त्वाए ’ त्ति पञ्चुच्चइ ’ गौतमः पृच्छति
 -हे भदन्त ! अयं शास्त्रप्रसिद्धः ‘ तमस्कायः ’ तमसाम् अन्धकारपुद्ग-
 लानां कायो राशिः तमस्कायः इति किम् वस्तु ? कः पदार्थः प्रोच्यते ?
 स च तमस्कायः नियत एव पृथिवीरजःस्कन्धः, उदकरजस्कन्धो वा इह विवक्षितो
 भवितुमर्हति, न त्वन्यः, तदुभयभिन्नानां स्कन्धानां तमस्कायसदृशत्वाभावात्,
 इति पृथिवी-जलविषयकसंदेहात्, हृदयस्थं विकल्पं प्रकाशयति—‘ किं पुढवी तमु-
 क्त्वाए त्ति पञ्चुच्चइ ? ’ किम् तमस्कायः पृथिवी इति पृथिवीस्वरूपः प्रोच्यते ?
 अथवा ‘ आउतमुक्त्वाए त्ति पञ्चुच्चइ ? ’ तमस्कायः आपः जलम् इति जलस्वरूपो
 रूप से उत्पन्न हो चुके हैं। पर ये सप वहां वादरपृथिवीकायिकरूप से
 और वादर अग्निकायिकरूप से उत्पन्न नहीं हुए हैं।

टीकार्थ—चतुर्थ उद्देशक में, जीवों में सप्रदेशता आदिका निरूपण
 सूत्रकार ने किया है—अब वे इस पंचम उद्देशक में सप्रदेश तमस्काय
 आदि का निरूपण कर रहे हैं—इसमें गौतमस्वामी ने प्रभु से ऐसा पूछा
 है कि “ किमयं भंते ! तमुक्त्वाए त्ति ” हे भदन्त ! यह शास्त्रप्रसिद्ध
 तमस्काय क्या है ? अंधकाररूप पुद्गलों की राशि रूप जो यह शास्त्र
 संमत तमस्काय है वह किस पदार्थरूप है (किं) क्या (पुढवी तमुक्त्वाए
 त्ति-पञ्चुच्चइ, आउतमुक्त्वाए त्ति पञ्चुच्चइ) वह तमस्काय पुढवीरूप
 है ? या अप्कायरूप है ? इस प्रकार की जो यह संदेह भरी बात पूछी
 गई है उसका कारण यह है कि तमस्काय एक स्कन्धरूप पदार्थ है यह

वार अथवा अनंतवार ते समस्त प्राण्युद्धि पडेलीं त्यां पूर्वोक्तइपे उत्पन्न
 थळ युक्त्यां छे. परन्तु तेजो त्यां भादर पृथ्वीकायिक इपे अने भादर अग्नि-
 कायिक इपे उत्पन्न थया नथी.

टीकार्थ—येथा उद्देशकभां लोवानी अप्रदेशता आदितुं सूत्रकारे निरूपण
 क्युं छे. इंदे सूत्रकार आ पांथभां उद्देशकभां सप्रदेश तमस्काय आदितुं
 निरूपण करे छे—आ विषयने अनुवक्षीने गौतम स्वामी मडावीर प्रभुने जेवा
 प्रश्न पूछे छे इ—

“ किमयं भंते ! तमुक्त्वाए त्ति ” हे भदन्त ! आ शास्त्रप्रसिद्ध तमस्काय
 शुं छे ? जेटले के अंधकाररूप पुद्गलोनी राशिइप जे आ शास्त्रसंमत तमस्काय
 छे ते क्या पदार्थइप छे ? “ किं ” शुं (पुढवी तमुक्त्वाए त्ति पञ्चुच्चइ, आउतमुक्त्वाए
 त्ति पञ्चुच्चइ ?) शुं तमस्काय पृथ्वीइप छे ? अथवा अप्कायइप (जणइप) छे ?
 आ प्रकारनी संदेहयुक्त वात पूछवानुं कारण जे छे के तमस्काय जेक
 स्कन्धइप पदार्थ छे जे ते जेवळस छे, परन्तु जे वात निश्चित नथी के ते

तमस्कायः खलु भदन्त ! किं पृथिवीपरिणामः, अप्परिणामः, जीवपरिणामः, पुद्गलपरिणामः, गौतम ! नो पृथिवीपरिणामः, अप्परिणामोऽपि, जीवपरिणामोऽपि, पुद्गलपरिणामोऽपि । तमस्कायं खलु भदन्त ! सव पाणाः, भूताः, जीवाः, सत्त्वाः, पृथिवीकायिकरूपा यावत्-त्रसकायिकरूपा उपपन्नयाः ? हन्त, गौतम ! असकृत्, अथवा अनन्त कृत्वः, नो चैव खलु वाथरपृथिवी कायिकरूपा, वादरा-ग्निकायिकरूपा वा ” ॥ घ० १ ॥

पुढविपरिणामे आउपरिणामे जीवपरिणामे, पोग्गलपरिणामे) हे भदन्त ! तमस्काय क्विसका परिणाम है ? क्या पृथिवी का परिणाम है ? या अप्पकाय का परिणाम है ? या जीव का परिणाम है ? कि पुद्गल का परिणाम है ? (गोयमा) हे गौतम ! (णो पुढविपरिणामे, आउपरिणामे वि, जीवपरिणामे वि, पोग्गलपरिणामे वि) तमस्काय पृथिवी का परिणाम नहीं है । वह अप्पकाय का भी परिणाम है जीव का भी परिणाम है तथा पुद्गल का भी परिणाम है । (तमुक्काणं भंते ! सव्वे पाणा, भूया, जीवा, सत्ता पुढवी काइयत्ताए जाव तसकाइयत्ताए उववन्नपुव्वा) हे भदन्त ! तमस्काय में समस्त प्राण, समस्त भूत, समस्त जीव समस्त सत्त्व पहिले क्या पृथिवी कायिकरूपसे यावत्-त्रसकायिकरूप से उत्पन्न हो चुके हैं ? (हंता, गोयमा !) हां, गौतम ! (असइं अदुवा अणंतक्खुत्तो णो चेव णं वादरपुढविकाइयत्ताए वादरअगणिकाइयत्ताए वा) हां गौतम ! अनेक बार अथवा-अनंतवार ये मय प्राणादि पहिले वहां पूर्वोक्तः

(तमुक्काणं भंते ! किं पुढवि परिणामे आउपरिणामे जीव परिणामे, पोग्गलपरिणामे ?) हे भदन्त ! तमस्काय कौतुं परिणाम छे ? शुं पृथ्वीतुं परिणाम छे ? अप्पकायतुं परिणाम छे ? शुं लवतुं परिणाम छे ? शुं पुद्गलतुं परिणाम छे ?

(गोयमा !) हे गौतम ! (णो पुढवि परिणामे, आउ परिणामे वि, जीव परिणामे वि, पोग्गल परिणामे वि) तमस्काय पृथ्वीकायतुं परिणाम नथी, ते अप्पकायतुं पण् परिणाम छे, लवतुं पण् परिणाम छे अने पुद्गलतुं पण् परिणाम छे ।

(तमुक्काणं भंते ! सव्वे पाणा, भूया, जीवा, सत्ता, पुढविकाइयत्ताए जाव तसकाइयत्ताए उववन्नपुव्वा ?) हे भदन्त ! तमस्कायमां समस्त प्राण, समस्त भूत, समस्त लव, अने समस्त सत्त्व पडैलां शुं पृथ्वीकायथी लधने तसकायिक पथंन्तना इपे उत्पन्न थयं युक्थां छे ?

(हंता, गोयमा !) हां, गौतम ! (असइं अदुवा अणंतक्खुत्तो, णो चेव णं वादरपुढवि काइयत्ताए वादरअगणिकाइयत्ताए वा) हां, गौतम ! अनेक

મગવાનાહ—‘ ગોયમા ! પુઢવિકાણં અત્યેગરૂપ સુખે દેસં પગાસેઙ્ ’ હે ગૌતમ ! પૃથિવીકાયઃ ત્વલુ અસ્ત્યેકકઃ કથિત્ શુભો—ભાસ્વરો મળ્યાદિવત્ દેદીપ્યમાન- ત્વાન્, વિવક્ષિતક્ષેત્રસ્ય દેશમ્ એકભાગં પ્રકાશયતિ, અથ ચ ‘ અત્યેગરૂપ દેસં ણો પગાસેઙ્ ’ અસ્ત્યેકકઃ કથિન્ અપરઃ પૃથિવીકાયઃ યઃ પ્રકાશ્યમપિ દેશં ભાગાન્ત- રમ્ અભાસ્વરત્વાત્ કૃષ્ણપાપાણવત્ નો પ્રકાશયતિ, અપ્કાયસ્તુ સર્વોઽપિ અપ્રકા- શકત્વાત્ ન કમપિ ભાગં પ્રકાશ્યમપિ પ્રકાશયતિ, તમસ્કાયોઽપિ સર્વથૈવાપ્રકાશ- કત્વાત્ ન કમપિ પ્રકાશયતિ અતઃ અપ્કાયસ્ય તમસ્કાયસ્ય ચ સમાનસ્વભાવત્વાત્ અપ્કાયપરિણામસ્વરૂપ એ તમસ્કાયઃ । ‘ સે તેળદેણં ’ તત્ તેનાર્થેન હે ગૌતમ !

કિ—(ગોયમા ! પુઢવિકાણં અત્યેગરૂપ સુખે દેસં પગાસેઙ્ અત્યેગરૂપ દેસં ણો પગાસેઙ્) હે ગૌતમ ! કોઈ પૃથિવીકાય ભાસ્વર (દેદીપ્યમાન) મળિ આદિ કી તરહ એસા શુભ્ર ભાસ્વર (દેદીપ્યમાન) હોતા હૈ જો ચિવક્ષિત ક્ષેત્ર કે અમુક ભાગ કો પ્રકાશિત કરતા હૈ । તથા કોઈ એક પૃથિવીકાય એસા હોતા હૈ જો પ્રકાશ કરને યોગ્ય સ્થાન કો ભી કૃષ્ણ- પાપાણ કી તરહ અભાસ્વર હોને કે કારણ પ્રકાશિત નહીં કરતા હૈ । પરન્તુ એસા અપ્કાય નહીં હૈ—વહ તો પૂરા ભી એસા હી હૈ કિ પ્રકાશ્ય ભી કિસી ભી સ્થાન કો અપ્રકાશક હોને કે કારણ પ્રકાશિત નહીં કરતા હૈ તાત્પર્ય કહનેકા યહ હૈ કિ જિસ પ્રકાર કિસી એક પૃથિવી મેં ભાસ્વ- રરૂપતા ઓર કિસી એક પૃથિવી મેં અભાસ્વરરૂપતા હૈ ઁસ પ્રકાર કી સ્થિતિ અપ્કાય મેં નહીં હૈ વહ તો પૂરા કા પૂરા હી અપ્રકાશક સ્વભા- વવાલા હૈ । અતઃ અપ્કાય મેં ઓર તમસ્કાય મેં સમાનસ્વભાવતા હોને

અત્યેગરૂપ સુખેદેસં પગાસેઙ્, અત્યેગરૂપ દેસં ણો પગાસેઙ્ ” હે ગૌતમ ! કોઈ પૃથ્વીકાય ભાસ્વર (દેદીપ્યમાન) મળિ આદિની જેમ એવું શુભ્ર (દેદીપ્યમાન) હોય છે કે તે ક્ષેત્રના અમુક ભાગને પ્રકાશિત કરે છે, અને કોઈ પૃથ્વીકાય એવું હોય છે કે જે પ્રકાશ કરવા યોગ્ય ક્ષેત્રના કોઈપણ ભાગને કૃષ્ણ-પાપા- ણની જેમ અભાસ્વર (પ્રભા રહિત) હોવાથી પ્રકાશિત કરતું નથી. પણ અપ્રકાયનો સ્વભાવ એવો હોતો નથી. તે પોતે અપ્રકાશક (પ્રભા રહિત) હોવાથી પ્રકાશ્ય એવાં કોઈ પણ સ્થાનને પણ પ્રકાશિત કરતું નથી. કહેવાનું તાત્પર્ય એ છે કે જેમ પૃથ્વીકાયમાં પ્રભાચુક્રતા અને કોઈક પૃથ્વીકાયમાં પ્રભા-રહિતતા હોય છે, એ પ્રકારની સ્થિતિ અપ્રકાયમાં હોતી નથી તે તે સંપૂર્ણપણે અપ્રકાશક સ્વભાવવાળું હોય છે. આ રીતે અપ્રકાય અને તમસ્કા- યના સ્વભાવમાં સમાનતા હોવાને કારણે અપ્રકાયના પરિણામ સ્વરૂપ તમસ્કાય

વા પ્રોચ્યતે ? મગધનાદ-‘ ગોયમા ! નો પૃથ્વી તમુક્કાણ તિ પવ્વુચ્ચદ્ ’ હે ગૌતમ ! તમસ્કાયઃ નો પૃથિવી ઇતિ પ્રોચ્યતે, અપિતુ ‘ આઉતમુક્કાણ તિ પવ્વુચ્ચદ્ ’ તમસ્કાયઃ પ્રાપો જ્ઞમ્ ઇતિ પ્રોચ્યતે । ગૌતમઃ પૂઞ્ઞનિ-‘ સે કેળટ્ટેણ ? ’ હે મદન્ત ! તન્ કેનાર્થેન પ્યમુચ્યતે તમસ્કાયઃ નો પૃથિવી, અપિતુ જ્ઞમ્, ઇતિ ।

તો નિશ્ચિત હૈ અચ ઉસમેં યદ્ નિશ્ચિત નહીં હૈં કિ ચદ્ તિસ પદાર્થ કા સ્કન્ધરૂપ હૈ-ક્યોં કિ યા તો ચદ્ પૃથિવી રજઃ સ્કન્ધરૂપ હો સકતા હૈ યા ઉદકરજઃ સ્કન્ધરૂપ હો સકતા હૈ અન્ય સ્કન્ધરૂપ તો હો નહીં સકતા કારણ કિ ઇન દોનોં સે ભિન્ન જો સ્કન્ધ હૈં ડનમેં તમસ્કાય કી સદ્શતા કા અભાવ હૈ । અતઃ ગૌતમ ને ઇસી હૃદયસ્થ વિકલ્પ કો “ કિ પુઢવી તમુક્કાણ તિ પવ્વુચ્ચદ્, અથવા (આઉ તમુક્કાણ તિ પવ્વુચ્ચદ્ ” ઇસ સૂત્ર પાઠ દ્વારા વ્યક્ત કિયા હૈ । ઇસકા ઉત્તર દેતે દુગ્ધ પ્રમુ ગૌતમ સે કહતે હૈં કિ (ગોયમા) હે ગૌતમ ! (નો પુઢવી તમુક્કાણ તિ પવ્વુચ્ચદ્) પૃથિવીરૂપ તમસ્કાય નહીં હૈં, અપિતુ (આઉ તમુક્કાણ તિ પવ્વુચ્ચદ્) અપ્કાયરૂપ તમસ્કાય હૈં-એસાં મેં કહતા હૈં, અચ ગૌતમસ્વામી ઇસમેં કારણ જાનને કી ઇચ્છા સે પ્રમુ સે પુનઃ પ્રશ્ન કરતે હૈં-(સે કેળટ્ટેણ) હે મદન્ત ! એસા આપ કિસ કારણ સે કહતે હૈં કિ તમસ્કાય પૃથિવીરૂપ નહીં હૈં-અપિતુ અપ્કાયરૂપ હૈ ? ઇસકે ઉત્તર મેં પ્રમુ ડનસે કહતે હૈં

કયા પદાર્થના સ્કન્ધરૂપ છે, કારણ કે કાં તો તે પૃથ્વી રજઃ સ્કન્ધરૂપ હોઈ શકે છે, અથવા તો ઉદક (જળ) રજઃ સ્કન્ધરૂપ હોઈ શકે છે અન્ય સ્કન્ધ રૂપ તો તે હોઈ શકતો નથી કારણ કે એ બન્નેથી જુદા જ પ્રકારના બે સ્કન્ધ છે, તે સ્કન્ધોમાં તમસ્કાયની સદ્શતા (સમાનતા) નો અભાવ હોય છે. તેથી ગૌતમ સ્વામીએ તેમના હૃદયમાં ઉદ્ભવેલા આ વિકલ્પને “ કિ પુઢવી તમુક્કાણ તિ પવ્વુચ્ચદ્ ” અથવા “ આઉતમુક્કાણ તિ પવ્વુચ્ચદ્ ” આ સૂત્રપાઠ દ્વારા વ્યક્ત કર્યો છે.

ગૌતમ સ્વામીના પ્રશ્નનો જવાબ આપતા મહાવીર પ્રમુ કહે છે— “ ગોયમા ! નો પુઢવી તમુક્કાણ તિ પવ્વુચ્ચદ્ ” હે ગૌતમ ! તમસ્કાય પૃથ્વીરૂપ નથી. પરન્તુ “ આઉ તમુક્કાણ તિ પવ્વુચ્ચદ્ ” પણ તમસ્કાય અપ્કાયરૂપ છે એવું હું કહું છું કે હવે તેનું કારણ બહુવાને માટે ગૌતમ સ્વામી પૂછે છે— “ સે કેળટ્ટેણ ” હે મદન્ત ! આપ શા કારણે એવું કહો છો કે તમસ્કાય પૃથ્વીરૂપ નથી, પણ અપ્કાય રૂપ છે ? તેનો ઉત્તર આપતા મહાવીર પ્રમુ કહે છે કે— “ ગોયમા ! પુઢવિકાણ નં

મગવાનાહ-‘ ગોચમા ! પુઠ્ઠવિકાણં અત્યેગદ્દુ સુખે દેસં પગાસેદ્ ’ હે ગૌતમ ! પૃથિવીકાયઃ સ્વલુ અસ્ત્યેકકઃ કથિન્ શુભો-ભાસ્વરો મળ્યાદિવત્ દેદીપ્યમાન-ત્વાન્, વિવક્ષિતક્ષેત્રસ્ય દેશમ્ એકભાગં પ્રકાશયતિ, અથ ચ ‘ અત્યેગદ્દુ દેસં ણો પગાસેદ્ ’ અસ્ત્યેકકઃ કથિન્ અપરઃ પૃથિવીકાયઃ યઃ પ્રકાશ્યમપિ દેશં ભાગાન્ત-રમ્ અભાસ્વરત્વાત્ કૃષ્ણપાપાણવત્ નો પ્રકાશયતિ, અપ્કાયસ્તુ સર્વોઽપિ અપ્રકા-શકત્વાત્ ન કમપિ ભાગં પ્રકાશ્યમપિ પ્રકાશયતિ, તમસ્કાયોઽપિ સર્વથૈવાપ્રકાશ-કત્વાત્ ન કમપિ પ્રકાશયતિ અતઃ અપ્કાયસ્ય તમસ્કાયસ્ય ચ સમાનસ્વભાવત્વાત્ અપ્કાયપરિણામસ્વરૂપ એવ તમસ્કાયઃ । ‘ સે તેણદ્દેણં ’ તત્ તેનાર્થેન હે ગૌતમ !

કિ-(ગોચમા ! પુઠ્ઠવિકાણં અત્યેગદ્દુ સુખે દેસં પગાસેદ્ અત્યેગદ્દુ દેસં ણો પગાસેદ્) હે ગૌતમ ! કોઈ પૃથિવીકાય ભાસ્વર (દેદીપ્યમાન) મળિ આદિ કી તરહ એસા શુભ્ર ભાસ્વર (દેદીપ્યમાન) હોતા હૈ જો વિવક્ષિત ક્ષેત્ર કે અમુક ભાગ કો પ્રકાશિત કરતા હૈ । તથા કોઈ એક પૃથિવીકાય એસા હોતા હૈ જો પ્રકાશ કરને યોગ્ય સ્થાન કો ણી કૃષ્ણ-પાપાણ કી તરહ અભાસ્વર હોને કે કારણ પ્રકાશિત નહીં કરતા હૈ । પરન્તુ એસા અપ્કાય નહીં હૈ-વહ તો પૂરા ણી એસા હી હૈ કિ પ્રકાશ્ય ણી કિસી ણી સ્થાન કો અપ્રકાશક હોને કે કારણ પ્રકાશિત નહીં કરતા હૈ તાત્પર્ય કહનેકા યહ હૈ કિ જિસ પ્રકાર કિસી એક પૃથિવી મેં ભાસ્વ-રરૂપતા ઓર કિસી એક પૃથિવી મેં અભાસ્વરરૂપતા હૈ ડસ પ્રકાર કી સ્થિતિ અપ્કાય મેં નહીં હૈ વહ તો પૂરા કા પૂરા હી અપ્રકાશક સ્વભા-વવાલા હૈ । અતઃ અપ્કાય મેં ઓર તમસ્કાય મેં સમાનસ્વભાવતા હોને

અત્યેગદ્દુ સુખેદેસં પગાસેદ્, અત્યેગદ્દુ દેસં ણો પગાસેદ્ ” હે ગૌતમ ! કોઈ પૃથ્વીકાય ભાસ્વર (દેદીપ્યમાન) મળિ આદિની જેમ એવું શુભ્ર (દેદીપ્યમાન) હોય છે કે તે ક્ષેત્રના અમુક ભાગને પ્રકાશિત કરે છે, અને કોઈ પૃથ્વીકાય એવું હોય છે કે જે પ્રકાશ કરવા યોગ્ય ક્ષેત્રના કોઈપણ ભાગને કૃષ્ણ-પાપા-ણની જેમ અભાસ્વર (પ્રભા રહિત) હોવાથી પ્રકાશિત કરતું નથી. પણ અપ્કાયનો સ્વભાવ એવો હોતો નથી. તે પોતે અપ્રકાશક (પ્રભા રહિત) હોવાથી પ્રકાશ્ય એવાં કોઈ પણ સ્થાનને પણ પ્રકાશિત કરતું નથી. કહેવાનું તાત્પર્ય એ છે કે જેમ પૃથ્વીકાયમાં પ્રભાચુક્રતા અને કોઈક પૃથ્વીકાયમાં પ્રભા-રહિતતા હોય છે, એ પ્રકારની સ્થિતિ અપ્કાયમાં હોતી નથી તે તો સંપૂર્ણપણે અપ્રકાશક સ્વભાવવાળું હોય છે. આ રીતે અપ્કાય અને તમસ્કા-યના સ્વભાવમાં સમાનતા હોવાને કારણે અપ્કાયના પરિણામ સ્વરૂપ તમસ્કાય

अप्काय एव तमस्कायः । गौतमः पृच्छति—‘तमुक्ताएणं भंते । कहिं समुट्टिए कहिं संनिट्टिए ?’ भदन्त ! तमस्कायः सल्लु कुपेति कस्मिन् प्रदेशे समुत्थितः ? कस्मात्स्थानादारोहः ? कुत्र संनिष्ठितः कस्मिन् प्रदेशे समाप्तिं गतः ? तस्य तमस्कायस्य कस्मात् प्रदेशान् आरम्भः, कस्मिन् प्रदेशे अन्तः भवति ? इति प्रश्नः । मगरानाह— ‘गोयमा ! जंबूदीपस्य दीवस्य बहिया तिरियमसंखेज्जे दीवसमुद्दे वीईवइत्ता’ हे गौतम ! जम्बूद्वीपस्य द्वीपस्य मध्यजम्बूद्वीपस्य बहिर्भागे तिरियं असंख्यंयान् द्वीपसमुद्रान् व्यतिव्रज्य—अतिक्रम्य उल्लङ्घ्य ‘अरुणवरस्य दीवस्य बाहिरिह्लाओ वेइयंताओ’ अरुणवरस्य द्वीपस्य बाह्यात् बहिर्भूतात् वेदिकान्तात् वेदिह्ला—जगती, तस्याः अन्तभागान् आरम्भ्य ‘अरुणोदयं समुद्धं चापाली संजोयणसहस्साणि ओगाहिता’

के कारण अप्काय का परिणाम स्वरूप ही तमस्काय है । (से तेणट्टेणं) इस कारण हे गौतम ! मैंने ऐसा कहा है कि अप्कायरूप ही तमस्काय है । प्रभु के इस कथन को सुनकर गौतम के चित्त में पुनः ऐसी इका उत्पन्न हुई कि (तमुक्ताएणं भंते ! कहिं समुट्टिए) हे भदन्त ! यह तमस्काय किस प्रदेश से समुत्थित हुआ है ? (कहिं संनिट्टिए) और कहाँ पर इसकी समाप्ति हुई है । इस प्रश्न के उत्तर में प्रभु ने उनसे ऐसा कहा कि—(गोयमा) हे गौतम ! (जंबूदीवस्य दीवस्य बहिया तिरियमसंखेज्जे दीवसमुद्दे वीईवइत्ता) जंबूद्वीप—मध्य जंबूद्वीप के बहिर्भाग में तिरछे असंख्यात द्वीपसमुद्रों को उल्लंघन करके (अरुण-वरस्य दीवस्य बाहिरिह्लाओ वेइयंताओ) अरुणवर द्वीप आता है उस द्वीप की जो बाहिरी जगती है, उसके अन्तःभाग से प्रारंभ कर (अरुणोदयं समुद्धं चापाली संजोयणसहस्साणि ओगाहिता) उस द्वीप को

डाय छे. (से तेणट्टेणं) हे गौतम ! ते कारणे मे’ अप्पुं कहुं छे के तमस्काय अप्कायइप ञ छे. इवे गौतम स्वाभी तमस्कायना उत्पत्तिस्थानं अने समाप्ति स्थानना विषयमां आ प्रकारेना प्रश्न पूछे छे—

(तमुक्ताएणं भंते ! कहिं समुट्टिए ?) हे भदन्त ! आ तमस्कायने प्रारंभ कया प्रदेशभांथी थाय छे ? “ कहिं संनिट्टिए ” अने कया स्थानमां तेनी समाप्ति थाय छे ?

उत्तर— ‘ गोयमा ! ’ हे गौतम ! (जंबूदीवस्य दीवस्य बहिया तिरियमसंखेज्जे दीवसमुद्दे वीईवइत्ता) जंबूद्वीप—मध्य जंबूद्वीपना पडारना भागमां तिरछा असंख्यात द्वीप समुद्राने आणगीने (पार करीने) (अरुणवरस्य दीवस्य बाहिरिह्लाओ वेइयंताओ) आगण जतां अरुणवर द्वीप आवे छे. ते द्वीपनी जे पाल्ल जगती छे तेना अन्तभागथी प्रारंभ करीने (अरुणोदयं

अरुणोदकं समुद्रं द्विचत्वारिंशद्दयोजनसहस्राणि अयगाह्य उल्लङ्घ्य अरुणोदकं समुद्रस्य द्विचत्वारिंशत्सहस्रयोजनगमनानन्तरमित्यर्थः 'उवरिह्लाओ जलन्ताओ एगपएसियाए सेडीए-एत्य णं तमुक्काए समुट्टिए' उपरितनाद् जलान्तात् जलान्तिमभागात् एकप्रदेशिकायां एक एव न द्वयादयः उपर्यधः प्रदेशो यस्यां सा तस्यां श्रेण्यां समभित्तितायामित्यर्थः नतु एकप्रदेशप्रमाणायां, तथात्वे जीवानाम् असंख्यातप्रदेशावगाहस्वभावत्वेन एकप्रदेशप्रमाणायां श्रेणो जीवावगाहाभावप्रज्ञात्

चारों और से घेरे हुए अरुणोदय समुद्र को ४२ हजार योजन उल्लंघित करके-अर्थात् अरुणचरद्वीप की बाह्यजगती के अन्तिम भाग से लगाकर अरुणोदय समुद्र को ४२ हजार योजनप्रमाण पार करने के बाद (उवरिह्लाओ जलन्ताओ) उपरितन जलान्त आता है जल के अन्तिम-भाग का नाम जलान्त है। इस जलान्तके ऊपर ही (एगपएसियाए सेडीए एत्य णं तमुक्काए समुट्टिए) ऊपर नीचे समान है-प्रदेश जिसमें ऐसी दीवाल के जैसी एक प्रदेशिका श्रेणी है यहां पर "एकप्रदेशिका श्रेणि" का अर्थ ऐसा नहीं करना चाहिये कि "जिसमें एक ही प्रदेश हो, दो आदि प्रदेश न हों-ऐसी जो श्रेणी है, वह एक प्रदेशिका श्रेणी है" क्यों कि ऐसा अर्थ करने में सिद्धान्त से बाधा आती है कारण कि जीवों का स्वभाव आकाश के असंख्यात प्रदेशों में अवगाहन करने का है अतः एकप्रदेश प्रमाण वाली श्रेणी में जीवों के अवगाहन होने का

समुद्रं बायालीसं जोयणसहास्राणी ओगाहिता) ते द्वीपने आरे तरइथी घेरीने रडेवा अरुणोदय समुद्रमां ४२००० योजननुं अंतर पार करीने-अेटले के अरुणुवर द्वीपनी बाह्य जगतीना अन्तिम लागथी शङ् करीने अरुणोदय समुद्रने ४२००० योजन प्रमायु पार करीने "उवरिह्लाओ जलन्ताओ" उपरितन जलान्त आवे छे. (जणना अन्तिम लागने जलान्त कडे छे.) ते जलान्तनी उपर ज (एगपएसियाए सेडीए एत्यणं तमुक्काए समुट्टिए) उपर अने नीचेना लागमां समान प्रदेशवाणी, दीवालना जेवी अेक प्रदेशिका श्रेण्णि छे. अर्डी "एक प्रदेशिका श्रेणि" ने अेवो अर्थ करवेो जेधजे नर्डी के "जेमां अेक ज प्रदेश होय, जे त्रयु आदि प्रदेश न होय, जेवी जे श्रेण्णि छे तेने अेकप्रदेशिका श्रेण्णि कडे छे." कारण के अेवो अर्थ करवामां सिद्धान्तनी दृष्टिजे बाधा (मुश्कली) नडे छे, कारण के आकाशना असंख्यात प्रदेशोमां अवगाहन करवानो एवोनेो स्वभाव छे. तेथी अेक प्रदेश प्रमायु-वाणी श्रेण्णिमां एवोनुं अवगाहन होवानुं संलवी शकतुं नथी. तमस्कायने

તમસ્કાયમ્ય જલચુદ્વુદાગારાગમ્યામ્પનાન્ , નવ્વિન્ધીર્ણવાપાધામેઽમિયાસ્વ-
 માન્વાત્ પ્રમેવમ્પદેનિશાથેળી તમસ્કાય શ્રેણી ખલ્લોદકમમુદ્રજ્ઞોપરિભાગાન્
 મમાનભિન્નિક્તયા વર્તને 'પૃથ્વળં' ખર જલ્લ ખલ્લોદક મમુદ્રજ્ઞોપવૃત્તને સ્યાને
 તમસ્કાય ઉચિયા તમસ્કાયમ્યાન્મ્નો માનિ । મમાનાલ્યતયા તમસ્કાયસ્યોર્ચ્વ-
 પ્રમગમ્નેત્તમસ્કાય 'મત્તમ-પૃથ્વીમે જોયગમ્ ઉદ્દં ઉપ્પત્તા' પૃથ્વિશ્ચ-

અભાવ પ્રાપ્ત હોતા છે ત્યારે જ તમસ્કાય જલીય ચુદ્વુદ કે આકાર મેં
 જલજીવરૂપ માના ગયા છે અને: જલચુદ્વુદ આકારવાળે જલજીવરૂપ
 તમસ્કાય કા ઉપ નક પ્રદેશપ્રમાણ વાલી શ્રેણી મેં અવગાહન કૈસે હો
 સકતા છે કથમપિ નશીં હો સકતા છે, ત્યારે જીવ અપની સ્થિતિ કે
 નિમિત્ત આકાશ કે અસંખ્યાન પ્રદેશોં કો રોકતે હું । તમસ્કાય કી
 વિત્તીર્ણતા કિતની છે ત્હ યાન આગે કહી જાવેગી । ત્હ જો સમપ્રદેશોં
 વાલી શ્રેણી છે ત્હ તમસ્કાય શ્રેણી છે । ત્હ શ્રેણી અરુણોદક સમુદ્ર કે
 અન્તિમ જલ ઉપરિતન ભાગ સે પ્રારંભ હોતી છે ઓર ત્હ સમાન
 વિસ્તાર વાલી શ્રેણી કે સમાન છે । પૃથ્વળં) ઠીક ત્હીં પર-અર્થાત્
 અરુણોદક સમુદ્ર કે હમ પૂર્વોક્ત સ્થાન સે-તમસ્કાય કા આરંભ હોતા
 છે । સમાન રૂપવાલી હોને કે કારણ ત્હ તમસ્કાય ઉપરમેં કહાંતક ફેલા
 હુઆ છે, ઉપ યાન કો સૂત્રકાર પ્રકટ કરતે હું કિ-(સત્તરસ-પૃથ્વીસે
 જોયગમ્ ઉદ્દં ઉપ્પત્તા) ત્હ તમસ્કાય ઉપર મેં ૧૭૨? યોજન તક

પૃથ્વીના ચુદ્વુદ (પરપોટા) ના આધારના જલચુદ્વુદ (અપૃથ્વીક ચુદ્વુદ)
 માનવામાં આવેલ છે. તે જલચુદ્વુદના આધારવાળા અપૃથ્વીક ચુદ્વુદ તમસ્કા-
 યની તે એક પ્રદેશવાળી શ્રેણીમાં અવગાહના જ કેવી રીતે સંભવી શકે ?
 કહેવાનું તાત્પર્ય એ છે કે એક પ્રદેશ પ્રમાણવાળી શ્રેણીમાં તે તમ-
 સ્કાયની અવગાહના જ શક્ય નથી, કારણ કે હવ પોતાની સ્થિતિને નિમિત્તે
 આકાશના અસંખ્યાત પ્રદેશોને રોકે છે. તમસ્કાય કેટલો બધો વિસ્તૃત છે તે
 તે આગળ બતાવવામાં આવશે. કહેવાનું તાત્પર્ય એ છે કે તે એક પ્રદેશિકા
 શ્રેણી અનેક પ્રદેશોવાળી છે. તે જે સમપ્રદેશોવાળી શ્રેણી છે, એ જ તમસ્કાય,
 શ્રેણી છે તે શ્રેણીને પ્રારંભ અરુણોદક સમુદ્રના અન્તિમ જળના ઉપરિતન
 ભાગથી થાય છે, અને તે સમાન વિસ્તારવાળી હીવાલના જેવી છે. "પૃથ્વળં"
 ખરાબર એજ સ્થાનેથી તમસ્કાયને પ્રારંભ થાય છે. સમાનરૂપ વાળો હોવાને
 કારણે તે તમસ્કાય ઉપર કયાં સુધી વ્યાપેલો છે તે સૂત્રકાર પ્રકટ કરે છે-
 (સત્તરસ-પૃથ્વીસે જોયન સપ હૃદં ઉપ્પત્તા) તે તમસ્કાય ઉપરની ખાબુએ

त्यधिक समदशमतयोजनानि ऊर्ध्वम् उत्पत्य ' तत्रो पच्छा तिरियं पवित्थरमाणे, पवित्थरमाणे, सोहम्मी-साण-सणकुमार-मार्हिदे चत्तारि वि कप्पे आवरित्ता ' ततः पथान् तिर्यक् प्रविस्तरन् प्रविस्तरन् तिरिधीनत्रया विस्तरं प्राप्नुवन् सौधर्म-शान-सनत्कुमार-माहेन्द्रान् चतुरोऽपि कल्पान् आट्टव्य आच्छाय ' उइहं पि य णं वंभलोगे कप्पे रिट्ठविमाणपत्थडं संपत्ते ' ऊर्ध्वमपि च खलु ब्रह्मलोकके कल्पे रिष्ट-विमानप्रस्तुटं संप्राप्तोऽस्ति ' एत्थ णं तमुक्काए सन्निट्ठिए ' अत्र खलु ब्रह्मलोकस्य रिष्टनामंकविमानप्रस्तुटे तमस्कायः सन्निष्टितः-समाप्तिं गतोऽस्ति । ततो गौतमः पृच्छति- ' तमुक्काए णं भंते ! किंसंठिए पणत्ते ? ' हे भदन्त ! तमस्कायः खलु किंसंस्थितः तस्य कीदृशं संस्थानं प्रवृत्तम् ? भगवानाह- ' गोयमा ! तमस्कायः खलु अधोभागे मल्लकमूलसंस्थितः शरावस्य मूलम्-अधोभागः, तत्सदृशसंस्थानो

गया हुआ है । (तत्रो पच्छा निरियं पवित्थरमाणे पवित्थरमाणे सोहम्मी-साण सणकुमार-मार्हिदे चत्तारि वि कप्पे आवरित्ता) उसके बाद वहाँसे यह तिरछा विस्तृत होता हुआ सौधर्म-ईशान, सनत्कुमार और माहेन्द्र इन चार कल्पोंको भी आवृत्त करके आगे यह (उइहं पि य णं वंभलोगे कप्पे रिट्ठविमाणपत्थडं संपत्ते) ऊर्ध्वमें ब्रह्मलोक कल्पमें रिष्टविमानके पाथडे (अंगने) में पहुँचा है । (एत्थ णं तमुक्काए सन्निट्ठिए) इसी ब्रह्मलोक कल्प के रिष्ट विमान के पाथडे में ही इसका अन्त हुआ है । अर्थात् इससे आगे तमस्काय नहीं है । " तमुक्काए णं भंते ! किं संठिए पणत्ते " हे भदन्त ! तमस्काय का आकार कैसा कहा गया है ? इस गौतम के प्रश्न के उत्तर में प्रभु ने उनसे कहा- (गोयमा ! अहे मल्लकमूलसंठिए, उप्पि

१७२१ थे। ७२१ सुधी जयेदो छे. (तत्रो पच्छा तिरियं पवित्थरमाणे पवित्थरमाणे सोहम्मीसाण-सणकुमार-मार्हिदे चत्तारि वि कप्पे आवरित्ता) त्यारणाइ त्यांथी ते तिरछे विस्तृत थधने सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार अने माहेन्द्र आ चार कल्पोने आच्छादित करीने त्यांथी आगण वधीने " उइहं पि य णं वंभलोगे कप्पे रिट्ठविमाणपत्थडं संपत्ते " ते छेथे ब्रह्मलोक कल्पना रिष्ट विमानना पाथ-डामां पडोअथे छे. " एत्थ णं तमुक्काए सन्निट्ठिए " आ ब्रह्मलोक कल्पना रिष्ट विमानना पाथडामां ७ तेनी समाप्ति थाय छे. अेट्ठे के तेना करतां आगण तमस्काय नथी. (तमुक्काए णं भंते ! किं संठिए पणत्ते ?) छे भदन्त ! तमस्कायने आकार डेवो कहे छे ?

गौतम स्वामीना आ प्रश्नो ज्वाअ आपता महावीर प्रभु कडे छे—
" गोयमा ! अहे मल्लकमूलसंठिए, उप्पि कुकुडपंजरसंठिए " छे गौतम !

તમસ્કાયસ્ય જલવુદ્વુદાકારાપ્તાપહારૂપતાન્ , તદ્વિન્નીગંનાયાશ્રાણેઽભિધાસ્ય-
માનત્વાત્ । ડ્યમેવ મમપ્રદેશિઠા શ્રેણી તમસ્કાય શ્રેણી અરુણોદકસમુદ્રત્તરોપરિભાગાત્
સમાનભિત્તિકલયા વર્ત્તને ' एथ णं ' અર તલુ અરુણોદક સમુદ્રશ્યોર્વર્ણને સ્થાને
તમસ્કાયઃ ઉત્થિનઃ, તમસ્કાયસ્યારમ્ભો ભવતિ । સમાનાલ્પનયા તમસ્કાયસ્યોર્વ-
પ્રસરણયોજનાન્યાહ-' सत्तरस-एकवीसे जोगणसए उड्डं उप्पइत्ता ' एरुविश-

અભાવ પ્રાપ્ત હોતા હૈ ક્યોં ફિ તમસ્કાય જલીય વુદ્વુદ્ કે આકાર મેં
જલજીવરૂપ માના ગયા હૈ અનઃ જલવુદ્વુદ્ આકારવાલે જલજીવરૂપ
તમસ્કાય કા ઉસ એક પ્રદેશપ્રમાણ વાલી શ્રેણી મેં અવગાહન કૈસે હો
સકતા હૈ કથમપિ નહીં હો સકતા હૈ, ક્યોં ફિ જીવ અપની સ્થિતિ કે
નિમિત્ત આકાશ કે અસંલ્પાત પ્રદેશોં કો રોકતે હૈ । તમસ્કાય કી
વિસ્તીર્ણતા કિતની હૈ યહ વાન આગે કહી જાવેગી । યહ જો સમપ્રદેશોં
વાલી શ્રેણી હૈ વહ તમસ્કાય શ્રેણી હૈ । યહ શ્રેણી અરુણોદક સમુદ્ર કે
અન્તિમ જલ ઉપરિતન ભાગ સે પ્રારંભ હોતી હૈ ઓર યહ સમાન
વિસ્તાર વાલી ભીત કે સમાન હૈ । (एथ णं) ઠીક યહીં પર-અર્થાત્
અરુણોદક સમુદ્ર કે ઇસ પૂર્વોક્ત સ્થાન સે-તમસ્કાય કા આરંભ હોતા
હૈ । સમાન રૂપવાલી હોને કે કારણ યહ તમસ્કાય ઉપરમેં કહાંતક ફેલા
હુઆ હૈ, ઇસ વાન કો સૂત્રકાર પ્રકટ કરતે હૈ ફિ-(सत्तरस-एकवीसे
जोगणसए उड्डं उप्पइत्ता) યહ તમસ્કાય ઉપર મેં ૧૭૨૧ યોજન તક

પાણીના બુદ્ધ્યુદ્ (પરપોટા) ના આકારના જલજીવરૂપ (અપ્કાયિક જીવરૂપ)
માનવામાં આવેલ છે. તે જલબુદ્ધ્યુદ્ના આકારવાળા અપ્કાયિક રૂપ તમસ્કા-
યની તે એક પ્રદેશવાળી શ્રેણીમાં અવગાહના જ કેવી રીતે સંભવી શકે ?

કહેવાનું તાત્પર્ય એ છે કે એક પ્રદેશ પ્રમાણવાળી શ્રેણીમાં તે તમ-
સ્કાયની અવગાહના જ શક્ય નથી, કારણ કે જીવ પોતાની સ્થિતિને નિમિત્તે
આકાશના અસંખ્યાત પ્રદેશોને શકે છે. તમસ્કાય કેટલો બધો વિસ્તૃત છે તે
તે આગળ બતાવવામાં આવશે. કહેવાનું તાત્પર્ય એ છે કે તે એક પ્રદેશિકા
શ્રેણી અનેક પ્રદેશોવાળી છે. તે જે સમપ્રદેશોવાળી શ્રેણી છે, એ જ તમસ્કાય
શ્રેણી છે. તે શ્રેણીને પ્રારંભ અરુણોદક સમુદ્રના અન્તિમ જળના ઉપરિતન
ભાગથી થાય છે, અને તે સમાન વિસ્તારવાળી હીવાલના જેવી છે. “ एथणं ”
બરાબર એજ સ્થાનેથી તમસ્કાયને પ્રારંભ થાય છે. સમાનરૂપ વાળો હોવાને
કારણે તે તમસ્કાય ઉપર કયાં સુધી બ્યાપેલો છે તે સૂત્રકાર પ્રકટ કરે છે-
(सत्तरस-एकवीसे जोगणसए उड्डं उप्पइत्ता) તે તમસ્કાય ઉપરની પાચુએ

असंखेज्जवित्थडे य ' हे गौतम ! तमस्कायः खलु द्विविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा-
 संख्येयविस्तृतश्च, असंख्येयविस्तृतश्च. तत्र आदित आरभ्य ऊर्ध्वं संख्येययोजन-
 पर्यन्तं संख्यातयोजनविस्तृतः, ततः संख्येययोजनानन्तरम् ऊर्ध्वं तस्य विस्तार-
 गमितया प्रतिमादितत्वेन असंख्यातयोजनविस्तृतश्चेत्यर्थः। 'तत्थ णं जे से संखेज्ज
 वित्थडे ' तत्र तयोर्मध्ये खलु यः सः संख्येयविस्तृतः तमस्कायः ' से णं संखे-
 ज्जाइं ज्ञोयणसहस्साइं विक्खंभेणं ' स खलु संख्येयानि योजनसहस्राणि विष्क-
 म्भेण विस्तारेण वर्तते, ' असंखेज्जाइं ज्ञोयणसहस्साइं परिक्खेवेणं पण्णत्ते '
 असंख्येयानि योजनसहस्राणि परिक्षेपेण परिधिना प्रज्ञप्तः, तमस्कायस्य संख्यात-

तमस्काय दो प्रकार का कहा गया है-(तं जहा) वे दो प्रकार उसके ये
 हैं-(संखेज्जवित्थडे य, असंखेज्जवित्थडे य) एक संख्यात विस्तारवाला
 तमस्काय और दूसरा असंख्यात विस्तारवाला तमस्काय आदि से लेकर
 ऊंचे संख्यात योजन तक तमस्काय विस्तृत है वह संख्यात विस्तार
 वाला तमस्काय है-इसके बाद असंख्यात योजन विस्तारवाला तमस्काय
 असंख्यात विस्तारवाला तमस्काय है कारण कि ऊपर में तम-
 स्काय के विस्तार उर्ध्वगामीरूप से कहा गया है। इसी बात को सूत्र-
 कार प्रकट करते हैं-(तत्थ णं जे से संखेज्जवित्थडे) इन दोनों तमस्काय
 में जो तमस्काय संख्यात विस्तृत है (से णं संखेज्जाइं ज्ञोयणसहस्साइं
 विक्खंभेणं) वह विष्कंभ की अपेक्षा तो संख्यात योजन सहस्र तक
 विस्तृत है (असंखेज्जाइं ज्ञोयणसहस्साइं परिक्खेवेणं पण्णत्ते) और

यना जे प्रकार क्हा छे. " तंजहा " ते जे प्रकारे नीचे प्रमाणे छे—
 (संखेज्जवित्थडे य, असंखेज्जवित्थडे य) अेक तमस्काय संख्यात
 विस्तारवाणे छे अने धीने असंख्यात विस्तारवाणे तमस्काय छे. शब्दातथी
 भांडीने. उपर संख्यात योजने सुधी जे तमस्काय व्यापेवे छे तेने संख्यात
 विस्तारवाणे तमस्काय कडे छे, त्थारभाद असंख्यात योजनना विस्तारभां
 व्यापेवे तमस्कायने असंख्यात विस्तारवाणे तमस्काय कडे छे, कारण के
 उपर तमस्कायने विस्तार उर्ध्वगामीरूपे भतावे छे. अेज वात सूत्रकार आ
 सूत्र द्वारा प्रकट करे छे—
 (तत्थणं जे से संखेज्जवित्थडे) ते अने तमस्कायैभांधी जे संख्यात
 विस्तारवाणे तमस्काय छे " से णं संखेज्जाइं ज्ञोयणसहस्साइं विक्खंभेणं "
 ते विष्कंभनी अपेक्षे अे संख्यात हन्तरे योजन पर्यन्त व्यापेवे छे, अने
 (असंखेज्जाइं ज्ञोयणसहस्साइं परिक्खेवेणं पण्णत्ते) अने परिक्षेप (परिधि)

वर्तते, यतो हि समजलान्तस्योपरिमाणे पृष्ठीगत्यधिकमप्यद्गन्तयोननानि
यावत् तमस्कायस्य वलपयसंस्थानं वर्तते, उपरि ऊर्ध्वं तु कुम्भट्टपञ्जररुसंस्थितः
कुम्भट्टस्य पञ्जरवत् संस्थानम् आकारः प्रकल्पः। अयः संकुचितः, मध्ये विस्तीर्णः,
उपरि पुनः संकुचितः, एतादृशाकारस्तमस्कायः प्रकल्प इति। गौतमः पुनः पृच्छति—
'तमुक्त्वा एणं भंते ! केवइयं विक्खंभेणं, केवइयं परिकखेवेणं पणणत्ते ? भदन्त !
तमस्कायः खन्दु कियान् विक्कम्भेण वाइत्थेन स्यूत्थेनेत्थेणः, तथा कियान्
कियत्परिमितः परिक्षेपेण परिधिना परिधिमाश्रित्य विस्तारः प्रकल्पः प्रतिपादितः?
भगवान् अहं - 'गोयमा ! तमुक्त्वा एणं दुविहे पणणत्ते तं जहा-संखेज्जवित्थेण

कुम्भट्टपञ्जरगसंठिण) हे गौतम ! तमस्काय का नीचे का आकार मल्ल-
कमूल-मिट्टीके दीपकके अधोभागके जैसा कहा गया है—क्यों कि सम-
जलान्तके ऊपरभागमें १७२१ गोजन तक तमस्काय का आकार वलयके
समान गोल है और ऊपरमें तमस्कायका संस्थान आकार-मुर्गाके पांजरे
के समान कहा गया है—क्योंकि मुर्गेका पांजरा नीचेके भागमें संकुचित,
मध्य में विस्तीर्ण और ऊपर में संकुचिन होता है सो इसी तरह का
ऊपर का आकार तमस्काय का है। अब गौतम स्वामी प्रभु से ऐसा
पूछते हैं कि—(तमुक्त्वा एणं भंते ! केवइयं विक्खंभेणं, केवइयं परिकखे-
वेणं पणणत्ते) हे भदन्त ! तमस्काय विक्कंभ-स्यूलता-की अपेक्षा कितना
बड़ा है और परिक्षेप-परिधि की अपेक्षा कितना बड़ा है ? अर्थात् तम-
स्काय का विक्कंभ और परिक्षेप कितना है ? इसके उत्तर में प्रभु ने
उनसे ऐसा कहा कि—(गोयमा ! तमुक्त्वा एणं दुविहे पणणत्ते) हे गौतम !

तमस्कायना नीचेना लागनेा आकार माटीना दीपकना (केडियाना) तणिया
जेवो कखो छे—कारणु के समजलान्तना उपरना लागमां १७२१ योजन
सुधी तमस्कायना आकार वलयना जेवो गोल छे अने उपरना लागनेा
आकार कुम्भट्टाना पांजरा जेवो कखो छे, कारणु के कुम्भट्टां पांजरे नीचेना
लागमां संकुचित (संकुचित), मध्यमां विस्तीर्ण अने उपरना लागमां संकु-
चित होय छे. तमस्कायना उपरना लागनेा आकार पणु जेवो न होय छे.

इवे गौतम स्वामी -तमस्कायना विचार आदि विषे महावीर प्रभुने
नीचे प्रमाणे प्रश्न पूछे छे—(तमुक्त्वा एणं भंते ! केवइयं विक्खंभेणं, केवइयं
परिकखेवेणं पणणत्ते ?) हे भदन्त ! तमस्कायना विस्तार केटवो कखो छे ?
तेना परिक्षेप (परिधि) केटवो कखो छे ?

उत्तर—“ गोयमा ! तमुक्त्वा एणं दुविहे पणणत्ते ” हे गौतम ! तमस्का-

गौतमः पुनः पृच्छति—‘ तमुक्त्वाएणं भंते ! केनहालए पणत्ते ? ’ हे भदन्त ! तमस्कायः खलु कियन्महालयः कियत्तारिमितो विशाल इति प्रश्नः । भगवानाह— ‘गोयमा ! अयं णं जंबुद्वीवे दीवे सव्वदीव-समुदाणं सव्ववभंतराए, जाव-परिक्खे-वेणं पणत्ते ’ हे गौतम ! अयं खलु जम्बूद्वीपो द्वीपः सर्वद्वीप-समुद्राणां सर्वाभ्यन्त-रकः सर्वाभ्यन्तरे वर्तमानः मध्यजम्बूद्वीप इत्यर्थः, यावत्-परिक्षेपेण परिधिना प्रसृतः, यावत्करणात्—‘ एगं जोयणसयसहस्सं आयामविक्खंभेणं, तिण्णि जोयण-सयसहस्साइं सोलससहस्साइं दोण्णियसत्तावीसे जोयणसए, तिण्णि कोसे अट्ठा-वीसं च धणुसयं तेरस य अंगुलाइं अट्ठंगुलं च किंचित्तेसाहियं ’ इति संग्राहम् । ‘ एकं योजनशतसहस्रम्—आयामविक्कम्भेण, त्रीणि योजनशतसहस्राणि पौडश सह-स्राणि, द्वे सप्तविंशतिः योजनशते, त्रयः क्रोशाः, अष्टाविंशतिश्च धनुःशतम्, त्रयो-दश चाक्षुशानि, अर्धाङ्गुलं च किञ्चिद्विशेषाधिकम् ’ इतिच्छाया ‘देवेणं महिद्धिए,

अथ गौतम प्रभु से ऐसा पूछते हैं कि—(तमुक्त्वाए णं भंते के महालये पणत्ते) हे भदन्त ! यह तमस्काय कितना बड़ा-विशाल कहा गया है ? इसके उत्तर में प्रभु उनसे कहते हैं कि—(गोयमा ! अयं णं जंबुद्वीवे दीवे सव्वदीवसमुदाणं सव्ववभंतराए जाव परिक्खेवेणं पणत्ते) हे गौतम ! समस्त द्वीप और समस्त समुद्रों के बीच में वर्तमान यह जंबू-द्वीप नामका द्वीप—मध्य जंबूद्वीप यावत् परिक्षेप वाला कहा गया है—यहां (यावत्) शब्द से—“ एगं जोयणसयसहस्सं आयामविक्खंभेणं, तिण्णि जोयणसयसहस्साइं सोलससहस्साइं दोण्णिय सत्तावीसे जोयणसयाइं तिण्णि कोसे अट्ठावीसं च धणुसयं तेरस य अंगुलाइं अट्ठंगुलं च किंचित्तेसाहियं ” इस पाठ का संग्रह हुआ है । “ देवेणं महिद्धिए जाव-

इये गौतम स्वामी महावीर प्रभुने ज्ये। प्रश्न पूछे छे डे “ तमुक्त्वाए णं भंते ! के महालये पणत्ते ?) डे लदन्त ! तमस्कायने डेट्ठे। विशाल कइयो छे ?

उत्तर—“ गोयमा ! ” डे गौतम ! (अयं णं जंबूद्वीवे दीवे सव्वदीवसमु-दाणं सव्ववभंतराए जाव परिक्खेवेणं पणत्ते) समस्त द्वीप अने समस्त समुद्रोनी पन्थे रहला आ जंबूद्वीप नामने। द्वीप-मध्य जंबूद्वीप..... यावत् परिक्षेपवाणे। कइयो छे. अर्धी “ जाव (यावत्) पदथी नीयेने। सूत्रपाठ अइष्णु थये छे—(एगं जोयणसयसहस्सं आयामविक्खंभेणं, तिण्णि जोयणसयस-हस्साइं सोलससहस्साइं दोण्णिय सत्तावीसे जोयणसयाइं तिण्णि कोसे अट्ठावीसं च धणुसयं तेरस य अंगुलाइं अट्ठंगुलं च किंचित्तेसाहियं) अेक दाप थोअननी लंभाअ अने पडोणाअवाणा अने ३१६२२७ थोअन, ३ कोस, १२८ अेकसे। अट्ठावीस धनुष अने १३॥ अंशुलथी सडेअ अधिक परिधवाणा आ समस्त

યોજનવિસ્તૃતત્વેઽપિ અસંખ્યાતવમદ્વીપપરિક્ષેપનો વૃદ્ધવસ્ત્રાન્ પરિક્ષેપાય અસં-
 ख्यातयोजनसहस्रप्रमाणद्वयम्, भाग्यन्तर-वर्तिपरिक्षेपविभागावन्तु नामोक्तः, उभय-
 स्यापि असंख्याततया समानत्वान्, । अथ च 'तत्त्व णं जे से अखिज्जवित्थडे'
 तत्र तयोः संख्यातासंख्याविविस्तृतयोर्मध्ये क्वलु यः सः अखंख्येयवित्त्वानो वर्तते
 तमस्कायः 'से णं असंखेज्जाइं जोगणसहस्राइं विक्खंभेणं' ए क्वलु अखंख्येयानि
 योजनसहस्राणि विक्खंभेण विस्तारेण वर्तते 'असंखेज्जाइं जोगणसहस्राइं
 परिक्खेवेणं पग्गत्ते' अखंख्येयानि योजनसहस्राणि परिक्षेपेण परिधिना मत्तः ।

परिक्षेप-परिधि की अपेक्षा वह असंख्यात योजनसहस्र तक विस्तार
 वाला है-यद्यपि तमस्काय का विस्तार संख्यात योजन का प्रकृत क्रिया
 गया है फिर भी वहां जो परिधि की अपेक्षा उक्त असंख्यात योजन
 सहस्र तक विस्तृत कहा गया है सो उस का कारण यह है कि असं-
 ख्याततम द्वीपके परिक्षेप से इसमें वृद्धत्तरता आ जाती है इस कारण
 इसके परिक्षेपको असंख्यात योजनसहस्र प्रमाणवाला कहा गया है। यहां
 पर इसके भीतर और बाहरके परिक्षेपका विभाग तो कहानहीं है कारण
 कि असंख्यातताको लेकर दोनों भीतर और बाहरके परिक्षेपोंमें तुल्यता
 है। (तत्त्व णं जे से अखिज्जवित्थडे-से णं असंखेज्जाइं जोगणसहस्राइं
 विक्खंभेणं) इन दोनों तमस्कायों के बीच में जो तमस्काय असंख्यात
 विस्तृत है, वह विक्खंभ-चौड़ाई की अपेक्षा असंख्यात योजनसहस्रतक
 विस्तृत है तथा (असंखेज्जाइं जोगणसहस्राइं परिक्खेवेणं) परिक्षेप-परि-
 धि की अपेक्षा वह असंख्यात योजनसहस्र तक का विस्तार वाला है ।

ની અપેક્ષાએ અસંખ્યાત હબર યોજન મુદ્દીના વિસ્તારવાળો છે. જો કે
 તમસ્કાયનો વિસ્તાર (વિક્કલ) સંખ્યાત યોજન પ્રમાણ કહ્યો છે, તો પણ
 તેનો પરિક્ષેપ (પરિધિ) અસંખ્યાત યોજન પ્રમાણ કહ્યો છે, તેનું કારણ એ
 છે કે અસંખ્યાતમ દ્વીપના પરિક્ષેપને લીધે તેના પરિક્ષેપની અધિકતા આવી
 બધ છે. તેથી જ સંખ્યાત યોજનના વિસ્તારવાળા તમસ્કાયનો પરિક્ષેપ
 અસંખ્યાત યોજનનો કહ્યો છે. અહીં તેના બહારના અને અંદરના પરિ-
 ક્ષેપનો વિભાગ કહ્યો નથી, તેનું કારણ એ છે કે અસંખ્યાતતાની અપેક્ષાએ
 બહારના અને અંદરના પરિક્ષેપમાં સમાનતા રહેલી છે. (તત્ત્વ ણં જે સે
 અસંખિજ્જવિત્થડે-સે ણં અસંખેજ્જાઈં જોગણસહસ્રાઈં વિક્કલંભેણં) તે બંને
 તમસ્કાયોમાંનો જે અસંખ્યાત વિસ્તારવાળો તમસ્કાય છે, તે વિક્કલ
 (પહોળાઈ) ની અપેક્ષાએ અસંખ્યાત હબર યોજનના વિસ્તારવાળો છે,
 તથા (અસંખેજ્જાઈં જોગણસહસ્રાઈં પરિક્કલેવેણં) પરિક્ષેપ (પરિધિ) ની
 અપેક્ષાએ તે અસંખ્યાત હબર યોજન પ્રમાણ વિસ્તારવાળો છે.

तियाहं वा ' स खलु देवः तथा उपरिचिन्तया उत्कृष्टया, त्वरितया, यावत्-
वेगवत्या चपलया वैद्युत्या देवगत्या व्यतिव्रजन् व्यतिव्रजन् पौनःपुन्येन गच्छन्
यावत्-एकाहं वा एकदिनं वा, द्वयहं वा द्विदिनं वा, त्रयहं वा त्रिदिनं वा ' उक्तो-
त्सेणं उम्मासे वीईवइज्जा, अत्येगइयं तमुक्कायं वीईवइज्जा ' उत्कर्षेण पणमासान्
यदा व्यतिव्रजेत् निरन्तरं गच्छेत् तदा अस्त्येककं संभवति यत् एकं संख्यात-

“ अत्येगइयं तमुक्कायं वीईवइज्जा ” तक के पाठ द्वारा प्रकट की गई है।
(महिद्धिण जाव महाणुभावे) में जो यह यावत् पद आया है उससे देव
सम्बन्धी “ महावृत्तिकः, महावलः महायशाः ” इन विशेषणों का संग्रह
हुआ है। देव के ये महद्वर्थादिक विशेषण जो यहां पर कहे गये हैं वे
उसकी गमनसामर्थ्य के उत्कर्ष को प्रतिपादन करने के लिये कहे गये
हैं। “ इणामेव इणामेव ” ऐसे जो ये दो पद कहे गये हैं वे देव के मन
में आई हुई गमन की शीघ्रता को सूचित करने के लिये कहे गये हैं।
इन पदों का शब्दार्थ “ यह अब मैं चला यह अब मैं चला ” ऐसा है।
“ वह देव ३ तीन चुटकी वजने प्रमाण वाले काल में २१ इक्कीस वार
पूरे जंबूद्वीप की प्रदक्षिणा देकर आ जावे ” इस कथन से उसके गमन
की अतिशीघ्रता सूचित की गई है। वह देव इतने काल में पूरे जंबूद्वीप
की २१ वार प्रदक्षिणा करके आ जाता है-तो वह इसी तरह की गति
से एक दिन तक, दो दिन तक या तीन दिन तक और अधिक से
अधिक छह महीने तक निरन्तर चलता रहे-तब जाकर वह-संख्यात
योजन प्रमाण वाले किसी एक तमस्काय तक ही पहुँच सकता है। तथा

दुवाहं वा) थी शः करीने (अत्येगइयं तमुक्कायं वीईवइज्जा) पर्यन्तना
सूत्रपाठ द्वारा सूत्रकारे प्रकट करी छे. आ सूत्रमां देवने भाटे वे मडाद्धिक
(मडा ऋद्धिवाणे) आदि विशेषणोने प्रयोग करवामां आये छे ते तेनी
आलवानी शक्तिना उत्कर्षनुं प्रतिपादन करवा भाटे करवामां आये छे.
“ इणामेव इणामेव ” आ जे पदो देवना मनमां शीघ्र गमन करवानो वे
विचार थयो छे ते सूचित करवाने भाटे वपरायां छे. ते पदोने शब्दार्थ
आ प्रभाणे थाय छे-“ आ उपडयो, आ उपडयो ” ते देव त्रणु यपटी
वगाडतां तो २१ वार आणा जंबूद्वीपनी प्रदक्षिणा करीने आवे छे. आ
कथनथी ते देवना गमननी अति शीघ्रता जताववामां आनी छे. ते देव आ
प्रकारनी गतिथी ओक द्विस, जे द्विस अथवा तो त्रणु द्विस सुधी अने
वधारेमां वधारे छे मडिना सुधी निरन्तर आल्या करे त्यारे कदाच ते संख्यात
योजन प्रभाणवाणा कोठक तमस्काय सुधी जे पडोचरी शके छे-ओठवे के तेने

जाव-महाणुभावे इणामेव, इणामेव ति कट्टु केवलरूपं जंबूदीपं दीपं तिहिं अच्छरानिवाएहिं तिसत्तखुत्तो अणुपरियट्ठित्ताणं हव्वं आगच्छिज्जा' देवो महर्द्धिकः महा-
समृद्धिशाली यावत्-महायुक्तिः महाचलः महायगाः महानुभावः महाप्रभावशाली,
अत्र देवस्य महद्गुणविशेषणानि गमनसामर्थ्यैर्हर्षमतिपादनाय उक्तानि, एत-
देव गमनम् अतिशीघ्रत्वस्य कठोटीकारुपद्रव्यापापनिपाद्यम्, अपमदं मस्थितः,
अपमदं मस्थितएव इति कृत्वा कथयित्वा शीघ्रतासूचनायं द्विक्रिः, केवलरूपं-संपूर्ण
जम्बूदीपं द्वीपं तिग्गिभिः त्रिसंरुपकाभिः त्रिवाराभिरित्यर्थः चण्डिकाभिः=छोटि-
काभिः मध्यमाऽहुष्टमयोगनन्यधनिव्यञ्जकहस्तव्यापारविशेषरूपानिः ' चुटकी '
इति भाषाप्रसिद्धाभिः त्रिसप्तकत्वः त्रिभिर्गुणिता सप्त त्रिसप्त त्रिसप्तपारान् इति
त्रिसप्तकत्वः एकविंशतिवारानित्यर्थः, अनुपर्यटय अनुप्रदक्षिणीकृत्य शीघ्रं द्रष्टित्वेव
परावृत्त्य यावता कालेन आगच्छति, तावता कालेन ' से णं देवे ताए उक्किट्ठयाए,
तुरियाए, जाव-देवगईए, वीइवयमाणे, वीइवयमाणे जाव-एगाहं वा, दुयाहं वा

महाणुभावे-इणामेव इणामेव ति कट्टु केवलरूपं जंबूदीपं दीपं तिहिं
अच्छरानिवाएहिं तिसत्तखुत्तो अणुपरियट्ठित्ताणं हव्वं आगच्छिज्जा "
इस प्रकार की अर्थात् ३१६ २२७ योजन ३ कोस १२८ एकसो अट्टाईस
धनुष और १३॥ अंगुल से कुछ अधिक परिधिवाले इस समस्त जंबू-
द्वीप को कोई महर्द्धिक यावत् महानुभाववाला देव ३तीन चुटकी बजते २
एकीस बार बार कर देवे और वह इसी तरहसे एकदिन, दो दिन, या
तीन दिनतक निरन्तर चले और अधिक से अधिक वह छह मास तक
निरन्तर चले तो कोई एक संख्यात योजन वाले तमस्काय तक वह
पहुँच सकता है-यही बात (से णं देवे ताए उक्किट्ठयाए तुरियाए जाव-
देवगईए वीइवयमाणे, वीइवयमाणे जाव एकाहं वा दुयाहं) से लेकर

जंबूद्वीपने (देवेणं महिद्धोए जाव महाणुभावे-इणामेव इणामेव ति कट्टु केवल-
रूपं जंबूदीपं दीपं तिहिं अच्छरानिवाएहिं तिसत्तखुत्तो अणुपरियट्ठित्ताणं हव्वं-
आगच्छिज्जा) केरि महर्द्धिक, महायुक्तिसंपन्न, महाप्रभावशाली, महायशशुक्ल-
अने महाप्रभावशाली देव त्रयु अथवा वगाइतां तो २१ बार बार करी-
शकतो होय, जेवो देव जेव प्रकारनी शीघ्र गतिथी जेक द्विवस, जे द्विवस-
अथवा त्रयु द्विवस सुधी निरन्तर यावया करे अने अधिकभां अधिक छ
मास सुधी ते निरन्तर यावया करे, तो महाभुक्केलीजे ते केरि जेक संख्यात-
थोन्नतवाणा तमस्कायने। पार. पाभी शके छे. जेव वात (से णं देवे ताए उ-
क्किट्ठयाए तुरियाए जाव देवगईए वीइवयमाणे, वीइवयमाणे जाव एकाहं वा

माषः । गौतमः पृच्छति—‘अत्थि णं भंते ! तमुक्काए गामा इ वा, जाव-सन्निवेसा इ वा ?’ हे भदन्त ! अस्ति संभवति खलु यत् तमस्काये ग्रामाः इति वा यावत्-सन्निवेशाः समागतसार्थवाहादिनिवासस्थानानि भवन्ति किम् ? यावत्करणात्-आकर नगर-खेट-कर्षट-मडम्ब-द्रोणमुख-पत्तन-निगमाश्रम-संवाहानां संग्रहः, तत्र आकराः स्वर्णरत्नाद्युत्पत्तिस्थानानि इति वा, नगराणि-अष्टादशकरवर्जितानि-इति वा, खेटानि-धूलिप्रकारवेष्टितानि इति वा, कर्षटानि-कुत्सितग्रामा इति वा, मडम्बानि-सार्ध-क्रोशद्वयान्तरग्रामान्तररहितानि इति वा, द्रोणमुखानि-जलस्थलपथोपेतानि जनस्थानानि, पत्तनं समस्तवस्तु प्राप्तिस्थानं निगमाः-प्रभूततरवणिगृजननिवासा इति वा,

करते हैं—(अत्थि णं भंते ! तमुक्काए गामा इ वा जाव सन्निवेसा इ वा) हे भदन्त ! क्या यह बात संभवित होती है कि उस तमस्काय में ग्राम या यावत् सन्निवेश हों ? यहां यावत् शब्द से “ आकर, नगर निगम, खेट, कर्षट, मडम्ब, द्रोणमुख, आश्रम और संवाह इन का संग्रह हुआ है। जहां पर स्वर्ण रत्न आदि पदार्थ उत्पन्न होते हैं उसका नाम आकर है, १८ अठार प्रकार के टेक्सों से रहित जन स्थान का नाम नगर है, जिसमें अधिक संख्यामें व्यापारी जनोंका निवास हो उसका नाम निगम है। धूल के प्रकार से वेष्टित जनस्थान का नाम खेट है, छोटे गाँव का नाम कर्षट है। जिसकी चारों दिशाओं में २॥ कोश तक कोई गाँव न हो उसका नाम मडम्ब है। जलमार्ग और स्थलमार्ग इन दोनों मार्गों से ही जिसमें जाया जाना होवे उसका नाम द्रोणमुख है। तापस

प्रश्न—(अत्थि णं भंते ! तमुक्काए गामा इ वा, जाव सन्निवेसा इ वा ?) हे भदन्त ! शुं तमस्कायमां गाम, आकर, नगर, निगम, खेट, कर्षट, मडम्ब, द्रोणमुख, पत्तन, आश्रम, संवाहन अने सन्निवेश डोय छे भरां ? (जाव) पदार्थ अडलु करवामां आवेलां शब्दो सडित अर्थ आये छे.

न्यां सुवर्ण रत्न आदि पदार्थ उत्पन्न थाय छे, अे स्थाने आकर कडे छे. १८ प्रकारना करेथी रडित जनस्थानने नगर कडे छे. न्यां अधिक प्रमाद्युमां व्यापारीअो रहेता डोय अेवां स्थानने निगम कडे छे. धूलना डोटनी घेरायेला जनस्थानने खेट कडे छे. नाना गामने कर्षट कडे छे. जेनी आरे दिशांमां २॥ कोश पर्यन्तमां डेअ पलु गाम न डोय अेवा स्थानने मडम्ब कडे छे. जलमार्ग अने जमीन मार्गे-अेम जन्ने मार्गे-अे स्थाने जर्ध शकाय छे अेवा स्थानने द्रोणमुख कडे छे. न्यां तापसे रहेता डोय, ते स्थानने

યોજનમ્ તમસ્કાયે વ્યતિવ્રજેન્ વ્યતિક્રામેન્, 'અત્યેગદ્યં નો તમુક્કાયં વીર્યવજ્જા' અસ્ત્યેરુકં સંભવતિ યદ્વ દ્વિતીયમ્ અસંલયાતયોજનમાનં તુ તમસ્કાયં નો નૈવ તાદૃશ્યાવિ મર્યા વ્યતિવ્રજેન્ વ્યતિક્રમિતુમર્હેન્। પરં મહારેણ તમસ્કાયસ્ય વિશાલતા મુપસંહરન્નાહ—'એમહાલયે ણં ગોયમા ! તમુક્કાય વળગત્તે' હે ગૌતમ ! ઇચ્છન્મશાલ્યઃ પતાવાન્ વિશાલઃ તમસ્કાયઃ પ્રગમઃ । ગૌતમઃ પૂછતિ—'અતિય ણં મંતે ! તમુક્કાય મેહા ઇ વા, મેહાવળા ઇ વા ?' હે મદન્ત ! અસ્તિ સંભવતિ ત્વચ્ચ તમસ્કાયે મેહાનિ મુહાણિ વા સન્તિ, મેહાવળાઃ મુદ્દશા વા સન્તિ કિમ્ ? મગવાનાહ—' ણો ઇન્દ્રે સમદ્રે' હે ગૌતમ ! નાયમર્યઃ સમર્યઃ, તમસ્કાયે મુદ્દા વા, મુદ્દાવળા વા ન ભવન્તીતિ

જો (અત્યેગદ્યં નો તમુક્કાયં વીર્યવજ્જા) અસંલયાત યોજન પ્રમાણ વાલા તમસ્કાય હૈ ઉસ તક તો યહ દેવ ઇતની અધિક વત્કુષ્ટતા એવં ત્વરા આદિ વિશેષણોં ચાલી ગતિ સે મીં નહીં પદ્ધત્ત સક્તા હૈ। ઇસ-કથન સે પ્રમુ ને તમસ્કાય કી વિશાલતા કા વર્ણન કિયા હૈં ઇસી વાત કો ડન્હોં ને (એ મહાલયે ણં ગોયમા ! તમુક્કાય વળગત્તે) ઇમ સૂત્ર પાઠ દ્વારા ગૌતમ કો ઉપસંહારરૂપ મેં સમસ્યાયા હૈ।

અય ગૌતમ સ્વામી પ્રમુ સે એસા પૂછતે હૈં કિ જવ તમસ્કાય ઇતના અધિક વિશાલ હૈ તો (અતિય ણં મંતે ! તમુક્કાય મેહાઇવા, મેહાવળાઇ વા) હે મદન્ત ! ઉસમેં કયા ઘર હૈં યા મુદ્દાવળા-મુદ્દા હાર હૈં ? ઇસકે ઉત્તર મેં પ્રમુ ઉનસે કહતે હૈં (ણો ઇન્દ્રે સમદ્રે) હે ગૌતમ ! ઉસ વિશાલ તમ તમસ્કાય મેં ન ઘર હૈં ઓર ન મુદ્દાવળા હૈં। ગૌતમ યુનઃ પ્રમુ સે પ્રશ્ન

પાર કરી શકે છે. પરન્તુ "અત્યેગદ્યં નો તમુક્કાયં વીર્યવજ્જા" અસંલયાત યોજનતા વિસ્તારવાળો એ તમસ્કાય છે, ત્યાં મુખી તો તે દેવ આટલી બધી અધિક, ઉત્કૃષ્ટતા, ત્વરા આદિ વિશેષણોવાળી ગતિથી પણ પહોંચી શકતો નથી. આ કથન દ્વારા મહાવીર પ્રભુએ તમસ્કાયની વિશાળતાનું પ્રતિપાદન કર્યું છે. એજ વાતને તેમણે "એમહાલયે ણં ગોયમા ! તમુક્કાય વળગત્તે" આ સૂત્રપાઠ દ્વારા ગૌતમ સ્વામીને ઉપસંહાર રૂપે સમજાવી છે.

હવે ગૌતમ સ્વામી એ બાલુવા માગે છે કે આટલા વિશાળ તમસ્કાયમાં ઘર, હાટ આદિ છે કે નહીં. (અતિય ણં મંતે ! તમુક્કાય મેહાઇ વા મેહાવળાઇ વા ?) હે મદન્ત ! એ તમસ્કાય આટલો બધો વિશાળ છે, તો તેમાં શું ઘર, છે ? મુહાવળ (હાટ) છે ?

ઉત્તર—“ણો ઇન્દ્રે સમદ્રે” હે ગૌતમ ! તે વિશાળ તમસ્કાયમાં ઘરો પણ નથી અને હાટ પણ નથી.

સંભવતિ યત્ તમસ્કાયે ઉદારા મેવાઃ સંસ્વિચન્તિ સમ્મૂર્છન્તિ, સંવર્ષન્તિ ચ । ગૌતમઃ પૃચ્છતિ—‘ તં મંતે ! કિં દેવો પઠ્ઠરેઙ્, અસુરો પઠ્ઠરેઙ્, ણાગો પઠ્ઠરેઙ્ ? ’ હે મદન્ત ! તત્ સંસ્વેદનં સંમૂર્છનં વર્ષણશ્ચ કિં દેવઃ પ્રકરોતિ, અથવા અસુરઃ પ્રકરોતિ, અથવા નાગઃ પ્રકરોતિ ? । મગવાનાહ—‘ ગોષમા ! દેવો વિ પઠ્ઠરેઙ્, અસુરો વિ પઠ્ઠરેઙ્, ણાગો વિ પઠ્ઠરેઙ્ ’ હે ગૌતમ ! તત્ સ્વલુ સંસ્વેદનં સંમૂર્છનં વર્ષણં ચ દેવોઽપિ પ્રકરોતિ, અસુરોઽપિ પ્રકરોતિ, નાગોઽપિ પ્રકરોતિ । ગૌતમઃ પૃચ્છતિ—‘ અતિથ ણં મંતે ! તમુક્કાણ વાયરે યણિયસદે, વાયરે વિજ્ઞુણ ? ’ હે મદન્ત ! અસ્તિ સંભવતિ સ્વલુ તમસ્કાયે વાદરઃ સ્તનિતશબ્દઃ ઘનગર્જનમ્ ? તથા વાદરા વિદ્યુત્ ? , મગવા-

ઉત્તર મેં પ્રશ્ન ગૌતમ સે કહતે હેં કિ-હે ગૌતમ ! (હંતા અતિથ) એસા હોતા હેં કિ-ઉદાર મેવ ડસ તમસ્કાય મેં સંસ્વેદ જનક પુદ્ગલ સ્નેહરૂપ સંપત્તિ સે મીલે હોતે હેં, પરસ્પર કે સંપોગરૂપ સે વે વર્હાં એકત્રિત હોતે હેં ઓર વરસતે હેં । અવ ગૌતમ સ્વામી પ્રશ્ન સે પૂછતે હેં કિ-(તં મંતે ! કિ દેવો પઠ્ઠરેઙ્ અસુરો પઠ્ઠરેઙ્, ણાગો પઠ્ઠરેઙ્ ?) કિ હે મદન્ત ! ડસ સંસ્વેદન, સંમૂર્છન ઓર વર્ષણ કો કયા દેવ કરતા હે ? અથવા અસુર કરતા હે ? યા નાગ કરતા હે ? ડસ કે ઉત્તર પ્રશ્ન ડનસે કહતે હેં કિ-(ગોષમા) હે ગૌતમ ! (દેવો વિ પઠ્ઠરેઙ્, અસુરો વિ પઠ્ઠરેઙ્, ણાગો વિ પઠ્ઠરેઙ્) ડસ સંસ્વેદન કો, સંમૂર્છિતમ કો એવં વર્ષણ કો દેવ મી કરતા હે, અસુર મી કરતા હે ઓર નાગ મી કરતા હે ।

(અતિથ ણં મંતે ! તમુક્કાણ વાયરે યણિય સદે, વાયરે વિજ્ઞુણ) હે મદન્ત ! ડસ તમસ્કાય મેં વાદર સ્તનિત શબ્દ-ઘનગર્જન, તથા વાદર

તેનો ઉત્તર આપતા મહાવીર પ્રશ્ન કહે છે-“ હંતા અતિથ ” હે ગૌતમ ! એવું જ થાય છે. કહેવાનું તાત્પર્ય એ છે કે વિશાળ મેઘ તમસ્કાયમાં સંસ્વેદ જનક પુદ્ગલોની સ્નિગ્ધતારૂપ સંપત્તિથી ભીંજાય છે, પરસ્પરના સંયોગથી તેઓ ત્યાં એકત્રિત થાય છે અને વરસે છે.

પ્રશ્ન-“ તં મંતે ! કિં દેવો પઠ્ઠરેઙ્, અસુરો પઠ્ઠરેઙ્, ણાગો પઠ્ઠરેઙ્ ? ” હે મદન્ત ! તે સંસ્વેદન, સંમૂર્છન (એકત્રિત કરવાની ક્રિયા) અને વર્ષણ (વરસાવવાની ક્રિયા) શું દેવ કરે છે ? કે અસુરકુમાર કરે છે ? કે નાગકુમાર કરે છે ?

મહાવીર પ્રશ્નનો ઉત્તર-(દેવો વિ પઠ્ઠરેઙ્, અસુરો વિ પઠ્ઠરેઙ્, ણાગો વિ પઠ્ઠરેઙ્) હે ગૌતમ ! તે સંસ્વેદન, સંમૂર્છન અને વર્ષણ દેવ પણ કરે છે; અસુર પણ કરે છે અને નાગ પણ કરે છે.

ગૌતમ સ્વામીનો પ્રશ્ન-(અતિથ ણં મંતે ! તમુક્કાણ વાયરે યણિયસદે,

आश्रमाः-तापसजननिवासा इति वा, संराडाः-कृपिरलेषांनगरसार्थं निर्मितानि
 दुर्गभूमिस्थानानि-इति वा, एते किं तमस्कायै सन्ति ? इति प्रश्नः । भगवानाह-
 'गो इण्डे समट्टे' हे गौतम ! नायमर्थः समर्थः तमस्कायै ग्रामादियन्त्रियेनाम्नाः
 न भवन्ति । गौतमः पृच्छति- 'अत्थि णं भंते ! तमुक्काए उराला बलाहया संसेयंति,
 संमुच्छंति, संवासंति ?' हे भदन्त ! अस्ति संवाति सत्तु तमस्कायै उदासाः
 महान्तः बलाहताः-मेघाः संस्विघ्नि स्विघ्नन्ति-संस्वेदजनघृष्टरश्मिरेसंवेष्णा
 आद्रा भवन्ति किम् ?, संमूर्च्छन्ति-उद्धिता भवन्ति परस्परसंयोगेन एकत्रिता
 भवन्ति, वत्पुद्गलानां मीलनान् तदाहात्तया उदायन्ते किम् ? संवर्णन्ति-वृष्टि
 कुर्वन्ति किम् ? । भगवानाह- 'हंता, अत्थि' हे गौतम ! हन्त, सत्यम् अस्ति

जनो के आश्रम स्थान का नाम आश्रम है । किमान लोग जहां पर
 अपने अनाज आदि की रक्षा के निमित्त जो दुर्गम भूमि स्थान बना
 लेते हैं उसका नाम संवाह है " ये सब जनस्थान क्या उस तमस्काय
 में होते हैं ? इसके उत्तर में प्रभु गौतम से कहते हैं कि (गो इण्डे
 समट्टे) हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है, अर्थात् उस तमस्काय में ये
 सब कुछ नहीं है । गौतम पुनः प्रभु से प्रश्न करते हैं कि (अत्थि णं
 भंते ! तमुक्काए उराला बलाहया संसेयंति, संमुच्छंति संवासंति) हे
 भदन्त ! उस तमस्काय में क्या बड़े २ मेघ संस्वेद (पत्तीना) जनक पुद्गल
 स्नेह रूप संपत्ति से गीले होते हैं ? परस्पर के संयोग से क्या वे एकत्रित
 होते हैं ? अर्थात् मेघ के पुद्गलों के मिलने से उन पुद्गलों की मेघों के
 रूप में उत्पत्ति होती है क्या ? वे मेघ क्या उसमें वासते हैं ? इसके

आश्रम कडे छे. जेदूती. ज्यां पोतानां अनाजा आदिनी रक्षा भाटे दुर्गम
 भूमिस्थान बनावी छे जेवां स्थानने संवाह कडे छे. शुं आ जथां जन-
 स्थानो तमस्कायमां डाय छे ? जेवां गौतमनो प्रश्न छे.

तेनो उत्तर आपता महावीर प्रभु कडे छे- " गो इण्डे समट्टे " हे
 गौतम ! तमस्कायमां गाम, आकर आदि कशुं पणु डेतुं नथी.

गौतम स्वामी महावीर प्रभुने जेवां प्रश्न पूछे छे. के (अत्थि णं भंते !
 तमुक्काए उराला बलाहया संसेयंति, संमुच्छंति संवासंति ?) हे भदन्त !
 ते तमस्कायमां शुं विशालां मेघ संस्वेद (परसेवे) जनक पुद्गल स्नेह रूप
 संपत्तिथी लीलय छे. अरां ? परस्परना. संयोगथी. शुं तेजो ज्येभ्रित थाय
 छे अरां ? जेटवे के जेधता पुद्गलो साथे. संयोग पाभवाथी ते पुद्गलोनी
 जेधना रूपमां शुं उत्पत्ति थाय छे अरी ? ते मेघ शुं तेमां परसे छे अरां ?

संभवति यत् तमस्काय उदारः मेघः संस्विद्यन्ति सम्मूर्च्छन्ति, संवर्षन्ति च । गौतमः पृच्छति—‘ तं भंते ! किं देवो पकरेइ, असुरो पकरेइ, नागो पकरेइ ? ’ हे भदन्त ! तत् संस्वेदनं सम्मूर्च्छनं वर्षणञ्च किं देवः प्रकरोति, अथवा असुरः प्रकरोति, अथवा नागः प्रकरोति ? । भगवानाह—‘ गोयमा ! देवो वि पकरेइ, असुरो वि पकरेइ, नागो वि पकरेइ ’ हे गौतम ! तत् खलु संस्वेदनं सम्मूर्च्छनं वर्षणं च देवोऽपि प्रकरोति, असुरोऽपि प्रकरोति, नागोऽपि प्रकरोति । गौतमः पृच्छति—‘ अत्थि णं भंते ! तमुक्काए वायरे थणियसदे, वायरे विज्जुए ? ’ हे भदन्त ! अस्ति संभवति खलु तमस्कायै वादरः स्तनितशब्दः घनगर्जनम् ? तथा वादरा विद्युत् ? , भगवा-

उत्तर में प्रभु गौतम से कहते हैं कि—हे गौतम ! (हंता अत्थि) ऐसा होता है कि—उदार मेघ उस तमस्काय में संस्वेद जनक पुद्गल स्नेहरूप संपत्ति से गीले होते हैं, परस्पर के संयोगरूप से वे वहाँ एकत्रित होते हैं और वरसते हैं । अब गौतम स्वामी प्रभु से पूछते हैं कि—(तं भंते ! किं देवो पकरेइ असुरो पकरेइ, नागो पकरेइ ?) किं हे भदन्त ! इस संस्वेदन, सम्मूर्च्छन और वर्षण को क्या देव करता है ? अथवा असुर करता है ? या नाग करता है ? इस के उत्तर प्रभु उनसे कहते हैं कि—(गोयमा) हे गौतम ! (देवो वि पकरेइ, असुरो वि पकरेइ, नागो वि पकरेइ) उस संस्वेदन को, सम्मूर्च्छिम को एवं वर्षण को देव भी करता है, असुर भी करता है और नाग भी करता है ।

(अत्थि णं भंते ! तमुक्काए वायरे थणियसदे, वायरे विज्जुए) हे भदन्त ! उस तमस्काय में वादर स्तनित शब्द—घनगर्जन, तथा वादर

तेनो उत्तर आपता भडावीर प्रभु कडे छे—“ हंता अत्थि ” छे गौतम । ओबुंन थाय छे. कडेवानुं तात्पर्यं ओ छे डे विशाण मेघ तमस्कायमां संस्वेद जनक पुद्गलोनी स्निग्धताइय संपत्तिथी लीलय छे, परस्परता सथेगथी तेओ त्यां ओकत्रित थाय छे अने वरसे छे.

प्रश्न—“ तं भंते ! किं देवो पकरेइ, असुरो पकरेइ, नागो पकरेइ ? ” छे भदन्त ! ते संस्वेदन, सम्मूर्च्छन (ओकत्रित करवानी किया) अने वर्षण (वरसाववानी किया) शुं देव करे छे ? डे असुरकुमार करे छे ? डे नागकुमार करे छे ?

भडावीर प्रभुने उत्तर—(देवो वि पकरेइ, असुरो वि पकरेइ, नागो वि पकरेइ) छे गौतम ! ते संस्वेदन, सम्मूर्च्छन अने वर्षण देव पणु करे छे; असुर पणु करे छे अने नाग पणु करे छे.

गौतम स्वामीने प्रश्न—(अत्थि णं भंते ! तमुक्काए वायरे थणियसदे,

નાહ—‘ હંતા, સત્યમેવ તમસ્કાયે વાદરઃ સ્તનિતશબ્દઃ વાદરા વિષુભારિઃ, અવ-
વાદરવિષુત્પદેન દેવમભાવોત્પાદિતાઃ માસ્વરાઃ પુત્રભ્યા પ્રાથાઃ, નતુ વાદરતેમસ્કા-
યિકાઃ, તેપામિદૈવાપ્રે પ્રતિપેત્સ્યમાનત્વાન્, ગૌતમઃ પૃચ્છતિ—, તેં મંતે ! કિં દેવો
પકરેહ, અસુરો પકરેહ, નાગો પકરેહ, ? ’ હે મદન્ત ! તેં વાદસ્તનિતશબ્દ વાદર-
વિષુત્તં ચ કિં દેવઃ પ્રકરોતિ અથવા અસુરઃ પ્રકરોતિ, નાગો વા પ્રકરોતિ ? પ્રશ્નઃ ।
મળવાનાહ—‘ તિન્નિ વિ પકરંતિ ’ હે ગૌતમ ! વાદરસ્તનિતશબ્દાદિકં ત્રયોઽપિ
દેવાસુરનાગાઃ પ્રકુર્વન્તિ, ।

વિજલી હોતી હૈ કયા ? इस गौतम के प्रश्न के उत्तर में प्रभु कहते हैं कि (हंता अत्थि) हां गौतम ! तमस्काय में वादर स्तनितशब्द और वादर विजली है । यहां पर वादरविषुत् शब्द से देवप्रभाव से उत्पादित भास्वर पुत्रल ही गृहीत हुए हैं । न कि वादर तेजस्कायिक, क्यों कि उसका यहां पर होना आगे निषिद्ध हुआ है (तं मंते ! किं देवो पकरेह, असुरो पकरेह, नागो पकरेह) हे मदन्त ! वादरस्तनित शब्द को और वादर विषुत् को वहां क्या देव करता है ? अथवा असुर करता है ? या नाग करता है ? इस गौतम के प्रश्न का उत्तर देनेके लिये प्रभु उनसे कहते हैं कि—(तिन्नि वि पकरंति) हे गौतम ! वादर स्तनित शब्द को एवं वादरविषुत् को वहां तीनों भी—देव, असुर एवं नाग ये

વાયરે વિજ્ઞુણ) હે ભદન્ત ! તમસ્કાયમાં શું વાદર સ્તનિત શબ્દ (મેઘાનું ગર્જન) થાય છે ? શું તેમાં વાદર વિજળી થાય છે ?

મહાવીર પ્રભુ તેનો જવાબ આપતા કહે છે—“ હંતા અત્થિ ” હા, ગૌતમ ! તમસ્કાયમાં મેઘાની ગર્જના અને વાદર વિજળી થાય છે. અહીં “ વાદર વિષુત્ ” પદ દ્વારા દેવ પ્રભાવથી ઉત્પન્ન કરવામાં આવેલા દેહીપ્રમાણ પુત્ર-લો જ ગ્રહણ કરવા. અહીં વાદર તેજસ્કાયિક પુત્રલો ગ્રહણ કરવા નોંધ્યે નહીં, કારણ કે તેમના તમસ્કાયમાં અસ્તિત્વનો આગળ સ્વીકાર કરવામાં આવ્યો છે.

પ્રશ્ન—(તેં મંતે ! કિં દેવો પકરેહ, અસુરો પકરેહ, નાગો પકરેહ ?) ત્યાં વાદર સ્તનિત શબ્દો તથા વાદર વિષુત્ કોણ કરે છે ? શું દેવ કરે છે ? અસુર કરે છે ? કે નાગ કરે છે ?

ઉત્તર—(તિન્નિ વિ પકરંતિ) હે ગૌતમ ! ત્યાં તે વાદર સ્તનિત શબ્દ અને વાદર વિષુત્ ત્રણે કરે છે—દેવ પણ કરે છે, અસુર પણ કરે છે અને

ગૌતમઃ પૃચ્છતિ-‘ અત્થિ ણં ભંતે ! તમુક્કાણ વાયરે પુઢવિકાણ, વાયરે અગ્નિકાણ ? હે ભદન્ત ! અસ્તિ સંભવતિ લલુ તમસ્કાયે વાદરઃ પૃથિવીકાયઃ ભવતિ ? તથા વાદરઃ અગ્નિકાયો ભવતિ ? ભગવાનાહ-‘ ણોઙ્ઘટ્ટે સમટ્ટે-ણ્ણત્થ વિગ્ગહગતિસમાવન્નણ્ણં ’ હે ગૌતમ ! નાયમર્થઃ સમર્થઃ, તમસ્કાયે વાદરઃ પૃથિવીકાયઃ, વાદરઃ અગ્નિકાયથ ન ભવતિ, કિન્તુ ‘ ન ’ ઇતિ શબ્દેન યોઙ્યં વાદર-પૃથિવી-તેજસોઃ નિપેથઃ કૃતઃ, સ વિગ્ગહગતિસમાપન્નકેન અન્યત્ર વોઘ્યઃ। વિગ્ગહગતિ-સમાપન્નકાન્ વાદરપૃથિવી તૈજસકાયાન્ વિહાય ઉક્તનિપેથો વિજ્ઞેય ઇત્યર્થઃ। વિગ્ગહ-ગત્યા વાદરપૃથિવીતેજસોઃ તમસ્કાયેઽપિ સંભવાત્। વાદરાઃ પૃથિવીકાયિકાઃ રત્નમમાઘાસુ અપ્પમ્ પૃથિવીપુ ગિરિ-વિમાનેપુ ચ ભવન્તિ, વાદરતેજસ્કાયિકાસ્તુ મનુષ્યક્ષેત્રે એવ ભવન્તિ। ગૌતમઃ પૃચ્છતિ-‘ અત્થિ ણં ભંતે ! તમુક્કાણ ચંદિમ-સૂરિય-ગહગણ-ણલ્લ-તારાલ્લા ? ’ હે ભદન્ત ! અસ્તિ સંભવતિ લલુ તમસ્કાયે ચન્દ્ર-

સષ હી કરતે હેં। (અત્થિ ણં ભંતે ! તમુક્કાણ વાયરે પુઢવિકાણ વાયરે અગ્નિકાણ) હે ભદન્ત ! તમસ્કાય મેં વાદર પૃથિવીકાય વાદર અગ્નિકાય હોતે હેં કયા ? ઇસ ગૌતમ કે પ્રશ્ન કે ઉત્તર મેં ભગવાન્ ડનસે કહતે હેં કિ-હે ગૌતમ ! (ણો ઙ્ઘટ્ટે સમટ્ટે, ણ્ણત્થવિગ્ગહગહસમાવન્ન-ણ્ણં) વિગ્ગહગતિસમાપન્નક વાદર પૃથિવીકાય કો એવં તૈજસકાય કો છોઙ્કર તમસ્કાય મેં વિગ્ગહગતિ અપ્રાપ્ત વાદર પૃથિવીકાય-ઑર વાદર અગ્નિકાય નહીં હેં। કયોં કિ વિગ્ગહગતિ મેં વર્તમાન વાદર પૃથિવી ઑર વાદર તૈજસકાયકા હી તમસ્કાયમેં ઑી સંભવ હો સકતા હેં। વાદર પૃથિ-વીકાયિક, રત્નપ્રભા આદિ આઠ પૃથિવીયોંમેં ગિરિયોં મેં ઑર વિમાનોં મેં હી હોતે હેં। ઑર વાદર તૈજસ્કાયિક મનુષ્યક્ષેત્ર મેં હી હોતે હેં। “ અત્થિ ણં ભંતે ! તમુક્કાણ ચંદિમ-સૂરિય-ગહગણણલ્લ તારાલ્લા)

પ્રશ્ન—(અત્થિ ણં ભંતે ! તમુક્કાણ વાયરે પુઢવીકાય વાયરે અગ્નિકાણ ?)

હે ભદન્ત ! તમસ્કાયમાં આદર (સ્થૂળ) પૃથ્વીકાય અને આદર અગ્નિકાય હોય છે ખરાં ?

ઉત્તર—“ ણો ઙ્ઘટ્ટે સમટ્ટે ણ્ણત્થવિગ્ગહગહસમાવન્નણ્ણં ” હે ગૌતમ ! એલું સંભવિત નથી. વિગ્ગહ ગતિમાં વર્તમાન આદર પૃથ્વીકાયનો અને આદર તૈજસ્કાયનો જ તમસ્કાયમાં સંભવ હોઈ શકે છે. વિગ્ગહગતિમાં વર્તમાન આદર પૃથ્વીકાય અને આદર તૈજસ્કાય સિવાયના વિગ્ગહગતિ અપ્રાપ્ત આદર પૃથ્વીકાય અને આદર તૈજસ્કાય તેમાં સંભવી શકતા નથી. આદર પૃથ્વીકાયિક રત્નપ્રભા આદિ આઠ પૃથ્વીઓમાં, પર્વતોમાં અને વિમાનોમાં જ હોય છે, અને આદર તૈજસ્કાયિક મનુષ્ય ક્ષેત્રમાં જ હોય છે.

ભાસઃ કૃષ્ણકાન્તિપુત્ર ઇતિ, તથા ચ વર્ણેન કાલઃ, કાલાચમાસમ્ તમસ્કાયઃ,
અથવા અતિશયકૃષ્ણકાન્તિશ્ચ સ ઇતિ । તથા સ ગમ્મીર-રોમ-ર્ષર્ષત્રનનઃ, ગમ્મીર-
ધાસી અત્યન્તમીવળ્વાત્ રોમર્ષર્ષત્રનનન્નેતિ ગમ્મીરરોમર્ષર્ષત્રનનઃ રોમાશ્ચોત્વા-
વકઃ । તસ્ય રોમર્ષર્ષત્રનને કારણમાદ-‘ મીમઃ ’ ઇતિ, ત્રિમેતિ અસ્માદિતિ મીમઃ
મયદ્ધારઃ, તથા ઉત્ત્રાસનકઃ અત્યન્તગ્રાસનનકઃ પરમકૃષ્ણર્ણઃ સ તમસ્કાયઃ પ્રજ્ઞઃ ।
‘ દેવે ણં અત્યેગદ્દે જે ણં તપ્પદમયાપ પાસિત્તા ણં સુમાણ્જા ’ હે ગૌતમ ! દેવઃ
સ્વલુ અસ્ત્યેકકઃ, યઃ સ્વલુ વં તમસ્કાયં પ્રથમતવા પ્રથમવારં દૃષ્ટ્વા અલોચ્યૈવ ધ્રુસ્વેન્
ક્ષોભં પ્રાપ્નુયાત્ । ‘ અહે ણં અમિસમાગચ્છેજ્ઞા ’ અથ અનન્તરં સ્વલુ અમિસમાગ-

હતના મયંદર હૈ કિ દેવતે હી વદ્ધત પુરિં તરહ સે રોમરાજિ સ્વદી હો
જાતી હૈ । રોમરાજિ સ્વદી હોને કા કારણ પદી હૈ કિ વહ “ મીમઃ ”
મયપ્રદ હૈ । અત્યન્ત ગ્રાસ જનક હૈ । એસે પરમકૃષ્ણ વર્ણવાલા વહ
તમસ્કાય હૈ । (કાલોભાસે) એસા જો પદ દિયા ગયા હૈ વહ યહ પ્રકટ
કરતા હૈ કિ કોઈ પદાર્થ કાલા હોકર મી કિસી કારણ વશ કાલે રૂપ
મેં અવભાસિત નહીં હોના હૈ પરન્તુ યહ એસા નહીં હૈ-યહ તો કૃષ્ણવર્ણ-
વાલા હોકર મી કાલે હી રૂપ સે અવભાસિત હોતા હૈ । અથવા
(કાલોભાસે) યહ તમસ્કાય અત્યન્તકૃષ્ણકાન્તિ સે યુક્ત હૈ । મનુષ્યાદિ
જિસસે ડરેં વહ (મીમ) હૈ । (દેવેણં અત્યેગદ્દે જે ણં તપ્પદમયાપ
પાસિત્તા ણં સુમાણ્જા) કોઈ એક દેવ એસા મી હોતા હૈ જો ડસ તમ-
સ્કાય કો સર્વપ્રથમ દેવ કરકે હી ધ્રુમિત્ હો જાતા હૈ-યદિ કોઈ દેવ
કદાચિત્ ડસ તમસ્કાય મેં (અમિસમાગચ્છેજ્ઞા) પાસ મેં જાકર પ્રવેશ

મધે ભયંકર હોય છે કે તેને ભેતાં જ ખીકને કારણે રૂવાડા ઉભા થઇ
બીય છે રૂવાડા ઉભા થવાનું કારણ એ છે કે તે “ મીમઃ ” ભયજનક છે-
અત્યન્ત ગ્રાસજનક છે, આવાં પરમકૃષ્ણ-વર્ણવાળો તે તમસ્કાય છે. “ કાલો-
ભાસે ” આ પદ આપવાનું કારણ એ છે કે કોઈ પદાર્થ કાળો હોવા છતાં
પણ કોઈ કારણે કાળો અવભાસિત થતો નથી-દેખાતો નથી. પરન્તુ તમસ્કાય
એવો નથી. તે તો કૃષ્ણ વર્ણવાળો છે એટલું જ નહીં પણ કાળો જ દેખાય
છે. અથવા “ કાલોભાસે ” આ તમસ્કાય અત્યન્ત કૃષ્ણકાન્તિથી યુક્ત છે.
મનુષ્યાદિ જેનાથી ડરે તેને “ મીમ ” કહે છે. (દેવેણં અત્યેગદ્દે જે ણં તપ્પ-
દમયાપ પાસિત્તા ણં સુમાણ્જા) કોઈ કોઈ દેવ તો તેને પહેલી જ વાર દેખતાની
સાથે જ ક્ષોભ પામી બીય છે. જો કોઈ દેવ ક્યારેક તે તમસ્કાયમાં “ અમિ-
સમાગચ્છેજ્ઞા ” પાસે જઈને પ્રવેશ કરે છે, તો તે (તમો પચ્છા સીહં સીહં

च्छेत्-समीपं गत्वा तमस्कायं प्रविशेत्, 'तत्रो पच्छा सीहं सीहं तुरियं तुरियं खिप्पामेव वीइवएज्जा' ततः पश्चात् तदनन्तरम् भयात् शीघ्रं शीघ्रम् अतिवेगेन त्वरितं त्वरितम् मनोगतेरतिवेगात् क्षिपमेव अतिसत्वरमेव व्यतिव्रजेत् अतिक्रामेत्, तमुल्लङ्घ्य निर्गच्छेत्। गौतमः पृच्छति- 'तमुक्कायस्स णं भंते ! कइ नामधेज्जा पण्णत्ता ?' हे भदन्त ! तमस्कायस्य खलु कति कियन्ति नामधेयानि नामानि प्रज्ञप्तानि ? भगवानाह- 'गोयमा ! तेरस नामधेज्जा पण्णत्ता' हे गौतम ! तमस्कायस्य त्रयोदश नामधेयानि प्रज्ञप्तानि, तान्येवाह- 'तं जहा'-तद्यथा- 'तमेइ वा १, तमुक्काए इ वा २, अंधकारे इ वा ३, महंधकारेइ वा ४, लोमंधकारे इ वा ५, लोगतमिस्से इ वा ६, देवंधकारे इ वा ७, देवतमिस्से इ वा ८, देवारन्ने इ वा ९, देववूहे इ वा १०, देवफलिहेइ वा ११, देवपडिक्खोभे इ वा १२, अरुणोदए त्ति वा समुदे १३ इति ।

करता है तो वह " तत्रो पच्छा सीहं सीहं तुरियं तुरियं खिप्पामेव वीइवएज्जा " कायगति के अतिवेग से और मनोगति के अतिवेग से अर्थात् बहुत ही शीघ्रता के साथ उस तमस्काय में से बाहर निकल आता है। (तमुक्कायस्स णं भंते ! कइ नामधेज्जा पण्णत्ता) हे भदन्त ! तमस्काय के कितने नाम हैं ? इस गौतम के प्रश्न का उत्तर प्रभु इन्हें यों देते हैं कि- (गोयमा) हे गौतम ! (तेरस नामधेज्जा पण्णत्ता) तमस्काय के नाम तेरह हैं- (तं जहा) वे इस प्रकार से हैं- (तमेइ वा १ तमुक्काएइ वा, २ अंधकारेइ वा, ३ महंधकारेइ वा, ४ लोमंधकारेइ वा ५, लोगतमिस्सेइ वा ६, देवंधकारेइ वा ७, देवतमिस्सेइ वा ८, देवारन्नेइ वा ९, देववूहेइ वा १०, देवफलिहेइ वा ११, देवपडिक्खोभेइ वा १२, अरुणोदएत्ति वा समुदे १३, अंधकाररूप होनेके कारण तमस्काय का पहला नाम तम है, अंधकार की राशिरूप होने के कारण तमस्काय का दूसरा

तुरियं तुरियं खिप्पामेव वीइवएज्जा) कायगतिना अतिवेगथी अने मनोगतिना अतिवेगथी-अपेक्षे के धर्मी वा शीघ्रताथी ते तमस्कायमाथी अडार नीकणी भाय छे.

गौतम स्वाभिना प्रश्न- (तमुक्कायस्स णं भंते ! कइ नामधेज्जा पण्णत्ता ?) हे भदन्त ! तमस्कायना केटलां नाम छे ? उत्तर- " गोयमा ! " हे गौतम ! (तेरस नामधेज्जा पण्णत्ता-तंजहा) तमस्कायना नीचे प्रमाणे तेर नाम कहां छे-

(१) तमेइ वा, (२) तमुक्काएइ वा, (३) अंधकारेइ वा, (४) महंधकारेइ वा, (५) लोमंधकारेइ वा, (६) लोगतमिस्सेइ वा, (७) देवंधकारेइ वा, (८) देवतमिस्सेइ वा, (९) देवारन्नेइ वा, (१०) देववूहेइ वा, (११) देवफलिहेइ वा, (१२) देवपडिक्खोभेइ वा, (१३) अरुणोदए त्ति वा समुदे)

ભાસઃ કૃષ્ણકાન્તિપુક્ત ઇતિ, તથા ચ વર્ણેન કાલઃ, કાલાવમાસમ્ તમસ્કાયઃ,
અથના અતિશયકૃષ્ણકાન્તિમ્ સ ઇતિ । તથા સ ગમ્મીર-રોમ-ર્ષનનનઃ, ગમ્મીર-
ધાસો અત્યન્તમીગળ્વાર્ રોમર્ષનનનનેતિ ગમ્મીરરોમર્ષનનનઃ રોમાશ્વોત્વા-
વકઃ । તસ્ય રોમર્ષનનને કારણમાહ- ' મીમઃ ' ઇતિ, ચિમેતિ અસ્માદિતિ મીમઃ
મયદ્ગુરુઃ, તથા ડત્રાસનકઃ અત્યન્તપ્રાસનનકઃ પામકૃષ્ણાર્ણઃ સ તમસ્કાયઃ મત્તઃ ।
' દેવે ણં અત્યેગરૂપ જે ણં તપ્પદમયાપ પાસિત્તા ણં સુભાવજ્ઞા ' હે ગૌતમ । દેવઃ
સ્વલુ અસ્ત્યેકકઃ, યઃ સ્વલુ તં તમસ્કાયં મયમતવા મયમવારં રૂપા ભરતોરુપેવ શુભ્યેત્
શોભં માણુવાત્ । ' અદે ણં અભિસમાગચ્છેજ્ઞા ' મય ભનન્તરં સ્વલુ અભિસમાગ-

હતના મયંકર હૈ કિ દેવ્યતે હી પટ્ટત પુરી તરહ સે રોમરાજિ સ્વહી હો
જાતી હૈ । રોમરાજિ સ્વહી હોને કા કારણ યહી હૈ કિ વહ " મીમઃ "
મયમદ હૈ । અત્યન્ત ઘ્રાસ જનક હૈ । એસે પરમકૃષ્ણ વર્ણવાલા વહ
તમસ્કાય હૈ । (કાલોભાસે) એસા જો પદ દિયા ગયા હૈ વહ યહ પ્રકટ
કરતા હૈ કિ કોઈ પદાર્થ કાલા હોકર મી કિસી કારણ વશ કાલે રૂપ
મેં અવભાસિત નહીં હોના હૈ પરન્તુ યહ એસા નહીં હૈ-યહ તો કૃષ્ણવર્ણ-
વાલા હોકર મી કાલે હી રૂપ સે અવભાસિત હોતા હૈ । અથવા
(કાલોભાસે) યહ તમસ્કાય અત્યન્તકૃષ્ણકાન્તિ સે યુક્ત હૈ । મનુષ્યાદિ
જિસસે ડરે વહ (મીમ) હૈ । (દેવેણં અત્યેગરૂપ જે ણં તપ્પદમયાપ
પાસિત્તા ણં સુભાવજ્ઞા) કોઈ એક દેવ એસા મી હોતા હૈ જો ડસ તમ-
સ્કાય કો સર્વપ્રથમ દેવ કરકે હી ધુમિત હો જાતા હૈ-યદિ કોઈ દેવ
કદાચિત્ ડસ તમસ્કાય મેં (અભિસમાગચ્છેજ્ઞા) પાસ મેં જાકર પ્રવેશ

બધો ભયંકર હોય છે કે તેને બેતાં જ ખીકને કારણે રૂવાડા બેલા થઇ
બંધ છે રૂવાડા બેલા થવાનું કારણ એ છે કે તે " મીમઃ " ભયજનક છે-
અત્યન્ત ત્રાસજનક છે, આવાં પરમકૃષ્ણ-વર્ણવાળો તે તમસ્કાય છે. " કાલો-
ભાસે " આ પદ આપવાનું કારણ એ છે કે કોઈ પદાર્થ કાળો હોવા છતાં
પણ કોઈ કારણે કાળો અવભાસિત થતો નથી-દેખાતો નથી. પરન્તુ તમસ્કાય
એવો નથી. તે તો કૃષ્ણ વર્ણવાળો છે એટલું જ નહીં પણ કાળો જ દેખાય
છે. અથવા " કાલોભાસે " આ તમસ્કાય અત્યન્ત કૃષ્ણકાન્તિથી યુક્ત છે.
મનુષ્યાદિ બેનાથી ડરે તેને " મીમ " કહે છે. (દેવેણં અત્યેગરૂપ જે ણં તપ્પ-
દમયાપ પાસિત્તા ણં સુભાવજ્ઞા) કોઈ કોઈ દેવ તો તેને પહેલી જ વાર દેખતાની
સાથે જ ક્ષોભ પામી બંધ છે. બે કોઈ દેવ ક્યારેક તે તમસ્કાયમાં " અભિ-
સમાગચ્છેજ્ઞા " પાસે બંધને પ્રવેશ કરે છે, તો તે (ત્રો પચ્ચા સીદં સીદં

‘देवव्यूहः’ इति वा, देवानां दुर्भेद्यत्वात् चक्रादिव्यूह इव ‘देवव्यूहः’ इतिनाम १० । ‘देवपरिघः’ इति वा, देवानामातङ्गजनकतया मनोविघातहेतुत्वेन ‘देवपरिघः’ इति नाम ११, ‘देवप्रतिक्षोभ’ इति वा, देवानां महाक्षोभोत्पादकत्वात् ‘देवप्रतिक्षोभः’ इति नाम १२, ‘अरुणोदकः समुद्रः’ इति वा, अरुणोदकसमुद्रस्य विकारात्मकत्वात् ‘अरुणोदकसमुद्रः’ इति वा नाम १३ । इति तमस्कायस्य त्रयोदश नामानि प्रदर्शितानि ।

अथ तमस्कायपरिणाममाह—‘तमुक्काए णं भंते ! किं पुढविपरिणामे, आउपरिणामे, जीवपरिणामे, पोग्गलपरिणामे ?’ हे भदन्त ! तमस्कायः खलु किं पृथिवीपरिणामः, अथवा अप्परिणामः, अथवा जीवपरिणामः, पुद्गलपरिणामो

प्य है । चक्रादिव्यूहकी तरह यह देवों द्वारा भी दुर्भेद्य होनेके कारण इसका दशवां नाम देवव्यूह है । देवों को आतंक जनक होनेके कारण इनके मन का विघात करने वाला होनेसे इसका ग्यारहवां नाम देवपरिघ है । देवों के लिये क्षोभ का कारण, होने से इसका १२ वां नाम देवप्रतिक्षोभ है । तथा अरुणोदक समुद्र के जल का विकाररूप होने के कारण इसका तेरहवां नाम अरुणोदक समुद्र है । इस प्रकार से ये तेरह सार्थक नाम तमस्काय के कहे गये हैं ।

अथ गौतम प्रभु से ऐसा पूछते हैं कि यह तमस्काय किस पदार्थ का परिणाम है—(तमुक्काए णं भंते ! किं पुढविपरिणामे ? आउपरिणामे जीव परिणामे ? पोग्गलपरिणामे ?) हे भदन्त ? यह तमस्काय क्या पृथिवी का परिणाम है ? या जल का परिणाम है ? या जीव का परिणाम है ? या पुद्गल का परिणाम है ?—किसका परिणाम है ? इसके उत्तर में

(१०) चक्रादि व्यूहने लेखवानुं काम देवो द्वारा पशु अशक्य होय छे, ते कारणे तेनुं इसमुं नाम “ देवव्यूह ” छे. (११) देवोमां आतंक (लय) ने जनक होवाने कारणे अने तेमना मनने विघात करनारे होवाने लीधे तेनुं अगियारमुं नाम “ देवपरिघ ” छे. (१२) देवोमां क्षोभने जनक होवाने कारणे तेनुं आरमुं नाम “ देवप्रतिक्षोभ ” छे. (१३) तथा अरुणोदक समुद्रना जनना विकार रूप होवाथी तेनुं तेरमुं नाम “ अरुणोदक समुद्र ” छे. आ रीते तमस्कायना तेर सार्थक (अर्थ प्रमाणेनां) नाम कक्षां छे.

गौतम स्वामी महावीर प्रभुने पूछे छे के (तमुक्काए णं भंते ! किं पुढविपरिणामे ? आउपरिणामे ? जीवपरिणामे ? पोग्गलपरिणामे ? हे भदन्त ! आं तमस्काय शुं पृथ्वीकायनुं परिणाम छे ? के जलनुं परिणाम छे ? के जलनुं परिणाम छे ? के पुद्गलनुं परिणाम छे ? ते केना परिणामरूप छे ?

तत्र 'तम' इति वा तमस्कारस्य अन्धकाररूपत्वान् 'तमः' इति नाम वर्तते, 'तमस्कारः' इति वा, तस्य अन्धकारराशिरूपत्वान् 'तमस्कारः' इति नाम, 'अन्धकारः' इति वा, तस्य तमोक्तरूपत्वान् 'अन्धकारः' इति नाम ३। 'महान्धकार' इति वा, तस्य महानमोरूपत्वान् 'महान्धकारः' इति वा नाम वर्तते ४। 'लोकान्धकारः' इति वा, लोकरूपो तादृश्य अन्धकारस्य अभावान् 'लोकान्धकारः' इति वा नाम ५। ए। 'लोकान्धकारम्' इति वा, लोकं गाढान्धकाररूपत्वान् ६। 'देवान्धकारः' इति वा, देवानामपि तमस्कारस्य महानामावेन अन्धकाररूपत्वान् 'देवान्धकारः' इति नाम ७। तथैव 'देवतमित्त्रम्' इति वा तस्यैव गाढरूपत्वान् ८। 'देवारण्यम्' इति वा, स्वापेक्षया चतुर्णां देवानां भवान् पलायमानानां देवानां तादृशारण्यमित्त्र शरण्यत्वान् 'देवारण्यम्' इति नाम ९।

नाम तमस्कार्य है-तमस्कार्यका स्वयं अंधकाररूप होनेके कारण तीसरा नाम अंधकार है। महानम रूप होने से इस का चौथा नाम महान्धकार है। लोक के बीच में ऐसा दूसरा और कोई अंधकार नहीं है इस कारण इसका पांचवां नाम लोकान्धकार है। छठवां नाम इसका लोकतमित्त्र इसी कारण से है। उद्योत के न होने के कारण देवों को भी यह तमस्कार्य अंधकाररूप भासित होता है इस कारण इसका सातवां नाम देवान्धकार है। इसी तरह से देवतमित्त्र यह इसका आठवां नाम है। अपने से बलवान् देवों के भय से भगते हुए देवों के लिये तथाविध जंगल की तरह यह शरण्यभूत है इस कारण इसका नौवां नाम देवार-

(१) अंधकार इयं होवाने कारण्णै तमस्कार्यतुं नाम 'तम' छे. (२) अंधकारनी राशिइयं होवाथी तेतुं भीन्तुं नाम 'तमस्कार्य' छे. (३) ते पोते न अंधकार इयं होवाथी तेतुं नाम 'अंधकार' पण्णु छे. (४) मंडा तमइयं (अंधकार इयं) होवाथी तेतुं चोथुं नाम 'मंडान्धकार' छे. (५) लोकमां ज्येवा भीन्ते कौर्ध पण्णु अंधकार न होवाथी तेतुं पांथुं नाम "लोकान्धकार" छे. (६) वणी उपथुं क्त कारण्णै न तेतुं छइइं नाम "लोकतमित्त्र" छे. (७) उद्योत (प्रकाश) न होवाने कारण्णै देवाने पण्णु आ तमस्कार्य अंधकार इयं लागे छे, ते कारण्णै तेतुं सातथुं नाम "देवान्धकार" छे. (८) ज्येव रीते तेतुं आठथुं नाम "देवतमित्त्र" छे. (९) पोताना कस्तां वधारे णणवान् देवाना लयथी लागता देवाने माटे अंधकारभय जंगलनी ज्येव ते आश्रयदायक णने छे, तेथी तेतुं नवथुं नाम "देवारण्य" छे.

भदन्त ! तमस्काये खलु सर्वेषाणाः, भूताः, जीवाः, सत्त्वाः पृथिवीकायिकतया यावत्-त्रसकायिकतया उपपन्नपूर्वाः पूर्वमुत्पन्नाः ? यावत् करणात्-जलकायिक-तया, वायुकायिकतया, वनस्पतिकायिकतया, इति संग्रहम् । भगवानाह- ' हंता, गोयमा ! असइं अदुवा, अणंतखलुत्तो, णो चैव णं वायरपुढविकाइयत्ताए वा, वायर-अगणिकाइत्ताए वा ' हे गौतम ! हन्त, सत्यम् सर्वे प्राणाः, भूताः जीवाः, सत्त्वाः, तमस्काये पृथिवीकायिकतया यावत्-त्रसकायिकतया असकृत् भूयोभूयः अथवा अनन्तकृत्यः अनन्तवारान् पूर्वमुत्पन्नाः, किन्तु नो चैव नैव कथमपि वादरपृथिवीका-यिकतया, वादराग्निकायिकतया वा उत्पन्नाः, यतोहि तमस्कायस्य अप्कायिकतया तत्र वादरा वायवो वनस्पतयः त्रसाश्च उत्पद्यन्ते अप्काये तेषामुत्पत्तिसंभवात्, इतरं तु पृथिवीजीवा अग्निजीवाश्च तत्र नोत्पत्तुमर्हन्ति तेषां तत्र स्वस्थानत्वा भावात् ॥ सू० ३ ॥ तमस्कायाकारः—



त्रसकायिकरूप से उत्पन्न हुए हैं ? यहाँ यावत् शब्द से (जलकायिकतया तेजःकायिकतया, वायुकायिकतया, वनस्पतिकायिकतया " इस पाठ का संग्रह हुआ है । इसके उत्तर में प्रभु उनसे कहते हैं—(हंता, गोयमा ! असइं अदुवा अणंतखलुत्तो, णो चैव णं वायरपुढविकाइयत्ताए वा, वायरअगणिकाइयत्ताए वा " हां गौतम ! समस्त प्राण, भूत, जीव, स-त्त्व, तमस्काय में पृथिवीकायिकरूप से यावत् त्रसकायिकरूप से बार २ अथवा अनन्तवार पहिले उत्पन्न हुए हैं परन्तु वे वहाँ कभी भी वादर पृथिवीकायिकरूप से एवं वादर अग्निकायिकरूप से उत्पन्न नहीं हुए हैं । क्यों कि तमस्काय अप्कायरूप होने के कारण उसमें वादरवायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय उत्पन्न होते हैं क्यों कि वहाँ उनकी

तमस्कायमां पूर्वे (पडेलां) पृथ्वीकायिक, जलकायिक, तैजस्कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक अने त्रसकायिक इये उत्पन्न थयं युक्त्यां छे परां ?

तेनो उत्तर आपता भडावीर प्रभु कडे छे—(हंता, गोयमा ! असइं अदुवा अणंतखलुत्तो, णो चैव णं वायर पुढविकाइयत्ताए वा, वायर अगणिकाइ-यत्ताए वा) डा, गौतम ! समस्त प्राण, भूत, जीव अने सत्त्व तमस्कायमां पृथ्वीकायिकथी लधने त्रसकायिक पर्यन्तना इये वारंवार अथवा अनंतवार पडेलां उत्पन्न थयं युक्त्यां छे, पणु तेओ त्थां कवी पणु भादर पृथ्वीकायिक इये अने भादर अग्निकायिकइये उत्पन्न थया नथी. कारणु डे तमस्काय अप्-काय इय डोवाथी तेमां भादर वायुकाय, वनस्पतिकाय अने त्रसकाय उत्पन्न

વા તમસ્કાયઃ? इति प्रश्नः । भगवानाह—'गोयमा ! गो पुढविपरिणामे, आउप-
रिणामे चि, जीवरिणामे चि, पोग्गउपरिणामे चि, हे गौतम ! तमस्कायः नो
पृथिवीपरिणामः, तस्य सर्वथा भन्वकारमपत्तात्, अरितु भन्वरिणामोऽपि
तस्याप्स्वरूपत्वात्, जीवरिणामोऽपि भां जीवरूपत्वात्, पुद्गलपरिणामो
ऽपि, तमसः पुद्गलरूपत्वात् । गौतमः पृच्छति—'तमुक्त्वा णं भंते ! सव्वे पाणा
भूया, जीवा, सत्ता पुढवीकाइयत्ताए जाव तसकाइ-
यत्ताए उववन्नपुच्चा ?' हे

પ્રભુ उनसे कहते हैं कि—(गोयमा) हे गौतम ! (गो पुढवि परिणामे,
अउपरिणामे चि, जीवपरिणामे चि, पोग्गउपरिणामे चि) तमस्काय
पृथिवी का परिणाम-विकार नहीं है । किन्तु यह अस्काय का भी परि-
णाम है, जीव का भी परिणाम है और पुद्गल का भी परिणाम है ।
पृथिवी का परिणाम यह इसलिये नहीं है कि यह सर्वथा अंधकार रूप
है । जलका परिणाम इसे इसलिये कहा गया है कि यह जलरूप होता है
और जीव का परिणाम इसलिये इसे कहा गया है कि जल स्वयं जीव
रूप है, तथा पुद्गल का परिणाम कहने का कारण यह है कि तमस्काय
स्वयं पुद्गलरूप है । अथ गौतम प्रभु से यों पूछते हैं कि (तमुक्त्वाए णं
भंते ! सव्वे पाणा, भूया, जीवा, सत्ता पुढवीकाइयत्ताए जाव तसकाइ-
यत्ताए उववन्नपुच्चा) हे भदन्त ! समस्त प्राण, समस्त भूत, समस्त
जीव, समस्त सत्त्व क्या तमस्काय में पहिले पृथिवीकायिकरूपसे यावत्

તેને ઉત્તર આપતા મહાવીર પ્રભુ કહે છે—(ગોયમા ! ગો પુઢવિપરિણામે,
આઉપરિણામે ચિ, જીવરિણામે ચિ, પોગ્ગઉપરિણામે ચિ) હે ગૌતમ ! તમસ્કાય
પૃથ્વીના પરિણામ (વિકાર) રૂપ નથી, પણ તે જળનું (અપૂકાયતું) પરિ-
ણામ પણ છે, જીવનું પરિણામ પણ છે અને પુદ્ગલનું પરિણામ પણ છે.
તે સર્વથા અંધકાર રૂપ હોવાથી તેને પૃથ્વીનું પરિણામ કહ્યું નથી. તેને
જળના પરિણામ રૂપ કહેવાનું કારણ એ છે કે તે જળરૂપ હોય છે. તેને
જીવના પરિણામ રૂપ કહેવાનું કારણ એ છે કે જળ પોતે જ જીવરૂપ હોય
છે, તથા તેને પુદ્ગલના પરિણામ રૂપ કહેવાનું કારણ એ છે કે તમસ્કાય
પોતે જ પુદ્ગલરૂપ છે.

ગૌતમ સ્વામી હવે એવો પ્રશ્ન પૂછે છે કે—(તમુક્ત્વાણં મંતે ! સવ્વે
પાણા, ભૂયા, જીવા, સત્તા પુઢવીકાઈયત્તાણ જાવ તસકાઈયત્તાણ ઉવવન્નપુચ્ચા ?)
હે ભદન્ત ! સમસ્ત પ્રાણ, સમસ્ત જીવ, સમસ્ત ભૂત અને સમસ્ત સત્ત્વ શું

दाहिणवाहिराओ कणहराईओ तंसाओ, दो पुरत्थिम-पच्च-
 थिमाओ अविंभतराओ कणहराईओ चउरंसाओ, दो उत्तरदा-
 हिणाओ अविंभतराओ कणहराईओ चउरंसाओ, “पुव्वाऽवरा
 छलंसा, तंसा पुणदाहिणुत्तरा वज्झा। अविंभतर चउरंसा सब्वा वि
 यं कणहराईओ”॥१॥ कणहराईओ णं भंते ! केवइयाओ आयामेणं
 केवइयाओ विदखंभेणं, केवइयाओ परिकखेवेणं पणत्ताओ ?
 गोयमा ! असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं आयामेणं, संखेज्जाइं जोय-
 णसहस्साइं विदखंभेणं, असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं परिकखेवेणं
 पणत्ताओ ! कणहराईओ णं भंते ! केमहालियाओ पणत्ताओ ?
 गोयमा ! अयं णं जंबुदीवे दीवे जाव-अद्धमासं वीइवएज्जा,
 अत्थेगइयं कणहराईं वीइवएज्जा, अत्थेगइयं कणहराईं णो
 वीइवएज्जा, एमहालियाओ णं गोयमा ! कणहराईओ पण-
 त्ताओ । अत्थिणं भंते ! कणहराईसु गेहा इ वा, गेहावणा इ वा ?
 णो इणट्ठे समट्ठे । अत्थिणं भंते ! कणहराईसु गामा इ वा ? णो
 इणट्ठे समट्ठे अत्थि णं भंते ! कणहराईसु उराला वलाहया संसेयंति,
 संमुच्छंति, संवासंति ?। हंता, अत्थि । तं भंते ! किं देवो पकरेइ,
 असुरो पकरेइ, नागो पकरेइ ? । गोयमा ! देवो पकरेइ, णो
 असुरो, णो नागो पकरेइ । अत्थि णं भंते ! कणहराईसु वायरे
 थणियसइ ? जहा उराला तथा । अत्थि णं भंते ! कणहराईसु
 वायरे आउकाए, वायरे अगणिकाए, वायरे वणस्सइकाए ?
 णो इणट्ठे समट्ठे, णणत्थ विग्गहगइसमावन्नएणं । अत्थि णं भंते !
 चंदिम-सूरिय-गहगण-नवखत्त-तारारूवा ? । णो इणट्ठे समट्ठे ।

કૃષ્ણગનિવક્તૃવત્તા ।

તમસ્કાયસાસ્ત્યાન્ કૃષ્ણરાત્નિ પ્રસ્થાયિતુમાદ—‘કર્ણં મંતે ! ‘કર્ણસાઈઓ’
 ક્ષ્યાદિ ।

ગૂલ્મ-કર્ણ ણં મંતે ! કર્ણસાઈઓ પળ્લતાઓ ? ગોયમા !
 અટ્ટ કર્ણસાઈઓ પળ્લતાઓ કહિ ણં મંતે ! ણ્યાઓ અટ્ટ કર્ણ-
 સાઈઓ પળ્લતાઓ ? ગોયમા ! ઊર્ણ સળંકુમારમાહિંદાળં કળ્ણાળં
 હિંદિં વંમલોળ કળ્ણે અરિંદં વિમાળપત્થકે—પત્થ ણં અવલાડ
 ગસમ ચડરંસસંઠાળસંઠિયાઓ અટ્ટ કર્ણસાઈઓ પળ્લતાઓ,
 તેંજહા—પુરત્થિમેળં દો, પચ્ચત્થિમેળં દો, દાહિળેળં દો, ઉત્તરેળં દો,
 પુરત્થિમઽમંતરા કર્ણસાઈ દાહિળ-વાહિરં કર્ણસાઈં પુટ્ટા, દાહિ-
 ણઽમંતરા કર્ણસાઈ પચ્ચત્થિમ—વાહિરં કર્ણસાઈં પુટ્ટા, પચ્ચ-
 ત્થિમઽમંતરા કર્ણસાઈ ઉત્તર-વાહિરં કર્ણસાઈં પુટ્ટા, ઉત્તરમઽ-
 મંતરા કર્ણસાઈ પુરત્થિમવાહિરં કર્ણસાઈં પુટ્ટા, દો પુરત્થિમ-
 પચ્ચત્થિમાઓ વાહિરાઓ કર્ણસાઈઓ છલંસાઓ, દો ઉત્તર-
 ઉત્પત્તિ સંભવિત હૈ—વાકી કે પૃથિવી જીવ ઓર અગ્નિ જીવ વહાં પર
 ઉત્પન્ન નહીં હો સકતે હિં—વયોં કિ વહાં પર ઉનકા સ્વસ્થાન નહીં હૈ ।
 તમસ્કાય કા આકાર ઇસ પ્રકાર સે હૈ ॥ સૂ૦૧ ॥



થાય છે, કારણ કે ત્યાં તેમની ઉત્પત્તિ સંભવિત છે. ણાકીના પૃથ્વીકાયિક
 ળવો અને અગ્નિકાય ળવો તેમાં ઉત્પન્ન થઈ શકતા નથી, કારણ કે ત્યાં તેમનું
 સ્વસ્થાન નથી. તમસ્કાયનો આકાર નીચે પ્રમાણે છે. ॥ સૂત્ર ૧ ॥



सनत्कुमार-माहेन्द्रयोः कल्पयोः, अथो ब्रह्मलोके कल्पे खलु रिष्टविमानप्रस्तटे अत्र
अस्रवाटकसमचतुरस्रसंस्थानसंस्थिता अष्ट कृष्णराजयः प्रज्ञाताः, तद्यथा-पौरस्त्ये द्वे,
पाश्चात्ये द्वे, दक्षिणे द्वे, उत्तरे द्वे, पौरस्त्याभ्यन्तरा कृष्णराजिः दक्षिणवाह्यां कृष्ण-
राजिं स्पृष्टा, दक्षिणाभ्यन्तरा कृष्णराजिः पश्चिमवाह्यां कृष्णराजिं स्पृष्टा, पाश्चात्या-

गई हैं? अर्थात् ये कृष्णराजियां कहां पर हैं? (गोयमा) हे गौतम !
(उत्पि सणकुमारमाहिंदाणं कप्पाणं, हिट्ठिं वंभलोए कप्पे अरिष्टविमा-
णपत्थडे, एत्थ णं अक्खाडगसमचउरंसंस्थाणसंठियाओ अट्टकण्ह-
राईओ पण्णत्ताओ) ये आठ कृष्णराजियां ऊपर में सनत्कुमार,
माहेन्द्रकल्प में और नीचे में ब्रह्मलोककल्प में अरिष्टविमान के पाथडे
में हैं। इनका आकार समचतुरस्र-चौकोर-अखाडे के समान है। (तं
जहा) वे इस प्रकार से हैं- (पुरत्थिमेणं दो, पच्चत्थिमेणं दो, दाहिणेणं
दो, उत्तरेणं दो, पुरत्थिमऽभंतरा कण्हराई दाहिण-वाहिरं कण्हराईं
पुट्टा, पच्चत्थिमऽभंतरा कण्हराई उत्तरवाहिरं कण्हराईं पुट्टा, उत्तरमऽ-
भंतरा कण्हराई पुरत्थिमवाहिरं कण्हराईं पुट्टा) दो कृष्णराजियां पूर्व-
दिशा में, दो कृष्णराजियां पश्चिमदिशा में, दो कृष्णराजियां दक्षिणदिशा
में, और दो कृष्णराजियां उत्तर दिशा में हैं। इनमें जो पूर्वदिग्भाग के
भीतर की कृष्णराजि है वह दक्षिणदिग्भाग के बाहिर की कृष्णराजि
को छूती है। दक्षिणदिग्भाग के भीतर की जो कृष्णराजि है, वह पश्चि-

मदन्त। ते आठ कृष्णराजियो कथां आवेली छे? (गोयमा।) छे गौतम !
(उत्पि सणकुमारमाहिंदाणं कप्पाणं, हिट्ठिं वंभलोए कप्पे अरिष्टविमाणपत्थडे,
पत्थणं अक्खाडग समचउरंसंस्थाणसंठियाओ अट्ट कण्हराईओ पण्णत्ताओ)
ते आठ कृष्णराजियो उपरनी प्पान्णुओ सनत्कुमार अने माहेन्द्र देवलोडभां
अने नीचे प्पक्षवेडिड कल्पना अरिष्ट विमानना पाथडाभां (विमान प्रस्तटभां)
तेना आडार समचतुरस्र-चतुष्कोण्य अष्पाडाना जेवे। छे. (तं जहा) ते आ
प्रभाण्ये आवेली छे- (पुरत्थिमेणं दो, पच्चत्थिमेणं दो, दाहिणेणं दो, उत्तरेणं दो)
जे कृष्णराजियो पूर्व दिशाभां, जे कृष्णराजियो पश्चिम दिशाभां, जे कृष्ण-
राजियो दक्षिण दिशाभां अने जे कृष्णराजियो उत्तर दिशाभां छे (पुरत्थिमऽ-
भंतरा कण्हराई दाहिण-वाहिरं कण्हराईं पुट्टा, पच्चत्थिमऽभंतरा कण्हराई
उत्तरवाहिरं कण्हराईं पुट्टा, उत्तरमऽभंतरा कण्हराई पुरत्थिमवाहिरं कण्हराईं
पुट्टा) तेभांनरी जे पूर्व दिग्भागनी अंदरनी कृष्णराजि छे, ते दक्षिण
दिग्भागनी अंदरनी कृष्णराजिने स्पृष्टे छे, दक्षिण दिग्भागनी अंदरनी जे

अस्थि णं कण्हराईणं चंदाभा इ वा, सूराभा इ वा ? णो इण्ठे
समट्टे । कण्हराईओ णं भंते ! केरिसियाओ वत्तेणं पणत्ताओ ?
गोयमा ! कालाओ, जाव-खिप्पामेव वीइवग्जा । कण्हराईणं
भंते ! कइ नामधेज्जा पणत्ता ? गोयमा ! अट्ट नामधेज्जा
पणत्ता, तं जहा-कण्हराई इ वा, मेहराई इ वा, मया इ वा,
माघवई इ वा, वायफलिहा इ वा, वायपल्लिखोभा इ वा, देवफ-
लिहा इ वा, देवपल्लिखोभा इ वा । कण्हराईओणं भंते ! किं पुढवी
परिणामाओ, आउपरिणामाओ, जीवपरिणामाओ, पोगल
परिणामाओ ? गोयमा ! पुढवीपरिणामाओ, णो आउपरिणामाओ,
जीवपरिणामाओ वि, पुग्गलपरिणामाओ वि । कण्हराईसु णं
भंते ! सव्वे पाणा, भूया, जीवा, सत्ता उववण्णपुढवा ? हंता,
गोयमा ! असइं, अट्टवा अणंतक्खुत्तो, णो चेव णं वायरआउ-
काइयत्ताए, वायरअगणिकाइयत्ताए वा, वायरवणस्सइकाइ
यत्ताए वा ॥सू०२॥

छाया-कति खलु भदन्त ! कृष्णराजयः प्रज्ञताः ? गौतम ! अष्ट कृष्णराजयः
प्रज्ञताः, कुत्र खलु भदन्त ! एताः अष्ट कृष्णराजयः प्रज्ञताः ? गौतम ! उपरि

कृष्णराजि वक्तव्यता-

(कइ णं भंते) इत्यादि ।

सूत्रार्थ-कइणं भंते । कण्हराईओ पणत्ताओ हे भदन्त ! कृष्णरा-
जियां कितनी कही गई हैं ? (गोयमा !) हे गौतम ! (अट्ट कण्हराईओ
पणत्ताओ) कृष्णराजियां आठ कही गई हैं । (कहि णं भंते ! एयाओ अट्ट
कण्हराईओ पणत्ताओ) हे भदन्त ! ये आठ कृष्णराजियां कहाँ पर कही

कृष्णराजिओनी वक्तव्यता-

“ कइणं भंते ! कण्हराईओ पणत्ताओ ” इत्यादि

सूत्रार्थ-कइणं भंते ! कण्हराईओ पणत्ताओ ? हे भदन्त ! कृष्णराजिओ
केटवी कही छे ? (गोयमा ! अट्ट कण्हराईओ पणत्ताओ) हे गौतम ! कृष्णराजिओ
आठ कही छे. (कहि णं भंते ! एयाओ अट्ट कण्हराईओ पणत्ताओ ?) हे

સનત્કુમાર-માહેન્દ્રયોઃ કલ્પયોઃ, અથો વ્રહ્મલોકે કલ્પે ચલુ રિષ્ટેવિમાનપ્રસ્તટે અથ
અક્ષવાટકસમચતુરસ્રસંસ્થાનસંસ્થિતા અથ કૃષ્ણરાજયઃ પ્રજ્ઞતાઃ, તથયા-પૌરસ્ત્યે દ્વે,
પાથાત્યે દ્વે, દક્ષિણે દ્વે, ઉત્તરે દ્વે, પૌરસ્ત્યાભ્યન્તરા કૃષ્ણરાજિઃ દક્ષિણવાહ્યાં કૃષ્ણ-
રાજિ સ્પૃષ્ટા, દક્ષિણાભ્યન્તરા કૃષ્ણરાજિઃ પશ્ચિમવાહ્યાં કૃષ્ણરાજિ સ્પૃષ્ટા, પાથાત્યા-

ગઈ હેં ? અર્થાત્ ચે કૃષ્ણરાજિયાં કહાં પર હેં ? (ગોયમા) હે ગૌતમ !
(ઉષ્ણિ સળકુમારમાહિંદાણં કપ્પાણં, હિંદિં વંમલોષ કપ્પે અરિદ્ધવિમા-
ણપથથદે, પથ્થ ણં અવ્વલાહગસમચરંસંઠાણસંઠિયાઓ અદ્ધકપ્પહ-
રાઈઓ પળ્ણત્તાઓ) ચે આઠ કૃષ્ણરાજિયાં ડપર મેં સનત્કુમાર,
માહેન્દ્રકલ્પ મેં ઓર નીચે મેં વ્રહ્મલોકકલ્પ મેં અરિષ્ટવિમાન કે પાથથદે
મેં હેં । ઇનકા આકાર સમચતુરસ્ર-ચૌકોર-અલાહદે કે સમાન હેં । (તં
જહા) વે ઇસ પ્રકાર સે હેં-(પુરત્થિમેણં દો, પચ્ચત્થિમેણં દો, દાહિણેણં
દો, ઉત્તરેણં દો, પુરત્થિમડ્ઞંતરા કપ્પહરાઈ દાહિણ-વાહિરં કપ્પહરાઈ
પુટ્ટા, પચ્ચત્થિમડ્ઞંતરા કપ્પહરાઈ ઉત્તરવાહિરં કપ્પહરાઈ પુટ્ટા, ઉત્તરમડ્ઞ-
ંતરા કપ્પહરાઈ પુરત્થિમવાહિરં કપ્પહરાઈ પુટ્ટા) દો કૃષ્ણરાજિયાં પૂર્વ-
દિશા મેં, દો કૃષ્ણરાજિયાં પશ્ચિમદિશા મેં, દો કૃષ્ણરાજિયાં દક્ષિણદિશા
મેં, ઓર દો કૃષ્ણરાજિયાં ઉત્તર દિશા મેં હેં । ઇનમેં જો પૂર્વદિગ્ભાગ કે
મીતર ફી કૃષ્ણરાજિ હે વહ દક્ષિણદિગ્ભાગ કે વાહિર ફી કૃષ્ણરાજિ
કો છૂતી હેં । દક્ષિણદિગ્ભાગ કે મીતર ફી જો કૃષ્ણરાજિ હે, વહ પશ્ચિ-

મદન્ત ! તે આઠ કૃષ્ણરાજિઓ ક્યાં આવેલી છે ? (ગોયમા) હે ગૌતમ !
(ઉષ્ણિ સળકુમારમાહિંદાણં કપ્પાણં, હિંદિં વંમલોષ કપ્પે અરિદ્ધવિમાણપથથદે,
પથ્થ ણં અવ્વલાહગ સમચરંસંઠાણસંઠિયાઓ અદ્ધ કપ્પહરાઈઓ પળ્ણત્તાઓ)
તે આઠ કૃષ્ણરાજિઓ ઉપરની બાબુઓ સનત્કુમાર અને માહેન્દ્ર દેવલોકમાં
અને નીચે બ્રહ્મલોક કલ્પના અરિષ્ટ વિમાનના પાથકામાં (વિમાન પ્રસ્તટમાં)
તેના આકાર સમચતુરસ્ર-ચતુષ્કોણ અખાડાના જેવો છે. (તં જહા) તે આ
પ્રમાણે આવેલી છે-(પુરત્થિમેણં દો, પચ્ચત્થિમેણં દો, દાહિણેણં દો, ઉત્તરેણં દો)
જે કૃષ્ણરાજિઓ પૂર્વ દિશામાં, જે કૃષ્ણરાજિઓ પશ્ચિમ દિશામાં, જે કૃષ્ણ-
રાજિઓ દક્ષિણ દિશામાં અને જે કૃષ્ણરાજિઓ ઉત્તર દિશામાં છે (પુરત્થિમડ્ઞ-
ંતરા કપ્પહરાઈ દાહિણ-વાહિરં કપ્પહરાઈ પુટ્ટા, પચ્ચત્થિમડ્ઞંતરા કપ્પહરાઈ
ઉત્તરવાહિરં કપ્પહરાઈ પુટ્ટા, ઉત્તરમડ્ઞંતરા કપ્પહરાઈ પુરત્થિમવાહિરં કપ્પહરાઈ
પુટ્ટા) તેમાંની જે પૂર્વ દિગ્ભાગની અંદરની કૃષ્ણરાજિ છે, તે દક્ષિણ
દિગ્ભાગની બહારની કૃષ્ણરાજિને સ્પર્શે છે, દક્ષિણ દિગ્ભાગની અંદરની જે

अभ्यन्तरा कृष्णराजिः उत्तरभागां कृष्णराजिं स्पृष्ट्वा, उत्तराभ्यन्तरा कृष्णराजिः
 ऽपौरस्त्यवाद्यां कृष्णराजिं स्पृष्ट्वा, ऽपौरस्त्यवाधात्वे, वाद्ये कृष्णराजो षडक्षः, ऽ
 उत्तर-दक्षिणवाद्ये कृष्णराजो षडक्षे, ऽपौरस्त्य-दाभात्वे अभ्यन्तरे कृष्णराजो
 चतुरक्षे, ऽपौरस्त्य-दक्षिणे अभ्यन्तरिके कृष्णराजो चतुरक्षे, "पूर्वापरं षडक्षे, अक्षे
 पुनर्दक्षिणोत्तरे वाद्ये, अभ्यन्तरचतुरक्षाः सर्वा अपि च कृष्णराजयः॥१॥ कृष्णराजपः

मदिग्बिभाग के बाहिर की कृष्णराजि का स्पर्श करती है। पश्चिमदि-
 ग्भाग के भीतर की जो कृष्णराजि है यह उत्तरदिग्भाग के बाहर की
 कृष्णराजि का स्पर्श करती है। और उत्तर दिशा के भीतर की जो
 कृष्णराजि है वह पूर्वदिग्भाग के बाहर की कृष्णराजि को छूती है।
 (दो पुरत्थिमपच्चत्थिमाओ बाहिराओ कण्हराईओ छलंसाओ दो उत्तर
 दाहिणबाहिराओ कण्हराईओ तंसाओ, दो पुरत्थिम पच्चत्थिमाओ
 अन्धितराओ कण्हराईओ चउरंसाओ, दो उत्तरदाहिणाओ अन्धित-
 राओ कण्हराईओ चउरंसाओ,

“ पुञ्चाञ्चरा छलंसा, तंसा पुण दाहिणुत्तरा वज्झा।

अन्धितर चउरंसा सव्वा वि य कण्हराईओ ” ४३)

पूर्व और पश्चिमके बाहरकी जो दो कृष्णराजियाँ हैं वे छह खूंटवाली हैं।
 उत्तर और दक्षिण के बाहर की जो दो कृष्णराजियाँ हैं वे तिलूटी हैं।
 पूर्व और पश्चिम के भीतर की जो कृष्णराजियाँ हैं वे चौखूटी हैं। तथा
 उत्तर और दक्षिण के भीतर की जो दो कृष्णराजियाँ हैं वे भी चौखूटी
 हैं। इसी विषयको पुञ्चाञ्चरा 'इत्यादि' भाषामें कहा है कि-पूर्व और पश्चिम

कृष्णराजि छे ते पश्चिम दिग्भागनी अडारनी कृष्णराजिने स्पशे छे, पश्चिम
 दिग्भागनी अडरनी ले कृष्णराजि छे ते उत्तर दिग्भागनी अडारनी कृष्णरा-
 जिने स्पशे छे. अने उत्तर दिग्भागनी अडारनी ले कृष्णराजि छे ते पूर्व
 दिग्भागनी अडारनी कृष्णराजिने स्पशे छे. (दो पुरत्थिमपच्चत्थिमाओ बाहिराओ
 कण्हराईओ छलंसाओ दो उत्तरदाहिणबाहिराओ कण्हराईओ तंसाओ, दो पुर-
 त्थिमपच्चत्थिमाओ अन्धितराओ कण्हराईओ चउरंसाओ, दो उत्तरदाहिणाओ
 अन्धितराओ कण्हराईओ चउरंसाओ, “ पुञ्चाञ्चरा छलंसा, तंसा पुण दाहिणु-
 त्तरा वज्झा। अन्धितर चउरंसा सव्वा वि य कण्हराईओ ” ४३) पूर्वा अने
 पश्चिमभां अडारनी ले ये कृष्णराजियो छे ते छ भूषावाणी छे, उत्तर अने
 दक्षिणभां अडारनी ले ये कृष्णराजियो छे ते त्रय भूषावाणी छे, पूर्व अने
 पश्चिमभां अडरनी ले कृष्णराजियो छे ते चार भूषावाणी छे, तथा उत्तर
 अने दक्षिण दिशाभां अडरनी ले कृष्णराजियो छे ते पञ्च चार भूषावाणी छे

खलु भदन्त ! कियत्यः आयामेन ? कियत्यो विष्कम्भेण ! कियंत्यः परिक्षेपेण ? प्रज्ञप्ताः ? गौतम ! असंख्येयानि योजनसहस्राणि आयामेन, संख्येयानि योजनसहस्राणि विष्कम्भेण, असंख्येयानि योजनसहस्राणि परिक्षेपेण प्रज्ञप्ताः । कृष्णराजयः खलु भदन्त ! कियन्महालयाः प्रज्ञप्ताः ? गौतम ! अयं खलु जम्बूद्वीपो द्वीपः, यावत्-अर्धमासं व्यतिव्रजेत् अस्त्येककां कृष्णराजिं व्यतिव्रजेत् अस्त्येककां कृष्ण-

की कृष्णराजियां छह खूंटवाली हैं। दक्षिण और उत्तर की बाहिर की कृष्णराजियां तिखूंटो हैं। और सब अभ्यन्तर की कृष्णराजियां चौरस हैं। (कणहराईओ णं भंते ! केवइयं आयामेणं, केवइयं विक्खंभेणं केवइयं परिक्षेवेणं पणत्ताओ) हे भदन्त ! इन कृष्णराजियोंका आयाम कितना है ? विस्तार कितना है ? और इनका परिक्षेप, कितना है ? (गोयमा) हे गौतम ! (असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं आयामेणं संखेज्जाइं जोयणसहस्साइं विक्खंभेणं असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं परिक्षेवेणं पणत्ताओ) इन कृष्णराजियों का आयाम (लंबापन) असंख्यात हजार योजन का है। विष्कंभ (चौड़ाई) संख्यात हजार योजन का है। तथा परिक्षेप इनका असंख्यात हजार योजन का है। (कणहराईओ णं भंते ! के महालियाओ पणत्ताओ) हे भदन्त ! ये कृष्णराजियां कितनी मोटी कही गई हैं ? (गोयमा) हे गौतम ! (अयं णं जंबुद्वीवे दीवे जाव अद्धमासं

એ જ વાતને “ પુઠ્ઠાડવરા ” ઈત્યાદિ ગાથા દ્વારા પ્રકટ કરી છે. ગાથાનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે—

પૂર્વ અને પશ્ચિમની કૃષ્ણરાજિઓ છ ખૂણીઆ વાળી છે, દક્ષિણ અને ઉત્તરની બહારની કૃષ્ણરાજિઓ ત્રિકોણીઆ છે, અને અંદરની બધી કૃષ્ણરાજિઓ ચોરસ છે. (કણરારાઈઓ ણં ભંતે ! કેવઇયં આયામેણં, કેવઇયં વિક્ખંભેણં, કેવઇયં પરિક્ષેવેણં પણત્તાઓ) હે ભદન્ત ! તે કૃષ્ણરાજિઓ લંબાઈ કેટલી છે ? પહોળાઈ કેટલી છે ? અને તેમનો પરિક્ષેપ (પરિધિ) કેટલો છે ?

(ગોયમા !) હે ગૌતમ ! (અસંખેજ્જાઈં જોયણસહસ્સાઈં આયામેણં, સંખેજ્જાઈં જોયણસહસ્સાઈં વિક્ખંભેણં, અસંખેજ્જાઈં જોયણસહસ્સાઈં પરિક્ષેવેણં પણત્તાઓ) તે કૃષ્ણરાજિઓની લંબાઈ અસંખ્યાત હજાર યોજન પ્રમાણુ છે, તેમની પહોળાઈ સંખ્યાત હજાર યોજન પ્રમાણુ છે અને તેમનો પરિક્ષેપ અસંખ્યાત હજાર પ્રમાણુ છે.

(કણરારાઈઓ ણં ભંતે ! કે મહાલિયાઓ પણત્તાઓ ?) હે ભદન્ત ! તે કૃષ્ણરાજિઓ કેવડી મોટી કહી છે ? (ગોયમા !) હે ગૌતમ ! (અયં ણં

अभ्यन्तरा कृष्णराजिः उत्तरवायां कृष्णराजि सृष्टा, उत्तराभ्यन्तरा कृष्णराजिः
 : पीरस्त्यवायां कृष्णराजि सृष्टा, द्वे पीरस्त्यवायात्वे, वाये कृष्णराजो षड्भ्रं, द्वे
 उत्तर-दक्षिणवाये कृष्णराजो षड्भ्रं, द्वे पीरस्त्य-वायात्वे अभ्यन्तरे कृष्णराजो
 चतुरस्रे, द्वे उत्तर-दक्षिणे अभ्यन्तरिके कृष्णराजो चतुरस्रे, "पूर्वापरं षड्भ्रं, षड्भ्रं
 पुनर्दक्षिणोत्तरे वाये, अभ्यन्तरचतुरस्राः सर्वा अपि च कृष्णराजयः॥१॥ कृष्णराजयः

मदिग्धिभाग के बाहिर की कृष्णराजि का स्पर्श करती है। पश्चिमदि-
 ग्भाग के भीतर की जो कृष्णराजि है वह उत्तरदिग्भाग के बाहिर की
 कृष्णराजि का स्पर्श करती है। और उत्तर दिशा के भीतर की जो
 कृष्णराजि है वह पूर्वदिग्भाग के बाहिर की कृष्णराजि को छूती है।
 (दो पुरत्थिमपच्चत्थिमाओ बाहिराओ कण्हराईओ छलंसाओ दो उत्तर
 दाहिणबाहिराओ कण्हराईओ तंसाओ, दो पुरत्थिमपच्चत्थिमाओ
 अन्धितराओ कण्हराईओ चउरंसाओ, दो उत्तरदाहिणाओ अन्धित-
 राओ कण्हराईओ चउरंसाओ,

“पुच्चाञ्जरा छलंसा, तंसा पुण दाहिणुसरा यज्झा।

अन्धितर चउरंसा सव्वा वि य कण्हराईओ” ४३)

पूर्व और पश्चिमके बाहरकी जो दो कृष्णराजियां हैं वे छह खंडवाली हैं।
 उत्तर और दक्षिण के बाहर की जो दो कृष्णराजियां हैं वे तिखूटी हैं।
 पूर्व और पश्चिम के भीतर की जो कृष्णराजियां हैं वे चौखूटी हैं। तथा
 उत्तर और दक्षिण के भीतर की जो दो कृष्णराजियां हैं वे भी चौखूटी
 हैं। इसी विषयको पुच्चाञ्जरा 'इत्यादि' गाथामें कहा है कि-पूर्व और पश्चिम

कृष्णराजि छे ते पश्चिम दिग्भागनी अडारनी कृष्णराजिने स्पर्शे छे, पश्चिम
 दिग्भागनी अडारनी ने कृष्णराजि छे ते उत्तर दिग्भागनी अडारनी कृष्णरा-
 जिने स्पर्शे छे. अने उत्तर दिग्भागनी अडारनी ने कृष्णराजि छे ते पूर्व
 दिग्भागनी अडारनी कृष्णराजिने स्पर्शे छे. (दो पुरत्थिमपच्चत्थिमाओ बाहिराओ
 कण्हराईओ छलंसाओ दो उत्तरदाहिणबाहिराओ कण्हराईओ तंसाओ, दो पुर-
 त्थिमपच्चत्थिमाओ अन्धितराओ कण्हराईओ चउरंसाओ, दो उत्तरदाहिणाओ
 अन्धितराओ कण्हराईओ चउरंसाओ, “पुच्चाञ्जरा छलंसा, तंसा पुण दाहिणु-
 सरा यज्झा। अन्धितर चउरंसा सव्वा वि य कण्हराईओ” ४३) पूर्वा अने
 पश्चिममां अडारनी ने ये कृष्णराजियो छे ते छ अणुवाणी छे, उत्तर अने
 दक्षिणमां अडारनी ने ये कृष्णराजियो छे ते त्रय अणुवाणी छे, पूर्व अने
 पश्चिममां अडारनी ने कृष्णराजियो छे ते चार अणुवाणी छे, तथा उत्तर
 अने दक्षिण दिशांमां अडारनी ने कृष्णराजियो छे ते पञ्च अणुवाणी छे

खलु भदन्त ! कियत्यः आयामेन ? कियत्यो विष्कम्भेण ! कियत्यः परिक्षेपेण ? प्रज्ञाः ? गौतम ! असंख्येयानि योजनसहस्राणि आयामेन, संख्येयानि योजनसहस्राणि विष्कम्भेण, असंख्येयानि योजनसहस्राणि परिक्षेपेण प्रज्ञाः । कृष्णराजयः खलु भदन्त ! कियन्महालयाः प्रज्ञाः ? गौतम ! अयं खलु जम्बूद्वीपो द्वीपः, यावत्-अर्धमासं व्यतिव्रजेत् अस्त्येककां कृष्णराजिं व्यतिव्रजेत् अस्त्येककां कृष्ण-

की कृष्णराजियां छह खूंटवाली हैं। दक्षिण और उत्तर की बाहिर की कृष्णराजियां तिखूंटो हैं। और सय अभ्यन्तर की कृष्णराजियां चौरस हैं। (कण्हराईओ णं भंते ! केवइयं आयामेणं, केवइयं विक्खंभेणं केवइयं परिकखेवेणं पणत्ताओ) हे भदन्त ! इन कृष्णराजियोंका आयाम कितना है ? विस्तार कितना है ? और इनका परिक्षेप, कितना है ? (गोयमा) हे गौतम ! (असंखेज्जाइं जोयणसहससाइं आयामेणं संखेज्जाइं जोयणसहससाइं विक्खंभेणं असंखेज्जाइं जोयणसहससाइं परिकखेवेणं पणत्ताओ) इन कृष्णराजियों का आयाम (लंघापन) असंख्यात हजार योजन का है। विष्कंभ (चौड़ाई) संख्यात हजार योजन का है। तथा परिक्षेप इनका असंख्यात हजार योजन का है। (कण्हराईओ णं भंते ! के महालियाओ पणत्ताओ) हे भदन्त ! ये कृष्णराजियां कितनी मोटी कही गई हैं ? (गोयमा) हे गौतम ! (अयं णं जंबुद्वीवे दीवे जाव अद्धमासं

એ જ વાતને “પુત્રાડવરા” ધર્યાદિ ગાથા દ્વારા પ્રકટ કરી છે. ગાથાને સાંવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે—

પૂર્વ અને પશ્ચિમની કૃષ્ણરાજિઓ છ ખૂણીઆ વાળી છે, દક્ષિણ અને ઉત્તરની બહારની કૃષ્ણરાજિઓ ત્રિકોણીઆ છે, અને અંદરની બધી કૃષ્ણરાજિઓ ચોરસ છે. (કણ્ઠરાઈઓ ણં ભંતે ! કેવઇયં આયામેણં, કેવઇયં વિક્કલંભેણં, કેવઇયં પરિક્કલેવેણં પણત્તાઓ) હે ભદન્ત ! તે કૃષ્ણરાજિઓ લંબાઈ કેટલી છે ? પહોળાઈ કેટલી છે ? અને તેમનો પરિક્ષેપ (પરિધિ) કેટલો છે ?

(ગોયમા !) હે ગૌતમ ! (અસંખેજ્જાઈં જોયણસહસસાઈં આયામેણં, સંખેજ્જાઈં જોયણસહસસાઈં વિક્કલંભેણં, અસંખેજ્જાઈં જોયણસહસસાઈં પરિક્કલેવેણં પણત્તાઓ) તે કૃષ્ણરાજિઓની લંબાઈ અસંખ્યાત હજાર યોજન પ્રમાણુ છે, તેમની પહોળાઈ સંખ્યાત હજાર યોજન પ્રમાણુ છે અને તેમનો પરિક્ષેપ અસંખ્યાત હજાર પ્રમાણુ છે.

(કણ્ઠરાઈઓ ણં ભંતે ! કે મહાલિયાઓ પણત્તાઓ ?) હે ભદન્ત ! તે કૃષ્ણરાજિઓ કેવડી ચોટી ઠહી છે ? (ગોયમા !) હે ગૌતમ ! (અયં ણં

રાજિ નો ગ્યતિવ્રજેન્ । ઇપન્મહાલયાઃ સ્વઽ ગૌતમ ! કૃષ્ણરાજનયઃ મગ્ધાઃ, । સન્તિ
સ્વલુ મદન્ત । કૃષ્ણરાજિપુ મેહા ઇતિ વા, મેહાવળા ઇતિ વા ? નાપમર્થઃ સમર્થઃ ।
સન્તિ સ્વલુ મદન્ત । કૃષ્ણરાજિપુ ગ્રામા ઇતિ વા, યાવત્-સન્નિવેશા ઇતિ વા? નાપમર્થઃ
સમર્થઃ । અસ્તિ સ્વલુ મદન્ત । કૃષ્ણરાજિપુ ડરા ધલાદઠાઃ સંસ્થિપન્તિ, સંમ્-

ધીર્દવપ્જ્જા અત્યેગદ્અં કળ્હરાઈં ધીર્દવપ્જ્જા, અત્યેગદ્અં કળ્હરાઈં ણો
ધીર્દવપ્જ્જા એમહાલિયાઓ ણં ગોયમા કળ્હરાઈંઓ પળ્ળસાઓ) હે
ગૌતમ ! ત્રીન ચુટકી પજાને મેં જિતના સમય લગતા હૈ ડતને સમય મેં
કોઈ મંહદ્ધિક આદિ વિશેષણોં વાલા દેવ ઇસ સમસ્ત જંબૂદ્વીપ કા
ઈક્કીસ ૨૧ વાર ચક્કર લગા આવે ઓર વહ ઇસી તરહ સે નિરન્તર
પન્નહ દિન તક ચલતા રહે-તપ કહીં સંભવ હૈ કિ વહ દેવ કિસી ઁક
કૃષ્ણરાજિ કે પાસ તક પહુંચ સકે ઓર કિસી ઁક કૃષ્ણરાજિ કે પાસ
તક નહીં પહુંચ સકે । હે ગૌતમ ! ઇતની વિશાલ યે કૃષ્ણરાજિયાં હૈં ।
(અત્થિ ણં મંતે ! કળ્હરાઈંસુ મેહાઈ વા મેહાવળાઈ વા) હે-મદન્ત !
કૃષ્ણરાજિયોં કે ધીતર ગૃહ ઓર ગૃહહટ્ટ-ગૃહ યાજાર હૈં કયા ? ઉસ્સર-
(ગોયમા) હે ગૌતમ ! (ણો ઇળ્લદ્દે સમદ્દે) યહ અર્થ સમર્થ નહીં હૈ અર્થાત્
હન કૃષ્ણરાજિયોં મેં ઘર ઓર ઘર યાજાર યિલકુલ નહીં હૈ । (અત્થિ ણં
મંતે ! કળ્હરાઈંસુ ગામાઈ વા જાવ સંનિવેસાઈ વા) હે મદન્ત ! તો કયા
ઃ હન કૃષ્ણરાજિયોં મે ગ્રામ યાવત્ સન્નિવેશા હૈં ? (ણો ઇળ્લદ્દે સમદ્દે) હૈ

જંબુદ્વીપે ધીવે જાવ અદ્ધમાસં ધીર્દવપ્જ્જા અત્યેગદ્અં કળ્હરાઈં ધીર્દવપ્જ્જા, અત્યે-
ગદ્અં કળ્હરાઈં ણો ધીર્દવપ્જ્જા-એમહાલિયાઓ ણં ગોયમા । કળ્હરાઈંઓ પળ્ળસાઓ)
હે ગૌતમ ! ત્રણ અપટી વગાડતા ઁટલોં સમય લાગે છે ઁટલા સમયમાંકોઈ
મહદ્ધિક આદિ વિશેષણોવાળો દેવ આ સમસ્ત જંબુદ્વીપની ૨૧ વાર પ્રદક્ષિણા
કરવાને ધારો કે સમર્થ છે તે દેવ ઁટલી જ શીઘ્રગતિથી નિરન્તર ૧૫ દિવસ
આલ્યા કરે, તો તે કદાચ કોઈ ઁક કૃષ્ણરાજની પાસે પહોંચી શકે છે અને
કોઈ ઁક કૃષ્ણરાજની પાસે પણ પહોંચી શકતો નથી. હે ગૌતમ ! તે કૃષ્ણ-
રાજઓ ઁટલી બધી વિશાળ છે । (અત્થિ ણં મંતે ! કળ્હરાઈંસુ મેહાઈ વા
મેહાવળાઈ વા) હે મદન્ત ! કૃષ્ણરાજિઓમાં ધરો છે ? હાટ છે ? (ગોયમા) ।
હે ગૌતમ ! (ણો ઇળ્લદ્દે સમદ્દે) તે કૃષ્ણરાજિઓમાં ધર પણ નથી અને
હાટ પણ નથી.

(અત્થિ ણં મંતે ! કળ્હરાઈંસુ ગામાઈ વા જાવ સંનિવેસાઈ વા ?) હે મદન્ત !
તો શું તેમાં ગામ આદિ સન્નિવેશ પર્યન્તનાં સ્થાનો છે અરોં ?

(ણો ઇળ્લદ્દે સમદ્દે) હે ગૌતમ ! ઁવું કોઈ પણ સ્થાન તેમાં હોતું

चञ्चन्ति, संवर्षन्ति ? इन्त, अस्ति । तत् खलु भदन्त ? किं देवः प्रकरोति, असुरः प्रकरोति, नागः प्रकरोति ? गौतम । देवः प्रकरोति, नो असुरः, नो नागः प्रकरोति । अस्ति खलु भदन्त ! कृष्णराजिषु वादरः स्तनितशब्दः, यथा उदारास्तथा, ।

गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है—इन कृष्णराजियों में न ग्राम हैं, न निगम हैं, न मडंग हैं, न कर्षट हैं, न पत्तन हैं, न द्रोणमुख हैं, न आश्रम हैं और न सन्निवेश हैं। (अत्थि णं भन्ते ! कण्हराईसु णं उराला बलाहया संसेयन्ति, संमुच्छन्ति, संवासन्ति) हे भदन्त ! कृष्णराजियों में क्या उदार-विशाल-मेघ संस्वेद को प्राप्त होते हैं ? परस्पर के संघटन से क्या वे समूर्च्छित होते हैं ? वृष्टि करते हैं ? (हन्ता अत्थि) हां गौतम ! कृष्णराजियों में बड़े-२ मेघ संस्वेद को प्राप्त होते हैं, समूर्च्छित होते हैं और वृष्टि करते हैं । (तं भन्ते ! किं देवो पकरेइ असुरो पकरेइ, नागोपकरेइ) हे भदन्त ! कृष्णराजियों में संस्वेदन समूर्च्छन और संवर्षण क्या देव करता है ? या असुर करता है ? नाग करता है ? (गोयमा) हे गौतम ! (देवो पकरेइ) देव ही करता है (णो असुरोपकरेइ णो नागो पकरेइ) असुर नहीं करता है और न नाग ही करता है । तात्पर्य कहने का यह है कि कृष्णराजियों में मेघों का संस्वेदन आदिकार्य देव करता है असुर नाग नहीं करते हैं क्यों कि असुर नाग का वहां गमन ही नहीं होता है ।

नथी त्यां गाम पल्लु नथी, निगम पल्लु नथी, मडंग पल्लु नथी, कर्षट पल्लु नथी, पत्तन पल्लु नथी, द्रोणमुख पल्लु नथी, आश्रम पल्लु नथी अने सन्निवेश पल्लु नथी, (अत्थि णं भन्ते ! कण्हराईसु णं उराला बलाहया संसेयन्ति, संमुच्छन्ति, संवासन्ति ?) हे भदन्त ! शुं कृष्णराजिओमां विशाण भेधानुं संस्वेदन थाय छे भइ ? शुं तेओ त्यां परस्परता संयोग्धी समूर्च्छित (अकत्रित) थाय छे ? शुं तेओ त्यां वरसे छे ? (हन्ता, अत्थि) हां, गौतम ! कृष्णराजिओमां विशाण भेधानुं संस्वेदन थाय छे, तेओ त्यां समूर्च्छित थाय छे अने वृष्टि परसावे छे. (तं भन्ते ! किं देवो पकरेइ, असुरो पकरेइ, नागो पकरेइ ?) हे भदन्त ! कृष्णराजिओमां संस्वेदन, समूर्च्छन अने वर्षणु कोणु करे छे ? शुं देव करे छे ? शुं असुरकुमार करे छे ? शुं नागकुमार करे छे ?

(गोयमा ।) हे गौतम ! (देवो पकरेइ) देव ज करे छे, (णो असुरो पकरेइ, णो नागो पकरेइ) असुरकुमार करता नथी अने नागकुमार पल्लु करता नथी, कारणु के असुरकुमार अने नागकुमारनुं त्यां गमन ज थनुं नथी.

अस्ति खलु भदन्त ! कृष्णराजिषु वादरोऽवकायः, वादरोऽग्निकायः, वादरोऽन्न-
स्पतिकायः ? नायमर्थः समर्थः, नान्यत्र विप्रहृतिसमापन्नकृत । सन्ति खलु
भदन्त ! चन्द्र-सूर्य-ग्रहण-नक्षत्र-ताराकायः ? नायमर्थः समर्थः । अस्ति खलु
कृष्णराजिषु चन्द्राभा इति वा, सूर्याभा इति वा, ? नायमर्थः समर्थः । कृष्णराजः

(अस्थि णं भंते ! कण्हराईसु वायरे भणियसरे) हे भदन्त ! कृष्णरा-
जियों में क्या घनगर्जनात्मक वादर स्तनितशब्द होता है ? उ (जहा-
उराला तहा) हे गौतम ! जिस प्रकार से उदार मेय कहे गये हैं-उसी
प्रकार से जानना चाहिये । (अस्थि णं भंते ! कण्हराईसु वायरे भाउ-
काए वायरे अगणिकाए, वायरे वणस्सइकाए ?) हे भदन्त ! कृष्णरा-
जियों में क्या वादर जलकाय है ? वादर अग्निकाय है ? वादर अन्नस्पति-
काय है ? (णो इण्ढे सम्ढे) हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है, पर हां
(णणत्थ विग्गहगइसमावन्नणं) विप्रहृतिसमापन्नक ये जीव वहाँ
पर हैं । (अस्थि णं भंते चंदिम-सुरिय-गहगण-नक्खत्त-ताराका) हे
भदन्त ! कृष्णराजियों में चन्द्रमा, सूर्य, ग्रहण, नक्षत्र और ताराका
हैं क्या ? (णो इण्ढे सम्ढे) हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है !
(अस्थि णं कण्हराईणं चंदाभाइ वा, सूर्याभाइ वा ?) हे भदन्त !
कृष्णराजियों में क्या चंद्रमा की कान्ति है ? सूर्य की कान्ति है ? (णो

(अस्थि णं भंते ! कण्हराईसु वायरे भणिय सरे ?) हे भदन्त ! कृष्ण-
राजियोंमें शुं भेदोना गणंन इप आहर स्तनित शब्दो थाय छे भरां ?
(जहा उराला तहा) हे गौतम ! विशाण भेदोना विषयमां क्खाम प्रमाणे न
आ विषयमां पणु समञ्जसु । (अस्थि णं भंते ! कण्हराईसु वायरे आउकाए,
वायरे अगणिकाए, वायरे वणस्सइकाए ?) हे भदन्त ! कृष्णराजियोंमें गण शुं
आहर अपुकाय, आहर अशिकाय अने आहर वनस्पतिकाय छे ?

(णो इण्ढे सम्ढे) हे गौतम ! त्यां ते कंथ पणु स'लवी शकंतु
नथी । (णणत्थ विग्गहगइसमावन्नणं) पणु त्यां विप्रहृतिसमापन्न ते लोको डोय छे ।

(अस्थि णं भंते ! चंदिम, सुरिय, गहगणनक्खत्त, ताराका) हे भदन्त !
कृष्णराजियोंमें शुं चन्द्रमा, सूर्य, ग्रहण, नक्षत्रो अने ताराको डोय छे ?

(णो इण्ढे सम्ढे) हे गौतम ! तेमां चन्द्रमा आदि न्योतिपिड देवा
डोता नथी ।

(अस्थि णं भंते ! कण्हराईणं चंदाभाइ वा, सूर्याभाइ वा ?) हे भदन्त !
कृष्णराजियोंमें शुं चन्द्रमा प्रकाश डोय छे ? सूर्यमा प्रकाश डोय छे ?

खलु भदन्त ! कीदृशो वर्णेन प्रज्ञताः ? गौतम ! कृष्णाः, यावत्-क्षिममेव व्यति-
 ब्रजेत्, कृष्णराजीनां खलु भदन्त ! कति नामधेयाः प्रज्ञताः ? गौतम ! अष्ट नाम-
 धेयाः प्रज्ञताः, तद्यथा-कृष्णराजिरिति वा, मेघराजिरिति वा, मघा इति वा,
 माघवती इति वा, वातपरिधा इति वा, वातपरिक्षोभा इति वा, देवपरिधा इति
 वा, देवपरिक्षोभा इति वा । कृष्णराजयः खलु भदन्त ! किं पृथिवीपरिणामाः,

इणद्वे समद्वे) हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है । (कणहराईओ णं
 भंते । केरिसियाओ वन्नेणं पणत्ताओ) हे भदन्त ! कृष्णराजियों का
 वर्ण कैसा है ? (गोयमा) हे गौतम ! (कालाओ जाव खिप्पामेव वीई-
 वण्जा) ये कृष्णराजियां काली हैं । यावत् (तमस्काय की तरह भयं-
 कर होने के कारण इन्हें देव भी बहुत ही शीघ्रता से उल्लंघ जाता है
 (कणहराईणं भंते ! कइ नामधेज्जा पणत्ता) हे भदन्त ! कृष्णराजियों
 के कितने नाम कहे गये हैं । (गोयमा) हे गौतम ! (अट्ट नामधेज्जा
 पणत्ता) आठ नाम कहे गये हैं । (तं जहा) वे ये हैं (कणहराईइ वा,
 मेहराईइ वा, मघा इ वा, माघवईइ वा, वायफलिया इ वा, वायपलि-
 वखोभा इ वा, देवफलियाइ वा, देवपलिवखोभा इ वा) कृष्णराजि १,
 मेघराजि २, मघा ३, माघवती ४, वातपरिधा ५, वातपरिक्षोभा ६,
 देवपरिधा ७ और देवपरिक्षोभा ८ । (कणहराईओणं भंते ! किं

(गो इणद्वे समद्वे) हे गौतम ! तेषां अन्तरे सूयने प्रकाश
 संभवी शकतो नथी ।

(कणहराईओ णं भंते ! केरिसियाओ वन्नेणं पणत्ताओ ?) हे भदन्त !
 कृष्णराजियोना वल्लुं देवो डोय छे ?

(गोयमा !) हे गौतम ! (कालाओ जाव खिप्पामेव वीईवण्जा) ते
 कृष्णराजियो ढाणी डोय छे. अही तमस्कायना वल्लुं ना जेवुं अ समस्त वल्लुं न
 समज्जुं. ते कृष्णराजियोना वल्लुं तमस्कायना जेवो अयंकर डोवाथी देव
 पलु धणी शीघ्रताथी तेमने पार करीने अडार नीकणी जय छे.

(कणहराई णं भंते ! कइ नामधेज्जा पणत्ता ?) हे भदन्त ! कृष्ण-
 राजियोनां केटवां नाम कइयां छे ?

(गोयमा ! अट्ट नामधेज्जा पणत्ता-तं जहा) हे गौतम ! तेमना नीचे
 प्रभाणे आठ नाम कइयां छे- (कणहराईइ वा, मेहराईइ वा, मघाइ वा, माघव-
 ईइ वा, वायफलिवखोभाइ वा, देवफलियाइ वा, देवपलिवखोभाइ वा) (१)
 कृष्णराजि, (२) मेघराजि, (३) मघा, (४) माघवती, वातपरिधा, (६) वात-
 परिक्षोभा (७) देवपरिधा अने (८) देवपरिक्षोभा.

अस्ति खलु भदन्त ! कृष्णराजिषु चाद्रोऽपकाया, चाद्रोऽग्निकाया, चाद्रोऽनस्पतिकायाः ? नायमर्थः समर्थः, नान्यत्र विग्रहगतिसमापन्नकेन । सन्ति खलु भदन्त । चन्द्र-सूर्य-ग्रहगण-नक्षत्र-ताराख्याः ? नायमर्थः समर्थः । अस्ति खलु कृष्णराजिषु चन्द्राभा इति वा, सूर्याभा इति वा, ? नायमर्थः समर्थः । कृष्णराजयः

(अत्थि णं भंते ! कण्हराईसु वायरे थणियसदे) हे भदन्त ! कृष्णराजियों में क्या घनगर्जनात्मक यादर स्तनितशब्द होता है ? उ (जहा उराला तहा) हे गौतम ! जिस प्रकार से उदार मेघ कहे गये हैं-उसी प्रकार से जानना चाहिये । (अत्थि णं भंते ! कण्हराईसु वायरे आउकाए वायरे अगणिकाए, वायरे वणस्सकाए ?) हे भदन्त ! कृष्णराजियों में क्या यादर जलकाय है ? यादर अग्निकाय है ? यादर वनस्पतिकाय है ? (णो इणद्वे समद्वे) हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है, पर हां (णण्णत्थ विग्रहगइसमावन्नणं) विग्रहगतिसमापन्नक ये जीव वहाँ पर हैं । (अत्थिणं भंते चंदिम-सुरिय-ग्रहगण-नक्खत्त-ताराख्या) हे भदन्त ! कृष्णराजियों में चन्द्रमा, सूर्य, ग्रहगण, नक्षत्र और ताराख्या हैं क्या ? (णो इणद्वे समद्वे) हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है । (अत्थि णं कण्हराईणं चंदाभाइ वा, सूर्याभाइ वा ?) हे भदन्त ! कृष्णराजियों में क्या चंद्रमा की कान्ति है ? सूर्य की कान्ति है ? (णो

(अत्थिणं भंते ! कण्हराईसु वायरे थणियसदे ?) हे भदन्त ! कृष्णराजियोंमें शुं भेद्येना गणंन इय आदर स्तनित शब्दो थाय छे असां । (जहा उराला तहा) हे गौतम ! विशाण भेद्येना विषयमां क्ख्वा प्रभावे ज्जा विषयमां पणु समज्जुं । (अत्थि णं भंते ! कण्हराईसु वायरे आउकाए, वायरे अगणिकाए, वायरे वणस्सकाए ?) हे भदन्त ! कृष्णराजियोंमें ज्जण शुं आदर अपूकाय, आदर अशिकाय अने आदर वनस्पतिकाय छे ?

(णो इणद्वे समद्वे) हे गौतम ! त्यां ते कं'धं पणु स'लंवी शकंठुं नथी । (णण्णत्थ विग्रहगइसमावन्नणं) पणु त्यां विग्रहगतिपांस ते लोवे डोय छे ।

(अत्थिणं भंते ! चंदिम, सुरिय, ग्रहगणनक्खत्त, ताराख्या) हे भदन्त ! कृष्णराजियोंमें शुं अन्द्रमा, सूर्य, ग्रहगण, नक्षत्रे अने ताराख्या डोय छे ?

(णो इणद्वे समद्वे) हे गौतम ! तेमां अन्द्रमा आदि ज्योतिषिक देवा डोयता नथी ।

(अत्थिणं भंते ! कण्हराईणं चंदाभाइ वा, सूर्याभाइ वा ?) हे भदन्त ! कृष्णराजियोंमें शुं अन्द्रमा प्रकाश डोय छे ? सूर्यमा प्रकाश डोय छे ?

टीका—‘कइ णं भंते कण्हराईओ पण्णत्ताओ’ गौतमः पृच्छति-हे भदन्त! कति कियत्यः कतिसंख्यकाः खलु कृष्णराजयः कृष्णवर्णपुद्गलरेखाः प्रज्ञप्ताः? भगवानाह—‘गोयमा । अट्ट कण्हराईओ पण्णत्ताओ ’ हे गौतम ! अट्ट कृष्णराजयः प्रज्ञप्ताः । गौतमः पृच्छति—‘कहि णं भंते ! एयाओ अट्ट कण्हराईओ पण्णत्ताओ ? हे भदन्त ! कुत्र कस्मिन् प्रदेशे एताः उपरिवर्णिताः अट्ट कृष्णराजयः प्रज्ञप्ताः ? भगवानाह—‘ गोयमा ! उरुपि सणकुमार-मार्हिदाणं कप्पाणं ’ हे गौतम ! सनत्कुमार-माहेन्द्रयोः कल्पयोः

अथवा अनन्तवार वहां उत्पन्न हो चुके हैं । पर वे वहां वादर अप्कायिकरूप से उत्पन्न नहीं हुए हैं, न वादर अग्निकायिकरूप से उत्पन्न हुए हैं न वादर वनस्पतिकायिकरूप से ही उत्पन्न हुए हैं ।

टीकार्थ—तमस्काय के समान होने से अथ कृष्णराजियों की प्ररूपणा सूत्रकार कर रहे हैं इसमें गौतम ने प्रभु से ऐसा प्रश्न किया है कि (कइ णं भंते ! कण्हराईओ पण्णत्ताओ) हे भदन्त ! कृष्णराजियां कितनी कही गई हैं । कृष्णवर्णवाले पुद्गलों की रेखाओं का नाम कृष्णराजियां हैं । सो ये कितनी हैं ? इसके उत्तर में प्रभु ने उनसे ऐसा कहा (गोयमा) हे गौतम ! (अट्ट कण्हराईओ पण्णत्ताओ) कृष्णराजियां आठ कही गई हैं । अथ गौतम प्रभु से ऐसा पूछ रहे हैं कि (कहिणं भंते ! एयाओ अट्ट कण्हराईओ पण्णत्ताओ) हे भदन्त ! ये पूर्ववर्णित आठ कृष्णराजियां किस प्रदेश में कही गई हैं ? इसके उत्तर में प्रभु उनसे कहते हैं कि (गोयमा) हे गौतम ! (उरुपि सणकुमारमार्हिदाणं कप्पा-

भादर अग्निकाय इये पणु उत्पन्न थया नथी अने भादर वनस्पतिकाय इये पणु उत्पन्न थया नथी.

टीकार्थ—कृष्णराजियो पणु तमस्कायना जेवी डोय छे. ते डारणे सूत्रकार डवे तेमनुं निइपणु करे छे—आ विषयने अनुसक्षिने गौतम स्वाभी मडावीर प्रभुने जेवा प्रश्न पूछे छे के (कइ णं भंते ! कण्हराईओ पण्णत्ताओ ?) छे भदन्त ! कृष्णराजियो डेटली डडी छे । (कृष्ण वर्णवाणां पुद्गलोनी रेखाजोने कृष्णराजियो डडे छे.)

तेना ज्वाभ आपता मडावीर प्रभु डडे छे—(गोयमा ! अट्ट कण्हराईओ पण्णत्ताओ) छे गौतम ! कृष्णराजि आठ डडी छे. ते कृष्णराजियोनुं स्थान जणुवाने माटे गौतम स्वाभी आ प्रकारने प्रश्न पूछे छे—(कहि णं भंते ! एयाओ अट्ट कण्हराईओ पण्णत्ताओ ?) छे भदन्त ! ते आठ कृष्णराजियो क्या प्रदेशमां आवेली छे ?

અપ્પરિણામાઃ, જીવપરિણામાઃ, પુદ્ગલપરિણામાઃ ? ગૌતમ ! પૃથિવીપરિણામાઃ, જો અપ્પરિણામાઃ, જીવપરિણામા અપિ, પુદ્ગલપરિણામા અપિ । કૃષ્ણરાજિણુ સ્વ મદન્ત ! સર્વે પાણાઃ, ભૂતાઃ, જીવાઃ, સત્તા ઉપવણ્ણાઃ? હન્ત ગૌતમ ! મત્તહ, અથવા અનન્તહસ્વઃ, નો ચેવ વાદરાષ્ટ્ઠાપિક્કતયા, વાદરાશ્નિકાપિક્કતયા વા, વાદરવનસ્પતિકાપિક્કતયા વા ॥ ૨ ॥

પુદ્ગલપરિણામાઓ, આડપરિણામાઓ, જીવપરિણામાઓ, પોગલપરિણામાઓ) હે મદન્ત ! કૃષ્ણરાજિયાં વયા પૃથિવી કે પરિણામરૂપ હૈ ? યા અપ્કાય કે પરિણામરૂપ હૈ ? યા જીવ કે પરિણામરૂપ હૈ ? યા પુદ્ગલ કે પરિણામરૂપ હૈ ? (ગોયમા) હે ગૌતમ ! (પુદ્ગલપરિણામાઓ) યે કૃષ્ણરાજિયાં પૃથિવી-કે પરિણામરૂપ હૈ । (જો આડપરિણામાઓ) અપ્કાય કે પરિણામરૂપ નહીં હૈ । (જીવ પરિણામાઓ વિ, પુગલપરિણામાઓ વિ) જીવ કે પરિણામ રૂપ મી યે કૃષ્ણરાજિયાં હૈ ઓર પુદ્ગલ કે પરિણામરૂપ મી હૈ । (કળ્હરાઈસુ ણં મતે । સર્વે પાણા, ભૂયા, જીવા, સત્તા ઉવવણ્ણાપુવ્વા) હે મદન્ત ! કૃષ્ણરાજિયાં મે સમસ્ત પ્રાણ, સમસ્ત ભૂત, સમસ્ત જીવ, સમસ્ત સર્વવ્યા પહિલે ઉત્પન્ન હોચુકે હૈ ? (હંતા, ગોયમા । અસહં અદુવા અણંતવસ્તુત્તો, જો ચેવ ણં વાયર આડકાઈયત્તાવ વાયર અગણિકાઈયત્તાવ વા વાયર વણસસઙ્કાઈયત્તાવ વા) હાં ગૌતમ ! સમસ્તપ્રાણાદિ જીવ અનેક વાર

(કળ્હરાઈઓ ણં મતે ! કિં પુદ્ગલ પરિણામાઓ, આડપરિણામાઓ, જીવ પરિણામાઓ, પોગલપરિણામાઓ ?) હે મદન્ત ! શુ કૃષ્ણરાજિઓ, પૃથ્વીના પરિણામ રૂપ છે ? કે અપ્કાયના પરિણામ રૂપ છે ? કે જીવના પરિણામ રૂપ છે ? કે પુદ્ગલના પરિણામ રૂપ છે ?

(ગોયમા) હે ગૌતમ ! (પુદ્ગલ પરિણામાઓ) તે કૃષ્ણરાજિઓ પૃથ્વીના પરિણામ રૂપ છે, (જો આડપરિણામાઓ) અપ્કાયના પરિણામ રૂપ નથી. (જીવ પરિણામાઓ વિ, પુગલપરિણામાઓ વિ) તે કૃષ્ણરાજિઓ જીવના પરિણામ રૂપ પણ છે અને પુદ્ગલના પરિણામ રૂપ પણ છે.

(કળ્હરાઈસુ ણં મતે । સર્વે પાણા, ભૂયા, જીવા, સત્તા, ઉવવણ્ણાપુવ્વા ?) હે મદન્ત ! કૃષ્ણરાજિઓમાં સમસ્ત પ્રાણ, સમસ્ત ભૂત, સમસ્ત જીવ અને સમસ્ત સર્વ શુ પહેલાં ઉત્પન્ન થઈ ચુક્યાં છે ?

(હંતા, ગોયમા ! અસહં, અદુવા અણંતવસ્તુત્તો, જો ચેવ ણં વાયર આડકાઈયત્તાવ વાયર અગણિકાઈયત્તાવ વા, વાયર વણસસઙ્કાઈયત્તાવ વા) હે, ગૌતમ ! સમસ્ત પ્રાણાદિ જીવ અનેકવાર અથવા અનંતવાર ત્યાં ઉત્પન્ન થઈ ચુક્યા છે. પરન્તુ તેઓ ત્યાં બાદર અપ્કાયિક રૂપે ઉત્પન્ન થયા નથી,

टीका—'कइ णं भंते कण्हराईओ पणत्ताओ' गौतमः पृच्छति-हे भदन्त! कति कियत्यः कृतिसंख्यकाः खलु कृष्णराजयः कृष्णवर्णपुद्गलरेखाः प्रज्ञप्ताः? भगवानाह—'गोयमा । अट्ट कण्हराईओ पणत्ताओ ' हे गौतम ! अट्ट कृष्णराजयः प्रज्ञप्ता । गौतमः पृच्छति—'कहि णं भंते ! एयाओ अट्ट कृष्णराईओ पणत्ताओ ? हे भदन्त ! कुत्र कस्मिन् प्रदेशे एताः उपरिवर्णिताः अट्ट कृष्णराजयः प्रज्ञप्ताः ? भगवानाह—' गोयमा ! उरुपि सणकुमार-मार्हिदाणं कप्पाणं ' हे गौतम ! सनत्कुमार-माहेन्द्रयोः कल्पयोः

अथवा अनन्तवार चहां उत्पन्न हो चुके हैं । पर वे चहां वादर अप्कायिकरूप से उत्पन्न नहीं हुए हैं, न वादर अग्निकायिकरूप से उत्पन्न हुए हैं न वादर वनस्पतिकायिकरूप से ही उत्पन्न हुए हैं ।

टीकार्थ—तमस्काय के समान होने से अब कृष्णराजियों की प्ररूपणा सूत्रकार कर रहे हैं इसमें गौतम ने प्रभु से ऐसा प्रश्न किया है कि (कइ णं भंते ! कण्हराईओ पणत्ताओ) हे भदन्त ! कृष्णराजियां कितनी कही गई हैं । कृष्णवर्णवाले पुद्गलों की रेखाओं का नाम कृष्णराजियां हैं । सो ये कितनी हैं ? इसके उत्तर में प्रभु ने उनसे ऐसा कहा (गोयमा) हे गौतम ! (अट्ट कण्हराईओ पणत्ताओ) कृष्णराजियां आठ कही गई हैं । अब गौतम प्रभु से ऐसा पूछ रहे हैं कि (कहिणं भंते ! एयाओ अट्ट कण्हराईओ पणत्ताओ) हे भदन्त ! ये पूर्ववर्णित आठ कृष्णराजियां किस प्रदेश में कही गई हैं ? इसके उत्तर में प्रभु उनसे कहते हैं कि (गोयमा) हे गौतम ! (उरुपि सणकुमारमार्हिदाणं कप्पा-

आदर अग्निकाय इपे पणु उत्पन्न थया नथी अने आदर वनस्पतिकाय इपे पणु उत्पन्न थया नथी.

टीकार्थ—कृष्णराजियों पणु तमस्कायना जेवी डोय छे. ते कारण्णे सूत्रकार डवे तेमनुं निइपणु करे छे—आ विपथने अनुवक्षीने गौतम स्वामी भडावीर प्रभुने जेवा प्रश्न पूछे छे के (कइ णं भंते ! कण्हराईओ पणत्ताओ ?) हे भदन्त ! कृष्णराजियों डेटली कही छे ! (कृष्ण वर्णवाणां पुद्गलवानी रेखाओंने कृष्णराजियों कहे छे.)

तेना ज्वाभ आपता भडावीर प्रभु कहे छे—(गोयमा ! अट्ट कण्हराईओ पणत्ताओ) हे गौतम ! कृष्णराजि आठ कही छे. ते कृष्णराजियोंनुं स्थान जण्णवाने माटे गौतम स्वामी आ प्रकारनेा प्रश्न पूछे छे—(कहिणं भंते ! एयाओ अट्ट कण्हराईओ पणत्ताओ ?) हे भदन्त ! ते आठ कृष्णराजियों कया प्रदेशमां आवेली छे ?

ઉપરિ ' હૃદિં વંમલોળ કપ્પે રિદ્ધિવિમાણપત્થદે ' મ્મઃ મ્મસ્તાન્ વ્રજ્જલોકે કલ્પે-
અરિદ્ધે અરિદ્ધનામકે વિમાણપત્થદે ' एथ णं भक्खाडगसमचउरंस संठाणसंठियाओ
अट्ट कण्हराईओ पण्णत्ताओ ' अत्र खन्तु सनत्कुमार-माहेन्द्रकल्पयोः उपरिद्वत्
व्रजलोककल्पस्य अधस्तात् भरिद्वनामकविमानपत્थदं, म्मात्ताडकल्पमवतु (ससंस्थान
संस्थितः, अक्षवाटकः मत्तपुदस्थानविशेषः तद्वन् समचतुरस्रसंस्थानसंस्थिताः
सदृशचतुष्कोणाकारेण स्थिताः) अष्ट कृष्णराजयः पद्मत्ताः । ता अष्ट कृष्णराजीः
प्रदर्शयति- ' तं जहा ' तथा- ' पुरत्थिमेणं दो ' पच्चत्थिमेणं दो, दाहिणेणं दो,
उत्तरेणं दो ' पौरस्त्ये-पूर्वदिग्भागे द्वे कृष्णराजी, तथा पश्चात्ये पश्चिमदिग्भागे द्वे
कृष्णराजी, तथा दक्षिणे दिग्भागे द्वे कृष्णराजी तथा उत्तरे-उत्तरदिग्भागे द्वे
कृष्णराजी वर्तेते, इति सर्वाः संमील्य भूतौ संजाताः । तत्र ' पुरत्थिमडम्भंतरा
कण्हराई दहिणवाहिरं कण्हराई पुट्टा ' पौरस्त्याभ्यन्तरा पूर्वदिग्भागाभ्यन्तर-
वर्तिनी कृष्णराजिः दक्षिणवाशां दक्षिणदिग्भागावर्तिनी कृष्णराजिं स्पृष्ट्वा
स्पृष्टवतीत्यर्थः, ' स्पृष्ट्वा ' इत्यत्र कर्त्तरिप्रयोग आर्पत्वात् । एवमग्रेऽपि

ણં) સનત્કુમાર, માહેન્દ્ર સ્વર્ગ કે ઝપર ઓર (હૃદિં વંમલોળ કપ્પે રીદ્ધિ
વિમાણપત્થદે) વ્રજ્જલોક કલ્પ મેં નીચે રિદ્ધનામકે વિમાણપત્થદ મેં
(एथ णं भक्खाडगसमचउरंस संठाणसंठियाओ अट्ट कण्हराईओ पण्ण-
त्ताओ) નૃત્યાદિસ્થાન કે સમાન ચૌકોર આકાર સે-સમચતુરસ્ર સંસ્થા-
ન સે-ચે આઠ કૃષ્ણરાજિયાં-સ્થિતં હૈં । (तं जहा) वे इस प्रकार से हैं-
“ पुरत्थिमेणं दो, पच्चत्थिमेणं दो, दाहिणेणं दो, उत्तरेणं दो ” पूर्वदि-
ग्भाग में दो कृष्णराजियां, तथा पश्चिमदिग्भाग में दो कृष्णराजियां,
तथा दक्षिणदिग्भाग में दो कृष्णराजियां, तथा उत्तरदिग्भाग में दो
कृष्णराजियां हैं । इस तरह ये सब मिलकर आठ कृष्णराजियां हो
जाती हैं । (पुरत्थिमडम्भंतरा कण्हराई दहिणवाहिरं कण्हराई पुट्टा) इनमें

ઉત્તર—(ગોયમા !) હે ગૌતમ ! (उर्वि सणकुमार माहिदाणं कष्पाणं)
સનત્કુમાર અને માહેન્દ્ર દેવલોકની ઉપર (હૃદિં વંમલોળ કપ્પે રિદ્ધે વિમાણ-
પત્થદે) અને બ્રહ્મલોક કલ્પની નીચે રિદ્ધ નામના વિમાણ પત્થદમાં (एथणं
अक्खाडगसमचउरंससंठाणसंठियाओ अट्ट कण्हराईओ पण्णत्ताओ) અખાડાના
જેવા સમચોરસ આકારે તે આઠ કૃષ્ણરાજિઓ રહેલી છે. “ તં જહા ” તે
આ પ્રમાણે છે-(પુરત્થિમેણં દો) પૂર્વ દિશામાં બે કૃષ્ણરાજિઓ, (પચ્ચત્થિમેણં દો)
પશ્ચિમ દિશામાં બે કૃષ્ણરાજિઓ, (દાહિણેણં દો, ઉત્તરેણં દો) દક્ષિણમાં બે
કૃષ્ણરાજિઓ અને ઉત્તરમાં બે કૃષ્ણરાજિઓ છે. આ રીતે બધી મળીને આઠ
કૃષ્ણરાજિઓ થાય છે. (પુદત્થિમડમ્ભંતરા કણ્હરાઈ દાહિણવાહિરં કણ્હરાઈ પુટ્ટા)

વિજ્ઞેયમ્, एवं 'दाहिणऽभंतरा कण्हराई पच्चत्थिमवाहिरं कण्हराईं पुट्टा' दक्षिणाभ्यन्तरा दक्षिणदिग्भागाभ्यन्तरवर्तिनी कृष्णराजिः पश्चिमवाह्यां पश्चिमदिग्भागवर्तिवर्तिनीं कृष्णराजिं स्पृष्टा, तथा—'पच्चत्थिमऽभंतरा कण्हराई उत्तरवाहिरं कण्हराईं पुट्टा' पश्चिमाभ्यन्तरा पश्चिमदिग्भागाभ्यन्तरवर्तिनीकृष्णराजिः उत्तरवाह्याम् उत्तरदिग्भागवर्तिवर्तिनीं कृष्णराजिं स्पृष्टा, एवम्—उत्तरमऽभन्तरा कण्हराई पुरत्थिमवाहिरं कण्हराईं पुट्टा' उत्तराभ्यन्तरा उत्तरदिग्भागाभ्यन्तरवर्तिनी कृष्णराजिः पौरस्त्यवाह्यां पूर्वदिग्भागवर्तिवर्तिनीं कृष्णराजिं स्पृष्टा। 'दो पुरत्थिम—पच्चत्थिमाओ वाहिराओ कण्हराईओ छलंसाओ' द्वे पौरस्त्य—पश्चिमवाह्ये पूर्वपश्चिमदिग्भागवर्तिवर्तिन्यो कृष्णराजी पडसे पइअत्ताः अंशाः ययोस्ते पट्-

જો પૂર્વદિશા કે ખીતર કી કૃષ્ણરાજિ હૈ વહ દક્ષિણદિશા કે વાહિર રહી હુઈ કૃષ્ણરાજિ કો છૂનેવાલી હૈ । ઇસી તરહ સે આગે ખી જાનના વાહિયે—(દાહિણઽભન્તરા કણ્હરાઈ પચ્ચત્થિમવાહિરં કણ્હરાઈં પુટ્ટા) દક્ષિણદિશા કે ખીતર કી જો કૃષ્ણરાજી હૈ વહ પશ્ચિમદિશા કે વાહિર કી કૃષ્ણરાજી કો છૂનેવાલી હૈ । તથા—(પચ્ચત્થિમઽભન્તરા કણ્હરાઈ ઉત્તરવાહિરં કણ્હરાઈં પુટ્ટા) પશ્ચિમદિશા કે ખીતર કી જો કૃષ્ણરાજી હૈ વહ ઉત્તરદિશા કે વાહિર કી કૃષ્ણરાજી કો છૂનેવાલી હૈ (ઉત્તરમઽભન્તરા કણ્હરાઈ પુરત્થિમવાહિરં કણ્હરાઈં પુટ્ટા) ઇસી પ્રકાર જો ઉત્તરદિશા કે ખીતર કી કૃષ્ણરાજિ હૈ વહ પૂર્વદિશા કે વાહિર કી કૃષ્ણરાજી કો છૂનેવાલી હૈ । (દો પુરત્થિમ—પચ્ચત્થિમાઓ વાહિરાઓ કણ્હરાઈઓ છલંસાઓ) પૂર્વદિશા ઓર પશ્ચિમદિશા કે વાહિર કી જો દો કૃષ્ણરા-

તેમાં પૂર્વ દિશામાં અંદરની જે કૃષ્ણરાજિ છે, તે દક્ષિણ દિશાની બહારની કૃષ્ણરાજિને સ્પર્શે છે. એજ પ્રમાણે આગળ પણ સમજવું. (દાહિણઽભન્તરા કણ્હરાઈ પચ્ચત્થિમવાહિરં કણ્હરાઈં પુટ્ટા) દક્ષિણ દિશામાં અંદરની જે કૃષ્ણરાજિ છે, તે પશ્ચિમ દિશામાં બહારની બાજુએ આવેલી કૃષ્ણરાજિને સ્પર્શે કરે છે, (પચ્ચત્થિમઽભન્તરા કણ્હરાઈ ઉત્તરવાહિરં કણ્હરાઈં પુટ્ટા) પશ્ચિમ દિશામાં અંદરની જે કૃષ્ણરાજિ છે, તે ઉત્તર દિશામાં આવેલી બહારની કૃષ્ણરાજિને સ્પર્શે કરે છે, (ઉત્તરમઽભન્તરા કણ્હરાઈ પુરત્થિમવાહિરં કણ્હરાઈં પુટ્ટા) એજ પ્રમાણે ઉત્તર દિશામાં અંદરની જે કૃષ્ણરાજિ છે, તે પૂર્વ દિશાની બહારની કૃષ્ણરાજિને સ્પર્શે કરે છે. (દો પુરત્થિમ—પચ્ચત્થિમાઓ વાહિરાઓ કણ્હરાઈઓ છલંસાઓ) પૂર્વ દિશા અને પશ્ચિમ દિશામાં બહારની જે જે કૃષ્ણરાજિઓ છે તે છ ખૂણવાળી (પટ્ટકોણના આકારની) છે, તથા (દો

કોણે સ્તઃ સ્તુત્યર્થઃ । તથા ' દો ઉત્તર-દાહિણવાહિરાઓ કળ્હરાઈઓ તંસાઓ ' દે ઉત્તર-દક્ષિણવાહો ઉત્તર-દક્ષિણદિગ્માગવર્ધિર્વર્તિન્યો કૃષ્ણરાજીઝ્પસે ત્રયઃ મ્નાઃ અંશાઃ યયોસ્તે ત્રિકોણેસ્તઃ સ્તુત્યર્થઃ । તથા ' દો પુરસ્થિમ-પચ્ચસ્થિમાઓ અઙ્મિતરાઓ કળ્હરાઈઓ ચરંસાઓ ' દે પૌરસ્થ-પશ્ચિમાભ્યન્તરિકેપૂર્વ-પશ્ચિમદિગ્માગા-ભ્યન્તરવર્તિન્યો કૃષ્ણરાજી ચતુરસે ચત્વારઃ મ્નાઃ અંશાઃ યયોસ્તે ચતુષ્કોણે સ્તઃ સ્તુત્યર્થઃ । તથા ' દો ઉત્તર-દાહિણાઓ અઙ્મિતરાઓ કળ્હરાઈઓ ચરંસાઓ ' દે ઉત્તર-દક્ષિણાભ્યન્તરિકે ઉત્તર-દક્ષિણદિગ્માગાભ્યન્તરવર્તિન્યો કૃષ્ણરાજી ચતુરસે પત્વારોઽસાઃ અંશાઃ યયોસ્તે ચતુષ્કોણે સ્તઃ સ્તુત્યર્થઃ । ઉત્કાર્થઃ સંગ્રહાય ગાથામાહ-
' પુન્વા-વરા છલંસા તંસા પુન દાહિણુત્તરા વચ્ચ્ચા ।

અઙ્મિતર ચરંસા, સન્વા ત્રિ ય કળ્હરાઈઓ ' ॥ ૧ ॥ શ્લોક,
પૂર્વાઽપરે પૂર્વ-પશ્ચિમદિગ્માગસ્થિતે વર્ધિર્વર્તિન્યો દે કૃષ્ણરાજી પડસે પદ્મકોણે સ્તઃ,
તથા દક્ષિણોત્તરે દક્ષિણોત્તરદિગ્માગસ્થિતે વાક્ષે વર્ધિર્વર્તિન્યો દે કૃષ્ણરાજી ઝ્પસે

જિયાં હેં વે છહ કોણોવાલી હેં । તથા દો ઉત્તર દાહિણ વાહિરાઓ કળ્હરાઈઓ તંસાઓ) ઉત્તરદિશા ઓર દક્ષિણદિશા કે વાહર કી જો દો કૃષ્ણરાજિયાં હેં, વે ત્રીન અંશો-કોનોવાલી હેં । તથા-(દો પુરસ્થિમપશ્ચિમ-પશ્ચિમાઓ અઙ્મિતરાઓ કળ્હરાઈઓ ચરંસાઓ) પૂર્વપશ્ચિમદિશા કી જો મીતર કી દો કૃષ્ણરાજિયાં હેં વે ચૌહુંદી હેં-ચાર કોનોવાલી હેં । (દો ઉત્તરદાહિણાઓ અઙ્મિતરાઓ કળ્હરાઈઓ ચરંસાઓ) ઉત્તર દક્ષિણદિશાકી જો મીતર કી દો કૃષ્ણરાજિયાં હેં વે મી ચાર કોનોવાલી હેં હસી અર્થ કો સંગ્રહ કરનેવાલી યહ ગાથા હેં-(પુન્વા-વરા છલંસા હત્યાદિ । પૂર્વાપર-પૂર્વપશ્ચિમદિગ્માગ વહિર સ્થિત દો કૃષ્ણરાજિયાં છહ કોને વાલી હેં, તથા દક્ષિણ ઉત્તરદિગ્માગવહિઃસ્થિત દો કૃષ્ણરા-

ઉત્તરદાહિણ વાહિરાઓ કળ્હરાઈઓ તંસાઓ) ઉત્તર દિશા અને દક્ષિણ દિશામાં બહારની જે જે કૃષ્ણરાજિઓ છે, તે ત્રણ ખૂણવાળી (ત્રિકોણાકારની) છે. તથા (દો પુરસ્થિમ-પશ્ચિમપશ્ચિમાઓ અઙ્મિતરાઓ કળ્હરાઈઓ ચરંસાઓ) પૂર્વ અને પશ્ચિમ દિશામાં અંદરની જે જે કૃષ્ણરાજિઓ છે, તે ચાર ખૂણવાળી (ચોરસાકારની) છે, (દો ઉત્તરદાહિણાઓ અઙ્મિતરાઓ કળ્હરાઈઓ ચરંસાઓ) અને ઉત્તર-દક્ષિણમાં અંદરની જે જે કૃષ્ણરાજિઓ છે, તે પચ્ચ ચાર ખૂણવાળી છે. એજ અર્થને સંબંધ કરનારી ગાથા નીચે પ્રમાણે છે—' પુન્વાવર ' ઇત્યાદિ આ ગાથાને ભાવાર્થ-પૂર્વાપર-પૂર્વ અને પશ્ચિમ દિગ્માગમાં બહાર આવેલી જે કૃષ્ણરાજિઓ છે ખૂણવાળી છે, દક્ષિણ અને ઉત્તર દિગ્માગમાં

ત્રિકોણે સ્તઃ, શેપાઃ સર્વાઃ અપિ ચતુર્દિગ્ભાગાભ્યન્તરવર્તિન્યશ્વતસોઽપિ કૃષ્ણરાજયઃ
ચતુરસ્રાઃ ચતુષ્કોણા એવ સન્તીતિ સંગ્રહગાયાર્થઃ ॥૧॥

ગૌતમઃ પૃચ્છતિ—‘કળ્પહરાઈઓ ણં મંતે ! કેવદ્યં આયામેણં, કેવદ્યાઓ
વિકલંભેણં, કેવદ્યાઓ પરિકલેવેણં પળ્ણત્તાઓ ?’ હે મદન્ત ! કૃષ્ણરાજયઃ લલુ
કિયત્યઃ—કિયત્પરિમાણા આયામેન દૈર્ઘ્યેણ પ્રજ્ઞતાઃ ? , કિયત્યશ્ચ વિલ્કમ્ભેણ
વિસ્તારેણ પ્રજ્ઞતાઃ કિયત્યશ્ચ પરિક્ષેપેણ પરિધિના પ્રજ્ઞતાઃ ? મગવાનાહ—‘ગોયમા !
અસંલેજ્જાઈં જોયણસહસ્રાઈં આયામેણં’ હે ગૌતમ ! કૃષ્ણરાજયઃ આયામેન દૈર્ઘ્યેણ
અસંલેય્યાનિયોજનસહસ્રાણિ વર્તન્તે, તથા ‘સંલેજ્જાઈં જોયણસહસ્રાઈં વિકલંભેણં’
સંલેય્યાનિ યોજનસહસ્રાણિ વિલ્કમ્ભેણ વિસ્તારેણ વર્તન્તે, એવમ્ ‘અસંલેજ્જાઈં
જોયણસહસ્રાઈં પરિકલેવેણં પળ્ણત્તાઓ’ અસંલેય્યાનિ યોજનસહસ્રાણિ પરિક્ષે-

જિયાં ત્રીન કોને વાલી હેં—અર્થાત્ તિલ્કુટી હેં । વાકી કી ચારોં દિશાઓ
કી અભ્યન્તર કૃષ્ણરાજિયાં સય ચાર કોનોં વાલી હી હેં એસા હસ
ગાથા કા અર્થ હે ।

અવ ગૌતમ પ્રશ્નુ સે પૂછતે હેં કિ—(કળ્પહરાઈઓ ણં મંતે ! કેવદ્યં
આયામેણં, કેવદ્યં વિકલંભેણં પળ્ણત્તા) હે મદન્ત ! એ કૃષ્ણરાજિયાં
આયામ કી અપેક્ષા કિતની લંબી હેં ઓર વિલ્કમ્ કી અપેક્ષા કિતની
ચોડી હેં—તથા હનકા પરિક્ષેપ કિનના હે—હસકે ઉત્તર મેં મગવાન્ ને
ઉનસે કહા—(ગોયમા) હે ગૌતમ ! (અસંલેજ્જાઈં જોયણસહસ્રાઈં આયા-
મેણં) કૃષ્ણરાજિયાં આયામ—લંબાઈં કી અપેક્ષા સે અસંલયાત હજાર
યોજન કી હેં તથા—(વિકલંભેણં સંલેજ્જાઈં જોયણસહસ્રાઈં) વિસ્તાર
કી અપેક્ષા સે સંલયાત હજાર યોજન કી હેં । ઓર (અસંલેજ્જાઈં

મહાર આવેલી યે કૃષ્ણરાજિઓ ત્રણ ખૂણવાળી છે, બાકીને એટલે કે ચારે
દિશાઓમાં અંદર આવેલી ચારે કૃષ્ણરાજિઓ ચાર ખૂણવાળી છે.

હવે ગૌતમ તેમના વિસ્તાર આદિ વિષે આ પ્રમાણે પ્રશ્ન પૂછે છે—
(કળ્પહરાઈઓ ણં મંતે ! કેવદ્યં આયામેણં કેવદ્યં વિકલંભેણં, પળ્ણત્તાઓ ?)
હે મદન્ત ! કૃષ્ણરાજિઓની લંબાઈ કેટલી છે ? તેમની પહોળાઈ કેટલી છે ?
તેમની પરિધિ (પરિમિતિ) કેટલી છે ?

તેને ઉત્તર આપતા મહાવીર પ્રણુ કહે છે—(ગોયમા !) હે ગૌતમ !
(અસંલેજ્જાઈં જોયણસહસ્રાઈં આયામેણં) કૃષ્ણરાજિઓની લંબાઈ અસંખ્યાત
હજાર યોજનની છે, (વિકલંભેણં સંલેજ્જાઈં જોયણસહસ્રાઈં) અને તેમની
પહોળાઈ સંખ્યાત હજાર યોજનની છે, અને (અસંલેજ્જાઈં જોયણસહસ્રાઈં

કોણે સ્ત: સ્ત્યર્થ: । તથા ' દો ઉત્તર-દાહિણવાહિરાઓ કળહરાઈઓ તંસાઓ ' દે ઉત્તર-દક્ષિણવાળો ઉત્તર-દક્ષિણદિગ્માગચર્ચિર્વર્તિન્યો કળ્ણરાજીત્ર્યસ્રે ત્રય: અસ્રા: અંશા: યયોસ્તે ત્રિકોણેસ્ત: સ્ત્યર્થ: । તથા ' દો પુરત્થિમ-પચ્ચત્થિમાઓ અઙ્ગિમત્તરાઓ કળ્ણરાઈઓ ચરંસાઓ ' દે પૌસ્ત્વ-પશ્ચિમાઙ્ગ્યન્તરિકેપૂર્વ-પશ્ચિમદિગ્માગાઙ્ગ્યન્તરવર્તિન્યો કળ્ણરાજી ચતુરસ્રે ચત્વાર: અસ્રા: અંશા: યયોસ્તે ચતુષ્કોણે સ્ત: સ્ત્યર્થ: । તથા ' દો ઉત્તર-દાહિણાઓ અઙ્ગિમત્તરાઓ કળ્ણરાઈઓ ચરંસાઓ ' દે ઉત્તર-દક્ષિણાઙ્ગ્યન્તરિકે ઉત્તર-દક્ષિણદિગ્માગાઙ્ગ્યન્તરવર્તિન્યો કળ્ણરાજી ચતુરસ્રે ચત્વારોઽસ્રા: અંશા: યયોસ્તે ચતુષ્કોણે સ્ત: સ્ત્યર્થ: । ઉક્તાર્થ: સંગ્રહાય ગાયમાદ-
' પુન્વા-વરા છલંસા તંસા પુણ દાહિણુત્તરા વજ્ઞા ।

અઙ્ગિમત્તર ચરંસા, સન્વા ત્રિ ય કળ્ણરાઈઓ ' ॥ ૧ ॥ સ્તિ,
પૂર્વાઽપરે પૂર્વ-પશ્ચિમદિગ્માગસ્થિતે ચર્ચિર્વર્તિન્યો દે કળ્ણરાજી પડસ્રે પટ્કોણે સ્ત:, તથા દક્ષિણોત્તરે દક્ષિણોત્તરદિગ્માગસ્થિતે વાક્રે ચર્ચિર્વર્તિન્યો દે કળ્ણરાજી ત્ર્યસ્રે જિયાં હેં વે છહ કોણોવાલી હેં । તથા દો ઉત્તર દાહિણ વાહિરાઓ કળ્ણરાઈઓ તંસાઓ) ઉત્તરદિશા ઓર દક્ષિણદિશા કે વાહર કી જો દો કળ્ણરાજિયાં હેં, વે ત્રીન અંશો-કોનોવાલી હેં । તથા-(દો પુરત્થિમપચ્ચત્થિમાઓ અઙ્ગિમત્તરાઓ કળ્ણરાઈઓ ચરંસાઓ) પૂર્વપશ્ચિમદિશા કી જો મીતર કી દો કળ્ણરાજિયાં હેં વે ચૌહૂંટી હેં-ચાર કોનોવાલી હેં । (દો ઉત્તરદાહિણાઓ અઙ્ગિમત્તરાઓ કળ્ણરાઈઓ ચરંસાઓ) ઉત્તર દક્ષિણદિશાકી જો મીતર કી દો કળ્ણરાજિયાં હેં વે મી ચાર કોનોવાલી હેં હસી અર્થ કો સંગ્રહ કરનેવાલી યહ ગાથા હેં-(પુન્વા-વરા છલંસા હત્યાદિ । પૂર્વાપર-પૂર્વપશ્ચિમદિગ્માગ ચહિર સ્થિત દો કળ્ણરાજિયાં છહ કોને વાલી હેં, તથા દક્ષિણ ઉત્તરદિગ્માગચહિ:સ્થિત દો કળ્ણરા-

ઉત્તરદાહિણ વાહિરાઓ કળ્ણરાઈઓ તંસાઓ) ઉત્તર દિશા અને દક્ષિણ દિશામાં બહારની જે જે કૃષ્ણરાજિઓ છે, તે ત્રણ ખૂણવાળી (ત્રિકોણાકારની) છે. તથા (દો પુરત્થિમ-પચ્ચત્થિમાઓ અઙ્ગિમત્તરાઓ કળ્ણરાઈઓ ચરંસાઓ) પૂર્વ અને પશ્ચિમ દિશામાં અંદરની જે જે કૃષ્ણરાજિઓ છે, તે ચાર ખૂણવાળી (ચારસાકારની) છે, (દો ઉત્તરદાહિણાઓ અઙ્ગિમત્તરાઓ કળ્ણરાઈઓ ચરંસાઓ) અને ઉત્તર-દક્ષિણમાં અંદરની જે જે કૃષ્ણરાજિઓ છે, તે પણ ચાર ખૂણવાળી છે. એજ અર્થનો સંગ્રહ કરનારી ગાથા નીચે પ્રમાણે છે—' પુન્વાવર ' ઇત્યાદિ આ ગાથાનો ભાવાર્થ-પૂર્વાપર-પૂર્વ અને પશ્ચિમ દિગ્માગમાં બહાર આવેલી જે કૃષ્ણરાજિઓ છે ખૂણવાળી છે, દક્ષિણ અને ઉત્તર દિગ્માગમાં

एककां संख्यातयोजनसहस्रविस्तारां कृष्णराजिं व्यतिव्रजेत् व्यतिक्रामेत् ; किन्तु 'अत्येगइयं कण्हराईणो वीईवएज्जा' अस्त्येककाम् असंख्यातयोजनसहस्रविस्तारां कृष्णराजिं नो व्यतिव्रजेत् नो व्यतिक्रामेत् ।

तदुपसंहरन्नाह—' एमहालियाओ णं गोयमा ! कण्हराईओ पण्णत्ताओ ' हे गौतम ! इयद्महालयाः इयद्महत्यः खलु कृष्णराजयः प्रज्ञप्ताः । गौतमः पृच्छति— ' अत्थि णं भंते ! कण्हराईसु गेहा इ वा, गेहावणा इ वा ? ' हे भदन्त ! अस्ति संभवति खलु कृष्णराजिषु गेहानि गृहाः इति वा भवन्ति ? गेहापणाः गृहहृष्टाः इति भवन्ति ? भगवानाह—'णो इण्णट्ठे समट्ठे' हे गौतम ! नायमर्थः समर्थः, कृष्णराजिषु गृहाः, गृहापणा वा न भवन्तीतिभावः । गौतमः पृच्छति—' अत्थि णं भंते !

वीईवइज्जा) किसी एक कृष्णराजी तक पहुँच सकता है। अर्थात् संख्यात हजार योजन विस्तार वाली कृष्णराजी तक जा सकता है। किन्तु (अत्येगइयं कण्हराईं णो वीईवएज्जा) असंख्यात हजार योजन विस्तार वाली कृष्णराजितक नहीं जा सकता है। (एमहालियाओ णं गोयमा कण्हराईओ पण्णत्ताओ) इतनी महान् हे गौतम ! ये कृष्णराजियां हैं। अब गौतमस्वामी प्रभु से ऐसा पूछते हैं कि—(अत्थि णं भंते ! कण्हराईसु गेहाइ वा, गेहावणाइ वा) हे भदन्त ! क्या यह बात संभवित है कि इन कृष्णराजियों में घर हों और घर हाट हों ? इसके उत्तर में प्रभु कहते हैं कि हे गौतम ! (णो इण्णट्ठे समट्ठे) यह अर्थ समर्थ नहीं है—अर्थात् कृष्णराजियों में न घर संभवित हैं और न गृहापण ही संभवित है। ठीक है—ये सब वहाँ पर नहीं हैं तो (अत्थि णं भंते !

संख्यात इतर योजनना विस्तारवाणी कृष्णराजि सुधी ते न्ध शके छे, परन्तु (अत्येगइयं कण्हराईं णो वीईवएज्जा) असंख्यात इतर योजनना विस्तारवाणी कृष्णराजि सुधी ते न्ध शकती नथी. (ए महालियाओ णं गोयमा ! कण्हराईओ पण्णत्ताओ) हे गौतम ! अटली अधी विस्तृत (विशाण ते कृष्णराजिओ) डोय छे.

आटला अधा विस्तारवाणी कृष्णराजिओमां घर आदि छे के नहीं ते लखुवा भाटे गौतम स्वामी आ प्रभावे प्रश्न पूछे छे—(अत्थि णं भंते ! कण्हराईसु गेहाइ वा, गेहावणाइ वा ?) हे भदन्त ! शुं कृष्णराजिओमां घर, हाटे आदि डोवानुं संलपी शके छे अइ ?

उत्तर—(णो इण्णट्ठे समट्ठे) हे गौतम ! आ बात संभवित नथी अटले के त्यां घर पखु नथी अने हाट पखु नथी.

गौतम स्वामीना प्रश्न—घर, हाट आदि त्यां संभवित न डोय, तो

पेण परिधिना ताः कृष्णराजयः प्रज्ञाः । गौतमः पृच्छति- ' कण्हराईओ णं भंते ! के महालियाओ पण्णत्ताओ ? ' हे भदन्त ! कृष्णराजयः सञ्च किमहालयाः कियन्महत्तयाः प्रज्ञाः ? भगवानाह- ' गोयमा ! अयं णं जंबुद्वीवे दीवे, जाव-अद्द-मासं वीईवपज्जा ' हे गौतम ! यदा कथित् महद्दिक्को गान्-महानुमारो देवः पय-माहुत्सयोगाभिघातजन्यध्वनिमूचकहस्तव्यापाररूपाः लोटिका ताभिः तिसृभिः पूर्ववर्णितमेनं जम्बूद्वीपं द्वीपं यया त्वरितया चपलया वेगवत्या यान्-दिव्यगत्या एकत्रिंशत्तिवारान् प्रदक्षिणीकृत्य पुनरागच्छन् तथैव गत्या निरन्तरम् अर्धमासं यावत् व्यतिव्रजेत् तदा ' अत्येगइयं कण्हराई वीईवपज्जा ' भस्ति स भवति यत्-

जोयणसहस्साइं परिकलेवेणं पण्णत्ताओ) परिदोप इन सय का असंख्यात हजार योजनों का है ।

अब गौतम प्रभु से ऐसा पूछते हैं कि- (कण्हराईओ णं भंते ! के महालियाओ पण्णत्ताओ) हे भदन्त ! ये कृष्णराजियां कितनी बड़ी कही गई हैं ? इसके उत्तर में भगवान् उनसे कहते हैं कि (गोयमा) हे गौतम ! (अयं णं जंबुद्वीवे दीवे जाव अद्दमासं वीईवपज्जा) जब कोई महद्विक यावत् महानुभाववाला देव तीन चुटकी यजाने में जितना समय लगता है इतने समयरूप काल में पूर्व में वर्णित इस समस्त जंबूद्वीप को त्वरावाली यावत् दिव्यगति द्वारा इक्कीस बार प्रदक्षिणा देकर आ जावे-अब वही देव इसी तरह की अपनी दिव्य गति द्वारा निरन्तर-पन्द्रह १५ दिन तक चलता रहे-तब कहीं जाकर वह (अत्येगइयं कण्हराई

परिकलेवेणं पण्णत्ताओ) तेमनी परिधिं (परिमिति असंख्यात इतर योजननी कळी छे.

गौतम स्वामी डवे. येवो प्रश्न करे छे के (कण्हराईओ णं भंते ! के महालियाओ पण्णत्ताओ ?) के भदन्त ! ते कृष्णराजियोने केटली विशाण कळी छे !

तेनो उत्तर आपता मडावीर प्रभु कडे छे- (गोयमा !) हे गौतम ! (अयं णं जंबुद्वीवे दीवे जाव अद्दमासं वीईवपज्जा) केअ एक महद्विक आदि विशेषज्ञावाणो देव, प्रभु अपनी वगाइता केटली समय लागे केटला समयमा पूव वणित (आ उदेशकता पडेला सूत्रमां जंबूद्वीपेनो विस्तार अने परिदोप पताये छे) समस्त जंबूद्वीपनी एकनीस बार प्रदक्षिणा करी बेचाने धारे के समर्थ छे. येवो ते देव पोतानी ते त्वरायुक्त अने दिव्य गतिथी निरन्तर १५ दिनस सुधी आइया करे, तो मडाभुकेटलीअे ते (अत्येगइयं कण्हराई वीईवपज्जा) केअ एक कृष्णराजि सुधी पडेथी शके छे, केटली के

એકાં સંખ્યાતયોજનસદસવિસ્તારાં કૃષ્ણરાજિં વ્યતિવ્રજેત્ વ્યતિક્રામેત્ , કિન્તુ
'અત્યેગદ્યં કળ્હરાઈં ગો વીઈવણ્જા' અસ્ત્યેકકામ્ અસંખ્યાતયોજનસદસવિસ્તારાં
કૃષ્ણરાજિં નો વ્યતિવ્રજેત્ નો વ્યતિક્રામેત્ ।

તદુપસંહરન્નાહ—' એમહાલિયાઓ ણં ગોયમા ! કળ્હરાઈંઓ પળ્ણત્તાઓ ' હે
ગૌતમ ! ઇયદ્મહાલયાઃ ઇયદ્મહત્યઃ સ્વલુ કૃષ્ણરાજયઃ પ્રજ્ઞાઃ । ગૌતમઃ પૃચ્છતિ—
' અત્થિ ણં ધંતે ! કળ્હરાઈંસુ ગેહા ઇ વા, ગેહાવણા ઇ વા ? ' હે ભદન્ત ! અસ્તિ
સંભવતિ સ્વલુ કૃષ્ણરાજિપુ ગેહાનિ ગૃહાઃ ઇતિ વા ભવન્તિ ? ગેહાપણાઃ ગૃહહટ્ટાઃ
ઇતિ ભવન્તિ ? ભગવાનાહ—' ણો ઇણદ્દે સમદ્દે ' હે ગૌતમ ! નાયમર્થઃ સમર્થઃ, કૃષ્ણ-
રાજિપુ ગૃહાઃ, ગૃહાપણા વા ન ભવન્તીતિભાવઃ । ગૌતમઃ પૃચ્છતિ—' અત્થિ ણં ધંતે !

વીઈવણ્જા) કિસી એક કૃષ્ણરાજી તક પહુંચ સકતા હૈ । અર્થાત્
સંખ્યાત હજાર યોજન વિસ્તાર વાલી કૃષ્ણરાજી તક જા સકતા હૈ ।
કિન્તુ (અત્યેગદ્યં કળ્હરાઈં ગો વીઈવણ્જા) અસંખ્યાત હજાર યોજન
વિસ્તાર વાલી કૃષ્ણરાજિતક નહીં જા સકતા હૈ । (એમહાલિયાઓ ણં
ગોયમા કળ્હરાઈંઓ પળ્ણત્તાઓ) ઇતની મહાન્ હૈ ગૌતમ ! યે કૃષ્ણરા-
જિયાં હૈ । અથ ગૌતમસ્વામી પ્રશ્ન સે એસા પૂછતે હૈ કિ—(અત્થિ ણં ધંતે !
કળ્હરાઈંસુ ગેહા ઇ વા, ગેહાવણા ઇ વા) હે ભદન્ત ! કયા યહ વાત સંભ-
વિત હૈ કિ ઇન કૃષ્ણરાજિયાં મેં ઘર હોં ઓર ઘર હાટ હોં ? ઇસકે
ઉત્તર મેં પ્રશ્ન કહતે હૈ કિ હે ગૌતમ ! (ણો ઇણદ્દે સમદ્દે) યહ અર્થ સમર્થ
નહીં હૈ—અર્થાત્ કૃષ્ણરાજિયાં મેં ન ઘર સંભવિત હૈ ઓર ન ગૃહાપણ હી
સંભવિત હૈ । ઠીક હૈ—યે સવ વહાં પર નહીં હૈ તો (અત્થિ ણં ધંતે !

સંખ્યાત હજાર યોજનના વિસ્તારવાળી કૃષ્ણરાજિ સુધી તે જઈ શકે છે,
પરંતુ (અત્યેગદ્યં કળ્હરાઈં ગો વીઈવણ્જા) અસંખ્યાત હજાર યોજનના
વિસ્તારવાળી કૃષ્ણરાજિ સુધી તે જઈ શકતી નથી. (એમહાલિયાઓ ણં
ગોયમા ! કળ્હરાઈંઓ પળ્ણત્તાઓ) હે ગૌતમ ! એટલી બધી વિસ્તૃત (વિશાળ
તે કૃષ્ણરાજિઓ હોય છે.

આટલા બધા વિસ્તારવાળી કૃષ્ણરાજિઓમાં ઘર આદિ છે કે નહીં તે
બાલુવા માટે ગૌતમ, સ્વામી આ પ્રમાણે પ્રશ્ન પૂછે છે—(અત્થિ ણં ધંતે !
કળ્હરાઈંસુ ગેહા ઇ વા, ગેહાવણા ઇ વા ?) હે ભદન્ત ! શું કૃષ્ણરાજિઓમાં ઘર,
હાટ આદિ હોવાનું સંભવી શકે છે ખરૂં ?

ઉત્તર—(ણો ઇણદ્દે સમદ્દે) હે ગૌતમ ! આ વાત સંભવિત નથી
એટલે કે ત્યાં ઘર પણ નથી અને હાટ પણ નથી.

ગૌતમ સ્વામીને પ્રશ્ન—ઘર, હાટ આદિ ત્યાં સંભવિત ન હોય, તે

कण्हराईसुगामा इ वा जाव-सन्निवेशा इ वा ?' हे भदन्त ! अस्ति संभवति खलु कृष्णराजिषु ग्रामा इति वा, यावत्-निगमा इति वा, मडंवा इति वा, कर्षटा इति वा, पत्तनानि इति वा, द्रोणमुखा इति वा, आश्रमा इति वा, सन्निवेशा इति वा किं भवन्ति ? भगवानाह—'णो इण्ठे समद्वे' हे गौतम ! नापमर्थः समर्थः, कृष्णराजिषु ग्रामादयो यावत्-सन्निवेशा न भवन्तीति भावः । गौतमः पृच्छति-अत्थि णं भन्ते ! कण्हराईसु णं उराला यलाहया संसेयंति, सम्पुच्छन्ति, संवातन्ति ?' हे भदन्त ! अस्ति संभवति खलु कृष्णराजिषु उदारः विशाला च्छाह हायारिवाइका मेया इत्यर्थः संस्विद्यन्ति, संस्वेदं प्राप्नुवन्ति, सम्पुच्छन्ति परस्परघटनेन सम्पुच्छिता भवन्ति, संवर्षन्ति ? वृष्टिं कुर्वन्ति ? भगवानाह—' हंता, अत्थि, ' हे गौतम ! इत्थं, सत्त्वम्

कण्हराईसु गामा इ वा जाव संनिवेशा इ वा) हे भदन्त ! उन कृष्णराजियों में ग्राम यावत् सन्निवेश हैं क्या ? यहां यावत् शब्द से (आकर नगर निगम, मडंवा, कर्षट, पत्तन, द्रोणमुख, आश्रम) इन स्थानोंका संग्रह हुआ है इसके उत्तर में प्रभु गौतम से कहते हैं कि हे गौतम ! (णो इण्ठे समद्वे) यह अर्थ समर्थ नहीं है—अर्थात् कृष्णराजियों में ग्राम से लेकर सन्निवेश तकके स्थान नहीं हैं । (अत्थि णं भन्ते ! कृष्णराईसु णं उराला यलाहया संसेयंति) हे—भदन्त ! कृष्णराजियों में क्या उदार-विशाल-मेघ संस्वेद को प्राप्त होते हैं ? परस्पर के आघटन से क्या वे वहां सम्पुच्छित हैं ? क्या वहां वे वृष्टि करते हैं ? उत्तर में प्रभु कहते हैं कि (हंता अत्थि) हां गौतम ! वहां ऐसा होता है । उदारमेघ वहां संस्वेद

(अत्थि णं भन्ते ! कण्हराईसु गामा इ वा जाव संनिवेशा इ वा ?) शुं ते कृष्णराजियोमां गामथी लधने सन्निवेश पर्यन्ताना जनस्थाना डोय छे ? अडी " जाव (पर्यन्त) " पदथी निगम, मडंवा, कर्षट, पत्तन, द्रोणमुख, आने आश्रम " आं स्थानाने अदल्लु करवामां आण्णा छे. ते इरेकने अर्थं तमः स्थायना सूत्रमां आण्णे छे.

भडावीर प्रभुने उत्तर—(णो इण्ठे समद्वे) हे गौतम ! आ वातः पण्य संभवित नथी. कृष्णराजियोमां गाम आदि डोय पण्य स्थान संभवी शकतुं नथी.

गौतम स्वामीने प्रश्न—(अत्थि णं भन्ते ! कृष्णराईसु णं उराला यलाहया संसेयंति) हे भदन्त ! कृष्णराजियोमां शुं उदार (विशाल) मेघ संस्वेदन पावे छे ? परस्परना आघटन (संयोगथी) शुं तेयो सम्पुच्छित (संयोगत अकत्रित) थाय छे ? शुं तेयो त्यां वृष्टि वरसावे छे ?

भडावीर प्रभुने उत्तर—“ हंता अत्थि ” हां, गौतम ! त्यां अणु

कृष्णराजिषु महान्तो मेधाः संस्वित्रन्ति, संमूर्च्छन्ति वर्षन्ति च, इति, गौतमः पृच्छति—‘ तं भन्ते । किं देवो पकरेइ, असुरो पकरेइ, नागो पकरेइ ? हे भदन्त ! कृष्णराजिषु तत्-संस्वेदनं, संमूर्च्छनं, संवर्षणं च किं देवः प्रकरोति, असुरः प्रकरोति, नागो वा प्रकरोति ? भगवानाह—‘ गोयमा । देवो पकरेइ, णो असुरो, णो नागो पकरेइ’ हे गौतम ! कृष्णराजिषु मेधानां संस्वेदनादिकं देवः प्रकरोति, असुरो नागश्च न प्रकुरुतः अमुरकुमारनागकुमाराणां तत्र गमनासंभवात् । गौतमः पृच्छति—‘अत्थि णं भन्ते ! कण्हाराईसु वायरे धणियसद्दे’ हे भदन्त ! अस्ति संभवति खलु कृष्णराजिषु वादरः स्थूलः स्तनितशब्दः घनगर्जनात्मकः ? भगवानाह—‘ जहा उराला त्हा ’ यथा उदारा मेधाः कृष्णराजिषु संस्विद्यन्ति इत्यादि प्रति-

को प्राप्त होते हैं, संमूर्च्छित होते हैं और वृष्टि करते हैं । इस पर गौतमस्वामी प्रश्न से ऐसा पूछते हैं कि—(तं भन्ते ! किं देवो पकरेइ, असुरो पकरेइ, नागो पकरेइ) हे भदन्त ! कृष्णराजियों में विशाल मेधो का संस्वेदन संमूर्च्छन एवं-संवर्षण कौन करता है—क्या देव करता है, या असुर करता है ? या नाग करता है ? उत्तर देते हुए प्रश्न उनसे कहते हैं कि—(गोयमा) हे गौतम ! मेधों का संस्वेदन आदि (देवो) देव (पकरेइ) करता है । (णो असुरो णो नागो पकरेइ) असुर नहीं करता है और न नाग ही करता है । क्यों कि असुरकुमार और नागकुमार का वहां गमन ही संभवता नहीं है । गौतम पुनः प्रश्न से पूछते हैं कि—(अत्थि णं भन्ते ! कण्हाराईसु वायरे धणियसद्दे) हे भदन्त ! कृष्णराजियों में क्या वादर स्तनित-मेघनिर्घोष होता है ? इसके उत्तर में प्रश्न

थाय छे-विशाण मेध त्यां संस्वेदन पाभे छे, संमूर्च्छित थाय छे अने वृष्टि परसावे छे.

प्रश्न—(तं भन्ते ! किं देवो पकरेइ, असुरो पकरेइ, नागो पकरेइ ?) हे भदन्त ! कृष्णराजियोंमें विशाण मेधानुं संस्वेदन, संमूर्च्छन, अने संवर्षणुं डोणु करे छे ? शुं देव करे छे ? असुरकुमार करे छे ? के नागकुमार करे छे ?

उत्तर—(गोयमा !) हे गौतम ! मेधानुं संस्वेदन आदि (देवो पकरेइ) देव करे छे, (णो असुरो णो नागो पकरेइ) असुरकुमार करता नथी अने नागकुमार पणु करता नथी. तेनुं कारणु अे छे के असुरकुमार अने नागकुमारनुं त्यां गमन व् संभवित नथी.

प्रश्न—(अत्थि णं भन्ते ! कण्हाराईसु वायरे-धणिय सद्दे ?) हे भदन्त ! कृष्णराजियोंमें शुं वादर स्तनित शब्द अेटले के मेध गज्जनो अवाव् थाय छे ?

પાદિતમ્ તથા તત્ર વાદરઃ સ્તનિતશબ્દોઽપિ યનગર્જનાઃમકો માલ્યેનેતિ માવઃ ।
 ગૌતમઃ પૃચ્છતિ—‘ અત્થિ ણં મંતે ! કળ્હરાઈંસુ વાયરે આઝકાણ, વાયરે અગણિ-
 કાણ, વાયરે વળસ્સહકાણ ? ’ મદુન્ત ! અસ્તિ સંભવતિ સન્તુ કૃષ્ણરાજિણુ વાદરઃ
 અપ્કાયઃ, વાદરઃ અગ્નિકાયઃ, વાદરો વનસ્પતિકાયઃ ? મગધાનાહ—‘ ણો ણ્ણદ્દે
 સમંદ્દે ’ હે ગૌતમ ! નામમર્થઃ સમર્થઃ, કૃષ્ણરાજિણુ વાદરાઃ અપ્કાયાદયો ન સંભ-
 વન્તિ, તેષાં તત્ર સ્વસ્થસ્થનાદ્વામાવાન્, કિન્તુ ‘ ણ્ણતથ વિગ્ગહગહસમાવજ્જ-
 ણ્ણં ’ ‘ ન ’ ઇતિશબ્દેન યોઽયં કૃષ્ણરાજિણુ વાદરાપ્કાયાદીનાં નિપેથઃ કૃતઃ, સ
 વિગ્ગહગતિસમાપન્નકેન અન્યત્ર ચોદ્ધવ્યઃ, તત્રાપિ વિગ્ગહગતિમમાવચ્ચા વાદરાપ્કાયા-

વનસે કહતે હું કિ (જહા ઝરાલા તહા) હે ગૌતમ ! જિસ પ્રકાર સે હમને
 યહ કહા હે કિ ઇન કૃષ્ણરાજિયોં મેં ઝદાર મેયોં કા સંસ્વેદન આદિ
 કાર્ય હોતા હે—ઝસી પ્રકાર સે યહ ભી સમક્ષના ચાહિયે કિ ઇન કૃષ્ણ-
 રાજિયોં મેં મેયોં કા ગર્જનરૂપ શબ્દ ભી હોતા હે । અથ ગૌતમ પૂછતે હું
 (અત્થિ ણં મંતે ! કળ્હરાઈંસુ વાયરે આઝકાણ વાયરે અગણિકાણ, વાયરે
 વળસ્સહકાણ) હે મદુન્ત ! કૃષ્ણરાજિયોંમિં વાદર અપ્કાય, વાદર અગ્નિ-
 કાય ઓર વાદર વનસ્પતિકાય હેં કયા ? ઝત્તર મેં પ્રશુ કહતે હું કિ
 (ણો ણ્ણદ્દે સમંદ્દે) હે ગૌતમ ! યહ અર્થ સમર્થ નહીં હે—અર્થાત્ કૃષ્ણ-
 રાજિયોં મેં વાદર અપ્કાય આદિ સ્વસ્થાન કા અભાવ હોને સે નહીં હે ।
 (ણ્ણતથ વિગ્ગહગહસમાવજ્જણ) પરન્તુ ઈસા જો યહ નિપેથ વચન
 હે વહ વિગ્ગહગતિ સમાપન્ન જીવોં કે સિવાય હી કહા ગયા જાનના
 ચાહિયે । કયોં કિ વિગ્ગહગતિસમાપત્તિ સે વાદર અપ્કાય આદિકોં કા

ઝત્તર—(જહા ઝરાલા તહા) હે ગૌતમ ! જેવી રીતે કૃષ્ણરાજિઓમાં
 વિશાળ મેયોનું સંસ્વેદન આદિ કાર્યો થાય છે, એજ પ્રમાણે કૃષ્ણરાજિઓમાં
 મેયોના ગર્જન રૂપ બાદર સ્તનિત શબ્દો પણ થાય છે, એમ સંભવું.

પ્રશ્ન—(અત્થિ ણં મંતે ! કળ્હરાઈંસુ વાયરે આઝકાણ, વાયરે અગણિકાણ,
 વાયરે વળસ્સહકાણ ?) હે મદુન્ત ! કૃષ્ણરાજિઓમાં શું બાદર અપ્કાય, બાદર
 અગ્નિકાય અને બાદર વનસ્પતિકાય હોય છે ?

ઝત્તર—(ણો ણ્ણદ્દે સમંદ્દે) હે ગૌતમ ! એ વાત શક્ય નથી. એટલે
 કે કૃષ્ણરાજિઓમાં બાદર અપ્કાય આદિ હોતાં નથી કારણ કે ત્યાં તેમના
 સ્વસ્થાનનો અભાવ હોય છે. (ણ્ણતથ વિગ્ગહગહસમાવજ્જણ) પરન્તુ
 આ નિપેધાત્મક કથન વિગ્ગહગતિમાં વર્તમાન જીવો સિવાયના જીવોને જ
 લાશુ પડે છે, કારણ કે વિગ્ગહગતિમાં વર્તમાન બાદર અપ્કાય આદિનો
 ત્યાં સહભાવ હોઈ શકે છે.

દીનાં સંભવાત્ । ગૌતમઃ પૃચ્છતિ—‘ અતિથિ ણં મંતે ! ચંદિમ-સૂરિય-ગહગણ-
નક્ષત્ત-તારારૂવા ? ’ હે ભદન્ત ! સન્તિ સ્વલુ કૃષ્ણરાજિપુ ચન્દ્ર-સૂર્ય-પ્રહગણ-
નક્ષત્ર-તારારૂવાઃ ? ભગવાન્ આહ—‘ ણો ણ્ણટ્ટે સમટ્ટે ’ હે ગૌતમ ! નાયમર્યઃ
સમર્યઃ કૃષ્ણરાજિપુ ચન્દ્રાદયો જ્યોતિષ્કાન ભવન્તિ, કૃષ્ણરાજીનામત્યન્તાન્ધકાર-
મયત્તાત્ તત્ર તેણાં સ્વસ્થાનત્વાસંભવાત્ । ગૌતમઃ પુનઃ પૃચ્છતિ—‘ અતિથિ ણં કપ્પ-
રાઈસુ ચંદામા ઇ વા, સૂરામા ઇ વા ? ’ હે ભદન્ત ! અસ્તિ સંભવતિ સ્વલુ કૃષ્ણ-
રાજિપુ ચન્દ્રામા, ચન્દ્રપ્રમા ઇતિ વા, સૂરામા સૂર્યપ્રમા ઇતિ વા ? ભગવાનાહ—‘ ણો ણ્ણટ્ટે
સમટ્ટે ’ હે ગૌતમ ! નાયમર્યઃ સમર્યઃ કૃષ્ણરાજિપુ ચન્દ્રપ્રમાદીનાં પ્રતિહતપ્રકાશ-

સદ્ભાવ વહાં હો સકતા હૈ । અવ ગૌતમ પ્રશ્નુ સે પૂછતે હૈં કિ (અતિથિ ણં
મંતે ! ચંદિમસૂરિયગહગણનક્ષત્તતારારૂવા) હે ભદન્ત ! કૃષ્ણરાજિયો
મેં ચન્દ્ર, સૂર્ય, પ્રહગણ નક્ષત્ર એવં તારારૂપ હૈં કયા ? હિસકે ઉત્તર મેં પ્રશ્નુ
ઉનસે કહતે હૈં કિ હે ગૌતમ ! (ણો ણ્ણટ્ટે સમટ્ટે) કૃષ્ણરાજિયાં અત્યન્ત
અંધકાર મય હૈં—અતઃ હનમેં ચન્દ્રાદિક જ્યોતિષ્ક નહીં હૈ । કયાં કિ
હનકા હનમેં સ્વસ્થાન નહીં હૈ । (અતિથિ ણં કપ્પરાઈસુ ચંદામા ઇ વા,
સૂરામા ઇ વા) હે ભદન્ત ! તો કયા કૃષ્ણરાજિયોં મેં ચન્દ્ર કી પ્રમા ઓર
સૂર્ય કી પ્રમા બી નહીં હૈ ? હિસ ગૌતમ કે પ્રશ્ન કે ઉત્તર મેં પ્રશ્નુ ઉનસે
કહતે હૈં કિ (ણો ણ્ણટ્ટે સમટ્ટે) હે ગૌતમ ! યહ અર્થ સમર્ય નહીં હૈ—
અર્થાત્ કૃષ્ણરાજિયોં મેં ચન્દ્રપ્રમા એવં સૂર્યપ્રમા હૈં તો સહી પર વે પ્રતિ-
હત પ્રકાશ વાલી હોને કે કારણ ઉનકાં વહાં રહના બી નહીં રહને કે

હવે ગૌતમ સ્વામીં મહાવીર પ્રશ્નુને એવે પ્રશ્ન પૂછે છે કે (અતિથિ ણં
મંતે ! ચંદિમ, સૂરિય, ગહગણનક્ષત્તતારારૂવા) હે ભદન્ત ! કૃષ્ણરાજિઓમાં
શું ચન્દ્રમા, સૂર્ય, અહગણ, નક્ષત્રો, અને તારાઓ હોય છે ?

ઉત્તર—(ગોયમા ! ણો ણ્ણટ્ટે સમટ્ટે) હે ગૌતમ ! કૃષ્ણરાજિઓ
અત્યંત અંધકારમય હોય છે, તેથી તેમાં ચન્દ્રમા આદિ જ્યોતિષિક દેવો
હોતા નથી, કારણ કે તેમણે ત્યાં સ્વસ્થાન નથી.

પ્રશ્ન—(અતિથિ ણં મંતે ! કપ્પરાઈસુ ચંદામા ઇ વા, સૂરામા ઇ વા ?) હે
ભદન્ત ! તો શું કૃષ્ણરાજિઓમાં ચન્દ્રની પ્રમા (પ્રકાશ) અને સૂર્યનો
પ્રકાશ હોય છે ?

ઉત્તર—(ણો ણ્ણટ્ટે સમટ્ટે) હે ગૌતમ ! આ વાત પણ શક્ય નથી.
કૃષ્ણરાજિઓમાં ચન્દ્ર અને સૂર્યની પ્રમા હોય છે તો ખરી, પણ તેણે ત્યાં
અંધકાર રૂપે પરિણમન થઈ જવાને કારણે તે પ્રમા ત્યાં હોવા છતાં પણ
ત્યાં જોવી ન લાગે છે.

તયા વિષ્ણુમાનસ્યેऽપિ અભિન્યમાનવાપ્તયાન્ । ગૌતમઃ કૃષ્ણરાજો ણં
 મંતે ! કેરિસિયાઓ વન્નેણં પળ્ણત્તાઓ ?' હે મદન્ત ! કૃષ્ણરાજયઃ તાદુ કોદશ્યો
 વર્ણેન પ્રજ્ઞતાઃ ? મગવાનાહ- 'ગોપમા ! કાલાઓ, જાવ-લિપ્ષામેવ વીરૂ-
 વણ્ણા' હે ગૌતમ ! કૃષ્ણરાજયો વર્ણેન કૃષ્ણાઃ અન્ધકારમપ્તયાન્, અવસ્ત તમસ્કાયવત્
 અતિમયદ્ધરતાત્ દેવોઽપિ યાવત્-તિપમે । વ્યતિપ્રજેત્ સ્તિઃમેન ઉલ્લક્ષ્ય મચ્છેત્,
 યાવત્કરણાત્-કાલાવભાસાઃ, ગમ્મીરોમહર્પજનન્યઃ, મીમાઃ, ઉત્ત્રાસજનિકાઃ,
 પરમકૃષ્ણાઃ પ્રજ્ઞતાઃ, દેવોઽત્યેત્કો યસાત્પથમતયા દદ્ધા શુભેત્, અયામિત્તમાગ-

જેસા છે । ગૌતમ પ્રશ્ન સે પુનઃ પ્રશ્ન કરતે હેં (કૃષ્ણરાજો ણં મંતે !
 કેરિસિયાઓ વન્નેણં પળ્ણત્તાઓ) હે મદન્ત । યે કૃષ્ણરાજિયાં વર્ણ સે
 કેસી કહી ગઈ હેં-અર્થાત્ ઇન કૃષ્ણરાજિયોં કા વર્ણ કેસા હેં ? ઉત્તર મેં
 પ્રશ્ન કરતે હેં કિ (ગોપમા) હે ગૌતમ ! (કાલાઓ જાવ લિપ્ષામેવ વીરૂ-
 વણ્ણા) યે કૃષ્ણરાજિયાં અન્ધકારમય હોને કે કારણ વર્ણ સે કાલી કહી
 ગઈ હેં । અતપ્વ તમસ્કાય કી તરહ અતિમદ્ધર હોને કે કારણ ઇન્હે દેવ
 મી યાવત્ વહુત હી શીઘ્રતા કે સાથ ઉલ્લંઘિત કર ચલા જાતા હે ।
 યહાં યાવત્પદ સે (કાલાવભાસાઃ ગમ્મીરોમહર્પજનન્યઃ મીમાઃ ઉત્ત્રા-
 સજનિકાઃ, પરમકૃષ્ણા પ્રજ્ઞતાઃ) ઇન કૃષ્ણરાજિયોં મેં ઇન પૂર્વોક્ત
 વિશેષણોં કો મી ગૃહીત કરલેના ચાહિયે-યહ પ્રકટ કિયા ગયા હે । ઇન
 વિશેષણોં કા અર્થ તમસ્કાય કે પ્રકરણ મેં લિખા જા ચુકા હે । તાત્પર્ય
 કહને કા યહ હે કિ કોઈ એક દેવ યદિ ઇન્હે સર્વપ્રથમ દેલના હે તાં વહ
 દેલતે હી ધુમ્મિત હો ઉઠતા હે । યદિ કદાચિત્ કોઈ દેવ ઇનકે સમક્ષ

ગૌતમ સ્વામીનો પ્રશ્ન—(કૃષ્ણરાજો ણં મંતે ! કેરિસિયાઓ વન્નેણં
 પળ્ણત્તાઓ ?) હે મદન્ત ! તે કૃષ્ણરાજિઓ વર્ણ કેવી છે ? એટલે કે
 કેવા વર્ણની છે ?

ઉત્તર—(ગોપમા !) હે ગૌતમ ! (કાલાઓ જાવ લિપ્ષામેવ વીરૂવણ્ણા)
 તે કૃષ્ણરાજિઓ અન્ધકારમય હોવાથી વર્ણ કાળી કહી છે. તેનો વર્ણ તમ-
 સ્કાયના જેવો જ ભયંકર હોય છે, જેવં પણ અતિશય શીઘ્રતાથી ઓળંગીને
 પાર કરીને ચાલ્યા જાય છે. અહીં “ જાવ (યાવત્) ” પદથી (કાલાવભાસાઃ
 ગમ્મીરોમહર્પજનન્યઃ, મીમાઃ ઉત્ત્રાસજનિકાઃ પરમકૃષ્ણા પ્રજ્ઞતાઃ) આ પૂર્વોક્ત
 વિશેષણો પણ અહણ કરવા ભેદ્યોં, એમ બતાવવામાં આવ્યું છે. આ વિશે-
 પણોનો અર્થ તમસ્કાયના પ્રકરણમાં આપવામાં આવ્યો છે. આ કથનનું તાત્પર્ય
 એ છે કે કોઈક દેવ જો તેમને સૌથી પહેલીજવાર દેખે છે, તો તેમને ભોતા

च्छेत्, ततः पश्चात्, शीघ्रं शीघ्रं, त्वरितं त्वरितमिति संग्राहम् । गौतमः पृच्छति-
 'कण्हराईणं भंते ! कति नामधेज्जा पण्णत्ता ?' हे भदन्त ! कृष्णराजीनां खलु
 कति नामधेयाः प्रज्ञप्ताः ? भगवानाह—' गोयमा ! अट्ट नामधेज्जा पण्णत्ता ' हे
 गौतम ! कृष्णराजीनाम् अट्ट नामधेयाः प्रज्ञप्ताः, कृष्णराजीनाम् अट्टो नामानि,
 तान्येवाह—'तं जहा' तद्यथा—'कण्हराई इ वा, मेहराई इ वा, मेघा इ वा, माघवई इ
 वा, वायफलिहा इ वा, वायपलिवखोभा इ वा, देवफलिहा इ वा, देवपलिवखोभा इ
 वा ' कृष्णराजिरिति वा, कृष्णवर्णरेखामयपुद्गलत्वात् ' कृष्णराजिः ' इतिनाम
 १, मेघराजिरिति वा, कृष्णमेघरेखा सदृशत्वात् ' मेघराजिः ' इतिनाम २,
 मघा इति वा, अन्धकारमयत्वात् पृथ्वीसदृशत्वात् ' मघा ' इतिनाम ३,

जाकर इनमें प्रविष्ट हो जाता है तो शीघ्र ही वह इनमें से कायगति के
 अतिवेग से और मनोगति के अतिवेग से युक्त होकर बाहर निकल
 आता है । अब गौतमस्वामी प्रभु से (कण्हराईणं भंते !) इन कृष्णरा-
 जियों के हे भदन्त ! (कइनामधेज्जा पण्णत्ता) कितने नाम हैं, ऐसा
 पूछते हैं और प्रभु इस प्रश्न के उत्तर में उनसे (गोयमा ! अट्ट नामधेज्जा
 पण्णत्ता) हे गौतम ! इन कृष्णराजियों के आठ नाम हैं—ऐसा कहते हैं
 (तं जहा) वे आठ नाम इस प्रकार से हैं—(कण्हराई इ वा) कृष्णवर्ण
 वाले पुद्गलों की रेखा स्वरूप होने के कारण इनका पहिला नाम (कृष्ण-
 राजि) ऐसा है । (मेहराई इ वा) कृष्णमेघों की रेखा जैसी होने के
 कारण इनका दूसरा नाम (मेघराजि) ऐसा है । छठवें नरक की पृथिवी
 के समान अन्धकार मय होने के कारण इनका तीसरा नाम (मघा)

तेना मतमां क्षोभ अनुभवे छे. कदाच कोर्ध देव ते कृष्णराजिओनी पासे
 जधने तेमां प्रवेश करे छे, तो ते कायगति अने मनोगतिना अतिवेगथी
 युक्त यधने ते कृष्णराजिओमांथी शीघ्रताथी बहार नीकणी आवे छे.

प्रश्न—(कण्हराईणं भंते ! कइ नामधेज्जा पण्णत्ता ?) हे भदन्त ! ते
 कृष्णराजिओनां कइनां नाम कइयां छे ?

उत्तर—(गोयमा ! अट्ट नामधेज्जा पण्णत्ता) हे गौतम ! ते कृष्णराजि-
 ओनां आठ नाम कइयां छे—(तं जहा) ते आठ नाम नीचे प्रमांछे छे—
 (कण्हराई इ वा) (१) ते कृष्णराजिओ कणां पण्णनां पुद्गलोनी रेखा इप
 डोवाथी तेमनुं पडैतुं नाम " कृष्णराजि " छे. (२) (मेहराई इ वा) कृष्ण
 मेघोनी रेखा जेवी डोवाने करेले तेमने " मेघराजि " पणु कडे छे. (३)
 छठी नारकनी पृथ्वी जेवी अन्धकारमय डोवाने लीधे तेतुं त्रीधुं नाम (मघा)

मायवती इति वा, अत्यन्तान्तरकारावृत्तस्यात् सप्तमनारकवृत्तिसदृशत्वात् 'माय-
वती' इति नाम ४, वातपरिधा इति वा, वात्यावन् भ्रमकारमयत्वात् दुर्लभ-
ध्यत्वाच्च 'वातपरिधा' इति नाम ५, वातपरिक्षोभा इति वा, वात्यावदेवान्ध-
कारावृत्तस्यात् परिक्षोभहेतुत्वान्न वातपरिक्षोभा इति नाम ६, 'देवपरिधा' इति वा,
देवानाम् अर्गलेव दुर्लभ्यत्वात् 'देवपरिधा' इति नाम ७, देवपरिक्षोभा इति वा देवानां

ऐसा है। (मघा) यह छटवें नरक का नाम है। (माघवी) यह सप्तम
नरक का नाम है—सो सप्तम नरक जैसा गाढ अंधकार से आवृत रहता
है उसी प्रकार ये कृष्णराजियां भी अत्यन्त-गाढ-अन्धकार से आवृत
रहती हैं अतः इनका चौथा नाम (माघवईइ वा) ऐसा है। (वायफलिहाइ
वा) जैसे वधूरा (आंधी) अन्धकारमय होता है और दुर्लभ्य होता है—
उसी प्रकार से ये कृष्णराजियां भी हैं—अतः उसके सादृश्य से इनका
भी पांचवां नाम (वातपरिधा) ऐसा है। (वायपलिकखोभाइ वा) तथा
वात्या-वधूरे की तरह ही अन्धकार से आवृत होने के कारण और
परिक्षोभ की हेतुभूत होने के कारण इनका ६ वां नाम (वातपरिक्षोभा)
ऐसा है। (देवफलिहाइ वा) देवों के लिये ये अर्गला की तरह दुर्लभ्य
होती हैं—इस कारण इनका ७ वां नाम देव-परिधा ऐसा है। (देवपलि-
कखोभाइ वा) देवों के लिये परिक्षोभ की कारण होने से इनका ८ वां
नाम (देवपरिक्षोभा) ऐसा है। इस तरह ये इनके आठ सार्थक नाम हैं।

(मघा) छे. (४) (माघवी) आ सातमी नरकतुं नाम छे. जेम सातमी
नरक अतिशय गाढ अंधकारथी छवायेली छे, तेम आ कृष्णराजियो पणु गाढ
अंधकारथी आच्छादित डोय छे, तेथी तेतुं 'वायु' नाम (माघवईइ वा) 'माघवी'
छे. (५) (वायफलिहाइ वा) जेवी रीते वधूरा (वांटाणियो) अंधकारमय
अनेदुर्लभ्य (जेने पार जणुं सुखेले धर्य पडे जेवे) डोय छे, तेम कृष्णराजियो
पणु अंधकारमय अने दुर्लभ्य डोय छे. ते कारणे तेमनुं पांचमुं नाम
"वातपरिधा" छे. (६) (वायपलिकखोभाइ वा) तथा वधूराणी जेम अंध-
कारथी वींटाणायेल डोवाने कारणे परिक्षोभनी जनक डोवाने लीधे-तेमने
"वातपरिक्षोभा" पणु कडे छे. (देवफलिहाइ वा) ते देवाने माटे अर्गला
पी जेम दुर्लभ्य डोवाने कारणे तेनुं सातमुं नाम "देवपरिधा" छे. (८)
(देवपलिकखोभाइ वा) देवोमां पणु परिक्षोभ उत्पन्न करनारी-डोवाथी तेनुं
आठमुं नाम "देव परिक्षोभा" छे. आ रीते तेना आठ सार्थक
(अर्थ प्रभाणुं ज) नाम छे.

પરિણોભદેતુત્વાત્ 'દેવપરિણોભા' ઇતિ નામ ૮, ઇત્યટૌ નામાનિ ભવન્તિ । ગૌતમઃ પૃચ્છતિ—'કળ્હરાઈઓ ણં મંતે ! કિં પુઢવીપરિણામાઓ, આડપરિણામાઓ, જીવ પરિણામાઓ, પોગ્ગલપરિણામાઓ ?' હે મદન્ત ! કૃષ્ણરાજયઃ સ્વલ્લ કિમ્ પૃથિવીપરિણામાઃ ? અથવા અપ્પરિણામાઃ ? જલપરિણામાઃ ? ઉતાહો જીવપરિણામાઃ ? અથવા પુદ્ગલપરિણામાઃ ભવન્તિ ? મગવાનાહ—'ગોયમા ! પુઢવીપરિણામાઓ, હે' ગૌતમ ! કૃષ્ણરાજયઃ પૃથિવીપરિણામાઃ સન્તિ, ઇવમ્ 'જીવપરિણામાઓ વિ' જીવપરિણામાઃ અપિ સન્તિ, તથા 'પોગ્ગલપરિણામાઓ વિ, પુદ્ગલપરિણામાઃ અપિ સન્તિ, કિન્તુ 'જો આડપરિણામાઓ' જો અપ્પરિણામાઃ કૃષ્ણરાજયો ભવન્તિ । ગૌતમઃ પૃચ્છતિ—'કળ્હરાઈસુ ણં મંતે ! સવ્વે પાણા, મ્હયા, જીવા, સત્તા ઉવવળ્ણપુવ્વા !' હે મદન્ત ! કૃષ્ણરાજિપુ સર્વે પ્રાણાઃ, મ્હતાઃ, જીવાઃ, સત્ત્વાઃ, કિમ્

અવ ગૌતમસ્વામી પૂછતે હૈં કિ—(કળ્હરાઈઓ ણં મંતે ! કિં પુઢવી પરિણામાઓ, આડપરિણામાઓ, જીવપરિણામાઓ, પોગ્ગલપરિણામાઓ) હે મદન્ત ! યે કૃષ્ણરાજિયાં કિસ કે પરિણામરૂપ હૈં—ઋયા પૃથિવી કે યે પરિણામરૂપ હૈં ? યા જલકે પરિણામરૂપ હૈં ? યા જીવ કે પરિણામરૂપ હૈં ? યા પુદ્ગલ કે પરિણામરૂપ હૈં ? ઇસકે ઉત્તર મેં પ્રમ્હુ ઉનસે કહતે હૈં—(ગોયમા) હે ગૌતમ ! (પુઢવિપરિણામાઓ) યે કૃષ્ણરાજિયાં પૃથિવી કે પરિણામરૂપ હૈં, (જીવપરિણામાઓ વિ) જીવ કે પરિણામરૂપ મ્હી હૈં । તથા (પોગ્ગલપરિણામાઓ વિ) પુદ્ગલ કે પરિણામરૂપ મ્હી હૈં । પરન્તુ યે કૃષ્ણરાજિયાં (જો આડપરિણામાઓ) જલકે પરિણામરૂપ નહીં હૈં । અવ ગૌતમસ્વામી પ્રમ્હુ સે ઇસા પૂછતે હૈં કિ—(કળ્હરાઈસુ ણં મંતે ! સવ્વે પાણા, મ્હયા, જીવા, સત્તા, ઉવવળ્ણપુવ્વા) હે મદન્ત ! ઇન કૃષ્ણરાજિયાં

હવે ગૌતમ સ્વામી મહાવીર પ્રભુને ઁવો પ્રશ્ન કરે છે કે (કળ્હરાઈઓ ણં મંતે ! કિં પુઢવી પરિણામાઓ, આડ પરિણામાઓ, જીવ પરિણામાઓ, પોગ્ગલ પરિણામાઓ ?) હે ભદન્ત ! કૃષ્ણરાજિઓ કેના પરિણામ રૂપ છે—શુ તેઓ પૃથ્વીના પરિણામ રૂપ છે ? કે જળના પરિણામ રૂપ છે ? કે જીવના પરિણામ રૂપ છે ? કે પુદ્ગલના પરિણામ રૂપ છે ?

તેનો ઉત્તર આપતા મહાવીર પ્રભુ ગૌતમ સ્વામીને કહે છે કે (ગોયમા ! હે ગૌતમ ! (પુઢવિ પરિણામાઓ) તે કૃષ્ણરાજિઓ પૃથ્વીના પરિણામ રૂપ છે, (જીવ પરિણામાઓ વિ) જીવના પરિણામ રૂપ છે, (પોગ્ગલપરિણામાઓ વિ) અને પુદ્ગલના પરિણામ રૂપ પણ છે, પરન્તુ તેઓ (આડ પરિણામાઓ) જળના પરિણામ રૂપ નથી.

હવે ગૌતમ સ્વામી મહાવીર પ્રભુને ઁવો પ્રશ્ન પૂછે છે કે (કળ્હરાઈસુ ણં

उत्पन्नपूर्वाः ? पूर्वमुत्पन्नाः ? भगवानाह—' हंता, गोयमा । असई, अदुवा अणंत-
 क्तुतो ' हे गौतम ! कृष्णराजिषु सर्वे प्राणादयो जीवाः अणक्तु भूयो भूयः,
 अथवा अनन्तकृत्यः अनन्तवारान् पूर्वम् उत्पन्नाः ' णो चैव णं वायरभाउकाइय-
 चाए, वायरभगणिकाइयत्ताए वा, वायरवणस्सइकाइयत्ताए वा ' किन्तु णो चैव
 खलु वादराष्कायिकतया, नो वा वादराग्निक्कायिकतया, नैव वा वादरवनस्पति-
 कायिकतया, ते प्राणादयः पूर्वम् उत्पन्नाः उत्पद्यन्ते, उत्पत्त्यन्ते वा तेषां तत्र
 स्वस्थानत्वाभावात् । इति ॥ सू० २ ॥

लोकान्तिकदेवयक्त्यता ।

कृष्णराजिपस्तावात् तन्निरुत्पत्तिलोकान्तिक देवविमानादिनक्त्यतामाह—
 ' एएसिणं भंते ' इत्यादि ।

मूलम्—एएसि णं अट्टण्हं कणहराईणं अट्टसु उवासंतरेसु
 अट्ट लोगतियविमाणापणत्ता, तंजहा—अच्चो?, अच्चिमालीर,

में समस्त प्राण, समस्त भूत, समस्त जीव, समस्त सत्व क्या पहिले
 उत्पन्न हो चुके हैं ? उत्तर में प्रभु कहते हैं कि—(हंता गोयमा ! असई
 अदुवा अणंतक्तुतो' हां, गौतम ! अनेक बार अथवा अनन्तवार सम-
 स्तप्राण आदिजीव वहां पूर्व में उत्पन्न हो चुके हैं । (णो चैव णं वायर
 आउकाइयत्ताए, 'वायरआगणिकाइयत्ताए वा, वायरवणस्सइकाइय-
 त्ताए वा) परन्तु वे वहां वादर अण्कायिक रूप से वादर अग्निक्कायिक
 रूप से और वादर वनस्पतिकायिक रूप से न पहिले उत्पन्न हुए हैं,
 न उत्पन्न होते हैं और न उत्पन्न होंगे । क्यों कि उनका वहां पर
 स्वस्थान नहीं है ॥ सू०२ ॥

भंते ! सव्वे पाणा, भूया, जीवा सत्ता उववण्णा पुव्वा ?) डे लदन्त । ते कृष्ण-
 राज्जिओमां शुं समस्त प्राणु, समस्त भूत, समस्त एव अने समस्त सत्व
 पूर्व (पडेलां) उत्पन्न थयं युक्थां छे ?

उत्तर—(हंता, गोयमा ! असई अदुवा अणंतक्तुतो वा) हां, गौतम !
 समस्त प्राणु आदि एवो अनेकवार अथवा अनंतवार तेषां उत्पन्न थयं
 युक्थां छे. (णो चैव णं वायर आउकाइयत्ताए, वायर अगणिकाइयत्ताए वा,
 वायरवणस्सइकाइयत्ताए वा) परन्तु तेषां त्यां वादर अण्कायिक रूपे वादर
 अग्निक्कायिक रूपे अने वादर वनस्पतिकायिक रूपे पडेलां कही पणु उत्पन्न थयां
 नथी, उत्पन्न थयां नथी अने उत्पन्न थये पणु नही, कारणु के त्यां तेषां
 स्वस्थान नथी. ॥ सूत्र २ ॥

वइरोयणो३, पभंकरे४, चंदाभे५, सूरभे६, सुक्राभे७, सुपइट्टाभे८,
मज्झे रिट्ठाभे । कहि णं भंते ! अच्ची-विमाणे पण्णत्ते ? गोयमा !
उत्तर-पुरत्थिमेणं । कहि णं भंते ! अच्चिमाली विमाणे पण्णत्ते ?
गोयमा ! पुरत्थिमेणं । एवं परिवाडीए णेयव्वं, जाव-कहि णं
भंते ! रिट्ठे विमाणे पण्णत्ते ? गोयमा ! बहुमज्झदेसभाए ।
एएसु णं अट्टसु लोगतियविमाणेसु अट्टविहा लोगतिया देवा
परिवसंति, तं जहा—

“ सारस्सयमाइच्चा, वण्ही वरुणा य गइतो या य ।

तुसिया अव्वा वाहा, अग्गिच्चा चेव रिट्ठा य ॥ १ ॥ ”

कहि णं भंते ! सारस्सया देवा परिवसंति ? गोयमा !
अच्चिम्मि विमाणे परिवसंति । कहि णं भंते ! आइच्चा देवा
परिवसंति ? गोयमा ! अच्चिमालिम्मि विमाणे । एवं णेयव्वं
जहाऽऽणुपुव्वाए, जाव-कहि णं भंते ! रिट्ठा देवा परिवसंति ?
गोयमा ! रिट्ठिम्मि विमाणे । सारस्सयमाइच्चाणं भंते ! देवाणं
कइ देवा, कइ देवसया परिवारे पण्णत्ते ? गोयमा ! सत्त-देवा,
सत्तदेवसया परिवारे पण्णत्ते । वण्ह-वरुणाणं देवाणं चउइस-
देवा, चउइस देवसहस्सा परिवारे पण्णत्ते । गइतोय-तुसियाणं
देवाणं सत्तदेवा, सत्तदेवसहस्सा परिवारे पण्णत्ते । अवसेसाणं
नव देवा, नव देवसया परिवारे पण्णत्ते ।

“ पढम-जुयलम्मि सत्त उ सयाणि, त्रीयम्मि चउइस सहस्सा ।
तइए सत्त सहस्सा, नव चेव सयाणि सेसेसु ॥ १ ॥ ”

તથા—“ સારસ્વતા ૧-આદિત્યા ૨ વહ્નો ૩ વરુણાઃ ૪ ગર્દતોયાઃ ૫ તુપિતા, ૬ અગ્ન્યાબાધા, ૭ આગ્નેયાઃ ૮ રિષ્ટાઃ.” ॥ ૧ ॥

કુત્ર સહુ ભદન્ત ! સારસ્વતાઃ દેવાઃ પરિવસન્તિ ? ગૌતમ ! અર્ચિષિ વિમાને પરિવસન્તિ । કુત્ર સહુ ભદન્ત ! આદિત્યા દેવાઃ પરિવસન્તિ ? ગૌતમ ! અર્ચિમાલૌ વિમાને, એવં ણાતવ્યં અપાઽઽનુપૂર્વાં યાવત્-કુત્ર સહુ ભદન્ત ! રિષ્ટાઃ

(તં જહા) उन लोकान्तिक देवोंक नाम इस प्रकार से हैं—(सारस्वतयमाइ-
च्चा) इत्यादि सारस्वत, आदित्य, वह्नि, वरुण, गर्दतो य, तुपित अग्ना-
बाध आग्नेय और इनके बीच में रिष्ट देव । (कहि णं भंते ! सारस्वत्या
देवा परिवसन्ति) हे भदन्त ! सारस्वत देव कहां पर रहते हैं ? (गोयमा)
हे गौतम ! (अच्चिम्मि विमाणे परिवसन्ति) अर्चिर्नामके विमानमें सार-
स्वत देव रहते हैं । (कहि णं भंते आइच्चा देवा परिवसन्ति) हे भदन्त !
आदित्य देव कहां पर रहते हैं ? (गोयमा) हे गौतम ! (अच्चिमालिम्मि
विमाणे) अर्चिमाली नामके विमान में आदित्य देव रहते हैं । (एवं
णेषव्वं जहाऽणुपुव्वीए) इसी तरह से यथानुपूर्वीं रिष्ट विमान तक
जानना चाहिये । (जाव-कहि णं भंते ! रिष्टा परिवसन्ति) हे भदन्त !
यावत् रिष्ट देव कहां पर रहते हैं ? (गोयमा) हे गौतम ! (रिद्धम्मि

આઠ પ્રકારના લોકાન્ટિક દેવ રહે છે. (તં જહા) તે લોકાન્ટિક દેવાનાં નામ
આ પ્રમાણે છે—(સારસ્વતયમાઈચ્ચા વર્ણીયરુણા ય ગર્દતોયા ય, તુસિયા, અવાબાહા,
અર્ચિચ્ચા ચેવ રિઠ્ઠા ય.) (૧) સારસ્વત, (૨) આદિત્ય, (૩) વહ્નિ (૪) વરુણ
(૫) ગર્દતોય, (૬) તુપિત, (૭) અગ્ન્યાબાધ, (૮) આગ્નેય અને તે આઠ
વિમાનોની વચ્ચેના વિમાનમાં રિષ્ટ દેવ.

(કહિ ણં ભંતે ! સારસ્વત્યા દેવા પરિવસન્તિ ?) હે ભદન્ત ! સારસ્વત
દેવ ક્યાં રહે છે ? (ગોયમા !) હે ગૌતમ ! (અચ્ચિમ્મિ વિમાણે પરિવસન્તિ)
સારસ્વત દેવ અર્ચિ નામના વિમાનમાં રહે છે. (કહિ ણં ભંતે ! આઈચ્ચા દેવા
પરિવસન્તિ ?) હે ભદન્ત ! આદિત્ય દેવ ક્યાં રહે છે ?

(ગોયમા !) હે ગૌતમ ! (અચ્ચિમાલિમ્મિ વિમાણે) આદિત્ય દેવ
અર્ચિમાલી વિમાનમાં રહે છે. (એવં ણેષવ્વં જહાઽણુપુવ્વીએ) એજ પ્રમાણે
અનુક્રમે રિષ્ટ વિમાન પર્યન્ત સમજવું—એટલે કે વહ્નિદેવ વૈરાચન વિમાનમાં,
વરુણ દેવ પ્રહર વિમાનમાં, ગર્દતોય દેવ ચન્દ્રાલ વિમાનમાં, તુપિત દેવ
સૂર્યોલ વિમાનમાં, અગ્ન્યાબાધ દેવ શુકાલ વિમાનમાં, અને આગ્નેય દેવ
સુપ્રતિષ્ઠાલ વિમાનમાં વસે છે. (જાવ કહિ ણં ભંતે ! રિઠ્ઠા પરિ
ભદન્ત ! રિષ્ટદેવ ક્યાં રહે છે ?

देवाः परिचसन्ति ? गौतम ! रिष्टे विमाने । सारस्वतादित्यानां भदन्त ! देवानां कति देवाः, कति देवशतानि परिवारः प्रज्ञप्तः? गौतम ! सप्त देवाः, सप्त देवशतानि परिवारः प्रज्ञप्तः, वह्नि-वरुणानां देवानां चतुर्दश देवाः, चतुर्दशदेवसहस्राणि परिचारः, प्रज्ञप्तः । गर्दतोय-तुपितानां देवानां सप्त देवाः, सप्त देवसहस्राणि परिवारः प्रज्ञप्तः । अवशेषाणां नव देवशतानि परिवारः प्रज्ञप्तः ।

विमाणे) रिष्ट विमानमें रिष्ट देव रहते हैं । (सारस्वतमाइच्चा णं भंते । देवाणं कइ देवा, कइ देवसया परिवारे पण्णत्ते) हे भदन्त ! सारस्वत देव और आदित्य देव इन दो देवों के कितने देव हैं ? और कितने सौ देवों का इनका परिवार है ? (गोयमा) हे गौतम ! (सत्त देवा, सत्त देवसया परिवारे पण्णत्ते) सारस्वत और आदित्य इन दो देवों के सात देव हैं और इनका परिवार सात सौ देवों का है । (वण्हि वरुणाणं देवाणं चउद्दसदेवा, चउद्दस देवसहस्सा परिवारे पण्णत्ते) वह्नि और वरुण इन देवों के चौदह देव हैं, और इनका परिवार चौदह हजार देवों का है । (गर्दतो य-तुसियाणं देवाणं सत्तदेवा, सत्तदेव-सहस्सा परिवारे पण्णत्ते-अवसेसाणं नव देवा नव देवसया परिवारे पण्णत्ते) गर्दतोय और तुपित इनके सात देव हैं और परिवार इनका सात हजार देवों का है । याकी के देवों के नौ ९ देव हैं और इनके परिवार में नौ ९ सौ देव हैं । इन देवों की परिवार संख्या ही इस गाथा द्वारा सूचित

(गोयमा !) हे गौतम ! (रिट्ठिम्मि विमाणे) रिष्ट विमानमां रिष्टदेव वसे छे.

(सारस्वतमाइच्चाणं भंते ! देवाणं कइ देवा, कइ देवसया परिवारे पण्णत्ते ?) हे भदन्त ! सारस्वत देव अने आदित्य देव, अने अन्ने देवाना आधिपत्यमां डेटला देवे छे ? अने डेटला सो देवानो तेभनो परिवार कथ्यो छे ?

(गोयमा !) हे गौतम ! (सत्तदेवा, सत्तदेवसया परिवारे) सारस्वत अने आदित्य अने अन्ने देवाना सात देव छे, अने तेभनो परिवार ७०० देवानो छे. (वण्हि वरुणाणं देवाणं चउद्दसदेवा, चउद्दसदेवसहस्सा परिवारे पण्णत्ते) वह्नि अने वरुण, अने अन्ने देवाना १४ देव छे, अने १४००० देवानो तेभनो परिवार छे. (गर्दतो य-तुसियाणं देवाणं सत्तदेवा, सत्तदेव-सहस्सा परिवारे पण्णत्ते-अवसेसा णं नव देवा नव देवसया परिवारे पण्णत्ते) गर्दतोय अने तुपितना सात देव छे, अने तेभनो परिवार ७०० देवानो कथ्यो छे. याकीना-देवाना नव देव छे, अने तेभनो परिवार ६०० देवानो छे. ते देवाना परिवारनी संख्या ७ आ गाथाभां अताववाभां आवी छे.

તથા—“ સારસ્વતા ૧-ઽઽદિત્યા ૨ વદ્ધો ૩ વચ્ચાધ ૪ ગદ્દતોયાધ ૫ ।

તુપિતા, ૬ અગ્ન્યાયાધ, ૭ આગ્નેયાધ ૮ રિષ્ટાધ ૯ ” ॥ ૧ ॥

કુત્ર સહુ ભદન્ત ! સારસ્વતાઃ દેવાઃ પરિવસન્તિ ? ગૌતમ ! અર્ચિષિ વિમાનેઃ પરિવસન્તિ । કુત્ર સહુ ભદન્ત ! આદિત્યા દેવાઃ પરિવસન્તિ ? ગૌતમ ! અર્ચિ- માલી વિમાને, એવં જાતવ્યં અથાઽઽનુપુષ્પાં યાવત્-કુત્ર સહુ ભદન્ત ! રિષ્ટાઃ

(તં જહા) उन लोकान्तिक देवोंके नाम इस प्रकार से हैं—(सारस्वतयमाह- च्चा) इत्यादि सारस्वत, आदित्य, वह्नि, वरुण, गदतो य, तुपित अग्न्या- याध आग्नेय और इनके बीच में रिष्ट देव । (कहि ण भंते ! सारस्वत्या देवा परिवसन्ति) हे भदन्त ! सारस्वत देव कहाँ पर रहते हैं ? (गोयमा) हे गौतम ! (अच्चिम्मि विमाणे परिवसन्ति) अर्चिर्नामके विमानमें सार- स्वत देव रहते हैं । (कहि ण भंते आह्च्या देवा परिवसन्ति) हे भदन्त ! आदित्य देव कहाँ पर रहते हैं ? (गोयमा) हे गौतम ! (अच्चिमालिम्मि विमाणे) अर्चिमाली नामके विमान में आदित्य देव रहते हैं । (एव जेयव्वं जहाऽणुपुष्पीए) इसी तरह से यथातुपूर्वा रिष्ट विमान तक जानना चाहिये । (जाव-कहि ण भंते ! रिष्टा परिवसन्ति) हे भदन्त ! यावत् रिष्ट देव कहाँ पर रहते हैं ? (गोयमा) हे गौतम ! (रिद्धिम्मि

આઠ પ્રકારના લોકાન્ટિક દેવ રહે છે. (તં જહા) તે લોકાન્ટિક દેવાનાં નામ આ પ્રમાણે છે—(સારસ્વતયમાહચ્ચા વર્ણદીવરુણા ય ગદતોયા ય, તુસિયા, અવાબાહા, અગ્નિચ્ચા- ચેત્ત રિષ્ટા ય) (૧) સારસ્વત, (૨) આદિત્ય, (૩) વહ્નિ (૪) વરુણ (૫) ગદ્દતોય, (૬) તુપિત, (૭) અગ્ન્યાયાધ, (૮) આગ્નેય અને તે આઠ વિમાનોની વચ્ચેના વિમાનમાં રિષ્ટ દેવ.

(કહિ ણ ભંતે ! સારસ્વત્યા દેવા પરિવસન્તિ ?) હે ભદન્ત ! સારસ્વત દેવ ક્યાં રહે છે ? (ગોયમા !) હે ગૌતમ ! (અચ્ચિમ્મિ વિમાણે પરિવસન્તિ) સારસ્વત દેવ અર્ચિ નામના વિમાનમાં રહે છે. (કહિ ણ ભંતે ! આહ્ચ્યા દેવા પરિવસન્તિ ?) હે ભદન્ત ! આદિત્ય દેવ ક્યાં રહે છે ?

(ગોયમા !) હે ગૌતમ ! (અચ્ચિમ્મિ વિમાણે) આદિત્ય દેવ અર્ચિમાલી વિમાનમાં રહે છે. (એવં જેયવ્વં જહાઽણુપુક્કીએ) એજ પ્રમાણે અનુક્રમે રિષ્ટ વિમાન પર્યન્ત સમજવું—એટલે કે વહ્નિદેવ વૈરોચન વિમાનમાં, વરુણ દેવ પ્રહલકર વિમાનમાં, ગદ્દતોય દેવ ચન્દ્રાલ વિમાનમાં, તુપિત દેવ સુયૌલ વિમાનમાં, અગ્ન્યાયાધ દેવ શુકાલ વિમાનમાં, અને આગ્નેય દેવ સુપ્રતિશાલ વિમાનમાં વસે છે. (જાવ કહિ ણ ભંતે ! રિષ્ટા પરિવસન્તિ) હે ભદન્ત ! રિષ્ટદેવ ક્યાં રહે છે ?

नेपु । लोकान्तिकविमानेषु खलु भदन्त ! कियन्तं कालं स्थितिः प्रज्ञप्ता ?
गौतम ! अष्ट सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता । लोकान्तिकविमानेषु भदन्त !
कियत्कम् अवाधया लोकान्तः प्रज्ञप्तः ? गौतम ! असंख्येयानि योजनसहस्राणि
अवाधया लोकान्तः प्रज्ञप्तः, तदेवं भदन्त ! तदेवं भदन्त ! इति ॥ सू० ३ ॥

॥ पष्ठशतके पञ्चमोऽंशकः समाप्तः ॥ ६-५ ॥

लोगंतियविमाणेषु ' यावत् हां गौतम ! अनेक चार अथवा अनन्तचारं
पहिले जीव उत्पन्न हो चुके हैं-परन्तु यहां पर-लोकान्तिक विमानों में
जीव अनेकवार अथवा अनन्त चार देवरूप से उत्पन्न नहीं हुए हैं ।
' लोगंतियविमाणेषु णं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ' हे भदन्त !
लोकान्तिक विमानों में कितनी स्थिति कही गई है ? ' गोयमा ! अट्ट-
सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता ' हे गौतम ! लोकान्तिक विमानों में आठ
सागरोपम की स्थिति कही गई है । ' लोगंतिय विमाणेहिंते णं भंते !
केवइयं अवाहाए लोगंते पण्णत्ते ' हे भदन्त ! लोकान्तिक विमानों से
कितनी दूर लोकान्त कहा गया है ? ' गोयमा ' हे गौतम ! लोकान्तिक
विमानों से ' असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं अवाहाए लोगंते पण्णत्ते '
असंख्यात हजार योजन दूर लोकान्त कहा गया है । ' सेवं भंते ! सेवं
भंते ! त्ति ' हे भदन्त ! जैसा आपने यह कहा है वह ऐसा ही है हे
भदन्त ! जैसा आपने कहा है वह ऐसा ही है । इति ।

बहुतो-णो चैव णं देवत्ताए लोगंतिय विमाणेषु) आ वक्तव्यता " डा गौतम !
अनेकवार अथवा अनंतवार पडेलां एवे। अर्द्धा उत्पन्न थर्धं युक्त्यां छे, परन्तु
अर्द्धा (लोकान्तिक विमानोभां) एव अनेकवार अथवा अनंतवार देवदूषे
उत्पन्न थया नथी, " त्यां सुधीनुं अक्षय्यं करवुं ।

(लोगंतिय विमाणेषु णं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?) हे भदन्त !
लोकान्तिक विमानोभां देवोनी स्थितिं कटला काणनी कळी छे ? (गोयमा ! अट्ट
सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता) हे गौतम ! त्यां आठसागरोपमनी स्थिति कळी
छे । (लोगंतिय विमाणेहिंते णं भंते ! केवइयं अवाहाए लोगंते पण्णत्ते ?)
हे भदन्त ! लोकान्तिक विमानोधीं कटले दूर (अंतरे) लोकान्त कळी छे ?
(गोयमा !) हे गौतम ! लोकान्तिक विमानोधीं (असंखेज्जाइं जोयण-
सहस्साइं अवाहाए लोगंते पण्णत्ते) असंख्यत हजार योजन दूर लोकान्त
कळी छे । (सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति) हे भदन्त ! आपनी वात साथी छे,
हे भदन्त ! आपे कळ्या प्रमाणे न छे । अम कळीने वदंथ्या नभस्कार करीने
गौतम स्वामी तेभने स्थाने जेसी गया ।

" प्रथमयुगले सप्त तु शतानि, द्वितीये चतुर्दश सदस्राणि ।

तृतीये सप्त सदस्राणि नवचैव शतानि श्रेणेषु ॥ १ ॥ "

लोकान्तिरुचिमानानि खलु भवन्त ! किंप्रतिष्ठितानि प्रज्ञप्तानि ? गौतम ! वायुप्रतिष्ठितानि प्रज्ञप्तानि, एवं शतव्यम् विमानानां प्रतिष्ठानम् बाहुल्योच्चत्तमेव संस्थानम्, ब्रह्मलोकवत्त्वयता शतव्या, यथा जीवाभिगमे देवोद्देशके यावद्-इन्त, गौतम ! असकृत्, अभयाऽनन्तकृतः, नो चैव देवतया लोकान्तिरुचिमा-

की गई है—(पद्म जुगलम् सत्त उ सयाणि, वीयम् चउदससहस्सा, तइए सत्तसहस्सा नव चैव सयाणि सेसेसु) प्रथमयुगल में सातसौ देवों का परिवार है, द्वितीययुगल में १४ हजार देवों का परिवार है। तृतीय युगल में सात हजार देवों का परिवार है। चाकी के देवों में नौ ९ सौ देवों का परिवार है।

(लोगंतिय विमाणा णं भंते ! किं पइट्ठिया पणत्ता) हे भवन्त ! लोकान्तिक देवोंके विमानोंका क्या आधार है ? अर्थात् लोकान्तिक देवोंके विमान किसके आधार पर हैं ? (गोयमा) हे गौतम ! (वाउपइट्ठिया पणत्ता) लोकान्तिक देवोंके विमान वायुके आधार पर हैं। (एवं णेयव्वं विमाणाणपइट्ठाणं) इस प्रकार से विमानोंका प्रतिष्ठान जानना चाहिये। (बाहुल्लुच्चत्तमेव संठाणं, वंभल्लोयवत्त्वयता णेयव्वा-जहा जीवाभिगमे देवुद्देशए) विमानोंका बाहुल्य, इनकी ऊंचाई तथा इनका संस्थान-आकार जिस प्रकार से ब्रह्मलोककी वत्त्वयता जीवाभिगम सूत्र में जीव उद्देश में कही गई है उसी प्रकार से जानना चाहिये। (जाव हंता गोयमा ! असंइ अट्टुवा अणंतदुक्खुत्तो-णो चैव णं देवत्ताए

(पद्म जुगलम् सत्त उ सयाणि, वीयम् चउदससहस्सा, तइए सत्तसहस्सा नवचैव सयाणि सेसेसु) पड़ेला युगलमां (जेना समूडमां) सातसौ देवोना, धीला युगलमां चौदह हजार देवोना, त्रीला युगलमां सात हजार देवोना अने आडीनामां नवसौ देवोना परिवार छे।

(लोगंतिय विमाणा णं भंते ! किं पइट्ठिया पणत्ता ?) हे भवन्त ! लोकान्तिक देवोनां विमान केना आधारे रडेलां छे ?

(गोयमा !) हे गौतम ! (वाउपइट्ठिया पणत्ता) लोकान्तिक देवोनां विमानो वायुना आधारे रडेलां छे। (एवं णेयव्वं विमाणाणपइट्ठाणं) आ प्रभाए तेमना प्रतिष्ठान (आधारे) ना विषे समज्जुं। (बाहुल्लुच्चत्तमेव संठाणं, वंभल्लोयवत्त्वयता णेयव्वा-जहा जीवाभिगमे देवुद्देशए) विमानोनी विशाणता, उयाधं अने आकार, प्रस्योडकी लुवाभिगम सूत्रना लुवउद्देशकमां डेडेदी पइत्तयता प्रभाए समज्जवा। (जाव हंता गोयमा ! असंइ अ

रिष्टाभः । तत्र उत्तरपूर्ववर्तिन्योः कृष्णराज्योरभ्यन्तरे प्रथमम् अर्चिनामकं विमानं प्रज्ञप्तम् १, पूर्ववर्तिन्योस्तयोर्वाह्यमध्ये द्वितीयम् अर्चिमांलिनामकं विमानम् २, पूर्वदक्षिणवर्तिन्योस्तयोरभ्यन्तरे तृतीयं वैरोचननामकं विमानम् ३, दक्षिणवर्तिन्योस्तयोर्मध्ये वहिश्चतुर्थं प्रभङ्करनामकं विमानम् ४, दक्षिण-पश्चिमवर्तिन्योस्तयोरभ्यन्तरे पञ्चमं चन्द्राभनामकं विमानम् ५. पश्चिमवर्तिन्योस्तयोर्मध्ये वहिः षष्ठं सूर्या-

हुई कृष्णराजियों के बीच में प्रथम अर्चिनाम का विमान है । पूर्वदिशा में रही हुई बाह्य और आभ्यन्तर कृष्णराजियों के बीच में द्वितीय अर्चिमांलि नाम का-विमान है । पूर्वदिशा और दक्षिणदिशा की कृष्णराजियों के बीच में तीसरा वैरोचन नामका विमान है । दक्षिणदिशा में रही हुई कृष्णराजियों के बीच में चौथा प्रभंकर नामका विमान है । दक्षिण और पश्चिम की कृष्णराजियों के बीच में पांचवां चन्द्राभ नाम का विमान है । पश्चिमदिशा की दो कृष्णराजियों के बीचमें बाहिर की ओर छठा सूर्याभ नाम का विमान है । पश्चिम और उत्तर की कृष्णराजियों के बीच में सातवां शुक्राभ नाम का विमान है । तथा उत्तर-दिशा की कृष्णराजियों के बीच में आठवां सुप्रतिष्ठाभ नामका विमान है । और सर्व के भीतर रिष्टाभ नामका नौवां विमान है । यहां पर ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिये कि “ यहां तो दो दो कृष्णराजियों के बीच में अर्चि आदि आठ विमानों की वक्तव्यता को कथन

(३) वैशेयन, (पभंकरे) (४) प्रभंकर, (चंद्राभे) (५) चन्द्राभ, (सुराभे) (६) सूर्याभ (सुक्राभे) (७) शुक्राभ, (सुप्रद्विष्टाभे) अने (८) सुप्रतिष्ठाभ. ते आठेनी वर्ये रिष्टाभ नामतुं विमान छे. उत्तर दिशा अने पूर्व दिशाभां रडेदी कृष्णराजिओनी वर्ये पडेतुं अर्चि नामतुं विमान छे. पूर्व दिशाभां रडेदी षाह्य (अक्षरनी) अने आभ्यन्तर (अंदरनी) कृष्णराजिओनी वर्ये षीतुं अर्चिमांली नामतुं विमान छे. पूर्व दिशा अने दक्षिण दिशानी कृष्णराजिओनी वर्ये त्रीतुं वैशेयन नामतुं विमान छे. दक्षिण दिशानी षाह्य अने आभ्यन्तर कृष्णराजिओनी वर्ये चोथुं प्रभंकर विमान छे. दक्षिण दिशानी अने पश्चिम दिशानी कृष्णराजिओनी वर्ये पांचमुं चन्द्राभ नामतुं विमान छे. पश्चिम दिशानी षाह्य अने आभ्यन्तर कृष्णराजिओनी वर्ये छटुं सूर्याभ नामतुं विमान छे. पश्चिम अने उत्तर दिशा वर्येनी, कृष्णराजिओनी वर्ये सातमुं शुक्राभ नामतुं विमान छे. अने उत्तर दिशानी षाह्य अने आभ्यन्तर कृष्णराजिओनी वर्ये आठमुं सुप्रतिष्ठाभ नामतुं विमान छे. अने ते अघांनी वर्ये रिष्टाभ नामतुं-नवमुं विमान छे.

अहीं ओवी आशंका करवी जेधये नहीं छे “ अहीं तो जे, जे कृष्णराजिओनी वर्ये रडेलां अर्चि आदि आठ विमानेनी वक्तव्यता यादी रही

टीका-एषतिष्ठं अट्टहं कण्हराईणं अट्टसु उवासंतरेसु अट्ट लोगतियविमाना पण्णत्ता पतासां खलु पूर्ववर्गितानाम् अट्टानां कण्णराजीनाम् अट्टसु अवकाशान्तरेषु द्वयोरन्तरं मच्चम् अवकाशान्तरं तेषु इत्यर्थः, अट्ट लोकांतिकविमानानि लोकास्य पञ्चम-ब्रह्मलोकस्य अन्ते समीपे भवानि लोकांतिकानि, तानि च तानि विमानानि चेति लोकांतिकविमानानि । अथवा लोकांतिकाः तज्ज्जातीयादेवास्तेषां विमाना-नीति लोकांतिकविमानानि प्राप्तानि । तान्येवाह—‘तं जहा’-तयथा-‘अच्ची १, अच्चिमाली २, वड्ढरोयणे ३, पमंकरे ४, चंदाभे ५, सुराभे ६, सुक्काभे ७, सुपट्टाभे, मज्जे रिट्ठाभे’ अचिः १, -अचिमाळिः २, -वैरोचनः ३, -प्रभंकरः ४, -चन्द्राभः ५, -सूर्याभः ६, -शुक्राभः ७, -सुप्रतिष्ठाभः ८, मध्ये

टीकार्थ-कृष्णराजी के प्रस्तावसे उसके समीपवर्ती लोकांतिक देवों के विमान आदि की चक्षुष्यता को इस सूत्र द्वारा सूत्रकार कह रहे हैं कि-‘एषतिष्ठं अट्टहं कण्हराईणं अट्टसु उवासंतरेसु अट्टलोगतिय विमाना पण्णत्ता’ इन आठ कृष्णराजियों के आठ अवकाशान्तरों में अर्थात् दो दो कृष्णराजियों के बीच में-आठ लोकांतिक विमान कहे गये हैं । ये लोकांतिक विमान इसलिये कहलाते हैं कि ये पञ्चम ब्रह्मलोक के अन्त-समीप में हैं । अथवा-लोकांतिक देवों के ये विमान हैं इसलिये इन्हें लोकांतिक कहा गया है । ‘तं जहा’ इनके नाम इस प्रकार से हैं-‘अच्ची १, अच्चिमाली २, वड्ढरोयणे ३, पमंकरे ४, चंदाभे ५, सुराभे ६, सुक्काभे ७, सुपट्टाभे ८ मज्जे रिट्ठाभे’ अचि १, अचि-माली २, वैरोचन ३, प्रभंकर ४, चन्द्राभ ५, सूर्याभ ६, शुक्राभ ७, सुप्रतिष्ठाभ ८ और बीच में रिट्ठाभ । उत्तरदिशा और पूर्वदिशा में रही

टीकार्थ-कृष्णराजिओनी समीपमां उडेवां लोकांतिक विमानानुं सूत्रकार आ सूत्रमां निउपलु करे छे-(एषतिष्ठं अट्टहं कण्हराईणं अट्टसु उवासंतरेसु अट्ट लोगतिय विमाना पण्णत्ता) ते आठ कृष्णराजिओनी आठ अवकाशान्तर-सोमां (जे, जे कृष्णराजिओनी वरुचे) आठ लोकांतिक विमानो कइयां छे-तेभने लोकांतिक विमान उडेवानुं करे लु ओं छे के तेओ अक्षलोक नामनां पांयमां देवलोकना अन्त भागमां (समीपमां) छे, अथवा लोकांतिक देवोनां ते विमानो डोवाथी तेभने ‘लोकांतिक विमानो’ कइयां छे, (‘तं जहा’) ते आठ लोकांतिक विमानोनां नाम नीचे प्रभाषु छे—

(अच्ची) (१) अचि, (अच्चिमाली) (२) अचिमाळी, (वड्ढरोयणे)

रिष्टाभः । तत्र उत्तरपूर्ववर्तिन्योः कृष्णराज्योरभ्यन्तरे प्रथमम् अर्चिनामकं विमानं प्रज्ञप्तम् १, पूर्ववर्तिन्योस्तयोर्बाह्यमध्ये द्वितीयम् अर्चिर्मालिनामकं विमानम् २, पूर्वदक्षिणवर्तिन्योस्तयोरभ्यन्तरे तृतीयं वैरोचननामकं विमानम् ३, दक्षिणवर्तिन्योस्तयोर्मध्ये वहिश्चतुर्थं प्रभङ्करनामकं विमानम् ४, दक्षिण-पश्चिमवर्तिन्योस्तयोरभ्यन्तरे पञ्चमं चन्द्राभनामकं विमानम् ५, पश्चिमवर्तिन्योस्तयोर्मध्ये वहिः षष्ठं सूर्या-

हुई कृष्णराजियों के बीच में प्रथम अर्चिनाम का विमान है । पूर्वदिशा में रही हुई बाह्य और आभ्यन्तर कृष्णराजियों के बीच में द्वितीय अर्चिमालि नाम का-विमान है । पूर्वदिशा और दक्षिणदिशा की कृष्णराजियों के बीच में तीसरा वैरोचन नामका विमान है । दक्षिणदिशा में रही हुई कृष्णराजियों के बीच में चौथा प्रभंकर नामका विमान है । दक्षिण और पश्चिम की कृष्णराजियों के बीच में पांचवां चन्द्राभ नाम का विमान है । पश्चिमदिशा की दो कृष्णराजियों के बीचमें बाहिर की ओर छठा सूर्याभ नाम का विमान है । पश्चिम और उत्तर की कृष्णराजियों के बीच में सातवां शुक्राभ नाम का विमान है । तथा उत्तरदिशा की कृष्णराजियों के बीच में आठवां सुप्रतिष्ठाभ नामका विमान है । और सर्व के भीतर रिष्टाभ नामका नौवां विमान है । यहां पर ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिये कि “ यहां तो दो दो कृष्णराजियों के बीच में अर्चि आदि आठ विमानों की वक्तव्यता को कथन

(३) वैरोचन, (पभंकरे) (४) प्रभंकर, (चंद्राभे) (५) चन्द्राभ, (सुराभे) (६) सूर्याभ (शुक्राभे) (७) शुक्राभ, (सुप्रतिष्ठाभे) अने (८) सुप्रतिष्ठाभ. ते आठेनी वर्ये रिष्टाभ नामतुं विमान छे. उत्तर दिशा अने पूर्व दिशाभां रडेवी कृष्णराजियोनी वर्ये पडेतुं अर्चि नामतुं विमान छे. पूर्व दिशाभां रडेवी बाह्य (भंडारनी) अने आभ्यन्तर (अंदरनी) कृष्णराजियोनी वर्ये भीगु' अर्चिमाली नामतुं विमान छे. पूर्व दिशा अने दक्षिण दिशानी कृष्णराजियोनी वर्ये त्रीगु' वैरोचन नामतुं विमान छे. दक्षिण दिशानी बाह्य अने आभ्यन्तर कृष्णराजियोनी वर्ये चोथुं प्रभंकर विमान छे दक्षिण दिशानी अने पश्चिम दिशानी कृष्णराजियोनी वर्ये पांचसुं चन्द्राभ नामतुं विमान छे. पश्चिम दिशानी बाह्य अने आभ्यन्तर कृष्णराजियोनी वर्ये छटकुं सूर्याभ नामतुं विमान छे. पश्चिम अने उत्तर दिशा वर्येनी, कृष्णराजियोनी वर्ये सातसुं शुक्राभ नामतुं विमान छे. अने उत्तर दिशानी बाह्य अने आभ्यन्तर कृष्णराजियोनी वर्ये आठसुं सुप्रतिष्ठाभ नामतुं विमान छे. अने ते भंधानी वर्ये रिष्टाभ नामतुं नवसुं विमान छे.

अर्ही अेवी आशंका करवी जेधये नहीं के “ अर्ही तो जे, जे कृष्णराजियोनी वर्ये रडेलां अर्चि आदि आठ विमानोनी वक्तव्यता यादी रही

भनामकं विमानम्, पश्चिमोत्तरवर्तिन्योस्तगोरभ्यन्तरे सप्तमं शुक्राभनामकं विमानम् ७, उत्तरवर्तिन्योस्तगोर्मध्ये अष्टमं सुप्रतिष्ठाभनामकं विमानम् ८, सर्वाभ्यन्तरे च रिष्टाभनामकं विमानं प्रज्ञप्तम् । अत्र द्वयोरभ्यन्तरवर्तिषु अष्टसु अर्चिःप्रभृतिषु विमानेषु यत्कच्येषु यत् सर्वकृष्णराजिनां मध्यभागवर्तितया रिष्टाभनामकं नवमं विमानमुक्तम् तत् विमानप्रधानावादासेवमिति न तस्य अर्थान्तरप्रस्तारशङ्काकार्या । ' कहि णं भंते ! अग्नि-विमाणे पण्णसे ? ' गौतमः पृच्छति-हे भदन्त ! कुत्र कस्मिन् प्रदेशे खलु अर्चिनामकं विमानं प्रज्ञप्तम् ? भगवानाह- ' गोयमा ! उत्तर-पुरत्थिमेणं ' हे गौतम ! उत्तर-पौरस्त्ये-उत्तरपूर्वदिगन्तराले अर्चिर्विमानं प्रज्ञप्तम् । गौतमः पृच्छति- ' कहि णं भंते ! अच्चिमाळी विमाणे पण्णसे । ' हे भदन्त ! कुत्र खलु अर्चिर्गालिनामकं विमानं प्रज्ञप्तम् ? भगवानाह-

चल रहा है फिर यहां नहीं रिष्टाभ विमान का कथन क्यों किया गया) " क्यों कि रिष्टाभ नामका विमान सप्त कृष्णराजियों के मध्य-भाग में रहा हुआ है-अतः विमान के प्रस्ताव से यहां पर उसके कथन करने में कोई असंगति नहीं है ।

अब गौतमस्वामी प्रभु से इसी पूर्वोक्त विमानों के रहने के स्थान को पूछते हैं कि- ' कहि णं भंते ! अच्चिचिमाणे पण्णसे ' हे भदन्त ! अर्चिनाम का विमान किस स्थान पर कहा गया है ? इसके उत्तर में प्रभु उनसे कहते हैं कि ' गोयमा ' हे गौतम ! ' उत्तरपुरत्थिमेणं ' उत्तरदिशा और पूर्वदिशा के अन्तराल में यह अर्चि नामका विमान है ऐसा जानना चाहिये । ' कहि णं भंते ! अच्चिमाळीविमाणे पण्णसे ' हे भदन्त ! अर्चिमाळी नाम का जो दूसरा विमान है वह कहाँ पर है ?

छे, तो अर्धी नवमां रिष्टाभ विमाननुं कथन करवानी शी करे छे ? "

समाधान-रिष्टाभ विमान ते आठे विमानोनी तथा आठे कृष्णराजिनीं ओनी वर्ये आवेतुं छे. अर्धी ते आठे लोकान्तिक विमानोनी वक्षतव्यता आवती होवाथी, तेमनी वर्ये रडेला रिष्टाभ विमाननुं कथन करवामां कछे पण्ण प्रकारनी असंगतता ज्ञाती नथी.

इसे गौतम स्वामी ते लोकान्तिक विमानोनां स्थानना विषयमां प्रश्न पूछे छे- (कहि णं भंते ! अच्चिचिमाणे पण्णसे ?) हे भदन्त ! अर्चि-नामनुं विमान क्या स्थाने आवेतुं छे ?

उत्तर-(गोयमा !) हे गौतम ! (उत्तरपुरत्थिमेणं) उत्तर अने पूर्वादिशानी वर्ये अर्चि नामनुं विमान रडेतुं छे, जेभ समज्जुं.

प्रश्न-(कहि णं भंते ! अच्चिमाळी विमाणे पण्णसे ?) हे भदन्त ! अर्चि-माळी नामनुं जेठुं लोकान्तिक विमान क्या स्थाने छे ?

‘गोयमा ! पुरत्थिमेणं’ हे गौतम ! पौरस्त्ये-पूर्ववाह्यभागे अर्चिर्मालिनामकं विमानं प्रज्ञप्तम् । ‘एवं परिवाडिणं णोयञ्चं जाव’ एवंपरिपाट्या क्रमेणैव अन्यान्यपि अश्लिष्टानि पट्ट विमानानि यथायथं विज्ञेयानि यावत्-वैरोचनादिसुप्रतिष्ठाभविमान-पर्यन्तम् । तानि च यथाक्रमं प्रतिपादितान्येव । गौतमः पृच्छति-‘कहिणं भंते ! रिट्ठे विमाणे पण्णत्ते !’ हे भदन्त ! कुत्र कस्मिन् प्रदेशे खलु रिष्टं रिष्टाभनामकं विमानं प्रज्ञप्तम् ? भगवानाह-‘गोयमा ! बहुमज्झदेसभाए’ हे गौतम ! रिष्टाभं विमानं बहुमध्यभागे सर्वाभ्यन्तरभागे प्रज्ञप्तम् । ‘एणसु णं अट्टसु लोगंतियविमाणेषु अट्टविहा लोगंतिया देवा परिवसंति’ एतेषु उपरिवर्णितेषु अट्टसु लोकान्तिकविमानेषु अष्टविधाः अष्टप्रकारकाः लोकान्तिकाः देवाः परिवसन्ति । गाथया तानाह-

इस गौतम के प्रश्न के समाधान निमित्त प्रभु उनसे कहते हैं कि हे गौतम ! ‘पुरत्थिमे णं’ अर्चिर्माली नाम का विमान पूर्वदिशा के वाह्य-भाग में कहा गया है । ‘एवं परिपाडिणं णोयञ्चं जाव’ इसी क्रम से सुप्रतिष्ठाभ विमान तक छह विमानों के रहने के संबंध में जानना चाहिये । कौन विमान कहाँ पर है यह पहिले यथाक्रम प्रकट कर ही दिया गया है । अब गौतमस्वामी प्रभु से पूछते हैं कि-‘कहि णं भंते ! रिट्ठे विमाणे पण्णत्ते’ हे भदन्त ! रिष्ट अर्थात् रिष्टाभ नाम का विमान किस स्थान पर है ? उत्तर में प्रभु उनसे कहते हैं कि-‘गोयमा ! बहुमज्झदेसभाए’ हे गौतम ! रिष्टाभ नाम का विमान बहुमध्यभाग में-सब के बीच में है । ‘एणसु णं अट्टसु लोगंतिय विमाणेषु अट्टविहा लोगंतिया देवा परिवसंति’ ऊपर में वर्णित इन आठ लोकान्तिक विमानों में आठ प्रकार के लोकान्तिक देव रहते हैं । इस गाथा द्वारा सूत्रकार

(पुरत्थिमेणं) हे गौतम ! ते विमान पूर्व दिशाना वाह्य भागमां छे ओम समञ्जुं. (एवं परिवाडिणं णोयञ्चं जाव) आञ्ज कम् अनुसार वैरोचनथी सुप्रतिष्ठाभ पर्यन्तना आकीना छ विमानोनुं स्थान समञ्जुं. कयुं विमान कया स्थाने छे ते आञ्ज पानामां उपर अनुक्रमे प्रकट करवामां आवेत्त छे.

इवे गौतम स्वामी महावीर प्रभुने ओवे प्रश्न पूछे छे के-(कहि णं भंते ! रिट्ठे विमाणे पण्णत्ते) हे भदन्त ! रिष्ट (रिष्टाभ) नामनुं विमान कयां छे ?

उत्तर—(गोयमा ! बहुमज्झदेसभाए) हे गौतम ! रिष्टाभ नामनुं विमान ते आठेनी वञ्चोवञ्च छे.

(एणसु णं अट्टसु लोगंतियविमाणेषु अट्टविहा लोगंतिया देवा परिवसंति) उपर्युक्त आठ लोकान्तिक विमानोमां आठ प्रकारना लोकान्तिक देव रहे छे. नीचेनी गाथामां सूत्रकारे ते आठ लोकान्तिक देवानां नाम प्रकट कयां छे.

‘ तं जहा ’ तद्यथा—“ सारस्वतयमाइच्चा, वह्नि वरुणा न गर्दतोया य ।

तुसिया अव्यावाहा, अग्निच्चा नेव रिष्टा य ॥ १ ॥ ”

सारस्वता—ऽऽदित्या वह्नयो वरुणाश्च गर्दतोयाभ,

तुपिता अव्यावाधा आग्नेयाधैर रिष्टाश्च ॥ १ ॥

गौतमः पृच्छति—‘ कहि णं भंते ! सारस्वतया देवा परिवसन्ति ? ’ हे भदन्त !

कुत्र कस्मिन् विमाने खलु सारस्वताः देवाः परिवसन्ति ? भगवानाह—‘ गोयमा !

अच्चिम्मि विमाणे परिवसन्ति ’ हे गौतम ! अर्चिणि विमाने सारस्वता देवाः परि-

वसन्ति । गौतमः पृच्छति—‘ कहि णं भंते ! आइच्चा देवा परिवसन्ति ? ’ हे भदन्त !

कुत्र कस्मिन् विमाने खलु आदित्याः देवाः परिवसन्ति ? भगवानाह—‘ गोयमा !

अच्चिमालिम्मि विमाणे ’ हे गौतम ! अर्चिमाली विमाने आदित्याः देवाः परि-

वसन्ति । ‘ एवं णेयव्वं जहाऽऽणुपुब्बीए जाव ’ एवं यथाऽऽणुपुब्ब्या यथाक्रमेण

ने इन्हीं लोकान्तिक देवोंको कहा है । जैसे—“ सारस्वतयमाइच्चा इत्यादि ।

सारस्वत, आदित्य, वह्नि, वरुण, गर्दतोय, तुपित, अव्यावाध, आग्नेय और रिष्ट ।

अब गौतमस्वामी प्रभु से ऐसा पूछते हैं कि—‘ कहि णं भंते ! सारस्वतया देवा परिवसन्ति ’

हे भदन्त ! सारस्वत देव कहाँ पर रहते हैं ? इसके उत्तर में प्रभु उनसे कहते हैं—‘ गोयमा ’ हे गौतम !

‘ अच्चिम्मि विमाणे परिवसन्ति ’ अर्चि नाम के विमान में सारस्वत

देव रहते हैं । गौतम पुनः प्रभु से पूछते हैं कि—‘ कहि णं भंते ! आइच्चा

देवा परिवसन्ति ’ हे भदन्त ! आदित्य देव कहाँ पर रहते हैं ? उत्तर में

प्रभु कहते हैं कि ‘ गोयमा ’ हे गौतम ! ‘ अच्चिमालिम्मि विमाणे ’

‘ सारस्वतयमाइच्चा ’ धृत्यादि ।

(१) सारस्वत, (२) आदित्य (३) वह्नि, (४) वरुण, (५) गर्दतोय, (६) तुपित, (७) अव्यावाध, (८) आग्नेय अने रिष्टाभ विमानभां रिष्ट देव.

ते देवो कथा कथा विमानभां रडे छे, ते जणुवा भाटे ‘ गौतम स्वामी भडापीर प्रभुने आ प्रभाणु प्रश्न पूछे छे—(कहि णं भंते ! सारस्वतया देवा परिवसन्ति ?) छे लदन्त ! सारस्वत देव कथां (कथा विमानभां) रडे छे ?

उत्तर—(गोयमा !) छे गौतम ! (अच्चिम्मि विमाणे परिवसन्ति) सारस्वत देव अर्चि नामना पडेला विमानभां रडे छे.

प्रश्न—(कहि णं भंते ! आइच्चा देवा परिवसन्ति ?) छे लदन्त ! आदित्य देव कथां रडे छे ?

उत्तर—(अच्चिमालिम्मि विमाणे) छे गौतम ! आदित्य देव अर्चिमाली विमानभां रडे छे. (एवं णेयव्वं जहाणुपुब्बीए जाव) अणु कमे धने

यावत्-बह्विप्रभृतीनामाग्नेयान्तानामपि पण्णां निवासस्थानं विज्ञातव्यम् । तथाहि-
 वह्नयो देवाः वैरोचने विमाने, वरुणः देवः प्रभङ्करे विमाने, गर्दतोयाः देवाः
 चन्द्राभे विमाने, तुषिता देवाः सूर्याभे विमाने, अव्याधाथा देवाः शुक्राभे विमाने,
 आग्नेयाश्च देवाः सुप्रतिष्ठाभे विमाने परिवसन्ति । गौतमः पृच्छति-‘कहि णं भंते !
 रिद्धा देवा परिवसन्ति ?’ हे भदन्त ! कुत्र कस्मिन् विमाने खलु रिष्टाः देवाः
 परिवसन्ति ? भगवानाह-‘गोयमा । रिद्धम्मि विमाणे’ हे गौतम ! रिष्टे रिष्टाभ-
 नामके सर्वमध्यवर्तिनि विमाने रिष्टा देवाः परिवसन्ति । गौतमः पृच्छति-
 ‘सारस्सयमाइच्चाणं भंते ! देवाणं कइ देवा कइ देवसया परिवारे पण्णत्ते ?’ हे

अचिमाली विमान में आदित्य देव रहते हैं । ‘एवं णेषव्वं जहाणुपुव्वीए
 जाव’ इसी क्रम से वह्नि से लेकर आग्नेय देवों तक के निवासस्थान
 के विषय में जानना चाहिये-जैसे वह्नि देव वैरोचन विमान में रहते
 हैं, वरुणदेव प्रभंकर विमान में रहते हैं, गर्दतोय देव चन्द्राभ विमानमें
 रहते हैं-तुषितदेव सूर्याभविमानमें रहते हैं, अव्याधाधदेव शुक्राभ
 विमान में रहते हैं और अग्नेय देव सुप्रतिष्ठाभ विमान में रहते हैं ।
 इस प्रकार से ये आठ लौकान्तिक देवों के रहने के आठ विमान कहे
 गये हैं । अब गौतम प्रभु से ऐसा पूछते हैं कि ‘कहि णं भंते ! रिद्धा
 देवा परिवसन्ति’ हे भदन्त ! रिष्ट देव किस विमान में रहते हैं ? उत्तर
 में गौतमसे प्रभु कहते हैं कि-‘गोयमा ! रिद्धम्मि विमाणे’ सर्वमध्यवर्ती
 रिष्टाभ नामके विमान में रिष्ट देव रहते हैं । अब गौतमस्वामी प्रभु से
 ऐसा पूछते हैं कि-‘सारस्सयमाइच्चाणं भंते ! देवाणं कइ देवा कइ

आग्नेय देवा पर्यन्तना देवाना निवासस्थान विषे समञ्जुं उडेवानुं तात्पर्यं
 ओ छे डे वह्नि देव वैरोचन विमानमां रडे छे, वरुण देव प्रभंकर विमानमां
 रडे छे, गर्दतोय देव चन्द्राभ विमानमां रडे छे, तुषित देव सूर्याभ विमानमां
 रडे छे, अव्याधाध देव शुक्राभ विमानमां रडे छे अने आग्नेय देव सुप्रति-
 ष्ठाभ विमानमां रडे छे. आ रीते ते आठ लौकान्तिक देवानां निवासस्थान इप
 आठ विमानो उछां छे.

प्रश्न-“कहि णं भंते ! रिद्धा देवा परिवसन्ति ?” हे भदन्त ! रिष्टदेव
 क्या विमानमां रडे छे ?

उत्तर-“गोयमा ! रिद्धम्मि विमाणे” हे गौतम ! सर्व मध्यवर्ती रिष्टाभ
 नामना विमानमां रिष्ट देव रडे छे.

इसे लौकान्तिक देवाना परिवार आदिना विषयमां गौतम स्वामी प्रश्न
 पूछे छे-“सारस्सयमाइच्चाणं भंते ! देवाणं कइ देवा कइ देवसया परिवारे पण्णत्ते ?”

भदन्त ! सारस्वतादित्ययोर्भयोर्देवयोः कनि देवाः-परिवारः पञ्चमः? भगवानार-
हे गौतम ! समुदितयोरेव सारस्वतादित्ययोर्देवयोः सप्त देवाः-परिवारदेवस्वामिनः
प्रज्ञप्ताः । अत्र द्विवचनेन कथनं संप्रहगाथायां युगलरूपेण प्रतिपादनात् । सप्त च
देवज्ञतानि सप्तज्ञतसंख्यज्ञाथ देवाः परिवारः प्रज्ञप्तः परिवारतया कथिता
इत्यर्थः, सप्तज्ञतसंख्यरुदेवानामुपरि प्रत्येकज्ञतस्य एकैका देवः स्वामितया
वर्तते तेन सप्त देवाः सप्तज्ञतसंख्यरुपरिवारोपरि स्वामित्वेन गन्तीति भावः ।
एवमग्रेऽपि विज्ञेयम् । एवं 'वह्नि-वरुणाणं देवाणं चउद्दस देवा चउद्दस देवसहस्रा
परिवारे पण्णत्ते' वह्नि-वरुणयोर्देवयोः समुदितयोरेव चतुर्दश देवाः परिवारदेव-

देवसया परिवारे पण्णत्ते' हे भदन्त ! सारस्वत और आदित्य इन दो
देवों के देव-परिवार के स्वामी, तथा इनके परिवार के देव कितने सौ
कहे गये हैं? उत्तर में प्रभु कहते हैं कि-हे गौतम ! समुदित ही सार-
स्वत और आदित्य देवों के देव सात तो परिवार के स्वामीरूप से कहे
गये हैं और इन दोनों देवों के परिवार के देव सात सौ कहे गये हैं ।
इस तरह के कथन से यह समझना चाहिये कि सौ-सौ परिवारभूत
देवों के ऊपर एक-एक देव स्वामीरूप से है-अतः सात सौ परिवारभूत
देवों के स्वामी सात देव हैं । इसी तरह से आगे भी जानना चाहिये ।
संप्रह गाथा में युगलरूप से प्रतिपादन किया गया है-इसी कारण यहाँ
सूत्र में भी द्विवचन से प्रतिपादन किया है । 'वह्निवरुणाणं देवाणं
चउद्दस देवा चउद्दस देवसहस्रा परिवारे पण्णत्ते' वह्नि और वरुण
इन दोनों समुदित देवों के परिवार के स्वामीभूत देव चौदह कहे गये हैं

हे भदन्त ! सारस्वत અને આદિત્ય આ બંને દેવોના દેવ (પરિવારના સ્વામી)
તથા તેમના પરિવારના દેવોની સંખ્યા કેટલા સૌ કહી છે ?

ઉત્તર--હે ગૌતમ ! સારસ્વત અને આદિત્ય એ દેવયુગલના સાત દેવો
તો પરિવારના સ્વામીરૂપ કહ્યાં છે, અને તે બંને દેવોના પરિવાર રૂપ ૭૦૦
દેવો કહ્યાં છે. આ કથનને આધારે એ વાત ધ્યાનમાં રાખવી કે પ્રત્યેક સૌ
પરિવાર રૂપ દેવો પર એક એક દેવ સ્વામીરૂપે હોય છે, એ રીતે ૭૦૦
પરિવારભૂત દેવોના સ્વામી સાત દેવો છે. એજ પ્રમાણે આગળ પણ સમજવું.

સંપ્રહ ગાથામાં યુગલ રૂપે (બંને દેવોને સાથે લઈને) પ્રતિપાદન
કરવામાં આવ્યું છે, તે કારણે અહીં સૂત્રમાં પણ બહુવચન રૂપે પ્રતિપાદન કર્યું છે.

“વહ્નિવરુણાણં દેવાણં ચઉદ્દસ દેવા, ચઉદ્દસદેવસહસ્રા પરિવારે પણ્ણત્તે”

અહ્નિ અને અરુણ આ દેવયુગલના પરિવારના દેવોની સંખ્યા ચૌદ

स्वामिनः सन्ति, प्रत्येकस्य सहस्र-सहस्रसंख्यकदेवपरिवारसद्भावात् देवस्वामिनः सप्त देवाः सन्तीति भावः । चतुर्दशसहस्राणि च परिवारः प्रज्ञप्तः, एकैकस्य देवस्य सहस्र - सहस्रसंख्यकदेवपरिवारसद्भावात् । तथा- ' गद्गतोय-तुसियाणं देवाणं सत्त देवसहस्रा परिवारे पण्णत्ते ' गद्गतोय-तुपितयोः समुदितयोः द्वयोर्देवयोः सप्त देवाः स्वामिनः, सप्त च देवसहस्राणि सप्तसहस्रसंख्यका देवाः परिवारतया प्रज्ञप्ताः । ' अवसेसाणं नव देवा, नव देवसया परिवारे पण्णत्ते , अवशेषाणाम्-अव्यावाधाऽऽग्नेपरिष्टानां त्रयाणां देवानां समुदितानामेव नव देवाः परिवारदेव-स्वामिनः प्रज्ञप्ताः, एकैकस्य देवत्रय-देवत्रय सद्भावात्, तथा नव देवशतानि-नवशत संख्यका देवाः परिवाररूपेण प्रज्ञप्ताः। अव्यावाधादीनां त्रयाणां देवानामे-

और परिवार के देव चौदह हजार कहे गये हैं । यहाँ पर एक-एक हजार देवों के ऊपर-१-१ देव उनका स्वामी है-इस तरह चौद देव स्वामीरूप से कहे गये हैं । तथा- ' गद्गतोय तुसियाणं देवाणं सत्तदेवां सत्तदेवसहस्रा परिवारे पण्णत्ते ' गद्गतोय और तुपित इन दोनों समु-दित देवोंके परिवारभूत देवोंके स्वामी तो सात हैं और परिवारभूत सान हजार हैं ' अवसेसा णं नव देवा नव देवसया परिवारे पण्णत्ते ' वाक्की के अव्यावाध, आग्नेय, और रिष्ट इन समुदित तीन देवोंके परिवारभूत देवों के स्वामी नौ देव हैं, और इन के परिवार में नौ सौ देव हैं अर्थात् एक एक देव के तीन-तीन देव तो तीन सौ ३००-तीन सौ ३०० परिवार भूत देवों के स्वामी हैं और एक २ देव के ३००-३०० परिवार के

हजारनी कही छे अने ते परिवारना स्वामिभूत देवो १४ कइया छे, अर्द्धी ओक ओक हजार उपर ओक ओक देव स्वामीरूपे छे, तथी १४००० देवाना स्वामी रूप देवो चौद कइया छे, तथा " गद्गतोयतुसियाणं देवाणं सत्तदेवा, सत्तदेवसहस्रा परिवारे पण्णत्ते " गद्गताय अने तुपित नामना देवशुक्लना परिवारना देवो ७००० कइया छे, अने ते परिवारना स्वामीरूप देवो सात कइया छे, " अवसेसा णं नव देवसया परिवारेपण्णत्ते " षाड्डीना देवाना ओटले के अव्यावाध, आग्नेय अने रिष्ट ओ त्रल्ले देवाना भणीने कुटले ६०० परिवार भूत देवो छे अने परिवारना स्वामीरूप देवो नव कइया छे, ओटले के अव्या-वाध आदि प्रत्येक देवना परिवारभूत देवो ३००-३०० छे, अने परिवारना स्वामीरूप देवो त्रल्लु त्रल्लु छे, नीचेनी गाथाभां ते नवे देवाना परिवार रूप देवाना संख्या जतावी छे.

भदन्त ! सारस्वतादित्ययोर्भयोर्देवयोः कविदेवाः-परिवारः पञ्चतः? भगवानाह-
हे गौतम ! समुदितयोरेव सारस्वतादित्ययोर्देवयोः सप्त देवाः-परिवारदेवस्वामिनः
पञ्चतः । अत्र द्विवचनेन कथं संग्रहगाथायां युगलत्वेन प्रतिपादनात् । सप्त च
देवशतानि सप्तशतसंख्यकाश्च देवाः परिवारः पञ्चतः परिवारस्तथा कथिता
इत्यर्थः, सप्तशतसंख्यकरुदेवानामुपरि प्रत्येकगतस्य एकैको देवः स्वामितया
वर्तते तेन सप्त देवाः सप्तशतसंख्यकरुपरिवारोपरि स्वामित्वेन सन्तीति भावः ।
एवमग्रेऽपि त्रिसंख्यम् । एवं 'वण्हि-वरुणाणं देवाणं चउहस देवा चउहस देवसहस्रा
परिवारे पण्णत्ते' वह्नि-वरुणयोर्देवयोः समुदितयोरेव चउहस देवाः परिवारदेव-

देवसया परिवारे पण्णत्ते' हे भदन्त ! सारस्वत और आदित्य इन दो
देवों के देव-परिवार के स्वामी, तथा इनके परिवार के देव कितने सौ
कहे गये हैं? उत्तर में प्रभु कहते हैं कि-हे गौतम ! समुदित ही सार-
स्वत और आदित्य देवों के देव सात तो परिवार के स्वामीरूप से कहे
गये हैं और इन दोनों देवों के परिवार के देव सात सौ कहे गये हैं ।
इस तरह के कथन से यह समझना चाहिये कि सौ-सौ परिवारभूत
देवों के ऊपर एक-एक देव स्वामीरूप से है-अतः सात सौ परिवारभूत
देवों के स्वामी सात देव हैं । इसी तरह से आगे भी जानना चाहिये ।
संग्रह गाथा में युगलरूप से प्रतिपादन किया गया है-इसी कारण यहाँ
सूत्र में भी द्विवचन से प्रतिपादन किया है । 'वण्हिवरुणाणं देवाणं
चउहस देवा चउहस देवसहस्रा परिवारे पण्णत्ते' वह्नि और वरुण
इन दोनों समुदित देवों के परिवार के स्वामीभूत देव चौदह कहे गये हैं

हे भदन्त ! सारस्वत अने आदित्य आ णन्ने देवाना देव (परिवारना स्वामी)
तथा तेभना परिवारना देवानी संख्या केटला सो कही छे ?

उत्तर--हे गौतम ! सारस्वत अने आदित्य अे देवयुगलना सात देवो
तो परिवारना स्वामीरूप कहा छे, अने ते णन्ने देवाना परिवार रूप ७००
देवो कहां छे. आ कथेनने आधारे अे वात ध्यानमां राखी के प्रत्येक सो
परिवार रूप देवो पर अेक अेक देव स्वामीरूपे होय छे, अे रीते ७००
परिवारभूत देवाना स्वामी सात देवो छे. अे अण्णत्ते आगण पण्णत्ते संभज्जु.
संग्रह गाथांमां युगल रूपे (अण्णत्ते देवाने साथे लधने) प्रतिपादन
करवांमां आण्णत्ते छे, ते कारणे अर्ही सूत्रमां पण्णत्ते अण्णत्ते रूपे प्रतिपादन कथुं छे.

"वण्हिवरुणाणं देवाणं चउहस देवा, चउहसदेवसहस्रा परिवारे पण्णत्ते"

वह्नि अने अरुण अे देवयुगलना परिवारना देवानी संख्या चौदह

स्वामिनः सन्ति, प्रत्येकस्य सहस्र-सहस्रसंख्यकदेवपरिवारसद्भावात् देवस्वामिनः सप्त देवाः सन्तीति भावः । चतुर्दशसहस्राणि च परिवारः प्रज्ञप्तः, एकैकस्य देवस्य सहस्र - सहस्रसंख्यकदेवपरिवारसद्भावात् । तथा- ' गद्गतोय-तुसियाणं देवाणं सत्त देवसहस्रा परिवारेः पण्णत्ते ' गर्दतोय-तुपितयोः समुदितयोः द्वयोर्देवयोः सप्त देवाः स्वामिनः, सप्त च देवसहस्राणि सप्तसहस्रसंख्यका देवाः परिवारतया प्रज्ञप्ताः । ' अवसेसाणं नव देवा, नव देवसया परिवारे पण्णत्ते , अवशेषाणाम्-अव्यावाधाऽऽग्नेपरिष्टानां त्रयाणां देवानां समुदितानामेव नव देवाः परिवारदेव-स्वामिनः प्रज्ञप्ताः, एकैकस्य देवत्रय-देवत्रय सद्भावात् , तथा नव देवशतानि-नवशत संख्यका देवाः परिवाररूपेण प्रज्ञप्ताः। अव्यावाधादीनां त्रयाणां देवानामे-

और परिवार के देव चौदह हजार कहे गये हैं । यहाँ पर एक-एक हजार देवों के ऊपर-१-१ देव उनका स्वामी है-इस तरह चौद देव स्वामीरूप से कहे गये हैं । तथा- ' गद्गतोय तुसियाणं देवाणं सत्तदेवां सत्तदेवसहस्रा परिवारे पण्णत्ते ' गर्दतोय और तुपित इन दोनों समुदित देवोंके परिवारभूत देवोंके स्वामी तो सात हैं और परिवारभूत सान हजार हैं ' अवसेसा णं नव देवा नव देवसया परिवारे पण्णत्ते ' वाक्ती के अव्यावाध, आग्नेय, और रिष्ट इन समुदित तीन देवोंके परिवारभूत देवों के स्वामी नौ देव हैं, और इन के परिवार में नौ सौ देव हैं अर्थात् एक एक देव के तीन-तीन देव तो तीन सौ ३००-तीन सौ ३०० परिवार भूत देवों के स्वामी हैं और एक २ देव के ३००-३०० परिवार के

હજારની કહી છે અને તે પરિવારના સ્વામિભૂત દેવો ૧૪ કહ્યા છે. અહીં એક એક હજાર ઉપર એક એક દેવ સ્વામીરૂપે છે, તેથી ૧૪૦૦૦ દેવોના સ્વામી રૂપ દેવો ચૌદ કહ્યા છે. તથા " ગદ્ગતોયતુસિયાણં દેવાણં સત્તદેવા, સત્તદેવસહસ્રા પરિવારે પણ્ણત્તે " ગર્દતોય અને તુપિત નામના દેવયુગલના પરિવારના દેવો ૭૦૦૦ કહ્યા છે, અને તે પરિવારના સ્વામીરૂપ દેવો સાત કહ્યા છે. " અવસેસા ણં નવ દેવસયા પરિવારેપણ્ણત્તે " બાકીના દેવોના એટલે કે અવ્યાવાધ, આગ્નેય અને રિષ્ટ એ ત્રણે દેવોના મળીને કુલે ૯૦૦ પરિવાર ભૂત દેવો છે અને પરિવારના સ્વામીરૂપ દેવો નવ કહ્યા છે. એટલે કે અવ્યાવાધ આદિ પ્રત્યેક દેવના પરિવારભૂત દેવો ૩૦૦-૩૦૦ છે, અને પરિવારના સ્વામીરૂપ દેવો ત્રણ ત્રણ છે. નીચેની ગાથામાં તે નવ દેવોના પરિવાર રૂપ દેવોની સંખ્યા બતાવી છે.

कैकस्य त्रिशत-त्रिशतदेवपरिवारसद्मानात् ।

अथ-उपरिर्णितदेवपरिवारसंग्राहिकां गाथामार—

“ पद्म-जुगलम्भि सत्त उ, सयाणि वीयम्भि-चउइत सहस्सा ।

तइए सत्तसहस्सा, नव चैव सयाणि सेसेधु ” ॥ १ ॥

प्रथमयुगले सारस्वताऽऽदिस्वारमके सप्त शतानि देवपरिवारः,

द्वितीये वह्नि-वरुणदेवात्मके चतुश्च सहस्राणि देवपरिवारः, तृतीये गर्दतो-
यतुषितदेवात्मके सप्तसहस्राणि देवपरिवारः, शेषेषु भग्यावाधाऽऽग्नेय-रिष्टदेवेषु
नव चैव शतानि परिवारोऽस्तीतिगाथार्थः ॥१॥

यसुसमवायाङ्गमूत्रे सप्तसप्ततितमे समवाये गर्दतोय-तुषितयोर्देवयोः सप्त-
सप्ततिसहस्रसंख्यका देवाः परिवारतया प्रोक्ताः । ज्ञाताधर्मकथाङ्गमूत्रस्याऽष्टमा-
ध्ययने च लोकान्तिकदेवानामेकैकस्य चतुश्चतुःसहस्रपरिमिताः सामानिकदेवाः,

देव हैं । इन्हीं परिवारभूत देवों को संग्रह करके प्रकट करने वाली
यह गाथा है—“ पद्मजुगलम्भि ” इत्यादि ।

सारस्वत और आदित्य रूप प्रथम युगल में सात सौ देवों का
परिवार है । दूसरे वह्नि और वरुणरूप युगल में चौदह १४ हजार देवों
का परिवार है । तिसरे गर्दतोय और तुषितरूप युगल में सात हजार
देवों का परिवार है । याकी अग्यावाध, आग्नेय और रिष्ट देवों में नौ
सौ देवों का परिवार है । इस प्रकार से यह गाथा का अर्थ है—

जो समवायांग सूत्र में ७७ वें समवाय में गर्दतोय और तुषित
इन देवों के परिवार भूत देव ७७ हजार कहे गये हैं, ज्ञाताधर्मकथाङ्ग
सूत्र के आठवें अध्ययन में लोकान्तिक देवों के एक एक देव के चार २
हजार सामानिक देव कहे गये हैं, तथा ३-३ परिषदाएँ कही गई हैं,

‘ पद्मजुगलम्भि ’ इत्यादि ।

सारस्वत अने आदित्यना प्रथम युगलना परिवार ३५ देवो ७०० छे ।
वह्नि अने वरुणना भीम युगलना परिवार ३५ देवो १४००० छे । गर्दतोय
अने तुषितना त्रीम युगलना परिवार ३५ देवो ७००० छे । आधीना अग्या-
वाध, आग्नेय अने रिष्ट देवेना कुल परिवार ६०० देवेना छे

समवायांग सूत्रना ७७ भां समवायभां गर्दतोय अने तुषित, आ जे
देवेना परिवार ३५ ७७००० देवो कइया छे, ज्ञाताधर्म-कथांगसूत्रना आठभां
अध्ययनभां लोकान्तिक देवेभांना प्रत्येक देवना चार चारहत्तर सामानिक देव कइया
छे, तथा त्रयु त्रयु परिषदाओ कही छे, सात सात अनीक अने अनीकधिप,

तिस्रस्तिस्रपरिपदः, सप्तपत्नानीकानि, सप्त सप्तनानीकाधिपतयः षोडश-षोडशसहस्र-परिमिता आत्मरक्षकदेवाः, अन्येऽपि च बहवो लोकान्तिका देवाः परिवारतया प्रोक्ताः, इत्यादिवर्णनं लभ्यते तत्र सामान्यपरिवारतया प्रोक्तम् । इह विशेषरूपतया कथितमिति बोध्यम् ?

गौतमः पृच्छति—‘ लोमंतियविमाणं णं भंते ! किंपइट्टिया पणत्ता ? ’ हे भदन्त ! लोकान्तिकविमानानि किंपतिष्ठितानि कस्मिन् आधारे प्रतिष्ठितानि स्थितानि प्रज्ञप्तानि ? भगवानाह—‘ गोयमा । वाउपइट्टिया पणत्ता ’ हे गौतम ! लोकान्तिकविमानानि वायुप्रतिष्ठितानि वायोराधारेणस्थितानि सन्ति । ‘ एवं णेयव्वं विमाणं पइट्टाणं, वाहुल्लुच्चत्तमेव संठाणं ’ एवम् अनेन प्रकारेण

सात सात अनीक, अनीकाधिप, १५-१६ हजार आत्मरक्षक देव, तथा और भी बहुत से लोकान्तिक देव परिवाररूप से कहे गये हैं सो इत्यादि यह सब वर्णन सामान्यरूप से किया गया है ऐसा जानना चाहिये—तथा यहां जो वर्णन किया गया है वह विशेष रूप से किया गया है—ऐसा समझना चाहिये ।

अब गौतम प्रभु से पूछते हैं कि (लोमंतिय विमाणं भंते ! किंपइट्टिया पणत्ता) हे भदन्त ! लोकान्तिक देवों के जो विमान हैं वे आधार सहित हैं कि बिना आधारके हैं ? यदि आधार सहित हैं तो इनका क्या आधार है ? अर्थात् किस आधाररूप पदार्थ पर ये प्रतिष्ठित हैं ? उत्तर में प्रभु कहते हैं कि—(गोयमा !) हे गौतम ! (वाउपइट्टिया पणत्ता) ये लोकान्तिक देवों के विमान साधार हैं और इनका आधाररूप पदार्थ वायु कहा गया है । अर्थात् वायु के आधार से प्रतिष्ठित हैं । (एवं

१६-१६ हजार आत्मरक्षक देवों तथा णीज पणु अनेक देवोंको परिवार कही छे. पणु ते समस्त पणुन सामान्य रूपे करेवुं समजवुं. अर्डी के पणुन करवाभां आठुं छे, ते विशेष रूपे करवाभां आठुं छे तेम समजवुं.

इवे गौतम स्वामी महावीर प्रभुने जेवो प्रश्न पूछे छे के—“ लोमंतिय विमाणं भंते ! किंपइट्टिया पणत्ता ? ” हे भदन्त ! लोकान्तिक देवोंनां के विमानो छे ते आधार सहित छे के आधार सहित छे ? जे तेओ आधार सहित छेय तो तेओ क्या पदार्थना आधारे रहैलां छे ?

तेनो जवा न आपता महावीर प्रभु कहे छे के—“ गोयमा ! ” हे गौतम ! “ वाउपइट्टिया पणत्ता ” ते लोकान्तिक देवोंनां विमानो आधारयुक्त छे, अने तेमना आधार रूप पदार्थ वायु कही छे, अटवे के तेओ वायुने आधारे

लोकान्तिकविमानानां प्रतिष्ठानं स्थित्यधिकरणं वायुरूपं प्रदर्शितमेव, चारुस्य संस्थानं च पंचविंशतियोजनगतानि, उन्नतं समयोजनगतानि, संस्थानम् आकारस्तु एतेषां विमानानां नानामहारकं बोधयम् अनावलिकाप्रतिष्ठान्, आवलिकाप्रतिष्ठानि तु वृत्त-व्यस-चतुरस्ररूपाणि त्रीणि संस्थानान्येव भवन्तीत्यवसेयम् । तदेवाह- ' बंभलोयवत्तव्या षेयव्या, जहा-जीवाभिगमे देवुद्देशम्' तत्र-

षेयवत्तं विमाणाणं पद्दृष्टाणं, वाहुल्लुच्चत्तमेव संठाणं) इस तरह की स्थिति का अधिकरण वायुरूप है यह तो प्रदर्शित ही कर दिया गया है अब रही इनके वाहल्य और संस्थान के विषय की बात सो इनका वाहल्य-विमानों की पृथिवी स्थूलता-२५०० योजन की है और ऊंचाई ७०० योजन की है । तथा इनका आकार पंजरूप से नहीं है भिन्न २ प्रकार से है क्यों कि ये अनावलिका में प्रविष्ट हैं । जो आवलिका में प्रविष्ट होते हैं वे या तो गोल होते हैं, या त्रिकोण होते हैं, या चतुष्कोण होते हैं । इसलिये ये आवलिका में प्रविष्ट न होनेके कारण नियत आकार वाले नहीं कहे गये हैं प्रत्युत अनेक प्रकार के आकार वाले कहे गये हैं । इसी बात को सूचित करने के निमित्त सूत्रकार ने (बंभलोय वत्तव्यता षेयव्या, जहा जीवाभिगमे देवुद्देशम्) ऐसा कहा है कि ब्रह्मलोक में रहने वाले विमानों और देवों के विषय में जो वक्तव्यता जीवाभिगम सूत्र में कही है, वही वक्तव्यता यद्वां पर भी इन लोकान्तिक

रहेलां छे. " एवं षेयवत्तं विमाणाणं पद्दृष्टाणं, वाहुल्लुच्चत्तमेव संठाणं " आरीते विमानोनी स्थितिना आधार ३५ वायुने ते उपर अताववाभां आवेल छे, डवे तेमना विस्तार, जंथाध, आकार आदिनुं प्रतिपादन करवाभां आवे छे-

ते विमानोनी पृथ्वीनी स्थूलत -ओठवे के तेमने विस्तार २५०० योजनने अने जंथाध ७०० योजननी छे. तेथी तेमने आकार ओकसरणे नथी. पणु लुदा लुदा प्रकारने छे, कारणु के तेओ आवलिकाभां प्रविष्ट नथी. जे विमानो आवलिकाभां प्रविष्ट डोय छे, तेओ गोलाकारना अथवा त्रिकोणाकारना के चतुष्कोणाकारना डोय छे. परन्तु आ लोकान्तिक विमानो आवलिकाभां प्रविष्ट न डोवाने कारणे कोथ नियत आकारना नथी पणु लुदा लुदा आकारना छे. जे ज वातने प्रकट करवाने माटे सूत्रकारे आ सूत्रपाठ आप्ये छे-

" बंभलोय वत्तव्यता षेयव्या, जहा जीवाभिगमे देवुद्देशम् " प्रथमलोक कल्पभां रहेलां विमानो अने देवोना विषयभां जे प्रतिपादन जीवाभिगम सूत्रना देवोद्देशकभां करवाभां आवेलुं छे, जे ज प्रभाषुं प्रतिपादन अर्धी पणु लोकान्तिक देवोना विषयभां अडणु करव. ते जव्याजे आवेलुं कथन कथां सुधी :

હંતા, ગોયમા ! અસઈ, અદુવા અણંતક્રુત્તો, ગો ચેવ ણં દેવત્તાણ લોગંતિયવિમા-
ણેસુ । વ્રહ્મલોકે યા વક્તવ્યતા જીવાભિગમે દેવોદેશકે વિમાનાનામ્, દેવાનાં ચ
પ્રતિપાદિતા, સા અત્રાઽપિ લોકાન્તિકદેવેષુ નેતવ્યા જ્ઞાતવ્યા । તદ્વધિમાહ-
' જાવ-હંતા ' ઇત્યાદિ । હે ગૌતમ ! હન્ત સત્યમ્ યાવત્ અસકૃત્ ભૂયોભૂયઃ, અથવા
અનન્તકૃત્વઃ, અનન્તવારાન્ તે સર્વે પ્રાણાઃ, ભૂતાઃ જીવાઃ, સત્ત્વાઃ પૃથિવ્યાદિકાગ્નિ-
કૃતયા ઉપપન્નપૂર્વાઃ પૂર્વમ્ ઉત્પન્નાઃ કિન્તુ લોકાન્તિકવિમાનેષુ દેવતયા અનન્ત-
કૃત્વઃ અનન્તવારાન્ તે જીવાઃ નો ચેવ નૈવ સ્વલુ ઉત્પન્નાઃ ઇતિભાવઃ । જીવાભિગમ
વક્તવ્યતા ચ કિન્ચિત્પદર્શયતે- ' લોગંતિયવિમાણા ણં મંતે ! કઙ્કવળ્લા પળ્ણત્તા ?
ગોયમા ! તિવળ્ણા-લોહિયા, હાલિદ્દા, સુક્કિલ્લા, એવં પમાણ નિચ્ચા લોયા, ગંધેણં
ઇટ્ઠગંધા, એવં ઇટ્ઠફાસા, એવં સવ્વરયણામયા, તેસુ દેવા સમચરંસા, અહ્મમહુ-
ગવળ્ણા, પમ્હલેસ્સા । લોગંતિયવિમાણેસુ ણં મંતે ! સવ્વે પાણા, ભૂયા, જીવા, સત્તા

દેવો મેં જાનનીં ચાહિયે । યહ વક્તવ્યતા કહાં તક જાનનીં ચાહિયે તો
હસકે લિયે કહા ગયા હૈ કિ (જાવ હંતા ! અસઈ અદુવા અણંતક્રુત્તો,
ગો ચેવ ણં દેવત્તાણ લોગંતિયવિમાણેસુ) હે ગૌતમ ! સત્ય હૈ યાવત્-
ચાર વાર અનંતવાર વે સવ પ્રાણ, ભૂત, જીવ, સત્ત્વ પૃથિવીકાગ્નિક રૂપ
સે પહિલે ઉત્પન્ન હુણ હૈ, કિન્તુ લોકાન્તિક વિમાનોં મેં દેવરૂપ સે વે જીવ
પહિલે કમ્પી નહીં ઉત્પન્ન હુણ હૈ । યહાં તક જાનનીં ચાહિયે । ” યહાં પર
જીવાભિગમ વક્તવ્યતા થોડે સે રૂપ મેં પ્રકટ કી જાતી હૈ-(લોગંતિ ય
વિમાણા ણં મંતે ! કઙ્કવળ્લા પળ્ણત્તા ? ગોયમા ! તિવળ્ણા-લોહિયા,
હાલિદ્દા, સુક્કિલ્લા એવં પમાણ નિચ્ચાલોયા ગંધેણં ઇટ્ઠગંધા એવં ઇટ્ઠફાસા,
એવં સવ્વરયણામયા, તેસુ દેવા સમચરંસા, અહ્મમહુગવળ્ણા, પમ્હલેસ્સા,

શ્રહણુ કરવું બોધવું, તે બતાવવાને માટે સૂત્રગર કહે છે કે “ જાવ હંતા !
અસઈ અદુવા અણંતક્રુત્તો, ગો ચેવ ણં દેવત્તાણ લોગંતિયવિમાણેસુ ” “ હે
ગૌતમ ! સત્ય છે, (યાવત્) તે સમસ્ત પ્રાણ, ભૂત, જીવ અને સત્ત્વ વારંવાર
અથવા અનંત વાર પૃથ્વીકાગ્નિકરૂપે પહેલાં ઉત્પન્ન થઈ ચુક્યા છે, પરન્તુ
લોકાન્તિક વિમાનોમાં દેવરૂપે તે જીવો પહેલાં કદી પણ દેવરૂપે ઉત્પન્ન થયા
નથી ” અહીં સુધીનું કથન શ્રહણુ કરવું.

હવે અહીં જીવાભિગમસૂત્રની વક્તવ્યતાને સારાંશ પ્રકટ કરવામાં આવે છે-

“ લોગંતિય વિમાણા ણં મંતે ! કઙ્ક વળ્લા પળ્ણત્તા ? ” ગોયમા ! તિવળ્ણા-
લોહિયા, હાલિદ્દા, સુક્કિલ્લા એવં પમાણ નિચ્ચાલોયા, ગંધેણં ઇટ્ઠગંધા એવં ઇટ્ઠફાસા,
એવં સવ્વરયણામયા, તેસુ દેવા સમચરંસા, અહ્મમહુગવળ્ણા, પમ્હલેસ્સા, લોગં-

लोकान्तिकविमानानां प्रतिष्ठानं स्थित्यधिकरणं वायुरूपं प्रदर्शितमेव, चारुस्य संस्थानं च पंचविंशतियोगनशतानि, उच्चत्वं सप्तयोगनशतानि, संस्थानम् आका- रस्तु एतेषां विमानानां नानामहारकं योष्यम् अनावलिकापरिष्ठत्वात्, आव- लिकापरिष्ठानि तु घृत्त-व्यस-वतुस्त्ररूपाणि त्रीणि संस्थानान्येव भवन्तीत्यव- यम् । तदेवाह- ' बंभलोयवत्तव्यता णेयव्या, जहा-जीवाभिगमे देवुद्देसए' नाव-

णेयव्वं विमाणानं पइट्ठानं, पाहुल्लुच्चत्तमेव संठाणं) इस तरह की स्थिति का अधिकरण वायुरूप है यह तो प्रदर्शित ही कर दिया गया है अब रही इनके चाहल्य और संस्थान के विषय की बात सो इनका चाहल्य-विमानों की पृथिवी स्थूलता-२५०० योजन की है और ऊंचाई ७०० योजन की है। तथा इनका आकार एक रूप से नहीं है मिन २ प्रकार से है क्यों कि ये अनावलिका में प्रविष्ट हैं। जो आवलिका में प्रविष्ट होते हैं वे या तो गोल होते हैं, या त्रिकोण होते हैं, या चतु- षकोण होते हैं। इसलिये ये आवलिका में प्रविष्ट न होनेके कारण नियत आकार वाले नहीं कहे गये हैं प्रत्युत अनेक प्रकार के आकार वाले कहे गये हैं। इसी बात को सूचित करने के निमित्त सूत्रकार ने (बंभलोय वत्तव्यता णेयव्या, जहा जीवाभिगमे देवुद्देसए) ऐसा कहा है कि ब्रह्म- लोक में रहने वाले विमानों और देवों के विषय में जो वक्तव्यता जीवाभिगम सूत्र में कही है, वही वक्तव्यता यहाँ पर भी इन लोकान्तिक

रहेलां छे. " एवं णेयव्वं विमाणानं पइट्ठानं, पाहुल्लुच्चत्तमेव संठाणं " आ- रीते विमानेनी स्थितिना आधार इप वायुने ते उपर भताववाभां आवेद छे, डवे तेमना विस्तार, अंयाध, आकार आदिनुं प्रतिपादन करवाभां आवे छे-

ते विमानेनी पृथ्वीनी स्थणत-अेटके के तेमने विस्तार २५०० येज- नने अने अंयाध ७०० येज-ननी छे. तेथी तेमने आकार अेकसरणे नथी. पणु जुहा जुहा प्रकारने छे, कारण के तेओ आवलिकाभां प्रविष्ट नथी. जे विमाने आवलिकाभां प्रविष्ट होय छे, तेओ गोणाकारना अथवा त्रिकोणाकारना के चतुष्कोणाकारना होय छे. परन्तु आ लोकान्तिक विमाने आवलिकाभां प्रविष्ट न होवाने कारणे के निमित्त आकारना नथी पणु जुहा जुहा आका- रना छे. अे ज वातने प्रकट करवाने भाटे सूत्रकारे आ सूत्रपाठ आये छे- " बंभलोय वत्तव्यता णेयव्या, जहा जीवाभिगमे देवुद्देसए " अहलोक कल्पभां रहेलां विमाने अने देवाना विषयभां जे प्रतिपादन अनावलिगम सूत्रना देवोद्देशकभां करवाभां आवेलुं छे, अे ज अभाणुं प्रतिपादन अही पणु लोकान्तिक देवाना विषयभां अहलु करव. ते जथाअे आवेलुं कथन कथां सुधी :

गौतमः पृच्छति—‘लोगंतियविमाणेषु णं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?’
हे भदन्त ! लोकान्तिकविमानेषु कियन्तं कालं स्थितिः प्रज्ञप्ता ? भगवानाह—
‘गोयमा ! अट्टसागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता ’ हे गौतम ! अट्टसागरोपमाणि स्थितिः
प्रज्ञप्ता । गौतमः पृच्छति—‘ लोगतियविमाणेहिंतो णं भंते ! केवइयं अवाहाए
लोगंते पण्णत्ते ’ हे भदन्त ! लोकान्तिकविमानेभ्यः कियत्तं कियद्दुम् अवाधया
अन्तरेण व्यवधानेनेत्यर्थः लोकान्तः प्रज्ञप्तः ? भगवानाह—‘ गोयमा !
असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं अवाहाए लोगंते पण्णत्ते ’ हे गौतम ! असंखेयानि

यिक रूप से, तेजस्कायिकरूप से, वायुकायिक रूप से, वनस्पतिकायिक
रूप से देव एवं देवीरूप से उत्पन्न हुए हैं ? तब इसके उत्तर में (जाव
हंता, गोयमा ! असइं अट्टुवा) इत्यादि रूप से प्रभु ने उत्तर दिया है ।

अब गौतम प्रभु से ऐसा पूछ रहे हैं कि—(लोगंतियविमाणेषु णं
भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता) हे भदन्त ! लोकान्तिक विमानों में
कितनी स्थिति है ? इसके उत्तर में प्रभु गौतम से कहते हैं कि ‘गोयमा’
गौतम ! (अट्टसागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता) आठ सागरोपम की स्थिति
लोकान्तिक विमानों में हैं । अब गौतम प्रभु से ऐसा पूछते हैं कि—
(लोगंतिय विमाणेहिंतो णं भंते ! केवइयं अवाहाए लोगंते पण्णत्ते) हे
भदन्त ! लोकान्तिकविमानों से लोकान्त कितनी दूर है ? उत्तर में प्रभु
कहते हैं कि (गोयमा) हे गौतम ! (असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं अवा-
हाए लोगंते पण्णत्ते) लोकान्तिक विमानों से लोकान्त असंख्यात हजार

पृथ्वीकायिके, अग्निकायिके, तेजस्कायिके, वायुकायिके, वनस्पतिकायिके
इये, देव अने देवीइये उत्पन्न थए युक्थां छे ? उत्तर—“ हा, गौतम ! तेज्जा
त्यां अनेकवार अथवा अनंतवार पृथ्वीकायिकथी वनस्पतिकायिके पयन्तनाइये
उत्पन्न थए युक्थां छे, पण्ण तेज्जा त्यां देवइये कही पण्ण उत्पन्न थया नथी.”

गौतमस्वाभिने प्रश्न—“ लोगंतियविमाणेषु णं भंते ! केवइयं कालं ठिई
पण्णत्ता ? ” हे भदन्त ! लोकान्तिक विमान निवासी देवोनी स्थिति केटवा
काण्णी कही छे ? उत्तर—“ गोयमा ! अट्टसागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता ” हे गौतम !
ते विमानो देवोनी स्थिति आठ सागरोपमनी कही छे.

प्रश्न—“ लोगंतिय विमाणेहिंतो णं भंते ! केवइयं अवाहाए लोगंते
पण्णत्ते ? ” हे भदन्त ! लोकान्तिक विमानोथी लोकान्त केटवे अंतरे छे ?

उत्तर—“ गोयमा ! असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं अवाहाए लोगंते पण्णत्ते ”
हे गौतम ! लोकान्तिक विमानोथी लोकान्त असंख्यात हजार योजन दूर छे.

પુઠ્ઠવિકાશ્યત્તાણ, આઝકાશ્યત્તાણ, તેઝકાશ્યત્તાણ, વાઝકાશ્યત્તાણ, વળસ્સકાશ્ય-
ત્તાણ, દેવત્તાણ, દેવિત્તાણ ઉવવન્નપુલ્લા ?' इत्यन्तं यावत्पदेन संग्राहम् ।

લોગંતિયવિમાણેસુ ણં મંતે ! સવ્વે પાળા, ભૂયા, જીવા, સત્તા પુઠ્ઠવિકા-
શ્યત્તાણ, આઝકાશ્યત્તાણ, તેઝકાશ્યત્તાણ, વાઝકાશ્યત્તાણ, વળસ્સકાશ્ય-
શ્યત્તાણ દેવત્તાણ દેવિત્તાણ ઉવવન્નપુલ્લા ?) યહાં તક કા પાઠ યાવત્
પદ સે યહાં ગ્રહણ કિયા ગયા હૈ । તાત્પર્ય કહને કા યહ હૈ કિ ગૌતમ
ને પ્રશ્ન સે એસા પૂછા કિ હે 'મદન્ત ! લોકાન્તિક વિમાનોં કે કિતને વર્ણ
હેં ? ઉત્તર મેં પ્રશ્ન ને કહા કિ હે ગૌતમ ! લોકાન્તિક વિમાનોં કે તીન
વર્ણ હેં—લોહિત વર્ણ, હારિદ્ર વર્ણ ઓર શુક્રવર્ણ અર્થાત્ લોકાન્તિક
વિમાન તીન વર્ણવાલે હેં યહ પાઠ પ્રશ્ન ને ગૌતમ મે પ્રકટ કી હસી તરહ યે
અપની પ્રમા સે સદા આલોકિત (પ્રકાશિત) રહતે હેં, ગંધ ઇનકા ઇષ્ટ
હોતા હૈ, સ્પર્શ ઓ ઇનકા મન કો રુચિકારક હોતા હૈ યે સમસ્ત રત્નોં
કે વને હુણ હેં । ઇનમેં જો દેવ રહતે હેં ડનકા સમચતુરચ્ચસંસ્થાન હોતા
હૈ । વર્ણ ઇનકા ગીલે મહુઆ કે જેમા હોતા હૈ લેદ્યા ઇનકી પદ્ય હોતી
હૈ । હે 'મદન્ત ! કયા ઇન લોકાન્તિક વિમાનોં સે સમસ્ત પ્રાણ, સમસ્ત
ભૂત, સમસ્ત જીવ, સમસ્ત સત્ત્વ પૂર્વ મેં પૃથિવીકાયિક રૂપ સે, અપ્કા-

તિયવિમાણેસુ ણં મંતે ! સવ્વે પાળા, ભૂયા, જીવા, સત્તા પુઠ્ઠવિકાશ્યત્તાણ, આઝકા-
શ્યત્તાણ, તેઝકાશ્યત્તાણ, વાઝકાશ્યત્તાણ, વળસ્સકાશ્યત્તાણ, દેવત્તાણ દેવિત્તાણ
ઉવવન્નપુલ્લા ?”

અહીં સુધીના પાઠ 'યાવત્' પદથી ગ્રહણ કરવામાં આવ્યો છે. હવે આ
સૂત્રપાઠનું તાત્પર્ય સમજાવવામાં આવે છે—ગૌતમસ્વામી મહાવીર પ્રશ્નને એવો
પ્રશ્ન પૂછે છે કે “ હે મદન્ત ! લોકાન્તિક વિમાનોના કેટલા વર્ણ હોય છે ?
તેનો જવાબ આપતા મહાવીર પ્રશ્ન કહે છે કે “ હે ગૌતમ ! લોકાન્તિક
વિમાનના ત્રણ વર્ણ છે—લોહિત વર્ણ, હરિદ્રવર્ણ (હળદરના જેવો વર્ણ)
અને શુક્રવર્ણ આ રીતે લોકાન્તિક વિમાનોને ત્રણ વર્ણવાળાં કહેલાં છે. તેઓ
પોતાની પ્રભાથી સદા દેહીપ્યમાન રહે છે, તેમની ગંધ ઈષ્ટ હોય છે અને
તેમનો સ્પર્શ રુચિકારક હોય છે. તે વિમાનો સમસ્ત રત્નોનાં અનેલાં હોય
છે. તે વિમાનોમાં જે દેવો રહે છે તેઓ સમચતુરચ્ચ સંસ્થાનવાળા હોય છે.
અને તેમનો વર્ણ લીનાં મહુઆ જેવો હોય છે, તેઓ પદ્મલેશ્યાવાળા હોય
છે.” ગૌતમસ્વામીનો પ્રશ્ન—“ હે મદન્ત ! તે લોકાન્તિક વિમાનોમાં શું
સમસ્ત પ્રાણ, સમસ્ત ભૂત, સમસ્ત જીવ અને સમસ્ત સત્ત્વ પૂર્વે (પહેલાં)

આપણા ખાતર નહીં તે આપણી ભવિષ્યની પેઠી
ખાતર પણ આ કાર્ય પૂર્ણ કરવું જ પડશે.

૩૨ નીન સિદ્ધાંતોનું સંશોધન કરી ચાર ભાવામાં પ્રસિદ્ધ કરવાનું જે
મહદ્ કાર્ય આ સમિતિ લગભગ વીસ વર્ષ થયાં કરી રહી છે. તે ખીના
સમાજના દરેક અંગમાં જગ-જાહેર છે.

અત્યાર સુધીમાં પૂજ્ય આચાર્યશ્રીએ ત્રીસ શાસ્ત્રોનું સંશોધન પૂરું
કર્યું છે અને બાકીના ત્રણ સૂત્રોનું કાર્ય આ વર્ષમાં પૂરું કરી નાખશે,
તેમ અમારી ધારણા છે.

બત્રીસમાંના વીસ શાસ્ત્રો તથા તેના ભાગો પ્રસિદ્ધ થઈ ગયા છે
બાકીનાં શાસ્ત્રો કેટલાંક છપાય છે. અને કેટલાકના અનુવાદ કરવાનું કાર્ય
ચાલુ છે.

અસહ્ય મોંઘવારીને લીધે સમિતિએ શરૂઆતમાં ધારેલા ખર્ચ કરતાં
ત્રણ ગણો ખર્ચ થવાનો અંદાજ છે આથી બાકીના કાર્યને પહોંચી વળવા
રૂપિયા ત્રણ લાખની તાકીદે જરૂર છે. અને તે વીરના લક્ષ્મીનંદન પુત્રો પાસે
અમારી ટહેલ છે. તેમના તરફથી બાકીના સૂત્રો માટે રૂપિયા ૫૦૦૧ આપ-
નારાની અમે રાહ જોઈએ છીએ.

योजनसदृशाणि लोकान्तिकविमानेभ्यः अवाधया अन्तरेण व्यवधानेन लोकान्तः
प्रक्षुप्तः कथितः । अन्ते गौतमो भगवद्वाक्यं प्रमाणिकृतया स्वीकरोति—' सेवं
भंते ! सेवं भंते चि ' हे भदन्त ! तदेवं भवदुक्तं सत्यमेव, हे भदन्त ! तदेवं
भवदुक्तं सत्यमेवेति ॥ सू० ३ ॥

इति श्री विश्वविख्यात - जगद्गुरु - प्रसिद्धवाचक-पञ्चदशभागाकलि-
तललितकलापालापक-प्रविशुद्धगद्यपद्यनैऋत्यनिर्माणक-त्रादिमानमर्दक-
श्रीशाहू छत्रपतिकोल्हापुरराजप्रदत्त ' जैनशास्त्राचार्य ' पदभूषित-
कोल्हापुरराजगुरु-यालत्रक्षचारि-जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-पूज्यश्री
घासीलालत्रिविरचितार्या श्रीभगवतीसूत्रस्य प्रमेयचन्द्रिकाख्यायां
व्याख्यायां षष्ठ शतकस्य पञ्चमोद्देशकः समाप्तः ॥ ६-५ ॥

योजन दूर है। अब अन्त में गौतम प्रभु के वचनों को प्रामाणिक रूप
से स्वीकार करते हुए कहते हैं कि (सेवं भंते ! सेवं भंते ! चि) हे
भदन्त ! आपके द्वारा कहा हुआ यह सब ऐसा ही है—सत्य ही है—हे
भदन्त ! सत्य ही है ॥ सूत्र ३ ॥

श्री जैनाचार्य जैनधर्म दिवाकर श्री घासीलालजी महाराजकृत " भगव-
तीसूत्र"की प्रमेयचन्द्रिका व्याख्याके छठे शतकका पांचवा
उद्देशक समाप्त ॥ ६-५ ॥

सूत्रने अन्ते गौतमस्वामी भडावीर प्रभुनां वचनाने प्रमाणभूत गणीने कहे
छे—“ सेवं भंते ! सेवं भंते ! चि ” “ हे भदन्त ! आपे आ विषयतुं जे
प्रतिपादन कथुं ते सत्य न छे, हे भदन्त ! आपनी वात सर्वथा सत्य छे ”
आम कडीने भडावीर प्रभुने वदल्लु नमस्कार करीने तेज्जे तेमने स्थाने
जेसी गया. ॥ सू० ३ ॥

जैनाचार्य श्री घासीलालजी महाराज कृत भगवती सूत्रनी प्रमेयच-
न्द्रिका व्याख्याना पांचमो शतकनो. त्रीजे उद्देशक समाप्त ॥६-५॥

શાસ્ત્રોની સંપૂર્ણ માહિતી

અદારમા વાર્ષિક રિપોર્ટમાં બતાવેલ ૨૪ યાત્રો પ્રવિદ્ય મયા પા
નીચે મુજબ કામગાજ થયેલ છે.

(૧) ભગવતી ભાગ ત્રીજે ૩ બદાર પડી ચુક્યો છે અને તે મેમ્બરો
મોકલવાનું કામ ચાલુ છે.

(૨) ભગવતી ભાગ ચોથો તથા પાંચમો છપાઈ ગયો છે. અને તે
બાઈન્ડીંગ કાર્ય ચાલે છે.

(૩) સાતા સૂત્રના કુલ ત્રણે ભાગ છપાય છે જે એકાદ માસ
પૂરા થઈ જશે.

(૪) ભગવતી ભાગ છઠ્ઠો તથા સાતમો છાપવાનું કામ ચરૂ થઈ ગયું છે.

(૫) કુલે લગભગ ૩૦ સૂત્રો પૂન્ય ગુરુદેવે લખીને પૂરાં કરેલાં છે
તેમાંના છપાયા વગરનાં જે સૂત્રો બાકી છે તેનું અનુવાદનું તેમજ સંશોધન
કેટલુંક કામ ચાલુ છે, અને કેટલુંક બાકી છે.

(૬) નિશીથ સૂત્ર સૂર્યપત્રતી તથા ચંદ્રપત્રતી સૂત્ર એ બાકી રહેલ
ત્રણ સૂત્રો લખવાનું કાર્ય અત્યારે ચાલે છે.

શ્રી અખિલ ભારત પ્રવે. સ્થા.

જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ

રાજકોટ

તા. ૧૫-૭-૬૩

નમ્ર સેવક

સાકરચંદ બાઈચંદ શેઠ

મંત્રી.

